

हिन्दी
विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहाशय,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम. आर. ए. एम

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्गृहीत

—*—

द्वाविंश भाग

वीरभूम—शाहजहान

THE
ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XXII.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārāja,

Siddhānta-varidhi, Śabda-ratnākara, Tattva-cintāmaṇi, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of *Banglā Sāhitya Parikāśa* and *Kāyastha Patrikā*; author of *Castes & Sects of Bengal*, *Mayura-bhanja Archaeological Survey Reports* and *Modern Buddhism*;

Hony. Archaeological Secretary, Indian Research Society,

Associate Member of the Asiatic

Society of Bengal &c. &c. &c.

—*—

Printed by A. C. Sen. at the Visvakosha Press

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Varma

9, Visvakosha Lane, Bagbazar Calcutta

1930.

हिन्दी

विश्वकोष

द्वाविंश भाग

वीरभूम—बङ्गालके अन्तर्गत चर्द्धमान विभागका एक जिला। यह स्थान अक्षा० २३' ३४' और २४' ३५' उ० तथा देशा० ८७' १०' और ८८' २' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १७५२ वर्गमील है। इसकी उत्तर-पश्चिम-सीमा पर सन्ताल प्रगना, पूर्वभागमें मुर्शिदाबाद और चर्द्धमान तथा दक्षिणमें भी चर्द्धमान जिला है। इस जिलेकी दक्षिण-सीमा पर अजय नदी प्रवाहित हो रहा है। यह अजय नदी वीरभूमको चर्द्धमान जिलेके भूभागसे विच्छिन्न करता है। इस जिलेका प्रधान शासनकेन्द्र—सिउड़ी सहर है।

पहले वीरभूमके इलाकेका भूभाग परिमाणमें बहुत अधिक था। वीरभूमका शासनभार जब अङ्गरेजोंके हाथ आया तब इसका परिमाण ३८५८ वर्गमील था। विष्णुपुर जमीन्दारों भी उस समय इसी जिलेके अन्तर्भूक्त थी। उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भमें विष्णुपुर बाँकुड़ा जिलेके अन्तर्गत हुआ। इसके बाद इसके पश्चिम भागका कुछ अंश सन्ताल प्रगनेमें शामिल कर इसको और भी छोटा बना दिया गया। इस तरह इसका भूपरिमाण कम होते होते सन् १८८३ ई०में केवल १७५२ वर्गमील रह गया।

१६वीं शताब्दीमें वीरभूम किसी ध्रोत्रिय ब्राह्मणवंशके अधीन था। इसके बाद १७वीं शताब्दीके अन्तमें यह मुसलमानोंके अधिकारमें आया। १८वीं शताब्दीके आरम्भमें जाफर खाने असदुल्ला पठानके हाथ वीरभूमकी जमीन्दारीका शासनभार प्रदान किया। असदुल्लाके पूर्वपुत्रय शताधिक वर्ष पहलेसे यहां रहते थे। सन् १७३५ ई० तक वीरभूमका शासनभार असदुल्लाके पंशधरोंके हाथमें था। सन् १७८७ ई०में वीरभूम ईष्ट इण्डिया कंपनीके अधिकारमें आया। इसके पहलेसे ही वीरभूममें डाकुओंका उपद्रव प्रचलरूपसे वर्चमान था। पश्चिम प्रान्तके पहाड़ी प्रदेशसे पङ्गालकी तरह डाकू आते और वीरभूम-वासियोंका धन आदि लूटपाट कर ले जाते थे। डाकू लोग कमसे कम पैसे प्रबल हो उठे, कि ये वीरभूममें किला बन्दो कर इस जिलेमें अपना प्रभुत्व विस्तार करने लगे। इन डाकुओंके उपद्रवसे सदाका खजाना राजकोषमें पहुँचने नहीं पाता था। व्यवसाय-वाणिज्यमें बाधा उपस्थित होनेके कारण ईष्ट इण्डिया कंपनीके कई कारखाने बन्द हो गये। ये सब असौम्य साहससे चातों तरफ धाकेजनी किया करते थे। राजा और जमीन्दारोंके साथ

याकायदा युद्ध चलता था। ये लूटनेवाली पहाड़ी जातिके लोग मुसलमान शासकोंके जमानेसे ही यहाँके लोगोंको भयभीत कर धन लेते थे। सामान्य भय दिखलानेसे धन न देने पर ये तीर धनुष आदि अस्त्र-शस्त्रसे सज्जित हो आते और जो बाधा देते थे, उन्हें मार डालते थे। ये ग्राम नगर आदि लूट कर पहाड़में चले जाते थे। इन डाकुओंके भयसे घोरभूमके उत्तर प्रदेशमें गङ्गातट पर भी प्रायः एक सीसे अधिक मील तक रातको कोई नायके साथ अवस्थान न कर सकता था। डाकुओंके आक्रमणसे अधिवासियोंकी रक्षा करनेके लिये राजा और जमीन्दार बहुत चेष्टा करते थे। और तो क्या—इसके लिये चारों बगल प्राचीर परिष्ठा आदि तक बनाये गये थे। इनका चिन्ह कहीं कहीं आज भी दिखाई देता है। भागलपुरके दक्षिण-पश्चिम प्रान्तमें इस तरहके प्राचीरका भग्नावशेष आज भी वर्त्तमान है।

सन् १७६६ ई०में ईष्ट इण्डिया कम्पनीने यद्यपि घोरभूम जिलेमें अपने प्रभुत्व-प्रचारकी चेष्टा की थी, तथापि उस समय तक अंग्रजोंको कोई मानता न था। सन् १७७२ ई०में घोरभूम अङ्गरेजोंके शासनाधीनमें आ जानेकी स्वीकृति हो जाने पर भी यहाँके राजा ही यहाँके शासनकर्त्ता थे। राजा ही इस प्रदेशका शासन करते थे। ये ईष्ट इण्डिया कम्पनीको सामान्य कर देते थे। पश्चिम सोमान्तकी रक्षाका भार राजाके ऊपर ही था। किन्तु उस समय घोरभूम और मल्लभूम (विष्णुपुर)के राजाओंका प्रमाण बर्ष हो रहा था। राजाओंके बलही सामरिक भयस्या शोचनीय हो रही थी। अन्तमें इनकी गार्हस्थरक्षाका उपाय भी न रहा। इधर डाकुओंके उपद्रवसे प्रजा नित्य उत्पीडित हो रही थी। दुर्लभ डाकुओंके हाथसे धान पानेकी जरा भी सामर्थ्य घोरभूम और मल्लभूमके राजाओंमें न थी।

सन् १७८४ ई०में डाकुओंका उपद्रव इतना बढ़ गया, कि अङ्गरेजोंसे चुपचाप पैसा न गया। उन्होंने डाकुओंके दानके लिये प्रयत्नकर हुए। सन् १७८५ ई०में मई महानिमें मुर्शिदाबादके कलेक्टर पदवर्द्ध अर्द्धाण्डने अपने इलाकेके दक्षिण भागके डाकुओंके उपद्रवोंको रोकनेके लिये सहायसल गवर्नर जनरलसे

४०० सैनिकोंके भेज देनेकी प्रार्थना की। किन्तु इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। डाकुओंने इस समाचारसे अश्रुत हो कर अपने बलको पुष्टि कर ली। इसके बाद पिछले वर्षमें डाकुओंने घोरभूमके समग्र जिले पर अपना प्रभुत्व विस्तार कर लिया। इस समय गवर्नर जनरल लार्ड कर्नवालिसने देखा, कि घोरभूम और विष्णुपुरके शासनका भार किसी प्रभावशाली चिन्ताशील व्यक्तिके हाथ देना चाहिये। इस समय डब्ल्यू पार्सि विष्णुपुर और घोरभूम इन दोनों स्थानोंके कलेक्टर बनाये गये। सन् १७८७ ई०में विष्णुपुर और घोरभूम उक्त कलेक्टरके हाथ आये। किन्तु उन कलेक्टरसे भी काम न चला। वे तीन सप्ताह तक इस काममें रहे। सम्भवतः डाकुओंके भयसे भीत हो कर वे विष्णुपुरसे भाग गये। सरकारी कागज़ोंमें लिखा है, कि 'पार्सि' साहब पदोन्नतिका समाचार सुन कर शीघ्र और सहसा विष्णुपुरसे चले गये।

जो ही, मिस्टर सारवरण उनके स्थान पर अविहार जमाया। इनके शासनके प्रारम्भमें ही विष्णुपुरसे सिउड़ीमें सद्दर स्थानान्तरित हुआ। मिस्टर सारवरणको यहाँके लोग घोर ही समझते थे। इसके फलसे उनके शासनसे यहाँके डाकुओंका उपद्रव कुछ शांत हुआ था। किन्तु दूसरी ओर इनकी छपासे विष्णुपुर और घोरभूमके देशीय राजाओंका प्रभाव सदाके लिये मिट गया। वे नाममात्रके राजा थे सही, किन्तु कार्पयतः अति सामान्य दैन्यवान् भद्र पुत्रकी अवस्थामें आ पहुँचे।

जो ही, जिस उद्देशकी पूर्त्तिके लिये ये घोरभूममें भेजे गये थे, उसमें वे पूर्णरूपसे सफल न हो सके। सन् १७८८ ई०में कलकत्तेके समाचारपत्रमें प्रकाशित हुआ—“अजय नदके दक्षिण डाकु लोग भयङ्कर उत्पात मचा रहे हैं। उन्होंने सरकारी दफ्तानेकी लूट लिया है, सिपाहियोंको पराजित किया तथा पान्च नादमियोंको मार डाला है। कोषागारसे ३०००० रुपये लूट लिये गये हैं।”

सन् १७८८ ई०में सरकारने इस वियवकी जांच करनी आरम्भ की। मिस्टर सारवरणके कार्पय पर सख्त कर के घटाने दृष्टा दिये गये और उस जगह पर मिस्टर

क्रिस्टोफर किटिं भरती हुए। दो मास बीतते न बितते मिष्टर किटिं डाकुओंके उपद्रवकी देख चकित और स्तम्भित हुए। मिष्टर किटिंने सोचा था, कि मिष्टर सारवरणके शासनसे डाकु लोग सम्भवतः उरपीड़ित हो गये हैं। यही सोच कर वे चुपचाप बैठे रहे। किन्तु एक दिन उनके पास हृदयविदारक एक समाचार पहुँचा, कि उनके वासस्थानके निकट ही पाँच सौ डाकुओंने आ कर चालीस प्रामके अधिवासियोंको घनबिहीन और प्राणहीन कर दिया। इसके कई सप्ताह बाद ही सन् १७८६ ई०के फरवरी महीनेमें पहाड़ी डाकु वीरभूम और विष्णुपुरके घाने पर भी आक्रमण किया, टोलीं, महलों या प्रामोंकी तो बात क्या? प्राम-प्राममें मारामारी और खून खराबी होने लगे। मिष्टर किटिं सीमान्त प्रदेशमें सैन्य संरक्षणके निमित्त विविध व्यवस्थाये कीं। किन्तु दुर्दान्त डाकुओंका उदपात किसी तरहसे कम न हुआ।

इसके बाद स्कॉटलिसल गवर्नर जनरलने वीरभूम और विष्णुपुरके डाकुओंके उपद्रव-निवारण करनेके लिये एक छोटे समरकी व्यवस्था की। उन्होंने निकरके सभ कलशटोकी सूचित कर दिया, कि इस विषय पर सभी मिल कर एक साथ काम करें। केवल अपने इलाकेकी ही लेकर चुप न बैठें। डाकुओंका जहाँ उपद्रव सुनाई दे, वहाँ अपने सैनिकोंके साथ उपस्थित हों। इस तरह सैन्य-संग्रह कर वीरभूममें डाकुओंके साथ अंग्रेजोंका एक जखण्डयुद्ध हुआ था। इस युद्धसे डाकु लोग डर गये थे सही, किन्तु इससे भी इनका उपद्रव बिलकुल दूर न हुआ।

इधर उस समय ब्रिटिश अफसरोंके दिमागमें एक और ही धुन लग रही थी। वह यह, कि यथासम्भव शीघ्र देशीय राजाओंके हाथसे शासनमार छीन लिया जाये। इसके लिये वे उस समय उगमत्त हो उठे थे। विष्णुपुरके राजाके जिम्मे कुछ ही मालगुजारी बाकी पड़ी थी। इसी सामान्य अपराधमें अफसरोंने उनकी पकड़के जेलमें दूस दिया। दूसरे समय अफसरोंके प्येसा करने पर प्रजा और अंग्रेजोंमें युद्ध ठन जाता था। किन्तु नाना कारणोंसे उस समय देशके लोगोंने मनुष्यत्वकी खो दिया था। सुतरां इस घटना पर भी कोई अशान्ति नहीं मची।

फिर प्रजा डाकुओंका साथ हो अंग्रेजोंके विरुद्ध चलने लगे।

इसके बाद फिर एक बार डाकुओंके उपद्रवने जोर पकड़ा। इस समय ब्रिटिश सरकारके तोपखानेकी लूट लेनेके लिये डाकु लोग अधिकतर चेष्टा करने लगे। मिष्टर किटिंने गवर्नर जनरलके पास सुशिक्षित सैन्य भेजनेकी प्रार्थना की। उनके प्रार्थनानुसार एक फौज भेजी गई। ये विमर्क हो नाना स्थानोंमें अन्याय सैनिकोंके साथ परकृत हुए। किन्तु इससे भी डाकुओंका उपद्रव नहीं रुका। और तो क्या—दिन बहाड़े डाकुदल शहरमें दूक कर लूटपाट मचाने लगा। फलतः राजनगर पर डाकुओंका अधिकार हो गया। पाँच सौ वर्षोंमें जैसी घटना न हुई थी, मिष्टर किटिंके शासनमें वैसी उद्दंशा हो गई। मिष्टर किटिं विष्णुपुरमें बैठे ही रह गये। इधर डाकु लोग वीरभूमके राजनगर पर प्रभुत्व विस्तार करनेमें मनोयोगी हुए। मिष्टर किटिं अस्तुतु हो कोपित हो उठे। वीरभूमसे डाकुलोगोंके भगानेके लिये विष्णुपुरसे दलके दल सैनिक भेजने लगे। इधर दूसरे डाकुदलने विष्णुपुरका अपराध किया। निकरके प्रामोंको घे लूटने लगे। देखते देखते वर्षाकाळ आरम्भ हुआ। फलतः अंग्रेज उस समय किसी तरहसे डाकुओंको देशसे मगा न सके। डाकुओंके उतपोड़न और शासकोंकी निरधेष्टता तथा असमर्थताके कारण प्रजा व्याकुल हो उठी। प्रजा कहने लगे, कि हमारे राजाको दुर्बल जान कर फिरकियोंने देश शासनका भार अपने हाथमें लिया था, किन्तु अब मालूम हुआ, कि हमारे राजाकी अपेक्षा भी ये सहस्र गुणा बलवान हैं। इनके ऊपर निर्भर करनेसे अब काम न चलेगा। प्रजा उस समय दुःसाहसी हो उठी। लोगोंने बांस काट बड़ी बड़ी लाठियां तय्यार कीं। अन्तमें उस लाठीके बलसे ही छपक अपने गाँवोंसे डाकुओंको भगाने लगे। अंग्रेजोंने तोपोंसे जो न कर सके, वह छपक लाठियोंसे कर दिखाया। अंग्रेज अपने हाथ वीरभूमका शासन ले कर दो वर्ष तक बड़े सङ्कटमें पड़ गये थे।

इतिहास।

कहा गया है। कि उत्तर-पश्चिम प्रदेशसे वीरलिंग

वीर चैतन्यसिंह नामके दो भ्राता धोरभूममें आये। इनके शासनसे पहाड़ी लोग परास्त हुए। इन दोनों भाईयोंने धोरभूममें अपना प्रमुख स्थापित किया। धोरसिंहके नाम पर धोरसिंह नगर और चैतन्यसिंहके नाम पर चैतन्यपुर नगर धोरभूममें स्थापित हुए। आज भी ये दोनों नगर धोरभूममें वर्तमान हैं। धोरसिंहके भाई फतेहसिंहने मुर्शिदाबादके कुछ अंशों पर भी अपना दखल जमाया था। उनके नाम पर फतेहपुर प्रगनेकी स्थापति हुई।

वीरसिंह ही वीरभूमके प्रबल हिन्दूराजा हैं। धोरसिंहकी यथेष्ट वैदिकबल था। प्रबल-पराक्रमशाली राजा धोरसिंह अपने बलके प्रभावसे धोरभूमके बहुत स्थानोंको अपने शासनमें मिला लिया था। इन्होंने अपने भाईको उसके राज्यसे भगाया और वहाँ भी अपना प्रमुख स्थापित किया। बहुतेरे राजा और जमीन्दार इनकी अधीनता स्वीकार कर इनको कर देते थे। सिउड़ीके पूर्वभागमें प्राचीन धोरसिंहपुरके ध्वंसावशिष्ट स्थानोंमें आज भी बहुतेरे दुर्ग, प्रासाद और तालाबोंके चिह्न पाये जाते हैं। राजा धोरसिंहने मुसलमानोंके साथ सम्मुख-समरमें प्राण परित्याग किया था। इनके मर जानेके बाद इनकी रानी तालाबमें कूद कर अपने सती धर्मकी रक्षा की थी। जिस तालाब या पोखरेमें रानीने आत्मविस्मरण किया था, आज भी यह वर्तमान है। इस समय इसका नाम रानीदह हो गया है। धोरसिंहने एक कालीजीका मन्दिर बनवा कर उसमें श्री-कालीजीकी एक मूर्ति प्रतिष्ठित कराई थी।

इहाँ राजाने धोरसिंहपुरके निकट एक गोपालमूर्ति-की भी प्रतिष्ठा कराई थी। इस समय यह स्थान जङ्गलके रूपमें परिणत हुआ है। वहाँके लोग उसको गुप्तवन्द्या-पन कदा करते हैं।

वीरभूमके राजनगरके इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि राजनगरमें किसी समय पालयंशकी राजधानी थी। पालयंशीय राजाओंके कीर्तिकलापका चिह्न राजनगरमें दिखाई देता है। पालयंशके बाद किसी समय राजनगरमें सेन राजाओंकी भी राजधानी थी, इसका भी यथेष्ट निदर्शन मिलता है। उस समय इस स्थानका नाम लक्ष्मणनगर तथा मुसलमानोंके जमानेमें उसका नाम 'श सफेनगर हुआ।

जो ही, इसके बाद धोरभूममें धोरराजाके नामने एक ब्राह्मण राजाने राज्य किया। यही धोर राजा राजनगरमें रहते थे। ये प्रबल शौर्यवीरशाली थे। पार्श्ववर्ती राजा और जमीन्दार इनको चक्रवर्ती राजा मानते थे। जिस समय पठान अपने प्रभावसे इस देशमें अपना शासन-विस्तार कर समग्र देशको विध्वस्त कर डालने लगे, उस समय धोर राजा अपने पराक्रम प्रभावसे पठानोंके हाथसे इस देशका उद्धार किया। राष्ट्रीय ब्राह्मण कुलप्रणयमें ये वसन्त चौधरीके नामसे परिचित हैं।

इस समय असदुल्ला खां और जुनोद खां नामके दो पठान उनके पास पहुँचे। इन दो पठानोंके रूप धोर सौन्दर्यको देख इनके प्रति धोरराजाका चित्त आकर्षित हुआ। उन्होंने इन दोनोंको अपने राज्यके प्रधान कर्मचारीके पद दिये। इनमें एककी प्रधान मन्त्री और दूसरेको प्रधान सेनापतिका पद दिया गया। इनके सुशासनमें धोरभूमकी यथेष्ट उन्नति हुई। किन्तु पठानका विश्वास करना बुद्धिमानका कर्तव्य नहीं। धोरराजा शौर्यवीरशाली थे सही, किन्तु वे दूरदर्शी तथा नीतिकुशल नहीं थे। इस लिये उनको विपय फल भोगना पड़ा।

लेानोंने देखा, कि ये ही वास्तवमें देशके शासककर्ता हैं। धोरराजा केवल नामके राजा हैं। धोरराजाको मार डाल कर ये सहाज ही इस देशके राजा हो सकेंगे। पठानोंके हृदयमें इस ऊँचे आशाका आचिर्भाव हुआ। वे दिन रात इसी चिन्तामें रहते थे, कि राजाका किस तरह विनाश किया जाये। असदुल्ला धोरराजाकी महिषीका सौन्दर्य देख विमग्न हुए थे। महिषीका सौन्दर्य राजाकी मृत्युका कारण हुआ।

एक दिन राजा अन्धाड़में कृत्यतो लड़ रहे थे। असदुल्ला वहाँ उपस्थित हुआ। राजाने अन्धाड़में आनेसे उसको मना किया। इस पर क्रुद्ध हो असदुल्लाने भाई जुनोदके साथ बलपूर्वक अन्धाड़का दरवाजा तोड़-धुस गया और गुप्त भावसे राजा पर आक्रमण किया। जिस समय असदुल्ला धोरराजामें कृत्यतो हो रही थी, उस समय दुरमिसिन्धिशील जुनोद खाने इन दोनोंको निरयत्के

विजडित होता है। आसदजमा भी राजधेभयसे प्रमत्त हो उठे। मुर्शिदाबादके नवाबकी सलाहसे वे वीरभूमके राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे। किन्तु नवाबके पुत्र मीरजाफर अलीकी मृत्युके बाद आसदजमा सुयोग पा कर मुर्शिदाबादके नवाबका सर्वनाश करनेके लिये समरसज्जासे सज्जित हो चूनाखाली तक यात्रा कर चुके थे। नवाबने निरुपाय हो कर सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु उस पर भी आसदजमा सन्तुष्ट न हो गङ्गा पार कर मुर्शिदाबादकी ओर अग्रसर हुए।

इस समय नवाबकी पत्नी मारी वेगमने विपदके प्रतिकारके लिये सहसा एक उपाय खोज निकाला। उन्होंने अङ्गरेजोंसे एक प्रस्ताव किया, कि यदि इस युद्धमें वे मदद करें, तो उनकी एक बड़ा तालुका छोड़ दिया जायेगा। अङ्गरेजोंकी मौका हाथ आया। वे चट युद्धके लिये तैयार हो गये। आसदजमा उस समय रामनगरके दुर्गमें टहरें हुए थे। अङ्गरेजोंने कुछ दिनों तक इसी दुर्गमें रोक कर आसदजमाकी परास्त किया। इस युद्धमें आसदजमाका सेनापति धक्काल खाँ मारा गया। इस युद्धके अन्तमें जो सन्धि हुई, उसका मर्म इस तरह है—

(१) वीरभूमके राजस्वका एकतृतीयांश अङ्गरेजोंको मिलेगा।

(२) अङ्गरेजोंका वीरभूममें किसी ध्वापारसे सम्बन्ध न रहेगा।

(३) राजा सब प्रकारके प्रयोजनोप विषयोंमें अङ्गरेजोंका परामर्श ले कर कार्य करेंगे।

इस युद्धमें आसदजमाको अच्छी शिक्षा मिली। इसके बाद वे मुर्शिदाबादके नवाबकी उचित रूपसे कर दिया करते थे। मु'जी अनुपमिधने उनको कर्ज दिया था। श्रम जोधन न करनेसे उनकी राजाने १००० घोड़ा जमाने भी थी।

सन् १७७७ ई०में यातप्याधि रोगसे आसदजमाको कलकत्तेमें मृत्यु हुई। आसदजमा उदारहृदयके थे। योद्धा तथा उनकी उद्यानाकी बात पहले ही कही जा चुकी है। समूचे पन्नाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेकी प्रवृत्त भावा उनके हृदयमें जागरित हो उठी

थी। उन्होंने २६ वर्ष तक वीरभूममें राज्यशासन किया था।

आसदजमाकी मृत्युके बाद उनका भाई बहादुर खाँ राजपद पानेका दावा किया। किन्तु आसदजमाकी विधवा वेगम उसमें बाधा दे न्यायपूर्वक अपने पुत्र लालबिहारी सिंहासन पर बैठानेकी प्रार्थना अ'प्र'जो'से की। लालबिहारी सिंहासन पर बैठे, फिर भी वे नाबालिग थे। राजकार्य उनकी माताकी ही देखना पड़ता था। किन्तु कुचको बहादुरने नाना तरहसे कुचक चला कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। सन् १७८६ ई०में बहादुरकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनका पुत्र महम्मदजमा खाँ सिंहासन पर बैठा।

सन् १७६० ई०में महम्मद जमाने राज्यभार ग्रहण किया। उनकी नाबालिगकी हालतमें दोषान लाला रामनाथ और मिष्टर किटि' वीरभूमका राजकार्य करते थे। पीछे बालिग हो कर उन्होंने खय बड़ी योग्यताके साथ राज्यकार्य संभाला। उनके राजत्वकालमें वीरभूममें सात लाख मनुष्योंका वास था। इनमें द्विगुणोंकी संख्या एकतृतीयांश थी (सच पूछिये तो दो तृतीयांश)। लाला रामनाथकी भी वषेष्ट क्षमता थी। इन्होंने सिउड़ी शहरसे ६ मीलकी दूरी पर भाएडीरयन नामक स्थानमें भाएडीभर नामक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा कराई थी।

महम्मदजमा खाँने सन् १८०२ ई०में पितृसिंहासन और सन् १८१२ ई०में अ'प्र'जो'से सनद पाई थी। सन् १८५५ ई०में जहरजमा नामक एक पुत्रकी रक्ष कर उन्होंने इहलोकसे प्रस्थान किया।

वीरभूमका प्राचीन राजवंश और राज्यशासनके सम्बन्धमें बहुतेरी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। किन्तु ऐतिहासिक भाज भी इसके सम्बन्धमें उपादान संभ्रम करनेमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं।

सिउड़ीमें ही वीरभूमका जिला सदर प्रतिष्ठित है। यहाँ ही वीरभूमका प्रधान नगर है। मयूराक्षि नदी इसके तीन मीलकी दूरी पर प्रवाहित होती है। सिउड़ीसे ११ मीलकी दूरी पर सैंधिया रेलवेका स्टेशन है। यह शहर कलकत्तेसे १३१ मीलकी दूरी पर स्थित है।

वीरभूम कृषिप्रधान स्थान है। वरुमान विभाग कृषिके लिये चिरप्रसिद्ध है। वीरभूमके उत्पन्न ध्रुवों में धान, ईल, यव और सरसों यद्ये परिमाणसे उत्पन्न होता है। अन्यान्य प्रयत्नोंमें रेशमका कार्य होता है। वीरमणि (सं० पु०) पुराणके अनुसार देवपुरके एक प्राचीन राजाका नाम, जिसके पुत्र द्युमातृदत्ते भगवान् रामचन्द्रके यज्ञका घोड़ा पकड़ लिया था। इस पर शत्रुघ्न और हनुमान् आदिने इससे युद्ध किया था। कहते हैं, कि इस युद्धमें महादेवजीने भी वीरमणिका साध दिया था और शत्रुघ्नको अपने पाशमें बांध लिया था। इस पर रामचन्द्रजीने आ कर उनके और अपना घोड़ा छुड़ाया था।

वीरमत्स्य (सं० पु०) एक जातिका नाम।

(रामायण २।७।१।५)

वीरमय (सं० लि०) वीरलक्षणे मयत्। वीरस्वरूप, वीर। तन्त्रोक्त वीरभाव, वीराचार।

वीरमर्दन (सं० पु०) एक दानवका नाम। (हरिवंश)

वीरमर्दल (सं० पु०) प्राचीन कालके एक प्रकारका ढोल, जो युद्धके समय बजाया जाता था।

वीरमह—संस्कृत साहित्यके सुपरिचित मानवधर्मशास्त्र-व्याख्याके रचयिता नन्दनके प्रिय मित्र।

वीरमहेश्वर (आचार्य)—संग्रह नामक वेदान्त ग्रन्थके रचयिता।

वीरमाता (सं० स्त्री०) वीराणां माता। वह स्त्री, जो वीर पुत्र प्रसव करती है। वीरजननी। पध्याय—वीरसू, वीरप्रसू।

वीरमाणिक्य (सं० लि०) वीर-मण्यते वीर-मम-णिनि। वीर मिमांसी, जिसको अपने वीर होनेका धमण्ड है।

(भागवत १।१।२८)

वीरमार्ग (सं० पु०) वीरस्य मार्गः। वीरका मार्ग, स्वर्ग।

वीरमाहेश्वरोपतन्त्र—एक तन्त्र ग्रन्थका नाम।

वीरमितोदय—एक सुप्रसिद्ध व्यवस्थाशास्त्र। मितमिथ इसके रचयिता हैं। इस ग्रन्थमें दायमागादि विषयोंका और व्यवहारशास्त्रकी सुचारुरूपसे मिमांसा की गई है।

वीरमित्र (सं० पु०) वीरमितोदयके प्रणेता मितमित्रका दूसरा नाम।

वीरमुकुन्ददेव (सं० पु०) उत्कलके सुप्रसिद्ध राजा। भारत-सर्वस्वके प्रणेता मार्कण्डेय कवोन्द्रके प्रतिपालक।

मुकुन्ददेव और उत्कल शब्द देखो।

वीरमुद्रिका (सं० स्त्री०) एक तरहकी अंगुठी या छद्मा, जो प्राचीन कालमें पैरकी बीचवाली अंगुलीमें पहना जाता था।

वीरया (सं० स्त्री०) पुल्लेच्छा। (शुक् १।६।५।४)

वीरयु (सं० त्रि०) युद्धे च्यु, रणदुर्मर्द।

वीरयोगवद (सं० लि०) मध्यस्थ।

वीरयोगसह (सं० लि०) मध्यस्थ।

वीररजसू (सं० स्त्री०) सिन्दूर।

वीररस—नाटकमें वर्णनीय नवरासोंमें एक रस। रौद्वय, वीरस्य, क्षोजखिता आदि जनानेके लिये इस रसका आधिर्भाव होता है।

वीरराघव (सं० पु०) १ रामचन्द्र। २ अच्युतपारम्य-स्तोत्रके प्रणेता। ३ उत्तररामचरितटीका, महावीर-चरितटीका और मालविकाग्निमित्रटीकाके रचयिता। ४ प्रयोगचन्द्रिका, प्रयोगदर्पण, भागवतचन्द्रिका नामकी भागवतपुराणटीका और सच्चरितसुधानिधि नामक चार ग्रन्थोंके रचयिता। ५ विश्वगुणादर्शके प्रणेता। ६ प्रयोगमुक्तावलीके प्रणेता रामके पुत्र। ७ चापवार्ध-दीपिकाके प्रणेता हनुमदाचार्यके गुरु।

वीरराघव आचार्य—१ असम्भवपत्न नामक न्यायविषयक ग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वसारव्याख्याके रचयिता।

वीरराघव शास्त्रिण—तर्करत्न नामक ग्रन्थके रचयिता।

वीररेणु (सं० पु०) वीरा रेणय इव यस्य। भोमसेन।

वीरललित (सं० स्त्री०) वीरकी तरह फिर भी कोमल स्वभाव। वृहत्संहितामें लिखा है, कि स्वयं भीरु होने पर भी अधीनस्थ शत्रुओंको "वीरललित" नामक शूर-चरित द्वारा शासन करे। (बराहपुराण १०।५।५१)।

वीरलोक (सं० पु०) वीरस्य लोकः। वीरका लोक, इन्द्रलोक, स्वर्ग।

वीरवक्षण (सं० लि०) श्रुतिगों द्वारा बहनीय।

(शुक् १।५।८।२ वाक्य)

वीरवत् (सं० लि०) वीर अस्त्वर्थे मनुष्य। वीरविशिष्ट, वीरयुक्त, पुत्रयुक्त, पतियुक्त।

विजडित होता है। आसदजमा भी राजवैभयसे प्रसन्न हो उठे। मुर्शिदाबादके नवाबकी सलाहसे वे घोरभूमके राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे। किन्तु नवाबके पुत्र मीरजाफर अलीकी मृत्युके बाद आसदजमा सुयोग पा कर मुर्शिदाबादके नवाबका सर्वनाश करनेके लिये समरसज्जासे सज्जित हो चूनाखाली तक यात्रा कर चुके थे। नवाबने निदवाय हो कर सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु उस पर भी आसदजमा सन्तुष्ट न हो गङ्गा पार कर मुर्शिदाबादकी ओर अग्रसर हुए।

इस समय नवाबकी पत्नी मारी वेगमने विपदके प्रतिकारके लिये सहसा एक उपाय खोज निकाला। उन्होंने अङ्गरेजोंसे एक प्रस्ताव किया, कि यदि इस युद्धमें वे मदद करें, तो उनकी एक बड़ा तालुका छोड़ दिया जायेगा। अङ्गरेजोंकी मौका हाथ आया। वे घट युद्धके लिये तैयार हो गये। आसदजमा उस समय राजनगरके दुर्गमें उदरे हुए थे। अङ्गरेजोंने कुछ दिनों तक इसी दुर्गमें रोक कर आसदजमाको परास्त किया। इस युद्धमें आसदजमाका सेनापति अफजल खाँ मारा गया। इस युद्धके अन्तमें जो सन्धि हुई, उसका मर्मा इस तरह है—

(१) घोरभूमके राजस्यका एकतृतीयांश अङ्गरेजोंको मिलेगा।

(२) अङ्गरेजोंका घोरभूममें किसी व्यापारसे सम्बन्ध न रहेगा।

(३) राजा सब प्रकारके प्रयोजनीय विषयोंमें अङ्गरेजोंका परामर्श ले कर कार्य करेंगे।

इस युद्धमें आसदजमाको अच्छी शिक्षा मिली। इसके बाद वे मुर्शिदाबादके नवाबको उचित रूपसे कर दिया करते थे। मुँगो अनूपमिश्रने उनकी कर्ज दिया था। अज्ञानोपन न करनेसे उनकी राजधानी १००० घोषा जमीन हो थी।

सन् १०११ ई०में घातव्याधि रोगसे आसदजमाको कष्टकालमें मृत्यु हुई। आसदजमा उदाहृदयके थे। घोरतब तथा उनकी उपायानाकी बात पहले ही कही जा चुकी है। मन्मथे यद्गाल पर भयना प्रभुस्य स्थापित करनेकी प्रवृत्त भावा उनके हृदयमें जागृत हो उठी

थी। उन्होंने २६ वर्ष तक घोरभूममें राज्यशासन किया था।

आसदजमाकी मृत्युके बाद उनका भाई बहादुर खाँ राजपद पानेका दावा किया। किन्तु आसदजमाकी विधवा वेगम उसमें बाधा दे न्यायपूर्वक अपने पुत्र लालविहोको सिंहासन पर बैठानेकी प्रार्थना अंग्रेजोंसे की। लालविहो सिंहासन पर बैठे, फिर भी वे नाशालिग थे। राजकार्य उनकी माताकी ही देखना पड़ता था। किन्तु कुचको बहादुरने नाना तरहसे कुचक चला कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। सन् १०८६ ई०में बहादुरकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनका पुत्र महम्मदजमा खाँ सिंहासन पर बैठा।

सन् १०९० ई०में महम्मद जमाने राज्यभार ग्रहण किया। उनकी नाशालिगीकी हालतमें दीवान लाला रामनाथ और मिहिर किर्ति घोरभूमका राजकार्य करते थे। पीछे बालिग हो कर उन्होंने स्वयं बड़ा योग्यताके साथ राज्यकार्य संभाला। उनके राजतकालमें घोरभूममें सात लाख मनुष्योंका वास था। इनमें हिन्दुओंकी संख्या एकतृतीयांश थी (सच पूछिये तो दो तृतीयांश)। लाला रामनाथकी भी यथेष्ट क्षमता थी। इन्होंने सिउफ़ी शहरसे ६ मीलकी दूरी पर भाएडोरचन नामक स्थानमें भाएडोरचन नामक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा कराई थी।

महम्मदजमा खाँने सन् १८०२ ई०में पितृसिंहासन और सन् १८१२ ई०में अंग्रेजोंसे समर्थ पाई थी। सन् १८५५ ई०में जहरजमा नामक एक पुत्रकी रथ कर उन्होंने इहलोकसे प्रस्थान किया।

घोरभूमका प्राचीन राजवंश और राज्यशासनके सम्बन्धमें बहुतेरी ऐतिहासिक कथानियाँ हैं। किन्तु ऐतिहासिक भाज भी इसके सम्बन्धमें उपादान संग्रह करनेमें प्रयत्न नहीं हुए हैं।

सिउडोमें ही घोरभूमका जिला मन्दर प्रतिष्ठित है। यहां ही घोरभूमका प्रधान नगर है। मयूराक्षि नदी इसके तीन मीलकी दूरी पर प्रवाहित होती है। सिउडोसे ११ मीलकी दूरी पर सैपिया रेलवेका स्टेशन है। यह नहर कलकत्तेसे ३३१ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

वीरभूम कृषिप्रधान स्थान है। वर्द्धमान विभाग कृषिके लिये चिरप्रसिद्ध है। वीरभूमके उत्पन्न ध्रुवोंमें धान, ईख, यव और सरसों यद्यपे परिमाणसे उत्पन्न होता है। अन्यान्य प्रगणोंमें रेशमका कार्य होता है। वीरमणि (सं० पु०) पुराणके अनुसार देवपुरके एक प्राचीन राजाका नाम, जिसके पुत्र रुक्माङ्गदने मगवान रामचन्द्रके यज्ञका घोड़ा पकड़ लिया था। इस पर शत्रुघ्न और हनुमान् आदिने इससे युद्ध किया था। कहते हैं, कि इस युद्धमें महादेवजीने भी वीरमणिका साथ विद्या था और शत्रुघ्नको अपने पाशमें बांध लिया था। इस पर रामचन्द्रजीने आ कर उनके और अपना घोड़ा छुड़ाया था।

वीरमत्स्य (सं० पु०) एक जातिका नाम।

(रामायण २।७।१।५)

वीरमय (सं० त्रि०) वीरस्वरूपे मयत्। वीरस्वरूप, वीर। तन्त्रोक्त वीरभाव, वीराचार।

वीरमर्दन (सं० पु०) एक दानवका नाम। (हरिवंश)

वीरमर्दल (सं० पु०) प्राचीन कालके एक प्रकारका ढोल, जो युद्धके समय बजाया जाता था।

वीरमह्—संस्कृत साहित्यके सुपरिचित मानवधर्मशास्त्र-व्याख्याके रचयिता नन्दनके प्रिय मित्र।

वीरमहेश्वर (आचार्य)—संप्रद नामक वेदान्त ग्रन्थके रचयिता।

वीरमाता (सं० स्त्री०) वीराणां माता। वह स्त्री, जो वीर पुत्र प्रसव करती है। वीरजननी। पध्याव—वीरव, वीरप्रव।

वीरमाणिन (सं० त्रि०) वीर-मन्यते वीर-मम-णिनि। वीर मिमानो, जिसको अपने वीर होनेका घमण्ड है।

(भागवत ६।१।२८)

वीरमार्ग (सं० पु०) वीरस्य मार्गः। वीरका मार्ग, स्वर्ग।

वीरमाहेश्वरोपतन्त्र—एक तन्त्र ग्रन्थका नाम।

वीरमितोदय—एक सुप्रसिद्ध व्यवस्थाशास्त्र। मितमिथ इसके रचयिता हैं। इस ग्रन्थमें दायमागादि विषयोंका और व्यवहारशास्त्रकी सुचारुप्रतिपासे भीमांसा की गई है।

वीरमिथ्र (सं० पु०) वीरमितोदयके प्रणेता मितमिथ्रका दूसरा नाम।

वीरमुकुन्ददेव (सं० पु०) उदकलके सुप्रसिद्ध राजा। प्राकृत-सर्वस्यके प्रणेता मार्कण्डेय कवोन्द्रके प्रतिपालक।

मुकुन्ददेव और उदकल शब्द देखो।

वीरसुद्रिका (सं० स्त्री०) एक तरहकी अंगुठी या छला, जो प्राचीन कालमें पैरकी बीचवाली अंगुलीमें पहना जाता था।

वीरया (सं० स्त्री०) पुल्लेच्छा। (शुक ६।६।४)

वीरयु (सं० त्रि०) युद्धे च्छु, रणदुर्मर्द।

वीरयोगवद (सं० त्रि०) मध्यस्य।

वीरयोगसह (सं० त्रि०) मध्यस्य।

वीरजसू (सं० स्त्री०) सिन्दूर।

वीरस—नाटकमें वर्णनीय नवरात्रोंमें एक रस। रौदर्य, वीररव, भोजलित्ता आदि जनानेके लिये इस रसका आविर्भाव होता है।

वीरराघव (सं० पु०) १ रामचन्द्र। २ अच्युतपारम्प-स्तोत्रके प्रणेता। ३ उत्तररामचरितटीका, महावीर-चरितटीका और मालविकाग्निमित्रटीकाके रचयिता। ४ प्रयोगचन्द्रिका, प्रयोगदर्पण, भागवतचन्द्रिका नामकी भागवतपुराणटीका और सच्चरितसुधाविधि नामक चार ग्रन्थोंके रचयिता। ५ विश्वगुणादर्शके प्रणेता। ६ प्रयोगमुक्तावलीके प्रणेता रामके पुत्र। ७ दायपार्थ-दीपिकाके प्रणेता हनुमदाचार्यके गुरु।

वीरराघव आचार्य—१ असम्भवपत्त नामक न्यायविषयक ग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वसारशास्त्रके रचयिता।

वीरराघव शास्त्रिन—तर्करत्न नामक ग्रन्थके रचयिता।

वीररेणु (सं० पु०) वीरा रेणव इव यस्य। भोगसेन।

वीरललित (सं० स्त्री०) वीरकी तरह फिर भी कोमल स्वभाव। वृहत्संहितामें लिखा है, कि स्वयं भीरु होने पर भी अधीनस्थ शत्रुओंको "वीरललित" नामक शूर-चरित द्वारा शासन करे। (बराहपुराण १०।४।५१)

वीरलोक (सं० पु०) वीरस्य लोकः। वीरका लोक, इन्द्रलोक, स्वर्ग।

वीरवक्षण (सं० त्रि०) ऋषियोगों द्वारा वहनीय।

(शुक १।४।२ वाक्य)

वीरवत् (सं० त्रि०) वीर मत्स्यर्थे मनुष्य। वीरविशिष्ट, वीरयुक्त, पुत्रयुक्त, पतियुक्त।

विजयिष्ठ होता है। आसदजमा भी राजपैत्रयसे प्रमत्त हो उठे। मुर्शिदाबादके नवाबकी सलाहसे ये वीरभूमके राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे। किन्तु नवाबके पुत्र मीरजाफर अलीकी मृत्युके बाद आसदजमा सुयोग पा कर मुर्शिदाबादके नवाबका सर्वनाज करनेके लिये समरसज्जासे सज्जित हो चूनावाली तक यात्रा कर चुके थे। नवाबने निर्याय हो कर सन्धिपत्री प्रार्थना की। किन्तु उस पर भी आसदजमा सन्तुष्ट न हो गङ्गा पार कर मुर्शिदाबादकी ओर अग्रसर हुए।

इस समय नवाबकी पत्नी मारी बेगमने विपदके प्रतिकारके लिये सहसा एक उपाय षोडश निकाला। उन्होने अङ्गरेजोंसे एक प्रस्ताव किया, कि यदि इस युद्धमें वे मदद करें, तो उनकी एक बड़ा तालुका छोड़ दिया जायेगा। अङ्गरेजोंको मौका हाथ आया। ये छठ युद्धके लिये तैयार हो गये। आसदजमा उस समय राजनगरके दुर्गमें ठहरे हुए थे। अङ्गरेजोंने कुछ दिनों तक इसी दुर्गमें रोक कर आसदजमाको परास्त किया। इस युद्धमें आसदजमाका सेनापति अफजल खाँ मारा गया। इस युद्धके अन्तमें जो सन्धि हुई, उसका मर्म इस तरह है—

(१) वीरभूमके राज्यका एकतृतीयांश अङ्गरेजोंको मिलेगा।

(२) अङ्गरेजोंका वीरभूममें किसी व्यापारसे सम्बन्ध न रहेगा।

(३) राजा सब प्रकारके प्रयोजनीय विषयोंमें अङ्गरेजोंका परामर्श ले कर कार्य करेंगे।

इस युद्धमें आसदजमाको अच्छी शिक्षा मिली। इसके बाद ये मुर्शिदाबादके नवाबको उचित रूपसे कर दिया करते थे। मुँशी अनुग्रामधने उनकी कर्ज दिया था। प्रान्त नीचन ग करनेसे उनकी राजाने १००० घोड़ा जमाने हो थी।

सन् १७३३ ई०में वातव्याधि रोगसे आसदजमाकी कलकत्तेमें मृत्यु हुई। आसदजमा उदारहृदयके थे। पौरुष तथा उनकी उष्णताकी बात पहचने ही कहीं जा चुकी है। मृत्युके वङ्गाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेकी प्रबल आशा उनके हृदयमें जागृत हो उठी

थी। उन्होंने २६ वर्ष तक वीरभूममें राज्यशासन किया था।

आसदजमाकी मृत्युके बाद उनकी भारी बहादुर खाँ राजपद पानेका दावा किया। किन्तु आसदजमाकी विधवा बेगम उसमें बाधा दे स्थापपूर्वक अपने पुत्र लालविहीको सिंहासन पर बैठानेकी प्रार्थना अंग्रेजोंसे की। लालविही सिंहासन पर बैठे, फिर भी ये नाबालिग थे। राजकार्य उनकी माताको ही देखना पड़ता था। किन्तु कुचको बहादुरने माना तरहसे कुचक चला कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। सन् १७८६ ई०में बहादुरकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनका पुत्र महम्मदजमा खाँ सिंहासन पर बैठा।

सन् १७६० ई०में महम्मद जमाने राज्यमार ग्रहण किया। उनकी नाबालिगीकी हालतमें दीवान लाला रामनाथ और मिष्टर किटिं वीरभूमका राजकार्य करते थे। पीछे बालिग हो कर उन्होने स्वयं बड़ी योग्यताके साथ राज्यकार्य संभाला। उनके राज्यकालमें वीरभूममें सात लाख मनुष्योंका वास था। इनमें दिग्दुम्भीकी संख्या एकतृतीयांश थी (सच पूछिये तो दो तृतीयांश)। लाला रामनाथकी भी प्येष्ट क्षमता थी। इन्होंने सिउड़ी शहरसे ६ मीलकी दूरी पर भाएडोरवन नामक स्थानमें भाएडोरवन नामक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा कराई थी।

महम्मदजमा खाने सन् १८०२ ई०में पितृसिंहासन और सन् १८१२ ई०में अंग्रेजोंसे सनद पाई थी। सन् १८५५ ई०में जह्जमा नामक एक पुत्रकी रत्न कर उन्होंने इहलोकसे प्रस्थान किया।

वीरभूमका प्राचीन राजवंश और राज्यशासनके सम्बन्धमें बहुतेरी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। किन्तु ऐतिहासिक आज भी इसके सम्बन्धमें उपादान संभ्रम करनेमें प्रसन्न नहीं हुए हैं।

सिउडोमें दो वीरभूमका जिला मन्दर प्रतिष्ठित है। यहां ही वीरभूमका प्रधान नगर है। मयूरासि नदी इसके तीन मीलकी दूरी पर प्रवाहित होती है। सिउडोमें ११ मीलकी दूरी पर सैणिया रेलवेका स्टेशन है। यह शहर कलकत्तेसे ३३ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

वीरवती (सं० स्त्री०) वीरवत्-स्त्री । १ मांसरोहिणी लता । (भास्कराचार्य) २ विक्रमपुराधिपति विक्रमस्तुतु नृपतिके कर्मचारी वीरवरकी कन्या । (कथावर्तिषा ५१६०) ३ वीरविशिष्टा, वीरयुक्ता ।

वीरवत्सा (सं० स्त्री०) वीरो वरसाः पुत्रो वत्साः । वीर जननी, वीरमाता ।

वीरवर (सं० त्रि०) वीर-श्रेष्ठार्थे वर । वीरश्रेष्ठ, अति-श्रेष्ठ वीर ।

वीरवरप्रताप (सं० पुं०) राजपुत्रभेद ।

वीरवती (सं० स्त्री०) देवदाली नामकी लता ।

(वैद्यकनि०)

वीरवर्ग (सं० पुं०) व्यक्तियिशेष ।

वीरवह (सं० पुं०) वीर-वह-ण्य । १ स्तोत्र द्वारा वहनीय । २ वह जो चोड़ों द्वारा खींच जाये, रथ । (शृङ्ग ७६०।५) ३ शूरवहनकारी ।

वीरवापव (सं० स्त्री०) वीरव्य वापय । वीरकी उक्ति ।

वीरवामन (सं० पुं०) एक ग्रन्थकारका नाम । अमिनय गुप्तने इसका उल्लेख किया है ।

वीरविक्रम (सं० पुं०) १ राजपुत्रभेद । (त्रि०) २ वीरदर्प ।

वीरविह (सं० त्रि०) शक्तिसम्पन्न, कर्मठ ।

(अथर्व ११।६।१५)

वीरविहायक (सं० पुं०) शूद्रद्रव्य द्वारा होमकर्ता, वह जो शूद्रोंके द्रव्यादिसे होम करता हो ।

वीरविषय (सं० स्त्री०) इतिम श्लोकभेद ।

शूरश्लोक देखो ।

वीरवृक्ष (सं० पुं०) वीर नामकी वृक्षः । १ भलातक, मिलावर्ष । २ अर्जुन वृक्ष । ३ विट्वाल्मर वा विनयान्तर नामक वृक्ष । ४ सार्षप नामक चायव । पर्वीय—वीरलघु, वृहद्वात, अश्वरोहृत् ।

वीरवृक्षमूत्र—वृक्ष नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता ।

वृक्ष देखो ।

वीरवेगस (सं० पुं०) अश्लेषेतम, अश्लेषेत ।

वीरव्यूह (सं० पुं०) वीरों द्वारा रचित व्यूह ।

(रामायण ६।०।१८)

वीरवत (सं० त्रि०) १ दृढ़सं-वन्त । वीरवतः दृढ़-

सङ्कल्पः' (भाग० १।१७२ स्वामी) २ नैष्ठिक ब्रह्मचारी यह ब्रह्मचारी, जो बहुत ही निष्ठा तथा आचारपूर्वक रहता हो । (पुं०) ३ पुराणके अनुसार मधुके एक पुत्रका नाम, जो सुमनाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था ।

(भागवत १।१५।१५)

वीरराज (सं० पुं०) वीरोंके सोनेका रूपान्, रणभूमि, युद्धक्षेत्र, लड़ाईका मैदान । (भागवत १।१।७२०)

वीरराजन (सं० स्त्री०) वीरराणां-राजनं । वीरोंकी शप्या, वीरराज्या, रणभूमि ।

वीरराज्या (सं० स्त्री०) वीरराणां राज्या । रणभूमि ।

(भागवत १।०।४०।४४)

वीरराजि (सं० पुं०) वीरपुत्रभेद । (कथावर्तिषा ४७।१२६)

वीरशाक (सं० पुं०) वधुभाका शाक ।

वीरशायो (सं० त्रि०) वीर-शी-णिनि । वीरराज्य, रणभूमि, वीर जगं सोते हैं । (भारत ११ ७४)

वीरशुभ्र (सं० त्रि०) शत्रुओंके क्षेपण करनेमें समर्थ बलवाला, जो शत्रुओं पर शत्रु चलानेमें बलशाली हो ।

वीरशैव (सं० पुं०) शिवोपासकभेद ।

शिव वीर सिद्धायत शब्द देखो ।

वीरसरस्वती—एक प्राचीन कवि ।

वीरसिंह—१ तोमरवंशसम्भूत एक राजा । देववर्माका पुत्र और कमलसिंहका पीत । ये सन् १३७१ ई०में विद्यमान थे । दुर्गाभक्तितरङ्गिणी, नृसिंहोदय और वीरसिंहावलोक नामक तीनों ग्रन्थ इहाँके द्वारा रचे बताये जाते हैं ।

२ गढ़ादेशके सामन्त राजा । ३ गङ्गवंशीय एक राजा । ४ मुहिलवंशीय एक नृपति । ५ कच्छप्रपातवंशी एक राजा । ६ तोमरवंशीय एक राजा, जिनकी गवालिपर (गोपाचल)में राजधानी थी ।

७ पदमंजरीके एक राजा । भारतचन्द्ररायने इनकी कन्याकी विचारक्रममें विद्यासुन्दरीकी कदरना की है ।

८ देवपुरके राजा वीरमणिके ज्ञाता । इन्होंने रामा वीरमणिकी आंखासे रामचन्द्रके अन्धमेंधोय अन्ध दूरण किया था । अतएव दनुमानके साथ इनका भयङ्कर युद्ध हुआ था । इस युद्धमें महादेवने स्वयं उपस्थित हो वीरसिंहका पत्र ले कर युद्ध किया था ।

(पद्यपुरा० पतासप्तम २५, २५, २६, ४०)

वीरसिंहदेव—एक हिन्दू राजा। राजा प्रतापचन्द्रका पौत्र और मधुकर साहका पुत्र। वीरमितोदयप्रणेता मित्र-मिश्र इनकी सभामें विद्यमान थे।

वीरसिंहदेवसूत्र - प्रग्धालङ्कार नामक ज्योतिः ग्रन्थप्रणेता। वीरसिंहावलोकन (सं० श्लो०) वैद्यकग्रन्थभेद। वीरसिंहने यह ग्रन्थ प्रणयन किया।

वीरसुख (सं० श्लो०) वीरका आनन्द।

वीरसू (सं० श्लो०) वीरान् पुत्रानेव सूने इति वीरसु-किप्। यह माता, जो वीर प्रसव करती है। २ पुत्र प्रसविनी। (शुक० १०।१।४४)

वीरसूत्व (सं० श्लो०) वीरप्रसवित।

वीरसेन (सं० पु०) वीर सेना यस्य। १ पुष्यशुक्र नल राजाका पिता। (भारत वनप० १२ अ०) २ आरुक यां आह नामकी जड़ों जो हिमालयमें हेतो दीं। ३ हस्ति-वैद्यक नामक ग्रन्थके रचयिता। ४ पाटलिपुत्रराज द्वितीय चन्द्रगुप्तके मन्त्री। ये एक सुकवि थे। इनका दूसरा नाम ज्ञाय धो। ५ दक्षिणात्यके चन्द्रवंशीय एक राजा। इनका वंशधर ब्रह्मक्षत्रियकुलचूडा सामन्त-सेनसे बङ्गालके सेनराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई थी। ६ आलु सुखारा।

वीरसेनज (सं० पु०) वीरसेनात् ज्ञायते इति जनः।

वीरसेन राजाका पुत्र, नल राजा।

वीरसोम (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकार।

वीरस्थ (सं० श्लो०) १ वीरकाध्यमें प्रशस्त। २ यह पशु, जो वस्त्रके लिये लाया गया हो।

वीरस्थान (सं० श्लो०) १ शल्यतृस्थान। २ साधकोंका एक तरहका आसन जो वीरासन कहलाता है। (भारत-वनप०) ३ स्वर्गलोक।

वीरस्थापित् (सं० श्लो०) वीरस्थापनस्थित।

वीरस्वामिन् (सं० पु०) एक दानवका नाम।

(कथावर्तिष्ठा० ४७।१५)

वीरस्वामीभट्ट—मनुसंहिता-भाष्यकार मेघातिथिके पिता।

वीररत्न्यां—वीरस्य पुत्रस्य इत्यां। १ पुत्रइत्यां। (मनु-१।४।११) २ वीरकी इत्यां, वीरका नाश।

वीरहन् (सं० पु०) वीरान् हन्तीति हन-किप्। १ नष्टा-ग्निप्राह्वण, यह अग्निहोत्रो प्राह्वण, जिसकी अग्नि किसी

कारणसे बुझ गई हो। २ विष्णु। (श्लो०) ३ वीर-हन्ता, वीरहननकारी।

वीरहोत्र (सं० पु०) एक जनपदका नाम। मार्कण्डेयपुराण-के अनुसार यह जनपद विन्ध्यपर्वत पर था।

वीरा (सं० श्लो०) वीर टापू। १ मुरा। २ क्षीरकाकोली। ३ आमलकी, भाँवला। ४ पलयालुका, पलुवा। ५ पति-पुत्रवती, यह स्त्री जिसके पति और पुत्र हैं। ६ रग्भा। ७ विदारोकन्द। ८ दुग्धिका, शतावर। ९ मलयू। १० क्षीरविदारो। (मेदिनी)

किसी किसी पुस्तकमें मुरा स्थानमें मुरा और विदारो स्थानमें रग्भारी देखा जाता है।

११ काकोली, महाशतावरो। १२ गृहकन्या। १३ ब्राह्मी। १४ अतिविषा। (राजनि०) १५ सोसमका वृक्ष, शिंशिया वृक्ष। (स्वमाहा) १६ करम्भमराजपत्नी। (मार्कण्डेयपुराण १२३।१) १७ नदीविशेष। (भारत ६।६।२२) १८ विकमशालिनो। (मार्कण्डेयपुराण १२५।७) १९ चिक-वार। २० जटामांसो। २१ भूम्यामलको, भूईं भाँवला। २२ भूमिकुष्माण्ड। २३ पृथिवणी, पिठवन। २४ गृह-हला। २५ कृष्णातिविषा, काला अतिविषा।

वीराचारो (सं० पु०) एक प्रकारके वातमार्गों या शैव, जो अपने इष्टदेवताओंकी वीरभावसे उपासना करते हैं। ये लोग मद्यको शक्ति और मांसको शिवस्वरूप मानते हैं और इन दोनोंके भक्तोंके भैरव समझते हैं। ये लोग चक्रमें बैठ कर पूजन करते हैं और बीच बीच किसी स्त्रीके काली मान कर उस पर मद्य-मांस आदि चढ़ाते हैं। ये लोग प्रायः शय मुर्दा ला कर उसकी पूजा करते हैं और उसीसे अनेक प्रकारके साधन और पूजन करते हैं। विस्तृत विवरण पञ्चाचारो शब्दमें देलो।

वीरान्तरु (सं० पु०) १ यह जो वीरोंका नाम करता हो। २ अर्जुनवृक्ष।

वीराद्र (सं० पु०) अर्जुनवृक्ष।

वीरान (फा० वि०) १ उजाड़ा हुआ, जिसमें आवाजों रह गई हो। जैसे—यह वस्तु वीरान हो गई है।

२ जिसकी शोभा नष्ट हो गई है, भ्रोहीन।

वीरानक (सं० श्लो०) प्रामभेद।

वीरापुर (सं० श्लो०) नगरभेद।

वीराम्ब (सं० पु०) अमलपत्र ।

वीरापतच्छत्रा (सं० स्त्री०) कदलीवृक्ष, कंलेका वृक्ष ।

वीरायक (सं० पु०) आयक या आह नामकी जड़ों, जो हिमालयमें होती हैं ।

वीरासन (सं० स्त्री०) वीरान् अशंसवति अथ स्थास्थामि वा नयेति चित्रां जनयतीति आ शंस-णिच्-त्सु । अतिमयप्रदा युद्धभूमि, यह युद्धभूमि जो बहुत ही भोषण और भयानक जान पड़ती है ।

वीरायक (सं० पु०) रकन्दानुचरभेद, कासिकेयके एक अनुचरका नाम ।

वीरासन (सं० स्त्री०) वीरानां साधकानामासनं । १ साधकोंका एक आसन । इसी आसन पर बैठ कर साधक साधना किया करते हैं । २ वीरस्थान । ३ उदार-स्थान ।

वीरिण (सं० पु०) वीरणवृण, (*Andropogon-muri-* *tous*) ।

वीरिणी (सं० स्त्री०) १ वीरण प्रजापतिकी कन्या अतिप्रती जो दक्षकी स्वाही थी । वीरा पुत्रोऽस्वास्तोति वीर-रनि ङोप् । २ यह स्त्री जिस पुत्र ही, पुत्रवती । (शूक् १०८६) ३ एक प्राचीन नदीका नाम ।

वीरुच (सं० स्त्री०) विशेषण वर्णादृष्ट एतान्नवान् वि-रुच किन् । 'अग्नेयामवांति वर्णाः, अथवा विशेषतया वायु, विपुलांस्व रुचेय क्विपि प्रकारे विधोपते (रवि काशिका ७३१५) १ विस्तृता लता । पर्याय—गुडिमनी, उलय, वीरुचय, प्रतना, कक्ष ।

२ भोगधि । (शूक् १६१५) (पु०) ३ वृक्षमात ।

(शूक् ६१११२)

भागवतटीकामें लता और वीरुचका भेद इस तरह लिखा है—

“वनस्पतयोपघनता रचयन्तारा वीरुचो द्रुमाः ।”
(भागवत ११०१)

जो विला पुष्पके फल देगी है वह यमस्फिति कहलाती है । फल पकने पर जो मर जाती है, वह भोगधि, जो आरीहलका भवेता रहती है, वह लता और जो सब लतायें बालिन्य द्वारा आरीहलकी भेषता नहीं करती है वन् वीरुच कहलाती है । ४ विटवी । ५ पत्ती । ६ कक्ष ।

वीरुचि (सं० स्त्री०) लताभेद । (२१६६ पु० ५४८०)

वीरेण्य (सं० स्त्री०) अतिमय धोर । (शूक् १०४५१०)

वीरेण (सं० पु०) वीराणामोना । निय, वीरेभ्यः ।

वीरेभ्यः (सं० पु०) वीराणामोभ्यः । १ महादेव ।

काशीखण्डमें वीरेभ्यः नियके विषयमें वर्णन है ।

(काशीख० ७६-७७ ४०)

निःसंगतान् व्यक्तिः यदि संकल्प कर एक वर्ष तक वीरेभ्यः महादेवका स्तव सुने, तो उनका पुत्रसंगतान पैदा होता है ।

२ मैथिलीकी द्वाकर्मपद्धतिके कर्ता । ३ मैथिलीकी द्वाकर्मपद्धति । ४ आणदीगी टीकाकर्ता । ५ ज्योत्सा-पुत्राविलासके रचयिता । ६ दिवाकरपदतिप्रकाश-विचरणके प्रणेता । ७ आदिहमञ्जरी टीकाके रचयिता । ये हरिपण्डितके पुत्र और दिव्यपण्डितके वीर थे । पुण्यस्तम्भमें ये रहते थे । सन् १५६८ ई०में इन्होंने प्रथम रचना की थी । ८ दिवाकरणवमञ्जनासङ्कलित । ९ एक धर्मनाम्नकार ।

वीरेभ्यःवण्डित—१ सरस्वतीती नामक अलङ्कारशास्त्रके प्रणेता । २ जगन्नाथवण्डितराज्ञके मुकु ।

वीरेभ्यःभेद—१ संनयनचरनिर्गमणके प्रणेता । विभवाधके पुत्र । २ कवीन्द्रचन्द्रोद्भवृत्त एक कवि ।

वीरेभ्यः मोक्षित्य—अप्योक्तिशतकप्रणेता । ये द्वाविंशके रहनेवाले हैं । इनके पिताका नाम हरि है ।

वीरेभ्यःसुनु—दानयाषयायलीके रचयिता ।

वीरेभ्यःरानन्द—वीरहरनाकरके प्रणेता । हरिहरानन्दके पुत्र ।

वीरोज्ज्वा (सं० पु०) होमकर्त्ता, होम कर्त्तव्यान्ता ।

वीरोपजीविक—जिनकी उपजीविका अनिहोत्र है । अर्थात् जो अनिहोत्र द्वारा अपनी जीविका-निर्वाह करने ही ।

वीरस्तां (सं० स्त्री०) व्ययंकरणेच्छा । (मय० ५०४१)

वीर्य (सं० स्त्री०) वीरे सापु तत्र सापुः इति वन्, यद्वा वीर्योऽनेनेति वीर विक्रान्ती (भन्ने वन् । वा ३१६०)

इति वन्, यद्वा वीरस्य भागः वन् । १ चाग्मधातु । पर्याय—शुक्र, मेजः, वेग, वीर्य, इन्द्रिय । (मय०)

शुक्र देशं ।

२ द्रव्यजन जन्म, वृद्धिवाति वाचयोग वक्ष्यंके साग्-भागकी वीर्य कहते हैं । यह दो तरहका है—विन्दव-क्रियान्तिक और अनिन्दवक्रियान्तिक ।

भावप्रकाशमें लिखा है—द्रव्यमात्रका चोर्ष्य दो तरहका होता है। क्योंकि त्रिभुवन आग्नेय और सोम-गुणात्मक है। चोर्षका गुण—उष्णवीर्य, वायु और कफ-नाशक है और पित्त तथा जीर्णताका उत्पादक है; शीत-वीर्य वातश्लेष्मिक रोगजनक और पित्तनाशक है। दूसरा—उष्णवीर्य, भ्रम, विपासा, म्लानि, धर्म तथा दाह उत्पादक है। शीतवीर्य सुखजनक, जीवन-प्रदायक, मलस्तम्भकारक तथा रकपित्तका प्रसन्नता-कारक है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि कुछ लोगोंका कहना है, कि वीर्य हो प्रधान है। क्योंकि वीर्यसे ही औषधकी क्रियाये सम्पन्न होती हैं। जगत्, अग्नि और सोमगुणत्रिगुण होनेकी वजह उनसे उत्पन्न औषधका वीर्य दो तरहका होता है—उष्ण और शीत। कुछ लोगोंका यह कहना है, कि वीर्य आठ प्रकारका होता है। जैसे—उष्ण, शीत, स्निग्ध, रुक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु और तोक्ष्ण। ये सब वीर्य अपने बल और गुणके उत्कर्षके कारण रसको अभिभूत कर अपने काम किया करते हैं।

उष्ण और तोक्ष्णवीर्य द्वारा वायुका, शीत, मृदु या पिच्छिल वीर्य द्वारा पित्तका और तोक्ष्ण, रुक्ष या विशद वीर्यसे श्लेष्मका नाश होता है। शुष्पकासे वातपित्त और लघुपाकसे श्लेष्मा प्रशमित होती है। मृदु, शीतल और उष्ण गुण स्पर्श द्वारा, स्निग्ध और रुक्ष गुण द्वारा और पिच्छिल तथा विशद गुण दर्शन और स्पर्शन द्वारा जाना जा सकता है। (सुश्रुत यत्रस्थां ४१ अ०)

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है, कि दूसरेके वीर्य द्वारा अक्रामत उदरपात करने पर प्रायश्चित्तसे शुद्ध हो जाता है। किन्तु जो इच्छापूर्वक उदरपात करते हैं, उनकी कर्माभोग द्वारा ही शुद्धि होती। ये देव और पितृकार्यके अधिकारी नहीं होते और साठ हजार वर्ष नरकमें रहनेके बाद शुद्ध होते हैं।

(ब्रह्मवै० भीष्मोपनिषत् ४० अ०)

वीर्यकाम (सं० लि०) प्रमादकामनाकारी। (एतरेयब्रा० १५)

वीर्यकृन् (सं० लि०) वीर्य कृत्विक् । वीर्यकारी, बलकारी। (शुक्लयजुः १०१२५ महीधर)

वीर्यहत (सं० लि०) प्राप्तवीर्य । बलवन्त।

(तेजित्तीयब्रा० २१०११३)

वीर्यचन्द्र (सं० पु०) राजभेद। इनकी कन्या वीरा-राजा-करमधमकी-प्याही हुई। (मार्क०पु० १३३१)

वीर्यज (सं० पु०) वीर्याजायते इति जन-ज। पुत्र। (भाग० ३५११६)

वीर्यतम (सं० लि०) वीर्यवत्तम, श्रेष्ठवीर्यशाली, वह जो बहुत बड़ा बलवान हो।

वीर्यधर (सं० पु०) वर्षपुरुषभेद। ये वृद्धदोषमें रहने-वाले क्षत्रिय हैं। (भाग० ५१२०१११)

वीर्यपन (सं० लि०) १ वीर्याशुक्ल। २ विदर्माकन्या। (भाग० ५१२०११६)

वीर्यपारमिता (सं० स्त्री०) पारमिता देलो।

वीर्यप्रवाद (सं० स्त्री०) जैनियोंके १४ पूर्ववादोंके अन्तर्गत तीसरा पूर्व।

वीर्यमद्र (सं० पु०) वीर्यभेद। (ठारनाथ)

वीर्यमत्त (सं० लि०) १ बलवृत्त। २ तेजोमत्त।

वीर्यमित्र एक प्राचीन कवि।

वीर्यवत् (सं० लि०) वीर्यमस्यास्तोति वीर्यं मनुष्य वत्थम्। १ बलवान्, शूर, वीर्यशाली, वीर्ययुक्त। २ मांसल। (शब्दरत्नामाली)

वीर्यवत्तरत्व (सं० स्त्री०) अधिकतर वीर्यवन्त।

वीर्यवत्त्व (सं० स्त्री०) वीर्यवानका भाव या धर्म। बलशालीका भाव या धर्म, वीर्यत्व। (मात विराटवर्ष) वीर्यवाहो (सं० लि०) वीर्यवहनकारी।

(राज्ञ०सं० १५१२४)

वीर्यवृद्धिकर (सं० स्त्री०) वीर्यवां वृद्धिकरं। शुक्र-वर्द्धक औषधादि। पट्यांठ—वृष्य, वाजीकरण, योज-कृन्। (राजनिर्घण्ट)

वीर्यशुक्र (सं० लि०) वीर्यपण।

वीर्यशुद्धका (सं० स्त्री०) प्रतिष्ठामें आवद्ध। राजा जनकने अधीनजा जानकीको वीर्यशुद्धका (अर्थात् जो इस धनुष पर उयारोपण आदि कर रख सकेगे, वही) इस कन्याको लाभ कर सकेगे। इस तरहकी पणमें आयज्ज रखा था।

वीर्यसत्त्ववत् (सं० लि०) वीर्यव्युक्त। मनुष्यत्व-विशिष्ट। (भारत० वन०)

वीर्यसह (सं० पु०) राजा सींदासका एक पुत्र।

(रामा० ७६५१०)

घोर्घामेन—घोर्घा वतिभेद । ये वीरसेन नामसे मी परि-
चित्त ये ।

घोर्घाहारी—एक वक्षत्रा नाम, ओ दुःसह नामक वक्षत्री
कर्म्याके गर्भमे तिमो चोरके । घोर्घामि उद्वपद्र हुआ था ।
कहने हैं, कि जा लोग कदाचारो होते हैं या बिना हाथ
पैर धोये रसोई घरमें आते हैं, उनके घरमें यह वक्ष अपने
भीर झां भारवोंके साथ रहता है । मिया इसके जिसके
घरमें रात दिन भ्रमटा गियाद होता है, यहाँ भीर गाय
आदि पशुओंके चरामाहमें तथा लख्खिहानमें भी इनको
गतिविधि रहती है ।

घोर्घांतप्य (सं० पु०) जैनधर्मके अनुसार यह पापकर्म
जिसका उदय होने पर जीव हृद्यपुष्ट रहते हुए भी नकि
विदीन हो जाता है और कुछ पराक्रम नहीं कर
सकता ।

घोर्घा (सं० स्त्री०) घोर्घामि अनयेति घृ-यत् (भचो यत् शति
दत्त तदायत्) घोर्घा । (भरत)

घोर्घायत् (सं० लि०) घोर्घेयत् ।

घोषय (सं० पु०) १ धारयतएडुलादि, वायल आदि
भक्त । (भाष २६४) २ पय । (भरत) ३ क्षीर आदिका
भार । (कन्दारना०) ४ घासार्त्ता ।

घोषयिक (सं० लि०) घोषधेन हस्तोनि विषय-उन्
(विभाषा घोषयिषयात् । वा ४/४११०) भारनाहक,
कान्ति टोनेवाला ।

घोषर (Beaver)—स्यनामकयान जग्मुविशेष ।

घोसर्प (सं० पु०) विषर्ष देसो ।

घोहार (सं० पु०) विश्वरूपवैति वि ह-घप्र उवसर्गस्य
दीर्घः । १ महालय, बौद्धमण्डिर । २ विहार ।

घुजन—१ मुद्रित होना । २ सिद्ध या गड्डकेके भरया देना ।

घुषन—१ क्षात्रधरण, ज्ञानात्ता । २ साहयवना वापयने
ओहादमिभूत व्यक्तिको मुक्य करना ।

घुष्टि (सं० स्त्री०) घुष (लि.) अग्यावा गुणयिषीय ।
वर्षकेका घुष्टि रत्न देतो ।

घृद्वल (सं० लि०) घृदि-कपु । घुष्टिकारक । (शब्दरत्न०)
२ एक प्रकारका घूमयान । (भाष्य०) (स्त्री०)
३ मध्यगम्या । ४ व निरुद्धाक्षा, मुनका । ५ भूमिदुष्प्राण्ट ।

भुई कुम्हटा । (वैद्यकनि०) ६ वराहगांसमें पकाया
ययाम् । (चक्र वृत्तयो २ अ०)

घृद्वणयस्त्रि (सं० स्त्री०) निरुद्ध पस्तिभेद । (भाष्य०)
घृद्वणोपवर्ग (सं० पु०) घृद्वणजस्य हितकर वयावर्ग,
द्रव्यगणभेद, यह गण जैसे—क्षीरलता, क्षीरार्द्र, वेष्टेला,
काकाली, क्षीरकाकाली, श्वेतवेष्टेला, पीतवेष्टेला, वन-
कपाम, भूमिदुष्प्राण्ट । (चक्र वृत्तयो ४ अ०)

घृद्वित (सं० स्त्री०) घृदि-क । हस्तिगर्शन, हाथीका
चिंघाटु । पयांय—करिगर्जित ।

घृक (सं० पु०) घृष्णातीति घृ (घृष्टव्युत्थिमुत्थिः कृत् ।
उष् १/४११) १ कुत्तके आकारवाला तरिणके मारने-
वाला जग्मुविशेष । हुंकार, मेढिया । (रात्रिनि०)
२ काक । (उज्ज्वल) ३ पीतक । ४ वकृक्ष । ५ शृगाल,
स्वार, गीदड । (मनु ८/२३१) ६ क्षत्रिय । ७ चौर ।
८ वज्र । ९ अगस्तका ऐपु । १० गंधाविरोजा । ११ सरल-
द्रव्य ।

घृकर्मन् (सं० पु०) एक अक्षरका नाम ।

घृकल्पण्ट (सं० पु०) एक प्राचीन श्रष्टिका नाम ।

घृकगर्ग (सं० स्त्री०) एक प्राचीन जनपदका नाम ।

घृकप्राद (सं० पु०) एक प्राचीन श्रष्टिका नाम ।

यादंभारि देतो ।

घृकजम्भ (सं० पु०) एक प्राचीन श्रष्टिका नाम ।

यादंभ ओ ।

घृकतात् (सं० स्त्री०) १ शुककी तरह दिग्मन्त्र श्रष्टिका ।
(शुक २/२३१) ला ।

घृकति (सं० स्त्री०) शरवण रूपण । २ निरुद्ध, टाई
कारी । ३ जीमूतके एक पुत्रका नाम । ४ एक
पुत्रका नाम । (हरिवंश)

घृकतेजस (सं० पु०) त्रिदण्डिके एक पुत्रका नाम ।

घृकदेत (सं० पु०) पुत्रानुमार एक शरवणका नाम ।
इसको कन्या सामन्दिनी कुम्हणको प्रयाही थी ।

घृकदंस (सं० पु०) घृकान् दजतीनि दज्ज् अण्
कुला । (ऐग)

घृकदीति (सं० स्त्री०) हृष्णके एक पुत्रका नाम ।

घृकदेव—यमुदेवके एक पुत्रका नाम । (हरिवंश)

घृकदेवा (सं० स्त्री०) घृकदेवा, देवकी कन्या और गेमु-
देवकी वरथीका दूतका नाम ।

वृकद्रस (सं० लि०) संवृतदार । (शुक २।३०।४ सायण)
 वृकधूप (सं० पु०) वृकोऽनेकधूप एव धूपः । वृकः
 सरलद्रव्यस्तत्प्रधानो धूपो वा । वह धूप जो अनेक
 प्रकारके सुगन्धि द्रव्योंकी सहायतासे तद्यार किया
 गया हो, दशाङ्गादिधूप । २ सरल वृक्षका निर्पात,
 तारपीन ।

वृकधूर्त (सं० पु०) धूर्तों वृकः । राजदन्तादित्यात् पूर्व-
 निपातः । स्वार ।

वृकनिवृत्ति (सं० पु०) कृष्णके एक पुत्रका नाम ।

(हरिवंश)

वृकमधु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

वृकरथ (सं० पु०) कर्णके एक भाईका नाम ।

(भारत द्रोणपर्व)

वृकल (सं० पु०) शिलाएके एक पुत्रका नाम । (हरिवंश)

वृकला (सं० स्त्री०) १ नाड़ी । २ एक रमणीका नाम ।

(पा ४।१।६६)

वृकध्वजिक (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम ।

वृकस्फल (सं० स्त्री०) प्रामभेद । (भारत उद्योगपर्व)

वृका (सं० स्त्री०) १ अम्वष्ट या पाटा नामकी लता ।
 २ प्राचीन कालका एक परिमाण, जो दो सूर्पाके बराबर
 होता था ।

वृकाक्षी (सं० स्त्री०) वृकस्याक्षीय अक्षि चिह्नं यस्याः ।
 १ त्रिवृत् । २ निसोय ।

वृकाजिन (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम ।

वृकायु (सं० लि०) १ जङ्गली कुत्ता । २ चोर ।

(शुक १०।१३३।४ सायण)

वृकाराति (सं० पु०) वृकस्य अरातिः । कुत्ता ।

वृकानि (सं० पु०) वृकस्यातिः । कुत्ता ।

वृकाश्व (सं० पु०) एक ऋषिका नाम । बहुघचनमें
 इनके वंशघरोका बोध होता है ।

वृकाश्विक (सं० पु०) गौतमशर्चाक एक ऋषिका नाम ।

वृकास्य (सं० पु०) कृष्णपुत्रभेद । इन्हें वृकाश्व भी
 कहते हैं ।

वृकोदर (सं० पु०) वृकस्फेयोदरो यस्य यदा वृकः वृक
 नामकी अग्निरुदरे यस्य । भोगसेन ।

कहते हैं, कि भोगके पेटमें वृक नामकी विकट
 अग्नि थी, इसीसे उनका यह नाम हुआ ।

(मत्स्यपु० ६५ म०)

वृकोदरगय (सं० लि०) वृकोदरव्यास ।

वृक (सं० पु०) १ गुरदा । २ आगेवाला महोना ।

वृकक (सं० पु०) मुलाशय । (Kidney)

वृका (सं० स्त्री०) हृदय ।

वृक (सं० लि०) मश-क । छिन्न, कटा हुआ ।

(अमर)

वृकवर्हिस् (सं० लि०) स्तीर्णवर्हिस् । (अथ ३।२।४
 सायण) जिसने वर्हिः परिष्कार कर दिया है या बिछा
 दिया है ।

वृकि (सं० स्त्री०) चुनाव ।

वृक्षया (सं० स्त्री०) वृक्षयन्त्र ।

वृक्ष (सं० पु०) मश छेदने (स्तुमिह्रहस्तुपिप्याः कित् । उष
 ३।६६) इति स-सच कित्, वृक्षवरणे, अतो ऋचया
 चृणोति वृक्ष इति सिद्धे प्रपञ्चार्थं मशच प्रहणम् ।
 स्थ.वच्योनिविशेष । पेड़ ।

हेमचन्द्रने वृक्षलता आदिकी ६ प्रकारकी जातिकी
 निर्देश किया है । कुरएट आदि वृक्ष अप्रयोज, उट-
 लादि मूलक, ईख आदि पर्वाशोनि, सलकी आदि
 स्तम्भज, शाली आदि वीजयुत और तुण आदि समुच्छ
 जात—ये छः प्रकारके वृक्ष हैं ।

वास कर वृक्ष उसे कहते हैं, जिसका एक हो मोटा
 और भारी तना होता है और जो जमीनसे प्रायः सोधा
 ऊपरकी ओर जाता है ।

वृक्षकंद (सं० पु०) विदारिकन्द ।

वृक्षक (सं० पु०) वृक्षकन् । १ क्षुद्रवृक्ष, छोटा पेड़ ।
 २ पेड़, दरख्त । ३ कुटका पेड़ ।

वृक्षकुट्ट (सं० पु०) जङ्गली कुत्ता ।

वृक्षत्रण्ड (सं० पु०) कुञ्ज ।

वृक्षचन्द्र (सं० पु०) राजभेद । (तारनाय)

वृक्षचर (सं० पु०) वृक्षे चरतीति चरट । बानर, बन्दर ।

(पनञ्चन)

ये एक वृक्षमे दूसरे वृक्ष पर सदा घूमते रहते हैं।
इसोस इनका नाम वृक्षचर पड़ा है।

वृक्षच्छाया (सं० श्लो०) वृक्षों वृक्षाणां छाया, बहुवच्ये
गणुं मकरर्थं। बहु वृक्षस्य छायाका भाग्यं अनेक वृक्षों
छाया है। एक या दो वृक्षों छाया समझनेसे वृक्षच्छाया
होता है। 'वृक्षाणां छाया' बहुवचनमें यह श्लोकलिङ्ग
हो जाना है।

वृक्षतक्षक (सं० पु०) गिलहरी।

वृक्षतन्त्र (सं० श्लो०) वृक्षका निचला हिस्सा।

वृक्षदल (सं० श्लो०) वृक्षगाथा।

वृक्षधुप (सं० पु०) वृक्षोष्णिय धुपस्तम्ब साधनं। सरलद्रुम,
शोषेष्ट।

वृक्षनाथ (सं० पु०) वृक्षाणां नाथः। घटवृक्ष, वरगदका
पेड़। (राजनि०)

वृक्षनिर्यास (सं० पु०) वृक्षस्य निर्यासः। वृक्षका निर्यास,
वृक्षनिर्गत रस, पेड़का लासा या गोंद।

वृक्षपर्ण (सं० श्लो०) वृक्षस्य पर्णः। वृक्षका पत्ता, पेड़की
पत्तों।

वृक्षपाकः (सं० पु०) घटवृक्ष, वरगदका पेड़।

वृक्षपाल (सं० पु०) जङ्गली जाल।

वृक्षपुरी (सं० श्लो०) एक प्राचीन नगरका नाम।

वृक्षमणिष्ठा (सं० श्लो०) स्मृतिशास्त्रविहित भवत्पथ
(गोपल) आदि वृक्षकी प्रतिष्ठा।

वृक्षमक्ष (सं० श्लो०) वृक्षं मक्षयतीति मक्ष-भञ्ज् मत्त-
ष्टाप्। १ वरगाछ नामका वीधा। २ वंदाक, वंशा।

वृक्षमवन (सं० श्लो०) मृक्षस्थितं भयनं। वृक्षकोटर, पेड़का
छोट्टा।

वृक्षमिष्ट (सं० श्लो०) वृक्षं मिनतीति मिष्ट-स्विप्।
मासो, भस्त्रभेद, बर्तार क्षय।

वृक्षमेष्टिन् (सं० पु०) वृक्षं मिनतीति मिष्ट-निनि। १ वृक्ष
दम। २ कुन्दारो।

वृक्षमय (सं० श्लो०) वृक्ष मयत् स्फुरार्थं। वृक्षमकर।

वृक्षमर्चटिका (सं० श्लो०) वृक्षस्य मर्चटिका। जम्बू-
विशेष, बटविशेष।

वृक्षमूत्र (सं० श्लो०) वृक्षस्य मूत्रं। वृक्षका मूत्र, पेड़की
जड़।

वृक्षमूलिक (सं० श्लो०) वृक्ष या पेड़के मूलसे सम्बन्ध
रखनेवाला।

वृक्षमृद्ग (सं० पु०) वृक्षमृदि भयतीति मृ-विशप्। जल-
घेनस, जलधेन।

वृक्षराज (सं० पु०) वृक्षाधिप, पीवलका पेड़।

वृक्षराज (सं० पु०) वृक्षाणां राजा, समासान्त उन्।

१ वृक्षोका राजा, श्रेष्ठ वृक्ष। २ पारिजात।

वृक्षरुदा (सं० श्लो०) वृक्षे रोदतीति रुद-क-तत्प्रष्टाप्।

१ रुद्रधंशो, पन्द्रष्ट, वंशाक। २ भस्त्रघेन। ३ जम्बूका
नामकी लता। ४ विशदरीकम्। ५ क-हो या बंती
नामकी वीधा। ६ पुष्करमूल।

वृक्षवाटिका (सं० श्लो०) वृक्षस्य वाटिका। १ भमारव-
गणिकामेहोपवन, उपवन, निकुञ्ज, बाग, बगीचा।

वृक्षवाटी (सं० श्लो०) भमारवगणिकाका उपवनमेष्टिन
युद्ध।

वृक्षवास्यनिरिचत (सं० पु०) एक पक्षका नाम।

वृक्षन (सं० पु०) गिरगिट।

वृक्षनायिक (सं० पु०) एक प्रकारका बन्दर।

वृक्षनाविषा (सं० श्लो०) बटविशाल, गिलहरी।

वृक्षसंकट (सं० श्लो०) १ वृक्षराजमेष्टिन पतना या कम
श्रीद्धा पथ। २ यह पथकंडो ओ गने वृक्षोके वीधसे
गर् हो।

वृक्षमयी (सं० श्लो०) वृक्ष पर रहनेवाली मायिन या
नागिन।

वृक्षमारक (सं० पु०) श्लेषपुष्पो, गुग्गु।

वृक्षस्नेह (सं० पु०) वृक्षस्या स्नेहः। वृक्षनिर्गत रस,
पेड़का लासा या गोंद।

वृक्षाम (सं० श्लो०) वृक्षका अथमाग या निष्पन्देन।

वृक्षान्न (सं० पु०) वृक्षमणि मादापतीति मृ-न्नु। १ वृक्ष-
मेहो। २ भस्त्रवृक्ष, पीवलका पेड़। ३ पिवालका वृक्ष।
४ कुन्दारो। ५ मधुपथ।

वृक्षान्ना (सं० श्लो०) वृक्षान्न-व्ययवां होव्। १ वृक्ष,
वंशा। २ विशदरीकम्, मूर्ति कुन्दारो।

वृक्षारिहृदक, वृक्षारिहृदक (सं० श्लो०) सायिकुम्।

वृक्षाम्ब (सं० श्लो०) वृक्षस्याम्बः। १ मधुपथ, ईमलो।
२ वृक्ष नामकी घटारो। ३ भस्त्रमकृता। गुण-वट्ट,

कषाय, उष्ण और कफ, अर्श (घवासीर), तृष्णा, घामु, उदर, गुल्म, अतीसार और मणदोपनाशक है।

(पु०) वृक्षे अम्ले पश्य । ४ धम्मङ्गा । ५ अम्लधेत ।
 वृक्षायुर्वेद (सं० पु०) वृक्षस्यायुर्वेदः । वृक्षोका चिकित्सा-
 नात्र । मनुष्यांकी तरह वृक्षोंकी दिकृति आदि होने पर औषध द्वारा उनको भी चिकित्सा की जाती है।

वृहत्संहितामें वृक्षोंके रोपने, रखने और चिकित्सा आदिका विषय इस तरह लिखा है—किसी भी जला-
 शयके वृक्ष न रहनेसे यह मनोहर दिखाई नहीं देता, इस-
 लिये जलाशयके निकट वृक्ष आदि लगाना उचित है।
 मन्त्र मिष्टो सब तरहके वृक्षोंके लिये हितकारो है। इसमें तिल बोना चाहिये। अरिष्ट, अशोक, पुष्पाग, शिरोप और प्रियंगु आदि वृक्ष मङ्गलजनक हैं, इससे इनकी गृहके निकट या घागमें लगाना चाहिये। कटहल (पनस), अशोक, केला, जामुन, अनार (दाड़िम), द्राक्षा (अंगूर), पालीशत, बीजपूरक और अतिमुक्तक, इन सब वृक्षोंका काण्ड या मूल गोबर द्वारा लेपन कर रोपण करना चाहिये। गधवा यरनके साथ मूल काट कर केवल रक्तव्य हीको रोपना उचित है। जिन वृक्षोंकी शाखायें नहीं हैं, उनको शिशिर ऋतुमें, शाखा पैदा होने पर हिमागममें और सुन्दर रक्तव्यसम्पन्न वृक्ष वर्षाऋतुमें किसी ओर प्रति रोपण करना चाहिये। घृत, उशीर, तिल, मधु, विडङ्ग, क्षीर और गोबर द्वारा मूलसे रक्तव्य तक लेप कर उनको पुनः रोपना और संकामण रना चाहिये। इस तरह रोपण करनेसे वृक्ष पनप जाता है।

श्रीष्मकालमें सायं और प्रातःकालमें, शीत या जाड़में दिनके मध्यभागमें और बरसातमें मिट्टी सूख जानेसे रोपे हुए वृक्षमें जल डालना चाहिये। जामुन, वेत, वापीर, कदम्ब, उद्गुम्बर (गूलर), अर्जुन, बीजपूरक, मृद्वीका, लकुच, दाड़िम, घड़ूल, नकमाल, तिलक, पनस, तिमिर और भास्त्रातक, ये १६ प्रकारके वृक्ष अनुपन्न नामसे विख्यात हैं। उक्त वृक्ष २० हाथकी दूरी पर रोपण करनेसे उत्तम, १६ हाथकी दूरी पर मध्यम, १२ हाथकी दूरी पर रोपित होनेसे निकृष्ट होते हैं।

जो वृक्ष इससे कम दूरी पर रोपे जाते हैं, वे परस्पर रेशों तथा मूलमें मिश्रित हो जानेके कारण सम्यक्

फल नहीं देते। शीत, शत और आतप आदि द्वारा भी वृक्षोंको रोग होता है। इससे उनके पत्ते पीले और पत्तोंमें इसकी वृद्धि नहीं होता और शाखाशोय और रसस्राव होता रहता है। पहले शस्त्र द्वारा इनका विशेषण कर विडङ्ग, घृत और पङ्क (पांरु) द्वारा प्रलेप कर क्षीरजलसे सिंचना चाहिये, जिस वृक्षका फल नष्ट हो जाता हो, उसकी जड़में कुलथो, उड़द, मूंग, तिल और शीतल जलसे सिंचनेसे उसके फल और पुष्पकी वृद्धि होती है।

बकरी और भेड़की चिट्ठाका चूर्ण दो आड़क, तिल एक आड़क, शकू एक प्रस्थ और सयं तुल्य परिमाण गोमांस, ६४ सेर जलमें अच्छी तरह पशूयित कर घनस्पति, बहो, गुल्म और लतादिकी जड़की सिंचना चाहिये। इससे फल भी अधिक लगता है।

किसी बीजको दश दिनों तक दूधमें माथित कर पीछे हाथमें घोलना कर मलने और पीछे गोबर बहुत बार रखने तथा सूअर और हरिणके मांसके विशेषरूपसे सुगन्धित करना चाहिये। इसके बाद उसे मछली और गूँकरका वसासमन्वित कर मिट्टीमें गाड़ना या रोपना चाहिये। क्षीरसंयुक्त जल द्वारा अवसेचित होने पर यह कुसुम युक्त होगा। जी, उड़द और तिलचूर्ण, शकू और पूतिमांसके जलसे सिंचन और हृदोसे घुषित होनेसे इसकी वृक्षमें फल निकल आते हैं। यम्बास्फोट, धाली, धव और वासिकाका मूल और पलाशिनो, वेतस, सूर्य्य बहो, श्याम, अतिमुक्तक और अष्टमूलो—ये सब कपित्थ वृक्षोंमें फल उत्पन्न करनेके उपादान हैं। शुभ नक्षत्रोंमें वृक्षोंकी रोपना चाहिये। रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, उत्तरा-
 पादा और उत्तरभाद्रपद, मृगशिरा, चित्रा, अनु-
 राधा, रेवती, मूला, विशाखा, पुष्या, श्रवणा, अश्विनी और हस्ता—इन्हें सब नक्षत्रोंमें वृक्ष रोपना उचित है। (वृहत्सं० ५५ अ०)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि भवनके उत्तर पक्ष, पूर्व और पश्चिममें वास्तु और पश्चिममें अथवा पश्चिम वृक्ष रोपण करनेसे कल्याणकर होता है। गृहके निकट दक्षिण ओर उत्पन्न कण्टकद्रुम सबके लिये मङ्गलदायक है। गृहके समीप उद्यान रखना उचित है। द्विज और चन्द्रकी

ये एक वृक्षस्य दृमरे वृक्ष पर मद्रा वृक्षते रहने हैं, इतोमे इनका नाम वृक्षपर पद्म है।

वृक्षच्छाया (सं० श्लो०) वृक्षों वृक्षाणां छाया, यदस्ये नपुंसकत्वम्। यद् वृक्षस्य छायाका अर्थ अनेक वृक्षों छाया है। एक या द्वे वृक्षस्य छाया नामभनेसे वृक्षच्छाया होता है। 'वृक्षाणां छाया' बहुवचनम् यद् श्लोचलिङ्ग हो जाना है।

वृक्षनक्षत्र (सं० पु०) गिलहरी ।

वृक्षनन्द (सं० श्लो०) वृक्षका निचला हिस्सा ।

वृक्षदल (सं० श्लो०) वृक्षनासा ।

वृक्षानुव (सं० पु०) वृक्षोऽपि ध्रुवस्तस्य साधनम्। सरलद्रुम, शोषित ।

वृक्षानाथ (सं० पु०) वृक्षाणां नाथः। घटवृक्ष, परमदका पेड़। (राजनि०)

वृक्षनिर्वास (सं० पु०) वृक्षस्य निर्वासः। वृक्षका निर्वास, वृक्षनिर्गत रस, पेड़का लासा या गोंद ।

वृक्षपर्ण (सं० श्लो०) वृक्षस्य पर्णः। वृक्षका पत्ता, पेड़की पत्तों।

वृक्षपाक (सं० पु०) घटवृक्ष, परमदका पेड़ ।

वृक्षपाल (सं० पु०) जङ्गली जान ।

वृक्षपुत्री (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम ।

वृक्षप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) स्मृतिशास्त्रविहित अभ्युपग (वापन) भादि वृक्षकी प्रतिष्ठा ।

वृक्षमक्षा (सं० स्त्री०) वृक्षं मक्षयतीति मक्ष-भञ्ज-तत्-साप्। १ परमात्र नामका पौधा । २ पंदाक, बंदा ।

वृक्षमग्न (सं० श्लो०) वृक्षनिर्गतं मग्नम्। वृक्षकोटर, पेड़का फोड़ना ।

वृक्षमिष्ट (सं० स्त्री०) वृक्षं भिनत्तीति मिष्ट-स्त्रियप्। पान्थी, अरबमैद, बहोम जार ।

वृक्षमोदक (सं० पु०) वृक्षं भिनत्तीति मिष्टु-त्पिति । १ वृक्षा दन । २ कुन्दाडी ।

वृक्षमण (सं० नि०) वृक्षा मणवत्-वक्रपार्श्वे। वृक्षमण्य ।

वृक्षमर्कटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य मर्कटिका। जम्बू-विशेष, कर्कशफल ।

वृक्षमूल (सं० श्लो०) वृक्षस्य मूलम्। वृक्षका मूल, पेड़की जड़ ।

वृक्षमूलिक (सं० नि०) वृक्ष या पेड़के मूलसे सम्बन्ध रखनेवाला ।

वृक्षमृद् (सं० पु०) वृक्षमृदि भवतीति मृ-स्त्रियप्। जल-युक्त, जलवेत ।

वृक्षराज (सं० पु०) वृक्षप्रिय, पीपलका पेड़ ।

वृक्षराज (सं० पु०) वृक्षाणां राजा, समासात् तन् । १ वृक्षोंका राजा, श्रेष्ठ वृक्ष । २ पारिजात ।

वृक्षरक्षा (सं० स्त्री०) वृक्षे रोदनीति रक्ष-क-तत्प्राप्। १ रुद्रवंशों, पद्मपत्र, बंदाक । २ अमृतपेन । ३ जम्बूका नामकी लता । ४ विदारोत्सव् । ५ कन्दकी या कर्पों नामका पौधा । ६ पुष्करमूल ।

वृक्षपाटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य पाटिका । १ अमारव-गणिकावेदोपवन, उपवन, निकुञ्ज, बाग, बगीचा ।

वृक्षवाटी (सं० स्त्री०) अमारवगणिकाका उपवनवेष्टित युद्ध ।

वृक्षवाटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य वाटिका । १ अमारव-गणिकावेदोपवन, उपवन, निकुञ्ज, बाग, बगीचा ।

वृक्षवाटी (सं० स्त्री०) अमारवगणिकाका उपवनवेष्टित युद्ध ।

वृक्षवाटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य वाटिका । १ अमारव-गणिकावेदोपवन, उपवन, निकुञ्ज, बाग, बगीचा ।

वृक्षमकट (सं० श्लो०) १ वृक्षराशिपेष्टित पतला या कम चौड़ा पथ । २ यह पगडंडी जो मने वृक्षोंके बीचसे गई हो ।

वृक्षमर्षी (सं० स्त्री०) वृक्ष पर रहनेवाली मायिन या मायिन ।

वृक्षमारक (सं० पु०) श्लेषपुत्री, गुग्गु ।

वृक्षमोद (सं० पु०) वृक्षस्य मोदः। वृक्षनिर्गत रस, पेड़का लासा या गोंद ।

वृक्षाम (सं० श्लो०) वृक्षा अग्रभाग या शिखरदेश ।

वृक्षानन (सं० पु०) वृक्षमनि नामयतीति अणु-त्पु । १ वृक्ष-भेदी । २ अद्वयवृक्ष, गोपनका पेड़ । ३ पियालका वृक्ष । ४ कुन्दाडी । ५ मधुपत्र ।

वृक्षानुवी (सं० स्त्री०) वृक्षानु-स्त्रियवां ङीप् । १ पन्द्रा, संथा । २ विदारोत्सव्, मूँई कुन्दा ।

वृक्षादिपदक, वृक्षादिमदक (सं० श्लो०) भास्विङ्ग ।

वृक्षाम्ब (सं० श्लो०) वृक्षस्याम्बम् । १ मद्रास, ईमली । २ चुक नामकी पत्तई । ३ भावलवृक्षा । गुण-कटु,

कषाय, उष्ण और कफ, अर्श (बवासीर), तृष्णा, वायु, उदर, गुल्म, अतोसार और प्रणदोषनाशक है।

(पु०) वृक्षे अम्लो यस्य । ४ भम्मडा । ५ अम्लयेत । वृक्षायुर्वेद (सं० पु०) वृक्षस्यायुर्वेदः । वृक्षोका चिकित्सा-शास्त्र । मनुष्योंकी तरह वृक्षोंकी दिकृति आदि होने पर औषध द्वारा उनको भी चिकित्सा की जाती है।

वृद्धसंहितामें वृक्षोंके रोपने, रजने और चिकित्सा आदि का विषय इस तरह लिखा है—किसी भी जलाशयके वृक्ष न रहनेसे यह मनोहर दिखाई नहीं देता, इसलिये जलाशयके निकट वृक्ष आदि लगाना उचित है। नम्र मिट्टी सब तरहके वृक्षोंके लिये हितकारी है। इसमें तिल बीजा चाहिये। अरिष्ट, अशोक, पुष्पाग, शिरोप और प्रियंगु आदि वृक्ष मङ्गलजनक हैं, इससे इनको गृहके निकट या बागमें लगाना चाहिये। कटहल (पनस), अशोक, केला, जामुन, अनार (दाड़िम), द्राक्षा (अंगूर), पालोवत, बीजपूरक और अतिमुक्तक, इन सब वृक्षोंका काण्ड या मूल गोबर द्वारा लेपन कर रोपण करना चाहिये। शयवा पत्तनके साथ मूल काट कर केवल स्तम्भ हीको रोपना उचित है। जिन वृक्षोंकी शाखायें नहीं हैं, उनको शिशिर-ऋतुमें, शाखा पैदा होने पर हिमागममें और सुन्दर स्फुटसम्पन्न वृक्ष वर्षाऋतुमें किसी ओर प्रतिरोपण करना चाहिये। घृत, उशीर, तिल, मधु, विडङ्ग, क्षीर और गोबर द्वारा मूलसे स्तम्भ तक लेप कर उनके पुनः रोपना और संक्रामण रना चाहिये। इस तरह रोपण करनेसे वृक्ष पनप जाता है।

श्रीष्मकालमें सायं और प्रातःकालमें, शीत या जाड़ेमें दिनके मध्यभागमें और बरसातमें मिट्टी सूख जानेसे रोपे हुए वृक्षमें जल डालना चाहिये। जामुन, घेत, वापीर, कदम्ब, उदुम्बर (गूलर), अर्जुन, बीजपूरक, मृद्रीका, लड्डुच, दाड़िम, चड्डूल, नकमाल, तिलक, पनस, तिमिर और आम्नातक, ये १६ प्रकारके वृक्ष अनुपम नामसे विख्यात हैं। उक्त वृक्ष २० हाथकी दूरी पर रोपण करनेसे उत्तम, १६ हाथकी दूरी पर मध्यम, १२ हाथकी दूरी पर रोपित होनेसे निकट होता है।

जो वृक्ष इससे कम दूरी पर रोपे जाते हैं, वे परस्पर स्वर्शों तथा मूलमें मिश्रित हो जानेके कारण सम्यक्

फल नहीं देते। शीत, वात और आतप आदि द्वारा भी वृक्षोंकी रोग होता है। इससे उनके पत्ते पीले और पत्तोंमें इसकी वृद्धि नहीं होती और जाभाशोष और रसनाश होता रहता है। पहले शस्त्र द्वारा इनका विद्योषण कर विडङ्ग, घृत और पट्ट (पांरु) द्वारा प्रलेप कर क्षीरजलसे सिंचना चाहिये, जिस वृक्षका फल नष्ट हो जाता हो, उसकी जड़में कुलघो, उड़द, मूँग, तिल और शीतल जलसे सिंचनेसे उसके फल और पुष्पको वृद्धि होती है।

बकरी और भेड़की चिप्टाका चूर्ण देा आढ़क, तिल एक आढ़क, शकू एक प्रस्थ और सर्वं तुल्य परिमाण गोमांस, ६४ सेर जलमें अच्छी तरह पचूँपित कर घनस्पात, बह्नी, गुल्म और लतादिकी जड़की सिंचना चाहिये। इससे फल भी अधिक लगता है।

किसी बीजको दश दिनों तक दूधमें मायित कर पीछे हाथमें घोलना कर मलने और पीछे गोबर बहुत पार रखने तथा सूत्र और हरिणके मांसके विशेषरूपसे सुगन्धित करना चाहिये। इसके बाद उसे मछली और शूकरका वसासमन्वित कर मिट्टीमें गाड़ना या रोपना चाहिये। क्षीरसंयुक्त जल द्वारा अवसेचित होने पर यह कुसुम युक्त होगा। जी, उड़द और तिलचूर्ण, शकू और पूतिमांसके जलसे सिंचन और हल्दासे घुषित होनेसे हमली वृक्षमें फल निकल आते हैं। वग्यास्फोत, घालो, धव और वासिकाका मूल और पलाशिनो, घेतस, सूर्या बह्नी, श्याम, अतिमुक्तक और अष्टमूली—ये सब कपित्थ वृक्षमें फल उत्पन्न करनेके उपादान हैं। शुभ नक्षत्रमें वृक्षोंकी रोपना चाहिये। रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, उत्तरायादा और उत्तरभाद्रपद, मृगशिरा, चित्रा, अनुशाधा, रेवती, मूला, विशाखा, पुष्या, श्रवणा, अश्विनी और हस्ता—इन्हें सब नक्षत्रोंमें वृक्ष रोपना उचित है। (वृहत्सं० ५५ अ०)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि भयनके उत्तर गृह, पूर्व ओर घट, दक्षिणमें आश्र और पश्चिममें मन्वत्थ वृक्ष रोपण करनेसे कल्याणकर होता है। गृहके निकट दक्षिण ओर उत्पन्न कष्टकट्टम सबके लिये मङ्गलदायक है। गृहके समीप उद्यान रखना उचित है। द्विज और चन्द्रकी

पूजा कर वृक्षाग्रहण या रोपण करना उचित है। वायव्य, दक्षिण, प्रवेग, येण्य और मूल इन पांच मन्त्रोंमें वृक्ष रोपण करना चाहिये। नदीके प्रवाह उद्योगमें या क्षेत्रमें प्रवेग करना चाहिये। नदी आदि न रहनेमें पोषकैका जल जिनमें उममें प्रवेग कर सके, वेसा उपाय करना उचित है।

मणिष्ठाशोक, पुत्राग, गिरोव, विवङ्ग, अनोक, नद्री, जामुन, वङ्ग, दाहिग, इन सब वृक्षांका रोपण कर प्रीमनमें साथ और प्राणाकाल, गीत ऋतुमें एक दिनके बाद और यथा ऋतुमें मिट्टी मूत्र जाने पर जलसे सिंचना चाहिये। एक स्थानमें वृक्षरु रोप कर उसके बीस हाथ दूरी पर दूसरा वृक्ष रोपना चाहिये। इस तरह रोपण करनेसे उत्तम होता है, १६ हाथ दूरी पर रोपनेसे मध्यम और १२ हाथ दूरी पर रोपनेसे निम्न और फलहीन हो जाने है। वृक्षाका फल जब सब मट्ट जाये, तब उसके भाग द्वारा काट छांट कर विष्टंग, पुत्र और पट्टु लेा कर शोभन जलसे सिंचना चाहिये और कुलघो, उद्द, मूंग, जो भीटतिलके साथ पुत्र और शोभन जलसे सिंचनेसे सर्वदा फलपूल लगता है। बकरी और भेड़को विष्ठा-मूर्ण, जीरा मूर्ण, तिल, गोमांस और जल सताराति प्रोचित करनेसे सब तरहके वृक्षोंमें फलपुत्र होता है। विष्टंग और चायक घोवा वासी, मछलीमांस वृक्षोंका रोमनाग और वृद्धिमापन करता है।

(भक्तिपुराण ३६ भा०)

शुरवाशमें 'वृक्षामुषेद' नामकी एक पुस्तक भी लिख गये है।

वृक्षादां (सं० खो०) वृक्षे बटं तांति बटं-मन्-रूपम् । गदा-
मैश ।

वृक्षानव (सं० पु०) वृक्ष मानघो मन्व । पत्ती, चिह्निया ।
वृक्षाधारा (सं० पु०) वृक्षे धारामो मन्व । धारके। टर-
धामो, गिद्धरी ।

वृक्षाधिविन् (सं० पु०) वृक्षमाधिविन्ति मा धि-विन्ति ।
धुञ्जोव ।

वृक्षीव (सं० खि०) वृक्षामन्वरोव ।

वृक्षेणव (सं० खि०) वृक्षमाधो ।

वृक्षीरवल् (सं० खो०) वृक्षीरयो वा वृक्षवृक्षमाका-
येट् ।

वृष्टव (सं० खो०) वृक्षमा फल ।

वृष्टल (सं० खो०) विवल् ।

वृष्ट—१ वृत्ति, वरण । २ वर्जन ।

वृत्तया (सं० खो०) एव ह्यलोका नाम ।

(वृक् १।२।१३)

वृष्टीयम् (सं० पु०) परजिल कुलोत्पन्न व्यक्तिकेम् ।
(वृक् ३।२।७२)

वृष्ट—१ रथाग । २ वृत्ति या वरण । ३ वर्जन । ४ मज्ज ।

वृष्टन (सं० खो०) वृष्टी वर्जने वृष्ट-वपुः । (उप् ३।८१)

१ अन्वरीक्ष, भाकाज । २ पाप । ३ निराकरण ।

४ संप्राम, युद्ध, लडाईं । ५ बल, ताकत, शक्ति ।

(वृक् १।१६।१५) ६ प्राणिजात । (वृक् १।४।१५)

सायण (पु०) ७ फेज, बाल । (खि०) ८ कुटिल, यक ।

९ बाधक, शत्रु । (वृक् ३।१५।५) (खो०) १० अपराध,

कर्म । ११ रंगो चमटा ।

वृष्टन्य (सं० खि०) साधुबल, साधुधेय, परमसाधु ।

(वृक् ६।६।२२)

वृष्टि (सं० खो०) १ प्रकभूमि । २ मिथिला, तिरहुत ।

वृष्टिक (सं० खो०) वृष्टी भव वृष्टि-कन् (वा ४।२।१३)

वृष्टिभूमिजात, वृष्टीरवन् ।

वृष्टिन (सं० खो०) वृष्टी वर्जने वृष्ट इत्यम् वृष्टेः विष् ।

(उप् ३।४०) १ पाप । (भागवत १०।२६।३८)

२ दुःख, चष्ट, तकलीफ । (खि०) ३ पापविशिष्ट ।

४ कुटिल, देहा, यक । ५ रकधर्म । (पु०) ६ बाल,

फेज ।

वृष्टिनपम् (सं० पु०) वृष्टके पीठ, कोष्ठ का पुत्र ।

(भागवत १।२।१०)

वृष्टिनपसोमि (सं० खि०) विष्टुजमार्ग, सदाचाररहित ।

(वृक् १।१।१६)

वृष्टिनायम् (सं० खि०) पापकामो, जो पाप करनेकी

इच्छा करता है । (वृक् १०।२।१)

वृष्टिमोघन (सं० पु०) वृष्टिवर् देवो ।

वृष्ट—१ मरणा । २ प्रोषण ।

वृष्ट—२ वीर्य । ३ वर्जन, विवर्णना, विपत्ति ।

३ यापन । ४ पागल । ५ जीवन, जीविका-निर्वाह ।
६ वर्षण । ७ घरण । ८ सेवा ।

वृत्त (सं० त्रि०) वृत्त । १ कृतचरण, जो किसी कामके लिये नियुक्त किया गया हो, मुकूरर किया हुआ । पर्याय—वृत्त, यावृत्त । २ आवृत्त, आच्छादित, छाया हुआ । ३ जिसके सम्बन्धमें प्रार्थना की गई हो । ४ खोदित, जो मन्त्रर किया गया हो । ५ गोल ।

वृत्तपत्नी (सं० स्त्री०) वृत्त आवृत्त पत्न यस्या । पुत्रदात्री नामकी लता ।

वृत्ता (सं० स्त्री०) आवरका, आच्छादका । (ऋक् ५४८२)
वृत्ताक्ष (सं० पुं०) कुंकुट, सुर्गा ।

वृत्ताचिर्चिस् (सं० स्त्री०) रात्रि, रात ।

वृत्ति (सं० स्त्री०) वृत्-क्ति । १ वेष्टन, वह जिससे कोई चीज घेरो या ढकी जाये । २ प्रार्थनाविशेष ।

३ नियोग, नियुक्त करनेकी क्रिया, नियुक्ति । ४ गोपन । ५ आवरण । ६ घरण ।

वृत्तिकार (सं० पुं०) १ विकङ्कत नामका वृक्ष । २ वृत्तिकारक वृत्त (सं० स्त्री०) वृत्त-क । १ चरित, चरित्र । (कथा-सर्विखा० ३१४) २ वृत्ति । (मेदिनी) ३ वेदशास्त्रके अनुसार

सार आचार रचना । ४ वाचा । (कथासर्विखा० ५८११६)

५ आचार, चाल, चलन । (मनु ४१२६०) ६ स्तनके आगेका भाग । (पुं०) ७ अजीर । ८ सतिवन । ९ कणुआ ।

१० समानार, वृत्तान्त, दाल । ११ महाभारतके अनुसार एक नागका नाम । १२ बड़ोंके आदर, इन्द्रिय निग्रह और

सत्य आदिको होनेवाली प्रवृत्ति । १३ वह छन्द जिसके प्रत्येक पदमें अक्षरोंकी संख्या और लघु, गुरुके क्रमका नियम हो, वाणिक छन्द । जैसे—इन्द्रवज्रा, मालिनो आदि ।

१४ जो चार पद या चरणोंमें पूर्ण हो, उसका नाम पद्य है । यह वृत्त और जातिभेदसे दो प्रकारका है । अक्षर संख्यामें निर्णय पदका नाम वृत्त और जो पद्य मात्रा द्वारा निर्णय होता हो, उसको जाति कहते हैं । सम, अर्द्धसम और विषम भेदसे वृत्त तीन तरहका होता है । जिस वृत्तके चारों पद समान, समसंख्यक अक्षर हों, वह समवृत्त कहलाता है ; जिसमें चारों पदोंको अक्षरसंख्या असमान हो, वह विषमवृत्त कहलाता

है और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे पद समान हों, उसे अर्द्धसमवृत्त कहते हैं ।

१५ एक प्रकारके छन्द, जिसके प्रत्येक चरणमें दोवर्ण होते हैं । इसे गंडका और दांडका भी कहते हैं ।

१६ वह क्षेत्र जिसका घेरा या परिधि गोल हो, मण्डल । १७ वह गोल रेखा, जिसका प्रत्येक बिन्दु उसके अन्दरके मध्य बिन्दुसे समान अन्तर पर हो । १८ बीता हुआ,

गुजरा हुआ । १९ ढूढ़, मजबूत । २० जिसका आकार गोल हो, वर्तुल । २१ मृत, मरा । २२ जो उत्पन्न हुआ हो, जात ; २३ निष्पन्न, सिद्ध । २४ ढका हुआ, आच्छादित ।

कविकल्पलतामें वृत्ताकार वस्तुका इस तरह वर्णन है—वाहु, नारङ्ग, रुक्म्य, धर्मिल, मोदक, ग्याङ्ग, लावक, ककुत्, कुम्भिकुम्भ और अण्डकादि, कणोपाज, भुनापाज, आरुष्टचाप, घटानन, मुद्रिका, परिष्ठा, योगपट्ट, हार और झगादि इन सब वस्तुओंके वृत्त कहते हैं ।

वृत्तक (सं० पुं०) १ श्रावक । (५० सं० ८६६८) २ वह गद्य, जिसमें अकटोर अर्थात् फीमल तथा मधुर छोटे छोटे समासोंका पद व्यवहार किया गया हो । ३ छन्द । (वाहित्यद० ५४६)

वृत्तकटोटी (सं० स्त्री०) वृत्ता वर्तुला कर्कटी, गोल ककड़ी अर्थात् खरबूजा ।

वृत्तकोशा (सं० स्त्री०) देवदाली नामकी लता । (राजनि०)

वृत्तकोप (सं० पुं०) पीली देवदाली । (भावप्र०)

वृत्तखण्ड (सं० पुं०) १ किस वृत्त और गालाईका कोई अंश । २ मेहराव ।

वृत्तगन्धि (सं० स्त्री०) वृत्तस्य पद्यस्य गन्ध इव गन्धा यस्य । वह गद्य जिसमें अनुप्रासों और समासोंकी अधिकता हो, वह गद्य जिसमें पद्यका आनन्द भाता हो ।

वृत्तगुण्ड (सं० पुं०) दार्शनिक और गौड़ला नामकी घास । यह पतली और मोटी दो तरहकी होती है । इसका गुण—मधुर, शातल, कफ, पिच, अतीसार, दाह और रक्तनाशक है । इन दोनोंमें मोटी घास अधिक गुणयुक्त होती है ।

वृत्तघोटा (सं० स्त्री०) १ स्वभाव, प्रकृति । २ भाचरण, चालचलन ।

यूक्तपट्टक (सं० पु०) यूक्तसप्तपट्टकाः । यावनाल, जयनाल ।

यूक्तसू (सं० भाष०) यूक्तसामिन् । यूक्त द्वारा । यूक्तनिर्वापिका (सं० खी०) मटर, केराय ।

यूक्तपत्र (सं० पु०) उत्तम जाकविशेष, नौलोजाक । यूक्तनम (सं० खी०) पुनदास ।

यूक्तपर्णी (सं० खी०) यूक्तं यत्सुं लं पर्णां यस्याः शीघ्रं १ महाजलपुष्पिका । २ पाटा । (सामिन्) ३ कदम्ब । ४ जलधैत । ४ भुरं कदम्ब । ५ सदा गुलाब, सेपती । ६ मोतिगा । ७ मण्डिका ।

यूक्तपुष्प (सं० पु०) यूक्तं यत्सुं लं पुष्पं यस्याः १ मिरिस । २ कदम्ब । ३ जलधैत । ४ भुरं कदम्ब । ५ सदा गुलाब, सेपती । ६ मोतिगा । ७ मण्डिका ।

यूक्तपुष्पा (सं० खी०) १ नागदमनी । २ सदा गुलाब, सेपती ।

यूक्तक (सं० खी०) यूक्तं यत्सुं लं फलं यस्याः १ काली या गोकमिर्च । २ गोलकक । (पु०) ३ दादिम । ४ बदर । ५ कपिशय यूक्षा । ६ रत्न अगामार्ग । ७ करञ्जीया पेठ । ८ तरबूज ।

यूक्तकला (सं० खी०) १ घासांकी । २ जनांमुनी, कड़वी ककड़ी । ३ शीपला ।

यूक्तपाथ (सं० पु०) यूक्तो न यथः । यह जो यूक्त या लम्बके रूपमें बोलता गया हो ।

यूक्तमात्रण (सं० पु०) मंत्रोर या गिटनी नामका जाक । यूक्तमंत्रिका (सं० खी०) १ मफेद भाक । २ त्रिपुरमण्डिका । महापद्मि इमको पाटोमरे, कमांटी हुनुमि-मण्डिका और बम्बईमें बटोमागरी कहते हैं । गुण—बहु उष्ण, प्रणामाजक, बद्धाग्नि और नेत्ररोगनाशक है ।

यूक्तपत्र (सं० खी०) यूक्त सप्तपर्षे मद्रुपु मन्त्र य । यूक्तपुक्त, त्रिमका भाषाएल मुद्र हो, सदाचारो ।

यूक्तवीर (सं० पु०) यूक्तं वीरं यस्याः १ निट्टाक्षर, मिट्टो, तारो, चकटी, राजमाय, गोविना ।

यूक्तवीरका (सं० खी०) यूक्तं परां लं वीरं यस्याः १ न तनहाप । २ पाट्टुएकली । ३ चरहरको दाव ।

यूक्तवीरका (सं० खी०) यूक्तं वीरं यस्याः १ भारूर । यूक्तनामो (सं० खी०) यूक्तो न नामते नामां विनि । यूक्तपुक्त, यह त्रिमका भाषाएल उत्तम हो, सदाचारो ।

यूक्तधायो (सं० खी०) १ त्रिमको सपने कामको अग्राया या भनएड हो । (पु०) २ शनिप ।

यूक्तसादो (सं० खी०) यूक्तसद-विनि । युक्तनाम-कारो, चरितनामो ।

यूक्तसंक (सं० पु०) १ यह त्रिमका चरित मुद्र हो, सदाचारो । २ यह जो दूमरोका उरकार करना हो, परीपकारी ।

यूक्तन्य (सं० खी०) यूक्तो निष्ठति न्याः क । जो यूक्तमें भयस्थित रहते हैं, मन्वचरित, सदाचारो । मुक्त-यूक्त, पूजा, शीघ्र, सरय, इन्द्रविमल और लोकाहित-कर कार्योंमें त्रिमको प्रवृत्ति रहती है ।

यूक्ता (सं० खी०) यूक्त-उत्प । १ मौसधारिणी । २ त्रिवङ्ग-लता । ३ सफेद सेम । ४ त्रिचरोट नामका क्षव । ५ रेणुका । ६ मागदमनी । ७ इतिफेनागतकी ।

यूक्ताशेष (सं० पु०) बलङ्गारविशेष, प्रयोगकाममें यद्यार्थमें निषिद्ध न होने पर भी यदि कोई बाधय भाषा-तना निषेधोक्ति मान्य हो, तो उसे ही भाशेय कहते हैं । यह भाशेययूक्त भूत, भविष्यत्, यथांगान भेदसे तीन प्रकारका है ।

यूक्ताध्ययनदि (सं० खी०) यूक्ताध्ययनयोर्द्धिः । प्रज्ञानेन, प्रत्यर्पणं, यूक्त और अध्ययनके लिये सभ्य, येशोचित भाषार परिपालनका नाम यूक्त, मतमूलन कर मुद्रके मुलमें येश्यासका नाम अध्ययन, यूक्त और अध्ययनका नाम ऋद्धि है । यद्यार्थ तन्परिपालनश्च तेनका उपपद्य है ।

यूक्तानुवर्तिन् (सं० खी०) यूक्तानुवर्तिन् यूक्त-यानु-युक्त-विनि । यूक्तन्य, यूक्तानारो, मद्रुयूक्त ।

यूक्तान्न (सं० पु०) १ मंवाद, किमी कीतो हुरं परमाका विपरल, समाचार, हाल । त्रिम,—(क) इन परमाका नास यूक्तान्न समाचारवर्षीमें उप गया है । (ख) अर भाप अचना यूक्तान्न सुनाये । यथाय—

यार्ता, प्रवृत्ति, उद्वेग, धृति, उद्वेगक । (गच्छरत्ना०) २ प्रवृत्ति । ३ कार्यरथ । ४ बालांमोद । ५ प्रमत्त । ६ इतिहासपद्योग । (मद्रु १, २) ७ अथय, शीका । ८ भाय । ९ वक्राक्षयामक । (त्रिम०)

यूक्ति (सं० खी०) यूक्त-विद्र । १ यह कार्य, त्रिमके द्वारा शोचिकाकर निषाई होना हो, शोचिका, शोचो ।

यूक्तिरे सभ्ययमे विपुर्मुदितयमे विना है—प्रज्ञान

का, याजन और प्रतिग्रह, क्षत्रियका राज्यपालन, वैश्यका खेती, वाणिज्य, गोपालन, कुसीदप्रदण और धान्यादिको बीजरक्षा तथा शूद्रका सब तरहके शिल्पकार्योंका करना नियत वृत्ति है। किन्तु आपत्कालमें अर्थात् जब पूर्वोक्त निर्दिष्ट वृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह न हो, तब प्रत्येक जाति ही निम्नश्रेणीकी वृत्तिका अवलम्बन कर सकेंगे। अर्थात् ब्राह्मण राज्यपालन, क्षत्रिय छपि आदि द्वारा भी जीविका चला सकता है। (विष्णुसंहिता २ अ०)

३ विवरण, सूत्रके अथके विवरण विशदरूपसे व्यक्तिकरणका नाम वृत्ति है। "सूत्रव्यवहारविवरणं वृत्तिः।" (कात्यायन) सूत्र-सद लघु हैं अर्थात् बहुत बड़े नहीं, अल्प अक्षर और अल्प पदयुक्त हैं, सुतरां यह व्याख्यासापेक्ष हैं। व्याख्या न रहनेसे सूत्रादिका अर्थ तात्पर्य हृदयङ्गम नहीं होता। यह व्याख्या वृत्ति, भाष्य, याज्ञिक, टीका, टिप्पणी आदि अनेक शाखाओंमें विभक्त है।

४ विधृति। (धरणी) नाटकमें पांच प्रकारकी वृत्ति कही गई है।

वृत्ति चार प्रकारकी है, शृङ्गाररसमें कौशिकी वृत्ति घोर रसमें सास्वती वृत्ति, रौद्र और वीभटस रसमें आरभटो, इनके सिवा अन्य सब स्थानोंमें भारती वृत्ति नाटकमें इन चार प्रकारकी वृत्ति जननीस्वरूपा है। अर्थात् उक्त रसके वर्णन करनेके समयमें निर्दिष्ट वृत्तिका अवलम्बन कर रचना करनी चाहिये।

इन सब वृत्तियोंके कई भेद हैं। इन भेदोंमें कौशिकी वृत्ति एक है। यह कौशिकी वृत्ति भी नर्म, नर्मस्फूर्ति, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ भेदसे चार तरहकी है।

सब नायिकायें उत्तम वेशभूषासे विभूषिता, स्त्री-यष्टुल प्रचुर नृत्ययोग्ययुक्त, कामोपभोगका उपचार द्वारा परिचेष्टित और मनोह्र विद्यासयुक्त, इन सब विषयोंका वर्णन कौशिकीवृत्तिमें उत्तमरूपसे किया जाता है। शृङ्गार रसका वर्णन करनेके समय इस कौशिकी वृत्तिकी अवलम्बन कर वर्णन करना चाहिये।

सख्य, आर्य, दानशक्ति, दया और सरलतादि बहुल, सर्वदा सदर्प अल्प शृङ्गारभावयुक्त, शोकरहित और

साद्गुत अर्थात् आश्चर्य भावसे वर्णनका सास्वती वृत्ति कहते हैं। यह वृत्ति भी चार प्रकारकी है—उत्थापक, संहार्य, संलाप और परिवर्त्सक।

माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उदुम्नास्त आदि चेष्टाओं द्वारा संयुक्त और वन्द्यादि द्वारा उद्भूत—इन सब विषयोंकी वर्णना आरभटो वृत्ति कही जाती है। यह भी चार तरहकी है—वस्तुतथापन, सम्फेद, सशिक्षित और अवपातन।

जिस जगद संस्कृतबहुल वाक्योंका प्रयोग होता है, उसको भारती वृत्ति कहते हैं। इन चार तरहकी वृत्तियोंको नाटकके उक्त रसोंमें वर्णन करना चाहिये।

५ व्यवहार (मनु २।२०५) वर्त्तिस्मिन्निति। ६ आधेय। "साध्याभाववद्वृत्तित्व" (ध्यातिर० १)

७ चित्तकी अवस्थाविशेष। पातञ्जलदर्शनमें चित्तकी अवस्थाको भी वृत्ति कहा है। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, पकाम और निश्चिन्नेदसे चित्तकी वृत्ति पांच तरहकी है। चित्त और योग शब्द देखो। ८ ध्यापार। ९ युक्तार्थ। १० उपजीविका। जैसे—किसीका वृत्तिहरण नहीं करना चाहिये अर्थात् किसीको उपजीविका नष्ट करना या रोटी मारना उचित नहीं।

वृत्तिक (सं० पु०) वृत्ति स्वार्थे कन्। वृत्ति देखो। वृत्तिकर (सं० त्रि०) कर्मकार। वृत्तिकार (सं० पु०) वृत्तिं करोतीति अण्। वृत्तिकारक, वृत्ति प्रस्थके प्रणेता। यह जिसने किसी सूत्रग्रन्थ पर वृत्ति लिखी हो।

वृत्तिता (सं० स्त्री०) वृत्तिमांयः तल्ल-टाप्। वृत्तिका भाव या धर्म, वृत्तित्व।

वृत्तिद (सं० त्रि०) वृत्तिं ददातीति दाक्। वृत्ति-दानकारी, जो वृत्ति प्रदान करते हैं।

वृत्तिदाप् (सं० त्रि०) वृत्तिं दाता। वृत्तिदान करने-वाला।

वृत्तिमत् (सं० त्रि०) वृत्तिरस्त्यस्येति-मत्तुप्। वृत्ति-विशिष्ट, वृत्तियुक्त।

वृत्तिरचना (सं० स्त्री०) रत्नकी एक पत्तीका नाम। (भाष्य १।१२।१६)

वृत्तिरथ (सं० पु०) वृत्तये निष्ठतोति स्यात् क। १ गिर-
मित। २ यद् ओ भवती वृत्ति पर निष्पत्त हो।

वृत्तिरन् (सं० लि०) वृत्तिं दग्नि हन् क्रिय्। वृत्तिरन्म-
कारं, ओ वृत्तिमान करता हो, वृत्तिच्छेदक।

वृत्तिरुग (सं० लि०) वृत्तेर्हन्ता। वृत्तिरुग, वृ-
त्तिरुदनमकारो। वृत्तिरुग हनन कदापि नहीं करना
चाहिये। अथवा वृत्ति या परदत्ता वृत्ति हरण करनेसे
नरकवासी होना पड़ता है।

वृत्तेर्वाग (सं० पु०) वृत्तो वरुणुं र्वाकाः। नर-
वृत्तेको वेद्य।

वृत्तनुनाम (सं० पु०) काव्योक्तः शब्दालङ्कारभेद।
पांन प्रकारके अनुप्रासोंमेंसे एक प्रकारका अनु-
प्रास जो काव्यमें एक शब्दालङ्कार माना जाता है।

वृत्तपुष्याय (सं० पु०) शरभे शरीर या कुटुम्बोंके भरण-
पोषणका उपाय।

वृत्त (सं० लि०) वृत्त-व्यय्। वरणीय।

वृत्त (सं० पु०) वृत्त (व्यापिदिग्भिन्नोक्तिः। उष् ३।११)
इति रत्। १ सम्प्रसार २ शब्द। (शब् ७।४५५२)
३ स्वप्रसादा पुत्र एक दानवका नाम। इन्द्रने इसका
विनाश किया था। (इतिषंग १२७।१०)

शैवोपायवर्षमें वृत्तासुरका वृत्तासुर इस तरह
लिखा है—विद्वद्वर्षाभिने इन्द्रके प्रति विद्वेषवदन्ता परम
रूपवान् त्रिजिह्वक, विषहृदय नामक एक पुत्रकी सृष्टि
की। ये एक मुलसे वेदाध्ययन, दूरसेसे सुरापात्र, सोसरेसे
सुगन्ध सम्पन्न दिनासोंका निरीक्षण करने थे। कुछ
दिनोंके बाद मुनिवर त्रिजिह्व गियदवामना परिवर्षाय-
कर भरपुत्र तपस्यामें निरत हुए। उन्होंने सोच काळमें
पञ्चाग्निपात्रम, वायुके ऊपर वायु बांधनेके बाद मधोमुत्र
से। अथवा, हेमन्त, त्रिजिह्व और जोशमें जलमें रर कर
अदार निद्रापरिष्कार और इन्द्रियोंका पशोमुन कर इस
कठिन तपस्याका अनुष्ठान किया था। शब्दोंनि इन्द्र
इन कठिनमेतः तपस्योका लोपोषोष और विषया
मुत्पन्न देव कर अनिमग्न निष्पत्तकृत्ति हुए।
इसके लोपोषुके लिये उन्होंने वर्षासे, मेकका, शया,
वृत्ताका और विषोषता आदि कठोरतप अन्वयवासीकी
निष्पत्त किया। इन्द्रने आका शब्दोंसे मुग्धप्रिय हो

निष्पत्तके समीप समुद्रस्थित हो जानजातोम विद्विष
हायभाय प्रकान करना सारभम किया। किन्तु लो-
किक तपस्याया-सम्पन्न त्रिजिह्वना महर्षि त्रिजिह्व उन
दिव्य वाताहूनासोंके साथ मान-हायसाय कटाक्षमें
किञ्चिन्नात विगलित न हो, मूक, वधिर और भाष्यको
तरह रहने लगे। यह देव कुछ दिनोंके बाद इन मसीके
कीट कर इन्द्रके सामने शोक और मन्मथत भावसे हाथ
जोड़ कर निवेदन किया, महाराज। आप दूमरी
सेवा कीजिये। हम लोग किसी तरह भी उन दूमर्ष
जितेन्द्रिय मुनिवरकी पिद्वेषुनि करनेमें समर्थ नहीं हो
सकें। और पचा कहा जाये—हम लोग भावपन्न
हो उन अनिमग्न तेजःसम्पन्न महारथ विद्वत्कारके
अभिनायमें पतित नहीं हुई हैं। अथवासोंके साथ
के। सुन कर पापमनि पुरन्दर अत्यन्त मोत हो कर लोक-
लज्जा तथा पापभयका तिलाञ्जलि दे अत्याय रूपमें
त्रिजिह्वके बधका उपाय सोचने लगे।

इसके बाद एक बार स्वर्ग इन्द्र पेशावत पर लट कर
मुनिके समीप आ पहुँचे। यहाँ उन्होंने देखा, कि मुनिके
शरीरसे सृष्टी और अग्निकी तरह तेज बाहर निकल रहा
है। उनकी पैरों अथवा देव इन्द्रके पहले ही अत्यन्त
विषाद उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा, कि मुनिवर
निर्नालशेष और प्रदीप्तपेशावतसम्पन्न है। इसके
साथ दालमेका मीरा शत्रुद्वय करना लोच्य गर्हित कायी
है। किन्तु हाथ। ये मेरे सिंहासनके इच्छुक हुए हैं,
अन्यत्र ऐसे शत्रुकी उपेक्षा भी कीमती ही न सक्तो है।
यह सोच कर देवराज इन्द्रने इन तपस्यानिरत दिनकर-
मुत्पन्न दोषवामन मुनिवर त्रिजिह्वके प्रति अपने गोप्राणों
समीप वञ्चासके समया। तपस्विनवर त्रिजिह्व हम तरह
कृत्तितान हो वञ्चाहम मुनिवामन वर्षाको तरह लोच्य
पर गिर पड़े। किन्तु जतके शरीरमें पना मोषणको
तरह निकल रहा था। यह देव सूर्यपतिके गिलमें फिर
वियवन्ता और मोतिका आविर्भाव हुआ। उन्होंने
सारा कामक निष्पत्तके पहले भाग प्रदान करनेकी स्वी-
कृति दे समीप "आजसे मैंम पञ्चमुक्ता सम्पन्न मुनके
सम्पन्न करे" ताके समीप हम प्रकार शत्रुकार
कर हमें त्रिजिह्वके लोच्य शत्रुके कटवाया।

जब इस बीभत्स समाचारको विश्वकर्माने सुना, तब वे क्रोधसे अघोर हो उठे और अत्यन्त दुःखके साथ कहने लगे, कि इन्द्रने जब मेरे ऐसे गुणवान् और तपस्यानिरत पुत्रको निरपराध मार डाला है, तब मैं उसके विनाशके लिये फिर एक दूसरे पुत्रको सृष्टि करूँगा। विश्वकर्मा क्रोधसन्तप्त हृदयसे इस तरह नाना प्रकारसे विलाप कर पोछे अथर्ववेदोक्त विधान द्वारा पुनोत्पादनके लिये अनलमें आहुति देने लगे। आठ रात होम करनेके बाद उस प्रदीप्त अग्निसे द्वितीय पावककी तरह दोस्रिमान् एक पुत्र्य आविर्भूत हुआ। विश्वकर्माने अनलसम्भूत तेजोबलममन्वित प्रदीप्त अनल सद्गुण पुत्रको सामने देख कर कहा, "इन्द्रजतो। तुम मेरे तपोबल द्वारा बढ़ो।" क्रोधोदीप्त विश्वकर्माकी इस वक्तिके बाद अनलतुल्य दीप्तिशाली यह पुत्र आकाशमण्डलको स्तरुष कर बढ़ने लगे। और तो क्या, क्षण भरमें ही उन्होंने पर्यंताकार धारण किया और प्रत्यग्त शोकसन्तप्त पितासे कहा,—प्रभो! आप मेरा नामकरण संस्कार कीजिये। तात! आप आह्वा कीजिये, कौन काम करे? आप किस लिये इतने शोकसन्तप्त और अघोर हो उठे हैं शीघ्र ही कहिये, मैं आज ही आपके इस शोकके दूर करनेका प्रयत्न करूँगा। हे पिता! जो पुत्र पिताके दुःखका मोचन नहीं करता है, उसका जन्म क्या है। वितृषीत्यर्थ मैं आज ही समुद्रके गी, पर्वतमालाके चूर्ण, मेदिनीके उतपाटन कर सारे जीवोंको समुद्रमें फेंक तिग्मतेजा तपन देवको रोक, और तो क्या यम, इन्द्र, या अन्यान्य किसी भी देवतासे विरोध कर सकता हूँ।

विश्वकर्माने पुत्रके ऐसे परम मोतिकर सुललित वाक्य सुन हृद्यचित्त हो उससे कहा,—पुत्र! तुम इस समय यज्ञिन अर्थात् दुःखसे परित्याग कर सकते हो। अतएव जगत्में वृत्र नामसे तुम्हारी ख्याति होगी। हे प्रियतम! वेदवेदाङ्गपारग, सर्वविधाधिशारद नियत तपस्यानिरत, परम तत्ररक्ष क्षिजिररक्ष विश्वरूप नामसे प्रख्यात तुम्हारे एक बड़े सहोदर था। पापात्मा इन्द्रने उसके तीनों मस्तक ही काट डाले हैं। यह भी निरपराध! अतएव तुम उम कृतापराध ब्रह्महत्यापातकी निर्वाह, शक, दुष्टमति पापरूप सुरपतिका संहार कर

मेरे शोककल्पित हृदयकी निर्मलताका सम्पादन करो। क्षिजिरप्रवर विश्वकर्माने यह बात कह खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, नौमर, सार्ङ्ग, धनु, बाण, तुणीर, कवच आदि याचतीय युद्धोपकरण प्रस्तुत कर घृत्रको दे इन्द्रको बध करनेके लिये उसको समरसज्जासे सुसज्जित किया।

महाबली वृत्र वेदपारग ब्राह्मण द्वारा स्वस्त्ययन करा रघारोहण कर इन्द्रके विनाशके लिये चला। इसके पूर्वार्त्ती कालके देवनिग्रहीत दृज्जवर्गने भी आ कर उसका साथ दिया। घृत्रासुर भी इन दानयोंसे परिवृत हो दलबलके साथ सगर्भ मानसरोवरके उत्तरी किनारे तटराजिपरिशोभित सुरम्य पर्वत पर उपस्थित हुआ। उस मनेगढ़ स्थानमें देवताका आवास था। देवताओंने असुरवरको इस भोषण यात्रासे अत्यन्त मोत हो कर देवराजके समीप जा कर देखा, कि इन्द्रके दूत सुरपतिसे यह भयावह संवाद कह रहे हैं।

शचीपति इन्द्रने दोनों पक्षके प्रमुखात् नाना रूप दुर्घटनाका विषय सुन कर अकस्मात् भाषी महान् अत्याहित संप्रयत्नको सम्भावना देन किंकराव्यविमुद्गावस्थामें सुबुद्धिसम्पन्न सुरगुरु इन्द्रपतिसे सत्परामर्श पूछा। इस पर वृद्धस्वपतिने उत्तर दिया,—सहस्र लोचन! मैं इस विषयमें क्या परामर्श हूँ। अबसे पहले तुमने उस निरपराध मुनिवरको निहत कर जो घोर पाप अर्जन किया है, उसका कुत्सित फल अवश्य ही भोग करना पड़ेगा। उपरत पापपुण्यका फल शीघ्र ही फलता है। अतएव कल्याणकामुक लोगोंके विचार कर काम करना नितान्त कर्त्तव्य है। शक! तुमने लोभ और मोहके घशयर्त्ती हो कर अकारण ही ब्रह्महत्या की है, अतएव उस पापका फल सहसा ही उपस्थित हुआ। यह वृत्रासुर सभी देवताओंके लिये अवध्य है। तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं, जो उसका विनाश कर सके।" वृद्धस्वपतिकी यह बात समाप्त न होने ही वहाँ ऐसा एक भयानक कोलाहल शब्द हुआ, कि गन्धर्वा, किन्नर, यक्ष, रक्ष, मुनि, ऋषि, नर, अन्नर सभी अपने अपने घर छोड़ भागने लगे। देवराज देवताओंके इस तरह भागते देख अत्यन्त चिन्ताग्रित हुए।

भीर-सुरास्य देवतामोक्षके उपयोगके लिये उन्हींमें श्रीहरिजी की आज्ञा हो, कि तुम लोग धनुमण, कद्रुमण, मन्त्रिज्योद्धरण, आदिदण्डण, पुत्र, धाम्, कुंजर, यरुण और धम आदि देवताओंकी पुजा करो। जस्य पशुधंय पुका दे मन्त्रय समो मन्त्रे मयमे वानवाहनों पर चट्ट कर जोग्य भावें।

सुरास्य देवताओंके प्रति इस तरह आज्ञा दे कर स्वयं घोरान्त पर सपार हूय और मुददेव पृदण्यतिके पुरमें एक भयने मयममे बाहर निकलें। जसमें भी देवताओंके आज्ञानुसार भयने भयने बाहरी पर चट्ट कर मुदके लिये हृत्तमज्जय हो मन्त्र्य जन्व्य प्ररण किया। हृदके माय मनी मरीधमके उत्तमो किलारे पर मुदकी प्रमोक्षामें लहे वृत्तासुरमें जा कर मुद करने लगे। यह मरामर मोगिमद घोरतर मुद मनुष्य पतिमागसे एक मी धवं तर अयागत कथा था। इसके बाद पहले घणन, पीछे वायुमण, इसके बाद धम, विमायसु और इन्द्र आदि मनी एक एक कर रणमें भाग गये।

वृत्तासुर देवताओंके इस तरह भागने देव हृदयिणमें विनाके आभ्रममें गया और माहांग प्रणाम कर उनमें कहने लगा—विना! मैंने आपके आज्ञानुसार मारी संभ्राम में हृददि देवताओंके एक एक करके पराजित किया है। ये सबके सब भाग गये हैं। मैंने देवराजके मन्त्रमणके छोन लिया है और भीत कणिकके मारना मनुषिय मन्त्रक उन मरीके विनाज नहीं किया है। इस समय आता शीतिये, कि आनेके योग्यमें मुदकी कीमता कार्य करना पड़ेगा।

विभक्तमों मयने सुबके मुदमें उवकी विवक्तकी बात सुन हृदयमःकणलगे सुबके करने लगे, "आज मैं वास्वयमें सुबधान हुआ, मेरा विमज्जन निश्चयपर जरा विवृति हूय, देद गतिज हूं और होवम मार्यके हुआ है। हृदयमदक! इस समय जे कह रहा हूं, उसे ध्यान दे कर सुनें। मायवाम हो विदर भावन पर मीट्ट कर मन्त्रमों विम संवाम करे। मन्त्रमा मन्त्रमण मन्त्रु करे। इसमें राज्ञ, मन्त्र, कर और संभ्राममें जितव लाम देना है। मन्त्रक मन्त्र दिव्यमयकी मन्त्रमण कर उमत्र पर मन्त्र करे और मन्त्रमणमन्त्रमन्त्रिज

दुमामो इन्द्रका कथ करो। सुविभयिण तथा माय-धानीसे धनुमणनका भजन करदेम-धे मनवाप्यार कथ प्रदान करेगे। हे पुत्र! यद्यपि तुम्हारे इस समयके कार्यामें हृद मैं स्थण्य हुआ हूं, तथापि पुत्रदण्डमन्त्रिन धैरमाय मेरे मनमें मदा हो जागरित है, मैं तुवसे मी मही सज्जा और मुदके किसी तरह नाशिन नहीं मिल रहा है। और अधिक कथा कहे, मैं निरप हो पुत्र-मायगरी प्रवाहित हो रहा हूं। तुम मेरा उच्चार करो।"

वृत्तासुर विम्वयमके मान मन्त्रमन्त्रन पर्यंत पर जा कर बठौर तपस्या करने लगा। देवराज इन्द्र मन्त्रासुरके इस तरह कठोर तपस्या करने देव्य बहुत मय-मोत हूय और उन्हींमें उसके तपके भङ्ग करमेके लिये अमित प्रभावजाली मन्त्रय, म्हा, यरुण, विमर, विद्या धर, अमरा और अयाग देवताओंके उमके निवृट्ट मोग। देवदूत मये विन्नु ये किसी तरह उमकी तपस्याके भङ्ग न कर सके। तपस्याविरत वृत्तासुर विन्नुवाम भी मयनी तपस्यासे विरत न हुआ। इसमें मनी मोग मोट भागे।

इसी तरह ध्याममें रत रह कर वृत्तासुरने १०० वर्षों विना लिये। इसके बाद मन्त्रिज्योद्धरणक प्रजा उमके प्रति अनिग्रय समुप हो हंय पर चट्ट कर उमके समीव पशुधंय और उममें पर प्रार्थना करनेके लिये कहा। वृत्तासुर मयमें मन्त्रकता मन्त्राके देव और उनकी सुधाभरण वाषवायनी सुन कर मन्त्रकधु-बहामें हूय मन्त्रमा लडा हो कर उमके धरुणमण्ड पर गिरा, किट हाय मोट्ट कहने लगा,—"प्रमो! मेरे मानममें एक दूधूतमोंय काममा उम गई है। माय मन्त्रक है, मन्त्रा जानने हैं, किट भी मैं कहना हूं, तुमिये। हे माय! सीह, बाण, मूक, आर्द्र मन्त्रुका और शंय तथा भयव मन्त्र जन्मोंमें मेरे मन्त्रुम ही और मुदमें मेरे कथनोंकी वृद्धि है।" धनुकी इस उक्ति पर प्रजा मन्त्रमणु कह उमके मन्त्रमणुकर पर प्रदान कर मन्त्रिज्यके लगे गये। मन्त्रुवर भी पर मन्त्रा कर हंय दिव्यमें परकी और मन्त्रा और विनाके मन्त्रा मन्त्रुय का इममें मन्त्रमणुय मन्त्र मन्त्रे कह सुन है। विभक्तमों परव

आहादित हुए और पुत्रको शंत शत धर्म्यवाद और आगो-
वांद दे कर कहने लगे, 'वंदस् । तुम्हारा सवाधर्म में मङ्गल
है । तुम मेरे उस परम धैरी त्रिशिराविनाशकारी पापात्मा
पुरन्दरको मार कर और विद्वेशों का एकाघोष्वर बन
मेरे पुत्रशोकसे प्रदीप्त हृदयमें शान्तिवारिसे सिञ्चन करो ।
तुम निश्चय जानना, त्रिशिरा मेरे मानसक्षेत्रसे कभी हट
नहीं रहा है, वह सुगोल, संत्यवादी, जितेन्द्रिय, तपस्वी,
और वेदविदोंमें अग्रगण्य था । हाय ! मेरे उम्र गुण-
वान् मिय पुत्रको पापमति पुरन्दरने निरपराध ही मार
झाला है ।

घृत्नासुर पिताका इस तरह शोककातरतापूर्ण वाषय
सुन कर इन्द्रके प्रति मन ही मन अत्यन्त क्रोधित हो
शीघ्र ही समरसज्जा कर दलबलके साथ इन्द्रको मारनेके
लिपे चला । निरन्तर दुन्दुभिषोंका निर्घोष और शङ्क-
नाद होने लगा । असंख्य सेना-निनादसे अमरावती
कांपने लगी और देवता भयभीत हो भाग जाने पर उद्यत
हुए । देवराज भी निरन्तर शत्रुको सञ्चित ज्ञान
धासन्न विपद्की आशंकासे भयभीत हुए और युद्धके
लिपे सेनासमागमका आयोजन कर लोकपालोंको घुला
गृध्रव्यूह (गृध्रपक्षीकी तरह सेनानिवेश)की रचनाके वाद
समरकी प्रतीक्षामें खड़े रहे । इधर घृत्नासुर भी तेजीसे
आ बहाँ उपस्थित हुआ । देवदानवोंका तुमुलसंग्राम होने
लगा । परस्पर विजयकी कामनासे घृत्नासुर और घामव-
में घोर युद्ध होने लगा । उस भयङ्कर युद्धानलके प्रख्य-
लित होने पर दैत्य प्रसन्न और देवगण विमर्ष भावको
प्राप्त हुए । घृत्ने इन्द्रको सहसा कवच और वस्त्रादि विर-
हित कर अपने मुखमें छाल लिया और पूर्व घैरताका
स्मरण कर हृष्टचित्तसे अयस्थान करने लगा ।

इन्द्रके घृत्ने द्वारा इस तरह निरुद्ध होने पर देवगण
अतिशय कातर और शोकित हो, हा इन्द्र ! हा इन्द्र !
चिहाने लगे तथा दीन और व्यथित मनसे सुरगुरु घृह-
स्पतिको प्रणाम कर सबोंने उनसे निवेदन किया, "हे
त्रिजेन्द्र ! आप हम सबोंके गुरु हैं, ऐसा परामर्श
दीजिये, जिससे इस महाविपद्से उरुणों और घृत्नासुरके
हाथसे इन्द्रका छुटकारा हो । अभिचारक्रिया द्वारा
उमका उपाय कीजिये । बिना इन्द्रके हम सभी निर्बल
तथा दतोत्साह हो गये हैं ।"

देवताओंकी ऐसी कातरोंकि सुन सुरानार्थ्यने कहा,—
हे अमरगण ! तुम लोग सहसा भयभीत न हो ; देवराज
घृत्नेके मुखमें जा कर अवसन्न हुए हैं सही; किन्तु उमके
कोष्ठमें जीवित ही हैं । अतएव जीवितावस्थामें हो
उसको निकालना उचित है । यह बात सुन कर देव-
ताओंने उनकी मुक्तिका उपाय खोजना आरम्भ किया ।
सभोंने गभीर चिन्ताके साथ मन्त्रणा कर अन्तमें महा-
सत्यसम्पन्ना जूमिका (जंभाई)की सृष्टि की । इससे
घृत्नासुरने भी जंभाई ली । इस अवसरमें इन्द्र अपने
शरीरको सङ्कुचित कर घृत्नेके मुँहसे बाहर निकले ।

इन्द्रने इस तरह बाहर निकल फिर उसके साथ अयुत
वर्षव्यापे निदारुण लोमहर्षण भीषण संग्राम जारी
किया । पीछे जब यरमदसे मरा घृत्नासुर क्रमशः
रणमें वदित होने लगा तब उसके तेजसे धर्षित और
पराजित इन्द्र अत्यन्त व्यथित हो रण छोड़ भागे ।
सुरपतिको भागते देख अन्याय देवता भी धीरे धीरे
उनके अनुगामी हुए । इस अवसरमें घृत्ने समस्त स्वर्ग
राज्य पर अधिकार कर समस्त देवउद्यान, गजराज पेरा-
घत, इष्यर उर्ध्वश्रवा, कामधेनु, पारिजात, वायव्य
विमान और अप्सरायें आदि स्वर्गलोकका उपभोग
करने लगा । विश्वकर्मा भी पुत्र सुखसे सुखी हो वटां
ही अवस्थान करने लगे ।

इधर सुरगण अपने अपने स्थानोंसे भ्रष्ट हो गिरिदुर्ग
पर अवस्थान करने लगे । यज्ञभागसे धञ्जित रहनेके कारण
उनकी अत्यन्त कष्ट होने लगा । पीछे मुनिपोंसे वे मिल
कर इन्द्रके साथ कैरागशिखर पर महादेवके पास गये
और हाथ जोड़ कर अति विनोत भावसे उनके चरणोंमें
गिर कर कहने लगे—"मगधन् ! आप अवार कृपा-
निधि हैं । आप हम लोगोंका बचाइये । हम लोग
घृत्नासुर द्वारा पराजित और स्थान-भ्रष्ट हुए हैं और
अत्यन्त क्लेशके साथ दिन बिता रहे हैं । हे दयामय !
आप दया प्रकाश कर उस यरमदसे मरा दुवृत्त घृत्ना
सुरका ध्वंस कीजिये और हम लोगोंका दुःखमें
बचाइये ।

देवताओंके इस तरह दुःखपूर्ण विनोत वाषयाद्यमान-
पर शत्रुने कहा—हे सुरगण ! ब्रह्माका भाग कर हरिके

आहादित हुए और पुत्रका शत शत धन्यवाद और आशीर्वादां दे कर कहने लगे, 'वत्स ! तुम्हारा सखाधर्म मङ्गल हो। तुम मेरे उस परम घेरी विशिवाविनाशकारी पापापुत्र पुण्ड्रके मार कर और त्रिदशोका एकाधीश्वरुषया मेरे पुत्रशोकसे प्रदीत हृदयमें शान्तिवारिसे सिद्धि ज्ञानितुम निश्चय जानना, विशिवा मेरे मानसक्षेत्रोंका विशेष नहीं रहा है, वह सुगोल, सत्यवादी, जिद कर जगत्के और वेदविशेषमें अग्रगण्य था। हाथ में और भी कहते यान् प्रिय पुत्रके पापमति पुण्ड्रके निष्ठा कर सकेंगे। दाला है।' त उत्पन्न हो, हम

यत्नासुर पिताका इस तरह शोक करा देगे। सुन कर इन्द्रके प्रति मन ही मन चत सुन कर पड़ले तो शीघ्र ही समरसजा कर दलबलके चत इन्द्र मिलेज, शत्रु, लंपट लिये चला। निरन्तर दुन्दुभका विश्वास कदापि नहीं नाद होने लगा। असुर लोग साधु और सद्गुणसम्पन्न कांपने लगे और देवता प्रतिबुद्धि दृष्टिको सुदार्दको और हुए। देवराज भी शय लोभकेना चित्त ज्ञान्त है, इससे आसन विपदको भाता पता आप लोग नहीं या सकते; लिये सेनासमागमक ग्रह्य करना आप लोगोंको कदापि गृध्रयूह (गृध्रपक्षी) सुरकी इस उक्ति पर, इन्द्र किसी तरह समरंकी प्रतीक्षामें ता न करेगे, इस मर्मको नाना प्रकारकी आ वहां उपस्थित अश्रुविके फिरसे विशेष अनुरोध करने लगा। परस्पर जन्य सन्धि स्थापन पर सम्मत हुआ सही; में घोर युद्ध उन लोगोंसे कहा, कि मुनियोगे ! इन्द्र यदि लित होने क और शत्रु वस्तु द्वारा अधवा काष्ठ, प्रस्तर प्राप्त हुए गारा दिन या रातको मुझे मार डालनेकी चेष्टा दित कर तो मैं इस शर्त पर उससे सन्धि कर सकता स्मरण सवा इसके अन्य किसी शर्त पर नही। अश्रुविके वृत्तको यह शर्त स्वीकार ली और इन्द्रको ही कर अन्तिके शपथ दे दोनेमें सन्धि स्थापित करा दिया। इसके बाद दोनों एक साथ रहने लगे। एक साथ खाना, एक साथ बैठना आदि कार्या होने लगा। सच बात तो यह है, कि यह कपट-सम्मेलन होने पर असुरराजके मनमें किसी तरहका कपट न रहनेके उसने इन्द्रके साथ प्रीति कर ली। दूसरी ओर के बधके लिये उत्सुक रहा करते थे।

इन्द्रके साथ यह सम्मेलन और उसके प्रति घृत्तके अकपट विश्वासका विषय जान कर विश्वकर्माने घृत्तसे कहा, 'वत्स ! जिसके साथ एक वर शत्रुता उतरा हुआ है, उसका विश्वास करना कदापि सङ्गन नही। देखो, वह इन्द्र मदा लोभो, द्वेषो, पराधेके दुःखमें उत्सवान्वित, परदारलम्पट, पापी, प्रतारक, छिद्राग्नेषी, हिंसक मायावी और गर्वित है; अधिक क्या कहें, उस पापीशुने अवलीलाकमसे पापमय परिव्राग कर माताके गर्भमें प्रवेश कर उसके गर्भस्थित रोते हुए बालकोंके सात सात भागोंमें विभक्त कर ४६ अंशोंमें काट दिया है। अतएव वत्स ! सोचो जरा, ऐसे मिलेज लोगोंका पापकार्यमें निरत रहनेमें लज्जा ही क्या ?'

यत्नासुरका मगकाल निकट था, इससे पिताके इस उपदेश भरे वाक्यसे प्रयोधित हो कर मो उरुने उसे सुनकर नहीं समझा। सुतरां विपद् भी उसके पोछे आ उपस्थित हुई। एक दिन तिमिरमयी सन्ध्या-मुहूर्त्तमें यत्नासुरके निवर्जनमें देव इन्द्रके मनमें ब्रह्माके वरदानका विषय याद आ गया। उन्हेने मेरा, कि यद्यो मेरा चिरानुसन्धित यथायं समय है। क्योंकि-यह दिन भी नहीं रात भी नहीं, अतएव अब देर न कर शीघ्र ही काम करना चाहिये। कैसे क्या करें, इसको सोचनें ज्ञातर तथा भीतलतत हो वे अथवात्मा हरिको स्मरण करने लगे। हरि भी पूर्वा मन्त्रणाके अनुसार स्वयं भा अदूरव-भायसे उनके घञमें घुसे, इससे इन्द्रके चित्तमें जरा स्थिरता आई। इस समय फिर सामनेमें सागरवारिके पर्यत प्रमाण फेनको देख कर, यह सूझा भी नहीं और शत्रु भी नहीं और शत्रु भी नहीं ऐसा स्थिर किया। उस समय शकिसञ्चयके लिये पराशपिन मुपनेश्वरी महामाया देवी भगवतीने इस फेनमें अपना अंज संस्थापन किया। इसके बाद नारायणाधिष्ठित घञ भी उस फेनपिण्ड द्वारा आवृत हुआ। इन्द्रने उस फेनावृत घञ घृत्तके प्रति फेका। असुर अकृमणात् घञादत हो क्षणकालमें अचलेय पर्वतकी तरह निपतित हुआ और चिर दिनके लिये उसने इस जीवनकी यात्रताय सुप्त समृद्धिको निलाञ्जलि दे दी।

ऊपरमें जो पौराणिक आख्यायिका उद्धृत की गई,

और ११) अथ ३।४३।३ मन्त्रमें इन्द्र द्वारा वृत्रको घेरनेकी बात लिखी है।

फिर १।३२।१२-१४ मन्त्रमें लिखा है, कि 'एक देव वृत्रने इन्द्रके वज्रके प्रति जब भीमप्रहरण प्रहार किया, तब इन्द्रने अश्वघुच्छकी तरह धन कर उस अस्त्रघातका निवारण किया था। अधिको हनन करनेके समय इन्द्रके हृदयमें भयका सञ्चार हुआ था। उसमें उन्होंने वृत्रके दूसरे हन्ताकी प्रतीक्षा की थी; अन्तमें वे ६६ नदियों और जलाशयोंको पार कर प्रपेन पक्षीकी तरह भागे थे।' सांयणाचार्यका कहना है, कि वृत्रको हनन करनेसे पहले इन्द्रके हृदयमें वृत्रका मारना उचित है या नहीं यह भय समाया था; किन्तु मूल पढ़नेसे मालूम होता है, कि इन्द्र शत्रुके भयसे ही भागे थे। इसी बातके आधार पर पौराणिकोंने लिखा है, कि इन्द्र वृत्रके भयसे फीलेमें छिपे थे।

सिवा इसके ऋग्वेदके ३।३०, १।५२।१०-१।५।८।६।६, ६।५२।८।६।३, मन्त्रमें इन्द्र द्वारा वृत्रके हाथ पैर, मुख मस्तक घुटना आदि छिन्न भिन्न होनेकी बात है। युद्धकालमें वृत्रने भी इन्द्रके प्रति विद्युत्सुवर्षण, विकट गर्जान, और जल वर्षण आदि किया था। (१।८।१२, १।३२।१२) इस समय वृत्रने नाना तरहके भयावह शब्दोंका वारण कर आकाशको कम्पित किया था। (८।८।५।७, ५।२६।४, १।६१।१०, ६।१७।१०) जो वृत्र जलबन्ध कर अन्तरिक्षके ऊपर सोया था और अन्तरोक्षमें जिसकी असीम-व्याप्ति थी, उसी वृत्रके दोनों घुटनेको इन्द्रने शब्दाय-मान भजसे काट कर जमीनमें गिरा दिया। (१।५।२।६)

१।८।५ मन्त्रमें वृत्रको उच्चसानुन्ध कह कर वर्णना की गई है। ८।३।१६ मन्त्रमें इन्द्र द्वारा उसको ऊँचेसे नीचेमें गिरा कर और ७।१६।५ और ८।८।२, १०।८।६।७ मन्त्रोंमें इन्द्र द्वारा उसके ६६ पुरियोंके ध्वंसकी बात लिखी है।

अथ १।३३।४ मन्त्रको पढ़नेसे मालूम होता है, कि वृत्र धनवान् टाकुदलपति और उसके अनुचर सनकगण यक्षविरोंपी थे। इन्होंने इन्द्रके साथ घोर युद्ध किया था। उक्त वृत्रानुचरने (भुजके बलसे) पृथ्वीके आच्छादन किया था और वे दिग्गय और मणि द्वारा शोभमान हुए

थे। वे वर्तमान शत्रु इन्द्र द्वारा विजित हो भागे, द्रत्यादि वृत्तान्त पौराणिक आख्यानोंका पोषक है, यह कौन मस्वीकार करेगा ?

वृत्रके साथ वृत्रहन्ताके युद्धको गद्य प्राचीन भाष्योंमें प्रचलित था। अतएव हिन्दुओंके सिवा अन््यान्य भाष्यों छतियोंमें भी इस कहानीका कुछ अंश पाया जाता है। इरानियोंके 'अवस्ता' शास्त्रमें वृत्रहन्ताकी उपासना लिखी है। निम्नोक्त विवरणमें उसका गामास मिलता है—

"अहुरके सृष्ट घेरैय्म हो (संस्कृत वृत्रघ्न) हम लोग यक्ष प्रदान करते हैं"

जरथुस्त्रने अहुर गजदसे पूछा, कि हे सद्यच्चिन्त अहुर-मज्दु ! हे जगत्के सृष्टिकर्ता पवित्रात्मा ! स्वर्गोप उपास्योंमें कौन सर्वोत्कृष्ट अस्त्रधारी है ? अहुर-मज्दुने उत्तर दिया—हे स्मितम जरथुस्त्र ! अहुरके सृष्ट घेरैय्म (सर्वोत्कृष्ट अस्त्रधारी) है।

(जम्द अवस्ता, चहराम जस्त)

फिर उक्त प्रथम महिपिनाशके सम्बन्धमें भनेक बातें पाई जाती हैं, हम उनका कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

वोर्यवान् आठवकुलके उत्तराधिकारी धृतेनने भी (संस्कृत भाष्य जित या वीतन) चौकोन वरुण प्रदेशमें एक सुवर्ण सिंहासन प्रदान किया। उन्होंने उससे एक वर प्रार्थना कर कहा, 'हे ऊर्ध्वविचारी दायु ! मुझको यह वर दो, कि मैं तीन मुख और तीन मस्तक युक्त अजिदहको (संस्कृत 'अहि' 'वहक') परास्त कर सकूँ।

(जम्द अवस्ता, रामजस्त)

इरानियोंके अवस्तामें वृत्र और अहिका परिचय जैसा है, यूनानो प्रथमोंमें वैसा ही विवरण दिखाई देता है—

"Ahi reappears in the Greek Echis, Echidna, the dragon which crushes its victim with its coil" (Cox's Introduction to mythology and folklore. p. 34 note) "But besides Kerberos (ऋग्वेदोक्त यमका कुङ्कुर सरमा) there is another dog conquered by Hercules, and he (like Kerberos is born of Typhaon and Echidna (ऋग्वेद-

वृत्रहन्तु (सं० पु०) वृद्धरूप हन्ता । वृत्र हननकारी, वृत्रनाशक, इन्द्र ।

वृत्रारि (सं० पु०) इन्द्र ।

वृषक् (सं० शब्द०) पृथक् । "यतस्ते वृषगणयः"

(शृक् ८।४।४)

वृथा (सं० अर्थ०) निरर्थक, निष्फल, व्यर्थ, फाजूल ।

वृथाजन्मन् (सं० क्ली०) वृथा निरर्थक जन्म । निरर्थक जनन, निष्फल जन्म । अग्निपुराणमें चार प्रकारके वृथा जन्मके विषयोंका उल्लेख किया गया है । जिसके पुत्र न हो, जो अधार्मिक हैं, जो सर्वथा परपाकभोजनकारी अर्थात् नियत परप्रत्याशी हैं और जो पराधीन हैं—इन चार तरहके लोगोंका वृथा है ।

वृथात्व (सं० क्ली०) मिथ्यात्व, वृथा होनेका भाव या धर्म ।

वृथादान (सं० क्ली०) वृथा निरर्थक दान । निष्फल दान । अग्निपुराणमें १६ प्रकारके वृथादानकी यात कही गई है । देवपितृविहीनदान, अर्थात् जो दान पितृ और देवके उद्देशसे न किया जाये, वह वृथा है ।

वृथामांस (सं० क्ली०) वृथा निरर्थक मांस । जो मांस देवता और पितृगणको चढ़ाया न गया हो, वह मांस वृथा है । ऐसे वृथामांसके भक्षणका निषेध किया है । अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो वृथामांस भक्षण करता है, उसे प्रेतत्व प्राप्त होता है ।

मनुसंहितामें वृथामांस भोजन विशेषरूपसे निषिद्ध है । प्राणिहितान न करनेसे किसी तरह मांस उद्वेष्य नहीं होता । प्राणिवध काट्यो किसी तरह स्वर्गजनक नहीं हो सकता । अतएव मांस भोजन निषिद्ध है । मांसकी उत्पत्ति, जीवधारियोंका वध, और वधन-यन्त्रणा इन सबकी विशेषरूपसे पध्यालोचना करने पर यह स्पष्ट है, कि वध या अवध सब तरहके मांसका धाना उचित नहीं ।

शास्त्रविधिका त्याग कर जो निशाचरोंकी तरह मांसभक्षण नहीं करते, वे लोकसमाजमें विषय गिने जाते हैं और कभी कभी अ्याधि या रोम द्वारा वे पोंडित भी नहीं होते । पशुहानन करनेकी आशा देनेवाला, मरे हुए पशुके मांस माग लगानेवाला, स्वयं पशुहन्ता, मांस

व्यय विक्रयकारी, मांस पकानेवाला, मांस परोसनेवाला, और मांसभक्षक, वे षाठ आदमी ही घातक कहे जाते हैं । जो आदमी पितृ और देवोंको अर्चना न कर दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहते हैं उनके समान जगत्में पापकारी और कोई नहीं । जो मनुष्य स्त्री वर्ण तक धार्मिक अभ्युत्थेय यज्ञका अनुष्ठान करते हैं । और जो यावज्जीवन मांस भोजन न करे वे दोनों ही समान पुण्यफलके अधिकारी हैं ।

वध मांसभक्षणमें, वध मद्यपान करनेमें, वध मैथुन करनेमें दोष नहीं । क्योंकि भक्षण, पान, मैथुन आदि विषयमें जोयकी प्रवृत्ति स्वाभाविकी है । किन्तु जो माग्यवान् व्यक्ति इनसे सम्पूर्णरूपसे वृथक् रहते हैं, यह महापुण्यवान् है ।

वृथापाद (सं० त्रि०) अनायास हो शब्दको अमिमवकारी ।

वृद्ध (सं० त्रि०) वृद्ध वृद्धी क, (वल्ग विभाषा । पा ७।२।१५) इति नेट् । गतधीवन, वृद्धा । पर्याय—प्रवर, स्थविर, जीन, जीर्ण, जरन्, जर्जर, पलित । राजनिर्घण्टके मतसे शक्यावन वर्णके शब्द मनुष्य बुद्धिवादी होता है । अवस्था तीन हैं—बालक, युवा और वृद्ध । इनमें सोलह वर्णसे कम उम्रकी बाल अवस्था है । यह बाल अवस्था भी तीन प्रकारकी है दुग्धपायी, दुग्धान्नभोजी और अन्नभोजी । एक वर्षकी अवस्था तक दुग्धपायी, दो वर्ष तक दुग्धान्नभोजी, इसके बाद अन्नभोजी है ।

१६से सत्तर वर्षकी अवस्था तक मनुष्यको युवक या मध्य वयस्क कहते हैं । यह युवा चार प्रकारकी है—वर्द्धनगोल, युवापूर्णवीर्य और क्षयगोल । इनमें २० वर्ष तक वर्द्धनगोल अवस्था, युवा, पूर्णवीर्य, और क्षयगोल । इनमें २० वर्ष तक वर्द्धनगोल अवस्था, ३० वर्ष तक युवा और ४० वर्ष तक पूर्णवीर्यादि सम्पन्न है अर्थात् षोडश रसरक्त आदि समस्त पातु इन्द्रिय बल और उरसाद आदि स्थिर भावसे पूर्ण रहता है । इसके बाद ७० वर्ष तक क्रमसे समस्त घातु इन्द्रिय, बल, उरसाद आदि किञ्चिन् क्षीण होता रहता है । ७० वर्षके बाद रस रक्त आदि घातु, इन्द्रिय और बल क्षीण होने लगता है तथा बलि, पलित, घालित्य युक्त हो

यन और कफ, वात, खाँसी, सूजन और आमशोय-नाशक ।

३ नीलबुडा ।

वृद्धदारकादिलीह (सं० क्ली०) ऊरुस्तम्भरोगाधिकारोक्त औषधविशेष । इस प्रस्तुत-प्रणाली इस तरह है—
वृद्धदारक, इमली और दन्तीमूल, हस्तोर्कण, चितामूल, मानकचू, सोंठ, विषर, मिर्चा, आँवला, हरीतकी, बहेडा, चिता, मोथा, विडङ्ग, इन सब पौधोंके प्रत्येकको चूर्ण कर जितना चूर्ण होगा, पहले उसे अच्छी तरह मिला कर एक कर देना होगा । पीछे जलसे सात कर २ रत्तीके प्रमाण गौली तट्टार करने होगी । यह गौली ऊरुस्तम्भ तथा आमवात आदि रोगोंमें भी विशेष उपकार करती है ।

वृद्धशक (सं० क्ली०) वृद्धत्वनाशक दारु यस्य । वृद्ध-दारक वृक्ष ।

वृद्धशू (सं० पु०) अग्निप्रतारि वर्णोय एक ऋषिका नाम ।

वृद्धशूष (सं० पु०) १ सिरिसका पेड़ । २ सरलका पेड़ ।

वृद्धधूम (सं० स्त्री०) श्लेष्मातक वृक्ष ।

वृद्धनगर (सं० क्ली०) बडनगर । नगर देखो ।

वृद्धनामि (सं० त्रि०) वृद्धः प्रवृद्धो नामिर्यस्य । उन्नत नामि, जिसका पेट निकला हो, तो देनाला, तो देल ।

वृद्धपरशर (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम ।

वृद्धप्रपितामह (सं० पु०) प्रपितामहाद्बृद्धः । प्रपितामह-तात, दादाका दादा, परदादाका पिता ।

वृद्धथला (सं० स्त्री०) वृद्धे थला । १ महासमझा, कंगही या कंपी नामका वृक्ष ।

वृद्धवृहस्पति (सं० पु०) १ एक प्राचीन धर्मशास्त्रकारका नाम । २ उनके वनाये ग्रन्थका नाम ।

वृद्धभाव (सं० पु०) वृद्धस्य भावः । वृद्धका भाव ।

वृद्धभोज (सं० पु०) एक धर्मशास्त्र सम्प्रदायकारका नाम ।

वृद्धमनु (सं० पु०) १ एक धर्मशास्त्रकारका नाम । २ एक ग्रन्थका नाम ।

वृद्धमहस् (सं० त्रि०) वृद्धं महो यस्य । वृद्ध नेजाः अनिग्रय तेजोयुक्त । (शुक ६।२०।४)

वृद्धयचनाचार्य (सं० पु०) यवनज्ञानक नामक ज्योतिष ग्रन्थके रचयिता ।

वृद्धयामेश्वर—हिमालय शिरस्थ एक तीर्थका नाम ।

वृद्धयाज्ञवल्क्य (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम ।

वृद्धयुवती (सं० स्त्री०) १ कुम्भी, धात्री, शार्दा ।

वृद्धराज (सं० पु०) अमलयेत ।

वृद्धचदरी—हिमालय शिखरस्थ एक तीर्थका नाम ।

वृद्धवयस (सं० क्ली०) वृद्धं वयः । प्राचीन वयस, बुढ़ापा । (त्रि०) वृद्धं वयो यस्य । २ वृद्धय, बुढ़ा । ३ प्रसुतान्न, प्रसुर अन्नविशिष्ट । (शुक २।२७।३)

वृद्धवशिष्ठ (सं० पु०) १ एक धर्मशास्त्रकारका नाम । २ वशिष्ठसिद्धागत या विश्ववकाश नामक ज्योतिषग्रन्थके प्रणेता ।

वृद्धवाग्भट (सं० पु०) १ एक वैद्यग्रन्थके रचयिता । २ ग्रन्थभेद ।

वृद्धयादसुरि (सं० पु०) एक जैनाचार्यका नाम ।

वृद्धवादित्र (सं० पु०) वृद्धयादी, एक जैनाचार्यका नाम ।

वृद्धवाशिनी (सं० स्त्री०) शृगाल, स्यार, गौड ।

वृद्धयाहन (सं० पु०) नामका पेड़ ।

वृद्धविभीक (सं० पु०) वृद्धयः प्रवृद्धो विभीतक इव । आघ्रातक, आमड़ा ।

वृद्धविष्णु (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम ।

वृद्धवृष्ण (सं० त्रि०) वृद्धय वृष्णि-सम्बन्धीय ।

वृद्धवृष्णिय (सं० त्रि०) वृद्धय वृष्णि-सम्बन्धीय ।

वृद्धगङ्ग (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम ।

वृद्धशर्मन् (सं० पु०) भारतीय एक राजाका नाम ।

(महाभारत)

वृद्धजयस (सं० त्रि०) प्रवृद्धवत्, अत्यन्त बलविशिष्ट ।

(शुक १।८७।६)

वृद्धशाकल्य (सं० पु०) एक ऋषिका नाम ।

वृद्धशातातप (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम ।

वृद्धशोचिस (सं० त्रि०) अनिग्रय तेजोयुक्त, अनि तेजस्वी ।

वृद्धधना (सं० पु०) वृद्धधनस्, इन्द्र ।

वृद्धधावक (सं० पु०) कापालिक ।

करनेवाला समाजमें निर्दिष्ट होता और राजाके यहां दण्ड पाता है। इसके संबंधमें याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है—जब चन्धक रथ कर कर्ज लिया जाता है, तब हर महीनेमें सैकड़ें बरसी भागका एक भाग सूद या वृद्धि और जब कोई चीज चन्धक नहीं रखी जाती, तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन वर्णोंके अनुसार क्रमसे सैकड़ें सी भागका २, ३, ४ और पांच भाग सूद लिया या दिया जाना चाहिये। यथात् ब्राह्मणको एक सौ पण कर्ज देने पर २ पण और क्षत्रियको इस तरह कर्ज देने पर तीन पण वृद्धि या सूद देना पड़ता है।

जो ऋणियके लिये परदेशमें जाते हैं, वे यदि कर्ज ले तो उनको सैकड़ें दश भागका एक भाग अर्थात् सैकड़ें दश रुपयेके हिसाबसे और समुद्र पार जानेवाले बनिक्को एक सौ भागमें बीस भाग वृद्धि देंगे। सब जातियां हो ऋण ग्रहण करते समय सबको अपनी अपनी निर्दिष्ट वृद्धि दें।

नारदसंहितामें वृद्धि चार प्रकारकी कही गई है—
कायिका, कालिका, कारिता और चक्रवृद्धि।

"कायिका कालिका चैव कारिता च तथा परा।

चक्रवृद्धिश्च शास्त्रेषु तस्य वृद्धिश्चतुर्विधा ॥"

प्रतिदिन वृद्धि देनेके नियमसे जब कर्ज लिया जाता या दिया जाता है, तब उसका नाम कायिका, मासिक सूदको कालिका और ऋणकारी जिस नियमसे कर्ज लेता है, उसको कारिता तथा जब सूदका सूद लिया जाता है, तब उसका नाम चक्रवृद्धि ही जाता है।

गुणान्दान शब्द देखो।

वृद्धिक (सं० लि०) वृद्धि स्वार्थे कन् । वृद्धिध ।
वृद्धिकर्मन् (सं० क्ली०) नान्दीमुखध्रादुध, वृद्धिध-
ध्रादुध ।

वृद्धिका (सं० स्त्री०) वृद्धिधरेव स्वाधे कन् टोप् ।
१ ऋद्धि नामकी व्योमि । २ शङ्खपुष्पा, श्वेतापरा-
जिता । ३ अर्धरुष्पी ।

वृद्धिजीवक (सं० लि०) सूखोर ।

वृद्धिजीवन (सं० क्ली०) यह जो सूद ले कर अपना जीवन निर्वाह करता हो ।

वृद्धिजीविका (सं० स्त्री०) वृद्ध्या जीविका । ऋणा-

दानजीविका, यह जो सूदपोरीसे अपना जीवन निर्वाह करता है। पर्वाय—अर्धाप्रयोग, कुसुद, कलाभिका । वृद्धि (सं० पु०) वृद्धिर् ददातीति दाक् । १ जीवक नामका छोटा क्षुप । २ शूकरकन्द । (लि०) ३ वृद्धिध देनेवाला । (इहत्त० ५३१७)

वृद्धिपत्र (सं० क्ली०) यह गल्ल जो सात अंगुली प्रमाणका होता है। यह गल्ल चार फाड़के काममें व्यवहृत होता है।

सुधृतकी टीकामें लिखा है, कि यह गल्ल दो तरहका है। अक्षिताप्र और प्रयताप्र। ये दोनों ही गल्ल सात अंगुल प्रमाणके होंगे। अर्धर्ष पञ्चांगुल वृक्ष और सादुर्षांगुलफल। इनमें पहलेंका क्षुर कहते हैं।

इसो क्षुरके आकारवाले शरत्तका नाम वृद्धिपत्र है। चीरफाड़की सुविधाके लिये इसका अग्रभाग ऋतु और गहरा दूसरी ओर झुका हुआ रहता है।

(वाग भट २६६)

वृद्धिभूत (सं० लि०) वृद्धिध-भूक्त । वृद्धिधमःस ।

वृद्धिमत् (सं० लि०) १ उरिधत, वर्धित, अंकुरित ।
२ षडुर्धनशील ।

वृद्धियोग—फलितउपोनिपके २७ योगोंमें एक योगका नाम।

वृद्धिध्राद (सं० क्ली०) वृद्धिधये यत् ध्रादुधं । वृद्धिध-
निमित्तक ध्रादुध, अम्बुदयक निमित्तक पितादिके उद्देश-
से ध्रादुधादि पूयक अन्न आदिका दान । अम्बुदयके लिये ही इसका अनुष्ठान होता है, इससे इसका अम्बुदयिक ध्रादुध मो कहते हैं। दश तरहके संस्कार कार्योंमें अर्थात् गर्भाधानसे विवाह तक इन दश संस्कारोंमें से प्रत्येकमें यह ध्रादुध करना होता है। इसके सिवा देव-
प्रतिष्ठा, वृक्षप्रतिष्ठा, जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा और तीर्थायात्राकालमें तथा तीर्थसे लौटने पर भी यह वृद्धिध्रादुध करनेकी विधि है। प्रेतके उद्देशके सिवा अन्य दूषितसर्गके समय और वास्तुयागमें भी इस ध्रादुधका विधान देखा जाता है।

वृद्धिध्रादुधमें सातवेदियोंको ६ पुष्पोंका अर्घात् पिता, पितामह, प्रपितामह और मातामह, प्रमातामह और

वृद्धसङ्घ (सं० पु०) वृद्धानां संघः । वृद्धसमूह, वृद्धतेरे
वृद्ध, पादक ।

वृद्धसुभ्रुत (सं० पु०) १ आदि सुभ्रुतमर्दिनाके
रचयिता । २ एक ग्रन्थका नाम ।

वृद्धसूचक (सं० पु०) कवाम ।

वृद्धसूत्रक (सं० स्त्री०) वृद्धस्य सूत्रं, ततः स्यात् कन् ।
इन्द्रजला, सुदोका सूता ।

वृद्धसेन (सं० त्रि०) पवृद्ध बलयिगिष्ट ।

(श्लक् ११८६:८)

वृद्धसेना (सं० स्त्री०) देवताजिष्की माता । चन्द्र-
वर्गीय भरतात्मज सुमतिके बीरस और इनके गर्भसे
देवताजित्ते जन्म लिया था । (भागवत १।१।१२)

वृद्धहारीत (सं० पु०) १ एक प्राचीन धर्मशास्त्रकार-
का नाम । २ एक धर्मशास्त्र ।

वृद्धा (सं० स्त्री०) वृद्ध टापू । १ गतवीयना, पुष्ट हो ।
पर्याय—पालक्या, पलित्या, स्थविरा, निष्कला, जरती,
गतात्तवा । ५५ वर्षके उपरान्त स्त्रियां वृद्धा कही
जाती हैं ।

“आयोद्गारु मेवद्वाला तदप्यो त्रिंशत्ता मता ।

पञ्चपञ्चाननः प्रौढा वृद्धा भवति तत्परम् ॥”

(काशिका)

१६ वर्ष तक बाला, ३० वर्ष तक तदणी, ५५ वर्ष तक
प्रौढा और इनके बाद वृद्धा कहलाती हैं । भावप्रकाशमें
लिखा है कि ५० वर्षके बाद स्त्रियां वृद्धा कही जाती हैं ।
वृद्ध्या स्त्रोका संसर्गं निविदुषु है । इससे मृत्यु होती
है । २ मंगुष्ट । ३ महाभ्रायणिका ।

वृद्धागङ्गा—यङ्गाल सिवुरेके उत्तरी भागसे प्रवाहित एक
नदीका नाम ।

वृद्धाङ्गुलि (सं० स्त्री०) वृद्ध्या अङ्गुलिः । हाथ पैरकी
मोटी उंगली, अंगुठा ।

वृद्धापल (सं० स्त्री०) एक तीर्थका नाम । मन्दाज
प्रोत्तिष्ठमीके अर्काट जिलेका एक नगर । वर्तमान
नाम—बिन्धावलम् । विन्धावलम् देखो ।

वृद्धाति (सं० पु०) एक श्राद्धका नाम ।

वृद्धातये (सं० पु०) आते व श्राद्धि ।

वृद्धादित्य (सं० पु०) आदित्यका दूसरा नाम ।

वृद्धान्त (सं० पु०) १ सम्मानका पात या स्थान ।
(दिव्या०) शान्तवृद्धको चरमदशा ।

वृद्धायुः सं० त्रि०) प्रवृद्धय मायुयुक्त ।

(श्लक् १।१०।२)

वृद्धाद्यंभट (सं० पु०) एक ज्योतिशास्त्रकार ।

वृद्धि (सं० स्त्री०) वृद्धय-क्तिन् । दृष्टवर्गके अन्तर्गत एक
ओषधि । गौडदेशमें दक्षिणावर्त्तफला नामसे प्रसिद्ध है ।
पर्याय—घोषा, श्रद्धिष, सिद्धिष, लक्ष्मी, पुष्टिदा, वृद्धिष-
दातो, मङ्गल्य, ध्रा, सप्युद्ध, आशो, जनेष्टा, भूति, सुत्,
सुख, जोषभद्रा । गुण—मधुर, सुस्निग्ध, तिक्त, शीतल,
रुचि, और मेघावदूर्धक, श्लेष्मा, कुष्ठ और कृमिनाशक
है ।

श्रद्धिष और वृद्धिष—ये दो तरहके कन्द कोपवामल
प्रदेशमें उत्पन्न होते हैं । ये दोनों कन्द शुक्रवर्ण रोम-
युक्त, छिद्रसमन्वित, और लतोजात हैं । श्रद्धिष रुईकी
पांडके स्थानमें है, किन्तु फल घामावर्त्त है और वृद्धिषका
फल दक्षिणावर्त्त है । श्रद्धिषके गुण—बलकारक, त्रिदोष
नाशक, शुक्रवदूर्धक, मधुरस, मुक्त, बल, और वेद्यवर्त्त-
वर्द्धक, मूर्च्छा और रक्तपित्तनाशक ; वृद्धिषके गुण—
गर्भप्रद, श्रोतशोर्ष, मांसवदूर्धक, मधुरस, शुक्रवदूर्धक
रक्तपित्त, क्षत, घ्रांसी और क्षयरोगनाशक ।

परिभाषा मतसे श्रद्धिषके अभावमें बला और वृद्धिष-
के अभावमें महाबला देना होता है ।

२ नीतिवेदिषोके मतमें क्षयादि त्रिवर्गके अन्तर्गत
वर्गविशेष । कृषि आदि ऋषि वर्गके अपवचका नाम
क्षय और उपवचका नाम वृद्धिष है । कृष्यापवचर्षं यथा—
कृषि, शान्तिष, दुर्ग, सेतु (पुल), कुञ्जवचन, कन्याकर,
पलादान, और लैम्पसगिनयोग इस वर्गके उपवचका
वृद्धिष कहते हैं । पर्व्याय—यद्वं न, स्फोति ।

३ विष्कम्भ आदि २७ योगोंके अन्तर्गत ११वां योग ।
इस योगमें जन्म होनेमें मनुष्य सुमीमी, विनयी, धन-
प्रयोगमें दक्ष और अपविक्रयमें विचक्षण ज्ञानी होमें है ।

४ कलाकार, मूर्त्त । मूर्त्त या मूर्त्त लेनेका भी नियम
है । इच्छानुसार मूर्त्त लिया जा नहीं सकता । चेसा

करनेवाला समाजमें निंदित होता और राजाके यहां दण्ड पाता है। इसके संबंधमें वाङ्मयव्यसंहितामें लिखा है—जब चक्रवर्त्तु ख कर कर्ज लिया जाता है, तब हर महीनेमें सैकड़ों अस्सी भागका एक भाग सूद या वृद्धि और जब कोई बीज बन्धक नहीं रखी जाती, तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन वर्णों के अनुसार क्रमसे सैकड़ों से भागका २, ३, ४ और पांच भाग सूद लिया या दिया जाना चाहिये। अर्थात् ब्राह्मणको एक सौ पण कर्ज देने पर २ पण और क्षत्रियको इस तरह कर्ज देने पर तीन पण वृद्धि या सूद देना पड़ता है।

जो वाणिज्यके लिये परदेशमें जाते हैं, वे यदि कर्ज ले तो उनको सैकड़ों दश भागका एक भाग अर्थात् सैकड़ों दश रुपयेके हिसाबसे और समुद्र पार आनेवाले बनिक्को एक सौ भागमें दोस भाग वृद्धि देने में सब जातियां हो ऋण ग्रहण करते समय सबको अपनी अपनी निर्दिष्ट वृद्धि दे।

नारदसंहितामें वृद्धि चार प्रकारकी कही गई है—
कायिका, कालिका, कारिता और चक्रवृद्धि।

“कायिका कालिका चैव कारिता च तथा परा।
चक्रवृद्धिश्च शास्त्रेषु तस्य वृद्धिर्भुविषा ॥”

प्रतिदिन वृद्धि देनेके नियमसे जब कर्ज लिया जाता या दिया जाता है, तब उसका नाम कायिका, मासिक सूदको कालिका और ऋणकारी जिम नियमसे कर्ज लेता है, उसको कारिता तथा जब सूदका सूद लिया जाता है, तब उसका नाम चक्रवृद्धि ही जाता है।

शुधादान शब्द देखो।

वृद्धिक (सं० लि०) वृद्धि स्वार्थे कन्। वृद्धि।
वृद्धिकर्मन् (सं० क्तो०) नान्दीमुखध्रादृध्, वृद्धि-
ध्रादृध्।

वृद्धिका (सं० स्त्री०) वृद्धिरेव स्वार्थे कन् टाप्।
१ ऋद्धि नामकी ओपधि। २ ऋद्धुव्या, श्वेतापर-
जिता। ३ अर्कमुष्णी।

वृद्धिजीवक (सं० लि०) सूदखोर।

वृद्धिजीवन (सं० क्तो०) यह जो सूद ले कर अपना
जीवन निर्वाह करता हो।

वृद्धिजीविका (सं० स्त्री०) वृद्धा जीविका। श्रणा-

दानजीविका, वह जो सूदखोरोसे अपना जीवन निर्वाह करता है। पर्वण्य—अर्धाप्रयोग, कुसुद, कलाभिका।
वृद्धि (सं० पु०) वृद्धिर्द्दातीति दा-क। १ जीवक नामका छोटा क्षुप। २ शूकरकन्द। (लि०) ३ वृद्धि देनेवाला। (वृहत्सं० ५३।२७)

वृद्धिपत्त (सं० क्तो०) यह शत्रु जी सात अंगुली प्रमाणका होता है। यह शत्रु चोर फाइके काममें व्यवहृत होता है।

सुधृतकी टोकामें लिखा है, कि यह शत्रु दो तरहका है। अस्त्रिताप्र और प्रयताप्र। ये दोनों ही शत्रु सात अंगुली प्रमाणके होंगे। अर्द्धर्ष पञ्चांगुली वृत्त और साधुर्षाशुतफल। इनमें पहलेका धुर कहते हैं।

इसो क्षरके आकारवाले शत्रुका नाम वृद्धिपत्त है। चोरफाइकी सुविधाके लिये इसका अग्रभाग ऋजु और गहरा दूसरी ओर झुका हुआ रहता है।

(वागभट २६।६)

वृद्धिभून् (सं० लि०) वृद्धिभू-क्त। वृद्धिप्रःत्त।
वृद्धिमत् (सं० लि०) १ उरिधत्, वर्धित, अङ्कुरित।
२ वदुर्धनशील।

वृद्धिभोग—फलितउपेयनियके २७ योगोंमें एक योगका नाम।

वृद्धिधातु (सं० क्तो०) वृद्धये वत् ध्रादृधं। वृद्धि-
निमित्तक ध्रादृध्, अभ्युदयक निमित्तक पित्रादिके उद्देश-
से ध्रादृधादि पृथक अत्र आदिका धान। अभ्युदयके लिये ही इसका अनुष्ठान होता है, इससे इसका अभ्युदयिक ध्रादृध् भो कहते हैं। दश तरहके संस्कार कार्योंमें अर्धांशु गर्माधानसे विवाह तक इन दश संस्कारोंमें से प्रत्येकमें यह ध्रादृध् करना होता है। इसके सिवा देव-
प्रतिष्ठा, वृक्षप्रतिष्ठा, जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा और तीर्थायात्राकालमें तथा तीर्थसे लौटने पर भी यह वृद्धिध्रादृध् करनेकी विधि है। प्रेतके उद्देशके सिवा अन्य उपोत्सवोंके समय और वास्तुयागमें भी इस ध्रादृध्का विधान देखा जाता है।

वृद्धिध्रादृध्में स्नामवेदियोंको ६ पुष्पोंका अर्धांशु पिता, पितामह, प्रपितामह और मातामह, प्रमातामह और

६ दुग्धप्रमातामह इत ६ पुण्योका और यजुर्वेदीयोका ६ पुण्यो भर्षत् पूर्वोक्त ६ पुण्य और माता, पितामहो और प्रवितामहो इत नौ पुण्योका आहुय करना होता है। नान्दंगुल देलो।

घृहीभूत (सं० लि०) अथघृहो घृहो भवति वा अथघृद्विष भवति। घृद्विषोक्त।

घृजोश (सं० पु०) घृद्विषवासी उज्ञा चेति (भनजोत्पादिना। पा १।१।७७) इत्यादिना अच्। घृद्विष घृष। पठ्याय—अरुद्राग। (भर)

घृद्दयाजोय (सं० लि०) घृद्विष्या भाजोयतीति भा-जोय-अच्। घृद्दयुपजोयी, जो घृद्विसे जोयिका चलाते है, सुदधोर।

घृद्दयुपजोयी (सं० लि०) घृद्विष्या उपजोयितुं शील-मस्य उप-जोय निनि। घृद्विष द्वारा जोयिका निर्वाह-कारी, सुदधोर।

घृधम् (सं० लि०) घृधर्मनकर्ता।

घृधमान (सं० पु०) घृध (घृष् जिघृषीति। उष् ३।८७) इत्यनेन असानच्, स च कित्। १ मनुष्य। (लि०) २ घृधर्मनजील।

घृधमानु (सं० पु०) घृध-याहुलकात् असानुच्, स च कित्। १ पुण्य। २ पत्र। ३ छति।

घृधस्तु (सं० लि०) अग्निक्षणजील, अग्निक्षण-कारी।

घृधोक (सं० लि०) घृधर्मनकर्ता।

घृधोय (सं० लि०) घृद्विषवंधोय।

घृधु (सं० पु०) एक सूत्रधारका नाम। मनुमें लिखा है, कि भरद्वाज मुनिने घृधु नामक सूत्रधारसे अनेक नो प्रश्न किये थे। (मनु १०।१०७)

घृध्व (सं० लि०) घृध-(शुद्धगपाच् डित्त्वने। पा ३।१।१२५) इति षष्प। घृधर्मनोय।

घृध्न (सं० लि०) १ प्रसूनवन्धन, फल पुत्र और वतादि प्रसवने अवस्थित हो। पठ्याय—प्रसववन्धन। २ गरीषारा। ३ कुषाग्र।

घृध्नाक (सं० पु० लि०) १ घातांकी, घैगन। (पु०) २ शाबधेष्ट, उत्तम जाक। ३ उपोदिका, पोदिका नाम।

घृध्नाका (सं० लि०) घातांकी, घैगन, भद्रा।

घृध्नाक (सं० लि०) कटुका।

घृन्द् (सं० लि०) घृन् (अप्पादयधेति। उष् ४।६८)

इति इन नुम् गुणाभावश्च निपातयने। १ समूह। (पु०) २ शब्द, सी करोड़। द्वा कोटिका एक शब्द और द्वा शब्दका एक घृन्द् होता है—१००००:००००।

(व्योतिष)।

घृन्द्—१ घृन्द् टीकाके रचयिता एक आयुर्वेदाग्रिम। ये धीर-घृन्द्महृके नामसे परिचित है। पासुदेव भानु-भाय और भायप्रकाशमें इनका उल्लेख है। २ घृन्-सिन्धु सिन्धुधेयग। ३ सिन्धुधेयगसमूह नामक वैद्यक ग्रंथके रचयिता।

घृन्द् (सं० लि०) घृन्दे भया घृन्-रक। घृन्द् संकथो-रपन।

घृन्द्गस् (सं० अठ्य०) घृन्द् चगस्। दलका दल। (भागवत: १०।१।१५)।

घृन्दा (सं० लि०) १ तुलसी, तुलसीका दूसरा नाम घृन्दा है। वृन्दावन देलो। २ वेदारराजकी कन्या। ३ राधाके सोलह नामोंमें एक नाम। ४ घृक्षोपरिजात लता, परगाछा।

घृन्दाक (सं० लि०) परगाछा।

घृन्दाक (सं० लि०) मनोह।

घृन्दाक (सं० पु०) घृन्द्मस्यास्तोति घृन्द्-(शुद्ध वृन्दा-मरुतन यकन्यः। पा ३।१।१२२) इत्यस्य यासिकावत्या आरकन्। १ देवता। २ धेष्ट। ३ मनोह।

घृन्दाकपय (सं० लि०) घृन्दावन।

घृन्दावन (सं० लि०) स्वनामधेयत तोर्ष। घृन्दावन भगवान् श्रीकृष्णकी श्रीद्वारभूमि है। इमोलिये यह एक बहुत प्रधान तोर्ष है। इस तोर्षका विवरण ब्रह्म-वैवर्तपुराणमें इस तरह लिखा है, कि श्रीकृष्णका बाल-चरित प्रतिपद् पर नये नये मायेका मायमप है। श्रीकृष्णने पहले गोशुक्लमें रद्द कर दानधेन्वोका विनाश किया। पीछे नन्द प्रभृतिके साथ ये घृन्दावनमें पहुँचे। श्रीकृष्णने मारुतन एक दिन नारायण नामक श्रितसे पूछा कि श्रीकृष्णकी श्रीद्वारभूमि इस काननका नाम घृन्दावन क्यों हुआ? और इस नाममें 'नन्द' साधकता है या नहीं? इस पर उक्त श्रितने कहा:

था, कि प्राचीन सत्वयुगमें केदार नामके एक राजा थे। राजर्षि केदार निरव नैमित्तिक कार्यां केवल श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये करते थे। केदार जैसे राजा कोई जन्मा नहीं और न जन्मेगा। कुछ दिनोंके बाद जैगोपय्यके उपदेशके फलसे राजा राजव और त्रैलोक्यमोहिनी प्रियतमाओंका भार पुत्रके हाथमें दे कर तपस्या करनेके लिये घनमें चले गये। राजा श्रीहरिका एकाग्र भक्त हो कर अघिरत उन्हीं श्रीहरिका ध्यान करने लगे। उस समय उनका सुदर्शनचक्र वहाँ उपस्थित रह कर उनकी रक्षा करने लगा। इस तरह बहुत दिनों तक तपस्या कर वे गोलोकधाममें चले गये। उनके नामानुसार यह तीर्थ केदारके नाम पर प्रसिद्ध हुआ।

केदारराजके कमलाकी अशक्तरूप अति तपस्विनी और योगशस्त्रविशारदा धृन्दा नामकी एक कन्या थी। धृन्दाने विवाह नहीं किया था। दुर्वासा ऋषिने उनकी हरिका मन्त्र दिया। पीछे धृन्दाने गृहत्याग कर यनमें जा इस हरिमन्त्रका साधन किया। भगवान् कृष्ण उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो घर देनेके लिये उनके समीप आये। धृन्दाने उस सुन्दरकाय शान्त मूर्च्छि राधाकागत हीका अपना पति बनानेकी प्रार्थना की। कृष्ण तथास्तु कह उस निर्जान प्रदेशमें धृन्दाके साथ रहने लगे। इसके बाद धृन्दा परमानन्द श्रीकृष्णके साथ गोलोकधाममें जा राधिकाकी तरह सौभाग्यशालिनी और गोपियोंमें श्रेष्ठ हुई। उस धृन्दाने जहाँ तपस्या की थी, वह स्थान धृन्दावनके नामसे विख्यात हुआ।

धृन्दावन नाम होनेका और भी एक पुण्यप्रद इतिहास है—पहले कुशध्वज नामक राजाकी तुलसी और वेदवती नामकी धर्मशास्त्रविशारदा दो कन्याएँ थीं। इन दोनों कन्याओंने संसारविधोगिनी हो कर तपस्याचरण किया। पीछे वेदवतीने नारायणकी पतिरूपने प्राप्त किया, वही जनककन्या सीताके नामसे सर्वत्र प्रसिद्ध हुई।

तुलसीने भी हरिकी पतिरूपमें पानेके लिये तपस्या की। देवात् दुर्वासके शापसे उन्हीने शङ्खासुरकी पतिरूपमें पाया और पीछे कमलाकागतकी पतिरूपसे प्राप्त

किया। यह सुरेश्वरो तुलसी ही हरिके शापसे वृक्षरूपा और हरि भी उनके शापसे शालग्राम हुए। किन्तु सुन्दरी तुलसी फिर उस शिलारूपी हरिके वक्षस्थल पर निरन्तर अवस्थित करती हैं। उसी तुलसीका दूसरा नाम धृन्दा है। तुलसीने यहाँ तपस्या की थी, इसीलिये यह धृन्दावन कहलाया। उन्हीने कहा, नारद! और भी एक कथा कहता हूँ, जिसके द्वारा इसका नाम धृन्दावन हुआ, सुनो! श्रीमती राधिकाके पोद्दा नाममें धृन्दा नाम प्रसिद्ध है। उन्हींका रम्य क्रीडावन होनेसे इसका नाम धृन्दावन हुआ। पहले श्रीकृष्णने गोलोकधाममें राधिकाको प्रसन्न करनेके लिये धृन्दावनका निर्माण किया। पीछे वृधोत्तलमें भी उनकी क्रीडाके लिये यह वन धृन्दावनके नामसे परिचित हुआ।

धृन्द शब्द सखीसमूह और आकार शब्द स्वस्मि-बोधक है, इसीलिये उनके सखीसमूह हैं, इससे धृन्दा नामसे वे अभिहित हुई हैं। उन्हींकी क्रीडाके लिये सुन्दर यन होनेसे इसका नाम धृन्दावन हुआ है।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है, कि इस वृधो-में धृन्दावनधाम स्वर्गीय गोलोकधामके तुल्य है। गोलोकमें भगवान् विष्णु अपने पूर्ण ऐश्वर्यके साथ रहते हैं और इस स्थानमें भी अपने सभी ऐश्वर्यके साथ उन्हीने क्रीडा की थी और वे यहाँ सर्वदा अवस्थान करते थे, इसीलिये वह स्थान परम पवित्र और प्रगणतम तीर्थ समझा जाता है।

इस धृन्दावन धाममें १२ प्रधान धन हैं—भद्रवन, लौहवन, भाण्डोरवन, महावन, तालवन, कदिरवन, धकुल कुमुद, काश्य, मधु, और धृन्दावन ये बारह धन भगवान् कृष्णकी विहारभूमि है। (पद्मपुराण पातालखण्ड ३८ अ०) इस वृधो पर विष्णुवासकोंका वासभूमियोंमें सर्वश्रेष्ठ परम दुर्लभ एक स्थान है, उसका नाम है धृन्दावन। गोलोकमें जा ऐश्वर्य है, वह गोकुलमें प्रतिष्ठित है। वैकुण्ठका वैभव द्वारकामें प्रकानित है। भगवान्के जा कुछ परम ऐश्वर्य हैं, वह धृन्दावनमें हैं और उनमें कृष्णधाम ही सर्वविशेष श्रेष्ठ है। त्रैलोक्यमें वृधो एकमात्र धन्य है क्योंकि धृन्दावन वृधोमें मौजूद है वह स्थान माधुरमण्डल नामसे भी अभिहित है।

माधुरमण्डलकी भाङ्गति सदस्यद्वय कमलकी तरह है। इसका परिमाण विष्णुके भक्तके समान है। ये सब स्थान कर्णिकालकी तरह फैले हुए हैं। इनमें पूर्वोक्त वारह प्रधान यन हैं जिनमें यमुनाके किनारे पश्चिमकी ओर ७ और पूर्वाकी ओर ५ हैं। ये सब यन ध्रोहरणकी क्रीडामुमि है।

सिवां इसके कदम्ब, लण्डिक, नन्दवन, नन्दीश्वर, नन्दनानन्दलण्ड, पञ्चम, अशोक, केतक, सुगन्धि, मादन, कैल, अमृत, भोजनस्थान, मुषप्रसाधन, परमहरण, शेषनाथन, श्यामपुर, क्षुप्राम, नक्र, मानुपुर, संकेत, द्विपद, बालकीड, धूमर, फेल्ड्रुम, सुलालित, उत्तुक और नन्दन ये तोम उपयन हैं। पूर्वोक्त १२ यन ही सबने ध्रोष्ठ और नाना प्रकारकी भगवन्-लीलाकी भूमि है।

मथुरा और नज देलो।

वृंदायन मति मनोहर स्थान है। इसने यमुना नदीके चारों ओरने दक्षिणावर्त्तमें घेर रखा है। गोपीश्वर नामक जिय 'यहाँके अधिष्ठातृ देवता है। इनके परिद्वर्तनमें श्रोविजिष्ट पोद्गन दल हैं प्रथम दलका माहात्म्य कर्णिकालके तन्त्र है। उक्त दलने मधुपयन विराजित है। इस स्थानमें ही चतुर्भुज महाविष्णु प्रादुर्भूत हुए थे। द्वितीय दल लोलारमका स्थान है और यह स्वर्गेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। ध्रोहरणने इस योग्यद्वर्तन वर्तकी महालीला सम्पन्न की और ये वृंदावन-पति बने। तृतीय दल परम पवित्र और अतिनाय पुण्यतम स्थान है। चतुर्था दलमें नन्दीश्वर यन और नन्दालय उपस्थित है। पञ्चम दलमें धेनुपालनका स्थान है। षष्ठ दलमें नन्दवन उपस्थित है। सप्तम दलमें मनोहर सङ्कटहन है। अष्टम दलमें तालवन है। इसी स्थानमें भगवान्ते धेनुकका वध किया था। नवम दलमें हनुमन्वन और दशम दलमें कामयवन उपस्थित है। ग्यारवां दल वनमय है। इस स्थानमें पुत्र बांधा गया था। बारहवें दलमें भाण्डोरवन है, इस यनमें भगवान् ध्रोहरण ध्रोहरण भाङ्गिके साथ क्रीडामें रत रहते थे। तेरहवें दलमें भद्रवन, चौदहवें दलमें ध्रुवन, पन्द्रहवें दलमें गौडवन और सोलहवें दलमें महायन उपस्थित है। इस महायनमें ध्रोहरण परम्परातीके साथ मिल कर

बाललीला किया करते थे। इस स्थानमें ही पूतना भाङ्गि राक्षसोका वध और यमलाङ्गुनका मन्त्र किया गया था। पञ्चम वर्षोंके बालगोपाल इस स्थानके अधिष्ठाता हैं। इस स्थानमें ध्रोहरण दामोदर नामसे परिचित रूप। उक्त दल ही किञ्चलकविदार है। इस स्थानमें ही ध्रोहरणने मोड़ा की थी।

वृंदायनधाम शुद्धसत्य भक्त चैष्णवों द्वारा भाङ्गित और पूर्ण प्रह्लासुयमें मग्न है। इस स्थानमें कोटिल और प्रमर सदा मन्थक मधुर और मनोहर शब्द करते रहते हैं। कपोल और शुक चिह्नियां सदा अपने सङ्गीतसे लोगोंके मुग्ध करती रहती हैं और सहस्र सहस्र उभयसन्धि विराजित हैं। इस स्थानमें मयूर नृत्य करते रहते हैं। सब तरहके आनन्द और विस्मय पूर्णमात्रामें विद्यमान है। इस स्थानमें पूर्ण चन्द्र सदा उदय होते हैं। किन्तु सूर्यदेव अपनी मन्द मन्द किरणों हीके फैलाते रहते हैं। यह स्थान दुःख, जरा और मरणवर्जित है। यहाँ क्रोध, मात्सर्य, भेदभाव और अहङ्कार नहीं है, सर्वदा इस स्थानमें आनन्दामृत रसका प्रभाव रहता है और पूर्ण प्रेमसुख-समुद्र विराजित है। यह महत् धाम त्रिगुणातीत और पूर्ण प्रेम लक्षण है। और तो क्या— यहाँ वृक्षोंके शरीरमें भी पुलकोद्गम होता है और ये प्रेम और आनन्दसे विभोर हो कर अधुर्वर्षण किया करते हैं। यहाँके पादपोंकी जब पेसी भवम्पा है, तब चैष्णवोंकी बात ही क्या है। गोविन्दके पदरज स्वर्शसे वृंदायन पृथ्वीमें निरय कद कर प्रतिहृण है।

भृगुण्डलमें वृंदायन गुह्यमें भी गुप्ततम, रमणीय, पवित्र, भक्ष्य, परमात्मदमय और गोविन्दका मन्थ्य स्थान है। वृंदायन गोविन्ददेवकी अमिग्न हैं और पूर्णप्रह्ला सुखाश्रित हैं। इसका माहात्म्य और क्या कहें ? इस स्थानकी पूर्ण स्वर्श करनेसे भी मुक्ति होती है। हे देवि ! वृंदायन विहारके समय बड़े यदाके साथ वृंदायन और फेनोरविप्रदवागी ध्रोहरणकी हृदयमें स्थापित करो। कालिन्दे इस वृंदायनका कमलकर्णिकालकी तरह प्रदक्षिण करके विराजमान है। इस यमुना नदीके दोनों किनारे रमणीय और पवित्र है। इसका जल स्वर्श करनेसे वृंदायनकी अपेक्षा कोटि गुण अधिक्

पुण्य होता है। इस स्थानमें ही भगवान् श्रीकृष्णमें रत थे।

रमणीय वृन्दावनके मध्य मनोहर भवनमें समुज्ज्वल योगपीठ विद्यमान है। यह अठकेना और नाना प्रकारकी शीतियोंसे मनोहर दिखाई देता है। इस पर मणिमणिषय-लचित रत्नमय मनोहर सिंहासन विराजित है। उस पर आठ दलका पद्म बैठाया गया है। इस पर ही हरिका कर्णिकारथ सुखमय भवन अवस्थित है। इस परम स्थानमें वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण दिव्य व्रजवेषाधारी और नियत सरलेश्वर्यशाली और प्रज्वालकैके एकमात्र प्रिय हो कर अवस्थान करते हैं। योगनाविर्भावचश इस समय उनका कीरोर उद्भिन्न हुआ है और उन्होंने अपूर्व मूर्त्ति धारण की है। उन अनादि फिर भी समीके आदिभूत भगवान् श्रीकृष्णने, यहाँ ही वास कर गोपियोंके मनको मुग्ध किया था।

भगवान् कृष्ण यहाँ ही नन्दनन्दन रूपसे सदा विराजमान रहते हैं। यह कृष्ण पूर्णब्रह्म निश्चल जगत्के आदिकारण हैं। उनकी प्रियतमा कृष्णवल्लभा श्रीमती राधा ही आद्या प्रकृति हैं। उन्हीं राधिकके फोटानु-कोटि कलांशसे त्रिगुणमयी दुर्गा आदि देवियोंकी उत्पत्ति हुई है। यह वृन्दावनधाम श्रीकृष्णकी लीलाभूमि है।

(पद्मपुराण पाताञ्जल० ३८।३० अ०)

पुराणवर्णित श्रेय वृन्दावनवैभय इस समय कवि वर्णित काव्य राज्य ही मालूम होता है।

"वनं कुमुदितं भीमन्नदविश्रमृगदिजम्।

गयनमपूरभ्रमरं कूजत्कोकिलशावकम्॥"

श्रीभागवतके वर्णित श्रेय वृन्दावनकी ऐसी शोभा इस समय अब दिखाई नहीं देती।

श्रीजयदेव वर्णित वसन्तशोभा इस समय केवल कविकल्पानां रक्षित है। गौराणिक वर्णना-वैभय वर्तमान समयमें दिखाई न देने पर भी हम श्रेय वृन्दावन-धामकी आज भी पुण्यमय महातीर्थके रूपमें देखते हैं। किन्तु अबसे साढ़ेचार सौ वर्ष पहले श्रेय वृन्दावन यथावत् महारण्यमें परिणत हुआ था।

देवद्वेपी गजनीके सुलतान महमूदने आ कर प्रजघाम-की जा दुर्दशा की थी, उसका आज भी सुधार नहीं हो

सका है। इसके बाद भक्त वैष्णव अपने प्राणके भयसे फिर अपने प्रिय स्थान वृन्दावनधाममें नहीं जाना चाहते थे। सुलतान महमूदके लौट जानेके बाद सैकड़ों वर्ष तक हिन्दुओंका शासन रहने पर भी जहाँ तक हम जानते हैं, इस वृन्दावनके नष्टगौरवका उद्धार न हो सका। इस ओर किसी भी राजाका ध्यान नकारित नहीं हुआ। मुसलमान-सुलाम राजाओंके आधिपत्यकालमें कमसे यह बहुजनार्कीर्ण प्रजघाम जनमानवशून्य हो गया था। केवल दो एक प्रजयासी उस विजत निभूत निकुञ्जमें रह कर भगवान्की लीला भूमि पर अन्न बरसा रहे थे। कहना न होगा, कि कई शताब्दके बाद भागवतीकी लीलास्थली एक समय विलुप्त हुई थी। बारह योजनमें फैली हुई यह पवित्र हिन्दूकीर्ति भोध्य अरण्यमें परिणत हुई थी। एक तो पथ ही दुर्गम था उस पर मुसलमानोंके अत्याचार और डाकुओंके डर आदि कई कारणोंसे गृहस्थ तीर्थ-यात्री इन पवित्र और प्राचीन स्मृतियोंके देखनेके लिये यहाँ आनेमें साहसो न हुए। निर्भोक्त भक्त सान्यासी कमी कमी दल बांध कर भगवान्के चिह्नका दर्शन करने आते थे।

मुगलवंशके साम्राज्य शासनके आरम्भमें हिन्दू मुसलमानोंके अत्याचारसे वञ्चित हुए थे। बङ्गालके गौड़देशमें हुसैनशाहकी तरह दिल्लीमें भी प्रजारञ्जक मुसलमान नरपतियोंका अधिष्ठान हुआ था। हिन्दुओंने इस सामान्य सुविधाके समय ही भगवान् श्रीकृष्णकी लीला भूमिके उद्धार करनेके लिये उद्योग किया था। किन्तु प्रजघाममें आ कर वे भगवान्के समी निदर्शनोंके डूँड निकालनेमें समर्थ हुए। यदुवंगके ध्यंसके बाद श्रीकृष्णके पीठ (अनिन्दके पुत्र) प्र-नाभने मधुराका राजा बन श्रीकृष्णकी लीलाके नामानुसार ग्राम बसाये थे। वे सब पिछले समयमें प्रधान-प्रधान वैष्णव तीर्थके रूपमें गिने गये थे। और तो क्या—मुसलमानोंके दौरातम्यसे उन सर्वप्रधान भागवततीर्थके अधिकांश ही विकुञ्ज विलुप्त हुए। कृष्णमेंसे श्राहल हो कर गौराङ्गदेवने जब प्रथमपङ्कलकी प्रस्थान किया, तब वे भगवान्के लीलास्थान छोड़ न सकने पर पहले रो

रो तर ध्याकुल हो उठे। पीछे अपना ऐंगी जिक्रके प्रभावसे उन्होंने श्रीलास्यानके उद्घुषारका पथ बना लिया। मुगारि-गुप्तके धीचैतन्यचरित काव्यमें और धीरुण्यदास कविराजके धीचैतन्यचरितामृत प्रथममें उसका कुछ भागाम मिलता है। अन्तमें गीताङ्गके पापैद श्लोकरूप और समागत गोस्वामीने ब्रजमण्डलमें रह कर लुप्त तीर्थ-का उद्घुषार कर महाप्रभुके सन्निप्रायकी पूर्ण किया था।

विहित सम्प्रदायके वैष्णवोंका अभ्युदय।

गोस्वामीप्रवर रूप, सनातन, जीय, गोपालमठ, लोकरनाथ, भृगुभं, रघुनाथ, नरीसप्त ठाकुर, धीनिवास आचार्य मादि श्रेष्ठ गौड़ीय भागवत प्रेमिक बहुत दिनों तक गुन्दायनमें रह गये थे। उनके रहने समय ब्रजधाम वैष्णवतत्त्वज्ञानके सर्वप्रधान केन्द्रके रूपमें गिना जाता था। ब्रजमण्डलमें रहने समय उक्त गोस्वामियों ने सैकड़ों वैष्णव शास्त्रोंकी रचना कर प्रेममकिकी पता-काष्ठा दिखाई थी। उनके धीमुखसे अपूर्ण भगवत्तत्त्व सोलनेके लिये भारतके नाना देशोंसे साधुओं और पण्डितोंका यहां समागम हुआ और तो पया—स्वयं दिहोभ्यत् अकबर अपने राजपूत सामन्तोंके साथ रूप सनातनके मुखसे वैष्णवधर्मका सारतत्त्व सुननेके लिये मन् १५७३ ई०में गुन्दायन पहुंचे थे। उन कौपीनधारी वैष्णवोंका इतना प्रभाव था, कि दिहोभ्यत्की झोंकी पर कपडा बांध कर वे निपुयनमें लाये गये थे। दिहोभ्यत्ने यहांका भलीभिक देवप्रभाव देख इस स्थानको अत्यन्त पूर्ण तोर्षी न्योकार किया था। उनके साथी सामन्तोंने यहां एक देवालय स्थापित करनेकी आज्ञा मांगी। दिहो-भ्यत्ने सुननेके साथ एक देवालय स्थापित करनेके लिये आज्ञा प्रदान की थी। इस तरह गौड़ीय वैष्णवोंके प्राधान्य विस्तार और लुप्ततोर्षीके उद्घुषारके साथ साथ देवनाग दिन्दू राजाओंके यत्ने फिर मधुरामण्डलमें नाना देवालयोंकी प्रतिष्ठाका मूलधाम हुआ।

ब्रज-वासियोंका कहना है, कि गौड़ीय गोस्वामियोंने गुन्दायनमें आ कर सबसे पहले जिन गुन्दायनके मन्दिर-का उद्घुषार किया था, उसका भव बहो नामोनिनाम नहीं मिलता। किन्तु कुछ लोग राममण्डलके जित्ट-पत्नी संवाङ्गुप्रभे उस मन्दिरका होना मानते करते हैं।

गोविन्दजीका मन्दिर।

रूप सनातनके तत्त्वावधानमें जो सब मन्दिर बनाये गये, उनमें गोविन्ददेवका मन्दिर ही सर्वप्रधान और स्थापत्यशिल्प या कारीगरीका सर्वोत्तम निर्देशन है। मधुराके पुतावृत्त-लेखक प्राउस साहबने इस मन्दिरको देख कर लिखा है, कि "इस मन्दिरका आकार प्रकार गिरजासे मिलता जुलता है। इससे मालूम होता है, कि जिस कारीगरने इस मन्दिरको बनाया था, उसने (यूरोपीय) जेसुरट धर्म-प्रचारकोंका साहाय्य-प्राप्त किया था। वास्तवमें उस समय अकबर बादशाहके दरबारमें बहुतेरे जेसुरट उपस्थित थे। किन्तु अकबर बादशाह-को समामे जेसुरटोंके रहने पर भी उन्होंने कारी-गरीमें हिन्दुओंको साहाय्य किया है, इसका कटो कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता। विशेषतः इस तरह-के मन्दिर जेसुरटोंके आनेसे बहुत पहले भारतवर्षमें कई जगहोंमें दिखाई देते हैं।

गोविन्दजीके मन्दिरमें एक अल्पद शिलाकलक दिखाई देता है। उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि अकबर शाहके ३४ राज्याङ्कमें धीरुण्यसनातनके तत्त्वावधानमें मङ्गलापिपति मानसिंहने गोविन्दजीके मन्दिरको बनाया था।

गोविन्दजी। मन्दिर एक समय पांच गिजरींसे विभूषित था। उनमें सर्वोच्च गिजर बहुत दूरसे दशकों-की दृष्टि आकर्षित करता था। प्रवाद है, कि उस शिलारका प्रकाश दिहोमें बैठे श्रीरङ्गजीको दिखाई देता था। एक दिन विरहमयके साथ श्रीरङ्गजीने अपने यज्ञीरसे पूछा, कि कहाँसे यह आलोक या प्रकाश आ रहा है? इसके उत्तरमें यज्ञीरने कहा, कि मधुरामें काकरींका जो बड़ा मन्दिर है, यह उसी मन्दिरका प्रकाश है। देवदेवो श्रीरङ्गजी तब ही एक कीर्त मंत्र कर उस मन्दिरको तुड़वाने तथा उस पर ममजिद् बनवाने-का हुक्म दिया। मन्दिरके पुतारी गोविन्दजीको ले कर अररमें भाग गये। मुसलमानोंने मन्दिरके कई गिजरीं-को तोड़ कर उसीमें इमीके ममालेसे मसजिद् बनायो। श्रीरङ्गजीने स्वयं आ कर उस मसजिद्में गमाज पढ़ो। इसी समयसे गोविन्ददेव जयपुरमें भाये। उनके संवा-

इत यहाँके गोविन्ददेवकी सम्पत्तिके अधिकारी हैं।

मदनमोहनका मन्दिर।

मकिरतनाकरमें लिखा है, कि सनातनको कृपा प्राप्त कर मूलतानयासीः कृष्णदासने मदनगोपाल या मदनमोहनके मंदिरको प्रतिष्ठा कराई। इस मंदिरके निर्माणके सम्बन्धमें एक प्रवाद है, कि कृष्णदास नाव बोभाई कर आगरेकी ओर जा रहे थे। कालोद्दहके निकट एक बालूके चट्टान पर नाव चढ़ गई। तीन दिन अनवरत चेष्टा करनेसे भी बालूसे नाव निकल न सकी। अन्तमें वे देवताके अनुग्रहलाभकी आशासे ऊपर जा कर सनातन गोखामीके शरणापन्न हुए। सनातनकी प्रार्थनासे मदनगोपालका अनुग्रह हुआ। कृष्णदासकी नाव बह चली। पीछे वे आगरेमें आकर नावमें लड़ी चीजोंका बेच कर लौट आये और उन्होंने सब एकम सनातनके हाथमें रख दी। उसी एकमसे मदनमोहनका मंदिर बना। इस मंदिरकी भीतरों भाग ५७ फुट लंबा, उसके साथ नाटमण्डप प्रायः २० फुट चौड़ा था। मंदिरकी ऊँचाई २२ फुट थी। इस मंदिरकी आय प्रायः १०१०० रुपये हैं।

मंदिरमें इस समय मदनमोहनकी मूर्ति नहीं है। औरङ्गजेबके दौरातकसे यह धरोमूर्ति भी जयपुर भेज दी गई थी। पीछे जयपुरके राजाने अपने साले कसीलीके राजा गोपालसिंहके वह मूर्ति दे दी थी। राजा गोपालसिंहने अपनी राजधानीमें मदनमोहनके लिये प्रायः १७४० ई०में एक सुंदर मंदिर बनवाया था। जयपुरके गोविन्दजीके मंदिरके पुजारीकी तरह यहाँके पुजारी भी गौड़देशके गोखामी या गोसाईं हैं।

जब मदनमोहन चुन्दावनमें थे, तब प्रसिद्ध वैष्णवकवि सुखदास इनके प्रधान भक्त हो गये थे। अक्षरके अधीन सुरदास शाण्डिलके अमीनका काम करते थे। प्रवाद है, कि वे जो कुछ बसूल करते थे वे सब मदनमोहनजीके मंदिरमें खर्च कर देते थे। इसी तरह एक बार दिल्ली रुपये न भेज सकने पर उन्होंने एक सन्तूकमें परधरके टुकड़े बन्द करके भेजे। शीघ्र ही इस अमितव्ययिताके लिये सुरदास दिल्लीमें फँद किये गये। अन्तमें मच परसल मदनमोहन भक्तकी मुक्ति दिलानेके लिये

दिल्लीश्वरको स्वप्न दिया था, उसीसे कृष्णदास फँदसे रिहा हुए थे।

गोपीनाथका मन्दिर।

गोविन्दजी और मदनगोपालकी मन्दिर-प्रतिष्ठाके कुछ समय बाद ही गोपीनाथका मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। दिल्लीश्वर अक्षर जिस समय गोखामीके दर्शनके लिये चुन्दावन गये थे, उस समय कच्छवाहके ठाकुर घंशीय रायसिंह भी साथ गये थे। वे शोबाघाटीके कच्छवाह ठाकुर वंश प्रतिष्ठाताके पीछे थे। राणा प्रतापके विरुद्ध वे भी मानसिंहके साथ भेजे गये थे। वे चुन्दावनके गोपीनाथकी भक्तिसे आरुढ़ हुए थे। अन्तमें इन्होंने गोखामियोंके तत्त्वावधानमें गोपीनाथके एक बहुत बड़े मंदिरकी प्रतिष्ठा करवाई। यह मंदिर इस समय नितान्त मलायस्थामें पड़ा है। इस प्राचीन मंदिरके मध्यमण्डप और तीन बलसे एक समय नष्ट हुए थे। इसकी बगलमें सन् १८२१ ई०में बहुनिवासी तन्दकुमार वसु नामक एक बङ्गाली कायस्थने वर्तमान मदनमोहनका मंदिर बनवा दिया है।

केशीघाटमें युगलकिशोरका एक प्राचीन मंदिर है। यह मंदिर सन् १६२१ ई०में बना था। कुछ लोगोंका अनुमान है, कि यह मंदिर उक्त कच्छवाहके ठाकुर रायसिंहके बड़े भाई नूतकरणकी कीर्ति है। इस मंदिरका गर्भगृह भी एक ही समय नष्ट हुआ था। इसके मण्डपमें प्रचुर कारीगरीकी निपुणता दिखाई देती है। इस मण्डपके नीचे गोवर्धनघारीकी गोवधुर्धन-लोला खुदी हुई है। दुष्का विषय है, कि यह मंदिर भी इस समय परित्यक्त हुआ है। यह इस समय कवूतरो तथा उल्लू पक्षियोंका आवास बन गया है।

राधावल्लभजीका मन्दिर।

राधावल्लभजीका मंदिर भी जहाङ्गीर बादशाहके राजतकालमें ही बना था। राधावल्लभसम्प्रदायके प्रवर्तक हरिवंश गोसाईं इस मंदिरके प्रतिष्ठाता हैं। सुन्दरदास नामक एक कायस्थके धनसे सन् १६४१ संवत्में हरिवंशने मंदिर तैयार कराना आरम्भ किया। हरिवंशके दो पुत्र वे यज्ञचंद्र और कृष्णचंद्र। यज्ञचंद्रके धर्मगण भाऊ भी राधावल्लभके अधिकारी हैं। कृष्ण-

चान्दने राधात्मजका मंदिर बनवाया था। उनके वंश-
धर भाज भी राधात्मजके ही अधिकारी हैं।

पूर्व ही लिखा जा चुका है, कि जो कुछ प्राचीन
कीर्तियाँ थीं, १५वीं सदीमें १५वीं सदीके मध्यमें एक
समय ध्वंसके प्राप्त हुईं। इसके बाद १६वीं शताब्दीके
पहले प्रथमपट्टलमें कोई एक भी मन्दिर निर्माण
करनेका साहस भी नहीं हुआ। बङ्गालके गौड़देशके
वैष्णव गोस्वामियोंके वृंदावनमें बस और उनके जसा-
धारण परममूर्ति गुणसे सुसलमान-मराठ- मकरधरके
मन विनमित होनेसे फिर दिगम्बर वृंदावनमें देवकीर्तियों-
के जगानेमें साहसी हुए थे। गौड़ीय गोस्वामियोंके धनाय
से प्रथमायका पुनरुद्धार हुआ। इसीमें भाज भी वृंदा-
वनमें गौड़ीय गोस्वामी प्रधान समाजलाभके अधि-
कारी हुए हैं। और तो यथा—भगवान् श्रीलाभ्यला
बङ्गालियों द्वारा उद्धार हुआ है, यह बङ्गालियोंके लिये
कम गौरवकी बात नहीं। गौड़ीय वैष्णवोंकी चेष्टासे
ही वृंदावनके सर्वप्राचीन गोविन्द, गोगोनाथ, मदन-
मोहनके मन्दिर निर्मित हुए थे। इन सब मंदिरोंमें
१६वा शताब्दीकी दिगम्बर सुसलमान कारीगरियाँ भाज भी
विद्यमान हैं। इस समय इनके अविर्भाव नष्ट होने
पर भी कारीगरोंकी दृष्टिमें बड़े गौरवकी चीज और
एक दृष्टान्तकल्पमें भाव्यत होगा।

अकर, जहांगीर और शाहजहाँके राजत्व तक प्रज-
मण्डलमें गोवर्द्धन और गोकुलमें नामा कथानेमें देवमंदिर
प्रतिष्ठित हुए थे। दिगम्बरोंके दुर्भागसे पूर्वोक्त मंदिरों-
की तरह देवालय औरकुंजके शीतलपर्वसे परिवर्तक और
नष्ट हुए थे। औरकुंजके कराल कथलते रक्षा करनेके लिये
प्रायः प्राचीन मूर्तियाँ ही धन्य भंगी गई थीं। उनमें
मेराबके राणा राजसिंहने मथुराके सुप्रसिद्ध केजवर्द्धकी
जा कर नाचकारमें प्रतिष्ठित किया। निवा इस मूर्तिके
नाचकारमें मथुराके उपकरलते लार्ड मूर्ति, कोटारके मथुरा-
के मथुरानाथ, वृंदावनके मदनमोहन और गोकुलसे
गोकुलनाथ और गोकुलबन्धुमूर्ति तथा मुरतने महा-
वतके प्रसिद्ध बालकृष्णकी मूर्ति संग्रह कर प्रतिष्ठा
कराई गई थी।

मथुरा और वृंदावनकी बहूनों- कथामूर्तियाँ

देवालय देखने पर महज ही मान्य होता है, कि यहाँ
वैष्णवोंके पुनरुद्धार-कालमें पहले चैतन्य सम्प्रदायमें
प्राधान्यलाभ किया था। और तो यथा, दिनकोभरको भी
उनकी महिमा पर भाठए होना पड़ा था। यह बात
पहले ही कही गई है। इस सम्प्रदायका प्रभाव भाज भी
वृंदावनसे लुप्त नहीं हुआ है।

चैतन्य-सम्प्रदायके बाद यहाँ राधायज्ञभी सम्प्रदाय-
का आविर्भाव हुआ। युक्तप्रदेशके सदासनपुर जिलेके
देववनवासी गाँवके रहनेवाले एक गौड़प्राज्ञ हरिवंश
इसके प्रवर्तक हैं। आगरेमें सन् १५५२ ई. में इनका
जन्म हुआ था। यथासमय इन्होंने अपने पुत्र कल्याणो-
का विवाह किया था। इसके बाद पैरायका इन्होंने
आश्रय लिया और सुन्यावनके लिये प्रेरणा दिया।
होमके निकटवर्ती चर्चाबल नामक गाँवमें एक प्राज्ञ
श्री कल्याणके साथ उन्हें दिखाई दिया। उस प्राज्ञने हरि-
वंशसे कहा, कि भगवान्का प्रथादेन हुआ है, कि तुमको
इन दोनों कल्याणोंसे विवाह करना होगा। जो हो,
वृंदावस्थामें विवाह कर वे कुछ अधिक रसिक हो गये।
विवाहके बाद उनके गये ससुर उनकी राधायज्ञकी मूर्ति
दे गये। उसी राधायज्ञके नामसे किशोरोत्तम और
कामसाधन मनका प्रथा उन्होंने किया था। प्रथमसे
उनके बहुतेरे शिष्य ही गये। राधायज्ञका मन्दिर उनकी
ही कीर्ति है।

सुन्य नामक सुसलमानों इतिहासमें लिखा है, कि
उस समय उज्जयिनीमें मथुरामें यदुकुल नामक एक
साम्राज्य था। अकर और जहांगीर दोनों ही उनके
शत्रुके लिये भाये थे। उनके भी कितने ही शिष्य थे।
किशु इस समय उनके शिष्य सम्प्रदायका नामोनिर्माण
नहीं।

अकरके शासनकालमें, वृंदावनमें और एक साम्राज्य-
का आगमन हुआ था। इनका नाम था स्वामी हरिदास।
कोल नामके निकट वर्तमान हरिदासपुरमें प्रज्जधारके
पुर कान्धीर नामक एक धनाढ्य प्राज्ञका वास था।
वे गिरिधारीके वृत्तामक थे। इनके पुत्रका नाम भाजगीर
था। इन्हीं भाजगीरके पुत्र साम्राज्य हरिदास है। हरि-
दासके पुत्र थे। उनकी कथायें वे प्रसिद्ध

देख कर मुग्ध हो बहुतेरे मनुष्य उनके शिष्य हुए थे। उनके एक क्षत्रिय-शिष्यने उनको स्पर्शमणि अर्पण की थी, किन्तु वे अर्किडिचक्रर समझ कर उसको फेंक दिया था। क्योंकि कामिनोकाञ्चनमें उनको जरा भी आत्मिकि न थी। अकबरके प्रिय गायक मियां तानसेनने अपूर्व सङ्गीतशक्ति प्राप्त की थी। ये तानसेन हरिदासके ही शिष्य थे। उक्त हरिदासके प्रभावसे ही तानसेनको गायनविद्याको इतनी बड़ी शक्ति प्राप्त हुई थी। इन तानसेनके मुखसे हरिदासको असाधारण शक्तिका पता पा कर स्वयं अकबर उनके दर्शनके लिये आये थे। इस समय तानसेन भी साथ थे। हरिदासने तानसेनका बड़ा आदर किया था; किन्तु बादशाह अकबरकी ओर दृष्टिपात तक नहीं किया। यहां अकबरने स्वामीजीकी कितनी ही अलौकिक शक्तियोंका देख कर सन्तुष्ट है। उनकी इच्छा न रहते हुए भी उनकी सेवाके लिये कुछ सम्पत्ति दान की थी।

कुञ्जविहारी हरिदासके उपास्य एक देवता थे। पहले उनके शिष्योंके व्ययसे कुञ्जविहारीका मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। कुछ दिन बीते स्वामी हरिदासके यश-घर गौसादर्योंकी चेष्टासे और बहुत दूर देशवासी शिष्योंके अर्थानुकूल्यसे ७० हजार रुपयेके व्ययसे कुञ्जविहारीका वर्तमान मन्दिर निर्मात हुआ है। दासे यह मन्दिर-विहारीजी वा बाँकेविहारो नामसे उपासत हुआ है। इस मन्दिरका कारुकायी तथा शिवरत्नियुष्य बहुत ही अच्छा है। इसमें सन्देह नहीं, कि वृन्दावन में यह भी एक दर्शनोप वस्तु है। भारतवर्षके बहुत दूरदेशसे भी स्वामी हरिदासके भक्तगण इस मन्दिरके दर्शनके लिये वृन्दावन जाते हैं।

वृन्दावनके केशीघाटमें रामजीका मन्दिर दिखाई देता है। यहां मल्लूकदासी सम्प्रदायका एक पाठ है। औरङ्गजेबके राजत्वकालमें इस सम्प्रदायका उद्भव हुआ था। स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित भक्ति और शान्ति वादके माननेवाले होने पर भी मल्लूकदासी औरङ्गके बदले रामचंद्रकी उपासना करते हैं।

मथुराके भ्रमण पर निम्नार्क सम्प्रदायका एक अति प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिरको देखनेसे मालूम होता

है, कि गौड़ीय वैष्णवोंके अभ्युदयके साथ साथ यहां निम्नार्क सम्प्रदायका आगमन हुआ था। मथुरामण्डलमें उनकी बहुतेरी कीर्तियां और बहुतेरे धर्म ग्रन्थ थे। औरङ्गजेबके दौरात्म्यके कारण ये अब नष्ट हुए। वृन्दावनके नाना स्थानोंमें निम्नार्क सम्प्रदायके लोग दिखाई देते हैं। चाधी और कैकिलधनमें इस सम्प्रदायके साधुओंकी गुफा है।

रामानुज-प्रवर्तित श्रीसम्प्रदायका अभाव सारे दक्षिण-भारतमें बहुत दिनोंसे फैले रहनेसे भी उनका प्रजधाममें कोई पूर्व निर्दर्शन नहीं दिखाई देता। श्रीसम्प्रदायी प्रधानतः यङ्गले और वेङ्गलई इन दो शाखाओंमें विभक्त हैं। उनमें कुछ दिन पूर्व तेङ्गलई शाखा वृन्दावनमें दिखाई दी थी। प्रसिद्ध धनकुचेर सेठ लखमीचंद तेङ्गलई गुप्तकी महिमासे मुग्ध हुए। उन्होंने जैनधर्म परित्याग कर गुरुसे वैष्णवी दीक्षा प्रदण की। वृन्दावनके मपूर्व श्रीरङ्गजीका मन्दिर सेठ लखमीचंदकी विशाल कीर्ति है। साधारणतः यह "सेठका मन्दिर" के नामसे प्रसिद्ध है। यह मन्दिर उत्तर भारतमें बने होने पर भी इसमें दाक्षिणात्य स्थापत्यनिपुणताका कुछ आभास परिलक्षित होता है। वृन्दावनकी पूर्ण स्मृति कुछ भी नहीं है सही, किन्तु इस सेठके मन्दिरने पूर्ण स्मृतिका कुछ आभास जागरित कर रखा है।

इस समयकी और एक कीर्ति कृष्णचन्द्रका पृथक् मन्दिर है। उत्तरराष्ट्रीय कायस्थकुलतिलक कृष्णचन्द्रसिंह उर्फ लाला बाबूने २५ लाख रुपये खर्च कर सन् १८१० ई०में उक्त प्रकाण्ड काण्ड सम्पादन और राधा-कुण्डका संस्कार किया। लाला बाबूके संसार-वैराग्य और धर्मप्राणताका परिचय केवल वङ्गालमें ही नहीं, वृन्दावन, मथुरा आदिमें भी कीर्तित हो रहा है। महातीर्थ सम्मत् बहुत दूर देशसे वैष्णवगण लाला बाबूका कुञ्ज देखने जाया करते हैं। यहां अतिथिसेवाके लिये लालाबाबूलाखों रुपयोंकी सम्पत्ति दान कर गये हैं। उस सम्पत्तिकी भागसे यहांकी देवसेवा, सैकड़ों अतिथियों तथा तोर्षवात्रियोंके राजभोगका बंदोबस्त किया

गया है। येसो सेयाका बदेवस्त दूसरो जगद बिरल है।

इस समय और भी सनेह श्रेयमंदिर निर्मित हुए। इनमें शुद्धायनमें प्रतिष्ठित जयपुरका नय मंदिर और राधाकृष्णके राय बनमाली राजर्षि बहादुरके प्रतिष्ठित राधाविनोदका मंदिर और शुद्धायनमें राधाविनोदयाग और उनमें स्थित धीमंदिर उल्लेखनीय है। राय बनमाली बहादुरने भी उक्त देवसेवाके लिये यथेष्ट भूसम्पत्ति दान की है।

गीतगीतग्रन्थमें जो शुद्धायनघामका वर्णन है, यह योगियोंका ध्येय विषय है। ध्यानफलसे हो यह शुद्धायन विचार देना है। फलतः श्रीशुद्धायनघाम निरव है, सुतरां मायाके भ्रमोंत है। गोकुलमें गोप गोपीके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने लीला की थी। श्रीशुद्धायनमें भगवान् श्रीकृष्णकी जो मधुर लीलाये हुई हैं, दूसरी किसी जगह भी वैसा लीलामाधुर्यकी वर्णना दिखी नहीं है। मलिकुलमुद्रित कोमलकृजित कुञ्जकानन गौर शत मधुमय लोलाका आधार शैकरी कलियोंके काष्ठीयोंके अग्र उरम श्यामल यमुना-पुलिनकी वर्णना आज भी श्रीकृष्णलीलाकी स्मृति, कवि और भक्तके हृदयमें जगमगित कर रही है। धीमदिकाकी आरामस्थली, प्रदुर्गड, केजीतीर्थ, पंजीवट, चोरेघाट, निधुगन, निकुञ्जट्टीर, रामकपली, धीरसमीर, मुञ्जाटवी, जयाटवी, दायानन्द, प्रकृष्टद्वन्द्वतीर्थ, कालोपहर, कालिकद्वय, द्वादशदिश्वरतीर्थ, सुर्दघाट, गोविन्दघाट, देवुद्वय, घामलोतका, रूपसनातनके अथकट स्थान, गोविन्दपुत्र, घापोकृष्ण, जोजनस्थान, धनुस्पाट, गोकर्ण, धनुस्पाट, मधुवन, ज्ञानानन्द, राधाकृष्ण, स्वामकुण्ड, ललिताकुण्ड, कुसुमसरोवर, गोविन्दकुण्ड, सुमुदवन, दामयन्ट, इरावति बहुतेरे दर्शनोप पुण्यस्थायी-का नाम 'धीशुद्धायन-परिक्रमा' प्रथममें लिखा है। भक्त धीशुद्धायन-परिक्रमाके समय इन सब स्थानोंका दर्शन कर पुण्यमण्डप क्रिया करते हैं।

२ गणपतीके एक पीठका नाम। इस स्थानका आध्यायिक नाम गया है।

"रविपत्नी द्वारावरदान्तराधा भून्वाने वने।"

(देवीमां ७३०/६६)

शुद्धायन—गोपालस्तवराजमायके प्रणेता।

शुद्धायनपोष्यामी—भागवतरहस्यके रचयिता।

शुद्धायनचन्द्र तर्कालङ्कारचक्रवर्ती—रविकर्णपुर रविन अलङ्कारकीस्तुभके अलङ्कारकीस्तुभकीविति-प्रकाशिता नामकी टीकाके रचयिता। ये राधावरण कथोद्भूत अक्षर-गर्भोंके पुत्र थे।

शुद्धायनदास—एक वैष्णव। कृष्णकणामृतटीका, निरवा मन्सुगलाष्टक, रासकन्यसारस्तव, रामानुजशुद्धायन्यत आदि कई संस्कृत काव्योंका रच कर इन्होंने कविजगत्में यदा भर्जन किया था।

वैष्णव साहित्यमें चैतन्य भागवतके रचयिता शुद्धायन दासका उल्लेख पाया जाता है। ये धीमदियासकी भातृकन्या नारायणोंके पुत्र थे। गणदीपमें उनका जन्म हुआ था। महाप्रभुके अस्त होने पर उन्होंने 'चैतन्य-भागवत' और 'निरवान्द्वय-जामाला' प्रणयन किया। वर्तमान जिलेके मंत्रेश्वर घामोंके अन्तर्गत देवुद्वय ग्राममें शुद्धायन दासके प्रतिष्ठित मंदिर और विग्रह हैं। यह वैष्णव समाजमें "देवुद्वयीपाठ" नामसे परिचित है।

खेजुरीके महोदयमें निहवर शुद्धायनमें उपस्थित थे। लख कृष्णदास कविराज शुद्धायनदासके चैतन्य लीलाका व्यास कह कर भाद्वर कर गये हैं। शुद्धायन-दासके रचित गोपीक्रीमाहनकाव्य भी वैष्णव समाजकी आदरणीय वस्तु है।

बटना वास्तिव बेनी।

शुद्धायनदेव—निरवाके सयशुद्धायके एक पुत्रका नाम। ये नारायणदेवके जिय और गोविन्ददेवके सुद थे।

शुद्धायनग्रन्थ—एक विषयगत परिचयका नाम। इन्होंने साथ दायदान-विधि, ऊषापरित, कुलेपरित, कृष्णमा-वर्णन, केजीवोटनिटीर, कोटिशैर्माविधि, गणनाकचैत श्रीविका, सुलमंदासजठोरिण्य, गीतोपरित, चण्डिकाचैतपरिग्रहा, वष्ट्रोमीलनचण्डिका, क्षानप्रश्रीप मोरंमैतु, हनकमीमासिद्वयको, दानपरिग्रहा, दाय-नचवटीर, प्रतिष्ठाकटागला, प्रभुशुद्धायनि, प्रभुविदेक,

भास्करयुदाहरण, मधुरा-माहात्म्यसंप्रद, मलमासतत्त्व टीका, मार्कण्डेयचरित, योगचन्द्रिका, योगविवेक, योगसूत्रटिप्पण, लीलावती टीका, बाल्मीकिचरित, वेदश्रीपदल, ग्राम्यचरित, प्रभृति प्रयोगोंका प्रणयन किया था।

वृन्दावनेश्वर (स० पु०) वृन्दावनस्य ईश्वरः । श्रीहृण्ण ।
वृन्दावनेश्वरी (स० स्त्री०) वृन्दावनस्य ईश्वरी ।
श्रीमती राधा ।

वृन्दिन् (स० त्रि०) वृन्दावनस्य वृन्दिन् ।

(भारत उद्योगवर्ध)

वृन्दिष्ट (स० त्रि०) अयमनयोरेयाग्ना अतिशयेन वृन्दाकर इति वृन्दाकर-इष्टम् (म्रियस्थिति । पा ६।४।१२५०) इति वृन्दाकरस्य वृन्दादेशः । श्रेष्ठ ।

वृन्दिषस् (स० त्रि०) अयमनयोरेयाग्ना अतिशयेन वृन्दाकरः, वृन्दाकर इष्टम् म्रियस्थितेयादिना वृन्दादेशः । वृन्दिष्ट, दो या बहुतांशं श्रेष्ठ ।

वृन्दा (स० पु०) वृन्दाक (जनिदान्यु स्रष्टमदिति । उण्य ४।१०४)
१ अद्भुता । २ चूहा ।

वृन्दा (स० स्त्री०) एक लोपधिका नाम ।

वृन्दा (स० पु०) वृन्दिचक्र, विच्छू ।

वृन्दि (स० पु०) लाल मदहपुराना, रक्त पुष्पवत् ।

वृन्दिचक्र (स० पु०) मधु छेदने (द्रव्यरूपोः किकन् । उण्य २।४०) इति किकन् । १ शूक कीट । २ विच्छू ।
पर्याय—अलि, श्रेण, वृन्दिचक्र, द्रुण पृष्ठाङ्क, अरुण, अली ।

हमारे देशमें आस कर दो तरहके विच्छू देखे जाते हैं । एक तरहके विच्छूको अंग्रेजीमें Scorpion कहते हैं और दूसरेको जतपदो श्रेणिभुक्त साधारण विच्छू । प्राणितत्त्वविद्योंने येयोक्त जातीय विच्छुओंको Caterpillar जाति रूपसे निर्दिष्ट किया है । इन दोनों तरहके विच्छुओंके दूँड होता है । इस दूँडसे जब विशेषरूपसे मनुष्यों पर आक्रमण करता है, तब दूँडसे एक तरहका विष निकलता है । उस विषसे जीवके शरीरमें मयानक जलन पैदा होता है । प्राचीन कथियोंने निदाकण मानसिक पीड़ाकी विच्छूके डंकको उवालासे तुलना की है ।

इस समयकी तरह प्राचीन-भारतमें भी साँव और

विच्छुओंका अत्याचार प्रचलित था । ऋक् संहिताके १।१६।१०-१६ मन्त्रमें अगस्त्य ऋषिने विष दूर करनेके लिये सर्पशत्रु सूर्य, शकुन्त, अनि, नदी, मयूर और नकुलको स्मरण किया है । उक्त सूक्तके ७वें मन्त्रमें लिखा है, कि विच्छूका विष रसशून्य नहीं अर्थात् असार या प्राणके व्याघातकर नदी है । सायणाचार्योंका कहना है, कि अगस्त्यने विष शङ्कायुक्त हो कर विषपरिहारके लिये इस सूक्तकी आघृति की थी । ग्रीनरुके मतसे विषप्रस्त व्यक्तिके इस सूक्तके उच्चारण करने पर उसका विष उतर जाता है ।

अधर्ववेदके १०।४।६, १५ और १२।१।४६ मन्त्रोंमें विच्छूके विषप्रभावका परिचय मिलता है । गोबरसे इस कर्कटजातीय विच्छूका उद्भव होता है, इससे इसको गोबर कीट कहते हैं । (अमरटीका भारत)

यह कर्कटजातीय विच्छू Arachnida श्रेणीके Scorpionidea दलके अन्तर्भुक्त है । इसकी मूलवेष्ट कर्कटाकृति है । इसके आठ पैर होते हैं । साध द्रव्य और मनुष्य आदि शत्रुओंको काट कर पकड़नेके लिये दो "गोदुमा" और पीछे गाँठदार एक लम्बो पूँछ रहती है । इस पूँछके अग्रभागमें देहा दूँड होता है । अंग्रेजीमें इसको Sting कहते हैं । जब कोई आदमी स्पेच्छाक्रमसे या अज्ञान अथवास्वसे इनकी गति रोकता है, तब ये कृपित हो अपने प्रतिपक्ष शत्रुको गोदुमा द्वारा आक्रमण और दूँडसे डंक मारता है, उस स्थानमें ज्वाला होने लगती है । यह ज्वाला सारे शरीरमें घड़ने लगती है ।

उत्तर और दक्षिण गोलार्द्धके उष्णप्रधान स्थानमें इस जानिके विच्छू देखे जाते हैं । साधारणतः मैले या दूँटे मकानके छण्डहरमें और घरमें जहाँ ऐसी आवर्जना है, ऐसे अन्धकारपूर्ण ठण्डे स्थानमें विच्छू छिपे रहते हैं । ये श्वासप्रश्वासप्राही और किङ्करकी तरह एक प्रकारका शब्द करते हैं । आठ पैरोंसे ये बहुत तेज चल सकते हैं । सूँड़नेके समय ये अपनी पूँछको घुसाकारमें परिणत कर दूँडको अपने तिर पर रखते हैं ।

हमारे देशके और मध्य एशियाके लोगोंका विश्वास है, कि पहाड़ो कर्कटवृन्दिचक्र या विच्छूका डंक मारनामक है । किन्तु वर्तमान समयमें विषविज्ञानकी

होती है। इसके दृष्टका विष-प्याजका रस मलनेसे दूर हो जाता है। काटे हुए स्थान पर पेदाव कर देनेसे जलन नहीं देने पाती। चाहे हुएकेके जलसे घीनेसे भी उपकार होते दिखाई देता है। शतपदी देखो।

विच्छूके डंक मारने पर तुरत ही अग्निदाहवत् उचाला उपस्थित होती है। डंकके स्थान पर कटनेकी तरह पोड़ाका अनुभव होने लगता है। विच्छूका विष अति-शीघ्र ही देहके ऊपरी भागमें चढ़ने लगता है। हृदय, नाक, जिह्वामें यदि विच्छू डंक मारे और मारे हुए स्थानसे मांस खसक जाये और रोगी वेदनासे अत्यन्त पीड़ित हो, तो यह असाध्य हो जाता है। ऐसी अवस्था होने पर उस व्यक्तिके प्राणवियोगकी आशङ्का हो जाती है।

विच्छूके विषमें घृत और सेंधा नामक द्वारा स्वेद और अभ्यङ्गकी व्यवस्था करना चाहिये। गर्म जलसे और गर्म मेख्रि मोहन तथा घृत पान करना लाभदायक है। पांशु द्वारा प्रतिलोभभावसे उद्धरान् एवं घन आच्छादन अथवा उष्ण जलसे डंक स्थानको उत्तप्त कर उसी तरहसे आच्छादन करनेसे भी विशेष उपकार होता है। कवूतरकी विष्टा, निम्बू, सिरिसके फूलका रस, चारपुणी, आकन्दका लासा, सोंठ, क्राश्टन और मधु—इन खोजीका प्रयोग करनेसे विच्छूका विष प्रशमित होता है। फिर इसमें यातपित्त नामक क्रिया भी करनी होती है। इन्द्रिय, तगरपादुका, जालिनी (घोषाविशेष), कटती और तितलीकी—इस घोगके पान तथा नस्य लेनेसे विच्छूका विष दूर होता है। कण्डू, सूईके चूमनेकी-सी पीड़ा, विषर्णता, शून्यता, क्लृप्त, शरीरका शीघ्रण, विदाह, लौहित्य, उचाला, यन्त्रणा, पाक, शोथ, प्रणिशङ्खन, दशावदरण, स्फोटारपत्ति, गात्रमें पद्मकी पंखटियों समान मण्डलकी उत्पत्ति और अथर विषके शरीरमें रहने पर उपयुक्त लक्षण दिखाई देते हैं। निर्निव हेतु पर उसके विपरीत लक्षण दिखाई देते हैं। (चक्र विक्रिहास्यां० विपचि० २३ अ०)

३ मेपादि बारह राशिमें आठवीं राशिका नाम। इसका अधिष्ठाता देवता वृश्चिककार है। विजाख, नक्षत्रके शेष पादमें अर्थात् विजासा नक्षत्रकी स्थिति परिमाणको चार भागमें बांट देने पर उसके अन्तिम भागमें तथा अनुत्था और ज्येष्ठा नक्षत्रके स्थितिकाल तक वृश्चिक-

राशि और उसमें जिसका जन्म होता है, उसकी वृश्चिक-राशि होती है। यह राशि शीर्षोदय, भवेतवर्ण, जलचर, बहुपुत्र, बहुजीसङ्गम, चित्रतनु और विषवर्ण होती है। इसकी विशेष संज्ञा सौम्य, अङ्गना, युग्म, सम, स्थिर, पुष्कर, सरोसृपजाति प्राप्य है। वृश्चिकराशि मङ्गल प्रदका क्षेत्र है और चन्द्रके निम्न स्थान अर्थात् वृश्चिक राशिमें चन्द्र रहनेसे नीचस्थ होते हैं।

वृश्चिक राशिमें जन्म होने पर अनेक घनजनमाय-सम्पन्न, पत्नीभाग्ययुक्त, खलबुद्धि, राजसेवानुरक्त, सदा पराधनामिलायी, सर्वदा उरसाही, दृढबुद्धिविशिष्ट और अत्यन्त धीर होता है। सिवा इनके पहले इस राशिकी जितनी संज्ञाये बता चुके हैं जातक चैते दी गुणशाली होता है।

राशिके ये ही साधारण गुण हैं। इसके सिवा इस राशिमें रवि आदि प्रदीकी अवस्थिति होनेसे उसके फलकी विभिन्नता होती है।

४ लग्नमेद। दिनरातमें सूर्योदयकी तरह पूर्ण और जिस समय राशिचक्रमें वृश्चिक राशिका उदय होता है, उसी समयके वृश्चिकलग्न कहते हैं। अग्रहायण मासके प्रत्येक दिनको सूर्योदयके साथ ही वृश्चिक राशिका उदय होता है। इससे इस महोत्सके हरेक दिन को सर्वे वृश्चिक लग्नका होना निश्चित है। मेपादि १२ लग्नोंमें यह आठवां लग्न है। वृश्चिकलग्नका फल— जो बालक वृश्चिकलग्नमें जन्म लेता, यह बड़ा मोटा, लम्बा शरीरवाला, व्ययशील, कुटिल, पितामाताका अनिष्टकारी, गम्भार तथा उग्र स्वभाववाला, गिङ्गल नेत्रवाला, स्थिरप्रकृतिक, विश्वासी, सदा हास्यपरायण, साहसी, गुण और सुहृद्गुणो शत्रुतामें निरत, राजसेवापरायण, दुःखी, लाघवविशिष्ट, सदा परितापयुक्त, दानकरनेवाला और पिशरोगका रोगी होता है।

इसका साधारण लग्नफल इस तरह है—लग्नमें यदि कोई प्रद या उसकी दृष्टि न पड़ती हो, तो उक्त फल होता है। किन्तु यदि लग्नमें कोई एक प्रद, या दो तीन प्रद एकत्र हो, या प्रदशतकी दृष्टि हो, तो उन प्रदीके शत्रु, मित्र और स्वभावके अनुसार आदिका विधान कर उसके फलकी कल्पना करना चाहिये। पहले जो फल कहा

गया है, रवि प्रभृति ग्रह रहनेसे यह फल होता है।
 टिमकी राशि और मंगल एक है, मघांशु एक वृश्चिक
 लग्नामें शिमका लग्न हुआ है, उमकी राशि और मंगल
 दोनोंका फल मिया कर फलनिश्चय करना होता है।

वृश्चिकलग्नका परिमाण ५४०५५३, पांच दण्ड
 वालोम एक मलापन विगत, होरा २५०१२८३०, द्रेषाण
 १५३३३३०, मघांश ०३३०५३०, छात्रजांश ०२८२४४४५०
 लिंजांश—०१११२१५४ इसी तरह वृश्चिक लग्नका
 पद धर्म स्थिर करना होगा। यह लग्नको अवेला सूक्ष्म
 है। इसके बाद और भी सूक्ष्म काममें लग्नलुट गणना
 करनी देनी है। इस पद धर्मके फल निम्न निम्न हैं।
 (वृश्चिकक कोष्ठीमें)

५ एक भोवधिका नाम। ६ हासिक। ७ हाल।
 ८ मदनपूजा। ९ मगदहायण मास।

वृश्चिकवृत्तिका (सं० स्त्री०) पूतिका, पोईका साग।
 वृश्चिकमिया (सं० स्त्री०) वृश्चिकरूप मिया। पूतिका।
 वृश्चिकजी (सं० स्त्री०) भाग्युकजी मता, मूसाकानो-
 मता।

वृश्चिक (सं० स्त्री०) छोटा छुपविशेष। महाराष्ट्रमें
 इस क्षुपको विष्णुक, कलिङ्गमें इङ्गल, बम्बईमें विष्णुका
 कहते हैं। संस्कृत पर्वोप—मघांशुजी, विटिका, अग्निपतिका
 गुण—विच्छिन्न, मज्ज, मलापूर्ति भादि योगनाशक।
 वृश्चिकामो (सं० स्त्री०) वृश्चिकनामलिप्यं। छुप-
 विशेष, वैश्वर। (Tragia involvurate) महाराष्ट्र
 वृश्चिकामो, कलिङ्ग हलिमुली, मीरत हल-
 लाठी, तामोव बड्बूरि, बम्बई मोतसिङ्गी। पर्वोप—
 वृश्चिकामो, विषामो, भागवतिका, सर्वदंष्ट्रा, मज्ज,
 कामो, उष्ट्र, घुमरपूष्पिका, विषाली, मेरुतोमदा, उष्ट्रीका,
 अग्निजी, हृष्टिणावर्षो, काविका, अगोमावाका, देव-
 लागुनिका, बरतो, भूतिदावा, कर्जना, लण्ठोरा, गुग्गु-
 लता, शोषविषालिका, भाग्यपुष्पा। इसके गुण—
 कटु, तिक्त, हृद्य और पचनगोपनकारक, कलिना,
 विषमय और अटसिनाशक, बरकर। (रात्रि०)
 शत्रुचलायके प्रसंगे यह भांगी और वातुका नाश करती-
 बानी है।

३ कर्करिज निष्पद्दके अकारका कर्म। गुण—

वातनाशक। (गुप्त ए० १८० ५०) ३ उष्णपूरक, मेघ-
 शृङ्गी। गुण—वातनाशक। (वाग्द ए० १५ म०)
 वृश्चिकाहिविषापदा (सं० स्त्री०) भाकुनी, मग्दाम्ना।
 (वेदकर्मि०)

वृश्चिकेज (सं० पु०) वृश्चिकराजिका अविष्णुकी
 क्षेपता।

वृश्चिकलो (सं० स्त्री०) १ वृश्चिकालो, विष्णु।
 २ लघु भेगशृङ्गी, छोटा भेङ्गामिगो।

वृश्चिकी (सं० स्त्री०) वृश्चिकक्षुप, पुननेवा, गहर-
 पुता। (वाग्द)

वृश्चोर (सं० पु०) सफेद गद्दपुतना।

वृश्चोष (सं० पु०) गद्दपुतना।

वृष (सं० पु०) १ सेचन, धांण। २ हिंसा। ३ बनेता।
 ४ गर्भमहण। ५ वैश्वर्यं। ६ नातिकर्म्य।

वृष (सं० पु०) वर्षाणि सिञ्चति देता इति वृषक।
 १ घैल, मांड। पर्वोप—उशा, मद्र, वलोवर्, क्षुपम,
 वृषम, अतहृत्त, मीरमेय, गांशुङ्गिन, कटुदपत्त, त्रिजिन,
 गंधमैयुग, पुङ्गव।

जान्नीमें लिखा है, कि अजीवात्मके दूसरे दिन
 भूत ध्यतिके उद्देशमें वृषोत्सव करना होता है।
 वर्षोकि, वृषोत्सव करनेसे इसकी प्रेमलोकमें गति न
 हो कर स्वर्गलोकमें गति होती है। सिवा इसके वायु-
 वृषोत्सवकी भी विधि है। गुणगुण लक्षण देख कर
 वृष स्थिर करना होगा है।

वृषोत्सव और वृषम गद्द देखो।

२ रात्रिभेद। मेवादि १२ रात्रिमें वृषकी रात्रि।
 इसको विशेष संज्ञा—मीरप, अंगता, गुग्गु, मम, निष्कर,
 पुत्तर। इस रात्रिके बाद वाद होते हैं। मिनाकालमें
 प्राग्द दिनमें वृष, हृत्तवाव, हृत्तिल विष्णु, मिना और
 वृष्टोदवाण्य है। इनके अविष्णुकी क्षेपता वृषाहति है।

हृत्तिका मत्स्यके देव मीन पादों और मग्नूर्ण
 रोहिणी तथा मृगशिरा मत्स्यके प्रथम दो पादोंमें यह
 रात्रि होगी है। यह रात्रि सुंदर भूमि, आसो,
 वातप्रहति, श्वेतवर्ण, वैश्वरात्रि, महान्मत्स्य, प्रथम
 स्त्रीमंथ, मधुममंताम, दाना, निर्वाण, परदारानिदायो
 और वायुदामर देती है। इस रात्रिनाम व्यक्ति मो इसी

तरहका होता है। वृषराशि चन्द्रके तुल्य स्थान है। यदि चन्द्र वर्षा हो, तो सब प्रदोसे बली हो कर रहता है।

वृषराशिका फल—वृष राशिमें जन्म होने पर कमनीय मूर्ति, टेढ़ी चालवाला, ऊँच और घटन मोटा; पृष्ठ, मुख और पाश्र्वदेशमें चिह्नविशिष्ट, दाता, फलेश सहनेवाला, प्रभु, ककुत्त अर्थात् गर्दनका निचला हिस्सा ऊँचा, कन्यासन्ततिवाला, श्लेष्म प्रकृतिका, प्रथमायस्थापमें घन, बंधु और सन्ततिहीन, सीमागययुक्त, क्षम शील, दीप्तानि-सम्पन्न, प्रमशामिय, सिंघरमितवाला, मध्य और अग्रय उन्नतमें सुखी होता है। (वृहज्जातक)

कोष्ठप्रदोषके मतसे वृषराशिमें जन्म होनेसे उत्तम स्थूलजघन और कपोलयुक्त, प्रशान्त चक्षुः, कम बोलने वाला, पयिन्न, अरयन्त वक्ष, मनोहर देहवाला, सुखी, देव, द्विज और गुह्यमक, श्रेष्मवातप्रकृति, केशका अग्र-भाग भी शुभ्र, कुटिल और रोमयुक्त होता है। यही राशिका साधारण फल है। इसके सिवा इस राशिमें रवि, आदि प्रदोके रहने पर उसका फल मित्र रूप हो जाता है।

धूलन—धूलनमें जन्म होने पर गाल, होठ और नासिका मोटी होती है, ललाट चौड़ा, मरयन्त वात-श्लेष्म प्रकृति, स्वागशील, अधिक खचे करनेवाला, अल्प पुत्रवाला और अधिक संख्यक कन्यायुक्त, पितामाताको कष्टदायक, घनभागो, सब अरुभमें आसक्त और सर्वदा आत्मीय हन्ता होता है। धूलनजात पुत्रय अल्प या पशु द्वारा भक्षया अन्य स्थानमें देहधम, जलमें डूब कर या शूल, पर्यटन, निरक्षण, चौपाये-जानवर या बलवान् मनुष्य द्वारा मृत्युमुक्षमें पतित होता है।

धूलनके परिमाण ४४६१५०, (४४६५६, उंचास पल, और पचास विपल), होरा, २३२४५५ विपल, द्रोक्षाण
—१३६३६३०, नयांश ०३२३२३३३३, द्वाहशांश—
—०३४६६१०, द्विशांश ०६३६६३०।

लनका उक्त परिमाण स्थूल और लन स्फुट द्वारा सूत्र होता है। इन सब होरा द्रोक्षाण प्रभृतिका फल भी मित्र रूपका होता है।

धूलनके प्रथम होरामें जन्म होनेसे उन्नत शरीर; चक्षुः ललाट, और यक्षास्थल; चौड़ा, दाम्भिक और

स्थूल शरीर, द्वितीय होरामें जन्म होनेसे स्थूल और दोषं शरीर, उदार प्रकृति और कटिदेश (कमर) मनोहर होता है।

धृषके प्रथम द्रोक्षाणमें जन्म होनेसे पानभोजनप्रिय, नारोविधोगसन्तापयुक्त, स्त्रीकर्मांतुसारी, घबरालङ्कारयुक्त, द्वितीय द्रोक्षाणमें जन्म होनेसे मति धनी, वन्धुयुक्त, भोका, भूषणरत, बलवान्, सिंघरप्रकृति, मनस्वी, लोभी, और स्त्रीप्रिय तृतीय द्रोक्षाणमें चतुर, अल्पमाग्ययुक्त और मलिन होता है।

लग्न और राशि दोनों यदि एक ही, तो मिश्रित रूपमें जातकके शुभाशुभ फल निर्णय होते हैं। लग्न, राशि या रवि आदि प्रहका अथस्थान और उनकी दृष्टिके सम्बन्धमें—इन सबोका मिलित रूपसे फल निर्देश करना होता है। (वृहज्जातक और कोष्ठप्र०) इस राशिका-आकार वृष (धूल)की तरह है, इसीलिये इसका नाम वृष पड़ा है।

४ चार प्रकारके पुठोमें एक पुठय। बहुगुणशाली और बहुत तरहसे रतियंघमें अभिन्नत, शरीर, सुन्दर देह, और सत्ववादी—११ गुणोवाला पुठयका नाम वृष है। इस पुठयको शङ्खुनी नारी बहुत प्रिय होती है।

(रतिमन्तरो)

५ यारहवें मन्थन्तरके इन्द्र। (गर्भपुराण ८७ अ०) कामान् घर्षतीति वृषकः। ६ धर्म, वृषरूपी चतुराङ्ग धर्म। ७ श्रुती। यह शब्द उत्तर पदस्थ होनेसे श्रेष्ठार्थवाचक होता है। ८ मूर्ति, चूटा। ९ शुक्ल। १० यास्तुस्थानमेद। (मेदनो०) ११ धानन, भट्टन। (विश्व) १२ श्रोत्रण। १३ जङ्गु। १४ काम। १५ बलवान्। १६ धूमन नामकी भीयव। १७ पति। १८ नदी मल्लातक; नदीमें होनेवाला मिलाया। १९ गोधूम, गेहूँ। २० वातामूल, धमालेकी जड़। २१ यह, मेरका पंख। वृषक (सं० पु०) १ वृष, सांड़। गांधारराजके एक पुत्रका नाम। २ साममेद। वृष देलो। वृषकर्णो (सं० खो०) १ सुदर्शन नामकी लता। २ एक प्रकारकी विधारा। वृषकर्मा (सं० त्रि०) धर्मकर्मा। वृषका (सं० खो०) एक प्राचीन नदीका नाम।

दृष्यकाम (सं० लि०) १ धर्मकाम । २ जो दृष्यको कामना करे ।

दृष्यहृत् (सं० लि०) दृष्यपुष्प ।

दृष्यमन (सं० लि०) दृष्यद्वय ।

दृष्यमनु—१ दृष्यपत्र, निघ । २ कल्पके एक पुत्रका नाम ।

दृष्यभृत् (सं० लि०) वर्षा करनेवाले, दम्भ । (शब्० ५१३६६)

दृष्यसादि (सं० लि०) १ सोमपायी, यह जो सोमपान करता हो । २ दम्भ जिसके अन्त अक्षर है ।

(शब्० १६५१० वाक्य)

दृष्यमाल (सं० पु०) एक श्रुतिसमूहका नाम ।

(शब्० ११४०८)

दृष्यमग्धा (सं० स्त्री०) १ कचहो या कच्यो नामका वीध ।

२ अनियता, एक प्रकारकी विधायता ।

दृष्यमण्डिता (सं० स्त्री०) दृष्यगन्धा देती ।

दृष्यसक्त (सं० स्त्री०) दृष्याकारक चक्र ।

दृष्याकारकविशेष । सर्वोपपत्तयुक्त एक दृष्यकी प्रतिमूर्ति अर्थात् वर उमका मुख, शीव, काम, जीव, शीव और अक्षयदेवता तथा कर्म कर्त्तव्यादि दो दो

मन्त्र रखे प्राप्ति है । पीछे उरकी पीठमें स्थानों, विद्याया, और अनुसाया । पूर्वमें उपेष्टा और मृदा, पर्येक पाद-

में दृष्याकारक तथा मन्त्रमन्त्र दो दो कर अभिसिद्ध मूर्ति

उत्तरभाद्रपद तक साठ और उत्तरे उदरमें देवता, अभिनी

और भरणी । इन सब मन्त्रोंकी पद्यापथ स्थानमें रख

कर उरमें हस्तप्रवाह और पीछे घण्टादि काष्ठके पात्रका

मुद्रामुद्र निर्वच किया जाता है । अर्थात् अर्द्धित दृष्यके

मुद्राविषयन मन्त्रमें अक्षरके अक्षरस्थान कावमें हस्त

प्रवर्तनादि करनेसे कार्यकी प्राप्ति, हेतुस्थ मन्त्रमें अक्षरके

अक्षरस्थानमें ये सब कर्त्तव्य करनेसे सुख, कर्मस्थान मन्त्रमें

वर्द्धकी अक्षरस्थान कावमें निर्या और समन, शीवमें

धुनि, श्रुद्धकामे शीव, कार्यकाममें अक्षरप्रदेश

मन्त्रमें कर्त्त, पूर्वमें समन, अक्षर करनेसे

सुख, पूर्वस्थान मन्त्रमें कर्त्त, पूर्वमें कुशल, वादमें समन

और अक्षरदेशस्थान मन्त्रमें अक्षर करनेसे सर्व कार्य

करनेसे सुख होता है । (स्तोत्रमन्त्र)

दृष्यपुष्प (सं० लि०) सोमपाना शक्तिवृद्धि का परि-

शुद्ध ।

दृष्यभृत् (सं० लि०) वर्षणमय, वर्षणकी गति ।

दृष्यपल (सं० पु०) अक्षयवैद्य, रक्त, मांस, रक्त और मूत्रके सार अर्थात् वायुके संधिगतसे इनकी उत्पत्ति है ।

(शुभम)

यद्यप्युपलामे लिखा है—एक दृष्यपल अक्षयपल दुगुणो होता है । जिसके दोनो अक्षयपल परस्पर समान होंगे, वही व्यक्ति राजा होगा ।

क्या दोनो सममान होनेसे अनुपपत्तयुक्त होता है । जिस अनुपपत्तके दोनो अक्षयकेप साथ आवसे स्थित रहते हैं, यह अन्त्याशु और

निर्दय मनमत्ता जाता है ।

दृष्यपलकण्ट (सं० स्त्री०) दृष्यपल कण्ट ।

सद्गुरोप विशेष । अनाम सपथा पीनो हुई कर्त्तव्य हस्तो मादिकी मानिजाने जरीरका मन्त्र साक न करनेसे यदि यह मन्त्र

मुक्त्तदेवतामें जन जाता है, तो यह स्थान अक्षयपल अक्षयपुष्प और अक्षय होता तथा यहाँ काज उदर हो कर्मसे हमसे

स्फोट या कुम्भियाँ और उनमें पीव वा मन्त्रादि निवृत्तसे स्थाना है । अक्षयपल और रक्तके प्रकोपवन्तः रीतोंके ये

सब उक्षण दिखाने देनेसे उन्नीके दृष्यपलकण्टु या दृष्यपलकण्टु कहते हैं ।

मिहितना—द्विराकन (कर्मना), गौराचन, मुनिया,

हरताल और रत्नाञ्जन, कौशिके साथ पोस कर प्रलेप

करनेसे अथवा घेरका छिन्नक, सैषा तथाकके साथ पाव

कर लेव करनेसे अक्षयपुष्प और दृष्यपलकण्टु रोगकी

प्राप्ति होती है । सर्वात्म्य, मोषा, कुट, शेषा नामक,

मादो सरनी उल्लङ्घनी पोस कर उदरन स्थानसे

दृष्यपलकण्टु रोगकी समाप्ति होती है । मुनिया वा जलो

मिष्टो मन्त्रा अथवा के अक्षय कर मितनेसे जो यह रोग

दूर होता है ।

दृष्यजम्ब (सं० पु०) १ दम्भका घेरा । २ एक स्थानम-

क्याल राजाका नाम । (शब्० ११५१३) (लि०)

३ शैवमन्त्रमें अक्षयपुष्प, आ योहा निर्वचन काव्यमें

निपुण हो । (शब्० ८३०१०)

दृष्यकण्ट (सं० लि०) संवत्कर्त्तव्युक्त, संवत्कर्त्तव्यो सम-

विषय ।

दृष्यकण्ट (सं० स्त्री०) १ दम्भका घन । (लि०) २ वर्षण

कर्त्ता । (शब्० २५१०८)

चूयत्व (सं० क्ली०) सेचनसामर्थ्या । (श्रृक् १।५४।२)
चूयदंशक (सं० पु०) चूय-दन्तश्च अच् वा ण्युल् । जो
चूय-अर्थात् चूहेका दंशन करे, बिल्ली ।

चूयदञ्जि (सं० त्रि०) वर्षणकारी पदार्थ द्वारा जो
सिञ्चन करे ।

चूयदन्त (सं० त्रि०) चूयस्य मूर्धिकस्य दन्त इव दंती
यस्य । जिसके दांत चूहेके दांतकी तरह हों ।

चूयदर्भ (सं० पु०) १ काशीराजके एक पुत्रका नाम ।
२ शिविके एक पुत्रका नाम । ३ श्रीकृष्णका एक नाम ।

चूयदेवा (सं० स्त्री०) वसुदेवकी एक पत्नीका नाम ।
(वायुपुराण)

चूयद्वयु (सं० पु०) एक राजपुत्रका नाम ।

चूयद्रोप (सं० पु०) देशभेद ।

चूयधूत (सं० त्रि०) प्रस्तर द्वारा अभियुत ।

चूयध्वज (सं० पु०) चूयो चूयभो मूर्धिको धर्मो वा
ध्वजो चिह्नं यस्य । १ शिव । २ गणेश । ३ वह
जो पुण्यवान् हो, पुण्यात्मा । ४ एक राजपुत्रका नाम ।

५ एक पर्यंतका नाम : ६ तांत्रिक मन्त्र-रचयिताभेद ।
त्रियां टाप् । चूयध्वजा, दुर्गा ।

चूयध्वजश्चा (सं० स्त्री०) नागरमोथा ।

चूयन् (सं० पु०) चूय-कनिन् । (मुन वृषीति । उण्
१।१५६) १ इन्द्र । २ कर्ण । ३ वेदनाशान् अध्या
उससे उत्पन्न अचेतनता । ४ चूय । ५ अश्व ।

६ विष्णु । ७ यक्ष ।

चूयनामि (सं० त्रि०) वर्षणक्षम नामि अर्थात् चक्र
छिद्रयुक्त जिसे नामि या चक्रच्छिद्रकी वर्षणयोग्यता
है ।

चूयनामा (सं० क्ली०) वर्षण सौर नमन अर्थात् नत या
अभोगति होना । (श्रृक् ६।६७।१४)

चूयनाशन (सं० पु०) चूयान् मूर्धिकान् नाशयति नश-
यिञ्च लुप् । १ विडङ्ग, पायविडङ्ग । २ श्रीकृष्ण, अरिष्ट
रूपी चूयकी श्रीकृष्णने नाश किया था, इससे भगवान्
चूयनाशन कहे जाते हैं ।

चूयन्तम (सं० त्रि०) अतःवन्तवर्षणकारी ।
(श्रृक् १।१०।१०)

चूयपति (सं० पु०) चूयस्य पतिः । १ पण्ड, ह्योय,
ध्वजमङ्ग । २ शिव, महादेव ।

चूयपत्रिका (सं० स्त्री०) वल्गोली, छागवली नामकी
ओपधि जो विचाराका एक भेद है ।

चूयपत्नी (सं० स्त्री०) वह जिसके पतिमें वर्षण करनेकी
क्षमता है ।

चूयपर्णिका (सं० स्त्री०) भारङ्गी, ग्राहणयष्टिका ।

चूयपर्णी (सं० स्त्री०) चूयस्य पर्णा इव पर्णमस्याः ।
१ भास्वपर्णी, मूसाकानी । २ पुरातिका वृक्ष । ३ कृष्ण-
दन्ती ।

चूयपर्षन् (सं० पु०) चूये पर्यं उत्सवो यस्य । १ शिव,
महादेव । २ देवतका नाम । ३ एक वृक्षका नाम ।

४ केशर, कसेरु । ५ विष्णुका एक नाम । ६ एक राजाका
नाम । ७ भंगरा । ८ एक प्रकारका तुण ।

चूयपाण (सं० क्ली०) परिलेचनक्षम पदार्थोंका पान,
जो पदार्थ सेचन कार्यमें समर्थ है उसका पान ।

(श्रृक् १।५१।१२)

चूयपाणि (सं० त्रि०) चूया सेचनसमर्थाः पाणिर्नास्य ।
जिसका हाथ परिलेचन कार्यमें निपुण है ।

(श्रृक् ६।७५।७)

चूयप्रभर्षन् (सं० त्रि०) वर्षणशीलके प्रहर्षा ।
(श्रृक् ५।३२।४)

चूयप्रयाधन् (सं० त्रि०) जिसमें सेचन और गमनकर्त्ता
हो । (श्रृक् ७।२०।६)

चूयप्रिय (सं० पु०) विष्णु ।

चूयम (सं० पु०) चूय-अमच् (श्रुतिवृत्त्यां कित् । उण्
३।१२३।१) चूय, येल, वद्, सांद् । २ घोर, वहादुर,
श्रेष्ठ । ३ साहित्यमें यैर्दनी रीतिका एक भेद ।

४ आदिजिन । ५ कर्णछिद्र, कानका छेद । ६ श्रवण
नामकी ओपधि । ७ विष्णु । ८ चार तरहके पुष्पोंमें
एक पुष्प, जिसके लिये संजिनो स्त्री उपयुक्त कही गई
है । वृष शब्दमें विशेष देतो ।

त्रियां ङीप् चूयभो । ६ विषवा स्त्री । १० कर्ण-
शकुली, कानके भीतरका वह सूक्ष्म चमड़ा जिस पर
शब्दोंका टकर लगता और उससे वर्षण प्राप्त होता है ।

११ हाथीका कान । १२ ओपधि । १३ द्रव्यविशेष ।

वृषलक्ष्मन् (सं० पु०) वृषो वृषमः स एव लक्ष्म विहं यस्य । वृषलाञ्छन, महादेव, जिनको वृष पर देख कर पहचाना जाये ।

वृषरता (सं० स्त्री०) वृषलक्षा भाव या धर्म ।

वृषलत्व (सं० स्त्री०) वृषलता ।

वृषलाञ्छन (सं० पु०) महादेव, वृषमाङ्क ।

वृषलात्मज (सं० पु०) शूद्रोद्भव, शूद्रजात । २ अघार्मिकोत्पन्न, पापीपुत्र ।

वृषली (सं० स्त्री०) १ अविवाहिता रजःसला कन्या, जिस कन्याका विवाह न हुआ हो पर रजसला हो चुकी हो । अति और कसबका कहना है, कि पित्तके घर अविवाहिता अवस्थामें जो कन्या रजोदर्शन करती है, वह वृषली कहो जाती है । ऐसी कन्याके पिता पातकी होता है और उसको मूणहत्याका दोष लगता है । (उद्गाहत्व) २ यह स्त्री जो अपने पतिको त्याग दूसरे पुरुषसे प्रेम करती हो । काशीधण्डमें लिखा है, कि केवल शूद्राको ही वृषली नहीं कहते, घर चाहि जिस वर्णको हो, जिसने अपने पतिको त्याग दूसरे पुरुषको प्रेमो बनाया, वह वृषली कहो जायगी ।

“सहृद्यं वा परित्यज्य परकृषे वृषयते ।

वृषली वा दि विरोधा न शूरी वृषली भवेत् ॥”

(काशीधण्ड)

३ शूद्रा । ४ वृषल जातियां स्त्री अर्थात् अघार्मिका, पापिष्ठा, वा दुष्कर्मा करनेवाली स्त्री । ५ नीचकी स्त्री । ६ ऋतुमती स्त्री । ७ मृतसन्तानप्रसवकारिणी, वह स्त्री जो मरो हुई सन्तान उत्पन्न करती हो ।

वृषलीपति (सं० पु०) वृषली कन्याका विवाह करने वाला, वह जिसने वृषली कन्याका विवाह किया है । वृषली कन्याका विवाह करनेवाला शास्त्रानुसार धादादि कर्मोंके अधिकारी नहीं होता । अपनी जाति में वह पत्निमें भोजन करनेका अनधिकारी होता है ।

(उद्गाहत्व)

ग्रहवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि ग्राहण यदि शूद्रा स्त्रीसे सहवास करे, तो उसको भी वृषलीपति कहते हैं ।

“गदि चूद्रा भवेत् विभो वृषलीपतिरेव सः ।” (मन्त्रे० पु०)

वृषलोचन (सं० पु०) वृषस्य लोचने इव लोचने यस्य । १ चूद्रा । २ वृषके नेत्र, बैलको आंख ।

वृषवत् (सं० पु०) एक पर्वतका नाम ।

वृषवासी (सं० पु०) केरलदेशके वृषपर्वत पर बसनेवाले, शिवजी । २ शूद्र ।

वृषवाह (सं० त्रि०) वृषारोही ।

वृषवाहन (सं० त्रि०) वृषो वाहनं यस्य । १ गिध, महादेवजी । २ वृषरूपवाहन अर्थात् यान ।

वृषयोमत्स (सं० पु०) एक प्रकारकी कौल या केवांच ।

वृषवृष (सं० स्त्री०) एक प्रकारका साम ।

वृषवत (सं० त्रि०) वृषकर्मा, वर्णकारी ।

(श्रृक् ६।६।१।१)

वृषव्रात (सं० त्रि०) सेचनसमर्था, जो सेचन करनेमें समर्था हो । (श्रृक् १।८।१।४)

वृषवाङ्क (सं० पु०) १ विशुणु । २ वृषका शत्रु ।

वृषगिप्र (सं० पु०) वैदिककालका एक असुर ।

वृषगोल (सं० त्रि०) वृषल । (निष्क ३।१६)

वृषशुण (सं० पु०) वातायत महर्षिके अपत्य ।

वृषशुभ (सं० त्रि०) १ वृषकी तरह बलशाली, बलवानोंके शोषणकारी । २ एक प्राचीन ऋषिका नाम, जो जतुर्णके पोते थे । (ऐतरेयब्रा० ५।२६)

वृषयण्ड (सं० पु०) एक ऋषिका नाम । (प्रवराध्याय)

वृषसव (सं० पु०) वह जिसने यज्ञ करनेके लिये मंगल स्नान किया हो । (श्रृक् १०।४।८)

वृषसार (सं० पु०) १ शुक्रवद, सफेद वड । २ देवकुम्भी, बड़ा गुला ।

वृषसांड्या (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम जिसका उद्गम महाभारतमें मिलता है ।

वृषसाहा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम ।

वृषवृषो (सं० पु०) भृंगरोल नामका कीड़ा, वृषशृङ्गिन ।

वृषसेन (सं० पु०) १ कर्णके पुत्रका नाम । २ सहायि वर्णित एक राजा । (सहायि ३।४।६)

वृषस्कन्ध (सं० पु०) वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य ।

१ जिमका कंधा बैलके कंधेके समान हो । (रघु १।१३)

२ गिध । (भारत शान्तिपर्व)

परममनोकी शक्ति अद्भुतमि न हो, जो अविपरमता सोके उतरम दुई हो, अिमका रहू, सुख और मोर्गे विनय हो, अिमकी आशक्ति मनोहर हो, जो सोम्या भोगिनी, अनुदना, माप्रियो, रक्तहिता, विस्मयकल्पता हो, यही परममनो प्रदल करमो चाहिये । इस पर यदि वपु-शक्त, योगीकल्पद्वय प्रशस्यु, अष्टावना परममनो मिमसके, तो और भी उत्तम हो । उरः, पृष्ठ, गिर, वृष्टि और अोनिष्ठव अिमके उतम हो यह वपु-शक्तता बही जानो है । मिथा हमके दोनो काम, दोनो मेल और सहाय दे पाँच मन और भावत तथा पूंछ, माध्या और मरु-मिनी छव ये चार राम और गिर तथा सोबाहेन भावत होमे पर भी उत्तम भाव बही जानी है ।

वृषभशान—मिथके कथा और कर्तृ उतम हो, पूंछ और शयन शान्ति, वेदुर्वात्मिकी तरह शोषन, प्रवाल गर्भका मरु मृच्छा, सुशोभे और वृषु बान्धुपिमुक और अिमके ३ वा ८ शक्ति हो, यह शैल ही उत्तम बहा जाना है । साक्षरगिर वा शैल, रक्त, कृष्ण, और वा परवत्की तरहका शैल प्रादलोके त्रिधे उत्तम है । उपरोक्त अन्तःपुनः वृषु वा शैल तथा परममनो वा अतिवा सुषोडसर्गमे प्रकल्प है । मासवेद, प्रथवेद और अशुर्वेदोदमे सुषोडसर्गकी वज्रति भी शैल तरहकी है ।

सुषोडसर्गके स्वस्तिवाचनके बाद महाभासत नामी चारण करना होता है और सादहेनापःसो महाभासतके विराटसर्गका पाठ किया करने है । सुषोडसर्गके त्रिधे निम्नलिखित अशुर्वेदकी भाष्यवचना होती है । मरुके पदमे मोक्षता, वा किमी सुवपुर्गममे शीर्षीम और चार हाथका पर मरुद्वय अन्वया करना होता है । मरुद्वयार्थवचन १ मरु, प्रथममरु, ५ पदके, १ नासिक कुम्भ, पराव्यादनवचन ५ मरु, नासिककुम्भका पुमवचन १ मरु, अशुर्वचन और ३ मरु व मरु, मरुका और मरु-विष्णुपुत्रके वेदनामकार छप्य, १ वृष, ३ परममनो, शिरदिन, शीम, वा कर्तु और कृष्ण होमेमे और भी मरुका वृषका काष्ठरश्तु, काष्ठवर्षा वदु, रक्तवृष, वृष्ण, मोरवृष, वासवृष औरवर्षा, मोहनपुत्र वपुवृष कापर, वृष्ट, मोरवृषादेरिवाकपुष्ट, अशुर्वर्ष, मिश्रवर्षि का वृष्टव (मरुकेके वृष्टि) वद्वारवृष्ट, लो-

विश्व, अनामार्गी सर्षोवृष्टि, कल्पवृष, मोक्षव, सुमरु, अनायासार्थ वचन, मोहुम्वर मयिव, कुनविन, वरन, वत्स—१ प्रथमवृष, २ द्वितीयवृष, ३ आवादी, ४ मरुवृष और ५ विराटवृष । मोक्षवचनवचन, विवरणसुशुभ, वपुवपुष्टव, सुशक्तवदन, प्रथमशिक्षार्थ पूर्णवचन, प्रथमवर्ण सुवृष्टका, प्रथमवृष, होमका पुन, शक्ति, वद्वारवृष, आश्वमेधावृष, चन्द्रवृष, मरुवृष, शट भादि । इस सब वृषोका वरत कर सुषोडसर्ग करना चाहिये । उक्त वृषोको वज्रतिधेमे विद्ये विवरण किया गया है ।

अशुर्वेदी और श्राव्येदी श्रेयोकी सुषोडसर्गकी प्रकाली प्रायः हो एक तरहकी है । सामान्य सामान्य मन्त्रोका प्रभेद है । अशुर्वेदोके सुषोडसर्गमे वृषके कर्णमे मरुम कृष्णव्यावका गठ करना होता है । मरुत मे भी कर्णो कर्णो प्रभेद है । श्राव्येदोके सुषोडसर्गमे मरुका और परव्यादके वरि पावनामो और पुष्टवृष्ण वात करना होता है । वज्रतिधेमे विद्ये विवरण देवना चाहिये ।

श्राव्येदी अशुर्वेद प्रथ कथन सुषोडसर्ग करना हो, मरु नासिक नाम, शैलाकामस और पाँचमासी श्रादि निमित्तोमे जो परमेका विधान है ।

सुषोडसर्ग (सं पुं) विष्णुका नाम । 'सुषोडसर्ग' भी होता है ।

सुषोड (सं पुं) विष्णुका एक नाम ।

वृष्ट (सं पुं) कुला ।

वृष्टि (सं पुं) वृषः वृष-कर्म । मेयोमे तम उपकला ।

वर्षा,—वर्षा, मोषुन, पराशुन, वर्षण ।

मनुका कहता है,—
 "मरुके प्रकाली मरुवर्षावृषवृष ।
 अशुर्वेदोके वृष्टिवृषमे मरु मरुका छ"
 अशुर्वेदी आशुर्वेद देवे पर एक समके, सुषोडसर्गमे सुर्वेदको दो पर मरुद्वय भावमे प्राप्त होता है । सुर्वेद वही मरु वृष्टि काये परित होना है । वृष्टिमे मरु मरुद्वय होता है और इन वरुके वरु उपकला होती है । मरुद्वय वरुवादि हो वृष्टिके कारण है । बहुत परमात्मकी वरु करमेमे वरुम वृष्टि भी होती है ।
 अशुर्वेदी मरुका है, कि सुर्वेद वृषोके मरुकी वृष

लेने और उस रसको सहस्र गुणमें वर्षण कर देते हैं।
 "सहस्रगुणसुखसहस्रमादसे [द रसं रयिः।" (१५१ मं)
 ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है, कि नन्द आदि गोपीने
 इन्द्रके लिये महोत्सव और पूजा करनेका आयोजन कर
 श्रीकृष्णसे कहा था,—वत्स-कृष्ण! महेश्चन्द्रकी यह पूजा
 हमारी पुरुषानुगत और सुव्यूष्टिकरण है। व्यूष्टिसे हो इस
 जगत्की रक्षा होती है। इन्द्रदेव यह व्यूष्टि किया करते
 हैं। सुतरां उनकी पूजा करना सर्वात्मोपायसे कर्त्तव्य
 है। कृष्णने यह सुन कर कहा था, कि पितः! आपके
 मुखसे आज बड़ी विचित्र तथा आश्चर्यजनक बात सुनी।
 इन्द्रदेवकी व्यूष्टि करनेकी बात लोक और शास्त्र दोनों
 मर्तसे उपहासस्पद और देवविगर्हित है। वहाँ ऐसा
 विधान नहीं, कि इन्द्र द्वारा व्यूष्टि होती है। आपके
 मुखसे आज यह अपूर्व नीतिवाक्य सुना। आप फिर
 इस तरहकी बात न कहें। इस समय पण्डितोंकी नीति-
 के वाक्य सुनिये। भगवान् सूर्यसे व्यूष्टि हुआ करती
 है और उसी व्यूष्टिसे शक्य (फसल) और वृक्ष, पीछे
 वृक्षासे फल, और शक्यसे अन्नकी उत्पत्ति होती है तथा
 अन्न और फलों द्वारा ही जीवधारि जीवधारण करनेमें
 समर्थ होते हैं। समय पर सूर्य ही जलप्राप्त करते हैं और
 समय पर उन्हीं सूर्यसे उसका उद्भव होता है। सूर्य
 मेघादि सभी विधाताने निरूपण किये हैं। हस्तो अपने
 शुण्ड द्वारा समुद्रसे इच्छानुरूप जल ग्रहण कर मेघको
 देता है। मेघ वायु द्वारा चालित हो कर समय समय
 उसी जलको पृथ्वी पर चारों तरफ बरसाता है। यह सब
 घटना ईश्वरकी इच्छाके अनुरूप हुआ करती है। इसमें
 कुछ भी प्रतिबन्धक नहीं होता। भूत, भविष्यत चर-
 मान, महत्, ह्युद् और मध्यम चाहे जो हो, सभी परमात्म
 भगवत्की इच्छासे ही होता है।
 (ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मसं० २१ अ०)
 व्यूहत्संहितामें लिखा है—मार्गशर्षा महानेकी
 शुक्ल प्रतिपदासे जिस दिन चन्द्र पूर्वाषाढा नक्षत्रमें
 सञ्जत होता है उसी दिनसे व्यूष्टिके गर्भक लक्षण
 दिखाई देते हैं। चन्द्रके जिस नक्षत्रमें जानेसे मेघका
 गर्भ होता है, चन्द्रयशमें अर्थात् चन्द्रके दिनानुसार
 १६५वें दिन उस गर्भका प्रसवकाल है अर्थात् उसी दिन
 व्यूष्टि होती है।

सितपक्षजातगर्भ कृष्णपक्षमें, कृष्णपक्षसम्भय गर्भ
 शुक्लपक्षमें, दिवाजात गर्भ रात्रिकालमें और रात्रिप्रभय
 सन्ध्याकालमें प्रसवकाल होता है अर्थात् उसी समय
 व्यूष्टि होती है।

मार्गशर्षा मासजात गर्भ और पीप शुक्लपक्षजात गर्भ
 मन्दफलयुक्त होता है। माघमासके शुक्लपक्षका गर्भ
 ध्रावणके कृष्णपक्षमें, माघमासके कृष्णपक्षके गर्भका
 प्रसवकाल भाद्रमासके शुक्लपक्षमें अर्थात् इसी समय
 व्यूष्टि होती है। फाल्गुन शुक्लपक्ष जात गर्भमें भाद्रमासके
 कृष्णपक्षमें और फाल्गुन कृष्णपक्षीय गर्भ आश्विनमास-
 के शुक्लपक्षमें, चैत्रके सितपक्षजात गर्भ आश्विनके कृष्ण
 पक्षमें और कृष्णपक्षजात गर्भ कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें
 प्रसूत होता है अर्थात् उसी समय व्यूष्टि होती है।

पूर्वसे उठा हुआ मेघ पश्चिम दिशामें जाता और
 पश्चिमसे उठा हुआ मेघ पूर्व दिशामें जाता है। उत्तर और
 दक्षिणे वायुका भी इसी प्रकार विपर्यय होता है। ईशाण
 कोण और पूर्वकी वायुसे आकाश साफ, आनन्दकर और
 मृदु मृदु व्यूष्टि होती है। चन्द्र और सूर्य स्निग्ध और
 बहुत शुक्लमण्डलोंसे परिष्यात होते हैं। मार्गशर्षामें अति
 शीत और वीषमें अत्यन्त हिमपात होनेसे गर्भकी व्यूष्टि
 नहीं होती। फाल्गुनमें यदि हवा तेज और रूखी रहती
 हो, मेघ सञ्चय स्निग्ध, परिवेष असम्पूर्ण, सूर्य अग्निकी
 तरह पिङ्गल और ताम्रवर्ण हो, तो मेघका गर्भ शुभ सम्-
 कला चाहिये। चैत्रमें गर्भ पदि-पयन, मेघ, व्यूष्टि और
 परिवेषयुक्त हो, तो शुभ जानना चाहिये। वैशाखमासमें
 पदि मेघ गायु, जल और शम्भित-विद्युत्युक्त हो, तो
 गर्भ द्वारा शुभ होता है।

मुक्ता वा रौप्यसन्निभ वा तमाल, मोलोरपल और
 अञ्जनकी घृतिविशेष या जलचर प्राणियोंकी तरह
 आकारवाले मेघ बहुत व्यूष्टि करनेवाले होते हैं। फिर
 गर्भ सूर्यके गोधकिरणमें अतितापित और मन्दमासके
 समन्वित होने पर मेघ माने प्रसवकालमें अत्यन्त कुपित
 हो बहुत व्यूष्टि करते हैं।

अशानि, उल्का, पांशुपात, दिग्दाह, भूमिकम्प, गन्धर्व
 नगर, कीलक, केतु, प्रव्युक्त, निघात, रुधिरादि व्यूष्टि-
 विधृति, परिघ; इन्द्रधनु और राहुद्वरन—इन सब उत्पात

भीर अल्प त्रिविध इत्यादि द्वारा गर्भ मष्ट होता है ।

शुक्रवृषभापस्रजिन जिन सब समान मानाए लक्षणों द्वारा जो गर्भ वृष्टिमान होता है, उसके विपरीत लक्षणों द्वारा इनका विवर्ण्य होना है । सब शत्रुभीमें पूर्व-माद्वय, पूर्वमादा, उषरायादा भीर रोदिलो अग्नि नक्षत्रमें वर्तित गर्भ बहुत जल प्रदान करता है । जल-मिषा, मयईवा, मादा, कानि भीर मया मयाइया गर्भ गुणमष्ट है । यह बहुत दिनों तक पोषण करता है और त्रिविध इत्यादी द्वारा हल होने पर भी हलन करता है ।

अथ ११ वांवी मष्टसेके दिनों वृद्धते उप अयकमान करने हैं, तब भार्गवोंसे पैनाल तक ६ मासमें यथाक्रम ८, ९, ११, २४, २० और तीन दिन उपरि वर्षण करता है । अथ मष्टयुक्त होनेसे गर्भ बरका, भंगानि और मष्टवृष्टि होती रहती है । अथ या गर्भ गुण मष्ट पोषण होने पर गर्भ बहुत वृद्धि कर होता है । गर्भमें नमपमें मष्टारण उप बहुत वृष्टि होती है तब गर्भका अभाव होता है । श्रोत्राग्न्यालके मष्टांससे अधिक वर्षण होने पर भी गर्भ मष्ट हो, तो प्रमयवात्ममें बरका मिष्ट वृष्टि होती है ।

जो गर्भ पांश प्रकारके निमित्तोंमें पुष्ट होता है, वही गर्भ जल पोषण विन्मून भूमिमें वर्षण करता है । इन पांश निमित्तमें यदि एक-एक निमित्तका अभाव हो, तो जल पोषणमें अभाव कम कर देता है । जैसे—पार निमित्तोंमें ५० पोषण, तोन निमित्तोंमें २५ पोषण और दो निमित्तोंमें १२५ पोषण और एक निमित्तोंमें ६५ पोषण तक वर्षा करता है । अथनिमित्तिक गर्भ १ श्रोत्र परिमिण जल, पचन निमित्तिक गर्भ ३ अष्टक और विद्युत्निमित्तिक ६ अष्टक जल वर्षण करता है ।

पचन, शक्ति, विद्युत्, शक्ति और शेषका ११ वांवी निमित्तोंका गर्भ बहुत जल वर्षाता है । यदि गर्भ-कारणमें अर्धवृष्टि हो, तो प्रमयवात्म अर्धवृष्टि कर जल कला वहील करता है ।

अथमष्टांसे शुद्ध पचने अथवादि पार दिन पाणु द्वारा मेषका गर्भ अष्टक करता होता है । इन दिनों शुद्ध शुभ वायु का विवर्ण्य विषयवृष्टि करता है जो शुभ

है । इन पार दिनोंमें यदि क्वाणि भारि पार लक्षण हो, तो अभाव वादि मासेमें उत्तम वृष्टि होती ।

अथवा पूर्णिमा पार कर जाने पर यदि पूर्वोपादा अग्नि मष्टांसे वृष्टि हो, तो उसके द्वारा गुणमयुक्त निरूपण करना आवश्यक है । एक दाध परिमित परिमि-विन्मून कुट्टधारण कर जलका परिमाण निर्दिष्ट करना होता है । उक्त पातका परिमाण १ अष्टक है । जिसमें वृष्टो मुदिता या गुणाममें विन्मून पष्ट, उम्मी वृष्टि द्वारा जलका प्रथम परिमाण निरूपण करता होता है । शुष्ण शोणोंका कदमा है, कि जितना देना जाता है, उन्नी दूर भक्तिवृष्टि और शुष्ण शोण उक्त लक्षणसे इन पोषण मष्टलमें अर्धवृष्टि होता बहुत है । शिशु गर्भ, यमिष्ठ और पराशरके मनमें एक मेष १२ पोषणसे अधिक दूध वृष्टि नहीं कर सकता । जिन सब मष्टांसे बहुत वृष्टि होती है, प्रायः उन्नी सब मष्टांसे ही वृष्टि होती है । शिशु यदि पूर्वोपादाकी मूला तक सब मष्टांसे वृष्टि न हो, तो सब मष्टांसे अर्धवृष्टि हो होती है । यदि निरपद्रव अथ पूर्वोपादा, गुणगिरा, हस्ता, शिखा, शैवती और यमिष्ठामें हो तो १६ श्रोत्र परिमाण वृष्टि होती है । शतमिषा, अथवा भीर अर्धामिष्ठ श्रोत्र, कृत्तिका भारिमें १० श्रोत्र, पारमूनीमें २५ श्रोत्र, पुनर्गुण, विनाया, और उषरायादाओंमें २० श्रोत्र, अर्धेया मष्टांसे १३ श्रोत्र, उषरायादाय, उत्तर पारमूनी और रोदिलोंमें २५ श्रोत्र, पूर्वोपादाय, पुष्या और अर्धेया मष्टांसे १३ श्रोत्र और मादा मष्टांसे १८ श्रोत्र परिमाण वृष्टि होती है । सब मष्टांसे यदि गर्भ, जनि या केशु द्वारा परिमित और मष्टक द्वारा त्रिविध अयुक्त द्वारा मष्टक हो, तो वृष्टि नहीं होती । शिशु गुणमयुक्त और निरपद्रव होने पर पूर्वोक्त जल होता है ।

अथवृष्टि मष्टांसे—जिन मय वृष्टिविषयक मष्टक क्रिया ज्ञान, पर मय वरि अथ शक्तिवात्म (मयोंयुक्त मानवमकारों) शक्तिही मयोंयुक्त कर्षण, गुण, शक्ति, कला और मष्टांसे मयोंयुक्त शक्ति का अभाव कर वरि लक्षण का मष्टक मयोंयुक्त और गुणमष्ट द्वारा इष्ट हो, तो उन्नी ही बहुत वृष्टि होती । पारमूनी द्वारा दूध होने पर जल वृष्टि होती है । शुभ ही अथवा मष्टांसे

फल देनेवाला है। यदि प्रश्नके समय प्रश्नकर्ता भाई द्रव्य या जल या जलवत् कोई वस्तु स्पर्श करे अथवा जलके निकट या जल सम्बन्धीय किसी काममें लगा हो और पृथ्वीके समय जल या जलवाचक शब्द ध्रुत हो तो समझना चाहिये, कि शीघ्र ही जल होगा।

घर्षाकालमें जिस दिन सूर्य कीति द्वारा वृष्टिसन्तापक, द्रवीभूत कनक सद्गुण या वृष्यकी तरह स्निग्ध कान्ति विशिष्ट हो, उस दिन वृष्टि होगी। विरस जल, गोनेत्र सद्गुण गगन, विमल विक्रम लघण, जलकी तरह विह्वलित, काकाण्डसद्गुण घर्षाविशिष्ट मेघोद्भूत, निरचल पवन, मछलियोंका जल-जलद कूर्दना और मण्डुकी (मिट्टी) की बार-बार ध्वनि आदि लक्षण शीघ्र वृष्टिकारक हैं। इन लक्षणों को देखनेसे समझना चाहिये, कि शीघ्र ही वृष्टि होगी। बिह्वलीके नद्य द्वारा मिट्टी कोड़ने, लोहारके मलाद्गुणमें कच्चे मांसकी तरह गन्ध निकलने और राहमें लड़कोंके पुल बनानेकी क्रीड़ा देखनेसे शीघ्र ही वृष्टि होती है ऐसा जानना चाहिये।

पहाड़ यदि अञ्जनपुञ्जसद्गुण या बाधनिकद कन्दूर और चन्द्रके परिवेष मूर्गकी आँखकी तरह हो, तो शीघ्र ही वृष्टि होगी। उपवातके सिवा घोटियोंके अण्डे, सर्पोंका खोपसंग, भुजङ्गोंका वृक्ष पर चढ़ना और मौओका कूर्दना शीघ्र वृष्टिकारक हैं। यदि एकलास वृक्षकी चोटों पर उठ कर गगनकी ओर देखे और नीचे ऊदुध-नेत्रसे सूर्य देखे, तो शीघ्र ही वृष्टि होती है। यदि पशु घरसे बाहर निकलनेकी इच्छा न करे तथा कान नीर खुर कपाते हों और कुत्ते भी इन पशुओंकी तरह काँच करे, तो शीघ्र ही वृष्टि होगी, समझना चाहिये।

जब गृहपटलमें कुत्ते अवस्थान करे, या ऊपरको मुख करे और जब दिनको ईशाणकोनमें तहिव्र उत्पन्न हो, तो अतिवृष्टि होती है। जब चन्द्र शुक्र या कपीतलेवन सद्गुण और मधुसन्निभ हो और जब आकाशमें प्रतिचन्द्र विराजित हों, तब आकाशसे शीघ्र ही धारिपात होता है। रातको जब विष सूका शब्द हो और दिनमें रुधिरसद्गुण या दण्डवत् विष सू हो और पवन पहले शीतल हो जाय तो उसी समय वृष्टि होती है। लताओंके पत्तोंका मुख यदि गगनतलकी ओर हो, विह्वल यदि जलमें स्नान

करे, सरोत्सव तृणके अन्न भागमें विचरण करे, तो शीघ्र वृष्टि होती है। जब ग्रामके मेघ मयूर, शुक्र, नीलकण्ठ या गौरिया पक्षीकी तरह वर्णके हो अथवा जवाकुसुम और पक्षकी वृत्तिको हरण करनेवाले हों, तो शीघ्र वृष्टि होती है।

यदि सूर्यके उदय या अस्तकालमें इन्द्रधनु, परिध, प्रतिसूर्य, दत्ताकृति इन्द्रधनु या विद्युत्का परिवेष प्रकाशित हो, तो शीघ्र वृष्टि होगी। सूर्यके उदयास्तके समय यदि गगन तिस्रके पाँचका इन्द्र धारण करे और पक्षी आनन्दित हो कलरय करे, तो दिनरात प्रचुर वृष्टि होती है।

घर्षाकालमें चन्द्र यदि शुभ ग्रहद्वय शुक्रसे सप्तम राशिगत या शनिके नवम, पञ्चम, या सप्तम राशिगत हो, तो वृष्टि होती है। प्रदेशके उदयास्त समयमें मण्डलके संक्रमण और समागम होने पर तथा देश पश्चिम अथवा उत्तरमें और घूर्ण आद्रानक्षत्रगत होने पर निषमके अनुसार प्रायः वृष्टि होती है। जब सूर्यायलयो प्रह सूर्यके पूर्ण और पश्चिममें हों, तब प्रभूत वृष्टि होती है। इसके सिवा स्वातिपोग, रोहिणी पोग, आदि पोगोंमें भी अति वृष्टि होती है। (वृहत्सं २२-२५ अ०)

वृष्टिजलके गुण आदि विषयोंमें घेषकमें यह लिखा है, कि जल दो तरहका है—आन्तरीक्ष जल और भूमि जल। इनमें जो आन्तरीक्ष जल है, वह चार प्रकारका है। यथा—धाराभय, करकाजात, तीयार और हीम। वृष्टिका जो जल धारायाहो रूपसे स्फोट वलय पर या सुषीत प्रस्तर या भूमि पर पतित होता है, सुवर्ण, रीप्य, तात्र, स्फटिक, कांच या मट्टीके वर्तनमें रखनेसे उसको धाराभय जल कहते हैं। यह जल विदोषनाशक है, फिर लघु, सौम्य, रसायन, बलकारक, वृत्तिकर, भादु-लाद्जनक, प्राणधारक, पाचक, बुद्धिजनक और मूर्च्छा, तन्द्रा, धान्ति, क्लान्ति और विषानानाशक भी है। घर्षाकालमें यह जल विशेष उपकारक है।

धृष्टिका धाराजात जल फिर दो तरहका है, गह्वरेय और सामुद्र। मेघाभ्यन्तरस्थ दिग्गज आकाशगङ्गा-सम्बन्धीय जल, प्रहणपूर्वक वर्षण करते हैं। इससे इसका नाम गह्वरजल है। मेघ प्रायः आश्विन मासमें

हो वह जन वर्णन किया करते हैं। वह जन सब प्रकारके विनम्रक है। सुकर्म, तप, वा मृत्यावन्ते स्वर्गगत स्वर्गके उपर प्रतिष्ठा जन पतित होमे पर यदि वह जन क्षिप्रम वा विषयों न हो, तो उसको दो मनुजजन कहना चाहिये। उन जन समस्त क्षयनाशक है। इनके विपरीत मनुज विद्या देने पर समझना होगा, कि वह समुद्रका जन है। वह जन धारसुक्त, स्वयंपरम, गुरुक माणव, मेरुदासिधारक, वनापधारक, सामगमिच, दोष प्रदायक और लोहज है। वह सब कामोंके निषे मरिच-जनक है। वह समुद्रजन भारिवन माममे मातृजनके समान पुनःकारो हो जाता है। समस्तप नक्षत्रके उदय होने पर तो चंद्रिका जन पतित होता है, वह सभी निर्वैल, निर्विष, मधुरतरा, शुक्रजनक और दोषप्रदायक नहीं।

दूसरे वर्णमें लिखा है, कि पतनविदासो मागोंके पुनःकारके निषे मरिच वायुमण्डल हो पतित होने पर मरिचिनमामाके जलको छोड़ कर वर्या मनुजा चंद्रितम विपत्त होना है।

मैंप अक्षराममें जो जन वर्णो है वह समस्त देव-धारिवोके निषे तिरुपेयकोवक कहलाते हैं। सकारा नक्षत्रों वीर, माय, पालसुक्त, वीत वे धार माय समझना होगा। इन चार मागोंका चंद्रितम तिरुपेयकोवक है। लोको वा निनाका जन जो हिमवायु और मेरुसंयोगसे मंदन हो अक्षराममें निनाके साक्षरामे लोवे निरता है उसको निनाजन वा लोकोका जन कहते हैं। वह जन समुद्र पुनः पुनःकारक, धार, मरिचिजन, गुरु, स्थिर गुरुसुक्त, मरिचय नीतल, कटिन, विनमाणक, और कज तथा वायुपदक है।

नक्षत्रों समुद्र जन सब अक्षरामोंके अक्षरामों निर-मणियोंके पुनःकारक समुद्र वा वायुधारामे उरता और लोवे जन रूपमें पतित होता है, इसको पुनःकारक कहते हैं। वह जन वर्णकोक निषे मरिचक है। किन्तु लोकोके निषे विरीन दिनकारो है। वह लोपत, धार, वायुपदक, विनमाणक, कज, स्वयंपरम, कटरीण, मरुदमि, मेरु और कजपदक-दि विनमाणक है।

विनमाणक मनु भारि विनमाणक अक्षरामे जन हो

कर जो जन पतित होता है, उसको हेमजन करने पर। वह जन-लोपत, विनमाणक, गुरु और वायु-पदक है। चंद्रिके इन चार तरहके जन जन सुकर्मिच होमे हैं।

वायुधरम ।

वायुधरम मतसे पार्थिव जनराति मृषावोहमे उगत हो कर वायुमें परिवर्तन होता है। मृषायुमे प्रतिदिन हो यह लोप वायु मिश्रित होता रहता है। स्वयंपरम और समुद्रों भनपतन हो इन तरहका वायु उरता है। वायो-हराइन प्रभुतिको एक निरव किया है। इन जहां अक्षका निनाका मनुभाव नहीं कर सकते, मृदनक्रियामयो कपटन घटन-परीवसा प्रकृति वेधो वीसे स्वयसी भी वायोहराइन पूर्वक मृषायुमे विमिश्रित कर रहलाते हैं। मेरुदा, राक्षस, याजार, मरुध, चामल, मयभूमि, पूर, नक्षत्रो, समुद्र, सब स्थानोंमें हो वायु निकलता है। वर्यामम वायुधरम वीकातिकोका कहता है कि वायु कमी दूरवभाव वा मनुप मायमें वायुमणिवा भाधप छे कर दुःख देनामें विधरल करता है। सोम, कुरासा, सुषार, मेघ और चंद्र इसी वायोधरम घटनाको परिणति है। ऊर्ध्व मरुदाजमें वह वायुधरम मेघाकारमें परिवर्तन हो जता है। साक्षरामके निम प्रेक्षामे मश्रिन लोप वायुमण्डल कुम्भदिका नाममें पुकारा जाता है। मेघमें भूधर पर जो अक्षराम पतित होतो है, उसको मान चंद्रि है। भारतीय भावे-वाग्निदेवो भी वायुधरमक वर्ण पूर्ण इस तरह चंद्रिको मरुतिको वेधन को है—

विज्ञानको उपरिष्के माय मेघमें अक्षराम निरके वायोको मरुधममें जो बहुनेमें मरुधमायों मय रहा है। साधविक अक्षराममें (Molecular physics) और पुनः वायुधर विज्ञानमाममें (Dynamic meteorology) मेघ चंद्रिके मरुधममें मनुजा इन सब विनयो-को वैज्ञानिक आनेवना मय रहा है।

मेघमें चंद्रिकामुमीके मरुध तथा चंद्रिवात वनम के साक्षरामे वायुधरम विज्ञान बहुत दिनोंमें कर मणोका मनुधरामक कर रहा है। पुनः वायुधरम मणोमय हो कर चंद्रिकेवदुका अक्षराम मरुध करला है। वायु वर्यो वर्यो

भूत होती है इसके सम्बन्धमें भी बहुतेरे सिद्धान्त दिखाई देते हैं। जैसे—

(१) मेघसे तापराशि विकीर्ण हो जाने पर शीतल हो जाती है। यह शीतलता ही घनकी कारण है।

(२) वायु द्वारा मेघाकार वाष्पराशि विभिन्न शीतलप्रदेशोंमें परिचालित होती है और भिन्न भिन्न प्रदेशकी वाष्प राशिके साथ मिश्रित हो जाती है। इसके फलसे भी घनत्व साधित होता है।

(३) उष्ण देशके वाष्प स्वभावतः ही ऊपरकी ओर या शीतलप्रदेशोंमें परिचालित होता है। ऊपर शीतल वायुके स्पर्शसे वाष्पराशि घनीभूत हो कर घृष्टियुन्दके रूपमें परिणत होती है।

(४) भूवायुके अधिक दबावसे भी वाष्प घनीभूत हो जाता है।

(५) वाष्पराशिके सञ्चयाधिक्य अथवा पर्यतादि द्वारा इनकी गतिके रोकनेमें भी ये सत्त्वर घनीभूत हो जाते हैं।

कई वर्ष पहले ये सब सिद्धान्त प्रचलित थे, किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक इससे और भी आगे बढ़ गये हैं। वाष्पराशिके जब तक ताप पर्याप्तमान रहता है, तब तक कण आपतनमें छोटे और लघु होते हैं। इस अवस्थामें ये गगनपथमें स्वच्छन्दभावसे विचरण कर सकते हैं। किन्तु शैत्यसंस्पर्शादि या जब इनका क्षुद्रत्व दूर होता है, अथवा ये घनीभूत हो कर परस्पर मिल कर घृष्टदाकार धारण करते हैं, तब भूवायु इनको अपने दबावमें रख नहीं सकती। ये माध्योत्कर्षणसे आकृष्ट हो भूगुप्त पर पतित होते हैं। घृष्टियुन्द गठन और घृष्टिपातके सम्बन्धमें आधुनिक विज्ञानमें अभी-अभी कोई निश्चयवात्मक सिद्धान्त स्थिर नहीं हुआ है। इस समय इसके सम्बन्धमें जो कई सिद्धान्त प्रचलित हैं, नीचे उनके सार मर्म प्रकाशित किये जाते हैं।

(क) सूक्ष्म सूक्ष्म वाष्पकणा वायुराशिके प्रवाहित होते रहते हैं। वायु-द्वारा ये आकाशपथमें परिचालित होते रहते हैं और ये आपसमें मिल जाते हैं। यहाँ वायुका वेग ही विच्छिन्न वाष्पाणुसमूहके मिल जानेका कारण है। इस तरह सम्मिलित हो कर वाष्पयुन्दका

आपतन बड़ा हो जाता है। इस अवस्थामें ये आकाशकी वायुराशिके 'घूमनेमें' असमर्थ हो जाते हैं और ये भारी घृष्टियुन्दु नीचेकी ओर पतित होते हैं। अर्थात्पतित होनेके समय इनकी प्रबल गतिके निम्नस्थ वाष्पयुन्दु भी इनके साथ मिल जाते हैं। इससे ये आकारमें और बड़े हो जाते हैं। इस तरह ये बड़े बड़े घृष्टिके युन्दोंमें परिणत हो पृथ्वी पर गिरते हैं।

(ख) विकिरणवशतः हो ही या दूसरी वाष्पकणाओंके साथ मिल जानेके कारण है—मेघके उपरांशकी वाष्पकणा निम्नभागकी वाष्पकणाओंकी अपेक्षा बहुत जल्द शीतल हो जाती है। छाया या रात्रिकालकी ऐसी शीतलतासाधनो प्रक्रियाकी प्रधानतम हेतु है। शीतल वाष्पकणा संस्पृष्ट भूवायु-स्तर भी शीतल होता है। इसी शैत्यके फलसे वाष्पकणाओंकी मन्तभूत वायु अत्यन्त हो जाती है। ये आपसमें मिल कर घृष्टियुन्दोंमें परिणत होती हैं। इसी तरह बड़े बड़े घृष्टियुन्दु गठित होते रहते हैं।

(ग) घृष्टियुन्दुगठनमें तड़ितका भी यथेष्ट प्रभाव है। तड़ितशक्तिके स्पर्शका प्रभाव ही तरहका होता है। एक तरहके प्रभावका नाम 'पोजिटिव' (Positive) और दूसरी तरहके प्रभावका नाम 'निगेटिव' (Negative) है। मेघका एक स्तर वाष्प पोजिटिव भावसे तड़ितस्पृष्ट होता है। और दूसरा एक स्तर वाष्प निगेटिव भावसे। इससे दोनों स्तरोंमें एक प्रबल तड़िताकर्षण संघटित होता है। इस आकर्षणके फलसे वाष्पयुन्दु परस्पर सम्मिलित हो कर घृष्टदाकार धारण करते हैं।

(घ) नाना कारणोंसे वायुराशिके तरङ्ग उठ सकते हैं। यज्ञध्वनि निमित्त शब्दतरङ्गों वायुराशि आन्दोलित होती है, तोपोंकी ध्वनिके भी वायुराशिके भीषण तरङ्ग आदि उठ सकते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे वायुराशि स्थित जलीय वाष्प आन्दोलित हो कर आपसमें मिल जाते हैं। इस तरह परस्पर मिल कर क्षुद्र क्षुद्र वाष्प युन्दु घृष्टदाकार धारण कर घृष्टियुन्दुमें परिणत होते हैं।

(ङ) कुम्भटिका या मेघकी अन्तर्निहित वाष्पराशि साधारणतः ही साधारण वाष्पकी अपेक्षा अधिकतर

भी अधिक परिमाणसे होती है। सुशुद्ध भूखण्डके मध्य-भागमें अधिक वाष्पोत्पत्तिकी सम्भावना नहीं है; ऐसे स्थलोंमें घृष्टि भी अधिक नहीं होती। सममण्डलमें भूमिके पश्चिम पार्श्वमें और ग्रीष्ममण्डलमें भूमिके पूर्वपार्श्वमें अधिक घृष्टि होती है। वायुकी गतिके भेदसे ही घृष्टिका ऐसा परिमाणभेद हुआ करता है।

किसी किसी स्थानमें बारह महीने ही कुछ न कुछ घृष्टि हुआ करती है। कहीं तो वर्ष भरमें न हो २ या ३ मास खूब जोरोंकी घृष्टि होती है। कहीं शीतकालमें, कहीं ग्रीष्मकालमें, कहीं हेमन्तमें, कहीं वर्षाकालमें घृष्टिपात होता है। ग्रीष्ममण्डलमें निरक्षरृत्तके उत्तर उत्तरायण समयमें और उसके दक्षिण दक्षिणायन समयमें घृष्टि होती है। फलतः पृष्ठीके स्थान स्थानमें जिस नियमसे घृष्टि होती है वह देख कर वर्षाकालकी एक ऋतुमें गणना की नहीं जाती। ऋतु-विभागमें शीत और ग्रीष्म ही प्रधान विभाग हैं और यह विभाग अति सुस्पष्ट है। स्पेन, पुर्तगाल और इटली प्रभृति देशोंके दक्षिण भागमें तथा सिसिली और मैसिना द्वीपमें अमेरिकाके उत्तरी भागमें समग्र यूनानमें और पश्चिमी भूभागके उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें भयानक शीतके समय भी प्रबल घृष्टिपात होता है। फिर अल्पस पर्यन्तके उत्तर-भागस्थ जर्मनी देशमें, फ्रान्सके पूर्व भागमें, नेदरलैण्ड प्रदेश, स्वीजरलैण्ड देशके उत्तरी भाग, डेनमार्क और ओराल पर्यन्तके पूर्व साइबेरिया देश तकके स्थानोंमें ग्रीष्मकालमें घृष्टि होती है। इन सब स्थानोंमें शीतके मौसममें कुछ भी घृष्टि नहीं होती। युरोपखण्डके पश्चिम पार्श्वस्थ देशोंमें और घृष्टिशिरोपपुञ्ज प्रभृति स्थानोंमें वर्षाकालमें घृष्टि होती है। अफ्रिकाके दक्षिण भागमें और अस्ट्रेलिया द्वीपमें वर्षा और शीतकाल घृष्टिका समय है।

ग्रीष्ममण्डलमें दो मास जिस परिमाणसे घृष्टि होती है, शीतमण्डलमें दो वर्षमें भी वैसे घृष्टि नहीं होती। जुटलैण्डके निबट सिटका द्वीपमें सारे वर्षमें ४० दिन ही आकाशमण्डल परिच्छन्न देखा जाता है। वहाँ नित्य घृष्टि होती है। किन्तु इससे बड़ा होता है, कलकत्तोंमें एक वर्षमें जितनी घृष्टि होती है सिटका द्वीपकी घृष्टिका परिमाण

इसका एकचतुर्थांश भी नहीं। जगत्में घृष्टिपातका प्रधानतम स्थान चेरापुञ्जी है। चेरापुञ्जीमें जितनी घृष्टि होती है इतनी अधिक घृष्टि और कहीं नहीं होती। चेरापुञ्जीमें प्रायः तीन मासमें २५०से ५५० घुटल परिमित घृष्टि होती है। फिर भी समूचे वर्षमें भी महीनेसे अधिक समय तक चेरापुञ्जीका आकाश निर्मल और सुनील सौन्दर्यकी लीलास्थली है।

सेण्टपिटर्सबर्ग (पेट्रोग्राड)-में प्रतिसप्ताह ही कुछ न कुछ घृष्टि होती है। यहाँ वर्षमें ६ माससे अधिक समय घृष्टि होती है। किन्तु घृष्टिका परिमाण १७ घुटलमात्र है घृष्टिनटविविधोंने इसी तरह घृष्टिका स्थान निर्देश किया है। उनके मतसे कोई प्रदेश "शीतघृष्टिमण्डल" कोई प्रदेश "ग्रीष्मघृष्टिमण्डल" कोई स्थान "प्रायुद्ध घृष्टिमण्डल" कोई स्थान "सामयिक घृष्टिमण्डल" और कोई स्थान "चिरवृष्टिमण्डल" कहा जाता है।

भारतवर्षमें मौसमी वायु (Monsoon) का प्रभाव अत्यधिक है। इसीलिये भारतवर्षमें भयनभेदसे घृष्टिका तात्त्विक नहीं होता। मौसमके अनुसार ही घृष्टि हुआ करती है। अग्निदेशके मौसममें मलवाके तट पर, ईशानदेशके मौसममें चेरमण्डलतटमें वर्षाका प्रादुर्भाव होता है। घाटपर्वतकी बाधासे समुद्रकी वाष्पपूर्ण वायु दक्षिण देशमें सर्वांत प्रवाहित नहीं होती। इसीलिये भिन्न भिन्न ऋतुओंमें इन सब स्थानोंमें वर्षा उपस्थित होती है। नीचे कई स्थानोंके वार्षिक घृष्टि-परिमाणकी एक किस्किस्त दी जाती है।

स्थानका नाम	घुटल।
चेरापुञ्जी	५००
अराकान	१५०
दाजिलिङ्ग	१२५
बम्बई	८०
मद्रास	४८
काशी	४३
मथुरा	२७
कलकत्ता	६५
दिल्ली	२३
सानगुरमारनहो	२८०

वृष्यवल्लिका (सं० स्त्री०) विदारारुन्द, भुरकुम्हड़ा ।
 वृष्यवल्ली (सं० स्त्री०) विदारारुन्द ।
 वृष्या (सं० स्त्री०) १ श्रद्धि नामकी औषधि । २ शता-
 पर । ३ आंवला । ४ भुरकुम्हड़ा । ५ भातिबला ।
 ६ वृहद्गन्ती, बंगडेर। ७ केवांच, कौछ । ८ विदारो-
 रुन्द ।
 वृह—१ वृद्धि । श्रादि० परस्मै० अक० सेट् । लट्
 वहति । लुङ् अवहति, अवहति । घृह—२ उद्यम । तुदादि०
 परस्मै० अक० सेट् । लट् वृहति लिट् ववह । ३ शब्द ।
 ४ श्रद्धि । श्रादि० परस्मै० अक० सेट् । लट् वृहति ।
 वृद्धि अर्थमें यह धातु आरम्भनेपर ही होता है । लट्
 वृहते घुदादि० परस्मै० अक० सेट् । लट् वृहवति ।
 वृह—१ ध्वनि । २ हाथोकी चिंघाड़ । ३ वृद्धि,
 श्रादि० परस्मै० अक० सेट् । लट् वृहवति । लुङ् अव-
 वृधति ।
 वृहधश्चु (सं० पुं०) वृहतीवश्चुः शाकविशेषः ।
 १ महाचञ्चुशाक । (लि०) २ दौधोवश्चुयुक्त, लम्बो
 चौबयाला ।
 वृहचक्रमेद (सं० पुं०) ज्वन्ती, जैत ।
 वृहच्चिन्त (सं० पुं०) फलपुट, विभीरु नीबू ।
 वृहच्छद (सं० पुं०) अखरोट ।
 वृहच्छतावरीघृत (सं० स्त्री०) प्रदरोगाधिकारोक्त घृती-
 पथ विशेष ।
 वृहच्छद (सं० पुं०) अक्षत वृक्ष, अखरोटक वृक्ष ।
 वृहच्छकरी (सं० स्त्री०) महाभोष्टो, मरस्यविशेष, सफरी
 नामकी मछली । इसका गुण—स्निग्ध, सुख और
 कण्ठरोगनाशक ।
 वृहच्छक (सं० पुं०) वृहन्न शकका पक्ष्य । किं गा
 नामकी मछली ।
 वृहच्छालपर्णी (सं० पुं०) महाशालपर्णी, बड़ो सरिषन,
 इसे बम्बईमें तीक्ष्णला कहते हैं ।
 वृहच्छिम्बी (सं० स्त्री०) सेम ।
 वृहज्जोरक (सं० स्त्री०) मोटा बीरा, मंगरेला ।
 वृहज्जीवन्ती (सं० स्त्री०) स्वनामधेयात औषधविशेष,
 बड़ो औषन्ती । पर्याय—वृत्तभद्रा, प्रियङ्गुरी, मधुरा, जीव-
 पुष्टा, वृहज्जीरा, यशस्करो । गुण—वृद्धोद्योगद, भूतविद्रा-

वणकारी, अर्थात् भूतोन्मादादि रोगमें प्रहादिका अपसारक
 रसनियामक अर्थात् पारद आदिसे हेनिवालो चिकित्सा
 विनाशक है ।
 वृहज्जोषा (सं० स्त्री०) बड़ो जीवन्ती ।
 वृहद्दृक् (सं० स्त्री०) घाघयन्त्रविशेष, टफा, टाक ।
 वृहत् (सं० लि०) वृह-भक्ति (वर्तमाने वृष्यदुग्मगच्छन्
 वच । उण् २।८४) निपातनात् साधु । महत्, विपुल,
 बड़ा, प्रकाण्ड, भारी, महान् । जैसे—भापने यह बहुत
 वृहत् कार्यों उठाया है ।
 वृहतिका (सं० स्त्री०) वृहती देवी ।
 वृहती (सं० स्त्री०)—वृहती-कन्-वृहत्या आच्छादन् (१।
 १।५।११) उत्तरीयवस्त्र, चहर, दुपट्टा । २ षट्कारो,
 छेटी कंठार । ३ वनमण्डा, बड़ो कंठार । ३-पैगन । ४
 वैयकके अनुसार एक मर्मस्थान, जो छातिपोकके ठीक
 पीछे पीठमें दोनों ओर होता है । इस मर्मस्थानमें चोट
 लगनेसे अधिक सूज गिरता है और मृत्यु भी होने
 का डर रहता है । ५ विश्वावसु नामक गन्धर्वकी घोषा-
 का नाम । ६ वायव । ७ एक प्रकारका छन्द । इसके
 प्रत्येक चरणमें मगण, मगण और सगण होता है ।
 जैसे—भाय सुपूता कारज जू । प्रातर्गं सोता सरसू ।
 कण्डमणि मध्ये सुमला । दृट परी सोजै भवला ।
 (काव्यप्रमाकर) ८ महती । ९ धारिधानी ।
 वृहतीकवर (सं० पुं०) चिकित्साका कल्पमेद ।
 वृहतीद्वय (सं० पुं० स्त्री०) १ वृहती और कण्डकारी । २
 मोटे और पतले फलोंके अनुसार दो तरहकी वृहती ।
 वृहतीपति (सं० पुं०) वृहतीनां वाचां पतिः । वृहत्पति ।
 वृहतीफल (सं० स्त्री०) वनमण्डा, वृहतीका बीज ।
 वृहत्क (सं० लि०) वृहत्कन् (वृहत्क रसोऽवस्थानम् ।
 पा ५। ४। ३ धासिक) वृहत् देतो ।
 वृहत्कट् धरतेल—उत्तराधिकारोक्त औषध विशेष ।
 वृहत्कन्द (सं० पुं०) १ शुद्धन, गाजर । २ विष्णु ।
 वृहत्कस्तुरीमैत्रव रस—उत्तराधिकारो रसोऽवस्थानम् ।
 इसका सेवन करनेसे उवर आदि विविध पीडाओंका
 उपशम होता है ।
 वृहत्कालशाक (सं० पुं०) महाकासमेद नामका क्षुप,
 कसीरौ ।

वृष्यवञ्जिका (सं० स्त्री०) विदारारुद्र, भुईकुम्हड़ा ।
 वृष्यवल्ली (सं० स्त्री०) विदारारुद्र ।
 वृष्या (सं० स्त्री०) १ श्रद्धि नामकी ओषधि । २ शता-
 धर । ३ आंवला । ४ भुईकुम्हड़ा । ५ अतिबला ।
 ६ वृहद्गन्तो, बंगडेरा । ७ केवांच, कौछ । ८ विदारारु-
 रुद्र ।
 वृह—१ वृद्धि । श्वादि० परस्मै० अक० सेट् । लट्
 वर्हति । लुङ् अवर्हति, अवर्हति । वृह—२ उद्यम । तुदादि०
 परस्मै० अक० सेट् । लट् वृहति लिट् ववर्ह । ३ शब्द ।
 ४ श्रद्धि । श्वादि० परस्मै० अक० सेट् । लट् वृहति ।
 घृद्धि अर्थमें यह घातु आत्मनेपदी भो होता है । लट्
 घृह्ते चुरादि० परस्मै० अक० सेट् । लट् घृहति ।
 वृह—१ ध्वनि । २ हाथीकी बिंघाड़ । ३ वृद्धि,
 श्वादि० परस्मै० अक० सेट् । लट् घृहति । लुङ् अव-
 घृहति ।
 वृहृष्यु (सं० पु०) वृहतीचन्द्रुः शाकविशेषः ।
 १ महाचन्द्रुशाक । (लि०) २ दोंदोंचन्द्रुपुंक, लम्बो
 चौंबवाला ।
 वृहृचक्रमेद (सं० पु०) जयन्तो, जैत ।
 वृहृच्चिच (सं० पु०) फलपुंग, विजीरा नीबू ।
 वृहृच्छद (सं० पु०) अखरोट ।
 वृहृच्छतायरीघृत (सं० स्त्री०) प्रदरोगाधिकारोक्त घृती-
 पथ विशेष ।
 वृहृच्छद (सं० पु०) अक्षीट वृक्ष, अखरोटका वृक्ष ।
 वृहृच्छरुरी (सं० स्त्री०) महाप्रोष्ठो, मरुस्थविशेष, सफरी
 नामकी मछली । इसका गुण—स्निग्ध, मूत्र और
 कण्ठरोगनाशक ।
 वृहृच्छक (सं० पु०) वृहन् शब्दका यत्पान । किं गा
 नामकी मछली ।
 वृहृच्छालपर्णी (सं० पु०) महाशालपर्णी, बड़ी सरियन,
 इसे बम्बईमें तीडोला कहते हैं ।
 वृहृच्छिमी (सं० स्त्री०) सेम ।
 वृहृज्जोरक (सं० स्त्री०) मोटा जीरा, मंभरेला ।
 वृहृज्जोवन्तो (सं० स्त्री०) स्वनामधेयात् औषधविशेष,
 बड़ी जीवन्ती । पर्याय—पत्तभद्र, प्रियङ्गुरी, मधुरा, जीव-
 पुष्ट, वृहृज्जोरा, यशस्करी । गुण—वृहृद्योर्धमद्, भूतविद्रा-

वणकारी अर्थात् भूतोन्मादादि रोगमें प्रहादिका अपसारक
 रसनिवामक अर्थात् पार्श्व आदिसे होनेवाली विहृत्तिका
 विनाशक है ।
 वृहृज्जोवा (सं० स्त्री०) बड़ी जीवन्ती ।
 वृहृङ्क (सं० स्त्री०) घाघपत्तविशेष, टफा, टाक ।
 वृहृत् (सं० लि०) वृहृ-अति (बलमाने वृहृ-इन्द्रगच्छत्
 वच्च । उण्य् २।८४) निपातनात् साधु । महत्, विपुल,
 बड़ा, प्रकाण्ड, भारी, महान् । जैसे—आपने यह बहुत
 वृहृत् कार्य उठाया है ।
 वृहृत्तिका (सं० स्त्री०) वृहृती देखो ।
 वृहृती (सं० स्त्री०)—वृहृती-कन्-वृहृत्वा भाण्डाङ्ग (पा
 ५।४।१) उत्तरीयवस्त्र, चदर, दुपट्टा । २ कण्ठकारी,
 छोटी कंटाई । ३ वनगण्टा, बड़ी कंटाई । ३-पैंगन । ४
 वैद्यकके अनुसार एक मर्मस्थान, जो छातिपोंके ठीक
 पीछे पीठमें दोनों ओर होता है । इस मर्मस्थानमें सोट
 लगनेसे अधिक खून गिरता है और मृत्यु भी होने
 का डर रहता है । ५ विश्वावसु नामक गम्भर्वकी घोणा-
 का नाम । ६ धावप । ७ एक प्रकारका छन्द । इसके
 मत्स्येक-चरणमें भगण, मगण और सतण होता है ।
 जैसे—भाय सुपूजा कारज जू । प्रातर्गई सोता सच्छू ।
 कण्ठमणि मध्ये सुजला । दृष्ट परीं सोजै अवला ।
 (काव्यमकर) ८ महती । ९ घारिधानी ।
 वृहृतीकन् (सं० पु०) घिकिरसाका कल्पमेद ।
 वृहृतीद्वय (सं० पु० स्त्री०) १ वृहृती और कण्ठकारी । २
 माटे और पतले फलोंके अनुसार दो तरहकी वृहृती ।
 वृहृतीपति (सं० पु०) वृहृतीनां धावां पतिः । वृहृत्पति ।
 वृहृतीफल (सं० स्त्री०) वनगण्टा, वृहृतीका बीज ।
 वृहृत्क (सं० लि०) वृहृत्कन् (धन्वद् इमीशधन्वन्म ।
 पा ५।४।३ धात्सिक्) इत् देखो ।
 वृहृत्कृत्परतैल—उबराधिकारोक्त औषध विशेषः ।
 वृहृत्कन् (सं० पु०) १ शुद्धन, गाजर । २ विष्णु ।
 वृहृत्कस्तूरीमैत्रव रस—उबराधिकारोक्त रसौषधविशेष ।
 इसका सेवन करनेसे उबरा आदि विविध पीड़ाओंका
 उपशम होता है ।
 वृहृत्कालशाक (सं० पु०) महाकासमर्द नाशका क्षुप,
 कसौदी ।

यूहद्वयासावलेह—यक्षमारोगाधिकारोक्त अयलेहमेद ।
इसके सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और श्वासादि
रोग नष्ट होते हैं ।

यूहद्वयोज (सं० पु०) यूहत् वोजं यस्य । आघ्नोतक,
आमङ्गा ।

यूहद्वमहारिका (सं० स्त्री०) हुया ।

यूहद्वमण्डो (सं० स्त्री०) त्रायमाणा नामकी लता ।

यूहद्वमात्रु (सं० पु०) १ अग्नि । २ चित्रकवृक्ष, चीता ।

३ सूर्य । ४ सत्यमामाके एक पुत्रका नाम । ५ सन्ना-
यणके एक पुत्रका नाम । ६ पृथुलाक्षके एक पुत्रका

नाम । (त्रि०) ७ वृहत्तरश्मि विशिष्ट, प्रवृद्ध रश्मियुक्त ।

यूहद्वय (सं० पु०) यूहन् रथो यस्य । १ इन्द्र । २ यज्ञ

पात्र । ३ मन्त्रविशेष । ४ सामवेदका अंश । ५

वसुदामके पिता, तिग्मका पुत्र । (मत्स्यपु० ५०८५)

६ शतधन्वाका पुत्र । (भागवत १२।१।३) ७ देवराज-
का पुत्र । ८ तिमिरराजपुत्र । ९ पृथुलाक्षके एक पुत्रका

नाम । १० मौर्यराजवंशका अन्तिम राजा । (त्रि०)

११ प्रभूत रथविशिष्ट, जिसके पास अनेक रथ

हैं । (ऋक् ८।८।२) त्रिपां ताप् यूहद्वरथा । १२ एक

नक्षत्रीका नाम ।

यूहद्वय (सं० पु०) उल्लू पक्षी ।

यूहद्ववर्ण (सं० पु०) सोनामण्डी ।

यूहद्वल—आनर्चाराजमेद ।

यूहद्वघ्नक (सं० पु०) यूहन् घ्नकः घ्नकलं यस्य ।

१ पठानी लोच । २ सप्तपर्ण, रत्नियन ।

यूहद्वहो (सं० स्त्री०) करेला ।

यूहद्वदात (सं० पु०) यूहन् यातो यस्मात् । देवघान्य,
यह अश्वरीरोगनाशक है ।

यूहद्वयावणी (सं० स्त्री०) महेंद्रवारुणी लता,
इनाक ।

यूहद्वनल (सं० पु०) १ बाहु, बांह । २ अर्जुन ।

यूहद्वनला (सं० स्त्री०) १ अर्जुन, अर्जुनका उस समय-
का नाम जब ये घनयासके उपरान्त अज्ञातयासके समय

राजा विराट यहां स्त्रीके वेशमें रह कर उसकी कन्या

उत्तराकी नाच मान सिखाते थे ।

यूहद्विभ्र (सं० पु०) महानिभ्र, वक्रापन ।

यूहनारावणोपनिषद्—एक उपनिषद्का नाम । यह
याज्ञिकी उपनिषद् नामसे विख्यात है ।

यूहन्मरिच (सं० पु०) कालो मरिचं, गोलमिर्च ।

यूहन्मेयोमोदक—प्रहणीरोगकी एक औषधका नाम ।

इस दवाके सेवन करनेसे अग्निमान्द्य और प्रहणी

प्रभृति बहुतेरे रोग दूर होते हैं ।

यूहस्पति—१ यूहस्पतिसंहिता नामक ग्रन्थके रचयिता-
का नाम ।

यूहस्पति (सं० पु०) यूहतां यावां पतिः । (पारस्केति ।

पा ६।१।१५७ इति सूट् निवारयवे) अङ्गिराके पुत्र । ये

देवोंके गुरु हैं, धर्मशास्त्र प्रप्रेषक और नवप्रश्नोंमें पदचम

प्रद हैं । पर्याय—सुराचार्वा, गोधरति, वीषण, गुरु, जीव,

आङ्गिरस, याचस्पति, चित्रशिल्पिण्डम, उतप्यानुम,

गोविन्द, चारु, द्वादशरश्मि, गिरीश, दिदिव, पूर्व-

फलानुमोव, सुरगुरु, वाक्पति, वषसाम्पति, इन्द्रज्य,

द्वेष्य, वृहताम्पति, इज्य, चागोश, चक्षा, दीदिवि, द्वादश-

फर, प्राक्फालानु और गोरध ।

यह प्रह पीला, सूर्यास्य, चतुर्भुज और पद्मस्थ है ।

इसका शरीर ६ अंगुल लम्बा है । चार हाथोंमें

क्रमसे अक्ष, पर, कमण्डलु, और दण्ड धारण किये हुए

हैं । प्रह्ला इतके अधिदेवता और इन्द्र प्रत्यधिदेवता

है । ये ईशानकेण, पुरुष, ब्राह्मण जाति, ऋषेय, सख-

गुण, मधुररस, घृतु और मोनराशि, पुष्याभक्षत, यज्ञ,

पुष्परागमणि और सिन्धुदेशके अधिपति हैं । प्रातः-

कालमें ये प्रबल शुभप्रद, देवगृहस्थामो, यद्ध, रक्तद्रव्य-

स्वामी, यातपित्तकफात्मक और यणिक कर्मकर्ता रूपसे

फलदाता है ।

पुराणादिमें गृहस्पतिको देवगुरु, देवकुल, पुष्टिहित,

मन्त्रपालक और त्रिदशचण्डो कहा है । इस कारण

दानध द्वारा सुरनिप्रहकालमें उन्हें भी यथेष्ट कष्ट भुग-

तना पड़ा था ।

ब्रह्मधैवचंपुराणादिमें लिखा है कि अङ्गिरामुनिगनी

अपने कर्मके दोषसे मृतवस्था हुई थी । उन्होंने ब्रह्माके

आदेशानुसार सनत्कुमारके द्वारा धीरुणके उद्देश-

से पुंस्यन नामका व्रत किया । इस पर सन्तुष्ट हो

सर्पवधेभ्य इति उस व्रतशीला मुनिपरनीके समीप

ग्रन्थमें लिखा है, कि "जैसे पिङ्गलवर्ण बड़ेको विविध भूयणोंसे सज्जित करते हैं, उसी तरह पितास्वरूप देवताओंने गगनको सुसज्जित किया। उन्होंने अन्वकारको रात्रिमें रखा था और आलोकका दिनमें कर दिया। वृहस्पतिने पर्वत तोड़ कर गोचन प्राप्त किया।" तैत्तिरीय संहितामें (४।४।१०) ये तित्यनक्षत्रके अधिष्ठातृ देवता रूपसे गृहीत हैं। वैदिककालके वृहस्पति जुपिटर प्रदके प्रतिनिधित्वमें कल्पित हुए हैं। ये ही वृहस्पति प्रदके (Jupiter) नेता है और कभी कभी स्वयं प्रदकरूपसे कोर्चित होते हैं। ग्रहपरिचालनके लिये उनके नीति-घोष नामका एक रथ है। यह रथ आठ घोड़ोंसे परिचालित होता है। वृहस्पति प्रदका एक राशिमें स्रमण करते करते ६० वर्ष (60 Year's cycle of Jupiter) अतिवादित होता है। ज्योतिषशास्त्रमें यह वृहस्पति-चक्र नामसे विदित है। ग्रह देखो।

पौराणिक युगमें वृहस्पति ऋषिरूपसे वर्णित है। अङ्गिरा ऋषिके पुत्र होनेके कारण वे आङ्गिरस नामसे विख्यात हैं। देवताओंके उपदेश आचार्य होनेसे वे अनिमिषाचार्य, व्रथा, इत्य और इन्द्रेज्य आदि नामोंसे पूजित हैं। सोम कौमलसे उनकी परनी तारादेवीको हरण कर ले गये। इसके लिये "तारकामय" युद्धका आरम्भ हुआ। उग्रता, चद्र और दैत्य दामय सोमको पक्ष और इन्द्रके अधीन देवीने वृहस्पतिको पक्ष अवलम्बन किया। उस युद्धमें वसुन्धरा कम्पित होने लगी। उन्होंने प्रज्ञासे जा कर अपनी दुरवस्थाकी बात कही। ब्रह्माको मध्यस्थतामें तारा स्वामीके पास लौट आएं। किन्तु तारा इस समय गर्भवती थी। वृहस्पति और सोम दोनोंने ताराके गर्भसे उत्पन्न बालकको पानेका दावा किया। फिर विरोधको सम्भावना देख ब्रह्मा वहां आये और उन्होंने तारासे पुत्रके प्रकृत पिताकी बात पूछी। उस समय ताराने सोमको ही गर्भज सन्तानका पिता कहा। इसी पुत्रका नाम बुध है। बुध देखो।

स्कन्दपुराणमतसे वृहस्पति पीले हैं। ये देवोंके पुरोहित हो एक बार देवोंकी विपद्ग्रस्त करनेमें कुण्ठित नहीं हुए। मत्स्यपुराण, भागवतपुराण और विश्वपुराण आदिमें वृहस्पतिके पृथ्वीदेहनकी बात है। उत्पत्त्य-

यनिता ममताके गर्भमें उनको भरद्वाज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। भरद्वाज देखो।

द्वितीय मन्वन्तरमें वृहस्पति नामक और ऋषिको नाम मिलता है। यह एक धर्ममतका प्रवर्तक है।

मन्यान्व विवरण्य पर्वगके वृहस्पति शब्दमें देखो। वृहस्पतिचक्र (स० ६०) वृहस्पतिचक्रम् । लोकोर्गके शुभाशुभके निर्णयार्थे वृहस्पतिके सञ्चारकालोन अक्षर-न्यादि २७ नक्षत्रयुक्त नराकृति चक्रविशेष। सञ्चार अर्थात् एक राशिसे दूसरी राशिमें या नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्रमें जानेके समय वृहस्पति पहले जा कर जिस नक्षत्रमें अवस्थित होते हैं, उन नक्षत्रोंको ले कर चार नक्षत्र चक्रांकित पुरुषके शीर्षदेशमें विन्यास करना होगा। उसके बादके चार उसके दक्षिण हाथमें, उसके उत्तर कण्ठमें, उसके बाएं पार्श्व नक्षत्रमें, इस तरह यथाक्रम दक्षिण और वाम पैरमें तीन तीन करके छः, इसके बाद बाएं हाथमें चार और नेत्रमें तीन यथायथमायसे विन्यस्त करना।

वृहस्पतिचार (स० ५०) वृहस्पतिप्रदका सञ्चार। वृहस्पतिस्त्र (स० ६०) चार्वाकोका मूलशास्त्र।

वृ, वरण या आवरण करना। क्वादि० उग० सक्-सेट् ।

लट् वृणाति, वृणीते।

वे—वे' हिन्दीमें बहुवचन सर्वनाममें व्यवहृत होता है।

'वह' एकवचन, इसका बहुवचन ये होता है। आधुनिक हिन्दीजगत्में वे की जगह कुछ लोग यह ही व्यवहार करते हैं। जैसे हिन्दी बङ्गवासी, यह पत्र बहुत पुराना है। इसमें सदासे वे की जगह यह ही व्यवहार किया जाता है। ऐसे ही और भी कितने ही लोग हैं, कि 'वे' को 'वह' ही लिखा करते हैं।

व्यावर (व्यावर)—राजपूतानेके राजमेर मेरवाड-विभागका एक नगर।

यहांके लोग इसको नया नगर भी कहते हैं। अजमेर मेरवाड़ा विभागके अर्भोज कमिश्नरने सन् १८२५ ई०में इस नगरको सेनानियासके सग्निकट बसाया था। मेवाड़ राजधानी उदयपुर और मारवाड़ राजधानी जोधपुरके मध्य स्थानमें रहनेसे यह स्थान बहुत जल्द एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्रमें परिणत हो गया और जनजनसे पूर्ण हो कर ग्राम ही श्रीवृद्धिसम्पन्न हो उठा।

मन्त्रमें लिखा है, कि "जैसे विङ्गलवर्ण घोड़ेको विविध भूयणोंसे सज्जित करते हैं, उसी तरह पितास्वरूप देवताओंसे गगनको सुसज्जित किया। उन्होंने अन्यकारको रात्रिमें रखा था और आलोककं दिनमें कर दिया। वृहस्पतिने पर्यंत तोड़ कर मोघन प्राप्त किया।" तैत्तिरीय संहितामें (४।४।१०) वे तिव्यनक्षत्रके अष्टिष्टत् देवता रूपसे शूद्रोत्त है। वैदिककालके वृहस्पति जुपिटर प्रदके प्रतिनिधित्वमें कल्पित हुए हैं। ये ही वृहस्पति प्रदके (Jupiter) नेता है और कभी कभी स्वयं प्रदकरूपसे कोर्चित होते हैं। प्रहपरिचालनके लिये उनके नीतिघोष नामका एक रथ है। यह रथ आठ घोड़ोंसे परिचालित होता है। वृहस्पति प्रदका एक राशिमें भ्रमण करते करते ६० वर्ष (60 Year's cycle of Jupiter) अतिवादिता होता है। अथोतिपरास्त्रमें यह वृहस्पतिचक्र नामसे विदित है। ग्रह देखो।

पौराणिक युगमें वृहस्पति ऋषिरूपसे वर्णित है। अङ्गिरस ऋषिके पुत्र होनेके कारण ये अङ्गिरस नामसे विख्यात है। देवताओंके उपदेश आचार्य होनेसे वे अनिमिषाचार्य, ज्ञान, इत्य और इन्द्र इत्य आदि नामोंसे पूजित हैं। सोम कौशिलसे उनकी पत्नी तारादेवीको हरण कर ले गये। इसके लिये "तारकामय" युद्धका आरम्भ हुआ। उग्रना, यद्र और दैत्य दानव सोमको पक्ष और इन्द्रके अधीन देवीने वृहस्पतिको पक्ष अवलम्बन किया। उस युद्धमें यसुन्धरा कम्पित होने लगी। उन्होंने प्रह्लासे जा कर अपनी दुरवस्थाकी बात कही। प्रह्लाको मध्यस्थतामें तारा स्वामीके पास लीट आईं। किन्तु तारा इस समय गर्भवती थी। वृहस्पति और सोम दोनोंने ताराके गर्भसे उत्पन्न बालकको पागेका दायो किया। फिर विरोधकी सम्भावना देख प्रह्ला वहां आये और उन्होंने तारासे पुत्रके प्रथम पिताकी बात पूछी। उस समय ताराने सोमको ही गर्भज सन्तानका पिता कहा। इसी पुत्रका नाम बुध है। बुध देखो।

स्कन्धपुराणमतसे वृहस्पति पीले हैं। ये देवोंके पुरोहित ही एक बार देवोंकी विपद्ग्रस्त करनेमें कुण्ठित नहीं हुए। मत्स्यपुराण, भागवतपुराण और विष्णुपुराण आदिमें वृहस्पतिके पृथ्वीदेहनकी बात है। उतप्य-

यनिता ममताके गर्भमें उनकी भरद्वाज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। भरद्वाज देखो।

द्वितीय मन्वन्तरमें वृहस्पति नामक और ऋषिको नाम मिलता है। यह एक धर्ममतका प्रवर्तक है।

अन्यान्य विवरण्य पवर्गके वृहस्पति शहरमें देखो।

वृहस्पतिचक्र (सं० क्री०) वृहस्पतिचक्रम् । लोगोंके शुभाशुभके निर्णयार्थ वृहस्पतिके सञ्चारकालोन अश्विन्यादि २७ नक्षत्रयुक्त नराकृति चक्रविशेष। सञ्चार अर्थात् एक राशिसे दूसरी राशिमें या नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्रमें जानेके समय वृहस्पति पहले जा कर जिस नक्षत्रमें अवस्थित होते हैं, उन नक्षत्रोंको ले कर चार नक्षत्र चक्रांकित पुरुषके शीर्षदेशमें विन्यास करना होगा।

उसके बादके चार उसके दक्षिण द्वाधम, उसके उत्तर कण्ठमें, उसके बाद पांच धक्षमें, इस तरह यथाक्रम दक्षिण और वाम पैरमें तीन तीन करके छः, इसके बाद बाएँ द्वाधम चार और नेत्रमें तीन यथावयमापसे विन्यस्त करना।

वृहस्पतिचार (सं० पु०) वृहस्पतिप्रदका सञ्चार। वृहस्पतिमूल (सं० क्री०) चारवाँकोका मूलशास्त्र।

वृ, वरण या आवरण करना। पवादि० उग० सन०सेट् । लट् घृणाति, घृणीते।

वे—वे' हिन्दीमें बहुवचन सर्वनाममें व्यवहृत होता है।

'वद' एकवचन, इसका बहुवचन ये होता है। आधुनिक हिन्दीजगत्में वे की जगह कुछ लोग वह ही व्यवहार करते हैं। जैसे हिन्दी बङ्गवासी, यह पत्र बहुत पुराना है। इसमें सदासे वे की जगह वह ही व्यवहृत किया जाता है। ऐसे ही और भी कितने ही लोग हैं, कि 'वे' को 'वह' ही लिखा करते हैं।

व्यावर (व्यावर)—राजपूतानेके अजमेर मेरवाड़-विभागका एक नगर।

यहांके लोग इसकी नया नगर भी कहते हैं। अजमेर मेरवाड़ा विभागके अंग्रेज कमिश्नरने सन् १८३५ ई०में इस नगरको सेतानियासके सग्निकट बसाया था। मेवाड़ राजधानी उदयपुर और मारवाड़ राजधानी जोधपुरके मध्य स्थानमें रहनेसे वद स्थान बहुत जल्द एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्रमें परिणत हो गया और धनजनसे पूर्ण हो कर शीघ्र ही अधीष्टिमम्यन्त हो उठा।

(३) जुपिटर और सिमिलिके पुत्र घेविसका चेकास ।
सिसरोके लिये अनुसार (१) प्रसापानके पुत्र,
(२) नेसुसके पुत्र, (३) केप्रियासके पुत्र । इन्होंने
भारतमें अपना प्रभुत्व विस्तार किया था । (४) घिओनी
और नेसुसके पुत्र, (५) जुपिटर चन्द्रके पुत्र ।

यद्यपि मित्रकी राजधानी कायरो नगरसे २ सौ
मील दक्षिण-उत्तर मित्रके जिदा नामक ओपसिसमें
अनुमान १८०० ईसासे पूर्व प्रतिष्ठित जुपिटर (वृहस्पति)
के मन्दिरका ध्वस्तनिर्दान निपतित है ।

पाश्चात्य-जगत्में तानारूपसे लिङ्गरूपकी उपासना
होती है। कभी तो वे मोक्ष रमणीजनोचित सुकुमार
पुत्रक, मस्तकमें द्रव्या या चाइमि लताका किरोट, हाथमें
तिशूल रहता है। व्याघ्र और सिंह उनके प्रियवाहन
और मागदाई पक्षी उनकी अतिप्रिय वस्तु है । इन्होंने
व्याघ्रचर्मसे आवृत हो कर भारतविजयके लिये यात्रा की
थी । कभी तारकामण्डित भूगोल पर उपविष्ट मूर्तिमें
वे सूर्य या ओसिविस कह कर पूजित होते हैं । भारत-
भ्रमणकारों अनेक यूनानी ग्रन्थकारोंने हिन्दू जातिके
उपास्य एक चेकासका उल्लेख किया है । हो सकता है,
कि वे भारतवर्षमें महादेवकी लिङ्गरूपकाके साथ यूनानी
चेकासकी लिङ्गमयी देवमूर्तिकी सादृश्य देख कर ऐसा
निर्णय कर गये हों ।

चेकासी (मीलाना)—एक मुसलमान-कविका नाम । ये
सम्राट् अरबुरके समय जीवित थे ।

चेकुक—मुसलमानोंके एक फिर्केका नाम । धर्मप्रसारक
एक मुसलमान नकली फकीर इसके चलनेवाले थे ।
१८वीं सदीके पहले भागमें इस धकिके दिल्ली राजधानी-
में उपस्थित हो कर जनसाधारणमें घोषणा प्रचारित
की, कि मैंने ही यह मगिनव कुरान पाया है । इसमें
धर्मका सार लिपिवद्ध है । इस कुरानका भाव स्पष्ट
इंगरने व्यक्त किया है, इत्यादि । लोग यह बात सुन
और प्रथमे मर्मा और मूलतत्त्वसे व्यवगत हो कर शीघ्र
उसके चले बन गये । देखते देखते इस नये कुरानवालों-
का एक सम्प्रदाय कायम हुआ । इस सम्प्रदायके शुरु
या आचार्य यहाँके मौलवी चेकुक नामसे पुकारे जाते हैं
और इनके चले फरायुद । उक्त नकली मुसलमान

फकीरने प्राचीन फारसीकी एक किताबसे कितने दो
पद्यन उद्धृत कर जो अपने मतके अनुकूल थे, अपनी
कल्पनासे इस नकली कुरानकी सृष्टि की थी ।

वेक्षण (सं० ह्यो०) अथ-ईश्वर-पुत्र, अथ-स्वादिशेषः ।
अवेक्षण, अच्छी तरह खोजना या ढूँढना ।

वेग (सं० पु०) विज-घम् । १ प्रवाह । पर्याय—
ओध, वेणी, धारा, जव, रंह, तर, रय, स्पद । २ महा-
कालफल । ३ रेत, शुक । (हेम) ४ मूलविद्यादिकी
निर्गम प्रवृत्ति । ५ न्यायके अनुसार २४ गुणाश्रतगत
गुणविशेष, संस्कार गुण, वेगायय संस्कार । क्षिति,
जल, तेज, वायु और मनः इनमें वेदायय संस्कार-
की विद्यमानता देखी जाती है । (भाषापरिच्छेद)

वेग शब्दका साधारण अर्थ गति है । न्यायके
अनुसार नी द्रव्योंमें उक्त क्षित्यादि पांच ही गतिशील है
अर्थात् जगत्में जितने प्रकारके गतिविशिष्ट पदार्थ दिसाए
देते हैं, उन सबोंमें उल्लिखित पांच द्रव्योंका वेग
अन्यतम अंश है । यह वेग स्पृष्टद्रव्यमें कुछ तो
जागतिक पदार्थमें स्वतःप्रवृत्त और कुछ काल और
कारणान्तर साक्षेय अवस्थामें विद्यमान देखा जाता है ।
प्रहनक्षतादिका वेग मूलमें स्वतःप्रवृत्त है । किन्तु
कारणान्तरमें इनमें किसी किसीके वेगकी हास-वृद्धि
होती रहती है । क्षिति, जल, वायु और अग्नि आदि
तेजः हैं, इन सबोंका वेग कारणान्तरसापेक्ष है । शरीर,
मन, और मनका वेग काल और कारणान्तरसापेक्ष है ।
जलका वेग साधारणतः नीचेकी ओर, कारणान्तरमें ऊपर-
की ओर तिर्य्यग शायसे भी हो सकता है । मूल बात है,
कि कारणान्तरसे जिन वेगोंकी उत्पत्ति होती है, उनकी
हास-वृद्धि और दिक्विदिकके सम्बन्धमें कुछ निर्देश
नहीं है । वे नियत हो तत्प्रवर्तक कारणके अनुयत्तों
हैं ।

सुविधाके अनुसार सांसारिक और शारीरिक कार्यों-
के उन्नतिमाधनके लिये हमें कितने वेगोंकी परिपृष्टि
और कितने दो वेगोंका निरोध करना पड़ता है । साध-
विचार कर देखनेसे जगत्की उन्नतिका कारण भी वेग
ही और अवनतिका कारण भी है । पदार्थ दिग्निर्णय
कर वेगके प्रवर्तन कर सकने पर ही जगत्में उन्नति-

चक्षु का डाल होना, हृद्दुःख, अथवा और मातृपूर्णन आदि लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें निद्रा, मद्य और प्रिय वाषय हितकर है। निद्राका वेग संवरण करनेसे जुमाई, अङ्गमर्द, तन्द्रा, शिरोरोग और नेत्रमें भारीपन, ये लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसी अवस्थामें निद्राको चेष्टा और हाथ पैर पर हाथ फेरना, या सब अङ्गोंको मर्दन करना उचित है। श्रमजनित निद्रवासवेग धारण करनेसे गुल्म, हृद्दुःख और सम्मोह उत्पन्न होता है। इसमें विधाम और वातघ्न क्रिया हितकर है।

निद्राका वेग धारण करना आवश्यक है, अब उनका उल्लेख किया जाता है। पथा—अनिष्टकर साहस, लोभ, शोक, भय, क्रोध, द्वेष, अगिमान, परनिन्दा, निर्दोषता, किसी विषयके प्रति अत्यन्त आसक्ति, परधन-विषयक स्पृहा, अतिकर्कश, दूसरेके विशेष अनिष्ट-सूचक, मिथ्या और अनुपयुक्त स्थलमें वाषयप्रयोग, स्वभावतः या परपीड़नार्थी चौर्या, परस्त्रीसम्मोहेच्छा, और हिंसादिकी प्रवृत्ति, इन यथानिर्दिष्ट कायिक, वाचिक और मानसिक वेगोंको ऐहिक और पारत्रिक सुखामिलायी व्यक्तिके मातृकी यथायथ भावसे मनको कम क्रमसे संयत कर धारण करना चाहिये।

(चरक सू० ७ म०)

पूतकीड़ा आदिका परिषर्जन, शिक्षाके लिये उत्साह, परीपकार आदि सद्गुणानमें प्रवृत्ति आदि मानसिक वेगकी यथोचित परिवृद्धि करना आवश्यक है। क्योंकि, ऐसा होनेसे इहकालमें यथै, परकालकी उन्नतिके पथ लोगोंके लिये साफ होता है।

विज्ञानमें वेग गतिके शक्तिकर्षण रूपसे निरूपित हुआ है। इससे वेगके बलायलका वर्णन करनेसे पहले गति और उसकी शक्तिका स्थानाधिक ज्ञानना आवश्यक है। विज्ञानमें प्रत्येक पदार्थकी एक स्थिति और गति निर्धारित है। एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेका गति कहते हैं और उसका अभाव ही स्थिति है। किसी निर्दिष्ट वस्तुके सम्बन्धमें किसी वस्तुकी स्थिति परिचरित हो तो उसका संचल कहा जाता है। यदि कोई वस्तु एक स्थानमें ही जड़की तरह निश्चेष्ट भावसे रहे, तो उसका निश्चल समझा जाता है।

सापेक्ष और निरपेक्ष भेदसे गति और स्थिति दो तरहकी है। किसी एक वस्तुके साथ तुलना कर अन्य किसी वस्तुकी गतिके अनुभव किया जाता है। यदि वस्तु वास्तविक निश्चल हो, तो उस वस्तुकी गति निरपेक्ष गति है और इसके विपरीत यदि किसी वस्तुको निश्चल समझ अन्य किसी वस्तुको निरूपण किया जाय, यह यदि यथार्थमें निश्चल न हो, तो उक्त गतिको सापेक्ष गति कहते हैं।

यदि कोई वस्तु अनन्त आकाशके सम्बन्धमें नियत एक स्थानमें ही स्थिर हो, तो उसकी उस स्थितिके निरपेक्ष स्थिति और यदि किसी वस्तुके चारों ओरसे वस्तुसम्बन्धमें निश्चल समझने पर भी अनन्त आकाशके सम्बन्धमें उसकी अवस्थितिका हमेशा परिवर्तन होते देखा जाय, तो ऐसी दशामें उसकी वैसी निश्चलता या स्थितिके सापेक्ष स्थिति कहते हैं। निरपेक्ष गति या निरपेक्षस्थिति कहीं भी देखी नहीं जाती। क्योंकि हम लोग जहां जहां स्थिति और गति देखते हैं, वे सभी आपेक्षिक कही जाती हैं।

रेलगाड़ीमें इधर उधर आने जानेके समय हम गाड़ीके गति निरूपण करनेमें गाड़ीको निश्चल समझ कर ही इसके द्रुतगामीकी धारणा करते हैं और इस गाड़ीमें जो सब मनुष्य, बैल तथा वस्तुएँ रखी रहती हैं, वे जो वास्तविक स्थिर नहीं हैं, यह भी हम समझ सकते हैं। यथैकि, गाड़ीकी गतिके साथ उसकी अन्तर्गत वस्तु या व्यक्तिको भी गति सिद्ध समझी जाती है।

पर्वत, वृक्ष और अट्टालिका आदि स्थावर पदार्थ गाड़ीकी गतिके सम्बन्धमें निश्चल हैं ऐसा प्रतीत होने पर भी ये यथार्थमें निश्चल नहीं हैं। क्योंकि पृथ्वी उनके घस पर धारण कर नियत ही पूर्वकी ओर दौड़ रही है। सूर्य भी पृथ्वी आदि ग्रहोंके साथ एक दूसरे विनाश सूर्यके चारों ओर तथा यह सूर्य भी सम्भवतः हमारे इस सौरजगत् और अग्न्याग्ने जगत् के कर एक ग्रहान् सूर्यके चारों ओर परिभ्रमण कर रहे हैं। मालूम होता है, कि इसी कारणसे इस विश्व संसारमें किसी पदार्थको एक मुहूर्तके लिये भी निरपेक्ष गति या स्थिति प्राप्त नहीं होती।

सर्वादा सत्कर्म किया करते थे। एक दिन एक वैशा-
न्तिक ब्राह्मण इनके घर आये। इन्होंने परम भक्ति और
प्रीतिसे पाद्य अर्घ्य आदि द्वारा उनका स्वागत किया।

किन्तु उक्त वैशाखविदु ब्राह्मणने उस घरमें किसी विष्णु-
भक्तको तुलसी द्वारा पूजा करते देख देवमतके दिष्टे हुए
फलमूलादिको बड़े अश्रद्धासे प्रदण किया। इसी
पापके कारण वे वेणुत्वको प्राप्त हुए। ३ नृपमेद।

वेणुक (सं० ह्री०) वेणुरिष वेणोर्निकारो वा कन्।
गयादिताडनदण्ड, यह लकड़ो या छोटी जिससे गौंओ,
बैलो आदिको हांकते हैं। २ अंकुश, आंकुस। (पु०)
हृषो वेणुः संहायां कन् (पा १।३।५०) ३ क्षुद्र वेणु, छोटी
वंशो। ४ पला, इलायची। किसी किसी ग्रन्थमें
वेणुक पाठ भी देखा जाता है।

वेणुकर्कर (सं० पु०) कर्वोरिवृक्ष, कनेरका पेड़।

वेणुका (सं० खी०) १ वंशी, बाँसुरी। २ एक प्रकारका
वृक्ष। इसका फल बहुत जहरीला होता है। ३ हापी-
को चलानेका प्राचीन कालका एक प्रकारका दंड़ जिस-
में बाँसका बस्ता लगा होता था।

वेणुकार (सं० पु०) वंशीनिर्माणकारक, वंशी बनाने-
वाला।

वेणुकौष (सं० लि०) वेणुकाजातं वेणुक-छ नडादीनां
कुकू च। (पा ४।२।६१) वेणुसे उत्पन्न, वेणुका।

वेणुगढ़—विहारके पूर्णिया जिलान्तर्गत हृष्यागञ्ज उप-
विभागका एक दुर्ग और तत्संलग्न एक नगर। इन-
को पूर्वा समृद्धि जाती रही। वर्तमान समयमें उस
दुर्गके प्राकार और प्राचीरादिको ध्वंसावशेष मात्र
देखा जाता है। दुर्गमित्तिका मूल अंश तथा ध्वस्त
अट्टालिकादिवा निदर्शन नगरकी धनीत स्मृतिको आज
भी दिखा रहा है। किन्तु दुःखका विषय है, कि किस
समय यह दुर्ग बनाया गया और कौन इसके निर्माता
हैं इसका आज तक पता नहीं लगा है। स्थानीय
प्रवाद है, कि राजा विक्रमादित्यके शासनकालमें ५७
वर्ष ईसा-अगमके पहले पांच भाइयोंने एक रात्रिके मध्य
को पांच दुर्ग बनायाये, यहाँ उनमेंसे एक दुर्ग है।

वेणुगोपालपुर—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत
मन्दासा जमींदारीका एक बड़ा ग्राम। यह सोमपेटसे ६

मील दक्षिण-पश्चिम तथा बड़े रास्तेसे २ मील पश्चिम-
में अवस्थित है। मन्दासा जमींदारवंशके किसी
व्यक्तिने प्रायः ४०० वर्ष पहले यह मंदिर बनवाया।

वेणुगोपालस्वामी—दाक्षिणात्यकी एक सुप्रसिद्ध विष्णु-
मंदिर। यह मन्द्राज प्रदेशके कडवा जिलेके सिद्ध-
चट्टम तालुकके सदरसे ७ मील उत्तरमें अवस्थित है।
यह मंदिर दाक्षिणात्यवासियोंका एक पवित्र पुण्यतीर्थ
समझा जाता है। मंदिर बहुत पुराना है। यहाँके
लोग इसे गोपालस्वामीका पागोडा कहते हैं।

वेणुग्रथ (सं० पु०) एक प्रकारकी गोपधि।

वेणुग्राम—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक स्थान। जमी यह
घेलगाम् नामसे मशहूर है। प्राचीन शिलालिपिमें यह
प्रदेश वेणुग्रामसप्तति नामसे उल्लिखित देखा जाता है।
११६६ ई०में सौंदरसिके रट्ट सरदार ४वाँ कासंबीर्थ
यहाँ राज्य करते थे। गोमाके कादम्ब वंशीय राजा
३य जयकेशी इस स्थानके शासनकर्ता थे। -उन्होंने
परास्त कर रट्ट लोगोंने यह स्थान दखल किया।

वेणुज (सं० पु०) वेणोर्जायते जनश्च। १ वेणुग्रथ, बाँसके
फूलमें होनेवाले दाने जो चायल कहलाते हैं, और जो
गीस कर उवार आदिके आटेके साथ छाये जाते हैं,
बाँसका चायल। २ मरिच, गोल मिर्च। (लि०) ३ वंश-
जात द्रव्यमात्र, जो बाँससे उत्पन्न हुआ हो।

वेणुजमुक्ता (सं० खी०) वंशजात मुक्तामेद, बाँसमें
होनेवाला एक प्रकारका गोल दाना जो प्रायः मोती
कहलाता है।

वेणुमङ्ग (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक मुनिका
नाम।

वेणुमन्त्र (सं० पु०) वेणुग्रथ, बाँसका चायल।
वेणुधली—यणधलीका प्राचीन नाम। बन्धनी देवी।
वेणुदत्त (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

वेणुद्वारि (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राज-
कुमारका नाम।

वेणुध्या (सं० लि०) वेणु धमतीति ध्या-श्च। वेणु-
यादक, वंशी बजानेवाला।

वेणुन (सं० ह्री०) मरिच, गोल मिर्च। किसी किमी
ग्रन्थमें वेणुज पाठ भी देखा जाता है।

इस बार भी इन्होंने सेनाविभागके संस्कारमें ध्यान दिया। इससे सेनादलमें असतोषका लक्षण दिखाई दिया सही, पर पहलेकी तरह विद्रोहवाहक घघक न उठी। ये भारतवासियोंके पूज्य हुए थे। और तो क्या, सतीदाह तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें हिन्दू लक्ष्मणाश्रमिका बलपूर्वक जीतेजी जला देनेकी निष्ठुर प्रथाके इन्होंने महात्मा राममोहन राय आदिकी सहायतासे भारतवर्षसे बिलकुल उठा दिया। राममोहन राय देखो।

१८२६ ई०की १७वीं दिसम्बरमें सहमरणप्रथाकी नीतिविरुद्ध बतला कर राजाविधिमैं विधोषित किया। सहमरण देखो।

मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता तथा ठगी डकैती आदि अत्याचारनिवारण इनके भारतशासनकालकी प्रधान घटना हैं। मुद्रायन्त्र और ठगी देखो।

इसके सिवा कुर्मपतिको युद्धमें परास्त कर इन्होंने उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली और अंगरेज साधारणको भारतवर्षमें उपनिवेश स्थापन करनेका अधिकार दिया। शिक्षाविषयकी उन्नति करना, अंगरेजीविद्यालय खोलना और देशी शिक्षित व्यक्तियोंके हाथ धर्माधिकार देना, ये सब महान् कार्य इन्हीं महामानुषों द्वारा किये गये हैं। इनके समय प्रत्येक प्रेसिडेन्सीमें एक एक व्यवस्थापक सभा (Legislative Council) हुई थी। १८३० ई०में इनका स्वास्थ्य खराब हो गया और भारत-राजप्रति निधित्यका पद स्वच्छासे परित्याग कर ये उसी सालकी २०वीं मार्च तक भारतका शासन कर स्वदेशको लौट गये।

उनके भारत छोड़नेसे देशी प्रजा बहुत दुःखित और कातर हुई थी। उन लोगोंने इनके सुशासनका स्मरण रखनेके लिये एक अश्वारोही प्रतिष्ठतिकी प्रतिष्ठा की।

स्वदेश जा कर १८३६ ई०में ये मलासमी नगरवासियोंके ओरसे पार्लियामेंट महासभाके हाउस ऑफ कामन्सके सभ्य चुने गये। इस पद पर रह कर १८३६ ई०की १७वीं जूनको इन्होंने इस लोकका परित्याग किया।

वेण्णा (सं० खी०) नदीमेंद। इसका दूसरा नाम कृष्ण-वेण्णा था वेण्णा है।

वेण्णिकल्लू—मन्द्राज प्रदेशके चेन्नई जिलान्तर्गत कुड्डल्लिपि तालुकका एक ग्राम। यहां मास्कर्पणिलसमन्वित एक प्राचीन शिवमन्दिर विद्यमान है।

वेण्णिहल्ली—मन्द्राज प्रदेशके चेन्नई जिलान्तर्गत हर्षणहल्ली तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहांके विरुपाक्षेश्वर मन्दिरमें पांच शिलाफलक देखे जाते हैं।

वेण्य (सं० खी०) विन्ध्यपर्वतसे निकली हुई एक नदी। (मार्क०पु० ५७२५)

वेण्य (सं० खी०) पारिपात पर्वतसे निकली हुई एक नदी। (मार्क०पु० ५७१६)

वेण्वातट (सं० क्ली०) १ घेण या वेण्वानदीकी तीरभूमि। २ उसके किनारे अवस्थित एक देश। (भारत २।३।१२)

वेण्वातीर्थ—वेण्य नदीतीरस्थ तीर्थमेंद।

वेत (सं० पु०) वेतसलता, वेत। वेप शब्द देखो।

वेतचेरु—मन्द्राज प्रदेशके कर्नूल जिलान्तर्गत नग्गाल तालुकका एक बड़ा ग्राम। मानचित्रमें यह वैभूमचेरु नामसे उल्लिखित है। यहांके आज्ञानेय मन्दिरमें १४७० शक और १४६७ ई०में उत्कीर्ण दो शिलाफलक देखे जाते हैं। ये फलक विजयनगरराज सदाशिवके राज्यकालमें किसी राजवंशीय द्वारा दिये गये थे। इसके सिवा ग्रामके अन्यान्य स्थानोंमें और भी कितनी शिलालिपियां हैं।

वेतक्का—बङ्गालके फरोदपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २३' ३०" तथा देशा० ८६' ५७" पू०के मध्य चन्द्रानदीके किनारे अवस्थित है। यहां चायल और उद्द आदि अनाजोंका जोरों कारवार चलता है।

वेतण्ड (सं० पु०) १ हस्तो, हाथो। २ यह व्यक्ति जो ताड़नेके योग्य हो।

वेतन (सं० क्ली०) वी-तनन् (वीगतिष्वां तनन्) उप् १।१५०) १ कर्मदक्षिणा, यह धन जो किसीको कोई काम करनेके बदलेमें दिया जाय। २ यह धन जो बराबर कुछ मिश्रित समय तक, प्रायः एक मास तक, काम करने पर मिले, मनलाह, दरमादा। ३ जीवनेयाय, जीविका सहाय। ३ दीप्य, चाँदी।

वेतनमुत्त (सं० लि०) वेतनभोगी, जो तनव्याह ले कर काम करता है।

शस्त्रं पद्भ्युलं पूर्वोक्तफलं तच्च व्यपन्नं योज्यम्
(बन्धुदत्त)

वैतसाम्भ (सं० पु०) वैतसप्रधानोऽसुः । असुर्वैत ।

वैतसिनो (सं० स्त्री०) नदीमेद । (वायुपुराण)

वैतसी (सं० स्त्री०) वैतस ।

वैतसु (सं० पु०) असुर्वैत । (शृक् ई।२०।८ षष्ण)

वैतसत् (सं० लि०) वैतसाः सन्त्यत् (कुमुदनाम्नवेत्ते-
भ्यो ष्मत्) । पा ४।२।८७ इति ष्मत्सुप्, मादुपधाया,
इति मस्य घटयं (पा ८।२।६) । १ वैतसलताबहुल
देशः, यद् देशं जहाँ वैत बहुत होता है । २ नगरमेद ।

(पञ्चविंशती २१।२।४२०)

वैता (सं० स्त्री०) वैतन, तनकाह । (इत्यायुप ४।४२)

वैतागढ़ि—यङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम ।
यद् स्थानोय उदपन्न श्रव्योका वाणिज्यकेन्द्र है तथा
२५ ५२' ३०" और देशां ८६° ११' पू०के मध्य पड़ता है ।
यहाँ प्रधानतः चावल, तमाकू और पटमनकी आमदनी
होती है ।

वैतागांव—अयोध्या प्रदेशके रायमरीली जिलेका एक ग्राम ।
यद् भितरगांव नगरका एक अंश है । यहाँ अन्नदादेयो-
का मन्दिर है । प्रति वर्ष देवोमन्दिरके सामने एक मेला
लगता है । भितरगांव देखो ।

वैताल (सं० पु०) १ द्वारपालक, संतरी । २ भूता-
धिष्ठित शय, यद् शय जिस पर भूतोंने अधिकार कर
लिया हो । ३ मलमेद । ४ शिवगणाधिप विशेष ।
५ छपपयके छठे मेदका नाम । इसमें ६५ शुद्ध और २२
लघु कुल ८७ वर्ष या १५२ मात्वापे अथवा ६५ शुद्ध और
१८ लघु कुल ८३ वर्ष या १४८ मात्वापे होती है ।

वैताल—पुराणोक्त भूतबोनिधिशेष । वैताल भूतोंमें
प्रधान है । समाधिस्थलोंमें या जहाँ मुर्दा रखा जाता
है यहाँ वैतालका शासन होता है । प्रवाद है, कि
महाराज विक्रमादित्य किसी योगीके उमाङ्गनेसे प्रान्तर-
स्थित वृक्ष पर स्थापित राजा चन्द्रकेतुका शय लानेके
लिये गये । यहाँ वैतालके साथ राजाकी भेंट हुई ।
वैतालके कुछ प्रश्नोंका सतुत्तर देनेके कारण वैताल
राजा पर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला, 'राजन् !
विषदुमें पड़ कर आप जहाँ भी मेरा स्मरण करेंगे यहाँ

मैं आपको सहायता करूँगा । इस घटनाके बादसे
राजा तालवेताल सिद्ध हुए और उनको सहायतासे अनेक
अलौकिक कार्यों किये ।

वैतालरुचय—घारणाय मन्दीपवभेद ।

वैतालप्रह (सं० पु०) भूतप्रह विशेष । वैतालप्रहा-
विष्टकी गन्धमालायादिमें अत्यन्त आसक्ति होती है । ये
सत्पवादी, कम्पयुक्त और बहुवीपपुष्ट होते हैं ।

वैतालपञ्चविंशति (पचीसी)—एक अति उपाशेष संस्कृत
ग्रन्थ । वैताल और राजा विक्रमादित्यके प्रश्न २५
विभिन्न गल्पकारोंमें लिखे गये हैं, यही वैतालपचीसी
नामसे मशहूर है । लोगोंका विश्वास है, कि अम्बल-
मट्टने पहले पहल इसकी रचना की । शैमिश्र (पृथक्कपा-
मञ्जरीमें), यदरुम, शिवदास और सोमदेव (कथापरित-
सागमें) इस गल्पकी स्वतन्त्र रचना कर गये हैं । भारत
वर्षकी प्रायः सभी भाषाओंमें इस गल्पका अनुवाद
हुआ है । छेहट्टभट्टविरचित वैतालचीसी नामक एक
और ग्रन्थ मिलता है ।

वैतालभट्ट (सं० पु०) राजा विक्रमादित्यके नवरत्नोंमें-
से एक । आप एक कवि कद कर परिचित हैं । नीति
प्रदीप नामक ग्रन्थ आप हीका बनाया हुआ था ।

वैतालमैरवरस—वैद्यकोक रसोपधिविशेष । यह उपरादि
रोगोंमें विशेष फलप्रद है ।

वैतालरस (सं० पु०) रसोपधिविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—
पारा, गन्धक, विष, मिर्च, हरिताल, समान भागमें मर्दन
कर कज्जली करे और १ रस्तीकी गोली बनाये । इस
गोलीका सेवन करनेसे साध्यसाध्य उषर और सुदाहण
सर्जितपात उत्पन्न होता है ।

वैतमें दृष्ट होने, मौख भाग, शिष्टियोंके विचल होने
तथा विषम अज्ञानावस्थामें यह वैतालरस शरीरमें
लगाने या इससे स्नान करानेसे विशेष उपकार होता है ।

(रवेन्द्रवार्ष्णेक चरचिते)

वैतावाद—बम्बई प्रदेशके सायंगेन जिलान्तर्गत भूसापाल
उपविभागका एक नगर । यह अक्षां २१° १४' ३०"
तथा देशां ७५° ५७' पू०के मध्य अवस्थित है । यहाँ
पहले उपविभागका सदर था । म्युनिसिपैलिटी रहनेके
कारण नगर रूढ़ साक सुधरा है ।

शास्त्रं पङ्क्तुं लं पूर्वांकफलं तच्च व्यधने योज्यम्

(अक्षय्यदत्त)

वेतसाम् (सं० पु०) घेतसप्रधानोऽसुः । असुर्वेत ।

वेतसिनी (सं० स्त्री०) नदीमेद । (वायुपुराण)

वेतसी (सं० स्त्री०) : वेतस ।

वेतसु (सं० पु०) असुरमेद । (शृक् ६।२०।८ धारण्य)

वेतसत् (सं० त्रि०) घेतसाः सन्त्यत (कुन्दनद्वयेतसे-
म्नो दम्तुम् । पा ४।२।८) इति अमृतपुं, मादुपध्याया,

इति मत्प घटयं (पा ८।२।६) । १ घेतसलताबहुल
देश, यह देश जहाँ वेत बहुत होता है । २ नगरमेद ।

(पञ्चविंशती २१२।४२०)

वेता (सं० स्त्री०) घेतन, तनलाह । (इत्यापुष ४।४२)

वेतागढ़ि—बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम ।

यह स्थानोय उत्पन्न द्रव्योंका बाणिज्यकेन्द्र है तथा
२५° ५२' ३०" और देशां ८६° ११' ५०"के मध्य पड़ता है ।
यहाँ प्रधानतः चावल, तमाकू और पटमनकी आमदनी
होती है ।

वेतागांव—अयोध्या प्रदेशके रायबरेली जिलेका एक ग्राम ।

यह भितरगांव नगरका एक अंश है । यहाँ अन्नदादिवो-
का मन्दिर है । प्रति वर्ष वैशोमन्दिरके सामने एक मेला
लगता है । भितरगांव देखो ।

वेताल (सं० पु०) १ द्वारपालक, संतरी । २ भूता-

धिष्ठित शय, यह शय जिस पर भूतोंने अधिकार कर

लिया हो । ३ मलमेद । ४ शिवगणाधिप विशेष ।

५ छपपयके छठे मेदका नाम । इसमें ६५ गुद और २२

लघु कुल ८७ वर्ष या १५२ मात्वापे अथवा ६५ गुद और

१८ लघु कुल ८३ वर्ष या १४८ मात्वापे होती है ।

वेताल—पुराणिक भूतयोनिविशेष । वेताल भूतोंमें

प्रधान है । समाधिस्थलों या जहाँ मुर्दा रखा जाता

है वहाँ वेतालका आगमन होता है । प्रवाद है, कि

महाराज विक्रमादित्य किसी योगीके उमाङ्गनेसे प्रास्तर-

स्थान वृक्ष पर स्थापित राजा चन्द्रकेतुका शय लानेके

लिये गये । वहाँ वेतालके साथ राजाकी भेंट हुई ।

वेतालके कुछ प्रश्नोंका सतुसर देनेके कारण वेताल

राजा पर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला, 'राजन् !

विषदुर्मे पड़ कर आप जहाँ भी मेरा स्मरण करेंगे वहाँ

मैं आपको सहायता करूँगा । इस घटनाके बादसे
राजा तालवेताल सिद्ध हुए और उनको सहायतासे अनेक
अलौकिक कार्यों किये ।

वेतालकवच—धारणाय महापवमेद ।

वेतालप्रह (सं० पु०) भूतप्रह विशेष । वेतालप्रहा-

विष्टकी गन्धमालावादिमें अत्यन्त आसक्ति होती है । ये

सर्पवादी, कम्पयुक्त और बहुदोषदुष्ट होते हैं ।

वेतालपञ्चविंशति (पञ्चोत्तरी)—एक अति उपाशेष संस्करण

ग्रन्थ । वेताल और राजा विक्रमादित्यके प्रश्न २५

विभिन्न गल्पकारोंमें लिखे गये हैं, वही वेतालपञ्चोत्तरी

नामसे मशहूर है । लोगोंका विश्वास है, कि अमल-

भट्टने पहले पहल इसको रचना की । क्षेमेश्वर (शुद्धकथा-

मञ्जरीमें), यदुलभ, शिवदास और सोमदेव (कथाशत-

वागमें) इस गल्पकी स्वतन्त्र रचना कर गये हैं । भारत

वर्षकी प्रायः सभी भाषाओंमें इस गल्पका अनुवाद

हुआ है । छेहटभट्टविरचित वेतालबोसी नामक एक

और ग्रन्थ मिलता है ।

वेतालमट्ट (सं० पु०) राजा विक्रमादित्यके नवरत्नानाम-

से एक । आप एक कवि कह कर परिचित है । मोति

प्रद्वीप नामक ग्रन्थ आप हीका बनाया हुआ था ।

वेतालमैथरस—वैद्यकोक रसोपविशेष । यह उवरादि

रोगमें विशेष फलप्रद है ।

वेतालरस (सं० पु०) रसोपविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—

पारा, गन्धक, विष, मिर्च, हरिताल, समान भागमें मईन

कर कज्जला करे और १ रस्तीकी गोली बनाये । इस

गोलीका सेवन करनेमें माध्यासाध्य उवर और सुदारुण

सर्जिपात उवर नष्ट होता है ।

दाँतमें दर्द होने, आँस आने, इन्द्रियोंके चिञ्चल होने

तथा विषम अज्ञानावस्थामें यह वेतालरस शरीरमें

लगाने या इससे स्नान करानेसे विशेष उपकार होता है ।

(रत्नेन्द्रवारणं चरचि०)

वेतावाद—बम्बई प्रदेशके साध्वेज जिलान्तर्गत भूसायाल

उपविभागका एक नगर । यह अक्षां २१° १४' ३०"

तथा देशां ७५° ५७' ५०"के मध्य अवस्थित है । वहाँ

पहले उपविभागका सहर था । ग्युनिस्पलिटो रहनेके

कारण नगर रूढ़ साक सुधरा है ।

आदि बनाये जाते हैं। जागा लोग बेंतके छिलकोंकी तरह तरहके रंगीसे रंगते और उसीको हाथ और पैरमें अलङ्कार स्वरूप पहनते हैं। जागा, कुकी आदि असम्भ्य जातियाँ तथा प्राचीन ब्रह्मालकी ढाली सेना बेंतका बना हुआ ढाल व्यवहार करती थी। बेंतके ऊपरकी छाल अलग कर मोतरमें जो गूदा या तन्तुमय दण्ड रहता है उससे जीतप्रधान देशोंमें एक तरहकी चटाई बनती है। इन सब कारणोंसे बेंत पण्यद्रव्यरूपमें नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं। बेंतका अप्रदण्ड तीता और पका फल खड़ा होता है।

२. अक्षुरविशेष, सेत्तासुर।

वेत्क (सं० पु०) रामशर, सरपतः।
 वेत्कहार (सं० पु०) वेत्क द्वारा द्रव्य प्रस्तुतकारी, यह जो बेंतके सामान बनता हो। (राम० २६०।१६)
 वेत्कश्रीम (सं० त्रि०) वेत्क-छ (नदीदीनां कुक्ख। पा ४।२।६१) अति कुक्ख। वेत्कसमुद्रयुक्त देशादि, यह देश या स्थान जहाँ बेंतकी अधिकता है। यह स्थान शाहाबाद जिलेमें अवस्थित है। समीप यह विहृता कहलाता है।
 वेत्ककूट—पुराणानुसार हिमालयकी एक छोटीका नाम।
 वेत्कगङ्गा—हिमगिरिपादसे निकली हुई एक नदीका नाम। (हिम० ख० ४५।३६)
 वेत्कग्रहण (सं० स्त्री०) १ दण्डधारण। २ वीवारिकरण। (शु ६।२६)

वेत्कग्राम—ब्रह्मालके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० १३।१८)
 वेत्कधर (सं० पु०) वेत्कस्य धरः। १ द्वारपाल, संतरी। २ पट्टि धारक, लठैल, लठबंद।
 वेत्कधारक (सं० पु०) वेत्कस्य धारकः। द्वारपाल, संतरी।
 वेत्कनगर—चम्पारणके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (भविष्य ब्रह्मख० ४१।१६) उक्त ग्रन्थमें यहाँके राजवंशका परिचय है। (ब्रह्मख० ४३।८०)
 वेत्कमूला (सं० स्त्री०) मयसिद्धा, शंखिनी।
 वेत्कवत् (सं० त्रि०) वेत्क अस्त्यर्थे मनुष्य-मस्य वः।
 वेत्कविशिष्ट, वेत्कयुक्त।
 वेत्कवती (सं० स्त्री०) नदीविशेष। यह नदी मालवदेश-

से निकल कर कालसी नामक नगरमें यमुनानदीके साथ मिली है। (मार्क० पठेयपु० ५५।२०)

इसका वर्तमान नाम घेतया नदी है। यह अक्षा० २२° ५' से २५° ५५' उ० तथा देशा० ७७° ४०' से ८०° १६' पु०के मध्य शुद्धेलखण्ड राजपमें बहती है। मध्यभारतकी भूपाल राजधानीसे ११० मील दक्षिणमें अवस्थित यह इ. इ. से निकल कर दक्षिण-पूर्व की ओर २० मील तक बहती हुई शतपुत्रमें भाई है। पीछे उत्तर-पूर्व गतिसे ३५ मील प्रवाहित हो ग्वालियरराज्य बलिक्रम कर ललितपुर, भांसी और हमीरपुर जिलेमें चली गई है। इसके बाद ३६० मीलका रास्ता तै कर नगरसे ३ मील दक्षिण यमुना नदीमें मिली है। यमुना, दशाग, कोलाहू, पाघत और प्रसन्न नदी नामकी शाखाएँ इसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। उत्पत्तिस्थानसे वेत्कवती नदी पहले विन्ध्यगिरिके बाहुकामय प्रस्तरखण्डकी घाटी हुई भांसी जिलेमें दानेश्वर पट्टरोंके ऊपर बह गई है।

निमाच, कानपुर और गुणासे इस नदीके ऊपरसे एक रास्ता सागरमें, भांसीसे मन्दागवमें और बाँदासे कावरीमें चला गया है। उन सब स्थानोंमें नदीकी पार करना असम्भव और विपज्जनक है। प्रीथम ऋतुमें पहाड़ी नदियोंमें प्रायः जल नहीं रहता। यह सूख जलरखा जब पहाड़ी देशका परिचयाग कर समतल भूमिमें आती है, तब उसके जलका घेग प्रति सेकेंडमें २ लाख घनयुक्त फुट होता है। अतएव बाढ़के समय घट घेग प्रति सेकेंडमें ५ लाख फुट हो जाता है। भांसी जिलेमें इस नदीसे एक नहर काटी गई है।

२. वेत्तासुरकी माता। (वपारुराण)

वेत्तारज्य—जनपदमेद। वेत्तनगर देवता।
 वेत्तगद्गु, पथ—जनपदमेद। (मत्स्यपुराण १२१।५६)
 वेत्तहन (सं० पु०) वेत्त इतयान, हन-विष्णु। इन्द्र। (अमर)
 वेत्तायता (सं० स्त्री०) वेत्तवती नदी। इस नदीका जल मथुरा, कागितप्रद, पुष्टिकारक, बलकर, वृष्य और पाचन है। (राजनि०)
 वेत्तासन (सं० स्त्री०) वेत्तस्थासनं। वेत्तनिर्मित आसन, बेंतका बना हुआ किसी प्रकारका आसन।
 प्याय—आसन्दी।

आदि बनाये जाते हैं। नागा लोग वेतके छिलकोंकी तरह तरहके रंगीसे रंगते और उसीको हाथ और पैरमें अलङ्कार स्वरूप पहनते हैं। नागा, कुकी आदि असभ्य जातियाँ तथा प्राचीन बङ्गालकी ढाली सेना वेतका बना हुआ ढाल व्यवहार करती थी। वेतके ऊपरकी छाल अलग कर मोतरमें जो गूदा या ठगनुमप इण्ड रहता है उससे जोतप्रधान देशोंमें एक तरहकी चटाई बनती है। इन सब कारणोंसे वेत अण्यद्रव्यरूपमें 'नाना स्थानोंमें' भेजे जाते हैं। वेतका अग्रदण्ड पीता और पका फल जड़ा होता है।

२. अस्तुरविशेष, वेत्तासुर।

वेतक (सं० पु०) रामशर, सरपत।
 वेतकार (सं० पु०) वेत द्वारा द्रव्य प्रस्तुतकारी, यह जो वेतके सामान बनाता हो। (राम० २।६०।१६)
 वेतकीय (सं० त्रि०) वेत-छ (नदारीना कुक् न.। पा ४।२।६१) इति कुक् च। घेतसमूहयुक्त वेदादि, यह देश या स्थान जहाँ वेतकी अधिकता है। यह स्थान शाहाबाद जिलेमें अवस्थित है। अमो यह विद्वत्ता कहलाता है।
 वेतकूट—पुराणानुसार हिमालयकी एक छोटीका नाम।
 वेतगङ्गा—हिमगिरिवादीसे निकली हुई एक नदीका नाम। (हिम० सं० ४५।३६)
 वेतप्रहण (सं० स्त्री०) १. इण्डप्रारण। २. दीवारिकरव। (रघु ६।१६)

वेतग्राम—बङ्गालके चन्द्रगोपके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। (मविष्य ब्रह्मण० ३३।१८)
 वेतघर (सं० पु०) वेतस्य घरः। १. द्वारपाल, सन्तरी।
 २. पट्टि धारक, लठैत, लठथं।
 वेतघारक (सं० पु०) वेतस्य धारकः। द्वारपाल, सन्तरी।
 वेतनगर—चम्पारणके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (मविष्य ब्रह्मण० ४१।४६) उक्त ग्रन्थमें यहाँके राजवंशका परिचय है। (मदल० ४३।८०)
 वेतमूला (सं० स्त्री०) यमसिद्ध, शंघिनो।
 वेतवत् (सं० त्रि०) वेत अस्त्यर्थे मनुष्य-मस्य वः।
 वेतनिशिष्ट, वेतयुक्त।
 वेतवती (सं० स्त्री०) नदीविशेष। यह नदी मालयदेश-

से निकल कर कालसी नामक नगरमें यमुनानदीके साथ मिली है। (मार्कण्डेयपु० ५।५२०)

इसका वर्तमान नाम घेतया नदी है। यह मझा० २२° ५' से २५° ५५' उ० तथा देशा० ७७° ४०' से ८०° १६' पु०के मध्य बुन्देलखण्ड राज्यमें बहती है। मध्यभारतकी भूपाल राजधानीसे ११० मील दक्षिणमें अवस्थित बड़े बड़े नदसे निकल कर दक्षिण-पूर्वकी ओर २० मील तक बहती हुई जतपुरमें आई है। पीछे उत्तर-पूर्व गतिसे ३५ मील प्रवाहित हो ग्यालियरराज्य अतिश्रम कर ललितपुर, भांसी और हमीरपुर जिलेमें चली गई है। इसके बाद ३६० मीलका रास्ता तै कर नगरसे ३ मील दक्षिण यमुना नदीमें मिली है। यमुना, दशाग, फोलाहु, पाघत और ब्रह्मन् नदी नामकी शाखाएँ इसके कलेवरकी पुष्ट करती हैं। उदपत्तिस्थानसे वेतवती नदी पहले विन्ध्यगिरिके बालुकामय प्रस्तरखण्डको घेती हुई भांसी जिलेमें बानेदार परधरोंके ऊपर बह गई है।

निमाच, कानपुर और गुणासे इस नदीके ऊपरसे एक रास्ता सागरमें, भांसीसे मन्दगौरमें और बांदासे कालसीमें चला गया है। उन सब स्थानोंमें नदीको पार करना असम्भव और विपजजनक है। प्रीय्य श्रतुमें पहाड़ी नदियोंमें प्रायः जल नहीं रहता। यह सूक्ष्म जलरेखा जब पहाड़ी देशका परित्याग कर समतल भूमिमें आती है, तब उसके जलका वेग प्रति सेकेण्डमें २ लाख यशुविक फुट होता है। अत्यन्त बाढ़के समय यह वेग प्रति सेकेण्डमें ५ लाख फुट हो जाता है। भांसी जिलेमें इस नदीसे एक नहर काटी गई है।

२. वेत्तासुरकी माता। (वराहपुराण)

वेतरान्य—जनपदभेद। वेतनगर देखा।
 वेतगङ्ग, पथ—जनपदभेद। (मत्स्यपुराण १२१।५६)
 वेतहन (सं० पु०) वेतं इतयान, हन-क्रिप्। इन्द्र। (अमरं)
 वेतायता (सं० स्त्री०) वेतवती नदी। इस नदीका जल मधुर, कांतिप्रद, पुष्टिकारक, बलकर, मृष्य और पाचन है। (राजनि०)
 वेतामन (सं० स्त्री०) वेतस्थासनं। वेतनिर्मित आसन, वेतका बना हुआ किसी प्रकारका आसन।
 वेताय—आसन्दी।

पेचुर-मदिसुर राज्यके देवनगर तालुकामर्गत एक बड़ा गाँव। यह सन् १८०१, १८०३ तथा १८०६ ई० के मध्य भयविषय है। किंयद्वरती यह है, कि १३वीं सदीमें यहाँ देवगिरिके यादव राजाओंको राजधानी थी।

पेठ्या—मध्यभारत पञ्जेश्वरके सुद्वेलगण्डके मन्तर्गत एक नदी। इसका प्राचीन नाम वेत्तपनी है।

पेठरी देखो।

पेणू (सं० लि०) पेत्तोति विद्-पुण्। छाता, जागनेवाला। पेन्न (सं० पु०) यो (गु-पु-पी-पेटोति) उष्ण ५१६६ इति ऋ। लनामपवात वृत्त, वेंत। पर्याय—पेत्त, योगिद्वन्द, सुदण्ड, मृदुपर्यक। यह पर्याय प्रकारका है। गुण—ओतक, बपाय, भूत और विस्तार। इसका मगला माग येताक बदलाता है। गुण—दीपक, रजिदर, त्रिक, पित और कफनाशक। फलका गुण—पातपित्तनाशक और शान्त।

इस लनामप्रसिद्ध वृक्षको जंगरेजीमें Canes या Rattans कहते हैं। उज्जितुविश्राममें इसको तालवृक्ष ज्ञाति (Calamus) में माना गया है। मिय मिंग देगमें यह मिंग मिंग नामसे प्रसिद्ध है। पर्याय—फरासी—Canne, rosan; Baton, Raton; अंगो—Rohrt. मलय रौतन; इटली—Canna, bastone, स्पेन—Canao, Junco de Indias, तामिल—परम्पुगय, तेलगू—पंचामुत्तु। पारस्य—पेन्, गुजरात—भापुर, संस्कृत—पेत्त, बङ्गाल—पेत्त, येत्त, येत्त।

भारतीय द्वीपपुत्र, मलय मायोडी, मद्रास प्रसिद्धियों के जलमय भूमिगर्भ तथा करमण्डल उपकूलमें, पट्टाम, थोदट, भामाम और पूर्णवृक्षके बनींम तथा छोटे जंगला-में, हिमालय गर्भतके देरादून अञ्चलमें माना अर्धोर्ध्व पेत्त रूपे ज्ञाते हैं। चीनदेशमें एक प्रकारका मोटा पेत्त मिलता है जो पण्यद्वन्दके द्वितीयमें 'चीना वेंत' नामसे प्रसिद्ध है। इसी प्रकार 'जगदा वेंत' भी लभ्यता परि-विषय हुआ है। पानियके पण्यद्विभाषी 'Dagon's Island' और 'Malacca' ज्ञातिका पेत्त विशेष भार-तीय है।

इन तीनोंके देशमें 'वृक्षा पेत्त' नामक एक ज्ञातिका

वैत है जिसका समभाग पावनार्थमें व्यवहृत होता है।

इसके पत्ते बाँसके पत्तोंके समान और कटाये जाते और उष्णोंके महारे यह लता ऊँचे ऊँचे पेड़ों पर चढ़ती है। इसके पंढल बहुत मजबूत और लघोटे होते हैं और प्रायः छद्मियाँ, टोकरियाँ तथा इसी प्रकारके दूसरे सामान बनानेके काममें आते हैं। बँडलोंके ऊपरको छाल कुसियाँ, मोटे पर्यग भादि पुननेके काममें भी आती है। हमारे यहाँके प्राचीन कवियों भादिका विश्वास था कि वेंत फूलता या फलता नहीं। पर यास्तंयमें यह बात ठीक नहीं है। इसमें गुच्छोंमें एक प्रकारके छोटे छोटे फल लगते हैं जो खाए जाते हैं। इसकी अड़ और कमल पत्तियाँ भी तरकारीकी तरह खाई जाती हैं।

पट्टदेश, मद्रा और भारतीय द्वीपपुत्रमें वेंतका बहुत व्यवहार देखा जाता है। पर्यतमातस्य नवीने पार करनेके लिये जगद जगद केवल वेंत या बाँसका बना हुआ पुल है। वेंतके छिलकेसे बनी हुई रस्सी थोदट, श्रीभा-लाली, पट्टाम और मद्राराज्यके उपकूलवर्ती देशोंमें व्यवहृत होती है। जहाँ यहाँ जलके कारण सौदवर्धनी द्वारा गायको लकड़ी भापसमें नहीं जोड़ी जाती वहाँ वेंतके बध्मसे नाव बनाई जाती है। मद्राकी बड़ी बड़ी नावोंके एक मस्तूलसे दूसरे मस्तूल धारिणीकी रस्सी वेंत ही की होती है। मलका द्वीपजान C. Rodentum ज्ञातिके वेंतसे एक प्रकारका मोटा रस्सा बनाया जाता है। इससे स्टीमरके साथ मोटी लकड़ी और बड़े बड़े पत्थर कोवि ज्ञाते हैं। उम मोटे रस्सेसे कमी कमी जंगलों हाथों भी बाँधा जाता है।

मद्राराजके पनभागमें माना प्रकारका वेंत उत्पन्न होता देखा जाता है। करन ज्ञातियाँ प्रायः १० प्रकारके पेंतिके नाम जाननी हैं। जो सब वेंत लनाकी तरह बढ़ते हैं उनमें Calamus Verus प्रेजी १०० फुट तक; C. Oblongus ३००से ४०० फुट; C. Redentum ५०० फुटसे भा अधिक; Latens ६०० फुट तक बढ़ती है। रजिपसमें लयमें प्रथममें १२०० फुट लम्बे एक प्रकारके वेंतका उल्लेख किया है।

सूरीयमें वेंतकी उड़ो, छत्रद्वन्द, सौक, दीनाओंकी टोप, मोड़का मग्न, पण्डा लयकी, थोरीकी किया

आदि बनाये जाते हैं। जागा लोग वेंतके छिलकोंको तरह तरहके रंगोंसे रंगते और उसीको हाथ और पैरोंमें अलङ्कार स्वरूप पहनते हैं। जागा, कुकी आदि असम्भ्य जातियाँ तथा प्राचीन ब्रह्मालकी डाली सेना वेंतका बना हुआ डाल व्यवहार करती थी। वेंतके ऊपरकी छाल अलग कर भीतरमें जो गुदा या तन्तुमय इण्ड रहता है उससे जीतप्रधान देशोंमें एक तरहकी चटाई बनती है। इन सब प्रकारणोंसे वेंत पण्यद्रव्यरूपमें नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं। वेंतका अग्रप्रदण्ट छोटा और पका फल लह्हा होता है।

२. धनुसविशेष, वेवासुर।

वेतक (सं० पु०) रामशर, सरपत।
वेतकार (सं० पु०) वेत द्वारा द्रव्य प्रस्तुतकारी, यह जो वेंतके सामान बनाता हो। (राम० २।६०।१६)
वेतकीम (सं० त्रि०) येत-छ (नद्दारीनां कुक् च। प्रा ४।२।६१) इति कुक् च। येतसमूहयुक्त देशादि, यह देश या स्थान जहाँ वेंतकी अधिकता है। यह स्थान शाहाबाद जिलेमें अवस्थित है। अभी यह विहता कहलाता है।
येतकूट—पुराणानुसार हिमालयकी एक छोटीका नाम।
येतगङ्गा—हिमगिरिपादसे निकली हुई एक नदीका नाम। (दिग्० ख० ४५।३६)
येतप्रदण्ट (सं० स्त्री०) १. इण्डधारण। २. वीवारिकत्व। (रघु ६।३६)

येतप्राम—ब्रह्मालके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्मसू० १।३।१८)
येतघर (सं० पु०) येतस्य घरः। १. द्वारपाल, सतरी।
२. पट्टि धारक, लठैत, लठयं।
येतधारक (सं० पु०) येतस्य धारकः। द्वारपाल, सतरी।
येतनगर—अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (भविष्य ब्रह्मसू० ४।१।६६) उक्त ग्रन्थमें यहाँके राजवंशका परिधय है। (ब्रह्मसू० ४।३।८०)
येतमूला (सं० स्त्री०) यवलिङ्गा, शंखितो।
येतवत् (सं० त्रि०) येत अस्त्वर्थे मनुष्य-मस्य वः।
येतविनिष्ट, येतयुक्त।
येतवती (सं० स्त्री०) नदीविशेष। यह नदी मालयदेश

से निकल कर कालची नामक नगरमें यमुनानदीके साथ मिली है। (मार्क० प्रथमपु० १५।२०)

इसका वर्तमान नाम घेतया नदी है। यह अक्षा० २२° ५' से २५° ५५' उ० तथा देशा० ७७° ४०' से ८०° १६' पु०के मध्य सुन्दरलखण्ड राज्यमें बहती है। मध्यभारतकी भूगोल राजधानीसे ११० मील दक्षिणमें अवस्थित यड़े हू दसे निकल कर दक्षिण-पूर्व की ओर २० मील तक बहती हुई शतपुरमें आई है। प्रोष्ठ उत्तर-पूर्व गतिसे ३५ मील प्रवाहित हो खालियरराज्य अतिक्रम कर ललितपुर, भाँसी और हमीरपुर जिलेमें चली गई है। इसके बाद ३६० मीलका रास्ता तै कर नगरसे ३ मील दक्षिण यमुना नदीमें मिली है। यमुना, दशान, फोलाहु, पाघन और ब्रह्मन् नदी नामकी शाखाएँ इसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। उदपत्तिस्थानसे येतवती नदी पहले विन्ध्यगिरिके बाहुकामय प्रस्तरलखण्डकी घोती हुई भाँसी जिलेमें दानेदार पत्थरोंके ऊपर बह गई है।

निमाच, कानपुर और गुणासे इस नदीके ऊपरसे एक रास्ता सागरमें, भाँसीसे नन्दगाँवमें और बाँदासे कावरीमें चला गया है। उन सब स्थानोंमें नदीकी पार करना असंभव और विपजजनक है। प्रीथ्य प्रस्तुमें पहाड़ी नदियोंमें प्रायः जल नहीं रहता। यह सूख जलरक्षा जब पहाड़ी देशका परिव्याग कर समतल भूमिमें आती है, तब उसके जलका वेग प्रति सेकेंडमें २ लाख घनयुक्त फुट होता है। अत्यन्त बाढ़के समय यह वेग प्रति सेकेंडमें ५ लाख फुट हो जाता है। भाँसी जिलेमें इस नदीसे एक नहर काटी गई है।

२. वेवासुरकी माता। (वराहपुराण)
वेतराज्य—जनपदभेद। येनगर देला।
वेतशङ्कु पथ—जनपदभेद। (मत्स्यपुराण १२३।५६)
वेतहन् (सं० पु०) वेतं हतयान्, हन-कृप्। इन्द्र। (अमर)
वेतावती (सं० स्त्री०) वेतवती नदी। इस नदीका जल मयूर, काशितम्र, पुष्टिकारक, बलकर, घृष्य और पाचन है। (राजनि०)
वेतासन (सं० पत्नी०) वेतस्वासनं। वेतनिर्मित वासन, वेंतका बना हुआ किसी प्रकारका वासन। पर्याय—वासम्दी।

वेत्तासुर (सं० पु०) वेत्तनामाकीऽसुरः । स्वनामप्रमाण
 सासुरः । इयं सासुरको उत्पत्तिना विवरण इयं प्रकार
 मिथा है—पृथं समयमे निम्नपुत्रीय नामक एक प्रजाप-
 त्नाम्नो राजा थे । यद्यत्के संक्रमे इनका जन्म हुआ
 था । उन्होंने एक ऐसै पुत्रके लिये तपस्या आरम्भ कर
 की जो किसी समय इच्छा बध कर सके । जब ये
 पौरुतर तपस्यामें निरतुक थे, उस समय वेत्तवती नदी
 सम्योत्री रूप धारण कर यहाँ आई । राजाने उस स्त्री
 को देखा कर बड़े क्रोधमें कहा, 'तुम कीन हो ? यहाँमें
 यत्री जाओ, मेरो तपस्यामें बाधा न टालो ।' वेत्तवती
 ने प्रणाम किया, 'राजन् ! मैं जल्दपति महातरमा यद्यत्की
 परती हूँ । मेरा नाम वेत्तवती है । मैं आपकी पानेके
 लिये यहाँ आई हूँ, मुझे निराग न लौटाएँ । जो
 पुत्रय सान्निध्य और भङ्गमाना परत्नीका परिश्रम
 करने हैं, वे पाप पुत्रय कहलाते हैं तथा प्राणहरणका
 बहने पाप लगता है ।' राजाने मोहिमद् पापय सुन कर
 उसके साथ सहवास किया । इसने उसी समय वेत्त-
 वतीके गर्भसे बारह सूर्यको तरुद कान्तिपुत्र, अग्नि बन्-
 वान् और तेजस्वो एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस पुत्र
 का नाम वेत्तासुर रखा गया । यह प्राणश्रोत्रिपुत्रका
 अभिपत्ति था । वेत्तासुरने पहले मगस्त मसुरपराकी
 ज्ञान कर पीछे इन्द्र, अग्नि और यम आदिको परास्त
 किया । (दारपु० देवोत्पत्तिनामाख्यात)

इसके बाद इन्द्रने उस सासुरका बध किया ।

- वेत्तिदः (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार प्राचीनकाल-
 का एक प्रथमद्वय नाम । २ इयं जनपदः निवासी ।
 ३ वेत्तपारी, द्वारवाह, संतरी ।
 वज्रो (सं० पु०) वेत्तोऽस्यासंनि वेत्त-इति । १ द्वार
 पालक, संतरी । २ चौबटार, लता बरदार ।
 वेत्तोव (सं० त्रि०) १ वेत्त मारुत्पोव, बँलका । (पु०)
 २ आत्मानुमिके, अरुणागं प्राग्मेदः । यद जित्वावती
 नदीके किनारे समुद्रहरो ७ शोचन परिश्रममें अयचित्त
 है । यहाँ मर्षमज्जना देवमूर्त्तौ है ।
 वेत्तिवा—वेत्तिवा देवो ।
 वेत्तिमिद (सं० वचो०) मगधेर ।
 वेदः (सं० पु०) विदुश्च वा विक्त-पञ्च । १ विष्णु ।

२ ब्रह्म । ३ विस । ४ यमराज । ५ यमं प्रथमविष्णु-
 अर्पणियेय पापय । (वेदात्) ६ मीन नदीसर्पिण्ड
 भगवत्पापय । (न्यायशास्त्र) ७ अन्नमृत्तनिर्ममं पने-
 क्षापक मापय । (पुत्राय) पयाय—भृति, भागनाप,
 छन्दः, प्राय, निगम, प्रथमन । (मत्तपार)

अमरकोशके अनुसार इसके तीन पदार्थ हैं—भृति,
 वेद, भागनाप । 'भृयमे चर्मोऽनया संहातां किरिणि
 भृतिः । भागनापे उपदिश्यते चर्मोऽनेनेति भागनापः ।'
 तयो जग्मोनि पितृ सुपयम् आर्चः । माम और यज्ञ
 इय तीन वेदोंका सर्वा समझा जाता है । यथा—

'त्रियायुषामपञ्चुषी इति वेदग्रन्थयोः ।' (अमर)

किन्तु शातपथ-ब्राह्मणमें लिखा है—

'यस्यो वे विद्या यजो वज्रु वि गामानि ॥' (ऋ० १०१)

यस्यो ।

कुछ लोगोंका कहना है, वेद रचनामें मघ, यध और
 मान ये तीन तरुदकी प्रजाती अयलक्षित हैं, इसमें
 इसका नाम "लपो" है । जो सब अर्ध पद्यमें रचे गये थे,
 पुराकालमें उनको अक्षुः, जो अर्ध गद्यमें रचा गया था
 उसको यज्ञः और जो सब रचनायें गानोंमें हुईं, उनका
 नाम बहो गया । जब मघ, यध और मानातिरिक्त
 रचनाकी दूसरी कोई प्रजाती नहीं, तब अक्षुःदितामें
 सामसंदिताका अथवा अथर्वसंदितामें इन अक्षुः, यज्ञ
 और मानके मिया दूसरा किमो तरुदका वेदग्रन्थ नहीं
 है । मघ, यध और मानके अतिरिक्त दूसरी किसी
 तरुदकी रचनापणानो परती मो न भी और सब भी
 नहीं है । अक्षुः, यज्ञ और मान ये तीन नाम केवल
 ऐदिकी मरुतरचनाप्रजातीके सामनात है । मगधान्
 त्रिमितोकी उक्ति हो इय विषयका प्रमाण है । यथा—
 'वेत्तासुम् यत्तार्थमोय गादण्यपन्वा । गोविष्णु
 सामाक्षया शिपे यज्ञः आर्चः ।'

(शिवः १०११२, १३, १४)

अथर्वन् इय तीनों वेदोंके मध्य जहाँ अर्धवद गाद-
 रणरचना होती है, उसे अक्षुः जहाँ जहाँ गान है, उसको
 मान और अक्षुःसंकी यज्ञः कहते हैं । साधवावाली
 न्यायनाम्नादिप्रकार नामक मगधमें इय विषयकी भाँति
 ब्यार मानोतना की है ।

मन्त्रोंकी रचनाके नियमानुसार ही तयो नामकी उत्पत्ति हुई है। सुतरां प्रचलित वेदके मन्त्रभागकी ही तयो कहा गया है। ब्राह्मणभाग मुख्य अर्धमें तयो नहीं है। ऐतिरीयब्राह्मणमें लिखा गया है—

“अहे बुन्नीयं मन्त्र मे गोपाय य मुषय स्वैविदा विदुः।
मन्त्रः सामानि यदुषि।” (११।१।१२६)

माघयाचार्धने अधिकरणमालाके उद्धृतांगकी व्याख्या कर प्रमाणित किया है,—मन्त्रभाग ही तयो शब्दका वाच्य होने पर भी मन्त्रभागानुगत ब्राह्मणार्ध श्यव्य-
हारिक भावसे तयोशब्द वाच्य है। ब्राह्मणभाग भी वेदसंज्ञासे संबन्धित हुआ है। क्योंकि, संज्ञा चिर दिन ही श्यवहारनियमके अधीन है। किन्तु सच पूछिये, तो मन्त्रभागका ही वेदत्व, श्रुतित्व, आज्ञाप्यत्व या तयोत्व मुख्यार्थ सिद्ध है। ब्राह्मणभागकी वेद या तयो कहा जाता है सही; किन्तु वेदसंज्ञाधिकारमें इसका प्राधान्य नहीं है। तयो ही वेद है। यह वेदका अर्धा-
न्तर नहीं है।

वेद शब्दकी व्युत्पत्ति।

प्राचीन पण्डितोंने बहुत शकलमें बहुत तरहसे वेद-
शब्दका व्युत्पत्त्यर्थ प्रकाश किया है। कुछ लोगोंका कहना है, “विद्यते द्वायते लभते वा पमि धर्मादि पुण्यार्था इति वेदाः।” अर्थात् इसके द्वारा धर्मादि पुण्यार्थ समूह जाना जाता या लाभ किया जाता है, इसीसे वे वेद नामसे उपात है। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमविषय समूहमें जो अनिष्टम या चरम स्थानोय है यही सर्वविषय मूल वेदशास्त्र है। अथवा “समयबलेन सम्पक्-
पतीशानुभवसाधनं वेदः।” अथवा “अर्थाव्येयं वाक्यं वेदः।” सायणाचार्यो ऋग्वेदके आर्यमें वेदको ये सब निरूपितयां लिख गये हैं। यहाँ और भी एक व्युत्पत्ति-
का उल्लेख किया जाता है। यथा—

“इष्टयात्पनिष्टपरिहारवीरलीकिकमुपाय” यो वेद-
यति स वेदः।” अर्थात् जिससे इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहारके सम्बन्धका मलौकिक उपाय ज्ञान जाये, यही वेद है; यह भी सायणाचार्यो व्युत्पत्ति है। सायण और भी कहते हैं—

“प्रत्यज्ञेषामुमितां वा वस्तुषां न बुधते।

एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥”

अर्थात् प्रत्यक्ष या अनुमान द्वारा जो उपाय नहीं जाना जाता, वेद द्वारा वह उपाय लाभ किया जाता है। यही वेदका वेदत्व है।

आपस्तम्ब यज्ञपरिभाषासूत्रमें वेदके स्वरूप सम्बन्ध-
में कहते हैं—“मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदानामधेयम्” अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण ये दोनों ही वेद नामसे अभि-
हित होते हैं। सर्वोयेंदमाध्यकार सायणाचार्यने और भी आपस्तम्बकी उक्तिकी प्रतिष्यनि कर कहा है—

“मन्त्रब्राह्मणायामकशब्दराशिर्वेदः।”

अर्थात् मन्त्रब्राह्मणारम्भक शब्दराशि ही वेद है। सर्वानुक्रमणोपुत्तिकी भूमिकामें पद्मगुरुशिष्यने लिखा है—

“मन्त्रब्राह्मणयो राहुर्वेद शब्दं मूर्धयाः।

विनियोकस्वरूपे यः स मन्त्र इति चक्षते ॥

विधिस्तुतिकरं श्रेयं ब्राह्मण्यं कथयन्ति हि।

विनियोकस्यस्वरूपं विविधं सम्प्रदर्शते ॥

शूक् यजुसामरूपेण मन्त्रो वेदचतुष्टये।

अहे बुन्नीयं मन्त्र मे गोपायेरविधीयते ॥”

इसके बाद एक टीका है, यथा—

“शूक् पादवन्त्रो गीतस्तु साम मयं यजुर्मन्त्रः”

प्रश्नकारने इसके वाद लिखा है—

“चतुर्भिर्हि वेदेषु विषेव विनियुज्यते।

वेदेरसून्य इत्यादौ मन्त्रे त्रेविष्यमुज्यते ॥

सर्वं प्राप्ति (यं पं २२) सूत्रेऽपि चतुर्भिरिति निर्णयः

प्रस्तुतकदिवाचित्त्वोवाग्मनेऽनुकारणं।

शूरूप मन्त्र वाहुस्याद् शूरवेदः स्यात् तपेतरौ।

मान्तिपुष्प मादिक्रमसवर्णं मण्य विषया।

शूचाय यजुषां न्यो वाहुत्वेन विधायकः ॥”

इसका अर्थ यही है, कि मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनोंकी ही महतिगण वेद शब्दसे अभिहित कर गये हैं। जो विनियोगका विषय है, यही मन्त्र तथा जो विधि और स्तुतिकर है वह ब्राह्मण है। विनियोकस्वरूप मन्त्र तीन है—शूक्, साम और यजुः। अर्थात् ये द्वयमुख्यमें जो जो स्थल पदश्च या पद्यमय हैं वे सभी शूक् हैं, जो

द्वितीयतः—यज्ञादिमें मंत्रका व्यवहारकाल ।

तृतीयतः—तादृश प्रयात्का श्रुतिकाल ।

चतुर्थतः—गाथाकाल ।

पञ्चमतः—ब्राह्मणकाल, गाथामूल बहुत ब्राह्मण-
बचन ।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें इस श्रेणी-विभागका योजस्वरूप
प्रमाण मिलता है । यथा—

"वैस्मादपत्नीकोऽप्यतिनहोत्रमाहेत् । तदेवाभिपरगाया
गीषते,—यज्ञैः वीषामंषया मपत्नीकोऽप्यसोमपः । मातापितृ-
भ्यामनुष्ठापयजेति वचनाच्छ्रुतिः इति । तस्मात् वीष्यं याज-
येत् ।" (ऐ०आ० ७।४।८)

ब्राह्मणकालाख्यमें मंत्र और ब्राह्मण इन दोनोंके
प्रवाह-अर्चामें श्रुति शब्दका व्यवहार दिखाई देता है ।
यास्क अपने निरुक्तग्रन्थमें लिखते हैं—

"तेषां विद्याभुतिमतिबुद्धिः ।" (१३।२।१३)

इसके बाद हम मनुस्मृतिकमें वेदार्थश्रुति शब्दका
प्रयोग देखते हैं, यथा—

"श्रुतिस्त्वुदितं धर्ममनुतिष्ठन् दि मानवः ।"

(मनु० २।६)

मनुके और भी स्पष्ट नायामें लिखा है—
"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः ।" (मनु २।१०) मनुका और भी
कहता है—

"उदितेऽनुदिते चैव समवाच्युदिते तथा ।

सर्वथा वर्तते यत्र इतीयं वैदिकी भुतिः ॥"

(मनु २।१५)

दर्शनादि शास्त्रोंमें "अनुभव" शब्दका प्रयोग है ।
बह भी वेदार्थवाचक श्रुति शब्दमूलक है । यथा—
सांख्यकारिकामें—

"दृष्टवदानुभविकः"

इसकी टीकामें याचस्वपतिमिश्र महाशयने लिखा है—

"गुरुमुक्तादनुभूयते इत्यनुभवः वेदः इति" अर्थात्
गुरुके मुखसे अनुभूत हुआ, इसलिये इस विद्याका नाम
मनुभवे अर्थात् वेद है ।

लौकिक प्रयादवाच्य भी "श्रुति" भाष्यसे अनि-
हित होता है ।

१ । द्वे चास्ये भार्गवे गर्भिण्यां चभृत्पुत्रितं श्रुतिः ।

(रामायण २।१०।१८)

२ । एष में कृष्ण सन्देशः श्रुतिभिः श्रुतिमेष्यति ।

(महाभारत १।१०)

३ । इति सत्ययती श्रुतिः ।

(भीमस्मायक ४।२१।५१)

इसी तरह बहुत स्थलोंमें श्रुतिशब्दका प्रयोग दिखाई
देता है । इसका फलितार्थ यह है, कि जिन सब वाच्योंका
प्रचारकाल निर्णीत नहीं होता, किस समय किसने
कहा है, यह भी नहीं मालूम होता, फिर भी वाच्य
प्रामाणिकरूपसे गुरुपरम्परासे उपदेशरूपमें चले जा रहे
हैं, वे ही वैदिक या तांत्रिक घचन श्रुति नामसे अनि-
हित होते हैं ।

इसीलिये मनुकी टीकामें कुल्लुकने उद्धृत किया
है ।—

"वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा भूति कीर्तिताः ।"

ऐतद्देवीय स्मृतिनियन्त्रमें ऐसे अनेक विधान
दिखाई देते हैं, कि साक्षात् सम्बन्धमें उन सब विधानोंके
वैदिक प्रमाण नहीं मिलते । किन्तु ऐसा न होने पर
भी ये सब विधान श्रुतिमूलक हैं, इसलिये इनको
"स्मृति" कहा जाता है । जिन सब प्रामाणिक श्रुति-
वचनोंके मूलस्वरूप साक्षात् वैदिकघचन नहीं मिलते,
उनके मूलमें वैदिकघचन प्रकल्पित होते हैं । वे कल्पित
घचन भी श्रुति कह कर रघुनन्दन भादिने ग्रहण
किये हैं । वेदके मन्त्रभागका श्रुतित्व सर्वथादिसम्मत
है—ब्राह्मणभागका श्रुतित्व मन्त्रादि स्मृतिनियन्त्रकारों
द्वारा स्वीकृत है । प्रयादवाच्य और लौकिक वाच्यका
श्रुतित्व व्यवहारिक मात्र है । रघुनन्दन प्रभृति बहुतेरे
कल्पित श्रुतिके द्वारा और समर्थक हैं ।

भाम्नाय ।

वेद शब्दका और एक पक्ष यह है—
"भाम्नाय" । भाम्नाय
शब्दका दूसरा एक प्रति शब्द—
"समाप्ताय" है । भाग्योक्तमन्त्रने
लघुशब्देन्दुशेषरूपमें लिखा है—
"भासायसमाप्तायशब्दे
वेदे एव रुद्रे" अर्थात्
भासाय और समाप्ताय वे
दोनों शब्द रुद्र भाष्यसे
"वेद" शब्दार्थवाचक हैं ।
सूक्तकालसे मन्त्र और ब्राह्मण वेद
शब्दके वाच्य हैं । भगवान्,
जैमिनीहृत मोमांसादरीशके
बहुत्र स्थानोंमें
वेदार्थमें भासाय शब्दका प्रयोग
दिखाई देता है । यथा—

१। "साम्नायक्य विचारैस्त्वादानां च मन्त्रद्वयानाम् ।"
(२।२।२)

२। "उक्तं सामानाधिकरण्यात् ।" (१।१।१)
याज्ञिकमन्त्रेण संहितायां प्रातिशाख्यवृत्तको व्याख्यायामे
एक उपाद् विद्या है—"सामनायो वेदा ।"

सामर्थ्येदोष कीर्तिस्त्वयमे और मो स्वहनर प्रमान
पचन है—यथा—

"सामनाय पुनर्विचारः सत्त्वयति च"

याज्ञिकीय निदलमे "सामनाय" मन्त्रमें मन्त्र और ब्राह्मण
ये दोनो सुदीन हुए है और बहुत स्थानोंमें वेद मन्त्रोंमें
सामनाय मन्त्रका प्रयोग है । निदलकारने वेदाङ्गको जो
सामनाय कहा है । यथा—

"सामनायानि तु वेदांश्च वेदाङ्गानि च ।" (१।१।१२)

इस समयमें देना जाना है, कि मन्त्र, ब्राह्मण और
वेदाङ्ग ये तीनों ही सामनाय पदवाच्य है । सामना-
यमन्त्रेण प्राणिनि व्याकरणको मो वेदाङ्गके अन्तर्गत कद कर
इसका सामनायत्व प्रमाणित किया है । मन्त्रोको दोक्षण
आदि "सामनाय" मन्त्रका प्रचार और मो बड़ा गये हैं ।

उत्तर ।

वेदका बहुत प्राचीन दूसरा नाम छन्दा है । प्राचीन
संस्कृत साहित्यमें हम अथर्ववेदसंहितामें सर्वमें
पहले छन्दा मन्त्रका प्रयोग देखते हैं । यथा—

'सोमि छन्दांसि च वयो ०० सावो याता सोपपया ।'
(१।१।१।३)

यही छन्दा मन्त्रों का उपाधुवचन है । निदल
कारकः बहुत है—छन्दांसि सादानाम् । (०.३.१)

छात्रत सार्थान् चम्पन । विद्यत मान हो चम्पन है ।
नांकरनरनकोमुद्रोकारने किया है—

'विद्यन्वयति विद्यविद्यमानुवर्णात् स्वैम रूपेण
विद्यवत्तायं कृषं लोति य त्त्त् विद्ययाः पृथिव्याः सुता-
व्यवस्थाव्यवस्थाः ।" (१.२.३)

जो विद्यविद्योका अनुवच्य अर्थान् हवाय रूपेण
विद्यवत्त्वेण चरता है, यह विद्यत कहलाता है ।
जैसे, पृथिव्यादि और हमारे सुख हुआ आदि । यद्यपि
अति प्राचीनत्व संस्कृत साहित्य साक्षि है इस तरह

विद्यवत्त्वान और पृथिव्यादि अर्थमें हो छात्रका प्रयोग
विद्यार्थ देता है ।

किन्तु कहीं कहीं केवल सामर्थ्येदोषको ही छात्र
कहा है । अथर्ववेदसंहितामें—"स्युषः सामानि
छन्दांसि पुराणं यजुस्ता सद्यः उच्छिष्टाश्चहिरे सर्वे"
इत्यादि । (५० व० १।१।१२।२)

"तस्मान् यजुः सर्वं ह्युतः स्यात् सामानि संहितोः ।
छन्दांसि चहिरे तस्माद् यजुस्तस्माद्भाषणं ह"
(शुक्. ०० १।१।१०।१)

इस सब स्थानोंमें "छन्दांसि" पदका अर्थ सामर्थ्येदो
यथा है । सामर्थ्येदोका संहिताप्रथम दो भागोंमें
विभक्त है,—गान और छात्र । गानप्रथम मा फिर
पार भूलियेमें विभक्त है, गेय, आरण्यक, उद्ग और
उद्ग ।

छन्दाप्रथम दो भागोंमें विभक्त है, योनि और उच्छा,
ये दोनो ही आर्थिक कहलाते हैं । उक्त तत्त्वका अर्थ
यह है, कि उस पद्यते साधु वेदाय, सामर्थ्येदोय, अथर्व
वेदोय, पुराणोतविद्योनि यजुर्वेदोय वाच्य तथा छात्र
समूह उत्पन्न हुए थे । यही छात्रः शब्दका अर्थ है—
सामर्थ्येदोय नामादि मूलोभूत छात्रां नामक मन्त्र समूह ।
दूसरा नाम ।

वेदका दूसरा नाम 'व्याखाय' है, यथा—
"व्याख्यायतेत्यत्र" (श्रीः भा० २।१।१०)

धृति और सम्यक्ति वेद जगत् "व्याख्याय" मन्त्रका
प्रयोग देखनेमें जाना है । वेदशास्त्रका सम्यक् रूपमें
अध्ययन करना ब्राह्मणोंके लिये अति जरूरीय है, इस
कारण वेद 'व्याखाय' मन्त्रका अर्थ है ।

वेदका दूसरा नाम 'सागम' है । प्राणिनि
प्राणिनिकार काठवाचनन किया है—"सोदायाम सच-
साग्नाः प्रथोक्तानाम् ।"

सागमकार पत्रद्वि गुनिन किया है—"सागमः—
पञ्चविंशत्तमो यजुः वेदाङ्गवेदेः प्रथमः ।"

सुभाषितमन्त्रे स्वहनर वेदाकारात्संके प्रश्नको मूमिका-
य किया है—

"सचसागमः" मन्त्रका अर्थार्थ
सागमकारिकार वेदशास्त्रमें किया है—

"तस्मादपि चासिद्धं पौत्रमाप्तगमात् विदम् ।"

इससे साबित होता है, कि वेदका यह 'आगम' नाम भी शक्ति प्राचीन है। इसका दूसरा नाम 'निगम' है।

यास्क्योपनिषत्कर्म निगम शब्दका बहुत उल्लेख है तथा वेदसे इनके अनेक उदाहरण दिये गये हैं। यथा—

१। "तत्र खल इत्येतस्य निगमा भवन्ति खलेन पर्याय ।"

(ऋक् ७० ८१।१२)

२। "अथापि नेगमेभ्यो भाषिकाः उच्यन्ते पूतमिति ।"

(ऋक् ७० २।१३)

प्रथमतः निगम शब्द मन्त्रभागके दूसरे नामरूपमें व्यवहृत होता था। निरुक्त ग्रन्थमें सभी मन्त्र निगम नामसे अभिहित हुए हैं, ब्राह्मण निगम नहीं कहनाते। यथा—

"निषपटयः कंय्यात् । निगमा इमे भवन्ति" (१।१।२)

मनु कहते हैं, "निगमोश्च वेदिकान्" इसकी व्याख्यामें कुल्दुकने लिखा है—"तथा पर्यायकधनेन वेदाध्यायदोषकान् निगमाख्याञ्च ग्रन्थान्" इति। परवर्ती कालमें ब्राह्मण भी निगम कहलाने लगे।

इसने उल्लिखितांशमें वेदके कई पर्यायोंकी आलोचना की है। आलोचित पर्यायके नाम ये हैं—(१) वेद, श्रुति, (२) शास्त्राय (३) समान्नाय (४) छन्दः (५) स्वाध्याय (६) आगम और (७) निगम।

संहिताप्रत्यय

सभी संहितालक्षणके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है। श्रोत्रभागयतने वेदको निगमकल्पतय कहा है। वेद यथाधर्म निगमकल्पतय है। गद्य, पद्य और गान त्रिविध रचनात्मक होनेके कारण वेद त्रयो नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु त्रयो होने पर भी वेदसंहिताके चार भेद हैं, ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता और अथर्वसंहिता। प्रातिशाखावादिसंहिता लक्षणका उल्लेख इस प्रकार है—

१। पद्-प्रकृतिः संहिता (ऋक् प्रा० २।१)

२। वर्णानामेकप्राणयोगः संहिता।

(यजुःप्रा० १।१५८)

३। परा मुत्रिकर्णः संहिता। (या १।१।१०८)

यद्यपि चारों संहितामें ऋग् लक्षण पद्यात्मक मन्त्रका उल्लेख देखनेमें आता है, किन्तु जिस ग्रन्थमें इस

ऋग्लक्षण (मन्त्रात्मक) मन्त्रको छोड़ दूसरे कोई लक्षणविशिष्ट अर्थात् पद्य भिन्न गद्य या गीतात्मक एक मन्त्र भी नहीं देखा जाता उसका नाम ऋक्संहिता है।

अन्य प्रकारकी रचनाप्रणाली रहने पर भी जिस संहितामें केवल गद्यको प्रधानता है वही यजुर्वेदसंहिता है तथा जिस संहितामें केवल गानकी ही प्रधानता है उसीका नाम सामवेदसंहिता है। पहले कहा जा चुका है, कि त्रिविध रचनाप्रणालीके भेदसे ही त्रिविध संहिताका नामकरण हुआ है। यजुर्वेदसंहिताका नाम अथर्वसंहिता है। किस प्रकार अथर्वसंहिताका नामकरण हुआ, उसकी कुछ आलोचना करना आवश्यक है। कोई कोई कहते हैं, कि अथर्वसंहिताके नामके अन्तर्गत अथर्वसंहिता नाम रखा गया है। अथर्वसंहिता ही यज्ञप्रक्रियादिके प्रथम प्रकाशक है। इन्होंने ही होत्रादि कार्योंके सौकर्यार्थ सबसे पहले यज्ञादि क्रियाका सूत्रपात किया।

ऋक्संहितामें लिखा है—

१। यज्ञैरथर्व्या प्रथमः पद्यस्तते।

(ऋक्सं १।६।४।५)

२। अनिर्ज्ञातो अथर्व्या। (ऋक्सं ७।७।४।५)

३। स्वामग्ने पुंकरादथर्व्या निमग्धत।

(ऋक्सं ४।५।२।३)

इन सब मन्त्रोंसे स्पष्ट है, कि अथर्वसंहिता ही यज्ञ प्रक्रियाके आदि भाषिकर्ता है।

इससे साफ साफ मालूम होता है, कि यज्ञकार्यके सौकर्यके लिये वेद विभागको जरूरत होती है। ऋग् द्वारा होक, यजुः द्वारा अध्वर्यु और साम द्वारा यज्ञको उद्गोष क्रियाका विधान किया जाता है तथा समस्त त्रयो ही ब्राह्मणकरणमें साधिकारूपसे निर्दिष्ट होते हैं। अथर्वसंहिताका अध्वर्युनहीं करनेसे समस्त यज्ञमें अज्ञानताम नहीं होता। होता, अध्वर्यु और उद्गोषके व्यवहारको छोड़ कर उसमें ऋक् और यजुःके अनेक मन्त्र हैं। अथर्ववेद ही ब्रह्मा होते हैं। वे ही यज्ञकी रक्षा करने हैं। यास्क का कहना है, "ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदिनुमर्हति।" (१।१।३) गोपधरादायनमें यह अधिकतर परिष्कृतकरणसे दिखलाया गया है। यथा—"तस्मात् ऋग् विदमेव

१। "संज्ञाप्यन् किंवापरेवादानादीकयमनवर्षानाम् ।" (१२।१)

२। "उक्तं सामानाधिकरान्ताम् ।" (१३।१)
वाचस्पत्येव शक्तिनामवस्तुतो व्याख्यानमे
यत् प्रगट् लिखा है—"सामान्यो वेदाः।"
अथर्ववेदीय कीर्तिशब्दमे और सो व्यवहार प्रमाण
यथन है—यथा—

"सामान्यं पुनर्यथायत् न ददाति च"

वाचस्पत्येव निदकमे "सामान्य" शब्दमें अन्त और प्राह्यण
वे दोनों पृथीय रूप ही और बहुत स्थानोंमें वेद अर्थात्
सामान्य शब्दका प्रयोग है ; निदककारने वेदाङ्गों में
सामान्य कहा है। यथा—

"सामान्याणि यो वेदाश्च वेदाङ्गानि च ।" (११।१४)

इस यथनमें देखा जाता है, कि अन्त, प्राह्यण और
वेदाङ्ग ये तीनों ही सामान्य पदवाच्य है। सामान्य
शब्दने पाणिनि व्याकरणको भी वेदाङ्गके सामान्य कह कर
इसका सामान्यत्व प्रमाणित किया है। अष्टोमो ह्येदित्त
भादि "सामान्य" शब्दका प्रचार और सो बड़ा मये है।

यथा ।

वेदका बहुत स्थानों पुराता नाम उच्यते है। प्राचीन
संस्कृत साहित्यमें इस अर्थपर वेदाङ्गानाम् सवर्ग
पहले उच्यते शब्दका प्रयोग देखने है। यथा—

"तानि उच्यन्ति कथयो ० ० भाषो याता कोपययाः।" (१०।१।२।३)

यहां उच्यन्ता अर्थात् उच्यन्तव्यम् है ; निदक
कारका बहका है—"उच्यन्ति उच्यन्ताम् ।" (७.१.१)

प्राचन अर्थान् व्यथन । विषय मात ही व्यथन है ।
सांख्यतन्त्रकीसुरोक्ताने लिखा है—

"विचित्राणि विचित्रितमनुयायित्त स्वयं कथेन
विचित्रतायं कुर्वन्तीति य वन् विचयाः पृथिव्याश्वा सुता-
वपश्वाश्वादीनाम् ।" (५.५७)

श्री विचित्रोक्ति अनुवच्य अर्थान् कथोय कथोय
विचित्रतायं बहका है, वह विचर बहलता है ।
श्रीय, पृथिव्याश्च और हमारे सुख सुख भादि । यथया
अनि प्राच्येवत्य संस्कृत साहित्य अर्थमें इस तरह

विषयवच्यन और पृथिव्यादि अर्थमें दो उच्यन्ता प्रयोग
लिखाई देता है ।

किन्तु यही यही वेदक सामर्थ्योपचयोंकी है उच्य
कहा है । अथर्ववेदमदित्तानि—"अथवा सामानि
उच्यन्ति पुराणे वस्तुना मद । उच्यन्ताश्चिरे सर्वे"
इत्यादि । (अ० श० १।१।२।१)

"तस्मान् यथां अर्थान् अथवा सामानि चिरे ।
उच्यन्ति चिरे तस्मान् यथां अर्थान् अथवा चिरे ।"

(अ० श० १।१।२।१)

इस सब स्थानोंमें "उच्यन्ति" पदका अर्थ सामर्थ्यो
यथां है । सामर्थ्योदिका साहित्यमय दो भागोंमें
विभक्त है,—मान और उच्यन्त । मानमय मा फिर
भार अर्थियोंमें विभक्त है, तेष, आरप्यक, उद और
उहा ।

उच्यन्तमय दो भागोंमें विभक्त है, योन और उत्तरा,
वे दोनों ही भाषिक पदवाच्ये हैं । उद त अर्थ
पद है, कि उद यथां अर्थान् अथ, सामर्थ्यं अथ, अथ
यं अथ, अथानां अथानां यथां अथ अथ तथा उच्य
समुद उत्तरण रूप ये । यही उच्यन्त शब्दका अर्थ है—
सामर्थ्यं अथ यथां अर्थान् अर्थान् अर्थान् अर्थान् अर्थान् ।
पुराता नाम ।

वेदका पुराता नाम "व्याख्याय है, यथा—

"व्याख्यायतेनम्" (अ० श० २।१।१०)

धुनि और अर्थान्में उद प्रगट् "व्याख्याय" शब्दका
प्रयोग देखनेमें आता है । वेदाङ्गका अर्थ अर्थ
अथवचन करना प्राह्यणोंके लिये अर्थ बर्णन है, इस
कारण वेद "व्याख्याय" शब्दवाच्य है ;

वेदका पुराता नाम "सागम" है । पाणिनिके
वार्तिककार कारवाचन लिखा है—"सोदायाम् अथ-
सर्वदा प्रयोगानम् ।"

सावकार वचन अर्थ गुनिन लिखा है—"सागमा—
अर्थानि प्राह्यणैव यथां वेदां अर्थान् अर्थान् ।"

पुराताअर्थान् अर्थान् अर्थान् अर्थान् अर्थान् अर्थान्
में लिखा है—

"सागमावकार" अर्थान् अर्थान्

अर्थान् अर्थान् अर्थान् अर्थान् अर्थान् अर्थान्

"तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमातृगमात् विदम् ।"

इससे साबित होता है, कि वेदका यह 'आगम' नाम भी अति प्राचीन है। इसका दूसरा नाम 'निगम' है।

यास्वीयनिकर्मणि निगम शब्दका बहुत उल्लेख है तथा वेदसे इनके अनेक उदाहरण दिये गये हैं। यथा—

१। "तत्र लक्ष इत्येतस्य निगमो भवन्ति खलेन पर्याय ।"

(ऋक् ७० ८१।१।२)

२। "अथापि निगमेभ्यो भाषिकाः उच्यन्ते यवमिति ।"

(ऋक् ७० २।१।३)

प्रथमतः निगम शब्द मन्त्रभागके दूसरे नामरूपमें व्यवहृत होता था। निरुक्त ग्रन्थमें सभी मन्त्र निगम नामसे समिहित हुए हैं, ब्राह्मण निगम नहीं कहलाते। यथा—

"निषयदवः कस्मात् ? निगमा इमे भवन्ति" (१।१।१)

मनु कहते हैं, "निगमांश्च वेदिकान्" इसकी व्याख्यामें कुल्दकने लिखा है—"तथा पर्यायकथनेन वेदार्थावदोषकान् निगमाख्यांश्च ग्रन्थान्" इति। परवर्ती कालमें ब्राह्मण भी निगम कहलाने लगे।

हमने उल्लिखितांशमें वेदके कई पर्यायोंकी आलोचना की है। आलोचित पर्यायके नाम ये हैं—(१) वेद, श्रुति, (२) आम्नाय (४) समागनाय (५) छन्दः (६) स्वाध्याय (७) आगम और (८) निगम।

संहिताप्रारम्भ

यभी संहितालक्षणके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है। श्रोभागवतने वेदको निगमकल्पतक कहा है। वेद यथायथं निगमकल्पतक है। गद्य, पद्य और गान त्रिविध रचनात्मक होनेके कारण वेद त्रयो नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु त्रयो होने पर भी वेदसंहिताके चार भेद हैं, ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता और अथर्वसंहिता। प्रातिशाख्यादिमें संहिता लक्षणका उल्लेख इस प्रकार है—

१। पद-प्रवृत्तिः संहिता (ऋक् प्रा० २।१)

२। वर्णानामिक्रमणयोगः संहिता।

(यजुःभा० १।१५८)

३। परा मन्त्रिकर्षः संहिता। (या १।४।१०८)

यद्यपि चारों संहितामें ऋग् लक्षण पद्यात्मक मन्त्रका उल्लेख देवनेमें आता है, किन्तु जिस ग्रन्थमें इस

ऋग्लक्षण (मन्त्रात्मक) मन्त्रको छोड़ दूसरे कोई लक्षणविशिष्ट अर्थात् पद्य भिन्न गद्य या गीतात्मक एक मन्त्र भी नहीं देखा जाता उसका नाम ऋक्संहिता है।

अन्य प्रकारकी रचनाप्रणाली रहने पर भी जिस संहितामें केवल गद्यकी प्रधानता है पद्यो यजुर्वेदसंहिता है तथा जिस संहितामें केवल गानकी ही प्रधानता है उसीका नाम सामवेदसंहिता है। पहले कहा जा चुका है, कि त्रिविध रचनाप्रणालीके भेदसे ही त्रिविध संहिताका नामकरण हुआ है। चतुर्थसंहिताका नाम अथर्वसंहिता है। किस प्रकार अथर्वसंहिताका नामकरण हुआ, उसकी कुछ आलोचना करना आवश्यक है। कोई कोई कहते हैं, कि अथर्वनामक ऋषिके नामानुसार अथर्वसंहिता नाम रखा गया है। अथर्वसंहिता ही यज्ञप्रक्रियादिके प्रथम प्रकाशक है। इन्होंने ही होलादि कार्योंके सौकर्यार्थ सबसे पहले यज्ञादि क्रियाका सूत्रपात किया।

ऋक्संहितामें लिखा है—

१। यज्ञैरथर्व्या प्रथमः पद्यस्तते।

(ऋक्सं १।६ ४।५)

२। अनिर्जातो अथर्वणा । (ऋक्सं ७।७।४।५)

३। त्वामग्ने पुरकराद्ध्यथर्व्या निरमन्थत ।

(ऋक्सं ४।५।२।३)

इन सब मन्त्रोंसे स्पष्ट है, कि अथर्वसंहिता ही यज्ञप्रक्रियाके भादि साविकर्षा है।

इससे साफ साफ मालूम होता है, कि यज्ञकार्योंके सौकर्यके लिये वेद विभागकी जरूरत होती है। ऋग् द्वारा होख, यजुः द्वारा अध्वर्यु और साम द्वारा यज्ञकी उद्गीथ क्रियाका विधान किया जाता है तथा समस्त त्रयो ही प्रारम्भिकरणमें साधिकाररूपसे निर्दिष्ट होते हैं। अथर्वसंहिताका अध्वपन नहीं करनेसे समस्त त्रयोमें शान्तिनाश नहीं होता। होता, अध्वर्यु और उद्गीताके व्यवहारको छोड़ कर उसमें ऋक् और यजुःके अनेक मन्त्र हैं। अथर्ववेद ही प्रला होते हैं। वे ही यज्ञकी रक्षा करने हैं। यास्क का कहना है, "प्रला सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति।" (१।१।१) गोपब्राह्मणमें यह अधिकतर परिष्कृतस्वरूपसे दिखलाया गया है। यथा—"तस्माद् ऋग् विदमेव

होनाः सुतोश्च यदुत्थिदुमवपुः सामविदुमुत्तारं
मध्याङ्गिरोविदुः प्रजापतुः ।”

(गी. उप. १. १. १. १.)

अथय मध्व्यं संदिता सर्वतोमासं व्यादरणां पृ.
वेदविनाय ।

यद्योय होलादि कायांनुत्तार हो पार वेदका विनाय
मन्त्र होना है । सर्वानुत्तारयोर्वृत्तिको भूमिनामि
निष्ठा है—

“विनिषोः मन्त्रो वाः मन्त्र इति वपुः ।

विनिषुनिष्ठां सुभं मन्त्राणां वपुः इति व”

वेदको जो मध्व उक्तिवा विनिषोमको योग्य है यही
मन्त्र है तथा जिसमें विद्यागादि हैं यही ब्राह्मण है ।
फलतः यथापिमे एक वेद हो पार मासोमि विनाय है ।
होना, मध्वपुः, उद्गमात्ता और प्रजा, ये चारों वपु-
पुरोहित हैं । होनाके व्यवहार्य मन्त्र मात्र हो श्रु. है ।
इन श्रु. मासोका संदहन या एकत्र कर जो प्रथ
वनाया गया है उसका नाम श्रु. संदिता है । श्रु.
मासके विनिषोगादि अग्निषायक प्रथका नाम श्रु.
मास्य है । श्रु. संदिता और श्रु. मास्य ये दोनों ही
एकत्र श्राव्येद नामसे प्रसिद्ध हैं । मध्वपुःके व्यवहार्य
मासोका अग्निषाया यतुः है, एतत् इत्ये श्रु. जो है ।
इस श्रु. यतुके एतत्तय निवद प्रथका श्रु. संदिता
है । इसके विनिषोगादि अग्निषायक प्रथका नाम यतु
मास्य है । ये दोनों मध्व एकत्र यतुष्येद नामसे
प्रसिद्ध हैं । उद्गमाके व्यवहार्य मन्त्र है, श्रु. यतु और
प्रजा । इनके संमदुमि निवद प्रथका नाम सामसंदिता
है । इनके ब्राह्मण और मन्त्र दोनों ही एकत्र सामयेद
संदिता नामसे प्रसिद्ध हैं । जो श्राव्येदका मन्त्र
कराये है, श्राव्येदका कायां कराये है, ये श्राव्येदो है ।

जो यतुष्येदमन्त्रका मन्त्रयन कराये है तथा यतुष्येद
मन्त्रका कायां निष्ठा कराने है ये यतुष्येदो है । यतु-
ष्येदमि श्रु. और यतुः ये दोनों ही वेद इत्येयं यतुष्येदो
विषयो भी कहलाये है । ब्रह्मात्मने इत्ये “युवे” कहते
हैं । ब्राह्मण सामयेदका मन्त्रयन कराये है और
श्राव्येदके कायां कराये है जो सामयेदो है । सामयेद-
के श्रु. यतु और श्राव्येदके दोनों ही अर्थनाम है, इस

कारण सामयेदिको “सिपाको” या सिपे हो करने है ।
ब्रह्मवायमे ये निष्ठाको कहलाये है ।

अथय वेदसंदिता मध्विष्य मन्तोका वेदिका मन्त्र
है । मध्वय वेदसंदितामि श्रु. और यतुः दोनों ही हैं ।
मध्वय मन्त्रके प्रयोग और अग्निषायक प्रथका नाम
मध्वयमास्य है । मध्वय मन्त्र और मध्वय मन्त्र
इन दोनोंको एकत्र निवद संदिताका नाम मध्वय-
वेदसंदिता है । यद्यपि प्रथक कायांमि मध्वय मन्त्र
और मध्वयमास्यका ज्ञान रहना आवश्यक है ।
अथय श्रु. यतु और सामवेदसंदिता पदो जाने पर
जो यदि मध्वयवेदका ज्ञान न रहे, तो वेदविषयमें सती-
मात्रवेत्तरथ सम्भवपर नहीं होता । होयकायांमि श्राव्ये-
दका ज्ञान, मध्वपुःके कायांमि यतुष्येदका ज्ञान और
उद्गमात्ता कायांमि सामयेदका ज्ञान प्रयोक्तव्य है । इस
कारण श्राव्येद होयवेद, यतुष्येद-मध्वपुःवेद और
सामयेद उद्गमात्तावेद नामसे पुकारे जाये हैं । इत्ये प्रथक
ब्रह्मकायांके निष्ठात्वाय मध्वयवेद प्रयोक्तव्य है । इनके
कारण मध्वयवेद “मध्वयवेद” कहलाये हैं । ब्रह्मवायमे
इत्ये “अग्नि” करने है । मध्वयवेदसंदितामास्यमि सामयेदमि
निष्ठा है—

“यतुष्येदः वेदिका यतुः । यतुः सामयेदः यतुष्येदः ।”

(गी. उप. १. १. १. १.)

इस संविषयका ज्ञान क वेदगत मन्त्ररचनाका संविषय
हो अग्निषेत्त है । अग्निषेत्त इत्ये कथा है, “सामयेदकेयु
मास्यकाया । निष्ठायुत्त यतुष्येदकेयु पादुष्येदका । योनिषु
सामयेदका । इत्ये यतुः मास्यः”

(गी. उप. १. १. १. १. १.)

मध्वयमास्यमि निष्ठा है—

“यतुष्येदो वा इमे वेदा इत्ये यतुष्येदो यतुष्येदो सामयेदो
मन्त्रेद इति ।” यतुष्येदो वा इमे होलात् । होयमास्यमि
यतुष्येदमास्यं मन्त्रयमिति । मन्त्रयतुष्येदको मन्त्र—यतुष्येदो
श्रु. मास्योऽथय पादुः प्रजा, मन्त्र इत्ये मन्त्रयमिति । निष्ठा
यतुः यतुष्येदो इत्ये मन्त्रो मन्त्रयमिति । (यतुष्येदो
मन्त्रयमिति श्रु. निष्ठा वा यतुः उक्ता ।”

(गी. उप. १. १. १. १.)

मध्वयमास्य और श्राव्येदसंदिताके एक प्रथको

द्वारा चार वेदका विषय स्थापनने स्पष्टरूपसे प्रमाणित किया है। अतएव चारों ही वेद "त्रयी" हैं।

मन्त्र।

पहले ही कहा जा चुका है, कि चतुर्वेद मन्त्र और प्राण्यणके भेदसे दो भागोंमें विभक्त है। यद्यपरिभाषा-सूत्रमें भाषस्तम्भने कहा है—

"मन्त्रप्राण्यणयोर्धेदनामधेयम्।" मन्त्र किसे कहते हैं? यास्कने कहा है—

"मन्त्रा मननात्।" (७।३।६)

दुर्वाचार्यने उसको वृत्ति कर लिया है—

"तेभ्यः (मन्त्रेभ्यः) हि अध्यात्मपिदिवाधिपश्यादि-मन्तारो मन्त्यन्ते तदेषां मन्त्रत्वम्।" अर्थात् मन्त्रप्रयोग-कारी मन्त्रोंसे अध्यात्म, अधिदेव और अधियज्ञादि मनन करते हैं, इस कारण इनका नाम मन्त्र हुआ है। यास्कने और भी कहा है—

"यत्कामऋषिर्ष्वर्षा देवतायामर्थापत्यमिच्छन् स्तुति प्रयुञ्जते तत् देवतः स मन्त्रो भवति।"

(निरुक्त ७।१।१)

अर्थात् कामनाधान् ऋषिने किसी देवताके निकट अर्थापत्य प्रभृतिके लिये जो स्तुति-पाठ किया घटो देवताका मन्त्र है।

भाष्यकार उवटने यजुर्मांग्लेभाष्यकी भूमिकामें तेरह प्रकारके मन्त्रभेदकी बातोंका उल्लेख किया है। यथा—

१। विधिवाद् (परमेष्ठ मिहिता) अश्वस्तूपरो गो मृगस्ते। (वा० ष० २४।१)

२। अर्थवाद्—देवा-यज्ञमतम्यत। (वा० ष० १६।१२)

३। पात्र्वा—तनूया अग्नेऽसि तन्वं मे पादि। (वा० ष० ३।१७)

४। आशोः—जा यो देवास्त इमहे।

५। स्तुति—अग्निमूर्धा दिवाः ककुत्।

६। प्रैप—होता ययत् समिधाम्निम्।

७। प्रयष्टिा—इन्द्राग्नी भापादियम्।

८। प्ररत—कः खिदेकातो चरति।

९। उवाकरण—सूर्य एकाको चरति।

१०। तर्क—मा गृथाः कस्य खिदम्।

११। पूर्वद्वस्तुकीर्त्तन—भीपययस्समयद्वत्न।

१२। अयचारण—तमेव विदिस्वातिमृत्त्युमेति।

१३। उपनियत्—इनायास्वमिदं सर्वम्।

शरभभाष्यमें भी तेरह प्रकारके मन्त्रभेद खोजत हुए हैं। किन्तु ये सब दूसरे प्रकारके हैं।

यास्कने ऋकोंकी इसके तीन भागोंमें विभक्त किया है—

१ परोक्षरत, २ प्रत्यक्षरत, ३ धाध्यात्मिक।

परोक्षरत और प्रत्यक्षरत मंत्रकी संख्या अनेक है, धाध्यात्मिक मन्त्रकी संख्या बहुत थोड़ी है।

संहिताभेद।

संहिता साधारणतः दो प्रकारकी है, निम्नसंहिता और प्रतुणसंहिता।

यथायथ पाठ ही निम्नसंहिताका पाठ है। इस निम्नसंहिताको आपीसंहिता भी कहते हैं। इसमें यथा-यथ पाठ रहता है। जैसे "अग्निमोहे पुरोहितम्।"

प्रतुणसंहिता दो प्रकारकी है—पदसंहिता और क्रम-संहिता। पदसंहिताका पाठ इस प्रकार है—अग्निम्, इहे, पुरोहितम्।

क्रमसंहिताका पाठ अन्य प्रकार है, यथा—"अग्निम्, इहे, इहे पुरोहितम्, पुरोहितमिति पुरोहितम्।"

इस क्रमसंहिताका अवलम्बन कर आठ प्रकारकी विरुति पाठका विषय विरुतिवत्त्वो नामक प्रथममें लिखा है। जैसे—

"अथा मात्रा शिष्या श्लेषा भवन्तो दपदो रथोपनाः।

अष्टौ विरुतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वमनोषिभिः ॥"

वेदशास्त्रा-परिगणना।

एक एक मंत्रके ग्यारह प्रकार संहिता-पाठ हैं। संहितायें बहु प्राचीन हैं। इस कारण कालभेद, देग-भेद और व्यक्ति आदि भेदोंसे तथा अध्यापना और अध्या-पनोपके उच्चारणादि भेदसे पाठभेद हुआ है। पाठमें कुछ कुछ कमीपेशी भी हुई है। आधावोंके प्रकृतिपैष्य-के-वारण तथा उनके अपने अपने देग और समयभेदके-वारण बहुत शत्रुपेय भेद तथा प्रयोगभेद भी हुआ है। इन प्रकार एक-एक संहिता अनेक शाखाओंमें विभक्त हुई हैं। पद-शुद्धिप्य कहते हैं—

ऋग्वेद विंशतिशाखाशुद्ध, सामवेद सत्प्रस्ताया-

वैष्णवाद, जैनकीय, दामोद, तोत्तायन, जामल, ब्रह्मपालास, कुनभ्रा, देवदर्शी, चरणविद्या । एक दूसरे ग्रन्थके मतसे अधर्ववेदकी ६ शाखाएं हैं, यथा— वैष्णवाद, आन्ध्र, प्रदात्त, स्नात, स्मीत, ब्रह्मदायन, जैनिक, देवदर्शित, चारणविद्या । इनके निचा तैत्तिरीयक नामक दो प्रकारके भेद देखे जाते हैं । यथा—औष्य और काण्डिकेय । काण्डिकेय भी फिर पांच भागोंमें विभक्त है । यथा—वापस्तम्ब, बौधायन, सतथायाजी, हिरण्य वेङ्गी, भीषिय ।

वेदकी किस प्रकार अनेक शाखाएं हुईं ? इस सम्बन्धमें सभी पुराणोंमें थोड़ा थोड़ा प्रसङ्ग देखनेमें आता है । परन्तु ब्रह्माण्डपुराणमें कुछ विस्तृत विवरण लिया है ।

पराशरके पुत्र प्यासने ब्रह्माके कथनानुसार वेद-विभागके लिये चार जिष्य ग्रहण किये । इनमेंसे पैलको ऋग्वेदके, वैशाखायनको यजुर्वेदके, जैमिनिकी सामवेदके और सुमन्तुकी अथर्ववेदके कर्त्तारमें नियुक्त किया । उन लोगोंने यजुर्वेदसे अध्वर्यु, ऋक्संसे होल, सामसे उद्गात और अथर्ववेदसे यक्षमें ब्रह्मदेवका निर्देश किया था । इसमें सभी ऋक् उद्धृत कर ऋक्संहिता को गई, उससे जगत्संहितकर पक्षयाह होता कल्पित हुआ था । सामसे सामवेद और उससे उद्गात रचा गया था तथा अधर्ववेदके अनुसार राजाओंको यज्ञ कर्ममें नियुक्त किया गया ।

यजुर्वेदके अनेक पद उठा दिये गये थे, इस कारण यद विषय अर्थात् छन्दोहीन हुआ । उससे वेदगारग ऋत्विषीों द्वारा उद्धृतकी अन्वयेषयत प्रयुक्त हुआ । अथवा अन्वयेष यज्ञ द्वारा ही वेदयुक्त हुआ है ।

वैश्वदेवने गर्न्तोंको ले कर दो भागोंमें विभक्त किया । इसके बाद उन्होंने फिर उन्हें दो भागोंमें विभाग तथा पुनः संयोग कर दोनों जिष्योंको अर्पण कर दिया था । इन्द्रप्रमति नामक जिष्यको पहला और वास्कलको दूसरा अर्पण किया गया । द्वित्रधुष्ट वास्कलने चार संहिता करके शुभ्र वर्णितर हित्ताकाइसी जिष्योंको उन्हें पढ़ाया था । बोध नामक जिष्यको प्रथम शाखा, अनिमाडरके जिष्यको द्वितीय शाखा, पराशरको

तृतीय शाखा और याज्ञवल्क्यकी चतुर्थी शाखा पढ़ाई गई ।

ब्रह्मणधेष्टु इन्द्रप्रमतिने महाभाग यज्ञको मार्षाण्डेयको एक संहिता पढ़ाई । महायज्ञको मार्कण्डेयने उपेष्टु पुत्र सत्ययज्ञको, सत्ययज्ञने सत्यहिनको, सत्यहिनने अपने पुत्र सत्यतरको तथा विभु सत्यतरने महात्मा सत्यधर्मापरायण सत्यश्रीको अध्वयन कराया था । तेजसो सत्यश्रीके शाकल्य, रघीतर, वास्कलि और भरद्वाज ये चार विद्वान् जिष्य थे । ये सभी अध्वयन-निपुण और शास्त्राप्रवर्त्सक हैं । अद्वाज्वाह्र-देवमित्र और महात्मा शाकल्यने पाँच संहिता प्रकाशित कीं । महर्षि शाकल्यके मुद्गल, गोलक, बालीय, मत्स्य और शैशिरिय ये पाँच जिष्य थे ।

द्वित्रयर शाकपुत्री रघीतरने तीन संहिता और एक निश्ककी रचना की । उनके केतय, शालकि, धर्मगर्मा और वेदशर्मा ये चार प्रतपारी ब्रह्मणजिष्य थे ।

भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, गालकि, सालकि और धोमान् जतवलाक, ये लोग भी संहिताकर्त्ता हैं । द्वितोत्तम नेगम, वास्कलि और भरद्वाजने तीन संहिता प्रणयन कीं । रघीतरने पुनः चतुर्थी निश्ककी रचना की थी । उनके गुणयान् तीन जिष्य थे । धोमान् नन्दावनीय प्रथम, बुद्धिमान् परगारि द्वितीय और आर्ष्याय तृतीय थे । ये सभी तपस्वी प्रतपारी विरागी, महातेजस्वी और संहिताज्ञानमें विशेष पारदर्शी थे । ये संहिता-प्रवर्त्सक पहूँच बने जाते हैं ।

महर्षि वैश्वामयनके जिष्योंने यजुर्वेदके भेदकी रचना की । उन्होंने ८६ अच्छी अच्छी संहिता प्रणयन कर जिष्योंको प्रदान की थी । जिष्योंने भी उनका विधिपूर्वक अध्वयन किया । इसमेंसे महात्मा याज्ञवल्क्य परित्यक्त हुए थे । उन जिष्योंने उपरोक्त ८६ संहिताओंका भेद किया था । ये सभी संहिताएं तीन भागोंमें विभक्त हुईं । उन तीनोंमेंसे प्रत्येक फिर तीनतीन भागमें विभक्त ही नौ प्रकार हुए हैं ।

उत्तरदेग, मध्यदेग और पूर्णदेगमें पृथक् पृथक् यज्ञ-संहिता पढ़ी जाती हैं । उनमेंसे उत्तर प्रदेशमें इरामा-यनि, मध्यदेगमें भारुलि और पूर्णदेगमें आलमिच प्रमाण

भागों में बंट गया। नक्षत्रकल्प, यैतान, चतुर्वेद संहिता-विधि, चतुर्धा अङ्गिरसकथा तथा पञ्चम ज्ञानिककल्प अथर्ववेदों के मध्य इन सब संहिताओं के प्रमेदकारक ऋषिगण हो प्रधान हैं।

इसके सिवा यजुर्वेदकी लोमहर्षिका प्रथम, काश्यपिका द्वितीय और सायणिका तृतीय शाखा कहलाती हैं। अन्य प्रकार शांशवायनिका हैं। आठ हजार छः सौ, अन्य प्रकार पन्द्रह और फिर दश प्रकारकी ऋक् कही जाती हैं। इनके सिवा बालभिव्य, समप्रथ और सायण कहे गये हैं। आठ हजार साम और चौदह साम तथा सहोम आरण्यक ये सब सामग ब्राह्मण गान करते हैं। व्यासदेवने यजुः और ब्राह्मणके आरण्यकको तथा मन्त्रकरणकके साथ बारह हजार आध्वर्याव वेदका विभाग किया। ऋक् ब्राह्मण और यजुः ये तीन प्रामाण्य हैं तथा समन्त्रके भेदसे दो प्रकारके हैं। फिर दारिद्र्योथसमूहके खिल और उपखिल ये दो प्रकारके प्रमेद हैं। तैत्तिरीय समूहके बाद भी दो भेद कल्पित हुए हैं पर और क्षुद्र। (ब्रह्मसूत्र १० पूर्व ६५-६६ अ०)

यथार्थमें ऋग्वेदकी दो ही शाखा प्रधान हैं शाकल और शाङ्खयन। यह शाकल शाखा ही शिष्योंके उच्चारणादि भेदसे पांच भागोंमें विभक्त हुई है। विकृतिकीमुदोकारने लिखा है, कि शैशिरीय, वास्कल, सांख्य, घात्स्य और आश्वलायन,—शाकल-शाखाको यही पांच उपशाखा हैं। प्याङ्गि प्रणीत 'विकृतिवल्ली' नामक ग्रन्थमें इन पांच शाखाओंकी जटादि आठ प्रकारकी पाठप्रणाली लिखी है। शाङ्खयानके भेदसे दूसरो सोलह शाखायें हैं। इनके भी पाठनियामक ग्रन्थ हैं। उक्त ग्रन्थ माण्डूकेयका बनाया है।

यजुःसंहिता भी पहले तीन भागोंमें विभक्त थी। पीछे यह चरक अध्वर्यु उज्जैस शाखाओंमें, याज्ञसनेय सत्तर शाखाओंमें तथा तैत्तिरीय ६ शाखाओंमें विभक्त हुई। वेदका शाखाभेद मन्वादि ग्रन्थके अध्वयनभेद जैसा नहीं है। प्रस्तुत यह भिन्न कालमें लिखित भिन्न देशियोंके उच्चारणादि भेद-जनित तथा अनेक आदर्श पुस्तकोंके पाठादि भेदजनित हैं। शाखाप्रवर्तकोंके प्रथममें कुछ कुछ सतन्त्रता है।

ऐसा होने पर भी यजुर्वेदके याज्ञसनेय और तैत्तिरीय शाखाओंमें सबसुच पृथक्ता है। इस कारण प्राचीनोंने इस भेदको शुक्रयजुर्वेद और ह्यग्ययजुर्वेद नामसे अभिहित किया है। जायालो आदि सत्तर याज्ञसनेय शाखा शुक्रयजुर्वेद तथा औष्पादोय तैत्तिरीय छः शाखा ह्यग्ययजुर्वेद नामसे पुकारा जाती है। वैदिक मन्त्रभाग ऋक्, यजुः और साम यह त्रिविध रचनात्मक होने पर भी होत्र, आध्वर्यव्य, औद्गात और ब्राह्म यह चतुःसंहितात्मक है। पीछे यजुःसंहिता शुक्र और ह्यग्य इन दो भागोंमें विभक्त होनेके बाद वेद पांच शाखाओंमें विभक्त हुआ—यथा, ऋग्वेदसंहिता, शुक्रयजुर्वेदसंहिता, ह्यग्ययजुर्वेदसंहिता, सामवेदसंहिता और अथर्ववेद-संहिता।

इन पांच वेद संहिताओंमें कौन पहले और कौन पीछे प्रकाशित हुईं, पादचारय अध्यापकोंने यह ले कर अपना बहुत विभाग लड़ाया है।

जगत्सृष्टिके पहले ब्रह्माके चारों मुखसे चार वेदोंकी सृष्टि हुई थी, यही पौराणिकोंका अभिप्राय है। सायणने भी पौराणिकमतको ही ग्रहण किया है। अतएव भाषुनिक अध्यापकोंको विचारप्रणालीकी ओर ध्यान देना भी सायणके लिये असम्भव है। यरं पुराणका मत लेनेसे यजुर्वेदकी ही आदि मान सकते हैं तथा उत्तरेके आगे चल कर चार भागोंमें विभक्त होनेसे चार वेदोंकी उत्पत्ति हुई।

"एक भाषीत् यजुर्वेदरवतुर्धा तं व्यकल्पयत्।"

(विष्णु०)

फिर एक बात यह है, कि जो सब गवेषणापरायण सूत्रमर्गों परिष्ठित करते हैं, ऋक्संहिता ही वेदका प्रथम ग्रन्थ है, साम और यजुः इसके पीछेका है ये क्या ऋक्संहितामें यजुः और सामका उल्लेख देख नहीं पाते ? साम और यजुः यदि ऋक्संहिताके बादकी है, तो ऋक्संहितामें इन दोनों भागोंका उल्लेख क्यों आया ? ऋक्संहितामें क्या है गिम्नलिखित ऋचाओंसे उसका पता चलेगा—

- १। "यजुस्तस्माद्जायत। (१०।६०।६)
- २। गायत्रसाम ननन्यम्। (१।१०३।१)

रूपमें गिनी जाते हैं। ये संहितायादी सभी विषय चरक कहलाते हैं। अथवा जिन्होंने महावल्ग्या मतका आचरण किया था वे ही "चरक" कहलाये। इसी कारण वैशम्पायनके शिष्य चरक नामसे विख्यात हैं।

अथर्वणमें याज्ञवल्क्यकी यजुः दिया गया था, इस कारण जिस किसने यजुःका अध्ययन किया था वे याज्ञी कहलाये। अतएव याज्ञिक याज्ञवल्क्यके शिष्य हैं; ऋषय, वैशेष्य, शाली, मध्यन्दिन, श्रापेयी, विद्मिष्य, उद्गाल, ताम्रायण, वात्स्य, गालय, शैजिर, आभ्य, पर्णा, घोरण और परायण ये पन्द्रह याज्ञी कहलाते हैं। इस प्रकार एक सौ एक यजुर्वेदके विभागकर्त्ता हुए।

जैमिनिने अपने पुत्र सुमन्तुकी, सुमन्तुने अपने पुत्र सुत्थकी और सुत्थने अपने पुत्र सुकृमाकी संहिता पढ़ाई थी। सुकृमाने सहस्र संहिताको शीघ्र अध्ययन कर सूर्यवर्चा सहस्रकी अध्ययन कराया। अथवायके दिन अध्ययन किया था, इस कारण देवराज इन्द्रने उन्हें मार डाला। अनन्तर सुकृमाने शिष्योंके लिये प्रायोपवेशनमत अवलम्बन किया। उन्हें क्रुद्ध देव कर इन्द्रने घर दिया और कहा, 'आपके ये दोनो' महाभाग महाघोर्य शिष्य सहस्र संहिताका अध्ययन कर महाभाग और मनलतुष्य तेजस्वी होगे, अतएव हे द्विजसत्तम! आप क्रोध न करें। देवराजने यशस्वी सुकृमाको इतना कह कर उनका क्रोध शान्त किया और पीछे आप धरत-हृत हो गये। उनके शिष्य घोमान् पौष्यञ्जी थे। पौष्यञ्जीके हिरण्यनाभ और कौशिक नामक दो शिष्य थे (दोनो' हो रजपुत्र थे)। पौष्यञ्जीने उन्हें पांच सौ संहिता पढ़ाई थी, इस कारण पौष्यञ्जीके उर्ध्व्य-सामान्य शिष्य हुए थे।

कौशिकने पांच सौ संहिता की थीं। हिरण्यनाभके शिष्य प्राच्य सामग नामसे प्रसिद्ध हैं।

सोकाशी, कुशुमि, कुशोती और लाङ्गलि, पौष्यञ्जीके ये चार शिष्य संहिताकर्त्ता हैं।

तण्डियुव राणावनीय, सुविहान्, मूल्यारी, सकेगि-पुत्र, महसार्थ्य पुत्र, ये सार सोकाशीके शिष्य हैं। कुशुमिके तीन पुत्र थे। मीरस, रसगन्धर और मेजस्वी मागविधि। ये सभी कौशिक कहलाते हैं।

मीरिद्यु, मीर शृङ्गियुव इन दोनो'ने प्रतका आचरण किया था। राणावनीय सीमित्ति ये दोनो' साव-येदमें विद्येय पारदर्शी' थे।

महातपस्वी शृङ्गियुव तीन संहिता प्रणयन कीं। चैत्र, प्राचीनयोग और सुराल इन द्विजोत्तमोंने छः संहिता बनाई थीं। पाराशर्य्य कौशुम थे। मासुरायण और वैशाख्य ये दोनों द्विज वेदपरायण और गृहसेवी थे। प्राचीन-योगके बुद्धिमान् पुत्रका नाम पातञ्जलि था। पाराशर्य्य कौशुमके छः प्रकारके भेद हैं। लाङ्गलि और शालिहोत्रने छः संहिताएँ प्रणयन कीं।

मालुकि, कामहानि, जैमिनि, लोमगायनि, कण्ड और कोहल ये छः लाङ्गल कहलाते हैं। ये सभी लाङ्गलिके शिष्य और संहिताके संस्कारक हैं।

हिरण्यनाभके शिष्य नृगत्तम थे। उन्होंने चौबीस संहिताएँ प्रकाशित कीं। उन्होंने जिन सप्त शिष्योंको उसका पाठ कराया था उनके नाम ये हैं—

राट्ट, महाघोर्य, पंडुम, घाहन, तालक, पाण्डक, कालिक, राजिक, गीतम, मातवन्त, सोमराज, अपतत्त, पृष्ठन, परिष्ट, उलुबलक, यपीयस, वैगान, अ'मुलीय, कौशिक, सालिमजरी, सत्य, कापीय, कालिक और धर्मात्मा पराजार। ये २४ व्यक्तिक २४ संहिताका पाठ कर सामग हुए थे।

सामग्योके मध्य सभी संहिताओंके प्रमेदकारक पौष्यञ्जि और कृति ये दोनो' सर्वापेक्षा प्रधान हैं।

सुमन्तुने अथर्ववेदकी दो भागोंमें विभक्त कर ऋष्यको प्रदान किया। उन्होंने यथाक्रम उनका अध्ययन किया था।

किर ऋष्यने भी उसके दो भाग कर एक भाग पथ्यकी और दूसरा भाग वेददर्शकी प्रदान किया। वेददर्शने उसे चार भागोंमें बाँट कर चार शिष्योंको दे दिया। महावरायण मोद, विश्वनाद, धर्मह जीका-यनि और तपन ये चारों वेददर्शके शिष्य थे।

पथ्यने फिर उसे तीन भागोंमें विभक्त कर जात्रलि, कुमुर्गद और जीनरुकी प्रदान किया। जीनरुने उसे दो भाग करके यजु और घोमान् सैष्यवायनकी पढ़ाया। सैष्यने मन्त्रकेगकी प्रदान किया। इसमें यह दो

भागों में बँट गया। मन्त्ररूप, यैतान, तुनीप संदिता-विधि, चतुर्धा अङ्गिरसकण्व तथा पञ्चम शान्तिकण्व अथर्ववेदों के मध्य इन सब संदिताओं के प्रमेदकारक ऋषिगण ही प्रधान हैं।

इसके सिवा यजुर्वेदकी लोमदक्षिणा प्रथम, कार्य-विका द्वितीय और सावर्णिका तृतीय शाखा कहलाती है। अन्य प्रकार शांशपायनिका है। आठ हजार छः सौ, अन्य प्रकार पन्द्रह और फिर दश प्रकारकी ऋक् कही जाती है। इनके सिवा बालखिल्व, समग्रैथ और सावर्णिके गये हैं। आठ हजार साम और चौदह साम तथा सहीम आरण्यक ये सब सामग ब्राह्मण गान करते हैं। व्यासदेयने यजुः और ब्राह्मणके आरण्यकको तथा मन्त्रकरणकके साथ बारह हजार आध्वर्याय वेदका विभाग किया। ऋक् ब्राह्मण और यजुः ये तीन प्रामा-रण्य हैं तथा समन्त्रके भेदसे दो प्रकारके हैं। फिर दारिद्रवीयसमूहके खिल और उपखिल वे दो प्रकारके प्रमेद हैं। तैत्तिरीय समूहके बाद भी दो भेद कवियत हुए हैं पर और क्षुद्र। (अथाप्यु० पूर्व ६३६ ई ४०)

यथार्थमें ऋग्वेदकी दो ही शाखा प्रधान हैं शाकल और शाङ्खायन। यह शाकल शाखा ही शिष्योंके उच्चारणादि भेदसे पांच भागोंमें विभक्त हुई है। विद्युतिकीमुदोकारने लिखा है, कि शीशिरीय, वास्कल, सांख्य, वात्स्य और आभ्यलायन,—शाकल-शाखाको यही पांच उपशाखा हैं। व्याङ्गि प्रणीत 'विद्युतिवल्ली' नामक ग्रन्थमें इन पांच शाखाओंकी जटादि आठ प्रकारकी पाठप्रणाली लिखी है। शाङ्खायनके भेदसे दूसरो सोलह शाखायें हैं। इनके भी पाठनिवा-मक ग्रन्थ हैं। उक्त ग्रन्थ माण्डूकेयका बनाया है।

यजुःसंदिता भी पहले तीन भागोंमें विभक्त थी। पीछे यह चरक अध्वर्यु उभोस शाखाओंमें, वाजसनेय सत्तरह शाखाओंमें तथा तैत्तिरीय ६ शाखाओंमें विभक्त हुई। वेदका शाखाभेद मन्वादि ग्रन्थके अध्वयनभेद जैसा नहीं है। प्रत्युत वह मित्र कालमें लिखित मित्र देशिषोंके उच्चारणादि भेद-जनित तथा अनेक आदर्श पुस्तकोंके पाठादि भेदजनित हैं। शाखाप्रवर्षाकोके प्रयचनमें कुछ कुछ अतन्त्रता है।

वेसा होने पर भी यजुर्वेदके वाजसनेय और तैत्तिरीय शाखामें सबमुच पृथक्ता है। इस कारण प्राचीनोंने इन भेदका शुरुपजुर्वेद और छण्ययजुर्वेद नामसे अभिहित किया है। जायालो चादि सत्तरह वाजसनेय शाखा शुरुपयजुर्वेद तथा औष्यादेय तैत्तिरीय छः शाखा छण्ययजुर्वेद नामसे पुकारा जाती है। वैदिक मन्त्रभाग ऋक्, यजुः और साम यह त्रिविध रचनात्मक होने पर भी होत, आध्वर्यव्य, औद्गात और ब्राह्म यद चतुःसंदितात्मक है। पीछे यजुःसंदिता शुरु और छण्य इन दो भागोंमें विभक्त होनेके बाद वेद पांच शाखाओंमें विभक्त हुआ—यथा, ऋग्वेदसंदिता, शुरुपयजुर्वेदसंदिता, छण्ययजुर्वेदसंदिता, सामवेदसंदिता और अथर्ववेद-संदिता।

इन पांच वेद संदिताओंमें कौन पहले और कौन पीछे प्रकाशित हुईं, पार्श्वचार्य अध्यापकोंने यह ले कर अपना बहुत दिमाग लड़ाया है।

जगत्सृष्टिके पहले ब्रह्माके चारों मुखसे चार वेदोंकी सृष्टि हुई थी, यही पौराणिकोंका अभिप्राय है। सायणने भी पौराणिकमतको ही ग्रहण किया है। मतपथ आधु-निक अध्यापकोंको विचारप्रणालीकी ओर ध्यान देना भी सायणके लिये असम्भव है। चरं पुराणका मत लेनेसे यजुर्वेदको ही आदि मान सकते हैं तथा उसीके आगे चल कर चार भागोंमें विभक्त होनेसे चार वेदोंकी उत्पत्ति हुई।

"एक आसीत् यजुर्वेदरेवार्था तं व्यकल्पयत्।"

(विष्णुपु०)

फिर एक बात यह है, कि जो सब गयेपनापरायण सूत्रमनों पण्डित कहते हैं, ऋक्संदिता ही वेदका प्रथम ग्रन्थ है, साम और यजुः इसके पीछेका है ये क्या ऋक्संदितामें यजुः और सामका उल्लेख देव नहीं पाते? साम और यजुः यदि ऋक्संदिताके बादके हैं, तो ऋक्संदितामें इन दोनों नामोंका उल्लेख क्यों आया? ऋक्संदितामें क्या है निम्नलिखित ऋचाओं-से उसका पता चलेगा—

- १। "यजुस्तस्माम्दजायत। (२०६०।६)
- २। गायस्ताम नमग्यम्। (१।१७।१)

३। यजुषा रक्षमाणः। (शुद्धि २)

४। तमु सामानि दन्ति। (शुद्धि १४)

इस प्रकार और भी बहुतने उदाहरणका उल्लेख किया जा सकता है। फलतः जो इस प्रकार ऐतिहासिक कालनिर्णय करनेको कोशिश करते हैं, उनकी उक्तियाँ स्वकपोलकल्पित मात्र हैं।

इन लोगोंने और भी कहा है, कि ऋग्वेदका द्वितीय-मण्डल अपेशाहत अर्थात्नीन है। ऋक्संहिताके द्वितीय-मण्डलके सायणभाष्यमें लिखा है—

“य. भाद्रिखः शीनहीन भूत्वा मार्गिः शीनकोऽभवत् च यत्प्रमदो द्वितीयं मण्डलमनभ्यत्।”

इन लोगोंने इस अनुक्रमणी यचनको उद्धृत किया है। किन्तु इनकी बात पर घोड़ोंविचार करना उचित है। इन लोगोंका कहना है, कि द्वितीयमण्डल जो शीनकोय है वह इस उक्तिसे स्पष्ट मालूम होता है। पाणिनिधर्ममें भी इसका उल्लेख है। यथा—

शीनकादिभ्यश्छन्दसि। (पा ४।३।१०५)

पाणिनिके सूत्रमें जो शीनककी बात लिखी है, शीनक प्रोक्तप्रत्यय ही उक्त सूत्रका विषय है। शीनकप्रोक्त अथवा-वेदोय संदिता प्रत्यय जो अधपवन करने हैं ये शीनकिन कहलाते हैं। शीनकप्रोक्त प्रत्यय इस सूत्रका विषय नहीं है।

अनुक्रमणिकामें लिखा है—

“द्वितीयमण्डलमपश्यत्।”

यहां “अपश्यत्” किया है, “अपश्यत्” क्रिया नहीं अतएव द्वितीय मण्डल शीनकप्रोक्त है ऐसा अर्थ लगाना गलत है।

वे लोग द्वितीयमण्डलसे दो एक यज्ञोय शब्द उद्धृत कर प्रमाणित करना चाहते हैं, कि इस मण्डलमें यज्ञोय शब्द है। अतएव यह यज्ञके समय विरचित हुआ है। यह एकदेशदक्षिणाका ज्ञानिमय काल मात्र है। ऋक्संहिताके प्रत्येक मण्डलमें ही यज्ञोय शब्दका उल्लेख देखनेमें आता है। यथा—

- १। होजम्, पोतम्। (१।०।१४) २. रश्चिउपम्। (८।४।११) ३. नेपः। (१।१।१३) मन्निधम्। (१०।४।२०) ५. प्रजास्ता। (१।६।४) ६. अध्वरीव-

वाम्। (१।२।१५) ७. प्रहा। (१।८।१) ८. यदवति। (१।१३।६) ९. द्मे। (१।१।८)

वे लोग दशम मण्डलको ऋक्षपरिनिष्ट मानते हैं। उनकी युक्ति यह है, कि दशम मण्डलकी भाषा पृथक् है। किन्तु जो वेदाध्ययनमें निपुण हैं, संस्कृत भाषा जिनको मातृभाषा स्वरूप है, वे अन्यान्य मण्डलोंकी भाषामें दशम मण्डलकी भाषामें जरा भी पृथक्ता देख नहीं पाते। पाश्चात्य संस्कृत पण्डितोंने इस भाषाकी पृथक्ता किस प्रकार की उसे इस देशके सुपण्डित भी समझ नहीं सकते हैं।

सामवेदियाधिक प्रत्ययका मन्त्र श्रुग्देवो उद्धृत नहीं है। पाश्चात्य वैदिक शोधेणाकारियोंका और भी एक भूमसिद्धान्त यह है, कि सामवेदोपात्तिक प्रत्ययके मन्त्र श्रुग्देवे उद्धृत हैं। यह पौडिवाद्मात्र है। पयोनि, स्तन्दिस्त्रुकेम स्पष्टतः सामवेदोय छन्दोंका पृथक् उल्लेख है। यथा—

“वस्मात् यथात् सर्वदुतः शूचः सामानि जशिरे।

छन्दसि जशिरे तस्मात् यजुस्त्वस्मादजावत् ॥

(शुक्संहिता १०।६।०।६)

इस ऋक्में “छन्दसि” कह कर जो पद है यह सामवेदोपकर्वा निम्न और कुछ नहीं है। सामवेदो-पकर्वा ही छन्दःजगद्का वाच्य है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। पाणिनिने भी सामवेदोय छन्दोप्रत्ययके मंत्रोंको छन्द कहा है। यथा—

मोऽस्त्वोदि छन्दसः प्रगाथेयु। (४।१।५५)

प्रगाथ केवल सामवेदमें ही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं। सामवेदोय तात्त्वमहाब्राह्मणमें प्रगाथका उल्लेख है। सामवेदियोंको छन्दोग कहा जाता है। इन्हें कर्मों में कोई “श्रावण” नहीं कहते। सामवेदोय ब्राह्मणग्रन्थ और उपनिषद् ही छान्दोग्य कहलाते हैं। पाणिनिने छान्दोग्य शब्दकी जो व्युत्पत्ति की है वह इस प्रकार है—छन्दोऽर्क्यक। (१।३।२६)

इन सब उक्तियों द्वारा उद्धृतशब्दोपायीय सद्ग्रन्थों ही निरस्त होता है। पाश्चात्यने स्वकपोलकल्पनाके बल इसी प्रकार वेदके पाँचोपर्थ मन्त्रग्रन्थमें अनेक प्रकारकी कल्पना कर रखी है। किन्तु सारनिश्चयतः यह है, कि

मृक् और यजुर्वेद एक ही समयमें उत्पन्न हुए हैं।
यथा अथर्ववेदमें—

“मृचः सामानि छन्दसि पुराणं यजुषावद ।

उच्छिष्टावजुसिरे सर्वे दिवि देवा दिविभिताः ॥”

(१७७२८)

पूर्वकालमें मन्त्रसमूह इधर उधर बिखरे हुए थे।
पीछे उनका संग्रह और विभाग किया गया।

सायणने कहा है, कि ब्राह्मण दो प्रकारके हैं—विधि
और अर्थवाद। अन्यान्य मतसे भी अर्थवाद् ब्राह्मण-
काण्डके अन्तर्गत है। आपस्तम्बने अर्णवाद्को चार भागों-
में विभक्त किया है, यथा—निन्दा, प्रशंसा, परकृति और
पुराकल्प। निन्दककारने भी अर्णवाद्का ब्राह्मणत्व
स्वीकार किया है। यथा—“प्राशिक्ष मस्याक्षिणी निर्ज-
यानेति च ब्राह्मणम्” (१३१२३)

जैमिनिका कहना है—

“शेषे ब्राह्मणशब्दः ।” (२११३३)

भाष्यकार शबरस्वामीने लिखा है—

“मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च वेदः। तत्र मन्त्रलक्षणे
उक्ते परिशेषसिद्धत्वात् ब्राह्मणलक्षणमयचनोयम् ।
मन्त्रलक्षणेनैव सिद्धम् । यस्यैतल्लक्षणं न भवति
तदा ब्राह्मणमिति परिशेषसिद्धं ब्राह्मणम् ।”

अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण इनको समष्टि हो वेद
है। मन्त्रके लक्षण कहे जानेसे यदि परिशेषसिद्धताके
कारण ब्राह्मण लक्षण न कहा जाय, तो कोई हर्जा नहीं।
मन्त्रके लक्षण कहे जाने पर उसके बाद जो अवशिष्ट
रहता है, यही ब्राह्मण है।

हेतु, निर्वाचन, निन्दा, प्रशंसा, सांशय, विधि, पर-
कृति, पुराकल्प, व्यवधारणकदांना और उपमान यही
ब्राह्मण प्रसङ्गके लक्षण हैं। नीचे उनके उदाहरण दिये
जाते हैं—

१ हेतु—“शूर्पेण जुहोति, तेन ह्यग्नें क्रियते”

२ निर्वाचन—“तद्दृष्टो दधिरवम् ।”

३ निन्दा—“उपपोता या पतस्वान्नयः ।”

४ प्रशंसा—“वायुर्व क्षेपिष्ठा देवता ।”

५ सांशय—“तद्विचिकित्सन् जुह्वानोमा होयाम् ।”

६ विधि—“यजमानसमिपता नोदुम्वरो भवति ।”

Vol XXII 29

७ परकृति—“मायानेय मह्यं पचति ।”

८ पुराकल्प—“पुरा ब्राह्मणा भूमिषुः ।”

९ व्यवधारणकल्पना—“यावतोऽभ्यान् प्रतिशृङ्गोपात्
तावतो यादृणोऽच्युतः कृपालान् निर्वपेत् ।”

उपमानका उदाहरण जैमिनिभाष्यकार शबरस्वामी
द्वारा दिखलाया नहीं गया। फलतः ब्राह्मणप्रथमं उप-
मानका उदाहरण इतना स्पष्ट और अधिक है, कि उसके
उदाहरणका उल्लेख करना उन्हींके कुछ भी प्रयोजनीय
न समझा।

इतिहास और पुराण।

ब्राह्मणप्रथमं इतिहास और पुराणको उल्लेखनीय
कुछ घटनाओंका विवरण देखा जाता है। यह इतना
अपरिष्कृत है, कि उससे कोई विशेष तत्त्व सूझने नहीं
किया जा सकता। परन्तु इतिहास और पुराणका
उल्लेख देखनेसे मालूम होता है, कि प्राचीन ऋषियोंमें
भी इतिहास पुराणका प्रचलन था। यथा—

१। “स होवाच ऋग् वेदं भगवोऽप्येभि ० ०
इतिहासपुराणम् ।” (छान्दोग्य ७।१।३)

२। “अथाष्टमेऽदन् ० ० तानुपदिशतीतिहासा-
वेदः सोऽमिति किञ्चिदितिहासमाचक्षतेवैवाध्वप्युः
सम्प्रेष्यति ।” (शतस्य-अथर्ववेदकण्य १३।४।३१२)

३। “अथ नवमेऽदन् ० ० तानुपदिशति पुराणं
वेदा। सोऽवमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षतेवैवाध्वप्युः
सम्प्रेष्यति ।” (शतस्यना० १३।४।३१२)

४। “यद् ब्राह्मणानोतिहासान् पुराणानि कश्चान्
गायानाराशं सोमैर्मेधाहृतयः ।” (वैश्वीय भार० २।१।२)
नाराशंषी ।

ब्राह्मणप्रथमं एक और विषयका उल्लेख है, उनका
नाम है “नाराशंसी”। नरस्तुति-विषयक धृतियां नारा-
शंसी या नाराशंश्य कहलाती हैं। नाराशंसी तीन
प्रकार की हैं—मन्त्रात्मिका, गाथात्मिका और ब्राह्मणा-
त्मिका ।

गाथा ।

ब्राह्मणप्रथमं गाथा भी दिखाई देती है। गाथा
श्लोकपद्य और प्रथादशावलयरूप है। गाथा ब्राह्मण-
प्रथमं भी बहुत प्राचीन है। ब्राह्मणप्रथमंके अनेक

वधानोंमें गाथाका उल्लेख है। यह पूर्वकालमें गाई जाती थी। यथा—

१। "यमगाथामि परिगावति।" (ऐ०ब० ५।१।८।२)

२। "तद्देवामिदंनवाथा गोपयते—यजेत् सीतानपया सप्तनोकेऽप्यसोमयः। मातापितृभ्यामनुणाधांयजेति यचनाच्छति।" (ऐतरेयब्रा० ७।२।६)

प्रासय-मन्त्र।

प्रत्येक शास्त्रके सिद्ध-भिन्न ब्राह्मणग्रंथ हैं। फिर सभी शास्त्राओंका भी एक ब्राह्मणग्रंथ नहीं है। किन्तु प्रारंभिक शैश्वरोव, वासुदेव, सांख्य, वात्स्य और आश्व-लायन शास्त्राका सिर्फ एक ब्राह्मणग्रंथ है। उसका नाम है वेत्तरेवब्राह्मण। इसे यहूग-ब्राह्मण भी कहते हैं। फिर कौषीतकी आदि सोलह शास्त्राओंका एक ब्राह्मण है। उसका नाम कौषीतकी-ब्राह्मण है। उसे शाङ्खायन या साङ्खायन भी कहते हैं। यजुर्वेदकी मैत्रायणी आदि उग्रास धरकाश्वर्यु शास्त्राका एक ब्राह्मण है जिसका नाम मैत्रायणी-ब्राह्मण है। यह अश्वर्यु-ब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध है। याज्ञसनेवादि १७ शास्त्राओंका एक ब्राह्मण है। याज्ञसनेयक-ब्राह्मण उसका नाम है। इसका दूसरा नाम शतपथब्राह्मण भी है। तैत्तिरीय छः शास्त्राओंका एक ब्राह्मण है। उसका नाम है तैत्तिरीय-ब्राह्मण। साम वेदकी इशामी जैमिनि, कौथुम और राजायनयो वे तीन शास्त्रार्थ पढ़ो जाती हैं। इन तीन शास्त्राओंके ब्राह्मण का नाम छान्दोग्य-ब्राह्मण है। वर्तमान सामवेदके ८ ब्राह्मण देखे जाते हैं। यथा—सामविधान, मन्त्र, आर्येय, यज्ञ, देवताध्याय, संहितापनिषत्, तस्यकार और ताण्ड्यब्राह्मण। अथर्ववेदका सिर्फ एक गोपथ-ब्राह्मणग्रंथरूप देखनेमें आता है। इसके अन्यान्य ब्राह्मण प्रायः लुप्त हो गये हैं।

प्राचीन नाट्यकारोंने व्योकार किया है, कि भारणवक अति प्राचीन और वेदके अन्तर्भूत है।

उत्पत्ति।

यूरोपीय परिदृष्ट उपनिषदोंकी भी अप्राचीन मानने हैं। उपनिषद् वेदांशपात्रक है। पालिनिमें इसका कोई प्रयोग देखनेमें नहीं आता, अथर्व-पालिनिके पूर्व उपनिषद् शिष्टकाल न था, यही वास्तव्य परिदृष्टीका

सिद्धान्त है। परंतु यह सिद्धान्त वैदिक साहित्य-भिन्न व्यक्तियोंके लिये बड़ा ही विस्मयजनक है।

उपनिषदके सम्बन्धमें वास्तव यथा बहते हैं, यही देखना चाहिए। वास्तवमें एक श्रद्धा भी विचार किया है। यह श्रद्धा यह है—

"यथा गुणर्था।" (श्रु० १।२।२८।१)

वास्तव इसकी व्याख्या करके कहते हैं,—"इत्युपनिषद्गर्णो भवति।" (१।२।६)

दुर्गाचार्यने भी इसके भाष्यमें कहा है—"यथा ज्ञानमुपगतस्य सतो गर्भजगमजराभूत्पयो निश्चयेन सोदृशित। सा रहस्यं विद्या उपनिषदित्युच्यते। उपनिषद्भाष्येन यपर्येत इति उपनिषद्गर्णाः।"

अतएव उपनिषदोंकी आधुनिक या अप्राचीन नहीं कह सकते।

वेदोत्पत्तिकालका विचार।

वेदोत्पत्ति-कालनिर्णयके सम्बन्धमें यूरोपीय परिदृष्ट अनेक प्रकारकी कल्पना कर गये हैं। किन्तु पहले हम लोगोंके हृदयमें इस बातका प्रश्न न उठा, कि हम वेदोत्पत्तिके काल निर्णयमें समर्थ हैं वा नहीं?

१। अथर्ववेदोऽयं वेदः।

२। नित्यायामुत्सृष्टा स्वयंभुजा।

३। अग्निवायुरविम्बस्तु त्वयं प्राण सनातनम्।

बुद्धो यदसिद्धार्थंभृगु पञ्चसामलक्षणम्॥

(मनु १।२१)

ये सब पद्यन देखनेसे मालूम होता है, कि प्राचीन गण वेदकी अथर्ववेद और नित्य समझते थे। उनमें इन सब सिद्धान्तोंसे जाना जाता है, कि वेद मनुष्यवर्चि-प्रथम नहीं है। अतएव प्रथम व्यक्तिनिर्णयकी भाजा करना विडम्बना माल है। किन्तु यह बात निश्चय है, कि वेद भाषोंका आदि धर्मप्रथम है।

मोमांसदशंनका अभिप्राय।

मोमांसदशंने वेदकी छे कर यथेष्ट परिश्रम किया है। उनका सिद्धान्त यह है—

"न केन चिदपि पुण्येय प्रयोगो वेदः।"

अर्थात् कोई मनुष्य वेदके प्रणेता नहीं है। वेद

अपीदयेव है। यह सिद्धांत स्थिर रखने के लिये मीमांसा दर्शनके प्रणेताने यद्येष्ट प्रयत्न किया है।

"वेदांश्वैके सग्निकर्षं पुरुषावधाः। अनित्यदर्शनात्" वादिपक्षके इस पूर्वापक्षका विचार करते हुए उन्होने लिखा है, कि यह उक्ति युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि— "उच्यते शास्त्रपूर्वत्वम्। आख्या प्रयचनात्। परम्तु धृतिसामान्यमात्रम्। छन्दे वा विनियोगस्यात् कर्मणः सम्बन्धात्।" (मीमांसादर्शन १।१।२६—३२)

इन सब सूत्रोंका अर्थलभन कर शास्त्रदीपिकामें वेदके अपीदयेवत्त्वविषयमें यद्येष्ट विचार है।

वेदान्तदर्शनका अभिप्राय।

भगवान् वादरायणने वेदान्तदर्शनमें भी वेदको "अपीदयेव" अभिप्राय कहा है। कोई भी व्यक्ति वेदके प्रणेता नहीं है, इस बातकी उम्होंने स्पष्टरूपसे घोषणा कर दी है। वेदान्तसूत्रमें लिखा है,—

"शास्त्रवो नित्वात्।" (१।१।३)

इस ता अर्थ यह है, कि ब्रह्म श्रद्दधेदादि शास्त्रके कारण स्वरूप हैं, अतएव वे सर्वाङ्ग हैं। इस सूत्रके अनुसार वेदका मनुष्यप्रणेतृत्व सूचित नहीं होता। वेद अपीदयेव है, ब्रह्मसूत्र भी इसे स्वीकार करता है। अतएव वेदका काल निर्णय करना कठिन है। कालनिर्णय उसीका हो सकता है जो मनुष्यकृत है, अपीदयेव प्रथमका कालनिर्णय हो नहीं सकता।

वैशेषिक, न्याय, सांख्य और पातञ्जलदर्शनमें भी वेदका प्रामाण्य स्वीकृत हुआ है। किन्तु वेद मरुत्क या ईश्वरकृत है, ऐसी कोई बात नहीं कही गई है। कोई कोई कहते हैं, कि उम्होंने वेदको ऋषिकृत कहा है। किन्तु हम लोग इसे विश्वास नहीं करते। ऋषिगण ही वेदके कर्त्ता हैं, यह बात किसी भी दर्शनमें देखी नहीं जाती। ऋषियों द्वारा वेद प्रकाशित हुए, यही दार्शनिकोंका अभिप्राय है। वेदकी सभ्ये "सिद्ध" कह कर स्वीकार किया है। पतञ्जल कहते हैं—

"नित्यपूर्वावचो विद्वत्तः।"

अर्थात् सिद्धांशु नित्यपूर्वावचो है। अतएव पतञ्जलकी उक्तिमें भी वेदका नित्य माना है।

किसी किसी मन्त्रमें ऋषिकृत निश्चय और ऐतरेयब्राह्मणमें उसका प्रमाण मिलता है। यथा—

१। 'विश्वाभिरऋषिः * गदोऽनुष्टुपाय गाथा भवतेति।' (निक० २।१।२)

२। "ऋषियुक्ता विलपितं वेदयन्ते।" (निय० ५।१।२)

३। "गृत्सममर्दमर्दमगृत्विचतं कपिञ्जलोगमिषयाशे तदभियादिभ्येष्वगमति।" (निय० ६।१।४)

निश्चयके इन सब पक्षोंमें द्वारा कोई कोई कहते हैं, कि वेद ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ है। इसके सिवा ऐतरेयब्राह्मणमें भी ऐसे प्रमाण देखनेमें आते हैं। यथा—

"वर्षं ऋषिर्मन्त्रहत्।" (ऐतरेयब्रा० ६।१।१)

उनका यह भी कहना है, कि मन्त्रोंकी समालोचना करनेसे देखा जाता है, कि वेद चीमत्पुरुषकृत है। वेद-मन्त्रके कर्त्ता एक हैं, यह भी प्रतीत नहीं होता। वेद-मन्त्रमें ही उसका प्रमाण है। यथा—

"वक्तृमिव तित्तुना पुनन्तो यत्र पीरा मनशा वा मकत।

अत्र सखायः सख्यानि जानते भद्रैर्वा सदगोर्निहितानिवाचि ॥"

(ऋक्० ५।२।३२)

ये सब पक्षन देख कर इन्होंने यह स्थिर किया है, कि वेद ऋषि-प्रणीत है। दूसरे पक्षका कहना है, कि आदि कविके हृदयमें नित्य सत्य ब्रह्मने वेद प्रकाश किया था। वेद अपीदयेव है।

जो हो, वेद ऋषिप्रणीत ग्रन्थ होने पर भी भव देवता चाहिये, कि हम लोग उसके कालनिर्णयमें समर्थ हैं या नहीं। गाधुनिक लोगोंने बड़े कष्टसे पाणिनिशालका निर्णय किया है। वास्तव पाणिनिसे भी पहलेके हैं। याम्न्यादि क्रमकारणन वास्तवसे प्राचीन है। परकार शाकल्यादि उससे पूर्वतन हैं। ऋक्सन्त्रके प्रणेता शाकटायनादि इनसे भी पहले विद्यमान थे। कल्पसूत्रकार लाट्यानादि शाकटायनादिके भी पूर्वतन हैं। इनके भी पहले कुमुरविष्वादि ऋषियोंने अनु-ब्राह्मण ग्रन्थ प्रकाश किया। इसके भी पूर्व समयमें महोदासादिने ऋकोकानुश्लोकशाब्दिका संप्रद कर तदनुसार ऐतरेयब्राह्मणादि लिखे। इनके भी पहले प्रयादका अर्थलभन कर ऋकोकानुश्लोक शाब्द प्रकाशित हुई। उसके पूर्व समयमें समी-प्रवाद् विकीर्ण भावमें विद्यमान थे। ये सब विकीर्ण प्रवाद भाज

भी ध्रुवि नामने प्रसिद्ध है । इसके भी पहले यज्ञयोग आरम्भ हुआ । इसके भी बहुत पहले यथार्थ या व्यास द्वारा चार संहिताएँ संगृहीत हुईं । इसके पूर्व समयमें मृतमण्डलादि संगृहीत हुए । इसके भी बहुत पहले मित्र मित्र समयमें मित्र मित्र श्रियोंने वैदिक मन्त्र धीरे धीरे प्रकाश किये । अन्वय वेद कब रचा गया, इसका पता लगाना बहुत कठिन है । व्यक्तिनिर्णय द्वारा कालका निर्णय होता है । यहाँ पर व्यक्तिनिर्णय बिल्कुल असम्भव है । जहाँ श्रियियोंकी किन्हीं गन्तका द्रष्टा कहा गया है, यहाँ द्रष्टा शब्दका अर्थ यदि प्रजेता लिया जाय, तो कालनिर्णय सम्भवपर नहीं होता । किसी मन्त्रके द्रष्टा अग्नि है । इस प्रकार नाम द्वारा पचा कालनिर्णय हो सकता है ?

इसके सिवा मनुने स्पष्ट लिखा है—

' भगिन्वापुरविम्बन्तु अथ मदावनातन्व' (१.२३)

इस पञ्चन द्वारा जाना जाता है, कि अग्नि, धातु और रगिसे ही वेद प्रकाशित हुए हैं ।

चेतरेव-ब्राह्मणमें जनमेजय परोक्षित् आदि नामोंका उल्लेख है । इसे देख कोई कोई समझते हैं, कि यह ग्रन्थ अथर्व हो महाभारतके पीछे रचियन हुआ है । ऐसी उक्ति बिल्कुल अयोग्यक है । जनमेजय परोक्षित् आदि नामविशेष हैं । ये सब नाम महाभारतके पहले थे या नहीं, इसका भी पता परिमाण है ? फिर चेतरेव आदि ग्रन्थोंमें ये सब नाम देव कर ही पत्यर्त्थीकालमें येमें नाम नहीं रखे जाने थे, इस पर फिर अविश्रयाम हा पथें किया जाये ? दानिनिके व्याकरणमें भी ब्राह्मण ग्रन्थके प्राचीनत्वका प्रमाण मिलता है । जनमेजय परोक्षित नाम देव कर ही वाद्यारद पहिलेहीं जो कालनिर्णयका उपाय निहाला है, उस पर भी विश्वास किया नहीं जा सकता ।

द्वय श्रयैर्द्वेदितानि "मोम" नाम देवते है । यथा—

"मोषवेद" पु. करिणोत्र वेम्ब" (षू. ८.१५१)

इसमें इन श्लोकोंके पठित्व समझ सकते हैं, कि सुविद्याम भोत्रराज्ञके बाद ही वेद रचा गया है । इन श्लोकोंके अन्वयमें ही वेदमापक उद्यतका अन्वय हुआ । यहाँ उपर भी वेदरचनाके समसामयिक

यक्ति है । इस प्रकार नाम देव कर कालनिर्णयका उपाय भाषिकार करना जो उपहासका विषय है, यह सब कोई समझ सकते हैं ।

वेद अति गम्भीर है । इसका अर्थबोध सद्गते नहीं होता । वेदका अर्थ समझनेके लिये ही पढ़ना ही सृष्टि हुई है । यह मनुष्येदके साथ पढ़ना 'वेदका पढ़ना' और अपरा विधा कहलाता है । गुण्डक उपनिषद्में लिखा है—

"ये विद्ये वेदितव्ये इति ऽन्वायदुमन्त्रविद्यो यदन्व परा चैवापरा च । तत्र परा श्रुयैरे मनुष्येदः सामयैरेऽपरायैदः शिक्षारूपो घांशकरणं निदक्तं उन्वा ज्योतिषमिति । अथापरा यथा तद्दक्षरभगिण्यते ।"

(१.१४-५)

अर्थात् ब्राह्मणविद्युमान कहते हैं, कि अपरा और परा ये दोनों विधा ही श्रेय है । श्रुयैरे, मनुष्येदः सामयैरे और अर्थायैरे ये चारों वेद तथा शिक्षा, अन्व, घांशकरण, निदक्त, उन्वा और ज्योतिष यह पढ़ना है । ये सब अपरा विधा कहलाते हैं । जिस विधा द्वारा यह अक्षर पदार्थ जाना जाता है, यही परा विधा है । मंत्र और ब्राह्मणसंहिताकारमें प्रयिन होनेके बाद इस पढ़ना ही सृष्टि हुई । पढ़ना अर्थ देखो ।

वेदका मंत्र समझनेमें पहले श्रुति, उन्वा और देवता इन तीन विषयका ज्ञान होना आवश्यक है ।

श्रुति, उन्वा, देवता और विनियोगके विषयमें ज्ञान रहना ब्राह्मण ब्राह्मणके लिये निताम प्रयोजनीय है । वैदिक नियमकारोंमें इस सम्बन्धमें बहुत अनुशासन किया है ।

वेदवाङ्मयके मंत्रादिके श्रुति, उन्वा, देवता और विनियोगका विषय ज्ञान न रहना दुर्लभ बात है । शास्त्रकार कहते हैं, कि वैदिक मंत्रादिके श्रुति, उन्वा, देवता और विनियोगका विषय ज्ञान बिना जो वेदका अध्ययन, अध्ययन या मंत्रादिका जप करते हैं उन्हें अध्ययनप्रसन्न होता पड़ता है । किया हेतु श्रुति, उन्वा, देवता और मंत्रादिको न जान कर यदि ब्राह्मण मंत्रका प्रयोग करे, तो वह प्रयोग मंत्रादिके कहलाता है । महाभाष्य भी इस बातको समर्थन करते हैं । यथा—

“मन्त्रोद्गीतः सततो वर्णोती वा ।”
इस सम्बन्धमें और भी जालीय विधिवाक्य है ।
यथा—

“स्वरो वर्णोऽनरं मात्रा विनियोगोऽयं एव च ।
मन्त्रजिहासमानेन वेदितव्यं पदे पदे ॥”
अर्थात् मंत्रपाठार्थके लिये स्वर, वर्ण, अक्षर, मात्रा,
विनियोग और अर्थ पद पदमें वेदितव्य है ।

श्रुति ।

यहां श्रुति प्रभृतिके सम्बन्धमें कुछ आलोचना को
जाता है—“श्रुति श्रुतगती सर्व घातुभ्य इत् ।” (उष्
४।१६) “श्रुतघात् किन् ।” (उष् ४।२१) इसी
प्रकार “श्रुति” शब्द “द्वयुत्पादित” हुआ है । तैत्तिरीय
आरण्यकमें लिखा है—“अत्रान् ह वै प्रथोऽस्तपस्यमानान्
ब्रह्म स्वयन्तम्यानर्वत्तुद्वययोऽभवन् ।” (२।६०।१)

जिन्होंने ईश्वरकी कृपासे पहले पहल अतोन्द्रिय वेदके
दर्शन पाये थे, वे ही श्रुति हैं । यथा स्मृति—

“युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेविहोषान् मरुष्ये ।

लेभिरे तपसा पूर्वमनुशाता स्वयन्मुवा ॥”

युगान्तमें इतिहासके साथ जब समस्त वेद अन्त-
र्हित हुए, तब स्वयम्भुके कहनेसे महर्षियोंने तपस्या द्वारा
इतिहासके साथ समस्त वेदोंको पाया था ।

मन्त्रज्ञत् श्रुतिगण्य ।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है, कि ईश्वरगण, श्रुतिकृगण
और उन्हींको तरह जो हैं, वे ही मन्त्रकृत् श्रुति हैं ।

“ईश्वरा श्रुतिकारचैव ये चान्ये वै तथा स्मृताः ।

एते मन्त्रकृताः सर्वे कृत्स्नरास्त्राग्निषोष ॥”

(अनुपन्न ६।४।६५)

ब्रह्माके मानससे जो स्वयं उत्पन्न हुए हैं वे ही ईश्वर
हैं । इनकी संख्या १० है । यथा—भृशु, मरीचि,
अग्नि, अङ्गिरा पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, यज्ञिष्ठ और
पुलस्त्य । उक्त १० ईश्वरके पुत्र ही श्रुति हैं तथा

• “भृशुर्गरीचिर्विन्च अङ्गिराःपुनहः क्रतुः ।

मनुर्दक्षोः पयिश्चक्र पुलस्त्यवरचैवि ते दरा ॥

ब्रह्मणो मानसास्ते उक्ते ताः स्वयमीश्वराः ॥”

(ब्रह्मपदपु० अनु० ६।४।८८)

† “ईश्वराणां युगान्त्येते श्रुत्स्वराग्निषोषा ॥”

(ब्रह्मपदपु० अनु० ८२ श्लोक)

श्रुतिपद्धतियोंके गर्भसे उत्पन्न श्रुतिपुत्रगण श्रुतिक नाम-
से प्रसिद्ध हैं । शुक्र, गृहस्वति, करपय, उताना, उतप्य,
यामदेव, अषोष्य, उजिन्न, कर्दम, विधवा, शक्ति, वाङ्-
विलियगण और धरगण श्रुति हैं । यस्सर, नमद्, गर-
ह्राज, बृहदुक्थ, शरद्वान्, ऋगस्त्य, अङ्गिरा, दीर्घेयना,
याज्ञश्रवा, सुविच, सुवाश्वेय, परायण, द्योच, गङ्गमान्
और राजा वैश्रवण ये सब श्रुतिक हैं । ब्रह्माण्डपुराण-
कारने इन सब श्रुतियों और श्रुतिकों तथा दृमरे जिन
सब वेदमंत्रकारकोंका उल्लेख किया है, उनके नाम ये
हैं—

भृशु, काश्य, प्रचेता, आत्मवान्, शीर्ष, जमदग्नि,
विद, सारस्वत, आर्षिपेण, अरुप, धीतहृष्य, सुमेधा,
वैष्य, पृथु, विद्योदास, प्रभार, शृत्समद् और नमः ये
उन्मोस श्रुति मंत्रवादी हैं । अङ्गिरा, मेघस, भारद्वाज,
वास्कलि, अमृत, गार्ग्य, शोनी, संहति, पुरुकृतस,
मान्वाता, अश्वरीय, आहाप्य, आजमीढ, श्वभ, यलि,
पृथग्भ्य, विरुप, कष्य, मुद्गल, युवनाभ्य, पौहकृतस,
तसदस्यु, सदस्युमान्, उतप्य, याज्ञश्रवा, धायाण्य,
सुविच, वामदेव अङ्गिरा, गृहदुक्थ, दीर्घेयना और
कशीवान् ये तैत्तिरीय अङ्गिरसके पुत्र हैं । ये श्रेष्ठ श्रुति-
पुत्रगण मंत्रप्रणयनकर्ता हैं ।

कश्यपपुत्रगण, यथा—काश्यप, परस्वार, यिन्नम,
रेभ्य, असिन और देवल ये छः काश्यप हैं । ये सभी
ब्रह्मवादी हैं । अग्नि, अचिन्यन्, श्यामवान्, निष्ठुर,
बलशूतक, धोमान् और पूर्वार्तिधि ये सभी अत्रिके पुत्र
हैं, महर्षि और मंत्रद्रष्टा हैं ।

यज्ञिष्ठ, शक्ति, परागर, चतुषं इन्द्रमति, पञ्चम
भरहृत्, पण मैत्रावरुण, सतम कुण्डिन, अष्टम सुधृम्भ,
नवम गृहस्वति और दशम भरद्वाज । इन्होंने मंत्र और
ब्राह्मणका संकलन किया । ये ही मंत्रादिके कर्ता
और विद्यार्थके धर्ममकारक हैं । इन्होंने मिल कर ब्रह्म
(वेद) और वेदशास्त्रका लक्षण किया है ।

(ब्रह्मपदपु० ६।४—६५ म०)

• “श्रुतिपुत्रान् श्रुतिवाङ्मन्त्रोऽप्यन्तर्निषोष ॥”
(ब्रह्मपदपु० अनु० ६२ श्लोक)

पैदिक देवता।

अथ, मान, यज्ञः और अथर्ववेदमें हम मंतात्मक अनेक देवताओंका उल्लेख पाते हैं। उनको जलिके नामोंका वर्णन है तथा मानयज्ञातिमें उनका प्रमाण देखा जाता है, मंत्र पढ़नेसे ही उसका पता चलता है।

किन्तु वेदका देवतत्व एक प्रकारसे घटना है। सब प्रकारके यज्ञों और यज्ञादिमें फलदानके लिये जिस क्रिमो पदार्थको स्तुति की जाती है, वे ही उस मंत्रके देवता हैं।

वेदमें आकाशमण्डलवासी देवताओंको ही अधिप प्रधानता तथा गुणकोर्त्तन देखा जाता है। देवताएँ इस प्रकार विनाश होने पर भी इसमें यथेष्ट विद्यमान हैं। यास्कका कहना है, कि देवगण विस्थानवासी हैं— अग्नि पृथिवीवासी, वायु अन्तरीक्षवासी और सूर्य पृथ्वीवासी। कोई कोई वायुको ही इन्द्र कहते हैं, यथा "वायु ईन्द्रः।" किन्तु वे सब पदार्थ जब वैदिक मन्त्र द्वारा घोषित होते हैं, तब वे देवता कहलाते हैं; देवता मन्त्रमय हैं, यही मंत्रोंको सिद्धांत है।

प्रायः तैत्तिरीय वेदके देवताओंका प्रवाद है, तथापि वेद पढ़नेसे मालूम होता है, कि वेदमें प्रधानता तैत्तिरीय देवता कल्पित हुए हैं।

ऐतरेयब्राह्मणमें तैत्तिरीय देवताओंका विभाग इस प्रकार है, ८ यजुः, ११ इन्द्र, १२ आदित्य, १ प्रजापति, और १ अथर्वकार यही तैत्तिरीय देवता हैं।

अथ प्रश्न होता है, कि उक्त अष्ट यजुः कौन कौन हैं? निरुक्तकारका कहना है, रश्मिपत्रोंके अणु ही यजुः कहलाते हैं। फिर निरुक्तके दूसरे स्थानमें (१५।१८) लिखा है, कि पृथ्वीवासी देवताओंके अणु ही यजुः नामसे प्रामाण्य हैं।

निरुक्तके मतसे पार्थिव अग्निनिष्ठासमूह, अथर्वनामिका और सूर्योत्थित यजुः कहलाते हैं तथा सूर्यो, अन्तरीक्ष और पृथ्वी त्रिविध स्थान इनके नामस्थान कल्पित हुए हैं। मानयज्ञादिमें कहते हैं कि अग्नि, सूर्यो, वायु, अन्तरीक्ष, आदित्य, पृथ्वी, इन्द्र और अथर्व वे ही यजुः हैं। इन सबोंके मध्य अथर्वके यज्ञो पदार्थोंका नाम है, अथर्व वे यजुः हैं। (अथर्वब्राह्मण १।५।७४)

अथर्व अग्नि ही अष्ट यजुः हैं, यही सार वैदिक सिद्धांत है।

कहीं कहीं अग्निको भी यजुः कहा है, फिर कहीं कहीं इन्द्रको ही यजुःको कल्पना की गई है। मानयज्ञ ब्राह्मणमें यज्ञगणको वायु कहा है। यथा—

"कतम इन्द्रा इति, दग्मिं पुष्ये प्राणा आत्मैकाद्ग- स्ते यद्स्वाम्भवाऽन्तरोवायुन् काम्यरतम रोदयन्ति तद्- यद् रोदयन्ति तस्माद् इन्द्रा इति।" (१।५।७५)

तैत्तिरीय आरण्यकमें वायुके स्वारो मेद कहे गये हैं। आदित्यसमूह—आदित्यगण पृथ्वीवासी देवता हैं। निरुक्तकारने आदित्य इन्द्रका जो निर्वचन किया है, वह विद्वानसिद्धांतसम्मत है। यथा—"आदिके रसान्, आदिके भासं ज्योतिषाम्, आदिके भासा इति या अदितेः पुत्र इति या"—(२।७।२)

इस निरुक्त द्वारा जाना जाता है, कि जो रस प्रदण करते हैं अथवा उपोत्थित पदार्थको प्रमा प्रदण करते हैं अथवा जो अदितिके पुत्र हैं वे ही आदित्य हैं।

इसके सिवा इसका और भी एक निर्वचन है जिसका अर्थ है, जो पृथ्वीवासी देवताओंके अग्र- गामो है वे ही आदित्य हैं। मानयज्ञादिमें लिखा है—

"कतमे आदित्या इति, द्वाद्ग मासाः, हांवरसर- भ्येन आदित्याः, यते हांर्त्त सर्वाभाद्दाना यन्ति, तस्माद्- आदित्याः इति।" (१।५।७६)

मानयज्ञादिमें जिस प्रकार द्वाद्ग आदित्योंका उल्लेख है, अथर्वनामिका वैदिक ग्रन्थमें भी वैसा ही देखा जाता है। वैदिक आदित्यमें द्वाद्ग आदित्यके द्वाद्ग नाम देवतामें आते हैं। यथा—

सर्वता, मण, सूर्य, पूषा, विभ्यावर, विष्णु, सधन, भेजो, पूषाकपि, यर्मिना, यम, अत्रैरवाद् योः समुद्र।

द्वाद्ग नामके लिये द्वाद्ग आदित्यको कल्पना की गई थी। अग्निपत्रमेद और कर्ममेदके देवतामेदकी कल्पना होती है, यह निश्चयसम्मत है। अथर्व एक अथर्व पदार्थ ही अग्निपत्रमेद और कर्ममेदमें अग्नि, विष्णु और सूर्य इन तीन नामोंमें अग्निदिग् हुए हैं। फिर एक अग्नि ही अग्नि, अन्तरीक्ष, पृथ्वीवासी और

धैर्यानर इन चार देवतारूपमें विभक्त हुए हैं ।

वेदमें प्रजापति देवताका नाम ब्राह्मणकारणमें विवाह-संघमें कई जगह आया है । निम्नलिखित कहे हैं—

“प्रजापतिः प्रजानां पाता वा पात्रयिता ।”

ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है—“प्रजापति यां इदमेक पक्राम आस, सोऽकामयत प्रजापेय भूयान्मुसायिति ।”

(ऐतरेयब्राह्मण २।५।७)

यह धृति पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्रजापति देवताको वेदमें परमेश्वर कहा है । इसके सिवा अग्राग्य स्थानोंमें और भी अनेक अर्थोंमें प्रजापति शब्दका व्यवहार है । यास्कने इस सम्बन्धमें एक विशद व्याख्या की है । यथा—

“यस्यै देवतोर्वै हविर्गृहीतं स्यात् तां मनसा धवायेद् वपट्करिष्यन्निति ह विशायते ।” (निष्क ५।२।७)

ऐतरेय ब्राह्मणमें इसकी और भी सुस्पष्ट और पूर्ण व्याख्या देवनेमें आती है । यथा—“यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्, तां मनसा धवायेद् वपट्करिष्यन् साक्षादेव तद्देवतां प्रीणाति प्रत्यक्षाद् देवतां यजति ।”

(३।१।८)

अर्थात् जिस देवताके लिये हविः गृहीत होता है, यजमान वपट् ध्वनि करके साक्षात् सम्बन्धमें उन्हें परि-तुष्ट करते हैं तथा प्रत्यक्षमें देवताको यजन करते हैं । (वषट्ध्वनिको “वौषट्” कहते हैं ।) यही उच्च ध्वनि वपट्कार देवता है ।

शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

“प्राणो मे वपट्कारः ।” (५।२।१२६)

यद्यपि शतपथब्राह्मणमें वपट्कारको कथा उल्लिखित है, किन्तु ऐतरेयब्राह्मणकी तरह शतपथब्राह्मणमें वपट्कारको तेत्तोस देवताओंके अन्तर्भूक्त नहीं किया गया है । शतपथब्राह्मणमें वपट्कारको जगह “इन्द्र” शब्द देवनेमें आता है । यथा—

“अद्यै वसव पकादश रुद्रा शब्दशादित्वा स्तु पक-त्तिंशत् इन्द्रश्च प्रजापतिश्च तपद्विशी ।”

(१।१।१।१२)

शतपथब्राह्मणमें वैदिक इन्द्र देवताको भी संख्या की गई है । शतपथब्राह्मण कहते हैं—

“स्तनपितरुर्दे इन्द्रः”

अर्थात् स्तनपितरु ही इन्द्र हैं । यदा पर स्तनपितरु शब्दका अर्थ मेघनालक यासु विशेष है ।

वेदमें इन ३३ देवताओंको “सोमपा” अर्थात् सोम-रस-पानकारो देवता कहा है । किन्तु इनके सिवा वेदमें और भी अनेक देवताओंका उल्लेख है । ये ‘सोमपा’ नहीं कहलाते हैं ।

वह्नि, इधम, ऊषा, नका, स्वष्टा, तनुगपात्, इषा, स्वाहाऽस्तु, नराशंस, वनस्पति और खिएष्टु ये ग्यारह असोमपा देवता कहलाते हैं । इनके अतिरिक्त तैत्तिरीयमें उपयाजदेवताओंका नामोल्लेख देवनेमें आता है । यथा— समुद्र, अन्तरीक्ष, सविता, अहोरात्र, मितायद्य, सोम, यष्ट, छन्द, धावापृथिवी, दिव्य, नमः और यैश्वानर । इन सब देवताओंको संख्या ६४ या ६५ है । इनके अतिरिक्त वेदमें जिन सब पारिभाषिक देवताओंका उल्लेख देवनेमें आता है उनकी गणना करना यद्यपि बिलकुल असम्भव नहीं है तो सद्गजसाध्य भी नहीं ।

यास्कने स्वर्गोय, अन्तरीक्ष और मर्त्य इन त्रिविध देवताका उल्लेख किया है । यथा—

- १ घौः, २ वद्य, ३ मित्र, ४ सूर्य, ५ सवितु, ६ पूषा, ७ विष्णु, ८ विषसवत्, ९ आदित्यगण, १० दक्ष ११, ऊषा, १२ अश्विन्य ये स्वर्गोय देवता कह कर पूजित हैं, १३ इन्द्र, १४ तित आत्य, १५ अपानपात, १६ मातरिभ्य, १७ महिषुध्न्य, १८ अन्नपकपाद, १९ रुद्र, रुद्रगण, २० मरुद्रण, २१ वायु-यात, २२ पर्शन्त्य, २३ आपः, ये आन्तरीक्ष हैं तथा २४ नदो और जल, २५ पृथिवी, २६ अग्नि, २७ वृष्टस्पति २८, सोम ये मर्त्या हैं ।

पतञ्जल विश्वकर्मा, प्रजापति, मरुतु, ध्रुवा, अदिति, दिति, विश्वदेवा, सरस्वती, सुगता और इना आदि देवियों, श्रुभुगण, स्वष्टा, इन्द्राणा आदि देवियों, पुरिन, यम, आर्षोम, वसुगण, उगना, यैश्वानर, ३३ देवता, आर्षोदेवता, रोदसी, श्रुभुसा, राका, सितोषाली, गृह्ण, रात्रि, धियणा आदि देवताओंके नाम भी श्रुगेषमें देये जाते हैं । श्रुगेषमें कहीं कहीं धावापृथिवी, मितायद्य आदि कुछ देवद्वयको शक्तिपूजा भी पक्क प्रचलित देयी जाती है । विद्येय विद्येय मरुघर्ष और अन्तरीयण तथा

वैदिक देवता।

शुक्र, शाम, यहुः और अथर्ववेदमें हम मंत्रात्मक अनेक देवताओंका उल्लेख पाते हैं। उनको जति कौनो कार्यकारी है तथा मानवजातिमें उनका प्रभाव कैसा पड़ता है, मंत्र पढ़नेसे ही उमका पता चलेगा।

किन्तु वेदका देवतत्व एक प्रकाण्ट घटना है। सब प्रकारके यमों और यज्ञाङ्गोंमें कल्पदानके लिये जिस किसी पदार्थको स्तुति की जाती है, वे ही उस मंत्रके देवता हैं।

वेदमें आकाशमण्डलवासो देवताओंको ही अधिक प्रधानता तथा शुभकोर्षण देना जाता है। देवतत्व इस प्रकार विनाश होने पर भी इसमें यथेष्ट विनिष्टता है। वास्तवका कहना है, कि देवगण स्थलधामवासो हैं— अग्नि पृथिवीवासो, वायु अग्निरोषवासो और सूर्य चन्द्रावधामसो। कोई कोई वायुको ही इन्द्र कहते हैं, यद्यपि "वायु ईन्द्रः।" किन्तु वे सब पदार्थ अब वैदिक मन्त्र द्वारा चोत्तिग होने हैं, तब वे देवता कहलाते हैं; देवता मन्त्रमयो हैं, यही मोगांसकोका सिद्धांत है।

यद्यपि तैत्तिरीय कोटि देवताओंका प्रवाद है, तथापि वेद पढ़नेसे मालूम होता है, कि वेदमें प्रधानतः तैत्तिरीय देवता कल्पित हुए हैं।

ऐतरेयब्राह्मणमें तैत्तिरीय देवताओंका विभाग इस प्रकार है, ८ वायु, ११ इन्द्र, १२ आदित्य, १ यज्ञापति, और १ षण्डकार यही तैत्तिरीय देवता हैं।

अब प्रश्न होगा है, कि उक्त अष्ट वायु कौन कौन हैं? निरुक्तकारका कहना है, हरिमर्षिके असु ही वायु कहलाते हैं। फिर निष्पट्टके दूसरे स्थानमें (५।१।२८) लिखा है, कि चन्द्रावधामसो देवताओंके असु ही वायु नामसे प्रसिद्ध हैं।

जिहलके तमने पार्थिव अग्निजिगामसूद, यैच माग्निजमा और सूर्यहरिम वायु कहलाते हैं तथा पूरवी, अन्वरोष और चन्द्रावधामसो इनके आत्मरूपान कल्पित हुए हैं। अतएवब्राह्मण कहते हैं कि अग्नि, पूरवी, वायु, अन्वरोष, आदित्य, चन्द्रावधाम और अन्वरोष ये ही वायु हैं। इन सबके मध्य अगस्त्यके अग्नी पदार्थोंका नाम है, अन्वरोष ये वायु हैं। (अतएवब्राह्मण १।५।१७)

अद्विप अग्नि ही अष्ट वायु हैं, यही सार वैदिक सिद्धांत है।

कहीं कहीं अग्निको भी इन्द्र कहा है, फिर कहीं कहीं इन्द्रको ही इन्द्रको कल्पना की गई है। अतएव ब्राह्मणमें इन्द्रगणको वायु कहा है। यथा—

"कतम इन्द्र इति, इगमे पुष्टये प्राणा आरुमीकाङ्गान्- स्ते पदस्मान्मर्यादचरोयायुन् काङ्कयन्तम रोद्वगित तद्- पद् रोद्वगित तस्मान् इन्द्र इति।" (१।५।३।५)

तैत्तिरीय आरण्यकमें वायुके स्वरूप भेद कहे गये हैं।

आदित्यसमूह—आदित्यगण चन्द्रावधामसो देवता हैं। निरुक्तकारने आदित्य समूहका जो निर्घणन किया है वह विज्ञानसिद्धांतसम्मत है। यथा—"आदित्ये रसान्, आदित्ये भासं ज्योतिषाम्, आदित्यो मासा इति वाः अदित्येः पुत्र इति वाः"—(२।५।२)

इस निरुक्ति द्वारा जाना जाता है, कि जो रस प्रदण करते हैं अथवा उपोत्तार्य पदार्थको प्रमा प्रदण करते हैं अथवा जो अदित्यके पुत्र हैं वे ही आदित्य हैं।

इसके निश्चय इसका नीचे जो एक निर्घणन है जिसका अर्थ है, जो चन्द्रावधामसो देवताओंके अग्न्यागमो है वे ही आदित्य हैं। अतएवब्राह्मणमें लिखा है—

"कतमे आदित्या इति, द्वाद्वा मासा, संवत्सर- रथेन आदित्या, यत्ते होर्द सर्वामाद्वाना वगित, तस्मादा- दित्याः इति।" (१।५।३।६)

अतएवब्राह्मणमें जिस प्रकार द्वाद्वा आदित्योंका उल्लेख है, अग्न्यागम वैदिक ग्रन्थमें भी वैसा ही देखा जाता है। वैदिक आदित्यमें द्वाद्वा आदित्यके द्वाद्वा नाम देलनेमें आते हैं। यथा—

अग्निता, अग्नि, सूर्य, पूरवा, विभान्द, विष्णु, तद्वन, अग्नी, पूरवाकपि, अग्निता, अग्नि, अग्निरोषा और अग्नि।

द्वाद्वा नामके लिये द्वाद्वा आदित्यको कल्पना की गई थी। अग्निपानमेद और अग्निमेदसे देवतामेदको कल्पना की जाती है, यह निश्चयसम्मत है। अतएव एक गेह पदार्थ ही अग्निपानमेद और अग्निमेदसे अग्नि, विष्णु और सूर्य इन तीन नामोंसे अग्निदिन हुए हैं। फिर एक अग्नि ही अग्नि, आग्नेय, अग्निरोष और

श्वानर इन चार देवतारूपमें विगणत हुए हैं।

वेदमें प्रजापति देवताका नाम ब्राह्मणकाण्डमें विवाद-
सफलमें कई जगह आया है। निरुक्तकार कहते हैं—

“प्रजापतिः प्रजानां पाता वा पात्रपतिः।”

पेत्रेयब्राह्मणमें लिखा है—“प्रजापति र्या इदमेक
पक्राम नास, सोऽक्रामवत प्रजापेय भूयान्नुत्सामिति ।”

(पेत्रेयब्राह्मण-२।५।७)

यह ध्रुति पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्रजापति
देवताको वेदमें परमेश्वर कहा है। इसके सिवा
अप्याय्य स्थानोंमें और भी अनेक अर्थोंमें प्रजापति
शब्दका व्यवहार है। यास्कने इस सम्बन्धमें एक
विशद व्याख्या की है। यथा—

“यस्यै देवतायै हविर्द्युं हीतं स्यात् तां मनसा ध्यायेद्
धपट्करिष्यन्मिति ह विहायते।” (निष्क ५।२।७)

पेत्रेय ब्राह्मणमें इसकी और भी सुस्पष्ट और पूर्ण
व्याख्या देखनेमें आती है। यथा—“यस्यै देवतायै
हविर्द्युं हीतं स्यात्, तां मनसा ध्यायेद् धपट्करिष्यन्
साक्षादेव तद्देवतां प्रीणाति प्रत्यक्षाद् देवतां यजति।”

(३।१।८)

अर्थात् जिस देवताके लिये हविः श्रुत होता है,
यजमान धपट् ध्वनि करके साक्षात् सम्बन्धमें ऊँहें परि-
तुष्ट करतें हैं तथा प्रत्यक्षमें देवताको यजन करते हैं।
(उपध्वनिको “धौपट्” कहते हैं।) यही उच ध्वनि
धपट्कार देवता है।

शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

“प्राप्यो भौ धपट्कारः।” (५।२।१२६)

यद्यपि शतपथब्राह्मणमें धपट्कारको कथा उल्लिखित
है, किन्तु पेत्रेयब्राह्मणकी तरह शतपथब्राह्मणमें धपट्-
कारको तैत्तिरीय देवताओंके अन्तर्भूत नहीं किया गया
है। शतपथब्राह्मणमें धपट्कारकी जगह “इन्द्र” शब्द
देखनेमें आता है। यथा—

“अथौ वसव एकादश यद्रा द्वादशादित्वा स्तु पक-
तिं शत् इन्द्रश्च प्रजापतिश्च तपस्त्रिणी।”

(१।१।१।१५)

शतपथब्राह्मणमें वैदिक इन्द्र देवताकी भी संख्या की
गई है। शतपथब्राह्मण कहते हैं—

“स्वनविरतुरेव इन्द्रः”

अर्थात् स्वनविरतु हो इन्द्र है। यदा पर स्वनविरतु
शब्दका अर्थ मेघचालक वायु विशेष है।

वेदमें इन ३३ देवताओंको “सोमपा” अर्थात् सोम-
रस-पानकारो देवता कहा है। किन्तु इनके सिवा वेदमें
भीर भी अनेक देवताओंका उल्लेख है। ये “सोमपा”
नहीं कहलाते हैं।

यदि, इधम, ऊषा, नका, स्वष्टा, तनुगपात्, इडा,
स्वाहाष्टुत्, नराशंस, वनस्पति भीर क्षिष्टुत् ये ग्यारह
असोमपा देवता कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त तैत्तिरीयमें
उपयान् देवताओंका नामोल्लेख देखनेमें आता है। यथा—
समुद्र, अन्तरोक्ष, सविता, महोरगत, मितापयण, सोम,
यह, छन्द, चावापृथिवी, दिव्य, नमः भीर ये श्वानर।
इन सब देवताओंकी संख्या ६४ या ६५ है। इनके अति-
रिक्त वेदमें जिन सब पारिमायिक देवताओंका उल्लेख
देखनेमें आता है उनकी गणना करना यद्यपि बिलकुल
असम्भव नहीं है तो सहजसाध्य भी नहीं।

यास्कने स्वर्गीय, अन्तरोक्ष और मर्त्य इन त्रिविध
देवताका उल्लेख किया है। यथा—

१ घोः, २ वषण, ३ मित्र, ४ सूर्य, ५ सवितु, ६ पूषा,
७ विश्व, ८ विश्वस्व, ९ आदित्यगण, १० दक्ष ११, ऊषा,
१२ अश्विन्य ये स्वर्गीय देवता कट कर पूजित हैं, १३
इन्द्र, १४ त्रित आप्य, १५ अर्षानपात, १६ मातरिभ्या,
१७ महिभुंध्य, १८ अन्नपकृपाद्, १९ यद्र, यद्रगण, २०
मरुद्रगण, २१ वायु-वात, २२ पर्षान्य, २३ मायः, ये
अन्तरोक्ष हैं तथा २४ नदो भीर जल, २५ पृथिवी, २६
मग्नि, २७ वृहस्पति २८, सोम ये मर्त्य हैं।

एतद्भिन्न विम्बकर्मा, प्रजापति, मरु, धन्वा, अदिति,
दिति, विम्बदेवा, सरस्वती, सुवृता और इडा आदि
देवियाँ, अश्रुगण, स्वष्टा, इन्द्राणा आदि देवियाँ, पुरिन,
यम, आप्योत्स, वसुगण, उशना, श्वानर, ३३ देवता,
आयोदेवता, शैदसो, अश्रुमसा, राका, सिनोपाठी, मुद्गा,
रात्रि, धियणा आदि देवताओंके नाम भी अश्वेदमें देते
जाते हैं। अश्वेदमें कहीं कहीं चावापृथिवी, मितापयण
आदि कुछ देवत्वकी शक्तिपूजा भी एकत्र प्रचलित देखी
जाती है। विधीय पिदेष गम्पर्व और अस्तरोमण तथा

अथर्वगणनि और वास्तोऽगनि आदि श्रेष्ठ वर्ण पृथ्वरक्षक देववर्त्मनेमी वैदिक प्रथादिमें अथर्वशास्त्र निम्नस्तरमें स्थान पाया है। इस सब देवताओंका विवरण यथास्थानमें लिखिए हो चुका है, इस कारण यहाँ उनका उल्लेख करना निम्नयोग्य है।

यद्यपि वेदमें इस प्रकार असंख्य पारिभाषिक देवताओंका उल्लेख देगनेमें आता है, तथापि वेदके मुख्य भागमें अग्नि, वायु, इन्द्र और सूर्यके ही अनेक स्तोत्र देने जाते हैं। किन्तु निश्चयकारने तीन मुख्य देवताओंको बात लिखी है। यथा—“तिस्रो देवता इति”

ये तीन देवता अग्नि, वायु और सूर्य हैं। इसी कारण निम्नकारने कहा है—

“अग्नि पृथिव्यांस्थानो वायुर्ष्वे इन्द्रो वास्तोरोक्षस्थानः सूर्यो च स्थानः।” (७।१।२)

इससे ज्ञाना जाता है, कि पृथिव्यामें अग्नि ही मुख्य देवता है। यहाँ जनादि अन्नधान देवता हैं। अर्थात् अन्नधानदेवता तथा इध्मांद् अचेतनदेवता यहाँ पर पारिभाषिक देवता माने गये हैं। अन्तरोक्षमें वायु या इन्द्र ही मुख्य देवता, पर्जन्यादि अन्नधान देवता, इध्मांदि अन्तरोक्षपर चेतन देवता तथा वागादि अचेतन देवता अन्तरोक्षके पारिभाषिक देवता हैं। फिर पृथ्वीके सूर्य ही मुख्य देवता, अग्नि प्रभृति अन्नधान देवता, हैं। पृथ्वीके ही पारिभाषिक देवताको बात देखी नहीं जाती।

वैदिक साहित्य ।

वैदिक साहित्य अतिप्राचीन भाषाओंकी विज्ञान ज्ञान-परिभाषा विपुल आण्डार है। वैदिक साहित्यकी आलोचना करनेमें ज्ञाना जाता है, कि प्राचीनकालमें इस निगमकल्पवृक्षको जो सैकड़ों शाखायें थीं, उनका अधिकतम विपुल हो गया है। इस महा विपुलके बाद आज भी वैदिक साहित्यके जो सब प्रथम वर्तमान हैं उनको सम्बन्ध आलोचना करना भी असम्भव है। हम भीचे कुछ प्रधान प्रधान वैदिक ग्रन्थोंका परिचय देते हैं।

ऋग्वेद ।

ऋग्वेदसंहिता एक पृथक् ग्रन्थ है। प्राचीन वैदिक साहित्यके संहितामें इस ग्रन्थके ही भाग कर गये हैं।

इस प्राचीन विभागका फिर दो नाम रना जा सकता है। यथा—अतिप्राचीन और अतिप्राचीन। अतिप्राचीनके मतमें ऋग्वेदसंहिता प्रथमतः साठ सप्तके विभक्त हुई है। प्रत्येक सप्तक प्रायः समपरिमित है। फिर एक एक सप्तक साठ सप्तकेमें विभक्त है, प्रत्येक सप्तकेमें ३३ वर्ण हैं। वर्णोंकी कुल संख्या २००६ है। पॉन वर्ण ऋक्का एक एक वर्ण कल्पित हुआ है। यह विभाग केवल प्रथका याष्ट विभागमात्र है। प्रथमोपविषके विभासे यह विभागकल्पना नहीं होती। किन्तु अति प्राचीन विभागकल्पना अथ प्रचारकी है। इस विभागके अनुसार ऋग्वेदसंहिता दस सप्तकेमें विभक्त हुई है। इसमें ८५ अनुपाक (परिच्छेद) तथा १०१७ गूक हैं। प्रचलित सभी ग्रन्थोंकी ऋक्-संख्या १०५८० है। शृण्वेद देतो।

सप्तकेका श्रेणीविभाग, ऐतरेय आरण्यकमें तथा अथर्वनायन और शाङ्खायन इन दो गृह्यसूत्रोंमें स्वयंसे पहले दिखाई देता है। प्रातिनामय और निरुक्तमें इसके सिवा और कोई विभाग कल्पित नहीं हुआ है। शैलोक दो ग्रन्थोंमें ऋग्वेदसंहिताका अध्याय विभाग, ‘द्वयति’ नामसे अभिहित हुआ है। समागमग्रन्थों में ऋग्वेदकी यह आख्या देखनेमें आता है। कारवायनकी अनुक्रमणिकामें सप्तकेविभागका उल्लेख नहीं है। कारवायनने अतिप्राचीन विभागका अनुसरण कर सप्तक और अध्यायको बात लिखी है। शूद्र यजुर्वेदके शाङ्खलायनके त्रिणोय भागमें इस ‘गूक’ शब्दका प्रयोग देखने में है। ऐतरेयब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यक आदिमें भी ‘गूक’ शब्दका प्रयोग है। गर्भ-मान कालमें ऋग्वेदकी शाङ्खलायनके अन्तर्गत शीतानोप उपनामा ही प्रचलित है। जगद जगद वाक्कल शाङ्खाका भी उल्लेख है। इन दोनोंका पाठोप उतना उल्लिख नहीं है। एक प्रधान कारण यह देखा जाता है, कि वाक्कल शाङ्खके इस सप्तकेमें साठ सप्तक अधिक है, किन्तु बहुतेरोंकी धारणा है, कि यह वाक्कलिय भी है। शाङ्ख्य एक सप्तिका नाम है। शाङ्खलायन और गृह्यसूत्रोंमें यह नाम देखा जाता है। यह शाङ्ख्य ही ऋग्वेदसंहिताके ‘सप्तके’ के पदसक है।

(पद्पाठ और क्रमपाठदिका विषय इसके पहले लिखा जा चुका है।) शतपथब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेदका एक ब्राह्मण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें शाकल्यका दूसरा नाम विदग्ध लिखा है। ये विदेहराज जनकके समापण्डित थे। शाकल्य याद्वयस्कके प्रतिद्वन्द्वी कह कर प्रसिद्ध हैं।

श्रग्वेदसंहिताके क्रमपाठके प्रवर्तक पञ्चाल याभ्यय हैं। ऋक्मातिशाख्यमें (११।३३.) ये केवल 'याभ्यय' नामसे ही उल्लिखित हैं। इससे जाना जाता है, कि कुदवञ्चालगण जिस प्रकार क्रमपाठके प्रवर्तक थे, कोशलविदेहगण अर्थात् शाकलगण भी उसी प्रकार पदपाठके प्रचारक।

श्रग्वेदसंहितामें अग्निका स्तोत्र ही सर्वापेक्षा अधिक है। अग्नि पाटिये देवता हैं। ये देवता और मनुष्यके मध्यवर्ती हैं। अग्निकी सहायतासे ही दूरस्थ अन्यान्य देवताओंका आह्वान होता है। अग्निके वाद ही श्रग्वेदमें इन्द्रस्तोत्रका वाहुत्व देखा जाता है। इन्द्र अति शक्तिशाली है, ये मेघचालक और घन्नी हैं। मेघद्वारा गृष्टि होनेसे ही धरा शस्यशालिनो होती है। इन्द्र वृष्टिके कर्ता है। वृत्तासुरके युद्धयावार और मेघवृष्टि घन्नात आदि वर्णनास्त्वक अनेक ऋक् हैं। ऊषाका स्निग्धमसुर कनककरण देव कर आर्योंके हृदयमें जिस कोमल कवित्व भावका सञ्चार होता था, तथा वे ऊषाके उस तरुण सौन्दर्य पर मुग्ध हो जिस भावमें पद लिखते थे, श्रग्वेदमें उसका यथेष्ट परिचय है। इस सम्बन्धमें काण्डोपचारसमय अनेक ऋक् देवतेमें आती हैं। ऊषा सूर्यके आगमनकी सूचना करती है। सूर्य ऊंच कारके विनष्ट करते हैं, प्रकाश देते हैं, भारयन्तिक शैत्यको विनष्ट कर जीवशक्तिको कार्ममें प्रवर्तित करते हैं, सूर्य द्वारा शस्यबीज मद्धू रित होता है, सूर्य ही प्राणशक्ति के मूल निदान और बुद्धिपृष्ठिके प्रेरक हैं, यही सब ज्ञान कर आर्य ऋषियोंने स्वर्गके अनेक स्तोत्र प्रकाश किये हैं।

श्रग्वेदके भाष्यके विषय।

इसके सिवा मित्त, यदण, अभ्येद्वय, विभ्येयगण, सरस्वती, सृता, मय्यगण, अदिति और आदिरयगण, ऋतुगण, ब्राह्मणस्पति, सोम, ऋभुगण, त्यरा, इन्द्राणो,

दोता, शुभियो, विष्णु, पृथिन, नदी, जल, यम, परान्य, अर्चना, पूषा, रुद्रगण, यमुगण, उगना, तिन, वैभानर, मातरिभ्या, इला, आसो, रोदनी, घदिवुंघन, भजवकपात्र, श्रमुक्षा, राका, सिनीयाली और गुंगु आदि देवताओंका स्तोत्र है। कृषिकार्य, मेघपालन, देगन्नगण, पाणिग्य, समुद्रगमन, नदी आदिका भौगोलिक विवरण, ऋक्ष, सीरयत्सर, चान्द्रयत्सर, देवताओंकी गानो और अभ्य, पञ्चकृष्टि, प्राचीन कालके मनुष्यकी परमायु, ऋषिविहितान्या, तन्तुयाय और यत्ननिर्माण, नापित, धर्म, निरःस्त्राण, तनुत्वाण, घाघयन्त, अनार्थके साथ युद्ध, सर्पका उत्पात और सर्पका मन्त्र, पक्षीकी ममङ्गल, धनिका मन्त्र, सूर्यकी दैनिक गति, शस्यादिका विवरण, ऋषि और शिशुकाष्ठकी गाड़ी, रघुनिर्माता गिदगे, सुवर्णसञ्जा विगिष्ट अभ्य, युद्धका अभ्य, अमात्येवेषिन गजस्वभ्य पर आरुद्र राजा, प्रस्तरनिर्मित नगर, मरुतके पूर आर्यराज्यका विस्तार और आर्यराजाओंका युद्ध, दृपदनी, आपया, यमुना, रसा, कुमा, सरस्वती, यदर्भ, त्रिधु, गोमतो, हरियुपियो वा यथावती, विषाना और शतद्रु, नदी, शर्मणावती, जह्नुकन्या या जह्नुवो, धार्जोर्किया नदी, अनार्य्यं चर्वरजाति, कोकटदेग (दाक्षग मगध) चर्वरण, सूर्यग्रहण, ऐथरिक बलकी परकता, एक ईश्वरका अनुभव, सर्पनागकी कथा, दिति और अदिति, स्वर्ग और पृथ्वीकी सिक एक बार सृष्टि, ऋषियोंकी प्रति वृष्टिता, ऋषियोंका संसार और युद्धयावारमें प्रवृत्ति, ऋषियोंकी वर्णानुक्रमसे मन्त्ररक्षा, मुद्राका प्रमलन, लीहकलस, स्वामीके साथ स्त्रीका वपमप्यादन, विवाहके समय चरका वेदा, कर्मकारका मन्त्रा यन्त्र, त्रिषानुक्त गृष्ट, वनायन्त उत्स, द्वाघसुरा आदि रघुनेका चर्मोपाद, द्विष्णयम कवच, विविध आमरण, भावारहित और नासिकारहित अनार्य्योका विवरण, युद्धमें अभ्य व्यवहार, गोचर्म द्वारा आगृत युद्धरथ, युद्धदुन्दुभि, नदीकूल और उर्वरा मूम ले कर विषाद, मरुमूमि, भेरुस्तुमि, पर्वत, नदी, वृक्ष, गो और अभ्य आदिको स्तुति, सर्पावपका मन्त्र, सुदासराज्ञाका विवरण, युद्धाग्न और धायोजन, स्वर्ग और अमरत्वलाभ, कृत्वा नामक ज्ञानार्थ योद्धा, गोवः रस प्रस्तुत करनेकी पद्धति, विविध वैदिक उपाख्यान,

समुद्रमन्थने अमृतलाभ, गङ्गातटवृक्ष अमृत आहरण, अमृतपानसे देवताओंका अमरत्व, नयन मण्डलके देव-भागमें अमृतकी वर्षा, यमघण्टाका श्रम, यमघण्टाका कणोरकपन, अमृत्येष्टिक्रियाका मन्त्र, पुण्यवारा) पूर्ण-पुण्योंका स्वर्गमें शान्ति और वरमाग प्रदण, सत्वका सम्मान, पञ्चतन्त्रवाचकी कथा, स्तोत्र, घेष, कर्माकार आदिवा मित्र मित्र श्रयस्माय, कन्याविवाहमें अमृतार-दान, अग्निदाहप्रथा, शृगंध, मृगिकाका स्थापन, कृप कर्म, यमुष्कारण, मंत्रशोभका चन्द्रप्रथम, सिंह, हरिण, पराह, शृगाल, जगज, गोधा, हस्तो और सर्पादिका उल्लेख, बर्मासे प्रविषीको सम्राजि, सुष्टिभी कथा, प्राचीनकालमें शायीका विधातस्थान, शक्तिप्रकाशकी प्रथा, नाचकी आलोचना, छन्दोव्योतिषकी कथा, मय-रिणपोके ऊपर प्रमुत्वालाभका मन्त्र, गर्भमन्त्र और गर्भरक्षाका मन्त्र, रोगारोगका मन्त्र, अमृत्यनाशका मन्त्र, पंचक घातके अमृत्यनाशका मन्त्र, रात्र्याभिषेक-का मन्त्र इत्यादि अनेक सामाजिक, वैज्ञानिक, गृह आर धार्मिकविषय विविध विषय म्यूताधिक परिमाणमें प्रायेण देवतामें जाता है।

वेदांगव्याख्यान ग्रन्थ ।

प्रायेण वेदांगशास्त्रके अन्तर्गमें निघण्टु और वाक्य के निरुक्त ये दोनों ग्रन्थ अति प्राचीन हैं। देवता प्रथम निघण्टुके टोकाकार हैं। दुर्गावादीने निरुक्तकी सुवसिद्ध शक्ति प्रणयन की। निघण्टुको टोकामें वेद भाष्यकार इन्द्रव्यासोंका नाम देखा जाता है। सावयान-वादी वेदके भागुलक भाष्यकार हैं। वाक्यके समर्थके ले कर सावयक समय तक वेदके किमी भी भाष्यकार-का नाम सुननेमें नहीं आता। अङ्कुराचार्य और उनके शिष्योंमें अतिप्रसिद्ध भाष्य और व्याख्या की। वेदके भाष्य का टीकाकी रचनाके शिष्य वेदांगशास्त्रियोंकी प्रवृत्ति दिखाते हैं। परन्तु अङ्कुराचार्य आनन्दनीचने प्रसिद्धिदिताके कुछ अंगोंका इलाकमय भाष्य किया था। रामभाङ्कुराचार्यने फिर इलाकमय भाष्यकी टीका की। इस सावयक-कृत विश्वरूप प्रामाण्य देखने हैं। इस भाष्यमें अङ्कुराचार मिथ और अमृतव्यासोंका प्रसिद्ध भाष्यकार बताया है। अष्टदशपरिच्छेद, अष्टवेदव्यासों,

सुवराज, राजप और परदराप्रहस भाष्यका कुछ अंग पाया गया है। इनके सिवा मुद्रय, कर्णों, आरनाम्य और कौमिक आदि कुछ भाष्यकारोंके नाम सुननेमें आते हैं। वेदों के प्रसिद्ध हैं, कि अङ्कुराचार्य कृत यजुर्वेदके भाष्यप्रणेता हैं। निघण्टुके टोकाकार देव-राजने भी अपनी टोकामें अङ्कुराचार मिथ, भाष्यदेव, मयस्वामी, सुददेव, शोनिपास और उपर आदि भाष्य-कारोंका नामोन्लेख किया है। उपरने श्रुतसंहिताका कोई भाष्य किया है या नहीं, कह नहीं सकते। किन्तु उपर-कृत शुक्लपञ्चवेद-संहितामें एक भाष्य देखनेमें आता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने श्रुत-प्रातिशाक्यका भी भाष्य किया है।

शुक्लपञ्च वेद ।

प्रायेण वेदों का प्राक्षण प्रसिद्ध है। इनमेंसे एकका नाम ऐतरेयप्राक्षण और दूसरेका नाम शाङ्क्यायन प्राक्षण है। शाङ्क्यायनका दूसरा नाम कौषीक प्राक्षण है। इन दोनों प्रयोगोंका सम्बन्ध अति घनिष्ठ है। दोनों ग्रन्थोंमें अगह अगह एक ही विषयकी आलोचना की गई है, किन्तु कहीं कहीं अर्थात् एक ही विषयकी एक दूसरेके विपरीत अभिप्रायका प्रकाश और प्रचार किया है। कौषीक प्राक्षणमें जैनी सुवयानाओंमें आलोच्य विषयकी आलोचना की गई है, ऐतरेयप्राक्षण-में जैनी सुवयानाओं दिवार् नदी देनी। ऐतरेयप्राक्षण के अतिरिक्त अग अथवायमें द्विज अथ विषयोंकी आलो-चना की गई है, शाङ्क्यायन प्राक्षणमें उपरका कुछ भी उल्लेख नहीं है। किन्तु इस अगावकी शाङ्क्यायन ग्रन्थोंमें पूर्ण हुई है। प्रचलित ऐतरेय प्राक्षणमें ४० अध्याय हैं। ये पाञ्चम अध्याय ८ परिच्छामें विभक्त हैं। शाङ्क्यायन प्राक्षण-में तिरके ३० अध्याय हैं जिनमें ऐतिहासिक चरमा अच्छी तरह जानी नहीं जाती। किन्तु ऐतरेय प्राक्षण-पढ़नेमें ऐतिहासिक विवरण अच्छे तरह जाना जाता है। इनमें अनेक मौनोपिष्ट विवरण हैं। भारतवर्षका उत्तरी प्रदेश जिन किमी समय भारतीयशाका केन्द्र-बन्धन थी, कौषीक या शाङ्क्यायन प्राक्षण पढ़नेमें इसका भी विवरण ज्ञाना जाता है। शुक्लपञ्चवेदोंमें

पैङ्गु श्रृंगिका नामोल्लेख है। अन्याय्य प्रबंधोंमें जो वेद नाम देखनेमें आता है। निरुक्त और महाभाष्यमें पैङ्गु-बन्ध प्रबंधका नाम दिखाई देता है। सायणके समय भी पैङ्गुब्राह्मण प्रचलित था। कौपीतकका नाम शाङ्खायन ब्राह्मणमें बार बार आया है। फलतः शाङ्खायन-ब्राह्मणमें कौपीतकियोंका ही सिद्धान्त आलोचित हुआ है। शाङ्खायन-ब्राह्मणके भाष्यकारने इसीलिये इस प्रबंधका कौपीतक-ब्राह्मण नाम रखा है।

शाङ्खायन और ऐतरेय-ब्राह्मणमें अनेक प्रकारके आश्वान वर्णित हुए हैं। किस प्रकार किस मंत्रका आविर्भाव हुआ यह इन सब आश्वानोंसे मालूम हो गया है।

गोविंदस्वामी और सायणाचार्यने ऐतरेय ब्राह्मणका भाष्य किया है। भाष्यपुत्र विनायक नामक एक परिष्कृत कौपीतक ब्राह्मणके एक भाष्यके प्रणेता हैं।

भारण्यक।

इन दोनों ब्राह्मणके ही भारण्यक प्रबंध है। निजंन मिथुन भारण्यकी निस्तम्भतामें रह आर्यश्रृंगिण जो शाख अध्वयन कर गमीरमायसे ब्रह्मचर्यामें निमग्न रहते थे वही भारण्यक नामसे प्रसिद्ध हैं। भारण्यक प्रबंधमें उपनिषद्का अंश हो अधिक है। हम यहाँ संक्षेपसे पहले ऐतरेय भारण्यककी आलोचना करने हैं।

ऐतरेय भारण्यक।

ऐतरेय भारण्यकके पांच प्रबंध प्रचलित देखे जाते हैं, प्रत्येक प्रबंध "भारण्यक" कहलाता है। द्वितीय और तृतीय भारण्यक एक स्वतन्त्र उपनिषद् हैं। द्वितीय भागका अथशिष्ट परिच्छेद-चतुष्टय वेदान्तप्रबंधके अंतर्भूत है, इस कारण यह ऐतरेय उपनिषद् कहलाता है। द्वितीय और तृतीय भाग महीदास ऐतरेय द्वारा सङ्कलित हुआ है। महीदासने पितालके औरस और इतराके गर्भसे जन्मग्रहण किया। माताके नामानुसार इन्हें ऐतरेयकी उपाधि दी गई।

कौपीतक भारण्यक।

कौपीतक भारण्यकके तीन पण्ड हैं। प्रधान दो पण्ड कर्मकाण्डसे परिपूर्ण हैं। इसका तृतीय पण्ड उपनिषद् प्रबंध है। यह प्रबंध कौपीतक उपनिषद् कह-

लाता है। कौपीतक उपनिषद् एक स्मारगम उपाख्य प्रबंध है। किस प्रकार मानन्दमय ध्यानमें प्रवेष्ट किया जाता है तथा किस प्रकार यह मानन्द उपभोग किया जाता है इस प्रबंधके प्रथम अध्यायमें उसकी आलोचना की गई है। गृह्यष्टक पारिवारिक बंधनादिके लिये उस समयके सामाजिकोंके हृदयमें किस प्रकार कुतुम्भ-कोमला हृदयस्थियोंका विकास हुआ था, द्वितीय अध्यायमें उसका परिष्कृत चित्र देखनेमें आता है। तृतीय अध्यायमें ऐतिहासिक युत्वात्, इंद्रके युद्धादिका उपाख्यान लिपिबद्ध हुआ है। चतुर्थ अध्याय भी आश्वान-में परिपूर्ण है। काशीराज चोरेन्द्रकेशरीने एक छानी ब्राह्मणकी जो उपदेश दिया था इस अध्यायमें यह भी लिखा है। इसमें नाना प्रकारके भौगोलिक विवरण हैं। द्विमवसु और विश्व आदि पर्वतोंके नाम तथा पदाष्टी जातिके लोगोंके नाम इस प्रबंधमें दिखाई देते हैं। सायणाचार्यने ऐतरेय भारण्यक और कौपीतक-भारण्यकका भाष्य किया है।

श्रीमच्छङ्कराचार्य कौपीतक उपनिषद् और ऐतरेय उपनिषद्के भाष्यकर्ता हैं। शङ्करशिष्य मानन्दहान, मानन्दगिरि और मानन्दतोर्ण, अमितयनारावण, नारायणेश्वर सरस्वती, नृसिंहाचार्य और बालकृष्णदास, शङ्करभाष्यकी टीका लिख गये हैं।

इनके सिवा वास्कल-उपनिषद् और मैत्रायणो-उपनिषद् भी श्रुत-उपनिषद् कहलाता है। वास्कल श्रुतिकी कथाका सायणने भी उल्लेख किया है। श्रुत्येदकी वास्कल शाखा विलुप्त होने पर भी वास्कल उपनिषद्ने उस विलुप्त शाखाकी अन्तिम स्मृतिकी भाज भी कायम रखा है।

भीतथ।

श्रुत्येदीय भीतसूत्र ग्रन्थोंमें सबसे पहले आश्वलायन भीतसूत्रकी बात ही उल्लेखनीय है। यह प्रबंध बारह अध्यायमें विभक्त है। शाङ्खायन-भीतसूत्रकी अध्याय संख्या ४८ है। ऐतरेयब्राह्मणके साथ आश्वलायनका घनिए सम्बन्ध है। फिर उपर शाङ्खायनब्राह्मणके साथ शाङ्खायनभीतसूत्रका सम्बन्ध अनिस्पष्ट है। आश्वल श्रुति विश्वेश्वर जनकके होता थे। कुछ लोगोंका कहना

हे, कि. साधनके यह धीनमूल अवस्थित हुआ है, इस कारण इसका नाम साधनत्वमूलक कहा है।

साधनत्वमूलक १५वां और १६वां अध्याय प्राज्ञान प्रणाली भाषा में लिखा है। इसकी रचना प्रणालीकी वहीने प्राचीन मतके ही है। इसका मतसदृशी और अनुसदृशी अध्याय स्वयम् है। उनकी माया भी स्वयम् है। पौराणिक भाषणके प्रथम ही अध्यायके साथ इन दोनों अध्यायोंका सम्बन्ध मजि पणित है। साधनत्वमूलक धीनमूलके साधनत्वमूलकका उद्देश्य है। साधनत्वमूलक धीनमूलके १५वें अध्यायका सम्बन्ध वाया गया है। अध्यायको के नाम ये हैं—नारायणगर्ग, देवताय, विद्यालय मुनि, चन्द्रशाला, द्वापार, मङ्गलमष्ट, नारायण गुरु, महादेव, महामहेश्वर, यदु गुरुनारय और मित्रात्मो। धामदेव, राजसूय, भावमेध, पुण्यमेध और मयमेध यह साधनत्वमूलक और साधनत्वमूलक दोनों ही मूलो-में विचार देना है। किन्तु इन सब यज्ञोंका विषय साधनत्वमूलक ही स्विकार गणित है। नारायण नामक एक गुरुरे सुवर्णितने साधनत्वमूलक अध्याय किया है। यह नारायण और साधनत्वमूलकके अध्यायकार नारायण ही मित्र निर व्यक्ति थे। नारायणगर्ग कृष्णकीके पुत्र और भोगिनके पीत थे। किन्तु साधनत्वमूलकके अध्यायकार नारायणके पिताका नाम यमुनि नामा था। नारायणका प्रथम साधनत्वमूलक अध्याय नहीं है, यद्यपि मात है। प्रथमके अध्याय पर यह प्रथम रखा गया है। अधिनियुक्त विष्णुमें भी अनुसदृशताका नामक इस धीन-मूलक एक अध्याय किया है। महादेवनामो वरदस-पुत्र पणितन भागवतीमें साधनत्वमूलक एक अध्याय प्र-थम किया। इसके तीन अध्याय (१५वां, १६वां और १७वां) का अध्याय नष्ट हो गया। रामनाममें मधु पादित्र कर इन तीन अध्यायोंका अध्याय पूर्ण किया। १३वें और १४वें अध्यायका अध्याय भोगिनमूलक है।

अध्याय १५

साधनत्वमूलकके प्रथम साधनत्वमूलकका नाम साधनत्वमूलकका नाम ही विरल उल्लेखनीय है। शीतलमूलक है, इस कारण साधनत्वमूलक एक गुरुरे मूलमूलक भी नाम सुकर्ममें जाना है। किन्तु यह

नामों कहीं भी नहीं मिलता। साधनत्वमूलकका अध्यायमें विमल है, साधनत्वमूलकके अध्यायमें रखा है। इन सब मूलमूलकों विचार, गर्भधान, ज्ञानकर्मा, भूक, उपनयन, धर्मधर्मका मोर धादादि युक्तियोंका विधान मूलकारमें लिखा है। यमता अनुसदृश साधनत्वमूलकके विषयकी भावनेयता ही मूलमूलक भावनेय विषय है। साधनत्वमूलकके इन अनेक भाषणकारों के नाम सुकर्म हैं। यथा—सुमन्तुमूलक, जैमिनीयमूलक, वैश्वानरमूलक, भाव और वैश्वानरमूलक, मूलमूलक, अन्वयो-अनेक वैदिक प्रथम है। रामनाम नामक एक सुवर्णितने नीतिपारण्यमें यह एक साधनत्वमूलकका एक अध्याय किया है। कुछ लोगोंका कथान है, कि नीतिपारण्यमें ही ये सब मूल संयुक्त हुए हैं। इसके अनिश्चित द्वापार गुरुने मूलमूलकप्रयोगद्वारा नाममें, रघुनाथने अधिनियुक्त नाममें, रामनामने मूलमूलकप्रति नाममें, यामदेवने मूलमूलक नाममें तथा कृष्णकीपुत्र नारायणने भी एक साधनत्वमूलकका अध्याय रखा।

प्रतिशासनम् ।

प्रथमसंहिताका एक प्रातिशासनमूलक है। प्रातिशासन-मूलक शीतलमूलक कह कर प्रसिद्ध है। ये शीतल साधनत्वमूलकके मूलक नाममें जाने हैं। प्रथमप्रातिशासनमूलक एक कथा प्रथम है। यह तीन कादहोंमें विभक्त है। प्रथम कादहमें छाया पटक है। इसमें कुल १०३ कण्डिका देखी जाती हैं। इस प्रथमके प्रथम अध्यायकार विष्णुपुत्र है। इसके बाद उपरने इस अध्यायका संस्कार कर अनिश्चय अध्याय प्रथम किया। प्रातिशासनमूलकके अध्याय पर उपरने नामके प्रातिशासनमूलकका एक संहिता प्रथम रखा गया। यह प्रथम प्रातिशासनमूलकका परिशिष्ट भी कहलाता है। अन्वयोय और वेदाद्य दोनों।

अनुसदृशको नामक एक अध्यायका प्रथम वैदिक साधनत्वमूलकके मूलमूलक है। इसमें उल्का, देवता और महामहेश्वर इतकी दर्शकत्वमें लालीयता की गई है। प्रथमसंहिताकी अनेक अनुसदृशिका है। शीतल प्रथम अनुसदृशानुसदृशको तथा साधनत्वमूलकके प्रथम एक मूलमूलक प्रथम है।

इन दोनों प्रणालीकी मजि विष्णु और सुनिश्चय

टीका है। इस टीकाकारका नाम पद्मगुण्डगिर्य है। पद्मगुण्डगिर्यका प्रकृत नाम क्या है अथवा किस समय उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा, कद नहीं सकते। पद्मगुण्डगिर्यका असल नाम प्रकाशित नहीं रहने पर भी इस ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थमें पद्मगुण्डका नामोल्लेख किया है। जैसे— गिनायकः त्रिशूनायकः गोविन्दः सूर्यः क्वास और गिव-योगी, इनके सिवा श्रग्वेद सम्बन्धीय और भी एक ग्रन्थ है। उसका नाम है गृहहेवता। गृहहेवता ग्रन्थमें वैदिक आख्यानादि विस्तृतरूपमें वर्णित हैं। यह ग्रन्थ शीनकरचित्त कद कर प्रसिद्ध है। इसकी प्राचीनता भी सर्वसम्मत है। यह ग्रन्थ श्लोकोंमें लिखा है। श्रग्वेद-संहिताके साथ साक्षात् सम्बन्धमें इसका परिस्तुत सम्बन्ध है। श्रुकसंहिताकी प्रत्येक श्रुकका देयता निर्देश करना ही इस ग्रन्थका उद्देश्य है। किन्तु यह कार्य करनेमें गृहहेवताके प्रथकारको देयता सम्बन्धीय विचित्र आख्यानोंसे वह ग्रन्थ पूर्ण करना पड़ा है। यह ग्रन्थ निरुक्तके बाद रचा गया है, ऐसा बहुतांका विश्वास है। अतएव एक श्रेणीके पण्डित इस ग्रन्थको शीनक प्रणीत नहीं मानते। उनका कहना है, कि गृहहेवता ग्रन्थ शीनक सम्प्रदायके किसी व्यक्ति द्वारा रचा गया है। इसमें मागुरी और आश्वलायनका नाम है। इसमें यलमी-प्राहाण तथा निदानसूत्रका नाम भी पाया जाता है। गृहहेवता ग्रन्थ शाकल शाखाके आचार पर नहीं लिखा गया है। उसमें शाकल शाखाका नाम अनेक बार आया है। वर्तमान कालमें प्रचरूप शाकल शाखाके साथ कई जगह उसका मेल नहीं है। इसके सिवा शीनक सङ्कलित श्रग्विधान आदि नामोंके और भी कितने ग्रन्थ हैं। इसके बाद यदुच्य परिनिष्ट, शाङ्खायनपरिनिष्ट और आश्वलायनशुल्लपरिनिष्ट नामके और भी अनेक ग्रन्थ हैं।

सामवेदसंहिता।

गीतामें भगवान्ने कहा है, "वेदानां सामवेदोऽस्मि" अर्थात् वेदों में सामवेद है। अर्थात् रामानुजने इस भगवदुक्तिके माध्यमें लिखा है, "वेदानां श्रग्वेदः सामाभ्यर्थाणां यदुत्कृष्टः सामवेदसोऽहमस्मि" अर्थात् श्रग्वेद, यजुः, साम और अथर्ववेदके मध्य सामवेद ही

उत्कृष्ट है तथा में ही यह सामवेद है। सामवेद उत्कृष्ट क्यों है, टीकाकार श्रीमद्यजुष्य सरस्वती महोदयने उसका कारण इस प्रकार बताया है—

"वेदानां मध्ये सामो मायुष्यैष्यतिरमण्योः।"

अर्थात् वेदोंमें सामवेद मायुष्यके कारण अति रमणीय है। इसका कारण यह है, कि सामवेदके संहिताग्रन्थ गीतसे भरे हैं, गीतिमायुष्यं स्वभावतः ही रमणीय होता है। गीतके उद्देश्य ही गाने केय श्रक् सामवेदमें सङ्कलित हुई हैं। श्रयस्वामीने कहा है, कि आश्वलायन प्रवरनके लिये क्रियाविशेष ही गीति है। इन गीतोंके आश्रय स्वरूप कुल अगीत वाक्य द्वारा भी सामवेदसंहिताका कलेसर पूर्ण किया गया है। इन अगीति वाक्योंमें गद्य और पद्य दोनों ही हैं। उक्त पद्योंके श्रक् तथा गद्योंको यजुः करते हैं। इस प्रणालीमें संगृहीत श्रक् मंत्र "आर्चिकं" कहलाते हैं। पूर्णमार्गनाको अधि-करणमालाके नयम अध्यायके द्वितीय पादमें एकादशाधिकरणमें "स्तोम"को एक संज्ञा लियी है। उसका मर्म यह है, कि सामके आश्रय श्रग्वतिरिक्त भगवान्गीतिका साधक जो जन्म है यही स्तोम कहलाता है। यह स्तोत तीन प्रकारका है—वर्णस्तोम, पदस्तोम और वाक्य-स्तोम। सामवेदके स्तोमका स्वतंत्र ग्रन्थ है। न्यायमाल विस्तर ग्रन्थकारका कहना है, कि श्रक् का वर्ण विरुद्ध हो कर यद्यपि रूपांतरित नहीं होता, तो वर्णोंके संख्या बढ़ सकती है। इन बढ़े हुए वर्णोंको 'स्तोम' कहते हैं। यह वर्णस्तोमका लक्षण है। पदस्तोम दो प्रकारका है। अनिरुक्त और निरुक्त। पदस्तोम सर्व साक्षर्यमें पत्रह और वाक्यस्तोम नौ प्रकारका है। यथा।

"भावाक्तिः लुपित्वल्पने प्रणयः परिष्वन्नः।

प्रैषमन्त्रेण्यथैव गृहियत्वात्तमेव च ॥"

साम आर्चिकं ग्रन्थ प्रचानतः दो भागोंमें विभक्त है। द्वितीय भाग "उत्तरा" या उत्तरार्चिकं नामसे प्रसिद्ध है। कुछ लोगोंका कहना है, कि भागका कोई नाम नहीं है। यह साधारणतः छन्दः आर्चिकं और छन्द-सिका नामसे परिचित है।

सामवेदकी शाखासंख्या एक हजार होने पर भी अभी सिर्फ़ तेरह शाखा प्रचलित हैं। कई कई कहते

है कि वेदकी समाप्तमें लेख जायता है। ये समयो उक्तिके समाप्त स्वरूप कहते हैं, कि 'सहस्रं गौरयुवाया' समाप्त सामवेदके गोवि उवाच इत्यत्र प्रकारके है, इस प्रकार सामवेद इत्यत्र शाखाओंमें विभक्त है। ऊँ हो, प्रथम उच्यते शाखाओंमें यमो निर्वा हो शाखाका अन्वयम और प्रत्यागत्य देवमेवे शाखो है। ब्राह्मो, काण्डब्रह्म, गुर्वा, भाग और यज्ञमें कौमुयो शाखा तथा द्राविडमें श्यापयो शाखा ही प्रयत्नित है।

पहले कहा जा चुका है, कि सामवेद दे शमीं विभक्त है, पुरांड और प्रपाठक। प्रत्येक प्रपाठकमें द्वा कर्क 'द्वगन्' है। प्रत्येक द्वगन् द्वा करके मन्त्र हो समष्टि है। जगत्प्रपाठकके समर्थमें सामवेदके भावकार शाखाशाखाओंमें यमो भी 'प्रपाठको पदका अन्वयदा गयो' किया। उन्होंने 'प्रपाठक' पदको जगत् 'अन्वयदा' पदका अन्वयदा किया है। अर्थ प्रपाठक नामक ऊँ वेदमहिता-प्रपाठक अन्वयविषय छेद है यह भी सावधानतापूर्वक पढ़नेमें सावधान रहनी होना।

शाब्दिक सामवे जो 'द्वगन्' नामक छेदको बात पहले लिखी जा चुकी है, सापत्नते उमो द्वगन्को जगत् 'अन्व' इत्यत्र प्रयोग किया है। अक्षरोंका रूपोंका प्रथम हो उन्म शाब्दिक और प्रपाठकमें विभक्त है तथा भाष्यकार ग्रंथ भी उमो पृथक् साम्ना जाता है। किन्तु सापत्नतापरमें लिखा है, कि उन्होंने उन्म शाब्दिक-के वाच्य भाषोमें विभक्त किया है तथा भाष्यकारको उम शाब्दिक प्रपाठके ही छेद अन्वयकारमें माना है। प्रथम उक्त द्वगन्में अन्वयदा तथा अन्वयकारके द्वगन्में शोभका और अन्वयकारों द्वे द्वगन्के अक्षरोंका अन्वयमें ही इदं द्वा अन्वय किया गया है।

प्रथम साम भी प्रपाठकोंमें समाप्त है। प्रत्येक प्रपाठक दो या तीन शाखाओंमें विभक्त है। इसका प्रत्येक भाग एक एक करके सूत्रमें विभक्त हो गया है। प्रत्येक सूत्रमें तीन वा तीनसे अधिक शब्द हैं। सामवेदशाखाओंमें जो मन्त्र शब्द हैं, उमो अक्षरोंका अन्वयदेवशाखाओंमें विभक्त देना है। किन्तु सामवेदशाखाओंमें शब्दोंके अर्थ और अन्वयकारों उवाच-इत्यत्र अन्वय विभक्त है।

उन्म का शाब्दिक।

शाब्दिक प्रपाठको संख्या तीन है, उन्म, भाष्यकार और उवाच। उन्म शाब्दिकमें जिनको शब्द हैं इनमें प्रत्येकके समाप्त और मो दो शब्द उत्तरे भाग उमो किर्वाकमें सुनो जातो है। उमो शाब्दिकमें एक शब्दको, एक स्वरको और एक शाब्दिकको तीन तीन शब्दोंमें एक एक शब्द गठित हुआ है। यह शब्द 'सूत्र' नामके मो प्रसिद्ध है। इस प्रकार सामशाखाओं में दो शब्दोंको एक एक समष्टि 'प्रपाठ' कहलाती है। यदा सूत्र, यदा प्रपाठ इनमेंसे प्रत्येकको प्रथम शब्द उन्म शाब्दिकमें निकली है। उम उन्म शाब्दिकको एक शब्द शिवा कर एक 'सूत्र' होता है। फिर इसी प्रकार प्रपाठकी भी सूत्रि होती है। यही कारण है, कि इनकी प्रथम शब्द गोविज्जक कहलाती है। यह गोवि शब्द मन्त्रोंको देखिकारूपक है। "शाब्दिक" गोविज्जक नामके मो प्रसिद्ध है।

गोवि शब्दके उत्तर हो उमो तरहको दो वा एक शब्द जिस प्रथममें देखी जाती है, उमोका नाम उवाच है। अन्वयमें अन्वयदेवशाखाशाब्दिक प्रथम भाष्यकार कहलाता है। मन्त्रों में 'द्वोमि' एक एक भाष्यकार है। गोवि, उवाच और भाष्यकार इन तीन प्रथमोंका साधारण नाम शाब्दिक अन्वय शब्दगन्तु है। उन्मोप्रपाठके भाष्यकार पर जो मन्त्र माना है उमोका मान करनेके कारण सामवेदशाखाओंका उन्मोका कहलाते हैं। इन उन्मोकोके अर्थ-कारणके विषये उपर्युक्त भाष्यकार ग्रंथ उन्मोप्रपाठ नामके प्रसिद्ध है। इनके भाष्यकार ग्रंथ भी उन्मोप्रपाठकक कहलाते हैं।

सामन्वय।

इन तीन उन्म प्रपाठके भाष्यकार पर जो मन्त्र माना गये उनमें ही वेद सामान्य नामके प्रसिद्ध है। सामवेदोप्रपाठ अन्वयकार पर भाष्यकारोंमें विभक्त है, यथा—शिव, भाष्यकार, उन्म और उवाच। शिव गोविज्जकका दूसरा नाम 'प्रपाठोप्रपाठ' है। शिव उन्म अन्वयकार पर जो मन्त्र माना गये मो अन्वयकार है। शिव नामको गुर्वाकामो विभक्त भी कहते हैं। गुर्वाकामोकोका इस प्रकार कहनेका एक कारण भी है। ये शोभ कर्त्तव्य नामक वेद पढ़ने-

में समर्थ नहीं हैं, फिर भी ब्राह्मण्यक पढ़नेमें एकाग्र पत्रयान् हैं।

प्राग्भ्येय गान ।

ब्राह्मण्यका मूल आरण्यगानमें है। अतएव उद्देश्ये पहिले आरण्यगानका अध्ययन किया। पीछे समर्थ होने पर वे गेय गानके अध्ययनमें प्रवृत्त हुए। गुर्जर-वासियोंके लिये इसी कारण गेयगान द्वितीय है। अतः वे लोग उसे "गेयगान" कहते हैं। 'वेय' शब्द गुर्जर भाषामें द्विवाचक है। गेयगान शब्दका अर्थ द्वितीय गान है। आरण्यगानके विपरीत होनेके कारण इसका दूसरा नाम "प्राग्भ्येय गान" है। गेयगान प्रथमें मोनि-श्रुतिका व्यवहार हुआ है। अतएव ब्राह्मणप्रथमें यह प्राग्भ्येय गान "गेनिगान" नामसे भी अभिहित हुआ है। किन्तु सायणने इसका 'चेदसाम' नाम रखा है। छन्द आर्चिकमें जिस श्रुतके बाद जो श्रुत है, गेय गानमें भी उस श्रुतमूल गानके बाद ही वही श्रुतमूल गान है।

सामवेदका आरण्यक सामसंहिताके अन्तर्भूत है। आरण्यक आर्चिक तथा आनुपङ्क्तिक अन्याय्य श्रुतोंके आधार पर जो सब साम गाये गये हैं वह प्रवा-डकपट्टकमें और द्वादश प्रवाडकादमें विभक्त है। आरण्यक अरण्यगान नामसे अभिहित हुआ है। आरण्यक आर्चिक और उसके अवलम्ब पर गीत अरण्यगान ही सामवेदका आरण्यक है। सामवेदी ब्राह्मण छन्दो-मय मंत्रोंका गान करते हैं, इस कारण उनका "छन्दोग" नाम हुआ है तथा उसीके अनुसार उनका व्यवहाराय्य यह आरण्यक प्रथ "छन्दोगारण्यक" कहलाता है। ब्राह्मण्यवर्षास्थानमें अरण्यमें रह कर यह साधित होता है, इसीसे आरण्यक नामकी उत्पत्ति हुई है। तीसरीय आरण्यक भाष्यमें लिखा है—

"अरण्यगान्यपनादेतदारण्यकमितीव्यते ।

अरण्ये तदक्रीयेतेत्येव वाच्यं प्रचक्षते ॥"

यह प्रथ छन्द आर्चिकमें गाया जाता है और गेय-गानसे सम्पूर्ण विभक्त है। इस कारण इसको द्वितीय गानप्रथ कहा जा सकता है। प्रथम गानप्रथ जिस प्रकार प्रथम आर्चिक प्रथका अनुसारी है वह वैसा

नहीं है। इस आरण्यक प्रथके श्रुतसंनिवेश क्रमके साथ सामसंनिवेशक्रमका अधिकार्थ स्पष्टमें ही अनैरय दिखाई देता है। और तो क्या, इस आरण्यक गानमें ऐसे अनेक साम हैं जो सबोंके मूलस्वरूप श्रुत आरण्यक नामक द्वितीय आर्चिक प्रथमें बिलकुल दिखाई नहीं देते। छन्दो नामक एक प्रथम आर्चिक प्रथ है। सामवेदका आरण्यक तथा आरण्यकगान यथार्थमें पृथक् होने पर भी ये दोनों ही प्रथ मिल कर सामवेदका आरण्यक कहलाते हैं। यह आरण्यक गान छः प्रवाडकमें विभक्त है।

ऊह और ऊग्रमान ।

छन्द आर्चिकके साथ गेयगानका सम्बंध जिस क्रमसे विद्यमान है, आरण्यकके साथ अरण्यगान या उत्तरार्चिकके साथ ऊह और ऊग्रमानका उसी क्रमानुसार सम्बंध दिखाई देता है। अधिकतम अरण्यगानमें ऐसे अनेक गान देखे जाते हैं जिनका मूल श्रुत आरण्यकमें दिखाई नहीं देता। किन्तु छन्द आर्चिकमें दिखाई देता है। फिर ऐसे अनेक गान हैं, जो श्रुतसे उत्पन्न हुए ही नहीं, किन्तु स्तोमप्रथमें उसकी उत्पत्तिका योज देखनेमें आता है। ऊह और ऊग्र गानमें जो सब गीत हैं उनकी मूलस्थिति यद्यपि आरण्यगानकी तरह विकीर्ण नहीं है और यह एक उत्तरार्चिकमें ही सीमायत है, तथापि उत्तरार्चिकके श्रुतसंनिवेश क्रमानुसार इन सब गानोंमें सामसंनिवेशक्रम नहीं है; वह उनके सम्पूर्ण विपरीत है। गेयगानकी तरह तीन-तीन मामोंकी एकत्र कर सबसे पीछे एकताम निघनके योगसे एक एक स्तोत्र सम्पन्न होता है। ऊह गानमें प्रायः सभी इसी प्रकारके स्तोत्र हैं। उत्तरार्चिकके प्रत्येक ऊहकी प्रथम श्रुत छंद आर्चिकसे उत्पन्न है। उसी प्रकार ऊह और ऊग्र गानके भी प्रत्येक स्तोत्रका प्रथम साम गेय गानसे उत्पन्न माना जाता है। इसी कारण ताण्ड्य-ब्राह्मणमें लिखा है—

"दस्तेनो उदुत्तरवर्गायति"

अर्थात् उत्तरार्चिकके सृष्टमूलकी प्रथम श्रुत पूर्व-परिचित है। परवर्ती दो श्रुत उत्तर बढ़लाती हैं। इस योजि श्रुतके आधार पर गेय गानसे जो श्रुत

निकलना है, ऊरु और ऊरु गानों दोनों ब्रह्मों को उनमें
 ब्रह्मों गान करना होगा, अतएव ऊरु और ऊरु इन
 दोनों गानोंके प्रायः प्रारंभिक स्तोत्रका ही प्रथम गान
 पूर्वनिर्दिष्ट है, यही प्रारंभिकोंका अभिप्राय है। ऊरु-
 गान २३ प्रारंभिकों तथा ऊरुगान ३ प्रारंभिकों विनक्त
 है। ऊरुका दूसरा नाम बह्वचनान है। ऊरु और
 ऊरु गान गेव गानको तरह भाविवेक क्रमानुसार प्रकाश
 योग्य नहीं है। ये दोनों गान मिलनेमें गेव और आचव-
 गान प्रथम प्रायः हूँते होते हैं। यहाँ वद भी कह देना
 आवश्यक है, कि यद्यपि समस्त गान ग्रांभ हो गेव है,
 तथापि प्रथम गान प्रायः। विशेष गान न रहनेके कारण
 यह भाषाएल "गेव" गान नामसे पुकारा जाता है। इस
 रमके पहले इसका दूसरा नाम भी निर्दिष्ट कर चुके हैं।
 यथा "आचवगेव" गान। तात्पर्यक गानके साथ पूर्ववत्ता
 दिननामिके लिये इस ध्वनीका गान "आचवगान" नामसे
 अभिहित हुआ है। सुप्रसिद्ध भावनाचार्यको छोट
 भरतश्यामी, महाश्यामी और भागवतपुत्र भाष्यमें भी
 एक एक सामवेदिसामवेदको रचना की है।

गानवेदीय भाष्य ।

सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थोंमें सबसे पहले तात्पर्य
 ब्राह्मणका नाम उल्लेखनीय है। जिसलिके पञ्चम
 बल्या है। इस कारण इसका दूसरा नाम पञ्चमिंश-
 ब्राह्मण है। इसके प्रथम अध्यायमें पशुराजसक भूति-
 यन्त्र समिन्धिर है। द्वितीय और तृतीय बल्यामें
 अनेक स्तोत्रादिपद, यज्ञों और पञ्चममें पञ्चमयन कायक
 संवत्सर सप्तवचन और वृथापवायमें अग्निहोमको
 प्रशंसा मिली गई है। इस तरह अनेक प्रकारके काम
 यज्ञका विवरण इस तात्पर्यब्राह्मणमें मिलित है।
 पत्नीकाय, प्रदग्निहोम स्यात्, सुवचर्होमविचार भाषना
 का भाष्यदि ज्ञान, सोढगोशिक, परिणय, सोम-
 प्रकाशवेदिसव, अहोरात्रवेदिसात्पर्य विभ्यसुर तात्पर्य
 नाम किम प्रकार अनुपके सम्यक्त्व है इस विषयमें
 विचार आदि तात्पर्यब्राह्मणमें दिसाई देते हैं। इनके
 सिवा इनमें अनेक प्रकारके व्याख्यान तथा वेदि-
 दार्शनिकोंके ज्ञानका अनेक विवरणोंका उल्लेख है। इस
 ग्रन्थमें सामवेदको रचना तथा तदुत्पत्त्यधिक सामगान-

का उल्लेख विशेषकरमें किया गया है। विशेष गान-
 यज्ञों गानोंको व्यवस्था तात्पर्यब्राह्मणमें दिसाई देती
 है। कोई एक दिन क्याये, कोई भी दिन क्याये,
 कोई वर्ष भर क्याये, कोई मन भी वर्षों, यही तद वि-
 ह्वार वर्ष क्याये इत्यादि अनेक प्रकारके गानोंको
 प्रजापति और ब्रह्मका है। इन प्रकार गानों गानोंमें
 सामगानकी पवित्र आत्मारके उत्सावपूर्ण विवरण
 तात्पर्यब्राह्मणमें आजीवन हुए हैं। सावनायकके
 तात्पर्यब्राह्मणके भाष्यके तथा हरिकान्तोंमें पूर्वकी
 रचना की है।

सामवेदीय द्वितीय ब्राह्मणग्रन्थका नाम बह्विंश
 ब्राह्मण है। सावने ब्राह्मण ग्रन्थके भाष्यके प्रारंभमें
 लिखा है, कि पञ्चमिंश ब्राह्मणमें जिन सब दिवासीका
 वदोय नहीं है, इनमें उन सब वर्गोंका भी उल्लेख है
 तथा उसमें जिन सब वर्गोंका उल्लेख है, यथा पञ्च
 पूर्ववत्ता है, यह भी इस ग्रन्थमें दिखलाया गया है।
 सुप्रसिद्ध, सवनतव, प्रप्रकशंथ, ब्राह्मि हीमादि,
 मीमितिक प्रायश्चित्त, सोम्य चर्हविधि, पदित्यवमान
 वर्ग, होमादि उग्रह, अग्निवादि विधान, मीमितिक होम,
 अथर्व्युं प्रशंसा, देवयज्ञमें विज्ञेय वर्ग, भावयुक्त, समि-
 चार संघवीय विधि, ब्राह्मणहस्तुति, स्तोत्रादि विधि,
 पेशवेदिसव, भद्रयुक्त समुद्रकी मालि, इन सब
 विषयोंका उल्लेख है।

तृतीय ब्राह्मणका नाम सामविधान है। साम-
 विधानब्राह्मण सामवेदीय तृतीय ब्राह्मण कहलाते हैं।
 इस ब्राह्मणमें अधिकांशतक और प्रगत गानोंको
 मुद्रिके लिये कृत्वादि प्रार्थित्व और भाष्यगान वर्ग-
 होमादिका सामविधान वर्णित हुआ है।

आवेद ब्राह्मण सामवेदीय चतुर्थ ब्राह्मण है, सावना-
 यकके इसका भी नाम किया है। इस ग्रन्थमें अग्नि-
 सत्रमन्त्रोंके वर्णितोका विवरण है। अग्निनामके जो
 एतद्देवार्थि वाचक ऊरु इस सामवेदके वाचक-
 ज्ञान रचना ही इस ब्राह्मणका आजीवन विषय है।

पञ्चम—इतदुत्पत्त्यब्राह्मण है। इस - ग्रन्थमें
 देवता समस्तोंके चर्हमादि हैं, इस कारण इसका
 नाम देवतावचन हुआ है। इनके साथ अचरवर्गमें

सामवेदीय देवताओंका विविध देवताप्रतिकोत्पन्न है। द्वितीय अध्यायमें वर्ण और वर्णदेवताकी तथा तुल्य अध्यायमें इनकी नियतिकी आलोचना की गई है।

सामवेदीय पण्ड ब्राह्मणका नाम मन्त्रब्राह्मण है। इस ब्राह्मणमें सिर्फ १० प्रपाठक हैं। गृह्यसूक्तमें विहित प्रायः सभी मन्त्र इस ग्रन्थमें संगृहीत हुए हैं। यह उपनिषद् और संहितोपनिषद् ब्राह्मण या छान्दोग्य ब्राह्मण नामसे भी परिचित है। इसमें सामवेदीयदेवता गणकी प्रकृति उद्घाटनके लिये सम्प्रदायप्रवर्तक ऋषियोंकी बातें लिखी गई हैं। इस ब्राह्मणका ऽमसे १०म प्रपाठक ही छान्दोग्योपनिषद् नामसे प्रसिद्ध है।

सामवेदका ब्राह्मण ग्रन्थ आठ भागोंमें प्रकाशित हुआ है, किन्तु प्रत्येक शाखाका एक एक ब्राह्मण ग्रन्थ ही दिखाई देता है, यथा—शाकल्यीका येनरेवब्राह्मण, वाजसनेयीका शतपथब्राह्मण, तैत्तिरीयोंका तैत्तिरीय ब्राह्मण, इसी प्रकार कौथुमीका ताण्ड्य ब्राह्मण है। महर्षि तण्ड्य द्वारा सङ्कलित होनेके कारण इसका ताण्ड्य-ब्राह्मण नाम हुआ है। यह छान्दोग्यीका ब्राह्मण है, इससे इसका दूसरा नाम छान्दोग्यब्राह्मण भी है। पहले कह भाये हैं, कि ताण्ड्यब्राह्मण पचीस अध्यायोंमें विभक्त है, किन्तु यद्यपि यह चालीस अध्याययुक्त है। पञ्चविंश ब्राह्मणका पञ्चाध्याय तथा पञ्चविंश-ब्राह्मणका पञ्चविंशाध्याय, इनके मिलनेसे कौथुमशाखीय ब्राह्मण का धीतकर्मविवरण एकविंशाध्यायतमक जो भाग प्रकल्पित हुआ है, पक्ष ताण्ड्य ब्राह्मणका प्रथम या धीत भाग है। यद्यपि पञ्चविंश-ब्राह्मणमें पण्ड अध्याय नामका एक और अध्याय है, पर दूसरी जगह इस अध्यायका उल्लेख देखनेमें नहीं आता। यह अध्याय अङ्ग ब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध है। सायणने सामवेदीय सभी ब्राह्मणोंका भाष्य किया है। उन्होंने ब्राह्मणभाष्य भूमिकामें आन्वय्य जिन सब ब्राह्मणोंका नामोक्लेश किया है, उन सब मन्त्रों और उपनिषद्की सम्बन्धकी ताण्ड्यब्राह्मणका द्वितीय भाग कह सकते हैं। धीत और गृह्य दोनो प्रकारके विषय द्वारा जो ब्राह्मणग्रन्थकी पूर्णता सिद्ध होती है, उनके प्रमाणका भी अभाव नहीं है। जैसे—येनरेव ब्राह्मणके पूर्व भागमें धीतविधि और

द्वितीय भागमें अग्न्याय्य विधि है। तैत्तिरीयब्राह्मणमें भी येनो ही व्यवस्था देखी जाती है। उभके प्रथम भागमें धीतविधिही अग्रतारणा की गई है, द्वितीयमें गृह्य, मन्त्र और उपनिषद् भाग है। इस धेणोका विभाग कल्पनाकारियोंने सामविधिको अनुब्राह्मण संग्रामें शामिल किया है। उनका कदम है, कि यगिनि सूक्तमें (अनुब्राह्मणादिभ्यो । ४।३।२२) अनुब्राह्मण का उल्लेख है। किन्तु सायणोय विभागकदमानामें अनु ब्राह्मणका उल्लेख नहीं है। किन्तु अनुब्राह्मण नामक और किसी भी ग्रन्थका उल्लेख देखने नहीं आता। अतएव 'विधान' ग्रन्थोंका अनुब्राह्मणके अंतर्भूत होना सुसङ्गत है।

उपनिषद् ।

सामवेदीय उपनिषद् ग्रन्थके मध्य छान्दोग्य उपनिषद् और केनोपनिषद्का नाम दिखाई देता है। छान्दोग्य उपनिषद् एक प्रधान उपनिषद् है। यह उपनिषद् आठ अध्यायोंमें विभक्त है। यह छान्दोग्य-ब्राह्मणका अंश विशेष है। छान्दोग्य-ब्राह्मण द्वा अध्यायोंमें विभक्त है। इसके आदिके दो अध्यायोंमें ही ब्राह्मणका विषय आलोचित हुआ है। भवजिष्ट नाड अध्याय ही छान्दोग्य-उपनिषद् कहलाता है। छान्दोग्य-ब्राह्मणके प्रथम अध्यायमें आठ सूक्त उद्धृत हुए हैं। इन सब सूक्तोंका जन्म और विवाहकी मङ्गल प्रार्थनाके लिये छान्दोग्य प्रमाणमें व्यवहार हुआ है। इस उपनिषद्का पारसो, फारसी, अङ्गरेजो, जयन भादि अनेक विदेशीय भाषामें अनुवाद किया गया है।

सामवेदका दूसरा उपनिषद् केनोपनिषद् है। 'केन' पहले इन उपनिषद्का प्रारम्भ है, इसलिये इनको केनोपनिषद् कहते हैं। इनका दूसरा नाम तल्यकारोपनिषद् है। सामवेदका तल्यकार शाखासम्बन्ध है, इसी कारण इस उपनिषद् भी है। यह उपनिषद् तल्यकार-ब्राह्मण ग्रन्थके अंतर्भूत है। डाक्टर पुनोन-ने तन्मोरमें जो तल्यकार ब्राह्मणग्रन्थ पाया है, उसे देख उन्होंने कहा है, कि तल्यकार ब्राह्मणके १३से १४५ अध्याय द्वा अष्ट सप्त तल्यकार उपनिषद् वा केनोपनिषद् है। अध्याय पाण्डुलिपिमें परिच्छेद और अध्याय

सामवेदोप देवताभोक्ता विविध देवताप्रतिकोत्सर्जन है। द्वितीय अध्यायमें वर्ण और वर्णदेवताकी तथा तुनीय अध्यायमें इनकी नियुक्तिकी भालोचना की गई है।

सामवेदोप पण्ड ब्राह्मणका नाम मन्त्रब्राह्मण है। इस ब्राह्मणमें सिर्फ १० प्रपाठक हैं। गृह्यसूत्रमें विहित प्रायः सभी मन्त्र इस प्रथममें संगृहीत हुए हैं। यह उपनिषद् और संहितोपनिषद् ब्राह्मण या छान्दोग्य ब्राह्मण नामसे भी परिचित है। इसमें सामवेदाध्येतृ गणकी प्रकृति उदगादनके लिये सम्प्रदायप्रवर्षक ऋषियोंकी बातें लिखी गई हैं। इस ब्राह्मणका ८मसे १०म प्रपाठक ही छान्दोग्योपनिषद् नामसे प्रसिद्ध है।

सामवेदका ब्राह्मण प्रथम आठ भागोंमें प्रवर्णित हुआ है, किन्तु प्रत्येक शाखाका एक एक ब्राह्मण प्रथम ही दिखाई देता है, यथा—शाकल्योका येनरेवब्राह्मण, वाजसनेयोका शतपथब्राह्मण, तैत्तिरीयोका तैत्तिरीय ब्राह्मण, इसी प्रकार कौथुर्मोका ताण्ड्य ब्राह्मण है। महर्षि तण्ड्य द्वारा सङ्कलित होनेके कारण इसका ताण्ड्य-ब्राह्मण नाम हुआ है। यह छान्दोग्योका ब्राह्मण है, इससे इसका दूसरा नाम छान्दोग्यब्राह्मण भी है। पहले कह भाये है, कि ताण्ड्यब्राह्मण पचीस अध्यायमें विभक्त है, किन्तु यथाधीमें यह चालीस अध्याययुक्त है। पट्ट विश-ब्राह्मणका पञ्चाध्याय तथा पञ्चविंश-ब्राह्मणका पञ्चविंशाध्याय, इनके मिलनेसे कौथुमशाखीय ब्राह्मण का धीतकर्मविषयक एकविंशाध्यायारम्भक जो भाग प्रकल्पित हुआ है, यही ताण्ड्य ब्राह्मणका प्रथम या धीत भाग है। यद्यपि पट्ट विश-ब्राह्मणमें पण्ड सध्याय नामका एक और अध्याय है, पर दूसरी जगह इस अध्यायका उल्लेख देखनेमें नहीं आता। यह अध्याय अङ्ग तब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध है। सायणने सामवेदोप सभी ब्राह्मणोंका भाष्य किया है। उन्होंने ब्राह्मणभाष्य भूमिकामें अन्वय्य जिन सब ब्राह्मणोंका नामोल्लेख किया है, उन सब मन्त्रों और उपनिषद्ओंकी समष्टिकी ताण्ड्यब्राह्मणका द्वितीय भाग कह सकने हैं। धीत और गृह्य दोनो प्रकारके विषय द्वारा जो ब्राह्मणसूत्रकी पूर्णता सिद्ध होती है, उनके प्रमाणका भी अभाव नहीं है। जैसे—येनरेव ब्राह्मणके पूर्व भागमें धीतविधि और

द्वितीय भागमें अग्न्याय्य विधि है। तैत्तिरीयब्राह्मणमें भी ऐसी ही व्यवस्था देखी जाती है। उक्त प्रथम भागमें धीतविधिकी अयतारणा की गई है, द्वितीयमें गृह्य, मन्त्र धीर उपनिषद् भाग है। इस धेणोका विभाग कल्पनाकारियोंने सामयिकिकी अनुब्राह्मण संग्रामें शामिल किया है। उनका कहना है, कि गणिति सूत्रमें (अनुब्राह्मणादिभ्यो । ४।१।२२) अनुब्राह्मण का उल्लेख है। किन्तु सायणोप विभागकक्षानामें अनु ब्राह्मणका उल्लेख नहीं है। किन्तु अनुब्राह्मण नामक और किसी भी ग्रन्थका उल्लेख देखने नहीं आता। अतएव 'विधान' प्रथोका अनुब्राह्मणके अंतर्भुक्त होना सुसङ्गत है।

उपनिषद् ।

सामवेदोप उपनिषद् प्रथमके मध्य छान्दोग्य उपनिषद् और केनोपनिषद्का नाम दिखाई देता है। छान्दोग्य उपनिषद् एक प्राचीन उपनिषद् है। यह उपनिषद् आठ अध्यायमें विभक्त है। यह छान्दोग्यब्राह्मणका अंश विशेष है। छान्दोग्य-ब्राह्मण दश अध्यायमें विभक्त है। इसके आदिके दो अध्यायोंमें ही ब्राह्मणका विषय आलोचित हुआ है। अयनिष्ट आठ अध्याय ही छान्दोग्य-उपनिषद् कहलाता है। छान्दोग्य-ब्राह्मणके प्रथम अध्यायमें आठ सूक्त उद्धृत हुए हैं। इन सब सूक्तोंका उगम और विवाहकी मङ्गल प्रार्थनाके लिये छान्दोग्य प्रमाणमें व्यवहार हुआ है। इस उपनिषद्का पारसो, फासो, अङ्गरेतो, जवन आदि अनेक विदेशीय भाषाओंमें अनुवाद किया गया है।

सामवेदका दूसरा उपनिषद् केनोपनिषद् है। 'केन' पहले इस उपनिषद्का प्रारम्भ है, इसलिये इसकी केनोपनिषद् कहते हैं। इसका दूसरा नाम तल्लयकारोपनिषद् है। सामवेदका तल्लयकार शाखासम्मत है, इसी कारण इस उपनिषद् भी है। यह उपनिषद् तल्लयकार-ब्राह्मण गण्यके अंतर्भुक्त है। शाकल्युक्त-ने तन्त्रोरेमें जो तल्लयकार ब्राह्मणग्रन्थ पाया है, उसे देख उन्होंने कहा है, कि तल्लयकार ब्राह्मणके १३रे १४वें अध्याय दश अष्टक तक तल्लयकार उपनिषद् या केनोपनिषद् है। अध्याय पाण्डुलिपिमें परिच्छेद और सध्याय

इसी प्रकार एक श्रौतमूत्रका नाम पुण्यसूत्र है। यह पुण्यसूत्र गोमिलकृत कह कर प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थके प्रथम चार प्रपाठक नाना प्रकारके पारिभाषिक और व्याकरणशास्त्रसे भरे हैं, इस कारण इसका मर्म सद्व्यक्तमें हृदयङ्गम करना कठिन है। इन चार प्रपाठकोंकी वैसी टीका देवनेमें नहीं आती, किन्तु अयशिश्याका एक बड़ा भाष्य है। भाष्यकारका नाम है अज्ञातगुरु। ऋक्-मन्त्रकालिका किस प्रकार सामरूप पुण्यमें परिणत हुई, इस ग्रन्थमें यह सङ्केत दिखलाया गया है। इसी कारण इसका नाम पुण्यसूत्र है। दक्षिणात्यमें इसे कुल्लसूत्र भी कहते हैं। यहाँ यह ग्रन्थ यरुचिप्रणीत समझा जाता है। किन्तु यह उक्ति अप्रामाणिक है। इसका शेष अंश श्लोकोंसे भरा हुआ है। दामोदर-पुत्र रामचन्द्रारचित पुण्यसूत्रकी एक वृत्ति पाई गई है।

इस तरहका एक और भी ग्रन्थ देया जाता है, उसका नाम सामतन्त्र है। यह ग्रन्थ तेरह प्रपाठकोंमें विभक्त है। किस प्रकारसे सामगान करना होता है, इसमें उसका सङ्केत और प्रणाली दी गई है। ग्रन्थके शेषमें जो परिचय दिया गया है उससे जाना जाता है, कि यह सामवेदका व्याकरणविशेष है। कैयटने लिखा है, कि यह ग्रन्थ "सामलक्षणं प्रातिशाख्यशास्त्रम्" है। ऋक्मन्त्र साममें परिणत करनेकी प्रणालीके सम्बन्धमें सामवेदीय अनेक सूत्रग्रन्थ हैं। इनमेंसे एकका नाम पञ्चविधिसूत्र और दूसरेका नाम प्रतिहारसूत्र है। यह ग्रन्थ कात्यायनकृत समझा जाता है। मंशकसूत्रके सूत्रकार यरुचिराजने इसकी एक वृत्ति की, उसका नाम दशतयी है। इसके सिवा 'ताण्ड्यलक्षणसूत्र', 'उपगन्धसूत्र', 'कल्याणुपदसूत्र', 'अनुस्तोत्रसूत्र' और 'शुद्धसूत्र' आदि सामवेदीय सूत्रग्रन्थ हैं। ऋग्वेदकी अनुक्रमणिकाके पञ्चगुण शिष्यने कात्यायनको 'उपगन्धसूत्रका प्रणेता बताया है। पञ्चविध सूत्र दो प्रपाठकोंमें विभक्त है। कनरानुपदसूत्रके भी सिर्फ दो प्रपाठक हैं। शुद्धसूत्र तीन प्रपाठकोंमें विभक्त है। 'उपगन्धसूत्रमें प्रायश्चित्तको व्यवस्था देयी जाती है। द्यागुरु और पूर्वोक्त रामचन्द्र्य हीसिद्ध हैं और इस सामतन्त्रमें वृत्ति की है।

साम-ग्रन्थसूत्र ।

अभी सामवेदीय 'गृह्यसूत्र'की बातें लिखी जाती हैं। गोमिलकृत गृह्यसूत्र ही विशेष उन्नेखयोग्य है। यह ग्रन्थ चार प्रपाठकोंमें विभक्त है। कात्यायनने इस ग्रन्थका एक परिशिष्ट लिखा है। उसका नाम है कर्मप्रदीप। यद्यपि इस ग्रन्थकारने इसको गोमिलगृह्यसूत्रका परिशिष्ट बताया है, किन्तु यह ग्रन्थ द्वितीय गृह्यसूत्र और स्मृतिशास्त्ररूपमें समाहृत होता भा रहा है। आशादित्य शिवरामने इस कर्मप्रदीप ग्रन्थकी टीका लिखी है। वे कहते हैं, कि गोमिलगृह्यसूत्र सामवेदके कौथुम शाखीय और राणायनो शाखीय इन दोनों ब्राह्मणोंका अनुमोदित है। मट्टनारायण, सायण और विश्रामसुन शिष्यने 'सुशोचिनोपदति' नामक गोमिलगृह्यसूत्रकी वृत्ति लिखी है। इसके सिवा आदिरगृह्यसूत्र नामक और एक गृह्यसूत्र देवनेमें आता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि आदिर ही द्वात्पायणगृह्यसूत्रके कर्ता हैं। उग्रकन्दस्वामीने इसकी वृत्ति की है।

आदिरगृह्यसूत्रकी एक कारिका भी देखी जाती है। यह पामनकी बनाई हुई है। 'विशुभेषसूत्र' नामक सामवेदीय और भी एक गृह्यसूत्र है। इसके प्रणेता गौतम है। इस ग्रन्थके टीकाकार भगन्तज्ञानका कहना है, कि न्यायसूत्रके प्रणेता महर्षि गौतम ही इस गृह्यसूत्रके प्रणेता हैं। इसके अनिर्दिक्त गौतमका बनाया हुआ एक और धर्मसूत्र है, जो 'गौतमधर्मसूत्र' कहलाता है।

साम पद्धति ।

सामवेदीय विविध पद्धति प्रथम हैं। ये सब पद्धतियाँ सूत्रग्रन्थके साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखने हुए विद्याके प्रमाणके सम्बन्धमें शिक्षा और व्यवस्था दोनों हैं। फिर सामवेदीय परिशिष्ट ग्रन्थकी संख्या भी उन्नीस कम नहीं है। पद्धतिकार गण सूत्रप्रथका अनुसरण कर चलते हैं। किन्तु परिशिष्टमें पार्ष्णिक प्रथकी तरह बहुत-सी नई नई बातें जोड़ी गई हैं। यहाँ 'ताण्ड्यपरिशिष्ट' प्रथका नाम भी उन्नेखयोग्य है। इसके अनिर्दिक्त सामवेदीय और भी अनेक प्रथ हैं।

कृष्णयजुर्वेद या तैत्तिरीय-संहिता ।

तैत्तिरीय शब्द कृष्णयजुर्वेदके प्राग्निशाख्यसूत्र तथा सामसूत्रमें दिखाई देता है । पाणिनिका कहना है, कि तैत्तिरीय ऋषिके नामसे ही तैत्तिरीय शब्दकी उत्पत्ति हुई है । आश्रय शास्त्राची संहितानुक्रमणिकामें भी यही व्युत्पत्ति देखनेमें आती है । किन्तु पहले हमने महीधरके भाष्य-प्रारम्भसे देखा है, कि वैशाखायनके शिष्योंने तैत्तिर पक्षो बन कर याज्ञवल्क्यके उगले हुए यजुषीको प्रदण किया था । परवर्ती साहित्यमें इसी भाषयायिकाका प्रचार देखा जाता है । कृष्णयजुर्वेद को शाखाओंमें एक चरक सम्प्रदायकी ही बारह शाखाएं थीं । यथा—नरक, आह्वरक, कठ, प्राचपकठ, कपिष्ठक-कठ, आष्ठककठ, चारावणीय, पारावणीय, चार्सान्तवेष, श्वेताश्वतर, भीरमशु और मैत्रायणि । शेषोक्त मैत्रायणसे फिर सात शाखाओंको उत्पत्ति हुई है । यथा—मानय, दुग्दुग्, यकेय, चाराह, हारिद्रवेष, श्याम और जामानवीय । कृष्णयजुर्वेदका एक सम्प्रदाय ब्राह्मणकीय कहलाता है । पाणिनिका कहना है, ब्राह्मण ऋषिसे ही ब्राह्मणकीय सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ है । कुछ लोगोंका कहना है, कि कृष्ण यजुर्वेद काण्डगः विभक्त है, इसी कारण कृष्णयजुर्वेद-सम्प्रदायियोंको ब्राह्मणकीय कहते हैं । कृष्णयजुर्वेद या तैत्तिरीयसंहिता ७ काण्डोंमें विभक्त है । प्रत्येक काण्ड फिर अनेक प्रपाठोंमें विभक्त है । सभी काण्ड सममायमें विभक्त नहीं हैं, किन्तु काण्डमें मात्र, किन्तुमें मात्र, इस प्रकार प्रपाठक हैं । ऋग्वेदीय द्वाकर्मके मन्त्र और विधिही इस संहितामें आलोचना हुई है । कृष्ण यजुर्वेदके एक और सम्प्रदायके प्रथमका नाम आपस्तम्ब यजुःसंहिता है । यह प्रथम ७ अष्टकोंमें विभक्त है । ये अष्टक ४४ प्रश्नमें, ये प्रश्न फिर ६५१ अनुवाक्योंमें और ये अनुवाक २१६८ काण्डिकामें विभक्त हैं । साधारणतः ५० शर्दोंमें एक एक काण्डिका गठित हुई । आश्रय शास्त्राका यजुर्वेद काण्ड, प्रश्न और अनुवाक इन तीन प्रकारके परिच्छेदोंमें विभक्त है । काठकोही संहिताका विभाग अन्य प्रकारका है । यह पांच भागोंमें विभक्त है । प्रथम तीन भाग ४० प्रपाठकमें विभक्त हैं । पञ्चम

भागमें अष्टमेघपंशका विवरण है । चरक शास्त्राके प्रथम तीन भागका नाम इधिमिका, मधयमिका और भरिमिका है । आश्रय ऋषि पादकृतां ये । कुण्डिन वृत्तिकार कहलाते हैं । उक्त आश्रयके गुरु भागें ज्ञाने हैं ।

इसके सिवा यजुर्वेदकी मैत्रायणी शाखा भी मिलती है । इसमें ५ काण्ड हैं । सम्भवतः यजुर्वेदके और भी मित्र मित्र शाखाके संहिताग्रथ हो सकते हैं । यजुर्वेद यागवशकिवाषट्क है । इसी कारण यजुर्वेद सयंदा अति प्रयोजनीय समझा जाता था और इसकी भिन्न भिन्न शाखाके अनेक संहिताग्रथ प्रचारित थे । सायणाचार्योंने तैत्तिरीयसंहिताका भाष्य किया है । इसके अतिरिक्त बालकृष्णदीक्षित और भास्कर मिश्र भवित छोटे भाष्य भी मिलते हैं ।

यजुर्माहायण ।

सामवेदीय ब्राह्मणग्रथमें आपस्तम्ब ब्राह्मण और आश्रय ब्राह्मण ही विशेष प्रसिद्ध हैं । अनुक्रमणिकामें संहिता और ब्राह्मणको कुछ भी विभिन्नता नहीं की गई है । कोई कोई शाखा भी संहिताग्रथमें नहीं है, ब्राह्मणमें उसका उल्लेख है । जैसे पुरुरमेघ यज्ञका विवरण संहितामें नहीं दिखाई देता, किन्तु ब्राह्मणोंमें दिखाई देता है ।

तैत्तिरीयब्राह्मण आपस्तम्ब और आश्रय शास्त्राका ब्राह्मण ग्रथ कहलाता है । तैत्तिरीयब्राह्मण-गृथका भी भाष्य है । इस भाष्यकी भूमिकामें संहिता और ब्राह्मणका पार्श्वय विचार किया गया है । ब्राह्मणग्रथमें स्पष्टरूपसे मन्त्रका उद्देश्य और व्याख्या की गई है । सायणाचार्य और भास्करमिश्र तैत्तिरीय ब्राह्मणके भाष्यकार हैं । तैत्तिरीयब्राह्मणका शेषांग तैत्तिरीयब्राह्मणक है । यह ब्राह्मणक गृथ द्वा काण्डोंमें विभक्त है । काठक-में परिकीर्तित ब्राह्मणय विधि भी इनमें आलोचन हुई है । इसका प्रथम और तृतीय प्रपाठक यज्ञान्तिष्ठायनके नियमसे लिखा गया है । द्वितीय प्रपाठकमें लघुयायन नियम, अनुषं, पञ्चम और षष्ठमें द्वापूर्वमासादि तथा वित्तमेघ आदि विषयोंकी आलोचना की गई है ।

उक्त सायण, भास्करमिश्र और चरकप्रभे तैत्तिरीय

पुरुखा तथा उर्वशीके प्रेम और विरहकी कथा, अश्वि-
द्वय कर्त्तृक चपयनप्रविके युवकरव प्रामिकी कथा इत्यादि
उपाख्यात भी शतपथब्राह्मणमें संक्षेपसे वर्णित हैं।
उप्रसेन और धृतसेन आदि नामोंका उल्लेख है। कुच-
पाञ्चाल आदि ऐतिहासिक नामादि भी इस ग्रन्थमें
दिखाई देने हैं।

माध्वन्दिन शाखाके शतपथब्राह्मणके तीन भाष्य
देखनेमें आते हैं। एक हरिस्वामिहृत, दूसरा सायणहृत
तथा तीसरा कथोन्द्राचार्य सरस्वती-रचित है। माध्व-
न्दिन शाखाके गृहदारण्यक उपनिषद्के भाष्यकार द्विवेद
गङ्गा हैं। ये गुजरातके रहनेवाले थे। धीमच्छङ्करा-
चार्यने जो गृहदारण्यक-उपनिषद्का भाष्य लिखा है, यह
काण्वशाखाके अन्तर्गत है। शङ्करके शिष्योंने शङ्कर
भाष्यकी कुछ टोकार्थ प्रणयन की हैं। उनमेंसे आनन्द-
तीर्थ, रघुलम और व्यासतीर्थका नाम उल्लेखनीय है।
मिथा इसके गङ्गाघरकी नौविका, नित्यानन्दाश्रमकी
मिताशरा, शक्ति, मथुरानाथकी लघुशक्ति, राघवेन्द्रका
खण्डार्थ, रङ्गरामानुज और सायणका भाष्य है।

भीतस्तन ।

शुक्लपञ्चैदीय धीतसूत्रोंमें "कार्त्वायत धीतसूत्र" का
नाम हो उल्लेखयोग्य है। यह ग्रन्थ २६ अध्यायमें विभक्त
है। शतपथब्राह्मणके प्रथम भी काण्डोंमें अत्र सब क्रियाओं
की आलोचना हुई है, इसके प्रथम १८ अध्यायमें उन
सब क्रियाओंकी आलोचना है। नवें अध्यायमें सौता-
मणी, विंश अध्यायमें पुरुदमेघ, सर्वमेघ और पितृमेघ,
बारसवे, तौसवे और चौबीसवे अध्यायमें एकाह, महौत
और मत्र आदि याज्ञिकक्रिया, पचोसवे अध्यायमें प्राय
विचल तथा छयोसवे अध्यायमें प्रसर्गकी आलोचना की
गई है।

कार्त्वायतसूत्रके अनेक भाष्यकार या पृत्तिकार हैं।
उनमेंसे यशोमोषी, पितृभूति, कर्क, मत्स्य, धीमनन्त,
गङ्गाघर, गदाघर, गार्ग, पद्मनाभ, मिथामिनहोत्री, याज्ञिकदेव,
श्रीधर, हरिहर और महादेवका नाम हो विशेष उल्लेख
योग्य है। पञ्चैदीय धीतसूत्रकी अनेक पद्धति और
परिनिष्ठमंथ हैं। इन सब प्रयोगोंका अधिकतर कार्त्वा-
यनके नामसे ही परिचित हैं। इनके अनेक टोककारके

नाम भी सुननेमें आते हैं। यहां निगमपरिनिष्ठ और
चरणभूदप्रथका नाम भी देखा जाता है।

वैजवापध्रीतसूत्र नामक एक सूत्रग्रन्थ है। वैज
वापहृत गृह्यसूत्रका भी एक ग्रन्थ देखनेमें आता है।

कातोयशुहा ग्रन्थ ३ काण्डोंमें विभक्त है। यह
ग्रन्थ पारस्करहृत है। चातुर्वेदने इसकी पद्धति प्रण-
यन की है। जयरामहृत उसका एक टीकाग्रन्थ है।
किन्तु रामहृष्य उर्फ शङ्करगणपतिने इसकी जो टीका की
है, यह टीका सम्पूर्ण पाण्डित्यपूर्ण है। इस ग्रन्थकी
भूमिकामें वेदसम्बन्धमें विशेषतः यजुर्वेद सम्बन्धमें
विशेष आलोचना है। रामहृष्यने यजुर्वेदीय काण्व
शाखाको ही ध्येय बताया है। इसके मिथा कर्क, गदा-
घर, जयराम, मुरारिमिश्र, रेणुकाचार्य, चागोशरी दल,
वेदमिश्र आदिके भाष्य भी प्रचलित हैं। पारस्कर
स्मृति भी इस देगमें प्रचलित है। यह पारस्करगृह्य-
सूत्रका ही पदानुवाच्य है। याज्ञवल्क्य स्मृतिसंहिता
आदि और भी कितने यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रानुवाच्य स्मृति-
संहितायात्र प्रचलित हैं।

प्रतिशाक्यसूत्र ।

शुक्लपञ्चैदीय प्रामिशाक्यसूत्र और इसका अनु-
क्रमणी ग्रन्थ कार्त्वायन-हृत समझा जाता है। इस
प्रामिशाक्यसूत्रमें वैवाकरण शास्त्रायन, शाक्य, गार्ग्य
और काश्यपके नाम हैं। दाल्भ्य, जानुकर्ण, शीनक
और भीषगियोका नाम भी देखनेमें आता है। यह
ग्रन्थ आठ अध्यायमें विभक्त है। इसके प्रथम अध्यायमें
"संज्ञा" और "परिभाषा" की आलोचना, द्वितीय
अध्यायमें "सर" और "व्यारण", तृतीय, चतुर्थ और
पञ्चममें "संस्कार", षष्ठममें क्रियापदका क्रमविनिर्णय,
अन्तमें स्वाध्यायका क्रम और निगम आलोचन हुआ है।
उपसंहारमें कुछ श्लोकोंमें वर्ण और शब्दके देवताओंकी
कथा उल्लिखित हुई है। उपरने इस ग्रन्थकी एक सुन्दर
टीका लिखी है। कार्त्वायनहृत अनुक्रमणी ग्रन्थ पांच
अध्यायमें विभक्त है। थोहलघरहृत इस अनुक्रमणीकी
एक उपादेय पद्धति है।

अथर्ववेद ।

अथर्ववेदसंहितामें बीस काण्ड हैं। य बास

अध्याय, ३३३ अनुवाक भी १३७५ कटिद्वयमे विभक्त है। अध्याय अनुवाचक तथा अनुवाक कटिद्वयमे विभक्त हुए हैं। पहला दर्शन अध्यायमे द्वापूर्वामानादि विविध प्रकारका दशमंश, अनिश्चयावतादि और सोम पायका मन्त्र, सोमपायके आतिशयमे उदात्त होय-जामिके लिये सोमामयो मंत्र आदि और अधोमेय यज्ञका मन्त्र लिखा हुआ है। बारवायकको अनुक्रमणिका, परिशिष्ट-मन्त्रा मन्त्रोपरका माध्व यज्ञनेसे प्राप्त होता है, कि यथास अध्यायमे पैमांस तक अर्थात् १५ अध्याय 'सिंह' अर्थात् परपत्नी' कह कर प्रसिद्ध है।

१५ अध्यायके प्रथम चार अध्याय पूर्ववर्ती अध्यायमे आलोचन यज्ञादिका मन्त्र लिखे हुए हैं। तत्परवर्ती दश अध्यायमे पुनर्मेषवज, सर्वमेषवज, पितृमेषवज और प्रायश्चित्त आदि विषयके मन्त्रादि लिखे हुए हैं। अन्तिम अध्यायके साथ यज्ञक्रियादिका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अध्याय 'इगोवनिवन्' है। "ईगावास्वमिद्" सर्व" इत्यादि सुविशेषतः श्रीगणेशाय वाच्यमे इत अध्यायका आशय है। यहाँ यह भी बत देना उचित है, कि सोलहवें अध्यायकी मन्त्रद्वया, इकतासवें अध्यायकी पुनर्मेषक और त्रयोविध अध्यायकी तद्वै कर्मकाण्डोप नदी' कह सकते हैं। कर्मकाण्डाय विषय प्रायः इसी तरह गीता-गीय साहित्यमे भी आलोचन हुए हैं। शुक्र यज्ञसर्वदमे प्रारम्भकी प्रणालीके अनुसार बड़ी गई अनेक कटिद्वय देखा जाता है, किन्तु ये सब कटिद्वय मन्त्रकी व्याख्या नहीं हैं, स्वतन्त्र मन्त्र हैं। यज्ञसर्वदमे भी ऐसी अनेक मन्त्र हैं, जो प्रायश्चित्तसाहित्यके मन्त्रोंसे बिलकुल मिलनी तुलना है। पाठसर्वदमेसाहित्यका माध्वयज्ञ और काण्वयज्ञोप साहित्य मूल्य जमा प्रतीयत है।

आजसर्वदमेसाहित्यके हुए माध्वयज्ञके नाम प्रसिद्ध है। यथा—उदक, माध्व, अनन्तदेव, आनन्द मन्त्र और महाधर। अर्थात् महाधरका माध्व ही पूर्वजन्तु देवनेमे आता है।

माध्वयज्ञः ।

यज्ञसर्वदमेसाहित्यके प्रारम्भमे अनन्तदेव पुनर्मेषवज दे। यहाँ तक कि समस्त प्रारम्भकीमे अनन्तदेव मूल्य ही अर्पित मन्त्र और सुविशेषतः है।

माध्वयज्ञ और काण्व इन् दोनों ही माध्वयो'क' मन्त्र-पद्यप्रारम्भ मिलता है। माध्वयज्ञ नामका माध्वयज्ञ-प्रारम्भ चौदह काण्डोंमें विभक्त है। ये चौदह काण्ड मन्त्र १०० अध्याय (या ६८ काण्डक) में विभक्त हुए हैं। इसमे आलोचन नामी प्रारम्भोंको मन्त्रा ७३८ है। ये प्रारम्भ मन्त्र ७३२४ कटिद्वयमे विभक्त हुए हैं। किन्तु काण्वयज्ञाके अनन्तप्रारम्भमे मन्त्रा काण्ड है। उक्तका पहला, चौथवा और चौदहवा काण्ड दो दो भागोंमें विभक्त है। आज तक उसके साठे मन्त्र काण्ड मिले हैं। इसमें ८५ अध्याय, ३६० प्रारम्भ और ४६१५ कटिद्वय है। किन्तु एक दूसरे पाठद्वयलिखे माना जाता है, कि इन मन्त्रोंमे कुल १०४ अध्याय, ४४४ प्रारम्भ और ५८६६ कटिद्वय विद्यमान हैं। अनन्त-प्रारम्भके प्रथम मन्त्र काण्डोंमें, साहित्यके १८ काण्डोंके यज्ञः उदुपूत लिखे गये हैं तथा जिस जिस क्रियाओंमें उनका व्यवहार होता है, उसे व्याख्या करके अच्छी तरह समझा दिया गया है। इनमे काण्डमें अन्तिम रूप विद्युत हुए हैं। इनमे बहुतसे छोटे छोटे उपायनामोंके साथ अनिश्चयावगणालो माध्वयज्ञ हुए हैं। मन्त्राद्वय काण्ड ८ अध्यायमें विभक्त है। इन अध्यायके पूर्ववर्ति लिखाकाण्डोंके अन्तिम विवरण छोटे छोटे पाठसर्वदमे उपायनाम आदि विद्युत हुए हैं। बारहवें काण्डमें माध्वयज्ञ और सोमामयो लिखाको आलोचना, सारहवें काण्डमें कर्ममेष और श्रीगणेश पुनर्मेष, सर्वमेष और पितृमेषका उल्लेख किया गया है। चौदहवा काण्ड 'अन्तदेव' कहलाता है। इसके प्रथम तीन अध्यायमे 'प्रवर्ग' लिखाका उल्लेख है। इसके लिये साहित्यके ३७वें अध्यायमे साहित्यको बतौ अच्छी तरह उदुपूत का गाँ है। किन्तु जो सभी देवताओंमें ध्युत है, यहाँ इनका भी उल्लेख है। इसके अर्पित छः अध्याय सुविशेषतः पुनर्मेषवज अर्पित हुए हैं। इन प्रारम्भमें १२०० मन्त्र, ८००० यज्ञ तथा ४००० नामसर्वदमे हुए हैं। महाधरके अनेक नामोंका साहित्य विवरण तथा महाधरके अनेक नाम तथा समस्तसाहित्य नाम अनन्तदेव-प्रारम्भमें देखा जाता है। कर्म और सुवर्णके पुनर्मेषका,

पुरुखा तथा उर्ध्वशोके प्रेम और विरहकी कथा, अग्नि-
द्रव्य कर्त्तृक व्यवनस्र्पिके युवकत्व प्रातिकी कथा इत्यादि
उपाख्यान, भी शतपथब्राह्मणमें संक्षेपसे वर्णित हैं।
उप्रसेन और धृतसेन आदि नामोंका उल्लेख है। कुय-
पाञ्चाल आदि ऐतिहासिक नामादि भी इस ग्रन्थमें
दिखाई देने हैं।

माध्यन्दिन शाखाके शतपथब्राह्मणके तीन भाष्य
देखनेमें आते हैं। एक हरिस्वामिहृत, दूसरा सायणहृत
तथा तीसरा कथोन्द्राचार्य सरस्वती-रचित है। माध्य-
न्दिन शाखाके वृहदारण्यक उपनिषद्के भाष्यकार त्रिवेद
गङ्गा हैं। ये गुजरातके रहनेवाले थे। धीमच्छङ्करा-
चार्यने जो वृहदारण्यक उपनिषद्का भाष्य लिखा है, यह
काण्वशाखाके अन्तर्गत है। ऋद्धकके शिष्योंने ऋद्धक
भाष्यकी कुछ टीकाएँ प्रणयन की हैं। उनमेंसे आनन्द-
तोष्य, रघुसम और व्यासतोष्यका नाम उल्लेखनीय है।
सिया इसके गङ्गाघरकी द्रोणिका, नित्यानन्दाश्रमकी
मिताक्षरा वृत्ति, मधुरानाथकी लघुवृत्ति, राघवेन्द्रका
खण्डार्थ, रङ्गरामानुज और सायणका भाष्य है।

भौतव्य।

शुक्लपञ्चदशोप धीतसूत्रोंमें "कात्यायन धीतसूत्र" का
नाम ही उल्लेखयोग्य है। यह ग्रन्थ २६ अध्यायमें विभक्त
है। शतपथब्राह्मणके प्रथम भी काण्डोंमें जिन सब क्रियाओं
की आलोचना हुई है, इसके प्रथम १८ अध्यायमें उन
सब क्रियाओंकी आलोचना है। नवें अध्यायमें मौत्ता-
मणो, विंश अध्यायमें पुरुषमेघ, सर्वमेघ और पितृमेघ,
बाईसवें, तीसवें और चौबीसवें अध्यायमें पहाड़, महीन
और सत्र आदि याज्ञिकक्रिया, पचीसवें अध्यायमें प्राय
शिवत्त तथा छगोसवें अध्यायमें प्रसर्गकी आलोचना की
गई है।

कात्यायनसूत्रके अनेक भाष्यकार वा वृत्तिकार हैं।
उनमेंसे यशोगोषी, विदुभूति, कर्क, मरू, बह, धीमन्त,
गङ्गाधर, गदाधर, गर्ग, पञ्चनाभ, मिश्रामिहोषी, याज्ञिकदेव
धीवर, हरिहर और महादेयका नाम ही विशेष उल्लेख
योग्य है। पञ्चदशोप धीतसूत्रकी अनेक पद्धति और
परिगिटप्रंथ हैं। इन सब प्रंथोंका अधिकांश कात्या-
यनके नामसे ही परिचित हैं। इनके अनेक टीकाकारके

नाम भी सुननेमें आते हैं। यहां निगमपरिगिट और
चरणशूद्रमंथका नाम भी देखा जाता है।

वैजवापध्रीतसूत्र नामक एक सूत्रग्रन्थ है। वैज
वापहृत शूद्रसूत्रका भी एक ग्रन्थ देखनेमें आता है।

कालीयशूद्रा ग्रन्थ ३ काण्डोंमें विभक्त है। यह
ग्रन्थ पारस्करहृत है। यासुदेवने इनकी पद्धति प्रण-
यन की है। जयरामहृत उसका एक टीकाग्रन्थ है।
किन्तु रामहृष्ण उर्फं ऋद्धकगणपतिने इसकी जो टीका की
है, यह टीका सम्पूर्ण पाण्डित्यपूर्ण। इस ग्रन्थकी
भूमिकामें वेदसम्बन्धमें विद्योतनः पञ्चदशोप सम्बन्धमें
विशेष आलोचना है। रामहृष्णने पञ्चदशोप काण्व
शाखाको ही श्रेष्ठ बताया है। इनके सिवा कर्क, गदा-
धर, जयराम, गुरारिमिश्र, रेणुकाचार्य, घाणोभरी दत्त,
वेदमिश्र आदिके भाष्य भी प्रचलित हैं। पारस्कर
स्मृति भी इस देशमें प्रचलित है। यह पारस्करशूद्रा-
सूत्र ही पद्मानुवायो है। याज्ञवल्क्य स्मृतिसंहिता
आदि और भी कितने पञ्चदशोप शूद्रसूत्रानुवायो स्मृति-
संहितानाथ प्रचलित हैं।

प्रतिशाख्यव्युत्प।

शुक्लपञ्चदशोप प्रातिशाख्यसूत्र और इनका अनु-
क्रमणी ग्रन्थ कात्यायन-हृत समझा जाता है। इस
प्रातिशाख्यसूत्रमें वैवाकरण शाकटायन, जाकल्य, गार्ग्य
और काश्यपके नाम हैं। दाल्भ्य, आनुकण, मौनक
और भीषणियोका नाम भी देखनेमें आता है। यह
ग्रन्थ साठ अध्यायमें विभक्त है। इसके प्रथम अध्यायमें
"संज्ञा" और "परिभाषा" की आलोचना, द्वितीय
अध्यायमें "स्वर" और "उच्चारण", तृतीय, चतुर्थ और
पञ्चममें "संस्कार", षष्ठममें क्रियापदका क्रमविनिर्णय,
सप्तममें स्वाध्यायका क्रम और नियम आलोचनित हुआ है।
उपमंहारमें कुछ अत्रोक्तियोंमें और अत्रके देवताओंकी
कथा उल्लिखित हुई है। उपरने इस ग्रन्थकी एक सुन्दर
टीका मिली है। कात्यायनहृत अनुक्रमणी प्रथम पाँच
अध्यायमें विभक्त है। धीहल्लघरहृत इन अनुक्रमणोंकी
एक उपादेय पद्धति है।

अपव्यंशेद।

अपव्यंशेदमंहितामें दोस काण्ड हैं। प बास

"यत्तद्दे मृषिष्ठं प्रह्ला यद् भृगुङ्कितस। वेङ्कितस। स
रहा। वेऽवर्षागस्तदुभेयकम् : यदुभेयजम् तदमृतम्।
यद्मृतं तदुग्रह।" (३।४)

समी वेदोंका सारमृत प्रह्लादिमक और प्रह्लरुच्यव्याता
का प्रतिपादक है, इस कारण यह प्रह्लवेद नामसे प्रसिद्ध
हुआ।

"चत्वारो ह्ये वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो मन्त्र-
वेदः।" (गोपय २।१६)

सारवच्यके कारण इसके प्रमत्त भी सिद्धमंत्र समझे
जाते हैं। यथा—

"न विधि न च नक्षत्रं न प्रदो न च चन्द्रमा।

अथमन्त्रवर्षमान्द्या सर्वविद्भिर्भिव्यति ॥"

(अथर्ववेदि ० २।५)

इस वेदके पांच अङ्ग हैं। प्रह्ला ही उसके छटा हैं।
ये यथाक्रम सर्वावेद, विज्ञाचमेद, अमसुरवेद, इतिहासवेद
और पुराणवेद नामसे प्रसिद्ध हैं। (गोपयना ० १।१०)

गोपय-ब्राह्मण।

अथर्ववेदके ब्राह्मण ग्रन्थमें गोपयब्राह्मण ही प्रसिद्ध
है। यह ग्रन्थ पूर्व और उत्तर इन दो ऋषियोंमें तथा
समस्त ग्रन्थ ग्यारह प्रपाठकमें विभक्त है। पूर्वार्द्धमें ६
और उत्तरार्द्धमें ५ प्रपाठक हैं। पूर्वार्द्धमें नाना प्रकारके
भाषयान और अन्यान्य विषयकी आलोचना है।
उत्तरार्द्धमें कर्मकाण्डकी आलोचना देखी जाती है।

अथर्ववेदका प्रतिपाद्य विषय।

अधिविहित दशपूर्णमासादि कर्मका अपेक्षित प्रह्लरुच्य
अन्य वेदमें अलभ्य है, केवल अथर्ववेदका ही समधि-
गम्य है। शान्ति और पुष्टिकर्म, राजकर्म और तुला-
पुरुष महादानादि तथा पौरोहित्य और राज्याभिषेकादि
विषय देखे जाते हैं।

इस अथर्ववेदकी नौ शान्तायें हैं। यथा—

"पैणलादा रत्तोदा मैत्राः शोमकोया जालला जलदा
प्रह्लवदा देववर्णा र्व्यारणवेदाद्वेति ॥"

इन सब शान्ताओंमें शीमकादि चार शान्ताओंकी
अनुमोदित अथर्ववेदसंहिताके अनुवाक्य सूक्त और
स्रुगादिके कर्मकाण्डोय विनियोगके लिये गोपयब्राह्मण
का अष्टमन्त्र कर पांच "सूक्तप्रमथ" कल्पित हुए हैं।

यथा—कौशिकसूक्त, वैतानसूक्त, नक्षत्रचन्द्रसूक्त, भाङ्गि-
रसकल्पसूक्त और शान्तिकल्पसूक्त।

भाष्यार्थव्य सूत्र।

कौशिकसूक्तकी जगह "संहिताविधि" नामका उद्देश
किया गया है। सावणान्यायिने संहिताविधि नामकी
व्याख्या कर लिया है,—"तत्र साकश्येन संहितामंत्राणां
शान्तिपौष्टिकादियु कर्मसु विनियोगविधानात् संहिता-
विधिनाम कौशिकसूक्तम्।"

अर्थात् शान्ति और पुष्टि कर्मोंदिके सम्बन्धमें संहिता
ग्रन्थोंके साकल्पमें विनियोग-विधान, इस सूत्रप्रथमें
आया है। इससे इसका नाम संहिताविधिसूत्र या
कौशिकसूत्र हुआ है। अनेक भूखण्डोंमें अथर्ववेदके
प्रतिपाद्य कर्मोंका विधान विषकीर्ण भावमें व्यवहित
हुआ था। उन्में ये सब विषय यथार्थमें दुर्बोध्य
समझे जाते थे। उन सब कर्मकाण्डोय विधानकी
सुविधाके लिये समी इसी ग्रन्थमें संघृहीत हुए हैं।
यह कौशिकसूत्र ग्रन्थ बहुतसे दूसरे दूसरे सूत्रग्रन्थोंके
काण्डयत् उपजोत्पर स्वरूप है, इसलिये यह सूत्रग्रन्थ अथ-
र्ववेदीय सूत्रग्रन्थोंमें प्रधान है।

इस कौशिक सूत्रग्रन्थमें जो जो कर्म करनेका विषय
लिखा है, यह ६ प्रकार है,—

१ ऋचाभ्योपाकविधानमें दर्शपूर्ण-मासविधि, २ गोधा-
जनन, ३ ब्रह्मचारिसम्पत्, ४ प्रामदुर्गताद्रीदि लामविषय,
५ पुत्र-पशु-धनधाम्य-प्रजा स्त्री-करि-तुरग रथान्दोलि-
कादि सर्वसम्पत्साधन, ६ मानयोंके वैकर्मरुच्य मन्वाङ्क-
साभमनस्यादि।

इसके बाद समी राजकर्म कहे गये हैं; यथा—ज्यु-
ह्वितन्नसन, संग्राम-विजयसाधन, इषु अर्धात् पाण-
निवारणार्थ यद्गृणादि सर्वशत्रुनिवारण, शत्रुपक्षीय
सेनाका मोहन, उद्ये जन, स्तम्भन और उषाटन, अगनी
सेनाका असाहयदहन और अमयरक्षा, मंग्राममें जय
और पराजयकी परीक्षा, सेनापति आदि प्रधान मायकों-
की जीतना, दूसरी सेनाके मन्थरण प्रदेनमें अग्निमग्नितन
पाशाभि-काणादि के कना, जयकामो राजाका रथ पर
आरोहण और रणक्षेत्रमें अग्निमग्नित मेरी पट्टादि समी
प्रकारके बाजे बजाना, सवत्सर्वायुर्कर्म, शत्रु कर्षक

काएट फिर ३८ प्राणवहोमि विमल है। इनके ३१० मूल और ३००० मूल हैं। किसी किसी आत्माके वरगमें अनुवाक विभाग भी देखनेमें आता है। अनुवाककी संख्या ८० है। आणवमहात्म्यमें मधुसंधेदेके 'पर्व' विभागाका उल्लेख है। किन्तु जगों जो हस्तनिविपी मिली हैं, उनमें कहीं भी पर्व-विभाग देता नहीं आता। गीजकजायाका संदिग्ध और विपयवाद्-जाकादे. संदिग्धाप्रवर्गकी हस्तनिवि भली भी प्रचलित है। वाजसनेयसंहिता, जलपत्रप्रज्ञान, छान्दोग्य-उप-निषद् तथा मैत्रिलोपनास्यपत्रमें मधुसंधेदेका उल्लेख दिखाई देता है। मधुसंधेदेमं भी जो मधुसंधेदेका समास है, वह इनके पक्षमें वेदमन्त्र-प्राप्त्यमें लिया जा चुका है।

हीन, माधवपद्य और उद्गात इस माधवा द्वारा तीन वेदोंके प्रति सर्वदा होतादि कर्तव्य प्रतिपादन पर-त्य ही आता आता है। इसका प्रथम कर्तव्य प्रतिपादन तादर्थ्यमें समाहित नहीं होता। होशुकराण्य विपयमें किम प्रकार मृगरे विपय मूलक. मजुसंधेदेका तादर्थ्य नहीं है, अनिहोत किम प्रकार मधुसंधेदेका तादर्थ्य नहीं है, जगों प्रकार प्रकट व जो बाको तीन वेदोंका तादर्थ्यमें नहीं मगन्ता आता। परन्तु प्रकटविपयमें मृगरे वेदमें जो उगका कुछ न कुछ उल्लेख भवत है। किन्तु प्रकटपक्षी इन तीन वेदोंका तादर्थ्यमें नहीं मान सकते। अत्याम्य तीन वेदोंमें ही प्रकटव विपयका उल्लेख देना आता है, यह उन तीन वेदोंका समासपूर्वक विपयय और मधुसंधेदेप्रतिपादन भादवमोव नहीं है। अदृश्यता पर प्रयोग होय है। भादवमोवका कथना है, कि अदृश्य देवपुत्र प्राणापरोक्ष होत-भी अनुप्रेव नहीं है, यथा—मधुसंधेदे या मजुसंधेदेमें होशुकराण्यके जो मधुसंधेदे, उर्दे' नहीं कथना थादिपे। कथीक, वे मधुसंधेदे' है। (मधुसंधेदे ११३) वाहजमम (मधुसंधेदे कथनापेका अर्थ तीन वेद द्वारा ही निरपय होय है। किन्तु मधुसंधेदेकी व्यवस्था मधुसंधेदे द्वारा ही कही गई है, मीयमहात्म्यमें—मधुसंधेदेमं पद्य विमल विद्या, उर्देमें प्रकट द्वारा हीन, मजु द्वारा मधुव-

पेय, सामप्रदाय मीयुगासका तथा मधुसंधेदे द्वारा प्रकटव निरपय विद्या।"

इस प्रकार प्रकट करके मीयमहात्म्य यह भी कहते हैं, कि वेद द्वारा यकता मधुसंधेदे मधुसंधेदे हीन है, किन्तु मधु द्वारा प्रकट वचके मृगरे पक्षका संस्कार करते हैं। (मीय ११२)

इस वेदके मगों मग्य प्रायेशोक. माधवपद्यमया युक्त। मधुसंधेदे वेदोंके जो उपदेशोंमें वे भरे हुए हैं। यह वेद मधुसंधेदे प्रायि द्वारा देना गया है, इस कारण इसका नाम मधुसंधेदे न है। फिर कोई कोई प्रकटपर्व-के लिये इस वेदकी प्रयोगशीलता कथनमें हुए ही प्रकटपर्व जो करते हैं। मधुसंधेदेके हुए मगों की भी कर इस वेदको सृष्टि हुई, इस मधुसंधेदेमें एक वीर्यिक किंयदली इस प्रकार है। पुत्राकात्ममें मधुसंधेदे सृष्टिके लिये कठिन तपस्या कायम कर ही। जगों मधुसंधेदेके लोमकूपीमें स्वेकृपाता पर चली। इस स्वेकृपात जगमें मगनों छाया देवमें उतका रीतकथित हो गया। उन रीतके माय जग ही मगोंमें विमल हुआ। पर. भागमें भृगु नामक महर्षि उदयव हुए। यह भृगु मगमें उदयादक प्रायिवरथे न वाकर इनके दर्शनके लिये बडे उत्सुक हुए। इनो मधुसंधेदेका कालो हुई। "मधुसंधेदेपत्र" एतन्मन्त्रेणाव मधुसंधेदे" (मीयमो ११४) इनो कारण उर्दे मधुसंधेदेवाकी प्रायि हुई। मधुसंधेदे रीतयुक्त जगमें मधुसंधेदे पदमःप्र-पावन लयमान प्रायिके साथे संयुक्त इस उदक गया किममें मधुसंधेदे नामक महर्षिभी उदयव हुए। इनके बाद उन द्वारापुत्र प्रदने मधुसंधेदे और मधुसंधेदेका मधुसंधेदे किया था। जगमें कथना पर है भादि मधुसंधेदेपत्रा बोधवा मधुसंधेदेमं उदयव हुआ।

तामान इन प्रायिकोंके समाव मधुसंधेदे प्रदने ही मधुसंधेदे वेदों में वे ही 'मधुसंधेदेमं' मधुसंधेदेवेद कथ-लाये। एतन्मन्त्रे प्रायिकोंके संख्या हीन रहींके कारण उन वेदके बीम काएट हुए। मगों वेदोंका माधुसंधेदे मधुसंधेदे है, इस कारण यह मगों वेदोंमें अंतु आता गया है। यथा—मीयमहात्म्यमें लिखा है, "मधुसंधेदे वेदमधुसंधेदेमं प्रायि प्रकटपर्व करते मधुसंधेदे।" (११३)

"यतश्चै भूयिष्ठं ब्रह्मा यद् भृशङ्कितम् । वेऽङ्कितम् स रक्षः । वेऽवर्णानस्तद्भुमेपङ्कम् । यद्भुमेपङ्कम् तद्भृशङ्कितम् । यद्भृशङ्कितं तद्ब्रह्म ।" (३।४)

सभी वेदोंका सारमूल ब्रह्मात्मिक और ब्रह्मवर्त्तव्यताका प्रतिपादक है, इस कारण यह ब्रह्मवेद नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

"चत्वारी इमे वेदा भृशवेदो यद्भुमेदः शमवेदो ब्रह्मवेदः ।" (गोपथ २।१६)

सारपद्यके कारण इसके मन्त्र भी सिद्धमन्त्र समझे जाते हैं । यथा—

"न विधि न च नम्र न प्रदो न च यद्रमाः ।

मध्वमन्त्रसंज्ञान्त्या सर्वैस्त्रिभिर्निष्यति ॥"

(मध्ववर्षि० २।५)

इस वेदके पाँच भाग हैं । ब्रह्मा ही उसके छटा हैं । ये यथाक्रम सर्ववेद, विनाशवेद, मनुष्यवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद नामसे प्रसिद्ध हैं । (गोपथ० १।१०)
गोपथ-ब्राह्मण ।

अथर्ववेदके ब्राह्मण ग्रन्थमें गोपथब्राह्मण ही प्रसिद्ध है । यह गृथ पूर्व और उत्तर इन दो बण्डोंमें तथा समस्त गृथ ग्याह-प्रपाठकमें विभक्त है । पूर्वार्द्धमें ६ और उत्तरार्द्धमें ५ प्रपाठक हैं । पूर्वार्द्धमें नाना प्रकारके भाषयान और अन्यान्य विषयकी बालीचना है । उत्तरार्द्धमें कर्मकाण्डकी बालीचना देखी जाती है ।

मध्ववेदका प्रतिपादक ।

तद्विविहित दशपूर्णासादि कर्मका अवेक्षित ब्रह्मव्य भव्य वेदमें बलभ्य है, केवल अथर्ववेदका ही समविषय है । ज्ञान्ति और पुष्टिकर्म, राजकर्म और तुला-पुरुष महादानादि तथा पौरोहित्य और राज्याभिषेकादि विषय देखे जाते हैं ।

इस अथर्ववेदकी भी ज्ञानार्थ है । यथा—

"पैपलादा इतीदा-मैत्राः शैमकीया जालला जलदा प्रह्वदा देवदर्ना इचारणवेदाश्चेति ।"

इन सब ज्ञानार्थोंमें जीनकादि चार ज्ञानार्थोंकी अनुगोदित अथर्ववेदसंहिताके अनुयाय, सूक्त और श्रुतादिके कर्मकाण्डोप विनियोगके लिये गोपथब्राह्मण का अष्टलम्बन कर पाँच "सूक्तग्रन्थ" कहियन हुए हैं ।

यथा—कौशिकसूक्त, घेतानमूक्त, नक्षत्रकल्पसूक्त, भाङ्गिरसकल्पसूक्त और शान्तिकल्पसूक्त ।

माध्वव्येय सूत्र ।

कौशिकसूक्तकी जगद् "संहिताविधि" नामका उल्लेख किया गया है । सायणाचार्यने संहिताविधि नामकी व्याख्या कर लिखा है,—"तत्र साकल्येन संहितामंत्राणां शान्तिपौष्टिकादिषु कर्मसु विनियोगविधानान् संहिताविधिनाम कौशिकसूक्तम् ।"

अर्थात् ज्ञान्ति और पुष्टि कर्मदिके सम्प्रथमे संहिता मन्त्रोंके साकल्यमें विनियोग-विधान, इस सूत्रग्रन्थमें आया है । इससे इसका नाम संहिताविधिग्रन्थ वा कौशिकसूत्र हुआ है । अनेक भूवग्ण्योमें अथर्ववेदके प्रतिपादक कर्मोंका विधान विप्रकीर्ण भावमें व्यवहित हुआ था । उसमें ये सब विषय यथार्थमें दुर्बोध्य समझे जाते थे । उन सब कर्मकाण्डोप विधानकी सुविधाके लिये सभी इसी ग्रन्थमें संशुद्धीत हुए हैं । यह कौशिकसूत्र ग्रन्थ बहुतसे दूसरे दूसरे सूत्रग्रन्थोंके कौशव्य उपजीत्य स्वरूप है, इसलिये यह सूत्रग्रन्थ अथर्ववेदोप सूत्रग्रन्थोंमें प्रधान है ।

इस कौशिक सूत्रग्रन्थमें जो जो कर्म करनेका विषय लिखा है, वह १८ प्रकार है,—

१ स्थालोपाकविधानमें दर्शपूर्ण-मासविधि, २ गेषा-जनन, ३ ब्रह्मचारिसम्पद्, ४ प्रामदुर्गाराद्रादि लामविषय, ५ पुत्र-पशु-घनधास्य-प्रज्ञा श्रो-करि-तुरग रथान्द्रो-कादि सयंसम्पत्साधन, ६ मानवोंके पेरुमरव्य सम्पादक सामग्नकादि ।

इसके बाद सभी राजकर्म कहे गये हैं ; यथा—जन्म-हन्तिवासन, संप्राम-विजयसाधन, इषु अर्थात् पाण-निवारणार्थ बहूयादि सर्वज्ञप्रतिधारण, जन्मपक्षीय सेनाका मोहन, उद्धे जन, स्तम्भन और उषाटन, अग्नौ सेनाका उत्साहयदन और मनवधरता, संप्राममें जय और पराजयकी परीक्षा, सेनापति भादि प्रधान-तापकी-की जीतना, दूसरी सेनाके सङ्घटन प्रदेशमें अग्निमन्त्रन पानामि-नानादि विक्रमा, जयकामो राजाका रथ पर भारोदण और रणक्षेत्रमें अग्निमन्त्रित भेरी पट्टादि सभी प्रकारके बाजे बजाना, सपरतदावर्गमें, जन्म कर्त्तक

रीढ़ी। विज्ञयकामनाकारीके लिये वपराजिता। यम-
मयमें पाय्या। जलमयमें यावणी। पाट्यामयमें यावपी।
कुलक्षयनिवृत्तिके लिये सगति। वलक्षयनिवृत्तिके
लिये त्वाप्पी। बालककी व्वाचिनिवृत्तिके लिये कीमारी।
निर्द्धातप्रसन्नके लिये नैर्द्धातो। बलकामोके लिये माक-
दृगणी। अश्वक्षयनिवृत्तिके लिये गाव्यवर्षी। गजक्षय-
जातिके लिये पारावती। भूमिकामनाकारीके लिये
पारिंदी और मयारोंके लिये भया नामक महाशक्ति।

भाङ्गिरसकल्पमें—अभिचार-कर्माकालमें कर्त्ता और
कारयिता सद्गुणोंकी आत्मरक्षाकरण विधि कीर्तित
हुई है। इसके बाद अभिचारके उपयुक्त देग, काल,
मण्डप, कर्त्ता और कारयिताके दीक्षादिधर्म, समिध
और आज्यादिसम्भारके निरूपण आदि विषय वर्णित
देखे जाते हैं। अनन्तर अभिचारकर्म तथा परकृत्याभिचार
निवारण और अन्यान्य कर्मादि है।

शाम्भिककल्पके आरम्भमें घैनायकप्रहृष्टकी लक्षण
है। उसकी शाम्भिके लियेद्रव्यसम्भारके आहरणकी
व्यवस्था है। अभिषेक और घैनायक होमादि, तम्
पूजाविधान और आदिस्थादि नवप्रहृष्टादि कर्म इस
कल्पमें सम्विष्ट हैं।

इन सब कल्पोंमें जो राज्याभिषेककी स्थापार वर्णित
हुमा है उससे उपयुक्त द्रव्य-अस्त्रित, द्रव्यपरिमद और
पुरोहितपरंपादि शेष पर्यन्त सभी कार्य समझे जाते हैं।
पहले राज्याभिषेक—प्रातःकालमें प्रातर्घन्त, गंध, बल-
ह्वार, सिंहासन, मध्य, गज, आन्दोलिका, लष्ट्य, ध्वज,
चामरादि तथा मन्त्रोंसे अभिमंत्रित कर राजाकी देना
हो पुरोहितका कर्म है। सुवर्णधेनु, तिल और भूमि-
दानादि राजाकी दैनिक करार्य है। पुञ्जित विष्टमव
सन्तोष राजप्रतिष्ठा द्वारा राजाका मोराजन है। रक्षाकरण
इत्यादि पुरोहितका राजिकर्म है। राजाका पुण्याभिषेक,
राजिमें राजाका आरतिकविधान, प्रातःकालमें प्रातर्घृत
दर्शन, कविन्दराग, तिलधेनुदान, रत्नादि धेनु, कृष्णाजिन
दान, गुलायुधपविधि, आदिस्थापनमण्डलाकार अयुधदान,
हिरण्यवर्णविधि, हस्तिरक्षण, एषोरसर्ग, कोटिशोम,
सहशोम, अयुतशोम, पूनहस्तविधि, तटाकप्रतिष्ठा,
पाशुपतप्रत इत्यादि अन्याय दानप्रत हैं।

किस प्रकार, किस ओर और कहां पर ये सब कार्य
करने होते हैं यह भी उक्त ग्रन्थमें लिखा है। नित्य
नैमित्तिक और काव्य भेदसे यह तीन प्रकारका है।
यथा—जातकर्मादि नित्य, दुर्दिनागिनियवारणाशय
शास्त्र्यङ्गुत कर्म नैमित्तिक तथा मेधाजननप्रागम्यप्रादि
काव्य है। यह नित्य और नैमित्तिक कार्य प्रामके
बाहर पूर्वोत्तर महामन्त्री या तटाकके उत्तरीकिनारे करना
होता है।

"पुरस्तादुत्तरतोऽरपये कर्मणा प्रयोग उत्तरत उदकान्ते"
(कीर्तिकल्प १३०)

पुंसवनादि नित्य कर्म शूद्रमें तथा आभिवारिक
कर्म प्रामके दक्षिणदेशमें कृष्णपक्षमें वृत्तिकानक्षत्रमें
होगा। (कीर्तिकल्प १३१)

शुभ नित्यकर्माका काल दोनों पर्व और पुण्य महात्-
युक्त तिथि है।

"अमावस्या पीर्षानांशु पुण्यनक्षत्रवृत्तिभिः।
एतस्य त्रयः कानाः सर्वेषां कर्मणां स्मृताः ॥
अद्भुतानां वदाकालं भारम्मा सर्वकर्मणाम् ॥"
(ब्रह्मान्य)

भाषार्थ उपनिषत्।

दूसरे सभी वेदोंसे अथर्ववेदोय उपनिषद्की संख्या
हो अधिक है। ब्रह्मत्वव्यवकाज ही उपनिषद्का उद्देश
है। अतएव अधिकार्थ उपनिषत् प्रत्यक्षका अङ्ग समझा
जायेगा, इसमें सन्देह ही क्या! विद्यारण्य स्वामीने
सर्वोपनिषद्वर्णानुभूति प्रकार" नामक ग्रन्थमें मुण्डक,
प्रश्न और नृसिंहोत्तर तापनीय इन तीन उपनिषदोंका ही
अथर्ववेदोय आदि उपनिषद् कहा है। किंतु गङ्गारा-
व्यायने मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न और नृसिंहोत्तरानो
इन चारोंका ही प्रधान आशयार्थ उपनिषद् कहा है।
यहां तक कि विद्यारण्यने अपने वेदान्तसूत्रमें इन चार
उपनिषदोंके प्रमाण बनेक बाद उद्धृत किये हैं। मुण्डक
मस्तक एक श्रेणीके मिश्रुने ही मुण्डकउपनिषद्का
नामकरण हुआ है। कोई कोई पादचार्य परित्यक्त इनके
उद्दिष्ट्यावनिषद्का पूर्वोक्तों तथा श्वेताश्वतार और पूरदा-
रूपकका समकालीन मानते हैं। ब्रह्म क्या है, किम
प्रकार उनका ज्ञान होता है और किम उपायसे

पुनः पुनरुद्भवतीत्याप्याचर्षाः ।" "आप्याः ईश्वरपुत्राः" (यास्क १।१।३) वेदके शालाघिभागप्रसङ्गमें लिखा जा चुका है, कि ब्रह्माष्टपुराणानुसार आदि ऋषिगण ही ईश्वर कहे गये हैं। उनके पुत्रगण ही यास्कके मतसे आर्षा हैं। जहां ये आर्षागण जन्मग्रहण और वास करते थे वही स्थान आर्षावर्षा हैं।

यह आर्षावाम कहाँ है ? ऋक्संहिताले हमें मान्य होता है, कि हिमयत्पृष्ठके दक्षिण भागमें बसा हुआ सुवास्तु जनपद प्रकृत आर्षावर्षा पुरवर्षमें अवस्थित था । यास्कने लिखा है, "सुवास्तुनदी तुय तीर्था मयति तूर्णा मेनदायगित ।" (४।२।७)

प्रसिद्ध वैवाकरण पाणिनि भी "सुवास्तुवादिभ्योऽण" (४।२।७७) सूत्रमें सुवास्तुजनपदका परिचय दे गये हैं। पाणिनिके समय यह जनपद जो आर्षाका वासस्थान कह कर प्रसिद्ध था उक्त सूत्र ही उसका प्रमाण है। आप्यावर्षा शब्दमें दिखला चुके हैं, कि वर्तमान स्वात् या सुवात् नदी ही वैदिक सुवास्तु है।

ऋक्संहिताके ५।५।३६ मन्त्रमें लिखा है, कि रसा, अनितमा, कुमा, सिन्धु और जलमयी सरयू जिससे जलप्लावनदि द्वारा विहरणमें बाधा न पड़े। उक्त मन्त्रोक्त नदियोंका संस्थान निर्णय करके हम पुरातन आर्षावर्षाकी एक सीमा निर्देश कर सकते हैं। उज्जिहान प्रदेशकी सुवास्तु नदीनिरन्तर सुवास्तु जनपदसे बहुत दूर उत्तर रसा नदी बहती है। वही नदी आर्षावासकी उत्तरी सीमा, वर्तमान समयमें कावुल नदी नामसे प्रसिद्ध होनप्रमया कुमा पश्चिमी सीमा, तक्षशिला प्रदेशीय सरयू नदी पूर्वी सीमा और कुमाके दक्षिण क्रमु सिन्धु-सङ्गम ही इसकी दक्षिणी सीमा है।

इस सुवास्तुप्रदेशके पश्चिममें अवस्थित निपथ पर्वत पर भी आर्षागण वास करते थे। १।१०।४१ मन्त्रके "योनिष्ट इन्द्र निपदे अकारि"से निपदमें वायापिकार साबित होता है। ज्ञातपथप्राङ्गणके ३।३।२।२ मन्त्रमें "नदी नीविष" पदका उल्लेख है। फिर १।१०।४४ ऋद्ध मन्त्रमें मञ्जनी, कुलिगी और वीरपरनी नामकी तीन नदियोंके प्लावनसे राज्ञाकी मामि (मर्षात्

प्रधानावास वा राजधानी)-रक्षा करनेकी कथा है। ये सब नदियां कहाँ बहती थीं ? मञ्जनी सुवास्तुमें ईगानकोणमें और कुलिगी सुवास्तुमें वायुकोणमें दक्षिणका मोर तथा वीरपरनी अनिकोणसे दक्षिणकी ओर बहती थी।

इस प्रकार क्रमशः सुवास्तुसे पूर्वकी ओर बहुत दूरमें अवस्थित धोकण्डरीनसे निकला हुआ जदुमुनिकी आध्रनतलवादिनी जाङ्गवी नदीके तट पर्यन्त आर्षावास विस्तृत था। ऋक्संहिताके "पुराणमोकः सधव" वां युधोनेरा द्रिगिणं जहायाम् ।" (३।५।८।६) मन्त्रोक्त जाङ्गवी प्रदेश जाङ्गवीके किनारे अवस्थित था। यह पञ्चकोराके पूर्व, सिन्धुके पश्चिम और वनूके उत्तर तथा सुवास्तु जनपदके समीप था।

आर्षा और आर्षावर्षा देखो।

इसके बाद यहाँसे आर्षायाम क्रमशः सारस्वत-प्रदेशमें फैल गया। यह नास्पकगुल उत्कृष्ट प्रदेश यन्मूमिके लिये प्रशंसनीय था। आर्षाऋषिगण यहाँ बहुतसे यागयज्ञ कर गये हैं। अनेक ऋद्धमन्त्रोंमें इस स्थानकी यागविवरण परिपुष्टिका उद्धृत है। ऋक् ३।२।३४ मन्त्रके "दृषद्वत्वां मानुष भापवायां सरस्वतां रेवदाने दिदोह" यवनमें दृषदतो तोरसे ले कर सरस्वती तोर तक तीन नदीका तट सारस्वतक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध था। इस स्थानका दूसरा नाम ब्रह्मापत्त है। हम मनुसंहितामें उसका उल्लेख देखें—

"धरत्ता दृषद्वत्वां देवनयोर्दन्तानाम्।

तं देवनिमित्तं देशं ब्रह्मापत्तं प्रचक्षते ॥" (मनु २।१०)

इसके बाद ही मनुने लिखा है, ब्रह्मापत्तके बाद कुशोतीदि आर्य जनपद महापुण्य देश है,—

"कुशोपथ मत्स्याम पञ्चासाः शूतेनकाः।

एषो ऋषिदिशो वै ब्रह्मापत्तदन्तानाम् ॥" (मनु २।१६)

आर्षा पाठकोंको मान्य होया, कि आर्षावाम किम प्रकार घोंटे घोंटे उत्तरमातरमें फैल कर ब्रह्मपिंडी नामसे प्रसिद्ध हुआ था। आभ्यन्तयन नाम्ना १।३।१०-१२, २।३।२८, २।३।१६-१८, ६।११, ६।८।५१-२, १०।१।३७ ई ऋक्, सादिकी आलोचना कर देखेंगे हैं, कि यथापीमें यह

लघुपादसे निकलनें हुई सिन्धु नदी ही प्राचीन मार्ग्या-
यसकी दो सफ्ट करके बह रही है। उसीके उत्तर पास
हीमें और भी सात नदियोंका उल्लेख ऋक्संहिताके
१०।७।७-८ मंत्रमें देखा जाता है—

"ऋजीत्मेनी वयतो महिष्वा परंपराधि भवते रवाधि ।
अरुधा सिन्धुषु सामवस्तमान्वा न चिवा वपुषीष दरोता ।
संश्वा सिन्धुः सुरया मुग्गावा हिरण्ययो मुहता याजिनोवती ।
ऊर्वायित्री युवतिः शीषमावत्युनाधि वस्ते मुमगासु वृषम् ॥

(ऋक् १०।७।७।८)

उन नदियोंमें ऊर्वायित्री कैलासनिम्नस्य ऊर्वा
प्रदेशमें बहती है। हिरण्ययो, याजिनीवती और सांलमा-
यती नामकी तीन नदियां उत्तरदेशमें बह गई हैं। पना
नदी आज भी निम्नयेलुचिस्तानमें मौजूद है। चित्ता
नितल प्रदेशसे निकल कर कुमांमें मिलती है। ऋजीतो
एक समय उसीके पास पास बहती थी।

इन ७३ नदियोंका उल्लेख हम ऋक् १०।७।१ मंत्रमें
पाने हैं। उन नदियोंमें सिन्धु ही प्रधान है तथा उन
मंत्र नदियोंसे इसका कलेवर पुष्ट होता है। (ऋक्
१०।७।१४) अतएव उक्त २१ नदियां सिन्धुसिन्धु हैं।
उनके मानों धरण हैं, यह सोच कर ऋक् १०।६।८-९
मंत्रमें "त्रिः सप्त सप्तान् नद्यः" इत्यादि वाक्योंसे उनको
स्तुति की गई है।

अभी देखा गया, कि त्रिमत् नदियोंसे परिवृत्त
सिन्धु मध्यप्रदेश ही-प्राचीन कालको आदीभूमि है।
इस आर्यायाममें कहां गया मिलता था तथा किस किस
विशेष विषयके साधनके लिये कौन कौन स्थान निर्दिष्ट
था, वह पेत्रेयब्राह्मणके "यस्तेतो ब्रह्मवर्षासिमन्ते
०० प्राङ् स इषान् । योऽप्राचमन्ते ०० दक्षिणा स
इषान् । या सोमपोथमिन्ते ०० उक्त्वा स इषान् ।"
(१।२।२) मंत्रमें लिखा है।

ऋक्संहिताके वर्णानुसार सिन्धुकी ही प्राचीन
आर्याभूमिका मध्यदेश माननेसे देखा जाता है कि
सिन्धुके पूर्वमें ही सारस्वत्यादि तीरभूमि हैं। वही स्थान
पञ्चानुष्ठान द्वारा ब्रह्मवर्षनेत्र लगानेके योग्य है।
गतद् और सिन्धुसङ्गमके दक्षिण हिम-प्रायुर्त्प न रहने
तथा प्रबल तापके कारण यहां काजो फसल लगती

है। अतएव सिन्धु अत्रलाय करनेकी इच्छा हो ये
दक्षिण दिशामें ही जाये। सिन्धुके पश्चिम बहुतमे
जंगल हैं, इस कारण यहां पशुजातकी अधिक समाधान
है तथा गतद् सिन्धुसङ्गमके उत्तर जीतकी अधिकता
रहनेसे सोमपशुकी वृद्धि और बाहुल्य सूचित होता है।

ऊपरमें द्वितीय नदी सप्तर्षके अंतर्गत जिस रसा नदी
का उल्लेख किया गया है वह आर्यावासकी उत्तरी
सीमा है। ऋक्संहिताके १०।१०८ सूक्तके पारदधे
मंत्रमें सरमा और पणिषोके कपोपकधनप्रसङ्गमें
अनार्यों द्वारा आर्योंका मोहरण-वृत्तांत सूचित हुआ है।
पणिषण पणिक् जातिके थे। ये आर्योंके साथ हो
रहते थे, इस कारण उनकी भी गिनती आर्यों में की गई
है। असुर या बलजालो अनार्यागण आर्योंकी ही
धुरा कर ले गये थे, पीछे कुत्सोंकी सहायतासे उनकी
पुनः प्राप्ति हुई थी। इस समय अनार्यावासमें उर्ध्व
रसा नदीको पार करना पड़ा था। (ऋक् १०।१०८।१)
ऋक्संहिताके ८।४।२ मंत्रमें तथा १०।१२।१४ मंत्रमें ही
विभिन्न रसा नदियोंका उल्लेख है। निम्नके मतमें रसा
नदी शम्भुकारिणी है। पर्वतधनुकी मेद कर बलबल-
नदसे बहती है अथवा पर्वतगात्रसे प्रवृत्ताकारमें गिरती
है। १०।७।६ मंत्रमें एक रसाके सिन्धुसङ्गम तथा
१०।१२।१४ मंत्रमें दूसरी रसाको समुद्रसङ्गम कहा है।
यह आर्योंके बाहर और वर्तमान पौराणिक राज्यके
अंतर्गत है। अथवा मंत्रमें रसा नामसे यह पणित है।
ऋक्संहिताके ८।६।१३ १५ मंत्रमें शंशुमती नदीके
कितावे आर्यप्रमाय फेलेनेकी कथा है। उक्त शंशुमती
नदी पशुनामों गिरती है और दृष्टहतीके पूर्वमें अध-
स्थित है। १०।५।३८ मंत्रमें अश्वमेधकी नशोत्तरकी
छोड़ कर और नदीको पार कर आर्योंके द्वापरत आने-
का उल्लेख देखा जाता है। यह अश्वमेधकी गतद् के पूर्व
और चर्मराके पश्चिम विनयन प्रदेशमें बहती थी। इम-
से प्रमाणित होता है, कि पूर्वतन आर्यागण मध्यपश्चिमा-
से नदी जाये, ये दिग्भ्रमण पर्वतके समीपवर्ती विस्तृत
स्थानमें ही रहते थे।

११।०।११ ३ मंत्रमें जिजा नदी निषद् प्रदेशमें बहती
थी, निषय शब्दके सादृश्यमें ही इमका अनुमान



लघुपादसे निकली हुई सिन्धु नदी ही प्राचीन साय्या-
पस्की की लघु नदी कह करके बह रही है। उसीके उत्तर पास
होम और भी सात नदियोंका उल्लेख ऋक्संहिताके
१०७५-७८ मंत्रमें देखा जाता है—

“शृजोत्मेनी वसो महेत्वा परंप्रापि भवे रजोषि ।
धरणा पिन्धुस्य सामपस्तमाश्वा न चित्रा यजुषीष दशता ।
स्य श्वा सिन्धुः सुरया सुवाषा रिरपयवी सुहता यामिनीवती ।
ऊर्षावती युवतिः शीघ्रमावत्सुतापि वस्ते मुमगामयु वृषम् ॥

(ऋ. १०७५।७८)

उन नदियोंमें ऊर्षावती कैलासनिजस्य ऊर्षा
प्रदेशमें बहती है। रिरपयवी, यामिनीवती और सोलमा-
यती नामकी तीन नदियां उत्तरदेशमें बह गई हैं। पना
नदी भाज भी निम्नवेलुधिस्तानमें मौजूद है। चित्रा
विवल प्रदेशसे निकल कर कुमायें मिलती है। ऋतोती
एक समय उसीके भास पास बहती थी।

इन ७३ नदियोंका उल्लेख दम ऋक् १०७।१ मंत्रमें
पाये हैं। उन नदियोंमें सिन्धु ही प्रधान है तथा उन
सब नदियोंसे इसका कलेवर पुष्ट होता है। (ऋ.
१०७५।४) अतएव उक्त २१ नदियां सिन्धुसिन्धु हैं।
उनके मानों धरण हैं, यह सोच कर ऋक् १०।६४।८-६
मंत्रमें “त्रिः सप्त सप्तानामा” इत्यादि पाठ्योंसे उनकी
स्तुति की गई है।

अभी देखा गया, कि त्रिसप्त नदियोंसे परिवृत्त
सिन्धु मध्यप्रदेश ही प्राचीन कालकी भार्गवूमि है।
इस भार्गवाममें कहां पया मिलती था तथा किस किस
विशेष विषयके साधनके लिये कौन कौन स्थान निर्दिष्ट
था, यह पैनरेवप्राज्ञके “वस्तेतो प्रलवर्षासमिच्छेत्
० ० प्राश्र्म इवात् । योऽप्राधमिच्छेत् ० दक्षिणा स
इवात् । यः सोमपोधमिच्छेत् ० ० उवृत्स इवात् ।”
(१।२।२) मंत्रमें लिखा है।

ऋक्संहिताके धर्षणानुसार सिन्धुकी ही प्राचीन
भार्गवभूमिका मध्यकेंद्र माननेसे देखा जाता है कि
सिन्धुके पूर्वमें ही संरसव्यादि तीर्थभूमि है। यही स्थान
यज्ञानुष्ठान द्वारा प्रद्वेष्यतेज लाभ करनेके योग्य है।
ज्ञातद् और सिन्धुसङ्गमके दक्षिण हिम प्रायुर्ष्वा न रहने
तथा प्रबन्ध तापके कारण वहां काशी कसत लगती

है। अतएव जिह्वे भ्रमणार्थ करनेकी इच्छा हो ये
दक्षिण दिशामें ही जायें। सिन्धुके पश्चिम बहनेमें
जंगल हैं, इस कारण वहां पशुशालाकी अधिक सम्भालना
है तथा ज्ञातद् सिन्धुसङ्गमके उत्तर शीतकी अधिकता
रहनेसे सोमयज्ञीकी वृद्धि और बाहुल्य सूचित होता है।

ऊपरमें द्वितीय नदी सप्तकके मतार्थत जिस रसा नदी
का उल्लेख किया गया है यह भार्गवासकी उत्तर
सोमा है। ऋक्संहिताके १०।१०८ सूक्तके ग्यारहवें
मंत्रमें सरमा और पणिषोके कपोपकथनप्रसङ्गमें
अनार्यों द्वारा भार्योंका मोहरण-वृत्तत सूचित हुआ है।
पणिषण पणिक् जातिके थे। ये भार्योंके साथ हो
रहते थे, इस कारण उनकी भी गिनती भार्योंमें की गई
है। असुर या बलशाली अनार्यागण भार्योंकी भी
चुरा कर ले गये थे, पीछे शूत्रोंकी सहायतासे उनकी
पुनः प्राप्ति हुई थी। इस समय अनार्यावाममें उन्हें
रसा नदीको पार करना पड़ा था। (ऋ. १०।१०८।१)
ऋक्संहिताके ८।४।२ मंत्रमें तथा १०।१२।१४ मंत्रमें दो
विभिन्न रसा नदियोंका उल्लेख है। निदकके मतमें रसा
नदी शब्दकारिणी है। पर्वतपशुकी मेढ़ कर बलवन्-
नदीसे बहती है अथवा पर्वतगात्रसे प्रपत्ताकारमें गिरती
है। १०।१।६ मंत्रमें एक रसाके सिन्धुसङ्गम तथा
१०।१२।१४ मंत्रमें दूसरी रसाकी समुद्रसङ्गम कहा है।
यह भार्गवशोकें बाहर और यत्मान ग्योराजान राज्यके
भ्रमार्थत है। अथवा प्रथममें रसा नामसे यह परिणत है।
ऋक्संहिताके ८।६।१३ १५ मंत्रमें शंशुमती नदीके
किनारे आर्यप्रमाय किन्तनेकी कथा है। उक्त शंशुमती
नदी यमुनामें गिरती है और दृग्दतीके पूर्वमें अय-
स्थित है। १०।५।३८ मंत्रमें अश्रमयती नदीतीरकी
छोड़ कर और नदीको पार कर भार्योंके दृग्दत आने-
का उल्लेख देखा जाता है। यह अश्रमयती ज्ञातद् के पूर्व
और धर्षाके पश्चिम विजान प्रदेशमें बहती थी। इस-
से प्रमाणित होता है, कि पूर्वतन भार्यागण मध्यप्रांश्या-
से गढ़ी जाये, ये हिन्दूकुज पर्वतके समीपवर्ती विन्धु
स्थानमें ही रहते थे।

१।१०।४।३ मंत्रमें जिह्वा नदी जिह्वे प्रदेशमें बहती
थी, निदक शब्दके ग्राह्यधर्मों ही इसका अनुमान

संहिताके ७।१८ सूक्तमें इन्द्रको सम्राट्, सुदाम राजाके यज्ञकी कथा, वृत्सुगणका इन्द्रके साथ युद्धमें परास्त हो निम्नगामो जलकी तरह धावन तथा बाधा या बर सुदामको समस्त भोग्य वस्तु देनेकी कथा है। ७।२।१७ मन्त्रमें इन्द्रने इन्द्र सुदामको सहायतासे एक कार्य किया था। उन्होंने सूची द्वारा युपादिका कोण कोट डाला और सुदाम राजाको समस्त धन दान किया था। ७।२।११ मन्त्रमें लिखा है, "यमुना" "युत्सया" "अज्ञान" "जिप्रया" "यक्षया" आदि यामुनप्रदेशादि नियायो सामन्तराजोंने छोड़े, या मनुष्यके तिर पर उप-टोकन लाइ कर इन्द्रकी उपहारस्वरूप भेजा था। यहां इन्द्रको सम्राट् कहा जा सकता है तथा अज्ञ, जिप्र, यक्ष, और यामुन जनपदादिके सामन्तराजोंने उसकी अधीनता स्वीकार कर यज्ञमें यलि भेजे थी।

उक्त यामुनादि जनपद पूर्वतन या अधुनातन भार्या-वर्त्तकं यद्विमगमं था। यह यमुना गङ्गाके पश्चिम पार्श्ववाली है या दूसरी? अभी इसी पर विचार करना चाहिये। जह्मशी प्रदेश वर्त्तमान गाङ्गेय प्रदेशमें जिस प्रकार बहुत दूरमें अस्थिधत था, उसी प्रकार यह यामुन प्रदेश भी संहिताकालमें उत्तरी सीमा पर ही वर्त्तमान था। शिप्रु जनपद चन्द्रभागा-प्रवाहित देशके ऊर्ध्वदेशका एक करदराज्य था।

चेतरेय कालमें अर्थात् ब्राह्मण-युगमें इस भार्यावर्त्त-कां भाषयतन कहां तक फैला था यह उक्त ग्रंथके अति-पेकप्रकरणमें लिखा है, "प्राच्यो दिशि ये के च प्राचवानां राजानाः ७० दक्षिणस्यां दिशि ये के च सरवतां राजानाः ७० प्रतीच्यो दिशि ये के च गोचवानां राजानो येऽप्रा-चवानां ७० उदोच्यो दिशि ये के च परेण हिममन्तं जनपदा उत्तरकुर्व उत्तरमद्रा ७० ध्रुवांवा मध्यमावां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुण्डशालां राजानाः सयज्ञी-शीनराणां राज्याथैव तेषामिविचयने ॥" (पुत्रेयका ० ८।१।२)

यहां "प्राचवानां राजानाः" इस सामान्योक्ति द्वारा अनुमान किया जाता है, कि उम समय पूर्वदेशमें बहुतसे छोटे छोटे राजाओंमें एक प्रबल पराक्राम्य राजा भी थे। अथ मन्त्रमें भी (१।४।६) "प्राच्यो प्रामना बहूलाविष्ठाः" उक्ति द्वारा भी इसका समर्थन किया गया

है। संहिताकालमें पूर्वदेशीय जो सब गहाड़ी जनपद विद्यमान थे, यही अंश प्रसिद्ध नेपालादि किरात नगरी है। पाणिनिके (१।१।७५) सूत्रमें भी हमें मालूम होता है, कि प्राच्यभूमिमें काश्यपकुत्र, अहिच्छत्रादि प्रसिद्ध पुरी विद्यमान थी। चेतरेय-ब्राह्मणकालमें ये सब स्थान प्रामरूपमें थे, ऐसा ही प्रतीत होता है।

उस समय दक्षिण देशमें जो वल्लवत्तम सरवत् राज्य था, यह परवर्त्तिकालमें छत्रपुरी नाममें प्रसिद्ध हुआ। चेतरेयब्राह्मणमें तथा शतपथब्राह्मणके "मादत्त यह काजोनां भरतः सत्यतामिव" (शतपथका १।३।५।२१) गाथापद्यतमें भरताचिह्न इस प्राचीन राज्यका अस्तित्व दिखाई देता है। दीपान्ति भरत तथा उनके वंशधरगण जो इस प्रदेशके राजा थे यह चेतरेयब्राह्मण (८।४।६)के निम्नोक्त श्लोकसे स्पष्ट मालूम होता है। यथा—

"महासहति भरतो दीपन्तिर्यमुना मुनु ।
गङ्गायां दृक्प्लेजन्तान् पञ्चमायतं इषान् ॥
श्वसिञ्चद्धत् राजारवान् यथाप मेष्पात् ।
दीपन्तिरत्यगाद्राजो मायां माविरधरा ॥"

शतपथब्राह्मणके १।३।५।१-१४ मन्त्रमें यह विषय अच्छी तरह समझाया गया है।

प्रतीच्यदेश बहुत सी नदियोंसे परिपूर्ण था। यहां एक भी सुमशूद्र राज्य न था। इसके उत्तरी भागमें पर्यतपादस्थ भूमिपगण 'दीच' कहलाते थे। दक्षिण भागमें अथाक्य और मध्यभागमें केवल भारपदेश था। यहां अथाक्य और नोचगण रहते थे। यह प्रत्यक्षदेश जो भरपवमय था, ३।४।६ मन्त्रमें उल्लेख है।

उत्तरदेश यार्वाण् दिमालय पृष्ठदण्डके उत्तरी भागमें और प्राचीन भार्यावर्त्तके पश्चिममें यार्वाणिय जनपद उत्तरमद्र और उत्तरकुण्ड विद्यमान था। मालूम होता है, कि हिमालयके दक्षिण भार्यावर्त्तके अन्तर्गत मद्रदेश और कुण्डदेश उस समय दो भागोंमें विभक्त हुआ था तथा भार्यावर्त्तके अन्तर्गत मद्रदेशके दलर जो देग था यहां उत्तरमद्र और कुण्डदेशका उत्तरी देग उत्तरकुण्ड था। भार्यावर्त्तके प्रत्यन्तदेशके बाद भी सर देश और महा-देश है, यहां कार्य या अनार्यका कोई विचार न था।

उस समय भी दक्षिण मगध भार्यावर्षाके अन्तर्मुक्त न हुआ । परपक्षों कालमें पतञ्जलिद्वारा महाभाष्यमें मालूम होता है, कि दक्षिण मगध भार्यावर्षाकी सीमाके अन्तर्गत हुआ था ।

पतञ्जलिने भार्यावर्षाकी जो सीमा निर्देश की है वह इस प्रकार है,—

“क। पुनराप्यांश्याः । प्रागांश्यात् प्रत्यक्कालकय-
नात् दक्षिणेन हिमवन्तं उत्तरेण पारिपालम् ।” (२।१।१०)
टीकाकार कीवटके मतसे आदर्श नामका एक पर्वत था । यह भार्यावर्षाकी पश्चिमी सीमा तथा पूर्वोक्त पर्वत पर्वतका दक्षिणांश सीमापर्वत था । इसे लोग अजून पर्वत भी कहते थे । पक्षान्त मानमें यह सुले-
मान पर्वतश्रेणी कहलाता है । भार्यावर्षाकी पूर्वो सीमा पर कालकयन था । यही कालकयन धर्मात्पर्वके पूर्व और दक्षिण मगधके पश्चिममें अवस्थित वकासुर (वर्तमान बषसर) प्रदेशका सुप्रसिद्ध ताड़कयन है । प्राचीन कालमें यह धन कालययनके अधिकारमें रहनेसे कालयन या कालकयन कहलाता था । हरिवंश और विष्णुपुराणमें (५।२३।५) कालययनके साथ मगध-
राम जरासन्धकी मित्रताकी बातें लिखी हैं । उससे कालकयन और मगधका सामोप्य ही समझा जाता है । उस समय पूर्वा मगधमें अनाद्योग्य रहते थे । पतञ्जलिने लिखा है—

“हममतिः सुराष्ट्रेषु रहतिः प्राच्य मगधेषु । गमिमेव
रथाप्याः प्रयुञ्जते ।” (महाभाष्य पण्यशा०)

इससे जाना जाता है, कि सीतापूजनपद और प्राच्य-
मगधोप कुसुमपुर भार्यावर्षा सीमाके यहिर्भूत था । इसके सिवा अतपथमें पाहोका (१।१।१।३) और कन्नोम (२।१।१।५) शब्दका उल्लेख है । पानिजिके ५।३।१७ । ४।१७५ और ४।३।१६ सूत्रमें तथा महाभारत-
के द्रोणपर्व—११७वें और १५५वें अध्यायमें कन्नोम और पाहोकीका विवरण वर्णित है । यह जनपद पदने भार्या-
वर्षाके अन्तर्गत था ।

श्रोक भृगुसंहितामें मनुने भार्यावर्षाकी सीमा इस प्रकार निर्दिष्ट की है—

“भासमुद्रात् वे पूर्वादासमुद्राय पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिवीर्यावर्षात् विदुष्यं पाः ॥”

(मनु २।१२)

अर्थात् उत्तर और दक्षिणमें विष्णुवागिरिका मध्यपक्षों
भूभाग भार्यावर्षा है । यह आर्याभूमि प्रहादर्या, प्रसर्णि
देश, मध्यदेश और पश्चिम देश नामक चार भागोंमें
विभक्त है । उसकी प्राप्तभूमि श्लेष्मभूमि कहलाती
है ।

“अरस्तो इपत्सोदंवनयोर्दन्ताम् ।

तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मवर्षां मनुष्यैः ॥

कुदन्नेष्य मत्स्यारव पश्चात्ता शूरेनकाः ।

एष ब्रह्मविदेशो वे ब्रह्मवर्षादन्तरम् ॥

हिमवदिन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग् विनशानादति ।

प्रत्यगेव प्रयोगाय मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥

इत्यष्टादशसु नरति भूगो यन स्वभावतः ।

त येषो पश्चिमे देशे श्लेष्मदेशस्ततः परम् ॥”

(मनु २।१७, १६, २१, २२)

यही तो भार्यावर्षा है । इनके यहिर्भागमें अनाद्य
और ययनोका वास है । वामनपुराणमें लिखा है,
“पूर्व किराता यस्यान्ते पश्चिमे ययनाः स्मृताः । आग्ना
दक्षिणतो धोर नुत्सहास्त्वयि चोत्तरे ।” (वामनपुराण
१।५०) अतएव उस समय कोरामान, तुगल्क,
आग्ना आदि प्रदेश श्लेष्मदेश हुए थे । उनके साथ
साथ दक्षिणयङ्ग, अङ्ग, पूर्वमगधादि देश भी हज
सारविहीन अवस्थितके कारण श्लेष्मदेश समझा
जाता था ।

इसी कारण—

“मह्यमन्वदिज्ञेषु शीतान्मगधेषु च ।

तीर्णवाश्रयिना गच्छन् पुनः श्वेतारमदिति ॥”

इस स्मृति ययनसे यहाँ अर्धैदिक प्रभावका होना
साबित होता है । इन सब देशोंमें जन्म होने पर भी
द्विजके यक्षार्थ उक्त प्रहादर्यादि चार देशोंका आश्रय
लेना कर्त्तव्य है । (मनु २।२५)

प्राच्यमगध सव्यान् पटना मध्यमें, अङ्ग प्रदेश धर्मान
भागलपुर-आदि स्थानोंमें पीछे जाकर अतीव प्राच्य बङ्गमें

वेदग्रन्थ (सं० पु०) विष्णु ।
 वेदघोष (सं० पु०) ब्रह्मघोष, वेदध्वनि ।
 वेदचक्षुस् (सं० स्त्री०) ज्ञानचक्षुः ।
 वेदजननी (सं० स्त्री०) वेदस्य जननी माना । वेद-
 माता, सावित्री ।
 वेदज्ञ (सं० स्त्री०) यद् जानातीति ज्ञा-क । १ वेदविद्वद्,
 वेदविहित कर्म जाननेवाले । २ ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मज्ञानी ।
 (मनु १२।१०१)
 वेदतत्त्व (सं० स्त्री०) वेदस्य तत्त्वम् । वेदका तत्त्व,
 वेद निहिततत्त्व ।
 वेदतत्त्वार्थ (सं० पु०) वेदनिहित विषयोंका तात्पर्य-
 ज्ञान । (मनु ५।६२)
 वेदता (सं० स्त्री०) स्तुतिकारक । (शुक १०।६०।११)
 वेदनीर्घ—पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम ।
 वेदस्थ (सं० स्त्री०) वेदका भाष या धर्म । (हरिवंश)
 वेददर्श (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषिर्ना-
 म । अर्घार्थवेदविद्व मुनि स्तुमरतुने वेददर्शको अर्घार्थ-
 वेद पढ़ाया था । (भागवत १२।७१)
 वेददर्शन (सं० स्त्री०) १ वेदमन्त्रदृष्टि । २ यह जो
 देवताओं वेदोंका स्वरूप जान पड़े ।
 वेददर्शी (सं० स्त्री०) वेद वेदार्थ पर्ययति दृग्-गणित ।
 वेदार्थग्रहण, यह जो वेदोंका ज्ञाता हो ।
 वेददाम (सं० स्त्री०) वेदविषयक उपदेश, दान, वेद-
 पदाना ।
 वेददोष (सं० पु०) मदीघरहण शुद्धयुक्तवेदका भाष्य ।
 वेदधर (सं० पु०) वासवदत्तावर्णिता व्यक्तिभेद ।
 वेदधर्म (सं० पु०) वेदविहित धर्म । १ वेदोंका या
 वेदविहित धर्म । २ वैश्वके एक पुत्रका नाम ।
 वेदध्वनि (सं० पु०) वेदस्वर ध्वनि । वेदघोष ।
 वेदन् (सं० स्त्री०) वेदना देलो ।
 वेदना (सं० स्त्री०) विद-कमुद्, यदी (पश्चिमिदिशि
 उपसंख्यानं । वा ३।३।१०७) १ दुःख या कष्ट आदिका
 होनेवाला अनुभव, व्याथा, तकलीफ । पर्याय—अनुभव,
 संवेद, ज्ञान, दुःख । २ बीजोंके अनुसार वांश स्वरूपोंमें
 से एक स्वरूप । ३ विषाह । ४ निकटत्वा, इलाज ।
 ५ रव्य, घमटा ।

वेदनायत् (सं० स्त्री०) वेदना-महत्त्वयै मनुष्य मरुच
 यत्वं । वेदनायुक्त ।
 वेदनिन्दक (सं० पु०) वेद निन्दनीति निन्द-पुत्रुल् ।
 १ यह जो वेदोंको निन्दा करता हो, वेदोंको बुराई करने-
 वाला । २ नास्तिक । ३ भागवान् पुत्रका एक नाम ।
 ४ बीजधर्मका अनुयायी ।
 वेदनिघण्टोर्घ—मानन्दतोर्घ-प्रसिद्ध सम्प्रदायके एक
 गुरु । वे पहले प्रथुम्नाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे ।
 विद्यापीठ तोर्घके बाद इन्होंने भागार्थवेद पाया ।
 वेदनिघोष (सं० पु०) वेदस्य निघोषः । वेदघोष, वेद-
 पाठध्वनि ।
 वेदनीय (सं० स्त्री०) १ ज्ञातव्य, ज्ञानने योग्य ।
 २ वेदनायोग्य, कष्टदायक ।
 वेदनूर—दक्षिणप्रदेशके मद्रिस्तुर राज्यान्तर्गत एक नगर ।
 यह समुद्रकी तहसे ४ हजार फुट ऊंचेमें अवस्थित है ।
 इसका दूसरा नाम हैदर नगर भी है । एक समय यह
 नगर घनजनसे परिपूर्ण था । १७६३ ई०में हैदर अलीने
 इस नगरको अधिकार किया और लूटा । प्रयाद है,
 कि उसने इस नगरसे १२० फीट दूरकेका घनरत्न
 संग्रह किया था । हैदरने यहां एकमाल घर भोला और
 अपने नाम पर सिद्धा चलाया । यह सिद्धा हैदरी-
 पगोडा कहलाता था । १७८३ ई०में मद्रुरैत सेनापति
 जेनरल माथिसने यह स्थान हथल किया । किन्तु
 कुछ समय बाद ही टोपूसुलतानको नेमाने नगरको
 आक्रमण कर लहम लहम कर डाला । उस समय
 ममी नगरवासी टोपूके हाथ बन्दो हुए थे । तमीमें
 यह नगर क्षममा छोड़ीन होना आ रहा है । यहांकी
 जनसंख्या डेढ़ हजारसे ऊपर है ।
 वेदनूर—राजपूतानेके आराधक्यो वर्षतवाद्मूलरूप एक
 सामन्त-राज्य और नगर । यह मेरार राज्यकी सीमाके
 अन्तर्गत है । यहांके एक प्राचीन सरदारका नाम राय-
 सुरतान था । राजस्थानका इतिहास पढ़नेमें मालूम
 होता है, कि राय सुलतान मोलतूरी पंगीय राजपूत तथा
 अजमेरवाइके सुविशाल बहुरा राजवंशके पंजधर
 थे । १३वें मदीमें वे पितृराज्यसे विनाशित हो मध्य-
 भारत भावे और टट्टू छोड़ प्रदेश तथा वृन्दा नदी तीरे-

वेदरक्षण (स० ह्री०) वेदकी रक्षा ।
 वेदर बलान्—दिल्लीभर महमदशाहके पुत्र । १७८८ ई०में गुजरात कांवर शाहने बालमकी कैद किया और १७९० मितम्बरको वेदरकी सप्राट् बनाया । उन्होंने सिर्फ एक मास बारह दिन राज्य किया था । उसी सालकी १२वीं मघपूवको मराठा सेना जब दिल्ली पहुंची, तब वेदर बलत मयसे भाग गये । वोछे शाह बालमके हकूमसे ये पकड़े और मार डाले गये ।

वेदर बलान्—दिल्लीभर मोदिल शाहके पुत्र । १७०३ ई०की ८वीं जूनको मोजिम शाहके सिंहासनाधिकार ले कर सप्राट् बहादुरके साथ युद्ध छिड़ गया । भागना और होलपुरके मध्यवर्ती जजोबान नामक स्थानमें दोनों दलोंमें युद्धमें डूबे हुए । इस रणक्षेत्रमें वेदर और उनके भाई बलाजा पिताके साथ यमपुरकी सिपारे ।

वेदरहस्य (स० ह्री०) वेदान्त रहस्य । उपनिषद् ।
 वेदराशि (स० पु०) वेदान्त राशि । वेदसमूह ।
 (मनु १।२१ कुल्लुक)
 वेदराजसामो—महाभारत तारापर्व निर्णयके प्रणेता ।
 वेदपत् (स० ति०) वेदं ज्ञानं अस्त्यस्य मनुष्य मस्य य ।
 ज्ञानपुत्र, ज्ञानी । २ वेदविजिप्त ।

वेदवती (स० स्त्री०) वेदवत् त्रिवां स्त्रीय । १ कुजाध्यक्ष राजकन्या । यही दूमरे जन्ममें सोतादेयीके रूपमें भवतीर्ण हुई थी । प्रसवैवर्षपुराणमें लिखा है, कि राजा कुजाध्यक्षने लक्ष्मीको कन्यारूपमें पानेके लिये कठोर तपस्या की । इस तपोबलमें कुजाध्यक्षको पत्नी मालावतीने कालक्रमसे लक्ष्मीको अंशरूपिणी एव कन्या प्रसव की थी । यह कन्या भूमिष्ठ होनेके बाद ही सूतिकागृहमें वेदध्वनि करने लगी, इसलिये इनका वेदवती नाम हुआ । बालिकाने उत्पन्न होते-ही स्नान कर तपस्याके लिये यन्में जा कर पुष्करतोर्धमें एक मयवन्तर काल कठोर तपस्या की । इस तपस्यामें उनको जरा मो हुंज नहीं हुआ । परं मयवीचनसन्तानता ही उनका शरीर हट पुष्ट हो गया । उस समय वेदवतीने एकाएक आकाशवाणी सुनी—तुम अग्नीतरमें हरिकी पतिरूपमें पानोगी । यह देववाणी सुन कर वेदवती

गम्यमाद्गनपर्वत पर जा कर फिर कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुई । इसी मयस्यामें लक्ष्मीभर राधण एक दिन अकस्मात् उनके समीप भाया । वेदवतीने अतिथिके ब्याजसे उसकी अर्घ्याद्यादिले पूजा की । राधणने वेदवती द्वारा दिये हुए फलमूलका भोजन न कर उनके निकट जा उनसे पूछा, 'कल्याणि ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ?' यह कह कर पाविष्ठ राधण काम धाणसे पीड़ित और मूर्च्छितप्रयाय हो कर उन मनी-हारिणी पीनोन्मत्तपयोधरा वेदवतीको पकड़ कर उसी जगद् विहार करने पर उद्यत हुआ ।

सती वेदवतीने शोच हाँसे राधणको स्तम्भित कर दिया । इससे राधणका दाघ, पैर, मुख भादि सभी जड़भूत हुए । उस समय राधण उनका मन ही मन स्तय करने लगा । देवीने उसके स्तयसे रग्मुष्ट हो उसको पुनः प्रकृतिस्व कर यह अग्निनाय दिया, कि तुम मेरे लिये ही स्वाग्धय विनष्ट होगे । तुमने मेरा शरीर स्पर्श किया है, मैं इस देहको त्याग करती हूँ, देवो । यह कह कर सतीने योगबलसे देहको परियाग कर दिया । फिर राधण उस देहको उठा कर गङ्गामें डाल अपने स्वानको बल दिया ।

कालाश्वरमें यह साध्वी जनकारमजा रूपमें जन्म प्रदण कर सीता नामसे ख्याता हुई । राधण इनके लिये सयंश नष्ट हुआ । देवीके अग्निप्रोवसे प्रह्लाद सोता अग्निके समीप रहतीं और राधण छाया-सोताकी हरण कर लक्ष्मीमें ले गया । राधण-वधके बाद अग्नि-परोक्षाके समय अग्निदेवने प्रह्लाद सोताको अर्पण किया ।

राम और अग्निके उपदेशानुसार इसे छाया सीतानि मों पुष्करतोर्धमें तोन लाख वर्ष तक तपस्या की । इस तपोबलसे ये यक्षकुण्डने उत्पन्न ही पाण्डुर-रमणी द्रुपद्भारमजा द्वीपदेशी नामसे प्रसिद्ध हुईं । (मन्वे० पु० महवि० १३-१४) २ पारिपातपर्वतमध्य मदीवतीव । ३ एक अक्षराका नाम ।

वेदवती—दक्षिणभारतमें प्रवादित एक नदी । इसके उत्तर और काराष्ट्र नामक दिग्भूत जनपद हैं । यहाँके प्राजाप्य काराष्ट्र ब्राह्मणके नामसे परिचित हैं ।

(लक्ष्मी १।१।१)

जिसको कोई देख नहीं सकता था। इसके बाद महर्षि द्वारा सृष्ट इस अम्बकारको देख कर तपस्विनी कन्या विस्मित और लज्जित हुई। धीरे धीरे सत्यवतीने श्रुति-परसे कहा, 'भगवन्! मेरा विवाह नहीं हुआ है। आपके समागमसे मेरा कन्यामाय दूषित होगा। ऐसा होनेसे मैं किस तरह पितृकुलमें अवस्थान कर सकूंगी। आप इन सब बातों पर विचार कर जो उचित समझें, करें।'।

सत्यवतीके ऐसे कहने पर पराजार परम समुष्ट हो कर कहने लगे—मेरे सहयोगसे तुम्हारा कन्यामाय दूषित नहीं होगा। तुमको जो इच्छा हो, वरको प्रार्थना कर सकती हो। मेरी प्रसन्नता कभी निष्फल नहीं जाती। इस पर सत्यवतीने अपनी देहमें सौगन्ध्य होनेकी प्रार्थना की। मुनिवरने तथास्तु कहा।

इसके बाद सत्यवतीने श्रुतमती और परलामने समुष्ट हो कर पराजार मुनिके साथ संगम किया। उसी समयसे उसका नाम गन्धवती हुआ। मनुष्य पार कोससे ही उसके शरीरको गन्धका अनुभव करने लगे। इससे इसका दूसरा नाम योजनगन्धा भी है।

सत्यवतीने इस तरह उच्चम वर वा कर पराजारके मनोरथको पूर्ण किया और आप उसी समय गर्भवती हो गईं। उचित समय पर उसने प्रसव किया। उस गर्भसे पराशरनन्दन उत्पन्न हुए। यह पुत्र कृष्णकाय थे और यमुनागर्भस्थ दोषमें जन्मे थे, इससे कृष्ण द्वैपायन कहलाये। ये जन्मते ही माताको आक्षाने तपस्या करने लगे। जाने समय ये मातासे कह गये थे, कि अब तुमको कोई अकृत हो, मुझे स्मरण कर लेना। तुम्हारे स्मरण करने ही मैं छा जाऊंगा।

द्वैपायनने इसी तरह पराजारके औरस तथा सत्यवतीके गर्भसे जन्म लिया था। उन्होंने देखा, कि प्रत्येक युगमें धर्माका एक पैर कम होता आ रहा है और परमायु क्षीण हो रही है। अब उन्होंने वेदकी रक्षा और प्रादुर्भावके प्रति अनुग्रह दिग्गजानेके लिये वेदका व्यास अधीन विभाग किया। इसीसे उनका नाम वेद-व्यास पड़ा। उन्होंने सब वेदोंके विभाग कर निम्न सुमन्तु, जैमिनी, वैश, वैशम्पायन और पुत्र मुकन्दैवकी

अध्ययन करा कर महाभारतका उद्देश दिया था। उन्होंने महाभारतको एक संहिता प्रकाशित की थी।

(भारत भादिवर्ष ६२ व ७०)

कालक्रमसे संतवयतोंके साथ अमृत्युर्धनीय क्षत्रिय राजा शाश्वतनुसे विवाह हुआ। कुटुम्बल पितामह भोष्पने इस विवाहको स्वार्थ रवाग कर किस तरह सम्पन्न किया था, महाभारतके पढ़नेवालोंसे यह छिपा नहीं है। इसके बाद शाश्वतनु-तनय विचित्र धीर्षको मृत्यु हो जाने पर सत्यवतीने व्यासको बुलाया और उन्हें विधवा पुत्र-वधुओंसे निषाग करा कर पृतराष्ट्र और पाण्डुके उत्पन्न कराया था। धर्मात्मा विदुर मां व्यासनन्दन कहलाते हैं। भोष्प, पाण्डु और शाश्वतु देना।

हम पुराणोंसे जान सकते हैं कि वेदव्यासके पहले मित्र मित्र कदममें मित्र मित्र व्यास भाविभूत हुए थे। कर्म, वायु, और विष्णुपुराणमें २८ व्यासोंका उल्लेख है। ये विष्णु और ब्रह्माके स्वरूप कहे गये हैं। कल्प कल्पमें धर्माका रूपलाप देव कर धर्मरक्षाके लिये स्वयं भगवान् ब्रह्माने कई व्यास रूपमें अवतीर्ण हो वेदकी रक्षा और विभाग किया था। व्यास याक्यविशेषका नाम नहीं है। यह वेदविभागकारी श्रुतिपैतृकी सम्मानजनक एक उपाधि है।

हमारे देजमें वेद-विभागकारियोंके लिये जैसे व्यास उपाधि है, वैसे ही यूनानियोंमें श्रान्तर्गत्मापञ्चक होमरस (Homeros) उपाधि विद्यमान है; किन्तु हमारे व्यास शाश्वत है। वेदांतदर्शनकार, महाभारतकार, महाद्वन्द्व महापुराणकार और चारों वेदोंके विभागकर्ता व्यासवेदके एक व्यक्ति सम्भवा भूत है। किन्तु रतना अरु स्वीकार किया जा सकता है, कि किसी एक जन्ममें एक व्यास जो सम्पादन कर गये, दूसरे जन्ममें उगे पुनर्वाप देव एक दूसरे श्रुतिने उस शाश्वती मर्वादा-रक्षा करनेके लिये व्यास उपाधि धारण कर उस शाश्वती रक्षा की थी। वेदान्त, पुराण वा महाभारत ज्ञान उनमेंसे एकका प्रणयन है।

भीये २८ व्यासोंके नाम दिये जाते हैं—वे प्रम-मादि तपपरमं एकके बाद एक समुद्भूत हुए थे। जैसे—१. स्वयम्भू. २. प्रजापति या मनु। ३. उगना। ४. वृहस्पति।

प्रकार ज्ञात, ये दोके अङ्ग या ज्ञान जो छः हैं. और जिनके नाम इस प्रकार हैं—गिज्ञा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द ।

“पितृणा कृतो व्याकरणे. निरुक्तं ज्योतिषं गणयः ।

छन्दोविचित्रित्स्वेतौ पद्मो वेद उच्यते ॥” (गिज्ञा)

इसमेंसे व्याकरणको लोग यदोका मुख, गिज्ञाको नाक, निरुक्तको कान, ज्योतिषको माँस, कल्पको हाथ और छन्दको पैर मानते हैं । वेद देतो ।

२ सूक्तदेव । (मारव बनव) ३ द्वादश आदित्य-

मेद, बारह आदित्योंमेंसे एक आदित्य ।

वेदाङ्गतीर्थ—मध्यविजयटीकाके प्रणेता ।

वेदाङ्गराय—१ अशोचकन्द्रिकाके रचयिता । २ महाकद्र-पद्धतिके प्रणेता । ३ पारसीप्रकाश और धातुदीपिकाके रचयिता । ये गुजरातप्रदेशके धारुण्यवासी तिण्डल-भट्टके पुत्र थे । मुगल-सम्राट् शाहजहाँके आदेशसे इन्होंने १६४३ ई०में पारसीप्रकाशकी रचना की ।

वेदानार्थ (सं० पु०) वेदशास्त्रोपदेश ।

वेदानार्थ भावसायक—स्मृतिरत्नाकरके प्रणेता ।

वेदात्मन् (सं० पु०) १ पिण्ड । २ सूक्तदेव ।

वेदादि (सं० क्लो०) वेदानामादि, षष्विद्विपचारिकाः शब्दाः स्यन्निष्कमपि त्यजन्ति इति श्वापादस्य क्लोवत्वम् । १ प्रणव, ओङ्कार । २ वेदका आदि ।

वेदादिनाम (सं० क्लो०) वेदस्य आदी प्रयुक्तं योजनं । प्रणव ।

वेदादि—मन्त्राग प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत मन्दीग्राम तालुकका एक बड़ा ग्राम । यह कृष्णा नदीके किनारे अवस्थित है । यहाँ एक प्राचीन दुर्ग तथा अस्वाभ्य अट्टालकाबोहा ध्वंसावशेष दिखाई देता है ।

वेदाधिगम (सं० पु०) वेदस्य अधिगमः । वेद षोडशरण, वेदविद्यानाम । (मनु २।२)

वेदाधिदेव (सं० पु०) ब्राह्मण ।

वेदाधिप (सं० पु०) वेदानामधिपः । सन्वेदका अधि-पतिप्रह । आग्नेदेके अधिपति वृहस्पति, वसुधेदेके अधिपति शुक्र, सामवेदेके मरुत और अथर्ववेदेके अधि-पति बुध है ।

वेदाध्यक्ष (सं० पु०) अधीश्वन् । (हरिवं०)

वेदाध्ययन (सं० क्लो०) वेदस्य अध्ययनं । वेदपाठ, पद पढ़ना ।

वेदाध्याय (सं० पु०) वेदोपदेन ।

वेदाध्यायिन (सं० क्लो०) वेदमध्ययेति वेद मधि-र गिति । वेदपाठकारी, वेद पढ़नेवाला ।

वेदानुपचयन (सं० क्लो०) वेदधापय ।

वेदाङ्ग (सं० क्लो०) वेदानां अङ्गः वेदाङ्गाः । वेदका

अङ्ग अर्थात् वेद भाग ही वेदाङ्ग है । इस प्रकार अङ्ग करके कोई कोई वेदके अष्टगिष्ट अङ्गकी ही वेदान्त कहते हैं । उनका कहना है, कि ब्राह्मणप्रथमके माग जो उपनिषद् अङ्ग है, यहाँ वेदाङ्ग है । सामिधानिक ऐम-चन्द्रका यही अमिप्राय है । फिर वैदान्तिक लोग कहते हैं, “वेदस्याङ्गः चरमोद्देश्यः प्रदर्शिता यत्र स यय वेदाङ्गः ।” अर्थात् जिसमें वेदका परम उद्देश दिखाया गया है, वही वेदाङ्ग है । परमहंस परिभाषकाचार्य श्रीसदानन्द योगीन्द्रने स्वरचित सुविद्यया वेदांतसार प्रथमें लिखा है, “वेदांतो नाम उपनिषद्प्रमाणं तदुप कारिणि शारोरेकस्त्वानुमो गि च ।”

श्रीमन्सिद्ध मारस्वतीने इस वेदांतसारकी टीकामें उक्त उद्धृत अङ्गकी जो व्याख्या की है, उसका अर्थ इस प्रकार है,—“उपनिषद् ही प्रमाण है” इस अर्थसे उपनिषत् प्रमाण अथवा उपनिषद् ही प्रमाणस्वरूप व्यवहृत हुआ है जिस शास्त्रमें वही उपनिषद् प्रमाण है । तदुपकारक शारोरेकमूलादि भी वेदांत कहलाने हैं । अतएव उपनिषद् और शारोरेकमूल ही वेदान्त-शास्त्र है । अतएव वेदांतके सम्बन्धमें आलोचना करने समय उपनिषद् और समाप्त प्रायमूलकी आलोचना करना कर्तव्य है ; उपनिषत्के सम्बन्धमें दूसरी जगह आलोचना की गई है । उसमें उपनिषद्के प्रतिपाद्य विषयका कुछ कुछ उल्लेख है । प्राद्विद्या ही उपनिषद् का विषय है । उप पूर्व नि पूर्व रूप गति और अथ सादानाथ तदुप प्राप्तिके उतर विश्व प्रपय करने. यह अर्थ बना है । धातुगत ध्युत्पत्तिके अनुसार उपनिषद् शब्दका निम्नलिखित अर्थ प्रतिपन्न होता है । यथा—

(१) जो प्राद्विद्यामें सामन्त गती, उपनिषद् द्वारा उनके संसारकी मारतव बुद्धि विनष्ट होगी है, इमोंमेंसे

सुख्य' आधुनिक उपनिषद्ग्रंथकी बात कही है, वे प्राचीन तम उपनिषद्की बात अच्छी तरह जानते थे, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

पाणिनिका और भी एक सूत्र है। यथा—

“पाराशर्यमिन्द्राखिन्यां मिश्रुतयुगयोः।” (४।१।२२०)

पाणिनि जो मिश्रु सूत्रका विषय जानते थे, यह सूत्र ही उसका प्रमाण है। यह मिश्रुसूत्र ही वेदान्तदर्शनका धीनभूत है। मिश्रुसूत्र उपनिषद्के आधार पर लिखा गया है।

यास्कके निरुक्त प्रथम में हम “उपनिषत्” शब्द देखते हैं। ऋग्वेदमें “वना युग्यां” (शु० व० २।२।१८१) इत्यादि एक मन्त्र है। इस मन्त्रके अधिदेवता व्याख्यानमें यास्कने लिखा है—“इत्युपनिषद्गो मन्त्रिः।” (निरुक्त ३।२।६)

निरुक्तके भाष्यकार दुर्गान्वायने इसीको व्याख्या करनेमें उपनिषत् शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ दिया है। इसके पहले उम्का उल्लेख हो चुका है। अतएव ये उपनिषद्ग्रंथोंकी प्राचीनतामें सन्देह करनेका कोई भी कारण नहीं।

वैदिक उपासना और उपनिषत्।

उपनिषद् जो आधुनिक या अनतिप्राचीन नहीं है, यह पूर्वलिखित युक्तिवसे अच्छी तरह जाना जा सकता है। हम लोगोंका विश्वास है, कि वैदिक मन्त्रयुगके समय भी उपनिषद्की जिज्ञा तथा उपनिषद्की उपासना इस देशमें प्रचलित थी। बहुत पहलेसे ऋषिगण ऋक्सूक्तसे उपास्य देवताकी उपासना करते थे। संहितायुगके बहुत पहले, वैदिक मन्त्र प्रचलित और प्रचारित था। उन सब मन्त्रोंमें भी उपनिषद्का मूलयोज निहित देखा जाता है। अनप्य वेदान्तके उद्भवकालका निर्णय करना सहज नहीं है।

ऋक्संहितामें ऊषाकी स्तुति यथापीमें ही कविरचयकी है। त्रिरहोमे वेदान्तशास्त्रका उपनिषत्-अंज पढ़ा नहीं केवल ब्रह्मसूत्र मन्त्र पढ़ा है, ये समझ सकते हैं, कि वेदान्तमें उषा और अग्नि आदि देवताओंके नामका बिलकुल उल्लेख नहीं है अथवा ये सब देवता कट कर खोएँ नहीं हुए हैं। किन्तु यह सिद्धांत संपूर्ण

सनातनक है। उपनिषद् वेदान्त ज्ञान होने पर न इसमें वैदिक देवताओंकी मर्वादा सम्बोधन नहीं हुए हैं। ब्रह्मज्ञानलाम जीवकी मुक्तिका उपाय देने पर भी उषा और अग्निकी कथा उपनिषद्में भी आई है। उपनिषद् और वेदका घाहाबघय मिश्र होने पर भी दोनोंके अन्तर एक महान् अलप्य उपास्य पदार्थ स्वीकृत हुए हैं, वेदके साथ यह जो एक ही सम्बन्धमें स्तुति है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। यंदमें जिन सब देवताओंके स्तोत्र दिखाई देते हैं, वेदान्त या उपनिषद्में भी उन सब देवताओंके नाम आये हैं। प्रथम उषाकी बात ही लिखी जाती है। यथा—युद्धारण्य-कोपनिषद्में—

(१) “ऊषा या अथस्य मेधस्य जिरा।”

(शु० भा० उ० १।१।१)

(२) “मधुनकमुतोयसा।” (शु० भा० उ० १।१।६)

वेदान्तमें सूक्तकी गायत्रीमें स्तुति की गई है, वेद-संहितामें भी उनके सैकड़ों स्तोत्र देखनेमें आते हैं। वेदके इन प्रधान देवताका उपनिषद्में भी बड़े आदरसे पूजित देखते हैं। यथा—

१। देवो यरुणेः प्रजापतिः मयिता।

(छा० १।१।१६)

२। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धियो रणे।

(छा० १।१।१७)

३। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धियो रणे।

(शु० भा० १।१।६, मेगा० १।१७)

देवताभ्यन्तर प्रवृत्ति उपनिषद्में भी इस देवताका उल्लेख है। सूक्त प्रवृत्ति अन्यास्य पदार्थका उल्लेख छात्रोग्य, युद्धारण्यक, तैत्तिरीय, कठ, मुण्डक, महा-भारतयण और प्रश्नोपनिषद्में कई जगह दिखाई देता है। सामवेदोय प्रातण संघावन्युगके समय इस प्रकार बटने है—“सूर्ये उषोतिवि परमात्मनि श्वाहा।”

यह वैदिक उपास्यदेव उपनिषद्में भी उपासित हुए हैं। यथा—“युवे खोनिपे हुरोमि।” इस मन्त्र छाया भी सूक्तमण्डलस्थित परमात्माकी ही उपासना की गई है।

इसका नाम उपनिषद् है। यहाँ "सद्" धातुका "बध" कर्तृ लिया गया।

(२) इससे परम धेयत्वस्वरूप प्रथमार्थन प्रथमदर्शन की उपलब्धि होती है, इसीसे इस शास्त्रका नाम उपनिषद् हुआ है। यहाँ शब्दार्थों (प्रात्यर्थ) सद् धातुका कर्तृ लक्ष्य हुआ है।

(३) यह नाम दुःख-जन्म-मृत्युसिद्धक सहायक मष्ट करता है, इसीसे इसका नाम उपनिषद् है। यहाँ अयनादन कर्तृ लिया गया है।

(४) मनु धातुके अन्वयान् कर्तृसे पाश्चर्यन निकरके भावसे दुर्गाचार्योसे भी उपनिषद् शब्दका एक अर्थोपनि-गत कर्तृ इस प्रकार किया है। यथा—“यथा ज्ञानमुप-गतस्य सतो गर्भजन्मजरामृत्यवयो निदमयेन मोक्षित सा रक्षस्य विद्या उपनिषदिरमुच्यते।”

अर्थात् ज्ञान विद्या द्वारा ज्ञानियोंके गर्भजन्मजरा-मृत्यु क्षेप समुत्पन्न अन्वयान् होते हैं, यद्यो विद्या उपनिषद् कहलाती है।

यह भीविषयो विद्या बहुत पुरानी है। किन्तु पारंपार्य परिदृश्योंमेंसे कौड़े कौड़े उपनिषदोंके पाणिनिके पीछेके प्रथम कृतनामे हैं। उनका कहना है, कि उपनिषद् यह पाणिनिके व्याकरणोंमें साधित नहीं हुआ है, इसलिये पाणिनिके समय उपनिषद् या वेदान्तसाहित्यका विस्त-कृत प्रचार न था।

पारंपार्य परिदृश्योंका यह अर्थित्व सिद्धांत हम अंगियोंके लिये मध्यम बड़ा ही विस्मयजनक है। जिन्होंने पांच वेदिकसाहित्य और ब्राह्मणग्रन्थोंका बड़े ध्यानसे पढ़ा है, उन्होंने अच्छी तरह देखा है, कि उन सब साहित्योंमें जगह जगह उपनिषद् सहायके वचन विकीर्ण हैं। फिर यह भी जाना जाता है, कि बहुतसे उपनिषद् ही ब्राह्मण और आरण्यकग्रन्थोंके अन्तर्भूत हैं। पारंपार्य परिदृश्यों ब्राह्मण-ग्रन्थोंके पाणिनिके पहलेके मानने हैं।

पाणिनीय गणशास्त्रमें उपनिषद् शब्दका उल्लेख देखनेमें आता है—

(१) अनुवादकारिका (४।१।१३)

(२) वेदसाहित्यो जीर्णित (४।१।३)

एक कौटो मूल्य “अनुवादकारि” शब्दसे तथा “वेदसाहि-

गणने उपनिषद् शब्दका पाठ भी देखा जाता है। यह गणपाठ आज काल प्रचलित है, यह पाणिनीय नहीं है, यदि इस बातकी स्वीकार किया जाय, तो यहदे केसे भी पाणिनीय गणपाठ था, इसमें अथर्व स्वीकार करना पड़ेगा। अथर्वया “अनुवादकारिः” तथा “वेदसाहित्य” शब्दादि समी जगह जो “साहि” शब्दका व्यवहार देखा जाता है, उसकी साधयता नहीं रहती।

उपनिषद् शब्दसाधनप्रक्रिया केवल पाणिनीयमें नहीं है, येना नहीं कह सकते। पालिक वा महाभाष्यमें भी यह शब्द नहीं है। यहाँ तक कि, भाषुनिक अनेक व्याकरणोंमें भी इस शब्दका उल्लेख नहीं है। इससे यथा समझा जायेगा, कि उपनिषद् शब्द भाषुनिक समयमें भी अज्ञा-नोम है।

पर ही, इसका जरूर है, कि समी हम जो सब साहित्यमें २३५ उपनिषद्ग्रन्थोंके नाम पाते हैं, वे सबके सब वेदोपनिषद् नहीं हैं। किन्तु नहीं होने पर भी वेदसंगण लियेके लिये वेदाध्यायक अनेक उपनिषद् प्रथित कर गये हैं। परगती समी उपनिषद् वेदोपनि-षद् नहीं होने पर भी ये उपनिषदोंके समान हैं, इसीसे उनका उपनिषद् नाम हुआ है। रामतापनी भादि कुछ साम्प्रदायिक उपनिषद् उन्हीं सब सम्प्रदायोंके प्राण हैं। अन्तोपनिषद् नामक एक अति भाषुनिक उपनिषद्का विषय दूसरी जगह विस्तृत भाष्यमें बालोचित हुआ है जो निम्नान्त समाप्त है। उपनिषद् शब्द वेदो।

परन्तु मन्त्ररूप और ब्राह्मणरूप उपनिषद् पाणि-नीयके बहुत पहले थे, इसमें शक्य नहीं। इसके बाद उपनिषदोंके समान अनेक उपनिषद् प्रथित हुए। यह बाल पाणिनीय गणशास्त्रमें भी जानी जाती है। यथा—
“कोविदोपरिदशोपनिषत्” (१।५।७८)

अदोहो शीतिलने इस मूल्यको जो व्याख्या की है उससे ज्ञाना जाता है, कि पाणिनिके समयमें पहले भी वर धेयोंके वेदिकी परिदृश्यों उपनिषद्ग्रन्थ प्रथित कर साधिका विधाई करने थे। अदोहो शीतिलने लिखा है “उपनिषद्ग्रन्थ” इसका अर्थ है “उपनिषद् ग्रन्थमुदवस्य-कारणात्”। पाणिनिके एक मूल्यका यह अर्थ सब वेदोपनिषद्ग्रन्थोंका है। जिन्होंने अपने मूल्यमें “उपनिष-

सुल्य' माधुनिक उपनिषद्ग्रंथकी बात कही है, ये प्राचीन तम उपनिषद्की बात अच्छी तरह जानते थे, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

पाणिनिका और भी एक सूत्र है। यथा—

“पाराशर्यमिच्छाश्रितानि मित्त्रनट्यवयोः।” (४।३।२२०)

पाणिनि जो मिश्रसूत्रका विषय जानते थे, यह सूत्र ही उसका प्रमाण है। यह मिश्रसूत्र ही वेदान्तदर्शनका धीतमूल है। मिश्रसूत्र उपनिषद्के आधार पर लिखा गया है।

यास्कके निरुक्त प्रश्नमें भी हम “उपनिषत्” शब्द देखते हैं। आग्नेयमें “वना युग्मी” (शु० सं० २।२।१८१) इत्यादि एक मन्त्र है। इस मन्त्रके अधिदेवता व्यासवाग्देवता गारुडने लिखा है—“इत्युपनिषदेषां भवति।” (निरुक्त ३।२।६)

निरुक्तके भाष्यकार दुर्गावाचने इसीको व्याख्या करनेमें उपनिषत् शब्दका व्युत्पत्तितम अर्थ दिया है। इसके पहले उसका उल्लेख ही चुका है। अतएव ये दोपनिषद्ग्रंथोंकी प्राचीनतामें संदेह करनेका कोई भी कारण नहीं।

वैदिक उपासना और उपनिषत्।

उपनिषद् जो माधुनिक या अन्तिमप्राचीन नहीं है, यह पूर्वलिखित मुक्तिवोसे अच्छी तरह जाना जा सकता है। हम लोगोंका विश्वास है, कि वैदिक मन्त्रयुगके समय भी औपनिषदी जिज्ञा तथा औपनिषदी उपासना इस देशमें प्रचलित थी। बहुत पहलेसे ऋषिगण ऋक्मन्त्रसे उपास्य देवताको उपासना करते थे। मंहितायुगके बहुत पहले वैदिक मन्त्र प्रचलित और प्रचारित था। उन सब मन्त्रोंमें भी उपनिषद्का मूलयोज निहित देखा जाता है। अतएव वेदान्तके उद्भवकालका निर्णय करना सदन नहीं है।

ऋक्संहितामें ऊपाकी स्तुति यथावत् ही कथितरूपमें है। त्रिहोत्रमें वेदान्तशास्त्रका उपनिषत्-भजन पढ़ा नहीं केवल ब्रह्मसूत्र मन्त्र पढ़ा है, ये समझ सकते हैं, कि वेदान्तमें उपा और अग्नि आदि देवताओंके नामका बिलकुल उल्लेख नहीं है अथवा ये सब देवता कट कर खोएंगे नहीं हुए हैं। किन्तु यह निदान्त सम्पूर्ण

प्रकारमक है। उपनिषद् वेदान्त शास्त्र होने पर भी इसमें वैदिक देवताओंके मर्यादा सम्पीडन नहीं हुए हैं। ब्रह्मज्ञानलाभ औपकी मुक्तिका उपाय होने पर भी उपा और अग्निकी कथा उपनिषद्में भी आई है। उपनिषद् और वेदका घाटावयव भिन्न होने पर भी दोनोंके अन्तर्गत एक महान् मण्डप उपास्य पदार्थ स्वीकृत हुए हैं, वेदके साथ यह जो एक ही सम्बन्धमें श्रुति है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। वेदमें जिन सब देवताओंके स्तोत्र दिखाई देते हैं, वेदान्त या उपनिषद्में भी उन सब देवताओंके नाम आये हैं। प्रथम उपाकी बात ही लिखी जाती है। यथा—पृष्टदारण्यकोपनिषदमें—

- (१) “ऊपा या अथस्य मेधस्य गिरा” (शु० सं० उ० १।१।१)
 - (२) “मधुनकमुतोयसा” (शु० सं० उ० १।१।६)
- वेदान्तमें सूत्रोंकी गायत्रीमें स्तुति की गई है, वेदसंहितामें भी उनके सैकड़ों स्तोत्र देखनेमें आते हैं। वेदके इन प्रधान देवताका उपनिषद्में भी बड़े आदरसे पूजित देखते हैं। यथा—

- १। देवो वरुणेः प्रजापतिः सयिता। (छा० १।१।२।५)
 - २। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। (छा० १।१।३)
 - ३। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। (शु० सं० १।१।६, मेवा० १।१)
- इयेताम्बतर प्रश्रुति उपनिषद्में भी हम देवताका उल्लेख है। सूत्रां प्रश्रुति अस्यास्य पदांशका उल्लेख छान्दोग्य, पृष्टदारण्यक, नैसिकीय, बठ, मुण्डक, महानारायण और प्रश्नोपनिषद्में बड़े जगद दिखाई देता है। सामवेदीय ब्राह्मण संख्यावन्दनके समय इस प्रकार पढ़ते हैं—“सूर्ये उवोतिषि परमारमनि रथाहा।”

यह वैदिक उपास्यदेव उपनिषद्में भी उपासित हुए हैं। यथा—“यवे स्तोत्रेणैः श्रुतेः” इस मन्त्र द्वारा भी सूत्रमन्त्ररहित पत्तारामाकी ही उपासना की गई है।

गोदमे जो भाषि माह्वान् माह्वान्त्वमेवक वासिंय
 देवता कद कर गृह्णत होमे ये, वेदागतकं प्रत्यक्षानके
 प्रथम प्रसाधकं मयम भी उत भानिका मनादर वा परि-
 रथाग गदो हुमा। औरानिपदु-आतोमयन वापियेनि
 उत भानिमें गो प्रत्यक्षताका अनुभव कर उक्तोवाचने
 कदा है—

(१) "एतद्वै म्म दोषते सद्विनिर्वातम्"
 (कौशिकोउपनि० १२)

(२) "भानिषां महर्गमि ।" (केन १७)

यहां "मदं" शब्द परमात्मतावाचक है। किन्तु फिर
 दूसरा जगद देखा जाता है, कि उपनिषद्प्रवक्तानोंने
 भानिमें ही प्रत्यक्षी सत्ताका अनुभव कर माह्वानिपिपिन
 प्रत्यक्षी उपासना का है। येतरेव, कौवितको, केन, तैत्ति-
 रीय, बड, श्वेताश्वतर और प्रथ, विद्येरनः छान्दोग्य और
 गृह्यशास्त्रक उपनिषद्में कई जगद इसी प्रकार भानिमें
 भाषिपिपिन प्रत्यक्षी उल्लेख कर भानिको ही आत्मा और
 भानिको ही प्रसा कदा गया है। माह्वान्य देवताओंके
 माह्वान्यमें भी इसी प्रकार उल्लेख देखनेमें आता है।

मगल बाग यह है, कि येदमें प्रत्यक्षरव विकीर्ण
 था, परवर्षां वापियेनि उन घोसोमून मगलका मयउत्पन्न
 कर भाषय वैदिक देवताओंके मध्य उस "एतमेवाग्निो-
 टम्" पदार्थके मदिपुत्राको उदोपना कर वेदागतमाह्वान्का
 प्रसाह किया है और उसके कलेवरको मये भाषयें संग-
 क्तित और मगनुष कर दया है। हम हममाः वेदागतको
 उपनिष् विज्ञान और विषयानका इतिहास लिखते हैं।

वेदमें एतेरवाचर ।

वैदिक मगलको परास्वीयता करनेमें देखा जायेगा,
 कि वैदिक मुगलके वापियोंकी उपासनामें गो एकेअव-
 वाह है। अर जिम देवताके निवड प्रार्थना को गई
 तब उमा देवताको प्रसाह ममम कर एकनिष्ठमावो
 उपासीको प्रार्थनाका मगल आह्वानदिनामे दिसाई देता
 है। आह्वानके ७म मण्डल ३२वें सूक्तमें लिखा है—

"न एवाह भन्वो दिवो न वसोवो न आसी न वसिन्वरे।
 माह्वान्यो अहोवसवः ३ इति एतन्मन्त्रात्वा इत्यन्ते ।"

(३१ सू०)

अर्थात् हे इन्द्र ! तुम्हारे निवा मेरे और कौं मित्र

महो है, न सुख ही और न कौं अमशाना ही है। म्म-
 मे या पृथिवी पर तुम्हारे जैसे शक्तिमान्को कौं जो
 दिखाई नदो देता।

"एन्द्र वसु" न आमार मित्रा पुत्रेभ्यो वषा ।
 मिश्रण्यो भस्मिन् पुष्युषु वसमि मोहा एव विरलीर्ह ॥"

अर्थात् हे शक्तिमान्को इन्द्र ! निवा जिस प्रकार
 पुत्रको ज्ञान देने है, तुम मो उसी प्रकार हम लोकोको
 ज्ञान देने हो। तुम भी पुत्रोंके हाथमें बचामो।
 हम लोग तुम्हारे है, तुममें छोड़ कर हमारे और कौं भी
 नदो है। फिर हम सेगोंके कौं बल भी नदो है।
 उपनिषदके प्रत्यक्षी और वेदके इन सब स्तुतिप्राहो देव-
 तामोंको जगद जगद एक ही प्रकारमें स्तुति की गई है।
 १म मण्डलके दशम सूक्तको मयम आह्वाने निवा है—

"माह्वानुषुर्वा भुभी इव" नू विरुपिण मे मित्रा ।
 इव" इडोममिं मग वृषा पुत्रान्निदन्तारु ॥"

अर्थात् हे इन्द्र ! तुम्हारे ज्ञान ममी विषय सुननेमें
 समर्थ है। तुम हमारो प्राथनाको रक्षा करना।

फिर १म मण्डलके १६०वें सूक्तमें सुपोंके स्तोत्रमें
 कदा गया है, "सुपेन एमण्डल और सुपोंको उपासन
 किया है, वे सभी जीवोंके उपकारो हैं। ये मगल
 प्रसाहके परिमाणक हैं, हम उनका स्तव करते हैं।"

इस प्रकार माह्वान्य देवताके स्तोत्र भी आह्वानमें
 देखे जाते हैं। वेदमन्त्र पदुमें माह्वान् होता है, कि
 आविमण अहकं साध विमपणत्प और विमवकं साध
 अह्नरवको विअहित करके हो उपासना करते थे।
 किन्तु येसा होमे पर गो ये अहके उपासक न थे।
 आह्वानका "मगल" नाम रखा जाता था। माह्वाने
 कदा है, "मनवात् मगलः" अतएव मगल मानसिक उपाचार
 है। आर्वाविमण इस विज्ञान विभवप्रसाहके मन्त्रके
 पदार्थमें ही येवता और ज्ञानका प्रसाह देख कर विभित्त
 होते थे तथा मगल द्वारा उनको उपासना करते थे।
 सुगर्त हम वैदिक उपासनाकी मगलः प्राह्वन उपासना
 नदो कद मकने और न वैदिक स्तुतिको मप्यो तरह
 भासोयता करनेमें हम स्तोत्रोंकी येवो उपासना हो हो
 मकतो है, कि वेवत म्मर्ष वा अमाहको पूरण करनेमें

लिये ही वे वैदिक देवताओंके निकट मिश्राके लिये जाते थे अथवा यज्ञमें घृतके आहुतिरूप उरकोच प्रदान कर देवताओंको पशुमूल करनेकी चेष्टा करते थे। गीताकाशमें ऊपाकी उज्ज्वल चिरण देखनेसे वे फुले न समाने थे। उनका हृदय आनन्दसे विद्यम हो जाता था, उसी आनन्दके मारे वे बहुत स्तव क्रिया करते थे। प्रकृतिके सौन्दर्य पर विमुग्ध हो वे आहासले नाच उठते थे। इस प्रकार श्रुतिविके हृदयमें क्रमशः धीमनिवशे प्रतिभाका आविर्भाव होने पर एक दिन उन्होंने सारे संसारके सामने एक महास्तव उद्घोषित कर कहा—

“भो सर्वं शिवं मुन्दरम्”

इसके स्वरार्थ महती है, कामना महती है और न किसी भी इतररागका आभास ही है, केवल सौन्दर्यप्रियता और सौन्दर्यानुसारा ही। इस उपासनाका मर्म बड़ा ही गभीर है। इसके माधुर्यसे इस मरलीकमें रह कर मनुष्य भूषानन्द लाभ करते हैं, इसी कारण श्रुतिविके भद्रमयानन्दकी धीर गम्भीर भाषाओंमें कहा है—

“सर्वं ज्ञानमयानन्दरूपं पृथिवीमात्रे”

ये वृके मन्त्र और उपनिषदायुगमें जगद जगद इसी तरह आनन्द-अवनि सुनाई देती ही।

ये वृको स्तुति पढ़नेसे मालूम होता है, कि वैदिक श्रुतिगण जो अनेक देवताओंके नाम करते थे, यह केवल नाममात्र ही। किन्तु सर्वात् ही वे वैयग्निकता अनुभव करते थे, अर्थात् और धरतीका भाग सर्वज्ञ ही उनके हृदयमें जागृत रहता था। समस्त प्रकृति उनके सामने सजीव और सामर्थ्यशील मालूम होती थी। इस महाज्ञिकता भिन्न भिन्न प्रकारों देख कर वे कमी भक्ति, कमी इन्द्र, कमी सूर्य, कमी विष्णु, कमी मरुत् नाम रख कर भिन्न भिन्न मन्त्रसे स्तव करते थे। किन्तु उनके स्तोत्र मन्त्रमें सभी जगद एकेश्वरवाद फलकता था। अन्तिमे वे लोग जिस विषयके लिये प्रार्थना करते थे, सूर्य, वायु, इन्द्र आदिसे भी उसी विषयकी प्रार्थना की जाती थी। इन्द्रकी प्रार्थनाके समय जिस प्रकार सर्वसर्वा कह कर उनकी स्तुति करते थे, दूसरे दूसरे देवताओंके गौरवकीसंज्ञमें भी वहाँ किसी भी अंशमें त्रुटि नहीं होती थी।

किसी एक देवताकी प्रार्थनाके समय वे अन्य देवताकी वान भूल कर एक मनसे एक प्राणसे एक ही भावसे स्तवमान देवताका गुणकीसंज्ञ करते थे। उनके उपासित सभी देवता सत्यसद्गुण, उदार, परीपकारी, सर्व-दर्शी और सपेशक्तिमान, दानदाता, सत्य, निरय, जगन्मूर्च्छा और समुद्रज्वल थे। सभी जोषीके दिन-कारो थे। यहाँ तक, कि जब एक देवता दूसरे देवताके प्रतिद्वन्द्विक्रममें प्रतिमान होते हैं, तब जगत्के जीवोंको मजारीके लिये कार्यता; उनका एकत्व ही स्थित होता है। इन्द्रने जब मरुत्की निहत क्रिया, सभी इस एकत्वका भाव ही प्रदर्शित हुआ। यथा—

“किं न इन्द्र जिवावधि आवरो मरुत्स्त्वम्” (१।१७।२)

हे इन्द्र! मरुत्गण तुम्हारे ही भाई हैं, अतएव हम लोगोंके प्रति दिसा न करो।

फिर दूसरी जगद देदिये। श्रुति कहते हैं, नि. हे देवगण! तुम लोगोंमें कोई छोटा, बड़ा महती हे तुम सभी समान हो, सभी प्रधान हो।

हम यद्यपि वेदोंमें प्रधानता; नेहोस देवताओंका परिचय पाते हैं, परन्तु उपासनाका मन्त्र और गाव देल कर यह सद्ग हो स्थिर कर सकते हैं, कि वैदिक श्रुतिविके ज्ञानगतिके विषयध्रुवसे इन सब देवताओंको “एकमेवाद्वितीयम्” कह कर ही उनका स्तव क्रिया है। एक देवतामें ही उन्होंने सर्वदेवाधिष्ठानकी कल्पना की है। यथा—श्रुत्संहितामें—

“सर्वमाने इन्द्रो रूपमाः शतार्थे त्वं विष्णुश्चक्रायो नमस्त्यः । त्वं ब्रह्मा रविर्विद्युश्चन्द्रश्च त्वं विभारोः त्वयो पुनस्त्यः ॥३ त्वमाने राधा नर्यां घुम्भस्त्वम्” भिन्ने भरवि दरम ईश्वरः । त्वमर्थमा त्वविर्ष्य त्वम्भुजं त्वमंशो विदये देव भास्वः ॥४ त्वमन्ने त्वरा विषये मुनेनें त्वं ग्नायां भिषमहाः शत्रुत्वम् । त्वमाशुदेमा रविषे त्वम्भ्यं त्वं नरो गयो भवि दुस्त्वम् ॥५ त्वमाने इन्द्रो मनुषो महो दिवस्त्वम्” त्वयो मासं ह्य ईशिते । त्वं कालेकचेषीषि त्वरत्स्त्वम्” पू। विषयः त्वि तु त्वमा ॥६

(पृ. २-१३६)

अर्थात् हे अन्ने! तुम इन्द्र हो, तुम विष्णु हो, तुम ब्रह्म हो, तुम मित्र हो, तुम ही इन्द्र हो, इत्यादि। त्रितीय मण्डलके १५ सूक्तकी सभी श्रुतियोंमें इसी प्रकार

अभिप्राय स्वयं किया गया है। यह एकेश्वरवादका ही प्रतिपादक है।

किन्तु एक दार्शनिका ही जो वाच्योद्देश्ये नियत नियत देवताके रूपमें मान ल्या गया है, वैसे समस्तका जो मानाव नहीं है। यथा—

“सूक्तमते परमो मानो परत” शिवो भव ग वृक्षमिन्द्र ।
सुखे शिवे महामनुष देशा स्वयमिन्द्रो दानुषे नरवोष ग
सुखमर्वा मर्वाण दू कनीना नाम म्भाषवदनुष शिवर्षी ।
अन्तर्गत शिवं सुषिर्त् न गोभिर्दृष्टमि समनता इत्योषि ॥
एव शिवे मर्वा मर्वाण दू कनीना मर्वाण वार विवर्त् ।
एवं वृक्षमोषम” लिखित हेतु परित सुषि नाम मोक्षम् ॥”

(सूक्तसू १३।११)

इसमें हम “परत ब्रह्मवाच्य” हम सोचियेही धूमि की रूपए क्वाकवा पाते हैं। वैदिक मंत्रके साथ उर- निवदका मन्त्रध कितना घनिष्ट है, इससे स्पष्टमें मान्य होना है। तबत मण्डलके ८६ सूक्तमें जो गोम- वृक्षमिन्द्रो नामके जो अन्तर्गत मन्त्रके “गद् पर अ. ब्रह्म किया गया है। “सोम हा समस्त जगत्में परा है, सोम ने ही अथवाय देवताओंको उत्पत्ति हुई है” ऐसी प्रकृ- भी होती जाती है।

इससे जाना जाता है, कि वैदिक प्राणियों अथवा निरत निरत देवताका नाम उल्लेख किया है, किन्तु तब ये अलिभाष्य किन्ना देवताकी उपासनामें प्रवृत्त होने थे, तब किन्तु एकेश्वरवादसे ही उलका उपासनाका ही मन्वार्थित होना था, उन्नी देवताओं पर “परमोवा विनाम” मानावने थे। सुवर्त धर्म विद्वानकी उपासना- प्रणालीमें जो मूलतः बहुवचनवाच्य था, उपाका अनुमान नहीं होता। परन्तु अथवाय स्वयं उपासनाका प्रणाली- नेद मध्ये था, यह अथवा स्वोकार करना पड़ेगा। किन्तु वैदिक मंत्र जो उपासनाय वाच्यके लोकोत्त तथा वैदिक उपासनाके सुमयूक्त हैं, इसमें ललित भा स्पष्ट नहीं। सूक्तभाष्यमें वैदिक उपासनाकी आशयना करनेसे देना जाता है, कि एक देवता ही सर्व- नामो और अनेक नामोंसे उपासित हुए हैं। मन्वोवर्तने मानना की जो स्वभाव की है, उन्नी वाच्यको ही मानना ही दक्षिणाव जनावा है।

एक उपास्य देव ही जो अनेक नामोंसे उपासित, और अनेक प्रणालीसे उपासित है, यह हम मन्वोव- कल्पित या मानुमानिक क्या नहीं है। सूक्तमिन्द्रो मन्वो प्रमाण स्पष्ट देवतामें माना है। यथा—

“एवं शिवे ब्रह्मवर्तितानुषो विष्णुः स सुवर्तो महामनु- एव” शिवो ब्रह्मा वदन्वर्तित” क्व” मानोवर्तितानुषो ॥”
(सूक्तसू १३।११)

यहांमें सविप्रमाण ही एक देवताकी स्पष्ट शिव, वरुण, वायु, वम आदि नामोंसे पुकारने हैं।

प्रायः— १०० मण्डलके १२६ सूक्तमें जो एक उपासना- की धूमिकी तरह समस्त देवतामें माने हैं। यह सुमयय और मन्वोवर्तितानुषके मन्वोवर्तित वैज्ञानिक सुक्ति और दार्शनिक तरह प्रमाणित तथा मानोव भावयोग है। यह विद्वानोंसे किया नहीं है कि हमारे दार्शनिकत्व केवल मन्वोवर्तित (Metaphysics) नहीं है, उन्नी पदार्थविज्ञानकी भी वादीयता है। पदार्थिक, प्रत्येक दार्शनिक ही स्पष्टितरवके सम्प्रथमें गोष्टी ब्रह्म आशयना की गई है। वेदान्तनाममें भी वैज्ञानिक और दार्शा- निक तरहका मानायेना है। वेदान्तनामके धर्मशास्त्र वेदमन्वोवर्तित भी वैज्ञानिक और दार्शनिक तरहके माना देवतामें माने हैं। यही मन्वोवर्तित १०० मण्डलका १२६- वां सूक्त उद्घृत किया जाता है। यथा—

“नाथदाशोको वदानीवर्तित” नामोवर्तितो जो वदोषया वा ।
किन्नाशिवो ब्रह्म वरुण मर्वाणमना किन्नाशिवोवर्तितो नामोवर्त् ।
न सुवर्तुगभीरुवर्त् न वरि न र क्वा ब्रह्म भागोवर्तितो ।
मानोवर्तितो स्वभाव तदर्थे हन्वावर्तितो वरि कि प मान ।
तव भागोवर्तितो वृक्ष वरुण मर्वाणं कल्पितो मर्वा हर्म् ।
सुवर्तितोवर्तितो वदानीवर्तितानुषोवर्तितोवर्तितोवर्त् ।
कामन्वोवर्तितो मन्वोवर्तितो मन्वोवर्तितो मन्वोवर्तितो ।
मन्वोवर्तितोवर्तितो मन्वोवर्तितो वरि मन्वोवर्तितोवर्तितो ।
किन्नाशिवो वरुणो वरुणोवर्तितो मन्वोवर्तितोवर्तितो ।
देवता मन्वोवर्तितो मन्वोवर्तितो मन्वोवर्तितोवर्तितोवर्तितोवर्त् ।
का मन्वोवर्तितो वरुण वरुणोवर्त् सुवर्तितोवर्तितोवर्तितोवर्त् ।
मन्वोवर्तितो देवता मन्वोवर्तितोवर्तितोवर्तितोवर्तितोवर्त् ।
वर्त् मन्वोवर्तितो मन्वोवर्तितोवर्तितोवर्तितोवर्तितोवर्त् ।
वर्त् मन्वोवर्तितो मन्वोवर्तितोवर्तितोवर्तितोवर्तितोवर्त् ।

१। उस समय जो नदी, यह भी नहीं था। जो है, यह भी नहीं था। घृष्टी जो नदी थी, बहुत दूर तक विस्तृत आकाश भी न था। आघरण करनेवाला ऐसा कौन था? कहाँ किसका स्थान था? दुर्गम और गभीर जल क्या उस समय था?

२। उस समय सृष्टि भी न थी, अमरत्व भी न था, रात्रि और दिनका प्रमेद न था। केवल यही एकमात्र पदार्थ बिना वायुको सहायताके आहमागत अथवा अन्वयन कर निष्पन्न प्रशाम्युक हो प्रोचित थे। उनके सिवा और कुछ भी न था।

३। सबसे पहले अन्धकारके द्वारा अन्धकार आवृत था। सभी निन्दनयजिन था और चारों ओर जलमग था। अविद्यमान यस्तु द्वारा यह सर्वव्यापी भाच्छप्र थे। तपस्याके प्रभावसे वे उत्पन्न हुए थे।

४। सबसे पहले मनके ऊपर कामका आविर्भाव हुआ, उससे सर्व प्रथम उत्पत्ति-कारण निकला। बुद्धि-मार्गोंसे बुद्धि द्वारा अपने हृदयमें पर्यालोचना कर अविद्यमान यस्तुमें विद्यमान यस्तुको उत्पत्तिका स्थान निकाला गया।

५। रेतोषा पुण्य उत्पन्न हुए। उनकी रश्मि द्वालों बगल और गोचे तथा ऊपरकी ओर फैल गई है।

६। कौन पहन जानता? कौन वर्णन करेगा? कहाँसे इन सबकी सृष्टि हुई? देवगण इन सब सृष्टिके पीछे हुए हैं। कहाँसे हुआ, इसे कौन जानता?

७। यह विविध सृष्टि कहाँसे हुई, किन्हीं सृष्टिको, क्या नहीं थी, यह वे ही जानते हैं, जो इसके प्रभु-स्वरूप परमचाममें हैं। अथवा वे भी नहीं जानते होंगे। परमात्मको ही इस सृष्टिका देयता कहा गया है। यह सृष्टि देख कर प्रतीत होता है, कि कति प्राचीन ब्रह्म-वेदान्तितामों जो उपनिषद्का भाग विस्तृत रूपसे विद्यमान था।

कुछ लोगोंका कहना है, कि ब्रह्मवेदके द्वाय मण्डल-का कोई कोई सूक्त संयोजित हुआ है। इस प्रकार भाषितका अर्थ अथवा 'वेद' अर्थमें लिखा जा चुका है। यस्तुका समय ब्रह्मवेदमें ही अविद्यमान घुति विद्यमान भागमें दिखाने देतो है। यहाँ इस मण्डलके १६४वें सूक्त-

से तीन श्लोक उद्धृत कर वैदिक प्रपत्तयका निदर्शन दिखलाया जाना है—

“को इदं प्रथमं ज्ञायमानमथन्वन्तं परमस्था विभक्तिं ।
भूम्या मनुज सगहमा पृथिव्यो विदात्तुनात् प्रदुतेत् ॥ १ ॥
पाकः पुनश्चमि मन्या विज्ञान्देवानामेता विरिता परानि ।
वस्ते वधन्तेऽपि सतन्त्वन्वि तस्मिन्ने क्वच भोतवा ॥ २ ॥
अविदित्वाऽपि कियुपरिनदत कसो न पुनश्चमि विदन्ते न विदन् ।
वि वस्तुतन्म पदिमा राज्ञस्वजल्प क्वे किमपि निरेकम् ॥ ३ ॥
अर्थात् प्रथम ज्ञायमानको किन्तने देखा था? जब अद्विदिताने अद्विद्युक्तको धारण किया। भूमिसे प्राण और जीवित निकला, लेकिन आत्मा कहाँसे निकली? कौन विद्वानोंके निकट यह बात पूछनेके लिये गया? (४)

मैं अथवा बुद्धिवाला हूँ, कुछ भी समझ न सकनेके कारण पूछता हूँ। यह सब संदेहपूर्ण देवताओंके निकट भी निगूढ़ है। एक वर्षके बल्लूके घेतनेके लिये मेधा वियोंसे जो सातस्तु फैलाया है यह क्या है? (५)

मैं अज्ञान हूँ, कुछ भी ज्ञान न रहनेसे ही मेधावियोंसे पूछता हूँ। जिन्होंने इन छः लोकोंका स्मरण किया है, क्या यही एक है जो अमरदित रूपमें निवास करते हैं? (६)

यहाँ भी हम उपनिषद्के भाषायाग गृहगभीर प्रभाव-वलो देखने हैं। यहाँ उक्त उपनिषद्के प्रपत्ती तरह एक 'एकमेवाद्भितोयम्' पदार्थ ही व्यक्त हुए हैं।

द्वितीय मण्डलके १२वें सूक्तमें जहाँ इंद्रका स्तव-कोशान है, यहाँ इंद्रको ही सृष्टिका उत्पत्तिका कदा ही तथा इस सूक्तकी २७।६ और १३ श्लोकमें एकेश्वरवादका भाव प्रतिबलित हुआ है।

तृतीय मण्डलके ५२वें सूक्तमें समस्त देवोंके महत्त्व का प्रशंसा एक है, यह बार बार उद्घोषित हुआ है। यह सूक्त भी वेदान्तशास्त्रके योजोभूत कह कर यहाँ इसके सम्बन्धमें कुछ आलोचना को जानी है। इस सूक्तके २२ श्लोकके प्रथमके अन्तमें ही "मद्देवा नामसुरवरमेकम्" लिखा है।

इस सूक्तमें प्राकृतिक कार्य-परम्पराओं जो ईश्वरका एक महत्त्वमय भाव अनुभूत है यही दर्शित हुआ है।



१। उस समय जो नदी, यह भी नदी' था। जो है, यह भी नदी' था। घृणो भी नदी' थी, बहुत दूर तक विस्तृत आकाश भी न था। भावरण करनेवाला ऐसा कीन था ? कहाँ किमका स्थान था ? दुर्गम और गमोद जल क्या उस समय था ?

२। उस समय मृत्यु भी न थी, ममरत्य भी न था, रात्रि और दिनका प्रमेद न था। केवल यही एकमात्र पदार्थ बिना गायुको सहायताके आत्मानात्र मयलम्बन कर निश्वास प्रश्वामयुक्त हो जीवित थे। उनके निवास और कुछ भी न था।

३। सबसे पहले अग्घकारके द्वारा अग्घकार मातृत था। सभी बिहुनवर्जित था और चारों ओर जलमय था। अविद्यमान वस्तु द्वारा यह सर्पव्यापी आच्छन्न थे। अणुकारके प्रभावमें ये उत्पन्न हुए थे।

४। सबसे पहले मनके ऊपर कामका आविर्भाव हुआ, इससे सर्प प्रथम उत्पत्ति-कारण निकला। बुद्धि-मानेमें बुद्धि द्वारा अपने हृदयमें पर्यालोचना कर अविद्यमान वस्तुमें विद्यमान वस्तुको उत्पत्तिका स्थान निरूपण किया।

५। रेतोषा पुरुष उत्पन्न हुए। उनकी रश्मि द्वांतां बगल और नीचे तथा ऊपरकी ओर फैल गईं हैं।

६। कीन प्रकृत जानता ? कीन वर्णन करेगा ? कहाँ-से इन सबकी सृष्टि हुई ? देवगण इन सब सृष्टिके पीछे हुए हैं। कहाँसे हुआ, इंगे कीन जानता ?

७। यह विविध सृष्टि कहाँसे हुई, किमोने सृष्टि की, क्या नहीं की, यह वे ही जानते हैं, जो इसके प्रभु-स्वरूप परमात्मानमें हैं। अथवा वे भी नहीं जानते होंगे। परमात्माके ही इस मूलका देवता कहा गया है। यह मूल देख कर प्रतीत होता है, कि अति प्राचीन ब्रह्म वेदसंहितामें भी उपनिषद्का भाव विस्तृत रूपमें विद्यमान था।

कुछ लोगोंका कहना है, कि प्रार्थेयके द्वारा मण्डल-का कोरि कोरि मूल संयोजित हुआ है। इस प्रकार सापत्तिका अण्डन 'देव' जन्ममें लिखा जा चुका है। वस्तुतः ममम प्रभुवेदमें ही अविनिपद्य धृति विकीर्ण भावमें दिखाई देती है। यहाँ हम मण्डलके १६४४ मूल-

से तीन श्लोक उद्धृत कर वैदिक प्रपन्नरयका निर्दशन दिव्यात्मा जाना दें—

"हो हर्षो प्रथमं जायमानमण्यन्तं यदनस्था विभक्तिं।

भूम्या अगुर युगात्मा वर शिवको विश्वामनुगाम् प्रपुमेतम्।।

पाकः पूरुदामि मनया' विज्ञानन्देयानामेता निदिता पदानि।

यत्तं वपुर्वेदसि सतन्वृत्ति तन्निरे रूपं भोग्या उ।।

अभिक्रिदाश्रि'कुराविवदथ कालेन युग्यामि शिवने न विदाम।

विस्तस्तन्म यदिमा राजावपजवर रूपे किमपि निरेकम्।।

अर्थात् प्रथम जायमानको किमने देया था ? जब

अर्द्धदिनाने अर्द्धयुक्तको धारण किया। भूमिमें प्राण और जीवित निकला, लेकिन आत्मा कहाँसे निकली ? कीन विद्वानोंके निकट यह बात पूछनेके लिये गया ? (४)

मैं अणुप बुद्धिवाला हूँ, कुछ भी समझ न सकनेके कारण पूछता हूँ। यह सब संदेहपद देवताओंके निकट भी निगूढ़ है। एक वर्षके बछड़ेको गेतेके लिये मीठा पियोंने जो सततम्तु फेलाया है वह क्या है ? (५)

मैं मजान हूँ, कुछ भी खान न रहनेसे दो मेघाविवे-रे पूछता हूँ। जिन्होंने इन छः लोकोंका स्तम्भ किया है, क्या यही एक हैं जो अमरदित रूपमें निपात करते हैं ? (६)

यहाँ भी हम उपनिषद्के भाषापर गृहगमोद प्रभावलो देवते हैं। यहाँ उस उपनिषद्के प्रथमी तरद एक 'एकमेवाद्वितीयम्' पदार्थ ही व्यक्त हुए हैं।

द्वितीय मण्डलके १२४४ मूलमें जहाँ इन्द्रका स्तव-कांशान हैं, यहाँ इन्द्रकी ही मूर्त्तिका उत्पादक कहाँ है तथा इस मूलकी २७१६ और १३ मूलमें एकेभरयादका भाव प्रतिफलित हुआ है।

तृतीय मण्डलके ५५४४ मूलमें मममम देवोंके मन्त्र वन या पेशवर्ष एक है, यह बार बार उद्धेयित हुआ है। यह मूल भी वेदास्तनास्त्रके योक्तोमृत कट कर यहाँ इसके सम्बन्धमें कुछ आलोचना को जाना है। इस मूलके दर मूलके प्रार्थेयके मन्त्रमें ही 'मद्देवा नामस्तुष्टयमेवम्' लिखा है।

इस मूलमें प्राकृतिक कार्य-परवराते जो ईश्वरका एक मूलमय भाव अनुभूत है यही स्मिंत हुआ है।

अग्नि वेदीमें विराजते हैं, जन्ममें प्रायजित होते हैं, आकाशमें उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीमें विकसित होते हैं (४ ऋक्), ये उत्पन्नकर्ता जन्म (जन्म) उत्पन्न करने हैं, (५ ऋक्) सृष्टिकारमें परिपूर्ण दिनामें उत्पन्न हो कर पृथ्वी दिनामें उदित होते हैं (६ ऋक्), आकाशमें विकस्य करते हैं, भूमिमें गमन करते हैं (७ ऋक्), रात दिन आश्रममें गिर्य कर आते जाते हैं (११ ऋक्), आकाश और पृथ्वी परस्परके दृष्टि और सापर रूपमें एकता सादान प्रथम कर रहे हैं (१२ ऋक्), मित्र मैत्रिक नियममें एक और दृष्टि हो रही है, मित्र उभयो मैत्रिक नियममें दूसरी और दृष्टि हो रही है (१७ ऋक्)। एक ही निमोलेकणोंमें सन्तुष्य, और पशु पारोषी दृष्टि को है (१८ और २० ऋक्), ये ही जन्म उत्पन्न करने हैं, दृष्टि करते हैं, धनदाय्य उत्पन्न करने हैं (२२ ऋक्), महानिके समस्तकार्य परस्परके ही मित्र मित्र श्रेयिके सामने वसुति को गां है। उभरी कार्य-परम्पराओं एकता देख इस श्रुतमें बड़ा गया है, कि मित्र श्रेयिके कार्य मित्र महो, उनका महद्वैभवां एक है। प्राकृतिक कार्योंमें सन्तुष्य परदाके इय महद एक उद्देश्य और एक मायका अस्तित्व समुच्चय करना आधुनिक विज्ञान और दर्शनका स्वर निजान है। मह श्रुत वैज्ञानिक लक्षणों को गीर्णभूत है। हम पहले ही कर भाष्य है, कि अर्वाचरुमें एक और उभे सृष्टिकारको आसीतता हुई है, यैही ही दूसरों और इस विज्ञान विश्वप्रदानके समस्तद्वय और समस्तकार्य परम्परा देख हम सब द्वय और विज्ञानिके कारणपरका निदयच विषय गया है। किन्तु उपनिषद् ज्ञानका मुख्य प्रयोग है—श्रेयिके अर्थ प्रयोगश्रीका विज्ञान कर परम श्रेय साधन।

श्रुतश्रुतियोंमें इन विश्वकर्माके बाल गां है, ऋक् सप्तमसुक्त पर ये श्री प्रयोगपर या परम्परा समने जा गये हैं। श्रुतश्रुत १० सप्तमके ८१ और ८२ सूक्तोंमें इन विश्वकर्माके बहुरा और कार्य श्रुत हुए हैं। जो इस विज्ञान विश्वप्रदानके कर्ता और निजता है, जो परम्परा और परम्परा है, ये ही विश्वकर्मा हैं। श्रुति करती है—

“य इमा विरंसा भुवमग्नि रुद्रादिर्गिता स्वयोर्द्व विना सा।

स आग्निा दृविन्दित्यपानः प्रथमप्राणां आविषेत् ॥ १ ॥

किं स्वित्वा स्वेद्विष्णुमवामल्यं कनकस्त्रिभुक्पामोत्।

यतो मूर्ध्नि जगत्प्रिक्रमां विद्यामीर्वाग्निं विद्वत्प्रथमा ॥२॥

विद्वत्प्रथमापुत्रं विद्वत्प्रथमां विद्वत्प्रथमां विद्वत्प्रथमां।

सं वादृष्टो धमनि सं पतन्ते हैवाकाशुने जगत्प्रथम एकः ॥३॥

किं स्वित्वा क इम वृत्ता भास यतो यायादृष्टिो निष्टमस्तु।

मनोविना मनसा वृक्तनेद्रु तद्वत्प्राणिष्ठसुप्रथमा नि धारयन् ॥४॥

या ते धामानि परमाणि वायमा या मध्वमा विरं कर्मास्तुतेना।

मिता मलिकपो हृविषि स्वापका स्वयं पत्रम लभं सुधासा ॥५॥

विश्वकर्मानुद्विषा वाष्टपानः स्वयंप्रथमं पृथिवी मुन यो।

सुप्तं स्वयं अग्निने जनाम इहास्माकं मघना सुरिरस्तु ॥६॥

यागल्पनिं विश्वकर्मांस्तुते मनोस्तुत् वाग्नि सदा हृषेत्।

स सो विश्वानि दयमानि शिवं विश्वनाभुवमग्ने सापुक्रमां ॥७॥

१। सर्वाणं हर लोकोके विना वहा श्रुति है, जो विश्व भुवमग्ने हीम करने वैदे है, उभरीमें अग्निप्रदानके माध्व-यन्त्री ज्ञानका कर प्रथममग्ने स्वयंप्रथमां साः स्वयंप्रथम कर वेडि सावेद्योमें समुच्चय विषय।

२। श्रुतश्रुतोंमें उदकः अग्निप्रदान, प्रथमं स्वयंप्रथमां वहा या इ विद्य स्वासां विद्य महद्वैभवे श्रुतोंमें श्रुतश्रुतोंमें आकाश विषय इ इस विश्वकर्मा, विश्वकर्मा-कार्य देखते विद्य स्वयंप्रथमां इव पृथ्वी निमोले कर समस्त आकाशमें विकसित विषय।

३। ये ही एक प्रभु हैं, उनकी सब दिशाओं में भाँचे हैं, सब ओर मुख, सब ओर हाथ, सब ओर पैर हैं, उन्हीं-ने ही हाथोंसे ओर दिविष्य पक्ष मञ्जालन कर निर्माण किया, उससे शृद्ध्य घुलीक ओर भुलीक रचित हुए ?

४। यह कौन पन है ? किस यृक्षकी लकड़ी है ? जिमसे घुलीक ओर भुलीक गठिन हुआ है । हे विद्वान्गण ! तुम लोग एक बार अपने अपने मनसे पूछो और देखो, कि ये किम वस्तु पर छोड़े हो कर विभ्य-प्रहाएडके धारण करते हैं ।

५। हे विभ्यकर्ता ! हे यक्षमाग लेनेवाले ! तुम्हारे जिनमे उत्तम, मध्यम और निम्नवर्ती धाम हैं, यक्षके समय उन सर्वोक्त वर्णान करो, तुम स्वयं अपने ही यक्ष कर अपने शरीरको पुष्ट करो ।

६। हे विभ्यकर्ता ! वृष्टी या स्वर्गमें तुम स्वयं यक्ष कर अपने शरीरको पुष्ट करो । चारों ओरके तावत् लोक निर्घोष हैं । इन्द्र हम लोगोंके प्रेरणकर्ता हैं। सर्वात् सुद्विस्फुर्त्ति कर दें ।

७। आज इस यक्षमें उन विभ्यकर्ताकी रक्षाके लिये पुकार रहा हूँ । ये वाचरूपित हैं, सर्वात् वाचपके अधिपति हैं, मन उनमें संलग्न होता है। यह सब कलाओंके उत्पत्तिस्थान हैं, उनके कार्यागारमें ही समरकार हैं, ये हम लोगोंके नावत् यक्ष स्वीकार कर हमलोगोंकी रक्षा करें ।

इस कथाल द्वारा भी हम विभ्यके आदि कारणका तत्त्व जान रहे हैं । श्रापेदके श्रवियोंने प्राकृतिक कार्योंका पदोद्घरण करने करने जड़ प्रकृतिमें विभिन्न जतिकी लीला देखी, अन्तमें उनकी यह ज्ञानविज्ञानमयी धारणा उत्पन्न हुई, कि ये सब निम्न निम्न प्राकृति की एक ही परम पुराणकी जतिक है । ये प्राकृत जगत्के सम रकार कार्यों देखते देखते इस विभ्यकारके परमकर्ताका अस्तित्व अनुभव करने लगे । श्रापेदके श्रविये एक दिन इस माध्यमों जिम तरह तत्त्वानुसंधान किया था, आधुनिक पाश्चात्य कवि अपने काव्यों उन्नी शान-की घोषणा कर रहे हैं ।

यूकसे जो श्रृक् उद्भूत की गई है, उनकी तुनीय श्रृक्के अनुरूप और एक श्रृक् १०म मण्डलके ६०में यूकमें है । १०वें यूक पुराणयूक बढ़ कर परिचित है । यह यूक कर्मकाण्डमें सामयिक आदरके साथ व्यवहृत हुआ है । अहिन्दू समाजोचक इसे अनादर कर इसके प्राचीनत्वमें संदेह करने पर भी वैशाधिकारी वैदिक प्राहणसमाज विरदितसे ही इसका आदर और व्यवहार करता आया है । इस पुराणयूककी प्रथम श्रृक् और ११म मंडलके ८१वें यूककी तुनीय श्रृक् एक ही गावारमक है । इनमें समुण प्रज्ञके सविशेषरूपकी आलोचना हुई है । इस यूकके पत्रनेसे मालूम होता है, कि यह विद्याल विभ्य-प्रहाएड उनका अथययमात तथा ये असौम जतिकियाली और असौम प्रमायवाली हैं । श्रापेदमें एकेश्वरवाद्का पयेष्ट प्रमाण है । उनमें यह यूक भी अन्यतम है । जैसे,—

“सदसतोषो पुत्र्याः सदसताः सदसताः ।
 स भूमि विश्वो वृत्वात्पतिवदस्यात् क्षम ॥१॥
 पुत्र्य एवेदं तव” बद्धूतं मन्व मन्व” ।
 उवाचुतवृत्तेयानो वरुणेनातिरोहि ॥२॥
 एतावानस्य महिमातो क्वापाम् पूर्याः ।
 पादोऽस्य विश्वा भूतानि विशास्वाम्युषं दिवि ॥३॥
 विशादूर्णं उदैतपुत्र्याः पादोऽस्येतामवत् पुनः ।
 तयो विष्णुर् अकामन् सातनानने ममि ॥४॥
 तस्मादितादृजाव विश्वो अधिपुत्र्याः ।
 स आतो अष्टपरिवय पन्नात् मिमयो पुरः ॥५॥
 सातपोऽस्य सुप्रभागीश्वर रावन्वा इतः ।
 ऊरु तदस्य वरैरयः पन्था नूनो भशावत ॥६॥
 चन्द्रया मनो वावभयोः एषो अजावत ।
 सुवादिदम्वाभितम प्रायादमुत्रावय ॥७॥
 नात्वा भागीदन्वरीदं कोऽप्यां पीः सवर्तन ।
 पन्था भूमिदिगः भोशतया लोका मरुत्पवन” ॥८॥

(१५६०)

१। पुराणके महद्य सम्भव, महद्य केत और महद्य चरण हैं । ये वृष्टीकी सर्वात् व्याप्त कर हुए उन्नी परि-माण जतिकिया हो कर अवस्थापन करने हैं ।

अग्नि देवोंमें विराजते हैं, वनमें प्रचलित होते हैं, आकाशमें उद्यम होते हैं, पृथ्वीमें विकसित होते हैं (४ ऋक्.)। ये उद्यमकार्यमें उद्यम (प्रयत्न) उत्साह करने हैं। (५ ऋक्.)। सृष्टिकार्यमें परिश्रम दिशामें मन्त्र है। कर पूर्व दिशामें उदित देखे हैं (६ ऋक्.), आकाशमें विद्यमान करने हैं, भूमिमें पाव करने हैं (७ ऋक्.), राम दिन आपगमें गिर कर भागे जाते हैं (११ ऋक्.), आकाश और पृथ्वी परस्परके वृष्टि और पाव रूपमें एकता साधन प्रदान कर रहे हैं (१२ ऋक्.), जिस धैर्यांगिक निवसमें एक और वृष्टि हो रही है, फिर उन्में धैर्यांगिक निवसमें दूसरी और वृष्टि हो रही है (१७ ऋक्.)। एक ही निर्माणाकार्यमें मनुष्य, और पशु पक्षीकी वृष्टि की है (१९ और २० ऋक्.), ये ही उद्यम उत्साह करने हैं। वृष्टि करने हैं, धनसाध्य उत्साह करने हैं (२२ ऋक्.), प्रकृतिके अन्तश्चकार्य परस्परके ही मित्र मित्र देवोंके समर्थे स्तुति की गई है। हमी कार्या-परमासी वक्षता देव इस मूलमें कहा गया है, कि जिस देवोंके कार्यां मित्र मही, उनका महदीभक्त पर है। प्राकृतिक कार्योंमें मनुजमय कदाचै इम तरह एक उद्देह और परमायका अन्तरय अनुभव करना साधुनिक विधान और दर्शनका नियत विधान है। पर मूल वैज्ञानिक तरहका भी योजाभूत है; हम पहले ही कह भागे हैं, कि उपनिषद्में एक और जेम्मे वृष्टि/पक्षी आशोषमां हुई हैं, वैसे ही दूसरी और इस विधान विभक्तकार्यके अन्तश्चकार्य और अन्तश्चकार्य परमासी देव इस सब रूप और विद्याओंके कारणपर-का निष्पन्न विद्या गया है। किन्तु उपनिषद् नाशक मनुष्य प्रतीक है—प्रतीकके अर्थ परतेमहीमोहा विनाश कर परम भोग साध्य है।

सृष्टिकार्यमें जिस विभवकार्यकी बात मानी है, सृष्टि परमाभुमय है जो उत्साहोत्तर का परमाभुमय मन्त्रके ज्ञा करने हैं। सृष्टिकार्यके १० महदहनके ८२ और ८२ मूलमें इस विभवकार्यके अन्तश्चकार्य और विभव रूप है। जो इस विधान विभवकार्यके कर्ता और निष्कर्ता है, जो परमाभुमय और परमाभुमय है, ये ही विभवकार्य हैं। सृष्टि करने हैं—

“म इमा विरवा भुवनानि सृष्टुर्निर्दिता स्वर्गान् पितृणा मः।

म आग्निवा हृषिकामिच्छमाना प्रथमस्यापरा माविषेत् ॥ १ ॥

किं निवृत्तं संवृष्टिप्राप्तमावसन्नं चतस्रस्त्रिंशत्सृष्ट्यामीश्वरः।

यसौ भूमिं प्रथमविवर्त्ततां विद्यामीषीतद्विभक्तिवद्वयान् ॥ २ ॥

विद्वत्परमाभुमय विद्वत्प्राप्तो विद्वत्प्राप्तोऽप्यविद्वत्प्रथमात् ॥

मं यादृशं धमनि सं पततेहं वावाभुमो जनपरदेव एवः ॥ ३ ॥

किं निवृत्तं क उ रा पृथ भासा यसौ सावाभुमो विद्वत्प्राप्तः।

समोपिमां मन्त्रा वृष्टयन्तु तदाप्यनिष्ठमनुष्यता नि भावयन् ॥ ४ ॥

या ते प्रामाणि परमाणि यावता या मन्त्रमा विरक्तं कर्मभुजेता।

मिमा सविभयो हृषिक स्वपयः पञ्च तन्मं पृथाना ॥ ५ ॥

विभवकर्मनद्विधा यापृथाना स्वयंपतस्य पृथिवी मुन यो।

मुमं स्वय्ये अमितो जनाम इहाभवाः मयन्तु सृष्टिरन्तु ॥ ६ ॥

यावन्मनिं विभवमोत्सृष्टये मनेभुवः नति मत्तं हृषेयः।

म गो विभवानि हवन्ति ज्ञात्वा क्रियन्मन्त्रयन्तं यापृष्टयान् ॥ ७ ॥

१। मन्त्रान् ह्य मन्त्रोंके विद्या यही सृष्टि है, जो विद्य मनुष्यमें होम करने पड़े हैं, उत्सृष्टि अमिन्त्रयन्तं मन्त्र मन्त्रकी कानना कर प्रवनागत व्यक्तियोंकी साव्य-पुन कर पड़े भागेवासीमें सृष्टिवेग विद्या।

२। सृष्टिकार्यमें उन्का अमिन्त्रयन्, मन्त्रान् साव्य-पुनमें कहा भाट्ट किम क्थानां विद्य तद उन्में सृष्टिकार्य साव्य-पुन विद्या ३ उन् विभवकार्य, विभवकार्य-कार्य देखने किम क्थानां ह्य पृथो निर्मात्र कर अन्तश्चकार्यमें विभवकार्य किम।

श्वेताश्वतरमें भी यह प्रमाण-वचन सुएटककी भाषा में लिखा है। गृहदारण्यकोपनिषद्में भी लिखा है—
 "तानिन्द्रो मुष्यो मूत्वा वायवे प्रापच्छत्" (१।१।२)
 इसका अर्थ यह है, कि इन्द्रने (भ्रममेध वल्लकी मनि) पशुकी रूप धारण कर पातोइतनीके। वायुके निकट समर्पण किया था।

इस उपनिषद्का "सुपर्ण" परमात्मा अर्धयोधक कायम मही देता, इस उपनिषद्के दूसरे स्थानमें भी (४।३।१०) "सुपर्ण" शब्दका प्रयोग है। इसका भी अर्थ है कि मत्तानुवायो सुएटकमें और श्वेताश्वतरमें यह सुपर्ण शब्दको तरह परमात्मा अर्धमें व्यवहार हुआ। किन्तु सुएटककी उक्त धृति परवर्तीकाल उद्गायनमें भी गृहीत हुई है। श्रग्वेदमें इसका अर्थ परमात्मा अर्धमें ही व्यवहार हुआ है। सुतरां "एक सुपर्ण" कहा गया है। उपनिषद्में निर्वाचन होकारमा देना ही अर्धमें "सुपर्ण" शब्दका सुविधुलि।

महिताके द्वाग मण्डलका इन्द्रां सुक तैः नामय है। 'क' नामधारी प्रजापति पुकार रहा है। श्रुकेके देवता हैं। इस सुकमें द्वाग अघिपति है। धेक प्रसूमें एकेभ्यवाद् सूचित हुआ है। वन्याणोंके उ द्वितीय देवताकी महिमा कीर्त्तन से गर्व समस्कार है, ये धृतिको तरह इस सुकका श्रुति कहने हमतेगीकी रश् केवल हिरण्यगर्भ ही विद्यमान थे। इस स्नेह के अपोभर हैं। यह पृथ्वी और आकाश तस्य जान रहे आलनेने अपने स्थानमें स्थापित हुआ। का पर्वोत्सव उप दिया है, मान दिया लीला देको

है। उहांका आश्रय कर सुपर्ण आकाशमें घनरूप में है। इस सुकके हिरण्यगर्भमें ही उपनिषद्में प्रत्यक्ष प्राप्त किया है।

श्रग्वेदके अनन्तमाण्डारमें वेदान्तज्ञानका १-२ प्रकार कितने अक्षर्य योज छिपे हैं, कि वेदाव्यवधानिपुन सूक्ष्मदर्शी सुपर्णश्रुतीको भी उनका पता न लया है। यहां एक बहुत छोटा उदाहरण दिया गया। अन्याय संदितासे भी वेदान्तकी योजोभूय वैदिक धृति उदाहरणयमें उद्धृत की जा सकी है। किन्तु विचार ही जानेके भयसे यहां उनका जिक नहीं किया गया।

कहनेका तात्पर्य यह, कि सुपर्णाचोत वैदिक युगक श्रुतिदोके हृदयमें जिन परम तत्त्वोंका सूक्ष्मज्ञान भाव-भूंग हुआ था, उपनिषद्में उसीका विवरण है, यही अनेक प्रकारसे कहा गया है। इन्द्र, मनि, वायु, यरण आदि विधिध देवता मित्र मित्र नामेसि उपासित होने पर भी उनमेंसे प्रत्येक जो कार्य-भेदमें दूसरे दूसरे नामोंसे अभिहित होने थे अर्थात् एक इन्द्रो ही जिनको कभी वायु, कभी मनि आदि नामोंसे इजुति की जाती थी, श्रग्वेदसे उसका यथेष्ट प्रमाण दिखलाया गया है। गृहदारण्यकोपनिषद् आदिमें भी एक देवता दूसरे देवताके नाम पर संछिन होनेका विषय देला जाता है। एक परम तत्त्व ही जो कार्य-भेदमें मित्र मित्र नामों पर अभिहित होते थे, श्रग्वेदमें उसका भी प्रमाण दिख लाया गया है। यह देवता जो अनन्त ज्ञानिनी ही तथा इनमें किस प्रकार यह विनाल विभ्यप्रदाण्ट प्रादु-भूंग हुआ है, ये दो तत्त्व भी श्रग्वेदमें आलोचन हुए हैं। जीवनरूपके मध्ययमें भी द्वागमण्डलके १।२।१

अथोत्तरं भो यद् प्रमाण-वचनमुत्तरको-भाषा-
तमं लिखा है। पृथ्वारण्यकोपनिषद्में भी लिखा है—

“तान्द्रो मुनयो भूत्वा भाषये प्रापच्छ्रुः” (१।१।२)

इसका अर्थ यह है, कि इन्द्रने (अथर्ववेद यज्ञका
तन्त्रिण) पक्षीका रूप धारण कर पारोक्षिकोंको वायुके
तंत्रिकत्व समर्पण किया था।

इस उपनिषद्का “सुवर्ण” परमात्मा अर्थयोधक
तामात्म नही होगा, इस उपनिषद्के दूसरे स्थानमें भा
षा (४।३।१०) “सुवर्ण” शब्दका प्रयोग है। इसका भो
प्रायेदके मतानुयायी मुत्तकमें भी अथोत्तरमें

यह सुवर्ण शब्दको तत्त्व परमात्मा अर्थमें व्यवहार
किया हुआ है। किन्तु मुत्तककी उक्त धृति परयत्तीका
समय प्रमाणगतमें भी दृष्टि हुई है। अथर्वेदमें इसका
परमात्मा अर्थमें ही व्यवहार हुआ है। सुवर्ण

के “एक सुवर्ण” कहा गया है। उपनिषद्में
जोवात्मा दोनों ही अर्थमें “सुवर्ण” शब्दका
निर्वाह है।

संहिताके द्वाव गण्डलका १२१वां सूक्त
का भाषा

स्तोत्रमय है। ‘क’ नामधारी प्रतापति
को शक्यके देवता है। इस सूक्तमें देव
के अर्थमें एकेश्वरवाद सूचित हुआ है
कल्याणोंके उच्चितीय देवताकी महिमा कीर्तन भी पां
चमरकार है, ये धृतिकी तरह हम सूक्तको श्रुति कहने
हमलोंकी रक्षा केवल हिरण्यगर्भ ही विद्यमान थे।

इस स्तोत्र
के अर्थोत्तर है। यह पृथ्वी और आकाश
तत्त्व जान रहे। तल्लेगी अपने स्थानमें स्थापित हुआ।
का पदोत्तम तथा दिया है, मन दिया है, उनको आकाश
लीला को। लमें न करने दी। उनको छाया समुत्
धारणा का

है। उन्हांका माश्रय कर सुवर्ण आकाशमें धारण
है। इस सूक्तके हिरण्यगर्भने ही उपनिषद्में प्रमाण
प्राप्त किया है।

श्रुतिदके अनन्तमाएटारमें वेदान्तज्ञानका इन
प्रकार किन्ने अत्यंत योज्य छिये है, कि वेदाज्यवतनिपुण
सूक्ष्मदर्शी सुप्राण्डतोंकी भी उनका पता न लया है।
यहां एक बहुत छोटा उदाहरण दिया गया। अन्य न्य
संहितासे भी वेदान्तकी योजीमूल वैदिक श्रुति उदा
हरणरूपमें उद्धृत की जा सकती है। किन्तु विस्मय
हो जनेके अर्थसे यहाँ उसका जिक्र नहीं किया गया।

कहनेका तात्पर्य यह, कि सुमानाल वैदिक सुवर्ण
श्रुतिदके हृदयमें जिन परम तत्त्वोंका सूक्ष्मज्ञान भाषि-
भूत हुआ था, उपनिषद्में उसीका विवरण है, यदा
अनेक प्रकारसे कहा गया है। इन्द्र, मणि, वायु, वरुण
आदि विविध देवता मिश्र मिश्र नामोंसे उपासित होने
पर भी उनमेंसे प्रत्येक जो कार्य-भेदसे दूसरे दूसरे
नामोंसे अभिहित होने थे अर्थात् एक शब्दों दो जिनको
कभी वायु, कभी मणि आदि नामोंसे स्तुति की
जाती थी, श्रुतिदसे उनका पद्येष्ट प्रमाण दिखलाया गया
है। पृथ्वारण्यकोपनिषद् आदिमें भी एक देवता दूसरे
देवताके नाम पर संज्ञित होनेका विषय देखा जाता है।
एक परम तत्त्व जो कार्य-भेदसे मिश्र मिश्र नामों
पर अभिहित होते थे, अथर्वेदमें उसका भी प्रमाण दिख
लाया गया है। यह देवता जो अनन्त शक्तिज्ञानी है
तथा इतने किस प्रकार यह बिनाल विभ्रप्रज्ञाएट प्रादु-
भूत हुआ है, ये दो तत्त्व भी अथर्वेदमें आलोचन हुए
हैं। जोवनरूपके सम्भवमें भी दृग्गममएटमके १२।१०
सूक्तमें हमने स्वीकृत भाषा में ही प्रमाण

यह अर्थात् यका जो कहने हैं, वह सफल भी होता है। आत्माको ही प्रिय बुझिसे अपासना करेगी। जो आत्माको ही प्रियबुझिसे अपासना करते हैं, उनकी प्रियवस्तु कभी भी मरणगोल हो नहीं सकती। :

इसके बाद जो लिखा गया है, उसका मर्म इस तरह है—“ब्रह्मविद्यविष्णो ब्रह्मविद्या द्वारा सब मनुष्य सफल होगे अर्थात् स्वर्गभूतमें आत्माका दर्शन करें, ऐसा ही भाषायांगण समझते हैं, यह ब्रह्म क्या है? और वे क्या यह ज्ञानलाम कर चुके हैं, जिस ज्ञानसे वे सफल हुए हैं?” ॥१॥

“श्रुतिके पहले वे सभी ब्रह्ममय थे। ब्रह्म अपनेकी में ब्रह्म है अर्थात् सब शक्तिसमन्वित जानते थे। वे अपनेको ऐसा ब्रह्म समझते हैं, इसलिये वे स्वर्गमय होते हैं। देवताओंमें भी जो अपनेको उसी ब्रह्मको शक्ति कह कर बिदित होते हैं, श्रुतियों और मनुष्योंमें भी आत्म-तत्त्वका स्वर्गमयत्व सिद्ध होता है। अतएव उसी ब्रह्मका दर्शन कर तदापचष्टित्त्वत्व प्रयुक्त होता रहता है। अतएव उसी ब्रह्मको दर्शन कर तदापचष्टित्त्वत्व प्रयुक्त अर्थात् अवनो निबिलवृत्तिका तदचोनत्वव्यताता। उनसे अभेदज्ञानमें कामदेव श्रुतिये “मै मनु हुआ था, मैं सुदाँ इस तरह वाच्य प्रयोग किया था।

मनुष्य तत्त्वज्ञ हैं। किन्तु उनको अथवा न कर प्रप्र-शक्तिज्ञानसे यदि कोई यथायोग्य धरदा करे, वे भी उनके कार्यमें किसी तरहका विघ्न न उाल तत्त्वज्ञानोपयोगी उपदेश दे कर अगोष्ठ सिद्धिके लिये साहाय्य करते हैं” ॥१०॥

“ब्रह्म या इदमम आसीद्देवमेव” इत्यादि वृहदारण्यक श्रुतिका भाव हमने इससे पहले ब्रह्मवेदने बहुत पार उद्धृत किये हैं। फिर इसके बाद हो कहा गया है “आत्मैवेदमम आसीद्देव एव” सुनरां जो ब्रह्म है, वे आत्मा हैं। आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व एक ही हैं, ऐसा उपनिषद्दुका सिद्धांत है। “अहं ब्रह्म अस्मि” ऐसा ज्ञान हो आत्मा और ब्रह्ममें अभेददर्शनका मूल साधन है। उन्निश्चित छत्रोंमें इन उपनिषद् तत्त्वकी संक्षिप्त व्याख्या की गई है। वृहदारण्यक उपनिषद् शुकः यशुर्वेदके अन्तर्गत है। इसका सविशेष परिचय वेद जम्हमें देखना चाहिये। फिर ईशोपनिषद्में भी हम ऐसी ही भाषात्मक श्रुति देखते हैं। इस उपनिषद्दुका सोलहवां मंत्र यह है—

“यूपमनेकमें यम सूर्यं प्राजापरवभ्युहरयमीन भमूह तेजा। यत्ते रूपद्रूत्याजतमन्तसे पर्यामि योऽसायसी पुरतः सोऽमस्मि ॥”

यह बर्थाय वका जो कहते हैं, वह सफल भी होता है ।
 आत्माको ही प्रिय बुद्धिसे उपासना करेगी । जो आत्मा-
 को ही प्रियबुद्धिसे उपासना करते हैं, उनकी प्रियवस्तु
 कभी भी मरणशून्य हो नहीं सकती ।

इसके बाद जो लिखा गया है, उसका मर्म इस तरह
 है—“ब्रह्मविषयिणो ब्रह्मविद्या द्वारा सब मनुष्य सफल
 होंगे बर्थायु सत्यभूतमें आत्माका दर्शन करें, पेसा ही
 साक्षात्गण समझते हैं, यह ब्रह्म क्या है ? और ये
 क्या वह ज्ञानलाम कर चुके हैं, जिस ज्ञानसे वे सफल
 हुए हैं ?” ॥३॥

“सृष्टिके पहले वे सभी ब्रह्ममय थे । ब्रह्म अपनेको में
 ब्रह्म ही बर्थायु सब शक्तिसमन्वित जानते थे । वे अपनेको
 पेसा ब्रह्म समझते हैं, इसलिये वे सत्यमय होते
 हैं । देवताओंमें भी जो अपनेको उसी ब्रह्मको शक्ति कह
 कर विदित होते हैं, ऋषियों और मनुष्योंमें भी आत्म-
 तत्त्वका स्वयंमयत्व सिद्ध होता है । अतएव उसी ब्रह्मका
 दर्शन कर तदापचरुचित्तव्य प्रयुक्त होता रहता है । अत
 एव उसी ब्रह्मको दर्शन कर तदापचरुचित्तव्य प्रयुक्त
 बर्थायु अपने निबिलरुचिका तद्धानतत्वप्रगता उनसे
 भेदेक्षणमें वामदेव ऋषिने ‘मै मनु हुआ था, मैं पूर्ण
 हुआ था’ इस तरह वाक्य प्रयोग किया था ।

‘अतएव इस समय भी जो ब्रह्मशक्तिरूप में शक्ति-
 मय ब्रह्मसे अभिन्न हूँ, इस प्रकार विदित होता हूँ, वे
 अपनेको सत्यमय देखते हैं । उनके सामने देवता भी
 महापौर्य नहीं विद्येयित होते और उनके किसी कार्यमें
 विघ्न और बाधा डालनेमें समर्थ नहीं होते । क्योंकि
 वे सर्वार्थमाके राय मिल कर इन स्वकी आत्मा ही
 जाते हैं । जिसमें मैं, दूसरा इस तरहका भेदज्ञान है
 और इसी ज्ञानसे जो देवतातरुनी उपासना करते हैं,
 वह अतत्त्वक व्यक्ति है । मनुष्यके लिये जैसे गाय आदि
 पशु हैं, वैसे ही देवताओंके लिये अतत्त्वक व्यक्ति है’ ।
 मनुष्योंके कार्यासाधक हैं, अनरव्यक व्यक्ति भी
 देवताओंके वैसे ही कार्यासाधक हैं । एक पशु को
 जानेसे जैसे अनिष्ट होता है, वैसे ही एक मनुष्यके
 तत्त्वक होनेसे देवताओंका अनिष्ट होता है । इसीलिये
 देवता अपने अग्रिय वेषसे पेसा नहीं चाहते, कि

मनुष्य तत्त्वक हों । किन्तु उनकी अज्ञान न कर ब्रह्म-
 शक्तिसानसे यदि कोई यथायोग्य धरना करे, वे भी उनके
 कार्यमें किसी तरहका विघ्न न डाल तत्त्वमतीतयोगी
 उपदेश दे कर भगोष्ट सिद्धिके लिये साहाय्य करते
 हैं” ॥१०॥

“ब्रह्म या इदमम आसीदेकमेव” इत्यादि वृहदारण्यक
 श्रुतिका भाव हमने इससे पहले ब्रह्मदेवमें बहुत पार
 उद्धृत किये हैं । फिर इसके बाद हो कहा गया है
 “आत्मैवेदमम आसीदेक एव” सुनना जो ब्रह्म है, वे
 आत्मा ही । आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व एक ही है,
 पेसा उपनिषद्का सिद्धान्त है । “अष्टं ब्रह्म अस्मि”
 पेसा छान हो आत्मा और ब्रह्ममें भेदेदर्शनका मूल
 साधन है । उचितचित्त छत्रोंमें इन उपनिषद् तत्त्वकी
 संक्षिप्त व्याख्या की गई है । वृहदारण्यक उपनिषद् शुद्ध
 यजुर्वेदके अन्तर्गत है । इसका सविशेष परिचय वेद
 शब्दमें देवता चादिसे । फिर ईशोपनिषद्में भी हम
 पेसा ही भाषातरुक श्रुति देखते हैं । इस उपनिषद्का
 सोलहवां मन्त्र यह है—

“यूपनेक्ये यम सूर्ये प्राजापरवभ्युद्हरमोन समूहतेजो ।
 यत्ते रूपशून्याणतमन्त्रते पयामि योऽस्तावसी पुदरः
 सोऽमस्मि ॥”

बर्थायु हे पूजन, हे यम, हे सूर्य, हे प्राजाते, आत्मेक
 का विस्तार करो । मुम्बेका उनी आलोकां प्रविष्ट
 करो । मानो मैं तुम लोगोंमें दो प्रविष्ट होऊँ ।
 जिससे मैं तुम्हारी मङ्गलमयी मूर्ति देव सूर्य ।
 यहाँ जो पुदर है, वे पुदर ही मैं हूँ ।

यहाँ आत्मा या ब्रह्मके परिवर्तनमें पुदरको बात
 कही गई । हम ब्रह्मदेवके वाम मण्डलके १० मूलमें
 इस पुदरका परिचय पाते हैं । सुविषयता भावकार
 रामानुजने भी इस उपनिषद्का “प्राजविष्ठा” कहा है ।
 उन्होंने कहा है, कि यद्यपि “ईशावास्य” उपनिषद्में
 किसी मन्त्रमें १८ श्लोक ही धामनुममभ्युद्गताके
 १८ अक्षरापके जोड़लका है । किन्तु प्राजाते धर्मोक्त
 परमपुदरके प्राजा जाना है और किन्तु तरह इसके
 प्राज किया जा सकता है, इस उपनिषद्में उम्बका
 उपदेश है । ईशोपनिषद् प्राजातरुके संदिनाके अंतर्गुक्त

भ्येतकेतुके पिताने कहा, 'भ्येतकेतो ! तुम बारह वर्ष तक
 वेद पढ़ कर सपैषे द्विविद् कद कर बहद्भूत होते आ रहे
 हो। तुमने मेँ आज एक बात पूछता हूँ। तुमने क्या
 अपने सुदसं प्रकृत शिक्षा पाई है जिस शिक्षामे अधुन-
 धन, धननुभूत, परतुअनुभूत और अज्ञात ज्ञात होते हैं ?'
 ज्ञेमे—

"येनाधुनं धुनं भयतयमतं मतमविज्ञातमिति ?"

इस पर भ्येतकेतुने विस्मित हो कर कहा— "यद् यथा
 भगवन् ! यद् शिक्षा केनी है ?"

इस प्रश्नके उत्तरमें भ्येतकेतुके पिताने कहा— मून्-
 पिण्ड देखते हो मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत सब द्रव्योंका तत्त्व
 ज्ञाना जाता है। मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत मित्र मित्र
 नामों द्वारा जिनको वस्तुएं चाहे बर्षों न हो, वे सब पदार्थ
 मृत्तिकाके सिया कुछ नहीं है। नाम केवल वाच्यरमण-
 विचार हैं—केवल मृत्तिका ही तत्त्व है।

"यथा स्तोत्रेकेत मून्पिण्डेन सपै मृगमयं विश्रातं
 स्याद् यथाऽऽरमणं विचारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव
 सतमम् ।" (छां उः १।१।४)

इसी तरहके और भी तीन उदाहरण के पिताने पुत्रको
 सारतत्त्व समझा दिया। पुत्र भ्येतकेतु इस विषय पर
 और भी सुननेके लिये उस्तुक हुए। इस पर पिताने
 कहा—

"सदेव सोमयदमम आसोदेकमेवाहितोयम् ।

तदेकं आदुरसदेयदमम आसोदेकमेवाहितोयं तस्माद्-
 सतः सउजायते ।"

अर्थात् आदी यह एक अद्वितीय वस्तु थी। कुछ
 लोग कहते हैं, पहले कुछ गो न था। इसके बाद असन्ने
 सन् हुआ। इसके बाद कहा जाता है, कि यह किस तरह
 मग्य हो सकना है, कि असन्ने किस प्रकार सन्की
 उत्पत्ति होता है। असल बात यह है, कि हममें सदेव
 नहीं, कि सृष्टिसे पहले एक अद्वितीय पदार्थ ही विद्यमान
 था। इसके बाद यह "परमेवाहितोयम्" पदार्थाने किस
 तरह इस विश्वको सृष्टि हुई। छांदोग्य उपनिषद्में
 इसको आलोचना की गई है। ज्ञेमे—

"तदेतत्त वदन्त्यां प्रजापेदेति तत्तं जेऽनुभूतं ततोऽत्र
 पेश्यन् बहुधायां प्रजापेदेति तदुपाऽनुभूतं। तस्माद्यज-

गृचाऽप्येचति स्वेदने वा पुरःपन्नेजस एव तदुपायो
 जायते ।"

छठे प्रपाठके हमने यहाँ जो धृतियाँ उद्धृत की
 हैं, वे ही प्रथमके प्रथम कई मूलकी अपलभ्यन हैं।
 हमसे "जग्माद्यन्व यतः" और "इत्यनेनाधुनम्" इन दो
 सूक्तोंका अनुसंधान मिल रहा है।

"आरमा या इमेक एवाप्र सामोऽन्यन् विज्ञत
 मियन् स येऽन लोकाऽनुसृजा इति" इस तरहकी धृति
 अन्याय्य उपनिषद्में भी दिखाई देती है। ये सब
 धृतियाँ उपनिषद्में विकीर्ण भाषणसे वर्तमान हैं।
 भगवान् प्रथमसूक्तकारने इन सब धृतियोंको मूलाकारमें
 संप्रद किया था। इसके बाद इन विषयमें विस्तृत रूप-
 से आलोचना की जायेगी। इन प्रपाठके आठवें पाण्ड-
 के अंतमें इत्येतकेतुके पिता कहते हैं,—

"स यपोऽग्निमैतदात्त्वमिन्" सूक्तों तन् मर्यां स
 आरमा तत्त्वमसि ज्येतेकेतो इति ।"

यही भीपनिषद् प्रलयतत्त्व है, यहाँ भीपनिषद् आरम-
 तत्त्व है। छांदोग्य भीपनिषद्में वेदान्तके गूढ गम्भीर
 उच्यत तत्त्व विदित हैं। गोचे कई धृतियाँ उद्धृत की
 गईं,—

१। "यो वै भूमा तस्मिन् नान्ये सुगमस्मि भूमिव
 सुखम्" (७म प्र० २३ तत्त्व १)

अर्थात् भूमा ही सुखरूप है, अल्पमें सुख नहीं है,
 भूमा ही सुख है।

२। "यत्त नान्यन् पश्यति नाश्वन् शृणोति नाश्वन्
 विज्ञानानि, स भूमाऽथ यत्राश्वन् पश्यत्यश्वन् शृणोत्यश्व-
 दिज्ञानानि तदन्नन् । यो वै भूमा तदगुण मत्त्व पदत्वं
 तन्मर्यांम् ।" (७म प्रपाठ २४ तत्त्व १)

अर्थात् जहाँ जिसके सिया अश्व गुण दिखाई नहीं
 देता, अन्य जगह सुनाई नहीं देता, जिसके सिया और
 कुछ ज्ञान नहीं जाता, वही भूमा है। इसके विपरीत
 अन्न है। भूमा ही अमृत और अन्न ही मरत्य है।

३। "स यथाऽस्नात् स उपतिष्ठान् स पर्यात् स
 पुरस्तात् स दक्षिणात् स उत्तरात् स वषट्" मर्यामिर-
 धानोऽदकारादेन, एवादेमेषास्नत्तदादमुपविष्टाददं
 पदवाद् दक्षिणतोऽदमुत्तरोऽदमेषेदं मर्यां मर्यामिति ।"
 (७म प्र० २५ तत्त्व १)

श्वेतकेतुके विनाशे कदा, श्वेतकेतो ! तुम बारह वर्ष तक घेद पढ़ कर सूर्यवेदविद्वद् कद कर महद्भूत होते आ रहे हो। तुमसे मैं आज एक बात पूछता हूँ। तुमने क्या अपने मुझमें प्रकृत शिक्षा पाई है जिस शिक्षामें अधुन-धुन, अननुभूत, वस्तुअनुभूत और अज्ञात ज्ञात होते हैं ? ज्ञेय—

"वेनाधुनं धुनं भयतयमंतं मतमविहातमिति ?"

इस पर श्वेतकेतुने विस्मित हो कर कहा—“वद कथा भगवन् ! वद शिक्षा कीसी है ?”

इस प्रश्नके उत्तरमें श्वेतकेतुके विनाशे कदा—मृत्-पिण्ड देखते हो मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत सब द्रव्योंका तत्त्व जाना जाता है। मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत मित्र मित्र नामों द्वारा जितनी वस्तुएं चाहे कहीं न हो, वे सब पदार्थ मृत्तिकाके सिया कुछ नहीं हैं। नाम केवल वाचात्मक-विकार हैं—केवल मृत्तिका ही सत्य है।

“यथा सोमपेक्षेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृगमयं विहातं स्याद् वाचाऽऽत्मनो विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ।” (छां उः १।१।४)

इसी तरहके और भी तोन उदाहरण दे विनाशे पुत्रको सारतत्त्व समझा दिया। पुत्र श्वेतकेतु इस विषय पर और भी सुननेके लिये उत्सुक हुए। इस पर विनाशे कदा—

“सदेव सोमपेक्षेन आसोदेकमेवाहितोपन् ।

तदेकं आदुरसदेपेक्षेन आसोदेकमेवाहितोपं तस्माद्-सतः सउजायते ।”

अर्थात् भादी यह एक अहितोप वस्तु थी। कुछ लोग कहते हैं, पढ़ले कुछ मो न था। इसके बाद असत्में सत् हुआ। इसके बाद कहा जाता है, कि यह किस तरह सम्भव हो सकता है, कि असत्में किस प्रकार सत्की उत्पत्ति होगी है। मानव बात यह है, कि इसमें सदेव नहीं, कि सृष्टिसे पहले एक अहितोप पदार्थ ही विद्यमान था। इसके बाद यह “एकमेवाहितोपम्” पदार्थके किस तरह इस विधाकी सृष्टि हुई। छांदोग्य उपनिषद्में इसकी आलोचना की गई है। ज्ञेय—

“तद्वैतान् वदुर्णान् प्रजापेनेति तत्तं जाऽऽवृणक्त ततोऽप्येव बहूणां प्रजापेपेति तत्तं जाऽऽवृणक्त । तन्मापात

वृषाऽप्येवमि स्वैदने वा पुरुषस्तेजस एव तद्व्याप्ये जायते ।”

छठे प्रपाठकमें हमने यहां जो धृतियां उद्धृत की हैं, वे ही प्रत्यक्षके प्रथम कई मूलकी भवत्प्रथम हैं। इससे “जन्माद्यस्य यताः” और “इत्येतेनाशब्दम्” इन दो सूक्तोंका अनुसंधान मिल रहा है।

“आहता वा इदमेक एवात्र आसीतान्यन् विज्ञानमियन् स येऽन लोकाऽनुसृजा इति” इस तरहकी धृति अन्याय्य उपनिषद्में भी दिखाई देती है। ये सब धृतियां उपनिषदोंमें विकीर्ण भावसे वर्तमान हैं। भगवान् प्रत्यक्षकारके इन सब धृतियोंका मूलाकारमें संग्रह किया था। इसके बाद इन विषयमें विस्तृत रूपसे आलोचना की जायेगी। इन प्रपाठकके आठवें पाठके अंतमें श्वेतकेतुके विना कहे हैं,—

“स यथाऽनित्तदाहस्यमिद्” सद्यं तन् सर्वं म आहता तत्त्वमस्मि श्वेतकेतो इति ।”

यही औपनिषद् प्रत्यक्ष है, यहां औपनिषद् आहता-तत्त्व है। छांदोग्य औपनिषद्में वैश्वान्तके गूढ गम्भीर उद्योग तत्त्व विहित हैं। नीचे कई धृतियां उद्धृत की गईं,—

१। “यो वै भूमा तरमुर्गं मान्ये सुत्वमस्मि भूमिय सुताम्” (छां प्र० २। १४८ । १)

अर्थात् भूमा ही सुखस्वरूप है, अल्पमें सुख नहीं है, भूमा ही सुख है।

२। “यत्र नान्यन् पश्यति नाग्यन् शृणोति नाग्यन् विज्ञानानि, स भूमाऽप्य यत्राप्यन् पश्यत्वग्यन् शृणोत्वग्य-दिज्ञानानि तद्वन्न । यो वै भूमा तदगुण मय पदत्वं तन्ममज्ञम् ।” (छां प्रपाठ २४ प्र० १)

अर्थात् जहां जिसके सिया भग्य कुछ दिखाई नहीं देता, अन्य जगद् सुनार नहीं देता, जिसके सिया और कुछ जाता नहीं जाता, यही भूमा है। इसके विपरीत अन्न है। भूमा ही अगुण और अज्ञ हो सत्य है।

३। “स यथाऽवस्मान् स उपरिष्ठात् स पर्याप्त स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स यदेवं सर्वमिद-यानेऽहंकारदेन, यथाऽमेवाध्वन्यदाहसुविदाहदं पश्चादहं दक्षिणतोऽहसुपत्तेऽहमेवैवं मयं सर्वमिति ।”

(छां प्र० १५ प्र० १ ।)

भ्येतकेतुके विताने कदा, 'भ्येतकेतो ! तुम बारद धर्य तक धेद पद कर सवैषेद्वियु कद कर अहद्वुत होते आ रते हो।' तुमने में मात्र एक बात पूछना है। तुमने क्या अपने मुझमें प्रकृत जिज्ञा पाई है जिस जिज्ञामें अधुन-धुन, अननुभूत, यस्तु अनुभूत और अज्ञात ज्ञात होते हैं ? ज्ञेय—

"वेगाधुनं धुनं भयतपमतं मतमविज्ञातमिति ?"

इस पर भ्येतकेतुने विस्मित हो कर कहा— "यद् यथा भगवन् ! यद् जिज्ञा केतो है ?"

इस प्रश्नके उत्तरमें भ्येतकेतुके विताने कदा—मून्-विण्ड देखते हो मूत्तिका द्वारा प्रस्तुत सब द्रव्योंका तत्त्व ज्ञाना जाता है। मूत्तिका द्वारा प्रस्तुत मित्र मित्र नामों द्वारा जितनो वस्तुएं चाहे बवों न हो, वे सब पदार्थ मूत्तिकाके सिया कुछ नहीं हैं। नाम केवल वाचारम्भण-विचार हैं—केवल मूत्तिका ही सत्य है।

"यथा सोम्येकेन मून्विण्डेन मयं मृगमयं विज्ञातं स्याद् वाचाऽऽरम्भणं विचारो नामधेयं मूत्तिकेत्येय मतम् ।" (छां उः १।१।४)

इसो तरहके और भी तोन उदाहरण है विताने पुत्रको सारतत्त्व समझा दिया। पुत्र भ्येतकेतु इस विषय पर और भी सुननेके लिये उत्सुक हुए। इस पर विताने कदा,—

"सदेव सोम्येदम आसोदेकमेवाद्वितीयम् ।

तदेकं आदुरसदेवेदम आसोदेकमेवाद्वितीयं तस्माद्-सतः सज्जायते ।"

अर्थात् भादी यह एक अद्वितीय वस्तु थी। कुछ लोग कहते हैं, पहले कुछ भी न था। इसके बाद असत्यमें सत् हुआ। इसके बाद कहा जाता है, कि यह किस तरह सम्भव हो सकता है, कि असत्में किस प्रकार सत्की उत्पत्ति होती है। भास्य बात यह है, कि इसमें सन्देह नहीं, कि मूत्तिका पहले एक अद्वितीय पदार्थ ही विद्यमान था। इसके बाद यह "एवमेवाद्वितीयम्" पदार्थाने किस तरह इस विषयको स्पष्ट हुई ? उदाशेय उपनिषद्में इसकी आलोचना की गई है। ज्ञेय—

"तदेकं यद्गुणं प्रजायेतेति तन्नोऽऽऽवृत्तं न तन्नोऽऽपेशं बहुणां प्रजायेयेति तत्प्राऽऽवृत्तं । तस्मात्त

गृहा-श्लोचनि स्वैदने या पुरुषस्तेजस एव तद्व्याप्ये जायते ।"

छठे प्रपाठकमें हमने यहां जो धृतियां उद्धृत की हैं, वे ही प्रस्तावकके प्रथम बड़े मूलकी अपलम्बन हैं। इससे "जन्माद्यस्य यता" और "इक्षेत्रेर्नाशब्दम्" इन दो सूत्रोंका अनुसंधान मिल रहा है।

"आत्मा या इदमेक एवात्र आसीत्तान्यन् विज्ञानमियन् स पेश्त लोकागनुमृता इति" इस तरहकी धृति अन्याय्य उपनिषद्में भी दित्ताई देनी है। ये सब धृतियां उपनिषदोंमें विकीर्ण भावने पर्यमान हैं। भगवान् प्रस्तावककारने इन सब धृतियोंका मूलाकारमें संग्रह किया था। इसके बाद इस विषयमें विस्तृत रूपसे आलोचना की जायेगी। इन प्रपाठकके आठवें पाठके अन्तमें श्येतकेतुके विताने कदा है,—

"स यथाऽऽनिमैतद्वातमिदं सद्यं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्येतकेतो इति ।"

यही भाषिणियद् प्रत्यन्तय है, यही भाषिणियद् आत्म-तत्त्व है। उदाशेय भाषिणियद्में वेदान्तके गूढ गम्भीर उद्योग तत्त्व विदित हैं। नीचे कई धृतियां उद्धृत की गईं,—

१। "यो ये भूमा तत्सुगं नान्ये सुखमस्ति मूर्धेय सुगम्" (छां प्र० २३ तत्पर । १)

अर्थात् भूमा ही सुखस्वरूप है, अन्यमें सुख नहीं है, भूमा ही सुग है।

२। "यत् नान्यन् पश्यति माग्यन् श्रुत्वानि माग्यन् विज्ञानानि, स भूमाऽप्य यताम्यन् पश्यतपश्यन् श्रुत्वाहव्य-दिज्ञानानि तद्वदन् । यो यं भूमा तद्वदन् मत्त्व पश्यन् तन्मत्संजम् ।" (छां प्रपाठ २४ प्र० १)

अर्थात् जहां जिसके सिया भग्य कुछ दिताई नहीं देता, अन्य जगद् सुनाई नहीं देता, जिसके सिया और कुछ ज्ञाना नहीं जाता, यही भूमा है। इसके विपरीत भग्य है। भूमा ही समूत और भग्य ही मत्त्व है।

३। "स यथाऽऽन्यन् स उपरिष्ठात् स पश्यन् स पुरश्चान् स इक्षिजतः स उमरतः स यथेदं सर्वाभिरव-धानेऽदकारादेन, यथाऽऽन्यन् स पश्यन् स पश्यन् स पश्यन् स इक्षिजतः स उमरतः स यथेदं सर्वाभिरव-धानेऽदकारादेन, यथाऽऽन्यन् स पश्यन् स पश्यन् स पश्यन् स इक्षिजतः स उमरतः स यथेदं सर्वाभिरव-धानेऽदकारादेन" (छां प्र० १५ तत्पर । १)

दिये गये हैं। इनके सिवा "एषः आदेशः। एषः उपदेशः। एषा धेनोपनिषद् इत्यादि।" नामा प्रकारके गृहान्तरके उपदेशकी दृढ़ता प्रदर्शित हुई है।

इस उपनिषद्में सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध कई प्रधान-निरूपणलक्षणधृति देखते हैं; जैसे—

"यतो वाचा निरन्ते मनस्य मनसा च।

आनन्दः प्रत्ययो विद्वान न विमेति कदाचन ॥"

विस्तार हो जानेके भयसे अधिक नहीं लिखा गया। फलतः तैत्तिरीय उपनिषद्के प्रधानतत्त्वकी ओर धृष्टवन्ती ये दोनों ही अंश उच्चतम औपनिषदी धृतिसे परिपूर्ण हैं। इस उपनिषद्की आनन्दतत्त्व धृति अति उपादेय है। हम नीचे दो धृतिको उद्धृत कर हम उपनिषद्की विशेषतः दिखलाते हैं।

१। 'रसो वै सः। रसं हो वाचं लब्धाऽऽनन्दो भवति।"

२। "आनन्दो ब्रह्मोति व्यञ्जनात्। आनन्दादेव अस्त्वितानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन ज्ञातानि जीयन्ति, आनन्दं प्रत्यभिपद्यन्ति, संविदाप्नोति।"

तैत्तिरीय उपनिषद्की ये दो उत्कृष्ट धृतियां वैश्वस्त प्रथमं अनेक बार आई हैं। ब्रह्मसूत्रका "आनन्दमयो-भ्यासात्" सूत्र इस आनन्दधृतिको ही प्रतिष्ठयति है। ये दो धृतियां वैष्णव धर्मकी मूल धारा हैं। इन्होंने दो धृतियोंसे वैष्णवोंके रसिकरीतर आनन्दमय धी-भगवान् हैं; इन्हींसे उनका रास है और इन्हींसे उनकी आनन्दलीलाकी सैकड़ों उपासक तरङ्ग हैं! ये द्वाभ्यन्तरके वैष्णव भाष्यकारोंने कई जगह ये दो उपनिषद्वाक्य उद्धृत किये हैं। मूलतत्त्वामिष्यञ्जक प्रणयके माहात्म्यकी रक्षासे इस उपनिषद्का प्रारम्भ है, किन्तु अवि, अनुभवमानन्दके गमोत्तर, गमोत्तर और गमोत्तरम स्तरमें जहां तक गये हैं, यही व्याकृतिक अभिप्रेक्षितसे प्रगाढ़तर भावधर्ममें निमज्जित हो आनन्दलीलासकेशि चरुपासादके आलापनमें विमोह हुए हैं। इस अर्थकायमें ब्रह्मसूत्रका स्वभाष्यः ही तिरोहित हो जाती है, केवल आनन्द-आत्मात्मके लिये ही प्राण व्याकुल हो उठते हैं। साधनाके अनुसार हो निद्रि है। प्रधान-तत्त्वलीमें अवि सद्यमुच आनन्दसाधनमें निमज्जित

है। अन्याय-भ्यानोंमें हम ब्रह्मकी विविध नामोंसे अभिहित देखते हैं, यही 'ये पुण्य, यतो' द्विरूपगमने, कहीं वैश्वानर इत्यादि विविध नामोंमें अभिहित हुए हैं। किन्तु अविगण जब ब्रह्मस्वरूपके गमोत्तरमें पहुँचे, तब उन्होंने "ब्रह्मैव सुखम्" "आनन्दं ब्रह्म" "रसो वै सः" इत्यादि अनुभूतिमयी धृति द्वारा ब्रह्मस्वरूप अभिप्रेक्षक करनेकी चेष्टा की। यादृ जगत्सं किम् प्रकार अन्तर्गतके गमोत्तर प्रवेगमें प्रवेग कर ब्रह्मानन्दका उपभोग करना होता है, किस प्रकार वैदिक जगत्के सुखभोगकी कामशाका परिवर्तन कर समसुखानिधिमें आनन्दरसमें निमज्जित होता पड़ता है, वैदिक साहित्यकी आलोचनाके बाद औपनिषद् साहित्यके आलोचना-क्षेत्रमें प्रवेग करनेसे उस ब्रह्मानन्दकी विमल प्रतिच्छवि सहसा मानसनेत्रके सामने प्रतिमान होती है। वैदिक उपासनासे वैश्वस्तकी उपासनाके अन्तः आकाशमें हम उपास्यके जो अभिप्रेक्षक यन्त्र देखते हैं, यह अभिप्रेक्षक प्रतीकमान होने पर भी वैदिक मन्त्रके अभ्यन्तर हमने उसका अति सूक्ष्म धोत्र देखा है। यके अन्तः-बाह्यका विपुल तत्त्व वैदिक अविधियोंके हृदयमें निरव प्रतिष्ठित था। सुतरां वैदिक उपासना और वैश्वस्तकी उपासनामें यह पार्श्वय आकस्मिक नहीं है। ब्रह्म द्विनेमें तत्त्वब्रह्म अविधियोंके हृदयमें ब्रह्मस्वरूपकी प्रतिच्छवि धोरे धोरे समुद्रासित होती थी। उपनिषद् युगमें यह प्राकृतिक निषमकी तरह अविधिकाशी प्रणाली क्रममें भारतीय अविधिसमाजमें धोरे धोरे अभिप्रेक्षक होता था। हम तैत्तिरीय उपनिषद्में ही उसका पूर्ण निदान देखते हैं।

ब्रह्मस्वरूपके हम लोगोंने सुना है, "ये हमारे विषयमें विद्वे, सुखमें विद्वे, जगत्में हम लोगोंका विषयम जो कुछ है, सबोंको बतिया ये हमारे विद्वे हैं।" मुण्डकका कहना है, "सर्वको ही जय है, ब्रह्म जगत्के सर्वका परम निधान है। सूत्रमें सूत्रपर, दूरसे दूर, फिर निकटसे भी अभिप्रेक्षक, ये आनन्दकयने हम लोगोंके अति निकटवर्ती हैं, उनके गमना निकटवर्ती और कुछ भी नहीं है।" मुण्डकके सत्यको माहमा गोपित करते हुए कहा है—

इस सर्वभूतमें विराजमान कृतस्य पुण्य चर्मसूत्रके आगेपर होने पर भी घोर प्रज्ञात ध्यायमान श्रुतियोंके ज्ञानचक्षुसमें उर्ध्वं प्रत्यक्ष साक्षात् पाया। इस प्रकार प्रत्यक्ष करके उन लोगोंके जिष्योंको उपदेश दिया—

“तद्विज्ञानेन परिस्पन्ति... पौराः
आनन्दरूपममृतं, प्रतिमति ॥” (मुण्डक २।२।७)

घोरगणने विज्ञाननेत्रसे देखा, कि यह आनन्द रूप अमृत पशु ऊपर, नीचे, बायें, दाहिने, आगे, पीछे सभी जगह विराजमान है। इस प्रकार ब्रह्मदरीन होनेसे हो हृदयमग्नि मिग्न होती है, सभी संजय जाता रहता है, कर्मरहित क्षय होता है, यहाँ तक कि अविद्या या कर्मधीज सदाके लिये विनष्ट हो जाता है।

उपनिषद् मात्रसे ही हम इस प्रकार शिक्षा पाते हैं। उपनिषद्के इन सर्व सारतत्वके आधार पर ही वेदान्त-सूत्र प्रथित हुआ है। ब्रह्मसूत्रकी आलोचना करनेमें सबसे पहले उसके मूलायलम्बन उपनिषद् शास्त्रकी आलोचना करना कर्तव्य है। हम इसके पहले कुछ सुप्रसिद्ध उपनिषदोंकी शाले लिख चुके हैं। सभी कठोपनिषद्को ही एक बातोंकी आलोचना की जाती है। गुरुपु और नाचिकेत संवादप्रसङ्गमें कठोपनिषद्का उपदेश दिया गया है। अचिन्तयर्षेभ्यर्षे ब्रह्मसुत प्रभावका विषय इस उपनिषद्में दिखाई देता है। श्रुति कहते हैं—

“आलोने दूरं मन्त्रि वयानो याति सर्वतः
कर्त्तुं महामदं देवं मन्त्रो शाशु महिभि ॥” (२।२।१)

ये शब्द रहने पर भी बहुत दूर तक जाते हैं, ज्ञान करने पर भी सभी जगह उनकी गतिविधि है, ये हर्ष-हर्ष उभय भावविहित हैं, “मह” छोड़ कर कीन उर्ध्वं जानेना ? इस शरीरमें जो अजारीते हैं, अनवस्थित अनित्य पदार्थोंमें जो अवस्थित और अनित्य हैं, ऐसे ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान हो जानेसे हितोंका भी शोक गदी रह सकता। पाश्चात्य दार्शनिक परिदृष्ट दार्पेट स्पेसर-में अनेक ऐतानिक युक्तिकी सहायतासे यह स्थापित करने की चेष्टा की है, कि हम अनेक परिवर्तनमय विषयके अन्ततन्त्रमें एक अद्वितीय अपरिवर्तनीय महाशक्ति अक्षय है। उस शक्तिके, अवलम्बन पर ही इस विश्वजगत्का

अस्तित्व है, यह विश्वजगत् उसी शक्तिका प्रकाश है तथा उन्नी शक्ति पर इस विश्वका विग्रहण है। हारवर्ट स्पेन-सर्से यह कह कर महातत्त्वसे कठोपनिषद्के वाच्योंकी प्रतिष्पन्नित किया है। हम कठोपनिषद्में इन वाच्योंकी परिष्कृत श्रुति उद्धृत कर वेदान्तशास्त्रकारोंकी गमौर गयेपनाका उदाहरण प्रकट करते हैं। श्रुति कहते हैं—

“एकीवशो वनं मूतान्तरात्मा एवै रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्य योऽनु पस्पन्ति पीथ स्वेषां सुगं शारवं
नेतरैवाम् ॥”

“नित्योऽनित्यानां चेतनस्पेतनाना
मेको बहुनाम् यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्य योऽनु पस्पन्ति पौराः
स्तेषां शान्तिः शारवशो नेतरैवाम् ॥” (१।१०-११)

आधुनिक विज्ञान सभी जगह शक्तिका परतत्त्वपद स्थापन करनेकी चेष्टा करता है। हम इस उपनिषद्-ब्राह्मणमें इसका सुदृढ़ सिद्धांत मूलाकारमें देखते हैं। इस बालके कारणमें जिस शक्तिका अस्तित्व नित्यरूपसे प्रतिष्ठित है, यह विज्ञान दिग्गिरि में उसी शक्तिकी अभिष्पत्ति है। एक विशु जलमें जिनकी सख्या विद्यमान है, उसालतरङ्गमालामय वासोम अनेक महासागर भी उर्ध्वोंकी सख्याका साक्ष्यप्रदान करता है, सदा पला-में प्रद नक्षत्रमें कोट वर्तनमें अद् और चेतनमें इस एक ही शक्तिका मिग्न मिग्न प्रकाश है। कौकिल्यके बल कृत्रमों, शिशुकी कोमल कलध्वनिमें जिस शक्तिके ध्रुवपाटि माधुयं पर हम विमुग्ध होते हैं, वरके गर्जनेसे भी इतनी शक्तिकी लोला प्रकट होती है। जो शक्ति कुत्तुममें कोमलता कह कर अनुभूत होती है, यह शक्ति पत्रकी भी कठिनताका हेतु है। जो “मानन्दममृतकव” विमानि” है, ये दो फिर “महद्भय” पञ्चगुणन्” है, भवमोग शिशुके मनर जो मयकी सतुनीय श्रुतियोंके रूपमें प्रवृत्त होते हैं, ये फिर “नयानां भवम्” “मवादिनिकर्त्तव्यं, मयाकारति सुयः। भवादिश्रयश्च वायुश्च गुरुपुवांवि पञ्चमः” है। प्रत्यक्षमें जो अचेतन रूप हैं,—मानव हृदयमें ये ही ज्ञानवत्किरूपमें विराजमान हैं। हाग-निक परिदृष्ट हारवर्ट स्पेनसर्से हम ब्रह्मविमुग्ध ज्ञानका स्वेगामास मात कर कहा है, कि शक्ति अद् विषयके



... मद्र वा भारमाका लक्ष्य ।

याजमनेय-उपनिषद् कर्तुं है, -भारता प्रकाशक
 भलएड, भगरीरा, विशुद्ध, मपावयिद्ध, कवि, त्रिकालध,
 मनोंयो, मन्तवामी, विम्, सर्वोत्तम श्रीर स्वयम् है ।
 गृहदाएवक-उपनिषद्का कहना है, कि ये सबसे प्रियतम
 हैं, ज्योतिके ज्योति हैं । विभ्यमलाएड उर्ही पर- स्थिर
 हैं। मुण्डक इस प्रकार कहते हैं—ये अनाद, अत्यन्त,
 अक्षय, अक्षय, अरस, निरव अगम्यवन्, अनादि अमर
 श्रीर पराएव । उर्हे जान लेनेसे मनुष्य गृहयुगुलमें
 पतित नहीं होते। श्वेताश्वर उपनिषद्ने कहा है,—
 ये गृह्य होने पर भी गृह्यर हैं, महन् होने पर भी मह-
 सार हैं, पूर्ण आनन्दय है, विभ्यके कर्ता श्रीर गोता है।
 विद्यमें कोई भी उनसे बड़ा नहीं है श्रीर न कोई उनके
 समान ही है। ये चान्चभूके अदृश्य हैं। उनके हाथ
 पैर नहीं हैं, किन्तु ये प्रदण कर सकते हैं। उनके कान
 नहीं हैं, पर सुनते हैं, चक्षु नहीं हैं, पर देखते हैं, ये
 सर्वज्ञ हैं, फिर भी उर्हे कोई देण नहीं सकता। ये
 अक्षय अज श्रीर सर्वथापो है। जैा उर्हे जानते हैं,
 ये ही अमरतातिलाग करतें हैं, दूसरा कोई भी शक्ति
 लाभ नहीं कर सकता।

शास्त्रात्कारका वाचन ।

अन्यान्प वेदापनिषदुमें इसके स्वरूपको जैा वर्णना
 की गई है तथा इन्हें लाभ करनेका जैा उपाय दिखलाया
 गया है, पहले तो इभको आलोचना हो चुकी है। किस
 प्रकार मनुष्य विमल आनन्दपथके पथिक होगे, उसके
 लिये क्या उपाय अवलम्बन करना उचित है, गृहदा-
 एवकमें उतका एक उपदेशवाच्य कहा गया है। श्रुति
 कहते हैं, पबित कार्य द्वारा ही मनुष्य पवित्र होते हैं,
 क्रुतिसत कार्यसे अमरताएवा क्रुतिसत श्रीर कर्म्म हो
 जाती है। जिसको जैा वासना है उसका पैना ही
 सञ्चल है; जैा सञ्चल पैना ही बापों श्रीर जैा
 कार्य पैसा ही फल है। यथा—'यथाकारी यथाचारो
 तथा भवति काममय यथाय' पुत्र इति, स यथाःकार्यैः
 भवति तत्तदनुभवति तत् कर्म्म कुटने । यत् कर्म्म
 कुटने । तदनि मग्यवने ।' (४ म ४ भा ५)

कठोपनिषद्में लिखा है—

"नाशितो दुःखरितालायान्तो ना समारिहः ।

ना शन्तमानयो गति प्रशन्नेनेन मानुषान् ॥" (२१४)

अर्थात् कुटर्म्ममें अनिष्ट, अनांत, अममादिन,
 अनांतमानस (सकाम द्वारा उद्दिग्नचित्त) पथिक, आरन-
 हान लाभ नहीं कर सकते ।

प्रज्ञदर्शन ही जीयका पुण्याध है—उपनिषद्का
 उतका प्रघात है। किंतु पूर्णको विरण संघकारको
 दूर करनेमें समर्प होने पर भी जिस प्रकार प्रतिघंघकता-
 के लिये हम लैापीकी संघकारका भोग करना पड़ता
 है, इस प्रकार उपनिषद्वाच्यके आधार पर साधन-
 पथसे पदार्पण करने पर भी पद पदमें हम लैापीके
 सामने बाधा उपस्थित हातां है। चित्तसे क्रुतिसत
 कर्म्मको वासना स्वाग नहीं करनेसे, प्रज्ञसाधनामें एकप्र
 नहीं होनेसे, केवल ज्ञान पदुनेसे विमल प्रज्ञागम लाभ
 नहीं हो सकता। इस कारण साधनमिय श्रुतिगण
 मरल प्राणसे देवताके निकट कातरकएटसे प्रार्थना
 करते थे—

"भवतो वा सद्गमय, समो मा

ज्योतिर्गमय इत्युवाच" गमय ।" (१११० उ ११८)

अर्थात् 'दे देव ! तुम मुझे अमत् पथमें सत्-पथमें
 ले जाओ । संघकारसे उतालेमें ले जाओ तथा मरण-
 के शासनमें अमत्के पथ पर ले जाओ ।' फलतः
 वेदान्तके सञ्चिदानम्भव, शान्त्यमें सुसनेके लिये इस
 प्रकार विषयवैराग्यजनित साकुल प्राप्ति ही प्रधानतम
 प्रथम साधन है। निष्पगन इस प्रार्थनाका सव-
 लभन करके ही कामे बढ़ने पें।

भौतनिषदो उपायक ।

उपायके स्वरूपके अनुसार ही उपायनामिदि
 होती है। उपायकके माय श्रीर शारमोरकथके अनु-
 पातमें उपायदेव उपायकके इश्यमें प्रकृत होते हैं।
 उपनिषद् मुगके श्रुतिपीकी ज्ञाननेतके सामने जैा उपाय
 प्रतिभात हुआ, उनको उपायनामिधि स्तन्य ही उटो ।
 नाना प्रकारके बलिदान, होमामिकी पबित साद्गत
 अथवा कष्टपत्तकी श्रुतिमय वाच्यवाच्यो उपायनाका
 योग न समर्थो गई। एक धं पीके श्रुति उर्हे "मया-
 मनसोवावा" कह कर मोरष हो गये, उनका बल

विद्युत् क्षणमें प्रकटित है।^{१०} अविद्यमन्ति समस्त हि, किन्तु प्रत्यक्ष ही तथा यह सभी प्रकाश ही अविद्यमन्ति है। श्वेतभाष्येनाङ्गिद्रुमपद विज्ञान विभ्य प्रयाण्ट अमग्न अगण्य इन्द्रका विपुल रङ्गाजय है, किन्तु इसका प्रत्येक पदार्थ एक अङ्गिनीय जलिकी क्रीडापुस्तकी है। समस्त विभ्य इन्द्रकी मूर्ति है, किन्तु ये हमने पृथक् है। निष्पत्ति हम पदार्थका नश्य जाननेके लिये श्रीगुरुके शरणागतमें बैठ कर प्रायश्चा की थी—

“अन्यथा भर्मान्यथा भर्मान्यथावसात् इ गङ्गात् ॥

अन्यथा भूमाभ्य भस्मनाय यत् पर्यसि वदत ॥”

(पटञ्जली २।२४)

यद्यो पदार्थ वैश्वान्तका आत्मोप्य है तथा वैश्वान्तका उपाध्य है, इसमें ही अन्तत विभ्य प्रतिष्ठित है। इससे कोई भी पदार्थ स्वतन्त्र नहीं रह सकता। सूर्य जिन प्रकार हम लोगोंके गवन है, किन्तु श्वेतकी सृष्टि या शेषसे जिन प्रकार सूर्य कन्दुपित नहीं होने, उसी प्रकार विश्वको प्रतिगता भी विश्वेश्वरके स्वयं नहीं कर सकती।^{११} हम श्वेतभाष्यपर उपनिषद्में जो इसी प्रकार प्दानश्य वेगने है। श्रीमद्गणेशोनामे इस तरहका वैश्वान्त विज्ञानात्मक सारसत्य अनेक प्रमाणोंमें दिखाई देता है।

पशुता स्वयं जैसे शब्द है और जलमें जैसे नेत्रका अस्तित्व विद्यमान है, प्रायः जो इस विषयमें बैठे ही भाषने विद्यमान है। अगस्त्ये अगस्त परिवर्त्तन प्रतिगुह्यत्तं गापित होता है, किन्तु ये फिर अपरिवर्त्तनीय है। जिस प्रकार इस निषम परिवर्त्तनके क्षान्तनदृष्टके हाथसे जोय बन्ध सकता है, जिस प्रकार जोय जोक और मृत्युमें सुखकारण या सकता है, उपनिषद् युगमें आत्मीय भाव नरकारियोंके हृदयमें यह बान्धना बहुत बलवती हुई थी। इस समय जीवन-मरणका

रहस्य जाननेके लिये कैलाशूल छात्रियोंका हृदय अधिहार कर बैठा था। मृत्यु क्या है, मृत्युके पीछे जायको क्या गति होती है, इत्यादि विषयमें ज्ञान लाभ करनेके लिये मार्गों गादि मदिहाये भी उपनिषद्का ग्रन्थ उठाया था। उपनिषद्में हम इन सब प्रश्नोंकी ही सुभी-मांसा देखते हैं।

उपनिषद् ही प्रत्यविद्या है। यह विद्या सभी विद्याका सार है। मुण्डकोपनिषद्में ज्ञापि कहते हैं, कि दो ही विद्या हम लोगोंकी छातव्य है—एक श्वेता और दूसरी परा। धर्म्येदाङ्ग भादि श्वेता विद्या और वैश्वान्त या प्रत्यविद्या ही परा विद्या है। इस प्रत्यविद्यामें सभी विद्या निहित है। इस कारण आर्द्यग्व वैश्वान्तका इतना आदर कर गये हैं।^{१२} उपनिषद्कारोंने इस प्रत्यविद्याके निष्ठाप्रसारके लिये अधिक नहीं कहा है,—उपनिषद्बुधावप सूत्राकारमें रचित नहीं होने पर भी यह सूत्रका तरह सारगर्भ है, सूत्रकी तरह विभक्तो-गुण्य है। वैश्वान्तकी निष्ठा अति उदार है। निष्प बटे, नमस्ते गुरुते कहने हैं,—गुरुदेव, आप उपनिषद् कहिये। परम कारुणिक गुरुदेवने उरती समय कहा, “तुम लोगोंसे प्रत्यविद्याकी उपनिषद् कहता हूँ”—इतना कह कर ये प्रत्यवृत्त्य समझाने लगे। दो बार बातोंसे ही निष्पोंके चित्तोंमें प्रत्यज्ञान उमड़-झाव, उनका हृदय प्रसन्न हो गया, सभी भूगोंमें प्रत्यज्ञान फैल गया। निष्पोंने समझा, कि यह विज्ञान विभ्यप्रयाण्ट विमजु-व्यमय है। उन्हें बड़े छोटे ब्राह्मण गुरु भादिका मो-क्षान है। गुरुदेवने समझा दिया—

“पशु शरीरि भूगति अहमन्ये वागुत्तरवति ।

श्वेभूतेषु श्वान श्वानं ततो न विद्युत्तरवते ॥

शरीरान् शरीरिण भूगति अहमेतन्मूर्त्तिमान् ॥

तत्र को मोहा का बोधः पश्यतः मनुवन्तः ॥”

(गीतानि १.१०)

ये सर्वभूतको अपनी आत्मानमें देखते हैं, इस जगत्-का कोई भी पदार्थ उरत समय उनके निजके रूप होनेके कारण होय नहीं समझा जाना था। श्वेत्की जो अपनी आत्मानमें देखते हैं यद्यपि सभी जगद् जो पश्यका अनु-भव करते हैं, उन्हें जोक मोहादि कहा है।

१० “The Power manifested throughout the universe, distinguished as material, is the same Power which in ourselves wells up under the name of consciousness” (Beligion, a Retrospect and Prospect.)

ब्रह्म वा भारमाका स्वप्न ।

याज्ञवल्केय-उपनिषत् कहते हैं;—भारमा प्रकाशरूप ब्रह्मण्य, भगतीरा, विद्युद्, मयापविद्, कवि, तिरालब्ध, मन्तोषो, भक्तपर्णो, विभू, सर्वोत्तम और स्वयम्भू है। वृद्धाण्यक उपनिषद्का कहना है, कि ये सबसे प्रियतम हैं, ज्योतिके ज्योति हैं। विभ्रप्रह्लाण्ड उर्ध्वो पर स्थिर है। सुण्डक इस प्रकार कहते हैं—ये भद्राद्, अस्वर्श, अरूप, अद्वय, भस्म, निरव भगवत्त्वम्, भनादि भगवत् और परात्पर ॥ उर्ध्वे जान लेनेसे मनुष्य मृत्युमुक्तमें पतित नहीं होते। श्वेतशम्भर उपनिषत्ने कहा है,—ये वृद्ध् होते पर मो वृद्धतर हैं, महन् होते पर मो महत्तर हैं, पूर्ण भानन्दन्य हैं, विभ्रके कर्ता और गोता हैं। विद्ययमें कोई भी उनसे बड़ा नहीं है और ग कोई उनके समान हो है। ये सर्वांशुके भद्रस्व हैं। उनके हाथ पैर नहीं हैं, किन्तु ये प्रदण कर सकते हैं। उनके कान नहीं हैं, पर सुने हैं, चक्षु नहीं हैं, पर देखते हैं, ये सर्वज्ञ हैं, फिर भी उर्ध्वे कोई देख नहीं सकता। ये भक्ष्य भज और सर्वव्यापी हैं। जो उर्ध्वे जानते हैं, ये हो भगवत्तान्मिलाम करते हैं, दूसरा कोई भी ज्ञाति लाभ नहीं कर सकता।

शास्त्राकारका शब्द ।

अन्यास्य धेनुपनिषद्में इसके लक्ष्यको जो वर्णना की गई है तथा उर्ध्वे लाभ करनेका जो उपाय दिखलाया गया है, पढ़ले तो इनको धालोचना हो चुकी है। किस प्रकार मनुष्य विमल मानस्वपथके पथिक होगे, उनके लिये क्या उपाय अवलम्बन करना उचित है, वृद्धाण्यकमें उनका एक उपदेशवाच्य कहा गया है। प्राणि कहते हैं, पथिक कार्य द्वारा ही मनुष्य पथिक होते हैं, क्रूरितन कार्यसे भगवत्पराता क्रूरितन और कर्मा हो जाते हैं। जिसको जैसी पामना है उसका वैसा ही सङ्कल्प है; जैसा सङ्कल्प वैसा ही कार्य और जैसा कार्य वैसा ही फल है। यथा—“यथाकारो यथाबाधो तथा भवति काममय एवायं पुण्य इति, स यथाबाधो भवति तन्पुण्यमवति तन् कर्म बुद्धेः। यन् कर्म बुद्धेः तद्वि सप्यते ।” (४ भो ४ भा ५)

कठोपनिषद्में लिखा है—

“नाशिलो दुःखविनाशानन्दो ना समारिः ।

ना शन्तमानो वरि प्रजनेनेन मन्नुवात् ॥” (२२४)

मर्धात् कुकर्मसे क्षतिवृत्त, भगोत्, भस्मादिन, भगोत्तमानम् (सकाम द्वारा उद्दिनाचित) प्राणि, भारन-धान लाभ नहीं कर सकते ।

प्रददर्शन हो शोषका पुण्यपापं है—उपनिषद्द्वारा उसका प्रधान है। किन्तु पूर्णकी कारण मंधकारकी दूर करनेमें समर्प्य होने पर मो जिस प्रकार प्रतियंधकताके लिये हम लोगोंको मंधकारका भोग करना पड़ता है, इस प्रकार उपनिषद्वाचकें भाषार पर साधन-पथसे पदार्पण करने पर मो यद् पद्में हम लोगोंके सामने बाधा उपस्थित हाता है। जिससे क्रूरितन कर्मकी पामना तथा नहीं करनेमें, प्रदसाधनामें एकाग्र नहीं होनेमें, केवल शान्त पदमेंसे विमल प्रदक्षान लाभ नहीं हो सकता। इस कारण साधनमिय प्राणिगण मरल प्राणसे देवताके निकट कातरकण्ठसे प्रार्थना करते थे—

“भयतो ना उर्ध्वमय, समो मा

ज्योतिर्ममं मृत्युनामृतं गमय ।” (११२० उ ११२५)

मर्धात् “दे देव ! तुम मुझे मसत् पथमें सन्-पथमें ले जाओ। मंधकारसे उतारिमें ले जाओ तथा मरलके प्राप्तमें भ्रमणके पथ पर ले जाओ। फलतः वेदान्तके साधदानन्दमय राज्यमें सुसंगेके लिये हम उकार विषयधेरावजनित आकुल प्रार्थना हो प्रयातनत प्रथम साधन है। निष्पन्न इस प्रार्थनाका मय-लक्षण करके ही जागे बढ़ते थे।

मीरनिषदी उपायक ।

उपाध्यके स्वरूपके अनुसार ही उपासनामिदि होती है। उपासकके भाव और भारमोक्षार्थके अनुपातसे उपास्यदेय उपासकके हृदयमें प्रकट होते हैं। उपनिषद् मुक्तके प्राणिकी ज्ञानदेवके सामने जो उपास्य प्रतिभात हुआ, उसकी उपासनाविधि स्वभग हो उठी। जना प्रकारके इतिहास, दोमात्रिकी पथिक आहुति बाधवा कष्टवत्तका मनुषिय पाषयावती उपासनाका योग न समर्थो गई। एक धेनोके प्राणि उर्ध्वे “मया-ममगीनरा” कह कर मोक्ष हो गये, उनका कष्ट

रूप गया, अर्थात् बंध ही मर्त्य, जगत् विषय ही उदा,
 ये प्रज्ञानरूपके ध्यानसागरमें निर्माजिन हो गये । उन्होंने
 महाकारणविक्रित विष्णुसिद्धि द्वारा प्रज्ञानसागरमें आत्म
 निर्धारणको एकदम परिभाषित कर दिया । निर्धारणको
 जिन प्रकार गिरिधारणप्रमाणमें भगना रूप जगिष्णुक
 कार्यके विनाश साधनम धारण करते हैं तथा तद्वत् रूपां
 कृतकम निर्मादमें सागरकी धोर दीप्तो है, साधारणको
 भगना नाम रूप छोड़ कर अनन्य कसोमी सागरके साथ
 मिल जाती है, इस धेणोके साधकगण भी इसी प्रकार
 उपासनाके सममें दिने दिन संयुक्त हो कर साधार प्रज्ञ-
 नागरमें आत्मविमर्शित करते हैं तथा अपनी निश्चिन्त
 उपाधि छोड़ कर प्रणमें लीन हो जाते हैं । इसी कारण
 प्राप्ति कहते हैं—

“यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे स्तं गच्छन्ति नामकुरे विशाव ।
 तथा विद्वान् गानकुराद् विमुक्तः परात्परं पुनस्तु वैति दिश्यन् ॥”
 (सुब्रह्मण्य उपाधि २५)

सांघान् जिन प्रकार स्पन्दमान नदियां नागाकूप
 रथाव कर समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार प्रज्ञानाधरः
 विद्वान् पुनः भागकुरादि उपाधिका वरिष्यावाम कर परा-
 तपर प्रज्ञामें विलीन होते हैं । इसके बाद ही कहा गया
 है—

“तु यो ह्येवमन् परमं प्रत्ययेद् ब्रह्मैव भवति तास्वाऽब्रह्म-
 विस्तुते भवति ।
 मरति शोकं मरति पापानां मुहूर्तादिभ्यो विमुक्तोऽ-
 मुक्ता भवति ॥”

इसमें जाना जाता है, कि वह प्रज्ञविद्वत् प्रकटके
 मान होते हैं । ये शोकमोहवापादिमें विमुक्त हो अनृत
 ध्यानमें जाते हैं । ये पुनः पुनः अन्तमृत्युके शासनमें
 शम्भुर्त रूपमें मुक्तिनाम करते हैं, केवल ध्यान ही उभ-
 को प्राप्ति साधन है । यथा—

“न कदाचन विद्वान् कश्चन संयुक्तः परमं करणेनम् ।
 दूरा मन्वेयं अन्तर्निवृत्तौ यत् तद् विदुस्तु तं भवति ॥”
 (वटवती सूत्र १)

अधोन् वे कर्णके धर्माधर हैं, इन्हें कर्णों देखा
 नहीं जाता, बुद्धिपूर्व विस्तर्षवम ध्यान-द्वारा वे भागम-
 लेषके ध्यानमें प्रविष्टित होते हैं । आ इन्हें जानते हैं,
 ये अन्तर्बर्षः भाव करते हैं ।

आ पादे जिस तरह प्रज्ञानाव रूपों न करे, उपासना
 मर्मोंके लिये प्रवेक्षणोप ही । विना उपासनाके जो
 भगवत्पवित्र विमुक्त परार्थही धारणाके निमित्त विष्णु-
 भूमि विलक्षण प्रस्तुत नहीं होता । निर्विद्यमें ब्रह्म-
 धारिणोंके मतमें “सोऽद्” ध्यानमें ही प्रज्ञेयसाक्षा-
 साधित होती है, परन्तु एक दूसरी धेणोके यथासं-
 वस प्रत्यक्ष “सर्वं निर्वं सुन्दरम्” कह कर ही विश्राम
 करते हैं ।

अनपयप्रसाहणमें भी हम दृष्टवादिविषयित्त साधना-
 नायकी धेणुनाका कीर्तन देखते हैं । दृष्टसम्पन्नमें
 उपासनाको अतपयप्रसाहणमें वैश्ववृत्तिना प्रयोहित कार्य
 कहा है । विलसंयम, विलसो सद्गुरुसिद्धा उरुर्णा
 साधन और जम दम सादि द्वारा विलसंका उपासना
 लायक करनेका उपदेश प्रायः सभी उपनिषदोंमें दिव्य
 होता है । नैतिक वृत्तिधेणोके उरुष्ट साधन द्वारा विल-
 पावप्रलोभनके आह्वानमें बचाया जो कर्णोत्प्रेषण
 कार्यप्रणालीकी अपेक्षा अधिक प्रवेक्षणोप ही । उपनि-
 षदुत्तममें प्रविष्टिमें उरुके अनेक उपदेश दिये हैं ।
 क्षमा, मरुप, दम और जम द्वारा विलसुत्तिके उरुर्णा
 साधनके सम्बन्धमें धीमगब्रह्मोत्प्रेषणमें बहुतसे मग
 प्रकाशव ही । सुब्रह्मण्ये साक्षात् साक्षात् मिलते हैं—

“नायमात्मः प्रवचनेन सध्यो न सिध्या न बहुना
 धर्मेन ।
 तमेवैव यजुने तेन सत्य स्मरयेत् भाग्या विरुजुते
 तनुष्वात् ॥
 भावनाया बन्धोमेन सध्यो न प्य प्रसादात्परमो
 यावन्निवृत्ता ।
 परेऽप्येवै दंतने वस्तु विद्वान् स्मरयेत् भाग्या विरुजुते
 प्रत्ययाम् ॥” (सुब्रह्मण्य ११३-४)

अतः इस भावनाको बहुतना द्वारा और सिध्या
 (प्रसादात्पारलौकिक) या अनेक धर्म (सत्यव्रम) द्वारा
 प्राप्त नहीं किया जाता । वह भावना केवल ज्ञानादि-
 परस्वभाव निश्चयम सत्यवा द्वारा तथा अनात्म वागना
 रथाव द्वारा वरिष्णु मरुतने ही सध्य है । अन्तम
 ध्यानम सुतातना वजासाधित मुक्तनाम धेणोविश्राम-
 सुविद्विषयको यथासंभव ही प्रज्ञानावके अधिकारी हैं ।
 यथा—

"संज्ञायैगम्यये। ज्ञानतुनाः कृतास्मानो योनरागा प्रगल्भा ।

ते सर्वज्ञाः सर्वज्ञाः प्राण्य धीरा सुकारमानाः सर्वमिवा विजन्ति ॥

वेदांगविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्याससंयोगाद्यतयः मुदसस्वाः

ते प्रज्ञलोके पु गराग्नकाले परामृताः परिमुक्त्वन्ति सर्वे ।" (तत्रैव ५६)

मुण्डकोपनिषद्के बहुत पहले भी 'वेदांग' नाम था, अभी यह जाना जाता है। यस्तुतः प्राचीन वेदांगी विद्य प्रचार प्रदामाधना करते थे तथा प्रदामाधनाके लिये ये अपने चिन्तनमिकी किस प्रकार उपयुक्त करते थे, इन दो धृतिकाशयोनि उसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। मुण्डकोपनिषद्के प्रथम मुण्डकके द्वितीय काण्डमें ज्ञानियोंके कर्माकाण्डोप विधि छोड़नेका उपदेश दिया है देना है। इन काण्डकी एक धृतिमें इन सब कार्योंके यज्ञमानकी "अध्वनीयमान मन्थ" कहा है। प्रत्यर्चन, मन्थ, जागित यो गाय, औषाद्धन, ज्ञान, दम, स्वागलोकार, धरता, प्रत्यनिष्ठता और ध्यान धारणा आदि द्वारा प्रयोगामनाके लिये निम्न उपयुक्त हो जाता है। धर्मा और निष्ठादि जो प्रदामाधनाका विरोध मङ्ग है, छान्दोग्य उपनिषदमें यह साक साक लिखा है।

प्रस्थान-वपमाप्य ।

हम पहले लिख चुके हैं, कि ईग, जेन, वन, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, तैत्तिरीय, चैतरेय, छान्दोग्य, तूदरा-श्वषक, कौत्तिकी और श्वेताश्वर ये सब उपनिषद् हो इन देनामें अधिष्ठत प्रचारित हुए थे। इन सबो उपनिषद्की वेदांगयोग्य अधिष्ठ आदर करते हैं। ये सब उपनिषद् "प्रस्थानतय"-के सम्मन है। "प्रस्थानतय" किसे कहते हैं, यहाँ उसका सामान्य देना प्रयोजनीय है। उपनिषद्, वेदांगमूल और धीमदुगायत्रीता इन तीनोंके समष्टि ही वेदांगताय सामने प्रगिय है। ये सब "प्रस्थानतय" भी कहलाते हैं। उपनिषद् धृति-प्रस्थान, प्रज्ञमूल अथवाप्रस्थान और धीमदुगायत्रीता श्रुतिप्रस्थान- सामने परिचित है। मिश्र मिश्र वेदांगी सम्प्रदायने इन "प्रस्थानतय"-का मिश्र मिश्र

माध्य किया है। इन तीनों धृणोंके प्राण मिश्र वेदांगकी पूर्णा नहीं होते। अनन्य मिश्र मिश्र सम्प्रदायके गण्डितोंने अपने अपने विदांगके अनुयायो उपनिषद् या "धृतिप्रस्थान", प्रज्ञमूल या "अथवाप्रस्थान" तथा अथवाध्रीता वा "श्रुतिप्रस्थान"-का माध्य किया है। एक ही प्रज्ञ निम्न प्रकार उपासकोंके साधनानुसार मिश्र मिश्र रूपमें प्रकाश पाने हैं, उसी प्रकार एक ही वेदांग मिश्र मिश्र सम्प्रदायधर्तकोंके ज्ञान, बुद्धि और पाण्डित्यकीगलसे मिश्र मिश्र रूपमें विद्यवात हुआ है तथा मिश्र मिश्र दार्शनिक सिद्धांतोद्भावनामें वेदांग वैदिकीकी मिश्र मिश्र प्रतिष्ठापित चैतन्यार्थक प्रस्थाके सामने प्रतिभात होता है। उपनिषद्, प्रज्ञमूल और अथवाध्रीताके अनेक माध्य हैं। प्रति प्राचीन माध्य-कारोंका नाममात्र सुननेमें आता है, किंतु उनका एत-माध्य मात्र भी हम लोगोंके मननोत्तर नहीं हुआ है। इन सब माध्यकारोंमें हमें अथवाध्रीता धीमदुगायत्रीता वेदांगसंग्रह प्रथम वैधायन, तद्ग, त्रिमिष्ट, गुददेव, कवरी और भावकी आदि पूर्वाचार्योंके नाम दिलाई देते हैं। इनके विना यादवमाध्यकी बात भी सुनी जाती है। इन सब माध्यकारोंने प्रस्थानतयका माध्य किया था अथवा एक प्रज्ञमूलका, यह अच्छी तरह मान्य नहीं। किंतु परवर्ती माध्यकारोंने पूर्वमाध्य देव वर "प्रस्थानतय" का माध्य कर रखा है। इससे मान्य होता है, कि इन्होंने भी सम्मनता पूर्वाचार्यगणका ही पदानुसरण किया था। मिश्र मिश्र वेदांगी सम्प्रदायके प्रथमकेनि वेदांगभाव कर अपने सम्प्रदायका विद्वान वेदांगसम्मत कर लिया है। हमने जो ऊपरमें कुछ पूर्वाचार्योंका नामोल्लेख किया है, उनके माध्यकी छोट वर तृप्त और वेदांग पूर्वाचार्य ये या नहीं, वट नहीं मचने। गीतवाग्मुनि और जङ्गलवाय धीमदुगायत्रीके पूर्वाचार्य थे। इनके समेदवायके साथ धीमदुगायत्रीके मनकी वचना नहीं है, इसीसे ज्ञान्य धीमदुगायत्रीके इन्होंने पूर्वाचार्य म कहा हो। कुछ लोगोंका वदना है, कि सूत्रकारके समयमें जे का जङ्गलके समय तक वेदांग एक ही माध्यमें कावपाल होता था वदना था, वद बात ही मुक्तिर्गत नहीं है, उनका प्रमाण धीमदुगायत्री-ज

का प्रचार कर गये हैं। रामानुजनने प्रह्लादमूलकी बीघायन
 तृप्तिके आधार पर भाष्य लिखा था। उन्होंने स्वयं लिखा
 है, "मगधदृ बीघायनहनं विस्मोर्णं प्रह्लादमूलत्तिं पूर्वा-
 चायां। सचिभिषुः तन्मगानुसारेण सूत्राक्षराणो व्याख्या
 स्वयन्ते" अर्थात् मगधदृ बीघायन छन विस्मोर्णं प्रह्लादमूल
 तृप्तिको पूर्वाचार्योर्नि संक्षेपं किया था। तदनुसार
 सूत्राक्षरोंकी व्याख्या की जाती है। भीमाध्यमें कई
 जगह बीघायनतृप्तिका स्वल्पविशेष उद्धृत हुआ है।
 शङ्करने तृप्तिकारके मतका अण्डन किया है, यह तृप्ति-
 कारकीन है। ये क्या बीघायन है या उपशर्वाचार्य
 कोई कहते हैं, कि ये बीघायनका अण्डन करनेमें ही
 प्रयासो हुए थे। वेदार्थसंग्रह नामक ग्रंथमें श्रीरामा-
 नुजाचार्योंने जो बीघायन, शङ्करादि पूर्वाचार्योंका
 नामोल्लेख किया, इसके पहले यह लिखा जा चुका है।
 भाष्यके कई स्थानोंमें द्रमिष्टाचार्यं भाष्यकार और शङ्कर
 वाक्यकार कह कर उल्लिखित हुए हैं। द्रमिष्टाचार्यं
 जो शङ्कराचार्यके पूर्ववर्ती थे, शङ्करानिधय आनन्दगिरि-
 के समयसे यह ज्ञाना जा सकना है। शङ्कराचार्योंने
 छान्दोग्य उपनिषद्की जो भाष्य किया है, उसके
 ३।१।७।७ भाष्यको टीकामें आनन्दगिरिने लिखा है,
 कि भीमशङ्कराचार्यं उपनिषद्को सृष्टिका तत्त्व और
 सृष्टिके, सृष्टिरथका सामग्र्य स्वयं प्रयासो हुए हैं।
 उनके पहले द्रमिष्टाचार्योंने इस प्रणालीका अन्वयन
 किया। भीमशङ्कराचार्योंने उनको प्रणालीका ही
 अनुसरण किया है। इससे स्पष्ट जाना जाता है,
 कि रामानुज या शङ्करके पहले बहुतेके उपनिषद्का
 भाष्य लिखा था, किन्तु अभी ये सब भाष्य नहीं मिलते।
 शङ्कर, रामानुज और मध्वाचार्यके प्रणालयवका
 भाष्य देखनेमें आता है। ये तीनों ही उपनिषद्, प्रह-
 ल्लाद और भगवद्गीताके भाष्यकार हैं। मोता और
 प्रह्लादमूलके भाष्यकारकी संख्या जो अनेक है। भीगी-
 राक्ष सांप्रदायके सुविद्यमान दार्शनिक पण्डित बलदेव
 विद्याभूषण मदानयने भी प्रणालयवका भाष्य किया
 है। निम्बार्के सम्प्रदाय तथा बृहत्साम्वाय्य सम्प्रदाय
 भी प्रणालयवके भाष्य हैं। किन्तु इनके उपनिषद्
 भाष्यका बहुत कम प्रचार है, बल्कि प्रह्लादमूलभाष्य और

मोताभाष्य अभी जगह पचकित हैं। रामानुजका
 प्रह्लादमूलभाष्य 'श्रीभाष्य', बृहत्साम्वाय्यका भाष्य 'मनु
 भाष्य', निम्बार्काचार्यका भाष्य 'वेदान्तपारिजातमीमां'
 और बलदेव विद्याभूषणका भाष्य 'मोविन्दभाष्य' कह
 लाता है। इनके सिवा विद्वानमिहृका भी प्रह्लाद
 भाष्य है, इसमें कर्मकी प्रचलना बतलाई गई है।
 श्रीकान्ताचार्यका एक और भाष्य है जो शैवमतका
 पांचक है। इन सब भाष्यादिका विशेष परिचय
 'प्रह्लादमूलभाष्य' प्रकरणमें आलोचित होगा।

मिथुमूल

वेदान्तग्रन्थके मूलग्रन्थके प्रथममें केवल एक प्रह-
 ल्लादका नाम ही सुप्रसिद्ध है। किन्तु इसके पहले मा
 वेदान्त सम्प्रदायके मूलग्रन्थ प्रचलित था। जलता
 प्रह्लादमूलकी आलोचनासे ज्ञान होता है, कि प्राचीनमें
 वेदान्तग्रन्थके सम्बन्धमें अनेक निम्न निम्न सिद्धांत
 किये थे। प्रह्लादमूलकारने साक्षात् सम्बन्धमें मूलग्रन्थ उन
 के मुखमें से सब उल्लिखित संग्रह नहीं किये। नाथ्य इस
 सम्बन्धमें बहुतसे छोटे छोटे मूलग्रन्थ थे। जिस प्रकार
 सूरीन्द्र होने पर आकाशके अणुएँ तारे बिन्दुके अणुएँ
 हो जाते हैं, नाथ्य प्रह्लादमूलरूप वेदान्त मूलके
 उदय होने पर ये सब छोटे छोटे मूल अनेक प्रकार गूढ़रूप
 हो गये हैं। किन्तु 'मिथुमूल' नामक एक वेदान्तमूल
 ग्रन्थका नाम आज भी विद्यमान है। 'मिथुमूल'का एक
 टीका भा है। मिथुमूल प्राचीन ग्रन्थ है, इसका
 प्रमाण भी मिलता है। पारिनिग कहा है—

"पाराशर्योऽत्रालिम्बां मिथुमूलप्रयोगे॥" (४,३,१३४)

कानिनातृप्तानि लिखा है—"मूलग्रन्थः प्रत्येकमभि
 सम्बन्धने॥"

अर्थात् मिथु और तद्वत् इत दोनों दार्शनिक साथ मूल
 ग्रन्थका सम्बन्ध है। अतएव 'मिथुमूल' प्राचीन ग्रन्थ
 है, इसमें तानिक जो संरह नही। मिथुके वर्याय परि-
 षाट, कर्मही, मकरका और वाराजरी है।

"बलदेव प्रह्लादं मिथुमूलं यागानि तद्वत्तानि
 पारिनिग॥"

इससे ज्ञाना जाता है, कि पराशर और कर्मन्द
 दोनोंने मूल-मूल मिथुमूलकी रचना की जो श्री-

का प्रचार कर गये हैं। रामानुजने प्रत्यक्षकी बोधायन वृत्तिके आधार पर भाष्य लिखा था। उन्होंने स्पष्ट लिखा है, "मगधदु बोधायनहनं विन्तोर्णं प्रत्यक्षवृत्तिं पूर्वाचार्याः सचिभिषुः तन्मतानुसारेण मूलाक्षराणो व्याख्या स्वयमे" अर्थात् मगधदु बोधायन हन विन्तोर्णं प्रत्यक्ष वृत्तिको पूर्वाचार्योनि संश्लेष किया था। तदनुसार मूलाक्षरोंकी व्याख्या की जाती है। श्रीभाष्यमें बड़े जगद बोधयनवृत्तिका स्थलविशेष उद्धृत हुआ है। गङ्गाने वृत्तकारके मतका स्पष्टन किया है, यह वृत्तकारकीन है। ये क्या बोधायन हैं या उपवर्णानादी कीई कहते हैं, कि ये बोधायनका स्पष्टन करनेमें ही प्रयासो हुए थे। वेदार्थसंग्रह नामक ग्रंथमें धीरामा जुताचार्योंने जो बोधायन, उद्धू मादि पूर्वाचार्योका नामोल्लेख किया, इसके पहले यह लिखा जा चुका है। भाष्यके बड़े स्थानोंमें द्रमिहाचार्यो भाष्यकार और उद्धू पाष्यकार कह कर समिहित हुए हैं। द्रमिहाचार्यो जो गङ्गाराचार्योके पूर्ववर्ती थे, गङ्गारानिध आनन्दगिरिके समयसे यह जाना जा सकता है। गङ्गाराचार्योने उपनिषदकी जो भाष्य किया है, उसके ३१७७ भाष्यको टोकामें आनन्दगिरिने लिखा है, कि धीमेतुगङ्गाराचार्यो उपनिषदके स्पष्टिका तदर और स्पृतिके स्पृष्टितथका समाग्रस्थ करनेमें प्रयासो हुए हैं। उनके पहले द्रमिहाचार्योने इस प्रयासोका सफलजन किया। धीमेतुगङ्गाराचार्योने उनके प्रयासोका ही अनुसरण किया है। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि रामानुज वा गङ्गारके पहले बहुतोने उपनिषदका भाष्य लिखा था, किन्तु अगो ये सब भाष्य गदी मिलते। गङ्गर, रामानुज और मध्वाचार्योके प्रस्थापनतथका भाष्य है। इनमें आता है। ये तीनों ही उपनिषद, प्रत्यक्ष और समग्रहीताके भाष्यकार हैं। गान्धो और प्रत्यक्षके भाष्यकारकी संख्या भी अनेक है। धीमेतुगङ्ग समग्रधारके सुविशेषीन दार्शनिक परिप्लव बलदेव विद्याभूषण महानगने भी प्रस्थापनतथका भाष्य किया है। निम्बार्के समग्रधार तथा बलदेवमाचार्यो समग्रधार भी प्रस्थापनतथके भाष्य हैं। किन्तु इनके उपनिषद भाष्यका बहुत कम प्रचार है, बहुत प्रत्यक्षभाष्य और

गीताभाष्य समी जगद प्रचलित है। रामानुजका प्रत्यक्षभाष्य 'श्रीभाष्य', बलदेवमाचार्योका भाष्य 'मनु भाष्य', निम्बार्काचार्योका भाष्य 'वेदान्तकारिज्ञानमीरन' और बलदेव विद्याभूषणका भाष्य 'गीतेन्दुभाष्य' कह लाता है। इनके मिया विज्ञानमिहृका भी प्रत्यक्ष भाष्य है, इसमें कर्मकी प्रचलना बलकार गई है। धीमेतुगङ्गाराचार्योका एक और भाष्य है जो शैवमतका पाष्य है। इन सब भाष्योदिका विरेप परिप्लव 'प्रत्यक्षभाष्य' प्रकरणमें आलोचन होया।

मिहृगुण।

वेदान्तप्रथमके मूलग्रन्थके प्रथममें केवल एक प्रत्यक्षका नाम हो मुप्रसिद्ध है। किन्तु इसके पहले मा वेदान्त सारम्भीय मूलग्रन्थ प्रचलित था। फलतः प्रत्यक्षकी आलोचनासे ज्ञान होता है, कि प्राचीनोने वेदान्तग्रन्थके सम्बन्धमें अनेक मिश्र मिश्र सिद्धान्त किये थे। प्रत्यक्षकारोंने साक्षात् सम्बन्धमें मूलग्रन्थ उनके मुक्तसे य सब अभिप्राय संग्रह नहीं किये। ज्ञान्द इस सम्बन्धमें बहुतसे छोटे छोटे मूलग्रन्थ थे। जिन प्रकार सूर्योदय होने पर आकाशके भाग्यप तारे बिलकुल मद्धुय हो जाते हैं, ज्ञान्द प्रत्यक्षरूप वेदान्त सूर्यके उदय होने पर ये सब छोटे छोटे मूल अभी प्रकार मद्धुय हो गये हैं। किन्तु 'मिहृगुण' नामक एक वेदांतमूल ग्रन्थका नाम आज भी विद्यमान है। मिहृगुणका एक टोका भा है। मिहृगुण प्राचीन ग्रन्थ है, इसका प्रमाण भा मिलता है। पाणिनिन कहा है—

"पाराशर्योर्णित्वात्संज्ञा मिहृगुणतत्त्वयोः" (४।३।१७७)

कादिकागुणसंज्ञा लिखा है—'मूलग्रन्थः प्रथमैर्णामि सम्बन्धते।' अर्थात् मिहृ और मट इन दोनों ग्रन्थोंके साथ मूल ग्रन्थका सम्बन्ध है। मगधव 'मिहृगुण' प्राचीन ग्रन्थ है, इसमें तानिक भा संदृष्ट महा। मिहृके पंचम परिप्राय, बर्णोदो, मकरा और वासुदेव हैं।

"पराशर्येण प्राक्तं मिहृगुणं पाशाशरि तद्वचोने पराशर्योः।"

इससे जाना जाता है, कि पराशर और कमण्द दोनोंने मूयक-पुद्धु-मिहृगुणकी रचना का पो। श्री

ऋग्वेदिका सूत्र 'धर्मसूत्र' कहलाता है। यह कर्मकाण्ड प्रथम। कर्मका परब्रह्म ज्ञानकाण्ड ही इस सूत्रप्रथका आलोचन विषय है। अतएव धर्मसूत्रके माघ पृथक्ता सूचित करनेके कारण ही इसका नाम 'प्रत्यसूत्र' हुआ है।

२। "वेदान्त-सूत्र"—वेदान्तवाक्यों का सूत्रस्वरूप होनेके कारण ही प्रथमको वेदान्तसूत्र कहने हैं।

३। 'वाद्रावणसूत्र'—वाद्रावण इस सूत्रप्रथके प्रणेता है, इसीसे यह प्रथ 'वाद्रावणसूत्र' कहलाता है।

४। 'वासससूत्र'—वासस वाद्रावणका दूसरा नाम है।

५। 'गारोरेक-मीमांसा'—गार्हपत्यके टोकाकार गोविश्वामित्रने 'रत्नप्रभा' टोकामें लिखा है—

"गारोरेके गारोरेकं कृत्स्नतरव्यात् तन्निवासे गारोरेको जोषकस्य प्रत्यवविचारी मीमांसा तस्या-मिहवर्षा।"

अर्थात् गारोरे और गारोरेक एक ही बात है। गारोरे शब्दके उत्तर कृत्स्न शब्दमें 'क', गारोरेमें वास करने है 'जोष' ही गारोरेक शब्दका वाच्य है। जोषका प्रत्यव विचार जिस मन्थमें प्रतिपाद्य हुआ है वही 'गारोरेक-मीमांसा' नाममें प्रसिद्ध है। इस कारण इसका दूसरा नाम 'गारोरेकसूत्र' है।

६। 'उत्तर-मीमांसा'—ऋग्वेदिक मीमांसामथका नाम 'पूर्वमीमांसा' है, कर्मकाण्डमोक्ष विधानगोप्तमके बाद भी प्रत्ययान्तिके लिये यामना हेतो है। इसीसे प्रजाविद्यारत्नक सूत्र उत्तरमीमांसा नामसे अभिहित हुआ है।

७। 'वेदान्तदर्शन'—गारोरेक सूत्र का प्रत्यसूत्रका दूसरा नाम वेदान्तदर्शन है। वेदान्तदर्शन कहनेसे उपनिषद्के दार्शनिक तरवका आलोचनार्थपूर्ण प्रथ मात्र ही समझा जाता है। इसी प्रकार प्रत्यसूत्रका गार्हपत्य, रामानुजमन्थ और कल्याण मन्थ भी 'वेदान्तदर्शन' कहलाते हैं। 'वेदान्त' कहनेसे ही 'वेदान्तदर्शन' नहीं समझा जाता। उपनिषद्की धुनिवा वेदान्तधुनि कहलाता है। इन सब धुनिकीके साधार पर मुक्ति द्वारा ही विचार या मामींसा और सिद्धान्त दर्शन हुआ है,

तदात्मक प्रथ वेदान्तदर्शन नाममें प्रसिद्ध है। किन्तु साधारणतः प्रत्यसूत्र प्रथ वेदान्तदर्शन कहलाता है।

गुणकार ।

मदृशि वाद्रावण गारोरेक मीमांसाके मूलकार कह कर प्रसिद्ध है। इसीसे गारोरेक-मीमांसाका दूसरा नाम 'वाद्रावणसूत्र' है। वाद्रावणका दूसरा नाम 'ध्यास' है, इससे प्रत्यसूत्र 'ध्याससूत्र' नामसे भी परिचित है। किन्तु 'वाद्रावण' और 'ध्यास' किमी व्यक्ति विशेषका नाम नहीं है। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि प्रति मन्थरत्नमें द्वार युगमें एक एक ध्यासने जन्म ले कर वेदकी विभाग किया, इसीसे ये वेदध्यास नाममें अभिहित हुए। वाद्रावण में व्यक्तिविशेषका नाम नहीं है। 'वद्रे वदरिकाश्रमे भवमं यासा वस्य सा वाद्रावणा' अर्थात् वदरिकाश्रममें जिनका वास है, वे ही वाद्रावण हैं। वाद्रावण ही वेदध्यास है, इसमें उरा में संदेह नहीं। किन्तु ऐसे वाद्रावण और वेदध्यासको संशय अनेक है। यहाँ तक, कि हम प्रत्यसूत्रमें भी कई जगह 'वाद्रावण' नामका उल्लेख पाते हैं।

- (१) तदुपस्थेपि वाद्रावणसमवात् ॥ (१।१।२६)
- (२) पूर्वाग्नु वाद्रावणा हेतुव्यवर्द्धनाम् ॥ (१।१।२७)
- (३) पुत्रपापेना जन्मादिति वाद्रावणाः । (१।१।४२)
- (४) अथिकेपदेनात् वाद्रावणयेव तदर्शनात् ॥ (१।१।८८)
- (५) अनुष्ठेयं वाद्रावणः साम्यभूमि ॥ (१।१।११६)
- (६) मप्रतिकालम्यनाप्रयतोति वाद्रावण उमयथाऽ-वेपात् तत् कतुश्च ॥ (१।१।११८)
- (७) एवमप्युपयसात् पूर्वनावादिरेषां वाद्रावणाः । (१।१।१७०)

हम सामविधानप्रारम्भमें 'वाद्रावण' शब्दका उल्लेख देखते हैं। सामविधानप्रारम्भके संज्ञाकरणमें यह नाम दिशामें देना है। यह वाद्रावण वासनावावणके लिये थे और यामनावावणके लिये वदरिकाश्रमे थे। ऋग्वेदिक और शाण्डिल्यसूत्रमें वाद्रावण शब्दका उल्लेख है। सब प्रथम यह देना है, कि कल्याणवादन

वेदान्त हीः प्रत्यक्षं प्रतीता वादरायण ये वा
 महा और ये वादरायण गुरुदेवके विधा कल्प-
 प्रोवाचन ये वा नहीं । हम महाप्रमाणमें वेदव्यास
 कल्पप्रोवाचनके मार्गमें यह कहना देखते हैं, यह
 कहानी यह है, कि अनात्मतामा नामक एक पुराणमें
 ये, वे हा विष्णुके विद्योमाने कलि और प्रारको संघिरे
 कल्पप्रोवाचन नाममें आविष्कृत हुए थे। यथा—

“अनात्मतामा नाम वेदाध्यायीः पुण्यमविधिं
 विद्योमान् कलिप्रारयो मयो कल्पप्रोवाचन सर्वभूषि
 कालम्” (अनात्मतामा ३।३।३)

यह कल्पप्रोवाचन वेदव्यास प्रत्यक्षवाट वादरायण
 में वा नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता । हम यह
 कोई कोई मतभेद है, कि व्यास वादरायण और व्यास
 कल्पप्रोवाचन कृति ही पृथक्-वर्तिक थे । महाभारत
 पद्यमें ज्ञाना ज्ञाना है, कि जो व्यास पाराशर्य ही थे
 ही कल्पप्रोवाचन वेदव्यास ही तथा गुरुदेव व्यासके पुत्र
 ही । व्यास वादरायण अलग-वर्तिक थे । किन्तु
 प्रमाणमयन तथा अन्त्या प्रयोगों ‘गुरुदेव’ वादरायण के
 अलग है, इसी अर्थमें ये ‘वादरायण’ नाममें अतिरिक्त
 हुए हैं । हम वादरायणका नाम भीमायनमें ही
 उल्लेख सादा है ।

अनात्म-व्यास (विभाग)

अनात्म नाम व्यास अनात्मके विभाग है । अनात्म
 अनात्म (अनात्म) नाम ‘अनात्म’ के विभाग हुआ है ।

अनात्मका इस प्रकार है—

१५ अनात्म	१५ भाग	३१ भाग
	२५	३२
	३५	४३
	४५	५४
५७	५५	६५
	६५	७६
	७५	८७
	८५	९८
१९	९५	१०९
	१०५	११६
	११५	१२७
	१२५	१३८

अर्थ	५३
अर्थ	६४
अर्थ	७५
अर्थ	८६
अर्थ	९७

५५

ममत्त गुरुकी संख्या वीच ही पचास है । इसी
 क्रममें और जो तीन गुरु बड़ा कर ५५० कर दिया ।
 किन्तु प्रायः सभी मुद्रित प्रयोगों ५५५ संख्या ही देखी
 जाती है ।

अधिकार

वेदान्तगुणीकी ‘अधिकारण’ संख्याको एक गुरुको प्रयोगों
 आशय किया गया है, यह दार्शनिक विचारनाम है ।
 व्यासगुणीके पञ्चाशद्वय द्वारा विचारपत्र निरिच्छ है,
 यह पाठकोकी सच्ची तरह मान्य है । वेदान्त विद्या
 ही जो पञ्चाशद्वय है । हम यहमें निश्चय करते हैं, कि
 वेदान्तगुरु वेदान्तगुरुके व्यास प्रमाण नाममें अतिरिक्त
 है । यह गुरु प्रमाण विचारपत्रमें प्रमाण है । जोके
 पञ्चाशद्वयके तरह इसके जो पञ्चाशद्वय हैं, यही अधि-
 कारण कहलाता है । यथा—

“५५ विचारपत्रगुरुपञ्चाशद्वयः ।

अधिकारणमुद्रितमरी गुरुका गुरुता ।”

अनात्म अधिकारण पञ्चाशद्वयविशिष्ट है यथा, विचार-
 पत्रके गुरुनि, पृथक् और विचारण । आचारणता ही
 प्रयोगोंमें एक अधिकारण अनात्म ही है । उनके अर्थ
 अनात्मके प्रयोगों ही अर्थवत्, अनात्मके अर्थ अर्थवत्, अनात्म
 अनात्मके अर्थ अर्थवत्, हम व्यास अर्थवत्के अनात्मके
 प्रयोगों गुरुनि देखते हीते । यह तीन प्रकारकी है, अनात्म
 अनात्म, अनात्मगुरुनि तथा वादगुरुनि, हम अर्थवत् अनात्म
 अनात्मके विचार किया जाता है । वेदान्तगुरु पद्यमें
 अर्थवत् यही हम अधिकारणनामक अनात्मके अर्थ
 अर्थवत् है । अनात्म प्रयोगोंके अनात्मके अर्थवत्के
 अनात्म एक अर्थवत् वेदान्तगुरुके अधिकारणके अर्थवत्-
 के अर्थ वरिष्ठ अर्थवत्के अर्थवत्के अर्थवत् है ।

वेदान्त सूत्रका प्रतिपाद्य

ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक सूत्रका प्रतिपाद्य एक एक विषय है तथा कौन सूत्र किस अधिकांशके अंतर्गत है उसका निरूपण किया गया है। संक्षेपमें उसको तादिका नीचे दी जाती है।

सामान्यभाष्य प्रथम अध्याय प्रथम पाठ।

प्रतिपाद्य विषय

सूत्राङ्क अधिकार्य

१। ब्रह्मका विद्याध्यांस्य	१	१
२। ब्रह्मका लक्ष्यत्व	२	२
३। ब्रह्मका वेदकत्त्व } २ वर्णक	३	३
ब्रह्मकी वेदकमयता } २ वर्णक		
४। वेदान्तका ब्रह्मबोधकत्व } १ वर्णक	४	४
ब्रह्ममें ही वेदान्तका अवस्थितत्व } २ वर्णक		
५। ब्रह्मके जगत्कत्त्वका अभाव (यद् ग्राह्यदर्शनका प्रतिपाद्य है)	५-११	५
६। आत्मन्मय बोधका परमात्मत्व } २ वर्णक	१२-१६	६
ब्रह्मका आत्मन्मय जीवाधारत्व } २ वर्णक		
७। आदित्वके अंतर्गत पुण्यका ईश्वरत्व	२०-२१	७
८। परब्रह्मता आकाश गन्धवाच्यत्व	२२	८
९। ब्रह्मका आकाश गन्धवत् प्राणगन्ध वाच्यत्व	२३	९
१०। परब्रह्मका उपोत्तिगन्ध वाच्यत्व	२४-२७	१०
११। ब्रह्मका प्राणगन्ध वाच्यत्व	२८-३१	११
प्रथम अध्यायका द्वितीय पाठ।		
१। ब्रह्मका त्वात्म्यत्व	१-८	१
२। ब्रह्मका जगत्कत्त्व	९-१०	२
३। वेदान्तोपेक्ष्यताके इन्द्रियगमनत्व	११-१२	३
४। छाया जीवादि अद्वैतसमूह त्याग कर परब्रह्मका ही उपात्म्यत्व	१३-१७	४
५। ब्रह्म आदितर ईश्वरका अन्वयत्वमित्य गन्ध वाच्यत्व	१८-२०	५
६। ब्रह्म और जीव निराकरण कर ईश्वरका अन्वयत्व	२१-२३	६

प्रतिपाद्य विषय

सूत्राङ्क अधिकार्य

३। ब्रह्मका वैश्वानर गन्ध वाच्यत्व	३४-३२	७
प्रथम-अध्यायका तृतीय पाठ।		
१। आत्मा हिरण्यगर्भ प्रदान मोक्षतुल्य और ईश्वरके मध्य संबन्ध ईश्वरका ही सर्वाधिष्ठान-भूतत्व	१-७	१
२। प्राण और परेण इन दो गन्धोंके मध्य सत्य गन्ध द्वारा परेणका ही धेयत्व	८-११	२
३। प्राण और ब्रह्मके मध्य ब्रह्मका ही अक्षरगन्ध वाच्यत्व	१०-१२	३
४। अक्षर और परब्रह्मके मध्य विमत प्राण द्वारा परब्रह्मका ही धेयत्व	१३	४
५। दहराका रूपमें धनीयमान विपक्षीय और ब्रह्मके मध्य ब्रह्मका ही तदाका नाम वाच्यत्व	१४-१८	५
६। अक्षिपुण्ड्ररूपमें आवातता प्रतीयमान जीव और परेणके मध्य परेणका ही अक्षिपुण्ड्र गन्धका वाच्यत्व	१९-२१	६
७। जगत् प्रकाशरूपमें उपलब्ध सूर्यादि मेघ पक्षी और चैतन्यके मध्य चैतन्यका ही तत्प्रकाशत्व	२२-२३	७
८। जीवात्मा और परमात्माके मध्य परमात्माका ही अद्भुत मात्र पुण्य कह कर प्रतिपादन	२४-२४	८
९। देवताभोक्ता निर्गुण विद्यामें अधिकांश निरूपण	२६-३३	९
१०। शूद्रोंका वेदमें मन्त्राधिकारधनपूर्वक मोक्षा कुलहवस्तुरर्थात् द्वारा शूद्रनामधारीका ज्ञानभूति का वैश्वविद्याधिगम	३४-३८	१०
११। प्राणत्वरूपमें आकाश पृथ्वी वायु और परेणके मध्य परेणका ही तद्गुण प्राणगन्ध वाच्यत्व	३९	११
१२। ब्रह्म परेण स्योनिस्त्व	४०	१२
१३। ब्रह्मका आकाश गन्ध वाच्यत्व	४१	१३
१४। ब्रह्मका विज्ञानमय गन्ध वाच्यत्व	४२-४३	१४
प्रथम अध्यायका चतुर्थ पाठ।		
१। आकाशवाच्य गन्ध और ईश्वरका अन्वयत्व		

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
	अभिषेक विषय	१-०
२१	अभिषेक विषय	१-०
२२	अभिषेक विषय	८-१०
२३	अभिषेक विषय	१-१३
२४	अभिषेक विषय	१४-१५
२५	अभिषेक विषय	१६-१८
२६	अभिषेक विषय	१९-२१
२७	अभिषेक विषय	२२-२३
२८	अभिषेक विषय	२४-२६
२९	अभिषेक विषय	२७-२८
३०	अभिषेक विषय	२९-३०
३१	अभिषेक विषय	३१-३२
३२	अभिषेक विषय	३३-३४
३३	अभिषेक विषय	३५-३६
३४	अभिषेक विषय	३७-३८
३५	अभिषेक विषय	३९-४०
३६	अभिषेक विषय	४१-४२
३७	अभिषेक विषय	४३-४४
३८	अभिषेक विषय	४५-४६
३९	अभिषेक विषय	४७-४८
४०	अभिषेक विषय	४९-५०
४१	अभिषेक विषय	५१-५२
४२	अभिषेक विषय	५३-५४
४३	अभिषेक विषय	५५-५६
४४	अभिषेक विषय	५७-५८
४५	अभिषेक विषय	५९-६०
४६	अभिषेक विषय	६१-६२
४७	अभिषेक विषय	६३-६४
४८	अभिषेक विषय	६५-६६
४९	अभिषेक विषय	६७-६८
५०	अभिषेक विषय	६९-७०

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
८	अभिषेक विषय	७१-७२
९	अभिषेक विषय	७३-७४
१०	अभिषेक विषय	७५-७६
११	अभिषेक विषय	७७-७८
१२	अभिषेक विषय	७९-८०
१३	अभिषेक विषय	८१-८२
१४	अभिषेक विषय	८३-८४
१५	अभिषेक विषय	८५-८६
१६	अभिषेक विषय	८७-८८
१७	अभिषेक विषय	८९-९०
१८	अभिषेक विषय	९१-९२
१९	अभिषेक विषय	९३-९४
२०	अभिषेक विषय	९५-९६
२१	अभिषेक विषय	९७-९८
२२	अभिषेक विषय	९९-१००
२३	अभिषेक विषय	१०१-१०२
२४	अभिषेक विषय	१०३-१०४
२५	अभिषेक विषय	१०५-१०६
२६	अभिषेक विषय	१०७-१०८
२७	अभिषेक विषय	१०९-११०
२८	अभिषेक विषय	१११-११२
२९	अभिषेक विषय	११३-११४
३०	अभिषेक विषय	११५-११६
३१	अभिषेक विषय	११७-११८
३२	अभिषेक विषय	११९-१२०
३३	अभिषेक विषय	१२१-१२२
३४	अभिषेक विषय	१२३-१२४
३५	अभिषेक विषय	१२५-१२६
३६	अभिषेक विषय	१२७-१२८
३७	अभिषेक विषय	१२९-१३०
३८	अभिषेक विषय	१३१-१३२
३९	अभिषेक विषय	१३३-१३४
४०	अभिषेक विषय	१३५-१३६
४१	अभिषेक विषय	१३७-१३८
४२	अभिषेक विषय	१३९-१४०
४३	अभिषेक विषय	१४१-१४२
४४	अभिषेक विषय	१४३-१४४
४५	अभिषेक विषय	१४५-१४६
४६	अभिषेक विषय	१४७-१४८
४७	अभिषेक विषय	१४९-१५०
४८	अभिषेक विषय	१५१-१५२
४९	अभिषेक विषय	१५३-१५४
५०	अभिषेक विषय	१५५-१५६

प्रतिपाद्य विषय	सूत्राद् अभिप्राय
सृष्टि	१० ४
५१। घेदोक्तं तैजसक्यं ब्रह्मस्ये जगत् स्रष्टि	११ ५
६। इन्द्रोद्योग्यादियदुक्तं जलोत्पत्त्याः सप्रकां पृथिवी- सर्गं कथय	१२ ६
७। पूर्व पूर्व कार्यावापिने ब्रह्मको उत्तर उत्तर कार्या- त्पत्ति सिद्धि	१३ ७
८। लघुकार्त्तमे पृथिवी आदिना विपरोक्ष सम- कल्पना	१४ ८
९। प्राणाद् भूतेति अन्तर्भाव निरूपणम् उत्सर्के संबंध- मे सृष्टिना कर्म मंग नदीं होता	१५ ९
१०। देहके जन्म-मरणमे मुखपर्यङ्कपते जीवके संबंधमे इत दोनोका अकित्तय	१६ १०
११। जीवका जन्म-उपाधिक हे, सुतरां यस्तुना जीव निरूप हे	१७ ११
१२। जीवका मनिद्रु परव लण्डन तथा उत्सर्की चिद्रू- परव सिद्धि	१८ १२
१३। जीवका भणुत्पव लण्डन कर उत्सर्का मयंगरव प्रतिपादन	१९-२० १३
१४। जीवका अकत्त्वेन निरमनपूर्वक तत् कत्त्वेन प्रतिपादन	२३ २६ १४
१५। जीवकत्त्वेन अध्यासजनित हे, सुतरां वायान्त- विक हे	४० १५
१६। जीवका ईश्वरमूर्त्तरव ही सिद्ध हे, जीवका राग प्रशस्तय सिद्ध नदीं	४१ ४२ १६
१७। उपाधिक कल्पना ही जीव की ईश्वर तथा जीवो- का परस्पर व्यवहार-व्यवस्था	४३-५३ १७
द्वितीय अध्यायका मनुष्ये पाद ।	
१। इन्द्रियोका अभासितव निराकरण तथा उनका आराममसुखमनहय-मन संशोधन	१-४ १
२। इन्द्रियोका संख्या आ ग्यारह हे यह वेदाति संगण हे	५-६ २
३। गण्डूनामस्त इन्द्रियवत्त्व मत् निराकरण की उत्सर्का परिच्छिन्नत्व कथन	७ ३
४। प्राणका अभासितव लण्डन तथा उत्सर्की उत्पत्ति समाधान	८ ४

प्रतिपाद्य विषय	सूत्राद् अभिप्राय
५। प्राणवायुका स्वतंत्रता कथन	१ १२ ५
६। प्राणके समाधिद्वयमे आधिदैविकत्व आधिको अलोचना	१३ ६
७। इन्द्रियोका देवताघोमत्व कथन	१४ १६ ७
८। प्राणसे इन्द्रियोका पृथक्त्व	१७-१८ ८
९। सर्वजगत्का सृष्टिविषय जीव अजग हे तथा ईश्वर ही सर्वत्रकामान ही इसलिये जगत् ईश्वर- का निर्मित हे	२०-२१ ९
साधनादव तृतीय अध्याय प्रथम पाद ।	
१। मायो शरीर योजनक सूक्ष्मभूत वेदित जीवका वर्त्तने वर्त्त गमन	१-७ १
२। कर्मान्तर द्वारा मानुष्य जीवका लोकान्तरा- रोहण	८ ११ २
३। पारिवोका यमलोक गमन	१२ २१ ३
४। मयरोही जीवका विषयदि स्वामनहय	२२ ४
५। सर्वमे मयतत्त्वनाशमे अर्ग, सृष्टि, पृथिवी, पुःत्र, योनिन् आदि जनिष्यमान जीवोका लगे आंर सृष्टिमे अनि जीम ही जन्म हुआ करना हे । तदितर पदार्थमे जन्मविषय विलम्बमे होना हे	२३ ५
६। जन्मादिमे जीवका मुखव जन्म नदीं हे । यह संश्लेषनाम हे	२४ २७ ६
तृतीय अध्यायका द्वितीय पाद ।	
१। स्वतन्त्रसृष्टिना निष्कारत्व कथन	१ ६ १
२। सुषुप्ति स्थानक्य हृन्स्थ प्रका वरव स्थापन	७ ८ २
३। स्वप्नावस्थाम जीवका उत्सर्के सुषुप्तेय	९ ३
४। सुषुप्ते जाग्रदादि अवस्थापरसे भिन्न	१० ४
५। निद्रुभाव प्रज्ञा वेदान्तमगमन	११ २१ ५
६। निषेधात्मक प्रज्ञाका मरवत्त्व स्थापन	२३ ३० ६
७। 'प्रज्ञा अयोम्य यस्तु नदीं हे' यह मन् स्थापन	३१-३८ ७
८। अंतोत्पत्ति साधनमे ईश्वरका ही कत्त्वेन हे, अपूर्वका कत्त्वेन नदीं	३८-४१ ८

सदानन्द) स्वमागमिन्मविधरण—हरिदास, स्वयं बोध, स्वरूपनिरूपण, स्वरूपनिर्णय, स्वरूपप्रकाश—सदानन्द काश्मीर, स्वयंवादे तत्रकाश (ग्रहसूत्रकोश)—रामानन्दतोषी स्वात्मनिरूपण या स्वात्मानन्दप्रकाश—गङ्गाराचार्य, स्वात्मपूजा—गङ्गार, स्वात्मप्रयोगप्रदीप—अमरेश्वरयोगीन्द्र, स्वात्मसंविद्युपदेश—रत्नालेख, स्वात्मानन्दोपदेश, स्वानन्द चन्द्रिका, स्वानुभवदर्शी—माधवाश्रम, स्वानुभूतिप्रकाश—द्वेषेन्द्र, स्वाराज्यसिद्धि, हंसमीन—सतरजननानन्दनतीर्थ, हंसविवेक—सत्यजननानन्दतीर्थ, हरिगुणमणिरूपण—सुरपुर श्रानिवास, हरिहरविद्धार बोधेन्द्र, हरिहरोपाधिविषयचन—अमृतानन्दतीर्थ, हस्तामलकस्तोत्र या हस्तामलकसंवादेशस्तोत्र ।

वेदान्तचूडामणि—दाक्षिणात्यवासी एक सुप्रसिद्ध प्राहण ।

वेदान्तदेशिक—अष्टयुतगतक और धर्मकरताकरके रचयिता ।

वेदान्तनवनाचाय—अधिकरणचिंतामणिके प्रणेता ।

वेदान्तवागीश मठाचार्य—१ वेदांतरहस्य और वेदांतसारमायावैदिकिकाके प्रणेता । २ हरितापण नामक भक्तिग्रंथके रचयिता ।

वेदान्तसूत्र (सं० पु०) महर्षि वादरायणवृत्त सूत्र जो वेदांतशास्त्रके मूल माने जाते हैं । विशेष विवरण वेदान्त रूपमें देखो ।

वेदान्तान्वार्य—बहुतसे ग्रंथ रचयिताकी उपाधि । संस्कृत साहित्यमें लक्ष्मण, वेङ्कटनाथ, श्रीनिवास, आदि परिष्ठितोंकी वेदान्तान्वार्य उपाधि दिखाई देती है, किंतु निम्नोक्त ग्रंथ किस वेदान्तान्वार्यके रचित हैं, उसका पता नहीं । नीचे कई ग्रंथकेसां वेदान्तान्वार्यका उल्लेख किया जाता है

१ अधिकरण-साराधली, तत्त्वमुक्ताकलाप, ग्याय-परिशुद्धि, ग्यायरत्नावली, पञ्चरात्ररक्षा, भगवद्गोता-तारपर्यवश्रिका, रङ्गनाथपादुकासहस्र, रहस्यश्रवसार, शतदूषणो, सच्चारित्ररक्षा, सर्वापसिद्धि और हंससंदेशके रचयिता ।

२ अमयप्रदानसार, दशदीपणियष्टु और यतिराज-सततिके प्रणेता ।

३ गुणरत्नकोपटीकाके प्रणेता ।

४ प्रमेयटीका और बहुमोहिवाद्यके रचयिता ।

५ यादवाभ्युद्यकाण्यके रचयिता ।

६ "अनुमानस्य, पृथक्प्रामाण्यव्यवहानम्"-के रचयिता । ये यल्लभसिंहके पुत्र थे ।

वेदान्तिन (सं० पु०) वेदांताऽस्यास्तोत्रि, वेदांत-इति । वेदांतशास्त्रवेत्ता, यह जो वेदांतका अच्छा छाता है, प्रत्यवादी ।

वेदासि (सं० खी०) वेदज्ञानप्राप्तकाम ।

वेदाभ्यास (सं० पु०) वेदस्य अभ्यासाः । वेदपोड, वेदानुशीलन । शास्त्रमें लिखा है, कि वेदाभ्यास पाँच प्रकारका है । ब्राह्मणका वेदाभ्यास ही परम तपस्या है । दिनके दूसरे भागमें वेदाभ्यास करना होता है । पहले पड़नेके साथ वेदस्वीकरण, पीछे वेदविचार, वेदाभ्यास, वेदजप और वेददान-ये पाँच प्रकारके वेदाभ्यास हैं ।

वेदाम—मद्राज प्रेसिडेन्सीके गझाम जिलेका एक छोटा सामंत-राज्य । वेदाम प्राम देश बर्गामील, विस्तृत है ।

वेदार (सं० पु०) कृकण्डास, गिरगिट ।

वेदार—एक प्राचीन जनपद । प्राचीन विदर्भराज्य घोरि घोरि वेदार कहलाने-लगा है । यह स्थान महिसुर, शैववाद और महाराष्ट्र प्रदेशके मध्यस्थलमें अवस्थित था । विदर्भराज नलके बाद इस स्वागको समृद्धि या विशेष इतिहासका परिचय नहीं पाया जाता । दक्षिण-राज्यके हिन्दूराजाओंके प्रभावकालमें भी यह सुप्रसिद्धि न हो सका था । इसके बाद मुसलमानी धवलसे इसका इतिहास मिलता है । आज भी इस देशमें विस्तृत स्थानोंमें वेदारी जातिका वास देष्ट कर अनुमान किया जाता है, कि प्राचीन वेदार जनपद बहुत दूर तक फैला हुआ था ।

१८१६ ई०के पूर्वपर्यन्त वेदारीगण छोटे छोटे कितने हिन्दू और मुसलमान राजाओंके शासनाधीन था । उनमेंसे यहूतपत्नीके सैयद-वंशीय नयाब 'सिटेड डिस्ट्रिक्टके पूर्वांशमें कर्नूलके पठान नयाब सुल्लमदाके दाक्षिणा कितारेके देशोंमें तथा पश्चिमभागमें गडवालके शैवीगण, समूहके छोड़पड़े वंशीय महाराष्ट्र सरदार

चार्य,—शंखारम्भसर्जन त्र्यम्बक, जिवादित्यप्रकाशिका, जिवादित्यमणिदीपिका—अल्पवृद्धिसिद्धि, जिवादीत्यर्क, शुकोर्ध्वश्रीमंदा, शुक्लज्ञाननिर्देश—श्रोत्र-मिथ्र, शैवत्वविचार, शैवशास्त्रार्थचन्द्रिका, शैवतय-दशप्रकरण, शैवपञ्चक, शैवभाष्य—श्लोकजिवाचार्य, शैववैष्णव, शैववैष्णववाद, शैववैष्णववादार्थ, श्लोक-नाथीय, श्रीमहादेशानसार, श्रोत्ररीचन्द्रज्ञो, श्रीभाष्य—रामानुज, श्रीहर्षसंज्ञन, श्रुतदीप, श्रुतप्रकाशिका—सुदर्शनानाचार्यकृत श्रीभाष्यटीका, श्रुतप्रकाशिकाखण्डन-सिद्धाज्ञान, श्रुतप्रकाशिका संग्रह, श्रुतप्रदीप, श्रुत-प्रदीपिका, श्रुतभाष्यप्रकाशिका—रङ्गरामानुजस्वामिन, श्रुतिकल्पद्रुम—हरिदास, श्रुतिकल्पलता श्रोपति, श्रुतिगीता, श्रुतिचित्रिहसा, श्रुतितत्त्वनिर्णय, श्रुति-सारपर्यायनिर्णय, ध्रुतिप्रकाशिका, ध्रुतिमतानुमान—त्र्यम्बकशास्त्री, ध्रुतिमितप्रकाशिका—त्र्यम्बकशास्त्री, ध्रुतिवाक्सारसंग्रह, ध्रुतिसंज्ञितवर्णन—सुब्रह्मण्य, ध्रुतिसंग्रह, ध्रुतिसार—तोटकानाथ, ध्रुतिसार—पूर्णाचन्द्र, ध्रुतिसार—बलभाचार्य ध्रुतिसारसमुच्चय—पूर्णाचन्द्र, ध्रुतिसारसमुच्चयप्रकरण—तोटकानाथ, ध्रुतिसंस्कृतवादितात्पर्य, श्लोकद्वयध्यायया, श्लोकपञ्चक विवरण—हरिदास, पदपदार्थ विवरण, पददर्शनीप्रकरण, पौडगमहावाक्यानि, पौडगवर्ण यासुदेवेश्वरजिन्म्य, सभित्तुप्रकाश—शामनदत्त, सभित्तुसिद्धि—यमुनाचार्य सगुणनिर्गुणवाद, संक्षेपशारीरक सङ्घातम् मद्रा-मुनि, संक्षेपशारीरकभाष्य—शङ्कराचार्य, संक्षेपाध्यात्मसार—रामानुजद्वितीय, संग्रह—घोरमहेश्वराचार्य, संग्रहविवरण, संग्रहप्रकरण, सच्चिदानन्दानुभवदीपिका (पञ्चप्रकरणो टीका)—शङ्कराचार्य, सत्त्वस्वरत्नमाला ताम्रगणानाचार्य, सत्सिद्धान्तमार्तण्ड, सत्सुखानुभव—इच्छारामस्वामी, सदाशिव प्रदत्त, सद्भिवाचित्रय—शेड्ड-पदाचार्य, सद्बृहत्तरनाथली, मनकसंहिता—गौरीकान्त, सद्ग्यानकल्पवृक्षी सच्चिदानन्द भारती, सम्प्रासाधन-विचार, सपर्यासप्रक, सप्तमन्थी, सप्तमङ्गीतरङ्गिणी, समाधिप्रकरण, समीचीनभाष्यटीका, सम्प्रदायचन्द्रिका, सम्प्रदायपरिसुद्धि, सम्प्रदायबुद्धी—राममन्दी, सरस्व-तीय—स्वयम्प्रकाश सरस्वती, सर्वज्ञानसम्प्रास, सर्व-

सार, सर्वसिद्धान्तसंग्रह, सर्वज्ञयोगदीपिका—सुन्दर-दास, सर्वार्थसिद्धि—वेदान्ताचार्य, सहस्रकिरणायली सहस्राष्टय बोधिसिद्धि, सात्यतसिद्धान्तगतक, साम्राज्यसिद्धि—गङ्गाधरसरस्वती, सारसुलुक—तैयन न राचार्य, सारदीपिका—धोनिवासाचार्य, सारवकाशिका—धोनिवासाचार्य, सारभोग, सारसमुच्चय, सारासारविषेक, सारास्वादिनी गोपालदेशिकाचार्य, सारास्वादिनी—रामानुज स्वामी, सिद्धान्तकल्पलता, सिद्धान्तकल्पवृक्षो-पद सुहृदिन्म्य, सिद्धान्तगीता, सिद्धान्तग्रन्थ, सिद्धान्तचन्द्रिका अनन्तमद, सिद्धान्त-चन्द्रिका—रामानन्द, सिद्धान्तचन्द्रिका—शिवचन्द्रसिद्धान्त, सिद्धान्तचन्द्रिकाखण्डन, सिद्धान्तचिन्तामणि—कृष्णमद, सिद्धान्तचूडामणि, सिद्धान्तजाह्नवी—श्रीदेशाचार्य, सिद्धान्ततत्त्व—अनन्तदेव, सिद्धान्ततत्त्वदीप, सिद्धान्त-तत्त्वप्रकाशिका, सिद्धान्तदीप—विश्वदेव, सिद्धान्तदीपमे-तत्त्वप्रकाश—हयमोच, सिद्धान्तदीपिका नाना दीक्षित-कृत पेशांतसिद्धान्तमुकाललोटीका, सिद्धान्तन्यायचन्द्रिका, सिद्धान्तमकरन्द, सिद्धान्तमञ्जरी, सिद्धान्तमञ्जुषा शिव-भारती, सिद्धान्तमुक्तावली, सिद्धान्तरत्न, (निर्वाक) सिद्धान्तरत्नमाला—श्रीधरस शर्मन्, सिद्धान्तरत्नाकर, सिद्धान्तरत्नाचली—वैकटानाथ, सिद्धान्तरहस्य—कल्याणराय, सिद्धान्तरहस्यवृत्तिकारिका—हरिदास, सिद्धान्तवेद, सिद्धान्तगतक, सिद्धान्तशिरोमणि—राघवेश्वर-सरस्वती, सिद्धान्तसंग्रह—अल्पवृद्धिसिद्धि, सिद्धान्त-संग्रह—वैकटानाथ, सिद्धान्तसारसंग्रह, सिद्धान्तसारा-यली—भानन्दमद, सिद्धान्तसिद्धुधाञ्जन अनन्ताचार्य सिद्धान्तसिद्धान्त—कृष्णानन्द, सिद्धान्तसिद्धु, सिद्धान्त-सूक्तिमञ्जरी, सिद्धुधांतसेतुका—सुंदरमद, सिद्धुधांता-र्णव—रघुनाथसाधुभूम, सिद्धिचक्रव—यमुनाचार्य मिद्धिधसाधक, सुखानर्थिगति—सुकुन्दकवि, सुबोध-पञ्चिका—मातृसुन्द, सुबोधिनी—गङ्गाधर, सुबोधिनी—नृसिंहसरस्वती, सुबोधिनी—पुण्डरीक, सूत्रवाद—काशी-नाथ, सूत्रप्रकाशिका, सूत्रार्थचन्द्रिका—केशवशेरीय, सूत्रोपन्यास, संश्रममीमांसा, मोपदेशधारण, सोपान-पञ्चरत्न, स्थूलप्रकरण—शङ्कराचार्य, स्थूलसूत्रप्रक-रण, स्फुटयोप, स्वयम्प्रा—प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणिटीका—

सदानन्द, स्वमार्गमूर्धनिविवरण—हरिदास, स्वयं बोध, स्वरूपनिरूपण, स्वरूपनिर्णय, स्वरूपप्रकाश—सदानन्द काशमीर, स्वल्पद्वैतप्रकाश (ब्रह्मसूत्रटीका)—रामानन्दतीर्थ स्वस्वामिनिरूपण या स्वात्मानन्दप्रकाश—शङ्कराचार्य, स्वात्मपूजा—शङ्कर, स्वात्ममयोगप्रदीप—अमरेश्वरयोगीन्द्र, स्वात्मसंविद्युपदेश—इत्तालेय, स्वात्मानन्दोपदेश, स्वानन्द चन्द्रिका, स्वानुभववादी—माधवाश्रम, स्वानुभूतिप्रकाश—द्वेषेन्द्र, स्वाराज्यसिद्धि, हंसमीन—सतजननानन्दनतीर्थ, हंसविवेक—सत्यजननानन्दतीर्थ, हरिगुणमणि-द्वेषण—सुरपुर, श्रीनिवास, हरिहरविकार बोधेन्द्र, हरिहरोपाधिविषयचन—अमृतानन्दतीर्थ, हस्तामलक-स्तोत्र या हस्तोमलकसंवादिस्तोत्र ।

वेदान्तचूडामणि—दक्षिणात्यपासी एक सुपरिष्ठित ब्राह्मण ।
वेदान्तदेशिक—अच्युतशतक और धर्मकरत्नाकरके रच-यिता ।

वेदान्तनयनाचार्य—अधिकरणचिंतामणिके प्रणेता ।
वेदान्तवागीश भट्टाचार्य—१ वेदांतरहस्य और वेदांत-सारभाष्यदीपिकाके प्रणेता । २ हरितापण नामक भक्तिग्रंथके रचयिता ।

वेदान्तसूत्र (सं० पु०) मर्दिनी वादरायणकृत सूत्र जो वेदांतशास्त्रके मूल माने जाते हैं । विशेष विवरण वेदान्त-शब्दमें देखो ।

वेदान्ताचार्य—बहुतसे ग्रंथ रचयिताकी उपाधि । संस्कृत साहित्यमें लक्ष्मण, चङ्कनाथ, श्रीनिवास, आदि पण्डितोंका वेदांताचार्य उपाधि दिखाई देती है, किंतु निम्नोक्त ग्रंथ किस वेदांताचार्यके रचित हैं, उसका पता नहीं । नीचे कई ग्रंथकर्त्ता वेदांताचार्यका उल्लेख किया जाता है ।

१ अधिकरण-सारायली, तत्त्वमुक्ताकलाप, न्याय-परिशुद्धि, न्यायपरत्तायली, पञ्चरात्ररक्षा, भगवद्गोता-तात्पर्यचन्द्रिका, रङ्गनाथपादुकासहस्र, रहस्यत्रयसार, शतद्रवणो, सच्चरित्ररक्षा, सर्वार्थसिद्धि और हंस-संदेशके रचयिता ।

२ अक्षयप्रदानसार, दशदीपनिघण्टु और यतिराज-सप्ततिके प्रणेता ।

३ गुणरत्नकोपटीकाके प्रणेता ।

४ प्रमेयटीका और बहुमीहिवादके रचयिता ।

५ यादवाभ्युदयकाव्यके रचयिता ।

६ "अनुमातस्य, पृथक्प्रामाण्यखण्डनम्"के रच-यिता । ये बल्लभसिंहके पुत्र थे ।

वेदान्ति (सं० पु०) वेदांतीऽस्यास्तीति, वेदांत-इति । वेदांतशास्त्रवेत्ता, वह जो वेदांतका अर्थ छाता है, ब्रह्मवादी ।

वेदासि (सं० खो०) वेदान्तप्रसक्त ।

वेदाभ्यास (सं० पु०) वेदस्य अभ्यासः । वेदपीठ, वेदानुशीलन । शास्त्रमें लिखा है, किं वेदाभ्यास पाँच प्रकारका है । ब्राह्मणका वेदाभ्यास ही परम तपस्या है । दिनके दूसरे भागमें वेदाभ्यास करना होता है । पहले पढ़नेके साथ वेदस्वीकरण, पीठे-वेदविचार, वेदाभ्यास, वेदजप और वेददान; ये पाँच प्रकारके वेदाभ्यास हैं ।

वेदाम—मन्दाज प्रसिद्धे सीके गजाम जिलेका एक छोटा सामन्त-राज्य । वेदाम प्राम देश वर्गमील विस्तृत है ।

वेदार (सं० पु०) कलकास, गिरगिट ।

वेदार—एक प्राचीन जनपद । प्राचीन विदर्भराज्य धोरे धोरे वेदार कहलाने लगा है । यह स्थान महिसुर, हैदराबाद और महाराष्ट्र प्रदेशके मध्यस्थलमें अवस्थित था । विदर्भराज नलके बाद इस स्थानको समृद्धि या विशेष इतिहासका परिचय नहीं पाया जाता । दक्षिणात्यके हिन्दुराजाओंके प्रभावकालमें सो यह सुप्रतिष्ठित न हो सका था । इसके बाद मुसलमानी धमलसे इसका इतिहास मिलता है । आज भी इस देशमें विस्तृत स्थानोंमें वेदारी जातिका बास देख कर अनुमान किया जाता है, कि प्राचीन वेदार जनपद बहुत दूर तक फैला हुआ था ।

१८१६ ई०के पूर्वपर्यन्त वेदारोगण छोटे छोटे कितने हिन्दू और मुसलमान राजाओंके शासनाधीन था । उनमेंसे चङ्गनपल्लीके सैयदवंशीय नवाब सिडेड डिस्ट्रिक्टके पूर्वांशमें, कन्नूलके पठान नवाब तुङ्गमन्नाके दक्षिणांशके देशोंमें तथा पश्चिमभागमें गढ़वालके रेड्डीगण, सन्दूरके घोड़पड़े वंशीय महाराष्ट्र सरदार

और आनगुट्टोके क्षत्रियराज राज्य करते थे। राजा विजयनगरराज रामचन्द्रके वंशधर हैं। गोलकुण्डा, कुलवर्ग, विजापुर और अहमदनगरके मुसलमान-राजाओं के अस्तुत्य पर विजयनगर जब शीघ्र हो गया, तब उनके वंशधर सम्भूममें जा कर बस गये।

इसके सिवा शाहनूरके पठान सरदार, गजन्धर (गदाधर) गढ़के घोड़पड़े वंशिय महाराष्ट्र-सामन्त तथा अकालकोट, घोरघंट और वेदार जोरापुरके सामन्तोंने इस राज्यका एक एक अंश ग्रहण किया था। शेषोक्त तीन सामन्त पीढ़े नायक नामक एक वेदारवासीके सैनिकके वंशधर थे। विजापुर अश्वरोधके समय इस व्यक्तिने मुगल बादशाह औरङ्गजेबको सहायता की थी, इस पुरस्कारमें उन्होंने रायचूड़ नामक अर्धवेदीको जागीरमें पाया था। आज भी उनके वंशधर वेदार-राज्यके दो स्थानोंका शासन करते हैं।

वेदारराज्यके अधिवासी वेदार या वेदारी कहलाते हैं। जोरापुरके वेदारी बहुत मजबूत होते हैं। वे तथा चोरघण्टवासी वेदारी शराब पीते तथा चूमर, बराद, गाय, भैंस आदिका मांस खाते हैं।

वे लोग साहसो तथा शिकार और वस्तुवृत्तिमें बड़े विलक्षण होते हैं। जिस पिण्डारी दलने एक समय ५० वर्ष तक मध्यभारतके थरों दिया था उस दलमें वेदारी जातिको संख्या ही बलवती थी तथा उसीसे इस दलका पिण्डार नाम हुआ। जोरापुर नगर पर्वतके ऊपर स्थापित होनेके कारण शकैतोंके रहनेका उपयुक्त स्थान था।

महिसुर राज्यमें भी अनेक वेदारियोंका बास है। उनमेंसे बहुतेरे शिकार कर अथवा पक्षीको पकड़ कर अपना गुजारा चलाते हैं। कुछ लोग तो छोटे छोटे घोड़े रखते और उनका पीठ पर अनाज लाद कर दूसरी जगह ले जाते हैं। १६वीं सदीके मध्यकालमें वेदारी मिलेने जिस वेदार-यानलु अर्थात् वेदार जातिका बास था, यह भी इसी तरह घोड़ेकी पीठ पर माल असबाब लाद कर दूसरी जगह ले जाता था। अनेक समय युद्ध क्षेत्रमें रसद पहुंचानेके लिये सामरिक विभागसे इन्हीं नियुक्त किया जाता था। रमणमठ पर्वत पर भी एक

दल वेदारीका बास है। इनमेंसे महिसुरवासी वेदारी ही सबसे अधिक उन्नत हैं।

महिसुर और चेन्नुरीवासी वेदारोंके अधिकांश मनुष्य इस्लामधर्ममें क्षोभित हुए हैं।

हिन्दू वेदारियोंमें जब कोई कन्या जन्म लेती है, तब वे लोग उसे किसी देवताके नाम पर उत्सर्ग कर देते हैं तथा यह कन्या देवराज्ञिता है, इस बातको जतानेके लिये वे कन्याके शरीरमें मुद्रा या छाप लगा देते हैं। हमोंसे यह कन्या बसवी या मुस्ली कहलाती है। पुष्प लोग "वेदारी" हो प्रह्लादचर्य अवलम्बन कर मित्रासे जीविका चलाते हैं।

वेदार—दाक्षिणात्यका प्राचीनद्वारा घेरित एक प्राचीन नगर। यह हैदराबाद नगरसे ७५ मील उत्तर-पश्चिम मजिदर नदीके दाहिने किनारे (अक्षां १७°५४' ३० तथा देशां ७७° ३५' पूर्वके मध्य) अवस्थित है। नगरमात्र समुद्र-पृष्ठसे २२५० फुट और तोरणचूड़ा २३५० फुट ऊंची है। १६वीं सदीके मध्यकालमें यह बाहानो-राजवंशकी राजधानी रूपमें गिना जाता था। उस समय इसकी धीर्बुद्धि भी यथेष्ट थी। जिस प्रकार प्राचीन और युवासे एक समय इसके चारों ओर घिरा था, वह अभी तबहस नहस हो गया है।

मुगल बादशाह बाबरके भारत पर चढ़ाईके समय वेदार राज्य पार्श्वदर्शी राजाओंके हाथ था। १५६२ ई० में निजामशाही राजाओंने इस देशमें अपना शासन फैलाया। १७५१ ई०में वेदवा बाजीराव और सलावत-जङ्गके साथ इस नगरमें सन्धि हुई थी।

वेदारमें एक प्रकारके बढिया मिट्टीके बरतन तथा तरह तरहकी धातुओंके बरतन तैयार होते थे। प्राचीन वाणिज्य पण्यमें यह 'वेदार वेयर' (Beder-ware) नामसे प्रसिद्ध है। शा० हारन, युजानन हमिल्टन इस मिश्रधातुकी प्रस्तुत प्रणाली देख कर जो लिपिबद्ध कर गये हैं, यह परस्पर स्वतन्त्र हैं।

शा० हारनके मतसे—१६औं स ताँबा, ४ औं स सीसा और २ औं स टिन इन्हें एकत्र गला कर प्रत्येक ३औं समें १६औं सके हिसाबसे राँगा (zink) मिलाये। पीछे भाँवने पर चढ़ा कर गलानेसे यह धातु पातादि

वनाने लायक हो जाती है। उसका रंग प्युटर या जिंककी तरह-सफेद होता है, किन्तु कारीगर वरतनको तैयार कर उस पर काला रंग चढ़ा देते हैं। यह रंग सोरा, लवण और तृतियाके योगसे बनाया जाता है। डॉ० हमिल्टन-ने परीक्षा कर देखा है, कि १२३६० ग्रैन जिन्क, ४६० ग्रैन ताँबा-और ४१४ ग्रैन सोसा-इन्हें कुठालीमें रख कर गलाते हैं। आंच लगाने पर ये सब कुठालियां नष्ट हो जाती हैं, इस-कारण गलानेके समय-उसमें थोड़ा मोम और रजन लगा दी जाती है। पीछे उस गली हुई धातुको साँचेमें ढालते हैं। ठंडा होने पर मट्टीके साँचे-को धीरे-धीरे फोड़ कर वरतन बाहर निकाल लेते हैं। पीछे बाइरी दिस्सेकी साफ करनेके लिये रेंतीसे रेंट देते हैं। इसके बाद वरतनको तृतियेके जलमें डुबो रखते हैं, इससे उसके ऊपर काले रंगका दाग पड़ जाता है। नक्काशको नक्कामी करनेमें इससे बड़ी सुविधा होती है। ये सब वरतन साधारणतः वेदारी वरतन कहलाते हैं।

ऊपर जिस वरतनकी बात लिखी गई, उसे प्रधानता-तीन श्रेणीके लोग बनाते हैं। एक श्रेणीके लोग साँचे बनाते हैं। वह साँचा बड़ी अनूठी प्रथासे बनाया जाता है। वे मिट्टीका साँचा बना कर उसके भीतर मोम और रजन भर देते हैं। द्रव धातु ढालनेके समय उस साँचेको थोड़ा गरम कर लेते हैं जिससे भीतरका मेम धीरे धीरे गल कर बाहर निकल जाता-और भीतरमें शून्य स्थान बन जाता है। पीछे उसमें द्रव पदार्थ ढाल देने हैं। इस धातुमें कमी भी मोर्चा नहीं लगता। धोईसे पीट कर इसे बढ़ानेका भी उपाय नहीं है। जोरसे चोट देने पर वह टुकड़े टुकड़े हो जाता है। डॉ० हमिल्टनका कहना है, कि यह मिश्रधातु आंच लगाने पर मो रंगी और स्तीसेकी तरह जल्द नहीं गलती, किन्तु उसमें ताँबेका जो भाग है वह जल्द गल जाता है। अगो यह कारवार कारीगर-के अभावेसे लुप्तप्राय हो गया है। सिर्फ दो एक घर लिङ्गायत वा जैन आज भी पुर्यस्मृतिकी रक्षा करते आ रहे हैं।

वेदारण्य—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके भागपसनके निकटवर्ती

एक प्राचीन तीर्थ। ब्रह्माण्डपुराणके अंतर्गत वेदारण्य-माहात्म्य और स्कन्दपुराणकी सनत्कुमार-संहितामें इसका विषय लिखा है।

वेदार्ण (सं० पु०) एक तीर्थका नाम।

वेदार्ण (सं० पु०) वेदस्य अर्घः। अमिधेयः प्रयोजनं वा। १ वेदप्रतिपाद्य विषय, वेदबोधित विषय। २ वेदका प्रयोजन, वेदकी आवश्यकता। ३ वेदके निमित्त, वेदके कारण।

वेदा प्रेदीना—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद विभागके कानपुर जिलांतर्गत एक गाँव। यहाँ नाना शिल्पोंसे युक्त एक प्राचीन ईंटका मंदिर है।

वेदाभवा (सं० खी०) एक प्राचीन नदीका नाम। इसका वल्लेख महामारतमें आया है।

वेदि (सं० खी०) विद्यते पुण्यं अस्यामिति विद्वद्भ्यः (उण् ४।१८) १ यज्ञार्थं परिष्कृता भूमि, यज्ञ कार्यके लिये साफ करके तैयारकी हुई भूमि। इसके आकारादि देश और कार्यभेदसे विभिन्न प्रकारके हैं, जैसे देशभेदसे अंतर्वेदि, उत्तरवेदि, दक्षिणवेदि इत्यादि। कार्यभेदमें भी बहुत विभिन्नता है, परंतु प्रायः उमरुकी तरह आकार वाली और चौकान वेदी ही देखी जाती है।

तुलादानादिके अङ्गयज्ञकी मण्डपस्य वेदीका लक्षण यों है मण्डपका तिहार भाग वेदीकी लम्बाई चौड़ाई निरूपण करे। पीछे उसके तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम वा एकादश भाग परिमाणमें उच्छ्रायविशिष्ट वेदी बनाये। यह तुलादानादि कार्योंमें प्रयुक्त वेदी ईंटकी बनानी होती है।

नाचे कात्यायन-श्रौतसूक्तिक वेदिक कर्माङ्गमें आचरण-कीय कुछ वेदीका लक्षण कहा जाता है।

"व्यङ्गुललाता" (कात्या० भी० २।१।१)

"व्यस्तिल प्राचीम्" अपरिमिता वा

तीन उंगलीका गड्ढा बना कर आहवनीय-वेदि बनानी होती है।

वेदिमण्डपके पूर्ण पार्श्वमें मुठलो हावकी तीन-रेखासे त्रिकोणाकार क्षेत्र अङ्कित कर-उसीके सहस्य वेदि बनानी होगी। दूसरेके मतसे क्षैताङ्कित करनेके समय किसी प्रकारका निर्दिष्ट परिमाण न दे कर केवल उक्त आकारमें

भीर आनगुट्टोके क्षत्रियराज राज्य करते थे। राजा विजयनगरराज रामचन्द्रके वंशधर हैं। गोलकुण्डा, कुलवर्गा, विजापुर और अहमदनगरके मुसलमान-राजाओं के अन्तुद्वय पर विजयनगर जब धीमे-धीमे हो गया, तब उनके वंशधर समुद्रमें जा कर बस गये।

इसके सिवा शाहनूरके पठान सरदार, गजान्वर (गद्दाधर) गढ़के धोहपड़े वंशधर महाराष्ट्र-सामन्त तथा अकालकोट, घोरघाट और वेदार जोरापुरके सामन्तोंने इस राज्यका एक एक अंश ग्रहण किया था। श्लोक तौन सामंत पीढ़ नामक नामक एक वेदारवासीके सैनिकके वंशधर थे। विजापुर अयोधके समय इस व्यक्तिने मुगल बादशाह औरंगजेबको सहायता की थी, इस पुरस्कारमें उन्होंने रायचूड़ नामक अन्तर्वेदीको जागीरमें पाया था। आज भी उनके वंशधर वेदार-राज्यके दो स्थानोंका शासन करते हैं।

वेदारराज्यके अधिवासी वेदार या वेदारी कहलाते हैं। जोरापुरके वेदारी बहुत मजबूत होते हैं। ये तथा घोरघण्ट्यासी वेदारी शराब पीते तथा खून, बरस, गाव, मैस आदिका मांस खाते हैं।

ये लोग साहसो तथा शिकार और वस्तुसृष्टिमें बड़े विलक्षण होते हैं। जिस पिपेडारी दलने एक समय ५० वर्ष तक मध्यभारतके धर्रा दिया था उस दलमें वेदारी जातिकी संख्या ही बलवती थी तथा उसीसे इस दलका पिपेडार नाम हुआ। जोरापुर नगर पर्यन्तके ऊपर स्थापित होनेके कारण यहाँके रहनेका उपयुक्त स्थान था।

महिसुर राज्यमें भी अनेक वेदारियोंका बास है। उनमेंसे बहुतेरे शिकार कर अथवा पशुओंको पकड़ कर अपना गुजारा चलाते हैं। कुछ लोग तो छोटे छोटे घोड़े रखते और उनको पोंठ पर अनाज लाद कर दूसरी जगह ले जाते हैं। १६वीं सदीके मध्यकालमें वेदारी जिलेमें जिस वेदार-यामलू अर्थात् वेदार जातिका बास था, वह भी इसी तरह घोड़ेको पोंठ पर माल असबाब लाद कर दूसरी जगह ले जाता था। अनेक समय युद्ध क्षेत्रमें रखे पशुवानेके लिये सामरिक विभागसे इन्हें नियुक्त किया जाता था। हमनमह पर्वत पर भी एक

दल वेदारीका बास है। इनमेंसे महिसुरवासी वेदारी ही सबसे अधिक उन्नत हैं।

महिसुर और वेदारीवासी वेदारीके अधिकांश मनुष्य इस्लामधर्ममें दोसित हुए हैं।

हिन्दू वेदारियोंमें जब कोई कन्या जन्म लेती है, तब ये लोग उसे किसी देवताके नाम पर उदसर्प कर देते हैं तथा यह कन्या देवप्रतिष्ठा है, इस बातको जतानेके लिये ये कन्याके शरीरमें मुद्रा या छाप लगा देते हैं। हमोंसे यह कन्या वसथी या मुरली कहलाती है। पुत्र लोग "दशारी" हो अष्टवर्ष अवलम्बन कर शिक्षासे ओषिका चलाते हैं।

वेदार—वाशिपातयका प्राचीनद्वारा चिह्नित एक प्राचीन नगर। यह ईदराबाद नगरसे ७५ मील उत्तर-पश्चिम मझिरी नदीके दाहिने किनारे (अर्थात् १७°५४' ३०" तथा देशां ७७° ३५' ५०"के मध्य) अवस्थित है। नगरभाग समुद्र-पृष्ठसे २२५० फुट और तोरणचूड़ा २३५० फुट ऊँची है। १६वीं सदीके मध्यकालमें यह शाहजी-राजवंशकी राजधानी रूपमें गिना जाता था। उस समय इसकी धीवृद्धि भी घटे-थी। जिस प्रकाण्ड प्राचीर और बुर्जसे एक समय इसके चारों ओर घिरा था, वह अभी तहस नहस हो गया है।

मुगल बादशाह बाबरके मारत पर चढ़ाईके समय वेदार राज्य पारस्योत्ती राजाओंके हाथ था। १५६२ ई० में निजामशाही राजाओंने इस देशमें अपना शासन फैलाया। १७५१ ई०में पेशवा बाजीराव और सलायत-जङ्गके साथ इस नगरमें सन्धि हुई थी।

वेदारमें एक प्रकारके बढिया मिट्टीके बरतन तथा तरह तरहकी घातुओंके बरतन तैयार होते थे। यूरोपीय वाणिज्य पण्यमें यह 'वेदार वेवर' (Beder-ware) नामसे प्रसिद्ध है। डा० हार्न, युवानन दमिस्टन इस मिश्रधातुकी प्रस्तुत प्रणाली देल कर जो लिवियर कर गये हैं, यह परस्पर खतम हैं।

डा० हार्नके मतसे—१६मीं स' ताँबा, ४ मीं स' सोसा और २ मीं स' टीन इन्हें एकत्र गला कर प्रत्येक ३मीं स'में १६मीं स'के हिसाबसे रांगा (zink) मिलाये। पोंठे भाँवमें पर चढ़ा कर गलानेसे यह घातु पातादि

घनाने लायक हो जाती है। उसका रंग प्युटर या जिंककी तरह सफेद होता है, किन्तु कारीगर वरतनको तैयार कर उस पर काला रंग बंधा देते हैं। वह रंग सोरा, लवण और तृतिपाके योगसे बनाया जाता है। डॉ० हमिल्टन-ने परीक्षा कर देखा है, कि १२३६० प्रेन जिंक, ४६० प्रेन ताँबा और ४१४ प्रेन सीसा इन्हें कुठालीमें रख कर गलाते हैं। आँच लगने पर ये सब कुठालियां नष्ट हो जाती हैं, इस कारण गलानेके समय उसमें थोड़ा मोम और रजन लगा दी जाती है। पीछे उस गली हुई धातुको साँचेमें ढालते हैं। ठंडा होने पर मट्टीके साँचेकी धीरे धीरे फोड़ कर वरतन बाहर निकाल लेते हैं। पीछे बाहरी हिस्सेको साफ करनेके लिये रेंतोसे रेंट देते हैं। इसके बाद वरतनको तृतिपाके जलमें डुबो रखते हैं, इससे उसके ऊपर काले रंगका दाग पड़ जाता है। नक्काशकी नक़ाशी करनेमें इससे बड़ी सुविधा होती है। ये सब वरतन साधारणतः वेदारी वरतन कहलाते हैं।

ऊपर जिस वरतनकी बात लिखी गई, उसे प्रधानतः तीन श्रेणीके लोग बनाते हैं। एक श्रेणीके लोग साँचे बनाते हैं। वह साँचा बड़ी अण्डो प्रधासे बनाया जाता है। वे मिट्टीका साँचा बना कर उसके भीतर मोम और रजन भर देते हैं। द्रव धातु ढालनेके समय उस साँचेको थोड़ा गरम कर लेते हैं जिससे भीतरका मेम धीरे धीरे गल कर बाहर निकल जाता और भीतरमें शून्य स्थान बन जाता है। पीछे उसमें द्रव पदार्थ ढाल देते हैं। इस धातुमें कभी भी मोर्चा नहीं लगता। हथौड़ेसे पीट कर इसे बढ़ानेका भी उपाय नहीं है। जोरसे चोट देने पर वह टुकड़े टुकड़े हो जाती है। डॉ० हमिल्टनका कहना है, कि यह मिश्रधातु आँच लगने पर भोरंगी और सीसेकी तरह जलद नहीं गलती, किन्तु उसमें ताँबेका जो भाग है वह जलद गल जाता है। अगो यह कारदार कारीगरके अवशेषसे लुप्तप्राय हो गया है। सिर्फ दो एक घर लिङ्गयत या जैन आज भी पूर्वस्मृतिकी रक्षा करते आ रहे हैं।

वेदारण्य—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नागपचनके निकटवर्ती

एक प्राचीन तीर्थ। ब्रह्माण्डपुराणके अंतर्गत वेदारण्य-माहात्म्य और स्कन्दपुराणकी सनत्कुमार-संहितामें इसका विषय लिखा है।

वेदार्ण (सं० पु०) एक तीर्थका नाम।

वेदार्ण (सं० पु०) वेदस्य अर्घाः अमिषेयः प्रयोजनं वा।

१. वेदप्रतिपाद्य विषय, वेदोद्यत विषय। २. वेदका प्रयोजन, वेदकी आवश्यकता। ३. वेदके निमित्त, वेदके कारण।

वेदा वेदीना—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद विभागके कानपुर जिलांतर्गत एक गाँव। यहाँ नाना शिल्पोंसे युक्त एक प्राचीन ईंटका मंदिर है।

वेदाभ्या (सं० खी०) एक प्राचीन नदीका नाम। इसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

वेदि (सं० खी०) विद्यते पुण्यं अस्यामिति विद्-इन् (उण् ४।१८) १ यज्ञार्थं परिष्कृता भूमि, यज्ञ कार्यके लिये साफ करके तैयारकी हुई भूमि। इसके आकारादि देश और कार्यभेदसे विभिन्न प्रकारके हैं, जैसे देशभेदसे अंतर्वेदि, उत्तरवेदि, दक्षिणवेदि इत्यादि। कार्यभेदमें भी बहुत विभिन्नता है, परंतु प्रायः उमरुकी तरह आकार वाली और चौकान वेदी ही देखी जाती है।

तुलादानादिके अङ्गयज्ञकी मण्डपस्य वेदीका लक्षण यों है मण्डपका तिहार भाग वेदीकी लम्बाई चौड़ाई निरूपण करे। पीछे उसके तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम या एकादश भाग परिमाणमें उच्छ्रायविशिष्ट वेदी बनावे। यह तुलादानादि कार्योंमें व्यवहृत वेदी ईंटकी बनानी होती है।

नोचे काटपायन-धीतसूत्रोक्त वैदिक कर्माङ्गमें आवश्यकिये कुल वेदीका लक्षण कहा जाता है।

"यज्ञ क्षात्रात्" (कात्या० श्रौ० २।१।१)

"अपरिमिता वा

तीन उंगलीका गड्ढा बना कर आहवनीय-वेदि बनानी होती है।

वेदिमण्डपके पूर्ण पार्श्वमें मुठलो हावकी तीन श्रेणियोंसे त्रिकोणाकार क्षेत्र अङ्कित कर उसीके सहस्र होगी। दूसरेके मठसे क्षेत्राङ्कित प्रकारका निर्दिष्ट परिमाण न दे कर

भाष्यप्रकृतानुसार कुछ अधिक परिमाणमें बनानेसे भी काम चल जायेगा ।

किसी किसी वेदिके पूर्व और, किसीके उत्तर और निम्न अर्थात् ढालयाँ रचना होता है ।

२ अंगुलिमुद्राविशेष, उंगलोकों एक प्रकारकी मुद्रा ।

३ गृहोपकरणविशेष, घरका सामान आदि । ४ गृह-

मध्यस्थित मृत्तिकास्त्वविशेष, घरकी पिंडी ।

५ अग्न्यष्ट । ६ नामाङ्कित अंगुलि, यह अंगुली जिसमें

नाम अंकित हो । ७ परिष्ठत, विद्वान् ।

वेदिका (सं० स्त्री०) वेदि एक स्थायें कर्म । १ किसी शुभ

कार्यके लिये स्थापन करके तैय्यार की हुई भूमि । पर्याय—

वितर्दि, वितर्दी, वेदि, वेदी । वेदि देखो ।

२ जैन पुताणोंके अनुसार एक नदीका नाम ।

(जैनरि०)

वेदिज्ञा (सं० स्त्री०) घेघा जायते इति जन-ञ । द्रौपदी ।

(रंम)

वेदित (सं० त्रि०) विद्-णिच्-क्त । १ स्थापित, जो कुछ

बतलाया या सूचित किया गया हो । २ साक्षात्कृत,

दर्शित, जो देखा गया हो ।

वेदितव्य (सं० त्रि०) विद्-तव्य । घेघ, ज्ञातव्य, जो

ज्ञाननेके योग्य हो ।

वेदितृ (सं० त्रि०) विद्-तृच् । ज्ञाता । पर्याय—विद्वर,

विन्दु । (रंम)

वेदित्थ (सं० स्त्री०) वेदिना भावः तथ । विदित होने-

का माघ, प्राम् ।

वेदिन् (सं० पुं०) वेत्तीति विद्-णिनि । १ परिष्ठत,

विद्वान् । २ प्रह् । (त्रि०) ३ ज्ञाता, जानकार ।

४ परिष्णता, विवाह करनेवाला ।

वेदिमती (सं० स्त्री०) राजपुराणानुसारे ।

(दशरुमार १२८३)

वेदिमेखला (सं० स्त्री०) उत्तरवेदीका सोमास्त्व ।

(भागवत ७।१।१५)

वेदिया—छोटानागपुरवासी ह्यपित्रीय जातिविशेष । ये

लोग कुर्मिजातिके प्रसेदे भाई समके जाते हैं । इनके

जातरीका गठन देव कर-पाश्यास्त्वजातियाँ कहती हैं, कि

यह जाति द्वावित्रीय वर्णमें उत्पन्न हुई है । इन दो

श्रेणियोंकी वसंमान पृथक्ताके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती

इस प्रकार है । पहले कुर्मि और वेदिया लोगोंमें क्षात्र-

प्रदान चलता था, किन्तु अब कुर्मियोंने देखा, कि वेदिया

लोग गो-गांस खाते हैं, तब उन्होंने मोक्ष जान कर

वेदियोंका संस्कार छोड़ दिया । इनमें भीधेयोग्य

विभाग है । यह विभाग साधारणता जीवज्ञान और

यज्ञादिके नाम पर प्रसिद्ध है ।

इन लोगोंके विशाहमें नारि हो-पुरोहितारि काता है ।

ये लोग कुर्मियोंके हाथकी कथा रसेरि खाते हैं ।

चगामें परित्यक्त १२ घर संघाल मूलजातिसे

पृथक् रह कर वेदिया नामसे परिचित हैं । छोटानाग-

पुरके वेदिया उसीकी, एक जाति है । ये लोग भारि-

वाससे पूर्वकी क्षौरत जा कर इधर हो बस गये हैं ।

इस वेदिया जातिके साथ बङ्गालकी वेदिया जातिका कोई

सम्पर्क नहीं है ।

वेदिया—बङ्गालदेशवासि जातिविशेष । यथार्थमें

ये लोग एक जातिके नहीं हैं । निम्न श्रेणिके हिन्दू,

अर्द्ध सम्भ आदिम तथा बाबाजिया, लाया, पातुमा

आदि कुछ निरुद्ध जातियाँ वेदिया नामसे जगसाधारणमें

परिचित हैं । शेषोक्तमें बहुतेरे अपनेका मुसलमान

कहते हैं । बाहार विहारमें ये लोग मुसलमानका

आचार पालन करते हैं तथा सभी जानपदोंके मांस

खाते हैं । फिर कहीं कहीं ये फलमूलादि वेधनेके

कारण फाड़िया नामसे प्रसिद्ध हैं । कोई कोई हिन्दू-

जाति उद्भिज मूलादि, शोषधि, मश्तोषधि तथा मनेक-

मन्तुओंके मेलसे हातुरिया वेधकी तरह चिचिरमा बरमो

है । बहुतेरका कहना है, कि चिकित्सातत्त्वष घेघ जाति-

का अनुकरण करनेके कारण इनका वेदिया नाम हुआ है ।

इनमें बहुतेरका वास्तुस्थान निर्दिष्ट नहीं है । कभी

कभी ये लोग एक गांवसे दूसरे गांवमें जाते हैं और

किसीके बाग या मैदानमें निमा पड़ा कर स्त्रीपुत्रके

साथ रहते हैं । जाड़ेकी मौसिममें इन्हें किसी प्रकारका

कपड़ या रोग नहीं होता । ये लोग कभी कभीया वाहर

नहीं निकलते, पांच सात घरके माघ बाहर निकलते हैं ।

इनमें ह्यपित्रीयकी संख्या बहुत कम है । दो एक

घर सम्पत्ताके बाहिरमें सम्भ जातिका अनुकरण करते

हुए घर बांध कर खेतीधारी करते हैं। सही पर उन्हें नि अपना जातिगत व्यवसाय छोड़ा नहीं है। जो घरसे बाहर निकलते हैं, वे दिनको रामलक्ष्मणकी कौत्सि-गाथा गान कर ग्रामवासियों मित्रा मांगते हैं तथा जङ्गली औषधादि संग्रह कर उनके हाथ बेचते हैं। स्त्रियां भी उसी प्रकार महलमें घुस कर हनुमान तथा अन्यान्य पौराणिक चित्रोंको दिखा कर पैसा कमाती हैं।

इसके सिवां दीर्घव्यनाश, घातकी व्याधा तथा बालरोग दूर करनेके विषयमें इस जातिकी स्त्रियां बड़ी निपुण हैं। कलकत्तेमें वेदिया रमणियां औषधकी धैली-की गलेमें लटकाये गली गली घूमती हैं। 'दांतका कीड़ा' 'घातकी व्याधा' दूर करनेके लिये वे जो औषध और मंत्रप्रक्रिया दिखाती हैं वह आश्चर्यजनक है।

वेदिया-रमणियां और बालक तरह तरहके खेल दिखाती हैं। पुण्य गोलक अथवा पाई-छुरी ले कर खेल करते हैं तथा शून्यमार्गमें दो बांसके ऊपर रस्सी लगा कर उस पर चढ़ते तथा तरह तरहके खेल दिखलाया करते हैं। पश्चिम बङ्गालके मलजाति ही साधारणतः ये सब व्यायामकीशल दिखा कर अधोपाजन करते हैं।

इनमें कोई कोई श्रेणी-चिड़ोमार या मीर-शिकार नामसे मशहूर है। घस्तुतः पक्षी मारना ही इनका व्यवसाय है। जिस पक्षीको शौकीन आदमी खाते या पोसते हैं उसे वे बाजारमें बेचते हैं, किंतु जिनकी हड्डी या मांस औषधके काममें जाता है, उन्हें वे बेचते नहीं, अपने पास ही रख लेते हैं। कोई कोई हड्डी भौतिक या वैद्वजालिक खेल करनेमें बड़ी उपयोगी है। जैसे बान-राहु या बज्रकीट। इसका छिलका कवचरूपमें धारण करनेसे हृद्रोग आरोग्य होता है। उंगलोंमें अंगूठीकी तरह पहननेसे यह उपद्रवजनित रोगका प्रतिषेधक होता है। मङ्गल या शनिवारके पानकीड़ी मार कर उसका मांस खानेसे प्लीहा और सुतिका रोग दूर होता है। उल्टूकी आंख, नाखून या मल अनेक कामोंमें व्यवहृत होता है। उल्टूकी विष्टा सुपरोके चूरके साथ पोस कर घशीकरणीपथरूपमें तथा डाकपक्षीका सूखा मांस घातनाशकरूपमें ये व्यवहार करते हैं। एक और

श्रेणीके वेदिया हैं जो मलके बल वा कौशलसे सांप पकड़ने निकलते हैं। गोखुर या केउटा सांप पकड़नेमें ये जरा भी नहीं डरते। विषपर सांपको पकड़ कर वे विष-दांतका तोड़ देते और विषकी थैलीको बाहर निकाल लेते हैं तथा उसे आयुर्वेदविद् कविराजोंके निकट बेचते हैं। सांपके चमके मध्य एक प्रकारका छोटा कीड़ा रहता है। उस कीड़ेको भी वे बेच लेते हैं। कहते हैं, कि वह कीड़ा साधमें रहे तो सांपके काटनेका मय नहीं रहता।

ये लोग सांप भी पोसते हैं। मछली, मूसा, वेग आदि पकड़ कर सांपोंको खिलाते हैं तथा मेले या किसी देवदेवीकी पुजाके समय वहां सांप ले जा कर खेल दिखाते हैं। उस समय पुण्य वंशो बजाते और स्त्रियां एक प्रकारका गान करके सांपोंको नचाती हैं। उस समय सांप तर्जन गर्जन करते हुए काटनेके लिये दौड़ते हैं। उनके काटने पर ये मन्त्र पढ़ कर विष उतारनेकी कोशिश करते हैं।

रसिया-वेदिया रंगिके बाला, हंडुलो आदि बनाते हैं। वह कम मूलका अलङ्कार गरीब हिन्दू और मुसलमान अपनी पुतलीका पहनाते हैं। इस या पारेकी तरह रंगिकी आकृति होती है, इस कारण इनका रसिया नाम हुआ है। ये प्रायः ही रुपिजीवी हैं। उत्तर-पश्चिमके इस श्रेणीके वेदिया प्रायः मुसलमान और फराजी-मतावलम्बी हैं। इनमेंसे बहुतेरे नाव खे कर अपनी जाविका निर्वाह करते हैं। उनकी तावोंकी आकृति संततव होती है।

वेदिया जातिके दूसरे समूहोंमें सानदार हो सम्प और शिक्षित होते हैं।

वेदिलमोजा—मुसलमान कवि साहदाई गिलानीकी उपाधि। मुगलसम्राट जहांगीर बादशाहके समय ये भारत पधारे तथा सम्राटके अनुग्रहसे जार्जर-खानके दरोगा नियुक्त हुए। इसी काममें इन्हें वेदिलकी उपाधि मिला थी। इसके बाद इन्होंने मुकाम् वेदिल, तुकावत् वेदिल और चहार आनसुर नामके दो दीवान काव्योंकी रचना की। १९१६ क्रिस्वीमें इनकी मृत्यु हुई।

वेदिपट्ट (सं० त्रि०) १ वेदिमें बैठनेवाला । (पु०)
२ बनि । (शुक्. १।४।१) ३ प्राचीन वेदिः ।

(भागवत ४।२।४।२७)

वेदिपट्ट (सं० त्रि०) सर्वशब्द । (शुक्. ५।२।२४ वापय)
वेदो (सं० त्रि०) छद्मिकारादिति-लोपः । १ किसी शुभ
कार्यके लिये तैयार की हुई भूमि । जैसे विवाहको घेदो,
यज्ञको घेदो । २ सरसती ।

वेदो—गुरु मानकके वंशधरगण । ये लोग सिख-सम्प्र-
दायके प्रथम 'वेदो' नामसे सम्मानित हैं । वे लोग
पहले मानककी वेदो (गद्दो) पर बैठते थे, इस कारण
इनका वेदो नाम पड़ा है, अथवा गुरु मानकके प्रथ-
सिंह धर्ममतकी अच्छी तरह जानते थे, इससे सभी
उन्हे 'वेदो' कहा करते थे । सभी वे लोग वंशपरम्परासे
सिखोंके मध्य वेदो नामसे पुरोहित रूपमें पूजित हैं ।
केवल मानकके वंशधर ही वेदो नामसे सर्वसाधारणमें
सम्मानित थे, सो नहीं । मानकने जिस वंशमें जन्म
लिया उस वंश वा जातिको नाम भी वेदो है । पर-
पत्नी कालमें मानकके वंशधर वेदोने सिखसमाजमें बड़ा
भादूर पाया था, किन्तु उनकी अन्यान्य शाखाओंके वेदो
मर्त्याहीन हो कर समाजमें लुप्तप्राय हो गये हैं । इस
शेनोक दुर्लभ बहुरेरे सिख सम्प्रदायभुक्त नहीं हैं ।

वर्त्तमान कालमें पञ्जाबके वेदो प्रायः सभी जगह फैले
हुए हैं । कांगड़ा पर्वतके पाद्देसस्य भूमिगमें, रेकना
दोभायके गुजरातयाला विभागमें, इरायतो तोरपत्नी
गोगीटा नगरमें, झेलम तोरस्य जहापुरमें तथा रायल-
गिएडीमें उसका बास देखा जाता है । किन्तु शतद्रुके
दक्षिण बहुत छोड़े वेदियोंका बास है । इरायतो
तोरस्थित भताला नगरके निकटवर्ती देरावाली नामक
स्थान ही उसका मादि बासस्थान है ।

वेदो लोग पहले कन्याको दरया करते थे, इस कारण
'कुमारोमार' नामसे उनको प्रसिद्धि थी । राजपूतकी
तरह कन्याविवाहमें अर्धक वर्ष होनेके डरसे वे लोग
यह जग्य्य कार्य करते थे, सो नहीं । पुरोहित वा
गुरुवंशधरको हेसियतसे वे सिखोंसे बंधे घन और
अनेक प्रकारके उपहोकादि पाते थे, जिससे वे स्वच्छ-
श्रुतासे कन्याका विवाह कर सक्ते थे, इसमें संदेह नहीं ।

परन्तु उनका कहना है, कि पूर्वपुरुषोंको अनुष्ठाके वन-
पत्नी हो कर वे लोग यह कार्य करते आ रहे थे । यह
उन लोगोंका एक कौलिक नियम था ।

प्रवाद है, कि इस वंशके धरमचाँद नामक किसी
आदिपुरुषकी कन्याके विवाहमें जब घर और भारत
कन्याको ले कर घर लौट रही थी, तब धरमचाँदके दो
पुत्र सौजन्य दिखानेके लिये कुछ दूर उनके साथ गये ।
ज्येष्ठका महोना था, उस दिन बड़ी गर्मी पड़ी थी । सभी
लोग विवाहके आमोद और मद्यपानसे मतबाले हो नींद
प्रकृतिके आमोद दिखलाते हुए बालक वेदोके नियमित
स्थानमें न ले जा कर उन्हे पृथा कष्ट दे बहुत दूर पैदल ले
गये । जब वे दोनों आई क्षत विक्षत पदसे घर लौटे तब
धरमचाँद उनकी बुर्दना और कष्ट देख कर बड़े दुःखित
हुए । उन्होंने अपने पुत्रोंसे पूछा, 'वरकत्ताने तुम दोनों-
की शोभ लौट जानेका क्यों नहीं हुकुम दिया ?' पुत्रोंके
मुखसे यथापय विवरण सुन कर वे बड़े विगड़े और
बोले, "आजसे कोई भी वेदो अपनी कन्याको जीवित नहीं
रख सकता, पैदा होते ही उसे यमपुर भेज देना होगा ।"

पिताका क्रोध आदेश सुन कर पुत्रगण भयसे विह्वल
हुए और उन्होंने पितासे कहा, "शास्त्रमें पुत्रहत्याको
महापातक बताया है, अतएव इस नियमका प्रतिपालन
करनेमें वेदियोंको सदाके लिये पापपट्टमें निमज्जित
रहना पड़ेगा ।" इस पर धरमचाँदने जवाब दिया, 'यदि
वेदोगण सत्य धर्मका आश्रय कर अपना समय बितायें
तथा अस्तव वचन वा प्रयत्नना अथवा मद्यपान द्वारा
अपनेको कल्पित न करें' तो उन्हे पुत्र छोड़ कर सभी
भी कन्या पैदा न होगी, किन्तु वर्त्तमान कालमें यह
पाप मैं अपने माथे पर लेना हूँ ।' इतना कहने ही धरम-
चाँदका शिर घटसे झगग हो उसकी छाती पर आ गया ।
जो हो, इसी अनुष्ठाके वनपत्नी ही वेदो लोग ३ सो वर्ष
से कन्या हत्या करते आ रहे थे । सभी पूटिंग शासकसे
यह प्रथा दूर हो गई है । उस समय यदि कोई वेदो
स्नोद वशता कन्याको न मार कर चुपकेसे उसका प्रति-
पालन करता और पीछे समाजमें यह बात खुल जाती
थी, तो उसे समाजसे मगा दिया जाता था और सभी
उसे भंगीके समान मानते थे ।

वेदीतीर्थ (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम ।

(भारत वनपत्र)

वेदीयस् (सं० त्रि०) अतिशय विद्वान् । (शुक ७।६८।१)

वेदीश (सं० पु०) वेदानां परिष्कृतानामोशः । प्रह्ला ।

(त्रिका०)

वेदुक (सं० त्रि०) १ वेसा, जाननेवाला । (तैत्तिरीय० १।१।१।१) २ प्रापक, पानेवाला । ३ प्राप्त, जो कुछ मिला हो । (तैत्तिरीयब्रा० ३।६।२।२)

वेदुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके दक्षिण आर्कट और पुदुचेरी जिलेके विङ्गलपुरम् तालुकके अन्तर्गत एक गाण्ड-प्राम । यह विङ्गलपुरम् सव्दसे ११ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है । यहां एक जैनमन्दिर है ।

वेदुरावलापाडु—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नेल्लूर जिलेके पोदिले तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा प्राम । पोदिले नगरसे यह ११ मील पश्चिमात्तरमें पड़ता है । इस प्रामके उत्तरमें तथा गङ्गिपली जानेके रास्तेके पूर्वमें एक शिला-फलक मौजूद है; जिसकी लिपि बहुत प्राचीन है ।

वेदुवक—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलेके अन्तर्गत कड़ापा तालुकका एक प्राम । यह कड़ापा सव्दसे १५ मील उत्तरपश्चिममें अवस्थित है । यहां वेनेरु और पापन्नके संगम पर संगमेश्वरस्वामीका मन्दिर विद्यमान है । यह मन्दिर हजार वर्षका है ।

वेदुल्लघलस—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विजगापट्टम जिलेके अन्तर्गत जगपतिनगरम् तालुकका एक गाण्डप्राम । यहां एक प्राचीन देवमन्दिर है । देवपूजाका खर्चा चलानेके लिये राजप्रदत्त एक ताम्रशासन मन्दिरमें रखा हुआ है । वेदुवाली—युकप्रदेशके बलिया जिलांतर्गत एक बड़ा प्राम । यह बलिया सव्दसे एक मील उत्तरमें अवस्थित है । यहां एक प्राचीन नगरका ध्वस्त स्तूप पड़ा हुआ है ।

वेदेश (सं० पु०) १ वेधघर । २ प्रह्ला ।
वेदेशमिश्र (सं० पु०) एक प्रथकारका नाम । वे व्यासतीर्थके शिष्य थे । इन्होंने आनन्दतीर्थकृत ऐत-वेदोपनिषद्भाष्यकी टीका, काठकोपनिषद्भाष्यटीका, केनोपनिषद्भाष्यटीका, पदार्थकौमुदी नामक छांदोग्योपनिषद्भाष्यकी टीका, तत्त्वोद्योतविवरणकी टीका और

प्रमाणपद्धतिकी टीका लिखी । इनका दूसरा नाम वेदेशतीर्थ था ।

वेदेश्वर (सं० पु०) प्रह्ला ।

वेदोक (सं० त्रि०) वेदे उक्तः । श्रुतिकथित, जो वेदमें कहा गया है ।

वेदोपपुरम्—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलेके आर्णिजागीरके अन्तर्गत एक बड़ा प्राम । यह आर्णिस ८ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है । यहांके राजनाथेश्वर स्वामीका मन्दिर प्रायः पांच सौ वर्षका है । मन्दिरगात्रमें बहुत सी शिलालिपियाँ हैं ।

वेदोदय (सं० पु०) वेदा विषयज्ञानमुद्ये यस्य । सूर्य । (त्रिका०)

वेदोदित (सं० त्रि०) वेदे उदितः । वेदोक ।

वेदोपकरण (सं० पु०) वेदाङ्ग । (मनु २।१०५)

वेदोपग्रहण (सं० क्ली०) वेदपरिशिष्ट ।

(रामायण १।५।४)

वेदोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम ।

(तैत्तिरीय उप० १।१।१४)

वेदोपवृद्धण (सं० क्ली०) वेदपरिशिष्ट । (वेदान्त)

वेदोपस्थानिका (सं० स्त्री०) वेदरक्षका स्थान ।

(हरिवंश)

वेदीयन् (वेदावी) अरवजातिकी एक शाखा । येमेन, हेजाज, पालेस्तिन, सिरिया, युफ्रतिस और नाज्द नदी तोरयन्तों प्रदेशमें तथा मध्य अरबके प्रदेशोंमें इनका बास देखा जाता है । ये लोग प्रायः एक स्थानमें नहीं रहते, बासस्थान बदल कर घूमना करते हैं । इसके सिवा ऊँट पर पशुपद्रवादि लाद कर मरुप्रदेशसे देशांतर ले जाना ही इनका प्रधान कर्म है ।

विभिन्न स्थानमें बास होनेके कारण इनके नाममें भी पृथक्ता हुई है । जबल-सम्माके रहनेवाले, सम्मार कहलाते हैं । वे लोग १७वीं सदीमें आदि वासभूमिकी परित्याग कर उत्तर मरुमें आ कर बस गये । पीछे अनाजा जातिने उन्हें युफ्रतिस नदीके दूसरे किनारे भार भगाया । उनमें जेरवा, फदाघा, सुलामा और पससाफुक नामके पांच वंश हैं ।

देशीयों लोगोंमें अनाजा ही विशेष प्रयत्न और संवधानमें अधिक है। ये मरुदेशमें ऊँट आदि पशुओंका चराने हैं तथा अकल्प पट्टने पर एक देशसे दूसरे देशमें चले जाते हैं। पहले ये लोग नाजदू प्रदेशमें रहते थे। १९वीं सदीके आरम्भमें मोहावियेने इन्हीं उक्त प्रदेशसे मार भगाया। तमोसे ये लोगोंके समय सिरिया और युफ्रेतिसके मध्यवर्ती मरुदेशमें जा कर रहते हैं तथा शीतकालमें दक्षिण नाजदू तक चले जाते हैं। इस समय ये लोग इमरकस, हामा, होमस, अलेयो आदि सिरिया प्रांतवर्ती नगरवासियों वणिकोंके साथ पण्यद्रव्यादिका विनिमय करते हैं।

इनमें भी बहुत-सी शाखाएँ हैं। ये शाखाएँ पिशाच तथा घालदू और जैलस नामक दो बड़े विभागके अन्तर्भूक्त हैं। मैकरान् पंशमभूत धर्मसंस्कारक आवद्ध उल्टा हाथ मैसालिक अनाजा ज्ञायाभुक्त थे। उत्तरदेशमें जा कर इन्होंने समारोंके साथ युद्ध ठान दिया तथा घोरयुद्धके बाद उन्हें युफ्रेतिस नदीके दूसरे किनारे मार भगाया। कुछ तो नाजदू प्रदेशमें, कुछ दक्षिणमें और कुछ पालेस्तिनके पूर्वांशमें जा कर बस गये। घालादू अली गण खैबरमें रहते हैं। सिरिया हो कर जो सब 'हाज' पय गये हैं उन्हींके ये लोग अधिकारी हैं। अनेक समय ये लोग वणिकोंका माल असबाब लूट लेते हैं। ये स्वभावतः ही घोर और साहसी होते हैं। फरासी सेनापति क्लेबर (Kleber) उन लोगोंसे परास्त हुए थे। ये लोग घोड़े पर नड कर युद्ध करनेमें दृष्टे निपुण होते हैं, इसीसे वे अच्छे अच्छे घोड़े भी रखते हैं।

यानाशहर, आमूर, अमराह, परकुहे, गड्डला और जैलस, शोमिल्लात, हिससा, आदजादशाहा, घालघायून, जेदाभा, सत सयाभा जानि, फादान, आयादात्, दुभाम आदि ज्ञायाएँ भी अनाजा ज्ञायाकी संचित्त हैं।

शोयैद और ताई ज्ञाया बहुत प्राचीन और अत्यंत शक्तिशाली बौद्धा है। ये लोग मोसलके निरुद्ध बास करते हैं तथा पनाम देवनेके लिये छायादि रखते हैं। ताई जानि मेनेनसे ताईमोमके किनारे भा कर बस गई है। इनमें ३ स्वतन्त्र पंश हैं। हानेम जानि दानजोशहाके कारण विख्यात है। प्रतिक्रमण, अत्यदिष्टी और

इसाद अतिवा इराक प्रदेशमें रहती है। ये लोग भारत में नहीं रहते। प्रतिक्रमण मरुप्रायों हैं। ये लोग मोड़ों भी पालते हैं। अलदिष्टी कृषिजोषी हैं। जसवादि योना और फाटना तथा गाय चराना, इनको एकमात्र कार्य है। ये लोग धनी हैं। इसादप्रानि कृषिजोषी हैं। माल असबाब टानिके लिये सफेद गदहे पालते हैं।

उत्तर मरुभागके मयाली हेजाजसे भाये हैं। इनके शीत अघनेका अत्यासो खल्लोफाके पंशघर बतलाते हैं। समार और मयालियोंकी वासभूमिके मध्यवर्ती देश भागका ले कर इनमें ५०-६० वर्ष तक विषाद चला था।

याशादिन घनघान् और मेपपालक हैं। ये शान्तिप्रिय होते हैं। युफ्रेतिसके तीरवर्ती घेल्दोजाति कृषिजोषी हैं। पहले ये लोग मिसोपेटेमियामें रहते थे। भाय्-वेदासूगण कृषिजोषी, घनशास्त्री और मेपपालक हैं, ये लोग तंबूम रहते हैं। वेनीलासिद्गण हाससांसे मरुभूमिके विभिन्न स्थानोंमें फैल गये हैं। रोहनी सोडा नामक क्षार बनाने हैं। फाहुन, घेम और लाहेण वेनी-बारी करके अनाज उपजाते हैं, परन्तु एक जगह वे गिर स्थायी नहीं हैं, जमीनकी उर्वरता कम होनेसे उस स्थानका परित्याग कर अन्यत्र चले जाते हैं। बानू लैयद घोड़े, पर नड कर केवल दसपुरुषि द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। युफ्रेतिस नदीके दाहिने किनारे इनका बास है। ये लोग किन्हीं तरहका वाणिज्य नहीं करने और न घोड़े आदि भी पालते हैं। सुनागण बकरे, ऊँट और घोड़े आदिका पालन करते हैं। ये लोग सुदघियामें भी निपुण हैं। अलजाजिरावासो समारोंके साथ इनका सर्वदा युद्ध हुआ करता है। अलल्लात्, अल-मैदजाद्मा, अल-बाला, अल-मेयदा, अलयासोव, अलयासामिम आदि ज्ञायाएँ अत्येताहत बहुत कम हैं। ये लोग सुदघियामें सुदक्ष नहीं हैं। इनके गिया फेरन जानिके हेरनग्द तथा अघेल्जाति देशीयिन जातिमें गिनो जाती हैं। प्रयोगिक ज्ञायाके लोग सिरियामें रह कर सुदघनयार सेनादलमें निपुण हैं। यहाही प्रदेशमें जो सब देशीयिन रहते हैं, ये बर्तौ पालते हैं। सभी देशीयिन बड़े बड़े पालते हैं।

वचनपत्रमे हो सिर नहो मुडवाते । ये लोग तमाकू खूब पीते हैं । पद लिखेको संख्या इनमें नही के समान है ।

वेदज्ञान—मग्नराज प्रसिद्धेसोके गोदावरी जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम । यह निजामराज्य सीमासे ४ मील दूर तथा राजमहेश्वरीसे ३८ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है । इसके चारों ओर केवलका गड्ढा और पहाड़ है । गाँवका मध्य भाग साढ़े पाँच वर्गमील है ।

वेदव्य (सं० लि०) जो वेधने या छेदनेके योग्य हो, वेधा जानेके योग्य, वेध्य ।

वेद (सं० लि०) वेधकारी । (भारत आदिपर्व)

वेदुनार—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर । उदयपुर राजधानीसे यह ६३ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है । नगराधिपति एक प्रधान सामन्त है । ये साठ गाँवका उपसत्त्व भोग करते हैं ।

वेध (सं० लि०) विद-प्यत । १ वेदितव्य, जो जानने या समझनेके योग्य हो । २ धनके विषयमें हितकर । (शृक २।२।३)

३ स्तुत्य, जो स्तुति करनेके योग्य हो । (शृक १।२।११)

४ लब्धव्य, जो प्राप्त करनेके योग्य हो । ५ वेदहित, वेदप्रतिपाद्य ।

वेधत्व (सं० ह्यो०) ज्ञान, ज्ञानकारी ।

वेधा (सं० खो०) वेदितव्या । विद्या । (शृक १।०।१।८)

वेधला—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर । यह उदयपुरसे ३ मील उत्तरमें अवस्थित है । यहाँके सामन्त ६१ गाँवोंके उपसत्त्वभोगी हैं ।

वेध (सं० पु०) विध-घञ् । १ किसी नुकीली चीजसे छेदनेकी क्रिया, वेधना, विद्ध करना । २ गभीरता, गहरापन । ३ मन्त्रों आदिको सहायतासे प्रदोष, नश्वलों और तारों आदिको देखना । ४ अपैतियके प्रदोषका किसी ऐसे स्थानमें पहुँचाना जहाँसे उनका किसी दूसरे प्रदोषमें सामना होता है । जैसे,—युतवेध, सप्तशलाकावेध, पताकीवेध इत्यादि ।

वेधक (सं० ह्यो०) विध-घञ् । १ घायक, धनियौ । (राजनि०) २ कर्पूर । (भिका०) ३ अम्लवेतस । (पु०) ४ वह जो मणियों आदिको वेध कर अपनी जीयिका

चलाता हो । (लि०) ५ वेधकर्ता, वेध करनेवाला । वेधशाला देखो ।

वेधनिका (सं० खो०) विध्वतेऽनयेति विध-करणेऽप्युट् । ततः स्वार्थे-कन् । वह औजार जिससे मणियों आदिमें छेद करते हैं । पर्याय—आस्फोटनी, लास्फोटनी, स्फोटनी, स्पृशिका । २ सूची, तुपुंन ।

वेधनी (सं० खो०) विध्वतेऽनयेति विध-ल्युट्, खियाँ खीप । १ वेधनिका, वह औजार जिससे मणियों आदिमें छेद करते हैं । २ हस्तिकर्णवेधनास्त्र, अंकुश । (भिका०) ३ मेघिका ।

वेधमय (सं० लि०) छिद्रयुक्त, छेदवाला ।

वेधमुख्य (सं० पु०) वेधे वेधने मुख्यः श्रेष्ठः । कचूर । (राजनि०)

वेधमुख्यक (सं० पु०) वेधमुख्य स्वार्थे कन् । हरिद्रावृक्ष, हल्दीका पीधा । पर्याय—कर्णारक, द्राविडक, कारवक, काल्य । (अमर)

वेधमुख्या (सं० खो०) वेधे मुख्या । कस्तूरी । (राजनि०)

वेधशाला (सं० खो०) वह स्थान जहाँ प्रदोष और नश्वलों आदिका वेध करनेके यत्न आदि रखे हैं, वह स्थान जहाँ नश्वलों और तारों आदिको देखने और उनकी दूरी गति आदि जाननेके यत्न हैं । अंगरेजोंमें इसे Observatory कहते हैं । मानमन्दिर और वेधाज्ञय देखो ।

वेधस् (सं० पु०) विदधातोति वि-धा (विधाभो वेधक । उप् ४।२२४) इति असि वेधादेशश्च । १ ब्रह्मा । २ विष्णु । (अमर) ३ शिव । ४ सूर्य । (शब्दरत्ना०) ५ पण्डित । (विश्व) ६ श्वेताक, वृक्ष, मन्त्रका पीधा । (शब्दच०) ७ अनन्तपुत्र । (अग्निपुराण सागरोपाख्यान नामाध्याय) ८ प्रजापति दक्ष आदि । (लि०) ९ मेघायो । (निवपट्ट) १० विविध कर्ता । (शृक १।४।२।२)

वेधस (सं० ह्यो०) अह्णुः प्रभृत्, हथेलीके अंगूठेकी जड़के पासका स्थान । इसे ब्रह्मतोर्ष भी कहते हैं । आचमनके लिये इसी गड्ढेमें जल लेनेका विधान है ।

वेधसी (सं० खो०) एक प्राचीन तीर्थका नाम ।

वेधस्या (सं० खो०) यागविधानकी इच्छा । (शृक ६।८।२)

वेधा (सं० पु०) वेधत् देतो ।

वेधालय (Observatory)—एक जलाका या पृथ्वी अथवा अन्य किसी पदार्थमें सूर्यादि आकाश-मण्डलरूप प्रकाशित और धराके वेध करते हैं । उक्त जलाका आदिमें लक्ष्य पदार्थकी विषय विज्ञ होता है, इसमें वेधसंज्ञा पड़ती है । पृथ्वी या जलाकादि यन्त्रों द्वारा नक्षत्रादिके संस्थान और गतिनिर्णयके हो वेध (Observation) कहते हैं और जिस घरमें इस तरहके यन्त्र आदि रक्षित और कार्य साधित होता हो, उस यन्त्रके प्राचीन पुष्पोंने वेधशाला या वेधालय कहा है, इस समय जनसाधारणमें यह 'मानमन्दिर' (Observatory) नामसे परिचित है ।

यूरोपियोंका विश्वास है, कि इस देशमें बहुत पहले से उद्योगिकी कला रहने पर भी यहाँके लोगोंमें वेध-ज्ञान न था । सुनरा प्राचीनकालमें यहाँ कोई वेध-शाला भी न थी । युनानियोंसे ही भारतयासीने वेधज्ञान सीने है । किन्तु यह बात सच नहीं । इसमें सन्देह नहीं, कि भारतयासी ईसाके जन्मसे बहुत पहले अर्थात् सदृश सदृश वर्ष पहलेसे वेधायाय जानते थे । जगत्के आदि प्रथम ऋक्संहितासे ही २७ नक्षत्र और सप्तर्षिका संधान मिलता है । तैत्तिरीयसंहितामें नक्षत्र-तारोंमें रोहिणीके प्रति चंद्रकी अतिगण्य प्रति है या चंद्र रोहिणीके निकटयुति ऐसा कहा है । आश्वयुज्य श्राद्धकालमें ध्रुव और अक्षयतीके अतिगण्य रोहिणीगणकमेव, रामायण और महाभारतमें नामा नक्षत्र और तिथिवर्णना तथा नामा प्राचीन स्मृतिवर्णनमें नक्षत्रयोषिके उल्लेखसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि भारतीय भाषोंमें उस ऋक्-संहिताके समयसे ही अर्थात् सात हजार वर्षसे भी पहलेसे वेधनिष्ठा की थी । वराहमिहिले वृहत्संहिता में केतुचारके प्रसङ्गमें लिखा है—

“गार्गीयं गितिवारं पञ्चममन्त्रवैदिकं च ।
अन्त्यान्वयं वदन् एष्ट्या क्रियतेवमन्त्रुत्तवापद्ये ॥”

उक्त प्रमाणसे जाना जाता है, कि गण, पराज, अक्षय, देवल आदि बहुतसे प्रायश्चित्त केतुचार निर्णय किया है । उक्त वृहत्संहिताकी टीकामें भट्टोपरानी ने भी इस तरह पराजकी बात प्रकाशित की है—

“पैतामहदक्षलकेतुः पञ्चवर्षगतं प्रोषणं उरित् ।
अयोहालकः श्वेतकेतुर्दशोत्तरं वर्षगतं प्रोषणं कुर्यात् ।
शुक्राप्रकारां त्रिषां दर्शयन् प्रालम्बशतमुपमृत्यमनां
ध्रुवं प्रलम्बानि सप्तर्षीन् संस्पृश्य.....काश्यपः श्वेत
केतुः पञ्चदशं वर्षगतं प्रोष्यन्नां पञ्चकेतोश्चारागते.....
नमस्त्रिभागमात्रापापसत्यं निरृत्याद्यं प्रवक्ष्यामि श्वे-
तारशिक्षः स वायगते मासान् कुर्याते तावद्दर्शानि सुमि-
मावसति ॥ अथ रश्मिकेतुर्विंशत्युत्तमं प्रोष्य शतमावस-
केतोश्चित्तरचारागते कृत्तिकासु धूमशिक्षा ॥” (पारा)

अर्थात् पैतामह केतु पांच सौ वर्ष प्रवासमें रह कर उदित होता है । इस तरह उद्दालक श्वेतकेतु ११० वर्ष, शुक्राप्रकार, शिखाचारी, काश्यप श्वेतकेतु १५०० वर्ष और विभावायुज्य रश्मिकेतु १०० वर्ष प्रवासके बाद कृत्तिका में धूमशिक्षयत् उदय होता है ।

इस समय जैसे यूरोपियोंके आविष्कारोंके नामानुसार Halley's Comet आदि विभिन्न केतुके नाम सुनाये गये हैं वेसे ही अतिप्राचीन कालमें इस भागवतवर्षमें जिन सब प्रायश्चित्तोंमें वेधज्ञानबलसे विभिन्न केतुचारका आविष्कार किया है, उनके नामानुसार ही उन केतुओंका नामकरण हुआ था । यह भट्टोपरानीय पराजोषिके से जाना जाता है ।

गार्गीय, प्रलम्ब आदि प्राचीन उद्योगिकीचार्माण्य स्वामीनायसे अपने अपने उद्भावित यन्त्रसाहाय्यसे अत्यन्त पूर्णकालसे आज पर्यन्त वेध करने आते हैं । आठगणके राजकुमार चन्द्रशेखर सिंहकी जीवनीमें उनका विलक्षण परिचय मिलता है ।

विस्तृत विवरण चन्द्रशेखर सिंह चन्द्रमें देखो ।

वेधके लिये वेधशालाकी आवश्यकता है । वराह-मिहिल आदिके उद्योगिकीचार्माण्यसे जाना जाता है, कि राज-निर्देशसे कितने ही गणतद्वारा दिन रात निभृत कर्षणमें बैठ कर नक्षत्रादिकी गतिविधि पर्यवेक्षण और उनके दर्शनका फलानुभव विविध करते थे । भोजराज्य राजसूयाङ्ककरण और बल्लभयज्ञोप वृहत्संहिताके करणकालमार्गप्रदयय इस तरह राजउद्योगिकीचार्माण्यसे पर्यवेक्षणका फल है । वेधयन्त्रोंकी विधि ही वर्ण

अनेक स्थलोंमें कितने स्वाधोन ज्योतिर्विद्ग अपनो क्षुद्र कुटिमं बैठ कर भी वेधज्ञानका परिचय दे गये हैं। ताना वैदेशिकोंके आक्रमण और सैकड़ों राष्ट्रविप्लवसे भारतकी कितनी ही प्राचीन 'वेधशालाये' विलुप्त हुई हैं, किन्तु भारतकी उत्तर सीमाके बाहर चीनदेशमें ऐसे राष्ट्रविप्लव और ध्वंसकाण्ड न हो सकनेसे आज भी वहाँ सहस्र वर्षोंके वेधालय दिखाई देते हैं। इनमें चीन-राजधानी पेकिङ्ग शहरका वेधालय जगत्प्रसिद्ध है। पहले यहाँ एक छोटा वेधालय था; किन्तु सन् १२७६ ई०में को-सीकिंगे वर्त्तमान गृहत् वेधालयका निर्माण किया था। सन् १६७३ ई०में उक्त मानमन्दिरमें ही वाचिपट्ट (Verbiest) प्रमुख 'जेसुइट्' वर्मा-प्रचारकोंके यत्नसे बहुते रे नये यन्त्र निर्मित हुए। आज भी उसमें काम हो रहा है।

भारतवर्षमें जमी किसी श्रेष्ठ ज्योतिर्विद्गका आविर्भाव हुआ है, तभी उन्होंने वेध द्वारा पूर्ववर्त्ती ज्योतिषिक मत शोधन करनेका यत्न किया है। बहुत अधिक दिनकी बात नहीं, प्रह्लाधव नामके प्रसिद्ध ज्योतिषिभ्य-प्रणेता गणेश दैवज्ञके पिता केशवाचार्यने १५वीं शताब्दीमें जिस तरह वेधका परिचय दिया है, उसके पढ़नेसे विस्मित होना पड़ता है। उनके प्रहकीतुककी स्वरचित मित्ताक्षराटीकामें लिखा है—

“ब्राह्मार्थमत्सौराध्वेपि प्रहकरणेषु सुधशुकथामह-
दन्तरं अङ्कतया दृश्यते । मन्दे आकाशे नक्षत्रप्रहयोगे
उद्येऽस्ते पञ्चमागा अधिकाः प्रत्यक्षमन्तरं दृश्यते ।……
एवं क्षेपेऽन्तरं वर्षभोगेष्वपि अन्तरमस्ति । एवं बहु-
काले बहन्तरं भविष्यति । यतो ब्राह्मोधेऽपि भगणानां
सावनाश्रीनां च बहन्तरं दृश्यते एवं बहुकाले बहन्तरं
भवत्येव ।……एवं बहन्तरं भविष्यीः सुगणकैः नक्षत्र-
योगप्रहयोगोदयास्तादिभिर्गर्त्तमानघटनामवलोक्य न्यूना
धिकमगणायै प्रहगणितानि कार्याणि । यद्वा तत्-
कालक्षेपक वर्षभोगान् प्रकल्प्य लघुकरणानि कार्यानि ।……
एवं मया परमफलस्थाने प्रहणतिथ्येतादिलोमविधिना
मध्यश्चन्द्रो ज्ञातः तत्र फलहासयुद्धाभावात् । केन्द्र-
गोलादिस्थाने प्रहणतिथ्यस्तादिलोमविधिना चन्द्रोच्चना-
कलितं । तत्र फलस्य परमहासयुद्धिरेषात् । तत्र

चन्द्रः सूर्यपक्षात् पञ्चकला नो दृष्टः । उच्चं ब्रह्मपक्षा-
ध्रितं । सूर्याः सर्वापक्षेऽपीवदन्तरः स सौरा गृहीतः ।
अन्ये प्रहा नक्षत्र-प्रहयोगप्रहयोगास्तादियादिभिर्गर्त्तमान-
घटनामवलोक्य साधिताः । तत्रेदानीं भीमेज्यौ ब्राह्म-
पक्षाध्रितौ घटताः । ब्राह्मो सुधः । ब्राह्मार्थमध्वे शुक्रः ।
शनिः पञ्चत्रयात् पञ्चमागाधिको दृष्टः । एवं वर्त्तमान
घटनामवलोक्य लघुकरणेना प्रहगणितं कृतं ।”

ब्राह्म, आर्यभट्ट और सौरादिके सिद्धान्त ग्रन्थमें प्रहकरणमें सुध और शुक्रका बड़ा अन्तर दिखाई देता है। मन्दाकाशमें नक्षत्र प्रयोगमें, उदय और अस्तमें पञ्चभाग अन्तर अधिक है, यह प्रत्यक्ष रूपसे दिखाई देता है। इस तरह वर्षभोग क्षेपमें भी विशेष अन्तर है और इसी तरह बहुत कालमें बहुत अन्तर हो जाता है; क्योंकि, ब्राह्मादिमें और सावनादि भगणमें बहुत अन्तर दिखाई देता है और इसके भी बहुत कालमें बहुत अन्तर हो जाता है। सुगणकोंने नक्षत्रयोग प्रयोग और उदयास्तादि वर्त्तमान घटनाका अवलोकन कर न्यूनाधिकभावसे भगणादि द्वारा प्रहगणित करना चाहिये, ऐसा स्थिर किया है। अथवा तरकालक्षेपक वर्षभोगकी कल्पना कर लघुकरण करना। परमफलस्थानमें चन्द्रप्रहण तिथिके अन्तसे धिलोम विधि द्वारा मध्य चन्द्र द्वारा मध्यचन्द्र ज्ञात होगा। इसमें फलकी ह्रास वृद्धि नहीं होती। केन्द्रगोलादि स्थानमें और प्रहणतिथिके अन्तसे धिलोमविधि द्वारा चन्द्रोच्च कल्पित हुआ है। उसमें फलका परम, ह्रास और वृद्धि होती है तथा चन्द्रसूर्यपक्षसे पञ्चकला कम भावसे दिखाई देता है। यह ब्रह्मपक्षाध्रित जानना होगा। सूर्यका सब पक्षोंमें ही जरा अन्तर रहता है और यह सौर कह कर गृहीत हुआ है। अन्य सब प्रह नक्षत्रप्रहयोग और नक्षत्र प्रहयोगास्त तथा उदयादि वर्त्तमान घटनाका अवलोकन कर साधन करना उचित है। अधुना मीम और इज्य ब्राह्मपक्षाध्रित है। ब्राह्म अर्थात् सुध, ब्रह्मार्थमें शुक्र, शनि पञ्चत्रयसे पञ्च भाग अधिक दिखाई देता है। इस तरह वर्त्तमान घटना देव कर लघुकरणां द्वारा प्रह-
गणना करनी चाहिये।

इसी तरह प्रसिद्ध ज्योतिषी कमलाकरने भी अपने सिद्धान्ततत्त्वविधिक नामक ग्रन्थमें पूर्वाचार्यके सिद्धान्त

श्योंका लक्षण कर ध्युनक्षत्रकी गति प्रकाशित की है। मद्रासमहोपाध्याय चन्द्रगोखरकी बात पहले ही कही जा चुकी है। सभी धोड़े ही दिन हुए, कि उन्होंने पर-मेश्वर गमन किया है। उन्होंने अपनी चोटी और अपने रचित यन्त्रके साहाय्यसे कौसी घेघ-रक्षणा दिखाई है, उनके सिद्धांतदृष्टि प्रथमे पट्टनेम उमका घेघेष्ट परिचय मिलता है। उनकी असाधारण जक्ति देख इस देश या अिदेशके ज्योतिषियोंने इनको 'ताराको माहो' उपाधि दी है।

इस देशमें ऐसे भी कई उपाधितो देगे गये है, जो संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषा नदों जानते। अथच उनके नक्षत्र देव कर ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ है, कि वह जगयावास ही कह सकते हैं, कि कौन कौन तारा पूर्वसे पश्चिम और कौन कौन पश्चिमसे पूर्व चलत हुए।

प्राचीन कालमें भारतवर्षमें घेघनालामें कौन कौन यन्त्र व्यवहृत होते थे, मास्कराचार्यने अपने यन्त्राध्यायमें उन यंत्रोंका इस तरह नामोल्लेख किया है—१ चक्रयंत्र, २ पात्र, ३ तुल्यमाल, ४ गोलयंत्र, ५ नाड़ीवलय, ६ घटिका, ७ शंकु, ८ फलकयंत्र, ९ घटियंत्र और १० स्वयंयह-यंत्र। भारतीय ज्योतिषिद्विजु लड्डाचार्य और प्रहलमुतके समयमें आज तक इन सब यंत्रोंके साहाय्यमें ही घेघ कार्य साधन करते आ रहे हैं। १८वीं शताब्दीमें जयपुराधिप सवाई जयसिंहने तत्कालीन भारतके प्रधान नगरोंमें घेघनाला या मानमन्दिर प्रतिष्ठित कर उनमें से सब यंत्र रगे थे। उन्होंने फारसी भाषामें ऐसा विवरण लिख कर रग दिया है, जिसमें उनके नये उद्गा-वित यंत्रोंका व्यवहार सहज ही समझमें आ जाता है।

जब यूरोपीय ज्योतिष ज्ञानकी आलोचनामें और यज्ञादि साहाय्यसे ज्योतिषकण्टहली मध्यान् प्रद-मक्षत्रादि गतिविधिमिनिर्णयके विषयमें जगन्मै अमिनप-पस्थाकी प्रसारपूर्ति कर रहे थे, जब जोषिणिकॉसके (१७७३-१५७३ ई०) आलोचित ज्योतिषांगोंमें विवरण कर हर्सेल (Sir William Herschel 1788-1822 A D) आदि ज्योतिषिद्विजु प्रहलमुत आदि भाषिणिक और गति-निर्णय द्वारा जगन्मै अमिन उपाधि कर रहे थे, उसमें भी कुछ पहले मध्यान् १८वीं शताब्दीके प्रथममें

भारतवर्षमें भी ज्योतिष ज्ञानप्रसारके एक अिदेशीय पुस्तके जगन्महण किया था। केनय देव और गजेन्द्रदेवके ज्योतिषज्ञान-सागरके अग्रण कर उसके अरोडास सयोंनामें तदुपस्थानिचयकी विशुद्धता सम्पादन करने पर भी वास्तवमें ये जयसिंहकी तरह ज्योतिषज्ञान-लोचनाका पथ उन्मुक्त कर नहीं सके हैं।

राजपूतानेके अमरावती अमरराज्यके मधोभर जय-सिंह संवत् १७५० विक्रमीय (१६६३ ई०) में पैदा हुए थे। यद्योतिषके साथ साथ उन्होंने भारतीय, मुसल-मानो, यावनी और यूरोपीय नामा ज्योतिषियोंकी आलोचना की। इन सब ज्योतिष प्रयोगोंका पट्ट कर जब यह समझ गये, कि दिवाकाम, रत्नेमी, सुप्रि, जमसंद कामि और नामिर तुपो आदिके प्रथ प्रमाणमें द्विकप्रत्यय करनेकी जब सुस्पष्ट सुविधा नहीं दिना देती, तब उनके ये परिश्रम व्यर्थ हुए, यह सहज ही अनुमान किया जाता है। सिया इसके प्रहलमुत आदिकी स्थिति-गणनामें नैयद गुणानि और खकानाकी प्रयत्नित मूची, मूचियात् मूचनद अह-वरनाही, संस्कृत ज्योतिषग्रंथ और यूरोपीय गणना-मूची आदि प्रचलित थीं, उसके साथ प्रहल गणनामें अनेक वैषम्य रहनेसे ये स्पष्टः प्रहल ही वैषम्यत् स्थापन कर प्राचीन पश्चिमके अिदेशारसे नये प्रथ और तानिका प्रथ यममें यत्नशील हुए।

इस समय दिग्दोके बाद्गाह महम्मद् शाहने उनके ज्योतिष विषयके ज्ञानका परिचय पा कर और वैषम्यत् स्थापनमें उनका उद्यम और भाग्यद ज्ञान कर उनकी दिग्दो अरबात्ने बुलाया और उनके ज्ञान-जामेका अग्र-भार अपने ऊपर लिया था। इसके अनुसार जयसिंहने दिग्दो राजदरबारमें आ कर मुसलमान ज्योतिषिद्विजु और जयसिंहके, ज्योतिषज्ञानविद्विजु अग्रण पणितोके और कई यूरोपीय ज्योतिषिद्विजुके साहाय्यसे कई प्रदीक्षा गति-काल प्रत्यक्ष कर मायममें परामर्श किया और गणनामें जो अग्र था, उसका मूचोचन कर लिया। इस समय सुधुहुला पूर्णक कार्य निष्पाद करनेके निधे वैदेशिक परमादिका अनुकरण कर उनकी भी कई यत्न निर्माण कर लेता पड़ा था।

राजा जयसिंहने मुसलमानी प्रर्थोंके अनुसार समर-कन्दमें प्रतिष्ठित मानमन्दिरका अनुकरण कर दिल्लीमें उन सब यन्त्रादिकों स्थापित कर सबसे पहले वे घशाला की मिति कायम की। समरकन्दमें उस समय तीन गज परिमित व्यासविशिष्ट जात् उल-हलक और जात्-उल सेवेतिन्, जात्-उल-फस बेतिन्, सादस फकेरी और मशालाबादि कई पीतलके बने यन्त्र थे। ये सब यन्त्र छोटे आकारके थे। इससे इनमें मिनट विभागकी सुविधा न थी। फिर स्थानमें वैषम्य होनेके कारण यन्त्रोंके स्थापनमें गड़बड़ोंसे अनेक समय गणनामें विघ्नोत् उपस्थित होता था। कभी तो मध्यदण्ड (axes) क्षेपप्राप्त हो या कम्पित हो घूर्त्तोंका केन्द्रस्थानच्युत हो जाता था, उससे भी गणनामें गड़बड़ों उपस्थित होती थी। इन्हीं सब कारणोंसे हिपाकास आदि प्राचीन ज्योतिर्विदों की गणना सर्वोद्ग सुन्दर नहीं हुई। यह विचार कर उन्होंने अपने इच्छानुसार राजधानीके जमानुसार "दूर-उल-हलिकात् शाह-जहानाबाद," "जयपकाश" "राम-यन्त्र" और "सम्राट्यन्त्र" निर्माण किया था। इसका व्यासार्ध प्रायः १८ हाथ, १ मिनटके निरूपणका अंशांश-परिमाण १॥ जो था। यन्त्र पत्थर और चूने आदिके संयोगसे बने थे। चौड़े होनेसे इनमें गति और दूरत्व-का परिमाण निर्दोष करनेकी विशेष सुविधा है।

इस तरहकी प्रणालीसे वे घशाला स्थापित हुई सही; किन्तु निरूपित गहनज्ञान आदिके स्थान और वर्त्तमान यन्त्रके साहाय्यसे अधःपतित इन सब स्थानों-का प्रकृत स्थितिनिर्णय द्वारा इन दोनोंमें दूरत्व या कालका वाचपान करनेके लिये जयसिंहने विशेष अध्य-वसायके साथ सवाई जयपुर, मथुरा, बनारस, और उज्जैन नगरीमें और भी चार स्वतन्त्र वेधालय स्थापन किये। इन सब स्थानोंमें स्वतन्त्र भावसे प्रह-नक्षत्रादिका सञ्चालन और गणना की गई थी। उसी गणनाका फल ले कर उन्होंने दोनों नक्षत्रोंके अक्षांशका व्यवधान छोड़ सामञ्जस्य द्वारा इन सब गणनाओंकी समविहीन और सर्वोद्ग सुन्दर सिद्धान्त किया था। आज भी इन सब स्थानोंमें वेधालय विद्यमान हैं। किन्तु ये आलीशानके अभावमें अनाट्ट अवस्थामें निपतित

और ध्वस्तमाय हैं। जनसाधारणकी जानकारीके लिये एक एक करके कई वेधालयोंके यन्त्रादिका उल्लेख किया गया है।

दिल्ली नगरके प्राचोरके वहिर्भागमें १। मील दूर पर जुम्मा मसजिदके ३२' दक्षिण-पश्चिममें दिल्लीका मानमन्दिर अवस्थित है। इहूँलैण्डके ग्रीनविच (Greenwich) मानमन्दिरसे यह स्थान अक्षां २८' ३८' ३० तथा देशां ७७' २' पू० दूरवर्त्तों है। ये कई खण्ड खण्ड अट्टालिकायें विभक्त हैं। एक एक अट्टालिकायें एक या अधिक यन्त्र रखे हुए हैं। इन सब यन्त्रोंके कुछ विवरण यन्त्रशब्दमें लिखा जा चुका है। इससे यहाँ अधिक नहीं लिखा गया। केवल नाम और परिमाण निर्देश कर संक्षेपमें उनका परिचय दिया जाता है।

(१) सम्राट्यन्त्र (Equatorial dial) या नाड़ी-वलय। इसका शंकु ११८ फीट ७ इंच लम्बा, मूल-देश १०४ फीट २ इंच और ऊँचाई ५६ फीट ६ इंच है। यह प्रस्तरप्रथित है। किन्तु स्थान-स्थानमें टूट गया है।

(२) उक्त यन्त्रसे कुछ दूर उत्तर-पश्चिममें और एक अपेक्षाकृत छोटा नाड़ी वलय है। इसके बीचमें शङ्कु है। इस पर चढ़नेके लिये सीढ़ी लगी है। इसके शङ्कु के दोनों पार्श्वमें ही समकेन्द्रके अर्द्धवृत्त हैं। शङ्कु वहि-वृत्तके व्यास स्वल्प ३५ फीट ४ इंच लम्बा है। वहिर्गोलका एक एक अंश $3\frac{98}{100}$ इंच है। वहिर्वृत्तसे मध्यवृत्तकी व्यवधान रेखा २ फीट ६ इंच है। प्रत्येक अंश १० भागमें और प्रत्येक भाग ६ कला (Minute) में विभक्त है।

इस शृङ्के उत्तरी प्राचोरमें और पश्चिम ओर की एक स्वतन्त्र अट्टालिकायें खगोलस्य नक्षत्रोंकी ऊँचाईके निरूपणार्थ याम्योत्तरैवाविलम्बित एक यन्त्र है। यह द्विवृत्तपाद (Double quadrant) है। इसका एक एक अंश $2\frac{1}{2}$ इंच है और उसमें कलाविभाग है।

(३) इहूँनाड़ीवलय-यन्त्रके दक्षिण कुछ दूर पर "उसतुयाना" नामकी दो अट्टालिकायें हैं इनसे खगोलस्य

महाभूतोंके उपरान्त और दिग्मंज (azimuth) निरूपण किया जाता है।

(५) इन दो गृह और गृहमाड्योपलयेके मध्यस्थलमें नाशका नामक चंत्ल प्रतिष्ठित है। यह कुप्युज (Cone-ave)-गृह मध्यगुण है। इसमें लगेरालके निम्नाखंकी रेखा अङ्कित है। याग्योत्तररेखायें १५ अंशकी दूरी पर स्थापित है।

जयपुरनगरमें इस समय चित्रने उद्योतिरिक्त चंत्ल विद्यमान हैं, उनमें निम्नलिखित चंत्ल प्रथम हैं—

१, याग्योत्तरमिचियंत्ल (Meridional wall)। इस चंत्लके द्वारा उद्योतिरिक्तके याग्योत्तर अतिक्रमकालोन (Transit on the meridian) उपशान्तमें, सूर्यको नदत्तम मांति (greatest declination) और स्थानीय अक्षांश (Latitude) निर्णय होता है। चर्त्तमानकालमें गुरोप आदि स्थानोंमें Mural circle नामक चंत्ल द्वारा ये सब उद्देश्य साधित होते हैं। पर्यवेक्षणिका भूमिके ऊपरी भागमें एक प्राचीर है। यह प्राचीर सम्पूर्ण रूपमें याग्योत्तर रेखा पर अवस्थित है। प्राचीरके पूर्वागलमें २० फुट व्यासाखं विशिष्ट द्वै गृहपाद (Quadrant) और पश्चिमभागमें १६ फीट १० इंच व्यासाखं विनिष्ट एक गृहाखं विहित है। परिधिवां मांर परधरसे निर्मित हुई हैं और अंश (Degree), कला (Minute) प्रभृतिमें विभाजित हैं। परधरमें रीढ़ कर उसमें सोमा प्रविष्ट करा कर विभागोंकी रेखायें अङ्कित हुई हैं। गृहके केन्द्रस्थानमें एक कोल गड़ो हुई है। उसमें सूत्र बांध कर नारे विभागोंकी पर उस सूत्रके समभागकी सुमाया जा सकता है। यदि किसी उद्योतिरिक्तके उपशान्त निर्णय करनेकी आवश्यकता होती है तब इसकी याग्योत्तर रेखा अतिक्रम करनेके समयकी प्रमोक्षा कम्पनी होती है। जब उद्योतिरिक्त याग्योत्तर रेखा पर उपस्थित होता है, तब सूत्रका समभाग किसी विभागोंमें पहुँचनेसे कोल और यह उद्योतिरिक्त सममूलपात पर अवस्थित दिखाई देगा, तब यह विभागोंका गृहाखंके निकटकी सोमामें कई अंश दूर पर देख लेगा। यह अंश मांका उक्त उद्योतिरिक्तकी उपशान्तकीयेंत करे।

निम्नलिखित उदाहरणें जयपुरमें

है। प्रतिदिन मध्यरात्रिकालमें याग्योत्तर रेखा अतिक्रम कालोन सूर्यका उपशान्त देख लेता होता है। १० अंशसे यह बाढ़ देतेसे अक्षरिक्तके दूरस्थ अर्धात् नतांग मिलता है। लगातार कई महिने तक इस तरह उपशान्तने निर्णय करते करते सबसे जो कम और सबसे जो अधिक है, उन दोनोंका अन्तर ले कर उसका भागा प्रथम करता होगा। यही विपुवरेखा और रात्रियलयेके अंशगत कोणका परिचायक है। अर्थात् विपुवरेखा लघुतम नतांगमें अवस्थित है और महत्तम नतांगमें अवस्थापकके मध्य बिन्दुसे हो कर गई है।

सन १७२७ ईमें महाराज जयसिंहने जयपुरकी रविपरमाकांशित (Obliquity of the ecliptic) २३ डिग्री २८ मिनट निर्णय की है। उस समय यह यगार्थमें २३ डिग्री २८ मिनट २६ सेकेण्ड (विकला) थी। अतएव यह गणनाका सामान्य व्यतिक्रम मात्र जानना होगा। परमाकांशितमें सूर्यका लघुतम नतांग जोड़ देनेसे जयपुरका अक्षांश (Latitude) मिल जाता है। लघुतम नतांग किञ्चिदधिक साढ़े तीन अंश मात्र है। इसीलिये जयपुरका अक्षांश २० डिग्री है। इससे यादक समझ सकते हैं, कि सूर्य जयपुरके खलहरिकमें अर्धात् गिर पर कभी उपस्थित नहीं होता। उमका चूड़ांत उत्तर प्रवृत्ति जयपुरके अंगसे ३१ डिग्री दक्षिणमें हो रह जाता है। अतएव जयपुर समकटिबंध (Temperate zone) में अवस्थित है।

मिस्त्रियंत्लकी ऊंचाई प्रायः १४ हाथ है और लम्बाई इसके दुगुनेसे भी कुछ अधिक है। अतएव पर्यवेक्षणकी सुविधाके लिये सारी गृहपरिधिवांकी बगल में मोड़ियां बनी हैं। इन्हीं मोड़ियोंसे ऊपर चढ़ा जा सकता है।

२, "माड्योपलयेचंत्ल"—इसके विषयमें पहले कुछ वर्णन लिखा जा चुका है। जयपुरके माड्योपलयेचंत्लकी वीठ पर त्रिभोज्य विधातमें वेतालयेका भारमकाल निर्णीत होता है, हमोंने यह क्विटा यहाँ उद्धृत कर दी जाती है।

पर्यायान्तम पर्यायान्तमोत्तरमा उपलयेचंत्ल।

श्री अक्षरिक्त इत्यधिकपरिधिचंत्ल चंत्ल की।

लुप्त्या घर्म विरोधिनोऽध्वरमुखैश्चाधीर्ष्य वेदाध्वमि-
 धर्मं न्यस्य घरातले रचितवान् यन्त्रान् मुखोधान् बहून् ॥
 गोलप्रयुक्तोर्गने चराणां निशासया श्रीजयसिंहदेवः ।
 आशातवान् यन्त्रविदः पुनस्ते चक्रुर्हि याम्योत्तरमित्तिर्षम् ॥
 सवज्रलेपोशुविशुद्धपारव-द्रयस्थ-नाडीवलयेकैन्द्रम् ।
 ध्रुवामिकैन्द्रध्रुवमार्गं कीलं कीलाप्रमासुचिनाडीकाद्यम् ॥
 पितामहोच्छिद्यमथाश्र भाकां रोहवरोहान् नवनन्दनवृत्ताय ।
 प्रतापसिंहश्च विदुष्य विदम्यस्तान् कारणामास मुपार्ध्वं युग्मे ॥
 भारोपमन्त्रेच्छगणस्य वृद्ध-भूमारशान्त्यै पुनरादिदेवः ।
 इक्ष्वाकुवशेऽन्यत्रतीयं पूर्वविवारितान् देवगणानयुक्तम् ॥
 घर्माधिकारी विधिदेवकृष्णः प्रायुकि संरोहितघर्मपादाः ।
 यन्त्रेषु वेदाङ्गविभूयेषु द्वितीयं यन्त्रोद्धरण्यकार ॥
 यस्मिन्नदि चतुर्षुः पद्मविधिवारक्षेणु पक्षोपधिन्-
 शान्त्यैत्रिमिरन्यतः स्मृतिज्ञवः स्यात् साष्टिशकन सः ।

नन्दन्त्यतिरपययुक् स च क्षत्रो विश्वन्नवारोपययुक्
 वातलध्वन्न भमन्ययुक्तमयवेयाऽस्त्योद्भूतलपोत्पितिः ॥”

अथ यंत्रस्थापनका पक्ष, तिथि, चार और नक्षत्र
 द्वारा सिद्ध होता है, कि इस दिन कृष्णपक्ष, नवमी,
 शुक्रवार और कृत्तिका नक्षत्र विशिष्ट तथा १६४० शक
 (अर्थात् १६१८ ई०) को घटना है ।

उपयुक्त कवितासे मालूम होता है, कि यन्त्रालयके
 वर्तमान सब यंत्र अकेले जयसिंह द्वारा ही नहीं बने
 हैं, उनके पौत्र प्रतापसिंहने अनेक यंत्र बनवाये थे ।
 जयसिंहके समयसे श्रीमाधोसिंहके समय तक प्रत्येक
 राजाने ही अल्पाधिक परिमाणसे यंत्रालयकी श्रौचि-
 और उन्नतिसाधन-करनेमें अर्थ व्यय किया है । उक्त
 यंत्रालयोंमें जिस उद्देश्यसे जो यंत्र निर्मित और
 जिस राजाके समयमें स्थापित या संस्कृत हुए हैं,
 उनका विवरण नीचे दिया जाता है ।

वेधालयके यंत्रोंकी सूची ।

संख्या	नाम	किससे निर्मित	कहाँ रखे गये	कसा व्यवहार	किस राजाके राज्यमें	किस राजाके राजत्वमें पुनः संस्कृत या संवर्द्धित
१	याम्योत्तरमित्तिर्षयंत्र	इमारत	ज्योतिषिक यंत्रालय	उन्नतांशनिर्णय	सवाई जयसिंह	सवाई रामसिंह
२	पट्टांशयंत्र	"	"	"	"	"
३	रामयंत्र	"	"	उन्नत अंश और दिग्गंशनिर्णय	"	सवाई माधवसिंह (२य)
४	दिग्गंशयंत्र (Azimuth circle)	"	"	दिग्गंशनिर्णय	"	"
५	सम्राट्टयंत्र	"	"	कालनिरूपण, नतकाल (hour angle) क्रान्ति	"	"
६	नाडीवलय (Equatorial dial)	"	"	कालनिरूपण, नतकाल	"	सवाई प्रतापसिंह
७	राशिचलय	"	"	खगोलीय शर, प्राचिमा	"	"
८	क्रांतिवृत्त	" और पोतल	"	"	"	सवाई माधवसिंह (२य)
९	कपालीयंत्र (Clepsydra)	इमारत	"	"	"	"
१०	जयप्रकाश	"	"	"	"	"
११	उन्नतांशयंत्र	पोतल	"	उन्नतांशनिर्णय	"	"
१२	चक्रवन्त्र (Vertical circle)	"	"	क्रान्ति नतकाल	"	"
१३	यंत्रराज	"	" और जादूघर	उन्नतांश और अन्यान्य गणना	"	"

महात्मीके उभयान्त और दिग्मंज (azimuth) निरूपण किया जाता है।

(५) इन दो गृह और गृहप्राप्तीवल्लयके मध्यस्थल में द्वाभ्या नामक वंश प्रतिष्ठित है। यह वृषभ (Concord) गृह मध्य स्थल है। इसमें वायोसरेखायें १५ अंशकी दूरी पर स्थापित है।

जयपुरनगरमें इस समय चित्रने ज्योतिषिक वंश विद्यमान है, उनमें निम्नलिखित वंश प्रधान है—

१, वायोसरेखानिर्णय (Meridional wall) । इस वंशके द्वारा ज्योतिषिकीके वायोसरेखानिर्णयकालीन (Transit on the meridian) उभयान्तमें, सूर्यको महत्तम क्रांति (greatest declination) और स्थानीय अक्षांश (Latitude) निर्णय होता है। वर्तमान कालमें युरोप आदि स्थानोंमें Mural circle नामक वंश द्वारा ये सब उद्देश्य साधित होने हैं। पर्यवेक्षणिका भूमिके ऊपरी भागमें एक प्राचीर है। यह प्राचीर संपूर्ण रूपसे वायोसरेखा पर अवस्थित है। प्राचीरके पूर्व-भागमें २० फुट व्यासायें विहित हैं। चतुर्भाज (Quadrant) और परिभ्रमणालमें १६ फीट १० इंच व्यासायें विहित एक चतुर्भाज चित्रित है। परिधिमें मांश परचरसे निर्मित हुई हैं और अंश (Degree), कला (Minute) प्रभृतिमें विभक्त है। परचरमें शीघ्र कर उसमें सोमा प्रविष्ट करा कर विभागोंकी रेखायें अंकित हुई हैं। चतुर्भाजके अक्षस्थानमें एक कोल गड़ी हुई है। उसमें सूत्र बांध कर सारे विभागोंमें पर उस सूत्रके समभागकी सुमाया जा सकता है। यदि किसी ज्योतिषिकके उभयान्त निर्णय करने में आवश्यकता होती है तब इनको वायोसरेखा अतिदूरे करनेके समयको प्रयोग किया जाता है। जब ज्योतिषिक वायोसरेखा पर उपस्थित होता है, तब सूत्रका समभाग किसी विभागान्तमें पहुँचनेमें कोल और यह ज्योतिषिक समसूत्रपाल पर अवस्थित दिखाई देगा, तब पर विभागान्त चतुर्भाजके निकटकी सोमामें कई अंश दूर पर देखा जाता है। यह अंश संख्या उक्त ज्योतिषिककी उभयान्तकोलके है।

निम्नलिखित उपायसे जयपुरमें अक्षांश निर्णय हुआ

है। प्रतिदिन मध्याह्नकालमें वायोसरेखा अतिदूर कालीन सूर्यका उभयान्त देखा जाता है। १० अंशसे यह माप देनेसे अक्षस्थलके दूरतय अर्थात् अक्षांश मिलता है। समाप्ता कई महीने तक इस तरह उभयान्तमें निर्णय करने करते सबसे जो काम और सबसे जो अधिक है, उन दोनोंका अन्तर ले कर उसका भाषा ग्रहण करता जाता है। यही विद्युपरेखा और राजिवल्लयके अंतर्गत कोणका परिचायक है। अर्थात् विद्युपरेखा लघुतम अक्षांशमें अवस्थित है और महत्तम अक्षांशमें अवस्थानके मध्य बिन्दुमें हो कर गई है।

सन १०२७ ई०में महाराज जयसिंहने जयपुरकी रवि-परमाश्रित (Obliquity of the ecliptic) २३ डिग्री २८ मिनट निर्णय की है। उस समय यह यथार्थमें २३ डिग्री २८ मिनट २६ सेकेण्ड (विकला) थी। अतएव यह गणनाका सामान्य व्यतिक्रम मात्र जानना होगा। परमाश्रितमें सूर्यका लघुतम अक्षांश जोड़ देनेसे जयपुरका अक्षांश (Latitude) मिल जाता है। लघुतम अक्षांश किञ्चिदधिक साढ़े तीन अंश मात्र है। इसीलिये जयपुरका अक्षांश २० डिग्री है। इससे पाठक समझ सकते हैं, कि सूर्य जयपुरके अक्षरिक्तमें अर्धान्तर पर कभी उपस्थित नहीं होता। उसका अक्षांश उत्तर अर्धगोलमें जयपुरके अक्षांशसे ३० डिग्री अक्षांशमें ही रह जाता है। अतएव जयपुर समकटिबंध (Temperate zone) में अवस्थित है।

विलयलको अक्षांश प्रायः १४ हाथ है और लम्बाई इसके दुगुनेसे भी कुछ अधिक है। अतएव पर्यवेक्षणकी सुविधाके लिये सारी चतुर्भ्रमणिकी बगल में स्तंभियाँ बनी हैं। इन्होंने स्तंभियोंके ऊपर चढ़ा जा सकता है।

२, "माहीवल्लयवंश"—इसके विषयमें पहले कुछ वर्णन किया जा चुका है। जयपुरके माहीवल्लयकी चौड़ाई पर जिसके अक्षितारें अक्षरद्वारा अक्षरद्वारा निर्णय होता है, इसमें यह अक्षितारें अक्षरद्वारा ही जानी हैं।

* अक्षरद्वारा अक्षरद्वारा अक्षरद्वारा अक्षरद्वारा ।

अक्षरद्वारा अक्षरद्वारा अक्षरद्वारा अक्षरद्वारा ।

सुप्त्या धर्मविरोधिनोऽध्वरमुल्लैश्वाचीर्षं वेदाज्जमि-
धर्मं न्यस्य धरातले रचितवान् यन्मात्रं सुनोधानं बहून् ॥
गोक्षप्रवृत्तौ गने चराणां जिज्ञासया श्रीजयसिंहदेवः ।
आशासवान् यन्त्रविदः पुनस्ते चक्रुर्हि याम्बोत्तरमितिलक्षम् ॥
सब्रलेपोशुविशुद्धपारश्व-द्वयस्य-नाड़ीवलयेककेन्द्रम् ।
ध्रुवामिकेन्द्रं च विभागं कीलं कीलाप्रमासुचिनाड़ीकाद्यम् ॥
वितामहोच्छिद्यमाश्रमाकां रोहवरोहान् नवनन्दनवृत्तान् ।
प्रतापसिंहश्च विबुध्य विदम्यस्तान् कारयामास सुपार्ष्ण्युरमे ॥
मारोपमन्लेच्छगणस्य वृद्ध-भमारशान्त्यै पुनरादिदेवः ।
इत्थावुयशेऽप्यनतीर्षः पूर्ववितारितान् देवगणानपुष्टक ॥
धर्माधिकारी विश्वेश्वरकृष्णः प्रापुक्ति संरोहितधर्मपादाः ।
यन्त्रेषु वेदान्तविभूयेषु द्वितीय यन्त्रोद्धारणक्षर ॥
यस्मिन्नादि चतसृषु पक्षविधिवारक्षेषु पक्षोपनिष्प-
न्नान्यैस्त्रिमिरन्वितः स्मृतिप्रणयः स्यात् साष्टिशकस्य सः ।

नन्दप्लित्थितरययुक् स च ज्ञानो विश्वप्नवारोपययुक्
वातत्वज्जन्म भमन्ययुक्तमयवेयाऽप्योद्धृतत्वोत्थितिः ॥”
अथ यंलस्थापनका पक्ष, तिथि, धार और नक्षत्र
द्वारा सिद्ध होता है, कि इस दिन कृष्णपक्ष, तयमी,
शुक्रवार और कृत्तिका नक्षत्र विशिष्ट तथा १६४० शक
(अर्थात् १६१८ ई०) को घटना है ।

उपर्युक्त कवितासे मालूम होता है, कि यन्त्रालयके
वर्षमान सब यंल अकेले जयसिंह द्वारा हो नहीं बने
हैं, उनके पौत्र प्रतापसिंहने अनेक यंल बनवाये थे ।
जयसिंहके समयसे श्रीमाधोसिंहके समय तक प्रत्येक
राजाने हो अल्पाधिक परिमाणसे यंलालयकी श्रीवृद्धि
और उन्नतिसाधन-करनेमें अथं ध्यय किया है । उक्त
यंलालयोंमें जिस उद्देश्यसे जो यंल निर्मित और
जिस राजाके समयमें स्थापित या संस्कृत हुए हैं,
उनका विवरण नीचे दिया जाता है ।

वेधालयके यंत्रोंकी सूची ।

संख्या	नाम	किससे निर्मित	कहाँ रहे गये	कसा व्यवहार	किस राजाके राज्यमें	किस राजाके पुनः संस्कृत या संवर्द्धित	राज्यमें
१	याम्बोत्तरमितियंल	इमारत	उद्योतिषिक यन्त्रालय	उन्नतांशनिर्णय	सवाई जयसिंह	सवाई रामसिंह	
२	पट्टांशयंल	"	"	"	"	"	
३	रामयंल	"	"	उन्नतंश और दिगंशनिर्णय	"	सवाई माधवसिंह (२५)	
४	दिगंशयंल (Azimuth circle)	"	"	दिगंशनिर्णय	"	"	
५	सम्राट्यंल	"	"	कालनिरूपण, नतकाल (hour angle) फ्रान्ति	"	"	
६	नाड़ीवलय (Equatorial dial)	"	"	कालनिरूपण, नतकाल	"	सवाई प्रतापसिंह	
७	राशिवलय	"	"	खगोलीय शर, द्रविमिमा	"	"	
८	क्रांतिवृत्त	" और पोतल	"	"	"	"	सवाई माधवसिंह (२५)
९	कपालीयंल (Clepsydra)	इमारत	"	"	"	"	
१०	जयप्रकाश	"	"	"	"	"	
११	उन्नतांशयंल	पोतल	"	उन्नतांशनिर्णय	"	"	
१२	चक्रपन्त्र (Vertical circle)	"	"	क्रांति नतकाल	"	"	
१३	यंत्रराज	"	" और जादूघर	उन्नतांश और अन्यान्य गणना	"	"	

संख्या	नाम	विशेष चिह्न	कहाँ लगे गये	पेशा स्वरूप	दिश राजकी राज्यमें	दिश राजकी जुन: संवत्स का संदर्भ
१४	पद्यपत्र (Graduated scale)	घोसल या काष्ठ	उद्योगविद्यार्थीके घरमें	कालनिरूपण	सवाई माधवसिंह (१म)	
१५	ध्रुवचक्रमंत्र और तुरीय वंश (Quadrant)	पीतल	आदुघर	का स्थान	परिहृतगण	
१६	गोलबिंदु (Armillary sphere)	"	"	"	सवाई माधवसिंह (२म)	
१७	अपवाप्य बहुतेरे परत जैसे	जपसिंहका चतुर्भुजा, पल्लभापंत या ध्रुवघटी, अमपंत	(अंतिम दो इस समग्र उष्ण स्थि में गये हैं)			

सूत्रोंमें जो कई चक्रोंके नाम उल्लेख किये गये, उनके सिवा और भी कई घोलल या काष्ठके बने चक्र आदुघरों और उद्योगविद्यार्थीके घरमें रखे हुए हैं। सूत्रोंमें निर्दिष्ट उद्देश्यके सिवा और भी अनेक विषयों को गणना एक चक्र द्वारा स्थापित होती है। उक्त चक्र आदिके सिवा जपसिंहने 'जोग मधुमद' सूत्रों संग्रह को है। यह ग्रहनिर्णयके लिये विशेष फलप्रद है।

अन्वय विषय स्वयं स्पष्टमें देखो।

अपपुरके राजमहलके तिलोलिया दरवाजा नामक तोरण द्वार पार कर कई गैर उत्तर ओर जान पर प्राचीर देखिन पक चतुर्गुरा दिखाई देता है। इसकी लम्बाई पार मी हाथ और चौड़ाई दो सौ साठ हाथ होगी। इसी जगह उद्योगविक चक्र बनने हैं। इसके उत्तर ओर राजभवन और कचहरी इमारत हैं, पश्चिम ओर कई देवालये, पूर्व ओर भवनाला और दक्षिण ओर कई देवालये हैं। इन भवनाला और मंदिरके बाह्य दो बाजार हैं। कोलाहनपूर्व भवनाले के प्रभागमें ही यह अवस्थित है; किंतु चतुर्गुरेके मध्यमें उपस्थित होने पर किसी तरहका शोरमुल या कोलाहन सुनाई नहीं देता, बिलकुल जौन और मोरप निस्तप्य। शक्ति-कोलाहनराज अपसिंह राजकार्यको अंशतोते सुदकारा या कर इस विषय-लेख स्थानमें समाप्त हो कर मोरप गये बलामें समाप्त दिगाने थे।

महाराज बाबां जपसिंहने अपपुर नगरके निर्माण और उद्योगविक संस्थाप्य प्रतिष्ठाके विषयमें मिलनीपुत्र

(Engineering skill) का विशेष परिचय दिया है। उद्योगविक सम्यधमें जगन्नाथ आदि परिहृतोंको गणना आदि और प्रंच प्रणयन आदि कार्योंमें आदिष्ट रहने पर जो संशालयका स्थापयानभार वे स्वयं भियाई करने थे। कहा गया है, कि उनके बंगाली दोबान विद्यापार इस विषयमें विशेष उद्योगका थे। अपपुरके उद्योगविक संशालय भारतवर्षकी अस्मितीय कीर्ति है।

महाराज जपसिंहने अपपुरके सिवा दिल्ली, मथुरा, बनारस और उत्तम नगरमें भी अस्मितीय परिमाणसे उद्योगविक संस्थाप्य निर्माण किये थे। काश्मीरके मानमंदिरके परत आदि अपसिंह द्वारा स्थापित हैं। बहुतेरे समकाली हैं, कि काश्मीरके मानमंदिरके चक्र महाराज मानसिंहके द्वारा स्थापित हैं, किंतु यह बात ठीक नहीं। मानमंदिरका प्रासाद अपश्य हो महाराज मानसिंहने तोर्णवालिधों तथा विद्यापिंधियोंको सुविद्याके लिये तत्पार कराया था। महाराज जपसिंहने उद्योग दो परत स्थापन किया था। अपसिंहके पदने अपपुरमें ये देवदेवादि शालय अस्मयन करनेवाले पदों का कर इसी प्रासादमें उदरते थे।

प्रासाद के पार।

उद्योगविक संस्थाप्यको गतिविधिकी गतिविधिकाके विषयमें पारवारक समग्रप्राप्तो प्राचीनकालमें विशेषकरने संभार हो नहीं गये हैं। इतिहासकी साधिकाका करने पर मालूम होता है, कि ईसवी ३०० वर्ष पूर्व युरोपमें कहीं जो संस्थाप्य प्रतिष्ठित नहीं थे। फिर भी

दे। एक दार्शनिक सर्वासाधारणके जगत्की गठनके सब धर्म ज्योतिष्क तत्त्व वितरणके माभसलें कभी कभी गहनज्ञानादिकी गति और स्थिति लक्ष्य कर वह विषय लिखिबद्ध कर रखते थे। वे गतिनिर्णयके लिये अति सामान्य भावसे यन्त्रादिका व्यवहार करते थे। इसके बाद ये इन सब खण्डखण्ड विषयोंको एकत्र कर जगत्की गठन और प्रदस्थान-निर्णयविषयमें साधारणको प्रवास शुद्धि हुई और धीरे धीरे ज्योतिषशास्त्रकी ज्ञानोन्नति होती रही। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अलेक्जेंड्रियामें सबसे पहले विद्यालय प्रतिष्ठित हुआ। चार सदी तक तो विशेष उद्यमके साथ इस मानमन्दिरमें प्रदस्थान निरूपण कार्य चलता रहा। इसके बाद अर्थात् २री शताब्दीमें किसी समय यह धिलुप्त हो गया।

यहां यूरोपीय ज्योतिषशास्त्रके प्रतिष्ठाता हिपार्कासने (Hiparchus) पूर्ववर्ती दार्शनिकों द्वारा आलोचित प्रद-वेधादिकी आलोचना कर उनका वाधाधर्ष निर्णय किया था। इनके बाद और भी कई ज्योतिर्गिद्दने इन सब प्रहोंका पर्यायिक तत्त्व उद्घाटन कर ज्योतिषशास्त्रालोचनाको और भी उन्नति और प्रसारशुद्धि की। ई०सन्की दूसरी शताब्दीमें भौगोलिक टलेमीकी गवेषणाके फलसे अलेक्जेंड्रियाका वेधालय उन्नतिकी चरमसोमा तक पहुँचा था।

यथार्थमें इसी समयसे ज्योतिषशास्त्रकी आलोचना का पथ तय्यार हुआ। उसीके फलसे अरबों राजाओंके उत्साहसे पहले पहल बुगदाद नगरमें और दमस्कसमें वेधालय स्थापित हुए। ६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें खलीफा अलमामूनने बहुत अर्धा व्यय कर इन दो अष्टालिकाओंका निर्माण किया। इसके बाद करीब १००० ई०में प्रसिद्ध ज्योतिषीने इब्नखुनिशके ज्योतिर्निर्णयक ह्यानचर्चाके लिये खलीफा हकीम कायरो नगरके समीप मेकहदमके ऊपर एक वेधमन्दिर बनवाया। इस मन्दिरमें ही सूर्य, चंद्र और प्रहोंकी गति और दूरत्व परिमाण सूची (Hakimite table) सङ्कलित हुई थी। अरबोंके ज्योतिषविषयमें आगे बढ़ते देख मुगल-वंशीय खां लोगेने उनके पढ़ा अनुसरण किया और उनके चलते फारसके उत्तरपश्चिम मेराघा नगरमें १२६०

ई०में एक सर्वोत्कृष्ट वेधशाला निर्मित हुई। हलाकू खां इस मन्दिरके प्रतिष्ठाता और प्रसिद्ध ज्योतिर्गिद्द नाशिर उल दीन तुपा इसके परिदर्शक हैं। तुपीके चलते यहां "इलेह खानिक" सूची (Uobkhanic tables) तय्यार हुईं। इसके बाद १५वीं शताब्दीमें राजेश्वर्यपरि-त्वागी मुगल-राजकुमार मोरजा उलप्रवेगने समरकन्दमें एक वेधमन्दिरकी प्रतिष्ठा कर प्रदसम्बन्धीय एक नई सूची (Planetary tables) और नक्षत्रसूची तय्यार की। अम्बरराज जयसिंहके संगृहीत "जोज महम्मद" नामकी प्रदगणनाकी सूची इस विषयमें बड़ी उपयोगी है।

१५वीं शताब्दीमें यूरोपमें विद्वान चर्चाका सूत्रपात हुआ। उस समय नक्षत्रोंकी गतिनिर्णयके लिये ज्योति-योक्त प्रदवेधके निरूपणकी आवश्यकता जान पड़ी। यद्यपि उसके दो सौ वर्ष पहलेसे कोई कोई आदमी स्वतः प्रवृत्त हो प्रदगतिका प्रदर्शन करते थे और विश्व-विद्यालयोंमें अध्यापक भी उस विषयमें धकृता होते थे, फिर भी, उस समय स्वतंत्र वेधशाला निर्माणके साथ ज्योतिष्कमण्डलका पद्यविज्ञान कार्य निर्वाह होता था। सन् १४७२ ई०का नुरेम्बर्ग नगरमें यूरोपमें सर्वप्रथम वेधशाला निर्मित हुई। यानी हाइ वेधर एक धनी व्यक्ति इसके प्रतिष्ठाता हैं। सन् १५०४ ई०में प्रतिष्ठाताके मृत्युकाल तक इस वेधमन्दिरमें विशेष उद्यमके साथ परिदर्शन कार्य चला था। विद्यमान ज्योतिषी रेजि-ओमण्डानाके सहयोगसे चेलघरने प्रदगतिगणनाके विषयमें कई अभिनव तर्कोंका आविष्कार किया। यथार्थमें इस वेधालयकी प्रतिष्ठा ही यूरोपमें प्राकृत ज्योतिष (Practical Astronomy) आलोचनाके पुनरुत्पद्यका समय है।

इसके बाद १६वीं शताब्दीमें यूरोपमें दो प्रसिद्ध वेधमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा हुई। उनमें एक ताईका प्रादि (Tycho Brahe) द्वारा डेनमार्कवालोंके अधिष्ठत ह्युपन द्वीपमें (१५७६-१५८७ ई० तक विशेष उद्यमसे परिदर्शन हो रहा था) और दूसरा काशोल नगरमें थोपे लेण्ड्रेम विलियम द्वारा (१५६६-१५६७ ई०) प्रतिष्ठित हुआ था। इन दो वेधमन्दिरोंके वेधोपलक्ष्यमें यूरोपमें

दे। एक दार्शनिक 'सर्वसाधारणको जगत्की' गठनके सब धर्म 'ज्योतिष्क तत्त्व वितरणके मानससे' कमी कमी गहनक्षत्रादिकी गति और स्थिति लक्ष्य कर यह विषय लिपिवद्ध कर रखते थे। वे गतिनिर्णयके लिये अति सामान्य भाषसे यंत्रादिकी व्यवहार करते थे। इसके बाद ये इन सब खण्डखण्ड विषयोंको एकत्र कर जगत्की गठन और प्रदस्थान-निर्णयविषयमें साधारणको प्रवास वृद्धि हुई और धीरे धीरे ज्योतिषशास्त्रकी ज्ञानोन्नति होती रही। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अलेक्जेंड्रियामें सबसे पहले विद्यालय प्रतिष्ठित हुआ। सार संदी तक तो विशेष उद्यमके साथ इस मानमन्दिरमें प्रदस्थान-निरूपण कार्य चलता रहा। इसके बाद अर्थात् २री शताब्दीमें किसी समय यह विलुप्त हो गया।

यहां यूरोपीय ज्योतिषशास्त्रके प्रतिष्ठाता हिपाकॉस्ने (Hiparchus) पूर्ववर्ती दार्शनिकों द्वारा आलोचन प्रद-वेधादिकी आलोचना कर उनका यावार्थ्य निर्णय किया था। इनके बाद और भी कई ज्योतिर्निर्द्गने इन सब प्रदोंका पर्यायिक तत्त्व उद्घाटन कर ज्योतिषशास्त्रा लोचनोंकी और भी उन्नति और प्रसारवृद्धि की। ई०सन्की दूसरी शताब्दीमें भौगोलिक टलेमीको गवेषणाके फलसे अलेक्जेंड्रियाका वेधालय उन्नतिकी चरमसोमा तक पहुँचा था।

यघार्थमें इसी समयसे ज्योतिषशास्त्रकी आलोचना का पथ तयार हुआ। उसीके फलसे अरबों राजाओंके उत्साहसे पहले पहल बुगदाद नगरमें और दमस्कसमें वेधालय स्थापित हुए। ६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें खलीफा अलमामूनने बहुत धर्माध्यय कर इन दो अट्टा लिकाओंका निर्माण किया। इसके बाद करीब १००० ई०में प्रसिद्ध ज्योतिषीने इब्नखुनिशके ज्योतिर्निर्णयक ज्ञानवर्चाके लिये खलीफा हकीम कायरो नगरके समीप मेकहूमके ऊपर एक वेधमन्दिर बनवाया। इस मन्दिरमें ही सूर्य, चंद्र और प्रदोंकी गति और दूरत्व परिमाणक सूची (Hakimite table) सङ्कलित हुई थी। अरबोंका ज्योतिषविषयमें आगे बढ़ते देख मुगल-वंशीय डॉ लीगोने उनके पदोंका अनुसरण किया और उनके पक्षसे फारसके उत्तरपश्चिम मेताघा नगरमें १२६०

ई०में एक सर्वोत्कृष्ट वेधशाला निर्मित हुई। हलाकू डॉ इस मन्दिरके प्रतिष्ठाता और प्रसिद्ध ज्योतिर्निर्द्ग नाशिर उल दीन तुपा इसके परिदर्शक हैं। तुपीके पक्षसे यहां "हलौह खानिक" सूची (Hobkhanic tables) तयार हुई। इसके बाद १५वीं शताब्दीमें राजेश्वर्यापरि-त्यागी मुगल-राजकुमार मोरजा उलघेगेने 'समरकन्द' में एक वेधमन्दिरकी प्रतिष्ठा कर प्रदसम्बन्धीय एक नई सूची (Planetary tables) और नक्षत्रसूची तयार की। अश्वरराज जयसिंहके संगृहीत "मौज महम्मद" नामकी प्रदगणनाकी सूची इस विषयमें बड़ी उपयोगी है।

१५वीं शताब्दीमें यूरोपमें विद्वान चर्चाका सूत्रपात हुआ। उस समय नक्षत्रोंकी गतिनिर्णयके लिये ज्योति-योक्त प्रद्वेधके निरूपणकी आवश्यकता जान पड़ी। यद्यपि उसके दो सौ वर्ष पहलेसे कोई कोई आदमी स्वतः प्रयत्न ही प्रदगतिका प्रदर्शन करते थे और विश्व-विद्यालयोंमें अध्यापक भी उस विषयमें घकृता होते थे, फिर भी, उस समय स्वतंत्र वेधशाला निर्माणके साथ ज्योतिष्कमण्डलोका पर्यवेक्षण कार्य निर्वाह होता था। सन् १४७२ ई०का नूरेम्बार्ग नगरमें यूरोपमें सर्वप्रथम वेधशाला निर्मित हुई। यानो हाई वेल्पर एक धनी व्यक्ति इसके प्रतिष्ठाता हैं। सन् १५०४ ई०में प्रतिष्ठाताके मृत्युकाल तक इस वेधमन्दिरमें विशेष उद्यमके साथ परिदर्शन कार्य चला था। विद्ययात ज्योतिषी रेजि-ओमण्टानाके सहयोगसे घेलघरने प्रदगतिगणनाके विषयमें कई अभिनव तत्त्वोंका आविष्कार किया। यघार्थमें इस वेधालयकी प्रतिष्ठा ही यूरोपमें प्राकृत ज्योतिष (Practical Astronomy) आलोचनाके पुनरन्वुदयका समय है।

इसके बाद १६वीं शताब्दीमें यूरोपमें दो प्रसिद्ध वेधमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा हुई। उनमें एक ताईको ब्राहि (Tycho Brahe) द्वारा डेनमार्कवालोंके अधिभूत ह्युपन झोपमें (१५७६-१५२७ ई० तक विशेष उद्यमसे परिदर्शन हो रहा था) और दूसरा काशोल नगरमें थो लेएडप्रेम विलियम द्वारा (१५६६-१५६७ ई०) प्रतिष्ठित हुआ था। इन दो वेधमन्दिरोंके वेधोपलक्षण यूरोपमें

नये युगकी आवश्यकता हुई है। इस समय कई नये यन्त्र आविष्कृत हुए। इनके लिये स्वयं गार्कोनादि और हील्लेन जैसे ज्योतिषिद्वय सुग्री (Hargreaves) ही पिरीय प्रयोगोंके वास्तु हैं। गार्कोनादि वेधशालाका नाम युक्तनिर्माण है। यह स्थान वर्तमान कई वेधालयोंमें भी इष्ट है। गार्कोनादिकी मधेयपथके फलरही ज्योतिषशास्त्र विद्यालयकी दृष्ट गिति पर प्रतिष्ठित हुआ था और उससे ही यह विश्वविद्यालयके मासोपय विषय रूपमें प्रकीर्ण हुआ। जिनकेन और कोपेनहेगेनके विश्व-विद्यालयके मध्यममे ज्योतिषशास्त्रका सिद्ध स्थापनके लिये महत्तम पहले वेधालयोंके स्थापनकरके वेधमंदिर संगठन किया था।

इनके बाद धारे धीरे ज्ञान स्थानोंमें वेधमन्दिर प्रतिष्ठित होने लगे। १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें ज्ञानज्ञिक नगरमें जोहानस हेनेलियस नामक एक व्यक्ति ने एक वेधशाला स्थापित की। इसके बाद ही राजा-जुमदमे वेरिस नगरमें और ग्रीनविच (Greenwich) नगरमें जगत्की विख्यात वेधशाला प्रतिष्ठित हुई। इनके उपरान्त प्राच्य और प्रगच्छ जगत्में बहुतेरे वेधालय प्रतिष्ठित हुए थे।

प्राच्यपथ और प्राच्यजगत्में सभी प्रधान नगरोंमें ज्ञानो मुरोपोय प्रयागीकी वेधशालाये 'द्विजां रेने लगी' किन्तु स्थानमें किन्तु समय वेधशाला प्रतिष्ठित हुई है, ज्ञाने इनकी अकारादि काममें लगी ही जाती है—

दिग् नगरमें वेधशाला है	दिग् राक्षसे	वर्ष प्रतिष्ठित हुई
बावतकोट	इंग्लैण्ड	१७३१
ब्रजगोलियम	अमेरिकाके मैरीलैण्ड	
ब्रज भारत	मिचिगन	१८५४
बाइसेड	दक्षिण-अष्ट्रेलिया	१८६१
बापेगम	गुयाना	१८७५
बावतला	एन्डोमान	१७३०
बावो	रूस-किरिलैण्ड	१८१५
बावदुध	अमेरिका माससुसेट	१८००
बावद्विचरो	अमेरिका-मैन्सिचिवा	१८७२
बावतगामो	अमेरिका-न्यूयार्क	१८५३
बावतगोवा	अर्जेन्टी	१८६३

दिग् नगरमें वेधशाला है	दिग् राक्षसे	वर्ष प्रतिष्ठित हुई
बावोपेनो	अमेरिका-वेमिन्सजामोवा	१८५१
इल्लु	इंग्लैण्ड लण्डनके	
	परिचमोजोमे	१८५१
पडिनबर्ग	एन्डोमान	१८५१
पटना	इटली	१८५१
उत्तमाता अन्तरोप	अमेरिकाके वेधशालाके निरक्षर	१८५३
उगिला	इंग्लैण्ड	१८५३
ओडेगा	रूस	१८५३
ओरपेडवार्क	इंग्लैण्ड	१८५३
कर्व	इंग्लैण्ड	१८५३
कर्वीमा	दक्षिण-अमेरिका	१८५३
बलोक्जा	अष्ट्रेलिया	१८५३
कसान	रूस	१८५५
काकिल्लेण्ड	इंग्लैण्ड	१८५५
केविज	स्वेन	१८५७
विष्णु	रूस	१८५७
किस	अर्जेन्टी	१८५७
केड	रिचमण्ड	१८५७
केमिज	अमेरिका संयुक्तराज्य	१८५७
"	इंग्लैण्ड	१८५७
कोडवा	पुर्तगाल	१८५७
कोलिस्सबर्ग	अर्जेन्टी	१८५७
कोपेनहेगेन	डेनमार्क	१८५७
हिल्लेन	न्यूयार्क	१८५७
केमसमुनहोर	इन्डो-अष्ट्रेलिया	१८५८
वारकक	रूस	
गटिज	अर्जेन्टी	१८५९
गल्लोप	इटली	१८५९
मैरमरेड	इंग्लैण्ड	१८५९
गोवा	अर्जेन्टी	१८५९
मोन्विच	इंग्लैण्ड	१८५९
व्यासगो	इंग्लैण्ड	१८५९
"	अमेरिका-संयुक्तराज्य	१८५९
बावुलनेरेड	मैन्सिचिवा	१८५९
जार्जे टाउन	अमेरिका संयुक्तराज्य	१८५९

किस नगरमें वेधशाला है	किस राज्यमें	कब प्रतिष्ठित हुई	किस नगरमें वेधशाला है	किस राज्यमें	कब प्रतिष्ठित हुई
जूरिच	स्वीजरलैण्ड	१७५६	बार्मारसाइड	इङ्ग्लैण्ड	१८७१
जेनोवा	"	१७७३	वीरकासल	आयर्लैण्ड	१८३६
ट्यूरिन (तुरीन)	इटली	१७६०	बुड्यापेस्त	अष्ट्रोइङ्गरी	१७७७
टिफलिस	रूस	१८६३	बोधफम्प	जर्मनी	१८७०
डवलिन	आयर्लैण्ड	१७८५	बोलोग्ना	इटली	१७२४
दरहम	इङ्ग्लैण्ड	१८४१	ग्रुसेवस	वेलजियम	१८२६
डानपक्	स्काटलैण्ड	१८७२	वेमेन	जर्मनी	१८३५
डोरपाट	रूस	१८०८	ब्रोसलड	"	"
ड्रेसडेन	जर्मनी	१८८०	माएको	रूस	१८२५
तासकन्द	तुर्किस्थान	१८७४	माउप्ट हेमिल्टन	अमेरिका-युक्तराज्य	१८७६
तौलोस	फ्रांस	१८४०	मादिसन	"	१८७८
त्रिवन्द्रम	भारत-त्रिवाङ्कुर राज्य	१८३६	माद्रिद	स्पेन	"
दशोल्दफ	जर्मनी	१८४०	मार्द्राज	भारतवर्ष	१८३१
दरबन	अफ्रिका	१८८२	मानहिम	जर्मनी	१७७२
नार्थफिल्ड	अमेरिका-युक्तराज्य	१८७८	मारकोकासल	आयर्लैण्ड	१८३४
नाइस	फ्रांस	१८८०	म्यूनिक्	जर्मनी	१८०६
न्यूयार्क	अमेरिका-युक्तराज्य	"	मिलान	इटली	१७६३
न्यूहेबेन	"	१८३०	म्यून्च	फ्रांस	१८७५
न्यूसाटेल	स्वीजरलैण्ड	१८५८	मेलबोरन	अष्ट्रेलिया	१८५३
निकोलेफ	रूस	१८२४	नेदेना	इटली	१८१६
नेप्लस	इटली	१८१२	मोनपुरिस्	फ्रांस	१८७५
पादुया	"	१७६१	राग्यूची	इङ्ग्लैण्ड	१८७२
पारामत्ता	अष्ट्रेलिया	१८२१	रिउडीजानरो	दक्षिण-अमेरिका-प्रेजिल	१८४५
पेरिस	फ्रांस	१६६७	रोचेष्टर	अमेरिका-युक्तप्रदेश	१८७६
पालकोवा	रूस	१८३६	रोम	इटली	१८४८
पालेर्मी	इटली	१७६०	लखनऊ	भारतवर्ष	१८४१
पेकिङ्ग	चीन	१२७६	लान्द	नारवे	१७६०
पोटस्डम	जर्मनी	१८७४	लिओनस्	फ्रांस	१८७७
पोला	अष्ट्रिया	१८७१	लिपजिक्	जर्मनी	१७८७
प्रिन्सटन	अमेरिका-युक्तराज्य	१८७७	लियरपुल	इङ्ग्लैण्ड	१८३८
प्रंग	अष्ट्रोइङ्गरी	१८५१	लिमा	दक्षिण-अमेरिका-पेरू	१८६६
प्लसक	पोलैण्ड	१८७५	लिलिपनघल	जर्मनी	१७७६
पलोरेन्स	इटली	१७७४	लेडेन	हॉलैण्ड	१६३२
बन (Bonn)	जर्मनी	१८४५	घारसा	रूसिया	१८२०
बर्लिन	"	१७०५	वासिङ्गटन	अमेरिका-संयुक्तराज्य	१८३८

दिन मयमे वेधनामा है	दिन सारकमे	वर्ष प्रतीयः दुर्ग
विष्णुद्वार	शुक्राशुभवेत्सा	१८६१
विलिपयमगटा इम	अमेरिका-मायचुमेडव	१८३१
विजिपयमगटिम	सुमिया	१८७४
विपयमा	सगिट्या	१८५६
विपयमा	कम	१८५३
साहदोमम	सोडोन	१८५०
सोमोहाए	इडोरेट	१८६७
पट्टामयमा	जर्मांनो	१८८१
सागिनयामो	दक्षिण-अमेरिका चिको	१८४१
मिपयमा	सट्टे मिया	१८५५
सोएटदेमसा	भयिका	१८२१
सोएटपिटसंवां	कम	१८२५
सोरोह	जर्मांनो	१८२७
समान (हर्मममन्दिर)	इडोरेट न्यूडगरके	
	समीप	१८२६
साहूकडू	सोम	१८८३
सोयोप	अमेरिका-युकराउव	१८५३
समयमां	जर्मांनो	१८६५
सैरिलो	इडोरो	१८८१
सैरिलोसै	दिलसैण्ट	१८३२
सैरिलुम्	अमेरिका युकराउव	१८६०

सूर्यपके वेधालयोंमें साधेधार्थ जो सब यन्त्र व्यवहृत होते हैं, उनमें ताइकोमार्तिके सावित्रहम Maralquadrant और Sextant नामके दो यन्त्र प्रधान हैं। परन्तुभीहामे मजला और सौरदर्शनको सुविधाके लिये संचमसैट्टेयन्त्रके साथ रेडिगमसोप और साइरोमिटर नामके दो यन्त्रोंको संयोग कर दिया जाता है। इनके बाद जब सायनास जगद्गामो सायनाससंयन्त्र नाम गये, तब सौरजगत्के सत्यतावादिहो मजिहो मूल्यता जालके लिये उल्लोकाय यन्त्रादिहो सभ्य और परिशुद्धिको सभ्यवकता हूँ और ट्रांसजिट नामक यन्त्र वेधनासैट्टेको सयोग सभिक उपयोगो समया गया। इन यन्त्रके साइरासरी विरोधवक (Heliometer) विधिकता सट्टे हो सायनास होतो है। इनो समयमे पडिवा (Polaris) और क्रानमिटर (Chrono-

meter) यन्त्रका संस्कार हुआ। इनके साथ सैधो जालसरीमे मूल्यमजलासे सानमिपारनाके लिये सब यन्त्रो का परिदर्शनकता अनुमोमन साइवक हो जये, तब अनुमनकोसाइरासरीके साथ ट्रांसजिट, यन्त्र मिला कर एक सया यन्त्र सजिन हुआ। यह "ट्रांसजिट् या सैरिडिक्ल सार्कस" नामसे पुकारा जाता है।

इनके उपरान्त नियर तारकामो (Fixed stars) को मूल यन्त्र मजपासिन हूँ, तब सूर्योक्षण यन्त्र को पाथोला सिलिमूलक यन्त्रोको (Meridian Instruments) उन्नतिको वेधो को सँ और उमरो हो इन सब यन्त्रोके माता तरहरो सार्ककार करेको साव्यवकता हूँ।

सूर्योपम वेधालयोंके परिदर्शन कार्यमें सिमुक एक एक सट्टेकारी एक एक यन्त्रके निकट रह कर करते सपने कसँदव पालन करती रहते हैं। वे सामी एक उपोमिपराज (Astronomer Royal)के सपाम हैं। हमारे देशमें सयाई जयसिंह द्वारा स्यापिन वेधालयोंके सपामसदयमे भी एक एक सविहम उपोमिपराज सिमुक थे। अमेरिकाके मुक सायनासनाम सागिहूटरन और युल्लेकेया वेधालयमें एक एक यन्त्रको परिदर्शन सपयका एक एक उपोमिपरोके ऊपर सोरो सँ दे और इनके इच्छा नुसार ही कार्य सपियासिन होता है। कई सोरो सोरो वेधालयामोमें भी इनो सट्टे सोपोक सपयका हो सिकरं देतो है।

सैपिन (सं० सि०) विषय विषय ल। सिडिन, सिगरे सोर किया गया हो, जो सैपि गया हो।

सैपिन्ध (सं० हो०) सैपिकता माय या सयं।

सैपिन्ध (सं० सि०) सिपयानि विषय सिडोकरले सिपिन।

१ सैपिकर्ता, वेध कार्यवाला। २ सैपिनसिध। (पु०) सानसैपिन। (सार्कसि०)

सैपिनो (सं० सार्कसि०) सैपिन्ध सैपिन्ध। १ सपका, जनीका, सौक। २ सैपिकता, सैपि। (सि०) ३ सैपिकता, सैपिमेसामो।

सैपिन्ध (सं० हो०) विषय सपिन्ध। १ सपय, वेध कार्यवा विषय। (सि०) २ सैपिकता, जो वेध कार्यके सैपिन्ध हो।

वेन (सं० पु०) अजतीति अज गती (धातुव्यञ्जित्-
 ष्यो नः । उण् ३६) इति न, अजतेवोभावाः । १ प्रजः
 पति, पृथुराजके पिता । हरिवंशमें इसका विषय यों
 लिखा है—प्राचीनकालमें अत्रिवंशमें अत्रितुल्य गुण-
 शाली अङ्ग नामक एक प्रजापति थे। धर्मराजकी दुहिता
 सुनोधाके गर्भसे इन महात्माको वेन नामक एक दुरात्मा
 पुत्र उत्पन्न हुआ। कालक्रमसे वेन इस तरह कामासक
 और धर्मविद्वेषी हो उठा, कि उसके शासनकालमें
 वैदिक कार्यकलाप बिलकुल बन्द हो गया। यह धर्म-
 विगर्हित लोकनिन्दित असद्वृत्तान्तकी डी गौरवका
 श्रावण और पुरुषकार समझने लगा। इससे ब्राह्मणों-
 को स्वाध्याय और वपट्कार अर्थात् वेदाध्ययन
 तथा यागनुष्ठानसे वञ्चित रहना पड़ा। इससे पहले
 जो देवता स्तोमरसके पिपासु हो पशुभूमिमें बाहृत होते
 थे, इसके राजस्यकालमें उनका नामोनिशान न रहा।
 "विनाशकाले विपरीतवृत्तिः" विनाशकाल उपस्थित
 होने पर दुरात्मोंको दुर्गति स्वतः ही ऐसी हो जाती
 है। वेनके भाग्यमें भी ऐसा ही हुआ। वेन अपने
 मनमें समझने लगा, कि इस त्रिभुवनमें मेरे सिवा और
 कोई पुण्य नहीं है। अतः देवोद्देशसे यागयज्ञ करना
 निष्फल आडम्बरमात्र है। फिर भी, जिनको ऐसा
 करनेकी प्रवृत्ति हो, उनको चाड़िये, कि वे मेरे उद्देशसे
 ही यागयज्ञ करें, क्योंकि मैं इसका अद्वितीय पात्र
 और लक्ष्य हूँ, मैं यथा और पशु हूँ।

एक बार मरीचि धादि महर्षि इसकी दुर्वृत्ततासे
 नितान्त असहिष्णु हो उस अतिक्रान्तमयीद अनुचित
 कार्यप्रवर्त्तयिता वेनसे कहने लगे, "वेन! हम लोगोंने
 इच्छा की है, कि बहुवत्सरसाध्य यज्ञ करेंगे, तुम निरस्त
 हो। अब तुम अधर्माचरण करना छोड़ दे, यह सना-
 तन धर्म भी नहीं है। तुम अत्रिवंशमें जन्म ग्रहण कर
 प्रजापति हुए हो, इसमें जरा भी संशय नहीं। अतएव
 यथाधर्म प्रजापालन करना स्वीकार भी तुमने किया है।"
 दुर्गुद्धि वेनने इन महर्षियोंकी बात पर हंस कर उत्तर
 दिया, कि ऋषिगण! मेरे सिवा धर्मके सृष्टिकर्ता और
 कौन है, मैं किससे धर्मकथा सुनने जाऊँ। इस पृथ्वीमें
 ज्ञान, धर्म, तपोबल तथा सत्यमें मेरे समान और कौन

है? तुम लोग नितान्त सूर्णहो और तेजहीन हो, इसलिये
 मुझको निखिल प्राणीके विशेषतः सर्वाधर्मके स्रष्टा नहीं
 समझ रहे हो। इच्छा करने पर मैं पृथ्वीको दग्ध या
 जल द्वारा डुबा सकता हूँ, स्वर्ग तथा मर्त्यके सहज ही
 अवरुद्ध कर सकता हूँ।

महर्षिगण मोहान्ध और नितान्त गर्हित वेनको इस
 तरह विविध मधुर अनुनय वाक्योंसे भी जब शान्त नहीं
 कर सके, तब उनका क्रोधानल प्रज्वलित हो उठा। वे
 क्रोधित मुनिगण समवेत हो कर इस महाबल गर्हित
 वेनको निग्रह कर उसके धर्म ऊँचको मग्धन करने लगे।
 उस मध्यमान ऊँचसे एक कृष्णवर्ण छोटे आकारका
 पुरुष उत्पन्न हुआ। इस तरह काला पुरुष जन्म ग्रहण
 कर खरता हुआ हाथ जोड़ें ऋषियोंके सामने खड़ा
 हुआ। ऋषिश्रेष्ठ अत्रिने उसको मयभीत देख 'निषीद्'
 बैठो, यह कह कर उसका भय दूर किया। यह पुरुष ही
 निषादवंशका आदि पुरुष है। इससे धीवर-सम्प्रदायकी
 सृष्टि हुई है। सिधा इसके विन्ध्यगिरिमें जो अधर्म-
 रति तुम्बव और तुयार नामी असभ्य जातिय हैं, वे भी
 इस वेनके वंशसे उत्पन्न हैं।

इसके बाद महारमा ऋषियोंने जातमन्वु हो वेनके
 दक्षिण हाथकी मग्धन किया। इस मध्यमान बाहुसं-
 हुताशनकी तरह तेजःपुञ्ज शरीर ले कर पृथु पैदा हुए।
 इन पृथुकी उत्पत्तिसे जगतोतलके लोग समुत्पन्न हुए।
 पीछे इन्होंने पृथु द्वारा पुत्राम नरकसे परित्वाण पा कर वेन
 त्रिदिव्यायामें गया। (हरिवंश ५ अ०) २ देवविशेष ३ यश ।
 (त्रि०) ४ मेधायो । ५ कामयमान । (श्रुक् ८।८।४)
 वेनकूलें—अंगरेजोंका एक प्रधान उपनिवेश । १८२५
 ई०में मलका-प्रणालीके किनारे कुछ स्थानोंको जीत कर
 अंगरेजोंने यह स्थान बोलन्दाओंको दे दिया था।

वेनवंश—राजपूत जातिकी एक शाखा। मिर्जापुर और
 रोया अञ्चलमें इन लोगोंका वास है। वे पोढी पहले ये
 लोग खारवाड़ नामसे परिचित थे, किन्तु अबस्था परि-
 वर्त्तनके साथ साथ उनकी जातिगत और सामाजिक बड़ी
 उन्नति हुई। खारवाड़गण द्राविडोय वंशसम्भूत थे।
 उस वंशका कोई एक व्यक्ति भाग्यवशतः उक्त प्रदेशका
 संरक्षक बन बैठा। उसके बावसे ही इस वंशकी क्रमिक

उत्पत्ति हुई। वर्तमान मरवाह राज वसतिवासी हैं। एक सम्प्रदाय वादेवर्षाकी कथासे इसका विचार हुआ है।

बेनास-सुमनमान फकीर सम्प्रदायविद्येय। कथाका हसन कथनी इस सम्प्रदायके प्रवर्तक हैं। मिसा हो इन लोगोंको एकमात्र इतजोविषय है। जब ये मिसाके निवृत्त हैं, तब सुदृश्यके साथ अमरप्रभोनिन वापसीका प्रयोग करते हैं। प्रत्येक वेनासाई कमरमें बन्दूके लगाने पदमना है। यह लगना भोज्य देना उनके लिये अस्त्राका विषय है।

बेनुत इत्यादाबाद विभागके फतेपुर जिलामन्तल माओपुर महरीजब एक प्राचीन ग्राम। यहाँ एक प्राचीन खंडहर विस्तृत है। कथानीय लोग इसे प्राचीन राजसंज्ञका प्रतिष्ठित हुए कहते हैं।

बन्धु-सम्प्रदाय प्रदेशके दक्षिणकनाहा जिलामन्तल महु-मूर तालुका एक मगर। यह महु-मूरसे २४ मील पूर्व-उत्तर तथा मुहविधि (बेनुत) से १० मील पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ ३५ फूट ऊँचो एक जैनमूर्ति बसुतरे पर लगे है। यह मूर्ति वारकलकी मूर्तिसे छोटी होने पर भी उतरी बड़ी कारीगरी दिखलाई गई है तथा यह उतरी प्राचीन और छोटे मो है। पाषाण ही में एक मन्दिर, वेन्दिकार और मारगैमी एक प्रस्त-स्तम्भ मारक दिखलगे परिपूर्ण है। मूल मन्दिरको बगलमें और भी एक जैन मन्दिर है। उनके चारों ओर स्तम्भ लगे हैं। इनके मूलदेशमें कुछ माघकाल और एक चोरकाल है। यहाँ जमानत चल्ती नामक जैनमन्दिरों १५३६ तकके प्रवर्तन एक शिलालिपि संभव है, योमानेभरदेश नामकी एक बड़ी प्रतिमूर्तिके इतरीमें एक शिलालेख दृष्टिगत होता है। इसके विषय बेनुतके योमानेभर, महुमूर और मोर्तूर चल्तीमें १५७४ ही १५२५ ईके मध्य प्रथम कुछ शिलालिपि लगे पायी हैं। ये सभी शिलालिपिों मन्दिरके अथवा मरवाहके लिये दान लगे हुए हैं।

वेनासका (२३० क्र०) नामावलि

वेन्दिकार-काल-कालके कालोरे कालर एक बड़ा गाँव। यह कालोरे उपरकालकी प्राचीन राजकाको नामक प्रजा

है। आज भी वहाँ उन प्राचीन लोगोंकी परिभर लक्षण अवैक संस्कृतिकादि देवनेमें आती है। यह मगर केत मरुके विचारे धोनमारी १३ मील दक्षिणपूर्व इत्यादाबाद जागेके इतरी पर मन्त ३०' ५४" ३० तथा १५०' ४२" १" पूर्वके मध्य अवस्थित है। कथानीके विद्वानों से जना जाता है, कि शाला अग्रजिपर्वती (२६५ ईसवी) अपने नाम पर अग्रजितुर मगरकी बसाया। यही छोटे ब्रह्मिपुर कहनामे लगा है। यहाँ वेनुटादेवो और वेनिनदातो नामकी दो बड़ी महुमूर्तिकाकी खंडहर दिखलाई देता है। शांवर उक्त दो देवमन्दिर संभव प्राचीन कोई महुमूर्तिका होगी। उनके बिलकुल लक्ष हो जाये पर भी उत्तरी वादवीरके प्राचीन स्थापत्य-मिन्तका महुमूर निवृत्त देवनेमें आता है।

बेनीवा-उत्तर मारगका प्राचीन वेनविभाग। यह वेनाचम नामसे भी महुमूर है। मीमपुरका पदविमोत, मारमगद, वागलतो और मयोधवा प्रदेशका दक्षिणतले पर यह विभाग संरक्षित हुआ है। कोई कोई कहते हैं, कि बार्मगाहरी कोजापुर तथा मोरलपुर तकका कथाम इसी नामसे परिचित था। इसमें अभी ५२ परगने लगते हैं। १२ देवाय राजाओं से यह स्थान परिपालित होता है। उत्तरी कोजापुरके महारवाङ्गल, मानगाई और वरमोयोनी आदि जमींदार ही प्रतिष्ठ हैं।

वेन्दकार-उड़ोगावासी जगर ज्ञातिवो एक शाखा। केईबर, यामडा कोई दक्षिणप्रान्त महानके नामा स्थानी है इस ज्ञातिका बाग है। केईबर और जामदादेरके उत्तर कोन्दहाल यहाँके प्रदेशके विविक्तबर्तमें तथा वेन्दकार मुद नामक शीवमूर्तके लगी वेन्दकार ज्ञाति बर्ती है। जहर लोग मायापालता पर्यगताई वेदारवरी बर्तीकी मरमूमि पर्यंत विन्नुन कथानीय बाग करते हैं। यहाँ पर बड़े वेनुकातीको मरमूमिकी मरद विविक्त जहुवातुन बर्ती है। जगर वेना अतरी आदि माया कोतने हैं, विन्नु देवकार जगरीकी कोई जित्तल अना बर्ती है और ज इनके स्थान जितनी प्रकाशकी संशयन किन्दरकी हो है। इनको माया उदिया मायाही मिल तो है। जो मानसय होतमें अथवा अरेलाहन महरीन प्रदेशके प्राच्यदिमें अथवा

जातिपों के साथ रहते हैं, उन्हों ने निम्न श्रेणी के उड़िया लोगों के आचार-ध्ववहारका बहुत कुछ अनुकरण किया है। वे वाशुली वा वाँसुरी देवों नामकी एक स्त्रीमूर्ति की उपासना करते हैं तथा ठाकुरानी कह कर उनसे प्रति बड़ी श्रद्धा भक्ति दिखलाते हैं। प्रति वर्ष वे उस देवों मूर्ति के सामने मेड़ा और मुर्गी की बलि देते हैं। किन्तु प्रत्येक दश वर्ष के अन्तर पर वे नन्दकार-बल अपने वंशगत मङ्गलके लिये इस देवों के सामने भैस, जंगली सूअर, बकरे और १२ मुर्गीकी बलि सदाते हैं।

विवाहके समय कन्याके आत्मीय उसे ले कर घरके घर आते हैं, वहाँ पर नय दम्पतीकी आश्रयपल्लवसे समाच्छादित पूर्ण कलसके चारों ओर दारदार घुमाते और धारमें स्नान कराते हैं। स्नानके बाद घर और कन्याका हाथ एक साथ बांध दिया जाता है। वही विवाहदण्डनकी समाप्ति है।

ये लोग वृक्षकी डाल पत्ती और घास आदिसे अपना अपना घर तैयार करते हैं जंगली फल मूलादि ही उनका प्रधान खाद्य है। कमी कमी जंगली जानवरका शिकार कर उसका मांस खाते हैं। किसी किसी नदीवा किनारे के किनारे वेन्दकार लोग धोड़ी मिट्टी कोड़ कर उसमें धान, जूनहरी आदि बो देते हैं। यही फसल उनकी उपजीविका है। इसके सिवा वनजात द्रव्योंका संग्रह कर वे निकटवर्ती ग्रामवासियोंके साथ विनिमय करते हैं।

वेन्दा मूल झू—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी, जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६ ३५ उ० तथा देशा० ८२ २० पू० के मध्य गोदावरीकी कौशिकी शाखाके किनारे अवस्थित है।

वेन्दा—मन्द्राज प्रदेशके गणनाम जिलान्तर्गत तेलंगि राज्यका एक नगर। यह सुबलु बन्दरसे ४ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है जिसमें अच्छी कारीगरी दिखलाई गई है।

वेन्न—कोणार्णवडलके एक सामन्त। ये सुमहड़ी भीम नामके पुत्र थे।

वेन्ना (सं० खी०) एक पवित्र नदी। इस नदीमें स्नान करनेसे सती पाप विनष्ट होते हैं।

"वेन्ना भीमरथी चोमी नदी पापमयावर्ही।"

(भारत ३१८८ ३)

वेण्य (सं० लि०) १ कमनीय, खूबसूरत। (शुक २२४११०) २ वेन नामक ऋषिके पुत्र।

(शुक १०१४५११)

वेपथु (सं० पु०) वेपनर्मित वेप (दिवतोऽयुच्। पा. ३।३।८६) इति अयुच्। कम्प, कांपनेका क्रिया, कांपक पी।

वेपथुमत् (सं० लि०) वेपथु अस्त्यर्थे मत्पु। कम्पयुक्त वेपन (सं० क्ली०)। वेप-न्पुट्। १ कम्पन, कांपना। २ घातव्याधि।

वेपमान (सं० लि०) वेप-शानच्। कम्पमान।

वेपस (सं० क्ली०) वेप कम्पने (वक्षेपाम्बोऽपुन। ञप् ४।१८८) इत्यपुनम्। १ अनवय। २ विरेप। ३ क्रम। (निघण्टु २।१।१०)

वेपिष्ठ (सं० लि०) अतिशय स्तुतिकारो। (शुक ६।११।३ सायण)

वेपुर—मन्द्राज प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एक छोटा नगर और बन्दर। यह अक्षा० ११ १० उ० तथा देशा० ७५ ५० पू०के मध्य कालीकटसे ७ मील दक्षिण वेपुर नदीके किनारे अवस्थित है। २८५८ ई०में इस नगरमें मन्द्राज रेलपथका टर्मिनस स्थापित हुआ जिससे वाणिज्य-समुद्रिके साथ साथ इस स्थानकी बड़ी उन्नति हुई है। पुत्तगीजो ने यहाँके कल्याण नामक स्थानमें एक कोठी बनाई, किन्तु उस कोठोका कार्या अधिक दिन सुस्थूळलासे न चला। टीपू सुलतानने इस स्थानका मलवारकी राजधानी बना कर इसका 'सुलतान पत्तनम्' नाम रखा। आज भी उसके कितने निदर्शन दृष्टि-गोचर होते हैं।

१७६७ ई०में यहाँ आरेकी कल (Saw mill), १८०५ ई०में कैम्ब्रिस बनानेका कारखाना, १८४८ ई०में लोहेका कारखाना, पीछे जहाज बनानेका एक और १८५८ ई०में रेल-खुली जिससे इस स्थानकी दिनों-दिन उन्नति होती जा रही है। आदिके समय भी इस नदीमें १२ वा १४ फुट जल रहता है। अतएव नाव पर ३ सौ टन माल लाद कर इस नदीमें सब समय ले जा सकते हैं।

अष्टरलोनी उपत्यका और वेनादके दक्षिणपूर्वमें

उपानव नामोऽप्रकृतं कर्तव्यं श्रीर वाचसपदी कामदनी
 इव इत्यमी होमो है। इमके विद्या पाठ-पर्यन्तमात्मनि
 शासनको मन्त्रको मा कर पदा। इमको विद्यां दामा श्रीर
 वाचमिं मन्त्रमप्य म्नामोमिं रपनको होमो है। यदा लोका
 श्रीर विद्ययापठ नामक कामिज यदप्यं मितना है।

मगरके पाप ही फेरिख मगरका परिश्रम, धाम-
 मयवादि मीष्ट है। दीपु सुतनाम इम मगाको धो-
 वृत्ति कलीके त्रिये बहो मलनाम मे। मगरके ५ मीम
 पूरुष 'उपानवना (मूलरीर) नामक मीदान है। यदा
 बहुलमे प्राचीन मननरुपमम तथा खगद उगद वृत्तापठ-
 माश्रित पराचके दुकड़ोसे पितो हुं मूमि है। यदाके
 होम त्रम ममापिरीर कहने है।

यदा यद प्राचीन दुर्गं या। निरुतवर्षो या नि-
 यम नामक म्पाममे भायां मरुदुपनाकी १३७२ ई०
 को बनाई हुं मयमिद श्रीर पुर्नोमीको का यद दुर्गं या।
 १५७० ई०मे काकोकटके म्यामोसने इम दुर्गको मविवा
 कर लिवा। पुर्नोमीश मयमिदके दुकड़मे दुर्गापठना
 वि कीरका निर काट याटा गया था।

वेपुल—मग्नाम-मैसिदोमीके मलवार जिलेमे प्रकाशित
 यद मदी। यदाके सोम इरी पुनपना या मीमपुव
 करमे है। मैदुपनाम् गिरिमदुदको इतिमम्य शोव-
 माकाये यद निरुत कर मरुकोमी प्रमरनामे मनी मां
 है। पीते काकूर मनुदके उला पाटा र्वनपुठ पर होमो
 हुं ममममोममे माई है। परीमपुठ पर मरीगटको
 वममोमा, रमगाका मयामोका ममुद ईसमे मापक
 है, इम मोर इकाये ही पतिकोका मम मरुदके हो ममा
 है।

पर्यंत परती म्रव यद मीमे यदरी है, मर बहुन-मो
 पीरी पीरी मीममिमीमे मिल कर इमके कलेवरको
 बदाया है। उनमेमे कर्णामुवा मीम ही प्रयाज है।
 यदा मदीके उवर यद सुकर काटका पुन है। इम
 मदीके मारिकोद मगर मर भाये पर केदिवापुल नामकी
 यद दुमरी मका मदी ममी मिल मां है। वेपुल
 मदीकी वनाय हो कर मदी यद ममुदमे मिलको है यदा
 इमके यद दुमरी मका मिल मां है। देमके ममुन-
 वर हो कानु रवदा हो मगा है ममी कामिजम श्रीरकी

मगी हुं है। यदा पर मग्नाम रीवपको इतिम
 परिचय माकाका 'दर्मिनम' म्यापिन है।

ममी मग्नामोमे इम मदी हो कर मदी मदी मदी
 मारिकोद मर ममी ममी है। ममीकाममे मदीका
 म्रव बहुन यद मगा है म्रममे भाये श्रीर मी पुंर मर म
 मकी है। मुदामेका वापुल पर मदीके मयम १८ पुंर
 मोर मदीके मयम १२ पुंर मिल रहना है।

वेपेदि-मग्नाम गहवाका उपकमठमिधन यद मदी।
 यद मग्नाम १३ ई ३० तथा देगा ८० १३ पूरके
 मय्य विमून है। ममी यद मग्नामके मयम मिल
 गया है।

वेपेदुल—मग्नाम-मदीके मीर जिवालीन कुमकीम
 मनुदका यद मगर। मगर दिनु प्रयाज है, पाधिप्रोसे
 भापक दिनुमीका वास देगा।

वेपु—मग्नाम मदीके कोकोम मय्यका यद उपनिनाम।
 पुठ मदीमीमे मीर वापु ममुदके रिनाये ममा हो मगर
 है ममी मर बना है, यद मर मोरे मोरे होके
 भाकायेमे परिलभ हो गया है। मययालम् मय्यके
 येमे मकी मपु मदी है। पुर्नोमीमे इमका
 वापिन (Vajrin) मदीके उदयेक मिया है। ममी-
 मे यद म्याम इतिहासमे वापिन मयमे हो विद्या
 मगा हो। ममी मदीके मुदामे श्रीर ममुदकके
 मिर मयमे मीपु यद पीते होमे विवाय कर मर
 है। काम कोवाकमे यद ममुद मय मगा विधिप्र है।

कोकोम मय्यकाकारके प्राचीन मयममीमे ममा
 मगा है, कि १३७१ ई०मे यद पुनवेपु ममुदकके
 उमन हो कर देमममे मित मया। इमका इतिमाम
 मग्नामके मयमे मापकोदु हुं म्यापिन था। ११
 ई०मे यदा यद पीर देमम कीर्निक मितना म्यापिन
 हुआ था। काकोकटके म्यामोसने यदा १५७१ ई०मे
 यदमम हुं ये।

वेपुल—मग्नाम मैसिदोमीके उला मदीके जिवालीन
 मुदिकायम् मनुदका यदा मयम। यद मुदिकायमी
 ११ मीम इतिमममी मरविधन है। यदा यद प्राचीन
 मदीका मदी है।

वेपुल—मग्नाम मदीके उला मदीके जिवालीन मदीके

तालुकका एक प्राचीन नगर। यह आर्कट सदरसे २ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां चोलराजाओंका प्रतिष्ठित आठ-काडू वा पडवतमंदिर विद्यमान है। यह विजयमंदिर नामसे परिचित है। मंदिरगालमें बहुत-सी शिलालिपियां देखी जाती हैं।

वृषपवट—मद्राज प्रदेशके सलेम जिलांतर्गत उत्तुङ्गुराई तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह बेलूरके पास अवस्थित है। विजयनगरराज वीर प्रताप युद्ध २५ (१४०६ ईमें) मन्दिरमें कुछ दान कर एक शिलाफलक उत्कीर्ण कर गये हैं।

वेमारिज—भारतवर्षके सुप्रसिद्ध अङ्गरेजी इतिहास लेखक।

वेम—कोण्डविडके रेड्डीवंशीय एक राजा।

वेम (सं० पु०) वे-मन् न आत्व। वापदण्ड।

वेमक (सं० पु०) एक स्वर्गीय ऋषि। (हरिवंश)

वेमोन्नत (सं० पु०) असुरराजके एक पुत्रका नाम।

(कल्पिविस्तर)

वेमन (सं० पु०) वयत्यनेनेति वे (वेजाः सर्वत्र) उण् ५।१५६

इति समिन्त्र। वापदण्ड। (शुक्रयजुः १६।५३)

वेमपल्ली—मद्राज-प्रेसिडेन्सीके कडवा जिलांतर्गत पुलिचेण्डला तालुकका एक नगर। यह अक्षां १४° २२' ३०" तथा देशां ७७° ५०' ५०" के मध्य पापघ्नी नदीके किनारे अवस्थित है। यहां वृषभाचलेश्वरस्वामी नामक एक प्राचीन शिव वा नन्दीके उद्देशसे स्थापित मंदिर है। प्रवाद है, कि राजा जनमेजयने यह मन्दिर बनवाया था। मन्दिर नदीतीरस्थ एक बड़े पहाड़की चोटी पर स्थापित है। इससे इसको शोभा और भी मनोरम है। मन्दिर-गालमें कुछ शिलालिपियां भी देखी जाती हैं। यहांके अधिवासियोंमें अधिकांश हिन्दू हैं।

वेमपल्लु—मद्राज प्रेसिडेन्सीके कडवा जिलांतर्गत मदनपल्ली तालुकका एक बड़ा-ग्राम। यह मदनपल्लीसे ३ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। गाँवके एक मन्दिरमें १६७६ शकके उत्कीर्ण एक शिलाफलक दिखाई देता है।

वेमरविल्ली—मद्राज प्रेसिडेन्सीके गज्जाम जिलांतर्गत श्रीकाकेल तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह श्रीकाकेलसे १५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। प्रायः तीन सौ वर्ष बीत गये, यहां एक डोलेसे पचास छोटी छोटी देव-

मूर्तियां निकाली गई हैं। प्रति वर्ष उन देवमूर्तियोंके उद्देशसे भंडारा होता है और बहुतसे मनुष्य देवप्रसाद पानेकी आशासे यहां आते हैं।

वेमराज—१ दक्षिणात्यका रेड्डीवंशीय एक सरदार। यह मोलका लड़का था। २ शृङ्गारदीपिका नाम्नी अमर-गतकटीकाके प्रणेता। इनका दूसरा नाम वेमभूगल भी है।

वेमवरम्—मद्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत नरसबावू-पेट तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहां एक अति प्राचीन विष्णुमन्दिर विद्यमान है।

वेमवरम्—मद्राज-प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक नगर। यहां रेड्डी सरदारोंका (१३२८-१४२७ ई०) प्रतिष्ठित एक प्राचीन मन्दिर है।

वेमानभैरवार्वा—घर्णाक्रमदर्पणके रचयिता।

वेमुन्ना—मद्राज-प्रदेशके कडवा जिलान्तर्गत पुलिचेण्डला तालुकका एक नगर। यह पुलिचेण्डलासे ७ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। यहां पोलिगारोंका एक दुर्ग विद्यमान है।

वेम्बकोट्टई—मद्राज प्रेसिडेन्सीके तिमनेवल्ली जिलान्तर्गत सतुर तालुकका एक नगर। यह अक्षां ६° २०' ३०" तथा देशां ७७° ५०' ५०" के मध्य सतुर सदरसे १० मील पश्चिममें अवस्थित है।

वैपत—वर्षई प्रदेशके कच्छोपसागरस्थ एक द्वीप। यह अक्षां २२° २५' से २२° २६' ३०" तथा देशां ६६° ५६' १२' ५०" के मध्य अवस्थित है। यह द्वीप उत्तरपूर्वसे दक्षिणपश्चिममें ५ मील लंबा है। इसका दक्षिणपश्चिम-मांश प्रायः ६० फुट ऊँची एक पहाड़ी अधिस्त्वका भूमि है। इसका पूर्वांश पगानामन बालुकावरसे ३ मील दूर पड़ता है। यह स्थान हनुमान-पापेष्ट वा हनुमत अन्तरोप नामसे प्रसिद्ध है। अन्तरोपके मुखसे घोड़ी ही दूर पर हनुमानका मन्दिर है। उसी मन्दिरसे इस स्थानका नामकरण हुआ है। यहांका दुर्ग अक्षां २२° २८' ३०" तथा देशां ६६° ५' ५०" के बीच पड़ता है। यहां कृष्णोपासनाका प्रादुर्भाव अधिक है। बहुतसे मन्दिरोंमें आज भी कृष्णकी माधुर्यामयी मूर्ति विराज रहा है। पंडा ब्राह्मण यहांके प्रधान अधियासती हैं। प्रति वर्ष

पुनरुप नामी प्रकृतके कहीये और बाधकके आनन्दको
 इस कल्पमें होतो है । इसके सिवा यह वर्णनकाव्यमें
 नामको लक्ष्यो ला कर वही वर्णको विचारो देना और
 बहुरीं अन्त्याय स्थानोंमें वर्णको होना है । वही लोहा
 और सिद्धाकार नामक अतिशय पदार्थों मिलना है ।

मगरके पास हो फिरोज मगरका परिवारक धार-
 मकरादि मोहुर है । सोयु सुमनाम इस मगरको धी-
 वृद्ध करकेके लिये बहो वसनाम ये । मगरमें ५ मीस
 पूरव 'छापवसना (मृगशीर्ष) नामक मीसम है । वही
 बहुरीं काचोम मकरवसनाम तथा अगद जगद सुनाका-
 मीसिम काचके टुकड़ोंमें पिरो हुं मूमि दे । वहीके
 योग इमि समाधिपत्र कहते है ।

वही वर काचोम हुं था । निरुदरको चावि-
 यम नामक स्थानमें अनां अशुभनाथो १३०२ ई०
 को बनाई हुं ममीसि और पुर्णगोत्री का वर हुं था ।
 १५०१ ई०में काजीबटके सामलोके इस हुंकी सविहार
 कर लिया । पुर्णगोत्र मयमैलके हुंमयमे पुर्णोपदरा
 दि कीटका निर काट दाना गया था ।

वेपु—मद्रास प्रेसिडेन्सीके मयवार सिधेमें प्रकाशित
 एक नयो । वहीके योग इमि सुपुत्रवा या योनयुव
 कहते हैं । मेरुवपुत्रु निरिसुदरको सविस्वना योव
 काचोम यह निरुदर वर भद्रुनीकी वरअवामें यनी मं
 है । पीछे काकूंद मद्रुदके उत्तर प्रारथनपुत्र पर होनी
 हुं मयमयोनयमें मं है । वहीपुत्र पर मरीमदके
 वनकोला, रजनावार वगणोंका मद्रु देवने यावक
 है, इस मोर देवने हो वाचकोका मम कादृष्ट हो जाना
 है ।

मरीम वरकी अर वर मोधि उनको है मर बहुन-मो
 छोरी छोरी योनयोनयमें मिल कर इसके असेवदको
 वदना है । उनमेंमि कायामुवा योव हो प्रनाम है ;
 वही कहीके इतर एक सुवरा कादहा पुत्र है । इस
 मरीके मरिहोद अग मर कामे पर के मरुवपुत्र नामको
 वर हुंको मनाम नयो इममें मिल मो है । वेपु
 मरीकी वलम हो कर वही वर मद्रुममें मिल मो है वही
 इममें वर हुंको मनाम मिल मो है । देमके मद्रुव
 पर अर कादृष्ट इतर हो मना है इममें मरिस्वना मोरकी

मरिस्वना हुं है । वही वर मद्रास देवनाथो सवि-
 परिवम माकाका "दमिनाम" मरिस्वना है ।

मरी मद्रुममें इस नयो हो वर वरी वरुः मने
 मरिहोद मर मनी मना है । मरिहोदमने मनेका
 अर बहुन वर जाना है इममें मने मोर मो दूर मर
 मरको है । मुदीमका वाचपर उवाके मयम १२ पुत्र
 और मारेके मयम १२ पुत्र निरम रहता है ।

वेवेदि—मद्रास मद्रका उपवदमिथम मर मना ।
 वर मना १३ ई० मना देका २-१२ पूरके
 मयम विस्वना है । मनी वर मद्रासके मयम निर
 गया है ।

मिरापुर—मद्रास प्रेसिडेन्सीके सिनामनीम मयमकोम
 मयुदका मर मगर । मर दिनु मवान है, वाचदनाम
 मायक दिनुमोका मयम होना ।

वेपु—मद्रास प्रेसिडेन्सीके योमोन मयमका मर मरिस्वना
 पुत्र मरिस्वोमि अर वरु मयुदके विचारो मना है मय
 है मनी वर वका है, यह वर मोर मोर छोरे
 मराममें परिवम हो गया है । मयमयानु मयममें
 येम वरको मयु वरते है । पुर्णगोत्रीमें मयमः
 काशिम (Yypin) मयममें उरवेव विवा हो । मनी
 ये वर मयम इमि मयममें कादिव मयम हो मयमः
 मना है । मनी वरके मुदीम और मयुदकेके
 मयम मयममें मोरु मर छोरे मोरमें विराम कर रर
 है । मयम मोमामने वर मयुद अर मयम मरिस्वना है ।

योमोन मयममरकाके काचोम काचामनीमें अर
 मना है, कि १३११ ई०में वर पुनुवेपु मयुदकेके
 अमम हो कर देवनाममें निरम गया । इसका सविस्वना
 मरीकेके इवममें काचकोह मूं मयमिम था । १३१
 ई०में वही वर छोरा मयम कीमनिक मरिस्वना मयमिम
 हुंका था । काजीबटके सामलोका वही १५०१ ई०में
 मयमम हुं है ।

वेपु—मद्रास प्रेसिडेन्सीके इतर मरिहोद सिनामनीम
 मरिहोदक मयुदका वर मयम । यह मरिहोदकेके
 ३१ मयम मरिहोदकेके मरिस्वना है । वही वर काचोम
 मरीकेके मरिहोद है ।

वेपु—मद्रास प्रेसिडेन्सीके इतर मरिहोद सिनामनीम मरिहोद

तालुकका एक प्राचीन नगर। यह आकंट सदरसे २ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां चोलराजा गोंका प्रतिष्ठित आक-काडू वा पडुवनमंदिर विद्यमान है। यह चशिष्टमंदिर नामसे परिचित है। मंदिरगात्रमें बहुत-सी शिलालिपियां देखी जाती हैं।

वंपमवट्ट—मद्राज प्रदेशके सलेम जिलांतर्गत उत्तङ्गराई तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह बेलूरके पास अवस्थित है। चिन्नमनगरराज धीर प्रताप युक्त २य (१४०६ ईमें) मन्दिरेमें कुछ दान कर एक शिलाफलक उत्कीर्ण कर गये हैं।

वेमारिज—भारतवर्षके सुप्रसिद्ध अङ्गरेजी इतिहास लेखक।

वेम—कोण्डविडुंके रेड्डीवंशीय एक राजा।

वेम (सं० पु०) वें-मन् न खात्वं। वापदण्ड।

वमक (सं० पु०) एक स्वर्णय भूषण। (हरिवंश)

वमचित्र (सं० पु०) असुरराजके एक पुत्रका नाम।

(कलिविस्तर)

वेमन (सं० पु०) वयत्यनेनेति वे (बेष्वाः सर्वत्र। उण् ४।१४६)

इति इमनिन्। वापदण्ड। (शुकब्रह्मः १६।५३)

वेमपल्ली—मद्राज प्रेसिडेन्सीके कड्डावा जिलांतर्गत पुलि-

घेण्डला तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° २२' ३०"

तथा देशा० ७७° ५०' ५०" के मध्य पापघनी नदीके किनारे

अवस्थित है। यहां वृषनाचलेश्वरस्वामी नामक एक

प्राचीन शिव वा नन्दीके उद्देशसे स्थापित मंदिर है।

प्रवाद है, कि राजा जनमेजयने यह मन्दिर बनवाया था।

मन्दिर नदीतीरस्थ एक बड़े पहाड़की चोटी पर स्थापित

है। इससे इसको शेमा और भी मनाम है। मन्दिर-

गात्रमें कुछ शिलालिपियां भी देखी जाती हैं। यहांके

अधिवासियोंमें अधिकांश हिन्दू हैं।

वेमपल्लु—मद्राज प्रेसिडेन्सीके कड्डावा जिलांतर्गत मदन-

पल्ली तालुकका एक बड़ा-ग्राम। यह मदनपल्लीसे ३

मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। गाँवके एक मन्दिरेमें

१६७६ शकके उत्कीर्ण एक शिलाफलक दिखाई देता है।

वेमरविल्ली—मद्राज प्रेसिडेन्सीके गजाम जिलांतर्गत श्री-

काकैल तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह श्रीकाकैलसे

१५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। प्रायः तीन सौ

वर्षों बीत गये, यहां एक टोलेसे पचास छोटी छोटी देव-

मूर्तियाँ निकाली गई हैं। प्रति वर्ष उन देवमूर्तियोंके उद्देशसे भंडारा होता है और बहुतसे मनुष्य देवमसाद् पानेकी आशासे यहां आते हैं।

वेमराज—१ दक्षिणात्यका रेड्डीवंशीय एक सरदार। यह प्रोलका लड़का था। २ शृङ्गारदीपिका नामी अमक-शतकटीकाके प्रणेता। इनका दूसरा नाम वेमभूगाल भी है।

वेमवरम्—मद्राज प्रदेशके कृष्णा जिलाम्तर्गत नरसपावु-पेट तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहां एक अति प्राचीन विष्णुमन्दिर विद्यमान है।

वेमवरम्—मद्राज-प्रदेशके गोदावरी जिलाम्तर्गत एक नगर। यहां रेड्डी सरदारोंका (१३२८-१४२७ ई०) प्रतिष्ठित एक प्राचीन मन्दिर है।

वेमानभैरवार्वा—घण्टाकमर्दणके रचयिता।

वेमुला—मद्राज-प्रदेशके कड्डावा जिलाम्तर्गत पुलिघेण्डला तालुकका एक नगर। यह पुलिघेण्डलासे ७ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां पोलिगारोंका एक दुर्ग विद्यमान है।

वेम्बकोट्टे—मद्राज प्रेसिडेन्सीके तिमनेवल्ली जिलाम्तर्गत सतुर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ६° २०' ३०" तथा देशा० ७७° ५०' ५०" के मध्य सतुर सदरसे १० मील पश्चिममें अवस्थित है।

वैयत—वम्बई प्रदेशके कच्छोपसागरस्थ एक द्वीप। यह अक्षा० २२° २५' से २२° २६' ३०" तथा देशा० ६६° से ६६° १२' ५०" के मध्य अवस्थित है। यह द्वीप उत्तरपूर्वसे दक्षिणपश्चिममें ५ मील लंबा है। इसका दक्षिणपश्चिम-मांश प्रायः ६० फुट ऊँची एक पहाड़ी अस्थितकी भूमि है। इसका पूर्वांश पगानामक बालुकाचरसे ३ मील दूर पड़ता है। यह स्थान हनुमान-पापेण्ट वा हनुमत

अन्तरोप नामसे प्रसिद्ध है। अन्तरोपके मुक्षसे थोड़ी ही दूर पर हनुमानका मन्दिर है। उसी मन्दिरेसे इस स्थानका नामकरण हुआ है। यहांका दुर्ग अक्षा० २२° २८' ३०" तथा देशा० ६६° ५' ५०" के बीच पड़ता है। यहां कृष्णापासनाका प्रादुर्भाव अधिक है। बहुतसे मन्दिरो-में आज भी कृष्णकी माधुर्यमयी मूर्ति विराज रही है। पंडा ब्राह्मण यहांके प्रधान अधिवासी हैं। प्रति वर्ष

यह स्थान कर्मलाइट मिशनका प्रधान केन्द्र है। यहां वृष्टतन्त्रका एक भिकार पपाटलिक है। १६५६ ई०में उस पपस्टोलिक (Vicariate Apostolic of Verapoli) प्रतिष्ठासे हो वेरांपालिकी प्रसिद्धि है। यह ईसाई-मठ बहुत दूर तक फैला हुआ है। इसके बाद १६७३ ई०में यहां एक गिरजा बनाया गया। उस समय इस द्वीपमें एक भी आदमी नहीं रहता था तथा यह द्वीप कोचोनराजके अधिकारमें था।

गिरजा-घरको छोड़ कर मठ-वाटिकाका द्वय भी मनोरम है। यह ईंटका बना हुआ है और तीन खण्डोंमें विभक्त है। इस मठवाटिकाके उत्तरी प्रान्तमें गिरजा-घर अवस्थित है। उसकी आकृति छोटी होने पर भी यह घेरमकी राजधानीके सेण्टपोटर गिरजा-घरसे कम नहीं है। इसके विभिन्न भजन-मन्दिरोमें (Chapel) ईसाईसाधुओं और नाना पौराणिक चित्रकी प्रतिमूर्ति प्रथित और रक्षित है।

भारतवर्षके अन्याय-स्थानोंमें प्रतिष्ठित १७वीं सदीके मठसे यह छोटा होने पर भी यहां बहुतसे देशी ईसाई पाद्री और रोमन कैथलिक ईसाई सम्प्रदायका वास है। यहांके रोमनकैथलिककी संख्या २ लाख ८० हजारसे भी ज्यादा है। धर्मयाजककी संख्या प्रायः ४ सौ है। रोमन कैथलिक ईसाइयोंमें तृतीयांश प्रायः सिरिय मतानुसरण करके ही चलते हैं। उनमें २ विशय और १४ प्रिष्ट हैं। ये लोग यूरोपीय तथा कर्माईट मतानुसरणकारों हैं। ऊपर कहे गये रोमन कैथलिकोंको छोड़ कर यहां साइरो-नेथेरियन या जेकोबाईट मतावलम्बी और भी बहुतसे लोगोंका वास है। ये लोग साधारणतः सिरियन खृष्टान नामसे परिचित हैं।

वेरामपुर (वहरमपुर)—बङ्गालके दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

वेरार—मध्यभारतके अन्तर्गत एक स्वतन्त्र प्रदेश। यह वेरार राज्यके नामसे प्रसिद्ध था। हैदराबादके राजा निजामने जब इस प्रदेशका कर्तृत्व अंग्रेजोंके हाथ सौंपा, तबसे यह हैदराबाद वसाइण्ड डिप्टीकट नामसे विख्यात हुआ। हैदराबादके रेजिडेंट वेरारके चौकरमिशनरके पद पर रह कर शासनकार्य निर्वहण करते थे। इस

समयसे वेरारराज्य अकोला, बुलदाना, वासिम, अमरावती, इलचपुर और धुन नामके ६ जिलोंमें बंट गया। इसकी उत्तरी और पूर्वी सीमा पर मध्यप्रदेश, दक्षिणमें निजाम राज्य और पश्चिममें बम्बई प्रेसिडेन्सी मौजूद है। इसका भूपरिमाण १७१० वर्गमील है।

समुचा वेरार राज्य पूर्वपश्चिममें विस्तृत एक सुदोर्घ उपत्यका-भूमि है। इसके उत्तर भागमें सतपुरेकी पहाड़ियां और दक्षिणमें अजयटा शैलश्रेणी हैं। यहांके लोग सतपुरेके सन्निहित उपत्यका देशको वेरार पयानघाट और अजयटाशैल तथा उसके अन्तर्गत अधित्यका देशको वेरार बालाघाट कहते हैं। इन दो भागोंमें उत्तरांश ही अपेक्षाकृत उर्वार और शस्यशाली है। यहां तातोकी शाखा स्वल्प पूर्णा आदि कई छोटे छोटे पहाड़ी जलप्रवाह आ कर तातोमें मिल गये हैं। यहां नियमित भावसे और यथेष्ट परिमाणसे वृष्टिपात होता है। इन सब कारणोंसे यहाँ कभी भी जलाभाव नहीं होता। इससे सदा यहाँकी पृथ्वी शस्यशालिनी दिखाई देती है। शरत्कालमें शस्यपूर्ण खेतोंकी श्रोशोमा बड़ी हो आनन्दप्रद है। अधिकांश स्थान ही खेतीवारीके लिये उपयोगी हैं और उद्यमशैल कृषिजोवी अधिवासी विशेष परिधर्मके साथ भूमिकर्षण और बीजवपन किया करते हैं। कूनयो, मोल आदि दृढ़काय पहाड़ी लोग यहां कृषिकार्य करते हैं।

भूपरिमाणकी तुलनामें वेरारप्रदेश आयनियन द्वीपको छोड़ यूनानके बराबर है। किन्तु यहांको लोकसंख्या वहांसे दूनी है। इसके पूर्व पश्चिमकी लम्बाई प्रायः १५० मील और चौड़ाई प्रायः १४४ मील है। यहां कुल मिला कर ५५८५ ग्राम हैं। तातो, पूर्णा, बर्दा और पेनगड्गा या प्राणहिता नदी ही यहांकी प्रधान हैं। किन्तु इन सबोंमें बर्दा नदी द्वारा ही यहाँका काम अधिकतासे निकलता है। बुलदाने जिलेकी लोनार नामकी लघणाक भील पहाड़ी सौन्दर्यसे पूर्ण है। इस भीलके चारों ओर ही पहाड़ हैं, मानो गोलाकार भील चारों ओर इनसे घिरा हो। ये पर्वतगत नाना जलोत्पत्ती वृष्टिसे परिपोषित हैं। भीलका जलमात्र ३४५ पकड़ है किन्तु तीरभूमिकी परिधि ५० मील है।

पुर नगरमें उपस्थित हुए। उन्हींमें अपने पुत्र दानियाल की बैरार और अन्योय प्रदेशके नवाब बना कर हम अज्ञानकी शासनव्यवस्था की। आईन-ए-अकबरकी नामक ग्रन्थमें बैरार सूबेका राजस्व और परिमाण आदि निर्दां रित है।

सन् १६०५ ई०में सन्नट् अकबरकी मृत्यु हो जाने पर मुगल-राजमरकारमें राजव्यवस्थाका विघ्नाट् उपस्थित हुआ और मुगल दरबारने उत्तर भारतमें शूद्रजा स्थापन करनेमें फंस रहनेके कारण दक्षिण भारतके नवाबिच्छन्न प्रदेशके शासनमें ध्यान न दिया। इस समय बैरारकी अरक्षित देख कर दोलताबादके स्थापयोगता प्रणामी निजामशाही राजा अभ्यन्ते बैरारके कुछ भू-भाग पर कब्जा कर लिया। सन् १६२८ ई०में उनकी मृत्युके समय तक बैरार निजामशाहीवंशके अधिकारमें था। इसके बाद सन् १६३० ई०में मुगलोंने इस पर अधिकार कर यहाँ दिल्लीश्वरकी शासन-शक्तिका विस्तार किया। मुगल-सम्राट् शाहजहानि अपने दक्षिणात्यराज्यकी देा पृथक् शासनकर्ताओंके अधीन रखा था। उस-समय बैरार, पयानघाट, जालगा, खानदेश एक विभागमें-थे। किन्तु यह व्यवस्था विशेष सुविधाजनक न होनेसे उसे फिर एक ही शासनकर्ताके अधीन कर दिया गया। सन् १६१२ ई०में पहले पहल कर उगाहनेकी व्यवस्था हुई। पाछे शाहजहानके समयमें उसका बहुत कुछ सुधार हुन। सन् १६३७-३८ ई०में यहाँ फसलों-साल प्रवर्धित हुआ।

इसके बाद सन् १६५० ई० तक बैरारका प्रादेशिक कोई स्वतन्त्र इतिहास नहीं मिलता। इस समय दक्षिण भारतमें मुगल, मराठे और मुसलमान राजाओंमें युद्ध निरन्तर चल रहा था। सन् १६५०-१७०७ ई० तक मुगल बादशाह औरङ्गजेब दक्षिणात्य समिवायमें लित थे। उम समयका बैरारका इतिहास औरङ्गजेबकी दक्षिणात्यविजयसे सम्बन्धित है। सन् १७०७ ई०में अहमदनगरमें औरङ्गजेबकी मृत्यु हुई। इसके बाद बैरार प्रदेश मराठे और मुगलसैन्याओंके लूट लसोट तथा अग्निकाण्डका श्रेय बना हुआ था। इस समयमें ही मराठोंमें इतरे देशमें महाराष्ट्रगण सारदेशमुक्तों और यो-

धदा करते थे। सन् १७१७ ई०में सन्नट् फारुकेमिररके सौयद्वयों मन्तो भी पद कर देने पर बाध्य हुए थे।

सन् १७२०-ई०में दक्षिणात्यके मुगल राजमन्निधि चीन किन्जिब खां निजाम उममुल्क नाम रख कर स्थापनताके प्रयासो हुए। इस समाचारसे दोनो सौयद मन्तोने उनके विरुद्ध फौजे भेजी। उन्हींने इन सेनानोको तीन युद्धोंमें पराजित कर अरगा प्रभुपर विस्तार किया था। इस समय बैरारके सुबेदारने उनका साथ दिया। सन् १७२१ ई०में सुरदागपुरमें पहला युद्ध हुआ और इसके तत्पश्चात् ही बानापुरमें दूसरा युद्ध हुआ। इसके बाद सन् १७२४ ई०में सुन्नाना जिलेके सखरचेलदा नामक स्थानमें तीसरा युद्ध-अन्तिम युद्ध छिड़ा। उसी समयसे सखरचेलदा 'फतेह चेलदा'के नाम विख्यात हुआ है। इस युद्धसे बैरार प्रदेश १६वीं शताब्दी तक नाममातके हीदराबाद् राजवंशके अधीन रहा।

१७वीं शताब्दीके अन्त भागमें ही बैरार राज्यकी पूर्ण समृद्धिका हानि होने लगा। सन् १५६७ ई०में फ्रांसीसी समणकारी Mr. de Thevenot ने इस देशका परि-दर्शन कर लिया है, कि मुगलसाम्राज्यमें यह स्थान धनधाय और जन-संख्यामें परिपूर्ण था। इसके बाद यहाँके राजस्य सम्प्रद करनेवालोंके विद्रोहमें ही यह स्थान अस्वशुभ्य और जनहीन हुआ। इसके बाद राजाओंके युद्ध विग्रहमें यह धोखेप हो गया। इस समय मराठोंने बैरार राज्यको लूट पाट कर और भी नष्ट कर दिया। उनकी हाकेजमोके मर्यादे यहाँका दानिय्य लुप्त हो गया। इससे बहुतरे लोग देग छोड़ कर यहाँसे चले गये। मुगलसम्राट्ने यहाँ एक जामोर-दार नियुक्त कर राजस्वसंग्रहकी व्यवस्था की। इसी समय मराठोंने भी एक स्वतन्त्र जामोरदार नियुक्त कर अलग राजस्व संग्रह करनेके लिये व्यवस्था की थी। इस तरह यहाँकी प्रकाने करमारसे बाधित हो जामोरकी छोड़ दिया। निरन्तर लूट और दूरेका मर्यादा जामोरमें देखने देखने उगता हुन ही अस्तित्व हुआ, मुन्तों दे स्थायी वन्द्यो-धन्वकी कृतवाता न रह गयी।

सन् १८०४ ई०में हीदराबाद्की सन्धिपरामर्शे नदी

नदीके पूर्व घाटों जिले समेत समग्र बैरार राज्य (नाग-पुष्पा कुष्ठ अंश भो' सले घंशके.भीर पेशवाओंके अधीन रहा) निजामके हाथ आया । गाविलगढ़-नरनाला दुर्ग नागपुरके महाराष्ट्र-सरदारके-अधीन था । फिर सन्-१८२२ ई०में भीर एक-सिन्ध हुई । उस सिन्धके अनुसार बैरारकी सीमा जो निर्धारित हुई उसके अनुसार राज्यके परिवर्तनका सारा प्रदेश निजामके अधीन हो गया और नागपुरराजने नदीके पूर्व स्थित देश भागको नाममात्रके लिये पाया । सन् १७६५ ई०में पेशवाने जिन जिलों पर अधिकार रखा था और सन् १८०३ ई० तक नागपुरराजने जिन स्थानोंको अधिकार किया था, वे सभी निजामको लौटा देने पड़े थे ।

उपर्युक्त कारणोंसे अनेक राजाको ही सैन्यसंस्थाका हास करना पड़ा । निकाले हुए सिपाही खेतीबारी न कर डाकेजनीसे अपना जीवन निर्वाह करने लगे। इन डाकुओंके अत्याचारसे राज्यरक्षा करनेमें निजामको बहुत कष्ट सहा तथा प्रचुर धनव्यय करना पड़ता था । इस अथवा धनव्ययके कारण निजाम अग्रणप्रस्त हो गये और अङ्गरेजराज १८०० ई०की सन्धिशर्तोंके अनुसार पृथ्वीराजकोपसे सेनाको वेतन देते थे । इस तरह लखनौसर-विद्रोहसे निजामके अधिकृत प्रदेश नष्टप्राय होने पर अङ्गरेज शान्तिस्थापनके लिये आगे बढ़े । अङ्गरेजोंने सन् १८४६ ई०में अण्णासाहबको कैद कर उसके अधीनस्थ सिपाहियोंका भगा दिया ।

अंग्रेजोंको इस सहायताके बदले निजाम "हैदराबाद कंस्टिजेण्ट" सेनादलका खर्च देते थे । किन्तु उस समय यह व्यवहार असह्य हो उठा था, इससे निजामने इस व्यवहारको अंग्रेजोंके हाथ अर्पण किया । बहुत दिनों तक उसके प्रतिकारका अर्थात् उस रकमकी बसुलीका उपाय अंग्रेजोंके दिक्कार नहीं दिया । अन्तर्निजामका धनाभाव बढ़ने लगा था । एक तरहसे निजाम सरकार विधाविद्या हो गई थी । अतएव अन्य उपाय न देख अंग्रेजोंने सन् १८५३ ई०में निजामके साथ एक नई सन्धि की । इस सन्धिके अनुसार अंग्रेजोंको पूर्व-प्रदत्त अग्रणपरिशोध करनेके लिये और हैदराबाद कंस्टिजेण्ट फौजोंके व्ययमार निर्वाहके लिये ५० लाख आम-

दनीके कई जिले प्राप्त हुए । ये सभी जिले (घराशिये-बीर-रायचूड़ हैाबाव छोड़ कर) "हैदराबाद एसाइण्ड डिस्ट्रिक्ट" नामसे उसी समयसे अंग्रेजोंके अधीन आ गये । इस सेनादलका मूलशा इलिचपुरमें और अकोला तथा अमरावतीमें कुछ पैदल सैनिक रले गये ।

इस संधिको शर्तोंमें एक शर्त यह भी थी कि अङ्गरेज निजामको वार्षिक दिसाव-देंगे और राजस्वमें अपना फिस्त काट कर जो-याको निकलेगा, वह भी हूँगे । उन की और अङ्गरेजोंकी सहायताके लिये युद्धके समय सेना भेजनी न पड़ेगी । ये सैन्यदल अब उनके सेना-विभागके अधीन रहेंगे । केवल उन्हींके कार्यके लिये वे सेनाये अङ्गरेजोंके अधीन रहेंगे ।

पीछे सन् १८५३ ई०में जो सन्धि हुई, उसके अनुसार अंग्रेजोंको वार्षिक दिसाव हाखिल करनेमें अनु-विधा मालूम हुई । इस पर सन् १८०२ ई०की सन्धि-शर्तके अनुसार ५ रुपये सैकड़के शुद्ध बसुली देनेकी बात थी, उसके सम्बन्धमें दोनों पक्षमें गड़बड़ों चलने लगी । उस समय अंग्रेजोंने इस विषयसे लुटकारा पानेके लिये और सन् १८५३ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय निजामके खीकृत पुरस्कार देनेके लिये सन् १८६० ई०के दिसम्बर महानमें निजामके साथ एक सन्धि का । इससे अंग्रेजोंने निजामको ५० लाख रुपयेका माफी दे दी । सुरपुरके विद्रोही राजाका राज्य छोन कर अंग्रेजोंने निजामको दे दिया । इसके साथ ही घराशिये और रायचूड़ हैाबाव निजामको लौटा दिया गया । निजामको अंग्रेजोंसे सम्पत्ति मिली-सही । किन्तु निजामको भी इसके बदलेमें अंग्रेजोंका गोदावरी नदीके बाये किनारेके कई जिले और उस नदीमें भाण्डियके लिये जो शुद्ध बसुल होता था, उसका छोड़ देना पड़ा ।

इस तरह बदलेमें निजामसे अंग्रेजोंका जो सम्पत्ति मिली, उसका राजस्व प्रायः १२ लाख रुपयेका था । अंग्रेज सरकार इस रुपयेसे १८५३ ई०की संधिके अनुसार कार्य करने लगी । निजाम सरकारको अब वार्षिक दिसाव देनेकी आवश्यकता न रह गई । उक्त एसाइण्ड डिस्ट्रिक्टके मध्य फौजोंके वेतनके लिये निजामप्रदत्त जो सब आगोर और निजामके स्वयं व्ययके लिये जो सम्पत्ति

७१, उनको अंग्रेजोंके शासनपान करनेके अतिप्रायमें अंग्रेजोंने भाग्य रूपमें सम्पत्ति दे कर बदलावदनी कर ली।

सन् १८६१ ई०में इस परिवर्तनके सिवा सन् १८५३ ई०में येरारके राजनीतिक-संक्रांतिमें भीर कुछ नो परिवर्तन नहीं हुआ। सन् १८५० ई०में सिवाही-विद्रोहके समयमें भी यहाँ विप्लवकी विशेष सूचना न हुई। सन् १८५८ ई०में नांमियाटीपी हल-यन्त्रके साथ सतपुरेके यहाए पर भा उपस्थित हुए थे सही। किन्तु ये येरार-उपत्यकामें प्रवेश कर न सके। प्रेट इण्डियन-पेनि-गुला और नितामसस्ट्रेट रेलवेके शुरु जामे पर यहाँके बाजिन्यमें बड़ी उन्नति हुई है।

यहाँ गाना जाति तथा नाना वर्णके लोगोंका वास है। उनमें हिन्दू प्रायः २८॥ लाख, मुसलमान प्रायः २ लाख और भील, गोंड, कुर्ख आदि असभ्य जातियोंकी संख्या प्रायः १ लाख सत्तर हजार होगी। जैन, ईसाई, सिक्ख और पारसी मो रहने हैं। किन्तु इनको संख्या कम है। यहाँ जो लोग यास करते हैं, उनमें अधिकांश कृषिजोयो हैं। यहाँ मकई, गेहूँ, चना, बाजरा, धान, तिल, पाट, सन, तम्बाकू, ऊपर, ऊँर, सरसों और गांजा, अफीम आदिका खेती होता है। यहाँके बाघियासी मोटों रकमके सूती कपड़े, गलीचा और आरजाम वेतते हैं सही। किन्तु ये चीजें आदून नहीं होती। रेशमी वस्त्र तैवार करनेका साधन रूढ़ सामान्य है। स्थान स्थानमें यद्य बुननेका काम भी होता गया है और पुत्रदानके निकटवर्ती देवलयमें इस्वातके बने अत्यादिका मो कारीबार होता जाता है। गागपुरसे वारोक कपड़े और भ्रवाग्य भावदयक सामग्री बहरासे मंगाई जाती है।

अमरावती, अकोला, अकोट, अन्नगांव, पालापुर, धामिन, देवलगांव, इलचपुर, दिवारगेर, जालगांव, करिबा, कामगांव, फारासगांव, मालकापुर, पगतवाटा, पापुर, सोमपुरजमा, सोगांव और जेतमलनगर येरार प्रदेशकी समृद्धिके परिचायक हैं। अमरावती, अकोला, धामगांव, सोगांव और धारिम नगरेमें उगुनिसिपलिटिव हैं।

भारतके राजप्रतिनिधि लार्ड कर्जनके राजनीतिक

कीमतसे सन् १९०६-०७ ई०में येरारप्रदेशके निष्ठात्मके अवि-यामे कयुन होवैसे पहले ही यह प्रदेश एक चौक कनि-शरके द्वारा शासित होता था, जिसका विवरण ऊपर लिखा गया है। उनके अधीनमें एक सुविनिपल कमि-शर और एक राजन्व विभागोप कमिश्नर, छः डिप्टी कमिश्नर, १० एसिस्टेंट कमिश्नर और ३ इन्स्पेक्टर जेनरल भाव पुलिस, जेन और रजिस्ट्रेशन, ३ डिप्टी सुपरिण्डेंट भाव पुलिस, २ एसिस्टेंट सुपरिण्डेंट भाव पुलिस, १ सेनिटरी कमिश्नर (ये इन्स्पेक्टर-जनरल भाव डिस्पेन्सरी और मेडिसिनेजल पर पर भी काम करते थे) १ सिविल सर्जन, १ डिप्टीट भाव पब्लिक हेल्थ-इन्स्पेक्टर, १ जनरलमैजिस्ट्रेट भाव फारेण्ट और १ एसिस्टेंट कन्सलरमैजिस्ट्रेट थे। इन सबको होयानी आदिके सुाधमें विचार करनेकी क्षमता थी।

१९०३ ई०में येरारका शासन-कार्य हैदराबादके रेवि-डेन्समें मध्यप्रदेशके चौक-कमिश्नरके हाथ आया। शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह अनो पोष जिनोने विभक्त की, यथा—अमरावती, इलचपुर, ऊन, अकोला, पुत्रदाना और धामिन। प्रत्येक जिला एक एक डिप्टी-कमिश्नरके और प्रत्येक तालुक एक एक तहसीलद्वाराके अधीन है। पुलिस-विभागमें एक सुपेरिण्डेण्ट और उनके सहकारी डिप्टी कमिश्नर तथा सोन सोन अवि-ष्टेण्ट सुपेरिण्डेण्ट हैं। डिप्टी जेनरल कार्यभार सिविल सर्जनके हाथ मपूर् है। प्रायः कर्मचारी पेटल या पटवारी कहलाते हैं। यह पर उतका पंग-परम्परासे आता है। प्रायका राजन्व यत्न करना हो उनका काम है। ये प्रायः श्रीकीशरके कामोका भी निराक्षण करते हैं। उर्ये अपराधोको पकड कर बहा-लन मेजनेकी भी क्षमता है।

येरारमें एक मो कालेज नहीं है, परन्तु हाई स्कूल, निरकेण्टो, प्रायमरी और निशक ट्रेनिंग स्कूल बहुत हैं। स्कूलके अलावा ४० अस्पताल और चिकित्सालय हैं। येरारल (बहाबल, मेरोल)—बम्बई में सिन्धुतीके काठिया-वाड़ विभागके जूनागढ़ सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक नगर और बम्बर। यह मद्रासमें २० मीच इतिहास पूर्व १५५५ ई० में ८१ मोल और सोमनाथ मन्दिरमें ६ मोल

उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। अक्षां २०° ५३' ३०" तथा देशां ७२° २६' ५०"में अवस्थित है। मस्कट, घर्बई और कर्तची नगरसे यहांका प्रचुर वाणिज्य चलता है। वर्तमान समयमें इस बन्दरकी अच्छी उन्नति हुई है। विभिन्न स्थानोंसे प्रचुर परिमाणमें माल अस्वाबा यहां आता है।

प्राचीन शिलालिपियोंमें इसका नाम वेरावलपत्तन लिखा है। निकट ही सोमनाथपत्तनका सुविख्यात मन्दिर है। यह प्राचीन मन्दिर समुद्रके किनारे अवस्थित है। इसके ध्वस्त स्तूपोंसे प्रस्तर आदि ले कर यहांके लोगोंने मकान आदि बनवाये हैं। अथशिए जो दो घर मौजूद हैं, उनके गुम्बजकी छतों पर नाना पौराणिक चित्र अङ्कित हैं। पहला गुम्बज ६५ स्तम्भों पर बना है। द्वितीय गुम्बज एक शिखरमात्र है। जो इस समय है, उसकी लम्बाई ६०॥ फुट, चौड़ाई ६८ फुट और ऊंचाई ४८ फुट है। प्रवाद है, कि ८५० वल्लभी आधमें यह मन्दिर निर्मित हुआ था।

सोमनाथका वर्तमान मन्दिर इन्दोर राजपूतों सहल्याबाई द्वारा सन् १८०६ संवत्में पुनः निर्मित हुआ। इसके प्राङ्गणकी लंबाई १२२७ फुट और चौड़ाई ८२ फुट है। किंतु मूलमन्दिरकी लंबाई और चौड़ाई ३६ फुट और ऊंचाई ४२ फुट है। इस मन्दिरमें गायकवाड़के दीवान विठ्ठलदेवाजीने एक धर्मशाला बनवाई है। इसके निकट ही अन्नपूर्णा और गणपतिजीका मन्दिर है। मूलमन्दिर-मोतरमें पहले शंभूदेव लिङ्ग और उसके नीचे १२ फुट लम्बे चौड़े गड्ढेमें सोमनाथलिङ्ग स्थापित है। इसके ऊपर गुम्बज ३२ स्तम्भों पर रक्षित है। यह पत्तन पवित्र तीर्थ गिना जाता है। सरस्वती, हिरण्वा और कपिला नदीका सङ्गम ही यहांकी त्रिवेणी है। पत्तनके बाजारके किनारे जो जुमा मसजिद है, वह हिन्दू मन्दिर पर स्थापित है। अब भी मन्दिरगात्रमें प्रस्तरखोदित सुन्दर सुन्दर मूर्तियाँ सटी दिखाने देती हैं। ये १११ फुट × १७१ फुट और इसकी छत २५१ स्तम्भों पर खड़ी है। प्राचीन सूर्यकुण्ड अब हीनमें परिणत हो गया है।

इस मसजिदके निकट जो मुसाफिरखाना है यह

भी एक जैन मन्दिरका भग्न निदर्शन है। इसकी छतका गुम्बज भाग और स्तम्भ आदि भास्कर शिल्प समन्वित हैं। इस अष्टास्रिकाके निम्न भागमें ३५ × ४७॥ की एक गुहा है। यह प्रस्तर द्वारा ६ गुहोंमें विभक्त है।

पत्तन और वेरावलके नीचे समुद्रके किनारे मिद्रिया मन्दिर है। अधिक सम्भव है, कि भिन्नजन महादेवके नामसे अपभ्रंशमें मिद्रिया हो गया है। यह मन्दिर ४० फुट ऊंचा और १३७ फुट लम्बा और २२ फुट चौड़ा है। यह प्रस्तरनिर्मित है और इसका गुम्बज २० स्तम्भों पर खड़ा है।

वेरावल और पत्तनके नीचे भादका कुण्ड है। उसका परिमाण २५ × ३७ फुट है। भालोदा या मूळ (तीरथट्टि) शब्दसे इसका नाम हुआ है। यहाँ वाल नामक एक मीलने ध्रोळणको तीरसे मारा था।

पत्तनसे १० मील दूर ही प्राचीन कुण्ड है। इसी कुण्डसे सरस्वती नदी निकली हुई है। कुण्डके किनारे प्राची-पोपल नामका एक पौधलका पेड़ है। दोनो कुण्डोंके उत्तर सरस्वतीके गर्भमें तीरस्थ जम्बू रूक्षकी छायाके नीचे माधवरायजीकी मूर्ति प्रतिष्ठित है।

पत्तनसे ३०० गज पूर्वा दिङ्गलाज माता नामकी गुहा है। इस गुहाकी लम्बाई ३६॥ फुट, चौड़ाई २८ फुट और गहराई १० फुट है। यह अति प्राचीन है, और दो प्रकीर्णोंमें विभक्त है। एकमें दिङ्गलाज देवीकी मूर्ति स्थापित है। वेरावलके हरसव मन्दिरमें श्रीधवलेश्वर मूर्तिकी पूजा और गुहादि निर्माणके व्यवविषयक और श्रीगोवर्द्धन मूर्तिमें (६२७ वल्लभा संवत्) तथा १४४२ सं०में सङ्गमेश्वरमूर्ति स्थापना सम्बन्धीय शिलालेख उद्घोषण हैं।

चौरवाड़के निकटके नागनाथ मन्दिरमें भी १४४६ संवत्में उद्घोषण एक शिलालिपि है। उसमें रानी विमला देवी द्वारा चार चरणीय विप्र प्रतिष्ठाकी बात है।

घेराशेण—मन्त्राज प्रदेशके गोदावरी जिलांतर्गत भीमवर मतालुकका एक नगर। इसका असल नाम वीरवासरम् है। यह नगर बहुत पुराना है। प्राचीन ऐतिहासिकोंने इस नगरका घेराशेण नामसे उल्लेख

दिया है। १६३७ ई०में यहां मङ्गरेजों की एक फौज भीर
उपनिवेश स्थापित हुआ। १६६२ ई०में मङ्गरेजों ने
इसे छोड़ दिया मही, पर १६७७ ई०में फिरसे ये यहां वा
कर प्रतिष्ठित हुए। १७०२ ई०से मङ्गरेजों ने इसका
विलुप्त परिचय कर दिया है।

यहांके विद्वांभारस्वामीमन्दिरके समीप एक शयन-
स्नान है। उसकी बगलमें ही मङ्गरीमूर्ति है। मङ्गिर-
गात्रके जिलाकलक उत्पन्न है। इसके मिया यहां
एक भीर अतिप्राचीन मन्दिर है। क्वालीय पूर्वतन
जमींदारों द्वारा प्रतिष्ठित एक पुराना दुर्ग भी नगर
भाता है।

बेरि (१० मील) बेत धारिसे गुन कर बना हुआ यह
नाया या बनकर।

बेरि—१ मध्यभारत पञ्जाबीके सुदूरदक्षिणके अन्तर्गत
एक छोटा सामन्त राज्य। यह अक्षा० २५' ५५" से
२५' ५७" पू० तथा देशा० ७६' ५५" से ८०' ४' पू०के मध्य
विस्तृत है। मूलरिमाण ३० वर्गमील है।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर; पेतया नदीके गाँव
दिनारे कालोसे २० मील दक्षिणपूर्वमें स्थित है।
यहांके सरदार भूमर वंशीय राजपूत है। दत्तक
लेनकी सनद् इहें वृत्ति गणेशदेवसे मिली है।

बेरि—पञ्जाबके रोहतक जिलाअन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा०
२८' ४२" उ० तथा देशा० ७६' ३७" पू०के मध्य स्थित
है। १३० ई०में दोगरावंशीय पणिकोंके द्वारा यह नगर
प्रतिष्ठित हुआ। यहां प्रति वर्ष भाष्यन और भागके
महोत्समें देवोंके उद्देशसे दो मले लगते हैं। अन्तिम मलेमें
गाव, घोड़े और गद्दे खादि विक्रयकी भांति है। जाऊं
रामस नामक एक अंगरेजपुत्रने जाट और राजपूत
सेनाओंसे यह स्थान हथक रिया था। मराठोंने उक्त
जाऊं रामसको जो जागीर दी, यह बेरीनगर उसीके
अन्तर्गत है।

बेरि-बेरि—रोपारियेन (Berri-Beri)। यह रोपारियेनके
है। काले उपरकी तरह कमो कमो यह दिखाई देता है।
मङ्ग्राज प्रसिद्धे लोकें शनैक अस्थाप्यपर स्थानोंमें इस
रोगका प्रचुराण है। हेम उपरकी तरह हमने १६७०
८ ई०में बरहकरी और उसके निकटवर्ती स्थानपरिसी

पर आक्रमण किया। बहुतेरे मरते हो गये, परन्तु पूर्व
पर स्वास्थ्य और बल उद्देशोंने फिर नहीं पाया। इतने
घोड़ा घोड़ा उबर जाता है। सुखीय होने पर और
मगला दिक्ता छोरे छोरे फूलता जाता है तथा उस म
में उपरकी माता भी अधिक होता है। मङ्ग्राजके
समय सुन्न कम हो जाती है तथा उपर भी उ
भाता है।

बेरिकिदु—मङ्ग्राज-प्रदेशके मङ्ग्राज जिलाअन्तर्गत एक म
सम्पत्ति और उसके अन्तर्गत एक नगर।

बेरिया—मध्यप्रदेशके निम्न जिलाअन्तर्गत एक प्राचीन म
मालवके छोटे वंशपर्येने इसे बसाया है। १४वीं स
से ले कर १६वीं सदीके मध्य तक राजाओंने नगर
दक्षिण २ मील विस्तृत एक चतुर्भुजा बनाया। १८
ई०में उसका जीर्णोत्थार हुआ। नगरमें एक सुन्द
जैनमन्दिर और जैन-पणिकसम्प्रदायका वास है।

बेरिमा—पूर्व पङ्क्यासी निम्नभेणोकी जातिपरिये।
लोग कुविज्ञोयो है और घोवरका भी कार्य करते हैं
चण्डालोंके ही साथ खाते पीते हैं, इस कारण इ
उक्त जातिको ही एक जाथा माना गया है। किन्तु उ
में भावान्प्रदान नहीं चलता। ये लोग मलादकी तर
जाल देना कर मछली पकड़ते हैं।

बाँस याँ सरकण्टेका 'बेड़ा' बना कर उसीसे न
या सोतेका जल बाँध देते हैं। इससे मछली बाँधसे
बाहर निकल नहीं सकती, बेड़ेके ही चारों तरफ ४३
जाती है। इस प्रकार ये भासानोसे उन मछलियोंको
पकड़ लेते हैं।

सभी बेदिमा कारयण गोत्रीय है। इनका दूनव
या मण्डल पात्र वेदमा बदलाता है। चण्डालोंका पु
दित ही इनका पुरोहित होता है। कहते हैं, कि ये लोग
सगोत्रमें विवाह नहीं करते, किन्तु चण्डालोंमें यह नहीं है,
उसके विना काम चलता हो नहीं।

बेदर—मङ्ग्राज-प्रदेशके मलवार जिलाअन्तर्गत दोना
तालुकका एक प्राचीन नगर। यह कुदिनुपु देन म
३ मील दक्षिणमें स्थित है। यहाँके एक प्राचीन
मन्दिरके सामनेवाले स्नानमें जिनानिधि उरकोपी है।
बेरीन्द्रा—मध्यभारत पञ्जाबी सुदूरदक्षिणके अन्तर्गत एक
सामन्त राज्य। गरीबता देतो।

वेरिा—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यहाँ एक बड़ा स्तूप है। स्थानीय लोग इसे राजा वैनका प्रासादांशेष बतलाते हैं।

२ युक्तप्रदेशमें पटा जिलान्तर्गत एक नगर। यह स्थानीय वाणिज्य-केन्द्र समझा जाता है।

वेरिा—मध्यप्रदेशमें छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक नगर।

बेल (सं० कृ०) उपवन, बाग। (हेम)

बेलका—बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक वाणिज्यप्रधान ग्राम। यहाँ पटसन और सरसोका जोरों वाणिज्य चलता है।

बेलकुचि—बङ्गालके पटना जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २४° २०' उ० तथा देशा० २६° ४८' पू०के मध्य पमुना नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँ पटसन, सूती कपड़े, चावल तथा अन्यान्य द्रव्योंका वाणिज्य चलता है।

बेलखार—युक्तप्रदेशके मिर्जापुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अहरीया नगरसे दक्षिणमें अवस्थित है। गांवके पासवाले एक मैदानमें ११ फुट लंबा और १५ इंच चौड़ा एक मीनार है। उस मीनारके ऊपर एक छोटी गणेशकी मूर्ति स्थापित है। मीनारमें कुछ शिलालिपियाँ भी देखी जाती हैं, उनमेंसे ऊपरकी लिपि १२५३ संवत्में कन्नोजराज लक्ष्मणदेवके राज्यकालमें उत्कीर्ण है। उस लिपिसे जाना जाता है, कि कन्नोजके राठौरराज जयचन्द्रके मुसलमानों द्वारा पराभव और मृत्युके ३ वर्ष पीछे यह मीनार खड़ा किया गया था। स्तम्भलिपि 'मुसलमानों अशुभदयका उल्लेख न करके हिन्दू राजत्वकी गरिमा ही कोरान करती है।

बेलखोरा—मध्यप्रदेशके जबलपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह एक स्थानीय वाणिज्यकेन्द्र है।

बेलगांव—(बेलगाम) बम्बई प्रेसिडेन्सीके दक्षिण विभागका एक जिला। अक्षा० १५° २२' से १६° ५६' उ० और देशा० ७५° ४' से १५° ३५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमण करीब पांच हजार वर्गमील है। इसके उत्तरी सीमा पर निजाम और जट्टराज, उत्तर-पूर्व सीमा पर कलादगी जिला, पूर्वी सीमा पर जामखेडी और मुबोरे रीडा, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व सीमा

पर धारवाड़, उत्तर कणाड़ा और कोल्हापुरराज्य, दक्षिणपश्चिममें गोवाराज्य तथा पश्चिम सावन्तवाड़ी और कोल्हापुरराज्य है। उत्तरपूर्वसे दक्षिणपश्चिम तक लम्बाई १२० मील और चौड़ाई ८० मील है।

यह जिला गण्डरील मालासे विभूयित हो स्थान-स्थानमें उपत्यका, अधित्यका और अत्युद्य धूङ्गावलीसे परिशोभित है। एक ओर जैसे शस्यपूर्ण समतल प्रान्तरवक्षमें नदीमालाकी शान्तिमयी शोभा है, दूसरी ओर जैसे ही अत्युन्नत शैल शृङ्खीमें दुर्भेद्य गिरिदुर्गोंका धीर गम्भीर दृश्य है। यह शैलश्रेणी पश्चिमघाट या सह्याद्रिशैलकी एक शाखा है। जिलेके पश्चिम और दक्षिणांशके पार्वत्यप्रदेश अपेक्षाकृत उन्नत और क्रम-निम्नभावसे पूर्वामिमुख कलादगी जिले तक आया है। दक्षिणमें सह्याद्रि-शैलके सशिखर शाखाप्रशाखाओंके अधर उधर फैले रहने पर भी बीच-बीचमें निविष्ट पतन-माला और जनहीन समतल भूमि दीखती है। इसके दक्षिण भागमें बड़ी बड़ी नदीके किनारे आम, जामुन, कटहल, इमली आदि वृक्ष फलके बोधसे अवगत हो उस जनहीनताके बीचमें भी यहाँकी सौन्दर्य-वृद्धि कर रहे हैं। जिलेके उत्तर और पूर्ण भंदा शस्य-पूर्ण श्यामल प्रान्तरमय हैं और उसमें छोटे छोटे कृषकोंके गांव हैं।

इस जिलेके उत्तर-छाप्यां, बीच भागमें घाटप्रभा और दक्षिणमें मानप्रभा नदी सह्याद्रिपादसे निकल कर पूर्वा-मिमुख घोर मन्धर गतिसे बङ्गोपसागरसे गिरती है। इन तीन नदियोंके पश्चिमांगकी जलराशि मधुर है; किन्तु पूर्वांशका जल समुद्रस्रोतके साथ मिले रहनेसे कुछ लवणाक्त हो गया है।

इस पार्वतीय प्रदेशके स्थान-स्थानमें लौह, जन्त, (अबरक), बेलपट्टर, दानादार और स्फटिक पट्टर आदि पाये जाते हैं। वनभागमें शाल, श्वेत शाल, हगिन, हरीतकी और कटहल आदि पेड़ और जीव-जन्तुओंमें नाना जातिके हरिण, बनेले सूअर, व्याघ्र, लकड़बग्घा और नाना तरहके पक्षी दिखाई देते हैं।

यहाँका इतिहास महाराष्ट्र-इतिहासके साथ संश्लिष्ट रहनेसे स्वतंत्र भाषसे लिखा न गया। सन् १८१८

६०में पुनेकी शक्तिपती जगदीश, अनुसार पेशवाने अनुज्ञेतीके
 हाथ पारघाट विद्यापके माघ पद जिला दान दे दिया
 था। उक्त समयसे यह पारघाट जिला नामसे अंगरेजों
 द्वारा नामित होने लगा। पीछे शासनकार्यकी सुविधा-
 के लिये सन् १८३६ ई०में उक्त विद्यापके वसिष्ठानामे
 पारघाट और उतापीतमें वेल्गांव नामसे दो नवनगर
 जिलेमें तालुक हुआ। सन् १८४८-४९ ई०में यहां पहली
 बार सौं १८८१ १८८२ ई०में दूसरी बार बन्दोबस्त
 हुआ। इन जिलेमें वेल्गांव और उतापके निकट छायावी,
 गोरक, अथनि, निपाणि, मीन्दनी और यमकजामदेई
 प्रधान नगर हैं। यहांके अधिवासी साधारणतः निष्का-
 यत शीप हैं। मिया इनके बन्दोबस्तमें सहायकभी भी हैं।
 कैलाश नामकी बस्तुजाति दो यहां प्रसिद्ध है।

यह जिला अथनी, वेल्गांव, विरो, चिकीहूं, गोरक,
 परेनागढ़ और साम्यगांव नामके उपविभागोंमें विभक्त है।
 परेनागढ़ उपविभागके पर्वत पर दल्लमादेवीका प्रसिद्ध
 तीर्थ है। यहां प्रतिवर्ष कार्तिक और चैत्रके महीनेमें देवीके
 उद्देशसे महासमारोहसे पूजा और तीन दिनरुपाया मेला
 लगता है। इस मेलेमें प्रायः ४० हजार तीर्थवासी एकत्र
 होते हैं। कार्तिकमें दल्लमादेवीके लामोंकी शुरुयुवा पर्वा
 और चैत्रमें उसका पुनर्जीवन समाधान है। कार्तिक
 मासमें मूलमन्दिरोके कुछ दूर पर एक छोटे पीठ पर जा
 मारणदिवाबोधक पूतनादि किये जाने हैं। कुछ काल
 बोल जाने पर समागत स्त्रियों दल्लमादेवीके न्यामोंके
 नियोगप्रधानमें समवेतना पकट करनेके लिये रो डटती
 है। होम या ३० हजार स्त्रियोंकी रौदन ध्वनि कितनी
 हृदयविदारक होगी होगी, यह सद्दज दो अनुभव है।
 इनके बाद सभी स्त्रियों के घोके गैधमकी समवेदनामें
 अपने हाथको मूर्ध्नि फेर डालती हैं।

२ वरहमें सिद्धलोकके वेल्गाम जिलेका एक उप-
 विभाग। इनका भूविभाग ३६२ वर्गमील है।

इस उपविभागमें निम्नोक्त गिरिदुर्ग विद्यमान है—

- १ वेल्गाम गिरिदुर्ग। २ मदीपनूट गिरिदुर्ग,
 वेल्गावसे ४ मील परिधमापर सुनी नामक स्थानमें
 अवस्थित है। ३ कलाभिमजड—वेल्गामसे ७ मील
 परिधम इन्दिश नामक स्थानमें—

वेल्गामसे १६ मील परिधमापर कोरज नामक स्थानमें
 है। ५ पारगढ़—वेल्गामसे ३२ मील परिधम इन्दिश
 पारगढ़ मीलशुद्ध पर अवस्थित है। ६ घाटगढ़—वेल्-
 गावसे २२ मील परिधम है। (सन् १५ ५२ ३०
 और देना ०४ १५ ५०) यहां देवलनाथका मन्दिर
 विद्यमान है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर। समुद्रपृष्ठसे २५०००
 फुटकी ऊंचाई पर घेल्हरी नामा नामकी माकूँहडी मण्डो
 एक शाला झोलेके ऊपर स्थापित है। माकूँहडीके पार-
 प्राममें मिल्तेमें ही हुन्ना नदीका कलेपर पुष्ट हुआ है।
 यह अक्षां १५ ५२ एवं देना ०४ ३४ ५०में विस्तृत
 है। नगरके पूर्वां दुर्ग और पश्चिमनाममें संमानिधाम
 है। बाह्यति असमष्ट है। यहां बरत बहुत होते हैं।
 इसीलिये कलाहो मायामें इस नगरका नाम घेल्गाम
 है और उसमें ही येथु, येल्गु या वेल्गाम क्यामारि
 हुआ है। यहांका गिरिदुर्ग छोटा होने पर भी सुरक्षित
 है। मायतन १००० गज लम्बा और ७०० गज चौड़ा है।
 प्रस्तरवत्त काट कर इन दुर्गके चारों ओर खाई लघ्यार
 की गई है। सन् १८१४ ई०में येगयाके पतन होनेके
 बाद धर्मजीने इन दुर्ग पर अधिकार कर लिया। २१
 दिन तक अचरोध करनेके बाद दुर्गस्य सेन्योंने धर्मजीके
 हाथ आत्मसमर्पण कर दिया।

किशदरतो है, कि सन् १५१६ ई०में यह दुर्ग बना
 था। इसमें आमद लोकी दरगाह या मसजिदका
 मक़ा और १२ या १३वीं सदरीमें स्थापित दो जैतमगृह
 हैं। मसजिद मक़ाके प्रवेशद्वार पर १५३० ई०का एक
 जिलाकालक है।

अनुज्ञेतीके अधिधारमें धा जानेके बादही वेल्गावके
 नाम विषयमें उन्नति हुई है। बानिश्चप्रमाण यह
 नगर पतने पूर्व हुआ है। संमानिधाम स्थापनके
 माघ माघ देवीके कालकीके जिज्ञाकी व्यवस्था हुई है।
 विनामुरता बन्द यहांका प्रधान बाणिज्यकेन्द्र है।
 इन स्थानमें ही यहांकी आमदनी एकती होती है।
 यहां मृतो कयदा तुलनेका बहुत बड़ा कारोबार है।
 धर्मो इतमें एक बाई कालेज खोलनेका निश्चय ही
 पुरा हो है। इनके लिये विद्वान् मन्त्रशपके

किसी देशई महाशयने एक लाख रुपया सालाना धामदानीको सम्पत्ति दान की है।

वेलगावि—महिसुर: राज्यके शिमागो जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० १४° २३' ७० तथा देशा० ७५° १८' ५०के मध्य अवस्थित है। पहले इस नगरमें कदम्बवंशीय राजाओंकी राजधानी थी। १२वीं सदी तक यह दक्षिणपट्यके समी नगरोंसे उन्नत रहा। दक्षिणपट्यवासी इसे 'नगरमाता' कहते थे। यहाँ अनेक ध्वस्त शिवमन्दिर और तत्संलग्न: खोदित-स्तम्भादि दृष्टिगोचर होते हैं। सारे महिसुर राज्यमें यैसा आस्करशिल्पपूर्ण कौत्सि निदर्शन और कहीं भी नहीं है। यहाँसे अनेक शिलालिपियाँ पाई गई हैं; उनमेंसे कुछका पाठोद्धार भी हुआ है। ये सब शिलालेख प्राचीन राजवंशके और ब्यञ्जक हैं। यत्कालवंशीय राजाओंके अधिकारकालमें भी यहाँकी समृद्धि, अक्षुण्ण थी; पीछे १३१० ई०में मुसलमानों द्वारा जब उक्त राज्यशका अधःपतन हुआ तब उसके साथ साथ हिन्दूकौत्सिका विलोप हो गयी। वर्तमान कालमें उस प्रान्तवशेषका कुछ अंश महिसुरके जादुघरमें रखा हुआ है।

वेलघरिया—बङ्गालके २४ परगना जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कलकत्तेसे ७ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहाँ इष्टन वेङ्गल रेलवेका एक स्टेशन है। **वेलजियम—**यूरोपके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। यह हालेण्डके दक्षिणमें अवस्थित है। इसके उत्तर-पश्चिममें उत्तर सागर, दक्षिणपश्चिम और दक्षिणमें फ्रान्स, पूर्वमें लकज़मबर्ग और वेनिस प्रुसिया है। इसकी लम्बाई १७४ मील और चौड़ाई १०६ मील है।

यू सुल्लेस नगरी इसकी राजधानी है। इसके सिवा पर्लोर्यस, घेएट, लिज, बुजेस, वात्रियार, चुनें, मालिंस लीमेन, आर्लोन, और नामूर नगर वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध हैं। इस छोटेसे राज्यमें प्रायः दो हजार मील रेलपथ फैला हुआ है। इस रेलपथमें तथा स्केल्ड मिडज और वेनार नदीसे यहाँका वाणिज्य चलता है। यहाँ सूत, सूतीयस्त्र, गलाचे, परामीने, लिलेन, फीता, टोपी, मोजा, चमड़ा, आयल ह्राथ, कागज़, काँचकी वस्तुएँ, पोर्सिलेन, द्रव्य, मोज़पुसली काँटा(परिक), रासायनिक द्रव्य, विद्यार

मय, अन्यान्य स्फोरिट, चीनी तथा वैज्ञानिक और घाघ यन्त्रादि यहाँ प्रस्तुत हो नानास्थानोंमें भेजे जाते हैं।

प्राचीन वेल्गो (Belgae) जातिकी वासभूमि होनेसे इस स्थानका नाम वेलजियम हुआ है। १५वीं सदीसे विभिन्न समयोंमें वेलजियम राज्य अष्ट्रिया और स्पेनराज्यके शासनाधीन हुआ था। सन् १७६५ ई०में फ्रान्सिसियोंने इस पर अधिकार किया और सन् १८१४ ई०की सन्धिसे अनुसार यह हालेण्डके साथ मिल कर नदरलेण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वर्तमान वेलजियमके अन्तर्गत फ्लाण्डर्स नामक प्रदेश जिसने एक समय स्वाधीन भावसे एक छोटे राज्यके रूपमें शासनकार्य परिचालन किया था यह यूरोपीय इतिहासमें—“The Cockpit of Europe” नामसे लिखा है। सन् १८३० ई०की २५वीं अगस्तकी घुसलसे नगरमें एक राजविद्रोह उपस्थित हुआ। उसके फलसे उक्त वर्षसे ४५वीं अक्टूबरको उक्त प्रदेशको विन्युति हुई थी। सन् १८३९ ई०की ४वीं जूनको यहाँ एक ज़ातीय महासमितिका अनुष्ठान हुआ। उसमें सापत्तेकीवर्गके युवराज लिओगोल्ड वेलजियनोंके राजा चुने गये। १२वीं जुलाईको ये राजपद स्वोकार कर २१वीं तारीखको सिंहासन पर विराजमान हुए। इससे पहले फ्रान्सिसी राजा लुई फिलिपके द्वितीय पुत्र ड्यूक डीनमूरको उक्त राजपद देनेकी इच्छा प्रकट की गई किन्तु उन्होंने राजपद लेनेसे इन्कार कर दिया। जो हो, सन् १८३६ ई०की १६वीं अप्रिलको लण्डन शहरकी सन्धिसे अनुसार राजा १म लिओपोल्ड और नेदरलेण्डके राजाके साथ शान्ति और सौहार्द स्थापित हुआ। इसके बाद यूरोपके अन्यान्य राजाओंने वेलजियमको एक स्वतन्त्र राज्य कह कर घोषित किया।

वेलडङ्गा—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २३° ५३' ७० तथा देशा० ८८° १८' ५०के मध्य विस्तृत है।

वेलद्वार—हिन्दुराजाओंके अधीन रहित एक श्रेणीकी सेना। ये लोग कुदाल आदि यन्त्र ले कर रणक्षेत्रमें जाते और आघातयुक्तानुसार मिट्टा खोद कर दुर्ग प्राचीर आदि तोड़नेके लिये सुरंग बनाते हैं।

बेल्हार—विहार और पश्चिम बङ्गालमें रहनेवाली निरा-
धेपोही एक जातिका नाम । घेन (बुढ़ानो) ने कर
मिट्टी खोदा करती रहती है, इससे इस जातिका नाम
बेल्हार हुआ । राजगण्य और वटाकरकी कोबलेकी
बाजीमें ये काम करते हैं ।

विहारवासी बेलहारोंमें बौद्धान और कर्षीसिया या
कषया नामके दो धर्म या दल और कल्पव मोल प्रच-
लित हैं । इनमें ब्राह्म्य विवाह मीज्ज है । हिन्दु अनेक
धर्मोंमें युवती कषयाका विवाह भी देखा जाता है ।
ममेरा, चचेरा प्रथाके अनुसार यह विवाह सम्पन्न होता
है । विवाहका नियम निम्नलिखितकी तरह हो है ।

मैगिलप्रालय इनका पीरोदित्य किया करते हैं ।
धर्म, कर्म, धाद और अरु वेष्टि क्रिया आदि निम्नलिखितके
दिग्दुर्गोंकी तरह हो जाती हैं । मुसलमानोंके विवाहमें
मस्जानकीका काम करके जो कुछ पाते हैं, उसीसे ये
बचना जीवन निर्वाह करते हैं ।

उत्तर-पश्चिम भारतमें और दक्षिणात्यमें भी बेलहार
देने जाते हैं । इनका कोई वासस्थान निर्दिष्ट नहीं
है । साधारणतः ताम्रुमें हो ये वास करते हैं । जहाँ जब
यह कामका समाचार पाते हैं, उसी समय उस क्षेत्रमें
ये चले जाते हैं । कहीं कहीं मिट्टीको जगह ये पत्थर
को काटा करते हैं । कुएँ या तालाब आदि खोदा करते हैं
और नहरखोदारी भी बनाते हैं । पूजाके बेल्हार हिन्दु
और मराठोंमें बातचीत किया करते हैं । ये प्रायः १५०
हाथकी पगड़ी बांधते हैं । ये बड़े मारिं या शीतला
माताकी पूजा करते हैं तथा इनकी गृहयुक्ती अघिछात्रों
समूह कर बड़े भारं कहते हैं । निवा इनके माता, भारं,
देवो, भवानो, आदि विभिन्न शक्ति-मूर्त्तियोंको उपासना
करते हैं । मेघोपूजामें ये बकरेकी बलि चढ़ाया करते हैं ।

दिग्दुराशक्तिके पास रहने बेल्हार फीजेँ रहा करती
थीं । राजा शीतारामकी बेल्हार फीज कर्मो मिट्टी
खोदती और बाधरवक देने पर मुद्र भी करती थी ।
उस समय इन निरा धेपोके दिग्दुर्गोंके फीजेँ पत्त की
जानी थीं ।

उत्तर-पश्चिमके बेल्हारोंमें बाणन, बौद्धान और कर्षीस
धर्म विद्यमान हैं । प्रथम दो राजपूज जातिका अनुकरण

करते हैं । घर या बाढ़ नामके गुफतों बटाई तटवर
करनेके कारण धरोम इनकी भाषा हुई है । निरा
इसके बरैनीमें माहुल और भोरा हैं । गोरखपुरमें देतो
पारविन्द और सरवरिया; गन्तो जिलेमें धारविन्द और
मासलाया आदि दूज दिखारं देते हैं । पत्तमान समय-
में सुसम्प हिन्दुओंके सहवासमें ये बछोगानो, वासन,
पटेलिया विन्धवार, बौद्धान, दंगिन, गहरघाड़, भोड़,
गीतम, घोषो, कुर्मो मानियो, मोरा, राजपूज, ठाकुर
आदि पंजागन नाम तथा अमरवाला, अमहपंग,
अपोष्यायासी, मदीरिया, दिहोपाला, गङ्गापारी, गारक-
पुरी, कनौजिया, कानीवाला, सरवरिया (मरुपूरी-
यासी) और उत्तराह आदि नामोंमें विषयान हैं ।

जिस स्त्रोके स्वामी छोड़ देता है, यह दुमरा विवाह
करती है । ये पांचों पोरके पूजा चढ़ाते हैं । निवर्त्त-
के पयँ पर महादेवकी पूजा तथा उपासप्रत करते
हैं ।

उड़ीसेके बेल्हार केवल तालाब पोखरे खोदते हैं ।
इनमें एक जमादार रहता है । जमादारके अधीन कई
मायक रहते हैं । इन मायकोंके अधीन दूमके दस
बेल्हार रहते हैं । इनका भी कोई निर्दिष्ट वासस्थान
नहीं है ।

बेलन (सं० ह्ते०) दिग्दु. हींग ।

बेलनाडू—दक्षिणात्यवासी तैन्जूरु प्रालयकी एक शाखा ।
इनकी संख्या अन्वयाय अग्रद्वयमें बड़ी अधिक है ।
१५ बीं सड़ोमें जिन बल्लभाचार्यकी पतिभाने मारे
संसारके उज्ज्वल कर दिया था, जो एक दिन वैज्य-
समाजमें अगवदयनार कह कर पूजित हुए थे, जिनके धर्म
धर आज भी राजपूताना, गुजरात और बम्बई प्रदेशमें
आदर पाते हैं, उन्हीं ही इन प्रालयकुलमें जन्मदण
किया है । महिमुर्तमें प्रायः सभी जगह तथा गौदावती
और कृष्णा जिलेमें बहुसंख्यक बेलनाडू प्रालयोंका बाग
देखा जाता है ।

बेलपुर—मद्रास प्रदेशके गौदावती जिलापर्यन्त तमिऴ
तालुकका एक नगर । यह अक्षां १६° ४१' ३०" तथा देशी
८१° ४५' पू०के मध्य अक्षांशित है ।

जिलादियिमें दोवनायकी राजकीयो बेलपुरका अन्वेष

है। १म परसर्दिदेवने द्वारसमुद्र और घेलपुर राजधानी-को अधिकार किया था।

घेलवती—यम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलांतर्गत हाङ्गल तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° ५४' ३० तथा देशां० ७५° १५' पू० के मध्य हाङ्गलसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यह प्राचीन लीलावती नामक नगरका एकंश माना जाता है। यहां गोलकेभर शिवमूर्ति विद्यमान है। मन्दिर काले पत्थरोंका बना हुआ है। यह बृहदाकार और नांना शिल्पयुक्त है। मन्दिरगतमें २ शिलालिपियां हैं।

घेलवा—महिसुरवासी, जातिविशेष। ताड़ और अजूरका रस संग्रह कर वैचना इनका व्यवसाय है। ये लोग मलयालम भाषामें गेलचाल करते हैं।

घेलघाटगी—यम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत नवलगुण्ड तालुकका एक बड़ा गांव। यह नवलगुण्डसे ३ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां रामलिंगदेवका दृष्टा फूटा मन्दिर विद्यमान है।

घेलवाड़ी—यम्बईप्रदेशके घेलगाम जिलान्तर्गत सांपगांव तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १५° ४२' ३० तथा देशां० ७४° ५६' पू०के मध्य सांपगांवसे १२ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां वीरभद्रदेवका एक बहुत प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। स्थानीय लोग उसकी गठनप्रणालीको "जलनाचार्यप्रथा" कहते हैं। किचुर देशके समय उसका संस्कार हुआ। यहां १६१२ शकमें उत्कीर्ण पश्चिमचालुक्य; राजवंशका एक शिलालेख दिखाई देता है।

घेलघार—अयोध्यावासी क्षत्रियीवी जातिविशेष। इनमें सनाढ, बघेल, भोएडा और गौड़ नामके श्रेणीविभाग दिखाई देते हैं।

घेला (सं० खी०) येत्यतेऽनपेति घेल 'गुरोश्च हलः' इति अ, तत् घापु। १ काल, वक्त। पर्याय—समय, क्षण, वार, अथसर, प्रस्ताव, प्रक्रम। २ मर्यादा। ३ समुद्रकूल, समुद्रका किनारा। ४ समुद्रको लहर। ५ अङ्घ्रि, मरण। ६ रोग, बीमारी। ७ होरात्मक कालभेद, समयका एक विभाग जो दिन और रातका चौबोसवां भाग होता है। कुछ लोग दिनमानके आठवें भागको भी

घेला मानते हैं। ८ वाक्य, वाणी। ९ युधकी स्त्री। (विश) १० दन्तमांस, मसूडा। (हरावली) ११ भोजन, खाना। (त्रिका०)

घेला—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह इलाहाबादसे (पौजाबाद जानेके रास्ते पर) ३६ मील और प्रतापगढ़से ४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। शहरमें दो टेम्पलद्वि और एक मसजिद है।

घेला—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह बेरारिसे १० मील दक्षिण अक्षा० २०° ४७' ३० तथा देशां० ७६° ४' पू०के मध्य अवस्थित है। गौली जमींदारोंके आधिपत्यकालमें यह नगर स्थापित हुआ है। रायसिंह चौधरी नामक एक जमींदारने यहां एक दुर्ग बनवाया था। अभी यह टूटोफूटो अवस्थामें पड़ा है। पिछारी युद्धके समय यह नगर उक्त शकैतोंके उपद्रवसे दो बार नष्टप्राय हो गया था। आज भी यहां मोटा-सूती कपड़ा और चट चुननेका कारखाना है। उस देशी चटसे घेले बनाये जाते हैं। बंजारा शणिक उस घेलेमें माल भर कर यहांसे दूसरी जगह ले जाते हैं। यहां स्थानीय उत्पन्न द्रव्यविक्रयको एक बड़ी हाट है।

घेला—बेलुचिस्तानके लास-विभागका एक प्रधान नगर। पुरली नदी तीरवर्ती पड़ाई अधिपत्यकामूमि पर यह नगर बसा हुआ है। प्राचीन अरबी कवियोंने इसका नाम घेल वा काडवेल नामसे उल्लेख किया है। यह नगर ध्वस्त और जनशून्य अवस्थामें पड़ा रहने पर भी इसकी पूर्ण स्मृति लुप्त नहीं हुई है। प्राचीन मुद्रा, नाना अलङ्कार, बिलीने और तरह तरहके पाताद्वि इस जनपदको अतीत समृद्धि घोषित करते हैं। इसकी पार्श्ववर्ती शैलश्रेणामें आज भी असंख्य गुहायें तथा पर्वतगात्र पर खोदित टेम्पलद्वि दिखाई देते हैं। ये सब कीर्तियां यहांके हिन्दू प्राधान्यकी परिचायक हैं। किन्तु मुसलमानोंका कहना है, कि यह फरहद और परियोंकी कीर्तियां और वासभूमि है। यथार्थमें वह एक समय स्थानीय प्राचीन शासनकर्त्ताओं या विभिन्न सरदारोंका विभ्रामस्थान था, इसमें जरा भी संदेह नहीं। मुसलमानों अमलमें यह स्थान उनके हाथ आया था। उस समय यहां बहुतसे मकबरे बनाये गये थे।

वेल्दार—विदार और पश्चिम बङ्गालमें रहनेवाली निम्न-
 श्रेणीकी एक जातिका नाम । वेल् (बुद्ध) से कर
 मिट्टी खोदा करने लहते हैं, इससे इस जातिका नाम
 वेल्दार हुआ । रामोण्ड और बराबरकी कौवरीकी
 धानोंमें ये काम करते हैं ।

विदायतानी वेल्दारोंमें बौद्धान और कभीमिया या
 कल्पना नामके दो धर्म या दस और कल्पना भोज प्रच-
 लित हैं । इनमें ब्राह्म विवाह प्रोच्य है, किन्तु कनेक
 स्थानोंमें सुग्गो कर्मका विवाह भी देखा जाता है ।
 अमेरा, चवेरा प्रधाके अनुसार यह विवाह सम्पन्न होता
 है । विवाहका नियम निम्नश्रेणीकी तरह ही है ।

मैथिलप्रान्त इनका पीरोदित्य किया करते हैं ।
 धर्म, कर्म, धर्म और मरपेट्टि किया भादि निम्नश्रेणीके
 हिन्दुओंकी तरह ही होगी है । मुसलमानोंके विवाहमें
 मसानयोका काम करके ओ कुछ पाने हैं, उसीमें ये
 मरना जीवन निर्वाह करते हैं ।

उत्तर-पश्चिम भारतमें और दक्षिणारत्यमें भी वेल्दार
 द्शे जाते हैं । इनका कोई वासरधाग निर्दिष्ट नहीं
 है । माघारणतः तन्मूर्त्तियोंके बास करते हैं । जहाँ अब
 यह कामका समाचार पाते हैं, उसी समय उस देशमें
 ये चले जाते हैं । कहीं कहीं मिट्टीकी जगह ये पत्थर
 ओ काटा करते हैं । कुयं या तालाब भादि खोदा करते हैं
 और चहारखोखारों भी बनाते हैं । पूजाके वेल्दार हिन्दु
 और मराहोंमें बातचीत किया करते हैं । ये प्रायः १५०
 हाथके पण्डों बंधते हैं । ये बड़ी मांई या जोतिया
 गाथाकी पूजा करते हैं तथा इनकी मूर्त्तियोंके अष्टाशो
 मसक कर मट्टी भादि करते हैं । मिथा इनके माता, भाई,
 देवी, भयानी, भादि विभिन्न जाति-भूतियोंकी उपासना
 करते हैं । देवोपूजामें ये बहुरीकी बलि चढ़ावा करते हैं ।

हिन्दूगणत्योंके पास पहले वेल्दार कौंसे रहा करने
 थों । राजा सीतारामके वेल्दार कौन कभी मिट्टी
 खोदने और भावबन्ध होने पर मुक्त भी जाती थी ।
 उम समय इन निम्न श्रेणीके हिन्दुओंमें कौंसे पक्ष की
 जाती थी ।

उत्तर-पश्चिमके वेल्दारोंमें बाउल, बौद्धान और बरोल
 चंदा विद्यमान हैं । प्रथम दो राजपूज जातिका अनुकरण

करते हैं । मर या बट्ट नामके तुपसे कर्त्तों तपसा
 करनेके कारण बरोल इनकी जाया हुई है । मिथा
 इसके बरोलमें माहुज और मोरा हैं । गोरखपुरमें देवी
 परपिन्द् और सरवरिया, यक्षी जितेमें मारपिन्द् और
 मासघाया भादि वन दिखाने देते हैं । वसंमान समय-
 में सुमन्व हिन्दुओंके सहवामनं ये पणोली, बाउल,
 बेटिया विन्द्धार, बौद्धान, दूक्षित, गहरपाइ, मोइ,
 गौतम, घोषी, कुम्भी, गौतमी, मोरा, राजपूज, डापूर
 भादि पंजगन नाम तथा भपरवाला, अमदपंन,
 अयोध्यावासी, मदीरिया, दिलोयाला, भाङ्गापाठी, गोरख-
 पुरी, कौजीया, कालीयाला, मरवरिया (मरगुनीर-
 वासी) और ठसराह भादि नामोंसे विख्यात हैं ।

जिस स्थाने स्वामी छोड़ देता है, वह दूसरा विवाह
 करती है । ये पांचों पोरके पूजा चढ़ाते हैं । निवर्त्त-
 के पक्ष पर महादेवजीकी पूजा तथा उपवासप्रन करते
 हैं ।

बड़ीसेके वेल्दार केवल तालाब खोदने दे ।
 इनमें एक जमादार रहता है । जमादारके अधीन कई
 नायक रहते हैं । इन नायकोंके अधीन दूधके दस
 वेल्दार रहते हैं । इनका भी कोई निर्दिष्ट वासरधाग
 नहीं है ।

वेल्तल (सं० क्रो०) हिं०, हो० ।

वेल्तल—दक्षिणारत्यवासी मन्डूकी प्राणयकी एक जाति ।
 इनकी संघवा अत्यन्त मज्जाममें कहीं अधिक है ।
 १५ यों स्त्रियोंमें जिन वदनभाषाणोंकी प्रतिमाने मार
 संभारके उग्रपल कर दिया था, ओ एक दिन मैथव-
 समाजमें मणवदयनार कह कर सूचित हुए थे, जिनके यंत्र
 पर भाऊ मो राजपूजाभा, गुजरात और बम्बे प्रदेशोंमें
 भादर पाते हैं, उन्होंने ही इस प्राणयकुम्भमें जलमदल
 दिया है । महिपुरमें प्रायः मामी जगद तथा गेदावली
 और कल्या जितेमें बहुसंख्यक वेल्तल, प्राणयोंका बास
 देया जाता है ।

वेल्तल—मन्डूज प्रदेशके भाङ्गावली जिलेवासी मनु-
 तानुकरका एक जगद । यह मन्डूज ३६' ४१' ३०' मणद देता
 ८१' ४५' ५०' मध्य अक्षांशमें है ।

जितेवासीमें देवनाथकी राजकीय वेल्तलका उग्रपल

है। १ म परमर्दिदेवते द्वारसमुद्र और बेलकुच राजधानी-
को अधिकार किया था।

बेलवती—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत हाङ्गल
तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° ५४' उ० तथा देशां
६५° १५' पू० के मध्य हाङ्गलसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें अव-
स्थित है। यह प्राचीन लीलावती नामक नगरका
पक्षांश माना जाता है। यहां गोलकेभर शिवमूर्ति
विद्यमान है। मन्दिर काले पत्थरोंका बना हुआ है। यह
बृहदाक्षर और नांता शिल्पयुक्त है। मन्दिरगतमें
२ शिलालिपियां हैं।

बेलवा—महिसुरवासी जातिविशेष। ताड़ और कजूर-
का रस संग्रह कर बेचना इनका व्यवसाय है। ये लोग
मलयालम भाषामें बोलचाल करते हैं।

बेलवाटगी—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत नवलगुण्ड
तालुकका एक बड़ा गांव। यह नवलगुण्डसे ३ मील
उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां रामलङ्कदेवका टूटा
फूटा मन्दिर विद्यमान है।

बेलवाड़ी—बम्बईप्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत सांपगांव
तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १५° ४२' उ० तथा
देशां ७४° ५६' पू०के मध्य सांपगांवसे १२ मील दक्षिण-
पूर्वमें अवस्थित है। यहां शीरभद्रदेवका एक बहुत
प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। स्थानीय लोग उसकी
गठनप्रणालीको "जखनाचार्यप्रथा" कहते हैं। किचुर
देशाईके समय उसका संस्कार हुआ। यहां १६२२ शकमें
उत्कीर्ण पश्चिमचालुक्य राजवंशका एक शिलालेख
दिखाई देता है।

बेलवार—अयोध्यावासी क्षत्रियविशेष। इनमें
सनाढ, बघेल, भोण्डा और गौड़ नामके श्रेणीविभाग
दिखाई देते हैं।

बेला (सं० खी०) बेल्यतेऽनपेति बेल 'गुरोरच हलः'
इति अ, तत् टाप्। १ काल, वक्त। पर्याय—समय, क्षण,
वार, अथसर, प्रस्ताव, प्रकम। २ मर्यादा। ३ समुद्रकुल,
समुद्रका किनारा। ४ समुद्रको लहर। ५ अङ्गिष्ठ-
मुरण। ६ रोग, धीमारी। ७ होरात्मक कालभेद, समय-
का एक विभाग जो दिन और रातका चौबोसवां भाग
होता है। कुछ लोग दिनमानके आठवें भागको भी

बेला मानते हैं। ८ वाक्य, वाणी। ९ बुधकी खी।
(विश्व) १० दन्तमांस, मजूषा। (हरावली) ११ मोजन,
खाना। (त्रिका०)

बेला—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर।
यह इलाहाबादसे (पौजाबाद जानेके रास्ते पर) ३६
मील और प्रतापगढ़से ४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।
शहरमें दो टेम्पल्विद और एक मसजिद है।

बेला—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह
बेरिससे १० मील दक्षिण अक्षा० २०° ४७' उ० तथा देशां
७६° ४' पू०के मध्य अवस्थित है। गौली जमींदारोंके
आधिपत्यकालमें यह नगर स्थापित हुआ है। रायसिंह
चीधरी नामक एक जमींदारने यहां एक दुर्ग बनवाया
था। अभी यह टूटोफूटो अवस्थामें पड़ा है। पिछारो
युद्धके समय यह नगर उक्त टुकियोंके उपद्रवसे दो बार
नष्टप्राय हो गया था। आज भी यहां मोटां-सूती कपड़ा
और चट चुननेका कारखाना है। उस देशी चटसे घैले
बनाये जाते हैं। बंजारा बणिक् उस घैलीमें माल भर
कर यहांसे दूसरी जगह ले जाते हैं। यहां स्थानीय
उत्पन्न द्रव्यविक्रयकी एक बड़ी हाट है।

बेला—बेलुचिस्तानके लास-विभागका एक प्रधान नगर।
पुरली नदी तीरवर्ती पहाड़ी अधित्यकामूमि पर यह
नगर बसा हुआ है। प्राचीन अरबी कवियोंने इसका
आर्मा बेल वा काड़ाबेल नामसे उल्लेख किया है। यह
नगर ध्यस्त और जनशून्य अवस्थामें पड़ा रहने पर भी
इसकी पूर्ण स्मृति लुप्त नहीं हुई है। प्राचीन मुद्रा,
नाना अलङ्कार, खिलीने और तरह तरहके पासादि इस
जनपदकी अतीत समृद्धि घोषित करते हैं। इसकी
पार्श्ववर्ती शैलश्रेणामें आज भी असंख्य गुहाएं तथा
पर्यंतगात्र पर खोदित टेम्पल्विदरे दिखाई देते हैं। ये
सब कीर्तियां यहांके हिन्दू प्राधान्यकी परिचायक हैं।
किन्तु मुसलमानोंका कहना है, कि यह फरहद और
परियोंकी कीर्तियां और वासमूमि है। यहांमें यह एक
समय स्थानीय प्राचीन शासनकर्ताओं वा विभिन्न
सरदारोंका विभागस्थान था, इसमें जरा भी संदेह
नहीं। मुसलमानोंके अमलमें यह स्थान उनपे हाब आया
था। उस समय यहां बहुतसे मकबरे बनाये गये थे।

आज भी यहाँके अधिवासियोंका एक कुनोवांग दिग्दू
है।

वेना—युद्धयुद्धके साक्षात्कारके अनन्तर रूसावा
ब्रिटेनका एक प्राचीन नगर। यह सभी एक छोटे घासमें
परिचलन हो गया है। आज भी नाना स्थानोंमें ध्वस्त-
कोशिकाँ और नगरके नैऋत्यदि मन्दायनधर्म पड़े
विषयों देते हैं।

वेनाडर—मोक्ष प्रदानके अन्तर्गत एक पदप्रमाण। यहाँ
कुनोवांग जड़ों एक मुनि ध्वस्तन हुए थे।

(अभिषेक प्रमाण १०१२१-)

वेनाडूल (सं० श्लो०) वेना एक वृद्ध मय्य। तादा-
सितन देनाका एक नाम।

“वेनाडूल” शब्दभिम” वास्तविकी” (विद्या)

२ समुद्रमूल, समुद्रका किनारा।

वेनाडूर (सं० पु०) उदरप्रियो। लक्षण—शोक, क्रोध,
अज्ञान, मरणापेय वा बलवानिके कारण अन्धकारमें
मानवोंके आश्रयण उपर होता है उसे वेना कहते हैं।
वेनाडूरपान (सं० श्लो०) वेनायां जलपानं। काम पर
जलपीना। सामान्यपदके मतसे यह बड़ा स्वास्थ्यकर
है। इस जलपानसे पालक्षेय, कफ और वायु चिन्त
होती और भुक्त अन्नका परिष्कार होता है। (राजनि०)
वेनाधि (सं० पु०) वेनायाः अधिपः। फलित उद्योगि-
यें विनयानके आठवें भाग या वेनाके अधिपति वेना।
रधि, मूय, सुय, अग्र, ननि, मूहयति और मंगल ये
प्रजाता वेनाधिप होतें हैं। जिस दिन आचार होता
है, उस दिनकी पदमो वेनाका वेनाधिप उनी पातका।
यह होता है और पीछेकी वेनाओंके अधिपति उता
अन्तरे वेन यह होते हैं। जैसे—रधियायकी पदमो वेनाके
वेनाधिप रधि, मूयरीके मूय, सोमरीके सुय, कोपीके
अग्र होतें। इसी प्रकार सुयवारकी पदमो वेनाके
वेनाधिप सुय, मूयरीके मूय, सोमरीके ननि, ननिपीके
मूहयति होतें।

वेनाडूर—बाईयें प्रेसिडेन्सीके पनाम जिलेका एक नगर।
वेनाडूरनगरप्रमाण—अन्धकार प्रेसिडेन्सीके मद्रास जिला
अन्तर्गत एक मण्डल। योवका मूर्तमान ३ वर्ग-
मील है।

वेनायनि (सं० पु०) एक गोप्यवर्तक शब्द।

वेनायनि (सं० पु०) रानिपीमेर।

वेनायित (सं० पु०) प्राचीनकालके एक प्रकारके राज-
वर्गवासी। (राजवर्णियों) (१०१)

वेनि (Sir Stuart Colvin Bayley)—बंगालके बङ्ग
देश-शासनकर्ता, साधारणतः छोटे साठ या सैपेराएर
गवर्नर नामसे प्रसिद्ध। ये मानसोप इए रित्तवा
कानोके कर्जावासी और भारतके अन्धकारो गवर्नर अन्-
ख्य विलियम वाटरवर्ष वेनीके पुत्र थे। इतन और
हेतियारि कायेहमें निशाताम कर थे १८५१ ई०की ११वीं
मार्गकी भारतवर्षी बाये मीर २४ परगनेके अतिहाय
मजिस्ट्रेट कलक्टर हुए। पीछे उन्होंने मण्डल्य निम्न-
लिखित पद पर विशेष दक्षताके साथ कार्य करते बङ्गाल-
के छोटे साठके पद पर तत्काली पार्ये थे। १८५१-५६
ई०में कलकत्ता बाईयें उपविभागके कलक्टर। १८६२-६३में
मुनिपर सिक्केटरी बङ्गाल गवर्मेण्ट; १८६५ और १८६७-
में गवर्मेण्टके अन्धकारो सिक्केटरी; १८६७ ई०में आधा-
बाईके दोषागो और रोसम-अन्न तथा मुहूर्तके मजिस्ट्रेट
कलक्टर। १८६८ ई०में बंगाल गवर्मेण्टके अतिरिक्त
सिक्केटरी, पटनाके कलक्टर; १८७० ई०में सिमित-
रोसम अन्न निरहृत; १८७१ ई०में पट्टामके कमिश्नर
और बंगाल-गवर्मेण्टके अन्धकारो सिक्केटरी, उसी
सालके अन्धकार मासमें स्पेशियल क्लर्क पर; १८७२
ई०में प्रेसिडेन्सी कमिश्नर, पट्टामके कमिश्नर और
पटना विभागके कमिश्नर; C. S. I. उपाधि-प्राप्ति
(१८७५ ई०के मितारवर्त १८७६ ई०के अन्धकार तक
सुदो), फिर पटनामें कलक्टर पर नियुक्ति; १८७७ ई०में
बंगाल गवर्मेण्टका सिक्केटरी पद; भारतगवर्मेण्टके
आवसाय विभागके अतिरिक्त सिक्केटरी, मुम्बईके कारण
भारत प्रतियोगि साधे अन्धकारके पर्यन्त अतिरिक्त
तथा कार्यके ऊपर भारत-गवर्मेण्टके मुम्बईविभागकी
मुम्बई प्राण्यके अतिरिक्त सिक्केटरी; १८७८ ई०में
भारत-गवर्मेण्टके होम डिपार्टमेंटके सिक्केटरी।
K. C. S. I की उपाधि; आगतकके अन्धकारो अन्ध-
कमिश्नर और बंगालके अन्धकारो छोटे साठ (१५वीं
सुतर्ग—१मी.दिशाबर १८७१)। अतिरिक्त आगतकके

चोक कमिश्नर; १८८१ ई०में हैदराबादके रेसिडेंट C. I. E. को उपाधि; १८८२ ई०में थर्डे लाटकी समाके मेम्बर और १८८७ ई०की २री अप्रिलकी बंगालके छोटे-लाट हुए।

इनके शासनकालमें चट्टग्राम पांचतीय सीमान्तका उपद्रव दूर करनेके लिये सीमान्तदेशमें सिपाही रखनेकी व्यवस्था हुई। इसके सिवा बलुयाई और सिक्रिम जीतनेकी इच्छासे इन्होंने सेना भेजी थी। १८८८ ई०की ७वीं अप्रिलको टाकाके सुप्रसिद्ध टरनाडों और हुगली-तीर-बत्तीं टरनाडों नामक तुफानने लोगोंकी बड़ा नुकसान पहुंचाया। इन्हींके शासनकालमें ३री जनवरी १८६० ई०को हिज रायेल् हाइनेस प्रिंस अलवर्ट मिफुने कलकत्तेमें पदार्पण किया।

आबकारी और पुलिस-विभागका संस्कार, लोकल टेक्स, कलकत्ता-पोर्ट और अन्यान्य विषयोंका राजनैतिक परिवर्तन करके इन्होंने १८६० ई०में कार्यसे छुट्टी ले ली। उनके प्रति कृतज्ञता दिखानेके लिये कलकत्तेकी वृष्टिा इण्डियन सभाने उनकी एक मूर्ति स्थापन की है।

इसके बाद इन्होंने Secretary in the Political and Secret department of the India office पद पर कार्य किया। १८६५ ई०को वे इण्डिया काँग्रेस (Council of India) के मेम्बर हुए।

वैलिका (सं० खो०) १ घेलाभूमि। २ नदीतटक आस पासका प्रदेश। ३ ताराजलि।

वैलिकेरि—बम्बई प्रदेशके उत्तर कनाड़ा जिलान्तर्गत एक बन्दर और गण्डग्राम। यह धारवाड़ नगरसे १३ मील दक्षिण अक्षांश १४° ४२' ४५" उ० तथा देशांश ७४° १६' ५०"के बीच पड़ता है। गाँव स्थानीय स्वास्थ्यनिवासमें गिना जाता है। इस कारण यहाँ समुद्रके किनारे बहुतसे बंगले हैं।

वैलिभुक्त प्रिय (सं० पु०) सीरमयुक्त आम्र, यह आम जिनमें खूब सुगंध हो।

वैलियापारायणपुर—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। यह पगला नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। पहले यह घोरभूम जिलेके अन्तर्गत था। १८५७ ई०में यहाँ खनिज लौह गलानेका कारखाना था।

वैलियापाटाटम्—१ मद्राज प्रदेशके मलवार जिलेमें प्रवाहित एक नदी। भारतीय मानचित्रमें यह विलोपटम नामसे उल्लिखित है। कूर्ग सीमान्त पर घाटपर्वत-मालाके कुछ सोते तथा उत्तर-पूर्वमें मनचानसे एक बड़ी शाखा नदी इसमें मिल गई है। पाँछे यह पुष्ट कलेवर धारण कर इरिक्कुडसे पश्चिम इरवपुरकी चली गई है। यहाँ उसमें एक और शाखा नदीके मिल जानेसे उसका आकार बड़ा हो गया है। बादमें यह वैलियापाटाटम् नगरको पार कर उक्त नगरसे ४ मील दक्षिण-पश्चिम समुद्रमें मिलती है। समुद्रसन्निहित नदीके किनारे बहुतसे नारियल और सुपारीके पेड़ उरवन्त होते हैं।

२ मद्राजप्रदेशके मलवार जिलेका एक नगर। यह अक्षांश ११° ५५' उ० तथा देशांश ७५° २५' पू०के मध्य मुहानेसे ४ मील दूर वैलियापाटाटम् नामकी नदीके बाएँ किनारे अवस्थित है। मलयालम् भागमें यह बलार-पत्तनम् नामसे मशहूर है। भौगोलिक इतनवतुनाने इस नगरका 'जरफत्तन' नाम रखा है।

१७३५ ई०में कोलमिरिके राजाने बङ्गुरेज कम्पनीको इस नगरके समीप मादकद्रव्य स्थापन करनेकी अनुमति दी। राजाको नदगीमें लिखा है, "बड़ो सावधानीसे देखना जिससे हमारे शत्रु कनाडाराजका कोई भी आदमी इस नदीमें घुस न सके" सुप्रसिद्ध मुसलमान-सैनिक ईदर अलीने मलवार विजयमें आ कर यहाँ प्रथम जय लाम किया था। नगरके दक्षिण एक देवमन्दिर है। भीरुपट्टुरम् देखो।

बहुत प्राचीन कालसे यह नगर वाणिज्यसमृद्धिके लिये प्रसिद्ध था। अभी उस वाणिज्य प्रभावकी स्मृति-मात्र रह गई है। कोम्बनूर सेनानियाससे यह स्थान ४ मील दूर पड़ता है।

वैलुङ्ग—कलकत्तेके उत्तर गङ्गाके पश्चिमी किनारे अवस्थित एक बड़ा ग्राम। यहाँ परमहंस श्रीरामकृष्णदेवका एक मठ विद्यमान है। रामकृष्णदेव देखो।

वैलुन—बंगालका एक गण्डग्राम। यहाँ गोपीनाथ-मन्दिर विद्यमान है। (देशान्तरी)

वैलुव—उच्च संव्यामेद।

वैलुयाई—मद्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत

मन्दीर ताजुकका एक दहा प्राय। यहाँके एक मठमें प्राचीन कलाकी भाषामें उत्कीर्ण लिखावटि देखी जाती है। यह मठि हिन्दू धर्म स्थानकी प्राथमिका मूनिन बनयो है।

बेनुर—१ मद्रास प्रदेशके मद्रिपुर राज्यके अन्तर्गत हसन जिलेका एक ताजुक। मूरिमाण ३ मी वर्गमील है।

२ उक्त ताजुकका एक नगर। वर्तमान कालमें यह भीमरूप भवस्थानमें पड़ा है, फिर भी इसके प्राचीन धोरणके अनेक निदर्शन काल में दिखाने दते हैं। यह नगर हसनमें २३ मील उत्तरपदिमम पगारी नदीके दक्षिण किनारे अक्षांश १३° १०' उ० तथा देशांश ७५° ५५' पूर्वमें अवस्थित है। पुराणदि तथा प्राचीन लिखावटियोंमें यह स्थान बेनपुर नामसे उल्लिखित है। यहाँके लोग हमें दक्षिण भारतको समस्त कर भगिद्विष्टि देवते हैं। यहाँ छिन्नकेनयका पवित्र मन्दिर है। इसी कारण यह दक्षिणारव्याप्तिके पवित्र तीर्थरूपमें माना गया है। प्रसिद्ध मास्कर-जिन्नाविद्वु जलनाथार्यमें उक्त मन्दिरके निकलीपुष्पपूजं भिवादि स्तुतियाये थे। १३ महीके मध्य भागमें होयमान कल्याणतीर्थीय राजाने पुलीपुरनके आचार्य जैन धर्मका परिचय कर वैष्णव धर्मका आश्रय लिया। उन्होंने ही अपने एक देवकी प्रतिमाके लिये विष्णु मन्दिर बनवाया था। यहाँ प्रति वर्ष वैशाखके महीमें ५ दिन तक मेला लगता है। इस मेलेमें बहुतेरे आरामी पक्षत होते हैं।

बेनुर ताजुकका विचार-मन्दिर इसी नगरमें अवस्थित है।

बेनुर—मद्रास प्रेसिडेन्सीके सहीम जिलागतन होनुर ताजुकका एक नगर। यह होनुरमें ११ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहाँ मद्रिपुरराज कायु उदेय (विजय देवराज) के राज्यकालमें मुजार राम देवकाय द्वारा निर्मित १६७३ ई०में एक मन्दिर है।

बेनुर—यहाँ प्रदेशके बंगालमें स्थितनगरीय बहाली ताजुकका एक नगर। यह बहालीमें ३ मील दक्षिण पूर्वमें पड़ा है। इस नगरमें बंगालराजमन्दिर स्थापित है।

बेनुर—मद्रास प्रदेशके दक्षिण बार्बर और पुदुचेरी जिलागतन निम्नवर्तनरूप ताजुकका एक प्राचीन नगर। यहाँ एक मन्दीरय पुर्ण भीर प्राचीन देवमन्दिर है।

बेनुर—मद्रास प्रदेशके दक्षिणकनाडा जिलागतन उत्तरी ताजुकका एक नगर। यह उडिचिमहररी १७ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है। मन्दिरके मोलरकी दीवारमें उत्कीर्ण महादेव शैवाकी जो लिखावटि है उसमें ज्ञाना जाता है, कि १५५१ ई०में इहाँमें मन्दिरके संधर्षके लिये सन्तानि दे दी थी। येनो—यहाँ प्रदेशके मियुनिभागतके करीबो स्थानीगत तुतावला ताजुकका एक बड़ा गाँव। यह अक्षांश १७° ४४' उ० तथा देशांश १८° ८' पूर्वके मध्य मियुनर भीर ताजुकके विचारमन्दिरमें ४ मील पूर्वी अवस्थित है। यहाँ सोहाना भीर मादिवा नामक दिग्गु तथा रोपड भीर मुहाला नामकी मुसलमान धर्मोपाका बाम है।

बेलोना—मद्रासप्रदेशके बंगलुर जिलेके बलीक ताजुकका एक नगर। यह मोबार नगरसे ४ मील उत्तर-पश्चिम पक्षांश नदीके एक छोटी शाखाके ऊपर अवस्थित है। यहाँ स्थानोप उत्पन्न प्रबोका वाणिज्य होता है।

बेणु (म० ज़ी०) बेनुरनीमि वेनर बनने वयावम् । १ विहंग। (अम) वेणु मने मन् । (पु०) ३ वाम, ज्ञाना ।

बेन्दर (म० ज़ी०) विहंग ।

बेन्दकोविल—मद्रास प्रदेशके कोयंबटोर जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन बड़ा गाँव। यह अक्षांश १०° ५७' उ० तथा देशांश ७७° ४१' पूर्वके मध्य पारावुरार्य १८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर भीर शिवमन्दिरमें प्राचीन लिखावटि है। गाँवकी बनवमें एक प्राचीन स्तुतिस्थान दिखाने देता है।

बेन्दकुविल—मद्रास प्रदेशके कोयंबटोर जिलेका एक प्राचीन मन्दीरय। यह मद्रासमन्दीरमें १८ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ पुराने मन्दिरकी दीवारमें एक प्राचीन मण्डित लिखावटि दिखाने देता है।

बेन्दमिरिका (म० ज़ी०) विहंगु ।

बेन्दर (म० ज़ी०) बेन्दरम् ज्ञाने इति ज्ञान-र । मण्डि, विष ।

वेल्हवङ्गी—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण-कनाडा जिलान्तर्गत उपनिवङ्गी तालुकका एक प्राचीन नगर। यह मङ्गलोरसे ३२ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। वङ्गीके राजाओंका प्रतिष्ठित दुर्ग और जैनमन्दिर विद्यमान है। इस नगरमें जो एक समय राजधानी थी, उसके भी अनेक निर्द्वान् पाये जाते हैं।

वेल्हन (सं० क्लो०) वेल्ह-न्युट् । १ घोड़ोंका जमीन पर लेटना। (त्रि०) २ सञ्चालन।

वेल्हनी (सं० खी०) वेल्हति लूटति, अन्वादि श्रेति वेल्ह-न्युट् डोप। मोला दूर्वा, बस्ती दूष। (राजनि०)

वेल्हन्तर (सं० पु०) वीरतक, विलान्तरपूष, वरवेल्ह। यह वेल्हन्तर वृक्ष जगत्में वीरतक नामसे मशहूर है।

इसका फूल सफेदी लिये कुछ काला और आकारमें जाति फूलके समान होता है। इसके पत्ते शमी पत्तेके समान होते हैं। यह पेड़ कांटोंसे भरा रहता तथा जलविहीन स्थान पर लगता है। इसका गुण—तिकरस, कटुविषाक, धारक, लृणा, कफ, मूत्राघात, अश्वरी, योनिरोग, मूलरोग और वायुरोगनाशक माना गया है।

(भाव०)

वेल्हन्तरादिगण (सं० पु०) वेल्हन्तर आदि फरके द्रव्यवर्ग। वाभटके सूत्रस्थानमें इसका उल्लेख है। वातरोग, अश्वरी, शर्करा, मूलरुच्छ और मूत्राघात रोगमें यह बड़ा फायदा पहुंचाता है। (वाभट सूत्र० १५ अ०)

वेल्हमय (सं० क्लो०) मरिच, मिर्च। (वैयकनि०)

वेल्हमकोण्डा—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक पर्वत। यह समुद्रपृष्ठसे १५६६ फुट ऊंचा है। तेलगू भाषामें इसे विल्लमकोण्डा (गुहा-गिरि) कहते हैं। इस पर्वतके ऊपर एक टूटा फूटा गिरिदुर्ग है। करीब १५१५ ई०में कृष्णदेवरायने तथा १५३१ और १५७८ ई०में गोलकोण्डाधिपति सुलतान कुलीकृतव शाहने इस पर अधिकार जमाया।

यह गुण्टूरसे नेलकोण्डा जानेके रास्ते पर अक्षा० १६° ३१' उ० तथा देशा० ८०° ४' पू०के मध्य अवस्थित है।

वेल्हरो (वशिष्ठ नदी)—मन्द्राज प्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह सलेम जिलेके पहाड़ों प्रदेशसे निकल कर

पत्तूर गिरिसङ्घट होतो हुई दक्षिण आर्कटके समतलक्षेत्रमें चली गई है। पीछे इस जिलेको पार कर पोर्टोनोंयोके समीप समुद्रमें गिरती है। इस नदीकी लम्बाई प्रायः १३५ मील है। युदाचलम्के समीप मणिमुका नामक एक नदी आ कर इसमें मिल गई है। इस नदीके ऊपर एक रेलवे पुल है।

वेल्हरो (बल्लारि, प्राचीन नाम वल्हरि)—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीका एक जिला। यह अक्षा० १४° १४' से १५° ५७' उ० तथा देशा० ७५° ४५' से ७७° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके मध्यगत सन्दूर सामन्त-राज्यको ले कर भूपरिमाण ६ हजार वर्ग मील है।

इसके उत्तरमें खरप्रवाहा तुंगभद्रा नदीने निजाम राज्यको पृथक् कर रखा है। पूर्वमें अनन्तपुर और करनूल जिला, दक्षिणमें महिसुर राज्यके अन्तर्गत चित्तलदुर्ग जिला तथा पश्चिममें तुङ्गभद्राने बम्बई प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलेको इस जिलेसे विच्छिन्न किया है। इसके कुछ अंशको ले कर अनन्तपुर गठित हुआ है। उसके पूर्वमें इसका आधतन और भी विस्तृत था।

यह ८ तालुकों और सन्दूर नामक एक सामन्त-राज्यमें विभक्त है। यहाँ कुल ११७४ ग्राम १० नगर हैं।

इस जिलेमें अधिकांश स्थान कपासकी खेतोंके लिये उपयुक्त; यथात् काली मिट्टीसे युक्त है। वृक्ष-लतादि न होने तथा बीच-बीचमें ऊँची ऊँची पहाड़ियोंके होनेसे सारा देश मध्यम प्राँतर-प्रतीत होता है। इसका पश्चिमांश घाटपर्वतमालाकी अधित्यका भूमि तथा पूर्वांश कमला नीना होता गया है। पश्चिममें बेलगाम जिलेके सोमातदेशमें इसका अधित्यकादेश समुद्रपृष्ठसे २५८६ फुट ऊंचा है, पर पूर्वको तरफ मन्द्राज रेलपथके गैमटकल-जंघान नामक स्थानको उचता १४५१ फुट है।

अधित्यका-भूमिके इस प्रकार समुन्नत होनेसे यहाँ विशेषरूपसे जलका अभाव तथा उसी कारण अन्यान्य पृष्ठीकी उत्पत्तिकी सम्भावना भी बहुत कम है। जिलेकी उत्तर-सोमातमें एकमात्र तुङ्गभद्रा नदी है। वर्षाके समय दोनों किनारे हूब जाते हैं, जिससे अधिवासियोंके विपद्-प्रस्त होना-पहुँता है। दक्षिणभागमें उक्त नदीकी दागरी,

प्राप्त की। हैदर-वा-शहर दुर्द्धर्ष टोपू सुलतानने सामन्तोंका पैसेो व्यवहार देख क्रुद्ध हो उनके विरुद्ध अन्वधारण किया। उन्होने एक पत्र कर पलोगरोके द्वारा रक्षित दुर्गोंको हस्तगत कर लिया और रायदुर्ग तथा हर्षणहल्लीके दो सामन्तोंको यमपुर पहुँचा दिया। इससे अन्याय्य सरदारोंने डर कर फिर टोपू सुलतानके विरुद्ध आचरण नहीं किया। टोपूने उनके अधिकृत अग्रशस्त्र, धनरत्न और रसद वगैरहको इकट्ठा कर अपने गुटो और वेल्लरी दुर्गों रख दिया था।

धीरे धीरे इस प्रदेशमें टोपूके प्रभाव और अत्याचारोंकी वृद्धि होने लगी। टोपू मदमत्त हो कर अङ्गरेज गवर्न-मेण्टके विरुद्ध भी आचरण करते रहे। इसी सूत्रसे १६८६ ई०में अंग्रेजोंके साथ उनका युद्ध हुआ। युद्धके बाद दोनों पक्षोंमें सन्धि हुई। उस सन्धिके अनुसार टोपूको शेष-लब्ध राज्य दूसरोंको लौटा देनेके लिए बाध्य होना पड़ा, तदनुसार वेल्लरी जिला निजामके राज्य-भुक्त हुआ।

उसके बाद फिर युद्धकी सूचना हुई। धोरङ्गपत्तन-रणक्षेत्रमें टोपू घन्दी हो कर मारे गये (१७६६)। उससे फिर वेल्लरी जिलेको निजाम और पेशवा दोनोंने बाँट लिया। १८०० ई०में अंग्रेजोंने पेशवासे वेल्लरी ले लिया। १७६२ और १७६६ ई०की सन्धियोंमें निजामने अदोनी और वेल्लरीका जो अवनिष्टांश प्राप्त किया था, वह भी सेनाके व्यय-बहनाथ अंग्रेजोंके हाथ लग गया।

इस प्रकार सम्पूर्ण वेल्लरी जिला अंग्रेजोंके हाथ लगने पर उन्होंने कर घसूलोके लिये प्रयत्न किया, इस पर पलोगर सरदारोंने एक साथ मिल कर अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह करनेकी चेष्टा की। तब अङ्गरेजोंको बाध्य हो कर जेनरल कैम्बेलको सेना-संहत भेजना पड़ा। दुर्द्धर्ष पलोगरोंने अङ्गरेजो सेनासे डर कर उसकी वशयता स्वीकार की।

उस समय अङ्गरेजोंने पलोगरोंके हाथसे प्रदेशके राजस्व घसूलोका भार छोन लिया और उन्हें सेनादल रखनेके लिये निषेध कर दिया। इससे पलोगरगण क्रमशः क्रम-जोर हो गये। इधर अङ्गरेजोंने राजस्व घसूलोको सुविधाके लिए प्राप्त जिलोंको एक कमिश्नरके शासनाधीन रखा।

१८०० ई०में कर्नल मॅन्रो यहाँके प्रथम कलकुर नियुक्त हुए; परन्तु १८०७ ई०में उनके अघसर प्रहण करने पर उसका प्रदेशका कड़ापा और वेल्लरी इन दो जिलोंमें विभक्त कर दो कलकुरोंके हाथ सौंप दिया गया। तयसे यहाँ कर घसूलोके सम्बन्धमें फिर कोई विमर्श नहीं हुआ।

अङ्गरेजोंके अधिकारमें वेल्लरीमें शांति स्थापन होने पर भी १८१४ ई०में पिडारी दस्युदलने हर्षणहल्ली लूट लिया था। उसीके साथ साथ उन्होंने रायदुर्ग और कुदलिघो पर आक्रमण किया था, किन्तु विशेष कुछ क्षति नहीं कर सके। दस्युदलके दमनार्थ वेल्लरीसे एक अङ्गरेजी फौज भेजी गई, जिसने बड़ी मासानीसे दफैतेको मगा दिया।

१८५० ई०में सिपाही-विद्रोहकी विद्वेषानि धारवार जिले में फैल गई और क्रमशः चारों ओर व्याप्त हो गई। हर्षण-हल्लीके तहसीलदार भी उस समय दलबल-संहत विद्रोही हो गये। रामणदुर्ग आक्रमण करने पर अङ्गरेजी सेनाने उनकी गति रोक दी और कोपिला नामक स्थानमें ७४ नं०के हार्लेण्डर-दलने उन्हें पराजित और विध्वस्त कर देशमें पुनः शांति स्थापित की।

१८८२ ई०में प्राचीन वेल्लरी जिला पुनः दो भागोंमें विभक्त हो कर गठित हुआ तथा विचारकार्यकी सुविधाके लिए नव-विभक्त वेल्लरी जिला अदोनी, मल्लूर, वेल्लरी, हर्षणहल्ली, हविनहुटगल्ली, हासपेट, कुदलिघि और रायदुर्ग इस प्रकार उपविभागोंमें विभक्त किया गया।

यहाँके दश नगरोंमें वेल्लरी, अदोनी, हासपेट, कम्पतो, रायदुर्ग, हर्षणहल्ली जनसंख्यामें सबसे बड़े शहर हैं। यहाँ नाना श्रेणीके लोग रहते हैं। किसान लोग चना, रागी और जुनहरो नामक फसल पैदा करते हैं। उसीसे जन-साधारणको गुजर हांती है। दलदल-भूमिमें धान्य और ईसकी खेती ही अधिकतासे हांती है। जलामाय होने पर ये अल्प स्थानसे नाले काट कर पानी लाते हैं और उसीसे खेतोंमें पानी देते हैं। ऊँचों जमीन पर सिर्फ नारियल, सुपारी, कोला, पर्ण, तम्बाकू, मिर्चा, हददी और नाना प्रकारकी सब्जियोंकी खेती हांती है। यहाँ कापास काफी तादातमें हांता है।

अनाट्टि पड़ने पर यहाँ प्रायः दुर्निश्च और साथ ही

का तथा वा। नदी तक कि ये आश्रमस्थान बनने लगे हैं।
 मन्थन हो गये थे, किन्तु देवा जनोंको मृत्यु होने तथा
 मन्थनमें अंग्रेजों सेनाके पक्षमें आयेगी अन्तेहीका
 मान्यता हुई था। १९६१ ईसवी साले कामेवाजिमये हम
 पुर्णसे वेदका कर रंगपुरको वासा कर दी। १९६१ ईसवी
 धाराका नामके वाद रीपु सुम्पनामके परिवार
 ममें हम पेनुर मृगंसे भावय्य रहे। १८६६ ईसवी यदी
 श्री मित्रादीपद्रीत हुआ था, उसमें बहनोंका विवाह है,
 कि उक्त सुम्पनामके परिवार में शामिल थे। हम
 विद्वांसों ममें सन्देश पुस्तक और सूत्रोपपन्न विद्वांसोंके
 हाथमें सम्पुत्र मिचारे थे। जनेम मित्रियोंको पीडा
 से विद्वांसोंका जोष ही दूनन हुआ। रीपुके परिवार-
 मम कनकलमें भी मित्र दिये गये।

उक्त मृगंसे छोड़ कर यदी एक सुन्दर विष्णुमन्दिर
 है। इस मन्दिरका बाह्यद्वार और निम्नोपपन्न क्षेत्र कर
 बहनेसे गुण्य ही गये हैं। मन्दिरके बाहरी बन्दारे पर
 श्री अम्बारीदी मूर्ति ही उभरने येशो कारोमरी दिखलाई
 गां है, कि उभरने सुम्पना मृगंसे जगद पुर्णन है।
 उक्त मन्दिरमें छोड़ कर यदीकी नोदमादनकी मराजिद
 भी देखने लायक है।

यह नगर नाम देते पर भी स्वाभ्यवहार है। यदी
 सुम्पनाम पुत्रको जेना होमी है। प्रतिदिन देखने द्वारा
 हैकरी रीपुसे मृग मन्थन भेदा जाना है।

पेनुर—वासांसेनाके उभारणी क्रियात्मक एक बड़ा
 गाँव। यह वासांसेनाके १२ मील पुर्णमें अवस्थित है।
 यदी रामेश्वर, मारायण और कर्जिका मथानीका सुन्दर
 मन्दिर है। प्रवाद है, कि ये सब कथामय प्रतिष्ठा स्थापित
 कथामायाके कथये हुए हैं।

पेन (सं० पु०) विनामि मन्थनमोक्षमेति विना मति
 करने काम, यथा विनामि अहमिति (परदलविद्वान्मृती
 मन्थन) वा ३१२(१) इति मन्थन । १ कथये मने और
 मन्थने भाषि पहन कर मने । २ विना-
 के कथये मने भाषि । ३ मन्थन-
 पेनुराक : यद्यपि—मन्थन,
 पेनुर (मन्थन) विनामि क
 मन्थन । ४ यद्यपि—मन्थन

मन्थन, पेनुराक : ३ यद्यपि । ८ यद्यपि भाषि ।
 (३१२)

पेनक (सं० पु०) पेनक एक शब्दों बन्दा । १ मृग, पर
 (मि०) २ पेनकाक ।

पेनपुन (सं० पु०) कुलटा मती, पुरवासा मती ।
 २ येशवा, रंदा ।

पेनगा (सं० पु०) पेनका भाव या मने, वेगाव ।

पेनतव (सं० पु०) पेनकय भावः एव । पेनका भाव
 वा मने, पेनगा ।

पेनपान (सं० पु०) मृगं योमा । (मन्थन)

पेनपर (सं० पु०) १ यह जिनसे किसी पुत्रके
 पैदा धारण किया है, यह श्री मने बहने हुए दो, उक्त
 पेनो । २ जेनेका एक सम्पदाव । १५३४ संवत्में
 यह सम्पदाव वरशिंन हुआ । मने देवी ।

पेनपारि (सं० पु०) येशो भावमतिहूँ भारतीय भू-
 निमि । १ मन्थनपत्रो, कण्ठ मन्थनी, यह श्री मन्थनी
 न हो पर मन्थितयोकाया पेन धारण करता है।
 २ मन्थन ज्ञानिविद्येव । मन्थनपत्रके कथामे मन्थि
 पेनपारोके मन्थनमें पेनपारो मन्थनी उभरति
 हुई तथा इनके पुत्र मृगो कदमाये । (मन्थनपत्रो
 मन्थन १० मन्थन) (मि०) २ पेनपारक, येन धारण
 करनेवाला ।

पेनन (सं० पु०) विनामन्थनः प्रपेन करमा ।
 (भाष्य १०१२३६)

पेननर (सं० पु०) मन्थनीकामती एक मन्थनीका नाम ।

पेनन (सं० पु०) पेनमन्थन मन्थनय इति विना (मृ
 मन्थन) बन्दा । उक्त ३१२(१) इति मन्थन । १ मृग

पेनन (सं० पु०) मन्थन, मन्थन । ३ मन्थन ।
 पु० ३ यद्यपि—मन्थन ।
 ४ यद्यपि—मन्थन ।
 ५ यद्यपि—मन्थन ।

१ वेश्याके घनसे अरनी-जीविका चलानेवाला ; २ वेश-
विशिष्ट ।

वेशयार (सं० पु०) नोमक, मिर्च, धनिया आदि मसाले ।
वेश्यास (सं० पु०) वेश्याका घर, रंडीका मकान ।
वेशस (सं० पु०) वेश-प्रसुत । १ वेश । (अथर्व०
२।३।४) २ वल ।

वेशली (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वेशान्त (सं० पु०) वेशन्त वेले ।

वेशि (सं० स्त्री०) सूर्यका अवस्थानगृह ।

(सप्तजातक ६।६)

वेशिक (सं० स्त्री०) शिलायिद्या, हाथकी कारीगरी ।

वेशिन् (सं० लि०) १ वेशधारी, वेश धारण करने-
वाला । २ भावशकारी ।

वेशी (सं० स्त्री०) सूची, सूई ।

वेशीजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदाता नामकी लता ।

वेशोक—सदुक्तिकर्णाभृत धृत एक प्राचीन संस्कृत
कावि ।

वेशोभगीत (सं० लि०) वेशी बल अस्त्यस्य वेशस-
ख (पा ४।४।३२) बलशाली ।

वेशम (सं० स्त्री०) गृह, घर ।

वेशमक (सं० लि०) गृहसम्बन्धीय ।

वेशमकलिङ्ग (सं० पु०) वेशमना कलिङ्गः । चटक,
गौरैया । इसका मांस सन्निपातनाशक तथा अतिशय
शुक्रवर्द्धक माना गया है ।

वेशमकुलिङ्ग (सं० पु०) गृहकुलिङ्ग ।

वेशमकूल (सं० पु०) वेशम गृह कूलयति-कूलक ।
चिचिडां, चिचिडा ।

वेशमन् (सं० स्त्री०) विशन्त्वन्तेति विश-मन्तिन् । गृह,
घर, मकान ।

वेशमनकुल (सं० पु०) वेशमनो गृहस्य नकुलः । गन्ध-
सूयिक, छद्महर ।

वेशमपुरोधक (सं० पु०) दूसरेके मकानको तोड़ कर या
उसमें से घ लगा कर चोरी करनेवाला ।

वेशमभू (सं० स्त्री०) वेशमनो भूः । गृहकरणयोग्य भूमि,
घर स्थान जो मकान बनानेके उपयुक्त हो अथवा जिस
पर मकान बनाया जाय ।

वेशमवास (सं० पु०) वासगृह, रहनेका घर, मकान ।

वेशमस्त्री (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वेशमादीपिक (सं० पु०) मकानमें बाग देनेवाला ।

वेशमान्त (सं० पु०) गृहान्तःपुर, घरके अंदरका वह भाग
जिसमें स्त्रियां रहती हैं, जतानखाना ।

वेश्य (सं० स्त्री०) वेशी भवां वेशा (दिगादित्वात् यत् ।
पा ४।३।४) यद्वा वेश्याये हितं वेश्या-यत् । .. शः वेश्या-
लय, रंडीका घर । (त्रि०) २ प्रवेशाद्, प्रवेश करनेके
योग्य ।

वेश्या (सं० स्त्री०) वेशमर्हति वेशीन दीप्यति आचरति,
वेशीनपण्य योगेन, जायति वा वेश-यत्-टाप । वेश्या,
रण्डी, कस्वी, गणिका ।

परपुरुषगामिनी स्त्री साधारणतः वेश्या कह कर
पुकारो जाता है । किन्तु शास्त्रमें इसका भेद इस तरह
कहा गया —

"पतिप्रता चैकस्मिन् द्वितीये कुलटा स्मृता ।

तृतीये वृषली श्रेया चतुर्थे पुंश्चली मया ॥

वेश्या तु पञ्चमे पञ्चे युक्ती च सप्तमेऽप्ये ।

तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽप्युक्ता सर्व जातिषु ॥"

(महावे० पु० प्र० सं० ३१ अ०)

जो स्त्री एक पतिकी सेवा करती है, उसकी पतिप्रता,
दो पुरुषोंको सेवन करनेवाली स्त्री कुलटा, तीन पुरुषों-
की सेवा करने वाली स्त्री वृषली, चार पुरुषोंसे रमण
करनेवाली स्त्री पुंश्चली, पांच और छः पुरुषोंको सेवा
करनेवाली वेश्या और सात आठ पुरुषोंसे संभोग करने-
वाली स्त्री युक्ती और इससे अधिक पुरुषोंकी सेवा
करनेवाली स्त्री महावेश्या कहलाती है । यह महावेश्या
सब जातिके लिये अर्ह्यत है । महावेश्यापुरुषाणाम् और
भो लिखा है,—

जो द्विज कुलटा, वृषली, पुंश्चली आदि त्रिवर्गसे
रमण करने हैं, वह अघटोद्-नामक नरकमें जाते हैं ।

वेश्या मृत्युके शाब्द वेधन नरकमें, युक्ती दण्डताडन
नरकमें, महावेश्या जलवन्ध नरकमें, कुलटा दिदचूर्णाक
नरकमें पुंश्चली दहन नामक नरकमें और वृषली-व्योषक
नरकमें वास कर अक्षय वस्तुना भोग किया करती है ।

प्रायश्चित्त विवेकमें लिखा है, कि वेश्यागमन करने-

१ वेश्याके धनसे अपनी जीविका चलानेवाला ; २ वेश-
विशिष्ट ।

वेश्यार (सं० पु०) नोमक, मिर्च, धनिया आदि मसाले ।

वेश्यास (सं० पु०) वेश्याका घर, रंडीका मकान ।

वेशस (सं० पु०) वेश-मनु । १ वेश । (अथर्व०
२।३।४) २ बल ।

वेश्यी (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वेश्यान्त (सं० पु०) वेशन्त बेलो ।

वेशि (सं० स्त्री०) सूर्यका अवस्थानग्रह ।

(अधुनातक ६।६)

वेशिक (सं० स्त्री०) शिलारविद्या, दाघकी कारीगरी ।

वेशिन् (सं० त्रि०) १ वेशघारो, वेश धारण करने-
वाला । २ भाष्यशकारी ।

वेशी (सं० स्त्री०) सूची, सूई ।

वेशीजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदाता नामकी लता ।

वेशोक—सदुक्तिकर्णामृत धृत एक प्राचीन संस्कृत
कावि ।

वेशोभगीन (सं० त्रि०) वेशो धल अस्त्यस्य वेशस-
क (पा ४।४।३२) बलशाली ।

वेशम (सं० स्त्री०) गृह, घर ।

वेशमक (सं० त्रि०) गृहसम्बन्धीय ।

वेशमकलिङ्ग (सं० पु०) वेशमनः कलिङ्गः । चटक,
गौरैया । इसका मांस सन्निपातनाशक तथा अतिशय
शुकरक माना गया है ।

वेशमकुलिङ्ग (सं० पु०) गृहकुलिङ्ग ।

वेशमकूल (सं० पु०) वेशम गृह कूलयतीति-कूलक ।
चिचिडा, चिचडा ।

वेशमन् (सं० स्त्री०) विशन्त्वन्तेति विश-मनिन् । गृह,
घर, मकान ।

वेशमनकुल (सं० पु०) वेशमनो गृहस्य नकुलः । गन्ध-
मूयिक, छल्लूहर ।

वेशमपुरोधक (सं० पु०) दूसरेके मकानको तोड़ कर या
उसमें से घ लगा कर चोरी करनेवाला ।

वेशमभू (सं० स्त्री०) वेशमनो भूः । गृहकरणयोग्य भूमि,
यह स्थान जो मकान बनानेके उपयुक्त हो अथवा जिस
पर मकान बनाया जाय ।

वेशमवास (सं० पु०) वासगृह, रहनेका घर, मकान ।

वेशमस्त्री (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वेशमादीपिक (सं० पु०) मकानमें भाग देनेवाला ।

वेशमागत (सं० पु०) गृहान्तगुर, घरके अंदरका वह भाग
जिसमें स्त्रियां रहती हैं, जनानखाना ।

वेश्य (सं० स्त्री०) वेशी भर्ता वेश (दिगादित्वच्त् पत् ।

पा ४।३।१४) यद्वा वेश्यायै हितं वेश्या-व्यत् । १-वेश्या-
लय, रंडीका घर । (त्रि०) २-प्रवेशाद्, प्रवेश करनेके
योग्य ।

वेश्या (सं० स्त्री०) वेदामहंति वेशीन दीप्यति आचरति,
वेशीनवप्य वोगेन, जायति वा वेश-व्यत्-टाप । वेश्या,
रण्डी, कस्सी, गणिका ।

परपुरुषगामिनी स्त्री साधारणतः वेश्या कह कर
पुकारो जाती है । किन्तु शास्त्रमें इसका भेद इस तरह
कहा गया—

‘पतिप्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता ।

तृतीये वृषली शेषा चतुर्थे पुंश्चली मता ॥

वेश्या तु पञ्चमे पण्डे वृष्ली च षष्ठमेऽष्टमे ।

तत ऊर्ध्वं महावेश्या घास्त्रया सर्वं जायिषु ॥”

(ब्रह्मर्वे० पु० प्र० ख० ३१ अ०)

जो स्त्री एक पतिको सेवा करती है, उसको पतिप्रता,
दो पुरुषोंको सेवन करनेवाली स्त्री कुलटा, तीन पुरुषों-
को सेवा करने वाली स्त्री वृषली, चार पुरुषोंसे रमण
करनेवाली स्त्री पुंश्चली, पांच और छः पुरुषोंको सेवा
करनेवाली वेश्या और सात आठ पुरुषोंमें सङ्गम करने-
वाली स्त्री मुक्ती और इससे अधिक पुरुषोंको सेवा
करनेवाली स्त्री महावेश्या कहलाती है । यह महावेश्या
सब जातिके लिये अद्वैत है । ब्रह्मवैवर्तपुराणमें और
भी लिखा है,—

जो त्रिन् कुलटा, वृषली, पुंश्चली आदि स्त्रियोसे
रमण करने हैं, यह अघटोद् नामक नरकमें जाते हैं ।

वेश्या मृत्युके बाद धैर्य नरकमें, मुक्ती दण्डतांडन
नरकमें, महावेश्या जलबन्ध नरकमें, कुलटा दीहचूर्णक
नरकमें पुंश्चली दहन नामक नरकमें और वृषली-शोषक
नरकमें धास कर अशेष पन्नना भोग किया करती है ।
प्रायश्चित्त विधेयमें लिखा है, कि वेश्यागमन करने-

था गया था। यहां तक कि वे आत्मसमर्पण करने तय्यार हो गये थे, किन्तु हैदर अलीको मृत्यु होने तथा मन्दाजले अंगरेजों सेनाके पहुँच जानेसे अंगरेजोंको मानरक्षा हुई थी। १६६६ ई०में लार्ड कार्नवालिसने इस दुर्गको घेरे बना कर रंगपुरको घाला कर दी। १७६६ ई०में धीरहूपतनके अधापतनके बाद टोपू सुलतानके परिवार-संग इस वेपुर दुर्गमें आबद्ध रहे। १८०६ ई०में यहां जो सिपाहीविद्रोह हुआ था, उसमें बहुतेकोंका विध्वंस है, कि उक्त सुलतानके परिवार भी शामिल थे। इस विद्रोहमें सभी अहमरेज पुरुष और यूरोपीयगण विद्रोहियोंके हाथसे वमपुर सिधारे थे। कर्नल जिलेस्पीको नेछा से विद्रोहियोंका शीघ्र ही दमन हुआ। टोपूके परिवार-संग कलकत्तेमें भेज दिये गये।

उक्त दुर्गका छोड़ कर यहाँ एक सुन्दर विष्णुमन्दिर है। इस मन्दिरका कारुकार्य और शिहरनैपुण्य देख कर बहुतेरे मुग्ध हो गये हैं। मन्दिरके बाहरी चतुर्धर पर जो अभ्यारोही मूर्तियाँ हैं उसमें ऐसी कारीगरी दिखलाई गई है, कि उसकी तुलना दूसरी जगह दुर्लभ है। उक्त मन्दिरका छोड़ कर यहाँकी चाँदसाहबको मसजिद भी देखने लायक है।

यह शहर गरम होने पर भी स्वास्थ्यकर है। यहां मुगलियत पुरषको खेतों होती है। प्रतिदिन रेलवे द्वारा टोकरो टोकरो फूल मन्दाज भेजा जाता है।

वेपुर—बम्बईप्रदेशके कालादगी जिलान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह बागलकोटसे १२ मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां रामेश्वर, नारायण और कालिका-भयानोंका सुन्दर मन्दिर है। प्रवाद है, कि ये सब देवालय प्रसिद्ध स्वपति यक्षनाचार्दोंके बनाये हुए हैं।

वेश (सं० पु०) विशन्ति नपनमनास्वतेति विश अधि-करणे घञ्, यद्वा विशति अङ्गुमिति (पदञ्जविशास्पृशो घञ् । वा ३।३।१६) इति घञ् । १ कपङ् लसे और गहने आदि पहन कर सनेने ज्ञापको सज्जाना । २ किसीके कपड़े लसे आदि पहननेका दंग । ३ पहननेके यत्न, पोशाक । पर्याय—आकल्प, नेपथ्य, प्रतिकर्म, प्रसाधन, वेप । (भरत) विशन्ति कामुका यत्नेति, अधिकरणे घञ् । ४ वेश्याका घर । ५ गृह, घर । ६ यत्नयुद्ध,

तंबू, खेमा । ७ प्रवेश । ८ पथयत्री आदि । (मनु ५।५५)

वेशक (सं० पु०) वेश पथ स्वार्थे कञ् । १ गृह, घर । (जि०) २ वेशकारक ।

वेशकुल (सं० स्त्री०) कुलटा स्त्री, दुश्चरिता स्त्री । २ वेश्या, रंडी ।

वेशता (सं० स्त्री०) वेशका भाव या धर्म, वेदात्म्य ।

वेशत्व (सं० स्त्री०) वेदात्म्य भावात्त्व । वेशका भाव या धर्म, वेशता ।

वेशदान (सं० पु०) द्यूत-शोभा । (शब्दच०)

वेशधर (सं० पु०) १ वह जिसमें किसी दूसरेका वेश धारण किया हो, वह जो मेघ बदने हुए हो, छात्र-वेशी । २ जैनोंका एक सम्प्रदाय । १५३४ संवत्में यह सम्प्रदाय प्रचलित हुआ । जैन शैली ।

वेशधारिन् (सं० पु०) वेशं नापसल्लिङ्गं धरतीति धृ-णिनि । १ छलतपस्वी, कपट तपस्वी, यह जो तपस्वी न हो पर तपस्वियोंका-सा वेश धारण करता हो । २ सङ्कर जातिविशेष । गङ्गापुलकः कन्याके गर्भसे वेशधारीके औरससे वेशधारी जातिकी उत्पत्ति हुई तथा उनके पुत्र उद्भूते कहलाये । (ब्रह्मवैवर्तपु० महापु० १० अ०) (जि०) ३ वेशधारक, वेश धारण करनेवाला ।

वेशन (सं० स्त्री०) विश-लघट् । प्रवेश करना ।

(भागवत १०।१।२।१)

वेशनत् (सं० पु०) प्राचीनकालकी एक नदीका नाम ।

वेशन्त (सं० पु०) वेशन्त्यन्त भेकाद्य इति विश (शु-विशिम्यां शच् । उण् ३।१२६) इति शच् । १ शूद्र-सरोवर । २ पथयत्न, कर्म । ३ अग्नि ।

वेशभाव (सं० पु०) वेशसज्जाकी परिपाटी ।

वेशयुवती (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वेशयोविष् (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वेशर (सं० पु०) अथयत्न, धारण ।

वेशपथ (सं० स्त्री०) वेशयोविष्, वेश्या, रंडी ।

वेशयनिता (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वेशयत् (सं० लि०) वेश अस्त्वर्थे प्रतुप महत्तया ।

“ऊर्ध्वं पादद्वयं नार्धां मुजाभ्यां वेष्टयेत् यदि ।

कराभ्यां कपटमास्त्रिभ्य य वन्यो वेष्टनवेष्टकः ॥”

(रविमञ्जरी)

वेष्टपाल (सं० पु०) बौद्धमेद । (तारनाथ)

वेष्टवंश (सं० पु०) वेष्टः वेष्टनकारो वंशः । रघुवंश,

एक प्रकारका बांस जिसे बेडर बांस कहते हैं ।

वेष्टव्य (सं० लि०) वेष्टनयोग्य, बैठन आदिसे लपेटने लायक ।

वेष्टसार (सं० पु०) वेष्टानां सारो यत् । १ श्रोत्रेष्ट, गंधयिरोजा । २ सरलकाष्ठ, धूपसरल, धूपका पेड़ ।

वेष्टा (सं० स्त्री०) हरीतकी, हरे । (वेष्टकनि०)

वेष्टित (सं० लि०) वेष्ट-क । १ नदी या परकोटे आदिसे चारों ओर घिरा हुआ । २ कपड़े आदिसे लपेटा हुआ । ३ कल, यका हुआ ।

वेष्टिनक (सं० लि०) वेष्टित स्वार्थे कन् । वेष्टित वेले ।

वेष्टप (सं० पु०) वेष्टेष्टोति विप व्याप्ती (पानीविधिभ्यः षः) उष् ३।२६ इति ष । पानोय ।

वेसन (सं० स्त्री०) वेस-ल्युट् । १ मटर, चने आदिकी दाल पीस कर तैयार किया हुआ आटा, बेसन । २ गमन ।

वेसर (सं० पु०) अश्वतर, गद्दाहा ।

वेसवार (सं० पु०) १ पोसा हुआ जोरा, गिर्ब, लौंग आदि मसाला । पर्वय—उपस्कर, वेपवार, वेशवार । २ एक प्रकारका पकाया हुआ मांस । पहले हड्डियां आदि अलग करके खाली मांस पीस लेते हैं और तब गुड़, घी, पोपल, मिर्चे आदि मिला कर उसे पकाते हैं । यही पकाया हुआ मांस वेसवार कहलाता है । यह गुक, सिनगुष और बलेपचयकारक होता है ।

वेसवारोक्त (सं० लि०) वेसवारों द्वारा संस्थान ।

वेसारा—रङ्गपुराणों का एक मुसलमान सम्प्रदाय ।

वेसुक—देवगिरिके यादववंशीय एक राजा ।

देवगिरि, यादवराजवंश देखो ।

वेसुगि—वेसुक देखो ।

वेस्ट (अं० पु०) पश्चिम दिशा ।

वेस्टकोट (अं० पु०) एक प्रकारकी भङ्गरेजी कुरती या फनुदी जिसमें बाँहें नदी दाँती और जो कमीजके ऊपर तथा कोटके नीचे पहनी जाती है ।

वेहत (सं० स्त्री०) विशेषेण हन्ति गर्भमिति वि-हन-अति संश्वत्पृष्ठे हत् । (उष् २।२५) १ गर्भोपसातिनी गौ, वह गाय जो ऋतुकालके छोड़ अन्य समयमें सौँदसे जोड़ खा गर्भ नष्ट करती है । २ भेलम या वितस्ता नदी । वितस्ता देखो ।

वेहला—२५ परगनेके अन्तर्गत एक वस्तिष्णु ग्राम । यहाँ सब-रजिष्ट्री, डाकघर और स्कूल हैं ।

वेहिर—१ मध्यप्रदेशके घालाघाट जिन्हांतर्गत एक तहसील । भूपरिमाण १४५१ वर्गमील है ।

२ उक्त तहसीलके अधीन एक बड़ा ग्राम । यह घालाघाट शहरसे ४१ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है । यहाँ अधिकांश गोंड और प्रधानका वास है । अयो. वैसा समृद्धिशाली नहीं होने पर भी एक समय यहाँ जो बहुत लोगोंका वास था, उसका काफी प्रमाण मिलता है । दानेदार पत्थरके बने सुन्दर भास्कर शिल्पसमन्वित अति प्राचीन और अति बृहत् १३ मन्दिरोंका समनावशेष विद्यमान है ।

वेदिस्तुन—पारस्य देशकी सीमा पर किरमाणशाहसे २१ मील पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम । यह नाना भास्करशिल्पयुक्त प्रस्तरखोदित एक गिरिशैलके नीचे बसा हुआ है । इस ग्राममें कई जगह सुन्दर मार्ग पत्थरके खंभे इधर उधर पड़े हैं । इसके सिवा अन्नमनीवंगके समय उत्कीर्ण बहुत-सी कोलरुपा शिलालिपियां विद्यमान हैं । उनमें घाटिलकमद्रवासी दारयुसके अधिकार-भुक्त अनेक इरानीय जातियोंके नाम देखे जाते हैं । यहाँकी दो शिलालिपि विशेष उल्लेखयोग्य हैं । एकमें गेताथीके समयकी भन्न प्रीकलिपि और दूसरीमें पार्थिपेलिसका भास्करशिल्प अलंकृत है । दूसरी लिपिमें १००० पार्थियुक्त कोललिपि हैं जिसमें दारयुस विस्तारपका पराजित, बयेरबधसकी कथा तथा उनके हाथ उद्वृत्ति या शासनकर्ता नेवुनेतके पुत्र नेवुकादनेजारकी शासन कहानी लिखी है ।

कोलरुपा शिलालिपिमें यह स्थान 'विघियात्' नामसे प्रसिद्ध है । प्रवाद है, कि यहाँ रानी सेमिरामिसका प्रसिद्ध-उद्यान था ।

यहाँ दारयुस विस्तारपको जो बड़ा शिलालिपि

वालि पुरुषको प्राजापत्यप्रतका अनुष्ठान करनेसे पापक्षय होता है। इसमें अगस्त होनेसे एक घेनु दान कर दे। यह प्रायश्चित्त सहस्र अर्थात् एक बार गमनकी बात कहो गई। शम्पासी लोगोंके लिये नहीं। अर्थात् कृत्वागत वैश्यागमन करनेवालोंको इस प्रायश्चित्तसे वैश्यागमनका पाप नहीं छुटता। उनकी कृच्छ्रसाध्य चान्द्रायण प्रतानुष्ठान करना होगा। चाण्डयणसे यह पाप विदूरित होगा। (प्रायश्चित्तवि०)

वैश्याका अन्न भोजन करना न चाहिये। जो द्विज वैश्याका अन्न खाते हैं, यह कालसूत्र नामक नरकमें जाते हैं और सी वर्ष तक नरकमें बाँस कर शूद्र रूपसे जन्म लेते हैं। उस जन्ममें ताना रूप क्लेश भोग कर शुद्धिलाभ करते हैं। (मदव० पु० प्र० ख० ३१ अ०) वैश्यादर्शन करके यात्रा करनेसे शुभ होता है।

वैश्यागण (सं० पु०) वैश्यानां गणः। वैश्याभोका समूह।

वैश्याङ्गना (सं० स्त्री०) कुलटा स्त्री, वदवलन नीरत। वैश्याचार्य (सं० पु०) वैश्यानामाचार्यः। पोटमह, यह जो वैश्याभोके साथ रहता और उन्हें पररूपोंसे मिलाता है, रंजियोंका दलाल।

वैश्याज्जनसमाश्रय (सं० पु०) वैश्याजनानां समाश्रयः आश्रयस्थानं। वैश्यालय, रंजोका मकान। पयोय—वेग, वैश्याश्रय, पुर, वैश्य। (जटाधर)

वेधर (सं० पु०) अभ्यन्तर, गद्दा। (भृगुसि०)

वेध (सं० पु०) वेधेष्टि व्याप्नोति मङ्गं वेधः, पचादिव्या- हन्। १ वेध देखो। २ वेधय, रंगमंचमें पीछेका यह स्थान जहाँ नट लोग घेष्ट रचना करते हैं। ३ वेध्याष्टद, रंजोका मकान। ४ संस्थानांवेधेय। (साम० १।१७।१६) वेधेष्टि व्याप्नोति कस्युं नित, पचायच्। ५ कर्म। (निपट्ट २।) विष व्याप्ती घञ्। ६ व्याप्ति। (शुक्ल० ५।३०।१६) ७ कायोंपरिचालन, काम चलाना।

वेधकार (सं० पु०) वेष्टन, किसी चोत्रको लपेटनेका रूपड़ा।

वेधेण (सं० पु०) विष व्याप्ती ञ्यु। १ कासमह, कसौही। (शासकी) (स्त्री०) विष-ञ्युट्। २ प्रवेधण। ३ परि- ष्वया, सेया। (चक्र ५०।१५)

वेधेया (सं० स्त्री०) वेधेष्टि व्याप्नोतीति विष-ञ्यु-याप्। वितुम्नक, धनियां।

वेधेदान (सं० पु०) सूर्याशोभा।

वेधेयस्त्रि (सं० पु०) वेध-ञ्यु-णिनि। वेधेयास्त्रि देखो।

वेधेयत् (सं० स्त्री०) वेध-मनुष्य मस्य धं। वेधेयुक्, वेधेयविष्टि।

वेधेवार (सं० पु०) नमक, मिचं धनियां आदि मसाले।

वेधेधो (सं० स्त्री०) जिसमें सुस्वर और ललित वाक्य हों। (शतपथब्रा० ५।१।५१)

वेधिका (सं० स्त्री०) चमेली।

वेधियन् (सं० स्त्री०) वेधेयासी, वेधेण धारण करनेवाला।

वेधक (सं० पु०) औषधनाशक फल।

(शतपथब्रा० ३।५।१।१५)

वेष्ट (सं० पु०) वेष्ट-घञ्। १ वेष्टन देखो। २ धीवेष्ट,

गंधानिरोजा। ३ प्रकृता किसी प्रकारका निर्वास।

४ गौद। ५ धूपसरल। ६ सुश्रुतके अनुसार मुहूर्तमें

होनेवाला एक प्रकारका रोग। (सुश्रुत २।१६)

वेष्टक (सं० स्त्री०) वेष्टते इति ष्ट-ष्ण्युक्। १ उष्णीय,

पगड़ो। २ एष्टका किसी प्रकारका निर्वास। ३ गौद।

४ धीवेष्ट, गंधानिरोजा। (पु०) प्राचीन, परकीट,

चहारदीवारी। ५ कुम्पाण्ड, कौदड़ा। ६ बतकक, छाल।

(स्त्री०) ७ घेष्टनकारक, घेष्टनेवाला।

वेष्टकापघ (सं० पु०) एक प्राचीन शिवस्थान।

(सामादि १।२।१।१५)

वेष्टन (सं० स्त्री०) वेष्टते इति ष्ट-ष्ण्यु। १ कर्णाङ्कुली,

कानका छेद। २ उष्णीय, पगड़ो। ३ मुकुट। ४ घृनि,

यद कपड़ा आदि जिससे कोई चोत्र लपेटे जाय,

वेष्टन। ५ बलघन, घेष्टने या लपेटनेको क्रिया या भाव।

६ गुग्गुलु, गुग्गुलु। ७ कर्पूरपोलिका। (घेष्टकनि०)

वेष्टनक (सं० पु०) वेष्टनेन कायतीति कै कः। इतिव्यप-

विशेष, स्त्रीप्रसंग करनेका एक प्रकार।

"कान्तकृष्णाभिवर्ता नारी" इत्यो वेष्टनकः स्वयं नः" (शतपथब्रा०)

वेष्टनवेष्टक (सं० पु०) वेष्टनेन वेष्टने इति वेष्ट ष्युट्।

इतिव्यपविशेष।

“ऊर्ध्वं पादद्वयं नार्या मुनाम्ना वेष्टयेद् यदि ।

काराम्ना कपटमास्त्रिभ्य वन्धो वेष्टनवेष्टकः ॥”

(रामिभञ्जरी)

वेष्टपाल (सं० पु०) बौद्धभेद । (तारनाथ)

वेष्टबंध (सं० पु०) वेष्टः वेष्टनकारो बंधः । रन्ध्रबंध-

एक प्रकारका बांस जिसे बेडर बांस कहते हैं ।

वेष्टण्य (सं० लि०) वेष्टनयोग्य, बेडन आदिसे लपेटने लायक ।

वेष्टसार (सं० पु०) वेष्टानां सारो यत् । १ ध्रुववेष्ट, गंधविरोजा । २ सरलकाष्ठ, धूपसरल, धूपका पेड़ ।

वेष्टा (सं० स्त्री०) हरीतकी, हरे । (वेष्टकनि०)

वेष्टित (सं० लि०) वेष्ट-क । १ नदी या परकोटे आदिसे चारों ओर घिरा हुआ । २ कपड़े आदिसे लपेटा हुआ । ३ रुद्ध, रुका हुआ ।

वेष्टिनक (सं० लि०) वेष्टित खाद्यं कन्न । वेष्टित बेलो ।

वेष्टप (सं० पु०) वेष्टेष्टोनि विप व्याप्ती (पानीविधिभ्यः पः) उष् ३।२६ इति प । पानीय ।

वेष्टन (सं० स्त्री०) वेष्ट-नयुद् । १ मटर, चने आदिको दाल पीस कर तैयार किया हुआ आटा, बेसन । २ गमन ।

वेष्टर (सं० पु०) अश्वतर, गदहा ।

वेष्टयार (सं० पु०) १ पीसा हुआ जौरा, मिर्च, लौंग आदि मसाला । पर्याय—उपस्कर, वेष्टयार, वेष्टयार । २ एक प्रकारका पकाया हुआ मांस । पड़ले हड्डियां आदि अलग करके खाली मांस पीस लेते हैं और तब गुड़, घी, पोपल, मिर्च आदि मिला कर उसे पकाने हैं । यही पकाया हुआ मांस वेष्टयार कहलाता है । यह शुक, स्निग्ध और बलौपचकारक होता है ।

वेष्टयारोहृत (सं० लि०) वेष्टयारों द्वारा संस्कृत ।

वेष्टारा—रङ्गपुरवासी एक मुसलमान सम्प्रदाय ।

वेष्टुक—देवगिरिके यादववंशोप एक राजा ।

देवगिरि, यादवराजवंश देखो ।

वेष्टुगि—वेष्टुक देखो ।

वेष्टं (अं० पु०) पश्चिम दिशा ।

वेष्टकौट (अं० पु०) एक प्रकारकी अङ्गरेजी कुरती या फतुही जिसमें बाँहें नहीं होतीं और जो कमीनके ऊपर तथा कौटके नीचे पहनी जाती है ।

वेष्टत (सं० स्त्री०) विशेषेण हन्ति गर्भमिति वि-द्वन-अति संश्रुत्पद्मे हत् । (उष् २।१५) १ गर्भोपघातिनी गौ, वह गाय जो ऋतुकालको छोड़ अन्य समयमें साँड़से जोड़ खा गर्भ नष्ट करती है । २ भेलम या वितस्ता नदी । वितस्ता देखो ।

वेष्टला—२५ परगनेके अन्तर्गत एक बस्तिष्णु ग्राम । यहाँ सब-रलेष्ट्रो, डाकघर और स्कूल हैं ।

वेष्टिर—१ मध्यप्रदेशके बालाघाट जिल्लांतर्गत एक तहसील । भूपरिमाण १४५१ वर्गमील है ।

२ उक्त तहसीलके अधीन एक बड़ा ग्राम । यह बालाघाट शहरसे ४१ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है । यहाँ अधिकांश गोंड और प्रधानका वास है । अमो, बैसा समुद्रिशाली नहीं होने पर भी एक समय यहाँ जो बहुत लोगोंका वास था, उसका काफी प्रमाण मिलता है । इन्दौर पत्थरके बने सुन्दर भास्कर शिवपसमग्नित अति प्राचीन और अति वृहत् १३ मन्दिरोंका मन्तावशेष विद्यमान है ।

वेष्टिस्तुन—पारस्य देशकी सीमा पर किरमाणशाहसे २१ मील पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम । यह बाना भास्करशिलयुक्त प्रस्तरलोहित एक गिरिशैलके नीचे बसा हुआ है । इस ग्राममें कई जगह सुन्दर मर्मर पत्थरके खंभे इधर उधर पड़े हैं । इसके सिवा अन्नमनोवंशके समय उत्कीर्ण बहुत-सी कोलरुपा शिलालिपियां विद्यमान हैं । उनमें चाहिलकमद्रवासी दारयुसके अधिकार-भुक्त अनेक इरानीय जातियोंके नाम देखे जाते हैं । यहाँकी दो शिलालिपि विशेष उल्लेखयोग्य हैं । एकमें मोतार्दाके समयकी भन्न प्रीकलिंग और दूसरीमें पार्लिपैलिसका भास्करशिलयुक्त अलंकृत है । दूसरी लिपिमें, १००० पक्षयुक्त कोललिपि है जिसमें दारयुस विस्तारस्यका धर्ममत, बवेदवसकी कथा तथा उनके हाथ उदपति या शासनकर्ता, नेबुनेतके पुत्र नेबुकादनेजारकी शासन कहानी लिखी है ।

कोलरुपा शिलालिपिमें यह स्थान 'वेष्टियान' नामसे प्रसिद्ध है । प्रवाद है, कि यहाँ शानो सेमिरामिसका प्रभोद-उद्यान था ।

यहाँ दारयुस विस्तारपक्षी जो बड़ी शिलालिपि

भाविष्टुन हुई है, यह तीन भाषाएँ लिखी हैं—प्राचीन पारस्य, बाबेल (Babylonian) और जाक। किस प्रकार तीनों अपने साम्राज्यों अस्त्युद्धर्मको पुनः प्रतिष्ठित किया, किस प्रकार तीनों अश्वस्त शासन और उसकी टांकाका उद्धार किया, उसका परिचय अतः लिखित दिया गया है।

भाषाविद्वगण उक्त शाकलिकी भाषाको ईसाजन्मके पहले ५वीं सदीमें व्यवहृत मद्रोंकी भाषा मानते हैं, फिर भी उस भाषाके साथ द्राविड़ोप भाषाकी उपभ्रंशोके साथ यथेष्ट सीसादृश्य है। इस कारण बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि मद्र-पारस्य (Medo Persians) जातिके अस्त्युद्धर्मके पहले उन्नी भाषाएँ ही शाकलोग वातघोत मंत्र करते थे, तुर्की या मीडोलीय भाषाएँ नहीं। वैशतिक (सं० त्रि०) विंशत्या प्रोत विंशतिक मण् (१२।२०) विंशति द्वारा प्रोत, जो बीससे खरीदा गया हो।

वैचि—बंगालके हुगली जिलान्तर्गत एक गण्डप्राम। यह कलकत्सेसे ४४ मील दूर ब्रांडरुकरोड नामक रास्ते पर अन्तः २३ ७ ३० तथा देशां ८८ १५ ३५ पू०के बीच पड़ता है। यहाँ ईष्ट इण्डिया रेलवेका स्टेशन है। एक समय यहाँ मगहर डकैतोंका दल था।

वैक्ष (सं० त्रि०) विशेषण कक्षति ध्यात्नेति चि-कृ-अण् । १ यद् द्वार या माला जो एक ओर कंधे पर और दूसरी ओर हाथके नीचे रहे, जनेऊकी तरह पहना जानेवाला द्वार या माला । २ इस प्रकार माला पहननेका ढंग । (पु०) ३ पर्यतमेव । (भागवत १।१।६१) वैक्षक (सं० त्रि०) वैक्षक-कन स्वार्थे । वीर्य देवो । वैक्षुत (सं० पु०) १ शूद्राविशेष । पर्याय—वृत्तिक्षर, भृगावृक्ष, प्रमिथल, स्वादुकण्टक, स्वाप्रयात्, कण्टिकारो, विषदूत । (त्रि०) विकदूतस्वागवयो विकारो या विकदूत मण् पलाशादिभ्यो वा (वा ४।१।२४) जो विकदूतकी लकड़ी भादिसे बना हो, विकदूतका ।

वैकटिक (सं० पु०) १ रत्नपरीक्षक, जोहरी । (त्रि०) २ शिकट-सम्बन्धोप, विकटका ।

वैकट्य (सं० त्रि०) विकट होनेका भाव या धर्म, विकटता ।

वैकटिक (सं० पु०) यह जो रत्नोंकी परीक्षा करता हो, जोहरी ।

वैकथिक (सं० पु०) यह जो अपने सम्बन्धमें बहुत बढ़ाकर बातें कहा करता हो, शोकीवाज, सोटनेवाला ।

वैक्यत (सं० पु०) जातिविशेष ।

वैक्यतविष (सं० पु०) वैक्यतानां विषयोदेशः इति विषल् । वैक्यतोंका देश । (वा १।२।५४)

वैकर (सं० त्रि०) विकरात् प्राकृत्यति विकर-भ्रम् (वा ४।१।८६) । विकरके पहले प्रीठित भादि ।

वैकरञ्ज (सं० पु०) संकर जातिका एक प्रकारका साँप ।

दर्शिकर (फणायुक्त) ; मण्डली (फणाहीन) और राजिमान् (देवायुक्त), इन तीन प्रकारके साँपोंके परस्पर योगसे जो साँप उत्पन्न होता है उसीका वैकरञ्ज कहते हैं। ये फिर माकुलि, पोटागल और स्निग्धराजिके भेदसे तीन प्रकारके हैं। कृष्णसर्प और गोनसके संगमसे माकुलि, राजिल और गोनसके संगमसे पोटागल तथा कृष्णसर्प और राजिमानके संगमसे स्निग्धराजि उत्पन्न होता है। माकुलिका विष पिताके समान तथा पोटागल और स्निग्धराजिका विष माताके समान होता है। फिर ये दिव्यलेप, शेषमुष, राजिचित्तक, पोटागल, पुष्पामिकोर्ण, दर्शमुष और वैदित्तकके भेदसे सात प्रकारके हैं, जिनमेंसे पहलेके तीन राजिमानकी तरह हैं।

वैकर्ण (सं० पु०) विकर्णस्यापरमिति विकर्ण-अण् (विकर्णशुद्धन्तगण्णात् परस्यत्वाभाभिषु । वा ४।१।१०) १ वाटस्य मुनि । (सिद्धान्तकीमुदी) २ एक प्राचीन जनपद । (शुक ४।१।८१) ३ अन्नचक्र । (गरुड शृणु २।१४) वैकर्णावन (सं० पु०) यह जो वैकर्ण वा वाटस्य मुनिके वंशमें उत्पन्न हुआ है ।

वैकर्ण (सं० पु०) विकर्णां मपट्य, वाटस । (वा ४।१।२०)

वैकर्ण्य (सं० पु०) काश्यपके वंशज । (वा ४।१।२४)

वैकस (सं० त्रि०) प्रौढ मांसलच्छ । (ऐत०ब्रा० ७।१)

वैकसन (सं० त्रि०) १ मूयके पुत्र । २ कर्ण । ३ मूय-वन्दोप । ४ सुमीशके पूर्वपुत्र । (त्रि०) ५ मूय-सम्बन्धी, मूयका ।

वैकर्म (सं० पु०) विकर्म या अपकर्मका भाव, दुष्टकृत्य।
वैकर्य (सं० क्ली०) विकरका भाव या धम, फरहीनता।
वैकल्प (सं० पु०) विकल्पका भाव।

वैकल्पिक (सं० त्रि०) विकल्पेन प्राप्तः तत्त भगो वा विकल्प-उक्तः। १. एकाङ्गी, जो किसी एक पक्षमें हो। २. संदिग्ध, जिसमें किसी प्रकारका संदेह हो। ३. जो अपने इच्छानुसार प्रहण किया जा सके, जो चुना जा सके।

वैकल्य (सं० क्ली०) १ विकल होनेका भाव, विकलता, घबराहट। २ कातरता। ३ विरुत भाव, टेढ़ापन। ४ लज्जता। ५ अङ्गहीनता। ६ न्यूनता, कमी। ७ अभाव न होना। (त्रि०) ८ अपूर्ण, अधूरा।

वैकायन (सं० पु०) एक प्राचीन गोलप्रवर्त्तक ऋषि।
(संस्कारकी०)

वैकारिक (सं० त्रि०) १ विकारप्राप्त, जिसमें किसी प्रकारका विकार हुआ हो, बिगाड़ा हुआ। (क्ली०) विकार एवं विकार-उक्तः। २ विकार, बिगाड़।

वैकारिमत् (सं० क्ली०) विकारप्राप्तमत, मतका विकार भाव। (पा २।२।३१)

वैकाय (सं० क्ली०) १ विकारका भाव या धम। (त्रि०) २ विकारके योग्य, जिसमें विकार हो सकता वा होता है।

वैकाल (सं० पु०) विकाल, कपराह।

वैकाल—रूसके अधिष्ठत पेशियाके मंगोलिया विभागमें अवस्थित एक विस्तृत हृद। यह लम्बाईमें ४०० मील और चौड़ाईमें सर्पिल ही प्रायः ४५ मील है। समुद्रकी तहसे यह १७१५ फीट ऊंचा है। यहाँ शील आदि नाना जातिकी मछलियाँ पाई जाती हैं। इस कारण कई एक जहाज इसके किनारे हमेशा यातायात किया करते हैं। विगत रूस जापानकी लड़ाईके समय इस हृदके बरफके ऊपरसे रूसगण रेलवे लाइन ले गये—ये। किन्तु दुर्घटना विषय है—बरफके टूट जानेसे सेनासे लड़ी एक गाड़ी नीचे जलमें गिर पड़ी। इसके पास ही घातक जलपूर्ण बहुरंगे प्रसवण हैं। हृदके उत्तर-पूर्व कोने पर मोलिब्रोहन नामक द्वीप है। ध्रमण-

कारी मंगोल और पुलाति जातियाँ यहाँ आवा करती हैं।

वैकालिक (सं० त्रि०) विकाले भयः विकाल-उक्तः। १ अपने उपयुक्त समय पर न हो कर असमयमें उत्पन्न हो। २ विकल सम्बन्धीय।

वैकाशीय (सं० पु०) १ विकाशके अवस्थादि।
(पा ५।१।२२३)

(त्रि०) २ विकाशके उपयुक्त, प्रकाशके योग्य।
वैकि (सं० पु०) गोलप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।
(प्रवर्थापय)

वैकिर (सं० त्रि०) विकि या प्रसवणादिका जल।
(सुधुत)

वैकुण्ड्यासीय (सं० त्रि०) विकुण्ड्यास सम्बन्धीय।
(पा ५।२।५०)

वैकुण्ठ (सं० पु०) १ श्लोक्य। (भागवत १।१।१५६)
इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस तरह है—चाक्षुस मन्वन्तरमें 'पुण्योत्तमदेवने वैकुण्ठमें विकुण्ठके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था, इसीलिये उनका वैकुण्ठ नाम हुआ है।

"वाचुस्थान्तरे देवो वैकुण्ठः पुण्योत्तमः।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठे देवतैः सह ॥"
(विष्णुपुराण)

और भी लिखा है, कि 'कुण्डा' शब्दका अर्थ माया है, जिसकी कई प्रकारकी माया विद्यमान है, वे वैकुण्ठ नामसे अभिहित होते हैं। कुण्डत्यनया, कुण्डा माया विविधा कुण्डा माया विद्यते इत्ये वैकुण्डः (विष्णुसंहिता नाम टीकामें शङ्कराचार्य)।

प्रलयैवत्संपुराणमें वैकुण्ठ नामको व्युत्पत्ति इस तरह लिखी हुई है—कुण्ड शब्दसे जड़ या विष्वसमूह, इनको जो पिसिए करते हैं, वेद चतुष्टयने उर्ध्वीको विकुण्डा या प्रवृत्ति कहा है। भगवान् निगुण होने पर भी गुणका आश्रय ले कर अपनी सृष्टिके संस्थापन करनेके लिये उसमें उत्पन्न होते हैं। इससे पण्डितगण परिपूर्ण-तम ईश्वरको वैकुण्ठ नामसे पुकारते हैं।

धोमदुभागयतमें भजामिलके उपाध्यायने लिखा है, कि वैकुण्ठ नाम लेनेसे जरीय पाप नष्ट जाता है।

भाविभूत हुई है, यह तीन भाषाएँ लिखी हैं—प्राचीन पारस्य, बाबेल (Babylonian) और ग्रीक। किस प्रकार तीनों ही भाषाएँ साक्षात्परम ज्ञानरूपधर्मको पुनः प्रतिष्ठित किया, किस प्रकार तीनों ही अवस्था ग्राह्य और उसकी टोकाका उद्धार किया, उसका परिचय उक्त लिखि- में दिया गया है।

भाषाविद्वान्गण उक्त जाकारलविकी भाषाको ईसाजन्म- के पहले ५वीं शदीमें व्यवहृत मद्राँकी भाषा मानते हैं, फिर भी उस भाषाके साथ द्राविड़ोय भाषाकी उपभ्रंशों के साथ यथेष्ट सम्बन्ध है। इस कारण बहुतेरे अनु- मान करते हैं, कि मद्र-पारस्य (Medo Persians) जातिके अन्वयके पहले उभी भाषाएँ ही जाकलोग बातचीत में करते थे, तुर्की या मीक्रीय भाषाएँ नहीं। वैज्ञानिक (सं० लि०) लिंजट्या कीत विंजतिक गण (१५२०) विंजति द्वारा कीत, जो बोससे छोड़ा गया हो।

वैचि—बंगालके हुगली जिलामार्गत एक गण्डमाम। यह कलकत्तेमें ४४ मील दूर प्रांशुद्र-करोय नामक रास्ते पर अक्षां २३° ७' ३०" तथा देशां ८८° १५' ३५" पूर्व के बीच पड़ता है। यहाँ ईष्ट इण्डिया रेलवेका स्टेशन है। एक समय यहाँ महाद्वर इकीर्तीका द्वार था।

वैकश (सं० श्लो०) विशेषण कक्षति ध्याप्तेति विक-कश-अण्। १ यह द्वार या माला जो एक ओर कंधे पर और दूसरी ओर हाथके नीचे रहे, जनेऊकी तरह पहना जाने वाला द्वार या माला। २ इस प्रकार माला पहननेका ढंग। (पु०) ३ पर्वतश्रेणी। (भागवत ११.१५.१६)

वैकशक (सं० श्लो०) वैकश-कय सार्थे। वैकश देलो।

वैकशत (सं० पु०) १ शूद्रविशेष। पर्वान्—शूद्रिण, शूद्राशूद्र, प्रमिथल, स्वादुकरटक, स्वाप्रपात्, कष्टिकारो, विषकृत। (लि०) विकशतस्वापयवो विकारो वा विकशत गण पलाशादिभ्यो वा (वा ४.१.१४२) ओ विकशतकी लकड़ी भादिसे बना हो, विकशतका।

वैकशिक (सं० पु०) १ रत्नपरीक्षण, जाँहरी। (लि०)

२ विकट-सम्बन्धोय, विकटका।

वैकशय (सं० श्लो०) विकट होनेका भाव या धर्म, विक-रता।

वैकतिक (सं० पु०) यह जो रत्नोंकी परीक्षा करता हो, जाँहरी।

वैकथिक (सं० पु०) यह जो अपने सम्बन्धमें बहुत बड़ा कर बातें बहा करता हो, शैलीवाज, मोटेनेवाला।

वैकथत (सं० पु०) जातिविशेष।

वैकथतविष (सं० पु०) वैकथतानां विषयोवेद्याः इति विषल्ले। वैकथतीका देन। (पा १.१.५४)

वैकर (सं० लि०) विकरान् प्राकशोष्यति विकर-अण् (वा ४.१.८६)। विकरके पहले क्रीडित आदि।

वैकरञ्ज (सं० पु०) संकर जातिका एक प्रकारका सोप।

वैकरकर (फणायुक्त), मण्डली (फणाहीन) और राजिमान् (रेशायुक्त), इन तीन प्रकारके सर्पोंके परस्पर योगसे जो सोप उत्पन्न होता है उसीको वैकरञ्ज कहते हैं। ये फिर माकुलि, पोटागल और स्निग्धराजिके भेदसे तीन प्रकारके हैं। कृष्णसर्प और गोनसके संगमसे माकुलि, राजिल और गोनसके संगमसे पोटागल तथा कृष्णसर्प और राजिमानके संगमसे स्निग्धराजि उत्पन्न होता है। माकुलिका विष पिताके समान तथा पोटागल और स्निग्धराजिका विष माताके समान होता है। फिर ये दिव्यलेप, शोधपुष्य, राजिभिन्नक, पोटागल, पुष्पामि-कोण, वर्णपुष्य और वैकिककके भेदसे सात प्रकारके हैं, जिनमेंसे पहलेके तीन राजिमानकी तरह हैं।

वैकर्ण (सं० पु०) विकर्णस्वापत्यमिति विकर्ण-अण् (विकर्णशुक्लव्याप्य वरवमद्वानाभिषु। वा ४.१.१७)

१ वाह्य मुनि। (सिद्धान्तकीर्तनी) २ एक प्राचीन जगत्पद। (शुक ४.१.८१) ३ मन्त्रक। (पार० श्रुत० २।४)

वैकर्णायन (सं० पु०) यह जो वैकर्ण या वाह्य मुनिके यंत्रमें उदग्न हुआ हो।

वैकर्णिक (सं० पु०) विकर्णाया अपत्य, वाह्य। (वा ४.१.१७)

वैकर्ण्य (सं० पु०) कर्ण्यके यंत्रकर। (वा ४.१.१७)

वैकस (सं० श्लो०) प्रीट्र मांसलएट। (देव० भा० ७।१)

वैकसत (सं० लि०) १ शूद्रके पुत्र। २ कर्ष। ३ शूद्र-यंत्रोय। ४ शूद्रोंके पूर्वपुत्र। (लि०) ५ शूद्र-सम्बन्धी, शूद्रका।

वैकर्म (सं० पु०) विक्रम या अपकर्मका भाव, दुष्टत्व ।
वैकर्य (सं० क्ली०) विकरका भाव या धम, फरहीनता ।
वैकल्प (सं० पु०) विकल्पका भाव ।

वैकल्पिक (सं० त्रि०) विकल्पेन प्राप्तः तत् भयो या
विकल्प-उक् । १ एकाङ्गी, जो किसी एक पक्षमें हो ।
२ संदिग्ध, जिसमें किसी प्रकारका संदेह हो । ३ जो
अपने इच्छानुसार प्रदण किया जा सके, जो चुना जा
सके ।

वैकल्प्य (सं० क्ली०) १ विकल होनेका भाव, विकलता,
धवराहट । २ कातरता । ३ विकृत भाव, टेढ़ापन ।
४ अश्रुता । ५ अङ्गहीनता । ६ न्यूनता, कमी । ७
अभाय न होना । (त्रि०) ८ अपूर्ण, अधूरा ।

वैकायन (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्तक ऋषि ।
(संस्कारकी०)

वैकारिक (सं० त्रि०) १ विकारप्राप्त, जिसमें किसी
प्रकारका विकार हुआ हो, विगाड़ा हुआ । (क्ली०) विकार
पद विकार-उक् । २ विकार, विगाड़ ।

वैकारिमत (सं० क्ली०) विकारप्राप्तमत, मतका विकार
भाव । (पा २।२।३१)

वैकाय (सं० क्ली०) १ विकारका भाव या धम । (त्रि०)
२ विकारके योग्य, जिसमें विकार हो सकता या होता
हो ।

वैकाल (सं० पु०) विकाल, अचराह ।

वैकाल—रुसके अधिष्ठत पेशिवाके मंगोलिया विभागमें
अवस्थित एक विस्तृत ह्रद । यह लम्बाईमें ४०० मील
और चौड़ाईमें सर्वत्र ही प्रायः ४५ मील है । समुद्रकी
तहसे यह १७१५ फीट ऊँचा है । यहाँ शील आदि
नाना जातिकी मछलियाँ पाई जाती हैं । इस कारण कई
एक जहाज इसके किनारे हमेशा यातायात किया करते
हैं । विगत रूस जापानकी लड़ाईके समय इस ह्रदके
बर्फके ऊपरसे रूसगण रेलवे लाइन ले गये थे ।
किन्तु दुःखका विषय है—बर्फके टूट जानेसे सेनासे
लड़ी एक गाड़ी मोचे जलमें गिर पड़ी । इसके
पास ही घातव जलपूर्ण बहुतेरे प्रसवण हैं । ह्रदके
उत्तर-पूर्व कोने पर मोलिओहन नामक द्वीप है । ध्रमण-

कारी मंगोल और पुलाते जातिवाँ यहाँ आया करते
हैं ।

वैकालिक (सं० त्रि०) विकाले भयः विकाल-उक् ।
१ अपने उपयुक्त समय पर न हो कर असमयमें उत्पन्न
हो । २ विकल सम्बन्धीय ।

वैकाशीय (सं० पु०) १ विकासके अत्यथादि ।
(पा ४।१।२२१)

(त्रि०) २ विकासके उपयुक्त, प्रकाशके योग्य ।
वैकि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्तक एक ऋषिका नाम ।
(प्रयाग्याय)

वैकिर (सं० त्रि०) विकि या प्रसवणादिका जल ।
(सुश्रुत)

वैकुण्ड्यासीय (सं० त्रि०) विकुण्ड्यास सम्बन्धीय ।
(पा ४।२।८०)

वैकुण्ठ (सं० पु०) १ श्रोत्रुष्ण । (भागवत १।१।५६)
इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस तरह है—चाक्षुस
मन्वन्तरमें पुरुषोत्तमदेवने वैकुण्ठमें विकुण्ठके गर्भसे
जन्म ग्रहण किया था, इसीलिये उनका वैकुण्ठ नाम
हुआ है ।

“वाङ्मन्यान्तरे देवो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः ।
विकुण्ठापामधो जवै वैकुण्ठे देववैः सह ॥”
(विष्णुपुराण)

और भी लिखा है, कि कुण्डा शब्दका अर्थ माया है,
जिसकी कई प्रकारकी माया विद्यमान है, वे वैकुण्ठ
नामसे अभिहित होते हैं । कुण्डरूपमाया, कुण्डा माया
विधिमा कुण्डा माया विधिनेऽयस्य वैकुण्ठः (विष्णुसंहिता
टीकामें शङ्कराचार्य) ।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वैकुण्ठ नामकी व्युत्पत्ति इस तरह
लिखी हुई है—कुण्ड शब्दसे जड़ या अश्वत्थमृह, इनको
जो विशिष्ट करने हैं, वेद अतुष्टयने उन्हींको विकुण्डा
या प्रकृत कहा है । भगवान् निर्गुण होने पर भी
गुणका आश्रय ले कर अपनी सृष्टिके संस्थापन करनेके
लिये उसमें उत्पन्न होते हैं । इसमें पण्डितगण परिपूर्ण-
तम ईश्वरको वैकुण्ठ नामसे पुकारते हैं ।

श्रीमद्भागवतमें अज्ञामिलके उपासकानमें लिखा है,
कि वैकुण्ठ नाम लेनेसे अथेय पाप बट जाता है ।

वैकृतयत् (सं० त्रि०) वैकृत मस्त्यधं मतुप् मस्य य ।

वैकृतविशिष्ट, वैकृतयुक्त ।

वैकृतिक (सं० त्रि०) वैगित्तिरु ।

वैकृत्य (सं० क्ली०) विकृतमेव स्वार्थे ष्यञ् । १ वीमत्स रस । २ उसका आलम्बन ।

'प्रिय वीमत्सविकृतं वैकृत्यं विततनया ।' (शम्बररत्ना०)

वैक्रमीय (सं० त्रि०) विक्रम सम्बन्धी, विक्रमका ।
जैसे,—वैक्रमीय संवत् ।

वैक्रान्त (सं० क्ली०) विक्रान्तया दीव्यति विक्रान्ति-अण् ।
स्थानामस्थवात मणिविशेष, चुम्बो । पर्याय—विक्रान्त,
नीचवज्र, कुबज्रक, गोनास, क्षुद्रकुलिय, जोर्णवज्र,
गोनास । यह वज्र (हीरक) के गुणके समान होता
है । (राजनि०)

वैक्रान्तक (सं० क्ली०) वैक्रान्त स्वार्थे कञ् ।

वैक्रान्त देखो ।

वैक्रिय (सं० त्रि०) विक्रिया सम्बन्धी, विक्रीका, जो
विक्रीके दो ।

वैकृत्य (सं० क्ली०) विकृत-अण् । विकृत्य सम्बन्धी ।

वैकृत्य (सं० क्ली०) विकृत-घञ् । विकृत्यता, जड़ता ।

वैकृत्यता (सं० स्त्री०) वैकृत्यस्य भावः तल्लटाप् ।
वैकृत्य, जड़ता ।

वैकरी (सं० स्त्री०) १ शुद्धशुद्धिगत कण्ठगत नादरूप वर्ण,
कण्ठसे उत्पन्न होनेवाले स्वरका एक विशिष्ट प्रकार ।
पेसा स्वर उच्च धीर गंभीर सुनाई पड़ता है ।

(अक्षरकारकीस्तुम)

२ धाक्-शक्ति । ३ वाग्देवो ।

वैखानसः (सं० पु०) विखानसं प्रह्लाणं घेत्ति तपसा,
विखनन-अण् । १ खानप्रस्थ । २ खनचारी प्रखचारी
विशेष । (लिङ्गु० १०६) (त्रि०) वैखानसस्येद-

मित्पण् । ३ वैखानस सम्बन्धी ।

वैखानस—१ एक आयुर्वेदविद् । टोडरानन्दमें इसका
उल्लेख है । २ एक शिवशास्त्रके रचयिता । ३ श्रौतसूत्र,
गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र नामक ग्रन्थोंके प्रणेता ।

वैखानसतन्त्र—तन्त्रग्रन्थमेद ।

वैखानसि (सं० पु०) एक प्राचीन गौतमप्रवचक ऋषि ।

वैखानसीयोगनिपटु—एक उपनिपटु । गोपाल-पूर्वताप

नीपोपनिपटुके साथ इसका बहुत कुछ सादृश्य देखा
जाता है ।

वैग—छोटा नागपुरवासी धनुषा जातिकी एक जाति ।
वे लैग जादुगिरी विद्या दिव्या कर रुपये कमाते हैं ।
उस देशके खरवाड़ भी वैग या वैराग उपाधिसे परिचित
हैं । जनसाधारणकी धारणा है, कि वे लैग भौतिक
प्रक्रिया द्वारा स्थानीय देवताओंके शान्ति देनेमें समर्थ
हैं । बहुतेरे इन्हें स्थानीय आदिम अधिवासी भी
मानते हैं ।

मण्डलाके आदिम अधिवासी वैग या वंगा नामसे
परिचित हैं । कहीं कहीं वे लैग गौड़ जातिकी पुरो-
हितार्थ करते हैं । वे साधारणतः भूमिज उपाधिधारी
हैं । विजयवार, मण्डिया और मिरोलिया नामके तीन
दलोंमें वे विक्रम हैं । उन तीन दलोंमें फिर सात वंश-
विभाग हैं । वे लैग एक प्रामांसे गौड़ोंके साथ पास
तो करते हैं, पर कभी उनका संसर्ग नहीं करते,
सर्गदा पृथक् रहते हैं । इनकी भाषा विशुद्ध हिन्दी है ।
वे लैग निर्रिक, विश्वासी, स्वाधोनचेता, कर्मठ, कार्पा-
तपर और बलिष्ठ होते हैं ।

वैगन्धिक (सं० पु०) गन्धिक । (वागट उ० २६ अ०)

वैगलेय (सं० पु०) भूतगणविशेष । (हरिवंश)

वैगुण्य (सं० क्ली०) विगुणस्य भावः विगुण ष्यञ् ।

१ विगुणता, गुणहीन होनेका भाव । २ अपराध, दोष ।

३ गुणविसम्बाध । ४ मोक्षता, बाहि्यातपन ।

पूजादि कार्योंमें भूलसे यदि कोई वैगुण्य हो जाय
तो पूजादिके शेषमें वैगुण्य समाधान करना होता है ।

पूजाके अन्तमें भगवान् विष्णुका नाम स्मरण करनेसे
सभी दोष विनष्ट होते हैं ।

वैप्रेदिक (सं० त्रि०) शरीर सम्बन्धी, शरीरका ।

(पा ४२१८०)

वैप्रेय (सं० पु०) विप्रेका अपत्य । (पा ४२१२२१)

वैघस (सं० पु०) हरिवंश वर्णित एक ऋषय । (हरिवंश)

वैघात्य (सं० पु०) वह जो घात करनेके योग्य है,
मार डालने लायक ।

वैङ्कि (सं० पु०) गौतमप्रवचक ऋषिमेद । (पा १४६१)

वैङ्कि (सं० पु०) प्राच्यगौतमके अर्थ । बहुवचनमें
वैङ्कीया होता है ।

जो नाबालिग थे, इस कारण वे ही राजकार्यकी देखभाल करती थीं। किन्तु नाबालिगके ऊपर कठोर व्यवहार और अत्याचार करनेसे वे बाज भी नहीं आती थीं। इस प्रकार माताका बार बार प्रबोधन जनकजीके लिये असह्य हो गया। उत्याचारोंसे छुटकारा पानेके लिये अंगरेज-राजकी शरण ली। फलतः अंगरेजराजने १८३३ ई०में उन्हें सिम्भेराजकी गद्दी पर बैठाया। इससे वैजावीका प्रभुत्व जाता रहा। अन्ध-वे हीनतासे राजप्रासादमें रहना नहीं चाहती। आंगरेमें आ कर निर्बिघाद-पूर्वक रहना हो उन्होंने स्थिर कर लिया। यहाँ कुछ दिन ठहर कर वे फर्रुखाबादकी चली गईं। आखिर दक्षिणात्यमें जहाँ उनको जागीर थी, वही जा कर बड़े कष्टसे उन्होंने जीवन व्यतीत किया था।

वैजावी—मुसलमान ऐतिहासिक। सिराजके निकटवर्ती वैजा नामक ग्राममें इनका जन्म हुआ था, इस कारण वे वैजावी नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका पूरा नाम था नासिर उद्दीन अयुब्द चैर अथदुला इमन उमर अल वैजावी। ये कुछ दिन सिराज नगरीके काजी पद पर अधिष्ठित थे। १२८९ ई०में (इसरेके मतसे १-६२ ई०में) इनका वैधान्त हुआ। तफसिर वैजावि या अनवर उल् ताजिल नामकी कुरानकी टोका तथा असवर उल् ताजिल नामके दो ग्रन्थ इन्होंने बनाये हुए हैं।

निजामत तयारिख नामक एक इतिहास ग्रन्थ इन्होंने रचित है। इस ग्रन्थमें आदमसे तातार-जातिके हाथ खलीफाओंकी पतन-रहानी लिखिवद्ध है। कुछ लोगोंका कहना है, कि आधु सेवद वैजावीने शेरोक ग्रन्थकी रचना की।

वैजिक (सं० क्ली०) धीजाद्य रूपमें धीज-ढक्। १ शिष्ट-तैल। २ हेतु, कारण। ३ आराम। ४ सद्योद्भूत, हालका अङ्कुर। (त्रि०) ५ धीज सम्बन्धी। ३ धीर्घ-सम्बन्धी।

वैजू—भारतके एक प्रसिद्ध सङ्गोतधेता। उस समय नायक गोपाल और तानसेन नामक और भी दो नायक इनके जोड़ेके थे।

वैज्ञानिक (सं० त्रि०) विज्ञाने युक्तः विज्ञान (वच निबुक्तः। पा ४।४।६) इति ढक्। १ निपुण, दक्ष। २ विज्ञान सम्बन्धीय। ३ विज्ञानविद्।

वैद्य (सं० पु०) चिटपका-अवयव। (पा ४।१।१२) वैद्यालक (सं० पु०) रुद्रपूजकविशेष।

वैड्य—घोड़का अवयव। (पञ्चविंशत्मा ११।१।६) वैडालमत् (सं० क्ली०) वैडाले विडालसम्बन्धि मत्म्। दुष्टाचारविशेष, कपटाचार, पाप और कुकर्म करने हुए भी ऊपरसे साधु बने रहना।

वैडालमति (सं० पु०) अङ्गनादिके अमायके कारण कृत-ग्रहानर्थ।

वैडालमतिक (सं० पु०) विडालमनेन चरतीति विडाल-मत्-ढक्। छन्ननपस्वी। पर्वाय—छन्नतापस, सर्पाभि-सन्धी। शास्त्रमें लिखा है, कि इनके साथ शतचोत तक भी नहीं करने चाहिये।

वैडालमतिन् (सं० पु०) वैडालमत्तमस्यस्येति इति। भण्ड तापस, यह तपसी वा साधु जो घास्तवमें पार्वी और कुकर्मों हो।

वैडूर्य (सं० क्ली०) वैदुर्यमणि।

वैडूर्यकान्ति (सं० त्रि०) वैदुर्यकी तरह कान्तिविशिष्ट।

वैडूर्यम (सं० पु०) नागमेद।

वैडूर्यमणिमत (सं० त्रि०) वैदुर्यमणि सङ्ग्रह।

वैडूर्यमप (सं० त्रि०) वैदुर्य स्रवण।

वैडूर्यशिखर (सं० पु०) पर्वतमेद। (भारतवर्णन)

वैडूर्यशृङ्ग (सं० क्ली०) नगरमेद। (क्यावर्त्तिका ६।५।५०)

वैण (सं० पु०) वैणु-अण् उकारस्य लोपः। वैणु-

सम्बन्धी, वाँसका।

वैणव (सं० क्ली०) वैणोरिदं वैणु-अण्। १ वैणुकल, वाँसका फल। (पु०) २ वैणोरवयो विकारो वा वैणु

(विश्वविभ्योऽण्, पा ४।३।३६) इत्यण्। ३ उपनयन-

में वैणुदण्ड, वाँसका वह डंडा जो यज्ञोपवीतके समय धारण किया जाता है। ४ वैणु, वंशी। (भारत ५।५।१६)

(त्रि०) ५ वैणुसम्बन्धी, वाँसका।

वैणविक (सं० त्रि०) वैणवो वैणुस्तदुवादनं शीतन्मस्य

वैणव ढक्। (पा ४।४।५५) वैणुवादक, वंशी मृजाने-

वाला।

वैणविन् (सं० त्रि०) १ वैणुवादक, वंशी मृजानेवादी।

(पु०) २ शिव। (भारत १३ पर्व) ३

वैणवी (सं० स्त्री०) वैणोर्निष्कृतिः वैणु (विश्वविभ्योऽण्

इसके बाद ब्रह्मादि सभी देवगण शङ्करके समीप गये । उन्होंने शङ्करको योगमाया द्वारा सम्बोधित किया । जनिने भूतनाथके निकट जा कर अध्रुवृष्टिको मायाबलसे धारण किया । जब शनि अध्रुवृष्टि धारण करनेमें असमर्थ हुए, तो उन्होंने जलधर नामक महागिरिमें उभे निक्षेप कर दिया । जलधरगिरि लोका-लोक पर्वतके निकट पुष्करद्वीपके पश्चाद्भागमें और जलसागरके पश्चिम अवस्थित है । यह पर्वत सर्गतो-भाषसे सुमेरुतुल्य है । यह पर्वत भी शङ्करके अध्रुजलको धारण करनेमें अक्षम हो उठा, शीघ्र ही इसका मध्य भाग विदीर्ण हो गया । इसके बाद यह नयनाश्रु गिरि भेद कर जलसमुद्रमें प्रविष्ट हुआ । समुद्र इस जलराशिको धारण करनेमें असमर्थ हुआ । इसके बाद सागरको पार कर यह जलसमुद्रके पूर्वोत्तर किनारे पर आया और स्पर्श-मानसे ही उसे भेद कर दिया । वह पुष्करद्वीपमध्यगत अध्रुजल वैतरणी नदी हो कर पूर्वाकी ओर चला । यह जलधारा गिरिभेद और सागरसंसर्गवशतः किञ्चित् सौम्यताको प्राप्त हुआ था, इससे पृथ्वी भेद कर न सका । इस नदीका विस्तार २ योजन है ।

नौका, द्रौणी, रथ या विमान किसोके भी द्वारा इस नदीको पार नहीं किया जा सकता । इस प्रसक्त जल-पूर्ण अति मोचन नदीके ऊपरसे देवता लोग भी नहीं जा सकते । यह नदीने यमद्वारकी हवाकी तरह घेरे हुए है । (कालि०पु० १८ अ०)

पापी मृत्युके बाद इस नदीकी पार करनेके समय अशोक प्रकारके कष्ट सहन करते हैं । इमीलिये शास्त्रमें लिखा है, कि यमद्वार पर अवस्थित वैतरणी नदी सुखसे तेरनेके लिये मुमुक्षु प्यकि सवत्सा कालो गो दान करे, इसो दान पुण्यके फलसे मृत व्यक्ति सुखसे इस नदीको पार करते हैं । यदि मुमुक्षु कालमें वैतरणी अर्थात् गो दान आदि न कर सके हों, तो उनके उद्देशसे ध्याद करनेवालेको उचित है, कि अतीव्चान्त द्वितीय दिनको पहले वैतरणी कर पीछे तिल दान आदि करें । फलतः यह कार्य अवश्य करीव्य है ।

वासुधन्मृत्यु व्यक्ति वैतरणीके लिये सवत्सा गो दान करेगे । अशक्त होनेसे एक गाय ही केवल दान

की जाती है । गोके समावर्तमें गोमूत्र्य दान करनेको भी व्यवस्था है ।

गोदान करते समय निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये—

“यमद्वारे महापारे वता वैतरणी नदी ।

ताम तर्तुं ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीयाम् ॥”

(शुद्धितत्व

पीछे दक्षिणागत करना होता है । २ पितृकर्म्या ।

३ फलिङ्ग देशस्थित नदीविशेष । (भारत ३१२४४४) वैतरणी—उड़ीसेमें प्रवाहित एक नदी । यमद्वारस्थ तप्तस्रोता वैतरणीकी तरह यह भी पापमोचनकारी और उसको तरह इहलोकमें पवित्र तीर्थ है ।

उड़ीसेके केउम्बर राज्यके उत्तर-पश्चिम लोहारवांग जिलेके शैलपादसे (अक्षा० २३° २६' ३०" और देशा० ८४° ५५' ५०") निकल कर दक्षिण-पूर्व और पीछे पूर्वाकी ओर केउम्बर, मयूरमञ्जराज्य, कटक और बालेश्वर जिलाकी सीमा रूपसे प्रवाहित हो शोषाक्त जिलेकी ब्राह्मणी नदीमें मिल गई है । मूलनदी अक्षा० २४° ४४' ४५" से २१° २७' १५" ३०" और देशा० ८५° ३५" से ८६° ५१' १५" पू०के मध्य अवस्थित है । बालेश्वर जिलेमें ब्राह्मणी और वैतरणीके सङ्गमके बाद यह नदी धामरा नामसे प्रसिद्ध हुई है और बङ्गोपसागरमें मिल गई है । समूची नदीकी गति प्रायः ३४५ मील है ।

नदीके मुहानेसे बोलख तक प्रायः १५ मील नदी वक्षमें पण्यवाही नौका जा जा सकती है । प्रीथम प्रस्तु-में इस नदीमें अधिक जल नहीं रहता । वैदल पार किया जा सकता है । हिन्दुओंके लिये यह अति पवित्र तीर्थ है । सुप्रसिद्ध विरजाक्षेत्र इसके निकट ही अवस्थित है । यात्रुपर देखो । प्रवाद है, कि भयोधया-पति रामचन्द्र जब सीता देवोके उद्धारके लिये लङ्कापुरो-में गये थे, तब उन्होंने केउम्बरके अन्तर्गत वैतरणी नदीके किनारे विश्राम किया था । इस घटनाका स्मरण कर बहुतेरे आदमी प्रायः महीनेमें आ कर यहाँ स्नान करते हैं और पितृपुरुषके उद्देशसे पिण्ड चढाते हैं ।

इसरी अन्त्याय शाखाओंमें बालेश्वर जिलेकी जाल-नदी और मलय उल्लेखयोग्य है । जङ्ग नामकी शाखा

६५ मीलका पथ तप कर इसके म्पाथ का मिली है।
वैतराणोंके किजारे मानन्दपुर, मोलय और चांदवाली
नामक प्रसिद्ध बन्दर और नगर अवस्थित हैं।

मददपुराणमें यह मन्दी गयाक्षेत्रके अन्तर्भूत मिनो
गर्ग है। इसका भौगोलिक विवरण सर्वमानसम्मत न
होने पर भी इस अभागकी मयावीर्यकी तरह सुलज्ज-
प्रद माना जाता है। यहाँ विष्णुद्वान करनेमें विमूलोक
स्वर्गवासो और मानन्दिन होने हैं।

(मददपुराण ८३, ४४ ४०)

वैतस (सं० पु०) वैतस एव स्वार्थे षण् । १ भातवैतस,
भातलवैत । २ जिहमदपट, जिह्म । (निषण्ड १। ६)
(सि०) ३ वैतस सम्बन्धो ।

वैतसक (सं० सि०) वैतससम्बन्धोय । (पा ६।४।१५३)
वैतसकीय (सं० सि०) वैतससम्बन्धोय (पा ६।४।१५३)
वैतसेन (सं० पु०) राजा पुस्तकाका एक नाम, जो
भीमसेनाके पुत्र थे।

वैतस्य (सं० सि०) वितस्यदेशमें होनेवाला ।
वैतस्विक (सं० सि०) वितस्वित गरिमाणसम्बन्धोय ।
वैतद्वय—वैतद्वयके अर्थपर वैतमन्त्रप्रदा मरण ऋषि ।
वैताद्वय (सं० पु०) परवैतमेद ।
वैतान (सं० सि०) वितान-षण् । वितान सम्बन्धो,
वैतानिक ।

वैतानिक (सं० पु०) विताने मया, वितान, ठक् । १
धीतहीन, वड हयग या वण भादि जो धीत विधायोके
अनुसार हों। २ भान्निहोतादि कर्मसाधन भान्नि, यह
भान्नि जितसे भान्निहोत भादि वृत्त्य किये जायें।

(भारत० २० पु० नाम०)

(सि०) ३ वितान सम्बन्धोय, यथादि कार्यकारी। (भागवत
१०।४०।१५) वितानेन गिरुंसाः ठक् । ४ वितान साव्य
अभ्याधेय प्रवृत्ति । (भारत० २० भी० २ व०)

वैतायम (सं० पु०) वैतानका अर्थपर ।
वैताल (सं० सि०) वैतान षण् । १ वैतालसम्बन्धोय,
वैतालका । २ स्तुतिवाचक, वैतालिक ।

वैतालिक (सं० पु०) ऋग्वेदशाखाप्रसक्त भाषादीमेद
वैतापरत—यथाविचारोक्तः स्वोपपत्तेः । प्रस्तुत
प्रयोग—एव, मय्यक, विव, मिर्ष और हरनाम समान

भाषासे कर जल्दसे अच्छी तरह पीसे। जब यह काष्ठजने
समान दिखाई देने लगे, तब २ एणोंको गोली बनाएं।
नाम्निपातिक अर्थमें मूच्छां और घर्वादि उपद्रव हने
पर इसका प्रयोग किया जाता है। प्रायविशेषमें यह
धीवैतापरस नामसे भी बिना गया है।

(भैव्यवस्वना० अर्थपरिचर)

वैतालिक (सं० पु०) विधिधेन तामेन घरतीणि विताल-
उठ् । १ बोधकर, प्राचीन कालका यह स्तुतिवाचक जो
प्रातःकाल राजागोत्रोके उनही स्तुति करके उगाया जाता
था। 'विधिघो मङ्गलगीतिवाद्यादिहस्तस्नातनश्च तेन
व्यवहरति वैतालिका' (भाल)

विधिघ प्रकारके मंगलगीत और वाद्यादिको विनाश
कहते हैं। इससे जो भौतिका निर्वाह करने, वे ही
वैतालिक कहलाते हैं। २ ऐद्विनाश। ऐद्विनाशकी
अपरा सङ्गनाम भी लिखा गया है।

वैतालिक—सामादिवर्जित राजसेद ।
वैतालिक सं० पु०) हस्तानुपरमेद । (भाल ६ २४)
वैतानि भाट—वाराणसीवासी भाटोंकी एक अत्यन्त
जाहल। ये लोग गौसाईं उपाधिधारी हैं। प्रवाद है,
कि राजा विक्रमादित्यकी मर्यामें वैताल नामक एक
भाट था। राजपुत्रानुशोभनेमें अतिशय बड़ा रहनेके
कारण राजभाटकी उम्र पक्षी हो गई। पीछे यह राजा-
का आचरित दिग्भ्रम और राजकर्मका परिचय कर
गौसाईं सन्तदाययुक्त हुआ। तभीसे उसके पञ्चपर गौसाईं
कहलाते या रहे हैं। वैतालके पञ्चपर होनेके कारण वे
भाट नाममें प्रसिद्ध हैं।

ये लोग भाल मांग कर आना गुस्ताग बलाते हैं,
किन्तु वैल्य गौसाईंकी पीठ कर और किसीका भी
दान प्रद नहीं करते। इन गौसाईंकी पञ्चकीर्तन
ही इसका कार्य है।

वैतालीय (सं० पु०) १ माताशुक्तमेद । २ जिनके प्रथम
कीर्तु गौरीय पारमि कीर्त तथा द्वितीय और अन्तर्ग
पारमि मोलद माता रहती हैं, इनको वैतालीय गुरु कहते हैं।
किन्तु इसमें परंपरा यह है, कि इनकी माता केवल
लघु या केवल गुरु होनेमें काम नहीं करतेगा, यह सिद्ध
होती चाहिये। फिर गुण मात्रा पराधिता नहीं होती,

अर्थात् ३, ५, ७ इत्यादि मात्रा युक्तवर्ण हो कर पूर्वमात्राको गुरु न करे। इसके चरणके अन्तमें र, ल और मगण अवश्य रहेगा। (लि०) २ घेतालका।

वैतुल (सं० क्री०) वितुलसम्बन्धीय। (पा ६।१।१२५)

वैतुष्ण्य (सं० क्री०) वितुष्णा-प्यञ्। तुष्णाराहित्य, लोभसे रहित होनेका भाव।

वैस्यपालय (सं० लि०) विस्यपाल या कुवेरसम्बन्धीय।

वैलक (सं० लि०) वेत्त-कन्। वेत्तसम्बन्धीय।

वैलकीयवन (सं० क्री०) एकचक्रा। (भारत वन०)

वैलकेय (सं० लि०) वेत्त सम्बन्धीय।

वैलासुर (सं० पु०) वृत्तासुरका अपत्य असुरभेद।

वैद (सं० लि०) १ पण्डितसम्बन्धीय। (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम जो विद् ऋषिके पुत्र थे। (ऐतरेयब्रा० ३।६)

वैदक (सं० पु०) वैद्यक देखो।

वैदग्ध्य (सं० क्री०) १ विदग्धपद, पूर्ण पण्डित होनेका भाव। २ पटुता, कार्यकुशलता। ३ चतुरता, चालाकी। ४ रसिकता। ५ शोभा। ६ भङ्गि, हावभाव।

वैदग्ध्यक (सं० लि०) वैदग्ध्य स्थापे कन्। विदग्ध-सम्बन्धीय।

वैदग्धी (सं० क्री०) विदग्धस्त्वेयमिति विदग्ध अण्-त्रियां ङीप्। भङ्गि, हावभाव।

वैदग्ध्य (सं० क्री०) विदग्ध-प्यञ्। विदग्धका भाव, पाण्डित्य, चतुरता।

वैदत्त (सं० लि०) विदत् (प्रशादिभ्यश्च। पा ५।४।३८) इति स्वार्थे अण्। विदत्, जो किसी विषयको अच्छा ज्ञाता हो।

वैदधिज (सं० पु०) विदधीके अपत्य ऋषि।

(शुक् ४।१६।१३)

वैदग्ध्वि (सं० पु०) विदग्ध्वके अपत्य ऋषिभेद।

(शुक् ५।१।१०)

वैदवृत (सं० क्री०) सामभेद।

वैदग्धत (सं० क्री०) विदग्धतके अपत्य।

(पञ्चविंशब्रा० १३।१।६)

वैदभृत (सं० पु०) विदभृतके अपत्य। त्रियां ङीप् वैदभृती।

वैदभृतीपुत्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

(शतपथब्रा० १।४।६।४३२)

वैदभृत्य (सं० पु०) विदभृतका गोत्रापत्य।

(पा ५।३।१०४)

वैदम्भ (सं० पु०) त्रिषका एक नाम। (भारत १३ पत्र)

वैदर्भ (सं० पु०) विदर्भों निवासोद्भवेति विदर्भ अण्।

१ विदर्भदेशीय राजा। २ दम्पत्योके पिता भीमसेन।

३ रुषिमणोके पिता भीमक। ४ याकृत्यानुयं, ब्रातचोत

करनेको चतुरार्ह। ५ वह जो ब्रातचोत करनेमें बहुत

चतुर हो। ६ दन्तशूलरोग, एक रोग जिसमें मसूड़े

फूल जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है। (सुश्रुत नि०

१६ अ०) लि०) ७ विदर्भदेश सम्बन्धीय। ८ विदर्भ-

देशजात।

वैदर्भक (सं० पु०) विदर्भदेशवासी।

वैदर्भि (सं० पु०) विदर्भका अपत्य। (प्रवराभ्याय)

वैदर्भी (सं० क्री०) वैदर्भ-ङीप्। १ वाक्यको एक

रीति, वह रीति वा शैली जिसमें मधुर वर्णों द्वारा मधुर

रचना होती है। यह सबसे अच्छी समझी जाती है।

रीति देखो। २ अगस्त्य ऋषिकी क्री। ३ दम्पत्यो।

४ रुषिमणी।

वैदर्भ्य (सं० क्री०) बालकको क्रीडा, लड़कोंका खेल।

वैदल (सं० क्री०) १ मिथुकके मृगमादि वात्र, मिट्टीका

वह दरतन जिसमें मिश्रणमें मोल मांगने हैं। (पु०)

विदर्भो दालिस्तस्माज्जातः विदल अण्। २ विष्टकभेद,

एक प्रकारकी पीठो। गुण—सुघ, विष्टम्भो और वायुकर।

(राजनि० १०)

वैदलान्न (सं० क्री०) वैदलयुक्त मक्क, दलपीठो। यह रुचिकारक और सुघ होता है।

वैदलिकशिम्भ (सं० पु०) वैदलकशिम्भो। यह रुचिप्रद और दुर्जर होता है।

वैदायन (सं० पु०) विदका अपत्य। (पा ४।१।११०)

वैदारिक (सं० पु०) मग्निकात उवर्गविशेष। इन्में वायुका प्रकोप कम, विसका मध्यम और कफका अधिक होता है।

रोगोको हृद्भ्रयो और कमरमें पीड़ा होती है। उसे ज्रम,

ह्रान्ति, श्वास, खांसो और हिचकी होती है और सारा

शरीर सुग्ग हो जाता है। येसा मग्निकात जल्दी अच्छा

१५. मोलका पक्ष तप कर इसके साथ सा मिली है ।
वैतसीयोंके किताबें मानन्दपुर, मोलका भीर वादवाली
नामक प्रसिद्ध हन्दर और जगर वादस्थित हैं ।

गदहपुराणमें यह नदी गवाक्षेत्रके मन्मथुक्त गिरी
में है । इसका भौगोलिक विवरण सर्वमानसम्मान न
होने पर भी इस स्थानकी गवाक्षेत्रकी तरह सुल्यकल-
प्रद माना जाता है । वहाँ विष्टदान करनेमें वितुलीक
आर्वाणसो और मानन्दिन होने हैं ।

(गदहपुराण ८३, १४४ ४०)

वैतस (सं० पु०) वैतस एव स्यात् इत्य् । १ आजवैतस,
अमलवैत । २ जिश्नश्चट, लिङ्ग । (निषपटु ३। ६)
(ति०) ३ वैतस सभम्भो ।

वैतसक (सं० ति०) वैतससभम्भोय । (वा ६।४।१५६)

वैतसचोय (सं० ति०) वैतससभम्भोय (वा ६।४।१५६)

वैतसेन (सं० पु०) राजा पुकुरवाका एक नाम जो
पौरनेमाके पुत्र थे ।

वैतस्य (सं० ति०) वितसनेदानीं होनेवाला ।

वैतसिक (सं० ति०) वितसित परिमाणसभम्भोय ।

वैतस्य—वैतस्यके अक्षर वेदमन्त्रद्वारा कथन प्रापि ।

वैतस्य (सं० पु०) पर्वतभेद ।

वैतान (सं० ति०) विज्ञान-अण् । विज्ञान सभम्भो,
वैतानिक ।

वैतानिक (सं० पु०) विज्ञाने मया, विज्ञान, ठक् । १
भीतहोम, यह हयम या यह आदि जो भीत विधानोंके
अनुसार हो । २ मन्त्रिहोतादि कर्ममाधम अग्नि, यह
अग्नि जिससे अग्निहोत आदि कृत्य किये जायें ।

(भा३० २० पु० नारा०)

(ति०) ३ विज्ञान सभम्भोय, यथादि कार्यकारो (मागवत
१०।४।१६) विज्ञानेन निरृत्तः ठक् । ४ विज्ञान सभ्य
समवाधेय प्रभृति । (भा३० २० भी० २ २०)

वैतापन (सं० पु०) वैतापना अक्षर ।

वैतान्य (सं० ति०) वैतान्य अण् । १ वैताप्यसभम्भोय,
वैतापका । २ स्फुटिपाठक, वैतापिक ।

वैतापति (सं० पु०) व्याकेशशास्त्रप्रणेतृ माधारीभेद

वैतापत्य—उपस्थापिकाके रसोपभेद । प्रस्फुट
प्रधानो—रस, कषयक, विष, मिर्च और हरताल समान

भागसे कर जल्दसे बाधो तरह पीसे । जब यह काजलके
समान दिखाई देने लगे, तब २ रत्नीकी गोली बनायें ।
सांनिपातिक उपरमें सूख्यें और चर्मादि उपाय करने
पर इसका प्रयोग किया जाता है । प्रवर्धितहोने पर
धीरेताहरम गामसे भी लिया गया है ।

(चैतन्यवचना-आर्वाणस)

वैतालिक (सं० पु०) विविधेन तालेन चरतीति विज्ञान-
ठक् । १ बोजकर, प्राचीन कालका यह स्फुटिपाठक जो
प्रातःकाल राजामोंको उठानी स्तुति करके जगाया जाता
था । 'विविधो मङ्गलगोतिषायादिहस्तस्यस्यस्यतेन
व्यवहरति वैतालिका' (मत्त)

विविध प्रकारके मंगलगोत्र और वायादिको विज्ञान
कहते हैं । इसमें जो जीविका निर्वाह करने, यं हो
वैतालिक कहलाते हैं । २ खेटिनाम । खेटिनामकी
जगद खड्गनाम भी लिया गया है ।

वैतालिक—सत्यादिवर्णि राजभेद ।

वैतामिन् सं० पु०) ब्रह्मानुचरभेद । (भारत ६ ४)

वैतालि भाट—वाताणसोशासी भाटोंकी एक लक्षण
जाना । ये लोपःसोसाई उपाधिपारी हैं । प्रवाद है,
कि राजा विक्रमादित्यकी रामासं पेतान्य नामक एक
भाट था । राजपदानुवीर्यमें भतिनाय द्वा रत्नीके
कारण राजभाटको उमें पदवी दी गई । पीछे यह राजा-
का आचरित दिग्भ्रममें और राजकर्मका परिष्कार कर
गोसाई मन्त्रावयुक्त हुआ । रामसे उतके वंशपर गोसा
कहलाते जा रहे हैं । वैतामके वंशपर होनेके कारण वे
भाट नामसे प्रसिद्ध हैं ।

ये लोप मोल मांग कर अराम गुजारा चलाने दे,
किन्तु वैताय गोसाईकी छोड़ कर और किमोहा भी
दान प्रदत्त नहीं करते । उन गोसायोंका वंशकीर्तन
ही इसका कार्य है ।

वैतालीय (सं० पु०) १ नातापुत्रभेद । जिसके अणम
और गुणोप वादमें शीतल तथा द्वितीय और अक्षुध वादमें
मोक्षद भाजा रहती है, इसको वैतालीय कहा करते हैं ।
किन्तु इसमें विरोधना यह है, कि इसकी नासा केवल
स्फुटि वा केवल शुद्ध होनेसे काम नहीं चलता, यह सिद्ध
होती आदिपे । फिर शुभ भाजा पराधिना नहीं होगी,

अर्थात् ३, ५ ७ इत्यादि मात्रा युक्तवर्ण हो कर पूर्वमात्राको गुरु न करे। इसके चरणके अन्तमें २, ४ और गगण अवश्य रहैगा। (त्रि०) २ घेतालका।

वैतुल (सं० क्री०) वितुलसम्बन्धीय। (पा ६।१।१२५)

वैतुण्य (सं० क्री०) वितुण्णा-प्यञ्। तुण्णाराहित्य, लोमसे रहित होनेका भाव।

वैत्तपाल्य (सं० त्रि०) वित्तपाल वा कुचेरसम्बन्धीय।

वैत्तक (सं० त्रि०) वेत्त-कन्। वेत्तसम्बन्धीय।

वैत्तकीयन (सं० क्लो०) एकचक्रा। (भारत वन०)

वैत्तकेय (सं० त्रि०) वेत्त सम्बन्धीय।

वैत्तासुर (सं० पु०) वृत्तासुरका अपत्य असुरमेद।

वैव (सं० त्रि०) १ पण्डितसम्बन्धीय। (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम जो विद् ऋषिके पुत्र थे।

(पेतेपत्रा० ३।६)

वैदक (सं० पु०) वैदक देखो।

वैदग्ध (सं० क्लो०) १ विदग्धरथ, पूर्ण पण्डित होनेका भाव। २ पटुता, कार्यकुशलता। ३ चतुरता, खालाकी। ४ रसिकता। ५ शोभा। ६ भङ्गि, हाथभाव।

वैदग्धक (सं० त्रि०) वैदग्ध-स्यार्थे कन्। विदग्ध-सम्बन्धीय।

वैदग्धी (सं० स्त्री०) विदग्धस्वैयमिति विदग्ध अण्-त्रिवां ङीप्। भङ्गि, हाथभाव।

वैदग्ध्य (सं० क्लो०) विदग्ध-प्यञ्। विदग्धका भाव, पण्डित्य, चतुरता।

वैदत् (सं० त्रि०) विदत् (प्रसादिभ्यश्च। पा ५।४।२८) इति स्वार्थे अण्। विदत्, जो किसी विषयका अच्छा ज्ञाता हो।

वैदधिन (सं० पु०) विदधीके अपत्य ऋषि।

(शृक् ४।६।१३)

वैदध्वि (सं० पु०) विदध्वके अपत्य ऋषिमेद।

(शृक् ५।६।१०)

वैद्यूत (सं० क्लो०) साममेद।

वैद्यूत (सं० क्लो०) विद्यूतके अपत्य।

(पद्मविद्या० ६३।१।६)

वैद्यूत (सं० पु०) विद्यूतके अपत्य। त्रिवां ङीप् वैद्यूतो।

वैद्यूतीपुत्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यमेद।

(यतपत्रा० १४।६।४३२)

वैद्यूत्य (सं० पु०) विद्यूतका गोत्रापत्य।

(पा ५।३।१०४)

वैद्यूम (सं० पु०) शिवका एक नाम। (भारत १३ पव)

वैदूर्म (सं० पु०) विदूर्मो निवासोऽस्वेति विदूर्म अण्।

१ विदूर्मदेशीय राजा। २ दमयन्तीके पिता भीमसेन।

३ रुचिमणोके पिता भीमक। ४ वायुनातुर्य, वातघोत करनेको चतुराई। ५ वह जो वातघोत करनेमें बहुत चतुर हो। ६ दन्तशूलरोग, एक रोग जिसमें मसूड़े फूल जाते हैं और उनमें पीडा होती है। (सुश्रुत नि० १६ अ०)। त्रि०) ७ विदूर्मदेश सम्बन्धीय। ८ विदूर्मदेशजात।

वैदूर्मक (सं० पु०) विदूर्मदेशवासी।

वैदूर्मि (सं० पु०) विदूर्मका अपत्य। (प्रवाण्याय)

वैदूर्मी (सं० स्त्री०) वैदूर्म-ङीप्। १ वाक्यको एक रीति, वह रीति या शैली जिसमें मधुर वर्णों द्वारा मधुर रचना होती है। यह सबसे अच्छी समझी जाती है। रीति देखो। २ अगस्त्य ऋषिको स्त्री। ३ दमयन्ती। ४ रुचिमणी।

वैदूर्म्य (सं० क्लो०) बालकको मोटा, लड़कोंका खेल।

वैदूर्ल (सं० क्लो०) १ मधुकके घृण्णयादि पात्र, मिट्टीका यह बरतन जिसमें मिश्रमंते मोल मांगने हैं। (पु०)

विदूर्ी दालिस्तस्माज्जातः विदूर्ल अण्। २ पिष्टकमेद, एक प्रकारको पीडा। गुण—गुरु, विष्टम्भो और धायुकर।

(राजनि० १०)

वैदूर्लाग्न (सं० क्लो०) वैदूर्लयुक्त मक, दलपीडा। यह रुचिकारक और गुरु होता है।

वैदूर्लकनिम्ब (सं० पु०) वैदूर्लकनिम्बो। यह रुचिप्रद और तुर्जर होता है।

वैदूर्लायन (सं० पु०) विदूर्का अपत्य। (पा ४।१।१०)

वैदूर्ारिक (सं० पु०) सग्निपात उवर्णयिथेय। इममें धायुका प्रकोप कम, पित्तका मध्यम और कफका अधिक होता है।

रोगोकी दृष्टियों और कर्ममें पीडा होता है। उसे अम, क्लान्ति, अवास, खांसो और दिघकी होना है और सारा शरीर सुग्न हो जाता है। ऐसा सग्निपात जल्दी अच्छा

तत्रैकदेशोऽप्यध्ययनेन गाईष्ट्याध्रमाधिकारो
 भवत्येव । इत्थमेकदेशाध्ययने कर्त्तव्ये संशयः । किं
 तृतीयोभागश्चतुर्थो भागो वा अध्येत्य उभानुष्ठानोन्नि-
 भागो वा । तत्र च यदि पाठकमानुरोधेन प्रथमो भाग
 एकोऽधीयते । तदा तस्मिन् भागे सन्ध्यास्नानाद्या-
 हिक्रमर्भाधानादिकसंस्कारान्याधानादिक्रियाकाण्डोप-
 युक्तमन्त्राणां सर्वपामसम्भवात्तदनुष्ठानं न सम्भवति ।
 तद्वरं सन्ध्यास्नानाद्याहिक्रमर्भाधानादिसंस्कारान्या-
 धानादिक्रियाकाण्डोपयुक्त-मन्त्रभाग एवाध्यायेत्युं गृह्यते ।
 अस्यै वाध्ययनेन वेदैकदेशाध्ययनं पर्यचस्यति ।

यसु केचित्,—

“गायत्री मात्राणोऽपि वरं विप्रः सुपत्नितः ।

नापन्निर्गतजिबेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥”

इति मनुवचनदर्शनादेकदेशाध्रमैर्न गायत्रीमात्र-
 मेवेच्छन्ति । तद्युक्तं । स्नानाद्यानुष्ठानसन्ध्या-
 म्निष्पद्य स्नानादिष्वेवाध्यायत्वात् तेषां गायत्री जपा-
 धिकारित्वेव न भवतीति सूदूरं निरस्तं । गायत्रीमात्र-
 सारत्वं । गायत्रीमात्रमार इति वचनस्य तु निन्दितप्रति-
 प्रदाद्यसत्क्रिया निवृत्तस्य स्नानसन्ध्याद्यनुष्ठान-
 शालिने । शिक्षार्थागायत्रीजग्निरतस्य निन्दितप्रति-
 प्रदाद्द्रव्य सत्क्रियायुक्तत्वोद्विद्भिद्ब्राह्मणाच्छ्रेष्ठव्यप्रति-
 पादने तात्पर्यं । न तु सकलवेदानुष्ठानरहितस्य
 गायत्रीमात्रसारत्वे तात्पर्यमिति ।

तथा कार्त्तव्यः—

“वेदे तथार्थज्ञाने च ब्राह्मणो यत्नवान् च भवेत् ।

एय धर्मस्य सर्वस्य चतुर्वर्गस्य साधकः ॥”

तथा ध्यासः—

‘अतः स परमो धर्मो यो वेदादवगम्यते ।

अथर स तु विश्वेभ्यो यः पुराण्यपिु स्थितः ॥’

तथा “एकदेशोऽप्यधीयते” अत्रैकदेशाध्रमैर्न गाय
 वृत्तानांपयुक्तयेदमागोऽपेक्षितः ।

मनुः—यथाकाष्ठमयो हस्तो यथा चर्ममयो मृगः ।

यच्च विप्रो नाधीयानन्नयस्ते नाम विप्रति ॥”

तथा—“योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्थ्य कुरुते भगं

स जीवन्नेर शूद्रत्वेमाशु मन्त्रति सन्ध्याः ॥”

मनुः—“ब्रह्म यस्त्वननुष्ठानमधीयानाद्ब्रह्मण्युवाच ।

स ब्रह्मस्तेषु संयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥”

व्यास सहितायां कर्म पुराणे च—

योऽधीत्य विधिद्विगो वेदार्थं न विचारयेत् ।

स सान्यः शूद्रसमः पात्रजां न प्रपद्यते ॥

यथापनुर्मारवाहा न तस्य भजते फलं ।

द्विजस्तथायानिभित्तो न वेदकृतमरतुते ॥”

(ब्राह्मणसर्गस्य)

अर्थात्—सरहस्य समस्त वेद ही ब्राह्मणोंके अध्ययन
 करना कर्त्तव्य है । इसी वाक्यके अनुसार ‘रहस्य’ शब्दके
 रहनेसे सारा वेद ही ब्राह्मणके अध्यायानुसार और प्रथा
 अनुसार अध्ययन करना कर्त्तव्य है, यही स्थिर हुआ है ।
 अतः वेदाध्ययन वा वेदाध्ययनके सिवा ब्राह्मणोंके
 गाईष्ट्याध्रममें कमी अधिकार नहीं होता । गाईष्ट्या
 ध्रमका अधिकारो न होनेसे सब कर्मोंमें अधिकारो
 रहना पड़ता है । किसी कर्ममें ही अधिकार नहीं
 होता । यद्यपि, शास्त्रमें कहा गया है, कि जो द्विज वेद
 अध्ययन न कर शास्त्रान्तर अध्ययन करते हैं, वे
 जीवित दशामं ही अति शीघ्र स्वयंश शूद्रत्वके प्राप्त
 होते हैं ।

इस मनुके वाक्यके अनुसार वेद अध्ययन करना ही
 होगा । इस तरहके अनुशासनसे वेदाध्ययन पर-
 मुल ब्राह्मणोंके शूद्रत्व ही प्रतिपादित हुआ है । ऐसी
 अवस्थामें इस कर्ममें आयु, प्रज्ञा, उत्साह और धृष्टा
 आदिकी हासताके कारण केवल उत्कल और पाश्या-
 र्थादि ब्राह्मण ही वेदाध्ययन मात्र करते हैं । किन्तु
 बङ्गालके राक्षोय और चारैष्टमण अध्ययनको छोड़
 केवल कुछ अंग्रजा वेदार्थकी कर्ममोमामाके अनुसार
 जो इतिकर्त्तव्यता विचारमात्र करते हैं, उसमें मन्त्रार्थ
 वा वेदाध्ययन कुछ भी नहीं होता । फिर भी,
 मन्त्रार्थज्ञानका ही विद्योय प्रयोजन है । यद्यपि, उसके
 परिहानसे ही शुग फल और उ. के अपरिहानसे
 दोष ही सुना जाता है ।

इस विषयमें योगियाध्वज्ययने लिखा है,—जो व्यक्ति
 प्रत्येक मन्त्रके दैवत, आर्ष, छन्द, चिनियोग, ब्राह्मण,
 मन्त्रार्थज्ञान और कर्म यथाथ रूपसे जानते हैं, वे शुद्धवत्
 पृथ्वी हैं । निःसन्देह उनको देवताका सायुज्य प्राप्त
 होता है । पूर्वोक्त प्रकारसे जो द्विज श्रष्टि प्रभृतिकी जानते

गोदृष्टय वैदिक रचित यज्ञोपनिषद्नामक
कुलप्रथमे लिखा है:—

“आयोद् गोदे महास्रजः स्वामलो घर्मनक्षत्राः ।
प्रवददाद्योर्भूराभिरधिना स्र महोपनिः ॥
वैदमश्रुमिणे स यभूय राजा
गोदे स्वयं निग्रहनी परिभूय जन्तुः ।
गुतावपाननिमदान् विजितान्तरात्मा
नाके पुनः शुभनिधी श्रीजातस्य स्रुतुः ॥
तन्मी द्वा सुता भद्रां कानोरातो महावदः ।
गजाभरपरनाश्रुये राश्वेरियं पुररुहः ॥
वैद्वेशाङ्गनरवशं वानि वैद्विश्वरम् ।
यज्ञोपरं महात्मनं जातोपनाश्वपारगम् ॥
तन्मी समादिन्द्रात्मा गोदानां पायनाय सा ।
प्रासाद् ररनघाटिं आकुनपातदृपितम् ॥
दृष्ट्या सुविक्रिमो राजा यज्ञं कर्तुं मनो द्वा ।
यमे यज्ञोपरं तस्य स राजा यज्ञकर्मणि ॥
आकुनेन च भूषेन समाहुतं पततिष्यं ।
जुदाय स्रष्टगदित्मं संरुहेऽन्वी यथाविधि ॥
तमेवभुभूतकर्मणं दृष्ट्या प्रोतो महात्मनि ।
राज्यनयंश्च ररनाति दक्षिणाधेयं कल्पितम् ॥
भूमिं प्रतिमद् वयं जास्तोति स द्विजाप्रजाः ।
प्रथमद्वेभ्यं समन्वयार्तां प्रासातो ह्यशुभोय च ॥
प्रद्वयवर्षावत्प्रथमस्य विवाहाय स भूभिः ।
आनोतयान् द्विजात् यद्य यद्योग्यसमुभयवयम् ॥
नीमकद्वेषं नादित्यव्यं यनिष्ठय च धावरा ।
मावर्णोऽथ मरुडात् यश्रुतोत्ता प्रकीर्तितः ॥
साद् नीमकजादिवह्यो यनिष्ठो मध्वमस्मत्तया ।
मावर्णोऽथ मरुडात् कनिष्ठः परिकीर्तितः ॥
धनुषं च नादित्यव्यं यनिष्ठः शाप्युष्ट्रः ।
मावर्णोऽथ मरुडात् द्वेवर्तां क्षान्धमानम् ॥
यश्रुतोऽथिः साःत् वैदाभ्यपननक्षत्रः ।
यज्ञोपरो वहुदेवो बृहन्नान् सममया ॥
नीमकद्वेषं नादित्यव्यं सुमिष्ठः परिकीर्तितः ।
मरुडात् यनिष्ठश्च सावर्णः मिष्ठ पद द्वि ॥
यश्रुतोऽथिः साःत् चरमवाश्रुष्टश्च काश्रुत्तया ।
महो यज्ञोपरोऽथे च श्रुत्तया च वैद्विष्ट

श्रीभूयो वैद्वर्गश्च वैदाधायो यजुःपुरा ।

राजः समाहवा विद्या सायनाः पूजनाश्रमः ॥

गोदृष्टमे प्रवक्ष्यतापानिष्ठ भवेत्तुभूयःपुत्रं
व्यघर्षात्तर इवामन्वयर्मा नामके एक महापति ये
उनके विनाका नाम श्रीजात था । उन्होंने इस अर्थ
अनिष्टुष्टं यं सुवर्णोय राजासोतो पराभूत वर मुनिरिति
नक्षत्रं उक्त गोदृष्टिंहात्मन पर उपवेगत किया । महात्म
कानिराजने इनको राश्व, धन, हाथी, गोदे और पन
रगोके साथ जपनी भद्रानामो करपाके समस्त
किया । कुछ दिनों बाद गोदृष्टमेके यज्ञं भगुन गङ्ग
दुष्या । इस भगुनकुनके दोपतो प्रगमन करनेको इच्छा
से इहोमे एक वज्र करनेको कामना की । इस वज्रके निचे
इहोमे कानिराजके पास एक वैदिक प्राण्य भेज देनेका
प्रार्थना की । इस पर कानिराजने वैद्वेशाङ्गनरवश
जातोपनाश्वपारग वैदिकधेष्ठ महात्मा यज्ञोपरको
गोदृष्टातकी हितकामनाये यज्ञं जानेके निचे आज्ञा दी ।
गोदृष्टाजने भी यथासमय भाये यज्ञोपरको सार
सामान पूर्णक यज्ञकार्यमें प्रती बनाया ।

येन यज्ञकार्यं मनो हो यज्ञोपरने आकुनयुक्त वा
द्वार पतितिवीके आकर्षण कर इनको स्रष्ट स्रष्टुमें
विभक्त कर सुसंस्कृत यज्ञानिमें यथाविधि आहुति
प्रदान की । महापति इवामन्वयर्मा यज्ञोपरकी इस
नरहकी अदृष्टुन घटनाके देव परम आह्लादन हे वज्रके
दक्षिणास्वरुप भाषा राश्व तथा प्रभु पनश्च देनेकी
सङ्कर किया । यज्ञोपरने भी भूमि प्रतिमद् देतेमे कीं
भाषति महो समक कर निष्टके प्रातोमे १२ नाम
निये थे ।

इसके बाद महापतिने प्रद्वयवर्षावत्तयो यज्ञोपरके
विषादके निचे येष्टा की थी नीमक, नादित्यव्य,
यनिष्ठ, मावर्ण और मरुडात्, यश्रुतोऽथभूय यो
प्रज्ञानोके बुतावा । इनमे नीमक और नादित्यव्य
पदमे, यनिष्ठ मध्यमे, मावर्ण और मरुडात् अन्तमें
भाये । बृहन्न एनादित्यव्य, नाश्वरमर यनिष्ठ,
मावर्ण और मरुडात् ये यज्ञोपरोमे भयने यन्ने यतो
देवतासोके भी भाष मे भाये । ये नीमक और
नादित्यव्य सुमिष्ठ और मरुडात् यनिष्ठ और मावर्ण

सिद्ध कहे गये। सिंघा इनके वरस, यादस्य और काश्यप आदि पञ्चगोत्रेतर गोत्र साध्य कहे गये थे।

वेदाध्ययनतर यशोधर इन पञ्चगोत्रोंके साथ ले कुन्तलसे वङ्गदेशमें आये। इसके बाद राजाकी लाह्लासे अवट्ट यशोधर भट्ट, वेदवित् श्रीरुष्ण, वेदगर्भ और वेदाध्यायी शङ्कर कुन्तलसे वङ्गालमें आये।

इन पञ्च गोत्रोंके सम्बन्धमें ईश्वर वैदिकने लिखा है—

शाण्डिल्य, यगिष्ठ, सावर्ण, भरद्वाज और एक शौनक ये पञ्चगोत्र हैं। इन पञ्चगोत्रोंमें यगिष्ठ तपनके पुत्र गोविन्द, शाण्डिल्य इणुत्र वेदगर्भ, सावर्ण रविके पुत्र पशनाभ, भरद्वाज कमलासनके पुत्र विभ्वजित् और शौनक मनुके पुत्र यशोधर ये सभी पुत्रोंके साथ आये थे। इनके राजाने बुला कर यथायोग्य ताम्रशासन द्वारा विचित्रं ग्राम दान किया था।

राजा श्यामलवर्मा उन पञ्च-ब्राह्मणपुङ्गवको १४ ग्राम प्रदान किये थे। इन ग्रामोंके नाम इस तरह हैं—आलाधि, जयाडो, गौराली, कुमारहट्ट, पानिकुण्ड, आलोडा, सातीवा, ब्रह्मपुर मरोचिका प्रसार, दधियामन, चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, कोटालिपाड़ और सामन्तसार।

इन सब ग्रामोंमेंसे आलाधि, जयाडो और गौराली—ये तीन ग्राम यगिष्ठके; कुमारहट्ट, पानिकुण्ड, आलोडा और सातीवा—ये चार शाण्डिल्यके; मरोचिका प्रसार और दधियामन—ये दो सावर्णके; चन्द्रद्वीप, नवद्वीप और कोटालिपाड़—ये तीन ग्राम भरद्वाजके और केवल सामन्तसार ग्राम शुकके मिले थे। यह एक एक ग्राम समाजके नामसे विख्यात था। ये चार समाज इन पाश्चात्य वैदिकोंके इन्ही तरह मिले थे।

पञ्चगोत्रका धर्माज।

उक्त १४ समाजोंके अथस्थानके सम्बन्धमें ईश्वरने भी इस तरह निर्देश किया है,—

कोटालिपाड़ और चन्द्रद्वीप ये दो स्थान पूर्ण-यङ्गमें हैं। ये दोनों स्थान नारियलके वृक्षों और गुवाकादि द्वारा घेद्यन्त हैं। नवद्वीप गङ्गाके किनारे पर है। इस समाजमें चैतन्य-महाप्रभुने जगमद्वेष किया था। सामन्तसार ब्रह्मपुत्रके निकट और नवद्वीपसे बहुत पूर्वकी

ओर अवस्थित है। इसका भूभाग पञ्जर, कटहल आदि वृक्षों और कई छोटी छोटी नदियोंसे घिरा हुआ है। आलाधि आग्नेयी और प्राची नदियोंकी वणलमें अवस्थित है। इस स्थानमें बहुतेरे वेदविद् वैदिकोंका वास था। जयाडो अति समृद्धिशाली स्थान है। यह स्थान देवपुरी तुल्य है। यहां पुरखी, देवखी और हरिहर विरञ्चि आदिके बहुतेरे मन्दिर विद्यमान हैं। गौराली सर्वगुणसम्पन्न सुरम्य स्थान है। यहां बहुतेरे गुणसम्पन्न ब्राह्मणोंका वास है। कुमारहट्ट गङ्गाके किनारे अवस्थित है। यहां बहुतेरे वेदब्रह्मण रहते हैं। गङ्गाके पवित्र वारिके स्पर्शसे यह निर्दोष स्थान सदा ही पवित्र है। आलोडा पूर्वादेशीय वैदिक-समाजके निकट है। पानिकुण्ड भाग्यवद् भोलके निकट है। ब्रह्मपुर आलोडाके अन्तमें है। यह स्थान शाण्डिल्य गोत्रीय वैदिकोंका समाज है।

सामन्तसार—सामन्तसार इस समय फरोदपुर जिलेकी मेघना नदीके किनारे गोसाईंहाट पोशाफिसके अन्तर्गत है। इसकी पूर्वोप सीमा पर नागरकुण्डा ग्राम था, इस समय नदीके गर्भमें है। दक्षिणी सीमा पर धोपुर, पश्चिमीय सीमा पर वीया और उत्तरमें कुल-बथी ग्राम है। इस समाजके वैदिक निकटके घेजिनी-सार, सिङ्गारडाहा, काकेसार, गीतल बुढिया, टेङ्गरा आदि स्थानमें भी वास करते हैं।

कोटालिपाड़—कोटालिपाड़ पूर्वमें चन्द्रद्वीप राज्यके अन्तर्गत था। इस समय यह फरोदपुर जिलेमें आ गया है। इस समाजके लोग मुख्य कोटालिपाड़, पश्चिम-पाड़, मदनपाड़, डहरपाड़ा आदि ग्रामोंमें वास करते हैं।

चन्द्रद्वीप—यह ग्राम घेरिगाल जिलेके वाकला परगनेके अन्तर्गत है। इस समाजके वैदिक चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत चहोरपुर, शिकारपुर, रामचन्द्रपुर आदि स्थानोंमें अथस्थान करते हैं।

मध्यभाग—मध्यभाग समाजके वैदिकके प्रतसे फरोदपुर जिलेके अन्तर्गत पाटगांवके निकटवर्ती मवारिया ग्राम ही प्राचीन मध्यभाग है। इस समय यह ग्राम पद्माके गर्भमें है। इस समाजके लोग थुला और और कुछ लोग इदिलपुरमें और कुछ लोग पाटगांवमें वास कर रहे हैं।

आमोहा—हाके जिलेके सावित्रगण महकमेंके अर्वांग है। इस समय यह प्राण भी पत्राके फलमें है। इस समाजके लोग भी निश्चयके अवाकांक्षी, कुलारक्षुणी आदि फलमें रहते हैं।

वर्धिवृद्धा—यह भी हाके जिलेके सावित्रगण महकमेंके अर्वांग है। यह आदिमियोंका योग ही मान है। किन्तु ईश्वरके महते अणुवृद्धके निश्चय ही और वास्तव्य कृतार्थानुकारके मनमें यद्गामोत्तर पर सावित्रिय है।

ओषधी (अपहो)—राजमाहा जिलेमें है। माटोर राज्यमें प्राया ६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले इस सामाजिक बगलमें आयेगी नहीं थी। इस समय यह बहुत दूर दूर गई है।

गौरासि या गौरासि—हाकेके राजमगरके निश्चय है। इस समाजके लोग निश्चयके मनुष्य, आकम्पा, भानुका, आदि स्थानोंमें वास करने हैं।

भागासि—राजमाहा जिलेकी आयेगी और प्राचीन नदीके पार्श्वमें जलाशयके निश्चय अवस्थित था। इस समय नदीके फलमें अवस्थित है, विद्यमान भी नहीं दिखाई देता।

वर्धिवि और मर्वि—अपहोवके पूर्वोत्तर और अवस्थित है। इस समय यह इन दो स्थानोंमें वास्तव्य वैदिकीय वास नहीं है।

माटोर सुविषयान प्राचीन नदिया ही वास्तव्य वैदिकीय अवशेष समान है, किन्तु प्राचीन स्थानका अवशिष्ट यद्गामोंमें या सुका है। यहाँ इस समय लोग वनवासमें दिवस है, उसके कुछ दूर पर यह समाज अवस्थित था। इस समय वैदिकीय वास रहने पर भी अवशेषमें पशुधनके श्रेष्ठ वास्तव्य वैदिकीय वास प्राया इनका वास्तव्य नहीं होता।

मण्डक वा माटोर—अब माटोर नामसे विख्यात है। यद्गाम जिलेकी भूभागके निश्चय सुविषय 'हायेला मण्डिका' नामके प्रसंगके अन्तर्गत है। किन्तु समय यह स्थान एक प्रवाल वैदिक समाज विना जाना था।

मण्डक—इस समय वैदिकीय जिलेके अन्तर्गत है।
दक्षिणवर्धिवि

हैरानासिवासी प्रायःकाल विद्यासागर संघ

"दक्षिणावर्धिवि-पुत्र-वृद्ध" नामक एक बृहत् सभ १७४५ तकमें रचा गया।

प्रायःकाले लिखा है, कि पुराणादिमें काम्यवृद्ध सर्व विनयन गार्हके प्रकलीकता उल्लेख है, उन्हीं प्राविद्योनी पर है। यद्गामोंमें जो सब दक्षिणावर्धिवि प्रकल्प दिवसों देते हैं, वे सभी उक्त प्रविद्यु भेदोंके हैं। दक्षिणावर्धिवि मानेवाले दक्षिणावर्धिवि और येद जाननेवाले वैदिक कहलाये।

अथाह है, कि बाल या कर इस प्रदेशमें धरादिषर्वा और वैदिक क्रियाकलापका शेष होनेसे प्राविद्यु देशों इस भेदोंके प्रकल्प यहाँ लाये गये। मान्य होता है, कि राटो और वारोयु भेदोंके बाद यहाँ यह आये। उक्त भेदोंके प्रकल्पमें राटो युद्ध और पुरोहितके पर पर अभिविक्त किया था। दक्षिणावर्धिवि वैदिकीय बर्धिवि कृतविद्य और प्रथमप्रणेत। ये। कर्त्ता रघुनन्दन महापार्थने अपने रचे प्रलमागतकर्म "कालाद्वरः-कालमाप्यपीय आदि दक्षिणावर्धिवि प्रत्येषु" जो वाठ रखा है, उन्हीं सावधानाचार्य, जद्गाराचार्य आदि गद्गारमा जो दक्षिणावर्धिवि होते हैं।

प्रथम सभ।

इसका ठीक कुलप्रथम उल्लेख नहीं, कि दक्षिणावर्धिवि कर्म समय इस देशमें आये। राटोय और वारोयु भेदोंके प्रकल्पके बाद ये आये हैं, केवल इनका ही प्रवाद है। फिर बिलमों होता मान है, कि उक्तकके पूर्व यद्गाम राजाओंने जिस समय विद्वेषों तक अविकार किया था। उस समय वास्तव्य आदि प्रकल्प जाननेके विनिष्ट धनुवारण सावित्र वैदिकगण जियेला-मोरक्य यद्गामोंमें सर्वदा आया करते थे। कर्मों यद्गाम प्रकल्पके निश्चय सामान्य ज्ञान कर उनमें किन्तु किन्तोंमें गद्गी वास्तव्ययन किया। इस गद्ग उक्तकके वैदिक इस देशमें वास कर दक्षिणावर्धिवि वैदिक नामसे विख्यात हुए।

उक्तकके इतिहासमें लिखा है, कि पूर्वोक्तोय राजा यद्गामोंमें विद्वेषों तक राजव विन्वार किना

था. इन्होंने १५५० ई० में सिंहासन पर आरोहण किया। उक्त प्रवाद-वाक्यको स्वीकार करने पर साढ़े तीन सौ वर्ष पहले यज्ञमें दक्षिणात्य वैदिकागम स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु उसके बहुत पूर्व उदकलसे वैदिक ब्राह्मण आ कर इस देशमें वास करते थे, इस बातका प्रमाणाभाव नहीं। साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व वैष्णव कवि जयानन्दने (महाप्रभुके याज्ञपुर आगमन-उपलक्षमें) अपने बङ्गला चैतन्यगङ्गलमें (उदकलखण्डमें) लिखा है,—

‘चैतन्यगोसाईके पूव पुत्रय याज्ञपुरमें आये; किन्तु राजा भ्रमरके डरसे श्रीहृष्टदेशमें भाग गये। उसी वंशमें एक वैष्णव हो गये हैं, जिनका नाम कमललोचन था। पूर्वं जन्मके तपसे चैतन्य गोसाईने, उनके घर विश्राम किया।’

सुतरां चैतन्यदेवके आधिर्भावसे बहुत पहले उनके पूर्वपुत्र याज्ञपुरवासी थे। वैदिक मधुकर मिश्र राजा भ्रमरवरके भयसे श्रीहृष्ट भाग गये, किन्तु महाप्रभुने जव याज्ञपुर पदार्पण किया तब भी यहाँ उन जाति-पालोंका वास था। श्रीहृष्टवासी प्रभुमिश्रके मना-सन्तोषणों और चैतन्योद्वाक्यों आदि धर्यानुसार चैतन्यदेवके प्रतिमाह मधुकर मिश्र श्रीहृष्टवासी हुए थे। इधर उड़ीसेके इतिहासमें और गोपीनाथपुरकी शिलालिपिमें उदकलपति कपिलेन्द्रदेवकी ‘भ्रमरवर’ उपाधि दिख पड़ती है। सन् १४५१ ई० में उनका राज्याभिषेक सम्पन्न होने पर भी उसके बहुत पूर्वसे ही उनका अमुद्युद हुआ था। ऐसे स्थलों १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें उनके उदपातसे मधुकर मिश्र पुत्र परिजनके साथ श्रीहृष्टवासी हुए थे। सन् १४७२ ई० में बङ्गालमें

शाश्वित स्थापित हुई थी X। इसके कुछ ही समय बाद मधुकर मिश्रके गौत और चैतन्यदेवके पिता जगन्नाथ मिश्र गवद्वीपवासी हो यहाँके वैदिक समाजभुक्त हुए थे।

चैतन्यदेवके पूर्वपुत्रय याज्ञपुरवासी थे; सुतरां वे उत्तर श्रेणी या पञ्चगौड़ ब्राह्मणोंके अन्तर्गत हैं। गङ्गवंशीय राजकर्तृक कन्नोजसे ब्राह्मण लानेका प्रवाद यदि सत्य हो, तो यशोधरादिकी तरह महाप्रभुके पूर्वपुत्रय भी पार्श्वत्य वैदिक हैं। फिर उदकल या दक्षिण देशसे श्रीहृष्टमें आगमनप्रभुक्त वे दक्षिणात्य वैदिक भी कहे जा सकते हैं। इसी कारणसे ही महाप्रभुकी जीवनी-लेखकोंमेंसे कोई उनके पूर्वपुत्रको “पार्श्वत्य वैदिक” कोई “दक्षिणात्य वैदिक” कहते हैं। इस तरह दोनों समाजमें किसी समयमें सम्बंध स्थापित होना भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं। कटक और मैदिनीपुर जिलेमें दोनों श्रेणियोंका संमिश्रण दिखाई देता है। यहाँ पटकुल या पड़गोत्र वैदिक ही सम्मानित हैं। यथा—

“करशर्मा भरद्वाजो धरशर्मा च गौतमः।

भाष्ये रथशर्मा च नन्दिशर्मा। च काश्यपः ॥

कौशिको दासशर्मा च पतिशर्मा च मुद्गलः ॥”

भरद्वाजगोत्रमें करशर्मा, गौतमगोत्रमें धरशर्मा, काश्यप गोत्रमें नन्दिशर्मा, कौशिक गोत्रमें दासशर्मा और मुद्गलगोत्रमें पतिशर्मा (ये ई घर) हैं। सिवा इनके उदकल श्रेणिके कुलमध्यमें घृतकौशिक और काश्यायन गोत्र आदि भी वैदिक कहे गये हैं। याज्ञपुरके पण्डितोंका कहना है, कि उदकल, द्रायिड़, ताम्रपर्णी, कामरूप (योगिगोठ), भागारसङ्गम, चन्द्रनाथ और सुल्ल देशमें जो सब वैदिक हैं, वे दक्षिण तय गिने जाते हैं। जो जो हैं, उदकल छोड़ कर इस समय बङ्गालका मनु-

* Sterling's Orissa (in Asiatic Researches, Vol xv, p. 287)

† Asiatic Researches Vol, xv, p, 275, और

विरकोषमें गोपीनाथपुर शब्द देखो।

X यज्ञेराजातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड १ म अंश, १६६-६७ सूत्रा दृश्य)

४ जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड) २५ भाग ३ भाग ६२ सूत्रमें जगन्नाथ मिश्रका जातिवंश दृश्य।

† “उदकल्लो ताम्रपर्णी च योगिनीटी तु धारती।

चन्द्रनाथी तथा सूक्ष्मी दक्षिणया वैदिकाः ल्युनाः”

अथोप—हाके जितेके माणिक्यग्र मद्रकमेके अथोप है। इस समय यह काम भी यथाके गर्भमें है। इस समाप्तके योग भी निरुद्धके मयाकावरी, सुतारगुहो मदि प्रामेमें रहने है।

वदिकपरा—यह भी हाके जितेके माणिक्यग्र मद्रकमेके अथोप है। यह माद्रिमिमेका येना हो मत है। किन्तु इसके मतमें मायपदके निरुद्ध है और पारपाव वृत्तपत्रकाके मतमें गङ्गाभीर पर सम्भियत है।

भोगी (यथाही)—राजमहा जितेमें है। जोर रायमे प्राया ३ मोट वृत्तिल-पूर्वमें अवस्थित है। पहले इस कामको भगवती भावेवा मदी थी। इस समय यह वृत्त दूर दूर गई है।

भोगी या भोगी—हाकेके राजमगरके निरुद्ध है। इस समाप्तके योग निरुद्धके मनुष्य, भावना, घानुका, भादि यथामेमें प्राप्त करने है।

भोगी—राजमहा जितेकी भायेवी और प्राची मदीके पार्थमें जगामुपके निरुद्ध अवस्थित था। इस समय मदीके गर्भमें अवस्थित है, विप्रमात भी मदी दिव्या देना।

वर्षि और वर्षि—अथोपके पूर्वोत्तर और सम्भियत है। इस समय यह इन ही यथामेमें पारपाव वैदिकीका प्राप्त मदी है।

जरीर सुविशाल प्राचीन मदीवा दो पारपाव वैदिकीका अथोप समाप्त है, किन्तु प्राचीन यथावका अथिरीज गङ्गायमे जा चुका है। जहाँ इस समय भी वनपावनपन दिक्ता है, उमके कुछ दूर पर यह समाप्त अवस्थित था। इस समय वैदिकीका प्राप्त रहने पर भी अथोपके पञ्चमोत्तरके अथ पारपाव वैदिकीके साथ प्राया इनका अथोप मदी होना।

जरीर का जोर—अथ मदि नाममें विशाल है। जोरपूर जितेकी भूतलके निरुद्ध सुविशाल 'हायेवी मदिना' नामके प्रामेके सम्भियत है। इसी समय यह काम एक प्रथम वैदिक समाप्त गिना जाता था।

मनुष्य—इस समय वैदिकीके अथोप है।

वैदिकीके वैदिक।

हाकेजितेवामे माणिक्य विद्यामात्र सम्भियत

"दाक्षिणात्य वैदिक-कुल-२६२२" नामक एक कुल अथ १३५५ जन्म देना गया।

माणिक्यके जिते है, कि पुराणादिमें कामपुत्रक मदि जिते इन तरहके प्राचीनता उल्लेख है, उन्को प्राचिमेमें पद है। वृद्धदेनमें जो सब दाक्षिणात्य वैदिक समाप्त दिव्या देने है, ये मदी उम प्राचिमे धे लोके है। दाक्षिणात्यमें भावेवाले दाक्षिणात्य और वेद ज्ञानमेवावे वैदिक कहलाये।

यथा है, कि काम या कर इस प्रदेशमें पुरादिमकी और वैदिक विद्याकलायका शोष होनेसे प्राचिमे देनमें इस धे लोके प्राप्तिवत वहाँ लाये गये। माद्रम होना है, कि राड़ी और पारैरु धे लोके बाद यहाँ यह भाये। एक धे लोके प्राप्तिवत इयें मुद्र और पुरोहितके पर पर सम्भियत किया था। दाक्षिणात्यके वैदिकीमें बहुते वृत्तविक और प्रथममेका थे। समाप्त इयुत्तम मदी पार्थमें मपने रचे मलमामतथमी "कालावरी-काजामाथी" भादि दाक्षिणात्य वैदिक मपयेपु" जो पाठ रका है, उममें सावलापार्थ, जङ्गलपार्थ भादि महारमा भी दाक्षिणात्य वैदिक होते हैं।

माणिक्य

इसका जोर कुलप्रामे उल्लेख मदी, कि दाक्षिणात्य वैदिकमल किम समय इस देनमें भाये। राड़ीव और पारैरु धे लोके प्राप्तिवतके बाद ये भाये हैं, अथम इसका ही प्रमाद है। किन्तु मदी हीका मत है, कि उत्तरके मदी मदीय राजामेमें जिते समय जितेकी तक अथिपर जितेगा। उम समय यानुप भादि प्राप्तिवत जामेमें विविध वेदपावय माणिक्य वैदिकमल जितेकी मदीय वृद्धदेनमें मदीय भाया करने थे। मदीय वृद्धेय प्राप्तिवतके निरुद्ध समाप्त काम कर उममें जिते किमेमें यहाँ वाक्पावय किया। इस माद उमके वैदिक इस देनमें प्राप्त कर दाक्षिणात्य वैदिक नाममें विरुद्ध हुए।

उत्तरके इतिहासमें लिखा है, कि मदीय भाया राजा मुद्रमदीय जितेकी तक साथ विरुद्ध किया

था : इन्होंने १५५० ई०में सिंहासन पर आरोहण किया । उक्त प्रवाद-वाक्यको स्वीकार करने पर साढ़े तीन सौ वर्ष पहले वङ्गमें दक्षिणात्य वैदिकागम स्वीकार करना पड़ेगा । किन्तु उसके बहुत पूर्व उदकलसे वैदिक ब्राह्मण आ कर इस देशमें वास करते थे, इस बातका प्रमाणाभाव नहीं । साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व वैष्णव कवि जयानन्दने (महाप्रभुके याज्ञपुर आगमन-उपलक्षमें) अपने वङ्गला चैतन्यमङ्गलमें (उदकलखण्डमें) लिखा है,—

‘चैतन्यगोसाईके पूव पुरुष याज्ञपुरमें आये ; किन्तु राजा भ्रमरके डरसे ध्रोहट्टदेशमें भाग गये । उसी वंशमें एक वैष्णव हो गये हैं, जिनका नाम कमललोचन था । पूर्वं जन्मके तपसे चैतन्य गोसाईंने, उनके घर विश्राम किया ।’

सुतरां चैतन्यदेवके आविर्भावसे बहुत पहले उनके पूर्वपुरुष याज्ञपुरवासी थे । वैदिक मधुकर मिश्र राजा भ्रमरके मयसे ध्रोहट्ट भाग गये, किन्तु महा प्रभुने जब याज्ञपुर पदार्पण किया तब भी यहाँ उन जाति-वालोंका वास था । ध्रोहट्टवासी प्रभुमिश्रके मना-सम्बोधनी और चैतन्योद्वावनी आदि प्रश्नानुसार चैतन्यदेवके प्रतिमह मधुकर मिश्र ध्रोहट्टवासी हुए थे । इपर उड़ीसेके इतिहासमें और गोपीनाथपुरकी शिलालिपिमें उदकलपति कपिलेन्द्रदेवकी ‘भ्रमरवर’ उपाधि दिख पड़ती है^१ । सन् १४५१ ई०में उनका राज्य-मियेक सम्पन्न होने पर भी उसके बहुत पूर्वसे ही उनका अस्तित्व हुआ था । ऐसे स्थलों १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें उनके उदपातसे मधुकर मिश्र पुत्र परिजनके साथ ध्रोहट्टवासी हुए थे । सन् १४७२ ई०में वङ्गलमें

शाशित स्थापित हुई थी X । इसके कुछ ही समय बाद मधुकर मिश्रके गौत्र और चैतन्यदेवके पिता जगन्नाथ मिश्र गवद्वीपवासी हो यहाँके वैदिक समाजभुक्त हुए थे^२ ।

चैतन्यदेवके पूर्वपुरुष याज्ञपुरवासी थे ; सुतरां वे उत्तर श्रेणी या पञ्चगौड़ ब्राह्मणोंके अन्तर्गत हैं । गङ्गावर्णीय राजकर्तृक कन्नोजसे ब्राह्मण लानेका प्रवाद यदि सत्य हो, तो यशोधरादिकी तरह महाप्रभुके पूर्वपुरुष भी पाश्चात्य वैदिक हैं । फिर उदकल या दक्षिण देशसे ध्रोहट्टमें आगमनप्रयुक्त वे दक्षिणात्य वैदिक भी कहे जा सकते हैं, इसी कारणसे ही महाप्रभुकी जीवनी-लेखकोंमेंसे कोई उनके पूर्वपुरुषको “पाश्चात्य वैदिक” कोई “दक्षिणात्य वैदिक” कहते हैं । इस तरह दोनों समाजमें किसी समयमें सम्बंध स्थापित होना भी कुछ आश्चर्याकी बात नहीं^३ । कटक और मेदिनीपुर जिलेमें दोनों श्रेणियोंका संमिश्रण दिखाई देता है । यहाँ पट्टकुल या पड़गोत्र वैदिक ही सम्मानित हैं । यथा—

“करशर्मा भट्टाजो परशर्मा च गौतमः ।

आपेयो रथशर्मा च नन्दिशर्मा च काम्पवः ॥

कौशिको दासशर्मा च पतिशर्मा च मुद्गलः ॥”

भरद्वाजगोत्रमें करशर्मा, गौतमगोत्रमें धरशर्मा, काश्यप गोत्रमें नन्दिशर्मा, कौशिक गोत्रमें दासशर्मा और मुद्गलगोत्रमें पतिशर्मा (ये ई घर) हैं । सिन्धु इनके उदकल श्रेणिके कुलप्रथमं घृतकौशिक और काण्वायन गोत्र आदि भी वैदिक कहे गये हैं । याज्ञपुरके पण्डोंका कहना है, कि उदकल, द्रायडि, ताम्रपर्णी, कामरूप (योनिपीठ), भागवतसङ्गम, चन्द्रनाथ और सुख्य देशमें जो सब वैदिक हैं, वे दक्षिण तप गिने जाते हैं ।^४ जो ही, उदकल छोड़ कर इस समय वङ्गालका जन्तु-

• Sterling's Orissa (in Asiatic Researches, Vol xv, p. 287)

१ Asiatic Researches Vol, xv, p, 275, और विश्वकोषमें गोपीनाथपुर शब्द देखो ।

Vol, x.XII 70

X यन्त्रे जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड १ म भाग, १६६-६७ श्लो दृश्य)

२ जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड) २२ भाग ३५वां श्लो ६२ वृद्धमें जगन्नाथ मिश्रका आविर्भाव दृश्यम् ।

३ “उदकलो ताम्रपर्णी च योनिपीठी तु क्षामरी ।

चन्द्रनाथी तथा सुखी दक्षिण्या वैदिकाः स्मृताः”

अथर्ववेद—हाके त्रिवेके मानिकग्रन्थ महकर्मके मन्वीन है। इस समय पर राम भी पलाके गर्भमें है। इस समयके योग भी निवृत्तके मयादाएटी, दुःखारक्षुं भादि गर्भमें रहने है।

कविप्रकाश—पर भी हाके त्रिवेके मानिकग्रन्थ महकर्मके मन्वीन है। बने मादिमिषिका येना ही मत है। किन्तु ईश्वरके मनमें मावप्रकृतेके निवृत्त है और वादवाहय कृत्वाग्रवाके मनमें मङ्गाभीर पर आरविष्य है।

अथर्वी (अथाही)—राजमहा त्रिवेके है। गायत्रे राज्यके प्राया। सोम दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। वहलै इस समयको कर्णामे भायेवो मदी भी। इस समय पर वदुन दूर दूर गां है।

गीर्वाण वा गीर्वाण—हाकेके राजमगरके निवृत्त है। इस समयके योग निवृत्तके मनुष्य, जाकमा, धानुका, भादि कर्णामे वास करने है।

अथर्वि—राजमहा त्रिवेके भायेवो और प्रायो मदीके पार्श्वमें जलाशयुरके निवृत्त अवस्थित था। इस समय मदीके गर्भमें अवस्थित है, गिरमात भी मदी दिशां देना।

अथर्वि और अथर्वि—अथर्वीयके पूर्वोत्तर और अवस्थित है। इस समय मध इल ही कर्णामे वादवाहय वैदिकीका वास मदी है।

अथर्वि सुविश्रयान प्राचीन मर्दवा दो वादवाहय वैदिकीका अवशेष समान है, किन्तु प्राचीन कर्णामका अधिकांश मङ्गागर्भमें जा चुका है। अही इस समय योग वदवाहयवत दिशां है, उनके कुछ दूर पर वद समान अवस्थित था। इस समय वैदिकीका वास रहने पर भी अवशेषमें वदवाहयके अंश वादवाहय वैदिकीके साथ प्राया उभय माराधन मदी होगा।

अथर्वि वा अथर्वि—अथर्वि नामके विश्रयान है। अथर्वि त्रिवेके मूरवाके निवृत्त सुविश्रयान 'हायेना मदिना' नामक मन्त्रके मन्वीन है। इसी समय पर कर्णाम पर कर्णाम वैदिक मन्त्रके गिना मया था।

अथर्वि—इस समय भी कर्णामत्रिवेके मन्वीन है।

अथर्वि वैदिक।

अथर्वि नामके मन्वीन विद्यामन्त्र मन्वीन

"दाक्षिणात्य वैदिक-कुल-वदुन" नामक एक कुल मन् १०५२ मन्में देना मया।

अथर्वि नामके गिना है, कि पुराणादिमें काम्यवृत्त मन् विषय पर तरके मन्वीनका उल्लेख है, उन्ही प्रादिमन्में एक है। मङ्गागर्भ जो मध दाक्षिणात्य वैदिक मन्त्र दिशां देने है, म मन्में उभय दिशांके मन् है। दक्षिण मन्में भायेवो दाक्षिणात्य और वैदिक भायेवो वैदिक कहलाये।

अथा है, कि नाम वा कर इस प्रदेशमें विद्वान्मन् और वैदिक विद्यामन्त्रका सोव होनेसे प्राविष्ट मन्में इस मन्मेंके मन्त्रण यही भाये मये। मन्त्रण होता है, कि मदी और वायेदु मन्मेंके वाद यही वद भाये। एक मन्मेंके मन्त्रणमें इन्में मन् और पुरोहितके पर पर भाविष्य (विद्या-पर) दाक्षिणात्यके वैदिकीमें वदने कृत्वा और मन्त्रणमें ये। कर्णामें वदुनमन् मन्त्राचारमें मन्में रवे मन्त्रमन्त्रमन् "कानादुर्ग-कानावर्षीय भादि दाक्षिणात्य वैदिक मन्में" जो वाद रका है, इसमें मन्त्रणमन्त्र, मन्त्राचार्य भादि मन्त्रात्मना भी दाक्षिणात्य वैदिक होने है।

अथर्वि मन् ।

इसका ठीक कुलमन्त्रमें उल्लेख मदी, कि दाक्षिणात्य वैदिकमन् किन समय इस मन्में भाये। राक्षीय और वायेदु मन्मेंके मन्त्रणके वाद ये भाये है, केवल इतना ही मन्त्रण है। फिर किन्तु ही होता मत है, कि वदमन्मेंके मन्त्रण मन्वीन राजाओंमें किन समय त्रिवेके तक भाविष्य गिनाया। उभय समय वाक्युत भादि मन्त्रण मन्त्रणमेंके विभिन्न विद्वान्मन् मानिक वैदिकमन् त्रिवेके मन्त्रण मन्त्रणमें मन्त्रण भावा कर्म ये। मन्त्रण मन्त्रणमेंके निवृत्त मन्त्रण मन्त्रण कर इन्में किन्तु किन्तुमें वद मन्त्रणमन्त्रण किन्तु १० इस मन्त्रण मन्त्रणके वैदिक इस मन्त्रण मन्त्रण वैदिक मन्त्रण विद्यामन् इय।

अथर्वि दक्षिणात्य गिना है, कि मन्त्रण मन्त्रण मन्त्रण मन्त्रणमें त्रिवेके तक मन्त्रण विद्यामन् किन्तु

था : इन्होंने १५५० ई०में सिंहासन पर आरोहण किया ।* उक्त प्रवाद-वाक्यको स्वीकार करने पर साढ़े तीन सौ वर्ष पहले यज्ञमें दक्षिणात्य वैदिकागम स्वीकार करना पड़ेगा । किन्तु उसके बहुत पूर्व उत्कलसे वैदिक ब्राह्मण आ कर इस देशमें वास करते थे, इस बातका प्रमाणाभाव नहीं । साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व वैष्णव कृषि जयानन्दने (महाप्रभुके याज्ञपुर आगमन-उपलक्षमें) अपने बङ्गला चैतन्याङ्गलमें (उत्कलखण्डमें) लिखा है,—

‘चैतन्यगोसाईके पूव पुरुष याज्ञपुरमें आये, किन्तु राजा झरकरके डरसे श्रीहट्टदेशमें भाग गये । उसी वंशमें एक वैष्णव हो गये हैं, जिनका नाम कमललोचन था । पूर्व जन्मके तपसे चैतन्य गोसाईने, उनके घर विभ्राम किया ।’

सुतरां चैतन्यदेवके आचर्यावसे बहुत पहले उनके पूर्वपुरुष याज्ञपुरवासी थे । वैदिक मधुकर मिश्र राजा झरकरके भयसे श्रीहट्ट भाग गये, किन्तु महाप्रभुने जब याज्ञपुर पदार्पण किया तब भी यहाँ उन जाति-पालोंका वास था । श्रीहट्टवासी प्रयुग्निमिश्रके मना-सन्तोषणों और चैतन्योद्दयावनी आदि ग्रन्थानुसार चैतन्यदेवके प्रतिमह मधुकर मिश्र श्रीहट्टवासी हुए थे । इधर उड़ीसेके इतिहासमें और गोपीनाथपुरकी शिलालिपिमें उत्कलपति कपिलेन्द्रदेवकी ‘झरकर’ उपाधि दिख पड़ती है† । सन् १४५१ ई०में उनका राज्याभिषेक सम्पन्न होने पर भी उसके बहुत पूर्वसे ही उसका अस्तित्व हुआ था । ऐसे स्थलमें १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें उनके उपासक मधुकर मिश्र पुत्र परिजनके साथ श्रीहट्टवासी हुए थे । सन् १४७२ ई०में यज्ञालमें

शांति स्थापित हुई थी X । इसके कुछ ही समय बाद मधुकर मिश्रके गोत्र और चैतन्यदेवके पिता जगन्नाथ मिश्र नवद्वीपवासी हो यहाँके वैदिक समाजभुक्त हुए थे † ।

चैतन्यदेवके पूर्वपुरुष याज्ञपुरवासी थे ; सुतरां वे उत्तर श्रेणी या पञ्चगौड़ ब्राह्मणोंके अन्तर्गत हैं । गङ्गवंशीय राजकर्तृक कन्नोजसे ब्राह्मण लानेका प्रवाद यदि सत्य हो, तो यशोधरादिकी तरह महाप्रभुके पूर्वपुरुष भी पार्श्वत्य वैदिक हैं । फिर उत्कल या दक्षिण देशसे श्रीहट्टमें आगमनमयुक्त वे दक्षिणात्य वैदिक भी कहे जा सकते हैं, इसी कारणसे ही महाप्रभुकी जीवनी-लेखकोंमेंसे कोई उनके पूर्वपुरुषको “पार्श्वत्य वैदिक” कोई “दक्षिणात्य वैदिक” कहते हैं । इस तरह दोनों समाजमें किसी समयमें सम्बंध स्थापित होना भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं । कटक और मेदिनीपुर जिलेमें दोनों श्रेणियोंका संमिश्रण दिखाई देता है । यदा पटकुल या पड़गोल वैदिक ही सम्मानित हैं । यथा—

“करशर्मा भरद्वाजो परशर्मा च गौतमः ।

भाष्यो रशर्मा च नन्दिशर्मा † च काम्यवः ॥

कौशिको दाशशर्मा च पतिशर्मा च मुद्गलः ॥”

भरद्वाजगोत्रमें करशर्मा, गौतमगोत्रमें परशर्मा, काश्यप गोत्रमें नन्दिशर्मा, कौशिक गोत्रमें दाशशर्मा और मुद्गलगोत्रमें पतिशर्मा (ये ई धर) हैं । सिधा इनके उत्कल श्रेणिके कुलप्रथमं घृतकौशिक और का-पयापन गोल आदि भी वैदिक कहे गये हैं । याज्ञपुरके पण्डोंका कदना है, कि उत्कल, द्राघिड़, ताम्रपर्णी, कामरूप (पोनिपोठ), सागरसङ्गम, चन्द्रनाथ और सुष्ठ देशमें जो सब वैदिक हैं, वे दक्षिण तय गिने जाते हैं †† जो ही, उत्कल छोड़ कर इस समय यज्ञालका अनु-

* Sterling's Orissa (in Asiatic Researches, Vol xv, p. 287)

† Asiatic Researches Vol, xv, p, 275, और विररकोपमें गोपीनाथपुर शब्द देखो ।

X बहने जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड १ म अंश, १६६-६७ पृष्ठा दृश्य)

† जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड) २५ भाग ३वां अंश ६२ पृष्ठमें जगन्नाथ मिश्रका जातिवंश दृश्यम् ।

†† “उत्कलनी ताम्रपर्णी च पोनिपोठी तु सगरी ।

चन्द्रनाथी तथा सुष्ठी दक्षिणतया वैदिकाः स्मृताः”

यजुर्वेदी और वेद प्रकारके सामवेदीय हैं*। प्राण-
कृष्णने जातुकर्ण और सावर्ण, इन गोलोंका उल्लेख नहीं
किया है। फिर उनके मतसे कृष्णात्वेय और भरद्वाज ये
वेद गोल विलुप्त हुए हैं। किन्तु वर्तमान कालमें दक्षि-
णात्य वैदिकोंमें घृतकीशिक, गीतम, कौशिक, काश्यप,
काण्वायन, वात्स्य, भरद्वाज, कृष्णात्रय और जातुकर्ण
ये नौ गोल ही दिखाई देते हैं।

इस श्रेणीके बीच यजुर्वेदीकी संख्या ही अधिक
है। सामवेदियोंकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। ऋग्वे-
दियोंकी संख्या उससे भी कम है। अधर्ववेदीय यत्-
सामान्य हैं, और तो क्या, आज कल ये दिखाई भी नहीं
देते।

इस श्रेणीमें आचार्य, भट्टाचार्य, चक्रवर्ती, मिथ,
भद्र, घर, कर, नन्दी, पति आदि उपाधियां दिखाई देती
हैं। इनमें सर्पादाके अनुसार कुलीन, वंशज और
मौलिक—ये तीन भेद हैं।

कुलप्रथा—आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, तीर्थ-
दर्शन, निष्ठा, आशुति, तपः और दान ये नौ कुलीनके
लक्षण हैं। कन्याके जन्मते ही जो वाग्दान करते हैं
अर्थात् जिनमें ऐसी वाग्दान-प्रथा प्रचलित है, वे कुलीन
हैं। कुल कन्यागत है, इसलिये कन्याके आदान प्रदानसे
ही कुलकी ह्रास-वृद्धि हुआ करती है। कुलीनोंमें जो
कुलीनदीहितके कन्याका वाग्दान कर सके और
जिनके लगातार सात पुत्र्य तक वंशज और मौलिक
संस्त्रय नहीं हुआ, वे ही सुष्ठु और प्रधान कुलीन कह-
लाते हैं। वंशज आदि संस्त्रय होने पर भी प्रधान
कुलीनोंके साथ जिनका कुटुम्ब संस्त्रय है, वे मध्यम
कुलीन हैं। वाग्दत्ता कन्याके साथ जिसका विवाह
होनेकी बात हो, उसके साथ विवाह न हो, किसी द्वितीय
कुलीन पालके यह कन्या दी गई हो, तो उसके अग्य-

पूर्वा कहते हैं। इस तरह अग्यपूर्वाकी गर्भजात कन्या-
से जो विवाह करते हैं, यही कुलीन-अधम कहलाते
हैं। इस तरह आदान-प्रदानके गुण-दोषोंके कारण
ढकाकृति, मृदङ्गाकृति और धनुंकी आकृति—ये तीन
भाव भी दिखाई देते हैं। सिया इसके कुल-संबंधके
अनुसार क्षम्य, उचित और आसि—ये तीन तरहके भेद
भी सुने जाते हैं। अपने घरसे उत्तम घरमें कन्यादान
करनेसे आसि, समान समान घरमें करनेसे उचित और
अपने घरसे निरुद्ध घरमें कन्यादान करनेसे क्षम्य कहा
जाता है। आसि-संबंध ही प्रशस्त है। आसि मिलने
पर उचित संबंध करनेकी आवश्यकता नहीं। अकुलीन
कभी कुलीन नहीं हो सकता। किन्तु कुलीन कुलधर्म-
विरोधी कार्य करनेसे अकुलीन हो सकता है। यदि
कोई कुलीन अपने पुत्र या कन्याकी वाग्दान-संबंध-
प्रथा तोड़ कर विवाह करे या अग्यपूर्वासे विवाह कर
ले, तो उसका कुलीनत्व नष्ट हो जाता है और वह बहुत
निन्दित गिना जाता है। वाग्दत्ता-कन्याकी मृत्यु हो
जाने पर वंशज कन्याका पाणिग्रहण करना उचित है।
किन्तु मौलिक कन्या ग्रहण करना करार्य नहीं।
मौलिक कन्या ग्रहण करने पर कुल दुर्बल हो जायेगा।
जिसके सात पुत्र्य तक अविरोध कुलक्रिया चल रही
है और मौलिक संबंध नहीं, धही कुल पवित्र है।
यदि सात पुत्र्य तक क्रमागत मौलिकक्रिया चले, तो
शूद्रकन्या विवाहयत् कुल नष्ट होता है। अग्यपूर्वा-
गर्भजाता, रुपयासे खरीदी गई कन्या, रजस्वला,
रोगिणी और नीचकुलजाता—ये पांच तरहकी कन्या
फुलाधम है। अग्यपूर्वा-कुलीन कन्या मौलिकको दान
करनेसे कोई देय नहीं होता। किन्तु ऐसी कुलीन
कन्याके हाथसे अन्न ग्रहण नहीं कर सकते।

वंशज—जो कुलीनके द्वितीय पुत्रको कन्या देते
हैं और मौलिक कन्या ग्रहण करते हैं, वे वंशज हैं।
कुलरहस्यमें लिखा है,—“वंशज कुलीनोंके आश्रय स्वरूप
हैं। सत्कुलीनको कन्यादान और धेष्टमौलिकसे
कन्या ग्रहण—इस तरह कन्यागत भाव रहना वंशजका
लक्षण है। कुलीन वंशमें जन्म और कुलविलसके
कारण वंशमालमें प्रतिष्ठित रहनेसे वंशज क्वाति होती

* जातुकर्ण और सावर्णों के कारणों घृतकीशिकः ।
वात्स्यः काण्वायनभेद कौशिको गीतमस्तथा ॥
भद्रात्वेते दक्षिणात्ये गोत्राः संवरिकीर्तिताः ।
दी यजुः सामवेदी च तेषां श्रेयो विशेषतः ॥”
(पाश्चात्य वैदिक कुलवर्णिका ६(२-६३))

सरण किया जाये। इस देशमें किस समय दाक्षिणात्य वैदिक भाषे ? यही आलोच्य है।

बहुमें दाक्षिणात्य वैदिकगमन-क्रान्त।

सन् १४३२ शकमें रचित आनन्दमठके चहल चरितमें लिखा है, गौड़ाधिप चहलसेनने गीतम गोतोय अन्तर्गत जर्गा नामक एक द्राविड़ श्रेणीके ब्राह्मणको सुवर्ण-मुक्तिके अंतर्गत सर्वोत्कृष्टसम्पन्नित 'कासार' ग्राम दान किया था। उस सुवाधयलित सर्वोत्कृष्टसंयुत धातायनादि परिशोभित गृहपूर्ण राजदल ब्राह्मण-जासनमें दाक्षिणात्य विप्रगण बास करते रहे।

चहलचरितके रचयिता आनन्दमठने पूर्वाक अन्तर्गत जर्गाके वंशधरको भी दाक्षिणात्य ब्राह्मण कदके परिचय दिया है। उनके मतसे दाक्षिणात्य हो द्राविण श्रेणी है। अनपय चहलसेनके समयमें इस देशमें दाक्षिणात्य वैदिक थे, यह प्रामाणित हुआ। गौड़ाधिप चहलसेन विजयसेनके शिलाफलकमें उनके पूर्वपुरुष 'दाक्षिणात्यश्रीणी' कद प्रयात हुए और ये गौड़, कामरूप और कलिङ्ग पर विजय कर राजवक्रवर्ती हुए थे। चरेंद्रभूमिस्थ 'प्रयुग्नेश्वर' मन्दिर-प्रतिष्ठाके उपलक्षमें महाकवि उमापतिधरने उक्त 'विजयप्रगस्ति'-रचना की थी। यह भी श्रेववाङ्मय विजयसेनकी शिलालिपिके रूपमें प्रसिद्ध है।

प्राणकृष्णके वैदिक-कुलरहस्यमें लिखा है, कि किसो कारणसे कितने ही वैदिक द्राविड़ देशसे उठकर देशमें आ कर बस गये। यहाँ कुछ दिनों तक ये सुखसे रहें थे। इनके बाद विरूपाक्ष नामक एक घोराचारी सिद्धपुरुषने आ कर भारी अनिष्ट किया। उन्होंने ये योगव रसे सारे देशको मद्रिरामय बना दिया। नदमें, भीलमें, कूपमें, सरोवरमें, तमाम जलाशयोंमें जलके बदले शराव हो शराव दिव्याई देने लगी। इस तरहकी निपट में पड़ कर कई प्रधान वैदिक उठकरसे चहलदेशमें चले भाये। उनके सदाचार, विद्याभुक्ति और मिवादिको देख

यज्ञक कायस्थ विक्रमादित्यसुत राजा प्रतापादित्यने सन् १५४२ शकमें उनकी सम्पत्तिना को धो। उन्होंने ही दाक्षिणात्योंको नाना सुखैश्वर्य प्रदान कर बहुमें बास कराया। जहाँ पहला बास उन्होंने किया था, उसका नाम होम्डा है, दाक्षिणात्य वैदिकोंकी यही मृत्भूमि है। दाक्षिणात्य कुलीनोंके वीजपुरुषने सदाचार और स्वधर्मनिष्ठ हो कर चहल बहुत काल तक बास किया था। गङ्गा यमुना और सरस्वतीकी विधारा एक हो कर प्रयाग जैसे पुण्यमय हुआ है, यहाँ उनी तरह वैदिक वंशीय लोगोंकी तीन धारायें बहती हुई थीं। किन्तु सदा एक समान नहीं बीतता है। यहाँ बनैले जन्तुओंका उपद्रव हुआ। कोई भी यहाँ रहनेमें समर्थ नहीं हुआ। यह बासस्थान वन्यभूमिमें बदल गया। कोई चहलमें, कोई भङ्गमें, कोई गौड़में, कोई राठमें इस तरह नाना स्थानोंमें दाक्षिणात्यगण चले गये।

अब मालूम हुआ, कि सेनवंशीय राजाओंके समयमें कई घर दाक्षिणात्यके चहलमें आ कर बास करने पर भी फिर बहुत दिनोंके बाद यशोराधिप प्रतापादित्यके समयमें भी तीन घर वैदिकोंने आ कर राजप्रदक्ष होमडा ग्राममें बास किया।

गोत्र और उपाधि-निर्णय—कुलरहस्यके मतसे १ गीतम, २ काश्यप, ३ घाटस्थ, ४ काण्वायन, ५ घृतकीर्णिक, ६ कृष्णात्रिय, ७ भरद्वाज और ८ कुक्षिक, ये आठ गोत्र ही महाकुल हैं। इनमें इस समय छः गोत्र केवल दिव्याई देते हैं। छत्रात्रिय और भरद्वाज—ये दो गोत्र अब देव नहीं पड़ते।

फिर पारश्वत्य वैदिक कुलव्यक्तिनाम लिखा है,— १ जातुकर्ण, २ सायण, ३ काश्यप, ४ घृतकीर्णिक, ५ घाटस्थ, ६ काण्वायन, ७ कीर्णिक और ८ गीतम। दाक्षिणात्योंमें ये आठ गोत्र विद्यमान हैं। इनमें दो प्रकारके

७ "केचित् विना भागताम् वैदिका येदवासाः।

पाथात्पा दाक्षिणात्याम् श्रेणीका द्राविड़ स्मृत्याः॥"

(सरकास-चरित पूर्ण खण्ड)

७ "गीतमः काश्यपो घाटस्थः काण्वायनपुत्रकीर्णिकी ।

रूपवृत्तगोत्रे स्वपुत्रा गोत्रवृत्तके प्रवर्द्धते ।

वृष्णायनपमहाद्वी हरयते न न कुक्षयि ॥"

(कुलरहस्य १: ३६-३७)

यजुर्वेदी और वेद प्रकारके सामवेदीय हैं*। प्राण-
छरणने जातुकर्ण और सावर्ण, इन गोलोंका उल्लेख नहीं
किया है। फिर उनके मतसे छणालेय और भरद्वाज ये
वेद गोल विलुप्त हुए हैं। किन्तु वर्तमान कालमें दक्षि-
णात्य वैदिकोंमें घृतकीशिक, गीतम, कौशिक, काश्यप,
काण्वायन, चात्स्य, भरद्वाज, छणालेय और जातुकर्ण
ये नौ गोल ही दिखाई देते हैं।

इस श्रेणीके बीच यजुर्वेदीकी संख्या ही अधिक
है। सामवेदियोंकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। ऋग्वे-
दियोंकी संख्या उससे भी कम है। अथर्ववेदीय यत्-
सामान्य हैं, और तो क्या, आज कल ये दिखाई भी नहीं
देते।

इस श्रेणीमें आचार्य, भट्टाचार्य, चक्रवर्ती, मिश्र,
भट्ट, धर, कर, नन्दो, पति आदि उपाधियां दिखाई देती
हैं। इनमें मर्यादाके अनुसार कुलोन, वंशज और
मौलिक—ये तीन भेद हैं।

कुलप्रथा—आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, तीर्थ-
दर्शन, निष्ठा, आशुति, तपः और दान ये नौ कुलीनके
लक्षण हैं। कन्याके जन्मते ही जो वाग्दान करते हैं
अर्थात् जिनमें पैसे वाग्दान-प्रथा प्रचलित है, वे कुलीन
हैं। कुल कन्यागत है, इसलिये कन्याके आदान प्रदानसे
ही कुलकी ह्रास-वृद्धि हुआ करती है। कुलीनोंमें जो
कुलीनदीहितके कन्याका वाग्दान कर सके और
जिनके लगातार सात पुत्र्य तक वंशज और मौलिक
संस्त्रय नहीं हुआ, वे ही सुदृष्ट और प्रधान कुलीन बह-
लाते हैं। वंशज आदि संस्त्रय होने पर भी प्रधान
कुलीनोंके साथ जिनका कुटुम्ब संस्त्रय है, वे मध्यम
कुलीन हैं। वाग्दत्ता कन्याके साथ जिसका विवाह
होनेकी बात हो, उसके साथ विवाह न हो, किसी द्वितीय
कुलीन पात्रका यह कन्या ही गई हो, तो उसके अग्य-

पूर्वा कहते हैं। इस तरह अग्यपूर्वाकी गर्भजात कन्या-
से जो विवाह करते हैं, वही कुलीन-अग्रम कहलाते
हैं। इस तरह आदान-प्रदानके गुण-दोषोंके कारण
दक्षाकृति, मृदङ्गाकृति और धनुरेकी आकृति—ये तीन
भाव भी दिखाई देते हैं। सिया इमके कुल-संबंधके
अनुसार क्षम्य, उचित और आर्त्ति—ये तीन तरहके भेद
भी सुने जाते हैं। अपने घरसे उत्तम घरमें कन्यादान
करनेसे आर्त्ति, समान समान घरमें करनेसे उचित और
अपने घरसे निष्ठुर घरमें कन्यादान करनेसे क्षम्य कहा
जाता है। आर्त्ति-संबंध ही प्रशस्त है। आर्त्ति मिलने
पर उचित संबंध करनेकी आवश्यकता नहीं। अकुलीन
कमी कुलीन नहीं हो सकता। किन्तु कुलीन कुलधर्म-
विरोधी कार्य करनेसे अकुलीन हो सकता है। यदि
कोई कुलीन अपने पुत्र या कन्याकी वाग्दान-संबंध-
प्रथा तोड़ कर विवाह करे या अग्यपूर्वासे विवाह कर
ले, तो उसका कुलीनत्व नष्ट हो जाता है और वह बहुत
निन्दित गिना जाता है। वाग्दत्ता-कन्याकी मृत्यु हो
जावे पर वंशज कन्याका पाणिग्रहण करना उचित है।
किन्तु मौलिक कन्या ग्रहण करना कर्त्तव्य नहीं।
मौलिक कन्या ग्रहण करने पर कुल दुर्बल हो जायेगा।
जिसके सात पुत्र्य तक अविरोध कुलकिया चल रहा
है और मौलिक संबंध नहीं, वही कुल पवित्र है।
यदि सात पुत्र्य तक क्रमागत मौलिककिया चले, तो
शूद्रकन्या विवाहवत् कुल नष्ट होता है। अग्यपूर्वा-
गर्भजाता, स्वयासे खरीदी गई कन्या, रजस्वला,
रोगिणी और नीचकुलजाता—ये पांच तरहकी कन्या
कुलाधम है। अग्यपूर्वा-कुलीन कन्या मौलिकको दान
करनेसे कोई दोष नहीं होता। किन्तु पैसे कुलीन
कन्याके हाथसे अग्र ग्रहण नहीं कर सकेंगे।

वंशज—जो कुलीनके द्वितीय पुत्रको कन्या देने
है और मौलिक कन्या ग्रहण करते हैं, वे वंशज हैं।
कुलरहस्यमें लिखा है,—“वंशज कुलीनोंके आश्रय स्वरूप
हैं। सत्कुलीनकी कन्यादान और धेष्टमौलिकसे
कन्या ग्रहण—इस तरह कन्यागत भाव रहना वंशजका
लक्षण है। कुलीन वंशमें जन्म और कुलविच्छेदके
कारण वंशमालमें प्रतिष्ठित रहनेसे वंशज क्याति होती

* “नामुकर्षभ सार्वर्षः कारयणे घृतकीशिकः ।

वात्स्यः काण्वायनश्चैव कौशिको गीतमस्तथा ॥

भशावेते दक्षिणायत्ये गोत्राः संपरिकीर्तिताः ।

ही यजुः सामवेदी च तेषां श्रेयो विशेषतः ॥”

(पाम्हात्य वैदिक कुलपरिच्छेद ६।२-६३)

है। वंशजोंकी नय गुणोंकी अपेक्षा नहीं है। उनको यागदानकी यत्नना सहनी नहीं पड़ती। कुलीनको कर्मा देनेसे ही उनके स्वर्गका द्वार खुल जाता है। वंशज कभी भी मौलिकको कर्मादान न करे। अर्घ्य-पूर्वा-कर्मा प्रहण और मौलिकको कर्मादान—इन दो कामोंसे ही वंशजधर्म नष्ट होता है।

वंशज फिर दो प्रकारके हैं—प्रकृत और विहृत। कुलविधिस्थापन-कालमें जिनके पूर्वपुत्र्य वंशज हुए हैं, वे प्रकृत या आदिवंशज हैं और यागदान न करनेके कारण जो कुलसे वृत्त हुए हैं, वे विहृत वंशज हैं। विष्णुधर, वरहधर, शेषपति और शूलपाणि—ये चार आदिम पूर्वज अर्थात् पहले वंशज कहलाये। इन लोगों के वंशधर हो आदिवंशज हैं। विष्णुधर वरहधरके सन्तान घृतकौशिक और शेषपति और शूलपाणिके वंशधर वात्स्य कहलाये। राट्ट अञ्जलमें ही वे प्रसिद्ध हैं। विहृत वंशजके नाना गोत्र हैं और वे नाना स्थानोंमें वास करते हैं। इनके मध्य जो पुत्र्यानुक्रमसे कुलीनकी कर्मादान करते हैं, वे ही श्रेष्ठमायाधर हैं।

मौलिक—जो अर्घ्यपूर्वा कर्मा प्रहण करते हैं, वे ही मौलिक हैं। मौलिकसे सिया कुलीनोंको अन्य गति नहीं। मौलिकको ही अर्घ्यपूर्वा-कर्मा दान की जानी हैं। इसलिये सर्गमौलिक ही कुलीनके निकट भी सम्मानित हैं। मूल या आदिवं ही वे अर्घ्यपूर्वा प्रहण करते आ रहे हैं। इसलिये इनका नाम मौलिक हुआ है। मौलिक अर्थ ले कर कभी विवाह सम्बन्ध न करे। जो धन लेंगे, या धन देंगे, वे दोनों ही पतित लोग हैं। कर्मा दे कर कर्माप्रहण करनेको परिवर्षा कहते हैं। दक्षिणात्य-समाजमें यह भी कर्मा विक्रयकी तरह निन्दित कर्म है; किन्तु अर्थ ले कर कर्मा-विक्रयकी तरह पापजनक नहीं। किन्तु परिवर्षा तथा शुक्रविक्रय दोनों ही गद्दित कार्य समझ कर छोड़ देना चाहिये। मौलिकमें भी आर्षि, उचित और क्षम्य भेदसे हीन तरहके दान हैं। कुलीनको कर्मादान करनेको आर्षि, वंशजको दान करनेको उचित और मौलिकको मौलिकके कर्मादान देने पर यह क्षम्य कहलाता है। आर्षि दानमें यज्ञ, उचितदानमें समु-

चित मान और क्षम्यदान अत्यन्त गद्दित दान है। सात पुत्र्य तक जिन्होंने आर्षिदान किया है, वे ही यथाधर्म मौलिक कहलाने-योग्य हैं। मौलिक भी दो तरहके हैं—सर्गमौलिक और असर्गमौलिक। गङ्गाधर, रायवा, जटाधर भाएदारी, कविसुदह्ण और गाढ़मिश्र, वे ही चार आदि मौलिक थे। इन चारोंके ही वंशधर सर्गमौलिक कहलाते हैं। सिवा इनके दूसरे जो अन्यपूर्वा कर्मा प्रहण कर मौलिक हुए हैं, वे असर्गमौलिक हैं।

समाज-स्थापन,—पहले गङ्गा कालीघाटसे पूर्वा दक्षिणाभिमुखी हो राजपुर, हरिनाभि, फादालिया, चिन्नी-पोता, मालञ्ज, माईनगर, शासन, याकईपुर, मध्या, वाराणसी, जयनगर, मजिलपुर, विष्णुपुर, आदि प्रामोंमें जाती हुई सागरमें मिली थी—इससे गङ्गायासके उपलक्षमें इन सब प्रामोंमें ही दक्षिणात्य वैदिकोंने वास किया था। वर्तमान समयमें गङ्गाके इन सब स्थानोंसे अन्तर्हिता होने पर भी वे सब प्राम आज भी दक्षिणात्य वैदिकोंके समाज कहलाते हैं। इन सब स्थानोंके दक्षिणात्य वैदिक वङ्गदेशके सब स्थानोंमें सम्मानित होते हैं और तोषया, राट्टी, चारेन्द्र, वाश्यात्य वैदिक प्रभृति ब्राह्मणोंसे यह दक्षिणात्य वैदिक-श्रेष्ठगण ही आचार्य-वरण किये जाते थे। आज भी टाका, विक्रमपुर आदि स्थानोंमें अनेक ब्राह्मणोंके घर भी यह वैदिक मिश्र स्तोत्रसर्ग आदि वैदिक कर्म सम्पन्न नहीं होते।

ऊपर जिन समाजोंका उल्लेख किया गया, उन सब स्थानोंके वैदिकवंश ही श्रेष्ठ और सम्मानित हैं। उनके भारतीय कुटुम्बगण नानास्थानोंमें फैल गये हैं।

आर्षिपोता और तनिकटस्थ कोदालिया प्राममें कई घर मध्यकुलीन घृतकौशिकका वास हैं, वे अपने समाजमें विशेष सम्मानित हैं। ये सुप्रसिद्ध सार्वभौम अष्टाध्यायिके कनिष्ठ विद्याधर याचल्यतिके सन्तान कह कर अपना परिचय दिया करते हैं। वे और भी कहते हैं, कि चैतन्य महाप्रभु आदिके तिरुघन होने पर क्षुब्धचित्त हो पिद्याधर श्रीपुरीघाम पारंस्थाग कर कलकत्तेके दक्षिणपूर्व वांशुङ्गके निकटवर्ती नदीके किनारे सुजला सुफला झरोत्तर भूमि पा कर यहाँ हो रहे गये। कुलरहस्य-युक्त दक्षिणात्योंकी वृत्तिभूमि 'होमड़ा' वांशुङ्गसे अधिक दूर

नहीं है। विद्याधरवंशका विश्वास है, कि यांगङ्गाके पार्श्वसे जो प्रकाण्ड नदी प्रवाहित हो सागरमें मिली है, यह नदी उक्त विद्याधर विद्यावाचस्पतिके नामानुसार आज भी "विद्याधरी" नामसे विख्यात है। विद्याधरके परवर्ती वंशधर उक्त स्थानका परित्याग कर कोदालिया और इसके निकटके चांडिपोता ग्राममें आ कर वास करते हैं।

सुप्रसिद्ध सोमप्रकाशके सम्पादक द्वारकानाथ विद्याभूषणने भी उक्त विद्याधरवंशमें जन्म लिया था। वे नैपायिक हरचन्द्रम्यावरतनके पुत्र हैं। इन आसाधारण गुणावली नानाशास्त्रोंमें सुपण्डित "विश्वेश्वरविलास", "प्रास" और "शैलका इतिहास" आदि बहुत ग्रंथोंके प्रणेता विद्याभूषण महाशयका सम्यक् परिचय देना यहां असम्भव है। उनके पञ्जीय संवाद पत्रोंके आदर्श सम्पादक कहनेमें अत्युक्ति नहीं होता।

दाक्षिणात्य वैदिकोंके वर्तमान वासस्थान।

२४ परमना और नदिया जिलेमें हैं—१ राजपुर, २ हरिनाराम, ३ मालञ्ज, ४-५ मल्लिकपुर, ६ गोविन्दपुर, ७ लाङ्गलवेड, ८ शोरामपुर, ९ वारद्वीण, १० बोलतित्ति, ११ धारकुञ्जो, १२ युङ्गुन, १३ पाण्डुतला, १४ पाइकान १५ हांसुडा, १६ सेमोडदह, १७ मुल्लाका चक, १८ नितर, १९ कनातपुर, २० रङ्गीलाबाद, २१ विष्णुपुर, २२ घाटे-श्वरा, २३ वनमालीपुर, २४ जयनगर, २५ मजिलपुर, २६ दुर्गापुर, २७ बड्ड, २८ वारासत, २९ गोकर्ण, ३० वेले-चण्डी, ३१ तसरबन्दा, ३२ धारपुर, ३३ धवधवि, ३४ रामनगर, ३५ मयदा, ३६ कोदालिया, ३७ चांडिपोता, ३८ गांजीपुर, ३९ सोनारपुर, ४० चोडाल, ४१ जगदल, ४२ सापुर, ४३ खिदिरपुर, ४४ कालीघाट।

भीहड़ वैदिक-धमाज।

वैदिक पुरातत्त्व और "वैदिक संवादिनी" नामक कुलग्रन्थसे विदित होता है, कि लिपुराके राजासन पर आदि धर्मपा नामक एक नृपति अधिष्ठित थे। उनके राजप्रासादके ऊपर एक अशुभ पक्षी बैठा था, यह अमङ्गल समझ कर उसकी शान्तिके लिये उन्होंने अपने मंत्रियोंके साथ परामर्श किया। उस समय धीहट्टमें वैदिक ब्राह्मण नहीं थे। वैदिक ब्राह्मण ही अमङ्गल दूर

करनेमें समर्थ हैं, यह समझ कर मन्त्रियोंने राजाको उपदेश दिया, कि मिथिलासे १४ गुणोपेत क्रियानान्ध वेद-विदु पञ्चगोत्रीय पांच ब्राह्मण मंगा कर उनके द्वारा शाकनिक गैर बनिष्टोम यज्ञ करानेसे आपका यह अमङ्गल सर्वान्नीन दूर होगा। मन्त्रियों द्वारा ऐसा परामर्श पा कर राजाने मिथिलापतिसे पांच वैदिक कर्म-तत्पर ब्राह्मण भेज देनेके लिये प्रार्थना-पत्र भेजा।

मिथिला देशमें उस समय बलमद्र नामके राजा राज्य कर रहे थे। उन्होंने लिपुराके प्रार्थना-पत्र पा कर हर्षान्वित हो चारस्यगोतोय श्रोनन्द, चारस्यगोतोय आनन्द, भरद्वाजगोतोय गोविन्द, हृष्णश्रेयगोत्रीय श्रोपति और पराशर गोत्रीय पुत्रपौत्रम—इन पांच वेदक ब्राह्मणोंके पङ्कालके लिपुरामें जानेकी आज्ञा दिया। सदाचारबहिर्भूत देश पङ्काल जानेसे पहले ब्राह्मणोंने हिला हवाला किया, किन्तु पीछे लोकता और शास्त्रता अनुसन्धान कर जब उन्होंने यह जान लिया, कि यह देश नोलपर्वतके सिद्धक्षेत्र कामरूप सोमांतयत्ती है और यहाँके राजा चन्द्रवंश-सम्भूत हैं और विविध गुणशाली हैं, तब वे यहाँ जाने पर राजी हुए। इसके बाद कितने शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें यात्रा कर लिपुरामें वे पहुँच गये। यहाँ पहुँच उन्हींने यथासमय और यथारति यज्ञ-उत्सव किया। धीहट्टके अन्तर्गत भानुगाल परगनेके अप्पान मङ्गलपुर ग्राममें उस प्राचीनतम यज्ञकुण्डका चिह्न आज भी दिखाई देता है।

यज्ञसम्पन्न होनेके बाद ब्राह्मणके यात्रा करनेकी तीव्रता करने पर राजाने हाथ जोड़ कर कहा—आप लोग स्थायीरूपसे यहाँ बस जायें तो मैं नितान्त हनार्थ हूँगा। राजाकी प्रार्थना पर ब्राह्मण अत्यन्त संतुष्ट हो यहाँ बस जाने पर सन्मत्त हो गये। उस समय राजाने अत्यन्त मानन्दित हो कर अपने राज्यमें लिपुराद् ५१में (६४१ ई०) उनकी अपने राज्यमें ब्रह्मोत्तर दान किया। इस प्रदेश भूमिच्छेदकी पश्चिमी और उत्तरी सीमा पर कोशिरा नदी, दक्षिणमें हाडूाला और पूर्वमें कोशिकापुरी है। टेङ्गरी कुकी जातिके कर्मगतस्थान होनेसे इसका नाम टेङ्गरी या टेङ्गरी था।

उक्त श्रोनन्दादि पांच ब्राह्मण एक वर्ष तक यहाँ

वास कर स्वदेगमें लौट भाये और वहाँसे स्त्री-पुत्र भादि और भारतीय-कुटुम्बके साथ फिर धीरे-धीरे अपने अपने अधिकृत स्थानकी चले भाये । जब वे अपनी अपनी भाषाओंकी ले भाये, तब पहले टङ्करी पर्वत पर वास करते रहे । टङ्करी पर्वतस्थ अपने अपने अधिकृत स्थान पांच भागोंमें विभक्त होनेसे "पञ्चभ्रण्ड" नामसे विख्यात हुआ ; राष्ट्रीय क्रियाकाण्डमें तथा आदान-प्रदानमें सुविधा होनेके लिये उन्होंने अपने देगके कार्यायन, कार्यप, मीठल्य, सर्वाकांक्षिक और गौतम इन पञ्चगोत्रीय ब्राह्मणोंकी भी बुलाया । उन सभी ब्राह्मणोंका क्रिया-कलाप मैथिल-कुलाचार और प्राचीन प्रथाके अनुसार होता था और आज भी हो रहा है । यद्गके अन्याय्य स्थानोंकी तरह धीरे-धीरे रघुनन्दनकी स्मृत्युक्त व्यवस्था घेसो प्रचलित नहीं है । क्योंकि, यहाँ मैथिल विप्रोंका ही प्राधान्य है ।

वैदिका (सं० खी०) भूमिजन्मपृष्ठ, वनजामुन ।

वैदिज्ञ (सं० पु०) १ विदिशाका अधियासी । २ विदिशाका निकटवर्ती नगर । इसका वर्तमान नाम वेशनगर है ।

वैदिश्य (सं० लि०) विदिशाके समीप होनेवाला ।

(विद्वान्तकी०)

वैदु (वैद्य)—अर्थात् प्रेसिडेन्सीकी एक श्रेणियोंके वैद्य । हातुडिया वैद्यकी तरह या वेदे जातिके समान चिकित्सा करना ही इनका व्यवसाय है । ये वैद्य, घाट और एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें जा कर भोज और नानाविध औषधादि वैद्य कर ही अपनी जीविका निर्वाह करते हैं । यद्यार्थमें इनकी झमणशाल तेलगू-भिष्टुक कहनेमें भी कोई दर्ज नहीं । भद्रमदनगरवासी वैदुओंमें भोई वैदु, चाङ्गु वैदु, कोली वैदु और माली वैदु नामके चार दल हैं । ये अपनी अपनी श्रेणियोंमें प्रधान हैं । एक श्रेणियोंके लोग अन्य श्रेणियोंकी कन्या नहीं लेते । अथवा एकल आहार विहार नहीं करते । इनमें पंशगत कोई उपाधि नहीं है । एक ही पंशमें निकट सम्बन्ध और स्मर्य कुटुम्बिता परिवारगत वे परस्परमें आदान-प्रदान करते हैं । ऊपर कथित कई दलोंमें आश्रितगत, आहार्य-सम्बन्धी, स्वभावगत, आचारगत और आतीय व्यवसायगत विधेय कोई पाठ्य नहीं ।

पूनेके वैदुओंमें भोलीवाले, चट्टेवाले, दाढ़ीवाले,

नामसे तीन दल हैं । भोलीवालोंमें आकम्पा, अगिरे, चिरकल, कोड्यपटो, मानपाति, मेटकल, परकांची और सिन्धाडू नामसे कई पंशगत उपाधियाँ विस्तार देती हैं । इनमें एक तरहकी उपाधिवाले लोगोंमें विवाहादि नहीं होता ।

ये घरमें तेलगू और बाहर अर्द्ध-मराठी भाषा बोलते उत्तर-अर्काट जिलेके तिरुपतिके चेङ्कट-रमण और पूनेके चतुःशृङ्गी देवताकी ये विशेष भक्ति करते हैं । सिवा इन घरमें स्वतन्त्र कुलदेवता भी हैं । प्रति वर्ष आश्विन माहमें वृहस्पतिके उत्सवके समय ये भेड़ेका मांस रमण करके देवताकी भोग लगाते हैं और इसके बाद यहाँ प्रसाद रूपसे भक्षण करते हैं । सिवा इसके इनके यहाँ और कोई पर्य या उपास्य व्रत भादि नहीं हैं । निरियद मांस (गो-शूकर)के सिवा ये अन्य सभी पशुपक्षियोंके मांस खाते हैं । मांसके अभावमें शाक-सम्पत्तियोंकी तरकारी अन्न और जौ (यव)की रोटी इनका प्रधान खाद्य है । ये स्त्री-पुरुष सभी गाँजा, मद्य और तम्बाकू पीते हैं । किन्तु, भाँग और अफीम नहीं खाते ।

ये साधारणतः शिरमें थोड़ी और दाढ़ी रखते हैं । यदि इनमें कोई दाढ़ी कटवा दे या छँटा दे, तो वे जातिच्छुत किया जाता है । पुरुष शिर पर पंगड़ी, देह कुर्ता और पैरमें जूता या खड़ाक पहनते हैं । रमणिय घाँघरा और काँचली धारण करते हैं । गहनेमें ये हाथ में काँचकी चूड़ी और गलेमें प्रवालकी माला पहनते हैं ।

ये काले, लम्बे और बलिष्ठ होते हैं । ये दूसरे कोई काम नहीं करते । कंधल वनमें जाते और वनहपतिथां चुन चुन कर ले आते और औषध बन कर घर घर और ग्राम ग्राममें जा कर बेचते हैं । हमारे देगमें जैसे वैद्य—कानका वैद्य, घायका वैद्य सब बीमारी दूर करनेका वैद्य, तुम्बो लगानेका वैद्य कह कर घूमते फिरते हैं, उसी तरह ये भी घूमते फिरते तथा औषध बेचा करते हैं या वे कहिये, कि ये वैद्युय अर्थात् आदिमें ही नहीं, युक्त प्रदेश विहार आदिके गाँवों और ग्रहोंमें घूमते फिरते हैं । औषधक होनेपर ये जोर लगा कर फेड़ भादि आराम करते हैं । ये तुम्बो लगा कर विद्वत वृत्त

मुँहसे खींच लेते हैं। कमी-कमी मन्त्रसे उल्लिखित जनताको संमोहित कर अपना काम बना लेते हैं। औषधी विक्रयके समय ये विशेष कौशलके साथ लोगोंको ठगते हैं। इनका स्वभाव मलिन है। पुरुष कमी औषधी बेचते, कमी घनमें शिकार खेलते फिरते हैं। रमणी और बालक इस समय राह-राह भीख मांगते फिरते हैं। पैसा अधिक मिलनेसे स्त्रीपुरुष मद्यपान और गीतवाद्यमें लिप्त होते हैं।

इनमें बाल-विवाह, बहु-विवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है। प्रसवके बाद रमणीको कच्चे जौका आटा चूर्ण कर-गुड़के साथ खानेकी दिया जाता है। जात-बालकको १२ या १३ दिनके बाद सब कोई मोदमें लेते लग जाते हैं और उसका नामकरण होता है। पुत्र-सन्तान होनेसे उस दिन नाई आ कर मस्तक मुण्डन कर स्नान करा देता है।

साधारणतः बालक २५ वर्ष और बालिका युवती होने पर इनका विवाह होता है। साधारणतः पुत्र-कन्याका शौचकालमें ही सम्पन्न स्थापित हो जाता है।

विवाहके समय कन्याका पिता यदि घरके पितासे कन्या-पण चसूल करे, तो वह समाजसे बहिष्कृत होगा। इनके विवाहमें मन्त्र तथा देवपूजाका व्यवहार नहीं होता। केवल विवाहके दिन घर और कन्या-पक्षके लोग अपने अपने गाँवके भादति मन्दिमें आ कर उस मूर्त्तिमें तेल और सिन्दूर मालिश करते हैं और एक नारियलके जलसे देवताके दोनों पैर धोते हैं। इसके बाद घर घाँसुरो बाजाके साथ बारात ले कर कन्याके घर जाता है। तदनन्तर घर और कन्या दोनों एक चट्टाई पर बैठाये जाते हैं। इसके उपरान्त नाई आ कर पहले मोचनेसे घरके गिरके कई बाल उखाड़ पीछे गिलाहोका छोड़ कर मुण्डन करना है और दाढ़ी भी चिकना करता है। फिर घर-कन्याको उष्ण जलसे स्नान कराया जाता है। इसके बाद प्राणण या कोई घरका विवाहित पुरुष दोनोंका गठबन्धन करते हैं। फिर घरके गलेमें पुष्पमाला और स्त्रीके गलेमें पवित्र सूत्र मालाके रूपमें पहना दिया जाता है।

ये शवदेहके जमीनमें गाड़ते हैं। इस समय द्वा

प्यक्ति एक बांसके डण्डेमें लगे हुए झूलेमें शवदेहको बैठ कर समाधिस्थलमें लाते और कर्ममें डाल कर ऊपर-नमक और मिट्टी डाल उस गड्ढेको भर देते हैं। इसके बाद मृतकके उद्देशसे भातका पिण्ड बना कर कर्म पर रख कर चले भाते हैं। कोई कोई मृतकके लिये अर्घाच मानते हैं। कोई मृतकके लिये अर्घाच मानते ही नहीं। इनके यहां प्रेतोद्देशसे कोई धास नहीं होता। बारहवें दिन ये स्वजातिके लोगोंकी भात खिला देते हैं। वैदुओंमें जो जात भांगने या सिलाई करते हैं, ये शीघ्र ही जातिसे च्युत किये जाते हैं। इनमें जातीयता कूट कूट कर भरो है। प्रति वर्ष फाल्गुनमासमें सेष गाँवके माधि नगरमें जो इनकी सामाजिक बैठक होती है, उनमें पातिल (मोड़ल) आ उपस्थित होते हैं। निजाम राज्यमें इनका बास है, ये ही पातिल सामाजिक विवादोंको मिटाया करते हैं।

वैदुरिक (सं० लि०) विदुर द्वारा ह्य।

(भागवत० १।१०)

वैदुल (सं० ह्री०) घेतसमूल, वेतकी जड़।

वैदुप (सं० पु०) विद्वत् (महादिग्ध)। पा ५।४।२८ इति स्वयं अण्। विद्वान्, पण्डित।

वैदुष्य (सं० ह्री०) विदुषः कर्म माघो या विद्वत् ष्यम्। विद्वत्ता, पाण्डित्य।

वैदूर—मन्द्राज-प्रदेशके दक्षिण-कनाडा जिलान्तर्गत एक नगर। यद् अक्षां १३° ५२' १५" उ० तथा देशां ७४° ३७' ३०" पू०के बीच पड़ता है।

वैदूरपति (सं० पु०) वैदूर जनपदके अधिपति।

वैदूर्य (सं० ह्री०) विदूरात् प्रथमतीति विदूर (विदूरात् ष्यः। पा ४।३।८४) इति ष्य। मणिपिरीय। यद् मणि कन्या-पोतवर्ण है और इसके अधिपत्यो देवता केतु है। केतु प्रद विद्वद् रहनेसे इस मणिके धारण करनेसे केतुका शेष शान्त हो जाता है। पर्वण्य—पालघावज, केतु-रत्न, कैतवप्रमृष्य, असुरोह, धराजाकुंर, विदूररत्न, विदूरज। गुण—मृग, उष्ण, कफ और घाघुतामक, गुल्म और शूलप्रतामक। इसके धारण करनेसे भी शुभ फल होता है।

वैदूर्य रत्न महारत्नों में गिना जाता है। किसी किसी-के मतमें यह रत्न विदूर पर्वत पर उत्पन्न होता है इसीसे इसका नाम वैदूर्य हुआ है। 'विदूरैभ्य वैदूर्यं' इस ध्युरपत्तिके अनुसार भी विदूरजात मणि ही वैदूर्य नामसे ख्यात है।

शुक्रनीतिमें दिखाई देता है, कि "वैदूर्यं केतुप्रोति कृते" "मैदूर्यं मध्यमं स्मृतं" यह रत्न केतुग्रहका प्रोतिकारी है और हीरक रत्नापेक्षा मध्यम रत्न कहा जाता है। राजवल्लभमें लिखा है,—मुक्ता, विद्रुम और वैदूर्य आदि रत्न सारक गुणविशिष्ट, शोथन, कषाय रस, स्वादु याकी, उन्लेपनकर, पशुहिनकारी है; इस रत्नके धारण करनेसे पाप और दूरिद्रना दूर होती है। उर्द्धमें इस रत्नकी लहसुनिया रत्न या लक्षणोप कहते हैं।

राजनिर्यण्टके मतमें यह रत्न साधारणतः कृष्ण-पीतवर्ण है, किन्तु शुक्रनीतिकं मतमें यह रत्न नीलरक्त-वर्ण है।

इस रत्नका रङ्ग चाहे जो भी हो, किन्तु इसमें जरा भी सन्देश नहीं, कि इसकी छाया या कान्तिगत विशेष घैलक्षण्य है। राजनिर्यण्टमें लिखा है—

वैदूर्यं तीन तरहके होते हैं—पहला घेणुपलाज अर्थात् वामकी पत्तीकी तरहका, मयूरकण्टकी तरहका दुमर, तीसरा मार्जार आँवकी तरहका है। इनमें जो बड़ा, स्वच्छ, म्निभ और पत्रनमें भारी हो, वह उत्तम है।

जो पिच्छाय अर्थात् विवर्ण और जिसके भीतर मिट्टी या जिलाका वाग दिखाई देता है, जो पत्रनमें हल्का, कृत्वा, क्षतयुक्त, मासविहसि चिह्नित, कर्कश और कृष्णाम है, वह वैदूर्यं निन्दित है, इसको दूर फेंकना चाहिये। इस तरहका निन्दित वैदूर्यं धारण करनेसे अशुभ फल होता है।

इसकी परीक्षा—कसीटी पर वैदूर्यं घिसनेसे जिसकी छाया और स्पच्छता परिष्कृत होती है, यही वैदूर्यं उत्तम है।

महदपुराणमें लिखा है, कि ईरवोंके महाप्रलय-कृमिगत समुद्रगर्जनकी तरह अथवा यज्ञनिर्वाय नगरसे अनेक रङ्गके वैदूर्यको उत्पत्ति हुई थी, ये सब वैदूर्यं जोमायुक्त,

मनोहर आभा और वर्णविशिष्ट थे। विदूर नामक पर्वतके उच्च प्रदेशके निकट अर्थात् प्रान्तदेशों कामभूति नामक स्थानमें इस रत्नका आकार है। वैदूर्यध्वनिमय होनेमें उसका आकार सुन्दर और महागुणविशिष्ट हुआ था। उक्त महागुण आकारसे उत्पन्न या उत्पन्न होनेके कारण यह लैलापयका भूषण हुआ है। उस दानव राजके गर्जनके अनुरूप वर्षाकालके मेघराजकी तरह विचित्र मनोहर वर्णविशिष्ट और नाना प्रकार भास अर्थात् दीप्तियुक्त वैदूर्यं मणि उन आकारोंसे मणि-स्फुल्लिङ्गोंकी तरह आधिभूत हुईं।

वैदूर्यं कई तरहके होने पर भी मयूरकण्टके रङ्गही तरहका और वांसके पत्तेके रङ्गका वैदूर्यं प्रधान या उत्कृष्ट है। जिसका वर्ण या वाणीकण्ट पक्षीके पंख भागकी तरह है, उस वैदूर्यं मणिके धारण करनेवालेकी और उसके मानिककी यह सीमाभयनाली बनता है। फिर कोई वैदूर्यं क्षोवपूर्ण हो, तो वह क्षोव ही पुञ्जता है। इसलिये इसकी विशेषरूपसे परीक्षा करनेकी आवश्यकता है।

गिरिकीर्त्त, जिशुपाल, काँच और स्फटिक आदि कितनी ही मणि वैदूर्यं मणिकी तरह जमीनमें विद्यमान हैं। इन सब मणियोंका आकार वैदूर्यंकी तरह होने पर भी परीक्षामें वैमो नहीं है। अतएव ये सब मणि वैदूर्यंसे इतर जातिकी हैं।

लिखशाभाव अर्थात् प्रमाणकी शुद्धता हेतु काँच, पत्रनमें हल्का होनेकी वजह जिशुपाल, दीप्तिहीनता प्रयुक्त गिरिकीर्त्त, रङ्गको उज्ज्वलता रहनेसे स्फटिक, विज्ञातोप वैदूर्यं कई तरहके होने हैं। अशाशय मणिकी तरह वैदूर्यं मणि भी विज्ञातोप है। समस्त विज्ञातोप मणि ही सजातोप मणिकी समान वर्णयुक्त होता है। नाना तरहके प्रमाणों द्वारा उनका प्रमेद स्थिर करना होता है। म्नेद प्रमेद अर्थात् लायण्यकी सूक्ति, लघुता (पत्रनमें हल्का) शृङ्खल (महद्विनता) ये सब प्रमाण विज्ञ है।

सुतार, पत्र, शरयच्छ, कलिल और ध्वज ये पांच वैदूर्यं महागुणमयान होने हैं। उनमें विदूर्यके, मेघकी तरह या लहसुनके रङ्गका कलिल, विर्मक और ध्वजगुण-

विशिष्ट जो वैदूर्य है, उसे देवगण भूषणरूपसे व्यवहार करते हैं।

यह मणि यदि दीप्ति हो अर्थात् उससे तेजः निकलता हो, तो यह सुनार कहलाती है। आकारमें देखने पर छोटी किन्तु घनमें भारी ऐसी मणिकों घन कहने हैं। जो मणि कलङ्क आदि दोषसे शून्य है, वह अष्टपत्र है। जिसमें चन्द्रकलाको तरह एक तरहका चञ्चलवन् पदार्थ दिखाई देता है, वह कलिल कहलाती है। यह राजाओंको भी सम्पत्तिदायक है। जो अथयव-विशिष्ट अर्थात् विशेषकरसे असंशुद्ध है, वह षष्पद्म है।

इस मणिके जैसे पांच गुण हैं, वैसे ही इनके पांच महा दोष भी हैं। दोष, जैसे—कर्मर, कर्मग, त्रास, - लङ्क और देह। जो देखनेमें शर्करायुक्त अर्थात् कर्मरयुक्त दिखाई दे, वह कर्मरदोष है। इसके धारण करने पर बन्धुनाश होता है। जिसके देखते ही टूटनेकी प्राप्ति उत्पन्न होती है, वह त्रास नामक दोषयुक्त है। इसके धारण करनेसे वंशनाश होता है। जिसकी गोदमें विजातीय घन दिखाई दे, उस दोषका नाम कलङ्क है। इसका धारण करनेवाला नाशको प्राप्त होता है। जिसमें देखनेमें मालून् हो, कि मललित है, वह भी सद्दोष है। इस दोषको देहदोष कहते हैं। इस देहदोषयुक्त वैदूर्यको धारण करनेसे शरीर क्षययोग्युक्त होता है।

(युक्तिरूपतः)

इस तरह वैदूर्यके गुणदोषका विचार कर धारण करना चाहिये। वैद्यकप्रणयमें औषध प्रस्तुतके स्थानमें जहां वैदूर्य मणिका उल्लेख है, वहां उसे शुद्ध कर लेना चाहिये। शोधनप्रणाली हीरेकी तरह है। अर्थात् जिस तरह हीरा शुद्ध किया जाता है, उन्हीं तरह वैदूर्य भी शुद्ध किया जाता है।

वैदूर्य कर्षातन मणिका प्रकारभेद है। प्रकृत वैदूर्य सदा नहीं मिलता। इस जातिके जितने पत्थर हम देखते हैं, वह उतना पक्का दाना या कठिन नहीं है। साधारणतः हरिद्रा (जड़), कटा, सपूज और कभी काले रङ्कका वैदूर्य मिलता है। मयूरकण्टकी तरह रङ्गविशिष्ट नीलामहृष्णकाय प्रस्तर सर्वापेक्षा उच्छेद है। प्रस्तर चाहे जिस-जिस वर्णके वर्षों न हों, उनके बोधमें बिल्लीकी

आँखकी पुतलीके समान उज्ज्वल श्वेत वर्ण एक देखा या आलोकज्योतिः है। इस देखाकी दीप्ति कभी इन्द्रधनु-को तरह विभिन्न वर्ण धारण करती है, कभी यह कुछ उज्ज्वल आलोक विकिरण करती है। पत्थरके दानेका गठनवैचित्र्य और निर्गलता ही इसका एकमात्र कारण है।

आलोकविहीन स्थानमें वैदूर्य पर दृष्टिमिश्रित करनेसे एक सादा दागके सिवा पत्थरका कोई दूसरा विशेषत्व दिखाई नहीं देता। गैसका आलोक अथवा प्रदीप्तसूर्या-लोक इस पर पड़नेसे इस देखाकी आभ्यन्तरिक दीप्ति उद्भाविन् हो उठती है। पत्थरको जितना ही इस ओर उस ओर झुकाया जाता है, उतनी ही आलोक देखा दीप्त होती है। किन्तु आलोकको ओर रखनेमें इसका आलोक सङ्कुचित हो कर बिल्लीकी आँखकी पुतलीकी तरह दिखाई देता है।

भारतवासी ऐसे वैदूर्यको बहुत पसन्द करते हैं जो ओलिभ फलक रङ्गकी तरह काला हो और जिसके दोनों कोनोंसे दीप्ति उज्ज्वल और आलोक देखा दुर्गो दिखाई दे। पाश्चात्य देगवासी सेवकी तरह सपूज या गाढ़े ओलिभकी तरह रङ्गदार वैदूर्य ही उत्तम सम-भक्त है।

वैदूर्यके दृढ़त्वका परिमाण ८५, नीला, सुग्नी आदिके द्वारा उस पर आँसू दिया जाता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ३.८ है। नलसे सम्युत्साय प्रदान करनेसे यह गल जाता है। किन्तु अल्प मात्रा में उसको शरीरमें किसी तरहको विद्युति सम्पादन कर नहीं सकते। रासायनिक परीक्षा द्वारा जाना जाता है, कि उसमें ८० भाग प्लुमीना और २० भाग ग्लूसिना है। इसका वर्णांश प्रोटक्साइड आगमन है।

कण्टिककी तरह वैदूर्यके भी दाग होता है। यह तपहल और चीपहल होता है। प्रस्तरकी प्रकृतिके अनुसार अर्थात् स्पष्टता और अस्पष्टताके कारण आलोककी दीप्ति का तारतम्य भी है। आलोकगमन भी दोनों ओर प्रतिफलित होता है। धारण द्वारा यह वैद्युतिक शक्ति आकर्षण करती है और अधिक क्षण स्थायी होता है।

उत्तर अमेरिका, मेरामिया, यूराल पर्यन्त, भारत और सिंहलमें नीले पत्थरोंके साथ चैदूर्य दिखाई देता है। पर्याप्तमानमें सिंहलद्वीपमें सुन्दर रूपसे चैदूर्य काटा जाता है। ये कभी एक, कभी दो पृष्ठ श्युभ्रजाकार बनाते हैं, पारचात्य जौहरियोंकी भाषाओंमें उस प्रथाको en cabochon कहते हैं।

जिरके पीन तथा अंगूठीके लिये इसका प्रयाण व्यवहार होता है। हीरेकी तरह इस पर कभी खुदाई नहीं होती। प्रन्तरका आकार और औजस्यत्वके श्युनाधिकते अनुसार उसके मूल्यमें कमी बेगी होती है। वर्षादिनेदुर्गम इसके दाममें उतनी कमी बेगी नहीं होती। क्योंकि, लोग अपनी पसन्दके अनुसार चैदूर्य खरीदते हैं। किन्तु जिस पत्थरकी आलोक रेखा एक कोनके बीचसे दूसरे कोने तक प्रतिफलित होती है और निर्दिष्ट सीमाद्वयके नीचेमें भासमान होती है और जिसके औजस्यत्वके बीच कोई दाग या काला चिह्न प्रतिविम्बित नहीं होता, ऐसे ही प्रस्तरोंका मूल्य अधिक है। साधारणतः १००) से १०००) मूल्यका चैदूर्य अंगूठीमें लोग व्यवहार करते हैं। सुना गया है, कि किसी-किसी राजाके घर लाखों रुपये मूल्यके चैदूर्य हैं। प्रायः अरब इत्र व्यासयुक्त अरब प्लाकार चैदूर्य गिना है। मणिके इतिहासमें ये होप (Hope) नामसे प्रसिद्ध हैं। सन् १८१५ ई०में यह मणि सिंहलद्वीपके राजासे प्राप्त हुई है। काएडो राजधानीके अधीश्वर इस मणिकी विशेष सावधानीसे रखते आ रहे हैं। कई शताब्दीके इतिहासमें इस मणिकी प्रसिद्धिका जिक्र है। रिबियो (Bihiero) के सरगित सिंहलके इतिहासमें इस मणिका उल्लेख है। यह १६वीं शताब्दीमें राजा उताके अधिकारमें थी। उन्होंने विशेष पत्थरके साथ इस मणिकी स्वर्णके ऊपर पद्ममग मणिमण्डित कर कर सुसज्जित कर लिया था। यह "en cabochon" प्रणाली काटी गई है। पण्डित लक्ष्मणारावणके पास और एक पत्थर चैदूर्य था। प्रवाद है, कि एक समय १००००) रुपये मूल्य पर भी उक्त पण्डित महाजाप देना नहीं चाहते थे। अन्तमें उन्होंने इस पत्थरकी ६००० रुपये पर मेगलसिंहके एक जमीन्दारके हाथ बेच दिया। मुर्शिदा-

बादके प्रसिद्ध महाजन बाबू धामसिंहदेवके पास एक काला चैदूर्य था। राय बदरांदास मुक्रीमके घर भाजा रत्नोंके चैदूर्योंके गठित एक कण्ठा है। सुन महाराज यनीन्द्रमोहन डाकुर बहादुरके एक पानदान पर एक कवचके अण्डके समान एक चैदूर्य अट्टिन या जड़ित है। इसका वर्ण कृष्ण पिङ्गलवर्ण है और उद्योतिरेखा अत्यन्त स्पष्ट है।

इस मणिकी आलोकरेखा एक कोनसे दूसरे कोनमें पानी जाती है। इसमें बहुतेरोंका यह गणाल है, कि अशुभताके अधिष्ठानके कारण इस मणिके भीतर आलोक प्रभाव होता है। प्राचीन आसीरीय इस मणिकी देवता बेलास (Belus) के प्रिय कहते थे। इसीलिये ये Oculus Bili नामसे परिचित है। कोई कोई ने woff's eye कहते हैं। कोई कोई जाति इसको पवित्र और भौतिक प्रभावनादाक समझती है।

प्रकृत चैदूर्यकी तरह एक तरहका नकली चैदूर्य भी बाजारमें दिखाई देता है। इसको कृत्रिम चैदूर्य या Quartz Cats' eye कहते हैं। यह उज्ज्वलता और कठिनतामें पूर्वीक मणिकी अपेक्षा बहुत शून्य है। यह साधारणतः पिङ्गलवर्णका होता है। यह काठिग्रयमें ६ से ६.५ है। आभेक्षिक गुणत्व २.६५। इससे काँचके पत्रमें चिह्न दिया जा सकता है। पत्थरिक परिसरसे यह द्रव किया जाता है और सोबके योगसे अन्तिमें राक्षस ही गण्य जाता है। इसमें ६४ भाग मिथिकाम, ५१ अंज भाषितजन और सामान्य परिमाणसे चूना तथा भावरण अविशुद्ध है।

अरबो इस मणि को जुजा कहते हैं। अरबो विवरणोंमें मालूम होता है, कि यमन देशमें अधिक खानमें हाउम, अशायत और गुजरातमें किसी समय अधिकतासे चैदूर्य उत्पन्न होता था। ये साधारणतः सादा, लाल, अरब और काले होते थे। अरबो जोहरी अरीककी तरह पहले चैदूर्य काट कर गर्म जलमें डालते थे। इससे मणिकी उज्ज्वलता कई अंशमें बढ़ जाती थी। याया-गुरो नामक पत्थरोंका रङ्ग बाहरी एक तरहका और भीतरका रङ्ग दूसरी तरहका होता है। सुलेमानो पत्थर साधारणतः लाल और काला दिखाई देता है। भाव-

नेलहार (हिङ्गुलोह सानिया) पथर सख्त और हरिद्रा रङ्गका होता है। अतिशय स्वच्छ आलोक प्रतिकलिका शक्तिविशिष्ट है।

इसके धारण करनेसे स्वभावता ही मनमें हर्ष उत्पन्न होता है। शरीर पीला पड़ जाये, तो इस मणिके धारण करनेसे उबकार होता है। शुर्किणी प्रसव वेदनासे बहुकाल तक कष्ट मोगती है, तो उसके गिरके फेशमें इसकी अंगूठी बांध देनेसे तुरन्त प्रसव वेदनासे मुक्त हो सम्तान प्रसव करती है। यदि बालकोंको खाँसी हो, तो उसके गलेमें बांध देनेसे तुरन्त कफ काट कर फँक देता और रोग शराम होता है। यह भूतमयनाशक और भौतिक प्रभाव अपनोदक है। इसकी मसम क्षत निवारक है। दन्तमज्जनों काम लानेसे दाँतकी जड़का मज्जवृत्त करता और आँखमें सुरुमेंकी तरह लगानेसे जलका गिरना बन्द होता है। इसके धारण करनेसे अशुभ स्वप्नका अशुभ फल भी नहीं होने पाता।

वैदेशिक (सं० त्रि०) १ विदेश सम्बन्धी, विदेशका।

२ विदेशसे आया हुआ।

वैदेश्य (सं० त्रि०) वैदेशिक देवो।

वैदेश्यसार्थ (सं० पु०) विदेशी माल।

वैश्वर—उड़ीसा-विभागस्थ गवर्नमेंण्टकी बङ्कि जमींदारीके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २०' २१' १५" ३० तथा देशा० ८५' २५' ३०" पू० महानदीके तट पर अवस्थित है। यहाँ नमक, मसाले, नारियल और पीतलके बरतनका विस्तृत कारखाना है। समी पदार्थ सम्बलपुरसे यहाँ लाये जाते हैं। ऊँ, गेहूँ, चावल, तेलहन बीज, लोहा, तसरका कपड़ा आदि यहाँ बहुतायतसे उत्पन्न होता है। सम्बलपुरके ध्वजसाथी अपना द्रव्य बदल तथा आरोह कर उक्त द्रव्य ले जाते हैं।

वैश्व (सं० पु०) विदेशस्थापत्यमिति विदेश-अम्। १ राजा निमित्तके पुत्रका नाम। इनका उत्पत्तिविरण. पिण्ड-पुराणमें इस प्रकार लिखा है,—जब राजा निमित्त निस्तन्तान मर गये, तर् धर्मका लोप हो जानेके भयसे श्रापियोंके अरणोंसे मद्य कर इन्हें राउव करनेके लिये उत्पन्न किया था। इनके पुत्र उदायसु थे। (पिण्डपु० ५१४ अ०) २ धाणक., सौदागर। (भमटोका भरत) ३

माचोन हालकी एक वर्णसंकर जाति। मनुके अनुसार इस जातिको उत्पत्ति ब्राह्मणी माता और वैश्य पितासे है। इसका काम अन्तःपुरमें पहरा देना था।

(मनु १०।१६)

वैदेहक (सं० पु०) वैदेह एव स्वार्थ क्व। १ धाणक., व्यापारी। २ वैदेह नामक वर्णसंकर जाति।

वैदेहक वपञ्ज (सं० पु०) व्यापारीके वेगमें गुप्तचर। ये समाहत्ताके अधीन काम करते थे और व्यापारियोंमें मिल कर उनकी कारवाइयोंका सूचना दिया करते थे।

वैदेहिक (सं० पु०) १ वणिक्., सौदागर। (भमटोका चारु०) २ एक वर्णसंकर जाति। (मनु १०।३६)

वैदेही (सं० स्त्री०) विदेहेंपु भवा विदेहस्थापत्य स्त्री या विदेह-मण्डोप। १ विदेह राजा जनककी कन्या, सोता। २ वैदेह जातिकी स्त्री। (मनु १०।३०) ३ गीचना। ४ पिप्पली, पोपल।

वैद्य (सं० पु०) विद्यां वेद विद्या-अण (उदधोते तद् द। पा ५।२।६५) १ परिष्ठत। २ वासकवृक्ष, अङ्गुस। ३ आयुर्वेद वेत्ता, चिकित्साशुक्तिक। पर्याय—रोगहारी, अमङ्कहार, मियक्., चिकित्सक, स्वध, विधि, विद्वान्, आयुर्वेदी। यह चार प्रकारके हैं—रोगहर, विषहर, शल्यहर और हृत्प्याहर। (महाभारत) वैद्यजाति स्वधमें विशेष विवरण देलो।

वैद्यके दोष और गुणकी आलोचना वैद्यक ग्रन्थमें (संस्कृत) विशेषरूपसे की गई है। संक्षिप्तरूपसे यहाँ उसकी आलोचना करते हैं—

वैद्य-लक्षण—जो चिकित्साकार्य करते हैं; उन्हें वैद्य कहते हैं। इनमें जो प्रशंसनीय हैं, उनकी बात कही जाती है। जो वैद्य, शास्त्रार्थमें विशेष व्युत्पन्नमति, दृष्टकर्म, स्वयं चिकित्साकुशल, सुप्रसिद्धहस्त, शुचि, शय्येश, अमिनव भोष्य और चिकित्साके उपयोगी उपकरणोंसे सुसज्जित, सहसा उपस्थितबुद्धि, धीमत्कि;सम्पन्न, चिकित्साध्वजसाथी, मिष्टमायो, सत्ववादी और धर्म-परायण हैं, वे ही वैद्य यथार्थ वैद्य कहलानेके पात्र हैं।

निषिद्धवैद्य,—कुत्सित वस्त्रपरिधानकारी, अमिय-भाषी, भ्रमिप्रामो, लोणोंके साथ ध्वजहारमें अनामिह और बिना बुलाये या जानेवाला वैद्य यदि धर्मवन्तरीके समान भी हो, तो किसी तरह यह प्रशंसनीय नहीं हो सकता।

वेदका काम—लक्षणोंद्वारा सम्यक् रूपमें रोग और रोगका उपशान्त करना ही वैद्यकका काम है। किन्तु वैद्यकशास्त्रप्रदाता नहीं है। कुछ लोग कहते हैं, कि सम्यक् प्रकारसे व्याधिका निषेध और उसकी उपशान्त करना ही वैद्यकका काम नहीं, यह परमायु प्राप्त करनेमें समर्थ होना चाहिये। क्योंकि १०० तरहकी आयुमृत्युसे बनानेवाला वैद्य ही है।

जैसे श्वेतकर्म बसी रहने हुए भी प्रवृत्त वायुके भौतिकसे श्वेतक शुभ जाता है, उसी तरह आयुशुभ हेतुजनित मृत्यु दुर्निर्मल उपसर्गके प्राबल्यके कारण परमायु रहने हुए भी प्राणियोंका प्राण विनष्ट हो जाता है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि रसक्रियाविनाशक वैद्य श्वेत निमित्त और भाग्यशु निमित्त चेदनासे राजाको मुक्त करनेमें समर्थ है।

चरकमें लिखा है, कि वैद्य, द्रव्य, रोगीका परिचारक और रोगी ये चार उपयुक्त गुणविशिष्ट होनेसे ही रोगका उपशान्त होता है। नहीं तो रोग प्रबल हो जानेसे रोगीकी मृत्यु ही जाती है।

वैद्य तीन प्रकारके हैं—छात्रपर, सिद्धसाधित और वैद्यगुणयुक्त भिषक; जो अथ निरिहसक शीघ्रचार, शीघ्र, पुस्तक और चातुर्व्यापलक्षण आदि द्वारा वैद्योंका अनुकरण कर भिषक नामसे अपना पश्चिप देते हैं, उन अथ वैद्यप्रतिरूपीकी छद्ममन्त्र भिषक कहते हैं। जो मूर्ख निरिहसक धी, यज्ञ, ज्ञान और ज्ञान सिद्धि प्रभृति गुणशून्य हो चरु भी सपनेकी धोसम्पन्न, यज्ञो, ज्ञानवान् और हनकामें समर्थ सिद्धा परिचय देते हैं, उनकी सिद्धसाधित भिषक कहते हैं। जो शीघ्र प्रयोग-ज्ञानज्ञान, व्यवहारकुशल और कार्पासिद्धि द्वारा सुप्रतिष्ठित और रोगीके लिये शारीर्यप्रद तथा जीवनरक्षक हैं, उनकी वैद्यगुणयुक्त भिषक कहते हैं।

वैद्य ही सारे नरीरके ज्ञानमें, नरीरकी उत्पत्तिके ज्ञानमें और प्रकृति विशुद्धि-ज्ञानमें संशयशून्य होते हैं। इनो तरह वैद्य ही सुषमाध्य, कृच्छुसाध्य, वायु और प्रातःप्राथम्य रोगोंके निदान, पूर्णरूप, यज्ञना और उपजय विश्राममें संशयशून्य हैं। ये ही त्रिविध आयुर्वेद मूलके हेतु हैं। सिद्ध और शीघ्रज्ञानके और वैद्यका-

पाद्यवादि त्रिविध शीघ्र प्राप्तके व्याख्याता, ३५ प्रकार मूलफलके, १६ प्रकार मूलप्रधान, १६ प्रकार फलप्रधान पृथक्, ४ प्रकार महास्नेहके, ५ प्रकार लयणके, ८ प्रकार मूलके, ८ प्रकार दुग्धके, क्षीरप्रधान और स्तनप्रधान, १ प्रकार अन्त्यान्त पृथक्के शिरोविशेषनादिके, पञ्चदशशब्द शीघ्रशोधके, १८ प्रकार पश्यायुके, ३२ प्रकार कूर्ण और प्रलेपके, ६०० विरचनके, ५०० कषायके व्याख्याता और स्वस्थ प्रतिविषयमें भोजन, पान, निषेध, व्यायाम, ज्ञान, श्रम, भासन, मात्रा, द्रव्य, अन्न, धूम, अश्वत्थ, परिभाजन, योगविचारण, व्यायाम, साहस्येन्द्रिय संरोध, चिकित्सा और मद्भूत इन सब विषयोंके विश्राममें परिणत; ये ही सोलह गुणवाले चतुर्धाशुका भेषक और विनिश्चय, त्रिविध पश्या और चातकलाज्ञान विषयोंमें संशय रहित हैं।

ये २४ प्रकारके स्नेह विचारणा, ६४ प्रकार रस और बहुत तरहके स्नेह, स्वेष, वष्य और विरेच्य शीघ्र विषयमें कुशल और शिरोविशेष रोगोंके शोधना, विकल्पन व्याधियोंकी शय पिष्टका और विद्रविरोगके त्रिविध शोधके बहुत तरहके शोधानुसंधानके, १४८ प्रकारके शोषाधिकरणके, १५० प्रकारके नानासम रोगके, ८० प्रकार गत और ४० प्रकार पित्त रोगके, २० प्रकार श्लेष्मरोगके और २० प्रकारके नानासम रोगोंके निवारणमें कुशल हैं। इनो तरहके वैद्य विगर्हित, अतिस्वीय और अतिकार्षण रोगके निदान, लक्षण और निरिहसके व्याख्याता हैं। ये ही दितादित, निद्रा, अनिद्रा और अनिद्रा आदिके चिकित्साविज्ञानमें कुशल हैं। इत्यादि गुणयुक्त वैद्य ही मृत्यु, मति और ज्ञान-योत्रनाज्ञानसम्पन्न हो अपने सर्वरूपभावके गुणसे सब प्राणियोंको माता, पिता और भाईके समान ही जगत्का हितसाधन करते हैं। उक्त गुणयुक्त निरिहसक ही प्राणाभिसर और रोगहृता कहलाने हैं।

उक्त प्रकारके गुणोंके विपरीत गुणविशिष्ट वैद्योंकी रोगाभिसर और प्राणहृता समझना चाहिये। ये वैद्यवेद्यधारी लोककष्टक, अर्थात् अथक राजाकी अमावष्यणोके कारण ही राज्यमें घूमने फिरने हैं। इनका उद्देश्य है—निरिहसा द्वारा पद प्राप्त करना। एसा

लोकके कारण वैद्ययज्ञको धारण कर अपनी अत्यन्त श्लाघा करते हुए राहमें विचरण करते हैं। किसीकी पीड़ाकी बात सुन लेने पर वह उस व्यक्तिके घरके चारों ओर घूमता रहता है और श्रमयोग्य प्रदेशमें खड़ा हो कर ऊँचे स्वरसे अपनी चिकित्साकी वड़ाई किया करता है। फिर जो चिकित्सा कर रहा है, बारंबार उसके दोषकी घोषणा करता है। यह प्रदर्षण, उपजड़वन और खेवादि द्वारा रोगीके आतमीय स्वजनके स्वपक्षमें लानेकी कोशिश करता है और अपनी स्ववाक्छा दिखलता है चिकित्साका भार सौं देने पर वह अपनी महानताको छिपा रखनेके भूमिप्रायसे दक्षतासूचक चतुरताके साथ बारंबार रोगीको देवता है। रोगप्रशमनमें असमर्थ होने पर रोगी पर "कुपटप" करना है, "बड़ा सादी" दोषारोप करता है। रोगीकी शेष दशामें यह स्थान छोड़ कर दूसरे स्थानमें माग जाता है। अर्थात् जहाँ मूख है, वहाँ जाता है और उनसे अपनी चिकित्सा-कुशलताका वर्णन करता है तथा पण्डितोंके पाण्डित्यका दोष वर्णन करता है। ये कभी पण्डित समाजमें नहीं जाते। जैसे मयङ्क दुर्गम पथ देख कर पथिक दूरसे ही उस पथकी त्याग देता है, वैसे ही यञ्चक वैद्यवैद्यारो वैद्य भी दूरसे ही पण्डित-समाजका परिव्राग करते हैं। यदि देवान् किसी तरह इनकी चिकित्सासे कुछ भी रोग श्मारोप हो जाता है, तो यह उसकी बारंबार प्रशंसा किया करते और अपने यशका पुञ्ज बाँधा करते हैं। ये किसीके भी अनुयोगकी इच्छा नहीं करते और किसीका अनुयोग करते भी नहीं। अनुयोगसे यमकी तरह भय करते हैं। इनके कोई आचार्य नहीं, शिष्य भी नहीं और साहाय्य भी नहीं है।

व्याध जैसे फौदा लगा कर पक्षियोंकी फंसाया करते हैं, वैसे ही वैद्यरूप धारण कर जो रोगियोंका अभ्येपण करते हैं, वे ब्राह्मण, बहुरथीन, राजाशान और देशज्ञान-हीन हैं, अतएव इस तरहके वैद्य वर्तनीय हैं। ऐसे वैद्य यमके अनुचरकी तरह पृथ्वीमें विचरण करते हैं।

जो सामान्य जीविकाके लिये वैद्यवाभिमानी हैं, उन

मूल विशारदोंको विद्वान् रोगी परिव्राग करे। क्योंकि वे यागुभक्षी सर्प हैं। सर्प जैसे यागु भक्षण करते हैं, वे भी वैसे ही जोशोंकी प्राणवायुका भक्षण किया करते हैं। ऐसे वैद्योंको दूरसे ही प्रणाम करना चाहिये।

यथार्थ वैद्य सबके ही पूजनीय हैं। रसायन, पृथ्व्योग और जो कुछ रोगोंकी बाँध है, वे सभी वैद्योंके अधीन हैं। अतएव देवराज इन्द्रे जैसे स्वर्गके अधिनी-कुमारद्वयकी पूजा की थी, पण्डित व्यक्ति भी वैसे ही बुद्धिमान् वैद्यारग प्राणाचार्य वैद्यकी पूजा करें।

चिकित्सक जब जराभरण-रहित देवोंकी भी पूज्य हैं, तब इसमें कौन-सा आश्चर्य है, कि वे जराध्याधि-भरणशील दुःखी सुखार्थी मानवोंके पूज्य हो। जो वैद्य सत्त्व-भाव, मतिमान्, ज्ञानवान् और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य हैं, उसी वैद्यकी प्राणिगण प्राणरक्षार्थ आचार्य वत् पूजा किया करते हैं। अतएव ऐसे गुणयुक्त वैद्य प्राणाचार्य नामसे अभिहित होते हैं।

ब्राह्मणोंके उपनयन संस्कार होनेसे उनको द्विजाति और वैद्याध्ययन सम्पन्न होने पर त्रिजाति कहा जाता है। जब तक वे अनधीतवैद्य रहते हैं, तब तक उनकी त्रिजाति अर्थात् वैद्य नामसे अभिहित नहीं किया जाता। जन्मसे ही वैद्य संज्ञा नहीं होती। ब्राह्मणोंके जन्म होनेके बाद त्रितने दिन उपनयन संस्कार नहीं होता, उतने दिन उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा ही रहती है। उपनयन होने पर वे द्विजाति और वैद्याध्ययन समाप्त होने पर त्रिजाति अर्थात् त्रिजन्मा वैद्य संज्ञासे अभिहित होते हैं। विद्या समाप्तिके बाद तत्त्वज्ञान हेतु "ब्राह्मणना" या "आर्य-मनः" उनका आश्रय करता है। ब्राह्मणादि द्विजाका इसी तरहसे वैद्यत्वकरसे जन्मात्तर होता है और वे त्रिज नामसे अभिहित होते हैं।

जो बुद्धिमान् पुरुष दीर्घायुः लाभ करनेकी इच्छा करें, वे प्राणाचार्य वैद्यके घन भादि विषयमें स्पृहा या उसके प्रति क्रोध न करें तथा उसका कोई अहित न करें। जिस वैद्य द्वारा जो व्यक्ति चिकित्सित हुए हैं, उस वैद्यकी कोई उपकार-जनक बातें सुन कर या न सुन कर यदि वह उसका उपकार नहीं करता, तो उस मनुष्यकी इहजगत्में निपटति नहीं है। फिर वैद्य भी

यदि परम धर्म पानेके नमिच्छापी हो, तो उनको चादिये, कि अपने मग्नानकी तरह रोगियोंकी पीड़ाको दूर करनेमें यत्नवान् हो ।

जो वैद्य रोगीके वा पूजित नहीं होने, उसका रोग नष्ट नहीं होता । रोगी वा दूत शून्य हाथसे वैद्यका दर्शन न करे । क्योंकि नाश्रमे लिखा है, कि राजा, वैद्य और मुद्रका शून्य हाथसे दर्शन न करना चादिये ।

वैद्य निम्नोक्त व्यक्तियोंको छोड़ कर चिकित्सा करे ।

जो व्यक्ति अत्यन्त क्रोधो, अविचारितकार्यकारी, मयशोभ, नैच द्वारा उपरुन होने पर भी उसे अमाहा-कारी, व्याकुलचित्त, जोकामिभूत, जिसकी मृत्यु निकट हो, इन्द्रियगतिरहित, वैधोंके प्रति जटताचरणकारी, चिकित्सकके प्रति अविश्वासो या वैद्यके वापसकी भय हेला करनेवाला और जो व्यक्ति चिकित्साव्यवसायो हो, वैद्य इन व्यक्तियोंको चिकित्सा न करे । क्योंकि इनकी चिकित्सा करनेसे बड़े तरहके शोषोंकी आशंका है । (भागवतका) २ जातिविशेष । वैद्यजानि देखो ।

वेद ष्य । ३ वेद-सम्बन्धीय ।

वैद्यक (सं० श्लो०) आयुर्वेद, चिकित्साशास्त्र । अष्टाङ्ग चिकित्साशास्त्र, या अष्टाङ्ग वैद्यशास्त्र । आयुर्वेद शास्त्रकी ही वैद्यक कहते हैं । सुधृतके मतसे जल्य, प्राणायम, कापचिकित्सा, भूतविद्वेष, कीमाभूत्य, भगदत्तल, रसायनतन्त्र और याज्ञोकरणतन्त्र इन अष्टाङ्ग चिकित्साशास्त्रकी वैद्यक कहते हैं ।

वैद्यवर्णनश्लोकके मतसे द्रव्याभिधान, कण्डविरचय, वायुश्लेषरसादान, प्राणविद्वेष, पञ्चाक्षरोपभाव द्वारा भूतनिग्रह, विषप्रकोचार, यालोपचार, रसायन, प्राणायम और वृष्य—इन अष्टाङ्ग शास्त्रकी वैद्यक कहते हैं ।

अथर्ववेदपुराणमें लिखा है, पहले प्रजापति प्रह्लासे अक्षु, पशु, गान, अथर्वनामक नार वेदोंके दर्शन किये पीछे उनके अर्थोंकी वर्णालोचना कर आयुर्वेद नामसे एक वेदकी सृष्टि की । इसके बाद भगवान् प्रह्लासे उक्त वेदवाचक वेद गार्हपत्यवेदकी आज्ञा किया । अक्षरके भी इस आयुर्वेदमें स्वप्न एक संहिता बनाई । अन्तमें भगवान् बनाई संहिताके साथ उक्त आयुर्वेद

अध्ययन करनेसे उन सबोंने दोनों शास्त्रोंका दर्शन कर एक संहिता तैय्यार की । इन सब संहिताओंका विचारण इस तरह लिया है,—अथर्वतरो, विद्योदास, जगदी-राज, अभिनोक्तुमारद्वय, गङ्गल, सद्देव, पमराज, क्ययन, जनक, सुष, जाबाल, जाजलि, पैल, कवय, भगवत्य, ये सोलह गार्हपत्यके गिण्य हैं । पहले भगवान् अथर्वपरिने मति सुन्दर "चिकित्सातत्त्वविज्ञान" नामक एक संहिता रची, पीछे विद्योदासने चिकित्सादर्शन और काशीराजने 'चिकित्साकौमुदी, नामक मति अलमशास्त्रकी रचना की । अभिनोक्तुमारद्वयने 'चिकित्सासारनाम', नकुलने 'वैद्यकसर्गस्य', सद्देवने 'व्याधिसिद्धिनि-र्द्दन', पमराजने 'ज्ञानार्णव' क्ययनने 'शोषदान', जनक-ने 'वैद्यकसर्गस्यमञ्जन्', सुषने 'सर्गसार', जगदीशने 'तन्त्रसारक', जाजलिने 'वेदाङ्गसारतन्त्र', पैलने 'निदान', कवयने 'सर्गप्रत्यक्ष' और भगवत्यने 'द्वैतनिर्णय' नाम-की संहिता रची । ये पौष्टशतम्ब ही चिकित्साशास्त्रके वीज स्वरूप हैं और व्याधिनाशके कारण तथा बला-धानकारी हैं । इन वैद्यक प्रयोगोंमें रोगीको चिकित्सा-का वर्णन किया गया है ।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण सं० १६ प०)

भायप्रकाशमें लिखा है, कि पहले प्रह्लासे आयुर्वेदका प्रचार करनेके लिये लक्ष श्लोकनामक अष्टसंहिता नामकी एक आयुर्वेदसंहिता रची और दूसरी इस संहिताका उपदेश दिया । पीछे राजर्षि दक्षसे अभिनोक्तुमारद्वयने आयुर्वेद अध्ययन कर चिकित्सकोंके वर्णालो-ज्ञानयत्नके निमित्त अपने नामसे अभिनोक्तुमारसंहिता बनाई ।

अथर्वश्लोकारद्वयसे इन्द्रने इस आयुर्वेदकी सीला । पीछे आनेवने जगमूको व्याधिप्रसन्न देव कर अत्यन्त द्वात्रे ही इन्द्रसे इस आयुर्वेद शास्त्रकी जिज्ञा पाई । इसके बाद मरुदाजने सुरपुरमें जा कर इन्द्रसे इस आयुर्वेद शास्त्रकी अध्ययन किया ।

जब नारायणने महत्वायत्तारमें वैद्यका उद्धार किया, तब अतन्त्रदेवने उस स्वप्नमें पदुवेद और अथर्ववेदक अन्तर्गत सब आयुर्वेद पाये । इसके बाद एक दिन अतन्त्रदेवने भूतलकी अथर्वशाका दर्शन कर अक्षरसे

पृथ्वीमें जा कर देखा, कि भूमण्डलके लोग व्याधिप्रस्त हो वेदनासे पीड़ित हो रहे हैं तथा स्थान स्थानमें अत्यन्त उत्कण्ठित और मुमुक्षुप्राय हो रहे हैं । अनन्तदेव मानवोंको इस तरह दुरवस्थाप्रस्त देख कर अतिशय हृषावशतः उनके दुःखसे दुःखित हो व्याधि दूर करनेकी चिन्ता करने लगे । इसके बाद विशेष विवेचना कर साथ अनन्तदेव मुनिपुत्ररूपसे पृथ्वी पर आविर्भूत हुए । यह कोई जान न सका, कि भगवान् अनन्तदेव स्वरूपसे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं । इसलिये ये चरक नामसे विख्यात हुए । चरकाचार्य मानवोंको व्याधि विनाश कर वृद्धरूपतिके पुंजीय हुए ।

आग्नेय मुनिके शिष्य अग्निवेश आदि मुनियोंने अपने अपने नामसे जिन तन्त्रोंकी रचना की थी, चरकने उन तन्त्रोंका जीर्णोद्धार कर चरकसंहिता प्रणयन की । यह संहिता वैद्यकशास्त्रोंमें सर्वोत्कृष्ट है ।

चरकके प्रादुर्भाव होनेके बाद धन्वन्तरि आविर्भूत हुए । इस विषयमें लिखा है, कि एक बार पृथ्वीमें देवराज इन्द्रने मनुष्यकी ओर देखा । मनुष्योंका दर्शन कर हृषावशतः उनका हृदय व्यथित हुआ । इसके बाद दयालु इन्द्रने धन्वन्तरिके कथा,—तुम भूलोकमें जा कर काशीधामका राजा बन व्याधियोंकी चिकित्साके लिये वैद्यकशास्त्र प्रकाशित करो । धन्वन्तरि काशीमें एक क्षत्रियके घर जन्मग्रहण कर दिवोदास नामसे प्रसिद्ध हुए । दिवोदासने राजपद पर अधिष्ठित हो जगत्के उपकारके लिये धन्वन्तरि-संहिता प्राणयन की ।

विश्वामित्र आदि मुनियोंने ज्ञानचक्षुःसे जान लिया, कि काशीधाममें धन्वन्तरिके दिवोदास नामसे जन्म ग्रहण किया है । तब विश्वामित्रने अपने पुत्र सुश्रुतसे कहा, कि तुम जीव लोकोके उपकारके लिये काशीधाममें जा कर आयुर्वेदशास्त्रका अधयन करो । सुश्रुत अपने पिताके आह्वानुसार काशीधाम चले गये । उनके साथ अभ्यास्य १०० मुनि-पुत्र भी गये । इन सबोंने दिवोदाससे आयुर्वेद अधयन किया । यथा शास्त्र आयुर्वेदका अधयन कर सबोंने एक एक संहिता बनाई । इन सब संहिताओंमें सुश्रुत संहिता सर्वोत्कृष्ट है । इस तरह क्रमसे वैद्यकशास्त्रका बहुत प्रचार हुआ । (भाष्य ०)

वैद्यकशास्त्रमें चरक और सुश्रुत ही उन्नत हैं और इन्हींसे माना यद्यक प्रथम उत्पन्न हुए हैं ।

जो आयुर्वेदशास्त्र जानते हैं, या चिकित्साका व्यवसाय करते हैं, वे ही वैद्य या वैद्यक हैं । वैद्यक शब्द साधारणतः आयुर्वेद अर्थमें ही व्यवहृत होता है, आयुर्वेद शब्दमें वैद्यक शब्दके आलोच्य कई विषयोंको आलोचना की गई है । वेदविभागके बहुत पहलैले ही जो इस देशमें चिकित्सा-व्यवसाय प्रचलित था, जगत्के प्राचीनतम प्रथम ऋग्वेद पाठ करनेसे उसके सम्बन्धमें धारणा उत्पन्न होती है । अथवा वेदकी धात पीछे कहेमें । पहले ऋग्वेदसे ही उस प्राचीनतम कालके चिकित्सा-विज्ञानके प्रदर्शके कई प्रमाण यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं ।

भेषजतत्त्व या Pharmacology ।

१ । ऋग्वेदके समयमें भी आर्यगण शत सहस्र औषधि-द्रव्योंका व्यवहार जानते थे । यथा—

“सतं ते राजन भियनः सहस्रं मुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।”
(ऋग्वेद १२.२४६)

२. यहाँ है राजन वरुण ! तुम्हारे शत सहस्र औषधियाँ हैं, तुम्हारे सुमति विस्तारण और गभीर हो । उसी प्राचीन समयमें फार्माकोलोजी (Pharmacology) या मेटेरिया मेडिका (Materia Medica) आदि शास्त्रकी भी वषष्ट आलोचना हुई थी, इसका भी वषष्ट प्रमाण मिलता है ।

ऋग्वेदके दशम मण्डलका ६७वाँ सूक्त औषधिका स्तोत्रमय है । इसमें २३ ऋक् हैं, इन सूक्तका देवता औषधि, ऋषि भिषक् है । प्रत्येक ऋक् औषधके मादात्म्य सूचक और गभीर अर्थव्यञ्जक है । इन सब ऋकोंका मर्म इस तरह है—पूर्वकालमें तीन युगोंसे देवताओंने जिन सब प्राचीन औषधियोंकी सृष्टि की है, उन सब गिङ्गलवर्ण औषधके एक सौ स्रात स्थान विद्यमान हैं और तो यथा, सहस्र स्थान हैं । ये जननीस्वरूपा हैं, इनकी किया एक ही तरहकी है । रोगीको रोगसे बचाता है । ये फलपुष्पवती, दीप्तशालिनी और जपशालिनी रोगोंके प्रति अनुग्रहकारिणी और हृत्प्रदातामार्जन हैं । अध्वर्या, सोमयती, उज्वयती, उदोजल आदि औषधिका संप्रद

भीर उमके द्वारा रोगके भारोग्यकी विधान किया जाता था। भोवपियोंका गुण प्रत्यक्ष होता था। भोवप-
वा फल प्रत्यक्ष दिग्गता था। भोवप द्वारा दुर्बल वेद
मन्त्र होती थीं, मृत्युदरमें प्राण सञ्चार होता था। बार-
दनीं प्रकर्म विधा है, "जिस मरद बलयान् और मध-
यसों व्यक्ति सबको ही भावत करनेमें समर्थ होता है,
हे भोवपिना ! जिसके मङ्गलमें, प्रत्यङ्गमें तथा गाँड गाँडमें
विचारण करो, उमके रोग उस स्थानेसि दूर कर दो।"
भोवपिके गुणसे विद्विषके तरह रोग द्रुतयेगसे भागता
है। भोवप भावसमें मित्त कर काम करतो थो। १४
प्रक. पढ़नेसे मालूम होता है, कि वैदिक समयमें भो
बहुनेसे भोवपिवां एकमें मिलीं जाती थीं। जैसे—'इस
तरह सब परस्पर एक मन हो कर और एक कार्याकारिणी
हो कर मेरी इस बातके रणो।' इत्यादि। फलतः
प्रायेदके समयमें मध्य मध्य उद्भिष्ट रोग भारोग्यके
लिये व्यवहृत होते और ये सब भोवपिवां यद्येष्ट सुकक
प्रदान करतो थीं।

शासिधिया या Anatomy और Physiology

२। एनाटमी और फिजिओलोजीका सूत्रपात भो
प्रायेदमें दिगाई देना है। प्रायेदके १०थे मण्डलके
१३३ सूक्तों नाक, कान, गाल, मस्तिष्क, जिह्वा, मोथा,
जिवा, स्नायु, अस्त्रि, मन्त्रि, वाहू, हस्त, कर्ण, म-
गार्डे, शुद्धनाडी, वृहद्वल, हृदयस्थान, मूत्राशय, यकृत,
ऊरु, जानु, पाशियां, नित्रय, मन्त्रदार, सूत्रदार, लोम, मल,
आदि नाम-दिगाई देते हैं।

शिर, अणु, लेत्र, मरुन् स्थोम—एन पञ्चमूर्तें द्वारा
मनुष्योंकी वेद गठित है। अक.संहिताके १० मण्डल
१६० वें सू० उ अक.में उमका उल्लेख मिलता है। सूत्र
की दाह करते समय कहा जाता है—
"तरे वरुणोऽयं वातवाता ना च गरुड वृषिणो च धर्मणा ।
करो वा गरुड वरि षण्णे रिशभोऽपिन्द्रिगिण्डा वरीरेः ॥"

अर्थात् हे सूत्र ! तुम्हारे वरु (अर्थात् वरु भोकी
उपनिः) मूर्तेयक जाये, तुम्हारा श्वास वायुमें मिल
जाये, तुम्हारा पुण्यकन माहात्म्य मिल जाये, जन्ममें
मिल जानेमें यदि दित है, तो प्रत्येक जाये, तुम्हारे वेद-
के अथवा भोवपिवांमों आ कर मनस्थान करे ।

"तिरान्तु गर्भे यदमम" इत्यादि उक्तिसे मालूम होता
है, कि याम, पित्त और कफ भी प्रायेदके समय चि-
रसोंके सुपरिचित थे। माहादीं स्थोके वाक, चर्मके
स्पन्दनके मोंच जीवनीकियाका समयमें इत्यादि वरु
तरहके शरीर-विचयनात्मक आलोचने विषये सोत्राहारमें
प्रायेदमें दिगाई देता है

भ्रूणतत्त्व या Embryology

प्रायेदके दशमे मण्डलके १०४ सूक्तों विधा है,
'विष्णु खोमङ्गके गर्भधारणके उपयोगो बनाये', प्रजा-
पति शुक्रपात करे, पाता गर्भधारण करे, हे सिमोपति,
हे सरस्वति ! तुम लोग गर्भके धारण करे, पद्ममाला-
धारी देव अभिवद्रय गर्भरिपादन करे' हे पति ! अभि-
द्रय तुम्हारे गर्भस्थ जिस सन्तानके लिये सुवर्णनिर्माण
का अरणि धर्षण कर रहे है, द्वाये' महीनेमें प्रभूत होनेके
लिये दम तुम्हारे उस गर्भस्थ सन्तानका आह्वान करते
है।' वैदिक साहित्य पढ़नेसे मालूम होता है, कि विष्णु
जैविक तादृशके देवता, स्वयं जैविक तापके लक्षितता
और प्रजापति आर्षव शैजितक देवता है'। उक्त वैदिक
गर्भधारणनात्मक तादृशक यह है, कि गर्भधारणयोगो
जरायुमें विष्णु (वायुके अधिदेवता) द्वारा विष्णुंज
लाया जाता है और प्रजापति द्वारा मातृवृज संचित होता
है। सिमोपालो और सरस्वती गर्भकी रक्षा करतो है
और अभिवद्रय घृणकी वेद निर्माण करते हैं।

अक.संहिताका अनुसंधान करनेसे हमके साक्ष्य-
में और भो प्रमाण मिल सकने है। ऐतरेय ब्रह्मण्य प्रथम
जिला है,—

"तस्मान् वरां यो गर्भोपेयने पारो च गम्भरि ०००
तस्मान्मथे गर्भां पूता ।" (ऐतरेयब्राह्मण ६।१०)

इसमें हमका भो प्रमाण मिलता है, कि गर्भ निष्प-
सन्तान अघोमुल रहती है और उमके येम निवत रहनेमें
प्रसवके समय वरु सुत्रिया होती है।

अभिकीकृतमध्य और Surgery

प्रायेदके ११वां मण्डलके वरु ११६-१२० सूक्त तक
दम अभिवद्रयकी स्तुति देलने है। इन सब स्तोत्रोंमें प्रायेद
के मन्त्र समयके चिचिरमाजात्मने क्रिय तरह उपर्य
नाम किया था, चिचिरसके साक्ष्यमें प्रायेदकी कीतो

धारणा थी, किस किस व्यापारमें चिकित्सक आर चिकित्साका प्रयोजन होता था इत्यादि चिकित्सा सम्बन्धीय ऐतिहासिक तथ्यका बहुल संग्रान इन कई सूक्तों में दिखाई देता है। अमरकोषमें लिखा है—

“ * * * स्वर्णवाग्भिनो सुतो ।

नाखत्यावशिनो दक्षावाग्भिनो च ताशुभो ॥”

अर्थात् अश्विनो कुमारद्वय स्वर्णवैद्य, नासत्य, अश्वी, दक्ष और आग्निनेय इन कई पर्यायोंसे अभिहित होते हैं । सूर्यकी भार्या अश्विनोके गर्भसे इनका जन्म है ।

भावप्रकाशसे जाना जाता है, कि पहले ब्रह्माने अथर्ववेदके ऐश्वर्यस्वरूप आयुर्वेदका प्रचार करनेमें इच्छुक हो ब्रह्मसंहिता नामसे लाख श्लोकोंकी एक आयुर्वेदसंहिताकी रचना की। उन्होंने दक्ष प्रजापतिकी आयुर्वेद सम्बन्धीय उपदेश दिया। दक्ष प्रजापतिने फिर सूर्यवंशसम्भूत विद्वान् और देवताओंमें श्रेष्ठ अश्विनो कुमारद्वयकी आयुर्वेदकी शिक्षा दी थी।

भावप्रकाशसे जाना जाता है, कि ब्रह्मसंहिताके बाद ही अश्विनोसंहिता नामकी एक आयुर्वेद सम्बन्धीय संहिता अश्विनो कुमारद्वय द्वारा लिखी गई। भावप्रकाशमें और भी लिखा है, कि शिवने क्रीडित हो ब्रह्माका मस्तक काट डाला। अश्विनो कुमारद्वयने इस मस्तकको जोड़ दिया। इसी कारण अश्विनो कुमारद्वय उस समयसे यहाँशके भागी हुए। कटे गिरके जोड़ देनेमें अश्विनो कुमारोंकी यथेष्ट दक्षता थी। सुश्रुतके सूत्रस्थानमें भी इसके सम्बन्धमें प्रमाण मिलता है, यथा—

“अथ लोचर्ये देवा इन्द्रं परमागेन प्रवादयन् ताम्ना शिरः सहितमिति ।”

सुश्रुतका कहना है, कि देवासुरके संग्राममें शल्य-तंत्रको (Surgery विशेषतः military surgery) उत्पत्ति हुई; अश्विनो कुमारद्वय शल्यतंत्रके अधि-प्राणों देवता हैं। यद्यपि कटे गिरके जोड़ देनेके कारण ही ये पक्षमांगके अधिकारी हुए। दैत्योंके माघ युद्धमें देवगण क्षतविज्ञान हुए थे। अश्विनो कुमारद्वयने भंसाधारण क्षमताके मंत्रावलीसे एक ही दिनमें सबको आरोग्य कर दिया। यज्ञपारा इन्द्र भुजस्तम्भ रोगप्रस्त

और निशापति चन्द्रमण्डलसे पतित हो प्रपीडित हुए थे। अश्विनो कुमारोंने शीघ्र ही इनका आरोग्य कर दिया। सूर्यका घृतरोग, भगवैयका चक्षुरोग और चन्द्रका राजपक्ष्मा रोग अश्विनो कुमारद्वयकी चिकित्सासे शीघ्र ही प्रशमित हुआ था। भृगुमुनिके पुत्र ऋषयन अतिशय इन्द्रियासक्त हो उपराप्रस्त हुए और विह्वल हो उठे। अश्विनो कुमारद्वयने इनकी चिकित्सा की। उस चिकित्सासे ही उन्होंने चिरकुमार अवस्था पाई थी। राजपक्ष्मा चिकित्साके सम्बन्धमें दशरथेण्डलके अन्तमें जो एक सूक्त है, वह इससे पहले उल्लिखित किया गया है।

अश्विनो कुमारद्वय केवल मनुष्योंकी ही चिकित्सा नहीं करते थे, परं गाय मादि पशुओंको चिकित्सा में भी इनकी यथेष्ट क्षमता थी। जो गाय प्रसव करनेमें असमर्थ है, उन गायको भी दुग्ध्यतो बना देने में (श्रृक् १।११२।३, १।११६।२) इसके सिवा युद्धमें आहत घोड़ोंकी चिकित्सा कर शीघ्र ही उनको युद्धमें भेजनेके लिये उपयोगी बना देने में। पक्षियोंकी चिकित्सा में भी अश्विनो कुमारद्वय सिद्धहस्ते थे। (१।११२।८)

कुपमें फेके हुए और पाशवद्वैभवगन्धन, अनन्तक, वर्षाच और भुज आदि बहुत ऋषियोंकी मृत प्राय अवस्थामें उठा कर अश्विनो कुमारद्वयने जीवन दान किया था। यह कहा जा नहीं सकता, कि सिलवे-एरकी तरह कृत्रिम श्वास प्रश्वासका उपाय उन्होंने किया था या नहीं। किन्तु जलमल श्वासघट्ट लोगोंकी भी ये अनापास बना देने में (१।१२।५-६)। रोग-ऋषिकी स्वर्गतिकी बात ११६ सूक्तकी २४वीं श्रृक्में विशेष रूपसे विवृत हुआ है। इनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग तक चिन्नेष्ट हो गये थे। ये द्वा रात नी दिनों तक जलमें थे।

Occulist

प्रथम मण्डलके ११२ सूक्तकी ८वीं श्रृक्के पदोंसे मान्य होता है, कि ऋक्षाभ्य ऋषि अंधे थे अश्विनो कुमारद्वयने अपनों चिकित्सा में नेत्र अच्छे कर दिये। इसके बाद ११६ सूक्तसे १२० सूक्त तक और भी कई अंधे ऋषियोंके नेत्रप्रदान करनेकी बात देनी जाती है।

ऋक्षाभ्यके सम्बन्धमें सावधाने उपाध्याय इस तरह

निष्ठा है,—श्रद्धाभ्य सुविनियुक्ते पुत्र है । ये एक राजर्षि हैं । अभिव्यक्तता प्राप्त करने हैं । यह एक बार मेदिना बन कर श्रद्धाभ्यके पास आया था । श्रद्धाभ्यने इसके मोहनके लिये १०१ नागरिकके मेघको खाल्ट-खाल्ट किया था । इस सपरामर्शमें पितृने श्रद्धाभ्यको नेत्रदीन बना दिया । उन्होंने अभिव्यक्तकी स्तुति की । इस पर अभिव्यक्तने भा कर उनकी नेत्र प्रदान किया ।

Military surgeon ।

पराक्रम और धीमे दो पंशु हुए थे । अभिव्यक्तने इनकी भाति गोप कुर्सीसे घालने लायक बना दिया । प्रथम मण्डलके ११२२वें सूक्तकी २१वीं और २२वीं श्रुक्तियोंमें मातृम होता है, कि अभिव्यक्त समरक्षेत्रमें आहत पदातिपोंकी चिकित्सा किया करते थे । प्रथम मण्डलके ११६२वें सूक्तकी १५वीं श्रुक्तियोंमें मातृम होता है, कि गेल राजाकी पत्नी विशपता युद्धमें गई थी । उस युद्धमें उनका एक पैर बट गया था । रात्रिको धा कर अभिव्यक्तने बड़े हुए पैरमें लोहेका पैर जोड़ दिया । विशपता इस "भायसी जङ्घा"के साहाय्यसे स्वस्वपनलाभार्थं फिर युद्धमें गई ।

दुर्बो बनदान या Rejuvenation ।

१म मण्डलके ११६२वें सूक्तकी १०वीं श्रुक्तियोंमें लिखा है,—“हे नासत्यय ! जरीरके भावरणकी उत्तार कर फेक देनेकी तरह तुम लोगोंने जोर्णं चयन प्रविके जरीरसे जरा उत्तार कर उनकी नयवीन प्रदान किया था और तुम लोगोंने उन पुतादि रणक प्रविका जीवन बटा दिया था और इसके उपरान्त तुम लोगोंने ही उनकी बड़े हिलोका स्वामी बनाया था ।” श्रायेश्चैतुं दूस्वरो जगद् भो यद् बाहवान् दिग्दर् देना है । जगपय-प्राज्ञान्य-मे मां यद् बाहवान् है । महाभारत बनपर्वके चयन प्रविका भागवान् किमोसे छिया गदीं है ।

निर्वाची प्राप्तिदान या Resuscitation ।

उत्त. ११६२वें सूक्तकी १३वां श्रुक्तियोंमें लिखा है, कि हृत्पाके पुत्र श्रुत्तापरापल विभक्तय नामक श्रुत्तियुक्तकी मृत्युमें श्राकुल हो मृतपुत्र विष्णासुकी से अभिव्यक्तके शरणायन हुए । इन्होंने उन विष्णासुकी मृत-देहमें प्राण श्वासा था ।

भद्रक मरुतिया ।

११६२वें सूक्तकी १२वीं श्रुक्तियोंमें माध्वमें सायनने लिखा है, कि इन्द्र द्योचिकी प्राणवर्धयिषा और मनुष्यियाका उपदेन दे कर गये थे, कि यदि तुम यह विद्या किमो दूस्वरोको कर्तोगे, तो तुम्हारा निरद्वेदन कर्त्तव्य । अभिव्यक्तने द्योचिका मस्तक काट कर इसकी प्राण स्थानमें रख उस पर घोड़ेका शिर जोड़ दिया । इस तरह अभिव्यक्तने द्योचिमें प्राणवर्धं अर्थात् श्रुक्त साम पशु और मनुष्यियाका मध्वयन किया था । इन्द्रने पर बात जान ली और द्योचिका घोड़ेका मस्तक काट डाला । अभिव्यक्तने फिर मानयाय मस्तकको जोड़ दिया । द्योचिकी एक वीरानिक कथा प्रायः सभी जातमें है। भारतवर्षांगी द्योचिने जपनी दह्री श्रुक्तकी दो थी और उस दह्रीसे यज्ञ प्रस्तुत कर इन्द्रने पूत्रका संहार किया था ।

नामर्दकी पुत्र ।

उक्त सूक्तकी १३वीं श्रुक्तियोंमें माध्वमें सायनने लिखा है,—कि.सी एक राजर्षिकी पश्रीमती नामकी एक पुत्री थी । इसका स्वामी नामर्द था । पश्रीमतीने पुत्रके लिये अश्विद्वयकी गुलाया । ये वही भाये और उन्होंने उसको हिरण्यवस्त नामक पुत्र दान किया ।

गैरानिक परिचय ।

अश्विद्वयने कौटिलसे गर्भका जल योनि कर मृत-प्राणित किया था (१म. ११२ सू०) । श्रुत्तयुक्तकी पुत्र शर नामक स्तोत्राके योनिके लिये उन्होंने कुर्वा जल ऊपर उठा दिया, गौतम प्रविके पास कुर्वा ले गये, उसका तल भाग उच्च और मुक सोपा कर दिया था । उस कुर्वासे सुविन गौतमके योनिके लिये और सहस्र धनलाभार्थं जल ऊंचा उठ भाया था ।

(११६ सूक्त ६ श्रुक्त)

कुशुतकी विच्छेदा ।

११७वें सूक्तकी ७वीं श्रुक्तियोंमें माध्वमें सायनने लिखा था, कि घोषा नामकी प्रजापतिनी कर्त्तवीरानकी दुष्टिया थी, यह कुशुतगमन थी । इसमें उसका विषाद गदीं हुआ । इस कारण यह अधिक उग्र तक विनाके घटीं अविद्यादिनाके रूपमें पड़ीं रहा । योडि अभिव्यक्तकी

चिकित्सासे वह रोगमुक्त हो गई और उसका विवाह भी हो गया। कुट्टी श्याय्या नामक श्रृष्टिने भी अभिव्यक्तकी चिकित्सासे आरोग्य लाभ कर दोसिमती खो पाई थी।
 मन्थ और बधिरचिकित्सा।

इसी सूक्तकी ८वीं श्रृङ्खले यह भी मालूम होता है, कि कण्व श्रृष्टिकी आंखें न रहनेसे वह चल् फिर नहीं सकते थे। अभिव्यक्तने उनको नेत्र प्रदान किया था। नृपत्-पुत्र बधिर हो गये थे। किसीकी बात सुन नहीं सकते थे। ये भी अभिव्यक्तकी चिकित्सासे आरोग्य हुए थे।

विलपित-देहमें प्राणदान।

११७वें सूक्तकी २४वीं श्रृङ्खले लिखा है, कि श्याय्या श्रृष्टिकी शत्रुओंने तीन टुकड़े कर दिये थे। अभिव्यक्तने उस त्रिपण्डित देहको जोड़ कर सजीव किया था। शल्यतंत्र या सर्जरीमें अभिव्यक्तका जैसा प्रभाय और प्राधान्य कहा गया है, अर्थात् चिकित्सामें भी उसी अपेक्षा उनके चिकित्सागौरवमें कमी नहीं पाई जाती। आधुनिक चिकित्साविज्ञान जिन सब अद्भुत कर्म-साधनके निमित्त धीरे धीरे आशान्वित हो रहा है, श्रृष्टिकी चिकित्सक अभिनोकुमारद्वय उन सब विषयोंमें विशेष दक्ष थे।

वैदिक श्रृष्टि इसके लिये प्रार्थना करते रहते थे, जिससे उनकी देह नीरोग रहे और सुदृष्टिके साथ एक सौ वर्षसे अधिक दिनों तक वे जीते रहे। जैसे—

"उत् परयन्तश्नुवन्दी यं मायुरस्तमिवेज्रिमायां जगम्याम्।"

(१।११६।१५)

लास्यतत्त्वं वा Hygiene।

श्रृष्टिके समयमें इसलिये लोग औपचकी व्यवस्था करते थे, जिससे आजीवन जरा द्वारा आक्रान्त न होना पड़े। इसका दृष्टान्त कपयन-श्रृष्टिके प्रसङ्गमें दिया गया है। सूर्य जगत्के पवित्रतासाधक हैं। सूर्यको किरणोंसे जगत् शुचि होता है। साथ ही कई तरहके क्षीय सूर्य द्वारा विनष्ट होते हैं। आर्यां श्रृष्टियोंने श्रृष्टिके स्तोत्रमें सूर्यके इस तरहके विविध गुणोंको जान कर उनका स्तव किया है। सूर्य कर विस्तार कर विभक्त पुष्टिसाधन करते हैं।

"विश्वस्य हि पुष्टये देवा ऊर्ध्वं प्रवाहा वा प्रुणायिषि विपार्षते" (१।१८।२)

अनिका दूसरा नाम पावक है। श्रृष्टिके इस अर्थसे बहुत स्थानोंमें अनिका स्तोत्र है। मरुदुग्ण हमारे प्राण है और मरुदुग्ण ही हमारे जाधनके सहायक है, इस स्तोत्रका भी श्रृष्टिके अभाव नहीं है। जिस जलके गुणकी व्याख्याकी ले कर आद्य कलके वैज्ञानिकगण निरन्तर विद्यत हैं, प्लोपिचिक चिकित्साविज्ञानमें जो जल औषध कह कर कवित्त हुआ है, जर्मनदेशके आधुनिक दार्ष्टोपिचिकोंने जिस जलको रोग-प्रतीकारका एकमात्र उपाय निर्देश किया है, श्रृष्टिके प्राचीनतम श्रृष्टियोंने उस जलको नैऋत्यसम्पादनां शक्ति (Vismedicatrix Naturae)के सम्बन्धमें कैसा अनिप्राय प्रकाश किया है, यह भी देखिये—

"आपः इहा उ मेयवी रापो भमी वचातनीः।

आपः सर्वस्य मेयजीत्वास्ते कपयं नु मेयत्रम्॥"

(१०।१३।५)

अर्थात् जल ही औषध, जल ही रोगशान्तिका कारण और जल सब रोगोंकी औषध है। जल तुम लोगोंकी औषध विधान करे।

"अप्यु भन्तः अमृतम्, अप्यु मेयत्रम्, अया उत प्रशस्तये देवाः मयत वाजिनः।" (१।२३।१६)

जलमें अमृत है, जलमें ही औषध है, इसकी श्रृष्टिके भी देखिये,—

"अप्युमें तामः अमवीत् भन्तः विरवानि मेयत्राः।

अग्निं च विश्वशाम्भूयं आप च विश्वऽमेयत्राः॥"

अर्थात् जलमें सब औषध है। सामने हमसे ऐसी बात कही है और जगत्के सुखके लिये अग्नि है।

(वैतिसीवसं २।६।६।७)

श्रृष्टिके भी लिखा है—

"आयः पूषोत मेयंश्च वषयं तन्वे मग ज्योक् च र्षं इदो।"

(१।२३।२०)

हे आपः! मेरे शरीरके लिये रोगनिवारक मेवत्त परिपुष्ट करो।

सामयेदोव सम्घवाच्यन्तके प्रारम्भनागमें भी इसी तरह जलके गुणका कीर्तन है—

सिद्धागत है। मलेरिया प्रभृति विष रालिकालमें ही प्रमाय प्राप्त करता है। वैदिक ऋषिने इस सूक्तकी श्वो और १०थी ऋकोमें दृढताके साथ सूर्याका विनाशकता-गुणके सम्बन्धमें उल्लेख किया है। शकुन्तिका नामके छोटे छोटे पक्षी भी अनेक प्रकारके विषोंका नाश करते हैं। १२वीं ऋकमें लिखा है,—इषकीस अग्निस्फुल्लिङ्ग विष नाश करे। यह भी वैज्ञानिक सिद्धागत सम्मत है। १३वीं ऋकमें लिखा है,—“में सव विषविनाशक नयो नदियोंका नाम लेना है। नदो-प्रवाहमें विष नाश होता है। यह भी आधुनिक चिकित्साविज्ञानके सिद्धागित सत्य है। नकुल, इषकीस तरहकी मयूरियों और सात नदियोंके विषनाशक गुणका कीर्त्तन किया गया है।

७०^{वें} मण्डलके ५०^{वें} सूक्तमें सर्पविष और अग्न्याय विषका उल्लेख है। नाना प्रकारके विषका उल्लेख इस सूक्तमें दिखाई देता है। यथा—“कुलायकारी और सर्वदा यद्यमान विष”, “अजका नामक रोगजनक दुर्दान-विष”, वृक्षादिके पर्ण स्थानमें उद्भूत “जातु और गुल्फ-स्फोटिकर वन्यगविष”, “शामलमें उत्पन्न विष”, “नदोजलस्य उद्भिद्दुटपन्न विष” इत्यादि बहुतेरे विषोंकी बात लिखी है। परयत्तीं चिकित्सा शास्त्रमें “अगदत्तम्” नामक चिकित्साङ्ग विभागमें विष और विष चिकित्साका वर्णन है।

यजुर्वेदजमें भी वैद्यकशास्त्रका पूरा उल्लेख है।

भायुर्वेद शब्दमें देखो।

अथर्ववेद और भायुर्वेद।

यद्यपि ऋग्वेद और यजुर्वेदमें वैद्यकशास्त्रका यद्ये उल्लेख दिखाई देता है तथापि यथाद्यमें अथर्ववेद ही वैद्यकशास्त्रका मूलग्रन्थ है और भायुर्वेद अथर्ववेदका उपवेद है। येसा चरक और सुभ्रुतने अपने अमिमत्त प्रकाश किये हैं। “भायुर्वेद” शब्दमें इसका पूर्ण रूपसे विचार किया गया है। यहां अथर्ववेदसे वैद्यकके सम्बन्धमें कुछ अलोचना की जाती है।

अथर्ववेदके भौषज्य, मायूष्य, मागिचारिक, छरया-प्रतिहरण, स्त्रीकर्मा, सामनस्य, राजकर्म और पीष्टिक आदि स्यापार वैद्यक शास्त्रके धोजलरूप हैं। शागि

स्वस्त्ययन और माङ्गल्य कर्मादि भी “भौषज्य” के अन्तर्गत हैं। अथर्ववेदके अधिष्ठान कौशिकसूत्रके २ से ३२ अध्याय तक वैद्यकशास्त्र भी आलोचनासे परिपूर्ण है। अथर्ववेदके ब्राह्मण ग्रन्थमें और अग्न्याय सूक्त-ग्रन्थमें भी वैद्यकके आलोचित विषयका उल्लेख है। इन सब विषयोंमें अथर्ववेदमें बहुप्रकार और बहुप्रकारकी चिकित्साका विवरण दिखाई देता है। अथर्ववेदके मन्त्रोंमें जो अस्पष्टरूपसे उल्लिखित हुआ है, सूक्त-ग्रन्थमें वे सब विषय विवृत हुए हैं। फलतः जगत्के अति प्राचीन कालमें चिकित्साप्रणाली कैसी थी, अथर्ववेद और तद्वत्तभुंक्त ब्राह्मण और सूक्त ग्रन्थ आदिमें उसका यद्ये प्रमाण मिलता है।

प्राचीन अथर्ववेदमें उषर, यक्ष्मा, अतिसार आदिकालक्षण है। वर्त्तमान भायुर्वेदमें भी ये दिखाई देने हैं। अथर्ववेदमें उषर “तपमन” नामसे और अतिसार “शास्त्र” नामसे अभिहित हुआ है। अथर्ववेदमें जिन सब रोगों और उद्भिदोंके नाम भाये हैं, उनमें सबका सम भना बड़ा कठिन है। रोग और भूतादि प्रस्त रोगोंको पृथक् रूपसे आलोचना नहीं की गई है। जो सब रोग और अथर्ववेद द्वारा चिकित्सायोग्य हैं, उन सब रोगोंमें भी मन्त्र और यन्त्र (ताबीज) द्वारा चिकित्सादिकी व्यवस्थाकी गई है। ये सब ताबीज प्रायः उद्भिज द्रव्यसे ही प्रस्तुत होते थे। अथर्ववेदकी चिकित्सा-प्रणाली बहुत अद्भुत थी। कामलारोगमें वेदका रंग पोला हो जाता है। सुतरां पात पदार्थोंमें ही रोगोंके पोत वर्ण भेजनेके लिये प्राथना की जाती थी। नवमन या उषर होने पर शरीर गर्म हो जाता है। सुतरां शीतल पदार्थ ही उसे भेजना कर्त्तव्य है। इनके लिये मेढककी देहमें उषरोत्साप प्रेरण करनेके लिये मन्त्र पढ़ा जाता था। (अथर्ववेदका १।१२ और ७।११ सूक्त देखो) अथर्ववेदके ५।४ और १६।२६ मन्त्रमें उषररोगके प्रतिकारके लिये कुछ नामक उद्भिदके अहान और स्तोत्र दिखाई देता है। इसी तरह क्षण रोगके प्रतिकारके लिये काली मिर्चकी स्तुति भी (६।१०६) है।

तपमन या उषर रोगी अथर्ववेदके समय यद्ये सु-विदित थे। उषर उस समय भी उषर नामसे विख्यात

गर्भो हुआ था। इसका 'तपमन' नाम अथर्ववेदके बाद दूसरे किसी ग्रन्थमें दिखाई नहीं देता।

अथर्ववेदमें उपरोक्तविकारनाके चार स्त्रोत (१२५, ५२२, १२०, ७१३६) और इसलिये १४ पृष्ठों के दो ग्रन्थ (५४, १६३६) हैं। द्युधुनने उपरके रोगका राजा कहा है। अथर्ववेदमें भी उपरका प्रधान रोग ही उपपन्न कहा गया है। उपरोक्त मनुष्योंके लिये मन्त्र नवान्त रोग है, ऐसी धारणा उस प्राचीन समयके प्रायियोंकी भी थी।

अथर्ववेदमें उपरके अग्रण्य।

इस समय मलेरिया उपरके जो लक्षण देने माने हैं, अथर्ववेदके उपरके जैसे ही लक्षण हैं। रोगीको बन्ध द्वारा उपर मड़ता था। इसके बाद वेदमें उबाला होता था, प्रायिक दिन निर्दिष्ट समयमें उपर जाता या एक दिन चाँसे दूसरे दिन अथवा दो दिनोंके बाद एक दिन—इस तरह उपर आता था। इस उपरमें कामकरोग हो जाता था। यथाकालमें ही ऐसे उपरका प्रादुर्भाव होता था। इसके साथ जिरमें पीड़ा, लाल, पलास, उदुगुण मोंट वामा (सोय) रोग या दिग्भ्रंश होते थे। उपरका प्रधान लक्षण उपाय है। मन्त्र ही इसका हेतु है। स्वयं मनुषि और कुछ पृष्ठके और अङ्गोष्ठ पृष्ठके द्वारा मरुतुन तावाजसे ही इस "तपमन" रोगका प्रतिहार किया जाता था। मेरुका स्वयं मा (७१३६) अनेक समय उपर-विकारमें प्रयोक्तव्य होता। कौशिक सूत्रमें भी इसका उल्लेख दिखाई देता है।

स्त्रीदर।

अथर्ववेदमें जनेरुट रोगका मा वर्णन आया है। यह रोग बदनका दिया हुआ है। जो मनुष्यवादी है, उनके पावके लिये हा बधजने इस रोगका प्रारंभ किया (११०, ७८३, १५४)। शैवाल मन्त्रमें यह भी कहा गया है, कि यह रोग हृदयोरगका मन्दर है। यह रोग-निर्णय आधुनिक विद्वानके सिद्धांतमें मिलता है। मन्त्रमें और सूत्रमें उक्त हा इस रोगकी औषध कही गई है। यह अथर्व वेदान्तवेदके सिद्धांतके ही है। हेतुमनुष्याविकारना परवर्ती समयमें ... का स्थापन हुआ है।

भास्वर—विष्णव

अथर्ववेदमें भास्वर या अतिशयकी विकारनाके (१२) देखा जाता है। इसलिये "विष्णव" (२३, १५४) है। भास्वररोगमें भास्वररोगका मन्त्रारण्य कद कर व्यापवा की है। भास्वर अर्ध मूत्राधिक्य का इसी तरह शरीरके किसी प्रकारके रसके हारणाधिक्यमें व्यपहत होता था। के प्रथम या मूत्रवदरोगके विकारना भी उक्त हुए हैं (१३)। कौशिक सूत्रमें भी (२५१० १६) इन दोनों रोगोंको विकारना है। मूत्रको विकारना (६१०) एक कौशिक सूत्रमें (३७१) देखा। पञ्चममें उदुनेकी तरह कहा होता है, इससे पञ्चम आकारका ताथोम बननेसे व्यपस्था है।

आयुष्मकी पीड़ा।

अथर्ववेदके प्रायिवीने विविध पीड़ाओंके नाम और विकारनाका उल्लेख किया है। पलास (११४) शीतो (६१०५, ७१०७), पक्ष्मा, राजपक्ष्मा, अशान-पक्ष्मा, पायपक्ष्मा आदिका उल्लेख (२३३, ३११, १६, १३३६), पक्ष्मात्त (लक्ष्मा)की विकारना भी देखा जाता है। "शैत्रिव" नामकी एक पीड़ाका (२८-१०, ३७) उल्लेख है। मन्त्रयना उपरका आदि रोग इस रोगके अन्तर्भूत है। मिया इनके जो सब रोग जैसे परंपरासे उद्भूत होता आता है, ये भी 'शैत्रिव' रोग कहा गया है। 'सर्वभैरव्य' और भी कितने ही रोगोंका उल्लेख (२३३, ३१८, १३५४) है।

अने पीड़ा।

विष्णवरोग कुछ ही ही दूसरा नाम है। इसमें और इसका उल्लेख है यह रोग प्रसंगित होता है। मन्त्रयन रोगोंके साथ विष्णव-रोगको विकारना भी (११२३) और ८, २०) अथर्ववेदमें दिखाई देता है। मन्त्रयन रोगोंमें आने रोगको विकारनाका विशेष बाधक है (२५२, ७१४, १२, ७७, १२, ७७) ३ दिनों में देखा है। मन्त्रयना, मनुष्य आदि इनमें आममें मन्त्र है। ये सब रोग मन्त्रके विनादिन किये जा सकते हैं। यथा जिते पृष्ठ पर आधम ये सब रोग भी मनुष्योंके शरीरमें अथ

स्थान करने हैं, ऐसा ही ऋषियोंका विश्वास था। मन्त्रसे इनको उड़ा देनेके लिये बहुतेरे स्तव स्तुति दिलाई देने हैं।

अधर्ववेदमें सर्जरीकी चिकित्सामें क्षतचिकित्सा और भ्रम (Tractions) चिकित्साका भी विधान है। यह विधान केवल मंत्र ही है (४।१२; ५।५) अरुद्धति और लासु 'गृक्षके स्तोत्र द्वारा क्षत और भ्रम (टूटने)की चिकित्सा की जाती है। रक्तमवाह निरोधके लिये भी मन्त्र है (१।१७)।

सिवा इसके सर्पविद्या और विषविद्याका उल्लेख भी अधर्ववेदमें (५।१३, ५।१६, ६।१२, ७।५६, ७।८८) दिखाई देता है। अधर्ववेदके अन्तर्गत गण्ड उपनिषद् सर्पविद्या ही प्रतिषेधक मन्त्र और उपायस्वरूप है।

क्रिमि (मनुष्यकी क्रिमि, पशुओंकी क्रिमि और जिशुओंकी क्रिमि) चिकित्सा (२।३१, २।३२ और ५।३३) अधर्ववेदमें आलोचित हुआ है। अधर्ववेदमें अनेक तरहकी क्रिमियोंका उल्लेख है। गिरकी जूँ भी क्रिमिके नामसे अमिहित होता है। परवर्ती चिकित्सा शास्त्रमें बोलो प्रकारकी क्रिमियोंका उल्लेख दिखाई देता है। चक्षु रोगमें भी (आँसूका आना) अन्वयु सर्पपका स्तोत्र है। कर्ण रोगके नाम भी (६।८, १।२) अधर्ववेदमें उल्लिखित हैं।

अधर्ववेदके पढ़नेसे मालूम होता है, कि इन समय केशका बहुत आदर था। उससे गिरमें सुदोष घनकृष्य कुन्तल राजि जनतो है। उनके लिये मन्त्रस्तोत्र भी यथेष्ट (६।२१, १३६, १३७ और ६।१३७।३) हैं। नितनी नामके एक प्रकारके उद्भिद्का उल्लेख है, इससे केशवृद्धिके उपायकी वृत्तमा होती थी।

शेफ हर्षणके लिये भी कितने ही मन्त्रोंका उल्लेख है (४।४, ६।७२, और ६।१०१)। उग्मादरोग गर्धर्ष, अप्सरा, राक्षस आदिकी दृष्टि घौच दी जाती थी। बकरेका सो'ग, मेढ्रेका सो'ग और विशाली प्रभृति द्वारा राक्षस आदिकी दृष्टि दूर या भगाई जा सकती है। गाँत काष्ठका तापीत्र (२।६) धारण करनेके लिये उपदेश दिया गया है। सिवा इसके भूतादि प्रदनातिके

और राक्षस और पिशाचादिके उत्पात-प्रशमनके लिये भी मन्त्रादि हैं (४।३६ और ३।३२)। इस तरह चिकित्सादिकी व्यवस्था को गई है।

आयुष्यापि

इसके लिये औषधका प्रयोग किया जाता है, जिससे आयुकी वृद्धि हो सके। जल, पृथु आदिले सब तरहके रोगोंसे देह विमुक्त रहनेकी प्रार्थना की जाती (६।२५, ६।६५, ६।१२७, १।६३८, ६।६१, १।६।४, १।६६, ८।७) थी।

आयुर्वृद्धिके लिये अग्निसे भी प्रार्थना की जाती थी। अग्नि ही आयुके देवतारूपसे गिनी जाती (२।१३।२८, २६, ७।३२) थी। आयुर्वृद्धिके लिये सोनेका तापीत्र व्यवहृत होता (१६, २६) था; अन्ननका भी प्रचलन (४।६, १६, ४४—४५) था। आयुष्य स्तवोंमें १।३०, ३।११, ५।२८, ३०, ६।४१, ५२, १६, २४, २७, ५८, ७० आदि स्तोत्रोंका उल्लेख आदि है।

सिवा इसके भूत प्रेत पिशाच दैत्य दानवादि दूर करनेके लिये भी अधर्ववेदमें कई तरहके मन्त्र और प्रक्रियायें दिखाई देती हैं। ऋतुदमनके लिये भी कई तरहकी सामिचारिक प्रक्रियायें थीं। स्त्री-यज्ञोत्तरण और पुष्य-यज्ञोत्तरण आदि प्रक्रियायें भी द्यो जाती थीं, सब विषय घौचकके अन्तर्गत नहीं। किन्तु इन सब बातोंके लिये भी औषध आदि व्यवहृत होनी थी।

ब्राह्मण ग्रन्थमें और उपनिषद्में भी देहविज्ञानका सूक्ष्मत्व आलोचित हुआ है। अन्न प्राण मन आदि कोष सूक्ष्मत्वसे परिपूर्ण हैं। हम उपनिषद्में सूक्ष्म प्ररीर बहुत तटप देखते हैं। सिवा इसके हृन्पिण्ड और घमनो प्रभृतिके भी यथेष्ट तटप हैं। विषय बढ जानेसे यहां उपनिषद्के प्ररीर-विज्ञानकी आलोचना न की गई। छाश्वेग्य उपनिषद्से हृन्पिण्ड और घमनो प्रभृतिके केवल एक उदाहरणका उल्लेख किया जाता है—“अथ या यमा हृदगस्य नास्यस्याः पिङ्गल्यो निस्सास्निष्ठन्ति नोलस्य पीतस्य लोहितस्यैतस्यै। वा नादित्यः पिङ्गल एवः शुक्र एवः नोल एवः पीत एवः लोहितः” (छान्दोग्य ८।६।१) गर्भान् हृन्पिण्डको नाडियाँ पिङ्गल, श्वेत, नील, पीत और लोहित हैं। हम धृतिके

अग्निवेश, मेघ, जातुकर्पा, पराशर, हारीत और क्षार-पाणि—ये सभी आत्रेय मुनिके शिष्य हैं।

चरकने अग्निवेशका अनुसरण कर ही इस संहिताका प्रणयन किया। चाभटने भी अपने प्रयोगों हारीत और मेघके नामोंका उल्लेख किया है। मेघ मुनिका दूसरा नाम 'वेदु' था। वेदुसंहिता अब भी प्रचलित है। चरकसंहिताका दूसरा नाम अग्निवेशसंहिता है। काश्मीरके चिकित्सक चरक इस संहिताको समाप्त नहीं कर सके। इसका शेष तृतीयांश कई शताब्दके बाद काश्मीरके दूसरे चिकित्सक दृढबल द्वारा रचित हुआ। दृढबल कपिलबलके पुत्र हैं। चाक्रपाणि-वृत्तने चरककी टीकामें लिखा है, कि यत्समान चरकसंहिताके चिकित्सित स्थानका १७वां अध्याय और कल्प स्थानका ७वां और ८वां अध्याय दृढबल द्वारा रचित हैं। चरकसंहितामें ३६० हृदियां गिनो गई हैं। शतपथ-ब्राह्मणमें भी इतनी ही हृदियां बताई गई हैं। चरकसंहिता सर्वत्र प्रचलित ग्रन्थ है।

सुभ्रुत संहिता।

सुभ्रुत किसी व्यक्तिविशेषका नाम है या चरक शब्दकी तरह उपाधिविशेष है—इसका निर्णय करना कठिन है। बल्लोपचारमें इन्होंने ही आचार्ययुगके आचार्योंमें सविशेष पारदर्शिताके साथ ग्रन्थ लिखा है। ये शत्रु-व्यथच्छेत् करते थे। इनकी संहितामें घनमय पुच्छिका, मलायु कई मपूर्ण भस्त्रिका प्रभृतिके साहाय्यसे अन्न या शस्त्रक्रियाके व्यवहारका उपदेश है। टूटी हुई हड्डियोंका जोड़ना, प्रणष्ट शल्यका जोड़ना और निकालना, प्रणका शोषन, रोपण, उत्सादन, अवसादन आदि सुभ्रुतसंहितामें विशदरूपसे वर्णित है। प्रलेप द्वारा लुकायित शैल्यविनिर्णय करनेका उपाय था। विद्रधि या प्लीहाकी विद्रधि भेद करना, मूत्राशयसे अक्षरी (पथरी) काट फेंकना, यंत्र साहाय्यसे मूदुगर्म आहरण करना, माघात लगनेके कारण अंतर्द्वारे बाहर निकल जाने पर उसे पुनः यथास्थान रखना और सिन्धई करनेका उपाय सुभ्रुतसंहितामें विवृत है। विघर्शन माधर्शनक्रमसे गर्भिणीके सुखप्रसवका उपाय लिखा हुआ है। धात्री परीक्षा, सन्तान परीक्षाके सम्बन्धमें विशेष उपदेश है।

क्षतरोगमें धूपनकी व्यवस्था है। क्षतरोगके ग्रन्थामनाद तक धूपित होता था। सुभ्रुतके मतसे राजयक्ष्मा, २४ प्रकारके उ्वर, कई पापज व्याधि ये संक्रामक हैं। गर्मवस्थामें वाएड रोगमें रक्तको लाल कणिकायें कम हो जाती हैं। रक्तातिसार और उराक्षतमें आम्प्यतरिक क्षनकी चिकित्सा करनी पड़ती है। राजयक्ष्मामें हृन्पिएडमें फोटर उत्पन्न होता है। विमर्शकी अंतिम अवस्थामें रक्त विपाक हो जाता है। शस्त्रमाध्य रक्षातुंद् एक जाने पर जीवन कठिन, दूर्ध्वीवर (काले सांप) के काटने पर हृदयमें रक्तस्राव्यता होती है, इसलिए श्वाम कृच्छ्रतासे मनुष्य मर जाता है। सन्निपात या विसृचिका रोगमें हृदयके रक्तका दबाव होते रहने पर चिकित्सातत्त्वके अनुसार सर्पविष उसकी महीषण है। इसके सिवा हृदयमें रक्त सञ्चालन क्रिया, शिरा, घमनी, स्नायु आदिका प्रसार या संस्थिति, रसादि घातुओंकी परस्पर परिणति, यातयादी त्रिरामण्डलीका कार्य आदि तृतीय वक्षताके साथ सुभ्रुतसंहितामें आलोचित हुए हैं। सुभ्रुतसंहितामें लिखा है, कि रश्मिविन्दु अक्षितारकाके ऊपर पतित होता है, वही पद्मार्धको रूपानुभूतिमें परिणत होता है। अर्थात् जैसे देा समकालांतर लघोतस्फुल्लिङ्ग गुणयन् प्रयोजके अंतर और वृद्धिर्जागृत्का आलोकित करता है, आलोकित अक्षितारका पर पड़ कर उसी तरह वृद्धिर्जागृत्में ऊपर और अंतर्जागृत्में रूपानुभूति हो जाती है। यह समकालांतरिह है। यह सिद्धांत विज्ञानसम्मत है।

हम जो हम समय सुभ्रुत प्रचलित देखते हैं, बाँद रसायनविद्वद् नागाजुंन ही इसके संस्कारक हैं। दृढना-चायोंने सुभ्रुतको टीकामें साफ तीर पर लिखा है—

"यत्र तत्र परोक्षे निवेग सत्रत्रये प्रतिसंस्कृत्सु' मूत्रं क्षातव्यमिति प्रतिसंस्कृत्तापीड नागाजुंन एव ।"

सुभ्रुतके उत्तरतंत्र नागाजुंन-रचित है। दृढना-चायोंका कहना है, कि बाँद और शिन्दुओंमें जब घोरतर विवाद चल रहा था, तब सिद्ध नागाजुंनने सुभ्रुत ग्रन्थका उत्तरतंत्र प्रणयन किया। इसके पहले यह ग्रन्थ सुभ्रुत तंत्र नामसे विख्यात था। नागाजुंनके संस्कारके बादसे ही यह सुभ्रुत तंत्र सुभ्रुतसंहिता नामसे प्रसिद्ध हुआ

घरकर्मदिना श्रेणी विचित्रमात्रपाम है, सुभ्रुत-
 मदिना श्रेणी हो फिर सन्तोषपार प्रपाम है । घरक-
 कावचिचित्रमक-सम्प्रदायके मन्त्रपुस्तकन रत्न है, दूसरी
 ओर सुभ्रुत पण्यमति सम्प्रदायके गीरव उग्रपत्तनर रत्न
 है । चन्द्रमति सम्प्रदायके सवित्रीकुम्हारद्वयके जन्व और
 मायाकप विद्याकी जित्ता की । महाभागके पदमेरे
 मान्दुम होगा है, कि सुभ्रुत विद्यामिषके पुत्र है । भाष-
 प्रकाशमें घरक, सुभ्रुत भाषिके प्रादुर्भावके विषयमें
 विस्मय विषयक लिखा है । टीकाकारोंने पूछ सुभ्रुत
 नामके प्राचीन सुभ्रुत प्रयागकी बातोंका उल्लेख किया
 है ।

सुभ्रुतके मूलरूपनामके अन्तम और अष्टम—इस
 दो अध्यायोंमें मन्त्रोपचारके यन्त्रविषयक और पचीस
 अध्यायोंमें सन्तोषपारकी प्रणाली लिखी हुई है । घरक-
 मदिनाके भी दो अध्यायोंमें मन्त्र-विचित्रमात्रका उल्लेख
 दिखाई देता है । घरकके विचित्रितन रूपानमें उग्रवक्-
 च्छेदकी प्रणाली लिखी हुई है । इसके चारोपरनामके
 भाषोंमें अध्यायमें मूलरूप बादर निन्दानमेंकी प्रकिया
 विन्दुद्वयमें विद्युत हुई है । विष्णु इस दो अध्यायोंमें
 ब्रह्म की ओर भी अष्टका नाम लक्षी लिखा गया है । महा-
 रत्न अध्यायमें उग्ररोमकी विचित्रता कुल घरककी
 लिखी गयी, वरं द्रुद्रवककी लिखी है । द्रुद्रवक सुभ्रुत
 पद कर ही ज्योतिरके सन्तोषपारकी प्रणाली लिख गये
 हैं । ज्योतिरका जन्म निन्दानमेंके विषे सुभ्रुतमें मोहि-
 मुल नामक एक मन्त्रके टीका (Trosar)का उल्लेख
 किया है । घरकमें जिन सन्तोषपारकी वन लिखी हुई
 है, वह सम्भवता द्रुद्रवकके प्रतिरोधकारका ही फल है ।
 सुभ्रुतम् टीकाकार ।

वक्रानलिद्वयके घरककी टीका और सुभ्रुतकी भी
 एक टीका की गयी । शेषक, टीकाका नाम भागुनकी
 टीका है । सुभ्रुतकी टीकाके द्वापरे रचयिता उन्नत-
 कार्य हैं । उन्नतकी टीकाका नाम निरवसन्मद है ।
 उन्नतकाकार्य महाभाग राजके समसामयिक थे ।
 उन्नतमें जेपन, मन्त्रदास और भाषकारके सुनहना
 लोकार की है । इन सब कालकेमें उन्नतके पदमें
 सुभ्रुतकीटीका की थी ।

बोधपुत्र ।

श्रीदयुगमें इस देशमें विचित्रमात्रात्मकी पदमे
 उन्नत हुई थी । जोशके दुःख निवारणके लिये मन्त्र-
 मन्दिना प्राय क्वाकुल हो गया था । उनके शिष्यों
 और वर घांके धर्मोपनयनी विषया इतिकेदोने मन्त्रप
 और वसुभोकी विचित्रमाके निमित्त रत्नम रूपानमें विचि-
 रमात्रप संस्थापन किया । प्रियदर्शी राजा अतीरके
 राजानुमानाममें लिखा है, कि उग्रोंने मन्त्रप और वसु
 दोनोंके लिये विचित्रमात्रप स्थापन किये थे । अतीर-
 के राजत्वकालमें ७५० ई० तक बीसोंका नाम मात्र
 जाता है । इस समय सायुषेदकी उन्नति हुई थी ।
 गृहाम, मित्र, रजिवा मारिज और दूर दूरानमें सायुषेद-
 की मदिना प्रचारित हुई थी । सामन्त, राजपूत, गण,
 विदार, येनाथी आदि प्रयाग प्रयाग नगरीमें विचित्रमा-
 गार, दन्तावास (अन्धनाम) और विचित्रमात्रिशा-
 लप (मेडिकल कालिज) संस्थापित हुए थे । इन सब
 विचित्रमात्रपोंमें बहुतेरी गर् गर् औपविद्या आदिफल
 होती थी । महावसु नामके पालि बीजपत्रमें दिखाई
 देता है, कि प्राच्यमन्दिनेके समयमें जोषक जोमरन्ध्या
 नामके प्राच्यमन्दि एक विचित्रमक थे । वह जोषक
 अष्टम द्वादिके मन्तान थे । अष्टमनामों कादिक्रमके
 कारण आदार और सुनिचित्रमाके अन्तममें जीवद
 उग्रानपरागमें बहुत कष्ट पाले थे । इन अध्यायोंमें जोषक
 में विचार, कि जगन्नि देवी बहुत योग है, जिहोंने
 मेरे समान बहुत कष्ट भोग किया है । मैं यदि विचि-
 रमात्रिषा शीघ्र मरूँ, तो बहुत शरीरोंका कष्ट दूर
 करनेमें समय होगा । वह शीघ्र कर प्राचक सायुषेद
 दि शर्मा तर्कानिगामें का इतिहास हुए । उस समय तर्क-
 जितामें सायुषेदेय विरथविद्यामय था । प्रविद्यायन्त्र
 मेषावा शीघ्रके अष्टमम समवेमें (५ वर्षोंमें) सायुषेद-
 में शक्तिका प्रण कर दिया । जोषकके मावायमें
 जोषकके औपविद्यामकी पत्नीका बन्धन लिये जोषकमें
 बना, "जोषक । इस शरीरोंका हाथमें मैं कर एक दिनम
 पूत आभों, एदमें जिनका औपविद्या मिले, उनको इस
 मैं संघट करके जामा ।" पार पाव दिवके बाद एदके
 दोनो दिवसोंके मन्त्रपुस्तकोंका दहन कर प्राचक में

भाये थे। जीवक साकेत नगरीमें आ कर एक विधवा रमणीको असाध्य शिरोरोगकी चिकित्सा करने लगे। विधवाने कहा, "बहुतेरे विद्व, बहुदर्शी, वृद्धयै मेरो इस घाघिकी आरोग्य कर न सके हैं। तुम बालक हो, तुम इस असाध्य रोगको कैसे दूर कर सकोगे।" जीवकने जवाब दिया, "विद्वान बालक भा नहीं और न वृद्ध ही है।" उनकी चिकित्सासे विधवाको बड़ा उपकार हुआ था यों कहिये, कि यह पूर्ण आरोग्य हो गई। काशीमें एक आदमीको अग्निवद्गुद् (Intersusception of the bowels) हुआ था। जीवकने उसके उदरमें अस्त्र (Laparatomy Operation) चिकित्सा कर अस्त्रोव-रोग आरोग्य किया। राजगृहमें एक घनवान् वणिक्के मस्तकका खर्पर खोल कर उसकी शिरापोड़ाकी शान्त किया। इस चिकित्सामें उन्होंने पेसी दक्षतासे अस्त्र सञ्चालन किया था, कि उसका एक थाल गो रूपट नहीं हुआ था, मस्तकके सेवनी- (Suture) त्वमें एक सेवनी भी आहन नहीं हुई थी। इस समय बुद्धदेवका शरीर अस्वस्थ हुआ। प्रधान शिष्य आनन्दने जीवकको बुलाया। तीन घिरे हुए पद्मपुष्पोंके पत्तों पर औषधचूर्ण छीट उसे सुंघा कर ही उनका रोग जीवकने दूर किया था। इस समय काङ्गालक पुत्र जीवकने बुद्धदेवको वैद्य होनेका सोनाम्य प्राप्त किया था।

वाग्मट

बौद्धयुगके ग्रन्थकारोंमें वाग्मटका नाम यहाँ प्रथम उल्लेख है। चरक और सुश्रुतके बाद ही वाग्मटका नाम जाता है। वाग्मट या वाग्मट बौद्ध थे। ये सिन्धु-देशवासी थे। वाग्मटने चरक और सुश्रुतका साठ संग्रह किया है। सिया इन दो ग्रन्थोंके इन्होंने मेल और हारीतके ग्रन्थोंसे भी कुछ लिया है। ग्रन्थके उपसंहारमें वाग्मटने लिखा है,—

"श्रुतिप्रणीते प्रोविन्चेन्मुकं चरकमुभवी।

भेद्यायाः किं न पश्यन्ते तस्मात्प्रयासं मुमाधिषन् ॥"

अर्थात् प्राचीन श्रुतिप्रणीत ग्रन्थ ही यदि प्रीतिजनक है, तो केवल चरकसुश्रुत पढ़नेके सिया भेलाघ श्रुतिप्रणीत ग्रन्थ क्यों नहीं पढ़ा जाता ?

वाग्मटके ग्रन्थका नाम "अष्टाङ्गहृदय" है। अष्टाङ्ग

हृदयका अर्थ यह है, कि आयुर्वेदो चिकित्साप्रणाली आठ भागोंमें विभक्त हुई है। उनके नाम इस तरह हैं,—

- (१) कायचिकित्सा (Internal medicine) (२) शल्य (Major surgery) (३) आलस्य (Minor surgery) (४) भूतविद्वया (Demonology) अथर्ववेदमें यह चिकित्सा विशेषरूपसे दिखाई देती है। (५) विष (Toxicology) (६) रसायन (Tonics) (७) वृष्य (Aphrodisiacs) (८) कौमारभृत्य (Paedotrophy)—ये सब विभाग चिकित्सामें अष्टाङ्गके नामसे प्रसिद्ध हैं ।

वाग्मटने शक्यतस्त्वमें बहुतेरे नये तथ्योंका समावेश किया है। खनिज और समुद्रज लवणों (नमक) का उल्लेख भी इनके चिकित्साग्रन्थमें दिखाई देता है। क्वचित् कुतचित् पादके व्यवहारका भी उल्लेख है। किसी किसी घातव औषधका व्यवहार भी अष्टाङ्गहृदयमें है। वाग्मट पहले ब्राह्मण थे। पीछे बौद्धधर्मावलम्बी हुए, ऐसा ही सुना जाता है। उनके ग्रन्थके प्रारम्भमें नमस्कारसूत्रसे ही इसका प्रमाण मिलता है, कि यह बौद्ध थे। मुगाङ्कसकं पुत्र मयणदक्षने अष्टाङ्गहृदय-वाग्मटकी एक टीका की। इसका नाम "सर्वाङ्गसुन्दरी" है। सुप्रसिद्ध चतुर्गर्गविन्तामणि नामक स्मृतिग्रन्थकार सुपरिचित हेमाद्रिने वाग्मटके सूत्रस्थानकी 'आयुर्वेद रसायनालय' एक टीका की।

निदान।

माधवकर द्वारा संशुद्धित सुप्रसिद्ध निदान ग्रन्थका परिचय देनेका कोई विशेष प्रयोजन नहीं। यह ग्रन्थ सर्वत्र ही सुप्रसिद्ध है। कविराजमाल ही माधव-निदान पढ़ते हैं और तो क्या, वैद्यक शास्त्रमें जिनका कुछ भी परिचय नहीं है, वे भी माधवकरके निदानके पढ़ते हैं। विजयरक्षित इस ग्रन्थके 'मधुकाय' नामकी जो टीका कर गये है, यह अत्यन्त उपादेय और यथेष्ट परिचयपूर्ण है। सम्भवतः ८वीं शताब्दीमें यह ग्रन्थ रचा गया था। पाचस्पतिहृत "मातङ्गवर्षण" नामकी इसकी एक और भी टीका है।

विद्वकीय।

एन्द नामक एक चिकित्सक सिद्धयोग ग्रन्थके

यद्यपि पारद-चिकित्साका प्राधान्य प्रदर्शनार्थं इन सब प्रयोगोंके नामकरणमें प्रथमके नामके पहले 'रस' शब्द प्रयुक्त होना है; किन्तु हीरा, ताम्र, रौप्य, अन्न और लोह आदि विविध धातुओंके जारण, मारण और शोधन औषधप्रयोगोंमें व्यवहार-प्रयोग अतीव विस्तृत रूपसे लिखा हुआ है। इन सब प्रयोगोंमें आधुनिक विज्ञानकी प्रालोचनाके उपयोगो भी कई विषय दिखाई देते हैं। (रस प्रणालीकी चिकित्सा क्रमसे अरबमें और पारसमें प्रचलित हुई। बहुतेरे ग्रन्थ अरबी और पारसीमें अनुवादित हुए हैं।

पुस्तकमानो युग।

महम्मदके समयमें अरबके सीना नगरमें एक चिकित्सा-शिक्षालय या हकीमी मकतब था। इस शिक्षालयके प्रधान शिक्षक थे हारि-बेल-कानदा। ये इस देशसे आयुर्वेदकी शिक्षासे शिक्षित हो कर गये थे। ८वीं शताब्दीमें हासन-अलल-रसीदके पुत्र, खलीफा अलमामुन्ने सबसे पहले फारसी भाषामें घरक और सुश्रुतका अनुवाद कराया। पीछे इनके द्वारा अरबी भाषामें इन ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ। योगदादके खलीफोंको राजसभामें बहुतेरे संस्कृतक भारतीय परिचित रहते थे। इन आयुर्वेदविद्या द्वारा रचित एक इतिहास प्रथममें इनका नाम मिलता है। ११वीं शताब्दीमें इसी ग्रन्थकारने उक्त ग्रन्थका प्रणयन किया। इसमें कङ्क, जेज्जद, सन्नय, शनद और माङ्क आदि भारतीय आयुर्वेदविद्यु परिचितोंके नाम लिखे हुए हैं। ये सब मियक खलीफाके राजवैद्य पद पर नियुक्त थे। जो सब मुसलमान सम्राट् भारतका शासन कर गये हैं, हिन्दुओंके वैद्यके प्रति उनमें किसी किसीके विद्वेष रहने पर भी आयुर्वेदके प्रति किसोका भी विद्वेष था, ऐसा मालूम नहीं होता। प्रसूत कितनी ही राजसभाओंमें आयुर्वेद वैद्य नियुक्त रहते थे। अजदसके टोकाकार शिवदाम तन्सामयिक बङ्गालके नयायके राजवैद्य थे। माघवीय निदानके "आतङ्कदर्पण" नामको टोकाके रचयिता याचरपतिने अपनी ग्रन्थ-भूमिकाके ५५वें श्लोकमें लिखा है, उनके पिता प्रमोद महम्मद हमीरके राजवैद्य थे। महम्मद हमीरका दूसरा नाम मैज्जोत महम्मद था।

ये महम्मद गोरोके नामसे परिचित हैं। ये ११६३ से १२०५ ई० तक दिल्लीके राजा थे। १२३० ई०में आनङ्क-दर्पण रचा गया। इसके २७ वर्ष पहले विजय रत्नने माघवीय निदानकी मधुकोष्यवाषया समाप्त की। सम्भवतः इससे भी २० वर्ष पहले अहणदत्तने घामटकी टोका की थी। मुसलमानों अमलके समय अनेक टोका रची गईं। मूलग्रन्थ भी बहुतेरे रचे गये थे। नीचे कितनेके नाम उल्लेख किये गये,—

- १। भावप्रकाश—नटकनके पुत्र भावमिश्र प्रणीत (१५५० ई०)
- २। वैद्यामृत—भट्ट महेश्वर प्रणीत (१६२७ ई०)
- ३। योगचन्द्रिका—परिडतदत्तके पुत्र लक्ष्मणलत (१६३३ ई०)
- ४। वैद्यजीवन—लालिम्वरराजलत (१६३३ ई०)
- ५। वैद्ययत्न—इस्तिस्वरलत (१६७० ई०)
- ६। योगरत्नाकर—जैनाचार्य नारायणशेखरलत (१६७१ ई०)
- ७। वैद्यरहस्य—वंशीधरके पुत्र विद्यापतिरलत (१६६८ ई०)
- ८। चिकित्सासंग्रह—यङ्कसेनरलत
- ९। आयुर्वेदप्रकाश—काशीके श्रीमाधवलत (१७११ ई०)
- १०। अवरपराजय—जयरलत (१७६१ ई०)

ग्रन्थोंकी सूची।

इन कई ग्रन्थोंके सिवा और भी कितने ग्रन्थोंके नाम प्रकाशित नहीं किये गये। इन सब ग्रन्थोंमें मौलिक प्रतिभाका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। बहुतेरे ही परिहित नाम कर टोका और संग्रह ग्रन्थ लिखते थे। किन्तु प्राचीन आयुर्वेदकी सीमाके बाहर जा नये तथ्योंका उद्घाटन करनेका प्रयास इस समय केवल एक सांख्यिक चिकित्सामें ही कुछ कुछ दिखाई देता है। हम नांचे आयुर्वेदके अरक, सुश्रुत और चाण्डिको छोड़ कर कई प्रधान प्रधान ग्रन्थोंकी सूची भी दे रहे हैं। नीचे जो अकारादि क्रमसे सूची दी गई है, उसे आयुर्वेदके सम्पूर्ण ग्रन्थोंकी सूची न समझना चाहिये।

अणश्यसूक्त, अग्निर्कर्मन्, अग्निधेयसंहिता, महम्मद-

यद्यपि पारद-चिकित्साका प्राधान्य प्रदर्शनार्थ इत सब ग्रन्थोंके नामकरणमें ग्रन्थके नामके पहले 'रस' शब्द प्रयुक्त होता है; किन्तु हीरा, ताम्र, रौप्य, अन्न और लौह आदि विविध धातुओंके जारण, मारण और शोधन औषधघाटोंमें व्यवहार प्रयोग अतीव विस्तृत रूपसे लिखा हुआ है। इन सब ग्रन्थोंमें आधुनिक विज्ञानकी आलोचनाके उपयोगो भी कई विषय दिखाई देते हैं। इस प्रणालीकी चिकित्सा क्रमसे अरबों और पारसमें प्रचलित हुई। बहुतेरे ग्रन्थ अरबी और पारसीमें अनुवादित हुए हैं।

भुवन्नमानी युग।

महम्मदके समयमें अरबके सीना नगरमें एक चिकित्सा-शिक्षालय या हकीमी मकतब था। इस शिक्षालयके प्रधान शिक्षक थे हारि-बेल-कानदा। वे इस देशसे आयुर्वेदकी शिक्षासे शिक्षित हो कर गये थे। ८वीं शताब्दीमें हाकन-अल-रसीदके पुत्र खलीफा अलमामुन्ने सबसे पहले फारसी भाषामें चरक और सुश्रुतका अनुवाद कराया। पीछे इनके द्वारा अरबी भाषामें इन ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ। योगदायके खलीफोंकी राजसभामें बहुतेरे संस्कृतज्ञ भारतीय पण्डित रहते थे। इन आनुससैयिया द्वारा रचित एक इतिहास ग्रन्थमें इनका नाम मिलता है। ११वीं शताब्दीमें इसी ग्रन्थकारने उक्त ग्रन्थका प्रणयन किया। इसमें कङ्क, जेजर, सज्जय, शनरु और माङ्क आदि भारतीय आयुर्वेदविदु पण्डितोंके नाम लिखे हुए हैं। ये सब विषय खलीफाके राजवैद्य पद पर नियुक्त थे। जो सब मुमलमान सम्राट् भारतका जासन कर गये हैं, हिन्दुओंके वेदके प्रति उनमें किसी किसोके विद्वेय रहने पर भी आयुर्वेदके प्रति किसोका भी विद्वेय था, ऐसा मान्य नहीं होता। प्रस्यूत कितनी ही राजसभामों में आयुर्वेद वेद पद्य नियुक्त रहते थे। चक्रवर्त्तके टोकाकार जियदास तन्सामयिक बङ्गालके नयायके राजवैद्य थे। माघवोय निदानके "आतङ्कदर्पण" नामकी टोकाके रचयिता याचल्पतिने अपनी ग्रन्थ-भूमिकाके ५वें स्तोकमें लिखा है, उनके पिता प्रमोद महम्मद हम्मीरके राजवैद्य थे। महम्मद हम्मीरका दूसरा नाम मेज्जहून महम्मद था।

ये महम्मद गौरीके नामसे परिचित हैं। ये ११६३ से १२०५ ई० तक दिल्लीके राजा थे। १२३० ई०में आतङ्क-दर्पण रचा गया। इसके २७ वर्ष पहले जियय रश्मिने माघवोय निदानकी मधुकीष्याषया समाप्त की। सम्भवतः इससे भी २० वर्ष पहले अठणदत्तने घाम्मटकी टोका की थी। मुसलमानों अमलके समय अनेक टोका रची गईं। मूलग्रन्थ भी बहुतेरे रचे गये थे। नीचे कितनोंके नाम उल्लेख किये गये,—

- १। भावप्रकाश—नटकनके पुत्र भावमिश्र प्रणीत (१५५० ई०)
 - २। वैद्यामृत—अट्ट महेश्वर प्रणीत (१६२७ ई०)
 - ३। योगचन्द्रिका—पण्डितदत्तके पुत्र लक्ष्मणरत्न (१६३३ ई०)
 - ४। वैद्यजीवन—लालिम्बरारत्न (१६३३ ई०)
 - ५। वैद्यवल्लभ—हस्तिचूररत्न (१६७० ई०)
 - ६। योगरत्नाकर—जैनाचार्य नारायणशेखररत्न (१६७३ ई०)
 - ७। वैद्यरहस्य—वंशीधरके पुत्र विद्यापतिरत्न (१६८८ ई०)
 - ८। चिकित्सासंग्रह—घङ्कसेनरत्न
 - ९। आयुर्वेदप्रकाश—काशीके श्रीमाधवरत्न (१७५१ ई०)
 - १०। जवरपराजय—जवररत्न (१७६१ ई०)
- ग्रन्थोंकी सूची।

इन कई ग्रन्थोंके सिवा और भी कितने ग्रन्थोंके नाम प्रकाशित नहीं किये गये। इन सब ग्रन्थोंमें मौलिक प्रतिभाका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। बहुतेरे ही पाण्डित्य लाम कर टोका और संग्रह ग्रन्थ लिखते थे। किन्तु प्राचीन आयुर्वेदकी सीमाके बाहर जा नये तत्त्वोंका उद्घाटन करनेका प्रयास इस समय केवल एक सांख्यिक चिकित्सामें ही कुछ कुछ दिखाई देता है। हम नीचे आयुर्वेदके चरक, सुश्रुत और घाम्मटकी छोड़ कर कई प्रधान प्रधान ग्रन्थोंकी सूची भी दे रहे हैं। नीचे जो अकारार्थ क्रमसे सूची दी गई है, उसे आयुर्वेदके सम्पूर्ण ग्रन्थोंकी सूची न समझना चाहिये।

अगस्त्यसूक्त, अग्निर्म्मन, अग्निधर्महिता, मङ्गल-

पट्टपति पारद-चिकित्साका प्राधान्य प्रदर्शनाार्थं इयं सब प्रयोगोंके नामकरणमें प्रथमके नामके पहले 'रस' शब्द प्रयुक्त होना है ; किन्तु हीरा, ताम्र, रौप्य, अन्न और लौह आदि विविध धातुओंके जारण, मारण और शोधन औपचार्यमें अथवा प्रयोग अतीव विस्तृत रूपसे लिखा हुआ है। इन सब प्रयोगोंमें आयुर्निक विज्ञानकी आलोचनाके उपयोगो भी कई विषय दिखाई देते हैं। इस प्रणालीकी चिकित्सा क्रमसे अरबमें और पारसमें प्रचलित हुई। बहुतेरे प्रथम अरबी और पारसीमें अनुवादित हुए हैं।

भुवममानी युग।

महम्मदके समयमें अरबके सीना नगरमें एक चिकित्सा-शिक्षालय या हकीमी मकतब था। इस शिक्षालयके प्रधान शिक्षक थे हारि-बेल-कानदा। ये इस देशसे आयुर्वेदकी शिक्षासे शिक्षित हो कर गये थे। ८वीं शताब्दीमें हासन-अल-रसीदके पुत्र खलीफा अलमामुन्ने सबसे पहले फारसी भाषामें चरक और सुभ्रतका अनुवाद कराया। पीछे इनके द्वारा अरबी भाषामें इन प्रयोगोंका अनुवाद हुआ। योगदादके खलीफोंकी राजसभामें बहुतेरे संस्कृतज्ज्ञ भारतीय पण्डित रहते थे। इन आयुर्वेदियोंके द्वारा रचित एक इतिहास प्रथममें इनका नाम मिलता है। ११वीं शताब्दीमें इसी प्रथमकारने उक्त प्रथमका प्रणयन किया। इसमें कङ्क, जेज्जर, सज्जय, शनक और माङ्क आदि भारतीय आयुर्वेदियु पण्डितोंके नाम लिखे हुए हैं। ये सब विषय खलीफाके राजवैद्य पद पर नियुक्त थे। जो सब मुसलमान सम्राट् भारतका शासन कर गये हैं, हिन्दुओंके चिकित्सेके प्रति उनमें किसी किसीके विद्वेष रहने पर भी आयुर्वेदके प्रति किसीका भी विद्वेष था, ऐसा मालूम नहीं होता। प्रसूत कितनी ही राजसभाओं में आयुर्वेद वैद्य नियुक्त रहते थे। चन्द्रदत्तके टोकाकार शिवदास तन्वामासिक बङ्गालके नयाबके राजवैद्य थे। माघवीय निदानके "आयुर्वेददर्पण" नामकी टोकाके रचयिता याचस्पतिने अपनी प्रथम-भूमिकाके ५५वें श्लोकमें लिखा है, उनके पिता प्रमोद महम्मद हमीरके राजवैद्य थे। महम्मद हमीरका दूसरा नाम मेज्ज्हीन महम्मद था।

ये महम्मद गोरोके नामसे परिचित हैं। ये ११६३ से १२०५ ई० तक दिल्लीके राजा थे। १२३० ई०में मातङ्क-वर्षण रचा गया। इसके २७ वर्ष पहले विजय रत्नने माघवीय निदानकी मयुकीपद्याया समाप्त की। सम्भवतः इससे भी २० वर्ष पहले मरुणदत्तने चाण्डकी टीका की थी। मुसलमानी अमलके समय अनेक टोका रची गईं। मूलप्रथम भी बहुतेरे रचे गये थे। नीचे कितनोंके नाम उल्लेख किये गये, —

- १। भावप्रकाश—नटकनके पुत्र भावमिश्र प्रणीत (१५५० ई०)
 - २। वैद्यामृत—महम्मद महेश्वर प्रणीत (१६२७ ई०)
 - ३। योगचन्द्रिका—पण्डितदत्तके पुत्र लक्ष्मणरुत (१६३३ ई०)
 - ४। वैद्यजीवन—लालिम्बरारुत (१६३३ ई०)
 - ५। वैद्ययज्ञ—दत्तिसूररुत (१६७० ई०)
 - ६। योगरत्नाकर—जैनाचार्य नारायणशेखररुत (१६७६ ई०)
 - ७। वैद्यरहस्य—यंशीघरके पुत्र विद्यापतिरुत (१६८८ ई०)
 - ८। चिकित्सासंग्रह—चङ्गसेनरुत
 - ९। आयुर्वेदप्रकाश—काशीके श्रीमाधवरुत (१७५१ ई०)
 - १०। उवरपराजय—जयरविरुत (१७६१ ई०)
- मन्थोंकी सूची।

इन कई प्रयोगोंके सिवा और भी कितने प्रयोगोंके नाम प्रकाशित नहीं किये गये। इन सब प्रयोगोंमें मौलिक प्रतिभाका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। बहुतेरे ही पाण्डित्य लाम कर टोका और संग्रह प्रथम लिखते थे। किन्तु प्राचीन आयुर्वेदकी सीमाके बाहर जानये तर्कोंका उद्गाहन करनेका प्रयास इस समय केवल एक ताम्रिक चिकित्सामें ही कुछ कुछ दिखाई देता है। हम नीचे आयुर्वेदके चरक, सुभ्रत और चाण्डकी छोड़ कर कई प्रधान प्रधान प्रयोगोंकी सूची भी दे रहे हैं। नीचे जो बकाराद् क्रमसे सूची दी गई है, उसे आयुर्वेदके सम्पूर्ण प्रयोगोंकी सूची न समझना चाहिये।

अमरवैद्यक, अन्निकर्म, अग्निचैत्रमहिता, महम्मद-

रत्नमाला—माघय, द्रव्यगुणविवेक, द्रव्यगुणशतश्लोकी—
 त्रिमलमट्ट, द्रव्यगुणसंप्रद—चाक्राणिदत्त, द्रव्य-
 गुणसंप्रदटीका—निदचलकर, द्रव्यगुणसंप्रदटीका—शिव-
 दाम, द्रव्यगुणाकर, द्रव्यगुणादर्शनिघण्ट, द्रव्यगुणा-
 धिराज, द्रव्यरत्नावली, द्रव्यशुद्धि, द्रव्यादर्श, धर्मव्यतिरि-
 प्रथ, धर्मव्यतिरिघण्ट, धर्मव्यतिरिपञ्चक, धर्मव्यतिरिदिलाम
 धर्मव्यतिरिसारनिधि, धातुमिदान, धातुमञ्जरी—सदानिधि,
 धातुमारण—शाङ्कर, धातुरत्नमाला—देवदत्त, नवधो-
 धिक, नामराजपद्धति, नामार्जुनीय—नागार्जुन, नाडी-
 प्रथ, नाडीनिदान, नाडीपरीक्षा—इत्तलेव, नाडीपरीक्षा—
 मार्कण्डेय, नाडीपरीक्षाद्विचिन्ताकथन—रत्नागणि, नाडी-
 प्रकरण, नाडीप्रकाश—गोविन्द, नाडीप्रकाश—रामराज,
 नाडीप्रकाश—शङ्करसेन, नाडीविज्ञान—गोविन्दरामसेन,
 नाडीविज्ञानोप, नाडीशास्त्र, नानीपथविधि, नानाशास्त्र-
 नाममाला—धर्मव्यतिरि, नारायणत्रिलास—नारायणराज,
 निघण्ट—राधाकृष्ण, निघण्टुराज (राजनिर्घण्ट),
 निघण्टुश्लेष, निघण्टुसंप्रदनिदान, निघण्टुसार,
 निदान—माघय, निदान—वाग्भट, निदान (मरु-
 पुराणीक), निदानप्रदीप—नागनाथ, निदानसंप्रद,
 निदानस्थापन—जानियेन, नियमसंप्रद, नियम
 (सुधुपटीका) इन्द्रनाचार्य, नियमसंप्रद—लङ्कानाथ,
 वृत्तिसौंदर्य—घोरसिंह, वैज्ञानिक—अग्निशंभु, पञ्चम-
 विधि, पञ्चमविचार—वाग्भट, पञ्चमविद्यास, पञ्च-
 सागक, पद्यनिदान, पद्यपद्य—रघुदेव, पद्यपद्य
 निघण्ट—कैवर्देव पण्डित, पद्यपद्यविनिर्णय, पद्यपद्य-
 विधान, पद्यपद्यविधि—इक्ष्वाक, पद्यपद्यविनिर्णय,
 पद्यपद्यविधिवेध (कैवर्देव पण्डित), पद्यसंगुणचिन्ता
 मणि, पद्यार्थचन्द्रिका—वाग्भट, पद्यार्थचन्द्रिका (अष्ट-
 हृदयटीका) चन्द्रवन्दन—या आयुर्वेदस्तावण—हेमाद्रि
 परहितसंहिता—श्रीनाथ पण्डित, परिमायासंप्रद—
 श्यामदाम, पर्यायमुक्तावली, पाकादिसंप्रद,
 पाकाध्याय, पाकावली, पारदकल्प, पालाम-कल्प,
 पोष्यसागर, पोष्यसार, पुरातन योगसंप्रद, पुण्यार्थ-
 प्रबोध, प्रबोधचन्द्रोदय—क्षेमजय, प्रयोगमार, प्रयोगा-
 मृत—वैद्यचिन्तामणि, बसवराजोप—बसवराज, बाल
 चिकित्सा—बसवराज भट्ट, बालचिकित्सा—धर्मव्यतिरि,

बालचिकित्सा चन्द्रमिश्र, बाल या (शिशुस्मारण) -
 पुष्टी मल्ल, बालतंत्र—कनकाण, बालवेध—धानराचार्य,
 विन्दुसंप्रद, वृहतीकल्प, वृहत्कल्पमान, मारहाजीव,
 भावप्रकाश—भावमिश्र, भावप्रकाश—वाग्भट, भाव-
 प्रकाशकैव, भावव्यभाव—माघवर्देव, भावतो—गतानन्द
 मियकृष्णकचित्तोत्तम—इंसराज, मियकृष्णकनिदान,
 भीमविनाय, भेदसंहिता, भेदकल्प, भेदज कल्पसार
 संप्रद, भेदजनक, भेदजसम्बन्ध, भेदप्रसाद, भेदव्यवहा-
 कर—वेचाराम, भेदव्यवहायलो—गोविन्ददास विना-
 र, भेदव्यसार—उपेन्द्रमिश्र, भेदव्यसारामृत-
 संहिता—प्राणनाथवेध, भोजनकल्पवृी, मगधपरिभाषा,
 मणिरत्नाकर—कैवर्देव, मनिमुहुर, मधुकीय—जयपाल
 शंखिन, इसकी व्याख्या—मधुकीय, (माधवनिदानटीका)
 विजयरक्षित, मधुसूनी—नारायण कविराज, मनोरमा—
 विद्वान्, मद्राप्रकाश, महाराजनिघण्ट, मातङ्गशोला, मातङ्ग-
 लोलाप्रकाशिका, माहाप्रयोग, माहेश्वरकवच, मुष्य-
 वेधाधरा इत्यादि शैवार्थिकरत्ना, मुण्डो कल्प, मूत्रपरीक्षा
 और नाडीपरीक्षा, मृत्युवैद्यचिकित्सा, मृतमञ्जीवना,
 यन्त्रोद्धार, योगचन्द्रिका—लक्ष्मण, योगचन्द्रिका-
 विलास, योगचिकित्सा, योगचिन्तामणि—गणेश,
 योगचिन्तामणि—धर्मव्यतिरि, योगचिन्ता (वैद्यक
 संप्रद)—हर्षकीर्तिसूरि, योगनरङ्गिणी (श्रुती और
 लक्ष्मी)—त्रिमलमट्ट, योगदीपिका—धर्मव्यतिरि,
 योगप्रदीप, योगमाला—गोगसिद्ध, योगमुक्तावली—
 (वैद्यचिन्तामणि उद्धृत) योगमुक्तावली पहलभेद, योग-
 रत्न, योगरत्नमाला, इसकी टीका—गुणाकर (१२४०), योग
 रत्नावली—गङ्गाधर, योगगतक—चरदचि, योगटीका—
 अमिनप्रभ, योगटीका—पूर्णसेन, योगटीका—रुपनारा-
 यण, योगगतक—मदनसिंह, योगगतक—लक्ष्मणदाम,
 योगगतक—विद्यवर्धेय, योगसार—अभिनोक्तुद्धार, योग-
 सारसंप्रद—तुलसीदास, योगसारसमुच्चय—गणपति-
 व्यास, योगसुप्रानिधि—चन्द्रमिश्र, योगाखन—प्रणि,
 योगचिकित्सा, योगामृत—गोपालदाम (१७२२ ई०) योगा-
 मृतटीका सुवेचिनी—(१७५२ ई०) योनिव्यापद्, रत्नकला
 चरिते लालारत्नराज, रत्नदीपिका, रत्नमाला—राजवल्लभ,
 रत्नमारचिन्तामणि, रत्नाकर, रत्नावली—रुवीन्द्रचन्द्र,

लक्षण, अङ्गाद्वृत्ति, अज्ञानमञ्जरी—काजीनाथ, अज्ञान-
मञ्जरी—काजिराज, अज्ञानमञ्जरीटोका—रमानाथ वैद्य,
अज्ञानामृतमञ्जरी, अज्ञाननिदान—मन्निवेश, अनघलोम-
मन्त्र, अनिङ्ग, अनुपातमञ्जरी—पोताश्वर, अनुभवसार—
सच्चिदानन्दपति, अमृत्यानी ब्रह्मण, अमृताचिकित्सा,
अनघानविधि, अमृतमञ्जरी वा अज्ञानमञ्जरी—काजीनाथ
श्रीर काशिराज, अशोतधादिनिदान, अष्टपातुमारणविधि,
अष्टाङ्गनिघण्टु, अष्टाङ्गसंग्रह, अष्टाङ्गहृदयनिघण्टु,
अष्टाङ्गहृदयसंहिता—शाम्भट, इसकी टोकाकार अरुणदत्त,
आशाधर, चन्द्रचान्दन, रामनाथ और हेमाद्रि, अष्टाङ्ग
हृदयसंग्रह, आत्रेयसंहिता, आत्रेयसंहितासार, आनन्द-
माला—आनन्दसिद्ध, आयुर्वृत्ति, आयुर्वेद,—श्रीसुख
लता, आयुर्वेददीपिका, आयुर्वेदप्रकाश—माधव
उपाध्याय, आयुर्वेदप्रकाश—चामन, आयुर्वेदप्रकाश—
सुश्रुत, आयुर्वेदमहोदधि—श्रीसुख, आयुर्वेदमहोदधि—
सुपेण, आयुर्वेदरससार—माधव, आयुर्वेदरसायन,
(अष्टाङ्गहृदयटीका)—हेमाद्रि । आयुर्वेदसंग्रह—भान-
राज, आयुर्वेदसिद्धांतसम्बोधिनो—रामेश्वर, आयुर्वेद-
सुधानिधि, आरामदर्पण, आरोग्यमाला, उदकमञ्जरी,
उदकलक्षण, उग्गादचिकित्सापटल, उमामहेश्वरसंवाद-
(तन्त्रोक्त) उपनिदान, उद्भवयःकल्प,—आत्रेय, अष्टु-
चर्पा, अष्टसुसंहार, औषधकटा, औषधप्रणय, औषध-
प्रयोग—धन्वन्तरि, कङ्कालाध्याय—अज्ञानाचार्य, कणाद-
संहिता—कणाद, कनकसिंहप्रकाश—रामकृष्णवैद्यराज,
कनकसिंहविलास, कर्पूरप्रकाश, कर्मदीपवृत्ति, कर्म-
प्रकाश—नारायणभट्ट, कर्मविपाक, कल्पखण्ड, कल्प-
तय—महिलायाथ, कल्पभूषण, कल्पानकारक—प्रादि-
त्याचार्य, कल्पाणघृत, कामदेववटीसारसंग्रह, कामभूष,
कामरत्न (वृहत् और लघु), कामरत्नटोका—धोनाथ,
कौवालिप्रणय, काथाधिकार, क्षेमकुतुहल—क्षेमराज या
क्षेमशर्मा, गणाध्याय—परमेश्वररक्षित, गर्दानप्रह—
सोडल, गर्दाजरेन, गर्दपनिश्चय—युन्द, गर्दपिनोद-
निघण्टु, गन्धकरसायन, गन्धदीपिका, गुटिकाधिकार,
गुटिकाप्रकार, गुटु-व्यादि—धन्वन्तरि, गुणमान, गुण-
ज्ञाननिघण्टु, गुणपटल, गुणपाठ—शाम्भट, गुणपाठ—

धन्वन्तरि, गुणमाला, गुणवोधप्रकाश, गुणरत्नमाला,
गुणरत्नाकर—प्रज्ञभूषण, गुणसंग्रह—सोडल, गुणा-
गुणी—सुपेण, गुणादर्श, गुदवोधसंग्रह—हेमचसेन,
गृहनिप्रह, गोविन्दप्रकाश, गोविन्दसोमसेतु, गौरीकाञ्ची-
शिव, चन्द्रकला, चन्द्रोदयविधान, चामरकाशिराज
मणि—छोलिश्वराज, चारकसंहिता—चारक, धामचर्पा—
धन्वन्तरि, चिकित्साकलिका—तीसट, चिकि-
त्साकलिका—द्याशङ्कर, चिकित्साकलिका-टोका—
तोसटपुत्र चन्द्राद, चिकित्साकौमुदी—काशीराज,
चिकित्साचिन्तामणि, चिकित्साञ्जन, चिकित्सा-
तत्त्वज्ञान—धन्वन्तरि, चिकित्सातन्त्र, चिकित्सादर्पण—
दिवेदास, चिकित्सादीपिका—धन्वन्तरि, चिकित्सा-
नामाञ्जुनोय, चिकित्सापञ्जलि—काशीराज, चिकित्सा-
परिभाषा—नारायणदास, चिकित्साभालिका, चिकित्सा
मृत—पणेण, चिकित्साभृतसार—देवदास, चिकित्सा-
योगशत, चिकित्सारत्न, चिकित्सासर्ग—सदानन्दशुक्ल,
चिकित्सासंग्रह—गोवर्द्धन, चिकित्साशतश्लोक,
चिकित्सासंग्रह—धन्वन्तरि, चिकित्सासंग्रह—चक-
पाणिदत्त चिकित्सासंग्रहटोका—शिवदाससेन,
चिकित्सासंग्रहसंग्रह, चिकित्सासर्वसागर—वरेमदव,
चिकित्सासार—धन्वन्तरि, चिकित्सासार—हरिमार्ती,
चिकित्सासारसंग्रह—क्षेमदासचार्य, चिकित्सासार-
संग्रह—चङ्गसेन, चिकित्सासारसमुच्चय, चिकित्सा-
स्थानदिग्गन्त—चक्रपाणिदत्त, चिकित्सित्त, चोपचीनोप्र-
काश, चोपचीनोसेवनविधि, जगद्धैद्यक, जराचिकित्सा,
जल्पकवचतक—(चरक टोका) गङ्गाधर कथिरत्त, जौध-
दान—च्यवन, ज्योतिष्मतोकल्प, उदरकला, उदरच-
िकित्सा, उदरनिमिरभास्कर—चामुण्डकायस्थ (१६२३)
उदरत्रिगती—शाङ्गधर, उदरदर्पणमाला, उदरनिर्णय—
नारायण, उदरपराजय—जरा, उदरजाति, उदरहोतक,
उदरहरस्त्रोत, उदरकुण्ड, उदरदिशेगचिकित्सा, तथ-
कणिका—भारतकर्ण, तन्त्रराज—जगदाल, तन्त्रोक्त-
चिकित्सा, त्रैलोक्यवेदान्तविधि, त्रिशतो, त्रैलोक्यपञ्चमर, दर्श
परिभाषा, दिव्यसेन्द्रसार—धनपति, दूतपरीक्षा, देहसिद्धि-
साधन, द्रव्यगुण—गोपाल, द्रव्यगुणदीपिका—कृष्णदत्त,
द्रव्यगुणराजवचन—नारायणदास कविराज, द्रव्यगुण-

रत्नमाला—माधव, द्रव्यगुणविधेय, द्रव्यगुणज्ञतत्त्वैकी—
 त्रिमलमट्ट, द्रव्यगुणसंप्रद—चाकवाणिदत्त, द्रव्य-
 गुणसंप्रदटीका—निघण्टुकर, द्रव्यगुणसंप्रदटीका—जिव-
 दास, द्रव्यगुणाकर, द्रव्यगुणादर्शनिघण्टु, द्रव्यगुणा-
 धिराज, द्रव्यरत्नावली, द्रव्यशुद्धि, द्रव्यादर्श, धर्मस्तरि-
 मंथ, धर्मस्तरिनिघण्टु, धर्मस्तरिपञ्चक, धर्मस्तरिविलास
 धर्मस्तरिसारनिधि, धातुनिदान, धातुमञ्जरी—सदान्वित,
 धातुमारण—शाङ्कधर, धातुरत्नमाला—देवदत्त, नवधो-
 धिक, नागराजपदति, नागाजुनीय—नागाजुन, नाडी-
 मंथ, नाडीनिदान, नाडीपरीक्षा—दत्तात्रेय, नाडीपरीक्षा—
 मार्कण्डेय, नाडीपरीक्षादिचिह्नसाकथन—रत्नगणि, नाडी-
 प्रकरण, नाडीप्रकाश—गोविन्द, नाडीप्रकाश—रामराज,
 नाडीप्रकाश—शङ्करसेन, नाडीविद्वान—गोविन्दरामसेन,
 नाडीविद्वानीय, नाडीजात्र, नानीपथविधि, नानाजात्र-
 नाममाला—धर्मन्तरि, नारायणत्रिलास—नारायणराज,
 निघण्टु—राधाकृष्ण, निघण्टुराज (राजनिघण्टु),
 निघण्टुशेष, निघण्टुसंप्रदनिर्दिग्, निघण्टुसार,
 निदान—माधव, निदान—वाग्भट, निदान (गण्ड-
 पुराणीक), निदानप्रदीप—नागनाथ, निदानसंप्रद,
 निदानरूपान—मनिवेश, निघण्टुसंप्रद, निघण्टु
 (सुश्रुतरीत्या) उक्तनाचार्य, निघण्टुसंप्रद—लङ्कानाथ,
 नृसिंहोदय—वीरसिंह, निरञ्जन—मनिवेश, पञ्चकर्म-
 विधि, पञ्चकर्मविहार—वाग्भट, पञ्चमविभास, पञ्च-
 सामक, पद्यनिदान, पद्यपद्य—रघुदेव, पद्यपद्य
 निघण्टु—केवदेव पण्डित, पद्यपद्यविनिर्णय, पद्यपद्य-
 विधान, पद्यपद्यविधि—दक्षकृष्ण, पद्यपद्यविनिर्णय,
 पद्यपद्यविधिविधेय (केवदेव पण्डित), पद्यधंगुणचिन्ता
 मणि, पदार्थचंद्रिका—वाग्भट, पदार्थचंद्रिका (गण्ड-
 हृदयटीका) चंद्रचन्द्रन—वा मायुर्वेदरसायण—देवादि
 परहितसंहिता—धोनाथ पण्डित, परिभाषासंप्रद—
 श्यामदास, पर्वानुमुक्तावली, पाकादिसंप्रद,
 पाकाध्याय, पाकावली, पारदकल्प, पालास—कल्प,
 पौषपसागर, पौषपसागर, पुरातन योगसंप्रद, पुष्ट्यर्थ-
 प्रबोध, प्रबोधचंद्रोदय—क्षेमजय, प्रयोगसार, प्रयोगा-
 मृत—वैचिन्तामणि, वसवराज—वसवराज, बाल
 चिकित्सा—कल्याण मट्ट, बालचिकित्सा—धर्मन्तरि,

बालचिकित्सा—वन्दि मिश्र, बाल या (निशुल्करत्न) —
 पृथ्वी मल्ल, बालतंत्र—कल्याण, बाल्येय—ज्ञानराचार्य,
 विन्दुसंप्रद, वृहतीकल्प, वृहत्कल्पहान, मारहाजीय,
 भावप्रकाश—भावमिश्र, भावप्रकाश—वाग्भट, भाव-
 प्रकाशकेय, भावस्यभाव—माधवदेव, भासतो—ज्ञानान्द
 भिषकनकचिन्तोत्सव—हंसराज, भिषकचक्रनिदान,
 भोगविशेष, भेदसंहिता, भेदतत्त्व, भेदज कल्पसार
 संप्रद, भेदजक, भेदजमर्चक, भेदप्रसाद, भेदव्यवहा-
 क—धेचाराय, भेदव्यवहाकलो—गोविन्ददास विशा-
 र्थ, भेदव्यवहार—उपेन्द्रमिश्र, भेदव्यवहारमृत-
 मंहिता—प्राणनाथदेव, भोजनकर्मवृत्ति, मगधपट्टियाय,
 मणिरत्नाकर—केवदेव, मनिभुकर, मधुकीप—जयाल
 वंशिन, इसकी व्याख्या—मधुकीप, (माधवनिदानटीका)
 चिजवरक्षित, मधुमनी—नारायण कविराज, मनोत्सा—
 चिह्नन, मशप्रकाश, महाराजनिघण्टु, मातङ्गलोला, मातङ्ग-
 लीलापकाशिका, माताप्रयोग, माहेश्वरकथय, मुष्प-
 बोधाध्याय उदरविद्वैगनिचिह्नसा, मुण्डोक्तव्य, मूर्त्तपरीक्षा
 और नाडीपरीक्षा, मूर्त्तपरमाचिकित्सा, मूर्त्तमञ्जीवना,
 यज्ञोद्धार, योगचन्द्रिका—लक्ष्मण, योगचन्द्रिका-
 विलास, योगचिह्नसा, योगचिन्तामणि—गणेश,
 योगचिन्तामणि—धर्मन्तरि, योगचिन्ता (वैद्यक
 संप्रद)—हर्षकीर्त्तिसूरि, योगनरङ्गिणी (श्रीमती और
 लक्ष्मी)—त्रिमलमट्ट, योगशेषिका—धर्मन्तरि,
 योगप्रदीप, योगमाला—गोमसिद्ध, योगमुक्तावली—
 (वैचिन्तामणि उद्धृत) योगमुक्तावली बहामर्च, योग-
 रत्न, योगरत्नमाला, उसकी टीका—गुणाकर (१२४०), योग
 रत्नावली—गङ्गाधर, योगगतक—धरचि, योगटीका—
 अजितप्रभ, योगटीका—पूर्णमिन, योगटीका—रूपनारा-
 यण, योगगतक—मदनसिंह, योगगतक—लक्ष्मीदास,
 योगगतक—विद्यावर्षेय, योगसार—प्रथिनोद्धार, योग-
 सारसंप्रद—तुलसीदास, योगसारसमुच्चय—गणपति-
 व्यास, योगसुखादिधि—वन्दिमिश्र, योगज्ञान—मणि,
 योगाधिकार, योगामृत—गोपालदास (१७७२ ई०) योगा-
 मृतटीका सुमेधिनो—(१७७२ ई०) मोनिय्यापट्ट, रत्नकला
 चरित लालहरराज, रत्नशेषिका, रत्नमाला—राजगह्वर,
 रत्नसारचिन्तामणि, रत्नाकर, रत्नावली—कर्मोद्धार,

रत्नावली—राधाभाष्य, रसकङ्कालि—कङ्कालि, रसकल्प-
लता—काञ्चननाथ, रसकषाय—वैद्यराज, रसकौतुक,
रसकौमुदी—भाष्यकर, रसकौमुदी—शक्तिवलय, रस-
गोविन्द—गोविन्द, रसचन्द्रिका—नीलाम्बरपुरोहित, रस-
चिन्तामणि, रसतत्त्वसार, रसदर्पण, रसदीपिका—
भानन्दानुभव, रसदीपिका—रामराज, रसनिबन्ध, रस-
पद्धति—विन्दु, रसपद्धति टीका—महादेवपण्डित, रस-
पद्मचन्द्रिका, रसपारिजात, रसप्रकाशसुधाकर—यशोधर,
रसप्रदीप—प्राणनाथ, रसप्रदीप—रामचन्द्र, रसप्रदीप-
वैद्यराज, रसमहामविधि, रसमेयजकहर—सूर्यवण्डित,
रसभोगमुक्तावली, रसमञ्जरी—शालिनाथ, रसमञ्जरी-
टीका—रमानाथ, रसमणि—हरिहर, रसमुक्तावली, रस-
यामल, रसयोगमुक्तावली—नरहरिमठ, रसरत्न—श्री-
नाथ, रसरत्नप्रदीप—रामराज, रसरत्नप्रदीपिका, रसरत्न-
माला—नित्यनाथ, रसरत्नसमुच्चय—नित्यनाथसिद्ध,
रसरत्नसमुच्चय—नित्यानन्द, रसरत्नसमुच्चय—सिद्धगुप्त
पुत्र घाभट्ट चाकट, रसरत्नाकर, रसरत्नाकर—आदि-
नाथ, रसरत्नाकर—नित्यनाथसिद्ध, रसरत्नाकर—
रेवणसिद्ध, रसरत्नाकर—शुकपाणि, रसरत्नावली—
गुणदत्तसिद्ध, रसरत्नार्णव, रसरत्नस्य, रसरत्न, रस-
राजलक्ष्मी—रत्नेश्वरमठ, रसरत्नशङ्कर, रसरत्न-
शिरोमणि—परशुराम, रसरत्नद्वन्द्व, रसवैशेषिक, रस
शब्दसारपिनिषण्ड, रसशोधन, रससंस्कार, रस
संकेत, रससंकेतकलिका—चामुण्डकावस्थ, रससंमह-
सिद्धान्त—अच्युत गोगिणपुत्र, रससागर, रस
सार—गोविन्दाचार्य, रससारसंमह—गङ्गाधरपण्डित,
रससारसमुच्चय, रससारामृत—रामसेन, रससिद्धागत-
संमह, रससिद्धान्तसागर, रससिद्धिप्रकाश, रस-
सिंधु, रससुवकर, रससुधानिधि—प्रजाराजशुक्र, रस
सुधास्मोधि, रससुल्लेखान, रसहृदय—गोविन्द,
उत्तरी टीका—चतुर्भुजमिश्र, रसहेमन् या कङ्कालीय-
रसहेमन्, रसादिशुद्धि, रसाधिकार—हरिहर
रसाध्याय (कङ्कालाध्याय पार्लिक), रसाध्याय—
जयदेव, रसास्मोधि, रसायनतरङ्गिणी, रसायनविधि,
रसार्णव, रसार्णवकला, रसालङ्कार, रसावतार,
रसेश्वर, रसेन्द्रकल्पद्रुम—रामहणमठ, रसेन्द्रकल्पद्रुम—

रमानाथगणक, रसेन्द्रचूडामणि—सोमदेव, रसेन्द्र-
मङ्गल, रसेन्द्रसंहिता, रसेन्द्रसारसंमह—गोपालकृष्ण,
रसेश्वरसिद्धान्त रसोपरस—माधवोपाध्यायहन भाष्य-
वैद्यप्रकाशक रसोपरसशोधन, राजवदन्म (पर्यावर-
माला), राजहंस, राजहंससुधाभाष्य, रायणो-
चिकित्सा (अर्कप्रकाश)—लङ्केश्वर रायण, रग्विनिश्चय
(निदान)—माधवकर, रग्विनिश्चयटीका सिद्धान्त-
चन्द्रिका, रग्विनिश्चय—गणेशभिमज्ज, रग्विनिश्चय—
(निदानप्रदीप)—नागनाथ, रग्विनिश्चय—भवानोमहाय,
रग्विनिश्चय—रामनाथवैद्य, रग्विनिश्चय (भातङ्कदर्पण)
वैद्यव्याचस्पति, रग्विनिश्चय (मधुकोप)—विजयरक्षित,
रुग्भोरलण, रुद्रदत्त, रुद्रवामलोगचिकित्सा, रूपमञ्जरी—
रोगनिर्णय, रोगप्रदीप—गोवर्द्धनवैद्य, रोगमूर्च्छिदान-
प्रकरण, रोगलक्षण, रोगविनिश्चय (रग्विनिश्चय),
रोगान्तकसार, रोगारम्भ, रोलिम्बरजोष, लक्षणरत्न,
लक्ष्णोत्सव—लक्ष्मण, लघुनिदान—सुरजित्, लघुरत्ना-
कर, लङ्कनपथ्यनिर्णय, लेहचिन्तामणि, लेहप्रदीप-
व्यचन्द्रिकानिदान, वसंतराजचिकित्सा, वाजीकरण,
वाजीकरणतंत्र, वाजीकरणाधिकार, वातप्रवृत्तिनिर्णय—
नारायण मिषक्, वातप्रमेहचिकित्सा, वातरोगहर-
प्रायश्चित्त, वासिष्ठो, वासुदेवानुभव—घामुदेव, विचार-
सुधाकर—राजश्यामिर्षित्, विद्यानानन्दकरी (वैद्यजीवन-
टीका), प्रयागदत्त, विश्वकोष या विश्वप्रकाशकोष—
महेश्वर, विपतंत्र, विषमञ्जरी, विषवैद्य, विषहर-
चिकित्सा, विषहरमंत्रप्रयोग, विषहरमंत्रोपथ, विषो-
द्धार, वृत्तरत्नावली—मणिराम, वृद्धयोगजतक, वृद्ध-
वीरगृन्मठ, वृद्धटीका, वृद्धमाधव, वृद्धसंहिता, वृद्ध-
सिंधु—वृद्ध, वैद्यकप्रयोगतानि वीर टीका, वैद्यक-
परिभाषा, वैद्यकयोगचन्द्रिका—लक्ष्मण, वैद्यकरत्ना-
वली—कविचंद्र, वैद्यककल्पतरु, वैद्यककण्ठम-
शुकदेव, वैद्यकशास्त्रवैषण्य—नारायणदास, वैद्यक-
संश्लेष—तकूल, वैद्यकसार—राम, वैद्यकसारसंमह
(रागसिंहोत्सव) वैद्यकसारसंमह (वैद्यपद्धिताप-
देग)—श्रीकण्ठगम्भू, वैद्यकमन्त, वैद्यकवृद्धल-
यंजीधर, वैद्यककौस्तुभ, वैद्यकप्रदीप—मित्रनरवैद्य
वैद्यकचिकित्सा, वैद्यकचिन्तामणि—नारायणमठ, वैद्यक

चिन्तामणि—रामचन्द्र, वैद्यचिन्तामणि—चल्लभेन्द्र,
 वैद्यपञ्चन—चाणक्य, वैद्यपञ्चन—लोलिभराराज,
 वैद्यपञ्चनटीका—ज्ञानदेव या दामोदर, वैद्यपञ्चन
 (शिक्षानाम्दिकी)—प्रयागदत्त, वैद्यपञ्चन—भयानी-
 सहाय, वैद्यपञ्चन—रुद्रदत्त, वैद्यपञ्चन—
 हरिनाथ वैद्यपञ्चनटीका—चन्द्राट्ट, वैद्यपर्वण—
 क्षलपति, वैद्यपर्वण—प्राणनाथ, वैद्यपर्वणशोधिका,
 वैद्यपर्वण—उदयमिश्र, वैद्यपर्वणसंग्रह—भीमसेन, वैद्य-
 मनोहरस्य—यंजीघर, वैद्यमनोहरस्य—बालकराम, वैद्य-
 मनोहरस्य—रामनाथ, वैद्यमनोहरस्य—श्रीधरमिश्र, वैद्य-
 मनोरमा, वैद्यमहोदधि—वैद्यराज, वैद्यमालिका,
 वैद्ययोग, वैद्यरत्न, वैद्यरत्नामाला—महिनाथ, वैद्यरत्नाकर
 भाष्य—रामकृष्ण, वैद्यरत्नसूत्र—शालिनाथ, वैद्यरत्नसूत्र,
 वैद्यरत्नसूत्र, वैद्यराजसूत्र, वैद्यरत्नसूत्र—उदयदत्त, वैद्य-
 रत्नसूत्र—वल्लभ, वैद्यरत्नसूत्र—हस्तिरत्न, वैद्यरत्नसूत्र
 या ज्योतिषज्ञानी—शाङ्गधर, वैद्यटीका—नारायण,
 वैद्यटीका—मेघमठ, वैद्यवल्गुना—शतश्लोकीटीका
 वैद्यविविनोद—शाङ्करभट्ट, वैद्यविविनोद—शिवानन्द, वैद्य-
 टीका—रामनाथ, वैद्यविलास—रघुनाथ, वैद्य-
 विलास—राघव, वैद्यविलास—लोलिभ, वैद्यवृन्द—
 नारायण, वैद्यवशास्त्रसारसंग्रह—व्यासगणपति, वैद्य-
 सक्षितसार—सोमनाथमहापात्र, वैद्यसंग्रह, वैद्य-
 सयंस्व—मनुज, वैद्यसयंस्व—लक्ष्मणकायस्थ, वैद्य-
 सार—दयंकीर्ति, वैद्यसारसंग्रह—गोपालदास, वैद्य-
 सारोद्धार, वैद्यसूत्रटीका, वैद्यसहितोपदेश—शिवपरिचय,
 वैद्यवामुत्त, वैद्यवामुत्त—मोरेश्वर, वैद्यवामुत्त—श्रीघर,
 वैद्यवामुत्तहरी—मथुरानाथशुक्ल, वैद्यवालङ्कार, वैद्य-
 वल्लभ—लोलिभराराज, व्याघ्रसिद्धाञ्जन, व्याघ्रमंगल—
 दामोदर, मणचिकित्सा, शतश्लोकी—भयघानसरस्वती,
 शतश्लोकी—त्रिमल्ल, शतश्लोकी—पादट्ट, शतश्लोकी—
 घोषदेव, शतश्लोकीटीका—वैद्यवल्लभ, शतश्लोकी
 टीका—कृष्णदत्त, शतश्लोकी (भाषाटीका) धेनो-
 दत्त, शतश्लोकी (शतश्लोकी चन्द्रकला)—वीरदेव, शम्भु-
 चन्द्रिका—वैद्यसकपाणिदत्त, जम्बरतनाथी, जरीर-
 लक्षण, जरीरविनिश्चयाधिकार—गङ्गाराम दास, जरीर
 स्थानभाष्य, जल्यतन्त्र, जालनिघण्टु (उद्भिज्जवैद्युया)—

सोतारामशास्त्री, जरीरवि—श्रीमुख, जरीरविद्वेद्य,
 शाङ्गधरसंहिता—शाङ्गधर, शाङ्गधरसंहिताटीका,
 शाङ्गधरटीका (शाङ्गधरशरीरटीका)—भद्रमल्ल,
 शाङ्गधरटीका (गृह्यटीका) काशीराम, शाङ्गधर—
 रुद्रधर भट्ट, शाङ्गधरटीका—घोषदेव, शालिहोत्र (अथ
 और गजचिकित्सा)—शालिहोत्रमुनि, शालिहोत्र—नकुल
 शालिहोत्र—मोहराराज, शालिहोत्रसार, शालिहोत्रोपनय,
 शास्त्रमञ्जरी, शास्त्रसंग्रह—वाग्भट्ट, शिलाजनुकर,
 श्लेषज्वरनिदान, श्वेताशोककर, पट्टमनिघण्टु, पट्टम-
 रत्नमाला, संध्यानिदान, संज्ञासमुच्चय—शिवरत्नमिश्र,
 सग्निपातकलिका—रुद्रभट्ट, सग्निपातकलिका—शम्भु-
 नाथ, सग्निपातचन्द्रिका—भवदेव, सग्निपातचिकित्सा,
 सग्निपातनाडोलक्षण, सग्निपातमञ्जरी, सम्पत्सम्मान-
 चन्द्रिका, सर्गसारसंग्रह—चक्रदत्त, महेश्वरयोग, सार-
 कलिका—उदयदत्त, सारकीमुद्दी, सारसंग्रह—कालीप्रसाद-
 वैद्य, सारसंग्रह—चक्रगाणि, सारसंग्रह—रघुनाथ,
 सारसंग्रह—विश्वनाथ, सारसंग्रह (अथचिकित्सा)—
 गण, सारसंग्रहनिघण्टु, सारसमुच्चय (अथचिकित्सा)
 सारसिन्धु, साराधली, साराधारसंग्रह, सिद्धमन्त्र—केशव,
 सिद्धटीका (सिद्धमन्त्रप्रकाश) घोषदेव, सिद्धयोग—पुन्य,
 सिद्धयोगसंग्रह (अथयुग्धेय)—गण, सिद्धयोगसंग्रह—
 शालिहोत्र, सिद्धयोगसंग्रह—पुन्य, सिद्धसारसंहिता,
 सिद्धांतचन्द्रिका (कृष्णविनिश्चयाटीका) सिद्धांतमञ्जरी—
 घोषदेव, सिद्धीपत्रसंग्रह (तत्त्वकणिका) सुधासागर,
 सुवर्णसार, सुधुतसार, सुतमहोदधि, सुतार्णव, सौभाग्य-
 चिन्तामणि, स्तम्भनप्रकार, स्थानपरीक्षा, स्थरविधि, स्थर-
 स्थर, दंसनिदान, हृत्प्रदीपिका, हृत्कमलप्रकाश (शरयो
 प्रथका अनुवाद)—महादेवपरिचय, हृत्कमलप्रदीप
 (शरयो प्रथका अनुवाद), हितोपदेश—वैद्यवहितोपदेश।
 वैद्यचिन्तामणि—एक आशुवेदविद्वेद्य, वैद्यवामुत्त पुत्र
 और नारायण कगिराजके छात्र। इन्होंने प्रयोगामुत्त
 नामक एक वैद्यक ग्रन्थकी रचना की थी।

वैद्यजाति—वैद्य कहतेसे पहले चिकित्सक मात्र ही समझे
 जाते थे। सब जातियोंमें जो शक्ति या तंत्र चिकित्सा
 स्वयंसाय करती थी, वह वैद्य नाममें पुकारा जाता
 था। इस तरह ब्राह्मणसे ले कर क्षत्रियतक सब जातियोंमें

वैद्युयोपाधि धेयी जाती है। किन्तु कुछ दिनों बाद यह वैद्युय शब्द किसी जातिविशेषके प्रति व्यवहृत होने लगा। चिकित्सा-अव्ययसाधो वैद्युय जाति पूर्ण समयमें अम्बष्ठ नामसे ही प्रसिद्ध थी। वैद्युय कहनेसे इन्को अम्बष्ठ जातिका ही बोध होता था। यह अम्बष्ठ जाति भी एक तरहकी नहीं है।

तदह तरहके अम्बष्ठो की उत्पत्ति।

इन अम्बष्ठोंकी उत्पत्तिको ले कर नाना मुनिवोंके नाना मत हैं। नीचे वे सब प्राचीन मत उद्घुष्ट क्रिये जाते हैं—

१। गौतम धर्मसूत्रमें लिखा है—

“अनुलोमा अनन्तरीकान्तरद्वयन्तरागु जाताः।

सवर्णाम्बष्ठानिपाददोष्यन्तपारशवः।” (४।१६)

अर्थात् अनन्तरज, एकांतरज, और द्वन्तरज, क्रमसे जात अनुलोम ही सवर्ण, अम्बष्ठ, उग्र निपाद, दोष्यन्त और पारशव जाति हैं। चौधायन-धर्मसूत्रमें भी उक्त मतका समर्थन हुआ है। जैसे—

“ब्राह्मणात् क्षत्रियाणां ब्राह्मणो वैश्यायाम्बष्ठः शूद्रायां निपादः।” (६।३)

अर्थात् ब्राह्मणके औरससें और विवाहिता क्षत्रिय-कन्याके गर्भसे ब्राह्मण, ब्राह्मणसे वैश्याके गर्भसे अम्बष्ठ और शूद्रसे निपाद।

अथवा अनुने भी धर्मसूत्रानुसार ही लिखा है—

“ब्राह्मणात् वैश्यकन्यायाम्बष्ठो नाम जायते।”

(१०।८)

अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्यकन्याके गर्भसे अम्बष्ठ नामकी जाति हुई है।

२। महर्षि याज्ञवल्क्यने लिखा है—

“विमान् मूर्धावसिकी द्वि क्षत्रियाणां विजः ख्रियम्।

अम्बष्ठः शूद्राणां निपादो जातः पारशवोऽपि च।”

(१।६२)

अर्थात् ब्राह्मणके औरस तथा क्षत्रियाके गर्भसे मूर्धा-

वसिक, ब्राह्मणसे वैश्यकी स्त्रीके गर्भसे अम्बष्ठ और

ब्राह्मणसे शूद्राके गर्भसे निपाद या पारशव जाति उत्पन्न हुई है।

३। औशनस धर्मशास्त्रमें है—

“वैश्याणां विभिन्नां विप्रात् जातो ह्यम्बष्ठ उच्यते।

कन्याजीवो भवेत् तस्य तर्प्यं चान्नेवपृत्तिकः ॥ ११

ध्वजिनो जीविका वापि ह्यम्बष्ठाः शस्त्रजीविनाः।”

ब्राह्मणसे विधिपूर्वक वैश्यामें जो उत्पन्न हुआ है, उसको अम्बष्ठ कहते हैं। यह रूपिजीवा है, पात्री करना और ध्वजा पकड़ना ही उसकी जीविका है। अम्बष्ठ शस्त्रजीवो है—

४। महर्षि नारदके मतसे—

“उग्रः पारशवश्चैदनिपादश्चानुलोमतः।

अम्बष्ठो मागधश्चैव क्षत्ता च क्षत्रियात्मजः ॥”

उग्र, पारशव और निपाद अनुलोमक्रमसे इनकी उत्पत्ति हुई है। अम्बष्ठ, मागध और क्षत्ता—ये सब जातियां क्षत्रियसे उत्पन्न हुई हैं।

५। फोछे फिर उन्होंने कहा है—

“अम्बष्ठोऽप्री तथा पुत्रावेवं क्षत्रियवैश्ययोः

एकांतरस्तु चाम्बष्ठो वैश्याणां ब्राह्मणात् सुतः ॥

शूद्राणां क्षत्रियात् तद्वत् निपादो नाम जायते।

शूद्रा पारशवं सुते ब्राह्मणादुत्तरं सुतम् ॥”

(१३।१००-१०८)

क्षत्रिय और वैश्यसे अम्बष्ठ और उग्र जाति हुई है। ब्राह्मण द्वारा वैश्यामें एकांतर अम्बष्ठ, क्षत्रिय द्वारा वैश्यामें इस तरह निपाद नामकी जाति और ब्राह्मण द्वारा शूद्राके गर्भसे पारशव पुत्रकी उत्पत्ति हुई है।

६। मनुटीकाकार रामचन्द्रने एक स्थानमें लिखा है—
“नृप कन्यायां वैश्ये उत्पन्ने शूद्रे उत्पन्ने सति उर्मा अम्बष्ठो भवतः।” (मनु टी० १०।७)

वैश्यके औरस तथा क्षत्रियकन्याके गर्भसे और शूद्रके औरस और क्षत्रियकन्याके गर्भसे दो प्रकारके अम्बष्ठ होते हैं।

७। स्मार्त्त रामचन्द्रने “अम्बष्ठानां चिकित्सितम्” इसकी टीकामें लिखा है—

“अम्बष्ठानां शूद्रादम्बष्ठा जाताः चिकित्सने शास्त्रे वैद्यक ॥ (३०।४७)

१० मिताक्षरकार = विश्वरत्नने यहाँ पर ‘विजः = विज्या’ अर्थमें ‘विवाहित वैश्यकन्या’ में टीका किया है।

अर्थात् अम्बुष्टोंकी चिकित्सा अर्थात् वैद्यकशास्त्र ही उपजोविका है। यह अम्बुष्ट शूद्रोंसे उत्पन्न है।

८। घृहक्षमपुराणके उत्तरखण्डमें (१०३३—३६) लिखा है—

“अयमग्नयः सङ्गरो द्वि वेणस्य वगमाः पुरा ।
 वैश्यां समुपसंगम्य चक्रोऽग्नयमपि सङ्करम् ॥
 तस्माद्भ्रष्टनामः तु सङ्करोऽयं घरापते ।
 अस्माभिरस्य संस्कारः कर्त्तव्यो विप्रजग्मना ।
 येनासी संस्कृतो भूत्वा पुनर्जात इवास्तु च ॥
 व्यास उवाच ।

इत्युषत्वा ते द्विजगणाः स्मृत्वा नासत्यदक्षकी ।
 तपोऽनुग्रहाद्भिर्भूयावन्ते द्विजातया ॥ ।
 आयुर्वेदं ववी तस्मै वैद्यनाम च पुष्कलम् ।
 तेनासी पापशून्योऽभूद्भ्रष्टक्यातिसंयुतः ॥
 वाक्कूपधरो भूत्वा विप्राणां शिरसाकरोत् ।
 प्रणम्य भक्तितो विप्रान् सोऽम्बुष्टो विप्रसत्तम ॥
 कृताञ्जलिपुटस्तस्थी ब्राह्मणाश्च तदाम्बुवन् ॥
 ब्राह्मणा उचुः ।
 अस्माभिर्यानि शास्त्राणि कृतानि सङ्करोत्तम ।
 तानि तुम्भश्च इत्तानि गृहोत्वा कुण्ठलीमथ ॥
 चिकित्साकुण्ठो भूत्वा कुण्ठो तेषु भूतले ।
 शूद्रधर्मान् समाश्रित्य वैदिकानि करिष्यथ ॥
 इत्युक्तस्तीन्तदाभ्रष्टस्तथेति कृतवान्भूत् ॥”

हे भूते! यह भीर-परक सङ्कर है, यह जाति भी वेणकी यशोभूत थी। ब्राह्मणने वैश्यामें उपगत हो कर इस संस्कारकी सृष्टि की है। इसीसे इस जातिको अम्बुष्ट नाम पड़ा है। विप्रसे इसका जग हुआ है, इससे हमें इसका कुछ संस्कार करना चाहिये। जिसके द्वारा संस्कृत हो कर ये पुनर्जातिके समान हों। व्यासने कहा,—विप्रों-ने यह कह कर अभिनोकुमारप्रपका स्मरण किया। स्वयंके अनुग्रहसे श्यावान् विप्रोंमें गम्यवृत्त आयुर्वेद दे उसका वैद्य नाम रखा, उसी समयसे इस जातिकी दो उपाधियां हुईं—वैद्य भीर अम्बुष्ट। अम्बुष्टगण सुन्दर मूर्ति धारण कर ब्राह्मणोंको भाषा शिरोधार्यपूर्वक भक्तिभावसे प्रणाम कर हाथ जोड़ करके हुए। इस पर विप्रोंने कहा—हे वर्णसंस्कारके प्रदान ! हम लोगोंने

जितने सब शास्त्रोंकी रचना की है, उन्हें भी तुम लोगोंके हम दे रहे हैं। तुम लोग इन सबका अध्ययन कर चिकित्सा विद्यामें पारदर्शी बन कुशलसे रहो। तुम शूद्र-धर्मका आश्रय ले तदुपयोगी वैदिककार्योंका अनुष्ठान करो। ब्राह्मणोंके ऐसा कहने पर अम्बुष्ट “जो भाषा” कह कर अपनेको कृतार्थी वैद्य करने लगे।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके ब्रह्मखण्डमें दो तरहसे यह जातिकी उत्पत्तिकी बात लिखी है। जैसे—

६। “इत्येवमाद्या विप्रैर्द्र सञ्जुष्टाः परिकीर्त्तिताः ।
 शूद्रायिशोस्तु करणोऽम्बुष्टो वैशवाद्भिर्जग्मनाः ।”
 (१०।१८)

हे विन्पेद्र ! ये ही आदि सत्शूद्रके नामसे उपात हैं। शूद्रागर्भसे तथा वैश्यके भीरसे करण और द्विजातिसे वैश्यागर्भसे अम्बुष्ट हुए हैं।

१०। “वर्णसंस्कारोपेण बह्वृच धृतजातया ।
 तासां नामानि संस्वराश्च कोषा वचतुं क्षमाः क्रिज्ज ॥
 वैवोऽभिनोकुमारेण जातश्च विप्रयोपितः ।
 वैदुष्योर्दोषेण शूद्रायां वभूधुर्गद्वेषा जनाः ॥
 ते च प्राभ्यगुणह्यश्चा मन्वीयधिपरायणाः ।
 तेऽपश्च जाताः शूद्रायां ये व्यालप्राहिणे भुवि ॥
 शौनक उवाच ।

कथं ब्राह्मणपत्न्यास्तु सुर्णपुत्रोऽभिनोसुतः ।
 अहो केन विपाकेन योषोधानं चकार ह ॥
 सोतिषयाच ।

गच्छन्तो तीर्थावात्रायां ब्राह्मणों रविनन्दन ।
 वृद्धं कामुरुः श्रान्तां पुत्र्योपाने च निजने ॥
 तथा निवारिने यत्नात् बलेन बलवान् सुरः ।
 अतीव सुन्दरं दृष्ट्वा योषोधानं काकर संः ॥
 द्रुतं तस्वाज गर्भं सा पुणोद्भुयाने मनोहरे ।
 सद्भुयो वभूव पुत्रश्च ततश्चाश्चनसत्रिमा ॥
 संपुत्रो स्वामिनो मेहं जगाम मोहिना तदा ।
 स्वामिनं कथयामास यमार्गं देवसङ्कटम् ॥
 विप्रो रोपेण तस्वाज तश्च पुत्रं स्वकामिनोम् ।
 सरिद्रभूय योगेन सा च गोदायरा स्मृताः ।
 पुत्रं चिकित्साशास्त्रेण पाठयामास पत्नतः ।
 नानाशिल्पश्च मंत्रश्च स्वयं स रविनन्दनः ॥

अर्थात् सर्गसंकर दोषसे नाना जातियोंका नाम सुना जाता है। उनके नाम और संख्या बतलाना किसका साध्य है। अभिनोकुमारके औरस तथा ब्राह्मणपलाके गर्भसे यैद्य जातिकी उत्पत्ति हुई है। वैद्यशोर्टा तथा शूद्राके गर्भसे नाना जातियां हुईं। ये नाना पृथक् यनस्वतियोंको जानते हैं, भाङ्गुक करते हैं तथा रोग निवारण करते हैं। फिर इन सब (वैद्या-)से और शूद्राके गर्भसे क्यालपाहो या सपैरोंका जन्म हुआ है। शीनकने पूछा, कि सूर्यपुत्र अभिनोकुमारने किस तरह किस दुर्विपाकसे ब्राह्मणपत्नीके गर्भमें घोषपात किया था? सीतने कहा, एक ब्राह्मणी तीर्थयात्रामें गई थी। निज न पुष्पोद्यानमें उस धान्ता ब्राह्मणोंको देख कर अभिनोकुमार कामविह्वल हो गये। ब्राह्मणीने भर सक निवारण किया, फिर देवताने उसके रूप पर मोहित हो बलपूर्वक उसके साथ संभोग किया। ब्राह्मणीने उस मनोहर पुष्पोद्यानमें ही गर्भ त्याग कर दिया। उससे तप्तकाञ्चन तुल्य शीघ्र ही एक बालक उत्पन्न हुआ। ब्राह्मणी उस बालकको ले कर घर गई और उस पर पधमें जो दैवो संकट उपस्थित हुआ था, उसने उसका सब हाल स्वामीसे कह सुनाया। ब्राह्मणने अत्यन्त प्रीणित हो कर पुत्रके साथ भार्याका त्याग किया। उस समय ब्राह्मणीने योगबलसे देहत्याग कर गोदावरी नदीका रूप धारण कर लिया। अभिनोकुमारोंने आ कर पुत्रकी भलांमति चिकित्साशास्त्र, शिल्पकार्य तथा मन्त्र सिखाया।

११। निर्णयसिन्धुकार प्रसिद्ध स्मार्त कमलाकरने प्राचीन स्मृति घचनोंको उद्धृत कर दिखाया है।

“प्रातःपौनोपकन्यायामन्योश्च नाम जायते।

य करोति मनुष्याणां चिकित्सां रोगिण्यामपि॥”

(शूद्रकमलाकर)

अर्थात् ब्राह्मणके औरस और नागुरो कन्याके गर्भसे अश्वत् नामकी जाति हुई है। यह जाति मनुष्य और अश्वत्स रोगियोंकी चिकित्सा किया करती है।

१२।१३।—कमलाकर मट्टने इसके बाद भी दो तरहके अश्वत्सोंका उल्लेख किया है,—“विप्रात् वैश्याजः क्षत्रात् शूद्राजश्च इति द्वौ अश्वत्सौ” अर्थात् ब्राह्मण और

वैश्याके संसर्गसे तथा क्षत्रिय और शूद्राकन्याके संसर्गसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं—ये दोनों अश्वत्स कह जाते हैं।

१४। मेघातिथिने मनुसंहिताके १०८ श्लोककी भाषामें लिखा है—

“यकान्तरा ब्राह्मणस्य वैश्या तत्र भ्रातृऽम्बुषु।

स्मृत्यन्तरे भृञ्जकण्टक इत्युक्ता”

इसके बाद १०२१ श्लोकके आश्रयमें मेघातिथिने फिर कहा है—

“स ह्यनुलोमस्त्वाग्रपापात्मा भव चासं स्मृतात्मनो ब्राह्मणान्नायतोऽनधिकारित्वाद्यक्त”

अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्याके गर्भसे अश्वत्स हुआ है, मय्य स्मृतिमें उसका नाम भृञ्जकण्टक लिखा है। यह जाति अनुलोम रूपसे पापात्मा नहीं है। किन्तु असंस्कृतात्मा ब्राह्मणसे उत्पन्न गर्भजात होनेसे यह वैदिक कार्याके अनधिकारी है।

१५। कविराज राघवने अपने वैद्यकुलदर्पणमें लिखा है,—“अपि च स्कन्दपुराणे,—

पुत्रिश्चि उवाच।

धन्वन्तरिर्माहाभागः समुत्पन्नाः कथं भुवि।

अमघत् सर्वातरयश्च! तस्मै यद् मदासुने।

मैत्रेय उवाच।

शृणु राजन् कथं जातो धन्वन्तरिरिदं तु।

महर्षिर्गालवो नाम कश्चिद्दर्माहरो यनम्॥

जगाम तत्र भ्रमणाद्विभ्रान्तकलेयः।

ततो निर्वाणने तस्मात् वृणथा परिपोहितः॥

ततो मुनिर्घर्षिर्दंशेः कन्यामेकां ददर्श सः।

तां दृष्ट्वा हृष्टोचित्तोऽस्ती यथापि मुनिपुङ्गव॥

हे कश्ये त्वं जलं दधि प्राणरक्षां कुरुष्व मे।

अयशस्वा तु मे प्राणात्समाहृदि जलं शुभे॥

ततः सा कलसं भूर्मा निघायातिष्ठदुत्तमा।

गालवस्तेन तोषेन स्नात्वा तोषं पपी च तु॥

प्राणात्कतोऽपि दोषोऽत्र नास्तीति चिन्तयन् मुनिः।

प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चाद्दस्य कुर्वाणः॥

एवं विघाय प्रोवाच तां कन्यामतिलोपिताम्।

अनपुत्रं ये ते कन्या ज्ञायतां मम तोषणम्॥

ततः प्रोक्तवती कन्या न मे पाणिग्रहोऽभवत् ।
 धीरमद्राभिधानां हि जानियामुनिसत्तम ।
 विचिन्त्य मुनिस्नामादायाज्ञगामाश्रमकं ततः ॥
 मुनीनामाश्रमे नीत्या उवाच हर्षमानसः ।
 मद्रं कृतं मुने कर्म कन्यामातपता त्वया ॥
 वैश्यायां धीरमद्रायां धर्म्यतरि भविष्यति ।
 इति चिन्ताकुला ह्येते धर्ममत्ताधुना त्वया ॥
 चिन्ता दूरीकृताश्मकं यशानीतेयमद्भुता ।
 इत्युपस्था ते महाराज कुशपुस्तलिका ततः ॥
 हृत्वा क्रोद्धेऽद्वैतस्था वेदमुषार्प्यं तत्कुरो ।
 प्राणप्रतिष्ठां चक्रुस्ते सामवत् पुरुषाकृतिः ॥
 ततोऽभवत् काञ्चनरागिणीरा बालेऽभिरामाकृतिरेव तस्याः ।
 क्रोद्धे समालोच्य सुतं मुनीन्द्राः प्राप्सुं दं वेदवल्काञ्च ज्ञातः
 यैः सुतोऽयं जननोकुले च स्थाता ततोऽभ्यग्न इति प्रसिद्धः ।
 पयमूचू स्ततः सर्वे मुनयो वेदरूपिणः ।
 भन्तुताचार्यं इत्येवं चक्रवर्ष्मभिधानकः ॥
 विद्यालयं याहि भद्रे त्वमक्षतभगामसि वै ।
 इत्वाकर्णं धीरमद्रा चचाल पितृमंदिरं ।
 विलम्बकारणं सा तु कथयामास मातरि ।
 ततो हि मुनयश्चरन्त्य चाक्रुः सखाः क्रियाः क्रमात् ॥
 तमव्यव्यापयामासुरायुदे दं क्रमेण तु ।
 सितविद्यां साध्यविदुषां तथा कष्टकुलोद्भवां ॥
 विवाहं कारयामासुस्तिस्रः कन्या नराधिप ।
 तासु तयोश्च सुता यभूषुस्तस्य कोशलं ।
 पृथक् कुन्वामि ज्ञाताणि तेषांश्चैव तयोश्च ॥
 मेने दासश्च गुप्तश्च देवो दत्तो घराः करः ।
 कुण्डश्चन्द्रो रक्षितश्च राजः सोमास्तथैव च ॥
 गन्धो धैव कुलान्ये तान्यभ्यष्टानां कुलाः नृप ।
 उत्तमी सेनदासी च शुभश्चैव तथा परे ॥
 मध्यमी द्वेषदत्ती च शैवाः करघरादयः ।
 स्थानयोद्यात् क्रियालोपात् भयमास्तास्थितास्तु वै ।
 धैर्ययत् शुद्धिकर्माणि निरिष्टानि मुनीरवरैः ।
 अरघ्रान्तु सर्वेषां यतोः मातृकुले स्थितिः ॥
 आराध्या शूद्रजातानां नमश्चक्षु विधेयतः ॥
 वेदप्राप्तयोद्भवत्तथा च तीर्थ पातितमैः पथम् ।
 मासादिकं तु यम्युक्तं प्राज्ञाणां विधेयं च ॥

इतीय कथितं राजन् तवभाषे यथापुनः ।
 धर्म्यतरि भगवान् विष्णुं स्वर्गं दिव्यं गता ॥”
 (स्कन्दपुराणं)
 स्कन्दपुराणमें सुचिष्टिर मैत्रेयका समोपधन कर
 पूछते हैं—“हे महाभुनि ! सर्गतस्वर्ग ! धर्म्यतरिका
 जन्म किस तरह हुआ, भाष कहिये ।” मैत्रेयने कहा,—
 हे राजन् ! धर्म्यतरिको जन्म-रथा में तुमसे कहता हू ।
 तुम ध्यान लगा कर सुनो । गालव नामक एक मुनि
 जङ्गलमें दर्मा या कुला लानेके लिये गये । यहाँ घूमते
 घूमते घे धक गये । इसके बाद व्याससे व्याकुल हो बाहर
 निकले । बाहर आ कर उन्होंने एक कन्याको देखा ।
 मुनिवरने उस कन्यामे हृष्टचित्त हो कर कहा—हे कन्ये !
 गोत्र जल पिला कर मेरो प्राण-रक्षा करो । मेरा प्राण
 छट पट कर रहा है । गरीर अवन होता आ रहा है ।
 गोत्र तुम जल दो । उस समय कन्या गिरने घड़ा
 उतार भूमि पर रखके लड़ो हुरं । गालवने उस जलसे
 स्नान कर पीछे उससे बचे जलको पान किया ।
 प्राणांतकालमें रम तरहके कार्यामें शैव नहीं—समभ
 कर ही उन्होंने ऐसा कर्म किया और उस कुला-
 का प्रायश्चित्त करना स्थिर कर गति सुष्ट हो
 उस कन्यासे कहा—हे कन्ये ! तुमने आज मुझको
 बहुत ही परितुत किया है । इससे तुमको मेरे
 आशीर्वादसे १०० पुत्र प्राप्त हों । कन्याने कहा,—महा
 राज ! मैं आशिर्वाहता हूँ । इस पर मुनिने उसका
 नाम पूछा । उत्तरमें उसने अपना नाम धीरमद्रा
 बताया । उसके लिये मोचने सोचने मुनि आश्रममे
 चले आये । यहाँ पहुँच मुनिने अन्यान्य मुनियोंसे सब
 हाल कहा । उन्होंने कहा, आपने कन्याको आश्रममें ला
 कर हम लोगोंका बड़ा उपकार किया । एक तरहसे
 आपने हम लोगोंको एक चिन्ता दूर कर दी है । क्योंकि
 वैश्या धीरमद्रासे ही धर्म्यतरि जन्म ग्रहण करेंगे । हम
 लोग इसी चिन्तासे चिन्तित थे । यह बड़ कर उन्होंने एक
 कुलाको पुस्तली बना कर धीरमद्राको गोदमें रखा और
 उसे येश्वरमंत्रोंमें अभिमंत्रित किया । इसके बाद उसमें
 प्राणप्रतिष्ठा की गई । उस समय सुवर्णकान्ति गीरवर्ण
 गोत्रमे बालकको देख मुनियोंने आनन्दित हो कर कहा,

अर्थात् सर्गसंकर दोषसे नाना जातियोंका नाम सुना जाता है। उनके नाम और संघषा बतलाना क्रिसका साध्य है। अभिनोक्तुमारके औरस तथा ब्राह्मणपत्नीके गर्भसे वैद्य जातिकी उत्पत्ति हुई है। वैद्यवीर्य तथा शूद्राके गर्भसे नाना जातियां हुईं। ये नाना वृत्त यनस्पतियोंको जानते हैं, ऋद्धकृत् करते हैं तथा रोग निवारण करते हैं। फिर इन सब (वैद्या)से और शूद्राके गर्भसे ब्यालमाहो या संपेरोका जन्म हुआ है। शौनकेने पूछा, कि सूर्यपुत्र अभिनोक्तुमारने क्रिस तरह क्रिस दुर्विपाकसे ब्राह्मणपत्नीके गर्भमें घोषंघात किया था? सौतने कहा, एक ब्राह्मणी तीर्थयात्रामें गई थी। निज न पुण्योद्यानमें उस श्रान्ता ब्राह्मणीको देख कर अभिनोक्तुमार कामचिह्न हो गये। ब्राह्मणीने भर सक निवारण किया, फिर देवताने उसके रूप पर मोहित हो बलपूर्वक उसके साथ संभोग किया। ब्राह्मणीने उस मनोहर पुण्योद्यानमें ही गर्भत्याग कर दिया। उससे ततकाञ्च तुल्य शीघ्र ही एक बालक उत्पन्न हुआ। ब्राह्मणी उस बालकको ले कर घर गई और उस पर पथमें जो दैवो संकट उपस्थित हुआ था, उसने उसका सब हाल स्वामीसे कह सुनाया। ब्राह्मणने अत्यन्त प्रीणित हो कर पुत्रके साथ भार्याका त्याग किया। उस समय ब्राह्मणीने योगबलसे देह-त्याग कर गोदायरी नदीका रूप धारण कर लिया। अभिनोक्तुमारोंने धा कर पुत्रको भलोमांति चिकित्साशास्त्र, शिल्पकार्य तथा मन्त्र सिखाया।

११। निर्णयतिशुकार प्रसिद्ध स्मार्त कमलाकरने प्राचीन स्मृति यचनोंको उद्धृत कर दिखाया है।

"ब्राह्मणोभक्त्यापामभ्योश्च नाम जायते।

व करोति मनुष्याणां चिकित्सा गणियाणाम् ॥"

(शूद्रकमशार)

अर्थात् ब्राह्मणके औरस और वामुरो कन्याके गर्भसे भ्रमण नामकी जाति हुई है। यह जाति मनुष्य और भ्रमण रोगियोंकी चिकित्सा किया करती है।

१२। १३।—कमलाकर मट्टने इसके बाद भी दो तरहके भ्रमणोंका उल्लेख किया है,—“विभ्रात् वैद्यराजः क्षत्रात् शूद्राभश्च इति द्वौ भ्रमणौ” अर्थात् ब्राह्मण और

वैद्यके संसर्गसे तथा क्षत्रिय और शूद्राकन्याके संसर्गसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं—ये दोनों भ्रमण कह जाते हैं।

१४। मेघातिथिने मनुसंहिताके १०।८ श्लोककी भाषामें लिखा है—

"यकान्तरा ब्राह्मणस्य वैश्यां तत्र जौतोऽभवत्।

स्मृत्यन्तरे भुञ्जकण्टक इत्युक्ता"

इसके बाद १०;२१ श्लोकके माध्यमें मेघातिथिने फिर कहा है—

"स ह्यनुलोमत्वात्प्रपायात्मा भयं चासंस्कृता

रमनो ब्राह्मणपत्नीऽनधिकारित्वाद्यत्क"

अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्याके गर्भसे भ्रमण हुआ है, भ्रमण स्मृतिमें उसका नाम भुञ्जकण्टक लिखा है। यह जाति अनुलोम रूपसे पापात्मा नहीं है। किन्तु असंस्कृतात्मा ब्राह्मणसे उत्पन्न गर्भजात होनेसे यह वैदिक कार्यके अनधिकारी है।

१५। कविराज राघवने अपने वैद्यकुलदर्पणमें लिखा है,—“अपि च हस्वदपुराणे,—

गुणित उवाच।

धर्मस्तरिर्गहाभागः समुत्पन्नः कथं भुवि।

भययत् सर्गतस्यश्च! तस्मै वद महामुने।

मीक्षेय उवाच।

शृणु राजन् कथं जातो धर्मस्तरिरिहैव तु।

महार्घं गालवो नाम कश्चिद्दहार्दो वनम् ॥

जगाम तत्र भ्रमणादतिथान्तकलेषरः।

ततो निर्वाचने सस्मात् वृष्ण्या परिपोषितः ॥

ततो मुनिवर्धिर्देशे कन्यामेकां ददर्श सः।

तां दृष्ट्वा हृष्टोचितोऽसौ यथापि मुनिपुङ्गव ॥

हे कश्ये त्वं जलं दद्वि प्राणरक्षा कुरुष्व मे।

अयशस्था तु मे प्राणात्समाहं हि जलं शुभे ॥

ततः सा कलसं भूमौ निधायातिष्ठदुत्तमा।

गालवस्तेन तोषेन स्नातया तोषं पपी च तु ॥

प्राणात्कौऽपि दोषोऽत्र नास्तीति चिन्तयन् मुनिः।

प्रावशिष्यत्वा करिष्यामि पश्चात्स्य कुकार्णा ॥

एवं विधाय प्रोवाच तां कन्यामतितापिताम् ॥

शतपुत्रं वी ते कन्या जायतां मम तोषणत् ॥

ततः प्रोक्तवती कन्या न मे पाणिप्रहोऽभवत् ।
 धीरभद्रामिधानां हि जानियामुनिसत्तम ।
 विचित्रस्य मुनिस्नामादावाज्ञगामाश्रमकं ततः ॥
 मुनीनामाश्रमे नीत्या उवाच हर्षमानसः ।
 भद्रं कृतं मुने कर्म कन्यामानवता त्वया ॥
 वीश्यायां धीरमद्रायां धर्म्यन्तरि भविष्यति ।
 इति चिन्ताकुला ह्येते धर्ममन्नाधुना त्वया ॥
 चिन्ता दूरीकृतास्माकं यशानीतेषममुमुना ।
 इत्युपस्था ते महाराज कुशपुस्तिका ततः ॥
 कृत्वा क्रोडेऽद्वस्तस्या वेदमुद्यार्ष्यां तदकुपो ।
 प्राणप्रतिष्ठां चक्रुस्ते सामवन् पुरुषाकृतिः ॥
 ततोऽभवत् काञ्चनराशिगौरा बालोऽभिरामाकृतिरेव तस्याः ।
 क्रोडे समालोक्य सुतं मुनीन्द्राः प्राप्सुर्दं वेदबल्लाञ्च जातः
 वीर्यसुतोऽयं जननोकुले च स्थातः ततोऽभवत् इति प्रसिद्धः ।
 पयस्यू स्ततः सर्वे मुनयो वेदरूपिणः ।
 अमृताचार्यं इत्येवं चक्रवर्त्यमिधानकः ॥
 पित्रालयं याहि भद्रे त्वमक्षतभगासि वै ।
 इत्याकर्ष्य धीरमद्रा चचाल वितुमिदं ।
 विलम्बकारणं सा तु कथयामास मातरि ।
 ततो हि मुनयस्त्वस्य चाक्रुः सर्वाः क्रियाः क्रमात् ॥
 तमव्यव्यापयामासुरायुदे क्रमेण तु ।
 सित्तयियां साध्यविदुषां तथा कष्टकुलेऽप्यवां ॥
 विवाहं कारयामासुस्तिस्रः कन्या नराधिप ।
 तासु त्रयोदश सुता यभूवुस्तस्य केवलं ।
 पृथक् कुल्यानि जातानि लेपाण्यै त्रयोदश ॥
 सेतो दासश्च गुप्तश्च देवो दत्तो धरः कराः ।
 कुण्डश्चन्द्रो रक्षिश्च राजः सेामस्तथैव च ॥
 नन्दो वीर कुलान्येतान्यभ्यष्टानां कुलाः नृप ।
 उत्तमो सेनदासो च गुप्तश्चैव तथा परे ॥
 मध्यमो देवदत्तो च शेषाः करधराद्वयः ।
 स्थानदोषात् क्रियालोपात् अधमास्तास्वितोस्तु वै ।
 वीशयत् शुद्धिकर्माणि निर्दिष्टानि मुनीश्वरैः ।
 अशुष्टानां सर्वेषां ततो मातृकुले स्थितिः ॥
 आराध्या शूद्रजातानां नमश्च य विशेषतः ॥
 वीश्याश्वेदोद्भवत् तैश्च पालिमौषधम् ।
 मासादिकं तु यन्शुद्धं प्राणपादिसिरेव च ॥

इतीय कथितं राजन् नयमावे यथापुनः ।
 धर्म्यन्तरिः भगवान् विष्णुं स्वर्गां दिवं गतः ॥”
 (स्कन्दपुराण)
 स्कन्दपुराणमें मुचिष्ठिर मैत्रेयका सम्भाषण कर
 पूछते हैं—“हे महाशुनि ! सर्वातरथ ! धर्म्यन्तरिका
 जन्म किस तरह हुआ, भाव कहिये ।” मैत्रेयने कहा,—
 हे राजन् ! धर्म्यन्तरिकी जन्म-रथा में तुमसे कहता हू ।
 तुम ध्यान लगा-कर सुनो । गालव नामक एक मुनि
 अङ्गुलमें दर्भा या कुशा लानेके लिये गये । वहां घूमते
 घूमते वे थक गये । इसके बाद व्याससे व्याकुल हो बाहर
 निकले । बाहर आ कर उन्होंने एक कन्याको देखा ।
 मुनिवरने उस कन्यासे हृष्टचित्त हो कर कहा—हे कन्ये !
 शीघ्र जल पिला कर मेरी प्राण-रक्षा करो । मेरा प्राण
 छट पट कर रहा है । गरीर भयान होता आ रहा है ।
 शीघ्र तुम जल दे । उस समय कन्या सिरसे घड़ा
 उतार भूमि पर रखके वाड़ी हुई । गालवने उस जलसे
 स्नान कर पीछे उससे बचे जलको पान किया ।
 प्राणागतकालमें इस तरहके कार्यामें शेष नही—समर्थ
 कर ही उन्होंने येना कर्म किया और उस कुकर्मा-
 का प्रायश्चित्त करना स्थिर कर बलि तुष्ट हो
 उस कन्यासे कहा—हे कन्ये ! तुमने आज मुझको
 बहुत ही परित्रुन किया है । इससे तुमको मेरे
 आशीर्वादसे १०० पुत्र प्राप्त हों । कन्याने कहा,—महा-
 राज ! मैं अविवाहिता हूँ । इस पर मुनिने उसका
 नाम पूष्ठा । उत्तरमें उसने अपना नाम धीरमद्रा
 बताया । उसके लिये सेवने सेवने मुनि आश्रममें
 चले आये । यहां पहुंचे मुनिने अन्यान्य मुनिपौंसि सब
 हाल कहा । उन्होंने कहा, आपने कन्याको आश्रममें ला
 कर हम लोगोंका बड़ा उपकार किया । एक तरहमें
 आपने हम लोगोंकी एक चिन्ता दूर कर दी है । क्योंकि
 वीश्या धीरमद्रासे ही धर्म्यन्तरि जन्म ग्रहण करेंगे । हम
 लोग इसी चिन्तासे चिन्तित थे । यह कह कर उन्होंने एक
 कुशाकी पुस्तकी बना कर धीरमद्राको गोदमें रखा और
 उसे वेदमंत्रोंमें अभिमन्त्रित किया । इसके बाद उसमें
 प्राणप्रतिष्ठा की गई । उस समय सुवर्णकान्ति गौरवर्ण
 मोराम् बालकको देख मुनिपौंसि आनन्दित हो कर कहा,

किं वेदप्रभावसे इसका जन्म हुआ, इसलिये वैद्युप और अम्बाकुलमें स्थिति होनेसे अम्बष्ठ नाम हुआ। तब मुनिपौत्रे उसको अमृतानामाकी उपाधि दी। वीरमद्रासे कहा, 'वीरमद्रे ! तुम अमृतपौत्रि हो कर पिताके घर जाओ।' इसके बाद वीरमद्रा पिताके घर आई और उसने विलम्बका कारण कह सुनाया। इसके बाद मुनिपौत्रे उस बालकका जातकर्म संस्कार सम्पन्न कर यथासमय आयुर्वेद पढ़ाया और उनको सिद्ध-विद्या, साध्यविद्युवा और कष्टकुलोद्भवा—तीन कन्याओंका प्राणिप्रदण कराया।

उन तीन कन्याओंमें १३ पुत्र उत्पन्न हुए। इन १३ पुत्रोंमें सेन, क्षाम, शुभ, देव, दत्त, धर, कुण्ड, चंद्र, रक्षित, राज, सोम, नन्दी, इन पृथक् १३ अम्बष्ठोंकी उत्पत्ति हुई। इनमें सेन, क्षाम और शुभ सर्वांतरुष्ट देव, दत्त मध्यम; अम्बष्ठि धर, कर आदि स्थानदेव तथा क्रियाकलाप लेाप होनेसे अधम कहलाये। मुनिपौत्रे इन अम्बष्ठोंका शुद्धिकर्म वैश्यकी तरह निद्रे प्र किया है। यथोक्ति सब अम्बष्ठोंका मातृकुलमें अग्रस्थान है, सुतरां मातृकुलके आचार-नुष्ठान ही करणीय निर्दिष्ट हुआ है। वेदमंत्रोच्चारणसे इनके वीरपुत्रका जन्म हुआ है, इससे वे सम्पत् प्रकासे शूद्र जातिके आराध्य और नमस्व हैं और वेदविदित औपधातिके परिचालक हैं। इनके मातादिमें जो परिशुद्धि होती है, वह भी ब्राह्मणों द्वारा ही निर्दिष्ट हुई है। हे महाराज ! आपके सम्मुख इस समय फिर निवेदन कर रहा हूँ, कि वे भगवान् धर्मतरि इस तरहसे विष्णुका स्मरण कर स्वर्गत हुए।

१६। वैद्युपकुन्दतिलक भरत महिरुने अपने चंद्रप्रभा-
में लिखा है—

"मत्पत्नेताद्वापरेषु युगेषु ब्राह्मणाः क्रि।
प्रभृतिविविद्भूद्रकन्यका उपयैमिरे ॥
तत्र वैश्यसुतायां धे अग्निरे तनया अमी ।
सर्वे ते मुनयाः स्थिता वेदवेदाङ्गपारगाः ॥
तेषां मुह्येऽमृताचार्यैस्त्वेषायम्बाकुले हि तम् ।
अम्बष्ठ इत्यसामुक्तस्तत्रे जातिप्रयत्नान् ॥
परे सर्वेऽपि आम्बष्ठा यैद्या प्रात्यणसम्भवाः ।

जननीता अनुर्लक्ष्यया यज्ञाता वेदसंक्षिपेताः ॥
अम्बष्ठास्तेन ते सर्वे द्विजा वैद्ययाश्च कोर्त्सिताः ।
अथ रुक्प्रतिकारित्वात् भिषजस्ते प्रकोर्त्सिताः ॥
स्तथे वैद्यः पितृस्तुल्याः प्रेतायां हतवन्स्तुत्याः ।
द्वारे वैश्यवत् प्रोक्ताः कञ्चो शूद्रसमा मताः ॥"

अर्थात् स्तव, जेता, द्वार युगमें ब्राह्मण चार जाति-
की कन्याओंसे विवाह करते थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,
शूद्र। इनमें ब्राह्मणके औरस तथा वैश्यकाके गर्भमें
जो पुत्र उत्पन्न हुए, वेदवेदाङ्गपारग मुनि कहनाये।
उनमें अमृताचार्य (धर्मतरि) प्रधान थे। अर्थात्
जननीकुलमें जन्म होनेकी वजह जाति प्रयत्नके समय
उनका नाम अम्बष्ठ हुआ, पीछे ब्राह्मण-वैद्या सम्भूत जो
पुत्र हुए, वे सभी अम्बष्ठोंकी श्रेणीमें गिने गये। जननी-
से जन्मलाभ और वेदमन्त्रके प्रभावसे द्विपतिलाभ
हुआ था, इससे वे सभी "अम्बष्ठ" और "वैद्य" नामसे
ख्यात हुए। रोग अच्छा करते थे, इससे भिषक भी
कहलाते थे। वैद्य सरथयुगमें पितृ-सद्गम; संताम
क्षत्रियवत्, द्वारगमें वैश्यवत् और कलिमें शूद्रके समान
परिचित हैं।

सिया इसके महाभारतमें और एक तरहके पौत्रोका
उल्लेख है—

"चाण्डालो मात्ववैद्यो च ब्राह्मणां क्षत्रियाद्यु च ।
वैश्यायाश्चैव शूद्रस्य लक्ष्यन्तेऽप्यसदाख्य ॥"

(भारत अनुयायन ४६।६)

अर्थात् शूद्रके औरस तथा वैश्याके गर्भसे वैद्य
नामक अपसद् जातिकी उत्पत्ति हुई है।

ऊपर जो कई प्रमाण उद्धृत किये गये, उन कई प्रमाणों
से हम १५ तरहके अम्बष्ठ या वैद्योंका पता पाते हैं।

मनुसंहिता और महाभारतके प्रधान प्रधान रीक्षा-
कारोंने अधिकतम दो अम्बष्ठकी अपसद् या अपसर्जित
रूपसे ही प्रहण किया है। मनुमें अम्बष्ठोंकी वृत्ति
निर्दिष्ट करनेके लिये कहा है—

"ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसज्ञाः स्मृतान् ।
ते निन्दितवर्त्तपेयुर्द्विजानामेव कर्त्तव्यः ॥
स्तानमश्वत्थारण्यमम्बष्ठानां चित्रितस्तम् ॥"

(१०।५६)

द्विजातियोंमें जो अपसद् और अपध्वंसज हैं, वे द्विजोंके निन्दित कर्म द्वारा जीविका निर्वाह करें। (इतमें) सूत जातिकी वृत्ति अश्वसारथ्य और अम्बष्ठोंकी चिकित्सा है।

मनुटीकामें (१०४६) नन्दनाचार्योंने लिखा है—

"अथ दृश्यूनां साधारणी वृत्तिमाह । ये द्विजानामपसदाः इति । अपसदाः चौर्यजाता अनुलोमजाः अपध्वंसजाः प्रतिलोमजाः सूतादयः अनुलोमजेव्यप्यनतराः पुत्रव्यतिरिक्ता अम्बष्ठादयश्च सजातोपेत्यपि कुण्डगोलकादयश्च द्विजानामेव कर्मनिद्विजार्थरेव कर्मभिः चिकित्साश्वसारथ्यादिभिरुच्येयुर्गोविद्युः ।"

अर्थात् दृश्युओंकी साधारण वृत्ति कही जाती है। द्विजातियोंमें अपसद् हैं अर्थात् चौर्यजात अनुलोमज अम्बष्ठादि और अपध्वंसज या प्रतिलोमज सूत आदि। अनुलोमज होने पर भी जनस्तर पुत्रकी छोड़ कर अम्बष्ठादि और सजातिमें जन्म होने पर भी कुण्डगोलकादि द्विजातियोंके लिये ही चिकित्सा अश्वसारथ्यादि निर्दिष्ट कर्म द्वारा जीविका निर्वाह करें।

वदूत वचनानुसार अम्बष्ठ दृश्यु और चौर्यजात हैं अर्थात् बलात्कार द्वारा उत्पन्न हुए हैं। वेदव्यासने महाभारत-मनुशासनपूर्वके ४६थे अध्यायमें अम्बष्ठोंको अपध्वंसज कहा है। मिताक्षराकारः विद्यादेववने "अपध्वंसज" शब्दका 'व्यभिचारजात' अर्थ किया है। (याज्ञवल्क्य टीका १।६०) है। मनुटीकामें सर्वनारायणने भी लिखा है—

"विप्राद्रे श्यायां यथा म्बष्ठे यथा या क्षत्रियाच्छूद्रायामुगः पुत्र भानुगोपेन जातोऽप्यनन्तरस्त्रोजातपुत्रोपेक्षया निश्चितस्तथा वैश्याद्विप्रायां जातो वै देहः शूद्रान् क्षत्रियाचार्यां जातश्च क्षत्रा । अनन्तरप्रतिलोमजातापेक्षयैकांतरितजानरथागनिर्दिष्ट इत्यर्थः । यथा स्मृतौ निन्दितापिति शेषः ।" (मनुटीका १०।१३) अर्थात् प्राणलसे वेदयाका गर्भज अम्बष्ठ और क्षत्रियके औरमते शूद्राका गर्भज उगपुत्र अनन्तर स्त्रोजात पुत्रोपेक्षा निर्दिष्ट है। इस तरह वैश्वसे ब्राह्मणोंका गर्भज वै देह, शूद्रसे क्षत्रियाका गर्भज क्षत्रा भी निर्दिष्ट है, अनन्तरज-प्रतिलोम अपेक्षा एकान्तरज-प्रतिलोमगण भी निर्दिष्ट है। क्योंकि स्मृति-

में है, कि अम्बष्ठ और उगु शोनीं जातियां ही निर्दिष्ट हैं।

प्रसिद्ध टीकाकार सर्वज्ञनारायणने मनुके १०।५० श्लोककी टीकामें—"एते सूतादय विद्वानादिचद्विजः" अर्थात् सूत, अम्बष्ठसे बने तक चिह्नित जातियोंको पर लेना होगा। अर्थात् उनके मतसे ये सब जातियां समाजसे बाहर हैं। उक्त श्लोककी टीकामें रामचन्द्रने लिखा है "स्वर्गमिर्षासंशयतो विद्वाना एते पीण्डुकादयः पसेयुः" अर्थात् रामचन्द्रके मतसे पीण्डुक, द्राविड, कम्बोज, यवन, ग्रक, पारद, पद्म, गोन, किरात, दरद, खज और द्विज तथा शूद्रोंमें जो याह्यजाति या दृश्यु (डाकू) नामसे प्रसिद्ध हैं, अपसद् तथा अपध्वंसज जो निर्दिष्ट हुए हैं, वे निन्दित कर्म द्वारा ही जीविका निर्वाह करें।

मनुक पीण्डुकादि क्षत्रिय जाति समरो जिस तरह क्रियालोप और ग्राह्याणादर्शन हेतु वृण्यत्व प्राप्त हुई थी, उसी तरह निन्दित कार्य द्वारा अम्बष्ठादि भा क्रियालोप हेतु पीण्डुकादिकी तरह वृण्यत्वप्राप्त और याह्यजातिमें गिने गये थे। वास्तविकतया आज भी दाक्षिणात्यमें त्रिवांकुरराज्यमें इस तरह समाजबाह्य अम्बष्ठ यैषोंका वास है। इस जातिके सम्बन्धमें त्रिवांकुरराज्यके दोषान पेस्कार सुब्राह्मण्य ग्रन्थपरने लिखा है—*"In their dress, ornaments and festivals they do not differ from the Malayal Sudras, of whom according to the Keralotpatti, they form one of the lowest subdivisions. The niece is the rightful wife of the son and the daughter that of the nephew.....Among the Ampaitans (Ambastham) fraternal polyandry seems to be common."*

अर्थात् येजभूया और उरसयोंमें मलयान शूद्रोंके साथ कोई पार्श्वप दिव्यर्दे नदा देता। केरलोत्पत्तिके मतसे यह जाति नोचनम शूद्रोंमें गिनी जाती है। नामगिनयो ही उपयुक्ततबू है। इस अम्बष्ठ जातिमें बहुस्रानाभो-

• Census Report of Travancore 1901, by N. Subrahmanya Aiyar, M. A. M. B. C. M Part, 1 p. 271

के साथ मिल कर साधारणतः एक पत्नी प्रदण किया करते हैं।

सम्बन्धनः इस तरह अम्यष्ट्र जातिकी गिरुष्ट देख कर ही स्मार्त्त रघुनन्दन, वाचस्पति मिश्र आदि स्मार्त्त "यव" अम्यष्ट्रादीनामपि क्लीं शूद्रत्वमिति" लिखने पर वाध्य हुए हैं। सिवा इनके महाराष्ट्र और कर्नाट अञ्चलको वैदु और घेद् जातिकी भयस्या आलोचना करने पर भी उनको द्राविड अम्यष्ट्र जातिकी तरह हीन समझते हैं। गैदु शब्द देखो। यङ्गीय घेदेजातिके साथ उनकी तुलना हो सकती है।

उगनाने जिस अम्यष्ट्रका उल्लेख किया है, यह अम्यष्ट्र जाति भागधनमें (१०१४३४) हस्तिपकरूपसे अर्थात् हाथोंके महावत कही गई है।

"अम्यष्ट्राम्यष्ट्रमार्गं गो वृहस्पतम मा चिरम्।

नो चेत् सकुञ्जरं त्वाथ नयामि यमसादनम्।"

'अम्यष्ट्रो हस्तिपः' इति श्रीधर।

हिन्दू-राजत्वकालमें हस्तीपक खेतीवारी करते थे, हाथी पर ध्वजा कंधे पर धर कर चलते थे। रणभूतमें उनकी अस्त्रधारण करना पड़ता था तथा नाग उत्सवोंके समय हाथी पर आगे नागे जा नागा अग्नि प्रोड़ा प्रदर्शन करते थे। आगवतमें निपादो अम्यष्ट्र हो ग्राह्यजीवि अम्यष्ट्र हैं। यह हाथीको भी चिह्नित करते थे, इससे गोच घेचको हाथुडिया कहते हैं। नारदने क्षत्रियकन्याके गर्भजात जिस अम्यष्ट्रका उल्लेख किया है, मनुके प्रसिद्ध टीकाकार रामचन्द्रने उस अम्यष्ट्रको दो भागोंमें विभक्त किया है। एक वैश्यसे क्षत्रियकन्याजात। सुनरां यहां दोनों प्रकारके अम्यष्ट्र ही क्षत्रियजात प्रतिष्ठोम जाति हो रही है। वैश्य और शूद्रके लिये क्षत्रियकन्या अविद्याह, सुनरां इन दोनों तरहके अम्यष्ट्रोंको ही हीन वर्णसंकर स्वीकार करना होगा।

कमलाकरने दो प्रकारके अम्यष्ट्रोंकी बात लिखी है, ब्राह्मणके भीरस तथा भागुरीके गर्भसे उत्पन्न तथा क्षत्रिय औरन तथा शूद्रसे उत्पन्न दोनों अम्यष्ट्र कहे जाते हैं। यह ध्यभिचार और अविद्यायेदन कहा जाता है। भतपय ब्राह्मण-उमात्र या क्षत्रिय शूद्राज—ये दोनों प्रकारके अम्यष्ट्र ही हीन वर्णके निर्मित हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकी वैद्यज्ञानिकी कुछ लोग घेदे समझते हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकारने अभिनोकुमारके भीरस और ब्राह्मणकीके गर्भसे अम्यष्ट्रोंको उत्पत्ति बतला कर अन्तमें कहा है—

"पुत्र" चिकित्साशास्त्र पाठयामास यत्नतः।

नाना शिल्पश्च मन्त्रश्च स्वयं स रघिनन्दनः॥"

(३० सर्ग १०१११)

अर्थात् अभिनोकुमारने सपने बलात्कार जात पुत्रको चिकित्साशास्त्र पढ़ाया था और नाना शिल्प तथा मन्त्रोंको सिखाया था।

जब 'घेदे' जातिकीकमी चिकित्साशास्त्र मध्यपन करते देखा नहीं गया, तो चिकित्साशास्त्रमें अधिपति ब्रह्मवैवर्त्तकी वैद्य ज्ञानि 'घेदे' जातिके साथ निरवय हो अभिन्न नहीं है। ब्रह्मवैवर्त्तकारने वैद्य जातिकी उत्पत्तिका वर्णन कर कहा है—

"वैद्यवीर्ये"ष्य शूद्रायां वमपुत्र इवो जनाः॥

वे.च भाष्यगुणशास्त्र मन्वीपधिराधयाः।

वेभ्यः जाताः शूद्रायां ये ब्वालमादियो युधि॥"

(३० सर्ग १०१२१)

अर्थात् 'वैद्यवीर्ये'से शूद्राके गर्भसे गाम्यगुणक मन्वीपधिराधयन बहुत जातियोंकी उत्पत्ति हुई है। एतों सब जातियोंसे शूद्राके गर्भसे सपेरे या ब्वालमादी जातिकी सृष्टि हुई है।

ब्रह्मवैवर्त्तके घेचसे शूद्राके गर्भजात मन्वीपधिराधयन जाति ही घेदे या घेदिया है।

मनुभाष्यकार मेधातिथिने स्मृति पर निर्भर कर ही लिखा है, कि जिस घेदयका द्विजोचित संस्कार नहीं हुआ हो, इस तरहकी मात्य वैश्यकी कन्यासे ब्राह्मण वीर्यसे भूजकण्टक नामकी एक जाति उत्पन्न हुई है। मनुने जिस पापात्मा भूजकण्टकका उल्लेख किया है उससे वैश्यकन्याके गर्भजात भूजकण्टक मितपय है। किन्तु मात्यकन्याके गर्भजात होनेसे ये रत्नात्रनिमित्त और पतित हैं। ब्राह्मण-वैश्याज कहे कर इनको भी मेधातिथिने स्मृत्यन्तरके प्रमाणानुसार अम्यष्ट्र ही पर दिया है।

शारीय और पद्मज वैद्यकूलक प्रायः मन्वी कहा

करते हैं, कि अमृताचार्य धन्वन्तरि महाराजसे ही वैद्य-
जातिकी उत्पत्ति हुई। अम्बष्ठुक्रममें स्थिति हेतु (कानोन
पुत्र) अमृताचार्य अम्बष्ठु नामसे उपात हुए हैं, उसीसे
ही वैद्यजातिका नाम अम्बष्ठु हुआ है।

अम्बष्ठु धन्वन्तरिकी अमृताचार्य उपाधि दे कर बहु-
तेरे यह उपात्त करते हैं, कि समुद्रमग्नकालमें
अमृतकुम्भ हाथमें ले कर जो धन्वन्तरि आविर्भूत हुए
थे, जो यासुदेवके अंशरूपसे मागवत आदि प्रथो-
में वर्णित हुए हैं, वैद्य जातिके आविर्भूत धन्वन्तरि
और वे अमित्र हैं। वास्तवमें यह ठीक नहीं है।

महामारतके मतसे देवोंके आदिरोगहर धन्वन्तरि
समुद्रमग्नकालमें अमृतकुम्भ हाथमें लिये निकले
थे। (आदिपर्व १८ अ०) यह सागरसम्भूत
धन्वन्तरि स्वर्ण नामसे विख्यात है। इनको छोड़ कर
सुप्रसिद्ध क्षत्रियवंशमें और एक धन्वन्तरि आविर्भूत
हुए थे। वे मरुवलोकमें आयुर्वेद-प्रवर्तक और
विष्णुके अग्रतम अवतार कहे गये हैं। भागवतमें इन
धन्वन्तरिका वंशपरिचय इस तरह दिया गया है—

पुरुवर्याके पुत्र आयु ये, इनके पांच पुत्र हुए—नहुष,
क्षत्रवृद्ध, रजो, बलवान् राम और अनेना। क्षत्रवृद्धका
पुत्र सुदोत्र है। उनके तीन पुत्र हुए—काश्य, कुञ्ज
और शृत्समन्। इन शृत्समन्के पुत्र शुनक और
शुनकके पुत्र बह्मचध्रेष्ठ शौनक मुनि हैं। काश्यके पुत्र
काशि, काशिके पुत्र राष्ट्र, राष्ट्रके पुत्र दीर्घतमा, दीर्घतमा-
के पुत्र आयुर्वेद-प्रवर्तक धन्वन्तरि हैं। ये यष्टभुक् और
यासुदेवके अंश हैं, इनके स्मरणमात्रसे सब रोग दूर होता
है। धन्वन्तरिके पुत्रका नाम केतुमान, केतुमानके पुत्र
भीमरथ और भीमरथके पुत्र दिवोदास है।

(भागवत ६।१०।५)

चरकादि ग्रंथोंसे भी जाना जाता है, कि उक्त
क्षत्रिय काशीराज दिवोदासने माना आयुर्वेदशास्त्र इन
वंशमें प्रचार किये। माना वैद्यक-ग्रंथोंमें ये "धन्वन्तरि
दिवोदास" नामसे भी विख्यात हुए हैं। हिंदूशास्त्रके
अनुसार क्षत्रियराज धन्वन्तरिसे ही मरुवलोकमें सबसे
पहले आयुर्वेद शास्त्र प्रचारित हुआ। इनके वंशधर
दिवोदासने भी कई आयुर्वेद तर्कोंका प्रचार किया था।

चरक सुश्रुत आदि अर्ययोनिस क्षत्रियराज धन्वन्तरि और
उनके वंशजोंके प्रवर्तित आयुर्वेद्रीय मत प्रदण कर अपने
अपने चिकित्साशास्त्रका प्रचार किया था। उक्त धन्वन्तरि
द्वारा सर्वप्रथम आयुर्वेदशास्त्रका प्रचार और जगत्का
अधेश कल्याण साधित हुआ। इससे वे भी भागवतमें
परशुरामके पूर्ववर्ती विष्णुका एक अवतार कहे गये हैं।
ऐसे—

"धन्वन्तरिरथ भगवान् स्वयमेव कीर्ति-
नोन्ना नृणां पुरुकर्ता क्व भाशु हन्ति।
यस्य च भागममृतायुवावरुन्धे
आयुष्यवेदमनुशास्त्रवतीर्षं जोकं॥" (२।७।२६)

धन्वन्तरिने सबसे पहले आयुर्वेदशास्त्रका प्रचार
किया और उनके औपध प्रमाणसे सैकड़ों व्यक्तियोंने
जीवन लाभ किया है। इससे परवर्तीकालमें जिस
व्यक्तिने आयुर्वेदशास्त्रमें विशेष पारदर्शिता दिखाई है और
औपध प्रमाणसे जो बहुतेरे लोगोंके जीवनदान करनेमें
समर्थ हुए हैं, ऐसे वैद्य भी द्वितीय धन्वन्तरिके कहे
सम्मानित हुए। धीरन्द्राके गर्भमें उत्पन्न अम्बष्ठुका भी
एक चिकित्सक जातिका अग्रणी सोच कर परवर्तीकालमें
धन्वन्तरि उपाधि दी गई थी और उसीके साथ साथ
अम्बष्ठु समुद्रमग्नोद्भूत धन्वन्तरिकी अमृताचार्य
उपाधिको ले कर सम्भवतः उनके नामके साथ जोड़
दिया था।

चरको आतियोंमें अम्बष्ठु।

जो हों, उपरोक्त माना तरहके शास्त्रवाचक, कुलप्रथ,
दाक्षिणात्यके अम्बष्ठुओंकी वर्तमान अवस्थाको देल कर
समर्थमें जाता है, कि अम्बष्ठु जाति एक तरहकी भी हो
नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णोंमें हो
विभिन्न अम्बष्ठु जातियोंका वास्तवस्थान था, इसमें सन्देह
नहीं। पहले जो प्रमाण उद्धृत किये गये हैं, उनमें वैश्य
और शूद्रप्रभृता अम्बष्ठुका ही परिचय मिलता है। इस
समय हम अम्बष्ठु क्षत्रियका भी परिचय देते हैं—

अम्बष्ठु क्षत्रिय।

मारिकिन्दपीर मिक्न्दर अब पञ्जाबमें था पद्वैना, उस
समय दक्षिण पञ्जाबमें अम्बष्ठु (Ambastai of Ariun)
नामकी धीर जाति राजस्य कर रही थी। इस जातिने

इस सिक्न्दरने भीर युद्ध किया था। पुराणकार भीर पाणिनिने भी इस क्षत्रिय जातिका उल्लेख किया है। युगमें इस जातिकी नितान्त अप्पाचोन कहा जा नहीं सकता। इनकी वधयुपित वामभूमि पुराणमें अश्वत्थ नामसे विख्यात है।

शाश्व युद्धके आविर्भावके समय अश्वत्थ नामक एक ब्राह्मण कापिलयस्तु अञ्चलमें वास करते थे। दो हजार वर्ष पहले रचित दीर्घनिर्वाणके अन्तर्गत "अश्वत्थ-स्तुत" नामक वाली प्रथममें उस अश्वत्थ ब्राह्मण और उस समयके ब्राह्मणोंको सामाजिक अवस्थाका खूब पता लगता है।

अश्वत्थ काव्यम् ।

इसके सिवा उत्तर-पश्चिम प्रदेशोंके कुलप्रभृत्त पद्मपुराणीय यच्चोसे मालूम होता है, कि नित्यगुप्तके पुत्र द्विमान्से अश्वत्थ नामक काव्यरथ धेनीको उत्पत्ति हुई है। इस जातिमें बहुतेरे लोगोंने चित्ररसाज्ञानमें पाण्डित्य दिखाया है। आज भी इनका आहार-विहार ब्राह्मण क्षत्रियोंके समान ही है।

उपरोक्त विभिन्न अश्वत्थों और यैषोंको छोड़ यद्देशमें भीर एक वैध जातिकी बली है। साधारणतः यैष्य कहनेसे इसी यैष्य जातिका ज्ञान होता है।

यद्देशका वैधभाज ।

बङ्गालकी यैष्य जाति भी अपनेकी अश्वत्थ संस्तान कहके परिचय देती है। बङ्गालके यैष्यसमाजकी पूर्वा पर सामाजिक अवस्था, विद्वय, बुद्धि और धर्मनिष्ठाकी आलोचना करनेसे इस जातिकी कमी भी मनुक समाज याहा अश्वत्थ कहा जा नहीं सकता।

इनकी उत्पत्ति ।

बङ्गालके उत्पन्न धेनीके ब्राह्मण-काव्यके साथ धेनु यैष्य समाजके आचार-व्यवहारका कुछ भी पार्यव्य दिलाई नहीं देता। वर्तमान यद्देशीय यैष्यसमाज अपने अपने वर्णधर्मके सम्बन्धमें तीन तरहके मन प्रकटित किया करते हैं—

१। यद्देशीय मियकनिरोमणि यद्देशीय-कथिराज प्रमुल्ल यैष्योंका कहना है, कि पूर्व समयमें असवर्ण विवाह-प्रथा प्रचलित थी। इस समय ब्राह्मण ब्राह्मणकन्याके

सिवा अजातिकी अधात् क्षत्रिय भीर वैश्यकी कन्याधेने विवाह कर लेते थे। अतएव ब्राह्मणके भीरसने विवाहिता वैश्यकन्याके गर्भजात संस्तान अश्वत्थ भी एक ब्राह्मण है।

२। राष्ट्रीय यैष्य-समाज भीर राजा राजवत्सके दलभुक्त यद्देश यैष्यसमाज अपनेकी यैष्य संवन्धने है। इसके सम्बन्धमें राजा राजवत्सने उस समयके भारत-वर्षके नाना स्थानोंके प्रधान प्रधान पण्डितोंकी बुला कर जो व्यवस्थाये संग्रह की थी, वही व्यवस्था ये प्रमाणस्वरूप व्यवहार करते हैं। वे साधारणतः—

"वैश्यकन्याकायां पित्र्यायामश्वत्थोनाम भवति ।

यत्तु ब्राह्मणेन...वैश्यामुत्पत्तितो यैष्य एव भवति ॥"
(निताक्षर)

अर्थात् "विवाहिता वैश्यकन्यासे अश्वत्थ नामकी जाति हुई है। ब्राह्मण द्वारा वैश्यासे उत्पन्न होनेसे यह जाति वैश्यकी समान होगी।" इत्यादि निताक्षरकी उक्ति दिखाते हैं।

३। हमारी रघुनन्दनके मतानुयत्तों कोई कौं प्राचीन यैष्य भरतमल्लिकघृत्त वचन उद्धृत कर अपनेकी शूद्र भावावस्था ही समझते हैं। जैसे—

"शनेः शनेः किवाशोगदय ता वैधमातयः ।

कन्नो शूद्रमा शेषा यथा वृषा यथा विराः ॥" (रतिविष्णु)

'यूने अद्यमे द्वे जातो ब्राह्मणः शूद्र एव च' इति यमः । 'गनेकेस्तु किवालोगादिमाः क्षत्रियजातयः । गृध्रव्य' गता लोके ब्राह्मणाश्चोनेन च ।' इति मनु-गवने' घृत्तया एवमश्वत्थोनामापि कन्नो शूद्रत्वमिति स्व स्व गृध्रेषु वाचस्पतिमिश्रादिभिस्तथा युक्तिरथे स्मार्त्तं भट्टाचार्येणाप्युक्तम् । अतएव कुलपञ्जिकाया मुक्तम्—

"अतिदिष्टं हि वैधस्य शूद्रत्वं रतिपादिषु ।

तस्मात् अश्वत्थिगस्तुश्वो वैशाः शूद्रत्वं सूचिमाः ॥"

(चन्द्रमहा ६१०)

अर्थात् हमसे क्रियात्मिकके कारण वैश्य जातिधे तरद वैध जाति भी कल्पमें शूद्रत्वकी प्राप्त हुई है। यमने कहा है, कि इस अच्य कलिगुणमें ब्राह्मण भीर शूद्र केवल यद्देशी जातिवां रद्देगी। ब्राह्मणके अश्वत्थ भीर

क्रमसे क्रियालोप होनेसे ये सब क्षत्रिय जातियां शूद्रत्व-
को प्राप्त करते गी। मनुका वचन उद्धृत कर स्व स्व गंधर्म
घाचस्पतिमिश्र आदि और शुद्धितत्त्वमें स्मार्त्त भट्टा-
चार्य द्वारा कलिकालमें अश्वघ्निका भी शूद्रत्व प्रति
यादित हुआ है। इसी कारण प्राचीन कुलपञ्जिका-
में लिखा है, कि क्षत्रियोंकी तरह वैश्य भी अति-
दृष्ट शूद्र हैं। (जाग्रदप्रभा) प्रायः १५६० शक
(१६७५ ई०) में राष्ट्रीय वैश्यकुलतिलक भरतमल्लिकने
लिखा है,—

“अग्निदिशं हि वैश्यस्य शूद्रत्वं क्षत्रियादिवत्।”

उक्त प्रमाणके अनुसार कहा जा सकता है, कि
महामति मरत मल्लिकने जिन समाजमें जन्म लिया था,
उस प्रथित राष्ट्रीय वैश्य समाजमें उनके समय उपवीत
प्रचलित न था। साधारणतः ये शूद्राचारी ही गिने जाते
थे। राजा राजवल्लभके अश्वघ्नयसे दो राष्ट्रीय और
चङ्गन दोनों वैश्य समाजमें ही पुनः संस्कार या
वैश्याचारग्रहणका सूत्रपात हुआ। राजा राजवल्लभने
राष्ट्रीय वैश्य समाजके प्रधान समाजस्थान
श्रीषण्डमें विवाह किया और अपने मुनिशावादके
भवनमें काशी, काशी, प्राविड़ आदि भारतीय सभी
प्रधान परिवर्तियोंका आह्वान कर पुनः संस्कारग्रहणकी
व्यवस्था ली थी। उस व्यवस्थापत्रमें लिखा है—

“कङ्कश्चादि प्रामनियान्तिनामश्वघ्नानां यद्योपवी-
तादिकामिति लोकरुद्रशनेन च” अर्थात् कङ्कश्चादि प्राम-
नियासी अश्वघ्नोका यद्योपवीत सभी भी दृष्टिगोचर होता
है। इससे भी जाना जाता है, कि इस व्यवस्थाके
ग्रहणके समय श्रीषण्ड आदि प्रधान प्रधान वैश्य-
समाजमें यद्योपवीत प्रचलित न था। ऐसी दशामें उक्त
व्यवस्थापत्रमें ऐसा नितांत अप्रसिद्ध प्रामका उल्लेख
कदापि न रहता।

● राजा राजवल्लभके समय से गोहवर्षके वैश्वमात्रमें द्विजा-
चार पुनः प्रवर्तित हुआ, उस समयके छोड़े समय बाद रचित
भी मूलतः विवाहद्वारेके श्रावणकी और Ward's Hindoos
नामक ग्रंथके पत्रमें जाना जाता है।

प्राहणाम्मुद्ययके बाद यह जाति प्राहणसमाजसे सम्पूर्ण
मिथ्य हो जाने पर भी कौलिन्वपधका कठोर जास्तन पर
भी कायस्थ समाजसे वैश्यसमाज भलग न हो सका।
आश्चर्यका विषय है, कि जगित्त गोत्रोय चङ्गन कुलीन
कविराज राघवने अपने सद्गुणवैश्यकुलवर्धनमें अपने पूर्व-
पुरुषोंके परिचय प्रारम्भमें—

“गणेशरामकृष्णश्च बङ्गादित्य महेश्वर।

पितागुरु परंमल्ल चित्तगुप्त तमोऽस्तु ते ॥”

इत्यादि श्लोकोंके द्वारा आदि कायस्थ चित्तगुप्तका
स्मरण किया है।

राजपूत सन्धः।

पहले ही कहा जाये है, कि बौद्धाधिकारकालमें
वैश्यसम्प्रदायका क्षत्रियोंसे सन्ध था। वाली
अश्वघ्नसूत्रसे उसका भाभास मिलता है। जैन और
बौद्धाधिकारमें क्षत्रिय प्रधानताका ही निर्देशन है।
इससे सुमाचोन जैन और बौद्धप्रयोगोंमें प्राहणसे
क्षत्रिय श्रेष्ठ कहे गये हैं। इसी प्राभाष्यको लोप करने-
के उद्देशसे पुनर्प्राहणाम्मुद्ययकालमें प्राहणनिवन्ध-
कार क्षत्रिय जातिके विलोपसाधनमें प्रवृत्त हुए थे।
इसके फलसे यहाँ ‘युगे जघन्ये ह्ये जाती प्राहणाम्मु-
द्यय च’ इत्यादि कल्पित श्लोकोंकी सृष्टि हुई थी। इसी
लिये प्राहणाम्मुद्ययके बहुत पीछे वैश्यकुलवर्धनोंमें
असिद्धीयोंका सम्बन्ध विद्युत होने पर भी
जो असिद्धीयों जाति प्राहणोंके विषय अश्वघ्नदिन हुई गो,
उनके संभवकी बातको स्थान नहीं मिला। किन्तु वैद्य
जातिमें जो पूर्वतन क्षत्रियवृत्ति साधुणांरूपमें विद्युत
नहीं हुई थी, यह सैनभूमके राजवंशके क्रियाकलापमें
स्पष्ट प्रमाणित होता जो हो, १७वीं शताब्दीके पहले उच्च
वैश्यजातिके साथ राठौर जातिके राजपूतोंका विशेष
रूपसे सन्ध हुआ था। सभी कुलप्रयोगोंसे इसका
प्रमाण मिलता है।

बड़े ही आश्चर्यकी बात है, कि बङ्गाळकी अश्वघ्न
जातियोंका अस्तित्व भारतके प्रायः सब स्थानोंमें
है, किन्तु वैद्य जातिके अस्तित्व बङ्गाळ छोड़ और कहीं
भी दिखाते नहीं देता। उत्तर-पश्चिम और बिहार प्रदेशोंमें
असिद्धीयों प्राहण और कायस्थ साधारणतः निरक्षरमा

वृत्ति करने हैं, किंर मो, उनके साथ वहीय घे घोंके कुल सम्बन्ध होनेका कोई प्रमाण नहीं। वैद्य कुल सम्बन्धके अनुसार नन्दो आदि महाराष्ट्रमें जा कर बस गये। किन्तो किसीका क्याल है, कि वहांके स्तंभो आश्रय ही वहांको वैद्य ज्ञानको अथान्तर प्राप्ता है, किन्तु संन्यियोंमें तो विक्रमता वृत्ति देखी ही नहीं जाती। वास्तवमें इस उन्नत जातिकी पथाय उत्पत्तिका इतिहास धोर नमसाच्छन है। पूर्व भारतमें बौद्धप्रभायके समय इसमें सन्देह नहीं, कि इस जातिकी स्वतंत्र समाज गठित हो रहा था।

इस समय बङ्गालमें वैद्योंके साधारण चार समाज हैं—पञ्चकोट, राडोय, पङ्कज, थारेंद्र। पञ्चकोट समाज दो प्रान्त जागामे विभक्त हुआ है—सेनभूम और धोरभूम। मानभूम जिलेके वैद्य सेनभूम समाजके अंतर्गत हैं और धोरभूम जिलेके वैद्य धोरभूम समाजके अंतर्गत हैं।

राष्ट्रीय समाज प्रधानतः तीन शाखाओंमें विभक्त हैं—धीरगण्डसमाज, सातशौका समाज और सप्तप्राम समाज। त्रिवेणी, काँचड़ावाड़ा, कुमारदह, सोमड़ा, तुकरुड़े, नाटागढ़, दिगड़े, बन्नागढ़, गुतिगढ़ आदि भाग्यरथो तोरचतों स्थानोंके वैद्य सप्तप्राम समाजके अन्तर्गत हैं। पूर्वसीमा कालना, पश्चिमसीमा पर्दमानका पदिचम प्रांत, उत्तरीसीमा काँटोवा और दक्षिण सीमा पाण्डुभा इन चारों सीमाके भीतरके वैद्य सात शौका-समाजके अंतर्गत हैं। काँटोवाके उत्तर अचलित स्थानके वैद्यगण अहट्टारपूर्वक गणनेकी धीरगण्ड समाजके वैद्य कहने हैं। ये सबकी अपेक्षा स्ववाचार-सम्पन्न हैं।

राष्ट्रीय कुलप्रबंध।

राष्ट्रीय सङ्घ या कुलान समाजका परिचय देनेके लिये बहुतेरे वैद्य पण्डितोंने लेखनी उठाई थी। उनमें भूमिभ्रष्टो-राजसमापण्डित प्रसिद्ध रीताकार धीरभरत महिच-रचिन कुलप्रबंध ही राष्ट्रीय वैद्योंका प्रामाणिक प्रबंध बना जाता है। ये दो कुलप्रबंध रख गये हैं—चंद्रप्रभा और रत्नप्रभा। चंद्रप्रभा बहुत बड़ा प्रबंध है। इसमें राजगज बोजपुरमें भरतके समय तक

सब सदैवुयोंकी पञ्चायती और कुलपरिचय दिया गया है। रत्नप्रभामें केवल शुद्ध कुलीनोंका परिचय है। भरत महिलिकके प्रबंधमें दुर्जयप्रस वित्तांब, सजय, यादवराय, जगदीय, घटकराय, नारायणदास, अंतरङ्ग खाँ आदि कुलप्रबंधकारोंके वचन उद्धृत किये गये हैं। सम्भवतः भरतमहिलिकका प्रबंध विशेष भाव्य हुआ जिससे अन्वय्य कुलप्रबंधोंका प्रचलन बढ़ हो गया।

वेदोंका गोल।

वैद्यपण्डित भरतमहिलिकने चन्द्रप्रभामें इस तरह लिखा है—

सेन दास आदि वैद्योंके २८ गोत्रोंका पृथक् पृथक् भावसे क्रमजा उल्लेख किया जाता है। यथा—धरंति, शयित्त, वैश्याय, मादुय, मीदुगव्य, कीमिक, हण्णात्रेय और आङ्गिरस, संज्ञांके ये आठ गोत्र हैं।

मीदुगव्य, भरद्वाज, शालङ्कायन, शाण्डिल्य, यनिष्ठ और वात्स्य, दासोपाधिचारी वैद्योंके ये छः गोत्र हैं। गुप्तोंके काश्यप, पीतम और मावर्णि, केवल तीन गोत्र हैं।

कीमिक, काश्यप, शाण्डिल्य और मीदुगव्य दक्षोपाधिक वैद्योंके ये चार प्रबंध हैं।

वैद्योंमें जिनकी देय उपाधि है, उनके मात्रेय, हण्णात्रेय, शाण्डिल्य और शालङ्कायन—ये चार गोत्र हैं।

करोंके गोत्र—भरद्वाज, पराजय, यनिष्ठ, शयित।
राजोंके वात्स्य और माकण्डेय।
सोमोंके कीमिक और काश्यप।
नन्दियोंका मीदुगव्य।
चंद्रोंका यनिष्ठ।
धरोंका काश्यप।
कुलडोंका भरद्वाज।
रत्नियोंका काश्यप।

किसी-किसी देशमें पूर्विक दक्षोंके मादुय गोतीय और देश भेदसे मात्रेय और हण्णात्रेय गोतीय बहुतेरे वैद्य संतान दिखाई देते हैं। अतएव दक्षगोत्र वैद्योंमें कुल सात गोत्र हैं। इसी तरह करोंमें भी देश-भेदसे काश्यप, वात्स्य और मीदुगव्य गोतीय अनेकानेक वैद्यसंतति विद्यमान रहनेसे ये भी सात गोत्रोंमें विभक्त हुए हैं। राजोंमें भी किसी किसी स्थानमें

काश्यपगोत्र है। सुतरां ये भी कुल तीन गोत्रोंमें विभक्त हैं। इसी तरह घरोंमें भी जामदग्न्य और रश्मिनोंमें भरद्वाज गोत्रकी यात सुनी जाती है।

पूर्वोक्त उपाधिधियोंके सिवा चौदहोंमें इन्द्र और आदित्य—ये दो उपाधिधियां भी दिखाई देती हैं। उनकी भी संघर्षाका पृथक् रूपसे उल्लेख किया जाता है—

इन्द्रके—काश्यप और आदित्यके आदित्य और कौशिक गोत्र हैं।

इस समय देखा जाता है, कि चौदहोंमें कुल नवत्स गोत्र हैं, इनके निवा देशांतरमें भी इनके अन्य गोत्रका उल्लेख नहीं मिलता। यद्यपि दत्त आदि उपाधिधारी षैचके किसी देशमें कोई गोत्र विद्यमान हो, तो यह कहना होगा, कि यह समाजमें भ्रमसिद्ध है।

कुरुपञ्चिकान्तरोक्त राष्ट्रीय वैद्यकुशे'का उत्तमप्रथम गोत्र।

काञ्जोगा प्राम-निवासी रोमव'शिय वैद्योंके आठ गोत्र हैं। उनमें ऋषिक और धन्वन्तरि श्रेष्ठ हैं। वैश्वानर और आद्य—ये दो गोत्र मध्यम हैं, मीद्रल्य, कौशिक, कृष्णाक्षेय और आङ्गिरस ये चार गोत्र अधम माने जाते हैं। गोनगरीय दासोंके १६ गोत्रोंमें मीद्रल्य और भरद्वाज दो श्रेष्ठ हैं। शालङ्कायन और शाण्डिल्य मध्यम हैं। वशिष्ठ, वातस्य—ये दो गोत्र नितान्त अधम हैं। करङ्ककोडके रहनेवाले गुप्तवंशोंमें काश्यपगोत्रीय हो उत्तम हैं। गौतम गोत्रीय मध्यम तथा सायणि अधम हैं। मोरशासन प्रामके दक्षोंमें कौशिक सर्वोत्तम, मीद्रल्य, काश्यप और शाण्डिल्य मध्यम और आद्य गोत्रीय सर्वापेक्षा निम्नगोत्र हैं। इनमें काश्मिरवासी बरोंमें पांच गोत्र हैं। इनमें ऋषिक, वातस्य और मीद्रल्य निरुद्ध हैं। समप्रस्थान-निवासी देवय'जियोंके चार गोत्रोंमें शैवालक्षेय गोत्र ही उत्तम है। कृष्णाक्षेय मध्यम और मालमान तथा शाण्डिल्य ये दोनों हीनगोत्र हैं। राष्ट्रीय वैद्योंमें मेदुशासनवासी राज उपाधिधारी वातस्य गोत्रीय सर्वश्रेष्ठ और मार्कण्डेय गोत्र सर्वापेक्षा निरुद्ध है। मणिप्रामके सोमोंमें जो कौशिक गोत्रीय हैं, कुलक्षेत्र उनकी श्रेष्ठ और काश्यप गोत्रियधियोंकी हीन निर्दिष्ट किया है।

नारायण दास्तांतरद्वयाने दास, नन्दी आदि आठ

प्रकार पारम्पर्य श्रेणियोंके वैद्योंका इस तरह गोत्रनिर्णय किया है।

दास और नन्दी—ये मीद्रल्यगोत्रीय हैं।

घर और रश्मि—काश्यपगोत्रीय।

कर और चन्द्र—पराजर और वशिष्ठ गोत्र।

कुण्ड—भरद्वाज गोत्र। दत्त—शाण्डिल्य गोत्र।

पारम्पर्योंमें इन कई गोत्रोंका मानुष्यिक उल्लेख किया गया। उक्त उपाधिधारियोंके श्रेष्ठत्वका शङ्क है, किन्तु इसका व्यतिक्रम होनेसे ये सब गोत्र इनके हीनता-सूचक हैं। जैसे दास और नन्दीके शाण्डिल्य, भरद्वाज, काश्यप आदि।

पञ्चिकान्तरमें पारम्पर्य वैद्योंका स्थान और गोत्र इस तरह है—

दास और नन्दी—इनका वासस्थान जामुर्गा तथा चम्पारी और गोत्र मीद्रल्य हैं।

घर और रश्मि—ये काश्यप गोत्रीय हैं और बम्बालो और करञ्ज प्राममें रहते हैं।

कर और चन्द्र—भेडी और मोरशासन प्राममें वास है। पराजर और वशिष्ठ गोत्र हैं।

कुण्ड -- भरद्वाज गोत्रीय और नामदासनमें वास है।

दत्त—वटप्राम और लोघयलीमें वास है और शाण्डिल्य गोत्र है।

राष्ट्रीय भट्टर वैद्योंका प्रवर।

धन्वन्तरिगोत्रीय सेनोंके—धन्वन्तरि, भवमार, नैध्रुय, आङ्गिरस और वाटस्परय—ये पाँच प्रवर हैं।

ऋषिक गोत्रीय सेनोंके—ऋषिक, पराजर और वशिष्ठ ये तीन हैं।

मीद्रल्य गोत्रीय दासोंके—भीर्य, चयन, मार्ग्य, जामदग्न्य और आप्नुवान—ये पाँच प्रवर हैं।

काश्यपगोत्रीय गुप्तके—काश्यप, भवसार और नैध्रुय।

कौशिक गोत्रीय दक्षोंके—शाण्डिल्य, मसित और देवल।

कृष्णाक्षेय गोत्रीय दक्षोंके—कृष्णाक्षेय, वशिष्ठ और आक्षेय।

आक्षेय गोत्रीय देवोंके—आक्षेय, आङ्गिरस और वाटस्परय।

यास्व्य गोतीय राजाके—चारस्य, दासित और मास्येय ।

कौनिक गोतोय सामाके—कौनिक, काश्यप और भार्गव ये तीन प्रवर हैं ।

राष्ट्रीवादि भेद ।

सेन, दास, गुण, दत्त, देव, कर, राज और सोम ये आठ घर राष्ट्रीय घंघा हैं ।

नन्दो, शम्भू, घर, कुण्ड, रक्षन, दास, वृत्त और कर ये चारैन्द्र कहलाते हैं ।

उक्त राष्ट्रीय घंघो में प्रायः बहुतेरे घट्टेन्द्रमें जा कर ब गये । और नन्दो आदि चारैन्द्र घंघो में कुछ लोग महासाधु चले गये ।

सेन आदि घंघो का पूर्व स्थान ।

काशमीरा, गोनगर, कट्टकौट, मोरशासन, कास्ता, मन्तरभूम, मेट्टनासन और मणिग्राम—ये आठ सेन-प्रमुख राष्ट्रीय घंघो के पूर्वा स्थान हैं ।

कुत्तोन और मौक्षिक कथन ।

गोजपुरसे षड तक जिनका कुलकार्य उचिन गीनसे चला आ रही है, ये ही कुलोन हैं । महाकुल, मध्यकुल और अन्वकुल भेदसे कुल सम्बन्ध आदिके क्षेत्रसे नष्ट होता है । उनके मूल वंश सुप्रसिद्ध रहने पर भी घंघा सम्प्रदायमें ये मौलिक नामसे प्रसिद्ध हैं ।

कुलका गरिष्ठादि भाव ।

मालश, धलहरट और घेतङ्ग समाजके कायुषंशोय-गण गरिष्ठ कुलोन हैं । अन्व क्षेत्रसे इनकी कुलनामामे किसी तरहका दोनता नहीं होता । आभा, मङ्गलकौट और नरदट्ट समाजके कायु और पन्धर्यंशोय कुलोन केमल कह कर विख्यात हैं और सामान्य क्षेत्रसे भी प मत होते हैं । गरिष्ठेमें जो विरेण स्यात्तमान है, ये अति गरिष्ठ हैं और जो अप्रसिद्ध है, ये केमल बाष्वासे भावपात होने हैं । इसी तरह केमलेमें भी जिनकी अशेष सुख्याति है, ये गरिष्ठ हैं और जिनकी किसी तरह प्रतिपत्ति नहीं, ये अति केमल कहके विधुत हैं । फलतः यह गरिष्ठरथ और केमलरथ दोनों ही पृथक्पृथक् भेदसे होमेमें ही कुल

का गीर्य और सराव होमेमें कुलका साधव होता है । यह कहनेकी आवश्यकता नहीं ।

घंघो के पूजापूज्य और शीर्षाने विचार ।

सेन, दास और गुप्त ये क्रमसे पूज्य हैं सर्वप्रथम माननीय हैं । किसी सभामें गोष्ठी अर्चनाके समय इन तीनों वंशीय कुञ्जोके उपस्थित रहने पर उनमें सेन ही पहलो अर्चनाके योग्य होंगे । उनके नहीं रहनेसे भी दास और दास जहां नहीं रहेगे, वहां गुप्त पूज्य होंगे । पहलेसे षड तक इसी तरहसे पूजनक्रम चला आ रहा है । पीछे किसी समय इनमें परस्पर प्रतिद्वन्द्विता होनेसे विद्वोके विचारसे पितृ-पितामहादि क्रमसे भीर शक्ति कुटुम्ब आदिके प्राचुर्यसे भास्कर ही प्रथम पूजनोपस्थित हुए । इस कारणसे तद्वंशीयगण ही सर्वप्रथम पूजित होते आ रहे हैं । इनके बाद सामरगुप्तका जो कोई उपस्थित रहता था, यही पूजित होता था । उनमें से उपस्थित होनेसे परिष्ठत लोग कहां सम्बन्धादिही उच्च नोचता विचारपूर्वक, कहां पर्यायकी मुक्तल्युता निर्देशान्तर प्रतिद्वन्द्वितामें पूजापूज्य शोक कर देते थे । जिस समय ऐसी व्यवस्थाका लेाप हो गया, उस समय वपाति ही बलवती हो उठी अर्थात् षड उनमें जो प्रसिद्ध होते, जिनकी दश पांच आरामी पूलतांठ करते, ये ही पूज्य गिने जाते थे ।

दुर्जयदासके मतमें पूजापूज्य निर्णय ।

दुर्जयदासका कहना है, कि पहले जैसे प्रथम विनायक, पीछे चायु, इसके बाद कायु पूज्योमें गिने जाते थे, इस समय भी ऐसे ही कुमार, विश्वम्भर और विश्वनाथ ये तीन पद्याक्रमपूज्य हैं । जहां इन तीनोंका भासाय हो या इनके वंशघर उपस्थित नहीं रहे वहां घंघागण प्राचीन कुलहोके विचार मेरे वाक्योके प्रामाण्य ले कर पूज्य निर्णय करें ।

जिनके विनायकके दौदिव हैं, जिन्होंने दत्तवंशको जन्मादाग किया है, जिनके भ्राता दत्तवंशके जामाता हैं, ये कुमारसेम किस तरह महदुष्पत्तिक कहे जा सकने हैं । इस तरहका प्रश्न मुक्तिसंगत कहा जा नहीं सकता । बर्षोकि कुलमें भीर पीठमें कुमारसेनके समान कोई नहीं है । ये सर्वगुणसम्पन्न सर्वलोकोपकृष्टरथ हैं ।

सब जातियों के प्रधान, भारतमोय कुटुम्ब सब इनके वंशी-भूत हैं, अतएव ऐसे महान व्यक्तिके यद्यपि कोई सामान्य श्रेय दियाई दे, उस पर किसीको ध्यान न देना चाहिये। यद्यो कि कमी कोई बड़ेका सामान्य श्रेय भरी देखता। इस कारण सर्वसम्पत्ति-क्रमसे कुमारसेन अर्चानामें सर्वाप्र हुए। इसी तरह विश्वम्भर स्वयं आंचके श्रीहित होने और उनके ज्येष्ठ भ्राता नन्दीकन्यासे विवाह करनेसे इनके भी बहुविध गुण होनेसे दास वंशमें ये ही प्रथम पूजनीय हैं। विश्वनाथ भी देवकन्या समुद्रभूत गङ्गाधर गुप्तके वंशधर होनेकी वजह कुछ शोषान्वित होने पर भी अपने सत्समाय गुणोंसे वैद्य-समाजमें सर्वत्र पूजित हैं।

कुलाचाराने सञ्जय और विनायक-वंशीय मास्कर को गोत्रीपति और उनके विश्वियव्यात तीनों पुत्रों-को महाकुलीन कह कर निर्वाचन किया है। इस कारणसे तत्सद्वंशीयगण भी वैद्यसमाजमें सर्वाप्र पूज्य होते हैं। इनके अभावमें विचारसे जो श्रेष्ठ होंगे, वे ही समाजके पूजनीयोंमें गण्य होंगे।

घटकरायके मतसे—विनायकवंशके जगद्विषयात कृष्ण पौ और हरिहर का दोनों ही महाकुलीन कहे जाते हैं। इनके वंशधर चाहे कोई हों, वे निश्चय ही सर्वाप्र पूजनीय होंगे। कायुवंशीय घनमाली आदि सभी महाकुलीनोंमें गिने जाते हैं और उनके वंशजान कोई यथासमय उपस्थित हो, तो वे ही समाजमें पूजित होंगे। इनके अभावमें विचारसे जो कुलमें श्रेष्ठ हों, वे ही पूजनीय होंगे।

राष्ट्रीय वैद्यग्रन्थकार।

राष्ट्रीय वैद्यवंशमें संस्कृत या वङ्गभाषाके, बहुतेरे कवि तथा मन्त्रकार हो गये हैं। यहाँ उनका परिचय देना असम्भव है। उनमें महाकवि दामोदर सेन, सैन्य पार्षद नरहरि सरकार आकुर, सदाशिव कविराज, आत्माराम दास, गोपीरमणदास, लोचनदास, कविकर्ण-पुर, परमानन्दसेन, रामचन्द्र कविराज, पदकर्ता गोविन्द दास, कविराज घनश्याम दास, बलराम दास, यदुनन्दन दास, गोकुलानन्दसेन, उदयदास, योगेश्वर दास, गौरी-कान्ताय, साधक कविराज रामप्रसाद सेन, कवि

ईश्वरचन्द्र गुप्त, निधूबाय, कृष्णकमल गोश्यामी, प्रसा-नन्द केशवचन्द्र सेन, धाम्मी परिभाजक प्रसन्नसेन आदिका नाम उल्लेखयोग्य है।

वङ्गज वैद्य समाजका परिचय।

राष्ट्रीय वैद्यसमाजकी तरह वङ्गज वैद्यसमाजमें भी बहुतेरे कुलप्रबंध रचे गये थे। प्रथम चायुदास-वंशीय दुर्गायदास और शोचमें चतुर्भुजने वैद्यसमाजका परिचय संस्कृत-भाषामें रचा, इसके बाद कविवंश्र भाषामें लिख गये, अंतमें कविकङ्कणने एक कुलप्रबंध प्रकाशित किया। इन सब प्रबंधोंकी आलोचना कर राघव कविराजने अपना वैद्यकुलदर्पण प्रकाश किया है। राघवके बाद कविकङ्कणके भोजि राधाकान्त कविकण्ठद्वारेने अपनी सुप्रसिद्ध (संस्कृत) सद् वैद्यकुल-पञ्जिका लिपिबद्ध की है। इसके बाद घटक विशारद रामकान्त दास वङ्गभाषामें 'आकुर' या 'टाकुर' और जगन्नाथने भाषावली और देवावली प्रकाशित की। ये सब ग्रंथ ही वङ्गज वैद्यसमाज-सुलेतिहासके निर्णायक करनेमें एकमात्र सहायक हैं। इन्हीं सब ग्रंथोंके साहाय्यसे वङ्गजसमाजका संक्षिप्त परिचय लिखा गया।

'राष्ट्रीय विपत्तौ ये ये प्रावासे वङ्गजा अपि।'

(भारत-चन्द्रमभा)

उन वचनोंके अनुसार राष्ट्रीय वैद्यगण ही वङ्गदेशमें जा कर बस गये हैं। ये ही कुछ दिन बस जाने पर वङ्गज नामसे परिचित हुए।

यजौर जिलेमें इतना और खुलना जिलेमें सेनहाटो, पयोप्रास, मूलधर, भद्रयथाय, वाकरमञ्ज जिलेमें सिद्धकाटो; फरोदपुर जिलेमें सेनदिया, काजलिवा, चन्द्रारवाङ्ग, काण रिया आदि स्थानोंमें श्रेष्ठ कुलीनोंका वास है। भादवर्षका विषय है, कि सेनहाटो और पयोप्रासकी छोड़ और एक कुलीनका स्थान को २७ समाजके अन्तर्धर्ती दियाई नहीं देना। इन कई प्रामके अधिवासों मात्र भी समान भावसे कार्य कर रहे हैं। कालीवा किञ्चित् म्यून् हैं। यजौर जिलेमें कालीवा, होगलदांगा, भाडारभाडा, मधोवा, मागुर, राजडाही, मासुदपुर, दीनपुर, उत्तुन आदि स्थानोंमें नाना श्रेणोंके वीरोंका वास है।

कनेदाबाद या भूपला समाजमें, मेन्दाई, वीरपूनी

वास्तव्य गौलीय राजादि—वास्तव्य, अस्तित और मार्गदृष्टेय ।

बीजिनक गौलीय संगीतके—बीजिनक, काव्यप और भाग्यय ये तीन प्रकर हैं ।

राष्ट्रीकादि भेद ।

सैन, दास, गुप्त, दल, देव, कर, राज और सोम ये आठ घर राट्टीय वीच हैं ।

नन्दी, गण्ड, भर, कुण्ड, राक्षस, दास, वृत्त और कर ये चारैष्ट्र कहलाते हैं ।

उक्त राट्टीय वीचों में प्रायः बहुतेरे धृङ्गदेवमें जा कर ब' गये । और नन्दी आदि चारैष्ट्र वीचों में कुछ लोग महाप्राण चले गये ।

सैन आदि वीचों का पूर्व स्थान ।

काञ्चीना, मोनगर, करङ्ककोट, मोरशासन, काग्तार, गन्दभूम, मंडुजासन और मणिप्राम—ये आठ सैन-प्रमुख राट्टीय वीचों के पूर्वा स्थान हैं ।

कुत्रीन और मौक्षिक कथन ।

गोजपुरपरसे सब तक जिनका कुलकार्य उचिन शनिसे चला भा रही है, वे ही कुलीन हैं । मदाकुल, मध्यकुल और मगरकुल भेदसे कुल सम्बन्ध आदिके शेषसे नष्ट होता है । उनके मूल वंश सुप्रसिद्ध रहने पर भी वीच सम्प्रदायमें ये मौलिक नामसे प्रसिद्ध हैं ।

गुरुवा गरिकादि भाव ।

मालश, धलदण्ड और वेतल सम्प्राप्तके कायुयंशीय-गण गरिष्ठ कुलीन हैं । सब शेषसे इनकी कुलीनतामें किसी तरहका दोनता नहीं होता । जामा, मङ्गदकोट और नरदष्ट सम्प्राप्तके कायु और मध्ययंशीय कुलीन कामल कह कर विषयात हैं और सामान्य शेषसे भो प त्तत होते हैं । गरिष्ठोंमें जो पिदय पञ्चानिमान हैं, वे अनि गरिष्ठ हैं और जो मयसिद्ध हैं, वे कामल भाषासे भाषयात होने हैं । इसी तरह कामलामें जो जिनकी मरौय सुम्बालि हैं, वे गरिष्ठ हैं और जिनकी किसी तरह प्रतिपत्ति नहीं, वे अनि कामल कहके विभूत हैं । फलतः यह गरिष्ठत्व और कामलत्व दोनो ही प्रत्यक्ष्यांद् अच्छे होनेसे ही कुल

का गौरव और बराब होनेमें कुलका साम्य होता है । यह कहनेकी आवश्यकता नहीं ।

वीचों के पूज्यपूज्य और पीतार्थ विचार ।

सैन, दास और गुप्त ये क्रमसे पूज्य हैं क्योंकि माननीय हैं । किसी सभामें गौली अर्चनाके समय इन्हें तीन वंशीय कुलीनोंके उपस्थित रहने पर उनमें से ही पहलो अर्चनाके योग्य होंगे । उनके नहीं रहनेमें ही दास और दास जहां नहीं रहेंगे, वहां गुप्त पूज्य होने । पहलेसे सब तक इसी तरहसे पूजनक्रम चला नारदा है । पोछे किसी समय इनमें परस्पर प्रतिद्वन्द्विता होनेमें विशेषके विचारसे पितृ-पितामहादि क्रमसे और जिन कुटुम्ब आदिके प्राचुर्यसे भास्कर ही प्रथम पूजनीय विषय हुए । इस कारणसे तद्वंशीयगण ही सर्वप्रथम पूजित होते जा रहे हैं । इसके बाद सामान्यगण जो कोई उपस्थित रहता था, यही पूजित होता था । उनमें जो उपस्थित होनेसे परिष्टत लोग कहों सम्भवादिही उच्च नोचता विचारपूर्वक, कहों पर्यायकी मुदल्युक्त निर्देशान्तर प्रतिद्वन्द्वियोंमें पूज्यपूज्य ठोक कर देते थे : जिस समय ऐसी व्यवस्थाका लेय हो गया, उस समय क्याति ही बलवती हो उठी अर्थात् अब उनमें जो प्रथम होते, जिनकी दश पांच आरुमी पुरुतांठ करते, वे ही पूज्य गिने जाते थे ।

दुर्जयदासके पहले पूज्यपूज्य निर्णय ।

दुर्जयदासका कहना है, कि पहले जैसे प्रथम विचारक, पोछे चायु, इसके बाद कायु पूज्योंमें गिने जते थे, इस समय भी ऐसे ही कुमार, विभ्रम्बर और विभ्रनाथ ये तीन पञ्चाक्षरपूज्य हैं । जहां इन तीनोंका भागाय हो या इनके वंशधर उपस्थित नहीं रहें वहां वैद्यगण प्राचीन कुलश्लोक विचार मेरे पाषाणके प्रामाण्य ले कर पूज्य निर्णय करें ।

जिनके पिता दलके दौदिल हैं, जिन्होंने दलवंशकी चरवादान किया है, जिनके स्राता दलवंशके सामान्य हैं वे कुमारमेत कित तरह महद्वयक्ति कहें जा सकते हैं । इन तरहका प्रश्न युक्तिसंगत कहा जा नहीं सकता । क्योंकि कुलमें और पीदयमें कुमारमेतके सामान्य नहीं गहों हैं । वे सर्वगुणसम्पन्न सर्वलोककुरुरुर

सब जातियों के प्रधान, आरमोय कुटुम्ब सब इनके यज्ञो-
भूत हैं, अतएव ऐसे महान् धार्मिकके यद्यपि कोई सामान्य
क्षोभ दिखाई दे, उस पर किसीको ध्यान न देना चाहिये।
पयो'कि कमी कोई बड़ेका सामान्य क्षोभ नहीं देखता।
इस कारण सर्वसम्पत्ति-कमसे कुमारसेन अर्चानामें
सर्वांग हुए। इसी तरह विश्वम्भर स्वयं नायके कीर्ति
होने और उनके ज्येष्ठ भ्राता नन्दीकन्यासे विवाह करने-
से इनके भी बहुविध गुण होनेसे दास वंशमें ये ही
प्रथम पूजनीय हैं। विश्वनाथ भी देवकन्या समुद्रभूत
यज्ञापर गुप्तके वंशधर होनेकी वजह कुछ क्षोभान्वित
होने पर भी अपने सत्सभाय गुणोंसे वैद्य-समाजमें
सर्वत्र पूजित हैं।

कुलाचाराने सञ्जय और विनायक-वंशीय भास्कर
को गोष्ठीपति और उनके विश्वविषयात् तीनों पुत्रों-
को महाकुलीन कह कर निर्वाचन किया है। इस
कारणसे तत्तत्र-शीयगण भी गौडसमाजमें सर्वांग पुर्य
होते हैं। इनके अभावमें विचारसे जो श्रेष्ठ होंगे, वे
ही समाजके पूजनीयोंमें गण्य होंगे।

घटकदायके मतसे—विनायकवंशके जगद्विषयात् कृष्ण
दाँ और हरिहर दाँ दोनों ही महाकुलीन कहे जाते हैं।
इनके घ शशर चाहे कोई हों, वे निश्चय ही सर्वांग पूज-
नीय होंगे। कामुवंशीय वनमाली आदि सभी महा-
कुलीनोंमें गिने जाते हैं और उनके वंशजान कोई यथा-
समय उपस्थित हों, वे ही समाजमें पूजित होंगे।
इनके अभावमें विचारसे जो कुलमें श्रेष्ठ हों, वे ही पूज-
नीय होंगे।

राष्ट्रीय वैद्यप्रणकार।

राष्ट्रीय वैद्यवंशमें संस्कृत या यज्ञभाषाके बहुतेरे
कवि तथा प्रणकार हो गये हैं। यहाँ उनका परिचय
देना असम्भव है। उनमें महाकवि दामोदर सेन, वीरभ्य
पार्यद् नरहरि सरकार डाकुर, सशान्ति कविगज,
आत्माराम दास, गोपीरमणदास, लोचनदास, कविकर्ण-
पुट, परमानन्दसेन, रामचन्द्र कविराज, पदकर्ता गोविन्द
दास, कविराज घनश्याम दास, बलराम दास, यदुनन्दन
दास, गोकुलानन्दसेन, उदयदास, पीताम्बर दास, गौरी-
कान्तराय, साधक कविराज रामप्रसाद सेन, कवि

ईश्वरचन्द्र गुप्त, निधुवायू, कृष्णकमल योग्यामी, ब्रह्मा-
नन्द वैद्यचन्द्र सेन, पागमी परिभाजक प्रसन्नसेन
आदिका नाम उल्लेखयोग्य है।

वद्वन वैद्य समाजका परिचय।

राष्ट्रीय वैद्यसमाजकी तरह यज्ञक वैद्यसमाजमें
भी बहुतेरे कुलवंश रचे गये थे। प्रथम चातुर्दाम-
वंशीय दुर्जयदास और दोसमें ननुभुजने वैद्यसमाज
का परिचय संस्कृत-भाषामें रचा, इसके बाद कविचन्द्र
भाषामें लिख गये, अंतमें कविकङ्कणने एक कुलवंश
प्रकाशित किया। इन सब प्रबंधोंकी आलोचना कर
राघव कविराजने अपना वैद्यकुलदर्पण प्रकाश किया
है। राघवके बाद कविकङ्कणके भोजि राधाकान्त
कविकण्ठद्वारे अपनी सुप्रसिद्ध (संस्कृत) सद्रैद्यकुल-
पत्रिका लिपियत्त की है। इसके बाद घटक विनारज
रामकांत दास यज्ञभाषामें 'डाकुर' या 'टाकुर' और
जगन्नाथने भाषावली और देशावली प्रकाशित की।
ये सब ग्रंथ ही यज्ञक वैद्यसमाज-भूतिदासके निर्णय
करनेमें एकमात्र सहायक हैं। इन्हीं सब ग्रंथोंके
साहाय्यसे यज्ञसमाजका संक्षिप्त परिचय लिखा गया।

'राष्ट्रीय भिन्नो वे ये प्रायास्ते बहूना अपि।'

(भल-चन्द्रप्रभा)

उक्त वचनोंके अनुसार राष्ट्रीय वैद्यगण ही यज्ञवेद-
में जा कर बस गये हैं। ये ही कुछ दिन बस जाने पर
यज्ञक नामसे परिचित हुए।

यज्ञो जिलेमें इतना और गुल्शन जिलेमें सेनदारी,
पयोप्राम, मूलधर, भट्टयताप, याकरगञ्ज जिलेमें मिस्काटां;
फरीदपुर जिलेमें सेनदिया, काजलिया, खन्वारपाट, काण
रिया आदि स्थानोंमें श्रेष्ठ कुलोंका वास है। भादवर्ष-
का विषय है, कि सेनदारी और पयोप्रामके छोटे और
एक कुलोनका स्थान भी २७ समाजके अन्तर्गत दिव्यां
नहीं देना। इस कई ग्रामके अविवासी आज भी समान
भावसे कार्य कर रहे हैं। कालीवा किञ्चित् स्थूल है। यज्ञो
जिलेमें कालीवा, हीगनरयांगा, आठारवादा, मघोवा,
मागुरा, राजदारी, मामूरपुर, दीनपुर, उत्कृत आदि
स्थानोंमें माना श्रेणोंके वैद्योंका वास है।

पनेहाबाद या भूपला समाजमें, नेयार, पाँवपूरी

भीर वाणीपद प्रधान स्थान है। इसमें बाद फरीदपुर जिलेमें पांचपर, घेल्दा बाल, कागोपानी, चन्द्रमदो, मालिया, कोटालीगाड़ आदि स्थानोंमें भी बहुतेरे घैछो-की धाम है।

याकनासमाजमें पोणाबालिया, कुल्काटी, घरेकरण, उखर-साहबाजपुर, लहमीरिया, कीर्तिपाना, वासपटा, साहिनापुर, गैला, फुल्डधो, माठीया, मरमहल, तैवना, याउकाटी, मन्धिरा, देवरो, मलीसाकोटा, याउकाटी, लाधुटिया, पेंतरा, नारायणपुर आदि स्थानोंमें भी बहुतेरे घैद्युनोंका धाम है।

यजीर समाजके कुलोंमें बहुतेरे याजु और याकना समाजमें धाम करते हैं। विक्रमपुरमें भी इनकी बस्ती देखी जाती है। इस तरह कुलज या मौलिकोंकी संख्या नाना स्थानोंमें विस्तृत होने पर भी विक्रमपुरमें ही उनकी संख्या अधिक है।

मरा, पापरा, तैवना, सुवापुर, शसोरा अदि स्थानोंमें अनेक सामाजिक घैद्युय धाम करते हैं।

याजुसमाज—यहूप्रताप, सोन याजु, दगकादनीया, मलीमप्रताप, इनके सिवा मैमनसिंह और पवनेका कुछ भंडा ले कर यह समाज कठिन हुआ है। इसमें मैमनसिंहका अधिकांश और टाका महेभरदी और सोनारगके घैद्युय संपूर्णरूपसे समाजभुक्त नहीं हुए।

दमने जिन पांच प्रधान समाजोंका नामोल्लेख किया है, उन सब स्थानोंमें जो जो महत्त्वपूर्ण धाम कर रहे हैं, भादान-प्रदानके नाशसे उन्हीं बहुत कुछ अपनी संजमर्षादाओं बचाया था।

पयोदर प्रदेशमें ही कलसे घैद्युय पूर्वाभिमुखी हो कर कनेटाबाद और विक्रमपुर तक भाये। इन दोनों तरफके घैद्युयोंके पंचपर याकना और याजुमें जा कर बस गये, इसमें से भी समाजमें परिगणित हुए।

समाजमें जो प्रधान कुलोंका वारा करते हैं, उनके नाम सेनहारी, मूल्धर, खन्धारपाड़ आदि समाजोंके भेद्यु कुलोंका समाजावमें काटा करनेमें कठिन नहीं होते।

पापना, राजगोरो कश्चमी जो सब पंचपाप करते हैं, ये साधेसमाजके नामसे विख्यात थे। अल्पमें

संघवामें बहुत कम होनेकी वजह यज्ञसमाजमें निन्द गये।

सैकड़ों वर्ष होत गये, कृष्णनगर जिलेमेंभी दक्षपुर यज्ञीय घैद्युयोंका एक समाजस्थान हो रहा है। तैवनासे कई गणसेनके समताम कार्त्तिक उपलक्षमें यहाँ जा कर बस गये हैं। पीछे उन्हीं पाना धेवीके उभय घैद्युयोंके साथ कार्त्तिक कर भवने प्राममें ला कर उनकी संस्थापित किया। इस समय उनका प्रसार बढ़ रहा है।

पूर्वमें भोदह और चट्टगाम समाज राष्ट्रीय और यज्ञसमाजके साथ चल रहा था, यह बात प्राचीन दस्तावेजोंमें दिखाने देखी है। जब राष्ट्रीय और यज्ञसमाजका कायस्थ-संरक्षण छोड़ कर मन्थन हुए, तब भोदह और चट्टगाम समाजमें ऐसे स्वतन्त्रताको सुविधा न रहनेसे उन्हीं आदि घैद्युयसमाजसे सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिया। परन्तु कालमें राष्ट्रीय और भेद्यु यज्ञ यैद्युयोंने एक ही समयमें चट्टगाम और भोदह संश्रय स्थापन कर दिया, इसीमें राष्ट्रीय और यज्ञसमाजमें भोदह समाज विशेष भागसे निम्नित है।

गोलीके समाजतति।

अन्यान्य समाजोंकी तरह घैद्युयोंके पूर्वमें समाजपति थे। सेनमूमके राजवंश ही घैद्युयसमाजके आदि समाजपति हैं। समाजके प्रवीण और समाजपति एकल बैठ कर अथवाच नामनके अधिकांश थे। पहले लिख भाये हैं, कि विभावक सेन राष्ट्रीय घैद्युय समाजके आदि माहोपति हैं। कुलधर्मसे हम जान सकते हैं, कि उन्हींके वंशके पुमारसेन, चातुधरके विभवमर और कुलेशदास साँत गुणकृतके विभावक माहोपति हुए थे।

ये सभी प्रायाः-समाजमें कमी कमी एक-एक भावनी माहोपति होते थे, किन्तु इस समय सेनमूमके राजवंश ही समूचे घैद्युयसमाजके समाजपति थे। इसी वंशकी एक उनका समाजपतिरह अक्षुण्ण था। पूर्वमें यज्ञ घैद्युयसमाजमें भी एक-एक भावनी समाजपति थे, यह बात कण्डुदासकी त्रिकसे ज्ञानी ज्ञानी है। विभावक सेनवंशमें रचित मद्रामन्दर, धर्मकारि वंशजके उन्हीं सेनवंसे विजयसेन घैद्युयानन्द नामी और विभव

सेनके पीछे धनञ्जयके पुत्र रामचंद्रसेन समाजपति हुए थे।

इस घंशका इस समय विलोप हो गया है। इसके बाद और किसीको भी समय वैयका समाजपति नहीं बनाया गया। केवल ढाका प्राणिकगण्डके अन्तर्गत दासोराके दत्तचंशका याजुसमानका, विक्रमपुरके गोपाडाका भद्रराज चौबीसरीशका विक्रमपुर ढाका समाजका और साहजादपुरके भरद्वाजोंकी पाकलाका समाजपति होना मान्य होता है।

राजा राजवन्धनके अभ्युदयकालमें दासोराका दत्तचंश पूर्ण वृद्धमें कुछ समाजपतित्व कर रहा था। इस घंशने ही प्रवित्र दुहितेन वंशोपगण सेनकी ६४ ग्राम दान दे मपरिवार विक्रमपुरमें बुला कर प्रतिष्ठित किया। गणसेन एक समय कुल स्थान परिवर्तन कर आने पर ही स्थानस्वागवशतः कुलहीन हुए।

इसके पिछले समयमें विक्रमपुर राजनगर निवासी धर्मवन्धरि गोमन्त राजा राजवन्धनसेन सामाजिक क्रियाके बलसे और सेनहाटी और विक्रमपुर अञ्चलके वैद्योंकी सम्मतिसे समाजपति हुए। राजवन्धनमें जिस समय सेनहाटी-निवासी कन्दर्परायकी कन्याके साथ अपने तीसरे पुत्र राजा गङ्गादासका विवाह किया, उसी समय उन्होंने समुदाय कुलीन और घटकोंकी बुला कर एक चन्द्रन कार्याका अनुष्ठान किया। इसके बाद सेनहाटी-निवासी हिंमुषंश्रीय रूपेश्वर सेनके साथ उनकी कनिष्ठा कन्या अभयाके विवाहके समय भी उन्होंने इसी तरह एक चन्द्रनका अनुष्ठान कर वैद्वय समाजपतित्व प्राप्त किया। पीछे उनके भतीजे क्षीयान बहादुरने अपने पुत्र रायभूदायनचन्द्रका विवाह भरविंद विरचनाथ मञ्जुनदारकी कन्याके साथ किया। उस समय भी उन्होंने एक चंद्रनका अनुष्ठान कर समुदाय कुलीन और घटकोंकी एकत्र किया था; इस स्वामीं राजा राजवन्धन समाजपति और रायभूदयुञ्जय साहकारो समाजपति कहके सम्मानित हुए थे। यज्ञ समाजमें जयसारेके सुपमिन्दा लाला रामप्रसाद रायने पयोपान-निवासी हिंमु-प्रभाकरचंश्रीय रामधन सेनके साथ अपने कन्या सचंभरीका विवाह किया। इस विवाहमें भी एक चंद्रनका

अनुष्ठान हुआ था। उस समय समवेत कुलीन और घटकोंने रामप्रसादको उपसमाजपति शोकार किया था। कहनेकी जरूरत नहीं, कि इस कार्यमें भी राय-पल्लभ वैद्वयसमाजपति और रायभूदयुञ्जय साहकारो समाजपति माने गये थे।

यज्ञ वैधवन्धकार।

यज्ञ वैद्वयसमाजमें भी संसृत और बंगला बहुतेरे कवियों और गुरुकारोंने जगन्प्रदण किया था। रायच कविराजके सद्देवकुलदंपन और कविकण्ठशरकी सद्देवकुलपञ्चिकांमें अनेक महात्म्याओंके नाम दिव्यदे देने हैं। सिवा इनके विजयगुप्त, पञ्चोपरसेन, गंगादाससेन, वैद्वयजगन्नाथ, लाला रामगति राय, लाला जयनारायण राय, आनंदमयी, मुक्ताराम सेन, धनंनराम दत्त, जगदोश गुप्त, अंचरुचि भवानी प्रसाद, जियचंद्रसेन, रामलोचन दास, पवनशोस रामकमारसेन, मोहनमणिदास, कालो नारायण गुप्त, चट्टाग्रामो दाससेन, पवनशोस रामकमार सेन, मुंशो शम्भूनाथ दाम, मोहनमणि दास, गोलोकचंद्रसेन, ईश्वरचंद्रसेन, जगद्वंशुदास, कालीनारायण गुप्त, मुंशो रामनाथ सेन, कालोकुमारदास, दुर्गापति सेन, पण्डितवर गङ्गाधर कविराज, कृष्णचंद्र मञ्जुनदार, दीननाथ सेन, दुर्लभचंद्र सेन, रजनीकांत गुप्त, रोचिणोकुमार रायचौवरो आदि कवि तथा प्रथकार यज्ञ वैधसमाजका सुशोभित्व कर गये हैं।

वैधजोवन दास—एक प्राचीन कविता नाम।
वैधनरसिंह सेन (स० पु०) यासवत्सालीकाके रचयिता।

वैधनाथ—सम्बाल परगनेका प्रसिद्ध जीवगोर्ध। गङ्ग रेज अधिकारमें भी यह एक समय योत्सूय जिलेमें, पीछे शाहाबाद जिलेके एक छोटेमें प्रामके रूपमें परिगणित था। प्राचीन तोषमाहात्म्य आदि ग्रन्थोंमें वैधनाथसेन वीरभूमके अन्तर्गत कहा गया है।

देवपर देवो।

यह स्थान कलकत्तेके हावड़ा स्टेशनसे ६४ इण्डिया रेलके बाईं लाइनके पक्षमें २०१ मील पर परिगणित है। यहाँमें देवपर मठके तर्क एक प्राचीन देव विष्णुन है। जहसे यह रेल गुली, सबसे वैधनाथनाम ज्ञानेमें

वात्रियों की बड़ी सुविधा होती है । पहले वाली पैदल चल कर पार्श्वीय धामतरकी तप करने थे । यामों हाकुमों का पूरा भय था । सिधा इसके कर्मों कर्मों सद-गामों पहलों के माभी भी मीका, वा कर वात्रियों को लूट लेते थे । इन समय थे सब उपद्रव भरवाचार लुप्त हुए हैं ।

रेलवेयके फेल जानेसे सब वात्रियों को पैदल चलनेका मौका ही नहीं भोगा, फलता हाकुमोंका उपद्रव भाप ही भाप जाग्न हो गया । सब वात्रियोंकी विशेष कष्ट नहीं भोगना पड़ता । भगोष्ट पूजादि कर वाली उसी दिन लीट नी भा सकते हैं ।

पैघनावक्षेत्र समुद्रपृष्ठसे ८७४ फीट ऊंचा है । उचाताके कारण ही यहाँकी मिट्टी रमदार नहीं और वायु भी काली और जलोप रसपजित है । यहाँकी अघितवकाभूमिके प्रयाहित जलमें नाना घातव पदार्थ मिश्रित होने और वायु साक रहनेसे यह स्थान बड़ा ही स्वास्थ्यप्रद है । विशेषतः यह एक तीर्थक्षेत्र है । घर्मप्राण भारतवासियों विशेषतः बङ्गाली यार्द्धयमें उपस्थित होने पर तीर्थयात्रके हेतु और पूजावस्थामें स्वास्थ्यप्रदायके लिये यहाँ भा कर बसते हैं । इस समय यहाँ बहुतेरे लोकोमें बन्धो कर लो है । आदि घैद्य-नाथ तीर्थ यार्धो देवपत्तमें केवल तीर्थयात्री बङ्गालियों और पहलोंका वास है । जो जलवायु परिवर्तनके लिये देवपत्तमें भा कर वास करते हैं, ये देवमन्दिरके दक्षिण और कर्नाटेयर्स टाउन भागमें रहते हैं । ये लोको स्थान वर्तमान देवपत्त नगरके अन्तर्गत है । पहले यहाँ बसतो न थी, सब कनसे बढ़ रहे थे ।

देवपत्तसे कुछ पश्चिम घैद्यनाथ अंकजग्न हटेगन है । हटेगनमें सटा गााम भी घैद्यनाथके नामसे प्रसिद्ध है । यहाँ प्राचीनकालके निद्वानंमस्तरूप सैदासने घाटमें अनेक ध्यमन स्तूप पढ़े हुए हैं ।

देवपत्तमें मुमुक्षुविद्ध घैद्यनाथका मन्दिर है । उममें देवादिदेव महादेवका अनादि घैद्यनाथलिङ्ग स्थापित है । इस मन्दिरके प्राचीरके मध्य और मो दो मन्दिर हैं । उनके मन्दिरमिल्य घैद्यो विपुलताके परिचायक नहीं । फिर भी, मन्दिरमें सटी हुई चित्तकी को निमा-

लियियोंका अनुनीलन करने अथवा उमका अनाद्य प्रणालीको पर्यालोचना करने पर मालूम होता है, कि मन्दिर मुसलमानोंकी अमलदारीमें बनाया या इसका संस्कार हुआ है । साधारणकी अथगनिके लिये इन मन्दिरोंको सूको मोघे ही गई—

१ श्याम-कार्शिक	११ देवी सिंहपारिको
२ गार्शो	१२ सूर्यनारायण
३ नीलकण्ठ महादेव	१३ मरुत्तनी
४ लक्ष्मीनारायण	१४ हनुमान मौर कुंभ
५ भग्नपूर्वा	१५ कालभैरव
६ भोगमन्दिर (मग्न)	१६ मरुत्तनाथ
७ गाली	१७ प्रता. और गणेश
८ समाधि	
९ आनन्दभैरव	१८ घैद्यनाथ
१० रामलक्ष्मण	१९ गङ्गा ।

सिधा इसके कालभैरव, मरुत्तनाथ और प्रता तथा गणेश-मन्दिरके समुच्च मेघालराजका दिवा हुआ बड़ा घण्टा लटकता है । मन्दिरमें प्रवेग करनेके लिये प्राचीरगात्रमें ४ दरवाजे हैं । उत्तरके द्वारके पार्श्वमें एक पक्का कुंभा है । इसकी बगलमें ही लक्ष्मी-नारायणका मन्दिर है । इसके उत्तर द्वारके बाहर बाजार और नाना प्रकार कादुपको दुकाने हैं । मन्दिरके सामुग्य भी दुकान और बाजार हैं । मन्दिरके उत्तर-परिमग बंभे पर भोगमन्दिर और समाधिके धोचमंसे बाहर मानेका एक पथ है । इस पथसे बंगाली टोलेमें शीघ्र जाना जाता होता है । इस पथके किनारे भी दो एक टूटे-पूटे मन्दिर दिखाई देते हैं ।

उत्तरके मूलद्वारसे बाजार पथमें और भी कुछ भी बढने पर पूढो गङ्गाके निकट भाया जाता है । तीर्थ-यात्री इसी पूढो गङ्गा या अच्यने स्नान कर देवनाकी मरुत्तनाके लिये मन्दिरमें आते हैं । यहाँ पहलोंका वास-गृह है और वात्रियोंके उदरनेके लिये बड़े बड़े मकान हैं । ये सब मकान निरापद् नहीं समझे जाते हैं । अथो कि ये नगरके उत्तर-पूर्व बंभे पर अस्थित हैं ।

घैद्यनाथलिङ्ग मारनके द्वादन अनादिनिङ्गका पक्षम बड़ा जाता है । इस निङ्गकी प्रतिष्ठाके मारनमें

कई पौराणिक आख्यान मिलते हैं। पद्मपुराणके अन्त-
र्गत वैद्यनाथ माहात्म्य और हरिहरस्तुत मुकुन्ददिग्-
विरचित 'वैद्यनाथमङ्गल' नामक भाषाप्रथममें रावण
द्वारा देवादिदेवका यहाँ आना और यन्देशमें रहनेकी
बात लिखी है। यह प्रसङ्ग पीछे कहा गया। इस
समय यह वर्णन किया जाता है, कि इस देशमें वैद्यनाथ
वैद्यनाथकी मन्दिर-प्रतिष्ठा किस तरह हुई थी। प्रवाद
है—

"प्राचीन समयमें ब्राह्मणोंका एक दल इस पुण्य
क्षेत्रमें आया। दल वासभूमिकी धूममें घूमते घूमते
पर्समान मन्दिरके निकट जो जलाशय है, उसके निकट
पहुँचा। इस स्थानका जल सुषेय और घायु सुशीतल
देख कर उन लोगोंने यहाँ ही डेरा डाल डाल दिया।
उस समय इस झीलके चारों ओरकी भूमि घोर जङ्गल-
से परिपूर्ण थी। अनार्य (संघाल) यहाँ ही वास करते
थे। ब्राह्मण शिवोपासक थे। वे उसी झीलके किनारे
अपने अमीष्ट देवकी मूर्ति स्थापित कर पूजा करते थे।
ब्राह्मण देवताके उद्देश्वसे यथायोग्य बलि भी देते थे।
अनार्य संघाल भी यहाँ आ कर अपने पितृ-
पुरुषोंके पूजित सींग जखण्ड प्रस्तरकी पूजा कर जाते थे।
चिन्तु ये ब्राह्मणोंकी तरह बलि नहीं चढ़ाते थे। वे
सींग जखण्ड प्रस्तर आज भी देवघरके पश्चिम प्रवेशद्वार
पर रखे हुए हैं।

धनधान्यसे भाण्डार पूर्ण हो जाने पर ब्राह्मण
आलसी तथा भोगविलासी हो उठे। उस समय ये
अपने अनादि देवकी पूजामें वैसी तत्परतासे मग नहीं
लगाते थे। यह देव अनार्य संघाल ब्राह्मणोंके आच-
रणसे अध्वरहित हो गये तथा दैवनातिकी अमूलक
समस्त देवमूर्तियोंके प्रति अश्रद्धा प्रकट करने लगे।

अन्तमें वैजू नामका एक धनवान् अनार्य मन ही मन
चिन्ता करने लगा, कि जब ब्राह्मणोंके देवताका कुछ
प्रभाव ही नहीं, तो भव भय काहे का ? वैजूने मन ही
मन संकल्प किया, कि प्रातः दिन देवमूर्ति पर डण्डा
जमानेके बाद ही जलस्पर्श करूँगा। इस प्रतिष्ठाके
कारण क्रमसे शिवमूर्ति स्थलके लिये उसका एक
अनुदाग उत्पन्न होने लगा, यह आघातके बदले प्रति-

दिन निराहार अवस्थामें एक बार शिवलिंगको स्पर्श
कर जाता। देवान् एक दिन यन्में उसके गोप्य गंगा
गये, उनके खोजनेमें उसका सारा दिन बिना बाधे
तमाम हो गया, संघ्या समय जब यह पीटा, तब उस
झीलमें स्नान आदि कर भोजन करने लगा। भू-धामें
कातर हो रहा था। घर जाते ही यह भोजन करने बैठा।
घाली उसके भागे रवो गई। उसने भोजनका प्रथम
प्रास उठाया, किन्तु उसको स्मरण हो आया, कि भगो
तो शङ्कर पर डण्डा जमाया ही नहीं। प्रतिष्ठा भङ्ग
हो जानेके क्या उसे हाथका लिया हुआ प्रास घालीमें
डाल हाथ धो कर शङ्कर पर लहू जमानेके लिये यह
चला। झुघा-कातर वैजूने मानसिक मर्मवेदनके
साथ देवमूर्तिकी दर्शन करनेके बाद हाथमें लिये हुए
डण्डेसे मूर्ति पर प्रहार किया।

अनार्य वैजूका ऐसा अनुदाग देव कर देवानिवाचन
माग्यवान् शङ्कर वैजूके प्रति दयाद्रुं हुए। वे मन ही
मन 'जो व्यक्ति मुझ पर प्रहार करनेके लिये आहार
निद्रा परित्याग करता है, यह मेरा मकड़ है। क्योंकि
मेरी चिन्तमें उसकी एकाग्रता है और मेरे उपायक
निश्चिन्त हो संसारमदसे मग हो रहे हैं' इत्यादि
चिन्ता करने लगे। इसके बाद उन्होंने उस जन्मानय-
से विष्णुमूर्तिमें उसको दर्शन दिया और वैजूका सम्भो-
धन कर कहा, 'वत्स! तुम घर माँगा। मैं तुम्हारा
इच्छा पूर्ण करूँगा।' देवमूर्तिकी दर्शन कर भग-
विह्वल हो वैजूने जवाब दिया,—'प्रभो ! मेरे पाम धन
सम्पत्ति यथेष्ट है और मैं संघालोंका अधिपति
हूँ, इससे राजा बननेको लालसा नहीं है, मेरी भी
इच्छा है, लोग मुझे वैजूकी जगद वैजनाथ वा वैद्य-
नाथ कहे और आपका जो मन्दिर मैं बनवाऊँगा, यह
मन्दिर मेरे नामसे ही विख्यात हो। उसकी वाग पर
प्रसन्न हो शङ्करने 'तथास्तु' कहा। तबसे ही उसका
नाम वैजूके बदले वैद्यनाथ हुआ और मन्दिर भी
वैद्यनाथके नामसे ही प्रसिद्ध हुआ।

उस दिनसे वैद्यनाथका प्रभाव दिग्दर्शनमें फैल
गया। नाना देशोंसे बणिक-सम्प्रदाय, राजन्यवर्ग,
ब्राह्मण और भगवान्य वर्णोंके लोग यहाँ आ कर उत्कृ-

यात्रियों को बड़ी सुविधा होती है । पहले यात्री वैदल चल कर पाषाणोपकरणों को ले जाते थे । पथमें हाथुओं का पूरा भय था । सिधा इसके कर्मों को महामातो पण्डों के मातो भी मीता-या कर यात्रियों को लुट लेते थे । इस समय ये सब उपद्रव मर्यादाचार लुप्त हुए हैं ।

देवघरके वैदल जिनके सब यात्रियों को वैदल चलनेका मौका हो गये था, फलतः हाथुओंका उपद्रव भाप ही भाप जान्न हो गया । अब यात्रियोंको विदेह कष्ट नहीं भोगना पड़ता । भाभीष्ट पूजादि कर यात्री उसी दिन मीट भी जा सकते हैं ।

विधानावस्थित समुद्रपृष्ठमें ८४४ फीट ऊँचा है । उच्चताके कारण ही यहाँकी मिट्टी रमदार नहीं और वायु भी क्ली भी जलोप रमयजित है । यहाँको वास्तवकाभूमिके प्रयाहित जलों नामा घातव पदाथ मिथित होने और वायु साक रहनेमें यह स्थान बड़ा ही स्वास्वयव है । विदेवता यह एक तीर्थक्षेत्र है । पर्वप्रान्त भारतवासियों विशेषतः बङ्गाली पार्श्वधर्म उपस्थित होने पर तीर्थयात्रके हेतु और पुष्टावस्था में स्वास्वयवस्थाके लिये यहाँ जा कर बसते हैं । इस समय यहाँ बहुतसे लोगोंमें बस्ती कर ली है । आदि यैद्य-मात तीर्थ अर्थात् देवघरमें केवल तीर्थयात्री बङ्गालियों और पण्डोंका नाम है । जो जलवायु परिवर्तनके लिये देवघरमें जा कर श्राद्ध करते हैं, ये देवमन्दिरके दक्षिण और कर्कटियाँ टाउन भागमें रहते हैं । ये दोनों स्थान वर्तमान देवघर नगरके अन्तर्गत है । पहले यहाँ बस्ती न थी, अब क्रमसे बढ़ रही है ।

देवघरमें कुछ पवित्र वीचनाथ अंकनन स्टेनन है । स्टेननमें मठ नाम भी वीचनाथके नामसे प्रसिद्ध है । पर्वप्रान्तोत्तरके निम्नतमस्वरूप मीशानमें पाटमें अनेक धर्मन स्तूप पड़े हुए हैं ।

देवघरमें सुप्रसिद्ध वैद्यनाथका मन्दिर है । उन्में देवादिदेव महादेवका अर्थात् वैद्यनाथलिकु स्थापित है । इस मन्दिरके प्राकारके मध्य और भी ही मन्दिर है । उनके मन्दिरान्त यैसी विपुलताके परिव्यापक नहीं । फिर भी, मन्दिरमें सदा ही किनकी ही गिना-

विपिवीका अनुगीलन करने मगया उमरका स्थापन प्रयालीको पर्वलोचना करने पर मान्य होया है । मन्दिर सुमलमतीकी कमलदारीमें बनाया जा उमर संस्कार हुआ है । साधारणकी अयगतिके लिये इन मन्दिरोंकी सुभी लीचे ही गई—

- | | |
|--------------------|---------------------|
| १ श्याम-कार्तिक | ११ देवी विहायिकी |
| २ गार्गी | १२ सुद्विगारायन |
| ३ मोलकण्ड महादेव | १३ सरस्वती |
| ४ लक्ष्मीनारायण | १४ शतुमान मीर ब्रू |
| ५ अन्नपूर्णा | १५ कालभैरव |
| ६ भोगमन्दिर (गण) | १६ मण्ड्यामाँ |
| ७ गान्धी | १७ प्रज्ञा-भोर गणेश |
| ८ समाधि | |
| ९ मानभैरव | १८ वैद्यनाथ |
| १० रामलक्ष्मण | १९ गङ्गा । |

सिधा इसके कालभैरव, मण्ड्यामाँ और प्रज्ञा गणेश-मन्दिरके समुच्च नेपालराजका दिना हुआ बड़ा घण्टालटका है । मन्दिरमें प्रथम करनेके लिये प्राचीनयात्रमें ४ स्वरयोजे हैं । उत्तरके द्वारके पार्श्वमें एक पत्ता कुंसा है । इसकी बगलमें ही लक्ष्मी-नारायणका मन्दिर है । इसके उत्तर द्वारके बाहर बाजार और नामा प्रकार स्थापकी दुकानें हैं । मन्दिरके समुच्च भी दुकान और बाजार है । मन्दिरके उत्तर-पश्चिम होने पर भोगमन्दिर और गणेशिके बीचमें ही बाहर कावेका एक पथ है । इस पथके बंगाली टोलेमें जंग नामा जाना होता है । इस पथके किनारे भी दो एक टूटे-टूटे मन्दिर दिखाई देते हैं ।

उत्तरके मूलद्वारके बाजार पथमें और भी कुछ मीर बढ़ने पर घुटो गङ्गाके निकट भाया जाना है । तीर्थ-यात्री इतनी घुटो गङ्गा या भीलमें स्नान कर देवघरकी मध्यमाके लिये मन्दिरमें भाते हैं । यहाँ पण्डोंका नाम-पूट है और यात्रियोंके लक्ष्मणके लिये बड़े बड़े मकान हैं । ये सब मकान निरापद् नहीं समके जाते हैं । बसो कि ये मकानके उत्तर-घुटो जाने पर अयगतिके हैं ।

वैद्यनाथलिकु भारतके द्विजना अर्थात् विद्वान् परक्रम बड़ा जाना है । इस लिकुकी प्रतिष्ठाके कारणसे

कांशको ही पालिप्रमथोक विप्रभयत कद कर प्रदण किया जा सकता है। क्योंकि देवघर-वैद्यनाथके सिवा इस देशके और किसी भागमें ऐसा बौद्धकीर्तियोंका विदर्शन नहीं मिला है। सिवा इसके देवघर नगरके वैद्यनाथ मन्दिरके निःशुद्ध हो उत्तरिया नामका एक छोटा ग्राम है। वदुनेरे लोग उसका पालि उसन शब्दका अर्थ 'ग्र' और उत्तानि संघारानका शेष स्मृतिशापक समझने हैं।

यहां भगवान् जो सब मन्दिर हैं, वे उक्त तीन मंदिरोंसे दूर पर और वे नये ढंगसे निर्मित हुए दिखाई देते हैं। सुनकर उनका विवरण लिखित करनेका प्रयोजन नहीं जान पड़ता।

मन्दिर-प्रांगणके दोह बांचमें एक प्रसन्न-निर्मित एक बड़े मंदिरमें वैद्यनाथकी लिङ्गमूर्ति प्रतिष्ठित है। वैद्यनाथ मन्दिरके उपरिदेशमें कुछ देवा हुआ है। हिन्दुओंका विश्वास है, कि लङ्काका रावण जब बहुत स्वय-भुक्ति करके भी देवादिदेव महादेवकी लङ्कामें ले जा न सका और देवादिदेवका रथ पातालगामी होने लगा, तब उसने क्रोधसे रथके गिरकरका दबा कर लिङ्गकी पीनालमें भेजनेका इच्छा की थी, उसी समयमें इस मन्दिरका उपरिदेश रावणके अंगुठके दबावका चिह्न रह गया।

वैद्यनाथ रावणेश्वर लङ्के सम्बन्धमें वैद्यनाथ-माहात्म्यमें इस तरहका आशयान मिलता है,—लङ्केश्वर रावण नियत उत्तरवर्णमें फौजान-गिरार पर आ कर अपने इष्टदेवकी पूजा किया करता था। प्रति दिन उसकी इस तरह पूजा करनेसे उसके प्रति भगवान् सन्तुष्ट हुए। नियकी कृपासे रावण स्वर्गस्थ देवताओंके पीछन करनेमें भी समर्थ होगा, इसकी आशङ्का कर इन्द्र जीप्रथामे प्रलोकामे जाये, प्रमाने उनके विमर्श करके मना किया और नियलिङ्ग उडातेको पाव बतार कर रावणके भविष्यमें घटनाओंको बात कही। फल भी ऐसा ही हुआ। कुछ दिनोंके बाद रावणकी फौजसंबन्धमें निवलिङ्ग उडा कर लङ्कामें स्थापन करनेकी इच्छा हुई। उसकी इच्छा थी, कि स्वयं महेश्वर लङ्कापुरीमें विराजित हो होनेमें मोनेकी लङ्का गौरव

ही पूया है। मन ही मन ऐसा चिन्ता कर रावणने भगवान् महेश्वरके समीप जा कर उनसे अपनी इच्छा प्रकट की; भगवान् उस पर सन्तुष्ट हो रहे थे, उन्होंने कहा, 'रावण तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ। तुम मेरी मूर्ति छल कर लङ्कामें स्थापन करो। उसमें मेरी कोई आपत्ति नहीं। किन्तु एक बातका ध्यान रखना, कि फौजसे लङ्का ले जाने समय बीच रास्तेमें कहीं रचना न होगा। यदि समय ऐसा करोगे, तो तुम जहां रहोगे, मैं वहां बैठ जाऊंगा। शिर पर रख कर तुमको ले चलना होगा।' बलपूर्वसे मत्त रावणने नियलिङ्गका पाष्य सुन कर कहा—प्रभो! ऐसा ही होगा। रावणका बात पर परिनुष्ट हो भगवान्ने कहा, 'तुम मुझको फौजसे साथ लङ्का ले चलो।'

निय-कथित शुभ दिन आने पर रावण सानन्द चित्तमें फौजसेकी ओर चला और रातको वहां पहुँचा। पहले अपने बलका शम्भुजा लगानेके लिये गिरिवरको सञ्चालित किया। दुर्ग रावणके निजाकायमें इस व्यवहारसे पायती कुपिता हुई, किन्तु भगवान् इसके मुझसे सब बातें धुन कर उन्होंने शांतभाव धारण किया।

इसके बाद रावण नियपूताके लिये नियमन्दिरमें गया। द्वार पर नन्दी बैठे था, उसने कहा, कि इस समय शत्रु-पार्यन्ती शयन कर रहे हैं, मोतर मत जाओ। रावण मना करने पर भी नन्दीको धक्का दे कर यह कहना हुआ चला गया, कि मैं शत्रुका पुत्र हूँ, वहां जाना मेरे लिये निषेध नहीं। रावणकी मत्तिका देव सन्तुष्ट हो निवने कहा, 'वत्स! वर मांगो।' रावणने कहा, 'प्रभो! लङ्कामें चलिपे, यही एकमात्र मेरी इच्छा है।' निय पूर्ण प्रस्तावके अनुसार लङ्का चलेनेका नैवार हुए।

रावणने प्रसन्न चित्तसे लिङ्गमूर्तिको शिर पर उडा लिया और धीरे धीरे लङ्काकी ओर चला। जब वह लाभुरी (वर्तमान नाम हरनाभुरी) ग्रामके निशुद्ध पहुँचा, तब उसको पेनाव करनेकी भावश्यकता हुई। रावण सब स्थिर न रह सका। श्वर भगवान् मूर्तिमें भार बढ़ा रहे थे। रावण नियकी मित्रों पर रण कर पेनाव कर नहीं सकता। यदि ऐसा करे, तो उनकी

नर मंदिर तथा कर देवस्थान को मढ़िना बोरान करने लगे । महादेवने स्वयं जहाँ ये मूर्तियाँ ब्रह्मण दिया था, वहाँ ही वे नर मंदिर प्रतिष्ठित हुए । उस तरह धारो धारो हजारोंका बाह्यरक्ष्य, देवस्थानका पुण्यप्रदस्थ और वैद्व्यकर्मो वैद्व्यनाथका रोगहररक्ष चारों ओर फैल गया और उससे जाना देवोंमें तोषोपातो रोग-मुक्तिकी कामनासे इन तीनोंमें जाने लगे । भाद्र मास-के पूर्णिमाके दिन वैद्व्यनाथका एक पुण्यवाद् जाता है । इस दिन वहाँ पर मेवा लगना है जो तीन मार दिन तक रहता है ।

मानोद परिवर्तित वर्तमान मंदिर-प्राङ्गणतल चूने-के पत्थरोंमें काठछादित है । मिर्जापुर-वासी एक पत्निकमें एक लाल रंगवा लकड़ी का यह पत्थर जड़ाया था । उसके पूर्व यह स्थान जल और कुदमें बर्दमान (पत्थरों मिट्टी) था । इससे यह स्थान भोजन अत्या-व्यक्त प्रयोग होता था । मंदिरोंमें तीनमें महादेवतो-को मूर्ति तथा तोनमें वरान्तो देवीको मूर्ति विरा जती है । ४० या ५० गज लम्बी रोगमन्त्री कोटोसे नीच और मोहरवी रूपमें मंदिरोंके निचर भागसमें बंधे हुए है । यह छोटी माना रङ्गके पनाका, चय और पुण्य-मालासोंमें परिनीमित रहती है ।

मन्दिरके पश्चिम द्वारमें लगेमें जाने पर ६ फीट ऊँचा और २० फीट चौकोम एक पत्थरका बाबूतरा दिशासे देता है । इसी बाबूतरा पर लगे भागमें जो १२ फीट ऊँचे प्रस्तरस्तम्भ पाएँ हैं और इन प्रस्तरस्तम्भोंके निर पर एक प्रस्तरस्तम्भ समान्तरात्मभावसे रखा हुआ है । इन ऊपरवाले स्तम्भके दोनो मुख पर हाथो या पक्षिवाचके मुँहका चित्र खुदा हुआ जान पड़ता है । विष्णु लक्ष्मी इन दो स्तम्भों पर कुछ भी खुदा हुआ नहीं है । मध्याह्न उनके विशेष कोरि निरुपनीतुपनाक परिचय नहीं मिलता । इन तीन ऊपर प्रस्तरोंका पत्थर मरवेक १६० मजके दिशासे होता है । जिस उद्देश्यसे किमने इन प्रस्तरस्तम्भोंका इन तरह रखा, इसका कुछ भी पता नहीं चलता । इसके समोप ही बीसविहारके ४५ स्तम्भ विरहोम मीसुर है ।

प्रस्तरस्तम्भोंकी अनुमान है, कि वहाँ कितने मन्दिर

हैं, उनमें राघवोच्चर, विद्वयनाथ, पार्वती और लक्ष्मी नाथायनाका मन्दिर अपेक्षारुन प्रायोग है । उनका कहना है, कि पहले वहाँ बीसोंका वास था । दिग्युक्तो कोटो को बोरिसेवेका होय करनेके लिये जहाँकी बगलसे एक मन्दिरोका निर्माण किया था । काष्ठ भी कुछ और और-मूर्तियों और उनके वादमूलमें स्थापित मिथिली उम प्राचीन बीस-प्रमाणका परिचय देती है । मूर्धमूर्तियों परतलमें "ये धर्म" इत्यादि प्रसिद्ध पत्थर रोदिन देना जाता है । इन सब और अत्याम्य स्थानोंमें वहाँ बीस-प्रस्तर-मूर्तियोंके क्षेत्रसे निम्नरदेह-बहा जा सकता है, कि प्राचीनकालमें वहाँ बीसोंका एक सुविष्णु मन्दि-राम स्थापित था ।

पालिप्रथमें विष्णुके अरूप प्रदेवोंमें उत्तानप नामक एक संघारामका उल्लेख दिताई देता है । विष्णु संस्कृत विश्व जगत्का प्राणन रूप है । समस्तता विश्व-पर्यंतके उत्तर विगिष्णु पार्वर्य प्रदेवोंमें ही वासिष्णुके विष्णुवत है । इसी यनमें उत्तानिप-मठ है ।

उक्त मूर्धमें लिखा है, "राजा पाटलिपुत्रसे विष्णुवत होने हुए तमनिउ जनपदमें सानयें दिन पशुधे थे ।" अर्थात् "जाना देवोंसे भ्रमण विष्णु संघाराममें गये थे ।" फिर उक्त मठकी मूर्तों जगदमें लिखा है, कि "इससे पछि मठका घर्म पात्रकोकिं माघों से कर विष्णु वनके अन्तर्गत उत्तानोप-मठमें उपस्थित हुए थे ।" इन तीनों उल्लेखोंसे राजसेनादल और पुरोहितोंकी मंथना-का अनुमान करनेसे शीघ्र-संघारामके भागनका मरन ही अनुमान होता है ।

पालिप्रथका वर्णनमें हम जान सकते हैं, कि पारलि-पुत्रसे विष्णुवत होने हुए ताम्रनिउ (तमलुक) तक एक बीड़ा राखना था । काष्ठ भी तमलुकमें बाँधना तक और वहाँमें भागलपुर जगके लिये जो प्राचीन राखना है, यह सिद्धो, मन्दिर और वाचनीनाथ ही कर गया है । वास्कीनाथसे देवमर भेद्यनाथ तक प्राचीन पथका निर्माण काष्ठ भी वर्तमान है । यह राखना कबलकोल पर्यंत धेनोको पूर्णजाताको मन्दिन कर आरमण्य, पार्वती और विहार ही कर परने तक गया है । इन सबों कारणोंसे मंथान परमनेके जगतीन इस विष्णुपर्यंतके अर्थात्-

कांशको ही पालिशप्रयोग विरुद्ध न कद कर प्रहण किया जा सकता है। क्योंकि देवघर-बैथनाथके सिवा हम देवके और किसी भागमें ऐसा बौद्धकीर्तियोंका निर्देशन नहीं मिला है। सिवा इसके देवघर नगरके बैथनाथ मन्दिरके निरुद्ध ही उत्तरिया नामका एक छोटा ग्राम है। वदुन्देरे लोग उसका पालि उत्तम शब्दका भयव्रग और उत्तानि संघारामका शेष स्मृतिशापक समझते हैं।

यहां अग्याग्य जां सब मन्दिर हैं, वे उक्त तोम मंदिरोंसे दूर पर और वे नये ढंगसे निर्मित हुए दिखाई देते हैं। सुतरां उनका विवरण लिखित करनेका प्रयोजन नहीं जान पड़ता।

मन्दिर-प्रांगणके ठीक बीचमें एक प्रस्तर-निर्मित एक बड़े मंदिरमें बैथनाथकी लिगमूर्ति प्रतिष्ठित है। बैथुवनाथ मन्दिरके उपरिदिग्गमें कुछ देवा हुआ है। दिग्भुमिका विषयाज्ञ है, कि लड्डुका रावण जब बहुत स्तव-स्तुति करके भी देवादिदेव महादेवकी लड्डुमें ले जा न सका और देवादिदेवका रथ पातालगामी होने लगा, तब उसने क्रायसे रथके गिहरके दबा कर लिङ्गकी पातालमें भेजनेका इच्छा की थी, उसी समयमें इस मन्दिरका उपरिदिग्ग रावणके मंगुठेके द्वापका विह रथ गया।

बैथनाथ रावणेश्वर लिङ्गके सम्प्रभमें बैथनाथ-माहात्म्यमें हम तरहका भाषयान मिलता है,—लड्डुश्वर रावण निरुद्ध उरारतण्डमें फैला-गिहर पर आ कर अपने इष्टदेवकी पूजा किया करता था। प्रति दिन उसको हम तरह पूजा करनेसे उसके प्रति भगवान् सन्तुष्ट हुए। जिसकी कृपासे रावण स्वर्गस्थ देवनाभके पीछे करनेमें भी समर्थ होगा, इसकी भाशा कर इन्द्र शीघ्रकामे प्रसन्नोक्तने लाये, प्रमाने उनके विप्रद्वेद करनेमें मना किया और जिसलिङ्ग उडातेकी पाप बना कर रावणके भविष्यमें घंशानाही बात कही। फल भी ऐसा ही हुआ। कुछ दिनोंके बाद रावणकी फैलासपर्वणसे जिसलिङ्ग उडा कर लड्डुमें स्थापन करनेकी इच्छा हुई। उसने इच्छा की, कि स्वयं महेश्वर लड्डुपुरीमें विराजित हो होनेमें मोनेकी लड्डुका गीरव

ही गृहा है। मन ही मन ऐसा चिन्ता कर रावणने भगवान् महेश्वरके समीप जा कर उनसे अपने इच्छा प्रकट की; भगवान् उस पर सन्तुष्ट हो रहे थे, उन्होंने कहा, 'रावण तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट है। तुम मेरी मूर्ति छल कर लड्डुमें स्थापन करो। उसमें मेरी कोई आपत्ति नहीं। किन्तु एक बातका ध्यान रखना, कि फैलाससे लड्डु ले जाने समय बीच रास्तेमें कहीं रखना न होगा। यदि प्रमथण ऐसा करोगे, तो तुम जहां रहोगे, मैं वहां बैठ जाऊंगा। गिर पर रथ कर तुमकी ले चलना होगा।' बलपूर्वसे मत्त रावणने जिसलिङ्गका वाष्य सुन कर कहा—प्रभो! ऐसा ही होगा। रावणका बात पर परिनुष्ट हो भगवान्ने कहा, 'तुम मुझको फैलासके साथ लड्डु ले चलो।'

जिब-कथित शुभ दिन आने पर रावण मानन्द निरुद्धमें फैलासकी ओर चला और रातके वहां पहुँचा। पहले अपने बलका सम्प्राप्ता लगानेके लिये गिरघरके सञ्चालित किया। दुर्लभ रावणके निजाकालमें हम व्यवहारसे पार्यतो कुपिता हुई, किन्तु भगवान् हरके मुझसे सब बातें सुन कर उन्होंने ज्ञातभाष्य धारण किया।

इसके बाद रावण जिसपूजाके लिये जिसमन्दिरमें गया। द्वार पर नन्दी बैठा था, उसने कहा, कि हम समय शङ्कर-पार्यतो जयन कर रहे हैं, भीतर मत जाओ। रावण मना करने पर भी नन्दीके धका दे कर वह कहता हुआ चला गया, कि मैं शङ्करका पुत्र हूँ, वहां जाना मेरे लिये निषेध नहीं। रावणकी भक्तिके देख सन्तुष्ट हो जियने कहा, 'वत्स! पर मांसा।' रावणने कहा, 'प्रभो! लड्डुमें चलिये, यही परमात् मेरी इच्छा है।' जिस पूर्व प्रस्तावके अनुसार लड्डु चलनेका तैयार हुए।

रावणने प्रसन्न चित्तसे लिङ्गमूर्तिके गिर पर उठा लिया और धीरे धीरे लड्डुकी ओर चला। जब वह लाभुरी (घरामान नाम दरलाजुरि) ग्रामके निरुद्ध पहुँचा, तब उसको पेगाव करनेकी मायदयकता हुई। रावण अब स्थिर न रह सका। इधर भगवान् मूर्तिमें मार बढ़ा रहे थे। रावण जिसकी मिट्टी पर रख कर पेगाव कर मदीं सकता। यदि ऐसा करे, तो उसको

भगवान् मृतमायनने उसके। सम्बोधन कर कहा,—
घरस ! तुम्हारी पदाप्रता और भक्तिसे मैं प्रसन्न हुआ
हूँ। मैं तुमको तुम्हारा बमोष्ठ दूंगा। लोभशून्य
और स्वाधीनचित्त गोपने शिवयाष्यका उत्तर दिया,—
तुम और मुझको क्या दोगे ? मेरे मद्यके लिये यहां
यद्येष्ट द्रव्य है, मेरा कोई समाय नहीं। सुतरां
आकांक्षाकी इच्छा नहीं रहता। हां यदि तुम मुझको
कुछ देना हो चाहते हो, तो मैं इतना ही चाहता हूँ, कि
तुम्हारे नाम लेनेसे पहले लोग मेरा नाम लिया करें।
उसी दिनमें रावणेश्वरलिङ्ग वैद्यनाथ वा वैद्यनाथके
नामसे प्रख्यात हुआ।

ऊपर वैद्यनाथदेवके 'प्रतिष्ठा-प्रसङ्गमें' बैजूकी जो
किंवदन्ती उद्धृत की गई, उसमें पौराणिक बातों का संक्षेप
होने पर भी इतने इतना विरल माय धारण किया है,
कि यह एक अजनबी किस्सेके और कुछ नहीं। राटमें
शारकेश्वर मूर्त्ति स्थापन प्रसङ्गमें मुकुन्द चोपके साथ
वैद्यनाथके बैजूका अनेक सादृश्य है।

दक्षगडके बाद सती-वेदस्थानकी घटना हुई। इस
समय विष्णुने दरकरगच्छित-सतीवेदके सुरशान
नक द्वारा जगद खण्ड कर दिया। देवोका हृदय-
वैद्यनाथमें पतित हुआ। उसी समयसे यह एक देवी
घोडके नामसे प्रसिद्ध है। घोडकी देवीमूर्त्तिका नाम
ऊषुर्गा तथा शैरव वैद्यनाथ है। यहां याणगङ्गामें
स्नान कर पूजा की जाती है।—यह याणगङ्गा शिव-
गङ्गके नामसे भी प्रसिद्ध है।

मरुत्पुराणके अनुसार इस घोडस्थानकी जलिका
नाम शारोया है।

“करबारे महाप्रदभीष्मादेसो विनापेठे।

शारोया वैद्यनाथे तु महाकाले मोदवती।”

(मरुत्पुराण १३ अ०)

२ शैरवविश्वी। शैरव नामानुसार इस स्थानकी
नाम वैद्यनाथ हुआ है। यहां भगवतीका हृदय पतित
हुमा था। तत्तत्पूजार्थिके मतसे इस जलिका नाम
ऊषुर्गा है।

“हाईघोड वैद्यनाथ वैद्यनाथस्तु शैरव।

देवता अयदुर्गाख्या नंपाले जानुनो मम ॥”

(तन्त्रपूजार्थिक घोटनि०)

वैद्यनाथसे आरम्भ हो कर सुवनेश्वर तक गङ्गदेन
है। बांगदेन तोर्षापात्रके लिये दूषित नहीं।

(सक्तिवैद्यनाथ ७ प०)

वैद्यनाथसे कई मील उत्तर-पूर्व हरलाक्षुरी नामक
ग्राम मौजूद है। यहां कई प्राचुरिक मन्दिर और कई
प्राचीन मूर्त्तियोंके मन्नाशोधके सिवा और कुछ दिखाई
नहीं देता। दो प्रतिमूर्त्तियोंमें एक योगीका नाम गुदा
हुमा है। ऊपर कदें हुए मन्दिरोंका अधिकांश धीनिम्ना-
मन् दासके व्यपसे निर्मित हुआ। राजा श्रीमन्प्रवाल-
देवके (?) समयमें किमिल दास द्वारा उरकीर्ण-जिला-
लिपिके सिवा यहां प्रजननचरविदुके आदर्णोप और कुछ
नहीं है। जहां यह फलकलिपि विद्यमान है, माघारणका
विश्वास है, कि रावणने विष्णुके हाथ यहां ही शिवलिङ्ग
दिया था। तोर्षापात्रो इस स्थानकी देवनेके लिये भाते
है।

देवघर-वैद्यनाथसे ६ मील दक्षिण-पूर्व बाण्मीकीय
प्रसिद्ध तपोवन है। यह एक गण्डरील जिलर पर भव-
स्थित है। इस शैलमें एक गुहा है, उसमें शिवलिङ्ग
स्थापित है। यात्रो यहां भी आ कर तपोवनका दर्शन
करते हैं। प्रवाद है, कि तपसिधेष्टे बाण्मीकि इस गुहा
में वास करते थे। गुहाके निकट दो जिल, फलक हैं—
एकमें श्रीदेवराजनाम मिलता है। दूसरा फलक
अस्पष्ट है। इसके निकटके कुण्डमें यात्रो स्नान किया
करते हैं।

वैद्यनाथसे ८ मील उत्तर-पश्चिममें त्रिकुटील है।
भारतीय मानचित्रमें (नकशोंमें) निउर या तिर पहाड़
लिखा है। इस पर्वतपट्ट पर भी एक गुहा है। इसमें
कोई देवमूर्त्ति नहीं है। केवल अर्धशरणाव शून्य गडर
मात्र है। निकट ही कुछ नोभी भूमिमें भानुर्गाका धव-
सावदेव है। यहां त्रिकुट नाम महादेवलिङ्ग प्रतिष्ठित है।
वैद्यनाथ—बिहार जाहाबाद् प्रिलेका एक ग्राम। यह अक्षा०
२५° १७' ३०" और देशा० ८३° ३५' १५" पू०के मध्य
अवस्थित है। यहां नागा प्रतिमूर्त्ति स्तम्भममपतित
एक विष्णुत धवसावदेव दिखाई देता है। यहांके लोग
उसकी निविरा-राज-मदनपावकी कर्त्तों दो निदें का
करते हैं।

वैद्यनाथ—नारदनिवेद्य । इय नामके चित्रमे दो सुवर्ण-
 विन निद्राः तथा प्रथमकार दो गये हैं । १ एक प्राचीन
 रचयिता नाम । २ एक प्रसिद्ध ज्योतिषीका नाम ।
 रत्ननिहासकपदनि-श्रीकायें भूपरमे इनका इत्येव किया
 है । ३ मण्डनमिन्द्रकाके प्रणेता । ४ वृष्णलोला-नाटकके
 रचयिता । ५ ज्ञानकपाणिनाथ, धीरवतिष्ठन उद्योगिय
 रत्ननालाश्री शोभा, नारायिनाथ, भूषनाष्टी, यशस्वर
 शिरण, भावपरमिन्द्रा, कृष्णनाष्टी और नारदमुख्य नामक
 उद्योगियरके प्रणेता । यह एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विदु थे ।
 ६ लक्ष्मणरके रचयिता । ७ निर्दिनिपायके प्रणेता ; यह
 इनके रचे नारायणरचयितामलिका रचयिता है । ८ रक्ष-
 विधिके रचयिता । ९ पद्मति और धीमंस्वा नामके दो
 प्रयोगके प्रणेता । शोभो प्रथम वासुदेवनाथ-समय है ।
 १० परिनाथार्धमंभद्र नामक वैदान्तप्रणयके रचयिता ।
 ११ प्राग्निमनुकापल्लोके रचयिता । १२ मित्रवाचार-
 प्रदसनके प्रणेता । १३ रामायणदोषिकाके प्रणेता । यह
 नामिक प्रणयन थे । १४ रंगमैत्रयीका नामक वैदुषक-
 तन्त्रके रचयिता । १५ दृश्याधिक्यके रचयिता ।
 १६ वैदुषनाथ और नामक वैदिक ज्ञानके प्रणेता ।
 १७ मीरम नामक द्रुमुताप्रतिष्ठारिका-प्राथम्य शोका-
 कथा । १८ स्मृति नारदमंदकार । १९ एक लच्छे योग्य
 पण्डित । यह रियाकरके पुत्र, महारथके पीत और
 काष्ठकालके प्रयोग थे । इन्होंने अपने पिताके रचित
 रामदासपत्नी और भाटवंदिना शो प्रयोगों उपकम
 लिका लिखी थीं । २० मीरधीय हीरिकाके रचयिता,
 मन्त्र पण्डितके मुक ।

वैद्यनाथ रचयि—नारदपूजिप्रवनाटकके प्रणेता ।

वैद्यनाथ गार्गयिन—लक्ष्मणमिन्द्रा नामकी लक्ष्मणवदश्रीका-
 के रचयिता ।

वैद्यनाथ शंभुनाथ—१ वैदान्तकप्रवणमन्त्रों और वैदा-
 न्ताधिकारप्रणयनाके प्रणेता । २ ज्ञानक नामक शोचिनके
 रचयिता । ३ लक्ष्मणनाथमंदल-प्रवणनाटोकाके प्रणेता ।
 ४ स्मृतिमुक्ताकरके प्रणेता ।

वैद्यनाथरथेय ज्ञानवि—रामचरमराश्री नामकी पदकपे-
 शोकाके रचयिता । ये लक्ष्मणरके पुत्र और नारदनाथके
 पीत थे ।

वैद्यनाथ गार्गयण्टे—१ वाशिनाथकायों एक प्रसिद्ध
 पण्डित । ये जलमयापारणमें वायामन्त्र मान्यके रचयि-
 थे । इनके पिताका नाम माण्य और मायाका देवीका
 प्रसिद्ध पण्डित नामेन मन्त्रके निकट थे पाठारथकर बने
 थे ।

अर्धमंभद्र नामक स्वाकरण, सावा नामक मन्त्रना-
 प्रदोयोगके प्रथमाधिक्यी शोका, बार्गयण और नार-
 दनाथकी पठिनाथेयुशेकरश्रीका, पठिनाथेयुशेयनाथके
 भक्तिनाथिणोभूषण, नरवाहाकरणपण्डन, इत्यादीना
 कथा या दृशमन्त्रूपायिपरण नामक वैवाकरमिन्द्रना
 मन्त्रूपाश्रीका, मन्त्रक्रीस्तुमटीका प्रणा, मनुमन्त्राश्रीका
 भावप्रकाश, लघुमन्त्रेयुशेकरश्रीका, मिदिरिगमाता और
 मन्त्रमूला नामक स्वाकरण प्रथ तथा विनाथ के
 प्यवाहाकरणपण्डकी शोका, परागारस्मृतिकी शोका और म-
 द्राज स्मृतिशोका मादि प्रथ इनके बनाये हैं ।

२ एक पण्डित । ये राममन्त्र (राममन्त्र)के पुत्र
 और विदुषके पीत थे । इन्होंने धनिशोचनमन्त्र-
 कण्डिका, मन्त्रक्रीस्तुमटीका, कृष्णनाथमन्त्रोका, वाग्म-
 शोका, वायमयापयकारिकाश्रीका, वायप्रकाशोपायण
 मन्त्रिका (१६८३ ई०), काव्यमन्त्रोपमना, मन्त्रमो-
 शोका, दर्शयुक्तमाममन्त्रार्थकण्डिका, वैद्यनाथपठि,
 नृशेधि न्यायविद्यु नामक मीमंसाशास्त्रशोका, नर-
 नाथिका (मीमंसा-शास्त्रकण्डकण्डन), विदुषमन्त्रो-
 पयापनदर्शयुक्तमामाकण्ड, विपनदर्शोपयाकण्ड, भाव
 शोचिका व्याख्या प्रणा और मीमंसाशास्त्रशास्त्रोका नामक
 बहूनी ग्रंथ प्रणयन किये थे । इनके बनाये मन्त्र-
 विनाथ नामक इनका एक और ग्रंथ मिलता है । यह
 प्रथ इनका बनाया है उपरोक्त ग्रंथकारका उक्त
 निर्वाण किया नहीं जाना ।

वैद्यनाथ गार्गयण्टे मन्त्रूपाश्री—विनाथकण्डकके प्रणेता ।

वैद्यनाथ गौतम—जैनधर्मिक और नारायणोपेय नामक
 दो ग्रंथके रचयिता ।

वैद्यनाथपट्टे—नरवाधिकायों रचयितायें एक प्रकारकी
 कीरप । इन्होंने कृष्ण, तथा उरु, पाण्डुना, चारुति और
 शीघ्र मन्त्र दीना हैं । (वैद्यनाथके इत्येव)

वैद्यनाथपट्टे—श्रीपरीमनाथक रचयितायें । इनके रचयिता

भी कहते हैं। इसमें गमक और जल खाना मना है।
वैद्यनाथपदी (सं० खी०) १ औषधविशेष। इसका
सैन्य करनेसे उदायस, गुग्गुलु, पाण्डु, रुमि, कुष्ठ, गाल-
कण्टू और पीठका आदि रोग शीघ्र जाते रहते हैं।

(रथेन्द्रसार)

२ उवराधिकारोक्त औषधविशेष। (ख० व०)

वैद्यनाथ शास्त्रिन्—रामोपासनकर्मके प्रणेता।
वैद्यनाथ शुक्ल—शब्दार्कस्तुभोग्योक्तके रचयिता।
वैद्यनाथसूरि—एक जैन पण्डित।
वैद्यवन्धु (सं० पु०) वैद्यनामां बन्धुरिष। १ भारवध
वृक्ष, अमिलतासका पेड़। (शब्दच०) २ वैद्युर्वीका
बन्धु।

वैद्यमातृ (सं० खी०) वैद्यानां मातेषु। १ वासक, अद्रूसा।
२ वैद्योंकी माता, गियगुजननी।

वैद्यारत्न—एक प्रसिद्ध चिकित्सक, प्रयोगामृतके प्रणेता,
वैद्यविभक्तामणिके पिता।

वैद्यराज—१ रमकपाय, रसप्रदीप और वैद्यमहोदधि
नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ वैद्यवल्लभके रचयिता,
सुप्रसिद्ध शाङ्गधरके पिता। ये चिकित्साशास्त्रमें
सुप्रसिद्ध थे। कंई कंई शब्द वैद्यराज भी कहते थे।

वैद्यराज (सं० पु०) वैद्यानां राजा, उच्च समासात्।
यह जो अठ्ठा वैद्य हो, वैद्योंमें श्रेष्ठ।

वैद्यवाचस्पति—एक सुप्रसिद्ध चिकित्सानालयिद्व।

वैद्यवादी—बङ्गालके हुगली जिलामतगत एक नगर। यह
अक्षां २२° ४८' उ० तथा देशां २२° २०' के मध्य कल्प-
कल्पसे २५ मील उत्तरमें अवस्थित है। यह नगर
भुजिस्वलिटीको देलरेखमें रहनेके कारण तृप्त साक
सुधरा है, किसी प्रकारके रोगका उपद्रव नहीं है; पर
मलेरिया उपरका प्रादुर्भाव प्रायः देखा जाता है।

यहां बाजार और हाट है। वैद्यवादी हाट बङ्गप्रसिद्ध
है। इतनी बड़ी हाट बङ्गालमें और कहीं भी नहीं है।
निकटवर्ती स्थानके क्षेत्रज्ञान द्रव्योंकी विशेषता: पटसन,
साय, कुण्डहा आदिकी यहां खासी धामदकी होती है।
किर यहाँसे कल्पकता, हुगली, यद्यमान आदि प्रधान
प्रधान नगरोंमें रफ्तानो होती है।

यहां इष्ट-इष्टिवा देवदेवा एक स्टेगन है। तार-

केश्वरकी रेलवे लाइन खुलनेके पहले तारके अर्वाके तीर्थ-
यात्रिगण इसी स्टेगनमें उतर कर धैलगाड़ीसे तारकेश्वर-
को जाते थे।

वैद्यसिंहो (सं० खी०) वैद्य यद्यनाम्नोर्वाध्यादी
सिंहोय प्रभुवर्षोयवत्वात्। वासक वृक्ष, अद्रूसा।

वैद्या (सं० खी०) काकोटी।

वैद्याधर (सं० खी०) विद्याधर-सम्बन्धी।

वैद्यानि (सं० पु०) वैदिक कालके एक श्रष्टि-पुत्रका
नाम। (काठक)

वैद्यावृष्य (सं० पु०) कुटकर, घोकरका उलटा। जैसे, —
वैद्यावृष्य विक्रय।

वैद्युत् (सं० खी०) १ विद्युत्-सम्बन्धी; विजलीका।
(पु०) २ विद्युत्का देयता। (शुभ्र बन्धु २५१०)
३ पुराणानुसार शाक्यवलि द्वीपके एक-धर्मका नाम।

(विष्णु ५६१५)

वैद्युत्तगिरि (सं० खी०) पुराणानुसार एक पर्यांतका
नाम। (प्रसापरपु० ४०१५)

वैद्युहती (सं० खी०) विद्युत्के समान शक्ति या प्रभा-
विशिष्ट।

वैद्येश्वर—उड़ीसा प्रदेशके गयतमेंएके अधीनस्थ वांकी
भू-सम्पत्तिके अन्तर्गत एक गण्डमाम। यह अक्षां २०°
२१' ४५" उ० तथा देशां ८५° २५' ३०" पू० महानदीके
तट पर अवस्थित है।

वैद्येश्वर कोंबिल—मद्राज-प्रेमिष्टेसोके तंजोर जिलेके
शियाली तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह शियाली
स्टेशनसे साढ़े तीन मील दक्षिण-पश्चिम पडता है।
यहां एक सुभाचीन और सुपूतन् निव-मंदिर दिगार
देता है, जिसमें बहुतेरे जिलाफलक उरतीर्ण हैं।

वैद्यम (सं० खी०) विद्युत्-सम्बन्धी, मूर्गेका।

वैद्य (सं० खी०) विद्यिता बोधितः विद्य-मन्। वि-
द्योपितः, जो विधिके अनुसार हो, कायदे वा कानूनके
सुनायिक।

वैद्यप्यं (सं० खी०) विद्योकी धर्मो वक्ष्य, तन्व भाषा:
अन्व। १ विधर्मो होनेका भाव। २ नास्तिकता। (पु०)
३ विभिन्न धर्मवेत्ता, यह जो धर्मने धर्मके अनिर्दि-
कान्यान्व धर्मके सिद्धांतोंका भी अठ्ठा हता हो।

कातर होनेका भाव, कातरता । २ भ्रम, संवेद । ३ कम्पित होनेका भाव, कम्पमानता ।

वैभूत (सं० पु०) १ यद् बी विभूतिका पुत्र या संतान हो । २ ग्राहयें मन्वन्तरके एक इन्द्रका नाम ।

वैभूतवाशिष्ठ (सं० पु०) वैभूत वाशिष्ठ । साममेदः ।

वैभूति (सं० पु०) १ विरहम आदि सत्कारस योगोंमेंसे एक योग । उद्योतिषके मतसे यह योग अशुभ माना जाता है । इसमें याता अथवा कोई शुभ कार्य करना मना है । वैभूति और व्यतिपात योगका समस्त दो परिवर्तन करना होता है ।

अमृतयोगसे वैभूति और व्यतिपात योगका दोष नष्ट होता है सही, पर विभिन्न वचनोंमें फिर लिखा है, कि अमृतयोगमें सभी दोष विनष्ट होते ना है, लेकिन वृष्टि, वैभूति और व्यतिपात योगोंका दोष नष्ट नहीं होता ।

कोष्ठीप्रदीपमें लिखा है, कि इस योगमें जन्म होनेसे जातक मित्रताविहीन, कुटिल, बाल, मूर्ख, दरिद्र, पर-वञ्चक, कुकर्माकारी और परदाररत होता है ।

२ देयताविशेष । ये विभूतिके पुत्र हैं । (भागवत ८।१।२६) (स्तो०) ३ भार्याकी कन्या और धर्मसेतुकी माता । (भागवत ८।१।२७)

वैभूत्य (सं० स्त्री०) वैभूत देवी ।

वैधेय (सं० स्त्री०) विधि पद्धतिमेंवानुसृत्य व्यवहरति विधि टक, यद्वा विधेये कर्त्तव्ये अनभिन्नः, विधेय-अणु, यद्वा विद्वद् धेयमस्य मतः स्वार्ये अणु, पद्धतिमाधित्य क्रियाकारितयानु युक्तानुक्तविकेन्द्रानुसृत्याथ तथारयमस्य । १ विधि-सम्बन्धी, विधिकी । २ सम्बन्धी । ३ मूर्ख, बेवकूफ, ना-समझ ।

वैधेयन (सं० पु०) यमके एक प्रतिहारका नाम । (हेम)

वैनीजिन (सं० स्त्री०) विनाशनील पदार्थमय ।

वैन (सं० पु०) राजा वैनके पुत्र पृथुका एक काम ।

(पृ० १।१२।१५ षष्ठ्य)

वैनिक (सं० स्त्री०) प्राचीन कालका एक प्रकारका पात जिसमें घी रखा जाता था और जिसका व्यवहार यज्ञोंमें होता था ।

वैनतीय (सं० स्त्री०) १ विनय-सम्बन्धी । २ विनाय कराने सम्पादित या विनाशकात (पृ० ४।२८०)

वैनतेय (सं० पु०) विनायाया अथवमिति विनाया (स्तोम्यो ङक् । पा ४।१।२०) इति टक् । १ गदह । (मर) २ अद्य (मत्स्यपु०) ३ विनायाकी संतान ।

वैनतेयो (सं० स्त्री०) एह वैदिक शास्त्राका नाम ।

वैनत्य (सं० स्त्री०) जिसका स्वामाव विनात हो, नष्ट ।

वैनद (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम ।

वैनसून (सं० पु०) १ एक प्राचीन गोवपयर्त्तक ऋषि ।

२ वैदिक शास्त्राविशेष ।

वैनयिक (सं० पु०) विनय एव (विनयारिन्मङ्क् । पा ५।४।३४) इति स्वार्ये टक् । १ विनय, प्रार्थना । २ शास्त्रा-म्यासरत, यह जो शास्त्रों आदिका अध्ययन करता हो ।

३ प्राचीन कालका एक प्रकारका एव जिसका ध्वजदार युद्धमें होता था । (स्त्री०) ४ विनय-सम्बन्धी, विनय-का । ५ धर्माधिकरण-सम्बन्धी ।

वैनायक (सं० स्त्री०) १ विनायक या गणेश-सम्बन्धी ।

(पु०) २ भागवतके अनुसार भूमीका एक गण ।

(भागवत ६।८।२२)

वैनायिक (सं० स्त्री०) १ विनायक-सम्बन्धी । (पु०) २ यह जो वीरधर्मका अनुयायी हो, वीर ।

वैनायिक (सं० स्त्री०) विनाश सूचयतीति विनाश-टक् ।

१ गद्दी नक्षत्रविशेष । यह नक्षत्र जन्मनक्षत्रसे तेईसवां नक्षत्र है । जिस नक्षत्रमें जन्म होता है, उस नक्षत्रमें तेईसवें नक्षत्रको वैनायिक कहते हैं । यह नक्षत्र जिस किसी नक्षत्रसे दो सरता है, पर्येकि यह जानकके जन्म-नक्षत्रसे स्थिर करना होता है । जानकका चाहे जिस नक्षत्रमें जन्म परो न हुआ हो, उससे तेईसवां नक्षत्र होने पर ही यह वैनायिक नक्षत्र होगा । जन्मकालान इस नक्षत्रमें जो ग्रह रहता है, यह अनुभूतकलप्रद है । इसमें प्रद रहनेसे उसका फल विनाश है । गोधरमें भी इस नक्षत्रमें प्रदोंके उपस्थित होनेसे उसका फल अशुभ होता है ।

२ निघन्तुकार । यह गारा जन्म नक्षत्रसे गणनामें ७वां, १०वां और १६वां नक्षत्र है । यह भी अनेक प्रकारके भाग्य देनेवाला है । इस लक्ष्ये वास्तुदि करनेमें माना प्रकारके रोग, क्लेश और विघ्नप होतें हैं ।

(पु०) विनाशो मतमस्य विनाश टक् सभी इत्ये

वैशेषिक (सं० पु०) प्रश्नी, यह जो रातमें घण्टा बजा कर मगप जताता तथा सोवे हुएको जगाता है।

वैमन्त्रक (सं० त्रि०) विमन्त्रमय। (पा ४।२।८०)

वैमण्डि (सं० पु०) एक गौत्रप्रवर्तक श्रुतिका नाम। एवं वैमण्डि भी कहने हैं। (प्रसम्भ्याय)

वैमव (सं० क्लो०) विमोर्मावा विभु-भण्। १ विमव, वीलत, धन-सम्पत्ति। २ अतिनाय। ३ विभुना, सामर्थ्य, प्राप्ति, ताकत। ४ महिमा, महत्त्व, बढ्पण।

वैमवशाली (सं० त्रि०) जिसके पास बहुत अधिक धन-सम्पत्ति हो, विमवशाला, मालदार।

वैभविक (सं० त्रि०) वैभय-सम्बन्धी, जो कोई काम करनेकी शक्त्यो सामर्थ्य रखता हो, समर्थ।

(भा००पु० २।१।४४)

वैभाजन (सं० त्रि०) विभाग-संबन्धी।

(भा०सूत्रम् १।२।१७)

वैभाजित (सं० क्लो०) विभाजयितुर्भव्यं विभाजयितुः (चूडोऽन्तः)। पा ४।१।४६ इति भण्, विभाजयितुर्णि-लोपश्चाच्चेति कागिकोपस्था णिलोपः। विभागकारो-क्त धर्मोक्त। (विद्वान्तकीमुदी)

वैभाज्यवादिन् (सं० पु०) बौद्धसम्प्रदायधर्म।

वैभाण्डिक (सं० पु०) एक गौत्रप्रवर्तक श्रुतिका नाम। (रामायण १।६।३१)

वैभार (सं० पु०) राजगृहके पासके एक पर्वतका नाम। इसे वैहार भी कहते हैं। राजगृह देखो।

वैभाषिक (सं० त्रि०) १ विभाषा-सम्बन्धी। २ वैक-द्विक। (पु०) ३ बौद्धोंके एक सम्प्रदायका नाम।

"विभाषया विप्यन्ति चरन्ति वा वैभाषिकाः।" विभाषां वा पठन्ति वैभाषिकाः।" (भगिष्यर्णकोप) बौद्ध देखो।

वैभाष्य (सं० क्लो०) विभाषा।

वैभोतक (सं० त्रि०) विमोतक-सम्बन्धी।

(भा०० भी० ६।७।७०)

वैभोदक (सं० त्रि०) विमोतक-सम्बन्धी।

(पट्ट निगन्ता० १।८।१४४)

वैभूतिक (सं० त्रि०) विभूति-सम्बन्धी, विभूतिका।

वैभूचस (सं० पु०) विभूचसुके भवत्ये, लित।

(शु० १०।४६।१)

वैभाज—एक प्राचीन जाति। महाभारतके अनुसार द्रुपयुके षडंशक वैभाज कहलाते थे। वे लोग स्वयंसे भाषिका व्यवहार करना नहीं जानते थे और न इन लोगों में कोई राजा हुआ करता था।

वैभाज (सं० क्लो०) १ देवताओंका उद्यान या बाग। २ पुराणानुसार मेरुके पश्चिममें सुपाशर्षा पर्वत परके एक शंगलका नाम। (मार्कण्डेयपु० ५।५।२) ३ विभाज राजका तपस्यास्थान। (हरिवंश २।१।२१) (पु०)

४ पर्वतविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५।६।१३) ५ लोकविशेष। (हरिवंश १।८।१६)

वैभाजक (सं० क्लो०) वैभाज स्वार्थ कन्।

वैभाज देखो।

वैभाजलोक (सं० पु०) स्वर्ग स्थ लोकभेद। यहाँ पवि-पद्मगण वास करते हैं।

वैभ (सं० त्रि०) वैभन्-भण्। ताँत-सम्बन्धी।

वैभतापन (सं० पु०) विभत श्रुतिके गौतापर्य।

वैभतापन (सं० त्रि०) वैभतापन।

वैभत्य (सं० पु०) विभते गौतापर्यं विभति (कुर्वादिभ्यो ष्यः)। पा ४।१।१५१ इति ष्य। १ विभतिके गौतमें उदरत्र पुष्य। विभतेर्भावः विभति (वर्षेदृदिभ्यः ष्यः)। पा ५।१।२२ इति ष्यम्। २ विभतिका माय।

वैभन् (सं० त्रि०) विभन्-भण्। (गूक)

वैभन (सं० त्रि०) वैभ-सम्बन्धी।

वैभनस्य (सं० क्लो०) विभनसे भावाः विभनस्य (वर्षेदृदिभ्यः ष्यः)। पा ५।१।२२ इति ष्यम्। १ विभना या कर्मयन्त्रके होनेका माय। (भागवत १०।५।५६०) २ वैर, छेप, दुश्मनी।

वैभण्य (सं० त्रि०) वैभनि साधुः (वे चाभावरत्नयोः)। पा ६।४।१६८ इति वैभन्-ष्य। वैभ विषयमें साधु।

वैभल्य (सं० क्लो०) विभलस्य भावाः विभल-ष्यम्। विभल होनेका माय, विभलता।

वैभाल (सं० त्रि०) विभालुपेत्यविभति विभालु-भण्। विभालासे उदरत्र, सोनेला। ऊँचे,—वैभाल भाई।

वैभाला (सं० स्त्री०) विभालुपेत्यं स्त्री, वैभाल-टापू। विभालुकाय, सीतेली।

वैभालेय (सं० त्रि०) विभालुपेत्यं विभालु टक (गृहादिभ्यम्)

ततो यकारात् पूर्वमैच् । (वा ७।३।३) मोक्षकारक
मुनिविशेष । महामति मोक्षरस मोक्षके धे ।

वैयाकरणपरिच्छद् (सं० लि०) द्वैविचर्माच्छादित ।

वैयाग्रपाद् (सं० पु०) १. वैयाग्रपद्वय मोक्षकारक मुनि ।

२ वैयाग्रपाद् विरचित एक वैयाकरण ।

वैयाग्रा (सं० स्त्री०) १. वैयाग्रका भाव. वा घर्म ।

२ एक प्रकारका भासन ।

वैयात (सं० लि०) वियात स्वार्थे ङण् आद्रवधो-
वृद्धिः । (वा १।१।३१) वियात देलो ।

वैयात्य (सं० स्त्री०) वियातस्ये भाग्यः । वर्षेऽद्भिद्वयः

व्यम् च । वा १।१।२२) इति वियात-व्यम् । १ वियात-

का भाव, घृष्टता । २ प्रागल्भ्य, चतुरता । ३ निर्लेजता ।

४ भौदत्य ।

वैयादगी—वय्यर्-ने सिद्धेऽस्योके. धारवाङ्ग जिलान्तर्गत
एक नगर । यहाँ मुनिसिपलियो है ।

वैयावृत्ति (सं० स्त्री०) व्यावृत्ति, व्याचषण ।

वैयावृत्य (सं० स्त्री०) यतिषीं और साधुनीं आदिकी
सेवा ।

वैयावृष्यकर (सं० पु०) जैनमतानुसार मउस्य घर्मो-
पदेशक कर्माचारिणैः ।

वैयास (सं० लि०) व्यास-सम्बन्धी, व्यासका ।

(शिशुवाजव २०।८२)

वैयासिक (सं० पु०) व्यासस्वावर्त्ये (व्यासवधुनिभादेवि ।

वा ४।१।६७) इत्यस्य कानिकोपस्था इम्, मरुणादेव्य,

यकारात् पूर्वमैच् । व्यासके अर्थव्य ।

(भागवत १०।१।१४)

वैयासि (सं० पु०) व्यासके अर्थव्य ।

(भागवत ३।२.२७)

वैयासिक (सं० लि०) व्यासिन क्तः व्यास-उन्त्युत्त
येच् । व्यासका बनाया हुआ ।

वैयासक (सं० स्त्री०) एक प्रकारका वैदिक छन्द ।

(शुकप्रति १७.२५)

वैयुष्ट (सं० लि०) वयुष्टे द्वौवै कार्ये (वयुष्टद्विभ्योऽप्युच् ।

वा ५।१।६०) इति ङण् सत येच् । प्रातर्मौ, जो मर्ते

होता हो ।

वैर (सं० पु०) वारस्य घर्म भाग्ये वा वोट-मण् ।

विरोध, द्वेष, जलता, दुश्मनी । महाभारतमें लिखा है,
कि पांच बारभसे विरोध चाड़ा होता है । यथा, सो-

कृत—जैसे शिशुपाल और कृष्णका ; वास्तुज—जैसे

शुक्र पाण्डवका ; यागज—वातवातमें जहां विषाद् होता

है, उसे यागज कहते हैं, जैसे द्रोण और धृष्टकेतु ;

सापत्य—जैसे मूमे और बिलोका ; अपराधज—जैसे

पूजनीय और ब्रह्मदत्तका । (महाभारत)

वैरक (सं० पु०) वैर देणो ।

वैरकर (सं० लि०) करोतीति कर वैरस्य कर्ता । विरोध-

कारक, दुश्मनी करनेवाला ।

वैरकरण (सं० स्त्री०) वैरस्य करणं । दुश्मनी करना ।

वैरकार (सं० लि०) वैरं करोतीति क-मण् । वैरकर,

दुश्मनी करनेवाला ।

वैरकारक (सं० लि०) वैरस्य कारकः । वैरकर देणो ।

वैरकारिता (सं० स्त्री०) वैरकारिणो भाग्यः तल्ल-टाप् ।

विरोधकारीका भाव या घर्म, विरोध, दुश्मनी ।

वैरकि (सं० पु०) वैरकके अर्थव्य । (वा २।७।११)

वैरकत् (सं० लि०) वैरं करोतीति क-क्त्प्लुक् च ।

शत्रुताकारी, दुश्मनी करनेवाला ।

वैरक (सं० स्त्री०) विरक्तस्य भाग्यः विरक्त-मण् । विर-

क्तता, विराग ।

वैरकर (सं० लि०) जलुताकारो, द्वेष करनेवाला ।

(भागवत ६।१।३६)

वैरकृष्णक (सं० लि०) विरक्तं गिर्यमहति (द्वैदद्विभ्यो

नित्त्वं । वा १।१।६५) इति टप् । विरागादं, विरागके

भाग्य । (इय)

वैरट (सं० पु०) राजभेद् । वैरट देणो ।

वैरमो (सं० स्त्री०) बौद्ध-रमणीभेद् ।

वैरणक (सं० लि०) वीरण-सम्बन्धी । (वा ४।२।८०)

वैरणी (सं० स्त्री०) वीरणकी स्त्री । (इतिमं)

वैरण्ये (सं० पु०) मोक्षयर्थक स्यात्तभेद् । (उर्राप्येव)

वैरन (सं० पु०) जातिविशेष । "सिन्धुकार्लकैरनाः ।"

(मर्क.पुं० १८।३२)

वैरता (सं० स्त्री०) वैरस्य भाग्यः तल्ल-टाप् । वैरता

भाव या घर्म, जलता, दुश्मनी ।

वैरव्य (सं० स्त्री०) १ विरक्त भाव । (लिं०) विरक्त-

सम्बन्धी वा नरकत्क निरुक् ।

वैरदेय (सं० स्त्री०) १ प्रतिदिं सामानित शत्रुता या धोड़न, यह वैर या शत्रुता जो किसीके शत्रुता करने पर उत्पन्न हो । २ असुरभेद । (काठक २३५)

वैरनिर्वातन (सं० स्त्री०) वैरस्य निर्वातनं । शत्रुताका प्रतिक्रिया लेना ।

वैरस्य (सं० पु०) राजपुत्रभेद । वैरिने इसे नूपुरसे मारा था । (काम० नीति० ७॥१३)

वैरपुत्र्य (सं० पु०) शत्रु, दुश्मन ।

वैरप्रतिक्रिया (सं० स्त्री०) वैरस्य प्रतिक्रिया । वैर-निर्वातन ।

वैरभाय (सं० पु०) शत्रुभाय, शत्रुता, दुश्मनी ।

वैरम तौ—वैराम तौ वेत्तौ ।

वैरमण (सं० स्त्री०) विराम-सम्बन्धी ।

वैरयातन (सं० स्त्री०) वैरस्य यातनं । वैरनिर्वातन ।

वैरस्य (सं० स्त्री०) विरलस्य भावाः स्वप्न । १ विरलका भाव, विरलता । २ एकान्त ।

वैरस्यत् (सं० स्त्री०) वैर अस्यस्ये मनुष्यस्य य । वैर-विशिष्ट, शत्रुतायुक्त ।

वैरविशुद्धि (सं० स्त्री०) वैरस्य विशुद्धिः । वैरनिर्वातन, दुश्मनोका बदला लेना ।

वैरशुद्धि (सं० स्त्री०) वैरस्य शुद्धिः । वैरनिर्वातन, किसीके वैरका बदला चुकाना ।

वैरस (सं० स्त्री०) विरसस्य भावाः विरस-अण् । वैरस्य, विरसता ।

वैरस्य (सं० स्त्री०) विरस-स्यञ् । १ विरस होनेका भाव, विरसता । २ अनिच्छा, इच्छाका न होना ।

वैरदृश्य (सं० स्त्री०) वैरदृश्या या शत्रुदृश्या ।

वैराम (सं० पु०) वैराम वेत्तौ ।

वैराम—बम्बई में सिद्धेश्वरीके शोलापुर जिलेका एक नगर । यह १८३३ ४२ उ० तथा देशा० ७५५० ४५ पु० शोलापुरसे यासिं जानेके रास्ते पर अवस्थित है । यह एक वाणिज्यकेन्द्र है । यहां प्रति सप्ताहमें बुधवारको हाट समती है ।

वैरागिक (सं० स्त्री०) विरामं नित्यमर्हति विराम उञ् । विरामार्ह, जिसके कारण विराम उत्पन्न हो ।

(विद्वान्श्रीपुरी) वैरगिक देसो ।

वैरागिन् (सं० स्त्री०) विरामस्य भावाः वैरामं, तदस्वा-स्तीति इति । वैरागो देसो ।

वैरागो—उद्देशीन वैष्णव-सम्प्रदायभेद । इन लोगोंने विषय-कामनाको तिलाञ्जलि दे कर संसारधर्मका त्याग दिया है । इस सम्प्रदायके सभी रामानुज या रामानन्दो मतका अनुसरण करते हैं । अन्यान्य वैष्णव-सम्प्रदायमें भी वैरागो देखे जाते हैं । ये लोग श्रीकृष्ण या श्रीरामचन्द्रको अपना उपास्य देवता मानते हैं तथा उद्देशीन संन्यासोको तरह राह राह मोल मांगते फिरते हैं । 'ओ रामाय नमः' इनका मूलमन्त्र है । ये लोग श्रीकृष्णका भजन तो करते हैं, पर श्रीराधाको उनकी प्रीति कह कर उपासना नहीं करते । राधाको ये लोग श्रीकृष्णकी अनुगत भागिनी समझते हैं । दण्डिनी देवो ही इनके मतसे भगवान् (श्रीकृष्णकी) प्रीति-स्वरूपिणी हैं । जो लोग अयोध्यावति रामचन्द्रके उपासक हैं, वे सीतादेवोको लक्ष्मीस्वरूपिणी कह कर उनकी पूजा करते हैं ।

पश्चिमाञ्चलवासो वैरागियोंमें साधारणतः रामानुज या श्रीवैष्णव, मध्याचारी, विष्णुस्वामी और निम्बार्क मतानुसारी वैष्णव ही देखे जाते हैं । दक्षिणारण्यमें मध्याचारी, निम्बार्क और विष्णुस्वामी दलको संख्या ही अधिक है । ये सभी श्रीकृष्णके उपासक हैं । पञ्जाब प्रदेशमें रामानन्दो और निमानन्दो सम्प्रदायी वैरागो हैं । रामानन्दो रामकी और निमानन्दो कृष्णकी उपासना करते हैं । श्रीरामानन्दोमें श्रीरामचन्द्रके और भाद्रको कृष्णाष्टमीमें श्रीकृष्णके जन्मोत्सवमें ये लोग उपासक और पारणादि करते हैं । स्वधर्मालम्बियोंके मध्य किसीके मरने पर बड़े धूमधामसे मोत होता है ।

रामानन्दो धर्मशास्त्रके रामायणका पाठ करते हैं तथा अयोध्या और रामनाथ पवित्रतीर्थ समझ कर धर्म कमानेके लिये उस देशमें जाते हैं । निमानन्दो श्रीकृष्णके मत्किविषयक प्रश्नादि पढ़ते हैं तथा मधुरा, पूर्वाधन, द्वारकादिने देवदर्शनके लिये गमन करते हैं । इन सब विभिन्न सम्प्रदायो वैष्णवोंके तिलकादि धारण करनेका मन्त्र मित्र रूप निर्दिष्ट है ।

रामानुज सम्प्रदायके वैरागियोंमें तद्गुरु और

बड्गलई नामक दो श्रेणीगत विभाग देखे जाते हैं। इनमें धर्मागतका कोई विशेष पार्थक्य नहीं रहने पर भी तिलकधारणके विषयमें वषेट पार्थक्य दिखाई देता है। तेङ्गलईगण कहने हैं, कि देवताकी खोगिक प्रतीति जीव है, उनके भावसे (पुरुषकार द्वारा) आत्मा ईश्वरके समीप लाई जाती है। उपर बड्गलईगण उक्त शक्तिकी असीम और अनन्त तथा मुक्तिके एकमात्र उपाय मानते हैं। अत्याय विषयोंमें भी दोनों दूलमें छोड़ा छोड़ा प्रमेद है, यह धृष्टानमत'वलम्बी कनमिनिष्ट और नाम-निधियोंकी तरह है। बड्गलईगण मानवकी इच्छाकी ही मुक्तिकी एकमात्र सहाय मानते हैं तथा बानरका बच्चा जिस प्रकार निरापद् स्थानमें जानेके लिये माताकी मजबूतीसे पकड़े रहता है, उसी प्रकार आत्मा भी जगदीश्वरका आश्रय करके मुक्तिपथकी आशांशी होती है। तेङ्गलईका कहना है, कि आत्मा निष्क्रिय और शक्तिहीन है, विली जिस प्रकार अपने बच्चेकी दांतोंसे पकड़ कर निरापद् स्थानमें ले जातो है, आत्माको उसी प्रकार ईश्वरकी दयासे परिपालित नहीं करने, पर वह कभी भी निराश्रयताकी भतिकम नहीं कर सकती, इस कारण इस सम्प्रदायमें 'मकैटकिजोल्पाव' और 'माज्जरकिशोर-व्याव' मतकी उत्पत्ति हुई है।

इसमेंसे अधिकान्त शूद्रवर्णके होते हैं। ये लोग विवाहादि नहीं करते। किन्तु बड्गलके चैतन्य-सम्प्राप्त्यो वैष्णव वैरागियोंमें संवादात्मकी रखनेकी व्यवस्था देखी जाती है। इनकी श्रवणें गाड़ी जाती है।

वैराग्य (सं० लो०) विरागस्य भावा विराम-शब्द। विषय-तुच्छयो, मगको यह वृत्ति जिसके अनुसार संसारकी विषयवासना तुच्छ प्रतीत होती है और लोग संसारकी भ्रष्टों छोड़ कर एकाग्रतेमें रहते और ईश्वरका भजन करते हैं, विरक्ति।

वैराज (सं० पु०) १ विराट् पुण्य, परमात्मा। (भागवत १।१।२५) २ एक मनुका नाम। ३ राजासमर्थ कहरका नाम। ४ रामभद्र। ५ तपोलोकमें रहनेवाले एक प्रकारके पितृ कहते हैं, कि वे कभी भागसे नहीं लल सकते। ६ अजितके पिताका नाम। (भाग० ८।१५) ७ वैराज्य देखो।

वैराजक (सं० लि०) उग्रनीसर्प कहरका नाम।

वैराज्य (सं० लो०) विविध राजते विराट् नम्य भावो वैराज्य, अणिम-दिसिद्धिमापश्यनिरर्थः। १ प्राचीन कालकी एक प्रकारकी शासनप्रणाली जिसमें एक ही देगमें दो राजा मिल कर शासन करते थे, एक ही देगमें दो राजाओंका शासन। २ यह देग जहां इस प्रकारकी शासन-प्रणाली प्रचलित हो। ३ विदेगियोंका राज्य, विदेगियोंका शासन। वैराज्य और द्वैराज्यके गुणद्वयका विचार करते हुए कहा गया है, कि द्वैराज्यमें अनागत रहती है और वैराज्यमें देगका धन धान्य निचोड़ लिया जाता है। दूसरी बात यह कही गई है, कि विदेगी राजा अपनी अधिष्ठित भूमि कभी कभी घेच भी देता है और आपत्तिके समय असहाय बन्धुधाममें छोड़ भी देता है।

वैराट (सं० लि०) विराट्-मण्। १ विराटसम्बन्धो। २ विस्तृत, लम्बा चौड़ा। (पु०) ३ इन्द्रगोपकीट, बोरबहुटी। ४ विराटराजपुत्र। ५ महाभारतका विराट पर्व। (खो०) ६ वैराटी, विराटकी कन्या।

वैराट—राजपूतानेके जयपुर राजधान्यगत तीर्थवासी जिलेका एक नगर। यह भीमगुफा महाद्वके गोच जयपुरमें ४१ मील उत्तर तथा अलवारसे २५ मील पश्चिममें अवस्थित है। यह नगर बहुत पुराना है। पाण्डुपुत्रोंने यनवासकालमें यहां अज्ञातवास किया था। यही प्राचीन विराट् जनपद है। यहां बौद्ध मस्त्राट् अनीकके समय उरकीर्ण दो भनुमागन देवे जाने हैं। यहां तविरी खान है।

वैराटक (सं० लो०) सुधुनके अनुसार जरीमें किमी स्थान पर होनेवाली यह गाठ जे जहरीली है। अङ्गरेजीमें इसे Poisonous Tubercle कहते हैं। (सुधुत २५ स्थान)

वैराटपुर—दाक्षिणात्यके बम्बई-प्रदेशके अजमेरग धारगाड जिलेका एक प्राचीन नगर। इसका वर्तमान नाम हद्दुत है। यहां कदम्बरामगल राज्य करते थे। निःशक्तिनिर्मि यह स्थान परधंपुर, वैराटपुर, विराटरोट और विराट-नगर नामसे अतिरिक्त हुआ है।

वैराटि (सं० पु०) विराटके पुत्र। (अरण विराटम्)
वैराट्या (सं० लो०) जैमिणिके अनुसार मोलद विद्या-देवियोंमेंसे एक विद्यादेवीका नाम।

चैराणक (सं० त्रि०) घोरानक-निर्मुक्त । (पा ४।२।१०)

चैराघट्य (सं० द्वि०) विनाशय-सम्बन्धी ।

(पा ५।१।२४)

चैराणक (सं० पु०) गर्जुन या कौह नामक वृक्ष ।

(राजनि०)

चैराणक्य (सं० पु०) चैरसंज्ञक, चैरसम्बन्ध ।

(भागवत ७।१।२५ ।

चैराणक्यिन् (सं० त्रि०) चैरसंज्ञकगिणित् ।

(काम० नीति० १४।४५)

चैराम (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन जाति । (भारत वनपर्व)

चैराम—कुम्भतुंगनियामासी तुर्कजातिकका धर्मसंस्कारत एक उत्सव । जि-उल-इञ्ज मोसकी १०वीं तारीखको यह उत्सव मनाया जाता है । इस्लाम धर्मशास्त्रमें यह इद-इ भाषा और इद-उल-कोरवस नामसे कथित है, किन्तु तुर्कोंने इसका 'चैराम' नाम रखा है ।

चैराम वां—मुगल राजमन्त्री । तुर्कमानवंशमें इसने जन्मग्रहण किया था । खानखानाकी उपाधि पा कर यह मुगल-राजदरबारमें ऊँचे ओहदे पर काम करता था । इसके पूर्वपुत्र तैमूरके समयसे मुगल राजसरकारमें काम करने थे । उसी खतसे यह भी मुगल दरबारमें चुला । कुछ ही दिनोंके बाद इसकी तरफ़ी हो गई । मुगल-सम्राट् हुमायूँ शाह जब पारस्य हो कर भारत-वर्ष आये थे, उस समय चैराम भी उनके साथ था ।

हुमायूँके लड़के मकबर जब दिहोंके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए, तब उगदोंने अपने अधिमायक राजमन्त्रि-प्रवर चैरामके खानखानाकी उपाधि दे कर सम्मानित किया था । उस समय मुगल-साम्राज्यके सामरिक-विभागका तथा दीवानो राजकार्यका परिचालनकार चैरामके ऊपर सपुर्त था । चैराम इस पद पर नियुक्त रह कर अपनी मर्वादाके शोषण रत्न न सका । यह युवक मकबरके ऊपर अन्यायपूर्वक अपनी प्रभुता फैलानेमें कोई कसर उठा न रखता था । इस कारण यह मकबर से खालीमें गड़ गया । १८५८ ई०में सम्राट् मकबर शाहने जब अपनेको राजकार्य चलानेमें उपयुक्त समझा, तब बच्चे कीमलसे चैरामको राजकार्यसे भ्रष्ट कर दिया । मन्त्रिपर्य और दरबारमें अपनी प्रमाय भट

हुमा देल चैराम पहले सम्राट्के विरुद्ध सामिन्ना करके विद्रोहद्वयि प्रचलित करनेमें उद्युत हो गया था । किन्तु इससे जब कोई फल न हुआ, तब वह दूसरा उपाय सोचने लगा । भाविर आत्मरक्षाका कोई उपाय न देल सम्राट्से क्षमा-प्रार्थना की । उपायमति बादशाह मकबरने उसके सब दाय माफ कर दिये तथा उसके मरण-पोषणके लिये वार्षिक ५० हजार रुपयेकी वृत्त कायम कर दी ।

इसके कुछ समय बाद चैरामने मफा जानेके लिये सम्राट्से विदाई ली । गुजरातमें आ कर उद्यो ही यह जदाज पर चढ़ने जा रहा था, वहींही मुबारक खाँ लोढानी नामक एक मुसलमानने उसका काम तमाम किया । मुबारक अपने पिताकी मृत्युका बदला चुकानेके लिये बहुत दिनोंसे मौका ढूँढ रहा था, आज उसका मनोरथ सिद्ध हुआ । सम्राट् हुमायूँ शाहके राजवकालमें चैराम ने रणक्षेत्रमें अपने हाथोंसे मुबारकके पिताको यमपुर भेजा था । १५६१ ई०की ३१वीं जगपरीमें यह घटना घटी थी । गुजरातके शेर हिसामके मकबरके पास ही इसका मकबर तैयार किया गया, पीछे यह लान फिर मसहदमें ला कर दफनाई गई ।

चैराम वेग—एक मुगलराजकर्मचारी । इसके लड़के मुनीम खाने हुमायूँ बादशाहसे जागीर पाई थी ।

चैरामघाट—गच्छभारतमें चैरार प्रदेशके इलिचपुर जिलेका एक बड़ा गाँव । यह अक्षा० ११° २३' उ० तथा देशा० ७७° ३६' पू०के मध्य इलिचपुर नगरसे १४ मील पूर्वा करिश्वा सीमागतमें अवस्थित है । यहाँ पर्यतके ऊपर एक देवस्थान शोभा दे रहा है । प्रति वर्षके कार्तिक मासमें यहाँ एक मेला लगता है जिसमें ५० हजार हिन्दू-मुसलमान एकत्र होते हैं । तीर्थयात्रियोंके पर्यन पर चढ़नेकी सुविधाके लिये सड़की काटी गई है । हिन्दू एक बगलसे और मुसलमान दूसरी बगलसे सड़की पर जाते हैं । हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उग्र देवयोग्यमें पार्वतकी स्तम्भेयाथी समतल भूमिमें मानसिक यशुवाल चढ़ाते हैं । उस वार्षिक उत्सवमें प्रायः ही हजारसे ऊपर पशु मारे जाते हैं, किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि उस समय यहाँ एकका मशी बंद जाने पर भी एक भी मपतो दिवारा नहीं देती ।

वैरि (सं० पु०) वैरी, शत्रु, दुश्मन ।

वैरिञ्चि (सं० त्रि०) विरिञ्चि या प्रह्ला-सम्बन्धी, प्रह्लाका ।

वैरिच्य (सं० पु०) २ वैरिच्यो । (भागवत ११।१५२)

वैरिच्य (सं० पु०) विरिञ्च-भ्यः । प्रह्लाके पुत्र जन्-
कादि ।

वैरिण (सं० क्लो०) शत्रु, दुश्मन ।

वैरिणि (सं० पु०) गोत्रप्रथर्षकं ऋषिभेद ।

(प्रवराभ्याय)

वैरिता (सं० स्त्री०) वैरिणोभावात् लृट्-टाप् । शत्रुता,
दुश्मनी ।

वैरित्य (सं० क्लो०) शत्रुता, दुश्मनी ।

वैरिन् (सं० पु०) १ वैरमस्यास्तोति वैर-इनि । १ शत्रु,
दुश्मन । (ति०) २ वैरस्तम्बयो, घोरविशिष्ट ।

वैरिचोर (सं० पु०) पुराणानुसारं दशरथके एक पुत्र ।
इतका दूसरा नाम इलविल भी है । (विष्णुपुराण)

वैरिस—राजपूतानके उद्वसागर नामक द्वर्से निकली
एक नदी । यह चित्तोर राजधानीसे १ मील दूरमें
बहती है । उद्वसागरसे ६ मीलकी दूरी पर पेगोला
नामका बाँध है । इसकी ऊँचाई ८० फुट होनेके कारण
जल उद्वसागरमें भा गिरता है । 'सुहृदलियाकी बाड़ी'
नामक प्राममें इस प्रकारका एक और बाँध है । उस
बाँधमें भरवाली पर्वतकी कुछ नदियोंका जल गिरता है ।
पीछे यह जल यहाँसे सञ्चालित हो कर पेगोला और
उद्वसागरमें बौड़ता है ।

वैरिसिंह (सं० पु०) राजपुत्रभेद ।

वैरुप (सं० पु०) १ विरूपके अणत्व, ऋषिभेद । (प्रवा-
भ्याय) २ विरूपके गोत्रावरण अष्टाद्विंश । (पञ्चविंश भा०
पा. ४।११) ३ सामयेद ।

वैरुपाक्ष (सं० पु०) विरुपाक्षस्य गोत्रावरणं विरुपाक्ष
(शिकदिम्बोऽण्य् । वा ५।१।१२) इति अण् । विरुपाक्ष-
के गोत्रावरण ।

वैरुप्य (सं० क्लो०) विरूपस्य भावाः ष्यञ् । १ विरूपका
भाव या धर्म, विरूपता, कर्त्तव्यता । २ असाधारणत्व ।
३ विसदृश्यत्व । ४ अपवाभाय ।

वैरीकोप (सं० त्रि०) विरेक-सम्बन्धी, विरेचन-सम्बन्धी ।

(द्रुम०)

वैरेचन (सं० त्रि०) विरेचन-सम्बन्धी, विरेचनका ।

(द्रुम०)

वैरेय (सं० त्रि०) घोरसम्बन्धी, चोरका । (वा ५।१।५०)

वैरोचन (सं० पु०) विरोचनस्वापरत्वं विरोचन-मण् ।
१ युद्ध । २ राजा पति । ३ अनिके पुत्र । ४ सूर्यके
पुत्र । ५ सिद्धगण । (शब्दरत्ना०)

वैरोचन-निकेतन (सं० क्लो०) वैरोचनस्य घट्टेनिकेतगं ।
पाताल । (इलापुत्र)

वैरोचनगद्ग (सं० पु०) वीद्ध-धर्माधर्षाभेद् । (धारणा०)
वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित (सं० पु०) वीद्धमतसे जगद्-
भेद् ।

वैरोचनि (सं० पु०) विरोचनस्वापरत्वं विरोचन-इम् ।
१ युद्ध । २ राजा पति । ३ सूर्यके पुत्र ।

वैरोचि (सं० पु०) वलिके पुत्र चाणक्षेय । (मेदिनी)

वैरोच्य (सं० स्त्री०) जैनियोंकी सोलह विधादेवियोंमें-
से एक विधादेवीका नाम । (हेम)

वैरोद्धार (सं० पु०) वैरस्त्योद्धारः । वैरमुक्ति, किस्सेके
घेरका बदला चुकाना ।

वैरोवाल—पञ्जाब प्रदेशके भूमनसर जिलेका एक नगर ।
यह अक्षा० ३१°५६'३० तथा देशा० ७४°४०' पू०के मध्य
विषाखा नदीके दाहिने किनारे अमृतसरसे २६ मील
दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है । इसके दूसरे किनारे कपुर-
चला राज्य है । भूमनिसूरपालियो रहनेके कारण नगर
खूब साफ सुधरा है । यहाँ जालकी लकड़ीका छोड़ा
याजिन्य चलता है । पर्यतसे लकड़ी काट कर विषाखा
नदीमें लाईजाती है ।

वैरोहित (सं० पु०) विरोहितके गोत्रावरण । (नायिनि
४।२।१११ वैरोहितगण्य)

वैरोहित्य (सं० पु०) वैरोहितके अपत्य । (वा ५।१।१०४)

वैल (सं० पु०) वैल नामक वृक्ष या उसका फल ।

वैलक्षण्य (सं० क्लो०) विलक्षणस्य भावाः विलक्षण-ष्यम् ।
१ विलक्षण होनेका भाव, विद्वक्षणता । २ विभिन्न या
अलग होनेका भाव, पृथक्ता, विभिन्नता । ३ अन्य प्रकार ।

वैलक्ष्य (सं० क्लो०) विलक्ष भावे ष्यम् । १ लक्षा,
संकीच, दर्श । २ विस्मय, आश्चर्य, ताश्चर्य । ३
समायकी विलक्षणता ।

पैलगाँव—युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागके अन्तर्गत उन्नाव जिल्लाका एक बड़ा गाँव। यह उन्नाव नगरसे ८ कोस दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। एक ध्वस्त दुर्गायशेष स्थानीय समृद्धिका परिचायक है। यहाँ प्रति सप्ताहमें दो दिन हाट लगती है। उस हाटमें लकड़ी, लोहेकी बनी वस्तु, एरिकरके उपयोगी यन्त्रादि तथा यत्न विक्रेताको भाते है। गाँवके चारों ओर आम और महुएका वन है।

पैलमेरु—युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागके रायबरेली जिल्लाका एक नगर। यहाँ प्रायः पाँच हजार जादूगियोंका वास है। सभी शैव धर्मावलम्बी है। स्थानीय महादेवका मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है।

पैलस्थान (सं० क्र०) श्यमान, मरघट।

(अ० ११३३।१)

पैलदोङ्गल—बम्बई-प्रदेशके साँवगाँव जिल्लान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह एक बड़ी दीवोके पूरव एक विस्तीर्ण मैदानमें अवस्थित है। साँवगाँव और परदागढ़ उप-विभागके सीमान्तदेशमें होनेके कारण यह स्थान एक पाणिपथकेन्द्ररूपमें गिना गया है। यहाँ प्रति शुक्रवारको हाट लगती है। उस हाटमें स्थानीय मृते कपड़े विक्रेताको भाते है। स्थानीय तथा पार्श्व घाँसी ग्रामवासी कृषकों और छोटे छोटे व्यवसायियोंके अलावा पैलगाँव और वेनगुरलावासी पाणिक् भी ये सब यत्न खरीदने आते हैं। फिर गट्ट (धारवाड़), गुलेङ्गड़ (बोतापुर), दुबला (धारवाड़), पैलपुर (कनाड़ा) तथा बम्बई और मद्राज पन्थसे तरह तरहके देशी और सूती कपड़े, सुवारी, गुड़ आदि भी काफी परिमाणमें यहाँ विक्रेताको भाते है।

नगर-प्राणिकके यहभागमें उत्तरकी ओर बसवेभ्यका प्राचीन मन्दिर है। मन्दिरको बाहरी बनावट और नित्य-कार्य देखनेसे मालूम होता है, कि जैनप्राणिक कालमें यह बनाया गया था। दक्षिणपार्श्वमें लिंगावन मतका प्रादुर्भाव होनेसे इस मन्दिरमें लिङ्गमूर्ति प्रतिष्ठित हुई। प्रति वर्ष ब्राह्मिक मासमें यहाँ देवताके उद्घोषसे एक मेला लगता है। मन्दिरमालमें रघुनरदायीकी (८७५-१३५० ई०) १२ मूर्तोंमें कनाड़ी भाषामें उर्ध्वीय दैव जिलाकालक दिशां देते हैं। मन्दिरके सामने द्वां और

जो शिलालिपि है, यह इतनी अस्पष्ट है, कि पढ़ने नदी जाती। यहाँ और की लिपि रघुनरदार काचधोरीके राज्यकालमें १७६४ ई०को खोदी गई है। उसके ऊपरों भागमें ओक बोचमें त्रिनेन्द्रकी मूर्ति बैठो हुई है। उसके दक्षिण भागमें द्वाडायमान नरमूर्ति और उसके तिरवा चक्र तथा वाम पार्श्वमें सयत्सा गामो और उसके ऊपर सूर्यकी मूर्ति है। इस शिलालेखमें जिनवर्णि और सम्भवता जैनमन्दिरकी प्रतिष्ठाका उल्लेख है।

पैलारव (सं० क्र०) पिल्ला-सम्बन्धी। (पं० ५।१।२३) पैलुर—बम्बई प्रदेशके वेनगाँवसे १४ मील दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है। समुद्रकी तहसे यह १४६१ फुट ऊँचा और प्रायः ५ मील चौड़ा है। इसके ऊपर लोहा मिनी मिट्टो पार जाता है। यहाँ लिङ्गोनितोय सर्गे स्टेजन् प्रतिष्ठित है।

पैलैविक (सं० लि०) विलेविकाका धर्म।

पैलव (सं० क्र०) विश्वस्वैर्द भण् । १ विनय या वेद नामक फलके सम्बन्ध, वेदका।

पैवक्षिक (सं० लि०) विवक्षा-सम्बन्धी।

पैवधिक (सं० पु०) विवधेन धाम्यतण्डूलादिता एषव-हरति (विभाषा विषयवीचपत् । पा ४।४।१०) इति पठे ठक् । १ यह जो अनाज आदि घेव कर अपनी निर्याह करता हो, गल्लेका व्यापारी। २ वाचांयह, दूत। ३ नीमिक। ४ बोक् होनेवाला, मजदूर।

पैवर्ण (सं० क्र०) विवर्णस्व भाषा: विवर्ण स्वम् ।

१ विवर्ण या मलिन होनेका भाव, मलिनता। २ कालिङ्ग, सौन्दर्य या लाघण्यका अभाव। ३ जिनकीं भाठ प्रकारके साहित्यक भाषीमेंसे एक प्रकारका भाष।

पैवर्त्त (सं० क्र०) धम्यत् परिवर्त्तन, जिसो पदार्थका चक्र या वक्षिकके समान घूमना।

पैवदव (सं० क्र०) १ विवग होनेका भाष, विवगता, लाधारी। २ दुर्बलता, कमजोरी।

पैवस्त (सं० पु०) विवस्तोऽपरवर्त्तिति विवस्तम् भण् । १ मूर्धनुत । (अ० १०।४।१) २ रघुनिशेष। ३ जनि। ४ समन मनु। आन्त कल्का मन्वन्त इहो मनुकां माना जाता है। इस मन्वन्तमें अथतर वामन, पुंर, रघु, आदिरवण, यमुगण, रघुगण, विश्वेदेवगण,

मरुद्गण और अश्विनाष्टम आदि देवता, कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज ये सप्तर्षि, इक्ष्वाकु, वृग, शर्वाति, दिष्ट, धृष्ट, कर्षुपर्क, नरिःश्वन्त, पृषध, नामाग और कवि ये दश मनुके पुत्र हैं।

(भागवत)

हरिवंशमें लिखा है, कि वैवस्वत सप्तम मनु है। बाज कल यही मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तरमें अत्रि, वशिष्ठ, काश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीकपुत्र जमदग्नि ये सप्तर्षि हैं। साध्यगण, रुद्रगण, विश्वगण, घसुगण, मरुद्गण, आदित्यगण, अश्विनीकुमारद्वय ये देवता तथा इक्ष्वाकु आदि दश वैवस्वत मनुके पुत्र हैं। इनके पुत्र पौत्र आदि सन्तान-सन्तति-गण कालक्रमसे दिग्दिगन्तरमें व्याप्त हैं। मन्वन्तरके प्रारम्भमें लोगोंकी सम्पत्क व्यवस्था और संरक्षणके लिये सात सात ऋषि व्यवस्थापित होते हैं। (हरिवंश ७ अ०)

वैवस्वततीर्था (सं० क्लो०) तीर्थाभेद।

वैवस्वतद्रुम (सं० क्लो०) मोगरा चावल।

वैवस्वती (सं० क्लो०) वैश्वस्य इयं अण् ततो ङोप्। दक्षिण दिशा, इस दिशाके अधिपति यम हैं। यह दिशा वैवस्वत मनुकी मानी गई है।

वैवस्वतीय (सं० क्लि०) वैवस्वत मनु सम्बन्धी।

वैवाह (सं० क्लि०) विवाह-अण्। विवाह-सम्बन्धी, विवाहका।

वैवाहिक (सं० पु०) विवाहाद्भवः विवाह-ठञ्। १ कन्या अथवा पुत्रका श्वशुर, समथी। (क्लि०) २ विवाह-सम्बन्धी, विवाहका।

वैवाह्य (सं० क्लि०) १ विवाह सम्बन्धी, विवाहका। २ विवाह, जो विवाहके योग्य हो। (क्लि०) ३ वह समारोह या उत्सव जो विवाहके अवसर पर हो।

वैविक (सं० क्लो०) विविकका भाव।

वैवृत्त (सं० क्लि०) १ विवृत्ति सम्बन्धी। (पु०) २ उदात्त आदि स्वरोंका क्रम। (शृक्प्रति०)

वैश—बङ्गाल और पश्चिमाञ्चलवासी वैश्य-जाति। वैश्य शब्दके अपभ्रंशसे हिन्दीमें वैश शब्द हुआ है। मारवाड़ी वणिक् सम्प्रदाय अपनेको वाईस या वैश कहते हैं।

उत्तर भागलपुरमें इस श्रेणीके एक दश पण्यजोषी हैं जो अपनेको आदि वैश्यजातिके वंशधर बतलाते हैं, किन्तु वैश वनियोंके साथ कोई सम्पर्क स्वीकार नहीं करते। ये लोग मूलवंशसे तीसरी पीढ़ीको बाद देकर पुत्रकन्याका विवाह सम्बन्ध स्थिर करते हैं।

बाल्यायस्थां ही ये अपनी कन्याका विवाह करते हैं। इनमें विधवा-विवाह वा स्वामित्वाग-प्रचलित नहीं है। इनकी सामाजिक अवस्था बड़ी उन्नत है। वैश्य देखो। वैशय (सं० क्लो०) विशदस्य भावः व्यञ्। १ विशद होनेका भाव, विशदता। २ निर्माल या स्वच्छ होनेका भाव, निर्मलता।

वैशन्त (सं० क्लि०) वैशन्त-अण्। अल्प सरोवरोद्भूत, जो अल्प सरोवरमें हो। (शुक्लपञ्चः १६।३३)

वैशम्पायन (सं० पु०) विशम्पस्य गोत्रापत्ये (अश्वदिभ्यः कञ्। वा ४।१।१०) इति कञ्। एक प्रसिद्ध ऋषिका नाम जो वेदव्यासके शिष्य थे। कहते हैं, कि महाविद्यासदेवकी मठासे उन्होंने जन्मेजयको महाभारतकी कथा सुनाई थी। पुराणमें लिखा है, कि जैमिनि, सुमन्त, वैशम्पायन, पुलस्त्य और पुलह ये पाँच मुनि ही वज्रधारक हैं।

वैशली—वैशाली देखो।

वैशस (सं० क्लो०) विशलस्य भावः स्वार्थे अण्। १ विशसन, हिंसन। (पु०) २ हिंसक।

वैशस्त्य (सं० क्लो०) विशस्ति (गुण्यवनन्रादाणादिभ्यः कर्त्वीय च। वा ५।१।२४) इति व्यञ्। विशस्तिका भाव या कर्म।

वैशत्र (सं० क्लो०) विशस्तिर्धर्म्यं विशस्तिर् (श्रुतोऽञ्। वा ४।४।४६) इति अण्, तत्र विशस्तिरिड् लोपश्चात् च, इति काशिकीकृत्या इन् लोपः। १ अधिकार। २ शस्त्र-भावविशिष्टत्व। विगतं शस्त्रं यत्र, विशत्र अण्। (क्लि०) ३ जहासे शस्त्र छूटा हो।

वैशाल (सं० क्लो०) विशालस्य पच-स्वार्थे अण्। १ घन-विहोका संस्थानभेद। (पु०) २ पुरविशेष।

(कषासहितकार० ६।६।५)

विशाला प्रयोजनमस्य (विशाषादादिति। वा ५।१।१०) इति अण्। ३ मन्थनदण्ड, मथानोंमेंका डंड। (शिशुपालकथ)

वैशाखी षोडशमासी अतिक्रम (एदिमन वीरानासीति ।
 पा ४।२।१) इति मण् । ४ द्वादश मासीमें प्रथम मास ।
 पयोप—माघ, राघ । (भरत)

चन्द्र और सौर वैशाखका लक्षण—विशाखा
 नक्षत्रयुक्त पूर्णिमाका नाम वैशाखी है । यह
 वैशाखी जिस मासमें होती है, उसी मासका नाम
 वैशाख है । फिर सूर्य जितने दिन मेघराशिमें अवस्थान
 करते हैं अर्थात् सूर्य मीनराशि अतिक्रम कर जितने
 दिग् तक मेघराशिमें रहते हैं, उस सम्पूर्ण समयको सौर
 वैशाख कहते हैं । इस मासमें प्रति दिन सूर्य मेघ-
 लयमें अवति होते हैं । वैशाख मास अत्यन्त पुण्य
 मास है, छत्रपतचयमें लिखा है,—

सुला, मकर और मेघ अर्थात् कास्तिं, माघ और
 वैशाख इन तीन मासीमें प्रातःस्नान, हविष्य और प्रत्य-
 चर्च करनेसे महापातक नष्ट होता है । वैशाख मासमें
 गङ्गा स्नान करनेसे अर्द्ध प्रसूत लक्ष मोक्षानका फल लाभ
 होता है । यदि इस मासमें प्रातः गङ्गा स्नान
 करना हो, तो संकल्प करके करना चाहिये । क्योंकि
 संकल्प बिना किये कोई काम होता नहीं । इस मासमें
 साधुके साथ भरा घट दानका बड़ा महत्त्व लिखा है ।
 यह घटदान संक्रान्तिके दिन, अक्षयतृतीया या पूर्णिमा-
 के दिन करनेकी विधि है । यह दान विधुलोकके
 उद्देशसे करना चाहिये । पातुका और छत्रदानकी भी
 प्यवस्था है ।

वैशाख मासमें विषमय निवारणके लिये निम्नवत्-
 के साथ मगूरकी दाल भक्षण करना चाहिये । शास्त्रमें
 लिखा है, कि जै निम्नवत्के साथ मगूर भक्षण करते हैं,
 मक्षर उमका तथा विगाह सकता है ?

इस मासकी शुद्धा सुतोया ही अक्षयतृतीया बड़ी
 जाती है । यह सुतोया है, इससे इस तिथिमें स्नान
 दान करना चाहिये । अक्षयतृतीया देखो ।

इस मासमें वषाभाह करनेका विधान है । विष्-
 णुके उद्देशसे वषाघन द्वारा धाव्य करना होता है । इस
 तासके शुरू पक्षमें मङ्गल, जनि और शुक्रवारका मन्त्र,
 रिता और तपोशुकी निम्न तिथिमें, जगन्मन्त्र, अष्टम-
 चन्द्र, जगन्तिथि, जगन् और इससे तृतीया और पञ्चम

मिन्न ताराका, पूर्वकल्पुनी, पूर्वमाहपद, पूर्ववाङ्गा,
 मया, मरणी, अस्त्येया और भाद्रा मिन्न नक्षत्रमें घट
 धाव्य करना चाहिये । यह अक्षयतृतीया और विष्णु-
 संक्रान्तिमें भी किया जा सकता है । यह धाव्य मगूर
 कर्तव्य है । यदि किसी तरह वैशाख मासमें घट धाव्य
 न किया जाये, तो उष्ट्र और बाघाह मासके शुरू पक्षमें
 करे किन्तु विष्णुशयनमें नहीं करना चाहिये ।

पशुमपुराणके उत्तरकाण्डमें भी वैशाख मासके
 माहात्म्यका विवरण लिखा है । वैशाख मास सब
 मामीकी अपेक्षा श्रेष्ठ है ।

इस मासमें यदि कोई शक्ति जग्न ले, तो यह जगन्त
 विनयी, द्विजश्रेयताका भक्त, धार्मिक, सुजनपातक, गुण-
 मिराम और जगन्प्रिय होता है ।

इस मासमें जातबालकका रविमन्त्र सुशुभ होता है,
 कारण इस मासमें रवि मेघराशिमें रहता है । मेष रवि-
 का सुशुभस्थान है ।

३ रत्न पुनर्नया, लाल मन्दपूरुवा । ४ माघके वैशाख
 नामक प्रद । इस प्रदसे मध्यके निम्नविधिन लक्षण
 दिखाई देने हैं—सम्बन्धता गाल स्तम्भ, गुद और कम्पयुक्त
 हो जाता है । (अवरत्न ५७ अ०)

वैशाखी (सं० खी०) विशाखया युका वीरानासी
 (नक्षत्रेण युक्तः कालः । पा ४।२।१) इति मण् ततो
 खीव । १ यह पूर्णिमा जै विशाखा नक्षत्रसे युक्त है,
 वैशाख मासकी पूर्णिमा । इस पूर्णिमा तिथिमें तिल
 और मधु द्वारा वम, श्रेयता और वितरीके उद्देशसे
 तर्पण करनेसे पापघ्नानमनन पाप विनष्ट होता है और
 अन्तमें दण्डहार वर्ष तक स्वर्गमें भास होता है । २ रत्न-
 पुनर्नया, लाल मन्दपूरुवा । (शरत्ति०) ३ पुराणा-
 नुसार घटुदेवकी एक स्त्रीका नाम ।

वैशाख्य (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।
 वैशाख्य (सं० वि०) विशाख्य-मण् स्त्री । विशाख्य,
 परिष्टत ।

वैशाख्य (सं० खी०) विशाख्यभावा (वशीन्द्रदिग्मः
 प्यम्ब । पा ५।१।२३) इति प्यम् । विशाख्यता,
 त्रिजुनता ।

वैशाख्य (सं० खी०) १ विशाख्येन-साधव्यो । (पु०)
 २ एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

वैशालीयन (स० पु०) विशालरूप गोतापत्यः विशाल
(अरवादिभ्यः कञ् । पा ४।१।११०) इति कञ् । विशाल-
के गोतापत्यः ।

वैशालि (स० पु०) विशालके अपत्य, सुशर्मा ।

वैशालिक (स० लि०) विशाल या वैशाली जनपद-
सम्बन्धी ।

वैशालिनो (स० ली०) विदिशाराजकुमारो ।
(-मार्क० पु०-१२३।२०)

वैशाली—एक प्राचीन जनपदका नाम । विशाल नगरी
विशालपुरी नामसे भी विख्यात है । पुराणोंसे मालूम
होता है, कि राजा तृणविन्दुके पुत्र विशालने इस
नगरीकी प्रतिष्ठा की थी । इस नगरीकी समृद्धिका परि-
चय नाना पौराणिक उपाख्यानो और किम्बदन्तियोंसे
जाना जाता है । बहुतैरे इसको विशाल राज्य (प्राचीन
उज्जयिनी) समझते हैं और उसकी ही समृद्धिका
स्मरण कर वर्तमान वैशालीकी गौरव-घोषणा करते
हैं । किन्तु वास्तवमें यह ठीक नहीं ।

यह विशालपुरी गङ्गाके बायें किनारे अवस्थित है
और यह तिरभुक्ति (तिरहुत)के अन्तर्गत है । प्रलतत्रव-
विदु कनिहमके मतसे वैशाली नगरी पटना-राजधानी-
से २७ मील दूर पर अवस्थित थी । बौद्ध और जैन-
ग्रन्थोंसे वैशालीका प्राचीन इतिहास मिलता है और
बौद्धप्राधान्यके पहलेसे ही यह नगर वाणिज्य-समृद्धिसे
पूर्ण था, इसका भी उक्त ग्रन्थोंमें प्रमाण मिलता है ।
शाक्य बुद्धके जन्मसे पहले जैन-तीर्थङ्कर महावीरने
वैशाली राजधानीके उपकण्ठस्थ कोलग नामक ग्राममें
जन्म लिया था । इसी कारणसे वे भी वैशाली नाम-
से विख्यात हुए थे । शाक्यसिंहके जन्मकालसे सम्राट्
अशोकके समय तक बौद्धधर्म उन्नतिकी चरम सीमा तक
पहुँच चुका था । शैशोक समयमें पाटलिपुत्र (पटना)
नगर बौद्धधर्मका केन्द्र मनोनोत हुआ और उस समयसे
ही वैशालीकी समृद्धि घटने लगी । फिर भी उस समय
तक वैशालीमें बौद्ध संघाराम आदि और भ्रमणोंका
व्यापार नहीं था और इनका वाणिज्य प्रभाव कहीं होने
पर भी नगरके श्रीसीधार्दका विशेष कोई विपर्यय
साधित नहीं हुआ था । पीछे यह ध्वंसप्राप्त हुआ और

वर्तमान-समयमें उनका चिह्नमाल भी विलुप्त हो गया है ।
। कनिहम, फूसे, विन्सेएट स्मिथ, पिउट, डाफ्टर वलच
आदि प्रलतत्रवविदोंने प्राचीन जैन और बौद्ध ग्रन्थोंसे
तथा फाहियान, यूएनचुवङ्ग, इत्सिं आदि चीनपरि-
यात्रकोंके भ्रमण-वृत्तान्तको आलोचना कर मुजफ्फर
जिलेके वसाइ ग्रामको ही प्राचीन वैशालीका स्मृति-
निकेतन होना स्थिर किया है । वर्तमान शताब्दके
प्रारम्भमें डाफ्टर वलचने वसाइ ग्रामके विध्वस्त स्तूपोंकी
खुदवाया था । भूगर्भमें जो सब मोहराङ्कित मृत्खण्ड
निकले हैं, उनसे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि यह
वसाइ ग्राम ही प्राचीन वैशाली है । यूएनचुवङ्गने लुप्त-
प्राय वैशालीको देखा था । उस समय भी बौद्धधर्मका
विराम कुछ टिमटिमा रहा था । इसके बाद ब्राह्मण-
धर्मका विस्तार और बौद्ध-प्रभावका विलोप तथा पाटलि-
पुत्र राजधानीकी उत्तरोत्तर समृद्धि वृद्धि ही वैशाली-
ध्वंसकी क्रमिक कारण हुई ।

महावंश, वायु और मत्स्यपुराण आदि ग्रन्थोंके
पढ़नेसे मालूम होता है, कि विम्विसारके पुत्र अजातशत्रु
या कुण्डिक बुद्ध-निर्वाणके आठ वर्षसे पहले ही पितृ-
सिंहासन पर बैठे । उन्होंने पहले तो बौद्धोंका विशेषरूप-
से नियन्त्रण किया ; किन्तु पीछे उन्होंने स्वयं भी बौद्ध-
धर्म ग्रहण किया था । राजशुद्ध-स्थापन और वैशाली-
आक्रमण उनके जीवनकी दो प्रधान घटनायें हैं ।
वैशालीकी स्मृतिने ही उस समय उनके चित्तको आक-
र्षित किया था, वह उनके वैशाली पर आक्रमण करनेसे
ही मालूम होता है ।

विन्दवपिटकम् नामक बौद्ध पालीग्रन्थमें लिखा है, कि
बुद्धप्रवर्धित दश तरहके संस्कारके दोषगुणविचारके
लिये वैशालीमें एक बौद्ध-सङ्घम बुलाया गया था ।
सिंहलीय आध्यायिकाके अनुसार मालूम होता है, यह
सम्राट् अशोकके सिंहासनारोहणके ११८ वर्ष पहले संघ-
दित हुआ था ।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि जिस स्थानमें
किसी समय प्रधान बौद्ध-सङ्घम प्रतिष्ठित हुआ था, वह
स्थान उस समय बौद्धधर्मका केन्द्र-स्थल कहा जाता
था । बौद्धगण इस स्थानकी पवित्र तीर्थ मानते थे ।

उस समय यहाँ मैकड़ों बीड़मठ और संचाराम प्रतिष्ठित हुए थे और अनेक्य बीड़-विहार और स्तूप स्थापनाय पवित्तना और बीड़मठायके प्रकृत परिचय देनेमें समर्थ थे। इस समय उन सब कीर्तियोंका चिह्नमात्र भी नहीं है। केवल भूगर्भसे निकले कुछ इष्टकस्तूप, युद्ध-मिथि, प्रस्तरनिर्मित पयःप्रणाली, मोहराङ्कित लिपियाँ, प्राचीन राजाओंकी जिलालिपियाँ और उक्त चीनपरि-प्राप्तकोंके भ्रमणवृत्तान्तके मिया घैनालीके बीड़कीर्ति-संप्रदका दूसरा कोई उपाय नहीं।

कुजोगनगरने हिरण्यवती तट और लिच्छविराज्य परिदर्शन कर फाहियान घैनाली पहुँचा। उस समय घैनाली नगरके उत्तर मरुईतभूलके किलारे दोमजिला और ऊँचा चूड़ावाला महायन-विहार था। स्वयं युद्धयने इस विहारमें कुछ दिनों तक वास किया था। इसके निकट ही आनन्दकी अर्द्धदेह पर बना एक रत्नमाकृति गोपुर विद्यमान था।

नगरके मध्यमें नगरनिवासिनी भाद्रपाली नाम्नी एक बीड़-नारिकाके वृक्षसे विनिर्मित शाण्यबुद्धका स्मृति स्तम्भ और उनके रहनेके लिये इस भाद्रपालीका दिया हुआ एक उद्यान था। ५वीं शताब्दीमें फाहियानने भाद्रपालीकारित उक्त स्तूपको ध्वंसायस्थानमें देखा था। उन्होंने यह भी लिखा है, कि युद्धनिर्वाणके सी वर्ष पीछे घैनालीमें किलने ही मिश्र दण संस्कारोंके प्रकृततरयसे अनमिश्र ही यिनयमूक-विधिका उत्तंघन-जनित कार्य करते थे। इस विषयकी सीमांसाके लिये ७०० शब्दोंमें और मिश्रामोंमें घैनालीमें एकत्र दो बर यिनयवित्तक संस्कार किया था। इस घटनाका स्मरण करनेके लिये यहाँके लोगोंने उक्त स्तूपन स्थानमें एक स्तूप निर्माण किया था। यह उस समय विद्यमान था। फाहियानने आर भी लिखा है,—बुद्धका भिक्षापाल पढ़ते घैनालीमें रखा गया था, पीछे यह गाम्धार राज्यमें लाया गया।

युद्धयुद्धने किया है,—ये मण्डकी (गङ्गा ?) अति-प्रम कर १४० या १५० मी० घैनाली तक कर घैनाली-में पहुँचे थे। इस राजकी परिधि प्रायः ५ हजार ली थी। यह स्थान शक्यनामों और भाद्र आदिने

यूशोंके उद्भवानेसे पूर्ण था। यहाँका जनययु सानि शोनीय, मनोरम और सुव्यमद् है। इस स्थानके सर्पि-यासी विमुद्धविच, सरल और धर्माभ्येयो है। यहाँ बीड़-मतके विभावासी और इसके विपरीत मतवाले दोनों तरहके लोग हैं। इस समय यहाँका घैनाली प्रभाव नहीं रहा। मैकड़ों संचाराम ध्वंसायस्थानमें पहुँचे ३ या ५ इस समय भी स्थापित यद्यपि हैं और उनमें केवल कई धर्मायुक्त बीड़धर्मके क्रियाकाण्डका पालन कर रहे हैं। उस समय भी अन्त्याय्य समप्रदायके लोभों मन्दिर घैनालीकी ओमा बड़ा रहे थे। इन मन्दिरोंमें रह कर लोग अपने धर्मका विस्तार करनेमें लगे हुए थे। उस समय इस देशमें निर्ग्रंथ समप्रदायके लोगोंकी संख्या बढ़ी चढ़ी थी।

‘उस समय प्राचीन घैनाली-राजधानी ध्वंसाय थी। नगर-सीमाकी परिधि प्रायः ६०-७० ली और राजपुरीकी सीमा ४५ ली होगी। यहाँ उस समय सुदिमेव लोगोंका वास था। इस राजपुरीके उत्तर-पश्चिम एक संचाराम था। इस मठमें बीड़-धर्मण सम्मतीय शाखानुसार हीनयान मतकी आलोचना करने थे। इसकी वगळमें एक स्तूप था। यहाँ भाये विमलकीर्तिने मूलकी व्याख्या की और रत्नाकर भाद्रि नगरवासी गृहस्थसंगतिपौने इस स्थानमें बुद्धके बहु-मूर्त्य उत्तंघन प्रदान किया था। इनके पूर्ण एक स्तूप बना है। कहते हैं, कि इन स्थानमें जारिपुत्र भाद्रि बीड़-यतिपौने अर्द्धत्पद् लाम किया था। शैथान स्तूपके दक्षिण-पूर्व एक दूसरा घैनालीराज द्वारा प्रतिष्ठित स्तूप है। युद्ध-निर्वाणके कुछ दिग बाद इस राजवंशके एक राजाने शाण्य-जरीरका कोई सिद्ध या कर उभ पर एक गृह या स्तूप निर्माण किया था०। इन स्तूपके उत्तर-पश्चिम अजोहराजके द्वारा प्रतिष्ठित एक दूसरा स्तूप

• बीड़ पाली और संस्कृत ग्रन्थोंमें लिखा है—बीड़की सिद्धयि राजाओंने बुद्धके विद्वानोंका संघ कर उभ पर एक स्तूप निर्माण किया था। उभार भाद्रकी बीड़-विहारमें आन-जला है, कि तमद् अमोकेने उभार एतकी उभयुका का बीड़ निर्देशना नमोके कर अन्य स्तूपमें निर्दिष्ट किया था।

हैं। उसकी ही बगलमें ५०-६० फीट ऊंचा प्रस्तर-स्तम्भ है। इस स्तम्भके शिर पर सिंहमूर्ति बनी हुई है। इस स्तम्भके दक्षिण मर्कट भील है। प्रवाद है—बुद्धदेवके व्यवहारार्थ बानरसंघने इस भीलको कटवाया था। मर्कट भीलके दक्षिण एक स्तूप है। यहां बानर बुद्धके मिक्षापालको ले कर गृह पर चढ़ गया था और उनको पीनेके लिये उसने उस पालमें भर कर मधु ला कर दिया था। इसके ही दक्षिण जहां बानरने बुद्धको पीनेके लिये मधु दिया था, इस घटनाको स्मरण रखनेके लिये वहां भी एक स्तूप बना था। आज भी मर्कट भीलके उत्तर-पश्चिम कोनेमें प्रतिष्ठित एक बानरकी मूर्ति उस स्मृतिका परिचय दे रही है।

वैशालीके प्रधान संघाराम ३४ ली (या कुछ अधिक एक पाय जमीन) उत्तरपूर्वमें विमलकीर्त्तिका प्राचीन मकान विद्यमान है। विमलकीर्त्तिने बौद्धधर्म ग्रहण किया था। यहां अब भी उनकी बौद्ध धर्मचर्याके बहुतेरे निदर्शन देखे जाते हैं। इसके निकट ही प्रेतमवन है। इसका आकार हंटके पत्रायेकी तरह है। प्रवाद है, कि विमलकीर्त्तिने पीडितावस्थामें इस प्रस्तरमण्डपसे धमशास्त्रकी व्याख्या की थी। इसके निकट ही एक स्तूप मौजूद है, यह पूर्वकथित रत्नाकरकी आवासभूमि पर बना है। इस स्तूपके निकट एक दूसरा स्तूप दिखाई देता है। यहां वैशाली-निवासी बुद्धभक्ता आम्रपालो नामकी रमणोका घासभवन है। यहां ही बुद्धकी चाची और अन्यार्थ भिक्षुणियां निर्वाणप्राप्त हुई थीं। यहां पूर्वकथित आम्रपालोका उद्यान था। यह उद्यान आम्रपालोने बुद्धदेवको रहनेके लिये दिया था।

इस उद्यानके पार्श्वमें एक स्तूप है। यहां खड़ा हो कर तथागत आनन्द और मारफी अपने इहलोक-स्थायकी वासना बताई थी। इसीके पार्श्वमें एक स्तूप था, तथागत इसी स्थानमें यागुसेवनाकी स्मरण किया करते थे और बौद्धोंके उपदेश देते थे। * इस स्तूपमें आनन्दका वेदविहायशेष निहित है। इसके ही समीप बहु-

संख्यक स्तूप हैं। ये स्तूपोंमें इतने अधिक हैं, कि इनका गिनना सहज बात नहीं। यहां सहस्र प्रत्येक बुद्धने-निर्वाण लाम किया था।

नगरके मध्यस्थलमें और बाहरी प्रदेशमें बुद्ध और बौद्धोंका इतना अधिक पवित्र चिह्न या कीर्त्तियां दिखाई देती हैं, कि उनका गिनना असम्भव है। प्रत्येक पद पर प्राचीन गृहस्थान या गृहभित्तिका अवशेष नेत्रोंके सामने आ जाता है। इसमें सन्देह नहीं, कि ये सब किसी समय प्राचीन कीर्त्तियोंमें परिगणित होते थे। ऋतुपरिवर्तन तथा वर्ष पर वर्ष, युग पर युग बीत जानेके बाद ये सब अब विलुप्त हो गये। किसी किसी विध्वस्त स्थानमें निविड घनमाला जाम उठी है। भील प्रायः खूज गये हैं। चारों ओर दुर्गन्ध उत्पन्न हो गई है।

फादियान (४०५ ई०) और यूपनचुपङ्गने (६२६-६४५ ई०) जिन सब बौद्ध कीर्त्तियों और ध्वस्त निदर्शनोंका सन्दर्शन किया था, वही उनके भ्रमण-वृत्तान्तसे उद्धृत किया गया। चीनपरिव्राजक इत्सिने भी ६७३ ई०में ताम्रलिपि जनपदमें पदार्पण कर नालन्दामें बौद्धकी शिक्षा ली। इसके बाद वे बोधगया, वाराणसी, श्रावस्तो, कान्यकुब्ज, राजगृह, वैशाली और कुशीनगर होते हुए ६१५ ई०में धीभोग (वर्त्तमान नाम पालेमदङ्ग) होते हुए चीन चले गये। उनकी विवरणीमें भी इस तरह कई ध्वंसावशिष्ट बौद्ध कीर्त्तियोंका परिचय मिलता है।

ऊपर जिन कीर्त्तियोंका उल्लेख किया गया, डाकूर-कनिंहुम और इलचने वर्त्तमान वसाइ प्रायके चारों ओर खुदवा कर इन सब कीर्त्तियोंका स्थान सामञ्जस्य साधनमें भी प्रकृतस्वकी गभीर गवेषणाके विशेष अध्यवसायका परिचय दिया था। यूपनचुपङ्ग वर्णित कीर्त्तियोंके सिवा महात्मा इलचने प्रकृतस्वके और बौद्धप्रभावके अनेक निदर्शन पाये हैं। इलचकी आविष्कृत स्मृतिकाज्ञात प्राचीन मोहरोंमें वैशाली नगरीका नाम और कई राजाओंका परिचय मिलता है। नीचे वैशाली राजाओंका नामावली दी गई।

* फादियानने लिखा है, कि बुद्धदेवने यहां अपना घु और गद्दी रखी थी।

† हरियकन्याक गर्भित उत्पन्न बालकका नाम सहस्र प्रत्येक बुद्ध था।

(१) "महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त पत्नी महाराज श्रीगोविन्दगुप्तमाता महादेवी श्रीध्रुववासिनी ।"

श्रीध्रुवदेवीने ३८० से ४१३ ई० तक राजत्व किया था । राजा द्वितीय चन्द्रगुप्तकी महिषी थी ।

(२) "श्रीघटोत्कचगुप्तस्य ।"

महाराज घटोत्कचगुप्त ३०० ई०में विद्यमान थे । ये महाराज १म चन्द्रगुप्तके पिता थे । गुप्तराजवंश देखो ।

सिया इनके डाक्टर बलचने और भी कितने ही मोहराङ्कित मृत्खण्डोंका आविष्कार किया है, इनमें कुमारामात्याधिकरण, युवराज भट्टारकपादीय पलाधिकरण प्रभृति मन्त्रिगण, महाप्रतिहार, रणभाण्डागाराधिकरण, दण्डपाशाधिकरण, महादण्डनायक, अश्वपति आदिकी नामयुक्त मोहर विशेष आदरकी वस्तु हैं । उनही प्रकाशित २५वें मोहरमें "वैशाल्याधिकरण" शब्द देख कर अनुमान होता है, कि यह मोहर वैशालीराज्यके शासनकर्त्ता (City-magistrate) की थी । २६वें "वैशाल्यामर प्रकृतिकुटुम्बिनी" और २७वें "वैशाल्यविषय" पदका उल्लेख रहने पर ये सब वैशालीराज्यकी नित्य वस्तु मालूम होती हैं । इसके सिया "श्रेष्ठिसार्थवाहकुलिकनिगम" अङ्कित जो दो मोहर पाई गई हैं, उससे वहाँका वाणिज्य-प्रभाव और समृद्धिकी कल्पना की जा सकती है ।

देवोपासना और धर्मप्रभावहायक और भी कई मुद्रित मृत्खण्ड मिले हैं । इन सबकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि यहाँ चाराणसोके अष्टगुह्यलिङ्गका अन्वयतम आचाराकेधर और गयाके श्रीविष्णुपदसामी नारायणकी उपासनामें इस देशके अधिकारी विशेष भक्तिमान् थे । सिया इसके भगवान् अनन्त और पशुपति (शिव) और अम्बादेवी नन्देश्वरी (दुर्गा) के उपासक शैव और शाक्तोंका प्रभाव वैशालीमें विद्यमान था । इस बातका प्रमाण उक्त मृत्खण्डोंसे मिलता है । दो शङ्खयुक्त चित्रित चक्र, दो शङ्खसमन्वित चित्रित तिशूल और दो शङ्खयुक्त और वेदों पर स्थापित ढालि (?) विशिष्ट मोहराङ्कित मृत्खण्ड किसी विशेष सम्प्रदायके परिचायक हैं, इसमें सन्देह नहीं । सिया इनके और भी कितने ही साधारण व्यक्तिके नामाङ्कित और भी अनेक मोहर मिली

हैं । मालूम होता है, कि ये सब व्यक्ति उस समयके वणिक् सम्प्रदायके अग्रणी थे ।

बौद्धकीर्तियोंमें यहाँ अब भी सिंहरस्तम्भ, अशोक-स्तूप और मर्कट भोल दिखाई देते हैं । मर्कट भोल इस समय रामकुण्डके नामसे विख्यात है । सिंहरस्तम्भ इस समय ३० फीट ६ इञ्च ऊँची है । इसके गालमें अशोकका अनुशासन था । स्तम्भगतमें भड़ जानेसे यह शासन नष्ट हो गया है, ऐसा अनुमान होता है । अशोक-स्तूपकी ध्वस्त इष्टकस्तूप पर जो मन्दिर या कुटि बनी है, उनके भूमिस्पर्शमुद्रामें उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति स्थापित है । बुद्धदेवके गलेमें माला और माथेमें मुकुट है । इससे मूर्त्तिके नीचे एक मुकुटमूर्त्ति है । इससे वानर द्वारा बुद्धकी मधुदान-प्रसङ्ग सूचित हो रहा है । यह मूर्त्ति माणिक्यपुत्र उत्साहकराणिक द्वारा प्रतिष्ठित हुई है ।

चीनपरिम्राजकं यूपनचुंवङ्गने विहार तथा उसके निकटके जिन सब स्तूपोंका विवरण प्रकाशित किया है, डाक्टर बलचने इन सबकी अवस्थितिकी मंजूर कर उनकी ईंटोंसे गृहान्तरका व्यवहार निकृपित किया है । सिंहरस्तम्भसे आध मोल उत्तर-पश्चिम मीमसेन-का-पल्ला नामके दो बड़े मृत्तिकास्तूप दिखाई देते हैं । कुवलुआ प्रामके पूर्व जहाँ नोलकी खेती होती थी, वहाँ ईंटकी बनी अट्टालिकाका ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान है । मिष्टर विनसेएट स्मिथ उसको कुटुंगारगृहका अनुमान करने हैं । मर्कट भोलसे इसका पूर्व-वर्णित दूरत्व और वर्त्तमान दूरत्वमें कुछ न्यूनाधिक होने पर भी इस तरहका अनुमान असङ्गत नहीं जंचता ।

नगरके दक्षिण भागमें 'राजा विशाल-का गढ़' नामक जो स्थान दिखाई देता है, उसकी गुप्तसम्राटोंका प्रासाद और दुर्ग कहा जा सकता है । क्योंकि इसकी मित्तिसे पूर्वोक्त राजाओंकी मोहर समन्वित मुद्रा पाई जाती है । इसके दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक ईंटोंका बना प्राचीन स्तूप है । इस समय यह मुसलमानोंकी दरगाहके रूपमें परिणत है । चीनपरिम्राजकेने इस स्तूपका उल्लेख नहीं किया है । इसके पश्चिम बाभन-पोखर (ग्राह्यण पोखर या तालाब) के किनारे एक मन्दिर वर्त्तमान है । इस मन्दिरमें दो उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति, एक बोधसंख्यमूर्त्ति, एक

गणेशमूर्ति, एक विष्णुमूर्ति, एक पत्थरके टुकड़े में खोदित सप्तमातृकामूर्ति स्थापित हैं। ये मूर्तियाँ उस तालावसे निकाली गई हैं।

सिया इनके नाना स्थानोंमें बस'ख्य बौद्ध और हिन्दू-कीर्तियोंके निदर्शन पाये जाते हैं। उनका उल्लेख निम्नप्रयोग है। गुप्त राजाओंको कीर्तियोंसे अनेक विषय आविष्कृत हुए हैं। इन सबकी विशेष मालोचना आवश्यक है।

वैशालीय (सं० लि०) १ विशाल देशोद्भव, विशाल देशका। (पु०) २ महावीर।

वैशाल्येय (सं० पु०) विशालके गोत्रापत्य, तक्षक।

(अथर्व० पा१०।२६)

वैशिक (सं० पु०) वैशेष्य जीवतीति वैश (वेतनादिभ्यो जीवति । पा ४।४।१२) इति ठक् । १ नायकभेद, तीन प्रकारके नायकमेंसे एक। पति, उपपति और वैशिक ये तीन प्रकारके नायक हैं। जो अनेक वैश्याओंके साथ भोग-विलास करता है, उसे वैशिकनायक कहते हैं। यह वैशिक नायक फिर तीन प्रकारका है—उत्तम, मध्यम और अधम। जो दयिताके भ्रम और प्रकोपमें उपचारपरायण होते हैं, उन्हें उत्तम, जो प्रियाके कोपमें कोप वा अनुराग प्रकाश नहीं करते और चेष्टा द्वारा मत्तभाव प्रकट करते हैं, उन्हें मध्यम और जो भय, कृपा, लज्जाशून्य और कामक्रोडामें कृत्याकृत्य-विचारशून्य हैं, उन्हें अधम वैशिकनायक कहते हैं। हानि, चतुर और शठ इन तीनोंको इसके अन्तर्भूक्त जानना होगा।

(लि०) २ वैश सम्बन्धी।

वैशिश्व (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन जातिके नाम। (मार्क० पु० ५।७।४७)

वैशिश (सं० लि०) विशिष्टा शीलमस्य (ह्युपादिभ्यो ष्य । पा ४।४।६२) इति ण । विशिष्टासुक्त।

वैशिजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री नामको लता।

वैशिष्ट (सं० क्ली०) विशिष्टस्य भावः विशिष्ट-अण् ।

१ विशिष्टत्व, विशिष्टता। २ असाधारणत्व।

वैशिष्टा (सं० क्ली०) विशिष्ट-अण् । विशिष्टस्य, वैशिष्ट।

वैशीति (सं० पु०) विंशतके गोत्रापत्य। (पा १।४।६१)

वैशोपुत्र (सं० पु०) वैशपाका पुत्र।

(शतपथ-ब्राह्मण १३।२।६८)

वैशेष्य (सं० पु०) विश्वस्य गोत्रापत्य (शुभ्रादिभ्यश्च ।

पा ४।१।२२३) इति ठक् । विश्वके गोत्रापत्य।

वैशेषिक (सं० पु०) विशेष' वेत्ति अथोति वा विशेष-

ठक् । १ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रवेत्ता, यह जो वैशेषिक दर्शन जानता हो, ओलूष्य। (हेम) विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष (अधिकृत्य कृते ग्रन्थे । पा ४।३।८७)

इति ठक् । २ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रविशेष। ३

न्यायमतसे आहमादिकृत पारिभाषिक गुण।

(भाषापरिच्छेद)

(लि०) विशेष पत्य (विनपादिभ्यश्चक् । पा ५।४।३४)

इति स्वार्थे ठक् । ४ असाधारण।

वैशेषिकदर्शन (सं० क्ली०) पञ्चदर्शनके अन्तर्गत दर्शनशास्त्रविशेष। यह निर्णय करनेके लिये प्रमाणांका

सं प्रह करना अत्यन्त कठिन है, कि किस समय वैशेषिकसूत्र रचे गये थे। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये

कणादसूत्र ही दार्शनिक सूत्रग्रन्थोंके आदि हैं। कुछ

लोग इसके बदले सांख्यसूत्रको ही यह आसन प्रदान

करते हैं। इसमें कुछ भी सम्यह नहीं, कि वैशेषिक-

सूत्र अति प्राचीन है। क्योंकि इससे बौद्धमत निरास

का कोई भी प्रयास परिलक्षित नहीं होता। यद्यपि

महर्षि कणादके सूत्रावलम्बित दर्शनशास्त्र सर्वदर्शन-

संग्रहोंमें "ओलूष्यदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है।

साधारणतः यह ओलूष्यदर्शन वैशेषिकदर्शन नामसे

परिचित है।

(विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष-ठक् । अधिकृत्य कृते

ग्रन्थे । पा ४।३।८७) विशेष पदार्थको अधिकार कर यह

यना है, इसीलिये इसका नाम वैशेषिक है। यह विशेष

किसको कहते हैं, हम वैशेषिकसूत्रमें द्वितीय अध्यायके

द्वितीय माहिकके छठे सूत्रमें उसका आमास पाते हैं।

जैसे—“अन्यत्रान्तेभ्यो विशेषेभ्यः।”

जो अन्त्य है, यह नित्य है, नित्य भ्रमोंमें इस अन्त्य-

का अवस्थान है। प्रत्येक परमाणु अन्त्यविशिष्ट है।

यह अन्त्य ही विशेष पदार्थ है। प्रत्येक परमाणुमें विशेष

(१) "महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त पत्नी महाराज श्रीगोविन्दगुप्तमाता महादेवी श्रीध्रुववासिनो ।"

श्रीध्रुवदेवीने ३८० से ४१३ ई० तक राजत्व किया था। राजा द्वितीय चन्द्रगुप्तकी महिषी थी।

(२) "श्रीघटोत्कचगुप्तस्य ।"

महाराज घटोत्कचगुप्त ३०० ई०में विद्यमान थे। ये महाराज १म चन्द्रगुप्तके पिता थे। गुप्तराजवंश देखो।

सिवा इनके टाकुर बलचने और भी कितने ही मोहराङ्कित मृत्खण्डोंका आविष्कार किया है, इनमें कुमारा-मायाधिकरण, युवराज भट्टारकपादवी वलाधिकरण प्रभृति गन्त्रिगण, महाप्रतिहार, रणभाण्डागाराधिकरण, दण्ड-पाशाधिकरण, महावण्डनायक, अम्बपति आदिकी नामयुक्त मोहर विशेष आदरकी वस्तु हैं। उनही प्रकाशित २५वें मोहरमें "वैशाल्याधिकरण" शब्द देख कर अनुमान होता है, कि यह मोहर वैशालीराज्यके शासनकर्त्ता (City-magistrate) की थी। २६वें "वैशाह्यामर प्रकृतिकुटुम्बिना" और २७वें "वैशालविपये" पदका उल्लेख रहने पर ये सब वैशालीराज्यकी नित्य वस्तु मालूम होती हैं। इसके सिवा "श्रेष्ठिसाध्याहकलिक-निगम" अङ्कित जो दो मोहर पाई गई हैं, उससे चहांका वाणिज्य-प्रभाव और समृद्धिकी कल्पना की जा सकती है।

देवीपासना और धर्मप्रभावज्ञापक और भी कई मुद्रित मृत्खण्ड मिले हैं। इन सबकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि यहां चाराणसीके अष्टगुल्लिङ्गका अन्त्यतम आघ्रातकेभर और गयाके श्रीविष्णुवदलामी नारायणकी उपासनामें इस देशके अधिकारी विशेष भक्तिमान् थे। सिवा इसके मंगवान अनन्त और पशुपति (शिव) और अम्बादेवी नन्देश्वरी (दुर्गा) के उपासक शैव और शाक्तोंका प्रभाव वैशालीमें विद्यमान था। इस बातका प्रमाण उक्त मृत्फलकोंसे मिलता है। दो शङ्ख-युक्त चित्रित चक्र, दो शङ्खसमन्वित चित्रित त्रिशूल और दो शङ्खयुक्त और चेशे पर स्थापित ढालि (१) विशिष्ट मोहराङ्कित मृत्खण्ड किसी विशेष सम्प्रदायके परिचायक हैं, इसमें सन्देह नहीं। सिवा इनके और भी कितने ही साधारण व्यक्तिके नामाङ्कित और भी अनेक मोहर मिली

हैं। मालूम होता है, कि ये सब व्यक्ति उस समयके धार्मिक सम्प्रदायके अग्रणी थे।

बीदकौर्त्तियोंमें यहाँ अब भी सिद्धस्तम्भ, अशोक-स्तूप और मकई भोल दिखाई देते हैं। मकई भोल इस समय रामकुण्डके नामसे विख्यात है। सिद्धस्तम्भ इस समय ३० फीट ६ इञ्च ऊँचा है। इसके गात्रमें अशोकका अनुशासन था। स्तम्भगात्र भङ्ग जानेसे यह शासन गष्ट हो गया है, ऐसा अनुमान होता है। अशोक-स्तूपको ध्वस्त इष्टकस्तूप पर जो मन्दिर या कुटि बनी है, उनके भूमिस्पर्शमुद्रामें उपविष्ट बुद्धमूर्त्तियाँ स्थापित हैं। बुद्धदेवके गलेमें माला और माथेमें मुकुट हैं। इससे मूर्त्तिके नीचे एक मुकुटमूर्त्ति है। इससे बानर द्वारा बुद्धको मधुदान-प्रसङ्ग सूचित हो रहा है। यह मूर्त्ति भाण्डिपुत्र अत्साहकरणिक द्वारा प्रतिष्ठित हुई है।

चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने विहार तथा उसके निकटके जिन सब स्तूपोंका विवरण प्रकाशित किया है, डाक्टर बलचने इन सबकी अवस्थितिको मंजूर कर उनकी ईंटोंसे गृहान्तरका व्यवहार निरूपित किया है। सिद्ध-स्तम्भसे आध मील उत्तर-पश्चिम भीमसेन-का-गङ्गा नामके दो बड़े मृत्तिकास्तूप दिखाई देते हैं। कुलुआ प्रामके पूर्व जहाँ नोलकी खेती होती थी, वहाँ ईंटकी बनी अट्टालिकाका ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान है। मिष्टर विनसेण्ट स्मिथ उसको कुटुआगरगृहका अनुमान करने हैं। मकई भोलसे इसका पूर्व-वर्णित दूरत्व और वर्त्तमान दूरत्वमें कुछ न्यूनाधिक होने पर भी इस तरहका अनुमान असङ्गत नहीं जंचता।

नगरके दक्षिण भागमें 'राजा विशाल-का गड्ढा' नामक जो स्थान दिखाई देता है, उसको गुप्तसम्राटोंका प्रासाद और दुर्ग कहा जा सकता है। क्योंकि इसकी मित्तसे पूर्वांक राजाओंको मोहर समन्वित मुद्रा पाई जाती है। इसके दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक ईंटोंका बना प्राचीन स्तूप है। इस समय यह मुसलमानोंकी दरगाहके रूपमें परिणत है। चीनपरिव्राजकोंने इस स्तूपका उल्लेख नहीं किया है। इसके पश्चिम घासन पोखर (ग्राहण पोखर या तालाब) के किनारे एक मन्दिर वर्त्तमान है। इस मन्दिरमें दो उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति, एक बोधिसत्वमूर्त्ति, एक

गणेशमूर्ति, एक विष्णुमूर्ति, एक पत्थरके टुकड़े में खोदित सप्तमातृकामूर्ति स्थापित हैं। ये मूर्तियाँ उस तालावसे निकाली गई हैं।

सिवा इनके नाना स्थानोंमें असांख्य बौद्ध और हिन्दू-कीर्तियोंके निदर्शन पाये जाते हैं। उनका उल्लेख निम्नप्रयोजन है। गुप्त राजाओंको कीर्तियोंसे अनेक विषय आविष्टत हुए हैं। इन सबकी विशेष बालोचना आवश्यक है।

वैशालीय (सं० लि०) १ विशाल देशोद्भव, विशाल देशका। (पु०) २ महावीर।

वैशाल्य (सं० पु०) विशालके गोत्रापत्य, तक्षक।

(अथर्व० ८।१०।२६)

वैशिक (सं० पु०) वैशेष्य जीवतीति वैश (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) इति ठक्। १ नायकभेद, तीन प्रकारके नायकमेंसे एक। पति, उपपति और वैशिक ये तीन प्रकारके नायक हैं। जो अनेक वेश्याओंके साथ भोग-विलास करता है, उसे वैशिकनायक कहते हैं। यह वैशिक नायक फिर तीन प्रकारका है—उत्तम, मध्यम और अधम। जो दयिताके भ्रम और प्रकोपमें उपचारंपरायण होते हैं, उन्हें उत्तम; जो मित्रांके कोपमें कोपसा अनुराग प्रकाश नहीं करते और चेष्टा द्वारा मनोभाव प्रकट करते हैं, उन्हें मध्यम और जो मय, छपा, लज्जाशून्य और कामकाङ्क्षामें कृत्याकृत्य-विचारशून्य हैं, उन्हें अधम वैशिकनायक कहते हैं। ज्ञानी, चतुर और शठ इन तीनोंको इसीके अन्तर्भूक जानना होगा।

(लि०) २ वैश सम्बन्धी।

वैशिष्य (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन जातिके नाम। (मार्क० पु० ५।७।७)

वैशिक (सं० लि०) विशिष्टा शोल्-मस्य (द्व्यादिभ्यो ष्यः। पा ४।४।६२) इति ण। विशिष्टानुक्त।

वैशिजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री नामको लता।

वैशिष्ट (सं० क्ली०) विशिष्टस्य भावः विशिष्ट-अण्। १ विशिष्टत्व, विशिष्टता। २ असाधारणत्व।

वैशिष्टा (सं० क्ली०) विशिष्ट-अण्। विशिष्टत्व, वैशिष्ट।

वैशीति (सं० पु०) विशीतके गोत्रापत्य। (पा १।४।६१)

वैशीपुत्र (सं० पु०) वैशेष्याका पुत्र।

(शतपथ-ब्राह्मण १३।२।६८)

वैशेष्य (सं० पु०) विश्वस्य गोत्रापत्यं (शुभ्रादिभ्यम्व्य। पा ४।१।१२३) इति ठक्। विश्वके गोत्रापत्य।

वैशेषिक (सं० पु०) विशेषे वैसि अथोति वा विशेषे-ठक्। १ कणादमुनिवृत्त दर्शनशास्त्रवेत्ता, यह जो वैशेषिक दर्शन जानता हो, शीलुष्य। (हम) विशेषमधिकृत्य कृते प्रथमः विशेष (अधिकृत्य कृते प्रथमे। पा ४।३।८७) इति ठक्। २ कणादमुनिवृत्त दर्शनशास्त्रविशेष। ३ न्यायमतसे आहमादिकृत पारिभाषिक गुण।

(भाषापरिच्छेद)

(लि०) विशेष पद्य (विनयादिभ्यम्वक्। पा ५।४।३४)

इति स्वार्थे ठक्। ४ असाधारण।

वैशेषिकदर्शन (सं० क्ली०) पञ्चदर्शनके अन्तर्गत दर्शनशास्त्रविशेष। यह निर्णय करनेके लिये प्रमाणांका संप्रह करना अत्यन्त कठिन है, कि किस समय वैशेषिकसूत्र रचे गये थे। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये कणादसूत्र ही वार्षाणिक सूत्रग्रन्थोंके आदि हैं। कुछ लोग इसके बदले सांख्यसूत्रको ही यह आसन प्रदान करते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि वैशेषिकसूत्र अति प्राचीन है। क्योंकि इससे बौद्धमत निरास का कोई भी प्रयास परिलक्षित नहीं होता। यद्यपि महर्षि कणादके सूत्रावलम्बित दर्शनशास्त्र सर्वदर्शनसंप्रदेशोंमें "शीलुष्यदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है। साधारणतः यह शीलुष्यदर्शन वैशेषिकदर्शन नामसे परिचित है।

(विशेषमधिकृत्य कृते प्रथमः विशेष-ठक्। अधिकृत्य कृते प्रथमे। पा ४।३।८७) विशेष पदार्थको अधिकार कर यह बना है, इसीलिये इसका नाम वैशेषिक है। यह विशेष किसको कहते हैं, हम वैशेषिकसूत्रमें द्वितीय अध्यायके द्वितीय माहिरिकके छठे सूत्रमें उमका आभास पाते हैं। जैसे—“अन्यत्रान्तेभ्यो विशेषेभ्यः।”

जो अन्त्य है, यह नित्य है, नित्य द्रव्योंमें इस अन्त्यका अवस्थान है। प्रत्येक परमाणु अन्त्यविशिष्ट है। यह अन्त्य ही विशेष पदार्थ है। प्रत्येक परमाणुमें विशेष

(१) "महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त पत्नी महाराज श्रीगोविन्दगुप्तमता महादेवी श्रीध्रुववासिनी ।"

श्रीध्रुवदेवीने ३८० से ४१३ ई० तक राजत्व किया था । राजा द्वितीय चन्द्रगुप्तकी महिषी थी ।

(२) "श्रीघटोत्कचगुप्तस्य ।"

महाराज घटोत्कचगुप्त ३०० ई०में विद्यमान थे । ये महाराज १म चन्द्रगुप्तके पिता थे । गुप्तराजवंश देखो ।

सिवा इनके डाकूर बलवने और भी कितने ही मोह-राज्जित मृत्युखण्डोंका आविष्कार किया है, इनमें कुमारा-मात्याधिकरण, युवराज भट्टारकपादोप बलाधिकरण प्रभृति गमित्रगण, महाप्रतिहार, रणभाण्डागाराधिकरण, दण्ड-पाशाधिकरण, महादण्डनायक, अश्वपति आदिकी नामयुक्त मोहर विशेष आदरकी वस्तु हैं । उन ही प्रकाशित २५वें मोहरमें "वैशाल्याधिकरण" शब्द देख कर अनुमान होता है, कि यह मोहर वैशालीराज्यके शासनकर्ता (City-magistrate) की थी । २६वें "वैशाल्यामर प्रकृतिकुटुम्बिनी" और २७वें "वैशालविषये" पदका उल्लेख रहने पर ये सब वैशालीराज्यकी नित्य वस्तु मालूम होती हैं । इसके सिवा "श्रेष्ठिसाध्याह कुलिक-निगम" अङ्कित जो दो मोहर पाई गई हैं, उससे चहोंका वाणिज्य-प्रभाव और समृद्धिकी कल्पना की जा सकती है ।

देवोपासना और धर्मप्रभावक्षापक और भी कई मुद्रित मृत्युखण्ड मिले हैं । इन सबकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि यहां वाराणसीके अष्टगुहालिङ्गका अन्यतम आघ्रातकेअवर और गयाके श्रीविष्णुवदस्वामी नारायणकी उपासनामें इस देशके अधिकारी विशेष भक्तिमान् थे । सिवा इसके अंगवज्र अनन्त और पशुपति (शिव) और अश्वदेवी नन्देश्वरी (दुर्गा) के उपासक शैव और शक्तोंका प्रभाव वैशालीमें विद्यमान था । इस बातका प्रमाण उक्त मृत्युखण्डोंसे मिलता है । दो शङ्ख-युक्त चित्रित चक्र, दो शङ्खसमन्वित चित्रित तिलाल और दो शङ्खयुक्त और वेदो पर स्थापित डालि (१) विशिष्ट मोहराङ्कित मृत्युखण्ड किसी विशेष सम्प्रदायके परिचायक हैं, इसमें सन्देह नहीं । सिवा इनके और भी कितने ही साधारण व्यक्तिके नामाङ्कित और भी बनेक मोहर मिली

हैं । मालूम होता है, कि ये सब व्यक्ति उस समयके वणिक्-सम्प्रदायके अग्रणी थे ।

बीरकीर्त्तियोंमें यहाँ अब भी सिंहरस्तम्भ, अशोक-स्तूप और मकई भोल दिखाई देते हैं । मकई भोल इन सगय रामकुण्डके नामसे विख्यात है । सिंहरस्तम्भ इस समय ३० फीट ६ इंच ऊँचा है । इसके गालमें अशोकका अनुशासन था । स्तम्भमात्र ऋद्ध जानेसे यह शासन नष्ट हो गया है, ऐसा अनुमान होता है । अशोक-स्तूपकी ध्वस्त इष्टरूप पर जो मन्दिर या कुटि बनी है, उनके भूमिस्पर्शमुद्रामें उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति स्थापित है । बुद्धदेवके गलेमें माला और माथेमें मुकुट है । इससे मूर्त्तिके नीचे एक मुकुटमूर्त्ति है । इससे बानर द्वारा बुद्धको मधुदान-प्रसङ्ग सूचित हो रहा है । यह मूर्त्ति माणिक्यपुत्र उत्साहकरणिक द्वारा प्रतिष्ठित हुई है ।

चीनपरिव्राजक यूएनचुंघङ्गने विहार तथा उसके निकटके जिन सब स्तूपोंका विवरण प्रकाशित किया है, डाकटर बलवने इन सबकी अवस्थितिको मजूर कर उनको ईंटोंसे गृहान्तरका व्यवहार निकपित किया है । सिंहरस्तम्भसे आध मोल उत्तर-पश्चिम भीमसेन-का-पङ्गा नामके दो बड़े मृत्तिकास्तूप दिखाई देते हैं । कुल्लुआ ग्रामके पूर्व जहाँ नोलकी खेती होती थी, वहाँ ईंटकी बनी अष्टालिकाका ध्वंसावशेष अब भी विद्यमान है । मिष्टर विनसेष्ट स्मिथ उसको कुटुंगारगृहका अनुमान करने हैं । मकई भोलसे इसका पूर्व-वर्णित दूरत्व और वर्त्तमान दूरत्वमें कुछ न्यूनाधिक होने पर भी इस तरहका अनुमान असङ्गत नहीं जंचता ।

नगरके दक्षिण भागमें 'राजा विशाल-का गढ़' नामक जो स्थान दिखाई देता है, उसको गुप्तसघाटोंका प्रसाद और दुर्गा कहा जा सकता है । क्योंकि इसकी मिस्रसे पूर्वोक्त राजाओंको मोहर समन्वित मुद्रा पाई जाती है । इसके दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक ईंटोंका बना प्राचीन स्तूप है । इस समय यह मुसलमानोंकी दरगाहके रूपमें परिणत है । चीनपरिव्राजकोंने इस स्तूपका उल्लेख नहीं किया है । इसके पश्चिम बाभन पोखर (ब्राह्मण पोखर या:तालाब) के किनारे एक मन्दिर वर्त्तमान है । इन मन्दिरमें दो उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति, एक बोधचर्यमूर्त्ति, एक

गणेशमूर्ति, एक विष्णुमूर्ति, एक पत्थरके टुकड़ेमें खोदित सप्तमातृकामूर्ति स्थापित है। ये मूर्तियाँ उस तालाबसे निकाली गई हैं।

सिवा इनके नाना स्थानोंमें असंख्य बौद्ध और हिन्दू-कीर्तियोंके निदर्शन पाये जाते हैं। उनका उल्लेख निम्नपोजन है। गुप्त राजाओंकी कीर्तियोंसे अनेक विषय आविष्टक हुए हैं। इन सबकी विशेष आलोचना आवश्यक है।

वैशालीय (सं० लि०) १ विशाल देशोद्भव, विशाल देशका। (पु०) २ महावीर।

वैशालीय (सं० पु०) विशालके गोत्रापत्य, तसक।

(अथर्व० ५।१०।२६)

वैशिक (सं० पु०) वैशेष्यं जीवतीति वैशं (वेतनादिभ्यो जीवति । पा ४।४।२) इति ठक् । १ नायकमेव, तीन प्रकारके नायकमेंसे एक। पति, उपपति और वैशिक ये तीन प्रकारके नायक हैं। जो अनेक वेश्याओंके साथ भोग-गिलास करता है, उसे वैशिकनायक कहते हैं। यह वैशिक नायक फिर तीन प्रकारका है—उत्तम, मध्यम और अधम। जो दयितानके भ्रम और प्रकोपमें उपचारपरायण होते हैं, उन्हें उत्तम; जो प्रियाके कोपमें कोप या अनुराग प्रकाश नहीं करते और चेष्टा द्वारा मनोभाव प्रकट करते हैं, उन्हें मध्यम और जो भय, छपा, लज्जाशून्य और कामक्रोडामें कृत्याकृत्य-विचारशून्य हैं, उन्हें अधम वैशिकनायक कहते हैं। शान्ति, चतुर और शठ इन तीनोंके इसोके अन्तर्भूक जानना होगा।

(लि०) २ वैश सशब्धो।

वैशिक्य (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन जातिके नाम। (मार्क० पु० ५।७।७)

वैशिण (सं० लि०) विशिष्या शोल-मस्य (कृत्वादिभ्यो षः । पा ४।४।६२) इति ण। विशिष्यायुक्त।

वैशिजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री नामकी लता।

वैशिष्ट (सं० स्त्री०) विशिष्टस्य भावाः विशिष्ट-अण्।

१ विशिष्टत्व, विशिष्टता। २ असाधारणत्व।

वैशिष्ट (सं० षष्ठी०) विशिष्ट-भ्यञ् । विशिष्टस्य, वैशिष्ट।

वैशोति (सं० पु०) विशीतके गोत्रापत्य। (पा १।४।६१)

वैशोपुत्र (सं० पु०) वैश्याका पुत्र।

(शतपथ-भाष्य १३।२।६८)

वैशेष्य (सं० पु०) विशस्य गोत्रापत्यं (शुभ्रादिभ्यश्च । पा ४।१।२२) इति ठक् । विशके गोत्रापत्य।

वैशेषिक (सं० पु०) विशेषं वेत्ति अघोते वा विशेष-ठक् । १ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रवेत्ता, वह जो वैशेषिक दर्शन जानता हो, औत्सुक्य। (हेम) विशेषमधिकृत्य कृतेः प्रत्ययः विशेष (अधिकृत्य कृते प्रत्ये) पा ४।३।८७ इति ठक् । २ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रविशेष। ३ न्यायमतसे आहमादिकृत पारिभाषिक गुण।

(भाषापरिच्छेद)

(लि०) विशेष पत्र (विनयादिभ्यश्चक् । पा ५।४।३४) इति स्वायं ठक् । ४ असाधारण।

वैशेषिकदर्शन (सं० षष्ठी०) यदुद्दर्शनके अन्तर्गत दर्शन-शास्त्रविशेष। यह निर्णय करनेके लिये प्रमाणांका संप्रद करना अत्यन्त कठिन है, कि किस समय वैशेषिकसूत्र रचे गये थे। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये कणादसूत्र ही दार्शनिक सूत्रग्रन्थोंके आदि हैं। कुछ लोग इसके बदले सांख्यसूत्रको ही यह आसन प्रदान करते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि वैशेषिकसूत्र अति प्राचीन हैं। क्योंकि इससे बौद्धमत निरास का कोई भी प्रयास परिलक्षित नहीं होता। यद्यपि महर्षि कणादके सूत्रावलम्बित दर्शनशास्त्र सर्वदर्शनसंग्रहोंमें "औत्सुक्यदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है। साधारणतः यह औत्सुक्यदर्शन वैशेषिकदर्शन नामसे परिचित है।

(विशेषमधिकृत्य कृतेः प्रत्ययः विशेष-ठक् । अधिकृत्य कृते प्रत्ये) पा ४।३।८७) विशेष पदार्थको अधिकार कर यह बना है, इसीलिये इसका नाम वैशेषिक है। यह विशेष किसको कहते हैं, हम वैशेषिकसूत्रमें द्वितीय अध्यायके द्वितीय आह्निकके छठे सूत्रमें उसका आभास पाते हैं। जैसे—“अन्यशान्तेभ्यो विशेषेभ्यः।”

जो अल्प है, वह नित्य है, नित्य प्रथमोंमें इस अल्पका अवस्थान है। प्रत्येक परमाणु अन्त्यप्रिशिष्ट है। यह अन्त्य ही विशेष पदार्थ है। प्रत्येक परमाणुमें विशेष

है। इसलिये समग्र जगत्में एक अनन्त सृष्टि-वैचित्र्य और अनन्त विभिन्नता रूप (Heterogeniosity) "विशेष" की विद्यमानता अनुभूत होती है और वही सृष्टिके विभिन्नता-साधनका (Differentiation) मूल कारण है। परमाणु ही इस दर्शनका 'विशेष' पदार्थ है। इसमें 'विशेष' पदार्थका प्राधान्य स्वीकृत हुआ है। इसीसे यह प्रथम "वैशेषिकदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है।

महर्षि कणाद इस दर्शनशास्त्रके प्रणेता हैं। कणाद श्रद्धिके और भी कितने ही नाम हैं। इनमें एक नाम उल्लूक भी है।

इसी नामके अनुसार माघघाचायने सर्वदर्शन-संग्रहमें इनके रचे ग्रन्थका "भौलूक्यदर्शन" नाम लिखा है।

महर्षि कणाद नाम होनेका हेतु यह है, कि ऊपरीके खेतसे शस्य (फसल) काट कर ले जानेके बाद खेतमें जो दाने भड़ कर गिर पड़ते थे, वे उन दानोंको चुन लेते थे और उन्हीं दानोंका आहार भी करते थे। इस तरह शस्यका कण भक्षण कर जीविका निर्वाह करते थे। इसीसे वे कणाद नामसे विदित हुए थे। इसीलिये क्रिसो क्रिसो दार्शनिकने 'कणभक्ष' कह कर कटाक्ष किया है। किन्तु घ्राह्यणोंके लिये इस तरहकी जीविका निन्दित नहीं, बर' उल्लूक तपस्या कह कर प्रशंसित है। अब समझमें आता है, कि वैशेषिकदर्शनके प्रणेताका यह पदार्थ नाम नहीं है। जीविकाके लिये वे इस नामसे प्रसिद्ध हुए थे, उनका प्रकृत नाम 'उल्लूक' ही है। 'वे कश्यपवंशी थे।

न्यायदर्शन-प्रणेता गौतम और कणाद समसामयिक हैं, वेसी बहुत लोगोंकी चारणा हैं। लिङ्गपुराणमें इसका प्रमाण भी मिलता है। लिङ्गपुराणके रचयिताका कहना है, कि दोनों ही शिष्याधतार सोमशर्माके शिष्य हैं,—

"जातुदपयो यदा व्यासो भविष्यति तपोधना ।

तदाप्यहं भविष्यामि सोमशर्मा दिनेश्वरामः ॥

अक्षपादः कुमारश्च उल्लूको कश्च एव च ।

तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपोधनाः ॥"

एक किम्बदन्तो है, कि महर्षि कणादने महेश्वरकी प्रसन्नता लाभ कर उनके ही आशानुसार वैशेषिकदर्शन प्रणयन किया था। उद्यनाचार्यने भी इस किम्बदन्तोका अस्तित्व स्वीकार किया है।

कणाद ६ या ७ पदार्थवादी ।

महर्षि कणाद पट्पदार्थवादी थे या सप्तपदार्थवादी, इसके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। कुछ लोगोंने उनका पट्पदार्थवादी और कुछने सप्तपदार्थवादी कहा है। किन्तु उनके उद्देशसूत्रमें ६ पदार्थोंका ही उल्लेख दिखाई देता है। (वैशेषिकदर्शन ११।४)

अर्थात् निवृत्ति लक्षण धर्मसे समुत्पन्न द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष और समवाय पदार्थके साधारण और वैधर्म्यरूपसे अर्थात् कौन कर्म है, किस पदार्थका समान धर्म है और कौन कर्म ही है या किस पदार्थका विचित्र धर्म है, पर जान कर तत्त्वज्ञान लाभ करनेसे अर्थात् इन सब तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान या सत्त्व साक्षात्कार होनेसे निर्धेयत्व लाभ होता है। कणादने यद्यपि उद्देशसूत्रमें अभावका उल्लेख नहीं किया है, किन्तु स्थलान्तरमें अभाव सम्बन्धमें उन्होंने विशेषरूपसे आलोचना की है। उद्देशसूत्रमें पट्पदार्थवादी और स्थलान्तरमें अभावके विषयकी आलोचना हुई है, यह देख कर कोई कोई उनको सप्तपदार्थवादी भी कहते हैं। न्यायभाष्यकार घाटसायनने कणादकी पट्पदार्थवादी ही निश्चय किया है। न्यायदर्शनके प्रमेयसूत्रके भाष्यमें भाष्यकारने लिखा है,—

"अस्तप्यदपि द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाः प्रमेयं ।"

सूत्रनिर्दिष्टके अतिरिक्त भी द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय प्रमेय हैं। वैशेषिकदर्शनके प्रति लक्ष्य कर ही अधिक सम्भव है, कि न्याय-भाष्यकारने इस तरह चरक किया है।

सांख्यदर्शनके मतसे भी कणाद पट्पदार्थवादी हैं, क्योंकि प्रचलित सांख्यदर्शनके एक सूत्रमें लिखा है—

"न यत्र पट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत् ।"

(छांख्यदर्शन १ अ०)

अर्थात् वैशेषिकादिकी तरह हम पट्पदार्थवादी

नहीं है। सांख्यसूत्रकारके मतसे भी स्पष्टरूपसे प्रति-
पन्न होता है, कि वैशेषिक पदपदार्थवादी है।

सांख्य और मोमांसादि दर्शनकारोंके मतसे भी
अभाव नामसे कोई अतिरिक्त पदार्थ स्वीकृत नहीं
हुआ। फिर भी, इनके दर्शनमें अभावका यद्यपि उल्लेख
देखा जाता है। किंतु मोमांसाचार्या भट्टने इस प्रश्नको
जो मोमांसा की है, वह इस तरह है,—

“मायान्तरमभावो हि कयाचित् उपपेक्षया।”

किसी तरह चैतन्यपक्षके अभिप्रायसे एक भाव पदार्थ
ही दूसरे भावपदार्थके अभावरूपसे व्यवहृत होता है।
अभाव आकाशकुसुमकी तरह अलोक भी नहीं है,
पदार्थान्तर भी नहीं है, कुछ लोगोंने ऐसा ही उदाहरण
देकर सुस्पष्ट कर दिया। यथा—जिस समय
घड़ेका अभावका व्यवहार नहीं होता, उस समय
घड़ेका अभावका व्यवहार नहीं होता। भूतलमें घट
है, ऐसा ही व्यवहार होता है। किन्तु यह घट भूतलसे
हटा लेने पर भूतलमें घट नहीं है या घटाभाव है,
ऐसा अनुभव या व्यवहार दिखाई देता है। भूतलमें घट
रहनेसे घटका व्यवहार होता है। अतएव घटका अभाव
केवलमात्र भूतल या भूतलकी कैवल्यावस्थाके सिवा
और कुछ नहीं है। अतएव प्रतिपन्न हुआ, कि अभाव
पदार्थ है सही, किन्तु अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं
है। एक तरह भावपदार्थ ही केवल अन्यविध भाव-
पदार्थके अभावरूपसे व्यवहृत होता है।

इस तरह युक्तियलसे एक श्रेणीके परिष्ठतने कणादकी
पदपदार्थवादी कह कर अभिहित किया है। फिर इसी
तरहसे प्रशस्तपादाचार्या आदिके मतसे महर्षि कणाद
सप्तपदार्थवादी हैं। प्रशस्तपादाका कहना है,—“द्रव्य-
गुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पवर्णा पदार्थानाम-
भाव सप्तमानामित्यादि।”

अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय,
यह छः पदार्थ और अभाव सप्तम पदार्थ है। इन सात
पदार्थोंका महर्षिने एक बार ही एक ही स्थानमें उल्लेख
न कर एक स्थलमें ६ पदार्थोंका स्पष्टरूपसे उल्लेख किया
है और सूत्ररचना भङ्गिमें अथवा अभाव पदार्थोंका भी
आभास दे रखा है। उद्दिष्ट पदपदार्थ पहले ही पृथकरूपसे

अभिहित हुआ है। कणादसूत्रको आलोचनानामें अभाव
पदार्थका भी स्पष्ट अभास प्रतीयमान होता है। यह
भाचार्याने कणादके उद्देशसूत्रमें पदपदार्थोंके उल्लेख
के प्रति लक्ष्य कर वारिंरक प्रणालीसे लिखा है,—

“अभावश्च वक्तव्यो निःश्रेयसोपयोगित्वात् भाव-
प्रपञ्चवत्।

कारणमाघेन कार्यभावस्य सर्वसिद्धित्वाद्युपयो-
गित्वसिद्धेः॥”

मुकिलामके लिखे ही पदपदार्थोंका तत्त्वोपदेश
प्रदत्त हुआ है, भावप्रपञ्च अर्थात् द्रव्यादिकी तरह अभाव
भी निःश्रेयस्का उपयोगी है। अतएव, भावप्रपञ्चकी
तरह अभाव भी स्वीकार करना होगा। कारणके अभाव
स्थलमें कार्यका भी अभाव दिखाई देता है। जैसे
मृत्तिकाके अभावमें घटका अभाव सुवर्णके अभावमें
कुण्डलका अभाव इत्यादि। इसी तरह मिथ्याज्ञानके
अभावसे दुःखका अभाव होता है। दुःखके अभावका
नाम मुक्ति है। मिथ्याज्ञान ही दुःखका कारण है।
तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान निराकृत होने पर दुःखका
अभाव होता है। सुतरां भावप्रपञ्चकी तरह अभाव भी
वक्तव्य है। कणादने अभावपदार्थके सम्बन्धमें स्पष्ट
उल्लेख नहीं किया है सही; किन्तु उनके सूत्रपाठसे
यह स्पष्ट हो जाता है, कि अभाव भी उनका वक्तव्य है।

पदार्थधर्मसंप्रदहके टीकाकार उदयनाचार्याने किरणा-
यली नासो टीकामें अभाव ले कर सात पदार्थ कणादका
अभिप्रेत कह कर इस मतका समर्थन किया है। जैसे—
“एते च पदार्थाः प्रधानतयोद्दिष्टाः अभावस्तु स्वरूपयानपि।
नोद्दिष्टः प्रतियोगिनोरुपणाधोन निरूपेणस्वाद्यत्तु
तुच्छत्वात्।”

ये पदपदार्थ प्रधानरूपसे उक्त हुए हैं। अभाव
पदार्थ वस्तुगत्या विद्यमान रहने पर भी यहाँ उसका
उद्देश नहीं किया गया। क्योंकि द्रव्यादिकी तरह स्वरूपतः
अभावका निरूपण नहीं होता। प्रतियोगिनिरूपण द्वारा
ही अभावका निरूपण होता है। घटका अभाव, पटका
अभाव इत्यादि स्थलमें प्रतियोगिभेद हो अभावका भेद
हो जाता है। इसीलिये अभावके प्रतियोगी स्वरूप
पदपदार्थोंका उद्देश किया गया है। अभावनिरूपण

प्रतियोगनिरूपणके अधीन है अर्थात् अभावके प्रतिशोभी-स्वरूप पदपदार्थ निरूपित होने पर सद्भूत ही अभावका निरूपण होता है। इसीलिये उद्देश्यत्वमें अभावका उल्लेख करना निष्प्रयोजन समझा गया था। सुतरां कणाद सप्तपदार्थवादी रूपसे ही समाजमें स्वीकृत हैं। पिछले सभी प्रयोगोंमें ही अभावका सतत पदार्थत्व स्वीकृत हुआ है। सुतरां यह प्रधानतः सिद्धान्त है, कि कणाद सप्तपदार्थवादी थे।

इस दर्शनके प्रणयनका उद्देश्य मुक्ति है। मुक्तिके लिये आत्माका श्रवण मनन आदि विहित हुआ है।

यह मनन अनुमान साध्य या अनुमान रूप है। यह अनुमान भी फिर व्याप्तिज्ञानके अधीन है। व्याप्ति ज्ञान पदार्थ तत्त्वज्ञान-सापेक्ष है। सुतरां पदार्थात्मक ज्ञान साक्षात् नदी परम्परा-निःश्रेयस या मुक्तिके कारण है। इस शैशविकोक्त पदार्थात्मक ज्ञान होने से निःश्रेयोलाभ होता है। इसीलिये इनके पदार्थका पदार्थ तत्त्व अभिहित हुआ है।

इस दर्शनमें ३७ सूत्र हैं। ये सूत्र १० अध्यायोंमें बँटे हुए हैं। प्रत्येक अध्यायमें दो आह्निक हैं। आह्निक और कुछ नदी केवल परिच्छेद हैं। दर्शनकारने एक दिनमें जितने सूत्रोंकी रचना की है, उन सबोंकी एक आह्निक नामसे अभिहित किया है। "अथा निवृत्तिं प्रथम आह्निकः" इसके द्वारा प्रतीयमान होता है, कि महर्षि कणादने २० दिनोंमें ही इतने बड़े दर्शनकी रचना की थी।

इन सब आह्निकोंमें निम्नोक्त विषय अभिहित हुए हैं। प्रथमाध्यायके प्रथम आह्निकमें जाति, मान, द्रव्य, गुण, कर्म, द्वितीय आह्निकमें सामान्य या जाति और विशेष पदार्थ निरूपित हुए हैं। द्वितीय अध्यायके प्रथम आह्निकमें सूत्र पदार्थ हैं, अर्थात् पृथ्वी, अल, तेजः, वायु और आकाश। द्वितीय आह्निकमें काल और दिक्, तृतीय अध्यायके आह्निकद्वयमें ही आत्माका निरूपण और द्वितीय आह्निकमें मनका भी निरूपण किया गया है। चतुर्थ अध्यायके प्रथम आह्निकमें जगत्का मूल कारण और कई प्रत्यक्ष कारण, द्वितीयाह्निकमें अतीत विषये चिंत हुआ है। पञ्चमाध्यायके प्रथमाह्निकमें शारीरिक

कर्म, द्वितीयाह्निकमें मानसिक कर्म, षष्ठ्यायके प्रथमाह्निकमें दान और प्रतिभ्र, द्वितीयाह्निकोंमें आश्रम-चतुष्टयका धर्म, सप्तमाध्यायके प्रथम दो आह्निकमें रूपादि गुण और द्वितीयाह्निकमें समवाय निरूपित हुआ है। अष्टमाध्यायके प्रथमाह्निकमें प्रत्यक्ष ज्ञान, द्वितीयाह्निकमें ज्ञानसापेक्ष ज्ञान और ज्ञानसाधन इन्द्रिय, नवमाध्यायके प्रथमाह्निकमें अभाव और कई प्रत्यक्ष कारण, द्वितीयाह्निकमें लैङ्गिक या अनुमान और स्मृति, प्रभृति, दशमाध्यायके प्रथम आह्निकमें सुख, दुःख और द्वितीयाह्निकमें समवायि आदि कारणतय विवेचित हुआ है। प्रसङ्गकमसे और भी अनेक विषय इसमें आलोचित और सोमांसित हुए हैं। जैसे—

प्रथम अध्यायके प्रथम आह्निकमें धर्मनिरूपणप्रति-ज्ञादि, धर्मलक्षण, वेदप्रामाण्य, संस्थापन, प्रयोजन, अभिधेय सम्बन्धप्रदर्शन, पदार्थाद्देश, द्रव्यविभाग, गुण-विभाग, कर्मविभाग, द्रव्यसाधर्म्य, गुणसाधर्म्य और कर्मसाधर्म्यद्रव्यादितयके सामान्य लक्षण, द्रव्य और कर्मके सामान्य लक्षण।

द्वितीयाह्निकमें—कार्यकारण-भाव-विचार, सत्ता प्रभृति शक्तिधन, द्रव्यादिव्ये जातिका पार्थक्य संस्थापन, सत्ताका एकत्व संस्थापन और सत्ताका नानात्व निराकरण।

द्वितीयाध्यायके प्रथमाह्निकमें—पृथ्वीका लक्षण, जल-लक्षण, तेजोलक्षण, घायुलक्षण आदि, घायुसाधन प्रकरण, ईश्वरानुमान-प्रकरण और आकाश-निरूपण। द्वितीयाध्यायके द्वितीय आह्निकमें—गंधका स्वामाधिक औपाधिकत्व रक्षण, उष्णत्वपर्शके तेजोमातृनिष्ठत्व रक्षण, शीतत्वपर्शके जलमातृत्व रक्षण, कालनिरूपण, दिग्-लक्षणादि शब्दपरीक्षायां संशय-शुन्त्यादन और शब्द वायवस्थापनादि।

तृतीयाध्यायके प्रथमाह्निकमें—आत्मपरीक्षाप्रकरण, व्याप्तिज्ञानके श्यायोपशोभित्व, प्रसङ्गता हेतुत्वान्वयनिरूपण, आत्मसाधनमें ज्ञानहेतुता अनामासत्यत्व रक्षण, परात्मनानुमान प्रकरण। इसके द्वितीयाह्निकमें—मनो निरूपण, आत्मसाधन लिङ्गांतररक्षण, नित्यज्ञानके आत्मनानिराकरण और आत्मका नानात्व प्रकरण।

चतुर्थ अध्यायके प्रथम आह्निकमें परमाणुके मूलकारणता-वाच्यस्थापनादि, परमाणुकी अनित्यतादि निराकरण, परमाणुके अतोन्द्रियत्वोपपादनादि, गुणप्रत्यक्षताप्रकरण, परमाणुरसादिकी अप्रत्यक्षता, गुरुत्वादिका अप्रत्यक्षताप्रतिपादन, दो इन्द्रियप्राह्य गुणकथन, अयोग्यवृत्ति इन्द्रियका अप्रत्यक्षत्व प्रतिपादन, सत्ता और गुणका सर्वेन्द्रिय प्राह्यत्व-प्रतिपादन ।

चतुर्थ अध्यायके द्वितीयाह्निकमें—अनित्यद्रव्यविभाग, शरीरका चतुर्भौतिकत्व, पाञ्चभौतिकत्वका निराकरण, शरीरके भूतज्ञय आरब्धताका निराकरण; शरीरविभाग, अयोगिज शरीरविशेषमें उत्पत्तिप्रकार, अयोगिजशरीर विशेष पद्विमानाधिकथन ।

पञ्चमाध्यायके प्रथम आह्निकमें—कर्मपरीक्षा आरम्भ, प्रवहनिष्ठाया कर्मप्रतिपादन चेष्टाधीन कर्मप्रतिपादन, चेष्टा व्यतिरेकमें जायमान कर्मप्रतिपादन प्रतिबन्धकके अभाव सहकृत गुरुत्वके पतनकारणत्व, लोभ्यादिक्रियाविशेषमें हेतुविशेषकथन, आततायिपञ्जनक कर्ममें पुण्यपापहेतुत्व, यत्नाधीन कर्म, चाणक्षेपादि स्थलमें उपरम तक कर्मोंके नानात्व, वेगजनक कर्म, वेगनाशके वाद शरीरादि पतनका कारण ।

पञ्चम अध्यायके द्वितीय आह्निकमें नोदनादिकी (संयोग-विशेषके) कर्म हेतुता, भूकर्मपादिका हेतुविशेष, द्रवद्रव्य, कर्मपरीक्षा, जलाविस्पन्दनकी हेतुता, पृथ्वीस्थ जलके औदुर्ध्वगमनकी हेतुता, वृक्षमूलमें निक जलसे वृक्षके भीतरमें ऊदुर्ध्वगमनका हेतु, हिमकरकादिकी उत्पत्तिका प्रकार, चक्रनिर्घोषका हेतु, दिग्दोहककादिका हेतु, ऊदुर्ध्वज्वलनादिका हेतु, इन्द्रियसंयोगजन्य मनका कर्महेतु, मरणके समयमें मनुके देहान्तरमें प्रवेश, अन्धकारकी अभावस्वरूपता, आकाशादिकी निष्क्रियता, गुणादिके असमवायि-कारणत्व इत्यादि । कणाद्रसूत्रके इस प्रथम पांच अध्यायमें पदार्थविज्ञान-सम्बन्धमें आलोचित हुआ है । सुतरां इन पांचों अध्यायोंको हम पदार्थविज्ञान या Physics कह सकते हैं । अवशिष्ट पञ्चाध्यायों में धर्मविज्ञान Theology, मनोविज्ञान (Metaphysics), व्याय (Logic) और स्थान स्थानमें पदार्थविज्ञानका आभास मिलता है ।

गोचे किञ्चित् विस्तृतरूपसे इनका उल्लेख किया जाता है । जैसे—पञ्चाध्यायके प्रथमाह्निकमें वेदका प्रागोप्य उत्पादन, धर्मादिके खोयाधिकरणमें स्वर्गादि-जनन, श्राद्धादिमें दुष्ट ब्राह्मण-भोजनका कलाभाव, दुष्ट ब्राह्मण-लक्षण, दुष्ट ब्राह्मण द्वारा कर्मबाधित होनेसे पुनराय अच्छे ब्राह्मणों द्वारा उस कर्मको इति कर्त्तव्यता ।

पञ्चाध्यायके द्वितीय आह्निकमें—वैधकर्मकाल विवेचना, अदृष्टफल कतिपय कर्मप्रदर्शन, धर्मसाधन कथन, देशनिदान, धर्मादिका प्रत्येकभाव-निदान, मुख्योपाय कथन ।

सप्तमाध्यायके प्रथम आह्निकमें—नित्य रूपकादिकथन, पार्थिव परमाणुरूपपादिका पाकजत्वसाधन, परिमाणपरीक्षा, परिमाणमें अनित्यता, आकाशादिका परिमाण, मनमें महत्त्वका अभाव, दिगादिका परम महत्त्व ।

सप्तमके द्वितीय आह्निकमें—संख्यापरीक्षा, पृथक्त्व-परीक्षा, गुणादिका निःशङ्कत्व, गुणादिका एकत्व स्थाल कर बुद्धिके भ्रममात अवयव-अवयवोका अभेद निराकरण, संयोगपरीक्षा, पदपदार्थके साङ्केतिक सम्बन्ध-साधन प्रकरण, परत्व अपरत्व-परीक्षा, समवायपरीक्षा आदि । इसके बाद अष्टम अध्यायसे हम वैशेषिकसूत्र मनोविज्ञान (Meta-physics) और तर्कशास्त्रकी (Logic) आलोचना देखते हैं ।

अष्टमाध्यायके प्रथम आह्निकके आरम्भमें ही बुद्धिपरीक्षा आरम्भ हुई है । पाश्चात्य-मनस्तत्त्वमें (Sensation) या इन्द्रियजन्य उपलब्धि (Perception) या बुद्धिजन्य उपलब्धि (Intellection) या ज्ञानविशेषजन्य उपलब्धि की आलोचना इस अध्यायमें हम तृतीयाकारमें देखते हैं । प्रत्यक्षहेतु सन्निकर्षविशेषमें इनके बाह्य विषयका विशेषत्व और अर्थपदपरिभाषा इस अष्टमाध्यायके प्रथम और द्वितीय आह्निकमें आलोचन हुई है ।

नवमाध्यायके प्रथम आह्निकमें—अभावप्रत्यक्षकथन का भूमिकाध्वंस, प्रत्यक्ष सामग्रीकथन, प्रागोप्यमें इसका अतिदेश, अन्वयन अभाव प्रत्यक्षकार, योग्य सन्निकर्षजन्य प्रत्यक्षकथन इत्यादि । नवमाध्यायके

द्वितीयाह्निकमें ऐन्द्रिकज्ञानरूपण शब्दबोधको अनुमितिमें अन्तर्भाव, उपमिति आदिकी अनुमितिमें अन्तर्भाव, स्मृतिनिरूपण, स्वप्नहेतुनिरूपण, स्वप्नान्तिक ज्ञानहेतु कथन, भ्रमज्ञानका हेतुत्व, अविद्यालक्षण, विद्यालक्षण, आर्षज्ञानविशेषका हेतुकथन इत्यादि ।

व्यासाध्यायके प्रथमाह्निकमें—भुवन्दुःखका भेद प्रतिपादन, इनका अन्तर्भावकथन, शरीर अवयवका परस्पर भेदसंस्थापन इत्यादि । इस अध्यायके द्वितीय आह्निकमें त्रिविध कार्योंके विविध विवेचन और वेदके प्रामाण्य संबंधमें दृढ़ता-सम्पादन इत्यादि विषयक सूत्र हैं । ये सब सूत्र, भाष्य, वार्त्तिक, पृत्ति और टीका आदि ग्रन्थोंमें बहुलरूपसे विस्तृत हो वैशेषिकदर्शन, भारतीय परिद्धतोंके ज्ञानगौरवकी समुच्चल विजय-पताका अथ भी समग्र सुसम्पन्न जगत्में उड़ा रहा है ।

इस दर्शनमें उक्त विषय विशेषमात्रसे आलोचित हुए हैं । हम यहाँ संक्षेपता वैशेषिकसूत्रोंके विषयोंकी आलोचना कर रहे हैं । इस दर्शनमें सप्त पदार्थोंका उल्लेख किया गया है । उनमें सूत्रोद्दिष्ट द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय छे छः भावपदार्थ और अनुद्दिष्ट सप्त पदार्थ अभाव है, ये कई पदार्थ नैवायिकोंके भी अविद्य हैं । भावपदार्थ छः हैं, अभाव एक, ये सात पदार्थ वैशेषिकोंके द्वारा स्वीकृत हैं । नैवायिक किन्तु योद्ग पदार्थका उल्लेख करते हैं । आज कलके नैवायिक वैशेषिक द्वारा स्वीकृत सात पदार्थोंको स्वीकार कर प्राचीन न्यायके उक्त योद्ग पदार्थ इस सात पदार्थके अन्तर्भूत या अन्तर्निविष्ट समझते हैं । प्रज्ञस्तवादाचार्योंके प्रथमों और उपमानचिन्तामणिमें भी नैवायिकोंके योद्ग पदार्थ इन सात पदार्थोंके अन्तर्निविष्ट कहके गिने गये हैं ।

२०२ ।

जिस पदार्थमें कोई न कोई एक गुण अवश्य हो हो, उसका नाम द्रव्यपदार्थ है । अथवा जिस पदार्थमें द्रव्यत्व जाति है, उम्कता नाम द्रव्य है । जो सामान्य या जातिगुणवृत्ति नहीं, अथवा गगनवृत्ति है, यह सामान्य या जाति ही द्रव्यत्व नामसे अभिहित है । उसा नामसे एक सामान्य जाति है, ये सामान्य गगनवृत्ति है सदा, किन्तु गुणवृत्ति होनेसे यह द्रव्यत्व नहीं ।

द्रव्यपदार्थ ६ तरहके हैं,—क्षिति, अणु, तेजः, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मनः । क्षिति, अणु, तेजः, वायु और आकाश ये पांच द्रव्य पञ्चभूत नामसे अभिहित हैं । अर्थात् इन सब द्रव्योंको साधारण संज्ञा भूत है । जिसमें यहिरिन्द्रियप्राण विशेष गुण हो, उसको साधारण संज्ञा भूत है । अर्थात् यहिरिन्द्रिय प्राण विशेष गुणविशिष्ट वस्तु ही भूत नामसे अभिहित है । पृथ्वीका गन्ध, जलका रस, तेजका रूप, वायुका स्पर्श, आकाशका शब्द विशेष विशेष गुण है । अथच ये सब गुणोंके यहिरिन्द्रियके प्राण हैं । सुतरां पृथ्वी, जल, तेजः, वायु और आकाश ये भूतके नामसे अभिहित हैं । ज्ञान आत्माका विशेष गुण है सदा; किन्तु मनोप्राण है, यह यहिरिन्द्रियका प्राण नहीं है । इसीलिये आत्माको भूत नहीं कहा जाता ।

क्षिति पदार्थ दो तरहका है—नित्य और अनित्य । परमाणु ही क्षितिका नित्यपदार्थ है, इसकी उत्पत्ति या विनाश नहीं; परन्तु यहाँ स्वतःसिद्ध है । सिद्धा इतके समस्त पृथ्वी ही अनित्य है । अन्यान्य सब तरहके पार्थिव पदार्थोंकी उत्पत्ति और विनाश होता है । परमाणु प्रत्यक्ष नहीं, वरं अनुमानप्राण है ।

सावयव क्षिति पदार्थोंका विभाग करते करते सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतरसे सूक्ष्मतर अवयवमें उपनीत होने पर भी ऐसा अवयव उपस्थित होता है, कि जिसका विभाग करना एकाग्र असंभव हो जाता है । इस तरह जिसके विभागकी किसी तरह कल्पना नहीं की जा सकती अर्थात् जो नितांत ही अविभाज्य हो जाता है, वही परमसूक्ष्म या परमाणुके नामसे अभिहित होता है । अवयव संयोग ही उत्पत्तिका कारण है । परमाणुका अवयव नहीं है । सुतरां न इनकी उत्पत्ति ही है और न मनका विनाश ही है ।

अनित्य पृथ्वी भी तीन प्रकारकी है—शरीर, इन्द्रिय और विषय । शरीर भोगवस्तु, शरीरको छोड़ किसी तरह भोग नहीं हो सकता । इन्द्रियाँ उसी भोगकी साधनस्वरूपा हैं । विषयकी उपलब्धि ही भोग है । यह शरीर भी दो तरहका है—योनिज और अयोनिज । शुक्रजोनिज संयोगजय शरीर योनिज और इसके

सिवा अयोनिज हैं । योनिज शरीर भी दो तरहका है,—जरायुज और अण्डज । मनुष्यादिका शरीर जरायुज, पक्षी और सर्पादिका शरीर अण्डज है । अयोनिज शरीर भी दो तरहका है,—स्वेदज और उद्भिज । मच्छह आदिका शरीर स्वेदज और वृक्षादिका शरीर उद्भिज है । शास्त्र पढ़नेसे मालूम होता है, कि वृक्षादिमें जीवात्मा हैं । पापकर्म विशेषके फलस्वरूप जीव स्थावर योनि प्राप्त होता है ।

वृक्षादिमें जीवात्मा है, इसके प्रमाणमें शङ्करमिश्रका मत लिखा जाता है । “वृद्धिक्षतभन्नसंरोहणे च” अर्थात् वृक्षादिका कोई स्थान भन्न तथा कोई स्थान क्षत होनेसे समय आने पर उसका जोड़ा लगता तथा वह क्षत शुष्क हो जाता है । इसीलिये उसको भन्नक्षत संरोहण कहते हैं । अतएव वृक्षादिमें भी जीवनीशक्ति है, यह इससे जाना जाता है । वृक्ष आदि अपनी पुष्टिके उपकरण रस आदिका आकर्षण कर परिपुष्ट होते हैं । यह भी इनकी जीवनीशक्तिके अस्तित्वके परिचायक हैं । सिवा इसके देवर्षियोंके और नारकीके शरीर भी अयोनिज हैं ।

प्राणैन्द्रिय पार्ष्णि और गन्धका अनुभव होनेसे यह गन्धकी उपलब्धि-क्रियाविशेष है । यह क्रिया गन्धकी है, इसिलिये यह कर्म भी पार्ष्णि है ।

स्नेहगुणविशिष्ट पदार्थ ही जल है । जिस गुणके प्रभावसे चूर्ण पिण्डकारमें परिणत हो सकता है, उस गुणविशेषका नाम स्नेह है । स्नेहगुण 'स्निग्धं जलं' जल स्निग्ध है, यह बात अनुभवसिद्ध है । जलके सिवा अन्य किसी द्रव्यमें स्नेहगुण नहीं । तैलादिका स्नेह गुण भी जलीय है । तैलादिका स्नेह उत्कृष्ट है, इसलिये यह दहनके प्रतिफूल है । जलको एक और संज्ञा है—यह यह कि जिस द्रव्यमें जलत्व जाति है, उसका नाम जल है । पृथ्वीवृत्तिविवर्जित है ; फिर भी हिमकरकादिपृत्ति-जातिविशेषका नाम जलत्व है । सत्ता और द्रव्यत्व जाति पृथ्वीवृत्ति, तेजस्त्व आदि जाति हिमकरकादिपृत्ति नहीं है, इसलिये उनका जलत्वमें नहीं लाया जाता । जल दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य । जलीय परमाणु नित्य है, उसको छोड़ कर सब

तरहका जल अनित्य है । अनित्य जल तीन तरहका है—शरीर, इन्द्रिय और विषय । घणुणलीकके जोधोंका शरीर जलीय है, यह शास्त्र पढ़नेसे मालूम होता है ।

तेजः—जिस द्रव्यमें रस नहीं है, फिर भी रूप है, उसका नाम तेजः है । पृथ्वी और जलमें रूप है, सही; किन्तु उनमें रस भी है, वायुपृथ्वीका रूप नहीं है । अथवा जिस द्रव्यमें तेजस्त्व है, उसका नाम तेजः है । केरकादिमें अमृत्ति है, फिर भी, विद्युदादिमें मृत्ति जातिविशेषका नाम तेजस्त्व है । तेजः दो प्रकारका है,—नित्य और अनित्य । परमाणुरूप तेजः नित्य है, इसको छोड़ कर सभी अनित्य हैं । अनित्य तेजः भी तीन तरहके होते हैं—शरीर, इन्द्रिय और विषय । सूर्यलोकस्थित प्राणियोंका शरीर तेजस हैं । चक्षु, रिन्द्रिय तेजस है । रूपमालके अभिव्यञ्जक है । अतएव यह भी तेजस है । शरीर और इन्द्रिय मित्र समस्त तेजः विषय कहे गये हैं ।

वायु—जिस द्रव्यमें रूप नहीं, स्पर्श है, उसका नाम वायु है । पृथ्वी, जल और तेजोद्रव्यमें रूप है, आकाशादि द्रव्योंमें स्पर्श नहीं है, इसीलिये वे वायुके नामसे अभिहित नहीं हो सकते । वायु दो प्रकारकी है,—नित्य और अनित्य । अनित्य वायु भी तीन प्रकारकी है,—शरीर, इन्द्रिय और विषय । वायुलोकस्थित जीवोंके शरीर वायवीय हैं । वृज्जनवायु अङ्गसङ्गी जलके शीतल स्पर्शकी अभिव्यक्ति करती, तामिन्द्रिय भी स्पर्श मालके अभिव्यञ्जक है, अतएव यह वायवीय है । शरीर और इन्द्रियको छोड़ सब वायुका साधारण नाम विषय है । जन्यद्रव्यमात्रमें ही पृथ्वी, जल, तेजः और वायु इन भूतचतुष्टयके साथ अत्याधिक परिमाणसे सम्बन्ध है, अतएव इस भूतचतुष्टय जन्य द्रव्यमात्र ही आरम्भक या समवायिकारण है ।

आकाश—शब्दाश्रय घन्तुका नाम आकाश है ; शब्दकी उत्पत्ति वायुसापेक्ष होने पर भी वायु शब्दका आश्रय नहीं । वायुका एक विशेष गुण स्पर्श है । वायु तब तक रहती है, तब तक उसका स्पर्श गुण भी रहता है । शब्द बँसा नहीं । वायु रहने पर भी शब्द नष्ट हो सकता है । वायुके विशेष गुण स्पर्शके साथ इम-

के इस तरह बोलक्षय्य रहनेसे शब्द वायुका विशेष गुण नहीं।

काल—जिस द्रव्यके द्वारा उपेष्टत्व-कनिष्ठत्व प्राप्त-हार निर्वाहित होता है, उसका नाम काल है। पूर्व-वर्ती कालमें उपेष्टन वाकि उपेष्ट और परवर्ती कालका उपेष्टन वाकि कनिष्ठ है।

दिक्—द्रव्य और गतिकत्व या नैकत्व और पूर्व-पश्चिम आदि वायव्यकारण कारण द्रव्य विशेषका नाम दिक् है।

आकाश, काल, दिक् प्रत्यक्ष नहीं। कार्य द्वारा अनुमेय है। ये प्रत्येक एक हैं, अनेक नहीं। एक होने पर भी उपाधि भेदसे भिन्न भिन्न हैं। घटाकाश, पटाकाश आदि आकाशका उपाधिक भेद है। क्षण, दिन और मास आदि भेदसे काल भी अनेक प्रकारका है। क्रियारूप उपाधिभेदसे इसका ऐसा भेद प्रतीत होता है। वस्तुतः काल एक है। इसी तरह दिक् भी एक है। उपाधिभेदसे यह पूर्व पश्चिमके नामसे पुकारा जाता है।

आत्मा—ज्ञानका आधार द्रव्य आत्मा है। आत्मा दो तरहकी है—परमात्मा और जीवात्मा। ईश्वरकी अनुमान द्वारा जाना जाता है।

एक देवता है, जो इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, वे और दूसरा कोई नहीं—एकमात्र ईश्वर हैं।

जीवात्मा—“मैं जानता हूँ” “मैं सुनता हूँ” इत्यादि मानस प्रत्यक्षसिद्ध होता है। किसी एक विशेष गुणके साथ जीवात्माका मानस प्रत्यक्ष होता है। जीवात्मा एक नहीं अनेक हैं या प्रति शरीरमें भिन्न भिन्न है। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, संघवा, परिमाण, प्रयत्नत्व, संयोग, विभाग, भावनारूपसंस्कार, धर्म और अधर्म जीवात्मके ये चोद्दह गुण हैं।

जिसके द्वारा जीवात्मा और तन्निष्ठ सुखदुःख आदिका अनुभव होता है, उसका नाम मन है। जीवात्मा भी अपने सुखदुःख मनके द्वारा प्रत्यक्ष करती है। इस कारण जैसे चक्षुःकादि चक्षुरिन्द्रियकी वरि-करण कहा जाता है, वैसे ही मनको भी मन्तःकरण या धन्तरिन्द्रिय कहते हैं।

रूप आदि विषयोंके साथ चक्षुः आदि इन्द्रियोंका

सम्पर्क या सम्म्यग् होने पर भी तत्तद्विषयकी उपलब्धि होती है। किन्तु एक समयमें रूप आदि पांच विषयोंके साथ चक्षुः आदि पञ्चेन्द्रियका सम्पर्क होने पर भी एक कालमें ही पञ्चेन्द्रियजनित चाक्षुःपादि पांच प्रकारके ज्ञान नहीं होते। केवल उनमें एक प्रकारका ज्ञान होता है। विषयके साथ इन्द्रियका सम्पर्क ही ज्ञानका साधन और पात्र ज्ञान ही एक समय होनेका कारण है, तब पांचों ज्ञान एक समय क्यों नहीं होते? इसके उत्तरमें कहना होगा, कि विषयके साथ इन्द्रियके सम्पर्कको छोड़ कर अन्य कोई सहकारी कारण भी है। जिसकी सम्पर्क होनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है, सम्पर्क ही उस समय ज्ञानका कारण है। अर्थात् जिस इन्द्रियके साथ भाग्य मनसंयोग होता है, वही इन्द्रियज्ञान प्रथम ही उत्पन्न होता है। जिस इन्द्रियके साथ मनसंयोग नहीं होता या पीछे होता है, विषय सम्पर्क रहने पर भी यह इन्द्रियजन्य ज्ञान उस समय भी नहीं होता। यह सर्ववादिसम्मत स्वीकार्य विषय है।

जिसके धर्म हैं, वह धर्मों हैं, मनका धर्म अणुत्व है, सुतरां मन धर्मों है। जिस प्रमाणके बलसे अस्तित्व स्वीकार किया जाये, उसका नाम धर्मिप्राहक प्रमाण है। जिस प्रमाणके बलसे मन सिद्ध हुआ है, उस प्रमाणके बलसे मनका अणुत्व भी सिद्ध हुआ है, अतएव मनके महत्त्वकी बलाना की नहीं जा सकती। मनके महत्त्वकी कल्पना करनेसे ही धर्मिप्राहक प्रमाणके दिगमें विरोध होता है।

इस पर आपत्ति हो सकती है, कि नर्त्तकी नृत्य करनेके समय दर्शकोंके दर्शन, गेयपदका स्मरण, वाद्य-शब्दका श्रवण, यस्त्राञ्जलका स्पर्शन और पादन्वय, हस्तचालन, शिरश्चालन आदि कार्य एक समयमें करती है। अतएव मन अणुपरिमाण होनेसे एक समयमें उनका एकाधिक इन्द्रियका संयोग किसी तरह हो नहीं सकता। सुतरां मनके अणुत्व स्वीकार करनेसे एक समयमें एकाधिक ज्ञान या क्रिया कभी भी नहीं हो सकती।

इस आपत्तिके खण्डनमें धत्तव्य यह है, कि मन गति शीघ्र शीघ्र सञ्चरणशील है। अतएव मनमापत्तसे एका-

धिक इन्द्रियके साथ मनका संयोग होता है, इससे योगपट्टय भ्रम होता है। अर्थात् एक समयमें एकाधिक ज्ञान और एकाधिक क्रियाये हो रही हैं, ऐसा भ्रम होता है। वस्तुतः ज्ञान और क्रियापरम्परा कमशः होती रहती है। एक समयमें नहीं होती। सुतरां एक इन्द्रियके साथ संयुक्त हो कर दूसरे क्षण ही और एक इन्द्रियके साथ संयुक्त होता है। किन्तु मनका संयोगक्रम और उसके लिये ज्ञानकर्म इतना दुर्लभ है, कि वह बोधगम्य नहीं होता, इसीलिये एक समयमें एकाधिक ज्ञान होता है। ऐसा जान पड़ता है। यह जानना या ऐसा विवेचन भ्रमात्मक है। शीघ्र शीघ्र ज्ञान होता है, इससे क्रमिक ज्ञानका योगपट्टय भ्रम अन्यत्र भी होता है।

यदि पक्षपत्रें एकके बाद दूसरा रख कर एक सूत्रकी नेत्रसे छेद दिया जाये, तो कहा जाता है, कि एक बार ही संभो पत्र छेदे गये। किन्तु ऐसी बात नहीं, यह एक समयमें ही नहीं छेदे गये वरं सबसे ऊपरवाला पत्र ही पहले छेदा गया, इसके बाद उसके नीचेका, पीछे उसके नीचेका, इसी तरह एकके बाद दूसरा छेदा गया। किन्तु छेदनेका काम शीघ्रतापूर्वक हुआ है, इसीलिये क्रमलक्षणा बोध नहीं होता। इसीलिये येन या छेदनेकी क्रियाका योगपट्टय भ्रम होता है।

कणादसूत्रके तीसरे अध्यायके दूसरे आह्निकमें इसी तरह मनेापरीक्षाको अन्तारणा की गई है। उपस्कारकार शङ्करमिश्रने इस आह्निककी व्याख्या उदाहरण आदि दे कर अतीव प्राञ्जल भाषामें की है। उन्होंने दीर्घा-गुलो (लम्बाकारका विष्टक) भक्षणका उदाहरण दे कर कहा है, कि इस सफलमें यद्यपि ऊर, रस, मन्थ, स्पर्श, आदिकी युगपत् प्रतीति हो तथापि यह मनका अनुभवसाय (Gradual perception) मात्र है, क्योंकि मन शीघ्र सञ्चारी है। इस शीघ्र सञ्चालनके निमित्त युगपत् विविध इन्द्रियज्ञानकी प्रतीति होती है। दर्शनशास्त्रमें यह घटना योग्यशान्तिमानके नामसे अभिहित की जाती है। भगवान् सूत्रकार भी इस आह्निकके तीसरे सूत्रमें कहते हैं—

"प्रवृत्तयोग्यत्वात् शान्तियोग्यत्वाच्चेकम्।"

प्रत्येक देहमें एक मनके सिवा बहुतेरे मन नहीं हैं। इस तरह युक्ति द्वारा प्रमाणित किया गया है, कि एक शरीरमें एकाधिक मन नहीं है। अन्यथा कल्पना औरवयोपमसङ्ग होता है। इस तरह योगपट्टय भ्रान्तिका उत्कृष्ट उदाहरण आज कलका वायस्कोप है। पाठक शङ्करमिश्रके उपस्कारमें और भाषापरिच्छेद नामक ग्रन्थमें वैशेषिकोक्त 'इन नौ द्रव्योंका सविशेष विचरण सहज ही देख सकेगे।

इस दर्शनके मतसे चार तरहके परमाणु और आकाशादि पञ्चद्रव्य नित्य हैं। सिवा इनके द्वायुक्त अवधि महाभूत चतुष्टय अर्थात् क्षिति, जल, तेजः और वायु अनित्य है। सब अनित्य-द्रव्योंकी सृष्टि और संहार या प्रलयका क्रम प्रदर्शित हो रहा है। प्रलोकके देहविसर्जनके समय समागत होने पर सब भुवनोंके अल्पिपति महेश्वरकी सञ्जिहीर्षा अर्थात् संहारेच्छा प्रादुर्भूत हुई। इसके बाद समस्त जीवात्माके अट्टष्टके वृत्तिनिरोधहेतु अट्टष्ट द्वारा सृष्टि और स्थितिके निमित्त अट्टष्टका कार्य प्रतिबद्ध होता है। प्राणियोंके भोगके लिये जगत्की सृष्टि और स्थिति है। भोग प्रयोजक या भोगहेतु अट्टष्ट, प्रलयप्रयोजक अट्टष्ट द्वारा प्रतिबद्ध होने पर भोगप्रयोजक अट्टष्ट फिर भोग सम्पादन कर नहीं सकता। उस समयके प्रलयनिश्चयन अट्टष्टयुक्त प्राणियोंके संयोगमें शरीर और इन्द्रियके आरम्भक परमाणुओंसे कर्माकी उत्पत्ति होती है। इस कर्मके कारण आरम्भक संयोगकी निवृत्ति हो जाती है। उस समय देह और इन्द्रिय विनष्ट हो कर तद्धारम्भक परमाणुमें कर्म हो कर आरम्भक संयोग निवृत्तिक्रमसे महापृथ्वी नष्ट हो जाती है। इस प्रणालीसे पृथ्वी पर जल, जल पर तेज, तेज पर वायु नष्ट होती है। तब चतुर्विध महाभूतके चतुर्विध-परमाणुमात्र विभक्त-रूपसे अवस्थान करता है तथा धर्म, अधर्म और भाव-नाशक संस्कारयुक्त सब आत्मा और आकाशादि नित्य-पदार्थ अवस्थित रहते हैं।

प्रलयकालके अवस्थानमें प्राणियोंके भोगके लिये महेश्वरकी सृष्टि करनेकी इच्छा होती है। तब प्रलयहेतु अट्टष्टके होनेसे यह फिर भोगप्रयोजक अट्टष्टकी वृत्ति निरोध नहीं कर सकता। सुतरां फलेशुभल होता है।

उस अट्टपयुक्त भात्माके संयोगसे प्रथमतः वायवीय परमाणुमें कर्मको उत्पत्ति और इन सब परमाणुके संयोगसे द्वाणुकादि क्रमसे महान् वायुकी उत्पत्ति होती है और यह अनवरत कम्पमान रह कर आकाशमें अवस्थित रहती है। तत्पर्यन्त वायुका स्वभाव है। इस समय किसी दूसरे द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती, जिसके द्वारा वायुका वेग प्रतिदत्त हो सके। सुतरां वायु निवृत्त कम्पमान अवस्थामें रही। वायुकी सृष्टिके बाद इस तरहके जलीय परमाणुमें कर्मको उत्पत्ति हो कर यह भी द्वाणुकादि क्रमसे महान् सलिल राशि हुई और वायु वेगसे कम्पमान हो वायुमें रही। इसके बाद इस क्रमसे पार्थिव परमाणु संयोगसे निविड्वायव महापृथ्वी हुई और यह भी इसी जलराशिमें रही। इस तरह दीर्घमान महातेजोराशि समुत्पन्न हो कर इस जलराशिमें ही अवस्थित रही। पीछे महेश्वरके संकल्पमात्रसे प्राणान्ड और प्रलाका उत्पत्ति हुई।

प्राणी जैसे दिन भर परिश्रम कर रातको विश्राम करने हैं, उसी तरह जगत्की सृष्टिके समय पुनः पुनः दुःखादि भोगमें परिक्रिष्ट प्राणियोंके कुछ कालके विश्रामके लिये महेश्वरके अभिप्रायसे प्रलयका आविर्भाव होता है। इसीलिये पुराणादिमें सृष्टि और प्रलय रात और दिनरूपसे कौचित्त हुए हैं। देखते हैं, कि घट आदि पार्थिव वस्तु पूर्णोत्कृत होती हैं, पर्यंत भी पार्थिव है, अतएव वे भी एक दिन पूर्णोत्कृत होंगे। जलाशय सूख जाते हैं। समुद्र भी एक जलाशय ही है। प्रदीप तेज है, वे भी बुझ जाते हैं। इस तरह प्रलयके साधक बहु प्रकार अनुमान प्रदर्शित हुए हैं। जागतिक वस्तुमात्र ही स्थिति, अणु, तेज और वायु इस भूतचतुष्टयका कार्य हैं। आकाश किसी द्रव्यका आरम्भक नहीं। किन्तु आकाश विभु और सर्वगत है। जागतिक कोई पदार्थ ही आकाशसम्पर्कवर्जित नहीं। सुतरां जागतिक पदार्थ निर्वाचन करनेके समय आकाशको छोड़नेसे नहीं बनता और भी कहा जा सकता है, कि कणाद् आदिके मतसे आकाश शब्दका आश्रय है। आकाशके सिवा शब्द ही नहीं सकता। सुतरां जगत्में आकाशको उपयोगिता निःसन्देह है।

कणाद्ने काल और अद्क पदार्थ माना है। यह क्यों मानना होगा ? इसका भी उर्ध्वनि कारण दिखाया है। किन्तु इस विषयमें स्पष्ट कहनेका यद्यपि कारण है, कि काल और दिक् पदार्थमें कणाद्के मतसे पञ्चभूतोंके अतिरिक्त ही या नहीं ? कणाद्ने पहले पृथ्वी, अणु, तेज और वायुके लक्षण निर्दिष्ट और अवरयस्य वायु पदार्थके साधन और उसके नानात्वसंस्थापन पूर्वाङ्क शब्द और गुणके अधिकरणरूपसे आकाशके साधन या अनुमान किया है और आकाश एक है, कई नहीं, यह भी प्रतिपादन किया है। वायुका लक्षण स्पर्शविशेष, वायुसाधन प्रसङ्गमें परीक्षित हुआ है। इसके बाद, पृथ्वी, अणु और तेजके लक्षण यथादि द्वारा परीक्षा कर काल और उन्नता एकरव और दिक् तथा उसका एकरव संस्थापन कर एक पदार्थके भी कार्यभेदमें औपाधिक भेद होता है। इससे दिक्पदार्थ एक होने पर भी उपाधि भेदसे पूर्ण दक्षिणादि व्यवहार भेद सम्पादन कर आकाशके विशेष गुण शब्दकी परीक्षा की गई है। इस समय विवेक्य चिन्त्य यह है, कि दिक् पदार्थकी तरह काल पदार्थमें भी भूत, भविष्यत् और प्रसमान भेदसे औपाधिक नानात्वका व्यवहार प्रचुर परिमाणसे है। सूत्रकारने भी भविष्यत् आदिका व्यवहार किया है।

आकाशके भी घटा हाश, महाकाश इत्यादि रूपसे औपाधिक भेदका अभाव नहीं है। ऐसी अवस्थामें कणाद्ने केवल दिक्पदार्थमें ही औपाधिक भेद क्यों प्रदर्शन किया ? काल और आकाशके औपाधिक भेद क्यों प्रदर्शन नहीं किया ? यह प्रश्न भाव ही भाव उठता है। केवल यह नहीं, काल और आकाशके औपाधिक भेद नहीं करनेसे सूत्रकारकी ग्युनता भी अपरिहार्य हो उठती है। किन्तु जरा विशेष रूपसे प्रमाण बनानेसे मालूम होता है, कि सूत्रकारका अभिप्राय स्वतन्त्र है। कणाद्के मतसे आकाश, काल और दिक् एक पदार्थ है। कार्यभेदसे केवल नाम भेदमाल है। जैसे एक ही व्यक्ति प्रतियोगिभेदसे पिता, पुत्र, ब्रह्मा, वस्तु आचार्य आदि नाना आख्याओंसे भाष्यवात हीना है, उसी तरह एक ही पदार्थ कार्य भेदसे आकाश,

काल और दिक् नामसे अभिहित होता है। यद्यार्थोंमें काल और दिक् आकाशसे स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं।

कणादने आकाशका अनुमान कर पृथिव्यादि लक्षणको या विशेष विशेष गुणोंकी परीक्षा कर "तत्राकाश न विद्यते" इस सूत्र द्वारा दिखाया है, कि ये आकाशगत नहीं हैं। पृथिव्यादिके लक्षण आकाशमें नहीं हैं अर्थात् आकाश पृथिव्यादिके अन्तर्गत ही नहीं सकता। यह पृथ्वी आदिसं सम्पूर्ण स्वतन्त्र पदार्थ है। पीछे आकाशके प्रकारभेदस्वरूप काल और दिक् पदार्थ और उनका एकत्व निरूपण कर आकाश-निरूपणकी पूर्णता सम्पादन कर कार्य भेदसे एक पदार्थके नानात्व अङ्गीकार कर उदाहरण स्वरूप दिक्पदार्थके कार्यभेदसे नानात्व दिखाया है। इस तरह उन्होंने आकाश पदार्थका चक्षुर विषय अन्त कर आकाशमें विशेष गुण शब्दकी परीक्षा की है। क्योंकि धर्मिनिरूपणके बाद धर्मिनिरूपण सर्वथा समीचीन है। सूत्रकारके इस तरह अभिप्राय न होनेसे पञ्चभूत निरूपणके बाद पृथिव्यादि भूत चतुष्टयके गुणकी परीक्षा और इसके बाद काल और दिक् निरूपण कर आकाशगुण शब्दकी परीक्षा करना असम्भव और असङ्गत हो जाता है। अर्थात् पञ्चभूतका गुण परीक्षामें काल और दिक् पदार्थका निरूपण किसी तरह हो सङ्गत नहीं हो सकता।

काल और दिक् धात्विक आकाशसे अतिरिक्त नहीं; सूत्रकारके इस तरह अभिप्राय वर्णन करनेका और भी विशिष्ट हेतु है। यह यह, कि शब्दके अधिकरण या आश्रय रूपसे आकाशका जो अनुमान किया गया है, उसकी प्रणाली में प्रकाशित हुई है। यथा—

"कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः।"

"कार्यन्तरामादुर्भावाद्य शब्दः स्वशक्तमगुणः॥"

इन दो सूत्रों द्वारा पृथ्वी, अप्, तेजः और वायुके गुण नहीं हो सकते, यह समर्थन किया गया। क्योंकि कार्यभूत पृथिव्यादिका गुण उसका कारण पूर्वक होता है, यह देखा गया है। योणा, वेणु और मृद्भू आदिके शब्द कारण गुणपूर्वक नहीं। क्योंकि योणादिके शब्द एक समान नहीं होता। योणादिके शब्द कारण-

गुणपूर्वक होनेसे रूप आदिकी तरह अच्छा खराब भाव भी उभरमें नहीं हो सकता।

उक्त दो सूत्रों द्वारा शब्द पृथिव्यादिके गुण नहीं हैं। यह स्थिर कर

"परत्र समवायत् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः।"

इस सूत्रसे शब्द आत्मा या मनका गुण नहीं है। यह समर्थन किया गया है। क्योंकि आत्माके गुण छान सुखादि, आत्मसमवेत है, किन्तु शब्द आत्मसमवेत नहीं। सुतरां शब्दमें आत्माका गुण नहीं हो सकता। शब्द आत्मसमवेत होनेसे "अहं जानामि" "अहं सुखो" में जानता हूँ, मैं सुखो हूँ आदिकी तरह "अहं शब्दवान्" में शब्दयुक्त हूँ, सुखमें शब्द हो रहा है। इस तरहकी प्रतीति होती, किन्तु ऐसा नहीं होता। अतएव शब्द आत्माका गुण नहीं। शब्द मनका भी गुण नहीं। कारण शब्दका प्रत्यक्ष है। मनका गुण होनेसे प्रत्यक्ष ही नहीं सकता। क्योंकि मन अणु है।

इन तीन सूत्रों द्वारा शब्द, पृथ्वी, अप्, तेजः, वायु, आत्मा और मनके गुण हो नहीं सकते, यह प्रतिपन्न करके ही सूत्रकारने कहा है—"परिशेषालिङ्गमाकाशस्य" अर्थात् शब्द जब पृथ्वी, अप्, तेजः, वायु, आत्मा और मनके गुणसे नहीं हो सकता है, तब परिशेषयुक्त यह आकाशके ही गुण होते हैं। इससे विलक्षण रूपसे समझमें आता है, कि काल और आकाशसे अतिरिक्त नहीं। ऐसा होनेसे शब्द क्यों काल और दिक्के गुण नहीं हो सकते, यह समझ देना अवश्य कर्तव्य था। यह न कर "परिशेषालिङ्गमाकाशस्य" यह बात कहना नितार्थ असङ्गत और असम्भव हो जाता है।

काल और दिक् आकाशसे अतिरिक्त नहीं हैं यह कल्पनामात्र है, ऐसा समझ उपेक्षा करना असङ्गत नहीं होगा। कारण सांख्यवादियोंके मतसे भी दिक् आकाशसे अतिरिक्त नहीं।

"दिक् कालावाकाशादिभ्यः" यह सांख्यसूत्र ही इसका उत्कृष्ट प्रमाण है। दिक् और काल आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। नैयायिकने और नो भागे बढ़ कर कहा है, कि आकाश भी ईश्वरसे अतिरिक्त नहीं।

गुण।

जिस पदार्थमें गुणत्व जाति है, उसका नाम गुण

है। संयोग और विभाग इन दोनोंकी समवेत सत्ताके निम्न जातिका नाम गुणत्व है। संयोगत्व और विभागत्व यथाक्रम संयोग और विभाग वे दोनों समवेत नहीं हैं। सत्ता जाति संयोग विभाग दोनों समवेत होने पर भी सत्ता निम्न नहीं। इसीलिये उनको गुणत्व कहा जाता है।

गुण चोक्षोस तरहके हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सांगोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, दृक्, सुख, दुःख, इच्छा, छेष, यत्न, गुणत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म और अधर्म।

शब्द दो तरहका है—ध्वनि और वर्ण। मृदङ्ग आदिके शब्दका नाम ध्वनि है। कण्ठ और तालुप्रदेशमें आम्बन्तरीण वायुके अमिघातसे जो शब्द होता है, उसका नाम वर्ण है। एकत्वसे पराद्धतक संख्या प्रकार है; उसमें द्वित्वादि संख्या अपेक्षा बुद्धि ज्ञय है; अपेक्षा बुद्धिका नाश होने पर हा द्वित्वादि का विनाश है। बहुत एकत्वविषयक बुद्धिका नाम अपेक्षाबुद्धि है। परिमाण चार प्रकारका है, अणु, मद्ध, हृष्य और दीर्घ। शङ्कर मिश्रके मतसे प्रत्येक वस्तुमें द्विविध परिमाण हैं। जिसमें अणुत्व परिमाण है, उसमें हृष्यत्व परिमाण भी है। इस तरहका महत्त्व और दीर्घत्व समदेशवर्त्तों है। परमाणु और मना पदार्थोंमें परम अणुत्व अथवा अणुपरिमाणके चरम उदर्य और आकाश, काल, दिक् और आत्मानमें चरमोदर्य या परम महत्त्व है। जिस गुणके अनुसार घटसे पट पृथक्, पृथ्वीसे जल पृथक् है। इत्यादि प्रतीति होती है, उसका नाम पृथक्त्व है। एतादृिक जो सब वस्तुएं परस्पर (स्वायो-सम्बन्धका शून्य हो कर भी) मिलितमायसे रहती हैं, उनके सांबन्धका नाम संयोग है। कार्य और कारण कभी भी सांबन्ध-शून्य नहीं होता, इसीलिये उनका सांबन्ध संयोग नहीं है, यह समवाय है। संयोग तीन प्रकारका है—अन्यतरं कार्यज्ञय, उभय कार्यज्ञय और संयोग ज्ञय। जिन दो वस्तुमात्रिका संयोग होता है, उनमें केवल एक विद्याके लिये जो संयोग है, यह अन्यतर कार्य ज्ञय है। जैसे पत्त पर किसी पशुके पैडन पर पतल और पशुमें जो संयोग होता है, यह केवल पशुके क्रियाज्ञय है।

युद्धके समयमें मल्लद्वय (दो पहलवानों)में जो संयोग होता है, यह उभय क्रियाज्ञय है। हस्तस्वित्त कुडारके साथ घृक्ष संयोग होने पर उसमें घृक्ष और हाथका भी परस्पर संबंध होता है, इसमें सन्वेद नहीं। यह हस्तघृक्ष-संयोग कुडारघृक्ष संयोगज्ञय है।

संयोगके प्रतिबद्धो या प्रतिपक्ष अर्थात् जो गुण उत्पन्न होनेसे संयोग विनष्ट होता है, उसका नाम विभाग है। विभाग भी संयोगकी तरहसे तीन तरहका है—पर्वतसे पक्षीका विभाग, पक्षीके कर्म ज्ञय है। मल्लद्वय और मेघद्वयको विभाग दोनों कर्म ज्ञय है। घृक्षसे हाथका विभाग घृक्षसे कुडार विभागज्ञय है। परस्पर और अपरत्व कालिक और दैशिकभेदसे दो प्रकारका है। कालिक परत्व और अपरत्व उपेक्ष्य और कनिष्ठत्वरूप है। दृश्य और अस्मिक्तत्व ही दैशिक परत्व और अपरत्व है।

बुद्धिका अर्थ ज्ञान। ज्ञान अनेक रूपमें विभक्त है। उनमें पहले निर्विकल और सविकल्पभेदसे दो प्रकारका है। जिस ज्ञानमें विशेष्य विशेषणभाव नहीं उत्पन्न होता, उसमें केवल वस्तुका स्वरूप भासमान होता है, यह निर्विकल्प है। निर्विकल्पक ज्ञान अतीन्द्रिय है, यह प्रत्यक्ष नहीं, अनुमेय है। जिस ज्ञानमें विशेष्य विशेषणभाव भासमान है, उसका नाम सविकल्पक है। 'अप' घटा' यह घट, यह प्रत्यक्ष सविकल्पक है।

निर्विकल्पक ज्ञानमें ऐसी विशेष्य रूपकी कल्पना नहीं है। इससे यह निर्विकल्पक अर्थात् विकल्पशून्य है। निर्विकल्पक ज्ञान ही अनुमान-प्रणाली ऐसी ही निर्दिष्ट हुई है। विज्ञिष्टज्ञान विशेष्य ज्ञानशून्य है। नील न जाननेसे नीलेटाल का ज्ञान नहीं होता, लघुश न जाननेसे लघुश का ज्ञान नहीं हो सकता। सुतरां घटत्वज्ञान होनेसे घटत्वविज्ञिष्टका ज्ञान ही नहीं सकता। इसलिये 'अप' घटा' इस तरह विज्ञिष्टज्ञान होनेसे पहले विशेषणीभूत घटत्व का ज्ञान हुआ है, यह अनुमेय है। जिन निर्विकल्पक ज्ञानमें घटत्वकी विषय क्रिया है, उसी ज्ञानमें अत्यन्त घटती भी विषय क्रिया है। क्योंकि घटत्व और घट दोनों विषय दोनोंका कारण एक रूप है। घटत्व और घट ये दोनों ज्ञानका

विषय होने पर भी वह स्वरूपमें ही विषय हुए हैं ; विशेष्य-विशेषण भावमें नहीं । इसीलिये वह निर्विकल्पक है । पहले विशेषण ज्ञान न होनेसे विशिष्टज्ञान या विशेष्य विशेष्यभावसे ज्ञान नहीं हो सकता । सुतरां निर्विकल्पक ज्ञान विशेष्य-विशेषणभावमें ही नहीं सकता । इसीलिये निर्विकल्पक शब्द द्वारा ज्ञानका आकार प्रकाश किया नहीं जाता । क्योंकि शब्दके द्वारा जो प्रकाशित होगा, वह अवश्य ही विशेष्य विशेषण-भावापन्न होगा । निर्विकल्पक ज्ञानका विषय विशेष्य-विशेषण-भावापन्न नहीं ।

अनुभूति या अनुभव और स्मृति या स्मरणरूपसे जो ज्ञान दो प्रकारके हैं । अनुभूति दो तरहकी है—प्रत्यक्ष और लौकिक या अनुभूति । प्रत्यक्ष छः प्रकारका है,—प्राणज, रासन, चाक्षुष, स्पर्शन, श्रावण और मानस । संस्कारजन्य ज्ञानविशेषका नाम स्मृति या स्मरण है । विद्या या प्रमा और अविद्या वा अप्रामादेसे भी ज्ञान दो प्रकारका है । जो वस्तु वस्तुवत्तया जैसी है उस वस्तुके ठीक उसी तरहका ज्ञान ही विद्या या प्रमा है । जो वस्तु जैसी है, अन्य रूपसे उस वस्तुका ज्ञान होनेको अविद्या या अप्रमा कहते हैं । अविद्या दो तरहकी है—संशय और विपर्यास । एकधर्मोंमें नाना धर्मके ज्ञानका नाम संशय है, जैसे इसे स्थानु वा पुण्य—इस तरह जो अनिश्चयकारक ज्ञान होता है, वही संशय है । क्योंकि एक स्थानुरूपी धर्मोंमें परस्पर विरुद्ध स्थानुत्व और पुण्यवत्तया धर्मद्वयका ज्ञान हुआ है । निश्चयकारक ज्ञानका नाम विपर्यास है । जैसे देहादिमें आत्मबुद्धि, पित्तदोष-दुष्टव्यक्तिके शंभसे पीतवर्णबुद्धि, शुक्रिकागें रजतबुद्धि, मरीचिकामें जलबुद्धि इत्यादि ।

जिस ज्ञानका विषय वस्तुतः विद्यमान नहीं, वही मिथ्याज्ञान या अविद्या है । स्वप्नज्ञान वीर अविद्या स्वप्नकालमें भी जाग्रदवस्थाको तरह सब विषयोंका अनुभव होता है । परन्तु उस समय इन्द्रियोंको कार्य-कारिता नहीं रहती । विषयमें भी विद्यमानता नहीं । सुतरां मिथ्याज्ञान या अविद्या है । किन्तु किन्तों आचार्याके मतसे स्वप्नज्ञान पूर्वानुभवका स्मरणमाल है । स्वप्नमें अपने शिरका काटा जाना देखा जाता है सदा, किन्तु उसका कोई पदार्थ ही अनुभूत कदा नहीं

जाता । स्व अर्थात् स्वयं अनुभूत है । शिर भी अनुभूत है, काटना भी अनुभूत है । दोषापीन परस्पर सम्बन्धकी केवल प्रतिमा ही होता है । कोई कोई स्वप्न धातुवैषम्य-जनित होता है । आकाशगगन, वसु-स्वरा पर्यटन, व्याघ्रादिका भय आदि स्वप्नवत्त दोषजन्य है । शनिप्रवेश, दिग्दाह, कनकपर्वत, विद्युद्दुर्घिसु-रण प्रभृति स्वप्नपित्तदोषजन्य है, समुद्रका तैरना, नदीका स्नान, गृष्टिपात तथा रजतपर्वतका दर्शन आदि श्लेष्मदोषजन्य है । अर्थात् वातपित्तादि धातुदोषसे ये सब स्वप्न देख पड़ते हैं । इसके सिवा अन्य स्वप्न अगृष्ट जन्य होते हैं । उनमें धर्मजन्य स्वप्न शुभसूचक और अधर्मजन्य स्वप्न अशुभसूचक है ।

सुख दुःख इच्छा द्वेष आदिकी व्याख्या अनावश्यक है । इन सबके अनुभवसिद्ध हैं । यत्न तीन प्रकारका है—प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोगि । इष्टसाधनता ज्ञान, चिकीर्षा अर्थात् यह मेरा कर्त्तव्य—इस तरहकी इच्छा, कृतिसाधनत्वज्ञान और उत्पादनप्रत्यक्ष, ये सब प्रवृत्तिके कारण हैं । इष्टसाधनता-ज्ञानकी कारणता पहले ही समर्पित हुई है । जो करनेकी इच्छा नहीं होती, वह करनेके लिये कोई प्रवृत्ति नहीं होता । इच्छा होने पर भी यदि विधेचना हो, कि यह कार्य मेरे करने योग्य नहीं, यानी यह निवृत्ति करना मेरे साध्या-तीन है, ऐसा होने पर भी उस कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती । असौख्य विषयमें प्रवृत्ति होना असम्भव है । ये सब होने पर भी जिस उपादानसे कार्यसम्पादन करना होगा, उस उपादानका प्रत्यक्ष न होनेसे उस कार्य सम्पादनमें प्रवृत्ति हो नहीं सकता । वृत्तिकारका प्रत्यक्ष न होनेसे घट ढरना आदिके बनानेमें, चावलके प्रत्यक्ष न होनेसे पाकमें कोई प्रवृत्ति नहीं होता । निवृत्तिके कारण पहले प्रदर्शित हुआ है । शरीरमें प्राणवायुके सञ्चरण (अर्थात् निश्वास प्रश्वास आदि जो यत्नभावसे सम्पन्न होते हैं)का नाम जीवनयोगि-यत्न है ।

गुणत्व ही पतनका कारण होता है । पृथ्वीकी आकर्षणशक्तिके प्रभावसे वस्तुके पृथ्वीकी ओर आकृष्ट होने पर भी गुणत्व या गुणत्वका पतनहेतुत्व प्रत्याख्यात नहीं हो सकता । क्योंकि वस्तुके गुणत्वके अनुसार आकर्षणशक्तिकी कार्याकारिताका शून्यापि न अस्त्यो ता

अनभिष्ट ऋत्विक् ब्राह्मणभक्ष सोम जष प्रहण करे'गे, अपने ब्राह्मण लोगोंको ही जीत लेंगे, अपने ब्राह्मणकल्प हाँगि, वे आश्रयी या प्रतिग्रहशौल, आषायी या सोमपानमें आग्रहान्वित और आश्रयायी या परवृद्धमें सर्वदा याचत्रा-कारो हींगे और इच्छानुसार सर्वदा कालयापन करे'गे । जब क्षत्रियको कोई दोष हो जाये, (अर्थात् यज्ञकालमें क्षत्रिय यदि ब्राह्मणका अंश ले) तो उसकी सन्तति भी ब्राह्मणकल्प होगी ! द्वितीय या तृतीय पुत्र्यमें (पुत्र या पौत्र) सम्पूर्ण ब्राह्मणवंशालयके उपयुक्त होगा और ब्राह्मणो-न्नित भिक्षादि द्वारा जीविकानिर्वाह करनेको इच्छा करेगा । 'जब अनभिष्ट ऋत्विक् वैश्यका अंश दधि आहरण करे', तब वैश्यों पर उसकी मतिगति फिरेगी । उसका चंश कला हो कर जन्म ग्रहण करेगा । दूसरे राजाको कर देगा । राजाको इच्छानुसार वे तिरस्कारका भागी होंगे । जब क्षत्रियको कोई दोष होगा (अर्थात् यदि यज्ञकालमें क्षत्रिय वैश्यका अंश दधि ले ले), उसका सन्तान वैश्य हो कर जन्मेगा । द्वितीय या तृतीय पुत्र्य (पौट्टीमें) (पुत्र या पौत्र) वैश्य जाति होनेके उपयुक्त होगा और वैश्यरूपसे जीविका निर्वाह करनेको इच्छा करेगा ।

उद्धृत वैदिक प्रमाणादि अवलम्बनमें आभास मिल रहा है, कि प्रजा साधारणका भूमिकर्षण, गोरक्षा और अन्नधान ही उपजीविका थी । जो राजाकर देते और राजपौडित देते तथा जगतोच्छन्दविनिष्ट ऋग्मन्त्र ही जिनके सावित्री या आर्षत्वका निर्दशन निर्दिष्ट थे, वैदिक युगमें वे 'दर्या' या वैश्य नामसे अभिहित होते थे ।

एक-एक वर्णके लिये एक एक यज्ञोप द्रव्य ग्रहणकी व्यवस्था थी । एक वर्ण दूसरे वर्णके ब्राह्म द्रव्यके ग्रहण करने पर उसको उसीके समाजमें मिल जाना पड़ता है और उसके चंशघट उस वर्णके नाममें पुकारे जाते थे । ऐसी अवस्थामें दिलाई देता है, कि वैश्यरूपसे एक मित्रवर्ण रहने पर भी उनके कार्य और धर्मके अनुसार वे अन्य-वर्णमें मिल सकते थे । उस समय इस समयकी तरह कठोरता नहीं थी । वृत्ति ही वर्णवाची थी ।

धर्मोंके (पारम्पर्यदेवोंके) आदि धर्मशास्त्र 'जन्म अवस्ता-के अन्तर्गत 'वश्य' नामक विभागमें १ आषुष, २ रथ-

पस्ताभो, ३ वाश्रुत्विय फुसुपण्ट और ४ ह्रति इन चार वर्णोंका उल्लेख है । (यज्ञ १६।४६) यज्ञके संस्कृतटीकाकार नेरिबो सिंदने उक्त चार शब्दोंका पद्याक्रम अर्थात् क्रिया है—१ आचार्य, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिय, ४ प्रकृतिकर्मान् । यहाँ कुटुम्बीसे वैश्य ही समझा जाता है ।

वेदमें चार वर्णोंके मध्यमें "आर्षास्त्रैर्वर्णिकः" अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण आर्ष और शूद्र अर्थात् या डाकुओंमें गिने जाते थे । आर्ष, दाष, दस्यु आदि शब्द देखो । उक्त चार वर्णोंका उल्लेख रहने पर भी तदुत्पन्न विभिन्न जातिके प्रसङ्गवेदमें नहीं । वरं शुक्यपञ्चसंहितामें—

"नमस्तश्मभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमोनमः कुललेभ्यः कमरेभ्यश्च वो नमो नमो निपादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः" (१६।२७) इस मन्त्रमें तक्षा या शिल्पो, रथकार या सूत्रवार, कुलाल या कुम्भकार, कर्मार या कुमार (लोहार), निपाद या नांसाद्यो गिरिवर, पुञ्जिष्ठ या बहलिया, श्वन्य या कुत्तोंका पालन करनेवाला (शिकारी), मृगयु या व्याध इत्यादि विभिन्न शब्दोंका उल्लेख रहने पर भी ये सब कर्मवाची जातिवाची नहों ।

स्मृतिसंहिता-प्रचारके समय नाना जातिपंक्ति उत्पत्ति हो रही थी सही, किन्तु उस समय भी व्याप-समाजमें समाजव्यवस्थाकी कठोरता न थी । इस समय भी एक वर्ण गुणकर्मके अनुसार वर्णान्तर आश्रय कर सकते थे । मिताक्षराकार विश्वामित्रेश्वर याज्ञवल्क्य-संहिताका उद्देश्य इस तरह समझा गये है—

व्यवस्था च—"ब्राह्मणेन शूद्रामुत्पादिता निपादो सा ब्राह्मणेनोदा काञ्जिजनयनि । सापि ब्राह्मणे-नोदा अग्यामित्यनेन प्रकारेण पृथी सप्तमं ब्राह्मणं जन-यति । ब्राह्मणेन वैश्यायामुत्पादिता अगृष्टा साम्यनेन प्रकारेण पञ्चमी पठं ब्राह्मणं जनयति । पशुमुप्रा क्षत्रियेनोदा महिष्या च पयाकर्म क्षत्रियं पठं पञ्चमं जनयति ।"

अर्थात् ब्राह्मण द्वारा शूद्रसे उत्पन्ना कन्या निपादो । यद् कन्या यदि ब्राह्मणसे ब्याहो जाये और उससे भी कन्या हो और उस कन्याको फिर यदि

अनभिष्ट ऋत्विक् ब्राह्मणभक्ष सोम जब ग्रहण करेंगे, अपने ब्राह्मण लोगोंको ही जीत लेंगे, अपने ब्राह्मणरूप होंगे, ये आदायो या प्रतिग्रहशौल, आपायो या सोमपानमें आग्रहान्वित और भावसायो या परशुदमें सर्वदा यत्न-प्रा-कारो होंगे और इच्छानुसार सर्वदा कालयापन करेंगे। जब क्षत्रियको कोई दोष हो जाये, (अर्थात् यज्ञकालमें क्षत्रिय यदि ब्राह्मणका अंश ले) तो उसकी सन्तति भी ब्राह्मणरूप होगी! द्वितीय या तृतीय पुत्रपमें (पुत्र या पौत्र) सम्पूर्ण ब्राह्मणपलाभके उपयुक्त होगा और ब्राह्मणो-चित मिश्रादि द्वारा जीविकानिर्वाह करनेकी इच्छा करेगा। जब अनभिष्ट ऋत्विक् वैश्यका अंश दधि आहरण करे, तब वैश्यों पर उसकी मतिगति फिरेगी। उसका वंश कहर हो कर जन्म ग्रहण करेगा। दूसरे राजाको कर देगा। राजाकी इच्छानुसार ये तिरस्कारका भागी होंगे। जब क्षत्रियको कोई दोष होगा (अर्थात् यदि यज्ञकालमें क्षत्रिय वैश्यका अंश दधि ले ले), उसका सन्तान वैश्य ही कर जन्मेगा। द्वितीय या तृतीय पुत्रप (पौत्रोंमें) (पुत्र या पौत्र) वैश्य जाति होनेके उपयुक्त होगा और वैश्यरूपसे जीविका निर्वाह करनेकी इच्छा करेगा।

उद्धृत वैदिक प्रमाणादि अवलम्बनमें आभास मिल रहा है, कि प्रजा साधारणका भूमिकर्षण, गोरक्षा और अन्नधान ही उपजीविका थी। जो राजकर देते और राजपौडित होते तथा जगतीछन्दःविशिष्ट ऋगमन्त्र ही जिनके सावित्री या आर्यत्वका निदर्शन निदिष्ट थे, वैदिक युगमें वे 'अर्घ्या' या वैश्य नामसे अभिहित होने थे।

एक-एक वर्णके लिये एक एक यज्ञोप द्रव्य प्रदानकी व्यवस्था थी। एक वर्ण दूसरे वर्णके प्राह्य द्रव्यके ग्रहण करने पर उसको उसीके समाजमें मिल जाना पड़ता है और उसके वंशधर उस वर्णके नाममें पुकारे जाते थे। ऐसी व्यवस्थामें दिखाई देता है, कि वैश्यरूपसे एक मिश्रवर्ण रहने पर भी उनके कार्य और धर्मके अनुसार वे अन्य-वर्णमें मिल सकते थे। उस समय इस समयकी तरह कठोरता नहीं थी। तृप्ति ही वर्णवाची थी।

मर्गोंके (पारम्पर्यदेशके) आदि धर्मशास्त्र 'जन्म अवस्ता' के अन्तर्गत 'यश्न' नामक विभागमें १ आध्वय, २ रथ-

पस्ताभो, ३ चारुत्रिय फसुयण्ट और ४ ह्रति इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यश्न १६।४६) यश्नके संस्कृतशब्दका कार नेरिभो सिंहने उक्त चार शब्दोंका यथाक्रम अर्थ किया है—१ आचार्य, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिक, ४ प्रकृतिकर्मज। यहां कुटुम्बिकसे वैश्य ही समझा जाता है।

वेदमें चार वर्णोंके मध्यमें "आर्यस्त्रिवर्णिकः" अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण आर्य और शूद्र अनार्य या डाकुनोंमें गिने जाते थे। आर्य, दास, दस्यु आदि शब्द देखो। उक्त चार वर्णोंका उल्लेख रहने पर भी तद्दृष्टान्त विभिन्न जातिके प्रसङ्गवैदमें नहीं। वरं शुकुपञ्चसंहितामें—

"नमस्तश्मशो रथकारेभ्यश्च यो नमोनमः कुलालेभ्यः कर्मारिभ्यश्च यो नमो नमो निपादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च यो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च यो नमः" (१६।२०) इस मन्त्रमें तश्वा या शिवी, रथकार या सूत्रधार, कुलाल या कुम्भकार, कर्मार या कमार (लोहार), निपाद या मांसाशो गिरिचर, पुंजिष्ठ या बर्हलिया, श्वन्य या कुत्तका पालन करनेवाला (शिकारी), मृगयु या व्याघ इत्यादि विभिन्न शब्दोंका उल्लेख रहने पर भी ये सब कर्मवाची जातिवाची नहीं।

स्मृतिसंहिता-प्रचारके समय गाना जातिवर्णकी उरपत्ति हो रही थी सही, किन्तु उस समय भी आप-समाजमें समाजवर्धनकी कठोरता न थी। इस समय भी एक वर्ण गुणकर्मके अनुसार वर्णान्तर आश्रय कर सकते थे। मिताक्षराकार विश्वामेश्वर याज्ञवल्क्य-संहिताका उद्देश्य इस तरह समझा गये हैं—

व्यवस्था च—"ब्राह्मणेन शूद्रामुत्पदिता निपादो सा ब्राह्मणेनाद्वा काञ्चिज्जनयति। सावि ब्राह्मणे-नाद्वा अथामित्यनेन प्रकारेण पठो सप्तमं ब्राह्मणं जनयति। ब्राह्मणेन वैश्यामामुत्पादिता अथवा साप्यनेन प्रकारेण पठ्यते पठं ब्राह्मणं जनयति। पशुप्रा क्षत्रियेनाद्वा महिष्या च यथाकर्म क्षत्रियं पठं पशुमं जनयति।"

अर्थात् ब्राह्मण द्वारा शूद्रासे उत्पन्ना कन्या निपादी। यह कन्या यदि ब्राह्मणसे व्याही जाये और उससे भी कन्या हो और उस कन्याके फिर यदि

आहसा, गुरुसेवा, तीर्था पर्यटन, दया, सरलता, लोभ-
त्याग, देवप्राक्षणपूजा और अस्त्रा परित्याग, ये ही
इनके सामान्य धर्म हैं। (विष्णुसूक्त ३ अ०)

धर्मसूत्रमें हम पहले विभिन्न वर्णके संस्त्रवसे भिन्न
भिन्न जातिको उत्पत्ति और विस्तृति देखते हैं। फिर भी
उस समय भी यहाँकी तरह सहस्र सहस्र जातिकी सृष्टि
नहीं हुई। मूल वर्णको छोड़ कर वशिष्ठधर्मसूत्रमें १०,
वीधापन-धर्मसूत्रमें १४ और गौतम धर्मसूत्रमें १६ मिश्र
जातियोंका उल्लेख दिखाई देता है*। धर्मसूत्रमें कुल
चार मूल वर्ण हैं और २४ मिश्र जातियोंका उल्लेख है।[†]
इन २४ में वैश्य वर्णके संस्त्रवसे माहिष्य, अश्वघ,
करण, रथकार और भूर्जकण्टक, ये पांच अनुलोमज हैं
और अन्त्यावसायो, आयोगव, घोवर, पुकडा, वीदेह,
मागव और रामक ये ७ प्रतिलोमज सहस्रजातियोंकी
उत्पत्ति हुई थी। अथक कर्मकार, कांस्यकार, कुम्भकार,
चित्रकार, पर्णकार, या पर्णजीवी, शङ्खकार, स्वर्णकार,
सूत्रकार, स्थपति और नाना प्रकारके व्यवसायी वणिक्
भी स्वतंत्र जाति नहीं गिने जाते। इसमें सन्देह नहीं,
कि इन सब वृत्ति-जीवियोंमें बहुतेरे वैश्य समाजके अन्त-
भुक्त थे, किन्तु वे उस समय एक एक भिन्न जाति नहीं
कहे जाते थे। मन्मथतः उक्त जनसाधारण वैश्य-
वर्णोचित आर्य धर्मका ही आश्रय ले कर चलते थे।
प्रायः ३००० वर्ष पहले तक भारतमें ऐसी ही व्यवस्था
थी। इसके बाद भारतवर्षमें सौर, जैन और बौद्ध-
प्रभाव विस्तृत हुए। प्रजासाधारण या वैश्यसमाज

प्रधानतः नव प्रवर्तित धर्मसम्प्रदायके पृष्ठपोषक हुआ
था।

क्षत्रियसमाज भी उनके अनुकूल ही था, किन्तु उक्त
सम्प्रदायके साथ वैदिक आचार्योंके दृष्टे प्रतभेद हो
जानेसे आर्यसमाजमें प्रथमतः एक घोरतर समाज
विद्रुन उपस्थित हुआ था। इस समय जनसाधारणने
क्षत्रियको ही ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ माना। नाना प्राचीन जैन
और बौद्धोंके ग्रन्थोंसे उस समयके जनसाधारणका मन
मालूम होता है। भारतवर्ष शब्दमें देखो। इस समय
क्षत्रिय और वैश्य-समाज प्रचलित आचार-व्यवहारमें
भी कुछ परिवर्तन हो रहा था। साधारणका विश्वास
है, कि क्षत्रिय-प्राधान्यमें ही जैन और बौद्धोंका अन्वुद्भव
है। अवश्य ही क्षत्रियके शानवल और बाहुबलसे उक्त समय
धर्मको प्रतिष्ठा हुई थी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु वैश्य-
के अर्थबलने भी इन दो साम्प्रदायिक धर्मका सुप्रतिष्ठित
करनेके पक्षमें यथेष्ट साहाय्य किया था। वणिक् शब्द-
से धनवान् और वैश्य जाति समझी जाती थी।
वणिक् और पाणिक वैश्य शब्दका पर्याय है। वैदिक
समयसे यह वर्ण वाणिज्यके लिये सम्पन्नगर्भमें सभी
जगह जाता और व्यवसाय वाणिज्य कर पैसा कमाता
था।

आदि सम्पन्नगर्भके इतिहासमें फीनिक् (Phoeni-
cian) नामक जो प्राचीन वणिक् जातिका उल्लेख हम
पाते हैं, श्रुक्संहितामें वे ही पणि नामसे प्रथित हैं। उस
आदि वैदिक युगमें ही वे गोरक्षा, कृषि और वाणिज्य
अर्थात् मुख्य वैश्यवृत्ति द्वारा ही जीविका-निर्वाह करते
थे।

आर्यवणिक् देश और विदेशमें समुद्रपथमें नाना
स्थानोंमें जा कर चीजोंकी खरीद फरोख्त करते थे।
वेद देखो।

श्रुक्संहिताके १५६२ मन्त्रमें धनार्थी पणियोंके
समुद्रगमनके और ७२४७ मन्त्रमें आहरणका उल्लेख
है। उक्त वेदके ४२४६ मन्त्रमें द्रव्यमूर्त्य और क्रय-
विक्रय (खरीद फरोख्त)की प्रथाका आभास पाया
जाता है।

अथर्ववेदसे भी हम जानते हैं, कि वैदिक युगमें

* गौतम धर्मसूत्रके मतसे—१ अश्वघ, २ उम, ३ करण,
४ चपडाक, ५ वीघन्त, ६ घोवर, ७ निगाद, ८ पारसव,
९ पुकडा, १० वेण्य, ११ भूर्जकण्टक, १२ मागव, १३ माहिष्य,
१४ मूर्दावसिक, १५ यवन, १६ सूत।

† वशिष्ठ धर्मसूत्रके मतसे—१ अन्त्यावसायो, २ अश्वघ,
३ उम, ४ चपडाक, ५ निगाद, ६ पारसव, ७ पुकडा, ८ वेण्य,
९ रामक और १० सूत।

वीधापन धर्मसूत्रके मतसे—१ अश्वघ, २ आयोगव, ३ उम,
४ कुम्भकण्टक, ५ चपडाक, ६ निगाद, ७ पारसव, ८ पुकडा, ९ वेण्य,
१० मागव, ११ रथकार, १२ श्वपाक, १३ सूत, १४ पत्रता।

ब्राह्मणसे ही विवाह हो और उसके गर्भसे भी कन्या उत्पन्न हो, तो इस तरह पशुकन्या सप्तम पुत्र्यमें ब्राह्मण जन्मा सकेगी। ब्राह्मण द्वारा शूद्रसे उत्पन्ना कन्या अशुभदा होती है, किंतु उपरोक्त प्रकारसे यह कन्या भी पशु पुत्र्यमें ब्राह्मण उत्पन्न कर सकती है। इस क्षत्रिय विवाहिता उभ्रा या माहिष्वा यथाक्रम पशु या पञ्चम पुत्र्यमें क्षत्रिय उत्पादन करती है।

पुराणमें भी हम वेदस्मृतिवचनोंके समर्थक अनेक प्रमाण पाते हैं। कितने ही क्षत्रियराजवंश वैश्यत्व प्राप्त हुए हैं और कितने ही वैश्य कर्मबलसे ब्राह्मणत्व लाभ कर चुके हैं।

सब प्रधान पुराणोंमें क्षत्रियराज नैदिष्ट या दिष्टके पुत्र नामाग हैं। विष्णु और भागवतपुराणके मतसे नामागने कर्मके अनुसार ही वैश्यत्व प्राप्त किया था।

"नामागो दिष्टपुत्रोऽयः कर्मणा वैश्यतां गतः ॥"

(भागवत ६।२।२३)

मार्कण्डेयपुराणके अनुसार नामाग वैश्यकन्याका पाणिप्रदण कर वैश्यत्व प्राप्त हुए थे। फिर हरिवंशमें लिखा है, कि नामागरिष्टके दो पुत्र वैश्य हो कर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हुए थे।

"नामागरिष्टपुत्री द्वौ वैश्यौ ब्राह्मण्यतां गतौ ॥"

(हरिवंश ११ व०)

मत्स्यपुराणसे जाना जाता है, कि मल्लन्ध, वन्ध और संस्कृति ये तीन आदमी वैश्य वेदके मूल प्रकाश करते हैं*।

महाभारतमें भगवान् व्यासने भी लिखा है:—

"भार्याद्वचत्सो विप्रस्य द्वयोरात्मा प्रजापते ।

आनुपूर्वाद्द्वयोर्द्वौ मातृजात्यौ प्रसूयतः ॥ ४

तिस्रः क्षत्रियसंघन्धाद्द्वयोरात्मास्यं जायते ।

दीनवर्णास्तृतीयां शूद्रा उभ्रा इति स्मृतिः ॥ ७

द्वे चापि भार्ये वैश्यस्य द्वयोरात्मास्यं जायते ।

शूद्रा शूद्रस्य चाप्येका शूद्रमेव प्रजापते ॥ ८

ब्राह्मणोंके लिये चार वर्णोंकी भार्या विहित है। इन चार भार्यामेंसे जो ब्राह्मणकन्या और क्षत्रियकन्यासे उत्पन्न हैं, वे उनकी आत्मा या तत्सदृश ब्राह्मण ही होते हैं। इसके बाद अनुलोमक्रमसे अग्न्याय देव पत्नियों (अर्थात् वैश्य और शूद्रकन्या)के गर्भसे उत्पन्न पुत्र मातृजाति (वैश्यकन्याका पुत्र वैश्य और शूद्रकन्याका पुत्र शूद्र) होता है। इस तरह क्षत्रियके तीन (क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा) भार्याओंमें प्रथम दो अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यकन्याके गर्भसे उत्पन्न पुत्र क्षत्रिय और तृतीया हीन वर्ण शूद्रके गर्भसे उत्पन्न उभ्र शूद्र गिना जाता है। वैश्याके भी (वैश्या और शूद्रा) दो भार्या निहित हैं। इन दोनों ही उनकी आत्मा या तत्सदृश वैश्य वर्ण जन्मता है। शूद्रके लिये एक शूद्रा ही निर्दिष्ट और उसमें शूद्र वर्ण ही जन्मते हैं।

मनुस्मृतिमें लिखा है, कि पशुपालन, कृषि और वाणिज्य वैश्यकी जीविका है। दान, याग और अध्वयन इनका धर्म है। वैश्यके स्वर्गोंमें वाणिज्य और पशुपालन ही प्रशस्त है आपत्काल उपस्थित होने पर वैश्य शूद्रवृत्ति द्वारा जीविका अर्जन कर सकता है। किन्तु जब आपत्तुसे मुक्त हो जायेगा, तब उनको शूद्रवृत्ति छोड़ देनी होगी। वैश्योंका उपनयन संस्कार होता है। इसीसे यह द्विजाति कहे जाते हैं। इनका वेदमें अधिकार है। गर्भकालसे गणना कर १२ वर्ष पर उपनयन होना चाहिये। यदि इस समय वैश्योंका उपनयन न हो, तो २४ वर्ष तक उपनयन हो सकता है। इस २४ वर्षके भीतर किसी समय भी उपनयन हो सकता है। २४ वीत जाने पर इनको पतितसाधितकी होना पड़ता है। अतएव इनको इस समयके भीतर ही उपनयन करा डालना एकान्त कर्त्तव्य है। इनका अष्टौच पन्द्रह दिनका है। (मनु)।

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि गर्भाधानसे ले कर धातुपर्यन्त वैश्योंके सब काम वेदमन्त्रोंसे ही होते हैं। वैश्योंका धर्म, यजन, अध्वयन और पशुपालन है। वृत्ति—कृषि, वाणिज्य, गोपोषण, कुसांद्प्रदण और धान्यादि धीन रखना। आपत्काल उपस्थित होने पर वैश्य अन्य वृत्ति अर्थात् शूद्रवृत्तिसे भी अपनी जीविका चला सकता है। क्षमा, सत्य, दम, शीघ्र, दान, इन्द्रियसंयम,

* "मल्लन्धश्चैव वन्धश्च संस्कृतिश्चैव ते त्रयः

ते च मन्त्रहृत्तो शेवाः वैश्यानां प्रवराः सदा ।

रत्येकनवति प्राक्काः मन्त्राः वैश्यादिभ्यः ॥"

(मत्स्यपु० १३२ अ०)

आइसा, गुरुसेवा, तीर्थ पर्यटन, दया, सरलता, लोभ-
त्याग, देवप्राणणपूजा और असूया परित्याग, ये ही
इनके सामान्य धर्म हैं। (विनयसूत्र ३ अ०)

धर्मसूत्रमें हम पहले विभिन्न वर्णोंके संस्त्रयसे भिन्न
भिन्न जातिको उत्पत्ति और विस्तृति देते हैं। फिर भी
उस समय भी यहांकी तरह सहस्र सहस्र जातिकी रूढ़ि
नहीं हुई। मूल वर्णोंका छोड़ कर वणिष्ठधर्मसूत्रमें १०,
धीधायन-धर्मसूत्रमें १४ और गौतम धर्मसूत्रमें १६ मिश्र
जातियोंका उल्लेख दिखाई देता है*। धर्मसूत्रमें कुल
चार मूल वर्णों हैं और २४ मिश्र जातियोंका उल्लेख है।[†]
इन २४ में वैश्य वर्णोंके संस्त्रयसे माहिय, अम्बष्ठ,
करण, रथकार और भ्रुंजकण्टक, ये पांच अनुलोमज हैं
और अन्त्यावसायी, आयोगव, घोवर, पुकडा, वैदेह,
मागध और रामक ये ७ प्रतिलोमज सङ्करजातियोंकी
उत्पत्ति हुई थी। अथच कर्मकार, कांस्यकार, कुम्भकार,
चित्रकार, पणकार, यां पणजीवी, शङ्खकार, स्वर्णकार,
सूत्रकार, स्थपति और नाना प्रकारके व्यवसायी वणिक्
भी स्वतंत्र जाति नहीं गिने जाते। इसमें सन्देह नहीं,
कि इन सब वृत्ति-जीवियोंमें बहुतेरे वैश्य समाजके अन्त-
भुक्त थे, किन्तु वे उस समय एक एक भिन्न जाति नहीं
कहे जाते थे। सम्भवतः उक्त जनसाधारण वैश्य-
वर्णोंचित आर्य धर्मोंका ही आश्रय ले कर चलते थे।
प्रायः ३००० वर्ष पहले तक भारतमें ऐसी ही व्यवस्था
थी। इसके बाद भारतवर्षमें सौर, जैन और बौद्ध-
प्रभाव विस्तृत हुए। प्रजासाधारण या वैश्यसमाज

प्रधानतः नव प्रवर्तित धर्मसम्प्रदायके पृष्ठपोषक हुआ
था।

क्षत्रियसमाज भी उनके अनुकूल ही था, किन्तु उक्त
सम्प्रदायके साथ वैदिक आचार्योंके यद्यपि प्रतियोग
जानेसे आर्योपमाजमें प्रथमतः एक घोरतर समाज
विद्रुन उपस्थित हुआ था। इस समय जनसाधारणने
क्षत्रियको ही ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ माना। नाना प्राचीन जैन
और बौद्धोंके ग्रन्थोंसे उस समयके जनसाधारणका मत
मालूम होता है। भारतवर्ष सभरमें देलो। इस समय
क्षत्रिय और वैश्य-समाज प्रचलित आचार-व्यवहारमें
भी कुछ परिवर्तन हो रहा था। साधारणका विश्वास
है, कि क्षत्रिय-प्राधान्यमें ही जैन और बौद्धोंका अन्वय
है। अवश्य ही क्षत्रियके हानयल और दाहयलसे उक्त समय
धर्मोंकी प्रतिष्ठा हुई थी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु वैश्य-
के अर्थदलने भी इन दो साम्प्रदायिक धर्मोंका सुमतिष्ठित
करनेके पक्षमें यद्यपि साहाय्य किया था। वणिक् शब्द-
से घनवान् और वैश्य जाति समझी जाती थी।
वणिक् और पाणिक वैश्य शब्दका पर्याय है। वैदिक
समयसे यह वर्ण वाणिज्यके लिये सम्पन्नगत्तमें सभी
जगह जाता और व्यवसाय वाणिज्य कर पैसा कमाता
था।

आदि सम्पन्नगत्तके इनिहाममें फोनिक् (Phoeni-
cian) नामक जो प्राचीन वणिक् जातिका उल्लेख हम
पाते हैं, श्रुत्संहितामें ये ही पणि नामने प्रथित हैं। उस
आदि वैदिक युगमें ही वे गो रक्षा, कृषि और वाणिज्य
अर्थात् मुख्य वैश्यवृत्ति द्वारा ही जीविका-निर्वाह करते
थे।

आर्यवणिक् देग और विदेशमें समुद्रयत्नसे नाना
स्थानोंमें जा कर चीजोंकी खरीद फरोख्त करते थे।
वेद देलो।

श्रुत्संहिताके १५६२ मन्त्रमें घनाधी पणिणोंके
समुद्रगमनके और ५२४७ मन्त्रमें आहरणका उल्लेख
है। उक्त वेदके ४२४६ मन्त्रमें द्रव्यमूल्य और कय-
विक्रय (खरीद फरोख्त)की प्रथाका आभास पाया
जाता है।

अथर्ववेदसे भी हम जानते हैं, कि वैदिक युगमें

* गौतम धर्मसूत्रके मतसे— १ अम्बष्ठ, २ उम, ३ करण,
४ चण्डाल, ५ दीप्यन्त, ६ धीवर, ७ निपाद, ८ पारस्य,
९ पुकडा, १० वेण्य, ११ मूर्जकण्टक, १२ मागध, १३ माहिय,
१४ मूर्दावसिक, १५ यवन, १६ सुत।

† वरिष्ठ धर्मसूत्रके मतसे— १ अन्त्यावसायी, २ अम्बष्ठ,
३ उम, ४ चण्डाल, ५ निपाद, ६ पारस्य, ७ पुकडा, ८ वेण्य,
९ रामक और १० सुत।

धीधायन धर्मसूत्रके मतसे— १ अम्बष्ठ, २ आयोगव, ३ उम,
४ शङ्खकण्टक, ५ चण्डाल, ६ निपाद, ७ पारस्य, ८ पुकडा, ९ वेण्य,
१० मागध, ११ रथकार, १२ स्वर्णकार, १३ सुत, १४ क्षत्रा।

वाणिज्य उद्देश्यसे विदेश जानेके समय वणिक् अपनी मङ्गलकामनाके लिये इन्द्र, अग्नि आदि देवताओंकी स्तुति करते थे। इन सब मन्त्रोंमें क्रय-विक्रय और लाभकी बातें प्रकट हुई हैं।

कृषिउत्पत्तिके सम्बन्धमें भी ऋग्वेदमें भी बहुतैरे प्रमाण मिलते हैं। ऋक्संहिताके १।२३।१५ मंत्रमें कृषक द्वारा शैलकी सहायतासे जीकी खेती करनेकी बात मिलती है। उक्त संहिताके ४४ मण्डलके ५७ सूक्तमें शैलपतिकी स्तुतिके प्रसङ्गमें यलीवर्द ले कर कृषकों द्वारा भूमिकर्षण और यलीवर्द ले कर हल और उसके फालसे (फार) सुखपूर्वक भूमि पर गमन और पर्जन्य द्वारा मधुर जलसे पृथ्वीके जलमयी होनेकी बात विवृत हुई है। सिवा इसके १०।१०१ सूक्तमें कृषिकाये-विषयक अनेक तथ्य मिलते हैं।

वैदिक आचार्य बड़े ही मांसमिय थे। किन्तु पणिगण एक समयमें निरामिशी थे, इसीसे शुरूसे ही इन दोनों श्रेणियोंमें बहुत मतविरोध था।

यद्यपि वणिकोंकी पाश्चात्य-भूलण्डमें वाणिज्य-प्रसङ्गमें आर्यासभ्यता विस्तार और सुविस्तृत राज्य-प्रतिष्ठामें सुयोग मिलता था, किन्तु उनकी जन्मभूमि भारतवर्षमें उनके साथ आचार्य और याज्ञिक राजन्य-वर्ग द्वारा पहले उपयुक्त अच्छा व्यवहार नहीं हुआ था। ऋग्वेदके ऐतरेय-ब्राह्मणसे ही उद्धृत करते हैं—

‘ते प्रजाया गाजनिष्यतेऽन्यस्य वसिष्ठदन्वस्याद्यो यथा-
कामन्येयः’* (७।५।३)

अर्थात् करप्रदान, पराधीनता और तिरस्कार-भागिता ये वैश्योंके गुण वेदके प्राचीनतम ब्राह्मणमें निर्दिष्ट हुए हैं। राजाकी वैश्य कर प्रदान करने और उसके अधीन रहने, यह अवश्य नया है, किन्तु ये

* सायणाचार्यने इस तरह भाष्य किया है—“नेष्यश्च वापिन्यं कुर्वन् अन्यस्य राशे वलित्वं वसिष्ठो करोति, करं प्रयच्छतीत्यर्थः। अतएव अन्यस्य राशः आद्यः भद्रोऽपीनो भवतीत्यर्थः। तस्य राशः कामभिच्छामनतिक्रम्य न्येयः अभि-
भवतीति भवति। ज्या अभिभवे इति धातुः। त एते करप्रदान पराधीनत्वतिरस्कार्यत्वात्वा वैश्यगुण्याः।” (सायण ७।५।३)

तिरस्कारभागी होने पर्ये? यह वंश वैश्योंके प्रति वलित्विय ब्राह्मणकारकी विद्वेपद्रष्टि नहीं? साधारण कृषिसमाज पर कृपाद्रष्टि रहने पर भी परवर्ती स्तुति, पुराण और नाना संस्कृत ग्रंथोंसे भी पणिक्, या प्रकृत वैश्यसमाज पर बराबर ब्राह्मणशास्त्रकारगणकी कृपा-द्रष्टिका अभाव था।

जो ही, क्षत्रिय राजाओंके दक्षिण हस्तस्वरूप श्रेष्ठो (सेठ) या धनी वणिकगण राजा द्वारा वैसा निरङ्ग-भागी नहीं हुए। राजसभामें वे बहुत सम्मान पा गये हैं।

नाना जैन, बौद्ध और शैवग्रन्थोंमें इसका यह यथेष्ट प्रमाण है, कि वैश्य वणिकोंसे शैव, सौर, जैन या बौद्ध-धर्म विशेषरूपसे परिपुष्ट हुए थे। उनके यत्नसे बौद्ध-धर्म भारतवर्षकी छोड़ बहुत दूर देशान्तरोंमें प्रचारित हुआ था। उनके द्वारा प्रतिष्ठित नाना शैव और बौद्ध देवोंके मन्दिर केवल भारतवर्षमें नहीं सुदूर चीन, कम्बोज, यवहीण, सुमात्रा आदि भारत महासागरीय द्वीपों और अनुद्वीपोंमें सुशोभित हुए थे। आनम्, श्याम, कम्बोज, सिंदल आदि स्थानोंमें उन सब प्राचीन वणिकोंके वंशधरगण आज भी वास कर रहे हैं। श्याम देशके इतिहास-लेखक वाउरिङ्ग साहबने लिखा है—

“The forefathers of these people (of Anam, Siam, Cambodge) came from the Ganges valley, and probably they were the people of Bengal....The cut of the face is like that of a Bengali...At one time Cambodia was a powerful Hindoo kingdom and the Bengali merchants and traders used to frequent the Island....The descendants of the Bengali Baniks (traders and navigators) are found in Ceylon, Siam, Anam and Borneo.”

पहले ही देखा चुके हैं, खेतिहर और वणिक् इन दो श्रेणियोंके मनुष्योंसे ही वैश्य-समाज या प्रजासाधारण था। इनसे पर ले कर राजा राजत्व करता था। कारण शूद्रोंसे कर वसूल करनेकी प्रथा ही न थी।

गीतम-धर्मसूत्रसे हम जानते हैं, कि कृषक राजाको एक दशमांश, एक अष्टमांश या एक पञ्चमांश कर देते थे। गाय आदि पशु और सुवर्ण पर ५०वां अंश, पणवद्रथ पर शुक्क हिसाबसे २० अंश, मूल फल, फूल, भेज लता गुल्म आदि, मधु, मांस, तृण और जलानेकी लकड़ी पर ६०वां अंश कर वसूल होता था। कर्मकार और शिल्पियोंको मासमें एक दिन राजाका काम कर आना पड़ता था।

पाटलिपुत्रवासी यूनानी दूत भारतीय प्रजासाधारणके सम्बन्धमें दो हजार वर्ष पहले लिख गया है—

"They live happily enough, being simple in their manners and frugal. They never drink wine, except at sacrifices. Their beverage is a liquor composed from rice instead of barley, and their food is principally a rice pottage. The simplicity of their laws and their contracts is proved by the fact that they seldom go to law. They have no suits about pledges and deposits, nor do they require either seals or witnesses, but make their deposits and confide in each other. Their house and property they generally leave unguarded. These things indicate that they possess sober sense. Truth and virtue they hold alike in esteem. Hence they accord no special privileges to the old unless they possess superior wisdom."

इस समयके कुछ दिनों बादके रचे जैनियोंके 'उपाशकदशा सूत्र'से मालूम होता है, कि आनन्द नामक एक वैश्य गृहस्थ था। जैनधर्मके अनुसार यतिधर्म न ग्रहण करने पर भी पञ्च अनुव्रत उसने ग्रहण किया था। उसने सब तरहकी जीवहत्या, सब प्रकारकी मिथ्या प्रश्रुता (उगना) एक समयमें ही छोड़ दी थी। यह जिनमन्द। नामकी एक स्त्रीसे प्रेम करता था। ४ करोड़ सुवर्ण उनके कौषागारमें रक्षित था, ४ करोड़ कुसीदके

लिये चल रहा था और ४ करोड़ सोनेकी जमिन्दारी भी थी। यही उसकी आयकी सीमा थी। अब इस धनकी बढ़ानेकी इच्छा उसके न थी। इससे छोड़ उसके पास ४ दल गौ भैंसे थीं। एक दलमें १०००० गाय भैंस होती थीं। ५०० दल और प्रत्येक दल पर उपयुक्त १०० निवर्तन जमीन थी। ५०० शकट, इसके सिवा जलपथसे वैदेशिक वाणिज्यके लिये चार जहाज और देशके स्वयंसायके लिये दूसरे ४ जहाज मौजूद रहते थे।

उपासकसूत्रसे जिस एक सामान्य बणिक्का परिचय दिया गया, उससे समझना होगा, कि भारतीय वैश्यसमाज किस तरह उन्नत था। म्यूचक्रांटक नाटकसे भी राजधानीमें "श्रेष्ठी चत्वर" पाते हैं; यहां धनकुबेर नास करते थे। भारतके सभी बड़े शहरोंमें उनकी कालियां थीं। कदं तरहके अवाहर, नाना प्रकारके रेशमी और मूल्यवान् द्रव्य और स्तूपाकार धनराशि बहुजनपूर्ण शहरकी निभृत गलियोंकी अन्धकारपूर्ण कोठोंमें पड़ी रहती थी प्रयोजन होने पर राजाधिपराजको भी उनसे कर्ज लेना पड़ता था। उनकी अहङ्कार और गौरवस्पृहा न थी, वे स्वजातिपौषण, प्रगाण्ड प्रकाण्ड देवालय स्थापन और देवगुरुमें भक्तिप्रदर्शन द्वारा अक्षय नाम अर्जन कर गये हैं। आज भी उनके चंशधर श्रेष्ठियोंमें भी वह पूर्वस्मृति जागरित है। भारतवर्षके सब जैन तीर्थ आज भी इस उदार चरित श्रेष्ठियोंके पक्ष और व्ययसे विद्यमान हैं। आज भी सैकड़ों जैन और हिन्दू देवालय भारतीय बणिक् समाजके महत्त्वकी घोषणा कर रहे हैं। उन सब श्रेष्ठी और शिल्पियोंके प्रभावसे पाश्चात्य जगत् भी चमत्कृत हुआ था। ऐतिहासिकोंने लिखा है—

"These artists were marked all through the known world, and the products of their skill were appreciated in the court of Harun-al-Rashid in Baghdad, and astonished the great Charlemagne and his rude barons, who as an English poet has put it, raised their visors and looked with wonder on the silks

and brocades and jewellery which had come from the far East to the infant trading marts of Europe" ॥

प्राचीन वैश्य समाजका विशेषत्व—सरलता और आडम्बर हीनता, लक्ष्य—वाणिज्य और कृषि। जिन करोड़पति आनन्दकी यात हम पहले कह आये हैं, उन आनन्दका आहार-व्यवहार नितागत सामान्य था। किसी विषयमें उनके सुख भोगकी लालसा न थी, उनके नित्य आवश्यकीय खाद्य और व्यवहार्य द्रव्यकी जो सूची उक्त जैन शास्त्रकारने उद्भूत की है, वह यहाँ उद्भूत कर ही गई।

"आनन्द नित्य निद्रा त्याग कर लाल गमला और ताजा दूधन ले कर सुख घोंते थे। इसके बाद एक फल और आँवलेका श्वेतश गूदा भक्षण कर दो तरहके तेल शरीरमें मालिश करते थे। इसके बाद शरीरमें एक प्रकारका सुगन्धित चूर्ण लेप कर ८ घड़े जलसे शरीर धो कर एक जोड़ा सुनी कपड़ा पहनते थे। उन के नित्य व्यवहारके लिये कुंकुम, चन्दन, सुसम्बर, कस्तूरी आदि द्रव्य बङ्गमें लेपन करते और घरमें धूप आदि जलाते थे। उनकी पूजाके लिये श्वेत पद्म और दूसरे एक तरहका फूल जाता था। उनके कानमें अलङ्कार और हाथमें अंगूठी थी।

"छादुष द्रव्यके उपयोगमें भी वे विशेष आडम्बरी नहीं थे। कई तरहके शीतल पानीय, चायल दालकी बिचड़ी, घीमें पकाया चीनीकी चासनीमें डुबोया पीठा, नाना प्रकारके चायलका अन्न, उड़द, मूँग और सोना मूँगकी दाल, शरत्सन्तुका संगृहीत गायका घी, साधारण व्यञ्जन आदि और पलङ्क उनके नित्यका व्यवहार्य था। सुपरिष्कृत पानीयके लिये वे घृष्टि-जल धरते थे। पांच तरहके मसालोंका पान उनकी सुलशुद्धिके लिये मस्तुत होता था।" (उपासकदर्शासूत्र)

एक करोड़पतिका कैसा सरल और आडम्बरहीन वाचरण है? इसीलिये ही भारतीय षण्णिक्रमण समय

पर महान और साधु आप्यासे अभिहित हुए थे। वैश्य साधारणमें क्या क्या व्यवसाय करते थे और उनमें कौन निन्दित और कौन उत्तम था, मनुसंहिताके आपद्बुधमें उसका कुछ आभास मिलता है।

मनुसंहिताके दशमें अध्यायमें लिखा है—ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी अपनी वृत्तिकी असम्भावना होने पर और धर्मनिष्ठतामें व्याघात होने पर निषिद्ध वस्तु परिधर्जानपूर्वक वैश्यके विक्रयके वस्तुजात विक्रय कर जीविका निर्वाह करे। किन्तु उनके लिये सब तरहके रस, तिल, प्रस्तर, सिद्धान्त, लवण, पशु और मनुष्य इन सब द्रव्योंका विक्रय निषेध है। कुसुम्मादि द्वारा रक्त वर्णका सूत निर्मित सब तरहके वस्त्र, शय और अतसी तन्तुमय घंछ और रक्तवर्ण न होने पर भी मेलोमयि निर्मित कम्बल आदि भी विक्रय करना निषेध है। जल, शल्य, विष, मांस, सोमरस, सब तरहके गन्धद्रव्य, क्षीर, दधि, सोम, घृत, तैल, मधु, गुड़ और कुश—ये सब वस्तुएँ भी निषेध हैं। सब तरहके आरष्य पशु, विशेषतः हाथी या दंष्ट्री पशु अखण्डित खुर अर्थात्, इनके अलावे पक्षी, नील, मद्य और लाह—ये सब चीजें भी विक्रय करना मना है। स्वयं कर्षण द्वारा तिल उत्पादन पूवक अचिरकालमें विशुद्धावस्थामें बेच सकता है। किन्तु लामकी आशासे अधिक दिन घरमें रख छोड़ कर फिर वह उसे बेच न सकेगा। भोजन, मर्दन एवं दानको छोड़ यदि कोई तिल बेचे, तो वह पितृपुरुषोंके साथ कृमिद्वय प्राप्त हो कर कुम्भकुरविष्टामें निम्न होता है। ब्राह्मण मांस, लवण और लाह बेचते ही पतित होता है। किन्तु दुग्ध क्रमागत तीन दिनों तक बेचनेसे शूद्रत्व प्राप्त होता है। मांस आदिकी छोड़ अन्यान्य निषिद्ध वस्तुओंके लगातार सात दिनों तक बेचने पर ब्राह्मण वैश्यत्व के प्राप्त होता है। रसद्रव्य लिया जा सकता है, किन्तु रसद्रव्यके साथ लवणका परिचयन नहीं होता। सिद्धाप्र का विनिमय आमामनके साथ हो सकता है, किन्तु समान परिमाणसे।

ब्राह्मणके आपद्कालकी जो जीविका कीर्तित हुई, क्षत्रिय भी वैसी ही जीविकासे अपना

निर्वाह करें। किन्तु वह कभी भी विषयवृत्ति अचलमन कर न सकेंगे। यदि कोई अधम जातीय व्यक्ति उत्तम व्यक्तियोंकी वृत्तिसे अपनी जीविकानिर्वाह करे, तो राजाका करीब्य होगा, कि उसकी सम्पत्ति जप्त कर उसको देशसे निकाल दे। स्वधर्म निरुद्ध होने पर भी लोगोंके अनुष्ठेय नहीं। जात्यन्तर धर्म द्वारा जीवन धारण करने पर भी मनुष्य तत्क्षणात् स्वजातिसे परिभ्रष्ट होता है। वैश्य स्वधर्म द्वारा जीविका निर्वाहमें असमर्था होने पर झूठा भोजनादि अनाचार परिहार पूर्वाक द्विजशुभ्रूपादि द्वारा जीविका निर्वाह करें। किन्तु आपदमुक्त होने पर शूद्रवृत्ति त्याग कर दे।

मनुवचनोंसे मालूम है, कि वैश्य निर्मालयित चोजोंका व्यवसाय करते थे—

सब तरहके रस, (गुड़, अनार, आंवला, किरात तिक आदि), सिद्धान्त (तण्डुलादि), तिल, पाषाण, लवण, कई तरहके पशु, मनुष्य, सब तरहके तैतके कपड़े, लाल घस, शणका कपड़ा, क्षौम वस्त्र, कम्बल आदि, फल मूल, ओषधि, जल, लौह, विष, सोमरस, क्षौर, दधि, घी, तैल, गुड़, कुश, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य, मद्य, मांशिक, मधु, मेाम, शल्य, भासव, सब तरहके घन्य पशु, शंखी या घन्य शूकर आदि, पक्षी, सब तरहके घोड़े, गव्हे, बघर आदि, नील, लाह, इत्यादि। किन्तु इन सबोंमें कई चोजोंका व्यवसाय श्रेष्ठ वणिकोंके लिये निम्नित था, विशेषतः तैल, दुग्ध, लाह, लवण, मांस, गुड़ और सिद्धान्त जो विक्रय करते थे, ये हेय समझ जाते थे—इसलिये आपदकालमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय कभी भी उक्त चोजोंका व्यवसाय न करें।

साधारणतः शूद्र जातिके लिये द्विजसेवाको छोड़ अन्य वृत्तियोंका निषेध होने पर भी विपन्न शूद्र पुत्रदारादिके परिपालनके लिये कारुकार्य और शिल्प कर्म कर सकता था। (मनु १०।६६) यह कार्य और शिल्प कथा है ? इसके सम्बन्धमें मनुभाष्यकार मेघातिथिसे लिखा है—

“कारुकाः शिल्पिनः सूद्रतन्तुवायादस्तेषां कर्मणि पात्रघयनादीनि प्रसिद्धानि” अर्थात् कारुकर और शिल्पिगण कहनेसे रूपकार या पात्रक, तन्तुवाय आदि

समझना होगा। उनके कार्य पात्र या घयन आदि हैं।

परवर्ती श्लोकके भाष्यमें भी मेघातिथिसे लिखा है,—“तत्रकिं वदन् किं प्रभृतयः कारवस्तेषां कर्मणि तक्षण वदन्नादीनि शिल्पयानि यत्र छेदरूपकर्माण्यलेष्यानि।”

प्रसिद्ध मनुटीकाकार सर्वज्ञ नारायणसे लिखा है, “कारुकाणां विशिष्टकर्मकराणां चित्रकरादीनां”—कारुकरका अर्थ—प्राथत कमार और चित्रकर भी समझना चाहिये।

सुतरां देखा जाता है, पात्रक, तन्तुवाय, कमार, चित्रकर या पटुना प्रभृतिका कार्य भी वैश्य या द्विजातिवृत्ति नहीं थी—यह शूद्रवृत्ति थी।

अब समझमें आया, कि छाप द्वारा सब तरहके धन उत्पादन करना, गोमैसका पालन और अर्थकरा अन्तर्वाणिज्य और वाहवाणिज्य ही वैश्य जातिकी उपजीविका है। आश्चर्यका विषय है, कि छपि और गोरक्षा वैश्य जातिकी प्रधान वृत्ति कही जाने पर भी समय पर यह वृत्ति हीनवृत्ति मानी जाती थी। उसका कारण क्या ? मनुसंहितामें देखते हैं—

ब्राह्मण और क्षत्रियको यदि वैश्यवृत्ति द्वारा ही जीविका निर्वाह करना हो, तो दोनों ही हिंरा बहुत बलवद्वादि पश्याधीन छपिकार्य यत्पूर्वक छोड़ दें। यद्यपि कोई कोई छापको प्रशंसा करते हैं, फिर भी, यह सज्जननिम्नित है। पशुांक, हलका नोकसे जमानमें

• इस समय यह पात्रकवृत्तिको ब्राह्मणोंने अपनाया है, किन्तु वास्तविकमें यह शूद्रवृत्ति। शूद्र जातिमें कौन कौन पात्रक हो सकता है अर्थात् किस किसके हाथका गभी द्विजाति भोजन कर सकते हैं, सब स्मृतिधर्मों उक्तका भी उल्लेख है। जैसे—

मनु—“आदि कः कुलभिन्नथ गोपानो दासनापितो।

एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यन्वात्मानं निवेदयेत् ॥”

(४।१।६३)

यास्यलव्य—शूद्रेषु दासगोवास्तुलमिश्राद्भीरिष्यः।

भोज्यान्ना नापितरचैव यथातमानं निवेदयेत् ॥

(१।१।६६)

यमर्पिता—(२०) और परहरर्पितामै—(१।१।२०)

एके श्लोक दिखाई देते हैं।

तृण जलका आदि प्राणी मर जाते हैं। (१०।८३-८५)

जिस दिन आर्यासमाजमें कृषिकार्य^१ इस तरह निम्नित हुआ, उसी दिनसे ही वैश्यवर्णकी प्रधान उपजीविका कृषिवर्जनका सूत्रपात हुआ। जो कृषिवृत्ति वेदवेदाङ्गमें और धर्मसूत्रमें अत्यन्त प्रशस्त गिनी गई है, राजर्षि जनक आदि बहुतेरे आर्य ऋषियोंने समादर से कृषिकार्य किया था, यह कृषिवृत्तिके निम्नित होनेका क्या कारण है? आश्चर्यका विषय है, कि मानवकल्पर सूत्रमें, मानवधर्तीसूत्रमें या मानवगृहसूत्रमें ऐसी व्यवस्था न रहने पर भी भृगुप्रोक्त मनुसंहितामें ऐसी बातके स्थान पानेका क्या कारण है? इसमें सन्देह नहीं, कि यह जैन और बौद्धोंके प्रभावका ही फल है। "अहिंसा परमो धर्मः" रूपी मूलमन्त्रमें दीक्षित होनेके साथ वैश्यसमाजने भी कृषिवृत्ति छोड़ दी, दधि और दूधका व्यवसाय भी ऊंची श्रेणीके लिये निम्नित समझ कर गोरक्षा, पशुपालन आदि कार्योंको भी वैश्योंने छोड़ दिया।

इन वृत्तियोंके त्यागके संबंधमें बङ्गालके एक बहुभाषा-मिश्र बहुदर्शी पण्डितने कहा था,—“चार वर्णोंके गठित होनेके पहले वैश्य ‘विश्व’ अर्थात् आर्यप्रजासाधारण रूपसे समाजके सब कर्त्तव्य कार्य करते थे। पशुपालन और कृषिकार्यका भार उन पर ही था। जीवनयात्रा निर्वाहके सभी कार्य और अर्थकरी महाजनोंके कर्म भी वे सम्पादन करते थे। जो सब नीच और दासत्वहायक कार्य थे, जिन कामोंमें शारीरिक परिश्रमकी बहुत आवश्यकता होती थी, [शूद्रोंको सृष्टि होनेके बाद उन सब कामोंसे उन्हें] फुरसत मिल गई। पीछे नाना मिश्रजातियोंको सृष्टि होने पर वैश्योंको काय और शिल्पकर्मोंसे भी अवसर मिल गया। शिल्पकार्यका भार सूत्रपर, तन्तुघास, स्वर्णकार, कर्माकार, कुम्भकार आदि पर अर्पित हुआ। इस समय वैश्य कंधल, महाजन और वणिक्का ही काम करनेमें व्यवस्त हैं। इसी कारणसे वैश्य वणिक् नामसे ही विख्यात हुए। रामायणकी फलश्रुतिसे भी यह बात स्पष्ट हो जाती है।*

इससे पूर्व ६ठी शताब्दीसे ४थी शताब्दी तक भारतके जैन और बौद्धधर्म निकट निकट खूब प्रचल-भायसे चल रहे थे। इस समय वैश्यसमाज दोनों सम्प्रदायके दाहने हाथ स्वरूप थे, यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी। वैशाली, श्रावस्ती, पाटलिपुत्र, कात्यकुम्भ, उज्जयिनी, सौराष्ट्र, पीण्ड्यवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदि बहुजन-कीर्ण और वाणिज्य-प्रधान शहरके प्रलतत्त्वसे जो ढेरके ढेर निदर्शन पाये गये हैं, उनसे भारतीय वैश्य समाजकी उन्नत-अवस्थाका परिचय मिलता है।

और तो क्या, ४थी और ५वीं शताब्दीमें वैश्यशक्ति ही क्षत्रियशक्तिको खर्ग कर सिर उठानेमें समर्थ हुई थी। जब ब्राह्मण-समाजने देखा, कि जैन और बौद्ध धर्मों क्षत्रिय राजाने ब्राह्मण-शक्तिको विपदास्त कर दिया है, ब्राह्मणोंके अभ्युदयकी आशा नहीं, तब उन्होंने वैश्यशक्तिका आश्रय लिया था और तो क्या—एकमात क्षत्रियोंके अनुष्ठेय अभ्येधयश वैश्यशक्ति द्वारा सम्पन्न करानेमें अपसर हुए थे। गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्तकी बात कहने है। गुप्तवंशके अभ्युदयके समय ब्राह्मणोंने उनका आश्रय लिया था। उनको वृत्तिके लिये ही सम्राट् समुद्रगुप्तने भारतके प्राचीन बौद्ध-राजधानी पाटलीपुत्रमें ब्राह्मण मर्यादा स्थापित करनेके लिये अभ्येधयशदा अनुष्ठान किया था। हिन्दूशास्त्रके मतसे निस्सर्वण अपने ऊंचे वर्णकी वृत्ति ग्रहण कर नहीं सकता था। इससे ब्राह्मण-शास्त्रकारोंने घोषणा की, कि पृथ्वी निःक्षत्रिय हुई है। इसीसे हम लोगोंने क्षत्रियका काम वैश्यसे कराया। उक्त अभ्येधयश भी प्रकारान्तरसे मानो द्वितीय परशुराम द्वारा निःक्षत्रिय-यश कहनेसे भी अत्युक्ति नहीं

* गुप्तवंश किस वयके थे। इस विषयमें कई मत गुने जाते हैं। इसका पुमाण्य भी बहुत मिलता है, कि गुप्तवंश वैश्यवर्णके थे। पारस्करयज्ञसूत्रमें लिखा गया है, शर्म ब्राह्मणस्य त्रम क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य (१।१७।४) अर्थात् वैश्यके नामके अन्तमें गुप्त उपाधि रहेगी। जिन्होंने अभ्येधयश किया था, वे क्षत्रिय होने पर कभी भी क्षत्रियोचित उपाधि त्याग नहीं करते।

कही जा सकती। वैश्य-सम्राट् समुद्रगुप्तने उस समयके भारतके सब क्षत्रिय-राजवंशको पराजित कर सभीको वंशमें कर लिया था। किन्तु इच्छा रहने पर वे उस समय भारतमें स्थायी भावसे धर्म वा ब्राह्मण-प्रतिष्ठा नहीं कर गये। वे एकांत ब्राह्मणभक्त होने पर भी उनके अन्यान्य आत्मीय स्वजन बौद्धधर्मानुरागी थे। इस कारण उनके वंशधर गुप्तसम्राट्गण ब्राह्मण और श्रमण दोनोंके सम्मानको रक्षा करने पर बाध्य हुए थे। जो ही, ७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कर्णसुवर्ण अधो-भर शशाङ्कने ब्राह्मणभक्तिकी पराकाष्ठा और बौद्ध-विद्वेषका जलन्त दृष्टान्त दिखाया था। उनके ब्राह्मण्य-प्रतिष्ठामें अग्रसर होने पर भी और एक अन्य वैश्य-सम्राट्ने उनका गर्व खर्च करनेके लिये अल्ल धारण किया था। वह और कोई नहीं,—कन्नौजके हर्षवर्द्धन थे। हर्षवर्द्धन शशाङ्क नरेन्द्रगुप्तको पराजय कर आर्यावर्तके सम्राट् हुए थे। दंडुनेरे इन हर्षवर्द्धनको क्षत्रिय या वैश्य राजपूत कह कर परिचित करनेमें अग्रसर हो रहे हैं। किन्तु इन सम्राट्ने भी अपनेको क्षत्रिय कह कर परिचय नहीं दिया है। इस वंशकी लगातार 'वर्द्धन' उपाधि ही वैश्यवर्णकी परिचायक है।

पहले ही कह आये हैं, कि गुप्तवंशका अभ्युदय सच छुछिये तो वैश्यवर्णका अभ्युदयान है। इस तरह महाशक्तिलाभ छोड़ ही दिनोंमें नहीं हुआ था। बहुत पहले से धीरे धीरे वैश्य-समाजने शक्तिका सञ्चय किया था, उसीका यह विकास है। किन्तु तरह वैश्य-समाजने ऐसी महाशक्ति लाभ की थी? इस समय जैसे अंग्रेज बणिक् पृथ्वीके चारों ओर अपनी शक्ति सञ्चालन कर अत्यंत प्रमाथशाली हो गये हैं, उसी तरह भारतीय बणिक्-समाज चारों दिशाओंमें फैल कर शक्ति सञ्चय कर रहे थे। उसका उज्ज्वल दृष्टान्त भारतीय बणिक्गण (Phoenician) हैं। बाणिज्य-प्रभावसे उन्होंने सुदूर यूरोप-लण्ड अधिकार कर सुसभ्य राज्यकी प्रतिष्ठा की थी, किन्तु भारतीय दूसरे बणिक् समाजकी ऐसी राज्य विस्तारकी प्रवृत्ति थी नहीं। वे जानते थे, कि उनकी जन्म-भूमि सुवर्णमय भारतभूमिसे श्रेष्ठस्थान जगत्में नहीं है। इस कारण महाद्वीपान्तर्से आहत रत्नराजि ला कर

जननी जन्मभूमि की अथौर समृद्धिशाली बना दिया था। ये बाणिज्यकी लामाशासे कितनी दूरके देशोंमें जाते जाते थे? इन तासितासके अनुवादसे ऐसा प्रमाण पाते हैं—

“Pliny the elder relates the fact, after Cornelius Nepos, who, in his account of a voyage to the North, says, that in the consulship of Quintus Metellus Celer, and Lucius Afranius (A, U, C, 694, before Christ 60), certain Indians, who had embarked on a commercial voyage, were cast away on the coast of Germany, and given as a present by the King of the Suevians, to Metellus, who was at that time proconsular Governor of Gaul. “Cornelius Nepos de Septentrionali circuitu tradit quinto Metello Celeri, Lucii Afranii in Consulatu Collegæ, sed tum Galliae proconsuli, Indos a rege Suevorum dono datos, qui ex India commercii Causa navigantes, tempestatibus essent in Germanian abrepit.” Pliny, lib, ii, s. 67, The work of Cornelius Nepos has not come down to us; and Pliny, as it seems, has abridged too much. The whole tract would have furnished a considerable event in the history of navigation. At present we are left to conjecture, whether the Indian adventurers sailed round the cape of Good Hope, through the Atlantic Ocean, and thence into the Northern Seas; or whether they made a voyage still, more extraordinary, passing the island of Japan, the coast of Siberia, Kamschatska, Zembia in the Frozen Ocean, and thence round Lapland and Norway, either into the Baltic or the German ocean.”

श्री हज्जार वर्ष पहले भारतीय बणिक् जर्मनीके किनारे

* Tacitus, translated by Murphy, Philadelphia. 1836, p. 606.

जा कर चीजे' येव आते थे। इसीसे अति प्राचीनकालमें उच्चालतरङ्गसङ्कुल जापान उपसागरको पार कर वा अटलांटिक महासागर होते हुए वे लोग उस दूर देश जर्मनीमें कैसे पहुंचे थे। यह निश्चय न कर सकने पर (Murphy) साहब बहुत विस्मित हुए थे। उसकी अपेक्षा प्राचीनकालसे ही यहां बणिक् मिश्रके रत्नाहरणके लिये वहां वाणिज्य करने जाते थे, यह बात भी कही गई है। *

अथ विचार कीजिये, कि भारतीय वैश्य-समाजने साम्राज्य लाभको उपयुक्त महाशक्ति किस तरह वर्जन को थी? और अल्प समयमें ही समस्त भारतवर्ष ही क्यों गुप्तवंशके हाथ आ गया था?

हिन्दू वैश्यसमाजमें जो जैन वा बौद्ध थे, ब्राह्मण-भक्त गुप्त सम्राट्को चेष्टासे वे सब पीछे हिन्दू ही गये थे। ५वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक फाहियान भारतमें बुद्ध-स्मृति तथा बौद्ध-कीर्तियोंको देखनेके लिये आये थे। वे आर्यावर्त्तमें ब्राह्मणधर्म, तथा बौद्ध धर्मका समान प्रभाव देख कर गये थे। वे सिंहल जानैके समय ताप्रलित बन्दरमें हिन्दुओंके जिस जहाज पर चढ़े थे, उसमें दो हजार आरीही चढ़ते थे। इस फाहियानके भारतप्रगण-वृत्तान्तसे आपकी पता चलेगा, कि भारतीय बणिक् केवल सिंहल ही नहीं, बरं भारतके प्रायः बहुत जनाकीर्ण भारतमहासागरीय द्वीपोंमें अपनी चीजोंको ले कर बेचने जाते थे। उस प्राचीन कालमें भी फाहियानने यवद्वीप और दालीद्वीपमें हिन्दू बणिकोंके उप निवेश देखे थे। उस समय बणिक् कहनेसे वैश्य जातिका अर्थबोध होता था। इस समय उन्नत वैश्य समाज छवि और पशुपालन इन दो वृत्तियोंका त्याग कर चुका है।

गुप्तसम्राट्को ये सब भारतके नाना स्थानोंमें ब्राह्मण प्रतिष्ठाका आयोजन होने पर भी वैश्य सम्राट् दर्शयद्ध' नकी चेष्टासे आर्यावर्त्तमें कुछ दिन बौद्ध प्रतिष्ठाका ही अनुसंधान देना गया था। जो ६१, ६४८ ई०में सम्राट् दर्शयद्ध' नकी मृत्युके बाद बौद्धधर्मका अयसान

होने लगा। कुछ दिनोंके बाद ८वीं शताब्दीके प्रथम-मांशमें कन्नौजके सिंहासन पर क्षत्रियवोर यदोवर्मा-देव अथिष्ठित हुए। उनके समयसे ही ब्राह्मणानुसूचका स्थायी सूत्रपात हुआ। यशोवर्मदेवके यत्नसे वैदिक धर्म प्रचारका अथेट आयोजन हुआ था। इस समयमें भी पाटलिपुत्र, गौड और ताप्रलिसिमें वैश्यसमाज बहुत प्रबल था। उनमें हिन्दुओंको संख्या बहुत कम थी और योद्धोंकी अधिक। पाटलिपुत्रमें वैश्योंकी चेष्टासे गोपाल मगधके अधीश्वर हुए। उनके पुत्र धर्मपालकी शिलालिपिसे यह बात जानी जाती है। यशोवर्माकी तरह उनके समसामयिक आदिसूर गौडमण्डलमें सांनिक ब्राह्मणोंको बुला कर वैदिक धर्म प्रचारमें मनोयोगी हुए थे। किन्तु उनके वैदिकधर्मके शाय ही गोपालके पुत्र धर्मपालने आ कर गौड राज्य पर अधिकार कर लिया। यह पालवंश किस जातिके थे, इसका पता नहीं लगता। किन्तु इस वंशके साथ बणिक् जातिका यौन सम्बन्ध था, इसका कुछ आमास गोवीप सुवर्ण बणिकोंके कुल-इतिहाससे मिलता है। प्रायः ४ सौ वर्ष तक बौद्ध पालराजवंशने गौड और मगधमें अपना राज्य विस्तार किया था। इस समय भी गौड वङ्गालका बौद्ध धर्मानुसूचो वैश्य समाज बहुत कुछ उन्नत था। उस समय भी यहाँके बणिक् उत्तर चीन, तिब्बत, पूर्व आसाम, कर्षाज, दक्षिण यव, घाळी, धार्मिणी, सुमात्रा आदि द्वीपोंमें और पश्चिम सूत, गुजरात तथा सुदूर मिश्र राज्य तक जाते आते थे। वे समुद्रयात्राके उपयोगो नाना आकारके जहाज तैयार करते थे। कविकङ्कणके चण्डीमङ्गलसे उसका कुछ आमास मिलता है।

मुसलमानों तथा अङ्गरेजोंकी अमलशारीमें भी भारतीय बणिक् समाजकी पूर्ण रीति पक समय परित्यक्त नहीं हुई। आधुनिक समासिन्धुधकारोंके दिग्दुओंके लिये समुद्रपथको बन्द कर देने पर भी तैलङ्ग, तामिल, गुजराती, मराठी और पञ्जाबी बणिक् आज भी सुदूर अफरिका, अमेरिका और यूरोपके नाना स्थानोंमें जा कर पण्य विक्रय करनेमें कुण्ठित नहीं होते। किन्तु कदं तो कद सकते हैं, कि जिस दिग् हिन्दू समासिन्धु

यात्राके विरुद्ध खड़े हुए, उसी दिनसे भारतके धर्माधिक उन्नत वर्णिक समाजको उन्नतिके मूलमें कुठाराघात हुआ। उनके कुछ ही दिन बादसे समुद्र वाणिज्य भारतीय वर्णिकोंके लिये अधिक कठपना हो उठी, किन्तु इस समय अब देखा जाता है, कि समुद्रयात्राका बन्धन बहुत ढीला पड़ गया है। कितने ही सुविद्ध वर्णिक भारतीय द्वीपसमूहोंमें तथा जापान, चीन और जर्मना आदि देशोंमें जा कर आम्दनी-रफ्तनी (Export-Import) का व्यवसाय करते हैं। इधर यूरोपीय महा-समरके बाद यह बन्धन तो बिलकुल ढीला पड़ गया है।

आज भी भारत भरमें वैश्य जातिका सर्वत्र बास दिखाई देता है।

वर्त्तमान उत्तर पश्चिम प्रदेशमें जिन सब वर्णिकोंका बास है, वे सँकड़ों श्रेणियोंमें विभक्त हो गये हैं। राजस्थानके इतिहास-लेखक टाड साहबने लिखा है, कि एक जैन यति वर्णिक जातिकी सूची संग्रह कर रहे थे। प्रायः १८०० श्रेणियोंका नाम संग्रह होनेके बाद उन्होंने दूरबासो और एक दूसरे यतिले १५० और वर्णिक श्रेणियोंकी सूची पायी। इस पर उन्होंने असम्भव सोच कर स्थगित कर दिया। यदि सच पृछिये, तो जातिकी संख्या उतनी अधिक नहीं, उनमें निम्नलिखित जातियाँ ही प्रधान हैं; उस वर्णिक समुदायके नाना व्यवसाय नाना धर्मके अनुसार हैं, नाना पारिवारिक विशेषतासे बहुत श्रेणियोंको उत्पत्ति हुई होगी। जैसे—

अप्रवाल ।

उत्तर-पश्चिममें अप्रवाल, खण्डेलवाल और अश्ववाल या ओसवाल आदि प्रमुन धनशाली वर्णिकों या बनिषोंका आवास है। बहुत दिनोंसे भारत इतिहासमें इनकी प्रतिष्ठाका परिचय मिलता है। अप्रवाल बनिषा अपरसेन नामक एक राजाके वंशधर हैं। पञ्जाबके हिसार जिलेमें अप्रदा नगरमें उनकी राजधानी थी। अपरसेन किस समय सरहिन्द विभागका राज्यशासन करते थे, यह पता नहीं लगता। किन्तु उनके वंशधरोंने हिन्दू विद्वेषी हो कर जैन धर्मको प्रदण कर लिया। सन्

११६४ ई०में साहयुरीन घोरोंने नगदा पर अधिकार कर अप्रवालको वहाँसे भगा दिया। इस विपद्वातसे गृह-शून्य हो कर अप्रवाल व्यवसाय वाणिज्यमें लग गये।

इनमें इस समय वैष्णवोंकी संख्या अधिक है। सामान्य संवयक जैन भी देखे जाते हैं। किन्तु फिर यह अप्रवाल नहीं रहे, जिन अप्रवालोंने जैनधर्म अग्रतया कर लिया है। किन्तु अप्रवाल प्रायः वैष्णव या शैव विध्वंस देते हैं। इस समाजमें कुछ ऐसे भी पावित है, जो शिव और कालीकी तो पूजा करते हैं सदा; किन्तु वे शैव और शाक्त नामसे परिचित नहीं हैं। कुश्नेत्र और गङ्गा नदी इनके पवित्र तीर्थ हैं। वर्णिक वृत्ति अवलम्बन करनेके बाद महा धूमधामसे दीपाघालीके गव सर पर लक्ष्मीदेवीकी पूजा करते हैं।

किञ्चदन्ती है, कि किसी अप्रवालने घटनाक्रमसे एक नागवंशी या राजकन्याका पाणिग्रहण किया, उसी घटनाका स्मरण कर प्रत्येक हिन्दू (वैष्णव) धर्मावलम्बी अप्रवाल गृह्य धर्म नागमूर्ति अङ्कित कर फल फूलसे उनकी पूजा करते हैं। बहुतेरे ही उपवीतधारी हैं, किन्तु जो शाक्त निर्दिष्ट द्विजाचार पालनमें परामुख हैं, वे कभी भी यक्षवृत्त धारण नहीं करते।

इनमें १८ गोत्र हैं। सगोल तथा सविण्ड दोष रहने पर वे पुत्र-कन्याका विवाह नहीं करते। जैन तथा वैष्णवमें भी इनका विवाह नहीं होता। किन्तु जो अप्रवाल जैन मत ग्रहण कर चुके हैं, उनके साथ वैष्णवी अप्रवाल विवाह कर सकता है। गौड़ मद्राण विवाहादिमें पौरोहित्य करते हैं। वे सभी निरामिय हैं।

वर्त्तमान अप्रवालोंने विश्वास है, कि वे ही आर्य वैश्योंके वंशधर हैं। इनकी सामाजिक व्यवस्था भी बड़ी उन्नत है। सवर्णा पत्नीमत संतान विश-नामसे क्यात है। साद्गुहोन द्वारा भगवै अप्रवाल नाना स्थानोंमें जा व्यवसाय वाणिज्यमें लित होने पर भी कोई कोई अपने प्रतिभावलसे दिव्दोके मुसलमानसम्राटोंके अनुग्रहमाजन हुए थे।

मन्धवाल या मोठवाल ।

अप्रवाल या ओसवाल, धीमाल या धीमाली नामसे परिचित हैं। धीमालीसे वे पूर्णतः स्वतन्त्र हैं

जा कर चीजे' येच आते थे। इसीसे अति प्राचीनकालमें उच्चालतरङ्गसङ्कुल जापान उपसागरको पार कर गा अटलांटिक महासागर होते हुए वे लोग उस दूर देश जंगनीमें कीसे पहुंचे थे। यह निश्चय न कर सकने पर (Murphy) साह्य बहुत विभिन्नत हुए थे। उसकी अपेक्षा प्राचीनकालसे ही यहां दणिक मिश्रकी रत्नाहरणके लिये यहां वाणिज्य करने जाते थे, यह बात भी कही गई है। *

अथ विचार कीजिये, कि भारतीय वैश्यसमाजने साम्राज्य लाभको उपयुक्त महाशक्ति किस तरह अर्जन की थी? और अद्य समयमें ही समस्त भारतवर्ष ही वर्षों गुप्तवंशके हाथ आ गया था?

हिन्दू वैश्यसमाजमें जो जैन या बौद्ध थे, ब्राह्मण-भक्त गुप्त सम्राटको चेष्टासे वे सब पीछे हिन्दू ही गये थे। ५वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक फाहियान भारतमें बुद्ध-स्मृति तथा बौद्ध-कीर्तियोंको देखनेके लिये आये थे। वे आर्यावर्षमें ब्राह्मणधर्म तथा बौद्ध धर्मका समान प्रभाव देख कर गये थे। वे सिंहल जानेके समय ताम्रलिप्त बन्दरमें हिन्दुओंके जिस जहाज पर चढ़े थे, उसमें दो हजार आरौही चढ़ते थे। इस फाहियानके भारतभ्रमण-वृत्तान्तमें आयेकी पता चलेगा, कि भारतीय दणिक केवल सिंहल ही नहीं, वरं भारतके प्रायः बहुत जनाकीर्ण भारतमहासागरीय द्वीपोंमें अपनी चीजोंको ले कर बेचने जाते थे। उस प्राचीन कालमें भी फाहियानने यवद्वीप और दालीद्वीपमें हिन्दू दणिकीके उप निवेश देखे थे। उस समय दणिक कहनेसे वैश्य जातिका अर्थबोध होता था। इस समय उन्नत वैश्य समाज छवि और पशुपालन इन दो वृत्तियोंका त्याग कर चुका है।

गुप्तसम्राटोंके यत्नसे भारतके नाना स्थानोंमें ब्राह्मण प्रतिष्ठाका आयोजन होने पर भी वैश्य सम्राट् दर्पवर्द्धनकी चेष्टासे आर्यावर्षमें कुछ दिन बौद्ध प्रतिष्ठाका ही अनुसंधान देखा गया था। जो ६, ६४८ ई०में सम्राट् दर्पवर्द्धनकी मृत्युके बाद बौद्धधर्मका अस्तित्व

होने लगा। कुछ दिनोंके बाद ८वीं शताब्दीके प्रथम-मांशमें कन्नौजके सिंहासन पर क्षत्रियघोर, यशोवर्मा-देव अधिष्ठित हुए। उनके समयसे ही ब्राह्मणधर्मवृद्धका स्थायी सूत्रपात हुआ। यशोवर्मादेवके यत्नसे वैदिक धर्म प्रचारका यथेष्ट आयोजन हुआ था। इस समयमें भी पाटलिपुत्र, गौड़ और ताम्रलिप्तिमें वैश्यसमाज बहुत प्रबल था। उनमें हिन्दुओंको संख्या बहुत कम थी और बौद्धोंकी अधिक। पाटलिपुत्रमें वैश्योंकी चेष्टासे गोपाल मगधके अधीनत्व हुए। उनके पुत्र पालपालकी शिलालिपिसे यह बात जानी जाती है। यशोवर्माकी तरह उनके समसामयिक भादिसूर गौड़मण्डलमें सामिक ब्राह्मणोंको सुला कर वैदिक धर्म प्रचारमें मनोयोगी हुए थे। किन्तु उनके देहत्यागके बाद ही गोपालके पुत्र धर्मापालने आ कर गौड़ राज्य पर अधिकार कर लिया। यह पालवंश किस जातिके थे, इसका पता नहीं लगता। किन्तु इस वंशके साथ दणिक जातिका यौन सम्बन्ध था, इसका कुछ आभास गौड़ोप सुवर्ण दणिकोंके कुल-इतिहाससे मिलता है। प्रायः ४ सौ वर्ष तक बौद्ध पालराजवंशने गौड़ और मगधमें अपना राज्य विस्तार किया था। इस समय भी गौड़ बङ्गालका बौद्ध धर्मावलम्बी वैश्य समाज बहुत कुछ उन्नत था। उस समय भी यहांके दणिक उत्तर चीन, तिब्बत, पूर्व आसाम, कम्बोज, दक्षिण यव, दाली, धार्मिणी, सुंमाता आदि द्वीपोंमें और पश्चिम सूत, गुजरात तथा सुदूर मिश्र राज्य तक जाते आते थे। वे समुद्रयाताके उपयोगी नाना आकारके जहाज तैयार करते थे। कविकङ्कणके चरडोमङ्गलसे उसका कुछ आभास मिलता है।

मुसलमानों तथा अङ्गरेजोंकी अमलदारीमें भी भारतीय दणिक समाजकी पूर्ण रीति एक समय परित्यक्त नहीं हुई। आधुनिक समारंभिककारोंके दिशुओंके लिये समुद्रपथके बन्द कर देने पर भी तैलङ्ग, तामिल, गुजराती, मराठी और पञ्जाबी दणिक भाज भी सुदूर अफरिका, अमेरिका और यूरोपके नाना स्थानोंमें जा कर पण्य विक्रय करनेमें कुण्ठित नहीं होते। किन्तु कहे तो कह सकते हैं, कि जिस दिन हिन्दू समारंभ समुद्र

याज्ञिक विच्छेद धरते हुए, उसी दिनसे भारतके धर्मात्मिक उन्नत बणिक् समाजकी उन्नतिके मूलमें कुडाराघात हुआ। उनके कुछ ही दिन बादसे समुद्र बाणिज्य भारतीय बणिकोंके लिये कविको कल्पना ही उठी, किन्तु इस समय अब देखा जाता है, कि समुद्रयात्राका बन्धन बहुत ढीला पड़ गया है। कितने ही सुविश्व बणिक् भारतीय द्वीपसुओंमें तथा जापान, चीन और जर्मनी आदि देशोंमें जा कर आम्दानो-रफतनो (Export-import) का व्यवसाय करते हैं। इधर यूरोपीय महा-सगरके बाद यह बन्धन तो बिल्कुल ढीला पड़ गया है।

आज भी भारत भरमें वैश्य जातिकी सर्वत्र-वास दिखाई देता है।

पंचमान उत्तर पश्चिम प्रदेशमें जिन सब बणिकोंका वास है, वे सैकड़ों श्रेणियोंमें विभक्त हो गये हैं। राजस्थानके इतिहास-लेखक टाड साहबने लिखा है, कि एक जैन पति बणिक् जातिकी सूची संग्रह कर रहे थे। प्रायः १८०० श्रेणियोंका नाम संग्रह होनेके बाद उन्होंने दूरबासी और एक दूसरे यतिसे १५० और बणिक् श्रेणियोंकी सूची पायी। इस पर उन्होंने असम्भव सोच कर स्थगित कर दिया। यदि सच पृच्छिये, तो जातिकी संख्या उतनी अधिक नहीं, उनमें निम्न-लिखित जातियाँ ही प्रधान हैं; उस बणिक् सम्प्रदायके नाना व्यवसाय नाना धर्मके अनुसार हैं, नाना पारिवारिक विशेषत्वोंसे बहुत श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई होगी। जैसे—

अप्रवाल ।

उत्तर-पश्चिममें अप्रवाल, लण्डेल्पाल और अम्बवाल या ओसवाल आदि प्रभुत धनशाली बणिकों या बनिधोंका आवास है। बहुत दिनोंसे भारत इतिहासमें इनकी प्रतिष्ठाका परिचय मिलता है। अप्रवाल बनिधों अप्रसेन नामक एक राजाके वंशधर हैं। पञ्जाबके हिसार जिलेमें अप्रदा नगरमें उनकी राजधानी थी। अप्रसेन किस समय सरहिन्द विभागका राज्यशासन करते थे, यह पता नहीं लगता। किन्तु उनके वंशधरोंने हिन्दू विघ्नेषी हो कर जैन धर्मका ग्रहण कर लिया। सन्

११६४ ई०में साहयुरीन घोरने अप्रदा पर अधिकार कर अप्रवालोंको यहाँसे भगा दिया। इस विपद्रुपातसे गृह-शून्य हो कर अप्रवाल व्यवसाय बाणिज्यमें लग गये।

इनमें इस समय वैष्णवोंकी संख्या अधिक है। सामान्य संशयक जैन भी देखे जाते हैं। किन्तु फिर यह अप्रवाल नहीं रहे, जिन अप्रवालोंने जैनधर्म अस्तरधार कर लिया है। किन्तु अप्रवाल प्रायः वैष्णव या शैव दिखाई देते हैं। इस समाजमें कुछ ऐसे भी वाकिन हैं, जो शिव और कालीकी तो पूजा करते हैं सही; किन्तु वे शैव और शाक नामसे परिचित नहीं हैं। कुक्षेत्र और गङ्गानदी इनके पवित्र तीर्थ हैं। बणिक् वृत्ति अंशलग्न करनेके बाद महा धूमधामसे दीपावलीके भवसर पर लक्ष्मीवैधीकी पूजा करते हैं।

किम्बदन्ती है, कि किसी अप्रवालने घटनाक्रमसे एक नागवंशी या राजकुन्याका पाणिग्रहण किया, उसी घटनाका स्मरण कर प्रत्येक दिन (वैष्णव) धर्मावलम्बी अप्रवाल गृहद्वारमें नागमूर्ति अङ्कित कर फल फूलसे उनकी पूजा करते हैं। बहुतेरे ही उपवीतधारी हैं, किन्तु जो शास्त्र निर्दिष्ट द्विजाचार पालनमें परामुख हैं, वे कभी भी यह सूत्र धारण नहीं करते।

इनमें १८ गोत्र हैं। समोत्र तथा सपिण्ड दीप रहने पर ये पुत्र-कुन्याका विवाह नहीं करते। जैन तथा वैष्णवमें भी इनका विवाह नहीं होता। किन्तु जो अप्रवाल जैन मत ग्रहण कर चुके हैं, उनके साथ वैष्णवी अप्रवाल विवाह कर सकता है। गौड़ब्राह्मण विवाहादिमें पौरुहित्य करते हैं। ये सभी निरामिय हैं।

पंचमान अप्रवालोंका विश्वास है, कि ये ही आर्य वैश्योंके वंशधर हैं। इनकी सामाजिक अवस्था भी बड़ी उन्नत है। सवर्णा पत्नीजात संतान विश-नामसे सपात हैं। साहू-होन द्वारा भगाये अप्रवाल नाना स्थानोंमें जा व्यवसाय बाणिज्यमें लित होने पर भी कोई कोई अपने प्रतिभावलसे दिल्लीके मुसलमानसत्तारोंके अनुग्रहमात्रन हुए थे।

अम्बवाल या भोतवाल ।

अम्बवाल या ओसवाल, श्रीमाल या श्रीमाली नामसे परिचित हैं। श्रीमालीसे ये पूर्णतः स्वगन्त हैं

धीरे उनमें आदान-प्रदान भी नहीं होता। इनमें जैनियों की ही संख्या अधिक है या यों कहिये, कि ओसवाल नामसे जैन धर्मों का ही बोध होता है। धीरे जवाहर आदिका येनता, रुपयेका लेन देन या महाजनी इनका प्रधान व्यवसाय है; राजपूतानेमें किसी समय यह ओसवाल बणिक् सम्प्रदाय विशेष प्रतिष्ठित था। राजस्थानका इतिहास पढ़नेसे यह स्पष्ट मालूम होता है। मुर्शिदाबादके जगन्मठ परिवार, अमीरगञ्जके राय धर्मोत्तमिंह और लक्ष्मीवत सिंह आदि धनशाली महाजन अप्रवाल वंशसम्भूत हैं। उत्तर-पश्चिम भारतमें इस श्रेणीके अनेक धनवान और बुद्धिमान व्यक्तियों का परिचय मिलता है। उक्तप्रदेशके, राजा शिवप्रसाद, उदयपुरके दीवान बाबू पन्नालाल और जयपुरके प्रधान राजस्वसचिव नाथमल जी प्रभृति कई व्यक्तियोंने राजकार्यमें विशेष उपातिलाभ किया था।

इस श्रेणीके बहुतनेरे लक्ष्मीके वरपुत्र हैं। ये बाण्डिय द्वारा प्रभूत अर्थ उपाजन करते हैं सही; किन्तु विशेष बाण्डियकुशली नहीं हैं।

ये जैसे ही धनशाली हैं, वैसे ही धर्मप्राण हैं। पालिताना और गिरिनार मन्दिरके समी मंदिर इन्हीं लोगोंके द्वारा बनाये गये हैं। कलकत्ता और बङ्गालके अन्वयस्थानोंमें ओसवालों द्वारा प्रतिष्ठित नाना शिल्पकार्यालय मन्दिर हैं। मोजक ब्राह्मण इनके पौरोहित्य करते हैं। सब श्रेणीके ब्राह्मण इनसे दान लेते हैं। ओसवालों और अप्रवालोंकी समतुल्य मर्यादा है। इनके भी अस-घणां पत्नीका जातपुत्र दास और सबर्णापत्नीत तनयगण विश्व नामसे परिचित हैं। उक्त क्षेत्रों सन्तानोंने ही बाण्डियमें लिप्त रह कर सामाजिक अवस्थाकी विशेष उन्नति की है।

स्यपेक्षवाञ्छ यनिया।

धनगरिमा तथा आचार-व्यवहारमें अण्डेलवाल किसी वंशमें ओसवालों और अप्रवालोंसे कम नहीं है। जयपुर राज्यमें अण्डेल नगरके नामसे इस बणिक् सम्प्रदाय अण्डेलवालोंका नाम हुआ है। किसी समय यह अण्डेलनगरी शेखावती राजपूतोंका शासनकेन्द्र बनी थी।

ये जैन और वैष्णवधर्मावलम्बी हैं। मथुराके लक्षपति खेडगण अण्डेलवाल-वंशसम्भूत भीर जैन हैं। इनकी ही एक शाखाने रङ्गचारी स्वामीके निकट रामानुज वैष्णव मतकी दीक्षा ग्रहण की है। अजमेरके सुप्रसिद्ध बणिक् मूलचौद सैनां जैन हैं।

श्रीमाली यनिया।

राजपूतानेके मारवाड़ विभागके ज्वाल नगरके निकटवर्ती श्रीमाल (वर्तमान नाम भोगाल) नगरवासी होनेसे इस सम्प्रदायका नाम श्रीमाली हुआ है। यह स्थानवासी ब्राह्मण भी साधारणमें श्रीमाली ब्राह्मण नामसे मशहूर हैं। इस नगरमें १५०० घर लोगोंका वास था। धनवान महाजनगण यहाँ रह कर पण्यद्रव्य क्रयविक्रय करते थे। यहाँकी हाटमें सर्वादा माल जमा रहता था, इससे इस श्रेणीका नाम श्रीमाल पड़ा।

अप्रवालोंकी तरह श्रीमालोंसे भी दास श्रीमाली वंशकी उत्पत्ति हुई है। इस दाससन्ततिमें जैन और वैष्णव मत प्रचलित है। किन्तु इनके विशसन्तानगण पकावल जैनधर्मावलम्बी हैं।

पहोवा वनिया।

मारवाड़ और पोषपुरराज्यके अन्तर्गत पहो नगरवासी होनेकी वजह यह सम्प्रदाय पहोवालके नामसे परिचित है। सन् ११५६ ई०में राठोर राजने पहो नगर पर अधिकार कर लिया। उसके बहुत पहलेसे यह नगर एक बाण्डिय-केन्द्रके नामसे विख्यात था।

ये जैन और वैष्णव-मतावलम्बी हैं। आगरा और जौनपुरमें बहुतेरे पहोवालोंका वास है।

पुरावाञ्छ यनिया।

गुजरातके पोरे या पुरबन्दरमें वासनिबन्धन यह गुजराती बणिक् सम्प्रदाय पोरावाल नामसे ख्यात हुए। वर्तमान समयमें ललितपुर, फांसी, कानपुर, आगरा, हमीरपुर और बाँदा जिलेमें इन लोगोंकी बस्तियाँ हैं।

माटिया।

माटिया राजपूतानेके रहनेवाले हैं और अपनेका

* Tod's Annals of Rajasthan Vol, II p. 332

† Hunter's Imperial Gazetteer Vol, XI p. 1

राजपूत कह कर परिचय देने हैं; किन्तु भाटियाजातीय राजपूतसे यह सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। विलायती कपड़े-का यह व्यवसाय करते हैं। किन्तु इस समय वस्त्रमान राजनीतिक आन्दोलनके कारण प्रायः सभी वस्त्र व्यवसायीने विलायती वस्त्रोंका अस्थायीरूपसे यहिस्कार किया है। बम्बई, पंजाब और कराँचो वस्त्रमें ही इनका प्रधान वास है।

माहेयरी या माहेरवी ।

युकप्रदेश, राजपूताना, बिहार और नागपुर अञ्चलमें इस वणिक जातिका वास देखा जाता है। इन्हें राजधानीके निकटस्थ सुमाचोन महिषमती या माहेश्वरपुरसे यह सम्प्राप्य माहेश्वरी नामसे परिचित हुआ है, ऐसा ही अनुमान होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि बीकानेरमें ही इनका आदि वास है। फिर मुजफ्फरपुरके माहेश्वरियोंका कहना है, कि भरतपुर राजधानीके निकटवर्ती महेशान नगरीमें उनका आदिवास था। इनके अधिकांश ही वैष्णव गताधरमयी हैं। अति अल्प संख्यक माहेश्वरी जैन दिखाई देते हैं।

अग्रहारी बनिया ।

बनारसमें बहुतेरे अग्रहारियोंका वास देखा जाता है। ये निरामियाशी और जनेऊचारी हैं। आरके अग्रहारो सिख धर्मावलम्बी हैं।

धुनसर बनिया ।

दिल्ली और मिरजापुरके बीच गाङ्गेय अन्तर्वेदीमें इनका वास है। गुडगांव जिलेके घेराती नगरके निकटस्थ 'धूसी' नामक गण्डरीलक्ष्मणके नामसे परिचित हैं। ये सभी वैष्णवमतावलम्बी हैं। इनमें कोई वाणिज्य नहीं करता। बहुतेरे ही धनशाली भूम्याधिकारी हैं और अधगिष्ट लोगोंमें कुछ कायस्थ और कुछ वैश्य वृत्तिले जाँनिका चलाते हैं।

उम्मार बनिया ।

आगरा और गोरखपुरके मध्यभागमें तथा कानपुरके चारों तरफ निकटवर्ती जिलोंमें इस श्रेणीके बनियोंका वास है। बिहारमें इनके दो एक घरकी बस्ती दिखाई देती है। पिताकी मृत्यु न होने तक ये उपवीत धारण नहीं करते।

रस्तोगी बनिया ।

उत्तर अन्तर्वेदी और लखनऊ, फतेहपुर, फर्रुखाबाद, मेरठ, आजमगढ़ आदि युक्तप्रदेशके प्रधान प्रधान नगरोंमें इस श्रेणीके बहुत लोगोंका वास है। कलकत्ता और पटना नगरमें कितने ही रस्तोगी व्यवसाय वाणिज्यके लिये बस गये हैं। ये सभी बहुमानचारी हैं। ये भी पिताकी मृत्युके बाद जनेऊ धारण करते हैं।

कसरवानी बनिया ।

युकप्रदेशके पूर्वोप प्रांत तथा बिहारके पश्चिमीय प्रदेशमें इनका वास है। यह चायल दाल अर्थात् लिचड़ फरोसीकी दुकान करते हैं।

काशी आदिके कसरवानी बनिया रामेपासक हैं और निरामियाशी हैं। मिर्जापुरकी विन्ध्यवासिनी देवांक ये लोग पूजा करते हैं। किन्तु देवोंको पकरीकी बलि नहीं चढ़ाते वरं उनके उद्देशसे छोड़ देते हैं।

लोहिया बनिया ।

प्रधानतः लोह निर्मात द्रव्यादिका वाणिज्य करते हैं, इसी लोहिया नामसे ये परिचित हैं। इनमें कोई कोई यहवृत्त भी धारण करते हैं। अधिकांश ही वैष्णव हैं, फिर दो एक घर जैनी भी हैं।

खोनिया बनिया ।

सुवर्ण वणिक—बङ्गालके सुवर्णवणिकोंकी तरह ये लोग धनी नहीं हैं। बाराणसीयामो खोनिया गुजरात से आ कर यहां बस गये। स्पर्णालङ्कार बनाना या सोना चाँदीका बेचना उनका व्यवसाय है।

शूरसेनी बनिया ।

मथुरा जिलेका प्राचीन नाम शूरसेन है। सम्भवतः उसीसे ये शूरसेनी नामसे परिचित हैं।

वरसेनी बनिया ।

मथुराके उपकण्टस्थ वर्धमाननगरके नामसे ये वर्धानी या वरसेनी नामसे परिचित हैं। ये धनशाली हैं। मथुरा और तत्प्राथ्वर्धनी जिलोंमें इनका बहुत वास दिखाई देता है।

वरणराज बनिया ।

सुल्तानशहरका नाम वरण है। उस देशके रत्न-घाटे होनेकी वजह से वरणवाल कहलाते हैं। पाठान-

सम्राट् मुहम्मद तुगलकके अत्याचारसे उत्पीडित हो कर ये जगभूमि त्याग करने पर वाध्य हुए थे और पटावा; आरुमगढ़, गोरखपुर, मुरादाबाद, जीतपुर, गाजीपुर, बिहार और तिरहुत आदि स्थानों में फैल गये।

यह कट्टर हिन्दू हैं। गौड़ ब्राह्मण और मैथिल ब्राह्मण इनका पीरोहित्य करते हैं। इनमें कितने ही उपवीतधारी हैं। कितने ही दुकान करते हैं।

भयोध्यावासी बनिया।

भयोध्या प्रदेशवासी बनिया होनेसे ये इस नामसे ध्यात हैं। युक्तप्रदेशके कई स्थानों में और बिहार मञ्जलमें इनका वास है।

बेखार बनिया।

रायबरेली जिलेके सालोन विभागके जैस परगनेमें वास होनेकी वजह से जैसवारा कहलाये।

महोबिया बनिया।

हमीरपुर जिलेके महोबा नगरके पूर्वांतन अधिवासी होनेके कारण ये महोबिया कहलाये।

महुरिया बनिया।

बिहार और गङ्गा यमुनाके बीच रहनेवाले बनिया बहुतेरे इनको रस्तोगीकी शाखा समझते हैं। ये हिन्दू और वैश्य हैं। ये छपक्योंके पेशगी वे कर ईजकी खेती करते हैं। ये खोनीका एकान्त व्यवसाय करते हैं। सिक्खोंकी तरह इनमें भी तम्बाकू पीना मना है। यदि छिप कर कोई पीता है, तो यह जातिच्छुत होता है।

पेश बनिया।

बिहारमें इनका वास है। ये पीतल और कांसेके बरतन बेचनेके लिये दुकान रखते हैं। कोई खेती भी करते हैं। कुमायूँके वैश्य या काईजाति सामाजिकतामें तुल्य मर्णादा होने पर भी भिन्न जाति कहके परिचिन हैं।

काठ बनिया।

बिहारमें इनका भी वास है, दुकानमें पण्य द्रव्य रख कर बेचना, प्रण देना और खेती करना—इनका प्रधान व्यवसाय है। ये जयदेवकी और १२वें दिन श्राद्ध करते हैं। मैथिल

रीनियार बनिया।

गोरखपुर, तिरहुत और बिहार प्रदेशमें इस श्रेणीका वास है। अन्यान्य बणिक् सम्प्रदायकी तरह ये वैष्णव नहीं हैं। ये परम शैव हैं। अग्रवालोंने तरह से भी धनाधिपत्याली लक्ष्मीदेवीकी पूजा विशेष धूमधामसे करते हैं। ये नोनिया नामसे भी परिचित हैं।

जमेय बनिया।

युक्तप्रदेशके इटावा जिलेमें इनका वास है। ये अपनेकी दैत्यपति हिरण्यकशिपुके पुत्र परम भक्त प्रह्लादके वंशधर बतलाते हैं।

कोहना बनिया।

ये भाटिया जातिकी अन्यतम शाखा है। सिन्धु प्रदेशमें इनका वास है।

कांदू बनिया।

ये सामान्य दुकानदार हैं और तरह तरहकी मिठाईयाँ तयार कर बेचते हैं। ये हलवाई नामसे भी परिचित हैं।

गुजराती बनिया।

श्रीमाली, ओसवाल और खण्डेलवालकी छोड़ कर गुजरातके विभिन्न प्रदेशमें और भी कई श्रेणीके बनिया देखे जाते हैं। जैसे—१ नागर (दास और विश) २ देशवाल, ३ पोरवाल (दास और विश), ४ गुजर, ५ मोघ, ६ लड़, ७ करोल, ८ सोराडिया, ९ खड्गीता, १० हर्पौरा, ११ कपोल, १२ उरयल, १३ पटो-लिया और १४ वयाद बनिया।

ये सब बनिया सम्प्रदायके प्रत्येकके तन्नामक एक ब्राह्मण-सम्प्रदाय याज्ञकता करता है।

गुजराती बनियामात्र ही वैष्णव और वल्लभाचारी मतधरम्यो हैं। वैष्णव बनियामात्रकी ही उपवीत है। किन्तु जो जैनमतानुसारी हैं, ये वल्लभ धारण नहीं करते।

दक्षिण भारतके बनिया।

जातियोंमें मन्नाम प्रेसि-

बणिक् ही प्रधान हैं।

संस्था अत्यन्त है।

ई प्रकारके पण्य व्यव-

शेडो ही प्राचीन प्रयोज्य ध्रष्टो हैं। ये प्रभूत धन-शाली हैं और सदा ही नाना बाणिज्योंमें लिप्त रहते हैं। इनमें कुछ लोग निरामिषमोजो हैं और कुछ लोग शास्त्रनिर्दिष्ट शुद्धमांस और मत्स्य भक्षण करते हैं। नाना श्रेणियोंमें विभक्त होनेकी वजह इनमें आदान-प्रदानमें भयानक विघ्न उत्पन्न होता है। सभी उपवीतधारी नहीं। जो जनेऊ पहण करते हैं, वे अपनेको वैश्य कहा करते हैं। किन्तु यहाँके ब्राह्मण उनकी शूद्र कहके उनसे घृणा करते हैं। और तो क्या, प्राचिण्ड वैदिकब्राह्मण तो उनसे न दान लेते और न उनका कर्मकाण्ड ही कराते हैं।

गृधकुटाई शेडो सब श्रेणियोंमें प्रधान हैं। इनका मधुरा नगरमें आदिवास था। ये अङ्कुरेजो भाषाके विशेष पक्षपाती नहीं हैं। यवसाय बाणिज्यके लिये ये सामान्य तो लंगू या तामिलका हान ही घोट समझते हैं। पुत्रके जरा सपान होने पर ही यह अपने काममें नियोजित करते हैं। इनकी कोई कोई शाखा अपने विद्या या हानबलसे ब्राह्मण और वेन्लाल जातिके नीचे आसन पानेके उपयुक्त हैं।

इस समय कृष्णा, नेलूर, कड़ापा, कर्णूल, मन्द्राज, कोयंबटूर आदि जिलोंमें लाखों श्रेणियोंका वास है। केवल मन्द्राजमें ७ लाख श्रेणियोंका वास है, सिवा इसके महिसुर, कलकत्ता, बम्बई, मलवारके किनारे भी श्रेणी बणिकोंका आभास मिलता है।

महिसुरमें लिङ्गायत बणिकोंकी ही संख्या अधिक है। लिङ्गायत बणिक, कृषिजीवी हैं। ये कहीं भी स्वतः प्रवृत्त ही कर क्षेत्रकर्मण कर कर ग्रन्थ उत्पादन कराते हैं।

नेलगुदेशमें कोमतिधोंकी ही संख्या अधिक है। ये वैश्य कहलाते और जनेऊ धारण करते हैं। इनमें १ गाबुरी, २ कलिङ्ग कोमति, ३ बेरिकोमति, ४ बालजो कोमती, ५ नागुर कोमती नामके पांच दल हैं। गाबुरी निरामिष-भोजी हैं, किन्तु दूसरे चार मांसाहारी हैं।

कलिङ्गकोमति और गाबुरी शङ्कराचार्यके अद्वैतमत मान कर ही चलते हैं। दूसरे लिङ्गायत या रामानुज मतावलम्बी हैं। बेरिकोमतिधोंमें अधिकतर ही लिङ्गा-

यत हैं। कोमति सभी बेलुरी जिलेके गुटो नगरके प्रधान मठाध्यक्ष भास्कराचार्यको अपने सामाजिक गुरु मानते हैं। ब्राह्मण इनके पौरोहित्य करते हैं सही, किन्तु वैदिक मन्त्र इनसे उच्चारण नहीं कराते। ये मामाकी लड़कीसे वराह करते पर बाध्य हैं।

उड़ीसेके बणिये।

उड़ीसेमें दो तरहके बणियोंका वास है। १ सोनार बणिया और २ पुटली बणिया। पुटली बणिया बङ्गालके गन्धबणियोंके समान हैं। ये पुटली वाँच कर द्रव्यादि विक्रय करते हैं। इसीसे लोग इन्हें पुटली बणिया कहते हैं। बङ्गालकी तरह उड़ीसेके सोनार बणिया जलाचरणीय नहीं। किन्तु मसाले आदिके बेचनेवाले पुटली बणियोंका जल चलता है। पुटली बणियोंकी अपेक्षा यहाँके सोनार बणिया अधिक धनवान् हैं।

बङ्ग वैश्य।

यहाँकी गन्ध बणिक, सुवर्ण बणिक, ताम्बूल बणिक, (पनेरी) तम्बोली, बरई, साहाबणिक * तथा तेली आदि जातियां भी वैश्य समाजकी अन्तर्गत हैं।

गन्धी या गन्धबणिक।

जो पहले नाना प्रकारके गन्धद्रव्य बेचते थे, वे ही गन्धबणिक या गन्ध बेणे कह कर पुकारे जाते थे। गन्धबणिक समाजमें "गन्धिककल्पवृक्षी" नामक एक संस्कृत कुलप्रथ देखा जाता है। इसमें लिखा है - ब्रह्माकी बात सुन कर शिव ध्यानमग्न हुए। शिवके ललाटेसे देश दास, यक्षस्थलसे शङ्ख भूति, नागिसे मापट वच और पादमूलसे विषट्ट गुप्त उत्पन्न हुए।

गन्धबणिक जातिकी इस अपरूप उत्पत्तिकथा प्राचीन किसी हिन्दू या जैन शास्त्रमें नहीं मिलता।

तम्बोली।

गन्धबणिक जैसे शिवाङ्गसे उद्भूत कह कर कवित्त है, ताम्बूल बणिक भी तथा पान बेचनेवाले तम्बोली भी शिवके पसोनेसे उत्पन्न हैं। ऐसा ही इनके कुलप्रथ-में लिखा है।

* गुपटी जातिसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

सम्राट् मुहम्मद तुगलकके अत्याचारसे उत्पीडित हो कर ये जगभूमि त्याग करने पर बाध्य हुए थे और पटावा; भाद्रमगढ़, गोरखपुर, मुतादाबाद, जौनपुर, गाजीपुर, बिहार और तिरहुत आदि स्थानों में फैल गये।

यह कट्टर हिन्दू हैं। गौड़ ब्राह्मण और मैथिल ब्राह्मण इनका पीरोहित्य करते हैं। इनमें कितने ही उपवीतपारो हैं। कितने ही दुकान करते हैं।

भयोध्यावासी बनिया।

भयोध्या प्रदेशवासो बनिया होनेसे ये इस नामसे ख्यात हैं। युक्तप्रदेशके कई स्थानों में और बिहार अञ्चलमें इनका वास है।

नेसवार बनिया।

रायबरेली जिलेके सालोन विभागके जैस परगनेमें वास होनेको यह कहते हैं।

महोबिया बनिया।

हमीरपुर जिलेके महोबा नगरके पूर्वतन अधिवासो होनेके कारण ये महोबिया कहलाये।

महुरिया बनिया।

बिहार और गङ्गा यमुनाके बीच रहनेवाले बनिया बहुतेरे इनको रस्तोगीको शाखा समझते हैं। ये हिन्दू और वैश्य हैं। ये हथकोंको पेशगी दे कर ईखकी खेती कराते हैं। ये खीनोका एकान्त व्यवसाय करते हैं। सिमरौलीकी तरह इनमें भी तम्बाकू पीना मना है। यदि छिप कर कोई पीता है, तो यह जातिच्युत होता है।

वैश बनिया।

बिहारमें इनका वास है। ये पीतल और काँसेके बरतन बेचनेके लिये दुकान रखते हैं। फेंद खेती भी करते हैं। कुमायूँके वैश या वाईजाति सामाजिकतामें तुल्य मर्यादा होने पर भी भिन्न जाति कहके परिचिन हैं।

काठ बनिया।

बिहारमें इनका भी वास है, दुकानमें पण्य द्रव्य रख कर बेचना, भ्रष्ट देना और खेती करना—इनका प्रधान व्यवसाय है। ये रायदेशके जलाते और १२वें दिन धाद करते हैं। मैथिल ब्राह्मण इनका पीरोहित्य करते हैं।

रोनिया बनिया।

गोरखपुर, तिरहुत और बिहार प्रदेशमें इस श्रेणीका वास है। अन्यान्य बणिक् समुदायकी तरह ये वैष्णव नहीं हैं। ये परम शैव हैं। अप्रवालोंकी तरह ये भी घनाधिप्राप्ती लक्ष्मोद्देश्यकी पूजा विशेष धूमधामसे करते हैं। ये नोनिया नामसे भी परिचित हैं।

जमेय बनिया।

युक्तप्रदेशके इटाया जिलेमें इनका वास है। ये अपनेको दैत्यपति हिरण्यकशिपुके पुत्र परम भक्त प्रह्लादके वंशधर बतलाते हैं।

बोहरा बनिया।

ये भाटिया जातिको अन्यतम शाखा है। सिन्धु प्रदेशमें इनका वास है।

कादू बनिया।

ये सामाथ्य दुकानदार हैं और तरह तरहकी मिठाईयाँ तयार कर बेचते हैं। ये हलवाई नामसे भी परिचित हैं।

गुजराती बनिया।

श्रीमाली, जोसवाल और खण्डे लवालकी छोड़ कर गुजरातके विभिन्न प्रदेशमें और भी कई श्रेणीके बनिया देखे जाते हैं। जैसे—१ नागर (वास और विश) २ देशवाल, ३ पोरवाल (वास और विश), ४ गुजर, ५ मोध, ६ लड़, ७ करोल, ८ सोराठिया, ९ खड़ूँता, १० हवौरा, ११ कपोल, १२ उरवल, १३ पटो-लिया और १४ वयाद बनिया।

ये सब बनिया समुदायके प्रत्येकके तन्नामक एक ब्राह्मण-समुदाय याजकता करता है।

गुजराती बनियामात्र ही वैष्णव और वल्लभाचारी मतवालयी हैं। वैष्णव बनियामात्रको ही उपवीत है। किन्तु—जो जैनमतानुसारो हैं, वे यहसूत्र धारण नहीं करते।

दक्षिण भारतके बनिया।

दक्षिण भारतके वैष्णवीयो जातियोंमें मद्रास प्रेसि-डेन्सके शेठी और लिङ्गायत बणिक् ही प्रधान हैं। नागवाँ और कोमती बणिक्की संख्या अल्प है। इनके सिवा तेलगू देशमें भी कई प्रकारके वैष्णव बनि-साधियोंका वास है।

शेठी ही प्राचीन प्रयोक्त श्रष्टी हैं। ये प्रभूत धन-शाली हैं और सदा ही नाना वाणिज्योर्मि लित रहते हैं। इनमें कुछ लोग निरामिपमोजी हैं और कुछ लोग शास्त्रनिर्दिष्ट शुद्धमांस और मत्स्य भक्षण करते हैं। नाना श्रेणीमें विभक्त होनेकी वजह इनमें आदान-प्रदानमें भयानक विघ्न उत्पन्न होता है। सभी उपवीतधारी नहीं। जो जनेऊ प्रदण करते हैं, वे अनेकी वैश्य कहा करते हैं। किन्तु यहांके ब्राह्मण उनको शूद्र कहके उनसे घृणा करते हैं। और तो क्या, द्राविड वैदिकब्राह्मण तो उनसे न दान लेते और न उनका कर्मकाण्ड ही कराते हैं।

मटकुटाई शेठी सब श्रेणियोंमें प्रधान है। इनका मयुरा नगरमें आदिवास था। ये अङ्गरेजी भाषाके विशेष पक्षपाती नहीं हैं। व्यवसाय वाणिज्यके लिये ये सामान्य तेलगू या तामिलका ज्ञान ही यथेष्ट समझते हैं। पुत्रके जरा सयान होने पर ही यह अपने काममें नियोजित करते हैं। इनकी कोई कोई शाखा अपने विद्या या ज्ञानबलसे ब्राह्मण और येवजाल जातिके नीचे आसन पानेके उपयुक्त हैं।

इस समय छप्पा, नेलूर, कड़ापा, कर्णूल, मन्द्राज, कोयंबटूर आदि जिलोंमें लाखों श्रेणियोंका वास है। केवल मन्द्राजमें ७ लाख श्रेणियोंका वास है, सिवा इसके महिसुर, कलकत्ता, बम्बई, मलवारके किनारे भी श्रेणी बणिकोंका आवास मिलता है।

महिसुरमें लिङ्गायत बणिकोंकी ही संख्या अधिक है। लिङ्गायत बणिक छपित्रीय हैं। ये कहीं भी स्वतः प्रवृत्त हो कर क्षेत्रकर्षण करा कर शस्य उत्पादन कराते हैं।

तेलगूदेशमें कोमतिधोंकी ही संख्या अधिक है। ये वैश्य कहलाते और जनेऊ धारण करते हैं। इनमें १ गावुरी, २ कलिङ्ग कोमति, ३ धेरिकोमति, ४ बालजी कोमती, ५ नागर कोमती नामके पांच दल हैं। गावुरी निरामिपमोजी हैं, किन्तु दूसरे चार मांसाहारी हैं।

कलिङ्गकोमति और गावुरी अङ्कराचार्योंके अर्द्धतमन मान कर ही चलते हैं। दूसरे लिङ्गायत या रामानुज मतावलम्बी हैं। धेरिकोमतिधोंमें अधिकतर ही लिङ्गा-

यत हैं। कोमति सभी येल्लरी जिलेके गुट्टी नगरके प्रधान मठाध्यक्ष सास्कराचार्योंकी मरने सामाजिक मुद मानते हैं। ब्राह्मण इनके पीरोहित्य करते हैं सही, किन्तु वैदिक मन्त्र इनसे उच्चारण नहीं कराते। ये मामाकी लड़कीसे वशाह करने पर बाध्य हैं।

उड़ीसेके बनिया।

उड़ीसेमें दो तरहके बनियोंका वास है। १ सोनार बनिया और २ पुटली बनिया। पुटली बनिया बङ्गालके गन्धबनियोंके समान हैं। ये पुटली बाँध कर द्रव्यादि विक्रय करते हैं। इसीसे लोग इन्हें पुटली बनिया कहते हैं। बङ्गालकी तरह उड़ीसेके सोनार बनिया जला-चरणीय नहीं। किन्तु मसाले आदिके बेचनेवाले पुटली बनियोंका जल चलता है। पुटली बनियोंकी अपेक्षा यहांके सोनार बनिया अधिक धनवान् हैं।

यन्न वैश्य।

यहांकी गन्ध बणिक, सुवर्ण बणिक, ताम्बूल बणिक (पनेरी) तम्बोली, बरई, साहायबणिक तथा तेली आदि जातियां भी वैश्य समाजकी अन्तर्गत हैं।

गन्धी या गन्धबणिक।

जो पहले नाना प्रकारके गन्धद्रव्य बेचते थे, ये ही गन्धबणिक या गन्ध बेणे कह कर पुकारे जाते थे। गन्धबणिक समाजमें "गन्धिककल्पवल्ली" नामक एक संस्कृत कुलग्रंथ देखा जाता है। इसमें लिखा है ब्रह्माकी बात सुन कर शिव ध्यानमग्न हुए। शिवके ललाटेसे देव दांस, पक्षस्थलसे शङ्ख भूति, नागिसे जापट दत्त और पाद्ममूलसे विष्वट गुप्त उत्पन्न हुए।

गन्धबणिक जातिकी इस अपरूप उत्पत्तिकया प्राचीन किसी हिन्दू या जैन शास्त्रमें नहीं मिलता।

तम्बोली।

गन्धबणिक जैसे शिवाङ्गसे उद्भूत कह कर कथित है, ताम्बूल बणिक भी तथा पान बेचनेवाले तम्बोली भी शिवके पत्नीसे उत्पन्न हैं। ऐसा ही इनके कुछग्रन्थमें लिखा है।

● सुवर्ण जातिसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

तलो, बरई आदि जातियोंको भी उत्पत्तिके सम्बन्धमें येने ही उपाख्यान मिलते हैं। वास्तवमें इन सब उपाख्यानोके मूलमें किमी ऐतिहासिक कोई भित्ति नहीं है। मालूम होता है, कि बौद्धयुगके अगसानमें घङ्गके अनेक वैश्य संनतान शीवधर्म या शिवोपासना ग्रहण कर हिन्दू समाजमें मिल गये थे। उनको शिवभक्ति देव शास्त्र ब्राह्मण पण्डितोंने उनमें किसीको शिवधर्म-सम्भूत, किसीको शिवाङ्गसम्भूत कहके प्रचार किया। धर्म-भोग बणिक् सम्प्रदायने उन सब कल्पित उपाख्यानो-को ही शाखावाप्य रूपमें विश्वास किया। इसीलिये आज उनके कुलप्रस्थोमें ये उपाख्यान दिखाई देते हैं।

सुवर्णबणिक् और गन्धबणिक्कोका कहना है, कि गौडाधिप बल्लालसेनने घङ्गकी सारी बणिक् जातिको शूद्रत्वमें परिणत किया।

अवश्य ही घङ्गके बणिक् समाजमें बल्लालसेनके समयमें जो द्विजोचित यज्ञसूत्रका लोप तथा श्राद्धाचार-प्रवर्तनका प्रवाद चला आ रहा है, वह बिलकुल झूठ कह कर उड़ा दिया जा नहीं सकता।

तमोली और बरई—ये दोनों जातियां बौद्ध भाषा-पत्र हैं। धर्मठाकुरके ये विशेष रूपसे भक्त थीं। नाना कथियोका कथिताओमें इसका प्रमाण मिलता है। किन्तु प्रसङ्गमें बौद्धके होनेका कोई निदर्शन नहीं मिलता। सम्भवतः बहुत दिन पहले ये शीव थे। मालूम होता है, कि इसी जातिको चीनपरिभाषक युएनचुवङ्गने "हिन्दू बणिक्" नामसे उल्लेख किया है। ये पूर्वापर हिन्दू थे। इसीसे बङ्गालमें ब्राह्मणोंके जमानेमें वङ्गीय बणिकोंमें गन्धबणिक् ही शुद्धाचारी और सर्वश्रेष्ठ कहे जाते थे। और तो पण, मनसामङ्गल, चण्डी-मङ्गल आदि शाक्तप्रभावसे रचित ग्रन्थों में भी गन्ध-बणिक् सौदागर स्पष्ट वैश्यके नामसे अभिहित किये गये हैं। इन सब मङ्गल ग्रन्थोंमें गन्धबणिक् जातिका वैश्यधर्म, प्रभाव और असाधारण शिवभक्तिका परिचय मिलता है। बंगला-वादिम गन्ध वेस्तो।

गन्धबणिक् शुरुमें शीव रहने पर भी सभी शाक्त हो गये थे। इस जातिको तार्किक शक्तिमत्क बनानेमें शक्ति उपासकोंका वधेष्ट पदा और श्रेष्ठ सद्व्यवस्था

पड़ा था। यह ही मनसा-मङ्गलके नायक चाँद और चण्डीमङ्गलके नायक श्रीमन्तके पिता घनपति सौदागरके उच्चल चरित्रसे जान सके हैं।

इस समय इस जातिके अनेक मनुष्य श्री गौराङ्ग प्रवर्तित यैष्णवधर्म ग्रहण करने पर भी किसी समयमें जो शक्तिमन्त्रसे दीक्षित हुए थे, इसमें तनिक सन्देह नहीं। गन्धेश्वरी नामकी उनकी कुलदेवीकी पूजा ही उसका स्पष्ट प्रमाण है।

घङ्गके विराट् वैश्य समाजको क्षीण स्मृति ले कर आज भी हजार हजार मनुष्य पूर्ण घङ्गमें वास करने हैं और वे "वैश्य" नामसे ही परिचित हैं। अश्वर्थाका विषय है, कि यह जाति बल्लाली व्यवस्था समाप्त कर आज भी यज्ञसूत्र धारण करती है और इसी कारणसे ही वे आज भी बल्लाली नियमाधीन, घङ्गकी श्रेष्ठ जातियोंके निम्नित हैं।

पूर्व घङ्गके ढाका जिलेके भावाल परगनेमें और मैमनसिंहके जहाङ्गीरपुरमें वैश्य नामक तुजातिका वास है।

ये अपनेको वैश्य कहते और त्रिसूत भाषात् जनेऊ पहनते हैं, किन्तु कुछ स्मृतिसम्मत वैश्य धर्मको नहीं मानते। साधारणतः ये १३ वर्षसे पहले ही पुर्वोका चूड़ाकरण और उपनयन समाप्त कर देते हैं। इनकी गायत्री और यजुर्वेदके पढ़नेका अधिकार है, किन्तु ब्राह्मण इनको फिर पूर्ण गायत्री दान नहीं करते।

ये दिसाव किताब करनेके लिये सामान्य घङ्ग भाषा जान कर ही अपने कार्योंमें म्यूक्त हो जाते हैं। वर्तमान समयमें अति अल्प लोगोंने ही अंग्रेजोंमें मन लगाया है। मैमनसिंह जिलेमें इस जातिके इस समय कितने ही चकोल, मुषतार, तदशोलदार, अमीन आदि राजकीय कार्यों कर रहे हैं। यह पहले हल चलाते थे, अब उसे निम्नित समझते हैं। ये १५ दिन तक मृताशौच मानते हैं। ये सब हिन्दू देवदेवियोंकी पूजा करते।

यह वैश्य साधारणतः कर्षाकार और इडकाय, नासिका उष और तिलपुष्पकी तरह जरा टेढ़ी देतो है।

अविश्वद्वय अपेक्षाकृत उच्च होता है। ये युद्धिमान् और चतुर हैं। (त्रि०) २ वैश्व सम्बन्धो।

वैश्वता (सं० खो०) वैश्वस्य भाव तल-टाप्। वैश्व-का भाव वा धर्म, वैश्वरः। (ऐतरेयब्रा० ७।२६)

वैश्वस्य (सं० खो०) वैश्वता देखो।

वैश्ववनिवा - बन्ध्याई प्रदेशके पुना जिलाशासी बणिक् जातिविशेष। ये लोग यहांके गुजरात-बाणी या मारवाड़ वासी वैश्ववणिक-सम्प्रदायसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। यहां तक, कि एक साथ आंधार वायव्यदि भी नहीं करते। इस जातिका आदिनिवास कहां है तथा किस समय बाणिज्य-सूत्रसे यहां आये उसकी कोई कियद्गतो नहीं मिलती। जातीय नामसे अनुमान किया जाता है, कि ये लोग वैश्ववर्ण हैं तथा बणिग्गृह्ति हो इनकी उपजीविका है। किन्तु दुःखका विषय है, कि इनकी उत्पत्तिका कोई उपा-ख्यान नहीं।

ये लोग मध्यमाकृति और दृढ़काय होते हैं। पुरुष-की अपेक्षा स्त्रियां धीमती और सुन्दरी होती हैं। शराय, मछली और मांस खानेमें इन्हें विशेष अनुराग है, किन्तु देवद्विजमें भक्ति भी भ्रमला है। ये लोग हिन्दूके सभी तीर्थोंमें जाते हैं तथा प्रायः देवदेवीकी भी पूजा करते हैं। वैश्वभूया दक्षिणात्य ब्राह्मण की तरह है। शास्त्रोंके क्रियाकलापमें देशरुध ब्राह्मण ही इनकी पुरोहिताई करते हैं। ये लोग भी उन पुरोहितोंके प्रति भक्ति दिखलाते हैं।

ये लोग चतुर, कर्मठ, स्थिरमति और भाक्तावाही हैं। बाणिज्य, कृषि मद्य आ सामान्य दुकानदारी ही इनकी उपजीविका है। सामाजिक विचार मिटानेके लिये इनकी जातीयसभा होता है। उसी सभाके मीमांसित विचारको ये लोग मानते हैं।

वैश्वमद्रा (सं० खो०) वींशिकी वैश्व और मद्रा नाम-की दो देवियां। (वारनाय)

वैश्वमाय (सं० पु०) वैश्वस्य भावः। वैश्वता। (मनु १०।६१)

वैश्वस्य (सं० पु०) एक प्रकारका स्य वा यक्ष। (तैत्तिरीय-ब्राह्मण)

वैश्वस्तोम (सं० पु०) एक प्रकारका यक्ष। (षड् विरागो ७।३)

वैश्व (सं० खो०) वैश्व टाप्। १ वैश्वतामि की स्त्रा। पयो—मर्षाणी, मर्षा। (ब्रह्मर०) २ हल्दी।

वैश्वम्भ (सं० पु०) १ पुराणानुसार देवताओंके एक उद्यान या बानका नाम। (भागवत ३।३।४०)

२ विश्वस्तोमाय। (भागवत ५।२६।३२)

वैश्वयण (सं० पु०) विश्ववणहवापत्यं (विश्वदिम्बोऽण्। वा ४।१।१२) इति मण्। १ कुयेर। २ शिव। (भारत १।३।७।२३)

वैश्वणालय (सं० पु०) वैश्वणस्यालयः। १ कुयेर-पुरी। २ घटगृह, बटका पेड़, बरगद।

वैश्वणवास (सं० पु०) वैश्वणहवायासः। वैश्वणाय देवो।

वैश्वणोदय (सं० पु०) वैश्वणस्योदयो यस्मिन्। घट-गृह, बरगदका पेड़।

वैश्वेय (सं० पु०) विश्विके गोत्रापत्यं। वैश्वेय देवो। वैश्वेयिक (सं० त्रि०) विश्वेय सम्बन्धो।

वैश्व (सं० त्रि०) १ विश्वदेव सम्बन्धो, विश्वदेवका। (पु०) २ उत्तरावाट्टा नक्षत्र।

वैश्वकयिक (सं० त्रि०) विश्वकथायां साधु (कथादिभ्य ङ्क। वा ४।१०२) इति ङ्क। विश्वकथा-विषयमें साधु।

वैश्वर्गण (सं० त्रि०) विश्वकर्मान्-मण्। विश्वकर्मा-सम्बन्धो।

विश्वजनोन (सं० त्रि०) विश्वजने साधु। (प्रतिजनादिभ्यः पञ्। वा ४।४।६६) इति विश्वघञ्। १ विश्व भरके लोगोंसे सम्बन्ध रखनेवाला, समस्त संसारके लोगोंका। (पु०) २ यह जो समस्त विश्व या संसारके लोगोंका कल्याण करता हो।

वैश्वजित (सं० त्रि०) विश्वजित् नामक होतु-सम्बन्धो। (ऐतरेयब्रा० ६।३०)

वैश्वज्योतिष (सं० खो०) साममेदं।

वैश्वदेव (सं० पु०) विश्वदेवस्यायं विश्वदेव-मण्। विश्वदेव-सम्बन्धोय होमादि। मनुमें लिखा है, कि वैश्वदेवादि कार्यके लिये ब्राह्मण-गोत्रनकी आवश्यकता नहीं है। द्विजोंकी प्रतिदिन संस्करण मन्तिमें वैश्वदेवो-इत्यसि सिद्ध यथात् एक अन्न द्वारा विधिपूर्वक होम करना चाहिये।

वैश्वदेव होमही विधि इस प्रकार है—अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्निप्योमाग्नां स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्योः स्वाहा, घन्वन्तरये स्वाहा, कुह्वे स्वाहा, अनुमत्यै स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, घाण्यापृथिव्योम्नां स्वाहा और अन्तमें अग्नये स्थित्पुरुने स्वाहा यह कह कर होम करे। उक्त प्रकारसे अग्नयमनाः हो कर प्रति देवताके उद्देशसे हविर्द्वारा होम कर पूर्वोदि विक्रमसे इन्द्र, यम, वरुण, सोम इन्हें तथा इनके अनुवर देवताओंको वलिप्रदान करे यथा—पूर्वको और इन्द्राय नमः इन्द्रपुरुषेभ्यो नमः, दक्षिणमें यमाय नमः, पश्चिममें वरुणाय नमः वरुणपुरुषेभ्यो नमः, उत्तरमें सोमाय नमः सोमपुरुषेभ्यो नमः, यह कह कर वलिप्रदान करना होगा। पीछे मण्डलके बाहर मरुदुभ्यो नमः, जलमें अग्नी-नमः और मृपल या ऊखलमें वनस्पतिभ्यो नमः यह कह कर वलि चढ़ानी होगी। वास्तुपुरुषके शिरामदेशमें उत्तरपूर्वकी ओर श्रिये नमः कह कर लक्ष्मीको, उसके पाद-देशमें दक्षिण-पश्चिमकी ओर भद्रकाव्यै नमः, कह कर मद्रकालीको, गृहमें ब्राह्मणे नमः कह कर ब्राह्मणकी ओर वास्तोस्पतये नमः कह कर वास्तु देवताके वलि चढ़ानी होगी। इसके बाद विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तऽवारिभ्यो नमः यह कर सभी देवता, दिवाचर और रात्रिचर भूतोंके उद्देशसे ऊर्ध्व आकाशमें वलि उद्देश करे। वाय्विच अपने पृष्ठदेश पर भूमागोपति सर्वात्मभूताय नमः, कह कर सभीभूतोंको वलि देने लगेगी। ये सब वलि देकर जो अन्न बचेगा, उसे दक्षिण-की ओर दक्षिणामुख और प्राचीनावीती हो कर पितरोंके सधा पितृभ्यः कह कर पितरोंके वलि दे। पीछे कुत्ते, पतित, कृष्णरोपजायो, पापरोगी, काक और हृमियोंके लिये दूसरे अन्नके पात्रमें ग्रहण कर घीरे घीरे जमीन पर इस तरह रख दे, कि घूल लगने न पावे।

ब्राह्मण इसी प्रकार प्रति दिन वैश्वदेवका अनुष्ठान करेंगे। जो ब्राह्मण इस प्रकार प्रति दिन अन्नदानादि द्वारा वैश्वदेवका अनुष्ठान करते हैं, ये सभी पापोंसे मुक्त हो अग्नतमें स्वर्गलोकका जाते हैं। (मनु ३ भ०)

वैश्वदेव अय्यय कर्त्तव्य है, नहीं करनेसे प्रत्ययाम होता है।

वैश्वदेवक (सं० क्ली०) विश्वदेवस्य भावाः कर्म वा (मनो-शदिम्परच । पा ५।१।३३) इति युष् । विश्वदेवका भाव या कर्म ।

वैश्वदेवकर्मन् (सं० क्ली०) विश्वदेवकी पूजादि ।
वैश्वदेवत (सं० क्ली०) उत्तरापादा नक्षत्र । इसके अघि घृता विश्वदेव माने जाते हैं। (वृहत्संहिता ६।६)
विश्वदेवस्तुत् (सं० पु०) पकाहमेव ।

(शाङ्खायनभौ० १।५।०।१)

वैश्वदेवहोम (सं० पु०) वैश्वदेवताकी प्रीतिके लिये प्रदत्त होमविशेष ।

वैश्वदेविक (सं० त्रि०) १ विश्वदेवसम्बन्धी, विश्वदेवका । (मार्क०पु० ३।१।३।५७) (पु०) २ वैश्वदेव ।

वैश्वदेय (सं० त्रि०) जो विश्वदेवकी प्रीतिके लिये उत्सर्ग किया गया हो ।

वैश्वदेवत (सं० क्ली०) वैश्वदेवत देखी ।

वैश्वदेविक (सं० त्रि०) वैश्वदेविक देखी ।

वैश्वघ (सं० त्रि०) विश्वघा शीलमस्य । विश्वधारक ।

वैश्वधेनव (सं० पु०) विश्वधेनु सम्बन्धी ।

वैश्वधेनव (सं० पु०) वैश्वधेनवानां विषयो देशः । विश्वधेनु बहुलदेश । (पा ७।१।२५)

वैश्वन्तरि (सं० पु०) विश्वन्तरके गोत्रापरय ।

(वल्कारकीमुरी)

वैश्वमानस (सं० क्ली०) साममेव ।

(पञ्चविंशत्त० १।५।१६)

वैश्वमानय (सं० क्ली०) विश्वमानवानां विषयो देशः । देशविशेष, यह देश जहाँ विश्वमानव हो ।

(पा ४।१।५५)

वैश्वयुग (सं० पु०) फलितउद्योतियके अनुसार बृहस्पति-के शोमहृत्, शुमहृत्, क्रोधी, विषयायसु और परामय नामक पाँच संवत्सरोका युग या समूह । इनमेंसे पहले दो संवत्सर शुम और शीय दो अशुम माने जाते हैं । (पराशरहृत् ० ८।५१)

वैश्वरूप (सं० त्रि०) विश्वरूप-अण । १ विश्वरूप-सम्बन्धी । (कौ०) २ विश्वरूप ।

वैश्वरूप्य (सं० त्रि०) विश्वरूप-सम्बन्धी ।

वैश्वलोप (सं० लि०) विश्वलोप भव या तज्जाय ।

(कौपीतकी १७)

वैश्वव्यचस (सं० लि०) विश्वव्यचस्-अण् । रविसे उदपन्न । "तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसम्"

(शुक्लयजु० १३।५६)

वैश्वयुज (सं० लि०) विश्वयुज-सम्बन्धी ।

(तैत्तिरीयभार० १।२।१।११)

वैश्वानर (सं० पु०) विश्वानरासी नरश्चेति (नरं शंशायां ।

पा ६।३।१२६) इति दीर्घा ततो विश्वानर एव स्वार्थे अण् ।

१ अग्नि । (गोधा १।५।१४) २ चित्रक या चोता नामका

वृक्ष । ३ परमात्मा । (वाजसनेयम् २०।१३) ४ चेतन ।

५ पिप्त, पिप्ता ।

वैश्वानरचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णोपधविशेष । यद् संध्या

नमक, अन्नपायन और हर्षे आदिसे बनाया जाता है ।

इसका सेवन करनेसे आमवात, गुल्म और शूल प्रभृति

नाना प्रकारके रोग शरीर विनष्ट होते हैं । यह वायुका

शुभलोमकारक है । (मेघन्यरत्ना० आमवातयो०)

वैश्वानरज्येष्ठ (सं० पु०) जाठराग्निके परवर्षिककालमें जात

अग्नि, उश्मान्नादि । उश्मान्, घशान् और सोमपृष्ठ

आदि ही वैश्वानरज्येष्ठ कहलाता है ; क्योंकि ये सभी

जाठराग्निके परवर्षिककालमें उदपन्न होते हैं ।

(अथर्व ३।२।१६ धायण)

वैश्वानरउदीतिप (सं० पु०) परब्रह्म । (शुक्लयजुः २०।२३)

वैश्वानरपथ (सं० पु०) वैश्वानरस्य पथः, यच्च समा-

सागतः । वैश्वानरमार्गः । (रामा० १।६०।३०)

वैश्वानरमार्ग (सं० पु०) अग्निकोण या पूर्वा और दक्षिण-

के बीचका कोण । यह वैश्वानरका मार्ग माना जाता

है ।

वैश्वानरलोह (सं० क्ली०) औषधविशेष । प्रस्तुत

प्रणाली—हमलोकी छालकी भस्म, अषाह्ण भस्म, शामुक

पारे, गंधक, तांबे, लोहे, जिलाहान, सोंठ, पोपल, चित्रक

तथा मिर्च आदिके योगसे बनाई जाती है और यह पेरके

रोगोंमें उबकारी मानी जाती है । (सेन्द्रधारा० उदरोगाधि)

वैश्वानर विद्या (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम ।

वैश्वानरायण (सं० पु०) विश्वानरके गोत्रापत्य ।

(पा ४।१।११०)

वैश्वानरीय (सं० स्त्री०) वैश्वानर-सम्बन्धी ।

(ऐतरेयब्रा० ३।१४)

वैश्वामनस (सं० क्ली०) सामभेद ।

वैश्वामित्रि (सं० पु०) विश्वामित्रके गोत्रापत्य, त्रिभिरा

श्रुति । (भारत वनवर्ण)

वैश्वामित्रिक (सं० स्त्री०) विश्वामित्र-सम्बन्धी ।

वैश्वायसव (सं० क्ली०) १ वसुधोका समूह । (लि०)

२ विश्वायसु-सम्बन्धी ।

वैश्वायसव्य (सं० पु०) विश्वायसो गोत्रापत्यं (गर्गा-

दिम्बो यच् । पा ४।१।१०५) इति यच् । विश्वायसुके

गोत्रापत्य ।

वैश्वसिक (सं० पु०) वह जिस पर विश्वास किया जाय

पतवार करनेके कारिबल, विश्वस्त ।

वैश्वो (सं० स्त्री०) उत्तराषाढा नक्षत्र । (हेम)

वैपम (सं० क्ली०) विपम-अण् । विपम होनेका भाव,

विपमता ।

वैपमस्य (सं० क्ली०) विपमस्यस्य भावः कर्म या

(गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च । पा ५।१।१२४) इति

प्यञ् । विपमस्थितका भाव या कर्म ।

वैपम्य (सं० क्ली०) विपमस्य भावः विपम-प्यञ् भावे ।

विपम होनेका भाव, विपमता ।

वैपव (सं० क्ली०) विपवाणां समूहः (मित्रादिभ्योऽण् ।

पा ४।२।३२) इति अण् । विपव समूह ।

वैपयिक (सं० स्त्री०) १ विपय-सम्बन्धी, विपयका । (पु०)

२ यह जो सदा विपयवासनामें रत रहता हो, विपयः,

लंपट ।

वैपुवत (सं० स्त्री०) विपुवसकान्ति । "उद्गयन-

वृत्तिनायनवैपुवतसंज्ञाभिर्गतिभिः ।" (मागध ५।२।१३)

वैपुवतीय (सं० स्त्री०) वैपुवत दत्तो ।

वैदिक (सं० पु०) यह पशु पक्षी जो चारों ओर घूम फिर कर आहार प्राप्त करता हो ।

वैष्टप (सं० लि०) विष्टप-सम्बन्धी । (मध्यर्च १६।२७।४)

वष्टपुरव (सं० पु०) विष्टपुरव्य गोलापर्यं विष्टपुर (शुभ्रादिभ्यश्च । पा ४।१।२२) इति ठक् । विष्टपुरके गोलापर्यः ।

वैष्टम् (सं० क्ली०) सामभेद । (पञ्चविंशत्यां १।२।३।६)

वैष्टिक (सं० पु०) दृष्टं च, दुराशय ।

वैष्टुत (सं० पु०) होमकी भस्म ।

वैष्टुम (सं० क्ली०) वैष्टुत देखो । (प्रिकायड० २।७।७)

वैष्ट्र (सं० क्ली०) विज (अमजिगमिनमिहानविरयशां वृद्धिश्च ।

उष्य ४।१५।६) इति ष्ट्र वृद्धिश्च । १ पिष्टप । (पु०)

२ यो, स्वर्ग । ३ यामु । ४ विष्णु । (संक्षिप्तश० उष्यादि)

वैष्णव (सं० क्ली०) विष्णोरिष्टं विष्णु-अण् । १ होम-भस्म, यज्ञकुण्डकी भस्म । २ महापुराणविशेष, विष्णु-पुराण ।

"त्रयोविंशतिसारसं वैष्णवं परमाद्भुतम् ।"

(वैश्वानवत ३।१।८)

(लि०) ३ विष्णुसम्बन्धी ।

"गो गतस्य तव धाम वैष्णवं कोविदो ह्यसि मया दिदृक्षुणा ।"

(पु०) विष्णुर्देवताऽस्य अण् । ४ विष्णुमन्त्रो-पासक, विष्णुमन्त्र । पार्थव—कार्णा, हार ।

नांचे वैष्णव शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।

वैष्णव (सं० पु०) विष्णुर्देवता अस्य विष्णु-अण् । विष्णु यज्ञते या । विष्णु ही जिसके आराध्य देवता हैं, अथवा जो विष्णु यज्ञन करते हैं, वे ही वैष्णव हैं ।

(पमपु० उ० ख० ६६ म०)

प्राचीन ऋक् मन्त्रमें ऋषि उपासना करते थे । आग्नेयार्थ प्रदानके निमित्त विष्णुकी प्रार्थना करते, विष्णुसे उच्चार पानेके लिये विष्णुकी जरण लेते फिर कभी कभी निरुक्त भावसे विष्णुकी महिमा गा गा कर दृष्टेभारके चरणीमें आत्मसमर्पण करते थे ।

हम ऋग्वेदके १ मण्डलके २२वें सूक्तके १६वीं ऋक् में सर्वप्रथम विष्णुका उल्लेख देखते हैं । इस १६वीं ऋक् में वरधर्षी ६ ऋक् में विष्णुको जो महिमा कीर्तिता दृष्टे हैं, उन्हीं ही वैदिक कालमें भी हम विष्णुकी आरा

धनाका प्रसाध, प्रसार और प्रतिरक्षिता यष्टेष्ट भानाम पाते हैं । प्राचीन और आधुनिक जो २३५ उपनिषद् हैं, उनमें अविश्वंशसे विष्णु-माहात्म्यकीर्तिता उद्घुष्ट किया जा सकता है ।

वैष्णव सम्प्रदायकी उपनिषदमें नैत्तिगोपसहितके अन्तर्गत नारायणोपनिषद् ही प्राचीनतम है । येना यूरोपोयनो में भी स्वीकार किया है । प्रतपप्रसङ्गमें भी नारायणका नाम दिखाई देता है । पृहन्तारायणोपनिषद् अष्टाविंशके अन्तर्गत है । इसमें इति, विष्णु और वासुदेव आदि शब्दोंमें भी देखे जाते हैं । मत्तोपनिषदमें भी नारायण ही परब्रह्म कह कर स्वोद्यत हुए हैं । अर्थात् गिरा उपनिषदमें "हम देवकी-पुत्र मधुमूदन" नाम देखते हैं । छान्दोग्यमें भी "देवकीपुत्र पृथ्ण अङ्गिरस" नाम मिलता है । आत्मप्रयोग उपनिषद् और गर्भोपनिषदमें भी नारायण ही परमत्त्व कहे गये हैं । मैत्रेयोपनिषद्, वासुदेवोपनिषद्, स्कन्दोपनिषद्, रामोपनिषद्, रामताप-नियोपनिषद् और मुक्तिकोपनिषदमें भी नारायणका माहात्म्य कीर्तिता हुआ है । इन सब उपनिषदोंमें कई उपनिषद् प्राचीन न होनेसे भी बहुत आधुनिक नहीं है । सांप्रदायिक उपनिषद् अष्टोत्तश्रुत अर्वाचीन होने पर इनमें कई वाणिजिके पहले हो रचो गई थी, येना अनुमान किया जा सकता है ।

जो हो, नारायणोपनिषद् भात प्राचीन और वैदिक है, इसमें विन्दुमात्र भी सन्देह नहीं । हम महाभारतके मोक्षधर्म अध्यायमें "नारायणोय" अध्याय देखते हैं । इन सब अध्यायोंमें प्राचीन कालके नारायण उपासक वैष्णवोंका कुछ विवरण दिखाई देता है ।

महाभारतकी इस उक्तिसे हम समझते हैं, कि यह वैदिक आशयान है । उपरिचर वसु देवराज इन्द्रके मित्र थे । इनकी सूर्यसे नारायणकी सर्वाकारके सम्बन्धमें "सायवतविष्णव" मिलता था । इस "सायवत" शब्दका अर्थ टीकाकार नीलकण्ठने लिखा है,—"सायवतानां पाञ्चरात्राणां हितं ।" इसके बाद और भी लिखा है,—

"पाञ्चरात्रविदो मुष्णानस्य मेहे महात्मनः ।
प्रायाणं गगयतप्रोक्तं भुञ्जते पात्रगोत्रतम् ॥ २५"
अर्थात् वे समाहित हो कर काम्य और भूमितिक

याज्ञीय क्रिया समुच्चय "सात्त्वत" विधिसे अनुसारा निर्वाह करते थे । पञ्चरात्रमुष्प प्रालम्बणन भगवत्-प्रीतिक मोड्यादि प्रहण करते थे ।

चित्रशिलपट्टी शास्त्र ।

वेदके समयमें भी 'सात्त्वत' विधि पाञ्चरात्र संप्रदायमें प्रचलित था । महाभारतके इस भागवतसे मालूम होता है, कि "सात्त्वत" विधान ही वैष्णव मत है । मरौचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और यज्ञिष्ठ—ये सात ऋषि चित्रशिलपट्टी नामसे विख्यात थे । ये ही "सात्त्वत-विधि" प्रवर्त्तक हैं ।

(शान्तिपर्व ३३५।२८-२९)

राजा उपरिचर घटुने अङ्गिराके पुत्र वृहस्पतिके सम्मुख 'सत चित्रशिलपिडङ्ग' शास्त्र पाठ किया । ये याग यज्ञादि भी करने थे । शान्तिपर्वमें इसका उल्लेख है ।

देवनाभोगे द्विजोत्तमो'से कहा था, अज्ञ द्वारा यज्ञ करना होगा । अज्ञका अर्थ बकरा है । सुतरां बकरे द्वारा यज्ञ करना होगा । यही वैदिक श्रुति है । अज्ञ शब्दका अर्थ बोज होता है । सुतरां बकरेकी हत्या करना असङ्गत है । जिसमें पशु मारे जाते हैं, वह साधुओंके लिये धर्म नहीं गिना जा सकता है ।

(शान्तिपर्व ३३७।३-४-५)

यही सात्त्वत विधि है । पूर्वोक्तधर्मों इसकी एक और विशिष्टता बताई गई है । जैसे—

"भगवत्वा परन्त्या युक्तो'मनोवाक कर्ममिन्तदा ।" ४७॥

"नारायणपरोभूत्वा नारायणजपं जपन् ।" ६४ ॥

यह जो यहाँ भक्तिको बात कही गई, यही भक्ति ही वैष्णव धर्मकी उपासनाकी एक प्रधान विशिष्टता है । जो ही, महाभारतके पट्टनेसे मालूम होता है, कि श्रीभगवान् नारायण ही इय सात्त्वतधर्मके आदि उपदेष्टा हैं । जैसे महाभारतमें—

"आरोध्य तपसा देवं हरिं नारायणं प्रभुम् ।

दिव्यं धर्मं सहस्रं वै सर्वं ते ऋषिभिः सह ॥

नारायणानुशिष्टा हि तदा देवी सरस्वती ।

विभेन तान् ऋषीन् सर्वान् लोकानां हितकाम्यया ॥

ततः प्रवर्त्तिता सम्पर्कतपोविदुर्भुविर्द्विजातिभिः ।

शब्दे चांधे च हेतो च एषा प्रथमसर्गाया ॥

आदायेव हि तच्छास्त्रमोङ्कारस्वरपूजितम् ।

ऋषिभिः श्रावितं तत यत्नः श्रावणिको ह्यसी ॥

ततः प्रसन्नो भगवाननिर्दिष्टशरीरकः ।

ऋषीनुवाच तान् सर्वानद्रष्टव्यं पुरुषोत्तमः ॥"

(शान्तिपर्व ३३५।३४-३८)

फिर श्रीमद्भगवतमें भी सात्त्वत् तन्त्रके प्रकाश-सम्बन्धमें पौराणिक इतिहास देखा जाता है । जैसे—

"तृतीयमृषिसर्गं वै देवर्षित्वमुपेत्य सः ।

तन्त्रं सात्त्वतमावष्ट तैत्तिर्यमं कर्मणां यतः ॥"

फिर, तृतीय ऋषिसर्गमें देवर्षित्व गार्वात् नारद रूप प्रहण कर पञ्चरात्र नामक वैष्णव तन्त्र प्रकाश किया गया है । ये पञ्चरात्रोक्त कर्म करनेसे जोय कर्म बन्धनसे मुक्त होता है

उक्त श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामीका कहना है:—

"सात्त्वतं वैष्णवतन्त्रं पञ्चरात्रागमं भाष्ये ॥" यह सात्त्वत धर्म भगवद्धर्म नामसे भी अभिहित होता है । श्रीमद्भगवतमें ही यह भगवद्धर्म उक्त हुआ है । स्वयं भगवान् नारायण ही इस धर्मके प्रकाशक हैं । उद्देहेने पहले ब्रह्माके सम्मुख "भागवतधर्म" प्रकाश किया । इसके बाद ब्रह्माने नारदको और नारदने व्यासको इसकी शिक्षा दी ।

इसने महाभारत और श्रीमद्भगवतसे वैष्णवधर्मके इतिहासके सम्बन्धमें जो सब प्रमाण संशुद्धीत किये, उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि प्राचीनतम कालमें वैष्णव धर्म "सात्त्वत धर्म" "भागवत धर्म" और "पञ्चरात्र धर्म" नामसे अभिहित होता था ।

पञ्चरात्र ।

भागवतधर्म या सात्त्वतधर्म बहुत प्राचीन समयसे बालोचित होता आ रहा है । भागवत् सम्प्रदायकी प्रवृत्ति और प्रसार किस तरह संगठित हुआ, इससे पहले इसका आभास दिया गया है । समय था वर यह पञ्चरात्र मतके नाम प्रसिद्ध हुआ । एतदा वरिस्तार पर्वाने पञ्चरात्र इत्येते देवो ।

शूद्राचार्यां जष मायावाद् संस्थापनमे प्रवृत्तं हुय, तव उद्देहेने प्रसूतके २।४३-४४-४५ सूक्तकी व्याख्यानमें

पञ्चरात्र और भागवत मतका अद्वैतिकत्व-सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी। रामानुजन्त्यामी शङ्कराचार्यके इस मत का अल्टन कर गये हैं। पञ्चरात्र शब्दमें यह दिखाया गया है। शङ्कराचार्यके बहुत पहले बौधायन, गुरुदेव, प्रमिद्धाचार्य आदिने प्रथमवृत्तको ज्ञायाख्या की है, यह भी वैष्णवसिद्धान्तके अनुकूल है। सुतरां शङ्कराचार्यके बहुत पहले इस देशमें पञ्चरात्र नामक वैष्णव धर्म प्रचलित था, यह शङ्कराचार्यको भी म्योकाय्या होगा और तो क्या महाभारतमें भी पञ्चरात्रागमकी बात स्पष्टतः लियी है। इन प्रमाणों पर ही निर्भर कर अनायास ही कहा जा सकता है, कि प्राण्य प्रन्थ रचित होनेके पहले पञ्चरात्र मत या साचवत वैष्णव धर्म इस देशमें यद्येष्ट प्रचलित था।

गण्य युगमें वैष्णव सम्प्रदाय।

वैदिक समयमें वैष्णव सम्प्रदायमें जैसा आचार प्रवृत्तार रीति नोति और उपासना या यज्ञकी पद्धति प्रचलित थी, कालके साथ साथ क्रमशः वे सब प्रणालियाँ बदलती आ रही हैं। आचार-प्रवृत्तार और उपासनाप्रणालीमें परिवर्तन सङ्कटनमें मित्र मित्र संप्रदायीको स्वरूपमें देश-काल-पालके भेदसे और प्रणाली भेदसे और मिन भिन्न वाचाचार्योंके अन्तुस्थानसे मिन भिन्न सिद्धान्त संस्थापित हो कर वैष्णवधर्म महा-महीकह समय पाने पर बहुशाखामें विभक्त हो जायेगा, इसमें आश्चर्य हो क्या ? मिन भिन्न प्रतिभूल बाहियोंके तर्क निरसनके साथ साथ भी वैष्णवधर्मके मिन भिन्न संप्रदाय और सिद्धान्त प्रवर्तित हुए हैं।

हमने इससे पहले धर्मशुभागत और महाभाससे प्राचीन वैष्णव संप्रदायका परिचय प्रदान किया है। शङ्कराचार्यके समयमें तो सब वैष्णव-संप्रदाय थे, शङ्कर-शिव आनन्दगिरि-लिपिन शङ्करद्विगजय प्रथमों हम कुछ परिचय पाते हैं। इस प्रथमके छठवें प्रकरणसे ज्ञाना जाता है—

शङ्कराचार्यके समय इस देशमें भक्त, भागवत, वैष्णव, पाञ्चरात्र, वैवात्म और कर्मदीन—साधारणतः वे छः प्रकारके वैष्णव थे। किन्तु ज्ञान और ज्ञानभेदसे इस छः सम्प्रदायके अन्तर्गत और भी छः प्रकारके वैष्णवोंका

परिचय पाते हैं। शङ्करविजयके आनन्दगिरिने इन छः सम्प्रदायिक वैष्णवोंकी उपासना-प्रणालीके संबंधमें संक्षेपमें कुछ वर्णना की है। किन्तु यह कहा जा नहीं सकता, कि यह वर्णना कदां तक प्रामाणिक है।

भक्त।

वासुदेव ही भक्तोंके मतसे महापुरुष हैं। इस जगत्के रक्षाकर्ता, सर्वज्ञ और सर्वदेवकारण हैं। वासुदेव ही शिष्टपालन और दुष्टदमनके लिये तथा भूमार उपासनाके लिये रामरुष्य आदिका अवतार लिया करते हैं। पुण्यरुगलमें निजाविभूत मूर्त्तिप्रतिष्ठा करते हैं। इनकी पद्मकुञ्ज-सेवा ही भक्तोंके जीवनकी पुरुषार्थ है। गल-गण अनन्तमूर्त्तिके सेवक हैं, धीमन्दिवादिका सम्भारन और प्रोक्षण आदि इनके कार्य हैं। वे दास्यरूपसे उपासना, ऊदुधर्षपुण्ड्र तिलकादि धारण और ग्राह्यमुहूर्त्तमें स्नानाह्निक करते हैं। स्मार्त्तविहित नित्यकर्म इनके लिये अप्रामाणिक है। ज्ञानक्रियाभेदसे इनका भाषार विविध है। ज्ञानी कर्मानुष्ठान नहीं करते। ज्ञानी और कर्मों भक्त भेदसे यह सम्प्रदाय दो तरहका है। कर्मोंभक्त स्मार्त्तमार्गमें काम करते हैं। किन्तु उस कर्मफलको भगवान्को ही समर्पण करते हैं।

भागवत।

श्रीभागवान्की स्तोत्रवन्दना और कीर्त्तनादि ही भागवत मतकी उपासना है। ये कहते हैं—

सर्ववैद्विनिश्चित आचरण करने पर जो फल होता है, सर्व तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे जो फल होता है, उपासनाके स्तव करनेका भी वैसा ही फल हुआ करता है। “कली संकीर्त्त्यै केशवम्” यही इनकी उपासनाकी सार बातें हैं। स्मार्त्तविहित कर्मानुष्ठान इनके मतसे बिल्कुल अवाग्य न होने पर भी वे उससे अनुष्ठानमें तत्पर नहीं हैं। ऊदुधर्षपुण्ड्र, निलक और मारायण-निह शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि छारा तिलकाङ्कन, कण्ठमें तुलसीमाला धारण और सब समयमें उद्यमरमें मारायणका नामकीर्त्तन आदि इनके धर्मोद्भूत कार्य हैं। पर, प्युह, विभय और आर्त्त—भगवान्को ये चार मूर्त्तियाँ इनकी लीका है। परवर्त्तिकात्ममें श्रीरामानुजन्त्यामीने इससे उपासना बताया।

वैष्णव ।

वैष्णव नारायणके उपासक हैं, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि नारायणके चिह्न देहमें अङ्कित करने हैं। "ओं नमो नारायणाय" इसी मन्त्रसे विष्णुकी उपासना करते हैं। वैकुण्ठ इनका धाम है।

ये भी तत्समुद्राच्छिद्र धारण करते हैं। अर्थात् शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुद्रा तत् कर इसके द्वारा चर्ममें स्थायी भावसे चिह्न आदि धारण करते हैं।

पञ्चरात्र ।

जो सब विष्णुसम्बन्ध पञ्चरात्र आगमके मतसे उपासना और उसके अनुसार आचार-व्यवहार करते हैं, वे ही पञ्चरात्र नामसे अभिहित होते हैं और ये भगवद्दर्शा-मूर्ति प्रतिष्ठादि कर उसकी उपासनामें रत रहते हैं। "पञ्चरात्र" शब्दमें इसका विस्तार वर्णन देवना चाहिये। इस धेणीके वैष्णव बहुत प्राचीन हैं। महाभारत-रचनासे पहले पञ्चरात्रविधिका प्रवर्तन हुआ। ये भी नारायण या वासुदेवके उपासक हैं। चक्रादि चिह्न व्यवहार और तुलसीमाला धारण प्रभृति भी इनका कर्तव्य कार्य है।

आदित्यपुराण, गण्डपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, बराहपुराण, गीतमीयतन्त्र, यजुर्वेदीय हिरण्यकेशीय शाखा, कठशाखा और अथर्ववेदमें भी उपक्रम चिह्नादि धारण करनेकी व्यवस्था है।

वासुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, ऋग्वेदीय आश्वलायनशाखा, ऋक् परिशिष्ट, यजुर्वेद और छान्दोग्यपरिशिष्ट, मथर्वपरिशिष्ट आदि विविध शास्त्रमें इसके संबंधमें अनेक प्रमाण मिलते हैं। सुविशेषात् शाण्डिल्यभक्तित्तल इस पाञ्चरात्र-सम्प्रदायका प्रथम है। अनेकोंका मत है, कि यह सूत्रप्रथम श्रीमद्भागवतदुगीतामूलक है।

वैष्णव ।

वैष्णव भी शङ्ख, चक्र, आदि चिह्न तिलक-स्वल्प धारण करते हैं। नारायण ही इनके उपास्य देवता हैं। इनके मतसे विष्णु सर्वोत्तम है। धृतिप्रमाण दे कर ये कहते हैं,—

"वद्विष्णोः परमं पदं शदाशरथन्ति सूरयः दिवीव चन्द्राशतम् । तद्विष्णो विष्णवो जायताः सः समिदन्ते ॥" (श्रु. १।२।२०-२१)

इस तरह श्रोत प्रमाणानुसार ये विष्णुको ही सर्वोत्तम कह कर अज्ञन करते हैं। नारायणोपनिषद् इनके मतसे अति प्रामाणिक वेदान्त धृतिप्रमाण है। ये तत्त्वचक्रादि चिह्न अङ्गमें नित्यरूपसे धारण करते हैं।

कर्महीन या निष्काम ।

कर्महीन वैष्णव कर्मकाण्डव्यापी हैं। यह कर्महीन वैष्णव केवलमात्र विष्णुको ही गतिमुक्त समझ कर समयमें अशेष कर्म परित्याग करते हैं। ये अन्य देव, अन्य मन्त्र, अन्य साधन या अन्य किसी सम्प्रदायके आचार्य या गुरुको नहीं मानते। ये जगत्की विष्णुरूप मन्त्र हैं—(सियाराममय सब जग जाती, करी प्रणाम जोरि युग वाणि। ये जोपाई भी एक भक्त वैष्णवका ही है।) अपने सम्प्रदायके गुरुको ये एकमात्र मोक्षरथ-प्रदर्शक समझते हैं। ये सङ्घ्या-गायत्री आदिकी मयादा-रक्षा नहीं करते हैं। इन सब सम्प्रदायोंके आचार-व्यवहार और दार्शनिक तत्त्व आदिका मर्म हात्वंत शब्दमें देखो।

शङ्कराचार्यके कुछ काल पहले इस देशमें ये सब वैष्णव सम्प्रदाय विद्यमान थे और उनके तिरोपानके बाद इनमें कोई सम्प्रदाय किस आचारमें प्रवर्तित हुआ था, उसका इतिहास अस्पष्ट है। महाभारतके रचनाकालमें बहुत पहले भी हृष्ण और वासुदेवकी अर्चना प्रचलित थी। महाभारत पढ़नेसे यह सद्म ही हृदयङ्गम होता है। किन्तु शङ्करद्विजय प्रथममें अथवा शङ्कर-भाष्यमें हम श्रीकृष्णोपासक सम्प्रदायका नाम दिखाई नहीं देता है। श्रीमद्भागवत-ग्रन्थको श्रीमच्छङ्कराचार्य उत्तमरूपसे ही अध्ययन किया था, शङ्करद्विजय प्रथम पाठ करनेमें उनका परिचय पाया जाता है। ये शुद्ध चक्रके विशुद्ध सिद्धान्त संस्थापन करनेके लिये वैष्णवमत निरस्तन प्रसङ्गमें श्रीमद्भागवतसे एक श्लोक उद्धृत कर रहे हैं, वह इस तरह है—

"कर्मबंधित्तस्य विष्णुभक्तार्थाय मधिचारी नामस्यैव । उक्तञ्च भागवतमगमप्रकृत्य लक्षणम्—

"न चरति निवर्षाधीनो वा सम भवित्यत्समुद्दिपश्रमं । न इरति न चरति किञ्चिदुच्येः ततमभ्युः समवेहिव्यभक्तम् ॥" (दशम पदकण्ठ)

पञ्चगत और भागवत मतका धर्मवैदिकत्व-सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी। रामानुजस्वामी ब्रह्मचार्याओंके इस मत का अग्रदूत बन गये हैं। पञ्चगत ग्रन्थमें यह दिखाया गया है। ब्रह्मचार्याओंके बहुत पहले योगाध्याय, गुरुदेव, प्रसिद्धान्तःका भादिने प्रथमूतकी जो वशाख्या की है, यह भी वैष्णवसिद्धान्तके अनुकूल है। सुतरां ब्रह्मचार्याओंके बहुत पहले इस देशमें पञ्चरात्र नामक वैष्णव धर्म प्रचलित था, यह ब्रह्मचार्याओंकी भी स्वीकार्यता होगी और तो क्या महाभागमें भी पञ्चरात्रात्मककी बात स्पष्टतः लिखी है। इस प्रमाणों पर ही निर्भर कर अनायास ही कहा जा सकता है, कि प्रायण ग्रन्थ रचित होनेके पहले पञ्चरात्र मत या सात्त्वत वैष्णव धर्म इस देशमें यथेष्ट प्रचलित था।

मध्य युगमें वैष्णव सम्प्रदाय।

वैदिक समयमें वैष्णव सम्प्रदायमें जैसा आचार प्रवृत्तार रीति नीति और उपासना या यज्ञकी पद्धति प्रचलित थी, कालके साथ साथ क्रमशः ये सब प्रणालियां बदलती आ रही हैं। आचार-प्रवृत्तार और उपासनाप्रणालीमें परिवर्तन सङ्घटनमें भिन्न भिन्न संप्रदायोंकी सृष्टिमें देश-काल-प्राक्तके भेदसे और प्रणाली भेदसे और भिन्न भिन्न आचार्योंके अनुष्ठानसे भिन्न भिन्न सिद्धान्त संस्थापित हो कर वैष्णवधर्म महा-महीकृत समय पाने पर बहुजात्यामें विभक्त हो जायेगा, इसमें आश्चर्य ही क्या ? भिन्न भिन्न प्रतिबुद्ध धार्मिकोंके तर्क निरसनके साथ साथ भी वैष्णवधर्मके भिन्न भिन्न संप्रदाय और सिद्धान्त प्रवर्धित हुए हैं।

हमने इससे पहले श्रीमद्भागवत और महाभागमें प्राचीन वैष्णव संप्रदायका परिचय प्रदान किया है। ब्रह्मचार्याओंके मतमें भी सब वैष्णव-संप्रदाय थे, ब्रह्म-ज्ञान मानन्दगिरि-लिखित ब्रह्मविधिग्रन्थ प्रथममें हम कुछ परिचय पाते हैं। इस ग्रन्थके उक्तमें प्रकरणसे ज्ञाना जाता है—

ब्रह्मचार्याओंके समय इस देशमें भक्त, भागवत, वैष्णव, पाञ्चगत, विनायक और कर्महीन—साधारणतः ये छः प्रकारके वैष्णव थे। किन्तु प्रायः और विधाभेदसे इस छः सांप्रदायके अन्तर्गत और छः प्रकारके वैष्णवोंका

परिचय पाते हैं। ब्रह्मविज्ञानके आन्वयिनिने इन छः सांप्रदायिक वैष्णवोंकी उपासना-प्रणालीके संबंधमें संक्षेपमें कुछ वर्णना की है। किन्तु यह कहा जा नहीं सकता, कि यह वर्णना कहां तक प्रामाणिक है।

भक्त।

वासुदेव ही भक्तोंके मतसे महापुण्य हैं। इस ग्रन्थके रक्षाकर्ता, सर्वज्ञ और सर्वदेवकारण हैं। वासुदेव ही शिष्टपालन और दुष्टदमनके लिये तथा भूगार उनानेके लिये रामकृष्ण आदिका अवतार लिया करते हैं। पुण्यरूपमें निजाविभूत मूर्त्तिप्रतिष्ठा करते हैं। इनकी पद्मद्वन्द्व-सेवा ही भक्तोंके जीवनकी पुरुषार्थ है। भक्तगण अनन्तमूर्त्तिके सेवक हैं, श्रीमन्दिरादिका सम्भारजन और प्रोक्षण आदि इनके कार्य हैं। ये दास्यरूपसे उपासना, ऊदुर्ध्वपुण्ड्र तिलकादि धारण और ब्राह्ममुहूर्त्तमें स्नानाह्निक करते हैं। स्मार्त्तविहित नित्यकर्म इनके लिये अप्रामाणिक है। क्षान्तिक्रियाभेदसे इनका भावार विविध है। क्षान्ती कर्मानुष्ठान नहीं करते। क्षान्ती और कर्मों भक्त भेदसे यह सम्प्रदाय दो तरहका है। कर्मोत्तक स्मार्त्तमार्गमें काम करते हैं। किन्तु उक्त कर्मफलकी भगवान्की ही समर्पण करते हैं।

भागवत।

श्रीभगवान्की स्तोत्रयन्त्रा और कीर्तनादि ही भागवत मतकी उपासना है। ये कहते हैं—

सर्वधेय-विनिश्चिन आचरण करने पर जो फल होता है, सर्व तीर्थोंमें नम्रण करनेसे जो फल होता है, जभाद्वन्द्वसे स्तव करनेका भी धैर्य ही फल हुआ करता है। "कर्मो संकीर्ये वैश्यायम्" यही इनकी उपासनाकी सार बातें हैं। स्मार्त्तविहित कर्मानुष्ठान इनके मतसे बिल्कुल अस्वाभाव्य न होने पर भी ये उक्तके अनुष्ठानमें तत्पर नहीं हैं। ऊदुर्ध्वपुण्ड्र, तिलक और नारायण-निह ब्रह्म, चक्र, गदा, पद्म आदि-छाया तिलकायुक्त, ब्रह्ममें तुल्यस्तीनाला धारण और सब सुखमें उच्चस्तरसे नारायणका नामकीर्तन आदि इनके धर्मोद्भूत कार्य हैं। पर, ध्युष्ट, विभय और आख्या—भगवान्की धेय मूर्त्तियां इनकी स्वीकार्य हैं। परमस्तीकालमें श्रीभगवान्प्रभवागोने इसकी उपासना बनाया।

(वैष्णव)

वैष्णव नारायणके उपासक हैं, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि नारायणके चिह्न देहमें अङ्कित करते हैं। "ओं नमो नारायणाय" इसी मन्त्रसे विष्णुकी उपासना करते हैं। वैकुण्ठ इनका धाम है।

ये भी तत्तनुद्राचिह्न धारण करते हैं। अर्थात् शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुद्रा तत्त कर इसके द्वारा चर्ममें स्थायी भावसे चिह्न आदि धारण करते हैं।

पञ्चरात्र

जो सब विष्णुभावत पञ्चरात्र आगमके मतसे उपासना और उसके अनुसार आचार-व्यवहार करते हैं, वे ही पञ्चरात्र नामसे अभिहित होते हैं और ये भगवद्दर्शा-मूर्ति प्रतिष्ठादि कर उसकी उपासनामें रत रहते हैं। "पञ्चरात्र" शब्दमें 'इसका' विस्तार वर्णन देवना चाहिये। इस श्रेणीके वैष्णव बहुत प्राचीन हैं। महाभारत-रचनासे पहले पञ्चरात्रविधि का प्रयत्न हुआ। ये भी नारायण या वासुदेवके उपासक हैं। चक्रादि चिह्न व्यवहार और तुलसीमाला धारण प्रभृति भी इनका कर्तव्य कार्य है।

आदित्यपुराण, गरुडपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, बराहपुराण, गीतमोयतन्त्र, यजुर्वेदीय हिरण्यकेशीय शाखा, कठशाखा और अथर्ववेदमें भी उपक्रम चिह्नादि धारण करनेकी व्यवस्था है।

वासुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, ऋग्वेदीय आश्वलायन-शाखा, ऋक् परिशिष्ट, यजुर्वेद और छान्दोगपरिशिष्ट, अथर्वपरिशिष्ट आदि विविध शास्त्रमें इसके संबंधमें अनेक प्रमाण मिलते हैं। सुविश्रुत शाण्डिल्यस्मि-सूत्र इस पाञ्चरात्र-सम्प्रदायका ग्रंथ है। अनेकोंका मत है, कि यह सूत्रग्रंथ श्रीमद्भागवतदुगीतामूलक है।

वैष्णव

वैष्णवस भी शङ्ख, चक्र आदि चिह्न तिलक-स्वरूप धारण करते हैं। नारायण ही इनके उपास्य देवता हैं। इनके मतसे विष्णु सर्वोत्तम हैं। श्रुतिप्रमाण है कर ये कहते हैं,—

"उद्भिष्णोः परमं पदं सदापरवर्तित रूपः दिवीव चतुःशतम् ।
तद्भिःसो विष्णोः जायते सः समिद्धे ॥" (श्रु. १।२।२०-२१)

इस तरह श्रुत प्रमाणानुसार ये विष्णुकी ही सर्वोत्तम कृत् कर्मजन करते हैं। नारायणोपनिषद् इनके मतसे अति प्रामाणिक वेदान्त श्रुतिग्रन्थ है। ये तत्तचक्रादि चिह्न अङ्कमें नित्यरूपसे धारण करते हैं।

कर्महीन या निष्काम ।

कर्महीन वैष्णव कर्मपाण्डित्यागी हैं। यह कर्महीन वैष्णव केवलमात्र विष्णुकी ही गतिमुक्ति समझ एक समयमें अशेष कर्म परित्याग करते हैं। ये अन्य देव, अन्य मन्त्र, अन्य साधन या अन्य किसी सम्प्रदायके आचार्या या गुरुओं नहीं मानते। ये जगत्की विष्णु-रूप मन्त्र हैं—(सियाराममय सब जग जाती, करी प्रणाम जोरि चुग पाणि। ये श्रीपाई भी एक भक्त वैष्णवका ही हैं।) अपने सम्प्रदायके गुरुकी ये एकमात्र मोक्षपथ-प्रदर्शक समझते हैं। ये सग्न्या-गायत्री आदिकी मर्यादा-रक्षा नहीं करते हैं। इन सब सम्प्रदायोंके आचार-व्यवहार और दार्शनिक तत्त्व आदि का मर्म वास्तव शब्दमें देखो।

शङ्कराचार्यके कुछ काल पहले इस देशमें ये सब वैष्णव सम्प्रदाय विद्यमान थे और उनके तिरोपानबंध बाद इनमें कोई सम्प्रदाय किस आचारमें प्रवर्तित हुआ था, उसका इतिहास अस्पष्ट है। महाभारतके रचनाकालमें बहुत पहले भी छान्दोग और वासुदेवकी अर्चना प्रचलित थी। महाभारत पढ़नेसे यह सद्बन ही हृदयङ्गम होता है। किन्तु शङ्करदिग्विजय ग्रन्थमें अथवा शङ्कर-भाष्यमें हम श्रीछान्दोगासक सम्प्रदायका नाम दिखाई नहीं देता है। श्रीमद्भागवत-ग्रन्थकी श्रीमच्छङ्कराचार्य उत्तमरूपसे ही अध्ययन किया था, शङ्करदिग्विजय ग्रंथ पाठ करनेमें उसका परिचय पाया जाता है। ये शुद्ध अर्कके विशुद्ध सिद्धान्त संस्थापन करनेके लिये वैष्णवमत-मत निरस्तन प्रसङ्गमें श्रीमद्भागवतसे एक श्लोक उद्धृत कर रहे हैं, यह इस तरह है—

"कर्मवदिच्छन्तस्य विष्णुमत्कार्यापि अधिचारो नास्त्वयम् ।
उत्तमं भागवतमगयद्भक्तस्य लक्षणम्—

"न चलति निवर्तयतीति यः समं मतिपातममुद्विष्यन्मने ।

न हरति न चप्रति किञ्चिदुच्यते मत्तमन्सु" समवेदिविष्णुभक्तम् ॥"

(दशम पञ्चरात्र)

जिनकी मयूर नी नामें श्रीमद्भागवतका प्रति छत्र मुधाधारामें परिष्कृत है, जिनके कीर्तिमहाद्वयकी उद्योगवासें सारा भारतवर्ष सुश्रुति है, श्रीमद्भागवत-गीतां जिनके श्रीमुखका विषयगोमुख सनातन-धर्मोपदेश है, मध्ययुगमें उन श्रीकृष्णकी नामगुण ध्यानधारणा पूजा-भर्षना नदीं होती थी, यह बात कौन विश्वास करेगा ? इसीसे मान्य होता है, कि शङ्करविजयमें जिन षोडश वैष्णव-संप्रदायका उल्लेख है, उनको छोड़ और भी कितने वैष्णव संप्रदाय भारतवर्षमें विद्यमान थे।

वर्तमान वैष्णव संप्रदाय।

जो हैं, अभी हम लोग भारतवर्षमें जो चार शास्त्रीय वैष्णव मूलसंप्रदाय देखते हैं, पद्मपुराणमें भी उन चार संप्रदायोंका उल्लेख किया है देता है। यथा—

“अथः कतो भविष्यन्ति चत्वारः संप्रदायिनः।

श्रीमद्वदन्तको वैष्णवा द्वितीयावनाः ॥”

अर्थात् कलिकालमें चार संप्रदाय द्वितीयावत वैष्णव प्रकट हो कर श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनक नामसे परिचित होंगे। इनका अभिप्राय यह कि लक्ष्मीसे एक संप्रदाय, ब्रह्मसे एक संप्रदाय, रुद्रसे एक संप्रदाय और सनकसे एक संप्रदाय वैष्णव प्रादुर्भूत होंगे। इन चार संप्रदायको मुद्रवर्णालिका भाज भी प्रचलित है। भगवद्गुप्तारके सद्गुरु भाचार्योंके प्रत्येक संप्रदायमें आविर्भूत होनेसे अभी उर्द्वीके नाम पर ये संप्रदाय पुकारे जाते हैं। यथा—

“रामानुजं भीः शोभकं गणाचार्यं चतुर्गुणः।

श्रीविष्णुशक्तिर्षोः निम्बार्दिरथं चतुर्धनं ॥”

अर्थात् श्रीठाकुरानोंने श्रीमदुरामानुजानाथकी, ब्रह्मने गणनाथकी, रुद्रने विष्णुनामकी और चार-सगने निम्बार्दिरकी माने अपने संप्रदायका अभिनय प्रवर्तक स्वीकार किया। अभी इन चारों संप्रदायके वैष्णव भारतवर्षमें अधिक संख्यामें देखे जाते हैं। किन्तु धोनीर द्वैतने मधवाचार्य संप्रदाय हो कर भी वैष्णव-धर्मका अभिर्भाव समुद्रमल सिद्धान्त प्रकट किया है। यह संप्रदाय मधवाचार्य-संप्रदायसुक कट कर प्रसिद्ध था, परन्तु अभी यह सभी विषयोंमें मधवाचार्य-संप्रदायके विभिन्न है तथा धोनीरद्वैत संप्रदाय नामसे क्यात है।

श्रीसम्प्रदाय।

श्रीरामानुजानाथोंने इस सम्प्रदायका नाम जगद्विष्णव कर दिया है। किन्तु उनके भाषिर्भावके बहुत पहलसे ही श्रीसम्प्रदायका वैष्णवधर्म प्रचलित था तथा पूर्वाचार्यगण धर्ममतका संरक्षण करते भा रहे थे।

श्रीसम्प्रदाय शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

रामानुजका ज्ञाना-सम्प्रदाय।

रामानुजके शास्त्रा-संप्रदायमें रामानुजका नाम ही विशेष उल्लेखनीय है। भारतवर्षके उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें रामानुज-संप्रदायका वैष्णव सुप्रसिद्ध है। यह संप्रदाय रामानुजकी कहलाता है।

रामानन्द शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

कवीरधर्म।

शास्त्रपथका परित्याग कर व्यक्तिविशेषके स्वेच्छानुसार जब धर्ममत प्रयत्नित हुआ, तब उसे संप्रदायके उपासक पथकी कहलाने लगे। रामानन्दके सुप्रसिद्ध शिष्य कवीरने धर्ममत चलाया। यही मत उत्तर-पश्चिम-अञ्चलमें विशेष प्रचलित हुआ था। कवीरकी ओपनी और उनका धर्ममत 'कवीर' शब्दमें लिया जा चुका है।

कवीर देखो।

ठाकी।

रामानुज-संप्रदायकी दूसरी शाखा ठाकी-संप्रदाय है। ये लोग रामानुजकी संप्रदायके अग्रभूत हैं। कौन नामक एक भगवद्भक्त वैष्णव इस संप्रदायके प्रवर्तक थे। अथोष्यके निःकटस्थ हनुमान्गढ़में इनका प्रवान मठ है। यद्यपुर्षमें ठाकीकुलसुक कीलका प्रवान मठ संस्थापित है। फरकाबाद् प्रदेशमें ठाकी-संप्रदाय देखनेमें आता है।

मूलुक्दासी।

मूलुक्दासी नामक रामानुज-संप्रदायकी एक शाखा है। मूलुक्दास इस संप्रदायके प्रवर्तक थे। रामानुजकी-संप्रदायकी गुरुप्रणालीमें मूलुक्दासका नामो-ल्लेख है। कानी, इलहाबाद्, लखनऊ, अथोष्य, यथा-यन भारत जगत्प्रदेशमें इस संप्रदायके ७० मठ हैं।

दादुधनी।

रामानुजका ज्ञाना-सम्प्रदायकी छोट वृत्त शाखा भी परामाल है। दादुधनी दो रामानुजकी संप्रदायकी

वृद्धशाखा है। रामानन्द रामानुज-संप्रदायसे प्रादुर्भूत हुए हैं। कवीर रामानन्दके शिष्य हैं। दादुपन्थी फिर कवीरपन्थीसे उत्पन्न हैं। दादु इस संप्रदायके प्रवर्तक हैं। कवीरपन्थियोंकी गुरुप्रणालीमें दादुका नाम आया है।

रघदासी ।

रामानन्दस्वामीके दूसरे शिष्य रघदास वा रईदास रघदासी-संप्रदायके प्रवर्तक हैं। रईदास जातिके चमार थे, वैष्णवधर्मके प्रभावसे एक चमारने भी धर्माचार्यकी पत्रो पाई थी। विठोरराजकी आलि नरनी महिषीने भी रघदाससे दीक्षा ली थी, इससे वीर आश्रचना क्या हो सकता है ?

सेनपन्थी ।

रामानन्दके शिष्य सेन नामक एक नापित सेनपंथी संप्रदायके प्रवर्तक थे। सेन और उनके पंशधरगण गन्धोशानाके बन्धगढ़ राजवंशके कुलगुरु थे। भरुमालमें सेनका चरित और उनकी अद्भुत आध्यात्मिका प्रचलित है। सेनपन्थियोंका अभी कोई संधान नहीं मिलता।

रामसनेही ।

रामधरण नामक एक दयवित रामसनेही संप्रदायके प्रवर्तक थे। रामसनेही संप्रदाय रामानुज वैष्णव हैं। ये लोग मूर्तिपूजा नहीं करते। यह संप्रदाय नितान्त आधुनिक है, १८२८ संवत्में प्रवर्तित हुआ है। ये लोग गलेमें माला पहनते और ललाटेमें श्वेत दोर्घपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं।

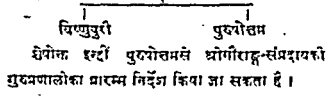
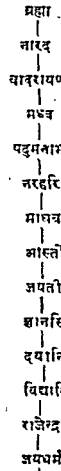
ब्रह्मसंप्रदाय ।

हम पहले लिख चुके हैं, कि श्रीसंप्रदाय श्री वा लक्ष्मीठाकुरानीसे चलाया गया है तथा ब्रह्मा ही ब्रह्मसंप्रदायके प्रवर्तक हैं। पद्मपुराणमें प्रागुक्त-वचन ही इसका प्रमाण है। ब्रह्मासे जो एक वैष्णव-संप्रदाय-प्रवृत्ति है, श्रीमद्भागवतके तुनीष स्कन्धकी टीकाके प्रारम्भमें श्रीधरस्वामीने भी यह स्वीकार किया है। पर्यसों आचार्य कहते हैं—

“रामानुजानो सरणीमानो गौरीपतिर्विशुभ्रताऽनुगमान् ।
निम्बार्कानां चन्द्रादितश्च मन्थानुगानां परमेष्ठितश्च ॥”

(भाष्यन १३३ १०)

ब्रह्मासे जिस वैष्णव संप्रदायकी प्रवृत्ति हुई, दक्षिणापथके अन्तर्गत तुलवदेशवासो मधिमोमट्टके पुत्र वासुदेव (मधवाचार्य)-ने उस संप्रदायमें नवजीवन प्रदान किया। इस कारण ब्रह्मसंप्रदाय अभी माधव-संप्रदाय नामसे भी अमिहित हुआ है। ये साधनासे सिद्धिलाभ करके पूर्णप्रह कहलाने लगे। इनका दूसरा नाम आनन्दतोर्षा है। इनकी जीवनी और धर्ममत 'मधवाचार्य' शब्दमें लिखा जा चुका है। मधवाचार्यने वेदांतका द्वैतमाध्य रचा जो "पूर्णप्रहदर्शन" नामसे प्रसिद्ध है। नारायण उपनिषद् ही इस संप्रदायकी श्रुतिसम्बन्धिनी भित्ति है, माधवगणने गुरुप्रणाली इस प्रकार स्वीकार की है।



स्कन्धप्रदाय ।

यद्ने मो एक वैष्णव-संप्रदाय चलाया। पर्यसों

काठमे श्रीविष्णुस्वामीने इस सम्प्रदायके परामतता प्रचार किया। इस कारण लिखा है—“श्रीविष्णुस्वामिने कदा।”

मर्धान् यद्गने ध्याविष्णुस्वामीके अपने सम्प्रदायका धर्माचार्य कह कर स्वीकार किया। महादेव सदाजिप जे नजिदाता और भक्तिधर्मप्रचारक थे, यह बात अनेक ग्रन्थोंने लिखी है। यत्नमाचार्य मत्तानुग प्राम-धनप्रमथ-टीकाकारने अपने 'मादत-नाक्ति' नामक टीका-ग्रन्थमें लिखा है—

“तत्र महामाकम् यद्गसम्प्रदायः” अतएव तस्य भक्तिदातुरे तत्र तत्र वर्णयन्ति श्रीमदाचार्याः। यथा पुरयोत्तमनामसहस्रे—

“महादेव स्वर्गादय भक्तिदाता कृपानिधिः।”

निकषे चतुर्थेस्कन्ध विवरणेऽपि सायुज्याधिकारिणां प्रचेतसां ध्यानियकृत् कोपदेशादेव सिद्धिर्दक्षिता।

“तपसा साधने तस्य न यग्यो भवताति हि।

तत्तापि कृष्णसेवायां कृताध्यायं हि सर्गधा ॥

इति तान सर्गधा शुक्लान् विलापयेद्यो हरिप्रिया।

प्रोवाच सत्यसम्भेदवारकः सर्गधोपकम् ॥

अपि च द्वादशस्कन्धनिशधे श्रीमदाचार्याः।

‘भक्तियुक्तो महादेवस्तो दातु’ शपथुयासथा।’

पतेन महादेवे मुदरवबोधनाय तदुपनिदन्धन

मिदुपकम् ॥’

इस व्याख्यानमें हम रुद्रप्रवर्तित वेष्णव-सम्प्रदायकी उत्पत्तिका इतिहास और हेतु स्पष्ट देख पाते हैं। अतएव प्रसन्नसम्प्रदायको तरह यद्गसम्प्रदाय भी प्राचीन है, इसमें जरा भी संभेद नहीं। चार सौ वर्ष पहले यत्नमाचार्योंने इस सम्प्रदायका प्रसिद्ध भाषायां पद वाचा। उस समयमें यह सम्प्रदाय अज्ञानाचार्यो की कहलाता था रहा है।

हम इस मादतनाक्तिटीका ग्रन्थमें ही इस सम्प्रदायको प्रजापती देव पाते हैं। यथा—

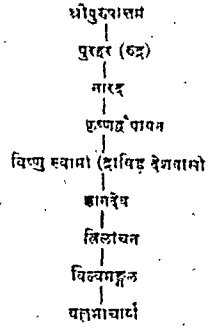
“मादो धीपुत्रयोत्तमं पुरहरं धीनारदाकवं मुनिं।

कृष्णं व्यास शुक्रं शुक्रं तन्पु विष्णुस्वामिनं प्रविष्टम् ॥

तच्छिष्यं किल विजयभङ्गसमदं पश्य महायोगिनं।

धीनदत्तभगवाम घाम भ भजेऽभाम् सम्प्रदायाधिपम् ॥”

इससे विजयलालय मुदरव्याख्यिका मित्रयो है—



यह मुद्रप्रणालीका धाराशाहिक नहीं है। इसमें तिरंग सम्प्रदाय-प्रवर्तकोंके प्रधान प्रधान भाचार्योंके नामोंका उल्लेख किया गया है।

यत्नमाचार्य सम्प्रदायके गोस्वामी 'गोकुलेश्वर गोसाँई' कहलाते हैं। प्रामधनप्रमथके मादतनाक्तिटीकाकारने इस सम्प्रथमें भी ऐतिहासिक और पौराणिक उपाख्यानोका उल्लेख किया है।

जाण्डव्यसंहितासे यत्नमाचार्यने अपने सम्प्रदायकी उत्पत्तिके इतिहासका आनुपूर्विक परिचय दिया है। एक दिन जङ्गलदेशमें गोकुलमण्डलमें जा धीन्द्रायनमें साध्यानाम् मग्निरमें कोटिमगमधसुन्दर यत्नधीनपसेहित धृतिगण-पूजित ललितमिभङ्गश्याम सुन्दरी प्रणाम कर सामगानसे उर्ध्व प्रसन्न किया तथा भक्तिधर्म और सम्प्रदाय स्थापनके लिये उनसे प्रार्थना की। तद्नुसार धीपतिने उर्ध्व सन्नम स्थापन करनेका उपादेश दिया। नारद मुनिको संवारे साँतुष्ट हो जङ्गलमें नारदसे यह उपदेश कह सुनाया। पाँडे नारदने यह उपदेशासको निचाया। विष्णुने श्रीकृष्णय गोसाँचार्य महात्मामोंको यह उपदेश प्रदान किया। व्यासने अपने पुत्र मुदरको उस धर्मकी गिहा दी। मुदरदेवने विष्णु मर्धान् विष्णुस्वामीको यह धर्मतप्य सुनाया। इसके बाद इस जाण्डव्यसंहिताकी निषिष्य व्यासोंके रोषानुसार यत्नमाचार्यके प्रादुर्भापका स्पष्ट प्रमाण दिया गया है अर्थात् धृयोभायोके समापमें मार्ग मान कर भक्ति

नामा ।

निष्पादित्वके दो शिष्योसे दो शाखाको उत्पत्ति है । एक शिष्यका नाम हरिण्यास और दूसरेका नाम के.नयमट्ट है । इनमें एक श्रेणी गृहस्थ है । मथुराके समीप यमुनाके किनारे घुघक्षेत्रमें निष्पादित्वकी गद्दी है । पदिचमाञ्जल और मथुरामें बहुतसे निमात्तु है ।

विस्तृत विवरण भर्माय गाल्लव शास्त्रमें देखो ।

भोगीराग संप्रदाय ।

नयद्वीपमें १४०३ तकमें श्रीगीताङ्ग जाविभूत हुए । इसके कई वर्ष बादसे ही बङ्गालमें भक्तिधर्मका सिन्धु-पच्छाम कल कल नादसे बहने लगा । वैतन्व येशो ।

श्रीरविकर्णपुर गोस्वामिद्वारा गौतमगोत्रेण-श्रीविक्रामें श्रीगीताङ्ग संप्रदायकी गुरुप्रणालिका देखी जाती है । यह इस प्रकार है—

‘परश्वामेश्वरस्वामिशिष्यो ब्रह्मज्ञगत्पतिः ।

तस्य शिष्यो नारदोऽभूत् व्यासस्तस्वपि शिष्यताम् ॥

शुके व्यासस्य शिष्यत्वं प्राप्नो ह्यनाघवेधनात् ।

तस्य शिष्यप्रतिष्ठाप्य यद्वै भूतले स्थिताः ॥

व्यासाल्लक्ष्मणा कृष्णदीक्षां मध्वाचार्यामहाशयः ।

यके वेदान् विमज्जवासी स स्थितः शतद्वयणीम् ॥

निगुणाद्ब्रह्मणो यत् समुपास्य परिष्किया ।

तस्य शिष्योऽभवत् पद्मनाभाचार्यो महाशयः ॥

तस्य शिष्यो नरहरिस्तच्छिष्यो नाघयो द्विजः ।

मत्तोम्यस्तस्य शिष्योऽभूत् तच्छिष्यो जपतीर्थाकः ॥

तस्य शिष्यो ज्ञानसिन्धुस्तस्य शिष्यो महाशयिः ।

विद्यानिष्ठस्तस्य शिष्यो राजेश्वरस्तस्य सेवकः ॥

जपधर्मनिष्ठस्तस्य शिष्योऽभूद्गुणमध्वरतः ।

धाम्नुविष्णुपुरे तस्य भक्तिरामायनीकृतिः ॥

जपधर्मस्य शिष्योऽभूद् ब्रह्मणो पुरुषोत्तमः ।

व्यासतीर्थास्तस्य शिष्यो यद्वचके विष्णुसंहिताम् ॥

धोमल्लक्ष्मणोपतिस्तस्य शिष्यो भक्तिरसाधरः ।

तस्य शिष्यो नाघयेन्द्रे भक्तिधर्मप्रदर्शकः ॥

बन्धुद्वय सायतारो मज्जामनि निष्ठिनः ।

श्रीगिशिष्यो परतल्लोकाग्रबलाद्वयमुपधारिणः ॥

तस्य शिष्योऽभवत् श्रीमानीश्वरराय पुरी यतिः ।

बलशामस मे गार्धो श्रीमाधुर्धररायकम् ॥

उज्जवलं मुचिनामानमतरामोवादिपतिम् ।

परिणामे कृष्णमेमनात्ताकांक्षी सदाशयम् ॥

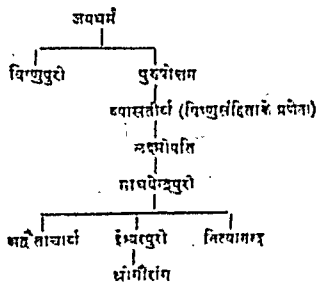
प्रोजोरोट्टय धीमरः धीश्वरपुरी न्वयम् ।

जगद्वालायवामास प्राकृताप्राकृतनकम् ॥

स्योष्टय राधिकाभावकारतो पूषत्सुखीम् ।

अस्तर्थादोरसंभोधिः धीमग्मदनमोदताः ॥’ इत्यादि

हम इसके पहले इस तालिकासे मध्वाचार्य संप्रदायकी गुरुप्रणाली दिखला चुके हैं । उसमें दिखनाम गया है, कि राजेश्वरके शिष्य जपधर्म थे । इन जपधर्मके दो शिष्य थे—एक भक्तिरामायलीके प्रणेता विष्णुपुरी और दूसरे पुरुषोत्तम । पुरुषोत्तमसे ही भोगीराङ्ग संप्रदायके पूर्ण आचार्योंका उद्भव हुआ है । अतएव निम्नलिखित रूपसे गौडिय वैष्णवोंकी गुरुपरम्पराका अवनिष्टंश दिखलाया जाता है—



श्रीगीताङ्ग-संप्रदायके भक्तगण श्रीगीताङ्गदेवकी हादिनीशक्तिसममित साक्षात् प्रभेदनन्दन समझते हैं । परममक भद्रेताचार्यकी प्रायःनारो मोलकेअर परावामें श्रीगीराग मूर्तिमें प्रकट हो विमल भक्ति सिद्धांत और अट्ट कृष्णमेमको निता इस जगत्में फैला गये हैं, भोगीराग संप्रदायके वैष्णवमात हो रही विद्वान् बनने हैं ।

श्रीगीरागके प्रियतम मक यदोद्व प्रबोध पण्डित सर्वात्मनिव भद्रेताचार्य और निरवनेमम कथेपर धोमनिरवाणम् मो श्रीगीरागके भंड और अवनार माने जाते हैं और इन्ही कारण उबका सम्मान है । निरवाणम् बलराम और भद्रेताचार्य महाविष्णु दोमेरे

इस संप्रदायके आराध्य हैं। इनके सिवा उक्त श्रीवासा-
चार्य श्रीपाद गदाधर पण्डित भी इन सांप्रदायिक वैष्ण-
वोंके निकट प्रथि और भगवत् शक्ति-रूपमें पूजनीय हैं।

नित्यानन्दचरित 'नित्यानन्द' शब्दमें देखो।

पञ्चतत्त्व ।

श्रीगीरांग, नित्यानन्द, अद्वैताचार्य, गदाधर
पण्डित और श्रीवासादि प्रकृत्यन्त ले कर ही वैष्णव
समाजका पञ्चतत्त्व है। श्रीचरितामृतकार श्रीछण्ण
दास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्या भक्त्यभ्यस्त्यरूपम् ।

भक्तावतारं भक्ताख्यं गमामि भक्त्याकिकम् ॥"

अवतारका कारण ।

श्रीचरितामृतकारका कहना है, कि श्रीछण्ण रक्षि-
शेखर और परम करुण हैं। ये दोनों गुण ही उनके इस
अवतारके कारण हैं। परम करुण दयामय भगवान्ने
मनुष्यके देशमें आ कर प्रेम और नामका प्रचार कर
मनुष्यके उदारका पथ देखा। यह केवल उनकी करुणा-
का परिचय है। किन्तु यह यहिरङ्ग है। अन्तरङ्गका
उद्देश यह है, कि श्रीपाद स्वरूपदामोदरने अपने कइया
प्रथमें बहुत ही संक्षेपसे यह प्रकाश किया। यथा—

"श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशं वान्यैवा-

स्याथो वेनाद्भुतमपुरिमा कीदृशो वा मदोषः ।

सौख्यं चाह्वा मदनुभवतः कीदृशं वेति छोभात्

तद्भावाद्भवः समजनि शचीगर्भंछिन्वो हरीन्दुः ॥"

अर्थात् श्रीराधाकी प्रणयमहिमा फैली है, जिस प्रणय
महिमा द्वारा ये माधुर्य आसादन करते हैं, मेरी यह मधु-
रिमा ही फैली है और मेरे अनुभवसे ये फैला सुख पाते
हैं, इन तीन विषयोंके लोभके कारण श्रीराधाभावमें
भावित हो स्वयं हृदिने शचीगर्भमें जन्मग्रहण किया।

अवतारका प्रमाण ।

श्रीचरितामृतमें तथा उसकी टीकामें श्रीगीराङ्ग अ-
वतारके अनेक पौराणिक घनन उद्धृत हुए हैं। श्रीमद्
वलदेव विद्याभूषणने लघुभाष्यतामृतकी टीकामें इस
सम्बन्धमें अनेक प्रमाणोंका उल्लेख किया है।

श्रीगीराङ्गसंप्रदायमें धोमनिनित्यानन्द और अद्वैता-
चार्य प्रभु कह कर सम्मानित हैं। इनके चञ्चरगण

भाज भी वर्तमान हैं। ये दोनों प्रभु महाप्रभुके अङ्गके
स्वरूप हैं। किन्तु धोमनिनित्यानन्दका नाम ही महाप्रभु-
के नामके साथ सर्गदा उच्चारित होता है। कनाई बलाई
नामकी तरह गीरनिताई नाम भी वैष्णवोंके मुखसे हमेशा
उच्चारित होता है। गीरनिताईका नामसङ्कीर्तन गाया
जाता है, इनकी युगलमूर्त्ति वैष्णवोंके घरमें अर्घित होती
है, तिलकमुद्रामें भी बङ्गालके वैष्णव "गीरनिताई" या
"गीरनित्यानन्द" नामाङ्कित मुद्रा धारण करते हैं।
गौड़ीय वैष्णवोंमें इस युगल नामका बहुत प्रभाव है।

गीरभक्त वृन्द ।

श्रीगीरनित्यानन्द अद्वैत गदाधर और श्रीवासको
छोड़ ब्रह्महरिदास, स्वरूप दामोदर, रायरामानन्द आदि
श्रीगीराङ्गके सहचरगण भी गौड़ीय वैष्णववृन्दकी
भक्तिके पात्र हैं। इनके सिवा चौंसठ महन्त, बारह
गोपाल, छः गोस्वामी, छः चक्रवर्त्ती, आठ कविराज तथा
महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु और अद्वैतप्रभुके असंख्य
अनुचरोंके पवित्र और भक्तिप्र नाम इस वैष्णव सम्प्र-
दायमें कीर्तित होते हैं। देवकीनन्दनकी वैष्णव वन्दनामें
अनेक वैष्णव महानुभवके नाम और संक्षिप्त पुण्यकीर्त्ति-
का वर्णन किया गया है। कविकर्णपुरके गीरगणोद्देश-
कीपिकाप्रन्थमें, श्रीचैतन्य भागवतका उपसंहार तथा
श्रीचरितामृतकी आदि लीलाके श्लोके ११३के परिच्छेदमें
बहुतेरे भक्तवृन्दोंके नाम और संक्षिप्तचरित वर्णित हैं।
ये सभी महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु और अद्वैत प्रभुके सम
सामयिक सहचर अनुचर थे। इन सब भक्तोंकी
असंख्य शाखा, शिष्य और परिवारमें १५०० शकके
मध्यभागसे श्रीगीराङ्ग सम्प्रदायका बहुत प्रसार हो
गया। बङ्ग, बिहार, आसाम, उत्तराल, वृन्दावन, मथुरा
आदि उत्तर-पश्चिमाञ्चलके विविध स्थानोंमें तथा
मन्द्राज और बम्बई प्रदेशमें श्रीगीराङ्ग सम्प्रदायकी विप्रय-
पताका उड़ने लगी। अभी यूरोप और अमेरिकामें
बहुतेरे लोग श्रीगीराङ्गप्रवर्तित वैष्णवधर्मका स्वीकार
करते हैं।

छः गोस्वामी ।

श्रीचैतन्यके भक्तोंमें छः गोस्वामीके नाम विशेष
उल्लेखयोग्य हैं, यथा—श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरुप

गोस्वामी, श्रीगोपालमठ गोस्वामी, श्रीरघुनाथमठ गोस्वामी, श्रीश्रीय गोस्वामी और श्रीरघुनाथदास गोस्वामी,। प्रत्येक इन्द्रमें विस्तृत विवरण देखो।

वैष्णव ग्रन्थ।

महाप्रभु तथा दो और प्रभुका लिये भूषण कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। किन्तु उक्त छः गोस्वामीमें सभी ग्रन्थ लिये कर वैष्णव समाजका बहुत उपकार कर गये हैं। वैष्णवदर्शन, वैष्णवमूर्ति वैष्णव साहित्य और मन्त्रादि ग्रन्थ इन्हीं गोस्वामीके रचित हैं।

श्रीहरिमूर्तिपञ्चाष।

श्रीपांडु सनातन और श्रीगोपालमठ गोस्वामीका लिखित हरिमूर्तिपञ्चाष तथा सनातन लिपिन इसकी दिक्कुरांशोटीका भाग में गोद्वीय वैष्णव समाजको निरत्य नैमित्तिक धर्मक्रियादिकी व्यवस्था प्रदान कर वैष्णवोंके उपासनाविधिकी शिक्षा देती है। इसके सिवा बहुतेरे ज्ञानग्रन्थ भी हैं।

द्वादश गोपाल।

जा सय भक्तमहानुभाव, श्रीगीताङ्गमहाप्रभु और श्री मणिरघुनाथमठके साथ सव्यसूक्तमें भाष्य है, 'गोपाल' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। गोपालका अर्थ है मज्जका ग्वाला। श्रीचैतन्यजीलाके प्रधान प्रधान पातश्रीहरण-लोलाके पातपातोरूपमें बचसोर्ण हुए, यही वैष्णवोंका विभवास है।

नौकेकी तालिकामें श्रीगीताङ्गजीलामें प्रादुर्भूत गोपालोंके नाम और पाठ लिखनाये गये हैं।

हरणलोलाके	गोरलोलाके	पाठ
१। श्रीश्याम	शमिराम ठाकुर	श्यामपुत्र
२। सुश्याम	सुरेश्वर ठाकुर	महेनपुर
३। वसुश्याम	धनश्रवण पण्डित	श्रीतलप्राम
४। सुवल	गोरीश्याम पण्डित	मन्दिबका
५। महाश्याम	कमलाकर दिवाणई	माहेन
६। सुवाहु	उदारण दस (व्यवर्धनिक)	सिजाविषा
७। महाश्याम		मनिपुर
८। श्याम		
९। इन्दिरा		

१०। मधुम	परमेश्वर ठाकुर	विद्याधर	
११। लक्ष्मण गोपाल	कामाईठाकुर या काला कृष्णदास	वैद्यधर	
१२। मधुमङ्गल	धीरघर	नगरीन	
ये सब गोपाल निरवानन्द-शाखाभुक्त हैं। गोपालोंकी सन्तति और निरवगण अनेक शाखाओंमें विभक्त हैं। गोपालपरिवारके जिनको संख्या भी छोटी नहीं है। इनके सिवा उपगोपालगण भी हैं। जैसे—			
हरणलोला	नगरीनजीला	शाखा	पाठ
१। सुवल गोपाल	हलामुष पण्डित	चैतन्य	शामधर-पुर
२। वदपप गोपाल	रुद्रपण्डित	निरवानन्द	धनमपुर
३। गम्पय गोपाल	मुकुन्दानन्द पण्डित	चैतन्य	नवग्रीव
४। किङ्किणीगोपाल	कानोभर पण्डित	"	वहनपुर
५। मधुमाग गोपाल	भोधा घन-माली दास	"	कुलावाहु
६। मद्रसेन गोपाल	सतठाकुर	निरवानन्द	रोहीण-पुर
७। वसन्त गोपाल	मुत्तरी महाणित	चैतन्य	पंशीरोटा
८। उज्जवल गोपाल	गङ्गादास	निरवानन्द	नैशरी
९। कोकिल गोपाल	गोपाल ठाकुर	"	गीताङ्गपुर
१०। पिलासी गोपाल	निराई	"	वेन्दन
११। पुण्डरी गोपाल	नन्दई	"	नालिप्राम
१२। बलविष्ट गोपाल	विष्णई	"	श्यामपुर
इनके भी सम्मान, ज्ञाना और परिवार हैं।			
श्रीकठ ग्रन्थ।			
पुर्वजीला	नगरीनजीला	शाखा	पाठ
१। शारद	भोवात	चैतन्य	नवग्रीव
२। हनुमान	मुत्तरी गुण	"	"
३। महेश्वर	पुण्डर पण्डित	"	"
सुमोद	गोविन्दानन्द	"	"

५। वशिष्ठ	गङ्गादास परिडत	चैतन्य	विद्यानगर	२५। ललिता	ध्र वानन्द ब्रह्मचारी	चैतन्य	रामचन्द्र- पुर
६। विभीषण	रामचंद्रपुरी	"	नवद्वीप	२६। विशाखा	स्वरूप- दामोदर	"	नवद्वीप
७। श्रुचोक-पुत्र (ब्रह्मा)	हरिदास ठाकुर	"	वृद्धन	२७। चित्रा	वनमाली कविराज	"	गरीफा
८। वेदव्यास मुनि	वृंदावन दास	नित्यानंद	कुमार- हट्ट	२८। चम्पकलता	राघव- गोसाईं	"	रामनगर
९। सङ्कर्यंणव्यूह	मीनकेतन रामदास	"	भामरपुर	२९। तुङ्गविद्या	प्रबोधानन्द सरस्वती	"	काशी
१०। प्रद्युम्नव्यूह	श्रीच्युनंदन	चैतन्य	श्रीदण्ड	३०। इन्दुरेखा	छरणदास ब्रह्मचारी	"	गुतिपाड़ा
११। अनिरुद्धव्यूह	पद्मेश्वर परिडत	"	गुतिपाड़ा	३१। रङ्गदेवी	गदाधरभट्ट	"	धनुमानपुर (तिलङ्ग)
१२। ब्रह्मा	गोपीनाथ- सार्य	"	नवद्वीप	३२। सुदेवी	भनस्त- भाचार्य महन्त	"	भनस्त- नगर
१३। शुकदेव गोस्वामी	वल्लभभट्ट	"	कर्णाट	३३। रत्नरेखा	उपमहन्त । छरणदास	"	सात- गाछिया
१४। गण्ड	गण्ड परिडत	"	टोटाग्राम	३४। धनिष्ठा	(कुलीन ब्राह्मण) राघव- परिडत	"	पाणिहाटी
१५। शङ्खनिधि	भाचार्यरत्न	"	नवद्वीप	३५। माघवी	माधवा- चार्य	नित्यानन्द	मन्यापुर
१६। दुर्गासा	जगन्नाथ भाचार्य	"	श्रीहट्ट	३६। सुकेशी	मकरध्वज	"	बड़गाछी
१७। इन्द्रचूड	प्रतापादित्य	"	पुरीधाम	३७। मधुरा	विद्यावाच- स्पति	चैतन्य	काँडगाछी
१८। चंद्रकान्ति गंधर्व	गदाधर दास	नित्यानंद	पड़दह	३८। मधुरेक्षण	वल्लभद भट्टाचार्य	"	नवद्वीप
१९। विश्वामित्र	वनमाली भाचार्य	चैतन्य	नवद्वीप	३९। कलकण्ठी	रामानन्द घसु	"	कुलीनग्राम
२०। अर्जुन	राय रामा- नन्द	"	पुरीधाम	४०। नागदीमुक्ती	सारङ्ग ठाकुर	"	माउगाछी
२१। माधुरी	देवानन्द परिडत	"	कुनिवा	४१। सुकण्ठी	सरय- राज साँ	"	कुन्दीनग्राम
२२। चन्द्रायली	सदाशिव	नित्या- नन्द	कुमार- हट्ट	४२। मधुमती	नरहरि सरकार	"	श्रीदण्ड
२३। मद्रा	शङ्कर परिडत	चैतन्य	पहाड़पुर				
२४। सव्या	दामोदर परिडत	"	धनिराम- पुर				

गोस्वामी, श्रीगोपालभट्ट, गोस्वामी, श्रीरघुनाथभट्ट
गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी और श्रीरघुनाथदास
गोस्वामी, प्रत्येक शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।

वैष्णव ग्रन्थ ।

महामधु तथा दो और प्रभुका लिया हुआ कोई ग्रन्थ
नहीं मिलता । किन्तु उक्त छः गोस्वामियों सभी
ग्रन्थ लिख कर वैष्णव समाजका बहुत उपकार कर
गये हैं । वैष्णवदर्शन, वैष्णवसृष्टि वैष्णव साहित्य
और अलङ्कारादि ग्रन्थ इन्हीं गोस्वामियोंके रचित हैं ।

धीरभक्तिविलास ।

श्रीपाद सनातन और श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीका
लिखित हरिभक्तिविलास तथा सनातन लिखित इसकी
दिकदर्शनीटीका आज भी गौड़ीय वैष्णव समाजकी
नित्य नैमित्तिक धार्मिक्रियादिकी व्यवस्था प्रदान कर
वैष्णवोंको उपासनाविधिकी शिक्षा देती है । इसके
सिवा बहुतेरे शास्त्रग्रन्थ भी हैं ।

द्वादश गोपाल ।

जो सब भक्तमहानुभाव, श्रीगौराङ्गमहाप्रभु और श्री
मन्नित्यानन्दके साथ सषयसूत्रमें वाच्य थे, 'गोपाल'
नामसे उनकी प्रसिद्धि थी । गोपालका अर्थ है प्रजका
ग्वाला । श्रीचैतन्यलीलाके प्रधान प्रधान पात्र श्रीकृष्ण-
लीलाके पात्रपात्ररूपमें अवतीर्ण हुए, यही वैष्णवोंका
विश्वास है ।

नीचेकी तालिकामें श्रीगौराङ्गलीलामें प्रादुर्भूत
गोपालोंके नाम और पाठ दिखलाये गये हैं ।

कृष्णलीलामें	गौरलीलामें	पाठ
१। श्रीदाम	अभिराम ठाकुर	बानाकूल
२। सुदामा	सुन्दर ठाकुर	महेशपुर
३। वसुदाम	धनञ्जय पण्डित	शीतलप्राम
४। सुवल	गौरीदास पण्डित	अश्विका
५। महावल	कमलाकर पिप्पलाई	माहेश
६। सुवाहु	उद्धारण दत्त (स्वर्णवणिक्)	त्रिशविधा
७। महाबाहु	महेश पण्डित	मशिपुर
८। दाम	पुष्पवोत्तम नागर	नागर
९। मत्स्यकृष्ण	ठाकुर पुष्पवोत्तम	सुखसागर

१०। अर्जुन परमेश्वर ठाकुर विश्रवणा
११। लवङ्ग गोपाल कानार्हाठाकुर या वैष्रवणा
काला कृष्णदास

१२। मधुमङ्गल श्रीधर नवद्वीप
ये सब गोपाल नित्यानन्द-शाखाभुक्त हैं । गोपालोंकी
सन्तति और शिष्यगण अनेक शाखाओंमें विभक्त हैं ।
गोपालपरिवारके शिष्योंकी संख्या भी घोग्री नदी है ।
इनके सिवा उपगोपालगण भी हैं । जैसे—

कृष्णलीला	नवद्वीपलीला	शाखा	पाठ
१। सुवल गोपाल	हलायुध पण्डित	चैतन्य	रामचन्द्र-पुर
२। वसुधप गोपाल	रुद्रपण्डित	नित्यानन्द	धल्लमपुर
३। गन्धर्व गोपाल	मुकुन्दानन्द पण्डित	चैतन्य	नवद्वीप
४। किङ्किणीगोपाल	काशीश्वर पण्डित	"	धल्लमपुर
५। अंशुमान गोपाल	शोका वन-माली दास	"	कुल्लापाड़ा
६। भद्रसेन गोपाल	सप्तठाकुर	नित्यानन्द	रोकोण-पुर
७। वसन्त गोपाल	सुरारी महान्ति	चैतन्य	वंशीदोरा
८। उड्डवल गोपाल	गङ्गादास	नित्यानन्द	नैदादी
९। कोकिल गोपाल	गोपाल ठाकुर	"	गौराङ्गपुर
१०। धिलासी गोपाल	शिष्याई	"	येल्हन
११। पुण्डरी गोपाल	नन्दाई	"	शालिप्राम
१२। कलविङ्ग गोपाल	विष्णुई	"	भामरपुर

इनके भी सन्तान, शाखा और परिवार हैं ।
चीसठ महन्त ।
पूर्वलीला नवद्वीपलीला शाखा पाठ
१। नारद श्रीवास चैतन्य नवद्वीप
२। हनुमान् सुरारि गुप्त " "
३। अङ्गद पुरन्दर पण्डित " "
४। सुश्रीव गोविन्दानन्द " "

५। वशिष्ठ	गङ्गादास पण्डित	चेतन्य	विद्यानगर	२५। ललिता	ध्रुवानन्द ब्रह्मचारी	चेतन्य	रामचन्द्र- पुर
६। विभीषण	रामचन्द्रपुरी	"	नवद्वीप	२६। विशाखा	स्वरूप- दामोदर	"	नवद्वीप
७। श्वेतोक्त-पुत्र (ब्रह्मा)	हरिदास ठाकुर	"	वृद्धन	२७। चित्ता	घनमाली कविराज	"	गरीफा
८। वेदव्यास मुनि	वृंदाघन दास	नित्यानन्द	कुमार- हट्ट	२८। चम्पकलता	राघव- गोसाईं	"	रामनगर
९। सङ्कर्यणव्यूह	मीनकेतन रामदास	"	भामटपुर	२९। तुङ्गविद्या	प्रशोपानन्द सरस्वती	"	काशी
१०। मधुसूदनव्यूह	श्रीरघुनन्दन	चेतन्य	श्रीखण्ड	३०। इन्दुरेखा	हरणदास ब्रह्मचारी	"	शुक्तिपाड़ा
११। अनिरुद्धव्यूह	यक्रेश्वर पण्डित	"	शुक्तिपाड़ा	३१। रङ्गदेवी	गदाधरभट्ट	"	धनुमानपुर (तिलङ्ग)
१२। ब्रह्मा	गोपीनाथ- सार्य	"	नवद्वीप	३२। सुदेवी	भनन्त- भाचार्य महन्त	"	भनन्त- नगर
१३। शुकदेव गोखामी	वल्लभभट्ट	"	कर्णाट	३३। रत्नरेखा	उपमहन्त । हरणदास	"	सात- गाछिया
१४। गण्ड	गण्ड पण्डित	"	टोटाग्राम	३४। धनिष्ठा	(कुलीन ब्राह्मण) राघव- पण्डित	"	पाणिहाटी
१५। शङ्खनिधि	भाचार्यरत्न	"	नवद्वीप	३५। माघवी	माघया- चाय	नित्यानन्द	नन्यापुर
१६। दुर्वास	जगन्नाथ भाचार्य	"	श्रीहट्ट	३६। सुकेशी	मकरध्वज	"	बड़गाछी
१७। इन्द्रचक्र	प्रतापादित्य	"	पुरीधाम	३७। मधुरा	विद्यावाच- स्पति	चेतन्य	काँडगाछी
१८। चन्द्रकान्ति गणधर	गदाधर दास	नित्यानन्द	पड़दह	३८। मधुरेक्षणा	वल्लभद्र भट्टाचार्य	"	नवद्वीप
१९। विभवामित्त	घनमाली भाचार्य	चेतन्य	नवद्वीप	३९। कलकण्ठी	रामानन्द घसु	"	कुलीनग्राम
२०। अर्जुन	राय रामा- नन्द	"	पुरीधाम	४०। नागदीमुखी	सारङ्ग ठाकुर	"	माउगाछी
२१। भागुरी	देवानन्द पण्डित	"	कुनिपा	४१। सुकण्ठी	सत्य- राज भाँ	"	कुलीनग्राम
२२। चन्द्रावली	सदाशिव	नित्या- नन्द	कुमार- हट्ट	४२। मधुमती	नरहरि सरकार	"	धीरहर
२३। भद्रा	शङ्कर पण्डित	चेतन्य	पदाडपुर				
२४। सख्या	दामोदर पण्डित	"	शभिराम- पुर				

४३ । घीरा	शिवानन्द- सेन	चैतन्य	कांचड़ा- पाड़ा	६२ । नीलकान्ति	नवाईहोड़	नित्या- नन्द	रोकण- पुर
४४ । युन्दादेयो	मुकुन्ददास	"	श्रीखण्ड	६३ । कलापिनी	जगदानन्द	"	(नवद्वीप
४५ । कलावती	गोविन्द घोष	"	अप्रद्वीप	६४ । सुकेशी	कंसारिसेन	"	गुतिपाड़ा
४६ । श्रीमे ममञ्जरी	भूगर्म- ठाकुर	"	काञ्चन- नगर		वरीस उपमहन्त ।		
४७ । लीलामञ्जरी	लोकनाथ गोखामो	"	तालखड़ी (यशोर)	१ । कलावती	नवद्वीपजीवा	शाखा	पाट
४८ । रासोह्लासा	माधवघोष	"	दाईहाट	२ । सौरसेनी	सुलोचन ठाकुर	चैतन्य	धोखण्ड
४९ । गुणतुङ्गा	बाभुघोष	"	तमलुक	३ । शक्तिरा	भागवता- चार्य	नित्या- नन्द	वराह- नगर
५० । रागरेखा	शिखि- महान्ति	"	वंशीटोटा	४ । मनोहरा	श्रीजीव पण्डित	"	अकाईहाट
५१ । यक्षपत्नी	शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी	"	चट्टग्राम	५ । काटया यनी	कविचन्द्र	चैतन्य	आकना
५२ । चन्द्रलतिका	जगदीश पण्डित	"	यशोड़ा	६ । वंशी	श्रीकान्तसेन	"	गरिका
५३ । रत्नावली	भगवान् आचार्य	"	मालीपाड़ा	७ । कुब्जा	वंशीदास	"	खरग्राम
५४ । गुणचूड़ा	परमानन्द सेन (कविकर्णपुर)	"	कांचड़ा- पाड़ा	८ । मालती	काशीमिश्र	"	पुरीधाम
५५ । कपूर्मञ्जरी	रमाई ठाकुर	"	बाघना- पाड़ा	९ । कमला	यदुनाथ आचार्य	"	चन्द्रपुर
५६ । श्यामामञ्जरी	द्विज हरि- दास	"	ब्रह्मपुर	१० । चन्द्रिका	मुकुन्द ठाकुर	"	रामचन्द्रपुर
५७ । कामलेखा	छोटे हरि- दास	"	बाखर- गञ्ज	११ । सुधीरा	परमानन्द गुप्त	"	अम्विका
५८ । काममञ्जरी	नन्दन ब्रह्मचारी	"	नवद्वीप	१२ । कस्तूरी- मञ्जरी	माधवा- चार्य	विष्णु- प्रिया	नवद्वीप
५९ । कलभाविणी	बापीनाथ पण्डित	"	गादिगाछी	१३ । नागरी	हरणदास कविराज	नित्यानन्द	कामट- पुर
६० । कलकण्ठी	चिरञ्जीव- दास	"	श्रीखण्ड	१४ । सुरङ्गिणी	द्विज शुभा- नन्द	चैतन्य	श्यामपुर
६१ । अञ्जनी	सुन्दरानन्द ठाकुर	"	वराह- नगर	१५ । कलहंसी	श्रीधर ब्रह्म- चारी	"	पांचहा- नगर
				१६ । सुसुखी	रघुनाथ द्विज	"	त्रिवेणी
				१७ । शशीमुखी	जगन्नाथ	"	नपाड़ा
				१८ । सुरङ्गिणी	सुसुदि मिश्र	"	अम्विका
				१९ । समोहिनी	श्रीधर	"	शक्तिपुर
					हरणदास	नित्यानन्द	अम्विका
					सरखेल		

२०। विलासिनी	श्रीसुर	चैतन्य	भालुङ्ग
	पण्डित		
२१। गोपालिका	गोपाल	अद्वैत	शान्तिपुर
	भाचार्य		
२२। गौरशान्ति	यदुनन्दन		घाटाल
२३। विमलादासी	धोराम	चैतन्य	श्रीहट्ट
	ठाकुर		
२४। सुशीला	गोविन्द		सुखचर
	दत्त		
२५। विद्यलता	विहारी	नित्यानन्द	भाटपुर
	कृष्णदास		
२६। रत्नावली	हरिदास	चैतन्य	पण्डेदह
	होङ्ग		
२७। चित्ताङ्गी	श्रीनाथ		कांचड़ापोड़ा
	पण्डित		
२८। सुकवाणि	गालिम	नित्यानन्द	वाकला
	जगन्नाथ		चन्द्रद्वीप
२९। साहायिनी	पुण्योत्तम	अद्वैत	जयनगर
	प्रह्लाचार्य		
३०। सुषमयी	मधु पण्डित	नित्यानन्द	साम्बिनग्राम
३१। रसवती	काशीश्वर	चैतन्य	बल्लभपुर
३२। प्रेमवती	शङ्करारण्य	नित्यानन्द	चातरग्राम

भटवली ।

१। ललिता	श्रीरूप गोस्वामी
२। विशाखा	श्रीरामानन्द राय
३। सुमित्रा	श्रीशिवानन्द सेन
४। चम्पकलता	श्रीराधय पण्डित
५। रङ्गदेवी	श्रीगोविन्द घोष
६। सुन्दरी	श्रीधामुषोष
७। वृद्धदेवी	श्रीमाधय घोष
८। स्तुरेखा	श्रीगोविन्दानन्द

नवमञ्जरी ।

१। श्रीरूपमञ्जरी श्रीरूपगोस्वामी

२। जीवमञ्जरी	श्रीसनातन गोस्वामी
३। श्रीमनङ्गमञ्जरी	गोपालमट्ट गोस्वामी
४। शीरसमञ्जरी	श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी
५। श्रीविलासमञ्जरी	श्रीजीव गोस्वामी
६। प्रेममञ्जरी	श्रीभृगर्म गोस्वामी
७। रागमञ्जरी	श्रीरघुनाथमट्ट गोस्वामी
८। लोलामञ्जरी	श्रीलीकनाथ गोस्वामी
९। कस्तूरामञ्जरी	श्रीकृष्णदास गोस्वामी

भट्ट कविराज ।

कृष्णजीला	गौरजीना
१। सुलोचना	रामचन्द्र कविराज
२। भाण्डोदरी	गोविन्द
३। गोपाली	कर्णपुर
४। सुचण्डिका	नरसिंह
५। सरस्वती	भगवान्
६। पाला	वल्लभदास
७। सुतारा	गोकुलचन्द्र
८। कस्तूरी	कृष्णदास

इसके बाद गोड़ीय वैष्णव क्षेत्रमें तीन सरित्धारा पूर्वप्रातः प्रेममन्त्रिसुधासे परिपुष्ट हो बङ्गाल और उदकलमें बह गईं । इन तीनोंका नाम था श्रीनिवासाचार्य प्रभु, नरोत्तम ठाकुर महाशय और श्रीमत्प्रपामानन्द । श्रीनिवास भाचार्य प्रभु और ठाकुर महाशयने बङ्गदेशमें भक्तिरसका प्रचार किया । श्यामानन्दके द्वारा उदकल प्रेममन्त्रिकी सुधा-धारासे परिपुष्ट हुआ था । ठाकुर महाशय कायस्थ कुलमें जन्म ले कर भी ब्राह्मणादिके शुद्ध हुए थे । इनका ब्राह्मण परिकर आज भी मुर्शिदाबाद और टाका जिलेके येलिया ग्राममें पर्यमान है । ये लोग पारित्य ब्राह्मण हैं । विशेष विवरण्य नरोत्तम, श्रीनिवास भाचार्य और श्यामानन्द चरममें देलो ।

वदाचार ।

श्रीमत्प्रपामानन्द सुदाचारके साक्षात् समुम्बल विग्रह हैं । उनके भादेशमें श्रीपादने सनातन द्दर्मिकविलास ग्रन्थ लिख वैष्णवसदाचारका विधान किया है । इसमें पाहाशुद्धि और आन्तर शुद्धिका अति उत्कृष्ट विधान है । ऐसा शास्त्रसम्मत सदाचार दूसरे सम्प्रदायमें कम देखनेमें

आता है। हरिभक्तिविलासमें चित्तशुद्धिके बहुतरसे उपाय कहे गये हैं। इस ग्रन्थमें गुरुपदाश्रय दीक्षा, प्रातःस्मृतिहृत्य दीक्षा, शीघ्र, आचमन, दण्डधारण, स्नान, सन्ध्यावन्दन, गुरुसेवा, ऊर्ध्वपुण्ड्र और चक्रादि धारण, मालाधारण, तुलसीचयन, देवगृहसंस्कार, कृष्णप्रबोधन, छाः सी छप्पन प्रकारके उपचारोंसे भगवद्दर्शन, पञ्चकाल-पूजा, आरति, कृष्णका भोजन और शयनतीर्थयात्राका प्रयोजन, कृष्णमूर्त्तिदर्शन, नाममहिमा, नामोपराधवर्जन, वैष्णवलक्षण, जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत्, चन्दन, प्रसादभक्षण, अनिवेदितरयाग, वैष्णवनिन्द्यावर्जन, साधु-लक्षण, साधुसङ्ग, साधुसेवा, असत्सङ्गत्याग, इन्द्रिय-दमन, श्रीभागवतश्रवण और एकादशगुणवासादि व्रतपालन, अति विस्तृतरूपसे इस ग्रन्थमें है। शमदम चैराग्यादिकी पराकाष्ठा दिखाई गई है। इन्द्रियपरायणताका मूलोच्छेद कर भगवद्भक्तिके लिये किस प्रकार वैराग्यका अवलम्बन करना होता है, इस ग्रन्थमें उसका विस्तृत उपदेश दिया गया है। सत्यवाक्य, असत्कर्मात्याग, इन्द्रियसंयम आदि प्रयोजनीय कह कर उपदिष्ट होने पर भी वैष्णवधर्मसे ये सब विषय बाहर हैं। भगवद्गुणवासाके लिये चित्तभूमिको प्रस्तुत करना ही इस सम्प्रदायका सार उपदेश है। भक्तिरसामृतसिन्धुमें इस विषयमें दार्शनिक प्रणालीसे अति उच्च उपदेश दिया गया है। यह ग्रन्थ भी वैष्णवाचारके स्मृतिग्रन्थके साथ अवश्य पढ़ने योग्य है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी संक्षेपतः इन दोनों ग्रन्थका मर्म उल्लिखित हुआ है। इस सम्प्रदायका सदाचार हिन्दूशास्त्रका साररूप है।

वैष्णव-चिह्न ।

ऊर्ध्वपुण्ड्रादितिलकधारण और जपके लिये तुलसी मालाका व्यवहार इस सम्प्रदायका वैष्णव चिह्न है। हरिभक्तिविलासके चतुर्थविलासमें ऊर्ध्वपुण्ड्रादिधारणकी विधि और माहात्म्य सविस्तार वर्णित है। केशवादि नामका उच्चारण कर ललाट, पेट, वक्षस्थल, कण्ठ, दोनों पार्श्व, दोनों बाहु, दोनों हृत्स्थ, पीठ और कटि बाहर स्थानमें दारु तिलक लगानेकी कहे गये हैं।

उपास्य देवता ।

“कृष्णस्तु भगवान् स्वयं” श्रीमाधवपुराणके इस

सिद्धान्तानुसार श्रीकृष्ण ही इस सम्प्रदायके उपास्य देवता हैं। राधाकृष्ण और श्रीगौराङ्ग इस सम्प्रदायके निकट अभिमतस्व हैं। निम्नानुसार कोई राधाकृष्ण युगलकी, कोई श्रीगौराङ्गकी अर्चना करते हैं। श्रीश्री-राधाकृष्ण युगलमूर्त्ति प्रायः सभी स्थानोंमें देखी जाती है। श्रीगौराङ्गकी श्रीमूर्त्ति अर्चना सभी जगह देखी नहीं जाती। पौराणिक उपास्य देवताकी अर्चनापद्धति जिस आसानीसे प्रवर्त्तित और गृहीत होती है, अमिनया-विभूत श्रीभगवान् उतनी आसानीसे गृहीत नहीं होते। किन्तु फिर भी हम लोग अभी अनेक स्थलोंमें श्रीश्री-राधाकृष्णकी युगल मूर्त्ति और श्रीश्रीगौरानित्यानन्दका विग्रह एक ही आसन पर पूजित होते देखते हैं।

उपासना-प्रणाली ।

भगवद्दर्शनारूप निष्काम कर्म या विधिसङ्गत भक्ति ही इस सम्प्रदायकी उपासनाका आरम्भ है। चित्त-शुद्धिके लिये विधानानुयायिनी भक्तिका अनुशीलन अवश्य करनीय है। हरिभक्तिविलास और भक्तिरसामृतसिन्धुमें यह वैधर्मिकप्रणाली और भक्तिविभाग अति विस्तृत रूपसे लिखा गया है। किन्तु वज्ररसकी उपासना ही इस सम्प्रदायकी मुख्य उपासना है। भक्ति ही प्रधान साधन है, रसामृतसिन्धुग्रन्थमें भक्तिका विशेष विवरण है।

“रसे वै सा” ही इनके उपास्य देवता हैं। अतएव भावरसमें उनकी उपासना ही उपासनाका चरम सिद्धांत है। भावरसका उदाहरण व्रजगोपियोंकी श्रीकृष्ण-प्रीतिमें दिखाई देता है। यही चरम भजनका आदर्शरूप है। उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें उनका भावरस दार्शनिक प्रणालीसे विवृत हुआ है।

रागानुगा भक्तिमें व्रजवासियोंके भावका अनुसरण कर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी उपासना-प्रणालीके सम्बन्धमें गोस्वामियोंने भक्तिरसामृतसिन्धुमें सविस्तार वर्णन किया है। श्रीचरितामृत ग्रन्थकी मध्यलीलामें रामानन्द-राय-मिलनमें तथा श्रीरूपसनातनकी शिक्षाओंमें इस सम्बन्धमें अनेक उपदेश दिये गये हैं। ये सब ग्रन्थ सर्वत्र प्रचारित हैं।

श्रीमद्भागवत ही इस सम्प्रदायका प्रसूत्रमाध्यमाना गया है। (भागव० १२।१।१५)

वेदान्त वन ।

श्रीजीयगोस्वामीकी कमसन्दर्भ टोकामें तथा पद-सन्दर्भमें इस सम्प्रदायका दार्शनिक सिद्धांत हुआ है । ये लोग लीलारसमय श्रीकृष्णकी अद्वयतत्त्व मानते हैं ।

वीष्णव-उपसम्प्रदाय ।

पूर्वोक्तलिखित वैष्णव-सम्प्रदायके अंतर्गत अनेक उपसम्प्रदाय हैं । ये सब सम्प्रदाय कितने हैं उसका पता लगाना सहज नहीं है । नीचे कुछ उपसम्प्रदायके नाम दिये गये हैं—

अतिवड्डी—गौड़ीय वैष्णव समाजके अंतर्भूत है । गौड़ीय वैष्णवोंके आचार-व्यवहार और उपासनासे इनका आचार व्यवहार स्वतन्त्र है । प्रयाद् है, कि जगन्नाथ नामक एक निरक्त वैष्णवने महाम्भुके निकट श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की । उनकी व्याख्याकी शङ्करकी अद्वैतमतानुसारिणी समझ कर महाम्भुने उनके प्रति कटाक्ष कर कहा, 'तुम इस तृणसे भी नीच वैष्णव समाजकी साम्प्रदायिक गण्ठीमें आने योग्य नहीं हो; तुम अतिवड्डी अर्थात् बहुत बड़े हो ।' इस 'अतिवड्डी' वाक्यने ही 'अतिवड्डी' उपसम्प्रदायकी सृष्टि हुई । इनके साथ गौड़ीय वैष्णवोंका साम्प्रदायिक मेल नहीं है । इस श्रेणीका उत्कलमें बास है और पुरीमें मठ है । जगन्नाथदासने उत्कल भाषामें भागवतका अनुवाद किया ।

अनंतकुली—ये लोग उत्कली गृहस्थ वैष्णव हैं ।
अवधूती—अवधूती शब्द देखो ।
अमहदपन्थी—बङ्गालके याउलोंकी तरह ये लोग निरञ्जन उपासक वैष्णव हैं । ये लोग प्रतिभाकी पूजा नहीं करते, किंतु गलेमें तुलसीमाला पहनते हैं । ये मूर्ख दाढ़ी रखते हैं । ये रामात्के ही उपसम्प्रदाय हैं ।

आउल—गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका उप-सम्प्रदाय । आउल शब्द देखो ।

आजड़ा—आजड़ा वैष्णव रामानन्द सम्प्रदायके उप-सम्प्रदाय हैं । ये लोग प्रचलित सात शाखाओंमें विभक्त हैं । यथा—निर्वाणो, खाकी, संतोषी, निर्मोयो, बल-मद्री, टाट'बरी और दिगम्बरी ।

भाषाप'थी—महारापुर जिल्लेके अधियासी मुल्लादाम नामक एक स्वर्णकार भाषाप'थी सम्प्रदायके प्रवर्तक हैं । अधियासी बहुत दूर पश्चिम आखड़ा नामक स्थानमें इनकी गद्दी है । पश्चिमदेशके घैरागियोंका कहना है—

"रामानुजके फीजमें वारा गाड़ी पोल ।

भाषाप'थी मनसुला फिर डोले डोल ॥"

अर्थात् रामानुज शैत्यदलमें अनेक भजन शकत हैं । मनसुली भाषाप'थी जाति गल्लोमें भ्रमण करते हैं । जो अपने मनसे कार्य करते, किसीकी भी गुंठ नहीं मानते, वे मनसुली हैं । यह प'थी रामानुजकी उप-सम्प्रदाय है ।
कबीरपन्थी—कबीर शब्दमें देखो ।

कर्त्ताभजा—गौड़ीय सम्प्रदायका उप-सम्प्रदाय । कर्त्ताभजा शब्द देखो ।

कामधेन्नी—रामात् निमात् देतौ ही सम्प्रदायमें यह उप-सम्प्रदाय विन्नाई देता है । कामधेन्नी शब्द देखो ।
कालिन्दी—उत्कलके चमार'दाड़ी आदि इतर जातिक वैष्णव कालिन्दी वैष्णव कहलाते हैं । इनके अन्य गुंठ नहीं हैं । ये लोग जयदाह नहीं करते ।

किशोरीभजनो—यिकमपुरके कालाचांद विद्यालङ्कार किशोरीभजन इस सम्प्रदायके प्रवर्तक हैं । कृष्णलीलाके अनुकरण द्वारा मुकिलाम करना इस सम्प्रदायका अभिप्राय है । ये लोग तोष'पाला नहीं मानते । इस सम्प्रदायके पुंवर अरनेको कृष्ण तथा खो अपनेको राधा समझते हैं । किशोरी आघातक है । अतएव एक खोको किशोरी समझ कर ये उनकी पूजा करते हैं । विना बोके ये शोषित नहीं हो सकते । नायकके एक नायिका रहना जरूरी है । 'मैं कृष्ण तुम राधा' इत्यादि वाक्योंका शोषाके समय प्रयोजन होता है । इस सम्प्रदायके पुंवर और खो दोनों रातको इकट्ठे होते तथा उक्त कल्पित किशोरीकी पूजा करते और प्रसाद खाते हैं । इनमें जाति-विचार बिलकुल नहीं है । सर्गों सबोंका जुटा पाते हैं । किन्तु मछली आदि कोई भी नहीं खाता । ये लोग श्रीगौराङ्गदा नाम ले कर गानादि करते हैं । पूर्ववद्भक्त अनेक स्थानोंमें इस उपसम्प्रदायके लोगोंका बास है । इसमें मद्रपुंवरोंकी संख्या बहुत घोट्टी है ।
तर्जिया शब्द देखो ।

कुड़ापन्थी—प्रायः ७५ वर्ष हुए आगरा जिलेके अधीन हातरास नगरमें तुलसी नामक एक अन्ध बणिक्-ने कुड़ापन्थी सम्प्रदायका प्रवर्तन किया। सबोंने मिल कर एक कुएडमें भोजन किया था इसीसे वे कुड़ापन्थी कहलाये। ये लोग जातपात नहीं मानते और न किसी मूर्खकी उपासना ही करते हैं। रातको खीपुख पकृत ही भजन करते हैं। ये लोग भी कर्त्ता-भजाकी तरह गुरुके प्रति अचल भक्ति दिखलाते हैं। निराकार निरञ्जनका ध्यान ही इनको उपासना है। इनके कार्यादि किशोरो-भजनियोंके जैसे हैं।

लाका—रामात्-सम्प्रदायके अन्तभुक्त।

लाकी शब्द देखो।

खुशी विश्वासी—कृष्णनगरके अन्तर्गत देवप्रामके निकट भाङ्गाप्राममें खुशी विश्वास नामक एक मुसलमान इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इनमें बहुत कुछ सहजिया भाव है। ये लोग श्रीगौराङ्गका नाम कीर्त्तन करते हैं। किन्तु साकार ईश्वरको नहीं मानते। गिरि—गौडेश्वर सम्प्रदायके वैष्णव श्रे.णोभुक्त संन्यासी।

गुददासी—ये लोग उत्कल वासी एक श्रे.णोके गुरुस्थ वैष्णव हैं।

गोबराई—एक मुसलमान। इस व्यक्तिने कर्त्ताभजा सम्प्रदायकी तरह जिस सम्प्रदायकी सृष्टि की, उसीका नाम गोबराई है।

चतुर्भुजी—रामात्संप्रदायके अन्तभुक्त। इनका तिलक रामानन्दिनोंके समान किन्तु बीचमें श्रोत्रेखा नहीं होती। चतुर्भुजी शब्द देखो।

चरणदासी—चरणदास नामक दिल्लीका एक धूसर जातीय बणिक् इस सम्प्रदायका प्रवर्त्तक है। द्वितीय बालमनोरके समय इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति है। ये लोग राधाकृष्णके उपासक हैं और वैष्णवीय तिलक मालादि यथादीति धारण करते हैं। दिल्लीमें ही इस सम्प्रदायकी प्रधान गद्दी है। चरणदासी शब्द देखो।

चामरवैष्णव—चामर वैष्णव शब्द देखो।

चूड़ापन्थी—यह सम्प्रदाय अति आधुनिक है। ये लोग यहमाचार्य सम्प्रदायके ही उप-सम्प्रदाय हैं।

करोव ६० वर्ष हुए, आगरेके एक बणिक् ने इस सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा की। गुजरातके 'नाथजी' इनके उपास्य हैं। ये लोग सर्वदा कृष्ण नामका कीर्त्तन किया करते हैं। नाम भजन ही इनका धर्म है। खीपुख पकृत हो कर नृत्य करते हैं। ये सभी जातिका भव खाते हैं। इन्होंने कीर्त्तनप्रथाको महामनुके सम्प्रदायसे प्रदण किया है।

चूड़ाधारी—ये गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायभुक्त हैं। मैमनसिंह अञ्चलमें यह सम्प्रदाय देखा जाता है। ये गोपालके वंशमें चूड़ाई धारण करते हैं। शुद्ध वैष्णवोंके साथ इनका मतसामञ्जस्य नहीं है।

जगन्मोहिनी—जगन्मोहन गोसाईं इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने उत्कलके किसी रामानन्दी वैष्णवसे दोष्ठा ली। जगन्मोहनके शिष्य गोविन्द, गोविन्दके शिष्य शान्त गोसाईं और शान्तके शिष्य रामकृष्ण गोसाईं हैं। रामकृष्णके समय यह धर्म मत बहुत दूर तक फैल गया। ये ही लोग 'गुरु सत्य' सम्प्रदाय नामसे पूव घड़में विद्यमान हैं। इनमें गृही और उदासीन दो श्रे.णोके लोग हैं।

तिङ्कल—मद्राज और बम्बई अञ्चलमें इस श्रे.णोके वैष्णव हैं। ये लोग शास्त्रके मुक्तिप्रमाणको मान कर चलते हैं। काञ्चीपुर-निवासी वेदान्त तैसिकार नामक एक ब्राह्मणने रामानुजी-सम्प्रदायसे स्वतंत्र हो कर यह वैष्णव सम्प्रदायकी सृष्टि की। उसीसे पीछे यहगल और तिङ्कल नामक दो सम्प्रदायकी सृष्टि हुई। वेदान्त तैसिकारने यह घोषणा की, कि आचार और धर्मसंस्कारके लिये वे ईश्वरसे भेजे गये हैं। धर्ममत और तिलकसेवा ले कर इन दोनोंमें बहुत विरोध है।

वेत्तन शब्द देखो।

तिलकदासी—एक सद्गुण्य इस सम्प्रदायका प्रवर्त्तक है। यह व्यक्ति पहले कर्त्ताभजा था। पीछे इसने स्वसम्प्रदायका परिवर्तन कर अपने नाम पर मुण्डपुरमें एक धर्मसम्प्रदाय प्रवर्त्तित किया। यह व्यक्ति अपनेकी विष्णुका अवतार कहा करता था। यह सम्प्रदाय अभी विलुप्त हो गया है।

दरघेव—अध लोगोंका कहना है, कि धोपाद सनातन

गोस्वामी इस दलके प्रवर्तक हैं। किन्तु यह एक-दम असत्य है। यह संप्रदाय बाउल और न्याङ्गोंकी एक शाखा है और सर्वदा 'वीन दरदी' नाम उच्चारण करता है। मुसलमान और हिन्दुधर्मके संभवसे इस संप्रदायकी उत्पत्ति है। ये हरि और गीर्णिताई नामका कीर्तन करते हुए घूमते हैं, किन्तु खुदा अल्लाह शब्द भी इनके गानमें है।

दादुपन्थी—रामात्संप्रदायके अन्तर्भूत है।

दादुपन्थी देखो।

दुयारा—रामात् निमात् आदि परिव्रम देशके वैष्णवोंके ५२ दुयारा हैं। पृथक्-समयमें प्रादुर्भूत तेजियान् व्यक्तियोंने अपने प्रभावसे जो दल संगठित किया, उसीका नाम दुयारा है जैसे घामन दुयारा, भद्रदास दुयारा, भ्रमणजी दुयारा, कुयाजी दुयारा, चिनाजी दुयारा इत्यादि।

नागा—ये लोग शैव और वैष्णवभेदसे दो प्रकारके हैं। वैष्णव नागा रामात्संप्रदायभुक्त हैं।

नागा शब्द देखो।

निरञ्जनी साधु—निरञ्जन स्वामी इस संप्रदायके प्रवर्तक हैं। ये लोग रामातीकी तरह साकार उपासक उदासीन वैष्णव हैं; कीपीन, कण्ठी और रक्तवर्णी धीयुक्त तिलक धारण तथा राम, सीता, शालग्राम आदि विग्रहोंकी पूजादि भी करते हैं। निरञ्जनी देखो।

निहङ्ग वैष्णव—उत्कल प्रदेशके निरङ्ग वैष्णव इसी नामसे पुकारे जाते हैं। ये लोग मठघारोंकी सभ्यता हैं।

श्याङ्गा—अनभिन्न निरञ्जर लोगोंकी धारणा है, कि श्रीमन्निरहानन्द प्रभुके पुत्र धीरभद्रने ढाकाप्रदेशमें जा कर इस धर्मसंप्रदायका प्रवर्तन किया, किन्तु यह नितास्त भ्रम है। श्याङ्गा, बाउल संप्रदायका ही शाखाविधेय है। प्रकृतिसाधन ही इनका भजन है। इनके मतसे धीराधाहरण मानवदेहमें ही विराजित है, उपवासादि आस्माका कुशजनक मात है। ये बाहुमें लोहे या ताँबेका एक कड़ा पहनते हैं, वैष्णवोंकी तरह कीपीन, तिलक, स्फटिकमाला, शङ्खादिका गला व्यवहार करते हैं। ये दाढ़ी मूँछ

रखते हैं। ये शरीरमें तेल खूब लगाने, खोरी और लाठी ले कर भ्रमण करते तथा श्रीगीराङ्गा गुणानुवाद करते हैं। मुझसे 'हरिबोल' या 'धीर अवधूत' ध्वनिका उच्चारण करते हैं।

पञ्चधुनी—जो सब रामात् और निमात् पञ्चधूना करते तपस्या करते हैं, ये पञ्चधुनी कहलाते हैं।

पन्थदासी—पन्थदास इस संप्रदायके प्रवर्तक हैं। ये तुलसीकी माला और तिलक धारण करते, राम-कृष्णादिका अवतार मानते और राममन्त्र जपते हैं।

ये लोग एक तरहके आध्यात्मिक भावाग्न रामात् हैं। पन्थदासी देखो।

फकीरदासी—छथपेशी कर्त्तामजा।

फकीरी शब्द देखो।

फराची—रामात्-निमात् दलके कठोरताबलवी तपस्वी।

मट्टुफारो—जो मट्टकेकी कंधेमें बांध कर अथवा राम या कृष्णका नाम उच्चारण कर भोक्त्र मांगते हैं, ये मट्टुफारो कहलाते हैं। मट्टुफारी शब्द देखो।

महापुरुषी—शङ्करदेव नामक एक महापुरुष इसके प्रवर्तक हैं। सिख लोग जिस प्रकार प्रभुसाहबकी पूजा करते हैं, ये लोग भी उसी तरह श्रीमन्नाग-वत्प्रवर्तकी पूजा करते हैं। राम, कृष्ण और हरि-नाम कीर्तन भी किया करते। भासाग कुन्निदार अञ्चलमें इस सम्प्रदायके अनेक लोग रहते हैं।

महापुरुषीय धर्मसंप्रदायी शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

माधवी—माधो नामक एक उदासीने इस संप्रदायका संस्थापन किया। कान्यकुब्जवासी माधोदास इस संप्रदायके प्रवर्तक थे, यह भी प्रवादसे जाना जाता है। ये लोग गौड़ीय वैष्णव हैं।

मानभवी—ये कृष्णोपासक हैं। कृष्णाम्मटथोगी इस संप्रदायके प्रवर्तक हैं। इनके मतसे कृष्ण ही परम देवता है तथा जीवहिंसा महापाप है। कृष्णका प्रसादात् सभी एकत्र भोजन करते हैं। मानभवी शब्द देखो।

मार्गी—झारका अञ्चलमें मार्गी साधु नामक एक धेनीका वैष्णव है। ये शूरी और रामानन्दी सम्प्रदायके उपसम्प्रदायभेद हैं। एक वैष्णव तीर्थावाताको गये थे,

राहमें उनकी मृत्यु हो गई। उनके साथ कुछ धर्म-ग्रन्थ थे। कुछ लोगोंने उस धर्मग्रन्थको पा कर तदनुष्ठान किया। मार्ग अर्थात् राहमें प्राप्त ग्रन्थानुसार धर्मानुष्ठान करनेसे ये मार्गों कहलाये।

मीराबाई शब्द देखो।

मुत्कदासी—रामात् सम्प्रदायकी शाखा।

मुत्कदासी शब्द देखो।

योगी—गौडेश्वर सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त। यशोर और उत्कलमें इस श्रेणीके वैष्णव हैं।

योगी वैष्णव शब्द देखो।

रातभिलारी—वङ्गालमें एक श्रेणीके भिलारी वैष्णव शुक्र पक्षीय पञ्चमीसे पूर्णिमा पर्यन्त श्रमसे एक पहर रात तक भोज्य मांगते हैं, पर ये किसीके दरवाजे पर नहीं जाते। कलकत्तेके निकटवर्ती उत्तरपाड़ा श्रीरामपुर और वीरवाटी अञ्चलमें इस श्रेणीके वैष्णव हैं। रातभिलारी शब्द देखो।

रवदासी—रामात् सम्प्रदायके वैष्णव। रवदास देखो।

राधावल्लभो—हरिवंश गोस्वामी इस सम्प्रदायके प्रवर्तक हैं। इन्होंने वृन्दावनमें १६४१ सम्यत्को राधा-वल्लभजोका मठ खोला। इस सम्प्रदायकी श्रोमती राधिका ही प्रधान उपास्या हैं। श्रीवृन्दावनमें इस सम्प्रदायका मठ है। इनके आचरण और वैष्णव चिह्नादि भी वैष्णव जैसे हैं। सेवासखीवाणी नामक एक ग्रन्थमें इनको उपासना और क्रिया-कलापादिका विशेष विवरण लिखबद्ध है। इस सम्प्रदायकी और भी अनेक शाखाएं हैं। व्रजमायामें लिखे हुए इनके अनेक ग्रन्थ हैं।

रामवल्लभो—रामवल्लभो शब्द देखो।

रामसनेही—रामात्संप्रदाय विशेष। रामसनेही देखो।

रामसाधनीय—रामानन्द संप्रदायका उपसंप्रदाय।

रूप-कविरात्री—गाड़ीय संप्रदायच्युत एक कण्ठो वैष्णव। स्वदायक शब्द देखो।

लक्षरी—रामानन्दो, संप्रदायके अन्तर्गत। रामानन्दो तिलक लगाते हैं, किन्तु लाठ धोरिका नहीं देते। अयोध्यामें इनका मठ है।

वडंगल—मन्नाज और बम्बई अञ्चलके एक श्रेणीके शाखाचारपालक वैष्णव। वडंगल शब्द देखो।

वलरामी—वलरामहाड़ी नामक एक बङ्गाली द्वारा प्रतिष्ठित। यह एक छोटा धर्मसंप्रदाय है।

वलरामी शब्द देखो।

वाउल—बङ्गाली वैष्णव संप्रदायकी शाखाचार विचरित एक शाखा। राधाकृष्ण इनके उपास्य हैं, किन्तु उपासनाप्रणाली अति गुह्य है। गौर नित्यानन्द नागका भी ये कीर्तन करते हैं। वाउल शब्द देखो।

वाणशायी—रामात् निमात्संप्रदायका कठोरता-चारी संप्रदायभेद। ये लोग वाण पर शयन करते हैं। विट्ठुधारी—उत्कलका वैष्णवभेद। विन्दुधारी देखो।

विट्ठुभक्त—महाराष्ट्र प्रदेशमें विट्ठुभक्त नामक एक संप्रदाय है। ये लोग गुजरात, कर्णाट और भारतवर्षके मध्यखण्डमें भी रहते हैं। विडोवा नामक विष्णु ही इनके उपास्य हैं। इनका दूसरा नाम पाण्डुरङ्ग है। ये लोग उन्हें विष्णुका सम अवतार मानते हैं। पण्डुरपुरमें इनकी गद्दी है तथा 'हरिविजय' आदि नामों पर सांप्रदायिक ग्रन्थ हैं।

वीजमागी—वीजमागी शब्द देखो।

चेरकारी—बम्बई अञ्चलमें चेरकारी नामक एक प्रकारके मिश्रक वैष्णव हैं। ये गले और दोनों हाडुमें तुलसीकी माला पहनते हैं तथा गेहना बल्ल और भोलो ले कर घूमते हैं।

चैरामी—चैरामी शब्द देखो।

चैष्णवतपस्वी—ओ काठके कर्पोर पहनते हैं, कमरमें काठ बांधते हैं, ये काठिया और जो विशिष्ट व्यवहार करते हैं, ये लोहिया कहलते हैं, इत्यादि।

चैष्णवदण्डी—ये रामानुज संप्रदायो प्राण्य कुलोद्भूय दण्डीसंप्रदाय है। ये त्रिदण्डी हैं और गेहना बल्ल पहनते, शिर सुंडुवाते तथा यज्ञोपवीत और कमल या तुलसीकी माला पहनते हैं। ये शुद्धाचारी हैं तथा रात-दिन वेदाध्ययन और नित्य क्रियादिका अनुष्ठान करते हैं।

चैष्णव प्रह्लाचारी—यह श्रेणी रामानुजादि सम्प्रदायमें देखो जाती है।

वैष्णवंपरमहंस—रामानुजादि सम्प्रदायसम्मत वीक्षामें दीक्षित हो परमहंसवृत्तिका अवलम्बन करनेसे लोग वैष्णवंपरमहंस कहलाते हैं। योग साधन द्वारा साञ्जुष्य मुक्तिदान इनका परम पुरुषार्थ है। ये लोग अपने हाथसे रसोई नहीं बनाते।

वैष्णव भाट—ये लोग रामानुज आदि वैष्णवोंकी गुरु प्रणाली लिखते हैं तथा उनका यज्ञ गान क्रिया करते हैं।

इनके सिवा संयोगी, सविमाद्युकी, संस्कृली, सत्नामी, सधनपन्थी, सहजिया, सात्रि, साध्विनोपन्थी, साहिवधनी, सेनपन्थी, हजरती, हरिधोला, हरिण्यासी, हरिद्वारत्र आदि उपसम्प्रदायका विषय इन्हीं सब शब्दोंमें देखना चाहिये।

वैष्णवतीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थभेद, विष्णु-सम्बन्धी तीर्थ।
वैष्णवस्व (सं० क्लो०) वैष्णव होनेका भाव या धर्म, वैष्णवता। (राजत० ४।१२४)

वैष्णवदास—अष्टश्लोकीविवरणके प्रणेता।

वैष्णवदास कर्णाटक—कर्णाटदेशवासि एक कवि।

वैष्णवायन (सं० पु०) वैष्णवस्य गोत्रापत्य वैष्णव (हरिताम्योऽनू० पा ४।१।१००) इति फक्। वैष्णवके गोत्रापत्य।

वैष्णवां (सं० स्त्री०) विष्णोरियं विष्णु-अणु, स्त्रियां ङीप्।
१ विष्णुकी शक्ति। २ दुर्गा। (शबररत्ना०) ३ गंगा।
गंगा विष्णुके पादपसे निकली है, इसलिये उन्हें वैष्णवी कहते हैं।

“विष्णोः पादप्रसूतावि वैष्णवी विष्णुपूजिता।

पाद्मिन्स्तेनस्तन्मादाजस्रममरण्यान्तिकत॥”

(भाद्रिनकवचः)

४ अपराजिता। ५ शताशरी। ६ तुलसी। ७ मनसा।

८ पृथिवी। ९ ध्रुवणा नक्षत्र। १० सामभेद।

वैष्णवीतन्त्र (सं० क्लो०) तन्त्रभेद।

वैष्णव्य (सं० लि०) १ यज्ञ-सम्बन्धी। “पवित्रे स्थो

वैष्णव्यी” (शुक्लयजु० १।१२) वैष्णव्यीः यज्ञसम्बन्धिनी” यद्यो वै विष्णुः। (मदीपर) २ विष्णुसम्बन्धी,

विष्णुका।

वैष्णवायन (सं० लि०) वैष्णवयायन। स्त्रियां ङीप्।

(वैचरीयव० २।१।१।४)

वैष्णवायन (सं० लि०) वैष्णवायन। स्त्रियां ङीप्।
(वैचरीयव० ३।३८)

वैष्णुवृद्धि (सं० पु०) विष्णुवृद्धके गोत्रापत्य। (प्रवराण्य)

वैश्वक् सौम्य (सं० पु०) विश्वकसेनके अपत्यदि।

वैस—अयोध्याप्रदेशवासि राजपूतजातिकी मित्र मित्र

ज्ञाता। वैश्यवर्णसे जो सब राजपूत उत्पन्न हुए हैं, वे

हो प्रधानतः वैसराजपूत हैं। इनकी वामभूमि होनेसे

हो युक्तप्रदेशके वैसवाड़ा जिलेका नामकरण हुआ है।

यह जाति एक समय राजपूतजातिके इतिहासमें विरोध

प्रसिद्ध हो गई थी। इस इतिहासके विभिन्न स्थानमें वार्द

वा वार्दस शब्दसे इस वैसीका परिचय दिया गया है।

इनमें प्रयाद है, कि दक्षिण भारतके मञ्जी-वैज्ञान नामक

स्थानसे आकर ये लोग उत्तर-भारतके नाना स्थानोंमें

बस गये हैं। इनका कहना है, कि शालिवाहन राजा-

की ३६० मंदिपीकी सन्तानसन्ततिसे ३६० घर वैस-

जातिकी उत्पत्ति हुई है। ये लोग ३६ राजपूतकुलके

अन्तर्भुक्त हैं तथा चौदान और कच्छवाह जातिके

साथ आदान-प्रदान करते हैं।

वैस राजपूतोंकी धीरताके सम्बन्धमें एक कृत्यदम्नी इस

प्रकार सुनी जाती है। १२५० ई०में अर्गलराज गीतम-

ने दिल्लीके लोदी सम्राटोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की।

ये जब दिल्लीभरकी राजकर देनेसे इनकार चले गये,

तब सम्राटके आदेशसे अयोध्याका मुसलमान शासन-

कर्त्ता उनके विरुद्ध भेजा गया। इस युद्धमें मुसलमानों

सेनाकी हार हुई। इसके कुछ समय बाद ही गीतमराज-

की महिषी गङ्गास्नानके उपलक्ष्यमें हुईएवा गैराके निकट-

वर्ती बगसर नगरमें जा टहरीं। बहुतांसा कहना है,

कि रानी प्रयागतीर्थ त्रिवेणीमें स्नान करने आई थीं।

मुसलमानोंने उनका संघान पा कर दलबलके साथ रानों-

मुसलमानोंके साथ युद्धमें बाह्य हो निर्मलचाँद परलोक सिंचारे। अमयचाँद जब रानीको ले कर राजाके समीप गये, तब राजाने शतशतापूर्ण हृदयसे अपनी कन्याके साथ अमयचाँदका विवाह कर दिया तथा यौतुक स्वरूप गङ्गाके उत्तर अपने राज्यका कुछ अंश तथा रावकी उपाधि दी।

करीब १४०० ई०में इस वंशमें राय तिलकचाँदने जन्म ग्रहण किया। उन्होंने अपने बाहुबलसे अनेक स्थान जीत कर राज्य फैलाया। प्रवाद है, कि उन्होंने २२ परगनेके अधिकारी हो काफी धन जमा किया था। उन्हींके समय यँसवाड़ा विभागमें वैस जातिका प्रभाव फैला था।

जो हो, तिलकचाँदने जो एक समय अपने बाहुबलसे अयोध्या-विभागके राजाओंका नेतृत्व ग्रहण किया था इसमें सँदेह नहीं। ये अपने पादकी छेनेवाले कढ़ावोंको राजपूत बना गये तथा फैजाबादकी वीरजाति उन्हींके अनुग्रहसे भले सुलतान नामसे प्रसिद्ध हुई।

मैनपुरी जिलेके वँसोंका कहना है, कि वे १३६१-६२ ई०में राठौर राजपूतोंके साथ दुण्डिया-खेरासे इस देशमें आ कर बस गये। तारीख-ई-मुबारक-शाही पढ़नेसे जाना जाता है, कि यहाँके वँसगण १४२० ई०में भयानक अत्याचारी हो उठे। दिल्लीभरने उनका दमन करनेके लिये सुलतान खिजिर खान को भेजा। खिजिर खान वँस-शक्तिको जड़से उखाड़ दिया था।

फैजाबाद और फर्रुखाबादमें भी वँसोंका उपनिवेश स्थापित हुआ। फर्रुखाबाद आनेके समयधर्ममें वहाँके वँस कहते हैं, कि दँसरराज और घटसरराज नामके दो वँस भाई दुण्डियाखेरा होते हुए इस प्रदेशमें आये। पहले वे लोग भर नामक वहाँके आदिम अधिवासीके अधीन थे, पीछे उनके साथ शत्रुता करके शकतपुर और सौरिल नामक स्थानोंको जीत वहाँ बस गये। धीरे धीरे उन्होंने ईशान नदीतीरस्थ कुछ ग्रामोंको दखल कर वहाँ अपनी गोठी जमा ली थी।

बुदाउन जिलेके वँसोंमें किं'वदन्तो है, कि वँसवाड़ा-सँदलीपारसँद नामक एक वँस सरदार इस अञ्चलमें आ कर बस गये। उन्हींके दो पुत्रोंसे उनमें धीधरो

भीर राय वंशकी उत्पत्ति हुई है। गोरखपुरके वँसोंका कहना है, कि वे लोग नामवंशी हैं तथा वशिष्ठ ऋषिकी कामधेनुकी नाकसे उत्पन्न हुए हैं। गाजीपुरी वँस अपनेको वँसवाड़ासे आये हुए बघेल-रायके वंशपर बतलाते हैं। मुगल-सम्राट् अकबर-शाहके समय उनको एक शाखा रोहिलखण्डमें जा बस गई थी।

बहुत-सी छोटी छोटी जातियोंके इस सुविस्वून वँस जातिमें आ कर मिल जानेसे वँस समाजमें अनेक दलोंकी सृष्टि हुई है। फँजाबाद और पोस्ता जिलेमें गंधारिया, नाईपुरिया, धारवर और चाहुगण अपनेको वँस जातिसे उत्पन्न बतलाते हैं। रायशेरीली जिलेके पूरव भराभियँस श्रेणिका वास है। मितरिया और बहारिया वँसोंके संबंधमें किं'वदन्ती है, कि राजा तिलकचाँदकी बहुत-सी स्त्रियाँ थीं। उनमें देवा और मैनपुरी राजकन्या राजाके यहाँसे भाग गईं। उन्हींसे मितरिया और बहारिया दलकी उत्पत्ति हुई है। तिलकचाँद वँसोंमें राव, रावत, नैहाटा और साइवंशी प्रधान हैं। वँससे नोच जातिकी स्त्रीके गर्भसे काठवँसोंकी उत्पत्ति है। तिलकचाँदो इनकी कन्याको प्रहण नहीं करते और न उनके साथ खान पान ही करते हैं।

ऊपरमें शालियाहनराजकी ३६० स्त्रियोंसे जो ३६० घर वँस जातिकी बात लिखी गई है, उनमें तिलसारी, चकपेस, नामवांग, भानवांग, घटस, पराशरिया, पटसरिया, बिभोनिया, भटकारिया, छनमिया और गर्गवंश ही प्रधान हैं।

तिलकचन्द्र नामकी शाखाके सभी लोग कपालमें अर्द्धचंद्राकृति तिलक लगाते हैं।

वैसखार—मिर्जापुर जिलेकी पहाड़ी देशवासी जाति विशेष। ये लोग अपनेको दुण्डियाखेरावासी राजपूत वँस (बाईस) जातिकी एक शाखाके बतलाते हैं। प्रवाद है, कि वँस जातीय दो भाईको राजाने प्राणदण्ड का हुकूम दे दिया, इस पर वे बहुत दूर देवा राज्यमें भाग गये। पहाँ उन्हींने राजानुपद्रव पाँ कर बहुत भूस्वामित्व सञ्चय की और दोनों प्रतिष्ठित समर्थ ज्ञाने लगे। ८१६ पीढ़ी वहाँ रहनेके बाद उन्हींने मिर्जापुरमें आ कर उपनिवेश बसाया। वँसवादीका कहना है, कि वँसवाड़ा

जातिके साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं है, आपसमें आदान-प्रदान भी नहीं चलता।

वे लोग अपनेको राजपूत जातिकी शाखा बतलाते हैं सही, पर उनमें राजपूत रक्त बहुत है ऐसा प्रतीत नहीं होता। क्योंकि, उनकी वाह्य आकृति और प्रकृति देखनेसे मालूम होता है, कि वे प्राचीन द्राविडीय शाखासे उत्पन्न हुए हैं।

उनमें सात विभाग हैं जिनमेंसे खण्डाश्त और यंशोत्त प्रधान हैं। इन दो श्रेणियोंसे और पांच श्रेणियों उत्पन्न हुई हैं। घनभूमिमें बास करनेके कारण एक शाखा घननेत कहलाती है। रीतिहा, सोहागपुरिया और पिपराह ग्राममें रहनेसे तीन शाखाका इसी प्रकार नाम हुआ है। देवती, सोहागपुर और पिपरा ग्राम बुन्देलखण्डमें अवस्थित है।

उक्त सात शाखाओंमें खण्डाश्त प्रधान है। दूसरी शाखावालेकी खण्डाश्तकी कन्या लेनेमें पण देना होता है। खण्डाश्तोंमें जो व्यक्ति पञ्चायतका सरदार होता है। उसे महतो कहते हैं।

ये सत्तारोंमें अग्निचार उतना दीपजनक नहीं है, किन्तु स्वजातिमें यदि कोई अन्य जातिका अन्न ग्रहण करे, तो उसकी जात चली जाती है। जातिनाश या पाप क्षालनके लिये भागवतका ७ श्लोक-पाठ, गङ्गास्नान अथवा चाराणसी, प्रयाग वा मथुरामें तीर्थयात्रा करनी होती है। पञ्चायतके विचारसे दूसरा दण्ड नहीं है।

इन लोगोंमें बहु-विवाह प्रचलित है, किन्तु साधारणता एक पत्नीग्रहण करना ही नियम है। जिस दो या दोसे अधिक स्त्रियाँ रहती हैं, उसकी पहली स्त्री ही घरकी मालकिन और देवपूजादिकी अधिकारिणी होती है। सगाईकी तरह विधवाका विवाह होता है। इस समय सरयनारायणकी पूजा और सजातीय स्वजनके सामने दोनोंके प्रसिर्धान सिधा और कोई काम नहीं होता। देवर यदि भोजाईसे विवाह करना न चाहे, तो वह विधवा दूसरेसे भी विवाह कर सकती है। स्वामी न स्त्री यदि भय जातिका डूबका तमाफ़ पीये, तो एक दूसरेको छोड़ सकता है। दिग्गजाखानुसार वीसवार दोग व्रतक ग्रहण कर सकते हैं।

संतानके जन्म लेने पर छः दिन तक चमारिन सूतिकागारमें प्रसूतिकी सेवा-सुधूपा करती है। छः दिनोंके बाद नाइन उसको जगड़ पर आती है। बारहवें दिन प्रसूति प्रौचादिके सम्पन्न हो घरमें आती है, परन्तु छः मास तक वह स्वामीके समीप नहीं आ सकती। क्या जय चलने लगता है, तब उसका कर्णवेध और अन्नदाशन होता है।

विवाह संबंध स्थिर होने पर एक भोज होता है तथा कन्याका पिता पाकके कपालमें टीका ये विवाह ठोक कर जाता है। विवाहके पांच दिन पहले मटमङ्गला होती है। इस समय खिर्पा एक ढोलकी सिन्दूरसे रंगा लेती है। घरमें जो बूढ़ी है, वह मिट्टी कोड़ कर घर लाती और उसे विवाहमण्डके मध्यस्थलमें रख एक घेड़ी बनाती है। घेड़ीके ऊपर सेमर पेड़की डाल और पवित्र जलपूर्ण कलस रहता है।

विवाहके पूर्व दिन मंलिपूजा होती है। इस समय एक घरकी दीवालमें गोबरकी लोई लगा कर उसमें दूध और आर्माका पहल्य छोस देते हैं और ऊपरसे हल्दीका रंगा कपड़ा टक दिया जाता है। कन्या उसके ऊपर घों डालती है, पीछे लड्डूकी पूजा होती है। कन्यापक्षका कोई आत्मीय इस समय अपने हाथसे लड्डू पकड़ कर लड़ा रहता है तथा घरकी माता आ कर उसमें चावलका पिठारा और हल्दी लगा देती है। इसके बाद वह तलवारकी मूँठसे एक शश्वपूर्ण कलस फोड़ देती है। प्रवाद है, कि घरपक्षका कोई आत्मीय यदि इस विवाहमें शलुतावरण करे, तो उसे शश्वकी तरह दूर किया जायेगा।

अनन्तर वह तलवार विवाह मण्डककी घेड़ीके मध्यस्थलमें ला कर रखी जाती है। पीछे उस तलवारसे एक बकरा मार कर रातको शिवघड़ी और बकरेके मांसका भोज होता है। इस भोजकी ये लोग 'मातवान' या भाइपड़ कहते हैं।

घरसे बारात निकलनेके पहले नाई कन्याके घरसे लाये हुए जलसे घरकी स्नान कराता है। यात्राकालमें घरकी माता 'परछन' कार्य करती है। पीछे बारात जब कन्याके घर पहुंचती है, तब यहाँ उन्हें स्वागत कर दर-

बाजे पर लाते हैं। इस समय कन्याको ओरसे नाई हल्दीसे रंगा कपड़ा ला कर पालकीको ढक देता है।

कन्यागृहके द्वार पर बैठनेके लिये आसन बिछाया रहता है। उस आसन पर बैठ कर घर-गौरी और गणेशकी पूजा करता है। पूजा समाप्त होने पर कन्याका पिता वरके कपालमें दही और चावल लगाता है। पीछे कन्यागृहसे घर और वरपक्षीय बालिकाओंका जलपान आता है। इसके बदले वरका पिता कन्या और कन्याकी माताके लिये साड़ी और अलङ्कार तथा वरका स्नान किया हुआ जल भेंट देता है। उस जलसे फिरसे कन्याको स्नान कराया जाता है। पीछे उसे नववस्त्र और अलङ्कारादि पहना कर विवाह-मण्डपमें लाते और वरको ला कर विवाहकार्य शुरू कर देते हैं।

वर और कन्या दोनों सामने रखी हुई गृहदेवता मूर्तिका पूजा कर कलस और सेपरके डंडलमें सिन्दूर लगाते हैं। इसके बाद गाँठ बाँध कर वर और कन्याको उस चेन्दीके चारों ओर पांच बार प्रक्षिण कराया जाता है। प्रक्षिणकालमें वरके हाथमें सूप रहता है; कन्या का भाई उस सूप पर चावल देता जाता और कन्या उसे फेंकती जाती है। अनन्तर वरकन्याको वासरगृह (फोहर) ला कर रखा जाता है। विवाहके दूसरे दिन शारदा विद्या होती है। द्विरागमनके बाद वरके घरमें स्थानीय देवताकी पूजा और होम होता है।

हिन्दूकी तरह ये लोग शयवाह करते हैं। शयवाहके बाद शयवाहकमण गृह लौट आइएँसे अग्नि स्पर्श कर शुद्ध होते हैं। दूसरे दिन सवेरे मृतका निकटसंबंधीय दाह स्थानमें जा शयकी हड्डी और भस्मको ले कर पासवाली नदीमें फेंक देता है। पीछे वे लोग एक पीपल पेड़के मोचे आत्माकी प्यास बुझानेके लिये एक घड़ा जल रक्ष छोड़ते हैं। मृतका निकट आत्मीय प्रतिदिन सवेरे प्रेतके उद्देशसे एक एक पिण्ड देता है और द्वादश दिन दूध और चावल उत्सर्ग कर निकटवर्ती जलाशयमें फेंक आता है। ग्यारहवें दिन मदावालकी मृतका घनभूषण दान किया जाता है। उनका विश्वास है, कि दान की हुई वस्तु प्रेतलोकमें जाता है। बारहवें दिन मोहश पिण्डदानके बाद मदा-

पात्रको भोजन कराया जाता है तथा दक्षिणास्वरूप उसके हाथमें एक गाव और चरन दिया जाता है। तेरहवें दिन ब्राह्मणभोजन होता है। ये लोग देवीदुर्गा और वर्दी भवानीकी पूजा करते हैं।

वैसर्गिक (सं० त्रि०) विसर्गाय प्रभवति विसर्गं (तस्मै प्रभवति श्रुत्यादिभ्यः। पा ५।१।१०१) इति टम्। जो विसर्जन करने या त्यागने योग्य हो, त्याग्य।

वैसर्जजन (सं० पु०) १ विसर्जन करने या उत्सर्ग करनेकी क्रिया। २ वह जो विसर्जित या उत्सर्ग किया जाय। ३ यज्ञकी बलि।

वैसर्जनीय (सं० त्रि०) उत्सर्गके योग्य।
(शतपथब्रा० ३।३।३।)

वैसर्जिन (सं० क्ली०) वैसर्जन देवो।

वैसर्प (सं० पु०) विसर्प अण्। १ विसर्प रोग। (क्री०) २ विसर्प रोग सम्बन्धी।

वैसा (हि० कि० वि०) उस प्रकारका, उस तरहका।

वैसादृश्य (सं० क्ली०) विसदृश भावे घञ्। असदृश या असमान होनेका भाव, असमानता, विषमता।

वैसारिण (सं० पु०) विशेषण सरतीति विसारी मत्स्यस एव (विचारिणो मत्स्ये। पा ५।४।१६) इति अण्। मत्स्य, मछली।

वैसुचन (सं० क्ली०) विशेषण सूचयतीति विसुचनम्, तदर्थे स्वार्थे अण्। नाटकमें पुरुषोंका स्त्री बनना।

वैसूप (सं० पु०) दानवमेद। (हरिवंश)

वैस्तारिक (सं० त्रि०) विस्तार-सम्बन्धी, विस्तारका।

वैस्पष्ट्य (सं० क्ली०) परिष्कार, परिच्छिन्नता।

वैश्लेष्य (सं० पु०) विधि श्रुतिके अपरत्य। (पा ३।१।२०)

वैस्वर्दी (सं० क्ली०) स्वरका विकृत होना, गला बैठना।

वैदग (सं० त्रि०) विदग-अण्। विदग-सम्बन्धी।
(क्याशरित्वा० ५६।१०८)

वैदङ्ग (सं० त्रि०) विदङ्ग-अण्। विदङ्ग-सम्बन्धी, विदङ्गका। (मुधुत्)

वैदति (सं० पु०) विदतके गोत्रापत्य।

वैदायन (सं० पु०) विदत श्रुतिके अपरत्यादि।
(संस्कारकीर्तनी)

वैहायस (सं० त्रि०) विहायस-अण्। विहायस-सम्बन्धी, आकाशका।

घेदार (६० पु०) मगधके अन्तर्गत एक पर्वत । यहाँ घेमार नामसे प्रसिद्ध है । राजघर देखो ।

घेदार्या (६० पु०) विशेषण होयते इति विद्वत्पत्यु विहार्या एव धार्यं कन् । यह जिसके साथ हंसी मजाक अदिका संबन्ध हो । जैसे,—साला, सरहज, साली आदि ।

घेदासिक (६० पु०) विहासं करोति उक्त् । यह जो सबको हंसाता है, विद्रुपक, मॉड़ । पर्याय—वासन्तिक, केलिकिल, प्रहासी, प्रीतिद । (हेम)

घेहल्य (६० क्ली०) विह्वलस्य भावः विह्वल-घञ् । विह्वलता, विह्वल होनिका भाव या घर्न ।

घोकाण (६० पु०) १ घृहसंहिताके अनुसार एक देशका नाम । २ इस देशका निवासी (हर्त्संहिता ६५२०)

घोखारा—प्राचीन तुर्किस्तानके अन्तर्गत एक छोटा सामंत राज्य । यह अक्षा० ३७° से ४३° उ० तथा देशा० ६०° से ६८° पू०के मध्य अवस्थित है । यहां उपाधिधारी मुसलमान राजा द्वारा इसका शासन होता है ।

इस राज्यके चारों ओर मध्यमि रहने पर भी मध्य पूर्वी यह देशमाग अधिक शक्यशाली है । आमु या अमु नदी, सैर या जाकजातिस, फोहिक या जार अफसान तथा कर्गी और घाहिकराउयप्रवाहित नदियां इसके बीचसे बह गई हैं । इससे इस स्थानको उर्वरता दूनी बढ़ गई है । यहांके मघीअर अमीर उपाधिधारी हैं ।

यहां पहले ताजक जाति भा कर बस गईं । हिजरीको प्रथम सदीमें महम्मदके अनुचरोंने घोखारामें प्रवेश कर सामनिद्र-यशोय शासनकर्त्ताओंको हराया और इसलाम धर्ममें दीक्षित किया । १०वीं सदीमें इस प्रदेशके राजे जब कमजोर हो गये, तब उजबक जातिने उन्हें परास्त कर सिंहासनको अपना लिया था । पीछे १२वीं सदीमें चेङ्गिजखानके अधीनस्थ मुगलसैन्यने इस राज्य पर आक्रमण कर उजबकोंको मार भगाया ।

जार-अफसान नदीके पूर्वी किनारेसे ७ मील दूर घोखारा नगर अवस्थित है । यह नगर एक प्रधान वाणिज्य-केन्द्र है । भारतवर्ष, रूस, आसगर और तुर्किस्तानके नाना स्थानोंके लोग यहां आ कर पण्यव्य खरीद ले जाते हैं । राजा जल्य मार्यालानने

यहां एक बड़ा मस्जिद बनवाया था । उसके बादसे ही यहां बड़ी इमारतें बनने लगीं । अभी अस्सफ मसजिद, स्कूल और बणिक् सांभ्रायके रहनेके लिये अच्छी अच्छी सरायें विद्यमान हैं ।

१८६८ ई०में घोखारा रूससाम्राज्यके अन्तर्भूषत हुआ ।

घोखारो—महम्मदकी मृत्युके बाद जिन छः मुसलमानोंने धर्माचार्य रूपमें महम्मदके चलाये हुए धर्ममतका संग्रह किया था, उनमें यह एक है । इसका असल नाम आबू अबदुल्ला महम्मद इसमाल है ।

योगदाद—तुर्कशासकके अन्तर्गत योगदाद प्रदेशका प्रधान नगर । यह अक्षा० ३३°२०' उ० तथा देशा० ४४°२३' पू०के मध्य अवस्थित है । ७६० ई०में यह नगर स्थापित हुआ तथा मुसलमान खलीफाओंके समय इसकी विशेष उन्नति हुई थी । १२५७ ई०में तातार-दलके नेता हलाकुने और १४०० ई०में तैमूरलङ्गने बहुतसे अधिवासियोंको ध्वंस कर यह नगर फतह किया । १५०८ ई०में शाह इसमाल तुर्कीके आक्रमणसे यह पारस्यके शासनभुक्त हुआ । पीछे १५३४ ई०में तुर्कमेतानने इसको पारस्यसे निकाल कर तुर्कमें मिला दिया । इसके बाद शाह अकबासने इसे पुनः पारस्यके अधीन कर लिया था । १६३८ ई०में यह फिर तुर्कोंके हाथ आया । तभीसे यह उग्रही के दखलमें है ।

यह नगर खलीफाओंके अधिकारमें दर-उठा-सलाम और मदिनात् अल-खलीफा नामसे परिचित था । ८वीं सदीमें महु और सालो नामके दो निकितसकीने खलीफा हाकण बाल रसीदकी समामें प्रतिपत्ति लाभ की थी ।

घोट (अं० पु०) यह सामनि लेा किसी सार्वजनिक पद पर किसीके निर्वाचित करने या न करने अथवा सर्व-साधारणसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी नियम या कानून आदिके निर्धारित होने या न होने आदिके विषयमें प्रकट की जाती है; किसी सार्वजनिक कार्य आदिके होने अथवा न होने आदिके संबंधमें दो हुई अलग अलग राय । मात्र कल प्रायः समा-सामितिधर्म निर्वाचनके संबंधमें या और किसी विषयमें समासर्त अथवा उपस्थित लोगोंकी सममतिवां ली जाती है । यह

सम्मति या तो हाथ उठा कर या खड़े हो कर या कागज आदि पर लिख कर प्रकट की जाती है। इसी सम्मतिको घोट कहते हैं। आज कल प्रायः म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा काउन्सिलों आदिके चुनावमें कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त लोगोंसे घोट लिया जाता है। भारतवर्षमें प्राचीन बौद्धकालमें और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देनेकी प्रथा थी जिसे छन्दस् या छन्द कहते थे।

घोट भाव सेंशर (अ० पु०) निम्दाका प्रस्ताव, निम्दा-हमक प्रस्ताव। जैसे,—परिवटने बहुमतसे सरकारके विरुद्ध घोट भाव सेंशर पास किया।

घोटर (अ० पु०) वह जिसे घोट या सम्मति देनेका अधिकार प्राप्त हो, घोट या सम्मति देनेवाला।

घोटर लिस्ट (अ० खी०) वह सूची जिसमें किसी विषयमें घोट देनेके अधिकारियोंके नाम और पते आदि लिखे रहते हैं, घोट देनेवालोंकी सूची।

घोटा (सं० खी०) दासी, मजदूरनी, दाई।

"घोटा घोटा च चेटोच दावी च कूटहारिका।" (हेम)

घोड़ (सं० पु०) गुवाक, सुपारी।

घोड़ (सं० पु०) १ गौह नामक जन्तु, गोलस सर्प। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

घोड़ी (सं० खी०) पणचतुर्धांश, पणके चार भागका एक भाग। इसे बीड़ी भी कहते हैं।

घोड़ (सं० पु०) १ घोड़ू ऋषि। २ कदमका पेड़।

घोड़्य (सं० खी०) घट्-तथ्य, अकारस्वोकारः। १ घह-नाय, घाह, टोनेकेलायक। (हरिषंश ७५।५८) २ परिणे-तथ्य, विवाहके योग्य। (भारत १२।४४।४४)

घोड़ (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि। इनके नामसे तर्पणके समय जल दिया जाता है।

घोड़ू (सं० पु०) पहतीति यह-सुच् (वदिवहोरोदवयोव्य। पा ६।३।११२) इति अकारस्वोकारः। १ भारिक, भार ले जानेवाला। (भाववत ५।१०।२) २ सूड, मूर्छा। ३ परि-णेत्या, विवाहकर्ता। (मनु ८।२०४) ४ सूत। ५ अन-श्वान, ऋषभ नामकी भोषधि। ६ सारधि। ७ पध-दर्शक, राह दिवानेवाला।

घोष्ट (सं० पु०) दृग्त, बौद्धो, ह्योको।

घोद (सं० पु०) आर्द्र, गीला।

घोदाल (सं० पु०) वेदाः आर्द्रः सम् मलतीति मल-अच्। मत्स्यविशेष, बोभारी मछली। पर्याय—सहस्र-दंष्ट्रा, पाठीन, चदालक। यह मछली खानेमें बड़ी स्वादिष्ट होती है।

घोनाई—छोटा नागपुर विभागके अन्तर्गत एक सामन्त-राज्य। यह अक्षांश २१° ३६' से २३° ८' ३०" तथा देशांश ८४° ३२' से ८५° २५' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें सिंहभूम और गाङ्गपुर राज्य, दक्षिण और पश्चिममें घामड़ा सामन्तराज्य तथा पूर्वमें फेउम्बर राज्य है।

१८२३ ई०से यह अङ्गरेजोंके दखलमें आया है।

यहाँके राजा पृथिवी सरकारको सेनादलसे सहायता पहुँचानेमें बाध्य हैं।

घोनाईगढ़—उक्त प्रदेशका एक नगर। यह अक्षांश २१° ५०' ३०" तथा देशांश ८५° १' पू०के मध्य समुद्रसुथमें ५०५ फुटकी ऊँचाई पर अवस्थित है। यहाँ घोनाई राज्यका राजप्रासाद है। राजदुर्ग प्रायः तीन और मदीयों घिरा है।

घोनाईशैल—घोनाई सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक विशाल शैलश्रेणी। यह घोनाई मध्य उपत्यकासे २००० से ३००० फुट ऊँची है। मानकारमाचा, बादामगढ़, कुमरि-ताड़, चेलियाटोका और कोण्डाघर नामक शिखर यथा-क्रम ३६३६, ३५२५, ३४६०, ३३०८, ३००० फुट तक ऊँचे हैं।

घोषादेवी (सं० खी०) राजपत्नीभेद।

घोषदेव—एक विषयात पण्डित। इन्होंने सुप्रसिद्ध मुष्प-वोध व्याकरण प्रणयन कर संस्कृत साहित्यमें अच्छा नाम कमाया है। ये जातिके ग्राहण तथा देवगिरिके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम था केशव। घनेज पण्डितके निकट ये पाठाध्ययन करते थे। ये घाड्यपति महाराज महादेवके सनापण्डित थे। कविकल्पद्रुम, काव्यकामधेनु, त्रिंशच्छ्लोकी, अष्टौचसंपद, धातु-कोष और धातुपाठ, परमहंसप्रिया, परशुरामपतापटीका (श्राद्धघण्ट), भागवतपुराण द्वादश स्कन्धानुक्रम, मदि-मनास्तयटीका, मुक्ताफल, रामव्याकरण, जतश्लोकी और

शतश्लोकीचंद्रकला नामकी टीका, शाङ्गधरसंहिता, गूढार्थदीपिका और सिद्धमंत्रप्रकाश (चैद्यक), हरिलोला, हृदयशोपनिघण्टु (चैद्यक) आदि ग्रन्थ इनके रचे हैं। इनके सिवाय निर्णयसिन्धु, आचारमयूख और ध्याद्धमयूख प्रबंधोंमें इनके रचे एक धर्मशास्त्रका उल्लेख मिलता है।

योपदेश्यतक नामक एक काव्य भी पाया जाता है। इसके रचयिता योपदेश्य खुद हैं या दूसरे कोई कह नहीं सकते। यादव-राजवंश देखो।

योपालित (सं० पु०) एक आभिधानिक।

योपालित सिंह—एक आभिधानिक। अभिधानरत्नमालामें हलायुध तथा महेश्वर, मोदनीकर, उज्ज्वल वत्स आदिने इनके अभिधानका उल्लेख किया है।

योम्—तिपुरा पार्वत्य प्रदेशवासी एक जाति। ये सुब्रह्म या धोन्-दु नामसे भी परिचित थे। कुकि, लङ्का और बघुङ्गोरा इसी जातिके अन्तर्गत हैं।

योस्क (सं० पु०) यह जो लिखता हो, लेखक।

योस्ट (सं० पु०) कुंदका फूल या पौधा।

योरपट्टी (सं० स्त्री०) मंडुरा, चटारें।

योस्य (सं० पु०) घान्यविशेष, बोरो घान। इसका गुण—त्रिदोषघ्नक, मधुर, अम्लपाक और पित्तजनक।

(राजवल्लभ)

योखलान (सं० पु०) पाटलवर्ण अश्व।

योर्णिभो—भारत महासागरस्थ भारतीय द्वीपपुञ्जके अंतर्गत एक सुदृढ़ द्वीप। यहाँ असम्भ्य जातिका वास है। १५१८ ई०में सेंट सिबाष्टियन जहाज पर चढ़ कर पुर्तगाली नाविक लरेजे डि गामेस योर्णिभो द्वीपमें समागत हुए। तभीसे विभिन्न समयमें पुर्तगाली बनिये यहाँ बाणिय्य करनेके हेतु आ कर अपना अपना अधिकार विस्तार कर रहे हैं।

योल (सं० स्त्री०) योलयति प्रायशो निमग्न भवति सुल अच, यदा वा गतो विञ्जादित्वाद्बलच्। स्थनाम ष्वान वणिक् द्रव्य (Balsamodendron myrrh)। महाशब्द—योल, मैत्रङ्ग—यालिम् त्रिपोलम्, तामिल—येल्लरपोलम्, बम्बई—रफ्तयायोल। संस्कृत पर्याय—रक्तपाद, मुष्ट, सुरस, पिण्डक, पिय, निर्होद, वध्वर,

विण्ड, सौरम, रक्तगन्धक, रसगन्ध, महागन्ध, विष्वा, शुभगन्ध, विष्णुगन्ध, गन्धरस, प्रणारि। इसका गुण कटु, तिक्त, उष्ण, कषाय, रक्तदोषनाशक, कफपित्त तथा प्रदरादिदोगानाशक माना गया है। (राजनि०)

भायप्रकाशके मतसे गुण—रक्तहर, शोथल, मेध्य, दोषन, पाचन, मधुर, कटु तिक्त, त्रिदोषनाशक, उग्र, अपस्मार, कृष्टदोगानाशक तथा गर्भाशय-विशुद्धिकारक।

(भाभव०)

योलक (सं० पु०) यह जो लिखता हो, लेखक।

योलासक (सं० स्त्री०) तगरुमेद।

योवशह (सं० पु०) अश्वविद्योय, यह घोड़ा जिसको दुम और अयालके बाल पोले रंगके हों।

योहित्य (सं० श्लो०) यानपात, अर्णवपीत, जहाज।

योपट्ट (सं० अक्ष्य०) उद्यतेऽनेन हविरिति यह बाहुलकात् ङीपट्ट। देवताओंको हविः अर्घ्यात् यज्ञीय घृतादि देनेका मंत्र। इस मंत्रसे देवताओंके उद्देशसे घृत आदिको आहुति देनी होता है। पर्याय—स्वाहा, योपट्ट, पपट्ट, स्वधा। इन पांच शब्दोंसे देवताओंके उद्देशसे अग्निमुखमें आहुति दी जाती है।

व्यंश (सं० पु०) सिद्धिकामर्भजात विप्रचित्तिका पुत्रभेद। (हरिवंश)

व्यंशक (सं० पु०) पर्वत, पहाड़।

व्यंस (सं० पु०) १ राक्षसभेद। (त्रि०) २ स्कन्धहीन, छिन्नबाहु। (शूक् १।३।१५ ताप्य)।

व्यंसक (सं० पु०) वि अंस-ण्वल्। भूषा, चालाक।

व्यंसन (सं० स्त्री०) पंचञ्चना, ठगने या धोखा देनेकी क्रिया।

व्यंसनीय (सं० त्रि०) प्रतारणाके योग्य।

व्यंसयित्य (सं० त्रि०) प्रवञ्चनाके योग्य, जिसको ठगा जाय।

व्यंसित (सं० त्रि०) वि-अस्-क्त। प्रतारित, प्रवञ्चित।

व्यक्त (सं० त्रि०) अञ्ठु व्याप्ति वि-अञ्ठु क। १ प्राप्त।

२ स्फुट, स्पष्ट। ३ प्रकट। ४ स्पृह, वृष्ट। ५ दृष्ट, देखा हुआ। ६ अनुमित। ७ प्रकाशित। (पु०) ८ हृत्प,

कार्य। ९ अनुप्य, भादमी। १० व्यक्तियशोय।

११ विष्णु। १२ सांख्यके मतसे प्रकृतिके स्थूल परि-

सम्मति या तो हाथ उठा कर या खड़े हो कर या कागज आदि पर लिख कर प्रकट की जाती है। इसी सम्मतिको घोट कहते हैं। आज फल प्रायः म्युनिसिपल, बीर, डिस्ट्रिक्टुवोर्डों तथा काउन्सिलों आदिके चुनावमें कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त लोगोंसे घोट लिया जाता है। भारतवर्षमें प्राचीन बौद्धकालमें और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देनेकी प्रथा थी जिसे छन्दस् या छन्द्य कहते थे।

घोट भाव सेंशर (अ० पु०) निम्नाका प्रस्ताव, गिन्दामक प्रस्ताव। जैसे,—परिवटने बहुमतसे सरकारके विरुद्ध घोट भाव सेंशर पास किया।

घोटर (अ० पु०) वह जिसे घोट या सम्मति देनेका अधिकार प्राप्त हो, घोट या सम्मति देनेवाला।

घोटर लिस्ट (अ० खी०) वह सूची जिसमें किसी विषयमें घोट देनेके अधिकारियोंके नाम और पते आदि लिखे रहते हैं, घोट देनेवालोंकी सूची।

घोटा (स० खी०) दासी, मजदूरनी, दाई।

"घोटा बोटा च चेटी च दायी च कृशरिका।" (हेम)

घोड़ (स० पु०) गुवाफ, सुपारी।

घोड़ू (स० पु०) १ गोह नामक जन्तु, गौनस सर्प। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

घोड़ी (स० खी०) पणचतुर्थांश, पणके चार भागका एक भाग। इसे घोड़ी भी कहते हैं।

घोड़ (स० पु०) १ घोड़ू ऋषि। २ कदमका पेड़।

घोड़्य (स० लि०) घट्य, अकारस्थोकार। १ घटनीय, वाह्य, टोनेके लायक। (हरिवंश ७५।८८) २ परिणेत्य, विवाहके योग्य। (भारत १२।४५।४५)

घोड़ (स० पु०) एक प्राचीन ऋषि। इनके नामसे तर्पणके समय जल दिया जाता है।

घोड़ू (स० पु०) यदतीति यद् चूच (अश्वमेधोदयपाठ्य। पा ६।३।११२) इति अकारस्थोकारः। १ भारिक, भार ले जानेवाला। (भागवत ५।१०।२) २ मूढ़, मूर्ख। ३ परिणेत, विवाहकर्ता। (मनु ८।२०४) ४ सूत। ५ अनश्वान, अश्वन नामकी ओषधि। ६ सारधि। ७ पयदर्शक, राह दिवानेवाला।

घोष्ट (स० पु०) घृत, घोड़ी, घोड़ी।

घोद (स० पु०) आर्द्र, गोला।

घोदाल (स० पु०) घोदः आर्द्रः सन्न मलतीति अन्न-अच्छ। मत्स्यविशेष, बोभारी मछली। पर्वप—सद्वन्द्वान्, पाठीन, यदालक। यह मछली खानेमें बड़ी स्वादिष्ट होती है।

घोनाई—छोटा नागपुर विभागके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० २१° ३६' से २३° ८' उ० तथा देशा० ८४° ३२' से ८५° २५' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें सिंद्भूम और गाङ्गपुर राज्य, दक्षिण और पश्चिममें वामड़ा सामन्त राज्य तथा पूर्वमें केउम्बर राज्य हैं।

१८२३ ई०से यह अङ्गरेजोंके दखलमें आया है।

यहांके राजा पृथिव सरकारको सेनादलसे सहायता पहुंचानेमें बाध्य हैं।

घोनाईगढ़—उक्त प्रदेशका एक नगर। यह अक्षा० २१° ५०' उ० तथा देशा० ८५° १' पू०के मध्य समुद्रपृष्ठमें ५०५ फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। यहां घोनाई राज्यका राजप्रासाद है। राजदुर्ग प्रायः तीन और नदीसे घिरा है।

घोनाईशैल—घोनाई सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक विशाल शैलश्रेणी। यह घोनाई मध्य उपत्यकासे ३००० से ३००० फुट ऊंचो है। मानकारमाचा, बादामगढ़, शुभरिताड़, चेलियाटोका और क्लोएडाधर नामक शिखर यथा क्रम ३६३६, ३५२५, ३४६०, ३३०८, ३००० फुट तक ऊंचे हैं।

घोष्यादेशी (स० खी०) राजपरतोमेद।

घोषदेव—एक विशाल पण्डित। इन्होंने सुप्रसिद्ध गुण-घोष व्याकरण प्रणयन कर संस्कृत साहित्यमें अच्छा नाम कमाया है। ये जातिके ब्राह्मण तथा देवगिरिके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम घा केशव। घनेन पण्डितके निकट ये पाठाध्ययन करते थे। ये यादवपति महाराज महादेश्यके सभापण्डित थे। कविकल्पद्रुम, काव्यकामधेनु, त्रिशुच्छुन्नीकी, अशीचसंपद, धातु-कोष और धातुपाठ, परमहंसप्रिया, परशुरामप्रतापटीका (श्राद्धपण्ड), भागवतपुराण द्वादश स्कन्धानुक्रम, मदि-भ्रातृपटीका, मुक्ताफल, रामव्याकरण, शतश्लोकी और

शतश्लोकीचंद्रकला नामकी टीका, शाङ्गधरसंहिता, गूढाथदीपिका और सिद्धमंत्रप्रकाश (वैद्यक), हरिलोला, हृदयदीपनिघण्टु (वैद्यक) आदि ग्रन्थ इनके रचे हैं। इनके सिवाय निर्णवसिन्धु, आचारमयूख और ध्याद्धमयूख प्रबंधों इनके रचे एक धर्मशास्त्रका उल्लेख मिलता है।

घोषदेवशतक नामक एक काव्य भी पाया जाता है। इसके रचयिता घोषदेव खुद हैं या दूसरे कोई कह नहीं सकते। यादव-राजवंश देखो।

घोपालित (सं० पु०) एक अभिधानिक।

घोपालितसिंह—एक अभिधानिक। अभिधानरत्नमालामें हलायुध तथा महेश्वर, मोक्षनीकर, उज्जयल इत आदिने इनके अभिधानका उल्लेख किया है।

घोम्—त्रिपुरा पार्वत्य प्रदेशवासी एक जाति। ये सुत्रजु या घांन्-जु नामसे भी परिचित थे। कुकि, लङ्गा और षण्डुगोरा इसी जातिके अन्तर्गत हैं।

घोरक (सं० पु०) यह जो लिखता हो, लेखक।

घोरट (सं० पु०) कुंदका फूल या पीछा।

घोरपट्टी (सं० स्त्री०) मंदुरा, चटारें।

घोरव (सं० पु०) घान्त्वविशेष, घोरघान। इसका गुण—त्रिदोषवर्द्धक, मधुर, अम्लपाक और पित्तजनक। (राजवल्लभ)

घोषज्ञान (सं० पु०) पाठलक्षण अर्थ।

घोर्णिभो—आरत महासागररूप भारतीय द्वीपपुञ्जके अंतर्गत एक सुवृहत् द्वीप। यहाँ असभ्य जातिका बास है। १५१८ ई०में सेंट सिवाष्टियन जहाज पर चढ़ कर पुस्तगोत्र नाविक लरेजा जि गामेज घोर्णिंधी द्वीपमें समागत हुए। तभीसे विभिन्न समयमें पुस्तगोत्र बनिचे यहाँ वाणिज्य करनेके हेतु आ कर अपना अपना अधिकार विस्तार कर रहे हैं।

घोल (सं० स्त्री०) घोलयति प्रायशो निमग्न भवति शुल अच, यदा या गर्तो पिञ्जादित्वाद्घोलच्। स्वनाम स्थान वणिक द्रव्य (Balsamodendron myrrh)। मक्षारपद—घोल, नैलङ्ग—पालिम् क्रिपोलम्, तामिल—घेत्तरपपोलम्, बर्म्ह—रफतवाघोल। संस्कृत पर्याय—रक्षापद, मुण्ड, सुरस, पिण्डक, विप, निर्हृदि, वर्धर, विण्ड, सौरम, रक्तगन्धक, रसगन्ध, महागन्ध, विभवा, शुभगन्ध, विभ्वगन्ध, गन्धरस, प्रणारि। इसका गुण कटु, तिक्त, उष्ण, कषाय, रक्तदोषनाशक, कफपित्त तथा प्रद्रादिरोगनाशक माना गया है। (राजनि०)

घोषप्रकाशके मतसे गुण—रक्तहर, शोथल, मेध्य, दीपन, पाचन, मधुर, कटु तिक्त, त्रिदोषनाशक, उषर, अपस्मार, कुष्ठरोगनाशक तथा गर्भाशय-विशुद्धिकारक। (भावप्र०)

घोलक (सं० पु०) यह जो लिखता हो, लेखक।

घोलासक (सं० स्त्री०) नगरभेद।

घोवन्नाह (सं० पु०) अश्वविशेष, यह घोड़ा जिसको दुग्ध और अयालके बाल पोले रंगके हों।

घोहिरथ (सं० पत्नी०) यानवाह, अर्णवपीत, जहाज।

घोषट् (सं० अव्य०) उद्यतेऽनेन हविरिति यह घाहुलकात् डीपट्। देवताओंकी हवि अर्थात् यज्ञीय घृतादि देनेका मंत्र। इस मंत्रसे देवताओंके उद्देशसे पूत आदिकी आहुति देनी होती है। पर्याय—स्वाहा, धीपट्, षपट्, स्वधा। इन पांच शब्दोंसे देवताओंके उद्देशसे अग्निमुखमें आहुति दी जाती है।

घषंश (सं० पु०) सिद्धिकागर्भजात विप्रचित्तिका पुत्रभेद। (रविशंश)

घ्यंशक (सं० पु०) पर्वत, पहाड़।

घ्यंस (सं० पु०) १ राक्षसभेद। (लि०) २ स्कन्पहीन, छिन्नवाहु। (शूक् १३२।५ वाप्य)।

घ्यंसक (सं० पु०) वि अंस-पशुल्। घूर्श, चालाक।

घ्यंसन (सं० स्त्री०) पंचजना, डगने या घोषा देनेकी क्रिया।

घ्यंसनीप (सं० लि०) प्रतारणाके योग्य।

घ्यंसपित्त्य (सं० लि०) प्रयञ्जताके योग्य, जिसको डगा जाय।

घ्यंसित (सं० लि०) वि-अस-क्त। प्रतारित, प्रयञ्जित।

घ्यक (सं० लि०) मञ्जु व्यासी वि-मञ्जु क। १ प्राश्न।

२ स्फुर, स्पष्ट। ३ प्रकट। ४ स्पृह, बद्ध। ५ दृष्ट, देखा हुआ। ६ अनुमित। ७ प्रकाशित। (पु०) ८ हृत्प, कार्य। ९ अनुध, आधमी। १० व्यक्तियशेष।

११ विष्णु। १२ सांध्यके मतसे प्रकृतिके स्थूल परि-

माणका नाम यज्ञक है। प्रधान, अहङ्कार, एकादश-
इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्र और पञ्चमहाभूत-इन चीबोस तत्त्व
को यज्ञक कहते हैं। अवयवक प्रकृति तथा यज्ञक पुण्य
है।

व्यक्तगणित (सं० श्लो०) अङ्कविद्या, हिसाब।

व्यक्तगणधा (सं० श्लो०) १ नीलो अपराजिता।

२ स्वर्णयूषिका, सोनजुही। ३ विप्लवी, पीपल।

व्यक्तता (सं० श्लो०) यज्ञकस्य भावः तल्लटाप्। यज्ञक
होनेका भाव।

व्यक्ततारक (सं० श्लो०) पूर्णप्रकाशमान तारकाविशिष्ट।

व्यक्तदृष्टार्थ (सं० पु०) यज्ञक स्फुटं यथास्यात् तथा दृष्टो-
ऽर्थो येन। यह जो देखो हुरे बात कहे, चर्मदीद गयाह।
पयांग—प्रत्यक्षो, प्रत्यक्षदर्शी।

व्यक्तभुज (सं० पु०) काल, समय, यज्ञक।

व्यक्तमय (सं० श्लो०) वचनशील, वाक्यविशिष्ट।

व्यक्तरसता (सं० श्लो०) स्वात्महणकी तीक्ष्णता, परिष्कार
भावसे रसानुभवकी शक्ति।

व्यकराशि (सं० श्लो०) अंकगणितमें यह राशि या
अङ्क जो यज्ञक किया या बतला दिया गया हो, ज्ञात-
राशि।

व्यक्तरूप (सं० पु०) यज्ञकत् रूपं यस्य। १ विष्णु।
(श्लो०) २ स्पष्टरूपयुक्त।

व्यक्तरूपिन् (सं० श्लो०) ऐसी आकृतिधाला जो पह-
चाना जा सके।

व्यक्ति (सं० श्लो०) पारंपर्येऽन्येति वि-भक्त-किन्।
१ पृथग्व्यक्ति, मनुष्य या किसी और शरीरधारीका
सारा शरीर जिसकी पृथक् सत्ता मानी जाती है और
जो किसी समूह या समाजका अङ्ग समझा जाता है,
समष्टिका उल्टा, वाष्टि। २ स्पष्टता। (ए १।१०)
३ भूयमात्र। (गीता ८।२८) ४ न्यायशास्त्रिक तत्त्व-
पदार्थ। ५ मनुष्य, आत्मी। जैसे,—कुछ व्यक्ति ऐसे
होते हैं जो सदा दूसरोंका अपकार ही किया करते हैं।
यद्यपि यह अर्थ संस्कृतमें श्लोक्ति है, तथापि हिन्दुओंमें
'मनुष्य' या 'मादमी' के अर्थमें यह प्रायः पुल्लिंग ही
बोला और लिया जाता है। ६ शीघ्र। ७ शरीर।
८ प्रया, वस्तु, पदार्थ। ९ प्रकार।

व्यक्तिमाहिता (सं० श्लो०) जिस वृत्ति द्वारा एक एक
वस्तुकी सत्ता उपलब्धि होती है।

व्यकीकृत (सं० श्लो०) १ प्रकाशित, जो यज्ञक किया
गया हो, प्रकट किया हुआ। २ उदघाटित, स्पष्टोक्त।

व्यकीमाय (सं० पु०) प्रकाशोमाय। जो पहले यज्ञक
न था पीछे यज्ञक हुआ है, उसीको यकीमाय कहते हैं।

व्यकीमूत (सं० श्लो०) जो यज्ञक किया गया हो, प्रकट
किया हुआ।

व्यक्नेदित (सं० श्लो०) साफ-साफ कहा हुआ।

व्यस (सं० श्लो०) अक्षरेखावर्जित।

व्यस्र (सं० श्लो०) विकस्रं भगतीति भग प्रस्रं न्येति
साधुः। १ यज्ञसक, यज्ञकुल, यज्ञभाषा हुआ। २ वास्त,
काममें फंसा हुआ। ३ त्वरित। ४ त्वस्त, भीत, डरा
हुआ। ५ उरसाही, उद्यमी, उद्योगी। ६ शासही।
७ नासयत। ८ ससन्नम्। (भागवत ३।१६।१।श्लो०)
(पु०) ९ विष्णु। (विष्णुका उल्लेखनाम)

व्यस्रता (सं० श्लो०) यज्ञस्य भावः तल्लटाप्। १ यज्ञ
होनेका भाव। २ व्याकुलता, घबराहट।

व्यस्रमस्र (सं० श्लो०) चिन्ताविह्वल मानस।

व्यस्रश (सं० श्लो०) विगतं अङ्कुशो यस्मात्। निर-
कुश।

व्यस्र (सं० पु०) विह्वलानि अङ्गानि यस्य। १ भेद,
मेंढक। (मेदिनी) विह्वलानि अङ्गानि यस्मात्। २ मुख-
रोगविशेष। भावप्रकाशके मतसे मोक्ष या परिध्रम
आदिके कारण पापु कुपित होनेसे मुँह पर छोटी छोटी
काली कुंसियाँ या दागे निकल आते हैं, इसीको यज्ञ-
रोग कहते हैं। बढ़का तथा पत्ता, मालती, रक्तचन्दन,
कुट और लोथ इन सबोंको यज्ञक पीस कर प्रत्येक देगेमें
यज्ञक और नीलिका रोगमें बहुत फायदा पहुँचना है।
कुं-कुमायनील भी इस रोगमें बड़ा उपकारी है। ३ विक-
लाङ्ग, यह जिसका कोई अंग टूटा हुआ या विकृत हो।
४ उपहास, विद्रूप।

व्यस्रक (सं० पु०) पर्यय, पहाड़।

व्यस्रता (सं० श्लो०) यज्ञकता भाव।

व्यस्रव्य (सं० श्लो०) किसी अङ्गका न होना या लपटन
होना, लपटा, अङ्गहीनता।

व्यङ्ग्यं (सं० पु०) व्यंग्य देखो ।
 व्यङ्ग्यार (सं० त्रि०) अङ्गार या अनिचञ्जित ।
 व्यङ्गित (सं० त्रि०) विकलीकृत ।
 व्यङ्गिन (सं० त्रि०) व्यङ्ग्यरोगविशिष्ट, जिसे व्यङ्ग्यरोग हुआ हो ।
 व्यङ्गीकृत (सं० त्रि०) छरिडत, काटा हुआ ।
 व्यंगुल (सं० पु०) १ अंगुली विस्तृतिके परिमाणका पट्टितम अंशविशेष । (त्रि०) २ विकृतांगुल, जिसकी अंगुली विकृत हो गई हो ।
 व्यंगुलि (सं० त्रि०) विकृतांगुलि ।
 व्यंगुष्ट (सं० त्रि०) १ विकृतांगुष्ट । (पु०) २ गुल्मभेद ।
 व्यङ्गा (सं० पु०) वि-अनञ्-पत् । १ व्यञ्जना वृत्ति-द्वारा बोधय अर्थ, तात्पर्यार्थ, निगूढमाथ । शब्दकी शक्ति तीन प्रकार है—वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्गा; इनमेंसे व्यञ्जना-वृत्ति द्वारा जित सब शब्दोंका अर्थ प्रकाश पाता है, उन्हें व्यङ्गा कहते हैं । (वा० द० २ परि० ११) २ यह लगतो हुई बात जिसका कुछ गूढ अर्थ हो, ताना, बोली, चुटकी ।
 व्यचत् (सं० क्ली०) १ यथासि । "समुद्रो न व्यचत्पदे" (शूक् १२०१३)
 २ आदित्य । "वचदहन्दः" (शुकसप्त० १५४)
 व्यचसत् (सं० त्रि०) यथासिपुक्त । "व्यचसतोर्वि प्रवृत्तामनुवा" (शूक् २३१५)
 व्यचिष्ट (सं० त्रि०) यथासि । "व्यसा दृष्टत व्यचिष्ट" (शूक् २१०४)
 व्यच्छ (सं० त्रि०) गमनशील । (शुक्लपत्र० ३०१८)
 व्यञ्ज (सं० पु०) व्यञ्जयनेनेति वि-अञ्ज (गोपालशर्मा) । पा ३।३।१६ इति घञ्, निपातनादङ्गे टर्णसप्रयोरिति योमायो न भवति । व्यञ्जन, हया करनेका संज्ञा ।
 व्यञ्जन (सं० क्ली०) व्यञ्जयनेनेति वि-अञ्ज-न्त्युट् । (यो यी) पा ३।३।५० इति पञ्चो यो भाषि न भवति । तालवृत्तक, हका करनेका संज्ञा । इसका सामान्य गुण—मूर्च्छा, दाह, सृणा, घर्मे और ध्रमनाशक । तालव्यञ्जनाका गुण—तिदोपनाशक और लघु । घंशव्यञ्जनका गुण—रुध, उष्ण, धातुपिस्कारक, क्षेत्र, घत्र और मयूर-

पुच्छव्यञ्जनका गुण—तिदोपनाशक । चामरव्यञ्जनका गुण—तेजस्कर और मक्षिकादि निवारक ।
 भावप्रकाशके मतसे इसका साधारण गुण दाह, स्वेद, मूर्च्छा और शान्तिनाशक है । तालवृत्तव्यञ्जन तिदोपनाशक है । घंशव्यञ्जन—उष्ण तथा रक्तपित्तप्रकोपक । चामर, घत्र, मयूरका पंखा तथा क्षेत्रज व्यञ्जन तिदोपनाशक, सिन्ध और हृदयप्रादी है । व्यञ्जनोंके मध्य यही व्यञ्जन प्रशस्त है । (भावप्र०)
 व्यञ्जनक (सं० क्ली०) व्यञ्जन-स्वार्थे कन् । व्यञ्जन देखो ।
 व्यज्य (सं० त्रि०) १ जिसका बोध शब्दकी व्यञ्जना शक्तिके द्वारा हो । (पु०) २ व्यप्य देखो ।
 व्यञ्जक (सं० पु०) व्यनकीति वि-अञ्ज-ण्युट् । १ हृद्गत-भाषादि प्रकाशक अभिनय । यह आङ्गिक, सात्त्विक, याचिक और आहार्य भेदसे चार प्रकारका है । (मत) २ व्यञ्जनाप्रतिपादक । (साहित्यद० २।३१) (त्रि०) ३ प्रकाशक । (मनु २।६८)
 व्यञ्जन (सं० क्ली०) वि-अञ्ज-ण्युट् । १ तरकारी और साग आदिजो दाल, चावल, रोटी आदिके साथ साथे जाने हैं । पर्याय—तेमन, निष्ठान, तैम । (शूक् ८।६७२) इमका गुण—हृष, हृष्य और पुष्टिप्रद । मछली और मांसादिका व्यञ्जन जिस जिस द्रव्यके साथ भोजन किया जाता है, उस उस द्रव्यके दोष और गुणानुसार दोष और गुण स्थिर करना होता है । (राजवल्लभ)
 २ चिह्न । ३ व्यञ्जनाशक्ति । (साहित्यद० ३।२६) ४ शमभ्रू-मूर्च्छ । ५ अवयव, शरीर । ६ दिन । ७ षेष्टके बोधेका स्थान, उपस्थ । ८ साधारण बोलचालमें पका हुआ भोजन । ९ वर्णमालामेंका यह वर्ण जो बिना स्वरकी सहायतासे न बोला जा सकता हो । हिन्दीवर्णमालामें "क" से "द" तकके सब वर्ण व्यञ्जन हैं । १० वरक अथवा प्रकट करने अथवा होनेकी क्रिया । ११ गुप्तनर या गुप्तचरोंका मंडल ।
 व्यञ्जनसन्निपात (सं० पु०) व्यञ्जनसङ्गम कितने व्यञ्जन-वर्णका एकत्र समावेश ।
 व्यञ्जनहारिका (सं० स्त्री) पुराणानुसार एक प्रकारकी अमंगल-कारिणी शक्ति जो विवाहित लड़कियोंके बनाये हुए पाप पदार्थ उठा ले जाती है ।

व्यञ्जना (सं० स्त्री०) वि-अञ्ज-णिच्-युच्-टाप् । १ प्रकट करनेकी क्रिया । २ शब्दकी वृत्तियोग्य । शब्दकी तीन वृत्ति हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना ।

(धादित्पद० २ परि०)

व्यङ्ग (सं० पु०) एक ऋषिका नाम । व्याङ्गि देवो ।

व्यङ्ग्यक (सं० पु०) परण्डपुत्र, रेड्डीका पेड़ ।

व्यति (सं० पु०) शय, घोड़ा । (शब्० ४३२।१७)

व्यतिकर (सं० पु०) वि-अति-कृ-अप् । १ व्यसन ।

२ व्यतिवृद्ध । ३ विनाश, वरबादी । (भागवत १।७।३२)

४ मिश्रण, मिलावट । (माय ४।१२) ५ व्यापति ।

६ सम्पर्क, सम्बन्ध । ७ परस्पर काम करना । ८ समूह, भुङ्ग ।

व्यतिक्रम (सं० पु०) वि-अति-क्रम-घञ् । १ क्रममें होने-

वाला विपर्यय, सिलसिलेमें होनेवाला उलट-फेर ।

२ बाधा, विघ्न ।

व्यतिक्रमण (सं० स्त्री०) वि-अति-क्रम-व्युट् । क्रममें

विपर्यय करना, सिलसिलेमें उलट-फेर करना ।

व्यतिक्रम्यत (सं० स्त्री०) वि-अति-क्रम-क । विपटीयप्राप्त,

जिसमें किसी प्रकारका विपटीय हुआ हो ।

व्यतिक्राम्ति (सं० स्त्री०) वि अति क्रम क्तिन् । व्यतिक्रम,

क्रममें होनेवाला विपटीय ।

व्यतिगत (सं० स्त्री०) प्रसिधत्, जो अतिक्रम कर गया हो ।

व्यतिचार (सं० पु०) १ दोष, पेश । २ पापाचरण, पाप

कर्मा करना ।

व्यतिचुम्बित (सं० स्त्री०) अति सन्निकटमें स्पर्शन ।

व्यतिपात (सं० पु०) वि-अति-पात-घञ् । १ महोत्पात,

भारी उपद्रव या खराबी । २ अपमान । ३ योगभेद ।

व्यतीपात शब्द देवो ।

व्यतिभेद (सं० पु०) वि-अति भिद्-घञ् । अतिक्रम करके

भेद, एक एक करके भेद ।

व्यतिमर्श (सं० पु०) विहारविशेष । वैदिक यज्ञादिमें

बालगित्य स्त्रोत्रके प्रथम या द्वितीय मन्त्रका बहुत-सा

पाद या मन्त्राङ्ग एक के बाद एक परस्परमें एकयोगसे

उच्चारणरूप प्रयोग ।

व्यतिमर्शम् (सं० अव्य०) त्यक्त, अतिक्राम्यत ।

व्यतिमिश्र (सं० स्त्री०) स्त्री भो अनेक मिश्र चिह्नयुक्त ।

(शरत्प० ६०१)

व्यतिमूढ (सं० स्त्री०) मत्पगत विरक्त या विन्नाविज्ञादिन् ।

व्यतिमोह (सं०) अतिशय मुग्ध ।

व्यतिपात (सं० स्त्री०) अतिक्रम करके गया हुआ ।

व्यतिरिक्त (सं० स्त्री०) वि अति-रिच्-क्त । १ व्यतिरेक-

विगिए, विभिन्न, अलग । २ वर्द्धित, बढ़ाया हुआ ।

३ पृथक्कृत, अलग किया हुआ । (किं० वि०) ४ अति-

रिक्त, सिवा, अलावा ।

व्यतिरिक्ता (सं० स्त्री०) व्यतिरिक्त होनेका भाव या

धर्म, विभिन्नता ।

व्यतिरेक (सं० पु०) वि-अति रिच्-घञ् । १ विना ।

२ अमाय । ३ प्रमेद, विभिन्नता । ४ वृत्ति, बद्धती । ५

अतिक्रम । ६ अर्धालङ्कारविशेष । जहां उपमानसे उपमेय-

को अधिकता या न्यूनता वर्णन किया जाता है, यहां

यह अलङ्कार होता है । इस अलङ्कारके ४८

भेद हैं । उदाहरण—उसका मुख अंकलकूट है,

कलङ्की चंद्रमाके समान नदी । उसके मुख

पर तो कोई कलंक नहीं है, पर चंद्रमाका

कलंक है, कलङ्की चंद्रमाकी अपेक्षा उसके

मुखसौन्दर्यकी अधिकता वर्णन होनेसे यहां व्यतिरेक

अलङ्कार हुआ । इस प्रकार उपमेयकी न्यूनता होने पर

भी यह अलङ्कार होगा । (धादित्पद०)

व्यतिरेकव्याप्ति (सं० स्त्री०) जिसमें जो गुण नहीं है

उसमें पही गुण देनेके लिये युक्ति देना ।

व्यतिरेकिन् (सं० पु०) १ यह जो किसीको अनिक्रम

करके भाता हो । २ यह जो पदार्थोंमें विभिन्नता

उत्पन्न करता हो ।

व्यतिरेकलिङ्ग (सं० पुली०) अतिरिक्त चिह्न ।

व्यतिरेचन (सं० पुली०) विभिन्नताप्राप्तग ।

(धादित्पद० १०६।१५)

व्यतिलङ्घिन् (सं० स्त्री०) सन्धानमन्त्र, जो अपने स्थान-

से च्युत हो गया हो । (रघु ६।१६)

व्यतिपक (सं० स्त्री०) वि अति-पञ्च-क । १ नामक ।

२ मिला हुआ । ३ प्रथित ।

व्यतिपक्क (सं० पु०) वि-अति-पञ्च-घञ् । १ मिला हुआ ।

२ विनिमय, बदला ।

व्यतिहार (सं० पु०) वि-अति-हृ-घञ् । १ विनिमय,

बदला । २ पर्यायकरण, नाम लेना । ३ गाली गलीज ।
४ मारपीट ।

व्यतीकार (सं० पु०) वि-अति-ह-घञ्, घञि उपसर्गस्य
दीर्घः । १ घासन । २ घातिपङ्क । ३ विनाश, बरबादी ।
४ तिथ्रण ।

व्यतीत (सं० लि०) वि-अति इ-क्त । अतीत, घोता
हुआ, गत । (तिथितत्त्व)

व्यतीपात (सं० पु०) वि-अति-पत-घञ् (उपसर्गस्य
धभोति । पा ६।१।२२) इति उपसर्गस्य दीर्घः । १ महो-
त्पात, अमङ्गलजनक उत्पात, धूमकेतु, भूकम्प आदि ।
२ अपमान । ३ विष्कम्भ प्रभृति सत्सार्इस योगोक्ते अन्त-
र्गत सत्सरहवां योग । ज्योतिषके मतसे इस योगमें कोई
भी शुभकर्म नहीं करना चाहिये, करनेसे अनुशुभ
होता है ।

संक्रान्ति, विष्टि, व्यतीपात, वैभृति और केन्द्रस्थान-
के शुभप्रदहीन होने पर भी पापदिन वर्जन करके शुभ-
कार्य करे । व्यतीपात सभी शुभ कार्यों में निषिद्ध होने
पर भी इसका प्रतिपक्षव देवनेमें आता है । चन्द्र तारा
यदि शुद्ध रहे, तो व्यतीपात दुष्ट नहीं होता । यात्रा-
कालमें अमृतयोग होनेसे व्यतीपातदेशप विनष्ट होता है
अर्थात् व्यतीपातयोग होनेसे येनी हालतमें यात्रा की
आ सकती है । (ज्योतिषसूत्र)

इस योगमें यदि कोई बालक जन्म ले, तो वह कर्कश-
भाषी, दुष्ट, सदा पीड़ित, माताका हितकारी और दूसरे-
के कार्यमें पक्षपाती होता है । (कोष्ठीमदीप)

४ पारिभाषिक योगविशेष, जैसे अर्द्धाद्वियोग, व्यती-
पातयोग । इस योगमें गंगास्नान करनेसे कोटिकुलका
उत्पन्न होता है । अनापहवाके दिन रविवार, श्रवणा,
धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा और मृगशिरा नक्षत्र होनेसे यह
योग होता है ।

चतुर्दशीके दिन यदि व्यतीपात तथा आर्द्रा नक्षत्र
का योग हो, तो यह दिन भी अति पुण्यवत काल है ।
यह देवनाभोके लिये भी दुर्लभ है । इस दिन गंगास्नान
करनेसे पूर्वोक्त फललभ होता है । (प्रायश्चित्तसूत्र)

५ सूयंसिदान्तोक्तः क्रान्तिसाम्यात्मक योगविशेषरूप
वर्णितः ।

व्यतीहार (सं० पु०) वि-अति-ह-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घः ।
१ परिवर्त, बदला । २ आपसमें गाली गलीज, मारपीट
या इसी प्रकारका और कोई काम करना ।

व्यत्यय (सं० पु०) व्यत्ययनमिति वि-अति-र । (एच् ।
पा ३।३।१६) इति अच् । व्यतिक्रम । पर्याय—विप-
र्थास, व्यत्यास, विपर्यय ।

व्यत्यस्त (सं० लि०) वि-अति-अस-यत् । विपरीतभाव-
में अवस्थित, उल्टा पलटा ।

व्यत्यास (सं० पु०) व्यत्यस्तनमिति वि-अति-अस-घञ् ।
विपर्यय, व्यतिक्रम, वैपरीत्य ।

व्याग—१ भय, डर । २ चलना । ३ घाया ।

व्ययक (सं० लि०) व्ययपति पीडयति व्यय निच् ण्युच् ।
व्यथाकारो, पीड़ा देनेवाला ।

व्ययन (सं० क्तो०) व्यय-भावे व्युट् । १ व्यथा, पीड़ा,
तकलीफ । (लि०) व्ययपतीनि व्यय-क्यु । २ व्ययक,
तकलीफ देनेवाला ।

व्ययनित् (सं० लि०) व्यय-निन्-त्त्च् । व्यथाकारक,
पीड़ा देनेवाला ।

व्यथा (सं० स्त्री०) व्यथ-घञ्-टाप् । १ दुःख, पीड़ा,
तकलीफ । २ भय, डर । (उच्चारण १ भ०)

व्यथित (सं० लि०) व्यथ-यन । १ पीड़ित, त्रिसे किसी
प्रकारकी व्यथा या तकलीफ है । ४ जिसे शोक प्राप्त
हुआ हो ।

व्यथितम् (सं० लि०) १ व्यथिता । २ नायक ।
(शृङ्खला १)

व्यघ्र (सं० लि०) व्यघ्र-यत् । १ दुःखार्द्र, वरणा देने
योग्य । २ भयानक, भय उत्पन्न करनेवाला ।

व्यघ्नर (सं० लि०) दंशक ।

व्यघ्न (सं० पु०) व्यघ्ननमिति व्यघ्न-ताड् (व्यघ्नप्रोत्तन-
वर्गे । पा ३।३।१६) इत्यप् । १ वेध, बाधना । २ घाया ।
३ भेदना । ४ प्रहार ।

व्यघ्न (सं० क्तो०) व्यघ्न-क्युट् । वेधन, विद्व करना,
बाधना ।

व्यधिकरण (सं० क्तो०) अधिकरणमाय ।

व्यधिक्रिये (सं० पु०) तिन्द्वा, निष्क्रिय ।

व्यध्य (सं० पु०) पथाय दितः व्यय यत् । १ पनुगुण,

धनुषी होतो । (वि०) २ घषनादे, घोषनेके घोषय ।
 व्य० (सं० पु०) विरहो भङ्गा, प्रादि समासा, 'उप-
 मर्गाद्व्ययना' इत्यन् । कुरित्तत वष । पर्याय—दुरव्य,
 विषय, कद्वय, कागध, कुगध, मस्ररगध, कुरित्ततवर्गम् ।
 व्य० (सं० त्रि०) कुरित्तत पधपुक्त ।
 व्य० (सं० त्रि०) संक्रामक ।
 व्य० (सं० त्रि०) दूरवर्ती ।
 व्य० (सं० त्रि०) १ व्यरहित । २ सर्वधर्मसाम्य ।
 (नीलकण्ठ भारवटीका) (पु०) ३ जैनोंके अनुसार एक
 प्रकारके विज्ञान और यज्ञ आदि ।
 व्य० (सं० पु०) वि-अप-गम-अप् । व्यतीत ।
 व्य० (सं० स्त्री०) लज्जा ।
 व्य० (सं० पु०) वि-अप-दिश-अप् । १ कपट, छल ।
 २ नाम । ३ कुल, वंश । ४ व्याप्यविशेष । ५ नामोल्लेख-
 कथन । ६ मुख्य व्यवहार । ७ निदा, शिकायत ।
 व्य० (सं० त्रि०) १ नामक । २ प्रकाशक ।
 व्य० (सं० त्रि०) मुख्य व्यवहारविशिष्ट ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-दिश-वृच् । १ कपटी,
 छली । २ नामोल्लेखकारी ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-दिश-वत् । १ व्यवदेशार्थ,
 व्यवदेशके घोषय । २ उल्लेखघोषय ।
 व्य० (सं० पु०) वि-अप-नी-अप् । १ विनाश, वर-
 वादी । २ दवाग, छोड़ देना ।
 व्य० (सं० स्त्री०) वि-अप-नी-वृच् । दवाग, छोड़
 देना ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-नी-क्त । अपसारित, दूर
 किया हुआ ।
 व्य० (सं० स्त्री०) अपसारित, दूर करना, भङ्ग
 करना ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-नी-वम् । व्यपगमनयोग्य,
 छोड़ देने लायक ।
 व्य० (सं० त्रि०) मस्त्रकृदन्त, विना शिकार ।
 व्य० (सं० स्त्री०) निःशेष ।
 व्य० (सं० स्त्री०) १ प्रयाग । २ पलायन, भागना ।
 व्य० (सं० स्त्री०) वि-अप-वृ-अप् । १ अपवृत्त,
 वीया, इति इत्ययः । १ अपवृत्त, भ्रुकाना । २ छेदन,

काटना । ३ मूलाच्छेदन, जड़से काटना । ४ दूरीकरण,
 दूर कराना, हटाना । ५ भाषान पदुचाना, घोड़ा चढु-
 चाना ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-वृ-अप् । १ अपवृत्त,
 १ अपवृत्त, भ्रुकाना हुआ । २ छेदित, काटा हुआ ।
 ३ मूलाच्छेदित, जड़से काटा हुआ । ४ दूरीकरण, दूर
 किया हुआ, हटाया हुआ । ५ उखाड़ना, उखाड़ा हुआ ।
 व्य० (सं० पु०) १ विकृष्ट, भलग होना । २ दवाग,
 छोड़ना ।
 व्य० (सं० स्त्री०) वि-अप-वृ-अप् । १ दवाग ।
 २ दान । ३ विचारण ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-वृ-अप् । १ परित्यक्त,
 छोड़ा हुआ । २ दत्त, दिया हुआ । ३ निराहण, निषिद्ध ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-वृ-अप् । १ प्रत्यावर्त्तित ।
 व्य० (सं० स्त्री०) १ विनाश करना । २ दूर
 करना, हटाना ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-वृ-अप् । १ अपनीत ।
 २ भलीचल । ३ निरस्त । ४ निहृत । ५ दूरीकरण ।
 व्य० (सं० स्त्री०) वि-अप-मा-अप् । १ अपहृष्ट ।
 २ भलीकार । ३ विचारण । ४ निराकरण । ५ निहृत ।
 व्य० (सं० पु०) वि-अप-वृ-अप् । विनाश ।
 व्य० (सं० पु०) वि-अप-मा-अप् । आधय,
 भयलभ्यन ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-वृ-अप् । १ अपेक्षाकारी ।
 व्य० (सं० स्त्री०) वि-अप-वृ-अप् । १ आकांक्षा,
 स्पृहा । २ विशेष अनुरोध । ३ अपेक्षा ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-वृ-अप् । १ अपगत । २ दूरीकरण ।
 ३ प्रतिशब्द । ४ विरह ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-वृ-अप् । १ विपरीत । २
 पूर्णित । ३ तादृश ।
 व्य० (सं० पु०) वि-अप-वृ-अप् । विनाश, वर-
 वादी । "सुखदुःखव्योदहम्" (सुभाषण)
 व्य० (सं० त्रि०) विनाशके घोषय ।
 व्य० (सं० त्रि०) वि-अप-वृ-अप् । १ विनाश, वर-
 वादी ।

व्यभिचार (सं० पु०) वि-अभि-चर-घम्। १ कदाचार, क्रियाय, बद्धचलनी। २ भ्रष्टाचार, खराब चालचलन। ३ स्त्रीका परपुरुषसे अथवा पुरुषका परस्त्रीसे अनुचित सम्बन्ध, छिनाला। शास्त्रानुसार व्यभिचार विशेष पापजनक है।

“व्यभिचारस्तु मत्तुः। स्त्री लोके प्रान्थो विन्द्याताम्।

शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोमिष पीडयते ॥”

(मनु ५।१।१९)

जो स्त्री परपुरुषसे सम्भोग करती है, वह इस संसारमें निन्दनीय और मरने पर शृगालयोनिमें जन्म लेती है तथा तरह तरहके पापरोमिष आक्राम्त हो अत्यन्त कष्ट भोग करती है।

व्यभिचार स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये ही समान पापजनक है।

४ न्यायादि प्रसिद्ध हेतुदोषभेद। साध्यका अधिकरण मात्रमें हेतुका व्यवस्थान निषेधित होना ही संकृत है, क्योंकि, ऐसा होनेसे ही उसके द्वारा साध्यकी अनुमिति हो सकती है। जिस हेतुकी गति या सम्बन्ध अर्थात् अवस्थिति उभय रूपसे निषेधित नहीं है, जिसकी गति या सम्बन्ध सर्वतोमुखी है अर्थात् जो हेतु साध्यके अधिकरणमें और साध्याभावके अधिकरणमें भी समान रूपसे रहता है, उस हेतुके बलसे साध्यकी अनुमिति नहीं हो सकती। ऐसे हुए हेतुको स्वव्यभिचार नहीं करते।

व्यभिचारयम् (सं० त्रि०) व्यभिचार अस्त्वर्थे मत्तुप, मरुष्य प। व्यभिचारविशिष्ट, व्यभिचारयुक्त।

व्यभिचारिता (सं० स्त्री०) व्यभिचारिणी भावय, व्यभिचारित्त-तल-टाप्। व्यभिचारित्व, व्यभिचारीका भाव या धर्म।

व्यभिचारिन् (सं० पु०) व्यभिचरतीति वि-अभि-चर-णिनि। चतुर्विंशत् प्रकार शृङ्गार भावविशेष, चौतीस प्रकारके शृङ्गारभावमेंसे एक।

साहित्यदर्पणके मतसे यह व्यभिचारिभाव ३३ प्रकारका है, यथा निर्वेद, भावेषु, दैन्य, मद, अज्ञता, भीमा, मोह, विषोय, स्वप्न, अवहमार, गर्भ, मरण, कलसता, भ्रमर्ष, मित्रा, अश्लेष, भीतस्वुप, उन्माद, शङ्का, स्मृति,

मति, व्याधि, लास, लज्जा, हर्ष, अमूया, विषाद, घृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता और वितर्क।

साहित्यदर्पणमें इनमेंसे प्रत्येकका मित्र मित्र लक्षण दिया गया है। तत्राद् यच्च देखो।

(त्रि०) २ व्यभिचारविशिष्ट, व्यभिचार करनेवाला। ३ स्वमार्गच्युत। जो अपने मार्गसे भ्रष्ट हुआ है, उसे व्यभिचारी कहते हैं। ४ आगमाचारी।

(भागवत १।१।३८)

व्यभिचारिणी (सं० स्त्री०) व्यभिचरति वा वि-अभि-चर-णिनि, डोप्। परपुरुषगामिनी स्त्री, भ्रष्ट चारिणी। याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि जो स्त्री अपने पतिका त्याग कर इच्छापूर्वक दूसरे पुरुषका आश्रय लेती है, उसे व्यभिचारिणी कहते हैं। ऐसी भ्रष्टाचारिणीको भृत्याभरणदि अधिकारसे च्युत करना चाहिये, अलङ्कार पहननेको न देना चाहिये, जिससे केवल जीवन पालन कर सके, उतना ही आहार उसे देना उचित है। उसे बार बार धिक्कार देना और सयँदा जमीन पर सुलाना कराना चाहिये। ऐसी व्यभिचारिणी स्त्रीको अकारसे विरक्त करनेके लिये अपने घरमें ही रखना चाहिये।

स्त्रियोंको चन्द्रमाने शीघ्र प्रदान किया है, गर्भवन्ने मधुरभाषिता वी है तथा पायकने सभी वस्तुओंकी अपेक्षा उसे पवित्र बनाया है। अनयय स्त्रियां शक्ति पयित हैं। इन स्त्रियोंके मानस व्यभिचार होनेसे रजो-दर्शन द्वारा उसकी शुद्धि होती है। फिर यदि हीनवर्णके संसर्गसे यदि उसे गर्भ रत जाय अथवा यह शिष्ट संसर्गादि करे, तो उसे छोड़ देना ही उचित है।

(याज्ञवल्क्यसंहिता १।१००-१२)

शूद्र यदि बलपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी स्त्रीके साथ संभोग करे, और उससे यदि पुत्र सन्तान उत्पन्न न हो, तो वह स्त्री प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि लागू करती है। इनके सिवा दूसरोंकी शुद्धि नहीं होती।

व्यभिचारिणी स्त्री दान, उपास और प्रसादि जिस किसी पुण्य कर्मका अनुष्ठान क्यों न करे, वे सभी निष्फल होते हैं। व्यभिचारिणी स्त्री घनाधिकारिणी नहीं होती।

व्यभिहास (सं० पु०) विद्भू, उद्भ, मज्जाक।

व्यभिचार (सं० पु०) वि-अभि-चर-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घः ।
 व्याभिचार ।

याज्ञ (सं० त्रि०) मेषद्वयम् ।

व्यय (सं० पु०) वि-इ-अच् । १ अर्थावगम, विलसमु-
 रसार्ग, लक्ष् । २ नाश । ३ परित्याग । ४ क्षान ।
 ५ वृद्धस्वयन्वित्करण अर्थविशेष । (वृद्धस्वयन्वित् ८३६)
 ६ नागविशेष । (भारत १:२७:१६) (त्रि०) व्ययति
 गच्छतीति व्यय गती-अच् । ७ नभ्यर । (मनु १:१६)

(त्रि०) व्यय गती अच् । ८ लग्नसे वारहवां स्थान,
 व्ययस्थान । लग्न, धन, भ्राता, बंधु, पुत्र, कलत्र, मृत्यु,
 धर्म, कर्म, भाव और व्यय यही वारह स्थान हैं । लग्नसे
 इन सब स्थानोंका निर्णय करना होता है । जिसकी
 जो राशि लग्न है उसी राशिसे वारहवां राशि व्यय-
 स्थान कहलाती है ।

व्ययस्थानमें यदि शुभग्रह रहे, तो अशुभ और यदि
 अशुभ ग्रह रहे, तो शुभ होता है । (दीर्घिका)

व्याग, आदिभाग, अस्त, विवाह, दान, हत्यादि
 कार्य, व्यय, वित्तव्यय, मातृ-गिने, मातृलानो, युद्धमें
 विनाश और युद्धमें पराजय, इन सभी विषयोंके शुभा-
 शुभता विचार व्ययस्थानमें करना होता है ।

(शेषावस्थाविक्षा)

पद्योद्घासके मतमें भी व्याग, मोग, विवाह, दान,
 हृदिकर्म और समस्त व्यय विषयमें वृद्धि, इनके शुभाशुभ-
 का विचार व्ययस्थानमें करना होता है ।

सूर्य यदि पापग्रहयुक्त वा पापग्रह कर्तृ-रू-दृष्ट हो कर
 व्ययस्थानमें रहे, तो उत्तम सत्त्वशसम्भूत व्यक्ति भी
 मोक्षके बाहर होता है । फिर यह भी लिखा है, कि
 सूर्य यदि व्ययस्थानमें रहे, तो जातक सूर्य, कामुक, क्रूर
 चेष्टायुक्त, क्रुद्धिस्त शरीरधोक्ता, अल्पधनस्वप्न, जंघा-
 रोगविशिष्ट और वंशु होता है ।

चन्द्रके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य पद-पदमें अवि-
 भ्वासे और हृष्य होता है । यह चन्द्र यदि हृष्यवस्त्रके
 ही, तो जातक अति हृष्य होता है । किंतोंके मतानु-
 सार चन्द्रके व्ययस्थानमें रहनेसे जात-बालक दुबला
 पतला, शैवो, कौपी और निर्धन होता है । यह चन्द्र
 यदि अथने अथनमें वा पुषके अथनमें अथवा वृद्धस्वतिके

अथनमें ही, तो यह दाम्निष्ठ, दवागो' कर्मजो, चनवान्
 और सर्वदा मोच संसर्गमें बासक होता है ।

यह चन्द्र यदि व्ययस्थानस्थित हो तुद्गम ही, तो
 मानव धनाढ्य, अनेक स्त्रियोंके पति और पुत्रपुत्रादि
 सम्पन्न होते हैं । किन्तु उस चन्द्रके मोचस्थ, शीघ्र,
 शत्रु मृगामो और पापवृद्धगामो होनेसे मनुष्य बहुशो-
 युक्त और अथेय दुःखसम्पन्न होते हैं ।

मङ्गल और राहुके व्ययस्थानमें रहनेसे मानव पारा-
 सक्त होने तथा उनको भार्या व्याभिचारिणी होती है ।
 ऐसा व्यक्ति कदापि सुखी नहीं होता ।

बुधके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य विकलाङ्ग, लज्जा-
 शील, परस्त्री द्वारा चनवान्, वासनासक्त, पापी और
 कुदकी होते हैं ।

वृहस्पतिके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य सत्यधार्मि,
 दानी, शुचि, दुष्टजनपरित्यागी, अग्रमादो और साधु
 समायके होते हैं ।

शुक्रके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य प्रथम अथस्था-
 में रोगी, वीछे दुबला पतला, मलिन, हृदिकर्मका
 और अतिशय दाम्निष्ठ होते हैं ।

शनिके व्ययस्थानमें रहनेसे घञ्जल भार्यायुक्त, रोग-
 विशिष्ट, अल्प धनवान्, अथस्त दुःखी, जङ्गादिनमें मग-
 विशिष्ट, क्रूरमतिसम्पन्न, कृताङ्ग और सर्वदा पक्षिधमे
 निरत रहता है ।

राहुके व्ययस्थानमें रहनेसे घांहीन, मर्पदीन,
 दुःखित, पत्नीसुखरहित, विदेशवासी, दाम्निष्ठ और
 विद्वलनयनके होते हैं । (अंशविक्षाव्यय)

व्ययस्थानके अधिपति ग्रह द्वारा भी फल निरूपण
 करना होता है । व्ययस्थानके लग्नमें रहनेसे मानव अग-
 धार्मी, सतत विषदायन और अन्याय होता है । द्वितीय
 स्थानमें रहनेसे विविध प्रकारकी धन नाश, मृत्यु स्थान
 में रहनेसे मातृनाश और यात्रादिमें अशुभ, चतुर्थ स्थान
 में रहनेसे विनाश अशुभ तथा मानव विपुलममति-
 विनाशकारो, परपुत्रासो और मानव कथ्ययुक्त ; पञ्चम
 स्थानमें रहनेसे सगताके द्वेषे शोक और दुर्भाग्य,
 दुर्दुष्टि सपथवा मुद्विष्टिका सट्टीय तथा
 विद्यामके कारण मर्पकी हानि होती है ।

गृह स्थानमें रहनेसे जातक रोगार्त्ता और शत्रु द्वारा पीड़ित, सतम स्थानमें रहनेसे भार्यानाश या रग्नस्त्री, परिजनके मध्य कलह तथा व्यवसाय या मुकदमेमें अनिष्ट; अष्टम स्थानमें रहनेसे जातक क्षीण वैदविशिष्ट, प्राप्य सम्पत्तिसे वञ्चित और सर्वदा विपदाग्र, नवम स्थानमें रहनेसे विद्या और धर्मांगुशीलनमें प्रतिवन्धक और वाणिज्य या नौकायात्रामें अनिष्ट तथा मनुष्य भाग्यहीन, विपदाग्र, साधु धार्तिकोंका अप्रियभाजन; दशम स्थानमें रहनेसे अपमान और कार्यनाश, एकादश स्थानमें रहनेसे अर्थशाली, वस्तुनाश अथवा प्रतारक वस्तु द्वारा अनिष्ट होता है। द्वादश स्थानमें अर्थात् द्वादश स्थानमें रहनेसे जातक शत्रुप्रस्त, शोकसन्तप्त, भ्रष्टप्रस्त, कारासद, बधधमनरत अथवा निर्वासित होता है।

व्ययक (सं० लि०) व्ययकारक, व्यय करनेवाला ।
 व्ययकर (सं० लि०) करोतीति कृ-ट्, व्ययस्य करः । व्यय-कारक, व्यय करनेवाला ।
 व्ययगत (सं० लि०) व्ययं गतः । १ व्ययप्राप्त, प्राप्त । २ उपोत्थितोक्त व्ययस्थानगत । जो प्रद व्ययके स्थानमें रहता है, उसको व्ययगत कहते हैं ।
 व्ययन (सं० स्त्री०) वि-भय-क्युट् । विविध प्रकारसे जाना । (शूक् १०।१६।५)
 व्ययवत् (सं० लि०) व्ययोऽस्त्यस्य मत्पु- मस्यव । व्यययुक्त, व्यय करनेवाला । (वातवर्ष्य २।२७)
 व्ययशील (सं० लि०) व्यय पय शीलं यन्म्य । जो बहुत अधिक खर्च करता हो, खर्चोले स्वभायका, जाह-खर्च ।
 व्ययित (सं० लि०) व्यय क्त । कृतव्यय, खर्च किया हुआ ।
 व्ययिन् (सं० लि०) व्ययोऽस्तास्तीति व्यय इति । व्यय युक्त, खर्च करनेवाला, जाह-खर्च ।
 व्ययकं (सं० लि०) स्वर्णविरहित ।
 व्ययणं (सं० लि०) वि-भद-क । पीड़ित, विशेषरूपसे दुःखी ।
 व्ययर्थं (सं० लि०) विगतोऽर्थो यस्मात् । १ निरर्थक, जिसका कोई अर्थ या प्रयोजन न हो, बिना मतलबका । २ कर्षणस्य, जिसका कोई अर्थ या मतलब न हो । बिना माकेका । ४ लाभशून्य, जिसमें किसी प्रकारका लाभ न हो । (क्रि० वि०) ४ बिना किसी मतलबके, फाजूल, धोही ।
 व्ययर्थक (सं० लि०) व्ययर्थं स्वार्थं कन् । व्ययर्थ, निष्कल ।

व्ययर्थता (सं० स्त्री०) व्ययर्थस्य भावः तल्ल-टाप् । व्यर्थ होनेका भाव, निष्कलता, विफलता ।
 व्ययलीक (सं० स्त्री०) विशेषेण अलतोति वि-अल (भन्नीका-दयश्च । उप् ५।२५) इति कीकन् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः । १ यह अपराध जो कामके साधनके कारण किया जाय, कामज अपराध । २ घैलक्ष्ण्य, विलक्ष्णता, अद्भ-तता । ३ प्रतारणा, डाँट छपट, फटकार । ४ दुःख, कष्ट, तकलीफ । (देवयन्ती) ५ कपट, छल । (लि०) ६ अप्रिय, जो अच्छा न लगे । ७ अकार्य, बिना कामका । ८ कष्टदायक, दुःख देनेवाला । ९ अपरिचित, बिना ज्ञान पड़घानका । १० आश्चर्य, अद्भुत, अजीब । (पु०) ११ नागरविशेष, विट् । पर्याय—विट्, पट्-प्रभ, कामकेलि, विदूषक, पीठकेलि, पीठमर्द, भङ्गिल, छिदुर, विट् । (त्रिका०)
 व्ययकशा (सं० स्त्री०) विविध शाखायुक्त । "रोदतु पाक-दूर्शा व्ययकशा" (शूक् १०।१६।१२)
 व्ययकलन (सं० स्त्री०) वि-अव-कल-क्युट् । एक अंक या रकममेंसे दूसरा अंक या रकम घटाना, बाकी निकालना । (शीशावती)
 व्ययकलना (सं० स्त्री०) व्ययकलन-टाप् । व्ययकलन ।
 व्ययकलित (सं० लि०) वि-अव-कल-क । १ कृतव्यय-कलन, घटाया हुआ, वियोग किया हुआ । (स्त्री०) २ व्ययकलन, वियोग ।
 व्ययविराणा (सं० स्त्री०) संयोग, मिश्रण । (अन्तवि)
 व्ययकीर्णं (सं० लि०) वियुक्त, विमिश्रित ।
 व्ययच्छिन्न (सं० लि०) वि-अव-छिद्-क । १ विभिन्न, अलग, छुटा । २ विभक्त, विभाग करके अलग किया हुआ । ३ विशेषित । ४ मोचित । ५ निर्दोषित ।
 व्ययच्छेद (सं० स्त्री०) वि-अव-छिद्-घञ् । १ वाणमुक्ति, वाणमोचन । २ पृथक्पृथ, पार्थक्य, अलगाय । ३ भेद, विभाग, खण्ड । ४ विभेद । ५ विराम, उद्हरण । ६ निर्वासित छुटकारा । (भागवत० ५।२६।१२)
 व्ययच्छेदक (सं० लि०) व्ययच्छेदयति ण्युल् । व्ययच्छेद-कारी, जो व्ययच्छेद या अलग करता हो ।
 व्ययच्छेप (सं० लि०) वि-अव-छेद्-यध् । व्ययच्छेदार्थ, व्ययच्छेद या अलग करने लायक ।
 व्ययदान (सं० स्त्री०) परिजोषन, शंभकार ।

व्यवदेश (सं० पु०) व्यवदेश ।

व्यवधा (सं० स्त्री०) वि-भय-धा 'भातश्चोपसर्गो' इत्यष्ट-टाप् । व्यवधान, परदा ।

व्यवधातव्य (सं० त्रि०) वि-भय-धा-तव्य । व्यवधानीय, व्यवधानके योग्य ।

व्यवधान (सं० स्त्री०) वि-भय-धा क्युट् । १ भाच्छा-दन । पर्वीय—तिरोधान, अन्तर्हित, अपघारण, छदन, व्यवधा, अन्तर्धा, विधान, स्वगण, व्यवधि, अपिधान । २ भेद, विभाग, खण्ड । ३ पिच्छेद, अलग होना । ४ समाप्ति, फलम होना । (भागवत ५।२६।७७)

व्यवधानवत् (सं० लि०) व्यवधानमस्त्यस्य व्यवधान-मनुषु, मस्य च । व्यवधानविशिष्ट ।

व्यवधापक (सं० लि०) व्यवधातीति वि-भय-धा-प्बुल् । १ जो भाइमें जाता हो, छिपनेवाला, गायब होनेवाला । २ जो किसी को टकता या छिपाता हो, भाड़ करने या छिपानेवाला ।

व्यवधारण (सं० स्त्री०) वि-भय-घृ-णिच् क्युट् । अच्छी तरह अवधारण या निश्चय करना । "अर्थबलाद् व्यवधारण" (१६० उ०)

व्यवधि (सं० पु०) वि भय-धा- (उपसर्गः पोः किः) वा १।१।६२ इति किः । व्यवधान, परदा, ओट ।

(नीप २।१६)

व्यवधिवहन (सं० लि०) वि भय लभ-इति । विशेषरूप अवधिवहनविशिष्ट, अवधिवहनयुक्त ।

व्यवधय (सं० लि०) लिप् कर वर्णन किया हुआ । (पञ्चविंशतिसाध १५।७।१)

व्यवज्ञा (सं० पु०) १ परिश्रम । २ पीछेकी ओर गिरना या हटना । (शतपथब्रा०)

व्यवसर्ग (सं० पु०) १ विभाजन, किसी पदार्थके विभाग करनेकी क्रिया, बाँट । २ मुक्ति, छुटकारा ।

(भाष्यभा० ६।२।१२८)

व्यवसाय (सं० पु०) वि-भय-सो-घञ् । १ उपजीविका । तिमसे जो जीविका निर्वाह करता है, यह उसका व्यवसाय है ; जिसको जो जीविका है, शास्त्रमें वह निर्दिष्ट है, यह वर्ण यदि बनना व्यवसाय छोड़ कर दूसरेका व्यवसाय अपव्ययन करे, तो उसे अव्यवसायी

होना पड़ना है । आपसु कालमें व्यवसायका परिवर्तन किया जा सकता है, पर उसको जो व्यवसाय है, उन्हीं व्यवस्थाके अनुसार चलना होगा ।

२ अनुष्ठान । (रामायण ३।३०।५१) ३ निश्चय । (गीता २ अ०) ४ वरत । ५ उद्यम । ६ कल्पना, रचना । ७ व्यवसाय । ८ कार्य । ९ अभिप्राय । १० विष्णु । (भारत १।५।१५।५५) ११ पदादेश । (भारत १।३।७।२५) व्यवसायिन् (सं० त्रि०) व्यवसायोऽस्यास्तीति इति । १ जो किसी प्रकारका व्यवसाय करता हो, व्यवसाय करनेवाला । २ रोजगार करनेवाला, रोजगारी । ३ अनुष्ठान, जो किसी कार्यका अनुष्ठान करता हो ।

व्यवसित (सं० लि०) वि-भय-सो-क्त । १ प्रसारित । (भूशिमोग) २ अनुष्ठित, जिसका अनुष्ठान किया गया हो । ३ चोछित । ४ उद्यत, तत्पर । ५ विधोत्पन्न, निश्चित ।

व्यवसिति (सं० स्त्री०) वि-भय-सो-क्तिन् । व्यवसाय, रोजगार ।

व्यवस्था (सं० स्त्री०) वि-भय-स्था, भातश्चोपसर्गो इत्यष्ट-ततष्टाप् । १ शास्त्रनिरूपित विधि । शास्त्रमें जो सब विधान कहे गये हैं उन्हें शास्त्रीय व्यवस्था कहते हैं ।

प्रायश्चित्त या चाण्ड्रापण करनेमें शास्त्रय प्राप्ततमों लिखि हुई व्यवस्था ले कर उसीके अनुसार प्रायश्चित्त-सादि आचरण करने होते हैं । यदि कोई ब्राह्मण धर्म-शास्त्रका सिद्धान्त न जान कर व्यवस्था दे, तो जो व्यवस्थाके अनुसार कार्य करेंगे, वे पवित होंगे । विष्णु जिहोंने व्यवस्था ही है, यह वाप उसीको होगा । अन्वय धर्मशास्त्रका सिद्धान्त अच्छी तरह ज्ञान विना व्यवस्था देना उचित नहीं ।

"महात्मा धर्मशास्त्राधि भावभित्त" बरेरुपः ।

प्रायश्चित्तो भवेत् पूर्व तत्प्रायश्चित्तं मया भवेत् ।"

(मयस्त्रिभक्ति०)

२ नियम । (कथानिर्णय १०६।७१) ३ पृथक् पृथक् स्थापन, अलग अलग रखना । ४ विधित, विभागा ।

व्यवस्थान् (सं० वि०) वि-भय-स्था-गन् । १ व्यवस्थापक, व्यवस्था या स्मरण करनेवाला । २ शास्त्रीय व्यवस्था देनेवाला, जो यह बनलागा हो कि अनुक विवर में शास्त्रीकी क्या आज्ञा है ।

व्यवस्थान (सं० पत्नी०) वि-अव-स्था-ल्युट् । १ व्यव-स्थिति, उपस्थित या अस्थिर होना ।

“चातुर्वर्ष्यं व्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते ।

तं म्लेच्छदेशं जानीयादाय्यावर्त्तस्ततः परम् ॥”

(अमरटीकामें भरतपुत्र स्मृतिवचन)

(पु०) २ विष्णु । (भारत ३।१४६।१५)

व्यवस्थानप्रश्रुति (सं० स्त्री०) बीदोंके अनुसार एक बहुत बड़ी संख्याका नाम । शततिटिलम्मकी एक व्यवस्थानप्रश्रुति होती है । ललितविस्तरमें इस गणनाका विषय भी लिखा है,—सौ कोटीका एक अयुत, सौ अयुतका एक नियुत, सौ नियुतका एक कङ्कुर, सौ कङ्कुरका एक विवर, सौ विवरका एक अशोभ्य, सौ अशोभ्यका एक विवाद, सौ विवादका एक उत्सङ्ग, सौ उत्सङ्गका एक बहुल, सौ बहुलका एक नागवल, सौ नागवलका एक तिटिलम्म, सौ तिटिलम्मकी एक व्यवस्थानप्रश्रुति । (अक्षितविस्तर १६८ पु०)

व्यवस्थापक (सं० त्रि०) व्यवस्थापयति वि-अव-स्था-पिच्-ण्युल् । १ व्यवस्था देनेवाला । २ निवामक, जो किसी कार्य आदिका नियमपूर्वक चलता हो । २ प्रबन्ध-कर्त्ता, इन्तजामकार ।

व्यवस्थापकमण्डल (सं० पु०) यह समाज या समूह जिसे कानून कायदे बनाने और रद्द करनेका अधिकार प्राप्त हो ।

व्यवस्थापक (सं० पत्नी०) व्यवस्थापयिष्यकं पत्नं । यह पत्न जिसमें किसी विषयको शास्त्रीय व्यवस्था या यह विधान लिखा हो, कि अमुक विषयमें शास्त्रकी पया आहा या मत ही ।

व्यवस्थापकति (सं० स्त्री०) व्यवस्थायाः पदति प्रणाली । नियम-प्रणाली ।

व्यवस्थापन (सं० पत्नी०) वि-अव-स्था-पिच्-ण्युट् । १ व्यवस्थाप्रणयन, किसी विषयमें शास्त्रीय व्यवस्था देना या बतलाना । २ निर्धारण, निरूपण । ३ निर्दिशत-करण ।

व्यवस्थापनीय (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-पिच्-अनोयर् । व्यवस्थापन करनेके योग्य ।

व्यवस्थापिका परिपट्ट (सं० स्त्री०) यह समा या परि-

पट्ट जिसमें देगके लिये कानून कायदे आदि बनते हैं, देशके लिये कानून कायदे बनानेवाली समा, लेजिस्लेटिव एसेम्बली । ब्रिटिश भारत भरके लिये कानून कायदे बनानेवाली समा व्यवस्थापिका समा या लेजिस्लेटिव एसेम्बली कहलाती है । आज कल इसके सदस्योंकी संख्या १४३ है जिनमेंसे १०३ लोकनिर्वाचित और ४० सरकार द्वारा मनोनीत (२५ सरकारी और १५ गैर-सरकारी) सदस्य हैं ।

व्यवस्थापिका समा (सं० स्त्री०) यह समा जिसमें किसी प्रदेश विशेषके लिये कानून कायदे आदि बनने हैं, कानून कायदे बनानेवाली समा, लेजिस्लेटिव कांसिल ।

व्यवस्थापिन (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-पिच्-ण्यत् । १ स्थिरोक्त, जिनके विषयमें कुछ निश्चय या निरूपण किया गया हो । २ निर्धारित । ३ प्रकृतिप्रापित । ४ नियमपूर्वक स्थापित । ५ नियमित ।

व्यवस्थाप्य (सं० त्रि०) वि-अव-स्थापि-यन् । व्यवस्थापनाई, जो व्यवस्थापन करनेके योग्य हो ।

व्यवस्थित (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-क्त । व्यवस्थापित, जिसमें किसी प्रकारकी व्यवस्था या नियम हो, जो ठीक नियमके अनुसार हो, कायदेका ।

व्यवस्थिति (सं० स्त्री०) वि-अव-स्था-पितन् । १ व्यवस्थान, उपस्थित या स्थिर होना । २ व्यवस्था, इन्तजाम ।

व्यवहरण (सं० स्त्री०) वि-अव-ह-ण्युट् । अभियोगों आदिका नियमानुसार विचार, मुकद्दमीकी सुनाई या पैगी, व्यवहार ।

व्यवहरण्य (सं० पत्नी०) वि-अव-ह-ण्यत्वा । व्यवहार विलानेके उपयुक्त ।

व्यवहर्त्ता (सं० पु०) वि-अव-ह-ण्यच् । यह जो व्यवहार-नाटकके अनुसार किसी अभियोग आदिका विचार करता हो, न्यायकर्त्ता, जज ।

व्यवहार (सं० पु०) वि-अव-ह-ण्यच् । १ विवाद । २ मुकद्दमा । ३ न्याय । ४ पण । ५ स्थिति । ६ कर्म, क्रिया, कार्य । ७ मुकद्दमा ।

अध्यापन पद विधाद्विविधका नाम व्यवहार ।

दण्डशास्त्र का अर्थ—

“विनाशायैऽथ सन्देशे दण्डे” इति उच्यते ।

नानासन्देशदण्डेषु दण्डशास्त्र इति स्थितिः ॥”

विनाश नामार्थानुसंग है, सब शब्दका अर्थ संदिग्ध तथा द्वार शब्दका अर्थ हरण है, बहुतसे सन्देशोंका हरण होना है, इसीसे उमका व्यवहार कहते हैं। नाना विनाशविषयक सन्देश जिसके द्वारा हरण होता है, उमका नाम दण्डशास्त्र है। विनाश विषयके सम्बन्धमें जो कुछ भी सन्देश उपस्थित क्यों न हो, जिससे ये सब सन्देश दूर होते हैं, उसीका नाम दण्डशास्त्र है। भाषांतर क्रियाविपर्यवस्य ही दण्डशास्त्र है अर्थात् कहनेके बाद उमका कर्तव्य निर्णय करना ही दण्डशास्त्रका कार्य है। यानी और प्रतिवादीके बीच जो विनाश उपस्थित होता है, उसीको दण्डशास्त्र कहते हैं।

राजाको चाहिये, कि ये प्रीति और सोमरहित हो कर धर्मशास्त्रानुसार विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ स्वयं दण्डशास्त्र (मुकदमा) देखें अर्थात् भाग हो विचार करें। मोमांसा व्यवहरणदि तथा वेदशास्त्रमें समिश्र धर्मशास्त्र-विद्वद्, धार्मिक, सरवयादी तथा पक्षपातवर्जित ब्राह्मणको समासद्ध बनायें। राजा यदि किसी कार्यवस्तुतः स्वयं दण्डशास्त्र देख न सके, तो पूर्वोक्त गुणसम्पन्न समासद्धके साथ एक स्वयंभूम ब्राह्मणको दण्डशास्त्र देखनेमें नियुक्त करें। (दण्डशास्त्र) का अर्थानुसंग लिखा है,—

“अप्रार्थं पत्र न स्यात्तु प्रविश्य तत्र कोऽप्येव ।

देशं वा धर्मशास्त्रं दृष्ट्वा यत्नेन वदंति ॥”

अर्थात् उचित ब्राह्मणके आवाहनमें क्षत्रिय अथवा धर्मशास्त्र पेश नियुक्त करें, किन्तु शत्रुकी कदापि नियुक्त न करें।

स्मृति और आचार विरुद्ध पदार्थके अनुसार शत्रु-कर्मके उत्प्रेक्षित हो दण्डशास्त्र-दर्शकके निकट अपना दुःखदा रोनेकी व्यवहार कहते हैं अर्थात् एक शत्रुकी शत्रुता और आचारविरुद्ध विषयानुसार शत्रुकी कद पहचानाया, और उम उत्प्रेक्षित पदार्थके राजाके निकट इस बातको बतलाना की, इसीका नाम दण्डशास्त्र है। यही दण्डशास्त्रका विषय है। उम नियेदन और प्रतिवादीके सामने लिखनेका नाम भाषा वा प्रतिक है। वादीके

विनाश नियेदन करने अर्थात् मुकदमा चला करनेके समय उसने जो कदा था, प्रतिवादीके सामने यही लिखा जायगा तथा उसी लेखमें यथायोग्य वर्ष, मास, तिथि और चारादि, यादी प्रतिवादीकी जाति तथा उनके नाम लिखे रहेंगे।

भाषार्थ श्रवण कर प्रतिवादी जो कुछ करेगा वह सभी यादीके सामने लिखना पड़ेगा। इसके बाद यादी अपने पक्षका प्रमाण देगा। प्रमाण यदि ठीक होगा तो उसकी जीत और यदि ठीक नहीं-होगा, तो हार होगी।

दण्डशास्त्र चतुस्रपाद है अर्थात् चार भागोंमें विभक्त है, यथा—भाषापाद, उत्तरपाद, क्रियापाद और शास्त्र सिद्धपाद। ये सब भी पारिभाषिक शब्द हैं, इनका अर्थ भी इस प्रकार कहा गया है। भाषापाद अर्थों है अर्थात् वादीने जो कुछ कहा है, प्रतिवादीके सामने और यही लिखना होगा, इसीको भाषापाद कहते हैं। भाषार्थ सुननेके बाद प्रतिवादी जो करेगा, यादीके सामने वह कुछ लिखना पड़ेगा। यही उत्तरपाद है। भाषापाद और उत्तरपाद इन दोनोंको भाषा और जवाब कहते हैं। यादी उसी समय जो प्रमाण लिखायेगा उसीका नाम क्रियापाद है। प्रमाण ठीक होने पर अवलाम अथवा पराजय, यही साध्यसिद्धिपाद है। यही चतुस्रपाद दण्डशास्त्र है।

जब तक अपने ऊपर लगाये गये दोषको एक मोमांसा न हो जाये, तब तक और मोमांसा हो जाने पर भी दूसरे यदि यादीके न म पर कोई अनियोग लगाये, तो जब तक उस अनियोगका रोग न हो लेगा, तब तक प्रतिवादी यादीके नाम पठता अनियोग नहीं भा सकता। फिर प्रतिवादी भाषार्थ सुन कर जो उत्तर देगा वह एक दूसरेके विरुद्ध न देना चाहिये।

यद साधारण नियम है। किन्तु कुछ विशेषण पद हैं, कि याच्यपाद (मांकीपरीक्षा), दण्डपाद (मारातारी), शत्रु (विप शत्रुदि शत्रु प्राणनाशदि इत सब स्थानोंमें पठता अनियोग लाया जा सकता है।

अनियुक्त पदार्थके अनियोग अथवा दण्डशास्त्रके बाद

यादी यदि साक्षी आदि द्वारा अप्रत्यापित अभियोगको प्रमाणित करा दे, तो उक्त अभियुक्त व्यक्ति यादीका कथित घन यादीको तथा उतना ही घन राजाको दण्ड-स्वरूप देगा। फिर यादी यदि उसे प्रमाणित न कर सके, तो मिथ्याभियोगी यादी अपने उल्लिखित घनका दूना देगा।

साहस, चोरी, याकूपाकरण, दण्डवारण्य तथा दुघारिन गाय आदि द्वारा लाये गये अभियोग, पातकाभियोग और प्राणनाश तथा घनक्षतिकी सम्भावना होने पर, कुलखीके चरित्र घटित तथा दासोंके स्वयं घटित अभियोग पर प्रतिवादीको चाहिये, कि भावार्थ सुननेके बाद ही यह तुरत उत्तर दे दे।

विचारक और सम्पगण यादी प्रतिवादीदुष्ट हैं या नहीं उस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। जो एक स्वानमें स्थिर नहीं रह सकता, जो होंड चाटता है, जिसके ललाटेसे पसोना छूटता है, मुँह फोका पड़ जाता है, कण्ठस्वर क्षीण तथा घट हो जाता है, जो पूर्वापर विरुद्ध बहुतसी बातें कहता है, मीठा बचन नहीं कह सकता, ऐसे यादिकी दुष्ट यथास्तु दोगी सम्भन्ना होगा।

भावार्थ श्रवणके बाद प्रतिवादी जो कहेगा, यह सभी यादीके सामने लिखना पड़ेगा। इसके बाद यादी साक्षी आदि द्वारा भात्मवशता समर्थन करेगा। पीछे प्रतिवादीके साक्षी आदि विचारक सम्बन्धके साथ कर्त्तव्य विचारण करें।

मत्त, उमात्त, पीड़ित, व्यसनासक्त, बालक, मोत, मगरादिविचर तथा सम्बन्धशून्य व्यक्ति जो व्यवहार या मुकद्दमा चला करेगा, यह असिद्ध है।

यल या भवनिश्चय, खोखल, निगाकालरत, गृहस्थवन्तरत, प्रामवहिर्गृहृत तथा शून्यरत व्यवहार श्रेष्ठ यादिके द्वारा दूष्ट होने पर भी परिवर्तित होगा।

तपोनिष्ठ, दानशील, सर्वशोच, सत्यवादी, धर्मप्रधान, सरलस्वभाव, पुत्रवान्, सम्यक्तिनाली, यथासम्भव ध्यानस्मार्त्त नित्य नैमित्तिक क्रमोन्मुखायी तथा पायदस्ताका सजाति या सवर्ण, येम कमसे कम तीन साक्षी देने होंगे। सजाति या सवर्ण साक्षी नहीं मिलने

पर सभी जातिके, सभी वर्णके व्यक्ति साक्षी हो सकते हैं।

दोनों पक्षसे गवाही लेने पर जिस पक्षमें अधिक आदमी रहेंगे उसी पक्षको वात प्राप्त होगा। दोनों पक्षमें समान आदमी रहने पर गुणवान् यादिकोंको और दोनों पक्षमें समान गुणवान्के रहने पर जो अधिक गुणवान् हैं उन्हींको वात प्राप्त करना होगा। साक्षिगण जिसको लिपो प्रतिष्ठाकी सत्य उद्धारायण, उसकी जात और जिसकी प्रतिष्ठाकी सत्य नहीं उद्धारायण, उसकी हार होती है।

कुछ साक्षियोंके इस प्रकार कष्ट देने पर भी यदि अल्प पक्षोप वा सपक्षीय अपरापर अत्यन्त गुणवान् व्यक्ति या बहुतसे आदमी दूसरी तरहकी गवाही दे, तो पूर्व साक्षिगण कूटसाक्षियोंके प्रत्येक व्यक्तिकी इस विवादापराजित व्यक्तिको जो दण्ड मिलेगा उसका दूना दण्ड मिलना चाहिये। ब्राह्मण यदि कूटसाक्षी हों, तो राजा उन्हे राखसे निकाल दे।

पहले साक्ष्यदान स्वीकार करके पीछे यह यदि न दे, तो विचारमें पराजित व्यक्तिको जो दण्ड मिलेगा, उससे दूना दण्ड उसको देना पड़ेगा। ब्राह्मणका दण्ड निर्वासन कहा गया है। जिस विचारमें सभी बात कहने पर ब्रह्मचारोको प्राणदण्ड मिलता हो, यहाँ साक्षी झूठी बात कह सकता है। किन्तु द्विज साक्षिगण झूठ बोलनेसे जो पाप होगा, उस पापसे बचनेके लिये सारस्वत चरु निर्वापन करेंगे। विचारकको इसी प्रकार विचारकार्य करना चाहिये। (यादवकर्मवर्हिता २ व ०)

व्यवहार अठारह प्रकारके हैं, यथा—१ श्रयदान, २ निशेष, ३ श्वाभियुक्त, ४ सम्भूयसमुत्पान, ५ दना-प्रादानिक, ६ घेतनादान, ७ सम्युत्पत्तिक्रम, ८ क्रय-विक्रयानुशय, ९ स्वामिपालविवादा, १० सीमाविवाद, ११ याकूपाकरण, १२ दण्डवारण्य, १३ स्तेय, १४ साहस, १५ खोसप्रहण, १६ विनाय, १७ घृत, १८ भाहव। इनमेंसे कोई एक विषय ले कर यदि विवाद चला हो और राजाके पास इसकी नालिग की जाय, तो राजाको चाहिये कि वे उसका साक्षी आदि ले कर शारदासुमार विचार करें। प्रत्येक व्यवहारका विषय उन्हीं सब यादीमें देखो।

इन अट्टारह विषयोंको ले कर प्रायः विवाद हुआ करता है। इन सब विषयोंका विवाद उचिततः होने पर राजाके आदिपुत्र, कि वे लोकनिश्चितिके लिये शारदतर्षणीका भाग्य करके ये सब निश्चय करें।

राजा यदि अपने किसी मन्त्रिवाय कारणसे ये सब कार्य न देना सक्तने हों, तो ये विद्वान् ब्राह्मणको उस कार्यमें नियुक्त करें। ये विद्वान् ब्राह्मण तोम सम्बन्धिके साथ धर्माधिकरण-समामे प्रवेग कर उपविष्ट या उचिधन भागमें कार्य करेंगे।

जिस समामे अक्षु, पुत्रु और साधुदेहिता जैसे तीन सम्ब ब्राह्मण तथा राजपनिनिधि रहते हों उतमे ब्राह्मणमा करने हैं। यद्यत्तौसे परिदूत समामे जिससे अभावा विचार होने न पाये, सम्भगणको पैसा हो करना चाहिये। समामे न जाय घट अच्छा पर यहाँ जा कर अभावा विचार करना बिलकुल निविद्ध है। उपनिधन रह कर शुप रहनेसे या भूट बोलनेसे पापभागे होना पटना है।

विचाररुके समामे ही जहाँ अघमें द्वारा धर्म और मिथ्या द्वारा सत्य नष्ट होता है यहाँ विचारकगण ही नष्ट होने हैं। जो रघुपिन धर्मको नष्ट करता है, धर्म ही उसको नष्ट कर डालता है। धर्मको रक्षा करनेसे धर्म रक्षा करता है। अतएव धर्म किमो भी प्रकार अतिकमणोप नहीं है।

समो कामताभीतो देगे हैं, इस कारण ज्ञानमें धर्मका वृष नाम रखा गया है। जो ण्यपिन उग धर्मको 'अने' अघान् निवारण करता है, यही यथाधर्म वृषन है, ज्ञातिधामक वृषन वृषन नहीं है, धर्म ही जोगका पत्रमात सुदुदु है। मृत्युके बाद समो नष्ट हो जाता है, पर धर्म ही साथ साथ जाना है।

अतएव विचाररुके आदिपुत्र कि ये धर्मके प्रति विशेष लक्ष्य रखें, जिससे अभावा विचार न हो पशो करें। अभावा विचार करनेसे जो पाप होता है, उनके पार भागमें एक भाग मिथ्यामिथेयोंकी प्राप्त होता है। मिथ्या साथी एक भाग, समो सभासमु एक भाग तथा राजा मो एक भाग पाते हैं। इस कारण बड़े साधवताको ही विचार करना कर्करव है। जहाँ अभावाविचार होता

है, पापों उपयुक्त रहए जाता है, यहाँ राजा निभाए रहने है, सम्भगण मो पापयुक्त होते हैं। पाप केवल पाप करनेवालेकी ही होता है।

राजा धर्मसन पर बैठ कर सम्यक् भाष्यारित देद और एकाग्रचित्त हो लोकपालोंको प्रणाम कर विचारदि कार्य नारम कर दे। राजपनिनिधिको मो इसी प्रकार विचार करना होगा। धर्म और अनर्थ दोनों ही समझ कर धर्म और अघर्मके प्रति विशेषरूपसे दृष्टि रखने हुए ब्राह्मणादि वर्णक्रमसे धार्म प्रतियारुके समो कार्य देखेंगे। पहले धारा चिह्न द्वारा उनका मनोगत भाव जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। उनके स्वर, वर्ण, रङ्गित, आकार, चक्षु और चेष्टा इन सबके प्रति लक्ष्य रचना मो भावश्यक है। साकार, रङ्गित, गति, चेष्टा, कथावाचां और नेत्रमुक्तविचार द्वारा मनोगतभाव जाना जा सकता है।

विनु-मातृविहीन अनाथ बालकका धन राजा तब तक अपने निरीक्षणमें रखें, जब तक वह बालीय न हो जाय। यद्यप्य स्त्री, परिधनता स्त्री अर्थात् यह स्त्री तिमके स्वामीने दूसरा विवाह कर लिया है और उने मिक' नामे पदनेका पत्रा देना है, पुत्रहीन, प्रीपिन-भर्तृका तथा जिस स्त्रीके सपिण्ठादि कोई अतिमायक नहीं है तथा मातृयी विधवा और रोगिणी स्त्री, इनके धनकी रक्षा अनाथ बालकके धनकी तरह करनी चाहिये। यदि उनके जीवित रहने ही सपिण्ठगण उक्त धन ले लें, तो धार्मिक राजाके चाहिये, कि ये वीर-दृष्टसे उन्हें दण्डित करें।

अज्ञान स्वामीका धन मिलने पर राजा इस बातको सर्वत घोषणा कर तीन वर्ष तक अपने सज्जामे रखें। तीन वर्षके भीतर धनस्वामी आ जाये, तो वह धन उमें मिलेगा। तीन वर्ष बीतने पर राजा उग धनकी अपये काममें ला सकते हैं। जो व्यक्ति उत धनकी अथवा रचना कर दान करता है, राजा उममें उपयुक्त प्रमाण ले कर यह धन उमें दे दे। यदि कोई भूट द्वारा बड़े और उपयुक्त प्रमाण न दे सके, तो राजा उसकी उत द्रव्यका उपयोगी दृष्ट देखेंगे।

धर्मियों, जिस देनका जो धर्म है, सुदररण्याति

प्रचलित है, मधुच जो घेद्विकरु नहो' है, ज्ञानवधुधर्म, श्रेणीधर्म और जिस कुलका जो धर्म अनादि कालसे चला आता है वह कुलधर्म, इन सब धर्मोंके प्रति विशेष दृष्टि रख कर राजा अपने धर्मनियमको व्यवस्था दे' तथा विचारकालमें इन सबके प्रति विशेष दृष्टि रखे ।

धनके लोभसे एक दूसरेमें विवाद खड़ा कर देना या दूसरेके प्राण्य धर्ममें लोभ करना राजा या राज-पुत्रका कर्तव्य नहीं है । राजा व्यवहार विधिमें आस्थावान् हो कर देण, पात्र, काल आदिके ऊपर लक्ष्य रख कर सत्य और धर्मका अयनभ्रम करने हुए विचार करें । साधुओं और धार्मिक ब्राह्मणोंमें जैसा आचरण किया है, वह यदि देण, कुल और जातिधर्मके विकरु न हो, तो उसी मतकी व्यवस्था दे' ।

उत्तमर्ण अथमर्णसे यदि रूपयेके लिये प्रार्थना करे तो राजा साक्षी और लेखादि द्वारा प्रदत्त धनको प्रमाणित करके अथमर्णसे वह धन दिला दे' । उत्तमर्ण जिस जिस उपाय द्वारा अथमर्णसे अपना प्राण्य पा सकते हैं, राजा उन सब उपायोंका अनुमोदन करके उत्तमर्णको उसका प्राण्य दिलावे ।

यदि अथमर्ण कहे, कि मैंने तुम्हारा नहीं लिया और उत्तमर्ण साक्षी और लेखादि द्वारा उसे प्रमाणित कर सकें, तो राजा उत्तमर्णको धन दिला देवे और अथमर्णको इसके लिये शक्तिके अनुसार दण्ड देवे ।

विचाररूपधर्ममें विचारक अर्थात् प्रत्यर्थीके सामने साक्षियोंको खड़ा करके प्रिय वचनसे कहे, 'तुम धार्मिक प्रतिपादोंके उपासक विषयमें जो जानते हो वह सब सच कहो । क्योंकि, तुम्हें' इस विषयमें साक्ष्य माना गया है ।' साक्ष्यरूपधर्ममें सत्यवचन कहनेसे परलोकमें उत्तमगति और इस लोकमें अनुत्तमा कीर्ति प्राप्त होती है । प्रजा भी सत्य वचनको पूजा करते हैं । साक्ष्य रूपधर्ममें झूठी बात कहनेसे वह वचनपानसे बर हो सी जन्म तक कष्ट पाता है । अतएव सत्यप्रा सचची गवाही देनी चाहिये । सच वचन कहनेसे साक्षी पापसे मुक्त होता है । सत्य द्वारा धर्मकी वृद्धि होती है ।

साक्षी सत्य देखो ।

विचारक शुचि हो कर पुराणकालमें देवताप्रतिमाके

समीप अथवा ब्राह्मणके समीप साक्षियोंमेंसे ब्राह्मणको 'कहे', क्षत्रियको 'सच सच कहे', वैश्यको 'गो, योज और सुवर्ण द्वारा शपथ करके कहे' तथा शूद्रको 'सना पातकके द्वारा शपथ था कर कहे' इस प्रकार पूछे ।

ब्राह्मणद्वेषता, स्त्रीद्वेषता, बालकद्वेषता, मित्रद्वेषी और छत्रप्राके लिये जो जो लोक शास्त्रमें कहा गया है साक्ष्य-रूपधर्ममें झूठ कहनेसे उन्हीं सब लोकोंकी प्राप्ति होगी है । साक्षीको इस प्रकार झूठी गवाही देनेका दोष दिव्यजाले हुए कहे, 'तुम झूठ न कहे, जो कुछ अपनी भाँवोंसे देखा है या कानोंसे सुना है, वही कहे ।

गौरक्षक, याज्ञिक्यजीवी, पाचक, नर्त्तिकादि दास-कर्मजीवो और वृद्धिजीवी ब्राह्मणको शूद्रके समान साक्ष्यप्रदान करें । स्थान विशेषमें यह है, कि जिसमें एक तरहसे ज्ञान कर धर्मबुद्धि द्वारा अन्य प्रकारसे कहे, तो उसकी स्वर्गहानि नहीं होती । ऐसे पापवका नाम देववाप्य है । जहाँ सत्य वचन कहनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी प्रशंसा हो, वहाँ झूठी बात कही जा सकती है । ऐसे स्थानमें मित्रपाकधन सत्यसे बढ़ कर है । जो इस प्रकार असत्य वचन कहते हैं, उन्हीं पापशक्तिके लिये चण्डाल करके घाम-ध्वेयता सरस्वतीके उद्देशसे याग अथवा यजुर्वेदीय कुष्माण्डमन्त्र द्वारा पण्डितस्थापन कर क्षाम करना चाहिये ।

आपसमें भगद्वेष्याले दो पक्षमें यदि किसी पक्षका साक्षी न रहे तो विचारक दोनों पक्षको शपथ चिला कर सत्यनिर्णय करें । सत्य और देवतामोर्ति मातृमण्डिके लिये शपथ किया था । यज्ञिष्ठ आदिने भी मातृमण्डिके लिये वैषयनके पुत्र सुदासराजके निकट शपथ पाया था । शानी पुत्र छोटीसां बातके लिये पृथा शपथ न करें, कबनेसे इस लोकमें अकीर्ति और परलोकमें नरक होता है ।

ब्राह्मणको सत्य द्वारा, क्षत्रियको उसके हाथों घोड़े और आयुध द्वारा, वैश्यको उसके गो, योज या काञ्चन द्वारा तथा शूद्रको समीप वाक्य द्वारा शपथ करना होता है । मधुच शूद्रका अन्निररीक्षा, जलपरीक्षा या स्त्रीपुत्रादि के मन्त्रक दुग्धा कर परीक्षा करावे' । जलनी हुई घाम

इन सत्कारद विधियोंको ले कर प्रायः विवाद हुआ करता है। इन सब विधियोंका विवाद उपस्थित होने पर राजाको चाहिये, कि ये लोकाधिकारिक विधिये नारयणधर्मका साक्ष्य करने के लिये सिद्धयत्न करें।

राजा यदि अपने किसी अनिष्टार्थ कारणसे ये सब कार्यों न देन सक्तने हो, तो ये विद्वान् प्राज्ञजनको उन कार्योंमें नियुक्त करें। ये विद्वान् प्राज्ञजन गोन सम्झोंके साथ धर्माधिकार्य-समामे प्रथम कर उपस्थित या उत्थित भागमें कार्यों करेंगे।

जिस समामे प्रकृ, पशु, भीर सामयेद्वेषता येमें गोन मध्य प्राज्ञजन तथा राजप्रतिनिधि रहने ही उभे प्रत्यक्षमा कहने हैं। 'यिष्ठांमोसि परित्यज समामे जिससे भगवाय विचार होने न पाये, सम्भवजनको घेसा ही करता चाहिये। समामे न जाय यह अच्छा पर यहाँ जा कर भगवाय विचार करना बिलकुल निषिद्ध है। उपस्थित रह कर घुप रहनेमें या झूठ बोलेनेमें पापगामी होना पड़ता है।

विचारकके सामने दो जहाँ भयमें द्वारा धर्म और सिद्ध्या द्वारा मरव नष्ट होता है यहाँ विचारकजन ही नष्ट होने हैं। जो व्यक्ति धर्मको नष्ट करता है, धर्म ही उसको नष्ट कर डालता है। धर्मको रक्षा करनेसे धर्म रक्षा करता है। भयव्य धर्म किसी भी प्रकार अनिकम-लोच नहीं है।

सर्वा कामनाभीही देने हैं, इस कारण जात्यमें धर्मका पूव नाम रखा गया है। जो व्यक्ति उन धर्मको 'सत्य' समर्थान् निवारण करता है, यही धर्मार्थमें वृत्तन है, जानियामक वृत्तन धर्म नष्ट है, धर्म ही जोषका एकमात्र मुद्द है। मृत्युके बाद सर्वा नष्ट हो जाता है, एक धर्म ही भाव भाव ज्ञाना है।

भयव्य विचारकको चाहिये कि ये धर्मके प्रति विशेष लक्ष्य रहने, जिससे भगवाय विचार न हो। यही करें। भगवाय विचार करनेमें जो पाप होता है, उसके बाद भागमें एक भाग सिद्ध्यानिधेयोंके प्राप्त होता है। सिद्ध्या यहाँके एक भाग, सभी समानात् एक भाग तथा राजा भी एक भाग पावे है। इस कारण बड़े भावधर्मो-के विचार करना बर्जित है। जहाँ भगवाय विचार होना

है, पापों उपयुक्त दृष्ट पाता है, यही राजा निश्चय रहने है, सम्भवजन को पापयुक्त होने हैं। पाप केवल पाप करनेवालेको ही होता है।

राजा धर्मार्थन पर बैठ कर सम्पक्, भाग्यारित रह भीर वहाप्रथिक हो। लोकपालोंको प्रणाम कर विचारान्ति बाधे मारना कर दें। राजप्रतिनिधिकों को इसी प्रकार विचार करना होगा। अर्थात् भीर समर्थ होने ही समाम कर धर्म और भयार्थके प्रति विशेषकर ही दृष्टि रखने हुए प्राज्ञणादि वर्णक्रमसे पाकी प्रतिपादोंके समीं कार्यों देंगे। पहले पाप विद्द द्वारा उनका मने-गन भाव जाननेको चेष्टा करनी चाहिये। उनके स्वर, वर्ण, इङ्गित, साकार, पशु भीर चेष्टा इन सबके प्रति लक्ष्य रखना भी भावयवक है। साकार, इङ्गित, गति, चेष्टा, कथावाचां भीर नेत्रमुन्वितकार द्वारा मनीमनभाव ज्ञाना जा सकता है।

विष्-मातृविहीन भनाय बाधकता धन राजा तब तक अपने निरोक्षणमें रहें, जब तक यह बाधोग न हो जाय। यद्यपि स्वो, परित्यक्ता स्वो मर्थात् यह स्वो जिसके स्वामीने दूरता विवाद कर लिया है और उसे मिके स्वामिने पदनेका गवां देना है, पुण्यहीन, प्रोपिन-मर्थात् तथा जिस स्वोंके सविष्टादि कर्म समिमायक नहीं है तथा साध्यो विषया भीर शैगिजी स्वो, इनके धनकी रक्षा भनाय बाधकके धनकी मरह करनी चाहिये। यदि उनके प्रोपिन रहने ही सविष्टागत उत्त धन ले लें, तो धार्मिक राजाको चाहिये, कि ये भीर-दृष्टरथे नष्टों दृष्टित करें।

समाम स्वामीका धन मिलने पर राजा इस बातकी सर्वांत घोषणा कर तीन वर्ष तक अपने मन्त्रालयमें रहें। तीन वर्षके भीतर धनस्वामिं भ्रा जाये, तो यह धन उभे मिलेगा। तीन वर्ष बीतने पर राजा उस धनकी अपने काममें ला सकते हैं। जो स्थिति उस धनकी मरवा बगला कर दात करता है, राजा उसमें उपयुक्त प्रमाण ले कर यह धन उभे दे दें। यदि कोई झूठ दावा करे और उपयुक्त प्रमाण न दे सके, तो राजा उसको उभे दण्डका उपयोगी दृष्ट देंगे।

वर्णधर्म, जिस देशका जो धर्म है, मुद्दपरन्तगामे

प्रचलित है, मधच जो वेदविरुद्ध नहीं है, जानवधर्मा, श्रेणीधर्म और जिम कुलका जो धर्म बनादि कालसे चला जाता है यह कुलधर्म, इन सब धर्मोंके प्रति विशेष दृष्टि रख कर राजा अपने धर्मनियमकी व्यवस्था दे तथा विचारकालमें इन सबके प्रति विशेष दृष्टि रखे ।

धनके लोभसे एक दूसरेमें विवाद खड़ा कर देना या दूसरेके प्राप्य धर्ममें लोभ करता राजा या राज-पुरुषका कर्तव्य नहीं है । राजा व्यवहार विधिमें आस्थापान हो कर देश, पाक, काल आदिके ऊपर लक्ष्य रख कर सत्य और धर्मका अग्रजम्बन करने हुए विचार करें । साधुओं और धार्मिक ब्राह्मणोंमें जैसा आचरण किया है, वह यदि देश, कुल और जातिधर्मोंके विरुद्ध न हो, तो उसी मतकी व्यवस्था दे ।

उत्तमर्ण अधमर्णसे यदि रूपयेके लिये प्रार्थना करे तो राजा साक्षी और लेख्यादि द्वारा प्रदत्त धनको प्रमाणित करके अधमर्णसे वह धन दिला दे । उत्तमर्ण जिस जिस उपाय द्वारा अधमर्णसे अपना प्राप्य पा सकते हैं, राजा उन सब उपायोंका अनुमोदन करके उत्तमर्णको उसका प्राप्य दिलावे ।

यदि अधमर्ण कहे, कि मैंने तुम्हारा नहीं लिया और उत्तमर्ण साक्षी और लेख्यादि द्वारा उसे प्रमाणित कर सके, तो राजा उत्तमर्णको धन दिला देवे और अधमर्णको इसके लिये शपथके अनुसार दण्ड देवे ।

विचारस्थलमें विचारक अर्थात् प्रत्यर्थोंके सामने साक्षियोंको खड़ा करके प्रिय पचनसे कहे, 'तुम वादी-प्रतिवादीके उपस्थित विषयमें जो जानते हो वह सब सच कहो । क्योंकि, तुम्हें इस विषयमें साक्ष्य माला गया है ।' साक्ष्यस्थलमें सत्यपचन कहनेसे परलोकमें उत्तमगति और इस लोकमें अनुत्तमा कीर्ति प्राप्त होती है । प्रह्ला भी सत्य पचनकी पूजा करते हैं । साक्ष्य स्थलमें झूठी बात कहनेसे वह धरुणपापसे बद्ध हो सी जन्म तक कष्ट पाता है । अतएव सर्वदा सचची गवाही देने चाहिये । सच पचन कहनेसे साक्षी पापसे मुक्त होता है । सत्य द्वारा धर्मकी वृद्धि होती है ।

वाग्नी यद्व देवी ।

विचारक शुचि हो कर पूर्वाह्नकालमें देवताप्रतिमाके

समीप मधवा ब्राह्मणके समीप साक्षियोंमेंसे ब्राह्मणको 'कहे', क्षत्रियको 'सब सन कहे', वैश्यको 'गो, पीज और सुवर्ण द्वारा शपथ करके कहे' तथा शूद्रको 'सना पातकके द्वारा शपथ वा कर कहे' इस प्रकार पूजे ।

ब्राह्मणहता, खोहता, बालकहता, मिलाद्रीही और हतव्राके लिये जो जो लोक शास्त्रमें कहा गया है साक्ष्य-स्थलमें झूठ करनेसे उन्हीं सब लोकोंको प्राप्ति होता है । साक्षीको इस प्रकार झूठी गवाही देनेका दोष विपयते हुए कहे, 'तुम झूठ न कहे, जो कुछ अपनी भाँवोंसे देखा है या कानोंसे सुना है, यही कहे ।

गौरक्षक, पाणिउपजीवी, पाचक, नर्त्तकादि वास-कर्मजीवी और वृद्धिजीवी ब्राह्मणको शूद्रके समान साक्ष्यप्रदान करें । स्थान विशेषमें यह है, कि जिसमें एक तरहसे ज्ञान कर धर्मबुद्धि द्वारा धन्य प्रकारसे कहे, तो उसकी स्वर्गदानि नहीं होती । ऐसे धान्यका नाम दे धान्यक है । जहाँ सत्य पचन कहनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी प्राणरक्षा हो, वहाँ झूठी बात कही जा सकती है । ऐसे स्थलमें मिथ्याकथन सत्यसे बढ़ कर है । जो इस प्रकार असत्य पचन कहते हैं, उन्हीं पापशान्तिके लिये चण्डाक करके याग-देवता सरस्वतीके उद्देशसे याग मधवा यजुर्वेदीय कुम्भारहताम्य द्वारा यज्ञिस्थापन कर होम करना चाहिये ।

यापसमें भगवद्देवाले दो पक्षमें यदि किसी पक्षका साक्षी न रहे तो विचारक दोनों पक्षको शपथ खिला कर सत्यनिर्णय करें । सत्य और देवताओंने मातमशुद्धिके लिये शपथ किया था । यद्यपि ऋषिने भी मातमशुद्धिके लिये वैषयनके पुत्र सुदासराजके निकट शपथ खाया था । छान्नी पुरुष छोटीसी बातके लिये वृथा शपथ न करें, करनेसे इस लोकमें अकीर्ति और परलोकमें नरक होता है ।

ब्राह्मणको सत्य द्वारा, क्षत्रियको उसके हाथों घोड़े और आशुप द्वारा, वैश्यको उसके गो पीज या काशुन द्वारा तथा शूद्रको रामी पातक द्वारा शपथ करना होता है । मधवा शूद्रको अग्निरोशा, जलपरीक्षा या स्त्रीपुत्रादि के मस्तक छुना कर परीक्षा करावे । जलती हुई माग

यादीके सामने उसे लिख डाले । इसके बाद साक्षी द्वारा उक्त वाक्यका सत्यासत्य निरूपण करे । यदि साक्षी न रहे, तो द्रव्य, विष और अग्नि आदिकी परीक्षा द्वारा उक्त विषय प्रमाणित करें । इसी प्रकार प्रमाण प्रयोग ले कर फल निरूपण करना होता है । यदि प्रतिवादी दण्डनीय हो, तो उसे दण्ड और दण्डनीय न हो, तो छोट दे । अभियोग यदि मिट्या साबित हो, तो वहां मिट्या अभियोग लगानेवाला भी दण्डनीय होगा ।

प्रतिवादी वादीकी गालिशका जो अंश देना है, उसे उत्तरपाद, साक्षी ले कर विचारकार्यको क्रियापाद और विचारफलको निर्णयपाद कहते हैं । (व्यवहारतत्त्व) व्यवहारके निश्चयकालमें मन्वादिशास्त्रमें जो सब नियम निर्दिष्ट हुए हैं, उनके प्रति विशेष लक्ष्य रखना आवश्यक है । पर्याप्त जिससे मण्डप दण्ड न पावे तथा मण्डप व्यक्ति दण्डभोग करे, यही करना कर्तव्य है । ऐसा करनेसे इस लोकमें पश और परलोकमें स्वर्गलभ होता है । इससे प्रकृतिपुञ्जकी उन्नति और राज्यकी श्रीवृद्धि होती है ।

व्यवहारक (सं० त्रि०) १ जिसकी जीविका व्यवहारसे चलती हो, जो श्याय या वकालत आदि करता हो । २ प्राप्तवस्तु, जो चपक हो गया हो, बालिग ।

व्यवहारजीविन् (सं० त्रि०) व्यवहार जीवति जीव-जनि । जो व्यवहार या वकालत आदिके द्वारा अपनी जीविका चलाता हो ।

व्यवहारज्ञ (सं० पु०) व्यवहार जानता स्नाक । १ धर्म जो व्यवहारशास्त्रका ज्ञाता हो, व्यवहार जाननेवाला । २ वह जो पूर्ण चपक हो गया हो, बालिग ।

व्यवहारदर्शन (सं० त्रि०) व्यवहारस्य दर्शन । किसी अभियोगमें न्याय और अन्याय भयवा सत्य और मिट्याका निर्णय करना ।

व्यवहारनिर्णय (सं० पु०) व्यवहारस्य निर्णयः । व्यवहार-निरूपण ।

व्यवहार-पद (सं० त्रि०) व्यवहारस्य पदम् । यादी द्वारा राजासे निवेदन । यादी राजा या राजप्रतिनिधिके निवेदन जो गालिग करता है, उसे व्यवहारपद कहते हैं । स्मृति और आचारविष्ट पद्धतिके अनुसार अर्थान् यदि

कोई स्मृतिशास्त्रके नियम तथा सदाचारपद्धति लङ्घन कर किसीको पीड़ा देता है, पीड़ित व्यक्ति उसको उत्पीड़न राजासे कहता है, यही व्यवहार-पद कहलाता है ।

व्यवहार गद देणो ।

व्यवहार-पाद (सं० पु०) व्यवहारस्य पादः । १ व्यवहारके पूर्वपक्ष, उत्तर, क्रियापाद और निर्णय इन चारोंका समूह । २ इन चारोंमेंसे कोई एक जो व्यवहारका एक पाद या अंग माना जाता है ।

व्यवहार-मातृका (सं० स्त्री०) व्यवहारस्य मातृकेव । व्यवहारोपयोग किया, वे क्रियाएँ जिनका व्यवहारमें उपयोग होता है, व्यवहार शास्त्रके अनुसार होनेवाली कार्यावर्थाः । मितान्तराम् ३० प्रकारकी व्यवहारमातृका कही है । यथा,— १ व्यवहारदर्शन । २ व्यवहार लक्षण । ३ समासद । ४ प्राड्विवाकादि । ५ व्यवहार विषय । ६ राजाका कार्यानुवाचकस्य । ६ कार्याधीन प्रतिप्रन । ८ आहान-समूहका आहान । ९ भासेप । १० प्रत्यर्थी माने पर लेख्यादि कर्तव्यता । ११ पञ्चविध-हीन । १२ कीटन लेख्य । १३ पश्चामास । १४ जनादेय । १५ मादेय । १६ नियुक्त जयपराजयमें वादीकी जय और पराजय । १७ शोधित लेख्य नियेजान । १८ उत्तरावधिधोषन । १९ शोधित पत्रारुद्रविषयमें उत्तर कर्तव्य । २० उत्तर-लक्षण । २१ सरयोत्तर-लक्षण । २२ मिट्योत्तरलक्षण । २३ प्रत्यवस्तुन्दो-त्तर । २४ प्राडन्यायोत्तर । २५ उत्तरामास । २६ सङ्क्रानुत्तर । २७ प्रत्यर्थीका क्रियाविर्देज । २८ उत्तरपत्र अभिनिवेशित होनेसे साधननिर्देज । २९ उसकी सिद्धिके निषयमें सिद्धि । ३० चतुष्पाद व्यवहार । (मितान्तर)

व्यवहार-विषयमें अर्थान् विचारकार्यमें इन ३० प्रकारकी व्यवहार-मातृकाके प्रति लक्ष्य कर विचार करना होता है ।

व्यवहारमार्ग (सं० पु०) व्यवहारस्य मार्गः । व्यवहार विषय, व्यवहार-पद । (मितान्तर)

व्यवहारमूल (सं० पु०) मकर-कर, मकर-करदा ।

व्यवहारविधि (सं० स्त्री०) व्यवहारस्य विधिः । यह शास्त्र जिसमें व्यवहार-सम्बन्धी बातोंका उल्लेख हो,

व्यवेत (सं० लि०) पृथक् कृम, अलग किया हुआ ।

(भृक्प्रति० ११६)

व्यग्रन (सं० लि०) भोजययुक्त ।

व्यग्रिनय (सं० पु०) वैदिक मन्त्रोक्त विषय विशेष ।

(तत्तिरीयसं० १।७।६।१)

व्यग्रनुविन (सं० पु०) अनायोगशेद । (शुक्लस्यत्रुः २२।१२)

व्यश्व (सं० लि०) १ श्वशूत्र्य । (पु०) २ एक प्राचीन

श्रुतिका नाम । ये श्वशूत्रके ४२२ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा हैं । ये आङ्गिरस गोत्रज थे । इनके वंशधर वैश्वश्व नामसे परिचित हैं । वैश्वश्व देखो । ३ राजशेद ।

(भारत सभापत्र)

व्यष्टक (सं० पु०) मृष्टक ।

व्यष्टका (सं० स्त्री०) कृष्णवस्त्रकी प्रतिपदा ।

(तैत्तिरीयसं० ७।५।७।१)

व्यष्टि (सं० स्त्री०) वि अश-क्तिन् । समूह या समाज-
तंत्रसे अलग किया हुआ प्रत्येक व्यक्ति या पदार्थ, यह
जिसका विचार अकेले हो औरोंके साथ न हो ।

व्यसन (सं० स्त्री०) वि-अस-न्त्युट् । १ विपद्, आफत ।

२ दुःख, कष्ट । ३ पतन, गिरना । ४ विनाश, नष्ट

होना । ५ पाप, अधर्म । ६ निष्फलता, यह प्रपन्न

जिसका कोई फल न हो । ७ विषयासक्ति, विषयवासना-

के प्रति होनेवाला अनुराग । ८ दुर्भाग्य, वदकिरूपती ।

९ अयोग्यता, अक्षमता । १० काम और क्रोधजनित

द्वेष । व्यसन अठारह प्रकारका है, जिनमेंसे कामज १०

प्रकारका और क्रोधज ८ प्रकारका है । (भनु ७।५५-५८)

ये सभी व्यसन अति भयानक हैं, अतएव यत्पूर्वक
इन सब व्यसनोंका परित्याग करना उचित है । राजा
यदि कामजव्यसनमें आसक्त हो, तो वे धर्म और
अर्थसे वञ्चित होते हैं तथा क्रोधज व्यसनमें आसक्त
होनेसे यहाँ तक कि उनकी जीवन तक गो विनष्ट
होता है ।

मृगया, पाशक्रीडा, द्विधानिद्रा, परदोषरुचन, रमणी-
सम्भोग, मद्मनित मत्तता, तौर्लिक अर्थात् नृत्यगीत
और वाद्यादि तथा रूपा म्रगण ये दश कामज व्यसन हैं
अर्थात् ये दश दोष कामसे उत्पन्न होते हैं ।

पिशुनता, दुःसाधस, श्लोह, ईर्ष्या, भ्रम्या, परस्वाप-

हरण, आक्रोश अर्थात् घघार्थ अत्यादि प्रदर्शन और
दण्डपाठ्य अर्थात् संहार ये ८ प्रकारके व्यसन क्रोधज
हैं । पण्डितोंने एकमात्र लोभको ही कामज और क्रोधज
इन दोनों प्रकारके व्यसनोंका मूलोद्भूत कारण बताया है ।
इसलिये बड़े यत्नसे इसका परित्याग करना उचित है ।

दश प्रकारके कामज व्यसनोंमें तुरापान, पाशक्रीडा,
रमणीसंभोग और मृगया ये चार विशेष दोषावद तथा
अनिष्टजनक हैं । क्रोधज ८ प्रकारके व्यसनोंमें निष्ठुर
कथन, प्राय घनप्रवञ्चना और निर्घातप्रहार ये तीन
विशेष अनिष्टकारक हैं । सात व्यसनोंमें प्रायः सभी
राजे आसक्त होते हैं । इनमेंसे पिछलेकी अपेक्षा पहले
व्यसनको गृह्यतर जानना होगा । क्रोधज अथवा कामज
व्यसन मृत्युसे भी बढ कर कष्टजनक हैं । यही कारण
है, कि व्यसनी पापी व्यक्तित्व मरने पर नरक जाता है ।
(भनु ७ म०)

व्यसनमात्र ही विशेष अनिष्टजनक है, अतएव व्यसन-
का परित्याग करना सर्वोंका कर्त्तव्य है । व्यसनीसक्त
होनेसे कोई भी काम सफल नहीं होता । देवोपुराणमें
लिखा है, कि एक एक व्यसनमासक व्यक्तित्व गृह्युपग-
वर्त्ती होता है तथा जो सभी प्रकारके व्यसनोंमें रत है
वे छिन्नमूल पृथ्वी तरह महद्दुर्भाग्यसे पतित और विनष्ट
होते हैं । (देवीपुराण ८ म०)

व्यसनवत् (सं० लि०) व्यसनमस्यास्तीति व्यसन-
मनुष्य इत्ययम् । व्यसनविशिष्ट, व्यसनासक्त ।

व्यसनार्च (सं० लि०) व्यसनैर्नार्चः । जिसे किसी
प्रकारकी देवी या मानुषी पीडा पहुँचा हो ।

व्यसनिता (सं० स्त्री०) व्यसनितो भावाः व्यसनित् तद्-
टाप् नस्य लोपः । व्यसनी हेनिका भाव या धर्म,
व्यसनित्वम् ।

व्यसनित् (सं० लि०) व्यसनमस्यास्तीति व्यसन इति ।
१ व्यसनविशिष्ट, जिसे किसी प्रकारका व्यसन या शोक
हो । पर्याय—पञ्चमद्र, विच्छ्रुत । २ चर्यागामी,
रंजीयाज ।

व्यसि (सं० पु०) १ असिन्त्येकार्थः । (लि०) २ धर्म-
शून्य ।

व्यसु (सं० लि०) विगताः असया प्राणाः यस्य । विगन
प्राण, मरा हुआ । (रातवर्षिणी ५।२।४१)

भावार्थ—पुरातनो वाक् अर्थात् वेदरूप वाच्य पहले मेघघर्जनकी तरह अक्षण्डाकारमें भाविभूत था। उगमं कितना वाच्य और कितना पद था, यह कोई नहीं समझता था। इस पर देवताओंने वाच्य प्रकाश करनेके लिये प्रार्थना की। इन्द्रने वेदरूप वाच्योंकी बीच बीचमें विच्छिन्न कर वाच्य, पद और प्रत्येक पदकी प्रकृति स्पष्ट कर दी थी। वाच्य, पद और पदके अन्तर्गमन प्रकृति प्रत्यय, निष्पन्न शब्दको विशेषरूपसे व्यक्त करना ही व्याकरणका कार्य है।

ऐसा स्थल ही सकता है, कि इन्द्र ही मानो वेद-समयके आदि वैयाकरण हैं। किन्तु महाभाष्यकारके वचनोंसे जाना जाता है, कि इन्द्रने वृहस्पतिसे व्याकरण सीखा। फलतः वैदिकयुगके वैयाकरण महोदयोंके नाम और इतिहासका पता लगाना बहुत कठिन है। पाणिनीय व्याकरणके प्रथम चौदह सूत्र माहेश्वरसूत्र कह कर प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगोंका कहना है, कि माहेश व्याकरण नामक एक बड़ा व्याकरण था, पाणिनीके व्याकरणसे कहीं बड़ा खड़ा था, दोनोंमें जमीन आसमानका फर्क था। किन्तु इस उक्तिकी कोई मूलनिसि नहीं। प्रतिपादियोंका कहना है, कि पाणिनीय व्याकरणके उक्त प्रत्याहार कुछ सूत्रोंको छोड़ सतत ही माहेश व्याकरण नहीं था। पाणिनि शब्दमें शक्ति विस्तृत आलोचना देलो।

जो हो, पाणिनिके पहले भी बहुतसे वैयाकरण थे, जिनमें प्रधान प्रधान वैयाकरणके नाम हम पाणिनिके सूत्रों में देखते हैं। पद्या—अत्रि, बाङ्गिरस, भाषिण्डि, कठ, कलापी, काश्यप, कुस्प, कीण्डिय, कीर्य्य, कीञ्जिक, गालय, गौतम, शरक, चक्रवर्मा, छागलि, जापाल, तिस्रि, पाराशर्य, वीला, यजु, भारद्वाज, भृगु, मण्डूक, मयुक, यस्क, बड्वा, बरतर्गु, वसिष्ठ, वैशम्पायन, शाकटायन, शाकल्य, निपालि, गौलक और स्फोटायन।

प्रातिशाख्य।

गोक्षत्रुकारने भाषिण्डि, काश्यप, गार्ग्य, गालय, चक्रवर्मा, भारद्वाज, शाकटायन, शौनक और स्फोटायन इन्हें पूर्वाचार्य बताया है। गोक्षत्रुकार प्रातिशाख्योंके पाणिनिके पूर्ववर्ती नहीं मानते। किन्तु रघुल्लूकरों और वेर आदि वाग्धात्य पाण्डितोंके मध्यमें प्राति-

शाख्योंकी पाणिनिके पूर्ववर्ती तथा प्राचीन वैदिक व्याकरणके अङ्गविशेष कहा है। अभी ये प्रातिशाख्य ग्रंथ लुप्तसे हो गये हैं। शौनक-रचित ऋग्वेदीय शाकल शाखाका ऋक्संप्रातिशाख्य, यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, याज्ञसनेय शाखाका कात्यायन रचित याज्ञसनेय-प्रातिशाख्य तथा सामवेदकी माध्यन्दिन शाखाका पुष्यमुनि रचित सामप्रातिशाख्य और शौनकीय भाष्य प्रातिशाख्य ग्रन्थ पाये गये हैं।

इनका विवरण प्रातिशाख्य और वेद शब्दमें देलो।

प्रातिशाख्यमें, पदच्छेद, सन्धिच्छेद, उच्चारणके प्रकार (नतिप्लुति) आदि विषयोंकी आलोचना की गई है। इससे सन्धि और समास आदिके विच्छिन्न होनेसे प्रातिशाख्यमें भी व्याकरणका परिचय मिलता है। फिर उच्चारणप्रणालीके निर्दिष्ट रहनेसे उभमें पङ्क्तिके अन्तर्गत शिक्षाके आलोच्य विषय भी देखनेमें आते हैं। यह विषय भी व्याकरणमें आलोचित होता है। फिर प्रातिशाख्यमें छन्दके संबंधमें भी आलोचना देखी जाती है। फलतः पङ्क्तिके विषय प्रातिशाख्यमें न्यूनाधिक परिमाणमें दिखाई देने हैं। रघुल्लूकरोंट साहसका कहना है, कि इस-जन्मसे सात सौ वर्ष पहले प्रातिशाख्यको सृष्टि हुई। ये सब प्रातिशाख्य इतने प्राचीन हैं या नहीं, इस विषयमें सन्देह रहने पर भी उनमेंसे कितने प्रातिशाख्य पाणिनिके पहले रचे गये थे, इसमें सन्देह नहीं। प्रातिशाख्यमें सन्धिच्छेद और पदच्छेद आदि क्षेत्र कर मान्य होता है, कि प्रातिशाख्य व्याकरणकी आलोचनासे एकदम परिष्कृत नहीं है। इससे यह भी जाना जाता है, कि व्याकरणकी आलोचनाके किना वेदाध्ययन करना कभी समाप्त नहीं होता। छायाप्रयस्कांति अथवा नयती ज्ञायाके अन्तर्गत वेद पठनपाठनके लिये प्रातिशाख्य ग्रंथकी सृष्टि कर ली थी। ये सब ज्ञान पाणिनिके बहुत पहले प्रवर्तित हुए थे। अतएव पाणिनिके बहुत पहले वैयाकरणोंने वैदिक साहित्यके व्याकरणकी उन्नति करनेमें हाथ बँटाया था। वाग्धात्य पाण्डितोंमें प्राक्सर, मूलर और वेर आदि इस मतके समर्थक हैं। गोक्षत्रुकार इस सिद्धान्तकी स्वीकार नहीं करते।

भावाथ—पुरातनो वाक् अर्थात् वेदरूप वाक्य पहले मेघपर्जनकी तरह अलखण्डाकारमें आविर्भूत था। उनमें कितना वाक्य और कितना पद था, यह कोई नहीं समझता था। इस पर वेदवताओंने वाक्य प्रकाश करनेके लिये प्रार्थना की। इन्द्रने वेदरूप वाक्योंको बीच बीचमें विच्छिन्न कर वाक्य, पद और प्रत्येक पदको प्रकृति स्पष्ट कर दो थी। वाक्य, पद और पदके अन्तर्गत प्रकृति प्रत्यय निष्पन्न शब्दको विशेषरूपसे व्यवहृत करना ही व्याकरणका कार्य है।

येसा ख्याल हो सकता है, कि इन्द्र ही मानो वेद-समयके आदि वैवाकरण हैं। किन्तु महाभाष्यकारके पचनोंसे जाना जाता है, कि इन्द्रने पहलेपलितसे व्याकरण सोचा। फलतः वैदिकयुगके वैवाकरण महोद्योंके नाम और इतिहासका पता लगाना बहुत कठिन है। पाणिनीय व्याकरणके प्रथम चौदह सूत्र माहेश्वरसूत्र कह कर प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगोंका कहना है, कि माहेश्वर व्याकरण नामक एक बड़ा व्याकरण था, पाणिनीके व्याकरणके कहीं बड़ा चढ़ा था, दोनोंमें जमीन आसमानका फर्क था। किन्तु इस उक्तिकी कोई मूलनिसि नहीं। प्रतिपादियोंका कहना है, कि पाणिनीय व्याकरणके उक्त प्रत्याहार कुछ सूत्रोंको छोड़ खल्ले कहीं माहेश्वर व्याकरण नहीं था। पाणिनि शब्दमें इतकी विस्तृत आलोचना देखो।

जो हो, पाणिनिके पहले भी बहुतसे वैवाकरण थे, जिनमें प्रधान प्रधान वैवाकरणके नाम हम पाणिनिके सूत्रों में देखते हैं। यथा—अत्रि, आङ्गिरस, आपिशलि, कठ, कलापी, काश्यप, कुत्स्य, कीण्डिन्य, कौष्य, कौशिक, गालव, गौतम, चरक, चक्रवर्मा, छागलि, आंवाल, तिस्रि, पाराशर्य, पीला, यज्ञ, भारद्वाज, शृंगु, मण्डूक, मधुक, यत्क, बड्वा, बरतरु, यज्ञिष्ठ, येनाम्पावन, शाकटायन, शाकल्य, शिपालि, गौलक और स्फोटायन।

प्रातिशाख्य।

गोल्डशुकरने आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चक्रवर्मा, भारद्वाज, शाकटायन, शौनक और स्फोटायन इन्हें पृथक्पृथक् बताया है। गोल्डशुकर प्रातिशाख्योंको पाणिनिके पूर्ववर्ती नहीं मानते। किन्तु यज्ञल्करोट और वेपर आदि पारश्चात्य पण्डितोंके मध्यमें प्राति-

शाख्योंको पाणिनिके पूर्ववर्ती तथा प्राचीन वैदिक व्याकरणके अङ्गविशेष कहा है। अभी ये प्रातिशाख्य ग्रंथ लुप्तसे हो गये हैं। शौनक-रचित ब्राह्मणशाख्य शाखाका ऋक्-प्रातिशाख्य, यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, याज्ञसनेय शाखाका कात्यायन रचित याज्ञसनेय-प्रातिशाख्य तथा सामवेदकी माध्वन्दिन शाखाका पुष्यमुनि रचित सामप्रातिशाख्य और शौनकीय धाम्यर्ष प्रातिशाख्य ग्रंथ पाये गये हैं।

इनका विवरण प्रातिशाख्य और वेद शब्दमें देखो।

प्रातिशाख्यमें पदच्छेद, सन्धिच्छेद, उच्चारणके प्रकार (नतिप्पुति) आदि विषयोंको आलोचना की गई है। इससे सन्धि और समास आदिके विच्छिन्न होनेसे प्रातिशाख्यमें भी व्याकरणका परिचय मिलता है। फिर उच्चारणप्रणालीके निर्दिष्ट रहनेसे उभमें पङ्क्तिके अन्तर्गत निष्ठाके आलोच्य विषय भी देखनेमें आते हैं। यह विषय भी व्याकरणमें आलोचित होता है। फिर प्रातिशाख्यमें छन्दके संबंधमें भी आलोचना देखी जाती है। फलतः पङ्क्तिके विषय प्रातिशाख्यमें म्युत्पाधिक परिमाणमें दिखाई देते हैं। यज्ञल्करोट सादृशका कहना है, कि ईसा-जन्मसे सात सौ वर्ष पहले प्रातिशाख्यको सृष्टि हुई। ये सब प्रातिशाख्य इतने प्राचीन हैं वा नहीं, इस विषयमें सन्देह रहने पर भी उभमेंसे किन्तै प्रातिशाख्य प्राणिनिके पहले रचे गये थे, इसमें सन्देह नहीं। प्रातिशाख्यमें सन्धिपिच्छेद और पदपिच्छेद आदि देख कर मान्य होना है, कि प्रातिशाख्य व्याकरणकी आलोचनासे एकदम परिवर्तित नहीं है। इससे यह भी जाना जाता है, कि व्याकरणकी आलोचनाके दिना धेदाध्ययन करना कभी समाप्त नहीं होता। शाखाप्रवर्तकोंने अपनी अपनी शाखाके अन्तर्गत वेद पठनपाठनके लिये प्रातिशाख्य ग्रंथकी सृष्टि कर ली थी। ये सब शाखा पाणिनिके बहुत पहले प्रवर्तित हुई थीं। अतएव पाणिनिके बहुत पहले वैवाकरणोंने वैदिक साहित्यके व्याकरणकी उन्नति करनेमें हाथ बँटाया था। पारश्चात्य पण्डितोंमें प्राक्सर, मूलर और वेपर आदि इस मन्त्रके समर्थक हैं। गोल्डशुकर इस सिद्धान्तको खोकार नहीं करते।

विस्तृति लाभ की थी। मैक्समूलरने प्रथमतः कथा सरित्सागरकी आख्यायिकाका अनुसरण कर पाणिनि-को ईसा जन्मसे पहले ४थी सदीके लोग अर्थात् मन्द-राजके समसामयिक स्थिर किया है। इसके बाद 'पद्-दर्शनके इतिवृत्त' नामक ग्रन्थकी भूमिकामें उन्होंने लिखा है, कि ईसा-जन्मसे छः सौ वर्ष पहले पाणिनि आविर्भूत हुए थे। गोल्लस्टुकरके मतसे ईसा जन्मसे पूर्व ७थी सदीमें पाणिनि जीवित थे। गोल्लस्टुकरके मतकी भी समसमीचीन बता कर पण्डितसमाजने प्रहण नहीं किया है। १८८५ ई०में अध्यापक पिरोश (Prof. Piesell)ने पाणिनिके कालसम्बन्धमें जो धर्मिप्राय प्रकट किया है उससे जाना जाता है, कि पाणिनि ईसा जन्मसे ६ सौ वर्ष पहलेके आदमी है। वैयाकरण पाणिनि जैसे एक दूसरे कवि पाणिनिज्ञा नाम भी सुना जाता है। पिटरसन और उम्फेड कवि और वैयाकरण पाणिनिको एक ही व्यक्ति बताते हैं।

१८६० ई०में सिलमेन लेवी (Sylvan Levi)ने पाणिनिके सम्बन्धमें एक प्रश्न-लिख कर कहा है, कि धर्मि, सोभ्रगा और भगता गणपाठमें वे तीन नाम देखे जाते हैं। ग्रीक भाषामें भी Omphis, Sophytes और Phycelas ये तीन शब्द हैं। पाणिनिने सम्भवतः प्रोफेस हो ये तीनों शब्द ग्रहण किये हैं। यह कल्पना-का ही एक विचित्र खेल है।

आकुर लिबिच (Liebich) का कहना है, कि पाणिनि ईसा जन्मसे ३०० वर्ष पहले जीवित थे। ये कहते हैं, कि भृगुवद्गीता पाणिनिके बोले रची गई, परन्तु ब्राह्मण और शूद्रारण्यक पाणिनिसे पूर्ववर्ती हैं।

निश्चयही लामा तारमाथने अपने बौद्धधर्मके इतिहास-में लिखा है, कि पाणिनि शीवाद्वाराजके अधीन रहते थे। उनके मतसे ४०० पू० ५०० अक्षरमें पाणिनि आविर्भूत हुए थे। यह सिद्धांत प्राय सर्वसम्मत है। सम्भवतः इसके भी बहुत पहले इन वैयाकरण-के शरीरका प्रादुर्भाव हुआ था। जो हो, इस सम्बन्धमें ऐतिहासिक विनिष्ट प्रमाण दुर्लभ है। अनुमान द्वारा सूक्ष्मरूपसे काल-निर्णयके दुष्प्रयाससे कोई भी फल नहीं।

अ-वाच्य विवरण पार्ष्णि. शब्दमें देखो।

व्याप्ति।

पाणिनिके बाद व्याप्ति नामक एक वैयाकरणका नामोल्लेख देखनेमें आता है। नामग भट्टने लिखा है, "संग्रहे व्याप्तिरुत्तलक्षश्लोकग्रन्थ इति प्रसिद्धः" महा-भाष्यकारने व्याप्तिको पाणिनिके परवर्ती वैयाकरण बताया है। यथा—

"आपिगल-पाणिनीय-व्याप्तीय गीतमीया एकं पदं यच्चयित्वा सर्वानि पूर्वपदानि, तत्र न ज्ञापते कस्य पूर्वा-पदस्य स्वरेण मवितथ्यमिति (६।२।३६) महाभाष्यकारने पार्ष्णिककारके 'शम्भुदितज्ञ' (२।२।३४) इस खानु-सार पतञ्जलि, आपिगलि आदिको अपने अपने आचार्य-का पूर्वोपर्यमूलक स्थिर किया है।

वाक।

निरुक्तकार वाक कित्तीके मतसे पाणिनिके पूर्वा-वर्ती और कित्तीके मतसे उनके परवर्ती हैं। इन विषयका विचार पाणिनि शब्दमें किया गया है।

कात्यायन।

पाणिनीय सूत्रके पार्ष्णिककार कात्यायन महाभाष्य-के पूर्ववर्ती हैं। कोई कोई कहते हैं, कि पाणिनीय व्याकरणके पार्ष्णिककार पाणिनीयके समसामयिक तथा एक देशवासि थे तथा इन्होंने वाजसनेय-प्रतिशाखकी रचना की। कैपट और नागोजोमट्टका कहना है, कि ये कात्यायन भ्राजा नामक श्लोकके प्रणेता हैं। यथा—

"कः पुनरिदं पठितम्। भ्राजा नामश्लोकाः। कात्यायनोपनिषदभ्राजाश्लोकमध्यपठितस्य त्वस्य भ्रुतिर-नुमादिकास्ति। एकः शब्दः सुहातः सुमयुक्तः मयं लोके कामयुगु मवति।" नागोजोमट्ट कहते हैं—"भ्राजा नाम कात्यायनप्रणीताः श्लोका इत्याहुः।"

पाणिनिमूर्खोंका अर्थ और तात्पर्य परिष्कृत-कर्म-के लिये कात्यायनने पार्ष्णिकको रचना की। ये पार्ष्णिक भी सूत्रको तरद है। किन्तु भ्राजाश्लोक अनुष्टुप् छन्द में रचे गये हैं। कात्यायनरचिन काशप्रदोष ग्रन्थ भी अनुष्टुप् छन्दमें लिखा गया है। पद्मसुन्द निष्पत्ता कहना है, कि काशप्रदोष ग्रन्थ कात्यायनका लिखा है। कथा-सरित्सागरमें कात्यायनके विषयमें एक मन्त्र इस तरह है—पार्ष्णिकके ज्ञापते परमराजकी राजधानी कीनपदोमें

कप्येत्तरके मतसे काव्यालङ्कारवृत्तिकार यामन १२वीं सदीके आदमी हैं।

यहां एक बात सोचनेकी है। काविकावृत्ति क्या यामन और जयादित्य नामक दो पृथक् व्यक्तिको रचित है अथवा यामनजयादित्य नामक किसी एक को ? कोलमूकके मतसे यामनजयादित्य एक व्यक्ति है। काशीवासो सुविख्यात बालग्राज्जिने 'पण्डित' पत्रके १८७८ ई०के जूनमासकी संख्याके २०वें पृष्ठमें लिखा था, काविकावृत्ति यामनजयादित्य नामक एक व्यक्तिकी रची हुई है। आज उनके इस अभिप्रायका परिचय हो चुका है। उन्होंने कहा है, कि काविकावृत्ति यामन और जयादित्य नामक दो व्यक्तिको रचित है। इस प्रकार मत-परिवर्तनका विशेष कारण है। भट्टोजी-दोशित-प्रणीत सिद्धान्तकीसूचीकी प्रौढमनोरमा नामकी टीकामें तद्विप्रकरणके "वल्लभाध्यातु" इस सूत्रकी व्याख्यामें लिखा है "एतत् सर्वजयादित्यमनेनोक्तं यामनस्तु मन्यते इति"। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि जयादित्य और यामन ये दोनों ही काविकावृत्तिकार हैं। प्रथम, द्वितीय, पञ्चम और षष्ठ अध्यायमें यामनकृतवृत्ति, अष्टादश जयादित्यकृत है।

डाक्टर सुलतने काश्मीरमें जो हस्तलिखित काविकावृत्ति पाई थी उसमें लिखा था, कि आदिके चार अध्याय जयादित्यके और आठके चार यामनके रचित हैं। शब्दकोशस्तुम और मनोरमामें लिखा है—

"वोपदेश्यमाहमस्त्वो यामनदिग्गजः।

कोशैरेव प्रथमेन माधयेन विमोचिताः॥"

'इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि काविकाकार यामन वेदायंप्रकाशक माधयके तथा माधयसे प्राचीन वोपदेश्यके भी पूर्ववर्ती हैं। किन्तु मेषसमूलरका कहना है, कि श्रुत्यायमें माधयने कहीं भी वोपदेश्यका नामो-होश नहीं किया है। सायणधानुवृत्तिमें भी यामन का नामोल्लेख है। १३४० अर्धमें माधय भाविभूत हुए थे। १२वीं सदीमें वोपदेश्य वर्तमान थे ऐसा जाना जाता है। इससे साबित होता है, कि यामन १२वीं सदीके पहलेके आदमी हैं। सायणने हर्षदत्त और व्यासशरका नामोल्लेख किया है। ये हर्षदत्त 'पद-

मञ्जरी' नामक काविकावृत्तिके यःश्याकार और न्यासकार काविकावृत्तिके पञ्जीप्रणीता हैं।

वोपदेश्यरुत 'काव्यरामधेनु' नामक व्याकरणमें काविकावृत्तिपञ्जिकाकी बातें उद्धृत हुई हैं।

इन सब प्रमाणोंको आलोचना करनेसे यह कहा जा सकता है, कि काविकाकार अथर्व ही १२वीं सदीके पहलेके आदमी थे। किन्तु इनके ठीक ठीक समयका पता लगाना बहुत कठिन है।

यहां एक और प्रश्न यह होता है, कि यामन और जयादित्य किस धर्मके माननेवाले थे ? ये हिन्दू थे, या बौद्ध अथवा जैन। हिन्दूगण ग्रन्थके प्रारंभमें आशीर्वाद-स्कारादिका उल्लेख करते हैं, किन्तु काविकावृत्तिमें ऐसा नहीं देखा जाता। बालग्राज्जिने प्रमाणित किया है, काविकावृत्तिके दोनों ग्रन्थकार हिन्दू नहीं थे। इन लोगोंके समय जैन बौद्ध व्याकरणका यथेष्ट प्रचार था। जैसे न्यासकार जिनेन्द्रयुद्ध आदिके ग्रन्थ। इसके बाद हिन्दूवैवाकरणांको प्रादुर्भाव हुआ। उस समय हम चट्टोजी दोशित, हरिदोशित और नागेशभट्ट आदिके नाम सुनते हैं। यामन और जयादित्य ये दोनों ही बौद्ध थे, यही बहुतांकी धारणा है।

सुविख्यात चीन परिभाषक श्मत्सिन इस सम्बन्धमें जो कहा है वह भी आलोच्य है। ६३५ ई०में चीनदेशमें श्मत्सिनका जन्म हुआ। ११वीं ६७१ ई०में भारतका और ६७३ ई०में तमलुककी यात्रा का।

अनन्तर नालन्दा-विहारमें जा कर ११वीं में बहुत-सी विद्या सीखी थी। ६६५ ई०में ये फिर चीनदेशमें लौटे। ७३३ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके ग्रन्थपुस्तकामें भारतवर्षके अनेक तथ्य लिखे हैं। इनके ग्रन्थके ३४वें अध्यायमें भारतीय शिक्षापद्धतिके सम्बन्धमें विविध आलोचना देखी जाती है। शब्दविद्याके सम्बन्धमें भाष अनेक विषय लिखे गये हैं।

इन्होंने लिखा है—छाः धर्मका बालक पहले मूल-सिद्धान्त, पठता था। 'सिद्धिरस्तु' ही मूल सिद्धान्त था। मूलसिद्धान्त पूर्णपरिचय नामसे अभिहित हो सकता है। छाः महानिमें यह पठना समाप्त होता था। इति-का कहना है, कि यही माहेश्वरसूत्र है। किन्तु इन्होंने

कपेलरके मतसे काव्यालङ्कारवृत्तिकार यामन १२वीं सदीके आदमी हैं।

यहा एक बात सोचनेकी है। काशिकावृत्ति क्या यामन और जयादित्य नामक दो पृथक् व्यक्तिकी रचित है अथवा यामनजयादित्य नामक किसी एक की ? कोलब्रुकके मतसे यामनजयादित्य एक व्यक्ति है। काशीयामनी सुविषयात वालशास्त्रीने 'परिद्धत' पत्रके १८७८ ई०के जूनमासकी संख्याके २०वें पृष्ठमें लिखा था, काशिकावृत्ति यामनजयादित्य नामक एक व्यक्तिकी रची हुई है। आज उनके इस अभिप्रायका परिचय हुआ है। उन्होंने कहा है, कि काशिकावृत्ति यामन और जयादित्य नामक दो व्यक्तिकी रचित है। इस प्रकार मत-परिचर्यानका विशेष कारण है। भट्टोजी-दीक्षित-मणीत सिद्धांतकीसूरीकी प्रौढमनोरमा नामी टीकामें तल्लप्रकरणके "वल्लवार्थान्" इस सूत्रकी व्याख्यानमें लिखा है "यत्त्वं सर्वजयादित्यमनेनोक्तं यामनस्तु मन्वने इति"। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि जयादित्य और यामन ये दोनों ही काशिकावृत्तिकार हैं। प्रथम, द्वितीय, पञ्चम और षष्ठ अध्यायमें यामनकृतवृत्ति, अष्टादश जयादित्यकृत है।

डाक्टर सुलतने काश्मीरमें जो हस्तलिखित काशिकावृत्ति पाई थी उसमें लिखा था, कि आदिके चार अध्याय जयादित्यके और शेषके चार यामनके रचित हैं। शब्दकीस्तुभ और मनोरमामें लिखा है—

"वोपदेशमहाभाइस्तो यामनदिग्गजः।
 काशेरेव प्रथमेन माथनेन विमोचिताः॥"

इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि काशिकाकार यामन पेशाप्रकाशक माधयके तथा माधयसे प्राचीन वोपदेशके भी पुरव्यसों हैं। किन्तु मेषसमुलरका कहना है, कि श्रमभाष्यमें माधयने कहीं भी वोपदेशका नामो-हिसा नहीं किया है। सावणधातुवृत्तिमें भी यामन का नामालेण है। १३४० अन्धमें माधय भाविभूत हुए थे। १२वीं सदीमें वोपदेश यथांमान थे ऐसा जाना जाता है। इससे साबित होता है, कि यामन १२वीं सदीके पहलेके आदमी हैं। सावणने हरदत्त और व्याकरणकार नामालेण किया है। ये हरदत्त 'पञ्-

मञ्जरी' नामक काशिकावृत्तिके व्याख्यानकार और न्यासकार काशिकावृत्तिके पञ्चीमणता है।

वोपदेशक 'काव्यरामप्रेतु' नामक व्याकरणमें काशिकावृत्तिपञ्जिकाको बातें उद्धृत हुई हैं।

इन सब प्रमाणोंकी आलोचना करनेसे यह कटा जा सकता है, कि काशिकाकार अथवा हो १२वीं सदीके पहलेके आदमी थे। किन्तु इनके ठोक ठोक समयका पता लगाना बहुत कठिन है।

यहां एक और प्रश्न यह होता है, कि यामन और जयादित्य किस धर्मके माननेवाले थे ? ये हिन्दू थे, या बौद्ध अथवा जैन। हिन्दूगण प्रथमके प्रारंभमें आग्नीहोम-स्कारादिका उल्लेख करते हैं, किन्तु काशिकावृत्तिमें ऐसा नहीं देखा जाता। वालशास्त्रीने प्रमाणित किया है, काशिकावृत्तिके दोनों ग्रन्थकार हिन्दू नहीं थे। इन लोगोंके समय जैन बौद्ध व्याकरणका यथेष्ट प्रचार था, जैसे न्यामकार जिनेन्द्रबुद्ध आदिके ग्रन्थ। इसके बाद हिन्दूवैवाकरणोंका प्रादुर्भाव हुआ। उस समय दम चट्टोजी दीक्षित, हरिवीक्षित और नामगभट्ट आदिके नाम सुनते हैं। यामन और जयादित्य ये दोनों ही बौद्ध थे, यही बहुतांकी धारणा है।

सुविषयात चीन परिभ्राजक इत्सिंगने इस समयमें जो पढ़ा है वह भी आलोच्य है। ६३५ ई०में चीन-देशमें इत्सिंगका जन्म हुआ। ६७१ ई०में भारतका और ६७३ ई०में तमलुककी यात्रा की।

अनन्तर गालन्दा-विहारमें जा कर ६७५ ई०में बहुत सी विद्या सोची थी। ६९५ ई०में ये फिर चीनदेशकी लौटे। ७१३ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके समयमें भारतवर्षके अनेक तथ्य लिखद हैं। इनके ग्रन्थके ३४वें अध्यायमें भारतीय शिक्षापद्धतिके माधयमें विविध आलोचना देखा जाती है। शब्दविद्याके सम्बन्धमें भाष्य अनेक विषय लिख गये हैं।

इन्होंने लिखा है—छः वर्षका बालक पहले 'मूल-सिद्धान्त, पठता था। 'सिद्धिरस्तु' हो मूल सिद्धान्त था। मूलसिद्धान्त पूर्णपरिचय नामसे अनिदित हो सकता है। छः महीनेमें यह पढ़ना समाप्त होता था। इतमि-का कहना है, कि यही माहाभारत है। किन्तु उन्होंने

- १६। तत्त्वबोधिनो—ज्ञानेन्द्र सरस्वती कृत । यह ग्रन्थ भट्टोजी दोक्षित कृत सिद्धान्तकौमुदीटीका है ।
- २०। शब्देन्दुशेखर—यह भी प्रागुक्त ग्रंथ की संक्षिप्त टीका है ।
- २१। लघुशब्देन्दुशेखर—यह भी प्रागुक्त ग्रंथ की संक्षिप्त टीका है ।
- २२। चिद्वि माला—वैद्यनाथ पायगुण्ड विरचित । यह लघुशब्देन्दुशेखरकी टीका है ।
- २३। शब्दरत्न—हरिदोक्षित प्रणीत । नागोजी भट्टजी मनोरमाकी जो टीका लिखी यही उनको व्याख्या है ।
- २४। लघु शब्दरत्न—उक्त ग्रन्थका संक्षेप ।
- २५। भावप्रकाशिका—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत । यह ग्रन्थ हरिदोक्षितके प्रणीत शब्दरत्नकी टीका है ।
- २६। मध्यकौमुदी—वरदराजकृत, सिद्धान्तकौमुदी-का संक्षेप करके वरदराजने इस ग्रन्थका प्रचार किया । इनका लिखा हुआ लघुकौमुदी ग्रन्थ भी है ।
- २७। परिभाषा—पाणिनिस्मृतशशास्त्रार्थ घासिक और महामाध्यसे उद्धृत नियमघचन ।
- २८। परिभाषावृत्ति—शिवदेव प्रणीत उपर्युक्त ग्रन्थकी टीका ।
- २९। लघु परिभाषावृत्ति—भास्करभट्ट प्रणीत उपर्युक्त परिभाषाग्रन्थकी संक्षिप्त टीका ।
- ३०। परिभाषा ग्रन्थकी टीका ।
- ३१। परिभाषा—स्वामी प्रकाशानन्द प्रणीत परिभाषासंग्रह ग्रन्थकी व्याख्या ।
- ३२। परिभाषेन्दुशेखर—नागेश भट्टकृत परिभाषाग्रन्थकी व्याख्या ।
- ३३। परिभाषेन्दु शेखरकाशिका—वैद्यनाथ पायगुण्डकृत ।
- ३४। कारिका—महामाध्य और काशिकामें जो नियमद्वारा हैं, यह उन्हीं श्लोकोंका संग्रह ग्रन्थ है ।
- ३५। वाचस्पदीय वा वाक्पदीय—मार्कंडेय प्रणीत । इनका दूसरा नाम हरिकारिका है ।
- ३६। व्याकरणभूषण—कौण्डभट्ट प्रणीत । यह ग्रन्थ भी वाक्पदीयकी तरह संस्कृत व्याकरणका दार्शनिक ग्रन्थ है ।

- ३७। भूषणसारदर्पण—हरिवल्लभ प्रणीत व्याकरणभूषण ग्रन्थकी टीका ।
- ३८। व्याकरणभूषणसार—व्याकरणभूषणकी टीका ।
- ३९। व्याकरणसिद्धान्तमञ्जुषा—नागेश भट्ट रचित । यह ग्रंथ भी मार्कंडेयके वाक्पदीयकी तरह है ।
- ४०। लघुभूषणकाशिक—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत ।
- ४१। लघु व्याकरणसिद्धान्तमञ्जुषा ।
- ४२। कला—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत । यह लघु व्याकरणसिद्धान्तमञ्जुषाकी टीका है ।
- ४३। गणपति ।
- ४४। गणरत्नमहोदधि सटीक ।
- ४५। पाणिनि-घातुपाठ ।
- ४६। घातुप्रदीप वा तन्त्रप्रदीप मैत्रेय रचित कृत । इसमें उदाहरण और घातुरूपका उदाहरण दिया गया है ।
- ४७। माधवोप वृत्ति—सायणाचार्य प्रणीत ।
- ४८। पदचन्द्रिका—एक व्याकरण । इसमें पाणिनि-सूत्र यथेष्ट उद्धृत हुआ है ।
- पाणिनीय सूत्रके आधार पर ऐसे और भी अनेक ग्रन्थ हैं । इनके सिया तर्जुनाशके साथ सम्बन्ध रखने-वाले और भी कितने व्याकरण देखे जाते हैं । ये सब ग्रन्थ व्याकरणशास्त्रके दर्शन नामसे पुकारे जा सकते हैं । नीचे और भी कई व्याकरणोंके नाम लिखे जाते हैं—
- ४९। सरस्वतीप्रक्रिया—मनुभूति स्वरूपाचार्य प्रणीत । इसमें सात भी सूत्र हैं । ग्रंथकारने यह व्याकरण सरस्वती देवोके प्रसादसे प्राप्त किया था, ऐसा प्रवाद प्रचलित है । भारतवर्षमें इस व्याकरणका अधिक प्रचार है । इस व्याकरणके सोन टीकाग्रंथ देवनेमें आते हैं—एक पुत्रराजकृत और बाको महामहट्ट-प्रणीत है । इसके सिया सिद्धान्तचन्द्रिका नामकी भी इसकी एक टीका है ।
- ५०। शब्दानुशासन वा देग व्याकरण—जैनाचार्य हेमचन्द्र घूरि द्वारा प्रणीत । जैन लोग इस व्याकरणकी बड़े आदरसे पढ़ते हैं । कामधेनु नामक व्याकरण ग्रंथमें अभिनव नाकटायन रचित एक और शब्दानुशासन ग्रन्थका नाम देवनेमें आता है ।

लिखा है, कि मूलनिर्माणमें ४६ वर्षों का इतना ही ऊपर चढ़ने की ३०० इलाकें हैं। प्रति श्लोकमें ३२ अक्षर हैं।

द्वितीय व्याकरण प्राग्भाषिनिर्मूल्य इसमें १०० सूत्र हैं। बालक मध्यम वर्षमें इस ग्रन्थका पठना आरम्भ करने की श्रेष्ठ मासमें समाप्त करते थे।

तृतीय व्याकरण पुस्तक—धामु । इसमें १००० सूत्र हैं।

चतुर्थ ग्रन्थ—तीन भागोंमें विभक्त है—

(१) धामु, (२) मञ्जा और (३) उणादि। दश वर्षकी उमरमें आरम्भ करके तीन वर्षके भीतर यह ग्रन्थ समाप्त किया जाता था।

पञ्चम ग्रन्थ—पाणिनिमूलवृत्ति । इत्सिका कहता है, कि यह वृत्ति ग्रन्थ अनेक व्याख्यासे श्रेष्ठ है। इस ग्रन्थके कर्ता जयादित्य हैं। इसकी प्रतिमा बड़ी ही तीक्ष्ण थी। इससे साबित होता है, कि ६६० ई० के पहले जयादित्य वसन्तमान थे।

इन्हींमें यामनका नामोल्लेख नहीं किया है। इन्हींके मतमें जयादित्य ७वीं सदीके बादमें हैं। किन्तु राजतरङ्गिणीके मतसे यामन राजा जयापोद्दके सभापण्डित थे। जयापोद्द ८वीं सदीके मध्यभाग तक जीवित थे, इससे दोनों ग्रन्थकारके समयमें स्त्री वर्षका अन्तर दिखाई देता है। इसलिये इसकी अच्छी मोमाम्सा नहीं हुई। पर हां, इसमें सिर्षा रचना ही कहा जा सकता है, कि काणिकावृत्ति ८वीं सदीके पंछे और ९वीं सदीके पहले रची नहीं गई। इस समयके भीतर किसी भी समय काणिकावृत्ति रची गई होगी।

नौथे पाणिनिसे लेकर कुछ संस्कृत व्याकरण और उनकी टीकाका नामोल्लेख किया जाता है—

१। पाणिनीय सूत्र—यह मराठ्याधी नामसे भी परिचित है।

२। मराठ्याधीका वार्त्तिक-काठवापन-प्रणीत।

३। पाणिनीय सूत्रका महाभाष्य—पट्टनली मुनिप्रणीत।

४। महाभाष्यप्रदीप—दीपट्टप्रणीत—महानावकी टीका।

५। भाष्यप्रदीपोद्योत—नागोजी भट्ट प्रणीत कीवट प्रणीत महाभाष्यप्रदीपकी टीका।

६। काणिकावृत्ति—यामन जयादित्य प्रणीत—पाणिनीय सूत्रकी वृत्ति।

७। पदमञ्जरी—दरिद्रप्रणीत काणिकावृत्ति टीका।

८। न्याय या काणिकावृत्तिवृत्ति-वृत्ति-वृत्ति । (रक्षितकृत इसकी टीका है।)

९। [वृत्ति-संप्रद—नागोजीभट्टप्रणीत पाणिनि-सूत्रकी संक्षिप्त टीका।

१०। भाषावृत्ति—पुढोत्तम-प्रणीत—वैदिक व्याकरणके अंशको छोड़ कर पाणिनीय सूत्रकी टीका।

११। भाषावृत्तवर्गविवृति—सृष्टिवर-प्रणीत; (पुढोत्तम प्रणीत टीकाकी व्याख्या)

१२। शब्दकौस्तुभ—मट्टोजी दीक्षित प्रणीत—पाणिनीय सूत्रको व्याख्या।

१३। प्रभा—वैद्यनाथ पाण्डुरण्ड उर्फ बालमुनि प्रणीत।

१४। प्रक्रियाकौमुदी—रामचंद्र भाषार्थ प्रणीत; यह पाणिनिके सूत्रावलम्बन पर रचित व्याकरण है। किन्तु पाणिनिमूलकी प्रणाली इस ग्रन्थमें परिवर्तित हुई है।

१५। प्रस्ताव—विद्वल भाषार्थ प्रणीत प्रक्रियाकौमुदीकी टीका।

१६। तद्वचन—जयं रचित; यह भी प्रक्रियाकौमुदीकी टीका है। कृष्ण पण्डित नामक एक पण्डितने भी प्रक्रिया कौमुदीका एक संक्षिप्त टीकाग्रंथ प्रणयन किया।

१७। सिद्धांतकौमुदी—मट्टोजी दीक्षित कृष्ण यह ग्रंथ भी प्रक्रियाकौमुदीकी प्रणालीसे लिखा गया है। किन्तु प्रक्रियाकौमुदीकी प्रणालीही स्पष्टता यह ग्रंथ अधिकतर विग्रह की सम्पूर्ण है। वर्तमान कालमें यह जगह पाणिनीय मराठ्याधीके पठन कार्यके सहायके कारण इसका आदर हुआ है।

१८। सिद्धांतकौमुदी—मट्टोजी दीक्षित कृष्ण। यह सिद्धांत कौमुदीकी ही टीका है।

- १६। तत्त्वबोधिनो—ज्ञानेन्द्र सरस्वती ह्येन । यद्
ग्रन्थ मट्टोन्नी बोधित इत सिद्धान्तकौमुदीटीका है ।
- २०। शब्देन्दुशेखर—यद् भी प्रागुक्त ग्रंथकी संक्षिप्त
टीका है ।
- २१। लघुशब्देन्दुशेखर—यद् भी प्रागुक्त ग्रंथकी
संक्षिप्त टीका है ।
- २२। चिद्बिह माला—वैद्यनाथ पायगुण्ड विरचित ।
यद् लघुशब्देन्दुशेखरकी टीका है ।
- २३। शब्दरत्न—हरिदोशित प्रणीत । नागोजी मट्टने
मनोरमाकी जो टीका लिखी यही उनको व्याख्या है ।
- २४। लघु शब्दरत्न—उक्त ग्रन्थका संक्षेप ।
- २५। भावप्रकाशिका—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत ।
यद् ग्रन्थ हरिदोशितके प्रणीत शब्दरत्नकी टीका है ।
- २६। मध्यकीमुदी—वरदराजह्येन, सिद्धान्तकौमुदी-
का संक्षेप करके वरदराजने इस ग्रन्थका प्रचार किया ।
इसका लिखा हुआ लघुकीमुदी ग्रन्थ भी है ।
- २७। परिभाषा—पाणिनिस्मृत्युक्तशब्दार्थार्थी धार्मिक
और महाभाष्यने उद्धृत नियमग्रन्थ ।
- २८। परिभाषायुक्ति—शिवदेव प्रणीत उपर्युक्त
ग्रन्थकी टीका ।
- २९। लघु परिभाषायुक्ति—भास्करमट्ट प्रणीत उप-
र्युक्त परिभाषाग्रन्थकी संक्षिप्त टीका ।
- ३०। परिभाषा ग्रन्थकी टीका ।
- ३१। नग्निका—स्वामी प्रकाशानन्द प्रणीत परि-
भाषार्थसंग्रह ग्रन्थकी प्रकाशना ।
- ३२। परिभाषेन्दुशेखर—नागोजी मट्टह्येन परिभाषा-
ग्रन्थकी प्रकाशना ।
- ३३। परिभाषेन्दु शेषरत्निका—वैद्यनाथ पाय-
गुण्डह्येन ।
- ३४। कारिका—महाभाष्य और काशिकाके जो
नियमप्रयोग हैं, यद् उन्हीं श्लोकोंका संग्रह ग्रन्थ है ।
- ३५। यथ्यप्रदीप वा याक्प्रदीप—मरूहृदि प्रणीत ।
इसका दूसरा नाम हरिकारिका है ।
- ३६। व्याकरणभूषण—कोण्डभट्ट प्रणीत । यद्
ग्रन्थ भी याक्प्रदीपकी तरह संस्कृत व्याकरणका दार्श-
निक ग्रन्थ है ।

- ३७। भूषणसारदर्पण—हरिविहभ प्रणीत व्याकरण
भूषण ग्रन्थकी टीका ।
- ३८। व्याकरणभूषणसार—व्याकरणभूषणकी टीका ।
- ३९। व्याकरणसिद्धान्तमञ्जुष्य—नागोजी मट्ट
रचित । यद् ग्रंथ भी मरूहृदिके याक्प्रदीपकी तरह है ।
- ४०। लघुभूषणकावित—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत ।
- ४१। लघु व्याकरणसिद्धान्तमञ्जुष्य ।
- ४२। कला—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत । यद् लघु
व्याकरणसिद्धान्तमञ्जुष्यकी टीका है ।
- ४३। गणपाठ ।
- ४४। गणरत्नमहोदधि सटीक ।
- ४५। पाणिनि धातुपाठ ।
- ४६। धातुप्रदीप वा तन्त्रप्रदीप मैत्रेय रचित ह्येन ।
इसमें उदाहरण और धातुरूपाका उदाहरण दिया गया
है ।
- ४७। माधवीय धृति—सायणाचार्य प्रणीत ।
- ४८। पदचन्द्रिका—एक व्याकरण । इसमें पाणिनि-
स्मृत यथेष्ट उद्धृत हुआ है ।
पाणिनीय स्मृतके आधार पर ऐम और भी अनेक
ग्रन्थ हैं । इनके सिया तर्कशास्त्रके माध सम्बन्ध रखने-
वाले और भी कितने व्याकरण देखे जाते हैं । ये सब
ग्रन्थ व्याकरणशास्त्रके दर्शन नामके पुकारे जा सकते हैं ।
नीचे और भी कई व्याकरणोंके नाम लिखे जाते हैं—
- ४९। सरस्वतीप्रक्रिया—मनुभूति स्वरूपाचार्य
प्रणीत । इसमें सात सौ सूत्र हैं । ग्रंथकारने यद्
व्याकरण सरस्वती देवोंके प्रसादाने प्राप्त किया था, ऐसा
प्रवाद प्रचलित है । भारतवर्षमें इस व्याकरणका अधिक
प्रचार है । इस व्याकरणके तीन टीकाग्रंथ देखनेमें
आते हैं—एक पुत्रराजह्येन और बाकी मदानट्ट-प्रणीत है ।
इसके सिया सिद्धान्तचन्द्रिका नामकी भी इसकी एक
टीका है ।
- ५०। शब्दानुशासन वा टंग व्याकरण—जैनाचार्य
हेमचन्द्र घूरि द्वारा प्रणीत । जैन लोग इस व्याकरणकी
बहु भावसे पढ़ते हैं । कामधेनु नामक व्याकरण ग्रंथ-
में अभिनव नाकटापन रचित एक और शब्दानुशासन
ग्रन्थका नाम देखनेमें आता है ।

५१। प्राहृत मनोरमा—वरगनि प्रणीत प्राहृत-
चन्द्रिका प्रश्नको संक्षिप्त टीका। इसमें प्राहृत और
संस्कृत वाशकरणका पाठोपय दिखलाया गया है।

५२। कलापवाशकरण—इस वाशकरणका यद्गद्गेनमें
बहुत प्रकार है। इसका दूसरा नाम कातम्बवाशकरण है।

५३। दूर्गासिंहो—दुर्गासिंह प्रणीत कलापवाशकरण
की टीका।

५४। कातम्बचन्द्रिका—दुर्गासिंह कृत।

५५। कातम्बविस्तार—यदमान मिश्रकृत।

५६। कातम्बवज्रिका—कलापवाशकरणको . टीका,
शिलोचन दास प्रणीत।

५७। कलापनकारण्य—रघुनन्दन मानार्थमिरो-
मणि कृत।

५८। कातम्बचन्द्रिका—कलापटीका।

५९। चैत्रकुटि—वरगनिकृत कलापटीका।

६०। व्याख्यासार—हरिराम चक्रवर्तिकृत कलाप-
टीका।

६१। व्याख्यासार—रामदासकृत कलापटीका।

६२। कलापटीका—सुषेण कथिराजकृत।

६३। " रमानाकृत।

६४। " उमापतिकृत।

६५। " कुलचन्द्रकृत।

६६। " मुरारिकृत।

६७। " गिषामाकृत।

६८। कातम्बपरिनिघट्टे—धोपतिवृत्तकृत।

६९। परिनिघट्टबोध—गोपीनाथकृत कातम्बपरि-
निघट्ट का।

७०। परिनिघट्टसम्भारशाकरण—निषरामचक्रवर्तिक-
कृत कातम्बपरिनिघट्टटीका।

७१। कातम्बगणधामु।

७२। मनोरमा—रमानाकृत कातम्बगणधामुकी
टीका।

७३। कातम्बवृत्तकारण—महेन्द्रानन्दकृत।

७४। कातम्बउपाधिवृत्ति—नियदास प्रणीत।

७५। कातम्बगणधामुबोधोप।

७६। कातम्ब धामुघोप।

७७। कातम्बगणधामु।

इसके सिवा कलापमूल और उसकी वृत्ति
भादिके आधार पर और भी अनेक ग्रन्थ देखे जाने
हैं।

७८। संक्षिप्तसार वाशकरण—कमशेखर प्रणीत।
यह वाशकरण जुमारनगरी द्वारा प्रतिसंस्कृत है। इस
कारण इसका दूसरा नाम भीमार भी है।

७९। संक्षिप्तसारवाशकरणटीका—गोपीचन्द्रकृत।

८०। वाशकरणदीपिका—ग्यापपञ्जाननकृत। यह
ग्रन्थ गोपीचन्द्रकी संक्षिप्तसारवाशकरणटीकाकी व्याख्या
है।

८१। दुर्घटघटना—संक्षिप्तसार वाशकरणकी
टीका।

संक्षिप्तसारवाशकरणग्रन्थके आधार पर भी
अनेक वाशकरण ग्रन्थ और टीका व्याख्या ग्रन्थ
दिखाई देने हैं। गोपालचक्रवर्ती भादिके और भी
इसकी बहुत-सी टीकाएँ लिखी हैं। इस वाशकरणके
आधार पर जम्बूघोष और धामुघोष भादि नामका
अनेक वाशकरणनिर्गम्य है। यह वाशकरण यद्गद्गके
यदमान अञ्जलिमें प्रचलित है।

८२। मुग्धबोध—घोषदेवकृत। यह वाशकरण
भी यद्गद्गेनमें यद्गद्ग जाता है। ग्रन्थकारने कथ्यं इसकी
वृत्ति की है।

८३। सुबोधिनो—दुर्गादासकृत मुग्धबोधटीका।

८४। छाटा—मिश्रकृत मुग्धबोध टीका।

८५। मुग्धबोध टीका—रामानन्दकृत।

८६। " रामतर्षवागोदकृत।

८७। " मधुप्रनकृत।

८८। " देविदासकृत।

८९। " रामनन्दकृत।

९०। " रामप्रसाद तर्षवागोदकृत।

९१। " धोवदलमाभादेवकृत।

९२। " श्यामाम पाण्डवकृत।

९३। " ओलाभाकृत।

९४। " कान्ति'कमिदासकृत।

९५। " रतिकान्त तर्षवागोदकृत।

६६। मुग्धबोधटीका गोविन्दरामकृत ।
इसके अतिरिक्त मुग्धबोध व्याकरणको और भी
अनेक टीकाएँ हैं ।

६७। मुग्धबोध परिशिष्ट—काशीश्वरकृत ।

६८। " नन्दोकेश्वरकृत ।

६९। कविकल्पद्रुम—यह चौपदेशकृत गणपाठ ।

१००। काव्यरत्नामधेनु—बोधदेवकृत घातुपाठ और
धात्वर्थ ।

१०१। घातुदीपिका—दुर्गादासकृत ।

१०२। कविकल्पद्रुमव्याख्या—रामश्यायालङ्कारकृत ।
रामश्यायालङ्कारके कविकल्पद्रुमकी और भी एक व्याख्या
की है ।

१०३। धानुरत्नावली—राधाकृष्ण प्रणीत ।

१०४। बधिरदृश्य—हलामुक्कृत । इसमें साधारण
साधारण क्रियाके उदाहरण दिसलाये गये हैं ।
इस ग्रन्थकी एक टीका भी है ।

उल्लिखित ग्रन्थ मुग्धबोधके आधार पर रचे गये
हैं ।

१०५। सुवदप्रव्याकरण—महामहोपाध्याय वदनाम
दत्त प्रणीत । यशोर आदि अञ्चलोंमें यह व्याकरण
पढ़ा जाता है ।

१०६। गकरन्द—विष्णुमिश्रकृत सुवदप्रव्याकरण-
टीका ।

१०७। सुवदप्रव्याकरणटीका—कन्दर्पसिद्धाभ ।

१०८। " काशीश्वर ।

१०९। " श्रीधरचक्रवर्ती ।

११०। " रामचन्द्र ।

इसके अलावा इस व्याकरणकी और भी एक
टीका है ।

१११। सुवदपरिनिष्ठ ।

११२। सुवदप्रव्याकरण—वदनामदत्त प्रणीत । इस
में सुवदप्रव्याकरणकी परिभाषा और उणादिवृत्ति भी
है ।

११३। काशीश्वरगण—कशीश्वर प्रणीत ।

११४। काशीश्वरगणटीका—रामकान्तप्रणीत ।

११५। शतमालाव्याकरण—पुण्डरीक प्रणीत । यह

कामरूप और कौचबिहार अञ्चलमें पढ़ा जाता है । इसकी
भी तीन टीकाएँ हैं ।

११६। द्रुतबोध—भरतमहोदयप्रणीत सटीकव्याकरण ।
इस व्याकरणका तथा निम्नलिखित व्याकरणका उतना
प्रचार नहीं है ।

११७। शुद्धमुग्धबोध—रामेश्वर प्रणीत । रामेश्वरका
टीका सहित एक और भी व्याकरण है ।

११८। हरिनामामृत व्याकरण—भोजीवगोस्वामि-
प्रणीत । गौड़ीय वैष्णव इस व्याकरणका आदर करते
हैं । इसमें व्याकरणके साथ भक्ति और भगवत्तोलाका
उपदेश दिया गया है ।

११९। चैतन्यामृत—यह भी गौड़ीय वैष्णवोंका
प्रणीत है । इसकी टीका भी मिलती है ।

१२०। कारिकावली—रामनारायणकृत । जह व्या-
करण पद्यमें रचा गया है ।

१२१। प्रबोधप्रकाशव्याकरण—वलरामपञ्चाननकृत ।

१२२। रूपमालाव्याकरण—विमलासरस्वती प्रणीत ।

१२३। ज्ञानामृतव्याकरण—काशीश्वर प्रणीत ।

१२४। आशुबोधव्याकरण ।

१२५। शीघ्रबोधव्याकरण ।

१२६। लघुबोधव्याकरण ।

१२७। सारामृतव्याकरण ।

१२८। दिव्यव्याकरण ।

१२९। पदायतौव्याकरण ।

१३०। उल्काव्याकरण आदि और भी कितने संस्कृत
व्याकरण देखनेमें आते हैं । भारतवर्षके भिन्न भिन्न
प्रदेशमें व्याकरण शिक्षाके लिये कितनी व्याकरणपुस्तिका
टीका और पञ्जी आदि रची गईं हों, उनकी गिनती
लगाना कठिन है । जिन व्याकरणग्रन्थ और टीका-
व्याख्याके नाम लिखे गये, वे सभी ग्रन्थ प्रसिद्ध तथा
व्याकरण पढ़नेवालोंके सुपरिचित हैं । कालतः संस्कृत-
व्याकरणकी सर्वाङ्गसुन्दर तालिका बनाना सद्भव
नहीं है ।

इन सब ग्रन्थोंकी छोड़ माधवोपवृत्तिमें और भी
कितने व्याकरणोंके नाम देखनेमें आते हैं यथा—

राम, सावित्रि, राजराज, आर्षेय, घनवाल,

बीजिक, पुरन्धर, सुभाकर, मधुसूदन, पादय, माधुरि, धोमद्र, निवदेय, रामदेयमिथ, देवनन्दी, राम, भोम, भोज, हेताराज, सुभूतिकन्द्र, पूर्णचन्द्र, यहनारायण, कणवन्धारी, कंजयन्धारी, निवन्धारी, धूर्तवन्धारी, क्षीर-वन्धारी (क्षीरनरङ्गणीके प्रणेता) इत्यादि ।

माधवोपधातुवृत्तिमें तरङ्गिणी, धामरण, शाकाभरण, ममाम्ब, प्रक्रियारक्ष और प्रनोप आदि प्रन्थीके नाम हैं ।

बहुमते व्याकरणप्रन्थीमें व्याघ्रमूर्ति और याम्रपाद-के वार्त्तिकका नामोल्लेख देखा जाता है । धातुपारायण नामक एक वृत्ते प्रथका भी नाम सुननेमें आता है । यह धातुपारायण हेमचन्द्रकृत कद कर प्रसिद्ध है । दुर्गा-दास-रचित्र धातुशेषिका प्रथमं मष्टमल, गोविन्दमष्ट, चतुर्भुज, गदिसिद्ध, गोवर्द्धन तथा शरणदेय आदि ये वा-परणीका नामोल्लेख हैं ।

प्राकृतभाषाका व्याकरण ।

प्राकृतभाषाके व्याकरणोंमें परदक्षिके प्राकृतप्रकाशका नाम सबसे पहले उल्लेखयोग्य है । यह ग्रंथ परदक्षि विर-चित्त है । इस ग्रंथकी प्राकृत-मगोरेमा या प्राकृतचंद्रिका नामक एक वृत्तिग्रंथ भी है । भागद्व इसके रचयिता हैं । प्राकृतमञ्जरी नामक वृत्ति काव्यायन-कृत है तथा प्राकृतसञ्जोयनी नामको टीका वसंतराज द्वारा रची गई है । इसके सिवा प्राकृत भाषाकी बालोचनानके लिपे और भी अनेक व्याकरण रचे गये हैं । नीचे उनके नाम दिये जाते हैं—

प्राकृत-कल्पवृक्ष—राम तर्कधागीज ।

प्राकृत-कामधेनु—लङ्केश्वर । यह प्राकृतलङ्केश्वर नामने जो मजहूर है ।

प्राकृत-कौमुदी—

प्राकृत-चंद्रिका—रुचन पण्डित, भाग शेषरुचन नामने जो पारंरचित्त थे ।

प्राकृत-द्वैतिका—चण्डीदेय शर्मा । यह ग्रंथ संक्षिप्त-सार व्याकरणके दम भाष्यावकी टीका है ।

प्राकृत-वाङ्—नाारायण, इस ग्रंथका पूरा नाम संक्षिप्त-सार प्राकृतवाङ् है ।

प्राकृत-प्रक्रियावृत्ति—इन्द्रय मौताययमणि । यह हेम-चन्द्रके प्राकृतभाषावकी टीका है । यह ग्रंथ चतुर्वर्त्ति-शेषिका या प्राकृतवृत्तिपुस्तिका नामने भी प्रसिद्ध है ।

प्राकृत-प्रनोविका—

प्राकृत प्रनोप—नरचंद्र । यह हेमचंद्र रचित प्राकृत-भाषावकी दूसरी एक वृत्ति है ।

प्राकृत-भाषाभस्तरविधान—चंद्र ।

प्राकृत-रहस्य—यह पद्यभाषावार्त्तिक नामने जो विदित है ।

प्राकृत-लक्षण—चण्डी ।

प्राकृत-प्राकरण—समस्तमद्र ।

प्राकृत-व्याकरण—हेमचन्द्र (शब्दानुशासन) ।

प्राकृत-व्याकरणवृत्ति—सिधिमनदेव ।

प्राकृत-संस्कार ।

प्राकृत-सर्षप—मार्कण्डेय कपीन्द्र ।

प्राकृत-सूत्र—वाल्मीकि ।

प्राकृतभाष्याय—हेमचन्द्र-कृत शब्दानुशासनका दम भष्याय ।

प्राकृतानन्द—रघुनाथ शर्मा ।

प्राकृताष्टाध्यायी ।

बहुभाषाका व्याकरण ।

१७४३ ईमें पुस्तगीज भाषामें बङ्गला भाषाका आदि व्याकरण प्रकाशित हुआ ।

पीछे हालदेव नामक एक सिधिलिपयने बङ्गला-व्याकरण रचा और उसका प्रचार किया । हालदेव बङ्गला भाषामें विशेष अभिज्ञ थे ।

वाद्दरी केरी साहबका व्याकरण १८०३ ईमें प्रचारित हुआ तथा १८५५ ईके मध्य उसके चार संस्करण निकाले गये ।

बङ्गालीप्रणीत प्रथम व्याकरण १८६६ ईमें रचा गया । गङ्गाकिनोर भट्टाचार्य इसके प्रणेता हैं ।

हिन्दी-व्याकरण ।

हिन्दीभाषा शुद्ध शुद्ध लिखने पढ़नेके लिपे भी तो दिग्दोषाकरण भी अनेक हैं, पर निम्नलिखित व्याकरण प्रथम हो प्रसिद्ध और सर्वथ प्रचलित हैं ।

भाषाभास्कर—कानोनगरके पादरी पदलिखन साहब-कृत ।

दिग्दोभाषाका व्याकरण—कामला प्रसाद शुद्ध—

प्राकेसर दिग्दो मुनिपरीतो मत्तारत ।

हिन्दीकौमुदी—पं० अग्निवका प्रसाद वाजपेयी, सम्पा-
दक 'सतगुरु' ।

व्याकरणकौमुदी—रामद्विनिमिश्र काव्यतीर्थ ।

प्रभाकर—

व्याकरण-चन्द्रोदय—लहेरियासराय ।

इनके सिया निम्न कक्षामें पदानियोग्य और भी
कितने हिन्दी-व्याकरण हैं ।

व्याकरणकौमुदी (सं० 'पु०) एक ग्राह्य पण्डित ।

व्याकर्ता (सं० त्रि०) जगत्सहा, सृष्टिकर्ता ।

व्याकार (सं० पु०) १ व्याख्या, विवृति । २ परिवर्ति-
ताकार, किसी पदार्थका बिगड़ा या गढ़ा हुआ आकार ।
व्याकीर्ण (सं० त्रि०) वि-भा-क-क । विक्षिप्त, जो चारों
ओर अच्छी तरह फैलाया गया हो ।

व्याकुञ्चित (सं० त्रि०) विशेष आकुञ्चित ।

व्याकुल (सं० त्रि०) विशेषाकुलः । १ शोकदि द्वारा
इतिकर्ष्यताशून्य । जो भय या दुःखके कारण इतना
घबरा गया हो कि कुछ समझ न सके । २ यथावृत्त ।
३ उदरखिन्न । ४ कातर । ५ मगविधुर । ६ उपद्रुत ।
व्याकुलता (सं० स्त्री०) व्याकुलस्य भावः तल्ल-टाप् । १
व्याकुल होनेका भाव, विकलता, घबराहट । २ कातरता ।

व्याकुलधूप (सं० पु०) राजपुत्रभेद ।

व्याकुलात्मन् (सं० त्रि०) व्याकुलः आत्मा यस्य । शोक-
मिहतचित्त, शोककातर ।

व्याकुलित्तिन् (सं० त्रि०) व्याकुलितः ।

व्याकृति (सं० स्त्री०) विगिष्टा भावृतिः । छल, धोखा,
फरेब ।

व्याकृत (सं० त्रि०) वि-भा-क-क । १ प्रकाशित । २
व्याख्यात । ३ परिवर्तित, रूपान्तरित ।

व्याकृति (सं० स्त्री०) वि-भा-क-क-त्तिन् । १ प्रकाशनः
२ व्याख्यान । ३ परिवर्तन, रूपान्तर करना ।

व्याकौप (सं० पु०) विद्ये व्याप्ति । (कुमुदाञ्जलि ६१६)

व्याकौन (सं० पु०) व्याकुञ्चति प्रस्फुटतीति वि-भा-
कुञ्ज-क । १ विकारा । २ स्फुटित होना, निघना ।

व्याकौन (सं० त्रि०) व्याकुञ्चति मुकुलीमावापु यद्वि-
निःसरतीति वि-भा-कुञ्ज-क । प्रकुल, प्रस्फुटित, विक-
सित । (भाष्य ७१०१२२)

व्याकौन (सं० पु०) वि भा कुञ्ज-घञ् । १ किमीका
तिरस्कार करने हुए कटुक्ति करना । २ चिल्लाना, चिल्ला
हट ।

व्याकौनक (सं० त्रि०) वीरकारकारी, चिल्लानियाला ।

व्याक्षेप (सं० पु०) वि-भा-क्षि-घञ् । १ विलम्ब, देर ।

२ व्यासङ्ग अन्या सङ्ग । ३ आकुलता, घबराहट ।

व्याषया (सं० स्त्री०) व्याषयानमिति वि-भा-षया ।

'भातश्चोपसर्गे' इति अम्, ततप्याप् । १ यह वाक्य आदि
जो किसी जटिल पद या वाक्य आदिका अर्थ स्पष्ट
करता हो, टीका, व्याख्यान ।

"न गिष्याननुवञ्चोत प्रणयानेवाम्येदृष्टम् ।

न व्याख्यामूढप्रज्ञीत नारम्भानरमेन् वचिन् ॥"

(भागवत ७।१।१८)

व्याषया शब्दसे साधारणतः टीका या अर्थप्रका-
शक ग्रन्थका बोध होता है । सभी शास्त्रग्रन्थ प्रायः मूल
या श्लोकके आकारमें नियत हैं । सूत्र संक्षिप्त हैं, मन-
पर विना व्याषयाके अर्थबोध होना कठिन है । इस
कारण व्याषयाग्रन्थकी विशेष आवश्यकता है । शास्त्री-
के अनेक प्रकारके व्याषया प्रथम हैं । व्याषयाग्रन्थवृत्ति,
भाष्य, पारिच्छि, टीका, टिप्पणी आदि नाना शाखाओंमें
विभक्त हैं ।

इसके सिवा व्याषयाका एक साधारण लक्षण भी
है । यथा—

"पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विदो वाच्ययोजना ।

भाष्योत्पत्तय समाधानं व्याख्यानं पदच्छेषम् ॥"

पदच्छेद—अर्थान् मूलमें कई पद हैं जिन्हें स्पष्ट
रूपसे बना देना ; पदार्थोक्ति—किस पदका क्या अर्थ है,
उसे कहना, विग्रह—ममस्त पदका व्यासवाच्य उपन्यास
करना, वाच्ययोजना—ममस्त वाच्य या मूलका अर्थय
अर्थान् वाच्यघटक पदार्थोंके अर्थोंका परस्पर सम्बन्ध
दिखाना ; भाष्योक्ता समाधान—समाधानित भाषति
या आशङ्कका समाधान या निरसन, व्याषयाके यही
पान लक्षण हैं । व्याषयाग्रन्थमें उक्त पाँच विषय रहना
उचित है । वेदमें भी पदच्छेद दिखानेके लिये पदवाच्य,
पदग्रन्थ और व्याषयाके लिये प्राप्तिग्रन्थ विद्यमान हैं
किन्तु सभी व्याषयाग्रन्थोंमें सभी उक्त पाँच विषय

यः समान भावसे वर्णन नहीं होगा। व्याख्यानजन द्वारा पदच्छेदका कार्यसम्पन्न होता है, इस कारण अना-
 यतपक्ष विवेचनार्थे प्रायः समी जगत् पदच्छेद उपेक्षित
 रूप है। व्याख्याकर्त्ताओंके स्पष्टविशेषमें पदका अर्थ
 निर्देश किया है नहीं, पर अतिक्षात्र स्पष्टोंमें ही पदका
 अर्थ निर्देश नहीं किया। आक्षेपके समाधानके लिये
 ये स्पष्टविशेषमें एकसे अधिक कल्प या प्रणाली
 निर्देश करते हैं। अहां अनेक कल्प निर्दिष्ट हैं,
 वहां साधारणता शेष कल्प ही समीचीन है। पूर्व
 पूर्व कल्प कुछ श्रेयदुष्ट या सापत्तियोग है। अस्तिग
 कल्पका निर्देश करनेसे ही जब उत्तररूपमें साक्षेपका
 समाधान होता है, तब समसमीचीन पूर्व पूर्व कल्पों-
 के उपमासको अग्राय या अनायतपक्ष कहा जा
 सकता है। किन्तु व्याख्याकारने निश्चयुद्धिके वीर्य
 और परिचायनके लिये या कौशलदर्शन अभिप्रायसे
 नामा कल्पकी अग्रतारका की है।

व्याख्या प्रथमी भी वृत्ति, टोका आदि प्रकार
 भेद देने जानी हैं। वृत्ति प्रथम संज्ञित और उसकी
 रचना गौणीयैर्युक्त है। जिस प्रथमें मूत्रानुसा-
 रिपदके द्वारा मूत्रका अर्थ वर्णित होता है और
 निष्कर्ष प्रयुक्त पद अर्थात् भाव्य भी व्याख्यान होते
 हैं, उसका नाम भाव्य है। भाव्यकी रचना
 प्रगाढ है। भाव्यका अग्रतार्य सद्गत है, भाव्यार्थ
 कुछ सामान है। कोई वृत्तियाव्यकारमें और कोई
 कोई भाव्य भी व्याख्याकी प्रणालीमें रचित देखा
 जाता है। उसमें भाव्यका लक्षण विलकुल नहीं
 है। जिस व्याख्या-प्रथमें उक्त, अनुक्त और दुष्कत
 अर्थ परिष्कृत होता है, उसका नाम वार्तिक है।

२ गद पद्य जिसमें हम प्रकार अर्थ-विस्तार
 किया गया है। ३ वर्णन, कदना।

व्याख्यानप्रथम (सं० श्लो०) व्याख्यानप्रथम-व्याख्यान विवर-
 षेन सम्यगे ज्ञापने पम् । १ उत्तरागामीड, पादिके
 अभिधोषका शोक शोक उत्तर म दे कर इय उपरकी
 वर्णन कहना। (ति०) २ जो व्याख्या अग्राय टोका
 आदिके समाधानमें समझा जा सके।

व्याख्यान (सं० श्लो०) विभाषायाः । विष्णु,
 जिसकी व्याख्या की गई है।

व्याख्यायाः (सं० श्लो०) वि-म-व्या-तया । व्याख्यान
 योग्य, जो व्याख्या करनेके योग्य हो।

व्याख्यातृ (सं० श्लो०) वि-भाषया-सूचुः । १ व्याख्या-
 कारक, जो किसी विषयकी व्याख्या करता हो। २ जो
 व्याख्यान देना हो, भाषण करनेवाला।

व्याख्यान (सं० श्लो०) वि भाषया-सूचुः । १ किसी
 विषयकी व्याख्या या टोका करने अथवा विवरण क-
 लनेका काम। २ बोल कर कोई विषय समझानेका
 काम, भाषण। ३ वह जो कुछ व्याख्या रूपमें या म-
 भानिके लिये कहा जाय, भाषण, यक्तृता।

व्याख्यानशाला (सं० श्लो०) व्याख्यानस्य शाला ।
 व्याख्यानगृह, यह स्थान जहां किसी प्रकारका व्याख्यान
 आदि होता हो।

व्याख्यास्वर (सं० पु०) १ व्याख्याके उपयुक्त स्वर। २
 वह स्वर जो न बहुत ऊंचा हो और न बहुत मोचा,
 मध्यम स्वर। (भाष० भी० पृ० १३१)

व्याख्येय (सं० श्लो०) वि-भा-व्या-यत् आकारस्य प्रकारः ।
 व्याख्याई, जो व्याख्या करनेके योग्य हो, वर्णन करने
 वा समझाने लायक।

व्याघटत (सं० श्लो०) वि भा घट तपुः । १ सङ्घर्षण,
 अच्छी तरह रगड़नेका काम। २ झालोड़ग, मयना,
 विलोना।

व्याघात (सं० पु०) व्याघ्न्यनेऽनेनेति वि-भा-घ्न-घञ्
 नस्य त । १ विध्वंस आदि सहायस योगीमिने
 निरदवर्ष योग। व्योतिपके मतने यह योग शुभ नहीं है,
 इसमें किसी प्रकारका शुभ फायर करना वर्जित है।
 पर कुछ लोगोंका मत है, कि इससे पहले छः दृष्टिकों
 छोड़ कर शेष समयमें शुभ काम किये जा सकते हैं।
 (व्योतिपत्तय)

वीर्योपशेपके मतानुसार इस योगमें जो बालक
 जन्मग्रहण करता है, वह माधुभीके काममें विघ्न करने-
 वाला, बडोर भूटा और निर्दय होता है। (वीर्योपशेप)
 २ अनायास, विघ्न। ३ प्रदाय, भाषण, मार। ४ अर्थमें
 यह प्रकारका अर्थकार। इसमें एक ही उपायके द्वारा
 अथवा एक ही साधनके द्वारा ही विरोधी कार्योंके
 दोनेका वर्णन होता है।

व्याघारण (सं० ह्यो०) जलसिञ्चनकार्य। (कात्यायनभौ० १२)
 व्याघ्र (सं० पु०) व्याजिघ्रतीति वि-भा प्रा-क। स्वनाम-
 स्यात् चतुष्पद जन्तुविशेष, बाघ। पर्याय—गाईरूल,
 द्वीपो, पृथाकु, वनस्प, चित्रक, पुण्डरीक, हंसपद्म,
 प्याङ्गु, हिंम्रक, हिंसाक, श्यापद, पञ्चनख, व्याल,
 गुदागम, तीक्ष्णदंष्ट्रा, मीघ, नखायुध। इसके
 मांसका गुण—अर्शा, प्रमेह, जठरामय और जड़ता
 नाशक। व्याघ्र, सिंह आदि प्रहसन जातीय जन्तु
 हैं। बनिपुराणमें लिखा है, कि वश्यपवतनी दंष्ट्रा-
 के गणसे व्याघ्र, सिंह आदिको उत्पत्ति हुई।

यह स्वनामप्रसिद्ध चतुष्पद जन्तु स्तन्यपायी
 है तथा अत्यन्त हिंस्र और मारतायी समझे जाते
 हैं। भूख नहीं रहते पर भी यह सामने आये हुए शिकार
 को बिना मारे नहीं छोड़ता। सुना जाता है, कि
 यह गाय, भैंस, जहाँ तक कि मनुष्यों पर भी अतर्कित
 भावमें टूट पड़ता है और मुँहसे पकड़ कर घने जङ्गल-
 में ले जाता है। यहाँ उसके प्राणायुके निकल
 जाने पर उसे खाने लगता है। जब एक मनुष्य या
 पशु एक बारमें नहीं खा सकता, तब बाकीको दूसरे
 या तीसरेके लिये रख छोड़ता है। हम लोगोंके देश-
 में बिल्लो जिस प्रकार चूहेको पकड़ कर खेळ करती
 हुई मारती है, बाघ भी उसी प्रकार अपने शिकारको
 जङ्गलमें छोड़ कर बहुत दूर चला जाता है। इस
 समय शिकार यदि भागनेकी कोशिश करता है,
 तो यह दूरसे उछलता हुआ उस पर टूट पड़ता है
 और उसे भोज कर या क्षतविक्षत कर किनारे दूर
 हट जाता है। इस प्रकार खेल करते समय यह
 बड़ा आनन्द प्रकट करता है। व्याघ्रसे आक्रान्त
 बहुतसे लोगोंमें ऐसी भयस्थायी बाघके पंजिरे बनने-
 की आशासे घृषा पर पकड़ कर प्राण बचाये हैं।

शिकार ले कर कोट्टा और आमोद तथा बिल्लोके
 साथ बाघक आहृतिगत सादृश्य देख कर हम लोगों
 के देशमें बिल्लुको 'बाघको माँसे' कहते हैं। प्राणि-
 तत्वविज्ञान भी इसी कारणसे सिंह, व्याघ्र, लकड़-
 बच्चा, विशाल आदिकी पशुजातिकी Felis जाघाके
 अर्थात्निष्ठ किया है। इनके मन्से यथाक्रमण 1. Felis

जातिकी Felinae श्रेणीभुक्त हैं। चीता बाघ उम
 जातिकी एक दूसरी जावा (Felis Parulus) माना
 गया है। किन्तु लकड़बच्चाकी जाति Canidae
 अर्थात् कुत्ते जातिकी अन्तर्भुक्त है। पयोकि, दौन
 और मुक्की आहृति अच्छी तरह देखनेसे यह स्पभा
 यथा ही कुत्ते जातिका मातृम होता है।

यह व्याघ्र जाति समस्त भारतवर्षके अर्थात्
 कुमारिका अन्तरीपसे ले कर हिमालय श्रेणीके उ
 हजार फुटकी ऊँचाई तक विभिन्न स्थानके घने जङ्ग-
 लोंमें वास करती है। प्रयागरज्य, मलय प्रायद्वीप,
 पश्चिम एसिया अण्ड और अफ्रिका महादेशके
 जङ्गलोंमें अथवा नर या तृणाच्छादिन नदीके किनारे
 जहाँ अन्यत्र छोटे छोटे पशु जल पीनेके लिये आया
 करते हैं वैसे स्थानमें इन्हें विचरण करते देखा
 जाता है।

स्वाम विशेषके जलवायुके तात्पर्यानुसार व्याघ्र
 जातिका भी आहृतिगत अनेक वैषम्य हुआ करता
 है। इसी कारण हम विभिन्न स्थानमें विभिन्न प्रकार-
 के व्याघ्र भी देख पाते हैं। बङ्गालके पहाड़ी जङ्गलमें
 जो बड़ा बाघ दिखाई देता है वह यूरोपीय शिकारियों-
 के निकट Royal Bengal tiger नामसे प्रसिद्ध है।
 पेमा बड़ा और बलिष्ठ बाघ संसार भरमें कहीं नहीं
 देखा जाता। यह प्रायः १२ फुट तक लम्बा होता
 है। सुन्दरयनके वाली लकड़दारके मुखसे हमको
 हिंसा प्रकृतिकी अद्भुत गल्पे सुनी जाती हैं। पश्चिम
 बङ्गाल और मध्यभारतके पहाड़ी जङ्गलोंमें ऐमें
 लंबे बाघ देने तो जाते हैं, पर ये बंगालके बाघ जैसे
 हिंस्रक नहीं हैं।

सुन्दरवनका बड़ा बाघ (Tigris regalis) और
 पश्चिम बंगालका मधवनाहृति गो-बाघ भारतीय विभिन्न
 जातिकी भाषामें स्वतन्त्र नामसे पुकारे जाते हैं।
 यूरोपीय शिकारियोंकी भाषामें ये Battals tiger नामसे
 परिचित हैं। उत्तर-पश्चिम भारतमें बाघ और बाघिनो,
 शेर और शेरिनो कहलाती हैं। इनके सिवा यह
 विभिन्न देशमें विभिन्न नामसे परिचित हैं। यथा—
 महाराष्ट्रमें सु-हाग या पट्टिबाघ, बुंदेलखण्ड और

नवग्रहात्ममें माहर ; मागलपुरके पहाड़ी प्रदेशमें तुषु ; मोरधनुमें नागाचार ; तेलगु और तामिळमें पुन्डि, पेरुपुन्डि ; मलयालम पर्येपुन्डि ; कनाडो हुन्डी, तिप्पन्न-में माय ; भूटानमें तुष, वेण्ण सुन्दोङ्ग ; पण्डीगमें माचाल ; तुमाता रिमाम या हरिमन ।

इन ज्ञानिके बाधका शरीर ललाई लिये पीछा होता है । बोन बोनमें कालो रेखा दिखाई देतो है जो मेरुदण्डके पाम मोटी और पेटकी ओर पतली चलती गई है । पेटके निचले भागमें हरिद्राभा रपेन लोम दिखाई देते हैं । चिता-बाधके शरीरमें ऐसी काली रेखाएं नती रहतीं, गोल गोल चकत्ता दिखाई देता है । गर्ण भी प्रैसा गाढा लाल गद्दीं, धरन् वृद्ध मरल हरिद्रावर्ण मालूम होता है । हिम्सो हिम्सा चित्ताज्ञानिके बाधके मालजोम मो कुछ ललाई लिये पीछे होने हैं । ये ऊपर बहते गये दो प्रकारके वायोंमें बहुत छोटे होने हैं । चित्तावाप देखो ।

गालटर एलिपट, मेजर सर पिन और सर्जन मेजर जार्जन आदि निकारियोंने एक प्यारी कथा है, कि उन्होंने जिनने 'रायल वेहुल्ल टाइपल'का निकार किया है, उनमेंसे कोई भी १०'३" इंचसे बड़ा नहीं है, परन्तु दो एक १२' १३" फूट बाधकी कथा जो किसी किसी निकारोके वर्णन-में पाई जाती है वह सम्भवतः बाधके शरीरमें चमड़ेकी झलक कर तुलानिके समय लोच कर नापा गया होगा ।

दक्षिण भारतके व्यापके स्वभावकी झालोचना कर निकारो एलिपटने लिखा है — 'ये स्वभाषता शरपोक होने हैं, किन्तु जब कोई इन्हें विज्ञाता है तबशो किसी प्रकार चीट पसुंवाता है, तब ये कुपित हो कर आनतायो पर टूट पड़ते हैं । साधारणता पहाड़ी जंगलोंमें ये रहते हैं और मौजा देप कर चुपकेसे समस्त प्रांतरमें जाते और प्रायपूर्णशितमें छिप रहते हैं । अनेक स्थानोंमें ये जम्पादिको भट कर शरकीका बड़ा नुकसान करते हैं । सुविधा और अरुंका या कर यह हथकड़ी से जनेमें पाता गद्दीं जाता । राजकी गरमोकी मौसिममें जब प्रायशामो भयने बरामदे या जंगलमें सोता है, मौजा, या कर यह अंतर घूमता और उधे उठा ले जाता है । बापिनियोंकी हा और तक बणा जनेमें देखा गया है । इनके गर्ना-धावका कोई निर्दिष्ट समय गद्दीं है ।

एलिपटने सादेनगामी भीलजातिके मुणसे मुना ही कि, मोगतुन गायुके समय जब चाधका विदेर भमाप होता है, तब बाध पैंग पकड़ कर जोवन पारन करते हैं । इस समय पेटकी उचालासे एक शपने एक सजाककी निपजनेकी कोजिना की है ; पर उसका एक बंडा गलेमें बटक गया और गला विद हो गया, जिनसे यह पीछे कोई परन्तु था न सका । तदना यह सूच कर मर गया था ।'

मेजर सरपिलने बाधकपनकी गर्वालोचना कर लिखा है, कि बङ्गालके वायोंके मो दोस पार बच्चे होने हैं । जब तक बच्चे स्वयं निकार करनेमें समर्थ नहीं होते, तब तक ये माताके पीछे पीछे घूमते हैं । जब ये निकार करना मुक्त कर देने हैं, तब एक साथ ४५ गाय मार डालते हैं । परन्तु वृद्ध बाध इस प्रकार कमी मो नुक-सान नहीं करता । यह भूषके समय सिर्फ एक गाय मार कर जपने प्राणकी उंठा करता है । वृद्ध बाध इस प्रकार प्रायः प्रति साताहमें एक एक गाय पकड़ कर ले जाता है । गाय पकड़नेके लिये वह घने जंगलमें निकल कर गांवके समीप एक आशोमें छिप रहता है । और मौका पाने ही से गाय पीछ या जैस ले कर पुना जंगलकी ओर चलाय हो जाता है । यह जहां उम पशु की ले जाता है वहां दो तीन या उससे अधिक दिन रह कर उसकी कुछ हड्डियोंकी गवा लेता और तब घने जंगलमें चला जाता है । इस कारण जब निकारियोंकी मालूम होन है, कि बाध गायकी पकड़ ले गया है तब ये उसका पीछा करते हुए जंगलमें जाते हैं । जब उन्हें गुन पशुका पना लग जाता है, भव ये पासयाले किसी पेड़ पर बह कर उमकी प्रतीक्षा करते हैं । जब बाध उम हाड़े पचे मांग और हड्डोकी खाने लगता है, तब निकारो छिपे हुए स्थान-से मोली या तीर फेंक कर बाधकी मार डालते हैं । जिन पनमें बाध रहता है वहां एक चित्तानीय गंध पाई जाती है । उती गंधमें लोग वही बाधका रहना जान सकते हैं ।

बापिनो निविष्ट यनमें, विशेषतः जहां मरबंदिका जंगल होता है वही जपने प्रायककी छिपा रहती हैं । उम आषक की यदि कोई उमकी अनुपस्थितिमें उठा ले प्राय, मो वह

उस स्थान पर भा कर दिन रात चोत्कार करती है। साधारणतः हाथोंको पीठ पर चढ़ कर ही बाघका निकार किया जाता है। किन्तु शिक्षित शिकारी हीरेमें रह कर उस पर गोली चलाना भच्छा नहीं समझते, इससे उनकी जान पर खतर रहता है। ये पैदल ही घनमें घूम कर निकार करना निरापद समझते हैं। कहीं कहीं जहां दूसरे बाघने पशुको मार कर रखा है, वहां किसी वृक्षके ऊपर मचान बना कर शिकारी बैठते हैं। उधों ही बाघ मांस खाने लगता है त्यों ही शिकारी गोली दाग उसके प्राण ले लेते हैं। कभी कभी तो ये वृक्षके नीचे गाय झाड़िको निरापद भावमें बांध रखते हैं। बाघ उधों ही उसे खानेके लालचसे वहां जाता है त्यों ही शिकारी ऊपरसे गोली दागता है।

देगी शिकारी पहले एक जगह जालको फैला चले जाते हैं, पीछे जंगल घेर कर गोलाकार भावमें चारों ओरसे बाघको भगा कर जालके बीच लाते हैं। बाघ जब जालमें फँस जाते हैं, तब उन्हें पर लेते हैं वधया बँडोंसे भोंक कर उनके प्राण ले लेते हैं। सिंहभूम, हजारी-वाग आदि भक्षकोंमें कोल जङ्गलसे बाघका शिकार कर उसके चमड़े और मांसून ला सरकारको देते और सरकारसे उन्हें पुरस्कार मिलता है। कभी कभी स्ट्रीकनिगा बिला कर भी बाघकी हत्या की जाती है। प्रति वर्ष इस प्रकार कितने ही बाघ मारे जाते हैं। फिर भी इनकी संख्या कम हुई है, ऐसा मालूम नहीं होता।

बाघके मांसून बड़े कामकी चीज है। उनकी माला छोटे छोटे बघोंके गलेमें पहनानेसे कभी उन पर कुदृष्टि नहीं पड़ती। शिक्षितके निकट यह भीमाको सामग्री है। कोई कोई भादमी घेनके लाबेट या गलेके नेकलेसमें बाघके मांसूनको सोनेसे मढ़या कर गलेमें और कोई कोई सोनेसे मढ़या कर यलवाकारमें हाथमें पहनते हैं। संशिक्षित और कुलस्कारायद पति, बान्दरोगमें बघोंके गले या कमरमें बाघका मांसून पहना देने हैं। उनका विश्वास है, कि यह गव रहनेसे बान्दरोंका प्रकोपप्रति उबर या दृष्टि जानी रहती है। जिस त्वीको समान ही कर पीछे

ही समवके बाद मर जातो है, उनके भा जान बालके गलेमें व्याघ्र-मल लटका दिया जाता है। प्रवाद है, कि उनके बल बालक व्याघ्रकी तरह बलिष्ठ और शौर्यमयी होता है। व्याघ्रकी रक्तस्यसन्धिमें जो कण्डारिधि है वह अभिचार कार्यमें विशेष फलप्रद है। इनकी मूँछें या श्रोत्रके रोपे मां यनीकरणमें विशेष सहायक हैं। यदि पुष्ट उसका अधिकारी हो, तो यह आसानसे अभिलषित कामिनीको यज्ञमें ला सकता है। यदि वह खोके पास हो तो यह मद्दजमें पुष्टको यज्ञमें ला सकती है।

दक्षिणभारतके निम्नभूणोंके असम्भ्य लोग बाघका मांस खाते हैं।

प्राणितरविविदोंका कहना है, कि यह बाघ पारस्य हो कर बुधारा और जर्जिया तक गया है। बामूर देश, कलहटाई पर्वतश्रेणी और चीनदेशमें भी बहुतसे बाघ देखे जाते हैं। प्रक और मलय-प्रायोद्वीपमें बहुतसे बाघ हैं, परन्तु सिंहलमें नहीं हैं। इन सब विभिन्न देशोंके व्याघ्रमें भी आहतगत सामान्य पार्थक्य है।

साधारण व्याघ्रकी अपेक्षा लकड़बच्चा भिन्न हिंम है। अनेक जगह सुना गया है, कि चरवाहेने भैंस गायको चराते समय भागते हुए बाघको मार कर उसके मुखमेंसे निकारकी छीन लिया है। परिवर्तने लिया है, कि एक समय एक चरवाहेको बाघ उठा ले गया। यह देव दूसरे चरवाहेने गोरगुल मचाया और गाय भैंसको उसी और भगाया। भैंसोने तेजीसे जा कर बाघ पर आक्रमण कर दिया। बाघ भयभीत हो कर अपने निकारकी छोड़ भागा। किन्तु इस पर भी उसने मदिरके दाघसे परितान नहीं पाया। उधोंने अपने सों गले उसकी घेट काट दिया था।

लकड़बच्चाकी प्रकृति संगृण स्वभ्य है। ये शिकारकी बिलकुल नहीं छोड़ते। कभी कभी ये दो दिन तक शिकारके पीछे पड़े रहते हैं।

लकड़बच्चा देवो।

ऊपरमें गो-बाया मानक जिस व्याघ्रका इन्डेल हो चुका है, यही Buffalo Tiger नाममें प्रसिद्ध है। रबरकी

साहसि और प्रहसि प्रायः Bengal Tiger से मिलती जुलगी है। परन्तु साधारणतः शेरोंक जातिकी अपेक्षा यह कुछ छोटा होता है।

यह प्रायः जलानयके किनारे तरकटकके पक्षमें रहना है और मछली पक्री खादि या कर अपना पेट भरता है। हिमालयके पहाड़ी प्रदेशमें, नेपालके तराई प्रदेशमें, पूर्णिया जिलेमें तथा कलकत्तेके समीपवर्ती भागा स्थानोंमें ये शीघ्र पक्री हैं। रेकारण्ड बेकारने कहा है, कि मलवार उपकुलका बाघ बहुत पम्पिष्ठ होता है। वही वही यह छोटे छोटे बघोंकी उठा ले जाता है। बहूनेमें इसे बिलो जातिमें शामिल किया है। F. bengalensis और उसी प्रकारका एक और बाघ-बिहान Leopard Cat है। इसकी देह २६ इञ्च और पूंछ प्रायः १२ इञ्च लम्बी होती है।

केंदुमा बाघकी विशारमें खोता, सैलहूमें खीता-पुन्नी, कर्णाटमें चिर्वा और निबूहो तथा कहीं कहीं लघर कहने हैं। ये पोस मानने हैं, इस कारण निकारी भनिक समय इहें कीलससे पकड़ते हैं और उपयुक्त निम्न दे कर कुत्तोंकी तरह निकारमें अपने साथ ले जाते हैं।

इसका शरीर उज्ज्वल रक्त और हृदिमिश्रित पाटल-वर्णके लोमोंसे ढका रहता है। शीघ्र शीघ्रमें काला धरवा दिर्पाई देता है, किन्तु यह ऊपर कड़े गये चिन्ताके जैसा नकाकार नहीं होता। चक्षुकीपसे दो काली रेखा मुख तक चलते हैं। कान छोटे और मोल होते हैं। पूंछ छोटी होती और उसमें जगद जगद काला धाग रहता है। अपना भाग पतला और काले रंगोंसे ढका रहता है। देहपरि जीर्ण और शीर्ष हांकी तथा कोमर प्रे-हाउएड नामक जीर्णदेहो कुत्ते सी होती है। शरीरकी पुनविनी बिलहूल मोल होती है। गिरले से कर समूचा शरीर १३० फुट, पूंछ २० फुट और ऊँचा २३ इंचे २३० फुट होती है।

इस जातिके बाघकी प्राचीनपण पहलें खोता (Panther या Leopardus) समझने थे। उत्तर अफ्रिका-प्राचीन पर्यमान भरव जाति तथा उक्त प्राचीनोका विचार है, कि सिंद और असल घोना (Panis) जाति-

के सदृशसे इस जातिके खोताका उद्वृत्ति हुई है। मध्य और दक्षिण भारतमें, पश्चिम और उत्तर भारतके पारस-से सिन्धु, राजपूताना और पञ्जाप प्रदेशमें मनेर केंदुमा देवनेमें भाते हैं। सिंदह और बहूलमें भी केंदुमाका नामाव नहीं है। ये मोलगाय, गोनाय, हलिय खादि-का निकार करते हैं। जेहँन सादृशने लिखा है, कि उहोंने जङ्गलमें शूगलके साथ केंदुमाकी एक साथ भूमते देखा है। उहोंने मोलगायके पीछे पीछे केंदुमाकी छिपके दृष्टिने हुए भी देखा था।

केंदुमाके शायककी अच्छी तरह सिधामे पर भी यह निकारके उपयुक्त नहीं होता। शीघ्रपकलमें जब यह माता विताने निकार करनेका ढंग सोन लेता है, अर्थात् साथ निकार करने लगता है, तब यदि उसे पकड़ कर पाला पोसा जाये, तो प्रे-हाउएड कुत्तेसे भी बढ़ कर निकारी निवृत्ता है। महिसुरराज टोपू सुल-तानके पेसे पांच पालतू निकारी केंदुमा थे। धोर-पलनमें बहूदेओ सेनाके अधिनायक सर मर्धर घेलेस्नोमें टोपूके मपःपलनके बाद उन पोचों बाघकी ले लिया था।

इस जातिके निकारी बाघ साधारणतः प्रे-हाउएड वा पुष्टरीहके पीछेसे भी तैल दीह कर निकार पर दृष्ट पक्री हैं। यहां तक कि द्रुतगामी हरिलकी ये दीहनेमें मात कर गेते हैं।

यह व्याप्य शर्य मरदि शर्यके उत्तररथ मर्यान् बाद-में रहनेमें धेष्टाधेयाचक होता है। जैसे,—पुष्टपण मर्यान् पुष्टपण है।

"इयमेयं व्याघ्रादिभिः भेष्टार्थं", व्याकरणके इस मूक्तानुसार उचित जर्मपारय समाय होता है। पुष्ट-प्याण—पुष्टपः प्याण इव । यहां धेष्टार्थमें उचित जर्म पारय समास हुआ।

२ रथीरएड, लस रेंडो। ३ करर।
 व्याघ्र (सं० पु०) शुकुजिनेमे व्याघ्राजिनः (अश्विन-
 कोलरासोत्तम । वा १११८२) व्याघ्रजिन वर,
 अश्विनप्रभुव योग। व्याघ्रजिन।
 व्याघ्र (सं० पु०) रथीरएड १११, लस रेंडो १११।
 (वैदकीन)
 व्याघ्र (सं० पु०) शुकुजिनेमे व्याघ्राजिनः ।

व्याघ्रपङ्क (सं० पु०) बाघ या शेरका नाग्यून जो प्रायः बालकोंके गलेमें उम्हें नजर लगानेसे बचानेके लिये पहनाया जाता है।

व्याघ्रमेघ (सं० पु०) १ पुराणानुसार एक प्राचीन देवका नाम। २ इस देवका निवासी। (मार्क०पु० ५५।१७)

व्याघ्रघटा (सं० स्त्री०) किंकिणी या गोविन्दी नामकी लता। यह कीडूप्रदेशमें अधिकतासे होती है। इसका गुण—पित्तघ्नक, उष्ण, रुचिकर, विष और कफनाशक। इसका फल—तिकोष्ण, विस्फी, कफ और वातरोगनाशक तथा त्रिदोषविनाशक। (बैद्यकनि०)

व्याघ्रघण्टी (सं० स्त्री०) व्याघ्रघण्टा देखो।

व्याघ्रचर्म (सं० स्त्री०) व्याघ्रस्य चर्म। बाघ या शेरकी छाल। इस पर प्रायः लोग चैठते हैं या यह योगोंके लिये कमरों आदिमें लटकाने जाती है।

व्याघ्रभजन (सं० स्त्री०) व्याघ्रध्वंस। (भयर्ष० ४।१।७)

व्याघ्रतण्ड (सं० पु०) रफ्तैरण्ड, लाल रेंडू। (बैद्यकनि०)

व्याघ्रतल (सं० पु०) १ व्याघ्रतल या नखी नामक गन्धद्रव्य। २ रफ्तैरण्ड, लाल रेंडू।

व्याघ्रतला (सं० स्त्री०) व्याघ्रतल या नखी नामक गन्धद्रव्य, वगनहा।

व्याघ्रता (सं० स्त्री०) व्याघ्रका भाव या धर्म।

व्याघ्रस्य (सं० स्त्री०) व्याघ्रका भाव या धर्म।

व्याघ्रदंष्ट्र (सं० पु०) एक प्रकारका मुल्ल।

व्याघ्रवृत्त (सं० पु०) व्यक्तिसेद। (भारत दोषोपर्व)

व्याघ्रदल (सं० पु०) १ व्याघ्रतल या नखी नामक गन्धद्रव्य, वगनहा। २ रफ्तैरण्ड, लाल रेंडू।

व्याघ्रदला (सं० स्त्री०) व्याघ्रदल देखो।

व्याघ्रमूल (सं० स्त्री०) व्याघ्रस्य मूलमिय। १ नख या वगनहा नामक गन्धद्रव्य। महाराष्ट्र तथा बरकलमें इसे बाघनखा कहने हैं। पर्याय—व्याघ्रायुष, करम, चक्रवारक, गलाहू, नखी, गन्ध, घ्राघ्रतली। (शत-रत्ना०) गुण—तिकोष्ण, कषाय, शूल और कफनाशक, कण्टू, कुष्ठ और घननाशक, सुगन्धे (राजनि०) भावप्रकाशक, मससे यह प्रदोषी, स्तेप्मा, रक्तपर और वृषोरोगनाशक तथा लघु, हृष्य, शुक्लवर्णक, घर्णक, लघु और विषनाशक, भलवनी और सुवर्दीगन्धनाशक,

पाक और रसमें कटु माना गया है। (भाष्य०) २ कन्दविशेष। ३ मधुसूतविशेष। (पु०) व्याघ्रस्य मूलमिय कण्टक यव्य। ४ मूत्रहोत्र, भृशका पेड़। ५ पारलनख। (राजनि०) ६ बाघ या शेरका नाग्यून जो प्रायः बच्चोंके गलेमें उम्हें नजरसे बचानेके लिये पहनाया जाता है।

व्याघ्रनख (सं० स्त्री०) व्याघ्रनखमेव स्वार्ये कन्। १ व्याघ्रनख। २ नखसूत, नाग्यूनके द्वारा लगी हुई चोट।

व्याघ्रनखी (सं० स्त्री०) नख या वगनहा नामक गन्धद्रव्य। विशेष विवरण नव अधर्में देखो।

व्याघ्रनायक (सं० पु०) व्याघ्रस्य नायक इय। शृगाल, गोदड़।

व्याघ्रशु (सं० पु०) १ एक प्रकारका मुल्ल। २ घनिष्ठके मोलके एक प्राचीन श्रावि। ये श्रावेद १।६७।६-१८ मन्त्रके प्राये। ३ एक वैवाकरण। धोवदेवने इनका उद्देश्य किया है। ४ एक धर्मशास्त्रकार। ५ सुन्दरीश्वर स्तोत्रके प्रणेता।

व्याघ्रपद (सं० पु०) वृक्षविशेष। (शुक्लसंहिता ५।४।८२)

व्याघ्रपथ (सं० पु०) व्याघ्रपथका प्रामादिक पाठ। (ब्राह्मदीप्य उपनिषद् १।१।११)

व्याघ्रपराक्रम (सं० पु०) व्याघ्रस्य पराक्रमा। १ व्याघ्रका पराक्रम। (ति०) व्याघ्रस्य पराक्रम इय पराक्रमो यम्य। २ व्याघ्रके समान पराक्रमविशिष्ट।

व्याघ्रशुभ्र (सं० पु०) व्याघ्रस्य पाद् इय प्रमिधयुक्तमूलाणि यस्य। (पादस्य लोपोऽस्त्यादिभ्या। या १।४।१।६) इत्यलौघः। १ विकटून या कंटाई नामक वृक्ष। २ मुनिविशेष। ३ वैवाकरणसेद। व्याघ्रशुभ्रदेवो। (ति०) ४ व्याघ्रमुन्य चरण।

व्याघ्रशुभ्र (सं० पु०) व्याघ्रस्य पाद् इय मूलाणि यस्य। १ विकटून या कंटाई नामक वृक्ष। २ विकटुक, गर्ताहुल। (राजनि०) ३ मुनिविशेष। ४ धर्मशास्त्रके प्रणेता एक मुनि। इनके चरण व्याघ्रके समान थे। (भाष्य १।१।४।१६)

व्याघ्रशुभ्र (सं० स्त्री०) विकटुक, गर्ताहुल।

व्याघ्रपुच्छ (सं० पु०) व्याघ्रस्य पुच्छमिव सवृक्षद्वयस्य। १ पराण्डवृक्ष, रेंडूका पेड़। २ व्याघ्रतल-लामुल, बाघकी वृक्ष।

व्याजिज्ञ (सं० लि०) बड़ा कृटिक, यक्र ।
 व्याजो (सं० स्त्री०) विद्योमें माप या तौलके ऊपर कुछ
 थोड़ा-सा और देना, घाल, घलुया ।
 व्याजोकरण (सं० स्त्री०) यज्ञनीकरण, छलना करना ।
 व्याजोक्ति (सं० स्त्री०) व्याजाने उक्ता । १ यह
 कथन जिसमें किसी प्रकारका छल हो, कपट मरो वात ।
 २ एक प्रकारका अलंकार । इसमें किसी स्पष्ट या प्रकट
 बातको छिपानेके लिये किसी प्रकारका बहाना किया
 जाता है । छेकापहलितसे इसमें यह अंतर है, कि छेका-
 पहलितमें निषेधपूर्वक बात छिपाई जाती है और इसमें
 बिना निषेध किये ही छिपाई जाती है

(गार्हित्यद० १०७४६)

व्याङ् (सं० पु०) १ सप, सांघ । २ व्याघ्र, शेर । ३ इन्द्र ।
 (लि०) ४ यज्ञक धूर्त ।

व्याङ्ग्य (सं० स्त्री०) रकौरण्ड, लाल रेंद ।

व्याङ्ग्युध (सं० स्त्री०) व्याङ्ग्य व्याप्रस्य आयुधं
 नखमित्य । नख नामक गन्धद्रव्य ।

व्याङ्गि (सं० पु०) १ कोय और घाकरणकारक मुनि-
 विशेष । पा १।२।६४ सूत्रके ४५ पासिकमें व्याङ्गिका
 उल्लेख मिलता है । २ कथिभेद । ३ प्रातिगाथ्यकारिका
 और संप्रद नामक ग्रन्थके प्रणेता । नागोजो भट्टने
 इनका नामोल्लेख किया है । पर्याय--विश्वधवाम्नी,
 मन्दिनीतनय, विश्ववसथ मन्दिनीसुत । (पि०)

व्याङ्गा (सं० स्त्री०) व्याङ्गि-व्यङ्ग-ततश्चाप् । व्याङ्गीको
 स्त्री । (पा ४।१.८०)

व्याप्त (सं० लि०) वि-आ-दा-क्त । १ प्रसारित । २
 विस्तृत, प्रगस्त, लम्बा-चोड़ा ।

व्याप्त्युक्ती (सं० स्त्री०) व्यतिहारेण उक्तं वि आ-जति-
 उभ्र (कर्मव्यतिहारे व्यप्तिर्वा । पा ३।३।४१) इति जच्
 तनः (व्यञ्जः त्रिवामन् । पा ३।३।४१) इति मच् (टिट्टाण-
 जिति । पा ४।३।४१) इति ङीप् । जल-कोष्ठ ।

व्यादान (सं० स्त्री०) वि-आ-दा-न्नुट् । १ विस्तार,
 फैलाव । २ उद्धारन, खोलना ।

व्यादिश (सं० पु०) विशेष्यादिगति स्व भ्र कर्मणि
 निषाञ्जयति जगत् वि-आ-दिश-क । विष्णु ।

व्यादोषं (सं० लि०) मति दोषं, बहुत लम्बा ।

व्यादोषं (सं० लि०) विशेषरूपसे निरा हुआ ।
 व्यादोषास्य (सं० पु०) सिद्ध ।
 व्यादेश (सं० पु०) विशेष भाशेना ।
 व्याध (सं० पु०) विध्यति मृगादीन् व्यवध (व्याधयेत्)
 पा ३।१।४१ इति ण । १ यह जो जंगली वस्तुको
 आदिको मार कर अपना निर्वाह करता हो, गिकारी ।
 पर्याय--मृगधपात्रोय, मृगपु, लुब्धक, मृगायिन्, द्रोहाट,
 मृगजीवन, चलपांशुन । (शम्भरत्ना०) २ प्राचीन
 कालकी एक जाति । यह जंगली पशुओंको मार कर
 अपना जीविका निर्वाह करता था । प्रलयेवसंपुराणके मनु-
 सार इसको उत्पत्ति सर्पस्त्री माता और क्षत्रिय पितारों
 है । ३ प्राचीन कालकी शबर नामक जाति । (लि०)

ध दुष्ट, पात्री, लुष्ठा ।

व्याधक (सं० पु०) व्याध-लार्थे कन् । व्याध देना ।

व्याधभोत (सं० पु०) व्याधान्भोतः । १ मृग, हिरन । (लि०)

२ व्याधसे मीत ।

व्याधाम (सं० पु०) पञ्च । (रेभ)

व्याधि (सं० स्त्री०) विविधा माघयोऽस्मात् यद्वा वि भा-
 धा (उपसर्गे षोः कि । पा ३।३।२२) इति कि । रोग, पीड़ा
 बीमारो ।

पुरुषमें दुःखका योग होनेसे उसे व्याधि कहते हैं ।
 पुरुष जो दुःख अनुभव करता है, वही व्याधिपदवान्य है ।
 यह व्याधि हो तरहकी है—जारीर और मानस । घायु,
 पित्त और मूत्रेशोकी विषमता निवन्धन जारीरव्याधि तथा
 कात, क्रोध, लोभ और मोहादि निवन्धन मानसव्याधि
 होती है ।

जारीर और मन यह दोनों ही व्याधिसमूहका और
 शारीरका माध्यस्थान है । घायु, पित्त और कफ ये
 तीन जारीर दोष तथा रजः और तमा ये दो मानस दोष
 कहें गये हैं । उक्त घायु पित्तादि दोष कुपित्त दो
 शारीरिक व्याधि तथा रजः और तमोदोषसे मानसिक
 व्याधि उत्पन्न होती है । घलि, होम और व्यवस्थानादि
 शैव आश्रय तथा संज्ञोचन और संज्ञामादि मुक्ति माध्य
 कर इन दोनों द्वारा यानादि दोषको ज्ञान्ति तथा ध्यान,
 विश्रान, धर्म, मूर्ति और समाधि द्वारा मानस व्याधि-
 को ज्ञान्ति होती है । (भविष्यपुराण २०० अ०)

२ वृत्त वा वृत्त नामको योगिनि । ३ भावत, भ्रंशट । ४ मारिस्थिती यत्र संजातो भाव, विरह, नाम मारिके काले जरीरमें किमो प्रकारका रोग होता ।

व्याधिदान (सं० पु०) रोमट्टिम और दानिका हेतुभूत-वायु । (भावत नि०)

व्याधिलक्ष्य (सं० पु०) मज्जा मांसक मन्धप्रथम ।

व्याधिमान (सं० पु०) व्याधिर्वातो यस्मान् । मूल्य सामान्यप्रथम, वृद्धा जमलतामका पेट । (भावनि०)

व्याधिरन (सं० पु०) व्याधिं हन्ति व्याध-रन्, टक् । १ आरोग्य, भ्रमलताम । (ति०) २ व्याधिमानक, जिममें किमो प्रकारको व्याधिवा मान होता हो ।

व्याधिमिन् (सं० पु०) व्याधि जयति त्रि-किन्-सुक्-प । १ आरोग्य, भ्रमलताम । (ति०) २ व्याधिजय-कारो, व्याधिसे हरण करनेवाला ।

व्याधित (सं० ति०) व्याधिः संज्ञातोऽस्येति सारवादि-व्याधितम् । व्याधियुक्त, जिसे किमो प्रकारको व्याधि हुई हो, रोमी, बीमारी ।

व्याधित् (सं० लिट्) व्याधयतिनि । १ व्याधियुक्त, जिमें किमो प्रकारको व्याधि हुई हो । व्याध-यिन् । २ जन्मुपेयमनीक, दुर्दान्तको मारनेवाला ।

(सुप्रत्ययः १६१८)

व्याधिमानन (सं० पु०) १ ताप-घ्नो । (ति०) २ शैथिल्यक ।

व्याधिमिन् (सं० पु०) व्याधि यय विगुः । १ व्याधिरूप जन्तु । २ भ्रमलताम । ३ एक प्रकारका जमलताम जिसे कर्णिकार कहते हैं ।

व्याधिविपरीत (सं० पु०) व्याधिर्विपरीतः । रोमी भीषण जो व्याधिसे विपरीत गुण करनेवाली हो । अग्नि—हृद्य गान्धे ममय कश्चित्कम करीयेवाली हवा । (भावनि०)

व्याधिपान (सं० ली०) जरीर, वदह, तिमन ।

व्याधिहन्तु (सं० पु०) व्याधिं हन्ति । व्याधोः कंठ, गुरुरकंठ, ति० । (भावनि०) रोमका नाम दे ।

व्याधिहर (सं० ति०) व्याधिं हन्ति । व्याधिं हन्ति ।

व्याधो (सं० ली०) भायुक्, भ्रमलताम । (भावर् ३१२४२) कर्णिक देली ।

व्याधुन (सं० ति०) वि-धा-धु-कः । कर्मित, कँपा हुआ । (भावतना०)

व्याधूय (सं० पु०) वि-भा-धू-कः । कर्मित, कपा हुआ । व्याधय (सं० ति०) १ व्याध-सायकीय, व्याधिवा । (पु०) २ गिर ।

व्याधयत् (सं० पु०) दामोदरहृत्त यैवक प्रथम ।

व्याधन (सं० पु०) व्याधिति सर्वजरीरं व्याधोतीति वि-भा-भन-घन् । जरीरमें रहनेवाली पौन वायुसंनि-धि एक वायु । यह सारे जरीरमें संचार करनेवाली मानो जाती है । कहते हैं, कि इमोके द्वारा जरीरका सब क्रियाएँ होती हैं ; सारे जरीरमें रक्त पहुँचना है, पत्तोना बढ़ना है और मूल चलना है, आदमी उठना, बैठना और चलना फिरना है और अग्नि गोलना तथा बंद करना है । मायप्रदानके मतमें जब वह वायु कुपित होती है, तब प्रायः सारे जरीरमें एक न रक्त रोग हो जाता है । (भावने०)

व्याधन् (सं० ली०) व्याधं ददातीति दा-क, द्विषो टाप् । वह जिक जो व्याधन वायु प्रदान करता है । (सुप्रत्ययः १०११४)

व्याधनि (सं० ति०) व्याधयन्तीत्य, व्याधयति । (अ० ३१२४३)

व्याधय (सं० ति०) विरहेनेलाओति वि-धा-य-घु-पु । १ जो बहुत दूर तक व्याध हो, पागे भीर फीला हुआ । २ व्याधिकाव्याधिकरण मूल्यमापाधितियाधिकार्य, तमिष्ठारव्यमापाधितियागो । अथवातामका आ प्रतियोगी मर्धान् अनाय है, यही व्याधय है । ३ व्याधय-क, जो व्याध या पागे भीरसे भी दूर हो ।

व्याधयन् (सं० पु०) व्याधयन्तीति । जिसे व्याधकी व्याध करनेवाली है, इस व्याधके मूल्यमपने निरसे यह व्याध करनेका मूल्य व्याधयन्नाम है ।

व्याधयि (सं० ति०) वि-भा-य-ति । मूल्य, मीन । वि-भा-य-कः । मूल्य, मीन । व्याधयि । १ व्याधित, विरहाय,

फैलाव) २ आच्छादन करना, चारों ओरसे या ऊपर-से घेरना या ढकना ।

व्यापनी (दि० कि०) किसी चीजके अंदर फैलाना, व्याप्त होना ।

व्यापनीय (सं० लि०) वि-भा-प-नी-यर् । १ व्यापन करनेके योग्य । २ आच्छादनीय ।

व्यापन (सं० त्रि०) वि-भा-प-न्-क्त । १ मृत्त, मरा हुआ । २ विपन्न, जो किसी प्रकारकी विपत्तिमें पड़ा हुआ हो, भाग्यमें फंसा हुआ ।

व्यापाद (सं० पु०) वि-भा-प-द्-क्त । १ श्लोदचिन्तन, मनमें दूसरेके व्यवहारकी भायना करना, किन्हींकी बुराई सोचना । २ मारण, विनाश, बध । ३ नष्ट, बर्बाद ।

व्यापादक (सं० त्रि०) व्यापादयतीति वि भा पद् णिच्-ण्युट् । १ जो दूसरोंकी बुराई करनेकी इच्छा रखता हो । २ जो हत्या या घातनाश करता हो ।

व्यापादन (सं० क्ली०) वि-भा-प-द्-णिच्-त्सुट् । १ मार-डालना, बध, हत्या । २ परानिष्ट चिन्तन, किसीकी कष्ट पहुँचानेका उपाय सोचना । ३ नष्ट करना, बर्बाद करना । (भगवद्गीर्णमें रामायण)

व्यापादनीय (सं० त्रि०) वि-भा-प-द्-णिच्-नी-यर् ।

व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करने लायक ।

व्यापादविरह्य (सं० त्रि०) वि-भा-प-द्-णिच्-त्सुट् ।

व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करने लायक ।

व्यापादित (सं० त्रि०) वि-भा-प-द्-णिच्-क्त । मारित, मारा हुआ ।

व्यापार (सं० पु०) वि-भा-प-य-ञ् । १ कर्म, कार्य, काम । २ साहाय्य, मदद । ३ नैसर्गिक मतसे करण ज्ञेय क्रियात्मक पदार्थ । जो पदार्थ करणजन्य क्रियाका जनक होता है, वही व्यापार है । विपयके साथ इन्द्रियका जो संबंध होता है, उसका नाम व्यापार है । यह व्यापार छः प्रकारका है : ४ परवसाय, पश्चाच्चिन्तन, अथवा धनके बद्धेमें पश्चाच्चिन्तना और देना ।

व्यापारक (सं० पु०) व्यापार साधे क्त । व्यापार देनेवाला ।

“नियतविवयामिमानव्यापारकोऽहद्वारः स्वोक्तार्थाः”

(इन्द्रमार्कण्डेय)

भदंकीरका कर्ण ही नियत विवयामिमान है ।

व्यापारण (सं० क्ली०) १ आदेश, भाषा देना । २ नियोग, किसी काममें नियुक्त करना ।

(पा.शा.१.१०४)

व्यापारवत्ता (सं० स्त्री०) व्यापारवती भावः व्यापार-वत् तल्-टाप् । व्यापारविशिष्टका भाव या धर्म, व्यापार ।

व्यापारयन् (सं० त्रि०) व्यापारो विघतेऽप्य मनुष्य मस्य-य । व्यापारविशिष्ट, व्यापारयुक्त ।

व्यापारिन् (सं० त्रि०) व्यापारोऽप्य-स्तोति व्यापार-रिन् । व्यापारी देनेवाला ।

व्यापारो (सं० त्रि०) १ जो किसी प्रकारका व्यापार करता हो । २ व्यवसाय या रोजगार करनेवाला, व्यवसायी, रोजगारी । ३ व्यापार-सम्बन्धी, व्यापारका ।

व्यापारिव (सं० स्त्री०) व्यापारिणी भावः व्यापारि-व्य । व्यापारिका भाव या धर्म, व्यापारिका भाव या धर्म ।

व्यापारिन् (सं० पु०) व्यापारोति सत्य-मिति वि-भा-प-णिनि । १ विष्णु । (भात १.३.१.३.३) विष्णु नरानर सद्य जगद् व्यापारिन् हैं इसलिये ये व्यापारो कहलाते हैं । (त्रि०) २ व्यापारक, जो व्यापार देता ।

व्यापारिणी (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे पीत ।

व्यापारिणी (सं० पु०) वि-भा-प-य-क्त । १ कर्मसचिव, मंत्री, राजकर्मचारी । (त्रि०) २ व्यापारयुक्त, कार्यरत ।

व्यापारिणी (सं० स्त्री०) वि-भा-प-य-क्तिन् । व्यापार ।

व्यापारिणी (सं० त्रि०) वि-भा-प-य-क्त । १ सम्पूर्ण । पर्याय—पूर्ण, आवृत्त, छत्र, पूरित, गरित, निमित्त । २ व्यापार, महाहर । ३ समाकृत । ४ व्यापारित । ५ व्यापारियुक्त । ६ चेषित, परिपूरित । ७ विस्तारित ।

व्यापारिणी (सं० स्त्री०) वि-भा-प-य-क्तिन् । १ व्यापार, चारों ओर या सब जगह फैला हुआ होता । २ रक्षण । देव-चन्द्र अग्निमानमें रक्षाही जगद् लक्ष्मण ऐसा अर्थ देनेमें आता है । ३ आठ प्रकारके वेधवर्षमेंसे एक प्रकारका वेधवर्ष ।

व्यापारिणी, लक्ष्मणा, व्यापारिणी, व्यापारिणी, रक्षिता, अनिरत और कामावसायिणी वही आठ प्रकारके वेधवर्ष हैं ।

२ कृष्ट या कुट्ट नामकी शोषधि । ३ भाकन, मूँकट । ४ माहिर्यामी एक संवाची भाग, विरह काम मादिके कारण शरीरमें किन्मी प्रकारका रोग होना ।
व्याधिकार (सं० पु०) रोगरूति और हानिका हेतुभूत-
कारण । (माघनि०)

व्याधिषट्श (सं० पु०) नण नामक मधुद्रव्य ।
व्याधिघात (सं० पु०) व्याधिघातो यस्मात् । स्थूल
भारमधुघृष्ट, बढ़ा अमलतासका पेड़ । (राजनि०)

व्याधितन (सं० पु०) व्याधिं हन्ति व्याध-हन् टक् ।
१ श्राग्ध, अमलताम । (त्रि०) २ व्याधिनाशक,
जिससे किन्मी प्रकारकी व्याधिका नाश होता हो ।

व्याधिमित् (सं० पु०) व्याधि जयति जि-किप्-त्सुक्
च । १ श्राग्ध, अमलताम । (त्रि०) २ व्याधिमय-
कारी, व्याधिको हरण करनेवाला ।

व्याधित (सं० त्रि०) व्याधिः संज्ञातोऽस्येति तारकादि-
व्याधितच् । व्याधियुक्त, जिसे किसी प्रकारकी व्याधि
हुई हो, रोगी, बीमारी ।

व्याधिन् (सं० त्रि०) व्याध-णिनि । १ व्याधियुक्त,
जिसे किन्मी प्रकारकी व्याधि हुई हो । व्याध-णिनि ।
२ शत्रुवेधनशील, दुश्मनको मारनेवाला ।

(शुक्लपत्रः १६।१८)

व्याधिनाशन (सं० पु०) १ तोष-चीनी । (त्रि०) २
रोगनाशक ।

व्याधिनिपु (सं० पु०) व्याधि एव निपुः । १ व्याधिकरुण
शत्रु । २ अमलताम । ३ एक प्रकारका अमलतास
जिसे कर्णिकार कहते हैं ।

व्याधिविपरीत (सं० पु०) व्याधिर्बिपरीतः । चेन्मी
शोष्य जो व्याधिके विपरीत गुण करनेवाली हो ।
जैसे—दस्त लानेके समय दक्षिण्य करनेवाली दवा ।
(माघनि०)

व्याधिविहान (सं० त्रि०) शरीर, बदन, त्रिक्म ।

व्याधिहृत् (सं० पु०) व्याधिर्हृत् । १ पाराही कंद,
शूकरकंद, गेंडो । (राजनि०) २ रोगनाशक, जिससे
रोगका नाश हो ।

व्याधिहर (सं० त्रि०) व्याधि-ह-अप् । व्याधिनाशक,
व्याधिको हर करनेवाला ।

व्याधी (सं० स्त्री०) असुख, अज्ञान्ति ।

(भगवत् ७।११।२) व्याधि देवो ।

व्याधुन (सं० त्रि०) वि-धा-धु-क्त । कम्पित, कँपा
हुमा । (शब्दरत्ना०)

व्याधून (सं० पु०) वि-धा धू-क्त । कम्पित, कँपा हुमा ।

व्याधय (सं० त्रि०) १ व्याध-सम्पदीय, व्याधिका ।
(पु०) २ जिय ।

व्याधयत्र (सं० पु०) दामोदरकृत घैयक ग्रन्थ ।

व्याधन (सं० पु०) व्याधिति सर्वशरीरं व्याध्नोतीति
वि-धा-घन-अच् । शरीरमें रहनेवाली पाँच वायुओंमें-
से एक वायु । वह सारे शरीरमें संचार करनेवाली
मानो जाती है । कहते हैं, कि इसीके द्वारा शरीरकी
सब क्रियाएँ होती हैं ; सारे शरीरमें रस पहुँचना है,
पसोना बढ़ना है और खून चलता है, मादमी उठना,
बैठना और चलना फिरता है और भाँसे खालता तथा
बंद करता है । भावप्रकाशके मतसे जब यह वायु
कुपित होती है, तब प्रायः सारे शरीरमें एक न एक रोग
हो जाता है । (माघ०)

व्याधनदा (सं० स्त्री०) व्याधनं ददातीति दा-क, त्रिषां
टाप् । वह शक्ति जो व्याधन वायु प्रदान करती है ।

(शुक्लपत्र० १७।१४)

व्याधनि (सं० त्रि०) व्याधनशील, व्याधका ।

(शुक ३।५।३)

व्यापक (सं० त्रि०) विशिष्टेणापीति वि-आप-ण्युल् ।

१ जो बहुत दूर तक पयात हो, चारों ओर फैला हुआ ।
२ व्याप्योक्तव्याधिकरण पृथग्भावप्रतियोगिपदार्थो,
तन्निष्ठाव्यवस्थाभावाप्रतियोगो । अव्यवस्थाभावाका जो
प्रतियोगो मर्धात् अभाव है, यही व्यापक है । ३ आच्छा-
दक, जो ऊपर या चारों ओरसे घेरे हुए हो ।

व्यापकन्यास (सं० पु०) पूजाङ्गन्यासोद् । जिस
देवताको पूजा करने होती है, उस देवताके मूलमन्त्रमें
सिरसे पैर तक न्यास करनेका नाम व्यापकन्यास है ।

व्यापसि (सं० स्त्री०) वि-आप-क्ति । मृत्पु, मीत ।

व्यापट्ट (सं० स्त्री०) वि-आप-ट्ट । मृत्पु, मीत ।

व्यापन (सं० स्त्री०) वि-आप-ण्युल् । १ प्यासि, विस्तार,

फैलाय । २ आच्छादन करना, चारों ओरसे वा ऊपर-से घेरना या ढकना ।

व्यापनी (दि० कि०) किसी चीजके अंदर फैलाना, व्याप्त होना ।

व्यापनीय (सं० लि०) वि-आप-अनीय् । १ व्यापन करनेके योग्य । २ आच्छादनीय ।

व्यापन (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-क्त । १ मृत्त, मरा हुआ । २ विपन्न, जो किसी प्रकारकी विपत्तिमें पड़ा हुआ हो, आफतमें फँसा हुआ ।

व्यापाद (सं० पु०) वि-आ-पद्-क्त । १ प्रोदचिन्तन, मनमें दूसरेके धपकारकी भावना करना, किन्तुकी सुराई सोचना । २ मारण, विनाश, वध । ३ नष्ट, बर्बाद ।

व्यापादक (सं० लि०) व्यापादयतीति वि भा० पद्-णिच्-ण्युल् । १ जो दूसरोंकी सुराई करनेकी इच्छा रखता हो । २ जो हत्या वा वीनाश करता हो ।

व्यापादन (सं० कृ०) वि-आ-पद्-णिच्-ण्युल् । १ मार-डालना, वध, हत्या । २ परानिष्ट चिन्तन, किसीकी कष्ट पहुँचानेका उपाय सोचना । ३ नष्ट करना, बर्बाद करना । (भगवद्गीतामें रामायण)

व्यापादनीय (सं० लि०) वि-आ-पद्-णिच्-अनीय् । व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करने लायक ।

व्यापादयितव्य (सं० लि०) वि-आ-पद्-णिच्-तथा । व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करनेलायक ।

व्यापादित (सं० लि०) वि-आ-पद्-णिच्-क्त । मारित, मारा हुआ ।

व्यापार (सं० पु०) वि-आ-पृ-क्त । १ कर्म, कार्य, काम । २ साहाय्य, मदद । ३ नैवायिक मगते करण जन्व क्रियाजनक पदार्थ । जो पदार्थ करणजन्य क्रियाका जनक होता है, वही व्यापार है । विपयके साथ इन्द्रियका जो संबंध होता है, उसका नाम व्यापार है । यह व्यापारछाः प्रकारका है : ४ यावसाय, पदार्थों मध्यवा घनके बट्टेमें पदार्थ लेना नीर देना ।

व्यापारक (सं० पु०) व्यापार स्वार्थे क्तव । व्यापार देवी ।

“निधत्तविषयमिमानव्यापारकोऽदृष्टारः स्वोहायः”

(कृष्णभाष्य)

भदंकारका कार्य ही निपत्त विषयमिमान है ।

व्यापारण (सं० कृ०) १ भाई, भाऊ देना । २ नियोग, किसी काममें नियुक्त करना ।

(पा.शा.१०४)

व्यापारवत्ता (सं० स्त्री०) व्यापारवती भावः व्यापार-वत् तल्-टाप् । व्यापारविशिष्टका भाव या धर्म, व्यापार ।

व्यापारवत् (सं० लि०) व्यापारो विद्यतेऽस्य मनुष्य मस्य-व । व्यापारविशिष्ट, व्यापारयुक्त ।

व्यापारिन् (सं० लि०) व्यापारोऽस्या-स्त्यति व्यापार-इति । व्यापारी देवो ।

व्यापारो (सं० लि०) १ जो किसी प्रकारका व्यापार-करता हो । २ वयसाय या रोगमार करनेवाला, वयसायी, रोगमारी । ३ व्यापार-सम्बन्धी, व्यापार-का ।

व्यापार्य (सं० कृ०) व्यापिनो भावः व्यापिन्य-र्य । व्यापिका भाव या धर्म, व्यापकका भाव या धर्म ।

व्यापिन्य (सं० पु०) व्यापिनाति सयं-मिति वि-आप-णिनि । १ विष्णु । (भाव १३१४६३३) विष्णु चरानर सब जगद् व्याप्त हैं इसलिये वे व्यापि कहलाते हैं । (लि०) २ व्यापक, जो व्याप्त हो ।

व्यापीत (सं० लि०) सम्पूर्णरूपसे पीत ।

व्यापृत् (सं० पु०) वि-आ-पृ-क्त । १ कर्मसंबिध, मंती, राजकर्मचारी । (लि०) २ व्यापारयुक्त, कार्यरत ।

व्यापति (सं० स्त्री०) वि-आ-पृ-क्तिन् । व्यापार ।

व्याप्त (सं० लि०) वि-आ-पृ-क्त । १ सम्पूर्ण । पर्वय—पूर्ण, मानित, छत्र, पूरित, भरित, निश्चित । २ व्याप्त, मशहूर । ३ समाकांत । ४ व्यापित । ५ व्याप्तियुक्त । ६ चोष्टित, परिपूरित । ७ विस्तारित ।

व्यापिन् (सं० स्त्री०) वि-आप-क्तिन् । १ व्यापन, चारों ओर या सब जगद् फैला हुआ होना । २ रसन । हेम-नम्बू भूमिधानमें रसमही जगद् लयन लेता सयं देवने-में जाता है । ३ भाट प्रकारके चेम्बोंमें लेते वरु प्रकारका चेम्बयं ।

व्यपिमा, लविमा, व्यापि, प्रादाभय, महिमा, ईजिता, वजिहा भीर कामावन्नाविता वही भाट प्रकारके चेम्बयं हैं ।

२ कृष्ट या कृष्ट नामको योगधि । ३ आकन, भ्रंशकट । ४ मादित्यमें एक संवारी भाग, विरह काम आदिके कारण शरीरमें किमो प्रकारका रोग होना ।
 व्याधिकार (सं० पु०) रोगवृत्ति और हानिका हेतुभूत-
 कार । (भाष्य नि०)

व्याधिबद्ध (सं० पु०) मग नामक मन्थद्रव्य ।

व्याधिघात (सं० पु०) व्याधेघातो यन्मान् । स्थूल
 आर्यघघृक्ष, बड़ा अमलतासका पेड़ । (राजनि०)

व्याधिघ्न (सं० पु०) व्याधिं हन्ति व्याध-घ्न इत् ।
 १ आर्यघ, अमलतास । (ति०) २ व्याधिनाशक,
 जिससे किमो प्रकारको व्याधिका नाश होता हो ।

व्याधिजिन् (सं० पु०) व्याधि जयति जि-क्विप्-तुक्
 च । १ आर्यघ, अमलतास । (ति०) २ व्याधिजय-
 कारी, व्याधिको हरण करनेवाला ।

व्याधित (सं० ति०) व्याधिः संजातोऽस्येति तारकादि-
 त्वादितच् । व्याधियुक्त, जिससे किसी प्रकारको व्याधि
 हुई हो, रोगी, बीमारी ।

व्याधिन् (सं० त्रि०) व्याध णिनि । १ व्याधियुक्त,
 जिससे किमो प्रकारको व्याधि हुई हो । व्याध-णिन् ।
 २ जन्तुवेचनशील, दुश्मनका मारनेवाला ।

(शुक्लपत्रः १६।१८)

व्याधिनाशन (सं० पु०) १ तौघ-चीनी । (ति०) २
 रोगनाशक ।

व्याधिगिणु (सं० पु०) व्याधि एव गिणुः । १ व्याधिरूप
 जन्तु । २ अमलतास । ३ एक प्रकारका अमलतास
 जिससे कर्णिकार कहते हैं ।

व्याधिघिपरीत (सं० पु०) व्याधेर्घिपरीतः । येमो
 भीषण जो व्याधिके विपरीत गुण करनेवाली हो ।
 जैसे—दूध लानेके समय कश्चित्तन करनेवाली दूध ।
 (भाष्यनि०)

व्याधिस्थान (सं० स्त्री०) शरीर, बदन, जिसमें ।

व्याधिहम् (सं० पु०) व्याधेर्हस्ता । १ गाराहे कंद,
 शूकरकंद, गेंडो । (राजनि०) २ रोगनाशक, जिसमें
 रोगका नाश हो ।

व्याधिहर (सं० स्त्री०) व्याधि-ह-भप् । व्याधिनाशक,
 व्याधिसे दूर करनेवाला ।

व्याधी (सं० स्त्री०) अमृत, अनामि ।
 (भाष्य ७।११।२) व्याधि देवी ।

व्याधुन (सं० त्रि०) वि-भा-धु-क्त । कर्मित, कं पा
 हुआ । (शब्दरत्ना०)

व्याधूत (सं० पु०) वि-भा धू-क्त । कर्मित, कं पा हुआ ।

व्याधय (सं० त्रि०) १ व्याध-सम्पर्कौ, व्याधिका ।
 (पु०) २ जिय ।

व्याधगड (सं० पु०) दामोदरहन वैद्यक ग्रन्थ ।

व्यान (सं० पु०) व्यानिति सर्वशरीरं व्याप्नोतीति
 वि-आ-अन-भच् । शरीरमें रहनेवाली पाँच वायुओंमें-
 से एक वायु । यह सारे शरीरमें संचार करनेवाली
 मानो जाती है । कहते हैं, कि इसीके द्वारा शरीरको
 सब क्रियाएँ होती हैं; सारे शरीरमें रस पहुंचता है,
 पसोना बढ़ता है और खून चलता है, आदमी उठता,
 बैठता और चलता फिरता है और बालें गोलता तथा
 बंध करता है । भावप्रकाशके मतसे जब यह वायु
 कुपित होती है, तब प्रायः सारे शरीरमें एक न एक रोग
 हो जाता है । (भाष्य०)

व्यानदा (सं० स्त्री०) व्यानं ददातीति दा-क्, त्रिषां
 टाप् । यह शक्ति जो व्यान वायु प्रदान करती है ।
 (शुक्लपत्र० १७।१५)

व्याननि (सं० त्रि०) व्यापनशील, व्यापका ।
 (शब् २।५।२)

व्यापक (सं० त्रि०) विदेहेनाप्नोति वि-भाप-ण्युल् ।
 १ जो बहुत दूर तक पत्रात हो, चारों ओर फैला हुआ ।
 २ व्याप्यैकव्याधिकरण पृथग्भावाप्रतियोगिपदादी,
 तनिष्ठाव्यभानायाप्रतियोगो । अर्थव्यभानायापका जो
 प्रतियोगो बर्णान् अनाप है, यही व्यापक है । ३ आख्या-
 दक, जो ऊपर या चारों ओरसे घेरे हुए हो ।

व्यापकव्यास (सं० पु०) वृत्ताद्व्यासमेव । जिस
 द्रव्यको वृत्ता बरती होती है, उस द्रव्यके व्यापकव्यास
 सिरसे पैर तक व्यास बर्णकका नाम व्यापकव्यास है ।

व्यापनि (सं० स्त्री०) वि-भाप-नि । मृत्यु, मौत ।

व्यापद (सं० स्त्री०) वि-भा पद भिषत् । मृत्यु, मौत ।

व्यापन (सं० स्त्री०) वि-अप-ण्युल् । १ व्यापित, विस्तार,

कैलाय । २ आच्छादन करनी, चारों ओरसे वा ऊपर-से घेरना या ढकना ।

व्यापनी (दि० कि०) किसी चीजके अंदर फैलाना, व्याप्त होना ।

व्यापनीय (सं० लि०) वि-भाप-अनीयर् । १ व्यापन करनेके योग्य । २ आच्छादनीय ।

व्यापन (सं० लि०) वि-भा-पद्-क । १ मृत, मरा हुआ । २ विपन्न, जो किसी प्रकारकी विपत्तिमें पड़ा हुआ हो, साफलमें फंसा हुआ ।

व्यापाद (सं० पु०) वि-भा-पद्-क्त । १ श्रेष्ठचिह्नित, मनमें दूसरेके व्यवहारकी मायना करना, किन्तुकी सुराई सोचना । २ मारण, विनाश, बध । ३ नष्ट, बर्बाद ।

व्यापादक (सं० लि०) व्यापादयतीति वि भा पद् णिच्-प्पुलृ । १ जो दूसरोंकी सुराई करनेकी इच्छा रखता हो । २ जो हत्या या वीनाश करता हो ।

व्यापादन (सं० क्री०) वि-भा-पद्-णिच्-लुगृ । १ मार-डालना, बध, हत्या । २ परानिष्ठ चिन्तन, किन्तुकी कष्ट पहुँचानेका उपाय-सोचना । ३ नष्ट करना, बर्बाद करना । (भमरटीकामें रामायण)

व्यापादनीय (सं० लि०) वि-भा-पद्-णिच्-अनीयर् । व्यापादनयोग्य, मार डालने वा नष्ट करने लायक ।

व्यापादितव्य (सं० लि०) वि-भा-पद्-णिच्-तव्य । व्यापादनयोग्य, मार डालने वा नष्ट करनेलायक ।

व्यापादित (सं० लि०) वि-भा-पद्-णिच्-क्त । मारित, मारा हुआ ।

व्यापार (सं० पु०) वि-भा-पृ-पञ् । १ कार्य, कार्य, काम । २ साहाय्य, मदद । ३ नैवायिक मतसे करण अथवा क्रियात्मक पदार्थ । जो पदार्थ करणजन्य क्रियाका जनक होता है, वही व्यापार है । विपयके साथ शक्तिवत्ता जो संबोध होता है, उसीका नाम व्यापार है । यह व्यापार छः प्रकारका है : ४ पशुवसाय, पशुओं अथवा घनके बङ्गलेमें पदार्थ लेना नीर देना ।

व्यापारक (सं० पु०) व्यापार साधे क्तव्य । व्यापार देनी ।

"निदत्तविषयामिमानव्यापारकोऽहट्टारः स्वीहर्षाः"

(कुसुमावलि)

अर्धकारका कार्य ही निदत्त विषयामिमान है ।

व्यापारण (सं० क्री०) १ आर्देश, भाषा देना । २ नियोग, किसी काममें नियुक्त करना ।

(पा.शा.१०४)

व्यापारवत्ता (सं० क्री०) व्यापारवती भावः व्यापार वत् सत्-टाप् । व्यापारविशिष्टता भाव वा धर्म, व्यापार ।

व्यापारवत् (सं० लि०) व्यापारो विद्यतेऽथ मनुष्य मस्य च । व्यापारविशिष्ट, व्यापारयुक्त ।

व्यापारिन् (सं० लि०) व्यापारोऽप्य-स्तोति व्यापार-रिन् । व्यापारी देखो ।

व्यापारी (सं० लि०) १ जो किसी प्रकारका व्यापार करता हो । २ पशुवसाय वा रोजगार करनेवाला, पशुवसायी, रोजगारी । ३ व्यापार-सम्बन्धी, व्यापार का ।

व्यापार्य (सं० क्री०) व्यापिनो भावः व्यापिन्य रय । व्यापिका भाव वा धर्म, व्यापकका भाव वा धर्म ।

व्यापिन्य (सं० पु०) व्यापिनाति सयं-मिति वि-भाप-णिनि । १ विष्णु । (भात १३१४६३३) विष्णु नरामर सब जगद् व्याप्त हैं इसलिये वे व्यापि कहलाते हैं । (लि०) २ व्यापक, जो व्याप्त हो ।

व्यापीत (सं० लि०) सम्पूर्णरूपसे पोत ।

व्यापूत (सं० पु०) वि-भा-पृ-क्त । १ कर्मसचिव, मंत्री, राजकर्मचारी । (लि०) २ व्यापारयुक्त, कार्यरत ।

व्यापति (सं० क्री०) वि-भा-पृ-क्तिन् । व्यापार ।

व्याप्त (सं० लि०) वि-भा-पृ-क्त । १ सम्पूर्ण । पर्वव—पूर्ण, आश्रित, छत्र, पूरित, भरित, निवृत्त । २ व्याप्त, महाहर । ३ समस्ततः । ४ व्यापित । ५ व्याप्तियुक्त । ६ वेष्टित, परिपूरित । ७ विस्तारित ।

व्यापिन् (सं० क्री०) वि-भाप-क्तिन् । १ व्यापन, चारों ओर वा सब जगद् फैला हुआ होता । २ रक्षण । देव-पशु भूमिदानमें रक्षणही जगद् रक्षणन ऐसा सयं देवने-में आना है । ३ भाट प्रकारके वेधवर्षामें देव प्रकारका वेधवर्ष ।

अणिमा, लविमा, वदणि, प्रादाभ्य, मद्विमा, रंजिता, वजिहवा नीर कामायसाविना वही भाट प्रकारके वेधवर्ष हैं ।

४ न्यायके अनुसार किसी एक पदार्थमें दूसरे पदार्थ-का पूर्णरूपसे मिला या फैला हुआ होना, एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें मगघा उसके साथ सदा पाया जाना ।

साध्यविनिष्टके मध्य विषयमें जो असम्बन्ध मगघात् मगघृत्तित्व है, यही व्याप्ति है । इसका तात्पर्य इस प्रकार है, 'वह्निमान् धूमान्' धूम हेतुक वह्नियुक्त, यहाँ वह्नि साध्य और महानसाद्य साध्यमान् है, चुल्हे आदिमें यह साध्य वह्नि है, इस कारण यह साध्यमान् है, तद्वय मगघात् साध्यमानके मध्य जलहृदादि है, जलहृदादिमें साध्यरूपवह्नि नहीं है । अतएव यह तद्वय है, उसमें मगघात् जलहृदादिमें धूमका मगघृत्तित्व असम्बन्ध है, जलहृदादिमें धूमका कोई भी सम्बन्ध नहीं रह सकता, यही व्याप्ति है । मगघा हेतुमगघिष्ट विरहका जो अप्रति-योगी साध्य है उसके साथ हेतुका जो ऐकाधिकरण्य है, उसका नाम व्याप्ति है ।

मध्यव्यायमें व्याप्तिके लक्षण आलोचित हुए हैं । व्याप्तिकर्मान् (सं० पु०) व्याप्तिविनिष्ट कर्म यस्य । व्यायनक्रियाविनिष्ट, यह जिसको क्रिया तन्नाम व्याप्त हो । (गेदनि० २।१८ म०)

व्याप्तिज्ञान (सं० पु०) न्यायके अनुसार यह ज्ञान जो साध्यकी देय पर साध्यमानके अस्तित्वके सम्बन्धमें मगघा साध्यमानकी देय कर साध्यके अस्तित्वके सम्बन्धमें होता है ।

व्याप्तिव्य (सं० स्त्री०) व्याप्तिगतो भावः व्याप्तिमत् भावित्व । व्याप्तिमत्का भाव या धर्म, व्याप्ति ।

व्याप्तिमत् (सं० स्त्री०) व्याप्ति विघतेऽस्य व्याप्ति-मत्पु । व्याप्तिविनिष्ट, व्याप्तिव्युक्त ।

व्याप्य (सं० स्त्री०) व्याप्यते इति वि भाव-पपत् । १ यह जिसके द्वारा कोई काम हो, साधन, हेतु । "व्याप्यं लिङ्गञ्च साधनम्" (विकी०) व्याप्य द्वारा व्यापककी अनु-मित्त हुमा करता है । नैर्वायक मतसे व्याप्तिके अनु-योगीका नाम व्याप्य है । २ व्याप्ति देणे । ३ पुत्र या पुत्र नामक योग्यि । (ति०) ४ व्यापनीय, व्याप्य करनेके, योग्य ।

व्याप्यवृत्ति (सं० स्त्री०) अन्वदेनावृत्ति, जो अन्य पदार्थ-में हो ।

व्याप्तिव्यमान (सं० स्त्री०) वि-भा वृ-जानच् । व्याप्युत, नियुक्त ।

व्याम (सं० पु०) विशेषेण चाप्यतेऽनेनेति भ्रम गर्तो घञ् । परिमाणचरोप, लम्पारको एक ताप । दोनों दार्थको जहाँ तक हो सके, दोनों बगलमें फैलाने पर एक दार्थकी उँगलियोंके सिरेसे दूसरे दार्थकी उँगलियोंके सिरे तक जितनी दूरी होती है यह व्याम कहलाता है ।

व्यामिध्र (सं० स्त्री०) वि आ-मिध्र-घञ् । संमिलित, दो प्रकारके पदार्थों या कार्योंको एकता मिलानेकी क्रिया ।

व्यामिध्रव्यूह (सं० पु०) मिला जुला व्यूह, यह व्यूह जिसमें पैदलके अतिरिक्त हाथी, घोड़े और रथ भी सम्मिलित हों । कांटिल्यने इसके दो भेद कहे हैं—मध्य-भेदो और अन्तर्भेदो । मध्यभेदो यह है जिसके अन्तमें हाथी, रथ उरघोड़े, मुख्य भाग या केन्द्रमें रथ तथा उरध्वमें हाथी और रथ हों । इससे भिन्न अन्तर्भेदो है । व्यामिध्रासिद्धि (सं० स्त्री०) जलु और मित दोनोंकी विघतिको लपने अनुकूल होना ।

व्यामोद (सं० पु०) वि-आ-मुह-घञ् । मोद, मगघान ।

व्याप्य (सं० स्त्री०) १ विकल्पगमन वा नियम लक्षणहेतु व्यापित । २ विविधरूपसे पोषित । (भाष्यं ४।१६८ भाष्य)

व्यायत (सं० स्त्री०) विशेषणायत् । १ व्याप्युत, श्रेणी । २ दृष्ट । ३ अतिजाय । ४ दूर । ५ यशाम ।

व्यायतन (सं० स्त्री०) व्यायतनविशिष्ट ।

व्यायाम (सं० पु०) वि-आ यम-घञ् । १ पीरप । २ व्यापार, काम । ३ अम, मेहनत । ४ यियम । ५ यशाम । ६ दुर्गमझार । ७ महकौष्ट, कसरत, यह क्रिया जिसमें शारीरिक वरिधम होता है ।

यमकी अनुकूल और देहकी बलघट्टक जो शारीरिक कोष्टा या क्रिया है उसीको व्यायाम कहते हैं । यह व्यायाम उपयुक्त परिमाणमें करना होगा । उपयुक्त रूपमें व्यायाम करनेसे शरीरकी जड़ता दूर होता और बल धीरे धीरे बढ़ने लगता है । व्यायाम इस दिमाबसे करना चाहिये जिससे शरीर बलवन्त हुमात् म हो जाय । व्यायाम ठारा देह लघु, कार्मि मामर्प्य, शरीर विवर

अर्थात् योजनभावमें अथस्थान, पलेशैलद्विष्णुना, पातादि-
द्वेषकी हास्यवृद्धि का नाग और अग्नि की वृद्धि होती है ।

जो नियमितरूपसे व्यायाम करने हैं, उनकी अग्नि की
वृद्धि होती है, अतएव विरह, अविरह, विदग्ध, अवि-
दग्ध सभी प्रकारके वाद्य परिमित व्यायामशील व्यक्ति
आसानीसे पना लेता है । इससे अग्नि बढ़ती है, सुतप्त
उनके पातादिद्वेष कुपित नहीं हो सकते । अग्निवृद्धि
हैमिके कारण देहानुकूल व्यायाम द्वारा पातादिद्वेषकी
वृद्धि न हो कर पर उनकी समता ही होती है ।

अतिशय व्यायाम शरीरके लिये हानिकारक है ।
इससे शरीरकी ग्लानि, मनोग्लानि, घातुक्षय, सुष्णा,
रक्तपित्त, श्वास, कास, उदर, घमि आदि उपद्रव होते
अतएव यह अत्यन्त मात्रा में न करना चाहिये । हाथी
जिस प्रकार अथवा बलसे सिंहकी आक्रमण करने पर
भाप ही विनष्ट होता है उसी प्रकार अति मात्रामें
व्यायामकारी व्यक्ति भी श्वय विनष्ट होता है ।

व्यायाम सुबह प्राण करना चाहिये । दूसरे समय-
में करना उचित नहीं, अन्य समय करनेसे शरीरका
अपकार होता है ।

८ युद्धकी तैयारी । ९ सेनाकी कवायत आदि ।
(परस्पर स्थान ७ भ ०)

व्यायामम् (सं० त्रि०) व्यायामो विघनेऽस्य मत्तुप-
मस्य य । व्यायामयुक्त, व्यायामविनिष्ट ।

व्यायामयुद्ध (सं० पु०) आमने सामनेकी लड़ाई ।
घातव्यका मत है, कि व्यायामयुद्ध अर्थात् आमने
सामनेकी लड़ाईमें दोनों ही पक्षोंका बहुत हानि पहुँचती
है । जो राजा जोत भा जाता है, वह भी इतना कमजोर
हो जाता है, कि उसके एक प्रकारसे पराजित ही सम-
झना चाहिये ।

व्यायामिक (सं० त्रि०) व्यायामसम्बन्धी । "व्याया-
मिकोनां च विद्यानां ज्ञानम् ।" यह चीसठ कलाविद्यामें
एक है । भागवत १०।४।३६ श्लोककी टोकामें धीवर-
स्वामीने इसका उल्लेख किया है । किसी किसी ग्रन्थमें
'व्यायामिकों' अथवा 'वैतालिकों' वाट देवा जाता है ।

व्यायामिन् (सं० त्रि०) व्यायाम अल्पथे हिमि । १
व्यायामविनिष्ट, जो व्यायाम करना हो, कसरत करने

याना, कसरती । २ भ्रमजोन, जो बहुत परिश्रम करना
हो, मेहनती ।

या युक्त (सं० त्रि०) निज भागनेवाला । (वाटक ३।१३)

व्यायुध (सं० त्रि०) आयुधहीन, निःशस्त्र ।
(भारत शीघ्र ०)

व्यायोग (सं० पु०) विना युक्त-वत् । मादिरथमें
दश प्रकारके रथकोंमेंसे एक प्रकारका रथक या द्वय
क वय । इसको कथावस्तु किसी देवे प्रथम ही जानी
चाहिये जिससे सब लोग गली भांति परिचित हों ।
इसके पांशोंमें खिर्वा कम और पुण्य अधिक होते हैं ।
इसमें गर्भ, विदग्ध और सम्भि नहीं होते । इसमें एक
ही अंक रहता है और कौन्सिरी वृत्तिका यशदा
होता है । इसका मापक कोई प्रसिद्ध गजपिं, दिव्य
और घोरोद्धत होना चाहिये । इसमें शृंगार, हास्य
और शास्त्रके सिवा और सब रसोंका वर्णन होना है ।

व्यायोजिम (सं० पु०) स्पृशानुसम, विपनपालि ।
(सुभ्रु १।१६ भ ०)

व्यारोप (सं० पु०) आक्रोग, गुम्फा ।

व्याल (सं० पु०) विशेषेण आसाम्प्रतान् अजनीति धन-
पर्याप्तौ अच् । १ मर्षे, मर्षि । २ दुष्ट गज, पात्रो
हाथी । ३ व्याल, शेर । ४ यह वाप जो निवार करने-
के लिये सघाया गया हो । ५ राजा । ६ दृष्टक उच-
न एक भेद । ७ कोई हिंसक जन्तु । ८ विष्णु ।
(त्रि) ९ जट, धूस, कूर । १० अपकारो, दूसरोंका
अपकार करनेवाला ।

व्यालक (सं० पु०) व्याल एव स्वार्थे कन् । १ दुष्टगज,
पात्रो हाथी । पर्वोप—गमरोपदेशे, अङ्कुजदुष्टक,
व्यालक । (ब्रह्म ०) २ व्यापक, हिंस्रजन्तु । ३ व्याल देवो ।

व्यालकरत (सं० पु०) नक्ष वा वगनदा नामक गम्पद्रव्य ।
(गजनि ०)

व्यालपट्टम् (सं० त्रि०) व्यालस्थैश्च गजो यन्वय ।
नाकुन्तो नामक कंद ।

व्यालप्राद (सं० पु०) व्यालं युद्धंति व्याल-प्रद-वत् ।

व्यालप्राहो, यह जो मर्षिने पकड़ना हो, मर्षि ।

व्यालप्रादिन् (सं० पु०) अमं युद्धंतीति प्र-निनि ।
यह जो मर्षि पकड़नेका काम करता हो, मर्षि । पर्वोप—

वाहितुष्टिक, जांमुलि, वाहितुष्टिक, व्यालप्राद, गाठ-
ट्टिक, विपयैव ।

व्यालप्रीय (सं० पु०) १ वृद्धसंहिताके अनुसार एक
देवता नाम । २ इस देवता नियामी । (१० सं० १५६)

व्यालजहा (सं० स्त्री०) व्यालस्य जित्तेय आशुनि-
र्यस्याः । १ महापद्मना, कंगडी या कंगी नामक पीषा ।
२ व्यालकी जित्ता, गीव या दिश्र मन्तुकी जीव ।

व्यालना (सं० स्त्री०) व्यालका भाव या धर्म,
व्यालरश्म ।

व्यालरव (सं० स्त्री०) व्यालका भाव या धर्म, व्यालना ।
व्यालदंष्ट्र (सं० पु०) व्यालस्य दंष्ट्रेय आशुतिर्यस्य ।
गोदूश्चुप, गोदूश्चुका पीषा ।

व्यालद्रेकाण (सं० पु०) सर्पद्रेकाण । व्यालपर्व देवो ।
व्यालनत्र (सं० पु०) व्यालस्य नत्र इव आशुतिर्यस्य ।
नत्र या वगनदा नामक गन्धद्रव्य । इसका गुण—
तिक्त, उष्ण, कृपाय, कफ, वात, कुष्ठ, कण्डू और प्रण-
नाशक, घर्णवर्द्धक तथा सौम्यधरम् ।

व्यालपत्त (सं० पु०) पर्वतकल्पता, चैतपापट्टा ।
व्यालपत्ता (सं० स्त्री०) व्यालानि तीक्ष्णानि पत्तानि
वस्याः । पर्याक, चैतपापट्टा ।

व्यालपाणिज (सं० पु०) नत्र या वगनदा नामक गन्ध-
द्रव्य । (राजनि०)

व्यालप्रहरण (सं० पु०) नत्र या वगनदा नामक गन्ध-
द्रव्य । (वैचनि०)

व्यालवल (सं० पु०) नत्र या वगनदा नामक गन्धद्रव्य ।
व्यालमृग (सं० पु०) व्यालो दिश्रो मृगः पशुः । कव्य,
वीर ।

व्यालस्य (सं० पु०) विशेषेण व्यालस्यने वि-भा-लस्य-
अच् । १ रपतैष्ट, लाल रंज । (ति०) २ लस्य-
मान ।

व्यालसिन्धु (सं० ति०) व्यालस्यने वि-भा-लस्य इति ।
व्यालस्युक्त, प्रिलसिन्धु ।

व्यालवर्ग (सं० पु०) व्यालद्रेकाण । पर्वत और
पृथिव्या प्रथम, द्वितीय, तृतीय दो द्रेकाण तथा मीन-
का तथाय द्रेकाण, व्यालद्रेकाण कहलजा है ।

व्यालसूत्र (सं० पु०) ग-इ ।

व्यालस्युप (सं० पु० स्त्री०) व्यालस्य भासुर्षं नत्र इव
आशुतिर्यस्य । १ नत्र या वगनदा नामक गन्धद्रव्य ।
(भमरटीका मयुरेण) २ वगमनत्र, वायका नामून ।

व्यालि (सं० पु०) वगट्टि इत्ये ल । वगट्टि नामक
एक प्राचीन श्रायि । इहोमे एक वगतरण वनाया था ।

व्यालिक (सं० ति०) व्यालेन चरति वगल (गर्ग-
दिभ्यश्च । वा ५।५।१०) इति डच् । जो सर्पोंकी एक
कर अपने जीविका चलाता हो, संपेरा ।

व्यालीट्ट (सं० स्त्री०) सर्पके काटनेका एक प्रकार,
सर्पका घट काटना जिसमें केवल एक या दो दाँत लगे
हों और घावसे रून न बढ़ा हो ।

व्यालुप्त (सं० स्त्री०) सर्पके काटनेका एक प्रकार,
सर्पका घट काटना जिसमें दो दाँत भरपूर बैठे हों और
घावसे रून भी निकला हो ।

व्यालोत् (सं० ति०) इत्यच् कल्पित ।

व्यावकोशी (सं० स्त्री०) वि-भा-अव-कुशा (कर्मव्यति-
हारे याव् द्विवी । वा ३।३।४३) इति णच् लता (यावः
त्रिपामश् । वा ५।४।५) इति स्याथे भश्, (न कर्मव्यतिहारे । वा
७।३।६) इति वटप्रतिषेधः, द्विवीं डीप् । परस्पर
आक्रोशन, आपसमें क्रोध करना । (भरत)

व्यावमासी (सं० स्त्री०) वि-भा-अव मास-णच् स्याथे
भश्, डीप् । व्यावकोशी, आपसमें क्रोध करनेवाली ।

व्यावर्षा (सं० पु०) विमाय करना, दिग्गता लगाना ।

व्यावर्षा (सं० पु०) वि-भा-वृत्-अवच् । १ नाभिदृष्टक,
भाग्यी और निकली हुई नाभि । २ चक्रवर्द्ध, चक्रवर्द्ध ।

व्यावर्षाक (सं० ति०) व्यावर्षावतीति वि-भा-वृत्-
णिच्-ण्युल् । व्यावर्षावकारी, पीछेकी ओर लौटाने-
वाला ।

व्यावर्षान् (सं० स्त्री०) वि-भा-वृत्-णिवच्-ण्युल् । १ परा-
मुधीकरण, जो परांमुच किया गया हो । २ पीछेकी
ओर लौटाना या मोड़ा हुआ ।

व्यावर्षान् (सं० ति०) वि-भा-वृत्-णिवच्-ण्युल् । पराट्ट-
मुगो वृत्, जो पराट्टमुच किया गया हो ।

व्यावर्ष्य (सं० ति०) व्यावर्षाके वीर्य, त्यागके
लापक ।

व्यावहारिक (सं० ति०) व्यवहार-न् (विनयादिभ्यश्च ।

पा ५४३४) इति स्वार्थे षक् । १ व्यवहार । व्यवहार-
मित्याह व्यवहार-ठक् (श्यामभारदीनाम् । पा ७३।७)
इति वृद्धिनियेषः चेन्नाममश्च न स्यात् । २ जो व्यव-
हार शास्त्रके अनुसार अमियोपेक्षा विचार करता
हो, विचारक । ३ व्यवहार-सम्बन्धी । ४ धर्माधि-
करण-सम्बन्धी । ५ राजाका वह अमात्य या मन्त्री
जिनके अधिहारमें मोनरी और बाहरी सब तरहके
काम हों ।

व्यावहारिक शृणु (सं० पु०) यह शृणु जो किसी कार-
वारके सम्बन्धमें लिया गया हो ।

व्यावहारिक (सं० त्रि०) व्यवहारविशेष । व्यवहार
करनेवाला ।

व्यावहारी (सं० स्त्री०) व्यवहार-होए । १ परस्पर व्यव-
हार । २ परस्पर हरण । (बोधैव ६।११०)

व्यावहार्य (सं० त्रि०) व्यवहार यत् । व्यवहारके योग्य,
जो व्यवहार करने लायक हो ।

व्यावहार्या (सं० स्त्री०) वि-भव हस (कर्मकातिहारे षच्
त्रिषां । पा ३।३।३३ इति णच्, तताः (णच्, त्रिषाम् ।
पा ७।३।३) इति षच् प्रतिषेधा, त्रिषां ङोए । १ परस्पर
हास्यकरण । २ परस्पर विचारणा ।

व्यावृत् (सं० स्त्री०) १ विशेषरूप निर्देश । २ छाटो-
पान्त परिणित ।

व्यावृत्तय (सं० स्त्री०) १ समावृत्तय । २ गृह्णीभि-
सन्निधना ।

व्यावृत्त (सं० त्रि०) वि-आ-वृत्-क्त । १ निरुत्त, छुटा
हुआ । २ निविद्य, मना किया हुआ । ३ खण्डित, टूटा
हुआ । ४ वृषभकृत, बल्य किया हुआ । ५ मनोनीत,
जो मनमें चलंद किया गया हो । ६ वेष्टित, चारों ओर-
से घेरा हुआ । ७ अंगीकृत, बांटा हुआ । ८ स्तुत,
जिसको प्रशंसा या स्तुति को गई हो । ९ निवारित ।
१० आच्छादित, ऊपरमें ढका हुआ ।

व्यावृत्त (सं० स्त्री०) वि-आ-वृत्-क्तिन् । १ खण्डन ।
२ आरुत्त । ३ मनोनीत, मनसे चुनने या चलंद करने
का काम । ४ वेष्टन, चारों ओरसे घेरना । ५ स्तुति,
शारीर । ६ निवारण, निर्णय, मोक्षोत्सा । ७ निरुत्त,
मनाही । ८ बाधा, वल्लभ । ९ निवृत्ति । १० निवृत्ता ।
११ विपर्याय ।

व्यावृत्तु (सं० स्त्री०) १ समावृत्त रचनेमें इच्छुक । २ गोल
कर रचनेमें इच्छुक ।

व्याधय (सं० पु०) वि-आ-धि-घञ् । विभिन्न व्याधय ।
(कथिनि धावन्)

व्यास (सं० पु०) वि-अस-घञ् । १ विस्तार, फैलाय ।
१ मानसेव । (गण्डरत्ना०) ३ पुराणादि पाठक प्राज्ञण,
जो प्राज्ञण पुराणादि पाठ करते हैं, वे व्यास कहलाते
हैं । ४ गोल वस्तुकी मध्य रेखा । अंगरेजीमें इसे
Diameter कहते हैं । ५ समासविग्रह वाच्य । समास
करनेके समय जो वाच्य क्रिया जाता है, उसे चारावाच्य
कहते हैं । जैसे,—'दुर्मर्षाणि' 'दुर्मर्षाणां वक्ष्य माः
दुर्मर्षाणि' इसका नाम व्यासवाच्य है ।

व्याम—१ कृच्छ्र चाग्नावण लक्षण, पञ्चदश, गोलार्धवाच्य,
(व्यागविशदन्त) तद्वचोष और उसकी टीका, तीर्थपरि-
भाषा, वक्षकद्वय, प्रतिमाधक्षण, बालकृष्णाष्टक, शूद्र-
संहिता, ब्रह्मसूत्र महाभारत और पुराणनिधय, योगसूत्र
भाष्य, चक्रगुण्टस्तोत्र, वक्रगुण्टाष्टक, विभवावाष्टक, निय
तद्वचिविद्येक और इतिहास नामके ग्रन्थोंके रचयिता ।
ये पुराणपाठकके निकट व्यासदेव या वेदव्यास नामसे
परिचित हैं। वेदव्यास और व्यास शब्दमें देलो ।

२ यह गुरुजिनके छ गुरुमेंसे एक । ३ श्रुतप्रका-
शिकाके प्रणेता गुरुशान्ताचार्यकी उपाधि । ४ तंलसार-
टीकाके प्रणेता ।

व्याम आचार्य—अष्टमहासम्बद्धतिके प्रणेता ।

व्यामकृत (सं० स्त्री०) व्यामस्य कृत । १ महाभारत-
में भाष्य हुए वेदव्यासके कृत श्लोक । जो सब श्लोक
अति दुर्बोध तथा अस्पष्ट होने हैं, उन्हें व्यामकृत कहते
हैं । २ वे कृतश्लोक जो मोक्षार्थण होने पर सामान्य
आंके मान्यवान् व्यक्त पर बड़े गये थे और जिनसे उन्हें
कुछ ज्ञानित मिले थे ।

व्यामर्षेणय (सं० पु०) व्यामर्षणय नामक अभिधानके
प्रणेता । अज्ञयहन 'बलादय' नामक एक अभिधान
वाया जाता है । दोनों ग्रंथ और ग्रंथकार एक थे या
मदों कद मदीं मकते ।

व्यामक (सं० त्रि०) वि-आ-वृत्-क्त । १ जो बटन

अधिक भासन, दुःखा ह्ये, जिनका मन वेतरह भा गया
है। २ उद्वृत्तान्त, भगिभूय ।

व्यास गणपति—पैद्यनात्मप्रदके, सङ्कल्पिता ।

व्यासगिरि—गङ्गाविजयके प्रणेता ।

व्यासगोता (सं० स्त्री०) १ कूर्मपुराणका एक अंग ।
२ एक उपनिषद् ।

व्यासङ्ग (सं० लि०) वि-भा-सञ्ज घञ् । विशेषरूपसे
आसङ्ग, बद्धन अथिः साम्प्रति या मनोयोग्य ।

व्यासता (सं० स्त्री०) व्यासका भाय या धर्म, व्यासत्व ।

व्यासतीर्थ—एक प्रसिद्ध यति लक्ष्मीनारायणतीर्थके निश्च
अध्ययन समाप्त कर इष्टोनि पीछे ब्राह्मणतीर्थकी निश्चय
प्रदण किया । वेदेन मिथु इतके मन्त्रशिल्प थे । इष्टोनि
व्यासरायणत स्थापन किया था । १३३६ ई०में इनका
देहात्म हुआ । ये व्यासतीर्थ विश्व, व्यास यति और
व्यासराज नामसे भी परिचित थे । निम्नोक्त प्रथ
इष्टोके बलापे हुए हैं—

अनुत्तयतीर्थविजय, जयतीर्थकृत कथादक्षिण विवरण-
की टीका, ज्ञानन्दतीर्थ कृत काठकोपनिषद्भाष्य, छांदा-
भ्यापनिषद्भाष्य, तीसरीध्यापनिषद्भाष्य, बृहदारण्यकभाष्य,
भाष्यबोधपनिषद्भाष्य, मुण्डकोपनिषद्भाष्य आदिकी टीका,
तर्कनाण्ड्य, आनन्दार्थकृत ब्रह्मसूत्रभाष्यकी जयतीर्थकृत
सत्यप्रकाशिनो नामकी टीकाकी सारपंचमिन्द्रा नामकी
टिप्पण, न्यायामृत और कण्टकेश्वर नामकी उसकी
टीका, जयतीर्थकृत प्रज्ञामिष्यारयानुमानप्रण्डनविषय
की भाष्यप्रकाशिका नामकी टीका, मेधाञ्जीवन और ज ।
गोप्यका अन्वय्य प्रश्नटीकाके संक्षिप परिचय स्वरूप
मन्दारमञ्जरी नामक टिप्पण ।

व्यासदक्षि (सं० पु०) परदक्षिके पुत्र ।

व्य-सदास (सं० पु०) शैवेन्द्रका एक नाम ।

व्यासदेर—दायभाष्यनिर्णय विषेके प्रणेता ।

व्यासदेव मिथ—बृहस्पत्यरवरीकके रचयिता ।

व्यासगोपयता (सं० स्त्री०) व्यासवाक्यकी, बतककहो ।
(वैदिकी)

व्य सद्ब्रह्म—वैष्णोवैरास्य वादीकका ।

व्यासपूजा (सं० स्त्री०) व्यासके पूजा । व्यासका
पूजा, व्यासकी अर्चना ।

व्यासवत्स—निम्न दिनेपिना नामकी कुमारसम्भव टीका-
के प्रणेता ।

व्यासविद्वल भाष्यार्थ—शास्त्रविश्वामिष नामक भगिषान-
के सङ्कल्पिता ।

व्यासभट्ट—श्रीरङ्गाक्षरतय और सर्वाथमिदि नामक
वेदाङ्गप्रथके प्रणेता ।

व्यासमातृ (सं० स्त्री०) व्यासस्य माता । व्यासकी
माता, वेदव्यासकी जननी । पर्याय - सरयवती, बाम्बो,
गण्यकालिका, योजनगण्य, वासिष, शीलद्रापन
जोयसु, किसी किसी ग्रन्थमें शालद्रापनता नाम भी
देखा जाता है । कालो, भसोदरी, विचित्रदोदरु,
चिन्ताद्रुद्व, योजनगण्यिका, गण्यकाली, सरया, दास
नन्दिनी । (गद्यरत्ना०)

व्यासमूर्ति (सं० पु०) व्यासस्य मूर्तिर्देव । गिर,
महादेव । (शिवपु०)

व्यासयन (सं० स्त्री०) मुनिऋषिसेवित पवित मनोहर ।
(भारत वनर्ष)

व्यासयर्ष (सं० पु०) एक पण्डित । ये वाक्यार्थदीपिका-
के रचयिता दनुवशास्त्रार्थके विता थे ।

व्याससदानन्दजा--सद्योविधिनो-प्रक्रिया नामक गद्यरत्न-
के प्रणेता । ये स्वामतीर्थवासी थे ।

व्यासममासिन् (सं० लि०) व्यासममासमुक्त,
व्यासवाक्य और सगस्तवद्विनिष्ट ।

व्याससूत्र (सं० स्त्री०) व्यास प्रणीत 'सूत्र' । व्यास
प्रणीत सूत्र, वेदाङ्गसूत्र । वेदाङ्गदर्शनके सूत्र व्यासने
प्रणयन किये थे । वेदान्त वेदो ।

व्यासस्यलो (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक
प्राचीन वज्र तीर्थका नाम । (भारत वनर्ष)

व्यासाखल (सं० पु०) एक प्राचीन द्विप ।

व्यासाचार्य—एक प्रसिद्ध यति । इष्टोनि पीछे वेदव्यास-
तीर्थ नाम प्रदण किया था । १५६० ई०में ये मृत्यु
मुखमें पतिम हुए ।

व्यासारण्य (सं० स्त्री०) व्यासस्य आरण्य । १ व्यास-
वन । व्याससिद्ध यतः व्यास कर्म थे, उत व्यास
वन कहते हैं । २ एक प्रसिद्ध यति । ये विश्वेश्वरके
सुर थे । इष्टोनि सुवर्षिकी रचना की ।

व्यासाद (मं० पु०) व्यासस्य अर्द्धः । व्यासका
भाषा भाग, किसी वृत्तके केन्द्रसे उसके छोर-तककी
रेखा ।

व्यासाश्रम (मं० पु०) व्यासस्य आश्रमः । १ वशास
मुनिका आश्रम । २ वेदाश्रमकल्पतरुके प्रणेता अमला-
नन्दका एक नाम ।

व्यासाश्रक (मं० स्त्री०) व्यास-विरचित शिष्यस्तोत्र
विशेष ।

व्यासासन (सं० स्त्री०) यह आसन जिस पर कथा
कहनेवाले बैठ कर कथा कहते हैं ।

व्यासिद्ध (मं० लि०) वि-भा-सिध क । १ निविद्ध,
मना किया हुआ । २ अवच्छेद, टका हुआ ।

व्यासोप (सं० लि०) १ वशास सम्बन्धी, वशासका ।
(स्त्री०) २ वशासविरत ग्रन्थ ।

व्यासुकी (सं० पु०) व्यासिके गोत्रावस्थेय ।

व्यासिध (सं० पु०) विप्र, उरपात ।

व्यासेश्वर (सं० पु०) व्यासेन स्थापित ईश्वरः । निवलिङ्ग
विशेष, व्यास स्थापित शिष्यलिङ्ग ।

व्यासेश्वरतोष (सं० पु०) शिष्यपुराणका एक अध्याय ।

व्याहन (सं० लि०) वि भा-हन क । १ विशेष रूपसे
माहत । २ धर्यं । ३ प्रतिबद्ध । ४ निविद्ध, मना
किया हुआ ।

व्याहति (सं० स्त्री०) बाधा डालना, गलत पहुँचाना ।

व्याहनस्य (सं० लि०) विजिघ्रि मैथुनयुक्त या तदङ्गी-
भूत कार्य । (शुभसप्तः ६।३६)

व्याहस्तय (सं० लि०) वि भा-हन तथा । व्याहन-
योग ।

व्याहस्तयमान (सं० लि०) वि भा हन ज्ञानम् । प्रतिवि-
ष्टयमान ।

व्याहरण (सं० स्त्री०) वि-भा-ह-णम् । कथन, उक्ति ।

व्याहर्तय (सं० लि०) वर्णन करनेकी योग्य, बोलने
लायक ।

व्याहार (सं० पु०) वि भा-ह-णम् । वाक्य, जुमला ।

व्याहारव्य (सं० लि०) वाक्यवय, वाक्य-व्यञ्ज ।

व्याहारिन (सं० लि०) वाक्यव्यञ्जिष्ठ ।

व्याहान (सं० लि०) वि-भा-ह क । कथन, कथा हुआ ।

व्याहृति (सं० स्त्री०) वि-भा-ह-तिन् । १ वाक्यहार,
कथन, उक्ति । २ मन्त्रविशेष, ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः
ये मन्त्र ।

पुस्तकालमें ये मन्त्र स्वयं उद्भूत हुए थे । ये मन्त्र
अनुपनाजक, सत्य, रजः, तमः तथा प्रसा, विष्णु और
महेश्वर स्वरूप हैं । यह व्याहृति भोकार पूर्वक प्रयोग
करनी होगी है । व्याहृतिहोम करने पर इस मन्त्रसे
होम समझना होगा । (ओं भू, ओं भुवः, ओं स्वः)
इन सर्वोक्तो महाव्याहृति कहते हैं ।

(कर्मपु० उच्यते १३ भ०)

जहाँ और कोई मन्त्र न हो, यहाँ इसी व्याहृति मंत्र
से काम लेना चाहिये । (तैत्ति० उच्यते १।५।१)

३ सामभेद ।

व्युच्छिति (सं० स्त्री०) वि-उत् छिद्-क्तिः । विनाश,
बरबादी ।

व्युच्छेत् (सं० लि०) वि-उत्-छिद्-न् । विनाशक,
बरबाद करनेवाला ।

व्युत् (सं० लि०) वि-ये-क्त । व्युत्, पुला हुआ, सोया
हुआ । (भरत शिष्यकोष)

व्युत्ति (सं० स्त्री०) वि-ये-क्तिः । उक्ति, तन्तु सन्तानि ।
(भरत शिष्यकोष)

व्युत्क्रम (सं० पु०) वि-उत्-क्रम-घञ् । क्रमविपर्यय,
क्रममें उलट फेर देना, गड़बड़ ।

व्युत्कण (सं० स्त्री०) वि-उत्-कण-घञ् । पृथक्, अथ
स्वान, अलग रहना ।

व्युत्क्राम (सं० लि०) अतिव्याप्त, गत । (स्त्री०)
२ प्रहोल्का, पहेंली ।

व्युत्कृतय (सं० लि०) विशेष रूपसे उपधानके योग्य,
विद्वद् भाष्यमें रखने लायक ।

व्युत्पान (सं० स्त्री०) वि-उत्-पान-घञ् । १ स्वात्पान
या स्वाधीन हो कर काम करना । २ विरोधागमन,
किसीके विरुद्ध आघरण करना, जिनकार चलना । ३
प्रतिरोध, टकावट डालना, रोचना । ४ ममाधि । ५
नृत्वमेव । ६ विरुद्ध रूपसे उपधान । ७ देशिके अनु-
सार जिसकी अवस्था विशेष । हिन, मूढ, निश्चित,
पक्षमा और विद्वद्दये वाक्य प्रकारकी विभक्तो अवस्थाएँ

व्योमसदु (सं० पु०) १ देवता। २ सम्पद। ३ मूलयोगि।
व्योमसदु (सं० स्त्री०) व्योमिन या सरित्। व्योमसदु,
भाकाजगता।

व्योमसध्या (सं० स्त्री०) व्योमिनः सध्या। १ नमा-
स्त्वत्। २ वृद्धो। (भूरिप्र०)

व्योमस्यू (सं० स्त्री०) भाकाजगतां हारो, मन्थुषा।
व्योमाम (सं० पु०) व्योमना शून्येन आमातोति भा-
भाकः। १ युद्धदेव। २ देवप्रतिम जैन साधुमेद।

व्योमारि (सं० पु०) विभवेदेवगण।

व्योमादक (सं० स्त्री०) व्योमना उदकम्। द्विव्योमादक,
वर्षाका जल, वरसातका वानी।

व्योमिक (सं० स्त्री०) व्योमसम्बन्धी, व्योम या
भाकाजगता।

व्योव (सं० स्त्री०) विदेयेण शोषतीति उप द्वादे पचा-
यात्। सोड, पोपल और मिर्च इन तीनोंका समूह;
सिकट्ट।

म (सं० पु०) सद्गोभूत, परस्परमें अनुराग।

(शु० १।१२६।५ वाक्य)

मज (सं० स्त्री०) मजतीति मज-घ। १ मज्जन, गमन,
जाता या स्थलनः। (पु०) मज गती (गोचरलक्षणेति। या
३।३।१।१) इति च प्रवचनेन निपाननात् साधुः। २ समूह,
भण्ड। ३ गोष्ठ। ४ मधुरा और मृदापनके भास-पास-
का प्राण। यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका लीलाक्षेत्र है
कीर इसी कारण यह बहुत पवित्र माना जाता है।

पुराणों भादिके अनुसार मधुगामे चारों ओर ८४।८५
कोस तककी भूमि ममभूमि कही गई है। भगवान्
श्रीकृष्णने यहाँ लीला की थी, इसीसे यह मत्पत्त। पुण्य-
भूमि है। यदि कोई इस स्थानका प्रदक्षिण करे, तो उसे
घनभाग्य लाभ होता है। ३४ स्थानमें दान, पूजा या
बान् बननेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इस स्थान-
में यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो उसे भगव पुण्य
लाभ होता है और पाँडे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता।
भगवान् श्रीकृष्णने यहाँ दारु दत्तार लोभं प्रस्तुत किये
थे। इस मज्जभूमिमें बारह बारह घन, उदयन, प्रतिवन
और मधियन देगे जाते हैं। इन ४८ पत्तोंके नाम लघे
लिखे जाते हैं।

बारह घन—१ महाघन, २ काश्यपघन, ३ कीकिलघन,
४ तालघन, ५ वृमुदघन, ६ भाण्डोरघन, ७ उतनघन, ८
स्तदिरघन, ९ लोहजघन, १० भद्रघन, ११ बहुलघन, १२
विनयघन, ये सभी घन गुण फलप्रद हैं।

बारह उपघन—१ प्रज्ञघन, २ मत्परोघन, ३ विद्वत्-
घन, ४ कदम्बघन, ५ सर्पाघन, ६ सुरभिघन, ७ प्रेमघन,
८ मयुरघन, ९ मालिङ्कितघन, १० श्रेयजाविघन, ११ नारद
घन, १२ परमानन्दघन।

बारह प्रतिघन—१ रङ्गघन, २ वार्त्ताघन, ३ करदाघन-
घन, ४ काश्यपघन, ५ अज्ञानघन, ६ कर्णाघन, ७ कृष्णाति-
पलकघन, ८ नन्दप्रक्षण कृष्णाघनन्देनघन, ९ इन्द्रघन,
१० शिक्षाघन, ११ चन्द्रावलीघन कीर १२ लोहघन।

बारह अधिघन—१ मधुरा, २ शशाकुण्ड, ३ नन्द-
प्राग, ४ गृहस्थान, ५ ललितप्राग, ६ मृगमातुपुर, ७
गोकुल, ८ बलशेक, ९ गोवर्द्धनघन, १० जापट, ११
मृदाघन, १२ सङ्केतघन। मधुरा और मृदाघन देखी।
मजक (सं० पु०) तपस्वी। (शब्दरत्ना०)

मज्जकिञ्जोर (सं० पु०) मज्जस्य किञ्जोरा। श्रीकृष्ण।
श्रीकृष्ण मज्जभूमिके अधिष्ठाती देवता है। मज्ज-
भक्तिधिलासमें मज्जकिञ्जोरमन्त्र तथा उनके ध्यान
और पूजादिका विषय लिखा है। छादनाघनके मध्य
ललिताघनके अधिपति मज्जकिञ्जोर है। 'गो धौ
ललिताप्रा अधिपताधिपतये मज्जकिञ्जोराय नमः' यह
एक विज्ञापक इसका मन्त्र है। उनको पूजन नारा-
यण-पूजाविधिके अनुसार तथा उक्त मन्त्रसे प्राणा-
याम कर प्राणवाहिसास करता होता है। स्वास इस
प्रकार है—मत्प मत्तस्व विमाण्डक म्रिचि मंज्जकिञ्जो-
देवता गावतीउम्दः मम सकल वायश्चक्षारा मुगल-
कृष्णदर्शनाथे विनिवोगा, निरामि विमाण्डक म्रवधे
नमा, मुग्गे मज्जकिञ्जोराय नमः, हृदि गावतीच्छमर्त्स-
नमाः इस प्रकार स्वास करने के पदान कला होता है।
ध्यान इस प्रकार है—

"कलितमामं मुग्गे कृष्णं लोके मन्त्रमिमुं हम्।

ध्यादेविनेच्छं कृष्णं कलायाम् कोऽयमम् ॥"

(मज्जकिञ्जोर)

इस प्रकार ध्यान और पूजादि करने के पदानिक
प्राणवाह करने होते हैं। (मज्जकिञ्जोर १ म०)

प्रज्ञप्ति (सं० लि०) प्रज्ञ कृपे क्षिपति नियसयति इति, प्रज्ञ-क्षि क्षिपत्, "प्रज्ञ इति मेघनामसु (नि० २।१०।११) पठितं । अत्र तु उदकधारणसामर्थ्यान् कृप उच्यते ।"

(सुकल्पवृत्तः १०।४ महीषर)

प्रज्ञन (सं० ह्यो०) प्रज्ञ वपुर् । गमन, चलना, जाना ।

प्रज्ञनाथ (सं० पु०) प्रज्ञस्य नाथः । श्रीकृष्ण, प्रज्ञभूमि-के अधिपति ।

प्रज्ञनाथमठ—मसीनिका नाम्नी और ललितत्रिमङ्ग नामक विद्वान्त प्रपञ्चके रचयिता ।

प्रज्ञनक्तिविज्ञान (सं० पु०) श्रीकृष्णके प्रज्ञलीलाविषयक प्रपञ्चविशेष ।

प्रज्ञभाषा—प्रज्ञभूमिवासी जनमाधारण जिस भाषामें बातचीत करते हैं और जिस भाषामें काव्य-रच्य कर भारतके अधिकांश कवि, जैसे मूर, तुलसी, बिहारी आदि इतने यशस्वी हो गये हैं, वही प्रज्ञभाषा है ।

एक समय दिल्ली और आगरे जिलेके मध्यवर्ती सभी प्रदेश प्रज्ञभूमि या प्रज्ञराज्य कहलाते थे । मथुरा इस राज्यकी राजधानी थी । पृन्दायन और गोकुल-नगरी भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि होनेके कारण एक समय सभी मनुष्य उतें पूज्यदृष्टिसे देखते थे तथा भगवान्के लीलागानके लिये इस स्थानकी भाषाको विशेष उचितक थी ।

सुविम्बून भारतपुरराज्य, कृशारपर्वके अन्तर्गत गोवर्द्धनगिरिप्रदेश तथा गोवर्गिरिदुर्गाधिष्ठित सुप्रान्तीय ग्वालियर राज्यवासी सुनिश्चिन हिन्दूगण भी प्रज्ञभूमिके अधिवासिनीकी तरह परिष्कार और प्राञ्जल्यभाषामें प्रज्ञभाषाका व्यवहार करते थे । दिल्ली और आगरा प्रांत-धामी हिन्दू प्रज्ञबोलोको छोड़ कर लखी और उज्जैन हिन्दुओंमें बातचीत करते थे तथा मुगलमान लोग कुछ हिन्दुओं और देवता (उर्दू) भाषाकी काममें लाते थे । किंतु यैमघार, बुदायन, पुंजलमठ और मद्राके अन्तर्गामी प्रदेशमें प्रज्ञभाषा कुछ मिथिल भाषामें प्रचलित थी । इसमें जाना जाता है, कि किस प्रकार कथित भाषाके मिलनेसे प्रज्ञभाषा बहुत दूर तक फैल गई थी । पाश्चात्य-साहित्यप्रज्ञामूर्ति सुपरिचित हजककवयके सनमई प्रपञ्चकी टीकासे हम इस विषयका कुछ आभास पाते हैं—

"कोला कविता प्रिय है कवि सब चरन बना ।।

प्रथम देवबाणी बहुरि प्राकृति भाषा जान ॥

देग देग तें होत ही भाषा बहुत प्रकार ।

बलत है तिन घरमें स्वाभिपरी रचनार ॥"

उल्लिखित 'भाषा' प्रज्ञ मौर ग्वालियर प्रदेशकी स्थिति भाषा है, यह पृथिकी उक्तिसे ही जाना जाता है ।

यह प्रज्ञभाषा कबसे लिखित-भाषारूपमें प्रचलित होती आ रही है, उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता फिर भी इतना जरूर कहा जा सकता है, कि यह भाषा एक समय घेरे घेरे उच्च देशोंमें फैल गई थी तथा साधारणतः विशेषतः कविता-रसास्वादी उचिन्मात्रने ही इस भाषाकी कविताकलापके प्रियतम प्रयादक पवित्र तल कद कर प्रज्ञण किया था । केवल भारतवर्ष ही ही एक समय सारे पश्चिमके क्या हिंदू क्या मुसलमान अनेक कवि ही इस प्रज्ञभाषाकी कविता या गान रच गये हैं । यही कारण है, कि हम निवाळ, तुण्ड, भूपद, विष्णुपदस्तुति नामा प्रकारके गीत, कविता, उम्द, दोहा, छप्पर, सोरठा, कुण्डलिया आदि विभिन्न प्रकारके काव्य इसी भाषामें विरचित देखते हैं । इसमें संस्कृत भाषाकी बात रहने पर भी संस्कृतसे इसकी उत्पत्ति स्वीकार नहीं की जा सकती । परन्तु संस्कृत व्याकरणकी क्रिया और विशेष पदादिकी तरह इसमें भी पदादिके कर्मा कर्मा वा कालभेदसे क्रान्तर हुआ करता है । इस कारण बहुतेरे पण्डितोंने इस भाषाकी संस्कृतकी तरह मयूर और सुधायी बनलाया है । कविप्रियाप्रभामें कवि केसोदासने इस भाषाकी प्रशंसाता स्वीकार की है—

"भाषा योजन अतरे जिनके कुन्की दाव ।

भगवत्कविने मन्दर्गत तिहि कुन् केसोदाव ॥"

सुविषयवाच सात्त्विकवि कुल्यनिमित्तक तथा बिहारी-दासी दोनोंने ही प्रज्ञभाषाकी प्रशंसाका वर्णन किया है ।

७ "पित्री देवबाणी प्रगट है पश्चिमकी पार ।

ये भाषामें होय ही सब मन्वे ग्वालन ॥" (बिहारीच)

५ "प्रज्ञभाषा भवता सकल मुरवाची समकुल ।

हदि कल्पन सकल कवि अत्र म्प्राप्तदुम् ॥

द्वोमसङ्ग (सं० पु०) १ देवता। २ गणधर्म। ३ भूतपोषि।
द्वोमसन्निधि (सं० स्त्री०) द्वोमिनि या सन्निधि। द्वोमसङ्गा,
आकाशगंगा।

द्वोमसन्धि (सं० स्त्री०) द्वोमिनः सन्धिः। १ नभः-
सन्धिः। २ पृथ्वी। (भूरिप्र०)

द्वोमस्यूत (सं० लि०) आकाशस्यूतं हारी, सन्धुषा।
द्वोमस्य (सं० पु०) द्वोमिना शून्येन आमातीति भा-
भाः क। १ सुददेव। २ देवमतिम जैन साधुभेद।

द्वोमारि (सं० पु०) विभवेवगण।

द्वोमादक (सं० स्त्री०) द्वोमिनः उदकम्। द्विद्वोदक,
वर्षाका इल, वरसातका पानी।

द्वोमिक (सं० लि०) द्वोमसम्बन्धी, द्वोम या
आकाशका।

द्वोप (सं० स्त्री०) द्विद्वेषेण शोषतीति उप द्वावे पना-
चच्। सौत्र, पोषल और निर्व इम तीनोंका समूह;
त्रिकट्ट।

द्व (सं० पु०) सङ्गीभूत, परस्परमें अनुसारा।

(मृ० १।१६५।५ सत्यम्)

द्वज (सं० स्त्री०) द्वजतीति द्वज-घ। १ द्वजन, गमन,
ज्ञाना या चळना। (पु०) द्वज गती (गोचरधरोति। पा
३।३।१।६) इति घ प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। २ समूह,
मण्डल। ३ गोष्ठ। ४ मथुरा और पृथ्वायनके भास-वास-
का प्राणत। यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका लीलाक्षेत्र है
और इसी कारण यह बहुत पवित्र माना जाता है।

पुराणी भादिके अनुसार मथुरामें सारों और ८४।८५
बोस तककी भूमि ममभूमि कही गई है। भगवान्
श्रीकृष्णने यहाँ लीला की थी, इसीसे यह भगवान् पुण्य-
भूमि है। यदि कोई इस स्थानका प्रदक्षिण करे, तो उसे
धनभाग्य लाभ होता है। इस स्थानमें दान, पूजा या
बास करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इस स्थान-
में यदि किसीको मृत्यु हो जाय, तो उसे भयोर पुण्य
लाभ होता है और पापों किर जगम देना नहीं पड़ता।
भगवान् श्रीकृष्णने यहाँ दारों हजार तीर्थ प्रस्तुत किये
थे। इन मन्त्रभूमिमें बारह बारह यन, उदयन, प्रतिघन
और अघियन देते आते हैं। इन ४८ धर्मोंके नाम नाथि
विभे आते हैं।

बारह यन--१ महायन, २ कामयन, ३ कोकिलयन,
४ ताजयन, ५ कुमुदयन, ६ भाण्डोरयन, ७ उन्नयन, ८
अदिरयन, ९ लोहजयन, १० भद्रयन, ११ बहुनयन, १२
विद्ययन, ये सभी यन शुभ फलप्रद हैं।

बारह उपयन--१ महायन, २ मत्सरोरयन, ३ विहृ-
यन, ४ कदम्बयन, ५ सर्पायन, ६ सुरभियन, ७ प्रेमयन,
८ मयुरयन, ९ मालेङ्गितयन, १० शैवनाभियन, ११ मारु-
यन, १२ परमानन्दयन।

बारह प्रतिघन--१ रङ्गयन, २ घासायन, ३ करदायन-
यन, ४ कामयन, ५ राजनयन, ६ कर्णयन, ७ कृष्णासि-
पलकयन, ८ मन्मथेक्षण कृष्णास्यनन्दनयन, ९ इन्द्रयन,
१० शिक्षायन, ११ चन्द्रायलीयन और १२ लोहयन।

बारह अघियन--१ मथुरा, २ राधाकुण्ड, ३ नन्द-
ग्राम, ४ गृहस्थान, ५ ललिताग्राम, ६ पृथ्वीपुत्र, ७
गोकुल, ८ वल्कदेयक, ९ गोवर्द्धनयन, १० जायट, ११
पृथ्वायन, १२ सङ्केतयनयन। मथुरा और पृथ्वायन देते।
द्वज (सं० पु०) तपस्वी। (शब्दरत्ना०)

द्वजक्रीडा (सं० पु०) द्वजस्य क्रीडायाः। श्रीकृष्ण।
श्रीकृष्ण द्वजभूमिके अघियनासी देवता है। द्वज-
भक्तिविलासमें द्वजक्रीडामन्त्र तथा उनके ध्यान
और पूजादिका विषय लिखा है। द्वाजयनके मध्य
ललिताग्रामके अघियति द्वजक्रीडा है। 'श्री भू
ललिताग्रा अघियनाघियनये द्वजक्रीडायाय नमः' यह
एक विशिष्ट इतका मन्त्र है। उनको पूजन नाथ-
यन-पूजाविधिके अनुसार तथा उक्त मन्त्रसे प्राणा-
याम कर कृष्णादिवास करना होता है। स्वास इन
प्रकार है--अथ मन्त्रस्य विमोहकः स्वयि द्वजक्रीडा-
देवता गायत्रीऽयम् नमः सकल वायसोद्वारा मुगल-
कृष्णदर्शनाय विनिषेण, निरति विमोहक स्वयं
गमा, मुने द्वजक्रीडायाय नमः, हृदि गायत्रीऽयम्
नमः इस प्रकार स्वास करके ध्यान करना होता है।
ध्यान इस प्रकार है--

“कृष्णामुने इत्यं सर्वेऽनु कर्त्तव्यं सुम्।

ध्यायिष्ये च कृष्णं महापद्मयोगमम्॥”

(मन्त्रविज्ञान)

इस प्रकार ध्यान और पूजादि करके यथार्थक
पूजादि करने होते हैं। (मन्त्रविज्ञान १० ५०)

स्वर्गीयोंकी

“क्या कुटन पड़ गया है उम्रमेंडा ।
हरिमजन बिन नहीं है सुलमेंडा ॥
नामवत्सनी में पाहूँ पनमें ।
कृष्णबिन माँके धार हैं येड़ी ॥
लगके चारखीं से कृष्णकी घर कहुँ ।
मुन्ज गलियोंमें हो जो मुटमेंडा ॥
दो मुके डीन बर भवल हरिजी ।
जैत प्रूको दिया भटल पेड़ा ।
वैत मित्रनेकी साठ ही होभी ॥
यो हो मारे हैं कितने भट-मेड़ा ।
कृष्णको रत गुमाल निन उठ भोग ॥
मिठरी मालन मलाई और पेड़ा ॥” इत्यादि

भाषा श्लोका

“तन बिन सर भूतु फिर गई देण दिनेके फेर ।
वेठ मिनोई भांगु पनि गावन आरी घेर ॥
गीत धमें फेडा गली मुन्दरि दित जिय जानि ।
पूटत ही होऊ लुटे फेडा इत मानि ॥
मन राखी हो भरअ के भिय राखी समुमानि ।
नेना बरसे तब नार है मिले भागठ हाय ॥
अब बरने तन नार है गेव प्र मरअ कै ।
अर बर तें परबत मये ये वितवापी नेन ॥” इत्यादि

प्रज्ञा (सं० पु०) प्रज्ञे भूयत्प्रसिद्धस्य । १ केन्द्रिकस्य ।
(ति०) २ प्रज्ञात । मास्कर पण्डितके पुत्र नारायण
भट्टने सुललित श्लोकावलीमें यह ग्रन्थ प्रणयन किया
है । इसमें पृन्दायनके देवस्थानोंका माहात्म्य कीर्तित
हुमा है । (स्त्री०) ३ प्रज्ञाभूमि ।

प्रज्ञाभूषण—१ गुणरत्नाकर नामक वैद्यग्रन्थके प्रणेता ।
२ तरवयविकेसार नामक वैद्यान और भागवतपुराण-
टीकाके रचयिता । ३ दृढवरीयिका टीकाकार ।

प्रज्ञामूलन मिश्र—विश्वनाथनमालाके प्रणेता ।

प्रज्ञामण्डल (सं० स्त्री०) प्रज्ञस्य मण्डलम् । प्रज्ञाभूमि,
प्रज्ञा और उपाके भाग-भागका प्रदेश ।

प्रज्ञामोहन (सं० पु०) प्रज्ञा प्रज्ञावामिनो जनान् मोहयतीति
मुद्र-लक्षणस्युत्पत्त् । धोहरण ।

प्रज्ञायुधि (सं० स्त्री०) प्रज्ञानां युधिः । प्रज्ञावामिनो,
प्रज्ञाज्ञाना ।

प्रज्ञाज्ञ (सं० पु०) श्रीहरण ।

प्रज्ञाराज—१ उपाधिपूर्विके प्रणेता । २ कारिकावन्दे-टीका
नामक वैशेषिक ग्रन्थके रचयिता । ३ गूढाद्विगि-
जयसारके प्रणेता । ४ सत्यवृत्तरोरस्य-कल्याणनरके
रचयिता ।

प्रज्ञाराज गोस्वामी—न्यायसारके प्रणेता ।

प्रज्ञाराजदीक्षित—१ रत्नकरञ्जन नामक रत्नमञ्जराटीकाके
प्रणेता । २ शार्दात्रिगतामीमुक्तक या रत्नकरञ्जन,
वह्नुमाध्यायनटीका, शृङ्गारनाटक और पद्मसुवर्णन नामक
ग्रन्थके रचयिता । इनके विनाका नाम था कामाराज ।
तर्ककारिकाके प्रणेता जोषराज दीक्षित इनके पुत्र थे ।

प्रज्ञाराज शुक्ल—अनपूर्णाकन्यालता, चण्डीविलार, छिन्न-
मस्तारहस्य, जैमिनीसूत्रटिप्पण, त्रिगताटीका, नीति-
विलास, दानमञ्जरी, रत्नसुधानिधि (वैद्यक), श्यामादीप-
दान और सूर्यरहस्यके प्रणेता ।

प्रज्ञारामा (सं० स्त्री०) प्रज्ञस्य राम । प्रज्ञावधु ।

प्रज्ञालाल (सं० पु०) १ नन्दलाल, श्रीहरण । २ एक
राजा । ये कामसूत्रटीकाके प्रणेता भास्करभूमिदके
प्रतिपालक थे । ३ संवायिवास्के रचयिता ।

प्रज्ञावधु (सं० स्त्री०) प्रज्ञस्य वधुः । प्रज्ञावतिता, प्रज्ञाज्ञाना ।

प्रज्ञावर (सं० पु०) प्रज्ञे वरा श्रेष्ठः । श्रीहरण । प्रज्ञा-
मकियिवासीमें इनका मन्त्र और पूजा आदि इस प्रकार
लिखा है । ये प्रज्ञावर हाइना अधिवानके अन्तर्गत जायत
वनके अधिष्ठाता देवता हैं । ‘श्रीं उः श्रीं वराधिपताधि-
पतये प्रज्ञावराय नमः’ यह उन्नोष अक्षर इनका मन्त्र
है । प्रज्ञावरकी पूजा करनेमें सामान्य पूजाक्रमसे पूजा
समाप्त कर इस मन्त्रमें पाजावाग कर श्रद्धा आदिका
स्वास करे ।

प्रज्ञावह्नुम (सं० पु०) प्रज्ञानां प्रज्ञावामिनो वह्नुम, विष्णु ।
श्रीहरण ।

प्रज्ञावन्दरी (सं० स्त्री०) प्रज्ञास्य वन्दरी । प्रज्ञास्यो,
प्रज्ञाज्ञाना ।

प्रज्ञावरी (सं० स्त्री०) प्रज्ञावामिनो ।

प्रज्ञावामि (सं० पु०) प्रज्ञस्य वामिः, सुदृगवामिः । प्रज्ञावति
श्रीहरण ।

प्रज्ञाज्ञाना (सं० स्त्री०) प्रज्ञस्य अज्ञाना । प्रज्ञास्यो, गीर्वा ।

एक गोन कीर बगिनाही छोड़ कर प्राचीन कालमें प्रजभाषामें रचित और किमी पुस्तक विशेषका उल्लेख नहीं मिलता। १२वीं शताब्दीमें मुगलसम्राट् अकबर शाह के शासनकालके पहले रचित 'शृंगिराज्ञास' और 'हमोर-रास' उल्लेखयोग्य हैं। ये दोनों ग्रन्थ सुप्रसिद्ध चांद्र-कविके रचये हैं।" नादकवि देवो।

हिन्दु पद्यार्थमें सम्राट् अकबर शाहके शासनकाल और तत्पूरवर्ती समयमें ही प्रजभाषामें अनेक ग्रन्थादि निर्गते नामे लगे।

हिन्दी और प्रजभाषामें जो अक्षर दे उके दिसलानिके लिये मोचे कुछ शब्दों और धातुश्रीका परिवर्तित रूप टट्टन किया गया है। हिन्दीमें जिस प्रकार ट, ट की जगह ट उच्चारण करनेसे दोष नहीं होता तथा प कमी प, कमी घ की जगह उच्चारित होता है, प्रजभाषामें कई जगह उन्ही प्रकार व्यतिक्रम दिलाई देता है। निम्नोक्त पदोंका भी प्रजभाषामें परिवर्तित होता है।

लर। उर। वप। यज। जस। झल। मय। भय। मघ। घन। तथा। यक। वपै। पेश। भय। पल। होर। भज।

किर अनेक स्थलोंमें एक शब्दके एक शब्दमें दो तांग तरक्षका प्रयोग देया जाता है। कमी प्रजभाषाके दो एक शब्दोंमें देयनामरी अक्षरकी जगह कायपो हिन्दीके भ, व, य, भ, र, आदि भी वाच्यहूत हुए हैं। कमी ध्रुतिमातृलक्षणका लिये वर्णोप व भावस्थ व रूपमें तथा ल र-में लिखा गया है। जैसे—

झालो, जालो। घालो, घालो। घोड़ा, घोरा। गड़ा, गरा। बय, वय। बसुदेय, वसुदेय। यमुना, अमुना। वय, जस। शङ्ख, मङ्ख। जिशु, मिशु। नसार, भचपार। लक्ष्मी, लछमी। गान, गाँव। नाम, नाँव। ईंमलो, ईंमली। कभ, कय। कभो, कवी।

प्रजभाषा कमी बचि न बहु विविधविक्रम।
 गरकी भाष्य समेषा कपो विहासिदाय ह॥
 १. प्राचीन 'शृंगिराज्ञास' ग्रन्थका प्रथम रूप प्रकाश है।
 कमी भी कुछ निष्कर्ष है पर १२वीं शताब्दी कनेका है। एम अक्षर-
 का लोप कर प्रजभाषामें रचित और और बड़ा ग्रन्थ नहीं।

पगड़ो, पवड़ो। पगा, पघा। रण, रत। भरत, भरघ। योतिनी, योतिकी। योतिव, योतिक। पट, पट। भाये, भाय। लाये, लाय। किय, किय। दिय, दिभा। पट, छट। यछो, यछो। पेही, पेई। तुरी, तुरी। तुजे, तुजे। तुभ, तुज।

हिन्दी (सद्विधालो) भाषाकी 'हिना' किताबः भाषामें किस प्रकार रूपांतरित होता है, मोचे यहाँ दिख-
 लाया गया है—

हिन्दी		भाषा।
होला		होनी-होवा
मैं हूँ	१म पुं० १ वच०	हो-मैं-हो
तैं-तू है	२प पुं० १ व०	तैं-तू है
यह है	३प पुं० १ व०	यह हो-है
हम है	१म पुं० बहुव०	हम है
तुम हो	२प पुं० "	तुम हो
वे है	३प पुं० "	वे तैं है
होता था	१म पुं० १ व०	होतुहो
होगे थे	१म पुं० २प पुं० ३प पुं० बहुवच०	होनिहो
होगी थी (स्त्री)	" १ वच०	होनिहो
होगी थीं	" १ बहुव०	होनिहो

मोचे कुछ हिन्दी-पदोंका प्रयोग प्रज भाषाके लिये देया गया है—

हिन्दी	भाषा
मेरा	मैरी
तेरा	तेरी
तुमको	तोको
उपको	या ताकी
इसका	याकी
तिसका	ताकी
मुझसे	मो यीं से
तु	बचतु
तब	तो

मोचे विधादिशब्दों लक्ष्मणेशी और प्रजभाषाका समुदा-
 यट्टन किया जाता है। घोड़ा और वर देवदेवहो
 दोनोंमें वया अक्षर है यह वाच्यन ही भाषेया।

लक्ष्मीबोली

"क्या कुछ पढ़ गया है उल्लभेन्द्र ।
हरिमन्त्र बिन नहीं है मुझकेन्द्र ॥
नामवस्त्री से पाहुँ पनमें ।
हृष्यदिन नामें पार है येही ॥
लगेके चरखीं से कृष्यको यह कट्टी ।
कुञ्ज गलिषीमें हो जो मुठमेन्द्र ॥
दो मुझे डीन वरु भवल हरिजी ।
जैत प्रूको दिया मरुष पेन्द्र ।
तेरे भिजेनेही घाट है लोपी ॥
यो हो मारि है" कितने भट-गेन्द्र ।
हृष्यको रख गुगल निन उठ भोग ॥
मिषरी मरसन मलाई और देन्द्र ।" इत्यादि

भाषा बोझ

"मन बिन छव श्रुत फिर गी देण दिनेके फेर ।
जेठ मिनेई भासु पनि गानन जारी घेर ॥
गोन लमें केँटा गली मुन्दरि दिव जिय जानि ।
पूठत ही दोऊ लुटे केँटा इत मनि ॥
मन राखी हो भरज के जिय राखो सुमुमाय ।
नेना बरने छव नार है" मिले भागठ हाय ॥
जब बरजे तब नार है गेय प्रेमरस जे ।
भन बर ते परबष मये ये विवराओ नेन ॥" इत्यादि

मज्झू (सं० पु०) मज्जे भूषणपतिपद्य । १ केन्द्रिकद्वय ।
(ति०) २ मज्जात । भास्कर पण्डितके पुत्र नारायण
भट्टने सुललित श्लोकावलीमें यह ग्रन्थ प्रणयन किया
है । इसमें मन्दावनके देवस्थानिका मादात्यय कीर्तित
हुमा है । (स्त्री०) ३ मज्झूमि ।

मज्झुपण - १ गुणरत्नाकर नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता ।
२ तथैवविद्येकार नामक वैद्यक और भागवतपुराण-
टीकाके रचयिता । ३ हठप्रदीपिका टीकाकार ।
मज्झुपण मिश्र-वैदान्तरत्नमालाके प्रणेता ।

मज्झमण्डल (सं० ज्ञो०) मज्झम्य मण्डलम् । मज्झूमि,
मज्झ और उसके भाग-भागका प्रदेश ।

मज्झमोक्षण (सं० पु०) मज्झ मज्झमिनि ज्ञान् मोहवशीनि
सुहृ-णिच-पुत्र् । धारण्य ।

मज्झमुपनि (सं० स्त्री०) मज्झानां उपनिः । मज्झमिनी,
मज्झान्ना ।

मज्झराज (सं० पु०) श्रीरुण्य ।

मज्झराज - १ उपादिश्रुतिके प्रणेता । २ कारिकावल-टीका
नामक वैशेषिक ग्रन्थके रचयिता । ३ गङ्गादिगि-
जयसारके प्रणेता । ४ सम्बन्धरोहस्य-कल्पलताके
रचयिता ।

मज्झराज गोसामी-न्यायसारके प्रणेता ।

मज्झराजदीक्षित-१ रसिकरत्न नामक रसमञ्जरीटीकाके
प्रणेता । २ आर्षादिनामोक्तक वा रसिकरत्न,
यल्लभाख्यानटीका, शृङ्गारजातक और पद्मसुवर्णन नामक
ग्रन्थके रचयिता । इनके पिताका नाम था कामराज ।
तर्ककारिकाके प्रणेता जयराज दीक्षित इनके पुत्र थे ।

मज्झराज शुक-अपूर्णाखण्डलता, चण्डीविलास, छिन्न-
मस्तारहस्य, जैमिनीसूत्रटिप्पण, विनातीटीका, नीगि-
विलास, दानमञ्जरी, रससुधानिधि (विद्यक), श्यामादीप-
दान और सूर्यरहस्यके प्रणेता ।

मज्झरामा (सं० स्त्री०) मज्झरव रान । मज्झवपु ।

मज्झलाल (सं० पु०) १ मन्दागल, श्रीरुण्य । २ एक
राजा । ये कामसूत्रटीकाके प्रणेता भास्करचूडिकके
प्रतिपालक थे । ३ सेवाविचारके रचयिता ।

मज्झवपु (सं० स्त्री०) मज्झव्य वपुः । मज्झमिता, मज्झान्ना ।

मज्झवर (सं० पु०) मज्जे वरः श्रेष्ठः । श्रीरुण्य । मज्झ-
भक्तिविलासमें इनका ग्रन्थ और पूजा भादि इस प्रकार
लिखा है । ये मज्झवर द्वादश भविष्यनके अन्तर्गत जायत
पत्रके षष्ठिप्राची देवता है । 'सो टः सौ यटापिपनाधि-
पतये मज्झवराय नमः' यह उल्लोम मन्त्र इनका ग्रन्थ
है । मज्झवरकी पूजा करनेमें सामान्य पूजाप्रणयने पूजा
मगान कर इस मन्त्रमें प्राणायाम कर श्रुति गादिवा
स्वास्त करे ।

मज्झवहम (सं० पु०) मज्झानां मज्झवासिनां वरुणः, विषा ।
श्रीरुण्य ।

मज्झसुन्दरी (सं० स्त्री०) मज्झव्य सुन्दरी । मज्झरी,
मज्झान्ना ।

मज्झनी (सं० स्त्री०) मज्झजानिनी ।

मज्झपति (सं० पु०) मज्झव्य पतिः, सुहृःपतिः । मज्झमि
श्रीरुण्य ।

मज्झान्ना (सं० स्त्री०) मज्झव्य अङ्गना । मज्झनी, मावो ।

कथं गीतं चोक्तं चरित्याकीं लोचुं चरं प्राचीनं कालमें
सप्तमभाषामे रचियं और चिन्मो पुस्तक विवेकका उल्लेख
नहीं मिलता। १३वीं सदीमें मुगलसम्राट् अकबर नाद-
के शासनकालके पहले रचिय 'पृथिवराजरास' और 'हमीर-
रास' उल्लेखनीय हैं। ये दोनों ग्रन्थ सुप्रसिद्ध चां-
चरियके बनाये हैं।" चांरचण देखो।

चिन्तु मगधमें सम्राट् अकबर नादके शासनकाल
और मगधराज्यमें समकाल ही सप्तमभाषामें अनेक ग्रन्थादि
लिखे जाने लगे।

हिन्दी और सप्तमभाषामें जो अक्षर हैं उन्हे दिखलानेके
लिये नीचे कुछ अक्षरों और धातुओंका परिवर्तित रूप
उद्धृत किया गया है। हिन्दीमें जिस प्रकार क, ट की
जगह र उच्चारण करनेसे श्रेय नहीं होता तथा व कमी
य, कमी व की जगह उच्चारित होता है, सप्तमभाषामें कई
जगह उन्ही प्रकार वाचिकत्व दिखाई देता है। निम्नोक्त
पदांका भी सप्तमभाषामें परिवर्तित होता है।

लर। उर। यव। यज। जस। क्षर। मय।
मप। मप। धन। तप। तक। पपे। पेइ।
मप। धन। होर। भज।

किर अनेक स्थलोंमें एक शब्दके एक अक्षरों को तीन
तरहका प्रयोग देखा जाता है। कमी सप्तमभाषाके दो
एक शब्दोंमें देयभाषाकी अक्षरकी जगह जायची हिन्दीके
म, न, य, ष, र, आदि भी पर्यहन हुए हैं। कमी
धृतिमाचुर्वात्तभाषाके लिये वर्णों व अक्षरव्यय व रूपमें
तथा ल र में लिया गया है। जैवै—

जालो, जालो। घालो, घारो। भाड़ा, घोरा।
मड़ा, घरा। बन, वन। बसुदेव, बसुदेव। वसुना,
मसुना। वस, जस। मड़, सड़। निशू, गिसु।
न्यार, मच्छर। लहमी, लछमी। गीग, गीव। नान,
नीव। रंमलो, रंमली। कज, कज। कर्म, कपी।

सप्तमभाषा अर्थमें कवि न बहू विभिन्नदिग्गम।
अर्थमें अक्षर अर्थका इति विहायिदाह हूँ

१. प्राचीन 'पृथिवराजरास' ग्रन्थका बहुत बय देखा है।
अभी जो कुछ मिले है वह १३वीं सदीका देखा है। इस अक्षर-
का लोचुं चरं सप्तमभाषामे रचिय और चोर्न कथा उल्लेख नहीं।

पगड़ी, पचड़ी। पगा, पघा। रघ, रत। भरल, भरल।
गोतिगो, योतिको। योतिव, योतिक। पट, रट।
भाये, भाए। लाये, लाए। किय, किय। दिया,
दिमा। पट, पट। पछो, पछो। पेदी, पेरे। मुरी,
तूरे। तुम्हे, तुजे। तुम्ह, तुज।

हिन्दी ('सद्योपेक्षो') भाषाकी 'दीमा' किराया
भाषामें किस प्रकार रूपान्तरित होता है, नीचे यहाँ दिख-
लाया गया है—

हिन्दी		भाषा।
होना		होनी-होना
मैं हूँ	१ म पु० १ वच०	हो-मैं हो
तैं-तू है	२ म पु० १ व०	तैं-तू है
घट है	३ म पु० १ व०	घट हो-है
हम हैं	१ म पु० बहुवच०	हम हैं
तुम हो	२ म पु० "	तुम हो
वे हैं	३ म पु० "	वे तैं हैं
होता था	१ म पु० १ व०	होगुना
होते थे	१ म पु० २ म पु० ३ म पु० बहुवच०	होतिते
होती थी (स्त्री)	" १ वच०	होतिती
होती थीं	" ३ बहुवच०	होतिती

नीचे कुछ हिन्दी-पदांका प्रयोग सप्तमभाषामें दिया गया है—

हिन्दी	भाषा
मेरा	मेरी
तेरा	तेरी
तुमको	तोको
उमके	या ताकी
इमका	याकी
तिसका	ताकी
मुम्हसे	मो मी मे
कुछ	बच्छु
मक	लो

नीचे गिरादिशो लक्ष्मणो और सप्तमभाषाका समुदा
उद्धृत किया जाता है। गिरादीर चर देवनेमें है।
दीमोमें चरा मगध रं पद प्राच्यन हो भाषिया।

खड्गोबोली

"क्या कुटब यह गया है ठणमेड़ा ।
हरिभजन बिन नहीं है मुझमेड़ा ॥
नामवरनी से पाहुँ पजमें ।
कृष्णबिन नामे पार है वेड़ी ॥
लगेके चरयो' से कृष्णको यह कट्ट' ।
कुञ्ज गलिबोमें हो जो मुठमेड़ा ॥
दो मुमे डीन बह अचल हरिजी ।
जैसे भूको दिया अटल पेड़ा ।
वेरे गिऊनेकी याद है छीपी ॥
यो हो मारै' है' कितने भट-मेड़ा ।
कृष्णको रल गुगल निज उठ भोग ॥
विठरी मजलन मलाई और पेड़ा ।" इत्यादि

भाषा बोधा

"मन बिन वष श्रुत फिर गई देव दिनके फेर ।
वेठ भिनोई भांगु बनि सावन जारी फेर ॥
गोन गमें कंटा गद्यी मुन्दरि दित जिव जानि ।
पूटन ही दोऊ लुटे कंटा इन मनि ॥
मन रासो हो भरज की जिय रासो गनुमाव ।
नेना बरबो तव नार है' मिले भागउ हाव ॥
जव बरबो तव नार है' नेप प्रेमरज जै' ।
भय बष तै परबष भये ये विलाओ नेन ॥" इत्यादि

प्रथम (सं० पु०) प्रजे भूगन्तव्यत्व ।

(ति०) २ प्रजजात । भास्कर पण्डितके पुत्र नारायण भट्टने सुललित श्लोकावलीमें यह ग्रन्थ प्रणयन किया है । इसमें वृन्दायनके देवस्थानोंका साक्षात्स्य कीर्तित हुआ है । (स्त्री०) ३ प्रजभूमि ।

प्रजभूषण - १ गुणरत्नाकर नामक वैद्यग्रन्थके प्रणेता । २ तद्व्यतिरेकसार नामक वैद्यान्त और भागवतपुराण-टीकाके रचयिता । ३ हठप्रदीपिका टीकाकार । प्रजभूषण मिश्र - धिशास्त्ररत्नमालाके प्रणेता ।

प्रजमण्डल (सं० स्त्री०) प्रजस्य मण्डलम् । प्रजभूमि, प्रज और इसके आत्म-वाचका प्रदेश ।

प्रजमोदन (सं० पु०) प्रज प्रजवामिनो जनान् मोदयतीति मुद-णिच्-प्पुञ् । धोहृण्य ।

प्रजपुत्रिण (सं० स्त्री०) प्रजानां पुत्रिणि । प्रजवामिनो, प्रजाहृणा ।

प्रजगाम (सं० पु०) धोहृण्य ।

प्रजराज - १ उपाधिपूर्तिके प्रणेता । २ कारिकावर्तन टीका नामक वैशेषिक ग्रन्थके रचयिता । ३ गद्गुरादिग्रन्थसारके प्रणेता । ४ सम्यक्सुरीहस्य-कल्पलताके रचयिता ।

प्रजराज गोस्वामी - न्यायसारके प्रणेता ।

प्रजराजदीक्षित - १ रमिकरञ्जन नामक रममञ्जरीटीकाके प्रणेता । २ भार्याभिज्ञानोक्तक या रमिकरञ्जन, पल्लभासयानटीका, गद्गुराजतक और पद्मसुवर्णन नामक ग्रन्थके रचयिता । इसके पिताका नाम था कामराज । तर्ककारिकाके प्रणेता जोधराज दीक्षित इनके पुत्र थे ।

प्रजराज शुक्ल - भद्रपूर्णाङ्कजलता, चण्डीविलास, विष्णु-मस्तारहस्य, जैमिनीसूत्रटिप्पण, विद्वान्तीटीका, नीति-विलास, दानमञ्जरी, रमसुधाभिधि (वेदका), श्यामाशोप-दान और सूर्यरहस्यके प्रणेता ।

प्रजसामा (सं० स्त्री०) प्रजस्य सान । प्रजयधु ।

प्रजसाल (सं० पु०) १ मन्जसाल, धोहृण्य । २ एक राजा । ये कामसूत्रटीकाके प्रणेता भास्करभूगिंहके प्रतिपालक थे । ३ संवाचिनारके रचयिता ।

प्रजयधु (सं० स्त्री०) प्रजस्य यधु । प्रजयमिथा, प्रजाहृणा ।

प्रजवर (सं० पु०) प्रजे वरः धेठेः । धोहृण्य । प्रज-भक्तिविचारार्थमें इनका मन्त्र और पूजा आदि इस प्रकार लिखा है । ये प्रजवरछादन अधिपत्यने अस्तर्गम जायत यनके अधिष्टातो देयता है । 'सोऽत्रः ज्ञां यथाधिपनाधिपतये प्रजवरया भमः' यह उक्तोका अर्थ इनका मन्त्र है । प्रजवरकी पूजा करनेमें सामान्य पूजाकालसे पूजा समाप्त कर इस मन्त्रमें प्राणायाम कर श्रुति आदिका स्वान करे ।

प्रजवल्लभ (सं० पु०) प्रजानां प्रजवामिनो वल्लभः, प्रिया । धोहृण्य ।

प्रजसुन्दरी (सं० स्त्री०) प्रजस्य सुन्दरी । प्रजस्यो, प्रजाहृणा ।

प्रजसो (सं० स्त्री०) प्रजवामिनो ।

प्रजस्वनि (सं० पु०) प्रजस्य पतिः, सुहायणः । प्रजवामिनो धोहृण्य ।

प्रजाहृणा (सं० स्त्री०) प्रजस्य हृणा । प्रजस्यो, मीनो ।

लेनाका अभिषेक, १३ अनुपयुक्त प्रणवगन्ध, १४ अति श्लाघप्रयोग, १५ अतिमैत्र्यवर्षण, १६ अज्ञातां, १७ अतिनाशन, १८ विरुद्धमोजन, १९ असाध्यमोजन, २० शोक, २१ क्रोध, २२ विद्यानिद्रा, २३ मैथुन और २४ शोभन, प्रणयोगमें यही २४ प्रकारके शेष हैं। सब ये सब शेष उपस्थित होते हैं, उस समय यदि अच्छी तरह चिकित्सा न की जाय, तो यह प्रणमित नहीं होता। प्रणमें परिश्राय दुर्गन्ध और बहुशेष होनेसे यह कृच्छ्र-साध्य होता है।

प्रणको शीत परीक्षा है—दर्शन, प्रश्न और स्पर्शन। प्रथम दर्शन है। इस दर्शन द्वारा रोगीकी वयस, प्रण के वर्ण, शरीर और इन्द्रियकी परीक्षा होती है। द्वितीय प्रश्न है, इससे रोगीत्वात्क हेतु, उपस्थित पीड़ा और अन्विबलकी परीक्षा होती है। तृतीय स्पर्श है, प्रण स्पर्श करनेसे उसकी कठिनेता, कोमलता, शीतलता और उष्णता आदिका अनुभव होता है। इस त्रिविध परीक्षा द्वारा परीक्षा करके प्रणरोगकी चिकित्सा करनी होती है।

यदि किसीका प्रणहृत्क मांसका प्रम रहित स्थानमें उपवन हो, बहुत दिनका न हो, मृणालि उप-द्रवशून्य हो, रोगी प्रुवक और हिनहितज्ञ हो तथा कालशुभ अर्थात् हेमन्तका शीतमनुमें हो, तो यह अति शीघ्र शारीर्य होता है। इस प्रकारके प्रणके ही सुखभाष्य जानना होगा। फिर यदि इन सब गुणोंका कुछ भी अभाव हो, तो यह कष्टसाध्य है। इनमेंसे सर्वोका अभाव होनेसे उसे असाध्य जानना चाहिये।

प्रणपोषण व्यक्तिके बलाबलका विचार कर वयस, विरिधन, क्षयप्रयोग या वस्तिफला द्वारा विमोचन करना कर्तव्य है। उक्त प्रकारसे विमुक्त होने पर प्रण शीघ्र ही प्रणमित होता है।

प्रणके ३६ प्रकारके उपक्रम और ६ प्रकारकी मोषण-विद्या है। अर्थात् प्रणका पूजा जिसमें बंद हो जाय, उसके लिये ६ प्रकारकी विद्या निर्दिष्ट है। शारद्वर्ग, अश्वपौष्टन, निष्पावन, संधान, स्व-द, नमन, मोषणकषण, रोषणकषण, मोषणप्रलेह, रोषणप्रलेप, मोषणनैल, रोषण-सैल, मोषणपुन, रोषणपुन, शोषणवताच्छादन, रोषण

पत्राच्छादन, मण्डपगन्धन, दक्षिणहस्तजन, वायु, उदमादन, मधुसादन, द्विविध दाह, धूप, मादक वकरण, काटिन्यार लेवन, मादक वकरलेवन, प्रणावचूर्जन, वण्टा, रोहन और रोमरोहण ये ३६ प्रकार प्रणके उपक्रम हैं।

जहां प्रण निकलता है, वहां पहले सूजन पड़ जाती है। यह सूजन प्रणकी पूर्ववर्द्धन है। तबक मादि स्थानोंमें सूजन दिखाई देनेसे जानना चाहिये, कि यहां फोड़ा निकलेगा। इस शोध या सूजनके शोषादिका विषय परीक्षा कर उसकी शान्ति करनी चाहिये। जिससे उस शोधमें प्रण न हो, उसके लिये पहले जोरसे रक्त-मोक्षण करना होता है। इससे प्रण निकलने नहीं पाता। किन्तु यह शोध यदि बहुदेशयुक्त हो, तो वयस विरिधनादि शोषण और अन्य शेष दृष्ट होनेसे लक्षणकी व्यवस्था करनी होगी। शोधमें वायुका प्रयोग अधिक रहनेसे पहले यातघनरुपाय और पून प्रयोग द्वारा उसकी शान्ति करनी होती है।

प्रणरोगकी चिकित्सा—प्रणकी शोषावस्थाओं पर, पीवल, गूलर, पाहड़ और आउबैल, इनकी छालका जलमें पीस कर पीके साथ प्रलेप देनेसे शोध प्रणमित होता है। भांग, मुलेठी, क्षीरकंकाल, पपमूत्र, शत-मूली, नीलारवल, नागफेन और रक्तचन्दन इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी शोध विनष्ट होता है। जोरका मत्तु, मुलेठी, घी और चीनी इन सब द्रव्योंका प्रलेप तथा अविदाहो अन्नमोजन प्रणशोधके लिये विशेष उपकारी है।

प्रणको मोषणवस्थाओं में पहले इसी प्रकार प्रलेप दे। इससे यदि शोध न रहे, उपनाद अर्थात् पुनरिदम दे कर उसे पकाना होगा। पीछे उसके पक जाने पर अन्न-प्रयोग द्वारा उसे खोल देना होता है। नीर देने हीसे यह प्रद्व भाशिय होता है। अन्वय ऐसी अवस्थाओं में अन्न प्रयोग ही विशेष हितकर है।

फोड़ेका पकानेके लिये उक्त प्रकारसे पुनरिदम देनी होगी। जोरके सफूके जलमें पीस कर उसमें घी या तेल मथवा घी तेल दोनों ही मिला कर गरम करे, पीछे गरम रहने ही उसकी पुनरिदम दे। कृष्णनैल, लोसी, कुट और सैन्धव तमक मिठा हुआ जोरके सफूका गोला,

लोकिका अभिव्यक्त, १३ अनुपयुक्त मरणव्ययन, १४ अति अतिप्रयोग, १५ अतिभयव्ययन, १६ अतिशय, १७ अतिशय, १८ विरक्तभोजन, १९ असाध्यभोजन, २० शोच, २१ कोष, २२ दिवानिद्रा, २३ मीथुन और २४ क्षोभण, मरणरोगोंमें यही २४ प्रकारके रोग हैं। जब ये सब रोग उपस्थित होते हैं, उस समय यदि अच्छी तरह चिकित्सा न की जाय, तो यह प्रणामित नहीं होता। मरणमें परिश्रम दुर्गंध और बहुदेश्य होनेसे यह कष्ट-साध्य होता है।

मरणकी तीव्र परीक्षा है—दर्शन, प्रश्न और स्पर्शन। प्रथम दर्शन है। इस दर्शन द्वारा रोगीको घबरा, मरण के वर्ण, शरीर और इन्द्रियकी परीक्षा होती है। द्वितीय प्रश्न है, इससे रोगीका हृत्पथ, उपस्थित पीडा और अन्तिमलकी परीक्षा होती है। तृतीय स्पर्श है, मरण-स्पर्श करनेसे उसकी कठिनता, कोमलता, मोतलता और उष्णता आदिका अनुभव होता है। इस विधि परीक्षा द्वारा परीक्षा करके मरणरोगीकी चिकित्सा करनी होती है।

यदि किसीका मरणस्वप्न, मांसका मर्म रहित स्थानोंमें उत्पन्न हो, बहुत दिनका न हो, गुणादि उप-द्रवशून्य हो, रोगी प्रथम और द्वितीयदिन हो तथा कालशुभ अर्थात् देवगता शान्तिशुभ हो, तो यह अति शोच-साध्य होता है। इस प्रकारके मरणके ही सुखसाध्य जानना होगा। फिर यदि इन सब गुणोंका कुछ भी अभाव हो, तो यह कष्टसाध्य है। इनमेंसे सरोच-साध्य होनेसे उसे असाध्य जानना चाहिये।

मरणपूर्वक व्यक्तिके बलाबलका विचार कर समन-विदेयन, अन्नप्रयोग या वस्त्रिक्रिया द्वारा विनोषन करना कर्त्तव्य है। उक्त प्रकारसे विमुक्त होने पर मरण शीघ्र हो प्रणामित होता है।

मरणके ३६ प्रकारके उपक्रम और ६ प्रकारकी शोच-व्यय-क्रिया है अर्थात् मरणका मूलका जिससे बंध हो जाय, उसके लिये ६ प्रकारकी क्रिया निर्दिष्ट है। नासिकार्ग, भयपौडन, निर्वोचन, संधान, स्वेद, जलन, मोघनरुपाय, रोषणरुपाय, मोघनप्रलेप, रोषणप्रलेप, मोघनमूल, रोषण-मूल, मोघनपुत्र, रोषणपुत्र, मोघनपलाय्यादन, रोषण

पलाय्यादन, स्तनपुत्र, दक्षिणपुत्र, ग्राह, उन्मत्त, मयसादन, टिकिष्य द्वाद, धूप, माद, पहरण, काटिन्धर लेपन, माद, पकरलेपन, मनापचूर्णन, पण्डा, रोचन और रोमरोहण ये ३६ प्रकारके उपक्रम हैं।

जहां मरण निकलना है, वहां पहले मृतन पट्ट जानी है। यहां मृतन मरणकी पूर्वलक्षण है। स्वप्न, आदि स्थानोंमें मृतन दिखाई देनेसे जागना चाहिये, कि यहां फोडा निकलेगा। इस शोच या मृतनके रोगादि का विषय परीक्षा कर उसको ज्ञानि करनी चाहिये। जिससे उस शोचमें मरण न हो, उसके लिये पहले जाँचसे रक्त-मोक्षण करना होता है। इससे मरण निकलने नहीं पाता। किन्तु यह शोच यदि बहुदेश्ययुक्त हो, तो यमन विरेचनादि शोधन और अल्प रोग दृष्ट होनेसे लक्षणकी व्यवस्था करनी होगी। शोभमें चायुका प्रयोग अधिक रहनेसे पहले यातनरुपाय और घृण प्रयोग द्वारा उसकी ज्ञानि करनी होती है।

मरणरोगकी चिकित्सा—मरणकी शोधावस्थाओंमें घट, पीपल, गुजर, पाकड़ और मारुबन, इनकी छालके जलमें पोस कर घोंके साथ प्रलेप देनेसे शोच प्रणामित होता है। भांग, मुलेठी, क्षीरकंकाल, पचपूत, जल-मूली, गोनीपल, नागचंदन और रक्तचन्दन इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी शोच विनष्ट होता है। जीका सलू, मुलेठी, घो और चीनी इन सब द्रव्योंका प्रलेप तथा अविदाहो अन्नभोजन मरणशोचके लिये विनोष उपकारी है।

मरणकी शोधावस्थाओंमें बढते हमी प्रकार प्रलेप है। इससे यदि शोच न रहे, उपनाद अर्थात् पुनरित दे कर उसे पहाना होगा। पीठे उसके पक जाने पर अन्न-प्रयोग द्वारा उसे चोर देना होता है। चोर देने हीसे यह अन्न आरोप्य होता है। अतएव ऐसा व्यवस्थाओं अन्न प्रयोग ही विनोष हितकर है।

फोडोंके पहानेके लिये उक्त प्रकारसे पुनरित देनी होगी। जीके सलूके जलमें वाह कर उसमें घो या नेत्र अथवा घो नेत्र दूली हो मिटा कर गरम करे, पीठे गरम रदने ही उसकी पुनरित दे। हृत्पण्डित, तीसी, घुट और हीन्यव अन्नक जिसा हुआ जीके सलूका गोना,

होता है। यह एषणा दो प्रकारकी है—मृदु और कठिन। जहाँ उद्भिद्धकी मृदुताल द्वारा एषणा होती है, उमें मृदु एषणा और जहाँ लोहदालाका द्वारा एषणा होती है, यहाँ उसे कठिन एषणा कहते हैं। मांसल प्रवे-जमें प्रथम गंधीर होनेसे लोहदालाका द्वारा नलीका अनुसंधान कर पाटन करना होता है। इसके विप-रोध स्थलमें मृदु एषणा कर पाटन करे।

जिन सब प्रणसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती है तथा जो विषण, बहुप्राययुक्त और घेदनाश्रित है, जैसे प्रणको अशुद्ध जानना चाहिये। यह अशुद्ध प्रण शोधन-प्रणालीके अनुसार शुद्ध कर चिकित्सा करनेकी है।

निम्न प्रणका उत्सादन—स्तम्भजनक द्रव्य, वृद्ध-णीय द्रव्य इन सब द्रव्योंका प्रयोग देनेसे निम्नप्रण ऊपरकी उटना है। भोजनप्रणकी गाँठ, पथरकुष्ठा, हीराकसीस और गुग्गुलु समाप्त भाग ले कर लेव देनेसे प्रणका अयसादन शर्मात् उत्पन्न प्रण निम्न होता है। क्यूतरकी विष्ठा लगानेसे भी प्रणका अयसादन होता है।

प्रणमें अग्निरूप—रक्तके प्रतिस्त्रावमें, विद्वेषानमें, छेदनाई स्थानमें, अग्नि मांस-स्थलमें, मण्डमालावे, पंभीर-प्रणमें, स्थिरप्रणमें तथा स्पर्शरहित स्थानमें अग्निरूप प्रकाश है। मेष, नेत्र, मज्जा, मधु, चरबी, घी और जलाकादि विविध प्रकारके लोह-द्रव्यके अग्निमें उत्पन्न कर दाढ़ करे। बालक, वृद्ध, दुर्बल ध्वनि, गर्भिणी स्त्री, रक्तपित्त, मूष्णा और उषरपीडित रोगी, भोग और विषण ध्वनि इनके लिये अग्निरूप निषिद्ध है। स्नायुप्रणमें, मर्मप्रणमें, मविष या मण्डप्रणमें तथा नेत्र और केश प्रणमें भी अग्निरूप निषिद्ध बनाया गया है।

प्रणके दोष और काटकी विवेचना कर सुनिपुण चिकित्सक मन्त्र और अग्निरूपस्थान प्रणमें क्षारका प्रयोग कर सकते हैं। श्वेतचन्दन या गन्धकके धूपका प्रयोग करनेसे निम्न प्रण कठिन हो जाता है। पूर, मज्जा, चरबी और तेलका धूप देनेसे कठिन प्रण निषिद्ध होता है। प्रणमें इस प्रकार धूप देनेसे प्रणकी घेदना, प्राय, गंध, हृदि, कठिनता और मृदुता प्रकटित होती

है। लोच, घटसुद्ध, मन्दि, त्रिकला, इन सब द्रव्योंके कठकता घुनाकर प्रणमें मनेव देनेसे प्रण निम्न और मुनायम होता है।

अर्जुन, यज्ञमूर, गोशू, लोच, जामुन और काय-फल इन सब द्रव्योंको एकल पौस कर घुन और मधुके साथ मिलावे और प्रणके ऊपर प्रलेप दे। इससे एषण विमुक्ति होती है। तगरपायुका, मामकी मुठवीर गूदा, नागोष्ध और लोहचूर्ण इन्हें गोशूके रसमें मर्दन कर प्रणस्थानमें प्रलेप देनेसे उस स्थानका रंग परले जाता हो जाता है। गन्ध, घृण, पीपल और विजलमूल, लाक्षा, गेरुमिट्टी, नागोष्ध, गुल्म और हीराकसीस इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी प्रणस्थानका रंग मातके समाप्त होता है। शीघाये जम्बुके चामड़े, रोप, सुद, सोंग और हट्टीको मल्ल कर यह मल्ल तेलके साथ प्रणस्थानमें लगानेसे यहाँ रोग निवृत्त है।

प्रणरोगी लषण, मयल, कटु, उष्ण, विद्रादि और गुठराक भक्षण तथा मैथुन परिहारा करे। अनि शोथ, स्निग्ध और अविद्रादी मधु भक्षण और पान तथा दिनको नहीं सोना प्रणरोगीके लिये हितकर है।

(चरक चिकित्सकस्थाने २५ अ०)

सुधुन, वामट और भावप्रकाश मादि वैद्यक प्रणोंमें प्रणका विशेष विवरण दिया गया है।

प्रणकृत् (सं० पु०) प्रण करोतीति कृ-विषय-तुगा-गमश्च । १ महाप्रक, मिलाया । (ति०) २ अन्-कारक ।

प्रणकेतुचो (सं० ति०) प्रणकेतु इतीति हन-उ-क-हीप् । दृष्यकेतोक्षुप, दृष्यकेतोका परिष ।

प्रणमिषि (सं० पु०) प्रणरोगमेष्टं, यह गाँठ जो कोट्टेके ऊपर हो जाती है । पैटकमें इसकी गणना रोगोंमें होती है ।

प्रणजिना (सं० स्त्री०) गोपमणुदी । (वैदिकमें)

प्रणद्रि (सं० पु०) प्रणस्यद्रि-जन्तुः । १ प्रणन-यष्टिका । (ति०) २ प्रणप्रक ।

प्रणपुष (सं० पु०) प्रणस्य पूषन् । प्रणकी पूषदान-विधि । मय मर देवो ।

प्रणरोपण (सं० स्त्री०) प्रणस्य रोपणं । प्रणका रोपण,

इन्हें मृष्टे दूधमें घोल कर पुलटिय दे। इसमें फेड़ा बहुत जल्द पक जाता है।

पुलटिय देनेसे जब प्रणयोगमें दाह, रक्तवर्णना, गुनोपिष्टवत्, सब लक्षण उपस्थित हों, तो जानना चाहिये, कि वह शोथ पक गया है। शोथस्थल भर्त्सा करनेसे यदि जलपूर्ण पम्तिकी तरह उसका स्पर्श न और उंगलीसे दायने पर यदि यह पहलकी तरह उरना हो उठे, तो जानना चाहिये, कि वह घण अथ्यो तरह पक गया है। घणके अच्छी तरह पक जाने पर उसे चौर फाड़ करना होता है। पक्वघणके लिये जलप्रयोग ही विशेष उपकारी है। यदि अर्योक्त आदिमी चीरफाड़से भय जाता हो, तो ताम्बू, गुग्गुलु, धूहरका दूध, क्वत्तरकी विष्टा, पलाजका क्षार, कर्णेशीरी या दण्डों इन्हें पक्व घणके ऊपर देना होगा। ये सब द्रव्य पक्व घणके भेदक हैं अर्थात् इनसे पक्वघण फट जाता है।

घणमें जलकर्म ६ प्रकारके बताये गये हैं, यथा— पाटन, वगधन, छेदन, लेखन, प्रच्छन्न और सोधन।

जलोदर पक्वगुणम और विसर्पविद्धादि सभी रक्तज रोग व्यवधानयोग्य हैं अर्थात् इन्हें विद कराना होता है। अर्श प्रभृति अधिमांसरोग छेदन अर्थात् काट कर फेंक देने योग्य हैं।

जिन रोग घणमें अधिक मांस इकट्ठा हो जाता है तथा प्रातदेश स्थूल उन्नत और कठिन होता है ये सब घण लेखन हैं अर्थात् तेज औजारसे उसे चौर देना होता है। वातरक्त आदि प्रच्छन्न हैं अर्थात् कांटे आदिसे उसकी पीप निकाल देनी होती है।

जिन सब घणका मुख सूक्ष्म, पर मध्यस्थल कोपयुक्त है, उन्हें प्रपीड़न करना होता है। निम्नोक्त रूपसे घणको प्रपीड़न करनेकी विधि है। मसूर, मटर और गेहूँ, ये सब प्रपीड़न द्रव्य हैं। इन सब वस्तुओंमेंसे कोई एक वस्तु ले कर अच्छी तरह पीसे। बादमें किसी तरहका स्नेहपदार्थ उसमें मिला कर घणके ऊपर प्रलेप दे, तो घणकी पीप भापे भाप बाहर निकल आयेगी।

सोमरकी छाल, बिजवंदका मूल और परवल्लय इन

सब द्रव्योंका परिपेक और प्रलेप देनेसे भी उपकार होता है। जनघोनघृत, दुग्ध या पष्टिमधुके पचापका परिपेक तथा शैत्यक्रिया करनेसे रक्तवित्तोद्घरण घण प्रामाणित होता है। घणस्थानकी जलनको दूर करनेके लिये सोमरकी छालका प्रलेप या परिपेक देना होता है। इससे यथ्येना शोष नष्ट होती है।

घणको काटने पर यदि क्षतस्थलमें मांस लटक जाय, तो उस मांसको पहले जिस भागमें ला कर यहाँ घी और मधुका प्रलेप दे चरित्रण्ड द्वारा अच्छी तरह बांध दे। जब मालूम हो गया कि मांस जुड़ गया तब क्षतस्थलकी भरनेके लिये प्रियङ्गु, लोह, कायफल, यथा-क्रान्ता और धयका फूल, इनका चूर्ण मधुया पञ्चवदकल-चूर्ण या सुक्तिचूर्ण इन्हें घणमें हूँस दे। इससे घण-क्षत भर आयेगा। वातोद्घरणघणमें यदि दाह और घेदना रहे, तो उस घणमें कृष्णतिल और ताम्बूकी भुन कर दूधमें पीस प्रलेप दे। इससे दाह और घेदना विनष्ट होती है।

घणके क्षतस्थलमें यदि जलप्लव शूल हो, तो सर्करा-के विधानानुसार उसे प्रस्तुत कर घणमें प्रलेप दे। इससे यह शूल रह जाता है। दशमूलका काय या दहोका पानी मधुया कुल गरम तैलमिश्रित घृण, घण-स्थलमें परिपेक करनेसे घातोदघम घणका दाह और घेदना प्रशामित होती है।

साधारणतः घणका दाह और घेदना दूर करनेके लिये जीका चूर, मुलेठी और तिलक चूर, समान भाग ले कर जलमें पीसे। पीछे घी मिला कर कुल गरम करके घणके ऊपर प्रलेप देनेसे घणका दाह और घेदना नष्ट होती है। समान परिमाणमें कृष्णतिल और मूँग दूधमें पका कर उसका उपनाह देनेसे भी घणका दाह और घेदना नष्ट होती है।

जिन सब घणका मुख कृष्ण है तथा जिनसे पीप अधिक निकलती है, उन सब घणमें नाली है या नदी पहले उसका पत्ता लगाता आवश्यक है। इन प्रकार पत्ता लगानेका नाम वपया है। किन्तु घण यदि मर्मस्थान प्राप्त हो तो वपया उचित नहीं। उक्त घणको नली कहीं तक गई है, शलाका द्वारा यह विधर करना

होता है। यह एवणा दो प्रकारकी है—मृदु और कठिन। जहाँ उद्भिद्धकी मृदुनाल द्वारा एवणा होती है, उसे मृदु एवणा और जहाँ लौहशलाका द्वारा एवणा होती है, यहाँ उसे कठिन एवणा कहते हैं। मांसल प्रदेशमें मण गामीर होनेसे लौहशलाका द्वारा मलोका अनुसंधान कर पाटन करना होता है। इसके विपरीत स्थलमें मृदु एवणा कर पाटन करे।

जिन सब मणसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती है तथा जो विषण, बहुप्रायशुक और घेनान्निघ्न है, ऐसे मणको अशुद्ध जानना चाहिये। यह अशुद्ध मण जोषण-प्रणालीके अनुसार शुद्ध कर चिकित्सा करनी होगी।

निम्न मणका उत्सादन—स्तम्भजनक द्रव्य, दृढ़-जीवं द्रव्य इन सब द्रव्योंका प्रयोग दिनेसे निश्चय कर ऊपरके उद्यता है। चेतनवकी गाँठ, पथरकुषा, हीराकसीस और गुग्गुलु सन्तान भाग ले कर लेव दिनेसे मणका अयसादन अर्थात् उन्नत मण निम्न होता है। क्यूतरकी विष्टा लगानेसे भी मणका अयसादन होता है।

मणमें अग्निहर्म—एकके अग्निप्रायमें, विद्वस्थानमें, छेदनाह स्थानमें, अग्नि मीस-स्थलमें, गण्डमालाके, गंभीर-मणमें, स्थिरमणमें तथा स्पर्शरहित स्थानमें अग्निहर्म प्रकृत है। मैल, मेल, मज्जा, मधु, वरधो, पी और जलाकादि विविध प्रकारके लौह-द्रव्यके अग्निमें उत्पन्न कर दाह करे। बालक, दृढ़, दुर्बल ध्वानक, गर्भिणी स्त्री, रकपित्त, मृणा और उदरपीडित रोगी, मोर और विषण उपकि इनके लिये अग्निहर्म निषिद्ध है। स्नायुप्रमर्ष, गर्भमर्षमें, मविष वा मज्जा मणमें तथा मेल और कोष्ठ मणमें भी अग्निहर्म निषिद्ध बनाया गया है।

मणके दोष और कायकी विवेचना कर सुनिपुण चिकित्सक शूल और अग्निहर्ममात्र मणमें क्षारका प्रयोग कर सकते हैं। श्वेतचन्दन या मण्यकके धूपका प्रयोग करनेसे निषिद्ध मण कठिन हो जाता है। घृत्, मज्जा, घरधो और तैलका धूप देनेसे कठिन मण निषिद्ध होता है। मणमें इस प्रकार धूप देनेसे मणको वेदना, दाह, गंध, कृमि, कठिनता और मृदुता प्रदान होती

है। लोथ, यष्टमुद्ग, खदिर, त्रिगन्ता, इन सब द्रव्योंके चक्रको घृतावन कर मणमें प्रवेश देनेसे मण निषिद्ध और मुत्तायम होता है।

अजून, यष्टमुद्ग, पीपल, लोथ, जाम्बुन और कायफल इन सब द्रव्योंको एकत्र योग कर घृत और मधुके साथ मिलावे और मणके ऊपर प्रलेप दे। इससे रोग विमुक्ति होती है। तगरपादुका, सामकी गुठनीका गूदा, नागेश्वर और लौहचूर्ण इन्हें गोबरके रसमें मर्दन कर मणस्थानमें प्रलेप देनेसे उस स्थानका रंग पहले जैसा हो जाता है। मण्य, मृण, पीपल और द्विजलमूल, स्थाशा, मेरुमिट्टी, नागेश्वर, गुल्म और हीराकसीस इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी मणस्थानका घर्षा गालके समान होता है। जीवाघे जन्तुके जमड़े, रोर, रुर, सोंग और दृष्टीको मर्म कर यह मर्म मेलके साथ मणस्थानमें लगानेसे वहाँ रोर निकलने हैं।

मणरोगी लघण, मण्यल, कृत्, उष्ण, विदादि और गुग्गुलु अन्नपान तथा म्रियुत परिस्पाय करे। अग्नि जोतल, स्निग्ध और अविदाही म्पु भग्न और पान तथा दिनको मही सोना मणरोगीके लिये हितकर है।

(मरक चिकित्सकस्थो २५ भ०)

सुभ्रूय, यागट और भावप्रदान भादि वैद्यक प्रणाली मणका विशेष विवरण दिया गया है।

मणहृत् (म० पु०) मण करोतीति कृ-विषय-सुगा-गमश्च। १ मल्लातक, मिलाया। (ति०) २ क्षणकारक।

मणकेतुकी (म० ति०) मणकेतु हततीति हन-उक-हीप्। दृष्यकेणोक्षुप, दृष्यकेणोका पीषा।

मणप्रथि (म० पु०) मणरोगमेद्, यह गाँठ जो कोष्ठके ऊपर हो जाती है। वैद्यकमें इसकी मज्जा रोगीमें होती है।

मणजिना (म० स्तो०) गोरमगुग्गु। (वेद-ति०)

मणजिर् (म० पु०) मणस्य जिर्-जन्तुः। १ मण्य-यष्टिका। (ति०) २ मण्योषक।

मणपूजन (म० पु०) मणस्य पूजनं। मणको पूजान-विधि। मण्य गन्ध देणे।

मणरोपण (म० द्रो०) मणस्य रोपणं। मणका रोपण,

कोड़े का घाव भरनेकी क्रिया । कोड़ेमेंसे दूधित मांस निकल जाने पर जो भीषणादि द्वारा कोड़े या घाव भरता जाता है, उसे घणरोषण कहते हैं । माघप्रक्राममें लिखा है, कि दूधित मांस निकलने पर उस जगह मांस भरनेके लिये तिलका कढ़ा, घृत और मधु संयोगसे प्रयोग करना चाहिए । असर्गंध, कटकी, लोच, कायफल, इन सबोंको पौस मघके साध प्रयोग करनेसे घणरोषण भर्षान् घणको गमोरता पूरो होती है । प्रथ शब्द देखो ।

घणरोषणरस (सं० पु०) क्षुद्रैरागापिहारकी एक भीषण ।

घनानेकी तरकीब—रस, गंधक, अफोम, सीवर्षाल और संघा नमक समान भाग ले कर जम्बोर, घृतकुमारी, नरमूल और चिताके रसमें तीन तीन दिन अलग रख भावना दे तैयार करे । मात्रा ६ रस्ती, अनुपान मधु है ।

(रतेन्द्रचिन्ता० लुद्रैरागाधि०)

घणवत् (सं० त्रि०) घण अस्त्वर्थे मनुष्य मस्य व । घण-

विशिष्ट, घणरोगी ।

घणशोथ (सं० पु०) घणस्य शोथः । घणका स्फोतता-

कारक रोगमेद् । पृथक् या समस्त दोष दूधित हो कर छाः प्रकार-घणशोथ उत्पन्न करता है । जैसे—घानज, पिचज, कफज, सग्निपातज, रक्तज और आगन्तुज ।

इसमें शोथके लक्षण दिखाई पड़ते हैं ।

घणशोचन (सं० पु०) कम्पिलक, कमीला । (पैरकनि०)

घणशोष (सं० पु०) घणस्य शोषः । क्षतजस्य शोष-

रोग, फोड़े या घाव आदिमें होनेवाला यह सूजन जिसके साथमें पोंड़ा भां हो ।

घणस्थान (सं० त्रि०) घणस्य स्थानं । घणका स्थान । चरक और सुश्रुतसंहितामें लिखा है, कि घणके भाठ स्थान हैं,—रथक, मांस, निरा, स्नायु, अरिच, सन्धि, कोष्ठ और मर्म । इन भाठ स्थानोंमें दोषदुष्ट घण होता है । (गुभु० प २२ भ०)

घणघ्राव (सं० पु०) घणस्य घ्रावः । सुश्रुताक घणरोग-

का पूषादि क्षरण ।

घणह (सं० पु०) घणं हततीति हन-घ । १ परवटहृष्ट, देहका पेड़ । (त्रि०) २ घणघातक ।

घणहरो (सं० त्रि०) साहूलिकीपांध, विपलांगुलिया ।

(पैरकनि०)

घणहा (सं० त्रि०) घणं हततीति हन घ, त्रिषां टाप् ।

घुहूची, घुहूच ।

घणहृत् (सं० पु०) घणं हततीति हृ-प्रिश्च् तुक् च् ।

कलिकारी या कलिहारी नामक पेड़ । (राजनि०)

घणायाम (सं० पु०) घैवकके अनुसार एक प्रकारका

घातरोग । इसमें मर्मस्थानके फोड़ेमें सारे शरीरकी वायु एकत्र हो कर बगल हो जाती है । यह रोग असाध्य माना जाता है ।

घणारि (सं० पु०) घणस्य अरिः । १ घेल नामक गन्धद्रव्य । २ अगस्त नामक वृक्ष ।

घणित् (सं० त्रि०) घण अस्त्वर्थे इति । घणरोगी, जिसे घण हुआ है ।

घणिल (सं० त्रि०) घणयुक्त, क्षतविशिष्ट ।

घणोय (सं० त्रि०) घण-सम्बन्धो, घण या फोड़ेका ।

घणोपक्रम (सं० पु०) घणस्य उपक्रमः । घणरोगकी

चिकित्सा । सुश्रुत चिकित्सत स्थानमें १ अघ्यायमें

६० प्रकार घणोपक्रम भर्षान् घणको चिकित्सा वर्णित हुई है । "घणोपक्रमा पण्डिपिधोऽपतर्षणादि भेदेन, यथा श्रयादि" (गुभु० त्रि० १ भ०)

ये ६० प्रकार जैसे—अवतर्षण, आलेप, परिचैक,

अभ्यङ्ग, स्नेह, विभ्लापन, उपनाह, पाचन, विघ्रावण,

स्नेह, यमन, विरेचन, लेदन, भेदन, क्षारण, लेखन, पपण,

आहरण, स्वधन, सीयन, सम्घाग, पीडन, योगित्त-

स्थापन, निर्वापन, उत्कारिका, कषाय, पर्सि, कटक,

सर्पि, तैल, रसकिया, मयचूर्णन, घणधूपन, मधभादन,

मृदुकर्म, क्षारकर्म, क्षारकर्म, अग्निकर्म, पाण्डुकर्म,

प्रतिसारण, रोमसंजनन, लोमावहरण, वस्त्रिकर्म, उत्तर

घस्तिकर्म, यष्प, पलदान, छामिचन, वृंहण, विपचन,

निर्वापरेचन, नस्य, कचलपारण, घूम, मधुमर्षि, यग्ज,

माहार तथा रक्षाविधान ये साठ प्रकार घणरोगके उप-

क्रम हैं ।

घणव (सं० त्रि०) घणोत्पादनयोग्य ।

घ्न (सं० पु० त्रि०) घिनने इति घन् घरणे बाहुलकाद्-तच् स घ कित् । १ अन्नघ्न, भोजन करना । २ पुष्प-जनक उपवासादि । किसी पुष्प निचयमें पुष्प प्रातिके लिये उपवास आदि करनेका नाम घ्न है । जिन सब

उपवासादि कर्मानुष्ठान द्वारा पुण्य सञ्चय होता है, उसको प्रत कहते हैं। सम्पत्क सञ्चालनित अनुष्ठेय क्रियाविशेष रूपका नाम प्रत है। यह पहले से प्रकारका प्रवृत्तिरूप और निवृत्तिरूप है। द्रव्य विशेषों भोजन और पूजादि साध्य प्रतको प्रवृत्तिरूप और केवल उपवासादि साध्य प्रतको निवृत्तिरूप कहते हैं। इसके फिर तीन भेद हैं, निरप, नैमित्तिक और काम्य। अकारणसे प्रत्य-याय होता है उसे निरप कहते हैं। एकादशी आदि प्रत निरप है। किसी निमित्त घणतः जो प्रत क्रिया जाता है, उसका नाम नैमित्तिक है। पापक्षयके लिये चाण्डाल्याणदि प्रत नैमित्तिक है। तिथिविशेषमें कामना करके जो सब प्रत किये जाते हैं, उन्हें काम्य कहते हैं। जैसे, सावित्री आदि प्रत। ज्येष्ठमासकी कृष्णा चतुर्दशी तिथिमें अथैष्य-कामनासे सावित्री प्रत करना होता है, मनपय यह काम्य है। इस प्रकार कामना करके जो प्रत किया जाता है, यही काम्य है।

प्रतारम्भविधि—हेमाद्रिके प्रतषण्डमें लिखा है, कि अषण्डा तिथिमें प्रतारम्भ करना होता है। षण्डा तिथि प्रतारम्भमें निषिद्ध है अर्थात् इस तिथिमें प्रत नहीं करना चाहिये। शुद्ध शुक्लके यादव वृक्षास्तत्रनित मकाल और मलमासमें भी प्रतारम्भ निषिद्ध है।

हिम तिथि तक सूर्यदेव भवस्थान करते हैं, यही अषण्डा-तिथि है। यह अषण्डा तिथि ही प्रतारम्भमें प्रशस्त है। अस्तगामिनो तिथिकी अपेक्षा उदय-गामिनो तिथि ही श्रेष्ठ है। मनपय उदयगामिनो तिथिमें ही प्रतादि कार्य करने चाहिये।

प्रतके काविक और मानसिक दो प्रकारके भेद कहे गये हैं। यथा—महिंसा, सत्य, अन्नेय, द्रव्यघृषं, अहंनय, ये सब मानस प्रत हैं। इन सबका अनुष्ठान करनेसे मानस प्रतका फल होता है। काविक प्रत—उपवास और अथाचित मायमें अहंन्यास आदि अर्थात् दिनरात अथवा रात या अज्ञात व्यक्तिके लिये रातको भोजन तथा किसीके कुछ न मर्गना, यही काविक प्रत है।

प्रारण, शक्ति, वैश्य और दृष्ट इन पाप वर्णों में खो, पुण्य समीची प्रतमें अधिकार है। ये सभी प्रता-

नुष्ठान द्वारा पापमुक्त हो धेष्ठगणिको पा सकते हैं। जो प्रतानुष्ठान करेंगे उनका कर्ममें अधिकार रहना भावश्यक है। इस अधिकारका विषय इस प्रकार लिखा है, कि जो वर्णानुसार अपने अपने भाधमधर्मका प्रतिपालन करते हैं तथा विशुद्ध चित्त, मातृपुत्र, सत्य यादी, सब भूमिके दितकारो, धर्मायुक्त, मद् और दम्भरहित तथा पहले शास्त्रार्थ निर्णय करके तदनु-सार कार्यकारी, ये सब सद्गुणविनिष्ठ व्यक्ति ही प्रतके अधिकारो हैं। अर्थात् जो धार्मिक हैं, ये ही प्रतानुष्ठान करेंगे और उर्ध्वोकी प्रत करनेका फल मिलेगा, दूसरेको नहीं; धार्मिक शब्दका अर्थ ऐसा लिखा है, कि गितरीके उर्ध्वसे धर्मा, तपस्या, सत्य, अक्रोध, स्वधर्ममें सन्तोष, मोक्ष, अनन्या, आत्मज्ञान, तितिक्षा, ये सब साधारण धर्म कहलाते हैं। इन सब साधारण धर्मके अनुसार जो विचरण करते हैं, ये धार्मिक व्यक्ति ही प्रतके अधिकारी हैं।

चारों वर्णोंको स्त्रीको प्रत करनेका अधिकार है। किन्तु उसके सम्बन्धमें कुछ विशेष विधि है, यह यह कि सधवा स्त्री स्वामीकी अनुमति ले कर प्रत करें। विना अनुमति लिये यह प्रत नहीं कर सकती है। क्योंकि, शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रियोंके लिये पृथक् पृथ, प्रत, उपवास आदि कुछ भी नहीं है। एकमात्र पति-शुभ्रूपा ही उनका धर्म है। इसीसे यह उरुष्ट लोक पाती है।

अविवाहिता बन्धा विवाही, सधवा पतिकी और विधवा पुत्रकी अनुमति ले कर प्रताचरण करे।

कुमारी, सधवा और विधवा स्त्री मातृकी ही विगा, पति और पुत्रका आदेश ले कर प्रत करना चाहिये। सम्बधा ये प्रतकी फलभागिनी नहीं होंगी।

प्रताचरण करनेमें उसके पूरे दिन संवत् हो कर रहना पड़ता है। पीछे प्रतारम्भके दिन मातृका करके प्रत करना होता है। प्रतके पूर्ण दिन धान, मातृ, मूंग, उदक, जल, दूध, गाँवा, सोवार और गेहूँ ये सब अन्न खा सकते हैं, किन्तु कुन्दटा, कद्दू, बैंगन, पाटकी माय, उयोर्त्विनका (मर्कट फूलकी लहों) ये सब वस्तु खाता निषिद्ध है।

फोड़े का घाव भरनेको किया। फोड़े मेंसे दूधिन मांस निकल जाना पर जो भीषणादि द्वारा फोड़े या घाव मरा जाता है, उसे मणरोषण कहते हैं। भावप्रकाशमें लिखा है, कि दूधित मांस निकलने पर उस जगह मांस भरनेके लिये तिलका कढ़क, घृत और मधु संयोगसे प्रयोग करना चाहिए। असर्गंध, कटकी, लोघ, कापफल, इन सबोंको पौस मधके साथ प्रयोग करनेसे मणरोषण मर्णात् मणको गमोरता पूरी होती है। मधु शब्द देखो।

मणरोषणरस (सं० पु०) क्षुद्ररोगापिक्कारकी एक भीषण।

वनानिकी तरकीब—रस, गंधक, जफोम, सोवर्धल और संधा नामक समान भाग ले कर जम्बीर, घृतकुमारी, नरमूल और चिताके रसमें तीन तीन दिन अलग रख भावना देतेवार करे। मात्ता ६ रसों, अनुपान मधु है।

(स्तेन्द्रचिन्ता० ह्यद्रोगाधि०)

मणवत् (सं० त्रि०) मण अस्त्रयर्थे मनुष्य मस्य च। मण-

यिष्टिष्ट, मणरोगी।

मणशोथ (सं० पु०) मणस्य शोथः। मणका स्फोटता-कारक रोगमेद। पृथक् या समस्त शोथ दूधित हो कर छः प्रकार-मणशोथ उत्पन्न करता है। जैसे—यानज, पिच्छज, कफज, सग्निपातज, रतज और भागभुज।

इसमें शोथके लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

मणशोधन (सं० पु०) कम्पितक, कमोला। (यैचरुनि०)

मणशोष (सं० पु०) मणस्य शोषः। क्षतजश्व शोष-रोग, फोड़े या घाव भादिमें होनेवाला यह सूजन जिसके साथमें पौष्टा भी हो।

मणस्थान (सं० त्रि०) मणस्य स्थानं। घृणका स्थान। घरक और सुश्रुतसंहितामें लिखा है, कि घृणके भाठ स्थान है,—रथक, मांस, तिरा, स्नापु, अस्त्रिच, सग्नि, कोष्ठ और मर्म। इन भाठ स्थानोंमें शोषदुष्ट घृण होता है। (सुभूत य २२ ५०)

मणघ्राय (सं० पु०) घृणस्य घ्रायः। सुभूतैक घृणरोग-का पूषादि क्षरण।

मणह (सं० पु०) घृणं हस्तोति हन-ट। १ परएटपृक्ष, देहका पेड़। (त्रि०) २ घृणघातक।

मणहरी (सं० स्त्री०) साङ्गलिकार्वाथ, विषनांगुलिवा।

(वैचरुनि०)

मणहा (सं० स्त्री०) घृणं हस्तोति हन ट, द्विषां टाप। गुहूची, गुहूच।

मणहृत् (सं० पु०) घृणं हस्तोति ह-विश्व् तुक् च्। कलिकारी या कलिहारी नामक पेड़। (राजनि०)

मणायाम (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका घातरोग। इसमें मर्मस्थानके फोड़ेमें सारे शरीरको घायु पकल हो कर घरात हो जाती है। यह रोग मसाधय मोगा जाता है।

मणारि (सं० पु०) मणस्य अरिः। १ बेल नामक मधुद्रव्य। २ अणस्त नामक वृक्ष।

मणिन (सं० त्रि०) घृण अस्त्रयर्थे इनि। घृणरोगो, जिससे घृण हुआ हो।

मणिल (सं० त्रि०) घृणयुक्त, क्षतविशिष्ट।

मणीय (सं० त्रि०) घृण-सम्बन्धी, घृण या फोड़ेका।

मणोपक्रम (सं० पु०) घृणस्य उपक्रमः। घृणरोगकी विक्रिस्ता। सुश्रुत विक्रिस्त स्थानमें १ अध्यायमें ६० प्रकार घृणोपक्रम अर्थात् घृणकी विक्रिस्ता वर्णित हुई है। "मणोपक्रमः पष्टिपिष्टोऽवतर्षणादि भेदेन, यथा इत्यादि" (सुभूत वि० १ ५०)

ये ६० प्रकार जैसे—अपतर्षण, आलेप, परिपेक, अश्वहृत्, स्नेह, विमलापन, लपनाह, पाचन, विघ्रापण, स्नेह, यमन, घिरेपन, ऐश्न, भेद्न, दारण, लेखन, वषण, आहरण, च्यवन, सोपन, सम्भान, पीडन, शोषित-स्थापन, निर्षापन, उत्कारिका, कषाय, वशि, कढ़क, सपिं, तैल, रसकिया, अश्वचूर्णन, घृणधूपन, अशगाहन, मृदुकर्म, दारणकर्म, क्षारकर्म, अग्निकर्म, पाण्डुकर्म, प्रतिस्वारण, रोमसंजनन, लेमापहरण, यस्त्रिकर्म, उत्तर यस्त्रिकर्म, मधु, पलदान, छिमिदन, गृहण, विषघ्न, निरौषधरेचन, नस्य, कपलघाटन, घूम, मधुसर्पिण, मन्त्र, आहार तथा रक्षाविधान ये साठ प्रकार घृणरोगके उप-क्रम हैं।

मण्य (सं० त्रि०) मणोत्पादनयोग्य।

मत् (सं० पु० त्रि०) मियने इति मन् प्रणे बाहुलकात्-तत्त्वं च कित्। १ मक्षण, मोजन करना। २ पुण्य-जनक उपयामादि। क्रिस्ता पुण्य क्रियेमें पुण्य प्रातिके लिये उपवास आदि करनेका नाम मत् है। मिन सर

उपवासादि कर्मानुष्ठान द्वारा पुण्य सञ्चय होता है, उसको प्रत कहते हैं। सत्यम् सद्गुणजनित अनुष्ठेय क्रियाविशेष रूपका नाम प्रत है। यह पहले दो प्रकारका प्रवृत्तिरूप और निवृत्तिरूप है। द्रष्टव्य विशेष भोजन और पूजादि साध्य प्रतको प्रवृत्तिरूप और केवल उपवासादि साध्य प्रतको निवृत्तिरूप कहते हैं। इसके फिर तीन भेद हैं, नित्य, नैमित्तिक और काव्य। अकरणसे प्रत्य-याय होता है उसे नित्य कहते हैं। एकादशी आदि प्रत नित्य हैं। किसी निमित्त यज्ञतः जो प्रत क्रिया जाता है, उसका नाम नैमित्तिक है। पापक्षयके लिये चाग्नायणादि प्रत नैमित्तिक है। तिथिविशेषमें कामना करके जो सब प्रत किये जाते हैं, उर्ध्व काव्य कहते हैं। जैसे, सायिको आदि प्रत। उग्रप्रमासको कृष्णा चतुर्दशी तिथिमें अवेधय-कामनासे सावित्री प्रत करना होता है, अतएव यह काव्य है। इस प्रकार कामना करके जो प्रत किया जाता है, यही काव्य है।

प्रतारम्भतिथि—हेमाद्रिके प्रतखण्डमें लिखा है, कि अखण्डा तिथिमें प्रतारम्भ करना होता है। खण्डा तिथि प्रतारम्भमें निषिद्ध है अर्थात् इस तिथिमें प्रत नहीं करना चाहिये। शुद्ध शुक्लके पादय वृद्धास्तजनित अकाल और मलमासमें भी प्रतारम्भ निषिद्ध है।

मिस तिथि तक सूर्यदेव अवस्थान करते हैं, यही अखण्डा-तिथि है। यह अखण्डा तिथि ही प्रतारम्भमें प्रयुक्त है। अस्तगामिनी तिथिकी अपेक्षा उदय-गामिनी तिथि ही श्रेष्ठ है। अतएव उदयगामिनी तिथिमें ही प्रतादि कार्य करने चाहिये।

प्रतके काविक और मानसिक दो प्रकारके भेद कहे गये हैं। यथा—अहिसा, सत्य, अस्तेय, व्रतचर्चा, अदम्य, ये सब मानस प्रत हैं। इन सबका अनुष्ठान करनेसे मानस प्रतका फल होता है। काविक प्रत—उपवास और अवाचित मायमें अवरुधान आदि अर्थात् दिनरात उपवास या अवाच्य व्यक्तिके लिये रातको सोमन तथा किसीने कुछ न मींगना, यही काविक प्रत है।

प्राज्ञण, क्षत्रिय, वैश्य और क्षत्र इन चार वर्णोंमें स्त्री, पुरुष समोको प्रतमें अधिकार है। ये सभी प्रता-

नुष्ठान द्वारा पापमुक्त हो ध्येष्टगतिको पा सकते हैं। जो प्रतानुष्ठान करेंगे उनका कर्ममें अधिकार रहना आवश्यक है। इस अधिकारका विषय इस प्रकार लिखा है, कि जो वर्णानुसार अपने अपने आधमधार्मिक प्रतिपालन करते हैं तथा यिमुद्ग चिस, मनुस्मृ, सत्य यादो, सब भूतोंके हितकारो, धर्दायुक्त, मद और दग्मरहित तथा पहले शास्त्रार्थ निर्णय करके तदनुसार कार्यकारो, ये सब सद्गुणविशिष्ट व्यक्ति हो प्रतके अधिकारो हैं। अर्थात् जो धार्मिक हैं, ये ही प्रतानुष्ठान करेंगे और उर्ध्वको प्रत करनेका फल मिलेगा, दूसरेको नहीं; धार्मिक शास्त्रका अर्थ पेरना लिखा है, कि पितरोंके उर्ध्वमें धर्दा, तपस्या, सत्य, अक्रोध, स्वदारमें सन्तोष, शीघ्र, मनमूषा, भारमहान, तितिक्षा, ये सब साधारण धर्म कहलाने हैं। इन सब साधारण धर्मके अनुसार जो विवरण करते हैं, ये धार्मिक व्यक्ति ही प्रतके अधिकारो हैं।

चारों वर्णोंको स्त्रीको प्रत करनेका अधिकार है। किन्तु उसके सम्बन्धमें कुछ विशेष विधि है, यह यह कि सधया स्त्री स्वामीकी अनुमति ले कर प्रत करें। बिना अनुमति लिये यह प्रत नहीं कर सकती है। पर्वोकि, शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रियोंके लिये पृथक् पृथ, प्रत, उपवास आदि कुछ भी नहीं है। एकमात्र पति-सुधूषा ही उनका धर्म है। इसीसे यह उरहृष्ट लोक पाती है।

अविवाहिता कन्या पिताकी, सधया पतिकी और विधवा पुत्रकी अनुमति ले कर प्रताचरण करे।

कुमारी, सधया और विधवा स्त्री मातृको ही पिता, पति और पुत्रका आदेन ले कर प्रत करना चाहिये। अथवा ये प्रतको फलमागिनी नहीं होंगी।

प्रताचरण करनेमें उसके पूर्व दिन संवन हो कर रटना पड़ता है। चौथे प्रतारम्भके दिन सद्गुण करके प्रत करना होता है। प्रतके पूर्व दिन घाम, माटो, भूंग, उडद, जल, दूध, गाँवा, भोवार और गेहूँ ये सब अन्न खा सकते हैं, किन्तु कुन्ददा, बटू, धैंगल, पायलको साग, उयोन्निवहा (सफेद मूत्रकी तराई) ये सब दग्मु काना निषिद्ध है।

गन्ध, जल, जात, क्षिपि, पुत्र, मधु, श्यामाक, शालि, मोघार, मूल और पत्तादि भी भोजन कर सकते हैं। परन्तु मधु और मोघ भोजन निषिद्ध है।

उस दिन प्रत्यगर्थापचयन करके रहना होता है। प्रत्यगर्थापचयन कष्ट हूँ मैथुननिःसि सम्भक्तो होगी। मन करनेवाले इस दिन सभी भूतोंके प्रति दया, शान्ति, अनमूया, शीघ्र शादिका पाठन करेंगे।

प्रतारंभके समय यदि अनीचादि हो गये, तो प्रत नहीं करना चाहिये। किन्तु प्रतारंभके बाद होनेसे प्रत किया जा सकता है, इसमें शेष नहीं होता। अर्घान् एक प्रत ० वर्ष तक करना होता है, उनमेंसे जिस वारमें प्रथम प्रतारंभ होगा, उस वारमें यदि अनीचादि हो जाये, तो प्रत नहीं कर सकते। किन्तु दूसरे वर्ष यदि मनके समसमयमें अनीच या खी रजस्रला हो, तो मनमें वाधा नहीं होगी, वह दूसरे द्वारा कराया जायेगा अर्घान् प्राप्ति प्रत करेंगे, और उपवासदि स्वयं करना होगा। उपवासमें असमर्था होने पर पुत्रादि प्रतिनिधि द्वारा उपवास कराये। स्वामीके मनमें खी और खीके प्रतमें स्वामी प्रतिनिधि हो सकता है। यह यदि ग हो, तो प्राप्तिके भी प्रतिनिधि कर सकते हैं।

पञ्चाविधान प्रतप्रदण करनेसे समाप्तिके बाद उस प्रतको प्रतिष्ठा करने होती है। प्रतविशेषमें ५, ७, १४ आदि वर्षमें उसको प्रतिष्ठा कही गई है। यदि कोई प्रतका आरंभ कर प्रतके समाप्तिकाल तक न पचे, तो प्रतको अन्तसमाप्तिके लिये शेष नहीं होगा। प्रत करनेवालेको उस प्रतका फल मिलेगा। किन्तु यदि कोई पानि, लोभ, मोह, प्रमादवज्जतः प्रतभङ्ग कर दे, तो उसे प्रापदिवस करना होता है। प्रापदिवसःपुष्टालके बाद फिरसे यह प्रत करना होगा। प्रापदिवसके विषयमें लिखा है, कि तीन दिन उपवास और वेजमुष्टन करे। वेजमुष्टन यदि न करे, तो उसके मूल प्रापदिवसका पुनः प्रापदिवस करना होगा। मधुवा खीके मधुवापमे विशेषतः यह है, कि वे जेजमुष्टन न कराये, तर्क, बंजके मधुवापमे ही उंगला वेज माप कर उसे काट डाले। इस प्रकार प्रापदिवस करनेके बाद पुनः प्रत करना होगा। यदि कोई मरुत करके प्रतप्रदणपूर्वक यह प्रत न करे,

तो वह जीवितपन्थामें चण्डालस्व हीर मरनेके बाद कुपकुरणिको प्राप्त होता है।

प्रतप्रदणके विषयमें पूर्वाह्नकालमें सङ्कल्प करना होता है। पूर्व दिन संपतचित्त हो कर मनदिनमें सबेरे स्नान सन्ध्यादि करके, प्राचमन, सूषोष्णी, गणेश, निघादि पञ्च-देवता, आदित्यादि नवग्रह और इन्द्रादि द्वादशपाल आदिको पूजा, सुपुं, सोम इत्यादि स्वस्तिवाचन करके संकल्प करे।

मन जितने दिनोंमें शेष होगा उतने दिनों तक पर हो नियमसे प्रतानुष्ठान करना होगा। नियमित समय पूरा होने पर विधिसे अनुसार उस प्रतको प्रतिष्ठा करने होगी। प्रतिष्ठाकालमें यदि जन्म या मरणशीघ्र हो, तो भी पूर्व सङ्कल्पानुसार प्रतिष्ठाकार्य सिद्ध होगा, उसमें किसी तरहका शेष नहीं होता। किन्तु जितका प्रत है, वे उपवासादि भिन्न और कुछ भी नहीं कर सकते।

यदि किसी बिधुम्यतासे प्रतिष्ठा वर्षमें प्रतिष्ठा न हो, तो अनीच नहीं होगा। यदि उस वर्षमें शुद्ध शुद्धका पाल्य, मसत और वृद्धजनित मकाल और मसमासादि हो, तो भी प्रतिष्ठा नहीं होगी। जिस वर्षमें मकाल, मन्मस आदि न पड़े तथा अनीचादि न रहे, उसी वर्षमें प्रतिष्ठा होगी, किन्तु प्रतिष्ठा वर्षमें प्रतिष्ठा नहीं करनेमें पापनाशो अशुभ होता पड़ेगा।

प्रतकारो प्रतानुष्ठानके बाद प्रतकथा भ्रवण करें। प्रत-प्रतिष्ठा हो जाने पर फिर कथा सुननेको उद्भूत नहीं। किन्तु किसी किसी प्रतमें विशेषतः यह है, कि प्रतिष्ठाके बाद भी कथाभ्रवण और भोजनोत्सर्ग करना होता है। जैसे, बुद्धश्रीसतमीप्रतमें प्रतिष्ठाके बाद ही श्रीश्रीजीवन प्रतकथा भ्रवणका विधान है।

मकरादि कमसे कुछ प्रतोंके नाम भीचे दिये गये हैं। भविष्यपुराण, मरुतपुराण, पञ्चपुराण आदिपुराणोंमें इन सब प्रतोंका विधान निर्दिष्ट हुआ है।

२। अश्वत्थनीवा प्रत—इस प्रतका भविष्योक्त पुराणमें वर्णन मया है। वैजाय मन्त्रको चारु शुद्ध शून्या विधिमें यह प्रत करना होता है। इस विधिमें स्नान, जप, होम, व्याघ्रपत्र, विवृतपत्र, दान आदि जो कुछ दिये जाते हैं, वे अक्षय होने दें। यह विधि मरुत पुराण

६। इस तिथिमें सभी फल अक्षय होते हैं, इस कारण इस तिथिका नाम अक्षय तृतीया हुआ है।

७। अक्षयफलाव्याप्तिकककषय तृतीया व्रत—यह व्रत विष्णु धर्मोत्तरमें वर्णित है। अक्षयतृतीयाके दिन उपवास करनेके यह व्रत करना होता है।

८। अलण्डैकादशी व्रत—इस व्रतका विधान धामनपुराणमें लिखा है। माघमासके शुक्ल एकादशीके दिन यह व्रत करना होता है।

९। अन्नचतुर्थी व्रत—यह व्रत विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है। फाल्गुन मासकी शुक्लचतुर्थीके दिन यह व्रत करना होता है।

१०। अजोराक्षयचतुर्दशी—मघिष्योत्तरमें इस व्रतका विधान है। भाद्रमासके कृष्ण चतुर्दशीका नाम अजोराक्षय चतुर्दशी है। इस तिथिमें व्रत करना होता है। ह्युग्न्यने शिथिलारथमें इस व्रतका विधान उल्लेख किया है।

११। अङ्गात्तुर्थी व्रत—मरुतपुराणमें इस व्रतका विधान है। जिस किसी मासके मङ्गलवारमें यदि चतुर्थी तिथि पड़े, तो उसी दिन यह व्रत करना होता है।

१२। अचला सप्तमी व्रत—मघिष्योत्तरमें इस व्रतका हाल लिखा गया है। माघ मासकी शुक्ल सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१३। अद्वारिद्रपक्षी व्रत—स्कन्दपुराणमें यह व्रत उक्त हुआ है। प्रत्येक मासकी पक्षी तिथिमें एक वर्ष तक यह व्रत करना होता है।

१४। अमघाष्टमी व्रत—मघिष्योत्तरमें यह व्रत लिखा है। अमघाष्टमा मासकी कृष्णष्टमी तिथिमें यह व्रत करनेका कहा गया है।

१५। अमङ्गलपौर्णमासी व्रत—मघिष्योत्तरमें इस व्रतका वर्णन है। अमघाष्टमा मासके शुक्लपक्षकी पौर्णमासी तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत एक वर्षीय व्रत होता है।

१६। अमङ्गलपौर्णमासी व्रत—कालोत्तरमें यह व्रत विहित हुआ है। वैश्र मासकी शुक्ल पौर्णमासी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१७। अमन्वन्तपुर्णमासी व्रत—यह व्रत मघिष्यपुराणमें

निर्दिष्ट हुआ है। भाद्र मासकी शुक्ल चतुर्थी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत चौदह वर्ष करना होता है। प्रतारम्भके बाद चौदह वर्ष इस व्रतकी प्रतिष्ठा करनेकी होती है।

१८। अनन्त-तृतीया व्रत—इस व्रतका विधान पद्मपुराणमें लिखा है। निर्दिष्ट तृतीया तिथिमें व्रत करने में अनन्त फल लाभ होता है, इस कारण इसका नाम अनन्ततृतीया व्रत है। ध्रायण, वैशाख या अमघाष्टमा मासकी शुक्ल तृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१९। अनन्तद्वादशी व्रत—विष्णुहृदयमें इस व्रतका विषय लिखा है। भाद्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्षीय समाप्त होता है।

२०। अनन्तपञ्चमी व्रत—यह व्रत स्कन्दपुराणके प्रथममण्डलमें वर्णित है। फाल्गुन मासकी शुक्ल पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२१। अश्वत्थकर्मसमी व्रत—मघिष्यपुराणोक्त व्रत। यह भाद्र मासकी शुक्ल सप्तमी तिथिमें किया जाता है।

२२। अश्विनीसप्तमीव्रत—मघिष्यपुराणोक्त व्रत। वैशाख मासकी शुक्ल पक्षी तिथिमें उपवास करनेके द्वादश दिन सप्तमीतिथिमें यह व्रत करना होता है।

२३। अश्वरजितासप्तमी व्रत—मघिष्यपुराणोक्त व्रत, भाद्र मासकी शुक्ल सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह वर्ष साध्यव्रत है।

२४। अमावस्या व्रत—कूर्मपुराणोक्त व्रत। जिस किसी अमावस्या तिथिमें यह व्रत किया जाता है। अमावस्या तिथिमें महादेवके उद्देश्ये यदि कोई एकपुत्रेद्विष्ट प्राणजको दान को जाय, तो महादेव उक्त पर प्रभय होते हैं तथा उसी समय उसके माता जन्मका पाप विनष्ट होता है।

२५। अमोघसप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। जिस किसी सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२६। अशुभकारणसप्तमी व्रत—मघिष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्र मासका शुक्ल सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२७। अष्टम्यमी व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। अशुभ कर्तुमें तृतीया तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२३। अर्धव्रत—भविष्यपुराणोक्त मन। यह मन एक वर्षीय करना होता है। प्रत्येक मासके शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षकी पछो और सप्तमी तिथिमें उपवास करके यह मन करना होता है।

२४। अर्धमन्त्रमो मन—ब्रह्मपुराणोक्त मन। यह मन दो वर्षीय होता है। फाल्गुन मासकी शुक्ला पछोमें यह मन करना होता है।

२५। अर्धसप्तसप्तमी मन—भविष्यपुराणोक्त मन। फाल्गुन मासकी शुक्ला पछो तिथिमें सूर्यके उदयेनसे उपवासदि करके यह मन किया जाता है।

२६। अर्धष्टमी मन—भविष्यपुराणोक्त मन। जिस किसो मासके शुक्लपक्षमें रविवारको यदि अष्टमी तिथि पड़े, तो उस दिन यह मन करना होता है।

२७। अर्धध्रायणक मन—ब्रह्मवैव्यपुराणोक्त मन। ध्रायण मासके शुक्लपक्षमें यह मन होता है।

२८। अर्धद्वैप मन—ऋग्वेदपुराणोक्त मन। जिस दिन अर्धद्वैप योग होता है, उस दिन यह करना होता है। माघ मासको अमावस्याके दिन यदि रविवार, व्यतिपातयोग और ध्रुवणा नक्षत्र हो, तो उसे अर्धद्वैप कहते हैं। पहले षष्टिद्वैप, पीछे जामदग्न्य और सन कादि ऋषियोंने यह व्रत किया था।

२९। अमवणशुभोवा मन—भविष्योक्त मन। यह मन वायुजोषण करना होता है। द्वितीया तिथिमें उपवास करके शुभोवाके दिन लक्षण नहीं जाना चाहिये। प्रतिमास यह मन करना होता है। यह मन करनेसे पुण्य मनोरमा परती तथा स्त्री मनोरम पति लाभ करती है।

३०। भविष्य विनायक चतुर्थी मन—वराहपुराणोक्त मन। फाल्गुन मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह मन करना होता है। इस व्रतके फलसे सभी विघ्न विनष्ट होता है।

३१। भविष्य विनायक चतुर्थी मन—कालिकापुराणोक्त मन। अमवाण मासके शुक्लाक्षरी द्वितीया तिथिमें उपावास और रात्रिमें भस्मस्नान करके यागम आसन तथा नूतने दिन शुभोवाके यह मन विघ्नोका भवेच्छय कर है।

३२। भविष्योक्त द्वैप मन—भविष्यपुराणोक्त मन। यह मन माघमासको शुक्ला द्वाविंशो तिथिकी उपवास करके करना होता है।

३३। भवाङ्गसप्तमी मन—भाद्रमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक यह मन करना होता है, श्रावणकी शुक्लसप्तमी तिथिमें यह मन समाप्त होता है।

३४। भद्रान्य-जपन द्वितीया मन—भविष्यपुराणोक्त मन। चातुर्मासमें अर्धान् ध्रायण, भाद्र, भाद्रिण्य और कार्तिक इन चार महानोंमें कृष्णपक्षकी द्वितीया तिथिकी यह मन किया जाता है।

३५। भद्रोक्तविराज मन—भविष्योक्तोक्त मन। अमवायण, उषेष्ठ और भाद्र इन तीन मासकी पूर्णमा तिथिमें यह मन करना होता है।

३६। भद्रोक्तपूर्णमा मन—विष्णुधर्मसरोक्त मन। फाल्गुनी पूर्णिमाका नाम भद्रोक्तपूर्णमा है। पूर्णिमा तिथिमें यह मन करना होता है।

३७। भद्रोक्तप्रतिपद मन—भविष्योक्तोक्त मन। भाद्रिण्य मासकी शुक्ला प्रतिपद तिथिमें यह मन करना होता है। यह मन करनेसे विता, भ्रता, पति, पुत्र, आदिकी शोक नहीं होता।

३८। भद्रोक्तष्टमी मन—लिङ्गपुराणोक्त मन। यह मन चैतमासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें करना होता है। इस दिन मन्तपाठ करके ८ भद्रोक्तपुण्यकी कमी पानी पड़ती है। इस व्रतके फलसे शोक नहीं होता। भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें और एक प्रकारका भद्रोक्तष्टमी मन है।

३९। अर्द्धिमा मन—पद्मपुराणोक्त मन। मन्दाग्नमें यह मन करना होता है।

४०। अर्द्धिमा मन—भविष्योक्तोक्त मन। जिस किसो नवमी तिथिकी यह मन किया जाता है।

४१। आशासकान्ति मन—ऋग्वेदपुराणोक्त मन। शंका मितमें यह मन करना होता है। इसके फलसे भावा भयविहत होती है।

४२। आश्विन मन—भविष्यपुराणोक्त मन। यह मन वर्ष वर्षीय करना होता है। जिस मासके रविवारको यह मन प्रदण किया जाता है, उसके बाद माघके बाद यह मन रोग होगा।

४३। आदित्यशयन व्रत—आदित्यपुराणोक्त व्रत।
यदि रविवारके या संक्रान्तिके दिन हस्ता नक्षत्र और
सप्तमी तिथि पड़े, तो उसी दिन यह व्रत करना होता
है।

४४। आदित्य-नन्द्यदि व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत।
रविवारके यदि द्वादशी तिथि और हस्ता नक्षत्र हो,
तो उसी दिन यह व्रत होना।

४५। आनन्दव्रत—मरुतपुराणोक्त व्रत। चैत्र
माससे लेकर चार महीने तक यह व्रत करना होता है।

४६। आनन्द-पञ्चमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत।
नवपञ्चमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

४७। आनन्दनवमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन
मासकी शुक्ल नवमी तिथिमें आनन्द नवमी कहते हैं।
यह व्रत करनेमें फाल्गुन मासकी शुक्ल पञ्चमी तिथिमें
एक बार भोजन और पष्टी तिथिमें रातके भोजन तथा
सप्तमी तिथिमें अर्वाचित रूपसे भोजन और अष्टमीमें
उपवास करके पीछे नवमी तिथिमें यह व्रत करे।

४८। आशुष व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत।
यह व्रत भाषण, भाद्र, भाद्रिण और कार्तिक इन चार
महीनोंकी रातके भोजन करके करना होता है।

४९। आरोग्य व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत।
भाद्र मासकी पूर्णिमाके बाद प्रतिपदसे भाद्रिणकी
पूर्णिमा तक यह व्रत करना होता है।

बराहपुराणमें एक और आरोग्य व्रतका उल्लेख है।
भाष मासकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

५०। आरोग्य-द्वितीया व्रत—बृहस्पतिपुराणोक्त व्रत।
नवमी तिथिमें उपवास करके द्वितीया तिथिमें यह व्रत
करना होता है।

५१। आयु व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। चतुर्दशी
तिथिमें संवत् हो कर पूर्णिमाके दिन यह व्रत करना
होता है।

५२। आयुसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत।
संक्रान्तिमें यह व्रत होता है।

५३। आजादित्य व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत।
भाद्रिण मासके मध्य रविवारके दिन यह व्रत आदिम
करके एक वर्ष तक करना होता है।

५४। आश्रमव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्र
मासकी शुक्ल चतुर्थी तिथिमें उपवास करके यह व्रत
करना होता है।

५५। भाषाद्रव्रत—महाभारतोक्त व्रत। भाषाद्र
मास तक यह व्रत करना होता है। इस व्रतमें भाषाद्र-
के प्रतिदिन एक बार भोजन और विष्णुपूजा करनी
होती है।

५६। इन्द्रपूर्णिमास व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह
व्रत पूर्णिमाके दिन करना होता है। पूर्णिमाके
दिन उपवास करके ३० दम्पनीके मन्त्रद्वारादि द्वारा
मूर्धित कर उनकी पूजा करे।

५७। ईशान व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। चतुर्दशी
तिथिमें बुद्धरूपविचार होनेसे यह व्रत किया जाता है।

५८। ईश्वर व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। चतुर्दशी
तिथिमें यह व्रत करना होता है।

५९। उदकसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह
व्रत सप्तमी तिथिमें करना होता है।

६०। उदकद्वितीया व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह
व्रत क्रमदायण माससे लेकर एक वर्ष तक करना होता
है। महीनेकी दोनो पक्षाद्वाराके दिन यह व्रत करना
होता है।

६१। उभयनवमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह
व्रत भी एक वर्ष तक करना होता है। मासकी दोनो
नवमी तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान किया जाता है।

६२। उभयसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह
व्रत भी एक वर्षमें होय होता है। मासकी उभय-
सप्तमीमें इसका अनुष्ठान करना होता है।

६३। उमामातृभ्यर्चनोप व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत।
ममदायण मासकी शुक्लानुवर्तिनिमें यह व्रत करना
होता है।

द्वेषपुराण, भृगुसंहिता और विष्णुधर्मोत्तरमें और
भी तीन प्रकारका यह व्रत है।

६४। उदकानवमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत।
भाद्रिण मासकी शुक्लानवमीका नाम उदकानवमी है।
इस तिथिमें यह व्रत करना होता है।

६५। आयु व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। यह व्रत

वर्षभ प्रभुमें भारभन करे। मनुष्योंमें करना होता है।

६६। श्रविष्यनी मन—प्रवाण्डपुराणोक्त मन। भाषणाकी शुभलावण्यमोहा नाम श्रविष्यनी है। इस तिथिमें यह मन किया जाता है।

६७। एकमपन मन—विष्णुधर्मोत्तरोक्त मन। नील-मासमें एक बार मोक्षण करके यह मन करना होता है।

६८। वैश्वर्षनीया मन—विष्णुधर्मोत्तरोक्त मन। श्लोका तिथिमें इस मतका अनुष्ठान होता है।

६९। कर्दनी मन—मविष्योत्तरोक्त मन। यह मन माद्रमासकी शुभलावण्यमोहा तिथिमें करना होता है।

७०। बन्दुव्युषी मन—माघमासकी शुभलावण्यमोहा। इस दिन यह मन करना होता है।

७१। कलिापष्टी मन—कल्पपुराणोक्त मन। माद्र-मासकी कृष्णापष्टीतिथिमें यदि व्योमगतयोग और रोहिणी मङ्गल हो, तो उसे कलिापष्टी कहते हैं। इस पष्टीमें यह मन करना होता है।

७२। करण मन—श्रवाण्डपुराणोक्त मन। माघमास-के शुभलपक्षमें जिस दिन व्यवकरण होता है, उसी दिन यह मन किया जाता है।

७३। कमलसप्तमी मन—वसुपुराणोक्त मन। फाल्गुन मासकी शुभला सप्तमीकी कमलसप्तमी कहते हैं। इस तिथिमें यह मन करनेको कहा गया है।

७४। कलिदादनी मन—मविष्यपुराणोक्त मन। माद्र-मासके शुभलपक्षकी दादनी तिथिमें यह मन करना होता है।

७५। कलरुक्ष मन—वसुपुराणोक्त मन। पशुपतके निवमानुसार तीन दिन भवस्थान और वायानकन्य-पादव प्रभुन करके यह मन करे।

७६। कल्याणसप्तमी मन—वसुपुराणोक्त मन। रवि-पारकी यदि शुभलासप्तमी पड़े तो उसे कल्याण सप्तमी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त मन करना होता है।

७७। कामधनुरी मन—मण्डपुराणोक्त मन। यह मन शुभलापष्टीव, कृष्णपक्षादनी, पूर्णिमा, मंगलिन, पना-पक्षा और अष्टमी इन सब वर्षे दिनोंमें यह मन किया जाता है।

७८। कामभन—मविष्यपुराणोक्त मन। यह मन शिव मासकी संध्यादनीतिथिमें करना होता है।

७९। कामदासतमी मन—मविष्योत्तरोक्त मन। फाल्गुनमासकी शुभलासप्तमीका नाम कामदासतमी है। इस तिथिमें यह मन करनेको कहा गया है।

८०। कामदेव मन। यह मन वैशाख-मासकी शुभलातयोदनी तिथिमें भारभन करके शैलशुभ-सयोदनीमें समाप्त करना होगा।

८१। कामधेनु मन—मण्डपुराणोक्त मन। यह मन कार्तिक मासमें किया जाता है।

८२। काम मन—वसुपुराणोक्त मन। यह मन सयोदनी तिथिमें करते हैं।

८३। कामपञ्चो मन—पराशुराणोक्त मन। माघ-मासकी शुभलापष्टी तिथिमें यह मन किया जाता है। यह मन एक वर्षीमें समाप्त होता है।

८४। कामावाति मन—विष्णुधर्मोत्तरोक्त मन। कृष्णावसुदनी तिथिमें यह मन किया जाता है।

८५। कार्शिकमास मन—नारदोक्त मन। कार्शिक-मासमें यह मन होता है।

८६। कार्शिकेवपञ्चो मन—मविष्योत्तरोक्त मन। मगहन महीनेकी शुभलापष्टी तिथिमें कार्शिकेवपष्टी कहते हैं।

८७। कालराति मन—कामिकापुराणोक्त मन। भाद्रपदमासकी शुभलापष्टी तिथिमें यह मन करना होता है।

८८। कालाष्टमी मन—वसुपुराणोक्त मन। भाषण-की कृष्णाष्टमीतिथिमें यदि मृगशिरा मङ्गल हो, तो उसे कालाष्टमी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त मन किया जाता है।

८९। कीर्ति मन—वसुपुराणोक्त मन। यह मन अष्टमी तिथिमें करना होता है।

९०। कुपकृष्टी मन—मविष्योक्त मन। यह मन माद्र-मासकी शुभलासप्तमी तिथिमें होता है।

९१। कुवेरशुनीया मन—मविष्यपुराणोक्त मन। यह मन श्लोवातिथिमें करना होता है।

९२। कुमारपष्टी मन—कालीसरोवर मन। यह मन शुभलापष्टीमें भारभन होता है।

९३। कुनी मन—कल्पपुराणोक्त मन। कार्शिक

मासकी शुक्रा एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

६४ । कूर्महादशी व्रत—भविष्योक्तव्रत । यह व्रत वीरनामकी शुक्राहादशीमें किया जाता है ।

६५ । कृच्छ्र व्रत—विष्णुसहस्रनाम व्रत । यह व्रत कार्तिक मासकी शुक्र एकादशीसे पूर्णिमा तक करना होता है ।

६६ । कृच्छ्रचतुर्थी व्रत—भविष्योक्तव्रत । भ्रम हावण मासकी शुक्राचतुर्थी तिथिमें यह व्रत किया जाता है ।

६७ । कृत्तिका व्रत—भविष्योक्तव्रत । कार्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

६८ । कृष्णचतुर्दशी व्रत—भविष्यपुराणिक व्रत । फाल्गुन मासकी कृष्णचतुर्दशी तिथिमें महादेवके उद्दरणसे रातको यह व्रत करना होता है ।

६९ । कृष्णाहादशी व्रत—वराहपुराणिक व्रत । भ्रम हावण मासकी कृष्णाहादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है ।

७० । कृष्णा व्रत—वद्वपुराणिक व्रत । एकादशी तिथिमें श्रीकृष्णके उद्दरणसे यह व्रत किया जाता है ।

७१ । कृष्णपक्षी व्रत—भविष्योक्तव्रत । यह व्रत भ्रमहावण मासकी कृष्णपक्षी तिथिमें किया जाता है ।

७२ । कृष्णाष्टमी व्रत—देवीपुराणिक व्रत । भ्रम हावणमासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान होता है ।

७३ । कृष्णैकादशी व्रत—विष्णुसहस्रनाम व्रत—पद्मसुतमासकी कृष्णैकादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है ।

७४ । कौकिला व्रत—भविष्योक्तव्रत । भाद्रपद पूर्णिमाके दिन भार्गव करके धावण मासकी पूर्णिमा पर्यन्त यह व्रत किया जाता है ।

७५ । कीर्तीश्वरीशुनीया व्रत—वराहपुराणिक व्रत । भाद्रमासके शुक्रपक्षाकी शुनीयातिथिमें यह व्रत भार्गव करके ४ वर्षके बाद इसकी मरिचका दशमी होती है । इस व्रतके फलसे दूरिद भी कोटिपति होता है ।

७६ । कौमुदी व्रत—विष्णुसहस्रनाम व्रत । भाद्रपद मासके शुक्रपक्षाकी एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

७७ । क्षेम व्रत—विष्णुसहस्रनाम व्रत । चतुर्दशीमें यक्ष और रक्षीकी पूजा करके यह व्रत किया जाता है ।

७८ । गणपतिचतुर्थी व्रत—भविष्यपुराणिक व्रत । गणपति चतुर्थीमें यह व्रत किया जाता है । यह व्रत २ वर्षोंमें समाप्त होता है । इससे गणपति संतुष्ट हो कर भगोष्ठ फल प्रदान करते हैं ।

७९ । गण्ड व्रत—निघण्टुव्रत । पूर्णिमाके दिन उपवास करके महादेवके उद्दरणसे १८ व्रत किया जाता है । यह व्रत एक वर्षसाध्य है ।

८० । गलतिका व्रत—निघण्टुव्रत । प्रत्येक कालमें निघण्टुके उद्दरणसे यह व्रत किया जाता है ।

८१ । गावत्रीव्रत—वद्वपुराणिक व्रत । शुक्रा चतुर्दशी तिथिमें भगवान् सूर्यदेवके उद्दरणसे यह व्रत गावत्रीव्रत द्वारा सूर्यके उद्दरणसे यह व्रत करना होता है । इस व्रतके फलसे सभी रोग नष्ट होते हैं ।

८२ । गुह्यशुनीया व्रत—भविष्यपुराणिक व्रत । भाद्र मासकी शुक्रशुनीया तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

८३ । गुणधामिनी व्रत—विष्णुपुराणिक व्रत । फाल्गुन मासके शुक्रपक्षमें यह व्रत करना होता है ।

८४ । गुह्य व्रत—भविष्योक्त व्रत । गृहस्थतिम्बकी प्रीतिके लिये यह व्रत किया जाता है ।

८५ । गुह्यशुनीया व्रत—भविष्यपुराणिक व्रत । भाद्र मासकी शुक्राष्टमी तिथिमें यदि गुह्यवार पड़े, तो यह व्रत किया जाता है ।

८६ । गुण्डादशी व्रत—भविष्योक्तव्रत । एकादशी तिथिमें गुण्डाको उद्दरणसे यह व्रत किया जाता है ।

८७ । गुह्यशुनीया व्रत—भविष्योक्तव्रत । यह व्रत पञ्चमी तिथिमें करना होता है ।

८८ । गोपद्वारव्रत व्रत—भविष्योक्त व्रत । भाद्र मासके शुक्रपक्षाकी शुनीया कीर्तीश्वरीया तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

१११। गोपालनयनी प्रत—शुक्रपुराणिक प्रत। नयनी तिथिमें यह प्रत रिया जाता है।

१२०। गोमपादिमतमी-प्रत—भविष्यपुराणिक प्रत। मतमी तिथिमें यह प्रत करने है।

१२१। गीरीचतुर्थी प्रत—पद्मपुराणिक प्रत। माघ मासकी शुक्लचतुर्थीका नाम उमाचतुर्थी है। इस चतुर्थी तिथिमें यह प्रत करना होता है।

१२२। गीरी प्रत—कालोत्तरोक्त प्रत। चैतशुक्लपूर्वामिं यह प्रत होता है। यह प्रत त्रिवेणीका संभाषण-पदक है।

१२३। गोबरसहायनीप्रत—भविष्योत्तरोक्त प्रत। कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी सायनी तिथिमें यह प्रत किया जाता है।

१२४। गोविन्ददाशमी प्रत—विष्णुरहस्योक्त प्रत। गोविन्ददाशमीमें विष्णुके उद्देशसे इस प्रतका अनुष्ठान होता है।

१२५। चण्डिका प्रत—भविष्योत्तरोक्त प्रत। प्रति मासकी षष्टी और चतुर्दशी तिथिमें चण्डिकादेवीके उद्देशसे यह प्रत एक वर्षमें करना होता है।

१२६। चतुर्दशी ज्ञायरण प्रत—कालिकापुराणिक प्रत। कार्तिक मासकी शुक्लचतुर्दशी तिथिमें यह प्रत होता है।

१२७। चतुर्दशी प्रत—भविष्योत्तरोक्त प्रत। चतुर्दशी तिथिमें महादेवके उद्देशसे यह प्रत किया जाता है।

१२८। चतुर्दशष्टमीप्रत प्रत—भविष्योत्तरोक्त प्रत। शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें यह प्रत मारण करके प्रति मासकी दो षष्टी और दो चतुर्दशी तिथिमें त्रिवेणीके उद्देशसे यह प्रत करना होता है।

१२९। चतुर्मासी प्रत—इसे चतुर्मास्य प्रत भी कहते हैं। यह भविष्योत्तरोक्त प्रत है। भाद्रपद मासकी शुक्ल पंचमिंसे मारण कर कार्तिक मासकी शुक्ल पंचमिंसे तक इन चार महामीमें करना होता है।

१३०। चतुर्मासीचतुर्थी-प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त प्रत। चैतमासकी शुक्ल चतुर्थी तिथिमें यह प्रत करना होता है।

१३१। चतुर्ग प्रत—विष्णुधर्मोक्त प्रत। चैतमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदसे चतुर्थी पर्यंत यह प्रत करना होता है।

१३२। चंद्रप्रत—यशोपुराणिक प्रत। पूर्णिमा तिथिमें यह प्रत किया जाता है। यह प्रत पंद्रह वर्षमें होता है।

१३३। चंद्ररोहिणी-जयनप्रत—पद्मपुराणिक प्रत। सोमवारकी यदि पूर्णिमा तिथि या रोहिणी नक्षत्र हो, तो उसी दिन यह प्रत होगा।

१३४। चंद्रार्वा प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त प्रत। कर्मावस्था तिथिमें चंद्रपूर्व एक साध रहते हैं, इस दिन दोनोंके उद्देशसे यह प्रत किया जाता है।

१३५। चम्पापुष्पी प्रत—शक्यपुराणिक प्रत। भाद्र मासकी षष्ठीतिथिमें वीथुतिथेय, विद्याया नक्षत्र, मङ्गल पार हो तो उसे चम्पापुष्पी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त प्रत किया जाता है।

१३६। चाम्प्रावण प्रत—शक्यपुराणिक प्रत। वीथ मासकी शुक्लचतुर्दशीमें पापमेघनके लिये यह प्रत करना होता है। ज्ञानमें एक और चाम्प्रावण प्रतका विधान है। जिस प्रकार चंद्रकी हासवृद्धि होती है उसी प्रकार इस चाम्प्रावणप्रतकी भाहारका हासवृद्धि मूलक कहा गया है।

१३७। चित्रमानुसतमीप्रत—भविष्यपुराणिक प्रत। सातमीतिथिमें यदि चित्रानक्षत्र हो, तो उसी दिन यह प्रत होगा।

१३८। चैतमासमाघचतुर्थीप्रत—भविष्योत्तरोक्त प्रत। यह प्रत चैत, भाद्र और माघमासकी शुक्ल चतुर्थी तिथिमें करना होता है।

१३९। चैतशुक्लप्रतिपदुपहिततिलक प्रत—भविष्यपुराणिक प्रत। चैतशुक्ल प्रतिपदमें यह प्रत रिया जाता है।

१४०। जयतीमममी प्रत—भविष्यपुराणिक प्रत। माघमासकी शुक्लमासकी भाग जयतीमममी है। इस तिथिमें उक्त प्रत करना होगा है।

१४१। जयतीमममी प्रत—भविष्यपुराणिक प्रत। पूर्णिमा तिथिमें यह प्रत करना होगा है।

१४२। जवापञ्चमी प्रत—अविष्यपुराणोक्त प्रत ।
कार्त्तिक मासकी शुक्लपञ्चमीको जवापञ्चमी कहते हैं ।
इस पञ्चमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है ।

१४३। जवायासिप्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त प्रत ।
भास्विन मासकी पीर्णमासीके बाद प्रतिपद् तिथिसे
आरम्भ कर एक मास तक यह व्रत चलना है ।

१४४। जवासप्तमी प्रत—अविष्यपुराणोक्त प्रत ।
यदि शुक्लपक्षको सप्तमीतिथिमें रोहिणी, अश्लेषा, मघा
या हस्तानक्षत्र हो, तो उसे जवासप्तमी कहते हैं । उसी
दिन यह व्रत करना चाहिये ।

१४५। जानिन्निराज प्रत—अविष्योत्तरकथित प्रत ।
श्वेष्ट मासकी तयोद्गीतिथिसे आरम्भ कर तीन दिन
यह व्रत करना होता है ।

१४६। जामदग्न्यद्वादशी व्रत—धरणीकथित प्रत ।
यह वैशाखमासकी द्वादशीमें होता है ।

१४७। शान्ताभ्यासि प्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित प्रत ।
समस्त वैशाख मासमें रातको मोहन करके यह व्रत
किया जाता है ।

१४८। ज्येष्ठा व्रत—अविष्योत्तरकथित प्रत । भाद्र
मासके शुक्लपक्षके जिस दिन श्वेष्ठा नक्षत्र पड़े उसी
दिन यह व्रत करना होगा ।

१४९। ज्येष्ठ व्रत—महाभारतवर्णित प्रत । ज्येष्ठ
मासमें यह व्रत करना चाहिये ।

१५०। तद्वयरणसप्तमी प्रत—अविष्योत्तरोक्त प्रत ।
अषाढमास मासकी सप्तमीतिथिमें यह व्रत किया जाता
है ।

१५१। तपो व्रत—वज्रपुराणवर्णित प्रत । माघ-
मासकी सप्तमी तिथिमें आर्द्रवास हो कर यह व्रत
करना होता है ।

१५२। ताम्बूलसंक्रान्ति प्रत—स्कन्दपुराणकथित
प्रत । यह व्रत वैश्व संक्रान्तिमें आरम्भ करके एक वर्ष
प्रति संक्रान्तिको करना होता है ।

१५३। भारद्वाज्यादशी व्रत—अविष्योत्तर कथित
प्रत । अषाढमास मासका शुक्ल पक्ष द्वादशीको तारका
द्वादशी कहते हैं । उस तिथिमें यह व्रत किया जाता है ।

१५४। तिथिभक्षणवार व्रत—कामोत्तर कथित

प्रत । तिथि, नक्षत्र और वार विशेषका योग होनेसे
उसी दिन यह व्रत करना होता है । शुक्लवार, रोहिणी नक्षत्र
और अष्टमीतिथि तथा वृहस्पतिवार शुक्ल पक्षतुर्दशी
और बुधवारनक्षत्रयुक्त होनेसे यह व्रत होता है । इस
प्रकार प्रायः सभी नक्षत्र, वार और तिथिविशेषके योगमें
यह व्रत होगा ।

१५५। तिथियुगल प्रत—यमस्मृत्युक्त प्रत । मास-
की दो अष्टमी, दो चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा
इन दो तिथियोंमें ही उक्त व्रत करना होगा है ।

१५६। तिन्दुकाष्टमी प्रत—अविष्यपुराणकथित प्रत ।
ज्येष्ठमासकी शुक्लपक्ष अष्टमी तिथिको तिन्दुकाष्टमी कहते
हैं । उस दिन यह व्रत किया जाता है ।

१५७। तिलदाशो व्रत—स्कन्दपुराणोक्त प्रत । पौष
मासकी कृष्ण एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

१५८। तिलद्वादशी प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त प्रत ।
माघमासके कृष्णपक्षकी द्वादशी तिथिमें यदि पूर्वाषाढा
या मूला नक्षत्र हो, तो उस दिन यह व्रत होगा ।

१५९। तीम व्रत—सौरपुराणोक्त प्रत । निपदोर्णमें
अपने दोनों चरणोंको भेड़ कर यादञ्जीवन अथवाधान
करनेसे व्रतमें मुक्ति होती है ।

१६०। तुरग-सप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित प्रत ।
चैत्रमासकी शुक्लपक्षसप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होगा
है ।

१६१। तुष्टिप्रातिगृहीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित
प्रत । धावण मासको कृष्ण गृहीया तिथिमें यदि
श्रवणा नक्षत्र हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा । किन्तु
धावणको कृष्ण गृहीयाके दिन श्रवणा नक्षत्रका योग
अति दुर्घट है ।

१६२। तैजःसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत
विशेष । यह व्रत वैश्व संक्रान्तिसे आरम्भ कर प्रति संक्रान्ति
को करना होता है । एक वर्ष के बाद व्रत प्रतिष्ठा करने
होगी ।

१६३। तयोद्गीन्द्रव्यमज्जमी व्रत—अविष्योत्तर
कथित प्रत । अषाढमास दोनैके पर शुक्लपक्ष अष्टवार
मज्जमी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

१६४। तिनगितसप्तमी व्रत—अविष्यपुराणमें

कथित व्रत फलदायक मानके शुक्लपक्षकी श्राद्धकी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

१३५ । त्रिविक्रम तृतीया व्रत—विष्णुवर्मांतर कथित व्रत । उपेक्षु मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

१३६ । त्रिविक्रमत्रिंशत्तम व्रत—विष्णुवर्मांतर कथित व्रत । अमदापन मासकी शुद्धा नवमी तिथिमें यह व्रत करना चाहिये ।

१३७ । त्रिविक्रम व्रत—विष्णुवर्मांतर कथित व्रत । कार्तिक मासमें श्राद्धम करके तीस मास पर्यन्त त्रिविक्रम विष्णुकं उद्देशसे यह व्रत करना होता है ।

१३८ । त्र्यम्बक व्रत—वसुपुराणमें कथित व्रत । चतुर्दशी तिथिमें महादेवके उद्देशसे यह व्रत होगा ।

१३९ । द्वादादित्य व्रत—ब्रह्माण्डपुराणमें कथित व्रत । यह व्रत शुक्लपक्षके रविवारमें यदि द्वातीमा तिथि पड़े, तो उस दिन भगवान् सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है । इस व्रतके फलसे सभी मापसि दूर होती है ।

१४० । द्वादावतार व्रत—विष्णुपुराणमें लिखित व्रत । वक्रादशी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है ।

१४१ । द्वात्रिंशत्तम व्रत—अविष्णुपुराण कथित व्रत । कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

१४२ । दिवाकर व्रत—अविष्णुपुराणमें कथित व्रत । रविवारमें हनुमा नमन हो, तो उस दिन उक्त व्रत होगा ।

१४३ । योगि व्रत—वसुपुराण-वर्णित व्रत । इस व्रतमें मासकी योगदान करना होता है ।

१४४ । दूर्गापूजासंगमनाशन तस्रोदशी व्रत—अविष्णु कथित व्रत । श्रेष्ठ मासकी शुक्ला तस्रोदशीके दिन यह व्रत करना होता है ।

१४५ । दूर्गाव्रत व्रत—अविष्णुपुराणमें कथित व्रत । भगवता दूर्गादेवीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है ।

१४६ । दूर्गा व्रत—देवी-पुराण-कथित व्रत । भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत किया जाता है ।

१४७ । दूर्गाव्रतव्रत चतुर्थी व्रत—मौत्सुराणमें कथित व्रत । भाद्रपद मासकी शुक्ला चतुर्थी या कार्तिक मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

१४८ । दूर्गात्रिरात व्रत—वसुपुराण-वर्णित व्रत । भाद्र मासके शुक्लपक्षकी तस्रोदशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है ।

१४९ । दूर्गाष्टमी व्रत - अविष्णुपुराणमें कथित व्रत । भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है । यह व्रत ८ वर्ष तक करके प्रतिष्ठा करनी होती है ।

१५० । देवसूरी व्रत—विष्णुवर्मांतर कथित व्रत । चैत्रमासकी शुक्ला प्रतिपदके चार दिन तक यह व्रत किया जाता है ।

१५१ । देव व्रत—वसुपुराण-कथित व्रत । एक वर्ष तक रातकी यह व्रत करना होता है । कालासरोज व्रतमेंद । चतुर्दशी तिथिमें पृथ्वीतिथारके व्रत व्रत होता है ।

१५२ । देवीव्रत—वसुपुराणकथित व्रत । पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है । इस प्रकार कार्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें भी देवीपुराणोक्त व्रत विशेषकर विधायक है ।

१५३ । द्वादशसप्तमी व्रत—अविष्णुपुराणमें कथित व्रत । भाद्र मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें श्राद्ध करके एक वर्ष पर्यन्त श्राद्ध मासकी १२ सप्तमी तिथिमें हो यह व्रत करना होगा । इस व्रतमें प्रतिमास निम्न निम्न विधि है ।

१५४ । द्वादशमासतृतीया व्रत—विष्णुवर्मांतर कथित व्रत । यह व्रत तृतीया तिथिमें श्राद्ध करके श्राद्ध मासकी तृतीया तिथिमें ही उपवास करके करना होता है । एक वर्षके बाद इसका प्रतिष्ठा होगा ।

१५५ । द्वादशादिव व्रत - विष्णुवर्मांतर कथित व्रत । शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें उपवास करके १२ मासमें यात्रा आदि श्राद्ध आदिपर्वके उद्देशसे यह व्रत करना होता है ।

१५६ । द्वादशीव्रत—वर्मापुराण वर्णित व्रत । शुक्ल

पशुकी वनादनी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत करे ।

१८७। द्वीपव्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत । चैत्र शुक्लपक्षमें आरंभ करके ७ दिन जम्बू आदि सप्त द्वीपोंको पूजा करनेको होगा ।

१८८। धनसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत । महाविषुव संक्रान्तिमें ले कर एक वर्ष प्रति संक्रान्तिको यह व्रत करना आदिषे । एक वर्ष पूरा होने पर प्रतिष्ठा विधेय है ।

१८९। धनाशक्ति व्रत—धर्मोत्तरकथित व्रत । ध्रावण पूर्णिमाके बाद प्रतिपद तिथिसे यह व्रत विहित हुआ है । इस व्रतके फलसे निर्धन धनवान् होता है ।

१९०। धर्मव्रत—ब्राह्मपुराणमें कथित व्रत । अश्रावण मासके शुक्लपक्षको प्रतिपद तिथिमें उपवास करके रातको यह व्रत करना होता है ।

१९१। धरा व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत । उत्तरायणमें शुभादिनमें काश्चननवी धरा प्रस्तुत करके यह व्रत करना होता है ।

१९२। धर्म व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत । शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें धर्मराजके उद्देशसे यह व्रत करना होता है ।

१९३। धाम्य व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत । विषुव संक्रान्तिमें सूरीश्वरके उद्देशसे यह व्रत करना होता है ।

१९४। धाम्यसप्तमी व्रत—अविष्णुपुराणमें कथित व्रत । शुद्ध सप्तमीमें यह व्रत किया जाता है ।

१९५। धाम तिरास व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत । फाल्गुन मासकी पूर्णिमासे तीन दिन यह व्रत करना होता है ।

१९६। धारा व्रत—अविष्णोत्तर कथित व्रत । चैत्रमासमें आरंभ करके यह व्रत किया जाता है ।

१९७। ध्वजानवमी व्रत—अविष्णोत्तरकथित व्रत । शीत मासकी शुद्ध नवमीका नाम ध्वजानवमी है । इस तिथिमें यह व्रत किया जाता है ।

१९८। ध्वज व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत । शीत मासमें आरंभ करके प्रतिदिन यह व्रत करना पड़ेगा । यह व्रत द्वादश वर्षपरमाव्य है ।

१९९। नक्षत्रगुणों व्रत—स्कन्दपुराणकी व्रत । विनायकचतुर्दशीमें यह व्रत किया जाता है ।

२००। नक्षत्रगुण व्रत—मत्स्यपुराणकी व्रत । शीत मासमें यह व्रत करना होता है ।

२०१। नक्षत्रार्थ व्रत—श्रीशैलपुराणकी व्रत । शुभादिन नक्षत्रसे आरंभ करके यह व्रत किया जाता है ।

२०२। नदी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकी व्रत । शीतमासके शुक्लपक्षसे ले कर ७ दिन यथाक्रम हृदिनी, द्वादशनी, पावनी, सीता, इक्षु, सिन्धु आदि भागीरथी नदीको पूजा करे ।

२०३। नद्य व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकी व्रत । फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी सप्तमीको तिथिमें उपवास करके यह व्रत करे ।

२०४। नन्दादि व्रत—अविष्णोत्तरकी व्रत । श्रवणमासके यह व्रत करना आदिषे ।

२०५। नन्दा व्रत—श्रीशैलपुराणकी व्रत । ध्रावण मासमें यह व्रत किया जाता है ।

२०६। नन्दासप्तमी व्रत—अविष्णोत्तरकी व्रत । अश्रावण मासकी शुक्ला सप्तमीका नाम नन्दासप्तमी है । इस सप्तमी तिथिमें उज व्रत करना होता है ।

२०७। नयनप्रदसप्तमी व्रत—अविष्णुपुराणकी व्रत । अश्रावण मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यदि हस्ता नक्षत्रका योग हो, तो उसे नयनप्रदसप्तमी कहते हैं । इस सप्तमीमें व्रत करना होता है । यह व्रत वर्षमाव्य है ।

२०८। नरः पूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकी व्रत । पूर्णिमा तिथिमें आरंभ करके एक वर्ष प्रति पूर्णिमाके यह व्रत किया जाता है ।

२०९। नरसिंहनवदशमी व्रत—नरसिंहपुराणकी व्रत । वैशाख मासकी शुक्ला नवदशमीका नरसिंह नवदशमी कहते हैं । इस नवदशमी तिथिमें व्रत करना होता है । यह व्रत प्रति वर्ष करनेका विधान है ।

२१०। नरसिंहनवदशमी व्रत—नरसिंहपुराणकी व्रत । वैशाख मासकी शुक्ला नवदशमी तिथिमें व्रत करे, तो उसी दिन यह व्रत होगा ।

कथित व्रत काव्यमय नामके शुक्लपत्राक्षी मन्त्रमो तिथिमें
वद व्रत करना होता है ।

१५० । विविक्त मन्त्रोवा व्रत—विष्णुवर्मोत्तर
कथित व्रत । उद्येय नामकी शुक्ला मन्त्रोवा तिथिमें
वद करना होता है ।

१५१ । विविक्तमन्त्रितान-जन व्रत—विष्णुवर्षव-कथित
व्रत । अमरव्यय नामकी शुद्धा मन्त्रमो तिथिमें वद
व्रत करना चाहिये ।

१५२ । विविक्त व्रत—विष्णुवर्मोत्तर कथित व्रत ।
कार्षिक नामके अमरव्रत करने लोग मास पर्यन्त तिथि-
व्यय विष्णुके उद्देशमें वद व्रत करना होता है ।

१५८ । ताम्रक व्रत—वसुपुराणमें कथित व्रत ।
वसुदेवो तिथिमें महादेवके उद्देशमें वद व्रत होगा ।

१५६ । द्वादिश्रवण व्रत—ब्रह्माण्डपुराणमें कथित
व्रत । वद व्रत शुक्लपत्रके शिववारमें यदि द्वादशो तिथि
पर्यं, तो उस दिन मगवान् शुदीश्रवणके उद्देशमें वद
व्रत करना होता है । इस व्रतके फलमें रामो भावलि
दूर होती है ।

१५७ । द्वाविंशत्यार व्रत—विष्णुपुराणमें लिखित व्रत ।
वकाशुको तिथिमें उपवास करने द्वादशो तिथिमें वद
व्रत किया जाता है ।

१५९ । दामरवाह्यमो व्रत—मविष्णुपुराण कथित
व्रत । कार्षिक नामके शुक्लपत्राक्षी अष्टमो तिथिमें वद
व्रत करना होता है ।

१६० । दिवाकर व्रत—मविष्णुपुराणमें कथित व्रत ।
शिववारमें दहन मक्षर हो, तो उस दिन व्रत व्रत होगा ।

१६३ । शोभि व्रत—वसुपुराण-परिचित व्रत । इस व्रतमें
गामकी शौरदान करना होता है ।

१६४ । दुर्गापद्मीनाम्पनाजम तरोदनी व्रत—मविष्णु
कथित व्रत । अष्ट मासकी शुक्ला तरोदनीके दिन
वद व्रत करना होता है ।

१६५ । दुर्गावर्गमो व्रत—मविष्णुपुराणमें कथित
व्रत । अमरव्रत दुर्गादेशिक उद्देशमें वद व्रत किया
जाता है ।

१६६ । दुर्गा व्रत—दुर्गा-पुराण-कथित व्रत । धावण
नामके शुक्लपत्राक्षी अष्टमो तिथिमें उपवास करने वद
व्रत किया जाता है ।

१७३ । दुर्गावर्णवति वसुधो व्रत—मविष्णुपुराणमें
कथित व्रत । धावण मासकी शुक्ला वसुधो वा कार्षिक
मासकी शुक्ला वसुधो तिथिमें वद व्रत करना होता
है ।

१७८ । दुर्गातिरात व्रत—वसुपुराण-परिचित व्रत । माद्र
मासके शुक्लपत्राक्षी तरोदनी तिथिमें वद व्रत किया
जाता है ।

१७९ । दुर्गाष्टमो व्रत - मविष्णुपुराणमें कथित व्रत ।
माद्र मासकी शुक्लाष्टमो तिथिमें वद व्रत करना होता
है । वद व्रत ८ वर्ष तक करने प्रतिष्ठा करनी होती
है ।

१८० । देवमूर्ति व्रत—विष्णुवर्मोत्तर कथित व्रत ।
शैत्रमासकी शुक्ला प्रतिपदके चारम करने चार दिन
तक वद व्रत किया जाता है ।

१८१ । देव व्रत—वसुपुराण-कथित व्रत । एक वर्ष
तक रातकी वद व्रत करना होता है । बालोसरोल
व्रतभेद । अमुद्दनी तिथिमें पृथरपतिवारके वद व्रत
होता है ।

१८२ । देवोव्रत—वसुपुराणकथित व्रत । पूर्णिमा
तिथिमें वद व्रत करना होता है । इस प्रकार कार्षिक
मासकी पूर्णिमा तिथिमें भी देवोपुराणोक्त व्रत विशेषतः
विधान है ।

१८३ । द्वादशमासमो व्रत—मविष्णुपुराणमें कथित
व्रत । माघ मासके शुक्लपत्राक्षी रातमा तिथिमें चारम
करके एक वर्ष पर्यन्त बारह मासकी १२ रातमो तिथिमें
हो वद व्रत करना होगा । इस व्रतमें प्रतिमास निम्न
निम्न विधि है ।

१८४ । द्वादशमासवसुधोवा व्रत—विष्णुवर्मोत्तर
कथित व्रत । वद व्रत शुक्लोवा तिथिमें चारम करने
बारह मासकी रातमो शुक्लोवा ही उपवास करने करना
होता है । एक वर्षके बाद इसका प्रतिष्ठा होगा ।

१८५ । द्वादशादिश्रवण व्रत—विष्णुवर्मोत्तर कथित व्रत ।
शुक्लपत्राक्षी द्वादशो तिथिमें उपवास करने १२ मासमें
धाता धादि बारह कार्षिकोके उद्देशमें वद व्रत करना
होता है ।

१८६ । द्वादशोव्रत—दुर्गापुराण परिचित व्रत । शुक्ल

पक्षको एकद्विती त्रिनिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत करे ।

१८७। द्वीपव्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत । नैत्र शुक्लपक्षमें आरंभ करके ७ दिन जम्बू आदि सप्त द्वीपोंको पूजा करना होगा ।

१८८। धनसंक्रान्ति व्रत—हस्तपुराणमें कथित व्रत । महाविषुव संक्रान्तिसे ले कर एक वर्ष प्रति संक्रान्तिको यह व्रत करना चाहिये । एक वर्ष पूरा होने पर प्रतिष्ठा विधेय है ।

१८९। धनायाचन व्रत—धर्मोत्तरकथित व्रत । ध्रावण पूर्णिमाके बाद प्रतिपद तिथिसे यह व्रत विहित हुआ है । इस व्रतके फलसे निर्धन धनवान् होता है ।

१९०। धर्मव्रत—बराहपुराणमें कथित व्रत । अग्रहायण मासके शुक्लपक्षको प्रतिपद तिथिमें उपवास करके रातको यह व्रत करना होता है ।

१९१। धरा व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत । उत्तरायणमें शुभदिनमें काञ्चननदी धरा प्रस्तुत करके यह व्रत करना होता है ।

१९२। धर्म व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत । शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें धर्मराजके उद्देशसे यह व्रत करना होता है ।

१९३। धर्म्य व्रत—हस्तपुराणमें कथित व्रत । विषुव संक्रान्तिमें सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है ।

१९४। धान्यसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत । शुद्धा सप्तमीमें यह व्रत किया जाता है ।

१९५। धाम विराट व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत । फाल्गुन मासकी पूर्णिमासे तीन दिन यह व्रत करना होता है ।

१९६। धारा व्रत—भविष्योत्तर कथित व्रत । चैत्रमासमें आरंभ करके यह व्रत किया जाता है ।

१९७। ध्वजव्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत । चैत्र मासमें आरंभ करके प्रतिदिन यह व्रत करना पड़ेगा । यह व्रत द्वादश परमात्म्या है ।

१९८। नवःचतुर्षो व्रत—हस्तपुराणिक व्रत । विनायकचतुर्षीमें यह व्रत किया जाता है ।

२००। नक्षत्रपुत्र व्रत—परम्पपुराणिक व्रत । चैत्र मासमें यह व्रत करना होता है ।

२०१। नक्षत्रार्थ व्रत—देवीपुराणिक व्रत । मृगशिरा नक्षत्रमें आरंभ करके यह व्रत किया जाता है ।

२०२। नदी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । चैत्रमासके शुक्लपक्षसे ले कर ७ दिन यथाक्रम हृदिनी, ह्यादिनी, पावनी, सीता, रतु, सिन्धु और भागीरथी नदीकी पूजा करे ।

२०३। नक्षत्र व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करे ।

२०४। नक्षत्र व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । रविवारको यह व्रत करना चाहिये ।

२०५। नक्षत्र व्रत—देवीपुराणिक व्रत । ध्रावण मासमें यह व्रत किया जाता है ।

२०६। नक्षत्रसप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । अग्रहायण मासकी शुक्ला सप्तमीका नाम नक्षत्रसप्तमी है । इस सप्तमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है ।

२०७। नवमव्रतसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणिक व्रत । अग्रहायण मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यदि हस्ता नक्षत्रका योग हो, तो उसे नवमव्रतसप्तमी कहते हैं । इस सप्तमीमें व्रत करना होता है । यह व्रत वर्षमाध्य है ।

२०८। नवःपूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । पूर्णिमा तिथिमें आरंभ करके एक वर्ष प्रति पूर्णिमाके यह व्रत किया जाता है ।

२०९। नरसिंहचतुर्दशी व्रत—नरसिंहपुराणिक व्रत । चैत्रमासमासकी शुक्ला चतुर्दशीका नरसिंहचतुर्दशी कहते हैं । इस चतुर्दशी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है । यह व्रत पत्नि पर्यं करनेका विधान है ।

२१०। नरसिंहव्रतव्रतकी व्रत—नरसिंहपुराणमें कथित व्रत । पृथ्वीतिथारको यदि सप्तमी तिथि हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा ।

२११ । मयराति मय—देवीपुराणमें कथित मय । मयमी, अयमी, पूर्णिमा और चतुर्दशी इन सब तिथियोंमें उपवास करने पर मय करना होता है ।

२१२ । मयराति मय—देवीपुराणमें कथित मय । देवीभागवत भाद्रि पुराणीमें भी इस मयका विशेष विधान है । कश्चित् शुभला प्रतिपदसे भगवती दुर्गा देवीके सावित्रात्मके त्रिपे मयमें पर्यन्त ६ दिन मय करना होता है ।

२१३ । मागवशुभोत्तराश्रमो मय—भविष्योत्तराश्रमो मय । मात्र मागकी शुभला पञ्चमी तिथिमें यह मय करना होता है ।

२१४ । मागवश्रमो मय—भविष्यपुराणोक्त मय । मागवश्रमो तिथिमें यह मय करना होता है ।

२१५ । मागमय—श्रमपुराणमें कथित मय । नारिक मासके शुभपक्षमें यह मय होता है ।

२१६ । माताकलपूर्णिमा मय—भविष्योत्तरकथित मय । कार्तिक मासकी शुभला पूर्णिमा तिथिमें माता मयके कल द्वारा यह मय करना होता है ।

२१७ । मासक्रीडा मय—भविष्योत्तराश्रमो मय । यह मय प्रति मासकी श्रौचा तिथिमें करना होता है । यह वर्षमास्य है ।

२१८ । मासहादनी मय—विष्णुदेहकीक मय । भाद्रदास्य मासकी शुभला हादनी तिथिमें यह मय किया जाता है ।

२१९ । मासपयो मय—भविष्यपुराणमें कथित मय । भाद्रिमासके शुद्धपक्षकी मयमी तिथिमें भगवती दुर्गा देवीके उपवेशमें यह मय किया जाता है ।

२२० । मागमासो मय—भविष्योत्तराश्रमो मय । धैत मासके शुभपक्षकी मयमी तिथिमें भार्गव करने प्रति-मासकी शुभला मासमी तिथिमें यह मय करना होता है ।

२२१ । मिश्राश्रांसलनी मय—भविष्यपुराणोक्त मय । पक्षे, अश्रांसतिथि, अंकारित या शिवरात्रके दिन यह मय किया जाता है ।

२२२ । निरीहादनी मय—भविष्योत्तराश्रमो मय । उद्रेष्ठ और भाद्रपद मासकी शुभला पञ्चदशीके दिन निराधु उपवास करने पर यह मय करना होता है ।

२२३ । नीलकण्ठहादनी मय—भविष्योत्तराश्रमो मय । कार्तिक मासकी शुभला हादनीकी नीलकण्ठहादनी कहते हैं । इस तिथिमें उक्त मय करना होता है ।

२२४ । नृसिंहहादनी मय—भविष्यपुराणमें कथित मय । भाद्रपद मासके शुभपक्षकी हादनी तिथिमें यह मय करना होता है ।

२२५ । पञ्चमथि मय—पञ्चपुराणमें कथित मय । पञ्चमथि प्रतिपद तिथिमें यह मय किया जाता है ।

२२६ । पञ्चमथपूर्णिमा मय—भविष्योत्तरमें कथित मय । पांच पूर्णिमा तिथि पांच पञ्चदानकर मय ।

२२७ । पञ्चविण्णहादनी मय—पञ्चपुराणके भाद्र-पक्षोक्त मय । धावण मासके शुभपक्षकी श्रौचा तिथिमें यह मय करना होता है ।

२२८ । पञ्चमहापक्षान्तहादनी मय—भविष्यपुराण-में कथित मय । धावण मासकी शुभला हादनी तिथि से भार्गव करने पर यह मय करे ।

२२९ । पञ्चमहाभूष पञ्चमी मय—विष्णुपर्वोत्तराश्रमो मय । धैत मासकी शुभला पञ्चमी तिथिमें यह मय किया जाता है ।

२३० । पञ्चमूर्ति मय—विष्णुपर्वोत्तराश्रमो मय । यह धैत मासकी शुभला पञ्चमी तिथिमें गङ्गा, यमुना, पद्म और सृष्टित्री इस पञ्चमूर्तिके उद्गारे पर यह मय करना होता है ।

२३१ । पञ्चाग्निराधनरत्ना श्रौचा मय । भविष्यो-त्तरमें कथित मय । उद्रेष्ठ मासकी शुभला श्रौचा तिथिमें राधक हो कर यह मय करे ।

२३२ । पञ्च मय—भविष्योत्तरमें कथित मय । यह भाद्रपद मासके भाद्रिमें करना होता है । यह मय एक वर्ष करने पर उद्रेष्ठ मयकी प्रतिष्ठा करनी होती है ।

२३३ । पद्मार्ण मय—विष्णुपर्वोत्तराश्रमो मय । मय हावण मासके शुभपक्षकी पद्ममी तिथिमें यह मय भार्गव करने पर वर्ष तक करना होता है ।

२३४ । पद्मनभयहादनी मय—विष्णुपर्वोत्तरमें कथित मय । भाद्रिमासके शुभपक्षकी हादनी तिथिमें यह मय करना होता है ।

२३५ । पयोमय—पञ्चपुराणमें कथित मय । यह

मठ अमावस्या तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है ।

२३६ । पर्वानक मठ—मघिष्वपुराणमें वर्णित मठ । यह मठ भी अमावस्याके दिन आरम्भ करके एक वर्ष पर्वान्त किया जाता है ।

२३७ । पर्वभोजन मठ—पद्मपुराणमें कथित मठ । पर्वके दिन वृथियो पर अन्न रख कर भोजन करके यह मठ करना होता है ।

२३८ । पाताल मठ—विष्णुधर्मोत्तममें कथित मठ । चैत्र मासकी कृष्णा प्रतिपद् तिथिमें आरम्भ करके प्रति दिन यह मठ करना होता है ।

२३९ । पात्र मठ—नरसिंहपुराणमें वर्णित मठ । माघमासकी शुक्ला पक्षाद्गोसे आरम्भ करके पूर्णिमा पर्वान्त यह मठ किया जाता है ।

२४० । पापनाशनीसप्तमी मठ—मघिष्वपुराणमें कथित मठ । शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यदि हस्तातारा हो तो उसे पापनाशनी सप्तमी कहते हैं । इस सप्तमी तिथिमें उक्त मठ करना होता है ।

२४१ । पापमेघन मठ—सौरपुराणमें कथित मठ । विद्युत्पक्षकी आश्रय करके बारह दिन उपवास करके यह मठ करना होता है । इस मठके फलसे भूजलरोगका पाप विनष्ट होता है ।

२४२ । पापतापनमंत्राग्नि मठ—हरहर्षपुराणमें वर्णित मठ । संक्रान्तिमें पापमेघनके जिये यह मठ करना होता है ।

२४३ । पाली चतुर्दशी मठ—मघिष्वपुराणमें कथित मठ । माघमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें यह मठ करना होता है ।

२४४ । पानूयत मठ—बहिरपुराणमें कथित मठ । द्वादशी तिथिमें एक बार भोजन, तयोद्दशीमें अवाकित भोजन और चतुर्दशीमें उपवास करके मङ्गलदिने उद्दरैनीसे यह मठ करना होता है ।

२४५ । पित्रू मठ—विष्णुधर्मोत्तर कथित मठ । यह वैश्व प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ होता है ।

२४६ । पियोजकोद्गाद्गो मठ—तिथिपत्र सूत्र मठ । वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीकी पियोजकी द्वादशी कहते

हैं । इस द्वादशीमें उक्त मठ करना होता है ।

२४७ । पुण्डरीकप्राप्ति मठ—विष्णुधर्मोत्तर कथित मठ । द्वादशी तिथिमें यह मठ करना होता है ।

२४८ । पुत्रकाम मठ—पद्मपुराणमें कथित मठ । ध्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें पुत्रकी कामना करके सप्तदशक यह मठ करना होता है ।

२४९ । पुत्रप्राप्ति-पट्टी मठ—विष्णुधर्मोत्तरकथित मठ । वैशाख मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह मठ किया जाता है । यह मठ एक वर्ष तक चलता है ।

२५० । पुत्रप्राप्ति मठ—देशीपुराणमें कथित मठ । ध्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह मठ करना होता है ।

२५१ । पुत्रसप्तमी मठ—यराहपुराणोक्त मठ । माघ-मासकी शुक्लपक्षके सप्तमी तिथिमें उपवास रह कर पुत्र-कामनाके लिये यह मठ करना होता है ।

२५२ । पुत्रीयसप्तमी मठ—विष्णुधर्मोत्तरकथित मठ । महाश्रावण मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें यह मठ किया जाता है ।

२५३ । पुत्रोत्पत्ति मठ—आदिश्वपुराणमें कथित मठ । मरुथेक धरणा महत्तमें यह मठ करना होता है ।

२५४ । पुरश्चरणसप्तमी मठ—स्कन्दपुराणके नाग-खण्डोक्त मठ । माघ मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह मठ किया जाता है ।

२५५ । पुष्पद्वितीया मठ—मघिष्वपुराणमें कथित मठ । कार्तिक मासकी शुक्ला द्वितीया तिथिमें यह मठ करना होता है । यह मठ एक वर्षमें होता है ।

२५६ । पूर्णिमा मठ—विष्णुधर्मोत्तरकथित यह मठ करना होता है । यत्रज्ञिप्र मन्त्रपुराणमें ध्रावणो पूर्णिमाके दिन भीरु मो वरः पूर्णिमाव्रतका दिवाण है ।

२५७ । पृथिवीपञ्चमी मठ—विष्णुधर्मोत्तरोक्त मठ । शुक्लपञ्चमी तिथिमें यह मठ करना होता है ।

२५८ । वीरभद्रपञ्चमी मठ—मघिष्वोत्तरोक्त मठ । पञ्चमी तिथिमें रघुके उद्दरैनीसे यह मठ करना होता है ।

२५९ । मरुतिपुरय द्वितीया मठ—विष्णुधर्मोत्तरोक्त मठ । चैत्रमासकी शुक्लाद्वितीया तिथिमें उपवासी रह कर मठ करना चाहिये ।

२११ । नवरात्रि पुराण मंत्र—सप्तपुराणमि कथित मंत्र । अश्विनी, भरणी, पूर्णिमा और चतुर्दशी इत मंत्र विधिमें प्रथम चरके यह मंत्र करना होता है ।

२१२ । नवरात्रि मंत्र—शैवीपुराणमि कथित मंत्र । शैवीभागवत आदि पुराणोंमें जो इत मंत्रक विरोध विधान है । आश्विन शुक्ला प्रतिपदमें मंगलको दुर्गा देवीके संनिधानकाके लिये मंत्रको वर्षभर ६ दिन यह मंत्र करना होता है ।

२१३ । नागदण्डोद्धरणप्रश्नो मंत्र—अविष्योत्तरोक्त मंत्र । भाद्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह मंत्र करना होता है ।

२१४ । नागपञ्चमी मंत्र—अविष्यपुराणोक्त मंत्र । नागपञ्चमी तिथिमें यह मंत्र करना होता है ।

२१५ । नागपञ्चमी मंत्र—सप्तपुराणमि कथित मंत्र । कार्तिक मासके शुक्लपञ्चमी यह मंत्र होता है ।

२१६ । माताकलपूर्णिमा मंत्र—अविष्योत्तरोक्त मंत्र । कार्तिक मासकी शुक्ला पूर्णिमा तिथिमें माता मङ्गलके उक्त द्वारा यह मंत्र करना होता है ।

२१७ । नागदण्डोद्धरण मंत्र—अविष्योत्तरोक्त मंत्र । यह मंत्र प्रति मासकी दशमी तिथिमें करना होता है । यह वर्षमात्रा है ।

२१८ । मासद्वन्द्वो मंत्र—विष्णुदर्शनोक्त मंत्र । अश्विनी मासकी शुक्ला द्वन्द्वो तिथिमें यह मंत्र किया जाता है ।

२१९ । मानसपञ्चमी मंत्र—अविष्यपुराणमि कथित मंत्र । आश्विन मासके शुक्लपञ्चमी मंत्रों तिथिमें मंगलको दुर्गा देवीके उद्धरणमें यह मंत्र किया जाता है ।

२२० । मानसपञ्चमी मंत्र—अविष्योत्तरोक्त मंत्र । धैर्य मासके शुक्लपञ्चमी मंत्रों तिथिमें शारदाम करके प्रति-मासकी शुक्ला मासमें तिथिमें यह मंत्र करना होता है ।

२२१ । विष्णुदर्शनमंत्रो मंत्र—अविष्यपुराणोक्त मंत्र । अश्विनी, भरणी, पूर्णिमा और चतुर्दशी इत मंत्रक विरोध विधान है ।

२२२ । विष्णुदर्शनो मंत्र—अविष्योत्तरोक्त मंत्र । अश्विनी और भाद्र मासकी शुक्ला पञ्चमीके दिन विष्णुदर्शन करके यह मंत्र करना होता है ।

२२३ । मोक्षमन्त्रो मंत्र—अविष्योत्तरोक्त मंत्र । कार्तिक मासकी शुक्ला द्वन्द्वोको मोक्षमन्त्रो मंत्र कहते हैं । इस तिथिमें उक्त मंत्र करना होता है ।

२२४ । पूर्णिमाद्वन्द्वो मंत्र—अविष्यपुराणमि कथित मंत्र । फाल्गुण मासके शुक्लपञ्चमी द्वन्द्वो तिथिमें यह मंत्र करना होता है ।

२२५ । पञ्चमि मंत्र—सप्तपुराणमि कथित मंत्र । पञ्चमि प्रतिपद तिथिमें यह मंत्र किया जाता है ।

२२६ । पञ्चमिपूर्णिमा मंत्र—अविष्योत्तरोक्त मंत्र । पंच पूर्णिमा तिथि पंच घटदाहनकर मंत्र ।

२२७ । पञ्चमिद्वन्द्वो मंत्र—सप्तपुराणके भाग-अष्टोक्त मंत्र । भाद्र मासके शुक्लपञ्चमी पूर्णिमा तिथिमें यह मंत्र करना होता है ।

२२८ । पञ्चमिदापनामन्त्रो मंत्र—अविष्यपुराण-मि कथित मंत्र । भाद्र मासकी शुक्ला द्वन्द्वो तिथि में शारदाम करके यह मंत्र करे ।

२२९ । पञ्चमिद्वन्द्वो मंत्र—विष्णुदर्शनोक्त मंत्र । धैर्य मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह मंत्र किया जाता है ।

२३० । पञ्चमिद्वन्द्वो मंत्र—विष्णुदर्शनोक्त मंत्र । यह मंत्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें शुक, शक, पञ्च, पञ्च और पूषिनी इत पञ्चमिद्वन्द्वो उरं मंत्र यह मंत्र करना होता है ।

२३१ । पञ्चमिद्वन्द्वो मंत्र—अविष्योत्तरोक्त मंत्र । अश्विनी मासकी शुक्ला पूर्णिमा तिथिमें सप्त देव कर यह मंत्र करे ।

२३२ । पञ्च मंत्र—अविष्योत्तरोक्त मंत्र । यह मंत्र मङ्गल मासके आदिमें करना होता है । यह मंत्र एक वर्ष करके पाँच वर्ष प्रतिपञ्च करनी होती है ।

२३३ । पञ्चमि मंत्र—विष्णुदर्शनोक्त मंत्र । अश्विनी मासके शुक्लपञ्चमी दुर्गाको तिथिमें यह मंत्र शारदाम करके एक वर्ष तक करना होता है ।

२३४ । पञ्चमिद्वन्द्वो मंत्र—विष्णुदर्शनोक्त मंत्र । आश्विन मासके शुक्लपञ्चमी द्वन्द्वो तिथिमें यह मंत्र करना होता है ।

२३५ । पञ्चमि मंत्र—सप्तपुराणमि कथित मंत्र । यह

मठ अमावस्या तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है ।

२३६ । वर्षान्तक मठ—भविष्यपुराणमें वर्णित मठ । यह मठ मी अमावस्याके दिन आरम्भ करके एक वर्ष वर्षान्त किया जाता है ।

२३७ । वर्षभोजन मठ—तदुत्तरपुराणमें कथित मठ । वर्षके दिन पूजिषो पर मद्य रत्न कर भोजन करके यह मठ करना होता है ।

२३८ । पाताल मठ—विष्णुधर्मोत्तरमें कथित मठ । चैत्र मासको छुवा प्रणिवद् तिथिमें आरम्भ करके प्रति दिन यह मठ करना होता है ।

२३९ । पात मठ—नरसिंहपुराणमें वर्णित मठ । माघमासको शुक्ला एकादशी आरम्भ करके पूर्णिमा पर्यन्त यह मठ किया जाता है ।

२४० । पापनाशनीसप्तमी मठ—भविष्यपुराणमें कथित मठ । शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यदि दस्ताभक्ष हो तो उसे पापनाशनी सप्तमी कहते हैं । इस सप्तमी तिथिमें उक्त मठ करना होता है ।

२४१ । पापमोचन मठ—सौरपुराणमें कथित मठ । विजयपूजाका भाधव करके बारह दिन उपवास करके यह मठ करना होता है । इस मठके फलसे भ्रूणहत्याका पाप विनष्ट होता है ।

२४२ । पापनाशसंक्रान्ति मठ—हस्तपुराणमें वर्णित मठ । संक्रान्तिमें वापमोचनके लिये यह मठ करना होता है ।

२४३ । पाली चतुर्दशी मठ—भविष्योत्तरमें कथित मठ । भाद्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें यह मठ करना होता है ।

२४४ । पादुपन मठ—वह्नपुराणमें कथित मठ । द्वादशी तिथिमें एक बार भोजन, तयोद्दशीमें सवाधिन भोजन और चतुर्दशीमें उपवास करके मद्यदेवके उद्गृहणमें यह मठ करना होता है ।

२४५ । पित्रु मठ—विष्णुधर्मोत्तर कथित मठ । यह मठ मणिपट्ट तिथिमें आरम्भ होता है ।

२४६ । पिरोतकीद्वादशी मठ—तितितरर चूत मठ । वैशाख मासको शुक्ला द्वादशीको पिरोतकी द्वादशी कहते

हैं । इस द्वादशीमें उक्त मठ करना होता है ।

२४७ । पुण्डरीकप्राप्ति मठ—विष्णुधर्मोत्तर कथित मठ । द्वादशी तिथिमें यह मठ करना होता है ।

२४८ । पुत्रकाम मठ—पद्मपुराणमें कथित मठ । ध्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें पुत्रकी कामना करके सवदोक यह मठ करना होता है ।

२४९ । पुत्रप्राप्ति-पट्टी मठ—विष्णुधर्मोत्तरकथित मठ । वैशाख मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह मठ किया जाता है । यह मठ एक वर्ष तक चलता है ।

२५० । पुत्रप्राप्ति मठ—देवीपुराणमें कथित मठ । ध्रावण मासको पूर्णिमा तिथिमें यह मठ करना होता है ।

२५१ । पुत्रसप्तमी मठ—वराहपुराणोक्त मठ । भाद्र-मासको शुक्लपक्षके सप्तमी तिथिमें उपवास रद्द कर पुत्र-कामनाके लिये यह मठ करना होता है ।

२५२ । पुत्रीवसन्तमी मठ—विष्णुधर्मोत्तरकथित मठ । शमदावण मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें यह मठ किया जाता है ।

२५३ । पुनोत्पत्ति मठ—मादिरवपुराणमें कथित मठ । प्रत्येक धवणा लक्ष्मीमें यह मठ करना होता है ।

२५४ । पुण्डरीकसप्तमी मठ—स्कन्दपुराणके नागर-वर्णोक्त मठ । माघ मासको शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह मठ किया जाता है ।

२५५ । पुष्पाद्रितोषा मठ—भविष्यपुराणमें कथित मठ । कार्तिक मासको शुक्ला द्वितीया तिथिमें यह मठ करना होता है । यह मठ एक वर्षमें होता है ।

२५६ । पूर्णिमा मठ—विष्णुधर्मोत्तरकथित यह मठ करना होता है । एतद्भिन्न मणिपुराणमें ध्रावणो पूर्णिमाके दिन भीर मो एक पूर्णिमासका विधान है ।

२५७ । पूजिवोपशमी मठ—विष्णुधर्मोत्तरोक्त मठ । शुक्लपक्षकी तिथिमें यह मठ करना होता है ।

२५८ । पौन्यपञ्चमी मठ—भविष्योत्तरोक्त मठ । पञ्चमी तिथिमें इन्द्रके उद्गृहणमें यह मठ करना होता है ।

२५९ । प्रहृतिपुण्ड्र द्वितीया मठ—विष्णुधर्मोत्तरोक्त मठ । वैशाखमासको शुक्लाद्वितीया तिथिमें उपवासो रद्द कर मठ करना चाहिये ।

२३४। प्रतिपत्तयज्ञ मन्—भविष्योत्तरोक्त मन् ।
कार्तिके वा वैशाख मासका प्रतिपद् तिथिमें करना
होता है ।

२३५। प्रागमा मन्—वायोपदेशक मन् । यह मन्
कार्तिकमासकी अनुपूर्वती तिथिमें आरम्भ करने परक पंच
मन् प्रति मासकी अनुपूर्वती तिथिमें करना चाहिये ।

२३६। अक्षय मन्—अविश्वपुराणोक्त मन् । अशु-
भकी तिथिमें अक्षयशुभमें यह मन् करना होता है ।

२३७। प्रमा मन्—अश्विनपुराणोक्त मन् । एक पक्ष
मन् अथवा मन् करने अविश्वपुराण अक्षय मन् है ।

२३८। आश्विन मन्—अश्विनपुराणोक्त मन् । एक
पक्ष मन् परक मास भोजन करने यह मन् करना होता
है ।

२३९। अश्व मन्—अश्विनपुराणोक्त मन् । विश्व
मन् अथवा अश्विन पार मास मन् यह मन् करना होता
है ।

२४०। कनकशोभा मन्—अश्विनपुराणके प्रमासपक्षोक्त
मन् । शुक्लपक्षकी शोभा तिथिमें आरम्भ करने परक
पक्ष मन् यह मन् किया जाता है ।

२४१। कनकशोभा मन्—भविष्योत्तरोक्त मन् । माघ-
मासकी शुक्ल पक्षी तिथिमें यह मन् करना होता है ।

२४२। कनकशोभा मन्—अश्विनपुराणोक्त मन् ।
महाशिवरात्रीकार्तिके मासका कर प्रति अक्षयमें
विभिन्न कर्मकाय जाय यह मन् किया जाता है । पर
पक्षके बाद अशुकी प्रतिष्ठा होगी ।

२४३। कनकशोभा मन्—अविश्वपुराणोक्त मन् ।
माघमासकी शुक्ल पक्षकी तिथिमें यह मन् करना
होता है ।

२४४। कनकशोभा मन्—महाशिवरात्री मन् । कनकशुभ
मासकी कार्तिक तिथि परक बाद भोजन करने यह मन्
करना होता है ।

२४५। कार्तिकशोभा मन्—विश्वपुराणोत्तरोक्त मन् ।
कार्तिक मासकी कार्तिककी पूर्वाषाढा मासमें यह मन्
करना होता है ।

२४६। शुक्लपक्ष मन्—अश्विनपुराणोक्त मन् । अश्विन
मासकी शुक्ल पक्षकी दिन यह मन् किया जाता है ।

२३३। पुष्यमन्—भविष्योत्तरोक्त मन् । विशाख
मन्तमें आरम्भ करने ३ दिन यह मन् करना होता है ।

२३४। बुधपक्ष मन्—शुक्लपक्षकी तिथिमें यदि बुध-
वार हो, तो उगो दिन यह मन् करे ।

२३५। अश्वि मन्—अश्विनपुराणोक्त मन् । अनुपूर्वती
तिथिमें अथवा मन् करने पूर्णिमामें यह मन् करना होता
है ।

२३६। अश्विनपक्ष मन् - विश्वपुराणोत्तरोक्त मन् ।
शिव मासकी शुक्ल पक्ष प्रतिपद् तिथिमें आरम्भ करने यह
मन् करना होता है ।

२३७। अश्विनपक्ष मन्—प्रमास पक्षोक्त मन् ।
यह उषेत्त मासकी पूर्णिमा तिथिमें होता है ।

२३८। प्रमा मन्—अविश्वपुराणोक्त मन् । शिवोप-
तिथिमें यह मन् करना होता है ।

२३९। अश्विनपक्ष मन्—भविष्योत्तरोक्त मन् ।
माघ मासकी अश्विनकी तिथिमें आरम्भ करने तीन दिन
यह मन् करना होता है ।

२४०। अश्विनपक्ष मन्—अविश्वपुराणोक्त मन् ।
कान्यकुब्ज मासके शुक्लपक्षकी अश्विन तिथिमें यह मन्
करना होता है ।

२४१। अश्विनपक्ष मन्—विश्वपुराणोत्तरोक्त मन् ।
कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी मघमी तिथिमें यह मन्
करना होता है ।

२४२। अश्विनपक्ष मन्—अविश्वपुराणोक्त मन् ।
अश्विन मासकी शुक्ल पक्ष प्रतिपद्में अश्विन तिथि अश्विन
यह मन् किया जाता है ।

२४३। अश्विनपक्ष मन्—अश्विनपुराणोक्त मन् । पर
कार्तिक मासकी शुक्ल पक्षकी तिथिमें करना होता
है ।

२४४। अश्विनपक्ष मन्—अविश्वपुराणोक्त मन् ।
शुक्लपक्षकी मघमी तिथिमें यदि शुक्ल पक्ष हो, तो
उगो अश्विनपक्षी करने है । इस मन्में अनुपूर्वके दिन
यह मन् भोजन, अश्विनमें शक्ति भोजन, अश्विन तिथिमें
अश्विन भोजन करने अथवा इस मासकी तिथिमें अश्विन
अथवा करना होता है ।

२८६। भवानो तृतीया घन—वसपुराणोक्त मन । तृतीया तिथिमें जिघालघमें भवानोदयोके उद्देशसे यह मत बरे ।

२८७। भवानो घन—त्रिङ्गपुराणोक्त घन । अमा यस्या और पूर्णिमा तिथिमें भवानोको प्रतिकामनासे प्रतानुष्ठान करना होता है ।

२८८। माद्रपद् घन—महाभास्वतमें लिखित घन । ममस्त माद्रमासमें एकाहारी हो कर यह घन करना होता है ।

२८९। भानुघन—वसपुराणोक्त घन । सप्तमी तिथिमें रातको भोजन करके सूर्यके उद्देशसे यह घन करना होता है ।

२९०। माहकरघन—शालिकापुराणोक्त घन । पञ्चो तिथिमें उपवास करके सप्तमीको सूर्यकी प्रीति कामनासे यह घन किया जाता है ।

२९१। भीमदादनी घन—वसपुराणोक्त घन । माघ मासकी शुक्ला द्वादसीके भीमदादनी कहते हैं । इन द्वादसी तिथिमें उक्त घन करना होता है ।

२९२। भीम घन—वसपुराणोक्त घन, उपवास करके धनुर्दशमघन ।

२९३। भीमपञ्चक घन—नारदपुराणोक्त घन । कार्तिक शुक्ला एकादसीमें पूर्णिमा पर्यन्त तिथिको भीमपञ्चक कहते हैं । इस भीमपञ्चकमें घनाचरण करना होता है ।

२९४। भूमाजन घन—वसपुराणोक्त घन । इस घनमें एक वर्ष तक मिट्टी पर भगनादि रख कर भोजन करना होता है ।

२९५। भूमि घन—काशिकरोपन घन । संक्रान्तिमें यदि शुक्ल चतुर्दशी हो, तो उसी दिन यह घन करना होगा ।

२९६। भोगार्थक्रान्ति घन—वसपुराणोक्त घन । संक्रान्तिमें यह घन किया जाता है ।

२९७। भोगावाति घन—विष्णुधर्मोत्तरोक्त घन । अष्टौ पूर्णिमाके बाद प्रतिवत् तिथिसे यह घन आरम्भ करना होगा ।

२९८। भीमवार घन—वसपुराणोक्त घन । मङ्गल-वारके यह घन करना होता है ।

२९९। भीम घन—अविष्योत्तरोक्त घन । मङ्गल-वारके यदि स्वाति नक्षत्र पड़े, तो यह घन विशेष है ।

३००। मङ्गला घन—द्वैतपुराणोक्त घन । माघ, माघ, चैत्र या श्रावण मासकी एकादसीमें शुक्लाएमी पर्यन्त यह घन करना होता है ।

३०१। मङ्गलसप्तमी घन । सप्तमी तिथिमें उपवासो र्द कर यह घन करना होगा ।

३०२। मरुपद्मादनी घन—धरणीमन्त्रोक्त घन । अमदायण मासके शुक्लपक्षकी द्वादसी तिथिमें यह घन किया जाता है ।

३०३। मदनद्वादनी घन—मरुपपुराणोक्त घन । चैत्र शुक्लद्वादसीके मदनद्वादनी कहते हैं । इस द्वादसी तिथिमें उक्त घन करना होता है ।

३०४। मधुकर्तवी घन—अविष्योत्तरोक्त घन । फाल्गुनकी शुक्ला तृतीयाका नाम मधुकर्तवी है । इस तिथिमें यह घन किया जाता है ।

३०५। मनोरथद्वादनी घन—वसपुराणोक्त घन । फाल्गुन मासके शुक्लापक्षकी द्वादसी तिथिमें उपवास करके द्वादनी तिथिमें करना होता है ।

३०६। मनोरथपूर्णिमा घन—विष्णुधर्मोत्तरोक्त घन । कार्तिकमासकी पूर्णिमा तिथिसे आरम्भ करके एक वर्ष तक यह घन किया जाता है ।

३०७। मनोरथसंक्रान्ति घन—वसपुराणोक्त घन । उत्तरायण-संक्रान्तिमें यह घन आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है ।

३०८। मन्वारपट्टा घन—अविष्योत्तरोक्त घन । माघ-मासके शुक्लपक्षकी पट्टी तिथिको मन्वारपट्टी कहते हैं । इस पञ्चोतिथिमें उक्त घन करना होगा ।

३०९। मन्वारगतनी घन—वसपुराणोक्त घन । माघ-मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह घन करना होता है ।

३१०। मरुपसप्तमी घन—अविष्यपुराणोक्त घन । सप्तमी तिथिमें यह घन करना होगा है ।

३११। मरुपसप्तमी घन—विष्णुधर्मोत्तरोक्त घन । वैशवाणके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह घन करना होता है ।

३१२। मद्रद्वादनी घन—अविष्योत्तरोक्त घन । अम-

मनमो तिथिमें यदि स्थित्यार पड़े, तो उसे विजयासप्तमी कहते हैं। इस सप्तमीमें उपव्रत मत करना होता है।

३६१। विजयासप्तमीसत्र—अविष्यपुराणोक्त। संक्रान्तिमें सप्तमी तिथि होनेसे उसी दिन यह व्रत किया जाता है।

३६२। विद्याप्रतिपद व्रत—विष्णुधर्मसरोवत। पीप मामकी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३६३। विद्यावाप्तियत्र—विष्णुधर्मसरोवत। पीपी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद तिथिसे यह व्रत करना होता है।

३६४। विद्यानदाद्गणसप्तमी व्रत—आदित्य पुराणोक्त। चैत्र मासकी शुक्लासप्तमी तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत समाप्त करना होता है। पीछे द्वादश मासकी सप्तमी तिथिमें एक ही नियमसे यह व्रत करना होगा। यथाविधान द्वादशसप्तमीमें यह व्रत किया जाता है, इसीसे इसकी विधानद्वादशसप्तमी व्रत कहते हैं।

३६५। विभूतिद्वादशी—मरुतपुराणोक्त। कालिक, मप्रहाषण, फाल्गुण, वैशाख या भाषाद् मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें लघु भोजन तथा उसके बाद एकदशीके दिन यह व्रत करे।

३६६। विनयत्रिरात्रव्रत—स्कन्दपुराणोक्त। ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा तिथिमें ज्येष्ठा नक्षत्र होनेसे उन्नी दिन यह व्रत होगा।

३६७। विनोकद्वादशी—पद्मपुराणोक्त। आश्विन मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३६८। विनोकपष्टी—अविष्यसरोवत। माघ मास की शुक्ला पष्टी तिथिमें शोकनाशकी कामनासे यह व्रत करना होता है।

३६९। विनोकसंक्रान्ति—स्कन्दपुराणमें लिखित व्रत। विषुवसंक्रान्तिके दिन अशुभपातवश होनेसे उसी दिन यह व्रत करना होता है।

३७०। विभ्रमव्रत—अविष्यपुराणोक्त। पश्चाद्गो तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३७१। विभ्रमव्रत—कानोसरोवत। शुक्लासप्तमी तिथिमें यह व्रत करनेका विधान है।

३७२। विष्टिमन—अविष्यसरोवत। जिस दिन विष्टिमन्ना तिथि होनी है, उसी दिन यह व्रत करना होगा।

३७३। विष्णुदेवकी व्रत—विष्णुधर्मसरोवत। कालिक मासके प्रथम दिनसे यह व्रत आरम्भ होता है।

३७४। विष्णुव्रत—विष्णुधर्मसरोवत व्रत। भाषाद् मास पूर्वाषाढा नक्षत्रसे आरम्भ करके यह व्रत करना होता है।

३७५। विष्णुप्रतिद्वादशी—अविष्यपुराणोक्त। द्वादशी तिथिमें उपवास करके विष्णुके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

३७६। विष्णुव्रत—अविष्यपुराणोक्त। यह व्रत भी द्वादशी तिथिमें होता है। पद्मपुराण और विष्णुधर्मसरोवत में भी इस विष्णुव्रतका विधान है। विष्णुधर्मसरोवत में इस व्रत की शुद्धा द्वितीया तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत करना ही कर्तव्य है।

३७७। येदव्रत—विष्णुधर्मसरोवत। चैत्र मासके प्रथमसे आरम्भ करके ज्येष्ठ मासके शेष पर्यन्त यह व्रत करना होता है।

३७८। येतरणी व्रत—अविष्यसरोवत। मप्रहाषण मासकी कृष्णा एकादशी तिथिके येतरणी तिथि कहते हैं। इस तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३७९। येनापकपशुयी—अविष्यसरोवत। पशुयी तिथिमें शक्तिभोजन करके यह व्रत करना होता है।

३८०। येनाप व्रत—पद्मपुराणोक्त। येनाप नाममें प्रति दिन एक बार भोजन करके यह व्रत करना होता है।

३८१। येनाप व्रत—पद्मपुराणोक्त। यद्यं शत्रुसे आरम्भ करके चार शत्रुमें काष्ठदि दानकर व्रत।

३८२। येन्य व्रत—पद्मपुराणोक्त। भाषाद् मासके चार मास प्रातःकाल करके यह व्रत करना उचित है।

३८३। यशोव्रत व्रत—पद्मपुराणोक्त। यशोव्रतके दिन यह व्रत करना होगा।

३८४। यशोव्रत व्रत—अविष्यपुराणोक्त। मगधव्रत आदिद्वारा करनेके बाद यह व्रत किया जाता है।

४४१। शुभद्वादशी—वराहपुराणोक्त । अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह मृत किया जाता है ।

४४२। शुभमखामो—वदूमपुराणोक्त । आश्विन मासकी शुक्ला मखामो तिथिमें यह मृत करनेका विधान है ।

४४३। शूलदान—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । एक वर्ष पर्यन्त समायस्थाके दिन उपवास करके यह मृत करे ।

४४४। शूल मृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्रमासके शुक्लपक्षसे आरम्भ करके ७ दिन पर्यन्त यह मृत करनेका विधान है ।

४४५। शीघ्रशत्रुपुत्र मृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें जिस दिन हस्ततारा होता है, उसी दिन यह मृत होता ।

४४६। शीघ्रमहामृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । वीर मासमें नवत भोजन करके यह मृत करना होता है ।

४४७। शीघ्रपश्यास मृत—भविष्यपुराणोक्त । दोनो पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें निषेधके उद्देशसे उपवास करके यह मृत किया जाता है ।

४४८। शीघ्रमृत—वराहपुराणोक्त । आश्विन मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें उपवास करके यह मृत करना होता है ।

४४९। श्रद्धामृत—पद्मपुराणोक्त । शुभ दिनमें शम्भु या केदारके । पहले उपासने करके यह मृत करे ।

४५०। श्रवणाद्वादशी । भविष्योत्तरोक्त । शुक्ला पक्षाद्दशी तिथिमें यदि श्रवणा नक्षत्र हो, तो उस पक्षाद्दशीमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें मृत करे ।

४५१। शीघ्रशमी—गण्डवुपुराणोक्त । अग्रहायण मासकी शुक्ला पञ्चमीकी शीघ्रशमी बटने है । इस तिथिमें लक्ष्मीके उद्देशसे यह मृत किया जाता है ।

४५२। शीघ्रशामि—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । वैशाखी पूर्णिमाके बाद प्रतिपदा तिथिमें यह मृत करे ।

४५३। शीघ्रशामि—भविष्योत्तरोक्त । माघ मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें इस मृतकी व्यवस्था है ।

४५४। शीघ्रमृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्र शुक्ला पञ्चमीमें यह मृत करना होता है ।

४५५। शशीमृत—वराहपुराणोक्त । वशी तिथिमें यह मृत करना चाहिये ।

४५६। संवत्सर मृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्र मासके शुक्लपक्षमें आरंभ करके एक वर्ष तक यह मृत करना होता है ।

४५७। सह्याटक मृत—वराहपुराणोक्त । कार्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह मृत करना होता है ।

४५८। सप्तानन्द मृत—भविष्योत्तरोक्त । कार्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह मृत करना होता है ।

४५९। सप्तानाष्टमी मृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्र मासकी दृष्ट्याष्टमी तिथिमें यह मृत किया जाता है ।

४६०। सप्तर्षि मृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्रशुक्ला प्रतिपदसे आरंभ करके सप्तमी पर्यन्त ७ दिन सप्तर्षियोंके उद्देशसे इस मृतकी अनुष्ठान करे ।

४६१। सप्तसंस्कार मृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । यह मृत भी चैत्र मासकी शुक्ला प्रतिपदसे लगायत ७ दिन तक करनेका विधान है ।

४६२। सप्तसुन्दरक मृत—भविष्योत्तरोक्त । प्रतिदिन सप्त एक बार भोजन करके ७ दिन तक यह मृत करना कर्त्तव्य है ।

४६३। सप्तमृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्र मासके शुक्लपक्षसे आरंभ करके ७ दिन पर्यन्त इस मृतका पालन करे ।

४६४। सप्तर्षि मृत—भविष्यपुराणोक्त । शुभ दिनमें यथाविधान यह मृत करना कर्त्तव्य है ।

४६५। संभोग मृत—भविष्यपुराणोक्त । मासकी दो पक्षकी और प्रतिपदा तिथिमें यह मृत करे ।

४६६। सार्वभौमभोजन—भविष्यपुराणोक्त । भाद्रपदमासमें यह मृत करना होता है ।

४६७। सार्वभौमपदपर्वभोजन—कण्वपुराणके प्रथमपाठोक्त । धातव्य मासका शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह मृत करना होता है ।

४६८। सार्वभौम मृत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । अग्रहायण मासकी शुक्ला पक्षाद्दशी तिथिमें उपवास करके एक वर्ष तक यह मृत करे ।

४४१। शुभद्वाद्गी—वराहपुराणोक्त । अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह प्रत किया जाता है ।

४४२। शुभमघमी—पद्मपुराणोक्त । आश्विन मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह प्रत करनेका विधान है ।

४४३। शुभदान—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । एक वर्ष पर्यन्त अमावस्याके दिन उपवास करके यह प्रत करे ।

४४४। शैल प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्रमासके शुक्लपक्षसे आरंभ करके ७ दिन पर्यन्त यह प्रत करनेका विधान है ।

४४५। शीतलक्ष्मणपुराण प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें जिस दिन हस्तानक्षत्र होता है, उसी दिन यह प्रत होगा ।

४४६। शीघ्रमहात्मन—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । पौष मासमें गणत भोजन करके यह प्रत करना होता है ।

४४७। शीघ्रपवास प्रत—भविष्यपुराणोक्त । दोनो पक्षकी अष्टमी और नवमी तिथिमें जियके उद्देशमें उपवास करके यह प्रत किया जाता है ।

४४८। जीर्णप्रत—वराहपुराणोक्त । आश्विन मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें उपवास करके यह प्रत करना होता है ।

४४९। ध्रुवाप्रत—पद्मपुराणोक्त । शुभ दिनमें शमन वा केन्द्रणके पहले उपवेदन करके यह प्रत करे ।

४५०। धवला द्वादशी । भविष्योत्तरोक्त । शुक्ला पक्षाद्दशी तिथिमें यदि धवला नक्षत्र है, तो उस पक्षाद्दशीमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें प्रत करे ।

४५१। धौपशुभो—गण्डपुराणोक्त । अग्रहायण मासकी शुक्ला पञ्चमीको धौपशुभो कहते हैं । इस तिथिमें लक्ष्मीके उद्देशसे यह प्रत किया जाता है ।

४५२। धीमाभिप्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । वैशाखी पूर्णिमाके बाद प्रतिपदा तिथिमें यह प्रत करे ।

४५३। धीरुक्षणवमी—भविष्योत्तरोक्त । माघ मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें इस प्रतका व्यवस्था है ।

४५४। धीमेघन—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्र शुक्ला पञ्चमीमें यह प्रत करना होता है ।

४५५। ध्योप्रत—वराहपुराणोक्त । पक्षी तिथिमें यह प्रत करना चाहिये ।

४५६। मंत्रसर प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्र मासके शुक्लपक्षसे आरंभ करके एक वर्ष तक यह प्रत करना होता है ।

४५७। सह्याष्टक प्रत—वराहपुराणोक्त । कार्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह प्रत करना होता है ।

४५८। सप्तानन्द प्रत—भविष्योत्तरोक्त । कार्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह प्रत करना होता है ।

४५९। सप्तानाष्टमी प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्र मासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यह प्रत किया जाता है ।

४६०। सप्तर्षि प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्रशुक्ला प्रतिपदके आरंभ करके सप्तमी पर्यन्त ७ दिन सप्तर्षियोंके उद्देशसे इस प्रतका अनुष्ठान करे ।

४६१। सप्तसालसप्त प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । यह प्रत भी चैत्र मासकी शुक्ला प्रतिपदसे लगावत ७ दिन तक करनेका विधान है ।

४६२। सप्तसुन्दर प्रत—भविष्योत्तरोक्त । प्रतिदिन सिरों एक बार भोजन करके ७ दिन तक यह प्रत करना करीब है ।

४६३। समुद्र प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । चैत्र मासके शुक्लपक्षकी आरंभ करके ७ दिन पर्यन्त इस प्रतका वासन करे ।

४६४। सप्तपूर्ण प्रत—भविष्यपुराणोक्त । शुभ दिनमें सप्तविधान यह प्रत करना करीब है ।

४६५। संयोग प्रत—भविष्यपुराणोक्त । माघकी दो पञ्चमी और प्रतिपदा तिथिमें यह प्रत करे ।

४६६। सप्तपञ्चमीभोजन—भविष्यपुराणोक्त । माघ पंचमीमें यह प्रत करना होता है ।

४६७। सप्तविद्यासप्तपंचमीभोजन—कण्डपुराणके प्रमाण-प्रदोक्त । आश्विन मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह प्रत करना होता है ।

४६८। सप्तैकाम प्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । अग्रहायण मासकी शुक्ला पक्षाद्दशी तिथिमें उपवास करके एक वर्ष तक यह प्रत करे ।

विष्णु-संक्रमणमें श्रीविष्णुकी, कर्कट-संक्रमणमें पराद-
देवताकी, सिंह-संक्रमणमें नरसिंहदेवकी, कर्वासांक
मणमें वामनदेवकी, तुला-संक्रमणमें कूर्मावतारकी,
शुद्धपक्षसंक्रमणमें भद्रहीदेवकी, धनुसंक्रमणमें बुध-
देवकी, मकरसंक्रमणमें शार्ङ्गरीय रामचन्द्रकी, कुम्भ-
संक्रमणमें बलरामदेवकी और मोनसंक्रमणमें मोनाय-
तारकी अर्चना करनेका नियम है। (विष्णुधर्म)

४६१। सुदौनपक्षो राजन्यगण पछोतिथिमें
उपवास करनेके बाद एक चक्राक्ष प्रस्तुत कर उसकी
कर्णिकामें सुदौन और प्रतिदलमें अग्राग्य आयुषीको
पथाविधि पूजा करने हैं। (गणपु०)

४६२। सुनामदादशो—अभद्रापण मासकी प्रथम
दादशोकी अव्यवहित पूर्ववर्ती दशमोके दिन एक घेला
द्विपद्यान मोक्षण कर दूसरे दिन एकादशोमें निरभ्य
उपवास करे। पीछे यथादीनि त्रयोदश विष्णुकी पूजा
कर दूसरे दिन द्वादशोको भोजन करे। इसी प्रकार
एक वर्ष तक करना होगा। (वद्विष्णु०)

४६३। सुन्यदादशो—पौषमासोय पुष्याशुक्ल
संस्तु रात्रिमें संयतचिरासे विष्णुका ध्यान करना
होगा है। पीछे निरवच्छिन्न अंतवर्णों गौकी गोमया-
निमें तिल द्वारा एक सौ बाठ बार धारुति देनें देना
है। इनके बाद पूर्ववर्ती हृष्णा एकादशोमें उपवासो
रह कर मूषों या सोप्यनिर्मित हरिमूर्तिको गिलपूर्ण पात्र-
में उरिखिप कुम्भके ऊपर रण पथाविधि उनही अर्चना
करना होगा है। (उत्तमदेवध०)

४६४। सूर्यमत्त—रविशरको शूद्रा धनुदशो और
अभिषेकशुक्लका घेला होनेसे शैवना द्वारा परमारना
तिथके बद्धराम तथा रत्नपुत्र कविला नामोके रूप और
पुत्र भादि द्वारा उनको अर्चना करे। (जातोत्तर)

पक्षिगण विष्णुधर्मोत्तर, पञ्चपुराण, मविष्णुपुराण
भादिमें भी सूर्यमत्तका विवरण पाया है।

४६५। सूर्यमत्त मत—अग्नि रविशरको अथवा हस्ता-
भारतपुष्य रविशरके आरम्भ करके एक वर्ष तक दिनमें
उपवासो रह कर सूर्यास्तकालमें रत्नचन्द्र द्वारा
आर्द्रनक्षत्र पञ्च मन्त्रिन करके उनके ऊपर एकत्र मन्त्र
सूर्यदेवका पूजा कर रातको द्विपद्यान मोक्षण करनेसे

निश्चय हो सको ध्यायिते मुक्तिप्राप्ति काया जाता है।
(मत्स्यपुराण)

४६६। सूर्यपक्षो—माघ मासको शुक्ल पक्षो तिथिमें
उपवासो रह कर सूर्यास्तकालमें रत्नचन्द्रमन्त्रिनपञ्चके
ऊपर सूर्यमूर्ति स्थापन करे। पीछे पञ्चगव्यादि द्वारा
स्नान और रक्तयत्र या रक्तहरिणी पुष्य द्वारा उमरका
पूजा करनेका नियम है। (अभ्युत्तर)

४६७। सूर्यसप्तमो मत—चैत्रमासकी शुक्लपक्षो
तिथिमें उपवासो रह कर दूसरे दिन सातमोंमें पञ्चवर्णकी
शुद्धि का द्वारा मन्त्रिन सट्टल कमल पर देवदेवकी अर्चना
करनी होगी है। (विष्णुधर्मोत्तर)

४६८। सोमप्रतिपदा मन—शुक्ल द्वितीया तिथिमें
प्रयागको विष्णुवलयणके साथ भोग्याप देना देना
है। (पद्मपुरा०)

४६९। सोमप्रत—पैशाची पूर्णिमाके दिन जब सूर्यदेव
पश्चिमदिशामें रहती है और सोमदेव पूर्वदिशामें उदय
होते है, उन समय पारिपूर्ण ताम्रपात्रके भीतर पञ्च
चूड़मूर्ति स्थापन कर पथाविधि उनही पूजा करना
करना है। (अभिष्णु०)

इसके सिवा कालीछत्र और काटिकापुराणादिमें भी
इस प्रतका उल्लेख है।

५००। सोमवार मत—वहले चित्रामक्षरपुत्र सोम-
वारको तद्विषयानुसार सोमदेवकी पूजा करे। पीछे
उनके सातमें सोमवारको चतुर्दशोप महाराज
प्रतीक रत्ननिर्मित सोममूर्तिको कर्मके बरतनमें रख
उनको पथाविधि पूजा करनी देती है। (अभिष्णु०)

५०१। सोमप्रमो मत—शैवों पक्षके सोमवारको
अष्टमों तिथिमें रातके समय हरगोरी मूर्तिको पथा-
विधि पूजा करना बताया है। (स्वयंपुरा०)

५०२। शीशव मन—माघ मासको सट्टी, एकादशो
और चतुर्दशो तिथिमें एकद्वारो हो कर अर्धोन्नतको
अंतवर्ण, इगलद, ब्रह्म भादि दान करने देना है।

५०३। सोमग्य मत—हेमन्त और गिनिष्ठ ऋतुमें
सूर्यास्त पुष्या परित्याग कर याम्युन मासमें पथा-
निक काशन निर्मित होल वरका दान देने और पथा-

४६१ । सर्पकामानि मन्त्र-विष्णुधर्मोत्तरोक्त ।
कार्तिके मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह मन्त्र करना होता है ।

४६२ । सर्प मन्त्र—मौरपुराणोक्त । जनिदारमें
शुक्लाम्रयोदशी होनेमें उसी दिन यह मन्त्र ध्याकरणीय है ।

४६३ । सर्पातिरक्तमो मन्त्र—मण्डितपुराणोक्त । माघ
मासके कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह मन्त्र करना होता है ।

४६४ । सर्पमन्त्रमोमन्त्र—मण्डितपुराणोक्त । सप्तमी
तिथिमें यह मन्त्र होता है ।

४६५ । सागर मन्त्र—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । भाद्रपदादि
चार मासमें यह मन्त्र किया जाता है ।

४६६ । साध्वमन्त्र—विष्णुधर्मोत्तरोक्त । अम-
दापण मासकी शश्वत् द्वादशी तिथिमें यह मन्त्र अनुष्ठेय है ।

४६७ । सारस्वतपञ्चमी—पद्मपुराणोक्त । शुक्ल-
पक्षीय पञ्चमीमें शुक्लमासवासुदेवनादि द्वारा धीजास-
मात्प्राद्विवात्पि मासमी देवको पूजा करनी होती है ।

४६८ । सारस्वत मन्त्र—प्रति दिन ज्ञानको एकाम-
चिरामे इष्टका पूजन करना होता है । पीछे वर्षके
मंगलमें प्राणलोक पूजयुग, धरत्युग, तिल और घंटा
दान करनेका नियम है । (१८३०)

४६९ । सार्धामीन मन्त्र—कार्तिकी शुक्ला दशमीमें
नक्षत्रांगी हो प्रत्येक दिनमें पत्तिका प्रयोग करे ।
(महापु०)

४७० । सितसप्तमी—नक्षत्रायण मासोप शुक्ल-
सप्तमीमें उपवासो रह कर श्वेतकमल या किसी दूसरे
श्वेतपुष्प तथा श्वेतचम्पू मौर श्वेतपटकादि द्वारा मूर्त्त-
देवकी पूजा करे । (विष्णुधर्म०)

४७१ । सिद्धार्थकादि सप्तमी नक्षत्रायण या माघ
मासकी शुद्ध सप्तमीसे आरम्भ कर नवाग्रण उसी पक्षोप
मास सप्तमी वर्षाक सिद्धार्थक (श्वेतसप्तमी) भादि द्वारा
मूर्त्तदेवकी पूजा करनी होती है । (मण्डितपुर०)

४७२ । सिद्धिनिवापचक्रगुणो—जिस किसी मासमें
भाद्रपदके वरप होने पर वर मासकी शुद्ध अष्टमिमें
दूर निवादि द्वारा चक्रार्थककी पूजा करनी होती है ।
(अथर्व०)

४८१ । सुहृन्मन्त्रमणि—प्रतिकामा कुमारीके उर-
कल्पुनी, उत्तराषाढा या उत्तरभाद्रपद, इनमेंसे किसी
पर नक्षत्रमें "माघवाप मास" इस मन्त्रमें सर्पदा हति-
की शाराधना करे । (विष्णुधर्मोत्तर)

४८२ । सुहृन्त्रिराल—त्रिरालोपास पूर्णक मघ-
दापण मासोप तद्दशम तिथिमें श्वेत, पीत और रक्त
इन तीन वर्णोंके पुष्प द्वारा, त्रिविक्रमदेवकी पूजा करनी
होती है । (विष्णुधर्मोत्तर)

४८३ । सुहृन्द्वादनी—फाल्गुनमासकी शुक्लमा पदा-
दशमीमें उपवासो रह कर दूसरे दिन उनी मघस्थामे
धीहरिकी मर्चाना करे ।

४८४ । सुतमन्त्र—मण्डितपुराणके मतसे कृष्ण
मघमी या सप्तमीमें अथवा मङ्गलवारकी चतुर्थी तिथि
होनेसे उसमें उपवास कर सातों रात इष्टदेवकी पूजा
करनी होती है ।

४८५ । सुतपष्टी मन्त्र—पञ्चोत्तिथिमें अष्टमि
पञ्चमि माघमें पूजा करनी चाहिये । (विष्णुधर्मोत्तर)

४८६ । सुगन्तुति मन्त्र—कार्तिकी मगधस्थामे
देवगण सुखनिद्रामें अग्निभूत रहते हैं । इस दिन
बालक तथा मातुर ण्डिकी छोड़ सभी उपवासो रह
कर प्रदोषके समय लक्ष्मी पूजा तथा श्वेतपुष्प, चरप, चतुष्पग
भादि स्थानीमें पञ्चानजि कीपमाळा प्रदान
करे । (भाद्रपु०)

४८७ । सुगन्तिमन्त्र—सप्तमी तिथिमें नक्षत्रांगी हो
कर वर्षके बाद गोदान करना होता है । (१८३०)

४८८ । सुगन्तिद्वादनी—फाल्गुन मासकी शुद्ध
द्वादशी तिथिमें इष्टदेवकी मर्चाना कर १०८ बार "हरण"
का नाम जपे । (विष्णुधर्मोत्तर)

४८९ । सुहृन्मद्वादनी—पीप मासकी शुद्ध द्वादशी
तिथिमें उषेष्ठा मङ्गलका वीर होनेमें डस दिन भौविष्णु-
की मर्चाना आरम्भ करे । पीछे एक वर्ष तक प्रतिमास-
की उनी तिथिमें उपवास करनेके बाद विष्णुपूजा करने
का नियमार्थक करे । (विष्णुधर्मोत्तर)

४९० । सुहृन्मन्त्रमणि मन्त्र—रविके मेषसंक्रान्त दिनमें
उपवासो रह कर स्यागिधि परमृतामर्चो पूजा करनी
होती है । पीछे स्यागिधमन्त्रमें इतने प्रकार धौष्टानकी

विष्णु-संक्रमणमें ध्राविष्णुको, बर्कट संक्राम्तिमें वराह-
 देवताको, सिंह-संक्रमणमें नरसिंहदेवको, कन्यासंक्र-
 मणमें वामनदेवको, तुला-संक्रमणमें कृमावतारको,
 पृथिवसंक्रमणमें पत्नीदेवको, धनुःसंक्रमणमें बुध-
 देवको, मकरसंक्राम्तिमें द्वादशरथ रामचन्द्रको, कुम्भ-
 संक्रमणमें बलरामदेवको और मोनसंक्रमणमें मोनाव-
 तारको सर्वना करनेका नियम है। (विष्णुधर्म)

४६१ । सुदर्शनपद्यो राजन्यगण पद्योतिथिमें
 उपवास करनेके बाद एक चक्राक्ष प्रस्तुत कर उसको
 कर्णिकामें सुदर्शन और प्रतिदलमें भग्याम्ब आयुषीको
 यथाविधि पूजा करते हैं। (गरुडपु०)

४६२ । तुनामद्वादशो—अप्रदायण मासको प्रथम
 द्वादशोको अव्यवहित पूर्ववर्ती द्वादशोके दिन एक घेला
 हविष्याग्न सोहन कर दूसरे दिन एकादशोमें निरव्यू
 उपवास करे। पीछे पशारीति जगार्दन विष्णुकी पूजा
 कर दूसरे दिन द्वादशोके भोजन करे। इसी प्रकार
 एक वर्ष मकर करना होगा। (परिनु०)

४६३ । सुरुपद्वादशो—पीयमासोय पुष्यामक्षर
 संवत् रात्रिमें संयतचिशाते विष्णुका ध्यान करना
 होता है। पीछे निरव्यच्छिन्न अंतवर्ष मोकी मीमया-
 निमें तिल द्वारा एक सौ भांड बार घ्राहुति देनी होगी
 है। इसके बाद प्रवर्त्तो कृष्णा पक्कादशोमें उपवासो
 रह कर स्वर्ण या रौप्यनिर्मित हरिमुर्तिका निलपूर्ण पाल-
 के उर्वरिष्णु कुम्भके ऊपर रख यथाविधि उनकी भाषांन
 करने होगी है। (तमःश्रेयस०)

४६४ । मूर्धमन—रविशरके शुक्रा मनुजो और
 अश्विनीनक्षत्रा योग होगने शेषना द्वारा परमात्मना
 निवर्त्ते मनुष्यता तथा रक्तपुत्र कविता गामीके मुख और
 शृंग भादि द्वारा उनकी सर्वना करे। (बालोत्तर)

एतद्भिन्न विष्णुधर्मोत्तर, पद्मपुराण, अविष्णुराण
 भादिमें भी मूर्धमनका विवरण आया है।

४६५ । मूर्धमनक मन—प्रति रविशरके मधया द्दस्ता-
 मध्यापुष्यत रविशरके आरम्भ करके एक वर्ष वर्ष तक दिग्मे
 उपवासो रह कर मूर्धमनकालमें रत्नचन्द्रन द्वारा
 मन्मन्मन्त पद्व अर्पित करके उसके ऊपर एकादश मन्मने
 मूर्धदेवकी पूजा कर राजके हविष्याग्न सोहन करनेमें

निरव्य हो समी व्याधिते मुक्तिलाभ किया जाता है।
 (मत्स्यपुराण)

४६६ । मूर्धमनो—मात्र मासकी शुक्ला पक्षी तिथिमें
 उपवासो रह कर मूर्धमनकालमें रत्नचन्द्रनार्पणमें
 ऊपर मूर्धमूर्त्ति स्थापन करे। पीछे पञ्चगव्यादि द्वारा
 स्नान और रक्तवक्र या रक्तहस्तोत् पुष्य द्वारा उमका
 पूजा करनेका नियम है। (भविष््योत्तर)

४६७ । मूर्धमनतो मत—शुक्ला हितोवा तिथिमें
 तिथिमें उपवासो रह कर दूसरे दिन सप्तमीमें पञ्चवर्षकी
 मुष्टिका द्वारा अर्पित अष्टदश कमल पर देवदेवकी मर्गना
 करनेकी होती है। (विष्णुधर्मोत्तर)

४६८ । सोमप्रदोवा मन—शुक्ला हितोवा तिथिमें
 प्रामाणके मीम्ययलक्षणके साथ भोज्याप्र देना होता
 है। (पद्मपु०)

४६९ । सोमप्रन—वैशाखी पूर्णमाके दिन जब मूर्धदेव
 पश्चिमदिशामें रहते हैं और सोमदेव पूर्वदिशामें उदय
 होते हैं, उम समय पारिपूर्ण तादप्रायके भोजन लम्ब
 चूड़मूर्त्ति संस्थापन कर यथाविधि उनकी पूजा करना
 कर्त्तव्य है। (भविष््यु०)

इसके सिवा कालोत्तर और कालिकापुराणादिमें भी
 इस मनका उल्लेख है।

५०० । सोमवार मन—यहल विज्ञानक्षत्रयुक्त सोम-
 वारके नवविष्यातानुसार सोमदेवकी पूजा करे। पीछे
 इसमें सप्तम्ये सोमशरके लक्ष्मणसोम्य महाराज
 प्रनोक रत्ननिर्मित सोममूर्त्तिका बसिंके वरतनमें रख
 उनकी यथाविधि पूजा करनेकी होगी है। (कणिकोत्तर)

५०१ । सोमप्रदो मन—दशम्ये परके सोमवारके
 अष्टमी तिथिमें राजके समय हरगरी मूर्त्तिकी तथा-
 विधि पूजा करना कर्त्तव्य है। (स्कन्दपु०)

५०२ । सोमप मन—माघ मासकी अष्टमी, एकादशी
 और लक्ष्मणसोम्य तिथिमें एकादशी हो कर अश्विनीके
 अंतवर्ष, उगाध, कर्म्यल भादि दान करने ज्ञेय है।

५०३ । सोमपय मन—द्वेमास और गिलिर अरुमने
 सुमस्वित पुष्यका परिवरण कर पद्मयुग मासमें कदा-
 न्ति कालान निर्दिष्ट होन परका दान देना और यथा-

इस समय यदि उपनयन-संस्कार न हो, तो इन्हें मातृय कहते हैं तथा ये भार्यविवाहित हैं।

एक समय सावित्री-संस्कार या उपनयनहीन द्वित्र (ब्राह्मणादि तीनों वर्ण) मातृ ही मातृय कहलाते थे। किन्तु अथर्ववेदके १५८१ और १५८२ श्लोकों अन्तर्गत इस बात सक्ते हैं, कि मातृय देवप्रतिम है, यहाँ तक कि परम पिताके ही अनुकल्प है। इन्हींके द्वारा शास्त्रिय और ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए थे।

सावित्रीवन्वित उपनयनादि-संस्कारविहीन व्यक्ति ही मातृय कहलाते हैं। मातृयको यथादि वेदविहित क्रियामें अधिकार नहीं है—मातृय अथवाश्रावण भी नहीं है। यही एक श्रेणीका शास्त्रसम्मत सिद्धांत है; किन्तु अथर्ववेदका पञ्चदशोऽंश काण्ड केवल मातृयप्रतिमामें परिपूर्ण है। मातृय वैदिक कालके अधिकारी हैं, मातृय महाभुज्य है, मातृय देवप्रिय है, मातृय ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिके पुत्र्य हैं और तो क्या, मातृय स्वयं देवादिदेव हैं। मातृय जहां जाते हैं, विभ्यजगत् और विरयदेव भी वहां उतका अनुगमन करते हैं। ये जहां रहते हैं, विरयदेवगण भी उसी स्थानमें रहते हैं। यहाँसे उनके चले जाने पर वे भी उनके साथ साथ चले जाते हैं। अन्वय ये जब जहां जाते हैं, तब राजाकी तरह वे भी साथ ही लेते हैं।

समुच्चैः पञ्चदशैः काण्डमैः केवल इसी प्रकारकी मातृय-महिमा प्रेषणमें आती है। अथर्ववेदका पञ्चदश काण्डोक्त मातृय वाच्य विषयमें धर्मसंहितोक्त मातृयसे एकदम स्वतन्त्र है। इन सभी मातृवीरों वैदिक पुत्र्यसूक्तके पुत्र्य और पौराणिकोंके धर्मिन विराट् पुत्र्य मानना चाहिये। यहाँ पर अथर्ववेदके पञ्चदशैः काण्डमैः इस विषयके कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं।

“मातृय भगवोदीममम एव न प्रजातिः कर्मिणः ।
न प्रजातिः सुवर्णमातृयव्यवस्युः एव प्रजातयः ॥
देवकर्मवत्, अश्रमम अश्रम, अश्रमवत् तन्मोदममनः ।
दृष्टव्यमवत् कर्मवतीममनः ॥ (अथर्ववेदके १५८१ ।
श्रीऽथर्व ॥ न महाममने ॥ न महाममने ॥
न देवमातीना कर्मिणः ॥ श्रमोदीमम ॥
न देवोः प्रजातिः अश्रमः ॥ न प्रजातिः अश्रमः ॥

नेममममोदीरं श्रेयं वृष्टम् ।
मोलेनेममिर्न आत्मानं प्रोषति शोभतेन श्रमं
विष्णवेति अथवादिनी वदन्ति । (१५१११-५)
न उदतिरुत्तमं प्राचीं दिग्गम्यु प्वडयन् ॥ १
ते वृष्टय रथन्तं आदिरवामिरे न देवा अनुकल्पयन्त ।
वृष्टे न वै न रथन्तस्य आदिरवेत्यथ विष्णवेत्यथ
देवेभ्य आ वृत्ते न एव विद्वत् मातृयमुत्तरति ॥ १
वृत्तरथ वे न रथन्तस्य आदिरवानान शिरोनाम
देवानो विमं पात भति तस्य प्राचीं दिगि ॥ ५
भदा पुंभती विषो मागो विमानं वासो
होमोवीरं शोभित्वा इतिो मनी कर्मजिगीषा ॥ ५
ते वैरुप्य वैरावै चापन्व वदन्तम शतामुत्तमपत्त ॥ १०
पैरुप्य न वै न वैरावप्य चापन्व वदन्तम
राथ मा वृत्ते न एव शिर्षं मातृयमुत्तरति ॥ १७

इन पञ्चदश काण्डके प्रथम अनुवाकका समय पर्याप्तसूक्त पढ़नेसे मातृय होता है, कि यह मातृय पुत्र्य ही यत्र अर्थात् प्रजापति परमेशु पिता पितामह आदिके उत्तमोभूत विषय है। यथा—

“तं प्रजातिभ्य परमेशु य विना न जितमहश्चरन्व
भदा न वर्णं भूक्तानुत्तमपत्तम् ॥” (१५११२)

द्वितीय अनुवाकका मह्यम पर्याप्तसूक्त पढ़नेसे ऐमी धारणा चल्यती ही उठती है, कि मातृय पुत्र्य ही ही मातामतर है। यथा—

“मातृयस्य अथवात्थाः अथवात्थाः एत अथवाः ।
एवम मातृयस्य दोषि प्रथमः पुत्र्य उत्तमोभूतं न अर्थिनः ।
द्वितीयः प्रथमः पुत्री तन्ममो न अर्थिनः ॥
पुत्रीः मातृयोत्तमो नममो अर्थिनः ।
पुत्रीः पुत्र्योत्तमोभूतं न अर्थिनः ।
पुत्रीः मातृयोत्तमो नममो अर्थिनः ।
पुत्रीः मातृयोत्तमो नममो अर्थिनः ।
पुत्रीः मातृयोत्तमो नममो अर्थिनः ।

मातृयके अर्थान अर्थमार्थों भी इसी प्रकार लिखा है। यथा—

“एवम मातृयस्य दोषि प्रथमः पुत्र्य उत्तमोभूतं न अर्थिनः
इसो प्रकार द्वितीय अर्थान साहचर्य, मुनीय अर्थान

यद् भावस्मरणके टीकाकार हरदत्तका मत है। किन्तु पण्डितप्रवर राममिश्र शास्त्रीने लिखा है—“माज्यवक्त्रेण पिनामहदारम्य स्वपदार्थेन” कालान्तिप्रसंगे पूर्णं संघटमरं यायन् पूर्वोक्तरीत्या उपनयनम्कराययोग्यं नौपवित्रप्रदाय नवीनमहाप्रायश्चित्तानुष्ठानमित्येवम्।”

अर्थात् माज्यवक्त्रे पिनामहसे ले कर निज पदार्थन कालान्तिप्रसंगसे एक वर्ष तक पूर्वोक्त रीतिके अनुसार उपनयनका उपयोगी प्रत्ययवर्तमान प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है।

उद्कोपमूर्च्छानके समस्त वैदिक मन्त्रका व्यवहार होना है। यथा—

- (१) “ममभिः पापमानीभिः यदग्नि यथादूके ।”
(मन्त्रेदीप)
- (२) “साधो साधवासातसः शुभ्ययन्तु” इत्यादि
(मन्त्रेदीप)
- (३) “कथा मदिचत्त माधुयन्” इत्यादि (सामयेदीप)

इस मन्त्रानुसार अपने गिर पर जलसेचन करना होता है।

११। मम यन्व प्रविनामहादेनांनुदमर्त्तने उपनयनं मे श्यज्ञानमस्तुता।

जिस माज्यवक्त्रे प्रविनामहसे ले कर उद्गृह्यांनन पुण्योका उपनयन स्मरणमें नहीं जाता अर्थात् प्रविनामहसे जिनसे पुनः प्रायश्चित्त होय हुआ यह ठोक ठोक मालूम नहीं, विसा माज्यवक्त्रे श्यज्ञानमस्तुत है।

१२। तेषामभयानमनं भोजनं विवाहमिति य यत्रोपैन् शेषामिच्छता प्रायश्चित्तं द्वादशयन्तौ तैपिचत्तं चरेद्दुधोपनयनं तत्र उद्कोपमूर्च्छानं पापमाभ्यादिति।

इसके साथ मीतान्तर भोजन विवाहादि धर्मोत्तम है। ये यदि इच्छामूर्च्छक प्रायश्चित्त करके पुनः संकृत होना चाहे, तो द्वादशयन्तौ तैपिचत्तं प्रसन्नताका अनुष्ठान करें। इसके साथ पापमाभ्यादि मन्त्रसे उद्कोपमूर्च्छान करना होता।

१३। तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तम्।
अर्थात् इसमें जिनको इच्छा हो, वे प्रायश्चित्त कर सकते हैं। परां पर हरदत्त कहते हैं, कि तेषां मन्त्रसे प्रायश्चित्त करके जाना है। किन्तु “मन्त्रमन्त्रकारमीमांसा”

नामक ग्रन्थमें पण्डितप्रवर राममिश्र शास्त्रीने हरदत्तका इस व्याख्याको मुक्तिरूप पूर्ण विचारोत्तम व्यवहार किया है। उनका कहना है, कि यहप्रायश्चित्त पिनामहसे आदिके लिये ही कहा गया है। अतएव मन्त्रवक्त्रके उपरमो रसंहार समस्तव्य विचारसे नहीं तेषां मन्त्रका प्रायश्चित्त मानवक है, यद्यपि हरदत्तका मत है। ये कहते हैं, कि इससे प्रायश्चित्त अनुपयोग्य विना पिनामह आदिका प्रायश्चित्त व्यवस्थित नहीं हुआ है। किन्तु राममिश्र-शास्त्री महाप्रायश्चित्त मति सूक्ष्म विचारसे इसको मंजूर कर ताएद्वय-महाप्रायश्चित्तसे एक प्रमाण दिखलाते हुए अपने सिद्धान्तको मजबूत किया है। उनका कहना है, कि माज्यवक्त्रके अनुपयोग्य विनूविनामहादिको भी जो प्रायश्चित्तको व्यवस्था है यह ताएद्वय-महाप्रायश्चित्त भी विनाई देता है—

अनुवीक्षितरनांयमर्त्तनाण्टय प्राणने समदशाण्टये चतुर्त्तं गच्छे प्रथम प्राणने तदुपवा—“अथैव जमनी यामेद्विष्ठां स्तोमो ये उपेष्टाः मन्त्रो प्रायश्चित्तं प्रवर्त्तयुक्तं एतेन यज्ञेत्”।

इसकी व्याख्या इस प्रकार है—“जामेन मनोनि-प्रहेण ततोतिप्रदंयदुत्तं-यवसि प्रायः सधयान् चोत्तवा-परामेन मोचं अनुदत्तं पुंश्यापारासमर्त्तं साममन्त्रान् महेमुपस्थेन्द्रियं येषां ते जनेन प्रायश्चित्तोमेन यज्ञेति-तदुपवा पृथान मयि संस्कारार्थं सुप्यत्तम्”।

इसका अर्थ इस प्रकार है—अन्नाद्यत्त ही इन्द्रिय व्यापारमें मनोनिप्रद होता है। चौथमके उपनयन पर पुंश्यापारासमर्त्तं एक मन्त्रोक्ती भी प्रायश्चित्तोमेन यह द्वारा संस्कार करना कर्तव्य है। इसमें गृह प्रायश्चित्तका भी संस्कार कहा गया है।

महर्षि कारवाचकके सिद्धान्त द्वारा भी हरदत्तका अभिमत छिटका दिया है। इस सम्बन्धमें भी उन्होंने बखूबव्याख्यानमें अपने द्वितीय वाचकमें लिखा है—

१। “विनुदये पतिन म्नादिनांकाणां अथये संस्कारो नाप्यवश्यकः”।

अर्थात् तीन धोड़ी तरह पतिनमर्त्तकोड व्यवस्थितके लिये मन्त्रवक्त्रके संस्कार वा अन्नाद्यत्त नहीं है।

२। “तेषां संस्कारेषु चतुर्त्तमिन्द्रियं वा सामान्यो-पोरत्तं उपवादी भवति”।

यद् भाग्यकर्मणोः शीकाकार इत्युक्तं मतम् । किन्तु
 पण्डितप्रवर राममिश्र नाम्नोने लिखते—“माण्यकर्मण्य
 पितामहनामस्य स्यार्थगतं कालातिक्रमे पूर्णं संवत्सरं
 यावत् पूर्वोक्तरीत्या उपनयनस्वरूपयोग्य नौपयिकप्राय
 श्चर्यात्मकप्रायश्चित्तानुष्ठानमित्यर्थः ।”

अर्थात् माण्यकर्मके पितामहसे ठे कर मित् वर्षांग
 कालातिक्रमसे एक वर्ष तक पूर्वोक्त रीतिके अनुसार
 उपनयनका उपयोगोः प्रज्ञानयोग्यताक प्रायश्चित्त करना
 कर्तव्य है ।

उद्कोपव्याप्तिके समय वैदिक मन्त्रका व्यवहार होता
 है । यथा—

- (१) “मत्तमिः पापमानीमिः यदग्नि यथादुरके ।”
 (ऋग्वेदीय)
- (२) “भापो भावमागमातरः शुन्धयन्तु” इत्यादि
 (यजुर्वेदीय)
- (३) “कृपा नदिवत्त माभुवन्” इत्यादि (सामवेदीय)

इस मन्त्रानुसार अपने शिर पर अलसेवन करना
 होता है ।

११। अथ यस्य प्रतिपितामहादेनानुस्यर्षाणि उपनयनं
 ते इमनामवर्त्तन्तुता ।

जिन माण्यकर्मके प्रतिपितामहसे ठे कर ऊद्कोपान्त
 पुण्योका उपनयन स्मरणमें नहीं जाता अर्थात् प्रतिपिता-
 महसे कितने पुण्य प्राप्तता होय हुआ वह ठोक ठोक
 मान्ये नहीं, येना माण्यक इमनामवर्त्तन्तु है ।

१२। नेवामप्रवापमनं भोजनं विवादिमिति च वार्धिप्यु
 सेवामिच्छतां प्रायश्चित्तं द्वादशवर्षाणि त्रैविधिकं चरेत्क्षो-
 पमयनं तत्र उद्कोपव्यर्षाणि पापमान्यादिभिः ।

इसके अर्थ भोजनार्थ भोजन विवादिदि वर्धनीय है ।
 ये यदि इच्छापूर्वक प्रायश्चित्त करके पुनः संकल्प होना
 चाहे, तो द्वादशवर्षोंवापी त्रैविधिक प्रत्यर्षांक। अनुष्ठान
 करें । इसके बाद पापमान्यादि मन्त्रमें उद्कोपव्यर्षाण
 करना होगा ।

१३। नेवामिच्छतां प्रायश्चित्तम् ।
 अर्थात् इसमें जिनकी इच्छा हो, वे प्रायश्चित्त कर सकते
 हैं । यहाँ पर इत्युक्तं मतम् है, कि “नेनां नार्ये माल-
 यक मयन्वा जाता है । किन्तु “प्रायश्चित्तमर्षाणां”
 Vol. XXII, 129

नामक प्रथमै पण्डितप्रवर राममिश्र नाम्नोने इत्युक्तं
 इस व्याख्याके मुक्तिकत पूर्णं विचारसे लक्षण किया है ।
 उनका कहना है, कि यद्भापदिवत्त पिता पितामह मादिके
 निये हो कहा गया है । भापकर्ममन्त्रके उपनयनमंदा
 समयव्य विचारमें यहाँ “नेनां” नार्यका पाच्य मान्यक
 है, यहाँ इत्युक्तं मत है । ये कहते हैं, कि इसमें
 प्रारम्भके अनुपयोग पिता पितामह मादिका प्रायश्चित्त
 व्यवस्थान नहीं हुआ है । किन्तु राममिश्र-नाम्नो मन्दा-
 गणने अति सूक्ष्म विचारसे इसकी संकल कर ताण्ड्य-
 महाप्रायश्चित्तके एक प्रमाण लिखलते हुए अपने सिद्धांत-
 को मजबूत किया है । उनका कहना है, कि माण्यकर्मके
 अनुपयोग पितृपितामहादिको भी जो प्रायश्चित्तकी
 व्यवस्था है वह ताण्ड्यप्रमाणमें भी दिखाई देती है—

अनुमोदिनश्चायमर्षांस्त्याण्ड्यप्रायणे सातद्भाष्याये
 चतुर्दां गण्डे प्रथम प्रायणे तद्वयथा—“सथेव जमनी-
 चाग्रेणानां स्त्रोमो ये ज्येष्ठाः सन्तो प्रायर्षाः प्रथमंशुभ्र
 एतेन यजेरन् ।”

इसकी व्याख्या इस प्रकार है—“जमेन मनोनि-
 प्रहेण मनोनिप्रदंश्चतुर्दां-ववति प्रायः सन्मयात्तु यौवना-
 यमातेन नोव” अनुदत्तं पुंश्यापारासमर्षां काममन्तात्
 मंशुमुपस्थेन्निष्पं येनां मे ऽनेन प्रायश्चोमेन यजेरानि-
 रयुवत्वा यद्दान मयि संस्कारांतरं सुपकम् ।”

इसका अर्थ इस प्रकार है—मयायतः हो इन्द्रिय
 व्यापारमें मनोनिप्रद होता है । यौवनके समयान
 पर पुंश्यापारासमर्षां पूर्य प्रायश्चित्तकी भी प्रायश्चोमेन
 यजेरानि संस्कार करना कर्तव्य है । इसमें पूर्य
 प्रायश्चित्तका भी संस्कार कहा गया है ।

मर्षाणि चतुर्दायनके सिद्धांत द्वारा भी इत्युक्तं
 अर्थमत्त सतिष्ठत होता है । इस मन्त्रमें भी उभेभि
 चाण्ड्यप्रायश्चित्तके वंशके द्विधेय चाण्ड्यमें लिखा है—

१। “विशुद्धं पतित सादित्योवाजां अरथे संस्कारो
 नाध्यापमञ्ज ।”

अर्थात् जोन चौदो तक पतितसादित्योका इत्युक्तं
 निये अरथ संस्कारोंमें संस्कार या अध्यापना नहीं है ।

२। “नेनां संस्कारेषु पुरव्यक्तोमेनेष्टु का मयाया-
 योत्त व्यवहायां मयश्चि ।”

पश्ये संस्कारो नाध्यपनं च तेषां संस्कारेषु प्रायश्चस्ती-
मेतच्छा कानमघोर्धरन् स्वयहायां भवन्तीति ध्रुवेः ।'

प्राज्ञान, क्षत्रिय और वैश्यके उपनयनका मुख्य
काल निर्दिष्ट करके पीछे श्राधोद्यमादि द्वारा गौण
कालका उल्लेख किया गया है। गौण कालका उल्लेख
करने पर भी जो पातित्य होता है, यह बड़ा गया।
ऐसी हालतमें उपनयन, मध्याह्न और यज्ञनादि व्यव-
हार तक निषिद्ध है।

इसके बाद सूत्रकारने कहा है,—“काताश्रमे निपन-
श्च”

उक्त सूत्रकी व्याख्यानमें महामाहावाच्याय राममिथ
शास्त्रोंने निम्नोक्त प्रकारसे अपना अभिमत व्यक्त कर
लिया है—“काताश्रमाति यथा श्रुतेषु स्मार्त्तेषु च
कर्मसु प्रायश्चित्त मनुष्याय प्रकृतिकर्मानुष्ठानं निवर्त, न तु
सर्पथा कर्मलोपः । बाललोपमपेक्ष्य कर्मलोपस्याति-
जघ्र्यत्पश्चात् तथैवात्रापि प्रायश्चित्तमनुष्ठाय भवत्युप-
गमनाहंसा ।”

अर्थात् श्रुति और स्मार्त्त क्रियादि साधनमें समय
बोत जाने पर जिस प्रकार श्रुति और स्मार्त्त कर्मोंमें
प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करके पीछे प्रष्टन कर्मानुष्ठान
करना ही निवर्तसिद्ध है, किन्तु उस प्रकारका लोप
करना किसी हालतसे उचित नहीं, क्योंकि बाललोप-
की अपेक्षा कर्मलोप अति जघ्र्य है। यहाँ पर भी
उसी प्रकार बाललोपके कारण प्रायश्चये होनेसे उसके
लिपे प्रायश्चित्त करके फिरसे उपनयनाहंसा उत्पन्न
होती है, उसके बाद वैदिक कार्याका अधिकार प्रदान
करना ही शास्त्रोंविधि है। कारवायनयनका यहाँ
अभिप्राय है। भाष्यकार और चारवायन इन दोनोंमें
हो बहुदुपपत्तित साधनोक्त व्यवहारेण प्रायश्चित्तके
बाद उपनयनसंस्कारका अभिमत प्रदान किया है।

‘परान्तरमापत्त’ शब्दक साधनवाच्यो रचित परान्तर-
स्मृतिकी व्याख्यानमें यह प्रकारका प्रायश्चयप्रायश्चित्त
बोधित है। उसे यहाँ पर विवक्षित भावमें उद्धृत करना
आवश्यक है।

परान्तरमापत्तये प्रायश्चित्त-वाण्टोक्तः प्रायश्चय-
श्चित्त इव प्रकार है—

‘यस्य पिता पितामह इत्यनुपनतोः तस्य मायश्चयः
द्रष्टव्यः ।’

यस्य पिता पितामह इत्यनुपनतोः श्रुत्यां मे
प्रायश्चयसंस्तुताः तेषामभ्यागमनं भोजनं विद्यादमिति
यज्ञेषु । तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं, यथा प्रथमे अग्नि-
कमे मृत्युः एवं सत्यतरसः । अथ उपनयनं । ततः
संवत्सरं उक्तीपवर्षार्धं प्रति-पुण्यं संस्थाप्य संवत्सरान्
याच्यतोऽनुपनतोः मृत्युः । सप्तमिः पापमात्रेभिः यज्ञि-
यथा दूरे इत्येताभिः यज्ञःपवित्रेण भाङ्गिरमेव इति
अथवा यथादृष्टिमिरेव । अथाध्याप्याः । यस्य प्रपिता-
महादे भं अनुस्मर्यति उपनयनं ते इतान्न-संस्तुताः ।
तेषामभ्यागमनं भोजनं विद्यादमिति यज्ञेषु । तेषा-
मिच्छतां प्रायश्चित्तं द्वादशवर्षाणि त्रैविधिकं ज्ञानयं
चरेत्, अथ उपनयनं । ततः उक्तीपवर्षान्मृ ।”

परान्तर-मापत्तये प्रायश्चित्तका एवमे भी मनुके
व्यवस्थित विद्वच्छ्रुति और अग्निष्ठके व्यवस्थापित उदा-
लक प्रताचरणका विधान इसके पहले लिखा जा चुका
है।

सामवेदीय शास्त्रप्रामाण्यमें प्रायश्चयप्रायश्चित्तका
जो विधान देखनेमें आता है वह प्रायश्चस्तीमके नामसे
प्रसिद्ध है। प्रायश्चस्तीमके अनेक भेद हैं। यहाँ यज्ञे
“दीनप्रायश्च” और “गरगिर” प्रायश्चस्तीमको बाने
लिखी जाती है। महामहावाच्याय राममिथने अपने
प्रायश्चसंस्कार-मीमांसा प्रकृतके १०५ वें बड़े सूत्रोंमें इस
विषयकी बालोचनता की है। हम उसका कुछ अंश
भीधे उद्धृत करते हैं—

‘विश्वं ब्रह्मप्रायश्चानामपि संस्कारो भवति यदाऽनुपनो
यथा शास्त्रे प्रामाण्यं समद्वयं मध्याधे चतुर्धरेण्टे
“अपि जगन्मोषामेष्टायां स्तोत्रो ये श्रेष्ठः सत्यं प्रायश्चं
प्रवर्तयुक्तं वनेत् वक्षेत्” तद्वर्षं—अथ पूर्वोक्तं कर्मो
यथा प्रायश्चानं संस्कारविद्याशास्त्रम् एवं व्यवसायो
यथा जगन्मोषामेष्टायाम्—जगन्मोषोपनयनस्य भोग-
मनुदत्तं मेष्टं श्रेष्ठं येषां मे तथाविध्याः स्थापित्वान्द्विदह-
गोवां इत्येताः तेषां स्तोत्रमभिरनुष्ठेव इत्येताः । तस्यैव
ये श्रेष्ठः ब्रह्मणो बान्धोऽपि प्रायश्चानेनापि प्रायश्च-
स्तीमाश्रितारित्वं सिध्यति, अथव प्रायश्चस्तीमानुष्ठेव

पर्याप्तम और गृहस्थाश्रमका विषयवि निमित्त मनुष्य पाप और अनुपनीत विवाहादि कर्म करके पुत्रादि उत्पन्न पञ्चम पाप है । प्रत्येक पापके लिये पृथक् पृथक् प्रायश्चित्त करना आवश्यक है या नहीं ? इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि मुख्यपुपातकमें पुपपातकके प्रायश्चित्त द्वारा ही लघुपातककी निवृत्ति कृमा करती है । अतएव प्राहयस्त्रोम प्रायश्चित्त द्वारा ही सभी प्रकारके पापोंकी निवृत्ति होती है ।

प्राहयस्त्रोममें जो प्रायश्चित्तका विषय लिखा है । प्राहयस्त्रोम द्वारा उनको विमुक्ति होती है । यज्ञ करनेमें अशक्त होने पर औद्दालिकमनका आचरण करे । इसमें दो मास तक जी सा कर, एक मास दूध पी कर, एक पक्ष रहो, ७ दिन पो, अर्थात्त मासमें ६ दिन, तीन दिन केवल जल पी कर और एक अहोरात्र उपवास करके रहना पड़ता है । इसके बाद उमका संस्कार कार्य किया जाता है । प्रायश्चित्त इस प्रकार है—

जिन्नाके साथ केन उपन कार्य करके अर्थात् मनुष्या निर मुद्रया कर समाहित चित्तसे मत्तानुष्ठान करे । ५ या ७ प्राहयस्त्रोम हविष्याप्र भोजन कराना होगा तथा अथ २२ दिन मरुति परिमाणमें (पसर भर) जी सा कर रहे । इस प्रकार जी द्वारा विमुक्त होने पर उमका उपनयन संस्कार होगा । यैसा प्रत करनेमें जी अशक्त है, वे तीन तीन घास्रापणानुष्ठान करके उपनयन संस्कार प्रदण कर सकते हैं ।

सुप्रासिद्ध सामो सर्वाभिध शास्त्रो महाज्ञानने इस साधुधर्मों जी व्यवस्था की है, यह इस प्रकार है—

छादन वर्ष प्रद्वयर्ष महाभ्रम जी नदी कर सकते है, अष्टे उनके प्राहयस्त्रोमस्वरूप ३६० गोपदान करना होगा । गोष । निष्यमान रजसमान, प्राप्रमान, कर्षादि कामान भेदसे तीन प्रकारका होगा । जिन्नाके इतरी शक्ति है उसे इतरी मनुष्मार करना होगा । अग्नि, पीर, द्रिष्ट, नाग द्रिष्ट भेदसे प्रायश्चित्तका अधिक और मनुष्म करना होगा । अर्थात् धर्मोके लिये गोका मृत्, मृत्के रहनेमें ३६० य० द्रिष्टके लिये ३६० पैसे और अग्नि द्रिष्टके लिये ३६० कोड़ा देने होरें काम भवेगा । देवतासादि विषयवसे जिनका सर्वावतो पवित्र होती

है, वे एक घास्रापण करके उपनीत हो सकते है । प्राहय और दृग्दृश्य एक नहीं है । सभी बहनोंको धारणा है, कि जो प्राहयताप्राप्त है वे ही दृग्द है, अतएव उमका पानित्य अथयभमायी है तथा ये प्रायश्चित्तके योग्य नहीं है । मन् वृष्टिसे तो यह बात ठीक नहीं, भीडा विचार कर देखनेसे ही इस विषय मसूटका एक विमर्द तालपर्याय लाभ होगा : मनुके प्रलसे पतित सावित्रीक प्राहय-प्रायश्चित्तके योग्य है, किन्तु सर्व किगालेगी दृग्दका कोई प्रायश्चित्त है ही नहीं ।

“अथैकस्य विवात्रोवादिमाः उपिषक्तयः । दृग्दप्रत्ये गता लोके प्रास्रापारर्तनेन च ॥” (मनु २७।४३) बुद्ध्युक्तमें भी लिखा है, कि उपनयनादि सब प्रकार के किवालीयके कारण क्षतिवादिक्ता तथा यात्रनाश्या पनादि नहीं करनेसे प्राहय छोरे छोरे दृग्दप्रत्ये प्राप्त होते हैं ।

ऊपरकी टीकासे स्पष्ट ज्ञाना जाना है, कि एकमात्र उपनयनसंस्काररहित होनेसे ही प्रातिप्रंग नहीं होता । पुत्रपौत्रादि कर्मसे इस प्रकार यदि सभी किवालों और कर्तव्योंका लेप हो, तो वे दृग्द कहलाते हैं । प्राहयके लिये यात्रनाश्यापन, यैर्वादिन कर्मानिजम, जाम्ना योम हीनय और प्रायश्चित्तमें मनारुपा ही दृग्दप्रत्ये है । प्राहयता (सं० लो०) प्रायश्चित्त भावा धर्मों या, तत्पु टापु । प्राहयका भाव या धर्म, प्राहयत्व ।

प्राहयत्व (सं० लो०) प्राहयका भाव या धर्म, प्राहयता । प्राहयप्रत्ये (सं० पु०) यह जो अनेकों प्राहय कह कर घोषित करता हो । (अटन १२।२।६) प्राहयवाजक (सं० पु०) प्राहयका प्राणजारी, यह जो प्राहयोंका दण्ड करता हो ।

प्राहयस्त्रोम (सं० पु०) प्राहययोग्य अंगोमः । यज्ञभेदः कांथापवर्षान्मन्मथे इसके चार भेद देने ज्ञाने है, तथा-कय रतका विवरण भोगे दिना जाता है,—

साधारणतः तिसुक्त पवित्रसावित्तिकोंकी प्राहय रहते हैं । इनके प्रायश्चित्तके लिये लीनिकांम ही प्रदण्य है । इसमें साधोसाधिका कोई अक्षरन नहीं दानो, कर्त्वीक यह तद्दुर्भूत विद्या नहीं है ।

“प्राहयस्त्रोमप्राहयतः”

या, इमन्निष पं श्लेच्छ हृष ये । उनके पंशधरगण श्लेच्छ जानिमें गिने गये थे । (३२पु० शर्वांग० १५ प०)

४ राजा जालिवाहनका चलाया हुआ संवत् जे ईसाके ७८ वर्षों पंचवान् भारतम हुआ था । ५ संवत् ई माला देन । ७ मज । ८ मज । ९ एक प्रकारका पशु । १० संदेद, भाजका । ११ भय, वास, डर ।

जक (सं० पु०) जका, संदेद, द्विविधा ।

जककारक (सं० पु०) यह जिनमें कोई नया संवत् या जक चलाया हो, संवत्का प्रवर्धक ।

जकलेह—एक प्रायोग कवि ।

जकट (सं० पु० स्त्री०) जकमोति भारं चोदुमिति जक (महाविभोडन । उष ५५८) इति षट् । १ पाग विशेष, पैलगाड़ी । पर्याय—भन, मज । (मण्डलना०) २ भसुरविशेष, जकटामुर । भगवान् श्रीहृण्णने इस भसुरको मारा था । यह भसुर जकटाहति था, इसमें इसका नाम जकटामुर हुआ था ।

(भाषा १०७ अ०)

३ दो हजार पलकी तील । पर्याय—भार, आचिन, जकटोन, जलाट । ४ तिमिज पृथ । ५ घषका पृथ, भी । ६ शरीर, देह । ७ रोहिणी नक्षत्र । इसकी आठति जकट वा छकटके समान है । (२१प० २५३०) जकटकर्म (सं० पु०) १ गाड़ी वा भीर कोई सवारी हीकीका काम । २ गाड़ी आदि सवारियोंकी सामग्री बनाने और बेचनेका काम ।

जकटपूम (सं० पु०) १ गीवर वा उबले आदिका भूमा । २ एक नक्षत्रका नाम ।

जकटविल (सं० पु०) जलदुषकटभेद ।

जकटव्यूह (सं० पु०) १ जकटके आकारका सेनाका विभाग, सेनाकी इस प्रकार रचना कि उसके सामनेका भाग पतला भीर पीछेका मोटा हो और यह देखनेमें जकटके आकारका जान पड़े । २ यह योग व्यूह जिसके अंदर उत्तरेमें दोहरो चक्रिया हो और पर विद्यते ।

जकटवृज (सं० पु०) जकटं हतमिति हन विषय् । श्रीहृण्ण- में जकटामुरका मारा था, इस लिये इनका जकटदा नाम पड़ा । (भाषा १०७ अ०)

जकटाक्ष (सं० पु०) गाड़ीका धुरा ।

जकटानूज—जाकटापनका एक नाम ।

जकटावप (सं० पु०) धय वा धीका पृथ ।

जकटावषक (सं० पु०) यकटाव्य देवी ।

जकटार (सं० पु०) राजा मदानन्दका प्रवाल मन्त्री । इसने अपने भगवानका बन्दा सुकामिके लिये व्याणवर्षमें मिला कर पचपल रत्ना वा भीर इस प्रकार संवत्जनना नाम किया था । २ एक प्रकारकी जिहवाके विद्या ।

जकटारि (सं० पु०) जकट द्वैत्यके जन्म, श्रीहृण्ण ।

जकटाल (सं० पु०) यकटार देवी ।

जकटामिल (सं० पु०) जलचरपक्षीमेह ।

जकटामुर (सं० पु०) एक द्वैत्य । इसे बंमने कृष्णका मारनेके लिये भेजा था और यह स्वयं ही कृष्ण द्वारा मारा गया था ।

जकटाहा (सं० स्त्री०) जकटमिति भाहा वक्ष्या । रोहिणी नक्षत्र । इस नक्षत्रका आकार जकटके समान है ।

जकटि (सं० स्त्री०) छोटी गाड़ी ।

जकटिक (सं० स्त्री०) जकट-सञ्जयो ।

जकटिका (सं० स्त्री०) १ सुदृ जकट, छोटी पैरगाड़ी । २ वद्योके खेलनेकी गाड़ी ।

जकटिन् (सं० स्त्री०) जकटाधिकारी, जकटवान्, गाड़ी-वाला ।

जकटी (सं० स्त्री०) छोटी गाड़ी ।

जकटोप जवर—एक प्रायोग कवि ।

जकटया (सं० स्त्री०) जकटामां समूहा (वागद्विभो वः । वा ५, ५५८१) इति जकट-प-टाप् । जकटोका समूह ।

जकठ (सं० पु०) मघान ।

जकथूम (सं० पु०) गीवर वा उबले आदिका भूमा ।

जकन (सं० स्त्री०) जहन्, विद्या ।

जकनि (सं० पु०) जकारिनिव, विद्ययादिरवानुमो- दित साधनामन, जिलानिवि आदि ।

जकन्धि (सं० पु०) यह अदिका नाम ।

जकन्धु (सं० पु०) जकानां सन्धुः जकन्धुवादिष्वान् सकारलोपा । जकीका हृण वा कुमा ।

जकविट्ट (सं० पु०) जकन्धु विट्टः विट्टाका रिट्ट, गीवरका विट्ट ।

शकपूज (सं० पु०) एक शक्तिदा नाम ।
 शकपूज (सं० पु०) १ एक शक्तिदा नाम । ये शक्तिदेके
 १० ये महादलके १३२ सूत्रके मन्त्रद्रष्टा थे । २ गोमय
 द्वारा रचित ।
 शकम् (सं० अक्ष०) सुवस्त्र ।
 शकमय (सं० वि०) १ गोमययुक्त । २ गोमयवस्त्रयुक्त ।
 शकम्बर (सं० पु०) गोमयवर्णयुक्त, यद्यत् शकम्बर
 गोबर रत्ना ज्ञाना है ।
 शकर (सं० क्ली०) शकल, कर्णो चीनी, शकर ।
 शकरकन्द (हि० पु०) एक प्रकारका प्रसिद्ध कन्द ।
 इसकी रसो प्रायः सारे भारतमें होती है । यह साधा-
 रणतः सूखी जमीनमें बोवा जाता है । इसका कन्द
 दो प्रकारका होता है—एक लाल और दूसरा
 सफेद । लाल शकरकन्द रत्नालू या पिण्डालू कह-
 लाता है और सफेदकी शकरकन्द या रंदा कहते
 हैं । यह मूल कर या उचाल कर खाया जाता है । प्रायः
 हिन्दू लोग प्रत्येक दिन फालाहार रूपमें इसका व्यवहार
 करते हैं । यह कन्द बहुत मोटा होता है और इसमेंसे
 एक प्रकारकी चीनी निकलती है । अनेक पारदार्य
 देशोंमें इससे चीनी निकाली भी जाती है और इसी-
 लिये इसकी बहुत अधिक खेती होती है । वनस्पति-
 शास्त्रके औपनिषद विद्वानोंका अनुमान है, कि यह
 मूलतः अमेरिकाका कन्द है और यहाँसे सारे संसारमें
 फैला है ।
 शकरवीर (फा० पु०) एक प्रकारका छोटा सुन्दर पक्षी ।
 इसकी ऊँचाई प्रायः एक बालिकनसे भी कम होती है ।
 यह भारत, पारस तथा चीनमें पाया जाता है । इसका
 रङ्ग मोटा और सौंघ काली होती है और यह पेड़ोंमें
 लटकता हुआ घोंसला बनाता है । यह प्रायः रेतोंमें
 रहता है और रेतोंकी हानि पहुँचानेवाले कीड़े मकोड़े
 भाँड़ियाता है । यह सफेद रङ्गके दो या तीन सँडे
 एक साथ देना है पर इसके अंश देनेका कोई निश्चयन
 समय नहीं है ।
 शकरवासा (फा० पु०) १ एक प्रकारका फल । यह ल.पू.
 से कुछ बड़ा होता है । इसका पूरा बोवके पुसके
 समान होता है, पर यहाँ बोवके कुछ बड़े होने हैं ।

पूज लाल रङ्गके होते हैं । फल सुगन्धित और बहुत
 मोटा होता है । २ एक प्रकारका प्रसिद्ध एकपान जो
 बरफोंकी तरह चौकीर बटा हुआ होता है । यह
 मोटा भी बनता है और नमकीन भी । इसके बनानेके
 लिये पहले मैशमें मोमन डाल कर उसे दूध या पानीसे
 गूँघते हैं और तब उसे मोटी रोटीकी तरह बेल कर
 चुरी भाँड़िसे छोटे छोटे चौकीर टुकड़ोंमें काट कर
 घोंमें तल लेते हैं । यदि नमकीन बनाना होता है, तो
 मैदा गूँघते समय ही उसमें नमक, अजवायन भाँड़ि डाल
 देते हैं और यदि मोटा बनाना होता है, तो कटो हुई,
 टुकड़ियोंकी तलनेके बाद चीनीके गोरेमें पाग लेते हैं ।
 ३ सूईदार कपड़े परकी एक प्रकारकी सिलाई जो गहर-
 पारेके भाँकारकी चौकीर होती है ।

शकरवाला (फा० पु०) शकरवासा देखो ।

शकरपीठन (हि० पु०) एक प्रकारकी कंठोली भाँड़ि ।
 यह हिमालय पर्वतकी पथरीली और सूखी जमीनमें
 कुमायूँ और उसके पश्चिम ओर पाई जाती है । यह
 थूढ़का ही भेद है, पर साधारण से कुछ अधिक
 सूखसे कुछ मित्र होता है ।

शकःवादास (फा० पु०) शूबानी या जर्द अल नामक
 फल जो पश्चिमोत्तर सीमा प्रायतन होता है ।

शकरो (फा० पु०) फालसा नामक फल ।

शकल (सं० क्ली०) शकलोतीनि शक (शक्तिशक्तिर्) ।
 तप्य ११११ इति कल । १ शक्य, चामड़ा । २ शक्य,
 टुकड़ा । ३ शकल, छाल । ४ शकर, भाँड़ि । ५
 साँवला । ६ कमलकी मान, कमल-दण्ड । ७ शक-
 लोनी । (पु०) ८ मनुके अनुसार एक प्राचीन देशका
 नाम । (मनु ई० २८)

शकल (सं० स्त्री०) १ शुभकी बनापट, भाँड़ि, घेहरा ।
 २ मूत्रका भाय, घेरा । ३ किसी बीजका बनाया
 हुआ भाँकार, भाँड़ि, लकड़वा । ४ किसी बीजकी बना-
 पट, गड़न, रीया । ५ मूर्ति । ६ उपाय, तरकाब, टप ।
 शकलम् (सं० पु०) शकलमन्थान्तीति इति । मन्थ-
 भेद, लकड़वा मछनी ।

शकलेयु (सं० पु०) शकलेयु ।

शकलोप (सं० पु०) गोमयगोत्रक, गोबरका विपद ।

गणश्लेषिण (सं० लि०) काष्ठलएट मातोऽप्यु । (मयव ११२५५)

गणव (सं० पु०) गणहंम ।

गणसंयम् (सं० पु०) संयत् देतो ।

गणकुल (सं० पु०) गणाररको ज्ञानिको एक प्रकारको यमन्यति । यह प्रायः मित्र देगमें अधिकतासे होती है और भारतके भी कुछ स्थानों विशेषतः काश्मीर और भरतगानिस्थानमें पाई जाती है । यह प्रायः गर्म जमीनमें धूसीकें नीचे उगती है । यह बारहों मास रहती है । इसके डेंडल डेड शो हाथ ऊंचे होते हैं । इसके वल्ले प्रायः तीन स'गुल धोटे और एक बालियन लम्बे होते हैं । इसके पोंपेकी प्रायेक गांठ पर वल्ले होते हैं । इनमें मोठे या लाल रंगके छोटे छोटे फूल गुच्छोंमें और काले रंगके फल लगते हैं । इसकी जड़ कर्दूके रूपमें होती है और बाजारमें प्रायः गणकुल मिश्रीके नामसे मिलती है । यह जड़ बामोदीयक तथा स्नायुओंके लिये बलकारक मानो जाती है और विविध प्रकारकी पीष्टिक औषधोंमें दायो जाती है । कंधारमें इसके बीज औषधि के कामो भाते हैं । इसकी राखका हार (ममरु) भरतीगमें लाभदायक समन्था जाता है । यह जड़ प्रायः बाबुलसे भाती है और वही सबसे अच्छो भी होनी है । इसे धुपली या दुपली भी कहते हैं ।

गणदित्य (सं० पु०) राजभेद, गालिवाहन राजा । गणानक (सं० पु०) गणस्य जातिवदोवस्य अन्वयः । जड ज्ञानिका अगत करनेवाला, विक्रमादित्य ।

गणार्द्र (सं० पु०) राजा गालिवाहनका बलाया हुआ संयम्, गण-संयम् । इसकी संयम्में से ७५, ७६ पट्टागमें गणार्द्र निकल आता है । विशेष विषय संवत्सा कथमें देतो ।

गणार (सं० पु०) १ संकटन नाटकीकी परिभाषामें राजाका यह नामा जो नीम जातिका हो । गारहमें इन पौधको बैबकुन, संयन, घांसी, मोन तथा कटोर हृदयवाला दिसलाया जाता है । जैसे—सूचकदिकेमें संवत्साक । (अदित्य २०० : ३५२-५४)

गणकर (सं० पु०) २ गणकर यत् गणार ।

गणारि (सं० पु०) गणस्य श्लेषजानिवादेवस्य भारि । गण जातिका गण, विक्रमादित्य ।

'गणारिकः रकारिः स्वाधिकमदित्य इति' (अथार) गणारिलिपि (सं० पु०) भारतको प्राचीन एक लिपि ।

गणोल (का० लि०) अच्यो गणवाला, गृहपूत, सुन्दर ।

गणुन (सं० झी०) गणनीति शुभाशुभं विभातुमनेनेति गण (सं० स्त्री०) गणनीति । उष्ण, ३१६६) रति उष्ण । शुभाशुभयुक्तः लक्षण, शुभादीसिनिमित्त । जो मित्र देवनेने शुभ या अशुभ जाना जा सके उने गणुन कहते हैं, यथा पाण्डुपुत्रन या काकोलुकादि । गणुननाशमें लिखा है— दक्षिणबाहु स्पन्दित होनेसे स्वांन्नाम होता है, सुन्दर द्वादिने बाहुका फड़कना शुभ गणुन है । इस प्रकार जिन निमित्त द्वारा शुभविषय जाना जाता है, उने शुभ-गणुन और जिन निमित्त द्वारा अशुभ विषय जाना जाता है, उने अशुभगणुन कहते हैं । किसी काममें जानेके समय या कोई कार्य करनेके समय शुभाशुभ गणुन जान कर यह करना आवश्यक है ।

घसन्तवज्ञानगणुने शुभाशुभ गणुनका विषय इस प्रकार लिखा है—

शुभगणुन—दधि, घृत, दुग्ध, आनन तण्डुल, पूर्ण-कुम्भ, सिद्धासन, श्वेतसर्प, पन्थन, र्दण, गण्डु, मांग, मत्स्य, मृत्तिका, गोरोचन, गोभृत्, देवमूर्ति, धापा, पत्त, मद्रासन, पुण्य, अन्नन, मन्त्रद्वार, अन्न, माण्डन, पान, आसन, अन्न, धन, उन्न, व्यञ्जन, यज्ञ, पत्र, भूङ्गा, प्रव्यन्ति वहि, हस्तो, छाग, कुशा, गणार, रत्न, सुवर्ण, रूप, ताप, वस्त्र, मेघ, सोपधि, मघ और नूतन पत्र ये ५० द्रव्य देव या गुरु कर समन करनेमें शुभ होता है । यथा करके समनकायमें द्वादिनी और ये सब द्रव्य देव नेने वासामें शुभ होता है । अतएव यह शुभगणुन है ।

यात्राकालमें यदि वाय्वार और पश्चिम आदि राशियोंमें और गम्भीर समोहर शरीरोंमें व पमान दार्द्रिक, गेष्टयनि, गृहयोग आदि शुभे जाये तो शुभ होता है । पवन कालमें यदि बौद्ध नामों उल्लोके कर पश्चिम राशय जाये और यह कालमें सर कर लीये, तो पश्चिम को हल-धार्द्र हो निर्दिष्टपुर्वक पुनरागमन करना है । दक्षिण-कालमें शुन्दु मर जगमें कुम्भी करके पर यदि अक्ष-रमात् कुछ हल कटेक मोनर अर्धम् देवमें मला जाव

ता अमीष्ट कार्यों सिद्ध होती है तथा सुख प्राप्त होता है।

अशुभजनक—तद्गार, भ्रम, काष्ठ, रज्जु, कर्म, पिप्लाक, चार्वाक, सुष, नमिष, विष्टा, मन्दिनयति, लीट, भावजंभारानि, हृत्पाचान्य, प्रस्तर, शंश, सर्व, भीषण, मेल, सुष्ट, चमष्ठा, चरवा, चाली पट्टा, लघण, तुष, तप, भगल, शृङ्खल, वृष्टि और वायु ये ३० द्रव्य यात्राकालमें धरमगन्त हैं। ये सब द्रव्य देख कर गमन करनेमें अशुभ होगा है।

यदि यात्रा करके मार्ग पर चढ़ने समय पैर फिसल जाये अथवा गाड़ी भाग जाये अथवा बाहर निकलने समय द्वार पर अगिवात हो, तो यात्रामें विघ्न उपस्थित होता है। मार्जारमुद्ग, मार्जारान्ध, कुट्टुवका परस्पर विवाद, यात्राकालमें ये सब देख कर यात्रा न करे। नये घरमें प्रवेश करते समय जपदर्शन होनेसे शूल्यु अथवा बड़ा रोग होता है। किन्तु यात्राकालमें रोदन शब्द-हीन जपदर्शन होनेसे उदा यात्रामें सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

जाते समय माते समय यदि अटवन्त सुन्दर, शुक्र पत्र और शुक्र मानपचारो पुष्प या स्त्रीके दर्शन हो, तो कार्य सिद्ध होता है। राजा, हृष्ट ब्राह्मण, प्रेश्वा, कुमारो, बभ्रु, सुन्दर बंनवाला मनुष्य, अश्वारूढ़ या गजाारूढ़ व्यक्ति यात्राकालमें देखनेमें शुभ होता है। दूरेतपत्र-धारिणी, श्वेतचन्दनलिता तथा गिर पर रुक्मिणी माया पदनी हुई स्त्री और संतुष्टमिता तथा भीष्मर्षी नारी यात्राकालमें देखनेमें शोभा। कार्य सिद्ध होता है। उष-धारी, शुक्रवस्त्रधारिणी, पुष और चन्द्रगर्दि द्वारा विजि ताहू भोजनकार्यमें नियुक्त और पाठभिरत प्रकल्पके यात्राकालमें दर्शन करनेमें सभी कार्य सिद्ध होते हैं। जिसके जाते समय मर या नारी फल हाथमें लिये गान्धर्वे निरन्त जाय, उलका अग्निज्वलित कार्य अग्नि होय सिद्ध होता है।

यात्राकालमें हनमय, अपमानित, मूढ़हीन, भय, अन्वय, मेलमलिन, शम्भला, गर्भवती, शंभुकारिणी, कलिभयनधारी, उभय विधवा, शोक, जन्म, सुषर्कता, जन्म या शूद्रभक्तिव्य शिल्पी और शूद्रक ये सब

दर्शनेमें दुःख और अशुभजनक कार्यों सिद्ध होती है। हृत्पाचान्यधारिणी, हृत्पाचान्यधनयुक्ता और हृत्पाचान्यकी माला गिर पर पदनें हुई स्त्री अथवा हृत्पाचान्यी कुंवारा मनी यात्रा-कालमें शीघ्रनेमें यात्रामें विपद् होती है।

जिसके जाते समय पीछेमें अथवा सामने चढ़ेकी दो दूसरा व्यक्ति 'शामो' पैसा पापय करे, तो उस व्यक्तिका सभी प्रकारका मङ्गल, स्वस्वोप और विजय लाभ होता है। जन्मपक्षके लिये यात्राकालमें यदि मार, काट, भेद कर इत्यादि शब्द हो, तो कार्य सिद्ध होती तथा यात्राकालमें 'कर्दा' जाते हो। मत शोभो' इत्यादि शब्द सुने जाये, तो उस यात्रामें विपद् होती है, यात्राकालमें लाभ, जय, मङ्गल और धनमङ्गल इत्यादि सूचक वाक्य द्वारा उस उस फलका शुभाशुभ सिद्ध करना होगा।

यात्राकालमें सामने यदि रोदनध्वनि सुनाई दे, तो उपद्रव, अग्निहीनमें भय, और नैऋत हीनमें सुन्दरें समय विपद् और वायुहीनमें रोदन सुनाई देनेमें समृद्धि लाभ होती है। पीछेमें यदि रोदन सुनाई दे, तो सत्यताभाव, रोदनध्वनिको नियुक्ति होनेसे लाभ तथा जन्मकी मन्त्र-ध्वनि सुननेमें कार्य सिद्ध होती है। जो हाथो ऊपर की ओर मूँट उठा कर अथवा दाहिने हाथ पर लूँटका भगला भाग रख कर सदा रहे, वा जोरसे चिंताहू मार कर चारों ओर घूमे, ऐसे हाथोका देण यात्रा करनेमें सभी मनोरथ सिद्ध होता है। यात्राकालमें जम्हीन शृगाल देखनेमें उरती समय कोई अग्निष्ट होगा पैसा जानना चाहिये। घाममागमें शृगालको मर्ति देखनेमें शुभ और शक्तिकालमें पशुनसे शृगाल पकत हो कर पर्व और शब्द करे, तो भी शुभ जानना होगा।

यदि शृगाल पकटे 'हुमा हुमा' शब्द बरके पीछे 'टटा' पैसा शब्द करे, तो शुभ और अन्य प्रकारका शब्द करनेमें अशुभ होता है। शक्तिकालमें जिस पक्षके पक्षिय और शृगाल शब्द करे, उसके मन्त्रिकता उभय-रत्न, पूर्ण और शब्द होनेमें भय, उत्तर और क्षिप्य और शब्द करनेमें शुभ होता है।

यदि भयवर्षी और शुभ शुभ शब्द कर किभी कालमें शब्द जाय अथवा उभय करमा रहे, तो यात्रा-

कालमें ऐसा ज्वर देखनेमें शुभ होता है। योद्धर, कृष्णमर्मा आदि सामान्यिक सति भवदूर यात्रा पाँचिरो वार्षिकक कालमें सर्ष देखनेमें यह कार्य या यात्रा बन्द कर देना उचित है, क्योंकि इसमें विघ्न होता है। इसमें कुछ विशेषता है। यह यह कि यात्रा कालमें सर्वदर्शन होनेमें पाषाण या कण्टकमें पादस्पर्श कर यात्रा करनेमें समस्त विघ्न विनष्ट होता है। यात्राकालमें सर्ष भयवा वञ्चनयो यदि यामभागमें दिखाई दे, तो शुभ और मङ्गलपथमें उन्नतमस्तक सुप्त दिखाई देनेसे राजपलायकी सम्भाषना रहने पर भी गमन न करना चाहिये।

यात्राकालमें छोक होने, छिपकली देखने और कौबे का शब्द सुननेसे निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार शुभाशुभ स्थिर किया जा सकता है। जिस पारमें यात्रा करनी होगी, उस पारके पहले पूर्वकी ओर स्व कर दक्षिणा पूर्व क्रमसे उमके बाईके वारोंका तथा राहुमण्डके पर-पक्षा दिशाओंमें विस्तृत करे। किन्तु अनिमज्दके बाद राहुमण्ड स्थापन करना होता है। इसके बाद देवना होगा, कि जिस किरो और छोक, छिपकली वा कौबे का शब्द हुआ है, उस ओर पूर्वोक्त पार स्थापन करने कीम प्रद पतित हुआ है, यह जानना होगा। यदि उम ओर रयि पतित हो, तो जिस कार्यके लिये यात्रा की गई है उममें भय, भोग होनेमें कर्मका शुभ, मङ्गल होनेसे उत्पन्न, सुखमें शुभ, पदरपतिमें सर्षासति, शुभ होनेसे ईश्वरभ, जनि होनेसे यह कार्य उसी समय काज तथा राहु होनेमें तो उस कार्यका नाज जानना होगा।

मङ्गलस्पर्श होनेसे निम्नरूपमें शुभाशुभ स्थिर करना होता है। मङ्गल दक्षिण भाग स्पर्शित होनेमें शुभ तथा पूष्ट और दृढपके सामभागका स्फुरण होनेमें भयुन होता है। मङ्गलस्पर्श होनेमें स्थानप्रति तथा छु और मारुतस्पर्शमें प्रियसङ्ग होता है। मङ्गलस्पर्शमें भूस्वभाव, चक्रके उत्पन्न होनेके स्पर्शमें अर्थप्राप्त तथा चक्रके मङ्गलदेव स्पर्शमें अर्थ और मृत्यु होता है। मृत्के समय और निम्नोक्त मङ्गलमें मङ्गलस्पर्श होनेमें मङ्गल प्रवृत्तान्-

सपत्न्य देवके स्पर्शमें स्थानप्रति और चक्रके मङ्गलमें स्पर्शमें प्रिय संवाद याम होता है। नासिकास्पर्शमें प्रणय और संयुता, मण्डर और मोष्टदेव स्पर्शमें मङ्गल विषय लाभ, बहुरेव स्पर्शमें सुख, वाहु-स्पर्शमें मित्रस्नेह, स्वस्पर्शमें सुख, दृढ स्पर्शमें धनलाभ, पूष्टदेव स्पर्शमें सुखमें पराजय तथा मङ्गलस्पर्श स्पर्शमें जवलाभ होता है। कुश-देवके स्पर्शमें मोति, गिरीके स्पर्शमें सगतामोत्यसि, नासिकास्पर्शमें स्थानप्रति, मङ्गल स्पर्शमें अर्थलाभ, जानुसक्ति मङ्गल पूष्टनेके स्पर्शमें मृत्के साथ मयि, जकुन स्पर्शमें विमो न किमोका नाज, चरणस्पर्शमें स्थानप्रति और पदमण्ड स्पर्शमें पथप्रमण होता है।

मृत्पुष्टके मङ्गलमें ये सब शुभाशुभ विरोध भावमें जानने हेतु मङ्गल पुष्टके दक्षिण भाग और मृत्के पाम भागमें शुभ तथा इसके विरोध भागमें भयुन जानना होगा। (राजपक्षिका)

(पु०) २. पक्षिमात्र, पक्षीका माराण नाम जकुन है। ३. पक्षिपक्षि, शुभ। ४. कदपपक्षी काप्राकं पक्षी मृत्पक्षी उत्पत्ति हुई। (मालव)

शुभ यदि पाम, दक्षिण, पूर्व और परवाहुभागमें रह कर मृत् करे, तो अर्थलाभ होता है। (मङ्गलप्रति)

४ विप्रमृत्। ५ मोतविशेष। उत्तरवादिमें मङ्गलार्थ यह मोन गावा प्राता है।

जकुनक (सं० पु०) जकुन-व्याप-कम्। जकुन रूपे।

जकुनक (सं० वि०) जकुनं ज्ञानासिद्धि प्राक। जकुन-प्राता, जो जकुनोका शुभशुभ फल जानना हो।

जकुनक (सं० स्त्री०) मृत्पक्षी, गिरिपक्षी।

जकुनकाल (सं० स्त्री०) जकुनक्य शुभाशुभनिमित्तक्य काम। शुभाशुभ निमित्तक्य ज्ञान।

जकुनटार (सं० पु०) जकुनविषयक संज्ञासिद्धि। यदि हो जकुन कालाभावे सर्षासिद्धि रह मोनभावे मृत् और मण्डः मङ्गल करने है, तो मृत् जकुनक करी है। यह जकुनटार शुभस्पर्श है। काल आदिके समय देना जकुनउत्तर देखनेमें शुभ जाना है। किमो किमोका बहना है, कि वह जकुन

वासुदेविके समित्तिदिन प्रदेगुमें वो ये देखनेमें भाति है। भारतके समस्तक प्रायतमें भो इस दुखने और कुरुव पक्षि-जानिका नाम है। पूर्याश्रयमें जितने प्रकारके शकुनि है, उनमें उक्त जाति दो छोटी है। चौथसे ले कर पूछ तक इसको लम्बाई २६ इंचसे बड़ी नहीं होती। १८६६ ई०में अम्बाला शहरमें एक बड़ा भूरे रङ्गका शकुनि मोलसे मारा गया था। दोनो ईमेंका विस्तार ८ फुट २ इंच और मांसविण्ड १७ पौंस था।

शकुनिका (सं० स्त्री०) शकुनि कन् टापू । १ शकुनि । २ पुताणानुमार कुरुकके एक शकुनिक नाम । शकुनिप्रद (सं० पु०) पुताणानुमार कुरुकके एक शकुनिक नाम ।

शकुनिप्रया (सं० स्त्री०) शकुनोतां पक्षिणां पानायां या प्रया । पक्षिवीकी पानोपजाता । पवाय—धीप्रद । (शारदावती)

शकुनिवाद (सं० पु०) उवा कालके समय चिड़ियोंका घटघटाना ।

शकुनितपन (सं० स्त्री०) शकुनतप । शकुनितप (सं० पु०) पक्षीके मनात जाना । (शुभप्रवणु २११)

शकुनो (सं० स्त्री०) शकुन-शोष् । १ शवाभावही । २ गौरवा वसोका मादा । ३ एक वृक्षका नाम । यह बहुत ऊँचे और भारूट कटो गई है । (हरिवं० ६२१-३) शुभ्रुणके मनुसार एक प्रकारका बालप्रद । कहते हैं, कि जिस बालक पर इसका आक्रमण होता है, उसके अंग निधिन पड़ जाते हैं, शरीरमें जलन होती है, फोड़े कुंसिया आदि निकल आते हैं, शरीरमें पक्षियोंको-जो गन्ध आने लगता है और यह रद रद कर शोक उठता है । (शुभ्रुण उपखण्ड २० म०)

शकुनो (दि० पु०) यह जो शकुनोका मुम और शकुन फल जानता है, शकुनक ।

शकुनो-मागुका (सं० स्त्री०) बालकोंको एक प्रकारकी रवायि । यह उनके कमरेमें छोड़े दिन, छोड़े मास या छोड़े वर्ष होती है और इसमें कट्टे रस तथा शंख होता है, दुर्गह कुरुक हो जाना है और हरस बहूत रूप बना रहता है ।

शकुनोभार (सं० पु०) शकुनोतां पक्षिणांभारः । पक्षिवीकी सामी, गठह ।

शकुनोपदेश (सं० पु०) शकुननाम ।

शकुल (सं० पु०) शकुलित् उत्पत्तिर्नामिति भक्त (शकेभोन्तोन्वयनयः उष्ण ११५६) इति उक्त । १ पत्ता, चिड़िया । २ कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा । ३ भास पक्षी । ४ काकभेद, एक प्रकारका शीघा । ५ शकुलभेद । ६ विभावित्तके पुत्रका नाम ।

शकुलक (सं० पु०) पत्ता, चिड़िया ।

शकुलता (सं० स्त्री०) शकुलैः पक्षिभिर्नामनेन पान्यते इति सा-पञ्चम्ये क, स्त्रियामापू । मेनका नामकी भावराके नामसे और विभावित्तके औरससे उत्पन्न भया । यह कथा निर्जन वनमें शकुल वा गिद्ध द्वारा रहित हुई थी इसीसे इसका नाम शकुलता हुआ ।

“निर्जने तु बने वनमायु शकुलैः परिनिता ।
शकुल्येति नामास्या बृहस्पति उवाच ॥”
(महाभारत १०२/१४)

राजा दुष्यन्तके साथ इसका विवाह हुआ तथा उन्होंने औरस तथा गर्भमें भरतने ज्ञान ग्रहण किया । इस भरतसे ही भारतवर्ष नाम हुआ है ।

महाभारतमें लिखा है, कि एक दिन दुष्यन्त सेनाओंके साथ आयेरकी निकले । आयेरके बाद ये दशरु मकेले ही कल्पमुनिके आश्रममें जा पहुँचे । इस समय कल्प वहाँ नहीं थे । शकुलनाके ऊपर ही आश्रमरक्षाका भार था । इस कारण शकुलनामें ही भारतम्, पाप और अर्थ आदि द्वारा राजाकी मर्षना की तथा शकुल-सीम पूछा । राजा दुष्यन्तने ताजमें सज्जवा परमप्रेमभावित्तो माध्यायु अश्वीको तरह रूपवती रत्नानि वहा में भगवान् कल्पकी पूजा करने आश्रममें आया हूँ । ये कहाँ हैं ? शकुलनाने बतल दिया, ‘रिता फल ज्ञानके सिधे गये है, कृप समय उदरिधे’ उनके दर्शन हो जायेंगे ।

अनन्तर राजाके छोड़ा विधाम कर रितसे पूछा ‘भगवान् कल्प ऊँह करेता है, अनन्त मुम किम प्रकार उभको कथा हुई ? मुझे इस विषयमें खेद है, हमनिधे मेरा खेद दूर करो ।’

राजाके इस वचन पर शकुलनाने कहा,—मैंने

विवाह सुना है, कि प्रजासिंह नामक एक महाशायली मणि दिनालपके आशुनी कठोर तपस्या करने से । इन्द्रने उसकी तपस्यासे भय था । वह तपोमनु करनेके लिये मैत्रका गान्धी भगवत्का भेदा । मैत्रका द्वारा उरुहः तपोमनु हुआ । उसी जगद इतीकि संयोगसे मेरा जन्म हुआ ।

प्रथमके बाद ही मैत्रका मुझे सिंहराजसे समावृत्त विजयनगरे लाए गए । जङ्गलोंने सिंहराजसिंहके मेरी रक्षा की थी, इस कारण मेरा नाम जङ्गलना हुआ । विना कल्प मुझे उस भयङ्गमसे देव साधन उठा लाये और सात्वतवाचन करने लगे । इसीसे वे मेरे पिता हैं ।

राजा दुष्मन्तने जङ्गलनाका जन्म पृथागत तुम पर कहा, 'तुम राजाकी कन्या हो, इससे मुझसे विवाह करने योग्य हो, गोपक-विद्यामने मुझे परमात्मा पहनाओ, गद्दी मेरी एकमात्र समिताया है।' इस पर जङ्गलना बोली, 'राजन् ! मेरे पिता सभी आदिने । आप भोदो देर ठहरिये । वे साते ही मुझे आपके हाथ समर्पण कर देंगे।' राजाने कहा, मेरी इच्छा है, कि तुम स्वयं मेरी मङ्गल करी, मैं तुम्हारे लिये ही यहाँ आया हूँ; मेरा दृश्य तुम पर भयङ्कत आसक्त हो गया है, अतिलके लिये मात्स्यके विवाह ही सबसे अधिक है, इसी जरा भी धर्महानि न होगी ।

जङ्गलना बोली, 'हे पौरव ! यदि वह धर्म-युवा युवावो हो और आत्मसमर्पण नियमों मेरा प्रसूतन रहे, तो मेरा एक पण है वह सुनिये । आप मुझसे यह प्रतिज्ञा कीजिये, कि मेरे गर्भसे जो पुत्र जन्म लेगा, यह युवराज और आपका उत्तराधिकारी होगा । यदि आप यह प्रतिज्ञा करें, तो मैं आपसे विवाह कर सकूँगी हूँ ।'

मात्स्यके धातुसे मित्रका इतिहास राजा विना गोपे विचार ही जङ्गलनाकी बात पर समस्त हो गये । इसके बाद वधाविधायक वालिमदय करके इसके साथ सुख समीप किया । कुछ समय प्रसवोत्सवके बाद राजाने कहा, 'ये राजधानी का कर ही मुझे' यही मे आर्जुन । इस प्रकार आभारतपत्रके जङ्गलनाकी प्रसव किया तथा महर्षि कल्प आशुनीसे भी कर ही अनुमोदन करके

या नदी' यह सोचने सोचने वे क्षाप्रमसे निकल गये ।

गोदो देर बाद महर्षि कल्प आशुनीसे भाये और दिग्दर्शनसे गारी बातें ज्ञान कर जङ्गलनासे कहा, 'मते ! आज तुमसे मेरी अपेक्षा न करके जो पुत्र संसर्ग किया है, इससे तुम्हारी धर्महानि न हुई । तुमने जन्म अपना पति बना कर उनके साथ संसर्ग किया है । इस से तुम्हारे गर्भसे एक महाबलिष्ठ पुत्र जन्म लेगा तथा यही पुत्र सागर पर्यन्त सभी भूमिगत मणि विद्यमान होगा । यातायातमें उसका रक्षणक कहीं भी न रुक सकेगा ।'

राजा दुष्मन्तके भवती राजधानी लौटनेके तीन वर्ष बाद जङ्गलनाने एक कुमार प्रसव किया । यह पुत्र दिनों दिन बढ़ने लगा । महर्षिने बालकका ज्ञान कर्मादि संस्कार किया । यह बालक सभी प्राणियोंका हृमन करता था, इस कारण उसका नाम 'मर्षेदम्ब' हुआ । महर्षिने उस बालकका भगवाधारण बल और कार्यकलाप देख कर जङ्गलनासे कहा, 'इस बालकके योगराज्यके समीपकेका समय पहुंच गया ।' इसलिये तुम इन जियोके साथ अपने स्थायिक पास जाओ, जियोकी सदा पिताके घर रहना उचित नहीं है ।'

जङ्गलना महर्षिके आदेशसे जियोके साथ राजा-के समीप गई । जङ्गलनाने राजाकी वधायोग्य सरकार पर कहा, 'राजन् ! देवतुल्य यह पुत्र आपके ही औरत-से उत्पन्न हुआ है, इसे आप युवराज बनाइये । आपने पहले जैसी प्रतिज्ञा की थी, सभी उसका पालन कीजिये । यही मेरा समीप है ।'

जङ्गलनाकी यह बात सुन कर राजाकी पूर्वज्ञान सभी कार्य स्मरण हो आया । किंतु फिर भी उन्होंने जङ्गलनासे कहा, 'तुम सावधि ! तुम किसी माता की हो ! तुम्हारे साथ मेरा धर्म, धर्म और काम दिवसके कोई समय 'घटे, स्मरण नहीं होता, भगवत् यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो जा सकूँगी ही अपना यही ठहरनेसे जो मुझे कीं आपति नहीं ।'

तपस्विनी जङ्गलना राजाने समीपता और समी-तप्यकी तरफ हो गई । गोपे पर दुष्क, समीपता और समर्पणके इन शक्तों बढ़ने लगी, 'मदाराज ! आपकी सभी विषय सम्पन्न रहने पर भी यदा कारण है, कि

सामान्य पुत्रके लिये निःसङ्गित्तमे 'नदो' जानता हूँ।
 येनी बात कहते हैं। यह सत्य है या असत्य, आपका
 मन्तव्य ही जानता है। आप राजा हैं, घमेके प्रति
 लक्ष्य करते, अन्त्याप आनरण न करें। आपने क्या यह
 समझ रखा है, कि मैंने भवेले निम्न'तमें यह काम किया
 है, आपमें कोई न था, कीन जान सकेगा ? क्या आपको
 यह मालूम नहीं, कि परमात्मा परमेश्वर सबके हृदयमें
 जागृत है, उनमें पापको छिपा नहीं रहता।
 आपने हृदोके सामने यह पापकर्म किया है। मनुष्य
 पापका करने समझते हैं, कि कोई इसे जान न सकेगा।
 मादिरव, शत्रु, ननिल, आकाश, भूमि, जल, दिव्य,
 रात्रि, वांछा और धम आदि सभी लोगोंके चरितं
 जानते हैं। मैं पतिप्रता स्वयं उपस्थित हुई हूँ, येना
 समझ बाधना न करें। मैं आपको आश्चर्योपा भाषा
 हूँ, मुझे आश्चर्यक प्रदण करना उचित है। मैंने
 येना कीन-सा पाप किया है, मालूम नहीं। बचपनमें
 विना मातामें मुझे छोड़ दिया, अभी आप भी छोड़ने
 हैं, किंतु यह बालक आपका है, इसे छोड़ना आपको
 कदापि उचित नहीं।'

शकुन्तलाकी बात सुन कर दुष्मन्त बोले, 'शकुन्तले !
 यह बालक मेरा पुत्र ही या नहीं ऐसा मैं नहीं जानता।
 तुम्हारी बात पर किस प्रकार विभाव कर्क, त्रिवां
 भावाच्छु बोला करती हूँ। विशेषतः तुम्हारी माता
 जगिधारिणी दुवाहीना मेरुकाते निर्मात्य ह्यागकी तरह
 विमानवपुत्र पर तुम्हारा परिवर्ण किया था तथा
 हाथिक लेज्ज प्रालम्बयतुष्व निर्दो विभावित भी
 कामके वजावर्ती है। तुम्हारे जनक हुए थे। हमलिये
 तुम्हारा भ्रमरव बोलेना असम्भव नहीं। मेरे सामने
 मुझे निष्प्रायको वक्तोमें मुझे जरा भी लज्जा न हुई।
 तुममें और अधिक मैं देखना नहीं चाहता। अभी
 तुम्हारी ओ इच्छा है, कर सकती हो।'

इस पर शकुन्तलाने बरवन्त कथ्य ही कर राजासे
 कहा, 'राजन् ! आप धर्मके निरन्धरा ही कर धर्मका
 पतिभ्रम न करें। मैं जानी जाती हूँ, आपने मेरा
 कोई सरोकार नहीं। आप यह निश्चय जानें, कि
 आपके मुझे लक्षण नहीं करने पर भी मेरा यह पुत्र
 परमात्मा चरितोका सरोभर होगा।'

शकुन्तला इत्यादि प्रकारसे जाना प्रकारके श्याम
 और धर्मसङ्गन वाक्यसे राजाको निरस्कार कर पाया
 गई। उस समय राजाके प्रति यह श्रवणको हुई,
 'दुष्मन्त ! माता चर्माकीयस्वरूपा है। उसमें विना माता
 पुत्ररूपमें जगमप्रण करने हैं। मन्त्रव पुत्रका मन्त्र
 पोषण करो, शकुन्तलाकी शयना न करो। शकुन्तलाने
 जो कुछ कहा है, यह सभी सत्य है। मेरे बचनानु
 सार तुम्हें इस पुत्रका मरण करना होगा और इसी
 कारण इसका नाम भरत होगा।'

राजा दुष्मन्तने यह श्रवणको सुन कर अमात्य भाद-
 से कहा, 'आप लोग इस श्रवणका वाक्य ध्वनन काश्चित्
 तथा मैं भी यह भाव्यो तरह जानता हूँ। किंतु यह
 जानने हुए भी यदि मैं इस पुत्रको प्रदण करता, तो प्रजा
 मुक्त पर संदेह करती।'

अनन्तर राजाने हृदयचित्तसे सबके सामने शकुन्तला
 और उसके पुत्रको मानन्दके साथ प्रदण कर उभयका
 भरत नाम रखा तथा गीष् ही उसे पुत्रराज बनाया।

(महाभारत आदिपर्व १८-३४ श्लो)

पम्पुत्राणके स्वर्गलण्डमें हमने ध्य शक्यावां
 शकुन्तलाका विस्मृत विवरण वर्णित हुआ है। इस
 पुराणके मतसे दुष्मन्त जब कल्याण छोड़ रहे थे उस
 समय वाद्गारीके लिये जगदीने शकुन्तलाको एक संभूता
 वा थी। वनिके घट जाने समय श्रवणमें यह संभूता
 नहीं गिर पड़ा। वही हमरणसिद्ध श्रिया न सके
 के कारण दुष्मन्त शकुन्तलाको पदवान न सके। आचार
 पर धीवरके ज्ञानमें पड़ते हुए मण्डलीके पेशी पद
 संभूता निहली। यह संभूता देखने ही दुष्मन्तको
 पूर्वस्मृति जग उठो। वांछे दिवालय प्रदेशमें मरतको
 पुरवीरताका परिषय वा कर उन्होंने मरणको भगता पुत्र
 समया और बड़े आश्चर्यमें पुत्र सार्धत शकुन्तलाको
 प्रदण किया। महाकवि वाल्मीकिसने यह उपालयाने
 कर ही अमिडान-शकुन्तला कामक आटक अन्वयन किया
 है। यह संकलन आदरमें सरोभे है।

शकुन्तलास्य (सं० पु०) शकुन्तलाका अन्वयन पुत्रा ।
 भरतराज ।

प्राण, मन्त्र, उर्गा । (अथर्व) २ काण्डप्रथमसामर्थ्ये ।
 (नागोमी भट्ट) 'वा देवी सर्वं मूर्तेषु शक्तिरूपेण संस्थिता'
 (देवीसाहाय्यम्)

अथर्वने जेनुमनया अर्क-क्रिय । जिसके द्वारा प्राण-
 का पराभव किया जाये, ऐसा बरवैराग्यविशेष धर्म-
 विशेष । राजाओंकी सैन्य प्रकाशकी शक्ति है—प्रभु-
 शक्ति, मन्त्रशक्ति और उरसाहजशक्ति । कोय और
 ब्रह्मके विषयमें सर्वतोमुखी ज्ञानसाक्षात् नाम प्रभुशक्ति,
 विक्रमप्रकाशपूर्वक शक्तिके द्वारा विस्तृतवक्ता नाम
 उरसाहजशक्ति तथा मन्त्रिय, विग्रह आदि और मासदासादि
 विषयमें यथाकृपसे व्यवस्थानका नाम मन्त्रशक्ति है ।
 राजा हम शिवात्मिकता को हर सबस्थान करें ।

३ स्त्रोत्रशक्ति, देवीमूर्ति । ४ गौरौ । ५ लक्ष्मी ।
 (अथर्वशास्त्र)

यह देवीशक्ति तीन प्रकारकी है—सांख्यिकी, राजसौ
 और तामसौ । श्वेतवर्णा ब्रह्मसंस्थिता सांख्यिकी
 शक्ति, रक्तवर्णा यैश्यायी राजसौशक्ति और कृष्णवर्णा
 नामसौ रौद्रशक्ति है । एक परम देवता ही प्रयोजिता-
 नुसार शिवात्मिकत्वमें विभक्त हुए हैं ।

(ब्रह्मसूत्र विवेचनानुसारेण)

विष्णु निवर्णरूप और शीत शक्तिरूपक है । इन
 दोनोंके एकत्र संयोगमें नाद होता है । इस नादमें
 फिर शिवात्मिकी उत्पत्ति है । यह इन्द्रात्मिक,
 विद्यात्मिक और ज्ञानशक्ति नामसे कथित तथा यह
 विशात्मिक तथात्रय गौरौ, प्रान्तौ और यैश्यायी शक्तिके
 अर्थसे परिचित है ।

इसके अथाथा ब्रह्मवैश्वानुरात्म्ये अष्टशक्तिका
 उल्लेख है । यथा—इन्द्राणी, यैश्यायी, ब्रह्माणी, श्रीगौरी,
 शारंगिणी, वासुदेवी, मातृशक्ति और अँरवी ।

(श्रीब्रह्मसूत्रम् १११ अ०)

वाणशुद्धतात्म्ये ये एक शक्तियाँ भट्टने वशात्तदण
 ३.१३ मुद्रा-अथर्व गौरौ ।

दूसरी श्रेणी की शक्ति का परिचय देवतात्म्ये जाता है,
 यथा—वैश्यायी, ब्रह्माणी, श्रीश्री, मातृशक्ति, शारंगिणी,
 वासुदेवी, इन्द्राणी, वासुदेवी और सर्वशक्तिका । इन सब
 शक्तियोंकी यथायोग्य पूजा करनी होगी है ।

(ब्रह्मसूत्रम् १११ अ०)

यत्किञ्चन पुराण शक्तिशक्तिमें शीत भी अनेक शक्ति-
 योका उल्लेख है । गोत्रे ५० विष्णुशक्ति और ५० शक्ति-
 शक्तिके नाम लिखे गये हैं—

यथास्य विष्णुशक्ति, यथा—कीर्ति, कान्ति, सुखि,
 पुष्टि, श्रुति, शान्ति, विद्या, दया, मेधा, धृष्टा, लज्जा,
 लक्ष्मा, सरस्वती, श्रीति, शक्ति, रमा, जया, युष्मा, प्रभा,
 सत्वा, अष्टा, यान्ति, विद्यासिद्धि, विरजा, विजया,
 विद्या, विनया, सुनया, स्मृति, शक्ति, समृद्धि, सुखि,
 शक्ति, सुक्ति, प्रति, क्षमा, रमा, उमा, ह्रींश्री, श्रिणा,
 यत्पुत्रा, सुक्ष्मा, सम्पत्ता, प्रसा, जिज्ञा, आनोधा, विद्युता,
 परा और परायणा ।

यथास्य रुद्रशक्ति, यथा—गुणोद्गरी, विरजा, ज्ञानमन्त्र,
 लोलाक्षी, वरुणाक्षी, शीतलोला, सुदीर्घमुखा, गोमुखा,
 शीतशिखा, ब्रह्मोद्गरी, उद्गरी, विष्णुमुखा, श्यामा-
 गुणी, उदरमुणी, सुश्रीमुणी, विद्यामुणी, महाशक्ति, सर-
 स्वती, गौरी, उद्योद्गरी, द्रायणी, माधरी, शेषरी, मन्त्ररी,
 हविणी, चित्तिणी, काञ्चोद्गरी, पूता, मन्त्राक्षी, योगिनी,
 शान्तिनी, गौरीनी, कृतिनी, कर्पाक्षी, जया, श्वेती,
 माधवी, वादनी, चार्पवी, काञ्चरवि, यज्ञ, सुश्रीश्री
 और लक्ष्मी आदि । (अथर्वशास्त्र)

मन्त्रके मगमें योत्राधिष्ठाता स्वोद्देवता मात ही शक्ति
 नामसे समिहित है । यह शक्ति शिवकी आसीष्ट शक्ति
 है, अर्थात् शक्ति कहते हैं । शक्ति हर देवी ।

श्वेतीशक्तिमें शक्ति, कापात्मिकी आदि शीतल वदरकी
 कुलशक्तियोंका उल्लेख है ।

गुणसाधनमन्त्रके १३ परलमें लिखा है, कि कृष्ण-
 योगसम्पत्ता और शीतशक्तिनामिकाशक्तिमें शक्ति, काया-
 शक्ति, चरया, रक्तकी, सावित्राक्षता, प्रान्तौ, शूद्रकल्या-
 तथा गोपालक और माताकाशक्त्या, इन सब कृष्ण-
 शक्तियोंकी यथायोग्यतामें पूजा करनेमें निश्चय ही
 सिद्धिप्राप्त होगा है ।

शक्तिशक्तिमन्त्रमें स्वयं महादेवमें शक्तिकी
 प्रयासका उल्लेख कर कहा है, "शक्तिशक्ति शक्तिमें ही
 ही सर्वकाम फलप्रद निश्चयकी प्राप्ति होगा है, अर्थात् शक्ति-
 शक्तिमें सबस्थान करणा है ।" अथर्व शक्तिशक्ति ही
 ११ है शरीरका मातृशक्ति यथा यथा करनी है । अथर्व

साधितोके साध इव सम्प्रदाय इव इरके हो । सिद्धिनाम
 क्रिया सा । जतिके साधने इष्टदेवोही तरह ज्ञान वर
 प्राप्त होयत कराये । तेरह वर्षेमे प्रयागन समोस गये
 तबही सप्तम्या बामिनो हो जतिब्रह्मके विदेव
 उपदेशितो है ।

प्रतीकदेवपुराणमे सर्व नामावली बना है, कि
 मरव और किरव पदार्थ तथा मुके छोड़ प्रयागमे गुण
 पदेन बनो प्राकृतिक जगत् है । इनके उपलब्धतामे
 सेही इन्द्राये मुकमे ही जति उत्पन्न हो के इन सबमे
 प्राविभूत होती है तथा सृष्टिसंहरणकालमे उद्योते
 विद्योति हो कर किरमे मुकमे ही भा कर तीन होतो
 है । जिन प्रकार प्रकाश विना मिट्टीके और मोनार
 विना मोनाके घट और पुस्तक नहीं बना सकना,
 सि मो उमो तरह विना जतिके साधनिक सृष्टिविषयमे
 समसये है । इस कारण सृष्टि-सम्पन्नमे जतिको
 ही साधनवान मानना होया । सृष्टिकालमे राधा,
 पद्म, सावित्री, सुर्या और सरलता, ये पांच जतिवा
 प्राविभूत हुई । भीष्मके प्राणने मो सचिक प्रियतमा
 जतिकया नाम राधा तथा वैश्वदेविकाको सधर्मज्ञ-
 भद्रविभो परमात्मदृशकया जतिकया नाम लक्ष्मी, परमे-
 श्वरकी विद्याविद्याको और वेदनाख्ययोगमालाकया
 जतिकया नाम सावित्री तथा सुकुम्भविद्याको सर्वजति-
 भद्रविभो सधर्मशास्त्रिका और सुर्याकियाजिनो जतिकया
 नाम सुर्या है तथा जो जति सागरागिणो आदिकी
 प्राविद्याको देवी और नावकात्मप्रदायिको और पुन-
 कालोद्भवा है, ये ही साधनो है । इन पांच जतिको
 ही मूल प्रवृत्ति जानना होगा, किन्तु सृष्टिके समयोसार
 ये फिर अनेक अनेक विभक्त है । कालतः समी
 भक्तानि इस प्रवृत्ति या जतिकी भंग है तथा पुनः
 पञ्चम समी सुरयका भंग बट कर विरपात है ।

(इति श्रीशुक्र स्मृत्याः)

पुनःको जगत्पुनः—इदमुक्तमे मया सादि देवनेन
 जयता परासदकी भावना पर बड़े समयमेन हुए ।
 मी प्रकृति नहीं बनाया बरके मर्ये हा भेदकरी समय
 इन्द्राये परदेवकी महापराके विदेव है इत्ये मया
 साधो हुए । पर इन्द्राये मया इन्द्रा जलसाधना

इन्द्राये भावितो प्रतिपत्तसदकारिणो मयाजिता जति
 ही प्रकृतो-जति बहुरासी है । (देवोपुगाण)

देवोपुगाणके मन्वापुण्ड्र-प्रवेशाध्यायमे लिखा है, कि
 देवकालिकोके मन्वका गों विचार गहो करना होयत ।
 पयोवि, समी जति मयादि मन्वायन शिवरहितम
 परमेश्वरकी परमात्मस्वरूपिणी है और इन सबके प्रभा-
 वमे मयस आदिका फल प्राप्त होता है । (देवोपुगाण)

जतिकृष्णामे व्यवहार करनेयोग्य पुण्यादि—पद्म, शै
 प्रकारके बरधोर, कृतुम, दो प्रकारकी तुलसी, जति,
 भोजी, बेलकी, गारुड, मोल पत्र, कुन्द मन्दा, पुनाग,
 पाटलपुत्र, नामचायक, कर्पिकार, जयमन्त्रिका, पलाश,
 मन्मथाम, सदाह्व, मयागर्ग, दमनक या शोभा कुन्,
 मन्मथुलमी, लवङ्ग, जलधूप, लगरपुत्र, जवापुत्र,
 द्रोणपुत्र तथा इन प्रकार अगव्या पत्रज, स्थानज, इव
 और गिरज अनेक प्रकारके पुण्यादि जतिकृष्णामे व्यवहार
 किये जा सकते है । (इन्द्राण्यार)

६ प्रवृत्ति । पर्वण—प्रधान, निरवा, प्राविहृति ।
 यह प्रवृत्ति या जति पुनःको साध्य कर जगत्प्राप्तिक
 कारण होती है । राध, रमा और तमः ये तीन इनके
 गुण है । (भावना)

७ ब्रह्मगुणकियानिष्ठ परमेश्वरविशेष । इन
 मोनपदार्थोंकी जति प्रत्येकमे विभिन्नकारणमे विस्तार
 देने पर भी उमकी कितो जतिकया विकास करनेमे
 साधनकी महापरा साधवत् है । जैमे, बहिनोपेत्त
 क्रियाके विना स्थानमे उमकी शक्ति जतिकया विचार
 गहा' हो सकना, बहुरम कियो ब्रह्मके साध संयुक्त
 गहो' शैमेही मयनी परमेश्वरकिया विकास गहो' कर
 सकना । उपरोक्तपदोके विद्या जब तक कियो वा
 पदार्थके ऊपर रमा न जायेगी, तब तक वह गहो' मय-
 कृष्ण करदेकी शक्तिके विकास गहो' कर सकतो ।

८ सर्वदेवामुक्त पदपदार्थ साधनकया सुविशेष-
 विवेक । मयायु' 'यद पर अमुक अतोः साधक हो'
 वा 'इम अथवे येमे मर्ये' परिपत्र होता कर्णक है'
 इस प्रकारका जो इन्द्राये मर्यु म जिन होयत है,
 यह भी मय मयाकी जति है । साधिकमय इन
 जतिको मय मयाके विभक्त करने है, मया कर्ष, मीतिक

भीर योगरुद्रि । रुद्रि, जेमे बट ; योगिन् वामरु , योगरुद्रि पञ्चम । इसके सिवा लक्षणा व्यञ्जना बादि जक्ति द्वारा भी शब्दादिका बोध होता है । निम्न विषय शब्दार्थ, शक्तिपद् भीरु लक्षेण शब्दमें देलो ।

दार्शनिक और वैज्ञानिकगत जक्ति सम्बन्धमें पद्येष्ट पर्यालोचना कर गये हैं । जक्ति शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ सामर्थ्यावधि है । शक्त धातुके उलर किन् प्रत्यय करके शक्तिपद् निष्पन्न हुआ है । संस्कृत भाषाके उपरशब्दके अनुसार जक्ति शब्दका अर्थ बहुत भावपूर्ण है । जितके द्वारा कोई कार्य सम्पन्न होता है,—अथवा जो कार्यरूपमें परिणत होने योग्य है,—जो किसी प्रकार परिचलनका साधक है,—जो योग्यताविनिष्ट धर्मों है या जो किसी द्रव्यका धर्म है,—अथवा जो कारणका साहचर्य है, यही शक्ति है ।

अभिधानमें शक्तिके उदाहर, बल, सामर्थ्यादि अर्थका व्यवहार है । निष्पन्दुकारका कहना है, कि जक्ति शब्दका अर्थ कम है । ये यह भी कहते हैं, कि जिसके द्वारा काम सम्पन्न होता है अथवा जिसके द्वारा परलोक जाता जाता है, यही शक्ति है । "अन्तर्लोकः त्रिधा किन् । अथयते यानया परलोकं जिगृम् ।"

प्रसङ्गगतभावमें शीमच्छन्दसाचार्यने लिखा है—

"शारदाशरमभूता शक्तिः शरीरपालाम्भूतं चायम् ।"

अर्थात् कारणात्मा जो शरीरमभूत है, यही शक्ति है तथा शक्तिका जो शरीरमभूत है, यही कार्य है ।

धामच्छन्दसाचार्यकी यह उक्ति शक्ति और विज्ञान-समान है ।

इस अभिधानमें शक्तिसम्बन्धमें भी यह शक्ति शब्द हमने अर्थमें प्रयुक्त देखा पाते हैं । यथा—

"एतदेव हि शक्तिं देवतो अथितमतीन्द्रियं विवर्तयति प्रान् ।
तद् अक्षयकर्मभावे बलं शोचतेः यन्त्रे विद्यमानम् ।"

(१०८८-१०९०)

निद्रककार्यमें हमको आकरणा यह को है—

"स्वोमेव हि यं विवि देवा अस्मिन्मोक्षच्छक्तिः ।
कमेमिषीवापुष्टिः । पुरतं तमर्चयेन्नेषां यावय
पुष्टिपान्मन्त्रो देविनि आकृष्यसर्वैश्च विवि
सुभोयं तद्व्यावर्तये इति शक्त्याम् ।"

इस शब्दका अर्थ यह है, कि देवताओंने सृष्टि-कार्य जिन जिनोकरणात्क शक्तिमत्क अस्मिन्को सुभोयमें सम्पन्न किया है, उसी अस्मिन्को जगत्की कार्यान्वितिके लिये अस्मिन्, विद्युत्, भीरु आदिरूप इस विविधरूपोंमें विभक्त किया है । यह सर्वप्रकारक अस्मिन् जगत्की भवार्थके लिये हमी आकर्षणोका यथाविधि परिपाककार्य सम्पन्न करती है । अस्मिन् द्वारा ही जगत्के हमी कार्य होने हैं ।

अन्तर्लोकक वदनेमें ज्ञाता जाता है, कि मरत्य, राजा भीरु तथा यह जिगृन्तारिका प्रकृति ही शक्ति कहलाती है । यह शक्ति या प्रकृति परमेश्वरसे प्रतिष्ठित है तथा उसमें अस्मिन् है । यही शक्ति विभवकी सृष्टिस्थिति और लयकारिणी है ।

इस योग्यानिष्टमें भी शक्तिका सूक्ष्मरूप देखा पाते हैं ।

अस्यैव, ज्ञान, विद्यमान निराकार और मद्गुल्लव्यव परमात्माकी यहै इच्छा-शक्तिकी उत्पन्न होती है, योते व्योमसत्ता, कालमत्ता और निपतिसत्ताकी यथात्मन समि-धक्ति होती है । इच्छासत्तादिकी अनुगमात्सत्तामहात्मना कहलाती है । इच्छादि सत्ता ही ऐतान्शक्ति है । काम शक्ति, क्रियाशक्ति, कर्तृत्वशक्ति, मन्त्रशक्ति इत्यादि नामक परमेश्वरसे अनेक शक्तियाँ हैं । ये सब शक्तियाँ शक्तिमान् परमेश्वरसे अभिगत हैं—"शक्तिः शक्तिमतो स्तेश्चत्" ।

शक्तिमान्से शक्ति निम्न है । शि'गु टोकाकार्यमें लिखा है—"नादा हि श्वरूपमोऽनन्तं जितं गुणना शक्तिः कार्यंश्चान्तरं बुद्धौता तद्व्यावर्तये यद् यथाव यद् विद्वेतीति नाया मन्त्रावि विवर्तयतिमना न यस्तुम इत्यर्थाः ।"

अर्थात् इस शक्तिमें शक्ति ही शक्तिरूपमें अस्मिन् होती है, यह विवर्तयमात्र है, यस्तुम शक्तिमत्तों है ।

शरत्, यावन्ता या शक्तिया तथा इत्यादि शरत्क सम्बन्धमें ही शक्तिरूपमें शक्ति शक्तिका प्रयोग दिखाई देना है, यथा—

"शक्त्युत्पत्त्याः शक्तिरूपः ।" १३११

यद्यपि शक्तिरूप शक्ति ही अर्थमें ही शक्ति है

ज्ञाना है या प्रकृत रूपसे कोई कार्य होता है, यही प्रकृति है। विद्यानिमित्तका कदना है, कि साक्षात् या परम्परा माथमें प्रकृति ही सब प्रकारका परिणाम साधन करती है। इसी कारण इसका प्रकृति नाम रखा गया है और इसी कारण प्रकृतिका दूसरा पर्याय जति है। यह प्रकृति सत्ता, जतिन, प्रदान, सम्पन्न, माया, लभ और भाविता आदि नामोंसे प्रसिद्ध है।

पानिजिके मतसे उपादानकारण ही प्रकृति है।

“अनिकरुः प्रकृतिः।” (पा १।५।२०)

पतञ्जलि, केषव, उपादिश्य और भागेन आदिने प्रकृतिको उपादानकारणरूपमें ही समझा है। नीवाविकों में जो कारणत्वको ही जचित कहा है, पानिजिके भूमि-प्राधान्युसार प्रकृतिको ही उस जचितका प्रतिनिधि या पर्याय कहा जा सकता है।

वजिष्ठदेवका कदना है, “वामन रूप विनिर्मुक्त जगत् जिन पर अद्यक्षय्य करना है उसे कोई प्रकृति, कोई माया, कोई कणु इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं।” भी मन्नागवतसे ज्ञाना ज्ञाना है, कि प्रकृति पुष्ट और काल प्रद्वारे मिश्र नहीं है। पुष्ट और काल प्रद्वको ही सवस्थाविशेष है। प्रकृति प्रत्यक्ष ही जति है। तावावाहो प्रकृतिको ही माया कहते हैं।

हम योगशास्त्रिष्ठ-रामायणमें देखते हैं, कि परिच्छिन्न और अपरिच्छिन्न सारे सत्ता ही जति है। हमसे ज्ञाना ज्ञाना है, कि पदार्थमात्र ही जति है। जचित ही द्रव्य गुण वही आदि विविध नामोंसे परिचिन है। मिश्र मिश्र पदार्थजतिको ही मिश्र मिश्र अद्यक्षा विशेष है। आकाश, देग, काज, दिग्, परमाणु, मन, बुद्धि, माय, इन्द्रिय, इच्छा, प्रपद्य—ये सारी जचितविशेष हैं।

वेदोपि इदानीं इन्द्रोपण, सवरीपण, साकज्जन, मयारण और ममन यह ती वीच प्रकारके कर्मों की बात कही गई है, यह पञ्चको भी जचित इतनेज और दृष्ट भी नहीं है।

हम ब्रह्मदे वदनेसे समझ सकते हैं, कि यह विज्ञान विषयप्रदान ही उपादानको इच्छामें उत्पन्न हुआ है। देहान् वदनेसे ज्ञाना ज्ञाना है, कि परमेस्वरमें साक्षात् जति

द्वारा हम जगत्को सृष्टि को है। पण्डितवर वारिशमि इच्छाशक्तिका ही जगत्को मूलजति कहा है।

हम पाठ जगत्में ताव, तद्दिग्, गुप्तयुक्तार्यन, माव्याद्यर्षय, भावीक, साक्षात् जति साक्षर्यय आदि जतिको विविध लोका देखते हैं। ये सब जतिकों भोगभावको ही इच्छाजति-प्रनोदित है तथा मूलतः एक ही। यद्यपि हम जतिके मिश्र मिश्र प्रदान देखते हैं, किन्तु ताव, तद्दिग् और साक्षर्यय आदि परमाणु जतिको ही मिश्र मिश्र प्रदान मान है। साक्षर्ययें लिखा है—

“माने वचं विधि वसोः दृष्टिना वदोपेत्तद्व्या पद्य।
 “वेनात्पदिश सुवांश्रय त्वेव न भावुर्दो वचःशः ॥”
 (सू ३।२।२)

अर्थात् हे परमदेव! तूने ही मैं आ मेजजति विद्यमान है वह सुन्दारी ही उद्योति है, दृष्टिको पर दाद पाकादि विधातिपदाक रूपमें आ आ मेज देखनेमें माने है, यह भी सुन्दारे ही मेज है, दृष्टादिमें आ मेज विद्यमान है, वनस्पति आदिमें आ सामान्य मेज है, जगमें आ सर्व मेज है, यह भी सुन्दारे ही मेज है। गुण ही वायुकरणमें समस्त साक्षात्में मेजस्वरूप दर्शयाम है।

एक ही परमेश्वरको जति कही समझनामें, वही तद्दिग् रूपमें, वही आदिश्यरूपमें और सारी जगत् वायुकरणमें प्रतिष्ठित है। जति, वायु, आदिश्य ये त्रितैलमें दर्शयाम है। ये कर्मों मेजतद्वय धारण करने और कर्मों भवेतन रूपमें सवस्थान बनते हैं। निदकनकारमें लिखा है—

“दोपेत्तं क्यमाने मन्दीकेपेत्तं दृष्टवः।”
 साक्षर्ययें समिकी साक्षर्ययें लिखा है—
 “अस्मान्ने कदिदर्य गोपरीतुकर्यने। एते कर्णने पुनः।” (सू ५।२।३)

अर्थात् हे माने! गुण ही जगमें भवेतन करने दो, गुण ही साक्षर्ययोंको सृष्टि करके उनके मर्ममें प्रविष्ट हो कर रहने दो, यही गुण फिर हमके सवस्थारूपमें उत्पन्न हुए ही। यद्यप्येदमें कहा है—“दोपेत्तं क्यमाने मन्दीकेपेत्तं दृष्टवः क्यमाने। ये दृष्टवः क्यमाने क्यमाने मन्दीकेपेत्तं दृष्टवः क्यमाने।” (अर्षर्ये ३।२।३)

अभिनवशा (सं० श्लो०) अभिनवान् होनेका भाष्य वा धर्म ।

अभिनवमय (सं० श्लो०) अभिनवमते भाष्यः अभिनवम्
नामे ह्ये । अभिनवान्का भाष्य वा धर्म, अभिन ।

अभिनवमय (सं० श्लो०) अभिनवदेवताका मय्य, यद् मय्य
श्री अभिनवके उपासक प्रदण करने दें ।

अभिनवमय (सं० त्रि०) अभिनवमयमार्थे मयत् । अभिन
वमय ।

अभिनवमान् (सं० त्रि०) अष्टिम् देतो ।

अभिनवमान् (सं० श्लो०) विद्याधरीभेद ।

(कथापरिच्छा० ५६।११)

अभिनवमानल (सं० श्लो०) यामल लम्बभेद । इसमें अभिन
साहाय्य विस्तृत रूपसे वर्णित है ।

अभिनवशक्ति (सं० पु०) विशालशक्तभेद ।

(कथापरिच्छा० ७६।१६)

अभिनवसाकर—लम्बभेद ।

अभिनवधन—वनपौर्वाभेद । मविष्णोत्तरपुराणमें इस धनका
साहाय्य वर्णित है ।

अभिनवलम्ब—इसकीमुद्राके रचयिता ।

अभिनवर (सं० पु०) एक षोडश ।

अभिनवार्थी (सं० पु०) यद् श्री अभिनवकी उपासना
करना हो, भाष्य ।

अभिनववीर (सं० पु०) यद् श्री अभिनवकी उपासना करता
हो, धाममायी ।

अभिनवधेग (सं० पु०) विद्याधरीभेद ।

(कथापरिच्छा० १७।१०)

अभिनवैकनय (सं० श्लो०) १ अभिनवका नाम, कमजोरी ।
२ असमर्थाता ।

अभिनवोपासक (सं० पु०) भाष्यकी एक संस्कार । इसमें धे
विष्णो श्लोको अभिनवका प्रतिनिधि बनानेमें पहले कुछ
विशेष विचार करने उचित करने हैं ।

अभिनवश (सं० त्रि०) जिसमें अभिनव हो, अभिनवमानो,
साकार्य ।

अभिनवशुभमय (सं० श्लो०) लम्बमयभेद ।

अभिनवशुभमय (सं० श्लो०) लम्बभेद ।

अभिनवशुभमय (सं० त्रि०) जिसमें शुभ, शुभमय, लम्ब
वा ।

अभिनवोपासक (सं० श्लो०) अभिनवपुष्पाके समय ग्यासद
भाष्यकी उपासना-प्रतिनिधिभेद ।

अभिनवसिंह (सं० पु०) एक राजाका नाम । ये मदन
रत्नके प्रणेता मदनसिंहके पिता थे ।

अभिनवसेन (सं० पु०) ब्राह्मणके एक घमास्य व्यपिन ।
(लज्जा० ६।११६)

अभिनवसामी—क.बीट यज्ञोक्त्य राजा मुक्तापीडके मन्त्री ।

इसके पिताका नाम था मित्र । (राजा०)

अभिनवदूर (सं० त्रि०) बलमानाकारी, बलहाकर ।

अभिनवदहन (सं० पु०) स्फुटभेद ।

अभिनवदीन (सं० त्रि०) १ जिसमें अभिनवका समाय हो,
निर्घन, माताकन । २ दीनपुत्र, नामर्द, मयुंमक ।

अभिनवदेविक (सं० त्रि०) अभिनवदेवि महारणायं यन्म ।
अभिनवमयधारी षोडश, श्री अभिनवमय चारण करने हैं ।

धर्मार्थ—अभिनव, लक्ष्मणपुत्रधर । (महादत्ता०)

अजी (सं० पु०) १ एक प्रकारके प्रातिक उन्मत्त नाम ।
इसके प्रत्येक धरणीमें १८ माताका देवी हैं और इसकी

रचना ३+३+४+३+५ देवी हैं । अर्जुनने मगल,
रथण या मगलमेंमें कोई एक भी आदिमें एक लघु

देवाना आदि । इसकी १, ३, ११ और १६वीं माता
लघु कहती हैं । यद् अन्य मुक्ता और अष्टिका पूजकी

नाम पर देवाना दे : अर्जुन यद् है, कि ये मगलदे देवी हैं
और यद् नाम है । यद् अन्य प्रकारके 'अजीमा बबक-

नाय हर नाम मा । कि हन्मन् समीरे 'अर्जुन देव'की
बदलसे मियाता हैं । २ अभिनवार्थ, अभिनवमानो, बलवान् ।

अजीवम् (सं० त्रि०) अभिनवपुत्र, बलवान् ।

अजु (सं० पु० बन्धी०) एक बाहुल्यका मुद्र । अर्जुन
पथादिपूर्व, मुने ह्यु अ, यने आदिका मया, मन् ।

मुनेके बलममें पहले उमें मुन भर भूमी अवय
व है, पीछे अर्जुनमें योने । इस प्रकार ये अजु मंगल

होना है उमें अजु वा मन् करत है । यद् अजु मन्,
श्री और यने आदिका देवाना है । इनमेंसे अर्जुनका मुद्र
मिथ मिया है ।

अर्जुन मन् । अर्जुन—श्रीशिवी, अर्जुनदेव, अजु
मन् । अर्जुन और अर्जुनका, यने और अर्जुन मन्-

पुत्र । यद् अजु योने वा और अर्जुन मन् यदायें

३ जगताध्यय, जगिका माध्यय । (पु०) ४ जगन्नातिके
 द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ । समिधा, लक्षण और
 रचयिता नीम जगदकी मूलि है, जहाँ जगदका अर्थबोध
 होता है, उन्ने जग्य कहते हैं । जगदका जगिन द्वारा अर्थ
 बोधपर जग्य है । जगिवाधुमें लिखा है, कि ईश्वरकी
 इच्छाका नाम संकेत है, वही संकेत जगि है, इच्छा द्वारा
 अर्थबोधक जो पद है, उन्ने याचक वा जग्य कहते हैं ।

शक्यजिन देवो ।

जग्यता (सं० स्त्री०) जग्य होनेका भाष या धर्म, विद्या-
 रमकता ।

जग्यतायच्छेदक (सं० लि०) जग्यताया अयच्छेदक ।
 जग्यतामें भागभाग धर्म । जग्य पदार्थके अभावापरण
 धर्म है, जिन धर्म द्वारा अर्थकी जग्यसङ्केतविषयता
 बोधगम्य होता है, वही धर्म है ।

जग्यप्रति (सं० स्त्री०) ग्यापदार्थके अनुसार प्रमाणाके
 ये प्रमाण जिनमें समेद सिद्ध होता है ।

जग (सं० पु०) जगतीति शैतवान् नाजगितुं जग
 (एकविंशतिनि । उच्य २।१३) इति रक्, १ इदो
 का नाश करनेवाले, इन्द्र । २ कुट्टकपूष, कोरेवा । ३
 अनुंनपूष, कोद पूष । ४ इन्द्रपय, इन्द्रजी । ५
 ज्योष्ठा नक्षत्र । इन नक्षत्रके अतिष्ठता देवता इन्द्र है ।
 इन्द्र देवो । ६ रमणके अर्थ भेद अर्थात् (५.१५)
 को संज्ञा जिसमें छा माताएँ होती है । (वि०)
 ० समर्थ, योग्य । (मुद्र ५।१६)

जगकाभुङ्क (सं० स्त्री०) जगकय इन्द्रकय वीजुके ।
 इन्द्र-धनुष ।

जगकमारिका (सं० स्त्री०) जगकय कमारिका, जग-
 कमारो, जगकयव्यतिथिपर । शक्यपुत्रा देवो ।

जगकेश (सं० पु०) जगकय केशुः । इन्द्रपयज ।

जगकोद्गायत (सं० पु०) जगकय कोद्गायतः कोद्गायतः ।
 सुमेद पर्यंत । इन्द्र इस पर्यंत पर कोद्गा करने है, इस
 सिद्धि इसको जगकोद्गायत कहते हैं ।

जगकोप (सं० पु०) इन्द्रकोप भागक, कोद्गा । कोरवदो ।

जगकण्य (सं० स्त्री०) इन्द्रधनुष ।

जगक (सं० पु०) जगक्यापने इति जग-क । १ काव,
 कीमा । (लि०) २ इन्द्रमातामा ।

जगका (सं० स्त्री०) इन्द्रवाद्यको लता, इन्द्राद्य,
 इलाहन ।

जगकात (सं० पु०) जगक्यातः । इक्षय देवो ।

जगकानु (सं० पु०) सामाजिके अनुसार एक शानरका
 नाम । (सामाज्य ६।१५।१२)

जगकाल (सं० स्त्री०) इन्द्रकाल ।

जगकित् (सं० पु०) जगकं जिनवान् जिकित् लक्ष्ण ।
 १ इन्द्रविजयो रायणके पुत्र मेघनाद । (वि०) २ इन्द्र-
 जिना, इन्द्रकी जिननेवाला ।

जगकय (सं० पु०) भागिका पेटु ।

जगक्य (सं० स्त्री०) जगकय भावः एव । जगका भाव
 वा धर्म, इन्द्रक्य ।

जगकित् (सं० स्त्री०) जगक्य दिक् । पूर्व दिशा । इम
 दिशाके स्वामी इन्द्र माने जाते हैं ।

जगदेव (सं० पु०) १ इन्द्र । २ कतिपुके एक राजार
 नाम । (भारत भोष्पर) ३ हरिवंजके अनुसार शृगालके
 एक पुत्रका नाम ।

जगदेवता (सं० पु०) इन्द्रदेवता ।

जगदेवत (सं० स्त्री०) उषेष्ठा नक्षत्र । इसके अर्थात्
 इन्द्र माने जाते हैं । (इत्यम् ५।१२)

जगदुम (सं० पु०) जगकय दुःमाः । १ देवदाय । २ बभ्रुज
 वृक्ष, मीठसिरी ।

जगधनु (सं० पु०) इन्द्रधनुष ।

जगधनुस् (सं० स्त्री०) जगकय धनुः । इन्द्रधनुष ।

भाषाजमें यह धनुष दिशामें देवेके गुनागुन केना
 पद होता है, एतन्महितामें यह विषय इस प्रकार
 लिखा है—

पूर्वकी भाषा प्रकाशकी वर्णानुक्त विष्णु वायु द्वारा
 विपटिः हो कर मेघानुक्त भाषाजमें जो धनुषका भाषा
 दिशा देना है, उसको जगधनु क, ले है । जिसी विष्णु
 भाषाजका कहना है, कि जगकय भागक कुलनाके
 निष्कारमें इस इन्द्रधनुषकी इच्छा होता है । भाषाजमें
 इन्द्रधनुष दिशा देकेक समय राजा वशि रावको जो
 पुत्रका कह, सो इन्द्रे वृद्धमें पराक्रम होनेके है । इस
 धनुषके अर्थान्तर, लक्ष्मणनाद, ज्योतिर्विजित, विष्णु,
 विविध वर्णानुक्त, हो कर इन्द्र वा अनुलोम होनेके रूप

३ जलनाभय, जलिका वाभय । (पु०) ४ जम्बुजानिके द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ । यमिया, लक्षण और यज्ञना नोन शब्दको वृत्ति है, जहाँ जम्बुका अर्थबोध होता है, उसे शब्द कहते हैं । शब्दका अर्थन द्वारा अर्थ बोधघट शब्द है । जलिकावर्धम लिखा है, कि ईश्वरको इच्छाका नाम संकेत है, वही संकेत जलिक है, इच्छा द्वारा अर्थबोधक जो पद है, उसे वाचक वा शब्द कहते हैं ।

शब्दसंकेत देखो ।

शब्दवता (सं० स्त्री०) शब्द होनेका भाव वा धर्म, कियामकता ।

शब्दवतावच्छेदक (सं० लि०) शब्दताया अवच्छेदक । शब्दांशमे भावमात्र धर्म । शब्द पदार्थके समाधारण धर्म है, जिस धर्म द्वारा अर्थको शब्दमध्यैतव्यवता बोधगम्य होती है, वही धर्म है ।

शब्दवताति (सं० स्त्री०) शब्ददर्शनके अनुसार प्रत्यात्मके धर्म प्रमाण सिद्धते प्रमेइ सिद्ध होता है ।

शब्द (सं० पु०) शब्दोक्ति क्षिप्रान्, नाजिवित् शब्द (स्थावित्केति) उष् २।१३ इति रक् १ देसो का नाम करनेवाले, शब्द । २ कुट्टमपूष, क्षीरेवा । ३ शत्रुनिपूष, कीट पूष । ४ इन्द्रपय, इन्द्रमी । ५ अष्टा मक्षत । इस मक्षतके अधिष्ठाता देवता इन्द्र है । इन्द्र देवो । ६ रमणके कोषे भेद अर्थात् (५।८) को संज्ञा जिसमें छा मत्वात् होती है । (लि०) ७ समर्थ, योग्य । (श्व ५।११(१))

शब्दकामुक् (सं० स्त्री०) शब्दकय इन्द्रक्य कामुक् । इन्द्र-धनुय ।

शब्दकमायिका (सं० स्त्री०) शब्दकय कामायिका, शब्द-कामारी, शब्दकयवर्धिविधाय । शब्दकामारी देवी ।

शब्दकेतु (सं० पु०) शब्दकय केतुः । इन्द्रधनुय ।

शब्दकोशावय (सं० पु०) शब्दकय कोशावयः कोशावयता । सुमेध पर्यंत । शब्द इस पर्यंत वह कोशावय है, इस तिथे इसको शब्दकोशावय कहते हैं ।

शब्दकोष (सं० पु०) शब्दकोष नामक कोशा । क्षीरधरो ।

शब्दधनु (सं० स्त्री०) इन्द्रधनुय ।

शब्दज्ञ (सं० पु०) शब्दज्ञावर्धे इति शब्-० । १ का०, कोशा । (लि०) २ इन्द्रकयनाय ।

शब्दज्ञा (सं० स्त्री०) इन्द्रकयवर्धो अथा, इन्द्रधनुय, इन्द्रावय ।

शब्दज्ञान (सं० पु०) शब्दज्ञानायः । उच्यते देखो ।

शब्दज्ञानु (सं० पु०) शब्दावयनके अनुसार एक शब्दकता नाम । (भाष्यव्य १।१।११)

शब्दज्ञान (सं० स्त्री०) इन्द्रज्ञान ।

शब्दजित् (सं० पु०) शब्दं जितवान् ति-कित् लृ-कृ-य । १ इन्द्रविजयो शायनके पुत्र मेघनाद । (लि०) २ इन्द्र-जिता, इन्द्रको जीतनेवाला ।

शब्दजय (सं० पु०) शब्दिका पेड़ ।

शब्दजय (सं० स्त्री०) शब्दजय भावः शब्द । शब्दका भाव वा धर्म, इन्द्रजय ।

शब्दक्षि (सं० स्त्री०) शब्दकय दिक् । पूर्धं दिना । इम दिनाके अ्यामो इन्द्र माने जाते हैं ।

शब्ददेव (सं० पु०) १ इन्द्र । २ कलिहूके एक राजाका नाम । (भाषा बोधधर) ३ हरिवंशके अनुसार शृगालके एक पुत्रका नाम ।

शब्ददेवता (सं० पु०) इन्द्रदेवता ।

शब्ददैवत (सं० स्त्री०) उषेष्ठा मक्षत्र । इमके अ्यामो इन्द्र माने जाते हैं । (इन्द्रा० ५।१२)

शब्दद्रुम (सं० पु०) शब्दकय द्रुमः । १ देवद्रुम । २ बह्वृत्त पृष, मीरसियो ।

शब्दधनु (सं० पु०) इन्द्रधनुय ।

शब्दधनुस् (सं० स्त्री०) शब्दकय धनुः । इन्द्रधनुय । भावनामि वद धनुय दिशां देवेसं शुभाशुभ कीना फल होता है, पदधनुयदिशामि वह विषय इस प्रकार लिखा है—

पूर्धो नाम प्रकाशको वर्णवृत्त चिरत्न वायु द्वारा विपटित हो कर मेघयुक्त भावनामि जो धनुयका भावहार दिशां देता है, उसको शब्दधनुय कहेंगे । किसी दिशा भावार्थका बदला दे, कि अन्तर्गत नामक कृतनामके लिखावर्धे इस इन्द्रधनुयको उपास्य होता है । भावनामि इन्द्रधनुय दिशां देवेक नामक राजा यदि उसको शब्द धनुयवाका करे, तो उन्हे सुखी पराजय दीनी है । इस धनुयके अधिष्ठाता, अर्धनामाद, अर्धोत्तर्धवितिहू, विनाय, विविध वर्णयुक्त, क्षीरधर इति वा अनुलोम होवेसं शुभ

३ अकाराध्य, अक्षिण भाग्य । (पु०) ४ अक्ष्णिके द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ । अग्निषा, लक्षण और स्वयंभा नील अक्ष्णिकी वृत्ति है, जहाँ अक्ष्णिकी अर्थवोध होता है, वहीं अथय कहते हैं । अक्ष्णिकी अर्थि द्वारा अर्थ वोधवत् अथय है । अक्षिषाद्वयं लिखा है, कि ईश्वरकी इच्छाका नाम अर्थि है, यही अर्थि अक्षि है, इच्छा द्वारा अर्थवोधक जो अर्थ है, उरों वाचक या अथय कहते हैं ।

अक्ष्णिकीत देवो ।

अथयता (सं० स्त्री०) अथय होनेका भाव या धर्म, अर्थि-त्मकता ।

अथयतावच्छेदक (सं० त्रि०) अक्ष्णिकाया अथच्छेदकं । अक्ष्णिकीमे आमामाग धर्मा । अथय यदाभंके अमापारण धर्म है, तिस धर्म द्वारा अर्थकी अक्ष्णिकीतविययता वोधगम्य होती है, यही धर्म है ।

अथयताति (सं० स्त्री०) व्यापदर्शनके अनुसार प्रमाणाके धे प्रमाण त्रिगमे प्रमेक्ष सिद्ध होता है ।

अथ (सं० पु०) अन्तोति क्षिप्रान् मानविभू अथ (स्वनिर्वर्तिनि । उच् ३।१३) इति इक् । १ दीरवो का मान करतीशके, इन्द्र । २ अक्ष्णिकी, करीया । ३ अनुत्तपुत्र, बौद्ध पुत्र । ४ इन्द्रपथ, इन्द्रकी । ५ अथेष्टा नक्षत्र । इस नक्षत्रके अघिष्टाना देवता इन्द्र है । ६ इन्द्र दत्तो । ६ रणकं वीपे भेद मर्थात् (५।५) को लक्षा त्रिसमे छा माताव' होती है । (त्रि०) ७ अमर्षा, योषा । (पु० ५।१६१)

अथकाभ्युक्त (सं० स्त्री०) अथकथ इन्द्रकथ काभ्युक्तं । इन्द्र-धनुष ।

अथकमारिका (सं० स्त्री०) अथकथ कमारिका, अथक-माती, अथकथवद्विधरे । अथकथा देवो ।

अथकेतु (सं० पु०) अथकथ केतुः । इन्द्रधनुष ।

अथकीशायन (सं० पु०) अथकथ कीशायनः कीशायनः । सुमेध पर्यंत । इन्द्र इस पर्यंत पर आछा करते हैं, इस निधे इतकी अथकीशायन कहते हैं ।

अथकीश (सं० पु०) इन्द्रकीश नामक कीश । बोरच्छेदो ।

अथकाय (सं० स्त्री०) इन्द्रधनुष ।

अथक (सं० पु०) अथकायवदे इति उच्यते । १ काथ, कीमा । (त्रि०) २ इन्द्रकायमाय ।

अकता (सं० स्त्री०) इन्द्रकायको अता, इन्द्रायण, अतादन ।

अकतात (सं० पु०) अकताजातः । अकट देवो ।

अकतातु (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक । बानरका नाम । (रामायण १।५।१६१)

अकताल (सं० स्त्री०) इन्द्रकाल ।

अकतिन् (सं० पु०) अक' त्रितयान् त्रि-किप् लृक् च । (इन्द्रविजयो रायणके पुत्र मेघनाद् । (त्रि०) २ इन्द्र-जिता, इन्द्रकी जीतनेवाला ।

अकतद (सं० पु०) अगिका पेट ।

अकतय (सं० स्त्री०) अकथ्य भावः स्य । अकका भाव या धर्म, इन्द्रकथ ।

अकदिरू (सं० स्त्री०) अकथ्य दिक् । पूर्ण दिना । इस दिनाके स्वामी इन्द्र माने जाते हैं ।

अकदेव (सं० पु०) १ इन्द्र । २ कलिहूके एक राजाका नाम । (भारत भोष्पर्व) ३ इरिव'गके अनुसार शुक्रात्मके एक पुत्रका नाम ।

अकदेवता (सं० पु०) इन्द्रदेवता ।

अकदेवत (सं० स्त्री०) उपेष्टा नक्षत्र । इसके स्वामी इन्द्र माने जाते हैं । (पराण० ५।२२)

अकद्रुम (सं० पु०) अकथय द्रुमाः । १ देवदास । २ अक्ष्णिकी, मीनसिरी ।

अकधनु (सं० पु०) इन्द्रधनुष ।

अकधनुस् (सं० स्त्री०) अकथ्य धनुः । इन्द्रधनुष ।

आकाशमे यद धनुष दिशाम् देवेति शुभाशुभ किंसा फल होता है, एतन्मदितानमे यद विषय इय प्रकार लिखा है—

सूर्यो नामा प्रकाशकी वर्णानुक्त विरच वायु द्वारा विघटित हो कर मेघानुक्त आकाशमे जो धनुषका आकार दिखाई देता है, उसको अकधनुष कहते हैं । किंसा किंसा आकाशका कहना है, कि अमर्य नामक कुलनामके लिम्बामे इस इन्द्रधनुषकी वरखि होता है । आकाशमे इन्द्रधनुष दिखाई देनेक समय राजा यदि उसका चौर मुद्रकाया करे, तो उरदे' सुद्धमे यशस्व्य होती है । इस धनुषके अर्धच्छत्र, अर्धतिलक, अर्धगर्भविग्रह, अर्ध-विषय वर्णानुक्त, दो बार उरिष का अनुलोम होनेमे शुभ

जगत्सारथि (सं० पु०) जगत्स्य सारथि । इन्द्रके
 सारथी अर्थात् मानसि ।
 जगत्सुत (सं० पु०) जगत्स्य सुतः । इन्द्रका पुत्र इति
 त्रिमं रामने प्राप्तः यः ।
 जगत्सुधा (सं० स्त्री०) जगत्स्य सुधेः । कृद्दक, सुध-
 पयोमा ।
 जगत्सृष्टा (सं० स्त्री०) जगत्स्य सृष्टा । दृगिणको, दरे ।
 (विष्णो)
 जगत्साध (सं० पु०) जगत्स्य साधया यस्य । १ वेधक,
 इन्द्र । (विष्णो) (ति०) २ इन्द्रसामक ।
 जगत्सन्तो (सं० पु०) जगत्स्य अग्निश्च देवते द्वौ इहा-
 रस्य होमः । विनाया मशत । इत मशतके अग्नि-
 छात्री देवता इन्द्र भीरु अग्नि माने जाते ई ।
 (वृहस्पतिना दत्त्वा)
 जगत्सप्तो (सं० स्त्री०) जगत्स्य सप्तो षोड्, मानुक् ।
 १ इन्द्रकी पत्नी, जयो । २ मिश्रणको, शेषादिका ।
 जगत्समज (सं० पु०) जगत्स्य सामजताः । मज्जुने ।
 जगत्सन् (सं० स्त्री०) जगत्स्य अद्यते अद्-अयुट् । जगत्सक,
 विजया, भागि ।
 जगत्सदिव (सं० पु०) राजपुत्रभेद ।
 जगत्सामन्ताथ (सं० ति०) इन्द्र भीरु अग्नि-सामन्तो ।
 जगत्सविन (सं० पु०) ज्योतिष्ये प्रयाय आदि साट्
 स'वत्सरीके बराह पुणोमिंते द्वापे युगके अर्धपति । इतके
 युगमे ये पांच स'वत्सर होते है,—पत्थिपाथी, प्रमाशो,
 भाभ'द, साश्रम और धमल ।
 जगत्सनिन्द्यासन (सं० स्त्री०) मृत्युवान प्रसन्नविशेष ।
 जगत्सुध (सं० स्त्री०) जगत्स्य सामुध, इन्द्रपुत्र ।
 जगत्सारि (सं० पु०) जगत्स्य सारि । इन्द्रका जन् ।
 जगत्सवरी (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन
 तोरिका नाम । (मातृक बन्तरी)
 जगत्सज (सं० स्त्री०) जगत्स्य मरयने इति अज्जुट् ।
 १ विजया, भागि । कहने हैं—शोरासम'दको जगत्स'द-
 र्थना लंकाको अर्द्धांसे भाते गां, तत्र इन्द्रने अमृत-
 पिशुन प्राप्त इत्ये' पुनको'वित्त किया । अ'दोको मान-
 क्युन मृत्पिपित्त अमृतकपासे-विजयाको अर्द्धांसे दूरि ।
 वेधकशास्त्रके अर्थमे यह तोल्ल, अण, मोहकारक, वल,

मेषा भीरु अग्निपद'द, इत्येवताजगत् सारि रसायन माना
 गया है । २ कुट्टक, कोरेवा । ३ अट्टकपोत, इन्द्रको ।
 जगत्सवन (सं० स्त्री०) १ इन्द्रका आसन । २ सिंहासन ।
 जगत्सो (सं० पु०) जगत्स्य साहा यस्य । १ कुट्टक कोत,
 इन्द्रको । २ कुट्टक वृक्ष । ३ जगत्सद, भागि । (ति०)
 ४ इन्द्रसामक ।
 जगत्सोः (सं० स्त्री०) सारथ्ये देवो ।
 जगि (सं० पु०) जगत्-बाहुनकागु-मिन् । १ मेष, बायल ।
 २ यज्ञ । ३ हस्तो, हाथो । ४ पर्वत, पहाड़ ।
 (मंत्रिणका उच्चार)
 जगत्सु (सं० पु०) शीतशुद्धो वा इन्द्रोपेव नामका
 कोट्टा ।
 जगत्सुदधान (सं० स्त्री०) जगत्स्य जगत्सुदधान इत्येवम् ।
 जगत्सुदधानस्य । माद्र मासको गुह्य द्वापुनी निधिमे
 यह उत्सव करना होता है । एतुन'दने निधिपत्रमे
 द्वापुनीउत्सवके मध्य इसका विधान भी किया है—
 सूर्यके सिंहे राशिमे रहने समय द्वापुनी निधिमे
 मय' पिचनविनाशके लिये इन उत्सवका अनुष्ठान करना
 होता है । पुराकासमे राजा प्रविशर वसुने इन जपे
 रथानोरत्सवका विवरण इस प्रकार कहा था । यथा—
 माद्र मासको गुह्य द्वापुनी निधिमे माना प्रकारके
 उत्सवके माघ इन्द्रपञ्चके निधे दूर सा कर उभे मर्दिम
 करे । एक वर्ष तक यह दूर बड़ेगा । फोडे इन्द्रपञ्चके
 लिये माद्रुसिक उत्सवका अनुष्ठान करना होगा । एतके
 सम्बन्धमे भी विशेष विवरण है । उद्यम, देवपूज, इत्यादि
 और लम्बे पर जो दूर उद्यम होने है, ये सब दूर
 इन्द्रपञ्चके लिये प्रदण मही करने चाहिये । पत्थिपी-
 के-कुत्सापस'कुम्, बहु कोट्टमुचन भीरु अग्निदग्धपुत्र
 कियेको है । एते नामसे अग्निदग्ध, हज अथवा इत
 दूर भी विदित है । अतु'म, स्यादहर्षो, विठक, इत्यादि
 और वट ये पांच प्रकारके दूर प्रसन्न है । इनके
 अर्धिकाय देवदाद भीरु मान अर्द्ध दूर भी प्रदण
 लिये हा सारके है । किन्तु अद्यतन दूर कर्त्तव्य प्रदण
 न करे ।
 दूरने दिन लंदे उर एतकी काट काते । पीडे
 सुवर्ग भाट अमृतकाट कर जकी प्राप्त है । फोडे

रवामनाहके गुण थे । ४३ गङ्गावनाचम्पू, प्रघ. म्-
विजय मातरः और गङ्गादेवीविद्यासके रचयिता । ये
कोशिल वायव्यके पुत्र तथा कोशिल पुण्ड्रिकके वीर
थे । मूयधिरारी राजा चैतसिन्दके भाईजमे रहने
वेनीविद्यास ग्रन्थ १८थी सर्दीके शेषमें लिखा था ।
४४ वैद्यविभोर् प्रघकार ।

गङ्गा भाषायां—१ भाषायाय नामक उपनिषद्ग्रन्थके
प्रणेता । २ सुतशौचि नामक ज्योतिषशास्त्रके रचयिता ।

गङ्गा ७८—१ स्तुतिब्रह्मसुभाषितके टीकाकार रत्न-
बन्धके पिता तथा अय्यारके पुत्र । २ जिनप्रसादसुन्दर-
ग्रन्थके प्रणेता ।

गङ्गा कवि—पद्यावलीभूत एक प्राचीन कवि । परकविने
इसका उल्लेख किया है । इसके ग्रन्थमें भोजराजका
उल्लेख है ।

गङ्गाका मूल (सं० पु०) गङ्गादेवी, गुणपरी ।
गङ्गाकिङ्कर—अपभ्रंशसूत्रके एक उन्नीसम प्रघके रच-
यिता ।

गङ्गाफल—१ एक दिग्दू नरपति । ये हिंदवराज १म
कोशके तथा चन्द्रेन्द्रराज यन्त्रमराजके समयसामयिक
थे । २ बलचूड़ोराम लक्ष्मणराजके पुत्र तथा २म कोशके
के भवा ।

गङ्गागोता (सं० स्त्री०) देवीपुराणका ७म अध्याय ।

गङ्गागीरीम् (सं० पु०) देवमोर्धभेद । (सं० ३०० ५१५३)

गङ्गागूर (सं० पु०) एक प्रकारका सर्व । कहने है, कि
इसको उपरलि पानराज और कृष्णराज सर्वके औषधमें
होती है । यह बसी बसी ११०० टाण लम्बा होता है ।
इसके अंदरके रस कष्ट होमे है, इसीमें इसका काटना
सौधात्मिक होता है । यह बहुत कम देवमें जाता है
और गङ्गादेवीमें केवल सुन्दरवर्णमें होता है । यह
बहुत मरकर होता है और इसका पचहना बड़ा कठिन
है ।

गङ्गाजरा (सं० स्त्री०) १ रत्नजरा, जरापाश । २
वायुराज, मन्वराज । ३ एक प्रकारका विदग्ध ।

गङ्गाजिन्—वैश्वानरिनिर्वाणसाराथक । देवाराज १३३२
प्रणेता । ये गोपूजकिय और इवाम्बिकके भाई तथा
द्वैतजिन्के पुत्र थे ।

गङ्गाजी—पद्मातसार-रत्नचक्रके रचयिता ।
गङ्गा माल (सं० पु०) संयोगमें एक प्रकारका माल ।
इसमें ११ माताएं होती हैं, जिसमें ११ भाषाएँ और २
प्रायः होती हैं ।

गङ्गाजीनी (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन लोप-
का नाम ।

गङ्गाक्ष—व्यमानसीमवह और द्वाविधातके प्रणेता ।
गङ्गाक्षालु—क्षत्रपतय तथा समिस्तपर्णा नामक उसकी
टीकाके प्रणेता ।

गङ्गादाम—दससट्टेत्यम्बिकाकार । ये १८३६ ईमें
जीवित थे ।

गङ्गादोशिन—लक्ष्मणके पिता तथा मूक्यकर्मिण्टीकाके
प्रणेता ललादीशिनके पितामह ।

गङ्गादेव—बहुतेरे प्राचीन संस्कृत कवियोंके नाम ।

गङ्गादेय—नेपालके लिच्छवी या मूर्धापंजी मानदेयके
पितामह । मानदेयका समय ईसवी मन् ७०५ था ।
गङ्गादेय भूयदेयके (ईसवी मन् ६२४ ई) पीत गृयदेयके
पुत्र थे । पत्नीट साहबने नेपालराज रंजयजोके अनु-
सार लिख किया है, कि गृयदेय ६३०-६५५ ईसवीमन्में
जीवित थे ।

गङ्गादेय—नेपालके महावीरके टाकुमोपंतोपुत्रव । ये
प्रघ. म्कामदेव वा पद्मदेव नामसे भी परिचित थे ।
(ईसवी मन् १०७५)

गङ्गादेवध—१ गौरप्रथमप्रतीपारोहाय नामक ग्रन्थके
रचयिता । इसके पिताका नाम था शिव । २ जाल-
मान-परीक्षाके प्रणेता ।

गङ्गादेवहाषायां—जालामोरतम्बके रचयिता ।

गङ्गादेवराषण—रसिकामुन-मातरके रचयिता ।

गङ्गादेवराषण—शांतिनाटयका एक प्रसिद्ध देवमोर्ध । यह
ही पाटवर्णमानाके बाप कल्पपुर नामक समयमें देव-
मी रंजयिण्ट है ।

गङ्गादेवराषण मनीषार नामक धर्मग्रन्थके प्रणेता ।

गङ्गादेवि (सं० पु०) गङ्गादेव विद्या । १ लोका पत्नी ।
२ दोमपुत्री, गुमा, योगि । (१५१५०) ३ चण्डिका ।

गङ्गादेव—पार्श्वनाथ मिश्र रचित 'गङ्गादेविका' के
टीकाकार । रचना नाम गङ्गादेविकाका है ।

श्यामशादके पुत्र थे । ४३ गङ्गा-नशादकम्, प्रपु-भ-
विजय शादक और गुरुर-येनोविद्यासके रचयिता । ये
दोसिक बालकृष्णके पुत्र तथा द्रोणिग दुरिन्दराजके पीत
थे । मृगयिकारां राजा गिनसिंहके भाईजैसे शहोमे
येनोविद्यास प्रथ १८थी महीके योगमें लिखा था ।
४४ येदविमोक्ष प्रकधार ।

गुरुर भाषाये-१ भाषायाप नामक उपेतिप्रस्यके
प्रणेता । २ सुभनोकि नामक ज्योतिषशास्त्रके रचयिता ।

गुरुर कण्ठ-१ स्तुतिहस्तुमात्रिके दोकाकार रत्न-
कण्ठके पिता तथा अथकारके पुत्र । २ निवपसाश्चुन्दर-
न्यथके प्रणेता ।

गुरुर कवि-पदावलीपूत एक प्राचीन कवि । परदाविने
इसका उल्लेख किया है । इसके प्रथमी भीमराजका
उल्लेख है ।

गुरुरका पूज (सं० पु०) गुरुरो, गुजपरी ।
गुरुरकिट्टर-भस्वरादर्शनके एक उल्लेख्य प्रस्यके रच-
यिता ।

गुरुरगण-१ एक हिन्दू नरपति । ये ईश्वराज १म
कोकलके तथा चरदेश्वराज पन्ड्यराजके समसामयिक
थे । २ कलभूदोराज अरुणराजके पुत्र तथा २य कोकल
के चषा ।

गुरुरगोमा (सं० स्त्री०) शेषोपुराणका ७म अध्याय ।

गुरुरगोतीर (सं० पु०) शेषतीर्थभेद । (राजव० ५११५३)

गुरुरधूर (सं० पु०) एक प्रकारका सर्प । कदमे है, कि
इसको इराणिस वातराज और दूधराज सर्पके जोड़से
होती है । यह बभी बभी ११० हाथ लम्बा होता है ।
इसके अक्षरके तीन बच्चे होते हैं, इसीसे इसका काटना
साधनिक होता है । यह बहुत बम देलनेमें जाता है
और बहुतइतने केवल सुन्दरलभमें होता है । यह
बहुत मर्दकर होता है और इसका पचइना बहुत कठिन
है ।

गुरुरजडा (सं० स्त्री०) १ रत्नजडा, जडायासी । २
गामुदासा, साबुदासा । ३ एक प्रकारका विद्वान ।

गुरुराङ्ग-भीमराजविजयिंवासारके १ ईसाका १६३२
वर्षका । ये कोकलजिम् और श्यामजिम्के मारं तथा
दरारिजम्के पुत्र थे ।

गुरुराङ्गी-विदाससार-टिप्पणके रचयिता ।
गुरुर ताल (सं० पु०) संयोगमें एक प्रकारका ताल ।
इसमें ११ मातृपं द्रोती है, जिसमें ११ चापल और २
खाको होते हैं ।

गुरुरतीर्षी (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ
का नाम ।

गुरुरदत्त-पद्ममानसोमदह और दद्रुविद्यानके प्रणेता ।
गुरुरद्वयानु-द्वयप्रवच तथा समितवर्णा नामक उपासी
दोकाके प्रणेता ।

गुरुरदाम-दृष्टसदृशचन्द्रिकाकार । ये १८७६ ई०में
जीवित थे ।

गुरुरदोहित-हरदमनके पिता तथा मुकुटचन्द्रिकाके
प्रणेता ललादोहितके पितामह ।

गुरुरदेव-बहुतेरे प्राचीन संस्कृत कवियोंके नाम ।

गुरुरदेव-नेपालके मिच्छरथी या मूर्धपंथी ग्रामदेवके
पितामह । गानदेवका समय ईस्वी मन् ७०५ था ।
गुरुरदेव प्रुवदेवके (ईस्वी मन् ६५४) पीत प्रुवदेवके
पुत्र थे । पकोट साहबने नेपादराज यंसायनोके अनु-
सार लिख किया है, कि गुरुरदेव ६३०-६५६ ईस्वीमन्में
जीवित थे ।

गुरुरदेव-नेपादके नयाकोटके शाक्योपनीश्वर । ये
प्रपु-भकामदेव वा पद्मदेव नामसे भी परिचित थे ।
(ईस्वी मन् १०७५)

गुरुरदेव-१ गीमवदमप्रशोमाशहा नामक प्रस्यके
रचयिता । इसके पिताका नाम था निव । २ जाल-
ग्राम-परीसाके प्रणेता ।

गुरुरद्विधाषादी-जालामोदप्रस्यके रचयिता ।

गुरुरनारायण-रामिचरगुण-नाटकके रचयिता ।

गुरुरनारायण-दार्शनिकत्वका एक समिध शैलिकोंका । यह
दो पाठयमितायाके बीच बन्दुए नामक समनज देस-
में अर्थात्तन है ।

गुरुर परिद्वन-मनोहार नामक चर्मप्रस्यके प्रणेता ।

गुरुरांजि (सं० पु०) गुरुराणव जिप । १ तीरर चर ।
२ शेषोपुरी, गुया, मीम । ३ चरिचर । ४ धनु ।

गुरुरमदु-पार्थसारथि मिध रचित 'राजदोसिक' के
दोकाकार । दोकाका म.प्र. शा.म.दोसिक'प्रकाश है ।

गङ्गाधर-एक प्राचीन कवि ।

गङ्गाधर- (सं० श्लो०) गङ्गाधर काव्य सभा में प्रकाशित किताब का नाम है। परम विदित माना जाता है, इसकी रचना गङ्गाधर की है ।

गङ्गाधर- 'गङ्गाधर-संग्रह' का निरूपण है। नामक मोमांगामयके रचयिता । ये गङ्गाधर-संग्रह नामके परिचित थे ।

गङ्गाधर- १ विद्यालयकी शिक्षाकार । २ वास्तव-परिनिष्ठ प्रबोधनकारके प्रणेता । ३ देवीमाहात्म्य-कारका । ४ मूलभूतकारके रचयिता ।

गङ्गाधर- (सं० श्लो०) वास्तव, वास्तव ।

गङ्गाधर- मोमांगामय-संग्रह नामक विद्यालयकी प्रणयके प्रणेता । इसमें ८०० अनुच्छेद हैं ।

गङ्गाधर- (सं० पु०) महादेवजीका पत्नी, कौशिक ।

गङ्गाधर- महादेवजीका नामक विद्यालयके प्रणेता ।

गङ्गाधर- गङ्गाधर-देवी ।

गङ्गाधर- (सं० पु०) १ आमजनसेवाकारके विद्यालयके विद्यालयके प्रणयके प्रणेता । २ वास्तव-परिनिष्ठ प्रबोधनकारके प्रणेता । ३ देवीमाहात्म्य-कारका । ४ मूलभूतकारके रचयिता ।

(विद्यालयके)

गङ्गाधर- विद्यालयके प्रणयके प्रणेता । २ वास्तव-परिनिष्ठ प्रबोधनकारके प्रणेता । ३ देवीमाहात्म्य-कारका । ४ मूलभूतकारके रचयिता ।

(विद्यालयके)

२ गौ, गङ्गाधर और गङ्गाधर, इनकी परिभाषा (विद्यालयके प्रणयके) (विद्यालयके)

गङ्गाधर (सं० श्लो०) १ गङ्गाधर, गङ्गाधर (सं० श्लो०) २ गङ्गाधर, गङ्गाधर (सं० श्लो०) ३ गङ्गाधर की भाषा, गङ्गाधर, गङ्गाधर । ४ एक प्रकारका राग । इसमें सब सुष्ठु स्वर लगाने हैं । यह राग का गङ्गाधर पुत्र माना जाता है । विशेष विद्यालयके गङ्गाधर-संग्रह नामके रचयिता । (वि०) ५ गङ्गाधर-संग्रह नामके परिचित थे ।

गङ्गाधर- (सं० पु०) गङ्गाधर-संग्रह नामके रचयिता ।

गङ्गाधर- (सं० पु०) गङ्गाधर-संग्रह नामके रचयिता ।

गङ्गाधर- (सं० पु०) १ धर्मशास्त्रकार । २ प्रबोधनकारके रचयिता । ३ विद्यालयके प्रणेता नामके रचयिता ।

गङ्गाधर- वास्तव-परिनिष्ठ प्रबोधनकारके प्रणेता । २ वास्तव-परिनिष्ठ प्रबोधनकारके प्रणेता । ३ देवीमाहात्म्य-कारका । ४ मूलभूतकारके रचयिता ।

गङ्गाधर- (सं० पु०) १ गङ्गाधर-संग्रह नामके रचयिता । २ वास्तव-परिनिष्ठ प्रबोधनकारके प्रणेता । ३ देवीमाहात्म्य-कारका । ४ मूलभूतकारके रचयिता ।

गङ्गाधर- (सं० पु०) गङ्गाधर-संग्रह नामके रचयिता ।

गङ्गाधर- (सं० पु०) गङ्गाधर-संग्रह नामके रचयिता ।

ये मट्ट नामावन सीर पापोंके पुत्र तथा शमीभरके पीर थे। स्वर्गमित्र सीमासाधारणकाल प्रथमी जट्टरमट्टने सीमाभर मट्ट, दिग्भोभर, हेमादि सीर साधनापादां का नामोत्प्रेष किया है। जट्टरमट्टके पिताके मित्रा सर्वोपमेयकाल नामक मंत्रित्त व्यवहारजात्य, स्मृत्यवर्षावार, कालावर्षा, विष्णुयामिज्ज, सीमासाधारण प्रकाश, विधिरसाधनद्वय, प्रथमपुत्र, ज्ञान्यद्वीपिका प्रकाश, निर्णोपचन्द्रिका, धर्मद्वैतनिर्णय, धादकद्वयमार और उमको टोका इत्यादि जट्टर-रचित सीर मी बहुतसे प्राप्त हैं। इन सब प्रयोगोंसे द्वाभट्ट, मोलकण्ड, शमीर और मुर्मिंद नामक उनके चार पुत्रोंका उत्प्रेष मिलता है। उनके भतीजे दिवाकर तथा गीते जट्टरमट्ट मी परिणत कह कर विख्यात थे। ये ज्ञानोनिवासो थे।

जट्टरमट्ट—कुण्डमण्डपनिर्णय, कुण्डमाहरर नामक कुण्डोद्योतटीका, महाचारसीमट्ट, कुण्डार्क, कुण्डोद्योत-द्वय, संकशामद्वय, प्रणार्क और कर्मविवाकः नामक प्रबंधके रचयिता १० ये ज्ञानो-निवासो तथा कुण्डोद्योत-के प्रणेता मोलकण्ड भट्टके पुत्र थे। जट्टर-मट्ट सीमा-भरक थे। महादेव भट्टसमय दिवाकर मट्ट सम्प्रयत्ता इनके पाना थे। जट्टरने कर्मविवाकमें अपने पितामह के रचे हुए चार्मैतनिर्णय प्रबंधका उत्प्रेष किया है। ११, १२ ईंमें इन्होंने कुण्डोद्योतदर्शनकी रचना की।

जट्टरमट्ट—१ सीमासाधारणमट्ट नामक एक महत्व 'सीमासा' विनयवर्णित्त प्रबंधके रचयिता। २ "तद्वत् समर्पणमण्डलन"के प्रणेता। ३ प्रतिप्रापदतिचार। ४ पञ्चसार नामक सेद्यात्मप्रबंधके प्रणेता। ५ वटिनायेन्दु सेणटीका और जट्टरद्वेषरटीकाके रचयिता।

जट्टरसाधनोत्तम—मूर्तिद्वयार्थो मोर्तिके नियम तथा भावद्वयप्रमथनके प्रणेता।

जट्टरभाष्य (मं० प्र०) जट्टरद्वय भाष्य । जट्टरसाधनोत्तम मण्डल देवतान्तर उपाधिरही और सीमाका जो भाव प्रलयन किया, यही जट्टरभाष्य नाममें अधिहित है।

जट्टरमल (मं० पु०) एक प्रकारका लोहा। इसे टंकर लोह भी कहते हैं।

जट्टरमिथ—पद्मानुत्तररहितोपुत्र एक कवि।

जट्टरमिथ—रत्नमन्थो नामकी गोत्रमोविन्दकी रीकाके प्रणेता। ये दिग्भर मिथके पुत्र थे। इन्होंने ज्ञानि-नाथके अनुयोगसे इन प्रबंधकी रचना की।

जट्टरमिथ (महामहोपाध्याय)—वैशेषिक सूत्रोपाध्याय, व्यापकोपाध्यायोप्युपाध्याय, आरामपरवर्षिकरव्युपाध्याय और भेदप्रकाशकार। इनके मित्रा इन्होंने महद्वय-साध साध प्रबंधकी 'जट्टरो' नामी टोका, कलाइरद्वय, छ शोभा दिकोदार, साधविषयप्रयोग, धादकप्रति भादि प्रबंध लिखे हैं। जट्टरमिथ भयनाथ महामहोपाध्यायके पुत्र तथा गोपनाथ महामहोपाध्यायके साधुपुत्र थे। श्रीव-नाथ भयनाथके सुपुत्र थे तथा जट्टरने भयनाथके निर-द्वैत जिज्ञा ज्ञान किया। इन्होंने गोरीद्विगण्यर नामक तथा सामान्यनिर्णयकोट्ट नामक और भी द्वा प्रबंध लिखे थे। इनके भ्रातृपे इनके लिये जट्टरकोट्ट, महा-धरटीका, जगद्गोत्रीटीका, अनुमितिटीका, मयच्छेद्वैत-निर्णयटीका, अनिजसुपूर्वप्रबंधटीका, अनिजनिर्णय-प्रबंधटीका, उपाहरणलक्षणटीका, उपाधिपूर्वप्रबंधटीका, उपाधिनिर्णय प्रबंधटीका, कृतपरित्यक्तलक्षणटीका, कृतपरित्यक्तलक्षणटीका, कल्पनायवो प्रबंधटीका, तर्कप्रबंधटीका, सुशोचिमित्रलक्षणटीका, प्रियोचिमिथलक्षणटीका, पञ्चनाटीका, पञ्चनासिद्धात्मव-टीका, पञ्चलक्षणकोट्ट, पञ्चलक्षणटीका, परामार्गपूर्वप्र-बंधटीका, परामार्गसिद्धात्मप्रबंधटीका, पुञ्चलक्षणटीका, प्रतिज्ञालक्षणटीका, प्रथमप्रकारसिद्धलक्षणटीका, प्रथमप्र-थलक्षणटीका, वाचपूर्वप्रबंधटीका, वाचसिद्धात्मप्रबंध-टीका, विद्वत्पूर्वप्रबंधटीका, विद्वत्निर्णयटीका, वाचसि-द्धकोट्ट, मन्त्रनिर्णयनिर्णयप्रबंधटीका, मन्त्रनिर्णयपूर्वप्र-बंधटीका, सामान्यनिर्णयकोट्ट, सामान्यनिर्णयटीका, सामान्यनिर्णयवत्त, सामान्यलक्षणटीका, हेतुमत्त-टीका, जट्टरमट्टिय, जट्टरपत्र और जट्टरो नामक बहुतसे व्यापकबंध मिलते हैं।

जट्टरलात—निर्णयवैशेषिके प्रणेता भूवरके पुत्र सीमाभरके कुटुंबीक। ये विन्दुवारके जगद्वयकर्ता थे।

• 'जट्टरमण्डली' शिर्षके अन्तर्गत कर्कट कुंडल तथा ११

गङ्गुरवर्मा—एक प्राचीन कवि ।

गङ्गुरवाणी (मं० स्त्री०) गङ्गुरका वाक्य अर्थात् प्रजा-
याका शिक्षका स्वरूप होना परम निदिपित माना जाता है,
महा शोक परदेसको बात ।

गङ्गुरविन्दु—'निन्दव-संग्रह' या निन्दवसंग्रहाद् नामक
सोमसंज्ञाप्रयोगके रचयिता । ये गङ्गुरविन्दु नामसे
परिचित थे ।

गङ्गुरशर्मा—१ त्रिकाण्डशेषोपशोषिकाकार । २ वामन-
परिनिष्ठ प्रबोधप्रकाशिकाके प्रणेता । ३ देवीमाहात्म्य-
टीकाकार । ४ मूलमुपतावलीके रचयिता ।

गङ्गुरशुक (सं० पत्नी०) पारद, पारा ।

गङ्गुरशुक्र—सोमसंज्ञा-प्रयोग नामक वैष्णवग्रन्थो प्रयोगके
प्रणेता । इसमें ८०० अनुष्टुप् श्लोक हैं ।

गङ्गुरशैल (मं० पुं०) महादेश्यजीका पर्याय, कीदारा ।

गङ्गुरसेन—नाट्यसिद्धान्त नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता ।

गङ्गुरस्वामी—गङ्गुराचार्य देवो ।

गङ्गुरस्वयं (सं० पुं०) १ मातृवाक्यतोयापिठकारीक स्वयं
विशेष । स्वयंस्वरूपनामो—कपासकी लीची, कुलशो-
कनाथ, तिल, जौ, लाज भेरेण्डका मूल, सोमो, पुनर्णवा,
गजशोक, इन सब द्रव्योंमें यदि स्वामी न मिले, तो जौ
कुछ मिलना हो, उसीकी छे कर एक माघ कूटे और
कांजीमें सिल करे तथा उसमें दो पोटरों बंधे । पोंडे
प्रशयित्त अतिममय सुन्दरेके ऊपर कांजीमें भरी एक
दण्डो रख कर इसके मुँह पर अनेक छेड़याला एक
दण्ड रख दे । बाह्यमें दण्डों और दण्डनके मुँहकी कानध-
रें बन्ध कर दे । इसके बाद उस दण्डनके ऊपर
पूर्वोक्त दो पोटरोंकी एक एक कर दण्ड करे तथा उसी-
में कान्जा खेदे दे । इस प्रकार बार बार करना हीया ।
(वैद्यकशास्त्र)

गङ्गुरमें लिखा है, कि उच्चकोशल गौरवकी वामनस्व-
मी पोटरना बांध कर अथवा अथवा तसह कुरी हुई भीतव
की अण और विद्वोहन करके इसमें जौ खेदे
दिना जाता है, उसको गङ्गुरस्वयं कहते हैं ।

(वैद्यकशास्त्र)

२ श्री, मरिच और अज, इनको अतिमममय विष्णु
द्वारा प्ररुण करे । (संस्कृत १८५०)

गङ्गुरा (मं० स्त्री०) १ समीपुस, मफेद कीकर ।
(राशिनं०) २ मरिचक, मरिच । (संस्कृत) ३ गङ्गुर
की माया, निरासो, भयानो । ४ एक प्रकारका
राज । इसमें सब गुण अर लगाने हैं । यह क्षयक
राजका पुत्र माना जाता है । (सिंह विराट् गङ्गुर भेद
गङ्गुरामल्य परमें देवो । (सि०) ५ गुणशयिनी, मंगल
करिमासी ।

गङ्गुराचारी (मं० पुं०) धीनगुणवाच्यं हाग संख्यायित्त
श्रीव परमोका अनुवाचो ।

गङ्गुरादि (मं० पुं०) गुराचं गुरा, मफेद मदारका पेड़ ।
(राशिनं०)

गङ्गुरालय (मं० पुं०) १ धूम्रनीलाशोकाकार । २
प्रसंगुलप्रयोगके रचयिता । ३ विवेकसाधके प्रणेता
मानन्दारमाके शिष्य ।

गङ्गुराचार्य—भारतवर्षके अतिशय शक्तिशालि, सुप्रसिद्ध
अष्टौतथाइके प्रवक्त क तथा वैदायन और उपनिषद्भाष्य
कार । इनको भरतुडयल और अयाचार्य प्रसिद्धा
द्वेष कर परिष्कल समाजमें इन्हें 'गङ्गुराचार्य' माना है ।
भारतके सभी प्रधान स्वामीमें गङ्गुरका पर्यायण होने
तथा सभी स्वामन उनके अनुत्क भक्त और शिष्यानु-
शिष्यमें परिष्कल रहने पर भी भाषाओं प्रवक्तो भयान
शोचनी नहीं मिलतो । परन्तुहीनाममें कुछ अतिना
अभाविका रथो गौ मरी, पर उनमें इनकी प्ररुण शोचना
निष्कारण करना कठिन है । जो ही, अत्यन्त गङ्गुरका
भावमवृत्तान ने कर शिष्यता शोचना पुष्कल रथो गौ है,
उन्में भागम्परिहल गङ्गुराचार्य, विद्विवाय
परिचरिवाय गङ्गुराचार्य तथा भाष्यवाच्योहन गौरव
गङ्गुराचार्य नामक ग्रन्थ ही प्रधान और उल्लेखयोग्य है ।
इसके निशा नीलकण्ठ, मरुतामर, परमदंभ कामहाय
और प्रजापद विरचित लघु गङ्गुराचार्य, विद्वान्
शोषिणका गङ्गुराचार्य और सुदोमम भारतीकर
गङ्गुराचार्य नामके ग्रन्थों में उल्लेख है ।

गङ्गुराचार्यके ग्रन्थों में उल्लेख है "गङ्गुराचार्य"

भाष्यकर गङ्गुराचार्य ग्रन्थमें लिखा है, कि गङ्गुरा-
चार्यमें मरुतारके अन्तर्गत अन्तर्दि नामक अन्तर्गते
गङ्गुराचार्य और मरुता इकाके ग्रन्थों में उल्लेख
दिया ।

६५० ई०के पूर्वतया मदी है, यह भी गिना हुआ। तिर
 हय देखने हैं, कि मरुतदू, विदुवाभंद यादि सिमनेके
 परपत्नी मदीं है। और सिमनेका समय ७८३ ई०
 होमेके। बराल इहे ७८३ ई०के पहलेके मदीं कह सकते हैं।
 अतएव यह देखा गया है, कि ६५० ई०के ७८३के मध्य
 में एक इतना एक समय साविभूत हुए थे। समी प्रायः
 १३३ वर्षका अंतर रहा। हमें यहिदत के, की, पाठककी
 परंपराओंमें पूर्वोक्त स्त्रोत मिलने हैं। उन स्त्रोतोंकी
 संशुद्ध करनेमें इहे सिमने परिलभ उदात्ता पढ़ा या,
 यह सिमानात्मक अन्ति मात ही समझ सकते हैं। किन्तु
 इहेमि उन्निविन उक्तल पा कर भी छोड़ा मगभाव
 किया है। इहेमि गङ्गोकी ७८८ ई०का प्रथम बनाया
 है। परन्तु यह उनको भूल है। कुमारिलकी मरुतदू
 और विद्यात्मके समसामयिक मानते हुए भी गङ्गोकी
 कुमारिलके माघ मदीं छोटेका भाईकी माता है। उन-
 की मुक्ति यह है, कि कुमारिलने प्रसिद्धि नाम मदीं की,
 इसीलिसे तो गङ्गोने उक्त पापय उद्भूत मदीं किया।
 अतएव कुमारिलके ५० वर्ष छोटे गङ्गोका काल अनुमान
 करना उचित है। पाठक विधिंछ द्वितीय कारण यह है -
 कथामन्वितागरीमें लिखा है, कि मरुतदू कालराजके
 समसामयिक थे। इतिदुर्गाके सिमानामिमें कथाराजका
 समय ७१३ ई०के छोटे और ७८३ ई०के पहले मिलता है,
 इत्यादि। किन्तु इस मारम्यमें हमारा कहना है, कि दूसरे
 मंगकी सुलभाय कथामन्वितागरी अति भाषुनिक पुस्तक
 है। भाषुनिक पुस्तककी बात परसेमि सिमानाकी मध्यमा
 करना उचित मदीं। गङ्गोने कुमारिलका उद्धरण किया
 है, इसी यदि कुमारिल गङ्गोके ५० वर्ष पहलेके ही, तो
 विद्यात्मके तो सुहेकरका वंशज उद्भूत किया, इससे
 सुहेकर, विद्यात्मके ५० वर्ष पहलेके भाईकी वशीन होते।
 हमारे अभावमें यहिदत पाठककी मुक्ति का यह पूर्विक अंश
 है। जो ही, पूर्ण गिनाईकी ही मध्य करनेके लिये काल है,
 कि गङ्गो, कुमारिल और मरुतदू थे समसामयिक थे।
 परी पर यह कह देना उचित है, कि हमें जोहीकी पूर्वोक्त
 परपत्नी छोड़ जो पूरा मरुत तक कथा मदीं है मया
 सिम मुक्तिमेंके हमने मरुतदूकोके करीब किया है,
 इसीमें कीं गङ्गो सिम नामक हुए हैं, इस समयकी

पुस्तकादिमें मदीं ला गई है मयथा ये मुक्तिमें लेनकीं
 के अने अने अनुमानमें मुक्त मदीं है। अतएव
 गङ्गोका जाननिर्वाप करनेमें हमने इनकी ज्ञानकी
 भासावना मदीं की। अने सिमानाके अनुकूल हम
 प्रथमतः तीन मुक्तिमें देवते हैं। एक एक करतीये
 मुक्तिकोका उद्देश्य मोये किया गया है।

प्रथम। मयभूमिका समय स्थिर हो चुका है। ये
 ६१३ ७२१ ई०के मध्य भी विद्यमान थे, यह मदींवां-
 मयम है। गङ्गो पाण्डुपुत्र पण्डितने एक अने
 प्रायोंक कायके निजिन 'मालमोगाधर' के मदींमोंके
 पयन पाये हैं। तन्पुस्तकान्त वाचस्पतिकुल 'मोदवा'
 नामक पुस्तकके संस्करणमें इहेमि लिखा है, कि इहेमों-
 के महादेव मरुतदूके मनेम उहेमि इस मंगका विवरण
 पाया है। इसमें—

- (१) इति धीमदकुमारिलनिष्पहने मरुतोवाचक
 मुनोवाह्यु।
- (२) इति धीकुमारिलम्यामिप्रसादान्तसार्यमा-
 धीमदुपदेकापावीं विरचिते मालतोवाचये कथेऽप्यु।
- (३) इति धीमवमूनिविरचिते मालतोवाचये कथ-
 मेऽप्यु।

अर्थात् कुमारिलनिष्पहण, कुमारिलनिष्प उन्ने-
 थायंहेन और मयभूमि विरचिते तीन पुस्तक पुस्तक
 पयन तीन पुस्तक पुस्तक अन्वयके अंतमें पाये गये हैं।
 गङ्गो विरचितमें गङ्गोनिष्प मरुतनिष्प वा सुहेकरका
 नाम उन्नेकापावीं यह कर उन्निविन है। अतएव
 यह कहना होगा, कि ईश्वर ६१३ ७११ ई०में उक्त मर-
 मुनिके समय विद्यमान थे। 'मालमोगाधर' मयभूमि
 द्वारा मयम हुआ, इसी कारण यह मयभूमिके मदीं
 प्रथमिन हुआ होगा। उन्नेकापावीं है इसका अन्वय
 किया। इस प्रकार अनुमान करनेका कारण यह है,
 कि एक एकके सुभाव अर्थात् कुमारिलनिष्प हल, ही
 अंकी उन्नेकापावीं हल और कथम अंकी मयभूमि हल
 लिखा है। इसी परी तक कहा जा सकता है, कि
 गङ्गोका ३२ वर्ष उचित मयमकी उन्नेमदींके हीमें
 मदींमों उन्नेमदींके प्रथम मदीं मयम हुआ।

इत्यादि। गङ्गोकीके सुदरनागरीं देखा अन्व

है, कि गङ्गाने १४ विक्रमाब्दमें जगमगण किया।
 (पर यह भी देखा जाता है, कि सुदूरपूर्वमें सत्यंवाहन-
 मुनिने संश्रितनादीहके अन्तमें लिखा है, कि मनुवृत्त-
 के आदिप्रस्तावके समय उद्योति पुत्रकको रचना की।
 इन दोनों उचितदोनों परत कर देखनेमें अत्यन्त कष्टता
 होया, कि गङ्गका उक्त समय अर्थात् १४ विक्रमाब्द
 मातृपुत्रवर्षको प्रथम विक्रमाब्दका समय है, क्योंकि राजा
 आदित्य प्रथम विक्रमाब्दके आदि थे। उक्त विक्रमा-
 दित्य ६३० ई०से राज्य करने लगे थे। इसमें पूर्वका
 १४ विक्रमाब्द जो ६ ई०से ६८४ होता है। सुगतां
 यह कहा जा सकता है, कि गङ्गाने ६८४ ई०में जग-
 मगण किया था।

तृतीय। माघवाचायं पर अग्निपुत्र जन्मि धे।
 इनका परिचय देना निम्नलिखित है। उद्योति गङ्गका
 एक प्रदत्तस्वापन दिशा है। इसमें सिरके ४ प्रद अर्थात् मुकुट
 और केन्द्रमें अक्षरलिपि धे, ऐसा लिखा है। माघ
 ज्योतिष शास्त्रमें भी सुपरिचित धे। किन्तु फिर भी
 इनके इस प्रकार प्रदत्तस्वापनके वर्णनको हम लोग कवि-
 कल्पनाके गिया और कुछ भी नहीं कह सकते। क्योंकि
 यदि यह अर्थात् ज्योतिषिक वर्णन होता, तो माघवाचायं
 जगमगण तथा अन्त्यापवृष्टिदिशि करनेमें अक्षरि नहीं
 भूलते। जो हो, हम यहाँ तक कह सकते हैं, कि उक्त
 बात प्रदोक्तो उक्त स्थितिमें जो जो होता उचित है यह
 गङ्गाने प्रदत्त ज्योतिषमें अथवा उसके साथ गङ्गाने
 ज्योतिषको प्रकटा होता अक्षरदिक् है। अंगुष्ठ राजेश्वर-
 माघ ज्योतिषशास्त्रमें ऐसे अनुमानके लक्षणों को
 एक प्रकारका प्रदत्तस्वापन जिस समय हुआ था
 उसे निकालनेको श्रेय को। इस उद्योति उद्योति शंकर-
 के समयकाव्य सभी प्रवादीको परत एक जोड़ी निवार
 की। किन्तु जिसमें जो जोड़ीसे ये माघवर्षादिना योग
 विद्याम अर्थात्। पर ही उद्योति जिन गीतक जोड़ीको
 ले कर गङ्ग परिचय किया है उसमें ६८५ ई०में जो
 जोड़ी निवार की गई है, उसे देखनेसे अन्त्या तर्क मान्य
 होता है, कि उक्त जोड़ीमें शंकर ज्ये परत प्रदत्तस्वापन
 जन्मि उद्योति है। शंकर ज्ये जोड़ी

येसा नदी है। इसमें वेदशास्त्रयोग, मुक्तिमगणित
 पाणिनयोग, तर्कमुक्तिपरायणयोग, श्वायनाश्रित्द्वेषाग,
 प्रथमश्रुतियोग, मुक्तिपरायण, अग्न्युद्योग, अन्त्यापुत्रयोग,
 अक्षरजगतीपरीयोगयोग आदि शंकरके ज्योतिषके अनुवृत्त
 समो योग मिलते हैं। इसमें माघव-रिषि तान प्रदमें
 मेल है केवल एकमें मेल नहीं है। अग्न्युद्योग जाता
 है, कि हम लोगोंके निकटिन समयके साथ उद्योति-
 शास्त्रको भी साहायता है।

अभी हमें देचना चाहिये, कि गङ्गाने समयके लक्षण-
 में प्रचलित मत ४८८ ई० तथा हमारे निकटिन ६८४
 या ६८६ ई० इन दो समयके साथ मिल को हुए वैजि-
 हासिक परनाको कितनी प्रकटा है।

१। जो कहते हैं, कि चूतचुम्ब (Chuan Chuan)
 और इन्सिङ् (Issing) ये दो चीनपरिभाषक
 गङ्गाने परलेके हैं, वे हमारे निकटिन सिद्धांत पर
 आपसि नहीं कर सकते, क्योंकि, इन्सिङ् जिस समय
 भारतपर्यं आये थे, उस समय गङ्ग परतक थे।
 सुगतां इन्सिङ्का गङ्ग नामोन्नेय करना जिस प्रकार
 सम्भव हो सकता है।

२। चूतचुम्ब चूतचुम्बके समयकाव्यमें धे तथा
 गङ्गाने जिस समयमें चूतचुम्बका नामोन्नेय किया है,
 इससे यह मान्य नहीं होता, कि चूतचुम्ब गङ्गाने
 बहुत परले हो गये हैं। ४८८ ई० से और भी ६३०
 वर्षका अन्तर होता है।

३। कावपीरका राजतर्कित्की वर्तित स्थितिनिम्न-
 के समयको भी होय या कहीं प्रदत्तोंके अक्षरान्तर-
 में अक्षरवाह कविहम आदिकने गङ्ग कर्तुक स्थित किया
 है। ६८५ ई० होनेसे यह उचित हो सकता है, ४८८
 ई० होनेसे विद्वत् नदी हो सकता है।

४। श्रीरघुदेवशास्त्रात्मके लगी पुर्वकने जो
 कहा है, ६८५ ई० होनेसे यह सिद्धांत है (Sanskrit,
 ५. 1. 10.) ४८८ ई० होनेसे बहुत अन्तर परतक है।

५। माघवर्ष गङ्गाने जिनपर्यं प्रदत्त अर्थात्, ४८५,
 अग्निपुत्र जन्मि श्रीरघुदेवके साथ शंकरका
 मातृपुत्रका ६८५ ई० होनेसे गङ्गाने होता है, किन्तु

मन्त्र है। मन्त्रेण ज्ञेयिणे ह्य सो ज्ञान देवते है, यह
सुरोप अन्वयेनमामे उपलभ्य है। कर्तव्यनिष्ठमाध्वमे
शंकरने लिखा है—

“साक्षात्प्रेतभिमितकैव च नेत्रविभूषणभन्दिनाम्” इत्यादि ।

(२११३)

अथवा उपनिषद्भाष्ये भी सूक्तभाष्यमें शंकर-
दर्शनका यह प्रमाणनम यत् निश्चय विद्युत्कामे भी
विद्युत्कामे आलोचन हो सकता है। भारतमा जो
विद्युत्काम या केवल ज्ञानरूप है, गङ्गावाणीमें इस
निश्चयका अर्थो मंत्र विद्युत् किया है।

निर्दिशेत् इति ।

शंकरके मतमें ब्रह्म विद्युत् भीर निर्दिश है। ये
सूक्त नहीं है, सप्त नहीं है, असत् नहीं है, कार्य नहीं
है, कारण भी नहीं है, ब्रह्म इतिवाचो न है। सुनरां च
याचयमानके शक्तोपर है, यहाँ यत्, नहीं जा सकता, मन
नहीं जा सकता, याचय जो उभे भाषण नहीं कर
सकता। ये ज्ञाना नहीं है और न ज्ञेय हो है, ये ज्ञान-
के अर्थ भीर कियाके भी अर्थ है।

शंकरशास्त्राचार्योंने वेदान्तसूक्तभाष्यमें, गीताभाष्यमें,
बृहदारण्यक तथा अनेक उपनिषद्भाष्यमें निर्दिशेत् ब्रह्म-
के याचय है, ऐसे प्रमाणका उद्देश्य यह अपने निश्चय-
को स्थापित किया है।

शंकरोप वा सगुण ब्रह्म ही शंकरने ज्ञेयोकार
नहीं किया है। शंकरका कहना है, कि ईश्वर हो सगुण
ब्रह्म है। भाषाके सम्बन्धमें ब्रह्म ही सगुण ब्रह्म है।
शंकराचार्यके सिद्धान्तानुसार सगुणब्रह्म साविक है,
अनप्य ब्रह्म ही गुणमय भविष्यति अनित्य है। गुण
जिन प्रकार अनित्य ब्रह्मका सगुण है, अनित्यता भी
उसी प्रकार अनित्य है। भूमिमें शक्तिसे भीर सगुण
ब्रह्मका उद्देश्य है। शंकराचार्योंने यह धर्मिवाचय
स्वोपकार करने शुरू है। किन्तु शंकरके भाषाकारके ऐन्द्र-
कारिक प्रमाणों भूमिके सगुण ब्रह्म अनित्य भीर
विषयकामे बलिष्ठ हुए है। शंकरने इस सगुण ब्रह्ममें
ही शक्ति भीर गुणादिका अनित्य स्वरूपकार किया है।
किन्तु यह सगुण ब्रह्म एक अनित्य भीर साविक है, न
शक्ति भी साविक है। सुनरां शंकराचार्ये वचनार्थमें शक्ति-

वाही नहीं है तथा शक्तो मो प्रकार शक्तिके, पारमार्थि-
स्वरूपको स्वीकार नहीं करते।

गङ्गावाणी कहना है, कि शंकराचार्यके भाष्यमें ही ये
सगुण ब्रह्म स्वरूप हुए हैं। अगुणा इत्यति-विशति-
प्रत्यय आदिका कारण भी यही सगुण ब्रह्म है। किन्तु
साक्षात्कारके विषय आलोचने जब भाषाकार अथवा
दूत होता है, तब फिर इस संबंध भीर सर्वप्रमाणिकार
ब्रह्मका अस्तित्व नहीं रहता। निर्दिशेत् ब्रह्म हो एक-
मात्र सार भीर पारमार्थिक तत्त्व है। ज्ञान भीर
अवधारके अनुभाष्यमें शंकरने इस सगुण ब्रह्मको शो-
कार किया है, नहीं तो निर्दिशेत्में वरुण हो उनके प्रत्य-
स्वरूपका अर्थ सिद्धांत है।

अथेदं वा भवेत्वात् ।

कोई कोई समझते हैं, कि अथेदंवात् वा अत्र तवात्
शंकराचार्यका प्रयत्न है, किन्तु अगुणपूर्वक वेदान्त-
सूक्त उद्देश्ये समो ज्ञान करने हैं, कि वेदान्तसूक्त रसे
ज्ञानके बहुत पहले इस देशके प्रायिणीमें ये सब वाद
कर पधेय वादविशेषात् अथवा वा। साक्षरपर,
सोहोमि, वादरायण, आने वो, काशकृष्ण और अमिर्नि
आदि आदिगण ब्रह्म भीर जोवो अर्थमें विद्युत् विद्युत् भवि-
मत पोषण करते थे। शंकराचार्योंने वादिक भीर काम
हृत्कनका मत समर्थन करके, हो “ब्रह्म भीर जोव भविष्ण”
यह मत प्रचार किया है। केवल भाषा द्वारा ही जोव
भीर ब्रह्मका पारमर्थिक सूचित होता है। ज्ञानके साधनमें
जब भाषा निर्दिशत होतो है, तब जोव भीर ब्रह्ममें कोई
भी भेद नहीं रहता। यह विद्युत् विषयकालक केवल
भाषाकी ही सीमा है। यह अर्थ भीर भाषाविज्ञ
मिन्न मात्र है। एकमात्र ब्रह्म ही सत् भीर अित्य है।
यह ब्रह्म यत् भीर अस्तित्व है। ब्रह्म भीर जोवमें केवल
वृत्तता नहीं है। भाषावचना निर्दिशतया दिव्य
इमे वत् भीर सुनरां शोरीं हो एव है। ज्ञान ब्रह्मका गुण
नहीं है, ब्रह्म विद्युत् मात्र भीर विद्युत् अस्तित्व है।

ब्रह्म विद्युत् अर्थान् गुणमयनिर्दिशत है। यदि
कहा जाये, कि “यत् जो वरुणमय विद्युत् विद्युत्
विषयकालक दिव्य है, यह ज्ञान अस्तित्व है।
अथेदंवात् शंकरने इसके अर्थमें कहा है, कि पारम-

“श्लोकाद्धै न प्रवक्ष्यामि भद्रुकं” ग्रन्थकोटिपिः

ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥”

अर्थात् अनेक ग्रन्थोंमें शंकराचार्यके दार्शनिक तत्त्व-सम्बन्धमें जो सब सिरसति प्रकाशित हुए हैं, यह श्लोकाद्धै न विखलाये जाते हैं। यह सिद्धांत यह है, कि ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जोय ब्रह्मसे अभिन्न हैं।

फलतः शंकरका दार्शनिक अभिमत. इन तीन विषयोंकी प्रगाढ़ आलोचना पर ही पर्यवसित हुआ है। किंतु एकमात्र ब्रह्म ही मूलतत्त्व है। ब्रह्म मनोवाक्य-के अनोचर, अमरतकं, अविद्येय, एक, अद्वितीय, और चिरयात हैं। शंकरका कहना है कि यह विचित्र विशाल विध्यब्रह्माण्ड सृष्टिके पहले एकमात्र त्रिमात्र परमब्रह्म विद्यमान थे। यह परमब्रह्म एक और अद्वितीय है। ब्रह्म सत् और सृष्टि जगत् असत् है। माध्यमिक बौद्धिका सिद्धान्त यह है, कि सृष्टिके पहले कुछ भी न था। धोवाद् शंकराचार्यने माध्यमिक बौद्धिक इस सिद्धान्तको खण्डन कर वैदिक ग्रन्थकी मिति और तर्कयुक्तिके बल पर उन लोगोंका विपरीत सिद्धांत संस्थापन किया है। वे कहते हैं, कि असत्से सत्की उत्पत्ति असम्भव है।

माध्यमिक बौद्धगण शून्यवादी है। वे कहते हैं—

“रूपाणि रूपी पश्यति शून्यम्।

विज्ञान्त्वापतनं, पश्यति शून्यम् ॥”

किर दूसरी जगह लिखा है—

“शून्यमाध्यात्मिकं पश्य पश्य शून्यं वदित्तम् ॥”

(माध्यमिक सू० १८ अ०)

इस प्रकार शून्यवाद् अद्वितीयतात् प्रथमं नहो है. सो नहीं। हम धोमांगवतमें देखते हैं—

‘तत्र सद्ब्रह्म चित्तमाशुभ्य ज्योमिनि धारयेत्।

तत्र स्थरत्या मदारीहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥” (१११४)

किर दूसरी जगह लिखा है—

“सामप्ये बुद्ध चारमानं भातममप्ये सं बुद्ध।

भातमानं सम्यं कृतना न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥”

ये सब उक्तिवां शून्यवाद्को पोषक हैं। धोमच्छंकराचार्यने ब्रह्मतत्त्वका निरूपण करने हुए मायावाद्को सहायतासे इस विचित्र विध्यपञ्चकी कार्यात् शून्यमें परि-

णत किया है। उन्होंने ब्रह्मका जैसा स्वरूप निर्देश किया है वह व्यवहारिक विचारसे एक प्रकार शून्यवाद्का अवर पृष्ठ समझा जाता है। किंतु ब्रह्मसूत्रके द्वितीय अध्याय द्वितीय पादके २८वें सूत्रके ‘नामाय उपलब्धे’ भाष्यमें शंकरने दूसरी तरहसे शून्यवाद्का खण्डन किया है। शंकरका ब्रह्म ‘चिन्मात्र’ होने पर भी यह पूर्ण और सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप कह कर प्रतिष्ठ है। ब्रह्मवाक्यक उपनिषद्भाष्यमें उन्होंने ब्रह्मका पूर्ण नाम रखा है। यथा—

“न वयमुपहितेन रूपेण पूर्णतां वदामः किंतु केयलेन स्वरूपेण ॥” (ब्रह्मसूत्रक उपनिषद् ४।१)

शंकरका ब्रह्म नित्युण चिन्मात्र होने पर भी यह पूर्ण और विभु है।

ब्रह्म केवल पूर्ण और विभु नहीं है, ये स्वप्नकाश हैं। जगदुत्पत्तिका विषय शंकरने ईश्वरका अनुमान किया है। उन्होंने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें प्रथम अध्यायके प्रथम पादमें द्वितीय सूत्रभाष्यमें लिखा है—

“न यथोक्तविशेषणस्य जगतो यथोक्तविशेषणमीश्वरं मुपस्थानात् प्रधानाद्वैतनाशुभ्यो वा भावाद्वा संसारिणो वा उत्पत्त्यादि संभावयितुं शक्यम् ॥”

अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ईश्वर वा सगुण ब्रह्मव्यतीत शून्य या अतीव अणुसे अगथा जडस्वभाव प्रकृतिसे अथवा परमाणुसे, जन्म अथवा मरणवात् संसारी जीवसे, इस विचित्र जगत्का इस प्रकार सृष्टि-स्थिति-प्रलय होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। शंकर भावपदार्थके पूर्ण विभवासी थे। परंतु उनका खोहृत भावपदार्थ नित्य शुद्ध शुद्ध मुक्तस्वभाव है। यह भावपदार्थ चिद्रेकमात्र है।

तैत्तिरीय उपनिषद्के भाष्यमें शंकरने लिखा है—
“आत्मनः स्वरूपो ह्यस्ति ततो व्यतिरिच्यते अतो नित्येय। प्राक्तमगतवचनं लौकिकस्य ज्ञानस्य अन्तवचनवर्धनात् सत स्तत्रिवृत्तयः ॥” (२।१)

अर्थात् चिन्मात्र ही आत्मका स्वरूप है। यह ज्ञान उसके स्वरूपसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है। अनप्य यह नित्य है। किन्तु लौकिक ज्ञानकी सीमा है, ज्ञान-स्वरूप आत्मका अन्तर्गत नहीं है, यह असीम और

अनुभव है। सर्वोपन ज्ञानोपेक्षे द्वय को ज्ञान रूपमें है, यह सुयोग प्रत्यक्षितकामे उपलब्ध है। अज्ञोऽनियदुःखानामपि शक्तिमे विद्या है—

“मात्मानेनैवमिदं कर्मो न मेऽविदुःखमन्विताम्” इत्यारि।
(११११)

अस्याप्य उच्यतेऽनियदुःखानाम् और सुखमापयते शंकर-दर्शनका यह प्रयातनम एव सिद्धांत विवृतकर्मों और विमदुःखमें मालोचन हो सकता है। मात्मा जो विद्यात्मक या केवल ज्ञानरूप है, मद्रुराचार्योंने इस सिद्धांतका अर्थो नरद विवृत किया है।

निर्विशेष इम।

शंकरके मतमें प्रथम तिसुल और निष्कल है। ये कृष्ण नहीं हैं, सन् नहीं हैं, असन् नहीं हैं, काटी नहीं हैं, कारण भी नहीं हैं, प्रथम इन्द्रियगतो है। सुनता है वाक्पदानके अणोपर ही, यहाँ यद्गु नहीं जा सकता, मन नहीं जा सकता, वाक्पव जो उन्हें भाषण नहीं कर सकता। ये ज्ञाना नहीं हैं और न ज्ञेय हो है, ये ज्ञानके अणोन और कारणके भी अणोन है।

श्रीशंकराचार्योंने देशान्तरमाध्यमें, गीताभाष्यमें, पृथ्वरूपपर तथा अनेक उच्यतेऽनियदुःखानामपि निर्विशेषे प्रत्य-के तात्पर्य है, यैने प्रमाणां उच्यते इव अर्पने सिद्धांत-को संस्थापित किया है।

शिवोप या समुल प्रमाणां भी शंकरने अणोकार नहीं किया है। शंकरका कहना है, कि ईश्वर हो समुल प्रथ है। मायाके सत्त्वस्वमें प्रथ हो समुल प्रथ है। शंकराचार्योंके सिद्धांतानुसार समुलप्रथ साविक है, अणव्य प्रथको गुणमय अविभक्ति अनिरव है। गुण तिस प्रकार अनिरव प्रथका समुल है, अविभक्ति भी उभो प्रकार अनिरव है। धूमिमें अविशेष और समुल प्रथका उल्लेख है। शंकराचार्योंको ये सब धूमिवाक्पव अणोकार करने पड़े हैं। किन्तु शंकरके मायावाक्पके ऐष्ट-ज्ञानिक प्रयापमें धूमिके समुल प्रथ अनिरव और विरवाहकमें अनिरव हुए हैं। शंकरने इस समुल प्रथमें हो शक्ति और गुणादिका अस्तित्व स्वीकार किया है। किन्तु यह समुल प्रथ एक अनिरव और साविक है, नर शक्ति भी साविक है। सुनता शंकराचार्यों अणोकार्यो शक्ति-

वाक्पे नहीं है तथा शक्ति भी प्रकार शक्तिके, वात्माधि-कृत्यको स्वीकार नहीं करते।

मद्रुरका कहना है, कि अणवकारित भावमें हो ये समुल प्रथ स्वीकृत हुए हैं। अणुका उपनि-भ्यानि-प्रत्य वाक्पिका कारण भी यदो समुल प्रथ है। किन्तु मात्माज्ञानके विमल भावोदमे जब मायाका अणवकार दूर होता है, तब फिर इस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिवान् प्रथका अस्तित्व नहीं रहना। निर्विशेष प्रथ हो एव-मात्र सार और वात्माधिर्क तत्त्व है। मात्मा और अणवकारके अनुपापमें न करने इस समुल प्रथ को स्वी-कार किया है, नहीं तो निर्विशेषमें एवमद्रु हो उनके प्रथ तत्त्वका एवम सिद्धांत है।

अनेक एव अनेकवार।

कोई कोई समझते हैं, कि अनेकवार या अणु तथा अणोकाराचार्योंका प्रथिर्क है, किन्तु प्यानपूर्वक वेदान्त-रूप उदनेसे सभी ज्ञान साधने है, कि देशान्तरक रथे ज्ञानिके बहुत पदने इस देशके अविशेषोंमें ये सब शक्ति के कर एष्ये वाक्पिकोवाक्प अथवा वा। अश्विनरुच, मोक्ष-मोक्षि, वात्प्रापण, आते वा, कामरुच्य और त्रैलोक्यि साद्विषयिण प्रथ और जीवो नरुधे विच विच अवि-मल पोषण करते थे। शंकराचार्योंने वाक्पि और काम-रुचकका मन समर्थन करने हो “प्रथ और जीव अविमल” यह मन प्रचार किया है। केवल माया द्वारा हो जीव और प्रथका पाणोचव सूचित होता है। अज्ञके सत्त्वस्वमें जब माया तिरोहित होती है, तब जीव और प्रथके कोई भी चेष्ट नहीं रहना। यह विविध किञ्चिद्व्यपक अणव मायाको हो लीला है। यह अणु और मायाविशु-मिद मात्र है। एवमात्र प्रथ हो सन् और निरव है। यह प्रथ एव और अविनाप है। प्रथ और अणवोंमें कोई एवकत्ता नहीं है। मायावसना विविधता दिक्पारे हेने एव ही अणवना दोरी हो एव है। ज्ञान प्रथका गुण नहीं है, प्रथ विरवमात्र और विरुद्व अणवकप है।

प्रथ तिसुल अणोन् गुणमयविशेषीण है। यदि कदा कदा, कि यह जो परिदुःखमय विविध विद्यात विध्वन्नात्त्व दिक्पारे देना है, यह कदा एवमद्रु है। अनेकवारों न करने इसने उल्लेखे कहा है, कि वात्मा-

“श्लोकाद्वैतं न प्रवक्ष्यामि मद्बुक्” प्रथमोक्तिविधिः

ब्रह्मसत्यं जगन्निष्ठं जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥”

अर्थात् अनेक प्रत्येकमें शंकराचार्यके दार्शनिक तत्त्व-सम्बंधमें जो सब सिद्धांत प्रकाशित हुए हैं, यह श्लोकाद्वैतमें दिखलाये जाते हैं। यह सिद्धांत यह है, कि ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जोय ब्रह्मसे अमिश्र है।

फलतः शंकरका दार्शनिक अभिमत इन तीन विषयोंकी प्रगाढ़ आलोचना पर ही पर्यायसित हुआ है। किंतु एकमात्र ब्रह्म ही मूलतत्त्व है। ब्रह्म मनोवाक्य-के समोत्तर, अमरतक, अविश्लेष्य, एक, अद्वितीय, और चित्वात्त है। शंकरका कहना है कि यह विचित्र विशाल विश्वब्रह्माण्ड सृष्टिके पहले एकमात्र चिन्मात्र परमब्रह्म विद्यमान थे। यह परमब्रह्म एक और अद्वितीय है। ब्रह्म सत् और सृष्टि जगत् असत् है। माध्यमिक बौद्धोंका सिद्धांत यह है, कि सृष्टिके पहले कुछ भी न था। धोपाद् शंकराचार्यने माध्यमिक बौद्धोंके इस सिद्धांतकी खण्डन कर वैदिक मन्त्रकी मिति और तर्कयुक्तिके बल पर उन लोगोंका विपरीत सिद्धांत संस्थापन किया है। ये कहते हैं, कि असत्से सत्की उत्पत्ति असम्भव है।

माध्यमिक बौद्धगण शून्यवादी हैं। ये कहते हैं—

“रूपाणि रूपो पश्यति शून्यम्।

विज्ञान्त्वापतनं, पश्यति शून्यम् ॥”

किर दूसरी जगह लिखा है—

“शून्यमाध्यात्मिकः पश्य पश्य शून्यं यद्विगतम् ॥”

(माध्यमिक सू० १८ अ०)

इस प्रकार शून्यवाद् अविमणोत्तं प्रथमं नहो” है जो नही। हम धोमागतमें देखते हैं—

“तत्र रूपं पदं चित्तमाहृत्य व्योमिन् धारयेत्।

तत्र स्थयत्वा मशरोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥” (१११४)

किर दूसरी जगह लिखा है—

“साम्ये क्व चित्तमानं भातमप्येव खं मुहं।

भातमानं साम्यं कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥”

ये सब उक्तियां शून्यवाद्का पोषक हैं। धोमच्छङ्कराचार्यने ब्रह्मसत्यकी निरूपण करने हुए मायावाद्की सहायतासे इस विचित्र विश्वप्रपञ्चकी कार्जतः शून्यमें परि-

णत किया है। उन्होंने ब्रह्मका जैसा स्वरूप निर्दिष्ट किया है यह श्वयहारिक विचारसे एक प्रकार शून्यवाद्का अपर पृष्ठ समझा जाता है। किंतु ब्रह्मसूत्रके द्वितीय अध्याय द्वितीय पादके २८वें सूत्रके ‘नाभाव उपलब्धेः’ भाष्यमें शङ्करने दूसरी तरहसे शून्यवाद्का खण्डन किया है। शङ्करका ब्रह्म ‘चिन्मात्र’ होने पर भी यह पूर्ण और सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप कह कर प्रसिद्ध है। शृङ्गारण्यक उपनिषद्भाष्यमें उन्होंने ब्रह्मका पूर्ण नाम रखा है। यथा—

“न यद्यमुपहितेन रूपेण पूर्णतां वदामः किंतु केपलेन स्वरूपेण ॥” (शृङ्गारण्यक उपनिषद् ४।२)

शंकरका ब्रह्म निगुण चिन्मात्र होने पर भी यह पूर्ण और विभु है।

ब्रह्म केवल पूर्ण और विभु नहीं है, ये स्वप्रकाश हैं।

जगदुत्पत्तिका विषय शं. रने ईश्वरका अनुमान किया है। उन्होंने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें प्रथम अध्यायके प्रथम पादमें द्वितीय सूत्रभाष्यमें लिखा है—

“न यथोक्तविशेषणस्य जगतो यथोक्तविशेषणमोश्वरं मुष्यत्यानृतः प्रधानाद्वचेतनाहणुष्यो वा भावाद्या संसारिणो वा उत्पत्त्यादि संभावयितुं शक्यम् ॥”

अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ईश्वर या सगुण ब्रह्मस्थित शून्य या सतीव अणुसे अथवा अदृश्यभाव प्रकृतिसे अथवा परमाणुसे, जन्म अथवा मरणवान् संसारो जोषर, इस विचित्र जगत्का इस प्रकार सृष्टिस्थिति-प्रलय होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। शंकर भाष्यपदार्थके पूर्ण विश्वासी थे। परंतु उनका खोखल भावपदार्थ नित्य शुद्ध सुख मुक्तस्वभाव है। यह भाष्यपदार्थ चिदेकमात्र है।

तैत्तिरीय उपनिषद्के भाष्यमें शंकरने लिखा है—

“आत्मनः स्वरूपो ह्यस्मिन् ततो व्यतिरिच्यते जतो नित्येय। प्राप्तमगतवश्यं लौकिकस्य ज्ञानस्य अन्तवत्स्वरूपान्तात् अत्र स्तान्निवृत्त्यर्थं ॥” (२।१)

अर्थात् चिन्मात्र ही आत्मनाका स्वरूप है। यह ज्ञान उसके स्वरूपसे किसी प्रकार मिश्र नहीं है। अतएव यह नित्य है। किन्तु लौकिक ज्ञानकी सीमा है, ज्ञान-स्वरूप आत्मनाका अन्तर्गत नहीं है, यह असौम्य और

यिकं हिंसासे यह विद्युत् प्रज्ञाएड अलोक और अया-
न्तर नहीं है, ता क्या है। सगुण ब्रह्मके मायागुणसे ही
जगत्प्रपञ्चका अस्तित्व प्रतिभात होता है। यह जगत्
एक इन्द्रजाल मान है। यह माया अत्रिया नामसे भी
पुकारी जाती है। यह माया सत् भी नहीं है और न
असत् हो है। तत्त्वज्ञानके निकट यह माया असत् और
व्यवहारिक ज्ञानके सामने सत् मामी जाती है। यह
माया सद्सदात्मिका और अनवंचनीय माया ही जगत्-
की उपादान है। मायागुणसमन्वित ब्रह्म ही ईश्वर है।
ईश्वर मायाशक्तिके इन्द्रजालमें ऐन्द्रजालिकी तरह यह
जगत् मायाधोन जीवको प्रत्यक्ष ब्रह्मलता है। माया ही
भेदज्ञानका कारण है। यह जो अनन्त जीव प्रत्यक्ष
ब्रह्माई देता है, इनकी पृथक्ता केवल माया हीकी
कोड़ा मान है। नहीं तो एक अक्षण्ड अद्वितीय ब्रह्मको
छेद और सभी मायाके इन्द्रजालमान है। मायावद-
व्यक्तिके जो पाठोपपन्न है, वह भी मिथ्या है। बह-
जीव मायाका मोह आवरण भेद कर परमतत्त्व देख नहीं
सकता, अतएव मायावद जीवके 'अहं ब्रह्म' ऐसा
ज्ञान नहीं होता। जीव अपनेको ब्रह्म न समझ कर
मायाकी उपाधिके ही अहं समझता है। मायोपहित
देही जीव अहं समझ कर भ्रान्तिकूपमें जाता जाते हैं,
सुविशाल ब्रह्म-सागरकी आनन्दलीलाहरी फिर उसके
ज्ञाननेत्रका गोचर नहीं होती। आत्मा विमुक्त ज्ञान-
स्वरूप निष्क्रिय और अनन्त है, जीवकी यह ज्ञान नहीं
रहता। जीवका ज्ञान अपनी देहमें सीमाबद्ध रहती
है। इस समय जीव अपने एतकर्मके फलसे सुखति
दुःखति भ्रमण करता है। इस कारण जीवकी सुख दुःख
का भोग करना होता है तथा जन्म-मरण-प्रवाहकूप
यातना सहा करनी होती है। ईश्वर जीवोंको दुःखति
और सुखतिका फल होता है। बन्धके अन्तमें जगत्का
प्रलय होता है। उस समय यह विचित्र विश्वप्रज्ञाएड
मायामें विलीन हो जाता है। जीवकी फिर कोई
उपाधि नहीं रहती। किन्तु फिर भी जब तक उनके
एतकर्मका प्रायश्चित्त नहीं होता, तब तक ये कर्मा-
नुसार जन्ममरण करते हैं। इस प्रकार मायावद जीव-
अनन्त संसार-प्रवाहमें समथ करते हैं।

मुक्तिका उपाय।

शंकरका कहना है, कि इस अनन्त संसार-प्रवाहसे
जीव किस प्रकार विमुक्त हो सकता है, उसका विधान
वेदमें देखनेमें आता है। कर्माण्डलमें यागयज्ञ आदि
क्रियादिकी व्यवस्था है। किन्तु इससे जीव मुक्तिलाम
नहीं करता। स्वर्गादिके लिये कितने भी यज्ञका अनु-
ष्ठान क्यों न किया जाये, उससे जीवकी मुक्ति नहीं हो
सकती। वैदिक ज्ञानकाण्ड ही पर्यालोचनासे दो प्रकार
ब्रह्मके विषय जाने गये हैं—एक सगुण ब्रह्म और दूसरा
निर्गुण ब्रह्म। सगुण ब्रह्मका ईश्वर नाम रखा गया है।
जागतिक क्रियादि इस सगुण ब्रह्मका कार्य है। सगुण
ब्रह्मके साथ ही इस जगत्प्रपञ्चका सम्बन्ध है। परम
ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय है। उनके साथ भाविक
जगत्का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, ये परमात्मा है।
सगुण ब्रह्मको उपासनासे मुक्तिलाम नहीं होता। पर
ब्रह्मका ज्ञान नहीं होनेसे संसारदुःखसे जीव मुक्ति-
लाम नहीं कर सकता। 'तत्त्वमसि' महावाक्यके
अनुष्ठानसे जीव और ब्रह्मका भिन्न ज्ञान जब तिरौहित
होता है, तभी जीव मुक्तिलाम कर अपने स्वरूपको प्राप्त
होता है। शंकरके सिद्धांतका यही सारगर्भांशित
मर्म है। वेदान्त शब्द देखो।

शङ्करादि (सं० पु०) शृङ्गार्कवृक्ष, सफेद मदारका पेड़।

(राजनि०)

शङ्करानन्द (सं० पु०) १ धृतिगीताटीकाकार। २ ब्रह्म-
सूत्रप्रदीपके रचयिता। ३ विवेकसारके प्रणेता,
मानन्दार्त्माके शिष्य।

शङ्करानन्द—पाण्डेश और ते कटाशका पुत्र। ये सायण
और पञ्चरात्रीकार माधवाचार्यके गुरु थे। शंकरानन्द
आनन्दार्त्मा मुनिके शिष्य थे। इन्होंने आत्मपुराण
नामक वैदिक ग्रन्थकी रचना की। इनके रचित
दूसरे ग्रन्थ ये सब हैं—भगवद्गीतातात्पर्यटीका,
शिवसहस्रनामटीका, सर्गपुराणसार, यत्पुस्तकानुपदति।
इन्होंने निम्नलिखित उपनिषद्की टीका रची—अथर्व-

• "उपनिषद्-रत्न" एका वृषभ नाम है। इतमें इश्वरके
भाकारके बहुत ही उन्नतके विवरण लिखित है।"

पिंक हिसाबसे यह विषय ब्रह्माण्ड अलोक और अवा-
स्तर नहीं है, ता क्या है। सगुण ब्रह्मके मायागुणसे ही
जगत्प्रपञ्चका अस्तित्व प्रतिपात होता है। यह जगत्
एक इन्द्रजाल माल है। यह माया अविद्या नामसे भी
पुकारी जाती है। यह माया सत् भी नहीं है और न
असत् ही है। तत्त्वज्ञानके निकट यह माया असत् और
व्यवहारिक ज्ञानके सामने सत् मानो जातो है। यह
माया स्रष्टात्मिका और अनर्पवनीय माया ही जगत्-
को उपादान है। मायागुणसमन्वित ब्रह्म ही ईश्वर है।
ईश्वर मायाशक्तिके इन्द्रजालमें वेन्द्रजालिकको तरह यह
जगत् मायाधीन जीवको प्रत्यक्ष दिखलाता है। माया ही
भेदज्ञानका कारण है। यह जो अनन्त जीव प्रत्यक्ष
दिखाई देता है, इनकी पृथक्ता केवल माया हीकी
मोझा माल है। नहीं तो एक अक्षण्ड अद्वितीय ब्रह्मको
छोड़ और सभी मायाके इन्द्रजालमाल हैं। मायाबद्ध
व्यक्तिके जो पाठोपपञ्चान है, यह भी मिट्टा है। बद्ध
जीव मायाका मोह आवरण भेद कर परमतत्त्व देख नहीं
सकता, अतएव मायाबद्ध जीवके 'अहं ब्रह्म' ऐसा
ज्ञान नहीं होता। जीव अपनेको ब्रह्म न समझ कर
मायाकी उपाधिके ही अहं समझता है। मायाबद्ध
देही जीव अहं समझ कर भ्रान्तिकृपमें मोता जाते हैं,
सुविशाल ब्रह्म-सागरकी आनन्दलोलालहरी फिर उसके
ज्ञाननेत्रका गोचर नहीं होता। आत्मा विशुद्ध ज्ञान-
स्वरूप निष्क्रिय और अनन्त है, जीवको यह ज्ञान नहीं
रहता। जीवका ज्ञान अपनी देहमें सीमाबद्ध रहती
है। इस समय जीव अपने अहंकारके फलसे सृष्टि
दुष्टि अज्ञान करता है। इस कारण जीवको सुख दुःख
का भोग करना होता है तथा जन्म-मरण-प्रवाहरूप
पातना सहा करनी होती है। ईश्वर जीवोंको दुष्टि
और सृष्टिका फल होता है। बद्धके अन्तमें जगत्का
प्रलय होता है। उस समय यह विचित्र विश्वब्रह्माण्ड
मायामें विलीन हो जाता है। जीवको फिर कोई
उपाधि नहीं रहती। किन्तु फिर भी जब तक उनके
अहंकारका प्रायश्चित्त नहीं होता, तब तक वे कर्म-
नुसार जन्ममरण करते हैं। इस प्रकार मायाबद्ध जीव-
अनन्त संसार प्रवाहमें समन करते हैं।

मुक्तिका उपाय।

शंकरका कहना है, कि इस अनन्त संसार-प्रवाहसे
जीव किस प्रकार विमुक्त हो सकता है, उसका विधान
वेदमें देखनेमें आता है। कर्मकाण्डमें 'यागयज्ञ आदि
क्रियादिको व्यवस्था है। किन्तु इससे जीव मुक्तिलाम
नहीं करता। स्वर्गादिके लिये कितने भी यज्ञका अनु-
ष्ठान क्यों न किया जाये, उससे जीवकी मुक्ति नहीं हो
सकती। वैदिक ज्ञानकाण्ड ही पर्यालोचनासे दो प्रकार
ब्रह्मके विषय जाने गये हैं—एक सगुण ब्रह्म और दूसरा
निगुण ब्रह्म। सगुण ब्रह्मका ईश्वर नाम रखा गया है।
जागतिक क्रियादि इस सगुण ब्रह्मका कार्य है। सगुण
ब्रह्मके साथ ही इस जगत्प्रपञ्चका सम्बन्ध है। परम
ब्रह्म निगुण और निष्क्रिय है। उनके साथ मायिक
जगत्का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, वे परमात्मा हैं।
सगुण ब्रह्मकी उपासनासे मुक्तिलाम नहीं होता। पर
ब्रह्मका ज्ञान नहीं होनेसे संसारदुःखसे जीव मुक्ति-
लाम नहीं कर सकता। "तत्त्वमसि" महावाक्यके
अनुष्ठानसे जीव और ब्रह्मका भिन्न ज्ञान जब तिरोहित
होता है, तभी जीव मुक्तिलाम कर अपने स्वरूपको प्राप्त
होता है। शंकरके सिद्धान्तका यही सारगर्भासिद्ध
मर्म है। वेदान्त शब्द देखो।

शङ्करादि (सं० पु०) शृङ्गार्केश्वर, सफेद मधारका पेड़।

(राजनि०)

शङ्करानन्द (सं० पु०) १ श्रुतिगीताटीकाकार। २ ब्रह्म-
सूत्रप्रदीपके रचयिता। ३ विवेकसारके प्रणेता,
मानन्दारामके शिष्य।

शङ्करानन्द—वाक्येश और तैत्तिरीयवाक्ये पुत्र। वे सायण
और पञ्चदशोत्तर माधवाचार्यके गुरु थे। शंकरानन्द
मानन्दाराम मुनिके शिष्य थे। इन्होंने आत्मपुराण
नामक वैदिक ग्रन्थकी रचना की। इनके रचित
दूसरे ग्रन्थ थे सब हैं—भगवद्गीतातारकविधिमी,
शिवसहस्रनामटीका, सर्वपुराणसार, यद्यनुष्ठानपद्धति।
इन्होंने निरमलिवित वपनिपटुकी शीपिका रची—अर्था-

● "अनिश्वर-रत्न" इत्याक दूध नाम है। इतमें इमोके
भाकारके बहुत ही उर, नरके निरप्या-विषय दे।"

प्रत्येक पुत्रात्मि संकोरपतिविराज इम प्रकार
 विना है—देशादिदेव महादेवका मन्त्राह कामके मारोह
 महान देशीयमान मूल जब कामपत्नीर देशानुद्धके
 ऊपर गिरा तब इसको देह मया हो गई। इस पर
 महादेव बड़े मगध हुए और उन्होंने उमको दृष्टिपूर्वकी
 मयणाशुभि निक दिया। उदों मर दृष्टिपूर्वकी मना
 प्रहारमें शंकाकी उत्पत्ति हुई। (मन्त्रे ० मन्त्रिण ० १८ म०)

शंकाका साहाय्य—देवतादिकी पूजासे शंका कनि
 पवित पदार्थ है। उमका मूल शीर्षजल सपुना तथा
 देवताओंका स्नानन प्रतिपद है। शंकाकी उत्पत्ति
 जहां तक जाती है, वहां मन्त्रोद्देशी स्थितमावसे मन-
 स्थान बनती है। शंकामें संधंश हरि बाग करते हैं, मन-
 पन जहां शंका रहता है, लक्ष्मीमार्ग न पदात्ता कुल सम-
 दून दूर कर मर्षदा उम स्थानमें बास करते हैं। बिम्बु
 यदि किसी स्त्रीका द्वारा यह शंका बजाया जाय, तो
 लक्ष्मी मयनीन और जगमग्न हो कर वहांसे दूरसे
 जगद चली जाती है। (मन्त्रे ०) शंकामें कविला माय-
 का दूध भर कर उमसे मारापत्नीके स्नान करातेसे मयुन
 महत्त पक्षका फल लाभ होता है। जिस किसी माय
 का दूध शंकासे भर कर मारापत्नीके स्नान करातेसे प्रस-
 पद लाभ होता। शंकाका मूलाजल द्वारा 'जमो माराप
 पाव' कह कर विष्णुको स्नान करातेसे जीव मोक्षिमदू
 से मुक्त होता है। शंकासंलग्न विष्णुकादेशुकी गित या
 मयनी गिता कर मज वीणाशंका शैलेसे चारुपत्त-
 यनका फललाभ होता है। मदी, तड़ाग, कुप, मयोवर,
 दूद मादि जिस किसी जलाशयका जल कबो न हो,
 वह शंकासे दामनेसे मूलाजलके समान हो जाता है।
 जो वीणाय शंकाय विष्णुकादाशुको मन्त्रक पर धारण
 कर विषय महत्त बनता है, उमको गितकी धेनु
 मयनीमें होती है। विष्णुवर्गमें जिसमें सोध है वासुदेव-
 की भाषणे में मयो शंकाके भीतर अधिष्ठित है, इस
 कारण 'जं' पुरा मारापत्नीके विष्णुका विष्णुका करे।
 मयिना: मारीदेवक पादपत्रय मयोदूजु मे।" इस
 मयने मारीका शंकाकी मर्षना जाता कर्षण है। यह
 मय मयकादि द्वारा जो वासुदेवके मयने शंकाकी
 मर्षना करते हैं, मयने उम पर मारा प्रभाव रहता है।

शंकाकी मर्षना बनता तो दूर रहे, मयो मयन मयने
 ही मयोदय होने पर निजिरविष्णुकी मय पादपति
 विष्णु हो जाती है। यज्ञमय शंकाके मयने मयुन
 पदापोके मयने महत्त मयनेमें विमक्त हो विमक्त होने
 है। मयदून, पिनाम, उम, माराण मादि जिस शंकाकी
 मय पर शंकोरक है, उम देव मयनीन हो दूर मयने
 है। मयद, मैमिलक और काय स्थानागिन विष्णुकादि-
 में जो शंकाकी मर्षना करते हैं, मयनेमयने उमको
 मयि होती है। (पद्योपाय ० १२२ म०)

दक्षिणावर्तीशंकासाहाय्य—पूर्वदिग्गामिनी मदीके
 दिशारे जा कर दक्षिणावर्तीशंका द्वारा विधिपत्तु अधिपेक
 करनेसे मयो पाव मय होने है। जिस और जल
 संशुद्ध दक्षिणावर्तीशंका द्वारा उम प्रहारकी पूर्वदिग्
 गामिनी मदीके मयने मयि पदार्थ निमिश्रित कर पमा
 विधि अधिपेक करनेसे जीवम भरका विषा हुआ पाव
 उमो समय मय होता है। दक्षिणावर्तीशंका द्वारा
 पविश्रोपित जल दृष्टिपत्तसे महत्तक दूर धारण करनेसे
 जगमागिन पाव उमो समय जाने रहने है। इससे कयो
 जो मयनी या मूचरकी मदी मयना चारुपे। इस
 मयने जलपाय बनता मयदा मयिद है। (मारादू०)

दक्षिणावर्तीशंका साधापत्तः दूपाय है। इस
 कारण इसका मूय भी अधिपक है। यह दक्षिणावर्ती-
 शंका गुल्मानुमार ४००)५००) मयने विरता है। मया-
 वशींकासे जहां हम मुद मया कर शंकाकर करते हैं,
 दक्षिणावर्तीका यह मयुन कयो मयनेमें मयुने मयुन
 पत्तुन कयोदुमसे प्रपेठ करनी है। इस मयनेके कारण
 यह मय मयने गिता जाता है।

आदिवासाय मयने गिता है, कि दक्षिणावर्तीशंका द्वारा
 हरिको मयनेका मयने मय जगमदून पाव मय होने है।

मुक्तिरयनक कनिमें शंकाकी मयनेमयने गिता
 मया है। यह मय शंकोरुपदूजने मूलादू देवने मय
 मयिना मयनेय कयोने जो मया जाता है। मयने
 मयो महत्त मयुकी मय या मयिमुद होता है। मयु
 महत्त मयुन और यह महत्त मयो तथा मया होता है।
 मय और दक्षिणावर्ती मयने यह से मयका है।
 मयने दक्षिणावर्ती मयु, मय और मयनेमय है।

शङ्ख शर्पा (सं० पु०) शङ्ख श्व कर्णा यस्य । १ गर्दम, गद्दा । (शिका०) २ दानवविशेष । (हरिवंश ३१८) ३ नागविशेष । (भारत ११७११) ४ शङ्खसदृश कर्णविशिष्ट, यह जिसके कान शङ्खके समान लम्बे और नुकीले हों ।

शङ्ख कर्णा (सं० पु०) शिव, महादेव ।

शङ्ख कर्णभर (सं० पु०) शिवशङ्खभेद । (भारत वनपर्व)

शङ्खरि (सं० पु०) शङ्खमरस्य, सङ्खचो मछलो । (शम्भरत्ना०)

शङ्खच्छाया (सं० स्त्री०) प्राचीन कालकी बारह अंगुल की एक नुकीली सूंटी । इसका ऊपरी भाग नुकीला होता था । इसकी छायासे समयका परिमाण मातृम किया जाता था ।

शङ्खजिह्व (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार एक गणित (Gnomon-sine) ।

शङ्खतम (सं० पु०) शङ्खरिय तमः । शालका वृक्ष । (शम्भरत्ना०)

शङ्खद्वार (सं० पु०) गुजरातके समापके एक छोटे टापू का नाम । यहाँ शङ्ख नारायणकी मूर्ति है ।

शङ्खनारायण (सं० पु०) नारायणकी यह मूर्ति जो शङ्खद्वार टापूमें है ।

शङ्खपथ (सं० पु०) पथभेद । (वा १११७७)

शङ्खपुच्छ (सं० स्त्री०) जिसकी पूँछमें डंक है । (राजतरु ३१६६)

शङ्खफणिन् (सं० पु०) जलमें होनेवाला जस्तु, जलचर । (हेम)

शङ्खफलिका (सं० स्त्री०) सफेद कोकर ।

शङ्खफली (सं० स्त्री०) सफेद कोकर ।

शङ्खमम् (सं० स्त्री०) शङ्ख मरस्ये मतुप् । शङ्खविशिष्ट, शङ्खमुक ।

शङ्खमतो (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द । इसके पहले पादमें पाँच और शेष तीनोंमें छः छः या दससे कुछ न्यूनवाचक वर्ण होने हैं ।

शङ्खमुख (सं० स्त्री०) १ शङ्खके समान मुखवाला । (पु०) २ कुम्भोद, मगर । ३ शूद्रा, बिज्जी भादि ।

शङ्खमुष्णो (सं० स्त्री०) शूलिका, शोक ।

शङ्खुर (सं० स्त्री०) शङ्खयनेऽस्मादिति शंक् वाहुल्यत्वात् । १ तासदायो, भोषण, भयंकर । (हेम) २ पुराणानुसार एक दानवका नाम । (विष्णुपु०)

शङ्खुला (सं० स्त्री०) शङ्खपूर्वात् लातः (भातोऽनुभक्तः का १३२) इति कप्रवये शङ्खुला, (उष् १३७) शङ्खपूर्वात्लातेर्छप्रथे कविधानमिति वा कः प्रवयः । (काशिका ६३६) १ उद्वलपत्रिका । २ पूषकर्णो, सुपारो काटनेका सरीता ।

शङ्खुलाघण्ट (सं० स्त्री०) यह वस्तु जो सर्गतेसे बंघाघण्ट की गई है ।

शङ्खुवृक्ष (सं० पु०) शङ्खारव वृक्षः । शालका पेड़ । (रत्नभाषा)

शङ्खुशिरस् (सं० पु०) शङ्खरविशेष । (भागवत ६।६।१०)

शङ्खुश्रवणा (सं० स्त्री०) शङ्खुरिय श्रवणी यस्य । शङ्खके समान कर्णविशिष्ट, जिसके कान शङ्खके समान हैं । शङ्खके समान कान होनेसे राजा होता है ।

शङ्खुष्ठ (सं० स्त्री०) शङ्खुस्थानक, सस्य पाः । (पा ८।३।६७) शङ्खुमें अवस्थित ।

शङ्खुत् (सं० स्त्री०) शङ्खुत्-किल्प् । मङ्गलकारी ।

शङ्खुच (सं० पु०) शङ्खुमरस्य, सङ्खचो मछली । (जटाधर)

शङ्खुचि (सं० पु०) शङ्खुच देवो ।

शङ्खुजिह्व (सं० स्त्री०) नैमित्तिक ।

शङ्खु (सं० पु० स्त्री०) शाम्पति अनुग्रहमादिति शंम-स्य (शमेः सः) उष् १।१०४ समुद्राद्भयव जन्तु विशेष, एक प्रकारका बड़ा घोघा जो समुद्रमें पाया जाता है । पर्याय—कामु, कभोज, भयज, जलज, लणोभय, पायन-ध्वनि, अन्तःकृतिल, महानाद, भ्येत, पूत, मुलार, दीर्घनाद, बहुनाद, हरिनिव । गुण—कट्टरस, पुष्टिपदक, घोर घोर बलप्रद, गुल्म, शूल, कफ, श्वास, धीर विपरीयनाशक ।

मायप्रकाशमें लिखा है—शंघा, शानिगंघा, श्मिन्क, शम्बूक और कर्कट भादि केास्य जीव मयुर, स्तम्भ, पातपिसहद, हिम, पुष्टि, मलकारक, शुक्ल और बल-वर्धक होता है ।

राजयज्जममें कहा है, कि शंघ और समुद्रके जन्तु-घांघी, कपापरसपिष्टि और मति यदि मलनिस्तारक है ।

प्रत्यक्षपुत्रात्मैः शोकोपशान्तिवियमन इव प्रकार
 निष्ठा है—देवादिदेव महादेवका मध्याह्न कालके मारोण्ड
 मद्रुम देहोद्यमान शून्य अब दानवप्रयोग शंकापूहके
 ऊपर गिरा तब इसकी वेद मध्य हो गई। इस पर
 महादेव बड़े समझ हुए और उन्होंने उनकी हृदिहृदयोंकी
 मध्याह्नके निकट दिया। उन्होंने सब हृदिहृदयोंमें जाना
 प्रकारके शंकाको उतारलि हुई। (अध्या० अध्याय० १८ पं०)

शंकाका माहात्म्य—देवतादिकी मूर्त्तमें शंका अति
 पवित्र पदार्थ है। उसका जल गोमंजक मद्रुम तथा
 देवताओंका मध्यम मानिपद है। शंकाको उतारि
 गढ़ां लक्ष जाती है, गढ़ां लक्ष्मीदेवी विद्यामायाके मध-
 स्थान करती है। शंकामें सर्वदा हरि ध्यान करते हैं, अन्-
 यत्र जहाँ शंका रहता है, लक्ष्मीजन्मार्थ पशुका मूल सम-
 ज्ञान दूर कर सर्वदा इस स्थानमें ध्यान करने हैं। बिम्ब
 यदि किसी स्तोत्रार्थ द्वारा यह ज्ञान दत्ताया जाय, तो
 लक्ष्मी मयोजन और अत्यन्त ही कर यहाँमें मूर्त्तकी
 जगद वसती जाती है। (अध्या०) शंकामें कविता माय-
 का मूष भर कर उसमें मारागणको स्नान करानेमें अत्यु-
 त्तमप्य पत्रका फल प्राप्त होता है। जिस किसी भाग
 का मूष शंकामें भर कर मारागणको स्नान करानेमें छत्र
 पद प्राप्त होता। शंकाका मूर्त्तजल द्वारा 'सो मारागण
 पान' कह कर विष्णुको स्नान करानेमें जीव योगिसङ्घ
 में मुक्त होता है। शंकासंयम विष्णुकादेहकी गिन या
 तुलसी गिना कर अन्त योगियोंका देनेमें पाद्मपत्र-
 सनका फलप्राप्त होता है। शची, लक्ष्मण, कृष्ण, गोविन्द,
 हृद आदि जिस किसी जन्मानुसंग जन्तु शची न हो,
 यह शंकामें डालनेमें मूर्त्तजलके समान ही जाता है।
 जो योगिन शंकाका विष्णुकादासुको मन्त्रक पर भावना
 कर निश्चय रहन करता है, उसको गिनको संघ
 गणकोमें होता है। विष्णुधर्मो जितने तोषे है पाद्मदेव-
 की माहात्म्य में सभी शंकाके शीघ्र क्षयिष्ठक है, इस
 कारण 'सर्वं पुत्रा मारागणको विष्णुना विष्णुः करे।
 शंकाया शचीदेवैश्च कुरुवन्त्या मनीषिणु मे।' इस
 कारणमें शंकाका शंकाके शंकाका काला कर्त्तव्य है। फल
 पुत्र अत्यन्त ही श्रेष्ठ शो वासुदेवके सामने शंकाका
 कर्त्तव्य करने है, लक्ष्मी इस पर श्रेष्ठ प्रत्यक्ष रहता है।

शंकाकी अर्थना करना तो दूर रहे, शंका शंकाका नाम
 ही मूर्त्तदेव होने पर निमित्तविष्णुको तरह पापराशि
 विस्तृत हो जाती है। महात्म्य शंकाके मादये मनुष्य
 पशुओंके समं महान् भावोंमें विनम्र ही विनम्र होने
 है। समस्त, विनाश, उन्नत, शान्त आदि जिस शक्तिशो
 निर पर शंकोदक है, उसे देव मयोजन ही दूर भावनी
 है। जित्त, वैमिनिश, और धाम्य कलाकार्य विनियोगदि-
 में जो शंकाकी अर्थना करने है, शंकाशोचनें उनको
 गति होती है। (पद्योपपं० १२१ पं०)

दक्षिणावर्तीशंकामाहात्म्य—पूर्वदिग्गामिनी मूर्त्तके
 निम्नरे आ कर दक्षिणावर्तीशंका द्वारा विधिपत्र अतिशय
 करनेमें सभी पाप नष्ट होते है। जिस और जन्तु
 संकष्ट दक्षिणावर्तीशंका द्वारा उक्त प्रकारकी पूर्वदिग्-
 गामिनी मूर्त्तके शरीरमें भागि पदार्थ निमित्तक यह वया
 विधि समिपेक करनेमें जीवन भरका शिवा हुआ पाप
 उतरी समय नष्ट होता है। दक्षिणावर्तीशंका द्वारा
 परिशोधित जल हृदिगन्तमें मन्त्रक पर भाग्य करनेमें
 जन्मान्तिग पाप उतरी समय जाले रहने है। शरीर कभी
 भी मरणो वा सुकरकी लगे मारना चाहिये। इस
 शंकामें अत्यन्त करना सर्वदा निश्चय है। (पद्योपपं०)

दक्षिणावर्तीशंका मायापत्तनः पुत्रायण है। इस
 कारण इसका मूल मो क्षयिक है। एक दक्षिणावर्ती-
 शंका मुत्तानुसार ५००५०० शरीरमें दिवता है। यन्मा-
 वर्तीशंकाकी जहाँ इस मुहं लया कर शंकाकार्य करने है,
 दक्षिणावर्तीका वह मूष कानमें समावेनें अत्युं मनुष्य
 ध्यान कर्त्तव्यमें श्रेष्ठ करने की है। इस महार्थके कारण
 यह एक शरीरमें गिना जाता है।

आदिहाचारकरयों निष्ठा है, कि दक्षिणावर्तीशंका द्वारा
 हरिको अर्थना करनेमें शान्त जन्महाण पाप नष्ट होने है।

मुक्तिव्ययमर्य करारमें शंकाको कर्त्तव्यमें गिना
 गया है। यह शंका शरीरदेवपूजमें सुखद देनेमें या
 मूर्त्तक कारण शरीरमें भी पाया जाता है। इसका
 कर्त्तव्य मूर्त्तकी तरह वा मूर्त्तमूष होता है। मूल
 बहुत मूल और यह बहुत मूर्त्त तथा कदा होता है।
 ध्यान और दक्षिणावर्ती शरीरमें यह ही प्रकारका है।
 उन्दीमें दक्षिणावर्ती मनुष्य, ध्यान और अत्यन्त है।

शङ्ख वर्ण (सं० पु०) शङ्ख इत्यर्णो यस्य । १ गर्दभ, गदा । (शिवा०) २ दानवविशेषः । (हरिवंश १५८१) ३ नामाविशेषः । (भारत ११७११५) ४ शङ्खसङ्घन वर्णविशिष्ट, यद् जिसके कान शङ्खके समान लम्बे और नुकीले हों ।

शङ्ख वर्णो (सं० पु०) शिव, महादेव ।

शङ्ख कर्णधर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेदः । (भारत वनपर्ण)

शङ्ख रिय (सं० पु०) शङ्खमत्स्य, संकुचो मछली ।

(शबरखाना)

शङ्ख च्यावा (सं० स्त्री०) प्राचीन कालकी बारह अंगुल की एक नुकीली सूँटी । इसका ऊपरों भाग नुकीला होता था । इसकी छायासे सागका परिमाण मालूम किया जाता था ।

शङ्ख जिह (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार एक गणित (Gaomon-sine) ।

शङ्ख तम (सं० पु०) शङ्खुरिय तमः । शालका वृक्ष ।

(शबरखाना)

शङ्ख द्वार (सं० पु०) गुजरातके समापके एक छोटे टापूका नाम । यहाँ शङ्ख नारायणकी मूर्ति है ।

शङ्ख नारायण (सं० पु०) नारायणकी वह मूर्ति जो शङ्खद्वार टापूमें है ।

शङ्ख पथ (सं० पु०) पथभेदः । (वा ११।१७७)

शङ्ख पुच्छ (सं० स्त्री०) जिसकी पूँछमें टंक हो । (राजतरंग १।२६६)

शङ्ख कणिक (सं० पु०) जलमें होनेवाला जंतु, जलचर । (हेम)

शङ्ख फलिका (सं० स्त्री०) सफेद कोकर ।

शङ्ख फली (सं० स्त्री०) सफेद कोकर ।

शङ्ख मक्ष (सं० स्त्री०) शङ्ख मक्षपथे मनुष्य । शङ्खविशिष्ट, शङ्खयुक्त ।

शङ्ख मतो (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्दः । इसके पहले पादमें पाँच और शेष लोगोंमें छः छः वा दससे कुछ न्यूनान्यत्र वर्ण होने हैं ।

शङ्ख मुच (सं० स्त्री०) १ शङ्खके समान मुचवाला । (पु०) २ कुम्भीर, मगर । ३ सूरा, बिजो मादि ।

शङ्ख मुणो (सं० स्त्री०) जलोत्पा, तोक ।

शङ्ख र (सं० स्त्री०) शङ्खवतेऽस्मादिति शङ्ख बाहुल्यत्वात् डुरच् । १ सासदायो, भोजन, भयंकर । (हेम) २ पुराणानुसार एक दानवका नाम । (विष्णुपु०)

शङ्खूला (सं० स्त्री०) शङ्ख पूर्वायु लोतेः (भातोऽनुत्तमं कः । वा १।२।३) इति कप्रत्यये शङ्खूला, (उष्य १।३७) शङ्खपूर्वाल्लोतेर्द्यप्रथं कविधानमिति वा क प्रत्ययः । (काशिका ६।२।६) १ उत्पलपत्रिका । २ पूनकर्त्तनी, सुपारी काटनेका सरिता ।

शङ्खूलापण्ड (सं० स्त्री०) यद् यस्तु जो सरितासे दो जण्डकी गई हो ।

शङ्खू वृक्ष (सं० पु०) शङ्खारव वृक्षः । शालका पेड़ । (रत्नमाला)

शङ्खू गिरस् (सं० पु०) असुरविशेषः । (भाष्यत ६।६।१०)

शङ्खू श्रवणा (सं० स्त्री०) शङ्खूरिय श्रवणी यस्य । शङ्खूके समान कर्णविशिष्ट, जिसके कान शङ्खूके समान हों । शङ्खूके समान कान होनेसे राजा होता है ।

शङ्खूष्ठ (सं० स्त्री०) शङ्खूस्थानक, सस्य वाः । (वा ८।१।६७) शङ्खूमें अवस्थित ।

शङ्खूय (सं० स्त्री०) शङ्खू-क-क्त्वात् । मङ्गलकारी ।

शङ्खूनेन (सं० पु०) शङ्खू मत्स्य, संकुचो मछली । (न्याय)

शङ्खूनेचि (सं० पु०) शङ्खूचि वेत्तौ ।

शङ्खू शिक (सं० स्त्री०) नैमिषिक ।

शङ्खू (सं० पु० स्त्री०) शङ्खूयति अशुभमस्मादिति शङ्ख-य (गमेः ख) उष्य १।१०५) समुद्रोद्गमय जम्बू विश्वे, एक प्रकारका बड़ा घोंघा जो समुद्रमें पाया जाता है ।

पर्याय—कम्बु, कम्बोज, शम्भ, जलज, जर्णोमय, पावन-ध्वनि, भग्नाकुटिल, महानाद, अवेत, पून, मुखर, शीर्षनाद, बहुनाद, हरिमिव । गुण—कटुरस, पुष्टिपर्षक, शीर्ष और बलप्रद, शुभ, शूल, कफ, श्वास, शीत विपरीतनाशक ।

गायप्रकाशमें लिखा है—शङ्ख, शङ्खीका, शिबुफ, शङ्खू और बषाट आदि केवल्य ज्ञेय मधुर, स्निग्ध, पातपित्तहर, हिम, पुष्टि, मलकारक, शुक्ल और बल-धर्षक होता है ।

राजयजुषमें कहा है, कि शङ्ख और समुद्रकेन शोण-धीर्ष, कपापरसविशिष्ट और शक्ति पट्टिमलनिशारक है ।

प्रत्येक पुत्रात्मैः शंखोपलिविपयस्य इत्य प्रकार
 निर्यात्—देवादिदेव महादेवका महापाद कायके मारण्ड
 महाम देवीनामान ह्यत्र अत्र कामपयस्यैः शंखायुक्तं
 ऊपर निरा तत्र अमकी देह मय्य हो गई । इस पर
 महादेव वहे ममत्र ह्युप और उग्रोने उग्रको हृदिहृदोको
 लयपायसुमे केक दिया । इहो मय हृद्विदेरि माना
 प्रकारके शंखाको उतगलि हुई । (सर्वो० मंत्रिम० १८ म०)

शंखाका माहात्म्य—देवतादिकी पूजामें शंखा अति
 पवित्र पदार्थ है । उग्रका अत्र मोर्धजय मद्रुना तथा
 श्वेतामोका मरयम्य मंत्रियद् है । शंखाकी ध्वनि
 जहां तक जाती है, वहां लक्ष्मीदेवी निचमापने अन्न-
 स्थान करती है । शंखमें मयदेहा हरि बाग करते हैं, अन्न-
 पय जहां शंख रहता है, लक्ष्मीजन्मादेन यशोका पुत्र मम-
 द्रुन दूर बर शर्मदा उग्र स्थानमें काम करते हैं । विष्णु
 यदि किसी स्त्रीगुप्त द्वारा यह मंत्र प्रजाया जाय, तो
 लक्ष्मी भयभीत और अन्नमय हो कर यहाँमें दृग्गरी
 जगद गली जाती है । (सर्वो०) शंखमें कविता गाव-
 या दूध भर कर उग्रमें मारावणको स्नान करायेने अयुक्त
 महत्त्व प्रकटा फल लाभ होता है । जिस किसी गाव
 का दूध शंखमें भर कर मारावणको स्नान करायेने अन्न
 पद लाभ होता । शंखात्म्य मद्रुनात्म्य द्वारा 'सो माराव
 णाव' कह कर विष्णुकी स्नान करायेने जीवन मोक्षिसद्रु-
 में मुक्त होता है । शंखसंलय विष्णुकादेादुक्तमें मिल वा
 सुवसो मिला कर अन्न मेषणोका देवेने चाद्रावण-
 लनका फललाभ होता है । मयी, लक्ष्मी, ह्युप, मयोवर,
 ह्युप यदि जिस किसी प्रत्याजवका अन्न मयी न हो,
 वह शंखमें लक्ष्मीके मद्रुनात्मके स्नाना हो जाता है ।
 जो यैलन्य शंखात्म्य विष्णुकादायुको मन्त्रक पर भास्व
 कर निरय सद्रुन करता है, उग्रको विनको भेष्ट
 मगलोंमें होता है । विष्णुत्वमें जिसने मोर्ध है चासुदेव-
 को आश्रय ले सतो शंखाके मोदर अधिल्लिप्त है, इस
 कारण 'मो पुत्र मारावेत्यसो विष्णुना विपुता बरे ।
 कविता मारीदेवय फलसत्रम लोकीरुनु मे ।' इस
 मन्त्रमें मारीका शंखाको अर्चना करना कर्त्तव्य है । फल
 पुत्र चासुदादि द्वारा जो चासुदेवके मन्त्रमें शंखाको
 अर्चना करते हैं, लक्ष्मी उन पर सदा प्रलय रहता है ।

शंखाको अर्चना करना तो दूर रहे, शंखा शंख मन्त्रमें
 ही सुवोदय होने पर निमित्तविष्णुको मद्रु पावणमि
 विष्णु हो जाती है । चासुदय शंखके मद्रुमे मद्रु
 प'लायोके मर्ग महत्त्व भागोमें विनक हो विनक होने
 है । समद्रुत, गिनाम, उग्र, मक्ष्म चादि जिस कालको
 मिर पर शंखोदक दे, उग्र देव मयमोने ही दूर भागो
 है । मिरय, मीमिद्रिक और काम स्वामाचंन विष्णुकादि-
 में जो शंखाको अर्चना करते हैं, उदेवमोर्धमें उनको
 मति होता है । (पदीनाम० १३ म०)

दक्षिणावर्त्तंशंखाहास्य—पूर्वदिग्गामिने मद्रुके
 दिनारे आ कर दक्षिणावर्त्तंशंखा द्वारा विष्णुयु अतिवेर
 करनेमें समी पाय मद्रु होने है । मिर और अन्न
 संभूय दक्षिणावर्त्तंशंखा द्वारा उग्र माराको पूर्वदिग्
 गामिने मद्रुके मर्गमें मग्नि पर्वण्य निमित्तक कर मया
 विधि मग्निपेक करनेमें मोवन मरका दिया हुआ पाय
 उग्रो ममय मद्रु होता है । दक्षिणावर्त्तंशंखा द्वारा
 परिशोधित अन्न ह्यविलसि मन्त्रक पर प'लाय करनेने
 जगमार्त्तित पाय उग्रो ममय जाने रहने है । इसमें कमी
 मो मद्रुको वा मद्रुकरकी मरी मारना चादिये । इस
 शंखमें अन्नपान करना मयदेहा म्रिय है । (मारा०)

दक्षिणावर्त्तंशंखा मावापणता दृग्गाम्य है । इस
 कारण इसका मद्रु भी म्रियक है । एक दक्षिणावर्त्तं-
 शंखा गुणानुसार ४००) ५००) मद्रुमें दिवता है । वासा-
 वर्त्तंशंखामें जहां हम मुद्र लया कर शंखाका करते हैं,
 दक्षिणावर्त्तंशंखा यह मुद्र कानमें लगानेमें मद्रुमें मद्रु
 ध्वनि कर्त्तुद्वारों म्रियता करती है । इस मद्रुको वासा
 मद्रुयक करनेमें मिला जाता है ।

आह्वितावास्तवमें मिला है, नि दक्षिणावर्त्तंशंखा द्वारा
 हरिको अर्चना करनेमें मय जगमद्रुन पाय मद्रु होने है ।

सुन्दरलनक म्रियमें शंखाको मन्त्रविष्णुमें मिला
 मया है । यह शंख शीरोदेशपुत्रमें मुराद देनेमें वा
 म्रियक मावासा करनेमें भी पाया जाता है । इसका
 कर्त्तु मद्रु सुवोको मद्रु वा म्रियमद्रु होता है । मद्रु
 बहुत मद्रु और मद्रु बहुत मद्रु मया मया होता है ।
 वासा और दक्षिणावर्त्तंशंखा मद्रुमें मद्रु ही मद्रुयक है ।
 अनेमें दक्षिणावर्त्तंशंखा मद्रु, कर्त्तु और मद्रुयक है ।

शङ्ख कर्ण (सं० पु०) शङ्ख इव कर्णो यस्य । १ गर्भे, गर्भे । (विश्व०) २ दानवविद्येय । (हरिवंश ३१८) ३ नामविद्येय । (भारत ११७११) ४ शङ्खसदृश कर्णविद्येय, यद् जिसके कान शङ्खके समान लम्बे और नुकीले हैं ।

शङ्ख कर्णो (सं० पु०) शिव, महादेव ।

शङ्ख कर्णेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद । (भारत वनवर्ग)

शङ्ख वि (सं० पु०) शङ्खमत्स्य, सकुची मछली ।

(शबरतन्त्रा०)

शङ्ख व्याघ्र (सं० स्त्री०) प्राचीन कालकी बारह अंगुल की एक नुकीली मूँटी । इसका ऊपरों भाग नुकीला होता था । इसकी छायासे समयका परिमाण मातृम किया जाता था ।

शङ्ख जिह्व (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार एक गणित (Gnomon-sine) ।

शङ्ख तद (सं० पु०) शङ्खुरिय तदः । शालका वृक्ष । (शबरतन्त्रा०)

शङ्ख द्वार (सं० पु०) गुजरातके समापके एक छोटे टापूका नाम । यहाँ शङ्ख नारायणकी मूर्ति है ।

शङ्ख नारायण (सं० पु०) नारायणकी यह मूर्ति जो शङ्खद्वार टापूमें है ।

शङ्ख पथ (सं० पु०) पथभेद । (प १११७७)

शङ्ख पुच्छ (सं० स्त्री०) जिसकी पूँछमें डंक है । (राजतरंग ३१२६)

शङ्ख फागिन् (सं० पु०) जलमें होनेवाला जन्तु, जलचर । (हेम)

शङ्ख फालिका (सं० स्त्री०) सफेद कोकर ।

शङ्ख फाली (सं० स्त्री०) सफेद कोकर ।

शङ्ख मम् (सं० स्त्री०) शङ्ख मत्स्यमें मत्तुप । शङ्खविद्येय, शङ्खयुक्त ।

शङ्ख मतो (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द । इसके पहले पादमें पाँच और शेष सौम्यमें छः छः या दससे कुछ स्तुत्याधिक वर्ण होने हैं ।

शङ्ख मुच (सं० स्त्री०) १ शङ्खके समान मुचवाला । (पु०) २ कुम्भोद, मगर । ३ शूरा, बिजो मादि ।

शङ्ख मुषो (सं० स्त्री०) मल्लिका, शोक ।

शङ्ख र (सं० स्त्री०) शङ्खवलेऽस्मादिति शङ्ख वागुलका-दुरच् । १ सासदायो, भोजन, मयंकर । (हेम) २ पुराणानुसार एक दानवका नाम । (विष्णुपु०)

शङ्ख ला (सं० स्त्री०) शङ्ख पूर्वात् लातिः (मातोऽनुषणं कः । या ३।२।२) इति कप्रत्यये शङ्खला, (उष्य १।२७) शङ्ख-पूर्वास्लातेर्घप्रत्ये कविधानमिति या क प्रत्ययः । (काशिका ६।२।६) १ उदयलपत्रिका । २ पूषकरानी, सुपारी काटनेका सरीता ।

शङ्ख लाघण्ड (सं० स्त्री०) यह यस्तु जो सरीतेसे दो खण्डकी गई हो ।

शङ्ख वृक्ष (सं० पु०) शङ्खारव वृक्षः । शालका पेड़ । (रत्नमाला)

शङ्ख गिरस् (सं० पु०) शङ्खुरविशेष । (भागवत ६।१३०)

शङ्ख ध्रुवणा (सं० स्त्री०) शङ्खुरिय ध्रुवणी यस्य । शङ्खके समान कर्णविद्येय, जिसके कान शङ्खके समान हो । शङ्खके समान कान होनेसे राजा होता है ।

शङ्ख छ (सं० स्त्री०) शङ्ख-स्थाक, सस्य यः । (प ८।१।६७) शङ्खमें अवस्थित ।

शङ्ख र् (सं० स्त्री०) शङ्ख-र-किप् । मङ्गलकारी ।

शङ्खो न (सं० पु०) शङ्ख मत्स्य, सकुची मछली । (जटाधर)

शङ्खो नि (सं० पु०) शङ्खोच देवो ।

शङ्खो जि (सं० स्त्री०) नैमिषिक ।

शङ्ख (सं० पु० स्त्री०) शङ्खमिति अशुभमन्त्रादिति शङ्ख-य (शमेः वा । उष्य १।२०४) समुद्रोद्गमय जन्तु विशेष, एक प्रकारका बड़ा घोंघा जो समुद्रमें पाया जाता है ।

यथाय—कस्तु, काशेज, भाज, जलज, कर्णोभय, पावन-ध्वनि, अमृतशुदिल, महामाद, श्वेत, पून, मुगद, शीर्षमाद, बहुमाद, हरिनिव । गुण—कटुरस, पुष्टिघर्षक, शीर्ष और बलप्रद, गुल्म, शूल, कफ, श्यात, और विषशोपनाशक ।

भावप्रकाशमें लिखा है—शङ्ख, शामिगंध, शिबुच, शम्भू और कर्षात् आदि कोषस्य शीघ्र मधुर, स्वाध, यातपित्तशर, हिम, पुष्टि, मलकारक, शुक्ल और बल-वर्धक होता है ।

राजयन्त्रममें कहा है, कि शङ्ख और समुद्रकेन शोष-घर्षण, कपापरसविद्येय और भति यद्दिमलनिगारा-रक है ।

जो इस प्रकारे ध्वजापूर्वक जल प्रक्षेप करते हैं, वे मधु पायींसे मुक्त हो सुषुप्तोत्थकी जाती हैं। यूनानकार भाषा, स्त्रियायना और निर्मलता ये तीन श्रेणियोंके गुण हैं। इस प्रक्रममें यदि आघातानुरूप कोई शोष हो, तो सुषुप्तोत्थकी प्रयोग द्वारा उस शोषकी जाति हो सकती है। ये शंख फिर प्राणव्यवस्थादिनेदमें चार वर्षोंमें विगत हो जाते हैं।

द्वेषयुक्तालके प्रजातिके लिये जित्त प्रकार शंखोंकी वायुशक्ति होती है, आरक्तिकादिमें भी उसी प्रकार 'पाणि-शंख' की प्रयोजनीयता देवी जाती है।

शंख जम्बूक जाति (Mollusca)के अन्तर्गत तथा एक स्वतंत्र वर्गोत्पन्न है। पृथ्वीपर पण्डितोंमें शंख जम्बू या उसकी बाधध्वजिसे ही इसका Conch-shell या Chank-shell नाम रखा है। इस जातिके जीवका वैज्ञानिक नाम Turbinelle pyrum है। एकमात्र भारत-महासागर और यूरॉपसागरमें शंख जातिकी जम्बूक पायी जाती है।

प्राचीन हिन्दुओंके निकट शंखवाद्य परम पवित्र है। स्वयं विष्णु शंख-नक-मृदा-वसधारी हैं। युद्धमें प्रथम प्रथम शंख सेनादल भी शंखनिर्वाहसे घातलकी गया देते थे, यह उस समय सुरोभरीसे अधिक प्रचलित था। प्रत्येक रथीही अपनी अपनी शंख रहता था। यथा—श्रीकृष्णका पाञ्चजन्य, अर्जुनका देवदत्त, भीमका भीष्म, युधिष्ठिरका भद्रस्तयिष्य, नकुलका सुशोष, महादेवका मणिपुष्पक इत्यादि। (गीता)

प्रति हिन्दुमंत्रिमें पुत्राके समय मध्या संवत्सरात्ममें शंखनाद होता है। किसी किसी स्थानमें आर्योत्थ-क्रियाके लिये जाते समय और धार्मादि समयमें भी शंख बजाते देखा जाता है। सन्देशक्रिया और वोलित्तिया द्वारा वासी Triton triton नामक जम्बूक वाद्य बजाने शंखके सदृशमें व्यवहार करते हैं। पृथ्वीपर अन्य जातियों की इस प्रकार Buccinum whelk नामक जम्बूक बजायकी प्रथा है। लाटिन भाषाका Buccina शब्द ही अरब भाषा में देना है।

एकलिये एका ३ अक्षरके अक्षरोंपर शंखकार वर शब्दोंके रूपों, बाला, बरन आदि दत्त हैं। उचित

शंखकी अपेक्षा मृदा शंखका सादर अधिक है। क्योंकि उसमें तरद तरदकी कारोवरी दिखलाई जा सकती है। भारतकी सम्पूर्ण और असम्पूर्ण जातियों शंखका अत्यन्त पटननेकी रीति है। किसी किसी देशमें शंखके प्रयोगमें भी हाल कर रोजगारी की जाती है।

शंखकी विधिपूर्वक मृदा कर भस्म बना कर काममें लाते हैं। यह भस्म मधु प्रकारके उपर, सय प्रकारकी लोत्तों, भास, आदिसार आदि रोगोंमें उचित अनुमानसे अत्यन्त लाभकारी है। यह स्तम्भक और पात्रोक्षण मो है। इसकी मात्रा चार रत्तीसे छेड़ मात्रो तक है।

एक समय मद्यारके उपलक्षणमें प्रायः ३० लाख शंख पाये गये थे जो लाखसे अधिक दण्डमें बिके थे।

शङ्ख शरयार विशय शम्बूक शम्भुसे लो।
२ रणवाद्यविशेष। यथा—मकतुषे, मधुतुषे, रण-तुषे, महास्वन, संप्रतिपट्ट, अमपण्डितान, महापण्ड, नृणाभीर, भीर, कोलाहल। (सर्वस्व ०)

३ ललाटास्थि, कपालकी इच्छा। ४ बुधेकी निधि-विशेष। (भात २१०३६)

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है—८ प्रकारकी निधियोंमें जल अष्टम निधि है। यह रजः और तमोगुणविनिष्ट है, इस कारण इसके अधोभ्रम मो यही सब गुण पाते हैं। जो शंखनिधिके अधिपति हैं, वे सर्वादा केवल चारम-परिपोषणमें ही रह रहते हैं, यहाँ तक कि सुहृद्, मार्ग, भ्राता, पुत्र, पुत्रवधु आदि स्वजनिके भक्त वस्तुदिके अट्टहासपट्टपर्यन्त प्रति भी दुष्टिपात नहीं करते, तथा आत्मपरिनिष्ठिके लिये ही व्यस्त रहते हैं।

५ तमो नामक शंखद्वयविशेष। (मुमुक्षु ६१०)
६ कर्णके निधयर्णों अरिभेद, कमपटी। ७ अष्टनाम-जायकामार्गक नामविशेष। ८ हस्तिदन्तका मधुभाग, दायाँका मधुस्थल। ९ दश निधयर्णों एक मधुका, एक लाल करोड़। १० धर्मशान्तिप्रोक्त मुनिविशेष। ११ नरपण्डित। १२ एक टीसका नाम जो द्वेषभाषीके जंगल पर वेदोंकी पूजा से तथा या और किमके होशोंमें वेदोंका उच्चारण करके लिये भगवान्की सम्प्रदायकार पापण करना पड़ा था। १३ राजा विवाहका पुत्र।

शुद्धचंद्रक (सं० पु०) नामभेद । (हेम)
 शुद्धचंद्रेश्वरतोटी (सं० श्लो०) तोटीभेद ।
 शुद्धचूर्ण (सं० श्लो०) शंखस्य चूर्णम् । शंखजलचूर्ण ।
 गुण—रूटु, क्षार, उष्ण, तीक्ष्ण क्रिमिनाशक ।
 शुद्धत (सं० पु०) शंखाज्जायते इति जन-श । १ शुक्ला-
 भेद, यदा मीमांसा शंखसे निकलता है । (त्रि०)
 २ शंखजात ।
 शुद्धजाती (सं० श्लो०) राजकन्याभेद । (वारताप)
 शुद्धमोटा (सं० पु०) शंख जराहृत ।
 शुद्धण (सं० पु०) १ कलनापवादके एक पुत्रका नाम ।
 (राम० १००३१६) २ यजनाभके पुत्र । इसका दूसरा
 नाम था शंखनाम ।
 शुद्धतीर्था (सं० श्लो०) तोटीविशेष ।
 शुद्धरत्न (सं० पु०) एक कवि । ये काश्मीरराज जया-
 पीठकी समामे विद्यमान थे । (राम० १०१६६)
 शुद्धशारक (सं० पु०) शारदार देवो ।
 शुद्धशायक (सं० पु०) शंखं श्रावयतीति श्रु-पिच्छ-पुत्रुत् ।
 शीघ्रविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—शकपनकी छाल, शूद्र-
 का मूत्र, इमलीकी छाल, तिलकाष्ठ, ममलतासुकी छाल,
 चिता, मवाङ्ग, इन सब द्रव्योंको भस्म समान भाग ले
 कर जलमें घोलें और पीछे छान लें । यह क्षारजल
 जब तक धारा न हो जाय, तब तक उसे भीठी भाँचमें
 पकाना होगा । इसके बाद यह लवणरस ४ तोला, यव-
 क्षार, साविशार, सोदाहा, समुद्रफेन, गोशर्तों, हरिताल,
 दोराक, सीस और सोटा प्रत्येक ४ तोला, पञ्चलवण
 प्रत्येक ८ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर एकट्ठके
 साथ भाँचकी बत्नीमें ७ दिन छोड़ दें । बादमें शंखचूर्ण
 ८ तोला उसमें मिला कर यादणीवस्त्रमें लुमा लेनेसे
 प्रायः प्रस्तुत होता है । इस प्रायश्चममें कौटो और शंख
 आदि गल जाते हैं । इसका रोपन करनेसे प्लोहा यद्यत्
 आदि बदररोग भविष्यति विनष्ट होते हैं ।
 (मेघदूतना० चरित्रादृष्टि०)
 शुद्धशायकरस (सं० पु०) शीघ्रविशेष । यह शंख
 प्रायश्चरम और महाशंखप्रायश्चरम भेदमें दो प्रकार है ।
 शुद्धशयिन (सं० पु०) शंखं श्रावयतीति श्रु-पिच्छ-
 लिन । शयनशयन, शयनशयन । शूद्रोत्तमं इमे
 Rumer Vegetarius कहते हैं । (शरनि०)

शुद्धशीप (सं० पु०) शीपभेद । (विष्णुपुराण)
 शुद्धपर (सं० पु०) १ शंखका पारण करनेवाले भवानी
 विष्णु । २ शोहरण ।
 शुद्धपर—१ एक धर्मशास्त्रके प्रणेता । इन्होंने स्मृतिसिद्धि-
 के बाद ग्रंथ रचना की । हेमाद्रि, शुकुलन्दन, कमलाकर
 आदिने इनका मत बढ़ाया किया है । २ कविकर्णटिका
 नामक अलंकार और लटकमेलन नामक ग्रहसंके
 रचयिता ।
 शुद्धधरा (सं० स्त्री०) धरतीति धृ-अच्, शप् शंखस्य
 धरा । हिलमोचिका, हरहरका स्तम्भ । (रत्नमाता)
 शुद्धधरला (सं० स्त्री०) १ शुक्लचूर्णिका, सफेद मूली ।
 (गीर्वाण०) २ शंखके समान सफेद ।
 शुद्धधम (सं० पु०) शंख धमतीति धमा-क । शंख-
 यादक, यह जो शंख बजाते हों । पर्वण्य—शंखक ।
 (गद्यपर)
 शुद्धधमा (सं० पु०) शंख धमतीति धमा-किय् । शंख-
 यादक ।
 शुद्धन (सं० पु०) १ अयोध्याके राजा कल्याणराजके
 एक पुत्रका नाम । २ यजनाभके पुत्रका नाम ।
 शुद्धनय (सं० पु०) १ शुद्धशंख, छोटा शंख, घोषा ।
 २ व्याघ्रनख, मछी नामक शंखद्रव्य । (गरुडरत्ना०)
 शुद्धनवा (सं० स्त्री०) १ शूद्र शंख, घोषा । २ नवी
 नामक शंखद्रव्य ।
 शुद्धनाम (सं० पु०) यजनाभके एक पुत्रका नाम ।
 शुद्धय देवो ।
 शुद्धनामि (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका शंख । २ एक
 प्रकार शंखद्रव्य ।
 शुद्धनाम्नी (सं० स्त्री०) शंखचूर्णो नामक लक्षणाविशेष ।
 शुद्धनारी (सं० स्त्री०) एक वृक्षका नाम । इसमें छः
 वर्षा होते हैं । यह देश वगलका वृक्ष है । इस मीमा-
 राको वृक्ष भी कहते हैं ।
 शुद्धनी (सं० स्त्री०) शक्तिनी देवो ।
 शुद्धवट (सं० पु०) १ विष्णुभेद भेद । २ बर्हमके
 एक पुत्रका नाम । (विष्णुपुरा ११२२)
 शुद्धवर्णा (सं० पु०) एक प्रकारका वैश्वदेव यज्ञिक
 पदार्थ । यह यज्ञ्यामुकी पत्नीके निकलता है ।

इसका बहू संकीर्ण या हस्त होता है और इसमें रजसको धमक होता है । इसका विशेष गुण यह है, कि यह प्रवृत्ति जलता नहीं, इसीलिये गैसके भट्टे बनानेमें इसका बहुत उपयोग होता है । आमतौर पर जलनेवाले कपड़े तैयार करनेमें भी यह काममें लाया जाता है । गरमी और बिजलीका प्रयोग इसमें बहुत कम होता है, इसमें यह यंत्रोंके ताप मादि लपेटनेमें भी काम आता है । इन्जनोंके जोड़ इसीसे मरे या बन्द किये जाते हैं । यह कारसिंहा, स्काटलैंण्ड, कनाडा, इटली मादि देशोंमें अधिक मिलता है ।

गुणवर्णिका (सं० पु०) शंख पाणी वस्य । हाथमें शंख धारण करनेवाले, विष्णु ।

गुणवत् (सं० पु०) शंखका बना हुआ पात्र या तल-पारकी मूठ । (राम० १७१२१)

गुणवाद (सं० पु०) बहम राजपुत्र । ये शंखवाल आमतौर में परिचित थे ।

गुणवाल (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद । २ क्षात्रामप्रसिद्ध दशोत्तर महासर्प । ३ पातालरुध नागभेद । (सुभुव-वस्य ४ सं०) ४ सूर्यका एक नाम । ५ जकरपारा नामकी मिठाई । मकरपाला देखो ।

गुणवापाल (सं० पु०) संखिया ।

गुणविन्द (सं० पु०) पातालरुध नागभेद ।

गुणवृत्त (सं० स्त्री०) नागभेद ।

(कवयारिण्यो १-५५)

गुणवृत्तिका (सं० स्त्री०) शंखनिर्मित दस्त और पदा-सङ्कासपात्रिका ।

गुणवृत्तिका (सं० स्त्री०) १ श्वेतापरसिन्हा, सफेद भरसिन्हा । २ श्वेत्त वृत्तिका, सफेद जूही ।

गुणवृत्तिका (सं० स्त्री०) शंखवत् गुण वरणा टीप् । १ कानुवृत्तिका, (*Andropogon acicularis* or *Andropogon decussata*) शंखहूली । पर्चाय—सुपुष्पा, शंखहा, कानुवृत्तिका, दोलपुष्पिका, कानुवृत्तिका, मेषक, मणिकानिका, चिरिटी, शंखानुवृत्तिका, मृतम्या, शंख-मणिकी । गुण—जीवक, तिक्त, तिषा और सुन्दर ज्वरक, सुभुवर्णदि श्वेतनागक, दशोत्तरक और सिद्धि-शक ।

भायप्रकाशके मन्त्रमें मेष, वृष, मानस श्वेतनाग, रसावन, कपाय, उषा, स्मृति, कामि, वन और अग्नि यज्ञक, दोष, मरुत्कार, रक्तदोष, कुष्ठ, हृमि और श्वेत श्वेतनागक । २ श्वेतापरसिन्हा, सफेद भरसिन्हा । ३ श्वेत्त वृत्तिका, सफेद जूही ।

गुणवृत्ताद् (सं० स्त्री०) शंखका माद या माप ।

गुणवृत्त (सं० स्त्री०) वृद्ध या भ्रष्ट शंख ।

गुणवृत्त (सं० पु०) वृद्धका चर्चक ।

गुणवृत्त (सं० पु०) सूनी ।

गुणवृत्त (सं० पु०) शिखाका शंख भर्त्सनात्मक विष्णु नामा हो । शिखा टीप् । (प ५११२२)

गुणवृत्त (सं० पु०) शंखी विमर्शित भू कियुक्तक । शंखाधारण करनेवाले, विष्णु ।

गुणवृत्तिका (सं० स्त्री०) शंखानुवृत्तिका, शंखावृत्तिका । विशेष विवरण गुणवृत्तिका देखीं देखो ।

गुणवृत्तिका (सं० पु०) शिखिभेद ।

गुणवृत्तिका (सं० स्त्री०) शंखाजाना मुक्ता शंखात्त नामका बड़ा मोती । जो मुक्ता शंखमें उत्पन्न होती है, उसे शंख-मुक्ता कहते हैं । पुरस्कारितामें लिखा है, कि दन्तो, मुक्ता, सुक्ति, शंखा और मन्त्र आदिमें मुक्ता निकलती है । यह मुक्ता कनिष्ठाप मुष्कविन्दित होती है, इसलिये इसका मूल्य जात्यमें निर्दिष्ट नहीं हुआ । इसको धारण करने में पुत्र, सती, सोमायवसाय तथा योगेश्वरक लाभ होता है । (परस्मिन् ५२ सं०) मुक्ता देखो ।

गुणवृत्तिका (सं० पु०) शंखावत् गुण वरणा । १ गुणवृत्तिका, यद्विवाह । २ नापविद्यो । (भाव १११२१)

गुणवृत्तिका (सं० स्त्री०) गुणवृत्तिका । शंखवृत्तिका शंखा-हृति करनेमें यह गुणवृत्तिका होती है । (मन्त्र ५२)

मुक्ता देखो ।

गुणवृत्तिका (सं० स्त्री०) शंखावत् गुण वरणा या गुण वरणा । १ गुणवृत्तिका, मुक्ता । (मन्त्रि०) २ शंखका मूल, शंखका भग्नाशय ।

गुणवृत्तिका (सं० स्त्री०) वृद्धवृत्तिका ।

गुणवृत्तिका (सं० पु०) मुक्तिविद्यो । (भाव १११२२)

गुणवृत्तिका (सं० पु०) शंखोत्पन्न मुक्ता ।

गुणवृत्तिका (सं० स्त्री०) गुणवृत्तिका, सफेद जूही ।

(५५५)

गुह्यसमुद्रिका (सं० खो०) भीषणविशेष । परित्याग-
गुह्यमें पद भीषण प्रयोग करनेसे बढ़ा कायशः पदुंचता
है ।

गुह्यशत (सं० पु०) १ अष्टशतः । २ राजभेदः ।

(अक्षर० ८१२१)

गुह्यद्वयित (सं० क्लो०) जंघनितम् ।

गुह्यरी (सं० पु०) यद् अत्र शंखी चूरी बगानेका
श्रवणमात्र करता है ।

गुह्यगोचर (सं० पु०) पातालस्थ नगरभेदः । (हरिचंदा)

गुह्यलिका (सं० खो०) रुद्रानुग्रहनामभेदः ।

(भारत ६ परं)

गुह्यलिखित (सं० लि०) १ विदोष, क्षीणरहित, येधेय ।

(पु०) २ श्वापजाल राजा । ३ शंख और लिखित

नामके दो शब्द जिन्होंने एक स्मृति बनाई थी । (खो०)

४ शंख और लिखित श्रुतियों द्वारा लिखी हुई स्मृति ।

गुह्यलिखितविषय (सं० लि०) अत्र न्याय विचारके अनु-
सारी हैं ।

गुह्यपटी (सं० खो०) जग्गिमाध्य रोगाधिकारिक

भीषण विशेषः । इसके दो भेद हैं—जंघपटी और महा

जंघपटी । जंघपटीको प्रस्तुत प्रणाली—जंघमसम,

पञ्चलक्षण, इसलोकौ छलका शर, शिबट्ट, दीग, विष,

पारा, गन्धक, समाग माग ले कर एक साथ मिलाये,

पाँच भागान् और चितामूलके काष्ठमें मोचके रसमें और

मन्त्रधर्म द्वारा भाषणा दे ।

जंघीरी मोच, बिजौरा, चुकापालक, पौत्रपूरक,

भगमल, इसलौ और कुन्दकरञ्ज इन पाठ द्रव्योंको भग्न-

यण कहते हैं । भाषणा इस प्रकार देनी होगी जिससे

भीषण मन्त्ररसादिनिष्ठ हो जाये । इस भीषणके साथ

रोगा और छोटा मिलावेसे उसको महानजंघपटी कहते

हैं । २ रसो भर मोली बनानी होगी । पातालका

उप जलके साथ इस भीषणके सेवन करना चाहिये ।

इसके सेवनमें जंतोप, जर्डी, पाट्टू और मूल आदि

जाना प्रकारके रोग आते रहते हैं । भर पेट ला कर

तो इस भीषणके सेवनसे उसी समय सभी पद जगा

है । जग्गिमाध्यधिकारिकोंमें यह भक्ति रहस्य और परी-

क्षण भीषण है ।

दूसरा तयोका—इसलोकके छिन्नेकी भस्म १ पत्र,

पञ्चलक्षण मिश्रित १ पत्र, जंघमसम १ पत्र, होङ्ग, सोंट,

पीपर और निर्म मित्रा कर १ पत्र, पारा, गन्धक

और विष प्रत्येक भाग तोला, इन्हें मोचके रसमें घोंट

कर २ रसोकी मोली बनाये । इसके सेवनसे मां

मणिमाध्य और मूल आदि विविध रोग शीघ्र प्रशान्त

होते हैं ।

गुह्यपटी रस (सं० पु०) धैर्यमें एक प्रकारकी यरी या

गोली । यह गुह्यरोगको तरकाज दूर करनेवाली मानो

जाती है । इसके प्रस्तुत करनेकी विधि यह है ।

बड़े जंघके तपा तपा कर ग्वाहद बार मोचके रसमें

सुषाये और इस जंघके चूर्णमें टके भर, इसलोकौ ग्वा,

५ टंक साँवर नमक, टके भर सेंपा नमक, टके भर

सौर नमक, टके भर कच मोत, टके भर विष्ट मोत,

६ मायो सोंट, ६ मायो काली मिर्च, ६ मायो विणली,

टके भर सेंको होङ्ग, टके भर शुद्ध गन्धक, टके भर शुद्ध

पाषा, १ टंक शुद्ध सिङ्गो मुहरा, इन सबके मिला कर

जलके साथ घोंट कर छेडे घेरके बराबर तोलियाँ बना

ले । गुह्यरोगके लिये यह रामधान है ।

गुह्यपत्र (सं० लि०) १ जंघयुक्त । २ जंघके समान ।

गुह्यशत (सं० पु०) सिरकी पीछा । यह कहते हैं ।

गुह्यविष (सं० क्लो०) विषभेद, संविषा ।

गुह्यवेनाग्याय (सं० पु०) एक प्रकारका ग्याय । इसमें

किमी एक कायके दोमेसे किसी बूयरी बातका घेरा ही

ज्ञान होता है । जैसे जंघ बननेसे समपका ज्ञान होता

है ।

गुह्यनिरसू (सं० पु०) पातालस्थ नगरभेदः ।

(भारत १ म परं)

गुह्यनिन्दा (सं० खो०) जंघयुक्त ।

गुह्यनीष (सं० पु०) पातालस्थ नगरभेदः । (भारत १ परं)

गुह्यसमुद्रिका (सं० खो०) भीषण ।

गुह्यम (सं० पु०) जंघकी चूरी या कड़ा ।

गुह्यमदुष्ट (सं० पु०) जंघायु, सफेद जंघकर ।

(वैद्यकी)

गुह्यदृष्ट (सं० पु०) जंघादि विषियुक्त दृष्ट, यह दृष्ट

जिसमें जंघ आदिको निषिद्ध है ।

गुहास्य (सं० पु०) शंख रश्मि आध्यात्मिक । गुह्यगणो वा बगलका नामक गंधद्रव्य ।

गुहाग्नर (सं० स्त्री०) कपाल, देश शंखके बीजका स्थान ।

गुहाद्व (सं० पु०) शंखालुक, शंखकन्द, सफेद जकरकन्द ।

गुहालु (सं० पु०) गुहाय देवो ।

गुहालुक (सं० पु०) गुंवालु, सफेद जकरकन्द ।

गुहायतो (सं० स्त्री०) गद्योपिरीय । (मरि० पु० ५७७)

गुहायरी (सं० पु०) एक प्रकारका मगग्दर रोग । इसे गुह्युपायरी भी कहते हैं । गन्धूकान्तो देवो ।

गुहासुर—एक देव । १ यह महाके पायसे वेद सुरु कर समुद्रके गर्भमें जा उठा था । इसीको मारनेके लिये विष्णुने गरुड्यायतार धारण किया था । २ सुर देवका पिता ।

गुहासिध (सं० स्त्री०) १ सिरकी दृष्टी । (विक्र ३० ७३०) २ पीठकी दृष्टी । (राजनि०)

गुहाद्व (सं० स्त्री०) गवामय पक्षका वृक्षभेद । (आश्विन ४५५)

गुहासि (सं० स्त्री०) १ जंघणुषो, संवाहृति । २ श्वेतायसिद्धि, सफेद कोयल ।

गुहादोषो (सं० स्त्री०) शंखपुरी, कौट्टियाया, कौट्टेना ।

गुहाहा (सं० स्त्री०) शंख रश्मि आहा नाम पक्ष्याः । शंखपुरी, कौट्टियाया ।

गुहाक (सं० पु०) कौट्टेय । (आश्विन)

गुहाका (सं० स्त्री०) शंखयन् पुष्पमस्तद्वशाः गुह्य-उत्त, मत्त इषं टाप । मग्धाहृलो, मोरपुरी ।

गुहाद्व (सं० पु०) शंकोडव्याप्तोति शंख रश्मि । १ विष्णु । २ समुद्र । (मेदिनी) ३ नाविक । ४ एक प्रकारका साव । (सि०) ५ जंघणिसिद्धि । ६ जंघणिसिष्णुका ।

गुहाद्व (सं० पु०) निरोध युष्, निरम । (कौटिलि०)

गुहाविषा (सं० स्त्री०) प्रतिगणो, गच्छित्त । (वैदक०)

गुहादो (सं० स्त्री०) शंख यन् पुष्पमस्तद्वशाः गुहा रश्मि । १ एक प्रकारकी वर्षावधि । इसकी सत्ता और फल निरविकृष्टके समान होते हैं । अन्तर केवल यही है, निरविकृष्टके फल पर शब्दे ही होते हैं जो जलिनिके फल पर शब्दो होते हैं । इसकी बीज शंखके समान होते हैं जिससे मेल निरसता है । येवर्षमें वृद्ध शरपरी, विनाय, विष्णु

दृष्टो, भारो, तौष्ण, गम, धर्मिहोवक, बलकाक, रश्मिकारक और विषविषा, भाव-दोष, इष, रश्मि

विषार तथा उदर दोष आदिही जाल इनेवाली मानो जाती है । इसका संस्कृत पर्वो—पयसिष्ण, मत्ता

मिषा, मद्रतिष्ठा, मृदमपुषो, हृदगदा, विवापेला, ताकुली, मेघमोला, सप्तगोष्ठा, माहोष्ठी, मिषा, मायो ।

२ बुद्धमिष्णो । ३ रश्मादुषो । ४ मुक्ता हातकी मय ।

५ मुद्दको मायो । ६ एक देवो । ७ मोर । ८ एक तीर्थस्थान । ९ एक प्रकारकी वनगा । १० वा

प्रकारकी स्त्री ज्ञानिसे एक स्त्रीज्ञानि । पत्नी, मित्रिणी, गुह्यो नीर दृष्टिनी ये वार प्रकारकी स्त्रीज्ञानि है । ज्ञान, मृग, पुष्प और मय ये वार प्रकारके पुष्प

हैं । इनमें ज्ञान ज्ञानोप पुष्प पत्नीसे, मृग जिनसे, से, पुष्प गुह्योसे तथा मय दृष्टिनीसे पुष्प रहते हैं ।

कहते हैं, कि येसी स्त्री कोपनीय, कोविद, सर्वोप ज्ञानोपनी, बड़ी बड़ी और सज्जन लोकोपनी, वैश्वोप सुन्दर, लज्जा और शंकाहित, शरीर, रश्मिष्ण, शर

गंधयुक्त और मदन मध्यालो होनी है । (एतद्वो) गुह्यो हीकीनी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका उष्णार ।

इसके लक्षण इस प्रकार बने गये हैं—सर्वांगमें पीला होना, नेत्र बहुत दुष्मता, मुक्ता होना, शरीर काँपना, श्वा, हाँसना, रक्तता, भोजनमें रुचि, मत्ता चेटना,

जानेके डर तथा भूलका भाव, उषर कड़का और निरमि अकर भाव ।

गुहादोषक (सं० पु०) शंखिष्ण फलानिष पर्वो वषण । जिरोम दूष ।

गुहादोषाम (सं० पु०) शंखिष्ण वामा माधवपाना । शरीर उष्ण, शरीर । कहते हैं, कि इस दूष पर भूत, प्रेण और रश्मिनी आदि बाध करती है ।

गुह्यो (सं० पु०) शंख देवो ।

गुहाद्विष्ण (सं० पु०) समुद्रनेम ।

गुहाद्वी (सं० स्त्री०) मत्ता माकारका एक प्रकारका पुष्प । यह शरीरमें जोनाके लिये मत्ताका ज्ञान है ।

इसके पर्वो पक्षकदुके पर्वोके समान होते हैं । जोने और मत्ता पुष्पके सिद्धे कर दूष से प्रकाशक होना

है । इसका कृतिना वैश्वोपे समान है, निरम मत्ता पर पक्ष मद्दुष्ण मत्तो होनी है और इससे

(राजनि०) (पु०) ५ घुस्त्ररक्षा, धतूरेका पेड़ ।
 ६ चित्रक, चीता । ७ तालवृक्ष । ८ अमलाका वृक्ष ।
 ९ मधुसूदन, यह जो दो आदमियोंके बीचमें पड़ कर उनके
 मगड़ेका निपटारा करता है । १० जड़ुद्धि, वैद्यक ।
 ११ आलसो । १२ शृण्णवंशीय विशेष । (हरि-
 ष्य २१) १३ साहित्यमें पांच प्रकारके पतियों या
 नायकोंमेंसे एक प्रकारका पति या नायक, यह नायक
 जो छलपूर्वक अपना अपराध छिपानेमें चतुर हो और
 किसी दूसरी स्त्रीके साथ प्रेम करते हुए भी अपनी
 स्त्रीसे प्रेम प्रदर्शित करनेका वहाना करा हो ।

(साहित्यद० ३७४)

रसमञ्जरीके मतसे पांच प्रकारके पतियोंमें पति
 विशेष । ये कामिनीविषयक कवच्यचनमें पड़े होते हैं ।
 (त्रि०) १४ धूर्त, चालाक । १५ पाजी, लुब्धा,
 बदमाश । मनुने लिखा है, कि जो शठ है, उसके साथ
 बाधपालाप करना उचित नहीं ।

“मिथं ध्वनितं पुरोऽन्वयं विप्रियं कुर्वते भृशम् ।
 एवंलापः। धवेष्टम् शठोऽयं कथितो दुष्टैः ॥”

(विष्णुपु० ३१८२१ श्लोक टीका)

जो समझमें मोठी मोठी बात बोले और असमझमें
 निन्दा करे, यही शठ कहलाता है ।

शठता (सं० स्त्री०) शठत्व भावः 'वतलो भावे' इति तल-
 टाप । १ शठका भाव या धर्म, धूर्तता । २ बदमाशी,
 याजोवन । पर्याय—भावा, शठप, कुश्रुति, निश्रुति ।

(हि०)

शठप (सं० स्त्री०) शठ भावे त्व । शठ्य, शठता ।

शठान्ना (सं० स्त्री०) शठाना देलो ।

शठान्ना (सं० स्त्री०) प्राणाणिलता, अश्वत्था । (राजनि०)
 शठान्मुनि—प्रमाणसारके रचयिता । ये शिवकोपमुनिके
 गुरु थे ।

शठिष्ठा (सं० स्त्री०) शठी देलो ।

शठो (सं० स्त्री०) १ कचूर । २ मधुपलाशी, कचूर
 कपरो । ३ वन वादक, पेड़ ।

शठोरुपा (सं० स्त्री०) कन्दमुद्ग, घी, कन्दमिर्च ।

(वैद्यनि०)

शठोदर (सं० त्रि०) धूर्त, धोखेवाज ।

शठ्यावि (सं० पु०) त्रिदोषघ्न कपायविशेष, उग्रनाशक
 पाचनविशेष । इसके बनानेका तरीका—कचूर, कुट,
 वरंगो, कर्कटशुद्धी, दुरालभा, गुडूची, सोंठ, आकनादि,
 चिरेता और कटकी, इन सबका एक एक तोला ले कर
 बाघ सेर पानीमें सिद्ध करे । जब सिद्ध करके बाघ
 पाव पानी रह जाय; तो नीचे उतार डे । कुछ गरम
 रहने ही इसका सेवन करनेसे त्रिदोषकी शमता तथा
 उग्र विनष्ट होता है ।

शठ्यादिषवाय (सं० पु०) क्यापीपधविशेष ।

(भावप्रकाश ज्वराधि०)

शण (सं० स्त्री०) शण-अच् । १ क्षुपविशेष । पर्याय—
 मङ्गा, मानुलानो । (पु०) २ खनामधुपात क्षुप, जण ।
 (Crotalaria juncea, Indian hemp) इसे तैलङ्गमें
 जण, मनुवेल, जेनपनर, रेल्वेष्ट, और तामिलमें जेनपनर
 कहते हैं । संस्कृत पर्याय—माल्यपुण्य, यमन, कटुतिकण,
 निजायन, दीर्घजाल, त्वक्सा, दीर्घपल्लव । गुण—
 अम्ल, कपाय, मल, गर्भ और अश्वपातन तथा शनिकारक,
 पिच, कफ और तीव्र अङ्गमर्दनाशक । (राजनि०)

यह तीन साढ़े तीन हाथ ऊंचा होना ही और इसका
 काण्ड सीधी छड़ीकी तरह दूर तक ऊपर जाता है । फूल
 पीले रंगके होते हैं । कुचारी फसलके साथ यह खेतों-
 में बोया जाता है और गादों कुमारमें तम्पार हो जाता
 है । रेशोदार छिलका अलग करनेके लिये इसके उठल
 पानीमें डाल कर सड़ाप जाते हैं । रेशोसे मजबूत
 रस्सियाँ आदि बनती हैं, इसीसे यह भारतीय वाणिज्य-
 का एक मूल्यवान् उपकरण समझा गया है । यूरोपमें
 इस जातिके पीछेसे जो सन उत्पन्न होता है, यही प्रकृत
 ज्ञान कहलाता है । इसके छिन्नकेमें जो रेशे निकलते
 हैं, ये बहुत मजबूत होते तथा कपड़े बुनने या रस्ती
 बनानेके काममें आते हैं । उद्भिद्धिन् विलडोना, ग्मेलिन
 और थुनबर्गने यथाक्रम, पारस्य, तातार और जापानमें
 यह वृक्ष देख कर अनुमान किया है, कि ये सब देश ही
 इन पीछेके भादिल्लान हैं । द्विदेशात्मक इस पीछेके
 शाकशीपका पीचा बतला गये हैं । विद्याधिनने काक-
 सस पर्यंतके निकटवर्ती देशोंमें तथा तीरियामें इस

पृष्ठकी देना है। चीनदेशमें ही-मा, थ-स, य-म और एङ्ग-म नामके भी कई प्रकारके शण उत्पन्न होते हैं। ये वस्तुतः एक नहीं हैं, भिन्न भिन्न जातिके हैं, किन्तु कार्यना प्रायः सममूल्यरूपमें हैं। यह प्रकृत शणकी तरह मजबूत जटिल और पिच्छिल होता है तथा उसमें देशों भी बहुत होते हैं। भारतमें इस श्रेणीका जो पौधा उत्पन्न होता है उसे *Canabis Indica* कहते हैं। योतारा, पारस्य और भारतमें समी जगह विशेषतः १० हजार फुटकी ऊँचाई हिमालयपृष्ठ पर इस जातिका घूँस उत्पन्न होता है। प्रधानतः यूरोपमें कैथलमात तत्तुके लिये ही इस घूँसका आदर है। क्योंकि उससे तरह तरहकी रस्सी और एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार होता है। प्राच्यभूखण्ड अर्थात् भारत, पारस्य आदि स्थानोंमें एकमात्र गाँजा और सिद्धिके लिये ही इसकी खेती होती है। रस्सी बनानेके लिये इसकी उतनी खेती नहीं है। इसके राल जैसे पदार्थसे चरस नामक मादक द्रव्य बनता है। ये सब भिन्न भिन्न पदार्थ उत्पन्न करनेमें एक ही पौधा भिन्न भिन्न प्रकारकी खेतीका प्रयोजक होता है। गाँजा और चरसके उत्पादनके लिये इस पौधेमें धूप, हवा और रोशनीकी विशेष आवश्यकता होती है। इस कारण इसे पतला करके रोपनेके बाद दूसरी जगह रोपा जाता है। रस्सीके लिये इसकी खेती करनेमें बोया खूब घना कर चुना जाता है। रस्सीके लिये पौधेमें धूप अधिक नहीं लगती, छाया और जलसिक्त मिट्टीकी ही विशेष आवश्यकता होती है।

Crotalaria Juncea नामक घूँससे भारतीय सन, *Hibiscus Cannabinus* घूँससे दक्षिणी या अन्धरी शण, *Musa textilis* नामक घूँससे मानिली सन उत्पन्न होता है। जव्वलपुरमें एक प्रकारका सन उत्पन्न होता है जो यूरोपीय वाणिज्यमें *Jubbulpur hemp* नामसे प्रसिद्ध है। इङ्ग्लैण्ड राज्यमें उसका आदर सबसे अधिक है।

शणई (दि० खी०) सन देता।

शणक (सं० पुं०) अर्धवृक्ष। (पा ६।३।३६)

शणकन्द (सं० पुं०) चर्मकवा नामका सुगन्धि द्रव्य।

शणकन्द (सं० स्त्री०) एक प्रकारका घूँस जिससे सातला कहते हैं।

शणघण्टा (सं० स्त्री०) शणघण्टिका देखो।

शणघण्टिका (सं० स्त्री०) शणस्य घण्टेय तस ल्यण्ड्यकारिफलवस्त्रात्, इत्यर्थे कन् टापि अत इत्यं। शण-पुष्पी नामकी लता। (राजनि०)

शणचूर्ण (सं० स्त्री०) सनईका यह बच्चा हुआ भाग जो उसे फूट कर सन निकाल देनेके बाद रह जाता है।

शणपर्णी (सं० स्त्री०) शणस्य पर्णमिध वर्णमस्वाः स्त्रीपुं। अशनपर्णी।

शणपुष्पिका (सं० स्त्री०) शणपुष्पी स्वार्थे कन् अत इत्यं। घण्टारवा, वनसनई।

शणपुष्पी (सं० स्त्री०) शणस्य पुष्पमिध पुष्पमस्वाः।

१ एक प्रकारकी वनस्पति जो साधारण वनसनई कहलाती है। यह छोटी और बड़ी दो प्रकारकी होती है। छोटी शणपुष्पी प्रायः सब प्राग्तोमें पाई जाती है। इसका क्षुप, पत्ते, फूल इत्यादि सनके ही समान होते हैं, किन्तु क्षुप सबसे छोटा होता है। फूल पीले, फलियाँ मटरके समान गोल और लम्बी होती हैं। यह कड़वी, घमनकारक और पारेकी बांधनेवाली कही गई है। इसके फल खूब जाने पर अन्धरके बीजोंके कारण भन भन शब्द करते हैं, इसीसे इसे फुनफुनियाँ कहते हैं। बड़ी शणपुष्पी प्रायः घाटिकाओंमें लगती है। इसका क्षुप, पत्ते आदि छोटी शणपुष्पीसे बड़े होते हैं। फूल सफेद रंगके होते हैं। यह कसैली, गरम और पारेकी बांधनेवाली कही गई है और मोहन, स्तम्भन आदिमें व्यवहारकी जाती है। इसका संस्केत पत्रांश—

गृहसुपुष्पी, शणिका, शणघण्टिका, पीतपुष्पी, स्थूलफलं, लोमशा, माल्यपुष्पिका। २ अरहर।

शणकला (सं० स्त्री०) शणकलजातीय।

शणमय (सं० स्त्री०) शणविशिष्ट। स्त्रिया स्त्रीपुं। (कार्पा० शी० ७।३।२६)

शणमूल (सं० स्त्री०) शणस्य मूलम्। सनकी जिका, शणका मूल।

शणशिका (सं० स्त्री०) शणमूल, सनई या सनकी जड़।

शणसमा (सं० ख्रा०) शणपुष्पी, वनसनई ।
शणसूत (सं० क्ली०) शणस्य सूत्रम् । कुश आदिंकी वनी
द्वई पवित्री जो श्राद्ध, तपण आदि कृत्यांके समय
कनिष्ठिकाकी शणघालो उंगलीमें पहनी जाती है; पवि-
नक । मन्त्र २।५५)

शणाल (सं० पु०) शणालुक देशे ।

शणालुक (सं० पु०) शणालुरैव स्वार्थे कन् । आरैयत
पृथ, भमलतासका पेड़ ।

शणिका (सं० स्त्री०) शणःखिपां टाप् कन् अत इत्वं ।
शणपुष्पी, वनसनई ।

शपीर (सं० स्त्री०) १ सोन नदीके मध्यका उपजाऊ
स्थल । २ सयूँ नदीकी शाखाओंसे घिरा हुआ छपरके
समीपका एक द्वीप, ददं दो तट ।

शण्ड (सं० स्त्री०) १ पत्थिनी, कमलिनी । (पु०) २
नयुंसक, हीजड़ा । ३ वह पुरुष जिसे सन्तान न होती
है, वध्या पुरुष । ४ उन्मत्त, पागल । ५ गोपति,
साई । (भरतधृत द्विकपको०)

शण्डता (सं० स्त्री०) शण्डस्य भावः तल टाप् । शण्ड-
का भाव या धर्म, नयुंसकत्व, हीजड़ापन ।

शण्डा (सं० पु०) १ फटा हुआ लट्ठा दूध अथवा
दही । २ एक पक्षका नाम ।

शण्डाकी (सं० स्त्री०) शिपटाकी देखो ।

शण्डाकी मघ (सं० स्त्री०) गर्भप्रकाशके अनुसार एक
प्रकारकी शराब । यह राई, मूले और सरसोंके पत्तों
का रस चावलकी पीठीमें मिला कर बर्क निकालनेसे
तैयार होती है ।

शण्डामर्क (सं० पु०) शण्ड और मर्क नामके दो दैत्य
जिनका नाम सांघ ही सांघ लिया जाता है ।

शण्डिक (सं० पु०) शुक्राचार्यका पुत्र जो असुरोंका
पुरोहित था ।

शण्डिल (सं० पु०) शण्डि राजायां (षल्लकव्यनिर्महमहि-
मायव्यग्रीवति । उष्य २।५५) इति श्लक् । एक प्राचीन
गोतकार ऋषि । इनके गोतके लोग शण्डिदेव कहलाते
हैं ।

शण्ड (सं० पु०) शण्यति शण्यमान् ग्राम (शमेट । उष्य
१।३१) इति ट । १ अश्वमेधद्विक, खोजा । ये लोग
राजाओंके मन्दर महलमें रहते और त्रिविकी रक्षा

करते हैं । इन्हें वर्षापर भी कहते हैं । २ नयुंसक,
हीजड़ा । ३ गोपति, साई । ४ वध्या पुरुष । ५ उन्मत्त ।
(धनञ्जय) ६ मूर्ख, बेवकूफ ।

शत (सं० लि०) दश दशतः परिमाणमस्येति (पटिक
विशति विशदिति । पा १।१।५६) इति तु दशानां शमावश्च
निपात्यते । १ दशका दश गुना, सौ । शतवाचक शब्द
घासंश्राद्ध, शतमिपातरा, पुरुषायुष, राधणांशुलि,
पद्मदल, इन्द्रवध, अस्थियोजन । (कविकल्पद्रता) २ वट्ट ।
(शृक् ८।१।५) (क्ली०) ३ सौकी संख्या, दशकी दशगुनी
संख्या जो इस प्रकारकी लिखी जाती है—१०० ।

शतक (सं० पु०) शतं परिमाणमस्य । शत (संख्याया
अतिदशान्तायाः कन् । पा १।१।२२) इति कन् । १ सौका
समूह । २ एक ही तरहकी सौ चीजोंका संग्रह । ३
वह जिलमें सौ भाग या अवयव हों । ४ सौ वर्षोंका
समूह, शताब्दी । ५ विष्णु ।

शतकपालेश (सं० पु०) शिखिलकूमेः । (राजतर० १।३३७)
शतकर्मा (सं० पु०) शनिप्रद । (हेम)

शतकिरण (सं० पु०) एक प्रकारकी समाधि ।

शतकीर्त्ति (सं० पु०) जैन पुराणानुसार एक भाग्यो
वाहंशुका नाम । (हेम)

शतकुन्त (सं० पु०) शतकुन्द देखो ।

शतकुन्द (सं० पु०) शतं कुन्दा यस्य । करवीर, सफेद
कनेर ।

शतकुम्भ (सं० पु०) १ एक प्राचीन पर्यंत । २ करवीर,
सफेद कनेर । ३ सुवर्ण, सोना ।

शतकुम्भा (सं० स्त्री०) नदीतीर्थाविशेष । इस नदीमें
स्नान करनेसे स्वर्गलभ होता है । (भाव ३।५।१०)

शतकुम्भारक (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका
कीड़ा । (सुश्रुत कल्प० ८ म०)

शतकुसुमा (सं० स्त्री०) शतपुष्पा, सौक ।

शतकृत्यस् (सं० अर्थ०) शतवार, सौ दफे ।

शतकृष्णल (सं० लि०) शतसंघक कृष्णलपरिमित ।
(सौविरीय० २।३।२१)

शतकंभर (सं० पु०) भागवतके अनुसार एक वर्ष पर्यंत-
या नाम । (भागवत ५।२०।२६)

शतकोटि (सं० पु०) शतं कोटयोऽप्राः शिष्या यस्य ।

१ इन्द्रका यज्ञ । २ हीरक, हीरा । ३ अमुं द, सीं करोइती संख्या । (लीलावती)

शतकौम्म (सं० स्त्री०) खर्ण, सोना । (वैद्यकनि०)

शतकौम्मक (सं० फली०) शतकौम्म देखो ।

शतकतु (सं० पुं०) शतं शतयो यस्य । १ इन्द्र ।

२ बहुकर्मा । ३ बहुप्रथ । (श्रुक् १०१०१)

शतकनुद्रुम (सं० पुं०) कृष्णकुटज वृक्ष, काली कुड़ाया पेड़ । (वैद्यकनि०)

शतकनुप्रस्थ (सं० फली०) इन्द्रप्रस्थ । (भारत)

शतकनुपय (सं० पुं०) इन्द्रपय, कुटज वीज । (वैद्यकनि०)

शतकी (सं० त्रि०) सीं द्वारा खरोदा हुआ ।

(शाब्दायन ६४१५)

शतखण्ड (सं० फली०) १ सुवर्ण, सोना । २ सोनेकी बगो हुई कोई चीज ।

शतखण्डमय (सं० त्रि०) शतखण्ड-मयट्-स्वरूपार्थे ।

१ सुवर्णमय । २ शतभाग स्वरूप ।

शतगु (सं० त्रि०) शोशत परिमाण धनविशिष्ट, सीं गौमोका खामो, सीं गायोंका रखनेवाला । (मनु १११४)

शतगुण (सं० त्रि०) सीं गुना ।

शतगुता (सं० स्त्री०) पेयण । (Euphorbia antiquorum)

शतग्रन्धि (सं० स्त्री०) शतं ग्रन्थयो, यस्याः । १ दुर्वा, सफेद दूब । २ नीली दूब । (राजनि०)

शतप्रोव (सं० पुं०) भूतधोनिविशेष ।

शतम्ब (सं० त्रि०) शतसंख्यक, सीं ।

शतग्विन् (सं० त्रि०) शतसंख्यक, गद्यादि विशिष्ट, सीं गायोंका रखनेवाला । (श्रुक् ११५२५ सायण)

शतघ्नो (सं० स्त्री०) शतं हन्तीति शत-टक्-ङीप् ।

शस्त्रविशेष, एक प्रकारका शस्त्र । यह बि.सी बड़, पत्थर या लकड़ीके कुंठमें बहुतसे नील कांटे डोक कर लगाया जाता है और इसका व्यवहार युद्धके समय शत्रुओं पर फेंकनेमें होता है । यह शस्त्र दुर्गके चारों ओर रखना होता है ।

"दुर्गंश्च परितोर्न सघाट्यान्नकथंयुत्तम् ।

शतघ्नो यन्प्रसूयैश्च शतशब्धेणमाहृतम् ॥"

(मत्स्यपुं० १६ भ०)

२ वृश्चिकालो, विछाली । ३ करज या कज्जे का पेड़ ।

(मेदिनी) ४ भावप्रकाशके अनुसार गलेमें होनेवाला एक प्रकारका रोग । इसमें त्रिदोषके कारण गलेमें

बस्तीके समान लक्ष्मी और मोटी तथा कण्ठको रोकने-वाली, मांसके बकुरोंसे भरी हुई और बहुत पीड़ा

देनेवाली सूजन हो जाती है । यह रोग बड़ा कष्टदायक तथा असाध्य है । इसमें रोगीके प्राणनाशका डर

रहता है । गल्येण देखो ।

शतचक्र (सं० त्रि०) शतकरणसाधन, बहु योगनिष्पादन । (श्रुक् १०१४४)

शतचण्डी (सं० स्त्री०) शतकपी चण्डीपाठ ।

शतचन्द्र (सं० त्रि०) एक शतचन्द्र तुल्य, सीं चन्द्रमाके समान ।

शतचन्द्रित (सं० त्रि०) शतचन्द्रयुक्त ।

शतचर्मन् (सं० त्रि०) शतचर्मन्तु विनिर्मित ।

(भारत आदिष्व)

शतच्छद (सं० पुं०) शतं छदा यस्य । १ काष्ठकुट पत्ती, कठकोड़वा या काठ-डोका नामके चिट्टियों ।

(त्रिकां०) २ शतदल पत्र, सीं पत्तियोंवाला कमल ।

शतजटा (सं० स्त्री०) शतमूली, सतावर ।

शतजित् (सं० पुं०) १ विष्णु । २ राजके पुत्र । (विष्णुपुं०) विराजके पुत्र । (भागवत ५।१।१३)

४ सहस्रजित्के पुत्र । (भाग० ६।२३।२०) ५ भद्रमानके पुत्र । (भाग० ६।२४।८) ६ यक्षभद्र ।

(भाग० १२।१२।४३)

शतजिह (सं० त्रि०) जिह, महादेव । (भारत १२ पर)

शतजीघन् (सं० त्रि०) शतं जीघति जीघ-णिनि । सीं वर्ष जीघेवाला ।

शतज्योतिस् (सं० पुं०) सुभाजके पुत्र । (भारत १।४४)

शततमि (सं० स्त्री०) शततन्त्री ।

शततम (सं० त्रि०) शत-तमप् पूरणार्थे । शतसंख्यका पूरण ।

शततद (सं० पुं०) शततिद्र, सीं टेंद्र ।

शततारा (सं० स्त्री०) शतं तारा यस्यां । शतमिया नक्षत्र । इस नक्षत्रमें सीं तारे हैं ।

शततिन् (सं० पुं०) राजपुत्रभेद । (विष्णुपुं० २।१।१६)

शततेजस् (सं० पु०) ध्यासका एक नाम ।
 शतद् (सं० त्रि०) शतं द्वाति दा-क । शतसंघक
 दानकारी, सौ दान करनेवाला ।
 शतदक्षिण (सं० त्रि०) शतदक्षिण्यायुक्त, सौ दक्षिणासे
 युक्त ।
 शतद्वत् (सं० त्रि०) शतद्वर्तविशिष्ट, चिहणी ।
 शतदन्तिका (सं० स्त्री०) नागदन्ती, नखी नामक
 गन्धद्रव्य, हाथीशुंठी । (राजनि०)
 शतदल (सं० स्त्री०) शतं दलानि यस्य । पत्र, कमल ।
 शतदलमल्लिक (सं० स्त्री०) स्वनामध्यात पुष्पशुभ ।
 (पर्यायपु०)
 शतदला (सं० स्त्री०) १ शानपत्नी, सेवती । २ गुलाब ।
 शतदा (सं० त्रि०) शत-दा-किप् । शतदानकारी, सौ
 दान करनेवाला ।
 शतदातु (सं० त्रि०) शतसंघक, सौ ।
 शतदाय (सं० त्रि०) १ प्रचुर धनयुक्त, काफ़ी धनवाला ।
 २ शतदानपट्ट ।
 शतदायक (सं० पु०) कोटविशेष । (शुभ्र. त.)
 शतघ्न (सं० पु०) १ एक ऋषि । (तैत्तिरीयब्रा०
 १।१।११) २ राजभेद । (भारत १० पर्व) ३ चाक्षुष
 मनुके एक पुत्रका नाम । (मार्कण्डेयपु० ७३।१५) ४
 भानुमत्का पुत्र । (भागवत ६।१।३२)
 शतद्रु (सं० स्त्री०) शतघ्न द्रवतीति शत-द्रु (शिबे च । उष्य
 १।३६) इति कु । नदीविशेष । पर्याय—शितद्रु, श्रुतुद्रि,
 शतद्रु । (अथर) इसकी नामनिश्चयि । " शतघ्ना
 विद्रुता परमाच्छतद्रुरिति विश्रुता ।" (भारत १।१७८६)
 यह नदी शतभागमें विद्रुता हुई थी, इसलिये
 इसका नाम शतद्रु हुआ है । महाभारतमें इस नदीका
 विषय यों लिखा है—पुत्रशोकानुर धशिष्ट हिमालयसे
 उत्पन्न एक पारश्वीता नदी देख उसमें प्राण विसर्जन
 करनेके अग्निप्रायसे गिरे । यह नदी विषके अग्निद्रव्य
 जाग शतधा हो कर विद्रुता हुई, इस कारण यह नदी
 तभीसे शतद्रु नामसे विख्यात हुई है । (भारत
 १।७८ ब०) ऋग्वेदमें इस नदीका नाम श्रुतुद्रि है ।
 इस नदीके जलका गुण—शीतल, लघु, स्वादु,
 सर्पविषनाशक, निर्मल, दोषघ्न, पाचन, बल, वृद्धि,
 मेधा और आयुर्जनक । (राजनि०)

शतद्रु पञ्जाबकी एक प्रसिद्ध नदी है । यह हिमालय
 पर्वतसे निकल कर पञ्जाबके दक्षिण-पश्चिमी भागमें बहती
 हुई ध्यास या विपासासे मिल कर मुलतानके दक्षिण
 ओर सिन्धुमें मिलती है । पुराणादि पढ़नेसे पता
 चलता है, कि मानस-सरोवरसे ही शतद्रु निकली है—
 फिर किसी ओर पौराणिक वृत्तान्तसे मालूम होता है,
 कि शतद्रु नदी रावणहृदसे निकलती है । रावणहृद
 मानस-सरोवरसे पश्चिम है । ब्रह्मपुत्र और सिन्धु
 जहासे निकली है, उसके पास होवे शतद्रु उत्पन्न हुई
 है । मानस-सरोवर और रावणहृद दोनों आर-पास
 ही है । शतद्रुके उद्गच्छिस्थानको ले कर मित्र जिन
 मतोंका सामञ्जस्य करना उनका कठिन नहीं है । ब्रह्मपुत्र
 पूर्वकी ओर, सिन्धु पश्चिमकी ओर तथा शतद्रु दक्षिण-
 पश्चिमकी ओर बहती है । इसका उत्पत्तिस्थान हमारे
 इस समतल भूखण्डसे १५२०० फीट उच्चधर्ममें अवस्थित
 है । यह पहाड़ी प्रदेश शतद्रु नदीके जित स्थानमें प्रथ
 मतः समतल भूमिमें निपतित है, उस भूखण्डका नाम दे
 गज । इस समतल भूमिमें इसकी गहराई प्रायः चार
 हजार फुट है । चीन देशके पुलिस स्टेनन सिपकी
 नामक स्थानसे शतद्रु सीधे दक्षिणकी ओर बह चली
 है । हिमालयके पथरीले प्रदेशसे हो कर यहां शतद्रु
 जैसी बहती है, समथकारो उसका विवरण षोडश बटुन
 संग्रह कर प्रकाश कर गये हैं । हिमालयके मध्य हो कर
 शतद्रु बहती है । यहां शतद्रुके पथरीले किनारेकी
 ऊँचाई करीब बीस हजार फुट है । सिपकीमें मौ समुद्र-
 तलसे ऊँचाई दूज हजार फुटसे कम नहीं है । हिमालयके
 प्रान्त भागसे शतद्रु बसाहर-स्टेट और विलासपुरके मध्य
 होता हुई बह चली है । विलासपुर समतल भूमिखण्डसे
 प्रायः तीन हजार फुट ऊँचा है ।
 विलासपुरकी सीमाकी छोड़ शतद्रु, एटिंग राज्यमें
 जा गिरी है । दो सौ मील तक जिर्जन पहाड़ी प्रदेश
 हो कर बहती हुई लिया निपति नदीमें मिल गई है ।
 यहांसे दोनों प्रयाद एकत्र मिल कर दक्षिण-पश्चिमकी
 ओर बसाहर और सिमला पहाड़ पधसे होसिपाथी हो
 कर बह चला है । यहांसे शतद्रु दिवालिंक पर्वतमाला-
 की घेरी हुई दक्षिणकी ओर बह चली है । शतद्रु

द्वारा हेमिसपावरु और बन्वाला विभक्त हुआ है। इसके बाद शतद्र प्रवाह उत्तरमें जालन्धर तथा बन्वाला, लुधियाना और फिरोजपुर, दक्षिणमें रब कपूरतलाके बीच हो कर प्रवाहित है। कपूरतलाके दक्षिण-पश्चिम कोन पर शतद्र नदीमें विषस नद आ मिला है। यह सम्मिलित जलप्रवाह इस स्थानसे बराबर दक्षिण-पश्चिमकी ओर प्रवाहित होता है। इसके दक्षिण-पूर्व तट पर फिरोजपुर, सिसां और बहवलपुर अवस्थित हैं। उत्तर पश्चिम प्रायतमें घारीदेशनाथ, लाहौरका कुछ अंश, मण्टेगुमाणी और मुलतान जिला है। दोनों किनारेके हरे मरे क्षेत्रोंकी शोभा देतासे ही बन पड़ती है। दोनों किनारा बहुत ऊँचा है। किन्तु नीचे राजपुताना अञ्चलमें तटके पास पासकी भूमि उतनी उर्वरा नहीं है। मद्वालाके समीप शतद्र त्रिमाथ नदके साथ मिल गई है। यहाँ नदियाँ पञ्चनद नामसे ख्यात हैं।

शतद्र ६०० मील पथ घूमती घूमती मिथुनके तटके पास सिन्धुनदमें मिल गई है। मिथुनके तट सामुद्र समतल भूमिसे २५८ फुट ऊँचधर्ममें अवस्थित है। जून, जुलाई और अगस्त इत तीन महिनेमें वर्षाके कारण नदी मरी रहती है। फिलारके पास शतद्रके धर्ममें एक रेलवे पुल तथा बहवलपुरके पास भी और एक पुल है। वर्षाकालमें फिरोजपुर तक स्टीमर जा सकता है।

शतद्र १। (सं० खी०) शतद्र त्वार्ये कन् टापु। शतद्र नदी।

शतद्र २ (सं० पु०) शतद्र तोरयासी।

(मार्क० पु० ५७।३७)

शतद्र ति (सं० खी०) समुद्रकी कन्या और यहि पदकी पत्नी। (भाग० ४।२७।२३)

शतद्र तु (सं० लि०) शतसंघपक धनयुक्त।

शतद्रार (सं० लि०) शतं द्वाराणि यस्य। शतद्रार-विशिष्ट, जिसमें सौ प्रवेशपथ हैं।

शतधनुस् (सं० पु०) यद्दुर्घोष राजभेद, दृष्टिक राजपुत्र। (भागवत ६।२४।२७)

शतधन्य (सं० लि०) सौ बार धन्यवादके पाले।

शतधन्या (सं० पु०) एक योद्धा जिसे छप्पत्ते सत्रा

जिम्के मारनेके अपराधमें मारा था। २ राजभेद।

(शरिंश) ३ अविभेद। (पा ५।१।२३३)

शतधर (सं० पु०) राजभेद। (वायुपुराण)

शतधा (सं० अर्थ०) शत प्रकारे धान्। १ शत प्रकार, सौ किस्म। (खी०) २ दृष्ट्या, दृष्ट। (शब्दच०)

शतधामन् (सं० पु०) शतं धामानि यच्चोसि यसा। विष्णु। (जटापर)

शतधार (सं० क्ली०) शतं धाराः फोणा यसा। १ यज्ञ। (विका०) (ति०) २ शत धारायुक्त, जिसमें सौ धारा हो।

शतधारवन (सं० क्ली०) तीर्णभेद।

शतधृति (सं० पु०) १ इन्द्र। २ प्रज्ञा। (गैदिनी) ३ स्वर्ग। (विश्व)

शतधेनुतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

शतधीत (सं० लि०) शतधा धीत, जो एक सौ बार धोया गया हो।

शतनिर्दायः (सं० पु०) बहुसोपण शब्दयुक्त, मण्डूक शब्दधाला। खियां टापु। (भारत ५ पर्य)

शतनेत्रिका (सं० खी०) शतायरी। (राजनि०)

शतपति (सं० पु०) सौ मनुष्योंका मालिक या सारदार। (पा ४।१।४)

शतपल (सं० क्ली०) शतं पत्राणि यस्य। १ पत्र, कमल। (अमर) (पु०) शतं पत्राणि पक्षा यस्य।

२ मयूर, मोर। ३ सारस। ४ शारिका, मैना। ५ कठकोड़या पक्षी। ६ शतपत्री, सेयती। ७ पृथ्वपति।

(लि०) ८ सौ दलों या पसोंवाला। ९ सौ पसोंवाला।

शतपत्रक (सं० पु०) शतपत्र स्वार्थे कन्। १ कठ फोड़या नामका पक्षी। २ एक प्रकारका विपिला कीड़ा। ३ पुराणानुसार एक पर्यतका नाम।

शतपत्रनिवास (सं० पु०) शतपत्रे निवासो यस्य। १ प्रज्ञा। (कविचर्या) (लि०) २ पद्मस्य।

शतपत्रमेधयाय (सं० पु०) धन्य देतो।

शतपत्रपौनि (सं० पु०) शतपत्रं पौनिः उत्पत्तिस्थानं यस्य। प्रलयपौनि, प्रज्ञा।

शतपत्रा (सं० खी०) दृष्ट्या, दृष्ट।

शतपत्रिका (सं० स्त्री०) शतपत्र कन् टाप्-अतः इत्वं-उ
शतपत्री ।

शतपत्रो (सं० स्त्री०) शतं पत्राणि यस्याम् ङीप् । पुष्प-
विशेषः, एक प्रकारका गुलाब । क्लिप्त-संस्वन्तिगे ।

सैन्य-चेमन्तिः चेटु । पर्याय-सुमनाः, सुशीता,
शिववल्लभा, सोमगन्धो, खतदला, सुप्रसा, शतपत्रिका ।

गुण-शीतल, तिक्त, कपाय, कुष्ठ, मुखरोग, स्फोटक,
पित्त और दाहनाशक, रुचिकर और सुरभि । (राजनि०)

शतपत्रीकेसर (सं० पु०) गुलाबका जोरा, गुलाब, केसर ।
शतपथ (सं० लि०) १ असंख्य मार्गवाला । २ बहुत-

सो शाखाओंवाला ।
शतपथब्राह्मण (सं० पु०) यजुर्वेदका एक ब्राह्मण ।

इसके कर्त्ता महर्षि याज्ञवल्क्य माने जाते हैं । इसकी
माध्यन्दिन और काण्य शाखाएँ मिलती हैं । इनमेंसे

पहलीकी विशेष प्रतिष्ठा है । एक प्रणालीके अनुसार
इसमें ६८ प्रपाठक हैं और दूसरीके अनुसार यह १४

काण्डों और १०० अध्यायोंमें विभक्त है । चारो
ब्राह्मणोंमेंसे यह अधिक क्रमपूर्ण और रोचक है । इसमें

अग्निहोत्रसे ले कर अश्वमेध पर्यन्त क्रम काण्डका बड़ा
ही विशद और सुन्दर वर्णन है । वेद देखो ।

शतपथिक (सं० लि०) शतपथमथोते तद्वेद इति या
(अथथः पितृन् पथो बहुसम् । पा ४।२।६०) इत्यस्य

पार्श्विकोपरया शत शब्दोत्तर पथिन् शब्दात् विक्रन् ।
१ बहुतसे मर्तोंका अनुयायी । २ शतपथब्राह्मणका जानने

या पढ़नेवाला ।
शतपथोप (सं० लि०) शतपथब्राह्मण-सम्बन्धी ।

शतपथु (सं० लि०) शतपद्विशिष्ट ।
(अक्ष १।१६।४।२)

शतपद (सं० बली०) १ कनखजूरा, मोहर ।
२ च्यूटी ।

शतपदचक्र (सं० बली०) शत पदानि कोष्ठा यस्य तद्यक-
ञ्चेति । उपोदिवमें सी कोष्ठोंवाला एक प्रकारका चक्र ।

इस चक्रके अनुसार नाम रखनेसे जातके नामके आदि
रक्षर द्वारा उसका जन्म नक्षत्र तथा उस नक्षत्रकी पाद्

काल और उसके अनुसार शालकका राशिकाल होता
है ।

शतपदी (सं० स्त्री०) शतं पदा यस्याः ङीप् ।
१ कनखजूरा, मोहर । पर्याय-कर्णजलीका, कर्णकोटो,

भोक, शतपादिका, कर्णजलुका, शतपाद्, शतपादो ।
(जयापर) यह कीट भाट प्रकारका होता है, जैसे-

पदया, छण्णा, चित्रा, कपिलिका, पित्तिका, रका, श्वेत,
अग्निप्रभा । इसके दर्शन करनेसे उस जगह शोथ, हृदयमें

दाह और घेदना होती है । (सुश्रुत कल्पस्थान ८ ब ४०)
२ शतमूली, सतावर । (राजनि०) ३ नीलो कोपल

नामकी लता । ४ मरसेकी जातिका एक पीधा । इसके
ऊपर कलगीके आकारके लाल फूल लगते हैं ।

शतपद्म (सं० बली०) श्वेतपद्म, सफेद कमल ।
शतपद्मस (सं० लि०) शतसंख्यक पयोविशिष्ट ।

(शुक्लधनुः १०।५६ महीपर)
शतपरिवार (सं० पु०) सपाधिक एक भेद ।

शतपर्णा (सं० पु०) एक ऋषि । इनके अपत्य शात-
पर्णय कहलाते हैं ।

शतपर्वाक (सं० लि०) १ शतपर्वाविशिष्ट । २ शतपर्वा,
दूध ।

शतपूर्वार्धक (सं० पु०) वस्रधारी इन्द्र ।
(भागवत ३।१४।४१)

शतपर्वाङ्ग (सं० पु०) शत पर्वाणि यस्य । १ रंज,
वर्ण । २ इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईर । ३ शतपर्वा-

विशिष्ट वस्र, यह वस्र जिसमें सी पर्वा हो ।
(अक्ष १।८०।६)

शतपर्वा, सं० स्त्री०) शत पर्वाणि यस्याः । १ दूर्वा,
दूध । २ घचा, वन । ३ मार्गवकी पत्ती । (भास

५।१५।१३) ४ कोजागर पूर्णिमा । (शरदरत्न०)
५ कटुकी । ६ श्वेतदूर्वा, सफेद दूध । ७ मोलदूर्वा ।

८ कलशो शाक, करेमुका साग । (भावप्र०) ९ सुगन्धि
द्रव्य । १० पीटा, मत्त, फेंतारा ।

शतपत्रिका (सं० स्त्री०) शतपर्वा कन्-टापि अत इत्वं ।
१ दूर्वा, दूध । २ घचा, वन । (मेदिनी) ३ घय, जी ।

(अक्षस्थान०)
शतपर्वाश (सं० पु०) शत पर्वाया ईशा । शुक्रप्रद ।

(पिशा०)
शतपथिज (सं० लि०) बहुपथित रूपविशिष्ट । विप्रयं

टाप् । (शतं संहृति पतिनापि पावनानि रूपाणि यावान्नाः ।
श्रुक् ७।४७।२ शयष्य)

शतपात् (सं० स्त्री०) शतं पादा यस्याः पादस्य पात् ।
कर्णाजलीका, गोत्रर ।

शतपादक (सं० पुं०) अनिमृत्ति कीटविशेष ।

शतपादिका (सं० स्त्री०) शतपाद स्वार्थे कन् टाप् अत-
इत् । १ कान्कोली नामक अष्टवर्गीय कोपधि । २ कर्णा-
जलीका, गोत्रर ।

शतपादो (सं० स्त्री०) १ श्वेतकटभोवृक्ष । २ नोली
अपराजिता । (नैपकदि०)

शतपाल (सं० पुं०) शतं पालयति, पाल अन् । शत-
पालक, यह जो सौका पालन करता हो ।

शतपुत्र (सं० स्त्री०) शतं पुत्रा यस्य । शतपुत्रविशिष्ट,
जिसे सौ पुत्र हो ।

शतपुत्री (सं० स्त्री०) १ शताथरी, सताथर । २ सत-
पुत्रिया तरोर ।

शतपुत्र्य (सं० पुं०) १ किराताञ्जुनीय प्रत्यकसां भारयि-
नामक कवि । २ यष्टिक शालिघोष्य, साठी घान ।

शतपुत्र्या (सं० स्त्री०) शतं पुत्राणि यस्याः । १ शाक-
विशेष, सोमा नामका साग । धंगरेजोमें इसे Pence-
danum Sowa P. Graveolens कहते हैं । संस्कृत
पर्याय—सितछत्ता, अतिछत्ता, मधुरा, मिसि, अथाक्,
पुष्पो, कारधी, शताक्षी, शतपुष्पिका, मधुरिका, शताह्वा,
छत्ता, मिश्री, माघधी, घोषा । गुण—मधुर, घातपित्तहर,
गुरु । (राजव०) २ क्षुपविशेष, सौंक । पर्याय—
जताह्वा, मिसि, घोषा, पोतिका, अतिछत्ता, अथाक्पुष्पो,
माघधी, कारधी, क्षिफा, संघातपत्रिका, छत्ता, वज्रपुष्पा,
सुपुष्पिका, शतप्रसूता, यहला, पुष्पाह्वा, शतपत्रिका,
घनपुष्पा, भूरिपुष्पा, सुगन्धा, सुक्ष्मपत्रिका, मधुरिका,
अतिछत्ता । गुण—कटु, तिक्त, स्निग्ध, श्लेष्मा, अतिसार,
उषर, नेत्ररोग और म्रणनाशक तथा घस्तिकार्यमें प्रदास्त ।
इसका दलगुण—उष्ण, मधुर, गुणम, शूल और घात-
नाशक, क्षीपण, पथ्य, पित्तहारक और दधिदायक ।
(राजनि०) ३ गवेपुत्र ।

शतपुष्पात् (सं० पुं०) १ सौंकका साग । २ शताह्वा ।
शतपुष्पिका (सं० स्त्री०) शतपुत्र्या, स्वार्थे कन् टापि
अत इत्थं । शतपुत्र्या देखो ।

शतपीद (सं० पुं०) १ एक प्रकारका घातजन्य मगम्ब्र ।
इसमें गुदाके समीप फोड़ा उत्पन्न होता है, जिसके
पकने पर बहुतसे छेद हो जाते हैं और उनमेंसे मल,
मूत्र तथा वीर्य निकलता है । २ एक प्रकारका रोग
जिसमें घात और रक्तके कुपित होनेसे लिङ्ग पर अनेक
छेद हो जाते हैं ।

शतपीदक (सं० पुं०) शतपीद देखो ।

शतपीनक (सं० पुं०) शतपीद देखो ।

शतपीर (सं० पुं०) इक्षुविशेष, पीड़ा, मग्न । इसका गुण—
कुष्ठ उष्ण, घातशान्तिकर । (सुभूत कल्पस्थो ५५ अ०)

शतपीर (सं० पुं०) शतपीर देखो ।

शतप्रद (सं० स्त्री०) शतदानशील । (निचक ११।११)

शतप्रमेदन (सं० पुं०) एक ऋषि । ये ऋक् १६।११३
सूक्तके मन्त्रप्रदा तथा वैष्णव गोत्रीय थे ।

शतप्रसव (सं० पुं०) कश्यपवर्द्धिके एक पुत्रका नाम ।
(हरिवंश)

शतप्रसूति (सं० पुं०) शतप्रसव देखो ।

शतप्रसूना (सं० स्त्री०) शतं प्रसूतानि पुत्राणि यस्याः ।
शतपुत्र्या देखो ।

शतप्रास (सं० पुं०) शतं प्रासा इव फलानि यस्य ।
करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़ ।

शतफल (सं० पुं०) घंज, बांस ।

शतबला (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन
नदीका नाम । (भारत भीष्मपर्व)

शतबलाक (सं० पुं०) एक वैदिक मागार्थ । (वापु०)

शतबलाक्ष (सं० पुं०) मोडुगदय गोलसमृत् एक वैवा-
करण । (निचक ११।१)

शतबलि (सं० पुं०) १ मरत्य, मछली । (भागवतस्थ २।१७)
२ रामायणके अनुसार एक कन्दरका नाम ।

(रामायण ७।१३।१४)

शतबाहु (सं० पुं०) १ सुभूतके अनुसार एक प्रकारका
पीड़ा । (सुभूत कल्पस्थो ८ अ०) २ मधुरमेद (भाग०
७।२४) ३ मारका पुत्र । (कनिष्ठवित्तर) (ति०) ४
शतबाहुविशिष्ट, सौ मुक्तावाला । (वैशेष्य भा० १०।१)
(स्त्री०) ५ देवताविशेष ।

शतबुद्धि (सं० लि०) १ बहुबुद्धिधारी, बड़ा बुद्धिमान् ।
 (पु०) २ पञ्चतन्त्रोक्त मत्स्यविशेष ।
 शतमिष (सं० पु०) शतमिषा नक्षत्र ।
 शतमिषज् (सं० स्त्री०) शतं मिषज इव तारा पल । १
 शतमिषा नक्षत्र । (पु०) २ यह व्यक्त जिसका जन्म
 शतमिषा नक्षत्रमें हुआ हो । (पाणिनि ४।१।३६)
 शतमिषा (सं० स्त्री०) अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रोंमें-
 से चौबीसवाँ नक्षत्र । यह सौ तारोंका समूह है और
 इसकी आकृति मण्डलाकार है । इसके अधिष्ठाता
 देवता यक्ष कहते गये हैं और यह ऊर्ध्वमुख माना
 गया है । कहते हैं, कि जो बालक इस नक्षत्रमें जन्म लेता
 है, वह साहसी, जिह्मुर, चतुर और अपने वैरीका नाश
 करनेवाला होता है ।
 शतमिषा नक्षत्रयुक्त रवि, शनि या मङ्गलवारमें रोगो-
 त्पन्न होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है ।
 श्लोत्तरी मतसे शतमिषा नक्षत्रमें जन्म लेनेसे राहु
 की दशा होती है । अगर यह नक्षत्र समूचा पड़े, तो
 चार वर्ष भोग होता है, साधारणतः ६० दण्ड नक्षत्रमान
 रहनेसे नक्षत्रके प्रतिपदमें एक वर्ष, प्रति दण्डमें २४ दिन
 तथा प्रतिपदमें २४ दण्ड करके भोग जानना होगा ।
 किन्तु सूक्ष्म दिसाव करनेसे नक्षत्रमान जितना दण्ड
 होगा, उन्हीं दण्डोंमें ४ वर्ष भोग होगा । विशोत्तरी
 मतसे भी शतमिषा नक्षत्रमें राहुकी दशा हुआ
 करता है ।
 शतमोह (सं० स्त्री०) शतं पद्वो वियोगिनो मोह-
 घोऽप्ययाः । मल्लिका पुष्पशृङ्ग, चमेलीका पेड़ ।
 शतमुनि (सं० लि०) १ अत्यन्त विस्तोर्णः । २ शत-
 गुण । ३ बहुसंख्यक भुज्ज अर्थात् प्राचीरादि वृक्ष ।
 ४ असंख्यजात भोगवत् । (शुक १।१६।८ भाष्य)
 शतभृष्ट (सं० स्त्री०) अतिशय तीक्ष्ण या तेजः ।
 (वैश्वि० सं० २।६।४।१)
 शतमख (सं० पु०) शतं मखा येषां यस्य । १ इन्द्र,
 शतकतु । (इलायुध) २ कौशिक, उल्लू ।
 शतमन्थु (सं० पु०) शतं मन्थो कृतयो यस्य । १
 इन्द्र । २ कौशिक, उल्लू । (लि०) ३ शतपञ्चकारी,
 सो पक्ष करनेवाला । ४ क्रोधी, गुस्सावर । ५ बरसादी ।

शतमन्युकण्डित् (सं० पु०) वृक्षमेद ।
 शतमय (सं० लि०) शत स्वरूपे मयट् । शत स्वरूप,
 सी ।
 शतमयूख (सं० लि०) १ बहुदिग्गिर्विशिष्ट । (पु०) २
 चन्द्रमा ।
 शतमल्ल (सं० पु०) सखिया नामक विष ।
 शतमाण्डि (सं० पु०) माण्डि नामधारी वैदिक
 आचार्यकी वंशपरम्परा ।
 शतमान (सं० पु० स्त्री०) १ सुवर्णकी कोई वस्तु जो
 तौलमें सौ मानकी हो । २ सोना या चाँदी तौलनेके
 लिये सौ मानकी तौल या बाट । ३ चाँदीका पल ।
 ४ आढ़क नामकी प्राचीन कालकी तौल जो प्रायः पाने
 चार सेरकी होती थी । ५ रूपामाली या तार-माण्डिक
 नामकी उपधातु । (लि०) ६ शतलोकपूज्य, जगत्पूज्य ।
 (शुक्लपत्र १।६।६३)
 शतमाय (सं० लि०) बहुमायावित् ।
 शतमार्ज (सं० पु०) शतं शतधारं मार्जयति शस्त्रा-
 णीति मृज शुद्धी निचञ्च । यह जो अस्त्र आदि
 बनाता या उन्हें ठीक करता हो । कोई कोई इसे शस्त्र
 मार्ज भी कहते हैं ।
 शतमारिन् (सं० पु०) १ वैद्य, उत्तम चिकित्सक । २
 शत शत्रुहन्ता, वह जिसने सौ शत्रुको मारा हो ।
 शतमुल (सं० पु०) १ अमरुमेद । (भारत १३ पर्व)
 २ शिवगणमेद । (हरिवंश)
 शतमुखी (सं० स्त्री०) दुर्गा । (हेम)
 शतमूर्ति (सं० लि०) बहुविध रक्षणोपेय ।
 (शुक १।१०।२।६ भाष्य)
 शतमूला (सं० स्त्री०) शतं मूलानि यस्याः । १ दुर्वा,
 दूब । २ पचा, बच । ३ बड़ी सतावर ।
 शतमूलिका (सं० स्त्री०) शतं मूलानि यस्याः ततः
 ग्वार्ये क्व । १ द्रव्यती, बड़ी दन्ती, बंगरेडा । २
 मायुकर्णो नामकी लता ।
 शतमूली (सं० स्त्री०) शतं मूलानि यस्याः (पाककर्मणि ।
 पा ४।१।६४) इति ङीप् । १ शतावरी नामकी भोज्य ।
 पर्याय—बहुसुता, अमोह, इन्दीवरी, धरो, अष्टावक्राणा,
 मोहपती, नारायणी, शतावरी, कहेरु, रङ्गीनी, शची,

द्विपिनाक, ऋष्यगता, जतपद्मे, गोचरी, धीचरी, चूषपा, दिव्या, द्रोविष्ण, दूरकण्डिका, सूक्ष्मपत्रा, सुपत्रा, बहुभुजा, जनाहाया, सादुरसा, जताहा, लघुपर्णिका, अ.रमगुता, जटा, मूला, शतघीया, महीपथी, मधुरा, शतमूला, फेनिका, शतपत्रिका, विम्बस्था, वैष्णवी, पाण्ठी, पासुदेवप्रियङ्गुरी, दुर्गना, तैलयज्ञी। गुण—पृथ्व, मधुर, शीतल, मेढ, कफ, वात और पित्तनाशक, तीता और रसायन। (राजनि०)

२ तालमूली, मूसली। ३ वचा, वच।

शतमूल्यादिलौह—रक्षित्तरीगंभं फलप्रद औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शतमूली, चोमी, धनिर्षा, नागोन्नर, रक्तचन्दन, त्रिकटु, त्रिफला, लिमद, विडङ्गो, मोधा, चिंतामूल और लणतिल, इनका एक भाग, सबके बराबर समान लौह। इन सब द्रव्योंको एकत्र पीस लेना होगा। मात्रा १ माशा और अनुपान मधु है। इसका सेवन करनेसे तृणा, दाह, उ्वर, यमि और रक्षित्त उपशमित होता है।

शतयज्ञोपश्रित (सं० पु०) इन्द्र।

शतयज्वर (सं० लि०) १ शतयज्ञकारी, सी यह करने वाला। (पु०) २ शतक्रतु, इन्द्र।

शतपट्टक (सं० पु०) शत पट्टयो मुख्य यस्य। शत लतिकहार, यह हर जिसमें सी लड़ हों। पर्याय—क्षेप-च्छद।

शतयाजम् (सं० अण०) शत यज्ञान्तर्निविष्ट।

(भय० ६।४।१८)

शतयातु (सं० पु०) ऋषियेद। (शुक् ७।१८।२१)

शतयामदं (सं० लि०) बहुपथविजिष्ट।

(शुक् १.८६।१६)

शतयूप (सं० पु०) राजपिमेद। (भारत १५ पर्व)

शतयोजन (सं० ली०) एक शतयोजनपरिमित दूरविरस्तुति।

शतयोजनपर्यंत (सं० पु०) पर्यंतमेद।

शतघोनि (सं० लि०) १ बहु भाषासविजिष्ट। २ बहु गीष्ट। (भय० ७।४।२)

शतयोजनयागिन् (सं० लि०) बहुदूरगामी।

शतरंज (फा० पु०) एक प्रकारका प्रसिद्ध खेल। यह भीमठ खानोंकी विस्तात पर खेला जाता है। यह मीठ

दो भादमी खेलते हैं। जिनमेंसे प्रत्येकके पास १६-१६ मुहरे रहते हैं। इन सोलह मुहरोंमें एक बादशाह, एक यजोर, दो ऊँट, दो घोड़े, दो हाथी या किश्तियाँ तथा आठ प्यादे होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक मुहरेकी कुछ विशिष्ट चाल होती है अर्थात् उसके चलनेके कुछ विनिष्ट नियम होते हैं। उन्हीं नियमोंके अनुसार चिपकोके मुहरे भारे जाते हैं। जब बादशाह किसी ऐसे घरमें पहुँच जाता है, जहाँसे उसके चलनेकी जगह नहीं रहती, तब धाजो मात समझो जाता है। इसकी बिसातमें आठ आठ खानोंकी आठ पंक्तियाँ होती हैं।

विशेष विवरण पृष्ठ ४४६में देखो।

शतरंजबाज (सं० पु०) शतरंजका खिलाड़ी, शारित।

शतरंजबाजो (फा० स्त्री०) १ शतरंज खेलनेका व्यसन।

२ शतरंज खेलनेका काम या भाव।

शतरंजो (फा० स्त्री०) १ यह दूरी जो कई प्रकारके रंग चिरंगी सूतीसे बनी हो। २ यह जो शतरंजका अच्छा खिलाड़ी हो। ३ शतरंज खेलनेकी विस्तात। ४ यह रोटी जो कई प्रकारके अनाजोंका मिला कर बनाई गई हो, मिस्सी रोटी।

शतरथ (सं० पु०) राजमेद। (भारत भाषिपर्व)

शतरा (सं० पु०) १ बहुधनविशिष्ट, बड़ा धौलतमंद।

२ इन्द्रियप्रसन्नता-दानकारी, सुख।

(शुक् १०।६।५ भाष्यः)

शतराल (सं० पु०) शतरालण्याप्य सत्रविशेष, एक प्रकारका यह जाँसी रातोंमें समाप्त होता था।

(पद्मश०)

शतघ्न (सं० पु०) १ घ्नका एक रूप जिसके सी मुँह माने जाते हैं। २ श्रेयदर्शनके अनुसार एक शक्ति जो आत्माको उत्पादक करी गई है।

शतघ्नो (सं० स्त्री०) दिवालयकी एक नदीका नाम।

शतघ्निय (सं० स्त्री०) शतघ्नीय देवी।

शतघ्नीय (सं० स्त्री०) गर्त घ्नो देवता-भस्य, शतघ्न (शतघ्नान्धम-पुत्रः। पा ४।२।२८) इत्यस्य चारि-कावस्था सा पक्षे-उच्यते। १ यहकी हथिय। (ली०) २ पशुवैदाकर्मण कर्तव्यविधयः प्रथमविशेष।

(वाजपेयव्य० १६।१।३६)

यह स्तोत्र पाठ करनेसे शतशीर्ष यदुदेव परितृप्त होने हैं। स्थलविशेषमें शम्भु-क करके शान्तयद्रीय शब्दके बदले शतयद्रीय पद होता है। वाजसनेयसंहिताके १६१ अध्यायमें बहु मन्त्र द्वारा स्तुत शतयद्रीय होमकी विधि है। (शुक् १०१२०६।५ आयष्य)

शतरूप (सं० त्रि०) १ बहुरूपविशिष्ट। (पु०) २ सुनि-
विशेष।

शतरूपा (सं० स्त्री०) शत-रूपाणि यस्याः। प्रह्लाकी
मानसी कन्या और पत्नी। इन्होंने रामसे स्वायम्भुव
मनुकी उत्पत्ति हुई थी। (मत्स्यपु० ३ अ०)

विष्णुपुराणके मतसे यह स्वायम्भुव मनुकी पत्नी
थी। (विष्णुपु० १।१५४-१६) मनु (१।३२)-में शत-
रूपाका तो कोई उल्लेख नहीं है, पर पुराणवर्णित इस
उपाख्यानका सारांश निम्नोक्तरूपसे उल्लिखित हुआ है।
प्रह्लासे अपनी इच्छासे देह देा खण्ड कर अर्द्धनारीश्वर
मूर्ति धारण की। पीछे स्वयं उस रमणीमें विराटकी
उत्पन्न किया।

शतशस् (सं० त्रि०) शतविध तेजाविशिष्ट, बहुत प्रकार-
का तेजवाला। (शुक् ७।१००३ आयष्य)

शतबिन्दु (सं० पु०) ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके मन्त्रद्रष्टा
ऋषियोंकी उपाधि। (शुक्वेद अनुक्रमणिकामें पदसुविशेष्य)

शतलक्ष (सं० स्त्री०) कोटिसंख्या, करोड़।

शतलुम्प (सं० पु०) भारविनामा कवि। स्वर्धे बन्।
शतलुम्पक।

शतलोचन (सं० त्रि०) १ सौ नेत्रोंवाला। (पु०) २
रुद्रानुचरमेद (भारत ६ पर्व) ३ अरुचरमेद। (हरिवंश)

शतवक्त्र (सं० पु०) मन्त्रालयविशेष। (रामा० १।३०, ५)

शतवत् (सं० त्रि०) शत अस्त्यर्थे मनुष्य मस्य व। शत-
विशिष्ट।

शतवनि (सं० पु०) गौत्रप्रयत्नक एक ऋषि। इनकी
सम्मान आदि शतवनेय कहलाती है।

शतवपुस् (सं० पु०) उग्रनाक एक पुत्रका नाम।
(विष्णुपु०)

शतवर्ष (सं० पु०) १ शतसंवत्क वर्षश्राव्य काल, शताब्दी
२ शताब्द मासोन।

शतवत्स (सं० त्रि०) बहु बलधारी, बड़ा ताकतवर।

शतवह्नी (सं० स्त्री०) १ नीली दूध। २ काकोली नामक
अथर्वणीय ओषधि।

शतवल्ग (सं० त्रि०) बहुश्यामविशिष्ट।

शतवाज (सं० त्रि०) प्रभूत शक्तिसम्पन्न।
(शुक् ८।८१।१०)

शतवादन (सं० स्त्री०) बहुतसे वाजोंका एक साथ यज्ञना।
शतवार (सं० पु०) कवचविशेष। (अथर्व १६।३६।१)

शतवार्तिक (सं० त्रि०) शतवर्षभय, प्रति सौ वर्ष पर
होमेशाला।

शतवार्तिकी (सं० स्त्री०) जन्मादृष्टि, पापी न बरसना।

शतवादी (सं० स्त्री०) १ शतब्रह्मकारिणी। २ यद स्त्री
जा मैकेसे बहुत-सा घन साथ ले कर समुद्राल भाई है।

शतविक्षण (सं० त्रि०) बहुदर्शन। (शुक् १०।६७।१८)

शतवीर (सं० पु०) विष्णुका एक नाम। (हैम)

शतवोर्य (सं० त्रि०) श्रोत्रेभित्त्रयसम्बन्धीय प्रभूत शक्ति
सम्पन्न। (अथर्व ३।१।३)

शतवीर्या (सं० स्त्री०) शत वीर्याणि यस्याः। १ श्वेत
दूध, सफेद दूध। २ शताशरी, शतमूली। ३ कपिल-
द्राक्षा, सुतका। ४ सफेद मूत्रमूली। ५ किशकिना।

शतवृषभ (सं० पु०) ज्योतिषमें एक मुहूर्तका नाम।

शतवैघ्न (सं० पु०) शत निघन्तोति विघ्न निनि। १ मृग
वेतस, अमलवेत। २ सुक्रिका या चूका नामक साग।

शतवैघिनी (सं० स्त्री०) सुक्रिका या चूका नामक साग।
शतशलाका (सं० स्त्री०) छल। (दिव्या० ५।३३२०)

शतशस् (सं० अर्थ०) शत चशस् चारार्थे। शत वार,
सौ वफे।

शतशाप (सं० त्रि०) बहु शाला-प्रशाला-विशिष्ट।
(अथर्व ४।१।१५)

शतशालव (सं० स्त्री०) १ बहु शालाविशिष्टका भाव। २
बहुवयका निदानभूत।

शतशारद (सं० त्रि०) शत सम्यत्सर।

शतशीर्ष (सं० पु०) १ विष्णुका एक नाम। २ रामायण-
के अनुसार एक प्रकारका अभिमन्त्रित अस्त्र।

(रामा० १।३।१६)

शतशीर्षा (सं० स्त्री०) धातुकी देवी। (भारत उपोपनिष)

शतरङ्ग (सं० पु०) एक पर्वत। (भाग० ५।२०।१०)

यद् महाभद्रके उत्तरमें ब्यवस्थित है। (विष्णु० ४६।५२)
 अनुमान है, कि यह पर्यामान मैत्रु राज्यके एक पर्यंतकी
 प्राचीन नाम है। इस पर्यंतकी देवकीर्तिका विषय
 शतश्लोकीमाहात्म्यमें वर्णित है।

शतश्लोकी—मधुवृद्धन सरस्वतीद्वत प्रहस्युकी व्यावृत्ताके
 आधात पर उत्तमश्लोकीकर्म—विरचित एक विश्वाम्भ प्रथम।
 यह श्लोकके आकारमें लिखा गया है।

शतसंख्या (सं० श्लो०) शत संख्या यस्य । १ शत-
 संख्यक, सी। (पु०) २ पुराणानुसार दशमे मन्व-
 न्तरेके एक देवता। (विष्णुपु०)

शतसंयत्सर (सं० पु०) शत वत्सर, सी वर्ष।

शतसद्गन्धस् (सं० अथ०) शत शत संख्यक।

शतसनि (सं० श्लो०) शतसंख्याविशिष्ट, सी।

शतसद्व्र (सं० श्लो०) शतगुणित सद्व्र । शतगुणित
 सद्व्र, एक लाख।

शतसद्व्रक (सं० श्लो०) तीर्थाभेद । (भारत वनर्व)

शतसद्व्रथा (सं० अथ०) शतसद्व्र प्रकारार्थे घाच् ।
 शतसद्व्र प्रकार।

शतसद्व्रपत्त (सं० पु०) पुत्र, फूल।

शतसद्व्रगन्धस् (सं० अथ०) शतसद्व्र प्रकारार्थे चशस् ।

शतसद्व्र प्रकार। (भाग० ५।१।१६)

शतसद्व्रशु (सं० पु०) चंद्रमा। (भारत भाद्रपर्व)

शतसद्व्राम्त (सं० पु०) चंद्रमा। (नीलकण्ठ)

शतसा (सं० श्लो०) शतज्ञाता, शतशनि।

शतसाद्व्र (सं० श्लो०) बहु संख्यक।

शतसाद्व्रक (सं० श्लो०) तीर्थभेद।

शतसाद्व्रिक (सं० श्लो०) शत सद्व्र संख्याविशिष्ट।

शतसुता (सं० श्लो०) शतमूला, सताधर।

शतसू (सं० श्लो०) १ शतप्रसवकारो, सी प्रसव करने-
 वाला। २ बहु धनानपनकारो, बहुत धन लानेवाला।

शतसैव (सं० श्लो०) सपरिमिति धनपर्ययसान।

(शुक ३।१८।३)

शतसैवन् (सं० श्लो०) शतसंख्यापेत धनधान।

(शुक ७।५।८।४ वाक्य)

शतदन् (सं० श्लो०) शत हन्ति दन् कियु। शतदन्ता,
 स्त्रीको मारनेवाला। (पु०) २ शतघ्नो नामक एक
 प्रकारका दाहक। यत्नो देतो।

शतदस्त (सं० श्लो०) शत दस्ता यस्य । शतदस्त-
 विशिष्ट, जिसे सी हाथ हो, एक सी हाथका।

शतद्विम (सं० श्लो०) शतसंभवस्वर। (शुक ६।४।८)

शतद्वित (सं० श्लो०) सी बार जिस होममें वाहुति की
 गई हो। (पद् विंश भा० ४।२)

शतद्वर (सं० पु०) असुरभेद। (हरिवंश)

शतद्वरा (सं० श्लो०) शत द्वरा अर्थापि यस्याः पञ्च शतं
 हाशः शम्भो यस्याः निपातनात् द्वस्याः । १ विष्णु,
 विजलो। २ यज्ञ। ३ दक्षकी एक कन्या जो बाहुपुत्र-
 की स्त्री थी। (भगविपुराण) ४ विराध दाहसकी माता।
 (रामा० ३।७।२०)

शतदंश (सं० पु०) सी भागोमेंसे एक भाग, १००वां
 हिस्सा।

शता (सं० श्लो०) शतावरो। (तैत्तिरीय)

शताकरा (सं० श्लो०) एक किन्नरोंका नाम।

शताकारा (सं० स्त्री०) एक गर्धर्य स्त्रीका नाम।

शताक्ष (सं० पु०) एक दानवका नाम। (हरिवंश)

शताक्षी (सं० श्लो०) १ रात्रि, रात। २ शतपुत्रा
 नामक वनस्पति, सीक। ३ पायती। ४ दुर्गा।
 मगवतो दुर्गा सी नेत्रोंसे मुनियों के दर्शन करता है, इस-
 लिये लोग उन्हें शताक्षी कहते हैं।

शताप्रमद्विपी (सं० स्त्री०) एक प्रधान राजमद्विपी।

(मार्क० ५० ७५।२१)

शताङ्ग (सं० पु०) शत अङ्गानि भवयथा यस्य । १
 रथ। (भगवत्) २ तिनसं, तिरिछ गृह। ३ दामव-
 विशय। (हरिवंश २३२।२२) (श्लो०) ४ शतावयव-
 विशिष्ट, सी अंगों या अवयवोंवाला।

(भारत १।१८।२२)

शताङ्गुल (सं० पु०) तालपत्र, ताड़का पेट।

शताङ्गिन् (सं० पु०) सारथ्य राजभेद।

(भागवत् ६।२।४८)

शतायुज (सं० श्लो०) बहु छिद्रविशिष्ट, बहुत छेदवाला।

(वीतलीनना० १।८।६।४)

शतारम्भ (सं० श्लो०) नानारूपविशिष्ट।

(शुक १।१४।३)

शताधिक (सं० त्रि०) सौसे अधिक ।
 शताधिपति (सं० पु०) शतस्य अधिपतिः । १ शतका
 अधिपति, शतक्षामी । २ शतवर्षे व्यवहकः; यह जिसकी
 उम्र सौ वर्ष हो ।
 शतानक (सं० क्ली०) शमशान, मरघट । (शिका०)
 शतानन (सं० पु०) विषय, वेष्ट ।
 शतानना (सं० स्त्री०) एक देवीका नाम ।
 शतानन्द (सं० पु०) शन बहुलः आनन्दो यस्य । १
 गौतम मुनिका पुत्र । ये जनक राजाके पुत्रोदित थे । २
 देवकीनन्दन । ३ ब्रह्मा । ४ विष्णु । (भारत १३।१५।७६)
 ५ गौतममुनिका पुत्र जो अहमदाके गर्भसे उत्पन्न हुआ
 था । ६ विष्णुरथ ।
 शतानन्द—१ कार्तिकमाहात्म्यसं ग्रहके प्रणेता । २
 तिष्ठपथिकारट्टीका-कर्ता । ३ रत्नमाला नामक उद्योति-
 प्रसङ्गके रचयिता । ४ रघुनन्दनने उद्योतिस्तरथमे इनका
 मत उद्धृत किया है । ४ भास्वतीकरण और भास्वती
 नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता । १४होने ११०० ई०में
 प्रथमोक्त ग्रन्थ लिखा । इनके पिताका नाम था शङ्कर
 तथा माताका नाम सरस्वती । ५ एक प्राचीन कवि ।
 शतानन्दा (सं० स्त्री०) शतानन्द-पुत्र । १ स्कन्दानुसर
 मातृमेद । (भारत ६ पर्व) २ नदोमेद । (कालिकापु० ७८।२१)
 शतानीक (सं० पु०) शत अनौकानि यस्य । १ पृथ
 पुरय, घुडा भादमी । २ एक मुनि जो व्यासके शिष्य
 थे । ३ पुराणानुसार चौथे युगमें चन्द्रवंशका द्वितीय
 राजा । इसका पिता जनमेजय और पुत्र सहस्राशोक
 था । ४ भागवतके अनुसार सुदास राजाका पुत्र ।
 (भागवत ६।२२ म०) ५ मकुलके एक पुत्रका नाम । जो
 द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । (भारत १।२३।४।१०)
 ६ एक असुरका नाम । ७ सौ सिपादियोंका नायक ।
 शताश्रत (सं० क्ली०) शतपत्र ।
 शताम्ब (सं० त्रि०) १ सौ वर्षवाला । (पु०) २ सौ
 वर्ष, शताश्री, सश्री ।
 शताश्री (सं० स्त्री०) १ सौ वर्षोंका समय । २ किसी
 संवत्में सैकड़के अनुसार एकसे सौ वर्ष तकका
 समय । जैसे,—ईसो पूर्ववर्षी शताश्री वर्षात्, ई० सन्
 ४०१से ५०० तकका समय ।

शतामथ (सं० पु०) १ शतघन । (सूक्त ८।१।५ सापथ्य)
 २ इन्द्र ।
 शतायु (सं० पु०) शतायुष् देशो ।
 शतायुष (सं० त्रि०) शत अन्नघारते, जो सौ अन्न
 धारण करता हो । (तैत्तिरीयसं ५।७।२।३)
 शतायुषो (सं० स्त्री०) एक किन्नरीका नाम ।
 शतायुस् (सं० पु०) शत आयुष्यस्य । १ यह जिसकी
 आयु सौ वर्षोंकी हो । पुरुषकी पूर्ण आयु सौ वर्ष है ।
 "शतायुष्यं पुरुषाः" (धृति) २ पुरुरवाके एक पुत्रका
 नाम । (भारत आदिपर्व) ३ चित्रायुका पुत्र । (कथा-
 सरित्सा० ४।१।५८) ४ अशनाका पुत्र । (विष्णुपु०)
 शतार (सं० क्ली०) शत अराणि यस्य । १ घग्ग । २
 सुदर्शनचक्र ।
 शतार (सं० क्ली०) एक प्रकारका कोढ़ । इस रोगमें खाल
 पर लाल, काली और दाहयुक्त कुंसियाँ हो जाती हैं ।
 शताशक (सं० पु०) शताशक देशो ।
 शताशय (सं० पु०) राजमेद । (श्रीगीतकी १।१६)
 शताशयो (सं० स्त्री०) शताशक देशो ।
 शताशस् (सं० क्ली०) शताशक देशो ।
 शतार्घ (सं० त्रि०) बहुमूल्य ।
 शतार्णो (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पौध । (Anethum
 Sowa)
 शतार्द्र (सं० क्ली०) पञ्चांगत् संख्या, पञ्चास ।
 शताई (सं० त्रि०) शतार्घ, बहुमूल्य ।
 शताघधान (सं० पु०) १ राघयेन्द्र मन्त्रार्चनोंकी उपाधि ।
 २ धृतिघट, यह मनुष्य जो एक साथ बहुत-सी बातें
 सुन कर उन्हें सिलसिलेवार वाद रख सकता हो । कुछ
 मिथ्यावी लोग ऐसे होते हैं जो एक साथ बहुत-से काम
 करनेका अभ्यास करते हैं । जैसे—एक भादमी रद्द रद्द
 कर कुछ संख्या या संकोंका नाम लेता है । दूसरा
 भादमी रद्द रद्द कर घण्टियाल बजाता है । तीसरा भादमी
 किसी पेतो भाषाके वाचकके मन्त्र बोलता है जिससे
 शताघधान करनेवाला मनुष्य अपरिचित होता है । एक
 भादमी पृथिकलिये कोई समस्या देता है । एक और
 शतरंजका खेल होता रहता है । शताघधानका यह
 कर्णव्य होता है, कि यह संख्याओं और अपरिचित भाषाके

यावयके जगद् याद् रमे, समस्वपाको पृथिं करे और जगद् ज रेलता चले और इसी प्रकार और जितने काम होने हैं, उन सबमें सम्मिलित रहे और अन्तमें सबका ठीक ठीक उत्तर दे और सब काम ठीक ठीक पूरे उतारे ।
३ शतायधानका काम ।

शतायधानी (सं० पु०) १ शतायधानं देवी । (ख्री०) २ शतायधानका काम ।

जनायर (सं० पु०) सतायर नामकी औषधि, सफेद मूलकी ।

जनायरी (सं० ख्री०) १ जगत्प्रधानोति आ-वृ अच, गौरादिस्वात् डीप् । १ शतमूली, सतायर, सफेद मूलकी । (Asparagus racemosus or asparagus sarmentosus) २ इन्द्रकी भार्या, इन्द्राणी । ३ जटो, कजूर ।

जनायरीपूत-अश्वपित्तरोगमें उपकारक घृतीवषधिषेय । प्रस्तुत प्रणाली-घृत ४ सेर, बलकार्पा शतमूलकी जड़ १ सेर, जल ४ सेर, दूध १६ सेर, घीमें आंचमें पाक करे । इसे पानेसे अम्लपित्त, वातपित्तोद्वेषना रोग, रक्तपित्त, मृण्णा, मूर्च्छा, भ्वास ऊँर सन्ताप निवारित होता है ।

जनायरीमहाचैनस-औषधिषेय । (निकित्साशा०)

जनायरीमण्डूर-शूलरोगाधिकारोक्त औषधिषेय । प्रस्तुत प्रणाली-जोधित मण्डूरचूर्ण ८ पल, शतायरी रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, घी ८ पल, इन सबों को एक साथ पाक करे । पीछे पिण्डके समान हो जाने पर उतार ले । यह भोजनके पहले, भीतर और अन्तमें सेवनीय है । इसका सेवन करनेसे घातिक, पैत्तिक और परिणामज मूत्र विनष्ट होता है ।

जनायरीदि-मूत्ररुच्छरोगकी एक औषधि । इसके बनाने की तरकीब-शतमूली, कासमूल, कुजमूल, गोक्षूर, भूमि-कुप्पाएड, मालिण्यकुन्ड, ऊणोष्ठमूल और केजुके काष्ठ में मधु और चीनी मालकर गुनोत्तल करे । इसके सेवनसे पैत्तिक मूत्ररुच्छ माना होता है ।

शतायरी (सं० पु०) १ विष्णु । २ महादेव ।

(भारत १२२८५६)

जनायरीधन (सं० ख्री०) एक पवित्र वन । (हरिवंज)

जनायरीनि (सं० ख्री०) शतैव प्राणरूपेण माहोर्गतेन वसंतै एत निनि । विष्णुः । (निष्ठा०)

शताध्रि (सं० पु०) वज्र । (शुक् ६१२७१०)

शताभ्य (सं० ख्री०) बहु भावयुक्त । (शुक् ८४११६)

शताष्टक (सं० ख्री०) मद्योत्तर शत ।

शताहवा (सं० ख्री०) १ सौक । २ मयूरिका, सोमा । ३ शतावरी, सतावर ।

शताह्वा (सं० ख्री०) शतं माह्वा यस्यवा । १ शतपुत्र ।

२ शतायरी, सतायरी । ३ सौक । ४ एक प्राचीन नदी ।

५ एक शीर्षका नाम ।

शतिक (सं० ख्री०) शत यथाप्य ठन् यथावये । पा

१११२११ इति ठन् । १ शत-द्वारा क्रान्त, जो सीसे खरीदा

गया हो । २ शत-सम्बन्ध, सौका । (पिदान्तकी०)

शतिन् (सं० ख्री०) शतमस्वपास्तोति शत इनि । शत-

संख्याविशिष्ट, सौ । (शुक् ११०११०)

शतिध्म (सं० ख्री०) बहु काष्ठ । (काठक १६६)

शतेन्द्रिय (सं० ख्री०) प्रमत्त इन्द्रियशक्तिविशिष्ट ।

(पैतृयना० १११७)

शनेपञ्चाशन्वाय (सं० पु०) न्यायसूत्रविषेय । (तैत्तिरीय

प्राति० २२२५)

शनेर (सं० पु०) शद शानने (शनेस्त वा । उष्ण १६१)

इति परक, तकाराश्टादेशश्च । १ शत्रु, दुश्मन । २

दिंसा । ३ शाय, जलम ।

शनेन (सं० पु०) शतस्व ईशा । शताधिपति, सौ

प्राणका अधिपति । (मनु ६, ११५)

शतैकशीर्षान् (सं० ख्री०) शत संवपक भ्रंष्ट निरात्मम-

नियत, सौ सिरवाला ।

शतैकीय (सं० ख्री०) शतसंख्याविशिष्ट, सौ । (वाग

वत० ५१२१७४)

शतैकस्थ (सं० ख्री०) शत उक्थका समयविशिष्ट ।

(शतयथा० ११५१५२)

शतोति (सं० ख्री०) १ बहुरसक । २ बहुगमन ।

(शुक् ६१३१५ भाष्य)

शतोदर (सं० ख्री०) १ शत उदरविशिष्ट, जिससे सौ उदर

या पेट हो । (पु०) २ निव, महादेव । (भाष्य १२२२)

३ अन्नविदेह । (सामा० ११०१२) ४ निवगमनेह । (हरिवंज)

शनोदरी (सं० ख्री०) स्वप्नानुभवनाम्भेद ।

(भारत ६५)

शतोलुखलमेखला. (सं० खी०) एकद्वानुचर मातृमेद ।
 (मार ६ पर्व)
 शशीना (सं० खी०) यक्षकर्मविशेष, यक्षने होनेवाला
 पक्षप्रकारका वृत्त्य । (भयर्षी १०।६।१)
 शशय (सं० खी०) शन (शतय उच्यते) वा ५।१।२१)
 इति यत् । शतका विकारः । २ शत द्वारा क्रोन, सांसे
 खरीदा हुआ । ३ शक्ति । ४ धनपतिसंगोग ।
 शशयन्त्रय (सं० पु०) कर्ममासका १३वां दिन ।
 शश (सं० खी०) बल । (क्रिडा०)
 शश्वि (सं० पु०) शशु (श शश्विभ्यो विप् । उच्य ५।६०)
 इति तिप् । १ हस्ती, हाथी । २ एक राजर्षिका नाम ।
 (शुक प्रभा ६) ३ बल, ताकत ।
 शशु (सं० पु०) शशु शशतेन (शशदिभ्यो कृन् ।
 उच्य ४।१०३) इति कृन् । १ वह जिसके साथे भारी
 विरोध या वैमनस्य हो, दुश्मन । पर्याय—रिपु, वैरि,
 सपत्न, अरि, द्विष, द्वेषण, दुर्द्वेद, द्विष, विपक्ष, अहित,
 अमित्र, द्रुपु, शोत्रय, अमिघातो, पर, अराति, प्रत्यर्थी,
 परिगमिष्य, घृण, प्रतिपक्ष, द्विषन्, घातक, द्वेषिन्, विद्विष,
 द्विसक, अमिष, अमिघातिन्, अहित, दौर्द्वेद ।
 (शब्दरत्ना०) २ एक असुरका नाम । ३ नाग-व्यस्य या
 मारछोवा नामकी घनस्पति ।
 शशुसह (सं० खी०) शशु सहनशील, जो शत्रुको
 सहन कर सके । (पा ३।२।५६)
 शशुक (सं० पु०) स्वार्थे कन् । शशु, दुश्मन ।
 शशुकण्टक (सं० पु०) पुंगोफल, सुपारी ।
 शशुकण्टका (सं० खी०) सुपारी ।
 शशुघ (सं० खी०) शशु नाशकारी, शशुका नाश करने
 वाला ।
 शशुघात (सं० खी०) शशु हन्तीति शशु-हन्-घञ् ।
 शशु विनाशकारी, शशुका नाश करनेवाला ।
 शशुघातिन् (सं० पु०) शशु घ्नके एक पुत्रका नाम ।
 (सु १।३।३६)
 शशुघ्न (सं० पु०) शशु हन्तीति हन्, भूकविभुना-
 दित्याङ् क, पदा अमनुष्यकर्त्तृकेऽपि चेतविवि संशान्
 घ्नघ्नघञ् अनादयः सिद्धा इति दुर्गासिद्धा । १ रामचन्द्र-
 के मां । पर्याय—शत्रुहर्त्ता । (शब्दरत्ना०)

राजा अश्वघोषकी वृत्तिया परनी सुमित्राके पुत्रेण पश-
 के हुतावायुए चरु खाने पर उनके गर्भसे इनका जन्म
 हुआ । इन्होंने मधुपुरनिवासी लवणाशय असुरका वध
 किया था । इनका भरतके साथ वैसा ही प्रेम था
 जैसा लक्ष्मणका रामके साथ । (रामायण)
 २ श्वश्रवाके एक पुत्रका नाम । (खि०) ३ जल-
 हृता, शत्रुको मारनेवाला ।
 शशुघ्न शशान्—मन्त्रार्थोपिका, रुद्रतपसाशय और वेद-
 विलासिनी नामक तीन ग्रन्थके रचयिता । केशवमिश्रने
 स्वर्चित द्वैतपरिशिष्टमें इनका विषय उल्लेख किया है ।
 शशुघ्नजननी (सं० खी०) शशु घ्नस्य जननी, सुमित्रा ।
 (शब्दरत्ना०)
 शशुघ्नो (सं० खी०) हथियार ।
 शशुतिम् (सं० पु०) शशु हन् जयतीति जि-क्त्त्-त-
 स्तुक् (अन्तद्विपेति) वा ३।२।६। १ एक राजाका नाम ।
 इनके पुत्रका नाम म्रुनघञ्ज था । ये साधारणमें कुय-
 लयाश्व नामसे परिचित थे । (मार्क० पु०) २ शिशु ।
 (खि०) ३ शत्रुको जीतनेवाला ।
 शशुजय (सं० पु०) १ काठियावाड़ प्रांतका एक प्रसिद्ध
 पर्वत जो विमलाद्रि भी कहलाता है । यह जैनियोंका
 एक प्रसिद्ध तीर्थ है । उच्यते जयश्रेष्ठ देवो । (दिग्ग ० प्र०
 ४।२।१) २ रामायणके अनुसार एक नागका नाम ।
 (रामायण ३।२।१०) ३ एक पाण्डववंशीय राजा । ४
 एक नदी । भौगोलिक उल्लेखोंसे इसे 'Sodhana' प्राय-
 में उल्लेख किया है । (खि०) शशु जयतीति जि-क्त्त्-
 त्तो मुम् । (अंशवा भृशुगीति) वा ३।२।६। ५ शत्रु-
 जयकारी, शत्रु विजैता, शत्रुको जीतनेवाला ।
 शत्रु उपशील—भयर्षी प्रसिद्धसौके काठियावाड़ विभाग-
 के गोहदवाड़ प्रांतका एक पर्वत और उसके ऊपरका
 नगर । आज कल यह पालिताना कहलाता है ।
 पालिताना देखो ।
 शत्रु स्थान जैन-सम्प्रदायका एक पवित्र तीर्थ है ।
 तीर्थहृत्के त्रिषु जैनधर्मकी प्रतिष्ठाके समयसे ही इस
 पवित्र स्थानको शक्तिकी दृष्टिसे देखने आ रहे हैं । काठि-
 यावाड़से दक्षिण पूर्व भयस्थित पालिताना राजधानीके
 निकट प्रायतनमें यह बड़ा शील है । यहां जानेमें उतनी

सुविद्या नदी' है। जो गंगा पव है भी, यह बड़ा कठिन है। पर्वत पर चढ़नेके लिये सोढ़ियां लगी हैं। बीच-बीचमें प्रयाग करनेके लिये चौमुद्गानी काट कर छत्र और पुररुहिनो निकाली गई है। इसके चारो ओर चार-चौपागो है। उसके ऊपर स्थापित भी दो चार कमान हैं, ये आज भी प्राचीन समृद्धिका परिचय देती हैं। किन्तु दुःखका विषय है, कि यहां अब कोई भीत नदी' करने। सिर्फ बहुत शोधे पति और पुरोहित देवताको भजनेके लिये यहाँ रहते हैं। यालो सुवहको पर्वत पर देवदर्शनको चढ़ते तथा श्यामको पुनः नगरको लौट आते हैं।

धर्मप्राण एकमात्र जैन-सम्प्रदायके यत्न, मध्यवसाय तथा अग्निशयसे दो मात्र भी मन्दिर सुरक्षित हैं। कौन सबसे पुराना है, यह बतलाना कठिन है। सभी शीर्ष संस्कारमें नवकलेवर धारण किये हुए हैं। लेकिन मंदिरगात्रके शिलाकलक देखनेसे अनुमान होता है, कि ११ वीं १२ वीं सदीसे वर्तमान १६ वीं सदी तक ये मंदिर रक्षित हैं। एक एक मंदिरका सोलह बार तक उदार या जीर्ण-संस्कार हो चुका है।

यहांके मन्दिरोंकी विदेवता यह है, कि सभी मन्दिर सफेद चकमक चूनेकी पालिश किये हैं। जिससे देवानमें बड़े चमकीले मालूम होने हैं, मानो मार्गपरघरके पत्ते हों। शम्भोके किनारे किनारे छोटे छोटे मन्दिर हैं, ये भी उक्त मन्दिर जैसे बने हैं। प्रत्येक मन्दिरके लिये सम्पत्ति दे दी गई है। घनाढ्य व्यक्तियों द्वारा ये सब मन्दिर बने हैं तथा उनको ही प्रवृत्त देवोत्तर सम्पत्ति और जनोंको यद्वाभ्यन्तसे परिचालित होते हैं। मन्दिरके बाहर जिन प्रकार निवृत्तगुणवत्ता परिचय है, भीतर भी उसी प्रकार माना पौराणिक चित्र अंकित है। इन्हीं सब कारणोंसे इन मन्दिरों द्वारा प्रत्यक्षदेवविदोंको यासी गवद पहुँचाते हैं।

इन शीर्षमें जो सब प्रयाग प्रयाग जैन मन्दिर हैं, माने उनके नाम दिये जाते हैं,—

- १ धीमाशुभ्वर, भगवान् या धीमूलनायक साशुभ्वर, ६५ प्रतिमूर्ति हैं, १३ मल्लय और गम्भीर प्रतिष्ठित हैं।
- २ स्वयम्भवायनायको,

- ३ धीपद्मामुक्ती, ४ श्रीशक्तिनाथजी। श्रीवासुपूर, ६ श्रीमहायोरजी, ७ श्रीभाद्रिनाथ, ८ श्रीधर्मनाथजी, ९ श्रीभगिनन्दजी, १० नेमिनाथजी, ११ धोपाभ्यंनाथजी, १२ श्रीमज्जितनाथजी, १३ श्रीसुमतिनाथजी, १४ श्रीवन्द्यप्रभुजी, १५ श्रीपुण्डरीकजी या पुण्डरीकनाथ, १६ श्रीशम्भुदेव, १७ श्रीसमेगशिखरजी और १८ धा-विमलनाथजी।

इनके सिवा भी विभिन्न भाद्रिनाथ, धीमदो-भ्वर, दोष, महायोर स्वामी, श्रीतलनाथजी, सुपाभ्यंनाथ-जी भाद्रिको ले कर यहां कुल करीब ५१३ छोटे बड़े मन्दिर हैं। मन्दिर-प्राचीरमें भी छोटे छोटे घरमें, कुलुङ्गी-में, मिसिमें और गोहलमें अनेक मूर्तियाँ और तीर्थद्वारोंके पादचिह्न स्थापित हैं। अधिक हो जानेके मयसे सबों-का वियरण नदी' दिया गया।

शत्रुता (सं० खी०) शत्रुका भाव या धर्म, घैर भाव, दुश्मनी।

शत्रुतापन (सं० ति०) १ शत्रुस्तप, शत्रुका ताप कारो। (पु०) २ सहायिष्यर्णित एक राजाका नाम। (समा० ३३२८) ३ एक ईश्वरका नाम। कहते हैं, कि यह रोग फैलाता है।

शत्रुतर्दा (सं० ति०) शत्रुत्तारण, शत्रुको ताप करने वाला। (शब्० ६।२१०)

शत्रुद्वेष (सं० बली०) शत्रुता, शत्रुका भाव या धर्म। (शब्० ८।४५१)

शत्रुदमन (सं० ति०) १ शत्रुविमर्दन, दुश्मनोंका दमन करनेवाला। (पु०) २ दुश्मनके पुत्र शत्रुघ्नका एक नाम।

शत्रुद्रुम (सं० पु०) शत्रुघ्नस, शत्रुघ्नके।

शत्रुनिकाय (सं० पु०) शत्रुसङ्घ, विपक्षका दल।

शत्रुनिवर्धन (सं० बली०) शत्रुतादन, शत्रुका नाश।

शत्रुनिलय (सं० पु०) शत्रुको वासभूमि।

शत्रुस्तप (सं० ति०) शत्रु स्तपति तापपति या तप-स्वच्छ तपो मुग् (महाभाष्ये यशुकीति। या ३।३।१६) शत्रु-जयकारो, दुश्मनको जीतनेवाला।

शत्रुघ्न (सं० ति०) १ शत्रुघ्नमकारो, शत्रुविमर्दो। (पु०) २ शिव, मक्षदेव।

शत्रुपक्ष (सं० पु०) विपक्ष ।
 शत्रुपाधक (सं० लि०) शत्रु पोहनकारी, दुश्मनको पीड़ा देनेवाला ।
 शत्रुभङ्ग (सं० पु०) मूत्र नामक तुण । (वैद्यकतिय०)
 शत्रुभट (सं० पु०) अंतुरविशेष । (कृपाशरित्सा० ४७२०)
 शत्रुभूमिज (सं० पु०) नीलाञ्जन, छाँचीमें लगानेका मुरमाँ । (वैद्यकतिय०)
 शत्रुमर्दन (सं० पु०) शत्रु मृदनातीति मृद द्रव्य । १ शत्रुघ्न । २ कुचलपाश्वका पुत्र । (लि०) ३ शत्रुहस्ता, शत्रुओंका नाश करनेवाला ।
 (कृपाशरित्सा० ४२ १२५)
 शत्रुमिलन (सं० स्त्री०) शत्रु या विपक्षके साथ सह-भावस्थापन ।
 शत्रुलाय (सं० लि०) शत्रु च्छेदन करनेवाला, शत्रुको मारनेवाला ।
 शत्रुवत् (सं० लि०) १ शत्रुसदृश । (अर्थ०) २ शत्रुतुल्य, शत्रुके समान ।
 शत्रुघल (सं० लि०) शत्रुविघ्नतेत्य शत्रु-घलच् । (मन्वेम्नोऽपि द्रवते । पा १२।१२२ वार्तिक) १ जिसका शत्रु विघ्नमान हो । (स्त्री०) शत्रुके बलम् । २ शत्रुका सैन्य ।
 शत्रुविमर्द (सं० पु०) शत्रुतापूर्वक युद्ध, शत्रुभावसे आक्रमण ।
 शत्रुविनाशन (सं० पु०) शत्रु, महादेव ।
 शत्रुसात् (सं० लि०) १ शत्रुरूपमें परिणत । २ विपक्षसात्, विपक्षका हस्तगत । (महाभारत)
 शत्रुसाल (दि० वि०) शत्रुके हृदयमें शूल उदरपन्न करनेवाला ।
 शत्रुसाह (सं० लि०) शत्रुका विक्रमसहस्रशाल या सहाकारी ।
 शत्रुद (सं० लि०) शत्रु वध्यात् शत्रुदनच् । (भाषिणि इतः । पा ३।२।४६) जो शत्रुवध करे वा शत्रुवध करनेके उपयुक्त हो इस प्रकार आशीर्वाद देना । (अथर्व १।२।६१)
 शत्रुहत्या (सं० स्त्री०) शत्रुहननव्यय् । शत्रुवध, शत्रुका हनन या नाश करना ।

शत्रुद्व (सं० लि०) १ शत्रुहस्ता, शत्रुका नाश करनेवाला । (अथर्व १।२।५६३) (पु०) २ श्वकल्कके एक पुत्रका नाम । ३ शत्रुवधके पुत्र शत्रुघ्नका एक नाम ।
 शत्रुहन्तृ (सं० लि०) शत्रुघ्न-तृच् । १ शत्रुहननकारी, शत्रुका नाश करनेवाला । (पु०) २ शत्रुवधके एक मन्त्रोका नाम । (हरिवंश)
 शत्रुपत्राप (सं० पु०) शत्रुका कुपरामर्श ।
 शत्रुवरी (सं० स्त्री०) रात्रि, रात । (विक्रमश्रेय)
 शत्रु (सं० पु०) शत्रु-मच् । १ फल मूलादि । २ वर, लगान । ३ तरकारी ।
 शत्रु (सं० पु०) यह मनाज जिसको भूमी न निकाली गई हो ।
 शत्रुद (सं० वि०) बहुत ज्यादा, जोरका, भारी ।
 शत्रुवो (सं० स्त्री०) शत्रुदेश देखो ।
 शत्रु (सं० पु०) शत्रुवते इति शत्रु (अदि इदि अशुभिभ्याः क्तिन् । उष्य ४।६५) इति क्तिन् । १ मेघ, बादल । २ विष्णु । ३ हस्तो, हाथी । (स्त्री०) ४ विद्युत्, बिजली । ५ खण्ड, टुकड़ा ।
 शत्रु (सं० लि०) शत्रु-ज्ञाते (दाभेत् लि गद गदोः । पा ३।२।१४६) इति च । १ पतनकर्ता, गिरानेवाला । (पु०) २ विष्णु । ३ गण्डा ।
 शत्रुला (सं० स्त्री०) नदीभिर्द । (शत्रुपत्रापशास्त्रम् १।५२)
 शत्रु (सं० पु०) १ शत्रुति । २ चुल्हो, खासोशी । ३ गण्य देखो ।
 शत्रु (सं० पु०) शत्रुवधके एक पुत्रका नाम ।
 शक्रावलि (सं० स्त्री०) शक्रविष्णुकी, शक्रपीपली ।
 शक्रवैल (सं० अर्थ०) शत्रुवै-सार्धं वज्र । शनि, शोभा घोड़ा, क्रम क्रमसे ।
 शत्रुवर्षी (सं० स्त्री०) शत्रुवर्षेय वर्णान्यवेषाः स्त्रीप्, पृथो-द्रादिश्वात् जास्य न । कटुकी नामकी गोपति ।
 शत्रुवुषी (सं० स्त्री०) वन-ममर्द ।
 शत्रुहृत्की (सं० स्त्री०) शत्रुवुषी देवी ।
 शनि (सं० पु०) शनि नादि प्रदके अश्वमेध नामममर्द ।
 संस्कृत पर्याय—शौरि, शनिश्चर, भालघासम्, मन्द, छायाभ्रज, पातङ्गि, घटनायक, छायासुत, मासकरि, गोशारधर, भाद, कीट, चक्र, पीठ, मन्मन्, वंशु, बाल

सूर्यपुत्र, अमित । इसका वर्ण कृष्ण है । ये परिग्रम-
द्रिग्गण, जपुंमक, अक्षरवज्रजति, तमोगुणगुल, चपाय-
रसाधिपति और तन्मिग, मकर और कुम्भराशिके अधि-
पति, भौलकात्ममणि और सौराष्ट्रदेशके अधिपति,
कश्यपमुनिके पुत्र, शूद्रवर्ण, सूर्यमुल और चार अंगुल
परिमाणके हैं । इनका वस्त्र कृष्ण और पादन शूद्र है ।
ये सूर्यपुत्र, चतुर्भुज हैं, चारों हाथोंमें मन्त्र, पाण, शक
और धनु ये चारों शोभित हैं । इसके अधिपत्यो देवता
यम और प्रत्यधिदेवता प्रजापति है ।

(प्रयागवस्त्र और कृष्णजातक)

पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें शनिप्रहरीके उल्हासिका
विषय इन प्रकार लिखा है—मरीचिके कश्यपने जन्म-
मदण किया । कश्यपके पुत्र विभावसु हुए । त्वष्टृ-
प्रजापतिके संधा नामी कन्याके साथ विभावसुका
विवाह हुआ । संधा सूर्यप्रहमें जा कर उनका तेज सहन
न कर सकी । इस कारण उसने आत्मसदृशी मायामयी
छायाको निर्माण किया तथा उससे कहा, कि तुम
निःशत्रुनिश्चसे यहाँ रहो और मैं अपने पिताके घर
जाती हूँ । इतना कह कर संधा पिताके घर चली
गई । सूर्यसे छायाके साथीं मनु और शनि नामक
दो पुत्र उत्पन्न हुए । (पद्म० खण्ड० ११ म०)

प्रलवैवर्षपुराणमें शनिकी मूर दृष्टि होनेका कारण
इस प्रकार लिखा है देव गणपतिके जन्म लेने पर एक
दिन शनि, विष्णु भादि देवगण गणेशको देखने गये ।
शनि जब दरवाजे पर पहुँचे, तब उद्योंने द्वारपालको
बुरबाजा खोल देने कहा । द्वारपालने जगयन्त्री दुर्गाके
आदेशसे दरवाजा खोल दिया और शनिने मोनर घुस
कर भगवतीके प्रणाम किया । इस पर पार्वतीने उनसे
कहा, 'शनि ! तुम्हारा मुल भुक्ता क्यों है, उठना क्यों
नहीं ? तुम इस बालकको तथा मुझे क्यों नहीं देखते ?'
शनिने कहा, 'माता ! सभी अपने अपने कर्मफलसे
अपना भोग फल भोग करते हैं, मैं भी अपने कर्म
द्वय कर्मका फल भोगता हूँ । मेरा मुल भुक्ता क्यों
है, उठना कारण अपनी मातामें तो नहीं कहता । पर
भाषमें कहता हूँ । मैं भगवन्से दो कृपाभक्त था तथा
सर्वादा तपोनिरत और ध्यानमग्न रहा करता था ।

चितरथकी कन्याके साथ मेरा विवाह हुआ । पत्नी
भी पतिमता और तपोनिरता थी । एक दिन मेरी
खी अस्तुत्यान कर मेरे पास आई और अपना मनोभाव
प्रकट किया । उस समय मैं यादवकाशुच्य हो भगवान्-
के ध्यानमें निमग्न था । इस पर, भगनी अस्तु, मैं
दुर्ग देव उसने मुझे जाप दिया कि, तुमने मुझे नहीं
देखा और न अस्तुकी रक्षा दी की, इस कारण तुम
जिसकी ओर दृष्टि डालोगे, यही विनष्ट हो जायेगा ।
इसके बाद मैंने ध्यानसे विरत हो कर उसे प्रसन्न किया,
पर यह जाप मोचन फलमें समर्पन न हुई । यही कारण
है, कि मैं अपने चक्षुसे कौर वस्तु नहीं देखता तथा
तमोसे प्राणिदिसामयसे मैं अपना मुख भुकाये रहता
हूँ ।

पार्वतीने यह सुन कर भी कौमुक्यशक्त पुत्रको
देखनेके लिये कहा । शनिने दुर्गलत चिन्तसे बालक
गणेशको देखा और उसी समय गणेशका मस्तक छिन्न
हो गया । पुत्रको मस्तकदोन देल पार्वतीने भी शनि-
को जाप दिया । गयेरा देलो ।

इस प्रकार शनि पत्नीके जापसे परदृष्टिको प्राप्त
तथा पार्वतीके शास्त्रसे पञ्च हुए थे ।

(अथर्ववेत्तीपु० गण्यशास्० १२ ११ म०)

शनिप्रहरेके सम्बन्धमें हमारे देशमें जैसा पौराणिक
भाषण है, यूरोपीय साहित्यमें भी शनिके सम्बन्धमें
ऐसी ही कथा देवतमें आती है । इटालीवगण शनिकी
सादरण (Saturn) देवता कह उनका भाष
करते थे । प्राचीन ग्रीक भाषुनिक रोमन इस Saturn
या शनिको ग्रीस देशीय पौराणिक देवता क्रोनस
(Cronus) कहते हैं । ग्रीसदेशीय पौराणिक
कहानो पढ़नेसे जाना जाता है, कि आकाशके भीम
और पृथ्वीके गर्भसे अनेक सन्तानोंने जन्ममदण किया
था । ग्रीस भाषामें आकाशको उरानस (Uranus)
और पृथ्वीको जिमा (Gaia) कहते हैं । हमारे देशमें
भी आकाश भादिको देवता हो कहा है । जा ही,
आकाशके भीम और पृथ्वीके गर्भसे जो सब सम्मान
उत्पन्न हुई थीं वे साधारणतः टैटान (Titan) कह-
लाती थीं । क्रोनस या शनिप्रह इन टैटानोंके सबसे

छोटे भाई हैं। टिटानोको छोड़ आकाश और पृथ्वीके साइकलपैरे (Cyclops) तथा शतहस्त (Hundred Handers) नामक और भी सन्तान थीं। इन साइकलपैरे और शतहस्तोंके अब आकाशने अत्यन्त विरक्तिजनक समझा, तब उन्हें फिरसे पृथ्वीके गर्भमें प्रविष्ट करा दिया। आकाशके इस कार्यसे पृथ्वी बड़ी दुर्लभ और क्रोधित हुई। उसने अपने पुत्रोंकी आह्वान किया और कहा, कि यदि तुम लोग मेरे पुत्र हो, तो इस कार्यका प्रतिशोध अपने पितासे लेना होगा। माताका यह वचन सुन कर क्रोणस या शनिको छोड़ और किसी भी पुत्रने पिताके विरुद्ध युद्ध करनेका साहस न किया। क्रोणस या शनिप्रदने एक दिन एक हंसियेसे अपने पिता आकाशका अङ्ग काट डाला। उस समय आकाशके शरीरसे जो रक्तपात हुआ था, उससे क्रोधित दैत्यों और असुरोंको उत्पत्ति हुई। इस समय क्रोणस या शनिप्रद पिताके प्रासादमें रह कर विद्वंसाज्यका शासन करते लगे। शनिप्रदने अपनी बहन रिना (Rhea) देवीसे विवाह किया था। क्रोणसको अपने मातापिताने कह रखा था, कि क्रोणस अपने किसी पुत्र द्वारा मारा जायेगा। कंठराजकी जिस प्रकार आकाशवाणी द्वारा माल्टूम हुआ था, कि यह अपने मजिसे मारा जायेगा, क्रोणस भी उसी प्रकार पितामाताके मुखसे दैववाणी सुन कर गये थे।

उस समयसे उसके जो पुत्र जन्म लेता था, उसे ये था डालते थे। इस प्रकार क्रोणसको पांच सन्तान हुई थी, पाँचोंके उन्होंने एक एक कर मार डाला था। इन सब सन्तानोंके नाम थे—हेष्टिया, जिमिटा, हेरा, हेडम् और पसिडन। इस प्रकार पाँचों सन्तानोंको निहत्त दोते देख रिमादेवीके दुःखकी अवधि न रही। उसने समझा कि इससे गर्भ न रहे यह बलि अच्छा पर सन्तानके जन्म लेने पर उसको अकालमृत्यु होना अच्छा नहीं और यह शोक यह बरदाश्त नहीं कर सकती। किन्तु कालधर्मसे उसके फिर गर्भ रह गया और पचास—समय उसने एक पुत्र प्रसव किया। उस सन्तानका नाम जियस (Zeus) रखा गया। इस बार स्नेहमयी माताने पुत्रके छिपा रखा और पुत्रके बढ़नेमें एक

परधरको रक्ताक घुससे लपेट कर क्रोणसके निकट समर्पण किया। क्रोणस पुत्रके भ्रमसे परधरको ही निगल गये। इधर क्रीटद्वीपमें जियस छिपा कर रखा गया था। जियस कमसः बढ़ा हुआ। एक दिन जियसने अपने पिताको घमनकारक एक औषध घानेकी दिया। उस औषधके सेवनसे क्रोणसको अयानक घाम हुई। पहले ही घमिके साथ साथ परधरका टुकड़ा निकल आया। इसके बाद जियसके सभी भाई भी निकले। यह परधर डेल्फीनगरमें रखा गया था। प्राचीन प्रीकगण प्रति दिन तेलसे इसका गाल अभिविक करने थे।

कालक्रमसे जियस और उसके भाईयोंने मिल कर अपने पिताके विरुद्ध युद्ध ठान दिया। दश वर्ष भोजन युद्धके बाद क्रोणस तरतरस नामक स्थानमें कैद दिये गये। कोई कोई कहते हैं, कि Island of the Blest नामक स्थानमें रखा गया था। यहाँ ये युद्धमें पराजित और निहत्त योदोंके आत्माओंके ऊपर कर्तृत्व और विचार करते थे। ग्रीस देशकी प्राचीन कहानी पढ़नेसे मालूम पड़ता है, कि क्रोणस जिस समय राज्यशासन करते थे, उस समय देशको अवस्था सुपर गई थी। उनके शासनाधीन लोग देवताकी तरह स्वाधीनता भोग करते थे। उन्हें किसी प्रकारका दुःखभोग करना नहीं होता था। जीविकानिर्वाहके लिये उन्हें परिश्रम नहीं करना पड़ता था। युद्धायेमें ये कमजोर भी नहीं होते थे। बिना जोते जमीनमें फसल होती थी। प्रीकदेशमें आज भी क्रोणसकी उपासनाकी प्रथा कुछ कुछ देवनेमें जाती है। पेरानियसने लिखा है कि माथेसमें एक पालिस पर्वतके पार्श्वदेशमें आज भी क्रोणस या शनिप्रदका एक मन्दिर विद्यमान है। यहाँ प्रति वर्ष उत्सव होता है। अलिगियामें एक पर्वत क्रोणस पर्वत कहलाता है। प्रतिवर्ष यहाँ शनिप्रदके नाम पर वार्षिक उत्सव होता है।

क्रोणस कालदेवता माने जाते हैं। यह धारणा जिस प्रकार प्रीसियामियोंमें उत्पन्न हुई, इस सम्बन्धमें एक आलोचना देनी जाती है। प्रीक-परिचित कार्टियसका कहना है, कि क्रोणसको कालदेवता माननेवा

कारण यह है, कि क्रोणसको जनसाधारण Chronus समझते हैं। पोलिफा लिखा क्रोणस शब्द का धातुसे निकला है। का धातुका अर्थ सम्पन्न करना है। क्रोणस एक श्रेणीकी असम्भ्य जातिके लोगोंके देवता है। इस असम्भ्य जाति प्राचीन ग्रीकों द्वारा परास्त हुई थी। कार्टियसका कहना है, कि क्रोणसके पुत्र-भक्षणकी कहानीका भाव बुसमेन, काफेर, वासुतु, गिणियावासी और स्कुइमो आदि लोगोंमें प्रचलित है।

सातर्नके सम्यग्रमें इटलीमें और भी एक प्रकारका पौराणिक वृत्तान्त सुना जाता है। सातर्न इटलियोंके पूज्य देवता है। इनकी स्त्रीका नाम ओप्स है। रोम नगरकी सृष्टिके बहुत पहले इस देवताकी कहानी प्रचलित है। ये कृषिकार्यके देवता हैं। Serere धातुसे सातर्न शब्दकी उत्पत्ति हुई है। इस धातुका अर्थ कृषि कार्य करना है। इस कहानीके अनुसार भी क्रोणस जियस या जुपिटर द्वारा भगाये जाने पर इटलीमें भ्रमण करने लगे। इटलीमें राजा हो कर इन्होंने राज्यशासन करने आरंभ कर दिया। इन्होंने अपने शासित भूमण्डलका Saturnia नाम रखा। इटलीके अन्यतम प्राचीन देवता सातर्नकी अर्धवर्धना कर उन्हें रोमदेशमें ले गये थे। इस देवताका नाम जेनस है। इस जेनस ने रोमदेशके कपिटल पर्वतके पाददेशमें सातर्नको प्रतिष्ठित किया। इसी पौराणिक वृत्तान्तके अनुसार कपिटल पर्वत 'सातर्नियन' नामसे अभिहित होता आ रहा है। इस सातर्नियन पर्वतके पाददेशमें आज भी शनिमंदिरका भग्नावशेष दिखाई देता है। इस मंदिरमें उनकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। उनके दोनों पैर समूचा वर्ष पशमसे बांध कर रखे जाते हैं। केवल वार्षिक उत्सव सतर्नलियाके समय वह बांधन खोल दिया जाता है। प्राचीन कालमें सातर्नके निकट नरबलि दी जाती थी। किन्तु हारफ्युलिजने इस जघन्य प्रथाको उठा दिया।

इटलीमें सातर्नके अनेक मन्दिर हैं। वहाँके कितने शहर और पर्वत भी सातर्न कहलाते हैं। पूर्वा कालमें इटलीमें एक तरहकी कविता रची जाती थी, वे सब कविताएँ सातर्नियन मसँ कहलाती थीं। अन्यान्य

देवताओंकी तरह सातर्न भी पृथिवीसे अन्तर्हित हुए थे। हंसिया सातर्नका चिह्नस्वरूप है। सातर्नकी स्त्रीका नाम ओप्स है। ओप्सका अर्थ प्राचुर्य है। ओप्स देवी पृथिवी मूर्ति है। शस्पश्यामला वसुन्धरा लक्ष्मीकी ही मूर्तिस्वरूप है। सातर्नकी एक और स्त्री है जिसका नाम लुया है। यह लुया अलक्ष्मी विशेष है।

आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान पढ़नेसे जाना जाता है कि समस्त सौर जगत्में सिर्फ एक जुपिटर (बृहस्पति)की छोड़ शनिग्रह ही सबसे बड़े हैं। अन्यान्य सभी ग्रहोंके एकल करनेसे उनका परिमाण जितना होता है, शनिग्रह उस परिमाणसे तिस्रुने बड़े हैं, अन्यान्य ग्रहोंका सूर्यसे दूरत्व निर्णय करनेमें शनिग्रहका स्थान छोड़ा जाया है। प्राचीन ज्योतिर्विज्ञानकारणा यों कि शनिग्रह ही सूर्यसे अधिक दूर हैं। फलतः सूर्यसे ८७२३७०० मील दूर रह कर यह ग्रह सूर्यका प्रदक्षिण करता है। जब सूर्यसे यह ग्रह अधिक दूरमें रहता है, तब उसकी दूरताका परिमाण ६२०६७३००० मील और उससे सबसे कम दूरताका परिमाण २१३३१००० मील है। इसकी कक्षाको उत्केंद्रता (Eccentricity of orbit) ०.०५६६६६ तथा घरातलके क्रान्तिवृत्तकी ओर इसका पातकोण (inclination to the plane of ecliptic) २.२६'२८" है। शनिग्रह उगतोस वर्ष एक सौ सड़सठ दिनमें अपनी कक्षाका परिभ्रमण करता है। उसका युति-संक्रान्त (Synodical revolution) परिभ्रमण काल ३६८०७७ दिन है। इसके व्यासका परिमाण ७०००० मील तथा विषुव प्रदेशस्थ व्यासका परिमाण ७५३०० मील है। इसके मेघदेशस्थ व्यासका परिमाण ६६५०० मील है। शनिग्रह पृथिवीसे सात गुना बड़ा है, तथा चपनमें नब्बे गुना भारी है। पृथिवीकी अपेक्षा शनिग्रहका घनत्व कम है अर्थात् पृथिवीकी घनत्व एक सौ मान लेनेसे शनिग्रहका घनत्व १३से ज्यादा नहीं। शनिग्रह साढ़े दश घण्टे में अपने कक्षमें (Axis) परिभ्रमण करता है।

दूरविक्षणकी सहायतासे देखा गया है, कि शनिग्रह अर्धोत्तम्य बलय (Ring) द्वारा परिवेष्टित है। गालिलियोने सबसे पहले शनिग्रहका यह बलय देखा था।

उन्होंने यह भी देखा था, कि यह ग्रह तीन भागोंमें विभक्त है अर्थात् दो चलयके मध्य एक पिण्डवत् पदार्थ सबसे पहले उनके दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने किसी किसी समय इस चलयवत् पदार्थको अत्यन्त बृहदाकार धारण करते और कभी बिलकुल गायब होते देखा था। उस समय अन्धकार प्रदेशोंके साथ आकारमें शनि-ग्रहकी कोई पृथक्ता दिखाई नहीं देती थी। हाइघेन्स-ने (Huyghen) सबसे पहले इस बातको सूचित किया, कि शनिग्रहके विषुव प्रदेशमें एक ज्योतिर्मय चलयवत् पदार्थ स्वतन्त्र भावसे विद्यमान है। यह पदार्थ शनिग्रहका सहचर होने पर भी उक्त प्रदेशसे बहुत दूरमें अवस्थित है।

शनिग्रहके चलय पर सूर्यकिरण पड़नेसे वह चमक उठता है। सूर्य और पृथ्वी जब दोनों उसके एक पार्श्वमें रहते हैं, तब ही यह दिखाई देता है। जब एक ओर सूर्य और दूसरी ओर पृथ्वी तथा बीचमें शनिग्रह रहता है, तब यह चलय फिर दिखाई नहीं देता।

इबल्यु घन और जे घन इन दोनों भाष्योंने शनिग्रहके सम्बन्धमें यथेष्ट गवेषणा कर सितर किया है, कि यह चलय, दो समकेन्द्रिक (Concentric) निम्नभागके चलयसे बहुत बड़ा है। कासिनी (Cassini) का कहना है, कि शनिग्रहका निर्माणोपादान जैसा घना है, उसके चलयका उपादान वससे कम घना नहीं है। शनिग्रहकी अपेक्षा उसके चलयकी ज्योति अधिक उज्ज्वल है। ऊपरके चलयसे नीचेका चलय ही बहुत साफ है। ज्योतिर्विदोंने अच्छे दूरविक्षणकी सहायतासे इस चलयके ऊपर बहुत-सी समकेन्द्रकी कालो रेखाएँ देखी हैं।

हारसेलका कथन है, कि शनिका चलय अपने रेलेंमें (Plane) १० घंटा ३२ मिनट १५ सेकेण्डमें परिक्रमण करता है। लापलस का भी यही सिद्धांत है। १८५० ई०के पहले शनिके चलयके सम्बन्धमें ज्योतिर्विदोंके प्रयासोंमें कोई भी उल्लेख दिखाई नहीं देता। परन्तु एक ज्योतिर्विदुने इसका उल्लेख किया था। उनका नाम गाल्कूर गल (Gall) था। वे यार्लिंके रहनेवाले थे। इन्होंने १८८८ ई०में शनिग्रहका चलय यत्रकी सहायतासे देखा था।

१८५० ई०में युनाइटेड स्टेट्स के कैमब्रिज विश्वविद्यालयके प्राफेसर एण्ड और मि: डज इन दोनोनों ही शनि-ग्रहका चलय देखा था। अच्छे दूरविक्षणकी सहायतासे अभ्यस्त नेत्रोंको यह चलय दिखाई देता अभी उतना कष्टकर नहीं है। मि: डजने इस चलयको साफ तौरसे प्रत्यक्ष कर इसका विशद विवरण लिखा है।

मग्नाग मानमन्दिरसे कतान जेरुवने यह चलय देखा था। एम ओटो स्टुव (M Otto Stuve) का कहना है, कि शनिग्रहका यह चलय नया उत्पन्न नहीं हुआ है। यह चलय क्रमशः शनिग्रहके निकटवर्ती होता है और उसका घनत्व धीरे धीरे बढ़ता है।

आधुनिक वैज्ञानिक ज्योतिर्विदोंका कहना है, कि यह चलय और कुछ नहीं है, छोटे छोटे ग्रहोंकी समष्टि है। ये सब उपग्रह-वायुके साथ सम्मिश्रित हैं। यह चलय असङ्गभावमें शनिग्रहके साथ परिभ्रमण करता है। शनिग्रहके आठ उपग्रह (Satellites) हैं। सबोंके पहिलेच उपग्रहकी विस्तृति चालीस लाख मील है। यह हम लोगोंके चन्द्रसे भी कहीं बड़ा है। छठा उपग्रह, टिटान (Titan) मार्कुरीके समान है।

फल-ग्रहण राशिविशेषमें रह कर विशेष विशेष फल देते हैं। शनिग्रहके फलविषयमें ऐसा लिखा है, कि शनि पापग्रह है, अतएव अशुभफल देनेवाला है, किन्तु राशि और स्थानविशेषमें शुभफल भी देता है। यहां तक, कि शनि और मङ्गल ये दो प्रद स्थानविशेषमें रह कर राजयोगकारक भी होते हैं।

शनिका स्थान—शनि शुभस्थानमें रह कर राज्य, दास, दासी, चाहन और स्मरणशक्ति प्रदान करता है। किन्तु अशुभ स्थानमें रहनेसे यह अनिष्ट और विनाशकारक होता है। इसको सन्यासी, प्राचीन व्यक्ति, भृत्य और मोच मनुष्य माना जाता है।

शनिग्रह भारतवर्षस्थित सूरतदेशका अधिपति तथा पश्चिम दिग्बली है। मनुष्यके शरीरमें शनिका भाग अधिक होनेसे स्वरूपकेश, छटा और दोषदेह, पीननासिका, अघर ओष्ठ स्थूल, नेत्र छोटे और काम बड़े होते हैं।

सम्भाव—जन्मके समय शनिके अनुकूल रहनेसे जातक गमीर बुद्धिशक्तिसम्पन्न, मितभाषी, वैयंग्याली,

परिध्रमी, सम्पत्ति उपार्जनमें यत्नवान्, क्लेशसहिष्णु और दूरदर्शी होता है।

शनिके विगुण होनेसे मानव मलिन, हिंस्र, द्वेषी, लोभी, भोक्त, नीचाशय, सन्दिग्ध, अपथित, अशुचि, नीचकर्मरत, मिथ्यावादी और विश्वासघातक होते हैं।

घ्राधि—शनिके विगुण होनेसे चधिरता, पदचिकलता, प्लोहा, पक्षाघात, शरीर कमन, उदरी, वात, वायुरोग, श्वासरोग और यक्ष्मरोग होता है।

कार्य—शनिके अनुकूल होनेसे मानव राजा, जनिके अधिपति, उर्णा और काष्ठव्यवसायी तथा कृषी होते हैं। शनिके प्रतिकूल होनेसे जातक भारवाहक, शकटचालक, कुम्भकार, भूमिखननकारी, भूतय, पशुशुकर, डोम और चण्डाल आदि नीच जाति होता है।

उद्ग, गर्दभ, उल्लूक, महिष, भेक, सर्प, कुर्मा, गृध्र, बाहुर आदि पक्षी शनिके प्रिय हैं।

विजयद, शमी, ताल, पञ्जुर, शाल, समस्त विपाक तयलता तथा लौह, सीसक और इन्द्रनील रत्न शनिके अत्यन्त प्रिय हैं। शनिके विरुद्ध होनेसे लौह और सीसे का दान तथा धारण या इन्द्रनील मणि धारण करनेसे शुभ होता है।

शनिके ६६ वर्ष तक एक एक राशिका भोग करता है, अतएव समस्त राशिक चरण करनेमें उसे ३० वर्ष लगता है। शनि जन्मराशिसे अवस्थान कर विशेष विशेष फल देता है।

गोचरफल—शनिके जन्मराशिमें रहनेसे दीर्घकाल-स्थायी श्लेष्मा, अथवा वायुजनित पीड़ा, कम्प, संक्रामक या लूयाहिक उदर, पक्षाघात, उदरी, वात आदि रोग होनेकी सम्भावना, नाना प्रकारकी मनोवेदना, अर्धाहानि, अपघाद, माता, पुत्र और कलहादिकी पीड़ा या वियोग जनित शोक होता है। द्वितीयमें मनाक्लेश और अर्धाक्षति, तृतीयमें शत्रुनाश, क्षमता वृद्धि और सीमायला होता है। किन्तु शनि यदि इस स्थानमें नीचरूप हो, तो उक्त फलका हास होता है। चतुर्थमें वधुनाश, शत्रु वृद्धि, पिताकी पीड़ा और स्थानत्रंश, पञ्चममें सन्तानादिका अमङ्गल, शुद्धिनाश और विविध प्रकारका मानसिक क्लेश, षष्ठमें शत्रुनाश, आरोग्यलाभ, अयोग्य और कार्य

सफल होता है। किन्तु नीचरूप होनेसे इस फलका हास होता है। सप्तममें स्त्रीकी पीड़ा या विनाश, विरोध, यातादिमें अमङ्गल और नाना प्रकारका अनिष्ट होता है। अष्टममें पीड़ाकात्त और विपदापन्न होना पड़ता है। नवममें वाणिज्यमें क्षति, मनाक्लेश तथा अर्धा और कार्यहानि होती है। दशममें प्राकृता, अर्धा और वाहनादि लाभ तथा द्वादशमें शोक, वधवधन, भय, शृण और शत्रु वृद्धि होती है।

शनिके जन्मके समय जिस राशिमें था, गोचरमें उसी राशिमें अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे मानवको नाना प्रकारके विघ्नका सामना करना पड़ता है। मङ्गलका राशि भोगकाल थोड़ा है, किन्तु शनिके प्रायः द्वादश वर्ष हैं तथा उसका फल भी दीर्घस्थायी है। अतएव गोचरफलका विचार करनेमें पहले यह देखना चाहिये, कि शनि जन्मके समय जिस राशिमें था, उस राशिमें अथवा उसके सप्तममें पड़ना है या नहीं? क्योंकि गोचरमें शुभ होने पर भी उक्त दो स्थानोंमें वह विशेष अशुभ फलप्रद होता है। जन्मकालसे प्रायः १५ वर्षमें शनि अपने सप्तममें उपस्थित होता है तथा २० वर्षमें अपनी अधिष्ठित राशिमें लौटता है। अतएव पहले कम १५ वर्षमें मानव अत्यन्त शारीरिक और मानसिक क्लेशोंमें निमग्न रहते हैं। उस समय उस प्रदेके जन्मकर्मदि पण्णाहीन्य होनेसे उक्त फल अवश्य फलता है। इसके सिवा शनि जन्मकालीन रविभाग्य राशिमें अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे जातकके पिताका अनिष्ट, शत्रुभय, वधुनाश और मानहानि तथा रविके आशुकीता होनेसे प्राणनाशका डर रहता है। शनिके जन्मलग्नमें होनेसे जातकके और उसकी संतानादिकी पीड़ा, धन-लग्नमें अर्धात् लग्नसे दशम स्थानमें उपस्थित होनेसे कार्यहानि, अपमान और नाना प्रकारका उद्द्वेग होता है।

बारहवीं राशिमें शनिके रहनेसे उक्त प्रकारका फल प्राप्त होता है। मेष राशिमें शनि रहनेसे व्यसन और परिश्रमकातर, क्लेश, निष्ठुर, निन्दित और निर्धन

घृषराशिमें शनि रहनेसे अर्धाहीन, भूतय, मिथ्याकर्म-

नियुक्त, वाक्यवीर, वृद्धा, या कुत्सितछोरीरत, स्तिकांका मृत्यु, निरूपस्थानवासो और दुष्टस्वभाव होता है।

मिथुनमें शनि रहनेसे बन्धनयुक्त, भ्रमातुर, दाम्भिक, मन्त्रणानिपुण, सर्गदा पाठरत, उत्तमशिल्पी और वाक्यवीर; कर्कटमें शनि रहनेसे उत्तम भाग्ययुक्त, दरिद्र, वाद्यकालमें रोगपीडित, पण्डित, जननीहिन; अति मृदु, भ्रमातुर, बन्धुयुक्त, मध्यावस्थामें नरपति, तुल्य और भोगमें यत्नित; सिंहराशिमें रहनेसे लिपिपाठक और पुराणवेत्ता, निन्दिताचारयुक्त, दुःशाल, स्तोत्रिजित, विन्ता और भ्रमणशील; कन्याराशिमें रहनेसे पण्डकी तरह भावित, अतिशय, परानभोजी, वैश्यासक्त, जालसा, अंगुचि और परीपकारी; तुलाराशिमें रहनेसे मानो; आलसी, विदेश भ्रमणमें रत, राजा, तपस्वी, स्वपक्षरक्षक, शिराल, बन्धुओंका श्रेष्ठ, साधु, कुलटा, नट और वैश्य-स्त्रोरमणशील; मृशिकमें रहनेसे विद्वेष्ट, विपमस्वभाव, विप और अस्त्रवेत्ता, प्रचण्डकोपी, लोभो, दर्पयुक्त, परधन-हरणमें पारंग, नृशंसकर्माकारक, अनेक कष्टसिद्धि, क्षय, प्रिय और विविध व्याधियुक्त; धनुमें रहनेसे व्यवहार, विद्वान, विख्यातपुत्र, स्वधर्मपरायण, सुशील, वृद्धावस्थामें धीमोगी, अतिशय सम्मानो, अद्वयावय मापी, बहुसङ्गविशिष्ट और मृदु स्वभावसम्पन्न; मकर राशिमें रहनेसे परयोपित् और परक्षेत्रका अधिपति, शास्त्रज्ञ, शिल्पवेत्ता, सद्दर्शशोत्पन्न, विख्यात, प्रवास शील, सरलताविहिन और शौर्ययुक्त; कुम्भराशिमें रहनेसे मिथ्यावादी, सुमिष्टमापी, लो और व्यसनासक्त, धूर्त, पञ्चनाकुशल, कुमिलयुक्त और सद्दर्शन कार्यसिद्धि तथा मीनराशिमें रहनेसे यत्नप्रिय, शिल्पविद्यासम्पन्न, स्वीय-धनु और सुहृदोंका प्रधान, शान्तस्वभाव, विनयी और धार्मिक होता है।

अष्टोत्तरीके मतसे शनिकी दशा दश वर्ष है। अनु राधा, ज्येष्ठा और मूला इन तीन नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इसके प्रति नक्षत्रमें ३ वर्ष, ४ मास तथा नक्षत्रके प्रतिपादमें १० मास और प्रति दण्डमें २० दिन तथा प्रति पलमें २० दण्ड होता है।

शनिकी स्थूलदशा दश वर्ष होने पर भी प्रत्येक प्रद-को अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा विभाग है। साधारणतः

दश और अन्तर्दशानुसार फलविचार करना होता है। प्रदोंके शुभ प्रदमें अवस्थान आदि द्वारा दशाकालमें फलके शुभाशुभकी कल्पना करनी होती है।

- शनिका निज अन्तर ०।११।३।२० दण्ड।
- शनि वृहस्पति १।६।३।२० दण्ड।
- शनि राहु १।१।१० दिन।
- शनि शुक्र १।१।१० दिन।
- शनि रवि ०।६।२० दिन।
- शनि चन्द्र १।३।२० दिन।
- शनि मङ्गल ०।८।२६।४० दण्ड।
- शनि बुध १।६।२६।४० दण्ड।

विंशोत्तरीके मतसे शनिकी दशा १६ वर्ष है। पुण्या, अनुराधा और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इस दशाके नियमानुसार प्रत्येक नक्षत्रमें ही १६ वर्ष भोग होता है। परन्तु नक्षत्रका जितना दण्ड भोग हुआ है, दशा भी उतनी ही भुक्त हुई है, ऐसा जानना होगा। इस दशाकी भी पहलेकी तरह अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा है, उसका विभाग इस प्रकार है—

- निज शनि ३।०।३ दिन।
- शनि बुध २।८।६ दिन।
- शनि केतु १।१।६ दिन।
- शनि शुक्र ३।२।० दिन।
- शनि रवि ०।१।१।२ दिन।
- शनि चन्द्र १।०।० दिन।
- शनि मंगल १।१।६ दिन।
- शनि राहु २।१।६ दिन।
- शनि वृहस्पति २।६।१२ दिन।

विंशोत्तरीके मतसे उक्त रूपसे १६ वर्ष भोग होता है। विंशोत्तरीमतसे पराशरने विशेषरूपसे दशाफलका विचार किया है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका यहाँ पर उल्लेख नहीं किया गया।

शनिप्रद जन्मकालमें शयनादि द्वादशमासके किस भागमें रहता है, उसे स्थिर करके पीछे फलनिर्णय करना आवश्यक है। प्रदका स्फुट, भाग, बल और सन्धि-का निर्णय करके भी फल स्थिर करना होता है। प्रहण

परिश्रमी, सम्पत्ति उपार्जनमें यत्नवान्, कुशलदिष्ट्यु और दूरदर्शी होता है।

शनिके विगुण होनेसे मानव मलिन, हिंस्र, द्वेषी, लोभी, भीष, नीचाग्रय, सन्दिग्ध, अपथित, अशुचि, नीचकर्मरत, मिथ्यावादी और विश्वासघातक होते हैं।

ध्याधि—शनिके विगुण होनेसे पथिरता, पदधिक लता, प्लोहा, पक्षाघात, शरीर कम्पन, उदरी, वात, पायुरोग, श्वासरोग और यक्ष्मरोग होता है।

कार्य—शनिके अनुकूल होनेसे मानव राजा, बनिके अधिपति, उर्णा और काष्ठय्यसामो तथा ह्यो होते हैं। शनिके प्रतिफल होनेसे जातक भारवाहक, शकटचालक, कुम्भकार, भूमिलाननकारी, भृत्य, पशुरक्षक, डोम और चण्डाल आदि नीच जाति होता है।

उद्भ्र, गढेम, उल्लूक, महिप, भेक, सर्प, कूर्म, गृध्र, बाहुर आदि पक्षी शनिके प्रिय हैं।

विजयद, शमी, ताल, खजूर, शाल, समस्त विपाक तद्गुणता तथा लौह, सीसक और इन्द्रनील रत्न शनिके अत्यन्त प्रिय हैं। शनिके विरुद्ध होनेसे लोह और सीसे का दान तथा धारण या इन्द्रनील मणि धारण करनेसे शुभ होता है।

शनिके द्वाइ वर्ष तक एक एक राशिका भोग करता है, अतएव समस्त राशिकक भ्रमण करनेमें उसे ३० वर्ष लगता है। शनि जन्मराशिसे अवस्थान कर विशेष विशेष फल देता है।

गोचरफल—शनिके जन्मराशिमैं रहनेसे दीर्घकाल-स्वाथी श्लेष्मा, अथवा वायुजनित पीडा, कम्प, संक्रामक या त्वादििक उदर, पक्षाघात, उदरी, वात आदि रोग होनेकी सम्भावना, नाना प्रकारकी मनोवेदना, अर्थाहानि, अपवादा, माता, पुत्र और कल्लादिकी पीडा या वियोग जनित शोक होता है। द्वितीयमें मनाहेश और अर्थाहति, तृतीयमें शत्रु नाश, क्षमता वृद्धि और सौभाग्यला होता है। किन्तु शनि यदि इस स्थानमें नीचस्थ हो, तो उक्त फलका हास होता है। चतुर्थमें मधुनाश, शत्रु वृद्धि, पिताकी पीडा और स्थानत्रय; पञ्चममें सन्तानादिका अमङ्गल, बुद्धिनाश और विविध प्रकारका मानसिक क्रोध, षष्ठमें शत्रु नाश, आरोग्यलाभ, अर्थागम और कार्य

सफल होता है। किन्तु नीचस्थ होनेसे इस फलका हास होता है। सप्तममें लोकी पीडा या विनाश, विरोध, यातादिमें अमङ्गल और नाना प्रकारका अनिष्ट होता है। अष्टममें पीडाकास्त और विपदापन्न होना पड़ता है। नवममें चाण्डाल्यमें क्षति, मनाहेश तथा अर्था और कार्यहानि होती है। दशममें प्राज्ञता, अर्थ और वाहनादिका लाभ तथा द्वादशमें शोक, अथवा अन्ध, अन्ध और शत्रु वृद्धि होती है।

शनिके जन्मके समय जिस राशिमैं था, गोचरमें उसी राशिमैं अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे मानवकी नाना प्रकारके विघ्नका सामना करना पड़ता है। मङ्गलका राशि भोगकाल छोड़ा है, किन्तु शनिका प्राया द्वाइ वर्ष है तथा उसका फल भी दीर्घस्वाथी है। अतएव गोचरफलका विचार करनेमें पहले यह देखना चाहिये, कि शनि जन्मके समय जिस राशिमैं था, उस राशिमैं अथवा उसके सप्तममें पदु चा है वा नहीं? क्योंकि गोचरमें शुभ होने पर भी उक्त दो स्थानोंमें यह विशेष अशुभ फलप्रद होता है। जन्मकालसे प्राया १५ वर्षमें शनि अपने सप्तममें उपस्थित होता है तथा २० वर्षमें अपनी अधिष्ठित राशिमैं लौटता है। अतएव फलसे कम १५ वर्षमें मानव अत्यन्त शारीरिक और मानसिक क्लेशमें निमग्न रहते हैं। उस समय उस ग्रहके जन्मकालीन पण्णादौष्य होनेसे उक्त फल अवश्य फलता है। इसके सिवा शनि जन्मकालीन रविमांग्य राशिमैं अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे जातकके पिताका अनिष्ट, शत्रुभय, धधुनाश और मानहानि तथा रविके आशुवाता होनेसे प्राणनाशका डर रहता है। शनिके जन्मलग्नमें आनेसे जातकवृत्तिक और उसकी संतानादिकी पीडा, धन-लग्नमें अर्थात् लग्नसे दशम स्थानमें उपस्थित होनेसे कार्यहानि, अपमान और नाना प्रकारका उद्भेग होता है।

बारहवीं राशिमैं शनिके रहनेसे उक्त प्रकारका फल प्राप्त होता है। मेष राशिमैं शनि रहनेसे अन्धता और परिश्रमकातर, क्लेश, निष्ठुर, निन्दित और निर्धन होता है।

वृषराशिमैं शनि रहनेसे अर्थाहीन, भृत्य, मिथ्याकर्म-

नियुक्त, वाक्पवीर, वृद्धाः याः कुरितसत्स्वीरत, स्त्रियोका मृत्य, निरुष्टरूपानवासी और दुष्टस्वभाव होता है।

गिधुनमें शनि रहनेसे बन्धनयुक्त, धर्मातुर, दाम्भिक, मन्त्रणानिपुण, सर्वादा पाठक, उत्तमशिल्पी और वाक्पवीर; कर्कटमें शनि रहनेसे उत्तम भाग्ययुक्त, दरिद्र, वाक्पकालमें रोगपीडित, पण्डित, जननीहोन, अति मृदु, धर्मातुर, बन्धुयुक्त, मध्यावस्थामें नरपति-तुल्य और भोगमें वञ्चित; सिंहराशिमें रहनेसे लिपिपाठक और पुराणवेत्ता, निन्दिताचारयुक्त, दुःशाल, स्त्रीविजित, विन्ता और भ्रमणशील; कन्याराशिमें रहनेसे पण्डकी तरह भाकति, अतिशय, पराग्नभोजी, चेश्यासक्त, जालसी, अशुचि और परोधकारी; तुलाराशिमें रहनेसे मानो, जालसी, विदेश भ्रमणमें रत, राजा, तपस्वी, स्वप्नक्षरक, शिराल, बन्धुवर्षाका श्रेष्ठ, साधु, कुलटा; नट और चेश्य-स्त्रीरमणशील; वृश्चिकमें रहनेसे विद्वेष्ट, विपमस्वभाव; विष और अस्तवेत्ता, प्रचण्डकोपी, लोभो, दर्पयुक्त, परधनहरणमें पारंग, नृशंसकर्माकारक, अनेक कष्टसहिष्णु, क्षय, व्यय और विविध व्याधियुक्त; घनुमें रहनेसे ध्व-हारक, विद्वान्, विख्यातपुत्र, स्वधर्मपरायण, सुशील, वृद्धावस्थामें धीमोगी, अतिशय सम्मानो, अद्वयवाक्य साधो; बहुसङ्गविशिष्ट और मृदु स्वभावसम्पन्न; मकर राशिमें रहनेसे परधोयित् और परशेत्तका अधिपति, शास्त्रज्ञ, शिल्पवेत्ता, सदुपशोत्पन्न, विख्यात, प्रवास शील, सरलताविहोन और शौर्ययुक्त, कुम्भराशिमें रहनेसे मिथ्यावादी, सुमिष्टभाषी, स्त्री और व्यसनासक्त, धूर्त, पद्मनाभकुशल, कुमित्रयुक्त और सद्गर्जमें कार्यसिद्धि तथा मीनराशिमें रहनेसे यत्नप्रिय, शिल्पविद्यासम्पन्न, स्वोप-बंधु और सुहृदोंका प्रधान, शान्तस्वभाव, विनयी और धार्मिक होता है।

अष्टोत्तरीके मतसे शनिकी दशा दश वर्ष है। अनु-राधा, ज्येष्ठा और मूला इन तीन नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इसके प्रति नक्षत्रमें ३ वर्ष, ४ मास तथा नक्षत्रके प्रतिपादमें १० मास और प्रति दण्डमें २० दिन तथा प्रति पलमें २० दण्ड होता है।

शनिकी स्थूलदशा दश वर्ष होते पर भी प्रत्येक मं-दकी अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा विभाग है। साधारणतः

दश और अन्तर्दशानुसार फलविचार करना होता है। प्रदोके शुभ प्रदमें अवस्थान आदि द्वारा दशाकालमें फलके शुभाशुभकी कल्पना करनी होती है।

- शनिका निज अन्तर ०१११३२० दण्ड।
- शनि वृहस्पति १६१३२० दण्ड।
- शनि राहु १११२० दिन।
- शनि शुक ११११२० दिन।
- शनि रवि ०६१२० दिन।
- शनि चन्द्र ११४२० दिन।
- शनि मङ्गल ०८२२६४० दण्ड।
- शनि बुध १६१२६४० दण्ड।

विंशोत्तरीके मतसे शनिकी दशा १६ वर्ष है। पुष्या, अनुराधा और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इस दशाके नियमानुसार प्रत्येक नक्षत्रमें ही १६ वर्ष भोग होता है। परन्तु नक्षत्रका जितना दण्ड भोग हुआ है, दशा भी उतनी ही भुक्त हुई है, ऐसा जानना होगा। इस दशाकी भी पहलीकी तरह अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा है, उसका विभाग इस प्रकार है—

- निज शनि : ३०१३ दिन।
- शनि बुध २८६६ दिन।
- शनि केतु १११६ दिन।
- शनि शुक ३२० दिन।
- शनि रवि ०१११२२ दिन।
- शनि चन्द्र ११७० दिन।
- शनि मंगल १११६ दिन।
- शनि राहु २१२०६ दिन।
- शनि वृहस्पति २६१२२ दिन।

विंशोत्तरीके मतसे उक्त रूपसे १६ वर्ष भोग होता है। विंशोत्तरीमतसे पराशरने विशेषरूपसे दशाफल-का विचार किया है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका यहाँ पर उल्लेख नहीं किया गया।

शनिकी जन्मकालमें शयनादि द्वादशमासके किस भावमें रहता है, उसे स्थिर करके पीछे फलनिर्णय करना आवश्यक है। प्रदका स्फुट, भाग्य, बल और सन्धि-का निर्णय करके भी फल स्थिर करना होता है। प्रदगण

दिन शिंकार खेलते खेलते गङ्गाके किनारे आये। इस समय इन्होंने साक्षात् लक्ष्मीकी तरह कांतिमती दिव्याभरणभूषिता परम रमणीया एक रमणी मूर्ति देख स्तम्भित और विस्मित हो कर उनसे कहा, 'शोभने! तुम देवी दानवी अप्सरी किन्नरी पन्नगी मानवी कोई भी क्यों न हो मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। अत एव मेरा अभिजाप पूर्ण कर मुझे वाधित करो।'

राजाके इस प्रकार आप्रह्वित मनोमोहन मृदु मधुर मनोहर वचन सुन कर दिव्यमूर्ति धरिणी गङ्गा वसुओंका विवरण स्मरण करती हुई सुस्फुराई और बड़ी प्रसन्न हो कर उन्होंने राजासे कहा, 'महीपाल! मैं तुम्हारी महियो और वशवर्त्तिनो हूँगी, किन्तु आपको एक प्रतिष्ठा करनी होगी, वह यह कि यदि मैं किसी प्रकारका शुभ या अशुभ कार्य करूँ, तो आप मुझे रोक नहीं सकते और न कोई षडु वचन ही कह सकते हैं। यदि कहेंगे, तो उसी समय मैं आपको छोड़ चली जाऊँगी।' राजाने यह प्रतिष्ठा स्वीकार कर ली। इस प्रकार दोनों चैनसे दिन काटने लगे। दोनोंकी प्रीति दिना दिन बढ़ने लगी। नवपरिणीता भाग्यके औदार्य गुण और निर्गुन परिचयोंसे राजा परिपुष्ट रहा करते थे।

इस प्रकार वर्षा सुखसम्भोगके बाद उन्हें आठ सन्तान उत्पन्न हुई। वसुओंके साथ नियम था, कि जन्म लेते ही जलमें फेंक देना होगा। तबनुसार एकसे सात सन्तान तक जलमें फेंक कर गङ्गा देवीने अपने पूर्ण प्रसिद्धाका पालन किया। गङ्गाके इस प्रकार बार बार कठोर व्यवहारसे राजा इतने दुःखित हुए थे, कि आठवें पुत्रके जन्म लेते ही वे अपनी प्रतिष्ठा भङ्ग किधे बिना रह न सके। उषों ही गङ्गादेवी इस आठवें पुत्रको भी जलमें फेंकने जा रही थी, एषों ही राजाने उन्हें रोक कर कहा, 'तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? किस लिये पुत्रवध करती हो?' राजाकी इस उक्ति पर गङ्गा निरस्त हो बोली, 'हे पुत्रकाम! मैं तुम्हारे इस पुत्रको वध न करूँगी। किन्तु तुमने नियम भंग किया, इसलिये अब मैं तुम्हारे पास नहीं रह सकती। मैं महर्षिगणनिधेयिता जह्नुतनया गङ्गा हूँ। देवकार्यकी सिद्धिके लिये मैंने तुम्हारे साथ सहवास किया था।

तुम्हारे पुत्र महातेजस्वी अष्टवसु हैं। वशिष्ठके शापसे वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए हैं। इस मर्त्यालोकमें तुम्हारे सिवा और कोई भी जनक और मेरे सिवा जननी होनेकी अप्युक्त नहीं है। अभी तुमने अष्टवसुकी जन्म दे कर अक्षयलोक अधिकार किया था। वसुओंके साथ मेरी शर्त थी, कि उनके जन्मसे उन्हें मुक्त करूँगी। इसी कारण प्रसवके बाद मैं उन्हें जलमें फेंक आती थी। किन्तु यह पुत्र तुम्हारे लिये ही मैंने वसुओंसे मांगा था। यह कुमार प्रत्येक वसुके अष्टमांसके मिलसे उत्पन्न हुआ है। अभी तुम इसका पालनपोषण करो। तुम्हारा बल्याण ही, मैं चलाती हूँ।' इतना कह कर वह उस कुमारको ले पथामिलपित स्थानमें अन्तर्हित हो गई। यही कुमार स्वर्गोपधु नामक वसु है, मर्त्यालोकमें शन्तनुके पुत्र हो कर देवमत और गङ्गाके नामसे विख्यात हुए। ये ही कुक्षेत्र युवके प्रथम और प्रधान सेनापति परम धनुर्धर महाबलिष्ठ भीष्म थे।

गङ्गादेवीके अन्तर्धानके बाद राजा शन्तनु बड़े दुःखित हुए। कुछ समय बाद एक दिन वे एक वाणविध मृगका अनुसरण करते हुए गङ्गाके किनारे आये। वहाँ वे एक सुन्दर कुमारको शरजाल द्वारा गङ्गाका स्रोत रोकते देख बड़े विस्मित हुए और गङ्गासे उन्होंने इसका परिचय पूछा। गङ्गाने कहा, 'राजन्! पहले तुमने जो मेरे गर्भसे अष्टपुत्र लाभ किया था, वह यही पुत्र है। अन्न, शस्त्र, शास्त्र, वेद, विद्याङ्ग आदि सभी विद्याओंमें पारदर्शी हो गया है। अब तुम इसे अपने घर ले जाओ।' राजाने गङ्गाप्रदत्त उस पुत्रको ला कर युवराज बनाया।

इन सब घटनाओंके बाद किसी एक दिन राजा शन्तनु वसुनाके किनारे वनमें भ्रमण कर रहे थे। इसी समय उन्होंने एक सद्गन्ध बाघाण कर उसी ओर रुद्धम बढ़ाया और एक देवकृपिणी कन्याकी देख उसका परिचय पूछा। कन्याने कहा, 'मैं वसुवराज (वाशराज) की कन्या हूँ, सत्यवती मेरा नाम है। पिताकी आज्ञासे यहाँ नाव खेने आई हूँ।' शन्तनुने उस परम रूपवती कन्याके रूप पर मोहित हो कर उसे स्थापनेकी इच्छा

प्रकट की। परन्तु सत्यवतीका पिता उनसे सम्मत नहीं हुआ। पीछेसे उसने कहा, 'यदि आप सत्यवतीके पुत्रको राज्य देना स्वीकार करें, तो मैं अपनी कन्या प्याह दूँ।'

तोत्र मनोज-वेदनासे दह्यमान होते हुए भी राजा शान्तनुको साहस न हुआ, कि वे दाशराजको बात पूरी कर सकें। अतः वे कामधामसे पीड़ित ही दक्षिणापुर लीते। यहाँ वे बड़ी उदासोन्मत्तासे दिन बिताने लगे। विपुलयुद्धि देवव्रत पिताको इस प्रकार उदास देख बड़े दुःखित हुए और मन्त्रोसे इसका कारण पूछा। कुल बात मालूम होने पर देवव्रत दाशराजके समीप गये और पिताके लिये उन्होंने कन्या प्रार्थना की। दाशराजने उत्तर दिया, कि कन्याका पिता साक्षात् इंद्र होने पर भी यदि वह ऐसे श्लाघ्य और पक्कात प्रार्थनीय सम्बन्धका परित्याग करे, तो उसे अंतमें अवश्य पश्चात्ताप करना पड़ेगा। परन्तु इसमें एकमात्र सापत्न्यदोष पर ही मुझे संदेह होता है। क्योंकि आप जिसके सपत्न हैं, वह देव, नर, गर्भर्था या असुर भी क्यों न हो, तो भी आपके क्रोध करने पर वह कभी नहीं रह सकता। इसके सिवा देवलोकके विषयमें और कोई चिन्तन नहीं है।

अंततः गङ्गापुत्र देवव्रतने पिताको संतुष्ट करनेके लिये क्षत्रियमण्डलीके समीप दाशराजके सामने इस प्रकार प्रतिष्ठा की, 'आपकी कन्याके गर्भसे उत्पन्न बालक ही मेरा राज्याधिकारी होगा और अन्तमें कहीं मेरी सगतिसे विवाद भी खड़ा न हो जाय, इसलिये मैंने चित्रवर्धन अथवा अथवा अथवा' 'इस प्रकार प्रतिज्ञापद ही देवव्रत उस योजनगन्धा दाशराजकन्या सत्यवतीको अपने घर ले आये। इस प्रकार भीषण प्रतिष्ठा करनेके कारण देवताओं और ऋषियोंने उनका भीष्म नाम रखा।

इसके बाद समय पा कर शान्तनुके औरस और सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो बोर्यवान् महाधनुर्धर पुत्र उत्पन्न हुए। विचित्रवीर्यः वयमप्राप्त होनेसे पहले ही शान्तनु परलोकको सिधारै। पीछे महामति भीष्मने सत्यवतीके मतावलम्बी हो कर अक्षयवृत्तसे अरिन्दम-चित्राङ्गदको यथासतयः राज्याभिमिक किया।

२ राजभेद। (शुक १०।६।१) ४ वृष्टिनाम। (शुक १०।६।३) ५ कौरव्य। (शुक १०।६।७) शान्तनुत्व (सं० क्ली०) १ शान्तिमय देहका भाव। २ शान्तनुका धर्मविशिष्ट।

शान्तम (सं० पु०) अतिशय सुखकर स्तोत्र। (शुक १।१।३।१)

शान्ताति (सं० लि०) सुखकर्ता। (शुक १।१।२।२०) शान्तातीय (सं० लि०) शान्तिसूचक-स्तोत्रसम्बन्धी। (शुक ७।३।१।१०।३)

शान्ति (सं० लि०) शमस्तास्तीति शम् (कं शम्भ्यां कश्चिन्नु तयवः। पा १।१।३।३५) इति ति। मङ्गलयुक्त, कव्याणविशिष्ट। शान्तिव (सं० लि०) सुखयुक्त। (अथर्व ३।२।०।२ वायण)

शान्तु (सं० लि०) शम् मत्वर्थे (कं शम्भ्यामिति। पा १।१।३।३५) इति तु। शान्त, मङ्गलयुक्त। शन्त्व (सं० क्ली०) सुखका भाव या धर्म। (तैत्तिरीयसं १।१।३।३५)

शान्ध (सं० पु०) पण्ड, हीजड़। शप (सं० पु०) शप-अच् १ शपथ, कसम। २ निर्म-रसन, गाली देना। (अथ०) ३ स्वीकार, मंजूर। शपथ (सं० पु०) शप क्रोशे (शौक् शपि-कश्मीति। उण् ३।१।३) इति अथ। १ वह कथन जिसके अनुसार कहनेवाला इस बात की प्रतिष्ठा करता है, कि यदि मेरा कथन असत्य हो, मैंने अनुक काम किया हो, मैं अनुक काम-करके या न करके इत्यादि, तो मुझ पर अनुक देवताका शप पड़े। नथवा मैं अनुक पावका भागी होऊँ। आदि, कसम, दिव्य, सौगन्द। संस्कृत पर्याय-शपन, शप, सत्य, समर्थ, शप, प्रत्यय, अभिपन्न। (जटापर)

आपसमें लड़नेवाले चाद्री और प्रतिवादी इन दो पक्षोंका यदि कोई साक्षी न रहे, तो विचारक दोनों पक्षोंका शपथ खिला कर सत्यनिरूपण करे। महर्षियों और देवताओंने आत्मसुद्धिके लिये पहले शपथ की थी। वशिष्ठऋषिने भी पित्रवचनके पुत्र सुदासराजाके निकट शपथ खाई थी। हानियाँका घृथा शपथ न खानी चाहिये। जो घृथा शपथ खाते हैं, उन्हें इस लोकमें

यकीर्ति और परलोकमें नरक) होता है। शपथके विषयमें इस प्रकार प्रतिप्रसव लिखा है—

कामिनीपु विवाहोयु गवां प्रपथे वनेनपथे ॥

ब्रह्मप्याम्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥

मनु (५।१२२)

सुम मेरी भतिशय प्रियतमा हो, दूसरेकी मुझे याद नहीं है, इस प्रकार सुरतलामके लिये स्त्रीविषयमें मिथ्या शपथ खानेसे उसमें पाप नहीं होता। विवाह; गोके लिये मश्राद्रय संग्रह, होम काष्ठ लाना और ब्राह्मणरक्षा इन सब विषयोंमें भी यदि मिथ्या शपथ खाई जाय, तो पाप नहीं होता।

विचारकालमें ब्राह्मणकी सत्य द्वारा शपथ करानी होगी। क्षत्रियको उसके इत्यर्थका व्यायुध; क्षौरा; वैश्यको उसकी गोया काञ्चन द्वारा तथा शूद्रको सभी पातक हारा शपथ करानी होती है। शपथवा शूद्रको अग्नि वा जल परीक्षा; किंवा स्त्रीपुत्रादिका शिरःसुवा; कर परीक्षा करावे। इस परीक्षा विषयमें अग्नि जिसे शपथ न करे, जल जिसे ज्वल न भंसावे तथा स्त्रीपुत्रादिका मस्तक छूनेसे शीम यदि पीडा न होती जानना चाहिये कि यह विषुद्ध है।

विष्णुसंहितामें लिखा है कि राजद्रोह तथा साहस कर्मात् वृत्तुता आदि कार्योंमें इच्छानुसार शपथ करानी होगी। गच्छित तथा चौर्यमें गच्छित और अण्डहत धन परःप्रमाण देताहुप शपथ खानी होती है। जिस वस्तुके लिये शपथ होगी उसके मूल्यके बराबर सुवर्ण रख कर शपथ खाना कर्त्तव्य है। इसमें विशेषता यह है कि छणल (सुवर्णपरिमाणविशेष)से कम देने पर शूद्रके हाथमें दुवा; देकर, उसे शपथ खिलावे। दे. छणलसे कम देने पर हाथमें तिल देकर, तीन छणलसे; कम होनेपर हाथमें हलसे उबाड़ी हुई मिट्टी देकर शपथ खिलानी होगी। सुवर्णादिके कम देने पर शूद्रको कोप (विषयविशेष) प्रदान करे। उससे ऊपर होने पर पाशानुसार तुला, अग्नि, जल और विषादि द्वारा दिव्य करावे। परहलसे दुना कर्त्तव्य होने पर वैश्यको भी शपथ खिलानी कर्त्तव्य है। तिसुना होनेसे क्षत्रियको चौमुना होने पर ब्राह्मणको शपथ खानी

चाहिये। शपथ खानेमें पूर्वदिन उपवास करना होता है। दूसरे दिन सेवरे, सूर्योदय कालमें स्नान कर शपथ करे। (विष्णुसंहिता सं० १०)

देवता और ब्राह्मणादिके चरण, पुत्र और स्त्री आदि के मस्तक स्पर्श कर अल्पकारणमें शपथ खानेसे सुदिलाम होता है। किन्तु साहस और अनिश्चय आदिमें तुला, जल, अग्नि आदि दिव्य द्वारा शुद्ध होती है। व्यवहारतत्त्व, विष्णुसंहिता आदिमें विशेष विवरण दिया गया है।

शपथपत्र (सं० क्रो०) यह शपथ जो 'कागज' पर लिख कर दिया जाता है। अदालतमें हाकिमके सामने पत्र लिख कर जो allidavids किया जाता है, उसे शपथपत्र कहते हैं।

शपथयावन (सं० त्रि०) आकीशनाशक।

शपथयावन (सं० त्रि०) शपथ निवारण।

शपथपत्र (सं० पु०) शपथकारी, सांगम्य देनेवाला।

शपथ (सं० त्रि०) शपथ पत्र। शपथसमूह, शपथसे उत्पन्न। सुवस्तु मा शपथाद्यो (अक २०।६७।६)

शपथ्यात् शपथसंजातात् । (भाष्य)

शपन (सं० क्रो०) शप-क्रोये इट् । १ शपथ, कसम।

शपनत्र (सं० त्रि०) आकीशशील। (शपथपत्र ०।६।३।)

शत (सं० पु०) शप-क । १ उलक अथवा उलप नामक वृक्ष। २ वह व्यक्ति जिसे शपथ दिया गया हो।

शप (सं० त्रि०) शपकत्, शप देनेवाला।

शप्य (सं० त्रि०) शप देनेके उपयुक्त, जो शपथ देनेके योग्य हो।

शप (सं० क्रो०) १ पशुभोका खुर। २ नखी योनिगण्ड।

शपक (सं० पु०) शप-स्वाथे क्त । १ शपथकार मनुष्य।

शपक (अ० क्रो०) शपथकार। या शपथकारके समय आकाशमें दिखाई देनेवाली ललाटे। विरोधता सम्भ्याके

शपक (सं० पु०) शप-स्वाथे क्त । १ शपथकार मनुष्य।

शपक (अ० क्रो०) शपथकार। या शपथकारके समय आकाशमें दिखाई देनेवाली ललाटे। विरोधता सम्भ्याके

शपक (सं० पु०) शप-स्वाथे क्त । १ शपथकार मनुष्य।

शपक (अ० क्रो०) शपथकार। या शपथकारके समय आकाशमें दिखाई देनेवाली ललाटे। विरोधता सम्भ्याके

शपक (सं० पु०) शप-स्वाथे क्त । १ शपथकार मनुष्य।

शपक (अ० क्रो०) शपथकार। या शपथकारके समय आकाशमें दिखाई देनेवाली ललाटे। विरोधता सम्भ्याके

उड़ीसा प्रान्तमें पर्णशहर नामक इस जातिकी एक शाखाका वास देखा जाता है। ये लोग अत्यन्त दुर्धर्म और जंगली स्वभावके होते हैं। आज तक भी इन्होंने कपड़ा पहनना सीखा नहीं है। शहरके निकटवर्ती स्थानवासीको छोड़ सभी वनवासी शहर आज भी पर्णाच्छादन द्वारा अपनी लज्जा निवारण करते हैं। भ्यालियर राज्यवासी शहरी या शहरिया कोटा सोमांतस्थ जंगलमें रहते हैं। पश्चिम मारवाड़ और गुणा पर्यन्त विस्तृत स्थानोंमें इनका वास है।

दक्षिण भारतके पूर्वांचल पर्वतमाला पर शूवर या शूरा नामकी जो बड़े सम्य घन्य जाति रहती है, यह भी शहर कहलाती है। शहर शब्दके अपभ्रंशसे शूवर या शूरा हो गया है। ये लोग अभी जिस जिस स्थानमें वास करते हैं, उस उस स्थानकी सम्य और इतर जातियां इन्हे चेन्नुकुलम्, चेन्नवार और चैनशूवर नामसे पुकारती हैं। ये लोग साधारणतः पूर्वांचल पर्वतमालाके पश्चिम शीलसे ले कर कृष्णा और पेन्नर नदीके मध्यवर्ती गहलमलय और लङ्कामलय नामक स्थान तक वास करते हैं। अफ्रिका, निकाबार द्वीप और पश्चिमोन्नेसियावासी असम्प जिस तरह घर बना कर रहते हैं, ये लोग उसी तरह घर काट कर एक स्थान परिष्कार करते और वहाँ मनुचक्रकी तरह घर बना कर रहते हैं।

घरकी दीवाल बांसकी टहरियोंकी और छाजन घास का होता है। घरकी ऊँचाई सिपा ३ फुट होती है। पुष्प प्रायः नगे रहते हैं, लज्जानिवारणके लिये सामान्य एक वस्त्रबण्ड पहन लेते हैं। स्त्रियां एक वस्त्रबण्ड कमरमें बांध लेती हैं सही, पर अनेक स्थलोंमें ही उनका वस्त्रबण्ड खुला रहता है।

ये कदम छोटे पर मजबूत होते हैं। हनुकी हड्डी चौड़ी और ऊँची, नाक चिपटी, नाकके छेद चौड़े, आँख की पुतली घोर काली और दृष्टि तीक्ष्ण होती है। ये लोग निकटवर्ती अग्नाभय सम्य इतर जातिके कुछ छोटे हैं सही, पर बलघोरमें उनसे कहीं बड़े चड़े हैं। ये लोग किसी प्रकारकी देवमूर्तिकी पूजा नहीं करते।

सभी प्रायः बड़े बड़े कुत्ते पालते हैं। पार्श्व जंगल रक्षाके लिये गवर्में एने इन्हे वहां नियुक्त किया है।

ये लोग बहु विवाह करते हैं। शवहाद साधारणतः प्रचलित है। किंतु कभी कभी देहसमाधिकालमें ये लोग मृतका तीर धनुषला कर उसके साथ गाड़ या जन्म देते हैं। ये लोग बरछा, कुटार और बंदूक भी रखते हैं। किसी भी प्रकारके शिल्पवाणिज्य या बखचयन कार्योंके ये घृणित समझते हैं। ये लोग धीरे धीरे नष्ट होते हैं।

शहरक (सं० पु०) जङ्गली, बहशी। शहरचन्दन (सं० पु०) एक प्रकारका चन्दन। यह लाल और सफेद दोनों मिले हुए रङ्गोंका होता है। वैद्यकके अनुसार यह शीतल तथा कड़वा और घातक पिचकफ, विस्फोटक, खुजली, कुप, मोदादिकी नष्ट करनेवाला माना जाता है।

शहरजम्बु (सं० स्त्री०) नगरमेद। शहरमाध्य (सं० स्त्री०) शहरस्वामीकृत पेशावत या मोमांसासूत्रका प्रसिद्ध माध्य। शहरलोभ्र (सं० स्त्री०) श्वेत लोभ्र, सफेद लोच।

(राजनि०)

शहरसिंह (सं० पु०) राजमेद। शहरस्वामिन्—१ एक प्रसिद्ध मोमांसक। इन्होंने मोमांसासूत्रमाध्य और शहरकीस्तुम नामक दो ग्रन्थ लिखे। इन दोनों ग्रन्थोंमें इनकी विश्वव्रताकी विशेष पवित्र्य है। २ भट्टदीप्तस्वामीके पुत्र। ये हर्षवर्द्धनकृत लिङ्गानुशासनके रचयिता थे। उज्ज्वलवृत्तने इनका नामोल्लेख किया है।

शबल (सं० त्रि०) शब आक्षेपे (पनेर्गर्वाः ऽण् १।१०७) इति बलः यच्चादेशः। १ कर्पूरयर्ण, चित्तकवरा। २ चित्त विचित्र, विरङ्ग। (पु०) ३ एकनागका नाम। ४ गन्ध वृण, गगिया घास। ५ चित्रक, चित्तउर वृक्ष। ६ बोद्धीका एक प्रकारका धार्मिक वृक्ष। शबलक (सं० त्रि०) १ चित्तकवरा। २ चित्त विचित्र, रङ्ग विरङ्ग। शबलचेतन (सं० पु०) यद् जो किसी प्रकारकी पीड़ा या

कष्ट आदिके कारण घबराया हुआ हो, वह जो संतप्त या व्यथित होनेके कारण अश्रुमयनक हो।

शब्दलता (सं० स्त्री०) शब्दलस्य भावात् तल्-टाप् । १ शब्दलत्व, शब्दलका भाव या घर्मा । २ रङ्ग विरङ्गापन । ३ मिलावट ।

शब्दलत्व (सं० क्तो०) शब्दलता देखो।

शब्दला (सं० स्त्री०) शब्दलः शिखायं टाप् । १ शब्दलघर्णा गामी, चितकवरी गौ। २ कामधेनु।

शब्दलाक्ष (सं० पुं०) महाभारतके अनुसार एक ऋषिका नाम। (भारत १३ पर्व)

शब्दलाश्व (सं० पुं०) १ एक ऋषिका नाम। (भरतध्याय) २ भविष्यतके पुत्र। ३ दक्षसे पाञ्चजन्या गर्भजात पुत्र। (भागवत ६।१।२४) ४ हरिचंशके अनुसार घैरणीका गर्भजात।

शब्दलका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पक्षी।

शब्दलित (सं० त्रि०) कर्त्तर घर्णयुक्त, चितकवरी। (संस्तरं० २।१६७)

शब्दली (सं० स्त्री०) शब्दल-लीय। १ शब्दलघर्णा गामी, चितकवरी गाय। २ कामधेनु।

शब्दाव (सं० पुं०) १ यौवनकाल, जवानी। २ किसी वस्तुको वह मध्यकी अवस्था—जिसमें वह बहुत अच्छा या सुन्दर जान पड़े। ३ बहुत अधिक सौन्दर्य।

शब्दाहत (सं० स्त्री०) १ समानता, अनुरूपता। २ आकृति, सूरत, शङ्क।

शब्दी (सं० स्त्री०) १ वह चित्र जो किसी व्यक्तिकी सूरत शकके ठीक अनुरूप बना हो। २ समानता, अनुरूपता।

शब्दीरोक्त (फा० अठार०) रात दिन, हर समय, हर क्षण।

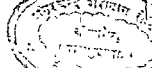
शब्द (सं० पुं०) शब्द-घञ् भावे यद्वा शप आकीये (शाक्यिन्यां दन्ती) उप् ४।६७ इति दन् प्रकारस्य चकार श्रोतप्राह्य गुणपदार्थविशेष, वायुमें होनेवाला वह कण जो किसी पदार्थ पर आघात पड़नेके कारण उत्पन्न हो कर कान या श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचता और उसमें एक विशेष प्रकारका क्षोभ उत्पन्न करता है, पदार्थ—निनाद, निन्द, निःस्वन, ध्वनि, ध्वान, रव, स्वन, स्वान, निर्घोष, निर्हाद, नाद, निःस्वान, निःस्वन, आरव, आगाव, संराव, विराव, (अमर) —संरव, राव, (शब्दच०) घोष।

ध्वन्यात्मक और घर्णात्मक भेदसे शब्द दो प्रकार का है। मृदङ्गादिके शब्दको ध्वन्यात्मक और कण्ठतालु अभिघातजन्य क, ख इत्यादि शब्दको घर्णात्मक कहते हैं। दोनों प्रकारके शब्द, आकाशसे उत्पन्न होते हैं तथा जब श्रोतेन्द्रियके साथ उसका अभियोग होता है, तब अधिकृत श्रोतेन्द्रियवाच जीवमात्र ही उसका अर्थ-बोध कर सके यान कर सके, पर शब्द अवश्य अनुभव कर सकता है। फलतः जब तक शब्दके साथ श्रोतेन्द्रियका अभिपङ्ग नहीं होता, तब तक उसको उपलब्धि नहीं होती; यही कारण है, कि हम बहुत दूरका शब्द नहीं सुन सकते। किन्तु वर्तमान वायुवातय विज्ञान-वित्पण्डितोंकी कृपासे 'रेडियोफोन' आदि यन्त्र द्वारा दूरसे दूर शब्द भी हम अभी सुन सकते हैं।

श्रोतेन्द्रियमें शब्दके विकाश सम्बन्धमें नैवायिक लीग कहते हैं—मृदङ्गादि वा कण्ठतालु आदिमें अभिघात लगनेसे वहाँके नभःप्रदेशमें उत्पन्न शब्द वीचित्ररङ्गन्यायमें अर्थात् जिस प्रकार किसी स्थानके जलमें वायु द्वारा एक तरङ्ग उत्पन्न होनेसे क्रमशः उसीके घात प्रतिघात द्वारा बहुत दूर तक तरङ्ग बढ़ती जाती है, मृदङ्गादिमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि आघातजन्य उत्पन्न शब्द भी वायु द्वारा क्रमशः उत्तरोत्तर उक्त प्रकारके तरङ्गाकारमें श्रवणेन्द्रिय पर्यन्त पहुँच कर उसमें प्रतिहत होनेसे वहाँ उसका विकाश होता है।

किसी किसीके मतसे कदम्बगोलकन्यायमें अर्थात् मृदङ्गादिमें प्रथम द्वितीय आदि आघातजन्य क्रमशः उत्पन्न शब्दोंकी उस प्रथम उत्पत्तिस्थानकी ही कदम्ब-पुष्पकी तरह गोलकाकार वस्तुके केन्द्रस्वरूप तथा उसके केशरोंकी तरह उक्त केन्द्रोत्पन्न शब्द वा उनकी गति व्यासाद स्वरूप चारों ओर विक्षिप्त होती है, इस विशेषकालमें जहाँ जहाँ उस शब्द या उसकी गतिके साथ श्रोतसंयोग होता है। उन्हीं सब स्थानोंमें उक्तका विकाश दिखाई देता है।

"शब्देऽनित्या" इस श्रुतिके मर्म पर कोई कोई कहते हैं, "श्रोतेोत्पन्नस्तु गृह्यते" "उत्पन्नको विनष्टः कः" 'क' उत्पन्न हुआ है 'क' विनष्ट हुआ है; ये सब प्रयोग किस प्रकार सम्भव होते हैं अर्थात् शब्दमात्र ही सब नित्य



उड़ीसा प्रांतमें पर्णाश्वर नामक इस जातिको एक शाखाका वास देखा जाता है। ये लोग अत्यन्त दुर्द्धर्ष और जंगली स्वभावके होते हैं। आज तक मो इन्होंने कपड़ा पहनना सीखा नहीं है। शहरके निकटवर्ती स्थानवासियोंको छोड़ सभी वनवासी शबर आज मो पर्णाच्छादन द्वारा अपनों लज्जा निवारण करते हैं। ग्यालियर राज्यवासी शबरो या शहरिया कोटा सीमांतस्थ जंगलमें रहते हैं। पश्चिम मारवाड़ और गुणा पर्यन्त विस्तृत स्थानोंमें इनका वास है।

दक्षिण भारतके पूर्वांचल पर्यन्तमाला पर शूबर या शूरा नामकी जो अन्नसम्पन्न वन्य जाति रहती है, वह भी शबर कहलाती है। शबर शब्दके अपभ्रंशसे शूबर या शूरा हो गया है। ये लोग अभी जिस जिस स्थानमें वास करते हैं, उस उस स्थानकी सभ्य और इतर जातियां इन्हें चेम्बुकुलम्, चेम्बुवार और चैनशूबर नामसे पुकारती हैं। ये लोग साधारणतः पूर्वांचल पर्वतमालाके पश्चिम शीलसे ले कर कृष्णा और पेन्नर नदीके मध्यवर्ती नवलमलय और लङ्कामलय नामक स्थान तक वास करते हैं। अफ्रिका, निकाबार द्वीप और एशियानेसियावासी असभ्य जिस तरह घर बना कर रहते हैं, ये लोग उसी तरह पत्त काट कर एक स्थान परिष्कार करते और वही मधु-चक्रकी तरह घर बना कर रहते हैं।

घरकी दीवाल बांसको टट्टरियोंकी और छाजन घास का होता है। घरकी ऊंचाई सिर्फ ३ फुट होती है। पुष्प प्रायः नगे रहते हैं, लज्जानिवारणके लिये सामान्य एक वस्त्रखण्ड पहन लेते हैं। स्त्रियों एक वस्त्रखण्ड कमरमें बांध लेती हैं सही, पर अनेक स्थलोंमें ही उनका वस्त्रखण्ड खुला रहता है।

ये कर्दम छोटे पर मजबूत होते हैं। हनुकी हथी चौड़ी और ऊंची, नाक चिपटी, नाकके छेद चौड़े, आंखकी पुतली घोर काली और दृष्टि तीक्ष्ण होती है। ये लोग निकटवर्ती अग्र्याग्र्य सभ्य इतर जातिके कुछ छोटे हैं सही, पर बलयोग्यमें उनसे कहीं बड़े बड़े हैं। ये लोग किसी प्रकारकी वैयमूर्त्तिकी पूजा नहीं करते।

सभी प्रायः बड़े बड़े कुत्ते पालते हैं। पार्श्व जंगल रक्षाके लिये गधमें एतने इन्हे वहां नियुक्त किया है।

ये लोग बहु विवाह करते हैं। शबरदाह साधारणतः प्रचलित है। किंतु कमी कमी वैदसमाधिकालमें ये लोग मृतका तीर धनुष ला कर उसके साथ गाड़ या जला देते हैं। ये लोग बरछा, कुटार और बंदूक भी रखते हैं। किसी भी प्रकारके शिल्पवाणिज्य या वस्त्र-वचन कार्योंको ये घृणित समझते हैं। ये लोग धीरे धीरे नष्ट होते हैं।

शबरक (सं० पु०) जङ्गली, बहरी।

शबरचन्दन (सं० पु०) एक प्रकारका चन्दन। यह लाल और सफेद दोनों मिले हुए रङ्गोंका होता है। वैद्यकके अनुसार यह शीतल तथा कड़ुवा और घात, पित्त, कफ, विस्फोटक, खुजली, कुष्ठ, मोटाहिकी, नष्ट करनेवाला माना जाता है।

शबरजम्बू (सं० ह्री०) मगरमेद।

शबरभाष्य (सं० ह्री०) शबरस्वामीकृत वैदिकत वा.मीमांसासूत्रका प्रसिद्ध भाष्य।

शबरलोध्र (सं० ह्री०) श्वेत लोध्र, सफेद लोध्र।

(राजनि०)

शबरसिंह (सं० पु०) राजमेद।

शबरस्वामिन्—१ एक प्रसिद्ध मीमांसक। इन्होंने मीमांसासूत्रभाष्य और शबरकीस्तुम नामक दो ग्रन्थ लिखे। इन दोनों ग्रन्थोंमें इनको विश्ववत्ताकी विशेष परिचय है। २ महर्षीतत्त्वामोके पुत्र। ये धर्मवर्द्धनकृत लिङ्गानुशासनके रचयिता थे। उदयवल्दत्तने इनका नामोल्लेख किया है।

शबल (सं० त्रि०) शब आक्रोश (यपेर्गरच)। उष्ण १(१०७)

इति वलः यश्चादेशः। १ कर्पूरवर्ण, चित्तकषरा।

२ चित्र विचित्र, विरङ्ग। (पु०) ३ एकनामका नाम।

४ गन्ध तुण, शगिया वास। ५ चित्रक, चितउर गृह।

६ बोद्धीका एक प्रकारका पार्श्विक वृक्ष।

शबलक (सं० त्रि०) १ चित्तकषरा। २ चित्र विचित्र, रङ्ग विरङ्ग।

शबलचेतन (सं० पु०) यद् जो किसी प्रकारकी पीड़ा या

कष्ट आदिके कारण घबराया हुआ हो, वह जो संतप्त या व्यथित होनेके कारण अग्यमनस्क हो।

शब्दलता (सं० स्त्री०) शब्दलस्य भावः तल्-टाप् । १ शब्दलत्व, शब्दलका भाव या धर्म। २ रङ्ग विरङ्गापन। ३ मिलावट।

शब्दलत्व (सं० स्त्री०) शब्दलता देखो।

शब्दला (सं० स्त्री०) शब्दलः स्त्रियां टाप् । १ शब्दलघर्णा गाम्भी, चित्तकवरी गौ। २ कामधेनु।

शब्दलाक्ष (सं० पुं०) महाभारतके अनुसार एक ऋषिका नाम। (भारत १३ पर्व)

शब्दलाश्व (सं० पुं०) १ एक ऋषिका नाम। (पञ्चरात्राय) २ ऋषिक्षिप्तके पुत्र। ३ दक्षसे पाञ्चजन्या गर्भजात पुत्र। (भागवत ६।१।२४) ४ हरिवंशके अनुसार चैरणोका गर्भजात।

शब्दलिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पक्षी।

शब्दलित (सं० त्रि०) कर्तृ चर्णयुक्त, चित्तकवरा। (राजतरंग २।१६७)

शब्दली (सं० स्त्री०) शब्दल-उत्पत् । १ शब्दलघर्णा गाम्भी, चित्तकवरी गाय। २ कामधेनु।

शब्दाव (सं० पुं०) १ यौवनकाल, जवानो। २ किसी वस्तुको वह मध्यकी अवस्था जिसमें वह बहुत अच्छा या सुन्दर जान पड़े। ३ बहुत अधिक सौन्दर्य।

शब्दाहत (सं० स्त्री०) १ सम्मानता, अनुरूपता। २ आकृति, सूरत, शङ्क।

शब्दश (सं० स्त्री०) १ वह चित्र जो किसी व्यक्तिकी सूरत शकके ठीक अनुरूप बना हो। २ सम्मानता, अनुरूपता।

शब्दरोज (फा० अव्य०) रात दिन, हर समय, हर क्षण।

शब्द (सं० पुं०) शब्द-घञ् भाषे यद्वा शप आकीरी (शांतिभ्यां ददती। उप् ४।६७) इति ण् पकारस्य पकारः श्रोत्रप्राह्य गुणपदार्थविशेष, वायुमें होनेवाला वह कण जो किसी पदार्थ पर आघात पड़नेके कारण उत्पन्न हो कर कान या श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचता और उसमें एक विशेष प्रकारका क्षोभ उत्पन्न करता है, पर्याय—निनाद, निनद, निस्वप्न, ध्वनि, ध्वान, स्व, स्वप्न, स्वान, निर्घोष, निर्घोष, नाद, निःस्वान, निःस्वप्न, आरष, शाराव, संराव, विराव, (अमर) —संरष, राव, (शब्दच०) घोष।

ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक भेदसे शब्द दो प्रकार का है। मृदङ्गादिके शब्दको ध्वन्यात्मक और कण्ठतालु अभिघातजन्य क, ख इत्यादि शब्दको वर्णात्मक कहते हैं। दोनों प्रकारके शब्द आकाशसे उत्पन्न होते हैं तथा जब श्रोत्रेन्द्रियके साथ उसका अभियोग होता है, तब अविच्छिन्न श्रोत्रेन्द्रियवात् जीवमात्र ही उसका अर्थ-बोध कर सके या न कर सके, पर शब्द अवश्य अनुभव कर सकता है। फलतः जब तक शब्दके साथ श्रोत्रेन्द्रियका अभियोग नहीं होता, तब तक उसको उपलब्धि नहीं होती; यही कारण है, कि हम बहुत दूरका शब्द नहीं सुन सकते। किन्तु वर्तमान पाश्चात्य विज्ञान-वित्पण्डितोंकी कृपासे 'टेलीफोन' आदि यन्त्र द्वारा दूरसे दूर शब्द भी हम अभी सुन सकते हैं।

श्रोत्रेन्द्रियमें शब्दके विकाश सम्बंधमें नैर्वायिक लोम कहते हैं—मृदङ्गादि वा कण्ठतालु आदिमें अभिघात लगनेसे यहाँके नभःप्रदेशमें उत्पन्न शब्द वीचित्ररङ्गन्यायमें अर्थात् जिस प्रकार किसी स्थानके जलमें वायु द्वारा एक तरङ्ग उत्पन्न होनेसे क्रमशः उसीके घात प्रतिघात द्वारा बहुत दूर तक तरङ्ग बढ़ती जाती है, मृदङ्गादिमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि आघातजन्य उत्पन्न शब्द भी वायु द्वारा क्रमशः उत्तरोत्तर उक्त प्रकारके तरङ्गाकारमें ध्रुवणेन्द्रिय पर्यन्त पहुँच कर उसमें प्रतिहत होनेसे वहाँ उसका विकाश होता है।

किसी किसीके मतसे कदम्बगोलकन्यायमें अर्थात् मृदङ्गादिमें प्रथम द्वितीय आदि आघातजन्य क्रमशः उत्पन्न शब्दोंकी उस प्रथम उत्पत्तिस्थानका ही कदम्ब-पुष्पकी तरह गीलाकार वस्तुके केन्द्रस्वरूप तथा उसके केशरीकी तरह उक्त केन्द्रोत्पन्न शब्द वा उनकी गति व्यासार्ध स्वरूप चारों ओर विक्षिप्त होती है, इस विश्लेषकालमें जहाँ जहाँ उस शब्द या उसकी गतिके साथ श्रोत्रसंयोग होता है। उन्हीं सब स्थानोंमें उनका विकाश दिखाई देता है।

"शब्दाः नित्याः" इस श्रुतिके मर्म पर कोई कोई कहते हैं, "श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते" "उत्पन्नःको विनष्टः कः" 'क' उत्पन्न हुआ है 'क' विनष्ट हुआ है; ये सब प्रयोग किस प्रकार सम्भव होते हैं अर्थात् शब्दमात्र ही जब नित्य

है, तब उनकी उत्पत्ति या विनाश कदापि नहीं हो सकता। परंतु जहाँ ऐसा व्यवहार देखा जाता है, वहाँ अनित्यता युक्तिसे ही होता है। फिर प्रत्यभिज्ञास्थलमें जो "सोऽयं कः" है वह यही 'क' इस प्रकार व्यवहृत होता है, वहाँ केवल 'यह वही औपच' है। (अर्थात् मैंने जिस औपचका व्यवहार किया था, यह वही भ्रमजातीय औपच है) इस प्रकार साजातीय अचलभ्रम करके ही उसकी अर्थनिष्पत्ति करनी होती है। वस्तुतः 'वह यही क है' 'यह यही औपच है' इत्यादि स्थानोंमें कमसे कम शब्दका नित्यत्व प्रतीत होने पर भी प्रत्यभिज्ञाकालमें साजातीयत्व ही गृहीत होगा, उससे व्यक्तिकी (पूर्वो धारित 'क' या पूर्वा व्यवहृत औपचकी) अभिज्ञता सम्भवी न जायेगी।

चरकके विमानस्थानमें घर्णात्मक शब्दको चार भागोंमें विभक्त किया गया है। यथा—दृष्टार्थं, अदृष्टार्थं, सत्य और अनृत।

दृष्टार्थ शब्द—असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, प्रहापराध और परिणाम इन तीन कारणोंसे यातादि दोषका प्रकोप होता है तथा लक्षण वृद्धिवादि प्रकिया द्वारा ये सब दोष भ्रमताके प्राप्त होते हैं। इसे उक्तिका फल सर्वथा देखा जाता है, इसी कारण उन्हें दृष्टार्थशब्द कहते हैं।

अदृष्टार्थ शब्द—जिसका फल अदृष्ट है अर्थात् चक्षु-गोचर नहीं होता, वही अदृष्टार्थ शब्द है, जैसे पुनर्जन्म है, मोक्ष है।

सत्यशब्द—जो विश्वासयोग्य है, वही सत्य है; जैसे सिद्धिका उपाय है, अर्थात् कायमनोवाच्य द्वारा क्रिया करनेसे सिद्धिलाम किया जाता है, चिकित्सा करनेसे साध्य रोग आरोग्य होता है, इत्यादि। किन्तु जहाँ सम विश्वास होगा, वह सत्य कदापि नहीं है।

अनृत शब्द—जो सत्यका विपरीत है, यही अनृत अर्थात् मिथ्या शब्द है, जैसे शंभर नहीं है, आत्मा नहीं है, कर्मफल नहीं है, पुनर्जन्म नहीं है, इत्यादि।

(चरक विमानस्थान ८म अध्याय)

महामारतके अन्वयेषुपथमें अहज, श्रेयस, गार्ग्यार, मध्यम, यक्ष्म, निपाद, धैर्य, शंभु और संदतके भेदसे चारको दस भागोंमें विभक्त किया गया है।

विशेष-विशेष शब्दका विशेष विशेष नाम है, यथा— गुण और अनुरागसे उत्पन्न शब्दका नाम शब्द है। शीतहृत् अर्थात् रतिकालमें शिपोंके मुखसे निकले हुए अल्पक इस इस या शिस देनेकी तरह शब्दका नाम प्रणाद मलद्वारोत्थित शब्दका नाम पद्मन (पाद); कुशिमव शब्द अर्थात् पेट धोलनेका नाम कर्दन; युद्धकालीन घोड़ोंकी चोत्कार ध्वनिका नाम सिंहनाद या ह्वेड; कलकल शब्दका नाम कोलाहल; व्याकुल या हठात् विपद्यप्रसू अवस्थाके रयका नाम तुमुल; वज्र और गृहपत्नीदिका मर्मर (फरफर); अलङ्कारकी ककारका शिञ्जि; गोध्वनिका हम्मा, रम्मा और रेमण; अश्वकी रव हूपा और हूपा; गजका गर्ज और वृद्धित, धनुकका शब्द विस्फार, मेघका स्तनित, गर्जित, गर्जि, स्तनित और रसित; विद्वज्जोंका कुञ्जित, पशुपक्षी आदि साधारण तिर्यग् जातिके शब्दका नाम रत और वाशित, लकड़-व्याघ्रकी बोलीका नाम रेपण; कुङ्कुरादिका शब्द युक्त और भयण; किसी भी कारणसे योजित व्यक्तिकी कातरौकिका नाम कणित; सुम्बन और रतिकालके अश्वक शब्दका नाम मणित; तल्लोके स्वरका नाम प्रकाण और प्रकाण; मादलका गुब्बत और मेरीके स्वरका दुट्टर; सच्छिद्र-चंद्रको ध्वनिका क्षोजन; अतपुष्प शब्दका तार; गम्भीर ध्वनिका मन्द्र, मधुरध्वनिका कल; सूक्ष्म मधुरध्वनिका काकली; लयसङ्गत ध्वनिका एकताल और सहज स्वरकी व्यङ्ग्य करके इच्छाक्रमसे विरुतभावमें उच्चारण करनेका नाम काकु और धनुवकी डोरीके शब्दका नाम टङ्कुर है।

कविकल्पलतामें उद्धृत निम्नलिखित शब्दोंकी अनुलोम या विलोम जिस किसी भावमें पढ़ा क्यों न जाये, उसमें उनके उच्चारण या अर्थगत कोई वैषम्य दिखाई नहीं देता था। यथा—

नवन, नत्तम, कनेक, कएक, महिम, कालिका, सरस, सदास, मध्यम, तावता, तारता, विमंथि, करक, कम्बू, काञ्चिका, नन्दन, दंतद, लगुल, नुततनु, दायवहा, पद्वातप, चरभैरव, कलपुलक, चरकीच, चरकीरय, चरपीरव, तदणीरत, रदसोदर, नदमेदन, लट्ठाकट्ठा, माधव-पद्मभवधमा, नन्दनन्दन, सखित, सामास, कारिका, जलज, कटक, नाना, मम।

कविकल्पलतामें निम्नोक्त शब्दोका अनुलोमभावमें
व्यंजन और अर्थ एक प्रकारका है और विलोमभावमें
अन्य प्रकारका है, यथा—

देवे, लेख, विभु, वद, यम; राधा, सुवामा, नन्दक,
मालिका, कालिनी, करका, दीनरक्षा, सदालिका, यम-
राज, नन्दनवन, नलकृपद, सहसानुत, नवतम, संमद,
मार, वत, युवा, सदा, यश, लता, नुत, लव; विमा ।

उक्त प्रथमें लिखित वक्ष्यमाण शब्दोका संस्कृत-
प्राकृत हिंदी समी भाषाभोंमें पुलिङ्गमें व्यवहार होता
है, यथा—

आहार, हार, विहार, सार; सम्मोग; रोग, असुर,
संहाय, अमर, धार, वारण; गण, मार; आकर; लोम;
उल्लेख, विलास, धायस, हर, जहङ्कार, हीर, अंकुर;
नोहार, हरण, राग, माल, तरल; गोविन्द, कन्द, उदर,
तरुण, तरुणि, दास, मोर; सन्दीह, मांस, खुर, तर, मल;
सङ्गर, आरम्भ, हास, कर, करि, किरि, कीर, कील,
कन्दील, धीर, मल, मलय; करोर, वामदेव; अंसि; धीर,
नर, नरक; करङ्क, दण्ड, चण्डाल, रङ्ग, दर, सरल, कलङ्क,
कम्बु, आकार, पङ्क, खड, बहुल, करङ्ग, वेद, सन्द;,
सङ्ग, पर, कूरव, चाक, सञ्चार; भङ्ग, अरि, हरि, परिणाद,
कण्ड, अहि, दाह, परिसर, रवि, हाहा, मञ्जु, मञ्जीर,
वाह; अचल, कुल, कुमार, कुम्भ, कुम्भोर, सार, विरल;
कवल, जार, कन्द, उदार, पार, जगदी, केशरि; वराह,
मुरारि, काल, काकोल, कुन्तल, चमूक, विराम, बाल,
धालोल, वाहु, रण, सङ्गर, चोल, मार, संसार, केरल,
समोरण; दङ्क, ताल, आसार, चामर, कुलीर, तुङ्ग, सूर,
कङ्काल, कन्दल, कराल, विकास, पूर, हेरम्भ, कम्बु, विधु,
सिंधु, युधि, अनुवन्ध, कुन्द; इन्दु, मन्दर, समीर, समूह,
गंध, मीम, भङ्ग; सङ्गर, निरोद, तमाल, गुञ्ज, हिन्ताल;
तोमर, महीरुह, विम्ब, पुञ्ज, हिण्डीर, पिण्ड, घर, संवर,
कौण; काण; संरंभ, सोम, परिरम्भ; विकास, वाण, वसंत,
वासव, वैसन्त, वास, वासवं; वासर, कासार, सरस,
अरण ।

निम्नोक्त शब्द पूर्वोक्त समी भाषाभोंमें स्त्रीलिङ्गमें
व्यवहार होते हैं, यथा—

हेला, गेला, कला, माला, रसाला, काहला, गवल,

कीला, लीला, घला, बाला, लीला, देला, बलसा, मसी
घरणी, धारणी, गोपी, रोहिणी, रमणी; मणी, वीणा,
वाणी, वसा, वेणी, रोड़ा, गङ्गा, तरङ्गिणी, कन्दला,
लहरी, नारी, रामी, मेरी, वसुन्धरा, काली, कराली,
चामुण्डा, चण्डा, रण्डा, तुला, महो ।

पूर्वोक्त प्रकारसे व्यवहृत स्त्रीलिङ्ग शब्द, यथा—

जाल; फल, पल, मूल, पारि, कीलाल, कुल, बल,
पलल, दुकूल, लिङ्ग, गम्भीर, कमल, सलिल, चोर, तुच्छ,
गजोव, नीर, हल, रजत, कुटीर, दाह, लाल, पटीर,
कारण, रोहण, चेल, कूदर, अम्बर, मंदिर, कुटल, मण्डल,
तामरस, कुण्डल; भङ्ग, पुर, आरंवेन्द्र, लोह, अङ्ग,
तद्भाग, करण, कूल, तोरण, मरण, तुङ्ग, भलम्, आगार,
भासुर ।

इन सब भाषाभोंमें व्यवहृत एकार्यवोधक क्रियापद;
यथा— माण, देहि, गच्छ, संहर, कुरु, चोरय, मारय,
अवगच्छ, अयलोकय, अपचिन्तय, खाद् ।

नोचे कुछ ओष्ठवर्णवर्जित पुलिङ्ग शब्द दिखलाये
गये हैं, यथा—

नोहार, हार, हरिण, अङ्क, हर, अट्टहास, कैलास,
कास, रद, नारद, सिंह, इन्द्र, शङ्ख, श्रेय, अहि, हंस;
घनसार, हलि, नाग, हिण्डीर, निर्भर, शरदुघन, चन्द्र-
कांत, शृङ्गार, सागर, तद्भाग, जलाशय; भग, हर्षाक्ष;
तक्षक, नख, क्षत; दीक्षित; भक्ष, नागच, काच, कच,
कीचक, चञ्चरोक; चाणक्य; चारण, गण, चण; काण,
शोण; संहार, सारस, रस, अरि, रसाल, साल, कङ्काल,
काल, कलि, शैल, खल, अनल, अर्क, किञ्चलक, कलक,
कर, शङ्कर, कीर, हीर, लङ्केश, केश, गर, केशव; देश,
लेश, आनन्द, नन्दन; घनञ्जय, खञ्जरीट, कीट, अग्नि,
कण्टक, कटाह, कटाक्ष, यक्ष, दक्ष; भङ्ग, यक्ष, जगक;
अञ्जलि, यन्त्र, यत्न, रतनाकर, अन्धक, धरति, घोर, शीर,
नासोर, नारायण, कृष्ण और ह्योकेश ।

ओष्ठवर्णरहित स्त्रीलिङ्ग शब्द—गङ्गा, गीता, सती;
सीता, सिद्धि, संध्या, गदा, गया, आशी, काशी, निशा,
नासा, कांति, दया, रसा, आद्रा, निद्रा; हरिद्रा, ह्रुक,
द्राक्षा, लाक्षा, धृति, छाया, जाया, कथा, कांता, प्राप्ती,
रति, गति, कंधरा, धारणा, धारा, तारा, कारं, जरा,

आजि, राजि, रजनी, गहिं, कोहिं, कन्या, तटी, नटी, नांटी, सारी, दरी, दासी, घटिका, बटिका जटा, कक्षा, रक्षा, शिवा, संघा, कालिंदी, फलिका, कला, कालो, करालो और दुना ।

भोष्टवर्णविभक्ति लीपलङ्ग—चरण, करण, चक्र-क्षत्र, नक्षत्र, तंक्र, रजत, शत्र, शरीर, क्षीर, नीर, शशि, तीर घन, कनक, निघान, ध्यान, संधान, दान, नलिन, नगर, गाल, छल, नेत्र, अस्थि, दाल, शालिङ्गन, स्थान, गिरा, चरित, जल, स्थल, स्थान, कलत्र, चित्र, कीलान, बाल, अन्नक, नाल, वैद्य, लिङ्ग, बङ्ग, लावण्य, हिरण्य, सोम्य, अन्न, अजिन, यान, अरुच, काञ्चन; आगन, कानन, हाटक, नाटक, नाट्य, तैल, रसातल, अर्धन, सदन, छान, निदान, दधि, चदन, अक्षर, लक्षण, लक्ष, शल, शाख, दल और दल । (कविकलाप्रता १म स्वक २य कुमुम)

२ यह स्वतंत्र ध्वज और सार्धक ध्वनि जो एक या अधिक वर्णों के संयोगसे कण्ठ और तालु आदिके द्वारा उदपन्न हो और जिससे सुननेवालेको किसी पदार्थ, कार्य या भाव आदिका बोध हो, लपन ।

३ अनुवोपनिपदके अनुसार 'भोऽम्' जो परमात्माका मुख्य नाम है । ४ किसी साधु या महात्माके बनावे हुए पद या गीत आदि ।

शब्दकर्मन् (सं० लि०) शब्द जिसका कर्म अर्थात् जो क्रियापदका कर्मपद शब्द अर्थात् किसी प्रकारकी ध्वनि । (पा १।१।५२) जैसे—'स्वरान् विकुचते' स्वरको विकृत करता है; यहाँ 'विकुचते' क्रियाका कर्म स्वर अर्थात् शब्द किसी प्रकारकी ध्वनि होनेसे 'विकुचते' पदको शब्दकर्म क्रियापद कहते हैं ।

शब्दकार (सं० लि०) शब्द करोतीति कृ-अण् । (न २२२) शब्दको कलहगोपति । (पा ३।२।२४) १ यह जो सार्धक शब्द प्रस्तुत वा संग्रह करे, शब्दकर्ता । २ ध्वनिकारक । शब्दकारिन् (सं० लि०) शब्द कृणिनि । शब्दकार, शब्द करनेवाला ।

शब्दक्रिय (सं० लि०) शब्दः क्रिया कर्म यस्य । शब्द कर्मक । शब्दकर्मन् हेतो ।

शब्दग (सं० लि०) शब्दं गच्छति प्राप्नोतीति शब्द-गाम-ट । १ श्रोत । शब्दो गच्छति येन करणेन । २ यायु ।

शब्दगति (सं० स्त्री०) १ शब्दकोत । २ गति । (लि०) ३ शब्दग देखो ।

शब्दगोचर (सं० पुं०) वेदांतकवेच, वेदांत द्वारा ज्ञातव्य । शब्दग्रह (सं० पुं०) शब्दं गृह्णात्यनेनेति ग्रह अण् । (मह वृत्तिरिचयमन्वच । पा ३।३।५८) १ कर्ण, कान । २ एक प्रकारका काव्यनिक वाण । (लि०) ३ शब्दको ग्रहण करनेवाला ।

शब्दग्राम (सं० पुं०) शब्दसमूह, स्वरग्राम । शब्दचातुर्त्य (सं० पुं०) दृष्टोंके प्रयोग करनेकी चतुरता, धोलचालकी प्रवीणता, चागिता ।

शब्दचालि (सं० स्त्री०) एक प्रकारका नृत्य ।

शब्दचिह्न (सं० पुं०) अनुप्रास नामक अलङ्कार । शब्दत्व (सं० स्त्री०) शब्दका भाव या धर्म, शब्दता । शब्दन (सं० लि०) शब्दं कर्त्तुं शोलमस्य शब्द-युच् । (चजनकशार्धकर्मकाद्-युच् । पा ३।२।५६) इति तच्छीले युच् । १ शब्दकर्त्ता । पर्याय—चरण । (स्त्री०)

शब्द माये ल्युट् । २ शब्दमात्र ।

शब्दनिर्णय (सं० पुं०) १ अभिधान । २ स्वरनिर्धारण ।

शब्दनृत्य (सं० पुं०) एक प्रकारका नृत्य ।

शब्दपति (सं० पुं०) नाम मात्रका नेता, वह नेता जिसके अनुयायी न हों । (शु ८।५२) ।

शब्दपात (सं० लि०) शब्दस्वय पातो यत्र शब्दस्वय पातो यत्र वा । १ जहाँ तक शब्दपात हो सके । २ शब्दकी तरह पतनशील अर्थात् शब्दकी गतिके समान गति जिसकी । (महि ५।१०० भरत)

शब्दपातिन् (सं० लि०) १ शब्दकी सहायतासे गमन-कारो । २ शब्दके साथ निपतित ।

शब्दप्रकाश (सं० पुं०) शब्दोत्थान, शब्दका उद्घोषन ।

शब्दप्रमेद (सं० पुं०) शब्दकी विभिन्नता ।

शब्दप्रमाण (सं० स्त्री०) १ मौखिकप्रमाण, वह प्रमाण जो किसीके केवल शब्दों या कथनके ही आधार पर हो, बात या विश्वासपात्र पुण्यकी बात जो प्रमाण स्वरूप मानो जाती है । विशेष विवरण प्रमाण शब्दमें देलो ।

शब्दप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) शब्दस्वय प्रवृत्तिरनुप्रास । वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और सूह्या चार प्रकारकी घाटानुप्रास ।

शब्दशास्त्र (सं० लि०) शब्द पृच्छति प्रच्छ-किप्
(विषयवि प्रच्छयाय तत्पुस्तकपुस्तकीणां दीपोऽव्ययस्यैव ।
या ३१११९०० वार्षिक) शब्दजिज्ञासु, जो शब्द पृच्छते हैं ।
शब्दप्रामाण्यवाद (सं० पु०) शब्दविचार सम्बन्धी
व्यायप्रगपमेद ।
शब्दप्राश (सं० पु०) शब्दके अर्थोंका अनुसंधान, शब्दार्थ-
की जिज्ञासा ।

शब्दविरोध (सं० पु०) वह विरोध जो वास्तविक या
भावमें न हो बल्कि केवल शब्दोंमें जान पड़ता है ।
शब्दविशेषण (सं० स्त्री०) शब्द एव विशेषणम् । विशेषण
शब्द ।
शब्दबोध (सं० पु०) शाब्दिक साक्षो द्वारा प्राप्त ज्ञान,
वह ज्ञान जो जबानी गवाहीसे प्राप्त हो ।

शब्दग्रहण (सं० स्त्री०) शब्द एव ग्रहण । १ शब्दात्मक
ग्रहण, ओंकारादि । वेदादि शास्त्रमें नादविन्दुसम्भलित
ओंकार आदि शब्दग्रहण कह कर वर्णित है ।

मैत्रेयोपनिषद्में शब्दग्रहण और परब्रह्म भेदसे ग्रहणके
दो भेद करिपत हुए हैं । शब्दग्रहणसे उत्तीर्ण होने अर्थात्
ओंकारादि शब्दसे पदार्थज्ञान उत्पन्न होने पर परब्रह्ममें
अधिष्ठित हो जाता है ।

“इं ब्रह्मणो वेदितव्ये शब्दग्रहण परब्रह्म यत् ।

शब्दग्रहापि निष्पातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥”

(मैत्रेय उप० ६।२२)

२ वेद, श्रुति । ३ स्फोटोदात्मक शब्द, उच्चारित धर्मा
या जो कोई शब्द ।

शब्दग्रहणमप (सं० लि०) शब्दग्रहणके स्वरूप ।
शब्दमिदं (सं० स्त्री०) शब्दस्य मित् भेदः । शब्दकी
गन्धधातु व्याख्या अर्थात् प्रकृत व्याख्या न करके छलपूर्वक
शब्दका चैथर्थ सम्पादन करना । जैसे, 'दशावतान्
भोजयैत्' यहाँ 'दश पक्ष अवतारः निम्नसंख्याः येषां तान्'
दश ही अवतार अर्थात् न्यून या निम्न संख्या जिसको
तिसको भोजन करावगो, दशसं कम भोजन नहीं करा
यगो, ऐसा असदर्थ न कर, 'दशम्योऽवतान्' दशसे भी कम
ऐसा असदर्थ व्यपहार करनेसे शब्दका अन्वया व्यपहार
किया जाता है ।

शब्दभूत् (सं० लि०) शब्द विभर्त्सति शब्द-भू-किप् ।
शब्द माल पालन, धर्मार्थ सिर्षा शब्द धारण ।

शब्दभेद (सं० पु०) शब्दकी विभिन्नता ।
शब्दभेदिन् (सं० लि०) शब्दमनुसृत्य भेत्तुः शीघ्रमस्य
मिदु-णिनि । १ शब्दवेधिन देखो । (स्त्री०) २ मलद्वार,
शुक्ल । (पु०) ३ वाणविशेष । रामायणमें लिखा है,
कि दशरथने शब्दभेदी-वाण द्वारा अन्धकमुनिके पुत्र
सिन्धुकी मारा था ।

शब्दमय (सं० लि०) शब्दयुक्त, शब्दविशिष्ट ।
शब्दमहेश्वर (सं० पु०) शिव । कहते हैं, कि पाणिनिके
व्याकरणका आदेश शिवने ही किया था, इसीसे उनका
यह नाम पड़ा ।

शब्दमात्र (सं० स्त्री०) केवल शब्द ।
शब्दमाल (सं० पु०) रत्नप्रवंश, पोला वांस ।
शब्दमाला (सं० स्त्री०) १ शब्दसमूह । २ रामेश्वरशर्म
विरचित अभिधान ।

शब्दयोनि (सं० स्त्री०) शब्दस्य योनिमुत्पत्तिस्थानम् ।
१ शब्दकी उत्पत्ति । २ वह शब्द जो अपने मूल अथवा
प्रारम्भिक रूपमें हो । ३ मूल, जड़ ।

शब्दरहित (सं० लि०) निःशब्द, शब्दशून्य ।
शब्दराशिमहेश्वर (सं० पु०) शिव ।
शब्दरोचन (सं० स्त्री०) तुषणभेद, एक प्रकारकी घास ।
शब्दवज्रा (सं० स्त्री०) एक देवीका नाम ।

(कालचक्र ३१५४)

शब्दवत् (सं० लि०) शब्दो विद्यतेऽस्य शब्द-मतुप् मस्य
वः । २ शब्दश ली, शब्दविशिष्ट, जिसमें शब्द हो ।
(व्यञ्ज०) शब्देन तुल्यः । शब्दवति (या ३११११५) २
शब्दकी तरह, शब्दके समान ।

शब्दवारिधि (सं० पु०) शब्दोंका समूह ।
शब्दविधा (सं० स्त्री०) शब्दविषयक शास्त्रा व्याकरण
आदि ।

शब्दविज्ञान—जिस वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा शब्द-
विषयक तत्त्वनिश्चय जाना जाता है, उसे शब्दविज्ञान
कहते हैं । ध्रुवणेन्द्रिय द्वारा हमें जो वस्तुविषयमें ज्ञान
लाभ होता है, यही शब्द है । शब्दसे ध्वनि मात्रका ही
बोध होता है, व्यक्त और अव्यक्तके भेदसे-यह दो प्रकारका
है । जिन सब शब्दोंका अर्थ है और जो पूर्ण द्वारा प्रकाश
किया जा सकता है, उसका नाम है, व्यक्त और जिसका

अर्थ नहीं है अथवा वर्णविशेष द्वारा जो प्रकामित नहीं होता ऐसी ध्वनिको ही मुख्य कहते हैं। मनुष्यके कण्ठ, तालु आदिके अनिघातसे जो नाद या स्वर उत्पन्न होता है, यह आद्यतः वाच्यकस्वर है, किन्तु शैशवावस्थामें संगतागादिके मुक्तसे जो शब्द सुना जाता है, उसको अस्फुट या अस्पष्ट कहते हैं। फिर मिंग्न वस्तुके परस्पर आघातसे जो शब्द उत्पन्न होता है, यह अनाहत या अस्पष्ट ध्वनि है।

यह ध्वनित और अव्यक्त ध्वनि फिर मधुर और कठोरके भेदसे दो प्रकारकी है। निर्दिष्ट समयके मध्य नियमित अनुरणन परम्परा द्वारा मनुष्य कण्ठसे जो ध्रुतिमधुर स्निग्ध मञ्जुल ध्वनि उच्चारित या अनुकृत होती है; उसका नाम मधुर है और अनियमित कालके मध्य अनियमित सख्यक अनुरणन परम्परा द्वारा माधुर्यागुणियोंमें जो कर्कश शब्द निकाला जाता है; यह ध्रुतिसुख उत्पादन न करनेके कारण श्रतिकठोर कहलाता है। सङ्गीतमें ही एकमात्र ऐसी शब्दविषयकी होते देखा जाता है।

जड़ द्रव्योंके अणुओंके विकम्पनके कारण ही शब्द उत्पन्न होता है। शिखर आदि यन्त्रोंकी तन्तुमें आघात करनेसे तार आन्दोलित होता है और पीछे उसका वेग कमशः घोर होता जाता है। तारके कम्पनकी वृद्धि और उसके क्रमिक हाससे शब्दकी भी उन्नति या अवनतिका क्रम अनुभूत होता है। शब्दायमान द्रव्योंके अणु सभी स्थलोंमें आन्दोलित नहीं होते। एक घातु निर्मित घालोके ऊपर कुछ बालू रख कर उसके साथ बालुकणा भी कम्पित होती देखी जाती है। घालीके अणु आन्दोलित नहीं होनेसे बालुकाकणा कभी भी प्रकम्पित नहीं हो सकती। शब्दायमान द्रव्यके अणुओंका आन्दोलन ही शब्दज्ञानका एकमात्र कारण है ऐसा नहीं कह सकते। शब्दायमान द्रव्यकी सन्निहित वायुराशिमें अणुओंकी आन्दोलन सञ्चारित एक तरंग उपस्थित होती है। यह तरङ्ग भा कर जब कर्णपरद पर आघात करती, तभी शब्दज्ञान होता है।

शब्दकर द्रव्यके अणुओंके कम्पनसे पहले उसमें संसृष्ट वायुकणा प्रकम्पित होती है; उस विकम्पनसे तन्-

संलग्न वायुकणा घोर घोर कम्पित हो कर; जब कर्ण-कूहरमें भा पटद पर आघात होता है, तब शब्दका ज्ञान होता है। शब्दायमान द्रव्य और कर्णपरदकी मध्यवर्ती वायुमें एक शब्द तरङ्ग वायुकणाओंकी स्थानच्युत न करके जो आन्दोलित करती जाती है, यह सद्ज ही अनुमेय है। वायु द्वारा शब्द परिवारित होता है, यह वैज्ञानिक परीक्षासे सिद्ध हुआ है। वायु निकालनेवाले मशकको सहायतासे किन्सी गोल कांचके बरतनकी भीतरी वायुनिकालते समय यदि उसमें स्थित एक घण्टा बजाया जाय, तो वायुके निष्काशनके अनुसार वह शब्द घीरे घीरे मन्द होता जाता है और उस बरतनकी वायु विलकुल निकाल देने पर फिर शब्द सुनाई नहीं देता। वायु द्वारा जो शब्द चालित होता है उसके और भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। जलमें गोता मारनेसे शब्द सुनाई देता है। वायुको अपेक्षा काष्ठमें शब्द परिवर्चलकता गुण अधिक है। एक बड़े चौकीर काष्ठके एक प्राक्तमें उंगलीका आघात करनेसे वह उसके दूसरे प्राक्तमें सुनाई देता है। अनेक समय बालक ताम्रकूटसेवनकी फलिकोके ऊपर एक पतला चमड़ा मढ़ कर उसके बीचसे एक पतली सनकी रस्सी बहुत दूर ले जा कर दूसरा प्रांत बांध देते और आपसमें बातचीत करते हैं। इससे यद्यपि स्पष्ट भावमें शब्द सुनाई नहीं देता तो फिर भी कुछ अस्पष्ट शब्द कर्णकूहरमें प्रविष्ट होते हैं। वर्तमान Telephone और Telegraph यन्त्रकी सहायतासे इसी प्रकार तयिके तार बांध कर बातचीत चलती है। पृथिवी द्वारा भी शब्द परिवर्चलित होता है। रातकी पृथ्वीमें कान सटा कर ध्यानपूर्वक सुननेसे श्रृष्टते हुए घोड़ेके टापका शब्द सुनाई देता है। आज कल कल कत्ता म्युनिसलिटीके अधिकारी रातकी गृहसंयमण कलका जल फजूल खर्च करते हैं या नहीं अथवा जलका लौहमल मोरना लग कर खराब तो नहीं हो गया है, इसकी परीक्षा करनेके लिये नलमें एक लौहदण्ड लगा कर उसके प्राक्त भागकी कानमें सटा जल निकलनेके शब्द का लक्ष्य करते हैं।

परीक्षा द्वारा जाना गया है कि शब्द वायुतरङ्ग द्वारा प्रति सेकण्डमें १११८ फुट दौड़ता है। दो वा

लौन' से कण्डके पोछे वह शब्द उससे दुनी-या तिगुनी दूरीके फासले पर सुनाई देता है । यद्यो कारण है, कि दूरमें किसी वस्तुके शब्द होनेसे वह सहजमें सुनते हैं । वायुकी अपेक्षा जलका वेग अधिक है । जलमें शब्दतरङ्ग प्रति सेकण्डमें ४१०८ फुट चलती है । इस कारण बशीरतकी तोप-या बन्दका शब्द बशीरतक चला जाता है । लीड द्वारा शब्द प्रति सेकण्डमें १६८०० फुट, ताँबे द्वारा ११६०० फुट और किसी किसी काष्ठ द्वारा १५००० फुट तक होइता है ।

शब्दायमान द्रव्यका अणु जितना ही आन्दोलित होता है, शब्द भी उतना ही अधिक होता है । जहाँ आन्दोलन कालमें अणु अल्प उन्नत और अपनत होता है, वहाँ शब्दकी भी स्वल्पता होती है । फिर शब्द वह वायुका घनत्व जहाँ जितना अधिक होता है, वहाँ शब्द भी अधिकतर गमोर होता है । गर्वातादिकी ऊपरी वायु नीचेकी वायुसे बहुत घटती है, इस कारण अनेक समय गिरिसाकुटादिमें जब तक जोरसे नहीं कहा जायेगा, तब तक दूरीके आदमी उसे नहीं सुन सकते । यदि शब्दायमान द्रव्यकी ओरसे वायु धोताकी ओर बहे, तो शब्द जैसा गमोरतर सुनाई देता है, विपरीत ओर बहनेसे वैसा सुनाई नहीं देता । दुर्गकी तोपध्वनि उसका प्रमाण है । प्रीथकालमें दक्षिणी वायु उस शब्दको उत्तरकी ओर तथा शीतकी उत्तरी वायु उसे दक्षिणकी ओर ले जाती है । यह शब्द फिर दूरत्वके

परानुसार क्रमशः मन्दीभूत होता है । १०० हाथ दूरमें घंटा बजानेसे जैसा शब्द सुनाई देता है, ५० हाथ दूरमें यह यदि उसी तरह जोरसे बजाया जाय, तो पूर्वोक्त ध्वनिसे चार गुणा शब्द सुनाई देगा । फिर ५० हाथकी दूरी पर घंटा बजानेसे जो शब्द सुना जाता है, १०० हाथकी दूरी पर यह शब्द सुननेमें उसी तरह जैसे चार घण्टे बजाने होंगे । इससे जाना जाता है, कि दूरी दुनी होनेसे शब्दका परिमाण खोगुनी कम होती है । किसी उच्च प्राचीर, चरकी, दोवाल, अट्टालिका या पर्वतादिसे शब्द उकरा कर जब लीडता है, तब प्रतिध्वनि होती है । कोई कोई शब्द ४५ फुट दूरमें अद्भुत पा कर लीडते समय प्रतिध्वनित होता है । मनुष्यका शब्द

यदि ११२ फुट दूरमें प्रतिबन्धक या कर-प्रतिफलित हो, तो स्पष्ट प्रतिध्वनि सुननेमें आती है । कभी कभी एक शब्द ही समांतराल पदार्थसे बार-बार प्रतिफलित होकर पुनः पुनः प्रतिध्वनि उत्पन्न करता है । शब्दविरोध (सं० पु०) १. शब्दके कल्प । २. विरुद्ध शब्दका व्यवहार ।

शब्दविशेष (सं० पु०) विशिष्ट-शब्द । बहुवचन विभिन शब्द जाना जाता है । साध्यकारका कहना है, कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तथा षड्ज, नवप्रम, गांधार मधुप्रम, पञ्चम, धैवत और निषाद स्वरप्राप्त शब्दविशेष कहा गया है ।

शब्दवृत्ति (सं० स्त्री०) शब्दका कार्य । (भल्लहारशास्त्र) शब्दवेष (सं० पु०) शब्द सुन कर उसी शब्दके अनुसार शब्दकारो अद्रव्य वस्तुको विद्व करना । शब्दवेषित्व (सं० स्त्री०) श्रुत शब्दानुसरण द्वारा बंधनका भाव या कार्य ।

शब्दवेषित् (सं० पु०) शब्दमनुसृत्य वैद् शीलमस्य विषयिनि । १. यह मनुष्य जो भाषासे बिना हुये हुए केवल शब्दसे दिशाका ज्ञान करके किसी व्यक्ति या वस्तुको बाणसे मारता हो । हमारे यहां प्राचीन कालमें ऐसे घनुर्घर हुआ करते थे जो आंख पर पट्टी बांध कर किसी व्यक्तिका शब्द सुन कर या लक्ष्य पर की हुई टंकार सुन कर ही यह समझ लेते थे कि यह व्यक्ति अथवा वस्तु अमुक ओर है और तब डोक उसी पर बाण चलाते थे ।

१. अर्जुन, २. धनञ्जय । ३. बाणविशेष । ४. दशरथ । शब्दवेष्य (सं० स्त्री०) शब्दानुसरणपूर्वक वेषके योग्य । सिपा शब्द अनुसरण कर जिस विद्व किया जाय । शब्दशासन (सं० स्त्री०) व्याकरणके नियम आदि । शब्दशक्ति (सं० स्त्री०) शब्दस्य शक्तिः सामर्थ्यं अर्थात् शब्दाद्रयमपेक्षेयव्या । रतोभ्वरेच्छा शक्तिः । शब्दकी यह शक्ति जिसके द्वारा उसका कोई विशेष भाव प्रदर्शित होता है । व्याकरण, अभिधान, उपमान, आतवाक्य और लौकिक व्यवहारसे शब्दकी इस शक्तिकी उपलब्धि होती है ।

व्याकरण ।

व्याकरणिक सुबन्त, तद्धन्त, ह्रस्वन्त, समास

और तद्विनांत शब्दोंकी शक्ति या बर्ण निम्नलिखित प्रकार से जाना जाता है। क्रमशः उदाहरण द्वारा दिखलाया जाता है। यथा—'गामानय' इस शब्दके उच्चारित होते ही प्रथमतः (गो—अम् + आ—नी—हि) गो अर्थात् गल-कम्बलादि विशिष्ट जंतुविशेषकी अनुभूति हो कर पीछे 'गो' और 'अम्' इस प्रकृति प्रत्ययके योगसे उत्पन्न 'गाम' शब्द और उसके अर्थात् 'गलकम्बलादिविशिष्ट किंसो जंतुका' बोध होगा। 'आ' = चैवरोत्प, नी = ले जाना, लाट हि = अनुहा, प्रकाश करना, इन तीनोंके (उपसर्ग, मृष्टि और प्रत्यय) योगसे उत्पन्न 'आनय' शब्द द्वारा ले जानेका विपरोत भाव अर्थात् लाना सम्यं बोध अज्ञा हो जाती है, ऐसा अर्थात् समझा जायेगा। अधि-कृतं मध्यम पुद्ययोय प्रत्यय 'हि' व्यवहृत होनेके कारण 'एव' नुम लाओ, ऐसा ही अर्थ करना चाहिये। 'अमी स्पष्ट देखा जाता है; कि 'गामानय' ऐसा शब्द उच्चारित होनेसे उक्त प्रकारसे उसके अंतर्भुक्त पृथक् पृथक् वर्ण या शब्दके प्रत्येकगत अर्थात्के साथ स्थूल अर्थात् 'एवं गामानय' नुम गलकम्बलादि विशिष्ट कोर् जंतु अर्थात् गायको लाओ, ऐसा जाना जायेगा। व्याकरणानुसंग स्थूलदर्शी व्यक्ति या अंध-तत्पूर्वशब्द बालकके सम्बन्धमें उक्त 'गामानय' शब्दका और तरहसे शब्दबोध हो सकता है, यथा—स्थूलदर्शी व्यक्ति किसी अभिन्नके मुखसे तथा बालक किसी घोषावृद्धके मुखसे 'गामानय' शब्द सुननेके बाद यदि उसी कथनानुसार किसी दूसरे व्यक्तिके एक गौ लाते देखे और इस प्रकार बार बार देखे, तो आगे चल कर यदि कोई उनके ऊपर ही लक्ष्य कर 'गामानय' ऐसी उक्ति करे, तो वे भी उस समय एक गौ ले आयेगे। इसमें संशय नहीं; क्योंकि यह भी एक ईश्वरचक्षाशक्ति है। उद्धृत—'पाचक' (पच णक्) शब्द द्वारा पहले पच = पाक करना या पाकक्रिया, पीछे उस धातुके उत्तर कर्तृ पाचयमें णक प्रत्यय होनेसे उसका (पाकक्रिया) आर्थय अर्थात् कर्ता समझा जाता है; अतएव धातु और प्रत्ययके योगसे उत्पन्न 'पाचक' शब्दमें पाकक्रियायान् पुद्ययका बोध होगा। इस प्रकार कर्म प्रभृति किसी वाच्यमें प्रत्यय करनेसे भी तत्प्रत्ययान्तर तदाधित कर्त्तृ कर निर्दिष्ट होता है।

समास—'नीलघटा' (नीलः नीलाभिः नीलगुण-विशिष्ट इति घटः) नीलघट कहनेसे उस घट या घटोप समी परमाणुओंको ही नीलगुणयुक्त समझना होगा; क्योंकि, शुक्लादिगुण, गुण और गुणो इन दोनोंका बोध कराता है। विशेषतः यहां नील और घट ये दो विशेष्य और विशेषण कर्मधारय समास हुए हैं, ऐसा शब्दबोध होता है। फलतः जहां कर्मधारय समास होगा वहां विशेष्य और विशेषण पदकी अभिन्नता या एकाधिकरणवृत्तिय समझा जायेगा। फिर जहां इन दोनोंका एकाधिकरणवृत्तिय या अभिन्नता न समझी जायेगी, वहां समास न होगा; जैसे 'नीलेन घटा' नील-वर्ण द्वारा चिह्नित घट, यहां घट नीलवर्ण द्वारा चिह्नित है, केवल यही समझा जायेगा अर्थात् इस घटके पदि-भागका छोड़ उसके अन्वयतर भागमें नीलवर्णका कुछ भी संशय नहीं है, ऐसा जानना होगा। इस प्रकार प्रत्येक समासके सम्बन्धमें ही व्यवस्था जान कर उस उस समासागत पदका शब्दप्रद करना होगा। तद्वि—'पञ्चालः' (पञ्चालानां राजा भवत्यं या पञ्चाल-भण्) पञ्चाल ऐसा शब्द उच्चारित होनेसे पहले पञ्चालदेश या यहांके अधियासीका, पीछे भण् प्रत्ययको लक्षा कर उनकी राज-सन्तानका बोध होता है।

अभिधान।

अभिधानका अर्थात् कथन या शब्दकोप है, यदि कोई महाकवि किसी स्थानमें व्याकरणविद्यया कोई प्रयोग कर गये हों या कोई कोपकार अपने संग्रहमें ऐसा शब्द उद्धृत करते हों, तो उससे भी शब्दप्रद होता है, यथा—'असु' धातुके उत्तर लिट् विभक्तिका णल् प्रत्यय करनेसे व्याकरणमतानुसार असु धातुकी जगह 'भू' आयेगा हो कर 'वभूव' ऐसा पद बनता है तथा यह सर्वा घोषाकरण सम्मत है, किंतु महाकवि कालिदास "तेनास लोकाः पितृमान् विनेता तेनैव शोकापनुद्देन पुत्रो" रघुके इस श्लोकमें असु + अ (णल्) = आसु; ऐसा प्रयोग कर गये हैं, इस कारण यह व्याकरणविद्यया होने पर भी अभिधान अर्थात् महाकविका कथन होनेसे उससे भी शब्दप्रद होगा। क्योंकि कहा है, कि—अभिधान ही छन्द, तद्वि, समास आदिका प्रकृत व्यवस्थापक है;

लक्षण अर्थात् व्याकरणादिका अनुशासन केवल अन्-
भिन्नो के ज्ञानका प्रथम पददर्शक है ।

उपमान ।

उपमान द्वारा भी शाब्दबोध होता है, जैसे, जिस
व्यक्तिने किसी दिन 'गवय' नामक जन्तुको नहीं देखा
उसे यदि कहा जाय, कि 'गौरिव गवयः' गवय नामक जो
जन्तु है, वह ठीक गायकी तरह है, तो वह बहुदृष्टगवयः
व्यक्ति इस उक्ति द्वारा निश्चय ही गवय समझ सकेगा ।
उस व्यक्तिको गौ सम्बन्धोय ज्ञान रहना आवश्यक है ।

आप्तवाक्य ।

आप्त अर्थात् जो जगत्के सभी यदार्थोंके प्रकृत तत्त्व-
से अवगत है, उनकी कहनेसे भी शब्दकी यदार्थ शक्ति
निरूपित नहीं हो सकती । जैसे यदि कोई भ्रमभ्रमाद-
रहित मनुष्य कहे "विषयस्य विषयमीषधम्" विष प्रयोग करने-
से विषाक्त व्यक्ति आरोग्यलाल कर सकता है, तो
यद्यपि कमसे कम देखा जाता है, कि एक विष्य देशमें
प्रविष्ट हो कर उसको विषयक्रियाके फलसे रोगी मर जाता
है । ऐसी अवस्थामें पुनः उस पर विषप्रयुक्त होनेसे
वह किस प्रकार बच सकेगा ? तो भी उक्त असंज्ञत
व्यक्तिको वात पर रतना विश्वास है, कि वह इस अस्-
म्भवेनोय विषयके ही सम्पूर्ण सम्भवनोय समझने
लगेगा ।

लौकिक शब्द ।

लौकिक अर्थात् जो किसी वेदपुराणादिमें व्यवहृत
नहीं होता, केवल देशीय लोग अपने अपने कार्य-
सौकर्यादि अपने अपने देशमें व्यवहारके लिये कुछ शब्दोंकी
सृष्टि कर गये हैं और करते हैं, उससे भी शब्दार्थकी
अवगति हो सकती है ।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि वाच्य, लक्ष्य और
व्यवहारके भेदसे शब्दकी शक्ति तीन प्रकारकी है, उनमें-
से 'सामान्य' भादि हृद्यार्थ द्वारा वाच्यार्थका उल्लेख
क्रिया गया है । लक्ष्य अर्थात् लक्षण द्वारा तथा व्यङ्ग्य
अर्थात् व्यञ्जना द्वारा शक्तिका निरूपण होता है ।

किसी जगह यदि शब्दका प्रकृत अर्थ जाननेमें बाध
अर्थात् विघ्न या असंज्ञत मालूम हो, तो प्रसिद्धि या
प्रयोजन हेतुक जिसके द्वारा शब्दके अर्थान्तरकी प्रतीति

होती है वह अर्पिता है अर्थात् स्वामाधिकसे इतर या
ईश्वरानुद्भावित शक्ति हो शब्दकी लक्षणा शक्ति है ;
जैसे, 'कलिङ्ग-साहसिक' कलिङ्ग साहसी यह कहनेसे
कलिङ्ग शब्दका प्रकृत अर्थ यदि कलिङ्गदेश माना जाय,
तो उससे किसी प्रकारका अर्थबोध करना एकदम कठिन
हो जाता है ; क्योंकि चेतनधर्म साहसिकता अचेतन
देशादिमें कदापि सम्भव नहीं, अतएव प्रसिद्धि हेतुक
लक्षणा शक्ति द्वारा कलिङ्ग शब्दमें उस देशके पुष्यादिकी
प्रतीति हो 'कलिङ्गवासी साहसी' होते हैं, ऐसा अर्थ करना
चाहिये । फिर 'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' घोष गङ्गामें
बास करता है, इत्यादि स्थानोंमें गङ्गारूप जलमय स्थान-
में बास करना असंभव होनेसे शैत्य-संस्व या पावनत्व-
रूप प्रयोजन हेतुक लक्षणा शक्ति द्वारा गङ्गा शब्दसे उसके
तटका बोध हो कर 'घोष शैत्यसंस्व या पावनके लिये
गङ्गातट पर बास करता है' ऐसा अर्थ समझा जायगा ।

उक्त लक्षणा शक्तिके जहत्त्ववार्था, अजहत्त्ववार्था,
उपादानलक्षणा, लक्षणलक्षणा इत्यादि भेद, तदुभेद रूप
परम्पराले असो प्रकारके भेद कल्पित हुए हैं ।

शब्दकी जिस शक्ति द्वारा उसके वाच्यार्थका बोध
करा कर पीछे उससे यदि कोई दूसरा समझा जाय, तो
उसे व्यञ्जना कहते हैं । यह अविधामूलक और लक्षणा-
मूलकके भेदसे प्रथमतः दो भागोंमें विभक्त है ।

अनेकार्थ शब्द निम्नोक्त संयोगादि कारण द्वारा एक
अर्थमें नियन्त्रित अर्थात् विधियुक्त होने पर भी यदि वह
उसके श्रान्यान्य अर्थोंका बोध कराये, तो उसे अविधामूला
व्यञ्जना कहते हैं । अर्थात् जहाँ संयोगादि द्वारा नियन्त्रित
नहीं होनेसे वहाँ शब्दके सभी अर्थ समझ जायेंगे ।

संयोग या सङ्ग—“सशङ्खचक्रो हरिः” यहाँ शङ्ख और
चक्रके साथ वर्तमान हरि कहनेमें (हरिमें शङ्ख और
चक्रता संयोग रहनेसे) हरि शब्दके अन्य किसी अर्थकी
उपलब्धि न हो कर उससे केवल विष्णुका ही बोध होता
है ।

विप्रयोग या विधोग—“अशङ्खचक्रो हरिः” यहाँ
शङ्खचक्र परिवर्तक होने पर भी हरि शब्दसे विष्णुको
छाड़ और किसीका अर्थ न होगा ।

साहचर्य—“मीमांसुनी” अर्जुन शब्दसे कात्त-

योगादिका बोध होने पर भी यहां भोग शब्दकी साहचर्य-
प्रयुक्त व्यञ्जनाशक्ति द्वारा पार्थका दो बोध होगा ।

विरोधिता—“कर्णाञ्जनां” कर्ण शब्दसे श्रोत्रादि
सम्भे जाने पर भी अञ्जुनके साथ वीरिताप्रयुक्त
व्यञ्जनाशक्ति द्वारा कुन्तीवृत्त ही सम्भ्रा जायेगा ।

प्रयोजन—“रघाणु पन्दे” भववन्धनसे मुक्तिके
लिये शिवकी वन्दना करता है । यहां पर भववन्धनसे
मुक्तिताम प्रयोजन होनेके कारण व्यञ्जनाशक्ति द्वारा
रघाणु शब्दसे शाप्तापलयरहित शुक-तक्षकाण्डका बोध
न हो कर शिवका ही बोध होगा । क्योंकि सामान्य
तक्षकाण्डको मुक्तिदानकी क्षमता नहीं है ।

प्रकरण या प्रस्ताव—प्रस्तावानुसार भी यहाँ शब्द
पकार्यमें प्रयुक्त होता है । जैसे, नाटकादिमें राजा
मादिके प्रति कहा जाता है, “सर्वं जानाति देव” भाप
सब कुछ जानते हैं । यहाँ प्रस्तावानुसार देव शब्दसे
राजाको छोड़ अन्य किसी देवताका बोध न होगा ।

विह—“कुपितो मकरध्वजः” कोपविह्वलयुक्त मकर-
ध्वज कहनेसे, मकरध्वज शब्दसे कामदेवका ही बोध
होगा, क्योंकि चेतनघर्म कोप अचेतन समुद्रार्थक
मकरध्वजमें सम्मय नहीं है ।

सन्निधि—शब्दात्तरके सान्निध्यप्रयुक्त अनेकार्थ
शब्दसे पकार्यका बोध होता है, जैसे—“देवा पुरारिः”
पुरारि शिव है, यहाँ पुरारि शब्दके सान्निध्यप्रयुक्त देव
शब्दसे शिवको छोड़ अन्य किसी देवताका बोध न
होगा ; क्योंकि शिव ही पुरासुरके शत्रु और हन्ता-
रक है ।

सामर्थ्य—“मधुना मत्तः पिकाः” पसंत कर्तृक
अर्थात् पसन्तकालमें कोकिल मत्त हो जाता है; कोकिल-
को मत्त करनेकी क्षमता एक पसन्तकालमें हो है इस
कारण यहाँ मधु शब्दसे मद्यादिका बोध न हो कर केवल
पसन्तकालका ही बोध होता है ।

भौचिरय—“यानु वो द्यितामुग्रम्” अपनी द्यिता-
की ओर गमन करे; यहाँ गमन करनेमें द्यिताओंके
मुक्तके ऊपर गमन करना उचित या सम्भव नहीं होता ।
सुतरां मुव शब्दके अग्निमुत्पत्ति प्रदण करणा ही कर्त्तव्य
है ।

देश—देश अर्थात् स्थानके निर्दिष्टाप्रयुक्त शब्दको
पकार्यताकी उपलब्धि होती है ; जैसे, “यिभाति गणे
चन्द्रः” आकाशमें चन्द्रमा चमकते हैं यहाँ आकाश
चन्द्रका निर्दिष्ट स्थान होनेके कारण चन्द्र शब्दसे कर्तृ-
राशि न सम्भ्रा जायेगा ।

काल—कालानुसार भी अनेकार्थ शब्दके सिवा
पकार्यका बोध होता है, जैसे—“निशि चित्रमानुः” रात्रिमें
यहि घघकती है; चित्रमानु शब्दसे सूर्यका बोध होने पर
भी रात्रिकालमें उनका दर्शन असम्भव है, इसलिये यहाँ
यहिका ही बोध होता है ।

व्यक्ति वा पुंस्त्वयादि—कोई कोई अनेकार्थ शब्द
पृथक् पृथक् लिङ्गमें पृथक् पृथक् अर्थ प्रकाश करता है ;
जैसे, रघाङ्ग शब्द नपुंसक लिङ्गमें चक्रको ही व्यक्त करता
है ; चक्रवाकादि अर्थमें उसका व्यवहार नहीं होता ।

स्वर—उच्चारणके तारतम्यानुसार भी भिन्न भिन्न
रूपमें शब्दार्थको प्रतीति होती है । घेर्में लिखा है, “इन्द्र-
शत्रु गीचक्षुः” यहाँ इन्द्रशत्रु शब्दका बहुधादि समा-
सात्तरकी तरह उच्चारण करनेसे इन्द्र विघ्नित हो ऐसे
अर्थ प्रकट करता है; किन्तु यही शब्द फिर तत्पुष्प
समासांतकी तरह उच्चारित होनेसे उनका शत्रु पुत्र
विघ्नित हो, इस अर्थकी अभिव्यक्ति होती है । इसके
सिवा सचराचर भाषामें भी काकु अर्थात् स्वरविह्वलि
द्वारा सहज शब्दका अर्थवलक्षण्य होता है, जैसे कोई
युवती अपनी सखीसे कहती है, कि “सखि ! प्रियतम
पति पराधीनताप्रयुक्त कार्यवशता दूर देश गये है,
किन्तु इस अलिकुलसुखित कोकिलकुञ्जित सुरभि समय-
में क्या वे आयेगे नहीं ?” यहाँ वे आयेगे नहीं” यह
सहज उक्ति है, पूछनेके यद्दाने उच्चारित होनेके कारण
इससे उनका माना नहीं होगा, ऐसे अर्थको अभि-
व्यक्ति न हो कर उसके विपरीत अर्थका विकाश होता
है, कि यद्यपि वे कर्त्तव्यानुसार विदेश गये हैं, फिर भी
पया इस पसन्त समयमें वे एक बार नहीं आयेगे ।
अर्थात् अवश्य आयेगे ।

आकाङ्क्षा, योग्यता और भासक्ति आदि द्वारा भी
वाच्य या शब्दोंका शक्तिप्रद होता है ।

वाच्य और महावाच्य शब्द देखो ।

शब्दशास्त्र (सं० क्ली०) यह शब्द जिसमें भाषाके भिन्न भिन्न अङ्गों और स्वरूपोंका विवेचन तथा निरूपण किया जाय, व्याकरण ।

शब्दशेष (सं० लि०) शब्दका शेषांश ।

शब्दश्लेष (सं० पु०) अलङ्कारविशेष । इसमें एक शब्द द्वारा शेषोक्ति प्रकाश की जाती है । अङ्गरेजीमें इसे Punning कहते हैं ।

शब्दसंज्ञा (सं० स्त्री०) शब्दका एक पर्यायक नाम ।
(पा १।१ ६८)

शब्दसम्भव (सं० पु०) शब्दानां सम्भवः उत्पत्तिर्नास्मात् । यामु जो शब्दकी उत्पत्तिका कारण है अथवा जिससे शब्दका अस्तित्व सम्भव होता है ।

शब्दसाधन (सं० पु०) व्याकरणका वह अङ्ग जिसमें शब्दों की व्युत्पत्ति, भेद और रूपान्तर आदिका विवेचन होता है । शब्दों के संज्ञा, क्रिया, विशेषण, क्रिया-विशेषण, सर्वनाम आदि जो भेद होते हैं, वे भी इसीके अन्तर्गत हैं ।

शब्दसाद (सं० लि०) १ शब्दवैधि । २ शब्दवाधा-निवारक । (भाव ३२२५)

शब्दसिद्धि (सं० स्त्री०) १ शब्दका पूर्ण व्यवहार । २ काव्यरूपलतावृत्तिपरिमल नामक प्रथका परकांश ।

शब्दसौन्दर्य (सं० पु०) शब्दों के उच्चारणकी सुगमता ।

शब्दसौष्टव (सं० पु०) किसी लेख या शैली आदिमें प्रयुक्त क्रिये हुए शब्दोंकी कोमलता या सुन्दरता ।

शब्दस्फोट (सं० पु०) वाक्यस्फोट, महाङ्ग्वर ।

शब्दस्मृति (सं० स्त्री०) शब्दका स्मरण ।

शब्दहीन (सं० स्त्री०) शब्दोंका वह रूप या प्रयोग जिस आचार्यों ने न प्रयुक्त किया हो ।

शब्दाक्षर (सं० पु०) शब्दानां आक्षरः । शब्दकी मूल या प्रकृति, शब्दोंका उत्पत्तिस्थान ।

शब्दाक्षर (सं० स्त्री०) १ शब्द और अक्षर । २ शब्द ह्रासक अक्षर । ३ कोम शब्द ।

शब्दाध्वेष (सं० लि०) जोरसे या चिह्ना कर कहा जानेवाला शब्द ।

शब्दाङ्ग्वर (सं० पु०) बड़े बड़े शब्दोंका ऐसा प्रयोग जिसमें भावको बहुत ही न्यूनता हो, केवल शब्दोंकी

सहायतासे खड़ा किया जानेवाला आङ्ग्वर, शब्दजाल । शब्दाढ्य (सं० स्त्री०) काँसा नामकी घातु ।

शब्दातिग (सं० पु०) विष्णु । (भारत ११।४६।११०) शब्दातीत (सं० पु०) वह जो शब्दसे परे हो अर्थात् ईश्वर ।

शब्दाधिष्ठान (सं० स्त्री०) शब्दस्य अधिष्ठानं आश्रय-स्थानम् । कर्ण, कान ।

शब्दाध्याहार (सं० स्त्री०) वाक्यको पूरा करनेके लिये उसमें अपनी ओरसे और शब्दका जोड़ना ।

शब्दानुकरण (सं० स्त्री०) शब्दका अनुकरण, शब्द नकल करना ।

शब्दानुवृत्ति (सं० स्त्री०) शब्दानुकरण ।

शब्दानुशासन (सं० स्त्री०) शब्दस्य अनुशासनं प्रकृति-प्रत्ययादिना व्युत्पादनं यत्र । व्याकरण ।

शब्दानुवृत्ति (सं० स्त्री०) शब्दानुशासन ।

शब्दामिवह (सं० लि०) शब्दवाही, शब्दवहनकारी शिरा आदि । (सुश्रुत)

शब्दायमान (सं० लि०) शब्दित, शब्दविशिष्ट ।

शब्दार्थ (सं० पु०) १ शब्दका अर्थ अर्थात् अभिधेय या वाच्य । २ शब्द तथा अर्थ । (पा २।२।३१)

शब्दालङ्कार (सं० पु०) साहित्यमें यह अलंकार जिसमें केवल शब्दों या वर्णोंके विन्याससे भाषामें लालित्य उत्पन्न किया जाय । जैसे,—अनुप्रास आदि ।

शब्दित (सं० लि०) ध्वनित, शब्द किया हुआ, आहूत ।

शब्दिन् (सं० लि०) शब्दविशिष्ट ।

शब्दिन्द्रिय (सं० स्त्री०) कर्ण, कान ।

शम (सं० पु०) शम्यत इति शम-घञ् । (हलश्च । पा ३।३।२१) १ शान्ति । (अमर) २ मोक्ष । (त्रिकाण्वशेष)

३ पाणि, हाथ । (रामाश्रम) ४ उपचार । (राजनि०)

५ अन्तरिन्द्रियनिग्रह । (वेदान्तसार) ६ बाह्यिन्द्रिय निग्रह । (भाग० ३।२।३३) ७ सर्वकर्मनिवृत्ति ।

(गीता ६।३) ८ शान्त रसका स्थायी भाव । (साहित्यद० ३।२३८) ९ निवृत्ति । (राजतर० २।५६) १० मनःसंयम । ११ क्षमा । १२ तिरस्कार ।

शमक (सं० लि०) शामयतीति शम-णिच्-ण्डुल मोदात्तोप-देशस्येति न दोर्धः, (पा ७।३।३४) शान्तिकारक, शान्ति करनेवाला ।

शमनम् (सं० लि०) शमक, प्रथमकारी ।

शमगिर (सं० स्त्री०) शान्तिरक्षा, प्रशमोक्ति, जो वायुय सुमनेसे अन्तरमें शांतिमायका उद्य हो।

शमठ (सं० पु०) शम-ठ बाहुलकात् (ज्ञानमोप्यङ्ग) ।

उष्ण १।१०१) १ महाभारतके अनुसार एक प्रखण्ड ।

(महाभारत वनपर्व) २ गंडोर नामक शाक । ३ तृदमेद,

एक प्रकारका वृत्त या शदवृत्त ।

शमता (सं० स्त्री०) शान्ति, उपशम, निवृत्ति ।

शमथ (सं० पु०) शम-थ बाहुलकात् (ह्यमिदमिन्परच ।

उष्ण ३।११४) १ शान्ति । (अमर) २ मन्त्री ।

(मेदिनी)

शमन (सं० स्त्री०) शम लघुट् । १ यज्ञार्थं पशुइनन, यज्ञ-

के लिये होनेवाला पशुओंका बलिदान । २ शान्ति ।

३ मनकी स्थिरता । ४ निवृत्ति, रोकना । ५ उपशम, कम

होना । ६ चर्चण, चक्षाना । ७ हिंसा । ८ प्रतिस्ंहार,

प्रतिनिवृत्ति । (गार्क० पु० ७८।१२) ९ निवारक ।

(पु०) शमयति पापिनां कर्म बालोचयतीति कर्त्तरि

ऋणु । १० यम । ११ मृगमेद । १२ अन्न । १३ मटर ।

१४ तिरस्कार, श्राप । १५ आघात, चोट । १६ दमन ।

१७ एक प्रकारका घलितकर्म जो मोघा, प्रियङ्गु, मुलेठी

और रसाञ्जन आदि मिले हुए दूधसे किया जाता है ।

यह घरितप्रयोग करनेसे सभी देवोंको उपशम होता

है ।

१८ धूमपानमेद । इसमें इलायची, तगर, कुङ्कु,

जटामांसी, गंधवृण, दालचोनी, तेजपत्र, नागकेशर,

रेणुका, व्याघ्रनक्षी, नक्षी, सरल, बाला, गुग्गुलु, धूना,

दिशरस, अगुष्ट, पृष्ण, पसकी जड़, अद्रदाय, कुङ्कुम,

केशर और पुत्रनाग इन कई औषधियोंका धूमां चालीस

उंगली लंबी नली या सटक आदिके द्वारा पीने हैं इससे

पात आदि देवोंका नाश होता माना जाता है ।

भावप्रकाशके मतसे नल वननेका नियम इस प्रकार

है,—नलके तीन ऋष्ट और तीन गांडके कर लेना

होगा । यह नल कनिष्ठ शङ्खु लोके समान और मोतर-

वा छेद उद्भूतके बराबर होगा । इसकी लम्बाई रोगीकी

उंगलीसे ४० उंगली होगी । ऐसे नल द्वारा शमन-

धूमपान करना होता है ।

(स्त्री०) १६ शमनी, रात्रि, रात । २० कपावमेद ।

जिन सब कपाय अर्थात् काषादि द्वारा वमनादि पञ्चकर्म

के बिना भी घातादि देवोंका नाश होता है, उसीका

नाम शमनी है ।

२१ वस्तिमेद, शमन नामक निरुहयस्ति । प्रियङ्गु,

मुलेठी, मोघा और रसाञ्जन इन्हे दूधके साथ मिला कर

जो वस्ति-प्रयोग किया जाता है, उसे शमनवस्ति करने

है ।

वारद उंगली लगना एक सरकंडा ले कर उसके चारों

ओर ८ उंगली तक २ तोला पलादिगणका कक लेंप

कर छायामें सुखाना होगा । जब अच्छी तरह सूख

जाय, तब सरकंडेका धीरे धीरे अलग करना होता है ।

बादमें उस ककवर्तिका स्नेहाक कर उसके अगले

भागके अङ्गारकी भागसे जलाना होगा । पीछे नलका

दूसरा भाग मुखमें लगा कर धूमपान करे और मुखसे दो

यह धूम निकाले । इसके बाद नाकसे धूम प्रश्न कर यह

धूम मुखसे निकालना होगा । (भावप्रकाश)

२२ सम, उद्धत और विषम घातपित्तादि रोगोंके

समान करनेवाला । २३ अरुण, लाल ।

शमनक्षय (सं० स्त्री०) शमनस्य यमस्य स्वसा । यमकी

भगिनी अर्थात् यमुना । (अमर)

शमनी (सं० स्त्री०) शमयति नृणां व्यापारान् शम ऋणु,

त्रियां स्त्रीप् । १ रात्रि, रात । शम्यतेऽनेन इत्यर्थे

करणे लघुट्-स्त्रीप् । २ शान्तिकारयित्री ।

(भाग० ३।२५।३६) शमन रेखा ।

शमनीय (सं० लि०) शम-नीयीवर् । शमन करने योग्य,

द्वाने या शांत करने योग्य ।

शमनीयवृ (सं० पु०) शमन्यां रत्नानां सोदन्ति सद्-भव-

पत्यं । मित्राचार, राक्षस । (त्रिका०)

शमयितृ (सं० लि०) शम-यिष्व-त्त्वप् । शमनकारक,

शान्तिकारक, निवारक ।

शमल (सं० स्त्री०) शम (शाक्यम्पोषिन् । उष्ण १।१११)

इति क्लृ । विष्णु, गुण । २ पाप, गुनाद ।

(वृद्धिप्रकार उष्ण०)

शमयत् (सं० लि०) शम आ-इवर्षे मत्तुप् । इय या

शमयुष्वादिनिष्ठ ।

शमशम (सं० लि०) १ सुखशान्तिविशिष्ट । (पु०)
 २ शिवका एक नाम । (भारत १२२५)
 शमशेर (फा० खी०) १ वह हथियार जो शेरकी पूंछ
 अथवा नखके समान हो अर्थात् तलवार, खड्ग आदि ।
 २ तलवार ।
 शमा (अ० खी०) १ मोम । २ मोम या चर्बीकी बनी
 हुई वस्तु जो जलानेके काममें आती है, मोमवत्ती ।
 शमादान (फा० पु०) वह आधार जिसमें मोमकी वत्ती
 लगा कर जलाते हैं । यह प्रायः घातुका बना हुआ और
 अनेक आकार प्रकारका होता है ।
 शमान्तक (सं० पु०) शमस्य शान्तेरन्तकः । कामदेव ।
 शमाला (सं० खी०) राजदत्त ब्राह्मण-शासनभेद ।
 (राजतर० ७१५६)
 शमि (सं० खी०) १ शिभिन्धान्य । सूंग, मसूर, मूठ,
 उड़द, चना, अरहर, मटर, कुलथी, लोबिया आदिकां
 शिम्यी धान्य कहते हैं । २ शमीवृक्ष, सफेद बीकर । शमी
 देलो । (पु०) ३ अन्धकके एक पुत्रका नाम । (रविश)
 ४ उशीरके एक पुत्रका नाम । (भाग० ६१३३२१) ५
 यह या यक्षरूप कर्म । (शुक ३५५१२)
 शमिक (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।
 (पा ४।१।१०४)
 शमिका (सं० खी०) शमीवृक्ष ।
 शमिज (सं० पु०) लाल कुलथी ।
 शमिजा (सं० खी०) १ लाल कुलथी । २ शिम्यी धान्य ।
 शमित (सं० लि०) शम-क । १ जिसका शमन किया
 गया हो । २ शान्त, ठहरा हुआ ।
 शमित् (सं० लि०) शम वृच् । १ निवारक, शान्तिकारक ।
 २ यक्षमें पशुका बलिदान करनेवाला ।
 शमिन् (सं० लि०) शमी विद्यतेऽस्य शम-इन् । शान्त,
 शमयुजविशिष्ट ।
 शमिपत्र (सं० खी०) पानोंमें होनेवाली लजातू नामकी
 लता ।
 शमिपत्रा (सं० खी०) शमिपत्र देलो ।
 शमिर (सं० पु०) १ शमीवृक्ष । २ सोमराजी, बकुची ।
 शमिरोह (सं० पु०) शिव, महादेव ।
 शमिला (सं० खी०) चमेलीकी जातिका एक प्रकारका
 पौधा ।

शमिष्ठ (सं० लि०) अयमन्योरतिशयेन शमाः । दो या
 बहुतीमें जो बड़ा शान्त हो ।
 शमिष्ठल (सं० खी०) एक स्थानका नाम ।
 शमी (सं० खी०) खनामवृथात सकण्टक वृक्ष, छिकुग,
 छोंकर । इसे महाराष्ट्रमें शमी, खैरी ; कलिङ्गमें वणि,
 कावत्रि और उत्कलमें शमी कहते हैं । संस्कृत पर्याय—
 शकफला, शिवा, शकफली, शांता, तुङ्गा, क्वरिपुफला,
 केशधमनो, ईशानो, लक्ष्मो, तपनतनया, इष्टा, शुभकरी,
 हविर्गन्धा, मेधया, दुरितधमनी, शकफलिका, समुद्रा,
 मङ्गल्या, सुरभि, पापशमनी, भद्रा, शङ्करी, केशहन्त्री,
 शिवाफला, सुपला, सुखदा । यह छोटी और बड़ीके
 भेदसे दो प्रकारकी है ।
 यह बङ्गाल और विहारमें सर्वत्र, प्रायोद्वीपके पश्चिम,
 भावा (ब्रह्म) और सिंहलमें बहुत पाई जाती है । इसकी
 लकड़ी बहुत कुछ खैरकी लकड़ीसे मिलती जुलती है,
 किंतु इसमें बहुतसे छोटे छोटे छेद होते हैं । इसकी
 डालसे खैरकी तरह एक प्रकारका लासा पाया जाता
 है । इस जातिके लाल पत्तेवाले वृक्ष अग्निगर्मा कह-
 लाते हैं ।
 एक और प्रकारकी शमी है जिसे अङ्ग्रेजीमें *Proso-
 pis spicigera* कहते हैं । इसका आकार मंफोला
 होता है और डालियां कटोली होती हैं । पंजाब,
 सिन्धु, राजपूताना, गुजरात, बुन्देलखण्ड और दक्षि
 णात्यकी प्राग्तरभूमिके जिस स्थानकी मिट्टी जलहीन
 और कठिन होती है, वहां यह वृक्ष उत्पन्न होते देखा
 जाता है । वीज अथवा उसकी डाल काट कर गाड़
 देनेसे पेड़ लगता है । पेड़की जड़ बहुत लम्बी होती
 है । १७७८ ई०में पेरिस नगरकी विद्ययात प्रदर्शनोंमें
 इस जातिके एक प्रकारके पेड़की ८६ फुट लम्बी जड़
 दिखलाई गई थी । यह ठीक समान भावमें ६४ फुट मिट्टी
 छेद कर नीचे जाती है ।
 इसके तनेकी छिल देने अथवा छोटी छोटी डाल
 काट देनेसे वहां एक तरहका लासा निकलता है ।
Pharmacographia Indica ग्रन्थके रचयिताने रासाय-
 निक परीक्षा द्वारा इसकी मेक्सिकोके *Mozquit gum*
 नामक द्रव्यके समान गुणविशिष्ट निरूपण किया है ।

इसको छाल खमड़ा साफ करने और रंगनेके काममें आती है। इसकी छेमी पञ्जाबमें औपचार्य व्यवहृत होती है। इसके छिलकेमें कीटविशेष द्वारा बड़े बड़े पशुकी तरह एक प्रकारकी गाँठ उत्पन्न होती है। यह बाजारमें "खरनाकी डिग्दी" नामसे परिचित है। यह सञ्कोचन गुणयिशिष्ट है। पेड़का छिलका पोस कर वातवायुघोषित ग्रन्थिमें प्रलेप देनेसे बहुत लाभ पहुँचता है।

छेमीका धोम पकने पर समी लोग खाते हैं। कच्ची छेमीमें घी, प्याज और नमक छाल कर गरीब भादमी तरकारी बना कर खाते हैं। कमी कमी उसमें बूहो मिला कर खाते हुए भी देखा गया है। १८६८-६९ ईमें राजपूतानाके दुमिंक्षमें इसकी कच्ची तथा सूखी छाल के चूरकी पीठी बना कर लोगोंने प्राणरक्षा की थी। पेड़की पत्तियाँ समेत छोटी डाल और छेमी ऊँट, गाय भैंसे, बकरे, भेड़ आदि पालतू पशुकी प्रधान खाद्य है। वेरा इस्माइल खाँ और सिन्धुनदके पश्चिम पारस्य देशोंमें शीतके समय तृणादि न मिलनेके कारण इसकी सूखी पत्तियाँ ही साधारणतः पालतू पशुके लिये व्यवहृत होती हैं। इसके एक वयुविक फुट काष्ठका वजन ५८ पाँच होता है। इससे गाड़ी और घरके सामान तैयार होते हैं। इसमें उबलनशक्ति अधिक है। इस कारण बहुत दे जलायनमें शमीकाष्ठका ही व्यवहार करते हैं। प्राण्डिस साहबका कहना है, कि १३७४ पीएड शमीकाष्ठ, १३८८ पीएड वाटलाकाष्ठ और १६२७ पीएड इमलीका काष्ठ एक ही समयमें समपरिमाण जलके अवालता है।

पञ्जाबवासी साधुओंके समाधिस्थलमें समीवृक्षके गाड़ दते हैं। राजपूतानेमें पर्यंमें एक बार राजा, महाराज, सामन्त, ठाकुर और प्रजापार्य बड़ी धूमधामसे शमीवृक्षकी पूजा करते हैं। वहाँ पूजाके लिये एक स्वतन्त्र जमीनवृक्ष निर्दिष्ट रहता है। डिग्दीमात्र ही शमीवृक्षकी सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। प्रतराज नामक ग्रन्थिपत्रक ग्रन्थमें लिखा है, कि आधिपत शुक्रपरीय राजा तिमिमें जमीपूजा करने होती है। विराटनगरमें महात्तपासके समय पाएडपोंने शमीवृक्ष पर ही अखादि

रखे थे। ये सब अन्न सर्पके रूपमें उस वृक्ष पर थे। जनसाधारणका विश्वास है, कि शमी भगवतीकायें उत्पन्न हुई है। शमीकाष्ठ समिधरूपमें तथा पत्र गणपतिकी पूजामें व्यवहृत होते हैं। गणेशपुराणमें शमीमाहात्म्य वर्णित है।

वैद्यकमतसे इसका गुण—रुक्ष, कषाय, रक्त, पित्त और अतिसारनाशक। फलका गुण—गुरु, स्नादिष्ट, उष्ण और केशनाशक। (राजनि०) मायप्रकाशके मतसे इसका गुण—तिक, कटु, शीतल, कषाय, रेचक, लघु, कम्प, कास, ध्रम, भ्यास, कुष्ठ, अर्श और हृमिनाशक। (भावप्र०) इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और कठिन होती है। प्राचीनोंका विश्वास है, कि सूखी लकड़ीमें अग्नि गुप्तमायमें रहती है। (मनु, पार० १५, ३१६) वैदिकयुगमें शमीकाष्ठ घिस कर अग्नि उत्पादन की जाती थी। इस सम्बन्धमें एक व्याख्यान भी प्रचलित है कि पुरुरावोंने अय्यत्प और शमीवृक्षकी शाखा रगड़ कर जगत्में सबसे पहले अग्नि उत्पन्न की थी।

२ शिम्ब, सेम। ३ सोमराजो। ४ कर्म। शुकू ६।२।२) शमी—बम्बई प्रेसिडेन्सीके राधनपुर सामन्त राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २३° ४१' १५" उ० तथा देशा० ७१° ५०' पू० सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित है। शमीक (सं० पु०) एक प्रसिद्ध क्षमाशील ऋषि। कहते हैं, कि परिक्षितने इनके गलेमें एक बार मरा द्रुमा साँप डाल दिया परन्तु ये कुछ न थके। इनके लङ्के भृंगी ऋषिने अपने पिताकी दुर्दशा देख कर क्रुद्ध हो शपथ दिया कि आजके सातवें दिन मेरे पिताके गलेमें सर्प डालनेवालेकी तक्षक डलेना। कहा जाता है, कि इसी शपथके द्वारा तक्षकके काटनेसे राजा परिक्षितकी मृत्यु हुई थी। (भाग० १।१८ ब०)

शमीकुण (सं० पु०) शमी-कुण। (पा ५।२।२५) परा द्रुमा शमी फल।

शमीगर्म (सं० पु०) शमीया गर्म। १ प्राणज। २ अग्नि।

शमीत्राण (सं० ति०) शमीगर्म। (शिव'च)

शमीधान (सं० कृ०) शमीधान्य देती।

शमीधान्य (सं० बली०) शमी यक्षादिकर्म, तक्षक धार्य। शिम्बो धार्य। मृंग, राजमाय, तिल और

कुलपी आदिको शमीधान्य कहते हैं। पर्वाय—शमीत्र, शिम्बिन्, शिम्बातर, सूपा, घैदल। गुण—मधुर, रुक्ष, कवप्यरस, कटुपाकी, वातवर्द्धक, कफपित्तनाशक, मलमूत्रवर्द्धक और शैत्यगुणविशिष्ट। शमीधान्यमें सूंग और मसूर कुछ बांधमानकारक हैं, इसके सिवा और सभी अधिक परिमाणमें बांधमान उत्पन्न करते।

(भावप्रकाश)

रातबलभूनामक वैद्यक ग्रन्थमें लिखा है, कि एक वर्षका शमीधान्य सबसे उत्तम, उससे ऊपरका वातवर्द्धक और रुक्ष तथा नया शमीधान्य प्रायः शुभ होता है। किन्तु इनमें जै, गेहूँ, उड़द और नया तिल ही प्रशस्त हैं। यह जितना ही पुराना होगा उतना ही विरस, रुक्ष और गुणघ्न होता है। विभिन्न ऋतुज, व्याधिविपन्न, असम्बन्धपरितुष्ट, अनाकर्षित या कर्षण स्थानमें जात और अमिनव धान्यादि घैसा गुणशाली नहीं होता।

शमीनहुपी (सं० खी०) घाया पृच्छी, स्वाम्प्यं।

(शुक् १०६२।१२)

शमीपत्रा (सं० खी०) शम्याः पत्राणीव पत्राणि यस्याः।

लज्जालुलता, लज्जावती नामकी लता।

शमीमस्थ (सं० पु०) स्थानभेदः। (पा १।२।८७)

शमीमय (सं० त्रि०) शमीविशिष्ट, शमीनिर्मित।

शमीर (सं० पु०) हवा शमी। (कुटीशमोशुपबाम्बो रः।

पा १।२।८८) इति रः। शमी वृक्ष।

शमीरकन्द (सं० पु०) याराक्षीकन्द, चमार आलू।

शमीवत् (सं० पु०) ऋषिभेदः। (पा १।३।११८)

शमीमन्दार (सं० खी०) शमी और मन्दारवृक्ष। पूर्वा-

कालमें शमी और मन्दार वृक्षका बड़ा आदर था।

ऋषियोंने इसका माहात्म्य कीर्तन किया है। गणेश-

पुराणके कौंडीणण्डके ३७ अध्यायमें इसका विषय

सविस्तार वर्णित है।

शमीश्वरी (सोमेश्वरी)—आसाम प्रदेशके गारो पहाड़

जिलेमें प्रवाहित एक नदी। तुरा नामक शैला-

वासके पाससे निकल कर धीरे धीरे पूर्वकी ओर

धूम तुरा शैलके उच्च चली गई है, भरनौसे मिल कर

मैनसिंह जिलेको समतल भूमि पर आई है। इसके

वाद धीरे शम्बर गतिसे यह सुसङ्ग परगनेको कङ्कनशेमें

मिली है। गारो पहाड़ पर शमीश्वरी जैसी बड़ी और

जनसमाजकी उपयोगिता नदी और कोई नहीं है। इस

नदीसे गाओपर्वतके अधित्पकादेशके सिजू पर्वत जाया

जा सकता, उसके बाद आगे बढ़नेका कोई उपाय नहीं

है। यहां एक दानेदार पत्थरका स्तर रहनेसे नदी जल

प्रतिहत हो कर प्रपातकारमें गिरता है। इस प्रपात-

को पार कर फिरसे छोटी छोटी नाव पर चढ़ उक्त नदी-

से बहुत दूर चले जाते हैं। शमीश्वर पत्थरकाका अन्वेष-

ण कर पत्थरके नीचे कोयलेको खान पाई गई है।

नदीतीरवर्ती स्थानमें बढ़िया चूनापत्थर मिलता है।

यहां चूना-पत्थरके स्तरमें बड़ी बड़ी गुहा देखी जाती

है। सिजूके पास भी ऐसी एक गुहा है जिसके

भीतरसे एक छोटा पहाड़ी भरना निकला है।

इस नदीमें बड़ी बड़ी मछली पाई जाती है, जिसे

गारोजाति बड़े चावसे खाती है।

शमीप्य (सं० खी०) संवपन अथवा सम्बक् प्रकारसे

भूमि पर पतन। (अथर्व १।१।४।३)

शम्बक (सं० पु०) शम्बकभेदः।

शम्बदा (सं० खी०) वृद्धि नामकी ओषधि।

शम्बा (सं० खी०) विद्युत्, बिजली।

शम्बाक (सं० पु०) १ आरम्बध, अमलतास। इसका

फल स्वादुपाक, अग्निबलकारक, स्निग्ध और घातपित्त-

हर होता है। (सुभूतध०) २ विपाक। ३ यावक, अल-

कक, अलता। ४ रुध्न। ५ हस्तिनापुरवासी एक

ब्राह्मण। (महाभारत)

शम्बात (सं० पु०) १ आरम्बध, अमलतास। २ अग्नि-

शम्बात।

शम्ब (सं० पु०) शम्बन् (शम्बन्) उष्ण ४।६४

यद्वा शम्बस्त्वप्येति शंभ, (शंभ्यां वमयुक्तिवृत्तयः। पा

५।२।३८) १ इन्द्रका वज्र। (शुक् १०।४।२७) २ लोटकी जंजीर जो कमरके चारों तरफ पहनी जाय। ३ प्राचीन कालकी नापनेकी एक माप। ४ नियमित रूपसे हल जोतनेकी क्रिया। ५ वृद्धि। (त्रि०) ६ भाग्यवाङ्।

शम्बर (सं० खी०) १ सलिल, जल। २ प्रत। ३ विस।

(मानापरत्नमाला.) ४ चित्र। ५ बौद्धः मतविशेष।
(१६ मीर गिरा) ६ मेघ, बादल। (पु०) ७ मृगविशेष,
शम्बर मृग। ८ देवविशेष।

श्राव्येदके १६ मीर २५ मण्डलमें लिखा है, कि
जब इन्द्रने शुष्ण, पिप्पु, कुयय और पूत इन चार असुरों-
को संभाममें मारा, उस समय उन्होंने शम्बरामुखकी पुरीको
भी तहस-तहस कर डाला था। इस दुर्घटनाके बाद
शम्बर इन्द्रके भयसे डर गया और बहुत दिनों तक पर्वत
मुद्रामें छिपा रहा। ४० वर्ष तलाश करनेके बाद इन्द्रने
उसे पकड़ा और मार डाला।

भाष्यतमें लिखा है, कि यमिण्योगर्ज सद्यःप्रसूत
श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको शम्बरामुखने चुटा कर समुद्रमें
फेंक दिया। यहाँ एक मछली उस बालकको निगल गई।
कुछ समय बाद एक घोबरने उस मछलीको पकड़ा और
शम्बरामुखको उपहारस्वरूप दे दिया। पाचकोने
मछलीके पेटमें दिव्य-बालमूर्त्ति देव एक दूसरी पाचिका
मायावतीको इस बातकी खबर दी। यह मायावती
कामपत्नी रति थी, यद्रूपसे दाम्पतिकी पुनः-प्राप्तिकी
प्रतीक्षामें उस यद्रूपके कथनानुसार ही वर्तमान शम्बरके
घर सूषकार्पणमें नियुक्त थी। मायावतीने जब पाचकोके
मुँहसे सुना, कि मछलीके पेटसे बालक निकला है, तब
यह नारदके पास गई और उनसे कुछ पृच्छागत कद
सुनाया। सुम्हारा पति कामदेव ही प्रद्युम्नरूपमें जन्म
ले कर चिरञ्जय शम्बरके पङ्कजसे पेशी हालतकी प्राप्ति
हूमा है। यह सुन कर मायावती बड़े यत्नसे उसका लालन
पालन करने लगी। बालक जब बड़ा हुआ, तब माया-
वतीने उसका तथा अगमा पूर्ववृत्तान्त और शम्बरके
निष्ठुर व्यवहारका हाल सुकसे भाषित कर कह सुनाया।
पोंछे उसमें उस बालकसे यह भी कहा, कि पेशे परम
दुराचार दुर्जय दुर्जय शत्रुको क्षण भरके लिये जो इस
संसारमें रहने देना उचित नहीं। अतएव मुझसे सर्व-
मायाविनाशिनो मायाविद्या ले कर शम्बरकी मारनेका
उपाय सोचो।

मायावतीकी प्रतीयगासे युवकने पेशा हो करनेकी
प्रतिज्ञा की। एक दिन यह शम्बरके पास हठात् जा
पहुँचा और उसकी स्तन फटकारा। शम्बरने क्रुद्ध हो

उस पर गदा चलाई, इस प्रकार दोनोंमें घोर युद्ध
चला। पोंछे उस युवकने एक तेज तलवार उठाई और
किरीट तथा कुण्डलके साथ शम्बरका शिर काट डाला।

(भाष्यत १०।५२.)

६ मत्स्यविशेष। १० शैवविशेष। ११ जिनमेद।
१२ युद्ध। १३ श्रेष्ठ। १४ चित्रक वृक्ष। १५ छेप।
१६ अर्जुनवृक्ष। १७ तालवृक्ष। १८ पर्वतभेद।

शम्बर (शम्बर) राजपूतानेके अन्तर्गत एक बड़ा हनु।
यह अक्षा० २६°५२' तथा देशा० ७४°५७' से ७५°१६' पू०-
के मध्य अवस्थित है। अजमेर राज्यसे ४० मील उत्तर-
पश्चिम जहाँ आराधनों गिरिश्रेणोकी उत्तरदिग्वाहिनी
जालाओंमें एक बड़ी अववाहिकाको खुष्टि की है, ठीक
उसी गर्भसे इस हनुको उत्पत्ति है। इससे जल निकलने
का रास्ता नहीं है। वर्षा ऋतुमें जब यह मरा रहता
है, उस समय इसकी लम्बाई २० मील और चौड़ाई ३से
१० मील तक होती है। उस समय कहीं कहीं इसे
४ फुट जल गहरा देखा जाता है। वर्षाके बाद भी
और आश्विन माससे ही इसका जल सूखने लगता है।
कार्तिकसे वैशाख तक एकदम सूख जाता है। केवल
एक मील लंबे और आध मील चौड़े स्थानमें जल रहता
है। हनुका मध्यस्थल पार्यवर्ती स्थानोंसे कुछ अधिक
गहरा है, इस कारण यहाँका जल कभी भी नहीं सूखता।
यहाँके लोग इसे 'धनमाण्डार' कहते हैं। यही विपरीत
भोर 'माता-की देवी' नामक एक पर्वतशिखरके दक्षिण
किनारेको भेड़ कर हनुगर्भकी ओर दौड़ गया है। यह
धनमाण्डार पूर्व-पश्चिममें विस्तृत है।

हनु चारों ओर स्तूपवत्पर और लवण पर्वतसे घिरा
है, इस कारण इस स्थानकी भूमि अनुर्यर तथा एता
लतादि परिशुभ्य मयस्थली सद्गुण है। इसके बीच
बाचमें पार्थिव स्तर (Perman system) का परपर
दिखाई देता है। जनसाधारणका विश्वास है, कि लवण-
मय पथरीला जलप्रवाहसे विपरीत हो कर हनुके जलमें
लवणयुक्त बनाता है। हनुकी मिट्टी काठी है।

श्रीधरप्रभूमि हनुका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोहर
और विश्वमोदीपक है। दक्षिणदिशाके अववाहिका
देशमें जो सब छोटी छोटी बालूकी भीत दिखाई देती-

है, उनमेंसे किसी एकके ऊपर खड़ा हो कर चारों ओर देखनेसे आगे और पीछे विस्तोर्ण तुपारामृत स्थान का नजर आता है। केवल छण्ड छण्ड जलराशि और उन सब स्थानोंमें उतरनेके रास्तेको छोड़ और कुछ भी उस रजतघबल प्रांतरके एकाग्रताको भङ्ग करनेमें समर्थ नहीं है। यथार्थमें यह स्थान तुपारामण्डित नहीं है, मिट्टीके ऊपर नमकके पड़ जानेसे ऐसा सफेद फूलके विद्यमानकी तरह दिखाई देता है।

इस स्थानसे नमक उत्पन्न होता है, इस कारण बहुत पहले हीसे हिन्दू और मुसलमान राजे इस मूल्यवान् सम्पत्तिको अधिकार करनेकी कोशिश करते आ रहे थे। मुगल सम्राट्, अकबरशाह और उनके वंशधरोंके शासनकालसे ले कर अहमदशाहके दिहली सिंहासनाधिकार तक किसी राजदरवारकी देखरेखमें यह नमक बनाने का कारखाना खुला था। आखिर यह जयपुर और जोधपुरके राजपूत राजाओंके हाथ आया। १८३५ ई० से १८४४ ई० तक राजपूतोंने अङ्गरेजो राज्यसीमाको अतिक्रम कर नाना स्थानोंमें उपद्रव मचाया। इकैतोंके अत्याचारका दमन करनेके लिये इस समय ब्रिटिश-सरकारको बहुत क्षतिप्रस्त होना पड़ा था। उस क्षतिपूर्तिके लिये भारत सरकारने लवण बनानेका भार अपने हाथ ले लिया। किन्तु १७वीं सदीसे जयपुर और जोधपुरकी राजसरकार जिस तरह लवण बनाती आ रही थी, १८७० ई० तक यह उसी तरह बनाती रही। पीछे अंगरेज सरकारने उस दोनों राजाओंसे एक स्वतन्त्र समझ कर ली और उसी समझके अनुसार यह स्थान इजारा ले लिया। इस हद्दका पूर्वी किनारा और दक्षिणका कुछ अंश जयपुर और जोधपुरकी मिलित सम्पत्ति है, किन्तु बाकी सभी जयपुराधिकके अधिकृत है।

मिट्टीके ऊपर नमक फुट जानेसे मजूर टोकरी ले कर हद्दके किनारे आते और नमककी पपड़ीको टोकरीमें भर कर कारखाना ले जाते हैं। यह नमक स्थानके गुणा अनुसार तथा द्रव्यविशेषके आणविक संमिश्रणके कारण लाल नील वर्ण धारण करता है। कभी छिछले लोह के कड़ाहमें और कभी गहरे चहदबधमें नमकको पानी डाल

कर नमक बनाते हैं। इसे जनसाधारण शम्बर या सॉमर नमक कहते हैं। पंजाब, युक्तप्रदेश और तथ्य-भारतके हिन्दू प्रधान देशोंमें यह लवण प्रधानतः प्रचलित है। जयपुर और जोधपुरके मिलित शासनाधिकारमें स्थापित शम्बर नगर और हद्दके दूसरे किनारोंमें अवस्थित जोधपुराधिकृत नया और गुया नगरके साथ राजपूताना-मालव रेलवेका संयोग होनेके कारण यहाँका नमक दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी भेजा जाने लगा है।

१८वीं सदीके आरम्भमें जो स्व विदेशी स्रवणकारी और देशीय तीर्थयात्री शम्बर हद्द देख गये थे, उनके विवरणमें लिखा है, कि यह हद्द लम्बाईमें ५० मील और चौड़ाईमें १० मील था। अभी उसका आकार बहुत छोटा हो गया है।

शम्बर—राजपूतानेके शम्बरहद्दके किनारे अवस्थित एक नगर। यह जयपुर और जोधपुरराजके अधीन है। जयपुरनगरसे यह ३६ मील दक्षिण-पश्चिममें पड़ता है। यहाँ राजपूताना-मालव रेलवेकी शम्बर शाखाका एक स्टेशन है।

शम्बरकन्द (सं० पु०) शम्बर नामका कन्द। धाराहीकन्द, शूकरकन्द।

शम्बरचन्दन (सं० क्ली०) एक प्रकारका चन्दन जो शम्बर पर्वत पर होता है। इसे शबर या चर्वर चन्दन भी कहते हैं। पर्याय—कीरात, बहलमंघ, घल्य, गन्धकाष्ठ, कीरातक, तैलगंध। गुण—शीतल, तिक्त, उष्ण तथा वात, श्लेष्म, धम, पित्त, विस्फोटक, घामादिकुष्ठ, तृण्णा, ताप और मोहनाशक। (राजनि०)

शम्बरदेशज (सं० पु०) शुकुरोध, सफेद लोध। (बैद्यकनि०)

शम्बरपादप (सं० पु०) शुकुरोध, सफेद लोध।

शम्बरमाग (सं० स्त्री०) १ इन्द्रजाल, जादू। २ शक्ति।

शम्बरसूदन (सं० पु०) शम्बरं सूर्यपति सूद-सुपु। कामदेव।

शम्बरहृत्प (सं० क्ली०) शंबर-हन वषट्। शंबर-हनम, शंबरवष। (श्रृंक् ११२।१४)

शम्बरारि (सं० पु०) शंबरसारिः। १ शंबरका शल

(नानाभेदजनमात्र) ४ चित्र । ५ शीत प्रतियोग ।
(हेम और गिर) ६ मेघ, बादल । (पु०) ७ मृगविशेष,
शम्बर मृग । ८ दैत्यविशेष ।

प्रायेदकं १ म और २५ मण्डलमें लिखा है, कि
जब इन्द्रने शुष्ण, विप्रु, कुपय और पूत्र इन चार असुरों-
को संभ्राममें मारा, उस समय उन्होंने शम्बरसुरकी पुरीकी
भी तहस नहस कर डाला था । इस दुर्घटनाके बाद
शम्बर इन्द्रके अगले डर गया और बहुत दिनों तक पर्वत
गुहामें छिपा रहा । ४० वर्ष तलाश करनेके बाद इन्द्रने
उसे पकड़ा और मार डाला ।

भाष्यतमें लिखा है, कि खिमपोगर्भज सद्यःप्रसूत
श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको शम्बरसुरने चुरा कर समुद्रमें
फेंक दिया । वहां एक मछली उस बालककी निगरा गई ।
कुछ समय बाद एक घोवरने उस मछलीको पकड़ा और
शम्बरसुरको उपहारस्वरूप दे दिया । पाचकोने
मछलीके पेटमें दिव्य-बालमूर्ति देख एक दूसरी पाचिका
मायावतीकी इस बातकी खबर दी । यह मायावती
कामपत्नीकी रति थी, यद्रकोपसे दग्ध पतिकी पुनः-प्राप्तिकी
प्रतीक्षामें उस यद्रके कथनानुसार ही वर्त्तमान शम्बरके
घर स्नानार्थमें नियुक्त थी । मायावतीने जब पाचकोके
मुखमें सुना, कि मछलीके पेटसे बालक निकला है, तब
यह नारदके पास गई और उनसे कुल वृत्तगत कह
सुनाया । तुम्हारा पति कामदेव ही प्रद्युम्नरूपमें जन्म
ले कर चिरगद्ग शम्बरके बहुयज्ञसे येसी हालतकी प्राप्त
हुआ है । यह सुन कर मायावती बड़े यदासे उसका लालन
पालन करने लगी । बालक जब बड़ा हुआ, तब माया-
वतीने उसका तथा अपनी पूर्ववृत्तागत और शम्बरके
निष्ठुर व्यवहारका हाल शुरूसे भाँविरतक कह सुनाया ।
पोंछे उमने उस बालकसे यह भी कहा, कि येसे परम
दुर्गाघार हुआय युद्धमें शत्रुको क्षण-भरके लिये भी इस
संसारमें रहने देना उचित नहीं । अतएव मुझसे सर्व-
मायाविनाशिनो मायाविद्या ले कर शम्बरकी मारनेका
उपाय सोचो ।

मायावतीकी प्रतीक्षामें युवकने पैसा हो करनेकी
प्रतिज्ञा की । एक दिन वह शम्बरके पास हठात् जा
पहुँचा और उसकी स्तन फटकारा । शम्बरने क्रोध हो

उस पर गद्ग चलाई, इस प्रकार दोनोंमें घोर युद्ध
चला । पोंछे उस युवकने एक तेज तलवार उठाई और
किरोट तथा कुण्डलके साथ शम्बरका शिर काट डाला ।

(भाष्यव १०/१५)

६ मत्स्यविशेष । १० शीवविशेष । ११ जिनमेद
१२ युद्ध । १३ धेनु । १४ चित्तक वृक्ष । १५ लेण ।
१६ अर्जुनवृक्ष । १७ तालवृक्ष । १८ पर्वतभेद ।

शम्बर (शम्बर) राजपूतानेके अन्तर्गत एक बड़ा हू ।
यह अक्षांश २६°५२' तथा देशांश ७५°५७' से ७५°१६' पू०-
के मध्य अवस्थित है । अजमेर राज्यसे ४० मील उत्तर-
पश्चिम जहाँ आरावली गिरिश्रेणोकी उत्तरदिशादिकी
जालामोंमें एक बड़ी भवयादिकाकी सृष्टि की है, ठीक
उसी गर्भसे इस हूकी उत्पत्ति है । इससे जल निकलने
का रास्ता नहीं है । वर्षा ऋतुमें जब यह भर रहता
है, उस समय इसकी लम्बाई २० मील और चौड़ाई ३से
१० मील तक होती है । उस समय कहीं कहीं १से
४ फुट जल गहरा देखा जाता है । वर्षाके बाद भी
और आश्विन माससे ही इसका जल सूखने लगता है ।
कालिकसे वैशाख तक एकवृत्त सूख जाता है । केवल
एक मील लंबे और आध मील चौड़े स्थानमें जल रहता
है । हूका मध्यस्थल पार्श्ववर्ती स्थानोंसे कुछ अधिक
गहरा है, इस कारण यहांका जल कभी भी नहीं सूखता ।
यहांके लोग इसे 'धनमण्डार' कहते हैं । यही विपरीत
और 'माताकी देवी' नामक एक पर्वतशिखरके दक्षिणी
किनारेकी भेद कर हूदगर्भकी ओर झोड़ गया है । यह
धनमण्डार पूर्व-पश्चिममें विस्तृत है ।

हू चारों ओर चूनपरधर और लणण पर्वतसे घिरा
है, इस कारण इस स्थानकी भूमि अनुर्यर तथा एत
लतादि विद्रुम्य मदस्थली सद्गुण है । इसके बीच
बाचमें पारमोव स्तर (Permain system) का परधर
दिखाई देता है । जनसाधारणका विश्वास है, कि लणण-
मय पथरीला जलप्रवाहसे विघीत हो कर हूके अन्दरके
लणणायन बनाता है । हूकी मिट्टा काली है ।

श्रीमन्नूमें हूका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोहर
और विम्वमोदीपक है । दक्षिणदिशाके भवयादिका
देशमें जा सब छोटी छोटी बालकी भोग दिखाई देती-

है, उनमेंसे किसी एकके ऊपर बड़ा हो कर चारों ओर देखनेसे आगे और पीछे विस्तीर्ण तुपारायुत स्थान सा नजर आता है। केवल खण्ड खण्ड जलराशि और उन सब स्थानोंमें उतरनेके रास्तेको छोड़ और कुछ भी उस रजतधवल प्राग्नेरकी एकाग्रताकी भङ्ग करनेमें समर्थ नहीं है। यथार्थमें यह स्थान तुपारमण्डित नहीं है, मिट्टीके ऊपर नमरुके पड़ जानेसे ऐसा सफेद फूलके विखावतकी तरह दिखाई देता है।

इस स्थानसे नमरु उत्पन्न होता है, इस कारण बहुत पहले हीसे हिन्दू और मुसलमान राजे इस मूल्यान् सम्पत्तिकी अधिकार करनेकी कोशिश करते आ रहे थे। मुगल सम्राट् अकबरशाह और उनके वंशधरोंके शासनकालसे ले कर अहमदशाहके दिवलो सिंहासनाधिकार तक किसी राजदरबारकी देखरेखमें यह नमरु बनाने का कारखाना खुला था। आखिर यह जयपुर और जोधपुरके राजपूत राजाओंके हाथ आया। १८३५ ई० से १८४४ ई० तक राजपूतोंने अहमदशाहके राज्यसीमाकी अधिकार करना स्थानोंमें उपद्रव मचाया। ईकैतोंके अत्याचारका दमन करनेके लिये इस समय ब्रिटिश-सरकारकी बहुत क्षतिप्रस्त होना पड़ा था। उस क्षतिपूर्ति-के लिये भारत सरकारने लयण बनानेका भार अपने हाथ ले लिया। किन्तु १७वीं सदीसे जयपुर और जोधपुरकी राजसरकार जिस तरह लयण बनाती आ रही थी, १८७० ई० तक वह उसी तरह बनाती रही। पीछे अंगरेज सरकारने उक्त दोनों राजाओंसे एक स्वतन्त्र सन्धि कर ली और उसी सन्धिके अनुसार यह स्थान इजारा ले लिया। इस हद्दका पूर्वी किनारा और दक्षिणका कुछ अंश जयपुर और जोधपुरकी मिलित सम्पत्ति है, किन्तु बाकी सभी जयपुराधिकारके अधिकृत है।

मिट्टीके ऊपर नमरु फुट जानेसे मजूर टोकरी-ले कर हद्दके किनारे जाते और नमरुको पड़की टोकरीमें भर कर कारखाना ले जाते हैं। वह नमरु स्थानके गुणानुसार तथा दृष्यविशेषके आणविक संमिश्रणके कारण लाल नील वर्ण धारण करता है। कभी छिछले लोहके कड़ाहमें और कभी गहरे चढ़बच्चमें नमरुका पानी डाल

कर नमक बनाते हैं। इसे जनसाधारण शम्बर या सौर नमरु कहते हैं। पंजाब, युक्तप्रदेश और मध्य-भारतके हिन्दू प्रधान देशोंमें यह लयण प्रधानतः प्रचलित है। जयपुर और जोधपुरके मिलित शासनाधिकारमें स्थापित शम्बर नगर और हद्दके दूसरे किनारोंमें अवस्थित जोधपुराधिकृत नया और शुधा नगरके साथ राजपूताना-मालव रेलवेका संयोग होनेके कारण यहाँका नमरु दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी भेजा जाने लगा है।

१८वीं सदीके आरम्भमें जो सब विदेशी स्रमणकारी और देशीय तीर्थयात्री शम्बर हद्द देख गये थे, उनके विवरणमें लिखा है, कि वह हद्द लम्बाईमें ५० मील और चौड़ाईमें १० मील था। अभी उसका आकार बहुत छोटा हो गया है।

शम्बर—राजपूतानेके शम्बरहद्दके किनारे अवस्थित एक नगर। यह जयपुर और जोधपुरराजके अधीन है। जयपुरनगरसे यह ३६ मील दक्षिण-पश्चिममें पड़ता है। यहाँ राजपूताना-मालव रेलवेकी शम्बर शाखाका एक स्टेशन है।

शम्बरचन्द्र (सं० पु०) शम्बर नामकः चन्द्रः। धाराही-चन्द्र, शूकरचन्द्र।

शम्बरचन्द्रन (सं० क्ली०) एक प्रकारका चन्द्रन जो शम्बर पर्वत पर होता है। इसे शम्बर या शम्बर चन्द्रन भी कहते हैं। पर्याय—कीरात, बहुलगंध, घल्य, गन्धकाष्ठ, कीरातक, तैलगंध। गुण—शीतल, तिक्त, उत्प्ल तथा यात, श्लेष्म, ध्रम, पिच, विस्फोटक, पामादिकुष्ठ, तुण्णा, ताप और मोहनाशक। (राजनि०)

शम्बरदेशज (सं० पु०) शुक्ररोध, सफेद लोध।

(वैद्यकनि०)

शम्बरपादप (सं० पु०) शुक्ररोध, सफेद लोध।

शम्बरमाग (सं० स्त्री०) १ इन्द्रजाल, जादू। २ शक्ति।

शम्बरसूदन (सं० पु०) शम्बर सूदनति सूदन्यु। कामदेव।

शम्बरहृत्प (सं० क्ली०) शम्बर-हृत्प। शम्बर-हृत्प, शम्बरवध। (भ्रूक् ११२।४)

शम्बरारि (सं० पु०) शम्बरस्वारि। १ शम्बरका शत्रु

मार्गम् कामदेव, मदन । २ प्रधुस जो कामदेवके अग्र-
यार कहे जाने है ।

जम्बराहार (सं० पु०) वनवदर, भरपेरी ।

शम्भरी (सं० स्त्री०) १ मागुवर्णी लता, मूसाकानी ।
२ माया । ३ ध्रुवश्रेणीरूप । ४ द्रवगतीरूप, बड़ी
दृग्ती, बगरेड़ा ।

जम्बरीगन्धा (सं० स्त्री०) वनगुलसी, बर्यो ।

जम्बरीरूप (सं० पु०) शुक्ररोध, सफेद लोच ।

(वाग्य उचरस्थान)

जम्बल (सं० पु० श्लो०) शम्भ-कलच् (उष्य १११०८)
१ कुल । २ यात्राके समय रास्तेके लिये भोजन-सामग्री,
पायेय । ३ तट, किनारा । ४ ईर्ष्या, द्वेष । ५
गम्बर देलो ।

जम्बलपुर (शम्भलपुर)—विद्यार और उदोसेका एक जिला ।
यह ३३°००' २०' ४५' से २१°५५' उ० तथा देशां ८२°३८' से
८४° २६' पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ३७७३
वर्गमील है । इसके उत्तरमें छोटानागपुर, पूर्व और
दक्षिणमें बटुक जिला तथा पश्चिममें बिलासपुर और
रायपुर जिला है । यह छत्तीसगढ़ विभागकी पूर्व सीमा
पर अवस्थित था । जम्बलपुर शहरमें जिलेका विचार-
सदर प्रतिष्ठित है ।

पहले यह छत्तीसगढ़ विभागके अन्तर्भूक्त था, किन्तु
प्राकृतिक, भौगोलिक या ऐतिहासिक संश्रय ले कर
गणना करनेसे उसे छत्तीसगढ़के सीमायत्त नहीं कर
सकते । बालसा या गयमेंटके अधिष्टान जिलेका भंडा
महानदीके उपर्यक्तदेशमें फैला हुआ है तथा यह घामड़ा,
करोण्ड, पटना, रायगढ़, देवागोल और नारणगढ़, जौन-
पुर इन सात सामन्तराज्योंके केन्द्ररूपमें गिना जाता
है ।

इस जिले सर्वांत गण्यशैलमाला दिवाराई देती है ।
पर्वतोंके मोचे भी ऊँची नोचो जमाने हैं । यहाँका 'बड़ा
पदाट' ३५० वर्गमील विस्तृत एक गिरिधरो है । देवी-
गढ़ इसकी सबसे ऊँची चोटी है । समतलक्षेत्रसे
इसकी ऊँचाई प्रायः २२३७ फुट है ।

ऊपर जिन सब गण्यशैलमालाओंका उल्लेख किया
गया, उनका अधिपति महानदीको मोड़ पर अवस्थित

है । मानो यह नदी पर्वतोंको चारों ओरके घेरे हुए है ।
किन्तु दक्षिण पश्चिमकी ओर एक शैलधरो जो ३० मील
तक जा कर सिंधोड़ाघाट नामक गिरिसङ्घट तक चली
आई है । इस स्थानसे रायपुरसे शम्भलपुर जानेका
रास्ता भूम गया है । सिंधोड़ाघाटसे गिरिधरोको
दक्षिण जा कर कुलभरसे पुनः पश्चिमकी ओर घनी है ।
इस कुलभरमें ही विषयात गोष्ट बकैतीका पास है ।
सिंधोड़ासङ्घटमें छत्तीसगढ़के सम्बन्धनादलके साथ
असम्ब गोड़सरदारोंका कई बार युद्ध हुआ था । १८५७
के गदरके समय शम्भलपुरमें शांतिस्थापनके लिये
अङ्गरेज-सेनापति कप्तान उद्य, मेजर सेषसपियर और
लेफ्टेनाण्ट राखोव् बलबलके साथ इसी राहमें
गये थे । वुर्द्वर्ग विद्रोहियोंने इस गिरिसङ्घटमें अङ्ग-
रेजोंसेनादलको अच्छी तरह परास्त किया था । इनके
सिया भाङ्गघाटीकी गिरिमाला भी वियेय उल्लेखयोग्य
है । यह शम्भलपुर नगरसे १० कोस उत्तर छोटा
नागपुर जानेके रास्तेकी पार कर गई है । इस शैल पर
भी उस समय विद्रोहियोंने एक दुर्गैय बगूद रखा था ।
इसका सर्वोच्चशिखर ६६३ फुट ऊँचा है । दक्षिणकी
ओर महानदीकी एक सीपमें कुछ गण्यशैल लण्ड लण्ड
भायमें ३० मील तक फैले हुए हैं । उनमेंसे प्रथम
१५६३ फुट और दोदावाली २३३१ फुट ऊँचे हैं ।
जिलेमें जो सब गण्यशैल विरामित हैं, उनमें सुगारि
१५४६ फुट, घेला १४५० फुट और रसोड़ा १६४६ फुट
ऊँचे हैं ।

किंवदन्ती है, कि राजा नरसिंहदेवके भाई बलराम-
देव शम्भलपुरके प्रथम राजा थे । महाराज नरसिंहदेव
पटनाके १२ वे राजा थे । वे उस समय गढ़नात
राज्योंमें प्रचलन थे । पटना देलो ।

राजा बलरामने अपने भाईसे महानदीकी उद्गु शाखा-
के दूसरे किनारे अवस्थित जङ्गलप्रदेश जागोरल्लरुन पाय
था । उस जङ्गलकी काट कर उहाँने यहाँ एक छोटा
राज्य बसाया तथा अपने ब्राह्मणलक्षे सरयुजा, गढ़ापुर,
योनाई और बामड़ा-राज्योंको युद्धमें परास्त कर अपनी
राज्यसीमा बड़ाई गी । उनके बड़े लड़के हरिनारायण
देव १४६३ ई०को विजयनगरके अधिपती हुए ।

उन्होंने छोटे लड़के मदनपालको वर्तमान शोनपुरराज्य दे दिया था। उन्होंने कंशावर आज भी उस सम्पत्तिको भोग कर रहे हैं।

हरिनारायणके बाद दो सदी तक शम्भलपुर राज्यकी खूब श्रीवृद्धि हुई तथा उसके साथ ही साथ पटनाका प्रभूत प्रभाव जाता रहा। शंभलपुर-राजशक्तिने इस समय बलघोषमें पुष्ट हो सामन्तराज्योंमें शीर्ष-स्थान अधिकार कर लिया था। १७३२ ई०में राजा अमरसिंह शम्भलपुर-सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। सर्व-प्राप्तो महाराष्ट्रशक्ति जब इस सामन्तराज्यपुत्रके राज्य पर चढ़ाई करनेके लिये तय्यार हुई, तब राजा अमरसिंह ने महाराष्ट्रीय सेनाके विरुद्ध हथियार उठाया और परास्त किया। इस समय मराठा-सरदारने कुछ बड़ी कमानें कटकसे महानदीके रास्ते नागपुर भेज दी। शंभलपुर-राजमन्त्री अकबररायने यह संवाद पा कर कमान दखल करनेका संकल्प किया। उन्होंने चुपकेसे पट्टयन्त्र करके नाविकोंके द्वारा नावकी पेंदोको कटवा दिया जिससे कमानके साथ कमानवाही सेना गभीर जलमें डूब गया। पीछे अकबर रायने कमानोंको समुद्रमेंसे निकाल कर शंभलपुर दुर्गमें स्थापित किया। नागपुरपतिको जब यह समाचार मिला, तब उन्होंने शंभलपुरपतिको दण्ड देने तथा कमानोंको फिरसे दखल करनेके लिये मराठी सेना भेजी थी। दुःखका विषय है, कि शंभरपुरमें भा कर सभी युद्धमें खेत रहे। जो बच गये थे, उन्हींने नागपुरमें भाग कर प्राणरक्षा की थी।

१६६७ ई०में अमरसिंहके वंशधर जैतसिंहके शासनकालमें फिरसे महाराष्ट्रदलके साथ शंभलपुरराजका विवाद झड़ा हुआ। इस समय नागपुरराजके आत्मीय नानासाहब दलबलके साथ जगन्नाथदेवके दर्शनके लिये पुरोधाम आते। सारनगढ़, शंभलपुर, शोनपुर और वडके अधिवासियोंने इसी मौकेमें नानासाहब पर आक्रमण कर दिया। नानासाहब जरा भी न डरे और सम्मुख युद्धमें डट गये। विपन्न दलकी गतिविधि देख कर वे कटकसे लौट आये थे। यहाँ कुछ मराठी सेनाको अपने दलमें मिला कर वे दूने उस्ताहसे सामन्त सरदारोंको आक्रमण करने अमसर हुए। दोनों दलमें

कई बार घमसान युद्धके बाद नानासाहबने शोनपुर-सरदार पृथ्वीसिंह और वडके सरदारको कैद कर लिया। इस समय वृष्टिकी मूपलाधारसे सेनादलकी भारी कष्ट भोगना पड़ा था। महाराष्ट्र सेनाको इस कारण भारी बढ़नेका साहस न हुआ। वर्षाके बाद नानासाहब नवलसे बलवान् हो शम्भलपुर राजधानीके सामने जा धमके और महाराष्ट्रसेना द्वारा नगरका अवरोध किया।

इधर राजा जैतसिंहने पूर्वाह्नकालमें महाराष्ट्रसेनाका आगमन संवाद पा कर दुर्गको अच्छी तरह सुरक्षित कर लिया। पांच मास अवरोधके बाद नाना साहबने शंभलपुरको लांघ और सलमाईका द्वार तोड़ दुर्गमें प्रवेश किया। यहाँ दोनों दलमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। युद्धमें शंभलपुरराज पराजित हुए। दुर्ग मराठोंके हाथ लगा। राजा जैतसिंह और उनके पुत्र महाराज शावन्दी हो कर नागपुरमें लाये गये।

इस समय नागपुरराजकी ओरसे भूपसिंह नागक एक मराठा जमींदारने शंभलपुरका शासनभार अपने हाथ लिया। मौका देख कर उन्होंने अपनेकी स्वाधीन राज कद कर घोषित कर दिया। नागपुरपति इस पर बड़े विगड़े और उन्हें दण्ड देनेके लिये महाराष्ट्रसेनाको भेजा। भूपसिंहने कोई उपाय न देख सामन्तराजकी शरण ली और उनकी सहायतासे सिंधोड़ा-सङ्घटमें महाराष्ट्र दलकी परास्त किया। नागपुरमें यह संवाद पहुँचते ही नागपुरपतिने चामरा गांवधिया नामक एक महाराष्ट्रसेनापतिके अधीन फिरसे एक दल सेना भेजी। भूपसिंहने पहले गांवधियाका ग्राम जला दिया था। यह ले कर दोनोंमें कट्टर दुश्मनी थी। गांवधियाने दलबलके साथ आ कर सिंधोड़ा-सङ्घटकी अधिकार कर लिया और भूपसिंहको हटाया। युद्धमें हार खा कर भूपसिंह शंभलपुर भाग आये। यहाँसे वे राजा जैतसिंहकी रानोकी ले कर कोलाघोराकी ओर भागे और महाराष्ट्रकोधसे आत्मरक्षा करनेकी कोशिश की। इसके बाद उन्होंने रानोकी ओरसे अंगरेजोंकी सहायता मांगी। १८०४ ई०में रामगढ़के राज-सैन्यके साथ अंगरेज सेनापति बलान राफसेज शंभलपुर भेजे गये। नागपुरराज रघुजी भीसलेने अंगरेजोंके इस व्यवहार पर

गिरफ्त हो भंगरेज गवर्मेण्टको भूचित कर दिया, "भंगरेज लक्ष्म राज्यमें भंगरेजोंको प्रतिपक्षता करनेकी कोई त्क रत नहीं।" भंगरेज गवर्मेण्टने पूर्वस्वीकृत सन्धिमें अनुसार नागपुरराजको जम्बलपुर छोड़ दिया।

इस समयमें जम्बलपुर शिला कई वर्षोंके लिये मराठोंके शासनाधीन रहा। राजा जेटसिंह और उनके लड़के उस समय चंदामें बंद्दी थे। किन्तु मेजर राफसेजने जंबलपुरसे जा कर जेटसिंहको अपस्था-का वर्णन करते हुए भंगरेज गवर्मेण्टसे इस बातका निवेदन किया, कि जम्बलपुर राज्य जेटसिंहके मिलना चाहिये। फलतः १८१७ ई०में जेटसिंह पुनः जंबलपुरके सिंहासन पर बैठे, किन्तु एक वर्ष बाद ही जेटसिंहकी मृत्यु हुई। कई मास तक जम्बलपुरराज्य राजशुभ्य रहा तथा भंगरेज गवर्मेण्टने उसका शासनकार्य परिदृशन किया। भाजिर भंगरेज गवर्मेण्टके अनुप्रदसे महाराज शाह सिंहासन पर बैठे, किन्तु उन्होंने अपने पूर्वपुत्रोंकी तरह सामन्त राजाओंमें फिर जीर्णोत्थान नहीं पाया। इस समय मेजर राफसेज भंगरेज गव-र्मेण्टकी भोरसे जम्बलपुरमें असिष्टाण्ट एजेण्टरूपमें नियुक्त हुए। १८२७ ई०में महाराज शाहकी मृत्यु हुई। पीछे उनकी विधवा रानी मोहनकुमारी राजसिंहासन पर बैठी।

इस समय सुरेश्वर शाह और गोविन्द सिंह नामक दो चौदाग पोरने अपनेअपने सामन्तपदके प्रकृत उत्तरा-धिकारी बत्ता कर गये पर बैठनेकी चेष्टा की। इस मूलमें राज्यमें गोर विभूतल्ला उपस्थित हुई। विप्लव-कारियोंके राजनतिकी अपमानना कर जम्बलपुर राज-धानीके निकटवर्ती प्रायोंके लूटा। इस पर एजेण्ट सिद्धिगन न रह सके। लेपटेनाण्ट हिमिगन द्वारा विद्रोही दल भगाये जाने पर भी उन्होंने हजाराबागसे नताम बिलकिमनके जंबलपुरमें बुलाया। बिलकिमनने कई विद्रोहियोंके फौजों पर लटक दिया। इससे बाद उन्होंने राजेश्वर कुमर करके उनकी जगद पर नारा-यण सिंह नामक एक दलके जंबलपुरके सिंहासन पर बैठाया। वह दलक जंबलपुरके मूलमें राजा बानिधार सिंहके भोरमें और बिसों भाष्य जातिकी समलोके गभरेज उपभक्त हुआ था।

नारायणकी इच्छा नहीं रहने हुए भी उसने राज्यप्र-दण किया। क्योंकि वह जानता था, कि भंगरेजों-सेनाके बाद ही उस पर विप्लवका पदाङ्क टूट पड़ेगा। भाजिर हुआ भी यही। लखनपुरके गोंड सरदार दल-मन्न शाहने पहले ही जंबलपुरराजके विपक्ष मनोपारण किया। भाजिर वह पदपदाङ्क शील पर नारा गया।

१८२६ ई०में मेजर उसले जंबलपुरके असिष्टाण्ट एजेण्ट नियुक्त हुए। इस समय पूर्वोक सुरेश्वर शाहने फिरसे जंबलपुर राज्य पानेकी मागनासे अपनेअपने हर्ष राजा मधुकर शा वंजोद्भय कद कर घोषित किया। इस मूलसे राज्यमें एक घोर विप्लव लड़ा हुआ। १८४० ई०में जगने दो बारभोवकी सहायतासे रामपुरराज दूरि-याव सिंहके पिता और पुत्रके मार डाला। इस अवस्था पर ये जौयन भरके लिये छोटानागपुर जेतमें यन्त्रो हुए थे।

१८४६ ई०में नारायणसिंहकी मृत्यु हुई तथा जंबल-पुर अङ्गरेज गवर्मेण्टके हाथ आया। अङ्गरेज गवर्मेण्टने जंबलपुरकी सम्पत्ति हाथमें ले कर ही चार भागा राजस बद्धा दिया तथा राजदत्त देवोत्तर या प्रदोत्तर निष्कर जमीन अयूत करली। इससे प्रालम्बप्रधान जंबलपुरमें लोभोंकी भारी भरभरौप हो गया। १८५४ ई०में फिरसे चार भागा कर बढ़ाया गया। इससे गिरफ्त हो स्थानीय प्राणिकोंने रांचीमें इस विप्लवके प्रति काराधी भाषेदन किया। किन्तु कोई फल न होनेसे पुंभाती नाम धीरे धीरे घबक उठो। १८५७ ई०के मद्रमें उस दलिकी प्रदीन शिवाय जंबलपुरके शासन-पेश्वरकी जला टालनेकी कोशिश की। शिवाहियोंमें जेतयानेसे सुरेश्वरशाह और उनके भाइयोंकी मुक्त कर दिया। विद्रोहमें लुटे हुए सिंदकी तरह सुरेश्वरशाह उसी समय जंबलपुर भा घमके। उनके प्रतिद्वन्द्वी राव्यापशारी गोविन्दसिंहकी छोड़ अन्वय्य सभी सर-दारोंने इस विद्रोहमें उनका साथ दिया था।

सुरेश्वरशाहने बाकी सेना संग्रह कर अपनेअपने जंबल-पुरका लोभोत्तर कद कर घोषित किया। प्राथम अन्-दुर्ग उनके प्रामाद्वयमें परिणत हुआ। विपक्ष अङ्ग-रेजकी उद्दे दल देनेके लिये अग्रसर होने देल थे निद्वय

हो गये और, सबोंके परामर्शसे वे अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करेंगे, ऐसा स्पष्ट हुआ। किन्तु अकस्मात् उनकी युधि पलट गई। मौका देख कर उन्होंने दुर्गाको छोड़ जङ्गलायत पहाड़ीदेशमें आश्रय लिया तथा विद्रोहियोंसे मिल कर अंगरेजोंके साथ युद्ध करने लगे। १८६० ई० तक इसी तरह चलता रहा। अंगरेज-गवर्नेट घृथा चेष्टा करके उनके पीछे पड़ो, किन्तु कहीं भी उनका पता न चला। उनके अधीनस्थ दलदल अंग्रेजोंके विरुद्ध मनमाना अत्याचार करने लगे। जिन सब प्रामवासियोंने गवर्नेटका पक्ष लिया था, दुर्घुत्तोंने वे सब गांव लूट कर जला दिये थे। यूरोपीय कर्मचारी डा० मूर मारा गया। बड़पहाड़के समीप विद्रोहिदल लेफ्टेनाण्ट उड्डात्रिजको मार उसका शिर काट ले गया। राजद्रोहीके प्रति क्षमा-सूचक घोषणापत्र (Proclamation of amnesty) जारी किया गया, फिर भी विद्रोही दल शान्त न हुआ। १८६१ ई०में मेजर इम्पे अङ्गरेजी प्जेण्ट हो कर शबलपुर आये। उन्होंने विद्रोहियोंके विरुद्ध कठोर शासन दण्ड चलाया और प्रजाधर्मके प्रतिप्रद शासननीतिका अवलंबन करनेके लिये संकल्प किया। उन्होंने पहले सामन्तोंको यथेष्ट पुरस्कारका लोभ दे कर वशीभूत कर लिया। उन लोगोंके अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करने पर महामति इम्पे उनकी सहायतासे विद्रोहदमन करनेमें समर्थ हुए थे। १८६२ ई०में विद्रोह जड़से उखाड़ दिया गया। सुरेंद्रशाहने स्वयं अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया।

दूसरे वर्ष फिरसे विद्रुयका सूत्रपात हुआ था। किन्तु इस बार उसने भीषण रूप धारण नहीं किया। शासनशुद्धका स्थापित करनेके लिये अंग्रेज गवर्नेटने शबलपुर जिला मध्य प्रदेशमें मिला लिया। उस समयके चीफ कमिश्नर मि० टेम्पल जब पहले इस स्थानको देखने आये, तत्र स्थानीय अधिवासियोंने सुरेंद्रशाहकी अपना राजा बनाना चाहा और उन्हींके हाथ राज्य-शासनभार देनेका अनुरोध किया। इसके बाद ही कमलसिंहके अधीन विद्रोहिदलने फिरसे विद्रोह-पट्टि प्रज्वलित की। कमलसिंह पूर्ण विद्रोहमें

सुरेंद्रशाहके सेनापति थे। इस घटनाके बादसे हो विद्रोहिदल बार बार अत्याचार और उल्कीड़न करने लगा। अङ्गरेज गवर्नेटने सुरेंद्रशाहको उत्तेजनाकारी समझ कर १८६४ ई०में उन्हे कैद कर लिया। किन्तु वे विद्रोहियोंके साथ पड़्यतमें मिलित थे, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला, फिर भी अङ्गरेज-गवर्नेटने उन्हे नैतिक अपराधमें अपराधी परार कर आत्मीय और अनुचरोके साथ जीवन भरके लिये कैदमें रखा। तभीसे शबलपुरमें शांति विराजने लगी। १९०६ ई०में एक स्वतंत्र शासनकर्त्ता नियुक्त करनेकी व्यवस्था हुई, वङ्गदेशके कुछ जिलोंको आसाम प्रदेशमें मिला कर 'पूर्व वङ्ग और आसाम' नामक स्वतंत्र शासनक्षेत्रके अधीन किया गया। इस समय शबलपुर जिलेको मध्यप्रदेशसे अलग कर उड़ीसाकी शासन सीमामें मिला दिया गया।

इस जिलेमें १ शहर और १३३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। यहांके प्रधान अधिवासी गोंड, कोल्ता, शबर और अहीर हैं। कृषि जीवीकी संख्या ही अधिक है। व्यवसाय-याणिज्यका उतना आदर नहीं है। कौछी एक प्रकारका वट्टिया कपड़ा तैयार करते हैं। कामवार कांसे और पीतलके बरतन बनाते हैं। प्रायः प्रत्येक गाममें स्थानीय लोगोंके व्यवहार्य मोटा सूती कपड़ा बुना जाता है। यहांसे चायल, तेलहन, अपरिष्कृत चीनी, लाख, टसर, रुई और लोहकी विभिन्न स्थानोंमें रपतनी होती तथा लवण, परिष्कृत चीनी, यिलायती कपड़े, नारियल, मसलिन, वट्टिया देशी कपड़े और अनेक प्रकारकी घातुकी आम-दनी होती है। कटक और मिर्जापुरके साथ यहांका साधारणतः याणिज्य चलता है। रायपुर, शङ्कड़ा, राईखोल, अङ्गल, पञ्चपुर, चन्द्रपुर, विडुवा, रांची और दिलासपुर आदि स्थानोंमें रेलगाड़ी द्वारा याणिज्यका माल भेजा जाता है। महानदीसे भी १० मील तक माल आता जाता है।

यहांका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं है। उधरका प्रकीर्ण समी समय देखा जाता है। नया आदमी यहां आते ही उधरसे भारी कष्ट पाता है, यहाँ तक कि वह

गिरक हो भंगरेज गवर्मेण्टको सूचित कर दिया, "भंगरेज राज्यमें भंगरेजोंको प्रतिपक्षता करनेको क्यों उद्भव नही।" भंगरेज गवर्मेण्टने पूर्वस्थोक्त सन्धिके अनुसार भागपुरपत्तिका प्रशंभलपुर छोड़ दिया।

इस समयमें शंभलपुर जिला कई वर्षोंके लिये मराठोंके शासनाधीन रहा। राजा जेतसिंह और उनके लड़के उस समय चंदांमें पड़े थे। किन्तु मंगर राफसेजने शंभलपुरमें आ कर जेतसिंहकी अपत्याका वर्णन करते हुए भंगरेज गवर्मेण्टसे इस बातका निवेदन किया, कि शंभलपुर राज्य जेतसिंहके मिलना चाहिये। फलतः १८१० ईमें जेतसिंह पुनः शंभलपुरके सिंहासन पर बैठे, किन्तु एक वर्ष बाद ही जेतसिंहकी मृत्यु हुई। कई मास तक शंभलपुरराज्य राजशाय रहा तथा भंगरेज गवर्मेण्टने उसका शासनकार्य परिदृशन किया। आखिर भंगरेज गवर्मेण्टके अनुमतिसे महाराज शाह सिंहासन पर बैठे, किन्तु उन्होंने अपने पुत्रपुत्रोंकी तरह सामन्त राजाओंमें फिर शोषणमान नहीं पाया। इस समय मंगर राफसेज भंगरेज गवर्मेण्टकी ओरसे शंभलपुरमें अस्तिष्ठाएट एजेण्टरूपमें नियुक्त हुए। १८२० ईमें महाराज शाहकी मृत्यु हुई। पीछे उनकी विधवा रानी माहनकुमारी राजसिंहासन पर बैठी।

इस समय सुरेन्द्र शाह और गोविन्द सिंह नामक दो चौदाग योदोंने अपनेके सामन्तपदके प्रथम उत्तराधिकारी बना कर गद्दी पर बैठनेकी चेष्टा की। इस वृत्तसे राज्यमें घोर विद्रोहका उपस्थित हुई। विद्रोहकारियोंने राजनिकीसे अपमानना कर शंभलपुर राजधानीके निकटवर्ती प्रान्तोंको लूटा। इस पर एजेण्ट निद्रिग्न न रह सके। लेपटेनाएट हिमालय द्वारा विद्रोही दल समाप्त करने पर भी उन्होंने हजरोबागसे बगान विद्रोहसततके शंभलपुरमें सुलावा। विलकिन्सनने कई विद्रोहियोंके फाँसों पर लटक दिया। इसके बाद उन्होंने शत्रुके राजवन्धन करके उनकी जगह पर नारायण सिंह नामक एक व्यक्तिसे शंभलपुरके सिंहासन पर बैठाया। यह एक शंभलपुरके तुल्य राजा बनियास सिंहके भौतस और किन्तों भाष्य जातिकी रमणोंके सहित उपगत हुआ था।

नारायणको इच्छा नहीं रहते हुए भी उसमें राज्यप्रद प्रथम किया। क्योंकि यह ज्ञातता था, कि भंगरेजोंसेनाके बाद ही उस पर विद्रोहका पदाङ्क डूट पड़ेगा। आखिर हुआ भी गद्दी। शंभलपुरके गौड़ सरदार बनगद शाहने पहले ही शंभलपुरराजके विषय मन्त्रधारण किया। आखिर यह बहपदाङ्क शैल पर मारा गया।

१८२६ ईमें मंगर उसने शंभलपुरके अस्तिष्ठाएट एजेण्ट नियुक्त हुए। इस समय पूर्वोक्त सुरेन्द्र शाहने किरसे शंभलपुर राज्य पानेकी आशासे अपनेके ही राजा मधुकर शा यज्ञोद्भव कह कर घोषित किया। इस वृत्तसे राज्यमें एक घोर विद्रोह लड़ा हुआ। १८४१ ईमें अपने दो भातृभयोंकी सहायतासे रामपुरराज द्वितीय सिंहके पिता और पुत्रके मार डाला। इस अवस्था पर ये जीवन भरके लिये छोटानागपुर जिलेमें गये हुए थे।

१८४६ ईमें नारायणसिंहकी मृत्यु हुई तथा शंभलपुर अङ्गरेज गवर्मेण्टके हाथ आया। अङ्गरेज गवर्मेण्टने शंभलपुरकी सम्पत्ति हाथों ले कर ही चार भागा राज्य बद्धा दिया तथा राजपुत्र देवोत्तर या प्रलोत्तर निरकर जमीन जपूत कर ली। इससे प्राधान्यमान शंभलपुरमें लोगोंकी मारो अस्तोष हो गया। १८५४ ईमें किरसे चार भागा कर बढ़ाया गया। इससे निरक हो स्थानोंय प्राधान्यनि रावीमें इस विषयके प्रति कारार्थ भाषित किया। किन्तु कोई फल न होनेसे धुंमती नाम धीरे धीरे घपक उठा। १८५७ ईमें गदरमें उस पहिलेकी प्रथम निधाने शंभलपुरके सामन्तपदकी जला हालनेकी कोशिश की। सियाहियोंने जेनरालसे सुरेन्द्रशाह और उनके भातृभयोंकी मुक्त कर दिया। विद्रोहोंके लिये हुए विद्रोही तरह सुरेन्द्रशाह उसी समय शंभलपुर भा घमके। उनके प्रतिद्वन्द्वी राज्यपक्षसे गोविन्दसिंहकी छोड़ अन्यथा सनी सरदारोंने हम विद्रोहमें उनका साथ दिया था।

सुरेन्द्रशाहमें काफी सेना संग्रह कर अपनेकी शंभलपुरका अजोम्बर कह कर घोषित किया। ताबोत मन्तुर्ग उनके सामन्तपदमें परिगत हुआ। विद्या अङ्गरेजकी उम्मेद एट देवने लिये अथमर होते देव से निवृत्त

हो गये और सर्वोके परामर्शसे वे अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करेंगे, ऐसा सिद्ध हुआ। किन्तु अकस्मात् उनकी वृद्धि पलट गई। मौका देख कर उन्होंने दुर्गको छोड़ जङ्गलायुत पदाडिदेशमें आश्रय लिया तथा विद्रोहियोंसे मिल कर अंगरेजोंके साथ युद्ध करने लगे। १८६० ई० तक इसी तरह चलता रहा। अंगरेज गवर्मेंट पृथा चेष्टा करके उनके पीछे पड़े, किन्तु कहीं भी उनका पता न चला। उनके अधीनस्थ दलवल अंग्रेजोंके विरुद्ध मनमाना अत्याचार करने लगे। जिन सब प्रामवासियोंने गवर्मेंटका पक्ष लिया था, दुर्घुत्तोंने वे सब गांव लूट कर जला दिये थे। यूरोपीय कर्मचारी डा० मूर मारा गया। बड़पहाड़के समीप विद्रोहदल लेपटेनाएट उड.ग्रिजको मार उसका शिरकाट ले गया। राजद्रोहोके प्रति क्षमा-सूचक घोषणापत्र (Proclamation of amnesty) जारी किया गया, फिर भी विद्रोही दल शान्त न हुआ। १८६१ ई०में मेजर इम्पे अङ्गरेजी एजेण्ट हो कर शरवलपुर आये। उन्होंने विद्रोहियोंके विरुद्ध कठोर शासन दण्ड चलाया और प्रजाधर्मकी प्रतिप्रद शासननीतिका अवलंबन करनेके लिये संकल्प किया। उन्होंने पहले सामन्तोंको यथेष्ट पुरस्कारका लोभ दे कर वशीभूत कर लिया। उन लोगोंके अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करनेपर महामति इम्पे उनकी सहायतासे विद्रोहदमन करनेमें समर्थ हुए थे। १८६२ ई०में विद्रोह जड़से उखाड़ दिया गया। सुरेन्द्रशाहने स्वयं अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया।

दूसरे वर्ष फिरसे विद्रुवका स्वभाव हुआ था। किन्तु इस बार उसने भीषण रूप धारण नहीं किया। शासनश्रृङ्खला स्थापित करनेके लिये अंग्रेज गवर्मेंटने शरवलपुर जिला मध्य प्रदेशमें मिला लिया। उस समयके चीफ कमिश्नर मि० टेम्पल जब पहले इस स्थानको देखने आये, तब स्वानोय अधिवासियोंने सुरेन्द्रशाहको अपना राजा बनाना चाहा और उन्हींके हाथ राज्यशासनभार देनेका अनुरोध किया। इसके बाद ही कमलसिंहके अधीन विद्रोहदलने फिरसे विद्रोह-वर्धि प्रवृत्त की। कमलसिंह पूर्ण विद्रोहमें

सुरेन्द्रशाहके सेनापति थे। इस घटनाके बादसे ही विद्रोहदल बार बार अत्याचार और उतपीडन करने लगा। अङ्गरेज गवर्मेंटने सुरेन्द्रशाहको उत्तेजनाकारी समझ कर १८६४ ई०में उन्हें कैद कर लिया। किन्तु वे विद्रोहियोंके साथ पड़्यत्नमें लिप्त थे, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला, फिर भी अङ्गरेज-गवर्मेंटने उन्हें नैतिक अपराधमें अपराधी परार कर आत्मीय और अनुचरोंके साथ जीवन भरके लिये कैदमें रखा। तभीसे शरवलपुरमें शांति विराजने लगी। १९०६ ई०में एक स्वतंत्र शासनकर्त्ता नियुक्त करनेकी व्यवस्था हुई, जङ्गदेशके कुछ जिलोंको आसाम प्रदेशमें मिला कर 'पूर्व-जङ्ग और आसाम' नामक स्वतंत्र शासनकर्त्ताके अधीन किया गया। इस समय शरवलपुर जिलेको मध्यप्रदेशसे अलग कर उड़ीसाकी शासन सीमामें मिला दिया गया।

इस जिलेमें १ शहर और १६३८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। यहाँके प्रधान अधिवासी गोंड, कोस्ता, शबर और गहीर हैं। कृषि जीविकोका संख्या ही अधिक है। व्यवसाय-याणिज्यका उतना आवर नहीं है। कोष्ठी एक प्रकारका बढ़िया कपड़ा तैयार करते हैं। कामवार कांसे और पीतलके बरतन बनाते हैं। प्रायः प्रत्येक गाममें स्थानीय लोगोंके व्यवहारों मोटा सूती कपड़ा बुना जाता है। यहाँसे चायल, तेलहन, अपरिष्कृत चीनी, लाख, टसर, रुई और लोहकी विभिन्न स्थानोंमें रपतनी हातो तथा लवण, परिष्कृत चीनी, विलायती कपड़े, नारियल, मसालिन, बढ़िया देशी कपड़े और अनेक प्रकारकी धातुकी आभूषणनी होती हैं। कटक और मिर्जापुरके साथ यहाँका साधारणतः याणिज्य चलता है। रायपुर, शङ्करा, राशरखील, अङ्गूल, पद्मपुर, चन्द्रपुर, विङ्गु, रांची और बिलासपुर आदि स्थानोंमें रेलगाड़ी द्वारा याणिज्यका माल भेजा जाता है। महानदीसे भी ६० मील तक माल आता जाता है।

यहाँका व्याप्य उतना अच्छा नहीं है। ज्वरका प्रकोप समी समय देखा जाता है। नया आदमी यहाँ आते ही ज्वरसे भारी कष्ट पता है, यहाँ तक कि वह

जमी जमी मारामक ही जाता है। उदरामय रोगसे लोग अथवा रोगी दिन रहते हैं। प्रीत्यके समय यह विष्णु विक्रममें परिवर्तित हो कर लोगोंका प्राणनाशक होता है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला दो तहसीलोंमें विभक्त है, जम्बलपुर और चण्डगढ़। छिपटो कमिश्नर और उनके तीन सहायकारों छिपटो कलकुर और एक सहायिपटो कलकुर द्वारा शासनकार्य परिचालित होता है। दोषानो विभागमें हरएक तहसीलमें एक डिस्ट्रिक्ट जज, दो सचिविनेट जज और एक मुनसफ रहते हैं।

विद्यानिष्ठामें यह जिला बहुत विद्युत् हुआ है। जम्बलपुर नगरमें एक हाई-स्कूल, एक मिडिल इंगलिश स्कूल, ६ वर्नाकुलर मिडिल स्कूल और १२० प्राथमरी स्कूल हैं। इनके निवा जिले भरमें छः सरकारी-पालिका स्कूल हैं। उक्त सभी स्कूलोंमें उड़िया भाषा सिखाई जाती है। सभी लोगोंका ध्यान विद्या-निष्ठाकी ओर गया है और नये नये स्कूलों में प्रतिवर्ष जोले जा रहे हैं। स्कूलके लिये सात पब्लिकहाल्य भो है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षां २१°८' से २१°५०' उ० तथा देशां ८३°२६' से ८४° २६' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २ हजार और जनसंख्या ४ लाखके करीब है। इसमें एक नहर और ७६६ प्राम लगने हैं। इस तहसीलमें ५ दोषानो और ३ फीजदारी अदालत तथा सात सामग्न राय है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार सहर। यह अक्षां २१°२८' उ० तथा देशां ८३°५८' पू०के मध्य महा-नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १२८०० है। वर्षाऋतुमें मझमदीका पाट १ मील तक फैल जाता है, किन्तु अर्धवर्ष मात्रामें जल घटता है। नदीका विस्तार उस समय सिर्फ १०० हाथ रह जाता है। नगरके दूसरे किनारे घना अजकब्र उद्भूत दिखाई देता है। वर्षाकालमें इस अजकब्रके बौरमें बल बल नाच करती हुई मझमदी प्रबल वेगसे बहती है, अथ नगर और नदीकूलकी मोना बड़ी समझीय हो जाती है। नदीके किनारे तो विस्तृत आशानि पत्तिका बाग है, पर अधिवासीकी सुखसमृद्धिका परिचय देता है।

नगरके दक्षिणार्धमें उच्च गिरियाला नगरपुष्टो एकके लिये छापी है।

यहले इस नगरकी अवस्था उतनी अच्छी न थी। १८६४ ई०से संस्कार आरंभ हुआ। इसके पहले नगरके प्रधान प्रधान राजसेसे पैलगाड़ी बड़ी मुश्किलसे आती थी। नगरके उत्तर पश्चिम अर्धमें प्राचीन दुर्गका ध्वंसा-यशेर दिखाई देता है। नदीके किनारे छोटो फूरो होवाल और कई घम भाज भो विद्यमान हैं। चारो ओरकी गढ़बाईं आज भी पूर्णस्मृति याद दिलाती है सारी, पर उसमें पहलेकी तरह जल नहीं रहता। दुर्गमें तिसो जगह प्रयेनहार नदीं है। केवल शामलाई देवोमन्दिरके सामुबन्ध शामलाई द्वारका कुछ अंश आज भी दृष्टिगोचर होता है। शामलाई देवोका जम्बलपुरकी अधिष्ठातो देवो रूपमें पूजन होता है। इसके लिये दुर्गसोमाके भीतरी भागमें और भी कितने मन्दिर हैं, जिनमें पद्मेभरोदेवी, वृद्धा जगन्नाथ और भक्त नारीके मन्दिर प्रधान हैं। ये सब मन्दिर १६वीं सदीके बने हैं और सर्वोकी बनायट एक-सो है। उगमें उतनी पारी गरी देखो नदीं जाती। उक्त दुर्गके पास ही 'बहा-बाजार' नामक प्राम है। यहाँ नदीके किनारे अदालत और सचिविजल शाकिसरकी कचहरीके बनाव या शे सराय, जेलघाना, हाई-स्कूल, बालिका-स्कूल और अन्य ताल है।

जाबली (सं० खी०) कुट्टिनी, गुट्टनी ।
जम्बलपुर (सं० पु०) बामनोकीव सामाज्यके अनुगार एक हैरव । इसे केनरीबागसे मारा था ।
जम्बल (अ० पु०) जलियांर, जनिदपरवार ।
जम्बल (सं० लि०) इत्यं हृष्टमवपुत्रोममाहयने जम्बल-उत्प-क-क । (द्वितीय गुनीपलभरीकाय कृती । प ५५५१८) दो बार आहृष्ट क्षेज, यह गिन या जमीन जो दो बार उपजाई गई हो । पयाप—द्विगुणाहृष्ट, द्विगोपा हृष्ट, द्विहृष्ट, द्विमोत्या । (अमर)
जम्बु (सं० पु० खी०) जम्ब-उत्प-कु-वा । जम्बु, गोपा, गोप ।
जम्बुक (सं० पु० खी०) जम्ब-कम-रवापे । जम्बुक-मुगामरथ (उच्य ५५५१) १ जलजम्बुविशेष, गोपा,

सोप । पर्याय—जलशुक्ति, शम्भूका, शंभूष, शम्भूक, शंभू, शंभुष, जलद्विष, दुश्चर, पङ्कमण्डक ।

(पु०) २ गजकुम्भका अप्रमाण, हाथीके सूँडका अगला भाग । ३ एक शूद्र तपस्वी । इसकी तपस्याके कारण, वेतायुगमें रामराज्यमें एक ब्राह्मणका पुत्र अकाल मृत्युको प्राप्त हुआ था, अतः इसे रामने मार कर मृत ब्राह्मण-पुत्रको पुनर्ज्जीवित किया था । ४ वैद्यविशेष । ५ शङ्ख । ६ भुद्र-शङ्ख, छोटा शंख । ७ प्राणनाशक कीट विशेष । (सुभूत)

शम्भू (सं० पु०) शम्भू देखो ।

शम्भूक (सं० पु०) शम्भुक देखो ।

शम्भूकपुष्पी (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी देखो ।

शम्भूका (सं० स्त्री०) शंभूक टाप । शम्भुक देखो ।

शम्भूकाघतैल (सं० स्त्री०) कर्णरोगाधिकारोक्त तैलीयध विशेष । प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैलमें शंभूकका मांस भून कर वह तैल कर्णगत नाड़ीरोगमें डालनेसे विशेष उपकार होता है ।

घृहव शंभूकाघतैल—शंभूक मांस २ सेर, जल १६ सेर, शोष ४ सेर, कटुतैल ४ सेर, कुट्ट, केशराज, क्षेत्तर्पटी, अङ्गुसकी छाल, अकवनका पत्ता, घूहरका दूध, मोषा, बिल्वमूल, शालिश्रपत, किशमिश, अतोस, मुलेठी, कचूर, रेड्डीका मूल और कपासका फल, प्रत्येक दो तोला तथा भृङ्गाराज और नागकेशर ४ तोला, इनका क्वक ले कर तैलमें पाक करे । यह तैल कानमें भर देनेसे नाड़ीमण अति शीघ्र प्रशमित होता है ।

(रत्नाकर)

शम्भूकावर्त्त (सं० पु०) सन्निपातज भगवद्दर्शन । इस रोगमें गोस्तन सहस्र भिन्न भिन्न रंगके फोड़े निकलते हैं । ये फोड़े वेदनाविशिष्ट और स्नायुक्त होते हैं । इसमें जो नाड़ीमण देखा जाता है, वह शंभूकके आवर्त्त की तरह होता है, इसीलिये इसका नाम शंभूकावर्त्त रखा गया है ।

शम्भ (सं० स्त्री०) शमस्त्वस्य शंभ (पा ५।२।६।३८) कल्याणयुक्त, मङ्गलविशिष्ट ।

शम्भर (सं० पु०) एक ऋषिक नाम ।

शम्भल (सं० पु०) ग्रामविशेष । (भारत वनपर्व) इसका

वर्त्तमान नाम शंवलपुर है । यह किसीके मतसे गोण्डवानाके और किसीके मतसे मुरादाबादके अन्तर्गत है । भागवतके मतसे (१२।२।१८) इस ग्राममें भगवान् कल्कि अवतीर्ण होंगे । कल्किपुराणमें लिखा है, कि यहाँ ६० तीर्थ हैं तथा कल्किक्षुपमोचनार्थ भगवन् कल्किरूपमें अवतीर्ण हो कर वन्युर्बाधवर्षके साथ हजार वर्षों तक अवस्थान करेंगे ।

स्कन्दपुराणके शंभलग्राममाहात्म्यमें उन सब तीर्थोंका परिचय दिया गया है ।

शम्भल—१ युक्तप्रदेशके मुतादाबाद जिलान्तर्गत एक तहसील । यह अक्षां २८° २०' से २८° ४६' उ० तथा देशां ७८° २४' से ७८° ४४' पू०के मध्य विस्तृत है । भूपरिमाण ४६६ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है । इसमें ३ शहर और ४६६ ग्राम लगते हैं । सीत और गङ्गानदीका मध्यवर्त्ती समतलक्षेत्र ले कर यह विभाग संगठित है । यह लम्बाईमें ३२ मील है । गेहूँ और ईल यहाँको मुख्य उपज है ।

२ उक्त तहसीलका एक परगना ।

३ उक्त जिलेके अन्तर्गत एक नगर और तहसीलका विचार सदर । यह अक्षां २८° ३५' उ० तथा देशां ७४° ३४' पू०के मध्य विस्तृत है । यह सीत नदीसे ४ मील पश्चिम और मुरादाबाद सदरसे २३ मील दक्षिण-पश्चिम अलीगढ़के रास्ते पर अवस्थित है । नगर विस्तृत श्यामल शस्त्रक्षेत्र और वनमालाविभूषित प्राग्तरमें बसा हुआ है । महाभारतीय युगमें यह नगर विशेष समृद्धिशाली था, अभी वह समृद्धि बिलकुल जाती रही है । प्राचीन ध्वस्तकोरिस्तूपके ऊपर वर्त्तमान नगर खड़ा है । भालेश्वर और चित्रेश्वर नामक दो बड़े स्तूप आज भी नगर प्राचीरके उपरिस्थ यप्रयोका स्मृतिचिह्न रक्षा करते हैं ।

मुसलमान अग्नुदयके प्रारम्भसे ही शासनकर्त्ता इसी नगरमें राजधानी उठा लाये । मुगल-बादशाह अकबरके राज्यकालमें यहाँ एक सरकारकी विचारकेन्द्र प्रतिष्ठित था तथा तभीसे यह मुगलराज्यकी राजधानीरूपमें गिना जाने लगा ।

नगर छोटा होने पर भी सुन्दर है । यहाँ म्युनिसिपलिटो है । नगर और उसके उपकण्ठके रास्ते पक्के हैं ।

कभी कभी मारात्मक ही जाता है। उदरामय रोगसे लोग अक्सर पीड़ित रहते हैं। प्रारम्भके समय वह विषु-चिकारमें परिणत हो कर लोगोंका प्राणनाशक होता है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला दो तहसीलमें विभक्त है, शंभलपुर और बड़गढ़। डिपटी कमिश्नर और उनके तीन सहकारी डिपटी कलक्टर और एक सबडिपटी कलक्टर द्वारा शासनकार्य परिचालित होता है। दीवानो विभागमें हर एक तहसीलमें एक डिस्ट्रिक्ट जज, दो सपोर्टिनेट जज और एक मुनसफ रहते हैं।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पिछड़ा हुआ है। शंभलपुर शहरमें एक हाई-स्कूल, एक मिडिल इंगलिश स्कूल, ६ घर्नाकुलर मिडिल स्कूल और १२० प्राइमरी स्कूल हैं। इनके सिवा जिले भरमें छः सरकारी-वालिका स्कूल हैं। उक्त सभी स्कूलोंमें उड़िया भाषा सिखाई जाती है। अमी लोगोंका ध्यान विद्या-शिक्षाकी ओर गया है और नये नये स्कूल भी प्रतिवर्ष खोले जा रहे हैं। स्कूलके सिवा सात चिकित्सालय भी हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१°८' से २१°५७' उ० तथा देशा० ८३°२६' से ८४°२६' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २ हजार और जनसंख्या ४ लाखके करीब है। इसमें एक शहर और ७६६ ग्राम लगते हैं। इस तहसीलमें ५ दीवानो और ७ फौजदारी अदालत तथा सात सामन्त राज्य हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार सद्गर। यह अक्षा० २१°२८' उ० तथा देशा० ८३°५८' पू०के मध्य महा-नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १२८७० है। वर्षाऋतुमें महानदीका पाट १ मील तक फैल जाता है, किन्तु अर्धवर्ष ऋतुओंमें जल घटता है। नदीका विस्तार उस समय सिर्फ १०० हाथ रह जाता है। नगरके दूसरे किनारे घना झाड़का जङ्गल दिखाई देता है। वर्षाकालमें उस झाड़वनके बीचसे कल कल नाद करती हुई महानदी प्रवल वेगसे बहती है, सब नगर और नदीकुलकी शोभा बड़ी रमणीय हो जाती है। नदीके किनारे जो विस्तृत आर्द्रादि फलका बाग हैं, यह अधिवासोकी सुखसमृद्धिका परिचय देता है।

नगरके दक्षिणांशमें उच्च गिरिमांला नगरपुष्टकी रक्षाके लिये बड़ी है।

पहले इस नगरकी अवस्था उतनी अच्छी न थी। १८६४ ई०से संस्कार आरंभ हुआ। इसके पहले नगरके प्रधान प्रधान रास्तेसे बैलगाड़ी बड़ी मुश्किलसे आती थी। नगरके उत्तर-पश्चिम अंशमें प्राचीन दुर्गका ध्वंसा-वशेष दिखाई देता है। नदीके किनारे टूटी फूटी दीवाल और कई घर आज भी विद्यमान हैं। चारों ओरकी गढ़वाई आज भी पूर्वस्मृति याद दिलाती है सही, पर उसमें पहलेकी तरह जल नहीं रहता। दुर्गमें किसी जगह प्रवेशद्वार नहीं है। केवल शामलाई देवीमन्दिरके समुद्रस्थ शामलाई द्वारका कुछ अंश आज भी दृष्टिगोचर होता है। शामलाई देवीका शंभलपुरकी अधिष्ठात्री देवीरूपमें पूजन होता है। इसके सिवा दुर्गसोमाके भीतरी भागमें और भी कितने मन्दिर हैं, जिनमें पद्मेश्वरीदेवी, बृद्धा जगन्नाथ और धनन्त शायोके मन्दिर प्रधान हैं। ये सब मन्दिर १६वीं सदीके बने हैं और सर्वोकी बनावट एक-सो है। उनमें उतनी कारी गरी देखी नहीं जाती। उक्त दुर्गके पास ही 'बड़ा-याजार' नामक ग्राम है। यहाँ नदीके किनारे अदालत और सबडिजिजल आफिसकी कचहरीके अलावा दो सराय, जेलघाना, हाई-स्कूल, वालिकास्कूल और अस्पताल हैं।

शम्भली (सं० खी०) कुट्टिनी, कुट्टनी।
शम्भसादन (सं० पु०) बालोकीव रामायणके अनुसार एक देव। इसे केशरीदानरने मारा था।
शम्भा (अ० पु०) शनिवार, शनैश्चरवार।
शम्भाकृत (सं० त्रि०) शम्भ कृतमध्यनुलोममाकृतये शंभ-वा-च्छ-क-क। (द्वितीय तृतीयशम्भवीजात्-कृषी) पा १५।५।५८) दो बार भाकृत क्षेज, वह स्वेत या जमीन जो दो बार उपजाई गई हो। पर्वण्य—द्विगुणाकृत, द्वितीयाकृत, द्विद्वय, द्विसोत्या। (भयर)
शम्भु (सं० पु० खी०) शंभ-उण् कु वा। शंभुक, घोषा, सोप।
शम्भुक (सं० पु० खी०) शंभ कन्त् स्थांथे, शम ऊक युगागमश्च (उष् ५।५१) १ जलजंतुविशेष, घोषा,

सोप। पर्याय—जलशुक्ति, शम्भुका, शंभूषव, शम्भूक, शंभू, शंभुषव, जलडिम्ब, दुश्चर, पङ्कमण्डक।

(पु०) २ गजकुम्भका अग्रभाग, हाथोंके सूँडका अगला भाग। ३ एक शूद्र तपस्वी। इसकी तपस्याके कारण तैतायुगमें रामराज्यमें एक ब्राह्मणका पुत्र अकाल मृत्युको प्राप्त हुआ था, अतः इसे रामने मार कर मृत ब्राह्मण-पुत्रको पुनरुज्जीवित किया था। ४ दैत्यविशेष। ५ शङ्ख। ६ क्षुद्र शङ्ख, छोटा शंभू। ७ प्राणनाशक कीट विशेष। (सुभ्रूत)।

शम्भू (सं० पु०) शम्भू देखो।

शम्भूक (सं० पु०) शम्भूक देखो।

शम्भूकपुष्पी (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी देखो।

शम्भूका (सं० स्त्री०) शंभूक टाप। शम्भूक देखो।

शम्भूकाघतैल (सं० स्त्री०) कर्णरोगाधिकारोक्त तैलीय विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैलमें शंभूकका मांस भून कर यह तैल कर्णगत नाड़ीरोगमें डालनेसे विशेष उपकार होता है।

घृत शंभूकाघतैल—शंभूक मांस २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, कटुतैल ४ सेर, कुट्ट, केशराज, क्षैतल्पटी, अङ्गूसकी छाल, अकवनका पत्ता, घूहरका दूध, मोषा, विडम्बूक, शालिश्रपत, किशमिश, अतीस, मुलेठी, कचूर, रेङ्गीका मूल और कपासका फल, प्रत्येक दो तोला तथा भृङ्गराज और नागकेशर ४ तोला, इनका कलक ले कर तैलमें पाक करे। यह तैल कानमें भर देनेसे नाड़ीघ्न अति शीघ्र पशमित होता है।

(रत्नाकर)

शम्भूकावर्च (सं० पु०) सन्निपातज भगन्दरोग। इस रोगमें गोष्ठन सदृश भिन्न भिन्न रंगके फोड़े निकलते हैं। ये फोड़े वेदनाविशिष्ट और स्नायुयुक्त होते हैं। इसमें जो नाड़ीघ्न देखा जाता है, वह शंभूकके आवर्च की तरह होता है, इसीलिए इसका नाम शंभूकावर्च रखा गया है।

शम्भ (सं० स्त्री०) शम्भस्त्वस्य शंभ (पा ५।२।६३८) कल्याणयुक्त, मङ्गलविशिष्ट।

शम्भर (सं० पु०) एक ऋषिक नाम।

शम्भल (सं० पु०) ग्रामविशेष। (भात बनर्ष) इसका

वर्तमान नाम शंवलपुर है। यह किसीके मतसे गोएडवानाके और किसीके मतसे मुरादाबादके अन्तर्गत है। भागवतके मतसे (१२।२।१८) इस ग्राममें भगवान कलिक अवतीर्ण होंगे। कलिकपुराणमें लिखा है, कि यहाँ ६० तीर्थ हैं तथा कलिकल्पमीचनार्थ भगव न कलिकल्पमें अवतीर्ण हो कर वज्रबांधवोंके साथ हजार वर्ष तक अवस्थान करेंगे।

शम्भुपुराणके शंभलग्राममाहात्म्यमें उन सब तीर्थोंका परिचय दिया गया है।

शम्भल—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २८° २०' से २८° ४६' उ० तथा देशा० ७८° २४' से ७८° ४४' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है। इसमें ३ शहर और ४६६ ग्राम लगते हैं। सीत और गङ्गानदीका मध्यवर्ती समतलक्षेत्र ले कर यह विभाग संगठित है। यह लम्बाईमें ३२ मील है। गेहूँ और ईस यहाँकी मुख्य उपज है।

२ उक्त तहसीलका एक परगना।

३ उक्त जिलेके अन्तर्गत एक नगर और तहसीलका विचार सदर। यह अक्षा० २८° ३५' उ० तथा देशा० ७४° ३४' पू०के मध्य विस्तृत है। यह सीत नदीसे ४ मील पश्चिम और मुरादाबाद सदरसे २३ मील दक्षिण-पश्चिम अलीगढ़के रास्ते पर अवस्थित है। नगर विस्तृत श्यामल शस्यक्षेत्र और वनमालाविभूषित ग्राम्तरमें बसा हुआ है। महाभारतीय युगमें यह नगर विशेष समृद्धिशाली था, अभी यह समृद्धि विलकुल जाती रही है। प्राचीन ध्वस्तकीर्तिस्तूपके ऊपर वर्तमान नगर खड़ा है। भालेश्वर और विन्कटेश्वर नामक दो बड़े स्तूप आज भी नगर प्राचीरके उपरिस्थ वप्रयोका स्मृतिचिह्न रखा करते हैं।

मुसलमान अस्त्युद्यके प्रारम्भसे ही शासनकर्ता इसी नगरमें राजधानी उठा लाये। मुगल-बादशाह अकबरके राज्यकालमें यहाँ एक सरकारकी विचारकेन्द्र प्रतिष्ठित था तथा तभीसे यह मुगलराज्यकी राजधानीरूपमें गिना जाने लगा।

नगर छोटा होने पर भी सुन्दर है। यहाँ म्युनिस्प-लिटी है। नगर और उसके उपकण्ठके रास्ते पक्के हैं।

इसके सिवा इस नगरसे मुद्राशास्त्र, विलाटी, अमरोहा, चन्दीसी, यह जोड़े और हसनपुर आदि स्थानोंमें जाने जानेकी सुविधाके लिये और भी कितने कच्चे रास्ते हैं। नगरकी सीवामाला प्रायः पक्के कीरे ईंटकी हैं।

कहते हैं, कि दिल्लीके पृथ्वीराजने कन्नौजके जयचन्दको शम्भलके पास ही युद्धमें परास्त किया था। इसकेभी पहले दिल्लीके राजा और सहराब सलारके बीच यहां युद्धमेड़ हुई थी। अतुतुद्दीन पैवकने इसके आस पासके स्थानको तहस नहस कर डाला था, लेकिन कतेरियोनि बार बार आक्रमण करके मुसलमान राजाओंको तहस तहस कर दिया। यहां मुसलमान राजाओं द्वारा नियुक्त एक शासनकर्ता १३४६ ई०में वागी हो गये, पर शीघ्र ही उसका दमन किया गया।

फिरोजशाह अपने शम्भलमें १३८० ई०को एक अफगान नियुक्त किया। उसे हुकुम दिया गया था, कि जब तक हिन्दू-सरदार धरगू जिससे कई एक सैयदोंको मार डाला है, आत्मसमर्पण न कर ले तब तक वह कतेरियों पर चढ़ाई करना और आस पास देशोंको बन्द न करे। १५वीं सदीमें शम्भलमें दिल्लीके सम्राटों और जौनपुरके राजाओंमें घोर संघर्ष हुआ। जौनपुरके राजाओंके अधीनतन पर सिकन्दर लोदीने कुछ वर्षों तक कंचहरी की थी। बाबरने अपने लड़के हुमायूँको यहांका शासक बनाया था।

शहरमें कलकूरी कचहरी और जज-अदालत, पुलिस फाँड़ी, पोष्ट आफिस, साधारण नौपचालय, गिरजा-घर, गवर्मेण्ट और म्यूनििसिपलिटिके साहाय्यप्राप्त विद्यालय, सराय आदि हैं।

यहां परिष्कृत चीनी तैयार होती है। चीनीके यागि-उपसे ही यहांकी प्रसिद्धि है। इसके सिवा यहांसे गेहूँ और अग्याय्य शस्य, घृत और सूखे चमड़ेकी रपतनी होती है। यहाँ जो सूती कपड़ा तैयार होता है, वह स्थानीय अधिवासियोंके काममें जाता है।

शम्भली (सं० खी०) कुट्टिनी, कुटनी।

शम्भलीय (सं० खी०) कुट्टिनी-संबन्धी, कुटनीका।

शम्भलेश्वर (सं० पु०) शिवालिकुमेद।

शम्भय (सं० खी०) शंभु-भय (शमिषाघोः संशयः । वा

३।२।१५) १ जिनसे मङ्गल हो। २ सुतल्लय संसार या सुवितरूप भव अर्थात् परम शिव। "नमः शम्भवाय"
(शुक्लपत्र० १६।१२)

शम्भविष्ट (सं० खी०) अयमेवामतिशयेन शंभुः शंभु-इष्टम् (वा ३।३।१५) जो स्वयंप्रिया मङ्गल करता हो।

शम्भु (सं० पु०) शं मङ्गलं भवत्यस्मादिति शंभू-उ। (अितद्रवादिस्य उपसंख्यानम् । वा ३।३।१८० वार्तिक) १ शिव, महादेव। २ ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक। (विष्णुपु० १।१।१२३ १२४) ३ द्रष्टा। (महाभारत) ४ युद्ध। (मदिनी) ५ विष्णु। (हलायुध) ६ सिद्धि। (शबररत्ना०) ७ श्वेताक्ष, सफेद जाक। ८ अग्नि। (महाभारत) ९ पारद, पारा। १० एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १६ वर्ण होते हैं। (खी०) ११ सुखसंबन्धनाकारो, सुखको भावयिता अर्थात् सबद्धयिता या वृद्धिकारक।

(शुक० २।४।१३)

शम्भु—१ काश्मीरके एक कवि। ये श्रीकण्ठचरित-प्रणेता आनन्द वैद्यके पिता थे। इन्होंने अन्यायित-मुक्तालता और राजेन्द्र-पार्श्वुर नामक ग्रंथ लिखे। पद्यायलीमें इनके रचे अनेक श्लोक देखे जाते हैं। २ कामधेनु नामक एक द्वाधितिके रचयिता। हेमाद्रिने परिशेषलण्डमें इनका मत उद्धृत किया है। ३ हृदयेन्द्र काव्यटीकाके प्रणेता। ४ एक प्राचीन पण्डित। ये परिभाषेन्दुटीकाके प्रणेता नौपालदेव तथा हरणदेवके पिता थे।

शम्भुकावतां (सं० खी०) १ शंभुकी स्त्री, पार्वती। २ दुर्गा।

शम्भु कालदास—रामचन्द्रकाव्यके रचयिता।

शम्भुकैतन (सं० पु०) पीतशाल। (वैद्यकनि०)

शम्भुगञ्ज—मैमनेसिंह जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह नशिराबादसे तीन मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां स्थानीय उत्पन्न द्रव्यकी एक छोटी हाट लगती है। इस हाटमें प्रति दिन बहुत रुपयेके मालको खपत होता है। इसे जिलेका एक यागिउपकेन्द्र कहनेमें कोई अरुयुक्ति न होगी। यहांसे कलकत्तेको हर साल प्रायः ७५ हजार मन पाद, ३० हजार मन चावल तथा १० हजार मन सरसो भेजी जाती है।

शम्भुगिरि (सं० पु०) शम्भुहा गर्वात, कैलास । यह एक तीर्थ है । एकन्दपुराणान्तर्गत शम्भुगिरिमाहात्म्यमें इसका विषय सविस्तार वर्णित है ।

शम्भुचन्द्र—१ रङ्गपुर जिलेके काकिनोयाके जमींदार । इन्होंने १६वीं सदीके प्रारम्भमें ग्रन्थ लिखा । २ नवग्रोपके अधिपति महाराज कृष्णचन्द्रके वंशधर । ये यद्दुकोर्त्तिशाली और ह्यानशाल थे ।

शम्भुजी—छत्रपति शिवाजीके ज्येष्ठ पुत्र । १६५८ ई०में इनका जन्म हुआ था । दिल्लीके बादशाह औरङ्गजेबकी चालाकीसे शिवाजी जब दिल्लीमें कैद हुए, उस समय पिताके साथ ये भी भाग गये । शिवाजीकी मृत्युके बाद १६८० ई०से १६८६ ई० तक इन्होंने राज्य किया । तदनन्तर मुगल-सेना इनको कैद कर दिल्ली ले आई और दिल्लीमें औरङ्गजेबने बड़ी निर्दयतासे इन्हें मार डाला । ये विषयासक्त और मद्यप्य थे ।

शम्भुतनय (सं० पु०) शम्भोस्तनयः । १ गणेश । २ कात्तिकेय । ३ शम्भुके पुत्र ।

शम्भुनेत्रसं (सं० क्री०) पारद, पारा । (रेन्द्रसार०) शम्भुदास—गणितपञ्चविंशतीकाकार ।

शम्भुदेव—प्रज्ञातिप्रकाशिकाके प्रणेता । ये ब्रह्मानन्दके शिष्य थे ।

शम्भुनन्दनं (सं० पु०) शंभो नन्दनः । १ कात्तिकेय । २ गणेश ।

शंभुनाथ (सं० पु०) १ शिव, महादेव । २ नेपालका विख्यात शैवतीर्थ । नेपाल देखो ।

शंभुनाथ—१ भुषनेश्वरीस्तोत्रके रचयिता पृथ्वीधरके गुह । २ कालज्ञान और सन्निपातकलिका नामक दो वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता । ३ गणितसारके रचयिता । ४ जातकभूषणके प्रणेता । ५ शंभुतत्त्वानुसन्धान नामक ग्रन्थके रचयिता ।

शंभुनाथ आचार्य—सङ्केतकीमदी नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता ।

शंभुनाथ कवि—भाषाके कवि वन्दोजन । ये संवत् १७६८ में उत्पन्न हुए थे । 'रामविलास' नामक एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ इन्होंने बनाया है । इस ग्रन्थमें गणक छन्द है ।

शंभुनाथ त्रिपाठी—एक भाषा-कवि । ये डोडियाखेराके रहनेवाले थे । इनका जन्म संवत् १८०६ में हुआ था । ये राजा अचलसिंहके दरबारी कवि थे । इन्होंने राव रघुनाथसिंहके नामसे चैतालपचौसीको संस्कृतसे हिन्दी भाषामें अनूदित किया है । सुहृत्त्रिंशतामणिका भी नाना छन्दोंमें इन्होंने भाषानुवाद किया है ।

शंभुनाथ पण्डित—कलकत्ता हाईकोर्टके सर्गप्रथम देशी जज । शंभुनाथ कश्मीरी ब्राह्मण थे । इनके पिताका नाम था सदाशिव पण्डित । सन् १८२० ई०में कलकत्तेमें शंभुनाथका जन्म हुआ । इनके चचा कलकत्तेकी सदर अदालतमें पेशकार थे । चचाके कोई पुत्र न था । इस कारण उन्होंने बड़े भारीकी सम्मतिसे शंभुनाथको दत्तकग्रहण किया । कलकत्तेमें शंभुनाथका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था । इस कारण ये ललनऊ पढ़नेके लिये भेज दिये गये । वहाँ कुछ उर्दू और फारसी पढ़ कर अङ्गरेजी पढ़नेके लिये ये काशी गये । काशीसे कलकत्ते आ कर ये ओरियण्टल सेमिनरीमें भर्त्ता हुए । इस समय इनकी अवस्था सिर्फ १४ वर्षकी थी । यहाँ इन्होंने अङ्गरेजी-साहित्यमें विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया । १८४१ ई०में सदर अदालतमें २० मासिक पर ये हर्क बहाल हुए । १८४६ ई०में ये डिगरी जारी करानेके मुद्दरिरे हुए । इसी समय इन्होंने डिगरी जारी करानेके संवन्धमें एक ग्रन्थ लिखा, जिसके कारण जजोंने इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की । १८४८ ई०में इन्होंने वकालतकी परीक्षा दी और उसमें ये उत्तीर्ण हुए । इसी वर्ष नवम्बर महीनेसे ये वकालत करने लगे । षोड्हे दिनोमें फौजदारी मुकदमोंमें इनका बड़ा नाम हुआ । १८५५ ई०में ये जूनियर सरकारी वकील नियुक्त हुए । इसी समय ४०० मासिक वेतन पर ये प्रेसिडेन्सी कालेजमें कानूनके अध्यापक हुए । इसके षोड्हे दिनोके बाद ही ये हाईकोर्टके जज हो गये । १८६७ ई०में पिङ्की रोगसे इनकी मृत्यु हुई । ये स्त्री-शिक्षाके पक्षपाती थे । सबसे पहले इन्होंने ही अपने कन्याको वैद्यन कालेजमें पढ़नेके लिये भेजा था । इन्होंने भवानोपुरमें एक अस्पताल बनवाया है, जो शंभुनाथ पण्डित हास्पिटलके नामसे प्रसिद्ध है । भवानोपुरमें इनके नाम पर एक स्ट्रीट भी है ।

शम्भुनाथ मिश्र—१ भाषाके एक कवि । इनका जन्म १८०३ सम्बत्में हुआ था । ये भगवन्तराय श्रीचौके यहाँ असोथरमें रहते थे । ये अनेक शिष्योंकी कवि बना गये हैं । "रसकलोल", "रसतरङ्गिणी" और "मलङ्कारदीपक" नामक तीन ग्रन्थ इन्होंने लिखे हैं ।

२ वैसधारेके रहनेवाले एक भाषा-कवि । संवत् १६०१में इन्होंने जन्म ग्रहण किया । ये राणा यदुनाथसिंह लखौर गांवके यहाँ रहते थे । थोड़ी ही अवस्थामें ये करालकालके गालमें पतित हुए । वैसयंशाथली और जियपुराणके चतुर्थ खण्डका इन्होंने भाषान्तर किया । शम्भुनाथसिंह—सोतारामद्वारेके रहनेवाले एक सोलहवीं शतक के । सं० १७३८में इनकी उत्पत्ति हुई । ये मतिराय लिपाठीके बड़े मित थे । इनके यहाँ कवियोंका बड़ा आदर था । इन्होंने नायिकाभेदका कोई ग्रन्थ भी बनाया है । (शिवसिंहखरोज)

शम्भुनाथसिंहराजशाही— दिनभास्कर, दुर्गादेवकी सुदी, देवीपूजनभास्कर, अकालभास्कर और वर्षभास्कर नामक ग्रन्थके रचयिता । शैलोक दो ग्रन्थ इन्होंने अपने प्रतिपालक राजा धर्मदेवकी आज्ञासे लिखे थे । १७१५ ई०में अकालभास्कर लिखा गया था ।

शम्भुनाथघाँन—एक तन्त्र ।

शम्भुप्रसाद कवि—एक भाषा-कवि । इनकी शृङ्गाररस-सम्बन्धी कविता उत्तम होती थी । (शिवसिंहखरोज) शम्भुमिया (सं० खो०) शम्भोः मिया । १ दुर्गा । २ मानलकी, भाँवला । (शब्दरत्ना०)

शम्भुबीज (सं० पु०) पारद, पारा ।

शम्भुमट्ट—कालतरवियेचंगसारसंग्रह, त्रिशच्छ्लोकी विवरणसारोद्धार (यह ग्रंथ रघुनाथदत्त त्रिशच्छ्लोकी वृद्धदिवरण ग्रन्थकी टीका), पाकयज्ञप्रयोग और भट्ट कोषिका-प्रभावली नामक ग्रन्थके प्रणेता । शैलोक ग्रंथ १७०८ ई०में रचा गया । इनके पिताका नाम बालकृष्ण भट्ट तथा शुद्धका नाम खण्डदेव था । ये मण्डल शम्भुमट्ट नामसे भी विदित थे । शम्भुमट्टीय नामके न्यायग्रंथ इनके लिखे थे वा नहीं कह नहीं सकते ।

शम्भुभूषण (सं० पु०) महादेवजीका भूषण, चंद्रमा ।

शम्भुमनु (सं० पु०) स्याशम्भुव मन्वन्तर जो सबसे पहला मन्वन्तर है ।

विशेष विवरण स्याशम्भुव और मनु शब्दमें देखो । शम्भुमहादेवज्ञेय—एक शैवतार्थी । स्कन्दपुराणान्तर्गत शंभुमहादेवज्ञेयमाहात्म्यमें इसका विवरण सविस्तार वर्णित है ।

शम्भुराज—नीतिमञ्जरीके प्रणेता ।

शम्भुराम—१ आदमविद्याविलासके प्रणेता । २ छन्दोमुक्तावलीके रचयिता । ३ ताजिकालङ्कारके प्रणेता । १७२० ई०में यह ग्रन्थ रचा गया । इनके पिताका नाम गोकुल था ।

शम्भुलोक (सं० पु०) महादेवजीका लोक, कैलास ।

शम्भुवल्लभ (सं० क्ला०) शंभोर्वल्लभम् । १ श्वेतकमल, सफेद पद्म । (पु०) २ शंभुकी प्रिय वस्तु ।

शम्भुसिंह—मेवाड़के महाराणा । इनके पिताका नाम था शाहूलसिंह । महाराणा स्वरूपसिंहकी मृत्यु होने पर उनके भतीजे शंभुसिंह मेवाड़की राजगद्दी पर बैठे । १८६१ ई०में इनका राज्यभ्रमिण्ये हुआ था । उस समय ये बालक थे, इस कारण एक शासक-समिति स्थापित की गई और वही शासन करने लगी । परन्तु उस शासक-समितिके सदस्य मनमाने व्यवहार करने लगे । इस हेतु गवर्नमेंटके दूसरे व्यवस्था करनेवाले वही अवकी वार तीन आरम्भियोंकी एक समिति फायम हुई और इसके समापित हुए स्वयं पोलिटिकल पजेण्ट साहब ।

महाराणा शंभुसिंहको १८६५ ई०के नवम्बर महीने में शासनका अधिकार मिला । परन्तु दुःखका विषय है, कि महाराणा शंभुसिंहका अधिकार मेवाड़ पर बहुत दिनों तक नहीं रहा । बहुत थोड़े ही दिनोंमें सन् १८७४के अक्टूबर महीनेकी ७वींको २७ वर्षकी अवस्थामें इनका परलोक वास हो गया । प्रजाने सोचा था, कि महाराणा शंभुसिंहके शासनमें सुखसे समय बीतेगा, किन्तु उनकी यह मधुर आशा उष्यकी रथी रह गई ।

शम्भू (सं० पु०) शंभू-कृष्ण (शुभा संशान्वयोः) । १। ३। २। (१७६) शम्भुदेवी ।

शम्भुनाथ (सं० पु०) शम्भुनाथ देवो ।

शम्भु (सं० पु०) आङ्गिरसमेद ।

(पञ्चविंशत्तमः १५।१।११)

शया (सं० स्त्री०) शययतेऽनयां शम यत्-टाप् । १

पुगकीलक, यह लड़की या खूँटा जो बम और जूएके

मिले छेदोंमें डाला जाता है, सैल, सैला । (शुक

३।३।१३) २ लकुट, यष्टि, दण्ड । (अपर्णा ३।३।१०)

३ अश्वत्थगर्मां शमी । (शुक १०।३।१०) ४ दक्षिण-

हस्तगृहीत तालविशेष । (सङ्गीतदामोदर)

शय्याक (सं० पु०) आरवध, आगलतास ।

शय्याक्षेप (सं० पु०) शय्यायाः क्षेपो यत् । १ साति-

शय प्रमित यष्टि उसी अवस्थामें सवेग निक्षिप्त हो जहां

तक पहुँचे अर्थात् जहां जा कर यह यष्टि गिरे निक्षेप

स्थानसे उतनी दूर परिमित भूमि । २ यक्षविशेष ।

शय्याताल (सं० पु०) दक्षिणहस्तगृहीत तालविशेष ।

(सङ्गीतदामोदर)

शय (सं० स्त्री०) शीते सर्वमस्मिन्निति प्रापो वस्तुनः कर्मा-

धीनत्वात् । शीघ्र (भा ३।३।१८) १ हस्त, हाथ । २

शय्या । ३ सर्प, साँप । ४ निद्रा, नींद । ५ पण । (स्त्रि०)

६ शयनकारी, सोनेवाला । ७ अवस्थानकारी, रहने-

वाला ।

शय (अ० स्त्री०) १ वस्तु, पदार्थ, चीज । २ मूल, प्रेत ।

३ यह देवो ।

शयण्ड (सं० पु०) शी-अण्डन् (उष्ण १।१२८) १ एक

प्राचीन जनपदका नाम । २ इस देशका निवासो । ३

निद्रालु, यह जिसे नींद आई हो ।

शयण्डक (सं० पु०) शयण्ड स्वार्थे कन् । १-शयण्ड

देवो । २ शकलास, गिरगिट ।

शयत (सं० पु०) निद्रालु, यह जिसे नींद आई हो ।

(संक्षिप्तभारोप्यादि०)

शयतान (अ० पु०) शीतान देवो ।

शयतानो (अ० स्त्री०) शीतानो देवो ।

शयथ (सं० पु०) शीते इति शी-अथ (शीटशयीति । उष्ण

३।१३) १ अजगर, सर्प । २ मृत्यु, मौत । ३ घराट,

शूकर, सूअर । ४ मस्स्य, मछली । (संक्षिप्तभारोप्यादि०) ५

गाढ़ो नींद । ६ वम ।

शयन (सं० स्त्री०) शी-न्युट् । १ निद्रा । २

शय्या । ३ स्त्रीसङ्ग, मैथुन । ४ सर्वदेव शयनकाल अर्थात्

आषाढी शुक्ला एकादशीसे ले कर कार्तिकी शुक्ला एकादशी

तकका समय । इस समय पहले हरि और पीछे एक

एक कर सभी देव, यक्ष, नाग और गन्धर्वागण कुछ

समयके लिये सुखशय्या पर सोते हैं । वामनपुराणमें

लिखा है, कि सूर्यदेवके मिथुनराशिमें जानेके बाद शुक्र-

पक्षीय एकादशीमें वासुकीके फण पर सोपवोतक जगत्-

पति श्रीहरिके शयनकी कल्पना कर पहले उनकी पूजा

पीछे ब्राह्मणोंकी । अनन्तर दूसरे दिन द्वादशीकी उन सब

ब्राह्मणोंकी अनुमति ले कर भगवान्को सुलाये । सबेरे

तैय्येशीके सुकोमल सुगन्धित कदम्बकुसुमशय्या पर

कामदेव, दूसरे दिन चतुर्दशी तिथिको सुवर्णपङ्कजके

ऊपर यक्षगण, पीर्णमासीकी व्याघ्रचर्म पर पिनाकी

निद्रितायवधामें रहते हैं ।

इसके बाद सूर्यदेव जब कर्कट राशिमें जाते हैं,

तब छापण प्रतिपत् तिथिको नीलोत्पलदलशय्या पर

ब्रह्मा, द्वितीयाको विश्वकर्मा, तृतीयाको गिरिसुता,

चतुर्थीको गणपति, पञ्चमीको धर्मराज, षष्ठीको

कार्तिकेय, सप्तमीको सूर्यदेव, अष्टमीको भगवती कल्प्या-

यनी, नवमीको कमलालया लक्ष्मी, दशमीको नागराज-

गण और एकादशीको साध्यागण कुछ समयके लिये

सुखशय्या पर शयन करते हैं ।

उक्त प्रकारसे देवताओंकी शयनक्रिया सम्पन्न

होते न होते प्रायुट् काल आ पहुँचता है । इस समय

गङ्गाध्रवलाका आदि पक्षोगण सुखनिद्रासे समय

वितानेके लिये पर्वत पर चढ़ जाते हैं । वहाँ घायस धीर

यथाकालमें गर्भभाराक्रान्त घायसो घोसला बना कर

वहाँ सुषंसे सोनी है ।

जिस द्वितीयामें विश्वकर्माके शयनका विषय लिखा

है, उस तिथिमें गन्धपुष्पादि द्वारा लक्ष्मीके साथ पर्व-

ङ्गस्य श्रीवटसलाष्ठन चतुर्भुजमूर्त्तौ हरिको अम्बर्चना

करके स्वादिष्ट और सुगन्धित फल चढ़ाके उनकी शय्या

पर रख देना होगा । तथा—

“यथादि लक्ष्म्या न विपुञ्जते त्व” त्रिविक्रमानन्त जगन्निवास ।

तथा स्वस्वयं शयनं यदेव तस्माकमेवेद तव प्रयादात् ।

यदा त्वशून्यं तव देव तल्पं स्वयं दि लक्ष्म्या शंभने सुरेश ।
यत्पदेन सेनापितृवीर्यविष्णोर्गाहैस्त्वपरागो मम चास्तु देव ॥”

इस मन्त्रसे भगवान्को प्रणाम तथा उन्हें प्रसन्न करनेके लिये बार बार यथेष्ट चेष्टा करे । इस अर्चनाके दिन प्रतीको चाहिये, कि वह तैलक्षारविद्यार्जित उपवास और अर्चनाके बाद रातको हविष्यान्न भोजन करे । दूसरे दिन 'लक्ष्मीघर प्रीयतां मे' इस मन्त्रसे फल चढ़ा कर किसी सत्शील ब्राह्मणको दान करना होगा । इस प्रकार चानुर्मास्य प्रतिका प्रतिपालन करना कर्त्तव्य है । इसके बाद दियाकरके शिवक राशिस्थ होमेसे उक्त सुपुत सुरगण क्रमशः प्रयुक्त होते हैं ।

भाद्रमासकी सुगण्डिका नक्षत्रमुक्त कृष्णाष्टमी तिथि-का नाम कामाष्टमी है । इस तिथिमें जगत्के सभी लिङ्गोंमें शिव शयन करते हैं, अतएव इसमें जिस दिन लिङ्गके समीप पुजादि करनेसे नक्ष्य फलकी प्राप्ति होती है । (वासनपु०)

भविष्य और नारदीयपुराणमें निम्नोक्त रूपसे हरि-शयनादिकी व्यवस्था है—घनुराघाके आद्यपादमें श्री विष्णुका शयन, भ्रवणाके मध्यपादमें उनका पार्श्वपरि-वर्त्तन और रेवतीके अन्त्यपादमें उत्थान कथित होता है । इन सब नक्षत्रोंके यथानिर्दिष्ट पादोंका सांघ टन यथाक्रम आपाद, भाद्र और कार्तिक मासको शुक्ल पक्षादशो तिथिमें तथा उन सब दिनोंके निशा, संध्या और दिया भागमें होनेसे यह अवश्य फलप्रद होता है । विस्तृत यदि ऐसा न हो, तो उस द्वादशोमें यथाक्रम शय-नादि कार्या निर्वाह करना होगा ।

यराहपुराणमें स्वयं भगवान्ने इस सम्बन्धमें कहा है, कि आपाद शुक्लद्वादशोमें कदम्ब, फूटज, धवक और बज्रुन आदिके पुष्प द्वारा पहले यथाविधि मेरी अर्च-नांन कर पीछे 'नमो नारायणाय' कद जो विधिपूर्वक मन्त्र पढ़ते हैं, वे किसी भी युगमें अघापतित नहीं होंगे ।

इसके बाद भाद्रमासकी शुक्ल पक्षादशो तिथिमें भगवान्के पार्श्वपरिवर्त्तनके उपलक्ष्यमें यथाविधि उनकी पुजा होय करे ।

कागकूपीय निबन्धमें लिखा है, कि भाद्रमासकी

शुक्ल द्वादशो तिथिमें निम्नोक्त मन्त्रसे थोहरिका पार्श्व-परिवर्त्तन करना कर्त्तव्य है ।

“वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशो तव ।
पार्श्वेण परिवर्त्तनस्य सुखं सपिदि माषव ॥
त्वयि सुते जगन्नाथ जगत् स्वयं चराचरम् ॥”

इसके बाद उत्थानके सम्बन्धमें ब्रह्मपुराणमें लिखा है—

“एकादस्यास्तु शुक्लायां कार्तिके माषि देवायम् ।
‘प्रसुतं’ बोधयेद्रात्री भद्राभक्तिवृत्तित्वात् ॥”
“कृत्वा नै मम कर्माणि द्वादश्यां मत्परो नरा ।
ममेव बोधनायां इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥”

दोनों श्लोकोंमें तिथिघटित संशय होनेसे कहा जाता है, कि एकादशीकी रातको प्रसुत बेशयके अर्च-नादि कार्या समाप्त करके दूसरे दिन द्वादशीको मेरे प्रयोगके लिये मन्त्रका पाठ करे ।

चाञ्चल्यति मिश्र कहते हैं, कि उक्त दोनों मन्त्र पढ़नेके बाद निम्नोद्धृत मन्त्र भी पढ़ना कर्त्तव्य है । यथा—

“उत्तिश्लोसिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।
त्यथा चोत्थीयमानेन उदियतं भुवनत्रयम् ॥”

कल्पतरु आदि प्रथलिखित संयाशुसुसार गुण-चरण आदिने शयनोत्थान सम्बन्धीय मन्त्रकी इस प्रकार मीमांसा की है—द्वादशो या पक्षादशो इसके जिस जिस दिनमें रेवती नक्षत्रके अन्त्यपादका योग होगा, उस दिन दिया भागमें उत्थानक्रिया करे और यदि किसी भी दिन नक्षत्रका योग न हो, तो द्वादशोमें ही उक्त क्रिया करनी होगी ।

जीमूतवाहनने स्पष्ट कहा है, कि आपाद, भाद्र और कार्तिक मासकी शुक्ल द्वादशोमें ही यदि यथाक्रम अनु-राघाके आद्य, भ्रवणाके मध्य और रेवतीके अन्त्यपाद-का योग हो, तो उन सब द्वादशियोंमें ही यथाक्रम भग-वान्को शयन, पार्श्वपरिवर्त्तन और उत्थानक्रिया करना ही सर्वश्रेष्ठ कल्प है ।

थोहरिके शयनादि सम्बन्धमें नार प्रकाशकी निम्नः विधि है, यथा—

(१) द्वादशीकी रातको नक्षत्रका योग होनेसे उसी दिन शयनादिक्रिया कर्त्तव्य है ।

(२) उक्त प्रकारसे नक्षत्रका योग नहीं होने पर जिस तिथिमें यद्योक्त समय उनका पादयोग होगा, उसी दिन शयनादि कर्त्तव्य है ।

(३) यदि उक्त दोनों प्रकारसे तिथि नक्षत्रका समावेश न हो, तो जिस तिथिमें सन्धिकालमें अर्थात् शाम या सुषुप्त नक्षत्रका योग होगा उसी दिन यथासमय क्रियादि करनी होगी ।

(४) यदि इस तरह किसी प्रकार तिथिनक्षत्रका योगायोग न हो, तो द्वादशीकी सार्यसंधिमें शयनक्रिया और प्रातःसन्धिमें प्रबोधनक्रिया सम्पन्न करे । फिर पाश्चपरिवर्त्तनक्रिया जिस प्रकार संधिमें की जाती है, तदनुसार ही करनी होगी ।

यमस्मृतिमें लिखा है, कि आपाढो शुक्ला एकादशीसे ले कर पौर्णमासी पर्यन्त श्रीहरिका निद्राग्रहणरूप शयनकाल है, इस कारण ब्रह्मपुराणमें भी पहले एकादशीमें शयनका उल्लेख करके उस दिनसे ले कर पांच दिन तक वह कर्म करनेका विषय कहा गया है ।

शयन, उत्थान और पाश्चपरिवर्त्तनघटित एकादशीमें प्रत्येक आदमीकी धनशान रहना कर्त्तव्य है; इस संबंधमें स्वयं भगवान्ने कहा है, 'कि मेरे शयन, उत्थान और पाश्चपरिवर्त्तनके दिन फल, मूल या जलाहारी व्यक्ति मेरे हृदयमें शैल (वरछा) मारते हैं अर्थात् उस दिन फल, मूल या जल विन्दुमात्र भी ग्रहण करनेसे शल्यविद्यवत् मुझे वेदना होती है ।

'मन्त्रयने भद्रस्थाने भद्रपाश्वरपरिवर्त्तने ।

फणमूलजलहारी हृदि शल्यं ममार्षयेत् ।' (एकादशीतत्त्व)

मर्यादगणका शयनविधि-निषेध ।

चङ्गिपुराणमें लिखा है, कि सार्यसन्ध्यायन्दनादि करके अन्तिमें आहुति दे और उसकी उपासना करे । पीछे मृत्यादि परिवारोंके साथ लघुभोजन करे । इसके बाद गोबरसे लिपे हुए निर्जन पवित्र प्रदेशमें शयन करना कर्त्तव्य है । शयनकालमें निम्नलिखित नियम पालन करने होते हैं । यथा—छानियोंका चाहिये, कि जिस घरके उत्तर और पूर्व क्रमशः निम्न रहता है, वही स्थान शयनके लिये चुने । शयनकालमें सर्जदा पूर्ण और दक्षिणकी ओर सिरहाना रहना उचित है, उत्तर

और पश्चिमकी ओर सिरहाना कदापि न रखना चाहिये । एक दूसरेसे सट कर या तिर्गक भावमें सोना कदापि उचित नहीं । शून्यालयमें अर्थात् परित्यक्त घरमें, श्मशानमें, एक वृक्षके नीचे, चौराहे पर, शिवालयमें, यक्षनागायतनमें अर्थात् जिन सब स्थानोंमें यज्ञ स्कन्द आदि प्रदवा सर्पादि रहते हैं वहाँ, धान्य-गृहमें, गुरुजन या विप्रोंके अवस्थितस्थानसे ऊपरमें, अशुचिस्थानमें, तृणपत्रादि परिपूर्ण स्थानमें, स्वयं अशुचि, शिखारहित या उलङ्घ्य अवस्थामें, दिनमें, संध्याकालमें, पर्वत पर, शून्य स्थानमें, देवाश्रित वृक्ष पर, जलङ्कन द्वारायुक्त गृहमें अर्थात् जिस घरका दरवाजा जल और कोचड़से भरा रहता है उस घरमें, आर्द्रपद या अधीत पदमें, पलाशकाष्ठ निर्मित खट्टादि पर, बहुविदोर्ण स्थानमें, विद्युत् या अग्निदग्ध स्थानमें, जलके ऊपर और शरके आसन पर शयन करना निषिद्ध है । अतएव इसका किसी प्रकार उल्लङ्घन करनेसे लोग इस लोकमें दुःखी और परलोकमें निरदगामी होते हैं । (बह्मिपुराण)

स्मृत्यादिके मतसे सूर्यके रहते शयनशय्याको विछाना और उठाना निषिद्ध है अर्थात् प्रति दिन सूर्यास्तके बाद विछीना विछाना और सूर्योदयके उदयके पहले उसे उठाना उचित है ।

ध्यासका कहना है, कि शयनकालमें सिरहानेके पास ही एक माङ्गल्य पूर्णकुम्भ वैदिक गण्ड मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्थापन कर शयन करना चाहिये ।

गार्गेने कहा है, कि अपने घरमें दक्षिण या पूर्ण ओर तथा पश्चिममें पश्चिम ओर सिरहाना कर सोनेसे आयुकी वृद्धि होती है । किन्तु उत्तर ओर मस्तक कर कदापि सोना न चाहिये ।

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि पूर्ण ओर मस्तक रख कर शयन करनेसे धन लाभ, दक्षिण ओर आयुवृद्धि, पश्चिम ओर प्रथम चिन्ता और उत्तर ओर मस्तक रख कर सोनेसे हानि और मृत्यु होता है । फिर प्रति दिन रातकी विष्णुकी प्रणाम कर समाधिस्थ हो शयन करे । शून्यगृहमें, श्मशानमें, एक वृक्ष पर, चौराहे पर, शिवालयमें, डेले या पुल पर, धान, गाय, विप्र, देवता और गुरु-

जनसे उभासन पर, भग्न शय्या पर, अपवित्र शय्या पर, स्वयं अपवित्र अवस्थामें, आर्द्र वस्त्रसे उल्लङ्घनस्थामें, उत्तर और पश्चिम की ओर मस्तक रख कर शून्य या धनावृत्ति स्थानमें तथा श्वेताश्रित वृक्ष पर शयन न करना चाहिये ।

महत्स्यसूक्तके श्वेते पटलमें लिखा है—शुद्धी व्यक्तिकी सम्भवाके बाद षोडशक समयमें छा पी कर पैर हाथ घो कर यथाविधि मन्त्रीधारण पर विछावन पर जाना चाहिये । किन्तु ज्ञानमली, कद्म्व, मन्दिर, पलाज और घट आदि लकड़ीके बने हुए तथा कुशमय शय्या पर कमी सोना न चाहिये, सोनेसे पापम.गी होना पड़ता है । इसके सिवा वृक्षादिके नीचे, पाट, शण आदि सूतके ऊपर, शुकान्द्रि द्वारा अपवित्र शय्या पर, खड़ तृण आदिके ऊपर, निरवच्छिन्न मिट्टीके ऊपर तथा पटवस्त्र और कलङ्को अर्थात् किसी प्रकारके दागवाले कम्बल पर सोना निषिद्ध है । शुद्धीके लिये तुला निर्मित शय्या या शुद्ध वस्त्रके ऊपर सोनेकी व्यवस्था है ।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि सूर्यके उदय होने तक तथा उनके अस्त होते ही पीडित व्यक्तिको छोड़ जो निद्रादेवीकी गोदमें पड़े रहते हैं, वे अवश्य ही प्रायश्चित्तके योग्य हैं ।

भायप्रकाशमें लिखा है, कि छानेके बाद धीरे धीरे सी कद्म चल कर पीछे शयन करनेसे शरीरकी पुष्टि होती है ।

"भुक्तोपविशतस्तुन्द" शयानस्य तु पुष्टिता ।

आयुश्चक्रममाणस्य मूर्ध्नुर्धायति धायतः ॥"

उक्त शयनकी व्यवस्था इस प्रकार है—

अष्टभास परिमित काल तक चित हो कर, उससे दूना दाहिनी करघटसे और उससे भी दूना अर्थात् जितनी देरमें (८×२×२) ३२ बार भास निकाल सके उतनी देर तक बाईं करघटसे सोये । उसके बाद जिस ओर इच्छा हो, सो सकते हैं । जन्तुओंके काम पाजुमें नामिके ऊपर पाचकाभिनक अष्टिपान है, अतएव नाईं वस्तु जिससे अच्छी तरह पच जाय उसके लिये छानेके बाद बाईं करघटसे सोना ही बर्त्तव्य है ।

लव्हादि शय्या पर शयनगुण्य ।

खट्टा अर्थात् खट पर सोनेसे त्रिदोषकी शमता होती है ; तुलानिर्मित शय्या पर सोना वातश्लेष्मनाशक है, भूशय्या शरीरकी उपचयकारक और शुक्रजनक तथा काष्ठपीठकी शय्या वायुवर्द्धक है ।

किसी किसीके मतसे भूशय्या अत्यन्त वायुवर्द्धक, रुक्ष और रक्तपित्ताशक है ।

सुशय्या अर्थात् खूब साफ सुधरे दूधकी तरह सफेद शय्या पर सोनेसे अन्तःकरणकी स्फूर्ति, शरीरकी पुष्टि, सहजमें निद्राकर्षण, धारणशक्तिकी वृद्धि, धमनाश और वायु प्रशमित होती है । निष्कृष्ट शय्या इसका विपरीत गुणवाली है, अतएव उस पर कमी सोना न चाहिये ।

७ प्रदोके बारह भावोंमेंसे एक भाव या अवस्था, प्रदोका भाव या अवस्थाविशेष । नीचे प्रत्येक प्रदोको शयन भाव और उस भावापन्न प्रदोका फल लिखा जाता है—

प्रदोका शयनादि भाव जाननेमें जातकके जन्मकालमें प्रदोगण किस किस नक्षत्रमें रहते थे, सबसे पहले उसीका निर्णय करना होता है । पीछे उस प्रदाधिष्ठित नक्षत्र संख्या द्वारा उस संख्याको गुना करे । बादमें प्रदोगण अपना अधिष्ठित राशिके जिस नवांशमें रहते हैं, उस नवांश परिमित अङ्क द्वारा उस गुणनफलको फिरसे गुना करना होता है । अब प्रदोका अपना जन्मनक्षत्र, उस जातकका जन्मलग्नसंख्यक अङ्क और उदयसे जिसने दृष्टमें उसका जन्म हुआ है, वह दृष्ट पूर्वांक गुणनफलमें योग कर उसे १२से भाग दे । यदि भागशेष एक रह जाय, तो उसे प्रदोका शयनभावज्ञानना होगा । इस प्रकार दो-रहनेसे उपवेशन, इत्यादि ।

प्रदोका जन्मनक्षत्र, यथा—रथिका जन्मनक्षत्र १६ विशाला, चन्द्रिका ३ उत्तिका, मङ्गलका २० पूर्वाषाढा, शुभका २२ अथवा, वृहस्पतिका ११ पूर्वफल्गुनी, शुक्रका ८ पुष्या, शनिका २७ रेवती, राहुका २ मारणी, केतुका ६ अश्लेषा ।

कैसे पापप्रद शयन या निद्रित अवस्थामें किसी दुम्बरे पापप्रद कर्तृके दृष्ट न हो कर सप्तम अर्थात् जावा-स्थानमें रहे, तो जातकका शुभफल होता है । रिपुदृष्ट

और रिपुग्रहागत पापप्रद उक्त अवस्थापन्न हो कर सप्तममें रहे, तो पत्नीके साथ जातककी मृत्यु होती है। ऐसा अवस्थापन्न शुभप्रद शुभाशुभप्रद कर्त्तृक द्रष्ट होनेसे सिर्फ जातककी प्रथम पत्नीका वियोग होता है।

उक्त भावद्वयापन्न पापप्रदके सुन या पञ्चम स्थानमें रहनेसे जगत्का शुभ होता है। वह प्रद यदि अपने उच्च मूलविकीर्णस्थ हो, तो सन्तानकी हानि होती है। उस अवस्थाका शुभप्रद यदि शुभप्रद द्रष्ट हो कर सुतस्थानमें रहे, तो जातककी प्रथम सन्तानका अनिष्ट होता है।

मृत्यु या अष्टम स्थानमें उक्त अवस्थाद्वयसम्पन्न पापप्रदके रहनेसे राजा या किसी शत्रुके हाथ जातककी अपमृत्यु होती है। किन्तु वह पापप्रद शुभद्रष्ट होनेसे तो निःसन्देह गङ्गाके किनारे उसकी मृत्यु होगी। शत्रु या पापप्रदद्रष्ट शुभप्रद शयन भावमें मृत्युस्थानमें रहनेसे शिरच्छेद होता है; विशेषतः शनि, मङ्गल या राहुके इसी भावमें उसी स्थानमें रहनेसे अपमृत्यु या शिरच्छेद अनिवार्य है।

कर्म बर्थात् दशम स्थानमें शयन या भोजनभावापन्न पापप्रद रहनेसे जातक दरिद्रताके कारण इस पृथ्वी पर भटकता रहता है।

रविके शयनभावमें किसी स्थानमें रहनेसे जातक मन्दाग्नि, पिच्छशूल, श्लोषद और गुह्यरोगसे आक्रान्त होता है।

चन्द्रमाके शयनभावापन्न होनेसे जातक क्रोधी, दरिद्र, अतिशय लंगट और गुह्यरोगी होता है। यहाँ तक, कि वह हमेशा अस्वस्थ रहा करता है। चन्द्रके लग्नस्थ हो कर शयनावस्थापन्न होनेसे ही जातकके सब रोग अधिक होते हैं, अन्य स्थानस्थ होनेसे उतने नहीं होते।

शयनावस्थापन्न बुधके लग्नमें रहनेसे बालक धन धान, सर्वदा क्षुधित और लज्ज होता है। अन्य स्थानमें इसी भावमें रहनेसे वह दरिद्र और भारी ल'पट होता है।

'पृथस्पतिके शयनावस्थापने' किसी स्थानमें रहनेसे मानव विद्याबुद्धिसमन्वित, नाना गुणयुक्त, दाता और सुखी होता है।

सप्तम अवस्था परादश स्थानमें शुक्रकी शयनावस्था

होनेसे बालक कमी भी दरिद्र नहीं होता, हमेशा सुखी रहता है तथा कम होने पर भी उसे सात पुत्र और पांच कन्या होती है। परन्तु प्रदका बलाबल समझ कर कमी वेशी भी हो सकती है। उस अवस्थापने रहनेसे जातक धनवान्, धार्मिक और सुखी होता है, किन्तु उसका पुत्रनाश अनिवार्य है।

मङ्गलके शयन भावमें किसी स्थानमें रहनेसे जातक लम्पट, कृपण, सुखी, महाक्रोधी, महाद्वेष और परिहृत होता है, किन्तु उसी भावमें पञ्चम और सप्तम स्थानमें रहनेसे यथाकम उसको पहलो सन्तान और पहली स्त्री विनष्ट होती है। शत्रुग्रहस्थ मङ्गल रिपु द्वारा देखे जाने पर जातकके कर्णनासादि या भ्रुजच्छेद और यहाँ रह कर शनि और राहुयुक्त होनेसे शिरच्छेद होता है। शयनभावापन्न मङ्गल यदि लग्नमें रहे, तो जातक हमेशा रोगी रहता तथा दूद, कुष्ठ, विचर्चिका आदि द्वारा उसका शरीरमङ्ग होता है।

शनिके शयनभावमें रहनेसे जातक झुघित, विकलाङ्ग और गुह्यरोगी होता है तथा उसके कोपकी वृद्धि होती है। लग्न, पष्ठ और अष्टममें रहनेसे मानव चिरप्रवासी, दरिद्र और अतिशय विकलाङ्ग होता है। पञ्चम, नवम, दशम और सप्तममें यदि उसका शयनभाव देखा जाय, तो जातक पुत्रवान् और सब प्रकारसे सुखी होता है।

जिसके जन्मकालमें राहुकी शयन अवस्था होती है, उसे नाना प्रकारका क्रोध होता तथा वह हमेशा दुःखी और श्लोषदरोगग्रस्त रहता है। राजाका भी इस अवस्थामें जन्म होनेसे उसके धनकी हानि होती है। किन्तु वृष, मिथुन, सिंह और कन्या राशियों रह कर शयनभावग्रस्त होनेसे मनुष्य सभी सुखोंके अधिकारी होते हैं।

शयन आरती (सां० स्त्री०) देवताओंकी वह आरती जो रातके सोनेके समय होती है।

शयनकक्ष (सां० पु०) सोनिका कमरा या घर, शयनागार।

शयनगृह (सां० पत्नी०) शयनमन्दिर, सोनिका स्थान, शयनागार।

शयनप्रकोष्ठ (सां० पु०) शयनगृह, शयनमन्दिर।

शयनशोधनी (सं० स्त्री०) अथहन मासके वृषण पक्षकी एकादशी ।

शयनभूमि (सं० स्त्री०) शयनस्थान, सोनेकी जगह ।

शयनमन्दिर (सं० पत्नी०) शयनगृह, सोनेका घर, शयनागार ।

शयनमहल (सं० पत्नी०) शयनागार

शयनवासत् (सं० पत्नी०) ये कपड़े जो सोनेके समय पहने जाय ।

शयनस्थान (सं० पत्नी०) शयनभूमि, सोनेकी जगह ।

शयनागार (सं० पुं०) शयनमन्दिर, शयनगृह, सोनेका स्थान ।

शयनावास (सं० पुं०) सोनेका घर ।

शयनास्वप् (सं० पत्नी०) विछौना ।

शयनीय (सं० स्त्री०) शोतेऽवामिति शो-भनीयर्-
भघिहरणे । १ शय्या, विछौना । (त्रि०) २ शयन-
योग्य, सोनेके लायक । (रामायण २।७।२।११)

शयनीयक (सं० स्त्री०) शयनीयमेव स्वार्थे कन् । शय्या,
विछौना । (कथावर्तिता ३३।१७९)

शयनीयगृह (सं० स्त्री०) सोनेका घर ।

शयनीयवास (सं० पुं०) ये कपड़े जो सोनेके समय पहने जाय ।

शयनीयदशो (सं० स्त्री०) शयनाय शयनस्य या एका-
दशी । आषाढ मासके शुक्लपक्षकी एकादशी । विष्णु
भागवतके शयनका प्रारम्भ इसी दिगसे माना जाता है ।

विस्तृत विवरण शयन और हरिशयन शब्दोंमें देखो ।

शयाण्ड (सं० पुं०) १ एक प्राचीन देन या जनपदका
नाम । २ इस देशका निवासो ।

शयाण्टक (सं० पुं०) छकलास, गिरगिट ।

(शुद्धशब्दो २४।३३)

शयाण्डमक (सं० पुं०) शयाण्डानां विषये देशः ।

शयाण्ड नामक जनपद-वासियोंका विषय या देश ।

(या ४।२।५४)

शयान (सं० पुं० स्त्री०) निद्रित, यह जो सोया हो ।

शयानक (सं० पुं०) जो शान्त, ततः कन् यद्वा 'भानकः
शोष्-मिदः इति भानकः' । (उपाधिकोष) १ सर्प,
साय । २ गिरगिट ।

शयामूत्र (सं० स्त्री०) शय्यामूत्र, विछौने पर पेशाब
करना ।

शयालु (सं० त्रि०) शो-आलुच् (आलुचि शीघ्रो मध्य-
कर्त्थम् । या ३।२।१५८) १ निद्राशील, यह जिसे नोद
भाई हो । (माघ २।८०) २ अजगर, सर्प । ३ छकलास,
गिरगिट । ४ कृषकुर, कुत्ता । ५ शृगाल, सियार, मोड़पु ।

शयित (सं० त्रि०) शी क । १ कृतशयन, सोया हुआ ।
(कथावर्तिता ५६।१८०) २ निद्रालु, जिसे नोद
भाई हो । (स्त्री०) ३ शयन, सोना । ४ श्लेष्मान्तक, लिसोड़ा ।
५ अजगर ।

शयितवत् (सं० त्रि०) शो-क-यत् । निद्रालु, जिसे नोद
भाई हो ।

शयितव्य (सं० त्रि०) सोने लायक । (कथावर्तिता ० १।४।४८)

शयितु (सं० त्रि०) शो-यत् । या ४।२।१५) शयनकारी,
सोनेवाला ।

शयु (सं० पुं०) शो-उ । १ अजगर । २ एक प्राचीन वैदिक
ऋषिका नाम । (ऋक् १।२।२।१६) (त्रि०) ३ शयान,
सोया हुआ । (शुक ४।१८।१२)

शयुता (सं० पुं०) १ शयन । २ शयु नामक ऋषिके
सायकका । (ऋक् १।११।७।२)

शयुन (सं० पुं०) शो-उनन् (उपाधिकोष) । अजगर ।

शय्यभद्र (सं० पुं०) जैनोंके छः श्रुतकेयलियोंमें एक ।
संभवता इतका दूसरा नाम शय्यभय है ।

शय्यभय (सं० पुं०) जैनोंके छः श्रुतकेयलियोंमें एक ।

शय्या (सं० स्त्री०) शो-ययत् सांज्ञायां-समजति (या
३।३।६६) १ शय्यक, गूथना, गांधना । शोयते यत्र सा ।
२ विछौना, जिस पर शयन किया जाय ।

शय्या और आसनादि कुसुमसुकोमल होता उचित
है । ऐसी शय्या पर सोनेसे निद्रा, पुष्टि और धृतिशक्ति
को वृद्धि होती है तथा धर्मजन्य प्रकृत वायु विनष्ट होती
है । इसकी विपरीत अर्थात् कढ़ये शय्या पर सोनेसे
विपरीत फल होता है । शूशय्या घातपित्तप्रदामनी,
गृहणी और शुक्रवर्द्धनी होती है । अष्टा घातविषादिनां
तथा पट्टशय्या भति यज्ञतमा और अतिगुण घातप्रकीर्णो
है । (राजवल्लभ)

किसी किसके मतसे अष्टा विद्वेषप्रदामनी, मृत्तिका-
शय्या घातकफाघारिणी, शूशय्या गृहणी और शुक्रवर्द्धनी,
काष्ठ और पट्टशय्या घातना है ।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि भृशय्या अत्यन्त वातला, रुद्धम और रक्तपित्तविनाशिनो है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि गृहस्थ सायंकालीन भोजनके बाद हाथ धीरे धीरे कर अक्षुद्रित वायुनिर्मित सुप्रशस्त अमन समतल अत्यन्त परिष्कार पारिच्छन्न शय्या पर सोवे, अविस्तृत या किसी जम्बुमयी शय्या पर कदापि सोना न चाहिये।

(विष्णु पु० ३५ अ० ११ अ०)

शय्यादानकर्म।

शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि गृह, धान्य, हरीतकी, पाटुका, छल, मांस, चन्दनादि अनुलेपनद्रव्य, शकटादि यान, वृक्ष, शय्या और जिसके लिये जो वस्तु अत्यन्त प्रिय है वह वस्तु दान करनेसे सुखसम्पन्न होता है। विशेषतः सामर्थ्य रहते हुए शय्यादानमें कभी भी किसीको प्रत्याख्यान करना कर्त्तव्य नहीं; क्योंकि याज्ञवल्क्यने कहा है, कि कुश, शार्क, दुग्ध, मत्स्य, गन्ध, पुष्प, वायु, क्षिति, मांस, शय्या, भासन, यान और जल इन सब द्रव्यदानमें कभी किसीको प्रत्याख्यान न करे।

(याज्ञवल्क्य)

प्रहपुराणमें लिखा है, कि मृतव्यक्तिके उद्देशसे जो सब शय्यादि दान की जाती है वह तथा मुमुक्षु या मृतव्यक्तिकी उद्धार कामनासे जो सब तिल और धेनु दान किया जाता है, वह जो व्यक्ति दान लेता है, वह कभी नरकसे छुटकारा नहीं पा सकता। परन्तु जोतानाश्रित से वधताके उद्देशसे जो सब छत्र, कृष्णाजिन, शय्या, रथ, भासन, पाटुका, शकटादि यान और प्राणवर्जित जो कोई दान किया जाता है, मनुष्य उसे प्रहण कर सकते हैं।

देवीपुराणके पुष्पामिषेक नामक अध्यायमें शय्या-पट्टक अर्थात् पोडशय्याका विषय इस प्रकार लिखा है, यथा—सो हाथ लम्बा, हाथ भर चौड़ा, दश उ गली कंचा रत्नालङ्कार द्वारा सुशोभित पोडक बैठनेके लिये प्रस्तुत करे, स्वान्तके लिये यदि बनाना हो, तो उसे डेढ़ हाथ घेरका घुसाकारमें बनाना होगा; शयनके लिये व्यवहार करनेमें उसे चार हाथ लम्बा बनाना कर्त्तव्य है।

(देवीपुराण पुष्पामिषेक)

शय्यागत (सं० लि०) १ शय्याशायी, बिछाने पर सोने-चाला। २ जो दीमार होनेके कारण खाट पर पड़ा हो, पीड़ित।

शय्यागृह (सं० क्री०) शयनगृह; सोनेका घर। शय्याच्छादन (सं० क्री०) आस्तरण, पलङ्ग पर बिछानेकी चादर।

शय्यादान (सं० पु०) मृत्युके अनन्तर मृतकके संधि-विधियोंका महापात्रको चारपाई बिछावन यदि दान देना, सज्जादान।

शय्याध्वज (सं० पु०) शय्यापाल। शय्यापतित (सं० लि०) शय्यागत देखो।

शय्यापाल (सं० पु०) यह जो राजाओंके शयनागारकी व्यवस्था करता हो।

शय्यापालक (सं० पु०) शय्यापाल।

शय्यामूल (सं० क्री०) एक रोग जो प्रायः बालकोंको होता है। इसमें उर्ध्वेन्द्रियाद्यध्यामें ही शय्या पर पड़े पड़े पेशाब हो जाता है।

शय्यावासवेश्मन (सं० क्री०) शयनगृह, सोनेका घर। (काशरित्ता० ४६।१८०)

शय्यावेश्मन् (सं० क्री०) शय्यागृह, सोनेका घर।

शय्यात्सङ्ग (सं० पु०) शय्याका पार्श्वदेश, मतान्तरसे शय्याका मध्यस्थान।

शय्यात्थायस् (सं० अर्थ०) बिछाना छोड़नेका समय, प्रातःकाल, सुबह।

शर (सं० पु०) शृणात्यनेनेति शृ हिंसे (मृदोरप् । पा ३।३।५०) इति अर्प। स्वनामधेयत चणमेव; सर-वपडा, नरकट। पर्याय—शुण, काण्ड, घाण, मुक्त, तेजन, गुम्फक, उटकट, शायक, शूर, इक्षुम, क्षूरिका, पल, विशिष्ट। चैककके मतसे शुण—मधुर, तिक्त, कृच्छ उष्ण, कफ, धर्म और मसतानाशक, बलवीर्णकारक, प्रति दिन सेवन करनेसे वातघ्नक। (राजनि०)

यह बहुत बड़ा होता और अनेक कामोंमें जाता है। उद्भिदिदिने देशमेवसे पार्श्वय निरूपण कर इसका मिश्र मिश्र नाम रखा है; यथा—रथसवर्ग S accharum sara और S Munja तथा पण्डसन Ciliare; किन्तु यद्यार्थमें यह चणजाति एक है। नाममेव होने पर

भी उनमें कोई विशेष प्रभेद नहीं है; देशभेदसे भी यह विभिन्न नामोंसे पुकारा जाता है। हिन्दी—शर, सररूपडा, शरकरा, सरपत, शरपत, रामशर, मुञ्जा; बङ्गला—शर; संघाल—शर, मुक्तप्रदेशके पूर्वांशमें—पातावर, पश्चि-मांशमें—इकर, शरहर, शरकाण्ड; लयोधवा—पालवा; पञ्जाब—पड़काना, काण्ड, सर्जवर, शरकर; अजमीर—शर, सरपत; सिन्धुदेश—शर, सिन्धुके पश्चिम—दगा, साचा, कड़े; लैलङ्ग—मुञ्जा, पौणिका; अङ्गरेजी—Pen-feed grass,

उत्तर-पश्चिम भारत और पंजाबके समतल प्रांतरमें यह तृण बहुतायतसे उपजता है। यह देखनेमें लंबा और सुन्दर होता है। साधारणतः ८ से १२ फुट तक इसकी ऊँचाई होती है। कभी कभी नदीतीरस्थ जमीन अधवा जो सख निम्न भूमि नदीकी बाढ़से हूब लावा करती है, वैसे जमीनके अङ्क के ऊपर यह घास गाढ़ कर बाहरसे घेरो दे दिया जाता है। ऐसी जल सिक्त जमीन पर यह जवद बढ़ता है। तथा अन्यान्य उच्च स्थानजात तृणकी अपेक्षा इसका आकृतिगत धनेरु परिवर्तन होता है। इसके काण्डायकर पतवृत्त से जो देशी निकलते हैं, उनसे अच्छी रस्सी तय्यार होती है। वर्षाप्रत्युके बाद इसमें फूल लगते हैं। Erianthus B. vennae नामक तृणविशेषके साथ इसका आकृतिगत और स्वभावगत अनेक सौसाद्वय है। बहुमेरे दोनों तृणका देव कर समीं पड़ जाते हैं, किन्तु इनके पुष्पोद्गमकालकी वृथकता है। शोथोक तृणके पुष्प निकलनेके बहुत पौष्टे प्रथमोक्त तृण पुरिषत होता है।

पञ्जाबमें इसका मूल 'गर्भगंध' नामसे विक्रता है। यह प्रसूतिका एक उपकारी औषध है। संतानके जन्म लेने पर यह गर्भगंध प्रसूतिके सामने जलाया जाता है। इसका धूम अग्निदग्ध वा शत स्थानके लिये विशेष उपकारी है। इसका मुञ्ज बहुत दृढ़ होता है और जलमें जल्दी सड़ना नहीं। इलाहाबाद और मिर्जापुरके मांफी जामुञ्जके रस्सेसे माय बँधते हैं। यह टेविल, टेकरे, पद, घास आदिके गोले तथा घर छानेके काममें आता है। १८८३-८४ ई०में कलकत्तेमें जब शासकीयिक प्रदर्शनी गेझी गई, तब बहुतसे शरके घर किलानेदानमें बनाये गये थे।

इसकी कच्ची कच्ची पत्तियां गयारिके आधरूपमें व्यवहृत होते हैं। शीतकालमें पंजाबवासी गयारिके सूखी पत्तियां, भूसी और चनेके साथ खिलाते हैं, इसके छंडलसे लिखनेकी कलम भी बनाई जाती है। बरको फारसी और भारतकी विभिन्न जातियोंकी भाषालिपि शरकी कलमसे ही लिखी जाती है। पूर्ण समयां योद्धा लोग शरसे पाण तैयार करते थे। आज भी संघाल, मोल आदि असम्भ्य जातियां शरका पाण बनाती हैं। सरस्वतीपूजाके समय देवीके सागने शरकी कलमसे पूजा की जाती है।

शरकाण्ड (S. arundinaceum, या S. procerum) जातिकी एक और श्रेणी है। पर्वताधिके बालुकामय शृङ्गदेश पर तथा समतल क्षेत्रमें यह तृण उपजता है। यह भारतवर्षमें प्रायः २० फुट ऊँचा होता है। कार्तिक मासमें ये सब तृण पुष्पके भारसे झुक कर अत्यन्त सुन्दर दृश्य धारण करते हैं। यह देखनेमें प्रायः ईल (S. officinarum) की तरह होता है, किन्तु पाण दूरवर्षमें उससे कहीं सुन्दर दिखाई देता है। इससे भी उक्त शरकी तरह नाना प्रकारकी बीजे बनती हैं। इस शरके पुष्पयुक्त अग्रभागसे टोकरी, पंखे, चलनी आदि बनते हैं।

२ पाण, तीर। ३ दृष्यप्रमाण, दृष्टीकी मल्लाई। पर्याय—दधिसार, दधिस्नेह। कट्टर। ४ दृष्यकी मल्लाई। ५ उगौर, लस। ६ महापिण्डो, भाला। ७ हिंसा। ८ उद्योतिषोक, पञ्चमाङ्ग, पांचकी संख्या। इससे कामदेवके गञ्जघाणका भी बोध होता है। ९ असुरभेद। १० अश्चत्कके पुत्र। (अश्व ११।११।२३) ११ शिव। १२ जल। १३ पृष्ठांशकी शिञ्जिनी (Sine of an arc)।

शरम (म० खी०) १ यह सोचा रास्ता जो ईश्वरने मर्कोंके लिये बतलाया हो। २ मुसलमानोंका धर्मशास्त्र। ३ दस्तूर, तीर, तरिका। ४ कुरानमें हो हुई भाषा। ५ दीन, मजहब, धर्म।

शरई (म० वि०) १ शरमके अनुसार, मुमथमानी धर्मके अनुसार। (पु०) २ शरम पर चलनेवाला मनुष्य।

शरक (सं० लि०) शरतृणभय । (पा ४१०८०)
 शरकाण्ड (सं० पु०) शरदण्ड, शरकंडा, सरपत ।
 शरकार (सं० पु०) यह जो तीर बनाता हो ।
 शरकुण्डेश्य (सं० लि०) शरकुण्डमें अथस्थानकारी ।
 शरकूप (सं० पु०) प्रसवणमेद । (कालविलस्त)
 शरकृष्क (सं० पु०) उलूक तृण, उलप ।
 शरकुम्भ (सं० पु०) १ शरतृण, सरकंडा । २ गमा-
 यणके अनुसार एक यूथपति बंदरका नाम ।
 (रामायण ५१२३)
 शरघात (सं० पु०) शर-हनु घञ् । शराहत, शरा
 घात ।
 शरचन्द्र (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा ।
 शरच्छिन्न (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा ।
 शरच्छालि (सं० पु०) शरदीय धान्य ।
 शरच्छिन्निन् (सं० पु०) मयूर, मोर ।
 (भारत शान्ति०)
 शरज (सं० स्त्री०) शरारत जायते जन-उ । १ द्वैपङ्गवीन,
 नवनीत, मधुवन । (हेम) (लि०) २ शरजात, सरकंडेसे
 उदपन्न या बना हुआ ।
 शरजन्मन् (सं० पु०) शरे शरवने-जन्म यस्य । कार्त्तिके-
 ष्य ।
 शरज्योत्स्ना (सं० स्त्री०) शरत्कालकी चन्द्रिका ।
 शरटः (सं० पु०) श्रु-शकावित्वाद्दट् । १ कुसुम्भ
 नामक साग । २ कंकालस, गिरगिट । ३ करञ्ज ।
 शरटी (सं० स्त्री०) लज्जालुक, लाजवन्ती, लज्जापुर ।
 शरण (सं० स्त्री०) श्रुणाति हुषमनेनेति श्रु ल्युट् ।
 १ शूद्र, घर, मकान । २ रक्षा, शाङ्ग, आश्रय, पनाह ।
 ३ आश्रयका स्थान, वचावकी जगह । ४ वध, जो
 शरणमें आवे उसके यैतीकी मारना । ५ अधीन, मान-
 दत । ६ एक कवि । गीतगोविन्दमें जयदेवने इसका
 उल्लेख किया है । प्रवाद है, कि इनका दूसरा नाम शरण-
 दत्त था । लक्ष्मणसेनकी सभामें ये विद्यमान थे ।
 ७ शाहाबादके उत्तर सारन नामक जिला ।
 शरणदं (सं० लि०) शरण देनेवाला, रक्षा करनेवाला ।
 शरणदेव—एक कवि । शरण देखी ।

शरणा (सं० स्त्री०) गन्ध-प्रसारिणी नामकी लता ।
 (शब्दरत्ना०)
 शरणाकुच (सं० पु०) अन्नमेद । 'वाचातेन वा स्वयं वा
 पक्तया फलानां अंधःपतनेन विशरणं' शरणा तत्प्रधानाः
 कुंरवोऽन्नानि शरणाकुचवः । श्रु-विशरणोऽस्मादुभावे
 चयुः । कुचनृपात्तरे भक्त इति मेदिनी । भक्त बोधनः ।
 (भारत १३ पर्व नीलकण्ठ)
 शरणागत (सं० लि०) शरणमागतः प्राप्तः । शरणाग्न,
 शरणमें आया हुआ । पर्याय—शरणार्थक, अशिपरन,
 शरणार्थी । जो व्यक्ति शरणागत व्यक्तिकी रक्षा नहीं
 करता, वह एक युग तक कुम्भीपाक नरकमें वास करता
 है । शरणागतकी रक्षा करनेसे सौ राजसूयपशुकां फल
 और परम ऐश्वर्य लाभ होता है ।
 "अन्नहोन्नन्न मोतन्न दीनन्न शरणागन्म ।
 यो न रक्षत्यधर्मिष्ठः कुम्भीपाके वसेद्दुग्म ॥
 राजसूयशतानाञ्च रक्षिता क्षमते फलम् ।
 परमैश्वर्यमुक्त्वा च धर्मेषु स भवेदिह ॥"
 (ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिसं ५५ अ०)
 पद्मपुराणमें क्रियायोगसारमें लिखा है, जो व्यक्ति
 धन या प्राण द्वारा शरणागत व्यक्तिकी रक्षा करता है, वह
 सभी पापोंसे मुक्त हो अन्तमें मोक्ष पाता है ।
 "शरणागत रक्षा यः शरीरपि धनैरपि ।
 कृते मानवो शान्तिं तस्य पुण्यं निशाम्य ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्महत्यामुत्तरिषि ।
 आमुषोऽस्ते ब्रजेनोन्नं योनिनामपि दुर्लभम् ॥"
 (पद्मपु० क्रियायोग० ८ अ०)
 अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो लोभ, द्वेष और
 भयसे शरणागतकी रक्षा नहीं करता, उसे ब्रह्महत्याके
 समान पाप होता है । महापातकियोंके भी पापकी
 निष्कृति है, किन्तु शरणागत व्यक्तिकी त्याग करनेवाले
 पापका निस्तार नहीं है ।
 "लोभाद्देवाद्भद्राद्वापि यस्त्यजेत् शरणागतम् ।
 ब्रह्माहत्यासमं तस्य पापमाहुर्मनीषिणः ॥
 शास्त्रेषु निष्कृतिदद्याद् महापातकानामपि ।
 शरणागतहातस्त न दृष्टुं ना निष्कृतः क्वचित् ॥"
 (अग्निपु०)

शरणापन्न (सं० त्रि०) शरणगत, शरणमें आया हुआ ।

शरणार्थिन् (सं० त्रि०) शरणं अर्थायते इति अर्थ-
पिनि । शरणप्रार्थी, शरण चाहनेवाला ।

शरणार्थक (सं० त्रि०) शरणार्थमर्पयति आत्मानमिति
अर्थ-पुल्ल । शरणापन्न, शरणमें आया हुआ ।

शरणालय (सं० पु०) आश्रयस्थान ।

शरणि (सं० स्त्री०) १ पत्नी, मार्ग, पथ । "सरस्वत-
येति सरणिः नाम्नीति अनिः इन्तात् पक्षे इवि सरणी
य । सरणि श्रोणियत्संनोविति इत्यादी रभसः । श्रु-
ष्टृ गि हिं सने इत्यस्मात् पूर्ववदनी शरणिस्तालप्यादि-
श्च । शुभं शुभे प्रदोते च शरणिः पथि चायनी ।
इति तालप्याश्रयप्रथः ।" (भगवटीकामें भरत) २ पृथ्वी,
जमीन । ३ हिंसा । (श्रुक् १३११६)

शरणी (सं० स्त्री०) शरणिं यावु लोप । १ पत्नी, मार्ग,
रास्ता । २ गन्ध-प्रसारिणी नामकी लता । ३ जयन्ती ।
(त्रि०) ४ शरणदेनेवाली ।

शरणेयिन् (सं० त्रि०) शरणप्रार्थी, शरण चाहनेवाला ।
शरत् (सं० पु०) १ पक्षी, विहंग, चिड़िया । २ कामुक ।
३ घूर्ण, चालाक । ४ शरड । ५ हकलास, गिरगिट ।
६ भूषणभेद, एक प्रकारका गहना । ७ छिपकली ।

शरण्य (सं० त्रि०) श्रुणाति भयमिति श्रु-हिंसायां
(श्रु-रम्योश्च । उण् ३।१०१) इति अस्य घञ् शरणमिष
(शागदिभ्यो ष । पा ५।३।१०३) इति य । शरणागतस्वक,
शरणमें आये हुएकी रक्षा करनेवाला ।

शरण्यता (सं० स्त्री०) शरणस्य भावा लल-टाप् ।
शरण्यका भाव या धर्म ।

शरण्या (सं० स्त्री०) शरण्य-टाप् । दुर्गा । विष, अग्नि
आदि जग उपरिष्ण होने पर भगवती दुर्गादेविका स्मरण
करनेसे ये रक्षा करती हैं, इसलिये ये शरण्या नामसे
क्यात हैं ।

शरण्यु (सं० स्त्री०) १ भूईकी परती आरण्या योया ।
शरण्यु देवी । (पु०) २ मेघ, बादल । ३ घाम्य,
हवा ।

शरत् (सं० स्त्री०) रत्न देती ।

शरत् (सं० स्त्री०) शरं देती ।

शरत्तिया (सं० कि० वि०) शरत्तिया देती ।

शरत् (सं० स्त्री०) श्रु-हिंसायां (श्रु-मणोश्चि । उण्
३।१२६) इति अदि । १ यत्सर, वर्ष, साल । २ शत्रु-
विशेष, शरत्शत्रु । पर्याय—शरत्, कालप्रमाण, पर्या-
यसान, मेघान्त, प्रापृद्धत्वये । आज कल आश्विन और
कार्तिक मासमें शरत् शत्रु मानी जाती हैं, वैदिक कालमें
कार्तिक और अग्रहायण मासमें मानी जाती थी ।

किसीके मतसे आश्विन और आश्विन या आश्विन और
कार्तिक मास शरत्काल है । यह काल उष्ण, पिश-
वर्क और मानवोंके लिये बलप्रद है । शरत् कालमें
याशु प्रगमित और पिश प्रकृषित होता है ।

जिस प्रकार वर्षमें ६ ऋतु होती हैं, उसी प्रकार प्रति
दिन भी ६ ऋतुका आविर्भाव हुआ करता है । प्रातः-
कालमें यत्नत ऋतु, मध्याह्नमें भीष्म, अपराह्नमें वर्षा,
अर्द्धरातमें शरत् इत्यादि प्रकारसे ऋतुओंका आविर्भाव
होता है ।

शरत्शत्रुमें इक्षु गिकार गुह्य चीनी आदि, शान्तिधान्य,
मुद्ग, सरोवर जल, पवधितुग्ध और प्रक्षोष कालमें
चन्द्रविरणका सेवन प्रशस्त है । (भाष्य०)

कविकल्पलतामें लिखा है, कि शरत्कालमें यह सब
वर्षण करना होता है,—चंद्रपट्टता, रविपट्टता, जलशुषणता,
यकपुष्प, हंस, शृष, सार्य, सतच्छन्द, पद्य, श्वेतमेघ, घाम्य,
शिलिपिपक्ष । ज्योतिषमें लिखा है, कि शरत्कालमें जगमें
होनेसे मानव उत्तम कर्मकारी, तेजस्वी, शुचि, सुमोल,
गुणवान्, सभ्रमानी और धनी होता है ।

"नरः शरत्शुक्लवज्रजन्मा भवेत् सुकर्म गनुजस्तानी ।

शुचिः सुतो गे गुणवान् सुमानी पत्रान्वितो राजकुलवृन्दम् ॥"
(कोष्ठीप्रदीप)

शरत्कामिन् (सं० पु०) शरद् शरत्काले कामयते कुम्भ-
मिति वम 'कमेनि'ङ्' इति सिङ्, ततः णिनि । कुम्भकर,
कुम्भा ।

शरत्काल (सं० पु०) कस्या-कांश्विनसे तुला-संक्रान्ति
तकका अथवा आश्विन और कार्तिकका समय शरत्-
शत्रु ।

शरत्काष्ठ (सं० स्त्री०) शरत्काल ।

शरत्पत्र (सं० स्त्री०) शरत्-पत्रम् । सितभोजन, श्वेत-
पट्टा । (शब्दनि०)

शरत्पर्वण (सं० षष्ठी०) शरदा पर्वण । कोजागर पूर्णिमा, आश्विन मासकी पूर्णिमा ।

शरत्पुष्प (सं० षष्ठी०) शरदः पुष्पं । १ शाल्वक्ष्य क्षुप । २ शरत्कालोद्भव कुसुम, वह रुव फूल जो शरदकालमें हो ।

शरत्समय (सं० पुं०) शरत्काल ।

शरद (सं० स्त्री०) श्रु-भदि । (उष्ण १।१२६) १ शरत् ऋतु । २ राजपत्नीमेद । (राजत० ८।१-२५)

शरदई (हिं० स्त्री०) शरदई देखो ।

शरदक्ष (सं० पुं०) स्मृतिशास्त्रके रचयिता एक आचार्यका नाम ।

शरदण्ड (सं० पुं०) १ शरमणि, सरकंडा । २ चातुक । "शरदण्डः सार प्रकाण्डइव अनुदण्डः पृष्ठवंशो येषां सितगौरपुष्पा (द्वयाः) इत्यर्थाः ।" (भारत दोषणवंटीकामें नीलकण्ठ)

शरदण्डा (सं० स्त्री०) १ प्राचीन नदीका नाम । २ एक प्राचीन देशका नाम ।

शरदन्त (सं० पुं०) शरदः तदाख्य ऋतोरन्तो यस्मात् । शरत्ऋतुका अन्त अर्थात् हेमन्त ऋतु ।

शरदपूर्णिमा (सं० पुं०) कुमार मासकी पूर्णिमासी, शरत् पूनो ।

शरदसिंहदेव (सं० पुं०) राजमेद ।

शरदा (सं० स्त्री०) १ शरत् ऋतु । २ वर्ष, साल ।

शरदिज (सं० स्त्री०) शरदि जायते इति जन-ड (प्रादृ-शरत्कालदिवां जे । पा ६।३।१५) इति सप्तम्या अलुक ।

शरत् कालजांत, जो शरत् ऋतुमें उत्पन्न हो ।

शरदिन्दु (सं० पुं०) शरद्वन्द्व, शरत्ऋतुका चन्द्रमा ।

शरदुदाशय (सं० षष्ठी०) शरत्कालका सरोवर ।

शरदुद्भव (सं० पुं०) वृत्तपत्रशाक विशेष ।

शरदेव—एक प्राचीन कवि ।

शरद्वत (सं० त्रि०) शरदं गतः । शरत्कालप्राप्त ।

शरद्विमर्चि (सं० पुं०) शरत्कालका चन्द्रमा ।

शरद्वद (सं० पुं०) शरत्कालीना हृदः । शरत्कालका जलाशय ।

शरद्वत् (सं० पुं०) १ शरत्काल । २ विशेष कामर्मुक ।

३ बहुसंवत्सरयुक्त अथवा पूर्वतन या नित्यवस्तु ।

४ एक प्राचीन ऋषि । (पा ४।१।१०२) ५ गौतमके चंशधर, शारद्वत ऋषि । (हरिवंश) :

शरद्वस्तु (सं० पुं०) एक प्राचीन ऋषि ।

शरद्विहार (सं० पुं०) शरत्कालका आमोद-प्रमोद ।

शरद्वीप (सं० पुं०) पुराणानुसार एक द्वीपका नाम जो जलद्वीप भी कहलाता है ।

शरधाम (सं० पुं०) १ वृहत्संहिताके अनुसार एक देश । २ इस देशका निवासी ।

शरधि (सं० पुं०) शरा धीयन्तेऽस्मिन्निति शर-धा- (कर्मण्यधिकरणे च । पा ३।१।६३) इति कि । तूष्ण, तीट रखने-का चौगा, तरकश ।

शरनिवास (सं० पुं०) शरवतमें वास करनेवाला । (पा ८।४।३६)

शरमेघ (सं० पुं०) शरत्कालीनो मेघः । शरत्कालको मेघ ।

शरपङ्क (सं० पुं०) जवासा, दिंगुआ, धमासा ।

शरपञ्जर (सं० षष्ठी०) शरशय्या ।

शरपट्टा (हिं० पुं०) एक प्रकारका शस्त्र ।

शरपर्णा (सं० स्त्री०) वृक्षमेद, एक प्रकारका पौधा । (पा ५।१।५४)

शरपुङ्ख (सं० पुं०) शस्य पुङ्खे व्याकृतिर्यस्य । १ स्वनाम-ख्यात क्षुपविशेष, नीलकी तरहका एक प्रकारका पौधा, सरफोका । (Sephrosia purpurea) बर्बर—कुलधि । कलिङ्ग—पेरदु-कोमिंग । महाराष्ट्र—उडलि । तैलङ्ग—तेलवेपलिल चेडू । तामिल—कोलदुक्क यवेत् त्रिय । संस्कृत पर्याय—काण्डपुङ्ख, वाणपुङ्ख, इपुपुङ्खिका, शायकपुङ्ख, इपुपुङ्ख । गुण—कटु, उष्ण, कृमि और घात-नाशक । सफेद शरपुङ्ख बड़ा फायदेमंद होता है । (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे तिक, और कृपाय, यक्षुत्, ओहा, गुल्म, व्रण और विष, कास, अस्त्रव्यर और ध्यासनाशक । (भावप्रकाय)

२ वाण या तोरमें लगा हुआ पंख । (स्त्री०) ३ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका यन्त्र ।

शरपुङ्ख (सं० स्त्री०) शरपुङ्ख देखो ।

शरवत (सं० पुं०) १, पीनेकी मोठी वस्तु, रस । २ धोनी आदिमें पका हुआ किसी विशेषका अर्क जो दवाके

शरणावगम (सं० लि०) शरणगत, शरणमें आया हुआ ।

शरणार्थिन् (सं० लि०) शरण' माग'वते इति भाषा-
णिनि । शरणप्रार्थी, आश्रय चाहनेवाला ।

शरणार्थक (सं० लि०) शरणार्थ'नर्पयति ध्यास्मानमिति
भाषा'ण्युल् । शरणावगम, शरणमें आया हुआ ।

शरणालय (सं० पु०) आश्रयस्थान ।

शरणि (सं० स्त्री०) १ पशु, मार्ग, पथ । "सरस्वत-
येति सरणिः नाम्नीति धत्ति इदन्तात् पक्षे इति सरणी
य । सरणि धोणिपदसंज्ञोविति इत्ययादी रजसः । श्रु-
ष्टु, गि हि'सने इत्यस्मात् पूर्ववद्दनी शरणिस्तालप्यादि-
श्रय । शुभं शुभे प्रदोते च शरणिः पथि चावनी ।
इति तालप्यादायज्यः ।" (अमरटीकायें मरत) २ पृथ्वी,
जमीन । ३ हिंसा । (श्रुक् १३११६)

शरणी (सं० स्त्री०) शरणि घातु लोप । १ पशु, मार्ग,
रास्ता । २ गन्ध-प्रसारिणी नामकी लता । ३ जयन्ती ।
(लि०) ४ शरणदेनेवाली ।

शरणैविन् (सं० लि०) शरणप्रार्थी, शरण चाहनेवाला ।
शरण्ड (सं० पु०) १ पशु, विद्ग, चिह्निया । २ कायुक ।
३ पूर्वा, चालाक । ४ शरड । ५ टुकलास, गिरगिट ।
६ भूषणमेघ, एक प्रकारका गहना । ७ छिपकली ।

शरण्य (सं० लि०) श्रुणाति भयमिति श्रु-दि'सायां
(श्रु-श्च्योश्च । उण् ३।१०१) इति भय्य वदा शरणमिध
(भाषादिपौ वः । पा ५।३।१०३) इति य । शरणगतरक्षक,
शरणमें आये हुएकी रक्षा करनेवाला ।

शरण्यता (सं० स्त्री०) शरणस्य भावाः तल-टाप ।
शरण्यका भाव या धर्म ।

शरण्या (सं० स्त्री०) शरण्य-टाप् । दुर्गा । दिव, अग्नि
आदि भय उपस्थित होने पर भगवती दुर्गादेविका स्मरण
करनेसे ये रक्षा करती हैं, इसलिये ये शरण्या नामसे
ख्यात हैं ।

शरण्यु (सं० स्त्री०) १ सूर्यकी परती आरुणा घोषा ।
भरपु देवी । (पु०) २ मेघ, बादल । ३ वायु,
हवा ।

शरत (सं० स्त्री०) सत्य देवी ।

शरत (सं० स्त्री०) शरत देवी ।

शरतिया (अ० क्रि० वि०) शरतिया देवी ।

शरत् (सं० स्त्री०) श्रु-दि'सायां (श्रु-ष्टु-मलोडि । उण्
१।२६) इति श्रिदि । १ शरत्, वर्ष, साल । २ श्रु-
विशेष, शरत्श्रुतु । वर्षाण्य—शरत्, कालप्रभात, वर्षा-
पसान, मेघान्त, प्रावृद्धयः । आज बल आश्रित और
कार्त्तिक मासमें शरत् श्रुतु मानी जाती है, वैदिक कालमें
कार्त्तिक और अश्विपण्य मासमें मानी जाती थी ।

किसीके मतसे शरत् और आश्रित या आश्रित और
कार्त्तिक मास शरत्काल है । यह काल उष्ण, पिश-
पक्षक और मानवोंके लिये बलप्रद है । शरत् कालमें
वायु प्रशान्त और पिश प्रक्षुब्ध होता है ।

जिस प्रकार वर्षमें ६ श्रुतु होती है, उसी प्रकार प्रति-
दिन भी ६ श्रुतुका आविर्भाव हुआ करता है । प्रान्त-
कालमें वसन्त श्रुतु, मध्याह्नमें शीघ्र, अपराह्नमें वर्षा,
अर्द्धरातमें शरत् इत्यादि प्रकारसे श्रुतुर्भौका आविर्भाव
होता है ।

शरत्श्रुतुमें इक्षु निकार गुह्य चीनी आदि, शालिधान्य,
मुद्ग, सरीसर जल, पचयित्वा दुग्ध और प्रदोष कालमें
चन्द्रविरणका सेवन प्रशस्त है । (भाष्य०)

कविकल्पलतामें लिखा है, कि शरत्कालमें यह सब
वर्षण करना होता है,—चंद्रपटुता, रविपटुता, जलशुष्यता,
वक्रशुष्य, हंस्य, वृष्य, सर्प, सप्तच्छद, पशु, श्वेतमेघ, धान्य,
शिविपक्ष । उद्योतिपमें लिखा है, कि शरत्कालमें 'अम
होनेसे मानव उत्तम कर्मकारी, तेजस्वी, शुचि, सुसौल,
गुणवान्, सभयानी और धनी होता है ।

"नमः शरत्संकलकलयजन्मा भवेत् मुकुर्वा मनुजस्तपस्वी ।

शुचिः सुसौलः सुगवान् सुमामी वनाश्रितो राजकुलपुत्रः ॥"
(कोशप्रदीप)

शरत्कामिन् (सं० पु०) शरदि शरत्काले कामयते कुम्भ-
मिति १ म 'कामेर्नि'ट्' इति गिट्, ततो णिनि । कुम्भ-
कुत्ता ।

शरत्काल (सं० पु०) कथा-कांतामितसे तुला-संकेति
तज्जना आश्रय आश्रित और कार्त्तिकका समय शरत्
श्रुतु ।

शरत्काल्य (सं० स्त्री०) शरत्काल ।

शरत्पत्र (सं० स्त्री०) शरत् पत्रम् । (सितामोज, श्वेत-
पटुम् । (राजनि०)

शरत्पर्वन् (सं० पत्नी०) शरदः पर्वन् । कोजागर पूर्णिमा, आश्विन मासकी पूर्णिमा ।

शरत्पुष्प (सं० पत्नी०) शरदः पुष्पं । १ आहुत्पक्षुप । २ शरत्कालोद्भव कुसुम, यह सब फूल जो शरत्कालमें हो ।

शरत्समय (सं० पु०) शरत्काल ।

शरद (सं० स्त्री०) शूद्र-भदि । (उज्ज० ११२६) १ शरत् ऋतु । २ राजपत्नीभेद । (राजत० ८१-२५)

शरदई (हि० स्त्री०) शरदाई देखो ।

शरदक्ष (सं० पु०) स्मृतिशास्त्रके रचयिता एक आचार्यका नाम ।

शरदण्ड (सं० पु०) १ शरदण्डि, सरकंडा । २ चावुक । "शरदण्डः सार प्रकाण्डश्च अनुदण्डः पृष्ठवंशो येषां सितगौरपुष्पा (हयाः) इत्यर्थाः ।" (भारत दोषपर्वटीका-में नीलकण्ठ)

शरदण्डा (सं० स्त्री०) १ प्राचीन नदीका नाम । २ एक प्राचीन देशका नाम ।

शरदन्त (सं० पु०) शरदः तदाख्य ऋतोरन्तो यस्मान् । शरत्ऋतुका अन्त अर्थात् हीमन्त ऋतु ।

शरदपूर्णिमा (सं० पु०) कुसार मासकी पूर्णिमासी, शरत् पूर्णो ।

शरदसिंहदेव (सं० पु०) राजभेद ।

शरदा (सं० स्त्री०) १ शरत् ऋतु । २ वर्ष, साल ।

शरदिज (सं० त्रि०) शरदि जायते इति जन-उ (प्रायश्चरत्कालादिनां जे । पा ६।३।१५) इति सप्तम्या अलुक् । शरत् कालजात, जो शरत् ऋतुमें उत्पन्न हो ।

शरदिन्दु (सं० पु०) शरदचन्द्र, शरत्ऋतुका चन्द्रमा ।

शरदुदाशय (सं० पत्नी०) शरत्कालका सरोवर ।

शरदुद्भव (सं० पु०) शरत्पर्वतका विशेष ।

शरदेव—एक प्राचीन कवि ।

शरद्वत (सं० त्रि०) शरदं गताः । शरत्कालप्राप्त ।

शरद्विमरुचि (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा ।

शरद्वृक्ष (सं० पु०) शरत्कालीना वृक्षः । शरत्कालका जलाशय ।

शरद्वत् (सं० पु०) १ शरत्कालः । २ विशेषार्थ कामर्मुक् । ३ बहुसंघसरयुक अथवा पूर्वांत या नित्यवस्तु ।

४ एक प्राचीन ऋषि । (पा ४।१।१०२) ५ गीतमके वंशधर, शारद्वत ऋषि । (हरिवंश)

शरद्वसु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि ।

शरद्विहार (सं० पु०) शरत्कालका आमोद-प्रमोद ।

शरद्वोग (सं० पु०) पुराणानुसार एक द्वीपका नाम जो जलद्वीप भी कहलाता है ।

शरधान (सं० पु०) १ वृहत्संहिताके अनुसार एक देश । २ इस देशका निवासी ।

शरधि (सं० पु०) शरा धीयन्तेऽस्मिन्निति शर-धा- (कर्मण्यधिकरणे च । पा ३।३।६३) इति कि । तूण, तीर रखने-का चींगा, तरकश ।

शरनिवास (सं० पु०) शरवनमें वास करनेवाला ।

(पा ८।४।३६)

शरभ्रमेघ (सं० पु०) शरत्कालीनो मेघः । शरत्कालको मेघ ।

शरपङ्क (सं० पु०) जवासा, दिग्गुभा, धमासा ।

शरपञ्जर (सं० पत्नी०) शरशय्या ।

शरपट्टा (हि० पु०) एक प्रकारका शस्त्र ।

शरपणी (सं० स्त्री०) वृक्षभेद, एक प्रकारका पौधा ।

(पा ४।१।६५)

शरपुङ्ख (सं० पु०) शरस्य पुङ्खे वाक्यतिर्यस्य । १ सनाम-उयात क्षुपविशेष, नीलकी तरहका एक प्रकारका पौधा, सरफोका । (Sephrosia purpurea) शरदं—

कुलधि । कलिङ्ग—वेरडु कोमगि । महाराष्ट्र—उदलि । तेलङ्ग—तेल्लुवेपिलि चेट्टू । तामिल—कोल्लुक् यवेण रयि ।

संस्कृत पर्याय—काण्डपुङ्खः, वाणपुङ्खः, इषुपुङ्खिका, शायकपुङ्खः, इषुपुङ्खः । गुण—कटु, उष्ण, कृमि और घात-

नाशक । सफेद शरपुङ्ख बड़ा फायदेमंद होता है । (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे तिक्त, गौर कषाय, यकृत,

प्लीहा, गुल्म, व्रण और विष, कास, अक्षयर, और श्वासनाशक । (भावप्रकाश)

२ वाण या तीरमें लगा हुआ पंख । (स्त्री०) ३ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका यन्त्र ।

शरपुङ्खा (सं० स्त्री०) शरपुङ्ख देखो ।

शरवत (सं० पु०) १ पानेकी मीठी वस्तु, रस । २ चीनी आदिमें पका हुआ किसी भोज्यपिका अर्क जो दवाके

पञ्चमात सदांश मानन्दवद्धं पुन धा, घैसे पुत्रको जिसने इस प्रकार मारा है और जिसके लिये हमारे प्राण दादण पत्रणसे निकल रहे हैं; यह व्यक्ति भी निश्चय ही, लके कारण शोक सग्तत हृद्रयसे देह विसर्जन करेगा।" इतना कह कर श्रुति और श्रुतिपत्रोने इस घराधामका पारटवाग किया। उस घटनाका स्मरण करनेके लिये वहाँ शरप, नूनगर बसाया गया सही, पर किसी भी धर्मप्राण क्षत्रियसंतानने उस प्रत्यक्षापद्वय स्थानमें बसना न चाहा। बहुतेरीने वहाँ घर बना कर रहनेकी कोशिश की थी, पर उन्हे साहस न हुआ।

यह पुरुरिणी राज भी विद्यमान है। उसके किनारे एक वृक्षके नीचे शरघान्श्रुतिकी प्रन्तरमयी मूर्ति आज भी देखी जाती है। श्रुतिकुमारने जिस प्रकार भगुत्त-विषासु हो कर प्राणटवाग किया, उसी घटनाके लक्षणपार्थी यह मूर्ति भी बनाई गई है, कि मूर्ति के नामिमूर्तमें जितना हो जल धरो न डालें, पर यह पूर्ण नहीं होगा।

शरधारण (सं० पत्ती०) डाल, जितसे तोतेकी बीउर रानी जाती है।

शरघृष्टि (सं० स्त्री०) शरघ्य घृष्टिः । १ शर वर्षण, घाणकी वर्षा । २ मयटवसुभेद । (हरिवंश)

शरघेग (सं० पु०) शरघ्य वेगः । घाणका वेग ।

शरघ्य (सं० पत्ती०) शरघ्ये दिंसाये घाणशिक्षाये वा सायुः शर (उगवादिभ्यो क्त् । वा ५।१।२) इति घन्; यद्वा शरान् क्यघंतात् घ्ये ष् । लक्ष्य, यह जिस पर शरका सांधाम किया जाय, यह जो तीरका- निशाना बनाया जाय ।

शरघ्यक (सं० पत्ती०) शरघ्य स्वाधे क्त् । शरघ्य, लक्ष्य, निशाना ।

शरघ्यपा (सं० स्त्री०) शरनिर्मिता श्य्या । शर या घाण की बनी हुई श्य्या । मोक्ष विहामहने शरघ्यपा पर ग्राम्य कर देहटवाग किया था । भोध्य देतो ।

शरस (सं० पत्ती०) १ सारप्रयवमावापम । (ऐतरेयब्रा० १२।६) २ शर, घाण ।

शरसम्य (सं० पु०) शरघ्य स्तथा । १ शरवा भाङ् । (भाववा १।१११) २ महामारतके अनुसार एक प्राचीन

स्थानका नाम । (भारत भनुशासन) ३ एक प्राचीन प्रशर-कार श्रुतिका नाम । (प्रशरभवाय)

शरह (सं० स्त्री०) १ यह कथन या घणंन जो किसी बातके स्पष्ट करनेके लिये किया जाय । २ दर, माय । ३ टीका, भाष्य, व्याखया । ४ शरर लगान देतो ।

शरह लगान (दिं० स्त्री०) मूरकी दर, जमीनकी पड़नी, विधीतो ।

शरा (सं० स्त्री०) शरभ दलो ।

शराफ (सं० पु०) १ संकर जातीय पशु । ३ एक जाति । (राफ देतो)

शराफत (सं० स्त्री०) १ शरीफ या सम्मिलित होनेका भाव । २ साफा, हिस्सेदारो ।

शरानि (सं० पु०) पञ्चानि । (नीलकण्ठ)

शराघात (सं० पु०) शरघ्य भाघातः । घाणाघातः । पर्वाय—प्रचलाक । (जटाधर)

शराटि (सं० पु०) शरं जलं प्राप्नोतीति शट-इत् । शरालि पशो, टिटिहरी ।

शराटिका (सं० स्त्री०) १ शरालि पशो, टिटिहरी । २ लज्जालुह, लज्जात्, लाजवन्ती ।

शराट्टि (सं० पु०) शराटि देखो ।

शराति (सं० पु०) शराटि देखो ।

शरादिप मूल (सं० स्त्री०) शरादिपञ्चद्रव्यहत कवाप । शर, इक्षु, दर्भ, काश और शालिघान्य इन पांचो द्रव्योंकी जड़ पाल कर यह प्रस्तुत करना होता है।

(चक्रद्वं भगवती०)

शरादिपञ्चमूलघण्ट (सं० पत्ती०) घृतीपचविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—शरादिपञ्चमूलके कवापमें घाट सेर घृण कीर एक सेर गोक्षुर बरकके साथ पात करे । पात होने पर उसमें धोहा दाकर गाल कर उतार ले । इस घृणका सेवन करनेसे मन्तरी रोग भाराम होता है ।

(चक्रद्वं भगवती०)

शरापना (दिं० पत्ती०) किसीकी शाय देना, सरापना । शराप्यास (सं० पु०) शरापामप्यासः । घाणनिशान । पर्वाय—उपासन, विचारण, दात्राप्यास । (शम्भूरत्ना०)

शराफ (सं० पु०) सराफ देखो ।

शराफल (सं० स्त्री०) शराफ या सञ्जन होनेका भाव, मन्मन्तरी, सञ्जनता ।

शराफा (अ० पु०) शराफा देखो ।
 शराफो (अ० स्त्री०) शराफी देखो ।
 शराब (अ० स्त्री०) शमदिरा, सुपं, मद्य । विशेष विवरण
 मदिरा शब्दमें देखो । २ हकीमोंकी परिभाषामें शेरवत ।
 जैसे—शराब वनफशा ।
 शराबखाना (फा० पु०) शराब बनने तथा बिकनेकी
 जगह, वह स्थान, जहां शराब मिलती हो ।
 शराबखोरो (फा० स्त्री०) १ शराब पीनेका शक्त्य, मदिरा
 पान । २ शराब पीनेकी छत ।
 शराबखवार (फा० पु०) वह जो शराब पीता हो, मदिरा
 पीनेवाला, शराबी ।
 शराबी (अ० पु०) वह जो शराब पीता हो, शराब पीने-
 वाला ।
 शराबोर (फा० वि०) जल आदिसे बिलकुल भौंगा हुआ,
 लपप, त्रस्त । जैसे—रंगसे शराबीर, पानीसे
 शराबीर ।
 शरावत (अ० स्त्री०) शरीर या पाजो होनेका भाव, पाजो-
 पन, वदमाशी ।
 शरारि (सं० पु०) शर जलं भ्रच्छतीति भ्र गती इ । १
 स्नामधेयात् लवजातीय पक्षी, टिटिहरी । पर्याय—
 आदि, आड़ि, आड़ो, शराड़ी, आड़िका, शराली, शरालि,
 शरादि, शरालिका । इसके मांसका गुण चायुदोषनाशक,
 स्निग्ध, बलकारक, सुष्टमलत्व, वातरक्तनाशक और
 शीतल माना गया है । (रात्रव०) २ रामकी सेनाका
 एक यूधपति चंद्र ।
 शरारिमुख (सं० पु०) १ शरारि पक्षी, टिटिहरी नामकी
 छोटी चिड़िया जो जलाशयोंके पास रहती है । (स्त्री०)
 २ सुभ्रुतोक शरारि पक्षीके मुखके समान अर्थ । यह
 पौध आदि निकालनेमें व्यवहृत होता है ।
 (सुभ्रुत-सूत्र ८ अ०)
 शरारी (सं० स्त्री०) टिटिहरी नामकी छोटी चिड़िया ।
 शराव (सं० स्त्री०) शृंगीनीति शू (शृंग्योरावः) वा
 शरा१७३ इति भाष्य । हिंसा ।
 शरापोष (सं० पु०) शरस्याः आरोपो यस्मिन् । धनुष,
 जिस पर शर चढ़ाया जाता है, कमान ।
 शरापिस् (सं० पु०) रामकी सेनाका एक यूधपति
 चंद्र । (रामा० ४१५१३)

शराव्यास्य (सं० पु०) शरारि पक्षीके मुखके समान
 विधावणास्त्रमेव ।
 शरालि (सं० स्त्री०) शरारि पक्षी, टिटिहरी ।
 शरालिका (सं० स्त्री०) टिटिहरी ।
 शराबी (सं० स्त्री०) शराबि देखो ।
 शराब (सं० पु० स्त्री०) शरं जलं भवति रक्षतीति भव
 रक्षणे अण् । १ मृत्पात्रविशेष, मिट्टीका एक प्रकारका
 पुरवा, कुल्हड़ । पर्याय—यह मानक, मार्त्तिक, सराय,
 शाकान्तर, पार्ष्णिघ, मृत्कांस । (शब्दरत्ना०)
 २ वैद्यकमें एक प्रकारका परिमाण या तौल जो
 चौंसठ तोले या एक सेरको होता है । वैद्यकमें सेर
 चौंसठ तोलेका ही माना जाता है ।
 शरावक (सं० पु०) शराव-खाद्ये कन् । शराव देखो ।
 शरावक—पूर्वभारतीय द्वीपसुदके बॉर्नियो द्वीपस्थ एक
 जनपद । यह पापेष्ट-आपि नामक अन्तरीपके पूर्व-
 स्थित उपसागरके किनारे गिरिपादके नांचे अवस्थित
 है । यह पर्वतमाला १५०० से ३००० फुट तक ऊंची
 तथा बॉर्नियो द्वीपके मध्यदेश तक विस्तृत है । दातु
 अन्तरीपसे बड़म-नदी पर्यन्त स्थान शरावकराजके
 अधिकारमें है । यहां शरावक नामक नदीके किनारे
 लीचो, जामुन, सुपारी आदि उरुहट और सुमिष्ट फलके
 पेड़ देखे जाते हैं । बड़ी घटाङ्गलुपा नदीके मुहानेके
 निकटवर्ती एक शाखाके लिङ्गा नामक स्थानमें एक
 प्रकारका उज्ज्वल बालुकामिश्रित प्रस्तरखण्ड पड़ा हुआ
 है । इसका वर्ण पुष्पराग (Topaz) वा वैगनी परपर-
 विशेष (Amethyst) की तरह होता है । मुका नामक
 स्थानमें सागू और बसाई नगरके समीप रसाजन
 मिलता है ।
 शरावकुई (सं० पु०) वायव्यकोटविशेष ।
 (सुभ्रुत-कल्पस्थो ८ अ०)
 शरावतोः (सं० स्त्री०) शरा वृणचिरीषाः सन्वयस्यामिति ।
 शर-मृतुप् (शरादीनाथः । पा ६।३।२०) इति दीर्घः ।
 १ एक नदी जो आज कल घाणगङ्गा कहलाती है ।
 टलेमोनः इसको Sarabas शब्दमें उल्लेख किया है ।
 इसके पास ही हीनावर राज्य अवस्थित है । २ एक
 प्राचीन नगरी जो लवकी राजधानी थी । कुशावती

एवमात् सदात्त मानन्द्वयं पुत्र वा, चैसि पुत्रको
त्रिसने इस प्रकार मारा है और जिसके लिये हमारे
प्राण दादन चरित्रगामे निकल रहे हैं। यह व्यक्ति भी
निश्चय ही, इसके कारण जोक समस्त हृदयसे वेद विस-
र्जन करेगा।" इतना कह कर श्रुति और श्रुतिग्रन्थोंने
इस घटनाका पारलयाग किया। उस घटनाका
स्मरण करनेके लिये यहाँ शरव.मनपर बसाया गया
सही, पर किसी भी धर्मप्राण क्षतियसंज्ञानने उस प्रस-
ज्ञापदम्य स्थानमें बसना न चाहा। बहुतेरोंने यहाँ घर
बना कर रहनेकी कोशिश की थी, पर उम्हे साहस न
हुआ।

यह पुत्रकीर्णो भाज भी विद्यमान है। उसके
किनारे एक वृक्षके गोधे शरवानश्रुतिके प्रस्तरमयी
मूर्त्ति भाज भी देखी जाती है। श्रुतिकुमारने जिस
प्रकार मनुज-विवासु हो कर प्राणत्याग किया, उसी
घटनाके स्मरणार्थ यह मूर्त्ति भी बनाई गई है, कि मूर्त्ति
के नामिमूलमें जितना ही जल पयो न डालें, पर यह
पूर्ण नहीं होगा।

शरवारण (सं० पली०) डाल, जितसे तीरोंकी बाँटार
रेशी जाती है।

शरवृष्टि (सं० खी०) शरव्य वृष्टिः। १ शर वर्षण, पाणकी
धर्या। २ मद्यवृष्टिः। (हरिवंश)

शरवेग (सं० पु०) शरव्य वेगः। पाणका वेग।

शरव्य (सं० पली०) शरवे दिंसाये पाणशिक्षाये वा साधुः
शरव (उपनिषदो क्त। पा ५।१।२) इति यत्; यदा शरान्
व्यपातयेत् ५। लक्ष्य, यह जिस पर शरका क्षोषाग किया
जाय, यह जो तीरका निशाना बनाया जाय।

शरव्य (सं० पली०) शरव्य स्वाये क्त। शरव्य, लक्ष्य,
निशाना।

शरव्य्या (सं० खी०) शरनिर्मिता ज्य्या। शर या पाण
की दनी हुई ज्य्या। मीष्य पितामहने शरव्य्या पर
शरव्य कर देहत्याग किया था। मीष्य बरतो।

शरव (सं० पली०) १ शरव्यवनावापण। (देवोपशो
१२६) २ शर, पाण।

शरवम्य (सं० पु०) शरव्य स्तम्भः। १ शरका प्याइ।
(मत्स्य १।१२१) २ मद्रामातके अनुसार एक प्राचीन

स्थानका नाम। (भारत अनुशासन) ३ एक प्राचीन प्रवर-
कार श्रुतिका नाम। (प्रवराश्रय)

शरव (सं० खी०) १ यह कथन या वर्णन जो किसी
बातका स्पष्ट करनेके लिये किया जाय। २ दर, भाय। ३
टीका, भाष्य, व्याख्या। ४ शर लगान देना।

शरव लगान (दिं० खी०) भूकरकी दर, जमीनकी पद्धती,
विधीती।

शरा (सं० खी०) शरम दलो।

शराक (सं० पु०) १ संकर जातीय पशु। ३ एक जाति।
शराक देखो।

शराकत (सं० खी०) १ शरीक या समिहित होनेका
भाव। २ साक्षा, दिखेंसदारी।

शरानि (सं० पु०) पञ्चानि। (नीरुक्पठ)

शराघात (सं० पु०) शरव्य आघातः। पाणाघात।
पर्वाय—प्रचलाक। (जटाधर)

शराटि (सं० पु०) शरं जलं प्राप्नोतीति शर-टि। शरालि
पक्षो, टिटिहरी।

शराटिका (सं० खी०) १ शरालि पक्षो, टिटिहरी। २
लज्जालुक्, लज्जाल, लाजवन्ती।

शराटि (सं० पु०) शरारि देखो।

शराति (सं० पु०) शराटि देखो।

शरादिव मूल (सं० खी०) शरादिवश्रमृष्टत कवाय।
शर, इक्षु, दम्, काश और शालिधाम्य इन पाँचो द्रव्योंकी
जड़ पाल कर यह प्रस्तुत करना होता है।

(चक्र० भामरी०)

शरादिवश्रमूलाद्यपुत्र (सं० पली०) पुत्रीधविरोध।
प्रस्तुत प्रणाली—शरादिवश्रमूलके कवायमें चार सेर पून
और एक सेर गोशुर वटुकके साथ पाठ करे। पाठ होने
पर उसमें धोड़ा शकर डाल कर उतार ले। इस पूनका
सेवन करनेसे भमरी रोग माराम होता है।

(चक्र० भामरी०)

शरावना (दिं० पली०) किसीकी शाप देना, शरावना।
शराव्यास (सं० पु०) शराव्यामव्यासः। पाणशिक्षा।

पर्वाय—उपासन, विचारण, शर्याव्यास। (शम्भरनाम)

शराक (सं० पु०) शराक देखो।

शराकत (सं० खी०) शराक या सज्जन होनेका भाव,
मलमनसी, सज्जनता।

शराफा (अ० पु०) शराफा देखो ।
 शराफी (अ० स्त्री०) शराफी देखो ।
 शराव (अ० स्त्री०) शराव, सुगंध, मद्य । विशेष विवरण
 मदिरा शब्दमें देखो । २ हकीमोंकी परिभाषामें शरवत ।
 जैसे—शराव वनफशा ।
 शरावखाना (फा० पु०) शराव बनने तथा विकनेकी
 जगह, वह स्थान जहां शराव मिलती हो ।
 शरावखोरी (फा० स्त्री०) १ शराव पीनेका क्लृप्त, मदिरा
 पान । २ शराव पीनेकी लत ।
 शरावखवार (फा० पु०) वह जो शराव पीता हो, मदिरा
 पीनेवाला, शराबी ।
 शराबी (अ० पु०) वह जो शराव पीता हो, शराव पीने-
 वाला ।
 शराबीर (फा० वि०) जल आदिसे बिलकुल भौंगा हुआ,
 लघ्वण, तद्रवतर । जैसे—शराबीर पानीसे
 शराबीर ।
 शरावत (अ० स्त्री०) शरीर या पाजो होनेका भाव, पाजो-
 पण, वदमाशी ।
 शरारि (सं० पु०) शर जल अछलती अ गती है । १
 सेनामरुवात प्लवजातीय पक्षी, टिट्टिहरी । पर्याय—
 आदि, आड़ि, आड़ी, शराड़ी, आड़िका, शराली, शरालि,
 शराटि, शरालिका । इसके मांसका गुण चाबुदोषनाशक,
 स्निग्ध, बलकारक, सुष्टमलत्व, वातरकनाशक और
 शीतल माना गया है । (राजव०) २ रामकी सेनाका
 एक यूथपति बंदर ।
 शरारिमुख (सं० पु०) १ शरारि पक्षी, टिट्टिहरी नामकी
 छोटी चिड़िया जो जलाशयोंके पास रहती है । (स्त्री०)
 २ सुधुतोक शरारि पक्षीके मुखके समान अर्थ । यह
 पीव आदि निकालनेमें व्यवहृत होता है ।
 (सुधुत-सूत्र० ट ४०)
 शरारी (सं० स्त्री०) टिट्टिहरी नामकी छोटी चिड़िया ।
 शराव (सं० स्त्री०) शृणोतीति शू (शुक्लवृत्तः) पा
 शरा (१२) इति आक । हिंस् ।
 शरावो (सं० पु०) शरस्यः आरोपो यस्मिन् । धनुष,
 जिस पर शर चढ़ाया जाता है, कमान ।
 शराबिंस (सं० पु०) रामकी सेनाका एक यूथपति
 बंदर । (राम० ४१५१३)

शराव्याख्य (सं० पु०) शरारि पक्षीके मुखके समान
 विस्त्रावणाख्यमें ।
 शरालि (सं० स्त्री०) शरारि पक्षी, टिट्टिहरी ।
 शरालिका (सं० स्त्री०) टिट्टिहरी ।
 शराबी (सं० स्त्री०) शराबि देखो ।
 शराव (सं० पु० स्त्री०) शर जल अवति रक्षतीति अय
 रक्षणे अण् । १ सुस्वातविशेष, मिट्टीका एक प्रकारका
 पुरवा, कूल्हड़ । पर्याय—वर्द्धमानक, मार्त्तिक, सराव,
 शरालाजिर, पार्यथ, मृत्कांस । (शब्दरत्ना०)
 २ वैद्यकमें एक प्रकारका परिमाण या तोल जो
 चौंसठ तोले या एक सेरको होता है । वैद्यकमें सेर
 चौंसठ तोलेका ही माना जाता है ।
 शरावक (सं० पु०) शराव-स्वाथे कम् । शराव देखो ।
 शरावक—पूर्वभारतीय द्वीपसुदके बार्निचो द्वीपस्थ एक
 जलपद । यह पोषेष्ट-आयि नामक अन्तरीपके पूर्व-
 स्थित उपसागरके किनारे गिरिपदके नोचे अवस्थित
 है । यह पर्यंतमाला १५००से ३००० फुट तक ऊंची
 तथा बार्निचोद्वीपके मध्यदेश तक विस्तृत है । दातु
 अन्तरीपसे अद्दम नदी पर्यंत स्थान शरावकराजके
 अधिकारमें है । यहां शरावक नामक नदीके किनारे
 लोचो, जामुन, सुवारी आदि उरुहट और सुमिष्ट फलके
 पेड़ देखे जाते हैं । बड़ी चटाङ्गुला नदीके मुदानिके
 निकटवर्ती एक शाखाके लिङ्गा नामक स्थानमें एक
 प्रकारका उच्चल बालुकाभिध्रित प्रस्तरखण्ड पड़ा हुआ
 है । इसका वर्ण पुष्पराग (Topaz) वा वैगनी परधर-
 विशेष (Amethyst) की तरह होता है । मुका नामक
 स्थानमें सागू और बसाई नगरके समीप रसाजन
 मिलता है ।
 शरावकुई (सं० पु०) चायषकोटविशेष ।
 (सुधुत कल्पस्या० ८ म०)
 शरावती (सं० स्त्री०) शरा नृणविशेषः सन्तपस्यामिनि,
 शर मत्तुप् (शरादीनाथ) । पा ६।३।१२० इति दीर्घः ।
 १ एक नदी जो आज कल धाणगङ्गा कहलाती है ।
 टलेमीने इसको Sarabas शब्दमें उल्लेख किया है ।
 इसके पास ही होनावर राज्य अवस्थित है । २ एक
 प्राचीन नगरी जो लवकी राजधानी थी । कुशावती

भीर शरावती यह दो नगरी यथाक्रम कुञ्ज तथा ल्यकी राजधानी थी।

शरावर (सं० श्लो०) १ दाल। २ शर्म, कथय। ३ कटादादि।

शरावरण (सं० श्लो०) दाल जिससे तीरका चार रोकने है।

शरावान्—धेनुविस्तारके अन्तर्गत एक प्रदेश। यह धेनुविस्तारके मध्यस्थित सुविस्तृत पार्वत्य अधिल्लव-कामूमि पर है। शरावान्, श्यालावान् भीर लुस प्रदेश ले कर उक्त अधिल्लवका विभक्त है।

शरावाय (सं० पु०) धनुष, कमान।

शरावाह (सं० श्लो०) शरावस्य अहः। कुडवपरिमाण, शरावश भाषा परिमाण, ३२ तोला। (वैष्यपरि०)

शराधि (सं० पु०) एक प्राचीन श्रष्टिका नाम।

शराधिका (सं० स्त्री०) १ यह कुंसी जो ऊपरसे ऊँची और दोधमें गहरी हो। २ एक प्रकारका कौट।

शराधी—एक भारतीय मुसलमान सम्प्रदाय। ये फकीरी धर्ममें द्वार द्वार भोग मांगते फिरते हैं।

शराश्रय (सं० पु०) शरणामाश्रयः। तृण, तरकज।

शरास (सं० पु०) शर-अस-घम्। शरासन।

(भाग० ४।१०।२२)

शरासन (सं० व्री०) शरा अस्वमते शिष्यमतेऽनेनेति धाम-शरणे-वपुट्। १ धनुष, कमान, चाप। (पु०)

२ शृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।११७।४)

शरासगिन् (सं० स्त्री०) शरासनपुत्र, धनुषवांशजाती। (भारत उच्योग)

शरास्य (सं० स्त्री०) शरास्यमतेऽनेनेति अस-प्यव्। धनुष, कमान।

शरि (सं० स्त्री०) शिंश। (उप् ४।१२०)

शरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका प्यासाद्।

शरिम् (सं० स्त्री०) चाण्डिकादि। (भारत सप्तमर्)

शरिमन् (सं० पु०) शृणाति शीघ्रमिति श्रु-इषब् (ट य ५ ध लृ मृन् इतिष। उप्, ४।१४७) अस्य। (उप् ५४८)

शरिया—मुसलमानपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा नाम। यह मुसलमानपुर नगरसे १८ मील दक्षिण-पश्चिम

बया नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँ नदीके ऊपर शिल्लनेपुण्यके परिचायक तीन गुम्बजद्वारा पुत्र है। इस

मुलके ऊपरसे छपार-रोड गई है। शरियासे कुछ दूर 'मीनसिंहकी लाठी या गदा' नामक एकबृहत् पत्थरका एक स्तम्भ है। उस स्तम्भके ऊपर सिंदमूर्ति छोटी हुई है। जमीनकी स्तम्भसे स्तम्भ प्रायः ३० फुट ऊँचा है।

ऊपरका सिंह और उसका मासन तथा मोचेका स्तम्भ मूल छोड़ कर स्वअदृष्ट २४ फुट ऊँचा है। स्तम्भ

मूलके मोचे यह प्रस्तरअष्ट जमीनके भीतर कहीं तक गया है, यह आज भी निकलित नहीं हुआ है। जिस

प्राज्ञणके शृद्रप्राज्ञणमें यह स्तम्भ अड़ा है, वहाँके कितने लोगोंने उसकी भीष देखनेकी इच्छासे उसे

कोड़ा है। कई फुट कोढ़नेके बाद भी उम्दे उसका

तलवेत देखनेमें न आया। स्तम्भगात्रमें बहुतसे नाम अक्षरे हुए हैं। यह स्तम्भ किसी प्राचीन राजाकी

कीर्ति है, इसमें सन्देह नहीं। चाहे जिस कारणसे हो, यह इसी भावमें छोड़ दिया गया है। उसका इति-

हास जाननेकी कितनी विशेष चेष्टा नहीं की। इसकी वगलमें एक बहुत बड़ा कूप है। जिस प्राज्ञणकी

जमीनमें यह स्तम्भ खड़ा है, उसका कहना है, कि उसके निम्नभागमें प्रसुर धनखन है, उसीकी निशानके

के लिये यह कूप खोदा गया था।

शरी (सं० स्त्री०) परका या मोघा नामका वृष। शरीमत (सं० स्त्री०) १ मुसलमानोंके अनुसार यह पग

जो परमात्मानमें अपने भक्तोंके लिये निरिच्छत किया हो। २ परमज्ञान। (भारत उभाषर्)

शरीक (सं० स्त्री०) १ शर्मिल, सामिलित, मित्रा हुआ। (पु०) २ यह जो किसी बातमें साथ रहता हो,

साथी। ३ साथी, हिस्सेदार, वहीदार। ४ हिस्सेदार, साथी। ५ सहपात्र, सहपाठी।

शरीक (सं० पु०) १ ऊँचे आनेका व्यक्ति, कुलीन मनुष्य। २ सम्य पुरुष, महा मानुस। ३ मकके प्रधान अधिकारीकी उपाधि। (वि०) ४ यात्र, पत्रित।

जिते,—मिर्जाज शरीक, कुरान शरीक।

शरीक (सं० पु०) कलकत्ते, गंवर और मद्रासमें ऊपरकारकी मोरसे निकल किये जानेवाले एक प्रकारके

अधिकांश अधिकारी। इनके सपुर्ण शान्ति-रक्षा तथा इसी प्रकारके और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगरके बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समयके लिये शरीर बनाने जाते हैं। यूरोप और अमेरिका आदिमें भी इस प्रकारके अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जिन्हें कुछ शासन-संबन्धी कार्यों में सौंपे जाते हैं। इनके अधिकारी प्रायः मजिस्ट्रेट्सि कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीरका (हिं पुं०) १ मांसेले आकारका एक प्रकारका मसिक वृक्ष। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें फलके लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारतके जङ्गली देशोंमें बहुत अधिकतासे पाया जाता है। कहते हैं, कि यह वृक्ष वैश्व १० जसे यहाँ आया है। इस वृक्षकी छाल पतली और खाकी रंगकी और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिये सफेद रंगकी होती है। इसके पत्ते अमरुदके फलके सदृश, अण्डाकार तथा अर्धगोला होते हैं। इसमें एक प्रकारके तिनक फूल लगते हैं जो नाँचकी ओर झुके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष गरमीके दिनोंमें फूलता है और काँचिक अगहनमें इसमें अमरुदके आकारके खाकी रंगके गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजोंसे उगता है और बहुत जल्दी बढ़ कर फूलने फलने लगता है। इसके पीछे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीजमेंसे एक प्रकारका तेल भी निकलता है और इसमें तान तरहके गौद भी लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो अमरुदके सदृश गोल और खाकी रंगका होता है। इसके तल पर खालके आकारके बड़े बड़े दाँने होते हैं जिनके अन्दर सफेद गूरेमें लिपटे हुए काले लम्बोतरे दाँने होते हैं। इसका गूदा बहुत मोटा होता है और इसीके लिये यह फल खाया जाता है। अकालके दिनोंमें गरीब लोग प्रायः जङ्गली शरीरके फल खा कर निर्वाह करते हैं। वैद्यकमें इसे मधुर, हृदयके लिये हितकारी, बलवर्धक, वातकारक, शकियर्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्धक और

दाह, पित्त, रक्तपित्त, प्यास, चमन, रुधिर-विकार आदिके लिये लाभदायक माना है। इसे श्रोफल या सीताफल भी कहते हैं।

शरीर. (सं० ह्रस्व०) शृ-ईरन् (कृ, शृ, वृ, कटि पटि शीटिभ्य ईरन् । उष् ५।३०) देह, यह रोगादि द्वारा शीर्ण होती है इसीसे इसका शरीर नाम पड़ा है । पर्याय—कलेयर, गात्र, धनु, संहनन, बर्षा, विप्रद, काय, देह, मूर्ति, तनु, तनु, श्लेष्, पुर, घन, अङ्ग, पिण्ड, भूतात्मा, स्वर्ग-लोकेश, सकञ्च, पञ्जर, कुल, बल, आत्मा, इन्द्रियायतन, मूर्तिमत्, करण, वेर, सञ्चय, बंध, मुकुलग । (हेम) कविकव्यलतामें ख्योपुष्यका सर्वाङ्ग इस प्रकार वर्णित है—प्रपद, अङ्घ्रि, गुल्फ, पाणि, जङ्घा, जानु, ऊरु, यङ्गुल, कटि, त्रिक, नितम्ब, सिक्क, वस्ति, उपस्थ, ककुन्दर, जघन, जठर, नाभि, वलि, स्तन, चूलक, क्रोड़, रोम, कर्ण, अंश, वक्षः, दोः, पाश्वी, प्रण्ड, कुपूर, हृत्, प्रकोष्ठ, मणिवन्ध, अंगुलि, अंगुष्ठ, करम, नख, पदा, अष्टक, कण्ठ, शिरोधि, श्मश्रु, मुख, गोष्ठ, त्रिबुज, हनु, सूक, तालु, रद, जिह्वा, नासा, भ्रू, गण्ड, लोचन, अपाङ्ग, तारा, कर्ण, भाल, मस्तक, केश ।

(कविकव्यलता)

सांख्यदर्शनकी टोकामें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि शरीर दो प्रकारका है, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। बुद्धि, अहङ्कार, मन, पञ्चगानेन्द्रिय, पञ्चकर्म-न्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन अठारह अवयवोंका नाम सूक्ष्म या लिङ्गशरीर है। यह लिङ्गशरीर सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन होता है। महाप्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि आरम्भ होती है, तब अन्य लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। विशेष इन्द्रिय द्वारा संगठित है, इसलिये लिङ्गशरीरको विशेष भी कहते हैं। स्थूलशरीर माता-पितृज है। यह मातापितृज शरीर कुछ समय बाद चाहे मिट्टीमें मिलता, चाहे अग्निमें जलता, चाहे पशुपक्षीका पेट भरना है।

पालोकगत लिङ्गशरीर इस लोकमें लौट कर अनाजमें मिल जाता है। पीछे भोजनके साथ यह अट्टालानुसार पितृदेहमें प्रविष्ट होता है। अनन्तर वह पितृशुक्का आश्रय लेता है और तब मातृजरायुमें

भीर शरावनी यद् देव नगरी यथाक्रम कुञ्ज तथा नवकी
राश्रपावनी यो ।

शरावर (सं० श्लो०) १ टाल । २ खन, कपच ।
३ कटादादि ।

शरावरण (सं० श्लो०) टाल जिससे तीरका वार रोकने
है ।

शरावान्—पेलुविस्त्रानके अन्तर्गत एक प्रदेश । यह
पेलुविस्त्रानके मध्यस्थित सुविस्तृत पार्वत्य अधिष्ठ-
कामूमि पर है । शरावान्, श्यालावान् भीर सुत प्रदेश ले
कर उक्त अधिष्ठका विभक्त है ।

शरावाय (सं० पु०) धनुष, कमान ।

शरावायं (सं० श्लो०) शरावस्य नद्यं । कुलवपरिमाण,
शरावश भाषा परिमाण, ३२ तोला । (बेष्य०)

शरायि (सं० पु०) एक प्राचीन श्रायिका नाम ।

शरायिका (सं० स्त्री०) १ यह कुंसी जो ऊपरसे ऊँची
भीर बोधमें गहरी हो । २ एक प्रकारका कौड़ ।

शरायी—एक भारतीय मुसलमान समुदाय । ये फकीरी
धरामें द्वार द्वार भोग मांगते फिरते हैं ।

शराध्व (सं० पु०) शरणागमध्व । तुण, तरक्या ।

शरास (सं० पु०) शर-अस-धम् । शरासन ।

(भाग० श्लो० २२)

शरासन (सं० स्त्री०) शरा अस्वगते क्षिप्यगतेऽनेनेति
यम-परजे-स्युट् । १ धनुष, कमान, चाप । (पु०)

२ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । (भारत १११७४)
शरासगिन् (सं० लि०) शरासनयुक्त, धनुषवाणघाती ।

(भारत उद्योग)

शरास्य (सं० श्लो०) शरास्यगतेऽनेनेति अस-पवम् ।
धनुष, कमान ।

शरि (सं० लि०) दिव्य । (उष् ४१२३)

शरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पिलाद् ।

शरीन् (सं० लि०) पापविशिष्ट । (भारत समाप्त)

शरीम्न (सं० पु०) श्रेणाति वीचनमिति शू-शम्न
(द य प य क्य म्भ्व इभिव । उष् ४१४७) प्रलय ।
(उष् ५४७)

शरीया—मुसलमानपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा
ग्राम । यह मुसलमानपुर नगरसे १८ मील दक्षिण-पश्चिम

बया नदीके किनारे अवस्थित है । यहाँ नदीके ऊपर
शिलानेपुपयके परिचायक तीन गुम्बजदार पुत हैं । इस
पुतके ऊपरसे छपरा-रोह गाँ है । शरिकासे कुछ दूर
'भीमसिंहकी लाठी या गदा' नामक एकलक्ष्य पत्थरका
एक स्तम्भ है । उस स्तम्भके ऊपर सिंहामूर्ति कीरो
हुँ है । जमीनको स्तरसे स्तम्भ प्रायः ३० फुट ऊँचा है ।

ऊपरका सिंहा और उसका भारान तथा मोथेका स्तम्भ
मूल छोड़ कर स्वयंभू २४ फुट ऊँचा है । स्वयं-
मूलके मोचे यह प्रस्तरक्षय्य जमीनके मोतर यहाँ तक
गया है, यह आज भी निकलित नहीं हुआ है । जिस
प्राक्षणके शृङ्गाङ्गणमें यह स्तम्भ खड़ा है, वहाँके दितने
लोकोने उसकी नींव देखनेकी इच्छासे इसे
कोड़ा है । कई फुट कीड़नेके बाद भी उन्हें उसका
तलदेश देखनेमें न आया । स्तम्भगतमें बहुतसे नाम
खोदे हुए हैं । यह स्तम्भ किसी प्राचीन राजाकी
कीर्ति है, इसमें सन्देह नहीं । चाहे जिस कारणों
से, यह इसी भावमें छोड़ दिया गया है । उसका इति-
हास जाननेकी कितनी विद्येय चेष्टा नहीं की । इसकी
बगलमें एक बहुत बड़ा कूप है । जिस प्राक्षणको
जमीनमें यह स्तम्भ खड़ा है, उसका कहना है, कि
उसके जिसभागमें प्रसुर धनरत्न है, उसीको निकालने-
के लिये यह कूप खोदा गया था ।

शरी (सं० स्त्री०) परका या मोघा नामका तुण ।

शरीमत (सं० स्त्री०) १ मुसलमानोंके अनुसार यह पप
जो परमात्माने अपने मर्जीके लिये निरियत किया हो ।

२ धर्मज्ञान । (भारत समाप्त)

शरीक (सं० लि०) १ शामिल, सम्मिलित, मित्रा हुआ ।
(पु०) २ यह जो किसी बातमें साथ रहता हो,
साथी । ३ साक्षी, द्विस्वीकार, पट्टीदार । ४ रिश्तेदार,
संबन्धी । ५ सहभाजक, मददगार ।

शरीक (सं० पु०) १ ऊँचे घरानेका व्यक्ति, कुलीन
मनुष्य । २ सम्पन्न पुत्र, अच्छा मानुस । ३ मर्केके
प्रधान अधिकारीको उपाधि । (लि०) ४ वाक, वचन ।

शरीक (सं० पु०) १ सम्पन्न पुत्र, अच्छा मानुस । २ मर्केके
प्रधान अधिकारीको उपाधि । (लि०) ४ वाक, वचन ।

शरीक (सं० पु०) १ सम्पन्न पुत्र, अच्छा मानुस । २ मर्केके
प्रधान अधिकारीको उपाधि । (लि०) ४ वाक, वचन ।

शरीक (सं० पु०) १ सम्पन्न पुत्र, अच्छा मानुस । २ मर्केके
प्रधान अधिकारीको उपाधि । (लि०) ४ वाक, वचन ।

शरीक (सं० पु०) १ सम्पन्न पुत्र, अच्छा मानुस । २ मर्केके
प्रधान अधिकारीको उपाधि । (लि०) ४ वाक, वचन ।

शरीक (सं० पु०) १ सम्पन्न पुत्र, अच्छा मानुस । २ मर्केके
प्रधान अधिकारीको उपाधि । (लि०) ४ वाक, वचन ।

शरीक (सं० पु०) १ सम्पन्न पुत्र, अच्छा मानुस । २ मर्केके
प्रधान अधिकारीको उपाधि । (लि०) ४ वाक, वचन ।

शरीक (सं० पु०) १ सम्पन्न पुत्र, अच्छा मानुस । २ मर्केके
प्रधान अधिकारीको उपाधि । (लि०) ४ वाक, वचन ।

अधैतनिक अधिकारी। इनके सपुत्र शान्ति-रक्षा तथा इसी प्रकारके और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगरके बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समयके लिये शरीरफ बनये जाते हैं। यूरोप और अमेरिका आदिमें भी इस प्रकारके अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जिन्हें कुछ शासन-संबन्धी कार्यों में सौंपे जाते हैं। इनके अधिकारी प्रायः मजिस्ट्रेटोंसे कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीरफा (हिं पु०) १ मन्त्रोले आकारका एक प्रकारका प्रसिद्ध वृक्ष। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें फलके लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारतके जङ्गली देशोंमें बहुत अधिकतासे पंग्या जाता है। कहते हैं, कि यह वृक्ष वैश्ट इीजसे यहाँ आया है। इस वृक्षकी छाल पतली और खाकी रंगकी और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिये सफेद रंगकी होती है। इसके पत्ते अमरुदके फलके सदृश, अण्डाकार तथा बनीदार होते हैं। इसमें एक प्रकारके त्रिदल फूल लगते हैं जो नाँचेकी ओर झूँके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष गरमीके दिनोंमें फूलता है और कात्तिक अगहनमें इसमें अमरुदके आकारके खाकी रंगके गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजोंसे उगता है और बहुत जवरी बढ कर फूलने फलने लगता है। इसके पीछे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियोंका उप्यहार औषधमें होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीजमेंसे एक प्रकारका तेल भी निकलता है और इसमें तौन तरहके गोद मो लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो अमरुदके सदृश गोल और खाकी रंगका होता है। इसके तल पर खालके आकारके बड़े बड़े दाँने होते हैं जिनके अन्दर सफेद गूदेमें लिपटे हुए काले लम्बीतरे बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मीठा होता है और इसीके लिये यह फल खाया जाता है। अकालके दिनोंमें गरीब लोग प्रायः जङ्गली शरीरफके फल खा कर निर्वाह करते हैं। वैद्यकमें इसे मधुर, हृदयके लिये हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, शकियर्द्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्द्धक और

दाह, पित्त, रक्तपित्त, प्यास, वमन, रुधिर-विकार आदिके लिये लाभदायक माना है। इसे श्रोफल या सीताफल भी कहते हैं।

शरीर (सं० श्लो०) शृ-ईरन् (कृ, शृ, घृ, कटि पटि शौटिभ्य ईरन् । उष्ण ४१३०) देह, यह रोगादि द्वारा शोण होता है इसीसे इसका शरीर नाम पड़ा है। पर्याय—कलियर, गाल, वपुः, संहनन, वर्षा, विप्रह, काण, देह, सूरिः, तनु, तनु, क्षेत्र, पुर, घन, अङ्ग, पिण्ड, भूतात्मा, स्वर्ग-लोकेश, स्कन्ध, पद्मर, कुल, बल, आत्मा, इन्द्रियायतन, सूरिःमात्, करण, वेर, सञ्जय, बंध, मुद्गल । (हेम) कविकल्पलतामें खोपुक्यका सर्वाङ्ग इस प्रकार वर्णित है—प्रपद, अंग्घ्रि, गुल्फ, पाणिः, जङ्घा, जगनु, ऊरु, बद्धक्षण, कटि, त्रिक, नितम्ब, सिफक, वस्त्र, उपस्थ, ककुन्दर, जघन, जठर, नाभि, वलि, स्तन, चूलक, क्रोड, रोम, कक्ष, अंश, वक्षः, दोः, पाश्वी, प्रण्ड, कुर्पर, हस्त, प्रकोष्ठ, मणिवन्ध, अंगुलि, अंगुष्ठ, करम, नख, पर्ण, ध्येयक, कण्ठ, शिरोधि, श्मश्रु, मुख, ओष्ठ, त्रिबुक्, हनु, सूक्ष्म, तालु, रद, जिह्वा, नासा, भ्रू, गण्ड, लोचन, अपाङ्ग, तारा, कर्ण, माल, मस्तक, केश ।

(कविकल्पलता)

सांख्यदर्शनकी टीकामें वाचस्पति मिथने लिखा है, कि शरीर दो प्रकारका है, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। बुद्धि, अहङ्कार, मन, पञ्चानेन्द्रिय, पञ्चकर्म-न्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन अठारह अणवोंका नाम सूक्ष्म या लिङ्गशरीर है। यह लिङ्गशरीर सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन होता है। महाप्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि आरम्भ होती है, तब अन्य लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। विशेष इन्द्रिय द्वारा संगठित है, इसलिये लिङ्गशरीरको विशेष भी कहते हैं। स्थूलशरीर माता-पितृज है। यह मातापितृज शरीर कुछ समय बाद चाहे मिट्टीमें मिलता, चाहे अग्निमें जलता, चाहे पशुपक्षोका पेट भरता है।

पालोकगत लिङ्गशरीर इस लोकमें लौट कर अनाजमें मिल जाता है। पीछे भोजनके साथ यह अदृष्टानुसार पितृदेहमें प्रविष्ट होता है। अनन्तर वेद पितृशुक्का आश्रय लेता है और तब मालुनरायुमें

भीर शरावनी यह देा नगरी पचाक्रम हुआ तथा लनकी राक्षसानी थी।

शरावर (सं० ह्री०) १ टाला। २ बरम, कबच। ३ कटाहादि।

शरावरण (सं० ह्री०) टाला जिससे तीरका वार होकरे है।

शरावान्—यैतुविष्णानके अन्तर्गत एक प्रदेश। यह वैतुविष्णानके मन्वस्थित सुविष्णान पार्ष्णम अघिस्व-बाभूमि पर है। शरावान्, श्यालावान् भीर कुस प्रदेश ले कर उक्त अघिस्वका विभक्त है।

शरावाप (सं० पु०) शत्रुप, ब्रह्मान।

शरावाह (सं० ह्री०) शरावस्य अहः। कुडवपरिमाण, शरावशा भाषा परिमाण, ३२ तोला। (वैपथरि०)

शरावि (सं० पु०) एक प्राचीन अघिज्ञ नाम।

शराविका (सं० स्त्री०) १ यह कुंसी जो ऊपरसे ऊँची और नीचेसे गहरी हो। २ एक प्रकारका कौट।

शरागी—एक भारतीय मुसलमान समुदाय। ये फकीरी दरममें शर द्वारा मोक्ष मांगते फिरते हैं।

शराभव (सं० पु०) शरणाभाधयः। सृण, तरकश।

शरास (सं० पु०) शर-अस-घम्। शरासन।

(भाग० ३।१।२२)

शरासन (सं० वती०) शरा अस्वगते शिष्यगतेऽनेनेति शस-अस्ते-केमुट्। १ शत्रुप, ब्रह्मान, चाप। (पु०) २ शृंगराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।१।१०४)

शरासनि (सं० लि०) शरासनयुक्त, शत्रुघ्नोपचारी।

(भारत उजोग)

शरास्व (सं० ह्री०) शरास्वगतेऽनेनेति शस-अस्वम्। शत्रुप, ब्रह्मान।

शरि (सं० लि०) हिंसा। (उप् ४।२२७)

शरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका प्रासाद।

शरीन् (सं० लि०) याज्यनिष्ठ। (भारत समाप्त)

शरीम् (सं० पु०) शृणाति वीर्यमिति शू-इयम् (ह य प य शू शूम् इयिप। उप् ४।१४३) प्रत्यय।

(उग्न्यत्)

शरिया—मुसलमानपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा भाग। यह मुसलमानपुर नगरसे १८ मील दूरिण-वर्षिक

बया नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँ नदीके ऊपर नियन्त्रणपुण्यके परिचायक तीन मुख्यद्वार पुन हैं। इन मुलके ऊपरसे छत्रा-रोड गई है। शरिकाते कुण्ड पुर 'मोमसिंहकी साठी या गद्दा' नामक बरुनरुड ऊपरका एक स्तम्भ है। इस स्तम्भके ऊपर सिंदमूर्ति खोदी हुई है। जमोनकी स्तम्भसे स्तम्भ प्रायः ३० फुट ऊँचा है। ऊपरका सिंहा और दसका भासन तथा मोथेका स्तंभ मूल खोद कर स्तंभद्वार २४ फुट ऊँचा है। स्तंभ-मूलके नीचे यह प्रस्तरबद्ध जमोनके भीतर बड़ा तब गवा है, यह आज भी निकलित नहीं हुआ है। जिस प्राज्ञके शुद्धाङ्गणमें यह स्तंभ खड़ा है, वहाँके कितने लोगोंने उसकी नींव देखेकी इच्छासे उसे कोड़ा है। कई फुट कोड़नेके बाद भी उन्हें उसका लक्ष्य देखनेमें न आया। स्तंभगात्रमें बहुतसे नाम खोदे हुए हैं। यह स्तंभ किसी प्राचीन राजाकी कीर्ति है, इसमें सन्देह नहीं। चाहे जिस कारणसे हो, यह इसी भावमें छोड़ दिया गया है। उसका इति-हास जाननेकी कितनी विधेय चेष्टा नहीं की। इसकी बगलमें एक बहुत बड़ा कूप है। जिस प्राज्ञकी जमीनमें यह स्तंभ खड़ा है, उसका कहना है, कि उसके निम्नभागमें प्रसुर धनरत्न हैं, उसीकी निशानके लिये यह कूप खोदा गया था।

शरी (सं० स्त्री०) परका या मोघा नामका शृण। शरीमत (सं० स्त्री०) १ मुसलमानोंके अनुसार यह पप जो परमात्मान अपने मर्कोंके लिये निरिचय किया है।

२ धर्मशास्त्र। (भारत समाप्त)

शरीक (सं० वि०) १ शामिल, सम्मिलित, मिला हुआ। (पु०) २ यह जो किसी बातमें साथ रहता है, साथी। ३ साथी, हिस्सेदार, पट्टीदार। ४ रिश्तेदार, संबंधी। ५ सहामक, मद्दुगार।

शरीक (सं० पु०) १ ऊँचे आनेका व्यक्त, कुलीन मनुष्य। २ सम्प पुण्य, अच्छा मनुष्य। ३ लकेंके प्रधान अजिहारीकी उपाधि। (वि०) ४ वाक, वरिष्ठ।

शरीक—मिजाज शरीक, कुदान शरीक।

शरीक (सं० पु०) कलकत्ते, गंदा और मद्रासमें सर कारकी ओरसे नियुक्त किये जानेवाले एक प्रकारके

अवैतनिक अधिकारी। इनके सपुर्द शान्ति-रक्षा तथा इसी प्रकारके और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगरके बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समयके लिये शरीफ बनाये जाते हैं। यूरोप और अमेरिका आदिमें भी इस प्रकारके अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जिन्हें कुछ शासन-संबन्धी कार्य भी सौंपे जाते हैं। इनके अधिकारी प्रायः मजिस्ट्रेटोंसे कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीका (हिं पु०) १ मसहले आकारका एक प्रकारका प्रसिद्ध वृक्ष। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें फलके लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारतके जङ्गली देशोंमें बहुत अधिकतासे पाया जाता है। कहते हैं, कि यह वृक्ष वैष्ट इंग्लैंडमें यहाँ आया है। इस वृक्षकी छाल पतली और खाकी रंगकी और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिये सफेद रंगकी होती है। इसके पत्ते अमरुदके फलके सदृश, अण्डाकार तथा अनीदार होते हैं। इसमें एक प्रकारके बिंदल फूल लगते हैं जो नीचेकी ओर झूके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष गर्मीके दिनोंमें फूलता है और कार्तिक अगहनमें इसमें अमरुदके आकारके खाकी रंगके गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजोंसे उगता है और बहुत जल्दी बढ कर फूलने फलमें लगता है। इसके पीछे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीजमेंसे एक प्रकारका तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरहके गोंद भी लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो अमरुदके सदृश गोल और खाकी रंगका होता है। इसके तल पर आँसूके आकारके बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अन्दर सफेद गुद्देमें लिपटे हुए काले लम्बीतरे बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मोटा होता है और इसीके लिये यह फल खाया जाता है। अकालके दिनोंमें गरीब लोग प्रायः जङ्गली शरीफके फल खा कर निर्वाह करते हैं। वैद्यकमें इसे मधुर, हृदयके लिये हितकारी, बलवद्धक, वातकारक, शक्तिवद्धक, तृप्तिकारक, मांसवद्धक और

दाह, पिच्छ, रसपिच्छ, प्यास, घमन, अधिर-विकार आदिके लिये लाभदायक माना है। इसे ओफल या सीताफल भी कहते हैं।

शरीर (सं० श्लो०) शू-ईरन् (कू, शू, घृ, कटि पटि शीटिम्य ईरन्। उष्यं प्राव०) देह, यह रोगादि द्वारा शोर्ण होती है इसीसे इसका शरीर नाम पड़ा है। पर्याय—कलेपर, गात्र, वयुः, संहनन, वर्षा, विग्रह, काय, देह, मूर्ति, तनु, तनु, क्षेत्र, पुर, घन, अङ्ग, पिण्ड, भूतात्मा, स्वर्ग-लोकेश, स्कन्ध, पञ्जर, कुल, बल, आत्मा, इन्द्रियायतन, मूर्तिमत्, करण, वेद, सञ्जय, बंध, सुदुग्ध। (हेम)

कविकतरलतामें खीरुवपका सर्वज्ञ इस प्रकार वर्णित है—प्रपद, अत्रि, शुल्क, पाणि, जङ्घा, जातु, ऊरु, बद्धक्षण, कटि, त्रिक, नितम्ब, स्फिक, वस्ति, उपस्थ, ककुन्दर, जघन, जठर, नाभि, वलि, स्तन, चूलक, क्रोड, रोम, केश, अंश, यक्ष, क्षी, पार्श्व, प्रणय, कुपट, हस्त, प्रकोष्ठ, मणिवन्ध, अंगुलि, अंगुष्ठ, करम, नख, पर्व, चपेटक, कण्ठ, शिरोधि, श्मश्रु, मुख, ओष्ठ, त्रिबुक्, हनु, सूत्र, तालु, रद, जिह्वा, नासा, ध्रू, गण्ड, लोचन, अफङ्ग, तारा, कर्ण, माल, मस्तक, केश।

(कविकल्पलता)

सांख्यदर्शनकी टोकामें वाचस्पति मिथने लिखा है, कि शरीर दो प्रकारका है, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। बुद्धि, अहङ्कार, मन, पञ्चानेन्द्रिय, पञ्चकर्म-न्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन अठारह अत्रयवर्षोंका नाम सूक्ष्म या लिङ्गशरीर है। यह लिङ्गशरीर सृष्टिके मारम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन होता है। महाप्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि आरम्भ होती है, तब अन्य लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। विशेषेण इन्द्रिय द्वारा संगठित है, इसलिये लिङ्गशरीरकी विशेषता कहने हैं। स्थूलशरीर माता-पितृज है। यह मातापितृज शरीर कुछ समय बाद चाहे मिट्टीमें मिलता, चाहे अग्निमें जलता, चाहे पशुपक्षीको पेट भरता है।

परलोकगत लिङ्गशरीर इस लोकमें लीट कर अनाजमें मिल जाता है। पीछे भोजनके साथ वह अट्टणानुसार पितृदेहमें प्रविष्ट होता है। अनन्तर वह पितृशुक्रका आश्रय लेता है और तब मातृस्रावमें

भीर शरायनी वद दे। नगरी वषाप्रम कुज तथा लपकी
राजधानी यो।

शरावर (सं० श्ठी०) १ टाल। २ बगन, कषय।
३ बटादादि।

शरावरण (सं० श्ठी०) टाल जिससे तीरका घार रोकने
दे।

शरावान्—धेनुविस्वानकं अर्थात् एक प्रदेश। यह
धेनुविस्वानकं मध्यस्थित सुविन्मृत पाषण्ड्य अपिस्व-
नाभूमि पर है। शरावान्, शालापान् भीर सुस प्रदेश से
कर उक्त अपिस्वरा विभाक्त है।

शरावाय (सं० पु०) धनुष, कमान।

शरावाज (सं० श्ठी०) शरायस्य मज्जं। कुट्टवपरिमाण,
शरायका भाषा परिमाण, ३२ तोला। (वैद्यपरि०)

शरावि (सं० पु०) एक प्राचीन श्राविका नाम।

शराविका (सं० स्त्री०) १ यह कुंसी जो ऊपरसे ऊँची
भीर घोषी गहरी हो। २ एक प्रकारका षोड।

शरापी—एक भारतीय मुसलमान सम्प्रदाय। ये फकीरी
धर्मसे द्वार द्वार मोघ मांगते फिरते हैं।

शराधव (सं० पु०) शरणाभाधवा। सूप, तरकज।

शरास (सं० पु०) शर-अस-सम्। शरासन।

(भाष० श्ठी० १२२)

शरासन (सं० श्ठी०) शरा अस्वगते सिष्यगतेऽनेनेति
शर-अस-के-कुट्ट। १ धनुष, कमान, शाय। (पु०)

२ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १११७४)

शरासनिम् (सं० स्त्री०) शरासनिपुक्त, धनुषबाणघाती।
(भारत उद्योग)

शरास्य (सं० श्ठी०) शरास्यगतेऽनेनेति अस्त-अवम्।
धनुष, कमान।

शरी (सं० स्त्री०) दिव्य। (उप् ४१२३)

शरीका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका शिवासा।

शरीन (सं० स्त्री०) शालविशेष। (भारत सप्तमी)

शरीम् (सं० पु०) शृणोति बीजवमिति शू-अम्।
(ट ४ ५ ६ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००)

शरीषा—मुसलमानपुर शरीषके अर्थात् एक बड़ा
माम। यह मुसलमानपुर नगरसे १६ मील दक्षिण-पश्चिम

बया नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँ नदीके ऊपर
जिनगीपुपके परिचायक तीन गुम्बजदार पुन हैं। इस

पुनके ऊपरसे छया-रोड गई है। शरीषाके कुछ दूर
‘मीमसिंहकी लाठी या गद्दा’ नामक एकनहर परबका

एक स्तम्भ है। उस स्तम्भके ऊपर सिंदमूर्ति खोदी
हुई है। जमीनको सतहसे स्तम्भ प्रायः ३० फुट ऊँचा है।

ऊपरका सिंह और उसका भासन तथा मोषेका स्तंभ
मूळ छोड़ कर स्वर्नदख २४ फुट ऊँचा है। स्वर्भ

मूलके मोषे यह प्रस्तरखण्ड जमीनके भीतर बड़ा तक
गया है, वह आज भी निकलित नहीं हुआ है। जिस

प्राक्षणके यूपमातृणमें यह स्तंभ खड़ा है, वहोंने कितने
लोगोंने उसकी नींव देखनेकी इच्छासे उसे

कोड़ा है। कई फुट कोड़नेके बाद भी उन्हें उसका
तलवेज देखनेमें न आया। स्तंभमातृमें बहुतसे नाम

खोदे हुए हैं। यह स्तंभ किसी प्राचीन राजाको
कीर्ति है, इसमें सन्देह नहीं। चाहे जिस कारणसे

हो, यह इसी भावमें छोड़ दिया गया है। उसका इति-
हास जाननेकी कितनी विशेष खेधा नहीं की। इसकी

बगलमें एक बहुत बड़ा कूप है। जिस प्राक्षणकी
जमीनमें यह स्तंभ खड़ा है, उसका कहना है, कि

उसके निम्नभागमें प्रसुर धनरत्न है, उसीकी निशान-
के लिये यह कूप खोदा गया था।

शरी (सं० स्त्री०) परका या मोषा नामका पुन।
शरीमत (सं० स्त्री०) १ मुसलमानोंके धनुसार यह पप

जो परमात्मान अपने मकीके लिये निरियत किया हो।
२ धर्मशास्त्र। (भारत उपाय)

शरीक (सं० वि०) १ शामिल, शामिलित, मिना हुआ।
(पु०) २ यह जो किसी बातमें साथ रहता हो,

साथी। ३ साथी, द्विस्तंभार, पट्टीदार। ४ द्विस्तंभार,
द्विकोषी। ५ सहायक, मददगार।

शरीक (सं० पु०) १ ऊँचे शरानेका व्यक्ति, कुम्भ
मनुष्य। २ सम्प पुत्र, अच्छा मानुस। ३ मकके

प्रधान अधिकारीकी उपाधि। (वि०) ४ वाद, वियत।
अर्थ,—मिन्नाज शरीक, कुदान शरीक।

शरीक (सं० पु०) कलकत्ते, महर और मद्रासमें ऊपर
कारकी मोरसे निपुक्त लिये अनेकाने एक प्रकारके

अवैतनिक अधिकारी। इनके समुद्र शास्त्रि-रक्षा तथा इसी प्रकारके और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगरके बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समयके लिये शरीफ बनाये जाते हैं। यूरोप और अमेरिका आदिमें भी इस प्रकारके अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जिन्हें कुछ शासन-संबन्धी कार्यों में सौंपे जाते हैं। इनके अधिकारी प्रायः मजिस्ट्रेटोंसे कुछ मित्यते जुलते होते हैं।

शरीफा (हि० पु०) १ मन्त्रोक्त आहारका एक प्रकारका प्रसिद्ध वृक्ष। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें फलके लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारतके जङ्गली देशोंमें बहुत अधिकतासे पाया जाता है। कहते हैं, कि यह वृक्ष वैश्ट इन्द्रजीतसे यहाँ आया है। इस वृक्षकी छाल पतली और खाकी रंगकी और लकड़ी कुछ मर्मैलापन लिये सफेद रंगकी होती है। इसके पत्ते अमरुदके फलके सदृश, अण्डाकार तथा अनोदार होते हैं। इसमें एक प्रकारके विदल फूल लगते हैं जो नीचैकी ओर झूने हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष गर्मीके दिनोंमें फूलता है और कार्तिक अगहनमें इसमें अमरुदके आकारके खाकी रंगके गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजोंसे उगता है और बहुत जल्दी बढ कर फूलने फलने लगता है। इसके पीछे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होता है। इसके बीजोंसे एक प्रकारका तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरहके गोंद भी लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो अमरुदके सदृश गोल और खाकी रंगका होता है। इसके तल पर आँलके आकारके बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अन्दर सफेद गूरमें लिपटे हुए काले लम्बोतरे बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मोठा होता है और इसीके लिये यह फल खाया जाता है। अकालके दिनोंमें गरीब लोग प्रायः जङ्गली शरीफेके फल खा कर निर्वाह करते हैं। वैद्यकमें इसे मधुर, हृदयके लिये हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, शक्तिवर्द्धक, वृत्तिकारक, मांसवर्द्धक और

दाह, पित्त, रक्तपित्त, प्यास, यमन, रुधिर-विकार आदिके लिये लाभदायक माना है। इसे श्रीफल या सीताफल भी कहते हैं।

शरीर (सं० श्लो०) शू-ईरन् (कू, शू, पू, कटि पटि शोदिभ्य ईरन्। उष्ण ५१३०) देह, यह रोगादि द्वारा शोर्ण होती है इसीसे इसका शरीर नाम पड़ा है। पर्याय—कलेयर, गात्र, वपुः, संहनन, वर्णा, विप्रह, काय, देह, मूर्त्ति, तनु, तनु, क्षेण, पुर, घन, अङ्ग, पिण्ड, भूतात्मा, स्वर्ग-लोकेश, स्कन्ध, पञ्जर, कुल, बल, आत्मा, इन्द्रियायतन, मूर्त्तिमत्, करण, वेद, सञ्जय, बंध, मुद्गल। (हेम)

कविकल्पलतामें खोपुष्पका सर्वाङ्ग इस प्रकार वर्णित है—प्रपद, अंग्ति, गुल्फ, पाष्णि, जङ्घा, जानु, ऊरु, वङ्गुल, कटि, त्रिक, नितम्ब, स्निफ, वस्ति, उपस्थ, ककुन्दर, जघन, जठर, नाभि, बलि, स्तन, चूलक, फोड़, रोम, कक्ष, अंश, वक्षः, दो, पाशु, प्रण्ड, हृत्पर, हस्त, प्रकोष्ठ, मणिग्रन्थ, अंगुलि, अंगुष्ठ, करम, नख, पदा, चपेटक, कण्ठ, शिरोधि, श्मश्रु, मुब, ओष्ठ, त्रिबुक्, हनु, सूक, तालु, रदं, जिह्वा, नासा, श्रु, गण्ड, लोचन, अण्डा, तारा, कर्ण, माल, मस्तक, केश।

(कविकल्पप्रदा)

सांख्यदर्शनकी टीकामें याचस्पति मिश्रने लिखा है, कि शरीर दो प्रकारका है, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। बुद्धि, बहङ्कार, मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चतन्मास इन अठारह अवयवोंका नाम सूक्ष्म या लिङ्गशरीर है। यह लिङ्गशरीर सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन होता है। महाप्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि आरम्भ होती है, तब अन्य लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। विशेष इन्द्रिय द्वारा संगठित है, इसलिये लिङ्गशरीरको विशेष भी कहते हैं। स्थूलशरीर माता-पितृज है। यह मातापितृज शरीर कुछ समय बाद चाहे मिट्टीमें मिलता, चाहे अग्निमें जलता, चाहे पशुपक्षीका पेट भरता है।

पञ्चलोकगत लिङ्गशरीर इस लोकमें लौट कर अनाजमें मिल जाता है। पीछे भोजनके साथ यह अष्टाणुसुसार पितृदेहमें प्रविष्ट होता है। अनन्तर यह पितृशुक्ला माथय लेता है और तब मातृजराणुमें

प्रतिदिन ही बार-बार अक्षरगणितमिथिलमममून लमिमंभन देह-
 वेःषमिं भावक देता है। इसके बाद यह भूमिष्ठ होता है।
 रितामिं वनायु, अन्विष नीर मन्त्रा तथा मातामिं लोम,
 लोहित नीर मांस नाम होता है, इस कारण इसका
 पाटकीचिक जरीर कहते हैं। यह पाटकीचिक जरीर
 पात्रके बाद अष्टाधनुमार योग नीर पोछे उतका माया
 होता है। इस प्रकार लिङ्गाधारका बार-बार जन्म नीर
 मरण होता है।

पञ्चममाससे पञ्चमदाभूत उत्पन्न हुआ है। इस
 पञ्चमदाभूतमें बंशं सुप्रकर नीर लघु, बंशं दुःप्रकर नीर
 पञ्चल, बंशं विपादकर वा युक्त है। अतएव यह शास्त्रमें
 विशेष नामसे निर्दिष्ट हुआ है। सभी विशेष तीन
 धैलियोंमें विभक्त है, सूक्ष्मजरीर, माताविषम वा
 सूक्ष्मजरीर नीर तदधिकृत महाभूत। महत्सत्व, मह-
 द्वाह, महादन इन्द्रिय नीर पञ्चममास इन सबको
 समष्टि सूक्ष्मजरीर है। इन्द्रियां शक्ति, नीर नीर सूक्ष्म
 रजः होती है, अतएव ये भी विशेष है। सूक्ष्म जरीर
 इन्द्रियपात्र है, अतएव यह भी विशेषमें गिना जाता है।
 एक एक पुत्रका एक एक सूक्ष्मजरीर पहले ही प्रकृतिमें
 उत्पन्न हुआ है। यह महाप्रलयपर्यन्त स्थायी है। यह
 सूक्ष्मजरीर पूर्णपूर्वकी रूपसे देहको रचाग नीर अभिन्न
 रूपसे देहको प्रदान करता है, इसीका नाम संसार है।
 मित्त मित्त प्रकार भाष्यके बिना नहीं रह सकता, सभी
 प्रकार लिङ्गजरीरका साधारणरूप सूक्ष्मजरीर है।

सांख्यदर्शनके साध्यकार विश्वामिश्रमें जो तीन
 तीन जरीर रचोकार किये हैं, ये सूक्ष्मजरीर, अधिष्ठान-
 जरीर नीर सूक्ष्मजरीर हैं। उनके मगसे सूक्ष्मजरीर
 परिष्कारके बाद लिङ्गजरीरका जो लोकार्थर सुमन
 होता है, यह इसी अधिष्ठान जरीरके साध्यमें होता है।
 उनका कहना है कि सूक्ष्मजरीर कभी भी बिना साध्य
 के रह नहीं सकता। सूक्ष्मजरीरका सूक्ष्म जरीर ही
 अधिष्ठान जरीर कहलाना है। इन अधिष्ठान जरीरका
 दुसरा नाम सानिपारिक जरीर है। सूक्ष्मजरीर धर्मां
 धर्मादि निमित्तके अनुसार साग प्रकृतका सूक्ष्मजरीर
 मालक करता है। समष्टि विशेषका रचनासाधक
 नीर विशेषका उपानानुप्रसाधक है। यह एक सुनि-

न होगी, यह एक उक्त सूक्ष्मजरीर रचोकारकी प्रदान
 नीर अष्टाधनुमार सुप्रनुभादि योग पर-इते रचना
 करता है। (गीर्णदू०)

सायुर्वेदके मगसे युक्त नीर जोलितके सांख्यके
 बाद एक मास तक गर्भं कुट्ट तरण भाष्यधर्मां रचना है।
 द्वितीय मासमें गर्भमन्त्राधिक महाभूतमन नील, शया
 नीर सगिलके सांख्यके परिणाम प्राप्त होनेसे सांख्य
 नीर मनोभूत होता है। इस समयधर्मां गर्भं विद्वद्वादि
 होनेसे पुत्रव, दीर्घादि होनेमें कल्या नीर अमुंवादि
 होनेसे अमुं तक मन्त्रान जग लेने है। तृतीय मासमें ही
 हाथ, को पैर, नीर शिर, ये पांच विद्वद्वाकारमें तथा छाती,
 पीठ भादि अंग नीर नाक, दाढ़ी भादि प्रत्यङ्ग सूक्ष्मभाष्यमें
 उत्पन्न होता है। अमुं मासमें सारक अङ्ग प्रत्यङ्गका
 विभाग अधिष्ठाकर एक ही माता है तथा गर्भहृदयको
 प्रपणताके कारण यहाँ धेतनापातुको अभिषेकिक होने
 है; पर्वीक हृदय ही धेतनापातुका स्थान है। इस
 समय गर्भविषयमें अभिलाष होता है, इसी कारण उम
 समय गर्भिणीको सिंहदया वा दीहृदिकी करते है।
 दीहृदकी अयमानता करनेसे गर्भिणी दुःख, क्लि,
 लज्ज, जद, घामन, विरुणासू नीर हीमासू सन्तान प्रसव
 करती है, अतएव गर्भिणीको उम समय जो कुट्ट अवि-
 स्थाय हो, उसे पूर्ण करना कष्टकर है। पञ्चममासमें
 मनको दोषघातिक अधिक बढ़ती है, यह मासमें सुदिनादि
 का आविर्भाव होता है। समय मासमें अङ्ग प्रत्यङ्गका
 विभाग अष्टुत्तर होता है। अमम मासमें गर्भका नीरो
 पातु स्थिर नहीं होता अर्थात् उम समय जोता मासक
 पातु अविष्ठाकारमें, कभी मासहृदयमें, कभी-निम्न-
 हृदयमें अयस्थान करता है। इसी कारण मासहृदयमें
 नीरो पातुके रहने समय प्रसूत होनेसे निम्न सांख्य
 नहीं रह सकता। पर्वीक जोता पातु ही अर्थात् पर
 तरहका जीवन नीर वल है। अतएव जोता पातुका
 नाम होनेसे उसके साथ ही साथ मान वा कलका जो
 नाम होता है। उक्त नीरो पातुके निम्नहृदयमें रहने
 समय प्रसूत होनेसे उसे कल्पके सांख्यका रहने है।
 वरम, इजम, वरदास नीर मासक मासमें ही किसी
 मासमें गर्भं भूमिष्ठ होनेका प्रदान काल है। इसकी
 साधना होनेसे गर्भं विद्वत्किं प्राप्त होता है।

गर्भ की नाभीनाड़ी माता की रसवहा नाड़ी में सम्मिलित कर उसके आहार-रसवीर्य की गर्भशरीर में ले जाती है, इस कारण माता के उस उपस्नेह द्वारा क्रमशः गर्भ की वृद्धि होती है। योनि में शुक्रका जब तक निपेचन नहीं होता, तब तक गर्भ का अङ्गप्रत्यङ्ग अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होता, तब तक माता के सर्वशरीरा-व्यवयामिनी रसवहा तिर्यग्गत धमनियों के उपस्नेह उसे जीवित रखते और परिपुष्ट करते हैं।

गर्भ के केश, श्मश्रु, लोम, बन्धि, नख, दन्त, शिरा, स्नायु, धमनी, रेत आदि स्थिर अङ्ग पितृ तथा मांस, शोणित, मेद, मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत, प्लीहा, अन्न, गुद आदि कोमलाङ्ग मातृज हैं। उसके शरीर की पुष्टि, बल, वर्ण, स्थिति और हानि रसज, इन्द्रियाँ, ज्ञान, विज्ञान, आयु और सुख-दुःखादि आत्मज तथा वीर्य, आरोग्य, बल, वर्ण और मेधा सात्म्यज हैं। इनके सिवा कितने संचञ्चल लक्षण भी उसके शरीर में देखे जाते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि शुक्राचर्चके संयोगसे गर्भ की उत्पत्ति होती है; किन्तु जिस प्रकार ऋतु, श्लेष्म, जल और बीज की समप्रता नहीं होनेसे अङ्ग उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार ऋतु, श्लेष्म, आहाररस रस और बीज की समप्रता हुए बिना सन्तानोत्पत्ति नहीं होती। इसलिये सन्तानकामो नृनारो को चाहिये, कि वे यथा-विधान शुक्रशोणित परिशुद्धि विषयमें सर्वदा सचेष्ट रहें। ऐसा करनेसे यथासमय दोनों के संयोग होनेसे रूपगुणसम्पन्न महाबलिष्ठ सन्तान उत्पन्न होती है।

यमजादिका उत्पत्ति विवरण।

घृतपिण्ड जिस प्रकार अग्नि का आश्रय करनेसे गल जाता है, उसी प्रकार नारी का आर्चय पुरुष-समागमसे गल कर विसर्पित होता है तथा शुक्र के साथ मिल कर जब गर्भोत्पत्ति करता है, तब वह शुक्र आचर्चके साथ सम्मिलित होनेके प्राक्कालमें यदि किसी कारणसे वायु द्वारा दो भागोंमें विभक्त हो जाय, तो उसीसे अदृष्ट कारणवशतः दो जीव आश्रय ले कर यमज सन्तान उत्पादन करता है। यमज अघर्मकी सामने करके ही अवतान होता है अर्थात् अघर्मकारी ही यमज हो कर जन्म लेते हैं। माता-पिता की अल्प शुक्रताके कारण

आसेव्य (शिथिल श्रेक) नामक पुरुष उत्पन्न होता है। जो सन्तान प्रतिधानिमें जन्म लेता है उसे सीगन्धिक कहते हैं। पुरुषकी तरह स्त्रियोंके वायुमें गमनकारी अत्रि-तिग्निद्रुप जातकका नाम कुम्भीक; दूसरेका उचवाप वैल कर जिसे उचवाप प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उसका नाम ईर्गक है; पुरुष यदि मोहवशतः उत्तानभावसे सो कर अपनी चेष्टासे स्त्रीमें चोरीधान करे तो उस गर्भमें पण्ड नामक सन्तान जन्म लेता है तथा उसका आकार प्रकार और चेष्टादि स्त्रीकी तरह होती है। फिर यदि उक्त अवस्था-पन्न पुरुषसे स्त्री अपनी चेष्टा द्वारा वीर्य ग्रहण करे और उससे सन्तान जन्म ले, तो उसकी चेष्टादि पुरुषकी तरह होती है। उक्त पण्डके शरीरमें शुक्रका भाग नहीं रहता। दो नारी रमणेच्छुक हो कर परस्पर गमन करनेसे यदि परस्पर शुक्रमोचन करे, तो अस्थिहीन सन्तान उत्पन्न होता है। ऋतुस्नाता स्त्री यदि स्वप्नमें मैथुनाचरण करे, तो भी उससे सन्तानोत्पत्ति होती है। किन्तु वह गर्भ पितृजदेहवर्जित होता है अर्थात् उसके केश, श्मश्रु, लोम, नख, दन्त, शिरा, स्नायु, धमनी और रेत आदि नहीं होते। अत्यन्त पाप-कृत गर्भ सर्प, वृश्चिक, कुष्माण्ड आदिकी तरह विकृता-कारमें प्रसूत होता है। दौहृदकी अवमानना करनेसे गर्भकी जी अवस्था होती है, वह पहले ही कहा जा चुका है। कहनेका तात्पर्य यह, कि माता-पिता की नास्ति-कता, पूर्वजन्मकृत अशुभ और पातादिके प्रकोपवशतः गर्भ नाना प्रकारकी विकृतिको प्राप्त होता है।

माताके निष्वाससम्बन्ध-संशोभ और निद्रासे गर्भस्थ शिशुके निष्वाससम्बन्ध-संशोभ और निद्रा होती है; किन्तु मलकी अल्पताके कारण तथा वायु और पकाशय-क अयोगिक कारण अर्थात् उनकी प्रकृतावस्थाकी अपासि-के कारण उस शिशुके वात, मूत्र और पुरीष नहीं निकलता; फिर यदि उसका मुख जटायु द्वारा आच्छन्न तथा कण्ठ कफवेष्टित और उसका वायुमार्ग प्रतिच्छन्न रहे, तो उक्त शिशु रौदन करनेमें असमर्थ होता है।

शरीर चण।

अग्नि, सोम, वायु, सार्व रजः, तमः, पञ्चोन्द्रिय और भूतात्मा (कर्मुपुष्टय) ये सब प्राण हैं। जिस प्रकार

प्रविष्ट हो कर मूलजोतितमिथ्यासंभूत समीपवर्तन देह-
 में अपने आवास लेता है। इसके बाद यह भूमिष्ठ होता है।
 विनाश के समय, अग्नि और प्रकाश तथा मातासे लीम,
 संश्लिष्ट और मोम लान होता है, इस कारण इसके
 पार्श्वीयक जरीर कहते हैं। यह पार्श्वीयिक जरीर
 पत्रके बाद अष्टशुभ्रमात्र भोग और पोषे उतका तादा
 होता है। इस प्रकार सिद्धांतोंका बार बार जगन और
 मरण होता है।

पञ्चममात्रसे पञ्चमशुभ्रमात्र उत्पन्न हुआ है। इस
 पञ्चमशुभ्रमात्रमें केई शुभ्रकर और लघु, केई दुःखकर और
 पञ्चल, केई विनाशकर वा शुध है। अतएव यह शास्त्रमें
 विशेष नामसे निर्दिष्ट हुआ है। सभी विशेष मोम
 धर्मियोंमें विमल है, सूक्ष्मजरीर, माताविद्युत वा
 सूक्ष्मजरीर और तदधिकृत महाभूत। गहनत्व, अद-
 द्य, अकादश इन्द्रिय और पञ्चममात्र इन सर्वोंको
 समाहित सूक्ष्मजरीर है। इन्द्रियां शक्ति, ज्ञान और सूक्ष्म
 शक्त होती हैं, अतएव ये भी विशेष है। सूक्ष्म जरीर
 शिष्टव्यपटित है, अतएव यह भी विशेषमें गिना जाता है।
 एक एक शुधका एक एक सूक्ष्मजरीर पहले ही प्रकृतिमें
 उत्पन्न हुआ है। यह महाबलवपयंत स्थायी है। यह
 सूक्ष्मजरीर पूर्णपूर्वीय रूपसे देहको रचाग और अभिनय
 रूपसे देहको प्रदान करता है, इसीका नाम संसार है।
 निम्न निम्न प्रकार भाष्यके बिना नहीं रह सकता, अभी
 प्रकार सिद्धजरीरका साधनकर सूक्ष्मजरीर है।

साधनदर्शनके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुमें जो मोम
 मोम जरीर स्वीकार करते हैं, ये सूक्ष्मजरीर, अधिष्ठा-
 जरीर और सूक्ष्मजरीर हैं। उनके मगसे सूक्ष्मजरीर
 परिवर्तनके बाद सिद्धजरीरका जो लोकार्थर गुणन
 होता है, यह सभी अधिष्ठाजरीरके भाष्यमें होता है।
 उनका कहना है, कि सूक्ष्मजरीर कभी भी बिना भाष्य
 के रह नहीं सकता। सूक्ष्मभूतका सूक्ष्म अंश ही
 अधिष्ठाजरीर कहताया है। इस अधिष्ठाजरीरका
 गुणन नाम सतिवार्तिक जरीर है। सूक्ष्मजरीर पत्रां
 धर्मोंके विभिन्नके अनुसार नामा प्रकारका सूक्ष्मजरीर
 पत्राण करता है। धर्मोंके विभिन्नके स्वभाविक
 और विरुद्धका उपायानुक्त भवत्येव है। अब तक मुनि

नहोगी, अब तक उक्त सूक्ष्मजरीर सूक्ष्मजरीरको प्रदान
 और अष्टशुभ्रमात्र लुप्तशुभ्रमात्र भोग कर उती रचना
 करता है। (गीष्पद०)

सामुंयके मगसे शुभ्र और शोचिकके संयोगके
 बाद एक नाम तक गर्भं कुट, तत्रण अथस्वामिं रहता है।
 द्वितीय मासमें गर्भंअथार्थक महाभूतगण मोम, कर्मा
 और शक्तिके संयोगसे परिणाम प्राप्त होनेसे गर्भं
 और गर्भोभूत होता है। इस अथस्वामिं गर्भं विद्वद्वाहनि
 होनेसे पुत्र्य, दीर्घार्हनि होनेसे कन्या और अयुंदाहनि
 होनेसे मनुंयक मरताम जगन जेता है। सुतोप मासमें जो
 क्षण, जो पैर और निग, ये पांच विद्वद्वाहारीं तथा छात्रों,
 पीठ भाषि जंग और माक, दाढ़ी भाषि मरणक सूक्ष्ममात्र
 उत्पन्न होता है। सुतोप मासमें समस्त अष्ट मरणक
 विभाग अधिकतर व्यक्त हो जाता है तथा गर्भंहृदयकी
 प्रकृतताके कारण यहाँ चेतनाप्राप्तकी अधिकतम होती
 है; पर्वीक हृदय ही चेतनाप्राप्तका स्थान है। इस
 समय गर्भंविषयमें अगिलाप होता है, इसी कारण उस
 समय गर्भंलोको द्विहृदया वा द्वीहृदिनी कहते हैं।
 द्वीहृदकी सवमानता करनेसे गर्भंलो कुण्ड, कलि,
 लज्ज, अज्ज, घामल, गिह्वाक्ष और हीमाङ्ग सत्ताम प्रक
 करती है, अतएव गर्भंलोको उस समय जो कुट अग्नि-
 त्वासा ही, उसे पूर्ण करना कर्तव्य है। पञ्चममात्रमें
 मगको बोधनातिक अधिक बढ़ती है, पर मासमें सुदिग्गि-
 का भाविर्भाव होता है। समय मासमें अष्ट मरणक
 विभाग कुटतर होता है। अष्ट मासमें गर्भंका लोको
 प्राप्त विपर नहीं होगा अर्थात् उस समय लोकास्यक
 प्राप्त अधिकतमवर्ध, कर्मा मनुहृदयमें, कर्मा सिद्ध
 हृदयमें अथस्वाम करता है। इसी कारण मनुहृदयमें
 लोको प्राप्तके रहने समय प्रकृत होनेसे निम्न लोचन
 मरीं रह सकता; पर्वीक लोका प्राप्त ही लोका पर
 तरका जोदन और बर है। अतएव लोका प्राप्तका
 नाम होनेसे इसके साथ ही साथ प्राप्त वा कर्मा भी
 नाम होता है। उक्त लोको प्राप्तके निम्नहृदयमें रहने
 समय प्रकृत होनेसे उसे स्वयंकी सभायका रहने है।
 अतएव, अतएव, अतएव और अतएव मासमें ही कर्मा
 मासमें गर्भं भूमिष्ठ होनेका प्रथम कार्य है। इसकी
 भाष्यका होनेसे कर्मा द्विहृदिनी मग होता है।

गत इस शुककी दूसरे धातुसे पृथक् '।वमे' बचाये रखता है, इसलिये इसको शुकधरा-कला कहते हैं।

मङ्गलः हैं जिनके नाम पहले लिखे जा चुके हैं। प्रत्यङ्ग चौबीस हैं जिनके नाम ये हैं—मस्तक, उदर, पृष्ठ, नाभि, ललाट, नासा, चिबुक, वस्ति, प्रोथा, कर्ण, नेत्र, भ्रू, शङ्ख, अंस, गण्ड, कक्ष, स्तन, वृषण, पाश्र्वा, स्फिक, जानु, बाहु, ऊरु और अंगुलि।

सुश्रुतके मतसे त्वक् ७, कला ७, आशय ७, शिरा ७ सौ, पेशी ५ सौ, स्नायु ६ सौ, अस्थि ३ सौ, सन्धि २ सौ दश, मर्म १ सौ सात, धमनी २४, दोष या मल ३ और स्रोत ६ हैं। विस्तार हो जानेके भयसे प्रत्येकका यथायथ विवरण यहाँ नहीं किया गया।

शरीर (अ० वि०) लुप्त, पात्री, नटखट।

शरीरक (सं० स्त्री०) शरीर स्वार्थे कन् । शरीर देखो। शरीरकर्तृ (सं० लि०) शरीरनिर्माता, शरीरको बनानेवाला, सृष्टिकर्ता।

शरीरकृत् (सं० लि०) शरीरकारो, शरीरकर्ता।

शरीरज्ञ (सं० पु०) शरीरगत जायते इति जन-ड। १ योग, क्षीमारी। २ कामदेव, मनसिज। (महाभारत १०।१०।५६) ३ पुत्र। (महाभारत १३।२५।४) (लि०) ४ देहज्ञात, शरीरसे खटपन्न।

शरीरता (सं० स्त्री०) शरीरका भाव या धर्म।

शरीरवाग (सं० पु०) देहवाग, मृत्यु।

शरीरत्व (सं० स्त्री०) शरीरका भाव या धर्म, शरीरता।

शरीरदृष्ट (सं० पु०) शारीरिक दृष्ट।

(भाग० ५।२६।१६)

शरीरधातु (सं० पु०) रस, रक्त और मांस।

शरीरधन (सं० स्त्री०) शरीरक्षय, शरीरपाक।

शरीरपतन (सं० स्त्री०) १ मृत्यु, मौत। २ शरीरका क्रमिक क्षय, धीरे धीरे शरीरका अपचय।

शरीरपाक (सं० पु०) शरीरक्षय, शरीरका क्रमिक अपचय।

शरीरपात (सं० पु०) शरीरपतन, शरीरका नाश, देहापसान।

शरीरप्रभ (सं० पु०) प्रभवव्यस्मात् प्रभवः। शरीरकृत्, शरीरोत्पादक।

शरीरवन्ध (सं० पु०) १ शरीरयोग, देहसंख्य। (भागवत ५।५।५) २ शारीरिक क्रियावाग। (रघु १६।२३)

शरीरवन्धक (सं० पु०) जमीन्दार, जो किसी अपरिचित या अविश्वस्त व्यक्तिके विभासार्थ राजद्वार आदिमें स्वयं ब्रह्मोकारवस्त्र रहे।

शरीरमाज् (सं० लि०) शरीरं भजतीति भज णिङ (भजो विधः। वा ३।२।६२) १ शरीरधारी, प्राणी। (भागवत १।६।४२) (पु०) २ देहो, जीवात्मा।

शरीरभृत् (सं० लि०) १ देहधारी, जो शरीर धारण क्रिये हो, शरीरी। (पु०) २ विष्णु। (भागवत १।३।४।५१) ३ जीवात्मा।

शरीररक्षक (सं० पु०) देहरक्षी, वह जो राजा आदिके साथ उसके शरीरकी रक्षा करनेके लिये रहता हो। अंगरेजोंमें इसे Body-guard कहते हैं।

शरीरवन्द (सं० स्त्री०) शरीर-युक्तका भाव या धर्म। (ध्वंद०)

शरीरवत् (सं० लि०) देहधारी, शरीरवाला।

शरीरवृत्त (सं० पु०) वे पदार्थ जो शरीरका सौन्दर्य बढ़ानेके लिये आवश्यक हों।

शरीरवृत्ति (सं० स्त्री०) जोयन-निर्याह करनेकी वृत्ति, जोषिका। (रघु २।५१)

शरीरशास्त्र (सं० पु०) यह शास्त्र जिसमें शरीरके सब अवयवों, नसों, नाड़ियों आदिको विवेचन होता है और जिससे यह जाना जाता है, कि शरीरका कौन-सा अंग कैसा है और क्या काम करता है; शरीर विद्यान।

शरीरशुद्धा (सं० स्त्री०) देहकी संधा। (मनु ६।२६)

शरीरशोधन (सं० पु०) यह औषध जो कुपित मल, पित्त तथा कफको हटा कर ऊजुर्ध्व अथवा अधोमार्गसे निकाल दे।

शरीरशोधन (सं० स्त्री०) देहका क्षय।

शरीरसंस्कार (सं० पु०) १ गर्भाधानसे ले कर अन्त्येष्टि तकके मनुष्यके वेदविहित सोलह संस्कार। २ शरीरको शोभा तथा मार्जन।

शरीरसन्धि (सं० स्त्री०) शरीरप्रमिथ, शरीरके प्रत्येक

दुःख पचनमान होनेसे उससे मर उदरग्न होना है, उसी प्रकार शुक और शोणित, कल्मि आदि प्राण द्वारा क्षयित हो कर पचनमान होनेसे उससे मार शयक् उदरग्न होते हैं। तथा—

१म मयमासिनी—यह शयक् मर्षावर्णका शय्यक और पञ्चमूलाहमक काश्चित्क प्रकारका है। उसको मोटाई एक घागके मछाहूपे भागके समान होती है।

२म सोहिना—यह अरनासिनोके कुछ मोचे तथा एक घागके मोमहूपे भागके बराबर होती है।

३म श्येना—इसका परिमाण घागके बाहूपे भागके समान है।

४वां ताप्रा—यह एक घागके आठवे भागके बराबर है।

५म येद्विनी—एक घागका पांचवां भाग ही इसका परिमाण है।

६म रोहिणी—इसको मोटाई एक घागके समान है।

७म गानधरा—इसका परिमाण दो घागकी मोटाईके समान है।

उक्त गता शयक्की स्थूलताकी समष्टि एक अंगुष्ठोद्धर है। दिग्गु शयक्की प्रत्यक्षतुल्य और समुद्रयवी समष्टि का जो परिमाण बड़ा तथा, यह शरीरके मांससम्प्रेदाके साधनमें ही जानना होगा, लसाटादि क्षयिणय च्छान के शयक्के साधनमें नहीं।

शरीरके अन्वतररूप धानु और मांसवीके परस्परके मन्ववर्णों मोमाक्षयक, क्सागुमें ममाच्छत्र और ज्ञरागु मासक सूदन समोद्धि पदार्थ द्वारा मन्वग तथा श्लेष्मा द्वारा परिवेष्टित पदार्थका नाम ब्रजा है। यह ब्रजा मां शरीरके भीतर मात है, तथा—

१म मांसपराच्छा—यह मांसको घिरे रहनी है अर्थात् दूसरे धातुमें मांसको अवस्थित कर रहनी है तथा कुछ मिष्ठे हुए जलमें विद्यमान लिय प्रकार हुए जल निवर्जित होता है, उसी प्रकार शिरा, क्सागु, पमनी और शोण इसी प्रजाभावमें अवस्थित रह कर मांसके भाग साधक रहना है।

२म शय्यका—यह मांसके अन्वतररूप एक ही पदार्थ सिद्ध रहना है। इसमें शिरा शय्यका शिरा, पमोटा और मन्वकी भी शय्यका ब्रजा रहते हैं।

३म मरीचरा—यह प्रजागतः सब शय्यके शरीरों ही रहता है; परंतु सूदन और मन्वविषके मन्व जो भेद है उन्हें ब्रजा कहते हैं।

४वां श्लेषधरा—यह प्रायिकी शरीरमन्विषे अन्वस्थित है। जिन प्रकार मन्वके पित्रोत्पत्ति काष्ठ श्लेषा-स्थल होनेसे अष्टमी तरह घनता है उसी प्रकार मन्विषां श्लेषाप्रिय होनेसे सायक रूपसे शय्यस्थित होती है।

५म पुरीषधरा—यह पचनमानों अन्वस्थित है तथा जिन बोट्टके सम्यंतररूप अर्थात् उच्छुक्कथ मन्वकी मन्व पदार्थमें स्वनंतरता करता है। उक्त पचनमान का शूद्रांत नामिके जिन प्रदेगने आरम्भ कर दुग्धिमे जटिक-भावसे दाहिनी ओरकी कुचिकके पास तक आ कर समाप्त हुआ है। यही एक पीली ही जलमें विद्युत जमा रहती है। इसीका नाम उच्छुक्क है। यही उच्छुक्क स्थूलताकी प्रथम सीमा है। यहाँसे स्थूलता मन्वका ऊपरकी ओर जा कर पदगु और आमाशयको घेद्युत कर पुनःपुनःके मोचिसे प्रोढा तक आया है। पीछे यह मोचे मन्वद्वार तक आया गया है। मन्वधरा ब्रजा उक्त छोटी भाँतमें रह कर ही यहाँके दूसरे पदार्थमें उच्छुक्क मन्वकी सूक्ष्म रूपसे विभाजित होती है।

“पदगु मन्वमात् बोट्टश्च पचनमानां प्रजाशिरा । उच्छुक्कमन्व पित्तमो मर्षं मांसधरा ब्रजा ॥”

(सूक्ष्म परिमाण)

६म विलपरा—इसका नाम मन्वो भाङ्गी या पचन मानागत है। इसमें लण, शोण, श्लेष्म और घेव से पार प्रकारके मन्वमान मानागत या पचनमानोंमें पदुत हो कर इन स्थानमें जाते और श्लेष्मोप पाचक-मासा विलके मिश्रमें जोषित हो कर पचनमानमें जाते होते हैं, तथा पचनमानमें जाके श्लेष्म शिवाय रहते हैं।

७म शुकधरा—जिन प्रकार पुनःपुनः पून और श्लेष्ममें गुप्त रहना है, उसी प्रकार प्रायिकी शरीर जलमें शुक धर्ममान रहना है। जब गुदन आरम्भ हो कर श्लेष्मों का होता है, तब शुकधरा शरीरमें उत्पन्न हो कर यह गुदनके क्षयिणयों की धातु श्लेष्म शय्यकी में मोचिकी और मन्वधराके मन्वों विचलना है। मन्वोद्ध-

अत्यन्त मधुररस, रसिकारक, शीतवीर्य, शर्करावत्क तथा वायु, रक्त, पित्त, दाह, मूर्च्छा, वमि और उवर्-
नाशक, मानो गई है।

पुष्पशर्करा-शीतवीर्य, रक्तपित्तन-शक, लघु, कषायरस, शीतवीर्य तथा कफ, पित्त, वमि, अनोसार, विपासा, तुण्डा, दाह और रक्तशोथनाशक है। यह जिनको ही मधुर होगी, उतना ही उसमें मधुर, स्निग्ध, लघु, शीतल और सारक गुण होगा। (मावप्रकाश) विशेष विवरण चीनी शब्दमें देखो।

२ उपला, कण्डा। ३ कण्ड। ४ डोकरा। ५ पथरी नामक रोग। ६ बालुका, बालू। ७ पुराणानु-
सार एक देशका नाम जो कूर्माचकके पुच्छ भागमें है। (मार्क० पु० ५८३५) ८ एक प्रकारका रोग, शर्करा रोग।

शर्करामरी रोगमें रोगीके मूलशयमें वेदना होती, कफ से पेशाब उतरता और दोनों अण्डकोय सृज जाते हैं। इस रोगके उत्पन्न होते ही शुक गिरने लगता है, किन्तु लिङ्ग और मुखके मध्यभागमें वेद होनेसे अमरी भीतर में लीन हो जाती है। यह अमरी जब वायु द्वारा भिन्न अर्थात् चीनोकणको तरह होती है, तब उसे शर्करा कहते हैं। शर्करा और सिक्तामें प्रमेद यह है, कि शर्करासे सिक्ताकी रेणु सूक्ष्म होती है। वायु द्वारा प्रभिन्न शर्करा और सिक्तारोगमें यह वायु स्वयं-गामी हो, तो मूलके साथ रेणु निकल जाती है तथा वायुके विपयगामी होनेसे उनका निकलना बन्द हो जाता है और मूलकोतके साथ संलान हो कर विविध उपद्रव उत्पन्न करता है। दुर्गन्धता, शरीरकी अस्व-सन्नता, छटावा, कुश्रि, शूल, अरुचि, पोण्डु, मूर्त्वाघात, विपासा, हृदय और वमि ये सब उपद्रव होते हैं। (मावप्र०) अमरी और मुखकृच्छ्र शब्द देखो।

शर्कराक्ष (सं० पु०) चरकके अनुसार एक प्राचीन अग्नि का नाम।

शर्कराचल (सं० पु०) शर्करामये अचलः। दानार्थं कृत्विम शर्करामय पर्णतविशेष, चीनीका यह पहाड़ जो दान करनेके लिये लगाया जाता है। (हेमादि दानस०)

शर्कराधेनु (सं० स्त्री०) शर्कराभिर्निर्मिता धेनु। दानार्थं

शर्करा निर्मित धेनु, चीनीको वह गी जो दान करनेके लिये बनाई जाती है। बराहपुराणमें इस धेनुदानका विधान है। चीनीकी सवटसा धेनु बना कर यथाविधान दान करना होता है। जो दक्षिणाके साथ यह दान करते हैं, वे सभी पातकोंसे मुक्त हो अन्तमें विष्णुलोकको जाते हैं।

शर्कराममा (सं० स्त्री०) शर्कराव प्रमा यस्याः। जैनोंके अनुसार एक नरक।

शर्कराप्रमेह (सं० पु०) एक प्रकारका प्रमेह। इसमें मूत्रका रंग मिश्रीका-सा होता है और उसके साथ शरीरकी शर्करा निकलती है।

शर्कराबुद् (सं० पु० स्त्री०) शर्करावबुद्। क्षुद्रो-
माधिकारिक रोगविशेष। इसका लक्षण—जिस रोगमें कफ वायुके प्रकोपके कारण मांस, स्नायु और मेद दूषित हो कर प्रन्थि उत्पन्न होती है, उस प्रन्थिसे मधु, घृत या चर्बीकी तरह स्राव निकलता है और अधिक स्रावके कारण वायु फिरसे बढ़ कर मांसका सुखानो है और शर्कराकी तरह कठिन गाँठ उत्पन्न हो कर उसमेंको शिराओं द्वारा नाना प्रकारका वर्णविशिष्ट अत्यन्त दुर्गन्धित छेद निकलता है, कभी उससे रक्तस्राव भी होता है, उसीको शर्कराबुद् कहते हैं। यह रोग होने पर मेदजय अर्बुद रोगकी तरह चिकित्सा करनी होगी। (भावम० चन्द्ररोगाधि०)

शर्करालेद (सं० पु०) रसायनाधिकारिक लेदविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मेदा, महामेदा, अग्नि, शूद्रि, जीवक, अष्टमक, काकालो, शीरकाकोलो, जीवन्ती, यष्टिमधु, प्रत्येक द्रव्य ४ तोला, ५ माशा ५ रत्ती, कुशमूल, कांसमूल, उल्लुमूल, शम्भूल और शक मूल प्रत्येक ३ पल, जल ३२ सेर। इन्हें अग्निमें पाक कर शेष ८ सेर, नारियल जल १२ सेर, घृत ४ पल, यथानियम पाक कर १६ पल शर्करा देनी होगी। पीले पाक सिद्ध होने पर इलायची, तेजपत्र, अनिया, जीरा, क्षारचीनी, मङ्गरेला, घंशलोचन और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला करके प्रक्षेप दे कर उत्पारना होगा। यह लेद श्रेष्ठ रसायन है।

शर्करावत् (सं० पु०) शरवत्।

शर्मास् (सं० त्रि०) १ अभिप्रविता, पराभवकारी ।
२ देलवाने, ताकतघर । (श्रृक् १।१२।१०) (क्ली०)
३ बल, ताकत । (श्रृक् १।१०।६१)
शर्माद् (सं० त्रि०) स्वर्णयुक्त, भर्जित ।
शर्माट् (सं० पु० क्ली०) प्राप्य, लक्ष्य ।

(श्रृक् १।११।६५)

शर्मात् (अ० पु०) शरवत देखो ।
शर्माती (अ० पु०) शरवती देखो ।
शर्मा—१ दि० सा । २ गति ।
शर्मा (फा० स्त्री०) शरम देखो ।
शर्मा (सं० क्ली०) शर्मने देखो ।
शर्माक (सं० पु०) १ एक देशका नाम । २ इस देश-
की एक जाति । (भारत समाप्त)
शर्माकृत् (सं० त्रि०) मङ्गलकारी ।

(भागवत ७।१।३१)

शर्माणी (सं० स्त्री०) ब्राह्मीक्षुप । (वैद्यकनि०)
शर्माण्य (सं० त्रि०) १ सुखके योग्य । २ आश्रयके
योग्य ।
शर्माद (सं० त्रि०) १ सुखदायक, आनन्द देनेवाला ।
(पु०) २ विष्णु ।
शर्मान् (सं० क्ली०) शू-मनिन् (सर्वपातुभ्यो मनिव ।
उष् ४।१४) १ सुख, आनन्द । (श्रृक् ४।२।४)
२ शूह, घर । (श्रृक् ६।१३।४) (त्रि०) ३ सुखी ।
(पु०) ४ ब्राह्मणोंकी उपाधि ।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि बालकके जन्मदिनसे
दश दिन बीत जाने पर पिता उसका नामकरण करे ।
नामकरणके समय नामके बाद 'देव' शब्द तथा पीछे
शर्मावर्मादि शब्दकी योजना करनी होती है अर्थात्
ब्राह्मणके नामके बाद शर्मा तथा क्षत्रियके नामके बाद
वर्मा इत्यादि ।

५ विष्णु । (भारत १३।१४।२३)

शर्मान्—वर्णकृत्य नामक द्वायतिके प्रणेता । ये चम्प
राष्ट्रके शीघ्र तथा श्रीशर्मा नामसे भी परिचित थे ।
शर्मार (सं० पु०) १ एक प्रकारका वस्त्र । (त्रि०) २
सुखदायक, आनन्द देनेवाला ।
शर्मारी (सं० स्त्री०) दासहरिद्रा, दासहल्दी ।

शर्मारी (सं० स्त्री०) दासहरिद्रा, दासहल्दी ।
शर्मायत् (सं० त्रि०) १ सुखयुक्त, सुखी । २ शर्मा नाम-
युक्त । (मनु २।३२)
शर्मासद् (सं० त्रि०) घरमें रहनेवाला ।
(श्रृक् ३।५।२१)

शर्मा (सं० पु०) शर्मने देखो ।
शर्माण्य (सं० पु०) मसूर । (पर्यायमुक्ता)
शर्माना (अ० क्ति० वि०) शरमाना देखो ।
शर्मादगी (अ० स्त्री०) शरमिदगी देखो ।
शर्मादा (अ० त्रि०) शरमिदा देखो ।
शर्माला (सं० स्त्री०) पाण्डु शर्माला शब्दसे पञ्च-
पाण्डयकी पत्नी द्रौपदीका बोध होता है ।
शर्माष्ठा (सं० स्त्री०) द्रुपदर्वा नामक असुरराजकी
कन्या । महाभारतमें लिखा है, कि एक दिन दैत्यगुप्त
शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी और शर्माष्ठा अपनी सहे-
लियोंके साथ स्नान कर रही थीं । वायुके चलनेसे तट
पर रखे हुए सभीके वस्त्र मिल गये । स्नानके अन्तमें
शर्माष्ठाने देवयानीका वस्त्र पहन लिया । फिर क्या
था दोनोंमें कलह होने लगा । शर्माष्ठाने देवयानीके
पिताको असुरोंका भाट बतलाया और देवयानीको कुप-
में गिरवा कर वह स्वयं घर चली गईं । संयोगवश
राजा यथाति पदां पहुंच गये । राजा यथाति रमणोका
आर्षानाद सुन कर उस कुपके पास गये और देवयानी-
की निकाला । कुपसे निकल कर देवयानी अपने घर
नहीं गईं । उन्होंने किसीके द्वारा अपने पिताको अपनी
दुर्दशाका हाल और अपना संकल्प कहला भेजा ।
दैत्यगुप्तने अपना अभिप्राय दैत्यराज द्रुपदर्वासे कहा ।
द्रुपदर्वांने उनसे अपना अभिप्राय बदल देनेके लिये कहा ।
इस पर शुक्राचार्य बोले, 'तुम देवयानीकी प्रसन्न करो,
यदि वह तुम्हारे नगरमें रहना स्वीकार करे, तो मुझे भी
स्वीकार है।' द्रुपदर्वा देवयानीके समीप जा कर उसका
अनुभव करने लगा । देवयानी बोली, 'यदि तुम्हारी
कन्या शर्माष्ठा हजार दासियोंके साथ मेरी दासी होगा
स्वीकार करे और हमारे व्याहृके बाद भी हमारे पतिके
घर दासी बने कर ही जाय, तो मैं सबकुछ छोड़ सकती
हूँ।' दैत्यराजने देवयानीका कहना स्वीकार किया ।

पाया जाता है। २ एक मीलरिराज। ये उपग्रहके पुत्र ईशान देवात्मज थे। इनकी माताका नाम लक्ष्मी वती था। ३ एक सामन्त-सर्वदार। ये गुतराजाओंके अधीन महासामन्त महाराज समुद्रसेनके पूर्वपुत्र थे। शर्वर (सं० बली०) १ तमः, अधिकार, अधिरा। २ कन्दर्प, कामदेव। (संक्षिप्तवाराण्यदि) ३ सन्ध्या। ४ नारीजाति।

शर्वरिन् (सं० पु०) बृहस्पतिके साठ संवत्सरोमेंसे चौतीसवाँ संवत्सर। कहते हैं, कि इस संवत्सरमें दुर्भिक्षका भय होता है।

शर्वरी (सं० स्त्री०) शृणाति चेष्टामिति श्रुत्वरच पितृवात् ङीप्। १ रात्रि, रात, निशा। (श्रुक् ६।५२।३) २ घोषित्, नारी, स्त्री। (मेदिनी) ३ हरिद्रा, हल्दी। (विश्व) ४ सन्ध्या, साँझ, शाम। (संक्षिप्तवाराण्यदि) ५ बृहस्पतिके साठ संवत्सरोमेंसे आठवाँ वर्ष।

शर्वरीक (सं० लि०) क्षतिकर, क्षान्तिकरक, बुकशान करनेवाला।

शर्वरीकर (सं० पु०) विष्णु।

(भारत १३।४६।११०)

शर्वरीदीपक (सं० पु०) चन्द्रमा।

शर्वरीद्वय (सं० बली०) हरिद्रा; और दाहहरिद्रा; इन दोनोंका समूह।

शर्वरीपति (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ शिव।

शर्वरीश (सं० पु०) चन्द्रमा। (राजतरंग ३।३८७)

शर्वला (सं० स्त्री०) तीमराज्य अन्न। (रायमुकुट)

शर्वाक्ष (सं० पु०) वृद्धाक्ष, शिवाक्ष।

शर्वावल (सं० पु०) कौलास।

(कथासरित्सां १०।६।२५१)

शर्वाणो (सं० स्त्री०) शर्वस्य भार्या इन्द्रवधनभवेति।

शर्व (या ४।१।१४६) शर्वरी।

शर्विलक (सं० पु०) नायकभेद। (मुद्ररक्तिक ३।५।२)

शर्वीक (सं० पु०) श्रु, ईकन्, श्रु, पृ, वृषाँ द्वेक-चाम्पासस्य। (उण् ४।१६) १ हिंस्रक। २ कल, दुष्ट, पात्रो। (उणादिकोष) ३ अश्व, घोड़ा। ४ मङ्गलामरण। ५ अग्नि। (संक्षिप्त वाराण्यदि)

शर्षीका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द।

शर्षदा (हिं० पु०) पाताल गासड़ी, जल जमुनो, छिर-हरा।

शल (सं० स्त्री०) शलण (व्यञ्जितिकवन्तेषो षः) वा ३।१।१४०) १ शल्यकीलम, साहीका काँटा। पर्याय—शलली, शल्ल। (पु०) २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ शृङ्गी। ४ क्षैलभेद। ५ प्रहा। (मेदिनी) ६ कुन्ताल, भाला। (त्रिकाशय) ७ उष्ट्र, ऊँट। ८ चासुकीवंशीय सर्पविशेष। (महाभारत १।१७।१६) ९ शतनु राजाका पुत्र। (भागवत ६।२।२।१८) १० शल्य-राज। (भागवत १।१।१।१६) ११ कंसके मन्त्री। (भागवत १।०।३।१२१) १२ धृतराष्ट्रका पुत्र। (भारत १।१२।७।४) १३ शिवानुचर शृङ्गी। १४ सोमवृक्षका पुत्र। (भारत)

शलक (सं० पु०) १ लूता, मफड़ी। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ शल्यकी कष्टक, साहीका काँटा।

शलकर (सं० पु०) नागभेद। (भारत नादिवर्ग)

शलगम (फा० पु०) शलजम देखो।

शलङ्कट (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (वा २।४।६।८)

शलङ्क (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। शालङ्कायन आदि इनके वंशसम्भूत हैं।

शलङ्ग (सं० पु०) १ लोकपाल। २ लवणविशेष, एक प्रकारका नमक। (उणादिकोष)

शलजम (फा० पु०) गाजरकी तरहका एक प्रकारका कन्द। यह प्रायः सारे भारतमें जाड़ेके दिनोंमें होता है। यह कन्द गाजरसे कुछ बड़ा और प्रायः गोल होता है और तरकारी, अचार और मुरखे आदि बनानेके काममें आता है। यूरोपमें इससे चीनी भी निकाली जाती है।

शलपुत्र (सं० पु०) बौद्ध-वतिभेद, सम्भवतः शालिपुत्र। (तारनाथ)

शलम (सं० पु०) शल-अभच्। (कृशृशिक्षिण्णिगर्दि ष्यो-उमच्। उण् ३।१२२) १ कीटविशेष, पतङ्ग, फलिया। २ शरभ, टोड़ी, टिड्डी। ३ छपपके ३१वें भेदका नाम। इसमें ४० गुण और ७२ लघु, कुल ११२, वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। ४ मयूरविशेष। (हरिवंश ३।१८८) शलभता (सं० स्त्री०) शलमका भाव या धर्म।

(कमारसम्भव ४।४०)

पाया जाता है। २ एक मीनरिराज। ये उपग्रहके पुत्र ईशान देवात्मज थे। इनकी माताका नाम लक्ष्मी यती था। ३ एक सामन्त-सत्वर। ये गुप्तराजाओंके अधीन महासामन्त महाराज समुद्रसेनके पूर्वपुत्र थे। शर्वर (सं० बली०) १ तमः, अधकार, अधेरा। २ कन्दर्प, कामदेव। (संक्षिप्तशरीर्यादि) ३ सन्ध्या। ४ नारीजाति।

शर्वरिच (सं० पु०) बृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे चौतीसवाँ संवत्सर। कहते हैं, कि इस संवत्सरमें दुर्मिक्षका भय होता है।

शर्वरी (सं० स्त्री०) शृणोति, श्रेष्ठामिति श्रु-श्वरश्च पितृवात् डीप। १ रात्रि, रात, निशा। (श्रुक् ६।५२।३) २ योपित्, नारी, स्त्री। (मेदिनी) ३ हरिद्रा, हल्दी। (विश्व) ४ सन्ध्या, साँझ, शाम। (संक्षिप्तशरीर्यादि) ५ बृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे आठवाँ वर्ष।

शर्वरीक (सं० लि०) क्षतिकर, हानिकारक, नुकशान करनेवाला।

शर्वरीकर (सं० पु०) विष्णु।
(भारत १३।४६।११०)

शर्वरीश्वर (सं० पु०) चन्द्रमा।

शर्वरीद्वय (सं० बली०) हरिद्रा: और द्वादशहरिद्रा: इन दोनोंका समूह।

शर्वरीपति (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ शिव।

शर्वरीश (सं० पु०) चन्द्रमा। (राजतर० ३।३८७)

शर्वरी (सं० स्त्री०) तोमराख्य अन्न। (रायबुद्ध)

शर्वरी (सं० पु०) रुद्राक्ष, शिवाक्ष।

शर्वरी (सं० पु०) कैलास।
(कथासरित्सा० १०।६।५१)

शर्वरी (सं० स्त्री०) शर्वरीय-मार्वा इन्द्रधरुणमेवेति।

शर्वरी (सं० पु०) शर्वरीय-मार्वा इन्द्रधरुणमेवेति।

शर्वरी (सं० पु०) श्रु-इन्द्र श्रु-पृ-दृर्जा द्वेक-चाम्बासस्य। (उण्य ४।१६) १ हिंसक। २ बल, दुष्ट, पाजो। (उणादिकोष) ३ अश्व, घोड़ा।

शर्वरी (सं० पु०) शर्वरीय-मार्वा इन्द्रधरुणमेवेति।

शर्वरी (सं० स्त्री०) परु प्रकारका छन्द।

शर्वरी (सं० पु०) पाताल गावड़ी, जल जमुनी, छिर-हटा।

शल (सं० स्त्री०) शल ण (व्यक्तिव्यक्तव्येभ्यो षः। पा ३।१।१५०) १ शलजकोलम, साहीका काँटा। पयाय-शलली, शलक। (पु०) २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ शृङ्गी। ४ क्षेत्तमेद। ५ प्रहा। (मेदिनी) ६ कुन्ताख, माला। (त्रिकांशोप) ७ जट्ट, ऊँट। ८ वासुकीशशीय सर्पविशेष। (महाभारत १।५७।१) ९ शतनु राजाका पुत्र। (भागवत ६।२।१।५) १० शल्य-राज। (भागवत १।१।१।६) ११ कंसके मन्त्री। (भागवत १०।३।१।१) १२ धृतराष्ट्रका पुत्र। (भारत १।१२।७।१) १३ शिवायुधर शृङ्गी। १४ सोमदत्तका पुत्र। (भारत)

शलक (सं० पु०) १ लूता, मकड़ी। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ शलकी कष्टक, साहीका काँटा।

शलकर (सं० पु०) नागसेद। (भारत आदिपर्व)

शलकम (फा० पु०) शलजम देलो।

शलकट्ट (सं० पु०) एक श्रुषिका नाम। (पा ३।४।६।६)

शलक (सं० पु०) एक श्रुषिका नाम। शलकडायन आदि इनके वंशसम्भूत हैं।

शलक (सं० पु०) १ लोकपाल। २ लवणविशेष, एक प्रकारका नमक। (उणादिकोष)

शलजम (फा० पु०) गाजरकी तरहका एक प्रकारका कन्द। यह प्रायः सारे भारतमें जाड़े के दिनोंमें होता है। यह कन्द गाजरसे कुछ बड़ा और प्रायः मोल होता है और तरकारी, अचार और मुरखे आदि बनानेके काममें आता है। यूरोपमें इससे चीनी भी निकाली जाती है।

शलपुत्र (सं० पु०) बौद्ध-वतिसेद, सम्भवतः शालिपुत्र। (तारनाथ)

शलम (सं० पु०) शल-अभच्। (कृशाश्लिकनिर्दिभ्यो-उमच्। उण्य ३।१।२) १ कीटविशेष, पतङ्ग, फलिंया। २ शरभ, टीड़ी, टिड़ी। ३ छपपक ३३५ सेदका नाम। इसमें ४० गुण और ७२ लघु, कुल ११२ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। ४ अक्षरविशेष। (हरिवंश ३।१५५)

शलभता (सं० स्त्री०) शलभका भाव या धर्म।
(दशरुण ४।५०)

तन्त्रोंमेंसे एक तन्त्र । "शल्य" नाम विविध तृणकाष्ठपा-
पाणप्रांशुलोहलोहास्थिवालनखंपूपास्त्रावातर्गर्मशब्दोद्वा-
राणां यन्त्रशस्त्रक्षारानिप्रणिधानप्रणविनिश्चयार्थाच्च" ।
(सुधुत १५०)

विविध प्रकारकी घास, लड्डीकी, पत्थर, लोहे, ईंटके
टुकड़े, हड्डी, नाखून आदिके किसी कारण शरीरमें गड़
जानेसे मवाद और खून आदि विकृत हो कर अति उत्कट
यन्त्रणा होती है । इन्हीं शरीरसे बाहर निकाल कर
यन्त्रणा दूर करनेके लिये जिस तन्त्रमें यन्त्र, शस्त्र, क्षार
और अग्निकर्म आदिका प्रस्तुत और प्रयोग करनेका
विधान है, उसीको शल्यतन्त्र कहते हैं । सुधुतके
मतसे षाठ प्रकारके तन्त्रोंमेंसे शल्य तन्त्र ही सर्वोसे
श्रेष्ठ है, कारण इससे शीघ्र ही फायदा पहुँच जाता है ।
इस शल्यतन्त्रमें निपुणता रहने पर पुण्य, स्वर्ग, यश, धर्म
और आयु प्राप्त होती है । (सुधुत १५०)

अष्टाङ्गद्वयसंहिता नामक वैद्यकग्रन्थके उत्तरखण्ड-
का २५से ३४ अध्याय शल्यतन्त्र कहलाता है ।

शब्दा (सं० खी०) मेदा नामकी औषधि । वैद्यकमें
लिखा है, कि इसके अभावमें असगन्ध औषधमें देना
होता है । (राजनि०)

शल्यपर्णिका (सं० खी०) मेदा नामकी औषधि ।

शल्यपर्णी (सं० खी०) शल्यपर्णिका देखो ।

शल्यपर्वा—महाभारतका ६थां पर्वा । इस पर्वामें शल्य
रामाका कर्णासारथ्य, सेनापत्य, भीमके साथ गदायुद्ध
और युधिष्ठिरके हाथ मृत्युकी बात लिखी है ।

शल्यलोमन (सं० खी०) शल्लवत् लोम । शल्लो,
साही नामक जन्तुका कांटा ।

शल्यवत् (सं० खी०) शल्युक्त, धाणविशेष ।

शल्यवारङ्ग (सं० खी०) धाण या अन्यम्य शल्यका
पश्वाङ्गभाग ।

शल्यशलक (सं० पु०) फोड़ों आदिकी चौरफाड़का काम ।

शल्यशास्त्र (सं० पु०) चिकित्साशास्त्रका वह अङ्ग जिसमें
शरीरमें गड़े, हुप कांटों आदिके निकालनेका विधान
रहता है ।

शल्यस्रसन (सं० खी०) शल्यनिकासन, कांटा निका-
लना । (बीभक्तिकी०, ३३)

शल्यहृत् (सं० पु०) शल्योद्धारकर्ता, वह जो कांटा
निकालता हो । (रामा० ५२५ई)

शल्यहृत् (सं० पु०) शल्यहरणकारी । (वृहत्सं० ५१८०)

शल्य (सं० खी०) १ मेदा । २ विकटत वृक्ष । ३ नाग-
वल्ली नामकी लता ।

शल्यारि (सं० पु०) शल्यस्य अरि; तन्त्राशक्तवात् ।

शल्यका मारनेवाले, युधिष्ठिर ।

शल्योद्धारण (सं० खी०) शल्यस्य उद्धारण ।
शल्योद्धार देलो ।

शल्योद्धार (सं० पु०) १ शरीरमें लगे हुए धाण या कांटे
आदि निकालनेकी क्रिया । २ वास्तुविद्याके अनुसार
नया मकान बनवानेके समय जमीनके साफ कराना
और उसमें हड्डियाँ आदि निकलवा कर फेंकवाना ।

शल्ल (सं० खी०) १ त्वक्, चमड़ा । २ वृक्षकी छाल ।
(पु०) ३ मेक, मेढक ।

शल्ल (सं० खी०) जो दुर्गलता या धकावट आदिके कारण
विल्कुल सुस्त या सुन्न हो गया हो ।

शल्लक (सं० खी०) शल्लमेव स्वार्थे कन् । १ त्वक्, चमड़ा ।
(पु०) २ शोण, वृक्ष, सलाई । ३ शल्लकी, साही नामक
जन्तु ।

शल्लकी (सं० खी०) १ पशुविशेष, साही नामक जन्तु ।

श्वरई—शल्यधर्ष । नामिल—कुलि । सहैरुन पर्याय—
श्वारित्, शलक, शल्य, ककचपाद, छेदार, शल्यक, शल्य-
मृग, वज्रशय्य, विटेशय । इसके मांसका गुण—गुरु,
स्निग्ध, शीतल तथा कफपित्तनाशक । साही पञ्चतन्त्रके
मध्य है, इसलिये इसका मांस भक्षणयोग्य है ।
(शाकवल्क्य ११७०)

२ वृक्षविशेष, सलाईका पेड़ । (Boswellia serrata
Indian olibanum)

शल्लकीत्वच (सं० खी०) सलाई वृक्षकी छाल ।
(चक्र सं० ४५५)

शल्लकीद्रव (सं० पु०) सिद्धक, शिलारस । (जटापर)

शल्लकीरस (सं० पु०) सिद्धक, शिलारस ।

शल्लिक (सं० खी०) त्रीका, नाव ।

शल्ली (सं० खी०) १ शल्लकी वृक्ष, सलाई । २ शल्लकी,
साही नामक जन्तु ।

करते थे। (Herod; lib, I, G. 140, Arian de Bello, Alex., Theoph, de Lapid C, XV) इलियनने लिखा है, कि राजा जरक्षेजने जब बेल्सुसकी कब्र खोदो, तब उन्हे'ने शवसिन्धुकको विलयिथोपसे एकदम परिपूर्ण देखा था। इस शवसिन्धुकका वर्णन देखा कर मि० लेयाडे'ने अपना अमिप्राय प्रकट किया है, कि आसीरियाके प्राचीनतम प्रासादादि बनाये जानेके बाद तथा अत्येकांकृत आधुनिक अटालिकादि मठनके पहले आसीरियाके राज्यमें जिस जातिवा जनसमप्रदायने वास किया था, वह शवसमाधि उसी मध्य युगकी प्रथा है।

सुर्माचीन निनिमे राज्यवासो जनसाधारणके नाना समाधिस्तम्भ कृष्टिगोचर होने पर मो. निनिमित्तगण किस उपायसे शवका सत्कार करते थे, उसका कुछ भी निदर्शन नहीं मिलता। फेवल बाबिलोनिया राज्यमें प्राप्त कुछ अस्थिमस्माधारसे (Sepulchral) से जली मिट्टीका जलपात्र, खाद्य भाण्ड, मृत्युकी मितो लिखी हुई मृत्पाण्ड, मस्तकके अस्थिसमाधानार्थ काटो हुई ईंटें पाई गई हैं। बुशयाकी राजधानीके निकट इसी प्रकारके एक मस्मभाण्डमें बालुकायौगसे एक पूर्णावयव मनुष्यको देहास्थि पाई गई है। यह भाण्ड मिट्टीका बना है। उसकी लंबाई ३'४" और उसके मध्य स्थानकी परिधि २'६" इत्य तथा ऊंचाई एक इंचका स्तोपांश होगी।

भाण्डके ऊपरकी दोनो बगलमें दो टो'स शृङ्खल वृण्ड हैं। उसके ऊपर पृथग्भावमें दो पात्र सजाये हुए हैं। पात्रका भीतरी भाग मिट्टीके तेलकी तरह एक प्रकारके तेलसे संपृक्त देखा जाता है। भाण्डमें ऐसा कोई चिह्न नहीं जिससे इनके समयका पता लगाया जा सके। कालदीयगण उस प्राचीन समयमें मिट्टीसे एक प्रकारका शयाधार बनाते थे। उनमेंसे बहुतेको आकृति डिमकी तरह छिल्ली होती थी। वे लोग उसमें शवको, शवके भाग पात्रके साथ खाद्य और जल तथा मस्तकक्षाके लिये सुर्पाक इष्टकको रख कर समाधिस्थ करते थे। कहीं कहीं मर्तबानके आकारमें शयाधार देखा जाता है। मान्य होता है, कि उस भाण्डमें शवको रख कर ऊपरसे स्तूपकारमें मिट्टी भर देते थे।

कालदीय जातिके मृत्युस्थान कालमें प्रकृत काल-

दीया (Chaldaee proper) को छोड़ उत्तर-बार्थिलोनिया या आसीरिया राज्यमें और कहीं भी ऐसी प्राचीन कब्र नहीं दिखाई देती। रेवरेण्ड जी० रलिंगसनने अपने ग्रन्थमें लिखा है, कि पारसिक लोग जिस प्रकार मृत्युदेहको करवला यो मेशेद अली नामक स्थानमें ले जा कर दफनाता औरवजनक समझते हैं, भारतवासो हिन्दू जिस प्रकार दूर देशमें मृत व्यक्तिके शव या अस्थिके वाराणसी, चक्रदह आदि तद्गातीरवृत्तो नगरमें ला कर फिर वाह करना मुक्तिप्रदा समझते हैं, एक दिन कालदीयावासो भी कालदीयाके पवित्र क्षेत्रमें अपनेकी समाधिस्थ करना सम्मानजनक समझते थे।

प्राचीन रोमक भी शववाहके पक्षपाती थे। किन्तु वे लोग भी रोमविशेषमें मृतको दफनाते थे। वषपनमें बालक-बालिकाकी मृत्यु होने पर उसे जगमूमिले दूरमें गाड़ दिया जाता था। इस जातिके मध्य मस्मास्थिके भाण्डमें रख कर गाड़नेकी व्यवस्था थी। भूपृष्ठी से कुछ नीचे उस भाण्डको रख कर ऊपरसे मृत्तिले ष्ट किया जाता था। इस जातिकी प्राचीन कब्रमें जो सब शयाधार पाये गये हैं, वे पत्थरके बने हैं और मिश्र भिन्न आकृतिके हैं। अत्येष्टिक्रिया करनेके लिये रोमकगण शववहनकालमें रास्तेसे शोहसूचक ध्वनि करते करते जाते थे। चुलीमें शवस्थापनके बाद उसमें आग लगा दी जाती थी तथा उसके ऊपर मृतका घस्रा लङ्कारादि और प्रियतम भोग्य पशु मार कर उसका मांस फेंक दिया जाता था।

प्राचीन ग्रीकजातिकी शवसत्कारप्रणाली बहुत कुछ भारतीय आर्यों-सी है। वे लोग वैतरणी (Styx और Acheron) नामक स्वर्गस्थ नदी पार करनेकी कामनासे शवके मुखमें एक मुद्रा डाल देते थे तथा सरमा (Cerberus) को प्रसन्न करनेके लिये गेहूँका चूर्ण और मधुमिश्रित पिण्ड पिण्ड देते थे। मृतके उद्देशसे मस्तकमुण्डनका आभास भी ग्रीक लोगोंके मध्य दिखाई देता है। किन्तो निकट आसीयके मरने पर ग्रीक लोग ग्रीकविहस्यरूप शिर मुंडवा लेते थे। इलियाड, (Iliad, xxiii) में लिखा है, कि पट्रोक्लासकी अत्येष्टिक्रियाके समय एथिलिसके वधुबांधवोंने अपने अपने शिरके बाल कटवा

स्तम्भों के ऊपर अस्पष्ट आकारमें मृत्यु की अवस्थायुक्त कीरमूर्ति अंकित हैं। अधिकांश मूर्ति ही अम्बारोही हैं।

पञ्चादके नाना स्थानोंमें, वामिवातप्रदेशमें, अफगानिस्तानमें और कांबुलके समीप इस प्रकारके अनेक समाधिस्तूप विद्यमान हैं। भारतवर्षके स्थान स्थानमें बुद्धके मङ्गलविशेषके ऊपर जो इष्टकस्तूप खड़ा किया गया था, वह उसीका रूपान्तरमात्र है। चिन्तु इन समाधिस्थानोंमें केवल एक ध्यक्रिकी अस्थि या अस्त्र रंजी हुई है। उनकी बनविट प्रोक देवीय स्थापत्यकल्पको तरह है। मनिक्केल नगरीके पास ८० फुट ऊँचाई और ३० फुट घेरेका घेसा ही एक स्तूप देवनेमें आता है। उसके मध्यभागमें स्वर्ण रौप्य और ताम्रपत्रादि तथा रोमक और बाह्यिकवयनोंकी मुद्रा पाई गई है। भीतर ६० फुट गहरा जो घर है उसमें ताम्रनिर्मित सिन्धुके मध्य पशुकी अस्थि रखी हुई है।

डा० कनिंद्मने-दाक्षिणात्यकी शयसमाधि और स्तूपनिर्माणप्रथा देख कर कहा है, कि इङ्ग्लैण्डकी आदिम अधिवासी फेएटजातिके समाधिप्रस्तरादि (Cairns, cromlechs, kistvaens and circles of upright loose stones) से नीलगिरिवासी असभ्य जातीयके समाधिप्रस्तरके साथ बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। उन सब समाधिस्थानोंमें विविधपात्र, मसमण्ड, नरास्थि और मसम, उज्ज्वल मिट्टाके पात्र आदि रखे रहते हैं। एम्बई प्रेसिडेन्सी, दक्षिण-भारतके नागपुरसे ले कर मद्रुरा तकके स्थानोंमें तथा कोपम्बतोरके दक्षिणस्थ अनमलय शैलपृष्ठ पर अनेक समाधिस्तम्भ दृष्टिगोचर होते हैं। नीलगिरिमें जो समाधिस्तम्भ दृष्टिगोचर होते हैं, उनसे ये सब स्तम्भ विगत सम्बन्धगर्क जाते

किरोजावाद और भोमातोरस्थ स्थानोंके शयस्थानको परीक्षा कर तथा इङ्ग्लैण्डके इसी प्रकारके शयस्थानके साथ उसकी तुलना कर कहा है, कि ये सब Scytho-celtic या Scytho Druidical हैं।

उक्त स्थानकी तोडा, कुडवर आदि पहाड़ी जातियां तथा निकटवर्ती आपहिन्दू इन सब शयस्थानोंके किसी भी तरहसे अवगत नहीं हैं। संस्कृतसाहित्यमें अथवा द्राविडीय लिपिमालामें उसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। तामिल भाषामें उन्हें पाण्डू कुडि कहते हैं। तामिल भाषाके कुडि शब्दका अर्थ है कर्म या गर्त। इस कारण बहुतेरे उसे पाण्डव-समाधि कह कर घोषणा करना चाहते हैं, पर यथार्थमें ऐसा नहीं है। दक्षिण-भारतमें द्राविड़ जातिके मानिके पहले यहाँ बहुत सम्भव है, कि स्रमणकारी राजाशाल्यका वास था। द्राविड़ जातिके अने तथा उनसे दलित या वितान्द्रित होने अथवा उनके साथ मिल जानेसे यह जाति विप्लुत्तप्राय हो गई है। उस जातिकी धर्मबुद्धिका एकमात्र परिचय यह अन्वेषणिक्रिया हो होती है।

हैदराबादराज्यमें तथा बलराम और सिकन्दराबाद नगरके चारों ओर इस प्रकार मस्तरस्तम्भघोषित अनेक समाधिश्चेत दिखाई देते हैं। सिकन्दराबादसे २० मील पूर्व-दक्षिणमें एक बहुत बड़ा समाधिश्चेत है। उसे देखनेसे मालूम होता है, कि वहाँ सैकड़ों वर्षसे शय दफनाये जा रहे हैं। जिस जातिकी यह कीर्ति है उनका ब्रिह-मात्र भी न रह गया है। इन सब कर्मोका पर्यायज्ञान करनेसे देखा जाता है, कि प्रत्येक घृहत् प्रस्तरकण्डके नीचे एक एक गर्त है। उसके मध्यस्थलमें शशस्थि और मसमण्ड है तथा ऊपर और नीचे मृतके ध्यवर्ण घनुर्वाग और पात्रादि रखे हुए हैं। पीछे उस समाधिके चारों ओर गोल पत्थर स्त्राये गये हैं।

गिरते इस कारण वाया क्षेत्रमें पिण्डदानकी व्यवस्था है।

(४) So shall they burn odours for thee. (Jeremiah, xxxiv. 5)

हिन्दुओंकी शवदाहके समय चन्दनकाष्ठ, धूना और घृण जलानेकी रीति है।

(५) Rachel weeping for children and would not be comforted, because they are not, (Matthew II, 18.)

पुत्रकी मृत्यु होने पर माताका हृदयविदारक कन्दनध्वनि करना स्वभाव है। युद्धमें निहत पुत्रोंके लिये उनकी माताओंकी समवेत कन्दनध्वनि जो शीरजनक कोलाहल उत्पन्न करता है, वह स्वभावतः ही मर्मभेदी है। लङ्काध्वंसके बाद तथा कुरुक्षेत्र-युद्धके बाद रामचन्द्र और पाण्डवोंने ऐसा ही भोगण शोक प्रकट किया था।

प्राचीन कालमें वैदिक आर्यासमाजमें शरसत्कारकी एक और पद्धति प्रचलित थी। किसी आत्मीयके मरने पर उसके आत्मीय बैलगाड़ी पर शय लाद कर श्मशान ले जाते थे, कभी उसके अनुचर उसे ढोते थे। मृतका निकट आत्मीय या कोई वयशुद्ध व्यक्ति उस शययात्राका नायक बन कर जाता था। साथमें एक काली बूड़ी गायको मार कर वे लोग मांस चर्बी आदि शयके ऊपर रखते और उस भोजनसे शवदेह टक देने थे। इसके बाद मृतकी पत्नी शयके ऊपर सुलाई जाती थी। कभी कभी मृतका छोटा भाई, सतीर्ष या कोई अनुचर उस विधवाको ब्याहना स्वीकार कर उसे साथ लाता था। ३म, ५म, ७म या १०म दिनोंमें शोककारी मृतका शय गाड़ कर उसके चारों ओर प्रस्तरशलाका गाड़ते तथा अशीचमहणकारीके घरमें आ कर सत्तु और बकरेका मांस खाते थे।

हिन्दू वैष्णव शवदाह करके भस्म गाड़ देते थे। मृत्यु निकटस्थ होने पर वे लोग सिरहानेमें शीप जलाते तथा कपूर और नारियलसे होम करते हैं। मृत्यु होने पर तुलसीपत्रसे मृतके मुखमें पञ्चगव्य देते हैं। इसके बाद दो तीन घण्टेमें शयको बाहर ला कर सत्कारके लिये श्मशान ले जाते हैं। स्थानविशेषमें काष्ठ या शुष्क गोमय-

के चूल्हसे शवदाह किया जाता है। उसके ऊपर गम रख कर तुलसीपत्र देते और पिण्डदान करते हैं। दाहके दूसरे दिन वे अस्थि और करोड़ीकी संभ्रम कर उसमें जल देते हैं। पीछे एक पात्रमें उन हड्डियोंकी रख नदी या समुद्रके जलमें फेंक देते हैं।

आसाममें हिन्दू लोग घरमें किसीको भी मरने नहीं देते। क्योंकि, इससे घट अपवित्र हो जाना है तथा कोई भी उस अपवित्र घरमें भोजनादि नहीं करते। इस कारण मृत्युके कुछ पहले वे लोग पीड़ितकी घरके आंगनमें उठा लाते हैं। कोई कोई इस समय उसे रत्नके लिये एक स्वतन्त्र स्तन बना रखता है। कई जगह मृतकी इच्छा-सुसार उसका सत्कारकार्य होता है। सिन्धुदेशमें भी विडाने पर मरने नहीं देते। वे मृत्युके पहले शयको बाहर ला कर भोगपलित स्थानमें सुलाते हैं। घरमें मरने पर जो अशीच होता है, उसके लिये घरके मालिकको धारातीर्ष या कच्छके अन्तर्गत नारायण-सरोवरमें भाना पड़ता है, नहीं' बानेसे गृहाशीच निवृत्त नहीं होता।

तिब्बतीय बीड़ोंका शव होनेका चित्र अद्भुत है। वे लोग शवदेहको रज्जुसे बांध कर घरसे दूर ले जाते हैं और पर्वत परके घनप्रदेशमें छोड़ आते हैं। कभी तो वे देहको दाह करते, कभी जलमें बहा देने और कभी टुकड़े टुकड़े कर कुत्तको खिला देते हैं। दक्खिन्ना शय कुत्तोंको खिलाया जाता है। घनी भादमी इसीलिये कुत्तको पोसते हैं। राजा और बड़े लामा स्वतन्त्र स्थानमें गाड़े और निम्न श्रेणीके लामा जलाये जाते हैं।

महदेशवासी कुङ्गी नामक बीड़पति शवदेहको एक वर्ष तक मधुमें डुबो रखते हैं। इसके बाद बाजे गाजेके साथ वे शयको बाहर कर दाह करने ले जाते हैं। दाहके समय वे लोग तरह तरहकी आतशवासी करते हैं। चीन-देशवासी मृत व्यक्तिका अच्छी तरह सम्मान करते हैं तथा अपने अपने पूर्वपुरुषके समाधिस्थलमें वे तोर्ष करने जाते हैं। वहाँ शवदेहको एक काठके बषसमें बन्ध कर एक जगह रखा जाता है तथा प्राचीन यहुद्धा जानिकी तरह वे उस शवदेह पर एक घण्टीबड़ा करवाते हैं।

रहती है। किसी व्यक्तिके मरने पर शव होनेवालोंको खबर देनी पड़ती है। खबर पाते ही वे शव होनेके उद्देशसे रबी हुई खाटकी सजा कर लाते हैं। शवके पीछे पीछे चलनेके लिये मुसलमान सम्प्रदायमें संवाद देनेकी विशेष व्यवस्था नहीं है; निकट आत्मीय मृत्युके कुछ पहले या पीछे संवाद पाते हैं। वे ही शववाहीके पीछे पीछे जाते हैं। कश्मिस्तानमें जा कर समी फतोहा पाठके बाद मृतकी समाधिके ऊपर एक एक मुट्टी मिट्टी के क घर; लीरते हैं। गुह्यमान देखो।

मृत्युके पूर्ण पीड़ितको कुरान पढ़ कर सुनाया जाता है। मृत्यु होने पर शवकी स्नान कराया जाता है। ऊपर कढ़ी हुई प्रयासे मिट्टी देनेके बाद कपड़े ऊपर मिट्टीका टीला और कमी कमी बड़ा बड़ा महल भी बनाया जाता है। आगरेका ताज-महल, फतेपुर शिकरीकी मावर शाहकी समाधि, औरङ्गाबादकी औरङ्गजेब-कन्याकी समाधि, दक्षिणात्य-कुलवर्ग, गोलकुंडा और बीजापुर आदि स्थानोंमें आदिलशाही, कुतबशाही और बाल्हाणी राजवंशधरोंके समाधिमन्दिर इस विषयके उत्कृष्ट दृष्टान्त हैं।

असम्भ जनार्ण जातिमें भी दफनानेकी प्रथा है। वे लोग शव ले कर अपने अपने घरसे दूर वन या स्थान-विशेषमें गड़हा बना कर शव गाड़ते तथा शवके सामने खाद्यदि रखते और दीप बाल देते हैं। पीछे उसके ऊपर मिट्टी ढक दी जाती है। कोई कोई शवकी घनमें छोड़ जाता है। उन लोगोंका विश्वास है, कि जंगली जन्तुसे उसकी देह खाई जाने पर परलोकमें उसे सुख-शान्ति मिलती है। आर्य हिन्दुओंमें भी शव-समाधि प्रचलित है। किसी किसी दशनामी संस्थासोके दफनानेके समय उसके शरीरमें तमाम लवण दे दिया जाता है। किसीको जलमें बहा दिया जाता। उन लोगोंकी धारणा है, मरस्यादि जलज जीव द्वारा यह मांस खाये जाने पर अश्वि पुण्य होता है।

कुटीचक, बहूदक आदि देखो।

पारसी लोग जश्नुखके प्रवर्तित आभ्युपासक हैं। पूर्वमें होशकंङ्गसे पश्चिममें इङ्गलैण्ड तक सुदूर स्थानोंमें इन लोगोंके दीपक घरोंका बास है। किन्तु वारं

प्रदेशमें ही वे अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। इनमें नेसुस-सालर नामक एक निरुद्ध ध्रुणी है जो शव वहन करती है। वे लोग शुद्ध वस्त्र पहन कर शवदेहको दीवामां (Power of silence) ले जाते हैं। उस दीवामां छत नहीं होती, चारों ओर ऊँची दीवार खड़ी रहती है। बीचमें एक ऊँचा ढालुवाँ चबूतरा रहता है। उसी चबूतरे पर वे शव रख कर चले आते हैं। दीवामांके जिस चबूतरे पर शव रखा जाता है, उसके मध्यस्थलमें एक फूप है। उस चबूतरेसे गलित शवदेहके रसादि नली द्वारा फूपमें गिरता है। जब वह फूमा भर जाता है, तब भीतरकी अस्थि और रस निकाल कर दीवामांको बाहर गाड़ दिया जाता है।

मृतके प्रेतकी मद्दल कामनाके लिये पारसियोंके आभ्युपासक एक पुरोहित रहता है। उसे माहवारी या सालानेके हिसाबसे तनखाह मिलती है। इसके अतिरिक्त वह प्रति वार्षिक भजनके लिये भी कुछ पाता है।

पीड़ित व्यक्तिकी मृत्युके बाद तथा शव दीवामांमें ले जानेके पहले पारसी लोग एक कुत्तेको ला कर शवदर्शन कराते हैं। इसे सगर्द्विषु या कुत्तेकी दृष्टि कहते हैं। उनका विश्वास है, कि कुत्तेकी सुदृष्टि शवके ऊपर पड़नेसे उसकी प्रेतात्मा मासानोसे स्वर्गस्थ चिगवन् पुलको पार कर सकेगी।

पश्चिम भारतवासी पारसी जातिमें शवदेह पक्षी आदिको खिलानेकी व्यवस्था है। इस कारण वे शव रखनेके लिये एक ऊँची इमारत बनवाते हैं। उस इमारतका नाम है Tower of silence। वरंई नगरके पास ऐसी ही एक ऊँची मन्दिरवायिका है। पारसी लोग उसी घरके मध्यस्थानमें शव रख आते हैं। शकुनि, गृध्रिनो आदि पक्षी बड़े, चावसे बह शवदेह खाते हैं। शवकी गंधसे नगरवासीका स्वास्थ्य खराब न हो जाय, इस कारण उसकी दीवार ऊँची की जाती है। धायु सञ्चालनसे वह गंध बहुत दूर चली जाती है, नगरवासी उसका कुछ भी अनुभव नहीं कर सकते।

वर्ण्य देखो।

पहले लिखा जा चुका है, कि अंगरेजाधिकृत भारत-

घनशाली चीनवासी उन बपसों को नाना शिल्प-नैपुण्य खचित कर रखते हैं। कमी कमी वे लोग अपनी मृत्युके पहले ही शवदेह रखनेके लिये अपनी इच्छानुसार बपस तैयार करते हैं।

दक्षिण-भारतके शैव-सम्प्रदायभुक्त हिन्दू, जङ्गम, लिङ्गायत, परिया नामक जाति, अन्यान्य अनोप्य जाति और पञ्च प्रधान शिल्पजीवी शवदेहको गड्ढेमें उत्तरमुख सुला कर गाड़ते हैं। कहीं कहीं लिङ्गायत खाटके बदले कुर्सी पर बैठकर शवको समाधिस्थलमें ले जाते हैं। भारतीय वैष्णव शवदेहको साधारणतः दाह करते हैं। उत्तर-भारतवासी और महाराष्ट्र-देशवासी उच्च श्रेणीके हिन्दू और राजपूत जातिमें शवदाह करनेकी ही विधि है। उन सब स्थानोंमें स्वामीकी मृत्युके बाद उसके साथ संतोदाहकी व्यवस्था थी। अङ्गरेजी गमल-दारीमें यह प्रथा उठा दी गई है। वैष्णवोंमें जो सामान्य रोगसे मरता, दाहके बाद उसकी भस्म गाड़ी जाती है। किन्तु विद्युच्चिका, वसन्त या किसी प्रकारके संक्रामक रोगसे अथवा अधिवाहित अवस्थामें मरने पर शवको गाड़ देते हैं। बालिद्वीपके किसी प्रधान सरदारकी मृत्यु होने पर जब उसका शवदाह होता, तब उसकी विधवा पत्नियाँ और दासदासियाँ भी चितामें प्राण-विसर्जन करती हैं। यद्यदीपमें एक भारतीय उपनिवेश है। यहाँ शवदाहप्रथा तथा नदी या समुद्रके जलमें वहाना अथवा वृक्षमें शरद्रेह लटकाने पर पशु पक्षी द्वारा जिलानेकी प्रथा प्रचलित है।

दक्षिण-अफ्रीकाकी बालोन्दा जातिमें ऐसी एक रीति है, कि जिस स्थानमें उनका खोबियोंग होता है, उस स्थानकी वे छोड़ दूर देश चले जाते हैं, कभी भी वह स्थान देखने नहीं आते। प्राचीन मिथ्रवासी शवदेहका किस प्रकार संस्कार करते थे, यह ठीक ठीक नहीं कह सकते। वे लोग प्राचीन राजाओंकी मृत देहको परिष्कृत और तैलसिक्त (Embalm) कर बख्शते टुक रखते थे। आज भी वे सब रक्षित शवदेह पिरामी नामक ईकोरिस्तूपके गृह-गहरमें जिसे Mummy कहते हैं, रखी हुई हैं। धीरे धीरे यहाँके लोगोंने जब इस प्रथाको उचित न समझा, तब वे शवदेहको जलाने

लगे, कमी कमी पशु पक्षी द्वारा जिलाने लगे और निर्जन स्थानमें फेंक फोड़ोंका साथ बनाने लगे। मोन्-नदतीरस्थ सुदृढ़ शवदाह (Catacombs) उसका प्रष्ट प्रमाण है। इस समय वहाँके लोगोंने प्रत्येक जनसाधारणके लिये स्वतन्त्र समाधिस्थान बनाना सोचा नहीं था।

पाश्चात्य जगत्में भी आज कल शवदाहकी व्यवस्था देखनेमें आती है। वैज्ञानिक फरासियोंने भारतीय विज्ञानके पशुचर्चों को समाधि (कब्र) को अपेक्षा शवदाहको ही श्रेष्ठ समझ रखा है। अमेरिका महादेशके स्थान स्थानमें भी शवदाहकी व्यवस्था है, पर वह आज भी पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सकी है। हिन्दू लोग जिस प्रकार श्मशानमें शव ले जा कर स्नानके बाद मुष्ठाग्नि दे दाहसंस्कार करते हैं, वे लोग उस प्रकार नहीं करते। वे बैचल कोयले या लकड़ीकी आगमें दफन करते हैं। ईसाई और मुसलमान यद्यपि शवको दफनाते हैं, फिर भी वे कब्रिस्तान ले जानेके पहले उसे स्नान कराते और पीछे पीछे लेते हैं। घनी ईसाई साधारणतः गाड़ी पर लाद कर शव ले जाते हैं। यह शव ले जानेके लिये एक एक दल रहता है जिसे Undertaker कहते हैं। समाधिक्षेत्रमें शव गाड़नेके लिये स्थान खरीदना पड़ता है। शव ले जाना, स्थान खरीदना और समाधिमन्दिर बनाना ये सब कार्य एक अण्डरटेकर दलके हाथ रहते हैं। पीछे वे लोग मृतके निकट आत्मोपसे यह खर्चा बसूल करते हैं। इन लोगोंके भी शयानुगमन है। निकट-आत्मीय और बंधुओंकी मृत्यु तथा शव ले जानेका संवाद पत्र द्वारा ही दिया जाता है। यह पत्र पानेसे सभी निर्दिष्ट समयमें मृत आत्मीयके घर जाते और गाड़ीके पीछे पीछे चलते हैं। वे लोग शवदेहको काठके बपस (Collin)में रख कर फूलसे सजाते हैं।

दरिद्र ईसाई जो गाड़ी आदिका खर्चा वहन नहीं कर सकते, कंधे पर ही शवदेहको ढोते हैं। इनकी शययात्रा अंतो धूमधामसे नहीं होती।

मुसलमानोंका शव धंधे पर ही ढोया जाता है। उनका शव ढोनेके लिये काठकी बनी एक स्वतन्त्र खाट

नहीं है। मन्त्रके मतसे महावल्लि, अति बुद्धिमान, महासाहसिक, पवित्रचेता, महासूक्ष्म, दयालु और सर्वाभूतके हितमें रत, ऐसा व्यक्ति ही शुभसाधनके योग्य है।

साधनविधि—बलिके लिये उड़द, भात, तिल, कुश, सरसों और धूप दीपादि पूजाके उपकरणकी आवश्यक है। ये सब वस्तु ले कर पूर्वनिर्दिष्ट किसी स्थानमें जावे। पहले स्वामाग्य अर्घ्य स्थापन कर याग स्थान अभ्युक्षण करे। पीछे पूर्वाकी ओर गुरु, दक्षिणमें गणेश, पश्चिममें चण्डिकादेव और उत्तरमें ६४ योगिणियोंकी पूजा करके जमीन पर घोंराई न मन्त्र लिखना होगा। घोंराई न मन्त्र इस प्रकार है—

‘हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं’ कालिके घोररूपे प्रचण्डे चण्ड-नायिके दानवान् दारय हन हन शय शरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हूँ फट् । इसके बाद—

‘ये चान् वसिष्ठा देवा राक्षसाश्च भयानकाः ।

शिशान्वा सिद्धयो यथा गन्धर्वान्परतो गणाः ॥

योगिन्यो मातरो भूवाः सर्वाश्च लेखा क्रियाः ।

सिद्धिदास्ता भवन्त्यत्र तथा च मम रक्षकाः ॥’

इत्यादि मन्त्रीच्चारण कर ३ बार पुष्पाञ्जलि दे। पीछे पूर्व दिशामें श्मशानाधिपति, भैरव, कालभैरव और महाकालकी पञ्चोपचारसे पूजा कर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ बलि देनी होगी—

‘ओं हूँ श्मशानाधिप इमं सामिवात्र बलिं गृह्ण गृह्णापय विघ्न निवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा ॥’ इस मन्त्रसे श्मशानाधिपकी तथा ‘ओं हूँ भैरव भयानक इमं सामिवात्रमित्वादि’ मन्त्रसे भैरव, कालभैरव और महाकालकी बलि देनी होगी। इसके बाद—‘ओं ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनु रूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह यम यम बन्ध बन्ध घातय घातय हूँ फट् सहस्रांशु हूँ फट्’ इस अघोर सुवर्ण मन्त्रके अंतमें शिवाबन्धन कर और छातो वर हाथ रख ‘आत्मानं रक्ष रक्ष’ इत्यादि मन्त्रोंसे आत्म-रक्षा करे।

पीछे भूगर्भुद्धि और ग्यास जाल करके ‘ओं हुं हुं रक्षणि स्वाहा’ यह जयदुर्गा मन्त्र उच्चारण कर चारों ओर सर्वप तथा—

‘ओं तिलोत्पलि योगदैवत्यो गोवयस्तुतिकारकः ।

विदुष्यां स्वर्गदाया स्वर्गं मर्यातां मम रक्षकः ॥

भूतप्रेतशिशानां विघ्नोप शान्तिकारकः ॥’

यह मन्त्र उच्चारण कर चारों ओर तिल छिड़क कर विहित शयके समीप उपस्थित होवे। शयके पास बैठ कर ‘हूँ फट्’ इस मन्त्रसे शयके ऊपर अभ्युक्षण करे। पीछे ‘ओं हूँ मृतकाय नमः फट्’ इस मन्त्रसे तीन बार पुष्पाञ्जलि दे शय स्वर्ग कर नमस्कार करे। प्रणाम-मन्त्र इस प्रकार है—

‘वीरेश परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर ।

आनन्दमैत्राकार देवीपति हूँ शङ्कर ॥

वीरोद्दे स्वां मयधामि उत्तिष्ठ चचिदकाल्पनि ॥’

प्रणामके बाद ‘ओं हूँ मृतकाय नमः’ इस मन्त्रसे शयका प्रक्षालन और मुगन्धित जलसे स्नान करा कर कपड़ेसे पीछे ढाले। पीछे धूप जला कर शबदेहमें चन्दनादि लगावे। शय यदि रक्त वर्ण हो जाय, तो यह साधकको क्षा डालना है। इसके बाद शयके मुँहमें जायफल, खीर, अदरक और पान भर कर उसे भींधे मुँह कर रखे। शयपृष्ठ पर चन्दनादि लेप कर घाहुमूलसे कटि पर्जन्य चीकान मण्डल बनावे। चीकानके मध्य गण्डल पत्र और चतुर्द्वार अंकित कर पत्रमें ‘ओं ह्रीं फट्’ यह मन्त्र और उसके साथ कश्मीर पीठमन्त्र लिखे। बादमें उसके ऊपर कर्मलादि आसन बिछा दे।

शयका कटिदेश पकड़ कर पूजास्थानमें लाना होता है। लाते समय यदि किसी प्रकारका उपद्रव बरे, तो शयको धुकधुका दे तथा फिरसे प्रक्षालन कर जपस्थानमें लावे। इसके बाद द्वादशगुल यहकाष्ठ जपस्थानके दशों दिशाओंमें रथा यथाक्रम इन्द्रादि दशदिक्पालकी पूजा करनी होती है। ‘ओं लॉ इन्द्राय सुराधिपतये पेटावतवाहनाय वज्रहस्ताय स्वशक्तिपारिपदाय सपरि-चाराय नमः’ इस मन्त्रसे पाद्य तथा ‘ओं लॉ इन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय विघ्न निवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा ॥’ इस मन्त्रसे उड़द मातकी बलि दे कर ‘ओं लॉ इन्द्राय स्वाहा’ उच्चारण करे।

... अग्निकी पूजा और बलिमन्त्र—‘ओं हां जगये

तेजोऽधिपतये मेघघाटनाय सपरिवाराय शक्तिहस्ताय सायुधाय नमः" इस मन्त्रसे पूर्णवत् पूजा और 'ओ' रां भन्तये तेजोधिपतये इमं वलिं शुद्ध शुद्ध' इत्यादि पूर्णवत् वलि दें।

यमंका मन्त्र—“ओ' मां यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिपवाहनाय सायुधाय नमः" इस मन्त्रसे पूजा और 'ओ' मां यमाय प्रेताधिपतये इमं वलिं' इत्यादि मन्त्रसे पूर्णवत् वलि चढ़ावे।

निर्ऋतिका मन्त्र—“ओ' क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये अस्तिहस्तायाम्बुवाहनाय सपरिवाराय नमः" इस मन्त्रसे पूजा और 'ओ' क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये' इत्यादि पूर्णवत्।

वरुणका मन्त्र—“ओ' वां वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकरवाहनाय सायुधाय नमः" इस मन्त्रसे पूजा तथा 'ओ' वां वरुणाय जलाधिपतये' इत्यादि पूर्णवत्।

वायुका मन्त्र—“ओ' वां वायवे प्राणाधिपतये हरिणवाहनाय अकुशहस्ताय नमः" और 'ओ' वां वायवे प्राणाधिपतये' इत्यादि पूर्णवत्।

कुबेरका मन्त्र—“ओ' कुबेराय यज्ञाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिवाराय नमः" और 'ओ' कुबेराय यज्ञाधिपतये' इत्यादि पूर्णवत्।

ईशानका मन्त्र—“ओ' हां ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय पृषवाहनाय सपरिवाराय नमः" और 'ओ' हां ईशानाय भूताधिपतये' इत्यादि पूर्णवत्।

ब्रह्माकां मन्त्र—“ओ' इन्द्रे शानयोर्मध्ये ओं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंसवाहनाय पद्महस्ताय सपरिवाराय सायुधाय नमः" और 'ओ' ओं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये' इत्यादि पूर्णवत्।

अनन्ताका मन्त्र—“ओ' वैश्वदेवतयोरपामंध्ये ओं ह्यो अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय रथवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः" और 'ओ' ह्यो अनन्ताय नागाधिपतये' इत्यादि पूर्णवत्।

दश दिक्पालके उद्देशसे पूजा वलि देनेके बाद सर्वभूतके उद्देशसे वलि दे। समी जगह सामिपान्न वलि देनेकी विधि है। इसके बाद अघिष्ठाक्षी देवता, चौंसठ

योगिनो और डाकिनियोंके उद्देशसे भी वलि देनेकी विधि है।

इसके बाद सायंक अपने पास पूताद्रथ और कुछ दूरमें उत्तरसायकको रख 'ओ' ह्यो फट् शयासनाय नमः' इस मन्त्रसे शवको पूजा करे। पीछे 'ह्यो' फट्' यह मंत्र पढ़ कर अश्वारे/हणकनसे शवपृष्ठ पर बैठ कर अपने पैरके नीचे कुछ कुश रखे तथा शवके केशहो फैला, जुड़ा बांध गुरु, गणपति और देवीको प्रणाम करे। इसके बाद प्राणायाम और पङ्कज्यास कर पूर्वकी वीर, ई नमंत्र पढ़ दशो दिशाओंमें डेले फेंक सङ्कल्प करे। यथा 'अदेत्यादि अमुक गोत्रः श्रोअमुकदे वंशमां अमुक देवतायाः सन्दर्शनकामः अमुकमन्त्रस्यामुकसंख्यजपमहं करिष्ये' संख्यके बाद 'ओ' ह्यो आघात्प्रथित कमलासनाय नमः' इस मन्त्रसे आसनकी पूजा कर अपने वामभागमें शवके निकट अर्घ्य रख कर पूजा करे। पीछे सायक यथाशक्ति पोद्दोषोपचार, दशोपचार अथवा पञ्चोपचारसे देवीकी पूजा कर शवके मुखमें सुगन्धित जलसे तर्पण करे; इसके बाद उठ कर शवके सामने खड़े हो यह मंत्र पढ़े—
'ओ' वशो मे भव देवेश मम वीर सिद्धि देहि देहि महाभाग कृताश्रयपरायण'।

अनंतर पाटके सूतसे शवके दोनों पैर बांध मूलमन्त्रसे शव देहको मजबूतीसे बांध रखे। मंत्र इस प्रकार है—

“ओ' मदशो भव देवेश वीरशिद्धिकृतास्पद।

ओ' भीम भीरु भयाभयो भवगोचन भायुक।

आदि मां देवदेवत शवानामधिपाधिप ॥”

यह मंत्र पढ़नेके बाद शवके पादमूलमें त्रिकोण मन्त्र अङ्कित करे। शवके ऊपर बैठ उसके दोनों हाथ फैला उस पर कुछ बिछा दे। उस कुशके ऊपर सायक पैर रख कर फिरसे तीन बार प्रणाम करे और शिरस्थित पथसे शुकदेवका तथा अपने हृदयमें देवीका ध्यान करते करते दोनों ओं ठ संपुटकी तरह कर निर्भय हृदयसे मीनभावमें विहित माला ले श्मशानसाधनके कर्मानुसार जप करे। इस प्रकार जप करनेसे भी यदि भाषो रात तक कुछ दिखाई न पड़े, तो फिरसे पूर्णवत् सरसो और तिल फेंक कर उपविष्ट स्थानसे सात

कदम आगे जा पुनः जप करे। जप कालमें शयक हिलने पर डरना न चाहिये। यदि डर मालूम हो, तो इस प्रकार कहे, "दिनान्तरे कुञ्जरादिकं शय्यामि मम स्थाने स्वनाम कथय" अर्थात् दूसरे दिन गजादि दूंगा, तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है। साफ साफ कहो। इस प्रकार संस्कृतमें कह कर फिरसे निर्भय हो जप शुरू कर दे। मधुप्रयाग्यसे यदि शय अवना नाम बतावे, तो साधकका भी फिर इस प्रकार कहना चाहिये। 'प्रतिष्ठा करो, कि तुम मुझे घर दोगे' इस प्रकार प्रतिष्ठा-घट्ट कर साधक घर मांगे। यदि प्रतिष्ठा न करे और घर भी न दे, तो यैकान्तिक मनसे फिर जप करे। किन्तु प्रतिष्ठा करके घर देनेमें राग्य होने पर फिर जपकी जरूरत नहीं। ऐसी हालतमें अभीष्ट घर ले कर कार्य सिद्ध हुआ समझना चाहिये। पीछे शयका जूरा खोल उसे घों डाले और दूसरी जगह रख शयके पैरों को खोल दे। इसके बाद पूजापकरणको जलमें फेंक तथा शयको भी जल या गरामें डाल साधक स्नान करे।

साधक घर आ कर शयकी प्रार्थनानुसार दूसरे दिन प्रतिश्रुत हाथी, घोड़े, आदमी या स्वरकी पिष्टमय घलि चढ़ा कर उपवास करे। घलिमन्त्र इस प्रकार है—

"अग्निमरात्रौ येषां यजमानोऽहं ते यद्वृत्तियं वस्ति।"

दूसरे दिन साधक प्रातःकृत्यादि नित्यक्रिया करके पञ्चगव्य पान करे और २५ ब्राह्मण भोजन करावे। अश्वमेध होने पर शक्तिके अनुसार ब्राह्मण भोजन करानेमें भी दीप नहीं। ब्राह्मण भोजन हो जाने पर साधक स्नान करे, बादमें भोजन कर उत्तम आसन पर बैठे। मन्त्रसिद्धिके बाद तीन या नौ रात तक उसे गोपन रखे। किसीको भी मन्त्रसिद्धिकी बात न कहे। मन्त्रसिद्धिके बाद खो-शय्या पर जातेसे व्याधिप्रसूत, गीत सुननेसे बधिर, नाच देखनेसे बंध और दिनकी बोलनेसे साधक मूक होता है। पांच दिन तक साधकको सभी कामकाज छोड़ देना होगा। इस समय साधकके शरीरमें देवी वास करती है। एक पक्ष तक साधक गंधपुष्प न ले, बाहर जानेका यदि मौका हो, तो परिधेय वस्त्र छोड़ दूसरा पक्ष पहने। गोब्राह्मणकी निन्दा, मद्यथा दुर्जन, पतित

और झीवको भी स्पर्श न करे। सवेरे नित्यकर्मके बाद विद्वपतोदक पान करे। सोलहवें दिन गंगास्नान कर स्वाहान्त मन्त्र उच्चारण कर तीन सौ बार जलसे देवताओंका तर्पण करे। तर्पणके अन्तमें नमः कहना होता है। स्नान और पितृतर्पण किये बिना देवतर्पण न करना चाहिये। अनन्तर दक्षिणा दे कर बच्छिद्रा-वधारण करना होता है। उक्त प्रकारसे शयसाधन करने पर साधक सिद्धि लाभ करने है तथा इस लोकमें उत्कृष्ट भोग कर अन्तमें हरिपद पाते है।

(भागवतस्वयंज्ञाप)

शयसान (सं० पु०) शय-औणादिक सानच्। पथिक, यात्रो। यह शब्द वैदिक है अर्थात् घेदमें ही इस शब्दका प्रयोग देखा जाता है।

शयसायत् (सं० लि०) बलयत्, शक्तिविशिष्ट, ताकतवर।

(श्रृक् १६२।११)

शयसिन् (सं० लि०) बलयुक्त, ताकतवर।

(श्रृक् ७, २८२)

शयानि (सं० पु०) शयदाहकी अग्नि। (ऐत० ब्रा० ७।७)

शयान्न (सं० क्लो०) १ वह अन्न जो बिलकुल खराब हो गया हो और किसी कामका न हो। २ मनुष्यके शय या मृत शरीरका मांस। (पार० ४० २।८)

शयश (सं० पु०) शय अर्थात् अश-अण्। शयमक्षक, वह जो मुर्दा खाता है।

शयिष्ठ (सं० लि०) बलवत्तम, जो सर्वोमें अधिक बलवान् हो। (श्रृक् ६।१६।६)

शरीर (सं० लि०) गतियुक्त। (श्रृक् १।३।२)

शरीरद (सं० पु०) शयवादी। (शत० ब्रा० १।२।१।२।४)

शय्य (सं० क्लो०) वह कुरव या उत्सव जो शयको अन्त्येष्टिक्रियाके लिये ले जानेके समय होता है।

(दान्तो० उप० १५।५)

शय्याल (अ० पु०) मुसलमानोंका दशवा महाना।

शय (सं० पु०) शयति पठनेन पच्छतीति शय् अच्।

१ शृगविशेष, यारोग्य, शरहा। महाराष्ट्र—शारहा, तेलङ्ग—चेवुलपिल्लि। इसके मांसका गुण—स्वाद, कषाय; मलयदकारक, शीतल, लघु, शोथ, अतोसार, पित्त और रक्तनाशक तथा रुन्ध। (राजवल्लभ)

राजनिर्घण्टके मतसे इसका मांस त्रिदोषनाशक, द्योपन, श्वास और कासनाशक है।

श्राद्धतत्त्वमें लिखा है, कि श्राद्धमें इसका मांस दिया जा सकता है। इसके मांससे पितृगण परितृप्त होते हैं।

एकादशीतत्त्वमें लिखा है, कि विष्णुको भी इसका मांस दिया जा सकता है।

३ चन्द्रमाका लाञ्छन या कलंक। (परिधि) ३ बोल नामक गंधद्रव्य, गंधरस। ४ लोभ्र, लोघ। ५ काम-शास्त्रके अनुसार मनुष्यके चार भेदोंमेंसे एक भेद। जो मनुष्य मृदु वचन बोलता है, सुशील, धोमलाङ्ग, सत्यवादी और सकल गुणनिधान है, वह शशज्जातिका माना जाता है। इस मनुष्यसे पत्नी भी वशीभूता होती है। (रसमञ्जरी)।

शशक (सं० पु०) शश-स्वार्थे कन्। स्वनामप्रसिद्ध चतु-स्पद जन्तुविशेष, खरगोश। यह चूहेकी जातिका, पर उससे कुछ बड़े आकारका होता है। इसके कान लंबे, मुँह और सिर गोल, चमड़ा नरम और रोपदार पूँछ, छोटी और पिछली टांगें अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं।

शशक पञ्चनखमें गिना जाता है, अतः इसका मांस खाया जा सकता है।

“शशकः शहकी गोधा खड्गी कूर्मश्च पशुमः।

मदयाः पञ्चनखेष्वेते न भक्ष्यारचान्यजातयः॥”

(स्मृति)

यह संसारके प्रायः सभी उत्तरी भागोंमें मिन्न मिन्न आकार और वर्णका पाया जाता है। जहाँ जाड़ा बहुत पड़ता है, वहाँ भी यह जीवित रहता है। वैज्ञानिक भाषामें खरगोशके Leporidae जातिमें शामिल किया और Lepus इसका नाम रखा गया है। अङ्ग्रेजीमें इसे Hare कहते हैं। एतद्भिन्न जर्मन—Hase, फ्रांसीसी—Lievre, हिंदी—अर्धे विष, इटली—Lepre, स्पेन—Lievre, आरब—भाणय, तुर्क—तायसेन, तिब्बत—आर्जेंदोङ्ग आदि मिन्न मिन्न भाषामें यह भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है।

भारतवर्ष और पूर्वद्वीपपुञ्जमें साधारणतः पाँच प्रकारके खरगोश देखनेमें आते हैं। इनमेंसे Lepus

candatus भारतवर्षमें प्रायः सभी जगह देखनेमें आता है। हिमालय प्रदेशमें, पञ्जाब और आसामसे दक्षिण गोंदावरीतट और मलवार उपकूल तक इस श्रेणीका शशक है। यही प्राणिविद्व हजसन कथित L. Indicus और L. macrotus है। अङ्गरेजीमें यह Common Indian hare नामसे उल्लिखित है। हिंदी में इसे चीगुड़ा और खरहा भी कहते हैं।

आराकान, तेनासरिम प्रदेश, समस्त मलय प्रायो द्वीप और पूर्वद्वीपपुञ्जमें खरगोश नदी मिलता। केवल यवद्वीपमें L. nigricollis श्रेणीका खरगोश देखनेमें आता है। अधिक सम्भव है, कि दक्षिण भारत और सिंहलसे यहाँ और पीछे मोरिसस द्वीपमें शशक लाया गया था। भारत-संस्पृष्ट चीन राज्यमें, यहाँ तक कि सुदूर कोचिन चीनमें भी एक जातिका खरगोश है।

मिश्रराज्यमें जो खरगोश देखा जाता है, उसे अङ्ग्रेजीमें Egyptian hare कहते हैं।

यूरोप महादेशमें जो छोटा खरगोश (L. cuniculus) देखनेमें आता है, वह बेलजियम और हालैंड राज्यमें Konyn konin, डेनमार्क—Kanine, जर्मन—Koninchen, इटली—coniglio, पुर्तगाल—Coelho, स्पेन—Conejo, स्वीडरलैण्ड—Kanin, वेदस—Cednigen, इङ्गलैण्ड—Goney या Rabbit नामसे प्रसिद्ध है।

यह जंगलों और देहातोंमें जमीनके अन्दर बिल खोद कर कुएटमें रहता है और रातके समय आसपासके रोतों विशेषतः ऊँखके पौतोंकी बहुत दानि पकूचता है। यह बहुत अधिक खरपोक और जरासे आघातसे मर जाता है। यह छालमें मारता हुआ बहुत तेज दौड़ता है। इसके दाँत बड़े तेज होते हैं। खरहो छः मासको होने पर गर्भवती हो जाती है और एक मास पीछे सात आठ बच्चे देती है। दश पन्द्रह दिन पीछे यह फिर गर्भवती हो जाती है और इसी प्रकार बराबर गर्भवती होती है। इसके छः स्तन होते हैं जिनमेंसे दोमें दूध नहीं पाया जाता। जंगलमें एकमात्र मूल और रक्षकी छाल या बर ही यह जीवन धारण करता है। प्रकृतिमें मत्स्य द्रव्यके अनुसार ही इसका शरीर बनाया है और बल दिया है। आसामसे ले कर पुच्छमूल तक इसकी लम्बाई

११५० इञ्च होती है। खरही वजनमें ५५० पौंड और खरहेसे एक आध इञ्च छोटी होती है, किन्तु दोनोंको पीठ पर १२ इञ्च लंबा एक हाग रहता है। खरहेसे खरहीकी पूंछ बड़ी होती है। तुरतके जन्मे बच्चेके शरीरमें लेग नहीं होते तथा आंखें भी नहीं फूटती हैं। दोषी पर खोसनेके लिये यूरोपमें इसके लेग आंचक दाममें बिकते हैं। चांदीकी तरह सफेद लेगविशिष्ट चर्म एक समय प्रति ३ शिलिङ्गमें बिका था। वहांके लेग अपने अपने कुरतके किनारे उस चमड़ेको काट कर सिलाई कर देते थे।

हिमालयके पादमूलस्थ शालघनमें और उसके आस-पास स्थानोंमें गोरखपुरसे पूर्वी त्रिपुराराज्य तकके स्थानोंमें और शिलिगोड़ीके तराई देशमें *L. hispidas* जातिका शशक देखनेमें आता है। दक्षिण-भारतमें *L. nigricollis* या कृष्णम्रिय शशक तथा हिन्दुस्तानमें लोहितपुच्छ (*L. ruficandata*) शशक जाति जिस प्रकार तमाम फैली हुई है, इस मलेरियापूर्ण हिमालय पादस्थ चमनागमें भी *Hispid hare* नामक शगजाति उसी प्रकार प्रबल है। ये सब कभी भी समतल क्षेत्रमें नहीं आते और न हिमालयके पार्वत्य पृष्ठ पर बढ़ते ही हैं। इस कारण इनका सभाव द्विपक्षेक्षण करनेका उतना मीका नहीं मिलता।

हिमालयपृष्ठ और नेपाल राज्यमें *L. Macrotus* श्रेणिका खरगोश है। यह दक्षिण-भारतके कृष्णम्रिय शशजातिसे बहुत बड़ा होता है। *L. nigricollis* या कृष्णम्रिय शशक किसी किसी प्रग्धमें *L. malananchen* नामसे वर्णित हुआ है। दक्षिणभारत, सिंदल और यवहीपमें इस जातिके खरगोश अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। सिन्धुप्रदेश और पंजाबमें भी इनका अभाव नहीं है। तिब्बत और नेपालके पर्वतपृष्ठस्थ नील खरगोश *L. diostolus* या *L. Pallipes* नामसे वर्णित है। इनका दोनों टांगें सफेद तथा पृष्ठ और देह बहुत कुछ सलेट परथरकी तरह घोर काली होती है। इनके साथ यूरोपके पार्वत्य शशक (*alpine hare*) का बहुत कुछ सौसादृश्य है।

प्रहाराज्यमें जो शशजाति (*L. penguensis*) देखनेमें आती है, यह भारतवर्षको लोहितपुच्छ शशजातिसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। उत्तर-भारतमें, आसाम प्रदेशमें और उत्तर-प्रद्यमें प्रधानता यह शशजाति विचरण करती है। बङ्गालके खरगोशकी तरह इनका गालवर्ण कुछ धूसर होता है, परन्तु पेट बिलकूल सफेद दिखाई देता है। पूंछ का ऊपरी भाग भी काला है।

L. sinensis जातिके साथ *L. ruficandata* श्रेणिके शशककी समता दिखाई देती है। केवल गालवर्णका पार्वत्य ही एकमात्र विशेषत्व है, इनके पंजेका निचला भाग काला, पर ऊपरी भाग लाल होता है। पूंछका अगला हिस्सा काला, पर मूलभाग अपेक्षाकृत सफेद होता है। इनके दोनों पंजरे तथा पेटके लेग लोहितपुच्छ शशकके पृष्ठलोमकी तरह वर्णविशिष्ट है। किन्तु पीठका रंग ललाई लिये कुछ काला भी होता है।

शशकर्ण (सं० पु०) १ एक अण्डिका नाम। ये श्रावणके अष्टम मण्डलके नवम सूक्तके मन्त्रद्रष्टा हैं। २ साम-भेद।

शशकविद्याण (सं० स्त्री०) शशकस्य विद्याणं। शशक-शृङ्ग, मिथ्या, आकाशकुसुम कहनेसे जिस प्रकार कुछ भी नहीं समझा जाता, शशविद्याण शब्दसे भी उसी प्रकार जानना होगा अर्थात् कुछ भी नहीं।

शशकाचघृत—नेत्ररोगनाशक घृतोपधिचरियेय। प्रस्तुत प्रणाली—घृत आध सेर, कायार्थ शशकरु मांस १ सेर, जल ८ सेर, शैव २ सेर, बकरीका दूध २ सेर। कर्क—पष्टिमधु और पुण्डरीया प्रत्येक ४ तोला। इन्हें आंशोंमें भर कर देनेसे शुक और अजकारोग नाश होते हैं।

शशकानी (सं० पुं०) चांदीका एक प्रकारका सिक्का जो फीरोजशाहके राज्यमें प्रचलित था। यह लगभग दुश्मनोके बराबर होता था।

शशघातक (सं० पुं०) बाज या श्येन नामक पक्षी, हर-गोला।

शशघातिन् (सं० पुं०) शशघातक देलो।

शशघन (सं० पुं०) बाज या श्येन नामक पक्षी, हरगोला।

शशधर (सं० पु०) धरतीति धृ-ञच् धरः शशस्य धरः ।
१ चन्द्रमा । २ कर्पूर, कपूर ।

शशधर—१ किरणावली नामक अलंकारग्रन्थके प्रणेता ।
२ राघवपाण्डवीय टीकाके रचयिता । इनके पितामहका
नाम था यद्वसिंह ।

शशधर आचार्य—शशधरीय या न्यायसिद्धांतदीपन्याय-
नय, न्यायमीमांसाप्रकरण, न्यायपरतनप्रकरण और
शशधरमाला नामक न्यायविषयक ग्रंथोंके रचयिता ।

शशधरीय (सं० लि०) १ शशधर-सम्बन्धी । (पु०)
२ शशधरकृत ग्रंथ ।

शशधर्मन् (सं० पु०) राजभेद । (विष्णुपु०)

शशधृतक (सं० क्ली०) नद्याघात । (शब्दमाला)

शशविन्दु (सं० पु०) १ विष्णु । २ चित्ररथके एक पुत्र-
का नाम ।

शशभृत् (सं० पु०) शशं विभर्त्सति भृ-विषप् । १ चन्द्रमा ।
२ कर्पूर, कपूर ।

शशभृद्भृत् (सं० पु०) शशभृतं चंद्रं विभर्त्सति भृ-
विषप् तुक्च । शिव ।

शशमाही (फा० वि०) हर छाः महोने पर हांनेवाला, छा-
माही, अर्द्धवार्तिक ।

शशमुण्डरस (सं० पु०) रसीपथविशेष ।

(शशङ्कपरसं २ ११२६)

शशमालि (सं० पु०) शिव ।

शशय (सं० लि०) शयान, सोया हुआ ।

(शब् ११२६४५६)

शशवान (सं० क्ली०) महाभारतके अनुसार एक तीर्थांका
नाम । (भारत वनपर्व)

शशयु (सं० लि०) शयनशील, सोनेवाला ।

शशलक्षण (सं० पु०) शशलक्षणं चिह्नं यस्य । चन्द्रमा ।

शशलक्ष्मन् (सं० पु०) शशलक्ष्मं चिह्नं यस्य । १
चन्द्रमा । (क्ली०) २ शशलक्ष्म ।

शशलङ्कण (सं० पु०) शशः लङ्कणं चिह्नं यस्य ।
चन्द्रमा ।

शशलौमन् (सं० क्ली०) शशस्य लौम । १ शशकका रोम ।
पर्याय—शशोर्ण । (पु०) २ तन्नामक राजभेद ।

शशविषाण (सं० क्ली०) शशस्य विषाणं । शब् ११२६ देवो ।

शशशिक्षिका (सं० स्त्री०) जीवन्तीलता, डोडी ।

शशशृङ्ग (सं० क्ली०) कोई असम्भव और अनदीनी बात,
वैसा ही असम्भव कार्य जैसा खरगोशके सो ग होता
होता है, आकाशकुसुमकी सो असम्भव बात ।

शशस्यली (सं० स्त्री०) गङ्गा और यमुनाके मध्यक
प्रदेश, दोसाय ।

शशा (सं० पु०) शश देखो ।

शशाङ्क (सं० पु०) शशोऽङ्कश्चिह्नं बहु मोड़ या यस्य ;
१ चन्द्रमा । २ कर्पूर, कपूर । (राजनि०) ३ प्राच्य
भारतके एक पराक्रान्त हिन्दू राजा । ये सातवीं सदीमें
विद्यमान थे । वृद्धदेश देखो ।

शशाङ्ककुल (सं० क्ली०) शशाङ्कस्य कुलं । चन्द्रमाका
कुल ।

शशाङ्कज (सं० पु०) शशाङ्काज्जायते जन-ञ । युव जो
चन्द्रमाका पुत्र माना जाता है । (वृद्ध० ४ ४२६)

शशाङ्कतनय (सं० पु०) शशाङ्कस्य तनयः । युव ।

शशाङ्कदेश—देशव्यंशोय एक पराक्रान्त प्राच्य भूपति ।
रोहतसगढ़ (रोटासगढ़) दुर्गमें इनकी जो मोहराङ्कित
मुद्रा पाई गई है, उसकी वर्णमाला विचार कर प्रस्तुतस्य-
विद्वांने इन्हे चीनपरिभाषक वर्णित कर्णसुवर्णधिपति
शशाङ्क माना है । इन्होंने बौद्धधर्मके प्रवर्धनके लिये
राज्यभ्रमणके पराजित और निहत किया था; पीछे
ये सम्राट् दर्पवर्द्धन द्वारा पराजित हुए ।

वृद्धदेश देखो ।

शशाङ्कधर (भद्र)—एक प्राचीन धैर्यकरण । क्षीरत-
क्षिणी ग्रन्थमें क्षीरस्वामीने इनका उल्लेख किया है ।

शशाङ्कपुर (सं० क्ली०) शशाङ्कस्य पुरं शशाङ्क पूर्णं पुरं ।
चन्द्रमाका पुर ।

शशाङ्कमुकुट (सं० पु०) शशाङ्करं मुकुटे मौली यस्य ।
शशाङ्केश्वर, शिव ।

शशाङ्कवती (सं० स्त्री०) कथासंस्तिस्वांग वर्णित एक
राजकन्याका नाम ।

शशाङ्केश्वर (सं० पु०) शशाङ्केश्वरः यस्य । शिव,
महादेव । (भाग० ४६, ४७)

शशाङ्कसुत (सं० पु०) शशाङ्कस्य सुतः । युव प्रद, जो
शशाङ्क या चन्द्रमाका पुत्र माना जाता है ।

(वृद्ध० ११६)

शशाङ्कान्त (सं० पु०) शशाङ्कस्य अन्तः । १ अन्तर्वन्द ।
२ शिव, महादेव ।

शशाङ्गोपल (सं० पु०) चन्द्रकान्तोपल, चन्द्रकान्त मणि ।
शशाङ्गुलि (सं० स्त्री०) सनामवदात फलशाकविशेष,
कटु वी ककड़ी । पर्याय—बहुफला, तण्डुली, क्षेत्-
सम्भवा, क्षुद्राभला, लोमशाफला, धूम्रा, वृत्तफला । गुण—
तिक्त, कटु, कीमल, कटु, और अमलगुणविशिष्ट, मधुर,
कफनाशक, पाकमें अम्लयुक्त, मधुर, दाहकारक, कफ-
शोथक, रुचिकर और दीपन । (राजनि०)

शशाद (सं० पु०) शशमत्तौति अद-अच् । १ श्वेत पक्षी,
बाज । २ इक्ष्वाकुका पुत्र । इसका नाम विकुक्षि था । भाग-
वतके नवम स्कन्धके छठे अध्यायमें इसका विवरण इस
प्रकार लिखा है—एक दिन इक्ष्वाकुने इसे श्राद्धके लिये
मांस लानेको कहा । पिताके आह्वानुसार वन जा कर
इसने बहुत-से मृग आदि मारे । मृगया करनेके कारण
अतिशय भ्रान्त हो इसने वही एक शश भक्षण किया,
इसीसे इसका नाम शशाद हुआ । विष्णुपुराणके ४२
अध्यायमें इसका विवरण है ।

शशादन (सं० पु०) शशमत्तौति अद-अच् । श्वेतपक्षी,
बाज ।

शशि (सं० पु०) शशिन देवो ।

शशिक (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन
जनपदका नाम । २ इस जनपदमें रहनेवालो जाति ।
(भारत भीष्मपर्व ६।४६)

शशिकर (सं० पु०) चन्द्रमाकी रश्मि या किरण ।

शशिकला (सं० स्त्री०) शशिनः कला । १ चन्द्रमाकी
कला । २ एक प्रकारका वृत्त । इसके प्रत्येक चरणमें
चार तगण और एक सगण होता है । इसको 'मणि-
गुण' और 'शरभ' भी कहते हैं । (छन्दोगसूत्री)

शशिकान्त (सं० स्त्री०) शशिकान्तो यस्य । १ कुमुद,
कोई, बघोला । (पु०) २ चन्द्रकान्तमणि ।

शशिकुल (सं० पु०) चन्द्रवंश ।

शशिकेतु (सं० पु०) बुधमेद ।

शशिषण्ड (सं० पु० स्त्री०) १ शिव, महादेव । २ विद्या-
धरमेद । ३ चन्द्रमाकी कला ।

शशिषण्डपद (सं० पु०) विद्याधरमेद ।

(कथासरित्सा० १६।२८१)

शशिशण्डिक (सं० पु०) पुराणानुसार एक देशका
नाम । Periplus ने इसे Sasikrienai नामसे उल्लेख
किया है । धामनपुराणमें शिशिराद्रिक पाठ है ।

(वामनपु० १३।१०)

शशिशुच (सं० पु०) शशिकुल । (शृंग्ययाम० १४।२८२)

शशिपुष्पा (सं० स्त्री०) पश्चिमपु, मुदेडी ।

शशिप्रह (सं० पु०) चन्द्रप्रह ।

शशिम (सं० पु०) शशिनो जायते जन-श्च । चन्द्रका पुत्र,
बुधप्रह ।

शशितनय (सं० पु०) चन्द्रमाका पुत्र, बुधप्रह ।

शशितिथि (सं० स्त्री०) पूर्णिमा, पूर्णमासी ।

शशितेजस् (सं० पु०) १ विद्याधरमेद । २ नागमेद ।

शशिदेव (सं० पु०) राजमेद, रश्मिदेवका एक नाम ।

(शब्दरत्ना०)

शशिदेव—व्याख्यानप्रक्रियानामक व्याकरणके प्रणेता ।

शशिदेव (सं० स्त्री०) शशी देवताऽस्य अण् । मृग-
शिरा नक्षत्र । इसके अघिष्ठान् देवता चन्द्रमा माने
जाते हैं, इसलिये इसको शशिदेव कहते हैं ।

(शब्दरत्निता० ७।६)

शशिधर (सं० पु०) १ शिव, महादेव । २ एक प्राचीन
नगरका नाम ।

शशिधर—एक राजकवि । ये कलचुरिराज नरसिंह
देवकी समामें (११५५-११७५ ई०) विद्यमान थे । इनके
पिताका नाम था धरणीधर । राजाके आदेशसे शशि-
धरने कई एक शिलालिपिकी रचना की थी ।

शशिध्वज (सं० पु०) शशी ध्वजे यस्य । १ मट्टाट्टुर-
राज । (कश्चिकु० २५ अ०) २ असुरमेद ।

शशिन (सं० पु०) शशोऽस्यास्तीति शश-इनि । १
चन्द्रमा, इन्द्र । २ छव्ययके ५४वें मेदका नाम । इसमें
१७ गुरु और ११८ लघु, कुल १३५ वर्ण या १५२ मात्रायें
होती हैं । ३ रणयके दूसरे मेदकी संज्ञा । ४ छकी
संख्या । ५ मोती ।

शशिपर्ण (सं० पु०) पटोल, परबल ।

शशिपुत्र (सं० पु०) शशिनः पुत्रः । बुधप्रह जो चन्द्रमा-
का पुत्र माना जाता है ।

शशिपुर—विश्वेश्वरील वाक्देवेश्वर एक गाँव । (मन्विष्य ब्र० सं० ८।६५)

शशिवुष्य (सं० पु०) पद्म, कमल ।
 शशिवोषक (सं० पु०) चन्द्रमाका पोषण करनेवाला,
 गुरुपक्ष ।
 शशिमम (सं० स्त्री०) शशिनः प्रमेव प्रमा यस्य । १
 कुमुद, कीर्ति । २ मुका, मोती । (त्रि०) ३ चन्द्रमाके
 सहस्रा जिसको प्रमा हो ।
 शशिममा (सं० स्त्री०) शशिनः प्रमा । ज्योत्स्ना, चाँदनी ।
 शशिममा—एक नागराजकन्याका नाम । नर्मदातीर-
 स्थित ररनायतोयासी यज्ञांकुञ्ज वैद्यको मार कर सिन्धु-
 राजने इनका पाणिग्रहण किया ।
 शशिम्रिय (सं० पु०) १ कुमुद, कीर्ति । २ मुका, मोती ।
 शशिम्रिया (सं० स्त्री०) शशिनः म्रिया । सत्ताइसो
 गन्धर्वा जो चन्द्रमाको पहिनयां माने जाते हैं ।
 शशिमागा (सं० स्त्री०) राजा मुचकुन्दकी पत्न्याका
 नाम ।
 शशिमाल (सं० पु०) मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने-
 वाले, शिव, महादेव ।
 शशिभूषण (सं० पु०) शशी भूषणं यस्य । शिव,
 महादेव ।
 शशिभृत् (सं० पु०) शशिनं विभ्रतीति भृ-क्तिः तुक् च ।
 शिव, महादेव ।
 शशिमणि (सं० पु०) चंद्रकान्त मणि ।
 शशिमण्डल (सं० पु०) चंद्रमाका मण्डल या घेरा,
 चन्द्रमण्डल ।
 शशिमत् (सं० त्रि०) शशी विचतंसस्य मत्तुप् । चन्द्रयुक्त ।
 शशिमुण (सं० त्रि०) जिसका मुख चन्द्रमाके सहस्रा हो,
 अति सुन्दर ।
 शशिमौलि (सं० पु०) शशी मौली यस्य । शिव,
 महादेव ।
 शशिरस (सं० पु०) अमृत ।
 शशिरेशा (सं० स्त्री०) शशिलेखा, चन्द्रमाको एक कला ।
 शशिलेखा (सं० स्त्री०) शशिनो लेखा । १ चन्द्रलेखा,
 चन्द्रमाकी कला । २ गुरु जी, गुरुका । ३ सोमरातो,
 बकुली । ४ एक प्रकारका वृक्ष । इस छन्दके प्रति
 चारणो १५ करके अक्षर रहते हैं जिनमेंसे ५, १०
 और १३ वां अक्षर लघु तथा बाकी षण्णं गुण होते हैं ।

इस छन्दके ७ और ८वें अक्षरमें यति होती है ।
 ५ षडक्षरपादक एक प्रकारका छन्द । इस छन्दके प्रथम
 चार षण्णं लघु और बाकी दो गुण होते हैं ।
 शशिंश (सं० पु०) चन्द्रवंश ।
 शशिवदन (सं० त्रि०) शशीव आहादत्तनकृत्यात् वदनं
 यस्य । चन्द्रवदन, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला ।
 शशिवदना (सं० स्त्री०) १ एक वृक्षका नाम । इसके प्रत्येक
 चरणमें एक नयन और एक षण्णं होता है । इसे
 नींबूसा, चण्डरसा और पादांकुलक भी कहते हैं ।
 (त्रि०) २ चन्द्रमुदी, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख-
 वाला ।
 शशिवदन (सं० पु०) एक प्राचीन कवि ।
 शशियाटिका (सं० स्त्री०) पुनर्नया, गदहपुराना ।
 शशियिमल (सं० त्रि०) चन्द्रमाके समान विमल या
 स्वच्छ ।
 शशिशाला (सं० स्त्री०) वह घर जो बहुतसे शीशोंका
 बना हुआ हो या जिसमें बहुतसे शीशो लगे हुए हों,
 शीशमहल ।
 शशिशिवामणि (सं० पु०) शिव, महादेव ।
 (राजतरङ्गिणी १२८२)
 शशिशेखर (सं० पु०) शशी शेखरे यस्य । १ शिव, महा-
 देव । (हस्तसूत्र) २ एक सुन्दरका नाम । पर्याय—हेरहर,
 हरेक, चक्रसम्बर, देव, वज्रकमाली, तिशुम्भी, वज्रटीक ।
 (विशा०)
 शशिशोषक (सं० पु०) चन्द्रमाको शोष करनेवाला,
 कृष्णपक्ष ।
 शशिसुत (सं० पु०) शशिनः सुतः । चन्द्रमाका पुत्र,
 बुध ग्रह ।
 शशिदीप्त (हि० पु०) चन्द्रकान्तमणि ।
 शशीकर (सं० पु०) चन्द्रमाकी किरण ।
 शशीवत् (सं० त्रि०) वेत्स्यवमान । (शृङ् ४३२३)
 शशीना (सं० पु०) १ शिव, महादेव । २ स्वप्नदेव ।
 (किराणा १५४२)
 शशीर्षा (सं० स्त्री०) शशीव उर्णा, अग्निधानात् क्रांतिवर्षं
 शशीर्षो, अर्द्धका रोमां ।
 शशीलुकमुखा (सं० स्त्री०) स्कन्धानुचर मातृगैर् ।

शश्वत् (सं० लि०) १ शश्वत्, जो सदा स्थायी रहे।
 (शुक् १।२६।६) २ बह, उपादा। (शुक् १।११३।८)
 शश्वत् (सं० अण्य०) शश-वाहुलकात् घत्। पुनः पुनः,
 वारंवार, सदा।
 शश्वत् (सं० खी०) १ दृश्वविशेष, एक प्रकारका पेड़।
 २ इस पेड़का फल।
 शश्वत् (सं० पु०) करज।
 शश्वत् (सं० खी०) शश्वत् गौरादित्वात् खीय। १।
 तिलतण्डुलमाप मिश्रित पदार्थ। २. कर्णरुध्र, कानका
 छेद। ३. मत्स्यभेद, सौरी मछली। इसका गुण हृद्य,
 मधुर और सुरव माना गया है। (मानस०) ३ पुरी
 पकान आदि।
 शश्वत् (सं० क्ली०) शश्वत् सायां (लघुशिव्यशश्वत्वात्परव-
 वत्साः। उष्य ३।२६) इति पर्यं निपादयते। १ बालतुण,
 नई घास। २ नोलदूर्वा, मोली दूर। ३ विभ्यासदानि।
 शश्वत् (सं० पु०) शश्वत् भुज्-किप्। बालतुणभोजन-
 कारी, वह जो नई घास खाता हो।
 शश्वत्भोजन (सं० पु०) नवतुणभोजन, नई घास खाना।
 शश्वत् (सं० लि०) शश्वत् अस्त्यर्थे मत्पु मस्य वः।
 शश्वत् (सं० लि०) शश्वत् यत् (६।१२)
 शश्वत् (सं० लि०) बालतुणकी तरह शीत रक्तवर्ण।
 शश्वत् (सं० क्ली०) शश्वत्-क्युट्। १ यशार्थ पशुहनन,
 यहके लिये पशुओंकी हत्या करना। (रामाय०) शश्वते
 हन्त्येज्ज इत्यधिकरणे क्युट्। २ हेतुवास्थान, यह स्थान
 जहाँ पशुओंका घलिदान होता हो।
 शश्वत् (सं० क्ली०) शश्वत् क। १ कल्याण, गंगल, भलाई।
 २ शरीर, बदन, जिस्म। (लि०) ३ कल्याणयुक्त, गंगल-
 युक्त। ४-स्तुत, जिसकी प्रशंसा की गई हो। ५ प्रशस्त,
 उत्तम। ६ निहत, जो मार डाला गया हो।
 शश्वत् (फा० पु०) १ यह हथौ या बालोंका छल्ला जो तीर
 मारनेके समय अंगूठेमें पहना जाता है। २ यह जिस पर
 तीर या गोली आदि चलाई जाती है, लक्ष्य, निशाना।
 ३ मछली पकड़नेका काँटा। ४ जमीनकी पैशारा करने-
 वालोंकी दूरबीनके आकारका वह पत्र जिसकी सहा-
 यतासे जमीनकी सीध देखी जाती है।
 शश्वत् (सं० क्ली०) शश्वत् सिद्धाण, हाथमें पहननेका
 घमड़ेका दास्ताना।

शश्वत्केशक (सं० लि०) शश्वत् केशो यस्य कश्चि।
 प्रशस्त केशयुक्त। (शश्वत्केशक)।
 शश्वत् (सं० खी०) शश्वत्स्य भावः तज-टाप्। श प्र हा
 भाव या धर्म, प्रशस्तता।
 शश्वत् (सं० खी०) शश्वत्-किन् । स्तुति, प्रशंसा,
 तारीफ।
 शश्वत् (सं० लि०) प्रशासना (शुक् १।१६२।५)
 शश्वत्क्य (सं० लि०) प्रशस्त शश्वत्विशिष्ट।
 (शुक्लपत्र० ८।१२)
 शश्वत् (सं० क्ली०) शश्वत्स्य इत्येतेनेन (मणिचिदि
 शश्वत्स्यः। उष्य ५।१६३) इति क पद्मा (दम्बोक्षामुपेतं।
 गा ३।२।१८२) इति ध्रुवः। १ लौह, लोहा। २ मख, हथि-
 यार। मख और शखमें प्रमेद—जो हाथसे पकड़ कर
 चलाया जाता है, उसे शख, जैसे खड्ग आदि और जो
 फेंक कर चलाया जाता है उसे मख कहते हैं, जैसे
 तीर आदि।
 विष्णुपुराणको टीकामें लिखा है, कि मन्त्रपूत होने-
 से उसे मख और तन्निम्न होनेसे उसे शख कहते हैं।
 ३ खड्ग, तलवार। वैद्यके शख और उसके प्रयोग-
 का विशेष विवरण लिखा है। सुश्रुतमें बीस प्रकारके
 शखोंके नाम देखनेमें आते हैं। यथा—मण्डलाय, कर-
 पत्र, वृद्धिपत्र, नखशख, मुद्रिका, उत्पलपत्र, अर्द्धघार,
 सूची, कुशपत्र, आटीमुख, शरारीमुख, अन्तर्मुख, ति-
 कुचक, कुटारिका, प्रादिमुख, अय्या, धेतसपत्रक, बर्दिश,
 वन्तशङ्कु और एषणी यहाँ बीस प्रकारके शख हैं।
 बुद्धिमान् चिकित्सकको चाहिये, कि वे विशुद्ध लौहके
 फाँट लोहार द्वारा वे सब शख बनवा लें। शख
 चिकित्साके शिक्षाकालमें शखचिकित्सामें पारदर्शी
 चैद्यसे पहले कीड़वा, लीकी, तप्वन्, धीरा और
 ककड़ी आदि काटनेयोग्य द्रव्य सोख कर पीछे शख कार्य
 करना होता है। (सुश्रुत सप्तथा० ८५०)
 शखक (सं० क्ली०) शखमेघ स्वाध कश्चि। लौह, लोहा।
 शखकर्मन् (सं० क्ली०) शखस्य कर्म। घाव या फोड़-
 में नरत लगायना, फोड़ों आदिके खोपकाटका काम।
 सुश्रुतमें यह आठ प्रकारका कहा गया है, जैसे,—छेदन,

लेखन, मेदन, विभाषण, व्यवधान, आहरण, पपण्येपण और सैन्य शील प्रकारके शस्त्रों द्वारा इन आठ प्रकारके शस्त्रोंका काम करना होता है। (सुभुक्क सूत्रस्या० ८ अ०)
 शस्त्रकलि (सं० पु०) शस्त्रयुद्ध। (कपाठित्तुषा० ७१।३००)
 शस्त्रकेतु (सं० पु०) एक प्रकारका केतु। यह पूर्वमें उदय होता है। कहते हैं, कि इसके उदय होने पर महामारी फैलती है।

शस्त्रकोप (सं० पु०) शस्त्रस्य कोपः। शस्त्रका प्रकोप।

शस्त्रकोशातय (सं० पु०) शस्त्रस्य यद्गुणस्य कोशातय तदा। महापिएडी तय, बड़ा मैनफल।

शस्त्रक्रिया (सं० स्त्री०) फौड़ी आदिकी चोर-फाड़, नरतर लगानेकी क्रिया।

शस्त्रगृह (सं० पु०) यह स्थान जहाँ अनेक प्रकारके शस्त्र आदि रहते हैं, शस्त्रशाला, हथियारघर, सिलहखाना।

शस्त्रचूर्ण (सं० स्त्री०) शस्त्रस्य चूर्णः। लौहकिट्ट, लौह-मल, मण्डूर। (यैचकनि०)

शस्त्रजीविन् (सं० स्त्री०) शस्त्रेण जीवतीति जीव गिति। शस्त्राजीव, योद्धा, सैनिक। (शस्त्रंहिता १५।२४)

शस्त्रदेवता (सं० स्त्री०) युद्धकी अघिष्ठात्री देवी।

शस्त्रघर (सं० पु०) योद्धा, सैनिक, सिपाहो।

शस्त्रधारण (सं० स्त्री०) शस्त्रस्य धारणं। शस्त्रग्रहण, हथियार लेना।

शस्त्रधारणजीवक (सं० स्त्री०) शस्त्रधारणेन जीवतीति जीव-ण्युल्। शस्त्राजीव, सैनिक।

शस्त्रधारिन् (सं० स्त्री०) १ शस्त्रधारण करनेवाला, हथियार-धर। (पु०) २ योद्धा, सैनिक। ३ एक प्रकारका जन्तु जिससे सिलहपोशा भी कहते हैं। ४ एक प्राचीन देशका नाम।

शस्त्रपाणि (सं० पु०) शस्त्रं पाणी यस्य। शस्त्रदस्त, वह जिसके हाथमें तलवार आदि भस्त्र हो।

शस्त्रपान (सं० स्त्री०) शस्त्रस्य पानं। शस्त्रका पानी या भाव। (शस्त्रंहिता ५०।२२)

शस्त्रप्रकोप (सं० पु०) शस्त्रस्य प्रकोपः। शस्त्रका प्रकोप।

शस्त्रप्रहार (सं० पु०) शस्त्रस्य प्रहारः। शस्त्रका प्रहार, यद्गुण आदि शस्त्रका आघात।

शस्त्रवन्ध (सं० पु०) शस्त्र द्वारा बन्धन।

शस्त्रमृत् (सं० स्त्री०) शस्त्रं पिततीति मृत् किम् मृत्सु। शस्त्रधारी, हथियारबंद।

शस्त्रमय (सं० स्त्री०) शस्त्र-मयत्। शस्त्रस्वरूप।

शस्त्रमार्ज (सं० पु०) शस्त्रानि माद्येति मृज-भण्। शस्त्र-मार्जानकर्ता। पर्याय—अस्तिधारक, अस्त्रमार्ज, अस्ति धार, शस्त्राजीव, समासक। (हेमः)

शस्त्रमत् (सं० स्त्री०) शस्त्रेण इव इषार्थं वति। १ शस्त्र-तुल्य, शस्त्रके समूह। २ शस्त्रविशिष्ट, हथियारबंद।

शस्त्रवार्त्ता (सं० स्त्री०) १ शस्त्रधारी, शस्त्रजीवी। (शस्त्रंहिता १।३३) (पु०) २ एक प्राचीन देशका नाम।

शस्त्रविधा (सं० स्त्री०) १ हथियार चलानेकी क्रिया। यजुर्वेदका उपमेद, धनुर्वेद जिसमें सब प्रकारके भस्त्र चलानेकी विधियों और लड़ाईके सम्पूर्ण मेदोंका वर्णन दिया गया है।

शस्त्रवृत्ति (सं० स्त्री०) शस्त्रं वृत्तिर्यस्य। शस्त्राजीव, शस्त्र ही जिसकी जीविका हो।

शस्त्रशाला (सं० स्त्री०) वह स्थान जहाँ बहुतेरे शस्त्र आदि रखे हों, शस्त्रगृह, शस्त्रागार।

शस्त्रशास्त्र (सं० पु०) १ यह शास्त्र जिसमें हथियार चलाने आदिका निरूपण हो। २ धनुर्वेद।

शस्त्रशिक्षा (सं० स्त्री०) शस्त्रस्य शिक्षा। शस्त्राभ्यास, हथियार चलानेकी शिक्षा।

शस्त्रदत्त (सं० स्त्री०) शस्त्रेण दत्तः। शस्त्राघात द्वारा मृत, शस्त्रके आघातसे जिसकी मृत्यु हुई हो। शस्त्राघातसे मृत्यु होने पर उसके अशरीरके विषयमें श्रुतिरचयमें लिखा है, कि शस्त्रद्वारा दत्त व्यक्तिका सघाशौच और उसकी दाहादि क्रिया होगी।

इत ही कर यदि ७ दिनोंमें मृत्यु हो, तो शिरास और यदि ७ दिनोंके बाद हो, तो दश दिन अशौच होता है। किन्तु शस्त्राघातग्रय शकसे तीन दिनोंके बाद मृत्यु होने पर जिस वर्णका जैसा अशौच है, उसके लिये भी वैसा ही अशौच होगा। इस शस्त्राघात शब्दसे शकसे इतए शस्त्राघात समझा जायेगा। पारिभाषिक शस्त्राघातकी छोड़ समझना होगा। पारिभाषिक शस्त्राघातका

मर्ध इस प्रकार लिखा है, कि पञ्चो, मस्त्व, मृग, दंष्ट्री, शृङ्गी, नख द्वारा हत, उच्यस्थानसे पतन, मनशान, घञ्ज, अग्नि, विप, बन्धन और जलप्रवेशादि द्वारा जिनकी मृत्यु हुई है, उन्हें भी शास्त्रहस्त कहते हैं।

शास्त्रहस्तचतुर्दशी (सं० खी०) शास्त्रहस्तानां चतुर्दशी सुखादि हस्तानां धात्रादिकर्मणि प्रशस्तयास्यस्तघात्रात् । गीण आश्विनकृष्णाचतुर्दशी, गीणकाशिकृष्णाचतुर्दशी इन दो चतुर्दशी और तिथियों में शास्त्रहस्त व्यक्तियों का धात्र प्रशस्त है। इसी कारण इन दोनों तिथियोंका नाम शास्त्रहस्तचतुर्दशी पड़ा है। (आदित्यिक)

शास्त्रहस्त (सं० पुं०) शास्त्रं हस्ते यस्य । शास्त्रपाणि, अस्त्रधारी पुत्र्य, सैनिक ।

शास्त्राण्य (सं० पुं०) १ फेनुभेद । (बृहत्सं ११३०) २ शास्त्रसंज्ञक ।

शास्त्रागार (सं० पुं०) शास्त्रशाला, सिलहखाना ।

शास्त्राङ्गा (सं० स्त्री०) चाङ्गेरी, षट्ठी लोनी या अमलोनी जिसका साग होता है।

शास्त्राजीव (सं० लि०) शास्त्रेण आजोवतीति आ-जीव-ञच् । १ शास्त्र द्वारा जो जीविका निर्वाह करता हो, अस्मिन्जीवी । पर्याय—कान्तपुष्ट, आयुषोप, आयुषिक, कान्तपुष्ट, कान्तपुष्ट, शास्त्रधारणजीवक । स्त्रियां ङीप् । २ शास्त्रोंके भांड अकुलमिसे पक ।

शास्त्राभ्यास (सं० पुं०) शास्त्राणां अभ्यासः । अस्त्र-शिक्षा ।

शास्त्रापस (सं० स्त्री०) शास्त्रार्थं यदायसम् । यह लोहा जिससे अस्त्र बनाये जाते हैं।

शास्त्रायुध (सं० लि०) शास्त्र आयुधो यस्य । शास्त्र-विशिष्ट, शास्त्रधारी ।

शास्त्रिय (सं० लि०) शास्त्रं ज्ञस्यर्थे इति । १ शास्त्र-विशिष्ट, जिसके पास शास्त्र हो । २ जो शास्त्र आदि चलाना जानतो हो ।

शास्त्री (सं० स्त्री०) शास्त्रं त्वा स्त्रियां ङीप् । छुरिका, छुरी ।

शास्त्रीपञ्चोदितः (सं० लि०) शास्त्रेण उपजीवतीति जीव-णिनि । जो शास्त्र द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

शस्य (सं० स्त्री०) शस (तकिसाधिकविवृतीति । या ३।१।९०) इत्यस्य चात्सिंकोपरया यत् । १ वृक्षादि-निष्पन्न, फल । वृक्षादिके फलको शस्य कहते हैं। साधारणतः कृषिकार्य द्वारा उत्पन्न धान्यादि ही शस्य कहलाता है। अमरटीका में भरतने लिखा है, कि वृक्ष और लतादिका फल ही शस्य है।

हेमचन्द्रने शस्य शब्दसे धान्यका अर्थ लगाया है। स्मृतिमें लिखा है, कि क्षेत्रोत्पन्न घस्तुका नाम शस्य है। प्राग्यशस्य—धान, जौ, गेहूँ, चना, तिल, मियंगु, दीर्घांशलि, कोरुव और सोना, इन सबको प्राग्यशस्य कहते हैं। उड़व, मूँग, मसूर, निरगव, कुलथी अरहर, चना और शाण ये भी प्राग्यशस्य कहलाते हैं।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि प्राग्य और भारण्य शस्य चौदह प्रकारका है। यथा—धान, जौ, उड़व, गेहूँ, चना, तिल, मियंगु, ये सात प्राग्य शस्य और कुलथो, सार्वाँ, नीबू, वनतिलवा, कौड़िला, यंशलोचन और महुँ बा ये सात भारण्य शस्य हैं।

नया शस्य उत्पन्न होने पर विशुद्ध दिन क्षेत्र भोजन करना होता है तथा भोजनके पहले देवताके नियेदन और पिनरोंके उड़शसे धात्र कर भोजन करना उचित है। मलमासतत्त्वमें इसकी व्यवस्था लिखी है। नव-शस्य भोजनमें ये सब नक्षत्र प्रशस्त कहे गये हैं। यथा—अनुराधा, मृगशिरा, रैवती, उत्तराषाढा, उत्तरमाद्रप्रद, उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, मघा, पुष्या, अश्लेषा, पुनर्वसु, और रोहिणी । शरत् या वसन्तकालमें विशुद्ध दिन नवशस्य द्वारा पार्षण विधिके अनुसार धात्र करके नवशस्य भोजन करना होता है।

२ बालवृण । ३ प्रतिमाहानि । ४ फलका सारंश, गूदा । ५ सङ्गुण । (लि०) शन्स पयप् । ६ प्रशंसनीय ।

शस्यक (सं० पुं०) एक प्रकारका रत्न ।

शस्यघ्नी (सं० स्त्री०) चोरपुत्री, चोरकुली ।

शस्यध्वंसिन् (सं० पुं०) शस्यपाणि ध्वंसयतीति ध्वंस-णिनि । १ तूर्ण वृक्ष, वृत्त । (लि०) २ शस्त्रनाशक, जिससे शस्यका नाश हो।

शस्यमञ्जरी (सं० स्त्री०) शस्यस्य मञ्जरी । अभिनय,

निर्मल धारवादि जीर्णक, नई निकली हुई धानकी बाल या सींक। पर्वाय—कणिका, कणिक।

शब्दशुद्धि (सं० श्लो०) शब्दस्वयं शूकं । शब्दका तीक्ष्णाम्र, शब्दकी तीक्ष्ण बाल या सींक। पर्वाय—किंशाय।

शब्दसम्पत् (सं० पु०) १ शाल वृक्ष । २ अश्वत्थ वृक्ष ।

शब्दाम् (सं० श्लो०) शब्दं अङ्गि-अङ्ग-किम् । शब्द-मक्षक । (सुश्रुतसं०)

शब्दाय (सं० पु०) क्षुद्र शमीवृक्ष, छोटी शमी ।

शब्दशाह (फा० पु०) बादशाहका बादशाह, महाराजा-धिराज, शाहशाह ।

शब्दशाही (फा० वि०) १ शाहीका-सा, शाही, राजसी । (स्त्री०) २ शाहशाहका भाव या धर्म । ३ शाहशाहका पद । ४ लेने देनेमें धरापन ।

शब्द (फा० पु०) १ बहुत बड़ा राजा, बादशाह । २ वर, वृद्धा । (वि०) ३ बड़ा चढ़ा, श्रेष्ठतर । इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग केवल धार्मिक शब्द बनानेके समय उसके आरम्भमें होता है । जैसे—शहजोर, शहवाज, शहसवार । (स्त्री०) ४ शतरंजके खेलमें कोई मुहर किसी चाले स्थान पर रखना जहाँसे बादशाह उसकी घातमें पड़ता हो, किशन । ५ गुणरूपसे किसीके अङ्काने या उभासनेकी क्रिया या भाव । ६ गुरु, पतंग या कनकीये शक्तिको घीरे घीरे घोर ढाली करते हुए आगे बढ़ानेकी क्रिया या भाव ।

शब्दचाल (हि० स्त्री०) शतरंजमें बादशाहका यह चाल जो और मोहरोंकी मारी जाने पर चली जाती है ।

शब्दजादा (फा० पु०) १ राजपुत्र, राजकुमार । २ राजपुत्रका उत्तराधिकारी, सुपराज ।

शब्दमोर (फा० वि०) बली, बलवान्, ताकतवर ।

शब्दमोरी (फा० स्त्री०) १ बल, ताकत । २ जबरदस्ती ।

शब्दम (अ० पु०) शब्द देखो ।

शब्दमोर (फा० पु०) लकड़ीका चौरा हुआ बहुत बड़ा और लम्बा लड़ा जो प्रायः इमारतके काममें भाता है ।

शब्दमूल (फा० पु०) तूल नामका पेड़ और उसका फल । विशेष विषय त्वरमें देखो ।

शब्द (अ० पु०) शरीरको तरलता एक बहुत शक्ति वादा, गाढा तरल पदार्थ । यह कई प्रकारके कोड़े और विशेषतः मधुमक्खियां अनेक प्रकारके फूलोंके मकरन्दसे संभ्रम करके अपने छत्तोंमें रखाते हैं । जब यह अपने शुद्ध रूपमें रहता है, तब इसका रङ्ग सफेदी लिये कुछ लाल या पीला होता है । यह पानीमें सहजमें घुल जाता है । यह बहुत बलवर्द्धक माना जाता है और प्रायः शीपोंके साथ दूधमें मिला कर भधया पों हो बाया जाता है । इसमें फल प्रादि भी रक्षित रखे जाते हैं भधया सुरक्षा डाला जाता है । कमी कमी ऐसा शब्द भी मिलता है जो मादक या विष होता है । वैयकमें यह शीतवायु, लघु, रुक्ष, धारक, आंखोंके लिये दितकारी, अग्निदीपक, स्वास्थ्यवर्द्धक, वर्णप्रसादक, चित्तको प्रसन्न करनेवाला, मेधा और धीर्य बढ़ानेवाला, रुचिकारक और कोढ़, बवासीर, खाँसी, कफ, प्रमेह, प्यास, कै, हिवकी, अर्तोसार, मलरीष और दाहकी दूर करनेवाला माना गया है । इसका दूसरा नाम मधु है । मधु देखो ।

शब्दमगी (अ० पु०) १ शब्द-रक्षकको कार्य । २ यह पन जो चीकीदारकी देनेके लिये असासियोंसे पसल किया जाता है, चीकीदारी ।

शब्दना (अ० पु०) १ खेतकी चीकसी कत्नेवाला, शब्द-रक्षक । २ कोतवाल, नगर-रक्षक । ३ यह व्यक्ति जो जमींदारकी ओरसे असासियोंकी बिना पीत दिये खेतकी उपज उठानेसे रोक्ने और उसकी रक्षाके लिये नियुक्त किया जाता है ।

शब्दनाई (फा० स्त्री०) १ बांसुरी या अलमोजिके आकारका पर उससे कुछ बड़ा मुँहसे फूंक कर बजाया जानेवाला एक प्रकारका बाजा जो शीशनचीकीके साथ बजाया जाता है, नफोरी । २ रोशनचीकी देखो ।

शब्दबाला (फा० पु०) यह छोटा बालक जो विवाहके समय दूहके साथ पालकी पर भधया उसके पीछे घोड़े पर बैठ कर जाता है । यह प्रायः परका छोटा भाई या उसका कोई निकट सम्बन्धी हुआ करता है ।

शब्दसुलभ (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी सुलभ । इसका सारा शरीर लाल होता है, केवल कण्ठ काला होता है और सिर पर सुभले रङ्गकी बोट्टी होती है ।

शब्दमात (फा० स्त्री०) शतरंजके खेलमें एक प्रकारकी मात। इसमें बादशाहको केवल शब्द या किरत दे कर इस प्रकार मात किया जाता है, कि बादशाहके चलनेके लिये और कोई घर ही नहीं रह जाता।

शहर (फा० पु०) मनुष्यकी वह बड़ी वस्ती जो कसबेसे बहुत बड़ी हो, जहाँ हर पेशेके लोग रहते हों और जिसमें अधिकतर पक्के मकान हों। नगर देखो।

शहरपनाह (फा० स्त्री०) नगरके चारों ओर बनी हुई पक्की दीवार, वह दीवार जो किसी नगरके चारों ओर रक्षाके लिये बनाई जाय, शहरकी चार-दीवारी।

शहरी (फा० वि०) १ शहरसे सम्बन्ध रखनेवाला, शहरका।
२ शहरका रहनेवाला, नगर-निवासी, नागरिक।

शहयत (अ० स्त्री०) १ कामातुरता, कामका उद्रेक। २ भोग विलास, विषय, मैथुन।

शहसवार (फा० पु०) वह जो घोड़े पर अच्छी तरह सवारी कर सकता हो, अच्छा सवार।

शहादत (अ० स्त्री०) १ गवाही, साक्ष। २ सूत, प्रमाण।
३ धर्मके लिये लड़ाई आदिमें मारा जाना, शहीदी होना।

शहाना (हिं० पु०) १ सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह राग फरोदस्त और काहड़ाको मिला कर बनाया जाता है और इसका व्यवहार प्रायः उत्सवों तथा धर्म सम्बन्धी कार्योंमें होता है। शास्त्रके अनुसार यह मालकोश रागकी रागिणी है। गानेका समय ११ दण्डसे १५ दण्ड तक है।

२ वह जोड़ा जो विवाहके समय दुल्हको पहनाया जाता है। (वि०) ३ शाहों या बादशाहोंका-सा, राजाओंके घोष, राजा-स्त्री। ४ बहुत बढ़िया, उत्तम।

शहाना काहड़ा (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक प्रकारका काहड़ा राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

शहाव (फा० पु०) एक प्रकारका गहरा लाल रङ्ग। यह कुसुमके खूब अच्छे और लाल रंगमें आम या शमलीकी छाल मिला कर बनाया जाता है।

शहावा (हिं० पु०) भिया बेताल देखो।

शहावा (हिं० वि०) शहावके रङ्गका, गहरा लाल।

शहीद (अ० पु०) वह व्यक्ति जो धर्म या इसी प्रकारके और किसी शुभ कार्योंके लिये युद्ध आदिमें मारा गया हो, ग्योहार या बलिदान देनेवाला व्यक्ति।

शंवत्स्य (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद, शंवत्स्यव्रतिके श्रोत्रोत्पत्य। (आश्व० प० ४।५।२६)

शंशप (सं० पु०) शिंशपाया विकारः (पलाशदिभ्यो वा। वा ६।२।१०१) इति ऋण्। शिंशपाविकार, चमस। यह यह आदिमें व्यवहृत होता है।

शंशपक (सं० लि०) शिंशपाका निकटवर्ती स्थान।

शंशपायन (सं० पु०) मुनिविशेष। (विष्णुपु० ३।६।१६)

शंशपायनक (सं० लि०) शंशपायन-सम्बन्धी।

शंशपास्थल (सं० लि०) शिंशपास्थल-सम्बन्धी।

(वा ५।२।१)

शहस्तगी (फा० स्त्री०) १ शिष्टता, सम्पत्ता, तद्गती।

२ भलमनसी, आदमीयत।

शहस्ता (फा० वि०) १ शिष्ट, सम्पत्, तद्गतीववाला।

२ चिनती, नष्ट। ३ जो अच्छी चाल सीखा हो, अथवा कायदा जाननेवाला।

शाक (सं० पु० स्त्री०) शक्यते भोक्तुमिति शक-घञ्।

पलपुष्पादि, भाजी, तरकारी, साग। पर्वाय—हरितक, शिमू, सिम्हू, हारितक। (शब्दरत्ना०)

पत्त, पुष्प, फल, नाल (जटा) कन्द और खेदज अर्थात् छत्ताक आदि ये छः प्रकारके शाक कहे गये हैं। ये यथाक्रम उत्तरोत्तर गुण होते अर्थात् पत्तसे पुष्प गुण और पुष्पसे फल और फलसे नाल इस प्रकार जानना होगा।

गुण—शाक माल हो विष्टभी, गुण, रुक्ष, अतिशय मलयर्क और मलयूतनिःसारक। शाकका सेवन करनेसे शरीरको अस्थि, नेत्र, बल, रक्त, शुक्र, पृथ्वि, स्मृति और गति चिन्त होतो है तथा अकालमें केश पकता है। शाकमें सभी रोग अवस्थित हैं अर्थात् शाक भोजन करनेसे सभी रोग होते हैं। इसलिये रोगमालमें ही शाकभोजन निषिद्ध है।

प्रवाद है, कि मांससे मांसकी और शाकसे मलकी वृद्धि होती है। शाक भोजन करनेसे केवल मलवृद्धि ही हुआ करती है। मायप्रकाश, सुभ्रूत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें शाकवर्गमें शाकोंके नाम, पर्याय और गुण सविस्तार लिखे हैं। यहाँ केवल नाम दिये जाते हैं। गुण और पर्याय आदिका विषय इन्होंने सब शब्दोंका देखनेसे मालूम होगा।

शाकसमुहके नाम—वास्तुक, पोतकी, श्वेतमरुवा, निर्दिष्ट मरुवा, तण्डुलीय, जलतण्डुलीय, पालङ्क, नाष्टिक, कालशाक, पट्टशाक, कलश्री, लोणी, वृद्धलोणी, चाङ्गेरी, चुका, चिञ्चा, हिलमोचिका, त्रितियार, मूल-पतक, श्रेणपुष्पी, यथानी, चक्रवर्ण, सेहण्ड, पर्पट, गांजिहा, पटोलपत्र, गुद्दनी कासमर्द, चणवशाक, कलापशाक, सापेयशाक, पुष्पशाक, कदलीपुष्प, गोमाञ्जल पुष्प, जालमलीपुष्प, सिमूलपुष्प ।

कुष्माण्ड अलावू आदिको फलशाक कहते हैं । इनका गुण—कुष्माण्ड, कुष्माण्डी, अलावू, पट्टपुष्पी, कर्कटी, चिचिण्ड, करेला, महाकोजातकी, पटोल, विम्बि, त्रितियार, कोलत्रिम्बि, गोमाञ्जल, वृस्ताक, चिच्छिण्ड, पिण्डरः कर्कोटकी, डोण्डिका और कण्टकारी ये सब फलशाक हैं । गालशाक सर्वापनाल है ।

कन्दशाक—शूराण अर्थात् आल आदिको कन्दशाक कहते हैं । यह शाकवर्ग इस प्रकार है—शूराण, आलुक, (यह काष्ठालुक, जह्वालुक और पिण्डालुक आदि अनेक प्रकारका है) लघुमूलक, गांजर, कदलीकन्द, मानकन्द, वाराहीकन्द, हस्तिकर्ण, केमुक, कसेर (वेशर), गालुक, ये सब शाकवर्ग हैं । हालका उत्पन्न, बकालमें उत्पन्न, जीर्ण, व्याधियुक्त, कीटोंसे खाया और अग्नि जलादि द्वारा दूषित किया हुआ शाक वर्गानीय है । ये सब शाक कदापि धाने न चाहिये ।

किर अतिशय जोर्ण अर्थात् पुरातन, कड़, सिद्ध अर्थात् तैलादि स्नेह भिन्न सिद्ध, कुसुधानमें उत्पन्न, कर्कश, अति कोमल, अथवा शीत और स्वातादि कर्तुक दूषित तथा शुष्क, ये सब दोषदुष्ट शाक भी वर्गानीय हैं । इसमें विदेपत्रा यह है, कि मूलक शुष्क होनेसे यह अहित कर नहीं होता ।

भूमि, गोमय, काष्ठ और वृक्षादि पर स्वेदज शाक उत्पन्न होता है । सभी प्रकारके स्वेदज शाक शीत-धीर्ण, त्रिदोषजनक, विच्छिन्न, शुष्क तथा घमि, अतीसार, उषर और कफरोगजनक है । (भाग ०)

सुश्रुतमें शाकवर्गमें शाकके नाम इस प्रकार लिखे हैं—पुष्पकण्ड, कुम्हण्ड, लोकी, तरपूज आदिको शाकवर्ग कहते हैं । यथा—

कुष्माण्ड, कालीन्दक, तपुस, धवारक, बर्कक, जोर्णान्त, पिण्डली, मिर्च, सोंठ, अदरक, होंग, शीत, कुस्तुसुक, जासवी, सुरसा, सुसुख, भर्जक, भूस्वय, सुगन्ध, कासमर्द, कालमान कुटेरक, क्ष्वक, सापुरा, मिम्र, मधुगिम्भ, फणिमृकक, सर्षप, राजिका, कुलाहल, वेणु, गण्डिदर, तिलपर्णिका, यर्षाभू, चित्रक, मूलकपोतिका लहसुन, प्याज, कलापशाक, जम्बोर, सुचुच, जीयगो, तण्डुलीयक, उपोदिका, विम्बितिका, नन्दो, भलानक, छागलागर्णो, वृक्षादनी, फञ्जी, जालमली, शेलु, घनस्पति प्रसव, शण, कर्तुदार, कोयदार, पुनर्णया, यरण, तकारी, उरुसुक, गुलञ्ज, विन्द्यशाक, पुद्, मिर्ची, पालङ्क, वेतशाक, चिच्छिण्डिका, मण्डकपर्णी, सतला, सुसुणि, सुयर्चला, प्रलसुवर्चला, गोमिह, मरुय, चक्रवर्ण, वृद्धो, कण्टकारी, पटोल, घासांकु, कारपेठक, कटकी, मारसा, पेंसुक, पर्पटक, किराततिक, कर्कोटक, निम्ब, कोजातकी, चेल, अडूस, अर्कपुष्प आदि शाकवर्ग हैं ।

(सुश्रुत सूत्र ५०)

राजवल्लभमें लिखा है, कि पटोल, वास्तुक, मरुय और पुनर्णयाको छोड़ सभी शाक अपकारी हैं ।

(पु०) २ वृक्षविशेष, सामानिका पेड़ । पर्वीय—शाकवृक्ष, शाकाण्य, परपत्र, अतुनीयम, ककचपत्र, शरपत्र, अत्रिपत्र, अहीरक, श्रेष्ठकाष्ठ, तिथरसार, शूद्रम । गुण—सारक, पित्तदाह और श्रतनाशक । पदक-गुण—कफनाशक, मधुर, कक्ष, कवाप । ३ जक, यल, ताकत । ४ शिरोय वृक्ष, सिरिसका पेड़ । ५ नृपभेद । ६ क्षोपविशेष, सात द्रोणोंमेंसे एक क्षोप । ७ युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, जालियाहनादि शकराजना संवत् । ८ कर्म, काम । (वि०) १ समर्ण । १० शाक जालि-साधवर्णो । ११ जक राजाका । शाक (३० वि०) १ भारी, कठिन । २ दुग्ध देनेवाला, कड़ा ।

शाककलम्बक (सं० पु०) १ व्याज । २ लहसुन । शाकचुक्रिका (सं० स्त्री०) विज्ञा, इनली । २ अमयोनी-या साय, नीनिया । शाकजम्बु (सं० वि०) शाकजम्बु । (वा १।।१३) शाकजम्बु (सं० पला०) जनपदविशेष ।

शाकट (सं० लि०) शाकटस्यैव शण् । १ शाकट-सम्बन्धी, गाड़ोका। (पु०) शाकट-बहतीति शाकट-यच्छादयत् । पां० ४।४।८०) इत्यण् । २ गाड़ोका पैल या जानवर । ३ गाड़ोका बोझ । ४ खेत । ५ घवपृक्ष, घौका पेड़ । ६ तिस्रोद्ग, लमेरा ।

शाकटयोगित्वा (सं० स्त्री०) वीय या पौर्देका पीथा । शाकटमुख (सं० स्त्री०) पटवास्त, गन्धचूर्ण । (वैद्यकी०) शाकटाख्य (सं० पु०) शाकट-इति आख्या यस्य । घव-पृक्ष, घौका पेड़ ।

शाकटायन (सं० पु०) शाकटस्यापत्यं पुमान्, शाकट (नडादिभ्यः षक् । पा ४।१।६६) इति षक् । आठ शाब्दिकींसे एक शाब्दिक ।

"हन्द्रचन्द्रा काशकृत्स्नापिथली शाकटायनः ।

पाणिन्परजैनेन्द्रा जयन्त्यश्रदि शाब्दिकाः ॥"

(कविकल्पद्रुम)

शाकटायनि (सं० पु०) शाकटायन । (हेम)

शाकटिक (सं० लि०) शाकटेन गच्छतीति शाकट उक् ।

१ शाकटगामी, गाड़ोवान । २ गाड़ोयाला । (शिदान्तकी०)

शाकटिकर्ण (सं० पु०) शाकटिकर्णका निकटवर्ती स्थान ।

शाकटीन (सं० पु०) १ गाड़ोका बोझ । २ प्राचीनकाल की एक तील जो बंस तुला या दौ सहाय पलकी होती थी । पर्याय—भार, आचित, शाकट, शलाघ ।

शाकटरु (सं० पु०) शाकाख्या तस्य । शाकटपृक्ष, सागोन-का पेड़ ।

शाकदास (सं० पु०) भार्त्तियायनके अपत्य एक वैदिक आचार्यका नाम ।

शाकद्रुम (सं० पु०) १ चरण पृक्ष । २ शाक पृक्ष, सागोनका पेड़ ।

शाकद्वीप (सं० पु०) सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप । इसके विषयमें महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—

जम्बूद्वीपका औला विस्तार कहा गया है, शाकद्वीपका विस्तार उससे दूना है । यह द्वीप क्षौरसमुद्रसे परि-
घेष्ठ है । वहाँ बहुतसे पवित्र देश अवस्थित है । मानव-
गण कभी भी कालक्रासमें पतित नहीं होते अर्थात् उनकी
अकाल मृत्यु नहीं होती । वे सभी तेजस्वी और क्षमता-
शाली हैं । वहाँ दुर्मिक्ष कभी भी नहीं पड़ता । मणि-
विभूषित सात पर्वत और अनेक रत्नोंकी आकर नदियां

बहती हैं । अति पवित्र देवविंशणसेवित मदागिरि मेघ-
द्वी सर्वप्रधान है । इसके पश्चिममें मलयपर्वत विस्तृत
है जहाँसे मेघ सञ्चालित हो कर सर्वत्र प्रवर्षित होते हैं ।
उसके पूर्व भागमें जलधार नामक एक बड़ा पर्वत पड़ा
है । देवराज इन्द्र वहाँसे जल ले कर वर्षाकालमें वर्षण
करते हैं । उसके बाद अति उन्नत रेवत पर्वत है ।
भगवान् ब्रह्माके आदेशानुसार रेवती वहाँ वास करती
है । सुमेरुके उत्तर अति उन्नत नवीन जलधारकी तरह
श्यामल, उज्वल कान्तिसम्पन्न श्यामगिरि प्रतिष्ठित है ।
मनुष्यगण उस गिरिसे श्यामलत्वकी प्राप्त हुए हैं । सभी
द्वीपोंमें ब्राह्मण गौरवण, क्षत्रिय लोहित, वैश्य पीत और
शूद्र कृष्णवर्णके होते हैं । एक वर्णका कोई नहीं होता,
परन्तु श्यामगिरिमें सभी मनुष्य सांवल्ले होते हैं ।

श्यामगिरिके बाद अति उन्नत दुर्गशील है । वहाँ
केशरसम्पन्न सिंह और समोरण पाये जाते हैं । उन
पर्वतोंका विस्तार उत्तरोत्तर द्विगुण है । उन सब
पर्वतों पर महामरु, मदाकाश, जलद, कुमुद, उत्तर, जल
धार और सुकुमार ये सात पर्व हैं । रेवत पर्वतका
कौमार पर्व, श्यामगिरिका मणिकाम्यन पर्व और केशर
पर्वतका मौद्गीकी पर्व है । उसके बाद महापुमान्
नामक एक पर्वत है जिसका परिमाण जम्बूद्वीपके समान
है । यह महागिरि शाकद्वीपसे घिरा है । वहाँ शाक नामक
एक महाद्रुम अवस्थित है । प्रजा उसकी अनुगामिनी
है । उस पर्वत पर अनेक पवित्र जनपद हैं । वहाँके लोग
भगवान् शङ्करकी आराधना करते हैं । सिद्ध, चारण
और देवगण वहाँ हमेशा जाया करते हैं । प्रजा चार
वर्णोंमें विभक्त है । वे दीर्घजीवी और अपने अपने धर्ममें
एकान्त अनुरक्त हैं । वहाँ चोरका भय नहीं है, जरा-
मृत्युका अधिकार नहीं है, जिस प्रकार वर्षाकालमें
नदियां परिवर्द्धित होती हैं, प्रजागण भी उसी प्रकार धीरे
धीरे परिवर्द्धित होती हैं । वहाँ अनेक शाखाओंमें विभक्त
गङ्गा, सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, धेणिका, महानदी,
मणिजला और चक्षुर्ध्वनिका नदी बहती हैं । इनके
सिवा और भी हजारों भरले बहते हैं । इन्द्र उनका-
जल ले कर वर्षा करते हैं । उन सब नदियोंका नाम
और संख्या बतलाना बहुत कठिन है ।

शाकसमूहके नाम—वास्तुक, पौतकी, भ्रंशमरुपा, नैदिन मरुपा, लण्डलीय, जलतण्डलीय, वालुक, नाष्टिक, कालशाक, पट्टशाक, कलश्री, लोणी, वृद्धलोणी, चाङ्गेरी, चुका, निश्वा, हिलमोचिका, जितिवार, मूल-पत्रक, श्रेणपुष्पी, यथानी, चक्रवर्ण, मेढरहु, पर्पट, गोजिहा, पटोलपत्र, गुडची, कासमर्द, चणचणशाक, कलापशाक, सापंपशाक, पुष्पशाक, कदलीपुष्प, जीवाञ्जन पुष्प, जालमलीपुष्प, सिमूलपुष्प ।

कुष्माण्ड अलावू आदिको फलशाक कहते हैं । इनका गुण—कुष्माण्ड, कुष्माण्डी, अलावू, पट्टपुष्पी, कर्बरी, चिचिण्ड, करेला, महाभोजातकी, पटोल, विभिन्न, जितिव, कालजितिव, जीवाञ्जन, गृत्ताक, त्रिष्टिका, पिण्डर, कर्कोटक, टोषिका और कण्टकारी ये सब फलशाक हैं । नालशाक सर्षपनाल है ।

वन्शशाक—शूराण सर्षपां आल आदिको वन्शशाक कहते हैं । यह शाकवर्ग इस प्रकार है—शूराण, आलुक, (यद्यथाआलुक, जङ्गलालुक और पिण्डालुक आदि अनेक प्रकारका है) लघुमूत्रक, गोजर, क्वलीकन्द, मानकण, पादाहीकण्ड, हस्तिकर्ण, केमुक, कसेठ (पेजठ), शालुक, ये सब शाकवर्ग हैं । हालका उत्पन्न, अकालमें उत्पन्न, जीर्ण, व्याधिमुक्त, कीटोंसे छाया और शक्ति जलादि द्वारा दूषित किया हुआ शाक वर्गनीय है । ये सब शाक कदापि खाने न चाहिये ।

गिर पतितशाक जीर्ण सर्षपां पुरातन, कश्, सिद्ध सर्षपां तैलादि स्नेह भिन्न सिद्ध, कुसुधानमें उत्पन्न, कर्बज, भगि कोमल, भयथा शीत और वशादादि कर्तुक दूषित तथा शुष्क, ये सब दोषदुष्ट शाक भी वर्गनीय हैं । इसमें विशेषता यह है, कि मूत्रक शुष्क होनेसे यह अहित कर नहीं होता ।

भूमि, गोमय, काष्ठ और वृक्षादि पर स्वेदज शाक उत्पन्न होना है । सभी प्रकारके स्वेदज शाक शीत-पोषं, त्रिदोषजनक, विच्छिन्न, शुद्ध तथा घमि, भक्षोत्साह, उपर और कफरोगजनक है । (भाष्य०)

मुख्यतम शाकवर्गमें शाकीक नाम इस प्रकार लिखे हैं—पुरकण्ड, कुम्हण्ड, लौकी, तरुण आदिको शाकवर्ग कहते हैं । यथा—

कुष्माण्ड, कालीन्दक, लघुम, पवारक, बर्जर, जीर्णमूत्र, विपणो, मिर्च, सोंठ, अदरक, होंग, शोष, कुस्तुमुक्त, जायवरी, सुरसा, सुमुख, अर्जक, भूष्ण, सुगन्ध, कासमर्द, कालयान कुठेरक, शरक, चारुप, मित्र, मधुमित्र, फणिसूक्त, सर्षप, राजिका, कुलाहल, येणु, गरिष्ठर, तिलपर्णिका, यर्षाभू, चित्रक, मूलकपोतिका लहसुन, प्याज, कलायशाक, शम्बोर, चुचुम्, शोषणो, तण्डुलीयक, उपोदिका, विगोतिका, मंशू, भल्लातक, छागलागर्तो, वृक्षादनी, फजी, शालाली, शेलु, वनस्पति प्रसर, शण, कर्पूदार, कीर्षिदार, पुनर्णाया, वरण, सर्कारी, उरुमुक, गुलश्च, विद्ययशाक, पुद्, मेघी, पालक, वेतशाक, चित्तिशाक, मण्डूकपर्णी, सप्तला, सुंजुनि, सुवर्चला, प्रलसुवर्चला, गोजिहा, मर्कोप, चक्रपर्ण, वृद्धनी, कण्टकारी, पटोल, पार्ताक, कारपेठक, बटकी, मारसा, वेमुक, पर्पटक, किराततिक, कर्कोटक, निम्ब, कोशातकी, घेत, अडूस, अकपुष्प आदि शाकवर्ग हैं ।

(गृभृत धूपस्था०)

राजयल्लभमें लिखा है, कि पटोल, वास्तूक, मर्कोप और पुनर्णायाको छोड़ सभी शाक अपकारो हैं ।

(पु०) २ वृक्षविशेष, सागोनका पेड़ । -पर्षप—शाकवृक्ष, शाकावय, चरपत्र, अतुनीयम, ककचपत्र, शरपत्र, कतिपत्र, अशोदक, भ्रंशकाष्ठ, तिपरसार, शूद्रम । गुण—सारक, विशद और श्रवनाशाक । पक्क-गुण—कफनाशाक, मधुर, कश्, कयाप । ३ अर्क, यल, ताकत । ४ शिरोय वृक्ष, सिरिमका पेड़ । ५ नृवभेद । ६ द्रोणविशेष, सात द्रोणमेंसे एक द्रोण । ७ सुचिष्टि, विकर्मादिरप, जालियाहनादि शकराजका संवत् । ८ कर्म, काम । (वि०) १ सामर्ष । १० शाक ज्ञानि-सम्बन्धी । ११ शाक राजाका ।

शाक (अ० पि०) १ भारी, कटिन । २ दुग्ध देनेवाला, कड़ा ।

शाककलमवक (सं० पु०) १ प्याज । २ लहसुन ।

शाकसुकिता (सं० स्त्री०) चिन्ता, इनली । २ मननोन्नीका साग, नीनिषा ।

शाकजाप (सं० स्त्री०) शाकमशक । (पा ३।१३)

शाकजम्बु (सं० पुल०) जनपदविशेष ।

शाकट (सं० लि०) शाकटस्थेद् अण् । १ शाकट-सम्बन्धी, गाड़ीका । (पु०) शाकटं वहतीति शाकट-(शफटादण् । पा ४।४।८०) इत्यण् । २ गाड़ीका चैल या जानचर । ३ गाड़ीका घोष । ४ खेत । ५ धववृक्ष, घौका, पेड़ । ६ लिसेड़ा, लमेरा ।

शाकटपोतिका (सं० स्त्री०) पीप या पोईका पौधा ।

शाकटमुल (सं० क्ली०) पटवास, गन्धचूर्ण । (वैद्यकी०)

शाकटाण्य (सं० पुं०) शाकट-इति आख्या यस्य । धव-
वृक्ष, घौका पेड़ ।

शाकटायन (सं० पुं०) शाकटस्थापत्यं पुमान्, शाकट
(नडादिभ्यः षक् । पा ४।१।६६) इति षक् । षाठ
शाब्दिकोंमेंसे एक शाब्दिक ।

“इन्द्रचन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटापनः ।

पाणिन्धरजैनेन्द्रा जयन्त्यश्वादि शक्तिरकाः ॥”

(कविकल्पद्रुम)

शाकटायनि (सं० पुं०) शाकटायन । (हेम)

शाकटिक (सं० लि०) शाकटेन गच्छतीति शाकट-ठक् ।

१ शाकटगामी, गाड़ीवान । २ गाड़ीवाला । (विद्वान्तकी०)

शाकटिकर्ण (सं० पुं०) शाकटिकर्णका निकटवर्ती स्थान ।

शाकटीन (सं० पुं०) १ गाड़ीका घोष । २ प्राचीनकाल
की एक तील जो घंसे तुला या दो सहस्र पलकी होती
थी । पर्याय—भा, आंचित, शकट, शलाट ।

शाकतच (सं० पुं०) शाकाख्यः तस्य । शाकवृक्ष, सागोन-
का पेड़ ।

शाकदास (सं० पुं०) आर्चितायनके अर्पत्य एक वैदिक
आचार्यका नाम ।

शाकद्रुम (सं० पुं०) १ चरुण वृक्ष । २ शाक वृक्ष,
सागोनका पेड़ ।

शाकद्वीप (सं० पुं०) सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप । इसके
विषयमें महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—

जम्बूद्वीपका जैसा विस्तार कहा गया है, शाकद्वीप-
का विस्तार उससे दूना है । यह द्वीप क्षीरसमुद्रसे परि-
वेष्टित है । वहाँ बहुतसे पवित्र देश अवस्थित हैं । मानव-
गण कभी भी कालप्राप्तमें पतित नहीं होते अर्थात् उनको
अकाल मृत्यु नहीं होती । वे सभी तेजस्वी और क्षमता-
शाली हैं । वहाँ दुर्मिक्ष कभी भी नहीं पड़ता । मणि-
विभूषित सात पर्वत और अनेक रत्नोंकी आकर नदियाँ

बहती हैं । अति पवित्र देवपिपणसेवित महागिरि मेघ
ही सर्वप्रधान हैं । इसके पश्चिममें मलयपर्वत विस्तृत
है जहाँसे मेघ सञ्चालित हो कर सर्वत्र प्रवर्षित होते हैं ।
उसके पूर्व भागमें जलधार नामक एक बड़ा पर्वत खड़ा
है । देवराज इन्द्र वहाँसे जल ले कर वर्षाकालमें वर्षाण
करते हैं । उसके बाद अति उन्नत रेवत पर्वत है ।
मगवान् प्रह्लाके आदेशानुसार रेवती वहाँ बास करती
है । सुमेरुके उत्तर अति उन्नत नवीन जलधारकी तरह
श्यामल, उज्ज्वल कान्तिसम्पन्न श्यामगिरि प्रतिष्ठित है ।
मनुष्यगण उस गिरिसे श्यामलत्वकी प्राप्त हुए हैं । सभी
द्वीपोंमें ब्राह्मण गौरवण, क्षत्रिय लोहित, वैश्य पीत और
शूद्र कृष्णवर्णके होते हैं । एक वर्षाका कोई नहीं होता,
परन्तु श्यामगिरिमें सभी मनुष्य सांवले होते हैं ।

श्यामगिरिके बाद अति उन्नत दुर्गशैल है । वहाँ
केशरसम्पन्न सिंह और समोरण पाये जाते हैं । उन
पर्वतोंका विस्तार उत्तरोत्तर द्विगुण हैं । उन सब
पर्वतों पर महामेघ, महाकाश, जलद, कुमुद, उत्तर, जल
धार और सुकुमार ये सात वर्ष हैं । रेवत पर्वतका
कीमार वर्ष, श्यामगिरिका मणिकाञ्चन वर्ष और केशर
पर्वतका मौदाकी वर्ष है । उसके बाद महापुमान्
नामक एक पर्वत है जिसका परिमाण जम्बूद्वीपके समान
है । यह महागिरि शाकद्वीपसे घिरा है । वहाँ शाक नामक
एक महाद्रुम अवस्थित है । प्रजा उसकी अनुगामिनी
है । उस पर्वत पर अनेक पवित्र जनपद हैं । वहाँके लोग
भगवान् शङ्करकी आराधना करते हैं । सिद्ध, चारण
और देवगण वहाँ हमेशा जाया करते हैं । प्रजा चार
वर्णोंमें विभक्त है । ये दीर्घजीवी और अपने अपने धर्ममें
एकाग्र अनुरक्त हैं । वहाँ घोरका भय नहीं है, जरा
मृत्युका अधिकार नहीं है, जिस प्रकार वर्षाकालमें
नदियाँ परिवर्द्धित होती हैं, प्रजागण भी उसी प्रकार घोर
घोर परिवर्द्धित होती हैं । वहाँ अनेक शाखाओंमें विभक्त
गङ्गा, सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, धेणिका, महानदी,
मणिजला और चक्षुर्द्वन्द्विका नदी बहती हैं । इनके
सिवा और भी हजारों करने बहते हैं । इन्द्र उनका
जल ले कर वर्षा करते हैं । उन सब नदियोंका नाम
और संख्या बतलाना बहुत कठिन है ।

मरह्यपुराणमें भी महाभारतकी अपेक्षा शाकद्वीपका साविस्तर वर्णन और उसके अर्थात् अनेक जनपदशुद्धि का उल्लेख है। श्रीमद्भागवत और देवीभागवतके शाकद्वीप भाषसमें मिलनेपर भी महाभारत अथवा किसी दूसरे पुराणके साथ उसका मेल नहीं खाता। किस किस पुराणमें शाकद्वीपका कौन-सा वर्णनमाग है, उसीकी एक तालिका नीचे दी गयी है।

देवीभागवत	पुरोजय	मनोजय	पयमानक	पूष्यानीक	चित्ररेक	चक्रुप	विश्वरूक
भागवत	पुरोजय	मनोजय	वेपमान	पूष्यानीक	चित्ररेक	चक्रुप	विश्वधाार
ब्रह्मपद	जलधार	सुकुमार	कौमार	मणोचक्र	कुसुमोत्तर	मौक्तिक	महाद्रुम
गाङ्ग	जलद्र	कुमार	सुकुमार	मणोचक्र	कुसुमोद्	मौक्तिक	महाद्रुम
विष्णुपुराण	जलद्र	कुमार	सुकुमार	मणोचक्र	कुसुमोद्	मौक्तिक	महाद्रुम
महास्यवन	जलधार वा मतमय	सुकुमार वा शीतार	सुकुमार वा सुगोमय	मणोचक्र वा आकल्पिक	कुसुमोद्दर वा मोमक	मौक्तिक वा शैतक	जल ध्रुव वा विश्वाम
१म	२य	३य	४य	५म	६म	७म	

कोई कोई कहते हैं, कि कलाभेदसे नामभेद हुआ है। जो ही, प्राचीन नाम विलुप्त होनेसे अर्थात् शाकद्वीपकी पक्षमान अथवस्थितिका निरूपण करना कठिन हो गया है। मित्र मित्र पुराणमें शाकद्वीपके सम्बन्धमें नाना मत दिखाई देने पर भी मरह्यपुराण और महाभारतका मत एक सा रहनेसे दोनों ही मत प्रमाण करने योग्य हैं।

मरह्य और महाभारतके मतसे जम्बूद्वीप (जिसका अधिकान्त ले कर ही भारतवर्ष बना है) के बाद दो शाकद्वीप हैं, मेघ वा सुमेघ इसकी एक सीमा है। प्रोफ. ऐतिहासिक हिरोद्योतसने भी लिखा है,—हिन्दुस्तान (India proper) और स्कितिया (Scythia)के मध्य हिमदेदा (Hemodes या Hemodus) नामक महागिरि पड़ता है। पक्षमान मध्यदेशियाका पामोर नामक गिरि ही पुराणोक्त मेघ वा सुमेघका दक्षिणांश समझा जाता है।

प्रोफ. लोर्गेके मतसे हिमदेशमें (Hemodes) देवताओं का वास था। पुराणके मतसे भी मेघ वा सुमेघ-शिखर पर देवगण रहते हैं। अतः पामोर और तत्संलग्न मुक्तिस्तान तक विस्तृत पक्षमानलाका ही जम्बूद्वीप और शाकद्वीपका व्यवधान मानना होगा। अनि पूर्वकालमें इस दुर्गम प्रदेशमें आसानीसे कोई भी नहीं जा सकता था और योनों देशके लोगोंके साथ परस्पर सम्बन्ध रहनेसे अनेक कठिनत भाषयान प्रचलित हुए होंगे।

पारस्य देशीय पूर्वतन राजाओंकी प्राचीनतम शिलालिपिमें शक वा शकजातिकका उल्लेख है। भारतीय शक कुशनोंकी मुद्रामें भी 'शक' नाम पाया जाता है। इस शक वा शकका द्विबोद्धोत्तर, प्राची आदि पादचारय ऐतिहासिक और मौगोलिनीने दिग्दोष" (Scythian) वा साकित्त (Sakitai) नामसे उल्लेख किया है। प्राचीने लिखा है,—बाह्योवसागरकी पूर्वाञ्चलधामों समी जातिवां सिक्दो कहलातो हैं। सागरके टोक पादर्थीमें ही द्दो (Dahae) है। इसमें कुछ पूर्व महसतगैर्द (Massagetai) और साकीका नाम है।

० मरह्यपुराण १२२ अध्याय प्रकल्प ।
 † भाद१३ ५४ स्कन्ध २० अध्याय, देवीभागवत ५ स्कन्ध १२ ५० प्रकल्प ।

० Scythia = शकद्वीप ।

किन्तु इन सब जातियोंका विशेष विशेष नाम है। ये लोग एक जगह स्थायी भावसे नहीं रहते। इन लोगोंमें अस्सि (Asi), पस्सियानी (Pasiani), तोचारी और सकरतलका नाम प्रसिद्ध है। इन लोगोंमें मीर्कोंसे बकिया (Bactria) जोता था। सब लोगोंने (Scae) पश्चिममें प्रवेश कर किमेरी (Cimmerae) लोगोंकी तरह बकिया और अर्मेनियाके प्रधान देशोंको अधिकार किया था तथा उनके नामानुसार यह स्थान शकसेनी (Sacasenae) नामसे प्रसिद्ध हुआ।

द्वितीयदोहरने लिखा है,—“शाक (Scae or Scythian) लोगोंका जादि वासस्थान अरक्षेसके ऊपर था। यहा (Ella = इला) नामकी पृथ्वीजाता एक कुमारीसे यह जाति उत्पन्न हुई है। इस कुमारीकी कमरसे ऊपर नारी सी और नीचे सर्प सी आकृति थी। जुपिटरके औरससे उस कुमारीके गर्भसे सिन्दिस् (Scythes) वा शाक नामक एक पुत्रने जन्मग्रहण किया। इसके दो पुत्र थे, पालि (Palis) और नाप (Napas), दोनों ही महावीर समझे जाते थे। उनके नामानुसार पालिया और नापिया जातिका नामकरण हुआ है। उन्होंने बहुदूरवर्षों इजिप्टदेशमें नोलगद तक अधिकार किया था तथा अनेक जातियोंको हराया था। उनके प्रभावसे शकराज्य पूर्वसागरसे कास्पिय और मेवती (Maeotis) हृद तक फैल गया था। इस जातिके अनेक राजे राज्य कर गये हैं। उनके वंशसे शाक (Scae), मस्सग (Massagetai), अरि-अस्प (Ariaspa) आदि अनेक श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई है। उन्होंने बहुतेरे साम्राज्योंको विपयस्त कर आसिरोप और मिदोपको जोता था तथा सौरमतीय (Sauromatae) लोगोंको अरक्षेसके किनारे बसाया था।”+

पूर्वतन ग्रीक ऐतिहासिकोंके वर्णनानुसार वर्तमान

यूरोपीय पुराविदोंने स्थिर किया है, कि वर्तमान तातार, पश्चिमाटिक रूसिया, साइबेरिया, मल्कारो, किमिया, पोलण्ड, हुङ्गेरीका कुछ अंश, मिथुवनिया, जर्मनीका उत्तरांश, स्वीडेन, नारवे आदि देशोंको ले कर प्राचीन सिन्दिस् (या शाकद्वीप) विस्तृत था।

शाकद्वीपमें वर्षा-विभाग।

अभी देखा जाता है, कि शाकद्वीप अन्तर्द्वीपके बाव ही हुआ। वर्तमान तुर्किस्तान, साइबेरिया, पश्चियास्प रूस, पोलण्ड आदि शाकद्वीपके मध्य उद्गाराय गया। किन्तु इन सब स्थानोंमें वर्षा-विभाग प्रचलित था, इस भारतको तरह वहां आर्द्रसमाप्त था, इसका प्रमाण हो गया है ?

यहुतेरे शाकद्वीपको म्लेच्छदेश बतलाते हैं, पर हमें जो प्राचीन प्रमाण मिला है, उससे जाना जाता है, कि शाकद्वीप पूर्वकालमें कभी भी म्लेच्छदेश नहीं समझा जाता था। पूर्वदिगित महाभारतके वर्णनसे ही यह बहुत कुछ प्रमाणित होता है। अब देखना चाहिये, कि शाकद्वीपमें वर्षाविभाग किस प्रकार प्रचलित था ?

महाभारतमें लिखा है—उस शाकद्वीपमें पुण्यप्रद लोक प्रसिद्ध चार जनपद हैं, यथा—मग, मशक, मानस और मन्दग। मग-विभागमें स्वर्कनिरत श्रेष्ठ मग ब्राह्मणोंका वास, मशक-विभागमें धार्मिक और सर्गकामप्रद मशक नामक क्षत्रियोंका वास, मानस-विभागमें सर्गकामसम्पन्न, धर्मार्थतत्पर और शूर मानस नामक वैश्य धार्मिकोंका वास तथा मन्दग-विभागमें नित्यधर्मनिरत मन्दग नामक शूद्रोंका वास है। यदा राजा नहीं हैं या दण्डधारी भी नहीं हैं। ये धार्मिक मनुष्य अपने धर्मके प्रभावसे एक दूसरेकी रक्षा किया करते हैं।

(मीमंसा ११ अध्याय)

विष्णुपुराण (२।४।६६-७१) में भी लिखा है—मग,

* कोई कोई कह सकते हैं, कि महाभारत और मात्स्यके मतसे जब शाकद्वीप कीरोदकागरवेष्टित है, तब हम किस प्रकार उक्त विस्तृत भूभागको शाकद्वीप मान सकते हैं। जिस भूभागके दो ओर जल है, पुराणमें उल्लेख ही कहा है। पूर्वोक्त भूभागके दो ओर जो जल है उसे सब कोई स्वीकार करेंगे।

* पौराणिक नाम वादिक।

† Strabo, lib. xi

‡ अरि-अस्प = आर्षाव (होल्डर)

+ Diodorus Siculus, Book II.

मगध, मानस और मन्ध्र ये चार वर्ण हैं। मगधन वर्णप्राज्ञानधेष्ट, मानसगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्ध्रगण शूद्र हैं। इस जाकद्वीपमें सूर्यरूपधारी निरगुण वास करते हैं।

मधियवुराण और सावयुराणमें भी ठीक वैसा ही लिखा है,—जम्बूद्वीपके बाद विषयात जाकद्वीप है। यहाँ चानुर्वर्णसमोयुक्त जनपद है। उस जनपद (और यहाँ बसनेवाली चार जाति)-का नाम मग, मसग, मानस और मन्ध्र या मन्ध्रस है। मगधन प्राज्ञान, मसगधन क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्ध्रसगण शूद्र समझे जाते हैं। उनमें सार्व वर्ण नहीं हैं। तमो धर्माश्रित हैं। धर्माका किसी प्रकारका व्यभिचार न रहनेसे प्रजा पदागत सुखी हैं। मेरे (मर्घात् सूर्यके) नेत्र द्वारा ये विभ्रकालसे सृष्ट हुए हैं। उनके लिये वैशोक विविध स्तोत्र और गुह्य विषय द्वारा मैंने चार धर्म प्रकाश किये हैं।

उपरोक्त पौराणिक प्रमाणसे शाकद्वीपमें जो चार वर्ण थे उसे अब कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। मदा भारतकी 'मदाक' और मधियुक्त 'मसग' नामक क्षत्रिय जाति ही जो भौक ऐतिहासिक दिग्दोतस और य्वायो प्रभृति द्वारा Massagetae अर्थात् मससग नामसे वर्णित हुईं, उसमें अब कोई संशय रह नहीं जाता। साकित्तै वा जाकद्वीपमें इस मसगके अलावा दूसरी जातिका वास था, वह भी भौक ऐतिहासिकगण लिपि-यत्न कर गये हैं। दिग्देशरसने भी भी लिखा है, कि उस मसग भाद्रि घोर जातिने ही असुर (Assyria) और मद्र (Media)को जीत कर अक्षासके किनारे 'सौरमतीय' (Sauromatian = सूर्यवासक मग ?)

लोगोंको प्रतिष्ठित किया था। मगधनादि किसी किसी पुराणमें लिखा है, कि प्रियव्रतके पुत्र मेवातिधि शाकद्वीपके अधोभर हुए थे। अतएव अतिप्राचीन ज्ञानमें मार्घप्रभाव-विस्तारके साथ यहाँ भी जो चानुर्वर्ण-समाज सङ्गठित हुआ था, इसमें संशय नहीं।

बहुनोंका विश्वास है, कि मध्य एशियावासी प्राचीनतम मार्घसन्तानोंने भारतमें भा कर उरानिवेश प्रसांगके पीछे वहाँके प्रजावर्ष-प्रदेशमें चानुर्वर्ण समाज सङ्गठित किया था। किन्तु अभी ये सब बातें सत्य प्रतीत नहीं होंगी। वैदिक भाषोंके समयसे जो चार वर्ण स्थिर हुए थे, मध्य-एशियासे ही जो वर्ण-विभागका मूढ़ि हुई थी, वह अभी बिलकुल अस्तर्य प्रतीत नहीं होता। इराणोव (आर्य) और तुराणोव दोनों प्राचीन समाजोंमें ही वर्णभेद हुआ था, वह पुराणावधानसे बहुत कुछ जाना जाता है।

जो प्रचलित पुराणोंके नाशयानोंको अतिप्राचीन नहीं मानते, उन्हें विश्वास दिलानेके लिये भगने भाष्य-दोक्त चार वर्णविभाग और प्राचीन पारसिकोंके भाद्रि धर्मप्राज्ञ जय अयस्ताका उल्लेख कर सकते हैं। अयस्ताके अन्तर्गत 'यश्न' नामक विभागमें १ आधुय, २ रथपताय, ३ वाशन्नियकसुवएट और ४ हृदित इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यश्न १६।४६) यश्नके संस्कृत टोकाकार नेरिवोसिहने उन चार जयशोंका पद्यात्मक रूप प्रकाश अर्थात् लगाया है, १ आधुय, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिन् और ४ प्रकृतिकर्मन्। इन चार प्रकारके लोगोंके उल्लेखके पहले ही यश्नमें (१६।४४) देखा जाता है, "यद् जै भादेशा अहुरमज्द कदते है, उते चार पित्र वा धेणो हो सोना।" इसके सिवा यश्नकी दूसरी जगहमें भी (१६।६) लिखा है—आधुय (वा आधुय) रथपतायो (रथपथ वा हातय) और वाशन्नियकसुवएट (कुटुम्बी अर्थात् वैश्य) ये लोग धेणो ही मन्दीय धर्माको जति स्वरूप है। इस भारतमें भी जैसे प्रथम क्षियणोंका ही सर्वधेष्ट और अर्घसमोयुक्तो जतिस्वरूप बतया है अग्निपूजक इराणियोंके सुमाचोन धर्मप्रधानों में पैसा ही देखा जाता है। अयस्ता शास्त्रके धेणोको मातो-यना कर वाशचाय पण्डित काणोसादकने लिखा है—

• Vide Pinkerton's Researches on Goth, vol. 11 and Tod's Rajasthan, vol. 1, 57-61,

• इस नाम नाम अर्धमठ, महाभारतीय चतु। रहने उद्भूत किया है, "Sakitai, a region at the fountain of the Oxus and Jaxartes, styled Sakiti from the Sacoe,

See D, Anville's Anc, Geog,

"It is thus established that according to the Zēnd Avesta the first class (pishtra) consists of teachers or priests, of Brahmans, the second of knights, Kshatriyas, exactly in India consequently a division of the nobility into Brahmans and Kshatriyas, and the precedence of the former over all the classes, is not the work of the Indian Brahmans"

शाकद्वीपका जो स्थान निर्देश किया गया है, उसमें वर्तमान पारस्यदेशके उत्तरांशमें ही शाकद्वीपकी सीमा आरम्भ है। अथवा पारसियोंका प्राचीनतम धर्मशास्त्र है। इस अवस्थामें अब (आविस्तक धर्मग्रन्थक जरखुलके समय) चार वर्षोंका प्रसङ्ग मिलता है, तत्र शाकद्वीपके चार वर्षोंके सम्बन्धमें और कोई संदेह नहीं रह जाता।

पारस्य राज्यके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे ज्ञाना जाता है, कि ख्रिष्टपूर्व ६ठी और ७ वीं सदीमें सिक्दीय या शाकद्वीपीयगण अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। पारस्यसम्राट् दरायुस देश जीतनेको आशानसे ५१५ ई०सन्के पहले पुल द्वारा बासफोरस प्रणाली और दानियुब नदी पार कर शकोंके राज्यमें घुसे, किन्तु विफल-प्रनोरथ हो उन्हें लौट आना पड़ा था। फिर यह भी ज्ञाना जाता है, कि उत्तरमद्र (Media) के राजाओंने ही सबसे पहले आविस्तक जरखुल-धर्मका प्रचार किया था। हिरोदोतसने लिखा है, कि पारस्य सम्राट् गण उत्तरमद्रमें (Medians) से ही पूर्वतन पारसिक पुरोहित निर्वाचित करते थे। वे सब अग्नि-पूजक पुरोहितगण मग या मगर नामसे प्रसिद्ध थे।

प्राचीन ग्रीक ऐतिहासिकोंमेंसे बहुतोंने लिखा है, कि शाकद्वीपियोंने (Scythians) समस्त उत्तरमद्र पर आधिपत्य फैलाया और सीरमतियोंको प्रतिष्ठित किया था। सीरमतीय या सूर्योपासकगण पारसिकोंके निकट मगुस या मग, हिन्दपुराणमें 'मग' या 'मगस' और प्राचीन ग्रीकोंके निकट 'मगी' नामसे उपात हुए थे।

कालक्रमसे उन मग पुरोहितोंका प्रभाव समस्त सभ्य जगत्में फैल गया था। बहुत दिनों तक पारस्यके प्रतापशाली सम्राट्गण इन मगपुरोहितोंका प्राधान्य

और शिष्टत्व स्वीकार कर गये हैं। इस मग-पुरोहित वर्गके सुप्रसिद्ध जरखुलने अग्निपूजाका प्रचार किया। इस उपलक्षमें वे अथवा शाकद्वीपका प्रचार कर बुद्ध, ईसाई, चीतग्यादिकी तरह सभ्य जगत्में अविनाश्वर नाम छोड़ गये हैं।

पारचात्यन्त।

वर्तमान पुगलस्वविद्म और भौगोलिकोंने विशेष अनुगन्धान द्वारा ग्रीक इतिहासिक सिक्दीय जातिके (Scythian) पासस्थान सिक्दियाको ही (Scythia) प्राचीन शाकद्वीप बताया है। सभ्यता और ज्ञानमार्गमें अप्रसर हो कर ग्रीक लोगोंने नाना स्थानोंमें जा उपनिवेश बसानेकी चेष्टा की। ख्रिष्टपूर्व ७ वीं सदीके मध्यभागमें एक दल ग्रीक कृष्णसागरके उत्तरी किनारे यत्न गये। उस समय उन लोगोंने कस राज्यके दक्षिणत्य ठूणाच्छादित छेपी नामक प्रातर भागमें स्कोलोटी (Scoloti) नामकी जातिको बास करते देखा था। उस स्कोलोटी जातिका प्रकृत नामसे वर्णन न करके ग्रीकोंने उनका नाम सिक्दीय रखा है। तभीसे शाकद्वीपी लोग प्राच्यतन अधिवासको इतिहासमें सिक्दीय नामसे प्रसिद्ध हैं।

हेसियडमें (Strabo vii p. 300) ८०० ई० सन्के पहले और हेरोदोतस (Herod iv 15)के वर्णनमें ६८६ ई० सन्के पहले शाकद्वीपवासियोंके वाणिज्य प्रभावका परिचय है। ग्रीक निससवासियोंके अरिष्टिपस सिक्दियोंके मध्य एशियाके वाणिज्य विषयसे अच्छी तरह जानकार थे। हेरोदोतस और डिपोकटिसकी लिखित विवरणी पर अच्छी तरह विचार करनेसे प्राकृत होता है, कि सिक्दीय जातिकी बासभूमि बहुत दिनों तक यूरोपके दक्षिण पूर्वांशमें ही थी तथा उसके पास ही शर्मशीय, बुदोनो, गोलिनो, धाईसापेटो, और आइर्वाक आदि अनेक भिन्न भिन्न जातियां रहती थीं। सिक्दीय लोगोंका इनके साथ वाणिज्य-सम्बन्धमें इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था, कि आपसमें आचार व्यवहारमें बहुत कुछ समानता भी दिखाई देती थी। इस कारण ग्रीकोंने उन लोगोंको भी सिक्दीय कह कर धेयिन किया।

मागध, मानस और मध्य ये चार वर्ण हैं। मगधन सर्वाश्रयणभेद, मागधगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मध्यगण शूद्र हैं। इस शाकद्वीपमें मूर्च्छकंधारी विशु ब्राह्म करने हैं।

मध्यपुराण और मागधपुराणमें भी ठीक वैसा ही लिखा है,—आर्षद्वीपके बाद विष्णुपाल शाकद्वीप है। यहाँ चातुर्वर्ण्यमनोयुक्त जनपद है। उस जनपद (और यहाँ बसनेवालों चार जाति) का नाम मग, ममग, मानस और मध्य या मध्य है। मगधन प्रायण, मसगधन क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मध्यम-गण शूद्र समझे जाते हैं। उनमें सङ्घर वर्ण नहीं हैं। सभी धर्माश्रित हैं। धर्मका किसी प्रकारका व्यवचार न करनेसे प्रता पदागत सुखी हैं। मेरे (मर्घात् सूर्यके) नेत्र द्वारा ये विश्वरुमसि मृष्ट हुए हैं। उनके लिये देशके विविध स्तोत्र और मुक्त विषय द्वारा मैंने चार पद प्रकटा किये हैं।

उपरोक्त भौतणिक प्रमाणसे शाकद्वीपमें जो चार वर्ण थे उसे सब कोई मस्योकार नहीं कर सकता। महा भारतकी 'मशक' और मध्ययोक्त 'मसग' नामक क्षत्रिय जाति ही जो प्रोक ऐतिहासिक द्विदेशोत्स और प्लायो प्रभृति द्वारा Messagetae मर्घात् मससग नामसे वर्णित हुई है, उसमें सब धर्म सम्बन्ध रह नहीं जाता। साहित्य या शाकद्वीपमें० इस मसगके अन्तर्गत दूसरी जातिके बास था, यह भी प्रोक ऐतिहासिकगण लिखि-पद कर गये हैं। द्विदेशोत्सने और भी लिखा है, कि उस मसग भाद्रि घोर जातिने ही असुर (Assyria) और मद्र (Media)की जीत कर मरुभूमिके किनारे 'सौरमतीय' (Sauromatian = सूर्यवासक मग ?)

लेगोके प्रतिष्ठित किया था। भागवतादि किस्से किमो पुराणमें लिखा है, कि प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि शाक-द्वीपके मयोधर हुए थे। मतपय भतिषायोन ज्ञानमें भार्यप्रभाव-विस्तारके साथ यहाँ भी जो चातुर्वर्ण्य-समाप्त सङ्गठित हुआ था, इसमें सम्बन्ध नहीं।

बहुनोंका विश्वास है, कि मध्य एशियावासी प्राचीन-तम मर्घासन्तानोंने भारतमें आ कर डानियेश बसायके पीछे वहाँके प्रजावर्षा-प्रदेशमें चातुर्वर्ण्य समाप्त सङ्गठित किया था। किन्तु अभी ये सब बातें सत्य प्रतीय नहीं होंगी। वैदिक भार्योके समयसे जो चार वर्ण स्थिर हुए थे, मध्य-एशियासे ही जो वर्ण-विभागको स्पष्ट हुई थी, पद अभी बिलकुल असत्य प्रतीय नहीं होता। इराणीय (आर्य) और तुराणीय दोनों प्राचीन समाजोंमें ही वर्णभेद हुआ था, यह पुराणावधानसे बहुत कुछ जाना जाता है।

जो प्रचलित पुराणोंके भाष्याओंको धर्तियाचोन नहीं मानते, उन्हें विश्वास दिलानेके लिये मयो मध्य देशक चार वर्णविभाग और प्राचीन पारसिकोंके भाद्रि धर्मशास्त्र जम्ब शयस्ताका उल्लेख कर सकते हैं। जम्ब शयस्ताके अन्तर्गत 'यश्न' नामक विभागमें १ भाष्य, २ रथपताय, ३ याज्ञतियकसुयवत् और ४ क्षत्रिय इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यान १६।४६) यश्नके संस्कृत टीका-कार नेरियोसिद्दने उन चार वर्णोंका यथाक्रम इस प्रकार अर्थ लगाया है, १ भाष्याय, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिन् और ४ प्रकृतिकर्मन्। इन चार प्रकारके लोगोंके उद्देश्यके पहले ही यश्नमें (१६।४४) देखा जाता है, "यह जो भाद्रेश अङ्गुरमज्ज कहते हैं, उसे चार विद्य वा धर्मोंको मानो।" इसके सिवा यश्नकी दूसरी जगहमें भी (१६।५) लिखा है—भाष्य (या भाष्याय) रथपतामो (रथस्थ या क्षत्रिय) और याज्ञतियकसुयवत् (कुटुम्बी मर्घात् वैश्य) ये तीन धर्मों ही मशक्ये धर्मांशो ज्ञप्ति-स्वरूप है। इस भारतमें जो जैसे प्रथम लिखलके ही सम्बंध और मर्घासमोप्रक्षी ज्ञात्-स्वरूपता बताया है मन्विपूतक इराणिके सुवाचोन धर्मप्रयोगों में वैसा ही देखा जाता है। अथवा शास्त्रके धर्मोंकी मानो-यना कर वाद्यवत् पद्धित काचोसाधनें किया है,—

• Vide Pinkerton's Researches on Goth, vol. 11 and Tod's Rajasthan, vol. 1. 57-61,
 १ मसग नाम मशक, मरामारयोक्त पशु। याने उद्गन किया है, "Sakitai, a region at the fountain of the Oxus and Jaxartes, styled Sakiti from the Sacce,
 See D. Anville's Anc. Geog.

"It is thus established that according to the Zend Avesta the first class (pishtra) consists of teachers or priests, of Brahimans, the second of knights, Kshatriyas, exactly in India consequently a division of the nobility into Brahmans and Kshatriyas, and the precedence of the former over all the classes, is not the work of the Indian Brahmans"

शाकद्वीपका जो स्थान निर्देश किया गया है, उसमें वर्तमान पारस्यदेशके उत्तरांशमें ही शाकद्वीपकी सीमा आरम्भ है। अवस्था पारसियोंका प्राचीनतम धर्मशास्त्र है। इस अवस्थामें जब (आविस्तक धर्म-प्रथमक जरथुष्टके समय) चार वर्षोंका प्रसङ्ग मिलता है, तब शाकद्वीपके चार वर्षोंके सम्बन्धमें और कोई संदेह नहीं रह जाता।

पारस्य राज्यके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे ज्ञाना जाता है, कि सृष्ट-पूर्व ६ठी और ७ वीं सदीमें सिक्दीय या शाकद्वीपीयगण अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। पारस्यसम्राट् दरायुस देश जीतनेको आशानसे ५१५ ई०सन्के पहले पुल द्वारा बासफोरस प्रणाली और दानियुब नदी पार कर शकोंके राज्यमें घुसे, किन्तु विफल-प्रनोरथं हो उन्हें लौट आना पड़ा था। फिर यह भी जाना जाता है, कि उत्तरमद्र (Media) के राजाओंने ही सबसे पहले आविस्तक जरथुष्ट-धर्मका प्रचार किया था। हिरोदोटसने लिखा है, कि पारस्य सम्राट्गण उत्तरमद्रमें (Medians) से ही पूर्वतन पारसिक पुरोहित निर्वाचन करते थे। ये सब अग्नि-पूजक पुरोहितगण मग या मगर नामसे प्रसिद्ध थे।

प्राचीन ग्रीक पतिहासिकोंमेंसे बहुतोंने लिखा है, कि शाकद्वीपियोंने (Scythians) समस्त उत्तरमद्र पर बाधिपत्य फैलाया और सीरमतीयोंको प्रतिष्ठित किया था। सीरमतीय या सूर्योपासकगण पारसिकोंके निकट मगस या मग, हिन्दुपुराणमें 'मग' या 'मगस' और प्राचीन ग्रीकोंके निकट 'मंगी' नामसे उपात हुए थे।

कालक्रमसे उन मग पुरोहितोंका प्रभाव समस्त सभ्य जगत्में फैल गया था। बहुत दिनों तक पारस्य-के प्रतापशाली सम्राट्गण इन मगपुरोहितोंका प्राधान्य

और शिष्यत्व स्वीकार कर गये हैं। इस मग-पुरोहित धर्मके सुप्रसिद्ध जरथुष्टने अग्निपूजाका प्रचार किया। इस उपलक्ष्यमें वे अथस्ता शास्त्रका प्रचार कर बुद्ध, ईसाई, चैतन्यादिकी तरह सभ्य जगत्में अविनश्यर नाम छोड़ गये हैं।

पारचात्य-नत ।

वर्तमान पुगतत्त्वविद् और भौगोलिकोंने विशेष अनुगन्धान द्वारा ग्रीक इतिहासिक सिक्दीय जातिके (Scythian) पासस्थान सिक्दिवाको ही (Scythia) प्राचीन शाकद्वीप बताया है। सम्प्रता और ज्ञानमार्गमें अप्रसर हो कर ग्रीक लोगोंने नाना स्थानोंमें जा उपनिवेश बसानेकी चेष्टा की। सृष्टपूर्व ७ वीं सदीके मध्यभागमें एक दल ग्रीक दृष्टगतागणके उत्तरी किनारे बस गये। उस समय उन लोगोंने कृत राज्यके दक्षिणतय तृणाच्छादित छेपी नामक प्रातर भागमें स्कोलोटी (Scoloti) नामकी जातिके पास करते देखा था। उस स्कोलोटी जातिका प्रकृत नामसे वर्णन न करके ग्रीकोंने उनका नाम सिक्दीय रखा है। तभीसे शाकद्वीपी लोग प्राच्यतन अधिवासीके इतिहासमें सिक्दीय नामसे प्रसिद्ध हैं।

हेसियसमें (Strabo vii p. 300) ८०० ई० सन्के पहले और हेरोदोटस (Herod iv 15)के वर्णनमें ६८६ ई० सन्के पहले शाकद्वीपवासियोंके वाणिज्य प्रभावका परिचय है। ग्रीक निससवासियोंके अरिष्टिपस सिक्दिपोंके मध्य पश्चिमाके वाणिज्य विपयसे अच्छी तरह जानकार थे। हिरोदोटस और डिपोकटिसकी लिखित विवरणों पर अच्छी तरह विचार करनेसे मालूम होता है, कि सिक्दीय जातिकी वासभूमि बहुत दिनों तक यूरोपके दक्षिण पूर्वांशमें ही थी तथा उसके पास ही शर्मशीय, बुद्धो, मोलिनो, चाइसापेटो, और आइवाक आदि अनेक निम्न निम्न जातियां रहती थीं। सिक्दीय लोगोंका इनके साथ वाणिज्य-सम्बन्धमें इतना घनिष्ट सम्बन्ध ही गया था, कि आपसमें आचार व्यवहारमें बहुत कुछ सद्गुणता भी दिखाई देती थी। इस कारण ग्रीकोंने उन लोगोंका भी सिक्दीय कह कर घोषित किया।

मागध, मानस और मग्ध के चार वर्ण हैं। मगधन मगधप्रायण्येष्टे, मगधगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मग्धगण शूद्र हैं। इन शाकद्वीपों में सूर्योपासी विशुद्ध ब्राह्मण हैं।

मगधपुराण और साम्बपुराणों में भी ठीक वैसा ही लिखा है,—अग्धोपके चार विषयान् शाकद्वीपे है। यद्वा चानुसंधीर्षममोयुक्त जनपद् है। उस जनपद (और यहाँ बसनेवाली चार जाति) का नाम मग, ममग, मानस और मग्ध था मग्ध है। मगधन प्रायण्य, ममगधन क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मग्धगण शूद्र समझे जाते हैं। उनमें सहस्र वर्ण नहीं हैं। मगो वर्णाश्रित है। धर्मका किसी प्रकारका व्यवहार न करनेसे प्रजा पक्षान्त सुयोग्य है। मेरे (मर्धाव् सूर्यके) नेत्र द्वारा वे विभक्तार्थं सृष्ट हुए हैं। उनके लिये मेरीके विविध स्तोत्र और गृह्य विषय द्वारा मैंने चार वैश्व प्रकान किये हैं।

उपरोक्त पौराणिक प्रमाणसे शाकद्वीपों में जो चार वर्ण थे उसे सब कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। महाभारतकी 'महाक' और मयिष्योक्त 'मसग' नामक क्षत्रिय जाति है जो प्रोक ऐतिहासिक द्विदोशतस भीरु पृथिवी प्रभृति द्वारा Massagetae मर्धाव् मग्धगण नामसे वर्णित हुई है, उसमें अब कोई सन्देह रह नहीं जाता। साहित्य वा शाकद्वीपमें ही इस मसगके अलावा दूसरी जातिको बात था, यह भी प्रोक ऐतिहासिकगण लिपिबद्ध कर गये हैं। द्विदोशरसनं भीरु भी लिखा है, कि उस मसग भादि धीर जातिमें ही असुर (Assyria) और मद्र (Media) की जाति कर भारससके किमारे 'सौतमतीय' (Sauromatian = सूर्योपासक मग ?)

सैमीकी प्रतिष्ठित किया था। मागधवादि किसी किसी पुराणमें लिखा है, कि विवमनके पुत्र मेवागिधि दशकद्वीपके अधीश्वर हुए थे। जनपद भतिप्रायोग नामसे मर्धाप्रमाण्य विस्तारके साथ यहाँ भी जा चानुसंधी-समाप्त सङ्गठित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं।

बहुमीका विश्वास है, कि मगध परिभाषासे प्राचीनतम मर्धासन्तानोंमें मारनमें या कर इतिदेश बसायेके पीछे यहाँके प्रजाधरों-प्रदेशमें चानुसंधी समाप्त सङ्गठित किया था। किन्तु मगो वे सब धर्म सत्य प्रतीत नहीं होंगे। वैदिक भाषोंके समग्रसे जो चार वर्ण नियत हुए थे, मगध-परिभाषासे ही जो वर्ण-विभागकी सृष्टि हुई थी, यह अभी बिलकुल अस्तरय प्रतीत नहीं होता। इराणीय (आर्य) और तुराणीय दोनों प्राचीन समाजों में ही वर्णभेद हुआ था, यह पुराणाधरानमें बहुत कुछ जाना जाता है।

जो प्रचलित पुराणोंके भाष्याओंकी भतिप्रायोग नहीं मानते, उन्हें विश्वास दिनामेके लिये धर्म शब्दोंके चार वर्णविभाग और प्राचीन पारसिकोंके भादि धर्मशास्त्र अग्ध भवस्ताका उल्लेख कर सकते हैं। अग्ध भवस्ताके अन्तर्गत 'यदन' नामक विभागमें १ भायुय, २ रघयनाय, ३ वादातिपकसुपवट और ४ हरगि इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यन १६१६) यदनके संस्कृत दोषकार मेरियोतिहने उन चार वर्णोंका यथाक्रम इस प्रकार अर्थ लगाया है, १ भायवायं, २ क्षत्रिय, ३ ब्रह्मिन् और ४ मरुतिकर्मन्। इन चार प्रकारके सैमीके उद्देशके पहल्ले ही यदनमें (१६१७) देखा जाता है, 'यद्वा सैमादेशं चतुरमग्धं कहते है, उसे चार विभक्त वा वर्णोंको मानते हैं।' इसके सिवा यदनको दूसरी जगहमें भी (१६१८) लिखा है—भायुय (या भायवायं) रघयनायो (रघुय या क्षत्रिय) और वादातिपकसुपवट (ब्रह्मिन् अर्थात् वैश्य) ये तीन धर्मों ही मग्धोय वर्णोंकी जाति स्वरूप है। इस भारतमें जो त्रैलोक्य विपरीतोंकी तीसरेष्ट और मर्धासमोक्षकी क्षत्रियवर्द्धता बनाया है ब्रह्मिन्वृद्ध इराणियोंके सुभागीय धर्मप्रधानों में घेरा हो देखा जाता है। मग्धका शाकद्वीप धर्मोंकी मातो-पता कर पारवश्य परिचित वास्तविकता लिखा है,—

• Vide Pinkerton's Researches on Gogh, vol. 11 and Toth's Rajasthan, vol. I. 57-61.
 * अग्ध नाम मग मग्ध, मग्धासीक शब्द। इन्होंने उद्धृत किया है, "Sakiti, a region at the fountain of the Oxus and Jaxartes, styled Sakiti from the Saces."
 See D. Anville's Anc. Geog.

"It is thus established that according to the Zend Avesta the first class (pishtra) consists of teachers or priests, of Brahmans, the second of knights, Kshatriyas, exactly in India consequently a division of the nobility into Brahmans and Kshatriyas, and the precedence of the former over all the classes, is not the work of the Indian Brahmans"

शाकद्वीपका जो स्थान निर्देश किया गया है, उसमें वर्त्तमान पारस्यदेशके उत्तरांशमें ही शाकद्वीपकी सीमा आरम्भ है। अथवा पारसियोंका प्राचीनतम धर्मशास्त्र है। इस अवस्थामें जब (आविस्तक धर्म-प्रवर्तक जरथुस्तके समय) चार वर्षोंका प्रसङ्ग मिलता है, तब शाकद्वीपके चार वर्षोंके सम्बन्धमें और कोई संदेह नहीं रह जाता।

पारस्य राज्यके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि खृष्ट-पूर्व ६ठी और ७वीं सदीमें सिक्दीय या शाकद्वीपीयगण अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। पारस्यसम्राट् दरायुस देश जीतनेको आशाने ५१५ ई०सन्के पहले पुल द्वारा बासफोरस प्रणाली और दानियुध नदी पार कर शकीके राज्यमें घुसे, किन्तु विफल-मनोरथ हो उन्हें लौट आना पड़ा था। फिर यह भी जाना जाता है, कि उत्तरमद्र (Media) के राजाभिने ही सबसे पहले आविस्तक जरथुस्त-धर्मका प्रचार किया था। हिरोदोतसने लिखा है, कि पारस्य सम्राट् गण उत्तरमद्रमें (Medians) से ही पूर्वतन पारसिक पुरोहित निर्वाचित करते थे। ये सब अनि-पूजक पुरोहितगण मग या मगर नामसे प्रसिद्ध थे।

प्राचीन ग्रीक ऐतिहासिकोंमेंसे बहुतोंने लिखा है, कि शाकद्वीपियोंने (Scythians) समस्त उत्तरमद्र पर आधिपत्य फैलाया और सौरमत्तियोंको प्रतिष्ठित किया था। सौरमत्तिय या सुर्वोपासकगण पारसिकोंके निकट मगस या मग, हिन्दूपुराणमें 'मग' या 'मगस' और प्राचीन ग्रीकोंके निकट 'मगी' नामसे उपात्त हुए थे।

कालक्रमसे उन मग पुरोहितोंका प्रभाव समस्त सभ्य जगत्में फैल गया था। बहुत दिनों तक पारस्यके प्रतापशाली सम्राट्गण इन मगपुरोहितोंका प्राधान्य

और शिष्यत्व स्वीकार कर गये हैं। इस मग-पुरोहित पंशके सुप्रसिद्ध जरथुस्तने अग्निपूजाका प्रचार किया। इस उपलक्ष्यमें वे अथवा शाकद्वीपका प्रचार कर बुद्ध, ईसाई, चैतन्यादिकी तरह सभ्य जगत्में अविनश्यर नाम छोड़ गये हैं।

पारचात्य-मत ।

वर्त्तमान पुगत्त्वविद् और भौगोलिकोंने विशेष अनुगन्धान द्वारा ग्रीक इतिहासोक्त सिक्दीय जातिके (Scythian) वासस्थान सिक्दियाको ही (Scythia) प्राचीन शाकद्वीप बताया है। सभ्यता और ज्ञानमार्गमें अप्रसर हो कर ग्रीक लोगोंने नाना स्थानोंमें जा उप-निवेश बसानेकी चेष्टा की। खृष्टपूर्व ७ वीं सदीके मध्यभागमें एक दल ग्रीक दृष्टसागरके उत्तरी किनारे बस गये। उस समय उन लोगोंने रूस राज्यके दक्षिणतप टृणाच्छादित ट्रेपो नामक प्रान्त भागमें स्कोलोटो (Scoloti) नामकी जातिके वास करते देखा था। उस स्कोलोटो जातिके प्रकृत नामसे वर्णन न करके ग्रीकोंने उनका नाम सिक्दीय रखा है। तमोसे शाकद्वीपी लोग प्राच्यतन अधिवासोके इतिहासमें सिक्दीय नामसे प्रसिद्ध हैं।

हेसियडमें (Strabo vii p. 300) ८०० ई० सन्के पहले और हेरोदोतस (Herod iv 15)के वर्णनमें ६८६ ई० सन्के पहले शाकद्वीपवासीके वाणिज्य प्रभावका परिचय है। प्रोथनिससयासोके अरिष्टियस सिक्दियोंके मध्य एशियाके वाणिज्य विषयसे अच्छी तरह जानकार थे। हेरोदोतस और द्वियोकेटिसकी लिखित विवरणों पर अच्छी तरह विचार करनेसे मालूम होता है, कि सिक्दीय जातिकी वासभूमि बहुत दिनों तक यूरोपके दक्षिण पूर्वांशमें ही थी तथा उसके पास ही शर्मशोप, युदनी, गैलिनो, चाइसापेटो, और आइर्वाक आदि अनेक मिन्न मिन्न जातियाँ रहती थीं। सिक्दीय लोगोंका इनके साथ वाणिज्य-सम्बन्धमें इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था, कि आपसमें आचार व्यवहारमें बहुत कुछ समृद्धता भी दिखाई देती थी। इस कारण ग्रीकोंने उन लोगोंका भी सिक्दीय कह कर घोषित किया।

हिरोदोस (iv. 101) ने लिखा है, कि स्किथिया प्रदेशका भूपरिमाण ४००० वर्ग एर्याबया तथा यह इस्टरसे पलासमियोटिस और समुद्रतटसे मेलाञ्जलिनी तक विस्तृत था। किन्तु उनकी इस उक्तिसे स्किथीया-प्रदेशकी प्रकृत सीमा निर्देश नहीं हो सकती। परन्तु इतना जरूर कहा जायेगा, कि यह यूरोपके दक्षिणपूर्व भाग में कार्पेथियन पर्वतमाला और टनाई (डन) नदीके मध्यस्थलमें अवस्थित था। उन्होंने यह भी कहा है, कि इस स्किथीय या शकजातिका आदिवास पश्चिमाभूमामें था। ये लोग मङ्गोल जातिके ही एक अंश हो सकते हैं। मसग (Massagetae) जाति द्वारा जन्मभूमिसे भगाये जाने पर ये आरासस (Araxes) नदी पार कर उत्तरी पधसे यूरोप आये और वहाँके जिमेरिय (Gimmerians) लोगोंके भगा कर वहीं रहने लगे। शकलोगोंकी वासभूमि पीछे शाकीयसे स्काथी (Scythae) कहलाने लगी। किसी समय शाकद्वीप-वासी शकोंने यूरोपमें जा कर उपनिवेश बसाया था, उसका पता लगाना कठिन है। पर हाँ, यदि राजा आर्सेसके राजत्वकालमें ६४० ई० सन्के पहले किमरियोका लिडिया-नुएडन शकजाति करीक परामवका परवत्ता कारण माना जाय, तो उसके पहले ही यूरोपमें शकजातिका अभ्युदय हुआ था, ऐसा लोकार कियौ जा सकता है।

यूरोपमें आ कर शकगण जो केशल रूसके दक्षिणस्थ विस्तोर्ण प्रेपीग्रान्तरमें आबद्ध थे, सो नहाँ रुपिकार्यके लिये उस प्राचीन तुणभूमिका परिस्थापन कर उन लोगों-ने धीरे धीरे नदीतीरवर्ती स्थानोंको अधिकार किया था। अलूता और दानिय (Atlas and Ister) नदीके मध्यपर्वी प्रेड-वालाचिया प्रदेश भी उनके हाथ लगा था। उसके उत्तर ड्यूलसिलमानिया देशमें अण्णार्थियन जातिका उपनिवेश था। ये लोग आर्यावंश सम्भूत और ग्रेसिपोंके आसारासम्पन्न थे। निपर (Dniester) नदी-तट पार कर ग्रीक लोग जहाँ तक जानेमें समर्थ हुए थे, वहाँ तक उन्होंने शकजातिका बास देखा था। बागनदीके किनारे उन लोगोंने यवनभाषा-परन कालिपिधि नामक एक शकजातिके (Gracco-

Scythian Gallipidae) और उत्तर नदीके एक्सलिय-यस नामकी पूर्वाशानाके किनारे रुपिकार्यनिरत एक दूसरा शक-उपनिवेश देखा था। ये लोग शक्यादिको रचना करते थे। निपर नदीके 'वाप' किनारे अवस्थित 'बन-भूमि' का शक शकजातिका एक दूसरा उपनिवेश मिलता है। ये लोग वेरिस्थियेनियन नामसे प्रसिद्ध थे। गेरहु या कनस्कामें नदीसीमा तक पूर्वाशानें रुपिकारी और भ्रमणशाल शकजातिका बास था। ये लोग द्विपाकाइरिस या मेलाञ्जलिनीके नदी सैकतवर्ती अर्ध-प्रदेशमें ही रहते थे। मेड्ड नदीके पूरव क्रिमिया पर्यन्त राज-शकोंका (Royal horde of Scythians) अधिकार विस्तृत हुआ था। इसके दक्षिण पारत्य टोरीय जातिका बास था। आजकसागरके उपकुलसे ले कर कोमिन और डान नदी तक फिरसे शकराजोंका अधिकार फैल गया। यहाँसे एपीकी और २० दिनका रास्ता तै करने पर मेलाञ्जलिनी जातिकी वासभूमि देखी जाती है।

ऊपरमें जो शकजातिके उपनिवेशका विषय कहा गया, उससे जाना जाता है, कि शक लोगोंने यूरोपमें आ कर विभिन्न स्थानमें भ्रमणशाल जातिकी तरह बास किया था। उस समय उन्होंने प्राचीन शकजातिकी योद्धृप्रकृतिका कुछ भी परिचय न दिया। द्विपाकेटिसके समय तक (Ed. Littrii 22) शक लोग अग्यान्य वर्णरजातिकी तरह विशेष बलिष्ठ और वीरचेता सम्भक्त न जाते थे। दृढकाय, मांसल और रकामवर्णविशिष्ट स्वास्थववान् पुरुष सम्भक्त जाते पर भी उन्होंने साहसिकताका उतना परिचय नहीं दिया था। आमेरक और वातकी पीडासे तथा ध्वजमङ्ग और बर्षारागसे शक लोग बहुत कष्ट पाते थे।

द्विपाकेटिसका वर्णन पढ़नेसे जाना जाता है, कि यह शकजाति मङ्गोलोय वंशसे उत्पन्न हुई है। मध्यापक A. Von Gutschmid-का कहना है, कि भाइरगत सहृयता देख कर शकोंकी मङ्गोल जातीय कहना समीचीन नहीं है। क्योंकि, उस तुणग्रान्तरके अर्धियासीमाजका ही द्विदिगडन ऐसा ही देखा जाता है। उयुस (Zensus)ने शकजातिकी भाषा पर्यालोचना

कर प्रमाणित किया है, कि यह जाति आर्य और औप-निवेशिक इरानियोंकी एक शाखायाल है। किन्तु इस विषयमें हिरोदोटसको उक्त ही अक्षण्डनीय प्रमाण है। उनका कहना है, कि शक और शर्मतीय जातिकी भाषा परस्पर अनुरूप है। शर्मतीय जाति निःसन्देश आर्य-समाजयुक्त है तथा एक मद्र उपनिवेश कह कर स्वीकृत हुआ है। इससे मालूम होता है, कि उस समय अश्व और जश्तेश इन दोनों नदियोंके अध्याधिकारभुक्त वृण मय प्रान्तरसे ले कर क्षमिरी राज्यके पुग्तास तक विस्तीर्ण भूभाग भ्रमणशील आर्य जातियोंके अधिकारमें था।

शकजातिके देवधृत्का जैसा वर्ण कहा गया है, वह एकमात्र आर्य देवतामें ही दिखाई देता है। उनकी रचनशालाकी प्रधान अधिष्ठात्री देवीका नाम तविती है। ये ही देवताओंकी सर्वश्रेष्ठा हैं। उसके बाद स्वर्गपति पापियुस और उसकी पत्नी पूष्योदेवी आपिया सूर्यदेव इतोसिरस है। अरिण्यासा उन लोगोंकी प्रजननदेवी है। ये ही फिर स्वर्गकी रानी मानी जाती हैं। हिरोदोटसने 'हिराक्लिस' और 'ओरिस' इस ग्रीक नामसे दो शक देवताओंका उल्लेख किया है। ये दो देवता सभी समुद्राधिके शाकोंमें देखे जाते हैं। राज-शाओंमें धमिमासवस नामक एक देवता है। समुद्रदेव कह कर इनका उल्लेख किया गया है। इन सब देवताओंको वे प्रकृत इराणीय पद्धतिके अनुसार मूर्त्तिप्रतिष्ठा-पूर्वक अलङ्कारदि द्वारा सजाते नहीं थे तथा उनके लिये घेरी और मन्दिरे भी नहीं बनवाते थे। केवल एक घेरीके ऊपर कटे वृक्षको डालियोंको स्तूपकारमें रख उसमें एक तलवार ऊर्ध्वमुखासे ढाड़ी कर आरिस मूर्त्तिकी कल्पना होती थी।

ग्रीक ऐतिहासिक हिरोदोटसने पारस्वपति द्रायुमके पहले सात शाकपतिको उल्लेख किया है, यथा—स्वर्गपीठक समय (६४६ ई० सन्के पहले) ओलवोथ शहर प्रतिष्ठित हुआ तथा इदगुरसके समय (५१३ ई० सन्के पहले) द्रायुसके साथ शाक लोगोंको लड़ाई छिड़ी तथा पारस्वतिके हाथसे ही शकोंका मान मर्त हुआ।

यूरोपके दक्षिणांशस्थित पारस्वाधिपके नवाधिकार-भुक्त जनपद जब यवनविह्वलसे तहस नहस हो गया, उसी समय शाकोंने घेसको जीता था। उनके आक्रमणसे भयभीत हो मिलितियादिस (४६५ ई० सन्के पहले) राज्य छोड़ भाग गया था। इस समय शाक लोग कहीं पश्चिमा पर भी न चढ़ाई कर दें, इस आशङ्कासे द्रायुसने चात्रिदस नगरोंको जला डाला। (Strabo xiii, p. 501) शाक लोगोंने भी इस समय पश्चिमा विजयमें सहायता पानेकी आशासे क्लियोमेनेसके पास स्पार्टामें दूत भेजा था। (Herod, VI 84) शाकपति स्कार्लेसके समयसे ही यूरोपीय शाकोंके जातीय चरित्र परिवर्तन और अधोगतिका सूत्रपात हुआ। उक्त शाकपति ग्रीक रीतिके अवलम्बन करने तथा वाकस उरसवमें शामिल होनेसे मार डाले गये।

इसीके बाद शाकजातिकी पालि नामक एक शाखाने डान नदी पार कर पूर्वादिशासे आ 'नाप' नामक एक दूसरी शाखाको परास्त किया। इस समयसे ही इस जातिमें अन्तर्विप्लवका सूत्रपात हुआ। पेरिप्लसके वर्णनसे जाना जाता है, कि हिरोदोटसके समय शाक लोगोंका जैसा विस्तृत अधिकार था, इस समय भी (३४६ ई० सन्के पहले) उसका व्यतिक्रम नहीं हुआ, केवल पूर्वाकी ओर सामान्य परिवर्तन हुआ था। इसके पहले ही सौरमतीयगण डान नदी तक अधिकार कर चुके थे। अतिस (Atenas) उस समय भी पूर्वासीमा-युद्ध स्किरीय राज्यका शासन कर रहे थे। ३३६ ई० सन्के पहले मार्कदनपति फिलिपने दानियुसके निकट अतिसको परास्त किया। दिथोदोरसने लिखा है, कि सौरमतीय लोगोंने ही स्किरीयाके अधिवासियोंको (३४६ से ३३६ ख्रिष्टपूर्वके मध्य) जड़से उखाड़ दिया था। जो हो, मार्कदनके अभ्युदयके साथ साथ पारश्वात्य जगत्से शाकोंका प्रभाव विलुप्त हुआ। १०० ई० सन्के पीछे पारश्वात्य इतिहासमें इस पराक्रान्त घोर जातिका कोई सम्बन्ध नहीं मिलता।

पारश्वात्य जगत्में इस जातिका प्रभाव विलुप्त होने पर भी प्राच्य जगत्में इनका प्रभाव चक्षुष्ण रहा। भारतदर्भमें प्रवेश करके यह जाति प्रबल प्रभावसे राज्य-

शासन कर गई है। भोजक ब्राह्मण शब्द और भारतवर्ष शब्द में शाकधिकार प्रष्टु देलो।

मार्तिद्वन्द्वीर अलेक्सन्दरने पंजाबमें जिस पराक्रान्त पौर जातिका मुक्ताबला किया था, वे सभी शाकजातिकी कितने न किसी जालाके अन्तर्भूक्त थे। केवल पंजाबमें ही नहीं, परन्तु समय भारतवर्षके पूर्वांशमें भी शाक लोगोंने अपना प्रभाव फैलाया था। जिस वंशमें बुद्ध शाक्यसिंहका अवतार हुआ, उस शाक्यवंशकी भी बहुतेरे शाकद्वीपी समझते हैं। शाक्य वंश और शाकद्वीपीयकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें जो पौराणिक आख्यायिका प्रचलित है, उसमें उतना भेद नहीं है; दोनोंका ही शाक्य शब्द आश्रय है, इस कारण दोनों ही शाक या शाक्य नामसे परिचित हैं। फेरिस्ता और रियाज उस सलातिन नामक मुसलमान इतिहाससे भी हमें मालूम होता है, कि ई० सन्से सात सदा पहले पारस्यके उत्तर शाकद्वीपसे पराक्रान्त शाक जातिने आकर गौडराज्यके अधिकार किया था। उनके बहुत पहले शाकद्वीपीय महाल्लणोंने भारतमें उपनिवेश बसाया था; पर इसका भी प्रमाण नहीं मिलता। भोजक ब्राह्मण देलो। ई०सन्के पहले १से ४था शताब्दी पर्यन्त एक तरफसे समस्त भारतमें शाकका अधिकार फैला हुआ था। शक्यवत् या शाक्य इति जातिके प्रभायका परिचय आज भी भारतवर्षके घर घरमें उज्ज्वल किये हुए हैं। उक्त शक्य या शाक जातिसे दो नाम, दूण आदि जातियाँ उत्पन्न हुई हैं तथा उनके वंशधर विभिन्न नामोंसे अभी राजपूत और जाट समाजमें धिराज कर रहे हैं।

शाकद्वीपीय (सं० त्रि०) १ शाकद्वीपका रहनेवाला। (पु०) २ महाल्लणोंका एक भेद, नग महाल्लण। विशेष विवरण शाकद्वीप और भोजक ब्राह्मणमें देलो।

शाकक्यध्व (सं० पु०) शक्यध्व (कुर्वादिभ्योः ष्य) इति ष्य। शक्यध्वका गोतापत्य।

शाकध्वर (सं० पु०) शक्यध्व (शुभादिभ्यश्च। पा० ४। १। २३) इति ष्य। शक्यध्वका गोतापत्य।

शाकपरा (सं० पु०) शक्यपरा, सदिजन।

शाकपार्थिव (सं० पु०) शाकप्रियः पार्थिवः, मध्यपदलोपि कर्मपा०। शाकप्रिय पार्थिव। जहाँ मध्यपद-

लोपि कर्मधारय समास होता है, वहाँ शाकपार्थिवस्य समास कहलाता है।

शाकपूणि (सं० पु०) शाकपूणके अपत्य एक ऋषिका नाम। ये वैदिक ध्याकरणकार और आचार्य थे।

(मिह्रक ३११)

शाकपूत (सं० क्ली०) सामभेद।

शाकपोत (सं० पु०) पर्वतविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५६। १५)

शाकफल (सं० क्ली०) शाकस्य फलं। शाकदक्षफल, सामान फल। (सुश्रुत चिकित्सा ३८. अ०)

शाकवालेय (सं० पु०) ब्रह्मर्षि, भारंगी।

शाकवित्त्व (सं० पु०) शाके वित्त्वस्य। वास्ताकु, वैगन।

शाकवित्त्वक (सं० पु०) शाकवित्त्व देलो।

शाकभक्ष (सं० त्रि०) मांस न खानेवाला, शाकाहारी।

शाकभय (सं० पु०) प्लक्षद्वीपके अंतर्गत वर्षाभेद।

(मार्कण्डेयपु० ५३। ६)

शाकमत्स्य (सं० क्ली०) मत्स्यव्यञ्जनविशेष।

शाकपूत (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शाकपूत देलो।

शाकभरी (सं० स्त्री०) शाकेन विभक्तिं भू शक्यमुनागमः डीप्। १ भगवती दुर्गा, शाकजातिकी, इष्टदेवी।

(मार्कण्डेयपु० चण्डी) २ नगरविशेष। कोई कोई इसे सांभर या शम्बर नगर कहते हैं।

शाकभरीभव (सं० क्ली०) लवणभेद, सांभर नमक।

(भाष्य०)

शाकभरीय (सं० त्रि०) १ सांभर भौलसे उत्पन्न। (क्ली०) २ सांभर नमक। गुण—वातनाशक, शतयुष्ण,

भेदक, पित्तवर्धक, तीक्ष्ण, ध्रुवायो, अमिवर्धनी और कटुवाक्युक्त। (भाष्य०) शम्बर देलो।

शाकयोग्य (सं० पु०) शाकस्य योग्यः। योग्यक, घनिया।

शाकरस (सं० पु०) शाकस्य रसा। शाकका रस।

शाकराज (सं० पु०) शाकानां राजा निर्वापस्यात् (राजाहवस्त्रिभ्यश्च। पा० ४। ६। १) इति ष्य। १ वास्तुक शाक, वधुआ। निर्वाप होनेके कारण वधुआ शाकानां राजा कहा गया है। २ शाकभू प्रवर्त्तक एक राजाका नाम।

शाकरी (सं० स्त्री०) शाकरी देवी ।
 शाकल (सं० लि०) शाकलेन प्रोक्तमधीयते शाकला-
 स्तेषां सङ्कीर्णो घोषो वा (शाकलादा । पा ४।३।१२८)
 इति अण् । १ शाकल नामक द्रव्यते रंगा हुआ । २ खण्ड
 या अंश समग्रयो । (पु०) ३ खण्ड, टुकड़ा, चिप्यड़ ।
 ४ एक प्रकारका साँप । ५ लकड़ोका बना हुआ
 ताबोज । ६ मद्रदेशका एक नगर । ७ बाहीक (पञ्जाब)
 देशका एक प्राग । ८ उक्त प्राग या नगरका निवासी ।
 ९ हवनको सामग्री जिसमें जी, तिल, घी, मधु, आदिका
 मेल होता रहता है । १० ऋग्वेदकी एक शाखा या
 संहिता ।
 शाकलशाखा (सं० स्त्री०) ऋग्वेदकी यह शाखा या
 संहिता जो शाकल्य ऋषिके गोलजोमें चली । ऋग्वेद-
 की यही शाखा आज कल मिलती और प्रचलित है ।
 शाकलहोमीय (सं० लि०) शाकल होम समग्रयो मन्त्र ।
 (मनु १।१।२५०)
 शाकलिक (सं० प्रि०) शाकल (कलकहं गाम्यानुवसंल्यमानं ।
 पा ४।३।२) इत्यस्य वात्तिकोवर्त्या शाकलिकः काह-
 मिकः । शाकल-समग्रयो । (सिदान्तकी०)
 शाकली (सं० पु०) एक प्रकारकी मछली ।
 शाकल्य (सं० पु०) शाकल (गार्गादिभ्यो यञ् । पा ४।१।२०५)
 इति अपत्यायं यञ् । एक बहुत प्राचीन ऋषि । ये
 ऋग्वेदकी एक शाखाके प्रचारक थे और इन्होंने पहले
 पहल उसका पदपाठ ठीक किया था ।
 शाकल्यायनी (सं० स्त्री०) शाकल्य (जोहितादिकवन्त्रेभ्यः ।
 पा ४।१।२८) इति ङ्, ङीप् । शाकल्यकी पत्नी ।
 शाकवीर (सं० पु०) जीवशाक । (पर्यायमुक्ता०)
 शाकवरा (सं० स्त्री०) जीवन्ती या डोडो नामक लता ।
 (वैयकनि०)
 शाकवस्त्रो (सं० स्त्री०) लताकरज, सागरगोटा ।
 शाकवाट (सं० पु०) शाकका बग, सागसबजोका
 बगोचा ।
 शाकवाटिका (सं० स्त्री०) शाकवाट देवी ।
 शाकवालेम (सं० पु०) प्राहाणयष्टिका, भारंगो, चम-
 नेटी ।
 शाकविन्दक (सं० पु०) विन्दवृक्ष, घेलका पेड़ ।

शाकविन्दक (सं० पु०) १ घाचाँकु, वैगन, मंटा ।
 (त्रिका०) २ जीवन्ती शाक ।
 शाकबीज (सं० स्त्री०) शाकस्य बीजं । १ शाकतटका
 बीज, सामोनका बीज । २ सागहा बीया ।
 शाकवीर (सं० पु०) १ वास्तुकशाक, बघना । २ पुन-
 नंवा, मद्दपुरना । ३ जीवशाक ।
 शाकवृक्ष (सं० पु०) शाकाख्यो वृक्षः । वृक्षविशेष,
 सामोनका पेड़ ।
 शावशाकट (सं० स्त्री०) शाकानां भवनं क्षेत्रं शाक
 'भवनं क्षेत्रं शाकटशाकिर्णा' इति शाकट । शाकक्षेत्र,
 सागका बगान ।
 शाकशाकिन (सं० स्त्री०) शाकक्षेत्रार्थं शाकिन । शाक-
 क्षेत्र ।
 शावशाल (सं० पु०) महानिम, वकायन ।
 शाकश्रेष्ठ (सं० पु०) शाक्यु श्रेष्ठः । १ वास्तुवशाक,
 बधुभा ।
 शाकश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) १ लघु जीवन्ती लता, डोडो
 शाक । २ लता वृहती । ३ घाचाँकु, वैगन । ४ कुम्भाखण्ड
 लता, कुम्हाड़का लता । ५ तरभूज, तरभूज । ६ पीडा,
 मनुभा । (वैयकनि०)
 शाका (सं० स्त्री०) हरीतकी, हरें ।
 शाकाख्य (सं० स्त्री०) शाक इति आख्या यस्य । १ पत्र
 पुष्पादि । व्यञ्जनयोग्य पत्र पुष्पादिका शाक कहते हैं ।
 अमरटीकांमें भरतने शाक शब्दकी व्युत्पत्ति यों की
 है—जा भोजन करनेमें शक हो जाता है, वही शाक है ।
 यह शाक दश प्रकारका है, जैसे—१ मूल, २ पत्र, ३
 करीर, ४ अम, ५ फल, ६ काण्ड, ७ अधिरुद्धक, ८ त्वक्,
 ९ पुष्प, १० करक । इन दश प्रकारके लक्षण ऐसे हैं,—
 मूलक आदि वस्तु मूल, पटोल प्रभृति पत्र, वशाङ्क रादि
 करीर, वेलादि अम, कुम्भाखण्डादि फल, उदपल आदिशी
 नाडो काण्ड, तालास्थि आदिकी मग्ना अधिरुद्ध,
 मातुलुङ्गादि त्वक्, कोविदार प्रभृति पुष्प, छत्रि . आदि-
 की करक कहते हैं । ये ही दश प्रकारके शाक हैं । ये सभी
 वस्तु खाई जाती हैं, इसलिये इनका नाम शाक पड़ा है ।
 (भरत)

२ शाकघृह, सागोनहा पेड़। ३ शाक देखो।
 शाकाह्न (सं० स्त्री०) शाकस्य अह्नमिव। मरोच, मिर्चा।
 शाकाह (सं० पुं०) शाकं अन्ति अण्। शाकभक्षण,
 शाकभोजी।
 शाकान्न (सं० स्त्री०) शाकयुक्तमन्नं, मध्यपदलोपि
 कर्मधारयः। शाकयुक्त अन्न, साग मिला हुआ भात।
 यह लेखन, उरण, कृष्ण और दीपयर्क माना गया है।
 शाकामल (सं० स्त्री०) शाके अणो यस्य। १ वृक्षामल,
 महादा। २ इमली।
 शाकाग्रभेदन (सं० स्त्री०) शाकामलं भेदनञ्च। चुक,
 चुक।
 शाकायन (सं० पुं०) शाकस्य गोत्रापत्यं शाक (गोत्रे
 कृष्णादिभ्योस्त्वञ्। पा ४।१।६८) इति अपत्यार्थे फञ्।
 शाकका गोत्रापत्य।
 शाकायनिन् (सं० पुं०) शाकका गोत्रापत्यः। (पा ४।१।६८)
 शाकायनका शिष्यमसूद।
 शाकायन्य (सं० पुं०) शाकका गोत्रापत्यः। (पा ४।१।६८)
 शाकारिकी (सं० स्त्री०) शाकारिके राजाके सालके
 शाकार कहते हैं, शाकार जो भवभावा बोलते हैं, वही
 शाकारिकी कहलाती है।
 शाकारी (सं० स्त्री०) शाकीं अथवा शाकारिकी भाषा जो
 प्राकृतका एक भेद है।
 शाकालाघु (सं० स्त्री०) राजालाघु, वड़ा कहूँ।
 शाकाष्टका (सं० स्त्री०) शाका अष्टौ श्रद्धेया यत्। शाकाव-
 करणक ध्यादाहं अष्टमी। शाक, मांस, अपूप आदि द्वारा
 गिरतींके उद्देशसे अष्टमी तिथिमें ध्याद करना होता है।
 ये सब ध्याद शाकाष्टका, मांसाष्टका और अप्पाष्टका कह-
 लाते हैं। गौण फाल्गुन और मुख्यचान्द्र माघमासकी
 एव्याष्टमी तिथिके शाकाष्टका ध्याद करना होता है।
 इस तिथिमें शाकाष्टका ध्यादका विधान है, इसलिये यह
 तिथि शाकाष्टका कहलाती है।
 शाकाष्टमी (सं० स्त्री०) शाकाष्टका देखो।
 शाकाहार (सं० पुं०) अनाज अथवा फल फूल पत्त-
 आदिका भोजन, मांसाहारका उलटा।
 शाकाहारिणी (सं० स्त्री०) केवल अनाज या साग
 भाजी खानेवाली।

शाकाहारी (सं० स्त्री०) केवल अनाज या साग भाजी
 खानेवाला, मांस न खानेवाला।
 शाकिन् (सं० स्त्री०) १ शकियुक्त, बलवान, ताकतवर।
 २ शिक्षायन करनेवाला। ३ नालिश करनेवाला।
 ४ चुगली खानेवाला।
 शाकिनिका (सं० स्त्री०) शाकिनो।
 शाकिनी (सं० स्त्री०) शाकोऽस्त्यन्तेति शाक-इति,
 खिवां डोप्। १ शाकयुक्ता भूमि, यह भूमि जिसमें
 शाक बोया हुआ हो, सागकी खेती। २ एक विशाली
 या देवी जो दुर्गाके गणोंमें समझी जाती है, डारन,
 चुड़ैल।

तन्त्रसारमें भी शाकिनोकी पूजा आदिका विषय
 लिखा है। तारादेवीके न्यासस्थलमें लिखा है, कि
 पञ्चके मध्य विशुद्धाथ महाचक्रमें शाकिनोके साथ
 सदाशिवके अक्षरादि षोडश स्वर संयुक्त कर न्यास
 करना होता है।

शाकिनीत्य (सं० स्त्री०) शाकिन्याः भावः त्व। शाकिनो-
 का भाव या धर्म, शाकिनोका कार्य।

शाकिर (अ० वि०) १ कृतज्ञता प्रकाशित करनेवाला,
 शुक्रज्वार। २ सन्तोष रखनेवाला।

शाकी (सं० स्त्री०) १ शाकिन देखो। (स्त्री०) २ शाकक्षेत्र,
 सागकी खेती।

शाकीय (सं० स्त्री०) शाकका अदूरभाव स्थान।
 (पा ४।२।६०)

शाकुण (सं० स्त्री०) १ परोत्तापी, दूसरेके दुःख देने-
 वाला। २ पक्षि सम्बन्धी, चिड़ियोंका।

शाकुन (सं० पुं०) शाकुनमधिष्ठत्य कुंभा ग्रन्थः शाकुन-
 अण्। १ पशुपक्षी आदि द्वारा मनुष्यका शुभाशुभ निर्णा-
 यक ग्रन्थ, शाकुनशास्त्र, काकचरित, जिस शास्त्र द्वारा
 वायस आदि पक्षीके और शृगाल आदि जन्तुके शब्दादि
 द्वारा मानवोंके शुभाशुभ ज्ञात हो जाता है, उसे शाकुन-
 शास्त्र कहते हैं।

यसन्तराजशाकुनमें तथा गृहसंहितामें इस शाकुन
 या सगुनका विंशत्य विवरण दिया हुआ है। गृहसंहिता-
 में लिखा है, कि गमनकालमें शाकुन या पक्षी आदि
 मानवोंके जन्मांतरणत शुभाशुभ कर्म प्रकाश करता है,

वही शाकुन्तल कहलाता है। प्राचीन कालमें शुक्र, इन्द्र, युद्धरूपति, कपिल्ल आदिने इस शास्त्रका उपदेश दिया था। पीछे पराहमिहिरने उनका मत ज्ञान यद् शास्त्र पण्यन किया। (वृहत्सं० ८६ अ०.)

वृहत्संहितामें ८६ अध्यायसे १६ अध्याय तक शाकुन्तलका विशेष विवरण दिया हुआ है। शाकुन्तल देखो।

२ चिडिया एकड़नेवाला, बहेलिया। (त्रि०) ३ पक्षी-सम्बन्धी, चिडियोंका। ४ शुभाग्युर्लक्षण सम्बन्धी, सगुनवाला।

शाकुन्तल (सं० क्री) मन्त्रविशेष। वृहत्संहितामें लिखा है, कि मृग पक्षी आदिसे उपद्रव खड़ा होने पर सदाक्षण होम और शाकुन्तल आदिका जप करे।

शाकुन्तल (सं० पु०) बहेलिया।

शाकुन्तल (सं० पु०) शाकुन्तल हन्ति शाकुन्तल (पञ्चमत्स्यग्राम हन्ति। पा ४।४।३५) इति ठक्। पक्षिहन्ता, बहेलिया।

शाकुन्तल (सं० पु०) १ शाकुन्तल, बहेलिया। २ मच्छावाहा, मछली एकड़नेवाला। ३ सगुन विचारनेवाला। ४ एक प्रकारका प्रेत।

शाकुन्तल (सं० पु०) शाकुन्तलपत्यं शाकुन्तल (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।२३) १ हुण्डुल पक्षी, एक प्रकारका छोटा उल्लू। २ बकासुर नामक दैत्य। (भागवत १०।८८।२६)

३ एक मुनिका नाम। (त्रि०) ४ पक्षी सम्बन्धी।

शाकुन्तल (सं० पु०) १ योद्धाको एक जाति। (पा ४।१।१६) २ देशभेद।

कुन्तली (सं० पु०) शाकुन्तल देशका राजा।

कुन्तल (सं० पु०) शाकुन्तलाका पुत्र, भरत।

कुन्तली (सं० पु०) शाकुन्तलाया अपत्यमिति शाकुन्तला (सौम्यो ढक्। पा ४।१।२०) इति ठक्। १ इन्तलाका पुत्र, भरतराज। (त्रि०) २ शाकुन्तला-सम्बधी, शाकुन्तलाका।

कुन्तल (सं० पु०) बहेलिया, चिड्योमार।

कुन्तल (सं० पु०) शाकुन्तल श्रुतिना गोत्रापत्य। (पा ४।२।३१६)

कुन्तल (सं० पु०) शाकुन्तल हन्ति या शाकुन्तल

(वक्षिमां वक्ष्यान् हन्ति। पा ४।१।३५) इति ठक्। १ शाकुन्तलहता, मछवाहा। २ मछलियोंका समूह।

शाकुन्तल (सं० पु०) इक्षवियों, ईक्षका, एक भेद।

शाकुन्तल (सं० त्रि०) शाकुन्तलसम्बधी। (पा ४।१।५१)

शाकुन्तल (सं० पु०) वैदिक शास्त्रभेद।

शाकुन्तल (सं० पु०) वह राजा जिसके नामसे संवत् चले। जैसे,—युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन।

शाकुन्तल (सं० पु०) एक प्रकारकी लता।

शाकुन्तल (सं० पु०) शाकुन्तल पत्र स्वार्थ भण्। पृथ, धैर्य।

शाकुन्तल (सं० स्त्री०) पांच विभागोंमेंसे एक।

शाकुन्तल (सं० पु०) शक्तिपताञ्जल्य शक्ति (वाल्म्य देवता। पा ४।१।२४) शक्तिके उपासक, तन्त्रोक्त शक्तिमन्त्रोपासक, जो काली, तारा आदि शक्तिमन्त्रकी उपासना करते हैं, उन्हें शाकुन्तल कहते हैं।

मुण्डमालातंत्रमें शिवजी देवोंसे कहते हैं,—हमारे अर्थात् शिवके अंशसे उत्पन्न मनुष्य मात्र ही नासदेह शीव और तुमसे अर्थात् देवों आद्याशक्तिके अंशसम्भव मात्र ही प्रकृत शक्ति हैं। शीवगण वर्षों साधनाके बाद शाकुन्तल हो सकते हैं। किन्तु जिस किसी कुलसे उत्पन्न शाकुन्तल हों, इच्छा करनेसे ही शीव हो सकते हैं। ब्राह्मण से ले कर चण्डाल पर्यन्त शाकुन्तल मात्रकी ही कमी सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिये। चर्मवक्ष द्वारा मले ही उन्हें साधारण मनुष्य समझ सकते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिस किसी जातिके शाकुन्तल हों, यामाचार प्रभावसे उन्हें जपपूजा करना कर्त्तव्य है। ब्राह्मण हों, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाहे शूद्र हों, शाकुन्तलकी ही ब्राह्मण समझना चाहिये। ये शाकुन्तल ब्राह्मणगण ही साक्षात् शिव त्रिनेत्र हैं, चन्द्र-शेखर हैं।

निर्याणतंत्रमें लिखा है (३५ पटल)—परमाक्षरो देवी गायत्रीकी उपासना करता है, इस कारण सभी द्विज शक्ति हैं, शीव या वैष्णव नहीं हैं।

मुण्डमालातंत्र २५ पटलमें लिखा है—सौर, गाय-पत्य और वैष्णव इन तीन प्रकारके आचारोंमें सिद्ध होनेके बाद शाकुन्तल हो सकते हैं। शाकुन्तलसे बहू कर और कुल भी नहीं है। शाकुन्तल ही शिव है, साक्षात् परमशिव

निर्याणतंत्रमें लिखा है (३५ पटल)—परमाक्षरो देवी गायत्रीकी उपासना करता है, इस कारण सभी द्विज शक्ति हैं, शीव या वैष्णव नहीं हैं।

मुण्डमालातंत्र २५ पटलमें लिखा है—सौर, गाय-पत्य और वैष्णव इन तीन प्रकारके आचारोंमें सिद्ध होनेके बाद शाकुन्तल हो सकते हैं। शाकुन्तलसे बहू कर और कुल भी नहीं है। शाकुन्तल ही शिव है, साक्षात् परमशिव

निर्याणतंत्रमें लिखा है (३५ पटल)—परमाक्षरो देवी गायत्रीकी उपासना करता है, इस कारण सभी द्विज शक्ति हैं, शीव या वैष्णव नहीं हैं।

मुण्डमालातंत्र २५ पटलमें लिखा है—सौर, गाय-पत्य और वैष्णव इन तीन प्रकारके आचारोंमें सिद्ध होनेके बाद शाकुन्तल हो सकते हैं। शाकुन्तलसे बहू कर और कुल भी नहीं है। शाकुन्तल ही शिव है, साक्षात् परमशिव

निर्याणतंत्रमें लिखा है (३५ पटल)—परमाक्षरो देवी गायत्रीकी उपासना करता है, इस कारण सभी द्विज शक्ति हैं, शीव या वैष्णव नहीं हैं।

मुण्डमालातंत्र २५ पटलमें लिखा है—सौर, गाय-पत्य और वैष्णव इन तीन प्रकारके आचारोंमें सिद्ध होनेके बाद शाकुन्तल हो सकते हैं। शाकुन्तलसे बहू कर और कुल भी नहीं है। शाकुन्तल ही शिव है, साक्षात् परमशिव

निर्याणतंत्रमें लिखा है (३५ पटल)—परमाक्षरो देवी गायत्रीकी उपासना करता है, इस कारण सभी द्विज शक्ति हैं, शीव या वैष्णव नहीं हैं।

मुण्डमालातंत्र २५ पटलमें लिखा है—सौर, गाय-पत्य और वैष्णव इन तीन प्रकारके आचारोंमें सिद्ध होनेके बाद शाकुन्तल हो सकते हैं। शाकुन्तलसे बहू कर और कुल भी नहीं है। शाकुन्तल ही शिव है, साक्षात् परमशिव

निर्याणतंत्रमें लिखा है (३५ पटल)—परमाक्षरो देवी गायत्रीकी उपासना करता है, इस कारण सभी द्विज शक्ति हैं, शीव या वैष्णव नहीं हैं।

मुण्डमालातंत्र २५ पटलमें लिखा है—सौर, गाय-पत्य और वैष्णव इन तीन प्रकारके आचारोंमें सिद्ध होनेके बाद शाकुन्तल हो सकते हैं। शाकुन्तलसे बहू कर और कुल भी नहीं है। शाकुन्तल ही शिव है, साक्षात् परमशिव

निर्याणतंत्रमें लिखा है (३५ पटल)—परमाक्षरो देवी गायत्रीकी उपासना करता है, इस कारण सभी द्विज शक्ति हैं, शीव या वैष्णव नहीं हैं।

स्वरूप है। काली, तारा, त्रिभुवनेश्वरी, वाङ्मयी, मातङ्गी, छिन्नमस्ता, बगन्नामुली आदि त्रिनके निरुक्त उपासित हैं, ये ही शाक शिव हैं, इसमें संदेह नहीं। शाकगणका परम पद भक्तिगोपनोप है। उन लोगों का कहना है, कि शाकि ही शिव हैं, शिव ही शाकि हैं, प्रह्ला विष्णु भी शाकि हैं, इंद्र सूर्य देवगण भी शाकि हैं, चंद्रादि प्रदग्ण भी निश्चय शाकि हैं, यह सादा संसार शक्तिका धरणा है, जो शाक यह नहीं जानता, यह नारको है।

विना शक्तिके इस सम्प्रदायकी पूजा या कोई धर्म कर्म नहीं हो सकता, इसलिये भी ये शाक कहलाने हैं। अन्त शाकमें विस्तृत विवरण देखो।

शाकसम्प्रदायका आधिभौतिकसन्निर्घाय।

भारतवर्षमें किस समय शाकत सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई उसका निर्णय करना कठिन है। तत्की उत्पत्ति के साथ जो शाकमत प्रचलित हुआ यह बहुत कुछ ठीक है। विश्वकोपमें तत्र शाकमें लिखा है, कि ७वें सदीके बाद तथा ६वें सदीके पहले तत्रशाकका प्रचार हुआ था। किंतु पोछे आलोचना द्वारा प्रमाणित हुआ है, कि तत्र उसकी अपेक्षा बहुत प्राचीन है। अधर्मादिमें ही जो तत्रशाकका सूत्र प्रकाशित है उसे पश्चात्पण्डित भी स्वोकार करते हैं।^१ जापानके होरिउजी मठसे 'उष्णीपविजयपारणी' नामक तालपत्रमें लिखित एक तांत्रिक ग्रंथ निकला है।^२ यह ग्रंथ ६ठी सदीमें जापानमें लाया गया था, सुतरां मूलग्रन्थ उससे भी बहुत पहले लिखा गया, इसमें जरा भी संदेह नहीं। ५वीं सदीमें शक्तिपूजा भारतवर्षमें सर्वप्रथम प्रचलित थी, उसका यथेष्ट प्रमाण पाया गया है। दक्षिणात्यके पूर्वतन कर्म्मव्यंश सप्तमातृकाके विशेष उल्लेख के ^३ सप्तमातृका ही पूर्वतन चालुक्य राजाओंकी अधिष्ठात्री देवी कह कर परिचित थी।^४

मातृपति विभवर्षाके ४८० संवत्में (४२३-२४ ई०में) उत्कीर्ण शिवाल्लिपिमें लिखा है—

"मातृप्राय प्रमुदितपनत्पर्भनिर्दिनीनाम् ।

तन्त्रोद्भूतप्रवचनत्रयोदशित्तमभोनिधोनाम् ॥

• • • गतमिदं शक्तिनीलं प्रकीर्षाम् ।

येरमात्पुत्रं रुपतिष्ठचिचो कारयेत् पुष्पदेवः ॥"^५

अर्थात् पुष्पलामके लिये (उक्त) राजाके सन्निधे शक्तिनीलसे पूर्ण जलदनिगादिनी तन्त्रोद्भूत-प्रवचन-जलनिधिविस्तोभकारिणी मातृकाओंका मन्दिर बनवाया है।

उक्त प्रमाणसे मध्यभारतमें भी तत्रके प्रभाव और शक्तिको उपासनाका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। यहां तक, कि गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्त मातृकामक या शाक थे, यह भी उनकी शिवाल्लिपिसे ज्ञाना गया है।^६ अतएव शाकधर्मकी उत्पत्ति उससे भी बहुत पहले हुई है, इसे सभी स्वीकार करेंगे। मृच्छकटिक नाटकके प्रारम्भमें जिस प्रकार शिवशक्तिकी स्तुति है, उसमें भी हम १४वीं सदीके पहले शिवशक्तिसाधनमूलक (तांत्रिक) प्रेमालिङ्गन-चिन्तका ही बहुत कुछ आभास पाते हैं। यथा—

"पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाभुदोपगमः ।

गीरी मुञ्जलता यत्र त्रियु एलोलेव राजते ॥"^७

इस प्रकार हरपावतीकी प्राचीनमूर्ति भारतवर्षके नाना स्थानोंमें विद्यमान है। मथुरा और सारनाथके नाना स्थानोंमें विद्यमान है। इस हिसाबसे शाकधिकाकारकालमें शक्तिपूजा प्रचलित थी, यह असम्भव नहीं है।

किसी किसीका मत है, कि बौद्धाचार्य नामाजुंनने जो संश्लेषित महायानमत प्रचार किया, उसीमें शाक धर्मका बीज निहित है। उन्दीकी चेष्टासे बौद्ध शक्तिमूर्ति महायान-समाजमें प्रकाशित हुई थी। किन्तु हम लोगोंका विश्वास है, कि उनके पहले महायान बौद्धसमाजमें तांत्रिक शैवधर्म या शक्तिपूजा प्रचलित होने पर भी

• Dr. Bloomfield's Atharvaveda.

† Indian Antiquary, Vol. vi. p. 27.

‡ Indian Antiquary, vol xii, p, 162, xiii p.

• Dr. Fleet's Gupta Inscriptions,

† Dr. Fleet's Gupta Inscriptions, p. 48.

सौर और शैव-समाजमें उसके पहले ही शक्तिपूजा प्रचलित थी। महाभारतके उदुयोगवर्षमें "ह्रीं श्रीं गानो-ञ्च गान्धारी योगिनां योगिनां सदा" इत्यादि देवोस्तोत्रमें अति प्राचीन कालसे ही शक्तिमन्त्रका प्रच्छन्न आभास मिलने पर भी उस समय शाक सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई थी अथवा नाना शक्तिमूर्त्तिकी पूजा होती थी या नहीं, इस विषयमें सम्यक् संदेह है। ललितविस्तरमें कुछ देव-प्रतिमाका उल्लेख है—

“शिवस्कन्दनारीयर्ष-कुबेरचन्द्रसूर्यैर्भवयशकब्रह्मालोकपद्मप्रभवया प्रतिमा ।”

अर्थात् बुद्धदेवके जन्मके बाद उन्हीं शिव, कार्तिक, नारायण, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, वैश्रवण, इन्द्र और ब्रह्मादि लोकपालोंकी प्रतिमा दिखलाई गई थी। बुद्धके समय किसी प्रकारकी शक्तिप्रतिमा रहने पर ललितविस्तरमें उसका आभास अवश्य रहता। इससे कोई-कोई समझते हैं, कि बुद्धके समय सत्समाजका या शक्तिमूर्त्ति प्रचलित न थी। फिर कोई-कोई ललित-विस्तरके (२४ अध्यायमें)

“पूर्वस्मिन् वै दिशो भागे अष्टौ देवकुमारिकाः ॥

जयन्तो विजयन्तो च सिद्धार्था अपराजिता ।

नन्दोत्तरा नन्दिसेना नन्दिनी नन्दवर्द्धनी ॥

तापि य अग्निपालेन्तु आरोग्येण शिवेन च ॥”

“दक्षिणस्यां दिशो भागे अष्टौ देवकुमारिकाः ।

श्रियामती यशोमती यशःप्राप्ता यशोधरा ॥

सुउत्थिता सुप्रथमा सुप्रबुद्धा सुलाभदा ।

तापि य अग्निपालेन्तु आरोग्येण शिवेन च ॥”

“पश्चिमेऽस्मिन् दिशो भागे अष्टौ देवकुमारिकाः ।

अलभुवा मिश्रकेशो पुण्डरीका तथाऽरुणा ॥

एकादशा नवनामिका सोता कृष्णा च द्वीपदी ।

तापि य अग्निपालेन्तु आरोग्येण शिवेन च ॥”

(ललितविस्तर ५०२-५०७ पृ०)

उद्धृत प्रमाणके अनुसार कोई-कोई चारों दिशाओंमें चार श्रेणीकी अष्टनायिका या अष्टशक्तिका अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

शक्तिप्रधान तन्त्रोंमें वेदकी प्रधानताका अस्वीकार, अवेदिकाचार और जगह-जगह वेदमन्त्रा रहनेसे बहुतेरे अनु-

मान करते हैं, कि तान्त्रिक या शाकमत वैदिकनिष्ठ भारतीय ब्राह्मण सम्प्रदायका उद्भावित नहीं है। उद्भूत जगह-वर्ष पहले लिखित कुलालिकाम्नाय या कुञ्जिकामततन्त्रमें लिखा है—

“गच्छ त्वं भारते वर्षेऽधिकाराय सर्वतः ।

पीठोपपीठश्चतुषु कृत्वा सृष्टिस्त्रैरुपा ॥

गच्छ त्वं भारते वर्षे कृत्वा सृष्टिस्त्वमोदृशाः ।

पञ्चवेदाः पञ्चैव योगिनः पीठपञ्चकं ॥

एतानि भारते वर्षे यावत् पीठास्थाप्यते ।

तावत् न मे त्वया सार्द्धं सङ्गमञ्च प्रजापते ॥”

हे देवि ! सर्वतः अधिकारार्थं भारतवर्षमें जाओ, पीठ, उपपीठ और क्षेत्रोंमें बहुनोंका सृष्टि करो। भारत-वर्षमें भी जाओ, वहाँ जा कर पञ्च वेद, पञ्च योगी और पञ्च पीठकी सृष्टि करो। जब तक भारतवर्षमें इस प्रकार पीठादि प्रतिष्ठित नहीं होते, तब तक तुम्हारे साथ मैं सङ्गम नहीं होगा।

उक्त प्रमाणसे जाना जाता है, कि इस मतका उत्पत्तिस्थान भारतवर्षके बाहर है। यथार्थमें हिन्दू और बौद्ध दोनों शाक समाजकी प्रधान आराध्या तारा या आद्याशक्ति है। पूजा-प्रचारके प्रसङ्गमें चीनाचार आदि तन्त्रोंमें लिखा है, कि यशिशु देवने चीन देशमें जा कर बुद्धके उपदेशसे ताराका दर्शन किया था। इससे भी एक प्रकारसे स्वीकृत हुआ है, कि हिमालयके बाहर उत्तरदेशसे ही ताराकवा आद्याशक्तिकी पूजाका प्रचार हुआ है। उक्त सुप्राचीन कुलालिकाम्नायतन्त्रमें मगोंकी ब्राह्मण स्वीकार किया गया है। मग या शाक-क्षीरी ब्राह्मणोंने ही इस देशमें सूर्यमूर्त्तिपूजाका प्रचार किया। पीछे उन्हींके यत्नसे शिवशक्ति मूर्त्तिगठित और उनको पूजा भी प्रचारित हुई होगी। मग लोग ही आदि सूर्यपूजक हैं। इस कारण प्राचीन हिन्दू और बौद्धतन्त्रमें शिवशक्ति अथवा बोधिसत्त्वशक्तिके स्थापन-प्रसङ्गमें पहले सूर्यमूर्त्तिभावनाका प्रसङ्ग है। यह जो आदि सौरप्रभावका निदर्शन है उसमें जरा भी सम्यक् नहीं है। कोई-कोई आज भी समझते हैं, कि सुगन्धोचन ग्रीक पौतैहासिकोंने जिस प्रकार Sakitai नामसे शाक जातिकका उल्लेख किया है, उसी प्रकार शाक लोगों-

की एक शाखाके शक्तिपूजकगण भारतमें 'शाक' नामसे परिचित हुए थे। शाक-जातिके आचार-व्यवहारके इतिहासकी मालोचना करनेसे भी जाना जाता है, कि वे लोग मयमांसादि पशुमकारकी सेवामें सिद्ध थे। उनके गुरुस्थानीय मगाचार्यागण बहुत कुछ उन्नत होने पर भी अत्याय्य साधारण व्यक्ति वीराचारी थे, इस कारण भारतमें उनके प्रभाव विस्तारके साथ अथैदिक शाक्तमत सर्वत्र प्रचारित और दूसरे समाजों भी गृहीत हुआ था। शाकाधिप कनिष्कके समय महायानमत प्रचारित हुआ। उत्तरमें मङ्गोलिया, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्वमें बङ्गोपसागर और पश्चिममें पारस्य पर्यन्त इन्हीं शाकराजके शासनाधीन था। उनके यहाँके समस्त पश्चिमाण्डलमें महायान मत प्रचारित और गृहीत हुआ। महायान लोगोंने ही सर्वत्र शक्तिपूजाका प्रचार किया था। किन्तु शक्तिमूर्तियों जो हिमालयके उत्तरसे भारतमें लाई गई थीं, उनका भी उल्लेख मिलता है। चन्द्रपालादि हिन्दूतन्त्रोंमें, जिस प्रकार योगसे पश्चिप द्वारा तारातरस्य लाये जानेका संवाद है, उसी प्रकार नेपाली बौद्धोंके साधनमालातन्त्रमें एक जटासाधन प्रसङ्गमें लिखा है—

"आर्यानागाजुं नपादैमोडिसं मुदूता इति"

अर्थात् एकजटा नाम्नी तारा देवीकी विभिन्न मूर्तियाँ महायानमतके प्रतिष्ठाता आर्यनागाजुंन भोटदेशसे उद्धार कर लाये थे। स्वतन्त्रतन्त्रमें भी लिखा है—

"मिरोः पश्चिमकूले तु चोलनाथयो हर्षो महान्।

तेत पञ्चे स्वयं तारा देवी भीलसरस्वती ॥"

कुलालिकाश्लाघमें जिन पञ्च वेद, पञ्च योगों और पञ्च पीठोंका उल्लेख है, वह उक्त तन्त्रानुसार १ उत्तरा-म्नाय, २ दक्षिणाग्नाय, ३ पूर्वाम्नाय, ४ पश्चिमाग्नाय

• नेपालमें महाभक्तिके जो ६ प्रधान शास्त्र प्रचलित हैं तथा नेपाली बौद्धार्थगण आज भी जिन ६ शास्त्रोंकी पूजा करते हैं, उनमें 'तथागतगुरुवक' नामका एक बहुत बड़ा बौद्धतन्त्र है। उस तन्त्रमें देखा जाता है—

"षष्ठि विद्धि विपुत्रा मन्त्रेन्द्राभाग्नायधर्मेषु।"

(षष्ठिबौद्धिक योगः इत्यादिनाम्न १५ पृ०)

और ५ ऊर्ध्वाम्नाय ये पञ्चाम्नाय, पञ्च मद्देव्यर वा पञ्च ध्यानीसुद्ध तथा १ उद्दिपान (उत्कलमें), २ जाल (जाल-गधमें), ३ पूर्ण (महात्पूरमें), ४ मतङ्ग (धोशैल पर) और ५ कामाख्या ये पञ्चपीठ हैं। परपत्नी कालमें ५१ पीठोंकी उत्पत्ति होने पर भी उक्त पाँच ही शाक्तोंके भाद्रि पीठ वा केन्द्रस्थान हैं। अथैदिक शाक्त मतकी पहले वेदमार्गपरायण ब्राह्मणोंने ग्रहण नहीं किया, किन्तु जब भारतमें सर्वत्र इस मतका आदर होने लगा, तब उनमें भी कोई कोई शाक्त तन्त्रमें दीक्षित हुए। उन लोगोंने पहले अष्टमातृकीकी पूजा ग्रहण की। वराहमिहिरकी पृथ्वीसंहितामें ये सब ब्राह्मण "मातृकामण्डलवित्" कह कर परिचित थे। चक्र, मण्डल या यन्त्रके बिना शक्तिपूजा नहीं होती शायद इसी कारण शाक्तब्राह्मण 'मातृकामण्डलवित्' कह कर परिचित होंगे। चक्र, गणपत्र, यन्त्र, मन्त्र और तन्त्र शब्द देखो। इन्हींकी चेष्टासे शक्तिपूजामें बौद्धिक क्रियाकाण्डमूलक कुछ मन्त्र प्रविष्ट हुए। इन्हीं लोगोंके हगने हिन्दू शाक्त बतया है। ये लोग दक्षिणा-चारी हैं। इनके बलाया कुलालिकाम्नाय नामक उन्नत सुपाचीन तन्त्रसे हमें मालूम होता है कि शाक्तोंमें देवयानपितृयान और महायानने तीन सम्प्रदाय हुए थे।

"दक्षिणे देवयानस्तु पितृयाणस्तु उत्तरे।

मध्यमे तु महायानं शिवसंज्ञा प्रगोयते ॥"

(कुलालिकाम्नाय)

दक्षिणमें देवयान, उत्तरमें पितृयान और मध्यदेशमें महायान प्रचलित थे। इन तीन यानोंमें विशेषता क्या है, ठीक ठीक मालूम नहीं। परन्तु महायानोंमें श्रेष्ठ तन्त्र तथागतगुहाक पढ़नेसे मालूम होगी, कि चन्द्रपालादि तन्त्रमें जिनसे यामाचार या कीलाचार कहा है, यही महायान तान्त्रिकगणका अनुष्ठेय आचार है। इसी सम्प्रदायसे कालचक्रनाथ या कालोत्तर महायान तथा पञ्चयानकी उत्पत्ति हुई है। नेपालके सभी शाक्त बौद्ध पञ्चयान सम्प्रदायभूक्त हैं।

नेपालमें लक्ष्मणोक्तमक शक्तिसङ्गमतन्त्र प्रचलित है। इस महातन्त्रमें शाक्त सम्प्रदायका सविस्तार परिचय मिलता है। इस तन्त्रमें शाक्त मतकी उत्पत्तिके

सम्बन्धमें ऐसा आभास पाया जाता है—

“संसारोत्पत्तिकार्यार्थं प्रपञ्चार्थं विनिर्मितम् ।
शाक्तं शैवं गाणपत्यं वैष्णवं सौरवीर्यकं ॥ ३
एवं क्रमेण देवेशि मतमेतद्विनिर्मितम् ।
मतानि बहुसंघानि तदारभ्य महेश्वरि ॥७
संजातानि महेशानि प्रपञ्चार्थं हि निरिचतम् ।
अम्भोधि जलधिश्चैव समुद्रः सागरी यथा ॥८
यथा एतेनु पर्याया तथैतानि मतानि च ।
वैदिके शक्तिनिन्दा च चीने जैनस्य निन्दनम् ॥९
सौरि चान्द्रस्य निन्दा च चान्द्र बौद्धस्य निन्दनम् ।
स्वायम्भुवस्य निन्दा च बौद्धमार्गं महेश्वरि ॥१०
पीराणे जैननिन्दा च जेने पीराणनिन्दनम् ।
पीराणे तन्त्रशास्त्रस्य निन्दनं परमेश्वरि ॥११
एवं भिन्नमतान्येव संजातानि महेश्वरि ।
वेदानां शाखाबाहुस्य प्रपञ्चार्थं महेश्वरि ।
एवं निन्दासमापन्ने भेदे जाते महेश्वरि ।
नैकतु तु मनो लग्नं कल्पयित्त् परमेश्वरि ॥१३
सर्वात्मान्योन्यनिन्दा च तदैष्यञ्च प्रजायते ।
तदैष्यस्य सुसिद्धयर्थं प्रपञ्चार्थं प्रकीर्तितम् ॥१४
भिन्नाः भिन्नं प्रशंसन्ति निन्दन्ति च परस्परम् ।
न विद्या सिद्धिमाप्नोति मन्त्रमस्ति पिशाचयत् ॥
अन्योन्य यदि निन्दा च तदैष्यञ्च प्रजायते ।
तदैष्यस्य सुसिद्धयर्थं कालिकां तारिणीं यजेत् ॥
सुन्दरकूरुबाह्युषे रूपा संविभ्रतो दिवा ।
रूपमेतत् प्रपञ्चार्थं कीर्तितन्तु मया तव ॥
पुराणं न्यायमीमांसा सांख्यवातज्जले तथा ॥
वेदांतो व्याहृतिर्देवि धर्मशास्त्राङ्गमिश्रता ।
छन्दोऽप्योतिवैदसाङ्गविद्या यनाश्चतुर्दश ।
प्रपञ्चार्थं मया प्रोक्तं एतत्वं परिणामजे ॥
प्रकृतं कथ्यते देवि शृणु सावहिता भव ॥
चतुर्धेद लयो प्रोक्ता श्रोमहाभक्ततारिणी ।
अथर्वविद्याषिष्टात्रो धोमहाकालिका परा ॥
विना कालीं विना तारां नाधर्माणो विधि क्वचित् ।
केशले कालिका प्रोक्ता काश्मीरे त्रिपुरा मता ॥
गौड़े तारैति संभोक्ता सैव कालोत्तरा भवेत् ।
अपच्छिन्ना सदा सा चै चतुःशङ्करयोगतः ॥

तदस्यः सम्प्रदायो हि भविष्यति महेश्वरि ।

केरलश्चैव काश्मीरो गौडश्चैव तृतीयकः ॥”

(शक्तिवङ्गम ठवरभाग १म खण्ड ८म प०)

“केरलश्चैव काश्मीरो गौडश्चैवः तृतीयकः ।

केरलाख्य मते देवि बलिपात्रं तु दक्षिणे ।

काश्मीरतर्पणे भेदे गौड़े चामकरे भवेत् ॥”

(,, ४थं पटल)

संसारखण्डिकी सुविधाके लिये यह प्राञ्च बनाया गया है । शाक्त, शैव, गाणपत्य, वैष्णव, सौर और बौद्ध इत्यादि सम्प्रदाय धीरे धीरे अनेक मतोंकी खण्डि हुई है । किन्तु अम्भोधि वा जलधि तथा समुद्र सागर कहनेसे जिस प्रकार एक ही वस्तुका बोध होता है, विभिन्न नाम होने पर भी जिस प्रकार एक होकर पर्याय है, उसी प्रकार संप्रदायभेदसे विभिन्न नाम होने पर भी सौर बौद्धादि एक ही वस्तु है, केवल मतभेदसे पर्याय शब्द माल है । वैदिकमें शक्ति-निन्दा, चीन या बौद्धमें जैन-निन्दा, चान्द्रमें बौद्धकी निन्दा, बौद्धमार्गमें शैवको निन्दा, पीराणिकमें जैन-निन्दा, जैनमें पीराणिककी निन्दा इस प्रकार विद्वेष भावमें नाता मत उत्पन्न हुए हैं । इस तरह प्रपञ्चके लिये ही वेदको अनेक शाखाएं हो गई हैं । ऐसी परस्पर निन्दासे भेद हुआ है, एकत्र होनेके लिये किसीकी इच्छा नहीं होती । सभी जगह परस्पर निन्दा अर्थात् एक शास्त्रमें दूसरे शास्त्रकी निन्दा देवनेमें आती है । किन्तु सभी मतका पेश्य है । इस पेश्य सिद्धिके लिये प्रपञ्चार्थं कहा गया है । भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न विषयकी प्रशंसा वा निन्दा करते हैं, उनकी विद्या सिद्ध नहीं होती तथा मूल पिशाचयत् होता है । परस्परको यदि निन्दा न की गई हो, तो उनका एकत्र निश्चय किया जाता है । इस प्रकार परस्परकी पेश्य सिद्धिके लिये काली वा ताराकी उपासना प्रवर्तित हुई है । सुन्दर और कूरु अर्थात् भला और सुत इन दोनोंकी ही-शिवा (शक्ति) धारण करते हैं । यह मत प्रकाश करनेके लिये ही मैंने शास्त्र कीर्त्तन किया है । पुराण, न्याय, मीमांसा, सांख्य, वातज्जल, वेदान्त, वेद, धर्मशास्त्र, छन्दः, उपोतिव आदि ऋद्ध विदुष्या परिणाममें एतस्य प्रतिपादनके लिये मैंने ही (शक्तिरस्य) उपदेन दिया है । प्रकृत

विषय इस प्रकार है—अपतारिणी देवी तनुर्वेदमयो, कालिकादेवी अर्धावेदाविष्टातो, काली और ताराके बिना अर्धाण-दिवा अर्धात् अर्धवेदविहित कोई भी क्रिया नहीं हो सकती। केरल देशमें कालिका देवी, काश्मीर देशमें त्रिपुरा और गौड़ देशमें तारा तथा ये ही पीछे काली रूपमें उपास्या जाती हैं। सभी समय ये तनुःशुद्ध योगसे अर्धच्छत्र अर्धात् भिन्न भिन्न होती हैं। हे महेदयरि ! इसके सिवा अन्य सम्प्रदाय भी होगा। केरल, काश्मीर और गौड़ इन तीन स्थानोंमें यथाक्रम त्रिपुरा, काली और तारा ये तीन भेद होने हैं।

शक्तिसङ्गमत्तके उक्त यचनसे मालूम होता है, कि पूर्ववर्त्ता साम्प्रदायिकोंका मत सामंजस्य करनेके लिये हो तांत्रिक या शाक्त धर्म प्रचारित हुआ था। यथार्थमें देखा जाता है, कि परवर्त्ता कालमें क्या बौद्ध, क्या ब्राह्मण आदि विभिन्न साम्प्रदायिकोंने अपने अपने उपास्यकी एक एक शक्ति स्वीकार कर ली थी। परन्तु किसोंने अल्प और किसोंने बहुसंख्यक शक्ति स्वीकार की है। इसी कारण मालूम होता है, कि क्या हिन्दू क्या बौद्ध दोनों शाक्त-समाजमें ही बहुत कुछ साम्यभाव विद्यमान था। इसी कारण बौद्धतन्त्रमें हिन्दुओंकी शक्ति तथा हिन्दूतन्त्रमें बौद्धशक्तियोंकी पूजा पद्धति देखी जाती है।

इसके अलावा परवर्त्ता तंत्रोंमें १ वेदाचार, २ वैष्णवाचार, ३ शैवाचार, ४ दक्षिणाचार, ५ वामाचार, ६ सिद्धास्ताचार और ७ कुलाचार या कौल इन सात प्रकारके आचारका उल्लेख है। ये सातआचार उक्त स्थानके अंतर्गत ही मालूम होते हैं। तन्त्र शब्द देखो।

महाराष्ट्रमें वैदिकोंके मध्य वेदाचार, रामानुज और गौड़ोप वैष्णवोंके मध्य वैष्णवाचार, दक्षिणाचारमें शुद्ध सम्प्रदायभुक्त शैवोंके मध्य दक्षिणाचार, दक्षिणास्वमें योरशैव या लिङ्गायतोंमें शैवाचार और योराचार, केरल, गौड़, नेपाल और कामरूपके शाक्त-समाजमें योराचार, वामाचार, सिद्धास्ताचार और कौलाचार ये चार प्रशाक्त आचार हो देये जाते हैं। प्रथम तीन आचारके तांत्रिक मध्य उनमें अर्धक नहीं हैं, शैवाक्त चार आचारोंके तांत्रिक मध्य अर्धक है।

उक्त विभिन्न आचारके प्रयोगमें विशेषता यह है—वेदाचार, वैष्णवाचार और दक्षिणाचारमूलक तंत्रोंमें योराचार या बीजाचारकी निष्ठा है, किन्तु अर्धक आचारमूलक तांत्रिक प्रयोगमें योराचार या बीजाचारकी विशेष सुष्ठुपाति दिखाई देती है।

अभी भारतवर्षमें शापतकी संस्था घोड़ी नहीं है। प्रधानतः रक्त चंद्रनका तिलक शाक्तनिर्देशक है, किन्तु शाक्त धर्म अति शुद्ध होनेके कारण अनसाधारण उत्तम दर्जमें समझ नहीं सकते, इस कारण तांत्रिक निबंधकारोंने लिखा है—

“अन्तः साक्षाः बहिः शैवाः उभाभा वैष्णवा मताः।

नामा रूपधराः कौलाः विचरन्ति महीतले ॥”

वर्त्मान शापतोंमें पशु, योर और दिव्य ये तीन भाग प्रचलित हैं। इस सम्बंधमें रुद्रयामलका प्रमाण उद्धृत कर शापतोंने दिखलाया है—

“शक्तिप्रधानं भावानां त्रयाणां साधकस्य च।

दिव्ययोरपशूनाश्च भायतपमुदाहृतम् ॥

पशुभावे खानसिद्धिः पशुनाभारनिरूपणम्।

योरभाधे क्रियासिद्धिः साक्षात् यत्रो न संशयः।

दिव्यभाधे देवताया दर्शनं परिकीर्त्तितम्।

शानी भूत्या पशोर्भाधे योराचारं ततः परम्।

योराचाराद्भवेद्भुक्तोऽन्यथा नैव च नैव च ॥

भायद्वयस्थितो मत्तो दिव्यभाधे विचारयेत्।

सदा शुचिर्दिव्यभावमाचरेत् सुसमाहितः।

देवतायाः प्रियार्थञ्च सर्वकर्मं बुद्धेश्वर ॥

देवताहृत्यभायद्वयं देवतायाः क्रियापरः।

तद्विद्धि देवताभाधे सुदिव्यभाधे प्रकीर्त्तितम्।

सर्वेषां भायधर्मानां शक्तिमूलं न संशयः ॥”

(रुद्रयामल १ अ०)

साधकोंके लिये दिव्य, योर और पशु (तन्त्रमें) जो त्रिविध भायोंका प्रसङ्ग है, यही शक्तिप्रधान है अर्थात् शक्तिसाधक इन्हीं तीन भायोंका आश्रय करे। इस भायसे ज्ञानसिद्ध होता है, यही पशुवाचार है, जिसे योर-भायमें क्रियासिद्धि होती है अर्थात् साधक साक्षात् रुद्र होते हैं, इसीका नाम योराचार है। जिसे दिव्यभायमें देवताओंका साक्षात्कार होता है, यही दिव्यवाचार है।

साधक पहले पशुभावमें खानी हो कर पीछे वीराचार अवलम्बन करे। वीराचारसे ही केवल रुद्रत्वलाभ होता है, दूसरे किसी प्रकारसे रुद्रत्वलाभ नहीं होता। पशु और वीर इन दोनों भावोंमें सिद्ध होनेके बाद दिव्यभावकी आलोचना करे। इस दिव्य भावके द्वारा देवताके समान भाव और देवताकी तरह क्रियाशील होता है, इसी कारण इसको श्रेष्ठ दिव्यज्ञान या देवताभाव कहा है। इन सब भावोंका मूल ही निःसन्देह शक्ति है।

शाकाचार।

श्रामारहस्यमें शाकोंके आचार-विषयमें इस प्रकार लिखा है— सर्वदा सभी प्राणियोंकी भलाईमें रत तथा विदित, आचारपरायण होवे। अनित्य कर्मका परित्याग कर नित्यकर्मके अनुष्ठानमें लगे रहें तथा इष्टदेवताके प्रति सभी कर्म निवेदन करें। इष्टदेवताके मंत्रकी छोड़ अन्य मन्त्रार्चनसे धर्या, अन्य मन्त्रका पूजा, कुलखी और वीरनिन्दा, उसी-स्थलमें वेश्योपाहरण, स्त्रियोंके प्रति प्रहार और उनके प्रति क्रोधका परित्याग करें। क्योंकि समस्त जगत् खीमय है तथा शाक स्वयं अपनेकी भी स्त्रीस्वरूप समर्थे। स्त्रियोंकी पूजा करनी होती है, इस कारण साधकको स्त्रीरूपे परित्याग करना उचित है।

शाकसाधक जपके समय जपस्थानमें महाशुद्ध स्थापन कर शुभा और कुलजाता शक्तिमें गमन तथा उसे दर्शन और स्पर्शन; मत्स्य, मांस आदि यथावचि द्रव्य भक्षण और ताम्बूल सेवन कर मत्स्य, मांस, दधि, मधु, दुग्धादि तथा नाना प्रकारके मोक्ष इष्टदेवताके उद्देशसे निवेदन कर जपविधानानुसार जप करें।

शाकसाधक सिद्धिके लिये जब जप करेंगे, तब उनके लिपे दिक्, काल और स्थित्यादिका कोई नियम नहीं है, अपात् उद्धे किस दिन किस समय अवस्थान कर पूजाजपादि करने होंगे, उसका कोई विशेष नियम नहीं है। बलि और पूजादि वे इच्छानुसार कर सकेंगे। किंतु इसमें कुछ विशेषता है, यह कि साधक जहां महामंत्रका साधन करेंगे, वहां स्वच्छानियम नहीं चलेगा। पर हां, उसका यथाविधान पूजन और जपादि

अवश्य करना होगा। इस समय वस्त्र, आसन, स्थानादि सभी नियमानुसार करने होंगे।

साधक साधनकालमें मनको निर्दिकल्प अर्थात् स्थिर करे। उस समय सुगन्धित भवेत् और लीहिरय वृक्षुम और विल्वपत्रादि द्वारा इष्टदेवताकी अर्चना करना उचित है। अर्चना अर्थात् पूजा और जपके बाद पेय, चष्य, चोष्य, भोज्य, भोग, यद्, सुख इन सबोंकी युवतीरूपमें चिन्ता करे। इस प्रकार चिन्ताके बाद कुलजा शक्तिका दर्शन कर समाहित चित्तसे उद्धे प्रणाम करे। ऐसा करनेसे यदि साधकको भाग्यवशतः, कुलद्रष्टि उत्पन्न हो जाये, तो वे मानसी पूजाके अधिकारी होंगे। मानसीपूजा करके वे वाला, यवीने, मन्त्रा, उद्धा, सुन्दरी, कुरिसता और महादुष्टा इन्हें प्रणाम कर स्मरण करें। ये सब स्त्रियोंके प्रहार हैं, इनकी निन्दा या इनके प्रति कीटिकाचरण या अप्रियभाषणका परित्याग करना होगा, पयो कि ऐसा करनेसे सिद्धिमें बाधा पड़ती है। स्त्रीशक्तिगण ही एकमात्र देवता, प्राण और विभूषण स्वरूप हैं। सभी समय स्त्रीके साथ रहना होगा।

“स्त्रीसङ्गना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि।

विपरीतरता सा तु भवितो हृदयोपरि।।

नाधर्मो जायते सुप्त किञ्च धर्मो महान् भवेत्।

स्वच्छाचारेऽन्न गदितः प्रचरेत् हृष्टमानसः॥”

(श्रामारहस्य ८१०)

शाक साधकको इस प्रकार आचारयुक्त हो कर पूजा और जपादिका अनुष्ठान करना चाहिये। कुल-स्त्रियोंके साथ उक्त प्रकारसे पानभोजनादि करके पूजा-जपादि करनेसे मंत्र सिद्ध होता है।

कौलतंत्रमें लिखा है, कि पानमें जिसकी श्रान्ति है, रकरेतमें जिसकी घृणा है, शुद्धिमें अशुद्धताम्रम है और मैथुनमें पापशंका है, यह त्रष्ट है, त्रष्ट व्यक्ति किस प्रकार चण्डीमंत्र साधन कर सकेगा ? यह त्रष्टार्थक इस जन्ममें रोग और शोकका भोग कर गंत कालमें रोग्य नरकका भोग करता है। शाकोंके लिये पञ्चमकार हो सुख और मोक्षका एकमात्र ध्येष्टसाधन है। शक्तिदेवी भावका है तथा वे रेतः द्वारा प्रसन्न होती हैं। रेतः

द्वारा उनका तर्पण मद्य और मांसके सनान है । केवल पञ्चमकार द्वारा ही सापक सिद्धि लाभ करने हैं ।

“के प्रत्येक पञ्चमैर्द्वि सिद्धो भवति सापकः ।

ध्यातया कृष्टलिनीं जकिं श्मन् रेतो विमुञ्चयेत् ॥”

यदि शक्तिसाधनमें अमग्नता नारी लाभ हो, तो उसे मारमदहस्वरूप समझ कर उसके कागमें मग्न प्रदान करें । ऐसा करनेसे ही वे भुक्ति और मुक्तिप्रदायिनी शक्ति होगी । रग्ना और उर्वशी आदि स्वर्गोंमें तथा इस लोकेमें जो सर्वांध्रष्टा स्त्री हैं, उनका नाश होनेसे वे शाक्त या कौलिक कहलाते हैं ।

सापक गुदपत्नी आदिको शक्ति बना सकते हैं । पयो कि गुद साक्षात् शिवस्वरूप है, उनकी पत्नी परमे-श्वरी हैं,—

“गुरोः स्नुया गुरोः बन्धा तथा च मन्त्रपुत्रिका ।

पतस्या मरणं घञं ब्रह्मघ्नं मानसेऽपि च ॥

कौलिकस्त्व च पत्नी च सा साक्षाधोश्वरी शिवे ।

तस्या रमणमालेण कौलिकी नारकी भवेत् ॥

भासापि गौरवाद्ब्रह्मघ्नं अग्या या विहिताः स्त्रियः ।

भूतोऽग्रे च कर्षोऽथो विधातो मन्त्रविभ्रमैः ॥”

शिवदीन जी शक्ति हैं उसे बिलकुल परिवर्तन करना होता है । सापक पञ्चमकारके प्रथम द्वारा मौर्य, द्वितीय द्वारा ब्रह्मरूपभाक्, तृतीय द्वारा महाभौर्य, चतुर्थ द्वारा पूज्यैकनायक और पञ्चम द्वारा शिवतुल्य होते हैं ।

सापक कुलाचार्य गृहमें जा कर पापविशुद्धिके लिये भस्मके लिये प्रार्थना करें, यदि भस्म न मिले, तो जल पान करें । कुलानाथ जिस भागमें पाल दें, उसे भक्ति पूर्णक नमस्कार कर प्रदण करना होगा ।

ज्ञानवान् सापक घृतकोड़ादि द्वारा घृथा समय नष्ट न करें । देवपूजा, जप, दक्ष और स्तवपाठ्यादि द्वारा समय बितायें । सर्वथा गुरुके साथ शास्त्रालाप, गुरुदर्शन, गुरुप्रणाम और गुरुपूजादि करें । गुरुके नामें पूजक, पूजा और भौद्धत्य, दीक्षा, व्याख्या और प्रभुत्वका परिवर्तन करना उचित है । गुरुको द्रव्या, आसन, पान, पादुका, स्नानोद्क और छाया इन सबका सहन न करें । गुरुका नाम भी लेना मना है । कायमनायापक

से गुदका अनुग्रामो ही गुदके प्रति भक्ति रख कर सापक साधना करें ।

शाक्तगण सभी पदार्थोंको शक्तिरूपमें अवलोकन करें । शक्ति ही शिव है, शिव ही शक्ति है, ब्रह्म, विष्णु, शंकर, शिव, चन्द्र और प्रदण भादि सभी शक्तिस्वरूप हैं । और तो क्या, यह समस्त निम्निल ब्रह्माण्ड शक्तिस्वरूप है । जो इस निम्निल जगत्की शक्तिरूपमें नहीं देख सकते, वे निरवगामी होते हैं । (श्यामारदस्य)

परमान्त शाक्ताचारके सम्बन्धमें असेष्य तांत्रिक निबन्ध है जिनमें लक्ष्मण वैशिकका शारदातिलक, राघव-भट्टकृत शारदातिलककी टीका, ब्रह्मानन्दगिरिकी ज्ञानानन्दतरङ्गिणी, गौडीय शङ्कराचार्यका तारादहस्य, ज्ञानानन्दका कौलायलीतन्त्र और कृष्णानन्द आगमवागोशका तन्त्रसार, इन सब ग्रन्थोंमें सभी बातें संक्षेपमें लिखी गई हैं ।

२ शक्तिमान्, बलयान् । (शुक ७।१०३।५)

शाक्तागम (सं० पु०) तन्त्रशास्त्र ।

ज्ञानानन्दतरङ्गिणी (सं० खो०) तन्त्रभेद ।

शाक्तिक (सं० पु०) शशरया जीवति शक्ति (वेतनादिस्त्री जीवति । पा ४।४।१२) इति उक्त्वा, भाषयो बृद्धिः । १ शक्ति-उपासक, शाक्त । २ भाला चलानेवाला ।

शाक्तीक (सं० पु०) शक्तिप्रदरणमस्य शक्ति (शक्तिशब्दो रीकृत् । पा ४।४।१६) इति ईकृत् । १ शक्ति या भाला सम्बन्धी । २ भाला चलानेवाला ।

शाक्तेय (सं० खि०) १ शक्ति-सम्बन्धी । २ शक्तिका उपासक, शाक्त । ३ शक्तिका पुत्र पराशर ।

शापत्य (सं० पु०) शक्तिरूप्य । १ शक्तिका उपासक, शाक्त । २ वैदिक गौरिरिती श्रविका गोतापत्य । ३ पराशर ।

शापत्ययान (सं० पु०) शापत्य श्रविका गोतापत्य ।

शापयन् (सं० खो०) बल । (शुक १।०।५।६)

शापय (सं० पु०) शक्तिप्रदानमस्येति (शिवद्वारा-भ्याम् । पा ४।४।१६) इति इय । १ गुददेय ।

२ एक प्राचीन क्षत्रियजाति । ये लोग अपनेही गृहोपशय इष्टान्, पशोद्वय बतलाते हैं । एक समय शापक लोगोंमें आने बलपूर्वक प्रभावसे विशेष

प्रतिष्ठा लाभ की तथा स्वयं भगवान् बुद्धने इस वंशमें अवगोर्ण हो कर शाक्यजातिका गौरव बढ़ाया ।

जिस समय मगधाधिप विम्बिसार राजपुत्रमें, अङ्गाधिपति चम्पा नगरमें, लिच्छवी घेरालोमें और साकेतपुरी परिराजके बाद जब कोशलपति प्रसेनजित् उत्तर-श्रावस्तिनगरमें बड़े गौरवसे राज्यशासन कर रहे थे, उस समय कोशलराज्यके पूर्वभागमें रोहिणी नदीके किनारे शाक्य धीर कोलि नामक दो क्षत्रिय शाखा धीरे धीरे अपना मस्तक उठानेकी कोशिश कर रही थी । इस समय मगधाधीश्वर और कोशलपति एक दूसरेका दुश्मन बन कर राज्यसोमा बढ़ानेकी इच्छासे युद्धविग्रहमें लिप्त थे । इसी मौकेमें रोहिणी नदीके एक किनारे शाक्योंने और दूसरे किनारे कोलियोंने अपनेको 'लाघोन घोषित कर दिया । कपिलवास्तुमें शाक्य राजधानी प्रतिष्ठित हुई । शाक्य और कोलियोंने आपसमें आत्मोपता सुल्लसे घट्ट हो बड़े आनन्दसे कुछ समय शान्ति सुखभोग किया था । शाक्यपति शुद्धोदनने दो कोलीय राजकुमारियोंका पाणिग्रहण किया । इन दोनों राजकुमारियोंसे कोई पुत्र उत्पन्न न होनेके कारण राजा शुद्धोदन बड़े चिन्तित रहा करते थे । कुछ समय बाद बड़ी रानीके गर्भका लक्षण दिखाई दिया । प्राचीन प्रथांनुसार राजनन्दिनी सन्तान प्रसव करनेके लिये पित्रालय चली । किन्तु राहमें हो उन्होने लुम्बिनी उद्यानमें एक पुत्र प्रसव किया । नवजात कुमार और प्रसूतिके उसी समय कपिलवास्तुमें लौटा लाया गया । सात दिनोंके बाद सुतिकागारमें ही माताका देहान्त हुआ । नव छोटी रानी ही राजकुमारका लालन पालन करने लगी । वह बालक शाक्यवंशकेतु होनेके कारण शाक्यसिंह नामसे प्रसिद्ध हुआ । आगे चल कर कोलिय-राजकुन्या यशोधराया सुभद्राके साथ उसका विवाह हुआ । पुत्र देखो ।

जिस शाक्यवंशमें शाक्यसिंहने जन्मग्रहण किया, उस पेश्वाक वंशघरेने जिस प्रकार शाक्य नामसे प्रथित हो अपना आधिपत्य फैलाया था, उसका संक्षिप्त चित्रण बौद्ध ग्रन्थावलीमें लिखा है । ये सब ग्रन्थ पढ़नेसे प्रसिद्ध शाक्य जातिकी संघ्या और उनका प्रभाव तथा

बौद्धमतसे उनके विराग और आनुरक्तिका यथायथ इतिहास संग्रह किया जा सकता है ।

तिष्ठत देशोय दुस्त वा चिनयपिटक ग्रन्थमें लिखा है, कि चाराणसोपति मग्धेश्वरसेनके वंशधर कूशोनगर और पोतलमें राज्य करते थे । उस वंशमें पोतल नामक एक राजा थे । गीतम और भरद्वाज नामक उनके दो पुत्र हुए । उपेष्ट गीतम पिता ही अनुपति ले कर पोतलके प्राग्देशमें तपस्या करने चले गये । कनिष्ठ भरद्वाज कर्णिककी मृत्युके बाद राजा हुए । भरद्वाजके कोई पुत्र सन्तान न रहनेके कारण दुर्गन्धत अन्तःकरणसे एक दिन गीतमने अपने गुरु श्रुषि कनकवर्णसे कहा, 'प्रभो ! पोतलराजवंश लोप होना चाहता है, आप ऐसा कोई राक्षस निकाल दीजिये जिससे लोप न हो ।' श्रुषि शिष्यका ऐसा वचन सुन कर श्रुषिने योगबलसे गीतमके शरीरमें वृष्टिपात कराया जिससे उन्हे दिव्य शक्तिके सञ्चारके साथ दिष्ट ब्रह्म उत्पन्न हो गया । पीछे उन्हींको देहसे निःसृत दो रक्तमिश्रित त्रिंशु कूछ समय सूर्यके उतापमें रह कर अण्डेमें परिणत हो गया । उत्तरेत्तर सूर्यके उतापसे ये दोनों अण्डे फूट गये और दिव्यकांतियुक्त दो नवकुमार भीतरसे निकले और पार्श्ववर्ती ईलके सेतमें चले गये । उस प्रकार तापसे दोनों बालककी उत्पत्ति हुई सही, पर नएदवीर्ण गीतम दिन पर दिन कमभीर होते गये । श्रुषि कनकवर्ण उन दोनों संतानोंके गीतमके पुत्र ज्ञान कर घर लीये और उनका लालन पालन करने लगे । सूर्योदयके साथ जन्म होनेसे ये सूर्यवंशी, गीतमके अङ्गजात होनेसे आङ्गिरस और इक्ष्वाकु नामसे प्रसिद्ध होनेसे इक्ष्वाकु या पेश्वाक नामसे परिचित हुए ।

भरद्वाजकी मृत्युके बाद मन्त्रिदलने श्रुषिके साथ सलाह करके गीतमके बड़े लड़केको राजा बनाया । कुछ समय राज्य करके ये अनुत्क अण्डस्थानमें पञ्चत्वकी प्राप्त हुए । पीछे छोटे लड़के इक्ष्वाकु नाम धारण कर राजसिंहासन पर बैठे । इसके बाद उनके सात वंशघरोंने एक एक कर पोतल राजधानीमें राज्य किया । उस वंशके अन्तिम राजा इक्ष्वाकु विरघरक थे । उनके उन्नामुल, करकर्ण, हस्तिनाजक और नूपुर नामक धार

पुत्र थे। किन्तु राजाने एक परमसुन्दरी नारीके रूप पर मुग्ध हो उससे इस ज्ञान पर विवाह कर लिया, कि उसके गर्भमें जो पुत्र जन्म लेगा, वही सिंहासनाधिकारी होगा। कुछ समय बाद उस रमणीके गर्भसे राजगन्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने पूर्ण बचनानुसार उसीको राजा बनाया और चारों लड़कोंकी शिक्षासे निकाल दिया। चारों राजकुमार आरमीय और मनुष्योंसे परिपुष्ट हो हिमालयको पार कर आगोरपीके किनारे कपिलमुनिके आश्रममें पहुँचे। यहाँ ऋषि-आश्रमके समीप उम्होंने कुटी बनाई। ऋषिके आदेशानुसार धर्मोद्योग भवनी स्वजातीयकी बहनोसे ही विवाह कर भनेक सन्तान संतति उत्पादन करनेमें बाध्य हुए।

इस प्रकार दलपुष्ट हो कर उम्होंने ऋषिप्रदर्शित आश्रमगागों एक नगर बसाया। ऋषिके नामानुसार उस नगरका नाम कपिलवास्तु रखा गया। यहाँ धीरे धीरे उनकी संख्या बढ़ने लगी। पीछे वे लोग देवद नामक नगर स्थापन कर यहाँ रहने लगे। इस समय "शाष्यगण स्वजातीयकी छोड़ किसी रमणीका पणि-मरण नहीं कर सकते" ऐसी विवाह परति लिपिबद्ध हुई।

इधर एक दिन राजा विक्रमके भगने प्रथम चार पुत्रोंकी याद कर राजसभामें उनकी बात उठाई। राज-मंलिवोंने कहा, 'महाराज ! आपके पुत्रगण अपने अष्टप और शक्तिके बलसे इस प्रकार लक्ष्यमतिष्ठ हो कर राज्यभर हो गये हैं।' इस पर राजाने पुत्रोंकी अलौकिक कौरिकहानी सुन कर कहा, 'मेरे कुमार सादसी और शक्तिमान् हैं। तमोसे वे लोग शाष्य नामसे परिचित हुए। किसी दूसरेका कहना है, कि इनके पूर्वपुरुषोंने शक्रपुत्रका माध्यम लिया था और वे लोग इनके पंश-धर होनेके कारण 'शाष्य' बहलाये।

विक्रमके मृत्युके बाद उनके सबसे छोटे लड़के राजा हुए। इनके बौद्ध सन्तानादि न रहनेसे पीछे उक्तामुझने ही राजसिंहासनको सुनोमित किया। अनंतर पचासम करकर्म, हस्तिनाजक और नूपुर राजा हुए। नूपुरके पुत्र यमिष्ठ, पीछे उस यमनेके राजाओंके बाद धर्म्य-दुर्ग कपिलवास्तुके अधीश्वर हुए। इनके सिंद-दनु और

सिंहनाद नामक दो पुत्र थे। सिंद-दनुके शुक्रोदन, शुक्रोदन, द्रोणोदन और अमृतोदन नामक चार पुत्र तथा शुद्धा, शुद्धा, द्रोणा और अमृता नामकी चार बन्ध्याएं उत्पन्न हुईं। शुक्रोदनके पुत्र सिद्धार्थ और आयुष्मत् नन्द, शुक्रोदनके पुत्र आयुष्मत् जिन और शाष्य राजमद्र (भद्रिक), द्रोणोदनके पुत्र महाताम और आयुष्मत् अनिन्द्य, अमृतोदनके पुत्र मानन्द और देवदत्त, शुद्धाके सुमयुद्ध, शुद्धाके मन्दिक्त, द्रोणाके सुलभ, अमृताके कल्याणवर्द्धन और सिद्धार्थके राहुज नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। इन सब शाष्यकुलरक्षियोंसे बौद्धधर्मकी पुष्टि और प्रचार हुआ।

सिद्धार्थके सुदरयप्राप्ति और तन्मतप्रचारके पहले शाष्यगण शिव और शक्तिके उपासक थे, उसका साम्राज्य ललितविस्तारादि प्रथममें यथेष्ट मिलता है। इस समय संशयार्थदिके साथ शाष्योंका प्रभाव बहुत कुछ बढ़ गया था। पूर्वोक्त कोशलराज प्रसेनजित्के पुत्र विक्रम या विक्रमक विवाहो राज्यव्युत्पन्न कर स्वयं कोशलके राजा हुए। पीछे उम्होंने कपिलवास्तुके शाष्यकुलको निमूल किया था। जातिगत और धर्मगतविद्वेष ही इसका एकमात्र कारण था।

शाष्यगण जो बुद्धधर्म ग्रहण कर बौद्ध हुए थे, उसका परिचय बौद्धधर्म विकासके इतिहासमें अच्छी तरह दिया गया है। आनन्द, कारप्य प्रभृति सिद्धार्थके समीप अनुचरण शाष्यधर्मोद्भव थे। धर्मके बाह्यव्यक्तसे सामाजिक आचरण हट गया, शाष्यगण तब बौद्ध यति या श्रमण नामसे परिचित हुए, जिनालिविसे शाष्य मिश्र और मिश्रुणोंका परिचय पाया जाता है, वे लोग यहाँ दूठो शताब्दीमें भी विद्यमान थे। उनमेंसे यहाँ सद्धर्म उरकीर्ण भाष्यमिश्र, बोधिधर्मकी मूर्त्तिलिवि, यमोविहारकी बौद्ध मिश्रुणो जयमट्टारिकाकी मूर्त्तिलिवि, शाष्यराज महानामकी बोधगयास्व लिवि, गोसूरसिंह-

० ऊपर जो उदाहरण दीया गया है, वह बहुत कुछ रामायणकी छायाके आधार पर रचित मान्य होता है। जो हो, उसमें मूल इतिहासकी कुछ छाया भी प्रतिबिम्बित दिखती देती है।

बलके पुत्र विहारस्वामी रुद्रकी लिपि, शाक्ययति धर्म दासकी साञ्जोलिपि और तिग्वात्रतोर्णनिवासी शाक्य-मिक्षु धर्मगुप्त और दंद्रसेनको योषणयास्य लिपि उत्स-का प्रकृत प्रमाण हैं।

शाक्यपाल (सं० पु०) राजमेद । (राजतर० ८ १३२६)
शाक्यपुङ्गव (सं० पु०) शाक्ये शाक्यवशो पुङ्गवः श्रेष्ठः ।
शाक्यसिंह, शाक्यमुनि ।

शाक्यप्रग (सं० पु०) बौद्धाचार्यमेद । (तारनाथ)
शाक्यबुद्ध (सं० पु०) बुद्धदेव, शाक्यमुनि ।
शाक्यवुद्धि (सं० पु०) बौद्धाचार्यमेद, शाक्ययोषणा एक नाम ।

शाक्यवसुधोपजीविन् (सं० त्रि०) शाक्यबुद्धं बुद्धमतं उपजीवति जीव-णिनि । शाक्यबुद्ध-मतावलम्बी ।
शाक्यवोधिसत्त्व (सं० पु०) बुद्धदेव, शाक्यमुनि ।
शाक्यमिक्षु (सं० पु०) बुद्धधर्मावलम्बी । मनुटीकाकार बुद्धकृतं शाक्यमिक्षुओंकी पापएडी बतया है ।

'पापएडिनः धेदवाहप्रतलङ्काधारिणः शाक्यमिक्षु क्षणपादाय' (कुल्लुक)
शाक्यमिक्षु की (सं० स्त्री०) बौद्ध-मिक्षुरमणी ।
(दशकुमारच०)

शाक्यमति (सं० पु०) बौद्धाचार्यमेद । (तारनाथ)
शाक्यमहाबल (सं० पु०) बौद्धराजमेद ।
शाक्यमिल (सं० पु०) बौद्धाचार्यमेद ।
शाक्यमुनि (सं० पु०) बुद्धदेव, शाक्यवशायतंस बुद्ध, मुनिविशेष । पर्याय—स्वजित श्वेतकेतु, धर्मकेतु, महामुनि, पञ्चशान, सर्वदर्शी महाबोध, महाबल, बहुक्षम, विमूर्ति, सिद्धार्थ, शक । (कन्दरत्ना०)

अमरटीकाकार भरतने इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है,—बुद्धदेव शाक्यवंशमें उत्पन्न हुए थे, इसलिये शाक्य तथा मुनिकी तरह आचरण करते थे, सुतरां शाक्यमुनि कहलाये । शक शब्दसे वृक्षका बोध होता है । वृक्षके नीचे वे रहते थे, इस कारण शाक्य नामने अभिहित हुए । इत्याकुर्वशोय बहुतेरे जन्मि पिताके गोपसे गौतम व शोय कपिल मुनिके आश्रममें शक-पुत्रके नीचे वास करते थे, अतएव उनका शाक्य नाम पड़ा ।

'शाक्यवंशत्वात् शाक्यः शाक्यवराजो मुनिश्चेति शाक्यमुनिः तथादि शको हृषिकेशोपुत्रमववा विद्यमानाः शाक्याः । धितुः शोपेन केचिदिश्याकुर्वश्या गौतमवंशज इतिप्रमुनेषाम् शाक्यद्वेषे कृतवाग्वाह शाक्या उच्यन्ते ।' तदुक्तं ।

"शाक्यवृत्तमतिच्छन्नां वाशं यस्मात् प्रवक्षिरे ।
तस्मादिदंवाक्यं शास्त्रे सुवि शाक्या इति श्रुताम् ।"
(अमरटी० भरत)

शाक्यवर्द्ध (सं० पु०) शाक्यकुल्लदेवताविशेष ।
शाक्यश्री (सं० पु०) बौद्धाचार्यविशेष ।
शाक्यसिंह (सं० पु०) शाक्यः सिंह इव । शाक्य-मुनि । (अमर)

शाक (सं० त्रि०) शक-मण् । १ शकसम्बन्धी । (पु०) ज्येष्ठा नक्षत्र । इसके अन्विपति इन्द्र हैं ।
शाकी (सं० स्त्री०) १ दुर्गा । २ शकपत्नी, इन्द्राणी ।
शाकीय (सं० त्रि०) शक-सम्बन्धी ।
शाकर (सं० त्रि०) १ शकिशाली, पराक्रमी, बलवान् । (पु०) २ शाकीद्वयव धायु, सृष्टिसे पहले आत्मासे आकाश निकला, पीछे इस आकाशसे धायुकी उत्पत्ति हुई । ३ इन्द्र । ४ इन्द्रका बज्र । ५ बैल, सांड । ६ प्राचीन कालकी एक रीति या संस्कार ।

शाक्यरत्न (सं० स्त्री०) साममेद । (वाट्या० ७२११६)
शाक्यवर्ध (सं० स्त्री०) शाक्यरका कार्य ।
शाख (सं० पु०) १ कृत्तिकाका पुत्र, कालिकेय । २ करञ्ज । ३ भाग ।

शाख (फा० स्त्री०) १ टङ्गी, डाल, डाली । २ लगा हुआ टुकड़ा, छंड, फांक । ३ नदी आदिकी बढ़ी धारामेंसे निकली हुई छोटी धारा । ४ सोंग ।

शाखदार (फा० वि०) १ जिसमें बहुत-सी शाखाएँ हों, टङ्गीदार । २ सोंगवाला, सोंगदार ।

शाखा (सं० स्त्री०) शाखाति गगनं व्याप्नोतीति शाखा-अच्-टाप् । १ वृक्षाङ्गविशेष, पेड़के घट्टसे चारा और निकली हुई लकड़ी या छड, डाल, टङ्गी । पर्याय—लता, लड्डा, शिखा । (भरतवृत्त मेदिनी) २ शरीरका ज्वयव, हाथ और पैर । ३ बाहु । ४ चौड़ाई । ५ घट्टका घाघ । ६ उंगली । ७ भयवय, झङ्ग । ८ प्रकार, किसी मूल वस्तुसे निकले हुए उसके भेद ।

(गंगा २५१) ६ विभाग, हिस्सा । १० नाँविक, समीप ।
 ११ किसी शास्त्र या विद्याके अंतर्गत उसका कोई भेद ।
 १२ वेदकी संहिताओंके पाठ और क्रमभेद जो कई श्रवणियों करने में गोल या शिल्पपरम्परामें चलाने ।
 शौनकेने अपने 'चरणव्यूह'में वेदोंकी जो शाखाएँ गिनाई हैं, उसके अनुसार श्रावणोंकी पाँच शाखाएँ हैं, शाकल्य, चारकल, साञ्जलावन, शाखावन और माण्डूक्य ।
 पायुपुराणमें पञ्चवेदकी ८६ शाखाएँ कही गई हैं जिनमें ४२के नाम चरणव्यूहमें आये हैं । इन ४२में माधवग्निद्वय और कल्पवृक्षा ले कर १७ शाखाएँ चामुंसनेयोके अन्तर्गत हैं । सामवेदकी सहस्र शाखाएँ कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं । इसी प्रकार अथर्ववेदकी भी बहुत-सी शाखाओंमेंसे विष्णुलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं ।
 शाब्दाकर (सं० पु०) शाब्दां कष्टो यस्य । स्मृतो एव, भूदर । इस एवकी प्रत्येक शाखाओं काँटा होता है, इसलिये इसका नाम शाब्दाकर्ट हुआ है । (राजनि०)
 शाब्दाङ्ग (सं० ह्री०) भद्रस्य शाखा पूर्वाभिषाता । शरीरका अणवण, हाथ और पैर ।
 शाब्दात्र (सं० ह्री०) शाब्दाया अत्र । १ विद्यात्र, शाब्दाका अणवण हिस्सा । २ अङ्गुली, उँगली ।
 शाब्दा चक्रमण (सं० पु०) १ एक डाल परसे दूसरी डाल पर चूड़ जाना । २ कोई विषय पूरा अध्यायन न करके छोड़ा यह छोड़ा यह पढ़ना । २ एक विषय अधूरा छोड़ कर दूसरा विषय हाथमें लेना, एक विषय पर स्थिर न रहना ।
 शाब्दा चन्द्रमया (सं० पु०) एक श्याम या कड़ायन जो पेशी बातके सम्बन्धमें बढ़ी जाती है जो केवल देवानोंमें जान पड़ती है, पारलवमें नहीं होती । चन्द्रमा कनी कनी देवानोंमें पेशी जान पड़ता है माना वेदकी डाल पर है ।
 शाब्दाद् (सं० पु०) वेदोंकी डाल या टहनो जानेवाला पशु । जैसे—गी, बकरी, हाथी ।
 शाब्दाङ्ग (सं० पु०) शाब्दाकर्ट देखो ।
 शाब्दानगर (सं० ह्री०) शाब्देव अयम् । नगरका प्राञ्ज-वर्षा छोटा नगर, उपनगर । जगदीशकामे भरतने इसकी

ध्वस्तपति इस प्रकार की है—नगरमें अवरिमित लोगोंका स्थान न होनेसे उन सब लोगोंके रहनेके लिये इसका समीप जो नगर स्थापित होता है, उसे शाब्दानगर कहते हैं । अंगरेजोंमें इसका नाम है Suburb ।

शब्दरश्मावलीमें लिखा है, कि मूळ नगरसे आरम्भ करके दूसरा जो नगर बसाया जाता है, उसे शाब्दानगर कहते हैं ।

शाब्दास्तर (सं० पलो०) शाब्दाया अस्तर । अन्व शाब्दा, दूसरी शाब्दा ।

शाब्दापशु (सं० पु०) यूपवद् पशु । (पाषाण० एष० १।१०)
 शाब्दापित्त (सं० पलो०) एक रोग । इसमें हाथ पैरमें जलन और सूजन होती है ।

शाब्दापुर (सं० पलो०) पुरस्य शाब्दा अभिधानात् पूर्वं निषाता, शाब्देव पुरमिति या । शाब्दानगर, किसी नगरके आस-पास फैली हुई बस्ती । (हेम)

शाब्दाप्रकृति (सं० खी०) अपने राज्यके कुछ दूर परके आठ प्रकारके राजा । इनका विचार किसी राजाकी युद्धके समय रखना चाहिये । (अष्ट ७।५६)

शाब्दाभृत् (सं० पु०) शाब्दां विगतिं भृ-कित्-तुक् । एव, पेड़ ।

शाब्दाष्टय (सं० पु०) शाब्दायां मृगः । १ बानर, बंदर । २ गिलहरौ ।

शाब्दाभ्र (सं० पु०) जल्पेत् ।

शाब्दाभला (सं० खी०) तिग्मिहो एव, इतलीका पेड़ ।

शाब्दाएष्ट (सं० पु०) एष्ट प्राहणो जो अपने शाब्दाका छोड़ कर दूसरी शाब्दाका अध्यायन करे, शाब्दाएष्ट । पर्याय—अन्वशाब्दाक । (हेम)

शाब्दाएष्टा (सं० खी०) सोलह हाथ छोड़ा रास्ता ।

शाब्दारोग (सं० पु०) रोगविषय । रकादि धातु कुपित हो कर स्वयंमात घोसपे और शुन्मादि रोग पैदा करता है । (चक्र एष्टपा० ११ म०)

शाब्दान्त (सं० पु०) शाब्दां लाति आभ्यर्तोति लाक । पानीर एव, जल्पेत् ।

शाब्दाधात (सं० पु०) हाथ पैरमें होनेवाला वातरोग । हाथ और पैरका देहकी शाब्दा कहते हैं, यही पात मिलनेसे यह शाब्दाधात कहलाया । (एम् ७)

शाखाशिका (सं० स्त्री०) शाखायाः शिका । यह डाल जो नीचेकी ओर बढ़ कर जड़ पकड़ ले और एक अलग पेड़के घड़के रूपमें हो जाय । जैसे,—बटकी जटा या बरोह ।

शाखास्थि (सं० स्त्री०) शाखकी हड्डी ।

शाखि (सं० पु०) तुर्किस्तान ।

शाखिन (सं० पु०) शाखाऽस्त्वपेति शाखा-इनि । १ यज्ञ, पेड़ । २ वेद । ३ वेदकी किसी शाखाका अनुयायी । ४ पोलका पेड़ । ५ तुर्किस्तानका निवासी । (त्रि०)

६ शाखाविशिष्ट, शाखाओंसे युक्त ।

शाखिमूल (सं० पु०) रश्मि वृक्ष ।

शाखिल (सं० पु०) व्यक्तिविशेष । (कथासरित्सा० ४७।८५)

शाखी (सं० पु०) शाखिन बेली ।

शाखीय (सं० त्रि०) शाखा-सम्बन्धी ।

शाखीश्वर (सं० पु०) विवाहके समय वंशावलीका कथन ।

शाखोट (सं० पु०) स्वनामख्यात वृक्षविशेष, सिंहीरका पेड़ । कलिङ्ग—अषोडमरण्य, महाराष्ट्र—साहोड़, तैलङ्ग—भारगिकेसेट्ट, रघनूकी, बर्बर—सहोड़ा ।

संस्कृत पर्याय—पिशाचद्रु, पीतफल, कर्कशच्छद, भूत-वृक्ष, सकट, अक्षयर, गवाक्षी, धुकावास, रुक्षपत्र, पीत, कैशिकयोज, क्षीरनाशन । गुण—तिषत, उष्ण, पित्त-घटक और घातनाशक । (रत्ननि०)

मावप्रकाशके मतसे इसका गुण—रफतपित्त, अर्श, घातश्रेयम और अतिसारनाशक । (मावप्रक, ३) गिबल (सफेद कोट) रोगमें इसका बीज बाँट कर प्रलेप देनेसे आरोग्य होता है ।

शाख्य (सं० त्रि०) शाखा एवम् । शाखा-सम्बन्धी ।

शाखिर्द (फा० पु०) किसीसे विद्याप्राप्त करनेका संबंध रखनेवाला, शिष्य, चेला ।

शाखिर्देश (फा० पु०) १ मातहत । २ अहलकार, कर्मचारी । ३ खिदमतगार, सेवक । ४ बड़ी कोठोके पास नौकरोके लिये अलग बने हुए घर ।

शाखिर्दी (फा० स्त्री०) १ शिक्षाप्राप्त करनेके लिये किसी गुरुके अधीन रहनेका भाव, शिष्यता । २ सेवा दक्ष ।

शागलि (सं० पु०) मोत्रमवर्त्तिक एक श्रुतिका नाम ।

शाङ्कर (सं० स्त्री०) शङ्कर-जण । १ एक छन्दका नाम । इसका रूपान्तर शाकर या शाकर ऐसा देखा जाता है ।

शङ्करो देवताऽप्य अण् । २ रुद्रदेवतक नक्षत्र, आर्द्र नक्षत्र । इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता शङ्कर हैं, इसलिये इसका नाम शङ्कर है ।

(पु०) शङ्करस्वायं पाहनत्वात् शङ्कर अण् । ३ यन्त्रोवर्द्ध, साँड़ । (मेदिनी) ४ शङ्कराचार्यका अनुयायी । ५ सोमलताका एक भेद । (त्रि०) ६ शङ्कर-सम्बन्धी । ७ शङ्कराचार्यका । जैसे,—शङ्करभूष्य, शङ्करमत ।

शङ्करभाष्य (सं० स्त्री०) शङ्कराचार्य-प्रणीत भाष्य । वेदान्तदर्शन, गीता और उपनिषद्के जिस भाष्यको शङ्कराचार्यने प्रणयन किया, उसे शङ्करभाष्य कहते हैं ।

शङ्करि (सं० पु०) शङ्करस्वापत्यं पुमान् शङ्कर-इत् । १ शिवके पुत्र, गणेश । २ कार्तिकेय । ३ अनि । १ एक मुनिका नाम । ५ शमीका पेड़ ।

शङ्करी (सं० स्त्री०) शिव द्वारा निर्धारित अक्षरोंका क्रम, शिवसूत्र ।

शङ्कथ्य (सं० पु०) शङ्कोगोत्रापत्यं शंक् (गर्गादिम्बो यन् । पा ४।१।१०५) इति घञ् । शंक्का गोत्रापत्य ।

शङ्कव्यायनी (सं० स्त्री०) शङ्कव्य एक, डोय् । शङ्कव्य-को स्त्री । (पा ४।१।१८)

शङ्कित (सं० पु०) चोरक नामक गन्धद्रव्य ।

शङ्कु (सं० पु०) राजतरङ्गिणीके अनुसार एक कवि । इहोने भुवनाभ्युदय नामक एक काव्य रचा ।

(राजतरङ्गिणी ६।७०५)

शङ्कुची (सं० स्त्री०) शकुचि मछली ।

शङ्कुपथिक (सं० त्रि०) शंक्नुपथेन आहतं गच्छतीति वा । शंक्नुपथ (उत्तरपथेनाह्वय । पा ५।१।७७) इति ठञ्, आचञो वृद्धिः । १ शंक्नुपथ द्वारा आहत । ३ शंक्नुपथ द्वारा गमनकारी ।

शङ्कुर (सं० त्रि०) १ शंक्नु-सम्बन्धी । (पु०) २ लिङ्गभेदः । (अथर्व० ७.६०।३)

शङ्कु (सं० त्रि०) शङ्कुस्वेटं अण् । १ शङ्कु-सम्बन्धी, शंक्का बना हुआ । (पु०) २ शंक्नुको घञनि ।

शङ्कमित्र (सं० पु०) शंक्नुमित्रका गोत्रापत्यः ।

शब्दमिति (सं० पु०) १ अर्थप्रतिपादनाय एक वृत्तिकार । २ शब्दमिता मोक्षपत्रम् ।

शब्दमिति (सं० पु०) शब्द और लिखित शब्दिका अर्थान्तर-सम्बन्धी ।

शब्दायन (सं० पु०) शब्दस्य मोक्षपत्रं शब्द (भाषादिभ्याः यम् । पा ४।१।११०) इति कम् । एक शृङ्गा और श्रुति-वृत्तिकार शब्द । इनका श्रुतिगतकीप्राखण भी है ।

शब्दायन (सं० पु०) शब्दायनस्य मोक्षपत्रं शब्दायन (गौरी वृद्धादिभ्य एत् । पा ४।१।१८८) इति च्कम् । शब्दायनका मोक्षपत्रम् ।

शब्दादि (सं० पु०) शब्द सेवनेवाली ज्ञाति ।

शब्दादि (सं० पु०) शब्दकरणं निदानस्य इति शब्द-ठक् । १ शब्द बनाने और सेवनेवाला । पर्वण्य-कार्यिक, शब्द-कार, काम्यशक । २ शब्दपादक, शब्द बसानेवाला । पर्वण्य-शब्दमा । (जटापर)

(ति०) ३ शब्द-सम्बन्धी । ४ शब्दका बना हुआ ।

शब्दिन (सं० पु०) शब्दिनारपर्यं शब्दिन (संयोगादि-भ्यन्व । पा १।१।१६६) इति ङण् । शब्दिका अपत्यम् ।

शब्दा (सं० पु०) शब्दस्य मोक्षपत्रं शब्द (गौरीदिभ्यो यम् । पा ४।१।१०५) इति ङण् । १ शब्दका मोक्षपत्रम् । (ति०) २ शब्द-सम्बन्धी, शब्दका बना हुआ ।

शब्दाद्या (सं० स्त्री०) शब्दाद्या देवी ।

शब्दि (सं० पु०) १ सप्तम् । २ शक । ३ प्रवृत्ता ।

(श्क् ८।१७।१२)

शब्दिगु (सं० लि०) १ शक गामोयुक्त, जिसकी गाव सब काममें समर्थ हो । २ विवृत्ता गामोयुक्त ।

(श्क् ८।१८।१२)

शब्दि (सं० स्त्री०) शब्दिज्ञा शक, एक प्रकारका माग ।

(रथवि० ६ अ०)

शब्द (सं० पु०) १ अर्थमेव, यह कपड़ा जो कर्ममें अर्पित कर पटना जा सके, धोती । २ कपड़ेका टुकड़ा । ३ एक प्रकारकी दूरतो । ४ दीना टाला पटनाया ।

शब्दक (सं० पु० स्त्री०) शब्द स्वार्थ-कम् । १ पट, पत्र । २ शब्दकोट । (भस्व)

शब्दिका (सं० स्त्री०) १ साड़ी, धोती । २ कपूर ।

शब्दी (सं० स्त्री०) साड़ी, धोती ।

शब्द (सं० लि०) शब्दीशब्दकोटस्य शब्द (गौरीदिभ्यो यम् । पा ४।१।१२२) इति ङण् । १ जिसका शब्द अभिजन हो । (पु०) २ शब्दका मोक्षपत्रम् ।

(पार्ष्णि ४।१।१०५)

शब्दायन (सं० स्त्री०) १ होममेव, शब्दायनहोम, प्रवृत्ति-कर्म वैशुष्य प्ररामनाथं होमविशेष । विवाह और मन-प्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें जो होम करनेका पड़ा गया है, उसे प्रवृत्तकर्म कहते हैं । प्रवृत्त कर्म करनेमें यदि भ्रम और प्रमाद्वजता केई सृष्टि हो जाय, तो उस सृष्टिके दूर करनेके लिये जो होम करना होता है उसे शब्दायनहोम कहते हैं । भयदेवमष्टने प्रवृत्तकर्मके वैशुष्य समाधानके लिये यह होम करने पड़ा है । किन्तु इसे भट्टनारायण आदि स्वोकार नहीं करते । उन लोगोंका कहना है, कि प्रायश्चित्तके लिये यह होम करना होता है । प्रवृत्त कर्मोंमें यदि भ्रम हो जाय, तो उसके प्रायश्चित्तके लिये यह होम करे ।

(पु०) २ मुनिविशेष ।

शब्दायनक (सं० स्त्री०) शब्दायनहोमकर्म ।

शब्दायनि (सं० पु०) शब्दायनस्या मोक्षपत्रं शब्दायन (विद्वादिभ्यः किम् । पा ४।१।१५४) इति किम् । शब्दमुनिका मोक्षपत्रम् । (तत्त्वप्रका० टी१।४।६)

शब्दायनिन् (सं० पु०) शब्दायनं यत् प्रोक्तं शब्दायन (पुराणभोक्तुं मातृव्यकश्यु । पा ४।१।१०५) इति ङणिनि । शब्दायनप्रोक्त एक उपनिषद् ।

शब्दायन (सं० पु०) शब्दका मोक्षपत्रम् ।

शब्दायन्य (सं० पु०) शब्दका मोक्षपत्रम् ।

(पार्ष्णि ४।१।१८)

शब्द (सं० स्त्री०) शब्दस्य भाषा शब्द एवम् । शब्दा, पुराता, कपटता, बदमाशी । पर्वण्य-कपट, व्याज, हस्त, उपाधि, छन्द, कृत्य, बुद्धि, निहत इत गो अर्थार्थ व्यवहारकी शब्द ब्रह्म है । भाष्यकारोंमें मरतने लिखा है,—पूर्वोक्त पर्वण्यमेव कपट आदि एः उपार्थी तया बुद्धि आदि तौन विश्वरूटिद्वये व्यवहार होता है । यह बात कोई कोई कहते हैं । इनमें से यह है, कि कपट, व्याज आदि एः पञ्चममातृक तया बुद्धि आदि तौन

द्विसामान्य फल है। किन्तु बहुतेका मत है, कि ये नौ एक अर्धोंमें व्यवहृत होने हैं।

चाणक्यपण्डितने चाणक्यश्लोकमें लिखा है, कि जो शठ है, उसके प्रति शठताचरण करना ही युक्तियुक्त है। कूटिल व्यक्तिके प्रति सरलतानोति शास्त्रविगन्धित है।

“शठे शाठ्यं समाचरेत्” (चाणक्य)

शाठ्यवत् (सं० त्रि०) शाठ्यं विद्यते इत्य मत्तुप मस्य च। शाठ्ययुक्त, शठताविशिष्ट, शठ, धूर्त।

(बृहत्संहिता ६८।५५)

शाड्यल (सं० पु०) शाड्य देखो।

शाण (सं० क्लृ०) शणेन निर्मितमिति शण-अण्। १ शण-निर्मित वस्त्र, सनके रेशका बना हुआ कपड़ा, भंगरा।

(पु०) शपयते ह्ययते गुणादिरत्नेति शण घञ्।

२ कपपट्टिका, कसीटी। पर्याय—निकष, कष, शान, निकस, कस, आरुष। ३ हथियारोंकी धार तेज करने-का पदार्थ, सान। ४ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तील। (भावप्रकार) (त्रि०) ५ सनके पीछेसे सम्बन्ध रखनेवाला। ६ सनका बना हुआ।

शाणक (सं० पु०) शण-अण् स्वार्थे कन्। शणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशका बना हुआ कपड़ा, भंगरा।

शाणकवास (सं० पु०) शाण्यक देखो।

शाणपाद् (सं० पु०) १ पर्वतविशेष। (हरिवंश) २ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तील।

शाणवत्य (सं० पु०) जनपदविशेष। भारत)

शाणवास (सं० पु०) १ वह जो सनका बुना हुआ वस्त्र पहने। २ एक अर्हत्का नाम।

शाणाजीव (सं० पु०) शणेन आजीवतीति आ-जीव-ञच्। अस्त्रमाजं, वह जो हथियारोंमें सान देनेका काम करता हो।

शाणि (सं० पु०) पट्टयुक्त, पट्टभा।

शाणिक (सं० त्रि०) राजाभौका सम्बन्धी।

शाणित (सं० त्रि०) शाण इत्च्। १ सान रखा हुआ, तीला या तेज किया हुआ। २ कसीटी पर घसा हुआ।

शाणो (सं० क्लृ०) शाणस्य विकारः शण-अण-स्त्रीप्। १ शणस्त्वमयो पट्टिका, सनके रेशोंसे बुना हुआ कपड़ा,

भंगरा। २ वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीतके समय प्रस-चारीकी पहननेके लिये दिया जाताहै। ३ छिन्नवस्त्र, फटाहुआ कपड़ा, चीपड़ा। ४ सान। ५ कसीटी। ६ छोटा खेमा या पर्दा।

शाणोर (सं० क्लृ०) शोणगद् मध्यस्थित तद्, दक्षीरी नदीका किनारा।

शाणोत्तरीय (सं० पु०) पाणिनि मुनिका एक नाम।

शाणोत्तरीय देखो।

शाण्ड—एक राजा। “शाण्डो दाक्षिणितः” (शुक्, ई६।३।६) “शाण्डः राजा”। (सायण,

शाण्डदूर्वा (सं० स्त्री०) पाकदूर्वा, एक प्रकारकी दूब।

शाण्डाकी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पशु।

शाण्डिक (सं० पु०) मर्दमें रहनेवाला सांडा नामक जन्तु।

शाण्डिक्य (सं० त्रि०) शाण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक (शाण्डिकादिभ्यो ष्य। वा ४।३।६२) इति ष्य। जिसका शाण्डिक अभिजन हो, शाण्डिक देशवासी।

शाण्डिल (शाण्डिक्य)—१ अयोध्या प्रदेशके हर्दो जिलांत गंत एक तहसील या उपविभाग। यह अक्षां २६° ५३' से ले कर २७° २१' उ० तथा देशां ८०° १८' से ले कर ५०' के बीच पड़ता है। भू परिमाण ५५० वर्गमील है। इसके उत्तरमें हर्दो और मिथिल, पूर्वमें मल्लदाबाद, दक्षिणमें मालिहाबाद और मोहन तथा पश्चिममें विलप्राम तहसील है। शाण्डिल, कल्याणमल, वालाभो और गुन्हाया परगना ले कर यह उपविभाग गठित है। यहां चार दीवानो और छः फौजदारी अदालत और चार थाने हैं।

२ उक्त विभागका एक परगना। भू-परिमाण ३२६ वर्गमील है। यहांका अधिकारशा स्थान ही जङ्गल और चालुकामय प्रातरसे पूर्ण है। सिक् १७० वर्गमील स्थान धाबाद है। जी, गेहूँ, बाजरा, चना, अरहर, उड़द, उधार, ऊँद, ईख, पोस्ता, तमाकू, नील और चावल यहांकी प्रधान वपज है। इस परगनेमें २१३ गाँव लगते हैं जिनमें ८२ गाँव राजपूतके अधिकारमें, ८१ मुसलमानके और ४१ गाँव कायस्थके अधिकारमें हैं।

३ उक्त जिलेका एक नगर तथा शाण्डिल उपविभागका

शाब्दमिति (सं० पु०) १ अर्थप्रतिपादनाय एक श्रुतिकार । २ शब्दमितिको मोक्षपरत्व ।

शाब्दमिति (सं० पु०) शब्द और लिखित श्रविका परमनाम-सम्बन्धी ।

शाब्दावन (सं० पु०) शाब्दम्य मोक्षपरत्व शाब्द (भावादित्यः कम् । पा ४।१।११०) इति कम् । एक श्रुत और श्रुत-पूजकार श्रुति । इनका कौशलेतकीप्राप्त्यन भी है ।

शाब्दावयव (सं० पु०) शाब्दावयवत्व मोक्षपरत्व शाब्दावयव (गोत्रे बुद्धमित्ये लम् । पा ४।१।१६८) इति च्कम् । शाब्दावयवका मोक्षपरत्व ।

शाब्दादि (सं० पु०) शाब्द वेचनेवालो जाति ।

शाब्दिक (सं० पु०) शाब्दकरणं निरामस्य इति शाब्द-ठक् । १ शाब्द बगाने और वेचनेवाला । पर्याय—काश्चरिक्, शाब्द-कार, काश्चरक । २ शाब्दवाक्, शाब्द बजानेवाला । पर्याय—शाब्दना । (जटाधर)

(ति०) ३ शाब्द-सम्बन्धी । ४ शाब्दका बना हुआ ।

शाब्दिक (सं० पु०) शाब्दिकारपरत्व शाब्दिक (धर्मोपादि-भ्यन्त्य । पा ४।१।१६६) इति ङण् । शाब्दिकीका अवयव ।

शाब्दिक (सं० पु०) शाब्दम्य मोक्षपरत्व शाब्द (गर्मादिभ्यो यञ् । पा ४।१।१०५) इति ङण् । १ शाब्दका मोक्षपरत्व (ति०) २ शाब्द-सम्बन्धी, शाब्दका बना हुआ ।

शाब्दिका (सं० स्त्री०) शाब्दिका देवता ।

शाब्दिक (सं० पु०) १ सप्तजु । २ शक । ३ प्रवृत्त । (शब्द ८।१७।१२)

शाब्दिक (सं० ति०) १ शक गामोयुक्त, जिसकी गाव सब काममें समर्थ हो । २ विवृत्त गामोयुक्त ।

(शब्द ८।१७।१२)

शाब्दिक (सं० स्त्री०) शाब्दिकी शक, एक प्रकारका नाम ।

(रत्निक ६ म०)

शाब्दिक (सं० पु०) १ शब्दभेद, यह कपड़ा जो काममें अघट कर पटना सा सके, धोयो । २ कपड़े का टुकड़ा । ३ एक प्रकारकी बुरती । ४ टोला टाला पटनाया ।

शाब्दिक (सं० पु० स्त्री०) शाब्द स्वार्थ-कम् । १ पट, पत्र । २ शाब्दभेद । (मन्त्र)

शाब्दिक (सं० स्त्री०) १ साड़ी, धोती । २ कपूर ।

शाब्दिक (सं० स्त्री०) साड़ी, धोती ।

शाब्दिक (सं० ति०) शाब्दिकीभ्योऽप्य शब्द (शब्दिकारभ्यो भ्यः । पा ४।३।६२) इति ङण् । १ श्रुतिकार शब्द अभिजन हो । (पु०) २ शब्दका मोक्षपरत्व ।

(पाणिनि ४।१।१०५)

शाब्दावयव (सं० स्त्री०) १ होमभेद, शाब्दावयवहोम, प्रशुति-कर्म वैयुष्य परामनायां होमविशेष । विद्याद और मन-प्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें जो होम करनेको पढ़ा गया है, उसे प्रकृतकर्म कहते हैं । प्रकृत कर्म करनेमें यदि स्रम और प्रमादव्यगता कोई सृष्टि हो जाय, तो उस सृष्टिको दूर करनेके लिये जो होम करना होता है उसे शाब्दावयवहोम कहते हैं । भयदेवमष्टने प्रकृतकर्मके वैयुष्य समाधानके लिये यह होम करने पड़ा है । रिशु इसे मष्टनाराधण आदि ल्योकार नहीं करते । उन लोमोंका कहना है, कि प्रायश्चित्तके लिये यह होम करना होता है । प्रकृत कर्ममें यदि स्रम हो जाय, तो उसके प्रायश्चित्तके लिये यह होम करे ।

(पु०) २ मुनिविशेष ।

शाब्दावयवक (सं० स्त्री०) शाब्दावयवहोमकर्म ।

शाब्दावयविक (सं० पु०) शाब्दावयवकका मोक्षपरत्व शाब्दावयव (विकारित्यः क्तिञ् । पा ४।१।५४) इति क्तिञ् । शाब्दावयविकीका मोक्षपरत्व । (जटाधरपा० ८।१।४।६)

शाब्दावयविक (सं० पु०) शाब्दावयवक यत्प्रोक्तं शाब्दावयव (पुराणभोक्तु आदायचक्षरेणु । पा ४।३।१०५) इति ङणिनि । शाब्दावयविको एक उपनिषद् ।

शाब्दावयव (सं० पु०) शकका मोक्षपरत्व ।

शाब्दावयव (सं० पु०) शकका मोक्षपरत्व ।

(पाणिनि ४।१।१६८)

शाब्दिक (सं० स्त्री०) शकभ्य भावः शक भवन् । शकता, पुराता, कपटता, बर्माश्री । पर्याय—कपट, ब्याह, ब्रह्म, उपाधि, छन्द, कृत्य, कुसृति, निहृति । इन मो भयवर्षयं व्यवहारको शाब्दिक कहते हैं । मन्त्रोक्तानि मन्त्रानि लिखा है,—पूर्वोक्त पर्यायोंमें कपट आदि छः उपार्थमें तथा कुसृति आदि तीन विषयकोटिद्वयमें व्यवहार होता है । यह बात नहीं कोई करते हैं । शकभ्येद यह है, कि कपट, ब्याह आदि छः पञ्चममात्रकत्वं तथा कुसृति आदि तीन

दिंसाताल फल है, किन्तु बहुतांश मत है, कि ये नौ एक अर्धमं ध्यवहृत होने हैं।

चाणक्यपण्डितने चाणक्यपरलोकरमें लिखा है, कि जो शठ है, उसके प्रति शठताचरण करना ही युक्तियुक्त है। कठिल व्यक्तिके प्रति सरलतानोति शास्त्रविर्गहित है।

“शठे शाष्टयं समाचरेत्” (चाणक्य)

शाष्टयवत् (सं० त्रि०) शाष्टयं विद्यते ऽस्य मनुष्य मस्य व। शाष्टययुक्त, शठताविशिष्ट, शठ, घूर्त्।

(धृतरुचिता ६८।५५-)

शाड्यल (सं० पु०) शाडू ल देखो।

शाण (सं० ह्रो०) शाणेन निर्मितमिति शाण-अण् । १ शाण-निर्मित वस्त्र, सनके रेशोका बना हुआ कपड़ा, भंगरा।

(पु०) २ पथते ज्ञायते गुणादिरतेति शाण घञ्।

२ कपपट्टिका, फसीटी। पर्याय—निकृष्य, कप, शान, निकस, कस, आकष्य। ३ हथियारोंको धार तेज करने-का पथर, सान। ४ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तील। (भाष्यप्रकाश) (त्रि०) ५ सनके पीपेसे सम्बन्ध रखनेवाला। ६ सनका बना हुआ।

शाणक (सं० पु०) शाण-अण् स्वार्थे कन्। शाणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशोका बना हुआ कपड़ा, भंगरा।

शाणकवास (सं० पु०) शाणक देखो।

शाणपाद् (सं० पु०) १ पर्वतविशेष। (हरिवंश) २ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तील।

शाणयव्य (सं० पु०) जनपदविशेष। भारत)

शाणवास (सं० पु०) १ वद जो सनका बुना हुआ वस्त्र पहने। २ एक अर्हत्का नाम।

शाणाजीव (सं० पु०) शाणेन आजीवतीति आ-जीव-अच्। अन्नमांसक, वह जो हथियारोंमें सान देनेका काम करता हो।

शाणि (सं० पु०) पट्टवृक्ष, पट्टाग्रा।

शाणिक (सं० त्रि०) राजाओंका सम्बन्धी।

शाणित (सं० त्रि०) शाण इत्च्। १ सान रखा हुआ, कोना या तेज क्रिया हुआ। २ कसीटी पर घसा हुआ।

शाणी (सं० स्त्री०) शाणस्य विकारः शाण-अण्-ङोप्। १ शाणसूत्रमयी पट्टिका, सनके रेशोंसे बुना हुआ कपड़ा,

भंगरा। २ वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीतके समय प्रक्ष-चारीको पहननेके लिये दिया जाताहै। ३ छिन्नपत्र, फटाहुआ कपड़ा, चीपड़ा। ४ सान। ५ कसीटी।

१ छोटा खेमा या पर्दा।

शाणीर (सं० ह्रो०) शोणनद मध्यस्थिन तट, दर्दरी नदीका किनारा।

शाणोत्तरीय (सं० पु०) पाणिनि मुनिका एक नाम। शासत्रदुरीय देखो।

शाण्ड—एक राजा। “शाण्डो दाक्षिणः” (शुकु ६।३।६) “शाण्डः राजा”। (सायण),

शाण्डदूर्ध्वी (सं० स्त्री०) पाकदूर्ध्वी, एक प्रकारकी दृष्ट। शाण्डाकी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पशु।

शाण्डिक (सं० पु०) माँदमें रहनेवाला साँडा मामक जन्तु।

शाण्डिक्य (सं० त्रि०) शाण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक (शाण्डिकादिभ्यो भ्यः। वा ४।३।६२) इति इय। जिसका शाण्डिक अभिजन हो, शाण्डिक देशवासी।

शाण्डिल (शाण्डिल्य)—१ अयोध्या प्रदेशके हर्दोई जिलांत

गंत एक तहसील या उपविभाग। यह अक्षा० २६° ५५' से ले कर २७° २१' उ० तथा देशा० ८०° १८' से ले कर ५०°

के बीच पड़ता है। भू-परिमाण ५५७ वर्गमील है। इस-के उत्तरमें हर्दोई और मिथिल, पूर्वमें महू-दावा, दक्षिण-

में मालिहाबाद और मोहन तथा पश्चिममें बिलग्राम तहसील है। शाण्डिल, कल्याणमल, घालामो और

गुन्दाया परगना ले कर यह उपविभाग गठित है। यहाँ चार दीवानो और छः फौजदारी अदालत और चार धाने

हैं।

२ उक्त विभागका एक परगना। भू-परिमाण ३२६ वर्गमील है। यहाँका अधिकांश स्थान ही जङ्गल और

चालुकामय प्रान्तसे पूर्ण है। सिक^र १७० वर्गमील स्थान आवाद है। जी, गेहूँ, बाजरा, चना, मरहर, उड़द, ज्वार, ऊँद, ईल, पोस्ता, तमाकू, नील और चावल

यहाँकी प्रधान उपज है। इस परगनेमें २१३ गाँव लगते हैं जिनमें ८२ गाँव राजपूतके अधिकारमें, ८१ मुसलमान-

के और ४१ गाँव कायस्थके अधिकारमें हैं।

३ उक्त जिलेका एक नगर तथा शाण्डिल उपविभागका

शब्दमिति (सं० पु०) १ अर्धप्रतिगाथाका एक वृत्तिकार । २ शब्दमिताका गोतापरव्य ।

शब्दमिविधि (सं० पु०) शब्द और लिखित श्रविका पर्यायशब्द समन्वयो ।

शब्दावयव (सं० पु०) शब्दस्य गोतापरव्यं शब्द (अर्धप्रतिगाथाका) कम् । वा ४।१।१० इति कम् । एक शृङ्ग और शीत-वृत्तकार श्रविति । इनका कीर्तनकीप्रमाण मी है ।

शब्दावयव (सं० पु०) शब्दावयवस्य गोतापरव्यं शब्दावयव (शीत वृत्तस्य कम् । वा ४।१।१८ इति कम् । शब्दावयवका गोतापरव्य ।

शब्दाविरि (सं० पु०) शब्द वेचनेवालो जाति ।

शब्दार्थक (सं० पु०) शब्दकरणं शिवात्मक इति शब्द-अर्थक । १ शब्द बगाने और वेचनेवाला । पर्याय—कामरिक्त, शब्द-कार, कामरक्त । २ शब्दार्थक, शब्द बजानेवाला । पर्याय—शब्दध्या । (मत्पर)

(ति०) ३ शब्द-समन्वयो । ४ शब्दका बना हुआ ।

शब्दित (सं० पु०) शब्दितोपरव्यं शब्दित (धर्मोपादि-भ्यन् । वा ६।१।६६ इति मण् । शब्दोका अवरव्य ।

शब्दिका (सं० पु०) शब्दस्य गोतापरव्यं शब्द (शब्दोदिभ्यो यञ् । वा ४।१।१५ इति मण् । १ शब्दका गोतापरव्य (ति०) २ शब्द-समन्वयो, शब्दका बना हुआ ।

शब्दिका (सं० स्त्री०) शब्दिका देवो ।

शब्दिक (सं० पु०) १ शब्द । २ शक । ३ प्रणवान । (शब्द ८।१।१२)

शब्दिक (सं० ति०) १ शक गामोयुक्त, जिसकी गाय सब काममें समर्थ हो । २ विषयात् गामोयुक्त ।

(शब्द ८।१।१२)

शब्दो (सं० स्त्री०) शब्दोक्त शक, एक प्रकारका साग ।

(शब्दो ६ म०)

शब्द (सं० पु०) १ शब्दभेद, यह कवचता जो कममें लपेट कर पहना जा सके, धोती । २ कपड़े का टुकड़ा । ३ एक प्रकारकी बुरती । ४ टोला टाला पहनावा ।

शब्दक (सं० पु० श्लो०) शब्द स्वार्थ-कम् । १ शब्द, शब्द । ५ शब्दकभेद । (मत्पर)

शब्दिका (सं० स्त्री०) १ साड़ी, धोती । २ कनूत ।

शब्दो (सं० स्त्री०) साड़ी, धोती ।

शब्द (सं० ति०) शब्दोक्तिभेदप्रत्यय शब्द (शब्दोक्तिभ्यो म्यः । वा ४।३।६२) इति म्यः । १ शिवाका शब्द भविजन हो । (पु०) २ शब्दका गोतापरव्य ।

(पर्यायिनि ४।१।१५)

शब्दावयव (सं० श्लो०) १ दोमभेद, शब्दावयवदोम, प्रवृत्ति-कर्म यैमुप्य प्रयामनायां दोमविशेष । विवाद और मन-प्रतिष्ठा भादि कर्मोंमें जो दोम करनेको कहा गया है, उसे प्रवृत्तकर्म कहते हैं । प्रवृत्त कर्म करनेमें यदि स्रम और प्रमाद्वयगतः कोई त्रुटि हो जाय, तो उस त्रुटिको दूर करनेके लिये जो दोम करना होता है उसे शब्दावयवदोम कहते हैं । भयदेवमह्ये प्रवृत्तकर्मके यैमुप्य समाधानके लिये यह दोम करने कहा है । शिष्टु इति भट्टनारायण भादि स्वोकार नहीं करते । उन लोगोंका कहना है, कि प्रायश्चित्तके लिये यह दोम करना होता है । प्रवृत्त कर्ममें यदि स्रम हो जाय, तो उसके प्रायश्चित्तके लिये यह दोम करे ।

(पु०) २ मुनियशेष ।

शब्दावयवक (सं० श्लो०) शब्दावयवदोमकर्म ।

शब्दावयवि (सं० पु०) शब्दावयवस्य गोतापरव्यं शब्दावयव (विचारिभ्यः ङिम् । वा ४।१।१५४) इति ङिम् । शब्दावयविका गोतापरव्य । (इतरपथां ८।१।४।६)

शब्दावयविन् (सं० पु०) शब्दावयवस्य यन्मोकं शब्दावयव (पुराण्योकेषु ऋषयश्चरैषु । वा ४।३।१०५) इति ङिनि । शब्दावयवमोक एक उपनिषद् ।

शब्दावयव (सं० पु०) शब्दका गोतापरव्य ।

शब्दावयव (सं० पु०) शब्दका गोतापरव्य ।

(पर्यायिनि ४।१।१८)

शब्द (सं० श्लो०) शब्दस्य भावः शब्दत्वम् । शब्दता, धूर्तता, कवचता, कर्मज्ञता । पर्याय—कवच, शक्ति, शक्ति, उपाधि, उद्यम, कर्म, कुसृष्टि, निवृत्ति इन भी अर्थवाच्य व्यवहारकी शब्द कहने हैं । भगवदोक्तो मरणने लिखा है,—पूर्वोक्त पर्यायोंमें कवच भादि उः उपाधोंमें तथा कृत्स्नि भादि तीन विषयकीटिद्धयो व्यवहार होता है । यह बात कोई कोई कहते हैं । इनमें से यह है, कि कवच, शक्ति भादि उः अर्थवाचकत्व तथा कृत्स्नि भादि तीन

द्विसामान्य फल है; किन्तु बहुतांका मत है, कि ये नी एक अंशमें व्यवहृत होने हैं।

चाणक्यपरिचितने चाणक्यप्रश्लोकमें लिखा है, कि जो शठ है, उसके प्रति शठताचरण करना ही युक्तियुक्त है। कूटिल व्यक्तिके प्रति सरलतानोति शास्त्रविमोहित है।

‘शठे शाठ्यं समाचरेत्’ (चाणक्य)

शाठ्यवत् (सं० त्रि०) शाठ्यं विधत्ते ऽस्य मत्तुप् मस्य व। शाठ्ययुक्त, शठनाविशिष्ट, शठ, घूर्त।

(बृहत्संहिता ६८।५५)

शाड्वल (सं० पु०) शाड्वल देखो।

शाण (सं० स्त्री०) शणेन निर्मितमिति शण-अण्। १ शण-निर्मित वस्त्र, सनके रेशीका बना हुआ कपड़ा, भौगरा।

(पु०) २ पयते क्षायते गुणादिरत्नेति शण घञ्।

२ कपपट्टिका, कसीटी। पर्याय—निकय, कय, शान, निकस, कस, आकय। ३ हथियारोंकी धार तेज करनेका पत्थर, सान। ४ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तील। (भावप्रकाश) (त्रि०) ५ सनके पीछेसे सम्बन्ध रखनेवाला। ६ सनका बना हुआ।

शाणक (सं० पु०) शण-अण् स्वाये कञ्। शणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशीका बना हुआ कपड़ा, भौगरा।

शाणकवास (सं० पु०) शाणक देखो।

शाणकाद् (सं० पु०) १ पर्यंतविशेष। (हरिवंश) २ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तील।

शाणकवत्य (सं० पु०) जनपदविशेष। भारत)

शाणवास (सं० पु०) १ वह जो सनका बुना हुआ वस्त्र पहने। २ एक अहंत्का नाम।

शाणाजीव (सं० पु०) शाणेन आजोवतीति आ-जीव-अच्। अन्नमाजक, वह जो हथियारोंमें सान देनेका काम करता है।

शाणि (सं० पु०) पट्टरुद्र, पट्टभा।

शाणिक (सं० त्रि०) राजाभौंका सम्बन्धी।

शाणित (सं० त्रि०) शाण इत्च्। १ सान रखा हुआ, सीना या तेज किया हुआ। २ कसीटी पर घसा हुआ।

शाणो (सं० स्त्री०) शाणस्य विकारः शण-अण-ङोप्। १ शणसूत्रमयी पट्टिका, सनके रेशीसे बुना हुआ कपड़ा,

भंगरा। २ वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीतके समय ब्राह्मचारीकी पहननेके लिये दिया जाताहै। ३ छिनवस्त्र, फटाहुआ कपड़ा, चौपड़ा। ४ सान। ५ कसीटी। ६ छोटा सेमा या पर्दा।

शाणीर (सं० स्त्री०) शोणनद् मध्यस्थित तट, वईरी नदीका किनारा।

शाणीचरीय (सं० पु०) पाणिनि मुनिका एक नाम।

शाणाचरीय देखो।

शाण्ड—एक राजा। ‘शाण्डो दाक्षिणिनः’ (शुक-ईदृशे) ‘शाण्डः राजा’। (सायण)

शाण्डदूर्वा (सं० स्त्री०) पाकदूर्वा, एक प्रकारकी दूध।

शाण्डाकी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पशु।

शाण्डिक (सं० पु०) मार्दमें रहनेवाला सांडा नामक जन्तु।

शाण्डिक्य (सं० त्रि०) शाण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक (शाण्डिकादिभ्यो ष्याः)। वा. ४।३।६२) इति ऋय। जिसका शाण्डिक अभिजन हो, शाण्डिक देशवासी।

शाण्डिल (शाण्डिल्य) — १ अयोध्या प्रदेशके हर्द्वी जिलालंत गंत एक तहसील या उपविभाग। यह अक्षां २६° ५३' से ले कर २७° २१' उ० तथा देशां ८०° १८' से ले कर ५०° के बीच पड़ता है। भू-परिमाण ५५७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें हर्द्वी और मिथिल, पूर्वमें मल्लू-राज्य, दक्षिणमें मालिहाबाद और मोहन तथा पश्चिममें धिलप्राम तहसील हैं। शाण्डिल, कल्याणमल, बालामी और मुन्दाया परगना ले कर यह उपविभाग गठित है। यहाँ चार दीवानो और छः फौजदारी अदालत और चार थाने हैं।

२ उक्त विभागका एक परगना। भू-परिमाण ३२६ वर्गमील है। यहाँका अधिकांश स्थान ही जङ्गल और बालुकामय प्रातरसे पूर्ण है। सिक् १७० वर्गमील स्थान धाबाद है। जी, गेहूँ, बाजरा, चना, अरहर, उड़द, जवार, ऊँह, ईल, पोस्ता, तमाकू, नील और चावल यहाँकी प्रधान उपज है। इस परगनेमें २१३ गाँव लगते हैं जिनमें ८२ गाँव राजपूतके अधिकारमें, ८१ मुसलमानके और ४१ गाँव कायस्थके अधिकारमें है।

३ उक्त जिलेका एक नगर तथा शाण्डिल उपविभागका

विद्यार-मन्दर । यह असा २७ ७ १५ ३० तथा
 दिना ८० ३३ २० ५० लगनऊ जहमें ३२ मील
 उपा पश्चिममें तथा दर्शमें ३४ मील दक्षिण-पूर्वमें मय-
 स्थित है । यहां शुक्तिमण्डिदि है । धीमस्त्रिमें
 इस मण्डले दर्शित सिद्धिका द्वितीय तथा रामप्र मयोप्या-
 प्रवेजता मनुमें म्याम अधिकार किया है । यहां प्रज-
 तस्यके आदर्श कोरे भी पस्तु नदी है । प्राया दो सौ वर्ष
 हुए यहां "वारद पाम्ना" मयान् वारद स्वाम्ना सम्बलित
 एक पत्थरका पारथना था । पिठपात सिवाहीपुत्रके
 समय यहां १८५८ ई०को ईश्री और ०री मयपूरको दो
 सुगुप्त युद्ध हुए ।

यहां सनाहमें दो दिम हाट लगती है । इस हाटमें
 पान और चीन्हे काको बिक्री होती है । मयध देशिल-
 लण्ड देशपमका यहां एक स्टेशन रहनेसे उक्त प्रथाविकी
 रूपनमीमें बड़ी ही सुविधा हुई है ।

जाण्डिये (सं० खरी०) एक ब्राह्मणी जो मलिकी माता
 नाम कर पुत्री जाती थी । (महामात)

जाण्डिये (सं० पु०) जाण्डियेस्य मुनेर्गोलापरव' अ'जिल
 (गार्दिस्को स्यु । पा ४१११०५) इति यत् । १ जाण्डिल
 मुनिने कुलमें इतरग्न पुत्रप । २ गोतमयसके मयिमेद ।
 ३ सारवृषाके ब्राह्मणके तीन प्रधान गोत्रोंमेंसे एक गोत्र ।
 ४ एक मुनि । इनकी स्त्री एक स्त्रुति है और यह मकि
 युद्धके कर्त्ता माने जाते हैं । ५ धीकन, वेत्त । ६ मनि ।

जाण्डिये-१ एक प्राचीन कवि । २ इतरसेनशासी एक
 सुप्रसिद्ध । लाहमके पुत्र गोविन्दने ११२० ई०में इनके
 स्वेयसः प्रथमकी बाल्येय नामने टंका लिकी । ३
 महाभारतकी टीकाके प्रणेता । ये जाण्डियेस्य-लक्ष्मण
 नामने परिचित थे । ४ जाण्डियेस्यस्य या मलिकीमांसा-
 मृतके प्रणेता एक मयि । जाण्डियेस्यमिपिबु और
 जाण्डियेस्यस्यमि नामक दो प्रथम इसी नामके किस्से मयि
 द्वारा मनुजित थे ।

जाण्डियेस्यस्य (सं० पु०) एक प्रसिद्ध टंकाकार ।

जाण्डियेस्यस्य (सं० पु०) जाण्डियेस्य मुनिका गोत्रापरव ।
 (म० म० टी० ४११०५)

जाण्डियेस्यस्य (सं० ति०) जाण्डियेस्य मुनिका मय-
 मय म्याम मयि ।

जाण्य (सं० ति०) जाण्य-पत् । जाण्य-सम्बन्धी ।
 जाण्य (सं० खरी०) जो क. (साय्नीस्यपरव्यो । पा ४१४१)
 इति यशे इत्यमांसा । १ सुजा । २ पुमपूर वृत्त, मयुरैरा
 पेड । (ति०) ३ सुधी, सुजसुजा । ४ दिनाजो । (मुसुत्त
 ४५) ४ पातन, पयन, जाणित, साम रवा हुमा, तैत
 क्रिया हुमा । ५ दुष्यंत, हना । ६ सुन्दर । ७ प्रमावनीय,
 शीतिमात्र ।

जाणक (सं० पु०) १ राजमेद । (मयैपदेवपु ५८५१)
 (ति०) जाणक-मय । २ जाणक-सम्बन्धी ।

जाणकणि (सं० पु०) १ मुनिवियेय, जाणकणिचा गोत्रा-
 परव । (विष्णुपु० ४१४१२) २ एक भातकृषिक । मनुजने
 इनका पयन उद्धृत किया है ।

जाणकणि—श्राशिनार्यके मयमभूतवर्षकीय बई एक राजे ।
 पहले राजा धीमातकणि या धीमातकणि, दूसरे जाण-
 कणि, तीसरे सुन्दर जाणकणि या सुनन्द, चौथे मयैरा
 जाणकणि, पांचवे मयिधो जाणकणि या मयिधुव
 जाणकणि, छठे मयिधो जाणकणि तथा सातवें मयिधो
 या दशमो जाणकणि नामसे विख्यात थे । विष्णु, मायु,
 मरुत, प्रजापद और मयवतपुराणमें इन राजाओंके नाम
 कुछ परिवर्तित मयमें देखे जाते हैं । ये सातवाहनवंशीय
 कहलाते हैं । नामाघाटकी जिन्हाजिपिसे जाना जाता है,
 कि राजा १म जाणकणि मयुवर्ष २री सदीमें मयिधु १८००
 १६३ मयुवर्षपर्यंत मयित थे । इनकी महिषीका नाम मं
 मयिधिका । हातीमुकामें जो जिन्हाफलक मिलता है, उसमें
 जिन्हा है, कि मयिधुका नाम मयिधेसने मयने राशयकातके
 दूसरे वर्ण मयप्रजात जाणकणिसे राजकर सम्यक्त किया
 था । भारतवर्ष देवो ।

जाणकुम्भ (सं० खरी०) जाणकुम्भे वर्धने मयं जाणकुम्भ-
 मय । १ काश्चन, सुवर्ण, मीमा । (पु०) २ पुमपूर
 वृत्त, मयुरैरा पेड । ३ करवीर वृत्त, मयैरका पेड ।
 ४ कयगार वृत्त ।

जाणकुम्भमय (सं० पु०) जाणकुम्भमय विचार, विचारै
 मय । सुवर्णविचार, सोमिका बना हुमा मयपूर
 मयि ।

जाणकीम (सं० खरी०) १ मयि, मीमा । (ति०)
 २ सोमिका बना हुमा ।

शातकृत्य (सं० पु०) इन्द्रधनुज ।
शातद्वारिव (सं० पु०) शतद्वारस्य गोत्रापत्यं शतद्वार
(शुमादिभ्यश्च । पा ४।१।१२३) इति ठक् । शतद्वारका
गोत्रापत्य ।

शातन (सं० पत्नी०) १ सान पर धार तेज करना, चोखा
करना । २ काटना, तराशना, छीलना । ३, पेड़ आदि
कटवाना । ४ सतह बराबर करना, रौंनना । ५ नष्ट
करना । (लि०) ६ छेदक, काटनेवाला । (२पु ३।४२)

शातपत (सं० पु०) शतपति (भक्षयस्यादिभ्यश्च । पा
४।१।८४) इति अण् । शतपतिका अपत्यादि ।

शातपत्र (सं० पत्नी०) शतपत्रमिव शतपत्र (शकं रादिभ्यो-
ऽप्य । पा ५।३।१०७) इति अण् । शतपत्रके समान,
पत्रतुल्य, पत्रसदृश ।

शातपत्रक (सं० पु०) शातपत्रं पत्रमिव कन् । चन्द्रिका,
चाँदीनी ।

शातपथ (सं० लि०) शतपथ-अण् । शतपथप्राहण-
सम्बन्धो । (चरुदारवषकउप० २।४।७)

शातपथिक (सं० पु०) शतपथप्राहणके अधेयोता ।

शातपर्णैय (सं० पु०) शतपर्णका गोत्रापत्य ।

शातपुत्रक (सं० पत्नी०) शतपुत्रस्य भावः कर्माधा, शतपुत्र
(इन्द्रं मनोशादिभ्यश्च । पा ५।१।१२३) इति डुञ् । शतपुत्रका
भाव या कर्मा ।

शातपुरशैल (सतपुरा पर्वत)—मध्यभारतकी एक गिरि-
श्रेणी । यह नर्मदा और ताप्ती नदियोंके मध्यदेश
में अवस्थित है । यह विस्तीर्ण अधित्यका-भूमि पूर्वा-
में अमरकण्टकसे आरम्भ हो कर मध्यप्रदेशके बीचसे
होती हुई पश्चिममें सीराध्वोपकूल तक फैल गई है ।
पहले यह शैल विन्ध्यगिरिका अंश समझा जाता
था । पीछे नर्मदा और ताप्ती उपत्यकाका विभाग-
कारी पर्वतांश शात, राके नामसे विख्यात हुआ । किन्तु
नर्मदाके उत्तरस्थ विन्ध्यपर्वतकी गठन और घेल्पटधर
स्तरराशो पर्व महाद्वैपपर्वत प्रभृति स्थानोंकी (सत-
पुरा पर्वतके विभिन्न अंशोंकी) स्तरगठन पर्वतविश्लेषण
करनेसे देखा जाता है, कि इन दोनों पर्वतोंका प्राकृतिक
स्तरविन्यास सम्पूर्ण स्वतंत्र है । दो बड़ी बड़ी नदियों
द्वारा यह पर्वत्य अधित्यका-भूमि सम्पूर्ण पृथक्, सोमामें

आयक रहने पर भी उनकी पारस्परिक स्वतन्त्रता सूचित
होती है ।

अमरकण्टककी सतपुराकी पूर्वा सोमा मान लेने पर
समस्त पर्वत पूर्वा-पश्चिममें पांच सी. मीलकी लम्बाईमें
फैला हुआ दिखाई पड़ता है । उत्तर-दक्षिणमें उसकी
चौड़ाई कहीं एक सी मील है । अमरकण्टकके निकट
यह पर्वत समुद्रपृष्ठसे ३३२८ फीट ऊँचा है । यहाँसे
एक शाखा दक्षिण-पश्चिमकी ओर १०० मील विस्तृत हो
मण्डार जिलेके साले-तेकी पर्वतमें आ कर मिल गई है ।
यह पर्वतांश मैकालगिरिश्रेणियोंके नामसे वर्णित है और
इस पार्श्वत्यतिकोण अधित्यकाका मूलदेश कहलाता है ।
यहाँसे सतपुरा पर्वतश्रेणी क्रमशः संकुचित हो कर
दो समान्तराल सूक्ष्मकाय पर्वतशाखाके रूपमें पश्चिम-
की ओर चली गई है । ये दोनों पर्वतशाखाएँ ताप्ती
उपत्यकाकी सोमा कहलाती हैं ।

आशोरगढ़के पूर्वाशमें यह पर्वतपृष्ठ अपेक्षातः
निम्न रहनेके कारण इस रास्तेसे प्रेट-इण्डियन-पैसिन्-
सुला रेलवेकी परिचालनाकी बड़ी सुविधा हुई है । इस
पथसे जम्बलपुरसे खान्देशा होतो हुई बम्बईशहर पर्वतगत
मोटर गाड़ी आती जाती है । इस आशोरगढ़ नगर
तक ही सतपुराकी प्रोन्व सोमा है ।

इस पर्वतकी गठनप्रणाली अत्यन्त विचित्र है ।
उत्तरमें विन्ध्यश्रेणी जिस तरह अपनी उचा चूड़ासे
सुन्दर विस्तृत अधित्यकामें अववाहिका विस्तार करती
है, उसी तरह यह पर्वतश्रेणी भी ऋण्ड छण्ड अधित्य-
काएँ तथा उपत्यकाएँ ले कर अपनी अववाहिकाओंद्वारा
नर्मदा तथा ताप्ती नदियोंके फलेबरफो पुष्ट करती है ।
मण्डला जिलेमें उत्तरकी ओर दो यह पर्वत अधिक
ढालवाँ है । यहाँ पर्वतपृष्ठ पर चार प्रधान उपत्यकाएँ
हैं । इन चारों उपत्यकाओंसे चार नदियाँ पार्श्वत्य
अववाहिकाओंका जल ले कर नर्मदामें मिलती है । पश्चि-
मांशकी उपत्यकाओंकी अपेक्षा पूर्वांशकी उपत्यकाएँ
कुछ ऊँची हैं, इस कारण शेषाल स्थानको ब्रह्मराशि-
का घेग कुछ अधिक है और उसीसे स्रोतका घेग भी
तीव्र हो जाता है । घारमेर और बुढ़नेर नामक दो
शाखा नदियोंका पर्वतांश पृथलतारहित पर्वत सुविस्तृत

प्रत्यास्फुरणविद्युत है। उक्त क्षेत्रमें ही मानसून पड़ता है, कि उद्यानासुप्तो वर्षाको मर्मिभूत रातक्रिया द्वारा ही यह हम तरह गटिन हुआ है। क्योंकि, उसके चूड़ाक्षेत्रमें केवल दिनाश्ट और लेटाशाश्ट प्रत्यास्फुरण ही होता पड़ने है। श्रीदाशर नामकी अधिरथका-भूमि समुद्रपृष्ठमें ३३० फीट ऊँची और पाँच यार्डोत्त विस्तृत है।

नियन्त्रो जिलेमें हम पर्यंतपृष्ठ पर नियन्त्रो और लक्षणा-दोन नामकी दो अधिरथकाएँ हैं। ये १८००से २२२० फीट पर्यंत ऊँची हैं। इस क्षेत्रमागमें पर्यंत उनरही दक्षिणकी ओर टान्ठ ही गया है। इसकी दो भवयादि-कामीकी मध्यपक्षों नियन्त्रुमिमें येनांगमा गरी निचल है। (उत्पदादा जिलेमें भी पर्यंत दक्षिणकी ओर टान्ठवाँ है। यहाँ येँच और कोन्डरीडा नदीकी पार्श्व उपरथका है। यह समुद्रकी सतहसे २२०० फीट ऊँची है। चिन्नु मोदुकी अधिरथका ३५०० फीट ऊँची है। देन्लु जिलेमें भी यह कमसे दक्षिणकी ओर टालवाँ है। यहाँमें तातो नदी निकली है। इसके बाद उस पार्श्वपथका की पार कर तातो नदी प्रसार क्षेत्रसे बहती है। इस जिलेके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें यामना पर्यंत है जो समुद्रपृष्ठमें ३००० फुट ऊँचा है। उत्तर नामपुराकी चरँ एक नामाएँ दृग्गंगाबाद जिलेके अधिकांश स्थानोंमें फैली हुई है। भूगण्ड (४४५४ फुट) यहाँका सबसे ऊँचा निगर है। पाँचमाही नामक अधिरथका-भूमि समुद्र-पृष्ठमें ३४८१ फीट ऊँची एवं प्रायः १२ यार्डोत्तमें फैली हुई है। यह पर्यंतानके प्राकृतिक सोन्धुर्चसे परि-पूर्ण है।

हुरंगबादके दक्षिण क्षेत्रपाथर और उद्गुगोर्ण प्रत्यरीभूत स्तर (Metamorphic rocks) दृष्टिगोचर होता है। यह प्रत्यसे केल्न और पाँचमाही पर्यंतमाया पर्यंत विस्तृत है। इसके पूर्व Trap नामक परथर रिभाई पड़ता है। निगर जिलेमें यह पर्यंत तातो और नर्मदा नदीकी उपरथकाकी विमल करता है। इस स्थान पर यह १८ मील चौड़ा है। यहाँके पर्यंत पर पृष्ठनादादि दृष्टिगोचर नहीं होती। इस पर्यंतानके सर्वोच्च श्रेण पर विषयक मातोरेण्ड दुर्ग भवविद्युत है। कर्जोरेण्ड में तमपुरा पर्यंत ऊपर उटनेमें जिन भागमें ऊपर है,

उत्ते तातोके दक्षिणी किनारे बाढ़े दो कर क्षेत्रमें अनु-मान होता है, मातो रणकुडाएँ पोट्टुन् रणकी कतिना में गम्भीर भावसे श्रेणीयऊ ही यह लप्टे ही। दक्षिणमें तातो नदी 'बलकल' नाम करती हुई तीरमतिसे प्रवाहित हो रही है। उक्त पार कर दक्षिणपथमें प्रवेग बना करकर समक कर ही मातो तमपुरा पर्यंत फिर दक्षिण की ओर अग्रसर गरीं हुआ। तातोके उत्तरोप किनारेसे एक एक करके श्रेणसमूह क्रमशः २००० फीट ऊँचा हो गया है। इस पर्यंतके सबसे पश्चिमके प्रायः बरहसे भागका जालका रास्ता है। यह बरहसे भागका श्रेणकोशके नामसे विख्यात है।

इस पर्यंत पर ३०००से ले कर ३८०० फीट तक जिलेमें ऊँचे निगर है, उनमें तुल्यमन्थ सबसे अधिक रमणोप है। यह अधिरथका अधिक दृष्ट्यापी न होने पर भी लंबाईमें प्रायः १६ यार्डोत्त तक फैली हुई है। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे ३३०० फीट ऊँचा है। तुल्यमन्थके पश्चिम पर्यंतश्रेण फिर सभी हुई सेना-की तरह गरीबा और तातोके सामने प्रकृ है।

नर्मदा और तातो नदीके तीर तथा उनके पान-पानी पर्यंतश्रेणी क्षेत्रमण्डलीकी बिहारभूमि कदाचित्में विषयशैलका यह अंश शातपुर (गतपुरा) नामसे भी जिया जाता है। विन्पर्यंत देता।

मध्यप्रदेशके नियन्त्रो, (उत्पदादा और मागपुर जिलेमें) नामपुरा पर्यंतका जो दक्षिण टालवाँ प्रदेश देता हुआ है, उसके ऊपरके जट्टनकी रसा गणर्मिष्ट द्वारा होती है एवं कामजपक्षोंमें उसका नाम 'नागपुरावतमाया' जिया जाता है। इसका भूगर्भमात्र १००० यार्डोत्त है। मान और सागशान्द इस चरी बहुत मिलते हैं। बड़े बड़े जाल पृष्ठ काट लिये गये हैं और छोटे छोटे देशोंकी चारगिरी की जाती है। सोनाबरी और सुदादा नामके स्थानमें जालकी खोजें होती लगी है।

नागमिथ (सं० जि०) नागमिथा मन्। नागमिथा मन्थ मन्थको। (प ४३५)
 नागमिथक (सं० जि०) नागमिथकजाल।
 (केपि ४३५)
 नागमिथ (सं० पु०) मन्थको, मन्थनामी।

शातमन्येय (सं० लि०) शतमन्यु-अण् । शतमन्यु
सम्बन्धी, इन्द्र-सम्बन्धी ।

शातमान (सं० लि०) शतमानेन क्रीते शतमान (शतमान-
विश्रुतिकेति । पा १।१।२७) इति अण् । शतमान द्वारा
क्रीते, सौं दे कर जो खरोदा गया हो ।

शातारात्तक (सं० लि०) शतरात्तमय, सौं रातमें होने
घाला । (हात्पाथनयसं २।६।१४)

शातला (सं० स्त्री०) शातं छेदं लातीति, ला-क ।

शातला देखो ।

शातलेय (सं० पुं०) शातल-ठक् । शातलका मोलापरय ।
(पा ४।१।२३)

शातवनेय (सं० पुं०) सौं यश्च करनेवालेका पुत्र । जो
सौं यश्च करते हैं, वे शतवनि कहलाते हैं । शतवनिका
अपरय शातवनेय है । "शातवनेये शतिनोभिरनिःपुत्र-
नीये" (ऋक् १।५।६७) 'शातवनेये शतसंघयकान् कन्दून्
वनति सम्भ्रजत इति शतवनिः तस्य पुत्रः शातवनेयः ।'
(भाष्य)

शातवाहन (सं० पुं०) एक राजाका नाम ।

शालिवाहन देखो ।

शातशूर्पा (सं० पुं०) एक आयुर्वेददाचार्यका नाम ।

शातशृङ्गेय (सं० पुं०) मेरुके उत्तर भवस्थित एक
पर्वत । (मार्क० पुं० ५।५।१३)

शातहर (सं० लि०) विद्युत सम्बन्धी, विज्रलोका ।

शातातप (सं० पुं०) एक संहिताकार ऋषिका नाम ।

"शातातपो वशिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः ।"

(भाद्रतत्त्व)

शातातप आदि ऋषि धर्मशास्त्रप्रयोजक हैं । आद्रमें
गिएड देनेके सम्बन्ध इनका नाम लेना होता है । शाता-
तप ऋषिने जो धर्मशास्त्र लिखा, उसका नाम शातातप-
संहिता है । यह संहिता छः अध्यायमें सम्पूर्ण है ।
सर्वं पाण्डित्यवने इसका उल्लेख किया है । हेमाद्रि
और विश्वामित्रके ग्रन्थमें भी शातातपस्मृतिका चर्चन
उद्धृत है । बृहद् शातातपके चर्चन भी हलायुध, हेमाद्रि
आदि उद्धृत कर गये हैं ।

शातातपीय (सं० लि०) शातातप-सम्बन्धी, शातातप-
प्रणीत कर्मविपाकः । कौन-कर्म करनेसे कैसा नरक

तथा; नरक भोग करनेके बाद कौन कौन रोग और
जन्म होता है, शातातपीय कर्मविपाकमें इसका विशेष
रूपसे वर्णन है । कर्मविपाक देखो ।

शाताहर (सं० पुं०) शताहरका मोलापरय ।

(पा ४।१।२३)

शाताहरेय (सं० पुं०) शाताहरका मोलापरय ।

शातिन् (सं० लि०) छेदक, काटनेवाला । (रघु ३।४३)

शातिर (अ० वि०) १ घालाक, चतुर, वस्ताद । २ निपुण,
दक्ष । (पुं०) ३ इत । ४ शतरंजका खिलाड़ी ।

शातोदार (सं० लि०) १ पतली कमरवाला । २ स्त्रीण,
पतला ।

शातोदरी (सं० स्त्री०) १ पतली कमरवाली । २ स्त्रीण,
पतली ।

शातत्रय (सं० स्त्री०) शत्रोर्मायः समूहो वा शत्रु अण् ।
१ शत्रुत्व, शत्रुता । २ शत्रुसंहति, शत्रुबोका समूह ।

(पुं०) शत्रुत्व स्वार्थे अण् । ३ शत्रु, दुश्मन । (लि०)
४ शत्रु-सम्बन्धी । (रघु ४।४२)

शातृन्तपि (सं० पुं०) शत्रुन्तप जनपदशास्त्रिमेव ।

शातृन्तपीय (सं० पुं०) शत्रुन्तपि जनपदका राजा ।

शाद (सं० पुं०) शां तनुकरणे (साधयिष्यां दन्ती ।
वण् ४।६७) इति-द । १ कहंम, कीचड़ । २ दूध;
घास ।

शाद (फा० वि०) १ खुश, प्रसन्न । २ परिपूर्ण, भरापूरा ।

शादन (सं० पुं०) पतन, गिरना, पड़ना ।

शादमान (फा० वि०) प्रसन्न, खुश ।

शादमान खाँ—एक गफ़र सरदार ।

शादमानो (फा० स्त्री०) प्रसन्नता, खुश ।

शादहरित (सं० लि०) शादीः शप्यैः हरितः । शद्लः,
हरितं तुण या दूरांसि युक्तं, ह्यमरा ।

शादा (सं० स्त्री०) ईंट ।

शादाष (फा० वि०) हरामरा, सरसब्ज, तरोताजा ।

शादियाना (फा० पुं०) आनन्द मंगलखुशका याच,
खुशीका दाजा । २ गधावा, बघाई । ३ यह घन जो
किस्तान जमींदारकी बगानके अगसर पर देते हैं ।

शादी (फा० स्त्री०) १ खुशी, प्रसन्नता, आनन्द । २
आनन्दोत्सव । ३ विवाह, ब्याह ।

२५॥ अक्षांशसे प्रथम-उपसागरके उपकूल पर्यन्त १३॥० अक्षांशमें इनका वास देखा जाता है । मणिपुर नदीकी उपत्यकाभूमि, खेन्दघेन, इरावती, शालविन और मेनम नदीकी शाखाप्रशाखाके किनारे इस जातिका वास है । श्यामदेशीय भाषाओंमें इन्हें 'लै' कहने हैं तथा लेयस, शान, आहोम और खामती नामक चार प्रधान विभागोंमें ये लोग विभक्त हैं । 'कहो' 'कहो' ये छोटी छोटी शाखामें विभक्त हो कर एक एक क्षुद्रवंशरूपमें गिने गये हैं । आज भी इरावतीके किनारेसे ले कर आनमराज्यकी पर्वतमाला पर्यन्त समस्त भूमण शानजातिके अधिभूत हैं । चीनसीमासे श्यामोपसागर तीर पर्यन्त भूखण्ड-वासी समस्त शलजातिको यदि एकत्र सम्मिश्रित किया जाय, तो पूर्व-पश्चिमाकी एक बड़ी शक्तिमें इनकी गिनती हो सकती है ।

प्रथमवासीको मध्यमें एक उत्तर-पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण-पश्चिममें परिक्रम करनेसे आसाम और ब्रह्म-पुत्रकी तीरभूमि, मणिपुरराज्य, यूनानप्रदेश, चाङ्क और कश्मीर आदि स्थानोंमें बहुसंख्यक शानजातिका वास देखा जाता है । ये लोग सबसे सब दौडधर्माचलन्व्यो हैं, सभी बहुत कुछ सुसम्पन्न हैं, भाषा सर्वोकी प्रायः एक-सी है । परन्तु स्थानभेदसे भाषाओंमें कुछ पृथक्ता देखी जाती है ।

श्यामवासी शानजातिकी तरह अन्यान्य स्थानवासी शानजातियोंमें भी किंवदन्ती है, कि ये लोग किसी समय एक बलशाली जाति समझे जाते थे । ब्रह्मराज्यके उत्तर उनका राज्य भी था, किन्तु दैवदुर्विपाकसे ये लोग उस राज्यसे परिस्रष्ट हो नाना स्थानोंमें खण्ड खण्ड भावमें विच्छिन्न हो गये हैं । कालधर्मसे मानो किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है । प्रत्येक विभागमें एक एक सरदार है तथा कोई कोई राज्य सामन्तराज्यके अधीन हो गया है । एकमात्र श्यामराज्य ही शानजातिकी अतीत स्वाधीनताकी रक्षा करता आ रहा है । उत्तरमें जितने सामन्तसरदार हैं, वे सभी इस समय अङ्गरेजराजके अधीन हैं । लुङ्-यु वे, मुये लात्, मोने, लेग्ग, थेचिन्ने, मोरगियेत्, युङ् वेग, कीङ्गमा मैङ्ग मैङ्ग, मैङ्ग, लेङ्ग-ये, कीङ्ग, डङ्ग, कैङ्ग-ङ्ग और कैङ्ग खेन नामक स्थानवासी शान-

सामन्त ब्रह्मराजको कर देते थे । उक्त स्थानोंमेंसे कुछ शालविन नदीके पूर्वी और पश्चिमी किनारे अवस्थित हैं । कुवाँ—उपत्यका, नामकाथे या मणिपुर नदीतट, इरा-चतीके दक्षिण तीरस्थ नामके नामक स्थानमें मेनम नदीके किनारे शानराज्य है । ये सब राज्य पर्वतके गभीर जङ्गलमें अवस्थित हैं तथा सहजमें इन पर आक्रमण नहीं किया जा सकता । मणिपुरीभाषाओंमें शानजातिको कुवो या कवु कहने हैं ।

श्यामराज्यका लेउसविभागमें एक शानराज्य है । यहांके अधिवासी उत्तर इरावतीके किनारे बसनेवाली सिंगको नामक ब्रह्मजातिसे मिश्रित हैं, फिर भी दक्षिण-के शानगण आज भी अपनेकी छोट-से बतला कर गौरव प्रकट करते हैं । ये लोग प्रकृत लेउसवासी शानोंका बङ्गती मानते हैं । पहले ये लोग कम्बोजपतिके अधीन थे, पर १३५० ई०में स्वाधीन हो गये ।

१३वीं सदीमें उत्तर-इरावती देशमें ली नामकी एक जातिने अपनी प्रतिभासे नाना देशोंको फतह किया । मुङ्ग-गोङ्ग नगरमें उनकी राजधानी थी । १२२४ ई०में उन लोगोंने आसामको जीत कर आहोम राजवंशको प्रतिष्ठा की थी । मेङ्गोङ्ग और मेनम नदीके मुदाने पर तथा यूनान प्रदेशके कुछ अंशोंमें इन आहोमोंका आदि-वास था । मताभरसे उत्तर-पश्चिम भागके आहोम १२वीं सदीमें आसाम आये । इसी समय श्यामवासी श्यामराज्योंमें चले गये । १२२८ ई०में पोङ्गराज चुकाफा-ने सबसे पहले आहोमकी उपाधि ग्रहण की । पीछे उन लोगोंने दलबलके साथ आ कर उपत्यकाका जीता और खामतीमें राजधानी बसाई । इसी समयसे आहोमोंका प्रभाव बढ़ता गया तथा वे आहोम नामसे प्रसिद्ध हुए ।

आहोम देखो ।

भामो नगरके उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें जो सब शान जातियाँ रहती हैं उनकी तथा चीनसीमास्थित ली जातिकी भाषाके साथ श्याम भाषाका बहुत कुछ संबंध देखा जाता है । किन्तु यूनानको चीनभाषाके साथ ली लोगोंकी भाषा नहीं मिलती । विस्तृत विवरण श्याम शब्दमें देखो ।

शानजाति कर्मांड और बलवान् तथा इनकी जाक

शादी (सादी)—स्वनामप्रसिद्ध एक पारसो कवि । ये कवि-जगत्तम उद्योग प्राप्त करने पर भी हाकिमका मुकाबला न कर सके । इनका बसल नाम था शीख मसालह-उद्दीन । ११६४ ई०में सिराज नगरमें इनका जन्म और १२६२ ई०में मृत्यु हुई । पारसपराज शादुविन जंगोंके राज्यकालमें ये मीरूद् थे । राजाके नामकी सार्धकता रखनेके लिये इन्होंने शादी उपाधि दी गई ।

बचपनसे शादीने उपयुक्त ज्ञान हासिल किया । हान-लामके साथ साथ इनके हृदयमें दया और धर्म की प्रबल वाद उमड़ आई । इस कारण इन्होंने दरवेशके वेशमें जीवनका अधिकतर समय बिताया था तथा प्रायः चौदह बार मफाकी यात्रा की । हाकिम देखे ।

शादी खाँ—एक अफगान-सरदार । मुग-सम्राट् बक-वर शाहके सेनापति मलीकुली खाँके साथ इनकी लड़ाई हुई थी ।

शादी ये उजबक—अकबरशाहका एक सेनापति । पातशा नामांमें इसका नाम शादी खाँ शादीवेग और एक हजारों सेनानायक है । इसके पिताका नाम था नजर ये उजबक । इसने मतलब खाँके अधीन तारिखोंके विरुद्ध युद्ध कर बड़ा नाम कमाया ।

शादीवेग सुजायत् खाँ—बादशाह शाहजहाँका एक सेना-पति । इसके पिताका नाम जानिस बहादुर था । शाहजहाँके राज्यकालके ७वें वर्षमें शादी खाँ उपाधिके साथ इसने एकहजारी पद पाया । १२वें वर्षमें यह बाहिकराज नजर महमूद खाँके पास भारतसम्राट्के दूत रूपमें गया । १४वें वर्षमें यह डेढ़ हजारी पद पर और नजरका शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ । इसके कुछ समय बाद घैरात खाँकी मृत्यु होने पर यह दोहजारी मनसबदार और ठाठाना शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ था । १६वें वर्षमें इसने राजकुमार मुआदवखसके साथ बाहिक और बद्रकसानकी ओर युद्ध-यात्रा की । २१वें वर्षमें जब राजा शिपरामकी पदच्युति हुई, तब इसे काबुलका शासनकर्त्ता बनाया गया । दूसरे वर्ष यह राजपुत्र बीरङ्गजेवके साथ कंधहार और घस्त जोतनेके लिये गया था । २३वें वर्षमें यह तीन हजारी पदातिक और द्वाँ हजारी भग्धारोही सेनानायक हुआ तथा इसे मर्यादा-

एक पताका और ढका मिला । इसके दो वर्ष बाद अर्धात् सम्राट् शाहजहाँके राज्यकालके ४५वें वर्षमें यह फिरसे कंधहार जोतनेको गया । सम्राट् शाहजहाँने इसकी युद्धनिपुणता पर विमुग्ध हो काबुल वा इसे साढ़े तीन हजारों पदातिक और तीन हजार भग्धारोही सेनाका नायक बनाया । इस समय उन्होंने शादीवेगकी सुजायत् खाँकी उपाधिले भूषित किया था । इसने फिरसे सम्राट्के २६वें वर्षमें बारासिकोके साथ कंधहार और घस्त खाँके साथ घस्तकी ओर युद्धयात्रा की । इसके कुछ समय बाद ही इसकी मृत्यु हुई ।

शादल (सं० लि०) शाद (नफशादातश्शखच् । पा ५०२ ५५) इति ड्वलच् । १ हरित तृण या पूर्वासे युक्त, हरीमरी घाससे ढका हुआ, हराभरा । भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है,—शादका अर्थ है नई घास । नई घास जहाँ रहती है, वही स्थान शादल कहलाता है । "शादी नयतृणं विद्यतेऽतः शादलः, शब्दवाचिन एव शाद शब्दाद् घलः स्यात् न तु पङ्कवाचिनोऽनभिधानात्" (भरत)

(पु०) २ दूध, हरी घास । ३ बैल, साँड़ ।

शादलवत् (सं० लि०) शादल अस्त्वर्थे मत्पुं मस्वय । शादलविशिष्ट, हराभरा । (पार० पृथ ३१) शादलाम् (सं० पु०) शादलस्य आभास्य भागा यस्य । मन्विय एरिचकमेद, एक प्रकारका हरा कीड़ा ।

(तुभ्रुत् कल्याणो ८ भ०)

शादलित (सं० क्लो०) शादल-इत्च् । शादलरूपता हरा ।

शादलिन (सं० लि०) शादल मस्त्वर्थे इति । शादल-विशिष्ट, हराभरा । (रामायण ४५।१६)

शान (सं० पु०) शान, साम ।

शान (भ० खी०) १ तट्टक मडक, ठाट बाट, सजावट । २ चमत्कार, विशालता, मध्वता । ३ प्रतिष्ठा, इज्जत, मानमर्यादा । ४ गर्वोली चेष्टा, ठसक । ५ शक्ति, करामात, एश्वर्य ।

शान—प्रलराज्यवासी जातिविशेष । ये लोग ती या ती नामसे भी परिचित हैं । मिथुचोन कह कर जो इनकी प्रसिद्धि है । उत्तर चीन, और तिब्बत प्राग्तमें विशेषतः

२५॥ अक्षांशसे श्याम-उपसागरके उपकूल पर्यन्त १३॥० अक्षांशमें इनका वास देखा जाता है । मणिपुर नदीकी उपत्यकाभूमि, खेन्दघेन, इरावती, शालविन् और मेनम नदीकी शाखाप्रशाखाके किनारे इस जातिको वास है । श्यामदेशोय भाषाओंमें इन्हें 'कहने' कहते हैं तथा लेयस, शान, आहोम और खामती नामक चार प्रधान विभागोंमें ये लोग विभक्त हैं । कहीं कहीं ये छोटी छोटी शाखामें विभक्त हो कर एक एक क्षुद्रव्यंशकपमें गिने गये हैं । आज भी इरावतीके किनारेसे ले कर आनमराज्यकी पर्वतमाला पर्यन्त समस्त भूमिका शानजातिके अधिष्ठान है । चीनसीमासे श्यामोपसागर तीर पर्यन्त भूखण्ड-वासी समस्त शलजातिको यदि एकत्र सम्मिलित किया जाय, तो पूर्व-पश्चिमाकी एक बड़ी शक्तिमें इनकी गिनती हो सकती है ।

प्रलयवासीकी मध्यमें एक उत्तर पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण-पश्चिममें परिक्रम करनेसे आसाम और ब्रह्म-पुत्रकी तीरभूमि, मणिपुरराज्य, यूनानप्रदेश, चाङ्कू और कम्बोज आदि स्थानोंमें बहुसंख्यक शानजातिका वास देखा जाता है । ये लोग सबके सब बौद्धधर्मावलम्ब्यो हैं, सभी बहुत कुछ सुसम्पन्न हैं, भाषा सर्वोक्ति प्रायः एक-सी है । परन्तु स्थानभेदसे भाषाओंमें कुछ पृथक्ता देखी जाती है ।

श्यामवासी शानजातिकी तरह अन्याय्य स्थानवासी शानजातिमें भी किंवदन्ती है, कि ये लोग किसी समय एक बलशाली जाति समझे जाते थे । ब्रह्मराज्यके उत्तर उनका राज्य भी था, किन्तु देवदुर्विपाकसे ये लोग उस राज्यसे परिस्रष्ट हो नाना स्थानोंमें छट्ट छण्ड भाषामें विच्छिन्न हो गये हैं । कालधर्मसे मानो किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है । प्रत्येक विभागमें एक एक सरदार है तथा कोई कोई राज्य सामन्तराज्यके अधीन हो गया है । एकमात्र श्यामराज्य ही शानजातिकी अतीत स्वाधीनताकी रक्षा करता आ रहा है । उत्तरमें जितने सामन्तसरदार हैं, वे सभी इस समय अङ्गरेजराजके अधीन हैं । बुङ्-यु वे, मुये लात्, मोने, लेग्वा, येचिन्ने, मोरमित्त, बुङ्-वेन, कीङ्गमा मैङ्ग मैङ्ग, मैङ्ग, लेङ्ग-ये, कीङ्ग, कीङ्ग-न-ङ्ग और कीङ्ग-वेन नामक स्थानवासी शान-

सामन्त ब्रह्मराजको कर देते थे । उक्त स्थानोंमेंसे कुछ शालविन् नदीके पूरबी और पश्चिमी किनारे अवस्थित हैं । कुर्वा—उपत्यका, नामकाये या मणिपुर नदीतट, इरा-वतीके दक्षिण तीरस्थ नामो नामक स्थानमें मेनाम नदीके किनारे शानराज्य है । ये सब राज्ज पर्वतके गभीर जङ्गलमें अवस्थित हैं तथा सहजमें इन पर आक्रमण नहीं किया जा सकता । मणिपुरीभाषाओंमें शानजातिको कुयो या क्यु कहते हैं ।

श्यामराज्यका लेउसविभागमें एक शानराज्य है । यहांके अधिवासी उत्तर इरावतीके किनारे बस्नेवाली सिंगको नामक ब्रह्मजातिसे मिश्रित हैं, फिर भी दक्षिणके शानगण आज भी अपनेकी छोट-ते बतला कर गौरव प्रकट करते हैं । ये लोग प्रकृत लेउसवासी शानोंका वङ्ग-ते मानते हैं । पहले ये लोग कम्बोजपतिके अधीन थे, पर १३५० ई०में स्वाधीन हो गये ।

१३वीं सदीमें उत्तर-इरावती देशमें ली नामकी एक जातिने अपनी प्रतिभासे नाना देशोंको फतह किया । मुङ्ग-गौङ्ग नगरमें उनकी राजधानी थी । १२२४ ई०में उन लोगोंने आसामको जीत कर आहोम राजवंशकी प्रतिष्ठा की थी । मेङ्कोङ्ग और मेनम नदीके मुदाने पर तथा यूनान प्रदेशके कुछ अंशोंमें इन आहोमोंका आदि-वास था । मताभ्रतरसे उत्तर-पश्चिम भागके आहोम १२वीं सदीमें आसाम आये । इसी समय श्यामवासी श्यामराज्यमें चले गये । १२२८ ई०में पोङ्गूराज युकाफाने सबसे पहले आहोमकी उपाधि ग्रहण की । पीछे उन लोगोंने दलबलके साथ आ कर उपत्यकाका जीता और खामतीमें राजधानी बसाई । इसी समयसे आहोमोंका प्रभाव बढ़ता गया तथा वे आहोम नामसे प्रसिद्ध हुए ।

आहोम देलो ।

भाभो नगरके उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें जो सब शान जातियां रहती हैं उनकी तथा चीनसीमास्थित्यन ली जातिकी भाषाके साथ श्याम भाषाका बहुत कुछ संध्य देखा जाता है । किन्तु यूनानकी चीनभाषाके साथ ली लोगोंकी भाषा नहीं मिलती । विस्तृत विवरण श्याम शब्दमें देलो ।

शानजाति कर्माट और बलयान् तथा इनकी भाक

चिपटी होती है। ये लोग चांदीके तथा माना शिल्प-पूर्ण वास्तु बनाना जानते हैं। मन्दालयके दक्षिण-परिम-मरुपं प्रान्तप्रदेशमें टीन मिलता है। यहाँ तथा पागान जिलेमें लोहा भी पाया गया है।

शानदार (फा० पि०) १ मडुकोला, तडुक मडुकवाला, डाट बाटका। २ चमटकारपूर्ण, विशाल, मध्य। ३ गयीली चेष्टासे युक्त, ठसकवाला। ४ धैर्यपूर्ण युक्त, वैभवपूर्ण। शानपाद (सं० पु०) १ पारिपातपर्वत। इस पर्वतका विवरण हरिचंशके १३१ अध्यायमें विधाय रूपसे वर्णित है। २ चन्दन घिसनेका पत्थर।

शानवती—प्राचीन जनपददेश। (भारत २१२११६)

शानमपुष्टि—मगधराज प्रोसिडेन्सीके नेल्डूर जिलेमें फन्दु-फूर तालुकके अन्तर्गत एक गण्डप्राम। प्रामके पूर्य नदीके किनारे सोमेश्वर स्वामीका प्राचीन मन्दिर है। पश्चिममें एक पर्वत पर बहुतेरी पत्थरकी मूर्तियाँ इधर उधर पड़ी हैं।

शानशिला (सं० स्त्री०) शानार्थ शिला। यह पत्थर जिस पर सान दिया जाता है।

शानशीकत (अ० स्त्री०) तडुक-मडुक, डाट-बाट।

शानष्टेट—मगधेराधिपत ब्रह्मराज्यका एक प्रदेश।

शाना (फा० पु०) १ कंधा, कंधी। २ मोट्टा, जवा।

शानाग—मगधराज प्रोसिडेन्सीमें रहनेवाली एक इतर जाति। ये लोग ताड़ी लगानेका काम करते हैं। ये अल्प-देयताको पूजा करते हैं।

शानो (सं० स्त्री०) इन्द्रयाचणी, इनादन।

शानेश्वर (सं० स्त्री) शनैश्वर अणु। शनैश्वर अथवा शानप्रद-सप्तवर्षी।

शाश्वत (सं० स्त्री) शान-क्त (वा दान्तशाश्वतेति। पा ७।२।२७) इति निपातितः। १ उपशममापित, जिसमें वेग, क्षोण या क्रिया न हो, उदरा हुआ, बंद। २ प्रातोपशम, फेई पीड़ा, रोग, मानसिक वेग आदि जो जारी न हो; बंद, मिटा हुआ। ३ पर्याय—शमित, शाश्वत, जितेन्द्रिय। ३ जिसमें मोक्ष आदिका वेग न रह गया हो, जिसमें जोश न रह गया हो, स्थिर। ४ जिसमें जीवनको चेष्टा न रह गई हो, मृत, मरा हुआ। ५ जो चंचल न हो, घोर, सौम्य, गम्भीर। ६ मौन, चुप, धामोक्ष। ७ जिसने

मन और इन्द्रियोंके वेगको रोका हो, मनोविकाररहित, रागादि शून्य, जितेन्द्रिय। ८ उत्साह या तत्परता-रहित, जिसमें कुछ करनेकी उमंग न रह गई हो, शिथिल, ढाला। ९ शान्त, थका हुआ। १० जो जलता या उड़ोत न हो। ११ विद्वन्वाधाररहित। १२ जिसको घबराहट दूर हो गई हो। १३ अप्रभावित, जिस पर असर न पड़ा हो। १४ छंदा, दुबला, पतला।

(पु०) १५ काव्यके नी रसोंमेंसे एक रस। इसका स्थायिभाव सम है, नायक उत्तम प्रकृतिका और कुप्रेतु सुन्दरछाय अर्थात् सुन्दर आकृतिका है। मारायण इसके अधिष्ठाता देवता हैं। इस रसमें संसारकी अनित्यता, दुःख पूर्णता, असारता आदिका ज्ञान अथवा परमात्मनाके स्वरूप आत्मग्यन होता है, तपोवन, श्रुति आश्रम, रमणीय, तोषादि, साधुओंका सत्संग आदि उद्दीपन, रोमाञ्च आदि अनुभाव तथा निर्मद, हर्ष, स्मरण, मति, दया आदि संचारी भाव होते हैं। शाश्वतको रस कहनेमें यह बाधा उपस्थित की जाती है, कि यदि साथ मनोविकारोंका शमन हो शाश्वत है, तो विभाव, अनुभाव और संचारी द्वारा उसकी निष्पत्ति कैसे हो सकती है? इसका उत्तर यह दिया जाता है, कि शाश्वत दशमें जो सुखादिका अभाव कहा गया है, वह विषय-जन्य सुखका है। योगियोंका एक अलौकिक प्रकारका आनन्द होता है जिसमें संचारी आदि भावोंकी स्थिति हो सकती है। नाटकमें भाठ हो रस माने जाते हैं, शाश्वतरस नहीं माना जाता। इसका कारण यह कि नाटकमें अभिनय क्रिया ही मुख्य है, अतः इसमें 'शाश्वत'का समावेश नहीं हो सकता।

जहाँ सुख या दुःख राम या द्वेष, प्रिय या अप्रिय इत्यादि किसी भी तरहकी इच्छा नहीं रहती है; तथा शमप्रधान होता है, यहाँ शाश्वतरस होगा। इस रसमें शाश्वतप्रियता ही प्रधान कार्य है।

(साहित्यदर्पण १५ परि०)

साहित्यदर्पणमें देवविषयक रतिका एक उदाहरण दिया गया है। यथा—'उप देविगवया रविषया—

“कदा वागाण्यस्वामिदं सुपुत्री बोधयि वसव।

... देवता कीर्तिनं दिव्यं निदधानोऽन्वसिपुत्रम्॥

अथे गीरीनाथ त्रिपुरार शम्भो त्रिनयन ।

परीदेति कौशान्तिमिषमिव नेभ्यामि दिवसान् ॥”

(साहित्यदर्पण ३ परि०)

कथ में वाराणसीमें गङ्गाके किनारे कौपीनवास पहन कर मस्तकमें अञ्जलिपुटसे 'हे महादेव ! मेरे प्रति प्रसन्न हों' कहते कहते सारा दिन निमिष कालकी तरह व्यतीत करेगा ।

१६ सहाद्विवर्णित राजभेद । (संख्या० ३५।२२)

शान्तक (सं० त्रि०) शम-क, स्वायं क । १-शान्त ।

२ शमताकारी । (पु०) ३ सारण जिलेमें सेवान तह-

सीलके अन्तर्गत एक बड़ा गाँव ।

शान्तकर्ण (सं० पु०) आन्ध्रवंशीय एक राजा ।

शक्तिर्ष्य देवे ।

शान्तगतिका (सं० स्त्री०) बौद्ध रमणीभेद ।

(प्रभाषारमिता)

शान्तगुण (सं० त्रि०) शमगुणविशिष्ट ।

शान्तता (सं० स्त्री०) शान्तस्य भावाः तल-टाप ।

१ शान्तका भाव या धर्म, शान्ति, शमन । २ नोरपता,

सामोशी । ३ उपद्रव आदिका अभाव, हलचलका न

होना । ४ रसादिका अभाव, विराग ।

शान्तनव (सं० पु०) शान्तनोरपत्यं पुमान्, शान्तनु-

अणु । १ राजा शान्तनुके पुत्र भीष्म । २ मेघातिथिका

पुत्र ।

शान्तनव आचार्य—उणादिसूत्र और फिट्सूत्रश्रुति नामक

व्याकरणके रचयिता ।

शान्तनु (सं० पु०) द्वापर युगके इक्षीस ये चन्द्रवंशी

राजा । ये प्रतीपके पुत्र और महाभारत-युद्धके प्रसिद्ध

योद्धा भीष्म पितामहके पिता थे । शान्तनुकी स्त्री

गङ्गादेवीके गर्भसे (गामेय) की उत्पत्ति हुई थी ।

पर्याय—महामोक्ष, प्रातोप, प्रतीप, प्रतिप । (शब्दरत्ना०)

विशेष विवरण शान्तनु शब्दमें देखो ।

भाष्यतमें शान्तनु नामकी व्युत्पत्ति इस प्रकार

लिखी है—जराभीर्ण व्यक्तिका हाथसे छूनेसे यह जवान

हो जाता और बड़ो शान्ति पाता था, इसलिये उसका

नाम शान्तनु हुआ ।

२ कुषान्वचिरीय । (सुभ्रुत सूत्रत्या० ४६ अ०) ३

ककटिका, ककटो ।

शान्तपट्टि (शेन्तापिट्ठी)—मन्द्राज्ये सिडेम्सीके चित्रगा-

पट्टम त्रिजातर्गत एक गण्डमाम । यह अक्षा० १८° २

३०' उ० तथा देशा० ७३° ४२' पू० समुद्रतोरपत्ती

कोनाडु ग्रामसे ५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है । यहाँ

एक गण्डशैलशृङ्ग पर शान्तपत्तो खालोकवाटिका है

जो १८४७ ई० की बनी है । समुद्रके किनारेसे साढ़े

छः मीलकी दूरी पर रहनेसे भी समुद्रपृष्ठस्थ खोद गोल

दूरदर्शी जहाजसे यह खालो या रीशनी दिखाई पड़ती

है ।

शान्तप्रकृति (सं० त्रि०) शान्ता प्रकृतिर्थास्य । शान्त-

स्वभायका ।

शान्तमय—प्लक्षद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष ।

(लिङ्गपु० ४६।४२)

शान्तमति (सं० पु०) १ देवपुत्रके एक पुत्रका नाम ।

(त्रि०) शान्ता मति र्थास्य । २ शान्तबुद्धि, शिष्ट-प्रकृति ।

शान्तमय (सं० पु०) यदुवंशीय एक राजा । ये चर्मा-

सारथिके पुत्र थे । इनका दूसरा नाम शान्तराज था ।

(भाग० ६।१७।१२)

शान्तरूप (सं० त्रि०) शान्तप्रकृति, सरल स्वभावका ।

शान्तवीर देशिकेन्द्र—एकाक्षरनिघण्टुके प्रणेता ।

शान्तल देवी—होयसलवंशीय राजा विष्णुवर्धन (दूसरा

नाम धीरगङ्ग)-की महिषी । इनका दूसरा नाम धा

लकू मा देवी ।

शान्तश्री (सं० पु०) मयचण्डदेवका एक नाम ।

(सहितवित्तर)

शान्तसुमति (सं० पु०) देवपुत्रके एक पुत्रका नाम ।

(ललितवित्तर)

शान्तसूरि (सं० पु०) १ एक जैन-टीकाकार । २ जातक-

सारके रचयिता ।

शान्तसेन (सं० पु०) यदुवंशीय एक राजा । ये सुवाहु-

के पुत्र थे । (भाग० १०।६०।६८)

शान्ता (सं० स्त्री०) १ अयोध्याके राजा दशरथकी

कन्या और महर्षि ऋषभशृङ्गकी पत्नी । दशरथने अपने

मित्र अङ्गदेशके राजा लामपादकी अपनी कन्या शान्ता

पाथ्य-पुत्रिकाके रूपमें दी थी । २ रेणुका । ३ शमी,

छिकुर । पर्याय—शुभा, भद्रा, भाररजिता, जया,

वितया। ४ आमलकी, भांवला। ५ दुर्वा, दूब। ६ दक्षिण भारतमें प्रयाहित एक नदी। यह ताप्ती नदीमें भा कर मिली है। (तापीतट) ७ एक गण्डमास। (दिग्विजयप्रकाश) ८ संतोतमें एक श्रुति।

शान्तात्मन्—(सं० लि०) शान्ति आत्मा स्वभावो यस्य। शान्तस्वभावाय ज्ञिष्ट, साधुपुरुषि।

शान्तानु—सहाद्रिवर्णित एक राजा। (उहा० १३१७) शान्ताज्ञान्ति—चम्पारण्यके अंतर्गत एक ग्राम।

(भविष्यत् १० ४२१२०)

शान्ति (सं० स्त्री०) शम क्तिन्। १ कामक्रोधादि प्रशम, चित्तोपशम। नागोजीमठमें शान्ति शब्दका अर्थ इस प्रकार किया है—विषयसे इन्द्रियका उपरम, शब्द स्पर्श आदि विषय इन्द्रियसे उपरत होने पर जो अवस्था होती है, उसे शान्ति कहते हैं। पर्याय—शमथ, शम, प्रशम, उपशम, प्रशान्ति, तृत्याक्षय। किर्यायोगसारमें इसका लक्षण यों लिखा है—

“यत् किञ्चिद्रूपं संश्रय स्वल्पं वा यदि वा युद्ध।

वा तुष्टिर्जायते चित्तं शान्तिः सा गच्छते युधैः ॥”

(पद्मपुराण विद्यायोगभा० १५ अ०)

अति अल्प या बहुत जिस किसी सामान्य वस्तुमें चित्तका जो परितोष होता है, उसे शान्ति कहते हैं। अधिक मिलने पर आनन्द नहीं और कम मिलने पर भी दुःख नहीं, चित्तका इस प्रकारका जो परितोष है, उसीका नाम शान्ति है।

गीतामें लिखा है—

“भाष्यमन्मयमिच्छस प्रसिद्धं सुदृढमायः प्रविरान्ति यद्दत्त।

उद्धृत कर्मण्यं प्रविरान्ति सर्वे स शान्तिगान्जोति न कामकामी ॥”

(गीता २।७०)

जल जिस प्रकार सर्वादा परिपूर्ण और अचल भावमें अवस्थित महासमुद्रमें प्रवेश करके थिलोन हो जाता है, वसी प्रकार उच्च कामना सभी पुरुषोंके हृदयमें प्रवेश कर चलोन जाती है, तब ये शान्ति लाभ कर सकते हैं। कामकामी अर्थात् कामनापूर्ण व्यक्ति शान्तिको सुकोमल उपायोंसे दमो नहीं पाते। निश्च जब कामनादृष्ट्य होता है, क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त आदि दूर होतें हैं, तब शान्ति मिलती है। विषयासक्तचित्तको शान्ति नहीं मिल

सकती। जिसे शान्ति नहीं है, उसे सुख भी नहीं।

जब तक इन्द्रियां विजित नहीं होतीं, तब तक आत्मविषयविषयो बुद्धि उत्पन्न नहीं होती। इस आत्मज्ञानके उत्पन्न हुए बिना शान्तिलाभ नहीं होता। अज्ञान प्रकृतिकी सुखकी सम्भावना नहीं। जो शान्तिप्रयासो है, वे यदि पहले इन्द्रियसंयम कर भगवदुपासनामें चित्त निविष्ट करें, तो उन्हीं सहजमें शान्तिलाभ होगा।

शुद्धराचार्यने अपने गीताभाष्यमें शान्ति शब्दका मोक्ष अर्थ स्थिर किया है।

२ धर्म द्वारा प्रहरीस्थ दुःखपान्दिभूचित पहिक्त अनिष्ट हेतु दुरित निवृत्ति। प्रहादिके विमुण होनेसे जहां अनिष्ट होता है, वहां किसी देव कर्मके अनुष्ठान द्वारा उस अनिष्टकी निवृत्ति होनेसे उसको शान्ति कहते हैं। प्रहविच्छद होनेसे प्रदोंकी पूजा, दान, स्नय, कवच, होम आदि द्वारा या तदधिष्ठात्री देवताकी पूजा और चण्डीपाठ तथा नारायणको तुलसी आदि दान करनेसे वैशुण्य शान्ति होती है। साधारणतया यह शान्ति स्वस्वयन नामसे प्रसिद्ध है। जिस प्रकार शरीरमें क्यूच धारण करनेसे शयका वायक होता है, उसी प्रकार देवापघात व्यक्तिकी शान्ति ही धारक है अर्थात् देवविच्छद होने पर शान्ति करनेसे उसका प्रशमन होता है।

शान्तिकर्म विशुद्ध दिनमें करना होता है। किंतु जहां प्रहादिके प्रबल प्रकोपयथातः कठिन पीडादि होती है, वहां मलमासमें भी शान्तिकर्म कर सकते हैं। किन्तु मलमास होने पर भी विशुद्ध दिन देख कर शान्ति कर्म करना उचित है। यथाविहित शान्तिकर्मका अनुष्ठान करनेसे बालप्रह, भूतप्रह, राजभय, प्रबलतर शूल, दुःसह रोगानिमय, दुःखपन्न, प्रहविच्छद आदि अति जोष प्रजन्त होते हैं। अतएव प्रहादि विमुण होने पर परतपूर्वक उसकी शान्ति करना कर्त्तव्य है।

शुनन्दने एतयत्तयमें अद्भुत शान्तिविधाका उल्लेख किया है। उन्होंने कहा है, कि प्रहतिविच्छदका नाम अद्भुत है अर्थात् जो अस्वाभाविक है, यही अद्भुत द्रव्याच्य है, यदि दृष्टात् एक पात्र भा कर शरीर पर

वैठ जाय, गृहमें पंचकादि प्रवेश करे, गंधर्षनगरादिके दर्शन हो, तो उसे अद्भुत कहते हैं। देवगण मानवको अशुभ भाव भयगत करानेके लिये इसी प्रकार दिव्यलाया करते हैं। मानव उक्त सभी उद्घात देख कर अपना भावो अनिष्ट समझ भाष्यार्ण विधिके अनुसार शान्ति करे। विधिविधानसे शान्ति करने पर भावो अनिष्टका भय नहीं रहता।

रजस्वला स्त्रीगमन, गो, श्व और भायांका यमज संतान प्रसव या विजातीय प्रसव, काक, कडू, गृध्र, श्येन, घनकुपकुट, रक्तपाद् और घनक्रीतका गृहप्रवेश अथवा मनुष्यका परिपतन, श्वेतवर्ण, इंद्रायुध वा रात्रिकालमें इंद्रायुध, उल्कापात, दिग्दाह, सूर्योपमण्डल, चन्द्रोपमण्डल, गंधर्षनगरदर्शन, भूकम्प, धूमकेतु, रक्त, शस्त्र, वसा, अस्थि आदिका पतन, पेचक और वानरादिका गृहमें प्रवेश और अकालमें फल पुष्पादिका उद्गम और सात दिन तक वृष्टि होनेसे छन्दोगपरिशिष्टोक्त विधिके अनुसार शान्ति करना कर्त्तव्य है।

यदि इस प्रकार अद्भुत विपद् पर शान्ति न की जाय, तो गृहपतिकी मृत्यु या सर्वस्व नाश होता है। इस शान्तिके विधानमें लिखा है, कि विपद् उपस्थित होने पर विशुद्ध दिनमें देवपूजादि समाप्त कर स्वस्तिवाचन और पीछे सङ्कष्ट करे।

सङ्कल्प-सूक्तपाठ और स्वगृहोक्त विधिके अनुसार अग्निहोषण कर पीछे घरद नामक अग्नि स्थापनपूर्वक घृत द्वारा इस प्रकार होम करे, अद्भुताग्नेये स्वाहा, ओं सोमाय स्वाहा, ओं विष्णवे स्वाहा, ओं वायवे स्वाहा, ओं रुद्राय स्वाहा; ओं वसवे स्वाहा, ओं मृत्युवे स्वाहा, विश्वेभ्यो देव्येभ्यो स्वाहा। पीछे चरु द्वारा इनका फिरसे होम करना होता है। इस प्रकार होम हो जाने पर घृतपायसादि भोजन द्वारा ब्राह्मणोंको दक्षिणाके साथ परितोष करे।

दुःस्वप्न और अनिष्ट देखनेसे भी ब्राह्मणको घृत और काञ्चन दान तथा ब्राह्मण और ज्ञातिभोजन करानेसे शान्ति होती है। (इत्यारम्भ)

वैष्णवामृतमें व्यासधन्वनी लिखा है, 'नमस्ते बहु-रूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा', इस मन्त्रसे भगवान्

नारायणको तुलसी देनेसे सभी शान्ति होती है। तुलसी द्वारा नारायणकी पूजा हो महाशान्ति है। इससे सभी प्रकारकी विपद् दूर होती है। प्रदयक्ष और शान्तिक आदि कर्मोंको कुछ भी आवश्यकता नहीं। एकमात्र तुलसी दानसे ही सभी शान्ति होती है।

यह जो शान्तिका विषय कहा गया, वह वैदिक शान्ति है। इसके सिवा तंत्रशास्त्रमें भी शान्तिका उल्लेख देखनेमें आता है। तंत्रमें षट्कर्मस्थलमें शान्तिका विधान है। यहां शान्तिकर्मके लक्षणके सम्बन्धमें लिखा है, कि जिस कर्म द्वारा रोग, कुहटवा और प्रदोष निवारण होता है, उसे शान्तिकर्म कहते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि उद्योतियोक शुभ दिन देख कर शान्ति कर्मका अनुष्ठान करना होता है। शुभ दिन ये सप्त हैं—रवि, सोम, बुध, गृहस्पति और शुक तथा उत्तराषाढा, उत्तरफल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पुष्या, अभिषेकी और हस्ता ये सब नक्षत्रयुक्त तथा रिक्ता मित्र तिथिमें शुभ-लग्नमें चंद्र और ताराशुद्धि होनेसे शान्तिकर्म करे।

आपत्कालमें चण्डीपाठ, षट्कर्मैवादि स्तोत्रपाठ, स्वस्त्वपन, होम आदिसे जिस प्रकार प्रदोषगुण शान्ति होती है, उसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्रमें भी रोगादि शान्तिके लिये प्रदोशान्ति, कवच धारण, तुलसीदान आदिकी व्यवस्था देखी जाती है। इसके सिवा प्रदोशान्तिके लिये भैतिकारकी भी व्यवस्था है। सांपकी कैचुल, लक्ष्मण, मुर्गामूल, सरसों, निम्बपत्र, विडालकी विष्टा, छागलेम, मेघपुच्छ, वच और मधु इनके घूपसे प्रदोशान्ति होती है तथा बालरोग दूर होता है।

- ३ मद्र, मङ्गल । ४ गोपीविशय । (प्रसवैर्वर्त-पुं प्रष्टितिसं ६ अ०) (पु०) ५ वृत्तार्द्धद्वितीय । ६ जिन चक्रवर्त्तोंविशेष । ७ दशम मन्वन्तरीय चंद्र । (गरुडपुं ८७ अ०) ८ देवपूजा आदिके बाद मंत्रपाठ-पूर्वक यज्ञमानकी पुरादि द्वारा जो आशोर्वाद् दिया जाता है, उसे शान्ति कहते हैं।

देवपूजाके बाद शान्ति, तिलक और पीछे दक्षिणागत करना होता है। शान्तीदकदान देते।

६ पौडुगमायुक्ताविशेष । कुलकी रक्षा करनेवाली १६

मातृकादेवी हैं। गान्धेयमुक्तश्राद्धमें पहले इनकी पूजा करके पीछे श्राद्ध करना होता है।

शांतिक (सं० लि०) १ शांति-सम्बन्धी, शांतिका। (पु०) २ शांतिकर्म।

शांतिकर (सं० पु०) करोतीति छ-ट, करः। शांति कारक, शांति करनेवाला। (भा० ५।२२।१६)

शांतिकरण (सं० स्त्री०) शांतिव करणं। शांतिकर्म, शांतिकार्यं। (कात्या० य० २६।७।५८)

शांतिकर्मन् (सं० स्त्री०) शांतार्थं कर्म। सुरेन्द्र, प्रेत-बाधा, पाप आदि द्वारा देनेवाले अमंगलके निवारणका उपचार। (भा० य० २६।७।५८)

शांतिरूकलामल—सहाय्य-वर्णित एक राजा।

(व० ३१।२८)

शांतिकल्प (सं० पु०) अथर्ववेदका पांचवां कल्प।

शांतिकाम (सं० लि०) शांतिं कामयते इति कम-णिङ्-अच्। शांतिप्रमिलायां, शांतिकी कामना करनेवाला। संस्कारतत्पर्यमें लिखा है, कि जो भी और शांतिकी कामना करते हैं, उन्हें ब्रह्मपद करना चाहिये।

शांतिकुम्भ (सं० पु०) यह घट या घड़ा जो देवपूजादिमें प्रतिमाके सामने रखा जाता है। देवपूजादिके बाद इस कुम्भका जल ले कर शांति देने होती है, इसलिये इसको शांतिकुम्भ या शांतिकलस कहते हैं।

शांतिहृत् (सं० लि०) शांति करोतीति-हृ-क्विप्-त्सु-क् च। शांतिकारक।

शांतिगुप्त (सं० पु०) एक बौद्धान्धार्मिक नाम।

(तारनाथ)

शांतिगुह (सं० पु०) एक बौद्धान्धार्मिक नाम।

शांतिगृह (सं० स्त्री०) शांतिगृहं। यहके अंतमें पाप तथा अशुभ आदिका शांतिके लिये स्नान करनेका स्थानागार।

शांतिजल (सं० स्त्री०) शांतिपर्णं जलं। शांतिनिमित्त जल, यह जल जिससे पूजादिके बाद शांति की जाती है।

शांतिद (सं० लि०) शांतिं ददातीति दा-क्। १ शांति-दायक, शांति देनेवाला। (पृ० ५८।३१) (पु०) २ विष्णु।

शांतिदाता (सं० लि०) शांति देनेवाला।

शांतिदायक (सं० लि०) शांति देनेवाला।

शांतिदायिन् (सं० लि०) शांतिदेनेवाला।

शांतिदेव (सं० पु०) एक बौद्धयत्तिका नाम।

शांतिदेवा (सं० स्त्री०) वासुदेवको पत्नी देवककी कन्या। (भागव० १।२५।२२)

शांतिनाथ (सं० पु०) जैनोंके एक तीर्थंकर या अर्हत्। जैन ग्रन्थ देखो।

हेमचंद्रके शुभ देवसूरिने शांतिनाथपरित नामक एक ग्रन्थ लिखा। उसके पीछे देवसूरिने प्रायतनसे संस्कृत भाषामें अनुवाद किया। शांतिनाथपुराणमें भी शांतिनाथका चरित वर्णित है।

शान्तिपर्व—महामारतका वारहवां और सबसे बड़ा पर्व। इसमें युद्धके उपरान्त युधिष्ठिरकी चित्त-शांतिके लिये कष्टी हुई बहुत-सी कथाएँ, उपदेश और ज्ञानचर्चा हैं।

शांतिपात्र (सं० पु०) यह पात्र जिसमें ब्रह्म, पाप आदि-की शांतिके लिये जल रखा जाय।

शांतिपात्र—सहाय्य-वर्णित एक राजा। (व० ३२।५१)

शांतिपुर (सं० स्त्री०) १ शांतिनिकेतन। २ नगरविशेष। बङ्गालके नदिया जिलांतगत एक प्रसिद्ध नगर। यह अक्षा० २३° २५' उ० तथा देशा० ८८° ३०' पू०के मध्य श्रौचैतन्यचंद्रके लालाक्षेत्र नवद्वीपधामसे दक्षिण भागो-रथोके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ३० हजारसे ऊपर है।

बहुत पहले इस नगरने घखवाणिज्यमें प्रसिद्धि लाभ की थी। आज भी शांतिपुरकी घेतो सर्गल प्रसिद्ध है। बङ्गाली बालक-बालिका रेशमपाइकी शांतिपुरी साड़ी पहनना बहुत पसंद करती हैं। पहले भदिया जिलेके प्रायः सभी स्थानोंमें यह कपड़ा तैयार हो कर शांतिपुरकी हाटमें बिकता था। इष्ट-इण्डिया-कम्पनीके शांतिपुरमें कोठी धोलनेसे यह नगर घखवाणिज्यके केन्द्ररूपमें परिणत हुआ तथा जल्दाही शांतिपुरमें आ कर घख बिकने लगे।

श्रौचैतन्य महाममु जब नवद्वीपमें वैष्णव धर्मका प्रचार कर रहे थे। उस समय वैष्णवाधार्मिक धीमन्-हैत गोस्वामी शांतिपुरमें गङ्गाके किनारे वास करने थे। महाममु उन पुन्यपाद गोस्वामीके दर्शन करनेकी

इच्छासे शांतिपुर आने। वैष्णवधर्ममें लिखा है, कि अद्वैत गोस्वामीके साथ रद कर मडाप्रभु यहाँ हरिनाम सन्धीर्चनमें मत्त रहते थे। रासवाताके उपलक्ष्यमें शांतिपुरमें आज भी उस धर्माप्रचारकी संभुति मञ्जण है। कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन शांतिपुरके घर घरमें रासोत्सव होता है। मेला तीन दिन रहता है। बङ्गालके नाना स्थानोंके वैष्णव और अन्त्याय मनुष्य इस मेलेमें जाते हैं। अद्वैत प्रभुकी नासभूमि होनेके कारण यह स्थान श्रीहरीवैष्णवोंके निकट एक तीर्थरूपमें गिना गया है। यहाँ गङ्गास्नान मद्युपयजनके हैं।

शांतिपुराण—जैनपुराणभेद, सकलकोर्त्ति रचिने शांति-
नाथपुराण।

शांतिप्रद (सं० लि०) शांति देनेवाला।
शांतिप्रभ (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य। (तारनाथ)
शांतिमन्त्र (सं० पु०) १ मंत्रविशेष, शांतिदानका मंत्र,
इस मंत्रमें शांतिजल दिया जाता है। शांतिपुराण
देखो। २ तन्त्रोक्त मंत्रविशेष। तदाचार्यमें यह मंत्र
इस प्रकार लिखा है, यथा—अथ शांति मंत्रः।

“इमं पुत्रं कामयतः कामजानामिह हि।
“द्वैभ्यः पुण्याति सर्वाभिमं मन्त्रकं जिवेशांतिस्तारायै
वेशेभ्यस्तारायै क्त्रेभ्यः उमायैः जिव्याय जिवयशने।
इत्यनेन कुशोदकेन शांतिं कुर्यात्।” (तन्त्रधार)
इस मंत्रसे कुशोदक द्वारा शांति करनी होती है।
शांतिमय (सं० लि०) शांतिसे पूर्ण, शांतिसे भरा
हुआ।

शांतिरक्षित (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य। (तारनाथ)
शांतिवर्मा—काश्मीरमेंश्रीयों नरगति। शांतिवर्मा १म
राजा २य नागधर्माके बाद सिंहासन पर बैठे। राजा
२य शांतिवर्मा १०७५-१०८०में विद्यमान थे। ये राजा
२य जयवर्माके पुत्र थे, किंतु राजा जयवर्माके पीछे
२य कोसिवर्माके बाद सिंहासनके अधिकारी हुए। हांगले
में इन लोगोंकी राजधानी थी। राजा २य शांतिवर्मा
पश्चिम चालुक्य धर्मोद्य राजा २य सोमेश्वर तथा ६६
विक्रमादित्यके अधीन मिथराज्यरूपमें गिने जाते थे।
उन्होंने पाण्ड्यराज्योप श्रियादेवीको स्थापना की।

शांतिवर्मा—सम्राट्कोके शृचंश्रीय एक सामन्त राजा।

ये राजा पिट्टगके पुत्र थे। विताके मरने पर ये सम्भवतः
६८० ई०में विताके सिंहासन पर बैठे। परिचय
चालुक्यराज २य नीलके अधीन इन्होंने यज्ञो धोरता
दिशाई थी।

शांतिवाचन (सं० स्त्री०) प्रद, प्रेतवाचा, पंच आदिके
होनेवाला अमंगलको दूर करनेके लिये मन्त्रपाठ।
शांतिवाचनीय (सं० स्त्री०) शांतिवाचनप्रयोजनस्य
(अनुभवचर्यादिभ्यः)। पा १।१।१११ इति छ। शांति-
वाचन जिसे प्रयोजन ही, उसे शांतिवाचनीय कहते हैं।
शांतिवाहन (सं० पु०) एक बौद्धराज। (तारनाथ)
शांतिमय (सं० पु०) एक मंत्र। (बराहपु०)
शांतिमयतक (सं० स्त्री०) शिहलन कविकृत श्लोकमयतक।
इसमें शांतिविषयक एक सौ श्लोक हैं।

शांतिमयन् (सं० स्त्री०) शांतिप्रद देवी।
शांतिपेण—एक विद्ययात जैनसूरि। ये दुर्लभसेनसूरिके
पुत्र, कूलभूषणके पीछे और मुद्रदेवसेनके प्रपौत्र थे।
ये होय लाटावागडोंके भंतर्भुक्त थे। राजा भोजदेव-
की सभामें मारसेनको और मर्याय्य तर्थायुद्धमें युवाये
गये पण्डितोंकी शांतिपेणने परास्त किया था। इनके पुत्र
विजयकीर्त्ति कच्छपतिवातेश्रीय महाराजाधिपाराय विजय-
सिंहके समापण्डित थे (११४५ सायत्)।

शांतिमूक (सं० स्त्री०) वैदिक मंत्रविशेष। महायाम-
६७३ ऋषि आदि वैदिक मंत्रको शांतिमूक कहते हैं।
इस सूक्तमें शांतिजल देना होता है।

शांतिसूरि (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैनप्रधानार। इन्होंने
उत्तराध्ययनसूक्तोंका और मानाङ्क विरचित श्रुत्यायन-
यमकी टोका लिखी। इनका दूसरा नाम था पादिवेताल
और ये धारापट्टमन्त्रभुक्त थे। १०६६ ई०में इनकी
मृत्यु हुई।

शांतिशोम (सं० पु०) शांतिधर्म शोम। यह शोम जो
शांतिके लिये दिया जाता है। (मनु ४।१५)

मनुमें लिखा है, कि समायस्या पूर्णमा आदि
पक्षादिमें मनिष्ट निश्चितके लिये शांति होम करे।
शांतिपुराण (सं० स्त्री०) शांतिपुराणकल्प दानं। शांति
जल देना। पूजा और होमादिके बाद शांतिमन्त्र पढ़
कर यज्ञमानके ऊपर जो जल छिड़का जाता है उसे शांति

द्वय नाम रहते हैं। यह वैदिक और तान्त्रिक इन दोनों मन्त्रों से दिया जाता है। किन्तु अनेक स्थलों में तान्त्रिक मन्त्र ही शान्ति दी जाती है।

वैदिक शान्ति देनेके समय सामवेदी, यजुर्वेदी और अथर्ववेदीके पृथक् पृथक् मन्त्र हैं। महावामदेव्य ऋषि आदि सामवेदियोंका और 'ऋचं वाचं प्रथमं' आदि मन्त्र यजुर्वेदियोंका जानना होगा। किन्तु तान्त्रिक शान्तिमें सभी वेदियोंका एक ही मन्त्र कहा गया है। यह मन्त्र इस प्रकार है—

'सुरास्त्वाममिषिञ्चतु प्रलविष्णुमरेभवाः ।

वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्घर्षो विभुः ॥

प्रद्युम्नश्चानिच्छदन भवतु विजयाय ते ।

शाकण्डलोऽग्निर्मंगवान् यमो वै निश्चैतिस्तथा ॥

वरुणः पयश्चैव धनाश्वक्षस्तथा शिवः ।

प्रहाणा संहिता ह्येते दिक्पालाः पातु वा रक्ष ॥

कीर्त्तिलक्ष्मी धृतिर्मघा पुष्टिः धृष्टा क्षमा गतिः ।

सुखिर्नाञ्जा वपुः शान्तिर्माया निद्रा च मायना ॥

एतास्त्वाममिषिञ्चतु देवपत्न्यः समागताः ।

आदित्यश्चन्द्रमा भोगो धुषो जीवसितार्जजा ॥

एते स्वाममिषिञ्चतु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।

देवदानवमंघवा यक्षराक्षसपत्नयाः ॥

श्रयणो मुनयो गाधो देवमातर पय च ।

देवपत्न्यो ध्रुवा नागा दैतवाश्चाप्सरसोऽङ्गनाः ॥

सुराणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।

जीवधाति च ररनामि कालस्यावयथायच ये ॥

सन्तिः सागराः शैलास्तोर्धनि जलद्रा नदाः ।

एते स्वाममिषिञ्चतु धर्मकामार्थसिद्धये ॥”

(सन्त्रमा०)

यह मन्त्र पढ़ कर शान्तिकलसे शान्तिजल देना होता है।

शान्त्य (सं० ह्रीं०) शान्त्य, गति मधुर ।

(भमरीका शाप०)

शान्त्यमति (सं० ह्रीं०) शान्त्यमति, मारुतो ।

शाप (सं० पुं०) शापमिति शाप-घञ् । १ भास्वोऽ,

अहितकामनासूचक शब्द, वदद्बन्धा । पर्याय—भकरन्ति,

धक्तेषुनि, धक्तेषुनि, भयप्रद, निप्रद, अनिसम्पात ।

२ घिष्ठाः, फट्का, भर्त्सना । ३ ऐसो शाप-जिसके न पालन करनेका कोई अनिष्ट परिणाम कदा जाय, घुरो कसम । ४ उपद्रव । (साम० १२६।११) 'मुक्-शापं भगनतोपद्रव' (टीका) ५ जल । "परीयं शापं नयो वदन्ति" (शुक् १०।२८।४) 'प्रतीयं प्रतिशुं' शाप उदक' (शाप्य)

शापप्रस्त (सं० लिं०) शापेन प्रस्तः । अमिहस्त, जिसे शाप दिया गया हो ।

शापञ्जर (सं० पुं०) एक प्रकारका ज्वर जो माता, पिता, गुरु आदि बड़ोंके शापके कारण कदा गया है ।

शापटिक (सं० पुं०) मयूर, मोर ।

शापनाशन (सं० पुं०) मुनिभेद ।

शापवचन (सं० ह्रीं०) शापवाच्य ।

शापस्रष्ट (सं० पुं०) शापेन स्रष्टः । शाप द्वारा मृष्ट, यह जो शाप देनेसे मर्य हो गया हो ।

शापमुक्त (सं० लिं०) जिसका शाप छूट गया हो; जिसके ऊपरसे शापका घुरा प्रभाव हट गया हो ।

शापाभ्यु (सं० पुं०) यह जल जिसे हाथों ले कर शाप दिया जाय ।

शापायन (सं० पुं०) शाप-अभ्यादिस्थात् फञ् (पा ४।१.११०) मुनिविशेष, शाप ऋषिका गोतापत्य ।

शापाय्न (सं० पुं०) शाप पय अयं यस्य । १ यह ऋषिके जिसके पास अर्योंके स्थान पर शाप ही हो ।

२ एक मुनिका नाम ।

शापित (सं० लिं०) शाप-प्रस्त, जिसे शाप दिया गया हो ।

शापेट (सं० पुं०) कुशाज्ञातोय नृणभेद । "नारवावा इक्षिणावसे शापेटं निखनेत्" (कौटिल्यु० १८)

शापेय (सं० पुं०) २ एक वैदिक भाषाटी । ३ उनको प्रवर्तित एक शाखा ।

शापेयिन् (सं० पुं०) १ शापेय शाखाध्यायी । २ याज्ञ-यज्ञ्यके एक शिष्यका नाम । (ब्रह्मपदपुराण)

शापोत्सर्ग (सं० पुं०) शापका उच्चारण, शाप छोड़ना, शाप देना ।

शापोद्धार (सं० पुं०) शापमुक्ति, शाप या उसके प्रभावसे छूटकारा ।

शाफरिक (सं० पु०) शाफरान् हन्तीति शाफर (पक्षिभक्ष्य-
मृगान् हन्ति । पा ४।४-३५) इति ठक् । मत्स्यधारक, मत्स्यवा,
शोधर ।

शाफाक्षि (सं० पु०) शाफाक्षका गोत्रापत्य ।

शाफेय (सं० पु०) यजुर्वेदकी एक शाखा ।

शबर (सं० पु०) शबरस्वापत्यं शबर (अष्टभ्यान्तयै
विदादिभ्योञ् । पा ४।१०।१०४) इति अञ् । १ शबरका
गोत्रापत्य । २ शिवकृत तन्त्रविशेष । ३ शबरस्वामि
कृत भाष्यविशेष । शबररणामर्ग । ४ पाप, अपराध ।
५ ताम्र, ताँबा । ६ अधिकार । ७ एक प्रकारका
चंदन । ८ युराई, हानि, दुःख । ९ लोभ्र वृक्ष, लोचका
पेड़ । (लि०) १० दुष्ट, पात्री ।

शबरजम्बुक (सं० लि०) शबरजम्बु (ओदेशे ठक् । पा
४।२।११६) इति ठक् । शबरजम्बुदेश-सम्बन्धी ।

शबरभाष्य (सं० स्त्री०) शबरण कृतं भाष्यं । शबर-
स्वामी कृत भाष्य । जैमिनिकृत मीमांसादर्शनके शबर-
स्वामीने जो भाष्य प्रणयन किया है, उसका नाम शबर-
भाष्य है ।

शबरभेदाख्य (सं० पु०) ताम्र, ताँबा ।

शबरायण (सं० पु०) शबरस्य गोत्रापत्यं शबर
(अष्टादिभ्यः ञ् । पा ४।१।१००) इति ञ् । शबर-
गोत्रापत्य ।

शबरि (सं० पु०) एक बौद्धयति । (वास्तव्य) ।

शबरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी जोक ।

शबरौ (सं० पु०) शबरौकी भाषा, एक प्रकारकी प्राकृत
भाषा ।

शबरौत्सव (सं० पु०) शबरराणामुत्सवः । शबरजातिकृत
उत्सवविशेष । कालिकापुराणमें लिखा है, कि महा
एनीके दिन तथा नवमी तिथिमें भवानो दुर्गादेवीकी
पूजा कर श्रवणा नक्षत्रयुक्त दशमी तिथिमें शबरौत्सव
द्वारा भवानोकी विसर्जन करे ।

नखडालादि नोच प्राति मश्लील वाक्यादिका प्रयोग
कर जो उत्सव करती है, वही शबरौत्सव है । किस
प्रकार शबरौत्सव करना होता है, उसका विधान भी
है—रागनिपुणा कुमारी और वेश्या तथा नर्तकीको
साथ ले कर शङ्ख, तुडी, मृदङ्ग और पटहका शब्द करते

करते विभिन्न वर्णोंकी ध्वजा पहरानो हांगो तथा लावा
और फूज, धूल और कौचड़ फेंक कर भगलिङ्गादि
वाचक प्राम्य शब्द उच्चारण और वैसे ही शब्दोंका गान
तथा अश्लील वाक्योंका प्रयोग करते करते नाना प्रकार-
का उत्सव करे । ऐसे उत्सवका नाम ही शबरौत्सव
है । (कन्निकापु० ६ अ०)

शबल (सं० स्त्री०) शङ्कर ।

शबलीय (सं० पु०) शङ्करजन ।

शबल्य (सं० स्त्री०) १ शङ्कर्या ।

“व्योम्नोऽद्भुतं भूतशायस्यं सुखः पद्ममयी मलयम् ।”

(भाग० १।२।२०।३४)

‘शायस्यं साङ्कर्या’ । (स्वामी) २ कई रत्नोंका मेल,
शबलता, चितकवरापन । ३ एक साथ भिन्न भिन्न
कई वस्तुओंका मेल ।

शायस्य (सं० स्त्री०) कर्पूरवर्णा, चितकवरी । “इषाय
कारिं वादसे शायस्य” (शुक्लयजुः ३.४.२०) ‘शायस्यो शायलः
कर्पूरवर्णाः तद्रूपत्वभूतां स्त्रियां’ (महोपर)

शायस्त (सं० पु०) राजा युवनाश्वका एव पुत्र । इसने
शायस्तो या श्रावस्तो नगरी दसाई थी ।

(भागवत ६।६।२१)

शायस्तो (सं० स्त्री०) शायस्तो देवी ।

शायशा (फा० अर्थ०) एक प्रशंसा-मूचक शब्द, खुश
रहो, वाह वाह, क्या कहना ।

शायशी (फा० स्त्री०) किसी कार्यके करने पर प्रशंसा,
वाह वाहो ।

शार्द (सं० लि०) शब्दस्यापिमिति शब्द-अण् । १ शब्द-
सम्बन्धी, शब्दका । “एको शब्दोऽपरशब्दार्थः” (दाय-
भाग २ शब्दप्रप, शब्दस्थकण ।

“शब्दस्य हि प्रह्लाण एव पन्था

यशामभिधायति घोर पाथैः ।” (भाग० २।२।२)

३ शब्दशास्त्री, वैयाकरण ।

शार्दस्य (सं० स्त्री०) शब्दस्य भाषः त्व । शब्दका भाष
या धर्म, शब्दसम्बन्धोपत्य ।

“आरोप्यमात्मानंशेषाणां शार्दस्त्वे प्रथमं मतम् ।”

(धारिश्यद० १०।६७३)

शार्दबोध (सं० पु०) शब्दः शब्दसम्बन्धी बोधः ।

१ शब्दार्थज्ञान । शब्दके उच्चारणसे जो अर्थबोध होता है, उसे शब्दार्थबोध या शब्दार्थज्ञान कहते हैं । न्यायके मतमें पदार्थज्ञान अन्य ज्ञान है । नैयायिकोंके मतसे शब्दार्थज्ञान स्थूलमें पहले पदज्ञान, पीछे पदनामिधान और उसके बाद शब्दबोध अर्थात् पदार्थज्ञान जन्म प्राप्त होता है । कहीं कहीं लक्षणाशास्त्रिक द्वारा भी शब्दार्थज्ञान हुआ करता है ।

पदज्ञान करण, पदार्थज्ञान उसका द्वार, शब्दबोध फल और शक्ति, अर्थसहकारिणी है । पहले एक पद सुननेसे पद अन्य पदार्थका स्मरण होता है । पद अन्य पदार्थका स्मरण होनेसे शब्दार्थका बोध होता है । शब्दनामिधानका अर्थ शब्द प्रयोगमें इस शब्दबोधका विषय विक्षेप रूपसे आलोचित हुआ है ।

शब्दशास्त्रिक देखो ।

शाब्दिक (सं० पु०) शब्द करोतीति शब्द (शब्द ददुर्' करोति । ५।१।४।३४) इति फक् । १ शब्दशास्त्रवेत्ता, वैयाकरण । कथिक्त्वत्तु ममं इन्द्र, चन्द्र आदि भाट आदि-शाब्दिक कहे गये हैं ।

(ति०) २ शब्द-संबंधी, शब्दका ।

शाब्दी (सं० वि० स्त्री०) १ शब्द-संबंधिनी । २ केवल शब्दविशेष पर निर्भर रहनेवाली । (स्त्री०) ३ सरस्वती ।

शाब्दीयश्रवा (सं० स्त्री०) साहित्यमें वपश्रवाके दो अर्थमेंसे एक, यह वपश्रवा जो शब्द विशेषके प्रयोग पर ही निर्भर हो अर्थात् उसका पर्वविषयको शब्द रहाने पर न रह जाय ।

शाम (सं० ति०) जन्म-अण् । जन्म-संबंधी, जन्मका ।

शाम (हिं० स्त्री०) १ लोहे, पीतल आदि धातुका बना हुआ यह छल्ला जो हाथमें ली जानेवाली लकड़ियों या छड़ियोंके बिचले भागमें अथवा अज्ञातोंके दृष्टिमें लकड़ी-या घिसने छोड़नेसे या बचानेके लिये लगाया जाता है । (पु०) २ एक प्रसिद्ध प्राचीन देश । यह भारतके उत्तरमें है । पहले है, कि यह देश इक्षरत नृपके पुत्र शामने पसया था । इसको राजधानीका नाम इमिरत है । आज बल यह प्रदेश सिरोया कहलाना है ।

शाम (फ्रा० स्त्री०) सूर्य शक्ति होनेका समय, रात्रि और अंधकारके मिलनेका समय, रात ।

शामकरण (हिं० पु०) पद घोड़ा जिसके काम श्याम रङ्ग के हों ।

शामत (अ० स्त्री०) १ दक्षिणमती, पुर्वाण्य । २ विपत्ति, आफत । ३ बुद्धि, दुरयस्या ।

शामतजडा (फ्रा० वि०) कमबख्त, बदगमोच, बेमार्गा ।

शामती (अ० वि०) जिसकी-शामत आर्थ हो, जिसकी बुद्धिशा होनेकी हो ।

शामन (सं० स्त्री०) सामगान ।

(अमरीकामें गामुन्दरी)

शामन (सं० स्त्री०) शमनमेव अण् । १ मारण, हत्या करना । २ शान्ति । (पु०) शमन-प्रदादित्वाङ् । ३ शमन, यम ।

शामनगर—बङ्गालके श्रीरंगपुर परगनेके अन्तर्गत एक गण-ग्राम । श्यामनगर देखो ।

शामनी (सं० स्त्री०) शमनरूप यमस्वैगमित शमण अण्-लोप् । १ दक्षिणादिक्, दक्षिण दिशा । इस दिशाके अधिपति यम माने गये हैं । २ शान्ति, स्तब्धता । ३ पथ, हत्या । ४ समाप्ति, अन्त ।

शामराज—सम्राट् निर्णत दो राजे । (ए० पृ० ११६।३३, ४४)

शामल—सम्राट् निर्णत एक राजा । (ए० पृ० ३३, ३६)

शामली—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलेकी एक तहसील । भूपरिमाण ४६१ वर्गमील है । शामली, धाना भागान्, अन्धधाना, कैराना और विद्दीली परगने ले कर यह उप-विभाग गठित है । शामली सदरमें एक दीवानो और दो फौजदारो अदालत हैं । यमुना नदीकी पूर्वी ओर इस उपविभागके बीच हो कर यह चली है ।

शामा (हिं० पु०) एक प्रकारका पोषा । इसको पांत्तयो और जड़ बोट रोगके लिये लाभदायक मानी जाती है ।

श्यामा देखो ।

शामिक (सं० पु०) शामिक अपत्यार्थे अण् । शामिकी गोलापत्य । (पश्चिम ११।१।०४)

शामिल (सं० स्त्री०) १ एकमे मात्र पकानेके निमित्त प्रयुक्त को हुई अग्नि । २ यह स्वाम अर्थात् ऐसी अग्नि प्रयुक्त को जाय । ३ अग्निके लिये पशुको दिये । ४ यमपति । ५ यम ।

शामिधान (फ्रा० पु०) एक प्रकारका बड़ा लकड़ । इसमें

प्रायः ऊपरकी ओर लंबा चौड़ा कपड़ा होता है जो बाँसों पर तना रहता है। इसके नीचे चारों ओर प्रायः खुला ही रहता है, पर कभी कभी इसके चारों ओर कनात भी बड़ो को जाती है।

शामिल (फा० वि०) जै सामयमें हो, मिला हुआ, सम्मिलित।

शामिल हाल (अ० पु०) जै दुःख सुख आदि सब अवस्थाओंमें साथ रहे, साथी, शारीक।

शामिलगत (अ० स्त्री०) हिस्सेदार, साक्षात्।

शामिल देखो।

शामी (हि० स्त्री०) १ लोहे या पीतलका वह छड़ा जै लकड़ियों या छड़ियों आदिके नीचेके भागमें अथवा बीजारोंके दस्तके सिरे पर उसकी रक्षाके लिये लगाया जाता है। इसे शाम भी कहते हैं। (वि०) २ शाम-देश सम्बन्धी, शामदेशका।

शामीकवाय (हि० पु०) एक प्रकारका कवाय जै मांसको मसालेके साथ भूरनेके उपरांत पोस कर गोलियाँ या टिक्तियोंके रूपमें बनाया जाता है।

शामील (सं० स्त्री०) शम्याः विकारः (शम्भाष्टलच् । पा ४।१।१४२) इति टल्च् । मसम, चाक, राख,।

शामीली (सं० स्त्री०) झू. कु. माला।

शामीवत (सं० स्त्री०) शमीवत् अर्थाथे षण् । शमीवतका गोत्रापत्य। (पाणिनि ५।३।११८)

शामीवत्य (सं० पु०) शमीवत् अपत्यार्थे षण् । शमीवतका गोत्रापत्य। (पाणिनि ५।३।११८)

शामुदय (सं० स्त्री०) शरीरावच्छिन्न मलधारकवस्त्र, गलेमें पहननेका कोई कपड़ा। "पुराधेदि शामुदय" (शुक १०।८।१२६) 'शामुदय' शामलमित्यर्था, शमलं शरीरं मलं शरीरावच्छिन्नमथ मलस्य धारकं चयं परा देहि परात्वज्ज। (वायण)

शामुल (सं० स्त्री०) पशुकी चय, ऊनी कपड़ा।

शामिय (सं० पु०) एक गौतमवर्तक ऋषिका नाम।

शाम्य—भगवान् श्रीकृष्णके पीत। ये श्रीकृष्णके शापके कष्टरोगप्रसन्न हुए थे। पीछे भगवान्के सादेशसे जब शकृष्णने ब्राह्मण ला कर सूर्याकी पूजा कराई, तब ये मुक्त हुए। (बृहस्प०)

शाम्यर (सं० लि०) शाम्यर अण्। १ शाम्यर नामक दैत्यसे आगत। "रविः शाम्यरं वसु प्रत्यप्र भीष्म" (शुक ६।४७।२२) 'शाम्यर' शम्भरादसुरादागतं शाम्यरं हत्वा स्वपा वत्स'। (वायण) २ शाम्यरसंभव्यो।

३ सांभर मृगका (पु०) ४ लोभ घृष्ट, लोभ।

शाम्यरशिल्प (सं० पु०) इन्द्रजाल, जादू।

शाम्यरिक (सं० पु०) जादूगर, मायावी।

शाम्यरिन् (सं० पु०) १ एक प्रकारका चन्दन। २ लोघ, लोव। ३ मूपाकानी नामकी लता।

शाम्यरी (सं० स्त्री०) शम्भर-अण् लोप्। १ माया, इन्द्रजाल। कहते हैं, कि शम्भर दैत्यने पहले पहले इसका प्रयोग किया था, इसी कारण इसका नाम श्रांभरी पड़ा। २ मायाविनी, जादूगरनी।

शाम्यविक (सं० पु०) शङ्ख का व्यवसाय करनेवाला।

शाम्युक (सं० पु०) शम्बुक, घोघा। (शब्दरत्न०)

शाम्युक (सं० पु०) घोघा।

शाम्यर (सं० स्त्री०) १ राजपूतानेकी एक भौल जिसमें सांभर नामक होता है, सांभर भौल। (पु०) २ सांभर नामक। ३ शम्भर ऋषिका अपत्य। ४ हरिणभेद।

हरिया देखो।

शाम्यरायणी (सं० स्त्री०) शम्भर ऋषिकी अपत्य स्त्री।

शाम्यव (सं० स्त्री०) शम्भोदपवेणाय इदं अण्। १ देवदारु। २ कपूर, कपूर। ३-शिवमूर्ती, वसु। ४ गुग्गुलु, गुग्गुलु। ५ एक प्रकारका विष। ६ शिवका पुत्र। ७ शैव, शिवोपासक। (त्रि०) ८ शम्भुसंभव्यो, शिवका।

शाम्यवश्ले—उत्कलके अन्तर्गत एक शैवतीर्था। सम्भवतः एकाग्रश्ले हो शम्भवश्ले कहलाता है।

(उत्कल० ४५।२।६) भुवनेश्वर देखो।

शाम्यवदेश (सं० पु०) एक प्राचीन संस्कृत कवि।

शाम्यवहि (सं० पु०) गौतमवर्तक एक ऋषि।

शाम्यवी (सं० स्त्री०) १ दुर्गा देवी। २ नीच दुर्गा, नीची दुर्गा।

शाम्यद (सं० स्त्री०) सामभेद।

शाम्य (सं० स्त्री०) शाम-यत् । १ शामका माय। २ बभ्रुवत्य, माईचारा। ३ शाम्गि।

शाभप्रदास (सं० स्त्री०) पक्षी की बलि । (दिखा० ६:२४)।
 शाभवाक (सं० स्त्री०) शम्भवाक-सम्बन्धी ।
 शाव (सं० स्त्री०) निद्रित, सोया हुआ ।
 शापक (सं० पुं०) शापयति शत न-शो गिन् प्युत्, यद्वा
 शैते मुनीरे रति-शो-प्युत् । १ बाण, शीर, शर । २
 चट्टक, गजबाण । (ममटोफमं खाभि)
 शापक (सं० स्त्री०) शोक करने या रखनेवाला, शोकीन ।
 २ श्चुम्, छादिशमय ।
 शापल्लापन (सं० पुं०) १ एक ऋषि । २ उनको बनाई
 हुई शाखा ।
 शापद (फा० शब्द) कदाचित्, सम्भव है ।
 शापद (सं० पुं०) घट जो शो छादि बनाता हो, काष्ठ
 करनेवाला, ऋषि ।
 शापरा (सं० स्त्री०) काष्ठ करनेवाली ।
 शापरी (सं० स्त्री०) १ कविता करनेवाली काष्ठी या भाष ।
 २ काष्ठ, कविता ।
 शापकथ (सं० पुं०) एक वैदिक आचार्य ।
 शापा (सं० स्त्री०) १ प्रकट, जादिर । २ प्रकाशित, उपा
 हुआ ।
 शापिक (सं० पुं०) यद् जो शब्दाके द्वारा अपने
 जीविकाका निर्वाह करता हो ।
 शापित (सं० स्त्री०) शो-पित्-क । १ सुलाया या
 लेटाया हुआ । २ पतित, गिरा हुआ ।
 शापिता (सं० स्त्री०) शापना भाषः शापित्-तल टाप् ।
 प्राय, सोना ।
 शापित् (सं० स्त्री०) शोते इति शो-पिति । शपनकारी,
 रोनेवाला । यद् जम्ब प्रायः उपपद्युंशक व्यवहार
 होता है । जैसे—प्रासादनाथो, शपनाशापी इत्यादि ।
 शापित्क (सं० स्त्री०) शप्याया जीवति (पेतनादिभ्यो
 जीरति) । या शपि, इति टक् । जो शब्दाके द्वारा अपने
 जीविकाका निर्वाह करता हो ।
 शार (सं० स्त्री०) शू-शरम् । १ कर्पूरवर्ण, चित्तकरा ।
 २ शोक, मोला । ३ शीले, पीले और रंगका । (पुं०)
 २ पापु, हथ । ३ हिंसन, हिंसा । ४ एक प्रकारका
 वाता । ५ अक्षर उपकरण । (स्त्री०) ६ कुल ।
 शारद (सं० पुं०) शीतर्षि नामकः शू (शाब्दादिभ्यश्च

उप् १:१२६) इति शङ्कुच् । १ नामक । २ हरिण ।
 (गङ्गासमा १ म०) ३ हन्ती, हाथी । ४ शृङ्ग । ५ मयूर ।
 (स्त्री०) ६ कर्पूरवर्णविशिष्ट, चित्तकरा ।
 शारदक (सं० पुं०) एक प्रकारका पक्षी ।
 शारदकधनुष (सं० पुं०) १ शारदक नामक धनुषसे सुशो-
 बित्त गर्धाम् विष्णु । २ कृष्ण ।
 शारदकपाणि (सं० पुं०) १ हाथमें शारदक नामक धनुष
 धारण करनेवाले, विष्णु । २ कृष्ण । ३ राम ।
 शारदकपाणि (हिं० पुं०) शारदकपाणि देवो ।
 शारदकभूत (सं० पुं०) १ शारदक नामक धनुष धारण
 करनेवाले, विष्णु । २ कृष्ण ।
 शारदकवन (सं० पुं०) कुम्भवर्ष नामक देश ।
 शारदकष्ट (सं० स्त्री०) १ काकजंघा । २ करजनी, गुंजा,
 चीटली । ३ मकोव ।
 शारदकष्टा (सं० स्त्री०) १ मकोव । २ लताकरज, कड
 करज ।
 शारदको (सं० स्त्री०) शारदक-कोच् । वाद्ययन्त्रविशेष,
 सारंगो नामक वाजा । विशेष विवरण शारंगी स्वरमें देवो ।
 शारदकोहर—वैष्णव-सामप्रदायविशेष । वैष्णव-उपदेश देवो ।
 शारदकोष्ट (सं० स्त्री०) शारदाष्ट देवो ।
 शारणिक (सं० पुं०) रक्षाकर्ता, यद् जो शरणमें भाये
 हुए की रक्षा करता हो ।
 शारतनिकर (सं० स्त्री०) शरशापी, यद् जो शरशय्या
 पर शयन करता हो ।
 शारतक (सं० स्त्री०) शरतमचोमे चिद् वा शरत् । मण्डा-
 दिभ्य टक् । या शरदादि ३ इति टक् । शरत् कालमें भाष्य-
 यनकारी ।
 शारद सं० स्त्री०) शारदु भव शरदु (शन्पिनेमाचुत्त
 क्वेभ्योऽप्य् । या शारदु इति मण् । १ श्वेत कमल, सफेद
 पत्र । २ शरत् । (पुं०) ३ काम । ४ चक्र, मीन-
 चित्रीका वृत्त । ५ हरिद्वं मुद्रा, हरी मूंग । ६ पीत मुद्र,
 पीली मूंग । ७ वलर, धर्म, मात । ८ एक प्रकारका
 रोग । ९ मेष, वादल । (स्त्री०) १० शरत्काल सम्बन्धी,
 शरत्काल-क । ११ नूतन, नया । १२ अग्रिम । १३
 शालीन, लज्जावान् ।

शारदण्डापनी (सं० स्त्री०) शारदण्डापन ऋषिकी
भायी ।

शारदजल (सं० स्त्री०) शारद शरत्कालोज्ज्वल जलम् ।
शरत्कालका जल ।

शारदमल्लिका (सं० स्त्री०) शरत्कालमय । मल्लिका
(रत्नमा०)

शारदमुद्रण (सं० पु०) हरिमुद्रण, हरी मुद्रण ।

शारदपाचनाल (सं० पु०) शरत्कालमय पाचनाल-
विशेष । गुण—श्लेष्मकर, पिच्छिल, गुरु, शीतल, मधुग,
वृष्य और बलपुष्टिदायक । (राजनि०)

शारदसिंह—कच्छपघातवशोय एक राजा । ये वर-
हयी सर्धमें विद्यमान थे ।

शारदा (सं० स्त्री०) शारद अण्-टाप् । १ सरस्वती ।
२ दुर्गा, भगवती ।

“शरत्काले पुत्र मरुतात् नवम्पा बोधिता सुरैः ।

शारदा सा समालपाता योडे लोके च नामतः ॥”

(तिथितत्त्व)

देवताओंमें पहले शरत्कालमें नवमी तिथिकी देवी
भगवतीका बोधन किया था, इसलिये वे शारदा नामसे
विष्णुवात हुईं । ५ शारिया, अनन्तमूल । ६ प्राचीन
कालकी एक प्रकारकी लिपि । लिगसै राज प्रयचन्द्रके
राज्यकालमें हरिप्रामके राजानक लक्ष्मणचन्द्रने अपने
राज्यके वैजनाथ मन्दिरमें इस लिपिमें एक प्रशस्ति
उत्कीर्ण की थी ।

शारदाग्ना (सं० स्त्री०) सरस्वती ।

शारदिक (सं० स्त्री०) शरदु (आदे शरदः । पा ४।३।२२)
इति ठञ् । १ श्राद्ध । (पु०) शरदु । विमाया योगान्तपो ।
पा ४।३।२३) इति ठञ् । २ रोग, बीमारी । ३ आतप,
शरत् ऋतुमें होनेवाला उजर । (वि० की०)

शारद्विन् (सं० पु०) १ सप्तपर्णवृक्ष, छतिवन । २ कञ्जट
द्राक । ३ अरराजिता । ४ अन्न या फल आदि ।

शारदी (सं० स्त्री०) शारद लोप् । १ तोयपिप्लो,
जलपील । २ सप्तपर्ण, छतिवन । ३ कोजागर-
पूर्णमा । चन्द्राश्विन पूर्णिमाको शारदी पूर्णिमा
कहते हैं । इस पूर्णिमा तिथिकी कोजागरी लक्ष्मी
पूजा करनी होती है । (त्रि०) ४ शरत्कालीन, शरत्
कालका ।

शरत्कालमय दुर्गापूजा सार्विक, रात्रिसिक और
तामसिक भेदसे तीन प्रकारकी है । दुर्गा शरद देखो ।
५ संवत्सरसम्बन्धित । 'यदिन्द्रशास्त्रीरवातिरः' ।

(अशुक् १।२।१४)

शारदोयमहापूजा (सं० स्त्री०) शारदोया महापूजा,
शरत्कालीन दुर्गापूजा । शरत् और वसंत इन दोनों
ऋतुमें दुर्गापूजा होती है । किंतु शरत्कालमें जो दुर्गापूजन
होता है, उसे महापूजा कहते हैं । यह पूजा चतुर्भुजाय
है अर्थात् स्तवन, पूजन, होम और बलिदान पूजाका
अङ्ग है । चांद्रभाषिनके शुकपक्षमें सप्तमी, अष्टमी और
नवमी इन तीन तिथियोंमें उक्त पूजाका विधान है ।

द्वेषीपुराण, कालिकापुराण, वृन्निन्दिके, अरपुराण
आदिमें इस पूजाका विशेष विवरण आया है ।

दुर्गा स्तव देखो ।

शारथ (सं० त्रि०) शरत्कालका, शरत् ऋतु-सम्बन्धी ।

शारद्वन (सं० पु०) शरद्वत्-अपत्याधे अञ् । (पा
४।१।०४) शरद्वतका गोत्रापत्य, रूप । (मात)

शारद्वतायन (सं० पु०) शारद्वतका गोत्रापत्य ।

शारभ (सं० त्रि०) शरभ-अण् । शरभ-संबन्धी ।

शारभर (सं० स्त्री०) जनपदभेद । (राजतर० २।१८७८)

शाराय (सं० त्रि०) शराये उट्पृथः शाराय (ततोऽपृथम-
श्रेयसः । पा ४।२।१४) इति अण् । शारायमे उट्पृथ
अन । 'शराये उट्पृथः शारायो मुक्तोच्छेद मोदन्' ।

(सिदान्तकीमु०)

शारि (सं० पु०) श्रुतिंसायां इच् । १ अशोपकरण,
पासा आदि खेचनेकी मोटी । पर्याय—मुष्टिका, नाद,
खेचनी । (स्त्री०) (थः शकुतो । उण् ४।२७) इति
इच् । २ शकुनिनामद । ३ युद्धार्थं यज्रपर्वण, लड़ाई-
के लिये हाथीकी पीठ परका हीदा । ४ व्यवहारान्तर,
व्यवहारविशेष । ५ कपट, छल, धोता । ६ एक प्रकारका
गोत । ७ मैता ।

शारिका (सं० स्त्री०) शारिरेव स्वार्थे कन् । १ पक्षि-
विशेष, मैना नामकी चिड़िया । पर्याय—पीतवादा,
योगाटी, गो किराटिका, सारिका, शारी, चित्रलोचना,
शारि, मदनशारिका, शलाका । मैना देखो । २ बाजा

या शारंगी बजाने की क्रिया । ३ शारंगी आदि बनाने की प्रमाणी । ४ दुर्गा देवो । ५ शरि देवो ।

शारिका ज्वर (सं० पु०) दुर्गाका एक ज्वर जो मद्रया-
मन्त्र नाममें है ।

शारिक (सं० लि०) चित्र विचित्र, रंगीन ।

शारिपट्ट (सं० पु०) जलरंज या नीसर आदि खेलने की
बिसात ।

शारिपत्तर (सं० पु०) खेलनेका एक पत्थर ।

शारिकण्ड (सं० पु० ह्री०) शारीका खेलनोना फलम् ।

शारिपट्ट, जलरंज या नीसर खेलनेकी बिसात । पर्याय -
भद्रापद, फलक, भाकरा, शारिकण्डक, विद्रुतभक्त, अक्ष-
पाटो । जटापर

शारिवा (सं० स्त्री०) १ श्यामलता, अनन्तमूल, सायला ।
इसके पत्ते आम्रनके पत्ते जैसे होते हैं । इसमें दूधके
समान सफेद दूध होते हैं । यह दो प्रकारकी होती है,
सफेद और काली । उत्कल—गुणायान मूल । संस्कृत
पर्याय—गोपी, श्यामा, अनन्ता, उत्कलशारिवा । धमर-
टाकामें भरनेमें लिपा है, पञ्चरवामलता । किसी किसोके
मत्स्य नामजिहवा, गोपी आदि तीन तथा अनन्तादि दो,
यह पाँच श्यामलता है । किसीके मतसे अनन्तमूल ।

पञ्च श्यामलतायां नामजिहवावामिति । फेचिन् गोव-
प्यादिशयं श्यामलताया अनन्तादि दुषं अनन्तमूले
इति फेचिन् । शुष्प रक्षणे । (भरत)

“गोपी श्यामा गोवपरी गोपा गोपालिकापि च ।”
इति याचस्वतिः । एकं वा शारिवामूलं सर्वप्रणयिगोच-
रम् । (वैद्यक)

शुण—सायु, स्निग्ध, शुक्रवर्त्तक, शुक्र, अग्निमान्द्य
और शरनिनाशक, श्याम, कास, घमि और शूलानाशक
शिक्षोपवन, रक्तप्रूर और उपशतिसपर नाशक ।
२ जवासा, घमासा ।

शारिवाहा (सं० स्त्री०) सहस्रवाः पर्यमान प्राणि-
विराट् । (अर्ष ३१४४)

शारिभ्रूला (सं० स्त्री०) शारीका भ्रूला वस्तु । पाजक-
विराट्, जूभा खेलनेका एक प्रकारका वासा या मोटो ।
(कश्मीरनाटक)

शारिभ्रू (सं० पु०) जूभा खेलनेका एक प्रकारका वासा
या मोटो ।

शारी (सं० स्त्री०) १ इन्द्र या शीव । २ दुर्गा नामकी
चास । ३ जकुनिकाभेद, एक प्रकारका पत्तो ।
३ मुद्र, कौटो । (पु०) ४ जलरंजनी मोट, गेहू ।
शारीटक (सं० पु०) एक गाँवका नाम ।

(राजतर० ३३३४)

शारीर (सं० स्त्री०) १ रूप, बेल । शारीरे भयः शरीर-
भयम् । (लि०) २ शरीरमात, शरीरदण्ड । बृहस्प-
यो मो शारीर कहते हैं । व्यवहारशास्त्रमें विशेष भा-
राथ पर शरीरदण्डका विधान है ।

शास्त्रमें ब्राह्मणको शारीरदण्डका विधान नहीं है ।
ब्राह्मणको शारीर भिन्न शय्य दण्ड देना होता है ।

२ शरीर-सम्बन्धीय दुःख । दुःख तीन प्रकारका
है, नाशवात्मिक, भाषिदेविक और भाषिनीनिक । यह
भाषवात्मिक दुःख फिर दो प्रकारका है; शारीर और
मानस । वायु, पित्त और श्लेष्माकी विषमतासे जो
दुःख होता है, उसे शारीरदुःख कहते हैं । अर्थात् योग
जन्म जो दुःख होता है, उसका नाम शारीर है ।

शारीर दुःख उपर आदि रोगभेदसे जतिक प्रकारका
है । जितने प्रकारके रोग हैं, सभी शारीर हैं ।

सुधृतादि चैद्यकसंहिताओंमें शारीरविषय अधिकांश
करके कृत शरीर वृत्ताश्लेषाशयान रूप शय्यतम स्थान ।
अर्थात् सुधृतादि चैद्यक ग्रन्थोंमें शरीर सम्बन्धीय समो
विषय जहाँ बड़े पये हैं, वहाँ उसे शारीरस्थान कहते हैं ।
शरीरसम्बन्धीय तपस्या ।

देवता, ब्राह्मण, शुक्र और प्राण्य व्यक्तिवोंकी पूजा,
शौच, सत्कथा, प्रज्ञावर्षी और अहिंसा इन सबोंका नाम
शारीरतप है ।

शारीरक (सं० स्त्री०) शरीरमें शारीर कुम्भितरयात्
तग्निवासी शारीरको ज्वलनमविद्रव्य श्लोप्रमाः
शारीरक-मण् । १ पेटव्यासनें जो देहात्त प्रपपन
क्रिया है उसको शारीरकाय कहते हैं । जोयका अधि-
ष्ठान शरीर है, सोय इस शरीरमें रह कर नाम प्रकारका
दुःख भोगता है इसी कारण यह शक्ति मिश्रण है ।
शारीरविहित जीव शारीरक कहलाता है । यह शारीरक

सम्बन्धीय ग्रन्थ होनेके कारण इसका शारीरकसूत्र नाम हुआ है। इस सूत्रमें जीवके अघिष्ठानभूत शरीरको जिससे नियुक्ति हो, उसका विषय विशेष रूपसे वर्णित हुआ है। विशेषविषय वेदान्त दर्शन चर्चमें देखे।

शारीरमेव शरीरकं तत्र मयं शरीरक-मण् । (ति०)

२ शारीरमय, शरीरसे उत्पन्न।

शारीरकन्यायरक्षामणि (सं० पु०) शारीरक मीमांसाका एक भाष्य। यह शंकराचार्यका किया हुआ है।

शारीरकभाष्य—शङ्कराचार्यका किया हुआ ब्रह्मसूत्रका भाष्य।

शारीरकभाष्यवार्त्तिक (सं० ज्ञी०) वेदान्तसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकभाष्यविभाग (सं० पु०) शारीरकसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकमीमांसा; (सं० ज्ञी०) उत्तरमीमांसा, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र।

शारीरकशास्त्रदर्पण (सं० पु०) वेदान्तदर्शनका एक भाष्य।

शारीरकसूत्र (सं० पु०) वेदव्यासका किया हुआ वेदान्त-सूत्र।

शारीरकौपनिषद् (सं० ज्ञी०) एक उपनिषद्।

शारीरतत्त्व (सं० ज्ञी०) शारीरतत्त्व तत्त्व। शारीरस्थान, यह शास्त्र जिसमें शरीरके तत्त्वों और रचना आदिका विवेचन होता है।

शारीरविधान (सं० ज्ञी०) १ यह शास्त्र जिसमें इस बातका विवेचन होता है, कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। २ यह शास्त्र जिसमें जीवोंके शरीर के भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्योंका विवेचन होता है।

शारीरव्रण (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। यह घात, पित्त, कफ और रक्तसे उत्पन्न होता है। परन्तु रक्तके सम्बन्धसे द्विदोषज और त्रिदोषज होनेके कारण आठ प्रकारका हो जाता है—(१) घातव्रण, (२) पित्तव्रण, (३) कफव्रण, (४) रक्तव्रण, (५) घातपित्तव्रण, (६) घातकफव्रण, (७) कफपित्तव्रण और (८) सन्निपातज व्रण।

शारीरशास्त्र (सं० ज्ञी०) शारीरविधान देखे।

शारीरिक (सं० ति०) शरीर-उक्त। शरीर-सम्बन्धी, जिस्मानो। पर्याय—कालेयरिक, गालिक, यापुगिक, सांढनसिक, वार्त्तिक, वैप्रहिक, कापिक, दीहिक, मीत्तिक, तानविक।

शार्क (सं० ति०) शृणुतातीति शृ (कषयात्तपदस्येति । पा ३।२।१५४) इति ऊंकञ् । १ हिंसक, हिंस्र, हत्या या नाश करनेवाला। २ कष्ट देनेवाला।

शार्क (सं० पु०) १ शर्करा, चीनी। २ एक प्राचीन गौतमवर्षिक श्रष्टिका नाम। (नागरण्यक)

शार्कक (सं० पु०) दुग्धफेन, दूधका फेन। २ शर्करा गिण्ट, चीनीका डेला। ३ गोश्तका टुकड़ा।

शार्कर (सं० पु०) शर्करास्त्ययेति शर्कराः (दासु लुक्प्रचो च । पा ३।२।१०५) इति भण् । १ शर्करान्वित देश, वह देश जहां चीनी बहुत होती है। २ वह स्थान जो कंकरो और परपरोसे भरा हो, कंकरीनी या पथरीली जगह।

३ दुग्धफेन, दूधका फेन। शिकता (शर्कराभावात् । पा ५।२।१०४) इति भणि शर्कराविशिष्टश्च । (काशिका०)

४ लोघुष्ट, लोपका पेड़। (ति०) ५ शर्करा-संबन्धी। शर्करा (शर्करादिभ्योऽण् । पा ३।२।१०७) इति भण् ।

६ शर्करा सद्रव। ७ शर्करायुक्त, शर्कराविशिष्ट।

शार्कारक (सं० पु०) १ वह स्थान जो कङ्करो और परपरोसे भरा हो, कङ्करीली या पथरीली जगह। २ वह स्थान जहां चीनी बहुत होती है। (ति०) ३ कङ्करीला, पथरीला।

शार्कारमय (सं० ज्ञी०) प्राचीन कालका एक प्रकारका मद्य जो चीनी और घीसे बनाया जाता था।

"शर्कराघातकीतीयकपित्तैः शार्करो मता ।"

इस मद्यका गुण—शीत, क्षय, क्षीण और मोहजनक (राजनि०) अन्य प्रकार शर्कराजात मद्यका गुण—मधुर, दधिक, क्षीण और वास्तियोगन।

(मुभुतसूत्रव्या ५५ अ०)

शार्काराक्ष (सं० पु०) शर्कराक्षका गोतापत्य। शार्कराक्षि (सं० पु०) शर्कराक्षका प्रवर्तित गोत। शार्काराक्ष्य (सं० पु०) शार्काराक्षका गोतापत्य।

शार्करिक (सं० पु०) १ शर्करावहुल देश, ६६ देश जहां

या सारंगो वज्रानेहा क्रिया । ३ सारंगो मादि वनानेहो
नमानो । ४ दुर्गा देवो । ५ आदि देवो ।

आरिहा नयन (सं० पु०) दुर्गाका एक नयन जो वज्र-
मन्त्र तन्त्रमें है ।

आरिण (सं० लि०) निज विचित्र, रंगीन ।

आरिण्ट (सं० पु०) जगरंज या चौसर मादि खेलनेकी
विमान ।

आरिण्टर (सं० पु०) खेलनेका एक परधर ।

आरिण्ट (सं० पु० ह्री०) शारीरका खेलनेवाली कलम् ।

आरिण्ट, जगरंज या चौसर खेलनेकी विमान । पर्याय-
भद्राण्ड, कलरु, भाकरु, आरिण्टर, विन्दुनाथ, भद्र-
पांशो । लक्षण

आरिहा (सं० स्त्री०) १ श्यामलता, अनन्तमूल, सायसा ।
इसमें पत्ते आम्रमूलेके पत्ते जैसे होते हैं । इसमें दूधके
समान सफेद दूध होते हैं । यह दो प्रकारकी होती है,
सफेद और काली । उतकल—गुणावान मूल । संस्कृत
पर्याय—गोपी, श्यामा, अनन्ता, उदालआरिहा । अमर-
उक्तमें भरुने लिखा है, पञ्चश्यामलता । किसी किसीके
मतमें मायाजिह्व, गोपी मादि तीन तथा अनन्तादि दो,
यह पाँच श्यामलता है । किसीके मतमें अनन्तमूल ।

पञ्च श्यामलतायां मायाजिह्वायामिति । केचिन् गोव-
ल्पादिपत्रं श्यामलताया अनन्तादि दुष्यं अनन्तमूले
इति चेदियम् । गुण रसणे । (भरु)

'गोपी श्यामा गोवपस्त्री गोपा गोपालिकापि च ।'
इति याचस्वामिः । एकं वा आरिहामूलं सर्वप्रणयशोच
भम् । (वैद्यक)

गुण—मादु, विनाय, शुक्रवर्धक, गुद, अन्निमाद्य
और अर्धकामाश्रय, भ्रास, काम, वसि और तृष्णामाश्रक
विशेषकर, रसकर और उपगतिसत्पराश्रक ।
२ श्यामता, काला ।

आरिहा (सं० स्त्री०) लक्षणा बर्मान प्रादि-
विशेष । (कर्ण रसकर)

आरिहा (सं० स्त्री०) शारीरका कलम् । पञ्चा-
रिण्ट, गुण रसणे । (कर्ण रसकर)

आरिहा (सं० पु०) गुण रसणे । (कर्ण रसकर)
आरिहा (सं० पु०) गुण रसणे । (कर्ण रसकर)

शारी (सं० स्त्री०) १-१ प्र, या शीर्, १ दुग्गा नामकी
मास । २ गङ्गुनिकाभेद, एक प्रकारका पक्षी ।

३ मुञ्च, कौट्टा । (पु०) ४ जतरंजली मोट, गेय ।

शारीरक (सं० पु०) एक गाँवका नाम ।

(राजतर० २३४६)

शारीर (सं० स्त्री०) १ दूध, घैल । शरीरे भयः शारी-
मण् । (लि०) २ शरीरजात, शरीरदण्ड । बध्दण्ड-
के भी शारीर कहते हैं । व्यवहारशास्त्रमें विशेष भा-
षाच पर शरीरदण्डका विधान है ।

शास्त्रमें ब्राह्मणकी शरीरदण्डका विधान नहीं है ।
ब्राह्मणकी शारीर भिन्न शय्य वृण्ड देना होता है ।

२ शरीर-सम्बन्धीय दुःख । दुःख तीन प्रकारका
है, भावशास्त्रिक, भाषिदेविक और भाषिनीनिक । यह
भावशास्त्रिक दुःख फिर दो प्रकारका है, शारीर और
मानस । वायु, पित्त और श्लेष्माकी विषयतासे जो
दुःख होता है, उसे शारीरदुःख कहते हैं । अर्थात् रोग
जन्म जो दुःख होता है, उसका नाम शारीर है ।

शारीर दुःख उबर आदि रोगमेवसे भेदक प्रकारका
है । जितने प्रकारके रोग हैं, सभी शारीर हैं ।

सुधतादि वेदवत्संहितामें शरीरविषय भाषिकार
करके कृत शरीर वृत्तास्तव्याख्यान रूप शय्यतन स्थान ।
मघोन् सुधतादि वेदक प्रयोगोंमें शरीर सम्बन्धीय समी
विषय जहाँ कहे गये हैं, वहाँ उसे शारीरस्थान कहते हैं ।
शरीरसम्बन्धीय तपस्या ।

देवता, ब्राह्मण, गुद और माण्ड स्वतन्त्रिकी पूजा,
शौच, सस्त्रता, प्रज्ञावर्षी और अहिंसा इन सबका नाम
शारीरतप है ।

शारीरक (सं० स्त्री०) शरीरमें शरीर कुम्भितत्वात्
तन्निपासो शारीरको जीवहनविद्वेष क्लोप्रमण
शारीरक-मण् । १ वेदव्याख्येन जो वेदान्त प्रवचन
क्रिया है उसको शारीरकामूल कहते हैं । जोवहा अधि-
ज्ञान शारीर है, सोच इस शारीरमें रह कर माना प्रकारका
दुःख भोगता है, इसी कारण यह भाँति-मिथुन है ।
कर्मविधिजन्म जीव शारीरक कहलाता है । यह शारीरक-

सम्बन्धीय ग्रन्थ होनेके कारण इसका शारीरकसूत्र नाम हुआ है। इस सूत्रमें जीवके अधिष्ठानभूत शरीरकी जिससे निवृत्ति हो, उसका विषय विशेष रूपसे वर्णित हुआ है। विशेषविवरण वेदान्त दर्शन शब्दमें देखे।

शारीरमेव शरीरकं तत्तु भवं शरीरक-गणम् । (त्रि०)

२ शरीरस्य, शरीरसे उत्पन्न ।
शारीरकन्यायरक्षामणि (सं० पु०) शारीरक मीमांसाका एक भाष्य। यह शंकराचार्यका किया हुआ है।

शारीरकभाष्य—शङ्कराचार्यका किया हुआ प्रह्लादसूत्रका भाष्य।

शारीरकभाष्यवार्त्तिक (सं० छी०) वेदान्तसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकभाष्यविभाग (सं० पु०) शारीरकसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकमीमांसा; (सं० छी०) उत्तरमीमांसा, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र।

शारीरकशास्त्रदर्पण (सं० पु०) वेदान्तदर्शनका एक भाष्य।

शारीरकसूत्र (सं० पु०) वेदव्यासका किया हुआ वेदान्त-सूत्र।

शारीरकौपनिषद् (सं० छी०) एक उपनिषद्।

शारीरतत्त्व (सं० छी०) शारीरतत्त्व तत्त्व। शारीरस्थान, यह शास्त्र जिसमें शरीरके तत्त्वों और रचना आदिका विवेचन होता है।

शारीरविधान (सं० छी०) १ वह शास्त्र जिसमें इस बातका विवेचन होता है, कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। २ वह शास्त्र जिसमें जीवोंके शरीर के भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्योंका विवेचन होता है।

शारीरव्यय (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। यह घात, पित्त, कफ और रक्तसे उत्पन्न होता है। परन्तु रक्तके सम्बन्धसे त्रिदोषजन्य और त्रिदोषजन्य होनेके कारण आठ प्रकारका हो जाता है—(१) घातव्यय, (२) पित्तव्यय, (३) कफव्यय, (४) रक्तव्यय, (५) घातपित्तजन्य, (६) घातकफजन्य, (७) कफपित्तजन्य और (८) सन्निपातजन्य।

शारीरशास्त्र (सं० छी०) शारीरविधान देखे।
शारीरिक (सं० त्रि०) शरीर-उक्त। शरीर-सम्बन्धी, जिस्मानो। पर्याय—कालेधरिक, गालिक, वायुयिक, सांहननिक, धार्मिक, धैर्यिक, कायिक, वैदिक, मूर्च्छिक, तानयिक।

शार्कर (सं० त्रि०) शृणुतातीति शृ (कृष्णात्पदस्वेति । पा ३।२।१५४) इति ऊंकञ् । १ हिंसक, विघ्न, हत्या या नाश करनेवाला। २ कष्ट देनेवाला।

शार्कं (सं० पु०) १ शर्करा, चीनी। २ एक प्राचीन गौत-प्रवर्त्तक श्रष्टिका नाम। (नागरलयद)

शार्कक (सं० पु०) दुग्धफेन, दूधका फेन। २ शर्करा-पिण्ड, चीनीका ढेला। ३ गोशतका टुकड़ा।

शार्कर (सं० पु०) शर्करास्थयैति शर्कराः (दाशे लुक्लि-ची च । पा १।२।१०५) इति अण् । १ शर्करान्वित देश, वह देश जहां चीनी बहुत होती हो। २ वह स्थान जो कंकरों और पथरोंसे भरा हो, कंकरोली या पथरीली जगह।

३ दुग्धफेन, दूधका फेन। शिकता (शर्कराभाष्य । पा ५।२।१०४) इति अणि शर्कराविशिष्टश्च । (काशिका०)

४ लोषुदृष्ट, लोषका पेड़। (त्रि०) ५ शर्करा-सम्बन्धी। शर्करा (शर्करादिभ्योऽण् । पा १।३।१००) इति अण् ।

६ शर्करा सद्देश। ७ शर्करायुक्त, शर्कराविशिष्ट।

शार्कारक (सं० पु०) १ वह स्थान जो कंकरों और पथरोंसे भरा हो, कंकरोली या पथरीली जगह। २ वह स्थान जहां चीनी बहुत होती हो। (त्रि०) ३ कंकरोली, पथरीली।

शार्कारमय (सं० छी०) प्राचीन कालका एक प्रकारका मद्य जो चीनी और धौसे बनाया जाता था।

"शर्कराघातकीतोयकथितैः शार्करो मता ।"

इस मद्यका गुण—शीत, रुच्य, दीपन और मोहजनक (राजनि०) अन्य प्रकार शर्कराजात मद्यका गुण—मधुर, रुचिकर, दीपन और वस्तियोगन।

(मुभुत सूत्रत्या ५५ अ०)

शार्कारक्ष (सं० पु०) शर्कराक्षका मोक्षापत्य।
शार्कराक्षि (सं० पु०) शर्कराक्षका प्रवर्त्तित मोक्ष।
शार्कारक्ष्य (सं० पु०) शार्कारक्षका मोक्षापत्य।
शार्करिक (सं० पु०) १ शार्कारावहुल देश, वह देश जहां

या शारंगो वज्रादेकां क्रिया । ३ शारंगो वादि वज्रादेको वज्राङ्गो । ४ दुर्गा देवो । ५ रत्न देवो ।

शारिका शब्द (सं० पु०) दुर्गाका एक शब्दम आ कश्चि-
मन्त शारङ्गो हे ।

शारिण (सं० लि०) चित्त विचित्र, रंगीन ।

शारिण्ट (सं० पु०) शारंग या चीमर वादि शैलदेवी
विमान ।

शारिण्टर (सं० पु०) शैलदेवी एक परम्पर ।

शारिण्ट (सं० पु० शी०) शारोणां शैलनीनां कल्पम् ।
शारिण्ट, शारंग या चीमर शैलदेवी विमान। पर्वो-
पश्यात्, फलक, भाकर्थ, शारिकलक, शिष्टदुग्ध, भक्ष-
यन्त्रो । श्याय

शारिका (सं० स्त्री०) १ श्यामलता, भगवन्मूल, सालसा ।
इसके पत्ते मासुनके पत्ते जैसे होते हैं । इसमें दूधके
समान सफेद दूध होते हैं । यह दो प्रकारकी होती है,
सफेद और काली । उत्कल—गुणायान मूल । संस्कृत
पर्वो—शीवी, श्यामा, भगवन्ता, उरालशारिका । शमर-
टारामे मरतने लिखा है, पञ्चश्यामलता । किसी किसीके
मतमें श्यामजिह्व, शोषो वादि तीन तथा भगवन्तादि दो,
यह चार श्यामलता है । किसीके मतसे भगवन्तामूल ।

पञ्च श्यामलतायां श्यामजिह्वायामिति । केचिन् गोव-
त्यादितयं श्यामलतायां भगवन्तादि दुषं भगवन्तामूले
इति केचिन् । गुणु रक्षणे । (भरत)

'गोवो श्यामा गोवपरनी गोषा गोपालिकापि च ।'
इति याचक्ष्यतिः । एकं वा शारिणामूलं सर्वमेषामिगोष
गम् ।' (वैद्यक)

गुण—स्वादु, तिक्त, शुक्रवर्द्धक, गुष्ठ, मज्जिमाषण
भीरु भक्षयिनाशक, भ्यास, कास, वमि भीरु शूलामाशक
तिक्षेवदन, रक्तप्रदर भीरु उपधातिसत्त्वरनाशक ।
२ ज्ञाप्या, घमासः ।

शारिणाका (सं० स्त्री०) सहज्जगः यदमान प्राणि-
विदेव । (भयं ३३३४२)

शारिण्टुका (सं० स्त्री०) शारोणां शूद्रुला यन् । पाशक-
विदेव, शूभा शैलदेवी एक प्रकारका वाता वा मोटी ।
(कट्टरान्तकी)

शारिण्टु (सं० पु०) शूभा शैलदेवी एक प्रकारका वासा
वा मोटी ।

शारी (सं० स्त्री०) १-१ जू, या डीर, १ दुग्गा नामकी
घास । २ जङ्गुनिकाभेद, एक प्रकारका पशु ।
३ मुद्ग, कौडा । (पु०) ४ शतरंजकी मोट, मोट ।
शारीरक (सं० पु०) एक गोविका नाम ।

(रामतर० ३३४१)

शारीर (सं० स्त्री०) १ दूध, घैल । शारीरे मयः शारं-
मण् । (लि०) २ शारीरता, शारीरदण्ड । कश्चिद-
को मो शारीर कहते हैं । व्यवहारशास्त्रमें विशेष भा-
राय पर शारीरदण्डका विधान है ।

शारीरमें प्राज्ञानकी शारीरदण्डका विधान नहीं है ।
प्राज्ञानको शारीर शिम्भ भय दण्ड देना होता है ।

२ शरीर-सम्बन्धीय दुग्गा । दुग्गा गोम प्रकारका
है, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक । यह
आध्यात्मिक दुग्गा फिर दो प्रकारका है, शारीर और
मानस । वायु, पित्त और श्लेष्माकी विद्यमानता जो
दुग्घ होता है, उसे शारीरदुग्घ कहते हैं । अर्थात् शीम
जन्म जो दुग्घ होता है, उसका नाम शारीर है ।

शारीर दुग्घ उपर वादि रोगभेदसे अनेक प्रकारका
है । जिनके प्रकारके रोग हैं, सभी शारीर हैं ।

सुधृतादि वेद्यकसाहित्यामीं शारीरविषय अभिप्राय
करके एत शरीर वृत्तात्तदवामवान रूप शय्यतत स्थान ।
अर्थात् सुधृतादि रीत्यक प्रयोगोंमें शरीर सम्बन्धीय सभी
विषय अहां कहे गये हैं, यहां उते शारीरत्वान कहते हैं ।
शारीरसम्बन्धीय तत्पथा ।

देवता, प्राज्ञान, शुद्ध और प्राण कदमिपोकरी वृत्ता,
शीम, सरलता, प्रज्ञावर्दी और अहिंसा इन सबोंका नाम
शारीरत्व है ।

शारीरक (सं० स्त्री०) शरीरमें शारीर कुटिमगत्यान्
तन्निवासो शारीरको गोवक्षन्मविदृश्य दृशोप्रमण
शारीरक-मण् । १ श्लेष्माग्नें आ वेदान् प्रलक्ष
क्रिया है उसको शारीरकामूल कहते हैं । शोषका भवि-
ज्ञान शारीर है, शोष इस शरीरमें रह कर मज्जा प्रकारका
दुग्घ भागना है, इसी कारण यह शानि किंशुत है ।
शरीरविहित शीम शारीरक कहलाता है । यह शारीरक

सम्बन्धोप ग्रन्थ होनेके कारण इसका शाहीरकसूत्र नाम हुआ है। इस सूत्रमें जीवके अधिष्ठानभूत शरीरको जिससे निवृत्ति हो, उसका विषय विशेष रूपसे वर्णित हुआ है। विशेषाविवरण वेदान्त दर्शन शब्दमें देखे।

शरीरमेव शरीरकं तत्र भवो शरीरक-अणु। (त्रि०)

२ शरीरमेव, शरीरसे उत्पन्न।

शाहीरकन्यापरक्षामणि (स० पु०) शाहीरक मीमांसाका एक भाष्य। यह शंकराचार्यका किया हुआ है।

शाहीरकभाष्य—शंकराचार्यका किया हुआ प्रह्लासूत्रका भाष्य।

शाहीरकभाष्यवार्त्तिक (स० खी०) वेदान्तसूत्रका एक भाष्य।

शाहीरकभाष्यविभाग (स० पु०) शाहीरकसूत्रका एक भाष्य।

शाहीरकमीमांसा (स० खी०) उत्तरमीमांसा, प्रह्लामीमांसा, वेदान्तसूत्र।

शाहीरकशास्त्रदर्पण (स० पु०) वेदान्तदर्शनका एक भाष्य।

शाहीरकसूत्र (स० पु०) वेदव्यासका किया हुआ वेदान्त-सूत्र।

शाहीरकपत्नियद् (स० खी०) एक उपनियद्।

शाहीरकतत्त्व (स० खी०) शाहीरक तत्त्व। शाहीरस्थान, यह शास्त्र जिसमें शरीरके तत्त्वों और रचना आदिका विवेचन होता है।

शाहीरविधान (स० खी०) १ यह शास्त्र जिसमें इस बातका विवेचन होता है, कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। २ यह शास्त्र जिसमें जीवोंके शरीरके भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्योंका विवेचन होता है।

शाहीरव्रण (स० पु०) एक प्रकारका रोग। यह वात, पित्त, कफ और रक्तसे उत्पन्न होता है। परन्तु रक्तके सम्बन्धसे द्विदोषज और त्रिदोषज होनेके कारण आठ प्रकारका हो जाता है—(१) वातव्रण, (२) पित्तव्रण, (३) कफव्रण, (४) रक्तव्रण, (५) वातपित्तजव्रण, (६) वातकफजव्रण, (७) कफपित्तजव्रण और (८) सन्निपातज व्रण।

शारीरशास्त्र (स० खी०) शारीरविधान देखा।

शारीरिक (स० खी०) शरीर-ठक। शरीर-सम्बन्धो, जिस्मानो। पर्याय—कालेवरिक, गात्रिक, चार्पुषिक, सांढननिक, धार्मिक, चैत्रदिक, कापिक, दैहिक, मूर्त्तिक, तानविक।

शार्क (स० खी०) शृणातीति शृ (जघपातपदस्येति । पा ३।२।१५५) इति ऊंकञ् । १ दिंसक, दिंस, हत्या या नाश करनेवाला। २ कष्ट देनेवाला।

शार्क (स० पु०) १ शंकरा, चीनी। २ एक प्राचीन गोल-प्रवर्तक ऋषिका नाम। (नागरहाय्य)

शार्क (स० पु०) दुग्धफेन, दूधका फेन। २ शंकरा-पिण्ड, चीनीका डेला। ३ गोस्तका टुकड़ा।

शार्कर (स० पु०) शर्करास्त्यत्रेति शर्कराः (दाशे लुक्लि-ची च । पा १।२।१०५) इति अण् । १ शर्करावित देश, वह देश जहां चीनी बहुत होती है। २ वह स्थान जो कंकरों और पत्थरोंसे भरा हो, कंकरीली या पथरीली जगह।

३ दुग्धफेन, दूधका फेन। शिकता (शर्कराभाष्य । पा ५।२।१०४) इति अणि शर्कराविशिष्टश्च । (काशिका०)

४ लोघृत्तश्च, लाघका पेड़ा (त्रि०) ५ शर्करा-संबंधी। शर्करिव (शर्करादिभ्योऽण् । पा १।२।१००) इति अण् ।

६ शर्करा सद्गुण। ७ शर्करायुक्त, शर्कराविशिष्ट।

शार्कर (स० पु०) १ वह स्थान जो कङ्करीं और पत्थरोंसे भरा हो, कङ्करीली या पथरीली जगह। २ वह स्थान जहां चीनी बहुत होती है। (त्रि०) ३ कङ्करीला, पथरीला।

शार्करमद्य (स० खी०) प्राचीन कालका एक प्रकारका मद्य जो चीनी और घीसे बनाया जाता था।

"शर्कराघातकीतोपकाधतैः शार्करो मता ।"

इस मद्यका गुण—श्रोत, श्पथ, दीपन और मोहजनक (राजनि०) अन्य प्रकार शर्कराजात मद्यका गुण—मधुर, रुचिकर, दीपन और वास्तिरोधन।

(सुभुत सूत्रव्या ४५ अ०)

शार्कराक्ष (स० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्कराक्षि (स० पु०) शर्कराक्षका प्रवर्तित गोत्र।

शार्कराक्ष्य (स० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्करिक (स० पु०) १ शर्करावहलु देश, वह देश जहां

भीती बहुत होती है। २ यह देन या स्थान जो कं करी और परचरोने मरा हो।

जाबेरिल (सं० लि०) जाबेरिलिन मूलित, जो कं करीनी जमोम या पैदा हुआ हो।

जाबेरिधान (सं० पु०) प्राचीन जालका एक देन जो उभर दिनामे था।

जाबेरिप (सं० पु०) जाबेरिपुका देन।

जाबेरिट (सं० लि०) विप-मन्थनी। (अषट् ७, ५१, ७)

जाबेरिलोदि (सं० पु०) शृङ्गलोदिन् (बह्वादिभ्यश्च । वा ४, १, १६) इति अषट्पाठे १२। शृङ्गलोदिका गोसावरे।

जाबेरि (सं० स्त्री०) शृङ्गस्थ विदार शृङ्ग-भण्। १ विष्णुधनु, विष्णुके हाथमें रहनेवाला धनुष। २ धनुष, कमान। ३ जाबेरि, बदेरब, जद्री। ४ सामभेद, एक प्रकारका साम। (आट्पा० १, १, ६३) ४ मायद्रि-राष्ट्रवर्णिन एक राजाका नाम। (अष्टादि ३, ६, ३६)

(लि०) ५ शृङ्ग-सम्बन्धी, शृङ्गका।

जाबेरिक (सं० पु०) पक्षी, विष्टिया।

जाबेरिष—धनुषके रचविज्ञ।

जाबेरिध्व—संतीतरलाकारके प्रणेता। काश्मीरमें इनका मादि बास था। ये सोड़लके पुत्र और भास्करके पीत थे।

जाबेरिध्व—गुजरातके भण्डिलगाछके पायेलवंशीय एक चौतुष्य राजा। ये भर्तृमदेवके पुत्र तथा २५ वर्ष-देवके पिता थे। १२०४ ई०में ये सिंहासन पर बैठे और १२२६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

जाबेरिध्वन् (सं० पु०) जाबेरि धनुषांश्च धनुषांश्च नाममात्रिण इति ध्वशब्देन। १ विष्णु। २ धीहरण। ३ यह जो धनुष धारण करता हो, कमनेत।

जाबेरिधर (सं० पु०) धरतीति शृ-भण् जाबेरिध्व धरः। १ जाबेरिध्व, विष्णु। २ धीहरण। ३ स्वनाम-काम विचित्रनाम-वदकार।

जाबेरिधर—१ अश्वीमालाके प्रणेता। २ धीरविश्वामनि, जाबेरिधर-वसति और जाबेरिधरनीदना नामक सुवर्णवस्त्र वेदकर्मके रचयिता। ये रामोदर (किष्की किमोके तमसे गोमदेव)के पुत्र और शायबदेवके पीत थे। योदु-

रात हमोरको समामे ये विद्यमान थे। ३ पैपाइन्डव या सिततो नामक प्रबंधके प्रणेता। ये देवराजके पुत्र और पैकुलडाभ्रमके तिथ्य थे।

जाबेरिधर मिथ—प्रहाप्रकाश और पियाहपट्टन नामक प्रबंधके प्रणेता। इनके सिवा इनके रचे और भी कई उद्योतिप्रबंधके यत्न निष्ठावसिधु, संस्कारहीनपुत्र, महत्याकामधेनु मादि प्रबंधमें उद्भूत देखे जाते हैं।

जाबेरिधर (शेष)—लक्ष्मणावलीविष्टि नामकी म्याममुखा यलीरी टीका तथा सप्तपक्षाष्टरावणा नामकी पक्षाष्ट-पत्रिकाकी टीकाके रचयिता।

जाबेरिवाणि (सं० पु०) जाबेरि पाणी पश्य। १ धनु-धारी। २ विष्णु। ३ धीहरण।

जाबेरिपुर—गुजरात प्रांतस्थ मालवराज्यके अंतर्गत एक नगर। मालिक जाबेरिने यह नगर बसाया था। १४३३ ई०में गुजरातपति १म अहमद शाहके पुत्र महमद खाने जाबेरिपुरकी भवने कब्जेमें किया। १८३८ ई०में मालव-पति महमूद खिलजीने रणक्षेत्रमें सेनापति उभार लीकी मार कर भवने बाहुबलसे जाबेरिपुरका पुनः उद्धार किया।

जाबेरिध्व (सं० पु०) जाबेरि धनु विमसि ध्व-किप् तुहम्। १ धनुषधारी। २ विष्णु। ३ धीहरण।

जाबेरिध्व (सं० पु०) शृङ्गस्थका गोसावरे। कामिदासने शकुनलाप्रबंधमें लिखा है, कि शकुंतलाके साथ जो दो प्राविद्धमार राजा दुष्यंतकी समामे भाये थे, उनका नाम जाबेरिध्व और शारदामिथ था।

जाबेरिध्वि (सं० पु०) जाबेरिध्व प्रोक्तमथोने या जाबेरि-ध्व (सोनकादिभ्यश्च-दधि । वा ४, ३, १०६) इति विनि। जाबेरिध्वप्रोक्त छन्दोधयेना।

जाबेरिध्वी (सं० स्त्री०) जाबेरिध्वकी स्त्री।

(पादिनि ४, ३, १०६)

जाबेरिध्वीक (सं० पु०) शूण्टी मयामवर्षी कथापरविशेष, एक प्रकारका कथापरविषय जो ह्वेक्षेत्रमें गीतके समान होता है।

जाबेरिध्वी (सं० स्त्री०) १ कादरजहा। २ सुवर्णी।

जाबेरिध्वी (सं० स्त्री०) १ मदाररज। २ मताकरज।

(सं० पु०) जाबेरि धानुषी पश्य। १ धीहरण।

२ विष्णु । ३ वह जो धनुष धारण करता हो, कमनैत ।
शाङ्गिक (सं० पु०) शाङ्गिक नामक पक्षिविशेष ।
शाङ्गिन् (सं० पु०) शाङ्गिमस्वास्तीति शाङ्गि-इति । १
विष्णु । २ श्रोत्ररूप ।

"स सेतुं बन्धयामास पद्मवैश्वानरम् ।
रसातलादिवीर्यमनं शेषं क्षन्त्वा शाङ्गिष्यः ॥"

(रघु १२।७०)

३ धनुषारी, कमनैत ।

शादुल (सं० पु०) शृ-दि-सायं (खगिति-जादिभ्य ऊरो
लृचौ । उण् ५।६०) इति ऊलच् प्रत्ययेन साधुः । १

ध्याघ, चीता, बाघ । २ राक्षस । ३ शरभ नामक
जन्तु । ४ एक प्रकारका पक्षी । ५ चित्रकवृक्ष, चीतौ

नामक पेड़ । ६ सहा-दि खण्डवर्णित एक राजाका नाम ।
(सहा० २७।४५) ७ यमुर्धेदकी एक शाखा । ८ दोदेका एक

मेद । इसमें छा-गुद और छसीस लघु मात्राप होती हैं ।
९ सिंह । (ति०) १० सर्गश्रेष्ठ, सर्वोत्तम । इस

अर्थमें इसका प्रयोग केवल सौगिक शब्द बनानेमें उनके
अर्थमें होता है । जैसे- नरशादुल, मुनिशादुल ।

शादुलकन्द (सं० पु०) जङ्गली प्याज ।

शादुलवर्ण (सं० पु०) विशाङ्कु का पुत्र ।

शादुलललित (सं० स्त्री०) एक प्रकारका वर्णवृत्त । इस-
का प्रत्येक पद अठारह अक्षरोंका होता है और उनका

क्रम इस प्रकार है म + स + ज + स + त + स । इसका
दूसरा नाम शादुलललित भी है ।

(छन्दोमंजरी २ स्त०)

शादुललसित (सं० स्त्री०) शादुलललित देखो ।

शादुलवर्गन् (सं० पु०) मीरविरिंशोय एक राजा ।

शादुलवाहन (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार पचोस पूर्वा
त्रिनोमेंसे एक जिनका नाम ।

शादुलविक्रीडित (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका वर्णवृत्त ।
इसका प्रत्येक चरण उन्नांस अक्षरोंका होता है और उनका

क्रम इस प्रकार है म + स + ज + स + त + त + एक
गुण । (छन्दोमंजरी २ स्त०)

शादुलव्य विक्रीडित । २ शादुलका विक्रीडित,
बाघका खेल ।

शापात (सं० पु०) वैदिक कालके एक प्राचीन राजर्षिका

नाम । "आ समा रथं वृष पाणेषु तिष्ठति शार्पातस्य"
(ऋक् १।२।१२) शार्पातस्य शार्पातनाम्नो राजर्षे'
(भाष्य) (स्त्री०) २ सामभेद ।

शार्का (सं० स्त्री०) शर्का-अण् । शिव-सम्बन्धी, शिवका ।
शार्कार (सं० स्त्री०) १ अश्वतमस, घोर अशकार ।
(ति०) शर्कार्या इह शर्कारि-अण् । २ शर्कारी-सम्बन्धी,
रातका । ३ धातुक ।

शार्कारिन् (सं० पु०) बृहस्पतिके साठ संवत्सोमेंसे
चौतीसवाँ संवत्सर ।

शार्कारी (सं० स्त्री०) राति, रात ।
(भरतवृत्त वाचस्पति)

शार्कार्वाभिक (सं० स्त्री०) शर्कार्वाभिक-सम्बन्धी ।
शाल (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी ऊनी या रेशमी चादर ।

इसके किनारे पर प्रायः बेल वृटे आदि बने होते हैं ।
इसका दूसरा नाम दुशाला है । विशेष विवरण नीचे देखो ।

शाल (सं० पु०) शाल्यते प्रशंस्यते इति शाल-घञ् । १
मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली । २ प्रकार, भेद । ३

एक अन्दीका नाम । ४ राजा शालिवाहनका एक
नाम । ५ वृकके एक पुत्रका नाम । ६ धूना, राल ।

७ स्वनामप्रसिद्ध वृक्षविशेष (Shorea robusta) शाल-
का पेड़ । संस्कृत पर्याय—सर्ग, कार्पा, अश्वकर्णक,
शस्यसम्भर, शङ्कुवृक्ष । (रत्नमाला) भारतके प्रायः

सभी स्थानोंमें यह वृक्ष पैदा होते देखा जाता है । हिमा-
लय पर्वतके पान्थमूलमें शान्द्रु से ले कर आसाम तक प्रायः

सभी जगहोंमें, पश्चिमी बंगालमें, छोटानागपुर विभाग
तथा मध्यभारतमें शालवृक्षके घने जङ्गल हैं । ये सभी

शालवन अधिकतर पार्वत्यप्रदेशमें ही हैं । समतल-
क्षेत्रमें भी कहीं कहीं विशिष्टमावमें शालवन दिपाई

पड़ते हैं । कहीं कहीं शालवृक्ष धायाद हो कर निविद्ध
जङ्गलमें परिणत हो गये हैं । यह वृक्ष बहुत बड़ा

होता है । -यहां तक कि, कोई कोई वृक्ष तो इतना बड़ा
होता है, कि यह ५०से ले कर १०० रुपये तकके मालमें

बिकता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है, इस-
लिये इससे मनुष्यसमाजका बड़ा उपकार होता है ।

धर्मो बद्ध होतो दे। २ वट देन वा कथान जो क'करो
भीर वरदासो भरा हो।

शाब्दरत्न (सं० लि०) शाब्दरत्न मूमिष, जो क'करोने
प्रयोग पर देस हुआ हो।

शाब्दरोधान (सं० पु०) शाब्दोत जानका एक देन जो
उत्तर दिनामें था।

शाब्दरोध (सं० पु०) शाब्दरोध देन।

शाब्दरत्न (सं० लि०) विष-संश्लेषी। (अमल ७, ५११०)

शाब्दरत्नोद्दि (सं० पु०) शब्दरत्नोद्दि (बद्ध शाब्दरत्न)
वा ५, १११६) इति अमलवार्गे इत् । शब्दरत्नोद्दिका
संज्ञापर्य।

शाब्द (सं० लो०) शब्दस्य विचार शब्द-अण् । १
विष्णुपुत्र, विष्णुके हाथमें रहनेवाला पुत्र । २ धनुष,
बमाल । ३ शाब्दक, बद्धक, बाधो । ४ सामभेद,
एक प्रकारका नाम । (अट्टक ११, १६३) ४ महादि-
गच्छदार्थिण एक राजाका नाम । (अट्टक ३६, ३६)
(लि०) ५ शब्द-संश्लेषो, शब्दक ।

शाब्दक (सं० पु०) पक्षो, विष्टिवा ।

शाब्दकस-धनुषके रचयिता ।

शाब्दकस-संगीतशास्त्रके प्रणेता । कादमोरी इनका
मादि बाल था । ये सोडुलके पुत्र भीर भास्करके
पौत्र थे ।

शाब्दकस-गुजरातके अणहिलपाण्डके पाचेश्वरजोय एक
भीष्मपुत्र राजा । ये अश्वमेधके पुत्र तथा २५ वर्ष-
देवके पिता थे । १२७४ ई०में ये सिंहासन पर बैठे
भीर १२९६ ई०में इनकी मृत्यु हुई ।

शाब्दकस- (सं० पु०) शाब्दक धनुषके 'धनुषांगस्य'
वाचकानि इति भाषादेन। १ विष्णु । २ धोहन ।
३ वट जो धनुष धारण करता हो, बमाल ।

शाब्दकस (सं० पु०) धारोति धृ-अण् शाब्दकस्य
धनुः । १ शाब्दकस्य, विष्णु । २ धोहन । ३ स्वनाम-
भवात् सिद्धिमात्रप्रकार ।

शाब्दकस-१ उन्मोहनाके प्रणेता । २ धीरविश्रामणि,
शाब्दकस्येवमिति भीर शाब्दकसोहिता नामक सुमति
विद्वत्पण्डके रचयिता । ये लामोर (किराँ किराँके
समस्त गी.भेदके पुत्र भीर साधुदेवके पौत्र थे । बौदधान

राज हर्मोरको नाममें ये विद्यमान थे । ३ वैद्यकस्य
या तिमलो नामक प्रबंधके प्रणेता । ये देवराजके पुत्र
भीर वैद्यकशास्त्रके निष्प थे ।

शाब्दकस-मिष-प्रहयकास भीर विवाहपरत नामक
प्रबंधके प्रणेता । इनके सिवा इनके रचे भीर गी कं
उदोनिप्रबंधके लघन 'निर्णवसि'पु, संस्कारकोष्णपु,
महत्माकामधेनु मादि प्रबंधमें उद्धृत देखे जाते हैं ।

शाब्दकस (रोद)—सङ्गातात्मोविष्टि नामकी व्यायामुक्ता
पत्नीकी टीका तथा सप्तपदार्थव्याख्या नामकी पदार्थ-
चंद्रिकाकी टीकाके रचयिता ।

शाब्दकसि (सं० पु०) शाब्दक पाणी सस्य । १ धनु-
धारी । २ विष्णु । ३ धोहन ।

शाब्दकसुर-गुजरात प्रांतके मानवराजके सतर्गत एक
महंत । मात्तिक शाब्दकने यह मठ बनाया था । १५३७
ई०में गुजरातमें १५ मठ शाब्दके पुत्र महामुद खांने
शाब्दकसुरको अपने कब्जेमें किया । १८३८ ई०में माल-
पति महामुद बिलखीने एण्डोलां सेनापति उमार कोकी
मार कर अपने बाहुपल्ले शाब्दकसुरका पुत्र उद्धार
किया ।

शाब्दकस्य (सं० पु०) शाब्दक धनु विमर्शि भू-किप् सुकम् ।
१ धनुधारी । २ विष्णु । ३ धोहन ।

शाब्दकस्य (सं० पु०) शब्दकस्य गोत्रापर्य । कादिससने
शकुन्तलाप्रबंधमें लिखा है, ति शब्दकस्यके साथ जो शो
श्रावकुमार राजा दुष्यंतकी समामें साथे थे, उनका नाम
शाब्दकस्य भीर शाब्दकस्यमिष था ।

शाब्दकस्य (सं० पु०) शाब्दकस्येण प्रोकमचोने वा शाब्द-
कस्य (शोसकारिष्याकन्दकि । वा ५, १३, १०६) इति निनि ।
शाब्दकस्यमोक छात्रोपधेता ।

शाब्दकस्यो (सं० लो०) शाब्दकस्यको लो ।
(परिनि भाषा ६६)

शाब्दकस्येरिक (सं० पु०) गुण्डो समानवर्ण क्वापरशितोय,
एक प्रकारका क्वापरविष जो देखनेमें मोठके समान
होता है।

शाब्दकहा (सं० लो०) १ बालकहा । २ पुष्यो ।
शाब्दकहा (सं० लो०) १ महापराज । २ सतारज ।
शाब्दकस्युष (सं० पु०) शाब्दक आशुषो सस्य । १ धोहन ।

२ विष्णु । ३ बंद जो धनुष धारण करता हो, कमनैत ।
शाङ्गिक (सं० पु०) शाङ्गिक नामक पक्षिविशेष ।
शाङ्गिन् (सं० पु०) शाङ्गि मस्यास्तीति शाङ्गि-इति । १
विष्णु । २ श्रोत्रण ।

“स सेतुं वन्ययामास पल्लवैर्लंबिषाम्भिः ।
रघातलादिवीर्यमर्न शेषं सन्नाय शाङ्गिषा ॥”

(रघु १२।७०)

३ धनुषांरी, कमनैत ।

शाङ्गुल (सं० पु०) शुद्धि-सायां (लर्जिषिंजादिभ्य ऊरो
लचौ । उण् ४।६०) इति ऊलच् प्रत्ययेन साधुः । १
ग्राम, चीता, बाघ । २ राक्षस । ३ शरभ नामक
जन्तु । ४ एक प्रकारका पक्षी । ५ चित्रकवृक्ष, चीता
नामक पेड़ । ६ सहा-द्विखण्डवर्णित एक राजाका नाम ।
(सहा० २७।४५) ७ यजुर्वेदकी एक शाखा । ८ दोहेका एक
मेद । इसमें छः मुख और छत्तौस लघु मात्राप होतो हैं ।
९ सिंह । (ति०) १० सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम । इस
अर्थमें इसका प्रयोग केवल धौगिक शब्द बनानेमें उनके
अर्थमें होता है । जैसे- नरशाङ्गुल, मुनिशाङ्गुल ।

शाङ्गुलकन्द (सं० पु०) जङ्गली प्याज ।

शाङ्गुलकर्ण (सं० पु०) विशङ्कु का पुत्र ।

शाङ्गुलललित (सं० स्त्री०) एक प्रकारका वर्णवृत्त । इस-
का प्रत्येक पत्र अठारह अक्षरोंका होता है और उनका
क्रम इस प्रकार है म + स + ज + स + त + स । इसका
दूसरा नाम शाङ्गुलललित भी है ।

(छन्दोमंजरी २ स्त०)

शाङ्गुललसित (सं० स्त्री०) शाङ्गुलललित देखो ।

शाङ्गुलवर्गन् (सं० पु०) मौलरिविंशतीय एक राजा ।

शाङ्गुलवाहन (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार पचोस पूर्वा
जिनोमेंसे एक जिनका नाम ।

शाङ्गुलविक्रीडित (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका वर्णवृत्त ।

इसका प्रत्येक चरण अर्न्तःस अक्षरोंका होता है और उनका
क्रम इस प्रकार है म + स + ज + स + त + त + पक
मुख । (छन्दोमंजरी २ स्त०)

शाङ्गुलव्य विक्रीडित । २ शाङ्गुलका विक्रीडित,
बाघका खेल ।

शापांत (सं० पु०) वैदिक कालके एक प्राचीन राजर्षिका

नाम । “आ स्मा रथं वृष पाणेषु तिष्ठति शापांतस्य”
(ऋक् १।५।१२) ‘शापांतस्य शापांतताम्नो राजर्षे’
(भाष्य) (स्त्री०) २ साममेद ।

शाळा (सं० स्त्री०) शर्ळा-मण् । शिव-सम्बन्धी, शिवका ।
शाळार् (सं० स्त्री०) १ अन्धतमस, घोर अंधकार ।
(ति०) शर्ळ्यां इदं शर्ळारी-अण् । २ शर्ळारी-सम्बन्धी,
रातका । ३ धातुक ।

शाळार्स् (सं० पु०) बृहस्पतिके साठ संवत्सेमेंले
चौतीसवां संवत्सर ।

शाळारी (सं० स्त्री०) राति, रात ।

(भरतवृत्त वाचस्पति ।

शाळार्वर्षिक (सं० ति०) शर्ळावर्मा-सम्बन्धी ।

शाल (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी ऊनो वा रेशमी चादर ।
इसके किनारे पर प्रायः बेल वृटे आदि घने होते हैं ।
इसका दूसरा नाम दुशाला है । विशेष विवरण नीचे देखो ।

शाल (सं० पु०) शल्यते प्रशंस्यते इति शाल-घञ् । १
मत्स्यमेद, एक प्रकारकी मछली । २ प्रकार, मेद । ३

एक इन्दीका नाम । ४ राजा शालवाहनका एक
नाम । ५ तुर्कके एक पुत्रका नाम । ६ धूना, राल ।

७ स्वनामप्रसिद्ध वृक्षविशेष (Shorea robusta) शाल-
का पेड़ । संस्कृत पर्याय—सर्वा, कार्पा, अश्वकर्णक,

शाल्यसम्बर, शङ्कुवृक्ष । (रत्नमाला) भारतके प्रायः
सभी स्थानोंमें यह वृक्ष पैदा होते देखा जाता है । हिमा-

लय पर्वतके पादमूलमें शान्द्रु से ले कर आसाम तक प्रायः
सभी जगहोंमें, पश्चिमी बंगालमें, छोटानागपुर विभाग

तथा मध्यभारतमें शालवृक्षके घने जङ्गल हैं । ये सभी
शालवन अधिकतर पार्वत्यप्रदेशमें ही हैं । समतल-

क्षेत्रमें भी कहीं कहीं विशिष्टभावमें शालवन दिखाई
पड़ते हैं । कहीं कहीं शालवृक्ष आबाद हो कर निविड

जङ्गलोंमें परिणत हो गये हैं । यह वृक्ष बहुत बड़ा
होता है । यहाँ तक कि, कोई कोई वृक्ष तो इतना बड़ा

होता है, कि वह ५०से ले कर १०० रुपये तकके मोलमें
बिकता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है, इस-

लिये इससे मनुष्यसामाजिक बड़ा उपकार होता है ।

भारतके विभिन्न स्थानोंमें यह सूत्र विभिन्न नामोंसे परिचित है। हिन्दुधर्मग्रन्थों—जात्र, स्यात्र, जात्रपद, जात्रुधर्म, पूजा, उग्रत, (रत्न-राज)। बंगालमें—जात्र, स्यात्र, बीरत—सज्जाम, मेहुरा; संभार—सज्जाम; मुजिज—जमि, जारी—बीरत-जात्र, नेपाल—जत्रवा, सेवारा—नेनुवात्र; उडिसा—जात्र, जोरिगो; मद्रासमें—जात्र, स्यात्र, रिप्रात्र; उत्तर पश्चिममें—जात्र, बाल्हात्र, जात्रू, बीरोग; जयोधवा—बीरौली, पंजाब—साल, सेवाल, (रत्न-राज)। राजस्थानमें—राज-जात्र, राज-जात्रा, भूजा; बाघर—जात्र, (रत्न-राज); बजात्र—बधु, (रत्न-गुणाल); मय—एल-एल, जिंजात्र—(रत्न-दामल), गमित—रंगि-विष्णु, सेलगू—गुमितम्, (रत्न-गुणाल)—स्यत्र, कीरत; पारस—सामे सोयावराकृष्टी।

जात्रुधर्मकी छायामें छिद्र कर देतेसे एक प्रकारका साक्षात् निरूपण है, यही साक्षात् जात्रुधर्मकी धूना या गुणालके नामसे विख्यात है। जिस समय यह धूना के रूपमें छायासे बाहर निकलता है, उस समय उग्रका रंग सफेद रहता है; फिर पीछे कमला गूला ज्ञाने पर यह रंग गुण-धूमरवर्ण धारण करता है। देवी लीला गुणाल संभ्रं करके अतिप्रामाण्य इस धूनाकी जड़से शक छोड़ ऊपर धूमरवर्णमें सार पांच भागण करते हैं। ये धूने बड़े ही जामे पर उग्रमें अतिक भागण करने पर भी धूमरकी उग्रता क्षीण नहीं होती। अतः के गहरेमें भागणके पेशकी छायामें छिद्र किया जाता है। १०१६ दिन बाद जब ये सभी छिद्र जामेसे परिपूर्ण हो जाते हैं, तब लीला उग्र निकाल लेते हैं और फिर उन गहरेमें जात्रुधर्म परिपूर्ण होनेके लिये कुछ दिनों तक धूना का छोड़ देते हैं, उसके बाद धूना संभ्रं करते हैं। इस तरह एक धूनामें सातों सिद्ध लीला बार गुणाल संभ्रं किया जाता है। लीला बारमें बरीक लीला गैर गुणाल निरूपण है। धूमरकी बार बालिक नाममें भी लीलाकी वग बीरके लीला या सात नाममें वचन जात्रुधर्म एक नामसे ही साक्षात् निरूपण किया है; परन्तु बारका नाम अतिक सुन्दर होता है तथा अतिक परि-साक्षात् निरूपण भी है। विष्णुकी बारका नामा दयाका नहीं होता और निरूपण भी है बहुत कम। मदन

भारतके गुणाल संभ्रं करनेवाले विष्णु ही धूमरके छिद्र कर देने से भी धूमरके दिन ही उन छिद्रोंमें साक्षात् संभ्रं कर जाते थे। इस तरह विष्णु साक्षात् संभ्रं करनेमें जंगल धूमरगुणाल होने लगा था। इससे देवी राजाओं की भयंकर क्षतिही समाप्तना देना कर अतिक भागणके वनविभागीय कामून नाम कर उन सभी जंगलोंकी रक्षा करनेमें विशेष ध्यान दिया है। इसमें भारतभरमें एकछोका बयावर सुरक्षित होने पर भी धूमरका बयावर बिलकुल ही नष्ट हो गया है। इस समय सिंगापुरमें हो बयावर तथा भारतके उत्तरांचल स्थानोंमें धूमरकी भाग-दनी होती है। भारतके सुविष्णु वनभागमें भीर कहीं भी धूमरकी गौरी नहीं होती; परन्तु उग्रभारतमें अतिरि-पिक गुणाल प्राप्त होता है। गांधल साहूकी विधानोंमें जाना जाता है, कि सिद्धोता गहरेके उत्तररथ जात्रुधर्मके धूमरकी जड़में एक एक लण्ड धूना या गुणाल ३० से ले कर ७० वृष्टिक इष्ट तक बढ़ गया है। वर्षाकाल समयमें जो गुणाल इस देवमें जाता है, वह छोटे छोटे टुकड़ोंमें विभक्त रहता है और उग्रता साक नहीं होता। उग्रता सुन्दर प्रायः १९७० से ले कर १९२३ तक रहता है। इसमें किसी प्रकारका ब्याद नहीं होता। अति-संयोगसे यह गन् उठता है। वलकीदल और इधरसे यह सामान्य भावसे गलता है, किन्तु तारवांशके मेलमें रमनेसे तो पूरे भागमें बल जाता है। साक्षात्परिक परिष्कर्म भी यह गन् जाता है, किन्तु मिश्रित पदार्थ कुछ साल दिखाई पड़ता है।

धूमरकी साक करने तथा रंगनेमें इसकी छाया बहुत व्यवहृत होती है। छोटानागपुरवासी और संघिक धर्मों इधरकी छायाके काष्ठोंसे एक प्रकारका साल और साल रंग लेवाकर करते हैं। जयोधवा विभागके वनविष्णुकी वचन ६० वचन उग्रमें साल गांधली छायासे रंग लेवाकर करनेकी प्रथाको लिखी है। जिस धूमरमें काष्ठा उग्रता जाता है, वह मोहभ्रंजके नामसे प्रचलन करनेवाले कारा-गहोंके धूमरके सामान्य होता है जयवा ह्य लीलाके देव-में जिस तरह रंगका रंग उग्राल कर गुणु बयावा जाता है, और इसी प्रकार इन बयनोंकी उग्राल कर रंग लेवाकर किया जाता है। इसका सुन्दर भी होकर रंगका रंग उग्रालके सुन्दर रंग होता है। धूमरके वर कोके

छिद्रसे जलावनकी लकड़ी भीतरमें भोंकी जाती है और दूसरी ओरके छिद्रसे राख बाहर निकाली जाती है। ऊपरमें छालसे रस निकालनेके लिये हंड़ी रखी जाती है। उस चूड़ेके चारों ओर ही छाल और जलसे हंड़ियाँ भर दी जाती हैं। प्रायः उड़ घंटे तक उबाले जाने पर पानी लाल एवं गाढ़ा हो जाता है। इस प्रकार तीन हंड़ियोंका उबाला हुआ जल धान कर चौथी हंड़ी में फिरसे ढाँटा जाता है। पीछे इस शेषाक हंड़ोका जल लासाके समान गाढ़ा हो जाने पर हंड़ी उतार ली जाती है। इस तरह प्रायः १ मन छालमें ३० सेर रंगका काढ़ा तैयार होता है।

शाल यूसमें छोटे छोटे पुष्प गुच्छोंमें लगते हैं। वैशाखके दारुण प्रीष्ममें पार्श्वत्य प्रदेशमें इसकी गन्ध बहुत ही मनोरम होती है। फाल-रमणियाँ सन्ध्या समय अपने अपने जूड़ेमें शालपुष्प खोस कर बड़े धानन्दसे गान गाती रास्ता चलती हैं। उस समय घायुके मधुर सुगन्धित सुमनोंकी मीठी सुगंध चारों ओर उड़ उड़ कर उस पथके पार्श्ववर्ती स्थानोंका आमी-कठिनता नहीं होती। आंच लगा कर बीजको सिद्ध कर देनेसे ही तेल बाहर निकल आता है।

वैद्यक शास्त्रमें धूनेकी अजीर्ण और प्रमेहरोगमें विशेष उपकारो बताया है। धूनेके गुणोंका वर्णन यथास्थानमें किया गया है, इसलिये वह यहाँ नहीं लिखा गया। आगमें जलानेसे दुर्गन्धि-का नाश होता है एवं उस स्थानकी घायु साफ हो जाती है। इसलिये जिस घरमें रोगी रहता है, उस घरमें धूने जलानेकी व्यवस्था है। मेषज्योत्स्वमें धूने मिला कर प्रलेप देनेकी विधि देखी जाती है। काष्ठके ऊपर धूना और लासा अच्छी तरह मल कर एक प्रकार की पालिश दी जाती है। इससे अति निष्ठुष्ट काष्ठ भी वैद्यक-सा प्रतीत होता है। संघालवासी औषधके लिये शालके पत्तोंका रस निचोड़ कर पीते हैं। सज्जन मंजर टमसन एम डोका कहना है, कि धूनेमें कामो-दीपनशक्ति है। कहते हैं—दो औंस धूना अच्छी तरह

पीस कर गायके घीमें दश मिनट तक भूने। पीछे उस शीतल जलपूर्ण पात्रमें धीरे धीरे ढाले। उक्त जलके स्पर्शसे घृतमिश्रित धूनेका जो अंश जलके ऊपर तैरने लगे, उसे उंगलोंसे निकाल कर एक दूसरे पात्रमें रखे। इसके बाद फिर उसमें जल दे कर उंगलोंसे मध कर साफ करे, इससे वह विष्कुल मुलायम हो जायगा। इस तरह बराबर एक घण्टे तक जल बदल बदल कर मधनेसे उक्त मिश्र पदार्थ मखनकी तरह घर्णयुक्त तथा मुलायम हो जायगा। उस चीका दिनमें दो बार एक सुपारीके परिमाणमें सेवन करता चाहिये। डाकूर खबलू० पफ० टामसका कहना है, कि २० ग्रेन घूना-चूर्ण एक पाइंट उबाले हुए दूधमें मिला कर तथा उस दूधको कपड़ेमें छान कर पीनेसे शरीरमें कामशक्तिकी उद्दीपना होती है।

संघाल और छोटानागपुरवासी निम्न श्रेणीके लोग शालका बीज खाते हैं। पहले वे लोग इन बीजोंमें जली लकड़ीकी राख लगा २, ३ घण्टे तक अच्छी तरह सिद्ध करते हैं। इसके बाद उन बीजोंको साफ जलमें अच्छी तरह धो कर महुआ फूलके साघ कुट देते हैं। अनन्तर उसे जलमें सिद्ध करते हैं। इस प्रकार वे एक ही दिनमें इतना साघ पदार्थ तैयार कर लेते हैं जो तीन चार दिन तक चलता है।

छालकी नीचेवाली शालकी लकड़ी उतनी मजबूत नहीं होती। वह दीर्घकाल स्थायी न हो कर शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। किंतु भीतरका सार भाग अत्यंत मजबूत और भारी होता है। वह सहज-में नष्ट नहीं होता, किंतु इस लकड़ीमें घूना लगता है। शालकाष्ठकी छत्तरकी कड़ियाँ आदि बनती हैं। इसकी लकड़ी चौर कर तखता, सिङ्की, क्वाइड प्रभृति तैयार किये जाते हैं। छोटे छोटे शाल यूसोंके खम्भे पर्ण-कुटियोंमें लगाये जाते हैं। एके शाल चकोरके एक फ्यूविक फीटका वजन ५५ पाउंडके बराबर होता है। जलमें कुछ दिनों तक डुबो रखनेके उपरांत सुखा लेनेसे इसका काष्ठ सुहृद बन जाता है। स्वर्णकार और वर्मकार अपनी मट्टोंमें शालयूसके कोयले जलाते हैं।

धूना प्रत्येक हिंदू गृहस्थोंके लिये बहुत ही आदर्श

करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं हुई। आधुनिक यूरोपीय बख्शिशिदियोंमें विज्ञानके बलसे एवं नाना प्रकारके यंत्रोंकी सहायतासे बख्शिशिपकी जो उन्नति की है, कई सहस्र वर्ष पहले इस देशके निरक्षर या अल्पबद्ध जुआहोंने इसको अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति कर दिखाई थी। इस सम्बन्धमें पादचादय लेखकोंने कई जगहों पर इस देशके शिदियोंकी प्रशंसा की है। फंवल-शाल चुननेमें ही इन लोगोंने यश प्राप्त किया था, ऐसा नहीं। वर्णसौंदर्य एवं दलानैपुण्य प्रभृतिमें भी इन शिदियोंने बड़ी कुशलता दिखाई थी, यूरोपीय लेखक इसे भी मुक्त करके स्विकार करते हैं। यद्यपि यूरोपीय शिल्पी अच्छा शाल तैयार करने लगे हैं, तथापि काश्मीरी शालके समान सुन्दर शाल सारी दुनियामें और कहीं तैयार नहीं होता।

आइन अकबरीके पढ़नेसे जान पड़ता है, सम्राट् अकबर शाल तैयार करनेके कार्य यद्ये उल्लाह दिखाते थे। यहाँ तक, कि वे आप भी कभी कभी नमूना दिखा देते थे। वे शालका व्यवहार करना पसन्द करते थे तथा चार प्रकारके शाल तैयार करते थे। प्रथमतः तुजू आस-शाल—यह घूसर या उजला होता था। यह जैसा कैमल, वैसा ही नरम और बारीक होता था। इस श्रेणीके शालमें शिल्पी लोग पहले रङ्ग नहीं दे सकते थे। किन्तु सम्राट् अकबर बहुत चेष्टा करनेके उपरांत इस श्रेणीके शालको भी रङ्गून बनानेमें समर्था हुए थे। द्वितीय श्रेणीके शालका नाम सफेद बालचे था, इसे लोग तेढ़ेदार भी कहते थे। सफेद और काले पशमोंसे दोनों रङ्गमें ही इस श्रेणीका शाल तैयार होता था।

शिल्पी लोग इससे एक प्रकारका घूसर वर्णका शाल तैयार करते थे। अकबरके समयसे पहले तीन या चार रङ्गके शाल प्रस्तुत होते थे। इससे अधिक रङ्गोंका शाल नहीं देखा जाता था। किन्तु अकबरके समयसे नाना प्रकारके रङ्गून शाल तैयार होने लगे। तृतीय श्रेणीके शालके नाम जरदी, गुला-शतान, काशादी, कालघाई, तुन्धनमा छिद, बालचे और परजदार थे। इन सभी शालोंकी रूढ़ि अकबरने ही की थी। चतुर्थ—कुरनेके लिये एक प्रकारका सुदीर्घ शाल तैयार होता था। अकबरने जोड़ा शाल व्यवहार करनेकी प्रथा चलाई।

आइन अकबरीके पढ़नेसे और भी पता चलता है, कि सम्राट्के उरसाहसे इस समय लाहौरमें प्रायः हजारसे भी अधिक तंतुशालायें थीं। वहाँ जुआहे लोग शालनिर्माण कार्योंमें नियुक्त रहने थे। वे मयान नामक एक प्रकारका नकली शाल तैयार करते थे। मयान शाल रेशम और पशमसे तैयार होता था।

इस समय भी काश्मीरी शाल इस देशमें सुविषयात है। १८२० ई०के पहले पञ्जाबके बहुनसे स्थानोंमें शाल तैयार होता था, किन्तु उसके बादसे काश्मीर ही शालनिर्माणका सुप्रसिद्ध स्थान गिना जाता है। १८१६ ई०में काश्मीरमें भयानक दुर्मिज्ञ पड़ा। उसी दुर्मिज्ञसे पीड़ित हो कर शाल-युननेवाले कारीगर लोग काश्मीर छोड़ कर अमृतसर, नूरपुर, दीननगर, त्रिलोकनाथ, जलालपुर, लुधियाना प्रभृति स्थानोंमें जा कर बस गये। अब भी इन सभी स्थानोंमें बहुतायतसे शाल तैयार होते हैं। पञ्जाबमें जितने प्रकारके शाल तैयार किये जाते हैं, उनमें अमृतसरो शाल सबसे अच्छा होता है। किन्तु काश्मीरी शालके साथ अमृतसरो शालको तुलना नहीं हो सकती। इसका प्रधान कारण यह है, कि पञ्जाबी शाल-युननेवाले वैसा पशम संप्रद नहीं कर सकते, द्वितीयतः काश्मीरकी तरह अमृतसरमें शाल पर रङ्ग भी नहीं जमता। किसी किसीका कहना है—काश्मीरमें वहाँके जलके किसी विशिष्ट रासायनिक गुणसे ही शाल पर ऐसा सुन्दर रङ्ग घटाता है।

शालनिर्माणके सम्बन्धमें कोई बात कहनेके पहले

• "From the neck and underpart of the body of the wool-goat is taken the fine flossy silk-like wool which is worked up into those beautiful shawls with an exquisite taste and skill, which all the mechanical ingenuity of Europe has never been able to imitate with more than partial success".

णाय और प्रयोजनीय वस्तु है। नाविक लोग इसे नावके छिट्टों में लगाते हैं। धूनेसे फूटी हुई हण्डो, कलसी प्रभृति भी जोड़ी जाती है। कई जगहोंमें लोग शालवृक्षके पत्तोंका पत्तल बना कर उस पर खाना खाते हैं। शालपत्तोंके दोनेमें तरल पदार्थ भी रबी जा सकती है। कलकत्तेकी दूकानोंमें शालवृक्षके पत्तोंके दोनेका व्यवहार है।

शालका दूसरा नाम अश्वरूपा है, यह बीदोंका पड़ा ही आदरणीय है। कारण, शाषय बुद्धकी माताने शाषय-सिद्धके जन्मके समय एक पत्रयुक्त शालवृक्ष धारण किया था। इस उपाख्यानके संबंधमें चित्रादि देखे जाते हैं। स्वयं भगवान् बुद्धदेवने शालवृक्षके नीचे निर्वाण लाभ किया था। कोई कोई ग्रामवासी शाल पत्र पर प्रतिवेशिनी रमणियोंके नाम लिख जलमें डुबो देते हैं। फिर ४१ घण्टेके बाद उस डालीका जलसे बाहर निकाल कर जब किसी पत्रको नीचे झुके हुए देखते हैं, तब वे उसी पत्र पर लिखे हुए नामकी खोका डायन सावित करते हैं।

८ शाल—पश्चिमनिर्मित सुप्रसिद्ध शीतवस्त्र विशेष। गुजराती, हिन्दी, पारसी और बंगला भाषामें यह शीत-वस्त्र शाल नामसे ही विख्यात है। उत्तर-भारतका काश्मीर राज्य ही शालके व्यापारका आदिस्थान है। पश्चिमसे शाल तैयार कर उसके ऊपर शिवमय रेशमी पाड़ जोड़ कर सभ्य जगत्के सभी स्थानोंमें भेजा जाता है। संसारके प्राच्य तथा प्रतीच्य बहुतसे देशोंमें प्राचीन कालसे ही शालका व्यवहार होता आ रहा है निम्न निम्न भाषाओंमें शाल शब्द भी निम्न निम्न आकार में श्रुत होता है। यथा—फ़ारसी—Chals, Chales, जर्मन—Schalen, इटालीय—Shanali, मालय—क़ाइन रामयुन, पुर्तगाल—Chalesha, स्पेनिश—Shanatos, तामिल - शालु वैगल एव तैलेगू—शालु बलु।

सर्दीसे शरीरकी रक्षा करनेके लिये शालका व्यवहार होता है। दक्षिण एशियायासियोंमें जिस तरह शाल व्यवहारका अधिक प्रचलन देखा जाता है, यूरोप खंडमें उतना नहीं देखा जाता।

विदेशमें जिन जिन स्थानोंमें शाल भेजे जाते हैं,

युक्तप्रदेश, स्वेडन, अरब और पारस्यमें प्रायः सैकड़ ८० भाग प्रेरित होते हैं। इनके अलावे दूसरे २० भाग अमेरिका, फ्रांस और चीनदेशमें भेजे जाते हैं। फ़ारसी लोग भारतीय शालके बड़े पक्षपाती थे। फ्रांस-प्रूसिययुद्धके बादसे फ्रांसमें शालका प्रचलन बहुत कम गया। इस समय यूरोप और अमेरिकामें भी शालका व्यवहार बहुत कम गया है।

काश्मीरमें जिस समय शाल व्यवसायी उन्नतिकी पराकाष्ठा दिखा रहे थे, यूरोपमें उस समय भी शाल-व्यवहारके निमित्त जनसाधारणका अनुराग परिलक्षित होता था। पैजली (Paisly) नगरमें काश्मीरी शालका अनुकरण करके शाल तैयार किया जाता है। ३०४० वर्ष पहले स्कॉटलैंडमें विवाहके समय कन्याकी शाल ओढ़ा दिया जाता था। फ़मसे विवाहमें शालका व्यवहार विवाहकी एक प्रधान परिणत हो गया। पैजलीमें फल द्वारा शाल तैयार किया जाता है। इससे यूरोपमें काश्मीरी शालका आदर और आमदनी बहुत कम गई है।

भारतवर्षमें शालका व्यवहार प्राचीनकालसे है। सम्राट और धनी लोग शालकी सम्पत्तिकी तरह रक्षा करते हैं। इस समय भी सम्राट राजा महाराजाओंके महलमें प्राचीन कालके बहुमूल्य शाल देखे जाते हैं। वैसे शाल इस समय तैयार नहीं होता। एक शाल १००००) रु०से अधिक क्षाममें भी विक्रता था। दिल्लीके मुगल बादशाह तथा बंगालके नवाब अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंको छुटकारा होने पर पुरस्कारमें शालशिरोधा देते थे।

इस देशमें बहुत पहलेसे शालका व्यापार होता आ रहा है। औसतसे प्रतिवर्ष प्रायः २० लाख रुपयेके शाल विक्रते हैं।

वस्त्र बुननेमें यूरोप यद्यपि इस समय अत्यन्त दक्षता दिखा रहा है, तथापि वस्त्रशिल्पमें भारतवासियोंका अब भी जो गौरव है, विश्वामवलसे बलिष्ठ यूरोपीय लोग इस विषयमें आज तक भी वैसे गौरव प्राप्त नहीं कर सकें। भारतवर्षमें जैसा सुन्दर शाल तैयार होता है, यूरोपके शिल्पियोंकी अभी तक भी वैसे शाल तैयार

इस्तेकी योग्यता प्राप्त नहीं हुई। आधुनिक यूरोपीय वस्त्रशिल्पोपनि विद्वानके बलसे एवं नाना प्रकारके यन्त्रोंकी सहायतासे वस्त्रशिल्पकी जो उन्नति को है, कई सहस्र वर्ष पहले इस देशके निरक्षर या अल्पज्ञ जुलाहोंने उसकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति कर दिखाई थी। इस सम्बन्धमें पाश्चात्य लेखकोंने कई जगहों पर इस देशके शिल्पियोंकी प्रशंसा की है। केवल शाल बुननेमें ही इन लोगोंने यश प्राप्त किया था, ऐसा नहीं। वर्षोंसँदर्भ एवं कलानैपुण्य प्रभृतिमें भी इन शिल्पियोंने बड़ी कुशलता दिखाई थी, यूरोपीय लेखक इसे भी मुक्त नदृष्टिसे स्वीकार करते हैं। यद्यपि यूरोपीय शिल्पी अच्छा शाल तैयार करने लगे हैं, तथापि काश्मीरी शालके समान सुन्दर शाल सारी दुनियामें और कहीं तैयार नहीं होता।

आइन अकबरीके पढ़नेसे ज्ञान पड़ता है, सम्राट् अकबर शाल तैयार करनेके कार्य यद्येष्ट उत्साह दिखाते थे। यहां तक, कि वे आप भी कभी कभी नमूना दिखा देते थे ये शालका व्यवहार करना पसन्द करते थे तथा चार प्रकारके शाल तैयार कराते थे। प्रथमतः तुजू आल्-शाल—यह घूसर वा उजला होता था। यह जैसा कामल, वैसा ही नरम और भारीरु होता था। इस श्रेणीके शालमें शिल्पी लोग पहले रङ्ग नहीं दे सकते थे। किन्तु सम्राट् अकबर बहुत चेष्टा करनेके उपरांत इस श्रेणीके शालका भी रङ्गीन बनानेमें समर्थ हुए थे। द्वितीय श्रेणीके शालका नाम सफेद आलचे था, इसे लोग तड़ेदार भी कहते थे। सफेद और काले पशमोंसे दोनों रङ्गमें ही इस श्रेणीका शाल तैयार होता था।

शिल्पी लोग इससे एक प्रकारका घूसर वर्णका शाल तैयार करते थे। अकबरके समयसे पहले तीन वा चार रङ्गके शाल प्रस्तुत होते थे। इससे अधिक रङ्गोंका शाल नहीं देखा जाता था। किन्तु अकबरके समयसे नाना प्रकारके रङ्गीन शाल तैयार होने लगे। तृतीय श्रेणीके शालके नाम जरदी, गुला-वातान, काशादी, कालघाई, मुन्वनाम छिंट, आलचे और परप्रदार थे। इन सभी शालोंकी सृष्टि अकबरने ही की थी। चतुर्थ—कुरनेके लिये एक प्रकारका सुदोर्घ शाल तैयार होता था। अकबरने जोड़ा शाल व्यवहार करनेकी प्रथा चलाई।

आइन अकबरीके पढ़नेसे और भी पता चलता है, कि सम्राट्के उत्साहसे उस समय लाहौरमें प्रायः हजारसे भी अधिक तंतुशालाएँ थीं। वहां जुलाहे लोग शालनिर्माण कार्यमें नियुक्त रहते थे। ये मयान् नामक एक प्रकारका नकली शाल तैयार करते थे। मयान् शाल देशम और पशमसे तैयार होता था।

इस समय भी काश्मीरी शाल इस देशमें सुविण्णत है। १८२० ई०के पहले पञ्जाबके बहुतसे स्थानोंमें शाल तैयार होता था, किन्तु उसके बादसे काश्मीर ही शालनिर्माणका सुप्रसिद्ध स्थान गिना जाता है। १८१६ ई०में काश्मीरमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। उसी दुर्भिक्षसे पीड़ित हो कर शाल-बुननेवाले कारीगर लोग काश्मीर छोड़ कर अमृतसर, नूरपुर, दीननगर, त्रिलोकनाथ, जलालपुर, लुधियाना प्रभृति स्थानोंमें जा कर बस गये। अब भी इन सभी स्थानोंमें बहुतायतसे शाल तैयार होते हैं। पञ्जाबमें जितने प्रकारके शाल तैयार किये जाते हैं, उनमें अमृतसरो शाल सबसे अच्छा होता है। किन्तु काश्मीरी शालके साथ अमृतसरो शालकी तुलना नहीं हो सकती। इसका प्रधान कारण यह है, कि पञ्जाबी शाल-बुननेवाले वैसा पशम संप्रद नहों कर सकते, द्वितीयतः काश्मीरकी तरह अमृतसरमें शाल पर रङ्ग भी नहीं जमता। किसी किसीका कहना है—काश्मीरमें वहांके जलके किसी विशिष्ट रासायनिक गुणसे ही शाल पर ऐसा सुन्दर रङ्ग धरता है।

शालनिर्माणके सम्बन्धमें कोई बात कहनेके पहले

• "From the neck and underpart of the body of the wool-goat is taken the fine flossy silk-like wool which is worked up into those beautiful shawls with an exquisite taste and skill, which all the mechanical ingenuity of Europe has never been able to imitate with more than partial success".

(The Cyclopaedia of India)

शालकी जड़ पशमकी बात ही कहनेकी आवश्यकता है। उत्तर-पश्चिमाञ्चलकी मिन्न मिन्न भेड़ोंके रोए' ही शालकी जड़ हैं। तिब्बत और स्पितिमें एक प्रकारका भेड़ होती है, यहाँ उसी भेड़के रोए'से शाल तैयार किया जाता है। स्पतिकी भेड़के रोए'की अपेक्षा तिब्बतकी भेड़के रोए' अच्छे होते हैं। काश्मीरके लादक विभागमें शालके पशमके त्रिपे भेड़ पाली जाती हैं। ये भेड़ दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं। एक प्रकारकी भेड़का आकार बहुत बड़ा होता है। उसके बड़े बड़े शृंग होते हैं। इस श्रेणिकी भेड़ राप्पूके नामसे विख्यात है। छोटी छोटी भेड़ तिल्लूके नामसे पुकारी जाती हैं। ये सब भेड़ पार्वत्य प्रदेशमें देखी जाती हैं। तिब्बतके जुम्रा, जालंधर एवं राकचू प्रभृति स्थानोंमें इस प्रकारकी बहुत-सी भेड़ देखी जाती हैं। वर्तमान समयमें रुक्ण नगर नामक स्थानमें साधारणतः उत्तम पशम होता है। योतानका दक्षिणाञ्चल उत्तम पशमके लिये विख्यात है। एक वर्षमें सिर्फ एक बार पशम संग्रह किया जाता है। इन सभी भेड़ोंके रोए' पशम ही नहीं हैं। गदन और मिन्न भागके पशमसे ही शाल तैयार किये जाते हैं। मोटे मोटे रोए'से सूक्ष्म लोम अलग करके शालकरोंके पास भेजे जाते हैं। मोटे रोए'से कम्बल तैयार होता है। तिब्बतसे पशम काश्मीर, नूरपुर, अमृतसर, लाहौर, लुधियाना, अम्बाला, शतद्र-तटयन्त्री रायपुर और नेपाल प्रभृति स्थानोंमें भेजा जाता है। उत्तम पशम 'लेना' एवं साधारण पशम 'वाल' कहलाता है।

काश्मीरमें पहले साँ सेर पशम विकता था। लादकसे काश्मीरमें प्रति वर्ष प्रायः तीन मज पशम आता है। प्रत्येक भेड़से प्रति वर्ष प्रायः आध सेर पशम प्राप्त होता है। लादकमें करीब ८०००० भेड़ पाली जाती हैं। प्रत्येक भेड़का मूल्य ४) ४० है। एक काश्मीरमें ही प्रायः ६० लाख रुपयेके शाल तैयार होते हैं। सिन्धु और साइफुक नदोंके मध्यवर्ती उच्च स्थानोंमें भी पशम-उपयोगी भेड़ पाली जाती हैं।

शालनिर्माणके पहले पशम-साफ किया जाता है। जिनका ही साधारणतः पशम परिष्कार करती है। मैशके

साथ पशम मिला कर और उसे खूब मसल कर भाड़ देनेसे पशम विल्कुल साफ हो जाता है। इसके बाद उस परिष्कृत पशमसे केशादि चुन कर अलग कर दिये जाते हैं; इससे शाल बहुत ही उत्तम बनता है और अधिक दाममें विकता है। तत्पश्चात् चर्खे द्वारा पशम-का सूता तैयार किया जाता है। सादा विशुद्ध पशम-सूत्रके आध सेरका दाम ४०) ४०से कम नहीं होता।

इकरंगा शाल तांत-(करचे)में तैयार किया जाता है। किन्तु नाना प्रकारके रंगोंसे रंगे हुए विभिन्न शाल सूई दे कर बुने जाते हैं।

जो शाल तांतसे तैयार होते हैं, वे ही तिलिवाला, तिलिकार, कानिकार वा विनीटके नामसे विख्यात है। सूई द्वारा काम किया हुआ शाल साधारणतः 'अमलीकर' कहलाता है। इसके ललाये दुशाला, रुमाल प्रभृति नामक शालके और भी भेड़ हैं। कुरते बनानेवाला शाल नाना प्रकारके रंगोंमें रंगा रहता है। शालका किनारा (पाड़) तैयार करनेमें भी एक निपुण व्यवसाय-चतृता है। कालीकार और अमलीकर शाल काश्मीरमें यद्येष्ट तैयार होते हैं।

शाल प्रस्तुत करनेके समय कई श्रेणियोंके लोग कार्योंमें नियुक्त रहते हैं। जैसे—नकाश, तारागुरु, तालीम गुरु इत्यादि। नकाशी शालका नमूना दिखाते हैं। तारा गुरु रंग और रंगीन सूत्रादिका परिमाण निर्देश करते हैं। तालीम गुरु ये सब विषय सांकेतिक भाषणमें लिख कर जुलाहोंको दे देते हैं, ये उसीके अनुसार शाल बुनेते हैं।

शालनिर्माण करनेमें जो काष्ठसूची व्यवहृत होती है, वह तोजी कहलाती है। तोजीमें चार प्रेन रंगीन सूता लगा रहता है।

दुशाला—दुशाले कई तरहके देखे जाते हैं। यथा—सफेद दुशाला, रंगीन किनारीदार, बोचमें फूल-दार, कुंजदार। जिस शालकी लम्बाईके पाड़से चौड़ाईका पाड़ बड़ा रहता है, उसे 'शाहपसन्द' और जिसके चारो पाड़ समान होते हैं, उसे 'दरदार' कहते हैं। जिस शालका दोनों किनारा सूईसे काम किया रहता है, वह 'दुरूवा' कहलाता है।

साधारणतः सफेद, सुफेदी (काला), गुलालार (Crimson), खामिजि (Scarlet), उदा (Purple), फेरोजी, जिंगारी एवं जद (पीत) रङ्गके शाल देखनेमें आते हैं।

इनके अलावे कसबा, चादर और रुमाल भी यथेष्ट परिमाणमें निर्माण किये जाते हैं। यूरोपीय लोग इस श्रेणीके शाल ना बड़ा आदर करते हैं। ये पूराशाल व्यवहार करनेके पक्षपाती नही हैं, ये सिर्फ रुमाल ही अधिक पसन्द करते हैं। रुमालको छोड़ कर एक प्रकार का अर्द्ध परिमित शाल भी तैयार होता है जो आधा-खद् वा 'पसि' कहलाता है। यह शाल भी दो प्रकारका होता है। जैसे—तेहरीयेल और दोहरीयेल। रामपुरी चादर आदि भी यूरोपमें शालके नामसे विख्यात है।

श्रीनगरके भूजियममें एक शाल है, जिसका दाम २२००० रु० हैं। इसके अतिरिक्त ३०००से ले कर १०००० रुपये तक के मूल्यवान् शाल देखे जाते हैं।

१६०२-३ ई०में दिल्ली नगरमें जो शिल्प-सामग्र्यो प्रदर्शनी हुई थी, उसी प्रदर्शनीमें मेजर फ्लायट पेच गड्ढाके एक शाल दिया था। उस शालमें श्रीनगरके महल-जनसाधारण, हद, नदी, पर्वत और वृक्षादिके चित्र अंकित थे। प्रत्येक दृश्यके नीचे उसका परिचय सूचीकार्यमें लिखा था। महाराज सर रणवीर सिंहके समय उनके (राजाके) आदेशसे ही यह शाल तैयार किया गया था। वर्त्तमान भारत-सम्राट जब श्रीनगर परिदर्शन करने गये थे, नाथ उन्हीको उपहार देनेके लिये ही यह शाल तैयार कराया गया था। इस शालमें श्रीनगरका मान-चित्र चित्रितलाया गया है, जिसे देख कर आसानीसे वे स्थान दिखाये जा सकते हैं।

शालक (सं० स्त्री०) १ नाड़ीशाक, पटुआ। २ मसखरा दिल्लीगोवाज, भांड।

शालकट्टक (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक राक्षसका नाम। इसे घटोत्कचने मारा था। २ शाल और कट्टकमन्त्रविशेष।

शालकल्याणी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका सांग। २४

चरकके अनुसार गुरु, रुक्ष, मधुर, विष्टम्भो, शीतवीर्य और पुरीषभेदक होता है। (चरक सूत्रस्था० २७ अ०) शालग्राम (सं० पु०) विष्णुमूर्त्तिविशेष। गण्डकीसे उत्पन्न वज्रकीट कृत चक्रयुक्त शिला। गण्डकी नदांमें उत्पन्न वज्रकीट कर्त्तृक चक्रयुक्त जो शिखाखण्ड मिलता है, उसे शालग्राम शिला कहते हैं। इसके सिवा द्वारकोट्टव शिला भी शालग्राम-शिला कहलाती है। इस शिलामें भगवान् विष्णुकी पूजा करनी होती है। अन्य देवमूर्त्तिकी जिस प्रकार प्रतिष्ठा की जाती है, उस प्रकार इस शालग्राम-शिलाकी प्रतिष्ठा नहीं होती। इस शिलाका अतिपेक करके ही पूजन करना उचित है। शिलाके चक्रके लक्षणानुसार इस शिखाका भिन्न भिन्न नाम है। शालग्राम-शिलामें सभी देवताओंको पूजा होती है। इस शिखामें भगवान् विष्णु सर्वादा विराज करते हैं, इस कारण इसमें देवताका आवाहन और विसर्जन नही है।

शालग्रामकी उपासना भारतमें बहुत दिनोंसे चली आती है। भगवान् विष्णु शिखाचक्ररूपमें जगद् प्रकट हुए थे, यही पौराणिक उक्ति है। गण्डकीतीर या चक्रतीर्थ और द्वारका दो भगवान्की चक्ररूपी लीलाका उत्तम स्थान है। किस प्रकार भगवान् हरि इन दोनों क्षेतोंमें आविर्भूत हुए थे, उसका विवरण ग्रहादेवत्तंपुत्राणके जग्मखण्डमें इस प्रकारलिखा है,—

भगवान् हरिने छलसे शङ्खचूड़को मार कर शङ्खचूड़के वेशमें तुलसीके साथ सम्भोग किया। इस पर तुलसीने पीछे भगवान्को शाप दिया, 'हे नाथ! आप पापाणहृदय और ध्याहीन हैं, अतएव पापाण सद्रश हो कर इस पृथिवी पर अवस्थान करें।' तुलसीका यह वाक्य सुन कर नारायणने कहा, 'साध्वि! तुम्हारे शापका पालन करनेके लिये मैं गण्डकीके समीप शिलारूपी हो कर अनुष्ठान करूंगा। वज्रकीट, कृमि और द्रुप गण वहां शिखाकुहरमें मेरा चक्र काटेंगे।

धर्मसंहितामें शालग्राम-शिलाकी उत्पत्तिका विषय अन्य प्रकारसे लिखा है,—भगवान् हरिपदगर्भ स्वयं नारायण हैं। वे आदिमें वज्रकीटरूप धारण कर पृथिवी

पर भ्रमण करते थे। उन्हें सुवर्ण भ्रमररूपमें भ्रमण करते देव देवगण भ्रमररूप धारण कर उनके समीप गये। उस समय समस्त चराचर पड़ुडिभ्रदलमें परिप्राप्त हो गया। हिरण्यगर्भने इस प्रकार भ्रमणशील भ्रमरोंसे विभ्रान्त हो वैततेवासन जगत्पति विष्णुकी देवनेके लिये शैलरूपमें जगत्के मङ्गलविधाता हरिकी टोका। इस पर सहसा निरङ्कवेग हो कर वे एक युद्ध गर्भमें घुस गये। उन्हें इस प्रकार गर्भमें प्रवेश करते देव भ्रमरोंने भी उनका अनुसरण किया, वे भी उस गर्भमें घुस गये। उसीसे शङ्खचत् वैश्वके साथ चक्राकार शिला उत्पन्न हुई।

मेरुतन्त्र ५म पटलमें शालग्रामोत्पत्ति प्रसङ्गक्रममें शालग्राम, शिलानिर्णय और माहात्म्य कान्ति है। पुरा-कालमें गण्डकीने देवगण मेरे पुत्र हों। इस आकाङ्क्षासे तपस्या ठान दो। उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो कर ब्रह्मा विष्णु महेश्वर पर देनेके लिये उनके पास आये। गण्डकीने उन्हें अपने पुत्ररूपमें पानेके लिये प्रार्थना की। त्रिदेवके इस प्रकार धर देनेने अज्ञात होने पर गण्डकी क्रुद्ध हो बोली, "तुम लोगोंने मेरी धार धार प्रतारणा की, इस कारण यहां कीटवोनि लाभ कर अवस्थान करो।" गण्डकीका इस प्रकार वाक्य सुन कर देवताओंने कहा, 'तुमने जिस प्रकार तपोबलसे उदत्त हो बिना विचारे हम लोगोंको शाप दिया, उसी प्रकार कर्मविपाकसे तुम भी जड़ प्रकृति शृष्णा नदी हो। आपसके अभिशापसे यहां एक पड़ा कोटाहल पैदा हुआ। देवगण और गण्डकी सबके सब काँपने लगे और उन्होंने ब्रह्माकी सम्बोधन कर कहा, 'ब्रह्मन्! क्रीधके आदेशमें या कर परस्पर महाशापसे हम लोग पतित हो गये हैं। इसलिये इससे परित्राण पानेका उपाय कृपया बतला जाजिये।' ब्रह्माने देवताओंके ये वचन सुन कर शङ्करसे कहा। शङ्करने जवाब दिया, 'मैं संसारकारक हूँ, तुम सृष्टिकर्ता हो और विष्णु संहारोपायक हैं। विष्णु हो हम लोगोंमें अधिक बुद्धिमान हैं।' उन्हांस पूछो, इस विषयमें ये क्या कहते हैं?"

महेश्वरभी यह उक्ति सुन कर विष्णुने कहा, 'गजानन! तुम सभी ध्यान दे कर सुनो। यहां मेरे गणसमूह, ब्राह्मण

गण और गजमातङ्करूपधारां शापप्रस्तगण यदि कार्धवशतः आ जायं, तो उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होगी तथा ये विष्व-कलेवर धारण करेंगे। फिर उनकी मेदमज्जसम्भव मङ्गल-देह शीण हो कर पापाणान्तर्गत वज्रकीट प्रसव करेंगी। आजते गण्डकी पुण्यतोया और गङ्गाकी समान हुई। गिरिराजके दक्षिण गण्डकी पर्यन्त दशवोजन विस्तीर्ण भूमि धरातलमें महापुण्यक्षेत्र हुई। यद्यो बिलोकप्रसिद्ध चक्रनोर्ध है। इस चक्रनोर्धके अन्तर्गत शालग्रामगत देवगण अथवा द्वारावतीगत देवता जहां मिलेंगे, वहां मुक्ति अवश्य हो करतलगत होगी। इस भुक्तिमुक्ति-प्रदायिनी सर्वदेव-प्रातिकर गण्डकीका गर्भित पापाण-गण्ड और उसके अन्तर्गत वज्रकीट ही उनका पार्श्व सुरपुत्र है। इसके बाढ़ ब्रह्माके कर्हनेसे विष्णु गण्डकीका माहात्म्य कीर्तन करते करते पूज्य शिलाका भाम निर्देश करने लगे। इसका साथ उन्होंने त्वाज्य शिलाका भी वर्णान्दि भेद निरूपण कर दिया। (मेरुतन्त्र ५ पटल)

पूज्यशिक्षा।

पद्मपुराण (पातालखण्ड १० अ०) में शालग्राम-शिलाञ्जनप्रसङ्गमें विशेष विशेष रेखाविशिष्ट शिलाकी पूजाहता उल्लिखित हुई है। ये सब शिलाएं स्वतन्त्र नामसे भी पुकारी जाती हैं।

मेरुतन्त्रमें भी पूज्य शालग्राम-शिलाका विषय वर्णित देखा जाता है—स्वीय वर्णा, अर्थात् शिलाका जो वर्ण तादृशी वर्णविशिष्ट शिला है, उसकी ब्राह्मणादि वर्ण सुख लाभके लिये पूजा करे। स्निग्ध और रुक्षवर्ण शिला पूजनोप है। इस शिलाका पूजन करनेसे सिद्धि लाभ होता है। पीतवर्ण शिलाका पूजन करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। नीलवर्ण शिलाके पूजनसे लक्ष्मीलाम और समशिला सर्वार्थसाधिका होती है।

जिस शालग्रामशिला पर पक्षके साथ चक्र विद्यमान रहता है अथवा केशल वनमाला चिह्न पाया जाता है, उसका नाम लक्ष्मीहरि है। यह शिला गृहस्थोंकी अमोघ फल देनेवाली है। जिस शालग्रामके चक्रबुद्ध हो द्वार रहने

हैं अथवा जो शिला श्वेतवर्ण और दो समान चक्र-
विशिष्ट है, वह वासुदेव कहलाती है, यह शिखा पापनाशक
है। पूर्व और पश्चाद्भागमें दो चक्र रहनेसे वह शिला
सङ्कर्षण नामसे पूजित होती है। यह रत्न खरूा और
सुशोभन है। गृही अथकि यदि इस शिलाकी पूजा करे,
तो अभीष्टलाभ होता है।

जिस शालग्राम शिलाका चक्र सूक्ष्म तथा छिद्र
दीर्घ और विचित्रित है, अन्तः और बहिर्देश छिद्रयुक्त,
यह प्रद्युम्न कहलाती है। यह पीतवर्ण और इष्टप्रदा-
यक है। जो शिला नीलाम्, वर्त्तुल और अति
सुन्दर होती, जिसके द्वारदेश पर दो रेखा रहती तथा
पृष्ठदेश पद्मलाञ्छित होता है, उसे अनिरुद्ध शिला कहते हैं।
शिखाके पूर्व या पश्चाद्भागमें एक या दो चक्र रहनेसे
यह शिला केशव कहलाती है। यह चतुष्कोण है। इस
शिलाकी पूजा करनेसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। श्याम-
वर्ण, उन्नत चक्रविशिष्ट और दीर्घ रेखायुक्त तथा दक्षिण-
देश पृष्ठ शुण्डि अर्थात् स्थूल गृहसमन्वित शिलाको
नारायण कहते हैं।

जिस शिलाके ऊर्ध्वदेशमें स्थापित अथवा शिला-
का तर्ह हरिद्वारं दिखाई देता है, उसका नाम हरि है।
यह शिखाचक्रं मुक्ति और मुक्तिप्रद है। जो शिखा पद्म
और चक्रयुक्त, विद्वक्फली तर्ह आकृतिविशिष्ट, शुक्लाम्
और पृष्ठदेशमें वृद्ध शुण्डि अर्थात् गर्वाविशिष्ट है, वह पर-
मेष्ठो कहलाती है। कृष्णवर्ण, सुशोभन दो चक्रयुक्त,
मध्यदेशसे द्वारके ऊपर एक रेखासम्बलित शिलाका नाम
विष्णु है।

नृसिंहलक्षणयुक्त शिला यदि गुह्य या लाक्षा सद्गुण
वर्णविशिष्ट हो, उसमें स्थूल चक्र और द्वार पर सुशोभना
रेखा रहे, उसे महानृसिंह कहते हैं। पूर्वांक लक्षण-
युक्त शिला घनमालाविराजित, चार चक्र और विन्दुयुक्त
होनेसे लक्ष्मीनृसिंह कहलाती है। यह शुभप्रद है।

पूर्वांक घराहलक्षणयुक्त शिला भी इन्द्रनीलसद्गुण
स्थूल, तीन रेखायुक्त तथा शक्ति, लिङ्ग और चक्र विषय
हो, तो वह पृथ्वी-नाराह कहलाती है। यह यदि अनुष्ण

और एक रेखायुक्त हो, तो वह गतराज्यप्रद होता है।

वर्ण स्वर्णसद्गुण, दीर्घाकृति, तीन विन्दु विभूषित और
कांसासे भी अधिक भारविशिष्ट है, वही मत्स्वशिला
नामसे पुकारी जाती है। इस शिलाका पूजन करनेसे
मुक्ति और मुक्ति लाभ होती है।

जिस शिलाका पृष्ठदेश वर्त्तुल और उन्नत तथा
कौस्तुभ चिह्नित और हरिद्वारं होता है, वही कूर्माक्षय
शिला है। कूर्माकार, चक्राग्नित और वृत्तयुक्त शिला भी
कूर्मशिला कहलाती है। यह शिलाचक्र अमोघफल-
प्रद है।

चक्रके समीप अंकुशाकार रेखा और बहु विन्दु
विद्यमान तथा पृष्ठदेश नीरद नीलवर्ण है, वह हयग्रीव
कहलाती है। जो शिला हयग्रीवसद्गुण और दीर्घ रेखायुक्त
है, उसे समीप हयग्रीव कहते हैं।

मुख द्वयाकृति या पद्माकृति तथा मस्तक अक्षमाला-
युक्त होनेसे उसको हयग्रीव कहते हैं।

तिलवर्णाम तथा एक चक्रयुक्त, ध्वजचिह्नित, द्वारके
ऊपर सुशोभन रेखाविशिष्ट शिला वैकुण्ठ कहलाती है।

जो शिला घनमाला चिह्नित, पद्मचक्रसुपाकार, रेखा-
पञ्चक शोभित होती है, उसका नाम श्रीघर है।
अति हृद्य, वर्त्तुल, अतसीकुसुम सद्गुण वर्ण तथा
विन्दुयुक्त शिला वामन है। अति हृद्य तथा ऊर्ध्व
और अधोदेश चक्रयुक्त और महाद्युतिविशिष्ट शिला
दक्षिणवामन कहलाती है। यह शिला विशेष मङ्गलदायक
है।

जो शिला श्यामवर्ण, महाद्युति है, जिसके वाम-
पार्श्वमें चक्रविशिष्ट और दक्षिणमें एक रेखा रहती
है, उसे सुदर्शन कहते हैं।

जो शिला नाना रेखायुक्त तथा जिसकी परलपंकि
चक्राकार होती है, उसका नाम सहस्राक्षुं है। इसका
पूजन करनेसे मङ्गल होता है। जिसके मध्यचक्र प्रति-
ष्ठित है, जिसका वर्ण दूदा जैसा और द्वारदेश सङ्कोर्ण
होता तथा जिसमें अनेक पीत रेखाएं होती हैं, उसे दामो-
दर कहते हैं। इस शिलाका पूजन करनेसे मंगल होता
है। जिस शिलाके दो चक्र होते तथा विपर सूत्रा होता

यह भी दामोदर कहलाती है। दामोदर-शिलाके ऊर्ध्वार्ध और आधोदेशमें चक्रवत् गर्त रहने तथा मुख नातिदीर्घ और लम्ब रेखायुक्त होनेसे उसको राधा दामोदर कहते हैं।

बहुवर्ण नाग-भोग-चिह्नित तथा अनेक चक्रयुक्त होनेसे उमे अनन्त कहने हैं। इसकी पूजा करनेसे समस्त अमोघ सिद्ध होता है। जिस शिलाके सभी ओर ऊर्ध्व आरूप दिखाई देता है, उसका नाम पुरयोत्तम है। यह भी विशेष मंगलदायक है। जिस शिला पर त्रिरोमत लिंग रहता है, उसका नाम योगेश्वर है। इसकी पूजासे ब्रह्महृत्पादि पापनाश और योग सिद्ध होता है।

पद्म और छत्र चिह्नयुक्त शिलाका नाम पद्मानाम है। इसकी पूजा करनेसे दरिद्र धनवान् होता है। जिसके मध्यदेशमें दो पक्षके चिह्न होते और जिसमें एक सुदीर्घ रेखा होती, उसे गण्ड कहते हैं।

जिस शिलाके उदरमें चार प्रस्फुट चक्र होते, यह जनार्दन है। जिसका उदर वनमाला चिह्न तथा सूक्ष्म चार चक्रयुक्त होता है, उसका नाम लक्ष्मिनारायण है। शिला अर्द्धचन्द्राकृति होनेसे यह हृषीकेश है। इस शिलाकी पूजा करनेसे अमोघ और स्वर्गलभ होता है।

दृणवर्ण, विन्दुयुक्त और वाम पार्श्वमें दो चक्रयुक्त शिलाका नाम भी लक्ष्मिनारायण है। यह शिला गृह-स्पर्शकी अमोघदायक है। श्यामवर्ण, महाद्युति, वाम पार्श्वमें दो चक्र और दक्षिण पार्श्वमें एक रेखा रहनेसे उसे त्रिविक्रम कहते हैं।

दृणवर्णकी शिला यदि चक्रयुक्त या चक्रशून्य हो तथा उसमें यदि प्रदक्षिणापार्श्वरूपमें वनमाला चिह्न रहे, तो उसे दृण कहते हैं। शिलाके मध्यदेशमें दो चक्र तथा पार्श्वदेशमें चार रेखा होनेसे यह चतुर्मुख कहलाती है। (मेरुतन्त्र)

त्वान्पशिसा।

प्रयोगवारिजातमें त्वान्पशिसाकी आकृति कही गई है। पूजाशामो निम्नलिखित लक्षण देख कर उसे अग्रगण्य कर दें। त्रिकोणचक्र, यज्ञचक्र, क्रूरा, स्फोट विनिष्टा, रक्षा, कुर्या, विष्टा, भनास्या, कराला, विक

रालिका, कपिला, विषमावर्त्ता, व्यालास्या, कोटरयुक्ता, भग्ना, महास्थूला, रुधिरामना, एकचक्रयुक्ता, बहुरा, बहुचक्रा, अधोमुखी, लग्नचक्रा, या चक्रद्वारा धारुतचक्रा, बहुरेखा समायुक्ता, भग्नचक्रा, दीर्घचक्रा, पक्षिचक्रा, मस्तकास्या और अचिह्ना शिला सर्वात्मोभावमें वर्गनीया है।

इसके सिवा मेरुतन्त्रमें और भी कई निन्दित शिलाका परिचय पाया जाता है। धीत अंगारवत् शिलाको मेचकी कहते हैं। इसकी पूजा करनेसे यशकी हानि होती है। पाण्डु और मलिनवर्ण शिला निन्दनीया है। आर-वर्णशिलाका पूजन करनेसे पुत्रहानि, धर्माभ शिलासे बुजिहानि, रक्तवर्ण रोगदायिनी, वक्रशिला, दारिद्र्य कारिणी, स्थूलशिला आयुनाशिका और सिन्दुरामा शिला निन्दिता हैं, इस कारण उनका त्याग कर देना चाहिये।

अक्रादि चिह्नित शिला ही पूजामें प्रशस्त है। लांछन अर्थात् चिह्न व्यतीत शिलाकी पूजा करनेसे कोई फल नहीं होता। भग्नशिलाकी पूजा करनेसे विपत्ति, बहुचक्रयुक्त शिलाकी पूजा करनेसे अपमान, लक्षणहीन शिला पूजनेसे विवोग, बहुमुखयुक्त शिलापूजनेसे कलत्रनाश और बहुचक्रयुक्त शिलासे पुत्रनाश, संलग्न चक्रयुक्त शिलासे अमृत्य, यज्ञचक्रयुक्त शिलासे पीडा, भग्नचक्र शिलासे दारिद्र्य, अधोमुखयुक्त शिलासे सर्वनाश, व्यालमुखयुक्त शिलासे कुष्ठादि रोग, विषम शिलासे विविध प्रकारकी आपद्, विहृतायत्तनाभि अर्थात् जिस शालग्राम शिला पर चक्रता आवर्त्त है और नाभि विह्वल हो गई है, वैसी शिलाका पूजन करनेसे अनेक प्रकारका विहार होता है।

कपिल वर्ण, स्थूल चक्र और वृद्धमुखयुक्त शिला तथा जिस शिला पर तीन या पांच विन्दु होते हैं, उसे तृतिह कहते हैं। यह शिला गृहस्पर्शके लिये मंगलदायक नहीं है। इस शिलाका पूजन करनेसे गृहस्थ विपद्में पड़ता है। (मेरुतन्त्र)

उक्त जिन सब शिलाओंका लक्षण और पूजाफल कहा गया, उसका अपेक्षा और भी अनेक प्रकारकी शालग्राम-शिला दृष्टिगोचर होती है। ये द्वादश चक्रवर्गमें विभक्त हैं अर्थात् जो शिलाएँ एकचक्रविशिष्ट हैं,

ये एकचक्रक, जिनके दो चक्र हैं, वे द्विचक्रक हैं। एत-
द्विचक्रक जिनके भीतर तीनसे बारह तक चक्र देखनेमें आते
हैं, उन्हें पर्यायक्रमसे उसी उसी संख्यक वर्गमें सन्नि-
वेशित किया गया है। इस प्रकार एकचक्रवर्गमें १६
प्रकार, द्विचक्रवर्गमें ८८ प्रकार, त्रिचक्रवर्गमें ११ प्रकार,
चतुश्चक्रवर्गमें १६ प्रकार, पञ्चचक्रवर्गमें ६ प्रकार,
षट्चक्रवर्गमें ७ प्रकार, सप्तचक्रवर्गमें ६ प्रकार, अष्टचक्र
वर्गमें ४ प्रकार, नवचक्रवर्गमें १ प्रकार, दशमचक्रवर्गमें
३ प्रकार, एकादशचक्रवर्गमें २ प्रकार, द्वादशचक्रवर्गमें
१ प्रकार, और बहुचक्रवर्गमें और भी ८ प्रकारके शाल-
ग्राम निर्दिष्ट हैं। पुराणादिमें उन सब शालग्रामोंका
लक्षण और नाम हैं। यहाँ एकचक्र क्रमसे उनका विवर-
ण दिया जाता है—

१। वैकुण्ठ, मधुसूदन, सुदर्शन, सहस्रार्जुन, नर-
मूर्त्ति, राममूर्त्ति, लक्ष्मीनारायण, धीरनारायण, क्षीराब्धि-
शयन, माधव, हयप्रिय, परमेष्ठो, विष्णुक्षेत्र, विष्णु-
पञ्जर, गरुड, सुद, हिरण्यवर्ण, पीताम्बर और पद्मनाभ
नामधेय शिलायें एकचक्राङ्कित हैं।

नीलवर्णाम्, ध्वजयुक्त, द्वारोपरि और पूर्वाभागमें
सर्पाकार, सुशोभन रेखा-विलम्बित शिला हो वैकुण्ठ
कहलाती है। दूसरे पुराणमें शुकवर्णाम्, गुञ्जाकार और
पुच्छरेखक शिलाका भी वैकुण्ठ कहा है। महाद्युति-
मान् और महातेजशाली सर्वावर्णसमायुक्त शिला मधु-
सूदन पदवाच्य है। चक्रविवेक नामक ग्रन्थमें लिखा
है, कि रक्त या कृष्णवर्ण स्थूल शयक छिद्रयुक्त शिला
भी मधुसूदन है। यह सर्वासौभाग्यदायक है। शिरो-
देशमें एकचक्र और मुखमें कृष्णवर्ण शिला सुदर्शन कह-
लाती है। किसी दूसरेका कहना है, कि श्यामवर्ण,
वामपार्श्वमें गदा और चक्र तथा दक्षिणपार्श्वमें एक
रेखा रहनेसे उसे सुदर्शन शिला कहते हैं। चक्रविवेकके
मतसे वनमाला द्वारा वेष्टित, कदम्ब कुसुमाकार, पञ्च
रेखासंमन्वित, विन्दुलयसमायुक्त, चाक्षवर्ण और सुशोभन
शिला ही सुदर्शन है। नाना रेखामय शिला सहस्रार्जुन
कहलाती है। इसकी पूजा करनेसे नष्ट द्रव्य फिरसे
मिल जाता है। तोसी फूलकी तरह वर्णादिशिष्ट तथा
पार्श्वदेशमें अक्षसूत्र अर्थात् अपमालाचिह्नयुक्त जो शिला

है वह नरमूर्त्ति कहलाती है। तन्त्रमें उसका प्रकार
वताया है। यथा—

“गोपुच्छरक्षी माला यद्वा सर्पाङ्कितः शुभा ॥”

चद्वनमें चक्र और कृष्णवर्ण शिला राममूर्त्ति कह-
लाती है। यह पूजकको कवित्व दान करती है। एक-
चक्र, चतुर्वक् चतुर्ल, श्यामवर्ण, ध्वजवज्राङ्कू-
श चिह्नधारी, मालायुक्त विन्दुविशिष्ट, ससुन्नतपृष्ठ और
स्थूल शिला हो लक्ष्मीनारायण है। इस शिलाके दर्शन
करते ही अभीष्ट फलको प्राप्ति होती है। कौस्तुभशोभन,
वनमालाविभूषित, पाञ्चजन्य, गदा, पद्म और चक्रयुक्त,
दोषं द्विरेखाविशिष्ट तथा स्वर्णविलेपितगाल शिलाचक्र
ही धीरनारायण कहलाती है। चद्वनमें एक चक्रचिह्न,
गालमें पञ्चायुध रेखा, चक्रके दोनों पार्श्वमें फणि और
पद्म रेखा, सुचर्चुल, सुस्निग्ध और क्षीरसदृश कान्ति-
समन्वित शिला ही क्षीराब्धिशयन नामसे प्रसिद्ध है।
नामिचक्र उन्नत और उज्ज्वल दो रेखा अथवा पञ्चविह
युक्त तथा वनमालाविभूषित होनेसे वह माधव कह
लाती है। वैश्वानर-संहितामें लिखा है,—मधुवर्ण,
गदाकम्बुविलक्षित, सूक्ष्म और मधुमें शोभनचक्रविशिष्ट
होनेसे उसे माधवशिला कहते हैं। यह शिलाचक्र सौभाग्य
और मोक्षदायक है। अङ्कू, शाकार, कृष्णवर्ण, रेखासंम-
न्वित अथवा श्याम दूर्वादलाकार, वामोन्मत्त और कवि-
ञ्जल होनेसे यह हयप्रिय कहलाती है। साप्तचक्र, पृष्ठ-
छिद्र और विन्दुमान्, पद्मवत् चक्रशाली तथा शुक्लाम्
अथवा लोहिताम् होनेसे उसको परमेष्ठिशिला कहते हैं।
विष्णुक्षेत्र शिला अति स्थूल होती है। इसका दूसरा
नाम वामोद्गर भी है। दीर्घकाय, कृष्णवर्ण और पंजरा-
कृतिकपालांछनविशिष्ट शिला ही विष्णुपञ्जर कहलाती है।
यह सर्वकामप्रद है। श्याम, नील अथवा सितवर्ण
सर्वावर्णकी दो तीन या चार लम्बी रेखा जिसमें रदती
है, वह शिला गरुड नामसे पूजित होती है। अणु-
गुह्यसंयुक्त और चक्रहीन शिला निषीत बुद्ध कहलाती
है। इसको पूजा करनेसे परम पद लाभ होता है।
ईपत् दीर्घ, मनोह, स्निग्ध और मधुविह्वलविप्रद हिरण्य
वर्ण नामसे प्रसिद्ध है। इसके ऊपर स्फटिककी तरह
दीप्तिविशिष्ट अनेक स्वर्णरेखायें भी रहती हैं। एतद्विच

पृष्ठ पार्श्वमें श्रोत्ररसाकार लंछन जो शिखरमें है, वैसी पत्तुल और कृष्णवर्णकी शिलाको दिग्गणवर्ण कहते हैं। ऊदुर्ध्वचक्र यशुज द्वादशमुख, पांताम और द्वार देश रेखातयविभूषित अथवा सचक्र, गोस्तनाकार और वर्तुल शिलाचक्र भी अथर देव चक्र पर पूजित होते हैं। भारतवर्ष, पद्मयुक्त, निरक्षेत्रचक्र, अक्षचन्द्रयुक्त, घनमालाङ्कित और कण्ठमें श्रोत्ररसाङ्कित रहनेसे यह पद्मनाभ कहलती है। इस शिलाकी प्रतिदिन मुलसोपल द्वारा पूजा करनेसे अति वृद्धिको भी राज्य लाभ होता है।

२५ वा द्विचक्र।—गण्डकी नदीमें दो चक्रयुक्त जो सब शिलाएँ पाई गई हैं उनकी संख्या सबसे अधिक है तथा साधारणता पूजित होती है। वे सब शिला मत्स्य-कूर्मादि नामसे जनसाधारणमें परिचित हैं। नीचे उन सब शिलाशोका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

मत्स्याष्टिकी तरह मुल और मुलकी तरह चक्रविशिष्ट, श्रोत्ररस विन्दु और मालायुक्त, दीर्घाकार, कृष्ण मूर्त्तिको ही मत्स्य कहते हैं। (वराहपुराण) ब्रह्म और पद्मपुराणके मतसे श्याम अथवा काञ्चनवर्ण, विन्दुतयविभूषित, मत्स्यरूप, दीर्घ अथवा घामभागमें मत्स्यचिह्न रहनेसे यह मत्स्यमूर्त्ति कहलाती है। अग्निपुराण, ब्रह्माण्डपुराण और मत्स्यसूक्तमें इसका प्रकारभेद कहा गया है। पृष्ठभाग कूर्मकी तरह उन्नत वर्तुल, हरिद्रणं समाकार्ण और कौस्तुभभूषित शिला ही कूर्ममूर्त्ति है। उन्नतपृष्ठ, पीतवर्ण, अति स्निग्ध, अक्षरचक्र और द्वारदेशमें चक्रसमन्वित होनेसे यह वराहमूर्त्ति कहलाती है। मत्ताम्तारसे विषमस्थित चक्र, रश्मि नोलनिभ वर्णाविशिष्ट, स्थूल, त्रिरेखालाङ्कित, अथवा अनसोकुसुमप्रसव या नीलेत्पलनिभ, दीर्घाकार, दीर्घद्वारदुषत, अजर्जरतनु, पृष्ठीग्नत, दीर्घास्थ, घामभागमें उन्नत चक्र, पृष्ठ पर रेखावुषत और वरादाकार शिलाको वराहमूर्त्ति कहते हैं। अक्षरचक्र, अतिफलस, स्वर्णदंष्ट्र और अंकुशाकार चदन होनेसे यह भूचराह नामो। पीताम, चक्षुर्भ्रंश, चक्रसमन्वित सुन्दर दन्तसहित शिलाका नाम चरणीघर वाहर है। चक्र समन्वित

और दक्षिण भागमें गोप्यद चिह्न रहनेसे उसे लक्ष्मीवराह जानना होगा। अतिविशुद्धाक्षर, द्विचक्रविशिष्ट और विकट मूर्त्ति नृसिंह कहलाती है। इस प्रकार लक्षणयुक्त दोघां मुली और वेशराकार रेखायुक्त शिला गो नरसिंह नामसे पुकारी जाती है। पृथुचक्र, महासुल, ति वा पञ्चविन्दुयुक्त अथवा स्थूलचक्र, गुह्य लाक्षावर्ण, द्वारोपरि सुशोभन युग्मरेखा विशिष्ट होनेसे उसे कपिलनरसिंह कहते हैं। द्वारभाग पीतवर्ण और स्वर्णरेखायुक्त तथा मुलके समोप चक्र रहनेसे यह योगिनृसिंह शिला कहलाती है। वृत्तशोभित दीर्घचन्द्रविशिष्ट, अण्डवत् चन्द्रयुक्त दक्षिणोन्नत मस्तक होनेसे उसे विदारनृसिंह कहते हैं। महाद्वार तथा मध्यस्थ चक्र उन्नत और समभावापन्न होनेसे उसे आकाशनरसिंह जानना होगा। बहुछिद्र, भीमवपह्न और स्वर्णवर्णका चक्र जिसमें रहता है, उसका नाम राक्षस नृसिंह है। इस शिलाको घरमें रखनेसे निश्चय ही अग्नि द्वारा गृहभस्म होगा। दो चक्र और दो मुल, द्वारा ऊदुर्ध्वकृति तथा स्थूलवेह होनेसे उसको जिह्वा नृसिंह जानना चाहिये। रश्मि सूक्ष्म, चक्र दो और घनमालाविभूषित होनेसे उसे ज्वालानृसिंह कहते हैं। जिस शिलामें दो स्थूल चक्रके मध्य रेखा रहती है तथा गालमें भी सुशोभना रेखा दिवार देती है, फिर जिसमें कपिल-नरसिंहके लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं वह शिल महानृसिंह कहलाती है। विशुद्धाक्षर, घनमाला विभूषित, घाम पार्श्वमें चक्र, कृष्णावर्ण और विन्दुयुक्त होने से उसको लक्ष्मोनृसिंह कहते हैं। शिलागत वर्षाश और पृष्ठदेश सप्तफणाङ्कित रहनेसे वह अमस्तनृसिंह समन्वी जाती है।

इन्द्रनील सद्गुणाकार, घनमाला और अशुभ द्वारा उज्ज्वल, ह्रस्व एवं पत्तुलाकृति शिला घामन कहलाती है। यह घामन मूर्त्ति तीसरी फूलकी तरह और कुछ उन्नतमस्तकवाली होती है तथा उसका चक्र कुछ अक्षर रहता है। यह कामप्रद है। रश्मि सूक्ष्म तथा कुक्षि बढ़ी होती है। यह घामन दुर्लभ है। मत्ताम्तारसे स्वर्ण चक्र, दीर्घास्थ, गृहगृह, पत्तुल, शिलाका मुख उन्नत या उन्नत अर्थात् अति, अग्नि उन्नत और कुट्टन

रेखा द्वारा विष्टित, फिर चक्रके दोनो पाश्र्वोंमें स्तूती पुष्पा कृति आदि चिह्न दिखाई देनेसे उसे धामन शिशा जानना होगा। धामन मूर्त्तिभ्ये त्रिन्दुयुक्त अथवा उज्ज्वल विन्दु द्वारा भूषित, अतसो कुसुमसदृश वर्णविशिष्ट वा नीलरक्तम होनेसे उसको अधिधामन कहते हैं। पीतवर्ण तथा परशु, कौण्डेय और लाङ्गल चिह्न समन्वित शिला राममूर्त्ति है। इस राममूर्त्तिके फिर अनेक भेद देखे जाते हैं। परशु समन्वित, दूर्वादलकी तरह श्यामवर्ण, उन्नत तथा मध्यदेशमें चक्र रहनेसे वह परशुराम है। यह मूर्त्ति पीत चिह्न युक्त वाम या दक्षिणमें चक्रयुक्त तथा पृष्ठ या पार्श्व भागमें वृत्ताकार रेखा दिखाई देने पर भी वह जामदग्न्य कहलाती है। धनुर्वाणकी तरह रेखा कोर अथवा शीर्ष, विन्दुयुक्त और नाभिचक्रमें बहु छिद्र रहनेसे उसे द्वाशरघ राम-शिला जानना चाहिये। जिसके ऊर्ध्वदेशमें चक्र, तूण, शाङ्ख धनु और शरचिह्न रहता है। उसका नाम कीशलयानन्द राम है। सिन्ध, दूर्वाभ, चाकशीभन तथा वह चक्र वाण, तूण और कामुक समायुक्त अथवा पृष्ठदेशमें दन्त और पार्श्वमें द्वे रेखा दिखाई देनेसे उसको रामचन्द्र कहते हैं। श्यामल और घत्सुलाकार शिला ही वाढ्यराम-शिला है, वाणतूणीर और ज्यशोभिन तथा कुण्डल और माढ्यसमाहित शिला बोरराम कहलाती है। पृष्ठभाग पर पांच रेखा तथा पार्श्वदेशमें धनुर्वाणचिह्नयुक्त विव्वफल सदृश शिला पुत्रद राम कहलाती है।

रक्त विन्दुयुक्त चक्रशोभित, दिव्याम्बरधारी, चाप और तूणीर संयुक्त और करालवदन शिलाका नाम विजयराम है। घत्सुल अथवा कुछ अथत तथा एक धनुयुक्त और नीलाम्बुद प्रभाविशिष्ट शिलाको कौण्डिक नाम कहते हैं। मूर्त्तिदेशमें मालाचिह्न धनुर्वाण और पार्श्वमें खुरयुत शिला ही हृष्टराम है। मुर्गेके अङ्के तरह आभाविशिष्ट, श्यामल और उन्नत पृष्ठ तथा दो रेखासे युक्त और प्रोदण्डो लक्षण होने पर भी उसे हृष्टराम कहेंगे। मुर्गेके अङ्केकी तरह आकार, अधोपक्ष, कुण्डलयुक्त, द्वादशमें समान दो चक्र और चतुर्धाचिह्नित शिला सांताराम कहलाती है। मध्यमाकृति, घत्सुलाकार, शरतूणीरसमन्वित और वाण-

विश्वन तथा दूर्वादलश्यामव विप्रद रणराम नामसे परिचित है। मस्तक या जातुमें धनुर्वाणका चिह्न, पार्श्वमें खुर और नीलाम्बुद समप्रभ होनेसे उसको हृष्टराम कहते हैं। पृष्ठ भागमें पञ्चरेखा दोनों पार्श्वोंमें धनुर्वाण चिह्नित त्र्यूलमङ्ग, हरिलोचनमग्निमगाव अथवा दीर्घाकार, वृद्धद्वार, श्वेतलाङ्गल चिह्नित, पृष्ठ पर सुपलचिह्न नीलवर्ण उज्ज्वल प्रभाशाली और पृथुवक्र शिला बलराम कहलाती है। हल और सुपन्दरेखाङ्गि, शुक्राभ, वनमालायुक्त, मधुवर्ण विन्दुविशिष्ट शिलाका नाम सङ्कर्षण-राम है। जिसके पृष्ठभाग पर पुष्कर चिह्न, इस प्रकार एकलम्ब शिला अथवा जिसके सभी ओर ऊर्ध्वमुख देखा जाता है, वही शिला पुष्कोत्सम है। जिस शिलाको देह चापा कृति है और जो विविध वर्णोंसे शोभित है, वही शिला महोपर कहलाती है। कृष्णवर्ण, पीत चिह्नयुक्त, वृश-देह, पार्श्वमें विन्दुयुक्त, द्वारतुल्य नामिदेश, पृष्ठ कूर्माकार और दीर्घाकृति होनेसे वह शिला कृष्णमूर्त्ति नामसे पूजित होती है। उन्नतदेह, कृष्णाभ, निम्न और आधो-देश विन्दुयुक्त तथा दीर्घाव होनेसे उस शिलाको बाल-कृष्ण कहते हैं। श्यामवर्ण, अति सिन्ध, छत्ताकार, सूक्ष्मद्वार, विन्दुयुक्त रक्तवर्ण रेखाविशिष्ट और शिर पर पञ्चचिह्न रहनेसे वह गोपल मूर्त्ति नामसे प्रसिद्ध है। यह गोपालमूर्त्ति नातिस्थूल, नातिकृष्ण, चगमाश्रायुत, श्रीवत्सलच्छन्न, दीर्घाशृङ्गविशिष्ट और पार्श्वोंमें त्रेणु-विहाङ्गित होनेसे वह भूमि, धान्य और धनप्रद होती है।

अर्द्धश्याम और अर्द्धरक्ताकार, शङ्खचक्र धनु और शर चिह्न विशिष्ट तथा शीघ्र और शुषिरयुक्त होनेसे वह मदनगोपाल कहलाती है। जिस मदनगोपाल शिलाके वामपार्श्वमें पद्म तथा माला और कुण्डलादि चिह्न रहता है, वह मूर्त्ति पुत्र पीत और धन पेश्वर्ष देती है। उक्त प्रकारकी लक्षणाक्रान्त मूर्त्ति दीर्घाकार और सुरेखाविशिष्ट होनेसे उसको गोपाल जानना होगा। यदि शिला घत्सुल, मस्तक निम्नमुकी, दोनों पार्श्व रजतविन्दुयुक्त तथा दण्ड चक्र और त्रेणु शोभित हो, तो वह गोवन्द न-गोपाल कहलाती है।

पञ्चोच्चिसमायुक्त, सिन्धगात्र, श्याम अथवा नाना

पृष्ठ पार्श्वमें धोवटसाकार लालिच जो शिलामें है, वैसी यक्षुल और कृष्णवर्णको शिलाको हिरण्यवर्ण कहते हैं। ऊट्टुर्छांनक शम्भुज द्वादेशमुख, पोताम और द्वार देश देवाक्षयविभूषित अथवा सचक्र, गोस्तनाकार और वर्चुल शिलाधक की मय देव कह कर पूजित होते हैं। भारकवर्ण, पट्टमयुक्त, निरक्षेत्रकचक्र, अर्द्धचंद्रयुक्त, घनमालाङ्कित और कण्ठमें धोवटसाङ्कित रहनेसे यह पट्टमनाम कहलाती है। इस शिलाकी प्रतिदिन तुलसीपत्र द्वारा पूजा करनेसे अति दरिद्रको भी राज्यलाम होता है।

२५ या द्विचक्र।—गण्डकी नदीमें दो चक्रयुक्त जो सत्र शिलाएँ पाई गई हैं उनकी संख्या सबसे अधिक है तथा साधारणतः पूजित होती हैं। ये सद शिला मरुत्य-कूर्मादि नामसे जनसाधारणमें परिचित हैं। नीचे उन सत्र शिलाओंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

मरुत्याकृतिकी तरह मुख और मुखकी तरह चक्रविशिष्ट, धोवटस विन्दु और मालायुक्त, दीर्घाकार, कृष्ण मूर्त्तिके दो मरुत्य कहते हैं। (वराहपुराण) ब्रह्म और पट्टमपुराणके मतसे प्रथम अथवा काञ्चनवर्ण, विन्दुत्रयविभूषित, मरुत्यरूप, दीर्घ अथवा घामभागमें मरुत्यचक्र रहनेसे यह मरुत्यमूर्त्ति कहलाती है। अग्निपुराण, ब्रह्माण्डपुराण और मरुत्य-सूक्तमें इसका प्रकारभेद कहा गया है। पृष्ठभाग कूर्माकी तरह उन्नत वर्चुल, दरिद्राणं समाकीर्ण और कीस्तुमभूषित शिला दो कूर्मामूर्त्ति हैं। उन्नतपृष्ठ, पीतवर्ण, अति स्त्रिय, अधश्चक्र और द्वारदेशमें चक्रसमन्वित होनेसे यह वराहमूर्त्ति कहलाती है। मत्ताग्नारसे विषमस्थित चक्र, इन्द्र नीलनिभ वर्णाविशिष्ट, स्थूल, तिरिखालांछित, अथवा शतसोकुसुमप्रपथ या नीलातपलनिभ, दीर्घाकार, दीर्घ-द्वारदुपत्र, अञ्जर्जस्तु, पृष्ठोन्नत, दीर्घास्थ, घामभागमें उन्नत चक्र, पृष्ठ पर देवायुपत्र और वराहाकार शिलाके वराहमूर्त्ति कहते हैं। अधश्चक्र, अतिकलस, सर्पादंष्ट्र और अकुञ्जाकार वदन होनेसे यह भूवराह होगी। पोताम, सुस्तीरग्न, चक्रसमन्वित सुन्दर दन्तमहित शिलाका नाम धरणीधर यादर है। चक्र समन्वित

और दक्षिण भागमें गोपद चिह्न रहनेसे उसे लक्ष्मीवराह जानना होगा। अतिविशुद्धाक्षर, द्विचक्रविशिष्ट और विकट मूर्त्ति नृसिंह कहलाती है। इस प्रकार लक्षणयुक्त दीर्घ मुखी और वेशराकार देवायुक्त शिला भी नरसिंह नामसे पुकारी जाती है। पृष्ठचक्र, महासुख, ति वा पञ्चविन्दुयुक्त अथवा स्थूलचक्र, गुह्य लाक्षण, द्वारोपरि सुशोभन युग्मरेखा विशिष्ट होनेसे उसे कपिलनरसिंह कहते हैं। द्वारभाग पीतवर्ण और स्वर्णरेखायुक्त तथा मुखके समोप चक्र रहनेसे यह योगिनृसिंह शिला कहलाती है। दन्तशोभित दीर्घचन्द्रविशिष्ट, अण्डवत् चन्द्रयुक्त दक्षिणोन्नत मस्तक होनेसे उसे विदारनृसिंह कहते हैं। मद्दोपर तथा मध्यस्थ चक्र उन्नत और समभावापरन होनेसे उसे आकाशनरसिंह जानना होगा। बहुछिद्र, भीमवपत् और स्वर्णवर्णाका चक्र जिसमें रहता है, उसका नाम राक्षस नृसिंह है। इस शिलाके वर्णां रचनेसे निश्चय ही अग्नि द्वारा गृहभस्म होगा। दो चक्र और दो मुख, द्वारा ऊट्टुर्छांनक तथा स्थूलवेद होनेसे उसका जिह्वा-नृसिंह जानना चाहिये। रश्म सुप्त, चक्र दो और घनमालाविभूषित होनेसे उसे उवालानृसिंह कहते हैं। जिस शिलामें दो स्थूल चक्रके मध्य रेखा रहती है तथा गालमें भी सुशोभना रेखा दिखाई देती है, फिर जिसमें कपिल-नरसिंहके लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं वह शिल मदानृसिंह कहलाती है। चित्ताक्षर, घनमाला विभूषित, घाम पार्श्वमें चक्र, कृष्णावर्ण और विन्दुयुक्त होने से उसके लक्ष्मीनृसिंह कहते हैं। शिलागत कर्णश और पृष्ठदेश सप्तकणाङ्कित रहनेसे यह अमृतनृसिंह समझी जाती है।

इन्द्रनील सट्टाकार, घनमाला और अभ्युत द्वार उज्ज्वल, ह्रस्व पर्व यक्षुलाकृति शिला घामन कहलाती है। यह घामन मूर्त्ति तीसरी फूलकी तरह और कुछ उन्नतमस्तकवाली होती है तथा उसका चक्र कुछ अल्पतरु रहता है। यह कामप्रद है। रश्म सुप्त तथा कुक्षि बद्धी होती है। यह घामन दुर्लभ है। मत्ता-भरसे स्थल चक्र, दीर्घास्थ, पृष्ठदुग्ध, वक्षुल, शिलाका मुख उन्नत या उन्नत अयस्थित, अग्नि उन्नत और कुट्टत

रक्तवर्ण रेखा द्वारा आयतदेश, चक्रविशिष्ट, क्रिष्टित् कपिल तथा सूक्ष्म अथवा स्थूल शिलाका नाम अधोक्षज शिला है। शालग्रामके शिखर या ऊपरमें शिवलिङ्गाकार चिह्न रहनेसे योगेश्वर मूर्त्ति नामसे उनको पूजा होती है। एकचक्रादि शिला मूर्त्तिमें भी यदि यह लिङ्गचिह्न रहे, तो शिलाचक्र योगेश्वर कहलाता है। इसकी पूजा करनेसे ब्रह्मदत्तपापातक दूर होता है। इंद्र-नीलाम, वृत्तचक्र, महाविल और सर्पफणा तथा पार्श्व-रेखासमन्वित शिला उपेन्द्र कहलाती है। श्यामल, लवणद्वार, चक्रसमन्वित ऊर्ध्वामुखा और अधोदेश विन्दुयुक्त होनेसे उसको हरिमूर्त्तिशिला कहते हैं। यह कामद, मीशद और गन्ध तथा सर्वपापनाशिनी है। फल वनमाला, पद्म और चक्र चिह्न रहनेसे उसको लक्ष्मीहरि कहते हैं।

जिस शिलाके सर्वाङ्गमें स्वर्णावर्ण विन्दु रहता है, वह यदि वस्तुल और हृस्वचक्र हो, तो उसे सप्तवीरश्वर कहते हैं। सुवर्णश्रेङ्गीकी तरह द्युतिविशिष्ट, वस्तुल, स्निग्ध, केशर मध्यगत चक्र तथा पृष्ठरेखा और विन्दु-सूचित होनेसे गण्डध्वज कहलाती है। दो र्ध्रविशिष्ट विषमव्य, समचक्र तथा दो पक्ष द्वारा शोभित होनेसे वह गण्डशिला नामसे पूजित होती है। जो शिला स्थूल चिह्न तथा कलस द्वारा शोभित है, उसे वैनेतेय कहते हैं। जिसका पृष्ठदेश स्थित, अद्यण और अस्तितग वर्णविशिष्ट है तथा जिस पर अक्षमालाकृति चिह्न दिखाई देता है, उस शिलाका नाम दत्तात्रेय है। जिस शिलाके पृष्ठसे कण्ठ पर्वत एक दो चार या पांच बलपाकार स्वर्णरेखा रहती है तथा वह यदि श्याम, नील वा कृष्णवर्णकी हो, अथवा उसमें कुण्डलीकृत सर्पफणाका चिह्न दिखाई दे, तो वह शिला शेषमूर्त्ति कहलाती है। जिस शिलाके पार्श्व और समीपमें चार रेखा तथा मध्य-देशमें दो चक्र रहते हैं, उसका नाम चतुर्मुख शिला है। पञ्चपदी तरह आकारविशिष्ट, चक्र और पद्मसमन्वित तथा नील और श्वेतवर्ण मिश्रित होनेसे उसको हंसमूर्त्ति कहते हैं। मयूरके गलेके सदृश वर्णविशिष्ट, स्निग्ध, वर्णलाकार द्वारायुत, बिलके मध्य चक्र, चक्रके दक्षिण पार्श्वमें भास्करमूर्त्ति तथा वरहरेखासमन्वित शिला

परहंस नामसे प्रसिद्ध है। शरीरमें सर्पफणाचिह्न, एकचक्र और उसमें दो समान चक्र, दक्षिणकी ओर पद्म-पत्रसदृश चिह्न तथा हेमवर्ण कला जिस शिलामें विद्यमान रहती है, वह शिला हेमवर्णमूर्त्ति कह कर विदित है।

३। त्रिचक्रसमन्वित ग्यारह प्रकारको शालग्राम शिला पाई जाती है। ये पुरुषोत्तम, शिशुमार, त्रिविक्रम, मत्स्यमूर्त्ति, अधोमुख, नृसिंह, बुद्ध, मन्वपुत्र, कलि, त्रिलोचन, लक्ष्मनारायण और अनिरुद्ध नामसे प्रसिद्ध हैं। ऊपर इन नामोंसे चर्णित त्रिचक्र शिलासे इनका लक्षण स्पष्ट है।

मध्यमें स्वर्णावर्णचक्र तथा मस्तकदेश युद्ध चक्र-समन्वित और अतसो कुसुमकी तरह विन्दुशोभित शिला पुरुषोत्तम कहलाती है। दीर्घाक्षय ईप्सु गह्वर, सम्मुख भागमें दो और पृष्ठभागमें एक चक्र रहनेसे वह शिशुमार कहलाती है। गह्वरमें दो तथा उन्नतपुच्छ एक चक्रविशिष्ट शिलाका नाम भी शिशुमार है। त्रिकोणाकार और चक्रत्रय भूषित शिलाको त्रिविक्रम कहते हैं। यह भ्रमराभन सदृश ईप्सु दीर्घा होती और पार्श्वमें कोटदण्डलाञ्छन होता है। इसमें अश्वचक्र, विशालाकी तरह वर्णविशिष्ट मूर्द्धन्य और गर्भमें चक्र रहता है। कांस्य सदृश वर्ण, तीन परस्पर विच्छिन्न दीर्घरेखायुत, द्वारके मध्य दो चक्र तथा पुच्छभागमें एक चक्र, दक्षिणमें शकटाकृति चिह्न और वाममें रेखा रहनेसे मत्स्यमूर्त्ति जानी जाती है। सम्मुख, पार्श्व और पृष्ठमें जिस शिलाके तीन चक्र देखे जायेंगे, वही अधोमुखनृसिंह कहलाती है। जिस शिलाके दोनों चक्षु गह्वर दो चक्रसे अङ्कित तथा शिर पुच्छ वा ऊर्ध्वभागमें सिर्फ एक चक्र रहता है, उसको बुद्धमूर्त्ति कहते हैं। नोचेकी ओर दो और यदि शीर्षमें एक चक्र और सूक्ष्म गह्वरविशिष्ट सुरोतल शिला ही बभ्रुन नामसे प्रसिद्ध है। हयाकार और त्रिचक्राच्छ्रित शिला कलिक-मूर्त्ति है। एकद्वार और त्रिचक्रयुक्त शिला त्रिलोचन है। इसी प्रकार त्रिचक्रशोभित एक और प्रकारकी शिला है जिसे लक्ष्मीनारायण कहते हैं। कृष्णवर्ण, नाभिसमीप-गत समद्वार चक्र, ऊर्ध्वामुख सूक्ष्म चक्र और पार्श्वमें पुत्र चिह्न प्रकाशक चाक्र रहनेसे वह अनिरुद्धशिला कहलाती है।

वर्ण समायुक्त और यममालाविभूषित होनेसे उसके पञ्चीवदन या पञ्चीगोपाल कहते हैं। भद्रचन्द्र-निनाशन, कृष्णवर्ण और दीर्घाकार जिलाही सप्तान-गोपाल कहलाती है। मुर्गेके अङ्कुरी तरह, यममाला भूषित, धीधरमूर्त्तिमनुज तथा लाङ्गल, घेणु और कुण्डल विहाक्रान्त जिला ही लक्ष्मीगोपाल है। द्वारदेश पर देव चक्र और लक्ष्मीसमन्वित, अथवा वज्रायुध रेखा विशिष्ट हिमालयसदृश वर्ण और नामिदेशमें चक्र रहनेसे यह जिला यामुदेव कहलाती है। सुवर्णवर्णारिखा और विन्दुलवसमन्वित तथा हिरण्यवर्ण पद्मयुक्त होनेसे कालोपद्मम कहते हैं। चक्र भाग अति शोभाशाली, असिपर्ण, नातिस्थूल, यममालापरिवृत और पृष्ठदेशमें धीधरसलाहृष्टम रहनेसे यह स्वमस्तहारी है। रक्तध्वज विन्दुद्वययुक्त, श्यामवर्ण, दन्तिभृतापम जिला ही चानूर मर्दन कहलाती है। कृष्ण और नीलाम्बुद वर्णविशिष्ट जिलाका नाम कंसमर्दन है। यद्धचक्र होनेसे युद्ध मूर्त्तिके साथ इसका सादृश्य है। अति रक्तवर्ण सूक्ष्मगर्त, स्पष्टचक्र, स्थिरासन, द्वारके ऊपर और पृष्ठ भाग पर कपालाकृति रेखा रहनेसे यह कल्किमूर्त्ति कहलाती है। वराहपुराणके मतसे यह मूर्त्ति इन्द्रनील-निम दीर्घाकार, यममालाविभूषित और अङ्गुशाकारवदम, कृष्णवर्ण स्थूलचक्र, द्वारके ऊपर अथवा पृष्ठ भाग पर गदाकृति रेखायुक्त होनेसे उसके विष्णुमूर्त्ति कहते हैं। वराहपुराणमें अपराजित पुण्यकी तरह वर्णविशिष्ट, यममाला और पद्मचिह्नयुक्त तथा पञ्चायुधपर शिलाके विष्णुलक्षण कहा गया है।

सुदर्शनमूर्त्तिको लक्षणाक्रान्त अथवा देव चक्रयुक्त जिला लक्ष्मीनारायण कहलाती है। नारायण जिला श्यामवर्ण, नामिचक्र उन्नत, दीर्घ तीन रेखायुक्त, दक्षिणमें क्षुद्र छिद्र, एक पद्माङ्कित और दक्षिणावर्त तथा धनुर्लाङ्घनयुक्त होता है। मुखल, आयुध,माला, शङ्ख, चक्र और मर्दाङ्कित जिला रुविनारायण कहलाती है। तन्मालालम्बन और स्वर्णवर्णलित तथा शोणचक्र समन्वित जिलाके नरनारायण कहते हैं। वस्तुल मूर्त्ति, रेखावृत्त, नीलरेखायुक्त, दीर्घास्य और पृष्ठचक्र होनेसे उसके अथम्बुजिला कहा गया है। मेघवर्ण,

गोणद्विचिह्नशाली, छत्राकार, द्विनकविशिष्ट और मध्यमाकार शिखा मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध है। हयमोयवदम, अङ्गुशाकार, चक्रके समीप रेखायुक्त, बहुविन्दुसमन्वित तथा पृष्ठ पर नीरद्वी-लघु त्रिविधिष्ट द्विचक्र शिला भी हयमोय कहलाती है। केशव लक्षण शिला चतुष्कोण, श्यामवर्ण, यममालान्वित सूक्ष्मचक्र और स्वर्णवर्ण विन्दुविशिष्ट होती है। सूक्ष्मचक्र, पीतवर्ण या नीलाम्बुजनिम जिला मधुमन कह कर पूजित होती है। ब्रह्मपुराणके मतसे यह मधीन नीरद्रम है।

ललाटदेश श्वेतनाग चिह्न और काञ्चनवर्ण ऊर्ध्व रेखा-समन्वित तप्त काञ्चनवर्णम शिखा लक्ष्मीप्रद्युम्न कहलाती है। वराहपुराणमें लिखा है, कि जषाकु-सुमसङ्काश, यम-मालाधर और धनुर्वाण तथा अजिन चिह्नयुक्त जिलाकी भी लक्ष्मीप्रद्युम्न कहते हैं। इस प्रकार सूक्ष्मचक्रशाली तथा स्वर्ण और रीधरेखाविशिष्ट होनेसे यह अनिरुद्ध कहलाती है। यह अनिरुद्ध विप्रद पीताम, वर्चुल, रेखात्रयपरिवृत, पद्मलाञ्छित अथवा पीताम होता है। गोपीनाथ शिला वर्चुल, चक्रुलाकृति, धीरासनस्थ अथवा कृष्णवर्ण पुष्करयुक्त होता है। धीयुक्त, सूक्ष्मगर्तविशिष्ट, श्यामलाम निम्नाकृति द्वार, निम्नदस्त और वर्चुल शिलाकी धीधर कहते हैं। मध्यदेशमें चक्र, स्थूल, दूर्वांग, सङ्कोणद्वार और पीतरैलायुत जिला दामोदर कहलाती है। ऊपर और नीचेकी ओर चक्रयत् गर्त, मुख उतना बड़ा नहीं और मध्यमें लम्बरेखा रहनेसे उसको राधा-दामोदर कहते हैं। मुख और पृष्ठदेश मयूरके गलेकी तरह वर्ण, स्थूलचक्र, युरदास्य और मालाचिह्नान्वित जिला लक्ष्मीवर्ण कहलाती है। यह लक्ष्मी और सम्पत्ति-दायक है। वर्चुल, बहुचिह्नयुक्त, हृन्चक्र, लोलस्तन सन्निभ शिलाके चक्रवाणि कहते हैं। द्वारदेश पर चक्र और रक्तवर्ण शिला जगद्गोविन् कहलाती है। पीत और रक्त रेखाविमिश्रित, द्वार और वामभागमें चक्र, दक्षिण भागमें माला रहनेसे उसके याममूर्त्ति कहते हैं। वारव या पृष्ठ पर दो नयनचिह्न दिखाई देनेसे उसके पुण्डरी-काक्ष शिखा कहते हैं। इस जिलाकी पूजा करनेसे समी लीग यज्ञोभूत होते हैं। अतिनय कृष्ण और

रक्वर्ण रेखा द्वारा आयुतदेह, चक्रविशिष्ट, किञ्चित् कपिल तथा सूक्ष्म अथवा स्थूल शिलाका नाम अघोक्षज शिला है। शालग्रामके शिखर या ऊपरमें शिवलिङ्गाकार चिह्न रहनेसे योगेश्वर मूर्त्ति नामसे उनको पूजा होती है। एकचक्रादि शिला मूर्त्तिमें भी यदि यह लिङ्गचिह्न रहे, तो शिलाचक्र योगेश्वर कहलाता है। इसकी पूजा करनेसे ब्रह्मदत्तयापातक दूर होता है। इंद्र-नीलाम्, वृत्तचक्र, महाविल और सप्तफणा तथा पार्श्व-रेखासमन्वित शिला उपेन्द्र कहलाती है। श्यामल, सप्तद्वार, चक्रसमन्वित ऊर्ध्वामुखा और अघोदेश विन्दुयुक्त होनेसे उसका हरिमूर्त्तिशिला कहते हैं। यह काण्ड, मोक्षद और अन्नद तथा स्वपपनाशिनी है। फेवल वनमाला, पद्म और चक्र चिह्न रहनेसे उसको लक्ष्मीहरि कहते हैं।

जिस शिलाके सर्वाङ्गमें स्वर्णवर्ण विन्दु रहता है, वह यदि वृत्त और ह्रस्वचक्र हो, तो उसे सप्तवीरध्वंस कहते हैं। सुवर्णशृङ्गकी तरह द्युतिविशिष्ट, वृत्त, स्निग्ध, केसर मध्यगत चक्र तथा पृष्ठरेखा और विन्दुभूषित होनेसे गरुडध्वज कहलाती है। दो रंभ्रविशिष्ट विषमवय, समचक्र तथा दो पक्ष द्वारा शोभित होनेसे वह गरुडशिला नामसे पूजित होती है। जो शिला स्थूल चिह्न तथा कलस द्वारा शोभित है, उसे वैतसेय कहते हैं। जिसका पृष्ठदेश सित, अरुण और अस्मिताग वर्णविशिष्ट है तथा जिस पर अश्रमालाकृति चिह्न दिखाई देता है, उस शिलाका नाम दत्तात्रेय है। जिस शिलाके पृष्ठसे कण्ठ पदांत एक दो चार या पांच बलपाकार स्वर्ण रेखा रहती है तथा वह यदि श्याम, नील वा रुष्णवर्णकी हो, अथवा उसमें कुण्डलीकृत सर्पफणाका चिह्न दिखाई दे, तो वह शिला शेषमूर्त्ति कहलाती है। जिस शिलाके पार्श्व और समीपमें चार रेखा तथा मध्य-देशमें दो चक्र रहते हैं, उसका नाम चतुर्मुख शिला है। घण्टी की तरह आकारविशिष्ट, चक्र और पद्मसमन्वित तथा नील और श्वेतवर्ण मिश्रित होनेसे उसको हंसमूर्त्ति कहते हैं। मयूरके गलेके सदृश वर्णविशिष्ट, स्निग्ध, वर्णलाकार द्वारायुत, बिलके मध्य चक्र, चक्रके दक्षिण पार्श्वमें भास्करमूर्त्ति तथा वराहरेखासमन्वित शिला

परहंस नामसे प्रसिद्ध है। शरीरमें सप्ततणाचिह्न, एकचक्र और उसमें दो समान चक्र, दक्षिणकी ओर पद्म-पत्रसदृश चिह्न तथा हेमवर्ण कला जिस शिलामें चिद्यमान रहती है, वह शिला हंसमूर्त्ति कह कर विदित है।

३। त्रिचक्रसमन्वित ग्यारह प्रकारकी शालग्राम शिला पाई जाती है। वे पुरुषोत्तम, शिशुमार, त्रिक्रम, मत्स्यमूर्त्ति, अघोमुख, वृसिंह, बुद्ध, गरुडयुत, कल्कि, त्रिलोचन, लक्ष्मिनारायण और अनियत नामसे प्रसिद्ध हैं। ऊपर इन नामोंसे वर्णित त्रिचक्र शिलासे इनका लक्षण स्पष्ट है।

मध्यमें स्वर्णवर्णचक्र तथा मस्तकदेश वृद्ध चक्रसमन्वित और अतसो कुसुमकी तरह विन्दुशोभित शिला पुरुषोत्तम कहलाती है। दीर्घकाय ईप्त् गह्वर, सगुल्व भागमें दो और पृष्ठभागमें एक चक्र रहनेसे वह शिशुमार कहलाती है। गह्वरमें दो तथा उन्नतपुच्छ एक चक्रविशिष्ट शिलाका नाम भी शिशुमार है। त्रिकोणाकार और चक्रत्रय भूषित शिलाके त्रिक्रम कहते हैं। यह भ्रमराभङ्ग सदृश ईप्त् दीर्घ होती और पार्श्वमें कोण्डलाञ्जल होता है। इसमें अवयवक, चिन्तालाकी तरह वर्णविशिष्ट मूढचक्र और गर्त्तमें चक्र रहता है। कांस्य सदृश वर्ण, तीन परस्पर विच्छिन्न दीर्घरेखायुत, द्वारके मध्य दो चक्र तथा पुच्छभागमें एक चक्र, दक्षिणमें शकटाकृति चिह्न और वाममें रेखा रहनेसे मत्स्यमूर्त्ति जानी जाती है। सगुल्व, पार्श्व और पृष्ठमें जिस शिलाके तीन चक्र देखे जायेंगे, वही अघोमुखवृसिंह कहलाती है। जिस शिलाके दोनों चक्षु गह्वर दो चक्रसे अङ्कित तथा शिर पुच्छ वा ऊर्ध्वभागमें सिर्फ एक चक्र रहता है, उसको बुद्धमूर्त्ति कहते हैं। नोचकी ओर दो और यहिदेशमें एक चक्र और सूक्ष्म गह्वरविशिष्ट सुशीतल शिला ही अच्युन नामसे प्रसिद्ध है। हवाकार और त्रिचक्राश्रित शिला कदिरु-मूर्त्ति है। एकझर और त्रिचक्रयुक्त शिला त्रिलोचन है। इसी प्रकार त्रिचक्रशोभित एक और प्रकारकी शिला है जिसे लक्ष्मीनारायण कहते हैं। रुष्णवर्ण, नाभिसमीप-गत समद्वार चक्र ऊर्ध्वामुख सूक्ष्म चक्र और पार्श्वमें पुर-चिह्न प्रकारका चक्र रहनेसे यह अनिन्द्यशिला कहलाती है।

इहां यां चतुर्दशक—ये शालग्राम शिलाएं चार चक्राङ्कित हैं। लक्षणका व्यतिरिक्त रहने पर भी इनके नाममें विशेष पृथक्ता नहीं है।

शंकाकार रेखात्मकान्वित, शीर्षभुज, वनमाला विरामित तथा विन्दुयुक्त और चार चक्रविशिष्ट शिला लक्ष्मी-नृसिंह कहलाती है। द्विचक्रवर्गमें महानृसिंह शिलाके दूसरे ओं जो लक्षण हैं, इसमें भी वही लक्षण देखे जाते हैं। शिवनाभियुक्त मस्तरु या पृष्ठदेश देव तथा दो या तीन और एक या चार चक्र रहनेसे यह हरिहर कहलाती है। यह शिला सुधा और सीमापदायक है। कांद्येण्डुधारी, कुण्डल अण्डके सद्गुण आभाशाली, श्यामल, उन्नतपृष्ठ, द्वारदेश पर शोभ्य चिह्न, रेखाद्वययुक्त तथा पार्श्व-देशमें धनुषकी तरह आकृति दिशाई देनेसे यह दशकण्ठ-कुलान्तर राम नामसे प्रसिद्ध होगा। बहुदन्तयुक्त, एक वदनशाली और ठसमें चार चिह्नसमन्वित, वायुप्रम, धनुषाणाङ्गुण छत्रचामर-चिह्नसंयुक्त, यामोन्नत और वनमाला चिह्नधारी शिला सीताराम कहलाती है। चार चक्रविशिष्ट तथा तूण पूरित पाणाचिह्नधारी शिलाका नाम रामचन्द्र है। एक द्वार या दो द्वारमें चार चिह्न और गोपवर्चचिह्न रहनेसे अथवा वनमाला चिह्न नहीं दिशाई देनेसे उस शिलाको रघुनाथ शिला कहते हैं। पूर्वांश और पश्चात् भागमें एक एक वदन तथा मध्यभागमें चार चक्रचिह्न, वनमालाविभूषित, नीलवर्ण शिलाको जनार्दन कहते हैं। नवीननोरदोषम, वनमालारहित तथा एक द्वारमें चार चक्र, ऐसी शिलाका नाम लक्ष्मीजनार्दन है। दूसरी जगह कण्ठदेश और मस्ति-चिह्नशोभित, वनमालाव्यवित, दक्षिणभागमें चार चक्र और गोपवर्चचिह्न समन्वित शिला लक्ष्मीजनार्दन कहलाती है। चतुर्भुज, मण्डलाकार, चतुश्चक्र चिह्न शाली और नवमेषसदृश घुंताविशिष्ट शिलाका नाम चतुर्भुज मूर्ति है। चतुर्धन्व शिला चतुश्चक्र-समन्वित होनेसे विनाम कहलाती है। एकद्वारविशिष्ट, चतुश्चक्रयुक्त और छत्राकार शिला पुद्गोत्तम है तथा जिस शिलाके शंकर भागमें विषय और सुन्दर चक्र रहते हैं, उसे हरिप्रल मूर्ति जानना होगा। वदनमें दो चक्र और गद्दमें दो, इस प्रकार चार चक्राव्यवित शिलाके ऊपर यदि

दो रेखा और उसके मध्य पद्म और छत्र चिह्न रहे तथा मूल, अक्षि, धनु, माला, शङ्ख, बाक और गदाचिह्न दिशाई दे तो उसे लक्ष्मीनारायण कहेंगे। याम और दक्षिण पार्श्वमें दो दो करके चक्र, मुखमें-रक्तवर्ण दो कुण्डल, शङ्ख चक्र, गदा, शङ्ख, पाण और कुमुदधारी तथा मूल, ध्वज, श्वेतवर्ण छत्र एवं रक्तशुक्रधारी शिला मधुयुक्त नामसे परिचित है। पार्श्वलाकार, क्षीर और ताम्र सवर्ण अथवा नील और श्वेत मिश्रित वर्ण, वदनमें एक और मध्यदेशमें चार चक्र और त्रिविध तथा चक्रके याममें शंख और दक्षिणमें पदाचिह्न रहनेसे यह पद्म-शायी नारायण शिला कहलाती है। शिवनाभियुक्त तथा पार्श्वमें, याम या दक्षिणमें दो दो करके चक्र रहनेसे उसे शङ्करनारायण कहेंगे। इसका पूर्वांश शंख सद्गुण श्वेतवर्ण तथा पश्चिमांश श्यामल, अधोदेश रक्त विन्दुयुक्त पद्मपुटसद्गुणचक्र और मस्तरु पर द्वाररेखा दिशाई देती है। इस शैविक शिलाकी पञ्चचक्रवर्गके अन्तर्गत गणना करनेसे कोई दोष नहीं होता।

धम-या पञ्चचक्र। जिस शिलाके दोनों द्वार पर चार चक्र तथा याममें एक चक्र रहे तथा उसमें पाण, तूणोर, चाप और मालाचिह्न दिशाई दे, तो उसे सीताराम कहेंगे। वनमालाङ्कित अथवा पञ्चचक्रयुक्त शिला शोभ हाय नामसे परिचित है। लक्ष्मीनारायण शिलाके दो द्वारके याम और दक्षिण और चार चक्र रहते हैं तथा यह धीपत्तशंखचक्राद्य और पार्श्व चक्रयुक्तयुक्त होता है। कृष्णवर्ण, पञ्चचक्र, नातिभ्रूल, पृष्ठद्वार, उन्नत तथा मध्यभाग निम्न और पञ्चचक्रयुक्त होनेसे यह गोविन्द कहलाती है। पूर्वांश और पार्श्व भागमें एक एक वदन तथा कृष्ण और नीलाशुद्ध वर्णविशिष्ट, मध्यदेशमें एक चक्र तथा बाकी चार चक्र विन्दुयुक्त होनेसे उसको कंसमर्दन जानना होगा। द्विचक्रवर्गके वायुदेव लक्षणाकारत विन्दुयुक्त शिला पञ्च चक्राव्यवित होने पर भी यह वासुदेव कहलाती है। अग्निपुराणके मतसे चतुश्चक्राव्यवित जनार्दन लक्षणाकारत शिला पञ्च चक्रविशिष्ट होने पर भी उसको वासुदेव कहते हैं।

द्वय या पद्मचक्र। निम्नलिखित शालग्राम शिला पर छः चक्र देखे जाते हैं। उनके चक्रविशेषका कोई

विशेष नियम निर्देश नहीं किया जाता। वर्षा, चक्र और अर्घ्यान्व लक्षणोंसे ये शिलाएँ श्रीमूर्ति, तारक-श्रद्धामोताराम, राजराजेश्वर, रामचन्द्र, कल्किमूर्ति, प्रद्युम्न और अनन्तपुरोचोत्तम नामसे प्रसिद्ध हैं।

७म वा सप्तचक्र । पट्टाभिराम, राजराजेश्वर, सर्वोत्तमूल कृति, गदाधर, अनेक और बलराम नामान्वित चक्रका शिलाएँ सात चक्रयुक्त होती हैं। ये राज्य, सुख और सौभाग्यप्रद हैं।

८म वा अष्टचक्र । नारायण चक्रपाणि पितामह पुरोत्तम तथा नवचक्रवर्णमें नराधिप शिला अति दुर्लभ हैं। पतञ्जिन दशचक्रवर्णमें हृषीकेश, अनन्त विश्वरूप-गोविन्द और दशावतार शिला; एकादशमें अनिरुद्ध तथा द्वादशमें सूर्य या द्वादशात्ममूर्ति शिला पाई जाती हैं।

इसके बाद बहुचक्रविशिष्ट शिलाका विषय लिखा जाता है। इन सब शिलाओंमें साधारणतः तेरहसे इकोस चक्र देखे जाते हैं। ऐसी बहुचक्राग्मित शिलाकी पूजा करनेसे गृहस्थका अशेष मङ्गल तथा चतुर्लोक फल लाभ होता है। इस वर्गमें उक्त अनन्त नामा वर्णयुक्त होते हैं, कर्मो ह्यणवर्ण, कर्मो नवीन नीरदप्रम नीलसन्धि वर्णविशिष्ट पाई जाती है। इसमें चौदहसे बीस चक्र चिह्न रहते हैं तथा बहुत-सी मूर्तियाँ सर्पाफणा और वन-माला चिह्नयुक्त दक्षिणावर्त्स दिशाई देती हैं। अङ्कू, प्राकार, चक्र समोपगत रेखाविशिष्ट तथा पृष्ठदेश नीरद सद्गुरु नीरवर्ण और बहुचक्रसमायुक्त होनेसे उसे हयमीव बधते हैं। जिस शिलाके बहुचक्र, बहुद्वार और बहुवर्ण देखे जाते हैं तथा जिसका उदर बड़ा होता है, वह शिला पातालनरसिंह कहलाती है। इसके तृतीय चक्रसे धारम कर पार्श्वदेशमें क्रमशः दश चक्र विद्यमान रहते हैं। बहुचक्र, बहुद्वार और बहुरेखाविशिष्ट, बहुउदरयुक्त शिलाके अन्तर्गतभागमें एक बड़ा चक्र रहनेसे वह बहु-कर्मो शिला कहलाती है। जिस शिलाके पुरोभागमें, पार्श्व और पृष्ठमें अनेक चक्र रहते हैं, उसे अद्योमुख चक्र-शिला कहते हैं। बहु-चक्राङ्कित, अनेक मूर्तिसमन्वित, पञ्चयुक्त और स्पृष्टपात्र शिलाका नाम विश्वरूप है। इसके दो भेद हैं। शुक्लादि वर्ण शोभित तथा बहु गदा

और चक्र द्वारा चिह्नित शिला पद्मनाभ कहलाती है। बीस या इकोस चक्र जिस शिलामें रहते हैं, उसका नाम विश्वम्भर है।

ऊपरमें वर्णित शिलाओंकी छोड़ द्वारावती-क्षेत्रभव चक्र शिला या द्वारकाचक्र नामा वर्णोंका होता है। उनमेंसे कुछ पूज्य और कुछ तथाज्य हैं।

शालग्राम शिलाके पूजा-कालमें द्वारकाचक्र पूजाकी भी विधि है। इन दो शिलाओंका जहाँ एकत्र पूजन होता है, वहाँ मुक्ति अवश्यभावी है। गृही अग्नि मृद्धिकी कामनासे कर्मो भो एक शालग्राम शिलाकी पूजा न करे। एकचक्रागिला पूजा भी निषिद्ध है। दो चक्रयुक्त शिला हो पूजनीय है। ऐसी शिलाके साथ यदि द्वारावतीभव शिलाकी पूजा की जाय, तो वापमुक्ति होती है।

ऊपर शालग्राम शिलास्थित शिवलिङ्ग चिह्नका विषय कहा गया है। वे सब शिलास्थ लिङ्ग शिवनाभि, सधोनाभ, वामदेव, ईशान, तत्पुण्य, सदाशिव, हरि-हारत्मक, शिवनाभि, वामदेव, धूर्तेश, शम्भु, ईश्वर, मृत्युञ्जय, चन्द्रशेखर, और रुद्र नामसे परिचित हैं। इनके सिवा शालग्राम शिलामें गेविद्या, महाकाली और गौरी नाम्नी शिवके लक्षण तथा रवि और चन्द्रादि प्रहलक्षण विद्यमान हैं। विस्तार हो जानेके मयसे उनका विवरण यहाँ पर नहीं दिया गया।

शालग्राम-शिलापूजाविधि।

शालग्राम शिलाकी प्रतिदिन पूजा करनी होती है। शालग्रामकी पूजा करनेसे सभी देवताओंकी ही पूजा होती है। स्नान और सन्ध्यादि समाप्त करने आसन पर बैठ आचमन करना होगा।

आचमनके विधानानुसार "ओं विष्णुः षो विष्णुः षो विष्णुः" इस मन्त्रसे तीन बार थोड़ा जल मुक्कमें डाल कर "ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुरातत" इस मन्त्रसे चक्षु, कर्ण, नासिका आदि स्पर्श करे। आचमनके बाद सामान्यार्घ्य स्थापन करना होता है।

वाँ और ज़मीन पर एक चतुरङ्गण रेखा त्रिंश चक्र उसमें तुल्य बनाने तथा उसके मध्य त्रिकोण मण्डल

घट्टित करे। पीछे "पते गन्धपुष्पे ओं आधाराक्षयने नमः, पते गन्धपुष्पे ओं कूर्माय नमः, पते गन्धपुष्पे ओं अमन्ताय नमः, पते गन्धपुष्पे ओं पृथिव्यै नमः" इन चार मन्त्रोंसे गन्धपुष्प द्वारा पूजा करनी होगी।

पुष्प नहीं रहनेमें गन्ध और आग तण्डुल ले कर "पते गन्धाक्षने ओं आधाराक्षयने नमः" इत्यादि रूपसे पूजा करे। पीछे "फट्" इस मन्त्रसे कोठा (पंचगाल) को प्रक्षालन कर जिन त्रिकोणमण्डलको धट्टित कर उसकी पूजा की गई है, उसके ऊपर स्थापन करना होगा। पीछे नमः इस मन्त्रसे कोठामें जल तथा उसके अग्रभागमें गन्धपुष्प, विल्वपत्र और गर्भशून्य त्रिपत्र दूर्वाके अर्घ्य स्थापन कर पूजा करनी होगी। "मं यदि नमण्डलाय द्वाजकलात्मने नमः, मं सूर्यमण्डलाय द्वाजकलात्मने नमः, ओं सौममण्डलाय पौष्टकलात्मने नमः" इस मन्त्र द्वारा अर्घ्यसे पूजा करनी होती है। इसके बाद जलशुशिर करनी होगी। बादमें तर्जनीके अग्र द्वारा अट्टुश मुद्रायोगसे यह जल आलापन कर,—

"ओं गन्धे च यमुने चैव गोदावरि परस्वति ।
नर्मदे विष्णु कामेरि जलेऽस्मिन् धन्निभि' ब्रुह ॥"

इस मन्त्रसे तीर्थकी आयादन करे। अनन्तर गन्धपुष्पसे "ओं जलाय नमः" इस मन्त्रसे जलमें गन्धपुष्प देना होता है। बादमें 'वं' इस मन्त्रसे धेनुमुद्रा प्रदर्शन करे और महेश्वरमुद्रा द्वारा यह जल वाच्छादन कर उसके ऊपर द्वा या बाठ बार प्रणयमन्त्र जप करना होगा। पीछे तीन बार उस जलको जमीन पर फेंक कर अपने मन्त्रक और सभी पूजापकरण पर कुछ कुछ छिड़क देना होगा।

इस प्रकार जल शोधन करके आसनशुद्धि करनी होगी। आसनके नीचे त्रिकोणमण्डल घना कर आसनके ऊपर 'ओं ह्रीं' आधाराक्षिक कमलासनाय नमः' इत मन्त्रसे कश्चनदुक पुष्प रख दे। पुष्पके कर्मायमें "पते गन्धाक्षने" कर्म कर सचन्द्रन भातप तण्डुल दे। पीछे आसन पर द्वाघ रख कर यह मन्त्र पढ़ना होता है।
पथा—

'ओं आनन्दवन्द्य मेघदूत शृंगः सुपत्नं हन्तः कुम्भी देवता भयनेरेवने त्रिकोणः ।'

"ओं पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वया धारय मां नित्यं परित्रं ब्रुह चातनम् ॥"
आसनशुद्धिके बाद कृताञ्जलि हो पाममें 'ओं गुरुभ्यो नमः, ओं परम गुरुभ्यो नमः ओं परापरगुरुभ्यो नमः, दक्षिणमें ओं गणेशाय नमः, ऊर्ध्वमें ओं ब्रह्मणे नमः, अघः ओं अमन्ताय नमः, मध्यमें ओं नारायणाय नमः' इस मन्त्रसे नमस्कार करे।

इसके बाद भगवान् सूर्यदेवकी अर्घ्य देना होता है। एक पुष्प, विल्वपत्र, दूर्वा और आतप तण्डुल तथा एक चन्दन इन्हें कुशीमें ले कर 'ओं तमो विपस्वते प्रलम्भालाने विष्णुते इसे जगत्सुसहिते सूचये सविते कर्मशायिने इरमर्ष्ये' ओं श्रोत्र्याय नमः ।' यह कद कर सूर्यके उहं शसे अर्घ्य देना होता है। पीछे इस मन्त्रसे सूर्यको प्रणाम करनेकी विधि है—

"ओं जपाक तु मसुद्राओं फाट्म्यपेवं महाशुक्तिम् ।
चान्तारि' र्छांवापप्न' प्रथोऽस्मि दिवाकरम् ॥"

इसके बाद विद्यनापसरण करना होता है। यथा 'ओं नमः नारायण' इस मन्त्रसे चारों ओर टुट्टिपात करके ऊपरकी ओर ऊर्ध्वभागस्थ, 'अष्टाय फट्' मन्त्रसे दक्षिण हुस्त द्वारा मन्त्रके ऊपर जल प्रोक्षण करके नमोमार्गस्थ तथा घामपादके मुल्लु द्वारा बाईं ओर जमीन पर तीन बार आघात करके भूतलस्थित सभी विघ्न दूर करे। इसके बाद ऊर्ध्व, अघः और मध्यस्थित सभी विघ्न दूर हो गये हैं, ऐसा समझना होता है। इसके बाद गन्ध और अक्षत नाराचमुद्रा द्वारा प्रदण कर निम्न मन्त्र पाठ कर जमीन पर फेंक देना होगा—

"ओं अरतवन्तु वे भूताय भूता भुवि तस्थिता ।
ये भूता विपनरसौरस्ते नरयन्तु विवाठवा ॥"

पीछे मन ही-मन इस प्रकार चिन्ता करे, कि गुरुमन्त्रस्थित सभी विघ्न दूर हो गये हैं।

इसके बाद गन्धाक्षिकी पूजा करनी होती है। बर्षीक ईसो द्रव्यकी पूजा न करके देवताके अर्पण करनेसे देवता उसे प्रदण नहीं करे, यह मतुरोंका भोग्य होता है। यहदे 'वं पते र्भ्यो गन्धाक्षिने नमः' इत मन्त्रसे तीन बार जल प्रोक्षण करे। इसके बाद गन्धपुष्प ले

कर 'पते गन्धपुष्पे ओ' एतदधिपतये विष्णवे नमः, पते गन्धपुष्पे ओ एतद्दुःसम्प्रदानेभ्यो नारायणादिभ्यो नमः, ओ पते गन्धपुष्पे ओ एतेभ्यो गन्धादिभ्यो नमः' इस मन्त्रसे एक एक गन्धपुष्प देना होगा।

इसके बाद शालग्रामशिलाको स्नान कराना होता है। शालग्राम-शिलामें घृत लगा कर ताम्रपात्रके ऊपर रख घण्टो बजाते बजाते इस मन्त्रसे स्नान कराना होगा।

'ओ' वदसशीर्षां पुष्पः सहस्राक्षः सहस्रपात ।

व भूमिं धनीतः स्पृष्ट्वा भव्यतिष्ठदशाङ्ग क्षम् ॥'

इसके सिवा वेदादि चतुष्टय मन्त्र, पुरुषसूक्त और श्रीसूक्त पाठ करके भी स्नान कराया जा सकता है। एतद्दुःस्तानीयोदकं 'ओ नारायणाय नमः' यह कह कर जल देना होगा। पीछे नारायणको जलसे निकाल कर गमछेसे अच्छी तरह पोंछ वादमें ऊपर और नीचे एक एक सचन्दन तुलसी दे कर उन्हे पूजा स्थानमें रखना होगा।

इसके बाद पुष्प शोधन करके पूजा करनी होती है।

पुष्पके ऊपर हाथ रख कर 'ओ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूयिते, पुष्पचपावकोर्णे हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे पुष्प शोधन करना होता है। भूतशुद्धि, मातृकान्यास, पीठन्यास आदि इसी समय करने होते हैं। किन्तु पूजास्थलमें ये सब न्यासादि नहीं करने होते, अगर क्रिये जाय तो अच्छा ही होता है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि भूतशुद्धिके बिना पूजा निष्फल होती है।

अनन्तर गणेशपूजा करनी होती है, क्योंकि पहले गणेशपूजा क्रिये बिना दूसरेकी पूजा नहीं करनी चाहिये। पहले गाँ, गो, गुं, गें, गीं, गों, गः, इस मन्त्रसे करन्यास और अङ्गन्यास करके पूजा करनी होती है; यथा—गां अङ्ग-शाम्वां नमः, गो' तज्जानोभ्यां स्वाहा, इत्यादि। इसके बाद कूर्ममुद्राके योगसे एक पुष्प ले कर ध्यान करना होता है। ध्यान-मन्त्र इस प्रकार है—

'सर्वं स्पृशतनुं गजेन्द्रवदनं लक्ष्मीदरं सुन्दरं

प्रत्यन्दनदग्धगन्धलुब्धमधुप्यालोलगण्डपक्ष्मम् ।

दन्ताघातविदारितारिचक्षिरेः हिन्दूशोभाकरं

बन्धे शैलसुनामुतं गायत्रितं विदिवदं कर्गसु ॥'

Vol XXII 188

इस मन्त्रसे ध्यान करके वह पुष्प अपने मस्तक पर रखना होगा। पीछे मानस उपचार द्वारा मन ही मन पूजा करके पहलेकी तरह कर और अङ्गन्यास कर फिरसे ध्यान पाठ करे और तब नारायणके मस्तक पर वह फूल चढ़ा दे। इसके बाद दशोपचारसे उसकी पूजा करनी होती है। 'पद्मपाद्य' ओ गणेशाय नमः' इस प्रकार अर्घ्यां, मधुपर्क, आचमनीय, स्नानीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इस दशोपचारसे पूजा करनी होती है। इसमें अशक होने पर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इस दशोपचारसे पूजा करनी होती है। इस दशोपचारसे गो पूजा की जा सकती है।

अनन्तर ओ गणेशाय नमः यह मन्त्र दश बार जप कर—

'ओ गुह्याति गुह्यगोता त्वं गृह्याणास्मात् कृतं जपं ।

सिद्धिर्भवतु तत्सर्वं' एवम्प्रमादात् सुरेश्वर ॥'

इस प्रकार जप समाप्त करके निम्नलिखित मन्त्रसे प्रणाम करे।

'ओ देवेन्द्रमीलिमन्दारमकरन्दकणाक्षणाः ।

विन्दं हरतु हे रम्भरवणाम्बुजरेणवः ॥'

इसके बाद 'ओ शिक्षादिपञ्चदेवताभ्यो नमः, ओ आदिहवादि नवप्रदेभ्यो नमः' ओ इन्द्रादि द्वादशिकूपालेभ्यो नमः, ओ मत्स्यादि दशावतारभ्यो नमः' इन सब देवताओंकी दशोपचार, पञ्चोपचार या केवल गन्धपुष्प द्वारा पूजा करके सूर्यपूजा करनी होगी। 'ओ ध्योत्साय नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी है। ध्यान इस प्रकार है—

'रत्नाम्बुजासनमशेषयुगेरसिन्धुं

मानुं समस्तत्रयतामधिपं भजाति ।

पद्मद्वयामयविराजं दधतं कराब्धे

मार्णिकव्यामीलिमदण्डाङ्गदक्षिं तिनैतम् ॥'

पूजाके बाद सूर्यदेवके पूर्वोक्त मन्त्रसे अर्घ्यां दे कर प्रणाम करना होता है।

इसके बाद मूलपूजा अर्थात् नारायणपूजा करनी होगी। पहले नां नो नूं नैः नो नः इस मन्त्रसे करन्यास और अङ्गन्यास कर कूर्ममुद्रा द्वारा एक पुष्प ले कर इस मन्त्रसे नारायणका ध्यान करना होता है। ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

“सो ध्येयः सदा सविगुमण्डलमध्वपत्नीं

नारायणः सरसिजासमभिविष्टः ।

वेगुरयान् कनककुण्डलयान् किरौटी-

हारी दिग्मयवपुष्टुं तगङ्गाकः ॥”

इस मन्त्रसे ध्यान करके यह पुण्य मस्तक पर रखे और जपके बाद मानसपूजा करे । मानसपूजाके बाद गिरसे कर और अङ्गुल्यस कर ध्यान करे और पुण्यकी नारायणके मस्तक पर चढ़ाये । पीछे नारायण की पूजा करनी होती है, “वतद्रुवाय” ओं नारायणाय नमः, इदमर्च्यं ओं नारायणाय नमः, इदमाचमोयं ओं नारायणाय नमः, इदं स्नानीयाद् ओं नारायणाय नमः, एवः गन्धः ओं नारायणाय नमः, एतद् सचम्पदनूप्यं ओं नारायणाय नमः, एतद् सचम्पदनूप्यं ओं नमस्तेष्वरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा ओं नारायणाय नमः एष धूपः ओं नारायणाय नमः एवः दीपः ओं नारायणाय नमः, एतद् नैवेद्यं ओं नारायणाय नमः ॥”

पादादि नारायणाय नमः न कष्ट पर विष्णवे नमः कहनेसे भी पूजा होगी । इसके बाद ओं नारायणाय नमः यह मन्त्र १० या १०८ बार जप कर गुह्याति मन्त्रसे जप विसर्जन करे । पीछे निम्नलिखित मन्त्रसे प्रणाम करना होता है—

“ओं ध्येयः सदा परिमध्वनमणोष्टदोहं

तोर्धास्वयं शिवयिरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।

भूर्वासांद् प्रणतपाल मयास्त्रिपोतं

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।

एदपत्या सुदुस्त्वज सुवेत्सितरात्रेवलक्ष्मीं

परिष्टि भादोवचसा यश्चाद्दर्षयं ।

नापामुगं द्यितयेत्सितमश्वधावद्

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

ओं पापिहं पापकर्माहं पापाराम पापसमग्रः ।

साहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो हारं ॥

ओं नमो ब्रह्मपदेषु गोप्राहणद्विताय वा ।

जगजिताय ह्यन्नाय गोविन्दाय नमो नमः ॥”

इसके बाद लक्ष्मी और सरस्वतीकी पूजा करनी होती है । ध्यान और प्रणामके छोड़ कर सभी देवताओंकी पूजा एक-रती है । लक्ष्मी और सरस्वतीकी पूजा

के बाद इच्छानुसार सभी देवताओंकी पूजा की जा सकती है । क्योंकि शालग्राम जिसमें सभी देवताओंकी पूजा होती है ।

अनन्तर ओं कुन्देयताये नमः, ओं सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, ओं सर्वभ्यो देवोभ्यो नमः, इस मन्त्रसे सभी देव और देवीके उद्देशसे पूजा कर एताज्जि-ही विमोक्षण मन्त्रपाठ कर भगवान् विष्णुके उद्देशसे कर्म समर्पण करना होता है । मन्त्र इस प्रकार है—

“एतस्मिन् क्रियते देव भवा सुहृत्सुहृत्तं ।

तत् सर्वं त्वयि वन्द्यस्त्वत्सुहृत्तं करोम्यहम् ॥”

इसके बाद—

“ओं मन्वहीनं किमाहीनं भवितहीनं जनादनं ।

एतं पूजितं भवा देव परिपूर्णां तदनु मे ॥”

इस प्रकार प्रार्थना कर नारायणके उद्देशसे प्रणाम करनेके बाद पूजा समाप्त करनी होती है ।

पूजाके बाद निर्मान्य-धारण और नारायण-चरणामृत पान करना कर्त्तव्य है । नारायणके अन्तादि भोग तथा रातको भारति करके शीतली देनी होती है । प्रति दिन उक्त नियमसे शालग्राम शिला पूजन करना होता है ।

शातगाम-पूजामहात्म्यम् ।

शालग्राम पूजा करनेसे माघय प्रसन्न होते हैं । उसके फलसे कोटिवज्र या कोटिगोदान करनेका फल लाभ हो कर कोटि पाप विमल होते हैं । यहाँ तक कि शालग्राममूर्ति स्मरण, तन्नामकीर्तन या दर्शन करनेसे भी पापमुक्ति होगी है । एक वर्ष तक जो स्वयं शालग्रामपूजा, स्पर्श और दर्शन करता है, सांख्ययोगके विना ही यह मोक्ष पाता है ।

शालग्राम शिलार्के सामने धात, होम, दान आदि कार्यानुष्ठान सुप्रसन्न है । इस कारण सभी हृदय शालग्राम शिलार्के सामने किये जाते हैं । और तो वग, शालग्राम शिलार्के सामने देहस्वयं करनेसे प्रतापना विष्णु लोकके जाती है ।

शालग्राम शिलाका निवेद्य मक्षण प्रजन और पुण्य-प्रद है । स्त्री, बालक और शूद्रके शालग्राम शिलार्के स्पर्श नहीं करना चाहिये । यदि यह भूदसे स्पर्श कर ले, तो पश्चात्प, पश्चात्तुन आदि द्वारा नारायणका अभिषेक और पूजन करना होता है ।

शालग्रामगिरि (स० पु०) शालग्रामस्य गिरिः । शाल-
ग्रामोत्पादक-पर्वत । इस पर्वत पर शालग्राम-शाला
मिलती है, इस कारण इसको शालग्रामगिरि कहते हैं ।
वराहपुराणमें लिखा है, कि वराहदेवने कहा था, "शाल-
ग्राम पर्वत पर देव हर मेरे साथ मिल कर गिलारूपमें
अवस्थान करते हैं तथा मैं भी वहां पर्वतरूपमें अव-
स्थित हूँ । अतएव इस स्थानकी सभी शिलाओंको
मेरा स्वरूप जानना होगा । अतएव यहां चकचिह्न-शादि-
की कोई आवश्यकता नहीं । सभी शिलाओंको यत्न-
पूर्वक पूजा करना होगी ।" (वराहपु० शोभेश्वरादि लिख
महिमाध्याय) शालग्राम शब्द देखो ।

शालङ्कटाङ्कट (स० पु०) सुकेशो राक्षसका एक नाम ।
विद्युत्केशीकी भाषां शालङ्कटङ्कटाके गर्भसे इसका जन्म
हुआ । (वागनपु०)

शालङ्कायन (स० पु०) शालङ्कस्यापत्यं शालङ्कुः (नडादिभ्यः
कक् । पा ४।१।६६) इति कक् । १ विश्वामित्रके एक पुत्र-
का नाम । २ नदी ।

शालङ्कायनक (स० पु०) शालङ्कायनानां विषयो देशः ।
(राजन्यादिभ्यो वुञ् । पा ४।२।५३) इति वुञ् । १ शाल-
ङ्कायन मुनियोंके रहनेका देश । २ शालङ्कायन ।

शालङ्कायनजा (स० स्त्री०) शालङ्कायनकी पुत्री सत्य-
वती जो व्यासकी माता थी ।

शालङ्कायनजीवस् (स० स्त्री०) सत्यवती, व्यासकी
माता ।

शालङ्कायन (स० पु०) नोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम ।

शालङ्कायनिन् (स० पु०) शालङ्कायन प्रवर्त्तित शाखा-
युक्त शिष्य ।

शालङ्कि (स० पु०) पाणिनि ऋषिका एक नाम ।

शालङ्की (स० पु०) १ गुडिया । २ कठपुतली ।

शालज (स० पु०) शालाज्जायते जन-ड । शालमत्स्य,
एक प्रकारकी मछली ।

शालदोम (फा० पु०) वह जो शालके किनारे पर बैठ-
वृटे आदि बनाता हो ।

शालद्वय (स० स्त्री०) शाला और पीतशाल ।

शालन (स० स्त्री०) १ (पु०)

शालनदी—उड़ीसा विभागमें प्रवाहित एक नदी । यह
मयूरभञ्ज राज्यके मेघासनी पर्वतके दक्षिण ढालु प्रदेशसे
निकली है । शालघन हो कर यह बहती है । इसलिये
इसका नाम शाल नदी या शालकी हुआ है । इसके
बाद यह देढ़ी मेढ़ी हो कर धामराई नदीके मुहानेके पास
था मिली है ।

शालनिर्वास (स० पु०) १ शाल, धूना । २ शाल या
सर्ज नामका वृक्ष ।

शालपत्रसमपत्नी (स० स्त्री०) शालपर्णी । (पर्यायमुक्ता०)
शालपर्णिका (स० स्त्री०) १ मुरा नामक गन्धद्रव्य । २
पर्काङ्गो नामकी ओषधि ।

शालपर्णी (स० स्त्री०) शालस्य पर्णवत् पर्णमस्याः
स्त्रीप् । स्वनामध्यात क्षुपविशेष, सरिवन नामक वृक्ष
(*Desmodium Gangeticum*) पर्याय—सुदला,
सुपत्नी, स्थिरा, सौम्या, कुमुदा, गुहा, ध्रूवा, विदारि-
गन्धा, अश्रुमती, सुपर्णिका दीर्घमूला, दीर्घपत्रिका,
वातघ्नी, पोतिनी, तवा, सुधा, सर्जसुकारिणी,
शाकघ्नी, सुभगा, देवी, निश्चला, मोहिपर्णिका, सुमूला,
सुरूपा, शुभपत्रिका, सुपत्नी, शालिपत्नी, शालिदला,
विदारो, सालपर्णी । (अमरटीका भाव) इसका गुण—
प्राहक, कफ और पित्तनाशक, गुह, उष्ण, वातदोष, विषम
उत्तर, मेह, शोफ और सन्तापननाशक । (राजनि०)
शालपर्णादि (स० पु०) घैदकके अनुसार शालपर्णी
आदि द्रव्य । जैसे—शालपर्णी, पृथिनपर्णी, शीतवन्द
और बेलसोड, इन चार द्रव्योंका नाम शालपर्णादि है ।
(बरकदत्त) पित्त, श्लेष्मा और अतिसार रोगमें यह बड़ा
फायदा पहुँचाता है ।

शालपुष्प (स० स्त्री०) शालका फूल ।

शालपुष्पमञ्जिका (स० स्त्री०) कीड़ाद्रव्यविशेष, धेलेने-
की एक चीज ।

शालवाफ (फा० पु०) १ वह जो शाल या दुशाले आदि
बुनता हो, शाल बुननेवाला । २ एक प्रकारका रेशमी
कपड़ा जो लाल रङ्गका होता है ।

शालवाफो (फा० स्त्री०) दुशाले बुननेका काम, शालवाफ-
का काम ।

शालम (स० ह्री०) १ दिना सोचे विद्यारे उसी प्रकार भाषासिमें कृद पदना तिस प्रकार पत्रक भाग या शेषक पर कृद पदना है । (ति०) २ शालम-सम्बन्धी, पतिगो के सम्बन्धना ।

शालमञ्जिका (स० खी०) शालेन भयपते निर्मापते इति मन्त्र (वज्र निन्दितं कपोत्सवापि । उष् २, ३२) इति वज्रुन् टापि मग इत्यं । १ काष्ठादि निर्मित पुत्रिका, षट्पुत्रयो । (राघव० २, ६६) २ चंद्रमा, रंशो । (जयप०) ३ कौष्ठादिशेष, एक प्रकारका मेल ।

शालमन्त्रो (स० खी०) काष्ठादि निर्मित पुत्रिका, षट्पुत्रयो ।

शालमरुच्य (स० पु०) जिलिन्द नामक मछली ।

शालमय (स० ति०) शाल-मयट् । शालविकार, शाल-स्वरूप ।

शालमर्कट (स० पु०) दाहिम वृक्ष, बनारको पेड़ ।

शालमर्कटक (स० पु०) शालमर्कट देवो ।

शालमुम (स० पु०) शोनी प्रकारके शाल अर्थात् सत्र वृक्ष और विश्वसार ।

शालरस (स० पु०) शालरूप रसः । सज्जरस, राल, घृना ।

शालव (स० पु०) लोघ, लोघ ।

शालवदन (स० पु०) पुराणानुसार एक मसुर । यह शालवदन और शृगाल-वदन भी कहलाता है ।

शालवरी—बाबाई-सिंहे-सीके धारवाड़ जिलागत एक नगर । यह धारवाड़से १६ कोस पूर्वी-उत्तरमें स्थित है ।

शालवन्दो—मध्यप्रदेशके धारार राज्यान्तर्गत एक शील । इसका कुछ अंश इलियपुर जिलेमें कुछ बेतुलजिलेमें पड़ा है । पर्वतकी तराईमें माहनदोके तट पर शाल-वन्दो प्राम है । यह मझा० २१° २६' उ० तथा देशा० ७७° ५६' पू०के बीच पड़ता है । यहाँ एक ठण्डे जल-की झील एक गरम जलकी दो झीलें हैं । कहते हैं, कि यहाँ लघुज्वाला जन्म हुआ था ।

शालवाँद—वाग्लियर राज्यके अन्तर्गत एक बड़ा गाँव । मन्नेरोंके साथ मराठीकी सन्धिके लिये यह प्रसिद्ध है । शालवाँद देवो ।

शालवानक (स० पु०) १ विष्णुपुराणके अनुसार एक देवता नाम । २ इस देवता निवासो ।

शालवाह—एक प्राचीन कवि ।

शालवाहन—याघेल यंशोप एक राजा ।

शालघोन—दक्षिण-प्रदेशके तानासारिमणिभागके अन्तर्गत मन्नेरे-प्रायद्वीप एक जिला । यह शालघोन पारंश्व प्रदेश कहलाता है । पहले मय तक उत्तर-प्रान्त अंगरेजराजके राज्यसोमाभुक्त नदी हुआ था, तब तक वह उत्तरमें अन्न सोमांतसे ले कर दक्षिण शालघिन नदी तक विस्तृत था । इसको पूर्वी सोमामे शालघोन नदी और पश्चिमी सोमा-मे पीङ्गलीङ्ग पर्वतनाला विद्यमान है । सारा प्रायराज्य अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद इस जिलेका बहुत हेर-फेर हुआ है । शालघिन, विदिन और पुन-जा लिन नामकी तीन नदियाँ इस पहाड़ी अधिकतया भूमि हो कर बह गई हैं । शोयोका नदीके किनारे जिलेका सहर या पुन नगरी अवस्थित है । इय नदी और जिलेका विस्तृत विषय यात्रयिन सारमें देखो ।

शालघेत—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागका एक छोटा द्वीप । यह समुद्रतटसे २ मीलकी दूरी पर अवस्थित है । मेवा अन्तरोपसे इसकी दूरी १७ मील और जाफराबादसे ८ मील उत्तर है । इस द्वीपकी लंबाई तीन पाय और चौड़ाई एक पाय होगी । यह जाफरा-बाद सामन्त राज्यके शासनमुक्त है । इसके दक्षिण और उत्तर दुर्गवाटिकाकी तरह प्राचीनदिके विदग्ग भाग भी दिखाई देते हैं । उर्दू दे एनेस मालूम होता है, कि पश्चिम भारतके विषयात जल-आकुओंमें एक समय यहाँ दुर्ग बना कर भारतक्षका उपाय निर्दोषण किया था । अधिक समय है, कि पुराणीजोने द्वीप नगर अधिकारके बाद शालघेतमें जीता और उत्तरकी ओर अपना प्रभाव फैलानेकी चेष्टा की । पीछे १७२६ ई०में बर्मा नगरके अधिपतनके साथ पुराणीजोना उत्तरी अंशसे प्रभाव जाता रहा और उस समय ये शालघेतका परिव्याग बर दोउकी तराईमें हग गये ।

शालघेध (स० पु०) शालरूप देष्टो निर्वासः । शाल-निर्वास, घृना ।

शालजाक (स० ह्री०) माझो जाक, पट्टभा ।

शालशृङ्ग (स० ह्री०) शीवारका ऊपरी भाग, शीवारकी चोटी ।

शालसार (सं० पु०) शालस्य सारः । १ द्रुम, वृक्ष, पेड़ । २ हिंगु, होंग । ३ राल, धूना । ४ शाल साक्षू नामक वृक्ष ।

शालसारादि (सं० पु०) वैद्यकोक्त शालादि द्रव्यगण । गण यथा,—शाल और पेयाशाल, दो प्रकारका करञ्ज, बक्षिर तथा दो प्रकारका चन्दन, भाट्टि वाज्जुन, भूञ्ज, लोधुगुम अर्थात् भवेत और रक्तवर्ण लोध, शिरोप, अगुरु, कालीय, पूग, पूतिक और ककट ये सब द्रव्य शालसारादिगण हैं । ये गण श्लेष्मदोषनाशक हैं ।

(सारकभूदी)

शालसेट—बम्बई नगरके उत्तरमें स्थित एक द्वीप । यह बम्बई प्रेसिडेन्सीके धाना जिलेके उपविभागरूपमें परिगणित है । भूपरिमाण २४१ वर्गमील है । यहाँ बहुतसे गुहामन्दिर, चैत्य और बौद्ध विहारके निर्देशन पाये जाते हैं । सालसेट देखो ।

शाला (सं० स्त्री०) शो (वाहुलकात् श्वेत्ये रपि काञ्चन । उण् १।११७) इति उज्ज्वलदत्तोक्तयो कालन् । १ गृह, घर । २ शाला, डाल । ३ स्थल, जगह । जैसे—पाठशाला, गोशाला । ४ इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्राके योगसे बननेवाले सोलह प्रकारके घूर्त्तमोंसे एक वृत्त । इसका तीसरा चरण उपेन्द्रवज्राका और शेष तीनों चरण इन्द्र वज्राके होते हैं ।

शालाह (सं० पु०) १ भाड़, भंखाड़ । २ वह अग्नि जो भाड़ भंखाड़ जला कर उत्पन्न की जाय ।

(शतपथब्रा० ३।३।२।१६)

शालाकाम्येय (सं० पु०) शालकाम् (शुभ्रादिभ्यश्च । पा ५।१।२३) इति अवत्यर्थे ठक् । शालकाम् का गोत्रापत्य ।

शालादिन् (सं० पु०) १ अश्ववैध, वह जो अश्व चिकित्सा करता हो । २ नापित, नाऊ, हज्जाम । ३ माला-बरदार ।

शालाक्ष्य (सं० पु०) शालाका (इन्द्रादिभ्यो ष्यः । पा ५।१।११) इति अवत्यर्थे ष्य । १ शालाकाका गोत्रापत्य । २ वह चिकित्सक जो आँख, नाक, कान, मुँह आदिके रोगोंकी चिकित्सा करता हो । (ह्यो०) ३ आयुर्वेदके अन्तर्गत आठ प्रकारके तन्त्रोंमेंसे एक । इसमें

कान, आँख, नाक, जीभ, होंठ, मुँह आदिके रोगों और उनकी चिकित्साका विवरण है । (वैद्यकबंदिता २ अ०)

शालाक्ष्ययात्र (सं० स्त्री०) शालाक्ष्य देवो ।

शालाक्ष (सं० पु०) वैदिक कालके एक प्राचीन ऋषि का नाम । (भारव० श्रौ० १२।१४६)

शालाग्नि (सं० पु०) शालास्थित अग्नि, घरकी भाग । (भारव० श्रौ० २।२।१६)

शालाङ्को (सं० स्त्री०) पुत्तलिका, पुनली, गुडिया ।

शालाङ्गार (सं० पु०) १ कर्मकार, शालाग्नि । २ साक्षू की लकड़ीका अंगार ।

शालाङ्गिर (सं० पु०) शराव, मिट्टीकी तश्तरी या प्वाली आदि ।

शालाङ्घ्रि (सं० स्त्री०) शाकभेद, शान्ति नामक माग ।

शालातुरीय (सं० पु०) मुनिभेद, पाणिनि मुनिका एक नाम ।

शालात्व (सं० स्त्री०) शाला भावे त्व । शालाका भाव या धर्म ।

शालाधल (सं० पु०) शालाधल ऋषिका गोत्रापत्य ।

शालाधलेय (सं० पु०) शालाधल शुभ्रादित्वात् अण-त्यर्थे ठक् । शालाधलका गोत्रापत्य । (पा ५।१।२३)

शालाद्वार (सं० स्त्री०) शालायाः द्वारं । घरका दरवाजा ।

शालाद्वार्य (सं० स्त्री०) गृह-द्वार-सम्बन्धी, घरके दरवाजेका ।

शालानी (सं० स्त्री०) विदारी, शालपर्णी, मरिचन ।

शालापति (सं० पु०) शालायाम् पतिः । गृहपति, घर का मालिक ।

शालामकैटक (सं० स्त्री०) १ चाणययमूल, बड़ी मूली । २ बालमूलक । (भावप०)

शालामुख (सं० पु०) १ चान्यायशेष, एक प्रकारका धान । २ घरका सामना, घरका अगला भाग ।

शालामुखीय (सं० स्त्री०) १ शालामुख-सम्बन्धी । २ गृह-द्वार-सम्बन्धी । (शाट्ल्य० श्रौ० ५।१।६)

शालामृग (सं० पु०) शालाया मृगः । १ मृगाल, सियार, मोड़ड़ । २ कुक्षुर, कुत्ता ।

शालार (सं० स्त्री०) शालां ऋच्छतीति ऋ-सण् । १ हस्तिनख, हाथीका नाखून । २ सोपान, मांड़ी ।

३ परिहरण, परिशोच, रहस्यका विग्रहण । ४ दोषारोप
रामो ह्यं शूरो ।

शास्त्रानुक्रम (सं० पु०) ज्ञानानु (उपरमस्य शास्त्रानुलो-
प्यन्तरत्वात् । या वाच्ये) इति ङ्युः । ज्ञानानु, क प्रकार-
को मध्यस्थः ।

शास्त्रावयु (सं० पु०) एक प्राचीन श्रुति नाम ।

शास्त्रावयव (सं० पु०) शास्त्रावयवका शास्त्रावयव ।

शास्त्रावयवी (सं० स्त्री०) श्रुतिं शक्ये अनुसार विभ्यामित
को कन्याका नाम ।

शास्त्रावयु (सं० पु०) शास्त्रायां श्रुते शास्त्रायां वा एक
एव । १ धारा, बहुरि । २ हृद्यु, कुत्ता । ३ शृगाल,
गियार । ४ मृग, हरिन । ५ विद्याल, बिल्ली ।

शास्त्रावयुलि (सं० स्त्री०) शास्त्रावयववासी रमणी ।

शास्त्रि (सं० पु० स्त्री०) शृणोतीति शृ-बाहुलकात् इङ्,
रूपे लट् । बलमादि धान्य, परिष्कादि धान्य । देश-
भेदेन इत्येकं धनेकं भेदः । येद्यकमे इत्येकं नाम और
लक्षणान्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—

शास्त्रिधाम्य, मोदिधाम्य, शुकधाम्य, जिम्बिधाम्य
और सुधुधाम्य ये पांच प्रकारके धाम्य हैं । इन सब
धाम्योंमें जो सब धाम्य ह्येनस्तकालमें उत्पन्न होते हैं तथा
कण्डन भाषांनु शिवा छांटनेसे हो श्वेत वर्णके होते हैं,
उन्में शास्त्रिधाम्य करते हैं । इस शास्त्रिधाम्यके नाम
ये हैं—रक्तशास्त्रि, कलम, पाण्डुर, शत्रुनाहन, सुगन्धक,
कर्मिक, महाशास्त्रि, शुक, पुष्पाण्डक, मदिपमरतक,
दायशुक, बाञ्जनक, हावन शी, लोपुपुपक शास्त्रि ।
देशभेदेसे मिल मिल प्रकारके शास्त्रिधाम्य हैं ।

संस्कृत पर्याय—मधुर, दध, मोदिधेष्ठ, सुवास्य,
धाम्योत्तम, केदार, सुकुमारक । (कसी किसी पुस्तकमें
मधुर स्थानमें कलम पाठ देना जाता है। गुण—मधुर,
कपावरस, स्निग्ध, बलकारक, मलनाशक और मलका
मलनाकारक, लघुपाच, दधिकारक, स्वप्नसाधक,
शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचरकारक, ईषत् वायु और कफ
वर्द्धक, शीतघ्नो, पित्तनाशक और मूत्रवर्द्धक ।

धाम्यविशेषमें उत्पन्न शास्त्रिधाम्यका गुण नी निम्न
निम्न प्रकारका होता है । दधमूत्रिजात
रस, लघुपाच, मलमूत्रनाशक, दध

श्वेत ज्ञान कर धान रोपनेसे जो धान उत्पन्न होता है,
यह वायु और पित्तनाशक, गुण, कफ और शुक्रवर्द्धक,
मलका मलनाकारक, मेषाजनक और बलवर्द्धक होता
है । बिना ज्ञाने हुए खेतमें जो धान भापे-भाप उत्पन्न
होता है, उसका गुण कुछ तिक, मधुर, कपावरस,
पित्तघ्न, कफनाशक, वायु और शनिवर्द्धक तथा कटु और
विपाक माना गया है ।

धापितशास्त्रि—जो शास्त्रिधाम्य एक खेतसे उगाइ
कर फिर दूसरे खेतमें रोपा जाता है, उसे धापितशास्त्रि
कहते हैं । यह धाम्य मधुर, कपावरस, शुक्रवर्द्धक, बल-
कारक, पित्तघ्न, कफवर्द्धक, मलका मलनाकारक, गुण
और शीतघ्नो होता है ।

अधापित शास्त्रिमें धापित शास्त्रिकी अपेक्षा कुछ कम
गुण होता है । रोपितशास्त्रि—धेय हुए धानको उगाइ
कर रोपनेसे जो धान होता है, उसे रोपितशास्त्रि कहते
हैं । यह भी अपेक्षासे शुक्रवर्द्धक और पुरानी अपेक्षा-
में लघु होता है । शितरोप्याशास्त्रि—रोप्याशास्त्रिकी
अधापु कर रोपनेसे जो धान होता है, उसका नाम शनि-
रोप्याशास्त्रि है । यह रोप्याशास्त्रिकी अपेक्षा अधिक
गुणयुक्त और लघुपाक होता है ।

छिन्नकटाशास्त्रि—शीतघ्नो, रक्ष, बलकारक, कफ-
नाशक, मलरोधक, ईषत् निकर्षयुक्त, कपाव रस और
लघु होता है । शास्त्रि धाम्यमें रक्तशास्त्रि सबसे श्रेष्ठ
है । यह धाम्य बलकारक, शिवापनाशक, शत्रु-दिनकर,
मूत्रवर्द्धक, स्वप्नसाधक, शुक्रवर्द्धक, शनिकारक, पुष्टि
जनक, विपासा, उदर, मज्ज, श्वास, काम और श्वादा-
शक माना गया है । महाशास्त्रि आदि रक्तशास्त्रिकी
अपेक्षा मज्ज गुणयुक्त होता है । (धाम्यभाग)

धापयके मतसे—शास्त्रिधाम्यके निम्न निम्न नाम
हैं, यथा,—शास्त्रि, महाशास्त्रि, कलम, सुवंक, सुगन्धक,
सारागुण, शोचोद्गूक, रोपशुद्ध, सुगन्धक, शुक
और लयनोय । ये शास्त्रि निर्दिष्ट हैं । गुण—निम्न,
पक्षक, कपाव, लघु, पच्य, शीतल और शुक्रवर्द्धक ।
(शब्द सूचक ६ न०) शुभ्र, कर्म, शक्ति नाम—शास्त्रि,
सुगन्धक, शुक, हस्त, बलकारक, मलनाशक,
कर्मिक,

महादूपक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक काञ्चनक, दीपशूक, हायनक, दूपक, महादूपक। (सुश्रुत सूत्र-स्था० ४६ अ०) राजनिघण्टुके मतसे शालिधान्य दश प्रकारका है। धान्य शब्दमें विशेष विवरण देलो।

२ गंधमृग, गंधविलाय। ३ रसालेश, अत्यन्त रसयुक्त रस। ४ कृष्णजीरक, काला जीरा। ५ पक्षी, चिड़िया। ६ वासमती चावल। ७ एक यक्षका नाम। शालिक आचार्य—एक दार्शनिक। ये न्यायामृततरङ्गिणीके प्रणेता रामाचार्यके गुरु थे।

शालिकनाथ—एक प्राचीन कवि। शालिकनाथ मिश्र—नगरहंस, प्रकरणपञ्जिका, प्रशस्तपाद-भाष्यव्याख्या और शरभभाष्यटीका नामक चार मीमांसा तत्त्वविषयक ग्रन्थके प्रणेता। ये प्रभाकरगुरुके शिष्य थे। चित्तसुखने अपने मानसनयनप्रसादनी ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

ये महामहोपाध्याय उपाधिसे भूषित थे। प्रमाण-परायण नामक इनका लिखा एक और ग्रन्थ मिलता है। शालिवा (सं० खी०) शालिरेव स्वार्थे कन्। १ विदारी कन्। २ शारिका, मैना। ३ शालपर्णी। ४ घर, मकान।

शालिघा—कलकत्तेके दूसरे पारमें गङ्गाके किनारे अवस्थित एक नगर। यह कलकत्तेका ही अंश समझा जाता है, किन्तु हावड़ा इसका विचार-सदर है। यहाँ म्युनि-सिपलिटो है। यह वाणिज्यका प्रधानस्थान है। यहाँ बहुत-से कल कारखाने और जहाज बनानेके उद्योग हैं।

शालिगोत्र (सं० पु०) वैदिकाचार्यभेद, सम्भवतः शालि-होत।

शालिगोप (सं० पु०) धान्यक्षेत्रक्षी, वह जो खेतोंकी विशेषतः धानके खेतोंकी रक्षवाला करता हो।

(रघु ४२०)

शालिञ्ज (सं० पु०) शाकविशेष, एक प्रकारका साग पर्याय—शालिञ्ज, शितसार, पा.कंठ, लौहसारक। वैद्यके अनुसार यह चरपरी, दीपन तथा प्लोहा, दवा सौर और कफपित्तका नाश करनेवाला माना गया है।

शालिञ्जो (सं० खी०) शालिञ्ज लिप्यां ङीप्। शालिञ्ज देखो।

शालित (सं० खी०) शालयुक्त, शालिन। शालित्य (सं० खी०) १ युक्तव्य। २ शालियुक्तव्य। शालिधान (दि० पु०) वासमती चावल। यह धान जेठ मासमें बोया जाता है और अगहनके अन्त और पूनके आरम्भमें एक फर तैयार हो जाता है। इसे बग-हनी या ईमन्तिक शालिधान्य भी कहते हैं। इसका पाँधा मिट्टी तथा देनके अनुसार दो हाथसे ले कर तीन हाथ तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते साधारण धानके समान होते हैं, पर उनकी अपेक्षा कुछ कड़े और चिकने होते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकारका होता है। भेद सिर्फ इतना ही है, कि छोटा पहले पकता है और बड़ा कुछ देरमें। यह धान बिना कुट हुए ही सफेद होता है और बहुत बारीक तथा सुन्दर होता है। चावलोंमें यह सबसे उत्तम माना जाता है।

विशेष विवरण शालि शब्दमें देखो।

शालिन् (सं० खी०) शालास्यास्तीति इति। १ शाल-गिशिष्ट। पदके अन्तमें यह शब्द होनेसे युषतवाचक होता है। (जयदेव) २ श्लाघ्य, सराहने योग्य।

(भागवत ३२४१)

शालिनाथ—१ रसमञ्जरी नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये वैद्यनाथके पुत्र थे। २ गीतगोविन्दटीकाके रचयिता। शालिनी (सं० खी०) १ ग्यारह अक्षरोंका एक पृष्ठ। इसमें क्रमसे एक गणन, दो तगण और अन्तमें दो गुरु होते हैं। दूसरा लक्षण—“मात्तो गी चेत् शालिनी वेद-लोके।”

यह शब्द भी पहले अन्तमें होनेसे युषत अर्थ समझा जाता है। यथा—गुणशालिनी, गुणविशिष्टा स्त्री।

२ पक्षकन्ध, मत्सीङ्ग। ३ मेघिका, मेघो।

शालिनीकरण (सं० खी०) न्यगुभावग, तिरस्कार, भर्त्सना। (शिका)

शालिपर्णिका (सं० खी०) शान्तपर्णी देखो।

शालपर्णी (सं० खी०) शालिरेव पर्णानि यस्याः ङीप्। १ पृष्ठपर्णी, पिठवन। २ मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। ३ मापपर्णी, वन उरदो। ४ शालपर्णी, सरियन।

शालिपिण्ड (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिपर्व)

३ पक्षिगञ्जर, पक्षियोंके रहनेका पिंजड़ा। ४ दीवारमें लगी हुई छूँटो।

शालालुक (सं० पु०) शालालु (वपयमस्य शालालुनो-
ऽन्तरत्वात्) वा यामिध इति उक्त्वा। शालालु, क प्रकार-
की गन्धद्रव्य।

शालायत् (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शालायत (सं० पु०) शालायतका गोत्रायतय।

शालायती (सं० स्त्री०) हरिवंशके अनुसार विश्वामित-
की कन्याका नाम।

शालायक (सं० पु०) शालायां गृहे शालायां वा एक
इव। १ धानर, बंदर। २ ककुर, कुत्ता। ३ शृगाल,
सियार। ४ मृग, हरिण। ५ बिड़ाल, पिल्लो।

शालान्धलि (सं० स्त्री०) शालस्थलवासी रमणी।

शालि (सं० पु० स्त्री०) शृणोतीति शृ-याहुलकात् इध्,
रस्य लट्वात्। कलमादि धान्य, पट्टिकादि धान्य। देश-
भेदसं इसके धानके भेद हैं। वैद्यकमें इसके नाम और
लक्षणवैदिका विषय इस प्रकार लिखा है—

शालिधान्य, मोहिधान्य, शूकधान्य, शिम्बिधान्य
और क्षुद्रधान्य ये पांच प्रकारके धान्य हैं। इन सब
धान्योंमें जो सब धान्य हेमन्तकालमें उत्पन्न होते हैं तथा
कण्डग अर्थात् गिन छांटनेसे ही श्वेत वर्णके होते हैं,
उन्हीं शालिधान्य कहते हैं। इस शालिधान्यके नाम
ये हैं—रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक,
कर्मक, महाशालि, इंदुक, पुष्पाण्डक, महिषमस्तक,
दोषशूक, काञ्चनक, हायन और लोघुपुष्पक आदि।
देशभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारके शालिधान्य हैं।

संस्कृत पर्याय—मधुर, रुच्य, मोहिक्षेप, नृवाम्य,
धाम्योत्तम, कंदार, सुकुमारक। किसी किली पुस्तकमें
मधुर स्थानमें कलम पाठ देखा जाता है। गुण—मधुर,
कषायरस, स्निग्ध, बलकारक, मलकाटिन्य और मलका
मल्पताकारक, लघुपाक, रुचिकारक, स्वरप्रसादक,
शुक्रवर्द्धक, क्षीरिका उपचयकारक, ईषत् वायु और कफ
वर्द्धक, शीतवीर्य, पित्तनाशक और मूत्रवर्द्धक।

स्थानविशेषमें उत्पन्न शालिधान्यका गुण भी भिन्न
भिन्न प्रकारका होता है। दग्धभूमिजात शालि—कषाय
रस, लघुपाक, मलमूत्रनासारक, रक्ष और कफनाशक।

खेत जोत कर धान रोपनेसे जो धान उत्पन्न होता है,
यह वायु और पित्तनाशक, गुद, कफ और शुक्रवर्द्धक,
मलका मल्पताकारक, मेधाजनक और बलवर्द्धक होता
है। बिना जोते हुए खेतमें जो धान आपे-आप उदरन्न
होता है, उसका गुण कुछ तिक, मधुर, कषायरस,
पित्तघ्न, कफनाशक, वायु और अग्निवर्द्धक तथा कटु और
विपाक माना गया है।

घापितशालि—जो शालिधान्य एक खेतसे उखाड़
कर फिर दूसरे खेतमें रोपा जाता है, उसे घापितशालि
कहते हैं। यह धान्य मधुर, कषायरस, शुक्रवर्द्धक, बल-
कारक, पित्तघ्न, कफवर्द्धक, मलका मल्पताकारक, गुद
और शीतवीर्य होता है।

अघापित शालिमें घापित शालिकी अपेक्षा कुछ कम
गुण होता है। रोपितशालि—बोए हुए धानकी उखाड़
कर रोपनेसे जो धान होता है, उसे रोपितशालि कहते
हैं। यह नई अवस्थामें शुक्रवर्द्धक और पुरानी अवस्था-
में लघु होता है। अतिरोप्याशालि—रोप्याशालिकी
उखाड़ कर रोपनेसे जो धान होता है, उसका नाम अति-
रोप्याशालि है। यह रोप्याशालिकी अपेक्षा अधिक
गुणयुक्त और लघुपाक होता है।

छिन्नकूटाशालि—शीतवीर्य, रुक्ष, बलकारक, कफ-
नाशक, मलरोधक, ईषत् तिकसंयुक्त, कषाय रस और
लघु होता है। शालि धान्योंमें रक्तशालि सबसे श्रेष्ठ
है। यह धान्य बलकारक, त्रिदोषनाशक, चक्षु-हितकर,
मूत्रवर्द्धक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, बलिकारक, पुष्टि-
जनक, पिपासा, उबर, मण, भ्वास, कास और दाहना-
शक माना गया है। महाशालि आदि रक्तशालिकी
अपेक्षा जल्य गुणयुक्त होता है। (भायप्रकाश)

घाभटके मतसे—शालिधान्यके भिन्न भिन्न नाम
हैं, यथा,—शालि, महाशालि, कलम, दुर्षक, शकुनाहृत,
सारमुषा, दोर्घाशूक, रोषशूक, सुगन्धक, पतंग
और तपनीय। ये शालि निर्दोष हैं। गुण—स्निग्ध,
बलकर, कषाय, लघु, पच्य, शीतल और मूत्रवर्द्धक।
(बाभट मूलपाठ ६ अ०) सुधुर्षके मतसे नाम—शालि,
कलम, सुगन्धक, शकुनाहृत, महाशालि, शीतवीर्यक,
रोषपुष्पक, महिषमस्तक, कर्मक, पाण्डुक,

महादूपक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, काञ्चनक, दीपशूक, हायनक, दूपक, महादूपक। (सुश्रुत सूत्र-स्था० ४६ अ०) राजनिघण्टके मतसे शालिधान्य दश प्रकारका है। धान्य शब्दमें विशेष विवरण देलो।

२ गंधमृग, गंधविलाय। ३ रसालेश, अत्यन्त रसयुक्त रस। ४ कृष्णजोरक, काला जोरा। ५ पक्षी, निरिया। ६ वासमती चावल। ७ एक यक्षका नाम।

शालिक आचार्य—एक दार्शनिक। ये न्यायामृततरङ्गिणीके प्रणेता रामाचार्यके शुक थे।

शालिकनाथ—एक प्राचीन कवि।

शालिकनाथ मिश्र—नगरत्न, प्रकरणपञ्जिका, प्रशस्तपाद-भाष्यव्याख्या और शबरभाष्यटीका नामक चार मीमांसा तत्त्वविषयक ग्रन्थके प्रणेता। ये प्रभाकरगुरुके शिष्य थे। चित्तसुखने अपने मानसनयनप्रसादनी ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

ये महामहोपाध्याय उपाधिसे भूषित थे। प्रमाण-परायेण नामक इनका लिखा एक और ग्रन्थ मिलता है। शालिध (सं० खी०) शालिरेव स्वायं कन्। १ विदारी कन्। २ शारिका, मैना। ३ शालपणी। ४ धर, मकान।

शालिघा—कलकत्तेके दूसरे पारमें गङ्गाके किनारे अवस्थित एक नगर। यह कलकत्तेका ही अंश समझा जाता है, किन्तु हाथड़ा इसका विचार-सदर है। यहां म्युनि-सिपलिटो है। यह वाणिज्यका प्रधानस्थान है। यहां बहुत-से कल कारखाने और जहाज बनानेके डक हैं।

शालिगोल (सं० पु०) वैदिकानामदेद, सम्भवतः शालि-होत।

शालिवोप (सं० पु०) धान्यक्षेत्रज्ञी, वह जो खेतोंकी विशेषतः धानके खेतोंकी रक्षवाला करता हो।

(रघु ४२०)

शालिञ्ज (सं० पु०) शाकविशेष, एक प्रकारका साग पर्याय—शालेञ्ज, शितसार, फा.के.ए, लौहसारक। वैद्यके अनुसार यह चरपरी, दीपन तथा प्लोहा, दवा सोरे और केकपित्तका नाश करनेवाला माना गया है।

शालिञ्जी (सं० खी०) शालिञ्ज स्त्रियां स्त्रीप।

शालिञ्ज देखो।

शालित (सं० खी०) शालयुक्त, शालिन्।

शालित्य (सं० स्त्री०) १ युक्तव्य। २ शालियुक्तव्य।

शालिधान (दि० पु०) वासमती चावल। यह धान जेट मासमें बोया जाता है और अगहनके अन्त और पूनके आरम्भमें एक कर तैयार हो जाता है। इसे अग-हनी या ईमन्तिक शालिधान्य भी कहते हैं। इसका पीघा मिट्टी तथा देनके अनुसार दो हाथसे ले कर तीन हाथ तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते साधारण धानके समान होते हैं, पर उनकी अपेक्षा कुछ कड़े और चिकने होते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकारका होता है। भेद सिर्फ इतना ही है, कि छोटा पहले पकता है और बड़ा कुछ देरमें। यह धान बिना कुट हुप हो सफेद होता है और बहुत बारीक तथा सुन्दर होता है। चाबलोंमें यह सबसे उत्तम माना जाता है।

विशेष विवरण शालि शब्दमें देखो।

शालिन् (सं० खी०) शालास्याम्भीति इति। १ शाल विशिष्ट। पदके अन्तमें यह शब्द होनेसे युषतवाचक होता है। (जयदेव) २ श्लाघ्य, सराहने योग्य।

(भागवत ३.२.४१)

शालिनाथ—१ रसमञ्जरी नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये वैद्यनाथके पुत्र थे। २ गोतगोविन्दटीकाके रचयिता। शालिनी (सं० खी०) १ भ्यारह अक्षरोंका एक वृत्त। इसमें कमसे एक गण, दो तगण और अन्तमें दो मुद्र होते हैं। दूसरा लक्षण—“मात्तो गी चेत् शालिनी वेद-लोकैः।”

यह शब्द भी पहले अन्तमें होनेसे युषत अर्थ समझा जाता है। यथा—गुणशालिनी, गुणविशिष्टा स्त्री।

२ पञ्चकन्ध, मसींड। ३ मेथिका, मेथो।

शालिनीकरण (सं० स्त्री०) न्यगभावन, तिरसहार, भर्त्सना। (विक्र०)

शालिपर्णिका (सं० स्त्री०) शात्रपर्णी देखो।

शालपणी (सं० खी०) जालारव पर्णानि यस्याः स्त्रीप।

१ वृष्टनपर्णी, पिठवन। २ मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। ३ मायपर्णी, धन उरदो। ४ शालपर्णी, सरियन।

शालिपिण्ड (सं० पु०) नागभेद। (भारत भादिपर्व)

शालिषट् (सं० पु०) गाले विष्टमिष शुभ्रवत् । स्फटिक, विल्लीर पत्थर ।

शालिमद्र—१ एक जैनाचार्य । ये जिनमद्र मुनि (११४८ ई०) के गुरु थे । २ काव्यालङ्कारटीकाके प्रणेता नमि (१०६३ ई०) के गुरु ।

शालिमशरी (सं० पु०) एक ऋषिका नाम ।

शालिमूल (सं० क्ली०) हैमन्तिक धान्यमूल । (चरक)

शालिराट् (सं० पु०) हं सराज चावल ।

शालिषह (सं० त्रि०) १ शाखावहनकारी । २ धान्यवहनकारी ।

शालिषाह (सं० पु०) धान्यवहनकारी वृष, वह धैल जो धान बोता हो, लक्ष्मीका धैल । (राम० २३२२०)

शालिषाहन (सं० पु०) शक जातिका एक प्रसिद्ध राजा । इसने 'शक' नामक सम्वत् चलाया था । टाडराज-स्थानमें लिखा है, वि. यह गजनीके राजा 'गज'का पुत्र था । पिताके मारे जाने पर यह पञ्जाब चला आया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया । इसने शालिषाहन-पुर नामक नगर भी बसाया था । इसकी राजधानी नोदाधरीके किनारे प्रतिष्ठानपुरमें थी । वही वहाँ इसका नाम सातवाहन भी मिलता है । कथासरित्सा

गरमें लिखा है, कि इसे सात नामक गुहाक उडा कर ले चला करता था, इसीसे इसका नाम सातवाहन पड़ा ।

सातवाहन देखो ।

शालिशषत् (सं० पु०) शालिषाध्यवृत्त शषत्, वह सत्तू जो वासमतो चावलका धनता है । इसका गुण—मधुर, लघु, शीतल, प्राही, रक्तपित्तनाशक, तृष्णा, छर्द्दि और ज्वरनाशक माना गया है ।

(चरक तूत्र २७ म०)

शालिसूर्ध (सं० क्ली०) एक गाँवका नाम । (भारत बनवर्ष)

शालिद्वैत (सं० पु०) १ घोटक, घोड़ा । २ पुराणानुसार भोजप्रवर्षके एक ऋषिका नाम । (क्ली०) ३ नकुलकृत भववैद्यक, नकुलका बनाया हुआ घोड़ा और पशुओं आदिकी चिकित्साका शास्त्र । ४ भोजकृत भववैद्यक ।

शालिद्वैतमुनि—रैवतस्तोत्र और सिद्धयोगसं प्रदक रचयिता ।

शालिद्वैतमुनि—रैवतस्तोत्र और सिद्धयोगसं प्रदक रचयिता ।

शालिद्वैतपण (सं० पु०) शालिद्वैतका गोत्रापत्य ।

शालिद्वैती (सं० पु०) भववैद्य, यह जो पशुओं और विशेषतः घोड़ों आदिकी चिकित्सा करता हो ।

शाली (सं० स्त्री०) १ कृष्णजीरक, काला जीरा । २ मेथिका, मेथी । ३ शालपर्णी । ४ दुरालभा । ५ बंगालमें प्रवाहित एक छोटी नदी ।

शालीकि—एक प्राचीन आचार्य । वीधायनधर्मोत्सृजमें इनका उल्लेख देखनेमें आता है ।

शालीक्षुमत् (सं० पु०) शालि और इक्षुयुक्त क्षेत्र, वह खेत जिसमें शालि और इक्षु हो । (ब्रह्म० १६११)

शालीगनामी (शालप्रामी)—गण्डकी नदीके स्थान-विशेषका नाम ।

शालीन (सं० त्रि०) शालाप्रवेशनमहतीति शाला (शास्त्रीनकौपीने अष्टकाकार्यो) वा श्वा२० इति अत्र प्रत्ययेन नियापनात् सिद्धं । १ जो घृष्ट या उद्दण्ड न हो, विमोत । (मार्क०पठेयपु० ५१६) २ सलज्ज, लालक, जिसे लज्जा आती है । ३ सद्गुण, समान, तुल्य ।

४ शाला-सम्बन्धी, शालाका । ५ सम्पत्तिशाली, धनवान्, अमीर । ६ अच्छे आचार-विचारवाला । ७ जो अथद्वारमें कुशल हो, दक्ष, चतुर । (पु०) ८ उल्कृत धान्य, बढ़िया धान । (दिव्या ५५६)

शालीनता (सं० स्त्री०) शालीनस्य भावः तल्-टाप् । १ शालीन होनेका भाव या धर्म । २ लज्जा, लाज, शरम । ३ अधीनता । ४ नम्रता ।

शालीनस्य (सं० क्ली०) शालीनस्य भावः त्व । १ शालीन होनेका भाव या धर्म, अधृष्टता । २ शतपुण्या, सौंफ । ३ सोमा नामक साग ।

शालीनीकरण (सं० क्ली०) शालीन-क-भभूततदुभायं चि्व । नम्रीकरण ।

शालीना (सं० स्त्री०) मिश्रेयाद्य क्षुप, सौंफका पौधा ।

शालीन्य (सं० पु०) शालीन (बुध्वादिभ्यो ष्य) वा ४१११५१ इति अपत्यार्थे ष्य । शालीनका गोत्रापत्य ।

शालीपुर—विशाल राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन गाँव ।

(भविष्यप्रज्ञा०)

शालीय (सं० त्रि०) १ शाला वा गृह-सम्बन्धी । २ शाल

मर्धात् शाल वृक्ष सम्बन्धी । (पु०) ३ एक वैदिक
आचार्यका नाम ।

शालु (सं० क्ली०) शृणुति शीतागमे श्रु वाहुलकात्-
घृण् , रस्य लत्व । (उष् १।५) १ कमलकन्द, भसींङ् ।

(पु०) २ कपाय द्रव्य । ३ चोरक या भटेउर नामक
शोषधि । ४ भेक, मेढक । ५ एक प्रकारका फल ।

शालुक (सं० क्ली०) १ कुमुदादि मूल, भसींङ् ।
२ जायफल ।

शालुग्रा—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर ।
यहां चन्द्रायत राजपूतोंकी राजधानी थी । शालुग्रा देखो ।

शालुक (सं० क्ली०) शाल (शक्तिमपिदम्बोमूकण् । उष्
५।२) इति ऊकण् । १ कुमुदादि मूल, भसींङ् ।

शैलङ्ग—जाजिकाय । संस्कृत पर्याय—१ शूराण,
शालु । गुण—शीतल, बलकर, पित्त, दाह और रक्त-
शोषनाशक, गुण, दुर्जर, स्वादुपाक, स्तम्भ, पात और

कफवर्द्धक, संप्रादी, मधुर और रुचिकर । (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे यह शीतवीर्य, शुकजनक, पित्तघ्न,
दाहनाशक, रक्तदोषापहारक, गुण, दुष्पाच्य, मधुर विपाक,

स्तम्भजनक, वायुवर्द्धक, कफप्रदायक, धारक, मधुर रस
तथा रुक्ष होता है । शालुकमूल भी इसी प्रकारका गुण-
युक्त है ।

अल्पदिनोत्पन्न, अकालोत्पन्न, जीर्ण, व्याधियुक्त, कीट
द्वारा मक्षित और अग्निजलादि द्वारा दूषित शालुक

वर्जनीय है । (भाव०) २ मण्डक, मेढक । ३ जाती-
फल, जायफल । (राजनि०) ४ एक प्रकारका रोग ।

शालुकिनी (सं० स्त्री०) शालुक अस्त्यर्थे इति । १ शालुक-
युक्त भूमि । २ एक गाँवका नाम । (पा २।५।७)

३ एक तीर्थका नाम । (भारत वन०)
शालुक्य (सं० पु०) शालुकका गोत्रापत्य ।

(पा ४।१।२२)
शालूर (सं० पु०) शालते ध्रुवेन गच्छतीति शल (लजि
पिम्वादिभ्यः ऊरोन्चो । उष् ४।६०) इति ऊर । भेक,
मेढक ।

शालूरक (सं० पु०) एक प्रकारका कीटाणु जो अंतर्द्वियों-
में पीड़ा उत्पन्न करता है ।

शालेमिश्रो—काबुल और काश्मीर आदि प्रदेशोंके वृक्षों-
Vol. XXII, 190

का गोद या आटा । यह बड़ा कड़ा होता है । यह गरम
जलमें गल जाता है । गुण—उष्ण, शुक्र, आग्नेय, वृक्ष, शुक्र-
वर्द्धक, घर्णका औज्वल्यकारक, कामवर्द्धक, धातुपोषक,
मेध्य, हृद्य, कफ, वक्ष्मा, कास, श्वास, स्वरभेद, दुर्बल,
उग्माद, अपहारा, ऊरुस्तम्भ, शून्, सूत्ररोग, प्रमेद, उदरो,
शोथ, वृद्धि, गलरोग, प्रग्थि, अचुद, श्लोष, विद्रधि, प्रण,
कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट, मुख, कर्ण, नेत्र, शिर, योनि और
सूतिका इन सब रोगोंका नाशक । मतान्तरसे स्निग्ध-
कारक, बालकका हितकर और पथ्य । (द्रव्यगुण)

शालेय (सं० पु०) शालोनां क्षेत्रं शालि (मीक्षिशालयोर्दक ।
पा ५।२।२) इति टक् । १ शाक्यवृक्ष शैल, शालि घानका
खेत । २ मधुरिका; सौंफ । ३ मूली । (त्रि०) ४ शाल-
सम्बन्धी, शाल वृक्षका । ५ शाला-सम्बन्धी, घरका ।

शालेया (सं० स्त्री०) शालेय-टाप् । १ मिश्रं या, मेधो ।
२ स्त्रीभा ।

शालै—एक जाति ।
शालोत्तरीय (सं० पु०) शालोत्तरे प्रामे भयः शालोत्तर-छ ।
पाणिनि मुनि, शालातुरोय । (त्रिका०)

शालोन—युकप्रदेशके रायदरेली जिल्लान्तर्गत एक नगर ।
शात्मल (सं० पु०) १ शात्मलि मूक्ष, सेमलका पेड़ ।
२ सात द्वीपोंमेंसे एक, शात्मलि द्वीप । यह द्वीप कौञ्च-
द्वीपसे दूना है । (मत्स्यपु० १०० अ०) ३ मोचरस ।
४ शात्मलि देखो ।

शात्मलि (सं० पु० स्त्री०) स्वनामख्यात प्रदातर, सेमल-
का पेड़ (*Bombax malabaricum*) उत्कल—बोगरो,
तामिल—पुला, मदारुद्र—शाम्बरी । संस्कृत पर्याय—
पिच्छिला, पूरणो, मोचा, स्थिरायु, दुरारोहा, शात्म-
लिनो, शात्मल, तुलिनो, कुषकुटा, रक्तपुष्पा, कण्टकारी,
मोचनी, चिरजीवी, पिच्छिल, रक्तपुष्पक, तूलशूक्ष,
मेचाह्य, कण्टकद्रुम, रक्तोत्पल, रम्यपुष्प, बहुवीर्य, पम-
द्रुम, दीर्घद्रुम, स्थूलफल, दोर्घायु, कण्टकाण्ड ।

(भावप्रकाश)
इसके धड़ और टालियाँ कण्टकाकीर्ण होती हैं । इस-
की लम्बी लम्बी अंडीमें पजेकी तरह पांच पांच या छः
छः पत्ते लगे रहते हैं । फूल मोटे मोटे दलोंसे गठित बड़े
बड़े और गहरे लाल होते हैं । फूलोंमें पांच दल होते हैं

धीर उनका घेरा बहुत बड़ा होता है। फाल्गुनके महीने-में इस पेड़के सारे पत्ते झड़ जाते हैं। उस समय यह रश्मी लाल लाल फूलोंसे आच्छादित रहता है। जब फूलोंके दल भी झड़ जाते हैं, तब केवल छोट्टा या फल रह जाते हैं। उन फलोंके अन्दर अत्यन्त मुलायम रेशमकी तरह रुई होती है। उस रुईमें विनीलेके-से बीज होते हैं। सेमलके डोढे या फलोंको निस्सारता भारतीय कवि परम्परामें बहुत पहलेसे प्रसिद्ध है। 'सेमर सेई सुवा पछताने' यह एक कहावत सो हो गई है। सेमलकी रुईका सूत तैयार नदीं किया जा सकता, इसलिये लोग इसे गद्दी तथा तक्रियोंमें भरते हैं। इसकी लकड़ी पानोमें खूब ठहरती है और नाच बनानेके काममें आती है। आयुर्वेदमें सेमल बहुत उपकारी औषधि मानो गई है। यह मधुर, कसैला, शीतल, हलका, स्निग्ध, विच्छिन्न तथा शुक्र और कफको बढ़ानेवाला कहा गया है। सेमलको छाल कसैली और फफणाशक; फूल शीतल, कड़वा, भारी, कसैला, घातकारक, मलरोधक, रुखा तथा कफ, पित्त और रक्तविकारको शान्त करता है। फलके गुण फूल हाके समान हैं। सेमलके नये पीपे भी जड़को सेमलका मूसला कहते हैं। कारण, कामोद्दीपक और नपुंसकताको दूर करनेवाला माना जाता है। सेमलका गोंद मोचरस कहलाता है। यह अतिसारको दूर करता है और बलको बढ़ाता है। इसके बीज स्निग्धताकारक और मद्कारी होते हैं तथा कांटेमें फोड़े, फुंसो, घाव, छीप आदि दूर करनेका गुण होता है।

फूलोंके रङ्गके भेदसे सेमल तीन प्रकारका है—पहला साधारण लाल फूलोंवाला, दूसरा सफेद फूलोंका और तीसरा पीले फूलोंका। इनमेंसे पीले फूलोंका सेमल कहीं देवनेमें नहीं आता। सेमल सारतवर्षके गरम जंगलोंमें तथा बरमा, सिंदल और मलयमें अधिकतासे होता है।

शास्त्रमलिक (सं० पु०) शास्त्रमलि (पुच्छवक्रविक्षेति । पा ५२५०) इति कुमुदात्वात् ठक् । रोहितक वृक्ष, रोहितः ।

शास्त्रमलीकद्वय—सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीपका नाम । प्रतापहपुराण पढ़नेसे जाना जाता है, कि इस द्वीपमें

बहुत-से शास्त्रमलिवृक्ष थे। इसीलिये यह शास्त्रमलद्वीपके नामसे विख्यात हुआ है। इसी द्वीपके द्वारा श्वेतसमुद्र परिदेष्टित है। यहाँ श्वेत वर्षमें कुमुदवर्षत, लोहितवर्षमें उत्तमवर्षत, जीमूतवर्षमें बलाहकवर्षत, हरितवर्षमें द्रोणवर्षत, वैद्यवर्षमें कङ्कवर्षत, मानसवर्षमें महिषवर्षत एवं सुप्रमवर्षमें ककुदवर्षत विद्यमान है। इन सप्तवर्षोंमें योनो, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्रा, विमोचनी और निवृत्ति नामक सात प्रधान नदियाँ प्रवाहित होती हैं। इन सब नदियोंसे असंख्य शाखा-प्रशाखा नदियाँ निकली हैं। इसका आकार मूषद्वीपसे दूना है।

(महापर्वपु० अनुपर्व ५२ अ०)

शास्त्रमलिन् (सं० पु०) शास्त्रमल आध्वपत्येनास्त्यस्येति इति । गण्ड० । (शिका०)

शास्त्रमलनी (स्त्री०) शास्त्रमल वृक्ष, सेमलका पेड़ ।

शास्त्रमलिपत्रक (सं० पु०) शास्त्रमलिपत्रमिष पत्रं यस्य । ससच्छन्दं वृक्ष, सतिथन । (राजनि०)

शास्त्रमलिस्थ (सं० पु०) शास्त्रमली वृक्षे तिष्ठतीति स्थानक । गण्ड० ।

शास्त्रमली (सं० पु०) एक राजाका नाम ।

(सहा० ३३।१६०)

शास्त्रमली (सं० स्त्री०) शास्त्रमल कृत्तिकारादिति डोप । शास्त्रमल वृक्ष, सेमलका पेड़ । अमरटीकामें भरनेसे इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है, 'शालति द्वैर्वात् दूरं गच्छति शास्त्रमलिः शल ज गतौ नाम्नीति मलिन् वृद्धिः । द्वयो-रित्यु-त्ते खोपक्षे पाच्छोणादौति डोपि शास्त्रमली च शालमलिश्चेति केचित् तर्गतं विभाषया वृद्धिः ।' (भरत) शास्त्रमलीकद्वय (सं० पु०) स्वनामप्रसिद्ध कण्ठकविशेष, सेमलका कांटा । यह व्यङ्ग्यरोगजाशक होता है।

(वाग्भट उत्तर० ३२ अ०)

शास्त्रमलीकद्व (सं० पु०) शास्त्रमल्याः कद्वः । शास्त्रमलीकी जड़ । वर्षाव—विजुल, घनवासक, घनवासी, मलहन, मलहन्ता । इसका गुण—मधुर, मलसंप्रद, रोध और जयकारक, शीतल, पिच, दाह, शोक और सर्वापनाशक । (राजनि०)

शास्त्रमलीकद्वय (सं० पु०) वैद्यशास्त्रके अन्तर्गत विक्रितसा-कद्वयमेद । (जयद्वय)

शास्त्रमालिका (सं० पु०) शास्त्रमालिका: फलविध फलं यस्य ।

१ तेजबल या तेजफल नामका वृक्ष । (ह्रीं०) २ सेमलका फल ।

शास्त्रमालिका (सं० ह्रीं०) सुश्रुतके अनुसार काठकी वह पट्टी जिस पर रगड़ कर छुरे आदिकी धार तेज की जाती है । (सुश्रुत सूत्रस्था० ८, ६ अ०)

शास्त्रमालीचेष्ट (सं० पु०) शास्त्रमालीचेष्टः । शास्त्रमाली-निर्यास, सेमलका गौद । पर्याय—पिछा, मोचरस, शास्त्रमालीचेष्टक, मोचराय, मोचनिर्यास ; इसका गुण—शोथले, प्रादक, स्निग्ध, बलकर, कषाय, मवाहिका, गनि सार, आम, कफ, पित्त, रक्तदोष और दाहनाशक ।

(भावप्र०)

शास्त्रमालीचेष्टक (सं० पु०) शास्त्रमालीचेष्ट देवो ।

शास्त्रमालीसत्त्वनिर्यास (सं० पु०) मोचरस ।

(भौषज्यरत्ना०)

शास्त्रमालीस्थल (सं० ह्रीं०) शास्त्रमाली ह्रीप ।

शास्त्रमालीक्षीप देवो ।

शास्त्रमाली (सं० ह्रीं०) शास्त्रमालिकी ह्री अक्षय ।

शास्त्रपति (सं० पु०) एक ऋषिनाम ।

(संस्कारकी०)

शास्त्र (सं० पु०) १ देशविशेष, शास्त्रदेश । २ राजविशेष, एक राजाका नाम । ये सीम राज्यके अधिपति थे । महाभारतमें लिखा है, कि जिस समय काशिराजकी लड़कियोंका स्वयंभू हो रहा था, उस समय भीथाने राजाको कन्याओंको उनसे जवर्दस्ती छीन लाये थे । शास्त्रराजने भीष्मके साथ युद्ध किया था ; किंतु वे युद्धों पराजित हुए । युद्धविजयके बाद काशिराजकी बड़ी लड़कीने कहा—“मैं पहले ही सीमराज्यके अधिपति शास्त्रराजकी शपना पति कर चुकी हूँ, वे भी मनही मन मुझे स्वीकारमें प्रवृत्त कर चुके हैं । मेरे पिताकी भी यही अभिरक्षा थी । मैंने स्वयंभूमें उन्होंने गलेमें माला डाली । आप पर्महैं, इस समय सोच विचार कर धर्मानुसार कार्य करें ।

भीष्मने उसका अभिप्राय समझ कर शास्त्रराजके साथ उसका विवाह कर दिया ।

(भारत आदिय० १०२३ अ०)

शिशुपालके साथ शत्रुकी विधेय आत्मीयता थी । जब श्रीकृष्णने शिशुपालका वध किया, तब श्रीकृष्णको मार डालनेके अभिप्रायसे शास्त्रराजने द्वारिकापुरीको घेर लिया । प्रयुक्त प्रभृति यादवोंके साथ इसका घोर युद्ध हुआ । आखिर श्रीकृष्णने उसे यमपुर भेज दिया ।

(भारतवन० १५-२० अ०)

शास्त्रवक (सं० त्रि०) शास्त्रदेशवक ।

शास्त्रवकिनी (सं० ह्रीं०) रामायणके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम । (राम० ६१०६१७६)

शास्त्रवगिरि (सं० पु०) एक प्राचीन पर्वतका नाम ।

(पा ६३:११७)

शास्त्रवण (सं० पु०) १ वह लेप जो फोड़ेको पकानेके लिये उस पर चढ़ाया जाता है, पुलटिस । २ चोपा, भरता ।

शास्त्रवसिनी (सं० पु०) शास्त्रवसिनी देवो ।

शास्त्रवसिनी (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम । (भारत ६:६१०) यह जनपद गोदावरी नदीके पश्चिममें अवस्थित था । पार्श्वार्थ भौगोलिकों ने इसे Salakanoi प्रदेशमें उल्लेख किया है । २ इस देशका निवासी ।

शास्त्रवायन (सं० पु०) शास्त्र राजाके गोतमें उत्पन्न पुरुष ।

शास्त्रिक (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी जिसे क्षुद्रचूड़ भी कहते हैं ।

शास्त्रिय (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम । २ इस देशका निवासी । ३ इस देशका अधिपति ।

शास्त्रियके (सं० पु०) शास्त्रिय जनपदका रहनेवाला ।

शाव (सं० पु०) ऋषयते प्राप्यते इति शव-गर्ता घम् ।

१ शिशु, बच्चा, विशेषतः पशुओं आदिका बच्चा । २ श्वशान, मरघट । ३ मृतक, मुरदा । ४ भूरा रङ्ग । ५ सूतक जो बिसीके मर जाने पर उसके सम्बन्धियोंको लगता है । (त्रि०) ६ शव-सम्बन्धी, शवका । (तिथितत्त्व)

शावक (सं० पु०) शाव एव स्वार्थे कन् । शाव, बच्चा, विशेषतः पशुओं आदिका बच्चा ।

शावता (सं० ह्रीं०) शावस्य भावः तल्-टाप् । १ शव-

का भाय या धर्म, शावत्व, वचनापन । २ श्वायता ।
 जावर (सं० पु०) शवर-भण् । १ पाप, गुनाह । २
 अपराध, कसूर । ३ लोभ वृक्ष, लोभका पेड़ । ४ शवर-
 स्वामिहृत भाष्य, मीमांसाभाष्य । ५ शिवकृत तन्त्र
 विशेष । (ति०) ६ शवर सम्बन्धी, शवरका ।
 जावरकरोध (सं० पु०) अक्षिमेयज्ञापरसंज्ञक खनाम-
 यथात लोभ, पठानी लोभ । (वाभट)
 जावरचन्दन (सं० पु०) एक प्रकारका चन्दन ।
 जावरमेदास्र (सं० स्त्री०) तास्र, तौदा ।
 जावरी (सं० स्त्री०) शूकशिशो, केवाँच ।
 जावशापन (सं० पु०) शवसका गोतापत्य ।
 जाश (सं० लि०) जश-भण् । जश-सम्बन्धी ।
 (याज्ञवल्क्य ११२५)
 जाशक (सं० लि०) शशकस्वेदं शशक-भण् । शशक-
 सम्बन्धी ।
 शाशविन्द्व (सं० लि०) शशविन्दुका भवत्य ।
 शाशविन्द्वी (सं० स्त्री०) शशविन्दुकी लडकी ।
 शाशादनक (सं० लि०) शशादन (धूमादिभ्यश्च । पा
 ४।३।२७) इति जुञ् । शशादन-देशवासी ।
 शाशिक (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम ।
 २ इस देशकी निवासी ।
 शाश्वत् (सं० पु०) शाश्वत, नित्य, स्थायी ।
 शाश्वत (सं० लि०) शश्वदुमयं, शाश्वत्-अण् । १ चिर-
 स्थायी, जो सदा स्थायी रहे, कभी नष्ट न होनेवाला,
 नित्य ।
 "मा नियाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतोः समा ।"
 (राम.अण् १।१।१५)
 पारिभाषिक शाश्वत यथा—देवपूजा प्रभृति, ब्राह्मणों-
 के उद्देशसे ज्ञान, सगुणविद्या, सुहृद् और मिल इन सबों
 को पारिभाषिक शाश्वत कहते हैं ।
 (गर्हपु० नीतिशा० १११ अ०)
 (पु०) २ वेदव्यास । ३ शिव । (भारत १३।१।३२)
 ४ स्वर्ग । ५ अन्तरिक्ष ।
 शाश्वतिक (सं० लि०) शाश्वत, नित्य, स्थायी ।
 शाश्वती (सं० स्त्री०) पृथ्वी ।
 शापमान (सं० पु०) एक चैतकशास्त्रके यन्त्र ।

शाशकुल (सं० लि०) मांसाशी, मांस या मछली खाते-
 वाला, गोशूलोर ।

शाशकुलिक (सं० स्त्री०) शशकुल समूहाधि उक्त ।
 शशकुली-समूह ।

शाश्वक (सं० लि०) शश्व (धूमादिभ्यश्च । पा ४।३।२७)

इति वृञ् । १ शश्वतुल देश । २ जगन्महल देशस्थित ।

शाश्वेय (सं० पु०) एक चैदिक आचार्यका नाम ।

(पा ४।३।१०६)

शाश्वेयिन् (सं० पु०) शाश्वेय शास्त्राध्यायी ।

शास् (सं० स्त्री०) १ शासन । २ आयुधविशेष ।

"नि चिद्धि पूर्वोभिसन्धि शासा" (शृक् ७।४५।२)

'शासा शासनेन स्वकीयया हया यद्वा विशस्वने हिंस्वते-
 ज्ञेतेति शास् इत्थं आयुधवाचो तेन' (सायण)

शास (सं० पु०) शास घञ् । १ अनुशासन । २ स्तव,
 स्तुति ।

"रातहृद्यः प्रति यः शासमिष्यति" (शृक् १।५४।७)

'शास' इन्द्रकर्तृकमनुशासनं यद्वा तस्य स्तुतिं शासु
 अनुशिष्टावित्यस्मान्नाये घञ्' (भाष्य)

शासक (सं० पु०) शास-ण्टुल । १ शासनकर्ता, गद्द
 जो शासन करता हो । २ वह जिसके (हाथमें किसी
 नगर, प्रान्त या देश आदिकी राजकीय व्यवस्था हो ;
 हाकिम ।

शासन (सं० स्त्री०) शास लघुट् । १ आज्ञा, हुकम ।

पर्याय—अथवाद्, निर्देश, शिष्टि, शास्ति, आदेश, आदे-
 शन, शास्त्र । (जटाधर)

"कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्कारापरपथतः ।"

(मनु ३।२६२)

कुल्लूकने शासन शब्दका अर्थ दण्ड किया है,
 चोरो आदि कोई पाप करने पर राजा धर्मानुसार उसकी
 शासन अधात् दण्ड दे ।

२ राजदत्त मुनि, मुभाणो । ३ लिखित प्रतिज्ञा,
 पट्टा, ठीका । ४ शास्त्र । शास्त्र द्वारा सभी लोग शास्ति
 होता है, इसीसे इसे शासन कहते हैं । ५ शास्ति, दण्ड,
 सजा । ६ इन्द्रिय-निग्रह । ७ किसी नगर, प्रान्त या
 देश आदिकी राजकीय करनेका काम; हुकूमत ।
 ८ यह परमाना या द्वारा किसी व्यक्ति

कोई अधिकार दिया जाय । ६ किसीके कार्यों आदिका नियंत्रण करना । १० किसीको अपने अधिकार या वशमें रखना ।

शासनदेवता (स० स्त्री०) जैनियोंकी एक देवी ।
(हेम)

शासनदेवी (स० स्त्री०) जैनियोंकी एक देवी ।
(शशुल्यमा०)

शासनघर (स० पु०) धरतीति घरः शासनस्य घरः । १ राजदूत, पलची । २ शासक ।

शासनपत्र (स० क्ली०) वह ताप्रपत्र या शिला जिस पर कोई राजाका लिखी या खोदी हुई हो ।

शासनवाहक (स० पु०) १ राजदूत, पलची । २ आज्ञावाहक, वह जो राजाकी आज्ञा लोगोंके पास पहुंचाता हो । (कामन्दकीय १२३)

शासनशिला (स० स्त्री०) वह शिला जिस पर कोई राजाका लिखी हो ।

शासनहर (स० पु०) हरतीति ह-अच् । शासनस्य हरः । १ राजदूत, पलची । २ आज्ञावाहक, वह जो आज्ञाकी आज्ञा लोगों तक पहुंचाता हो ।

शासनहारक (स० पु०) १ राजदूत, पलची ।
(कामन्दकीय नीति १२३)

२ आज्ञावाहक, वह जो राजाकी आज्ञा लोगों तक पहुंचाता हो ।

शासनहारिन् (स० पु०) राजदूत, पलची ।
(ग्यु ३६८)

शासनी (स० स्त्री०) शासन लिखीं जीप । धर्मोपदेशकर्त्री, वह स्त्री जो लोगोंको धर्मका उपदेश करती हो ।
"अहयवन् मगधस्याशासनी" (ऋक् १३१११)

शासनीय (स० लि०) शास-अनोपर । १ शासनाई, शासन करनेके योग्य । २ सुधारनेके योग्य । ३ दण्ड देनेके योग्य, सजा देनेके लायक ।

शासित (स० लि०) शास-क्त । १ कृतशासन, जिसका शासन किया जाय, शासन किया हुआ । २ दण्डित, जिसे दण्ड दिया जाय । (पु०) ३ प्रजा । ४ निग्रह, संयम ।

शासितृ (स० पु०) शास्-तृच् । १ शास्ता, शासन-

कर्ता । (मनु ७११०) २ व्याख्याता । (मनु २११०) शासित् (स० पु०) शास-णिनि । शासक, शासन करनेवाला । इस शब्दका प्रयोग प्रायः धार्मिक शब्द बनानेमें, उसके अन्तमें किया जाता है ।

शास्त् (स० पु०) शासक ।

शास्ति (स० स्त्री०) शास-वाहुलकात् ति । (उष् ४१७६) १ शासन । २ दण्ड, सजा ।

शास्त्व (स० पु०) शास्त्व (वनवृक्षी संघीति । उष् २६५) इति असंशयामपि स्त्व सच्च अनिट् । १ शासनकर्त्ता, शासक । पर्याय—देशक, शासिता ।

"द्वौ शास्तारौ त्रिभोकेऽस्मिन् धर्माधर्मौ प्रकीर्तितौ ॥"
(अग्निपु० गणपेदनामाध्याय)

२ रुद्र (अमर) ३ उपाध्याय, गुरु । ४ राजा । ५ पिता । (वज्रिसंहर उपाधि)

शास्त्व्य (स० क्ली०) शास्त्व भावः त्व । शास्ताका भाव या धर्म, शास्ताका कार्य, शासन, शास्ति ।

शास्त्र (स० क्ली०) शिष्यवेदानेन शास (सर्) वाग्मथत्त्वं । उष् ४११५) १ हिन्दुओंके अनुसार ऋषियों और मुनियों आदिके बनाए हुए वे प्राचीन ग्रन्थ जिनमें लोगोंके हितके लिये अनेक प्रकारके कर्त्तव्य बताए गये हैं और अनुचित कृत्योंका निषेध किया गया है अर्थात् वे धार्मिक ग्रन्थ जो लोगोंके हित और अनुशासनके लिये बनाये गये हैं ।

हमारे यहां वे ही ग्रन्थ शास्त्र माने गए हैं जो वेद-सूक्त हैं । इनको संख्या १८ कही गई है और नाम इस प्रकार दिये गये हैं—शिक्षा, कवच, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, ऋष्येद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, मन्त्रवेद और अर्थशास्त्र । इन अठारहों शास्त्रोंको अठारह विद्याएं भी कहते हैं ।

मत्स्यपुराणमें शास्त्रको उद्धारिका विषय इस प्रकार लिखा है—पहले देवताओंके पितामहने कठोर तपस्या द्वारा भय करी । उससे साङ्गोपाङ्ग वेद आदि शास्त्र आविर्भूत हुए । (मत्स्यपु० ३ अ०)

शास्त्रमें जो सब विधि और नियम हैं, उनके अनुसार आचरण करना सवोंका कर्त्तव्य है । शास्त्रोक्त कर्म हो

विधेय है, शास्त्रनिषिद्ध कर्म सर्वांतोभावयें चर्जनीय है।
गोतामें लिखा है, कि जो शास्त्र विधिका परित्याग कर
अपने इच्छानुसार कर्म करते हैं, वे सिद्धि और सुख कुछ
भी नहीं पाते।

पद्मपुराणमें भी लिखा है, कि सर्वदा धृति, स्मृति
और सदाचारविहित कर्मका आचरण करे। जो इसका
अपघाचरण करते हैं, उन्हें नरक होता है। अतएव जो
सब शास्त्र वेदविरुद्ध हैं, उनमें जो सब विधि कही गयी
है, उसका परित्याग करना उचित है। स्वयुद्धिरचित
शास्त्रमें मूर्खोंको प्रतारित किया गया है। वे इस
असच्छास्त्रानुसार कर्म कर श्रेष्ठ मार्गसे भ्रष्ट और पीछे
विनष्ट होते हैं। सुतरां असच्छास्त्र लोकनाशका कारण
है। वेदविरुद्ध जो शास्त्र है, वही असच्छास्त्र है।

(उत्तरख० १७ अ०)

२ किसो विशिष्ट विषय या पदार्थ समूहके संबंधका
यह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रमसे संग्रह करके रखा गया
है, विज्ञान।

शास्त्रकार (सं० पु०) शास्त्र करोतीति कृ 'कर्मण्युपपदे'
इति यण्। शास्त्रकर्त्ता, यह जिसने शास्त्रोंका प्रणयन
या रचना की हो।

शास्त्रकृत् (सं० पु०) शास्त्र करोतीति कृ-क्विप्-त्सुक्च।
१ ऋषि। २ भाषार्थ। (त्रिका०) ३ शास्त्रकर्त्ता,
शास्त्रप्रणेता।

शास्त्रग्रन्थ (सं० पु०) कथासंस्तिस्माग यणित शास्त्र
तोता पक्षो। (कथासंस्ति० ५६।२८)

शास्त्रगण्ड (सं० पु०) प्रघटावित्। (त्रिका०) हारा
घलीमें इसका पाठान्तर छात्रगण्ड है।

शास्त्रचक्षुस् (सं० फली०) शास्त्रेषु चक्षुरिव। १
शास्त्रकी भांख अर्थात् ध्याकरण। ध्याकरण शास्त्रमें
व्युत्पत्ति नहीं होनेसे किसी शास्त्रमें अधिकार नहीं
होता, इसलिये ध्याकरणको शास्त्रबन्धु कहते हैं।
शास्त्रमेव चक्षुः रूपकर्मधारयः। २ शास्त्ररूप चक्षुः।
(त्रि०) शास्त्रं चक्षुः संस्य। ३ जिससे शास्त्ररूपी नेत्र प्राप्त
हो, ज्ञानी, परिष्ठत।

शास्त्रचारण (सं० त्रि०) शास्त्रं चारयति प्रचारयति

चार-णिव-त्सु। शास्त्रदर्शी, जो शास्त्रोंका अच्छा
ज्ञाता हो।

शास्त्रचिन्तक (सं० पु०) शास्त्रं चिन्तयतीति चिन्ति-
प्युल्। शास्त्रचिन्ताकारी, यह जो शास्त्रकी भांलो-
चना करता हो।

शास्त्रवीर (सं० पु०) शास्त्रज्ञ भाचार्य।

शास्त्रज्ञ (सं० पु०) शास्त्रं जानातीति ज्ञा क। शास्त्र-
वेत्ता, यह जो शास्त्रका ज्ञाता हो।

शास्त्रतत्त्वज्ञ (सं० त्रि०) शास्त्रस्य तत्त्वं ज्ञानातीति ज्ञा-
क। १ शास्त्रार्थदर्शी, जो शास्त्रके तत्त्वोंका अच्छा
ज्ञाता हो। (पु०) २ गणक, ज्योतिषी।

शास्त्रतस् (सं० अर्थ०) शास्त्र तसिल्। १ शास्त्रा-
नुसार, शास्त्रके मोताविक। २ शास्त्रसे। पञ्चमी या
सप्तमीका अर्थ होनेसे तसिल् प्रत्यय होता है।

शास्त्रतय (सं० फली०) शास्त्रस्य भावाः तय। शास्त्रका
भाव या धर्म।

शास्त्रदर्शिन (सं० त्रि०) शास्त्रं द्रष्टुं शीलमस्य दृशा-
इनि। शास्त्रज्ञ, जिसे शास्त्रोंका अच्छा ज्ञान हो।

शास्त्रदृष्ट (सं० त्रि०) शास्त्रे दृष्टः। जो शास्त्रमें दृष्ट
हुआ हो।

"मत्स्यं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।" (मनु ८।१)

शास्त्रदृष्टि (सं० पु०) शास्त्रमेव दृष्टिर्णस्य। १ यह जो
शास्त्रोंका ज्ञाता हो, शास्त्रज्ञ।

"दिनं लग्नश्च होराश्च नविदुः शास्त्रदृष्टया ॥"

(मार्क० १०६।३६)

(स्त्री०) २ शास्त्ररूप दृष्टि।

शास्त्रनेत (सं० त्रि०) शास्त्रमेव नेतृ वस्य। शास्त्रचक्षुः।
शास्त्रवक्त्र (सं० त्रि०) शास्त्रस्य वक्ता। शास्त्रोपदेशी,
शास्त्रोंका उपदेश देनेवाला।

शास्त्रबुद्धि (सं० त्रि०) शास्त्रे बुद्धिर्णस्य। १ जिसको
शास्त्रविषयक बुद्धि हो, शास्त्र जाननेवाला। (स्त्री०)
२ शास्त्रविषयिणी बुद्धि। जो बुद्धि रहनेसे शास्त्र समझा
जाता है, वही शास्त्रबुद्धि है।

शास्त्रमति (सं० त्रि०) शास्त्रं मतिर्णस्य। शास्त्रबुद्धि।
शास्त्रवत् (सं० अर्थ०) शास्त्रतः, शास्त्रके अनुसार।

शास्त्रविद् (सं० त्रि०) शास्त्रं वेत्तीति विद्-क्विप्। शास्त्र-
दर्शी, शास्त्रोंका जाननेवाला।

शास्त्रविप्रतिषिद्धः (सं० लि०) शास्त्रेण विप्रतिषिद्धः ।
 शास्त्रनिषिद्धः जो शास्त्रमें निषिद्ध बताया गया हो ।
 शास्त्रशिलिपुः (सं० पु०) शास्त्रं शिल्पमस्यास्तोति इति ।
 १ काश्मीरदेश । २ उस देशका निवासी । ३ भूमि,
 जमीन । (निका०)
 शास्त्राचरं लिपिः (सं० स्त्री०) ललितविस्तरके अनुसार
 प्राचीन कालकी एक प्रकारकी लिपि ।
 शास्त्रिय (सं० लि०) शास्त्रमस्यास्तीति शास्त्र तारकादि-
 स्वादित्तत्त्वं (पा० ५।२।३६) । शास्त्रियुक्त ।
 शास्त्रिन (सं० लि०) शास्त्रं वेत्ति शास्त्र-इन् । १ शास्त्र-
 वेत्ता, शास्त्रज्ञः (पु०) २ एक उपाधि जो कुछ विश्व-
 विद्यालयों आदिमें इसी नामकी परीक्षामें उत्तीर्ण होने
 पर प्राप्त होती है ।
 शास्त्रोप (सं० लि०) शास्त्र सम्बन्धी, शास्त्रका ।
 शास्त्रोक (सं० लि०) जो शास्त्रमें लिखे या कहेके अनुसार
 हो; शास्त्रोंमें कहा हुआ ।
 शास्यं (सं० लि०) शास-प्यन्त् । १ शासनीय, शासन
 करनेके योग्य । (मनु० ५।१११) २ शिक्षणीय, सुधारने
 योग्य । (ऋक् १।१८२।७) ३ बण्डनीय, बण्ड देनेके
 योग्य ।
 शाहशाह (फा० पु०) बादशाहोंका बादशाह, बहुत
 बड़ा बादशाह, महाराजाधिराज ।
 शाहशाही (फा० स्त्री०) १ शाहशाहका कार्य या भाव,
 बादशाही । २ व्यवहारका खरापन ।
 शाह (फा० पु०) १ बहुत बड़ा राजा या महाराज । बाद-
 शाह देखो । २ मुसलमान फकीरोंकी उपाधि । (वि०)
 ३ बड़ा, भारी, महान् । इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग
 केवल यौगिक शब्द बनानेमें उनके आदिमें होता है ।
 शाह अब्बास (१म) — १ पारस्यके शाफरवंशके सप्तम
 राजा । से सुलतान सिकन्दर शाहके पुत्र थे । १५७१
 ई०की २६वीं जनवरी सोमवारको इनका जन्म हुआ था ।
 सोलह वर्षकी अवस्थामें १५८८ ई०में ये अपने पिताकी
 जिवितावस्थामें ही खुरासानके राजसामन्तों द्वारा
 राजसिंहासन पर बैठाये गये । सबसे पहले इन्होंने दो
 वर्षकाल नगरमें पारस्यकी राजधानी स्थापित की । शाह-
 अब्बासने शीर्षामें, चोटीमें तथा शासनगीरवर्षमें यद्ये

प्रतिपत्ति लाभ की थी । इन्होंने अपने असाधारण प्रताप-
 से राज्यकी सीमाका विस्तार किया था । १६२२ ई०में
 इन्होंने अंग्रेजों सेनाके साथ मिल कर अरमस् ह्वीप
 पर अपना अधिकार जमाया । यह अरमस् ह्वीप १२२
 वर्ष तक पुर्तगालियोंके अधीनमें रहा । शाह अब्बास अकबर
 और जहाँगीरके समकालीन व्यक्ति थे । ४४ वर्ष राज्य
 करनेके बाद १६२६ ई०की ८वीं जनवरीको ये स्वर्गवासी
 हो गये । इनके बाद इनका पौत्र शाहसुफी गद्दी पर बैठे ।
 शाह अब्बास कट्टर शिया थे ।

२ उक्त १म अब्बासके प्रपौत्र भी शाह अब्बासके
 नामसे विख्यात हुए । १६४२ ई०के मई महीनेमें ये गद्दी-
 के उत्तराधिकारी हुए । इस समय इनकी अवस्था प्रायः
 दश वर्षकी थी । इनके पिताके समय बन्दहार शहर
 इन लोगोंके हाथसे निकल गया था । द्वितीय शाह
 अब्बासने उस नगर पर फिर अपना अधिकार
 जमा लिया । इस समय इनकी अवस्था सिर्फ १६
 वर्ष की थी । शाहजहाँने इस शहर पर फिरसे अपना
 अधिकार जमानेकी बड़ी चेष्टा की, किन्तु उनका सारा
 प्रयास व्यर्थ हुआ । शाह अब्बासने प्रायः २५ वर्ष तक
 राज्य किया था । करीब ३४३५ वर्षकी अवस्थामें
 १६६६ ई०की २६वीं अगस्त (पौनर्वशी रवि-उल्लम्बल,
 १०६७ हि०)को इनकी मृत्यु हो गई । इसके बाद इनका
 पुत्र सफी मिर्जा (शाह सुलेमान) अपने पिताका उत्तरा-
 धिकारी हुआ ।

शाह आलम—दिल्लीके मुगल-सम्राट् । ये बली गीहरके
 नामसे विख्यात थे । इनके पिताका नाम सम्राट् आलम-
 गीर (२य) और माताका नाम जिन्नतमहल उर्फ
 विनान-कुनवार था । १७२८ ई०की १५वीं जून
 (१७ जिकद्दा ११४० हि०)को इनका जन्म हुआ था । शाह
 आलम पितृविहीन थे । पीछे अपने पिताके मन्त्री इनाद
 उल-मल्लिक नाजो द्वारा कारागृह होनेके भयसे ये
 १७५८ ई०में दिल्ली छोड़ मुर्शिदाबाद चले गये । इस
 समय सिराजुद्दौलाका साम्राज्यवर्ष सदाके लिये मसूफ
 हो गया था । मीरजाफरने सिराजुद्दौलाके सिंहासन
 पर अपना अधिकार जमा लिया था । शाह आलम
 मुर्शिदाबादसे विहार प्रदेशमें जा कर रहने लगे । उसी

समय उनके पिता ज़ुलु द्वारा मारे गये। यह सम्वाद या कर शाह आलमने तुरत दिल्ली जा कर अपने पिताके सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। १७५६ ई०की २५वीं दिसम्बरके ये गद्दी पर बैठे। इस समय उन्होंने शाह आलमकी उपाधि प्राप्त की। १७६४ ई०की २३ वीं अक्टूबरके बखसरके युद्धमें शाह आलमके प्रधान मन्त्री मुजाउद्दौला द्वार पता कर भाग गये। शाह आलमने निरपराय हो कर अंग्रेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। १७६५ ई०की १२वीं अगस्तके अहमदाबाद जा कर इन्होंने इष्ट-इण्डिया कम्पनीके बङ्गदेशकी दीवानोका भार सौंप एक सनद लिख दी। इस समय बङ्ग, बिहार और उडिसाके करस्वरूप इनके इष्ट-इण्डिया कम्पनीसे धार्मिक सिर्फ २२ लाख रुपये मिलते थे। लार्ड क्लाइवने त्रि वर्ष सिर्फ २२ लाख रुपये कर देना स्वीकार कर इतने बड़े प्रदेशकी दीवानोकी सनद पाई थी। लार्ड क्लाइव जेनरल स्मिथके दिल्लीमें छोड़ फलकत्ता चले गये। शाह आलम फैजल नामके लिये सन्नद्ध थे। ये जेनरल स्मिथके हाथकी पुतलीकी तरह सिंहासन पर बैठे थे। वास्तवमें जेनरल स्मिथ ही शासनकर्त्ता थे। शाह आलम अहमदाबाद नगरमें और जेनरल स्मिथ सिन्धी गढ़में रहते थे। सन्नद्धके राजभयनमें पूर्ण प्रथाके अनुसार नौबत बाजा बजता था। उस नौबतकी आवाज जेनरल स्मिथके न सुहाती थी; इसलिये उन्होंने नौबत बजाना निषेध कर दिया। सन्नद्ध शाह आलमके विना किसी आपत्तिके नौबत बजाना बन्द कर देना पड़ा, अतएव शाह आलम सिर्फ नामके लिये बाद्शाह थे। ये परले दुश्मनोंके डरसे इलाहाबाद शहरमें अंग्रेजोंकी शरणमें जीवनकी घड़ियाँ बिता रहे थे। किन्तु इस तरह इलाहाबादमें जीवन बिताना उन्हें बुरा मान्द्रम पश्ने लगा; इसलिये वे फिर १७७८ ई०में दिल्ली चले गये। इसके चोड़े ही दिनोंके बाद सहसा गुलाम कादिर खान नामक एक प्रयत्न पराक्रमी ज़ुलु द्वारा बन्दी हुए। गुलाम कादिर खान उनको खाले निकाल लीं। १८०६ ई०की १६वीं नवम्बरके शाह आलमकी मृत्यु हुई। शाह आलमके एक अर्धभ्राता थे। उनके कादरप्रथममें उनके नामकी कविताएँ "शाकताव" के नामसे उल्लिखित

हैं। कुतुब शाहकी दरगाहके निकटवर्ती मोती मसजिदके पास बहादुर शाहकी समाधिके निकट शाह आलमकी समाधि है।

शाह आलम—कुतुब आलम नामक एक साधु फकीरका लड़का। इनका पहला नाम कुतुबुद्दीन सैयद बरान् उद्दीन था। इन्होंने भी पिताकी तरह फकीरी धारण कर पूरा पश कमाया था। इनके पितामहका नाम मुकदम जठारनियन सैयद अनाम कथाशी था। कुतुब गुजरातमें रहते थे। वे १४५३ ई०की ६ वीं दिसंबरके स्वर्गवासी हुए। अल्लादावाबसे ६ मील दूर आज भी उनकी समाधि विद्यमान है। शाह आलम भी गुजरातमें ही वास करते थे। यहाँ उनकी भी समाधि है।

शाह अली महमूद—"ताउज्जनियात् रहमानी" नामक ग्रन्थके लेखक। इस ग्रन्थमें सुफियोंके धर्म पंच तर्से क्रांत रहस्यपूर्ण पदाविकी व्याख्या है।

शाह अली हजरत—एक सैयदवंशीय धार्मिक मुसलमान। इन्होंने पारसी, अरबी और गुजराती भाषाओंमें कई धर्मग्रन्थोंकी रचना की। १५६५ ई०में अल्लादावाबमें इनका स्वर्गवास हुआ।

शाह करक—एक प्रसिद्ध मुसलमान फकीर। इलाहाबादके अन्तर्गत करक नामक स्थानमें ये समाधिस्थ हुए। मुसलमान लोग इस फकीरके समाधिमन्दिरको अमी भी एक पवित्र स्थान मानते हैं। फिरिस्ता नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि १६६६ ई०में सुलतान जलालुद्दीन फिरोजकी मुसदहत्याके एक दिन पहले सुलतान अल्लाउद्दीनने इस फकीरके साथ भेंट की थी। फकीरने उस समय एक श्लोक बतवाया था। उस श्लोकका अन्वय यह है—

"जो तुम्हारा शत्रु बन कर आयेगा, वह नीकाके ऊपर ही अपना मस्तक को बैठेगा और उनके शरीरका अवशिष्टांश गंगाके गर्भमें चला जायगा।" फकीरकी यह भविष्यवाणी कुछ ही घंटेके अन्दर सत्य निकली। जिस राजाने अल्लाउद्दीनके विषय खाता की थी, उस राजाकी मृत्यु फकीरके कथनानुसार ही हुई। १२६६से १३१६ ई०के मध्य शाह करकका लोकान्तर हुआ।

शाह कासिम—एक सुनिश्चित मुसलमान साधु। १५८४ ई०में इनका परलोकवास हुआ। यवाजा मयदुल रज़र-

की लिखी हुई चिठ्ठी में इनकी धार्मिक जीवनी लिखी है।

शाह कुली खाँ महरम—सम्राट् अकबर शाहके एक समर-सचिव। १५६८ ई०में उदयपुरके अधीनस्थ अमीरों-का दमन करनेके लिये ५००० सेनाका नायक बन कर सलीम और मानसिंहके साथ इन्होंने अजमेरकी यात्रा की थी। जहाँगीर बादशाहने अपने प्रथममें एक जगह लिखा है, कि उनके राजदरबारमें मिर्जा हान्दोलकी सुलताना बेगम नाम्नी एक कन्याके साथ शाह कुली खाँ महरमका विवाह हुआ था। किन्तु मसिर उल् उमराव नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि १६०० ई०में कुली खाँ महरम कराल कालके शालमें समा गये।

शाह कुदरत्-उल्ला—दिल्लीके एक सुप्रसिद्ध कवि। पारसी और उर्दू भाषाओंमें इनके रचे हुए कई काव्यग्रन्थ हैं। इन सब काव्य ग्रन्थोंमें "नटुप चाउल आफ़कार" और "दीवान" नामक दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। १७८२ ई०में ये मुर्शिदाबादमें आ कर बस गये। उक्त दीवान ग्रन्थमें २० हजार कविताएँ हैं। १७६१ ई०में मुर्शिदाबाद नगरमें इनकी मानवलीला समाप्त हो गई।

शाहगंज—१. युक्तप्रदेशके अन्तर्गत जौनपुर जिलेके खुताहन तालुकके अधीन एक शहर। यह अक्षा० २६ ३' ३०" एवं देशा० ८२ ४३' पू०के मध्य विस्तृत है। फैजाबादकी पक्की सड़कके किनारे खुताहन शहरसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें यह शहर अवस्थित है। अयोध्याके नवाब यज़ीर सुजाउद्दौलाने इस शहरकी बसाया था। उनके प्रपत्नसे सबसे पहले यहाँ एक बाज़ार और प्रसिद्ध फकीर शाह हज़रत् अलीकी यादगारोंके लिये एक मस्जिद स्थापित हुई। शाहगंज इस अंचलके बाणिज्यका एक प्रधान केन्द्रस्थान है। जौनपुर जिलेमें सद्रके सिवाय शाहगंजकी तरह सुप्रसिद्ध और कोई बाणिज्य-स्थल नहीं है। जौनपुर जिलेमें सद्रके सिवाय शाहगंजकी तरह सुप्रसिद्ध और कोई बाणिज्य स्थल नहीं है। यह स्थान रुईकी आनदनीके लिये प्रसिद्ध है। यहाँ मंगलवार और शनिवारको हाट लगती है। यहाँ स्कूल, डाकघर, पुलिसस्टेशन, डिस्-पेन्सरी और अयोध्या-रोडिलखण्ड रेलवेका स्टेशन है।

२. फैजाबाद जिलेमें और एक शाहगंज नामक शहर। यह शहर फैजाबादसे दश मील दूर मुगल सम्राट् द्वारा बसाया गया था। १८५७ ई०में राजा दर्शनसिंहने इस नगर पर अधिकार जमा कर यहाँ अपना दुर्ग और वास्तु-स्थान निर्माण किया था। इसका दूसरा नाम मस्किम-पुर है।

शाहगढ़—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत सागर जिलेकी बान्दा तहसीलके अधीन शाहगढ़ नामक भूलखण्डका प्रधान नगर। यह सागर शहरसे ४० मील उत्तर-पूर्वमें, अक्षा० २४ १६' एवं देशा० ७६' पू०के बीच अवस्थित है। यह स्थान मण्डलके गोंडराजके अधीन था। १८५७ ई० तक यहाँ उक्त राजवंश रहते थे। यह शहर उच्च पर्वतश्रेणीके नीचे अवस्थित है। इसके चारों ओर हरे-भरे जंगल हैं, जो इसकी प्राकृतिक शोभा बढ़ा रहे हैं। नगरके पूर्व भागमें एक दुर्गके ध्वंसावशेषके मध्य इस समय भी प्राचीन राजप्रासाद दिखाई देता है। इस शहरके उत्तरांशमें बारेज, अमरमऊ, हीरापुर और टिंगड़ा-में लोहिकी खान तथा कारखाना है। यहाँसे लोहे गला कर कानपुर भेजे जाते हैं। यहाँ मंगलवार और शनि-वारको हाट लगती है।

शाह जमाल—काबुल और कन्दहारके प्रसिद्ध राजा। इनके पिताका नाम तैमूर शाह था। सुप्रसिद्ध शाह अब्दुली इनके पितामह थे। पिताकी मृत्युके बाद १७६३ ई०में ये काबुलके सिंहासन पर बैठे। १७६६ ई०में दिल्ली पर चढ़ाई करनेका इरादा कर ये लाहौर गये, पर ह्मर इनके राज्य हीमें इनका भाई यिम्रोही हो उठा, इस-लिये लाचार हो कर इन्हीं अपने देशके लौट जाना पड़ा। १८०० ई०में किरातनियासी इनके भाई महम्मद-शाहने इन्हें अंधा कर बालाहिसाके जेलमें बन्द कर दिया। १८३६ ई०में जब घुट्टिया गयनेमेंएने शाह सुजा की काबुलकी गद्दी पर बिठाया, तब अफगानियोंने इसका खूब ही विरोध किया और शाह जमालको ही अपना राजा माना।

शाह जलाल—श्रीहट्टके एक विषयात फकीर। श्रीहट्टमें इस समय भी इनकी समाधि और दरगाह है। कितने ही मुसलमान मौलवी इस दरगाहमें रहते हैं और नित्य

नैमित्तिक कार्यादि करते हैं। कबोत तथा भीर और कई प्रकारके पक्षी इस दरगाहमें बास करते हैं। मकामसजिदके पक्षी भी मुसलमान-समाजमें पवित्र माने जाते हैं।

शाहजहान—दिल्लीके प्रसिद्ध सभ्राट्। इनका दूसरा नाम शाहशुहीन महमूद साहिब किरान सानो था। ये सभ्राट् जहांगीरके तृतीय पुत्र थे। १५६३ ई०की ५वीं जनवरीको लाहौरमें इनका जन्म हुआ। बाल्यावस्थामें ये मिर्जा खुर्रमके नामसे पुकारे जाते थे। इनकी माताका नाम बालमती था। बालमती राजा उदयसिंहकी लड़की तथा जोधपुरके राजा पालदेवकी पोती थी। राजा खुर्रम सिंह इनके सहोदर भाई थे। शाहजहाँ अपने पिताकी मृत्युके समय दाक्षिणात्यमें बास करते थे। अपने ससुर आसफ खानकी चेष्टासे ये राजसिंहासन पर बैठे। १६२८ ई०की ५वीं फरवरीसे इन्होंने राज्य करना आरम्भ किया। भारतवर्षमें मुसलमान बादशाहोंके बीच इन्होंने याथास्म्य प्रभृतिमें सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त किया था। मयूरसिंहासनका निर्माण शाहजहाँने ही किया था। इसके तैयार करनेमें जो गरकत आदि अमूल्य मणिज्ज वज्रधार में लाये गये थे, इस समय वैसे मणिमणिज्ज विकुल ही नहीं पाये जाते। मणितत्त्ववित् सुविख्यात पर्धनक टामरनेयर कहते हैं, कि मयूरसिंहासनका मूल्य

६५ लाख पार्लिंसे किसी प्रकार कम नहीं हो सकता। इन्होंने दिल्लीमें शाह-जहानाबाद नामक एक नगर बसाया था। आगरेका ताजमहल भी इन्हींकी विश्वविख्यात प्रधानतम कृति है। सारे यूरोप भीर पजियामे पेना महल और फही दृष्टिगोचर नहीं होता। ताजमहल मोम्-ताजमहल नामका अपभ्रंश है। मोम्-ताजमहल शाहजहाँकी प्यारी छोटी नाम था। उसीके नाम पर यह महल बनवाया गया था। शाहजहाँने तीस वर्ष तक राज्य किया। १६५८ ई०की ६वीं जूनको इनके पुत्र आलमगीर और गजेबने आगरेके किलेमें इन्हे कैद कर लिया। ७ वर्ष ६ महीने कारागार बास करनेके बाद १६६६ ई०की २३वीं जनवरी सोमवारकी रातको इन्होंने अपनी मानघलीला शेष की। राजमहलमें इनकी खोके मकबरेके पास ही इनकी वेद दफनाई गई। मृत्युके समय इनकी अवस्था ७६ वर्ष ३ महीने १७ दिनकी थी। इनके चार लड़के और चार लड़कियाँ थीं। पुत्रोंके नाम दारासिकोह, सुलतान सुजा, आलमगीर और मुरादक्षपस थे। आलमगीरने अपने भाई दारा और मुरादको मार डाला था। सुलतान सुजा आराकान चले गये और वहाँके राजा द्वारा मार डाले गये। शाहजहाँकी पुत्रियोंके नाम मजुमन-आरा, गीति-आरा, जहानारा और रोशन-आरा थीं।

